तुलसी - ग्रन्थावली
[प्रथम खण्ड]

श्रीरामचरितमानस

गोस्वामी तुलसीदास

प्रथम आवृत्ति : संवत् २०२८ (मार्च १९७२ ई०)

प्रकाशक
अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी

तुलसी-ग्रन्थावली

[प्रथम खण्ड]

श्रीरामचरितमानस

गोस्वामी तुलसीदास

अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी।

तु ल सी - ग्र न्था व ली

[प्रथम खण्ड]

•

श्रीरामचरितमानस

•

गोस्वामी तुलसीदास

•

अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी
[संवत् २०२८]

गोस्वामी तुलसीदास
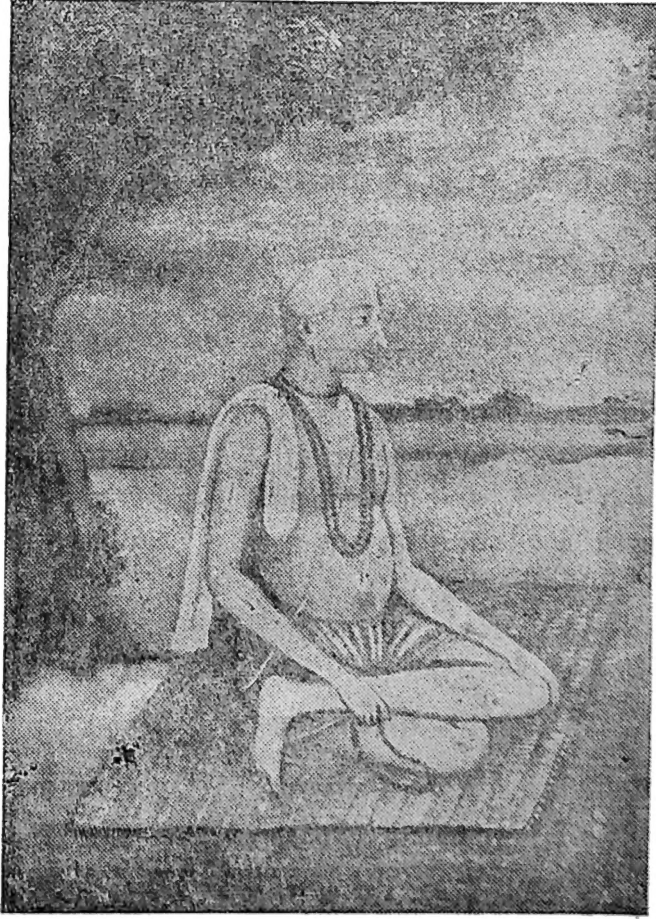
[नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशीके अनुग्रहसे]

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसी तरुः ।

कविता - मंजरी यस्य रामभ्रमर - भूषिता ॥

अवतार : संवत् १५५४] [लीला-संवरण : श्रावण कृ० ३, सं० १६८०

प्रकरण-सूची

विषय पृष्ठ

अयोध्याकांड

अरण्यकांड

किष्किंधाकांड

सुन्दरकांड

लंकाकांड

उत्तरकांड

परिषद्‌की ओरसे • • •

कृतज्ञता-प्रकाश

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी-द्वारा संस्थापित अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशीकी ओरसे प्रकाशित कालिदास-ग्रन्थावली, समीक्षाशास्त्र, अभिनव-नाट्यशास्त्र तथा संस्कृत-सूक्ति-सागर आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्नोंकी वरिष्ठ परम्परामें भक्त-प्रवर गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरित-मानसकी चतुश्शताब्दीके पुण्य पर्वपर परिषद्ने यह निश्चय किया कि 'पूरी तुलसी-ग्रन्थावली (अर्थ-सहित) प्रकाशित कर दी जाय, रौयल अठपेजी आकारके इस विशाल महाग्रन्थके दोनों खंडोंका मूल्य ४२ रु० (+ ४ रु० सजिल्दका) रक्खा जाय किन्तु १० रु० अग्रिम देकर पूर्वग्राहक बन जानेवालोंको यह महाग्रन्थ २५ रु० में (सजिल्द) अर्थात् शेष १५ रु० और डाकव्यय दे देनेपर उपलब्ध करा दिया जाय।' सर्व-सम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि इसका संपादन-कार्य प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदीको सौंपा जाय।

'सीता-राम गुण-ग्राम'के इस अभिराम काममें आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदीने जो उदारता-पूर्वक अद्भुत, अप्रतिम परिश्रम करके इसका संपादन किया तथा श्री सीतारामजी सेकसरियाने अत्यन्त आत्मीयता और तत्परताके साथ इसके प्रकाशनके साधन जुटानेमें जो औदार्य व्यक्त किया उसके लिये मैं परिषद्‌की ओरसे उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। किन्तु 'सीताराम'का कार्य बिना बजरंग-बलीके कभी नहीं होता। इस सीतारामके काममें भी श्रीबजरंगबली गुप्तने श्रावणकुञ्ज (अयोध्या)-के बालकांड, राजापुरके अयोध्याकांड और सद्‌गुरुसदन, गोलाघाट, अयोध्याके शेष कांडोंके पाठोंकी प्रतिलिपिके अनुसार मुद्रित अपनी १९३५ वाली प्रति लाकर प्रस्तुत कर दी। इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण भी इसमें सहायक बनकर आ गए। पंडित श्रीकृष्ण शुक्लने अपनी वृद्धावस्थाकी समस्त शिथिलता भूलकर अत्यन्य तन्मयताके साथ चतुर्वेदीजीके साथ नित्य ६-६ घंटे परिश्रम करके इसके संपादनमें योग दिया। मैं इन सभी महानुभावोंके प्रति परिषद्‌की ओरसे हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

यह संस्करण हम तुलसी-जयन्ती (२६ अगस्त, सन् १९७१) को ही प्रकाशित कर देना चाहते थे किन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी सितंबरसे पूर्व हमें कागज नहीं मिल पाया। हमें विश्वास था कि नवंबरमें ग्रंथ छप जायगा किन्तु ग्रन्थका आकार अनुमानसे अधिक बढ़ गया। 'नानापुराणनिगमागम' और 'क्वचिदन्यतोपि' को मूल रूपमें देनेका निश्चय कर देनेके कारण कार्य बढ़ता चला गया। फिर भी सुदर्शन मुद्रक, काशीके व्यवस्थापक महोदय तथा कर्मचारियोंने अत्यन्त धैर्य, परिश्रम, शीघ्रता, शुद्धता और सुन्दरताके साथ दिसंबर १९७१ के अन्ततक यह महाग्रन्थ छाप ही डाला। हम उनके भी अत्यन्त आभारी हैं।

जिन अनेक महानुभावों और संस्थाओंने इस ग्रन्थकी १००-१००, ५०-५० प्रतियाँ लेनेके लिये अग्रिम आदेश दिया, जिन सज्जनोंने अग्रिम ग्राहक बनाए तथा जो अग्रिम ग्राहक बने उन सबके हम बड़े कृतज्ञ हैं और हमें विश्वास है वे इसके दूसरे खण्डके लिये भी ऐसा ही सहयोग देनेका अनुग्रह करेंगे।

महाशिवरात्रि
सं० २०२८
काशी

गयाप्रसाद ज्योतिषी
व्यवस्थापक
अखिल भारतीय विक्रम-परिषद्, काशी

संपादकोंकी ओरसे • • •

आत्मनिवेदन

गोस्वामी तुलसीदासजीके जीवन-चरित और उनके ग्रंथोंके—विशेषत: रामचरितमानसके—पाठकी तथा उनके ग्रन्थोंकी संख्याकी प्रामाणिकताका अभीतक कोई असंदिग्ध आधार नहीं मिल सका। यह कम आश्चर्य और खेदकी बात नहीं है कि गोस्वामी तुलसीदासजी-जैसे विश्व-विश्रुत, रससिद्ध और कुल चार शताब्दी पूर्वके विश्ववन्द्य कविके किसी भी ग्रंथकी कोई भी उनकी हाथकी लिखी प्रति प्राप्त नहीं हो पाई। श्रावण-कुञ्ज (अयोध्या)-के बालकाण्ड और राजापुर (जिला बाँदा)-की जो प्रतियाँ गोस्वामीजीकी स्वहस्तलिखित प्रतियाँ बताई जाती थीं उनमेंसे कोई भी प्रति गोस्वामीजीके हाथकी लिखी हुई नहीं है। उनके प्रामाणिक हस्ताक्षर-सहित टोडरमलके पंचनामेपर गोस्वामीजीका हस्तलिखित एक दोहा और दो श्लोक प्राप्त होते हैं। यह मूल पंचनामा टोडरमलके वंशज चौधरी पृथ्वीपाल सिंहने काशिराजको भेंट कर दिया था और वह उनके संग्रहालयमें सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयके सरस्वती-भवन पुस्तकालयमें उनके हाथका लिखा हुआ वाल्मीकि-रामायणका उत्तरकाण्ड तथा नवाबगंज, काशीके पंडित राधाकांत पांडेयके पास सुरक्षित वाल्मीकि-रामायणके कुछ काण्ड प्राप्त हैं। इन सभीकी लिपि एक सी ही है और वह निश्चय ही गोस्वामीजीके ही हाथकी लिपि है।

गोस्वामीजीके हाथके लिखे हुए उनके स्वरचित ग्रंथ उनके अस्सी घाटपर स्थित तुलसी-घाटवाले अखाड़ेमें भी प्राप्त नहीं हैं क्योंकि उस अखाड़ेमें तीन बार लूट हो चुकी है और जान पड़ता है लुटेरोंने उनके हस्तलिखित ग्रंथोंको निरर्थक एवं अपने लिये अनुपादेय समझकर गंगाजीमें फेंक बहाया हो। अत:, विवश होकर उनके ग्रन्थोंके पाठके लिये उनके ग्रन्थोंसे प्रतिलिपि की हुई अनेक प्रतियोंपर ही अवलंबित होना पड़ता है।

तुलसीदासजीके जीवन-कालमें ही रामचरितमानसकी इतनी व्यापक प्रतिष्ठा बढ़ चली थी कि लोग उन्हें महामुनि मानने लगे थे—'तुलसीको लोग मानियत महामुनि-सों'। अत: उनके जीवन-कालमें ही रामचरितमानसकी प्रतिष्ठा आप्त ग्रंथ या आर्ष ग्रंथके समान होने लगी थी। इस प्रतिष्ठाका जहाँ यह सुपरिणाम हुआ कि उनके ग्रंथोंकी धड़ाधड़ प्रतिलिपियाँ होने लगीं, वहीं यह दुष्परिणाम भी हुआ कि जितने ही अधिक लोगोंके हाथमें मानसकी प्रति पड़ी उतने ही क्षेपक और पाठ उसमें अंधाधुंध जोड़ दिए जाने लगे। गोस्वामीजीके वैकुण्ठवास (सम्वत् १६८०, सन् १६२३)-के पश्चात् तो पाठ जोड़ने-बदलनेकी प्रवृत्ति यहाँतक बढ़ी कि काशिराजके सरस्वती-भवनमें सुरक्षित संवत् १७०४ की प्रतिमें भी पर्याप्त पाठ-वृद्धि पाई जाती है। इतना होनेपर भी मूल पाठ संग्रह करनेका निरन्तर प्रयास होता रहा जिसके फल-स्वरूप संवत् १७२१ वाली प्रतिमें यह पाठ-वृद्धिका दोष बहुत ही थोड़ा रह गया। इस सं० १७२१ की प्रतिके छह काण्ड काशीके गोपालमंदिरके पासके निवासी दाऊजी सर्राफ़के पास विद्यमान हैं। कहा जाता है कि इसका अयोध्याकाण्ड एक बार काशीके किसी कोतवालके यहाँ माँगा हुआ गया था जहाँसे वह फिर लौटकर नहीं आया।

सं० १७२१ की इस प्रतिको छोड़कर लगभग ढाई सौ वर्षों-तक यह पाठ-वृद्धिका क्रम धड़ल्लेसे चलता रहा, और पाठ-वृद्धिका ही नहीं, पाठ बदलनेकी प्रवृत्ति भी ऐसी बढ़ चली कि किसीने तो संस्कृतके व्याकरणके अनुसार शब्दोंके रूप बदल डाले, कहीं अर्थ न लगनेके कारण या शब्दोंकी संगति बैठानेके लिये शब्द इधरसे उधर कर दिए गए और कहीं शब्दोंके रूप ही बदल डाले गए। कभी-कभी तो कोई विशेष प्रसंग प्रारंभमें रखनेकी धुनमें चौपाइयाँ-तक

इधरकी उधर कर दी गईं जैसे महंत मोहनदासजी (भदैनी, काशी)-की प्रतिमें—'बंदौं प्रथम महीसुर-चरना' को प्रारंभमें रखनेकी धुनमें सब चौपाइयां नीचे-ऊपर करके उलट-पलट कर दी गईं। रायबरेली जनपदके बिरारी ग्राम-निवासी बाबू रणबहादुर सिंहके पास रामायणकी जो प्रति विद्यमान है उसमें प्रति आठ-आठ चौपाइयोंपर एक-एक दोहा लगाकर सातों काण्ड एकरूप कर डाले गए। सर्वप्रथम पंडित सदल मिश्रने और उसके पश्चात् पंडित रामेश्वर भट्ट तथा पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रने तो रामचरितमानसको इतना संस्कृत-निष्ठ कर डाला कि उसका पूरा कलेवर ही बदल गया। जहाँ कहीं भी उन्हें किन्हीं शब्दोंके अर्थ समझमें नहीं आए, उन सबको उन्होंने निःशंक होकर बदल डाला। निर्णयसागर-जैसे प्रसिद्ध मुद्रण एवं प्रकाशन-प्रतिष्ठानके द्वारा सुन्दर एवं ललित छपे हुए रामचरितमानसके उस संस्करणका इतना अधिक प्रचार हुआ कि बहुत दिनोंतक वही संस्करण प्रामाणिक माना जाता रहा।

श्री शेषदत्त रामायणीके शिष्य और उनके सम्बन्धी लोग अपने ही पाठको शुद्ध मानते हैं क्योंकि गोस्वामीजीकी शिष्य-परम्परामें शेषदत्तजी चौथी पुश्तमें आते थे। इन्हींके लेखमें यह आया है—'ओमस्य श्रीरामोपासकानां शिरोमणि श्री गुसाईं तुलसीदास कृत मानस रामायण संवत् १६४१, द्वितीय प्रति सम्वत् १७०७, तेहि प्रतिको देखिके सम्वत् १८९३ तीसरी प्रति लिखित है एहि पाठको जो कोई एक मात्रा फेरै सो जानकी रघुबरको द्रोही होइगो अवस्यमेव :

और इयत्ता आद्यन्त छन्दोंकी यों है—

बालकांडमें : श्लोक ७, चौपाई १४८६, छन्द ६१, दोहा ३६८, सोरठा ४१, ग्रन्थ संख्या ३११३
अवधकांडमें : श्लोक ३, चौपाई १३०३, छन्द १३, दोहा १३, सोरठा ३१३, ,, ,, २६६५
वनकांडमें : श्लोक २, चौपाई २५८, छन्द ३२, दोहा ४६, सोरठा ८, ,, ,, ५६०
किष्किधाकांडमें: श्लोक २, चौपाई १४५, छन्द ३, दोहा ३१, सोरठा ३, ,, ,, ३०६
सुन्दरकांडमें : श्लोक ३, चौपाई २६४, छन्द ६, दोहा ६२, सोरठा १, ,, ,, ५४०
विजयमयूखा (लंकाकांड)में : श्लोक ३, चौपाई ५५१, छन्द ६४, दोहा १४६, सोरठा ८, ,, १३०४
उत्तरकांडमें : श्लोक ७, चौपाई ५६६, दोहा २१४, छन्द ४२, सोरठा ११, ,, ,, १४६६
सिद्ध श्री शुभ सातहू कांडविषे: श्लोक २७ चौपाई ४६०५, छन्द २२१, दोहा १५६, सोरठा ८५१,
मानससंख्या ६६६०

नव हजार नव सै नवे, तुलसी कृत विस्तार।
चार[1] अष्ट दस[2] षष्ठ[3] कर, रामायण श्रुति सार॥

किन्तु वे लोग अपना पाठ किसीको दिखाते ही नहीं। जो ग्रन्थसंख्या (पद-संख्या) ऊपर दी गई है उसका जोड़ भी अशुद्ध है।

मानस-रसज्ञोंका चित्त इन दुष्कांडोंसे बहुत विक्षुब्ध हुआ और अनेक क्षेत्रोंमें मानसका शुद्ध पाठ प्रस्तुत करनेकी प्रवृत्ति जाग उठी। सर्वप्रथम विक्रमीय उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें मिर्जापुर-निवासी पंडित रामगुलाम द्विवेदीने मानसका शुद्ध पाठ प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया था और उन्होंने ही गोस्वामीजीके बारहों ग्रंथोंका पता भी ढूँढ लगाया था—

रामलला नहछू बिराग - संदीपनी हूँ बरवै बनाय बिरमाई मति साईंकी।
पारबती जानकीके मंगल ललित गाय रम्य राम-अज्ञा रची कामधेनु नाईंकी॥
दोहा औ कवित्त गीत बंध कृस्न-कथा कही रामायन बिनय-माँह बात सब ठाईंकी।
जगमें सोहानी जगदीसहूके मनमानी संत सुख-दानी बानी तुलसी गुसाईंकी॥

—पंडित रामगुलाम द्विवेदी

---

१. चार वेद। २. अट्ठारह पुराण। ३. छहों शास्त्र (सांख्य, योग्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त)

राजापुरकी अयोध्याकाण्डकी प्रति ढूँढ निकालनेका श्रेय भी उन्हींको है। उन्हें संवत् १७१४ की लिखी रामचरितमानसकी एक प्रति कहींसे प्राप्त हो गई थी जिसके अनुसार उन्होंने रामचरितमानसका एक संशोधित संस्करण भी प्रकाशित किया था। इन्हींका अनुसरण पंडित रामगुलामजीके शिष्य छक्कनलाल रामायणीने किया। किन्तु उनके ये संशोधित पाठ जनतातक पहुँच नहीं पा सके। काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभाकी ओरसे पाँच प्रकाण्ड विद्वानोंने रामायणकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर राम-चरितमानसका जो पाठ शोधकर प्रकाशित किया था वह प्रयास निश्चय ही अभिनन्दनीय था।

काशीके छोटी पियरी मुहल्लेके निवासी श्री भागवत सिंह (जिन्हें लोग भागवतदास कहने लगे थे और जो बैरागी समझ लिए जानेके भयसे बचनेके लिये अपनेको भागवतदास छत्री कहते और लिखते थे) रामचरितमानसकी इस दुर्दशासे अत्यन्त क्षुब्ध हुए। उनके पास एक प्रति संवत् १७२१ की तथा दो प्रतियाँ संवत् १७६२ की थीं। उन्होंने पंडित रामगुलामजीकी प्रतिसे अपनी तीनों प्रतियोंको मिलाकर और प्रसंगके अनुकूल संगत पाठ ग्रहण करके रामचरितमानसका एक संस्करण प्रकाशित कराया। सद्गुरु-सदन गोलाघाटमें जो रामचरितमानसकी प्रति विद्यमान है और जो प्रामाणिक भी मानी जाती है, वह भी श्रीभागवतदास छत्रीकी ही भेजी हुई है। उस हस्त-लिखित रामचरितमानसकी प्रतिके अन्तमें लिखा है—'सम्वत् १७२१ की लिखी पोथीसे यह पोथी शोधकर भागवतदासने श्री अवधको भेजा श्री काशीजीसे छोटी पियरीपरसे रामरघुबीर-सरनजीके लिये संवत् १८२८ (सन् १७७१ ई०)।' इसकी मूल प्रति भागवतदासजीके पौत्र श्री रामकुमार सिंहने हमें इस ग्रन्थके संपादनके लिये अत्यन्त हर्षके साथ प्रदान कर दी और उसका समुचित प्रयोग भी इसमें किया गया।

संवत् १९२६ (सन् १८६९) में 'श्री काशीजीमें महल्ला घुँघरानी सामाकी गलीमें श्रीयुत बाबू हरखचन्दजीके वाड़ेमें दुर्गाप्रसाद कटारेके गणेश यन्त्रालयमें सातों कांड तसवीर समेत श्री तुलसीकृत रामायण श्री रघुनाथदास बावाजीकी सम्मतिसे प्रति परिश्रमपूर्वक शुद्ध कर्के छापा गया।' इसके पश्चात् संवत् १९४२ की कार्तिक वदी ३० को जालपादेवी, काशीके सरस्वती यन्त्रालयमें तुलसीदासकृत मानस-रामायणका लिथोमें संस्करण प्रकाशित हुआ जो 'पंडित रामगुलाम मिरजापुर-वासीने १७१४ के संवत्की लिखी पोथीसे लिखा, उस-परसे लाला छक्कनलाल मिरजापुर-वासीने लिखा और श्री काशीजीमें छोटी पियरीपर भागवतदास छत्रीके पास १७२१ के संवत्की और दो पोथी १७६२ के संवत्की लिखी मिली। इन सबोंसे सोधकर यह पुस्तक छापी गई। जिसको कहीं पाठमें भ्रम होय सो बिना जाने बिगारे नहीं।' लगभग इसी सयम बन्दन पाठक-द्वारा संपादित संस्करण भी छपा था।

काशिराज श्रीईश्वरी नारायण सिंहने १७०४ की प्रतिको ही प्रामाणिक मानकर अपनी रामचरितमानसकी टीका (परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश) प्रकाशित करा दी थी। तबतक उन्हें संवत् १६६१ वाली अयोध्याकी प्रति नहीं मिल पाई थी अन्यथा वे भागवतदास छत्रीकी १७२१ वाली प्रतिको ही आधार बना लेते। सं० १७०४की इस प्रतिके संबंधमें परिचर्या-परिशिष्टमें लिखा है—'बाबा भजनदासजीकी लिखी अक्षराक्षरसे प्रत्याह दूसरी प्रति होइ० इति'; अर्थात् गोस्वामीजीके हाथकी लिखी प्रतिकी सबसे पहली प्रतिलिपि बाबा भजनदासकी थी और दूसरी प्रतिलिपि यह है। भागवतदास छत्रीकी ही प्रेरणासे पण्डित रामकुमारजो रामायणके व्यास बने और उन्हींके प्रोत्साहनसे भागवतदास छत्रीने रामचरितमानसका दूसरा संस्करण संपादित करके प्रकाशित कराया। उस समयतक रामचरित-मानसका नाम मानस-रामायण प्रचलित था। किन्तु इन सब संस्करणोंकी ओर लोगोंका ध्यान जा नहीं पाया। जब डॉ० ग्रियर्सनने राजापुरकी प्रतिके अनुसार अयोध्याकाण्ड तथा काशिराजकी प्रतिके

अनुसार शेष छह काण्ड खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुरसे प्रकाशित कराए और क्षेपक भरने तथा पाठ बिगाड़नेकी प्रवृत्तिकी भर्त्सना की, तब लोग चौकन्ने हो उठे।

लगभग इसी समय गोरखपुरके श्रीसीताराम-शरणने कोदवरामजीकी प्रतिके अनुसार मानसका संस्करण प्रकाशित किया जो ग्रन्थकार तुलसीदासजीकी हस्तलिखित प्रतिकी चौथी प्रतिलिपि मानी जाती है और जिसमें प्रसिद्ध रामायणके आचार्योंने पाठ-वृद्धि रोकनेकी दृष्टिसे श्लोक, दोहा, सोरठा, छन्द और चौपाइयोंकी संख्या छन्दमें बाँधकर लिख दी और यहाँतक कह दिया—'अधिक मिलाये हैं अधम, करिहैं नरक पयान।' मानस-राजहंस पंडित विजयानन्दजी त्रिपाठीने इस प्रतिको भी काशिराज तथा भागवतदासजीकी प्रतिके समान ही आदरणीय माना है। इन तीनों प्रतियोंके मिलानेसे मूल पाठ ग्रहण करनेमें सुविधा हो जाती है।

इसके पश्चात् काशी नागरी प्रचारिणी सभाके कुछ कर्मठ विद्वानोंने मिलकर श्रावण-कुञ्ज-वाली अयोध्याकी प्रतिसे सहायता लेकर इंडियन प्रेस, प्रयागसे सुन्दर संस्करण प्रकाशित कराया। यद्यपि इसके पश्चात् भी सभाने 'तुलसी-ग्रंथावली'का प्रकाशन किया तथापि वह उतना प्रशंसनीय नहीं हो सका जितना इंडियन प्रेस-वाला संस्करण था। इस दूसरे संकरणमें काशिराजकी प्रतिसे ही अधिक सहायता ली गई इसीलिये यह अधिक श्लाघनीय नहीं हो पाया। इनके अतिरिक्त महात्मा सरयूदासजी तथा श्री रामदास गौड़ने जो रामचरितमानस प्रकाशित कराए उनके पाठोंकी भी बड़ी सराहना हुई। श्री रामदास गौड़ने भागवतदास छत्रीके संस्करणको ही अपने संस्करणका आधार बनाया था और स्थान-स्थानपर पाठ-भेद देकर इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ा दिया था। फिर भी रामचरितमानसके जितने भी संस्करण संपादित हुए उनमेंसे किसीके भी पाठके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता कि यही पाठ गोस्वामीजीका इष्ट मूल पाठ है।

संवत् १९९९ (सन् १९४२)-से गोरखपुरके गीता-प्रेससे मानसका जो पाठ प्रकाशित होता चला आ रहा है उसकी अनेक क्षेत्रोंसे अत्यन्त कटु आलोचना हुई। सन् १९६१ ई० में काशिराज ट्रस्टकी ओरसे संपादित श्रीरामचरित-मानसका जो संस्करण प्रकाशित हुआ उसकी तो और भी अधिक तीव्र आलोचना हुई और उसके प्रति व्यासों, रामायणके पंडितों, हिन्दी और संस्कृत साहित्यके विद्वानों तथा रामायणानुरागी महात्माओंने अत्यन्त प्रबल असंतोष, आक्रोश एवं रोष व्यक्त किया। संयोगवश दुर्गाकुण्ड-स्थित मानस-मन्दिरमें वही विवाद-ग्रस्त पाठ उट्टंकित भी करा दिया गया।

अत: मानस-चतु:शताब्दीके अवसरपर अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशीकी ओरसे जो अर्थ-सहित तुलसी-ग्रन्थावली प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया उसका श्रीगणेश करनेसे पूर्व यह निश्चय किया गया कि 'मानस'का तथा गोस्वामीजीके अन्य ग्रन्थोंका पाठ निर्धारित करनेके सम्बन्धमें विद्वानों, राम-भक्तों तथा मानस-मर्मज्ञोंका मत संग्रह कर लिया जाय जिससे इस संस्करणके पाठके सम्बन्धमें पीछे व्यर्थ वितंडा न उठ खड़ा हो। 'पंचों मिलके कीजे काज, हारे जीते होय न लाज'-की नीतिके अनुसार एक प्रश्नावली भारतके समस्त विश्वविद्यालयोंके हिन्दी विभागों, रामायणके आचार्यों, व्यासों, मानस-मर्मज्ञों तथा महात्माओंके नाम भेजी गई और समाचार-पत्रोंमें भी प्रकाशित करके सबसे यह प्रार्थना की गई कि पत्रकमें जितने प्रश्न किए गए हैं, उनके उत्तर शीघ्र भेज देनेको कृपा करें जिससे कि शुद्ध पाठ ग्रहण करने और सम्पादन करनेके सिद्धान्त निश्चित किए जा सकें, क्योंकि मानसकी जितनी भी प्रतियाँ मिलती हैं उन सबमें, चाहे वह राजापुरकी हो या श्रावणकुञ्जकी, १६६१की हो या १७०४ की, रामगुलाम द्विवेदीकी हो या छक्कनलालकी, भागवतदासकी हो या कोदवरामकी, सद्गुरु-सदनकी हो या काशिराजकी, नागरी-प्रचारिणी-सभाकी हो या गीताप्रेसकी, सबमें पाठ-भेदकी व्यापक विषमता प्राप्त होती है। ह्रस्व-दीर्घकी व्यापक अशुद्धियोंके अतिरिक्त एक ही शब्द कई-कई प्रकारसे लिखा हुआ मिलता है। श्रावणकुञ्जकी ही प्रतिके एक ही पृष्ठपर 'करो, करहु, करउ' तीन रूप मिलते हैं। इसके

अतिरिक्त 'जो' और 'जेहि', 'दादुर' और 'गादुर', 'श्राप, स्राप, साप', 'परसि' और 'परस', 'बोलाई' और 'वलाई', 'श्रुति' और 'स्रुति' आदि अनेक द्विविध तथा बहुविध शब्द-रूप प्राप्त होते हैं। कहीं कोई अर्द्धाली या चौपाई ही लुप्त है, कहीं पूराका पूरा प्रसंग ही नीचे-ऊपर हो गया है, कहीं पाठ ही पूर्णतः भिन्न हैं। जिसको जो पाठ ठीक जँचा उसने वही पाठ ले लिया या बना लिया और मानसका पाठ शुद्ध करनेके नामपर उसे अशुद्ध और विकृत कर डाला। अयोध्या और काशीकी प्रतियोंमें बहुत परिवर्तित पाठ मिलनेके कारण यह निश्चय किया गया कि काशीसे दूर किसी स्थानसे कमसे कम १०० वर्ष पूर्वकी मानसकी प्रतिलिपि खोज मँगाई जाय। संयोगसे एक हस्तलिखित प्रति उज्जैनमें मिल गई जिसकी पुष्पिकामें लिखा है—'संवत् १६१८ मासानां मासोत्तमे मासे आषाढ मासे शुक्ले पक्षे-तिथौ सप्तम्यां रविवासरान्वितायां लिपिकृत गणेशी लाल अवंतिकायां मध्ये अग्रे जो कोय बाँच सुनै इसने हमारा राम राम वंचना। शुभं भूयात्॥' यद्यपि वर्त्तनी आदिके जो प्रमाद अन्य सब प्रतिलिपियोंमें हैं वे इसमें भी हैं किन्तु पाठकी दृष्टिसे यह प्रतिलिपि अधिक स्पष्ट और पूर्ण है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने ग्राम्य-गिरा (देशी भाषा)-में मानसकी रचना की थी। जहाँ एक ओर पंडित रामगुलाम द्विवेदी, छक्कनलाल, भागवतदास छत्री, कोदवराम, काशिराज महाराज ईश्वरीनारायण सिंह, पंडित सुधाकर द्विवेदी, श्री श्रीकान्तशरणजी, पंडित विजयानन्द त्रिपाठी तथा पंडित शंभुनारायण चौबे–जैसे उद्भट विद्वानोंने अपनी बुद्धि, श्रद्धा, अर्थ-प्रतीति और प्राचीन प्रतियोंके पाठके अनुसार एक ओर शुद्ध पाठ ढूँढ़ रखनेका प्रयत्न किया, वहीं दूसरी ओर अनेक सज्जनोंने उसमें पाठ-वृद्धि, क्षेपक-वृद्धि तथा पाठ-परिवर्तन करके उसे इतना विकृत कर डाला कि मूल पाठ ढूँढ निकालना अत्यन्त दुर्गम हो गया। अतः, काशीमें प्राप्त होनेवाली उपर्यंकित प्रतियोंके साथ-साथ सुदूर उज्जैनसे प्राप्त हस्तलिखित प्रति, हयग्रीव मन्दिर, अस्सी घाट काशीसे प्राप्त १७१७ की लंकाकाण्डकी प्रति, मानस-मराल श्रीशंभुनारायण चौबेकी तथा मानस - राजहंस पंडित विजयानन्द त्रिपाठीजी-द्वारा अंतिम शोधी हुई प्रतिसे पाठ-निर्धारणमें प्रचुर सहायता लेनी पड़ी।

पाठ ग्रहण करनेके सिद्धान्त स्थिर करनेसे पूर्व निम्नांकित तथ्य ध्यानमें रक्खे गए—

१. गोस्वामीजीने मानस लिखनेके पश्चात् भी बड़ी लम्बी आयु प्राप्त की थी।

२. उन्होंने संसारके समस्त श्रेष्ठ और विवेकशील लेखकों तथा कवियोंके समान अनेक वार अनेक स्थलोंपर मानसका पाठ अधिक प्रभावशाली तथा स्पष्ट करनेके लिये समकालीन विद्वानों, कवियों तथा भक्तोंके सुझावपर अथवा स्वयं अपनी इच्छासे समय-समयपर अनेक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन निश्चय ही किए होंगे।

३. अपने जीवन-कालमें ही गोस्वामीजीकी व्यापक प्रतिष्ठा बढ़ जानेके कारण मानस लिखे जानेके पश्चात् ही उसकी प्रतिलिपियाँ होने लगी थीं। इस लम्बी अवधिमें जिन विभिन्न लिपिकारोंने स्वयं गोस्वामीजी-द्वारा ही विभिन्न कालोंमें संशोधित और परिवर्धित जिस-जिस प्रतिकी प्रतिलिपि की, पहले तो उन्हीं प्रतिलिपियोंके अनुसार हो पाठ-भेद हो गया अर्थात् स्वयं गोस्वामीजी ही जो पाठ स्वयं बदलते गए उनकी प्रतिलिपियोंमें भी वे पाठ स्वभावतः बदलते चले गए।

४. उन दिनों लोक-भाषा लिखनेकी कोई निश्चित वर्तनी नहीं थी और स्वयं गोस्वामीजी भी वर्तनी (शब्दके लिखित रूप)-की एक-रूपताके फेरमें नहीं पड़े। इसलिये एक ही अर्थवाला एक ही शब्द स्वयं गोस्वामीजी-द्वारा ही कहीं संस्कृत तत्सम, कहीं तद्भव तथा कहीं देशज भाषाके अनेक रूपोंमें लिखा प्राप्त होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

५. प्रतिलिपिकार केवल प्रतिलिपि करना जानते थे। वे विद्वान् नहीं होते थे। अतः, किसी भी प्रतिलिपिकारसे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वह पूर्णतः शुद्ध ही प्रतिलिपि करे, उससे

कोई अक्षर, अर्द्धाली या चौपाई लिखनेसे न छूट जाय अथवा प्रसंग नीचे-ऊपर न हो जायँ, वर्त्तनी (शब्दरूप)में समानता या शुद्धता हो, ह्रस्व-दीर्घकी अशुद्धि न हो या शब्द इधर-उधर न हो जायँ। इसलिये पाठोंमें इस प्रकारका प्रमाद होना कोई अस्वाभाविक तथा असंभव बात नहीं है। केवल विद्वान् संसोधक और प्रतिलिपिकार ही नहीं, लोक-जिह्वा भी उच्चारण-सौकर्य तथा भावकी स्पष्ट अभिव्यक्तिके अनुसार पाठ शोधती चलती है जैसे—'समुझै खग, खग ही कै भाषा' को लोग कहते हैं—'खग जानै खग ही की भाषा' या 'खग समुझै खग ही की भाषा' अथवा 'जेहि गिरि चरन देइ हनुमन्ता। सो चलिगा पाताल तुरंता' के दूसरे चरणको लोग 'सो चलि गयउ पताल तुरंता' कहते हैं। मानसकी व्यापकताके कारण लोक-व्यवहारमें सरलताका आश्रय लेनेके कारण इस प्रकारकी पाठ-विकृतियां बहुत व्याप्त हो गई हैं।

६. प्रतिलिपिकी प्रतिलिपियोंमें तो और भी अधिक अशुद्धियां व्याप्त हो गईं क्योंकि 'मक्षिकास्याने मक्षिका' रखनेवाले लिपिकारको पढ़नेमें जैसा आया वैसा उसने लिख दिया, अर्थपर विचार नहीं किया। इसलिये यह कोई प्रमाण नहीं है कि सबसे पुरानी प्रति ही शुद्ध हो। पीछेकी भी शुद्ध हो सकती है और पहलेकी भी अशुद्ध हो सकती है। कुछ लिपिकारोंने तो स्थान-स्थानपर स्वभावत: अपनी बुद्धि भी लगा डाली होगी क्योंकि यह लोक-भाषाकी रचना थी और उसपर सभी अपना अधिकार समझते थे।

७. गोस्वामीजी रससिद्ध कवि थे और उनका रामचरितमानस दैवी रचना है, जो केवल महाकाव्य-मात्र नहीं, वरन् ऐसा धर्मग्रन्थ भी है जिसका लोग अत्यन्त भक्तिके साथ पारायण भी करते हैं। इसलिये उनकी रचनामें संशोधनके नामपर मनचाहा परिवर्तन कर डालना नितान्त अनुचित है।

८. गोस्वामीजीके हाथकी लिखी कोई प्रति प्राप्त नहीं है। जो प्रतियां गोस्वामीजीके हाथकी लिखी बताई जाती हैं उनमेंसे एक भी प्रति उनके हाथकी लिखी नहीं है।

प्रश्नावलीके उत्तर प्राप्त हो जानेपर २८ अप्रैल, सन् १९७१ को ग्रन्थावलीके संपादकों, मानस-मर्मज्ञों, व्यासों तथा विद्वानोंकी विराट् सभा काशीमें आयोजित की गई जिसमें पाठ-ग्रहणके संबंधमें विस्तारसे विचार किया गया और सर्वसम्मतिसे यह निर्णय किया गया कि श्रावणकुञ्जका बालकाण्ड, राजापुरका अयोध्याकाण्ड और सद्गुरु-सदन, गोलाघाट, अयोध्याके शेष काण्डोंको मूल पाठके रूपमें ग्रहण किया जाय। उनमें जहां कहीं प्रत्यक्ष भूलें आ गई हैं उन्हें ठीक करके जो अन्य विशेष पाठ-भेद मिलते हैं उन्हें पाद-टिप्पणीमें देकर उनके भी आवश्यकतानुसार अर्थ दे दिए जायें।

इस सभामें संपादनके संबंधमें निम्नांकित सिद्धान्त सर्वसम्मतिसे स्थिर किए गए—

१. अकारांत संज्ञा और विशेषण शब्दोंके अंतिम वर्णको अकारांत ही रक्खा जाय, उकारांत न किया जाय क्योंकि किसी भी मानसकी प्रतिमें व्यापक रूपसे इस नियमका प्रयोग नहीं मिलता और वह भ्रमात्मक भी है जैसे 'वट'के लिये 'बटु' और 'मन'के लिये 'मनु'।

२. 'गएउ' आदि शब्दोंमें आए हुए ह्रस्व उच्चरित 'ए' का 'य' कर दिया जाय। (गयउ)

३. ह्रस्व उच्चरित होनेवाले सभी दीर्घ वर्णोंकी मात्राएँ उस प्रकार लगाई जायें जैसे नागरी-प्रचारिणी सभासे प्रकाशित मानस-मराल श्री शम्भुनारायण चौबेके रामायणमें लगी हैं। 'तेँहि', 'मोँहि' आदि; किन्तु ह्रस्व 'ए' क लिये 'अ' पर ह्रस्वकी मात्रा न लगाकर 'ए' पर लगाई जाय—'ऐँहि'

४. जहाँ-जहाँ 'गुरु'के लिये 'गुर' शब्द आया है उसे 'गुरु', 'तुम्ह'का 'तुम' 'नहि का 'नहिँ' कर दिया जाय।

५. निम्नांकित शब्दोंके रूप इस प्रकार रक्खे जायें;—

वर=वर; वरु = चाहे। वट = वटका वृक्ष; बटु=ब्रह्मचारी या ब्राह्मण। मनु = मानो; मन=मन। कहुँ = कहीं; कहँ = को, का, के लिये। जो, जो = जो; जौं = यदि, जब। पूँछ = पूँछ; पूछ = पूछना आदि।

६. विभक्ति-सूचक अनुनासिक कहीं न लगाया जाय जैसे—'सीताँ गमन राम-पहँ कीन्हाँ' में 'सीताँ'के 'ताँ' वर्णपर लगा हुआ चन्द्रबिन्दु हटा दिया जाय।

७. सर्वत्र बहुवचनमें 'न्ह'के बदले 'न'का प्रयोग किया जाय जैसे—'संतन्ह'के बदले 'संतन।'

८. जहाँ कहीं छन्दमें यतिभंग या गतिभंग हो वहाँ यदि छन्द-प्रवाहसे युक्त पाठ मिले अथवा अर्द्धालीके चरणमें आए हुए शब्दोंको आगे-पीछे कर देनेसे छन्दका प्रवाह ठीक हो जाय, वैसा कर दिया जाय जैसे 'काल करम सुभाव गुन घेरा'के बदले 'काल सुभाव करम गुन घेरा' किया जा सकता है किन्तु साथ ही प्रचलित पाठ भी नीचे टिप्पणीमें दे दिया जाय। कवितामें अन्वयसे अर्थ किया जाता है अर्थात् विशेषण-विशेष्य अथवा अन्य शब्द यदि इधर-उधर कर देनेसे छन्दका प्रवाह ठीक बना रहे तो वैसा करना दोष नहीं माना जाता। जैसे 'सुजस पुरान विदित निगमागम'में 'पुरान' और 'निगमागम'के बीच 'विदित' आ गया है वैसे ही "भगति मोरि पुरान स्रुति गाई" को 'भगति पुरान मोरि स्रुति गाई' किया जा सकता है। किन्तु इनके प्रचलित पाठ भी नीचे टिप्पणीमें दे दिए जायँ।

९. जो चौपाइयाँ या दोहे अधिकांश प्रतियोंमें मिलते हैं किन्तु जो सामान्यत: क्षेपक नहीं माने जाते उन्हें भी सम्मिलित कर लिया जाय, किन्तु नीचे टिप्पणी दे दी जाय।

१०. जहाँ मूर्धन्य 'ष' के लिये 'ख' उच्चारण अभीष्ट है वहाँ 'ष' का 'ख' कर दिया जाय।

११. जहाँ अनुनासिक उच्चारण अभीष्ट हो वहाँ सर्वत्र चन्द्रबिन्दुका प्रयोग किया जाय। 'कीन्ह, दीन्ह, लीन्ह' आदि शब्दोंको छोड़कर 'कीन्हीं, दीन्हीं, लीन्हीं, दीन्हें, लीन्हें, लीन्हि' आदिका उच्चारण अनुनासिक होता है, अत: उनमें चन्द्रबिन्दुका प्रयोग किया जाय।

१२. 'देखिअ' 'सुनिअ'के बदले 'देखिय, सुनिय' किया जाय अर्थात् इस प्रकार आए हुए 'अ' का 'य' कर दिया जाय क्योंकि उच्चारण 'य' का होता है, 'अ' का नहीं।

१३. श्रावणकुञ्ज अयोध्याका बालकांड, राजापुरका अयोध्याकांड तथा सद्गुरु-सदन, गोलाघाट अयोध्याके अन्य काण्डोंको आधार माना जाय और भागवतदास छत्री द्वारा १७२१ तथा १७६२ की सहायतासे संपादित प्रति, पंडित रामगुलाम द्विवेदी, छक्कनलाल और भागवतदास छत्रीकी प्रतिके आधारपर संशोधित संवत् १९४२ में काशीसे प्रकाशित संस्करण, उज्जैनसे प्राप्त प्रति, पंडित विजयानन्द त्रिपाठीजीकी नवीनतम संशोधित प्रतिसे तथा हयग्रीव मन्दिर, काशीसे प्राप्त लंकाकाण्डकी १७२० की प्रतिसे सहायता लेकर पाठ-संपादन किया जाय।

१४. बालकाण्डमें बाल रामके नखशिख-वर्णनके प्रसंगमें जो नेत्रों के वर्णन-वाली अर्द्धाली अनेक प्रतियोंमें मिलती है, वह जोड़ ली जाय क्योंकि गीतावलीमें भी इस प्रसंगमें नेत्रोंका वर्णन मिलता है।

१५. 'तापस-प्रसंग'को क्षेपक न मानकर उसे यथास्थान रक्खा जाय किन्तु प्रधान संपादक महोदयके मतका भी टिप्पणीमें उल्लेख कर दिया जाय। अब कोई संदेह नहीं रह गया कि यह तापस स्वयं सनत्कुमार थे।.

१६. वर्तनी (शब्दोंके लिखित रूप)-के सम्बन्धमें निश्चय हुआ कि 'करहु, करउ, करो,' 'गएउ, गयउ' आदि जो पाठ मिलते हैं, उस सम्बन्धमें संपादक-मंडल जो विवेकपूर्ण पाठ समझें उसे ग्रहण कर लें। किन्तु वर्तनीके सम्बन्धमें व्यापक रूपसे मानसके विद्वानों तथा रामायण-प्रेमी महात्माओंके पास एक परिपत्र भेजकर पूरे मानसमें आए हुए विभिन्न पाठ-भेदों तथा वर्तनीकी एकरूपतापर सम्मति संकलित कर ली जाय और उसके अनुसार सर्व-सम्मति तथा अधिक-सम्मतिसे पाठ ग्रहण करके रामचरितमानसका मूल पाठ अलग प्रकाशित करनेकी योजना बनाई जाय।

१७. अन्वय तथा अर्थकी स्पष्टताकी सुविधाके लिये यथोचित विराम-चिह्न दे दिए जायँ ।

१८. इस सभाका निश्चित मत है कि गोस्वामी तुलसीदासजी काव्य-शास्त्र, छन्द:शास्त्र, वेद, शास्त्र, पुराण और साहित्यके उद्भट पंडित थे। अत:, उन्होंने कहीं भी कोई ऐसी शिथिल रचना नहीं की जिसमें मात्रा-दोष, यति-भंग-दोष और गति-भंग-दोष विद्यमान हो। उनके मानसमें जो इस प्रकारके शैथिल्य कहीं-कहीं पाए जाते हैं वे सब शैथिल्य तथाकथित संशोधकोंके पांडित्य-प्रदर्शन तथा प्रतिलिपिकारोंके प्रमादके ही परिणाम हैं। अयोध्याकांडके पश्चात् प्राय: सभी काण्डोंके दोहोंके प्रथम तथा तृतीय चरण अथवा केवल प्रथम चरण अथवा केवल तृतीय चरणमें एक या दो मात्राओंकी कमी मिलती है, उसे कुछ विद्वानोंने दोहेका एक प्रकार बताया है, किन्तु यह भी संभव है कि दोहे पूर्ण रहे हों, प्रतिलिपिकारोंके प्रमादसे उनमें ये दोष आ गए हों क्योंकि काशिराजके संस्करणमें तथा कुछ अन्य संस्करणोंमें भी ऐसे स्थलोंमें दोहेके सब लक्षणोंसे पूर्ण कुछ दोहे मिल जाते हैं। इसी प्रकार कुछ चौपाइयोंमें भी अन्तिम दो गुरु वर्ण रखनेका नियम भी व्यापक रूपसे नहीं मिलता। कुछ विद्वान् कहते हैं कि वे चौपाई नहीं, चौपइया हैं। जो भी हो, यह विषय गंभीरता-पूर्वक विचारणीय है और इसके लिये व्यापक रूपसे विद्वानोंकी गोष्ठी बुलाकर निर्णय करना चाहिए। अभी तो जैसा पाठ मिलता है वैसा ही मुद्रित कर देना चाहिए।

गोस्वामी तुलसीदासजीने संपूर्ण राम-साहित्य छान डाला था और वेद, उपनिषद्-पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृति, दर्शन, नीति-शास्त्र, नाटक, काव्य आदि जितना भी उदात्त साहित्य संस्कृतमें उपलब्ध था, वह सब उन्होंने अध्ययन करके उस समस्त ज्ञानको अपनी लोकभाषामें उतारकर मानसमें ला धरा है। यहाँतक कि एक ही प्रसंगमें उन्होंने कई-कई ग्रन्थोंसे सामग्री ला सजाई है, क्योंकि उनकी यही प्रवृत्ति रही कि साहित्यका समस्त सौंदर्य एक स्थानपर मानसमें अभिव्यक्त हो जाय, कोई भी उदात्त सामग्री इस मानससे बाहर न छूटी रह जाय। यही संपादन-कौशल गोस्वामीजीकी मौलिकता है और यही इस ग्रंथके सर्वमान्य होनेका प्रधान कारण है। इसमें किसी विशेष कल्पकी कथा नहीं है वरन् यह तो—"नाना कथा-प्रबन्ध बनाई' राम-कथा है।"

संपादकों, विद्वानों तथा मानस-मर्मज्ञोंकी इस सभाने यह भी निश्चय किया कि गोस्वामीजीने जिन-जिन ग्रन्थोंसे सामग्री सँजोई है, उन ग्रंथोंके वे मूल स्रोत भी पाद-टिप्पणीमें दे दिए जायँ जिससे रामायणके अध्येताओंको भी सुविधा हो और पाठका शुद्ध अर्थ लगानेमें भी सहायता मिले। यद्यपि संपादक-मण्डलने यह भार स्वीकार तो कर लिया तथापि पीछे चलकर यह ज्ञात होने लगा कि यह कार्य असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य है। इसी बीच सार्वभौम संस्कृत-प्रचार कार्यालयके मन्त्री पं० वासुदेव द्विवेदीने व्याकरणाचार्य श्री बाबूलाल त्रिपाठीके पाससे शाहमऊ टिकारीके ताल्लुकेदार बाबू गंगाबक्ष सिंहजीके अनुज बाबू रणबहादुरसिंह-द्वारा 'अनेक कवि-कोविद महात्माओंकी सम्मतिसे तथा पंडित मातृदत्तजी सहगौर त्रिपाठी, पंडित ललिताप्रसादजी ओझा, पंडिप दामोदरजी शर्मा, पंडित रामपदार्थ सुकुलजीकी सहायतासे २७ वर्षोंके सतत प्रयत्नोंके उपरान्त वेदादि शास्त्रोंके श्लोकों, प्रमाणोंसे प्रमाणीभूत श्लोकोंके अर्थों और टिप्पणियोंसे अलंकृत' प्रकाशित संस्करण लाकर प्रस्तुत कर दिया जिससे यह कार्य सरल हो गया। उपर्युक्त ग्रंथमें दिए हुए प्रमाणोंके अतिरिक्त अन्य बहुतसे स्रोतोंसे भी इस संस्करणमें सम-भाव-बोधक श्लोक प्रस्तुत कर दिए गए हैं। यह स्पष्ट कर देना नितांत आवश्यक है कि उपर्युक्त शाहमऊ-टेकारीवाले संस्करणमें जिन अनेक ग्रंथोंका प्रयोग किया गया है और जिनके प्रमाण दिए गए हैं, उनमेंसे बहुतसे ग्रंथ ऐसे हैं जिनका हमें दर्शन भी नहीं हो पाया। इसलिये उनकी प्रामाणिकताका दायित्व पूर्णत: उपर्युक्त संस्करणपर ही है। किन्तु जहाँतक प्रसिद्ध एवं सुलभ ग्रन्थोंसे प्राप्य उद्धरणोंकी बात है, वे पूर्णत: असंदिग्ध हैं और उन्हें देखकर यह समझनेमें तनिक भी

संदेह नहीं रह जाता कि गोस्वामी तुलसीदासजी कितने असाधारण दिग्गज विद्वान् थे जिन्होंने संपूर्ण भारतीय वाङ्मय (साहित्य और दर्शन)को हृदयंगम कर डाला था और अत्यंत कौशलके साथ उस संपूर्ण ज्ञान-राशिको रामचरितमानसमें इस प्रकार लाकर जड़ दिया जैसे कोई कुशल जौहरी आभूषणोंमें नगीने जड़कर दोनोंको एक दूसरेका कान्तिमान् पूरक बना देता है। कहीं भी यह आभास-तक नहीं मिलता कि गोस्वामीजीने इसमें अनेक स्थलोंसे सामग्री ला जुटाई है। यही उनकी वास्तविक कुशलता एवं महत्ता है और यह संपादन ही उनकी वास्तविक मौलिकता है।

इस ग्रंथके शीघ्र प्रकाशित होनेका सारा श्रेय श्री सीतारामजी सेकसरियाको है जिन्होंने अत्यन्त तत्परताके साथ इसके लिये धन-राशि संचित करा दी और कागजकी भी व्यवस्था करा दी।

इस संस्करणके संपादनमें सबसे अधिक श्रम हमारे वयोवृद्ध मित्र पंडित श्रीकृष्ण शुक्लने किया है जो इस ८३ वर्षकी अवस्थामें भी युवकोंको परास्त करके २॥ वर्षतक अनवरत कार्य करते रहे। श्रावणकुंजके बालकांडका पाठ संवत् १६६१ में गोस्वामी तुलसीदासके कृपापात्र श्री भगवानदास-द्वारा लिखित प्रतिकी प्रतिलिपिका है, राजापुरके अयोध्याकांडकी और शेष कांडोंकी सद्गुरु-सदन, गोलाघाट; अयोध्याकी पूर्ण प्रतिलिपि हमें अपने मित्र श्री बजरंगवली गुप्तसे मिली जिन्हें सद्गुरुसदन, गोलाघाटके श्रीरामविधुशरणजीने स्वयं वहाँकी प्रतिसे पाठ मिलाकर उनके पास भेजी थी। इन सभी प्राचीन प्रतियोंमें प्रतिलिपिकारोंके प्रमादसे बहुत सी अशुद्धियाँ विद्यमान हैं जिन्हें यथासंभव दूर करके और सबके निर्णयके अनुसार संपादित करनेका प्रयत्न किया गया है। मानस-राजहंस पंडित विजयानन्द त्रिपाठीके सुयोग्य पुत्र श्री नित्यानंदजीने रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाशकी प्रति देकर तथा डा० सहजानन्द तिवारीने आदरणीय त्रिपाठीजीकी अन्तिम संशोधित प्रति देकर इस कार्यमें बहुमूल्य सहयोग दिया है।

जिन विद्वानों तथा मानस-मर्मज्ञोंने आवश्यक परामर्श देकर हमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है उनमें मणिपर्वत अयोध्याके पं० रामकुमारदासजी, लक्ष्मण किलेके महन्त श्रीसीतारामशरणदास, सद्गुरु-सदनके श्री श्रीकान्तशरणजी, हनुमान् गढ़ीके श्री प्रेमदासजी रामायणी, श्री वियोगी हरिजी तथा डा० बलदेवप्रसाद मिश्र प्रमुख हैं। हम इनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

मैं संपादक-मंडलके अपने सभी सहयोगियोंको हृदयसे धन्यवाद देता हूँ जो समय, श्रम, परामर्श और सहानुभूति प्रदान करके मुझे निरन्तर बल प्रदान करते रहे।

संपादकोंकी ओरसे इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उपर्यंकित सर्वसम्मत निर्णयके अनुसार इस संस्करणका संपादन करके (संशोधन करके नहीं) इसे अधिकसे अधिक सर्वसम्मत बनाए रखनेका प्रयत्न किया गया है और हम लोगोंका कोई भी अधिकारपूर्ण आग्रह नहीं है कि यही पाठ सर्वशुद्ध है।

इसमें छपाईकी अशुद्धियाँ रह गई होंगी, मात्राएँ टूट गई होंगी, अर्थमें भी कहीं भूलें हो गई होंगी। ऐसे दोषों तथा त्रुटियोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करनेवाले महानुभाव हमारे कृतज्ञता-भाजन होंगे।

हमें विश्वास है कि सहृदय पाठक इसके सब दोष-गुण उदारतापूर्वक तथा निष्पक्ष होकर लिख भेजेंगे जिससे कि द्वितीय संस्करणमें सब त्रुटियोंका मार्जन किया जा सके।

रामचरितमानसके काव्य-सौष्ठव तथा उसकी महत्ताकी समीक्षा द्वितीय खण्डके पश्चात् प्रस्तुत की जायगी। इसलिये यहाँ इस संस्करणके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि यह संस्करण अत्यन्त निश्छल भक्ति-भावसे प्रस्तुत किया गया है और घोर परिश्रमसे इसका अर्थ भी इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है कि कहीं भी अर्थ समझनेमें किसी प्रकारकी कोई बाधा न हो। इस प्रयासमें जितने कुछ गुण हैं, उनका श्रेय हमारे सहयोगियोंको है और जितने दोष हैं उन सबका उत्तरदायी मैं अकेला हूँ।

—सीताराम चतुर्वेदी

गोस्वामी तुलसीदासजी

गोस्वामी तुलसीदासजीने न तो कहीं अपनी जाति, गोत्र, जन्म-स्थान, माता-पिता आदिके सम्बन्धमें ही कुछ लिखा न उन्होंने कहीं यही संकेत दिया कि उन्होंने कहाँ शिक्षा प्राप्त की, किस गुरुसे क्या पढ़ा और किस संवत्में उनका जन्म हुआ।

बाल्यकाल

विनयपत्रिका और कवितावलीमें प्राप्त निम्नांकित संकेतोंके अनुसार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका प्रारम्भिक नाम 'रामबोला' था, उनके माता-पिताने उन्हें दीनताके कारण अथवा अन्य किसी कारणसे त्याज्य समझकर छोड़ दिया था अथवा जन्मकालमें ही उनके माता-पिताकी मृत्यु हो गई थी और बचपनमें बड़े कष्टसे इधर-उधर भिक्षा माँगते हुए उन्हें जीवन बिताना पड़ा था—

रामको गुलाम नाम 'रामबोला' राख्यौ राम,
काम यह नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।—विनयपत्रिका॥
साहेब सुजान निज स्वानहूँ-को पच्छ कियो,
'रामबोला' नाम हौं, गुलाम राम साहि-कौ। —कवितावली॥
मात-पिता जग जाइ तज्यौ।
जननी-जनक तज्यो जनमि। —कवितावली॥
तन-जन्यौ कुटिल कीट-ज्यौं तज्यौ मातु-पिताहू।—विनयपत्रिका॥
बारे-तें ललात-बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक-कौ। —कवितावली॥

गोस्वामीजीके गुरु

यह प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजीने काशीके तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् श्रीशेषसनातनसे विद्यार्जन किया था। रामचरितमानसमें आए हुए निम्नांकित सोरठेमें—

बन्दौं गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नर-रूप-हरि।
महामोह-तम-पुंज, जासु बचन रबि-कर-निकर॥

—के आधारपर यह कल्पना कर ली गई है कि उनके गुरुका नाम 'नरहरिदास' या 'नरहर्यानन्द' था किन्तु यह दोहा तो जाबालि-संहिताके निम्नांकित श्लोकका शुद्ध पद्यानुवाद है—

वन्दे गुरुपदाब्जं यो नररूपः स्वयं हरिः।
यद्वाक्यसूर्योदयतस्तमो नश्यति सांप्रतम्॥

अतः, यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि उनके गुरु कौन थे।

परिवार

मानसके रूपकमें आई हुई निम्नांकित चौपाई—

रामहिं प्रिय पावन तुलसी-सी। तुलसिदास-हित हिय हुलसी-सी॥

जिन माता-पिताने 'तन-जन्यौ कुटिल कीट ज्यौं' (शरीरमें उत्पन्न जूं आदिके समान) उन्हें छोड़ दिया था उसे तुलसीदासजी अपना 'हित' कैसे मान सकते थे।

उक्त अर्धालीके आधारपर तथा मानसमें अन्य कई स्थानोंपर इसी प्रकार 'तुलसी' के साथ 'हुलसी' शब्दके तुक-प्रयोगसे मान लिया गया है कि उनकी माताका नाम 'हुलसी' था, जिसका समर्थन रहीमके उस तथाकथित अर्द्ध दोहेसे कर दिया जाता है—

गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी - सो सुत होय ॥

जो रहीम-द्वारा तुलसीदासजीके तथाकथित निम्नांकित अर्द्ध दोहेके उत्तरमें दिया कहा जाता है और जिसकी ऐतिहासिकता भी प्रमाणित नहीं है—

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहत सब कोय।

साथ ही यह बात भी बुद्धि-संगत नहीं प्रतीत होती कि गोस्वामीजीने रहीमको आधा ही दोहा लिखा होगा। इसलिये यह भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

उनके पिताका नाम आत्माराम दुबे बताया जाता है किन्तु उसका भी कोई साधार प्रमाण नहीं है।

गोस्वामीजीकी पत्नीके भी तीन नाम मिलते हैं—रत्नावली, बुद्धिमती और ममता। कहा जाता है कि उनका तारक नामका एक पुत्र भी था। किन्तु अयोध्याके महात्मा लोग तो यही मानते हैं और श्री श्रीकान्तशरणजीने लिखा भी है कि उनका विवाह हुआ ही नहीं, वे प्रारंभसे ही वैरागी हो गए थे। कुछ विद्वानोंने निम्नांकित उद्धरणोंके आधारपर माना है कि उनका विवाह तो अवश्य हुआ था पर वे गृहस्थी छोड़कर विरक्त हो गए थे—

बऱ्यौ लोक - रीतिमें ... ... ।
हम तो चाखा प्रेमरस, पतनीके उपदेस ॥
ब्याह न बरेखी, जाति - पाँति न चहत हौं।

जन्म-संवत्

जहाँतक गोसाई-चरित्र तथा मूल गोसाईं-चरित्र-द्वारा प्रस्तुत जीवनीका प्रश्न है, वे दोनों ग्रंथ पूर्णत: कल्पित सिद्ध हो चुके हैं जिनका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। गोसाईंचरित्र और मूलगोसाईंचरित्र नामक जो पुस्तकें बाबा बेनीमाधवदासकी रची बताई जाती हैं वे वास्तवमें किसी भवानीदासकी प्रेत रचनाएँ हैं। श्री इन्द्रदेवनारायण सिंहने 'मर्यादा' (सं० १९६९)-में 'गोस्वामीजीके प्रिय शिष्य रघुबरदास-रचित 'तुलसी-चरित' नामक' किसी बहुत बड़े ग्रन्थका उल्लेख किया था किन्तु उस ग्रन्थका किसीको भी आजतक दर्शन नहीं मिल सका। इन तीनों पुस्तकोंमें गोस्वामीजीका जन्म-संवत् १५५४ बताया गया है। रामनगरके चौधरी छुन्नीसिंहके यहाँ गोस्वामीजीके किसी समकालीन श्रीकृष्णदत्तकी रची हुई गौतम-चन्द्रिकाके कुछ पृष्ठ श्रीछुन्नीसिंह-द्वारा उनकी बहीपर उतारे मिलते हैं जिसके अनुसार गोस्वामीजीका जन्म संवत् १६०० में हुआ और अवसान १६८० में। किन्तु यह भी अप्रमाणिक छद्म-रचना है। यदि यह जीवनी बहीपर उतारी जा सकती थी तो अलग क्यों नहीं उतार ली गई। जान पड़ता है लेखक महोदयने पाँचवें सवार बननेके फेरमें यह सब कांड कर डाला है। पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा जॉर्ज ग्रियर्सनने गोस्वामीजीका जन्म-संवत् १५८९ तथा शिवसिंह सेंगरने १५८३ माना है।

गोस्वामीजीने अपने ग्रन्थोंमें केवल दो ही स्थानोंपर तिथियाँ दी हैं। रामचरितमानसकी जन्म-तिथि तो प्रसिद्ध ही है—

संबत सोरह सै इकतीसा। करौं कथा हरि-पद धरि सीसा ॥
नौमी भौमबार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥

संवत् १६३१ की चैत्र शुक्ला नवमी (रामनवमी), मंगलवारको रामचरितमानसका लेखन प्रारंभ हुआ। इसी प्रकार उन्होंने मंगलों (जानकी-मंगल तथा पार्वत-मंगल)-का रचना-काल जय संवत् (सं० १५८२) की फाल्गुन शुक्ला पंचमी, गुरुवार, अश्विनी नक्षत्र दिया है—

जय संबत, फागुन सुदि, पाँचैं, गुरु दिन।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥—पार्वतीमंगल

फाल्गुन शुक्ला पंचमीको अश्विनी नक्षत्र और गुरुवार केवल १५८२ के जय संवत्‌में ही पड़ा था। अतः, उनका जन्म सं० १५८२ से पहले ही हुआ था। इस आधारपर उनका जन्म सं० १५५४ में ही माना जा सकता है। अन्य सब तिथियाँ स्वतः अप्रमाणिक सिद्ध हो जाती हैं।

जन्मस्थान

उनका जन्म राजापुर (जि० बाँदा, उत्तर प्रदेश)-में हुआ माना जाता है। इधर कुछ सज्जनोंने सोरों (जि० एटा, उत्तर प्रदेश)-में उनका जन्म-स्थान सिद्ध करनेकी प्रबल चेष्टा की थी किन्तु अलीगढ़के डा० गोवर्द्धननाथ शुक्लने अपनी पुस्तिका 'सोरों सामग्रीपर एक दृष्टि' शीर्षक पुस्तिकामें उसका सारा भंडाफोड़ कर दिया है।

तिरोधान

गोस्वामीजीका तिरोधान रुद्रबीसी (सं० १६६५ से १६८५) के समय महामारीसे पीडित होनेपर श्रावण कृष्ण तृतीया, संवत् १६८० को प्रातःकाल गंगा-तटपर हुआ। इस संबन्धमें किसी-का एक दोहा प्रचलित था—

सम्बत सोरह सै असी, असी गंगके तीर।
स्रावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ सरीर।

किन्तु अब नवीन खोजके अनुसार गोस्वामीजीके जन्म और अवसानसे सम्बद्ध दोहे इस प्रकार बदल गए हैं—

पन्द्रह सै चौवन बिषैं, कालिन्दीके तीर।
स्रावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्‍यौ सरीर॥
सम्बत सोरह सै असी, असी गंगके तीर।
स्रावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यौ सरीर॥

यही ठीक भी है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमें श्रीधर-स्वामिविरचित श्रीभागवतकी टीकापर सम्वत् १६७६ में श्री चिन्तामणि-भट्टके द्वारा लिखी हुई भावार्थ दीपिकाकी प्रति है। उसमें सप्तम स्कंधकी जहाँ समाप्ति हुई है वहाँ पुष्पिका दी हुई है—

'इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरित्रे युधिष्ठिर-नारद-संवादे शुक-परीक्षित-संवादे नृसिंहावतार-वर्णनपूर्वकं सदाचार-निरूपणं पंचदशोऽध्याय: ॥ १५ ॥ संवत् १६७६ विभवनाम संवत्सरे श्रावणशुक्ल पंचम्यां लिखितं वेदान्तिचिन्तामणिभट्टेन सदासद्भिर्यतिश्रीधरनिर्मिता॥ इति श्री श्रीधरस्वामिविरचितायां श्रीभागवतटीकायां सप्तमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्याय: ॥ १५ ॥

श्री रंगनाथचरणौ तापत्रयनिवारणौ।
चिन्तामणेर्विमूढस्य नित्यं ज्ञानप्रकाशकौ॥'

इसीके पीछेके पृष्ठपर चिन्तामणि भट्टके ही हाथका यह श्लोक लिखा हुआ है—

०　८　६　१
आकाशाहिरसक्षपाकरमिते संवत्सरे श्रावणे
प्रातर्वासव-भूषिते सितदिने कृष्णे तृतीया तिथौ।
काश्यां देवनदीजलेऽतिविमले लीलाशरीरं मुदा
त्यक्त्वा रामपदं जगाम तुलसीदासः कलौ दुर्लभम्॥

[सम्वत् १६८० के श्रावण कृष्ण पक्षकी तृतीयाको प्रातःकाल काशीकी गंगाके निर्मल जलमें (तटपर) प्रसन्नतापूर्वक अपना लीला-शरीर छोड़कर तुलसीदास अपने रामके चरणोंमें पहुँच गए जो कलियुगमें अत्यन्त दुर्लभ है।]

गोस्वामीजीके समकालीन चिन्तामरिण भट्टका यह स्वहस्तलिखित विवरण सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण है कि गोस्वामीजीका अवसान श्रावण कृष्ण तृतीया, सं० १६८० को गंगाटपर हुआ।

गोस्वामीजीके सम्बन्धमें अनेक दन्त-कथाएं प्रचलित हैं जैसी सभी महात्माओंके संबंधमें प्रचलित हो जाती हैं पर वे सब अप्रामाणिक हैं कि हनुमान्जीसे उनकी भेंट हुई थी, उन्होंने किसी मृतकको जिला दिया था, राम-लक्ष्मणको उन्होंने चित्रकूटमें देखा था और उन्हें चन्दन भी लगाया था तथा वे गोस्वामीजीके घर पहरा भी देते थे, आदि।

रामचरितमानस

यह तो स्पष्ट है कि संवत् १६३१ विक्रमीके चैत्र मासकी शुक्ला नवमी, मंगलवारको उन्होंने अयोध्यामें यह चरित (रामचरितमानस) लिखना प्रारम्भ किया था। यह चौपाई मानसके आरम्भमें ही तैंतीसवें दोहेके पश्चात् इस प्रसंगमें आती है—

सादर सिवहिँ नाइ अब माथा। बरनौं बिसद रामगुन-गाथा।
सब बिधि परम मनोहर जानी। सकल सिद्धि-प्रद मंगल-खानी॥
बिमल कथा करि कीन्ह अरंभा। सुनत नसाइ काम-मद-दंभा॥
रामचरित-मानस ऐहि नामा। सुनत स्रवन पाइय विश्रामा॥

इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने संवत् १६३१ विक्रमाब्दकी चैत्र शुक्ला नवमी, मंगलवार-को मानसकी रचना आरम्भ की, किन्तु उन्होंने इसे पूर्ण कब किया इसका उल्लेख उन्होंने कहीं नहीं किया और न यही लिखा कि इसका कौन-कौन-सा अंश उन्होंने कहाँ-कहाँ लिखा। मूल गोसाईं-चरित्रके अनुसार उन्होंने संवत् १६३३ वि० में राम-विवाहके दिन (मार्गशीर्ष शुक्ला ५ को) इसे अयोध्यामें ही समाप्त किया। किन्तु वह पूरी पुस्तक ही अप्रामाणिक है। अतः, यह कथन भी विश्वसनीय नहीं माना जा सकता।

इस विवरणसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पहले ही दिन उन्होंने कमसे कम ४७ दोहों-तक रचना कर डाली थी अर्थात्—

कहौं सो मति - अनुहारि अब, उमा - संभु - संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि ! मिटहि बिसाद॥—तक

अथवा ६५ वें दोहे—

सदा सुमन - फल - सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुन्दर सैल - पर, मनि - आकर बहु भाँति॥—तक

इससे यह समझना कठिन न होगा कि उन्होंने इतने वेगसे लिखना आरम्भ किया था कि बारह-तेरह दिनमें ही उन्होंने पूरे मानसकी रचना पूर्ण कर डाली। यदि यही मान लें कि उन्होंने १४ वें दोहे (मज्जहिं सज्जन बृन्द)-तक भी एक दिनमें लिखा तो भी उन्होंने पूरा मानस १६ दिनमें लिख डाला होगा। उन-जैसे रससिद्ध तथा प्रखर कवि और विद्वान्के लिये यह कोई कठिन तथा असम्भव कार्य नहीं था। दैवी शक्तिसे समृद्ध उनकी लेखनी इतनी प्रवहमान, प्रौढ और शक्तिशालिनी थी कि भावोंके साथ छन्दमें बँधी हुई उनकी भाषा सद्यःप्रसूत होती चली जाती थी। इसलिये उनके समान समर्थ कवि-कोविद तथा रामभक्तके लिये (जिसे राम-गुण-गानके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य न हो), १५-१६ दिनोंमें मानस पूर्ण कर डालना कोई कठिन काम नहीं था।

कुछ विद्वानोंने कल्पना की है कि उन्होंने कुछ सोपान (कांड) अयोध्यामें और कुछ काशीमें रचे। किन्तु यह विचार भी संशय-रहित नहीं है। प्रारंभमें अवधपुरीकी महिमाका वर्णन करके

मानस-रचनाकी तिथि देनेसे तथा अन्तमें राम-द्वारा तथा भुशुंडि-द्वारा अयोध्याके माहात्म्य-वर्णनसे निःसंकोच कहा जा सकता है कि उन्होंने पूरा मानस अयोध्यामें ही लिखा था।

रामचरितमानसकी रचना-पद्धति

गोस्वामी तुलसीदासजीने भारतीय महाकाव्योंकी परम्परासे एक पग आगे बढ़कर मानसके मंगलाचरणमें सरस्वती, गणेश, भवानी, शंकर, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान्, सीता, राम, ब्राह्मण, सुजन-समाज और सन्त-समाजके साथ-साथ निश्छल भावसे ('सति भाए') उन खल जनोंकी भी वन्दना की है जो 'बिनु काज दाहिनेहु बाएँ' बने रहते हैं।

इसके पश्चात् अपना स्वाभाविक दैन्य प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा—

कबि न होउँ नहिं बचन-प्रवीनू। सकल कला सब बिद्या-हीनू॥
आखर, अरथ, अलंकृति नाना। छन्द, प्रबन्ध, अनेक बिधाना॥
भाव-भेद, रस-भेद अपारा। कबित-दोष-गुन बिबिध प्रकारा॥
कवित-बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥
जदपि कवित-रस एकौ नाहीं। राम-प्रताप प्रकट यहि माहीं॥

किन्तु तथ्य यह है कि काव्यका कोई अंग ऐसा नहीं था, जिसका पूर्ण मर्म वे न जानते रहे हों। मानसके बहुतसे दोहों और चौपाइयोंमें मात्राओंकी कमी या वृद्धि, यति-भंग और गति-भंग दोष भी मिलते हैं किन्तु वह सब प्रतिलिपिकारों और तथाकथित संशोधकोंकी कृपाका परिणाम है जिन्होंने मनमाने ढंगसे पाठ बिगाड़ डाला, शब्द इधरसे उधर कर डाले, चौपाइयाँ बदल डालीं, प्रसंग बढ़ा दिए और जो उन्हें ठीक जँचा वह पाठ गढ़ डाला। क्षेपकोंके जोड़नेका एक कारण तो रामलीलाएँ भी थीं जिनमें उनके अनुसार संवाद कहलाए जाते थे और यह संभव है कि स्वयं गोस्वामीजीने ही रामलीलाके लिये कुछ क्षेपक डाल दिए हों, जैसे, विश्वामित्रके साथ जनकपुर जाते समय मार्गमें जब गंगाजी पड़ीं तब—

गाधि-सूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।

रामलीला-वालोंका काम इतने-से नहीं चल सकता था। उन्हें तो गंगाकी कथा मिलनी चाहिए थी। इसलिये वहाँ क्षेपक जोड़ दिया गया। कुछ क्षेपक समान रूपसे देश भरमें व्याप्त मिलते हैं इसलिये यह संभव है (निश्चय नहीं) कि रामलीलाके लिये स्वयं गोस्वामीजीने ही वे क्षेपक जोड़ दिए हों क्योंकि रामलीलाका प्रवर्त्तन—हिन्दी रंगमंचका आदि प्रवर्त्तन—भी उन्होंने ही किया था। गोस्वामीजीके हाथकी लिखी कोई प्रति न मिलनेके कारण उनका इष्ट पाठ क्या था अथवा इनके इष्ट क्षेपक कौन-कौनसे थे यह ढूँढ़ निकालना अब कठिन ही नहीं, असंभव हो गया है।

गोस्वामीजीने श्रेष्ठ काव्यकी कसौटी बताते हुए मानसके आरम्भमें ही कहा है—

सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु, सो सुनि करहिं बखान॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि-सम सब-कर हित होई॥

[सुजन लोग उसी कविताका आदर करते हैं जो सरल हो और जिसमें किसी विमल कीर्तिवाले महापुरुषका वर्णन हो। कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी होती है जो गंगाजीके समान सबका हित करनेवाली हो।] इसलिये जो लोग पांडित्य छाँटनेके लिये या श्रोताओंका मनोरंजन करनेके लिये मानसकी चौपाइयोंके अनेक असंगत और अनर्गल अर्थ लगाकर पैसा कमाते फिरते हैं उन ज्ञान-पण्य वणिजों (ज्ञान या राम-नाम बेचनेवाले बनियों)-को यह प्रसिद्ध उक्ति स्मरण रखनी चाहिए—

यः साध्वर्थं परित्यज्य करोत्यर्थविपर्ययः।
स वक्ता निरयं याति श्रोतारं निरयं नयेत् ।।

[जो वक्ता या कथावाचक किसी ग्रंथके ठीक और सीधे अर्थको तोड़-मरोड़कर अंड-बंड अर्थ करता है वह तो नरकमें जाता ही है, वह अपने साथ श्रोताको भी नरकमें घसीटे लिए चला जाता है।] गोस्वामीजीने—

ब्रह्म रामतें नाम बड़, बरदायक बरदानि।
रामायन सत-कोटि-महँ, लिय महेस जिय जानि ।।

—कहकर भी, राम-कथा क्यों गाई, इसका समाधान ढूंढना कठिन नहीं है। 'रामनाम कलि अभिमत-दाता' कहकर भी उन्होंने रामकथा कहना इसलिये श्रेयस्कर समझा क्योंकि—

बुध-विश्राम, सकल जन - रंजिनि। राम-कथा कलि-कलुष-विभंजिनि ।।

और उससे उन्हें स्वयं आनन्द मिलता था—

'स्वान्तःसुखाय', 'स्वान्तस्तमश्शान्तये', 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई।'

उन्होंने रामावतारके कारण-भूत नारदमोह, भानुप्रताप, स्वायम्भुव मनु और शतरूपाकी कथाएँ जो दे दीं और अन्तमें भी काकभुशुंडि-गरुड संवाद ला जोड़ा वह महाकाव्यकी रूढ रचना-परिपाटी-से मेल नहीं खाता। किन्तु कोई भी कवि किसी लीकपर नहीं चलता, वह अपनी लीक स्वयं बनाता है। गोस्वामीजी तो रामको 'भगत-हेतु' अवतार मानते थे इसलिये इन कथाओंका सन्निवेश करना नितान्त आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया था। इस प्रकार यह महाकाव्य अन्य सब महाकाव्योंकी रचना-पद्धतिसे पूर्णत: भिन्न है।

मानसका अनुबन्ध-चतुष्टय

महाकाव्यके अनुबन्ध-चतुष्टयके अनुसार मानसकी परीक्षा करते समय यह विचार करना आवश्यक है—'किं कथं, केन, कस्मै'—अर्थात् मानस क्या है, इसकी रचना क्यों की गई (विशेषतः भाषामें क्यों की गई), इसकी रचना किसने की और किसके लिये की।

मानस क्या है ?

रामचरितमानस महाकाव्य होनेके साथ-साथ नाटक भी है क्योंकि इसके अनुसार ही भारतमें स्थान-स्थानपर राम-लीलाएँ खेली जाती हैं जिनमें अत्यन्त निष्ठाके साथ मानसमें दिए हुए संवादोंके अनुसार ही संवाद कहलाए जाते हैं। मानसका (विशेषतः सुन्दरकांडका) स्तोत्रके रूपमें पाठ किया जाता है। भागवतके समान मानसकी भी कथा बैठाई जाती है और—

दीनदयाल बिरद संभारी। हरहु नाथ ! मम संकट भारी।
मंगल भवन अमंगल-हारी। द्रवहु सो दसरथ-अजिर-बिहारी।।

—का संपुट लगाकर अखंड, नवाह या मासिक पाठ भी किया जाता है। धन-प्राप्तिके लिये स्थान-स्थानपर किष्किन्धाकांडका और कामना-सिद्धिके लिये सुन्दर-कांडका पाठ भी किया जाता है। यह पूरा महाकाव्य गेय भी है जिसे ढोल, मजीरे, हारमोनियम, सारंगी, तबलेके साथ लोग गाते भी हैं। इतना ही नहीं, कामना-सिद्धिके लिये लोग निम्नांकित चौपाईको मन्त्रके समान भी जपते हैं—

जनकसुता जग-जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना-निधानकी ।।
ताके जुगपद कमल मनावौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं ।।

नीति-वचनोंके समान इसके दोहे और सूक्तियोंका प्रयोग किया जाता है। इसमें भारतीय दार्शनिक तत्त्वोंका विस्तृत विवेचन भी है जिसमें अनेक मतोंकी विशेषता और महत्ता बताकर भक्ति-मार्गकी सरलता और सुलभताका प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टिसे यह मानस महाकाव्य भी

है, नाटक भी है, स्तोत्र भी है, गेय काव्य भी है, नीति-ग्रन्थ भी है, स्मृतियोंके समान धर्मशास्त्र भी है, दार्शनिक विवेचनसे युक्त होने कारण दर्शन भी है और स्थान-स्थानपर सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरितके वर्णनके साथ अनेक स्तुतियोंसे युक्त होनेके कारण पुराण भी है। राजशेखरने काव्य-मीमांसामें सम्पूर्ण वाङ्मयको काव्य और शास्त्र नामक दो भागोंमें विभक्त किया है। किन्तु रामचरितमानसकी विशेषता यह है कि यह काव्य भी है, शास्त्र भी है और इनसे भी अधिक लोक-पथ-प्रदर्शक नीति-ग्रन्थ भी है। इस दृष्टिसे यह संसारका सबसे अद्भुत महाग्रन्थ है जैसा न पहले कभी विश्व-भरमें रचा गया और न आगे रचे जानेकी संभावना है। इसके सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है—यह क्या नहीं है ? न भूतो न भविष्यति।

भाषा-शैली

इसमें भावके अनुसार अर्थात् कोमल भावके लिये कोमल पदावलीका और कठोर वर्णन या भावके लिये तदनुकूल शब्दावलीका प्रयोग किया गया है। स्तोत्रोंकी भाषा संस्कृत स्तोत्रोंकी शैलीपर संस्कृत-भावित रक्खी गई है। श्लोकोंकी भाषा संस्कृत है। उनके ग्रन्थोंमें कोमल-कान्त-पदावलीसे युक्त उनकी तद्भवात्मिका और संस्कृत-निष्ठ भाषा देखकर यह समझनेमें कठिनाई नहीं होती कि भाषापर उनका कितना प्रचंड अधिकार था। वे भाषाके साथ-साथ तत्कालीन सभी प्रकारकी काव्य-शैलियों तथा लोक-गीत-शैलियोंके भी निष्णात अधिष्ठाता थे। इसीलिये उन्होंने जहाँ दोहा-सोरठा-चौपाई-छन्द शैलीमें मानसकी रचना की वहीं कवित्त-शैलीमें कवितावली, गीति-शैलीमें राम-गीतावली तथा कृष्णगीतावली, बरवै छन्दमें बरवै रामायण, दोहा-शैलीमें दोहावली, रामाज्ञा-प्रश्न और वैराग्यसन्दीपनी, तथा लोक-गीत शैलीमें रामलला-नहछू, जानकी-मंगल और पार्वती-मंगलकी रचना की। इस प्रकार भाषा और शैली दोनोंपर उनका अखंड अधिकार था।

वे संस्कृतके साथ-साथ अवधी और व्रज भाषाके भी विचक्षण पंडित थे और कहाँ किस प्रकारकी शब्दावलीसे किस प्रकारका भाव अधिक प्रदीप्त किया जा सकता है, इस कलाके कुशल मर्मज्ञ थे।

मानस क्यों ?

दूसरा प्रमुख प्रश्न यह है कि वाल्मीकीय रामायण-जैसे अभूतपूर्व राम-गुण-गाथा-ग्रन्थके होते हुए रामचरित-मानसकी रचना क्यों की गई ? और वह भी भाषामें क्यों की गई ? स्वयं गोस्वामीजीने मानसके आरम्भमें कहा हैं—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ-गाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

[अनेक पुराण, वेद और शास्त्रोंसे सम्मत जो कुछ भी रामायण (वाल्मीकीय, अध्यात्म तथा अन्य रामायणों)-में कहा गया है वह सब तथा कुछ अन्य ग्रन्थोंसे भी सामग्री लेकर अपने अन्तःकरणके सुखके लिये तुलसीने रघुनाथकी गाथाको भाषामें निबद्ध करके अत्यन्त सुन्दर प्रस्तारके साथ प्रस्तुत किया है।] उन्होंने स्वयं यह स्पष्ट कर दिया है कि 'इसमें मेरी कोई मौलिकता नहीं है, मैंने तो केवल भाषामें संपादन-मात्र किया है।' उनकी मौलिकता 'कथा-प्रबन्ध-विचित्र बनाई'में ही है और वह मौलिकता निःसन्देह अद्भुत है।

मानसके अन्तमें भी इसीको दुहराते हुए उन्होंने कहा है—'स्वान्तस्तमःशान्तये' (अपने अन्तःकरणके अन्धकारको दूर करनेके लिये) मैंने भाषामें मानसकी रचना की है। किन्तु उनके 'स्वान्तः'का अर्थ केवल उनका ही अन्तःकरण नहीं वरन् विश्वान्तःकरण ही समझना चाहिए। राममें उनकी कितनी प्रगाढ निष्ठा थी यह इसी बातसे स्पष्ट है कि उन्होंने अन्तमें यहाँतक कह दिया—

मो सम दीन न दीन-हित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस - मनि, हरहु बिषम भव-भीर॥
कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम॥

भाषामें निबद्ध करनेका कारण बताते हुए उन्होंने कहा है—

भाषा-बद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

वे तो संस्कृतके भी प्रखर पंडित थे, तब उन्हें भाषा-निबद्ध करके आत्म-प्रबोधकी आवश्यकता क्यों पड़ गई ? किन्तु यह तो उनकी विनय-भावना ही थी। वास्तवमेंउन्होंने तो लोकमंगल-कामनासे ही इसकी रचना की थी क्योंकि उन्होंने अन्तमें यही कहा भी—

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं,
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

[जो मनुष्य भक्तिके साथ इस पवित्र, सदा-कल्याण-कर, ज्ञान-भक्ति-प्रद, माया-मोहका मल दूर करनेवाले, विमल प्रेमके जलसे भरे हुए रामचरित-मानसमें अवगाहन करेंगे वे संसार-रूपी सूर्यकी प्रखर किरणोंसे नहीं झुलस पावेंगे।] तात्पर्य यह है कि उन्होंने अपने अन्तःकरणके सुखके लिये, अपने अन्तःकरणके तमकी शान्तिके लिये तथा आत्म-बोधके लिये तो इसकी रचना की ही, साथ ही सांसारिक लोगोंको 'संसारके क्लेशोंसे झुलसनेसे बचाने'के लिये भी उन्होंने इसकी रचना की।

भाषामें निबद्ध करनेका दूसरा कारण स्पष्ट यह है कि संस्कृतमें सर्वसाधारणकी गति नहीं थी। केवल कथा—वाचकोंके द्वारा ही जनताको कभी-कभी राम-कथा मिल जाया करती थी। इसीलिये उन्होंने ऐसी सरल लोक-भाषा या ग्राम्य-गिरामें इसकी रचना कर दी कि राम-कथा सबके लिये सुलभ हो जाय और सब लोग स्वयं घर-बैठे रामकथाका आनन्द ले सकें। उसका कारण भी उन्होंने बता दिया—

स्याम सुरभि, पय बिसद अति, गुनद, करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य, सियराम - जस, गावहिं, सुनहिं सुजान॥

[गौ भले ही काली हो पर उसका दूध बड़ा स्वच्छ और गुणकारी होता है, इसीलिये सब लोग काली गौका दूध बड़े स्वादसे पीते हैं। इसी प्रकार सीता-रामका यह यश भी देशी भाषामें भले ही लिखा गया हो पर सुजान लोग तो हितकर समझकर बड़े प्रेमसे इसे कहते और सुनते रहेंगे।]
उन्होंने अन्यत्र भी कहा है—

का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहियतु साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कमाच॥

[देशी भाषा हो या संस्कृत हो, उससे कुछ नहीं होता जाता। वास्तवमें प्रेम सच्चा होना चाहिए। जहाँ कंबलसे काम निकलता हो, जाड़ा दूर होता हो, वहाँ रेशमी वस्त्र भला किस काम आवेगा ?]

मानसकी रचना किसने की ?

मानसका वास्तविक रचयिता कौन है ? इस सम्बन्धमें उन्होंने मानसके अन्तमें स्पष्ट कहा है—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

[भगवान् शंकरने रामके चरण-कमलोंमें निरन्तर भक्ति प्राप्त करनेके लिये जिस दुर्गम रामायणकी रचना की थी उसीको तुलसीदासने रामके नामसे पूर्ण होनेके कारण अपने अन्त:करणका अन्धकार दूर करनेके लिये भाषामें रामचरित-मानसके नामसे रच दिया है।]। इस 'रामचरितमानस' नामके सम्बन्धमें भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया है—

रचि महेस निज मानस राखा। सुसमउ पाइ सिवा - सन भाखा॥
रामचरित - मानस मुनि - भावन। बिरचेउ संभु सुहावन, पावन॥
तातें रामचरित - मानस बर। धरेउ नाम, हिय हेरि, हरषि हर॥

इससे स्पष्ट है कि तुलसीने जो रामचरितमानस रचा है, इसके मूल कर्ता और नामकरण करनेवाले साक्षात् शंकर हैं। उन्होंने इसकी रचना करके अपने मानसमें रख लिया था जिसे समय-समयपर पार्वतीजीके प्रश्नोंके उत्तरमें वे उन्हें सुनाते रहते थे (या जिसे सुसमय, ठीक अवसर, पाकर उन्होंने पार्वतीजीको सुना डाला था)। इसलिये तुलसीने इसका वही 'रामचरितमानस' नाम ही ग्रहण कर लिया। यह मूल शंभु-रामायण या उमा-शंभु-संवाद कौन सा है उसका तो कविने कोई परिचय नहीं दिया किन्तु इतना अवश्य कह दिया—

कीन्ह प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहिं बिधि संकर कहा बखानी॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा - प्रबन्ध बिचित्र बनाई॥
जेहिं यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करै सुनि कोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरज करहिं अस ज्ञानी॥

तात्पर्य यह है कि पार्वतीजीने शिवजीसे जो प्रश्न किए थे, उनके जो उत्तर शिवजीने दिए और जिस रामचरितको तुलसीने अपने गुरुसे सूकरखेतमें सुना था उसे ही विचित्र कथा-प्रबन्धके रूपमें सजाकर तुलसीने महाकाव्यके रूपमें प्रस्तुत कर दिया है। अत:, मानसके मूल कर्ता शिव ही हैं। गोस्वामीजी केवल इसे भाषामें सजाकर उतारनेवाले मात्र हैं। रामचरितमानस पढ़नेसे ज्ञात होगा कि शिवने अगस्त्य ऋषिसे यह राम-कथा सुनी थी—

एक बार त्रेतायुग - माहीं। संभु गए कुंभज रिषि - पाहीं॥
राम - कथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी॥

काकभुशुंडिने यह कथा कुछ तो पिछले जन्ममें अपने गुरुसे उज्जयिनीमें सुनी थी और फिर लोमश ऋषिके शापसे काक-शरीर पाकर उन्हींसे सुनी थी—

मेरु सिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन॥

तब मुनीस रघुपति गुन - गाथा। कहे कछुक सादर, खगनाथा।
मुनि मोहिं कछुक दिवस तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाखा।
रामचरित - सर गुप्त सुहावा। संभु - प्रसाद तात ! मैं पावा।
राम - रहस्य ललित बिधि नाना। गुपुत - प्रगट इतिहास पुराना।
बिनु - श्रम तुम जानब सब सोऊ।

और उन्हींके आशीर्वादसे काकभुशुंडिके हृदयमें रामकी अविरल भक्तिके साथ राम-कथा तथा रामचरित-मानसके सब रहस्य स्वयं व्याप्त हो समाए। शिवने इस प्रकार यह ज्ञान लोमश ऋषिको दिया, लोमश ऋषिने काकभुशुंडिको दिया, उनसे गरुडने और याज्ञवल्क्यने पाया और याज्ञवक्यने भरद्वाजको सुनाया, वही कथा तुलसीदासने सूकरखेतमें अपने गुरुसे सुनी और रामचरितमानसके रूपमें प्रकट कर दी। मानसमें यह नहीं बताया गया कि लोमशको शिवने और याज्ञवल्क्यको काकभुशुंडिने कब, कहाँ और कैसे

यह कथा सुनाई। संभवत: इसकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि काकभुशंडिको राम-रहस्य मिल जाना ही आश्चर्यकी बात थी औरोंके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी।

गोस्वामीजीने समस्त वैदिक साहित्य, दर्शन, पुराण, साहित्य-ग्रन्थ (काव्य, नाटक आदि, तथा) सब रामायणोंको छानकर जहांसे उन्हें जो प्रसंग, वर्णन, उक्ति, घटना या भाव प्रिय प्रतीत हुआ वह सब उन्होंने अपने रामचरितमानसमें यथास्थान ऐसा नगीनेकी भाँति ला जड़ा कि कहीं यह प्रतीत ही नहीं होता कि यह सामग्री कहीं बाहरसे ली गई है। यही रामचरितमानसकी विशेषता है। कुछ विद्वान् कहा करते हैं कि इसमें एक विशेष कल्पकी राम-कथा है किन्तु यह बात नहीं है। इसमें 'कथा-विचित्र-प्रबन्ध बनाई' राम-कथा लिखी गई है जो तुलसीको बड़ी प्रिय लगती चली गई।

गोस्वामीजीको कुछ लोग अद्वैतवादी और कुछ लोग विशिष्टाद्वैतवादी कहते हैं किन्तु वे तो पूर्णत: सब वादोंसे ऊपर सर्ववाद-निरपेक्ष सन्त थे जो रामको ब्रह्म मानकर सारी सृष्टिको सिया-राममय मानते थे। उन्हें किसी भी वादके फेरमें डालकर फँसानेकी चेष्टा करना उचित नहीं है।

मानस किसके लिये ?

चौथा प्रश्न यह है कि मानसकी रचना किसके लिये की गई? गोस्वामीजीने काव्यका प्रयोजन ही यह बताया है कि कवितासे सबका हित होना चाहिए—

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई। सुरसरि-सम सब-कर हित होई॥

काव्यके फलादेशके रूपमें भी उन्होंने यही कहा है—

जे एहि कथहिं सनेह - समेता। कहिहइँ, सुनहइँ समुझि सचेता॥
होइहइँ रामचरित - अनुरागी। कलि - मल- रहित सुमंगल-भागी॥

यद्यपि मूलत: उन्होंने तो अपने सुख और आत्म-प्रबोधके लिये ही इसकी रचना की थी तथापि सत्पुरुषका लक्षण यही है कि जो वह अपने लिये चाहता हो वही दूसरोंके लिये भी चाहे—

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्। —गीता

[जो अपने लिये चाहो वही दूसरोंके लिये भी चाहो]। इसीलिये उनका रामचरितमानस आज सारे विश्वके लिये परम हितकारी सिद्ध हो रहा है। जादू वह जो सिरपर चढ़कर बोले। विश्वमें आज चारों ओर बिना प्रचार किए तुलसीकी काव्य-शक्तिके कारण उनके मानसका विश्व-महाकाव्यके रूपमें और उनका विश्व-कविके रूपमें सम्मान किया रहा है किन्तु नाभादासजीने तो उनके सम्बन्धमें पहले ही घोषणा कर दी थी—

त्रेता काव्य निबंध करी सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायन।
अब भक्तनि सुख देत बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रस मत्त रटत अहनिसि ब्रतधारी।
संसार अपारके पारको सुगम रूप नौका लयो।
कलि - कुटिल - जीव - निस्तार - हेतु, बालमीकि तुलसी भयो॥

मासिक पाठ-विधि

दिन	कांड	दोहे तक	
१	बाल	२५	ब्रह्म राम-तें नाम बड़
२	,,	५५	गई समीप महेस तब
३	,,	८१	कहा हमार न सुनेहु तब
४	,,	१२०	हिय हरषे कामारि तब
५	,,	१५२	यह इतिहास पुनीत अति
६	,,	१८३	बरनि न जाइ अनीति
७	,,	२११	अस प्रभु दीनबंधु हरि
८	,,	२३९	सतानंद-पद बंदि प्रभु
९	,,	२७०	सभय बिलोके लोग सब
१०	,,	३०४	आवत जानि बरात बर
११	,,	३२६	पुनि पुनि रामहिं चितव सिय
१२	,,	३६१	सिय-रघुबीर बिबाह
१३	अयोध्या	२८	भूप मनोरथ सुभग बन
१४	,,	६०	कहि प्रिय बचन बिबेकमय
१५	,,	९३	भगत भूमि भूसुर सुरभि
१६	,,	११६	स्यामल-गोर किसोर बर
१७	,,	१४१	राम-लखन-सीता-सहित
१८	,,	१७६	भरत कमल-कर जोरि
१९	,,	२१५	संपति चकई, भरत चक
२०	,,	२३६	रामसैल-सोभा निरखि
२१	,,	३२६	भरत-चरित करि नेम
२२	अरण्य	४६	रावनारि-जस पावन
२३	किष्किंधा	३०	नीलोत्पल तन स्याम
२४	सुंदर	६०	सकल सुमंगलदायक
२५	लंका	४८	हिरन्याक्ष भ्रातासहित
२६	,,	९८	मुरछा बिगत भालु-कपि
२७	,,	१२१	यह कलिकाल मलायतन
२८	उत्तर	६२	ज्ञानी भगत-सिरोमनि
२९	,,	११४	तातें यह तनु मोहिं
३०	,,		दह्यन्ति नो मानवा:

नवाह पाठ-विधि

दिन	कांड	दोहा	
प्रथम	बाल	१२०	हिय हरषे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
द्वितीय	,,	२३९	सतानंद-पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु-पहँ जाय।
तृतीय	,,	३५८	कीन्ह सोच तब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाय।
चतुर्थ	अयोध्या	११५	स्यामल गोर किसोरबर, सुंदर सुखमा-ऐन।
पंचम	,,	२३६	रामसैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
षष्ठ	अरण्य	२९	हारि परा खल बहुत बिधि, भय अरु प्रीति दिखाइ।
सप्तम	लंका	१२	कह मारुतसुत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
अष्टम	उत्तर	१०	तब मुनि कहेउ सुमंत्र-सन, सुनत चलेउ हरषाइ।
नवम	,,		समाप्ति-तक (पूर्णाहुति)

श्रीरामचरितमानस

●

गोस्वामी तुलसीदास

'राममय श्रीरामचरितमानस'

बालकांड प्रभु-पायँ, अजोध्या कटि मन मोहै,
उदर बन्यौ आरन्य, हृदय किष्किधा सोहै।
सुन्दर ग्रीव, मुखारबिंद लंका कहि गाए,
जेहि महँ रावण आदि निसाचर सबै समाए॥
उत्तर मस्तक कांड हरि, एहि बिधि तुलसीदास मन।
आदि अंत लौ देखिए, रामायण श्रीराम-तन॥

[बालकाण्ड ही रामका चरण है, अयोध्याकाण्ड ही उनकी कटि (कमर) है, आरण्यकाण्ड ही उनका उदर (पेट) है, किष्किधाकाण्ड ही उनका हृदय है, सुन्दरकाण्ड ही उनकी ग्रीवा है, लंकाकाण्ड ही उनका वह मुख-कमल है जिसमें रावण आदि सब राक्षस जा समाए और उत्तरकाण्ड ही हरि (राम)का मस्तक है । इस प्रकार तुलसीदासके अनुसार रामायण (श्रीरामचरितमानस)को श्रीरामका ही पूर्ण शरीर समझना चाहिए।]

[यह दुर्लभ छप्पय अहरौरा (जिला मीरजापुर, उत्तर प्रदेश)-निवासी पंडितप्रवर राय-साहब श्री श्रीनिवास पाण्डेयजीके ग्रंथागारसे विद्वद्वर पंडित सदायतन पांडेयजीकी तत्परतापूर्ण कृपासे प्राप्त विनय-पत्रिकाके अन्तमें लिखा हुआ मिला।]

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

•

प्रथम सोपान

(बालकाण्ड)

•

[श्लोकाः]

१ वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

(सत्काव्यों या अच्छी काव्य-रचनामें ही जिसका प्रयोग किया जाना उचित होता है ऐसे) मंगल वर्णों (शुभ, श्रुति-मधुर अक्षरों); मंगल अर्थोंके समूहों (लोक-कल्याणकारी अभिधेय, लक्ष्य, व्यंग्य तथा तात्पर्यार्थों); मंगल रसों (श्रेयस्कर शृङ्गार, वीर, हास्य, अद्भुत, शान्त, भक्ति आदि रसों) तथा साथ ही साथ मंगल छन्दों (सुखकर, लोक-रञ्जक तथा भाव और रस-के अनुकूल मगण, भगण, नगणसे युक्त मात्रिक और वर्णिक वृत्तों)-की भी सृष्टि करनेवाली (सुकविके हृदयमें जन्म देनेवाली) वाणी (की देवी सरस्वती)-को मैं (तुलसीदास) प्रणाम करता हूँ (कि मुझे भी ऐसे सर्वमंगलकारी वर्णों, अर्थ-समूहों, रसों और छन्दोंका प्रयोग करने-की प्रतिभा प्राप्त हो जाय)। साथ ही मंगल वर्णों (लोक-कल्याणकारी मानव-जातियों, सत्पुरुषों, सन्तों); मंगल अर्थ-समूहों (जिनसे सबका हित होता हो ऐसे सब धन, वैभव आदि साधनों); मंगल रसों (परम कल्याणमय परमानन्द तथा रामकी भक्तिसे प्राप्त होनेवाले दैवी आनन्दों)-के साथ-साथ मंगल छन्दों (कल्याणकारी कामनाओं या इच्छाओं)-की भी सृष्टि करनेवाले विनायक (शिवके उत्पाती गणोंपर शासन करनेवाले, उनके विशेष नायक गणेश)-को मैं वन्दना करता हूँ (कि वे इस ग्रन्थकी रचनामें उठ खड़ी होनेवाली सारी बाधाएँ दूर करके सब प्रकारका मंगल करें, उसे निर्विघ्न पूर्ण करनेमें सहायक हों।)[1] ॥ १ ॥

---

१. वर्णों, अर्थों और रसोंके साथ छन्दोंकी भी सृष्टि करनेवाली वाणी (सरस्वती)-को और सब प्रकारका मंगल करनेवाले विनायक (गणेश)-की मैं वन्दना करता हूँ। [यह अर्थ भी सुन्दर है।]

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ।। २ ।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।। ३ ।।
सीताराम - गुणग्राम - पुण्यारण्य - विहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ ।। ४ ।।
उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
१० सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।। ५ ।।
यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषेव[1] भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।

भवानी (पार्वती)-को श्रद्धाका और शंकरको विश्वासका साक्षात् स्वरूप मानकर मैं पार्वती और शिवकी वन्दना करता हूँ; क्योंकि न तो श्रद्धा और विश्वासके विना सिद्ध लोग अपने हृदयमें बैठे हुए परमात्माको देख पा सकते (अनुभव कर पा सकते), न भवानी और शंकरकी ही कृपाके बिना सिद्ध लोग (बड़े-बड़े ज्ञानी लोग भी) अपने हृदयमें बैठे हुए ईश्वर (राम)-को भली भाँति पहचान पा सकते ।। २ ।।

सब प्रकारके ज्ञानसे पूर्ण और सदा विद्यमान बने रहनेवाले उन शंकर-रूपी गुरु (शंकरको गुरु मानकर मैं उन शंकर)-की वन्दना करता हूँ जिनके आश्रयमें (सिरपर विराजमान) रहनेके कारण ही टेढ़े (द्वितीयाके) चन्द्रमाकी भी सर्वत्र पूजा की जाती है (मुझ तुलसीदास-जैसे खोटे पुरुषका भी सर्वत्र आदर होने लगा है) ।। ३ ।।

सीता और रामके गुणोंके पवित्र वनमें निरन्तर विहार करनेवाले (सीता और राम-का पूरा चरित्र भली प्रकार जान लेनेवाले), विशुद्ध विज्ञानवाले (राम और सीताके वास्तविक तत्त्वको ठीक-ठीक जानकर अपने रामायणमें उसका विज्ञान या पूरा विवरण भर रखनेवाले) कवीश्वर (शंकर तथा वाल्मीकि)-को मैं (सादर) प्रणाम करता हूँ। साथ ही सीता और राम-के गुणोंके पवित्र वनमें विहार करनेवाले (सीता और रामके लोक-मंगलकारी गुणोंका निरंतर कीर्तन करते हुए मग्न रहनेवाले) और विशुद्ध विज्ञानवाले (सीता और रामके सम्पूर्ण शुद्ध तत्त्व या रहस्यको भली भाँति जाननेवाले) कपीश्वर हनुमानको मैं (सादर) प्रणाम करता हूँ ।। ४ ।।

जिनमें सारी सृष्टिको उत्पन्न, उसका पालन और उसे नष्ट कर सकने, सभी दुःख हर सकने, तथा सब प्रकारका कल्याण कर सकनेकी शक्ति है और जो रामकी बड़ी प्यारी हैं उन सीताको मैं (सादर) प्रणाम करता हूँ ।। ५ ।।

साराका सारा संसार, ब्रह्मा आदि देवता और सभी दैत्य जिनकी मायाके फेरमें फँसे चक्कर काटते रहते हैं, जिनके प्रताप (प्रभाव या शक्ति)-के कारण ही यह सारा (झूठा) जगत्

१. अमृषेव = अमृषा + इव = 'सत्यके समान' जान पड़ता है। अमृषेव = 'अमृषा + एव' = सत्य ही; जिनके प्रतापसे सारा (झूठा) संसार भी 'सत्य ही' जान पड़ता है।

यत्पादप्लवमेकमेव[1] हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥
नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति[2] ॥ ७ ॥
सो०—जो[3] सुमिरत, सिधि[4] होइ, गननायक करिवर-बदन ।
करौ अनुग्रह सोइ[5], बुद्धिरासि सुभ-गुन-सदन ॥ क ॥

भी उसी प्रकार सत्यके समान जान पड़ता है जैसे रस्सीको देखकर मनुष्यको सर्पका धोखा हो जाता है, जिनके चरण भवसागरसे पार जाना चाहनेवालोंके लिये एक ही नाव (पार उतारनेवाले, संसारके आवागमन और संकटोंसे मुक्त करनेवाले) हैं, जो इस सारी सृष्टिके निर्माणके एक मात्र कारण हैं (जिन्होंने अकेले यह संसार बनाया है), उन्हीं 'राम' नामवाले नारायणकी मैं (सादर) वन्दना करता हूँ ॥ ६ ॥

अनेक पुराण, वेद तथा शास्त्रोंके मतके अनुसार, रामायण (वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण तथा अन्य रामायणों)-में वर्णित तथा अन्य ग्रन्थोंसे भी एकत्र की हुई (सामग्रीसे भरी हुई) रामकी कथा ही, मैं (तुलसीदास) अपने अन्तःकरणके सुखके लिये, अत्यन्त सुन्दर ढंगसे, भाषा (लोक-भाषा अवधी) में लिख रहा हूँ (उसकी रचना कर रहा हूँ) ॥ ७ ॥

(शिवके उत्पाती) गणोंको जो सदा अपने वशमें किए रखते हैं, जिनका मुँह विशाल हाथीके मुँड़का-सा है, जो बुद्धिके भाण्डार और शुभ गुणोंसे भरे हुए हैं, ऐसे हे गणेश ! आप मुझपर कृपा कीजिए (जिससे मेरा यह ग्रन्थ कुशलसे पूरा हो जाय) क्योंकि जो भी आपको स्मरण कर लेता है उसे (तत्काल) सिद्धि प्राप्त हो जाती है (उसका सब इच्छित कार्य तत्काल पूर्ण हो जाता है) ॥ क ॥

---

१. यत्पादप्लव एक एव । 'प्लव' शब्द पुंलिंग भी है, नपुंसक भी । पुंलिंग और नपुंसक लिंगमें 'प्लव'का अर्थ नाव होता है । किन्तु प्लवः (पुंलिंग)-का अर्थ केवल जल-पक्षी होता है । इसलिये 'प्लवमेकमेव' पाठ ही ठीक है ।
यत्पादप्लवमेव भाति हि...। संसार-सागरसे पार जाना चाहनेवालोंको चरण-रूपी नौका ही अच्छी लगती है ।

२. वि० महन्त मोहनदासकी प्रतिमें इस श्लोकके बदले निम्नांकित श्लोक लिखा मिला है—
विनाप्यर्थः समर्थं हि दातुमर्थचतुष्टयम् । मङ्गलायतनं तन्मे बाल्ये यद्रामभाषितम् ॥
(बचपनमें रामके मुँहसे निकले हुए वे तोतले वचन मेरा मंगल करें जिनका कोई अर्थ भले ही न हो पर जिनमें चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) दे डाल सकनेका पूरा सामर्थ्य भरा हुआ है) ।

३. जेहि सुमिरत सिधि होइ : जिसे स्मरण करनेसे मनुष्यको सब सिद्धि मिल जाती है । जो सुमिरत सिध होय : जो स्मरण करता है, वह (स्मरण करते ही) सिद्ध हो जाता है (वह जो चाहता है उसका वह काम पूरा हो जाता है) । [यह पाठ अधिक स्पष्ट है ।]

४. जेहि सुमिरत सिध होय : जिसे स्मरण करनेसे मनुष्य सिद्ध हो जाता है (मनचाहा काम पूर्ण करनेकी शक्ति पा लेता है या उसका कार्य सिद्ध, पूर्ण हो जाता है) ।

५. करौ अनुग्रह सोइ : मुझपर भी 'सोइ' (वही) अनुग्रह कीजिए (कि आपका स्मरण करते ही मुझे भी सिद्धि मिल जाय) ।

मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
२० जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलि-मल-दहन॥ ख॥
नील-सरोरुह-स्याम, तरुन-अरुन-वारिज-नयन।
करौ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर-सयन॥ ग॥
कुंद-इंदु-सम देह, उमारमन करुना-अयन।
जाहि दीन पर नेह, करौ कृपा मर्दन-मयन॥ घ॥
वंदौं गुरु-पद-कंज, कृपासिंधु नररूप हरि[1]।
महा-मोह-तम-पुंज, जासु वचन रवि-कर-निकर॥ ङ॥

जिनकी कृपासे गूँगा भी धड़ाधड़ बोलने लगता है और लँगड़ा भी खड़े पहाड़पर चढ़ चलता है, ऐसे, कलियुगके (कारण उत्पन्न होनेवाले) सारे दोष जलाकर भस्म कर डालनेवाले दयालु राम! आप मुझपर भी द्रवित हो जाइए (कृपा कर दीजिए जिससे मैं यह ग्रन्थ कुशलसे पूर्ण कर सकूँ)॥ ख॥

(जिनका शरीर) नीले कमलके समान साँवलेपनकी झलक लिए हुए है, जिनके नेत्र तत्काल खिले हुए लाल कमलके समान (लाल और खिले पड़ रहे) हैं, जो सदा क्षीरसागरमें (शेषनागकी शय्यापर) शयन करते रहते हैं, ऐसे (नारायणसे मेरी प्रार्थना है कि) आप! (क्षीरसागर छोड़कर अब) मेरे हृदयमें आकर निवास करने लगिए (जिससे मेरा हृदय निरन्तर पवित्र बना रहे)॥ ग॥

कुन्दके फूल तथा चन्द्रमाके रंगके समान जिनका (उजला) शरीर है, जो पार्वतीके प्रियतम हैं, जो सदा दयासे भरे रहते हैं, जो दीनोंसे बड़ा स्नेह करते हैं, ऐसे, कामदेवका मर्दन कर डालनेवाले (उसे जलाकर भस्म कर डालनेवाले) हे शंकर! आप मुझपर कृपा कर दीजिए (जिससे मेरे मनमें काम आदि कोई विकार आने ही न पावे)॥ घ॥

जो कृपाके समुद्र (सदा सबपर कृपा करनेवाले) और मनुष्यके रूपमें साक्षात् हरि (भगवान्) ही हैं, जो अपने वचनों (उपदेशों)-से अज्ञानका सारा अन्धकार ऐसे मिटा डालते हैं जैसे सूर्यकी किरणें अँधेरा मिटा डालती हैं, ऐसे गुरुके चरण-कमलों (कमलके समान कोमल और पवित्र चरणों)-की मैं वन्दना करता हूँ॥ ङ॥

---

१. कुछ लोगोंके अनुसार इस दोहेमें तुलसीदासने अपने गुरु नरहर्यानन्दकी वन्दना की है किन्तु निम्नांकित (२५-२६) श्लोकसे यह भ्रम दूर हो जाता है।

१९-२० मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥—महाभारत
२१-२२ नीलाम्बुजतनुं दिव्यमरुणांबुजलोचनम्। स्मरामि हृदि तं देवं क्षीरसागरशायिनम्। —ना०पं०
२३-२४ कुन्देन्दुकर्पूरतनुर्ह्युमेशः करुणार्णवः। दीनस्नेहकरः कुर्यात्कृपां मदनमर्दनः॥ - उमासंहिता
२५-२६ वन्दे गुरुपदाब्जं यो नररूपः स्वयं हरिः। यद्वाक्यसूर्योदयतस्तमो नश्यति सांप्रतम्॥—जा०सं०

वंदौं गुरु - पद - पदुम - परागा। सुरुचि-सुबास, सरस अनुरागा।
अमिय - मूरि - मय चूरन चारू। समन सकल भव-रुज-परिवारू। (१)
सुकृत - संभुतन विमल बिभूती। मंजुल - मंगल - मोद - प्रसूती।
३० जन - मन - मंजु - मुकुर - मल-हरनी। किये तिलक गुन-गन-बस-करनी। (२)
श्रीगुरु - पद - नख - मनि - गन - जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोहतम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवहिं जासू। (३)
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष-दुख भवरजनी के।

मैं अपने गुरुके उन चरणोंकी धूलको प्रणाम करता हूँ, जो (चरण), कमलके समान (सुन्दर, रंगीन) हैं। जैसे कमलमें सुरुचि-सुवास (मनभावनी सुगन्ध) और सरस अनुराग (सुहावना लाल रङ्ग) होता है वैसे ही गुरुके चरणोंमें भी सुरुचि (अच्छी रुचि या श्रद्धा-भक्ति-भरे मन)-का सुवास (मनचाहा या सुखकर निवास) होता है और उनमें सरस अनुराग (आनन्द देनेवाला प्रेम) होता है (गुरुके चरणोंमें निरन्तर निवास करते रहनेकी, उनकी सेवा करते रहनेकी प्रबल इच्छा होती है और उन चरणोंसे प्रेम करते रहनेमें बड़ा आनन्द मिलता है)।[1] गुरुके (ऐसे) चरणोंकी धूल (सचमुच ऐसी) अमृतकी जड़ी (को कूटकर बनाया हुआ उस)-का ऐसा चूर्ण है कि वह यदि छू भर भी जाय तो संसारके सारे रोग (पाप-ताप) मिटा डालता है। (१) (गुरुके चरणोंकी) यह धूल तो पुण्य-रूपी शंकरके शरीरपर पुती हुई उस स्वच्छ विभूति (चिता-भस्म)-के समान (पवित्र और मङ्गलकारी) है (बड़े पुण्यसे ही गुरुके चरणोंकी वह पवित्र रज मिल पाती है), जिस (का सेवन करने)से निरन्तर हर्षदायक मङ्गल ही मङ्गल होता और आनन्द ही आनन्द मिलता रहता है। (गुरुके चरणोंकी) वह धूल मनके दर्पणपर जमी हुई सारी मैल पोंछ-मिटा डालती है और उसे माथेपर चढ़ाते ही (संसार के) सारे गुण अपने आप दौड़े चले आते हैं (गुरुके चरणोंकी सेवा करते रहनेसे मनके सारे पाप-ताप मिट जाते हैं और सभी अच्छे गुण अपने आप आने लगते हैं)। (२) गुरुके चरणोंके नख भी मणियोंके समान ऐसे चमाचम चमकते रहते हैं कि उन नखों (की चमक)का केवल स्मरण करने भरसे हृदयकी दिव्य दृष्टि खुल पड़ती है (ज्ञानकी आँखें खुल जाती हैं, ज्ञान होने लगता है)। जिस भाग्यशालीके हृदयमें अज्ञानका अन्धकार मिटा डाल सकनेवाली (गुरुके चरणोंके नखोंकी) यह तीव्र चमक कौंध जाती है (३) उसके हृदयके स्वच्छ नेत्र (ज्ञानके नेत्र तत्काल) खुल

---

१. गुरुके चरणोंकी उस धूलको मैं प्रणाम करता हूँ जिसमें सुरुचि (अच्छी रुचि या भक्ति-भावित मन) का सुवास (सुन्दर या निरन्तर वास) होता है और जिससे सरस (रससे भरा, आनन्दसे भरा) अनुराग (प्रेम) होता चलता है।

२८–३० गुरुपादरजो वन्दे चारुचूर्णं मलापहम्। पुण्येशभूतिमंगल्यं मनोमुकुरमार्जकम् ॥–पुलस्त्यसंहिता
३१–३२ गुरुपादनखज्योत्स्ना तमोहंत्री प्रकाशिका। ज्ञानरत्नसमूहस्याविद्यारात्रिविनाशिनी ॥–ब०पु०

सूझहिँ रामचरित मनिमानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक । (४)
दो०—जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥ १ ॥

गुरु-पद-रज मृदु-मंजुल-अंजन । नयन-अमिय, दृग-दोष-विभंजन ।
तेहि करि विमल विवेक-विलोचन । बरनौं रामचरित भवमोचन । (१)
बंदौं प्रथम महीसुर-चरना । मोहजनित संसय सब हरना ।
४० सुजन-समाज सकल-गुन-खानी । करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी । (२)

पड़ते हैं और सांसारिक दुःखोंकी रात्रिके सारे दुःख और पाप (देखते-देखते) मिट चलते हैं । (इतना ही नहीं) रामकी कथाके जो मणि और माणिक्य (बहुमूल्य रहस्य) जिस भी खान (स्थान या ग्रन्थ)-में प्रकट या छिपे पड़े रहते हैं, वे सब भी उसे वैसे ही स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं (४) जैसे नेत्रोंमें सिद्धांजन (जादूका आँजन, काजल या सुरमा) लगाकर (बड़े-बड़े) साधक (मंत्र-तंत्रकी साधना करनेवाले), सिद्ध लोग (दैवी शक्ति प्राप्त कर चुके रहनेवाले महात्मा) और सुजान (ज्ञानी) लोग पर्वतोंपर, वनोंमें और धरतीके नीचे गड़े हुए रत्नोंका विशाल भाण्डार खेल-खेलमें (विना परिश्रमके) देख लेते हैं (गुरुके चरणोंकी सेवा करनेसे रामकी कथाके सब रहस्य सरलतासे ज्ञात हो जाते हैं) ॥ १ ॥ गुरुके चरणोंकी यह धूल ऐसा कोमल (महीन) और सुहावना आँजन (काजल) है जो नेत्रोंके लिये ऐसा अमृत है कि लगाते ही नेत्रों-के सारे दोष तत्काल धुल मिटते हैं (ज्ञान प्राप्त हो जाता है, अज्ञान मिट जाता है, इसलिये) मैं वही आँजन लगाकर अपने विवेकके नेत्र (ज्ञान) निर्मल करके रामके उस चरित्रका वर्णन करने लग रहा हूँ जिसमें संसारके सभी बन्धनोंसे छुड़ा डाल सकनेकी शक्ति भरी है (गुरुके चरणोंकी सेवा करके मैंने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसीके आधारपर मैं यह संसारके बन्धन काट डाल सकनेवाली रामकी कथा कह रहा हूँ) । (१)

मैं सबसे पहले पृथ्वीके देवताओं (ब्राह्मणों)के चरणोंकी वन्दना कर रहा हूँ जो अज्ञानसे उत्पन्न हो उठनेवाले सारे सन्देह (भ्रम) दूर कर डाल सकते हैं । मैं सन्तोंके उस समाजको भी बड़े प्रेमके साथ, बड़ी मधुर वाणीसे प्रणाम करता हूँ (२) जिसमें जिधर देखो उधर सब गुण ही

---

३४ गुरुपादनखज्योत्स्नास्मरणाद्धृदयलोचनम् । गुप्तं च मणिमाणिक्यरूपं पश्यति केशवम् ॥—प०पु०

३७–३८ सिद्धाञ्जनं श्रीगुरुपादरेणुर्नेत्रामृतं नेत्रविकारहंता ।
कृत्वाऽमले तेन विवेकनेत्रे रामायणं वच्मि जगद्धिताय ॥ —श्रीगुरुगीता

३९ आपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पण-कामधेनवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः ॥ —केशवसंहिता

४० नमामि सज्जनान्सर्वान्समस्तगुणसंयुतान् । प्रेम्णा परेण भारत्या वरया लोकपूजितान् ॥—अग०रा०

साधु-चरित सुभ चरित[1] कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा। (३)
मुद - मंगलमय संत - समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू।
राम - भगति जहँ सुरसरि-धारा। सरसइ ब्रह्मविचार - प्रचारा। (४)
बिधि - निषेधमय कलि-मल-हरनी। करम - कथा रबिनंदिनि बरनी।
हरि - हर - कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल - मुद - मंगल - देनी। (५)
बट बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा।

गुण भरे पड़े दिखाई देते हैं क्योंकि सन्तोंका चरित्र तो कपासके शुभ्र (उजले) या शुभ (कल्याणकारी) चरित्रके समान होता है, जिसके फल (डोडे)-में स्वाद भले ही न हो (उसका प्रत्यक्ष या तत्काल कोई परिणाम भले ही न दिखाई दे) पर उस (सन्तोंके चरित्र; कपास)-में उजला (लोक-कल्याणकारी) गुण (सूत) अवश्य भरा रहता है क्योंकि साधु (कपासके समान) दुःख सहकर (ओटा जाना, धुना जाना, पूनी बनाया जाना, काता जाना, बुना जाना सहकर) भी दूसरोंका दोष (नंगापन) ढकता रहता है (प्रकट नहीं होने देता, दोष दूर कर देता है)। इसीलिये संसारमें उस सन्त (कपास)-की सब वन्दना (प्रशंसा) करते हैं और संसार में उसे (सन्तको, कपासको) यश मिलता है (सन्तकी प्रशंसा होती है, कपाससे बने हुए वस्त्रोंका प्रयोग होता है)। (३) सन्तोंसे सबको आनन्द ही आनन्द मिलता और सबका सदा कल्याण ही कल्याण होता है। संत-समाजको इस संसारमें चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) समझना चाहिए। (जैसे प्रयागमें गंगा-यमुना-सरस्वती-की त्रिवेणी है वैसे ही) उसमें रामकी भक्ति ही गंगाकी धारा है, ब्रह्मके विचारकी जो गूढ चर्चा वहाँ (सन्त-समाजमें) चलती रहती है वही सरस्वती (की गुप्त धारा) है (४) तथा विधि (क्या करना चाहिए) और निषेध (क्या नहीं करना चाहिए) - वाले कार्योंकी जो वहाँ कथा चलती रहती है वही कलियुगके पाप नष्ट कर डालनेवाली यमुनाकी धारा है। विष्णु और शंकरकी कथा ही (इस संत-समाजके प्रयागमें) गंगा-यमुनाकी घुली - मिली (गुँथी हुई) वह वेणी (त्रिवेणीकी धारा) है जिस (कथा)-के सुननेसे सब प्रकारका आनन्द ही आनन्द मिलता और सुननेवालेका सदा कल्याण ही कल्याण होता है। (५) जैसे प्रयागमें अक्षयवट है वैसे ही (सन्त-समाजके

१. सरिस=सज्जनोंका चरित्र कपासके 'समान' शुभ्र होता है।

४१–४२ नीरसान्यपि शोभन्ते कार्पासस्य फलानि च। येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥–व०रा०
४३ आनन्दमंगलमयः सत्समाजो विराजते। लोके यो जंगमो राम तीर्थराजो निगद्यते ॥–व०सं०
४४ रामभक्तिर्हि यत्रास्ति पुण्या भागीरथी प्रभो। विचारो ब्रह्मणश्चैव तत्प्रचारः सरस्वती ॥
४५ निषेधप्रचुरा कर्मकथा विधिमयी तथा। वर्ण्यते यत्र कालिन्दी कलिकल्मषनाशिनी ॥
४६ हरिशंकरयोर्यत्र कथावेणी विराजते। या वै श्रवणमात्रेण हर्षमंगलदायिनी ॥
४७ स्वकीयो यस्तु विश्वासस्त्वक्षयो वट उच्यते। क्षेत्रस्याचलता धर्मः पुण्यात्मानः समाजिनः ॥-पु०सं०

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा। (६)
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ। (६॥)

५० दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधुसमाज प्रयाग॥ २॥

मज्जनफल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक, बकउ मराला।
सुनि आचरज करै जनि कोई। सत - संगति - महिमा नहिं गोई। (१)
बालमीकि नारद घटजोनी। निज-निज मुखनि कही निज होनी।

प्रयागमें) अपने धर्ममें पक्का विश्वास बनाए रखना ही अक्षय-वट है और वहाँ जो अच्छे कर्म किए जाते हैं उन सबको ही उस तीर्थराज (में एकत्र होनेवाले यात्रियों) - का समाज समझना चाहिए। ऐसा (सन्त-समाज-रूपी प्रयाग) सब देशों और सब युगोंमें सब प्राणियोंको सुविधासे प्राप्त हो सकता है। जो लोग आदरके साथ इस सन्त - समाजमें उठते-बैठते हैं उनके सारे कष्ट अपने आप दूर हो मिटते हैं। (६) यह सन्त - समाज ऐसा तीर्थराज (प्रयाग) है कि शब्दोंमें इसका कोई वर्णन भी करना चाहे तो नहीं किया जा सकता। यह सन्त-समाज तो इस संसारके तीर्थराज (प्रयाग)-से और भी अधिक बढ़कर है क्योंकि इसका यह महत्त्व सभी जानते हैं कि जो भी इस सन्त-समाजमें पहुँच जाता है (सन्तोंके पास उठने-बैठने लगता है) उसे तत्काल उसका फल मिलने लगता है (उसका कल्याण होने लगता है)। (६॥) जो लोग इस सन्त-समाजके तीर्थराजकी महिमा सुनते और समझते हैं और सदा इसमें स्नान करते हैं (सन्तोंके साथ मगन रहते हैं), वे अपने इसी शरीरसे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) पा जाते हैं॥ २॥

इस तीर्थराजमें स्नान करने (सन्त-समाजमें उठने-बैठने)-का यह फल तत्काल देखा जा सकता है कि वहाँ कौवे भी पहुँचकर कोयल बन चलते हैं और बगले भी हंस बन उठते हैं (दुष्ट भी सज्जन बन जाते हैं)। यह सुनकर किसीको आश्चर्य नहीं कर बैठना चाहिए क्योंकि भले लोगोंके साथ उठने-बैठनेकी महिमा कोई किसीसे छिपी नहीं है (इसे सब जानते हैं)। (१) वाल्मीकि, नारद और अगस्त्यने स्वयं अपने-अपने मुखसे अपने जीवनकी कथा बताते हुए सत्संगतिकी महिमा बखान डाली है (कि, किस प्रकार ऋषियोंके उपदेशसे वाल्मीकि तो 'मरा-मरा'

---

४८ सर्वेषां सर्वदेशेषु निखिलेषु दिनेषु च। सुलभः सेवनं चास्य सादरं क्लेशनाशनम्॥—पु०सं०
४९ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥—भागवत
५०–५१ श्रुत्वा जानन्ति राजेन्द्र प्रसन्नमनसो जनाः। चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्मज्जनादनुरागतः॥—पुलस्त्य०
५२–५३ यथा मानसवासेन हंसतां याति वै बकः। पापोऽपि पुण्यतामेति तथा माधव मज्जनात्॥—म०पु०
५४–५७ वाल्मीकिर्नारदोऽगस्त्यः सत्संगप्रभुतां जगुः। पृथिव्यां सन्ति ये जीवा अनेके जडचेतनाः॥
तैरपि स्वच्छधिषणाकीर्तिभूतिर्गतिस्तथा। प्राप्ताः सत्संगयोगेन लोके वेदे न यत्परम्॥—अग०रा०

जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना। (२)
मति, कीरति, गति, भूति, भलाई। जव जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानव सतसंग-प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ। (३)
विनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा - विनु सुलभ न सोई।
सत-संगति मुद - मंगल - मूला। सोइ फल-सिधि, सव साधन फूला। (४)
६० सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस - परस[१] कुधातु सुहाई।
विधिवस सुजन कुसंगति परहीं। फनि-मनि-सम निज गुन अनुसरहीं। (५)

जप-जपकर डाकूसे महाकवि और ऋषि वन गए; नारद भी पिछले जन्ममें सन्तोंकी सेवाके कारण देवर्षि वन गए; और घड़ेसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य भी वशिष्ठके सत्संगसे महर्षि वन गए)। इस संसार-में जल, आकाश तथा पृथ्वीके जितने भी जड और चेतन प्राणी हैं (२) उनमेंसे जिसने, जहाँ और जिस उपायसे भी वुद्धि, कीर्ति, सद्गति, ऐश्वर्य और वड़ाई पाई वह सव उसे सत्संगतिके प्रभावसे ही प्राप्त हुई। संसारके लोग भी यही मानते हैं तथा वेदों (वेद, शास्त्र, पुराण आदि)-में भी वताया गया है कि (सन्तोंकी संगति किए विना) इन (वुद्धि, कीर्ति, सद्गति, ऐश्वर्य और बड़ाई)-को पानेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है। (३) (यह निश्चित सत्य है कि) सत्संगके बिना विवेक नहीं हो पाता और वह विवेक भी रामकी कृपाके बिना प्राप्त नहीं हो सकता। सत्संग ही आनन्द और कल्याण प्राप्त करने की जड़ (आधार, रीति) है। (इस सत्संगके लिये) जो साधन (तीर्थ - यात्रा, सन्तोंकी सेवा, कथा-कीर्तन) किए जाते हैं वे सब इस सत्संगतिके वृक्षके फूल हैं (और जैसे फूल झड़-गिरनेपर फल लगते हैं वैसे ही साधन पूरे हो जानेपर) सिद्धिके फलके रूपमें भी वही (सत्संगति) ही मिलती है (ज्यों ही कोई सत्संगति करना प्रारम्भ करता है त्यों ही उसे आनन्द मिलने लगता है और उसका कल्याण होने लगता है। इससे उत्साहित होकर मनुष्य सत्संगतिके साधन ढूँढता हुआ तीर्थ-यात्रा, कथा, कीर्तन, और सन्तोंकी सेवा करने लगता है। इसका फल यह होता है कि उसे सत्संगति करनेका चस्का लग जाता है। यह चस्का ही उन सब साधनोंका फल होता है)। (४) इस सत्संगतिसे दुष्ट लोग भी वैसे ही सुधरकर सज्जन बन जाते हैं जैसे पारसका स्पर्श होते ही कुधातु (लोहा) भी सुन्दर (सोना) बनकर चमक उठता है। यदि कभी दैव-संयोगसे सज्जन लोग कुसंगतिमें पड़ भी गए तो वहाँ भी सर्पके मणिके समान (सर्पकी दुष्टता और विष न लेकर) वे अपने अच्छे गुण ही प्रकट करते हैं (जैसे नाग-मणि चमकता भी है और सर्पका विष भी हरता है, वैसे ही सज्जन लोग बुरी संगतिमें पड़कर भी अपनी सज्जनता नहीं छोड़ते)। (५) सन्तोंकी महिमा इतनी अधिक है कि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर,

१. परसि=पारसको 'छूकर' लोहा भी सोना हो जाता है।

५८–५९ भाग्योदयेन वहुजन्मसमार्जितेन सत्संगमेव लभते पुरुषो यदा वै।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदांधकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः॥ —पद्मपुराण

६० असज्जनः सज्जनसंगिसंगात्करोति दुःसाध्यमपीह साध्यम्।
पुष्पाश्रयाच्छंभुशिरोऽधिरूढा पिपीलिका चुम्वति चंद्रबिम्बम्॥ —सुभाषित

६१ सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानां साधूनां नहि खलसंगमात् खलत्वम्।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति॥ —सुभाषित

विधि-हरि-हर-कवि-कोविद-बानी। कहत साधु-महिमा सकुचानी।
सो मो-सन कहि जात न कैसे। साक-बनिक मनि-गुनगन जैसे। (६)

दो०—बंदौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥ ३ क ॥
संत सरल-चित जगत-हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल-बिनय सुनि करि कृपा, रामचरन-रति देहु ॥ ३ ख ॥

बहुरि बंदि खलगन सति भाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ।
परहित-हानि लाभ जिन्ह-केरे। उजरे हरष, बिषाद बसेरे। (१)
७० हरि-हर-जस राकेस राहु-से। पर-अकाज भट सहसबाहु-से।
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित-घृत जिन्हके मन माखी। (२)

कवि और विद्वान् भी अपने मुखसे सन्तोंकी जिस महिमाका वर्णन कर पा सकनेमें झिझकते हैं उस महिमाका वर्णन मैं उसी प्रकार नहीं कर पा सक रहा हूँ जैसे साग बेचनेवाला कुँजड़ा मणियोंके खरे-खोटेपनकी परख नहीं बता पा सकता। (६) सबको समान प्रेम करनेवाले इन सन्तोंको मैं प्रणाम करता हूँ जो किसीको भी वैसे ही मित्र या शत्रु नहीं समझते जैसे दोनों हाथोंकी अंजलिमें लिए हुए फूल दोनों हाथोंको समान रूपसे सुगंधित कर डालते हैं (दाएँ-बाएँ का कोई भेद नहीं करते) ॥ ३ क ॥ सन्त लोगोंका चित्त इतना सरल (निश्छल) होता है कि वे सदा सारे संसारकी भलाई करनेमें ही लगे रहते हैं। उनका ऐसा (लोक-मंगलकारी) स्वभाव और (सबपर उनका) समान स्नेह जानकर ही मैं उनसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे मेरा बाल-विनय (मुझ अबोधकी प्रार्थना) सुनकर मुझपर भी ऐसी कृपा बनाए रहें कि रामके चरणोंमें सदा मेरा प्रेम बना रहे ॥ ३ ख ॥

अब मैं सच्चे मनसे उन दुष्ट लोगोंको भी प्रणाम किए लेता हूँ जो बिना कारण ही अपने दाहिनेके (अपने साथ भलाई करनेवालोंके) लिये भी उनके बाएँ बने रहते (उन्हें हानि पहुँचानेसे नहीं चूकते) हैं, जो दूसरोंको हानि पहुँचाकर ही समझते हैं कि हमने बहुत बड़ा काम कर लिया, जो दूसरोंके उजड़नेमें ही प्रसन्न होते और दूसरोंका बसना (सुखी होना) देख-सुनकर दुखी हो उठते हैं, (१) जो विष्णु और शंकरके यशके पूर्ण चन्द्रमाको राहुके समान ग्रसे लेते हैं (जहाँ कहीं विष्णु और शंकरके यशका वर्णन होता है उसमें वे बाधा पहुँचाते हैं या उनकी निन्दा करते हैं), दूसरोंको हानि पहुँचानेमें वे सहस्रबाहु बन जाते हैं (सहस्रों प्रकारसे मान-हानि कर डालते हैं), जो सहस्र आँखोंसे (बड़े ध्यानसे) दूसरोंमें दोष ही दोष देखते रहते हैं, दूसरोंकी भलाईके घीके लिये जिनका मन मक्खी बना रहता है (जैसे घीमें गिरकर मक्खी तो मर ही जाती है पर घी भी बिगाड़ जाती है, वैसे ही दुष्ट लोग अपनी हानि करके भी दूसरोंका बना-बनाया काम बिगाड़ डालनेसे नहीं चूकते), (२)

६२–६३ वक्तुं वर्षसहस्रेण शेषेणापि न शक्यते। केरस्या लभ्यते पार शास्त्रज्ञैः सूक्ष्मदृष्टिभिः ॥–म०पु०
६४–६५ अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम्। अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥–सु०
६६–६९ रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः। दांभिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥–भा०
७०–७१ श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा।
जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान् सतोवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः ॥ —श्रीमद्भागवत

तेज कृसानु, रोष महिषेसा। अघ-अवगुन-धन-धनी धनेसा।
उदय केतु सम° हित सबही-के। कुंभकरन सम सोवत नीके। (३)
पर-अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषी दल[1] गरहीं।
बंदौं खल जस सेष सरोषा। सहसबदन बरनै परदोषा। (४)
पुनि प्रनवौं पृथुराज-समाना। पर अघ सुनै सहसदस काना।
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही। (५)
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस-नयन पर-दोष निहारा। (५।।)

उनमें अग्निके जैसा (सब कुछ जला डालनेवाला) और महिषासुरके जैसा (देवताओं और सज्जनोंको कष्ट देनेवाला) क्रोध भरा रहता है। पाप और दुर्गुण ही उनका वह धन है जिसे लेकर वे कुबेर बने बैठे रहते हैं (उनमें केवल पाप और दुर्गुण ही भरे रहते हैं) और सदा सबके भले कामोंमें केतुके समान (बाधक बनकर उठ खड़े) होते हैं। (ऐसे दुष्ट लोग तो) कुम्भकर्णके समान जितने दिन पड़े सोते रहें उतना ही अच्छा समझना चाहिए (कमसे कम उतने समय-तक तो शान्ति बनी रहती है)। (३) जैसे खेतपर बरसकर ओले उसकी खेती तो चौपट कर ही डालते हैं पर स्वयं भी गलकर नष्ट हो जाते हैं वैसे ही दुष्ट लोग अपने प्राण देकर भी दूसरोंकी हानि कर डालनेमें कोई कसर नहीं छोड़ते। इस प्रकारके उन सभी दुष्टोंकी मैं वन्दना कर रहा हूँ जो सहस्र मुखवाले क्रुद्ध शेष नागके समान (सहस्रों प्रकारसे) दूसरोंकी बुराई करते फिरते हैं। (४) मैं इन दुष्टोंको पृथुराजके समान दस सहस्र कानोंवाला[2] मानकर प्रणाम करता हूँ जो (दस हजार कानोंवाले बनकर दिनरात) दूसरोंकी बुराइयाँ ही बुराइयाँ सुनते रहते हैं। मैं उन्हें इन्द्रके समान सुरानीक (सुर+अनीक = देवताओंकी सेना)-से प्रेम करनेवाला मानकर प्रणाम करता हूँ जिन्हें सदा सुरानीक (नीक सुरा = बढ़िया मदिरा) ही प्रिय लगती रहती है (जो दिन-रात मदिराके नशेमें ही चूर रहते हैं)। (५) (जैसे इन्द्रको वज्र प्यारा है वैसे ही) उन्हें वज्रके समान कठोर वचन बोलना ही सदा अच्छा लगता है (वे सदा दूसरोंके हृदयको चोट पहुँचानेवाले कठोर वचन ही बोलते रहते हैं) और जैसे इन्द्रके शरीरपर सहस्रों आँखें हैं वैसे ही दुष्ट लोग भी दूसरोंके अवगुण देखनेके लिये सहस्रों नेत्रोंवाले बने रहते हैं (सदा दूसरोंके दोष ही दोष ढूँढनेके फेरमें पड़े रहते हैं)। (५।।) दुष्टका तो लक्षण ही यह है कि

° केतु-उदय-सम १. 'दलि' पाठ होना चाहिए।

२. अधर्मी राजा वेनको ऋषियोंने मन्त्रोंसे मारकर, उसका दाहिना हाथ मथकर धर्मात्मा पृथुराजको उत्पन्न किया, जिन्हें भगवान्का चरित्र सुनते रहनेके लिये दस सहस्र कानोंकी शक्ति मिली।

७२–७४ खला वह्निसमाः क्रोधे यमराजसमाः खलु। अघावगुणवित्तस्य धनिनश्च धनेशवत् ।।
हिताय सर्वलोकस्य केतूदयसमोदयः। कुम्भकर्णसमा एते स्वपन्तु स्याच्छुभं यदि ।।
परकार्यविनाशाय त्यजन्ति निजविग्रहम्। हिमोपला विनश्यन्ति नाशं कृत्वा यथा कृषेः ।।

७५–७६ वन्दे खलं शेषसमं सरोषं मुखैः सहस्रैः परदोषवार्ताम्।
करोति यः पापमथो शृणोति सहस्रकर्णैः पृथुराजतुल्यः ।।

७७–७८ पुनः शक्रसमं वन्दे खलं वज्रप्रियं सदा। सहस्रनयनैर्दोषं यः परस्य प्रपश्यति ।।—महा०रा०

दो०—उदासीन-अरि-मीत - हित , सुनत जरहिं खल रीति ।
८० जानि[1] पानि जुग जोरि जन , बिनती करइ सप्रीति ।। ४ ।।
मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा । तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ।
बायस[2] पलियहिं अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा । (१)
बंदौं संत - असज्जन[3] चरना । दुखप्रद उभय, बीच कछु बरना ।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं[4] । मिलत एक दुख दारुन देहीं[5] । (२)
उपजहिं एक संग जल[6] माहीं । जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ।

चाहे कोई उदासीन (जो न शत्रु हो न मित्र) हो, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र हो, वह सबकी भलाई होनेकी बात सुनते ही जल उठता है । ऐसा (उनका स्वभाव) जानकर यह सेवक तुलसीदास बड़े प्रेमके साथ दोनों हाथ जोड़कर उनसे सहयोगकी प्रार्थना करता है (कि कृपा करके हमारे इस कार्यमें आकर कोई बाधा न खड़ी कर दीजिएगा) ।। ४ ।। यद्यपि अपनी ओरसे तो मैं उनके आगे बहुत हाथ-पैर जोड़े ले रहा हूँ पर मैं जानता हूँ कि वे अपनी ओरसे बाधा डालनेमें कोई कोर-कसर न रख छोड़ेंगे क्योंकि कौवेको वायस (विशाल पक्षी[7]) नाम देकर चाहे जितने भी लाड़-प्यारसे क्यों न पाला जाय पर वह (कौवेका कौवा ही रहेगा, वह) क्या कभी मांस खाना छोड़ सकता है ? (दुष्ट क्या दुष्टता करनेसे चूक सकता है ? कभी नहीं) । (१)

अब मैं सज्जन और दुर्जन दोनोंके चरणोंकी साथ-साथ भी वन्दना कर ले रहा हूँ । हैं तो ये दोनों ही दुःख देनेवाले पर इन (दोनोंके दुःख देनेके ढंगमें) जो अन्तर है वह भी मैं बतलाए देता हूँ । इनमेंसे एक (सज्जन) तो जब बिछुड़ने लगते हैं तब दुःख देते हैं (उनके बिछुड़नेका दुःख होता है), पर दूसरे (दुर्जन) तो ऐसे दुःख देनेवाले हैं कि मिलते ही सिरपर भयंकर विपत्ति ला घहराते हैं । (२) देखिए, कमल और जोंक दोनों होते तो हैं एक ही स्थान जलमें उत्पन्न, पर दोनोंके गुण बहुत भिन्न होते हैं । कमलका सेवन करनेसे (कमलके बीज खानेसे) तो रक्त, बल और आयुष्य तीनों बढ़ते हैं पर जोंक तो जहाँ लग जाती है वहाँका सारा रक्त ही चूस डालती है । सज्जन और दुर्जन दोनों अमृत और मदिराके समान अलग-अलग स्वभावके होते हैं ।

१. जानु = 'घुटने' और हाथ जोड़कर । ['जानु' अशुद्ध है । देखो नीचे श्लोक ७९-८०, 'ज्ञात्वा']
२. पायस = 'खीर' खिलाकर भी यदि कौवेको पाला जाय । नीचेके श्लोक ८१-८२ के 'सर्वरस'-के अनुसार पायस ही ठीक है) । ३. असंतन । ४. लेई । ५. दारुन दुख देई । ६. जग=जगमें ।
७. वायस=विशाल पक्षी (देखो निरुक्त ४।१७)

७९–८० उदासीनारिमित्राणां हितं श्रुत्वातिदुःखिताः । भवन्ति च खला ज्ञात्वा करोमि प्रार्थनां मुदा ।।महा०
८१–८२ न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः । काकः सर्वरसान्भुक्त्वा विनामेध्यं न तृप्यति ।।—व्या०सं०
८३–८४ बद्ध्वाञ्जलिं सममसज्जनसज्जनौ तौ वन्दे नितान्तकुटिलप्रगुणस्वभावौ ।
एकं भिया निरभिसंधितवैरिभूतं प्रीत्या परं परमनिर्वृतिपात्रभूतम् ।। —विदग्धमुखमंडन

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू। (३)
भल अनभल निज-निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।
सुधा, सुधाकर, सुरसरि, साधू। गरल, अनल, कलि-मल-सरि, ब्याधू। (४)
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई। (४।।)
९० दो०—भलो भलाइहि पै लहै, लहै निचाइहि नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥ ५ ॥
खल-अघ-अगुन, साधु-गुन-गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।
तेहि तें कछु गुन - दोष बखाने। संग्रह - त्याग न बिनु पहिचाने। (१)

यद्यपि अमृत और मदिरा (वारुणी) दोनोंका जन्म अगाध समुद्र (के मन्थन)-से ही हुआ है फिर भी दोनोंका स्वभाव अलग-अलग है। (३) अपने स्वभावके अनुसार साधु (सज्जन) तो सदा सबका हित करनेमें लगा रहता है और असाधु (दुष्ट) सदा सबको कष्ट देते रहना ही अच्छा समझता है। सज्जनोंको जो यश और दुर्जनोंको जो अपयश मिलता है वह (उनका मुख देखकर नहीं) उनके व्यवहारसे ही मिलता है। (देखिए) अमृत, चन्द्रमा, गंगा और साधु तो भले माने गए हैं (क्योंकि वे क्रमशः सबको जीवन, सुख, शान्ति और आनन्द ही आनन्द देते रहते हैं)। दूसरी ओर विष, अग्नि, कलियुगके पापोंकी नदी कर्मनाशा (जिसमें नहानेसे सारे सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं) और व्याध (बहेलिया, चिड़ीमार) बुरे माने गए हैं (क्योंकि विष तो जीवोंका प्राण लेता, अग्नि सबको जलाए डालती, कर्मनाशा सबके पुण्य हरती और व्याध सभी जीवोंको मारते रहते हैं)। (४) यद्यपि जानते सभी हैं कि गुण (अच्छा काम) क्या होता है और अवगुण (बुरा काम) क्या होता है पर जो जिससे जैसा काम निकालता चाहता है वह उस कामके लिये उसे ही ठीक समझता है। (४।।) जैसे, किसीको अमर करना हो तो उसके लिये अमृत ही ठीक माना जाता है और किसीका प्राण लेना हो तो उसके लिये विष ही ठीक समझा जाता है (अपने-अपने काम-के लिये दोनों ठीक समझे जाते हैं), वैसे ही भले लोग भलाई करना ही ठीक समझते हैं और नीच लोग दूसरोंको हानि पहुँचाना ही अच्छा समझते हैं ।।५।। दुष्टोंके पापों और अवगुणोंकी कथा तथा सज्जनोंके गुणोंकी कथा तो समुद्रके समान बड़ी लम्बी-चौड़ी है इसलिये मैंने तो बहुत संक्षेपमें ही उनके बहुत थोड़े-से इने-गिने दोष और गुण इसलिये गिना दिए हैं कि जबतक उन गुणों और दोषोंकी ठीक-ठीक पहचान न कर ली जाय तबतक न तो सज्जनोंका सत्संग कर सकना ही सम्भव है, न दुष्टोंका त्याग कर सकना ही सम्भव है। (१) यों तो भले और बुरे सबको ब्रह्माने ही उत्पन्न

८७–८८ विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥ —सुभाषित

८९ दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सितापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥ —सुभाषित

९०–९१ नूनं दुग्धाब्धिमन्थोत्थाविमौ सुजनदुर्जनौ। किन्त्विन्दोः सोदरः पूर्वः कालकूटस्य चेतरः ।।—सु०

९२– रक्तत्वं कमलानां सत्पुरुषाणां परोपकारित्वम्।
असतां च निर्दयत्वं स्वभावसिद्धं त्रिषु त्रितयम् ॥ —सुभाषित

भलेउ पोच सब बिधि उपजाये। गनि गुन - दोष बेद बिलगाये।
कहहिं बेद - इतिहास - पुराना। बिधि - प्रपंच गुन-अवगुन-साना। (२)
दुख - सुख, पाप - पुन्य, दिन - राती। साधु - असाधु, सुजाति - कुजाती।
दानव - देव, ऊँच अरु नीचू। अमिय - सजीवन, माहुर - मीचू। (३)
माया - ब्रह्म, जीव - जगदीसा। लच्छि - अलच्छि, रंक - अवनीसा।
कासी - मग, सुरसरि - कविनासा[१]। मरु - मारव, महिदेव - गवासा। (४)
१०० सरग - नरक, अनुराग - बिरागा। निगम - अगम गुन-दोष-बिभागा। (४॥)
दो०—जड़ - चेतन गुन - दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत - हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि - बिकार॥ ६॥
अस बिबेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मन राता।
काल - सुभाउ - करम बरिआई। भलेउ प्रकृति - बस चुकइ भलाई। (१)

किया है पर वेदों (नीति-ग्रन्थों)-ने उनके गुण और दोषके अनुसार उन भले-बुरे सबको अलग-अलग वर्गोंमें बाँट दिया है। वेद, इतिहास और पुराणोंमें स्पष्ट कह दिया गया है कि विधाताकी यह सारीकी सारी सृष्टि गुण और अवगुण दोनोंके ही मेलसे बनी हुई है। (२) दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, सज्जन-दुर्जन, अच्छी जाति—बुरी जाति, दैत्य-देवता, बड़े-छोटे, जीवन देनेवाला अमृत और मार डालनेवाला विष[२], (३) माया-ब्रह्म, जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा, काशी-मगध, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड़-मालवा, ब्राह्मण-वधिक, (४) स्वर्ग-नरक, अनुराग-विराग आदि सबको वेदों और शास्त्रोंने उनके गुण और दोषके अनुसार अलग-अलग वर्गोंमें विभक्त कर छोड़ा है। (४॥) यद्यपि विधाताने यह जड और चेतन संसार साराका सारा गुण और दोष दोनोंके मेलसे बनाया है पर सबमें कुछ न कुछ गुण और कुछ न कुछ दोष होते ही हैं। तथापि जैसे जल-मिले दूधमें-से हंस केवल जल छोड़कर दूध ही दूध पी लेता है वैसे ही सन्त लोग भी संसारके सब दोष छोड़कर केवल गुण ही गुण ग्रहण करते चलते हैं॥ ६॥ जब विधाता ऐसा हंसके समान विवेक देता है तभी मनुष्यका मन झट दोष छोड़कर गुणोंकी ओर घूम जाता है। काल, स्वभाव और कर्म (कभी-कभी ऐसे) प्रबल हो उठते हैं कि भले लोग भी भला काम करनेमें चूक जाते हैं (कभी ऐसा समय आ जाता है या स्वभावमें ही कुछ दोष आ जाता है या पिछले जन्मके कर्म ही ऐसी बुद्धि बिगाड़ देते हैं कि भले लोग भी बुरा कर्म कर बैठते हैं या बुरा कर्म करनेके लिये विवश हो जाते हैं। (१) (पर) भगवान्‌के भक्त जैसे अपनी वह भूल सुधारकर और सारे

१. अयोध्याकी प्रतिमें 'कवि' शब्दपर हरताल लगाकर 'क्रम' बनाया गया है।
२. अमृत और विष, (जिलानेवाली) सजीवन तथा (मार डालनेवाली) मृत्यु।

९३–९५ प्रपञ्चो गुणदोषाख्यस्तज्ज्ञानं वेदशासनात्। ज्ञाने हि वस्तुनो हानमुपादानं च सिद्धयति॥-व्या०सं०
९६-१०२ कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा। सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च।
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च। सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः॥
कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत्। द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः॥–म०
१०३ विवेकान्निश्शेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात्॥ —साङ्ख्यदर्शन

सो सुधारि हरि-जन[1] जिमि लेहीं। दलि दुख दोष विमल जस देहीं।
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।(२)
लखि सुवेष जग-वंचक जेऊ। वेष-प्रताप पूजियहिं तेऊ।
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।(३)
कियेहु कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू।
११० हानि कुसंग कुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू।(४)
गगन चढ़इ रज पवन-प्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच-जल-संगा।

दुःख-दोष मिटाकर निर्मल यश प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही दुष्ट लोग भी अच्छी संगति पाकर भलाई तो करने लगते हैं पर उनका खोटा स्वभाव कभी पूरा-पूरा नहीं मिट पाता (चोर चोरीसे भले ही चला जाय पर हेरा-फेरीसे नहीं जाता)। (२) कभी-कभी बहुत ठाट-बाट बनाकर रहनेवाले ठगोंका सुन्दर वेश देखकर भी संसारके लोग उन्हें पूज बैठते हैं पर अन्तमें जब उनका भण्डा-फोड़ हो जाता है तब उन्हें कोई टकेको नहीं पूछता। कालनेमि, रावण और राहु तीनों इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं (कपटी मुनि बने हुए कालनेमिको पहचानकर हनुमानने द्रोणाचलपर पटक मारा, रावणको रामने मार डाला और राहु जब देवताओंकी पंक्तिमें बैठकर अमृत पीने चला तो पहचाने जानेपर उसका सिर काट लिया गया)। (३) पर सज्जन लोग चाहे जितना भी अटपटा वेष क्यों न बनाए रक्खें फिर भी उनका सर्वत्र सम्मान ही होता है, जैसे (भालू होते हुए भी) जामवंत तथा (वानर होते हुए भी) हनुमानकी सज्जनताके कारण ही सब उनकी पूजा (आदर) करते रहते हैं। वेदोंके कथनानुसार भी और लोक-व्यवहारमें भी सभी लोग यही देखते हैं कि कुसंगसे सदा हानि होती है और अच्छी संगतिसे सदा लाभ ही होता है। (४) (ऊपर-ऊपर बहनेवाले) पवनके सहारे तो धूल भी आकाशमें चढ़ उठती है पर वही धूल जब (नीचे बहनेवाले) जलका संग कर बैठती है तो कीचमें मिलकर कीच बनकर फैल

१. हरि तन = शरीरको जैसे स्वच्छ किया जाता है वैसे ही भगवान् उन्हें सुधारकर अपना लेते हैं।

१०६ न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः॥ —हितोपदेश

१०७-८ दूरतः शोभते मूर्खो लम्बशाटपटावृतः। तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किञ्चिन्न भाषते॥—सुभा०

१०९ धवलयति समग्रं चन्द्रमा जीवलोकं किमिति निजकलङ्कं नात्मसंस्थं प्रमार्ष्टि।
भवति विदितमेतत् प्रायशः सज्जनानां परहितनिरतानामादरो नात्मकार्ये॥ —सुभाषित

११०-१४ गवाशनानां स शृणोति वाक्यमहं हि राजन् वचनं मुनीनाम्।
न चास्य दोषो न च मद्गुणो वा संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति॥

साधु - असाधु - सदन सुक - सारी । सुमिरहिं राम, देहिं गनि गारी । (५)
धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिय पुरान मंजु मसि सोई ।
सोइ जल अनल-अनिल-संघाता । होइ जलद जग-जीवन-दाता । (६)
दो०—ग्रह भेषज जल पवन पट , पाइ कुजोग सुजोग ।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग , लखहिं सुलक्खन लोग ।। ७ क ।।
सम प्रकास-तम पाख दुहुँ , नाम - भेद बिधि कीन्ह ।
ससि-सोषक पोषक समुझि , जग जस - अपजस दीन्ह ।। ७ ख ।।
जड़-चेतन जग-जीव जत , सकल राममय जानि ।
१२० बंदौं सबके पद - कमल , सदा जोरि जुग पानि ।। ७ ग ।।
देव दनुज नर नाग खग , प्रेत पितर गंधर्ब ।
बंदौं किन्नर रजनिचर , कृपा करहु अब सर्ब ।। ७ घ ।।

चलती है । देखिए, सज्जनके घर पले हुए सुग्गे और मैना तो रामका नाम रटते रहते हैं पर दुष्टोंके घर पाले हुए सुग्गे-मैना सबको गिन-गिनकर गालियाँ सुनाते रहते हैं । (५) (अग्निके) कुसंगमें पड़कर धुआँ भी कालिख बन जाता है जिसे लोग झाड़-पोंछकर फेंक देते हैं पर जब उसी कालिखकी स्याहीसे पुराण लिख दिए जाते हैं तब उस कालिखकी भी प्रशंसा होने लगती है (कि देखो कैसी चटक स्याही है और कितने अच्छे काले अक्षरोंमें लिखा हुआ है) । यही धुआँ जब पानी, आग और पवनका साथ पाकर (भाप बनकर) बादल बन उठता है तब वह संसारको जीवन (प्राण, जल) देता चलता है । (६) सभी विचारवान् पुरुष जानते हैं कि ग्रह, औषधि, पानी, पवन और वस्त्र संसारमें अच्छेके साथ पड़कर अच्छे और बुरेके साथ पड़कर बुरे हो चलते हैं ।। ७ क ।। यद्यपि महीनेके दोनों पखवाड़ोंमें उजाला और अँधेरा बराबर ही रहता है पर विधाताने इनके नाममें भी (कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्षका) भेद कर डाला क्योंकि कृष्ण पक्षमें चन्द्रमा घटता रहनेवाला समझा जाता है और शुक्ल पक्षमें बढ़ता रहनेवाला । इसलिये संसारने कृष्ण पक्षको अपयश (बुरा) और शुक्ल पक्षको यश दिया (अच्छा कहा) ।। ७ ख ।।

संसारमें जितने भी जड और चेतन जीव हैं सबको रामका ही रूप मानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर सदा सबके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर रहा हूँ (।। ७ ग ।

देवता, दानव, मनुष्य, सर्प, पक्षी, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षसोंकी भी मैं वन्दना करता हूँ (और उनसे प्रार्थना करता हूँ) कि अब आप सब भी मुझपर कृपा कीजिए ।। ७ घ ।।

११५-१६ संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागर शुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ।।
—भर्तृहरिशतक

११७-१८ मासि मासि समा ज्योत्स्ना पक्षयोरुभयोरपि । तत्रैकः शुक्लपक्षोऽभूद्यशः पुण्यैरवाप्यते ।।—सुभा०

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल-थल-नभ-वासी।
सीय-राम-मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी। (१)
जानि कृपा करि किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू।
निज बुधि-बल भरोस मोहिं नाहीं। तातें बिनय करौं सब पाहीं। (२)
करन चहौं रघुपति-गुन-गाहा। लघु मति मोरि, चरित अवगाहा।
सूझ न एकौ अंग उपाऊ। मन मति रंक, मनोरथ राऊ। (३)
मति अति नीचि, ऊँचि रुचि आछी। चहिय अमिय, जग जुरै न छाछी।
१३० छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई। (४)
जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।
हँसिहहिं कूर कुटिल कुबिचारी। जे पर - दूषन - भूषन - धारी। (५)

चौरासी लाख योनियोंमें चारों प्रकारके आकरों (स्वेदज या पसीनेसे जन्म लेनेवाले जूँ आदि जीव, अंडज या अंडेसे जन्म लेनेवाले पक्षी आदि, उद्भिज या धरती फोड़कर उग उठनेवाले वृक्ष आदि और पिण्डज या स्तनवाले मनुष्य, पशु आदि)-में जितने भी जीव जल, स्थल और आकाशमें रहते हैं उन सबको सीता और रामका ही रूप मानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ (१) और उनसे विनय करता हूँ कि आप सब कृपा करके मुझे अपना दास समझकर छल छोड़कर मुझपर कृपा करें क्योंकि मुझे न तो अपनी बुद्धिका ही भरोसा है, न बलका, इसीलिये मैं आप सबके सहयोगके लिये इतनी प्रार्थना किए जा रहा हूँ। (२)

मैं रामके गुणोंकी कथाका वर्णन करने तो चला हूँ पर (मैं देख रहा हूँ कि) मेरी बुद्धि कितनी नन्हीं-सी है और रामका चरित्र कितना अथाह है। ऐसी दशामें मुझे तो एक भी ऐसा उपाय नहीं सूझ पड़ रहा है जिससे मेरा काम बनता दिखाई दे। हाँ, मेरा मन और मेरी बुद्धि भले ही कंगाल हो पर मेरे मनकी साध तो राजा बनी बैठी है (मुझमें रामके पूरे चरित्रका वर्णन कर डालनेकी साध या इच्छा बहुत भारी है कि वर्णन कर ही डालूँ)। (३) मेरी बुद्धि तो बहुत छोटी (ओछी) है पर मेरी रुचि (साध या चाह) बहुत ऊँची और बड़ी है। दशा यह है कि मनमें तो अमृत पानेकी चाह बनी हुई है पर यहाँ छाछ-तक जुड़ती नहीं दिखाई देती। फिर भी मुझे विश्वास है कि सज्जन लोग तो मेरी यह ढिठाई क्षमा कर ही देंगे और बालकके (तोतले) वचन (के समान मधुर समझकर मन लगाकर इसे) सुनेंगे, (४) क्योंकि बालक जब तोतली बोलीमें कुछ बोलने लगता है तब उसके माता-पिता उसे सुन-सुनकर उसपर सदा रीझे ही पड़ते हैं। हाँ, जहाँतक दुष्ट, कुटिल, खोटे और सदा दूसरोंमें दोष ही दोष ढूंढनेवाले (दोषोंको ही भूषण बनाकर धारण करनेवाले लोगों) की बात है, वे तो निश्चय ही इसपर हँसे बिना न मानेंगे। (५)

११९-२४ भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु भूतेषु देवसकलेषु चराचरेषु।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं रामस्य ते क्षितितले समुपासकाश्च ॥ —महारामायण

१२५ रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्वरूपं हि सत्यं सत्यमिदं जगत् ॥ —सनत्कुमारसंहिता

१२७-२८ क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः। तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥–रघु०

१२९-३२ मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्। प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥–रघु०

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।
जे पर-भनित सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं। (६)
जग बहु नर सर-सरि-सम भाई। जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई।
सज्जन सकृत सिंधु-सम कोई। देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई। (७)
दो०—भाग छोट अभिलाष बड़, करौं एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास ॥ ८ ॥
खल-परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
१४० हंसहिं बक, गादुर[1] चातकही। हँसहिं मलिन खल बिमल बतकही। (९)

(सभी जानते हैं कि) अपनी कविता, चाहे सरस हो या बहुत नीरस, किसे अच्छी नहीं लगती, पर ऐसे गुणज्ञ पुरुष इस संसारमें कहीं ढूँढे नहीं दिखाई देते जो दूसरोंकी रचना सुनकर भी वाह-वाह कर उठें। (६) जलाशय (तालाब) और नदीके समान तो संसारमें ऐसे बहुत लोग मिल जाते हैं जो वर्षाका जल पाते ही उमड़ चलते हैं (अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो उठते हैं) पर समुद्रके समान ऐसे बिरले ही मनुष्य होते हैं जो (दूर आकाशमें चमकनेवाले) चन्द्रमाको पूर्ण देखकर लहरें लेते हुए उछल-उछल पड़ते हैं (दूसरोंके गुण देखकर प्रसन्न हो उठते हैं)। (७) मेरा भाग्य तो बहुत खोटा है (मेरे भाग्यमें तो ऐसा ग्रन्थ लिखना नहीं बदा) पर (रामकथा लिखनेकी) मेरी बहुत बड़ी अभिलाषा बनी हुई है। ऐसी दशामें मुझे एक ही बातका सबसे बड़ा भरोसा (सन्तोष) बना हुआ है कि इसे सुनकर कमसे कम सज्जनोंको तो सुख मिलेगा ही, दुष्ट लोग भले ही इसकी हँसी उड़ाते फिरें ॥ ८ ॥ (पर) यदि दुष्ट लोग इसकी हँसी उड़ाने-पर ही तुल जायँगे तब भी मेरा भला ही होगा (कुछ नहीं बिगड़ेगा) क्योंकि जैसे (मिठबोली) कोयलको कौवे कठोर कण्ठवाला बताते हैं; बगला सदा हंस की हँसी उड़ाया करता है (कि सरोवरोंमें ही अच्छी-अच्छी मछलियाँ मिलती रहनेपर भी ये मूर्ख हंस मानसरोवर-तक उड़े चले जाते हैं) और (ऊपर मुँह उठाकर पिउ-पिउ रटते रहनेवाले) पपीहेपर नीचा सिर करके लटके रहनेवाले चमगादड़ हँसते हैं (और कहते हैं कि हम नीचे मुँह किए मुँहसे ही बीट भी कर लेते हैं और चुप-चाप लटके भी रहते हैं पर यह मूर्ख पपीहा ऊपर चोंच उठाकर रात-दिन पिउ-पिउ रटता हुआ कान फोड़े डालता है), वैसे ही खोटे हृदयवाले दुष्ट लोग भी अच्छी बातकी हँसी उड़ाया ही

१. दादुर=मेंढक। [पृष्ठ २१ पर टिप्पणी २ देखो]

१३३-३४ अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः परभणितिषु तृप्तिं यान्ति सन्तः कियन्तः।—गी०गो०
१३५-३६ सरित्समा नरा लोके स्वसंपद्वृद्धिशालिनः। विरलाः सिंधुसदृशाः परवृद्धिविवर्धिताः॥—पु०सं०
१३७-३८ ग्राम्याकृतिर्हास्ययोग्या हसन्तु सुतरां खलाः। रामकीर्तिसुधाधौतां त्वेतां गास्यन्ति साधवः॥व०सं०
१३९-४० कस्त्वं लोहितलोचनास्यचरणः हंसः कुतो मानसात्
किं तत्रास्ति सुवर्णपंकजवनान्यंभः सुधासन्निभम्।
रत्नानां निचयाः प्रवालमणयो वैदूर्यरोहाः क्वचि-
च्छम्बूका अपि संति नेति च बकैराकर्ण्य ही ही कृतम्॥ —नवरत्नपंचाशिका

कवित - रसिक न राम-पद-नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हासरस एहू।
भाषा - भनित, भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी। (२)
प्रभु-पद-प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी।
हरि-हर-पद-रति, मति न कुतरकी। तिन्ह कहँ मधुर कथा रघुबर की। (३)
राम-भगति-भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी।
कवि न होउँ नहिं वचन-प्रबीनू[1]। सकल कला सब बिद्या-हीनू। (४)
आखर, अरथ, अलंकृति नाना। छंद, प्रबंध अनेक विधाना।
भावभेद रसभेद अपारा। कवित - दोष - गुन विविध प्रकारा। (५)
कवित - विबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे। (५।।)

करते हैं।[2] (१) जो लोग न तो कविताके ही प्रेमी हैं और न रामके चरणसे ही जिन्हें प्रेम है उन्हें भी यह कथा उनका जी बहलानेवाला हास्य रस बनकर उनका मन अवश्य बहलावेगी। एक तो यह कथा भाषामें कही जा रही है, दूसरे मेरी बुद्धि भी बड़ी मोटी है इसलिये मेरी यह रचना है ही ऐसी कि इसकी हँसी उड़ाई जाय, इसलिये यदि इसपर कोई भला आदमी हँस बैठे तो इसपर उसे दोष ही क्यों दिया जाय ? (२) जिन लोगोंको न तो रामके चरणोंमें प्रेम है और न जिनके विचार ही शुद्ध हैं उन्हें तो यह कथा सुननेमें अवश्य फीकी (नीरस) लगेगी पर जिन्हें विष्णु और शंकरके चरणोंमें प्रेम है और जिनकी बुद्धि भी बहुत तर्क-वितर्क नहीं करती (शुद्ध है) उन्हें रामकी यह कथा अवश्य ही लुभावनी लगेगी। (३) जिन सज्जनोंके हृदयमें रामकी भक्ति समाई हुई है वे तो अवश्य ही यह कथा सुनेंगे और इसकी सुन्दर (सबकी समझमें आ सकनेवाली सरल और मधुर) वाणीकी खुले हृदयसे सराहना करेंगे। यह मैं पहले ही बताए देना चाहता हूँ कि न तो मैं कवि हूँ, न वचनोंकी चतुरता (वर्णन करनेका कौशल) ही जानता हूँ, न मुझे कोई कला ही आती, न मेरे पास कोई विद्या ही है, (४) न मुझे (काव्यमें प्रयुक्त होने वाले) अनेक प्रकारके अक्षरों (वर्णों) और अलंकारोंका ही ज्ञान है, न अनेक प्रकारकी छन्द-रचनाको शैलियोंका परिचय है, न भावों और रसोंके असंख्य भेदोंका ज्ञान है और न कविताके अनेक गुण और दोष ही मैं समझता हूँ। (५) मैं कोरे कागजपर सत्य कहकर (सही करके) लिखे देता हूँ कि कवितासे सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी तत्त्व हैं उनमेंसे एकका भी मुझे कोई ज्ञान नहीं है। (५।।) यद्यपि मेरी इस रचनामें ढूँढनेपर भी कोई गुण नहीं मिल पावेगा फिर भी इसमें एक

१. चतुर प्रवीनू = बहुत चतुर और कुशल।

२. दादुर: ऊपर मुँह उठाकर पिउ-पिउ रटनेवाले पपीहेपर टर्र-टर्र करते रहनेवाले मेंढक हँसा करते हैं कि इतना पानी बरस जानेपर भी और चारों ओर पानी ही पानी भरा मिलनेपर भी यह कितना बड़ा मूर्ख है कि ऊपर चोंच उठाकर 'पिउ-पिउ' की रट लगाए हुए दिनरात पानी माँगा करता है।

१४१-१४४ त्वमेक एवास्य सत: प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्माययासंवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये।। —श्रीमद्भागवत

१५० दो०—भनिति मोरि सब गुन-रहित , बिस्वबिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति , जिन्हके बिमल बिबेक ॥ ९ ॥
एहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान - श्रुति - सारा ।
मंगल - भवन अमंगल - हारी । उमा-सहित जेहि जपत पुरारी । (१)
भनिति बिचित्र सुकबि-कृत जोऊ । रामनाम बिनु सोह न सोऊ ।
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना बर नारी । (२)
सब गुन-रहित कुकबि - कृत बानी । राम-नाम - जस - अंकित जानी ।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर - सरिस संत गुनग्राही । (३)
जदपि कबित - रस एकौ नाहीं । रामप्रताप प्रगट यहि माहीं ।
सोइ भरोस मोरे मन आवा । केहि न सुसंग बड़प्पन पावा । (४)

गुण ऐसा जगद्विख्यात भरा हुआ है जिसे देखते ही निर्मल ज्ञानवाले बुद्धिमान् लोग इसे बिना सुने नहीं रह पावेंगे ॥ ९ ॥ (वह गुण यह है कि) इसमें रामका ऐसा उदार (सबका कल्याण करनेवाला) नाम भरा हुआ है जो अत्यन्त पवित्र, वेद और पुराणोंका तत्त्व, सदा सबका कल्याण करनेवाला, सदा अमंगल (क्लेश) दूर करनेवाला और ऐसा मधुर है कि उसे पार्वती और शंकर-तक सदा जपते रहते हैं । (१) अच्छे कवि यदि कोई बहुत अच्छी कविता भी रच डालें तब भी जब-तक उसमें रामका नाम न हो तबतक उसे वैसा ही फूहड़ समझना चाहिए जैसे सब प्रकारके आभूषणोंसे लदी हुई चन्द्रमाके समान मुखवाली नारी भी बिना वस्त्रोंके फूहड़ लगती है । (२) किन्तु जिस रचना(काव्य)-में चाहे और कोई गुण हो या न हो और उसकी रचना भी चाहे किसी ओछे कविने ही क्यों न की हो पर यदि उसमें रामके नामका यश वर्णित किया हुआ हो तो बुद्धिमान् लोग उसे बड़े आदरके साथ पढ़ते और सुनते हैं क्योंकि (भौंरा जैसे फूलोंसे केवल मकरन्द ही मकरन्द चूस लेता है वैसे ही) सन्त लोग भी भौंरोंके समान केवल गुण ही गुण ग्रहण कर लेते हैं । (३) इसी प्रकार इस रचना (राम-चरित-मानस)-में यद्यपि कविताका एक भी रस (गुण) कहीं ढूँढे नहीं मिल पावेगा फिर भी इसमें रामके प्रतापका वर्णन करनेमें कोई कमी नहीं छोड़ी गई है । मुझे भी बस केवल यही एक बड़ा भारी भरोसा है, क्योंकि अच्छी संगति पा लेनेपर किसे बड़प्पन नहीं मिल जाता ? (४) जैसे धुआँ भी अगरु (सुगन्धित लकड़ी)-का संग पाकर सुगन्धित होकर अपनी स्वाभाविक

१५३ पापानां शोधकं नित्यं परानन्दस्य बोधकम् । रोधकं चित्तवृत्तीनां भजध्वं नाम मंगलम् ॥—सांख०
१५४-५५ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥ —श्रीमद्भागवत
१५६-५७ सर्वकाव्यगुणैर्हीने काव्येऽपि भगवद्यशः । वर्ण्यते चेत्प्रशंसन्ति गुणगृह्या विपश्चितः ॥—व०सं०
१५८-५९ तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ —श्रीमद्भागवत

१६० धूमौ तजै सहज करुआई। अगरु-प्रसंग सुगंध बसाई।
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। रामकथा जग मंगल-करनी। (५)
छंद—मंगल - करनि कलिमल - हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि सुजन-मन-भावनी।
भव-अंग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनी॥ [१]
दो०—प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम - जस - संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिय मलय-प्रसंग॥ १०क॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय-राम-जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥ १०ख॥
१७० मनि - मानिक - मुकता - छबि जैसी। अहि-गिरि-गज-सिर सोह न तैसी।
नृप - किरीट तरुनी - तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई। (१)

कड़वाहट छोड़ बैठता है वैसे ही मेरी यह कविता भी बहुत भद्दी भले ही हो पर इसमें संसारका कल्याण करनेवाली रामकी कथा-जैसी बड़ी हितकर वस्तु भरी पड़ी है। (५) तुलसीदास कहते हैं कि रामकी यह कथा संसारका कल्याण करती है और कलियुगके कारण जितने दोष उत्पन्न हो जाते हैं उन सबको धो मिटा डालती है। इस कथाको तो ऐसी कविताकी नदी समझना चाहिए जो टेढ़ी होनेपर भी (देशी भाषामें लिखी जानेपर भी) पवित्र जलवाली गंगाके समान पवित्र है। [१] जैसे शिवके शरीरपर लगी हुई श्मशानकी राख स्मरण करनेमें भी सुहावनी और पवित्र होती है वैसे ही मेरी कवितामें भी रामके यशका वर्णन होनेके कारण वह भी सबको अच्छी ही लगेगी। (आप ही बताइए कि) चन्दनमें सुगन्ध और पवित्रता होनेके कारण क्या कोई कभी उसे साधारण लकड़ी समझनेकी भूल करता है ? (नहीं)। मलय पर्वतपर उत्पन्न होनेके कारण सब उसका आदर ही करते हैं ॥ १० क ॥ गाय भले ही काले रंगकी हो किन्तु जैसे उस कालो गायका उजला-चिट्टा दूध सब लोग गुणकारी समझकर पीते रहते हैं वैसे ही गँवारी बोलीमें लिखी हुई इस कवितामें भी रामके यशका वर्णन भरा हुआ है इसलिये (मुझे विश्वास है कि) सब लोग इसे पढ़े और सुने बिना न मानेंगे ॥ १० ख ॥ जैसे साँपके सिरपर मणि, पर्वतपर माणिक्य (लाल) और हाथीके मस्तकमें मोती (गजमुक्ता) वैसे नहीं फबते जैसे राजाके मुकुटमें (जड़े जानेपर) या किसी नवेलीके शरीरपर सजा दिए जानेपर फबते हैं (१) वैसे ही, बुद्धिमान् लोगोंका कहना है कि, अच्छे कविकी

१६० कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः। अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः॥-हितो०
१६१-६५ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत्। —पद्मपुराण
१६६-६७ किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनानि॥ —भर्तृहरिशतक
१६८-१७ तन्व्यास्तनौ यथा शोभा मण्यादीनां न चाकरे। काव्यस्यापि तथा शोभा सत्समाजे प्रवर्धते।—प०मं०

तैसेहि सुकवि-कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत, अनत छवि लहहीं।
भगति-हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई। (२)
रामचरित-सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाइ न कोटि उपाये।
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरि-जस कलि-मल-हारी। (३)
कीन्हें प्राकृत - जन - गुन - गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।
हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना। (४)
जौं बरखै बर बारि बिचारू। होहिं कवित मुकता मनि चारू। (४॥)
दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहियहि, रामचरित बर ताग।
१८०   पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥

कविता भी उत्पन्न तो कहीं और (कविके मनमें) होती है पर उसकी परख और प्रशंसा कहीं और (विद्वानोंके यहाँ) ही हो पाती है। सरस्वतीका कुछ स्वभाव ही ऐसा विचित्र है कि जहाँ वह कविकी भक्तिपर रीझी कि स्मरण करते ही ब्रह्माका घर छोड़-छाड़कर (कविके पास) दौड़ी आ पहुँचती है। (२) इस प्रकार दौड़ी चली आनेसे सरस्वतीको जो थकावट होती है वह करोड़ों उपाय कर लेनेपर भी तबतक नहीं मिट पाती जबतक उन्हें (सरस्वतीको) रामके चरित्रके सरोवरमें नहला न दिया जाय (जबतक वाणीके द्वारा रामके चरित्रका वर्णन न किया जाय तबतक वाणीका प्रयोग निरर्थक समझना चाहिए)। इसीलिये जितने भी अच्छे कवि और विद्वान् हैं वे सब इस कलियुगके सारे बुरे प्रभाव दूर कर डालनेवाली भगवान् (राम)-के यशकी कथाका ही दिन-रात वर्णन करते रहते हैं। (३) जहाँ कहीं भी सांसारिक पुरुषोंके गुणोंका वर्णन करनेके लिये वाणी काममें लाई जाने लगती है वहाँ सरस्वती सिर पीट-पीटकर पछताती रह जाती है (कि हाय ! मैं कहाँ आ फँसी)। बुद्धिमान् लोग मानते हैं कि कविका हृदय ही समुद्र है, उसकी बुद्धि ही सीप है, सरस्वती ही स्वाती नक्षत्र है, (४) उत्तम सुन्दर विचार ही वर्षाका जल है और कविता ही मोती है (जब कविके हृदयमें उसकी वाणीका स्फुरण होता है और सुन्दर विचार आने लगते हैं तभी कविता उत्पन्न होती है, जब हृदय और बुद्धि में सरस्वती उत्तम विचार लाकर भरती हैं तभी सुन्दर कविताका जन्म होता है)। (४॥) कविताके मोतियोंको बड़े कौशलसे बटोरकर और रामके चरित्रके बढ़िया (पक्के) तागेमें पिरोकर जब सज्जन लोग उसे अपने निर्मल हृदयपर धारण करते हैं तब उसमें अत्यन्त प्रेमकी शोभा झलक उठती है (जब सज्जन लोग उत्तम विचारोंसे भरा रामका चरित्र सुनते हैं तब उनके मनमें रामके चरणोंमें प्रेम उत्पन्न होता है; जब रामके यशसे भरी हुई कविता लोग पढ़ते हैं तब रामके चरणोंमें उनका प्रेम बढ़ता और उनके हृदयमें रामके प्रति प्रेम उत्पन्न होने लगता है) ॥ ११ ॥

---

१७२ कविः करोति काव्यानि स्वादं जानन्ति पण्डिताः। सुन्दर्याः कुचकाठिन्यं पतिर्जानाति नो पिता ॥सु०

१७३-७४ भक्तप्रीत्यै स्मृता देवी शारदा सत्यलोकतः। द्रुतमायाति तच्छान्तिर्न रामाराधनं विना ॥स्वे०

१७५-७६ एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥—श्रीमद्भागवत

१७७-८० हृद्वारिधौ बुद्धिशुक्तौ वचो बोधाम्बुवर्षणात्। काव्यमुक्ताः प्रजायन्ते साधुः परिदधाति ताः ॥पुल०

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस, बेष मराला।
चलत कुपंथ बेद-मग छाँड़े। कपट-कलेवर कलिमल-भाँड़े। (१)
बंचक भगत कहाइ रामके। किंकर कंचन - कोह - कामके।
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धिंग - धरमध्वज धँधरच - धोरी[1]। (२)
जौ अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिँ लहऊँ।
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महँ जानिहहिँ सयाने। (३)
समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी।
एतेहु पर करिहहिँ जे संका। मोहिँ तें अधिक ते जड़ मति-रंका। (४)
कबि न होउँ नहिँ चतुर कहावौं। मति-अनुरूप रामगुन गावौं।
१९० कहँ रघुपतिके चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत-संसारा। (५)

इस भयंकर कलियुगमें जिनका जन्म हुआ है उन सबका आचरण तो कौवेके समान (नीच) होता है पर वे अपना वेश हंसके समान उजला (ठाट-बाटका) बनाए रखते हैं। वेदका बताया हुआ (पवित्र धर्मका) मार्ग छोड़कर वे कुमार्गपर चलते रहते (अधर्म करते रहते) हैं और सदा बुरे ही बुरे काम करते रहते हैं। उन सबके मनमें इतना कपट भरा होता है कि वे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे कलियुगके पापोंसे भरे हुए मटके हों। (१) इनमेंसे बहुतसे ऐसे भी लोग मिलते हैं जो कहनेको तो अपनेको रामका बहुत बड़ा भक्त बताते हैं पर सच पूछिए तो वे कंचन (धन), क्रोध और कामके ही दास बने हुए हैं। उन धर्मकी ध्वजा उठाकर चलनेवाले (धर्मात्मा कहलानेवाले) ढोंगी पाखण्डियोंके सरदारोंमें यदि किसीका नाम सबसे पहले लिया जा सकता है तो मेरा ही लिया जा सकता है। (२) यदि मैं कहीं अपने दोष गिनाने लग जाऊँ तो वह कहानी इतनी लम्बी बन जायगी कि मैं भी उसका पार न पा सकूँगा (मैं भी उसका पूरा वर्णन न कर पा सकूँगा), इसलिये मैंने जो थोड़ेमें कह दिया है उसीसे समझदार लोग (मेरी सारी करनी भली भाँति) समझ जायँगे। (३) (मुझे विश्वास है कि) मेरा यह अनेक प्रकारका निवेदन सुनकर कोई यह कथा पढ़ लेनेपर मुझे दोष नहीं देगा। इतनेपर भी यदि लोग इस रामके काममें सन्देह कर बैठें तो समझ लेना चाहिए कि वे मुझसे भी अधिक मूर्ख और नासमझ हैं। (४) मैं पहले ही कहे देता हूँ कि न तो मैं कवि हूँ और न कुशल (लेखक) कहलानेका ही दम भरता हूँ। मैं तो केवल अपनी बुद्धिके अनुसार रामका गुण-भर वर्णन करने बैठा हूँ। (यों देखा जाय तो) कहाँ रामका अपार चरित्र और कहाँ संसारके माया-मोहमें फँसी हुई मेरी तुच्छ बुद्धि ! (५) पवनके जिस झोंकेसे सुमेरु पर्वत-

१. श्रावण कुञ्जकी प्रतिमें हरताल लगाकर 'ध्रंध्रक' बनाया गया है। धृग्-धर्मध्वज=धर्मध्वजधृक् =धर्मकी ध्वजा धारण करनेवाला। धोरी=धोरणि: (अग्रणी); धँधरच=(गोरख-) धन्धा या माया रचनेवाला धूर्त या ढोंगी। धँधरच-धोरी=ढोंगियों या धूर्तोंका सरदार।

१८१-८३ मातृपितृकृतद्वेषा: स्त्रीदेवा: कामकिंकरा:। त्यक्तस्वजातिकर्माण: प्रायश: परवञ्चका:।—अ० रा०
१८४-८७ धूर्ताग्रणीस्त्वहं वच्मि विस्तरान्नात्मनो गुणान्। श्रुत्वा मे विनयं काव्यं नहि दुष्यन्ति साधव:॥—सु०
१९०-९२ क्वाहं मन्दमति: क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधे:। किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दर:॥—भाग०

जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं।
समुझत अमित राम-प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई। (६)
दो०—सारद सेस महेस विधि, आगम निगम पुरान।
नेति-नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान।। १२।।
सब जानत प्रभु-प्रभुता सोई। तदपि कहे विनु रहा न कोई।
तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन-प्रभाउ भाँति वहु भाखा। (१)
एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर-धामा।
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना। (२)
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत-अनुरागी।

तक उड़ जा सकता है उसके आगे कहिए तो भला रूईकी गिनती ही क्या है ! इसलिये जब-जब मैं रामकी इतनी विराट् महिमा सोचने लगता हूँ तो उन महान् रामकी कथा लिखनेका विचार ही करके मेरे मनमें वड़ी झिझक हो उठती है (६) जिनके गुणोंका वर्णन करते हुए सरस्वती, शेषनाग, महादेव, ब्रह्मा, वेद, शास्त्र और पुराण भी निरन्तर नेति-नेति (इतना ही नहीं है, इतना ही नहीं है) कहकर चुप रह जाते हैं (पूरा वर्णन नहीं कर पाते)। ।।१२।। यद्यपि सब लोग जानते हैं कि रामकी इतनी विराट् महिमा है फिर भी उनका वर्णन किए विना किसीसे रहा भी नहीं गया (सबने अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार उनका वर्णन किया ही है)। वेदोंने इसका यही कारण वताया है कि जिसपर भगवान्‌के भजनका जैसा प्रभाव पड़ा वैसा ही उसने वर्णन कर डाला। यही कारण है कि संसारमें रामके यशका वर्णन अनेक प्रकारसे किया हुआ मिलता है। (१)

जो परमेश्वर एक ही है, जिसमें कोई इच्छा नहीं होती, जिसका न रूप है न नाम है, जिसने कभी जन्म नहीं लिया, जो सत् (सदा रहनेवाला), चित् (ज्ञानमय) और आनन्द-रूप है, जो स्वयं ऐसा सबसे वड़ा केन्द्र है जहाँ पहुँचनेपर फिर और कहीं जाना ही नहीं रह जाता, जो स्वयं संसार वनकर सारे ब्रह्माण्डमें समाया हुआ है, वही भगवान् जब-जब चाहता है तब-तब दिव्य शरीर धारण कर-करके अनेक प्रकारकी लीलाएँ आ दिखाता है। (२) ऐसा वह केवल भक्तोंकी भलाईके लिये ही करता है क्योंकि वह परम कृपालु, अपनी शरणमें आ जानेवालेसे

१८३-८४ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे।। —श्रीमद्‌भागवत

१८५ महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः।।—महिम्न०

१८६ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमोनमः।। —श्रीमद्‌भागवत

१८७-८८ यथानेकेषु कुम्भेषु रविरेकोऽपि दृश्यते। तथा सर्वेषु भूतेषु चिन्तनीयोस्म्यहं सदा।।—ब्र०पु०

२०० जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू। (३)
गई बहोर गरीब - निवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू।
बुध बरनहिं हरि-जस अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी। (४)
तेहि बल मैं रघुपति-गुन-गाथा। कहिहउँ नाइ रामपद माथा।
मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई। (५)
दो०—अति अपार जे सरित बर, जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं॥ १३॥
ऐहि प्रकार बल मनहिं देखाई। करिहौं रघुपति-कथा सुहाई।
व्यास, आदि, कवि-पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि-सुजस बखाना। (१)
चरन-कमल बंदौं तिन्ह - केरे। पुरवहु सकल मनोरथ मेरे।

प्रेम करने लगता है। भक्तोंपर बड़ी ममता करनेवाला वह भगवान् जिसपर एक बार कृपा कर बैठता है, उसपर फिर कभी क्रोध नहीं करता। (३) और फिर मेरे स्वामी राम तो ऐसे अच्छे हैं कि जिसकी देखो उसीकी बिगड़ी बनाए डालते रहते हैं (आई हुई विपत्तियाँ दूर करते रहते हैं) और सदा दुखियोंपर दया करते रहते हैं (उनके दुःख दूर करते रहते हैं)। बहुत सरल स्वभाववाले होनेपर भी वे सर्वशक्तिमान् (जो चाहें कर सकनेवाले) हैं और सबके स्वामी हैं (जिसे जो कुछ कह दें वह मान ले)। यही कारण है कि विद्वान् लोग उन भगवान्के गुणोंका वर्णन कर-करके अपनी वाणी पवित्र और सुफल करते ही रहते हैं। (४)

मुझे भी भगवान्की उसी कृपाका बड़ा भरोसा हो चला है और उसी कृपाके बलपर मैं भी रामके चरणोंमें सिर नवाकर (बड़ी सरलतासे) उनके गुणोंका वर्णन कर ही पा लूँगा, क्योंकि भाई ! पहले (वाल्मीकि, व्यास आदि) मुनियोंने जिस ढंगसे रामके यशका वर्णन किया है, उसी ढंगपर वर्णन कर डाल सकना मेरे लिये वैसे ही बहुत सरल हो जायगा (५) जैसे बड़ी-बड़ी नदियोंपर राजा लोग जो पुल बँधवा देते हैं उन्हींपर चलकर नन्हीं-नन्हीं चींटियाँ भी सरलतासे नदी पार कर जाती हैं॥ १३॥ इन्हीं सब प्रमाणोंके भरोसे अपना मन पक्का करके मैं भी रामका वह सुन्दर चरित्र वर्णन कर डालूँगा जिसका व्यासने (पुराण आदिमें), आदिकवि वाल्मीकिने (रामायणमें) तथा अन्य श्रेष्ठ कवियोंने बड़े आदरके साथ वर्णन किया है। (१) उन सभी श्रेष्ठ कवियोंके चरण-कमलोंकी वन्दना करता हुआ मैं उनसे यही निवेदन करता हूँ कि आप लोग थोड़ा-सा सहारा देकर मेरी सारी इच्छाएँ पूरी कर डालिए (कि मैं यह रामचरितमानस पूर्ण कर सकूँ)।

२०० मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन। दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतद्धि गर्हितम्॥—वा०रा०
२०१-२०४ अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः। मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥–रघु०
२०५-२०६ विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः॥ —किरातार्जुनीय
२०७-२०९ प्राचेतसव्यासपराशराद्याः प्राचः कवीन्द्रा जगदर्चितास्ते।
गोष्ठी नवीनापि महाकवीनां पूज्या गुणज्ञैर्भुवनोपकर्त्री॥ —सुभाषित

२१० कलिके कविन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति-गुन-ग्रामा। (२)
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवौं सबहिं कपट-छल त्यागे। (३)
होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु-समाज भनिति-सनमानू।
जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बालकबि करहीं। (४)
कीरति, भनिति, भूति भलि सोई। सुरसरि-सम सब कहँ हित होई।
राम - सुकीरति भनिति भदेसा। असमंजस अस मोहिं अँदेसा। (५)
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सियनि सुहावनि टाट पटोरे।
करहु अनुग्रह अस जिय जानी। बिमल जसहिं अनुहरै सुबानी। (६)
दो०—सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
२२० सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥ १४ क ॥

कलियुगके जिन भी कवियोंने रामके गुणोंका वर्णन किया है मैं उन सबको प्रणाम करता हूँ। (२) जिन परम कुशल प्राकृत (देशी) भाषाओंके कवियोंने भगवान्के चरित्रका वर्णन किया है, जो कर रहे हैं और जो आगे करेंगे उन सबको मैं शुद्ध हृदयसे प्रणाम करता हूँ। (३) उन सबसे मेरा निवेदन है कि आप सब लोग मुझपर प्रसन्न होकर मुझे यही वरदान दें कि कमसे कम सज्जन लोग तो मेरी कविताका आदर करें ही क्योंकि विद्वान् लोग जिस कविताका आदर नहीं करते उसकी रचनाके लिये जितना कुछ परिश्रम किया जाता है, सब व्यर्थ चला जाता है। वैसा (निरर्थक) श्रम बाल (मूर्ख, बालक या अबोध) कवि ही किया करते हैं। (४)

किसीकी कीर्ति (बड़ा नाम), कविता और सम्पत्ति तभी अच्छी समझी जानी चाहिएँ जब वे बिना किसी भेद-भावके सबका वैसे ही कल्याण करती रहें जैसे गंगाजी सबका कल्याण करती रहती हैं (चाहे कोई बड़ा हो या छोटा)। बताइए, कहाँ तो रामकी इतनी महान् कीर्ति (उनके यशकी कथा) और कहाँ मेरी अटपटी (देशी) भाषा ! इसीसे मेरे मनमें बड़ा असमंजस बना हुआ है और संदेह हो रहा है (कि देशी भाषामें वर्णन करनेसे कहीं रामकी कीर्ति अटपटी न हो बैठे)। (५) किन्तु मुझे विश्वास है कि आप सब (कवियों)-की कृपासे वह काम (देशी भाषामें रामकी कीर्तिका वर्णन) करना मेरे लिये सुलभ हो जायगा क्योंकि यदि टाटपर भी रेशमकी कढ़ाई कर दी जाय (देशी भाषामें भी रामकी कथा कह दी जाय) तब भी वह बड़ी चटकीली ही लगेगी। (६)

जो कविता सरल हो और जिसमें किसी निर्मल कीर्तिवालेका वर्णन हो और जिसे सुनकर शत्रु भी अपना स्वाभाविक वैर भुलाकर उसकी प्रशंसा करने लगें उसी कविताका सज्जन लोग आदर करते हैं ॥ १४ क ॥ ऐसी कविताकी रचना करनेके लिये बड़ी निर्मल बुद्धिकी आवश्यकता

२१०-१२ भूतान्भव्यान्शुभाचारान्वर्तमानान्हरेर्यशः। गायकान्प्राकृतकवीन्वन्दे शुद्धेन चेतसा ॥
२१४ न सत्कुर्वन्ति यत्काव्यं साधवस्समदर्शिनः। बालकस्य कवेस्तस्य श्रम एव निरर्थकः ॥—आन०च०

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहिँ मति-बल अति थोर।
करहु कृपा हरि-जस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोर ॥ १४ ख ॥
कबि कोबिद रघुबरचरित, मानस - मंजु - मराल।
बाल-बिनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल ॥ १४ ग ॥
सो०—बंदौं मुनि - पद - कंज, रामायन जेहि निरमयेउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोषरहित दूषनसहित ॥ १४ घ ॥
बंदौं चारिउ बेद, भव-बारिधि-बोहित-सरिस।
जिन्हहिँ न सपनेहुँ खेद, बरनत रघुबर बिसद जस ॥ १४ ङ ॥
बंदौं बिधि - पद - रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहँ।
२३० संत - सुधा - ससि - धेनु, प्रगटे खल - बिष - बारुनी ॥ १४ च ॥
दो०—बिबुध-बिप्र-बुध-ग्रह-चरन, बंदि कहौं कर जोर।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोर ॥ १४ छ ॥
पुनि बंदौं सारद - सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर - चरिता।

होती है और यहाँ मुझमें ले-देकर थोड़ी-सी ही तो बुद्धि है। इसीलिये मैं आप (सब कवियों)-से बार-बार प्रार्थना किए जा रहा हूँ कि आप लोग मुझपर ऐसी कृपा करते रहिए कि मैं राम-के यशका वर्णन करनेमें सफल हो सकूँ ॥ १४ ख ॥ (क्योंकि सच पूछिए तो) कवि और विद्वान् ही रामचरित-मानसके सुन्दर हंस हैं (दूधका दूध, पानीका पानी कर डालनेवाले पारखी हैं), इसलिये मैं उनसे ही निवेदन कर रहा हूँ कि मेरी यह बाल-विनय (बचपन-भरी प्रार्थना) सुनकर और इसकी रचना करनेमें मेरा बड़ा उत्साह देखकर मुझपर (ऐसी) कृपा करते रहें कि मैं इसे पूर्ण कर ही डालूँ ॥ १४ ग ॥

मैं उन वाल्मीकि मुनिके चरण-कमलोंकी वन्दना करता हूँ जिन्होंने ऐसे रामायणको रचना कर डाली, जो खर (नामक राक्षस)-के वर्णनसे युक्त होनेपर भी खर (कठोर) न होकर बहुत कोमल और सुन्दर है, जो दूषण (नामके राक्षसके वर्णन)-से युक्त होनेपर भी दूषण (दोषों)-से रहित है ॥१४ घ॥ मैं उन चारों वेदोंकी वन्दना करता हूँ जो संसार-सागर पार करनेके लिये जहाज बने खड़े हैं और जो दिनरात रामका निर्मल यश वर्णन करते रहनेपर भी कभी स्वप्नमें भी थकनेका नाम नहीं लेते ॥ १४ ङ ॥ मैं उन ब्रह्माके चरणोंकी धूलकी वन्दना करता हूँ जिन्होंने ऐसा भवसागर बना खड़ा किया जिसमें-से एक ओर तो (सबको जीवित करनेवाला) अमृत, (शीतलता देनेवाला) चन्द्रमा और (सबकी इच्छा पूरी करनेवाली) कामधेनु जैसे सन्त (सबका भला करनेवाले) निकल आए और दूसरी ओर (प्राण लेनेवाला) विष और (मतवाला बना देनेवाला) मद्य-जैसे दुष्ट (हानि करनेवाले) आ निकले ॥ १४ च ॥ देवता, ब्राह्मण, विद्वान् तथा ग्रहोंके चरणोंकी वन्दना करता हुआ मैं हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करता हूँ कि आप सब मुझपर प्रसन्न होकर मेरी (रामचरित-मानस लिखनेकी) सारी मनोहर कामनाएँ पूरी कर डालें ॥ १४ छ ॥ मैं सरस्वती और गंगाकी भी वन्दना करता हूं। ये दोनों ही बड़ी पवित्र हैं और दोनोंका ही चरित्र बड़ा उज्ज्वल है। (उनमेंसे जहाँ) एक (गंगाजी) सबके पाप दूर किए डालती हैं वहीं दूसरी (सरस्वती)

२२५-२६ सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला। नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥—नल०

मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत ऐक हर अविवेका। (१)
गुरु, पितु, मातु, महेस, भवानी। प्रनवौं दीनबंधु दिनदानी।
सेवक, स्वामि, सखा सिय-पीके। हित निरुपधि सब विधि तुलसीके। (२)
कलि बिलोकि जगहित हर-गिरिजा। साबर-मंत्र-जाल जिन्ह सिरिजा।
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस-प्रतापू। (३)
सोउ महेस मोहिं पर अनुकूला। करहिं कथा मुद-मंगल-मूला।
२४० सुमिरि सिवा-सिव, पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ। (४)
भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती। ससिसमाज मिलि मनहुँ सुराती।
जे ऐहि कथहिं सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता। (५)
होइहहिं रामचरन - अनुरागी। कलि-मल-रहित सुमंगल-भागी। (५॥)

दो०—सपनेहु साँचेहु मोहि पर, जौं हर - गौरि - पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा - भनिति - प्रभाउ ॥१५॥

ऐसी हैं कि उनके सहारे (भगवान्‌की कथा कहने और सुननेसे) सारा अज्ञान दूर हो जाता है। (१) मैं शिव और पार्वतीको प्रणाम करता हूँ जो मेरे गुरु (पूज्य), पिता और माता हैं, जो सदा दीनोंपर कृपा करते और सदा (जो पहुँच जाय और जो कुछ माँग ले उसे वही) दान करते रहते हैं, जो सीताके पति (राम)-के सेवक भी हैं, स्वामी भी हैं, सखा (मित्र) भी हैं और जो सब प्रकारसे तुलसीदासका तो सदा भला ही करते रहते हैं। (२) जिन शिव और पार्वती-ने कलियुगमें होनेवाले कष्ट देखकर संसारके कल्याणके लिये ऐसे शाबर मन्त्र रच डाले हैं जिनके अटपटे अक्षरोंका न तो कोई अर्थ होता है और न जिनका जप ही किया जा सकता है, फिर भी शंकरके प्रतापसे उनका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है (कि जो एक बार जप ले उसका काम बन जाय, बिच्छू - साँपका विष उतर जाय, रोग दूर हो जायँ)। (३) (मुझे विश्वास है कि) उमाके पति शंकर ही मुझपर प्रसन्न होकर यह कथा ऐसी सजा देंगे कि इसे जो पढ़ेगा उसे आनन्द भी मिलेगा और उसका कल्याण भी होगा। इसलिये मैं शंकर और पार्वतीका स्मरण करके और उनका प्रसाद (आशीर्वाद) पाकर बड़े उत्साहसे रामके चरितका वर्णन करने चल रहा हूँ। (४) शिवकी कृपासे ही मेरी यह रचना ऐसी चमाचम चमक उठेगी (प्रसिद्ध होगी) जैसे चन्द्रमाके समाज (तारे छिटकने)-से रात जगमगा उठती है। जो लोग इस कथाको प्रेमपूर्वक बाँचेंगे, सुनेंगे और ध्यान देकर समझेंगे (५) उनपर कलियुगमें होनेवाले किसी दोषका प्रभाव नहीं पड़ पावेगा और सुख पानेके साथ-साथ वे रामके चरणोंसे प्रेम भी करने लग जायँगे। (५॥) यदि शंकर और पार्वती स्वप्नमें भी मुझपर सचमुच प्रसन्न हैं तो (देशी) भाषा (अवधी)-में की हुई अपनी इस रचनाका जो प्रभाव मैंने बताया है वह सबका सब सत्य होकर ही रहेगा ॥ १५ ॥

२४२-४३ तस्मात्तु रामायणनामधेयं परं तु काव्यं शृणुत द्विजेन्द्राः।
यस्मिन् श्रुते जन्मजरादिनाशो भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात् ॥ —स्कन्दपुराण

वंदौं अवधपुरी अति पावनि। सरजू सरि कलि-कलुष-नसावनि।
प्रनवौं पुर-नर-नारि बहोरी। ममता जिन्ह - पर प्रभुहि न थोरी। (१)
सिय - निंदक अघ-ओघ नसाए। लोक त्रिसोक बनाइ बसाए।
वंदौं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची। (२)
२५० प्रगटेउ जहँ रघुपति - ससि चारू। बिस्व - सुखद खल-कमल-तुसारू।
दसरथ - राउ - सहित सब रानी। सुकृत - सुमंगल - मूरति मानी। (३)
करौं प्रनाम करम - मन - बानी। करहु कृपा सुत - सेवक जानी।
जिनहिं बिरचि बड़ भयउ बिधाता। महिमा - अवधि राम पितु माता। (४)
सो०—बंदौं अवध - भुवाल , सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल , प्रिय तन तृन इव परिहरेउ ॥१६॥

अब मैं अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरीकी और कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले सारे दोष (पाप) धो-बहा डालनेवाली सरयू (नदी)-की वन्दना करता हूँ। इसके पश्चात् मैं अयोध्याके उन सभी पुरुषों और स्त्रियोंको प्रणाम करता हूँ जिनसे प्रभु (राम) इतना गहरा स्नेह करते हैं (१) कि जिन्होंने (उनकी पवित्र धर्मपत्नी) सीताको (दोष लगाकर उनकी) निन्दा भी की उन (दुष्टों)-के भी सारे अपराध भुलाकर उन सबको (दण्ड देनेके बदले उन्हें) शोक-रहित (सुखी) बनाकर (अयोध्यामें) बसाए रक्खा।

मैं उन पूर्व दिशाके समान (पवित्र) कौशल्याकी वन्दना करता हूँ जिनके यशकी सारे संसारमें धूम मची हुई है। (२) जैसे पूर्व दिशासे वह सुन्दर चन्द्रमा उदय होता है जो (अपनी ठंडी किरण और चाँदनीसे) संसारको सुख देता रहता है किन्तु कमलोंके लिये पाला बन जाता है (चन्द्रमाके उदय होनेपर कमल ऐसे मुँद जाते हैं जैसे उन्हें पाला मार गया हो) वैसे ही कौशल्याकी कोखसे प्यारे रामका जन्म हुआ जिन्होंने सारे संसारको तो सुख दिया पर सभी दुष्टोंको एक-एक करके संसारसे मिटा डाला। (३) मैं उन्हें मन, वचन और कर्मसे प्रणाम करता हूँ और (उनसे निवेदन करता हूँ कि आप) मुझे अपने पुत्र (राम)-का सेवक जानकर मुझपर कृपा बनाए रखिए। जिन (दशरथ और कौशल्या)-को रचकर ब्रह्माने बड़ाई पाई और जिन्होंने रामके माता-पिता होनेके कारण बहुत बड़प्पन पा लिया (उन दशरथ और कौशल्याको मैं प्रणाम करता हूँ)। (४) मैं अयोध्याके राजा दशरथकी वन्दना करता हूँ जिन्हें रामके चरणोंमें (ऐसा) सच्चा प्रेम था कि उन्होंने दीनोंपर दया करनेवाले रामसे बिछुड़ते ही (रामके वन चले जानेपर) अपना प्यारा शरीर तिनकेके समान (तुच्छ समझकर) छोड़ डाला ॥ १६ ॥

२४६-५० वन्दे मन्दप्रभावं रघुकुतिलकैः पूज्यपादं वसिष्ठं,
साकेतं पुण्यरूपं तदनु च सरयूं कल्मषध्वंसहेतुम्।
पौरान्रामैकचित्तान्दशरथगृहिणीं मञ्जुमैन्द्रीस्वरूपां,
यस्यां श्रीरामचन्द्रः खलकमलवनध्वंसकृत्प्रादुरासीत् ॥ —भरद्वाजरामायण

२५४-५५ चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा। राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् ॥—वा०रा०

प्रनवौं परिजन - सहित बिदेहू । जाहि रामपद गूढ़ सनेहू ।
जोग भोग - महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई । (१)
प्रनवौं प्रथम भरत के चरना । जासु नेम व्रत जाइ न बरना ।
राम - चरन - पंकज मन जासू । लुबुध मधुप - इव तजै न पासू । (२)
२६० बंदौं लछिमन - पद - जलजाता । सीतल सुभग भगत - सुख - दाता ।
रघुपति - कीरति बिमल पताका । दंड - समान भयउ जस जाका । (३)
सेस सहस्रसीस जग - कारन । सो अवतरेउ भूमि - भय - टारन ।
सदा सो सानुकूल रह मो - पर । कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर । (४)
रिपु - सूदन - पद - कमल नमामी । सूर, सुसील, भरत - अनुगामी ।
महावीर बिनवौं हनुमाना । राम जासु जस आपु बखाना । (५)
सो०—प्रनवौं पवनकुमार , खल-बन-पावक ज्ञान - घन ।
जासु हृदय - आगार , बसहिं राम सर-चाप-धर ॥१७॥

राजा जनक और उनके सारे परिवारको भी मैं प्रणाम करता हूँ, जिनका रामके चरणोंसे बड़ा गाढ़ा प्रेम था । वे अपने सारे योग (आध्यात्मिक साधना)-को भोग (राजसी ठाटबाट)-के तले छिपाए रखते थे (जिसके कारण उन्हें सब राजा ही समझते थे) पर रामको देखते ही उनका सारा योग (ब्रह्मानन्दमें लीन होनेका सामर्थ्य) खुलकर सबके सामने आ गया (वे ब्रह्मानन्दमें लीन हो गए) । (१)

मैं सबसे पहले उन भरतके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ जिन (भरत)-के (कठोर) नियम और व्रत (तपस्या)-का वर्णन (शब्दोंमें) किया ही नहीं जा सकता और जिनका मन रामके चरणोंमें इस प्रकार लुभाया रहता था जैसे कमलका लोभी भौंरा कभी कमलको छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता (सदा उसीपर मँडराता रहता है) । (२) मैं लक्ष्मणके उन चरण-कमलोंकी भी वन्दना करता हूँ जो शीतल भी हैं, सुन्दर भी हैं, जिनका सेवन करनेसे भक्तोंको सुख भी मिलता है और जो रामकी निर्मल कीर्तिकी पताकाकी ध्वजा (झण्डेका डण्डा) बनकर उसे सदा सँभाले रहते हैं (जो रामका यश बढ़ाते रहते हैं), (३) जो सहस्र (अनगिनत) फणवाले (शेषनाग)-के अवतार हैं, संसारके आधार हैं (सारे संसारको सिरपर टिकाए हुए हैं), और जिन्होंने पृथ्वीका भय दूर करनेके लिये ही अवतार लिया है, उन अनेक गुणोंवाले सुमित्राके कृपालु पुत्र लक्ष्मणसे यही निवेदन है कि वे मुझपर सदा प्रसन्न बने रहें । (४) मैं उन शत्रुघ्नके चरण-कमलोंको भी प्रणाम करता हूँ जो वीर, सुशील और भरतके अनुगामी (उनके कहनेके अनुसार काम करते रहते) हैं । मैं महावीर हनुमानकी भी विनति करता हूँ (उनके चरणोंमें सिर झुकाता हूँ) जिनके यशका वर्णन स्वयं राम अपने मुँहसे करते रहते हैं । (५) मैं पवनके उस पुत्र (हनुमान)-को प्रणाम करता हूँ जो दुष्टोंको उसी प्रकार नष्ट कर डालते हैं जैसे जंगलको जलाकर अग्नि भस्म कर डालती है, जो परम ज्ञानी हैं और जिनके हृदयके मन्दिरमें धनुष-बाण धारण किए हुए राम सदा बसे रहते हैं ॥ १७ ॥ बंदरोंके राजा सुग्रीव, (रीछोंके राजा) जामवन्त, राक्षसोंके

२५८-६७ रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् । सुग्रीव वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः ॥ आ०रा०

कपि - पति, रीछ, निसाचर - राजा । अंगदादि जे कीस - समाजा ।
वंदौं सवके चरन सुहाये । अधम - सरीर, राम जिन्ह पाये । (१)
२७० रघुपति - चरन - उपासक जेते । खग, मृग, सुर, नर, असुर-समेते ।
वंदौं पद - सरोज सव - केरे । जे विनु काम रामके चेरे । (२)
सुक - सनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिवर विज्ञान - बिसारद ।
प्रनवौं सवहिं धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा । (३)
जनक - सुता जग - जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुना - निधान की ।
ताके जुग - पद - कमल मनावौं । जासु कृपा निरमल मति पावौं । (४)
पुनि मन - बचन - कर्म रघुनायक । चरन - कमल बंदौं सब लायक ।
राजिव - नयन धरे धनु - सायक । भगत - विपति - भंजन सुख-दायक । (५)

राजा (विभीषण) तथा अंगद आदि वानरोंके सुन्दर चरणोंकी भी मैं वन्दना करता हूँ जो अधम (बंदर, रीछ, राक्षसके) शरीरवाले होनेपर भी रामके सगे हो रहे (जिन्होंने रामको अपना बना लिया) । (१) पक्षी, पशु, देवता, मनुष्य और राक्षसोंको लिए-दिए जितने भी रामके चरणोंके उपासक हैं उन सबके चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जो निष्काम भावसे (विना किसी स्वार्थके ही) रामके दास (भक्त) हैं । (२) शुकदेव, सनकादि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) भक्त, नारद मुनि तथा और भी जितने बड़े-बड़े ज्ञानी और श्रेष्ठ मुनि हैं उन सबको मैं धरतीपर अपना माथा टेककर प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो ! मुझे अपना सेवक जानकर आप लोग मुझपर कृपा वनाए रखिएगा । (३) जनककी पुत्री, जगत्की माता और परम कृपालु रामकी अत्यंत प्यारी (पत्नी) जानकीके दोनों चरण-कमलोंसे मैं यही मनाता हूँ कि उनकी कृपासे मैं (ऐसी) निर्मल बुद्धि पा जाऊँ (कि रामके चरित्रका बहुत ही अच्छे ढंगसे वर्णन कर सकूँ) । (४) इसके पश्चात् कमलके समान नेत्रवाले, हाथमें धनुष और बाण धारण किए रहनेवाले, भक्तोंकी सारी विपत्तियाँ दूर करके उन्हें सुख देनेवाले रामके उन चरण-कमलोंकी मन, वचन और कर्मसे वंदना करता हूँ जो चाहें तो सव कुछ कर सकते हैं । (५) जैसे वाणी (शब्द) और उसका अर्थ तथा जल और उसकी लहर कहनेको तो

२७२-७३ योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे । संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ।।—भाग०
नमस्तस्मै भगवते नारदाय महात्मने । कामक्रोधविहीनाय ऋषीणां प्रवराय च ।। —सं०ग०
२७४-७५ वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम् ।। —जानकीस्तवराज
२७६-७७ श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ।। —रामरक्षास्तोत्र

दो०—गिरा-अरथ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीता-राम-पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥ १८॥

२८० बंदौं नाम राम[1] रघुबरको। हेतु कृसानु-भानु-हिमकरको।
बिधि-हरि-हर-मय बेद-प्रान सो। अगुन अनूपम गुन-निधान सो। (१)
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति-हेतु उपदेसू।
महिमा जासु जान गन-राऊ। प्रथम पूजियत नाम-प्रभाऊ। (२)
जान आदिकवि नाम-प्रतापू[2]। भयेउ सुद्ध, करि उलटा जापू[3]।
सहस-नाम-सम सुनि सिव-बानी। जपति सदा पिय-संग भवानी। (३)

अलग-अलग हैं पर हैं वास्तवमें एक ही, उनमें (वाणी और अर्थमें या जल और लहरमें) कोई भेद नहीं है, वैसे ही सीता और राम भी नाम-मात्रको अलग-अलग जान पड़ते हैं पर हैं वास्तवमें दोनों एक ही। उन (एक रूपवाले सीताराम)-के चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ जिन्हें दीन और दुखी प्राणी सदा बड़े प्यारे लगते चले आए हैं (जो सदा दीन-दुखियोंको देखते ही उनका दुःख दूर करनेको आ खड़े होते हैं)॥ १८॥

मैं रघुश्रेष्ठ 'राम' के नामकी वन्दना करता हूँ जिससे अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा (आदि प्रकाश करनेवाले तेजों)-का जन्म हुआ है। वह (राम-नाम) साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और शिवका ही रूप है (र–ब्रह्मा, आ–विष्णु, म–शिव), वही वेदोंका प्राण (सार) है तथा वह निर्गुण और उपमा-रहित (बेजोड़) होते हुए भी सब गुणोंसे भरा हुआ है। (१) 'राम' ही वह महामन्त्र है जो शिव भी बैठे जपा करते हैं और काशीमें मुक्ति देनेके लिये यही मुक्ति देनेवाला (तारक) मंत्र मुमूर्षु (मरनेवाले)-के कानमें फूँकते रहते हैं। इस (राम) नामका प्रभाव यदि कोई जानता है तो गणेश ही जानते हैं जिसके प्रभावसे (राम नाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर लेनेसे ही) वे देवताओंमें सबसे पहले पूजे जाने लगे। (२) आदिकवि वाल्मीकि भी (राम) नामका प्रभाव जानते थे जो उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते पवित्र (ऋषि) हो गए। जब पार्वतीने शिवसे सुना कि एक ('राम') नाम हजारों अन्य नामोंके समान है तो पार्वती भी अपने पति शिवके साथ बैठकर वही नाम जपने लग गईं। (३) पार्वतीके हृदयमें 'राम' नामका ऐसा प्रेम

१. राम नाम। २. प्रभाऊ=प्रताप। ३. उलटा नाऊ='उलटा नाम' मरा-मरा जपकर।

२७८-७९ रामः सीता जानकी रामचन्द्रो नाणुर्भेदो वै तयोरस्ति किञ्चित्।
सन्तो बुद्ध्वा तत्त्वमेतद्धि बुद्ध्वा पारं याताः सृष्टतो मृत्युवक्त्रात्॥ —अद्भुतरामायण

२८० चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥—यजु०

२८२ अहो भवन्नाम जपन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥ —स्कन्दपुराण

२८३ अहं पूज्योऽभवं लोके रामनामानुकीर्तनात्। अतः श्रीरामनाम्नस्तु कीर्तनं सर्वदोचितम्॥—ग०पु०

२८४ राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्। यत्प्रभावादहं राम ब्रह्मर्षित्वमवाप्तवान्॥—अ०रा०

२८५ श्रीरामाय नमो ह्येतत्तारकं ब्रह्मनामकम्। नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः॥हा०स्मृ०
रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ —प०पु०

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय-भूषन ती-को।
नाम-प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी-को। (४)
दो०—बरषा रितु रघुपति-भगति, तुलसी सालि सुदास।
रामनाम वर बरन जुग, सावन-भादव मास॥ १९॥
२९० आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन विलोचन जन जिय जोऊ।
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक-लाहु पर-लोक-निबाहू। (१)
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम-लखन-सम प्रिय तुलसी-के।
बरनत बरन, प्रीति बिलगाती। ब्रह्म-जीव-सम सहज सँघाती। (२)
नर-नारायन-सरिस सुभ्राता। जग-पालक बिसेषि जनत्राता।
भगति-सुतिय कल करन-बिभूषन। जग-हित-हेतु बिमल बिधु-पूषन। (३)

देखकर शिव इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने स्त्रियोंमें शिरोमणि (प्रधान) पार्वतीको अपने अंगका भूषण (अर्द्धांगिनी) बना बैठाया। 'राम' नामका प्रभाव शिव ही तो भली भाँति जानते हैं तभी तो उसीके बलपर हलाहल (विष) पीकर भी उन्हें ऐसा आनन्द मिला जैसे अमृत घूँट लिया हो। (४) तुलसीदास कहते हैं कि रामकी भक्ति ऐसी है जैसे वर्षा ऋतु, भगवान्‌के सुदास (सच्चे सेवक) ऐसे हैं जैसे धानके पौधे और 'राम' शब्दके दोनों अक्षर (रा+म) ऐसे हैं जैसे सावन और भादोंके महीने (जैसे सावन और भादोंकी वर्षासे धान बढ़ता-फूलता-फलता चलता है वैसे ही सच्चे भक्तोंके हृदय भी 'राम' नाम जपनेसे सदा मगन हुए रहते हैं)॥ १९॥ ये दोनों अक्षर (रा+म) बड़े ही मधुर, मनोहर, सब वर्णोंमें नेत्रके समान बहुत उपयोगी हैं (जैसे आँखोंसे सब कुछ दिखाई देता है वैसे 'राम' नाम जपनेसे तीनों कालों और लोकोंका ज्ञान हो जाता है) और इन्हें (रा+मको) भक्तोंका तो जीवन ही समझिए (उनके बिना भक्त जी नहीं सकते)। इन्हें (रा+म) स्मरण करते रहना भी सबके लिये सुलभ (सरल) है। इनके जपनेसे इस लोकमें भी सब प्रकारका सुख मिलता रहता है और परलोकमें भी बैठे-बिठाए परमानन्द (मोक्ष) मिल जाता है। (१) ये दोनों अक्षर कहने, सुनने और जपनेमें बड़े प्यारे (मधुर) लगते हैं और तुलसीदासको तो ये राम और लक्ष्मणकी (जोड़ी)-के समान प्यारे जान पड़ते हैं। इन वर्णों (रा और म) को अलग-अलग करके इनका वर्णन करनेसे उनका जोड़ा (मेल) ही बिगड़ जाता है (उसका महत्त्व ही नष्ट हो जाता है, संबंध ही टूट जाता है) क्योंकि ये तो ब्रह्म और जीवके समान स्वभावसे ही एक दूसरेमें (इतने) घुले-मिले हैं (कि अलग नहीं किए जा सकते)। (२) ये दोनों अक्षर नर-नारायणके समान ऐसे एक भाववाले हैं कि संसारका पालन करनेके साथ-साथ विशेष रूपसे भक्तोंकी रक्षा भी करते रहते हैं। यदि भक्तिको सुन्दर स्त्री मान लिया जाय तो इन (दोनों अक्षरों)-को उस भक्ति रूपवाली स्त्रीके कानोंके सुन्दर कर्णफूल समझना चाहिए और

२८७ शृणुध्वं भो गणाः सर्वे रामनाम परं बलम्। यत्प्रसादान्महादेवो हालाहलमपीपिबत्॥ —न०पु०

२९५ मुक्तिस्त्री - कर्णपूरौ मुनिहृदयपयःपक्षतीतीर - भूमी
संसारापारसिन्धोः कलिकलुषतमःस्तोमसोमार्कबिम्बौ।
उन्मीलत्पुण्यपुञ्जद्रुमदलितदले लोचने च श्रुतीनां
कामं रामेति वर्णौ शमिह कलयतां सन्ततं सज्जनानाम्॥ —शिवसंहिता

स्वाद - तोप - सम सुगति - सुधाके । कमठ - सेप - सम धर बसुधाके ।
जन-मन मंजु कंज - मधुकर से । जीह - जसोमति हरि-हलधर-से । (४)
दो०—एक छत्र एक मुकुट - मनि , सब बरनन पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नामके , बरन बिराजत दोउ ॥ २० ॥
३०० समुझत सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परसपर प्रभु - अनुगामी ।
नाम - रूप दुइ ईस - उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि-साधी । (१)
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ।
देखियहि रूप नाम - आधीना । रूप - ज्ञान नहिं नाम - विहीना । (२)
रूप बिसेष नाम बिनु जाने । करतल - गत न परहिं पहिचाने ।
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे । आवत हृदय सनेह बिसेखे । (३)

इन्हें संसारका कल्याण करनेवाले (सुख देनेवाले) चन्द्रमा और सूर्यके समान जानना चाहिए । (३) ये (दोनों अक्षर) श्रेष्ठ गति (मोक्ष)-के अमृतके स्वाद और उसके संतोष या तृप्तिके समान हैं (राम-नाम जपनेसे मोक्षका परमानन्द और सन्तोष मिलता है) । जैसे कच्छप और शेष पृथ्वीको सँभाले हुए हैं वैसे ही ये अक्षर 'रा और म' भी पृथ्वीको सँभाले हुए हैं (राम नामका जप होते रहनेसे पृथ्वी टिकी हुई है नहीं तो अबतक कभीकी नष्ट हो गई होती) । इन्हें (रा और मको) भक्तोंके मन[1]-रूपी मानसरोवरका सुन्दर (सुरभित किए रखनेवाला) कमल और (उसपर मँडराता तथा गूँजते रहनेवाला) भौंरा समझना चाहिए । यदि जीभको यशोदा समझ लिया जाय तो ये दोनों अक्षर (यशोदाके प्यारे) श्रीकृष्ण और बलराम हैं । (४) तुलसीदास कहते हैं कि 'राम' शब्दके दोनों अक्षरोंमेंसे एक (र) तो छत्रके समान (ͨ) और दूसरा (म) मुकुट मणि (ं)-के समान सभी वर्णोंपर चढ़े हुए बहुत सुन्दर जान पड़ने लगते हैं ॥२०॥ यद्यपि समझनेके लिये तो (रामका) नाम और नामी (नामवाले राम) दोनों एक ही हैं पर दोनोंमें परस्पर संबंध है स्वामी और सेवक-जैसा । रामका नाम और उनका स्वरूप दोनों ही ईश्वरकी ऐसी उपाधियाँ (विशेषताएँ) हैं जिनका न तो वर्णन किया जा सकता और न जिनका कोई आदि है (यह नहीं कहा जा सकता कि इनमेंसे किसका कब आरंभ हुआ) । यह बात केवल वे ही लोग समझ पा सकते हैं जिनकी बुद्धि निर्मल हो । (१) इनमें से कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह कहना बड़ा भारी अपराध होगा (दोनों बराबर ही हैं) । सज्जन लोग इनके गुणोंके अनुसार ही यह (छोटे-बड़ेका) भेद समझ लेंगे । रूप तो सदा नामके ही आधारपर पहचाना जाता है (किसीका रूप देखकर ही उसका नाम बताया जा सकता है) । (२) जिस वस्तुके रूपका नाम न ज्ञात हो वह यदि हथेलीपर भी ला रक्खी जाय तो उसकी पहचान नहीं की जा सकती, किन्तु यदि रूप न भी देखनेको मिले पर उसका नाम स्मरण करा दिया जाय (बता दिया जाय) तो उसका रूप बड़े प्रेमके साथ हृदयमें आ समाता है । (३) नाम और रूपके सम्बन्धकी यह कहानी

१. मनस्=मन, मानसरोवर । [कोश देखिए]

२९८-९९ निर्वर्णं रामनामेदं केवलं च स्वराधिकम् । सर्वेषां मुकटं छत्रं मकारो रेफव्यञ्जनम् ॥—म०रा०
३०० नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः । पूर्णशुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वन्नामनामिनोः ॥—दु०प्र०

नाम-रूप-गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी।
अगुन-सगुन-बिच नाम सुसाखी। उभय-प्रबोधक चतुर दुभाखी। (४)
दो०—राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह - देहरी - द्वार।
तुलसी भीतर - बाहिरहु, जौं चाहसि उजियार॥ २१॥
३१० नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरत बिरंचि-प्रपंच बियोगी।
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा। (१)
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ।
साधक नाम जपहिं लय लाए। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए। (२)

कहकर नहीं समझाई जा सकती (इसे तो स्वयं अनुभवसे समझनेमें ही आनन्द मिलता है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता)। निर्गुण और सगुणके बीच (मध्यस्थ बनकर) उनका नाम ही ऐसा साक्षी है जो चतुर दुभाषिएके समान दोनों (निर्गुण और सगुण)-का ठीक-ठीक परिचय कराता चलता है (जैसे दो विभिन्न भाषाएँ बोलनेवालोंकी बातें सुनकर दुभाषिया दोनोंको उनकी बातें समझा देता है वैसे ही राम-नामसे निर्गुण और सगुण दोनोंका परिचय मिल जाता है। (४) तुलसीदास तो (सबसे) यही कहते हैं कि यदि आप लोग अपने भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला (मनमें विवेकका और बाहर शीलका प्रकाश) चाहते हों तो (भीतर और बाहरके बीच) मुखकी ड्योढ़ीपर राम-नाम-रूपी मणिका दीपक ला रखिए (अपनी जीभसे रामका नाम जपते रहें तो हृदयमें तथा बाहर (जगत्‌में) दोनों ओर कल्याण होता रहेगा)॥ २१॥ जो योगी पुरुष ब्रह्माकी इस प्रपंचात्मक सृष्टिसे विरक्त हो चुके हैं (सांसारिक झंझटोंसे मुक्त हो चुके हैं), वे मुक्त पुरुष अपनी जीभसे रामका नाम जपते हुए जागते रहते हैं और उस ब्रह्मके सुखका अनुभव करते रहते हैं जिसका न नाम है न रूप, न जिसके समान कोई है, न जिसका वर्णन किया जा सकता और न जिसमें कोई दोष है। (१) जो लोग ईश्वरका गूढ़ रहस्य जानना चाहते हैं वे भी अपनी जीभसे रामका नाम जपकर ही वह गूढ़ रहस्य जान पा सकते हैं। जो साधक लोग लौ लगाकर (सच्चे मनसे) नामका जप करते रहते हैं वे अणिमादिक सिद्धियाँ[1] पाकर सिद्ध हो जाते हैं। (२)

---

१. अणिमादिक सिद्धियाँ : अणिमा : अणुके समान बहुत नन्हा हो जाना; महिमा : बहुत बड़ा हो जाना; गरिमा : बहुत भारी हो जाना; लघिमा : बहुत हलका हो जाना; प्राप्ति : जो इच्छा हो वह प्राप्त कर सकना; प्राकाम्य : किसी वस्तुकी कमी न रह जाना; ईशित्व : सबपर शासन कर सकनेकी शक्ति पा जाना; वशित्व : जिसे चाहे उसे वशमें रखकर उससे जो चाहे वह काम ले सकना।

३०८-९ अन्तर्बहिः प्रकाशस्य यदीच्छा चित्त वर्तते। रसनादेहलीमध्ये धर राममणिद्युतिम्॥—प०स्तो०
३१२ जिह्वयाप्यन्तरेणैव रामनाम जपन्ति ये। ते च प्रेमापराभक्त्या नित्यं रामसमीपकाः॥—म०रा०
३१३ मारणं मोहनं चैव स्तम्भनोच्चाटनादिकम्। यद्यद्वाञ्छति चित्तेन तत्तत्प्राप्नोति वैष्णवः॥—स०त०

जपहिं नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी।
राम-भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा। (३)
चहूँ चतुर - कहँ नाम अधारा। ज्ञानी प्रभुहिं बिसेषि पियारा।
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम - प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ। (४)
दो०—सकल - कामना - हीन जे , राम - भगति - रस - लीन।
नाम सुप्रेम - पियूष - ह्रद , तिन्हहुँ किये मन मीन ॥२२॥
३२० अगुन सगुन दुइ ब्रह्म-सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।
मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते। किये जेहि जुग निज बस निज बूते। (१)

(संकटमें पड़े हुए) दुखी प्राणी भी जब रामका नाम जपने लगते हैं तो उनके सारे संकट दूर हो जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। रामके जो चार प्रकारके भक्त[1] हैं वे पुण्यात्मा, पापरहित और उदार प्रकृतिवाले होते हैं। (३) ये चारों प्रकारके चतुर भक्त केवल नामके ही सहारे मस्त रहते हैं। इनमें भी ज्ञानी तो प्रभुको विशेष प्रिय लगते हैं। यद्यपि चारों युगोंमें तथा चारों वेदोंमें (वैदिक साहित्यमें) नामकी बहुत महिमा बताई गई है पर कलियुगमें तो विशेष रूपसे नामका ही महत्त्व माना गया है। इस (नाम जपने)-के अतिरिक्त कलियुगमें (अपनी रक्षाका) दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। (४) जो मनुष्य मनकी सारी कामनाएँ छोड़कर केवल रामकी ही भक्तिमें मगन रहते हैं वे भी नामके प्रेमके अमृत-कुण्डमें अपने मनको मछली बनाए रखते हैं (जो रामकी भक्तिमें ही मन लगाए रहते हैं उन्हें भी राम-नाममें वैसा ही आनन्द मिलता है जैसा अमृतके सरोवरमें विहार करनेवाली मछलीको मिलता है) ॥ २२ । ब्रह्मके दो स्वरूप हैं—निर्गुण और सगुण, ये दोनों ही अवर्णनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं, किन्तु मेरी समझमें तो रामका नाम इन दोनों स्वरूपोंसे कहीं अधिक बड़ा है क्योंकि वह केवल अपने बल-बूतेपर दोनों स्वरूपोंको अपनेमें समेटे लिए बैठा है (राम-नामसे सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपोंका बोध होता है। यदि निर्गुणके भावसे 'राम' नामका विचार किया जाय तो उसका अर्थ है वह राम, जिसका योगी लोग निर्विकल्प समाधिमें ध्यान करते हैं 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्', और यदि सगुणके भावसे रामके नामको लें तो 'रघुनाथ राम'का ध्यान आ जाता है)। (१) सज्जन लोग मेरे इस कथनको

---

१. चार प्रकारके भक्त : आर्त : दुखी; जिज्ञासु : ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छावाले; अर्थार्थी : अपनी मनोकामना सिद्ध करनेकी इच्छावाले; ज्ञानी : ब्रह्म-ज्ञान जाननेवाले।

---

३१४ रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ म०भा०
३१५ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥
३१६ तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥—गीता
३१७ रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः ॥ —रामाभिरामीय
३१८-१९ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥—भाग०
३२० तद्ब्रह्म द्विविधं प्रोक्तं मूर्तं चामूर्तमेव च। अमूर्तस्याश्रयं मूर्तं परं ब्रह्म नराकृतिः ॥—श्वे०रा०

प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी।
एक दारुगत देखिय एकू। पावक-सम जुग-ब्रह्म-बिबेकू। (२)
उभय अगम जुग सुगम नामतें। कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म रामतें।
ब्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँदरासी। (३)
अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।
नाम-निरूपन नाम-जतनतें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनतें। (४)
दो०—निरगुन तें ऐहि भाँति बड़, नाम-प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार।। २३ ।।
३३० राम भगत-हित नर-तनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी।
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद-मंगल-बासा। (१)

ढिठाई न समझ बैठें। मैंने तो केवल अपने विश्वास, प्रेम और रुचिके अनुसार ही यह कहा है। दोनों प्रकारके (निर्गुण और सगुण) ब्रह्मका ज्ञान अग्निके समान है। निर्गुण स्वरूप तो उस छिपी हुई अग्निके समान है जो काठके भीतर रहती हुई भी दिखाई नहीं देती (केवल रगड़नेपर ही प्रकट हो पाती है) पर सगुण स्वरूप तो उस अग्निके समान है जो प्रकट आगके रूपमें प्रत्यक्ष दिखाई देती है। (२) इन दोनों (निर्गुण और सगुण ब्रह्म)-को जानना बहुत कठिन है पर नाम जपनेवालेको दोनों ही सुगम हो जाते हैं (समझमें आ जाते हैं)। इसीसे मैंने ब्रह्म रामसे राम-नामको ही बड़ा माना है। ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है, सत् (सदा रहनेवाला), चेतन (ज्ञानमय) और घन (घना, केवल) आनन्द ही आनन्द है। (३) यह आश्चर्यकी बात है कि यद्यपि ऐसा विकार-रहित (निर्मल) प्रभु सबके हृदयमें विराजमान है फिर भी संसारके लोग सब दीन और दुखी बने पड़े हुए हैं। यदि बड़े यत्नसे नामका निरूपण किया जाय (स्पष्ट रूपसे नामका महत्त्व समझाया जाय) तो वही (ब्रह्म) ऐसे प्रकट हो जाता है (स्पष्ट हो उठता है) जैसे किसी रत्नकी पूरी पहचान (परख) हो चुकनेपर उसका मूल्य आँकना कठिन नहीं होता। (४) इस प्रकार नामकी महिमा निर्गुण ब्रह्मसे कहीं अधिक है। अपने विचारके अनुसार मैं यह बता देना चाहता हूँ कि रामका नाम सचमुच 'राम'से भी बड़ा है।। २३ ।।

रामने तो भक्तोंके हितके लिये मनुष्यका रूप धारण करके और अनेक कष्ट सहकर साधुओं (सज्जनों)-को सुख पहुँचाया (उनके कष्ट दूर किए) पर भक्त लोग तो प्रेमसे राम-नाम जपते हुए सहजमें ही आनन्द और कल्याणके भांडार बन जाते हैं (स्वयं आनन्दित रहते हैं और दूसरोंको आनन्द देते हुए सबका कल्याण करते रहते हैं)। (१) रामने तो केवल एक तपस्वी (गौतम)-की

---

३२३ अग्निर्यथैको भुवनप्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।। —कठवल्ल्युपनिषद्
३२४ राम त्वत्तोऽधिकं नाम इति मे निश्चिता मतिः। त्वयैका तारितायोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्।।
३३१ सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।।—व०रा०

राम एक तापस - तिय तारी । नाम कोटि खल - कुमति सुधारी ।
रिषि - हित राम सुकेतु - सुताकी । सहित-सेन - सुत कीन्हि बिवाकी । (२)
सहित दोष-दुख दास दुरासा । दलइ नाम जिमि रवि निसि नासा ।
भंजेउ राम आप भव - चापू । भव-भय - भंजन नाम - प्रतापू । (३)
दंडक वन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन-मन अमित नाम किय पावन ।
निसिचर-निकर दले रघुनन्दन । नाम सकल-कलि-कलुष-निकंदन । (४)
दो०—सवरी - गीध - सुसेवकनि , सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल , वेद - बिदित गुन-गाथ ।। २४ ।।
३४० राम सुकंठ विभीषन दोऊ । राखे सरन जान सब कोऊ ।
नाम गरीव अनेक नेवाजे । लोक वेद वर बिरद विराजे । (१)
राम भालु - कपि - कटक बटोरा । सेतु - हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ।
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचार सुजन मन माहीं । (२)
राम सकुल रन रावन मारा । सीय - सहित निज पुर पग धारा ।
राजा राम अवध रजधानी । गावत गुन सुर - मुनि वर बानी । (३)

स्त्री (अहल्या)-का ही उद्धार किया पर नाम जपनेसे तो करोड़ों दुष्टोंकी विगड़ी हुई बुद्धि सुधर गई । ऋषि (विश्वामित्र)-के यज्ञकी रक्षाके समय रामने तो एक सुकेतु यक्षकी पुत्री ताड़काका उसके पुत्र (सुवाहु) और उसकी सेनाके सहित हिसाव चुकता कर डाला (सवको समाप्त कर डाला), (२) पर नाम तो भक्तोंके दोप, दुःख और विपत्तिको इस प्रकार नाश कर डालता है जैसे सूर्य उदय होकर रात्रिका सारा अँधेरा मिटा डालता है । रामने तो स्वयं एक शंकरका ही धनुप तोड़ा, पर उनके नामका प्रताप तो संसारके सारे भय तोड़-मरोड़कर दूर फेंक डालता है । (३) (मेरे) राम तो केवल एक दण्डक वन जाकर ही उसे पवित्र कर पाए पर उनके नामने तो न जाने कितने भक्तोंका मन पवित्र कर डाला । राम तो केवल राक्षसोंकी सेना ही नष्ट कर पाए पर उनका नाम तो कलियुगके सारे पाप नष्ट किए डालता है । (४) रामने तो शवरी, गिद्ध (जटायु) और बड़े-बड़े भक्तोंको ही सद्गति (मुक्ति) दी पर उनके नामने तो न जाने कितने ऐसे दुष्टोंका उद्धार कर डाला जिनका वर्णन वेदों (वैदिक साहित्य) तकमें किया गया है ।। २४ ।। सभी जानते हैं कि रामने तो केवल सुग्रीव और विभीषणको ही अपनी शरणमें ला रक्खा था, पर नामने तो इतने असंख्य दीनोंको शरण देकर उनपर दया की जिनकी प्रशंसा लोक और वेद दोनोंने की है । (१) रामने तो केवल भालू-बन्दरोंकी सेना इकट्ठी करके (समुद्रपर) पुल बाँधनेकी साँसत सही, पर उनका नाम तो ऐसा (जादू-भरा) है कि जपते ही संसारका सागर जा सूखता है (मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है, उसे सांसारिक बन्धनोंसे मुक्ति मिल जाती है) । अव सज्जन लोग ही (नामकी) यह महिमा समझकर विचार कर लें कि मैंने जो कहा है वह ठीक है या नहीं । (२) राम तो रावणको और उसके परिवारको युद्धमें पछाड़कर सीताके साथ अपने नगर (अयोध्या) आकर वहाँ राजा हुए और अयोध्या उनकी राजधानी हुई जिसका वर्णन देवता और मुनि लोग बड़े प्रेमसे करते हैं । (३) पर उनके भक्त तो प्रेमपूर्वक नामका स्मरण करके बिना परिश्रमके ही अज्ञानताकी

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती।
फिरत सनेह-मगन सुख अपने। नाम-प्रसाद सोच नहिं सपने। (४)
दो०—ब्रह्म राम तें नाम बड़, बर-दायक-बर-दानि।
रामचरित सतकोटि-महँ, लिय महेस जिय जानि ॥ २५ ॥
३५० नाम-प्रसाद संभु अबिनासी। साज अमंगल, मंगल-रासी।
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम-प्रसाद ब्रह्म-सुख-भोगी। (१)
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग-प्रिय हरि, हरि-हर-प्रिय आपू।
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत-सिरोमनि भे प्रहलादू। (२)
ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू। (३)
अपत अजामिल-गज-गनिकाऊ। भये मुकुत हरि-नाम-प्रभाऊ।

सारी प्रबल सेना जीतकर प्रेममें मग्न होकर अपने ही आनन्दमें मस्त हुए विचरण करते रहते हैं क्योंकि नामके जपके प्रतापसे उन्हें स्वप्नमें भी किसी बातकी चिन्ता नहीं सता पाती। (४)

'ब्रह्म' रामसे भी रामका नाम बड़ा है क्योंकि वह तो उन (ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि)-को भी वरदान देता रहता है जो दूसरोंको वरदान देते रहते हैं। तभी तो सैकड़ों कोटि (सैकड़ों प्रकारके) राम-चरित्रोंमें-से शंकरने भली भाँति परखकर (छाँटकर), यह राम-नाम निकालकर ग्रहण कर लिया है ॥ २५ ॥ यह 'राम' नामकी ही महिमा है कि (राम नाम जपते रहनेके कारण) अविनाशी शिव इतना अशुभ वेष (चिताभस्म, सर्प, गजकी खाल) धारण करनेपर भी मंगलके भांडार (सबका मंगल करनेवाले) बने बैठे हैं। शुक, सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) ऋषि, सिद्ध, मुनि और योगी लोग, सब नामके ही बलपर तो बैठे ब्रह्मानन्द (-का सुख) भोगे चले जा रहे हैं। (१)

नामका प्रताप यदि कोई ठीक-ठीक समझ पाया तो नारद ही समझ पाए क्योंकि सारा संसार तो नामका जप करके हरिको ही अपना प्रिय बना पाता है पर आप (नारद) तो नाम जपकर विष्णु और शिव दोनोंके प्रिय बन बैठे। नाम जपनेसे ही तो प्रभु (राम)-ने ऐसी कृपा की कि प्रह्लादकी गिनती सर्वश्रेष्ठ भक्तके रूपमें होने लगी। (२) ध्रुवने ग्लानि (अपमानसे दुखी होने)-के कारण (अपनी सौतेली माता सुरुचिके द्वारा तिरस्कृत और दुखी होकर वनमें) हरिका नाम जा जपा, (जिसका फल यह हुआ कि) उन्होंने अचल (कभी न डिगनेवाला) और अनूठा स्थान (ध्रुवलोक) पा लिया। पवनके पुत्र हनुमानको ही लीजिए। वे भी तो यह पवित्र (राम) नाम स्मरण करके ही रामको अपने मुट्ठीमें किए बैठे हैं। (३) अधम अजामील (अन्तिम समय अपने पुत्र नारायणको पुकारनेके कारण), गज (ग्राहसे युद्ध करते हुए थककर नारायण नाम पुकारनेपर) और गणिका (सुग्गेको 'राम राम' सिखाते हुए) सब हरिका नाम जपनेके कारण ही मुक्त हो गए। नामका महत्त्व इतना अधिक है कि मेरे कहे कहा नहीं जा रहा

---

३४६ श्रीमद्रामेति नामैव जीवनानां च जीवनम्। कीर्तनात्सर्वरोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥शु०पु०

कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम - गुन गाई । (४)
दो०—नाम रामको कलपतरु , कलि कल्यान - निवास ।
जो सुमिरत भयो भाग[1] तें , तुलसी तुलसीदास ॥ २६ ॥
३६० चहुँ जुग तीन काल तिहुँ लोका । भये नाम जपि जीव बिसोका ।
बेद - पुरान - संत - मत एहू । सकल - सुकृत-फल राम-सनेहू । (१)
ध्यान प्रथम जुग, मख - बिधि दूजे । द्वापर परितोषत प्रभु पूजे ।
कलि केवल मल-मूल मलीना । पाप-पयोनिधि जन-मन मीना । (२)
नाम - कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग-जाला ।
राम - नाम कलि अभिमत - दाता । हित परलोक, लोक पितु - माता । (३)
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम - नाम अवलंबन एकू ।
कालनेमि कलि कपट - निधानू । नाम सुमति समरथ हनुमानू । (४)

है क्योंकि मैं क्या, स्वयं राम भी बताना चाहें तो इस राम-नामकी महिमा नहीं बता पा सकते । (४) कलियुगमें 'राम' नाम तो कल्प-वृक्षके समान कल्याण करनेवाला है जिसे जपते रहनेके कारण ही बड़े भाग्यसे यह निकम्मा तुलसी भी तुलसीदास (प्रसिद्ध कवि) बन बैठा है ॥ २६ ॥ चारों युगों (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि)-में, तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य)-में और तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल)-में जिन्होंने भी 'राम'के नामका जप किया उन सब जीवोंके सारे दुःख सदाके लिये जाते रहे । वेद, पुराण और सन्त-महात्मा, सबका यही मत है कि जो भी रामसे प्रेम करता है उसे सारे पुण्योंके फल (अपने आप) घर बैठे मिल जाया करते हैं । (१) प्रथम युग (सत्य युग)-में ध्यान करनेसे, द्वितीय युग (त्रेता)-में यज्ञ करनेसे और द्वापरमें पूजा करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं; किन्तु पापोंसे भरा हुआ और निकम्मा कलियुग तो ऐसा पापका समुद्र है कि इसमें मनुष्योंका मन दिनरात मछलीकी भाँति ऊभ-चूभ किए रहता है (पापसे कभी अलग होना ही नहीं चाहता) । (२) ऐसे भयंकर समय (कलिकाल)-में केवल रामका नाम ही ऐसा कल्पवृक्ष है कि उस नामका जप-भर करते रहनेसे संसारके सारे जंजाल अपने आप मिट जाते हैं । कलियुगमें रामका ही नाम ऐसा है कि उसे जपनेसे सभी मनचाहे फल स्वयं मिल जाते हैं इसलिये यह 'राम' नाम परलोकका भी साथी है (परमपद भी दिलाता है) और इस लोकमें भी माता-पिताके समान रक्षा (पालन) करता रहता है । (३) कलियुगमें न तो कर्मके किए कुछ हो पाता है, न भक्तिके और न ज्ञानके । (इस कलियुगमें तो) बस एक मात्र राम नाम ही सबसे बड़ा आधार है । जैसे कपटी कालनेमिको बुद्धिमान् और शक्तिशाली हनुमान्ने धर पछाड़ा था वैसे ही इस कपट-भरे कलियुगके प्रभावको रामका नाम पछाड़ डालता है । (४) रामका नाम ही नृसिंह है, कलिकाल ही हिरण्यकशिपु

१. भाँगतें = यह तुलसीदास, भाँग (-जैसे निकृष्ट पौधे)-से (बढ़कर) तुलसीके (समान पूज्य) बन गया ।

३६२-६५ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥
३६६ कलौ संकीर्तनादेव सर्वपापं व्यपोहति । तस्माच्छ्रीरामनाम्नस्तु कार्यं संकीर्तनं वरम् ॥-श्री०भा०

दो०—राम - नाम नर - केसरी , कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रह्लाद जिमि , पालिहि दलि सुरसाल ।। २७ ।।

३७० भाय कुभाय अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।
सुमिरि सो नाम, राम-गुन - गाथा । करौं नाइ रघुनाथहि माथा । (१)
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ।
राम सुस्वामि, कुसेवक मोसो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो । (२)
लोकहु वद सुसाहिब - रीती । विनय सुनत पहिचानत प्रीती ।
गनी गरीब ग्राम - नर नागर । पंडित मूढ़ मलीन उजागर । (३)
सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर - नारी ।
साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस - अंस - भव परम कृपाला । (४)
सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ।
यह प्राकृत - महिपाल - सुभाऊ । जान - सिरोमनि कोसलराऊ । (५)

है और (रामका नाम) जपनेवाले लोग ही प्रह्लाद हैं और यह रामका नाम ही (नृसिंहके समान) देवताओंके शत्रु (हिरण्यकशिपु, कलिकालके प्रभाव)-को मारकर अपने (प्रह्लाद-जैसे) भक्तोंकी रक्षा करता रहता है ।। २७ ।। अच्छे भावसे, बुरे भावसे, चिढ़कर (अनमने होकर), कोधसे या आलस्यसे, जैसे भी हो रामका नाम जपनेसे जिधर जाइए, कल्याण ही कल्याण होता है । वही (कल्याणकारी) नाम स्मरण करके और रामके चरणोंमें मस्तक नवाकर मैं रामके गुणोंका वर्णन करने चला हूँ । (१)

जिनकी कृपासे कृपा भी नहीं तृप्त हो पाती (कृपा भी उनकी निरन्तर कृपा चाहती रहती है) वे ही (राम) मेरी बिगड़ी सुधारकर (जो दोष होंगे भी उन्हें दूर करके) सब ठीक कर लेंगे । राम ऐसे अच्छे स्वामी हैं कि मेरे जैसे अधम सेवकको भी अपनी ओर देखकर, अपनी मर्यादा समझकर, दयालु होनेके कारण सदा मेरा पालन ही करते रहे हैं । (२) लोक और वेद (वैदिक साहित्य)-में अच्छे स्वामीकी यही रीति प्रसिद्ध है कि वे अपने सेवकोंकी विनति (प्रार्थना) सुनते हैं और उनका प्रेम पहचानते हैं । राजा-रंक, गँवार-चतुर, पंडित-मूर्ख, मलिन-स्वच्छ, (३) सुकवि-कुकवि—सभी प्रकारके नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार राजाकी प्रशंसा करते हैं और ऐसे साधु, सुजान, सुशील तथा ईश्वरके अंशसे उत्पन्न परम कृपालु राजा भी (४) सबकी सुनकर तथा सबकी वाणी, भक्ति, विनयशीलता और व्यवहार परखकर अपने मधुर वचनोंसे सबका यथोचित सम्मान करते रहते हैं । यह तो सभी सामान्य सांसारिक राजाओंका स्वभाव ही है; किन्तु कोशलके राजा राम तो ज्ञानियों (चतुरों)-के शिरोमणि (बहुत ही कुशल राजा) हैं ।

---

३७० कामात्क्रोधाद्भयान्मोहान्मत्सरादपि यः स्मरेत् । परं ब्रह्मात्मकं नाम राम इत्यक्षरद्वयम् ।।
येषां श्रीरामचिन्नाम्नि परा प्रीतिरचंचला । तेषां सर्वार्थलाभश्च सर्वदास्ति शृणु प्रिये ।।—स्क०पु०

३७७ ब्रह्मा जनार्दनो रुद्र इन्द्रो वायुर्यमो रविः । हुतभुग्वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः ।।
एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः । नृपस्य ते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः ।।—वि०पु०

३८० रीझत राम सनेह निसोतें । को जग मन्द मलिन - मति मोतें । (५॥)

दो०—सठ सेवककी प्रीति रुचि , रखिहहिं राम कृपालु ।
उपल किये जल-जान जेहि , सचिव सुमति कपि-भालु ॥ २८ क ॥
हौंहु कहावत सब कहत , राम सहत उपहास ।
साहिब सीतानाथ सों , सेवक तुलसीदास ॥ २८ ख ॥

अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ, नरकहु नाक सिकोरी ।
समुझि सहम मोहिं अपडर अपने । सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने । (१)
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही । भगति मोरि मति स्वामि सराही ।
कहत नसाइ होइ हिय नीकी । रीझत राम जानि जन जी-की । (२)
रहति न प्रभु - चित चूक किये-की । करत सुरति सय बार हिये-की ।
३९० जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली । (३)

---

(५) वे राम यदि रीझते हैं तो केवल शुद्ध प्रेमपर ही रीझते हैं । (इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि बताइए) संसारमें मेरे-जैसा मूर्ख और भौंडी बुद्धिवाला और दूसरा कौन हो सकता है ? (५॥) फिर भी जिस कृपालु रामने पत्थरों तकको नाव बनाकर समुद्रपर तैरा डाला और बंदर-भालुओं-को बुद्धिमान् मंत्री बना डाला, वे मेरे जैसे शठ सेवक (भक्त)-की प्रीति और रुचिकी भी रक्षा करेंगे (मुझपर भी कृपा करेंगे) ॥ २८ क ॥ यद्यपि सब लोग मुझे रामका ही सेवक बताते हैं और मैं भी अपनेको यही (रामका सेवक ही) बताता हूँ तथापि राम (-का बड़प्पन तो देखिए कि वे) यह उपहास (बदनामी) भी सहते चले जा रहे हैं कि सीताके पति जैसे महान् स्वामीको यह तुलसीदास-जैसा (निकम्मा) सेवक कहाँसे आ मिला ॥ २८ ख ॥ यह (रामका सेवक कहलाना) मेरी इतनी बड़ी ढिठाई और पाप है कि इसे सुनकर नरक भी मुझे देखकर नाक सिकोड़ने लगेगा (नरकमें भी मुझे स्थान नहीं मिलेगा) । यह सब समझकर मैं तो स्वयं अपने मनमें बहुत सहमा जा रहा हूँ (ग्लानिसे भरा जा रहा हूँ कि मेरे कारण रामकी जग-हँसाई हुई जा रही है) पर रामने स्वप्नमें भी इसपर कभी कोई ध्यान नहीं दिया । (१) (इतना ही नहीं, उलटे) यह सब सुनकर, देखकर और भली प्रकार जाँच-परखकर भी प्रभु (राम) सदा मेरी भक्ति और बुद्धिकी सराहना ही करते रहे । कोई भी बात, चाहे वह कितनी भी गई-बीती (बुरी) क्यों न हो, यदि सच्चे हृदयसे कही गई हो तो प्रभु उसे अपने भक्तके हृदयकी बात समझकर उसपर बिना रीझे (बिना प्रसन्न हुए) नहीं रहते (प्रसन्न ही हुए रहते हैं) । (२) भक्तोंसे चाहे जितनी भी बड़ी भूल-चूक क्यों न हो जाय पर राम उसपर कभी ध्यान नहीं देते । वे तो बस भक्तोंके हृदयकी अच्छाइयोंको ही सौ-सौ बार दुहराया करते हैं । (देखिए न !) जिस पाप (अपने भाईकी पत्नीको रख लेने)-के कारण रामने बालिको व्याधके समान (वृक्षकी ओटसे) मार डाला था वही कुचाल (खोटी बात) तो सुग्रीवने भी की (अपने बड़े भाई बालिकी पत्नी ताराको घरमें पत्नी बनाकर रख छोड़ा) (३) और वही कार्य विभीषणने भी किया

सोइ करतूति बिभीषन - केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।
ते भरतहिँ भेटत सनमाने। राजसभा रघुबीर बखाने। (४)
दो०—प्रभु तरु-तर कपि डारपर, ते किय आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम-से, साहिब सीलनिधान ॥ २९ क ॥
राम निकाई रावरी, है सबही - को नीक।
जौं यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक ॥ २९ ख ॥
ऐहि बिधि निज गुन-दोष कहि, सबहि बहुरि सिर नाइ।
बरनउँ रघुबर बिसद जस, सुनि कलि-कलुष नसाइ ॥ २९ ग ॥
जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहिं सुनाई।
४०० कहिहौं सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख भानी। (१)
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम-भगति-अधिकारी चीन्हा। (२)
तेहि - सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।

(रावणकी पत्नी मन्दोदरीको पत्नी बनाकर रख लिया), पर रामने उनके इस दोषपर कभी स्वप्नमें भी ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं, जब वनसे लौटकर भरतसे राम मिले उस समय रामने उलटे उनका (सुग्रीव और विभीषणका) सम्मान तो किया ही, साथ ही राजसभामें उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाए (४) (देखिए ! राम कितने महान् हैं कि) कहाँ तो वृक्षके नीचे बैठनेवाले प्रभु और कहाँ पेड़ोंकी डालियोंपर (उछल-कूद करनेवाले) बंदर, पर प्रभुने उन्हें (वानरोंको) भी अपने समान ही बना डाला (उन्हें भी पूज्य बना दिया)। तुलसीदास कहते हैं कि सचमुच रामके समान शीलवान् स्वामी संसारमें कहीं ढूंढे नहीं मिलेगा ॥ २९ क ॥ जिन्होंने नर और वानर तकका भेद मिटा डाला। हे राम ! यदि यह सत्य है कि आप अपने सौजन्यसे सबका भला ही भला करते रहते हैं तो तुलसीदासको पक्का विश्वास है कि मेरा भी कल्याण हुए बिना नहीं रहेगा ॥ २९ ख ॥

इस प्रकार मैं अपने गुण और दोष बताकर और फिरसे सबके आगे सिर नवाकर, सबको प्रणाम करके रामके निर्मल यशका वर्णन करने बैठा हूँ जिसे सुनकर कलिमें उत्पन्न हो उठनेवाले कोई भी दोष कहीं दिखाई नहीं पड़ पावेगा ॥ २९ ग ॥

जो सुहावनी कथा याज्ञवल्क्य मुनिने मुनिवर भरद्वाजको सुनाई थी, उसी संवादका मैं यह वर्णन कर रहा हूँ। सब सज्जन लोग सुखपूर्वक उसे सुनते चलें। (१)

सबसे पहले इस सुन्दर कथाकी रचना शिवने की। फिर कृपा करके उन्होंने यह कथा पार्वतीजीको जा सुनाई। वही कथा शिवने काकभुशुण्डिको रामका भक्त और कथाका अधिकारी जानकर सुना दी। (२) फिर वही कथा काकभुशुण्डिने याज्ञवल्क्य मुनिको कह सुनाई और उन्होंने वही कथा भरद्वाज मुनिको विस्तारसे समझा सुनाई। वे दोनों वक्ता और श्रोता समान शीलवाले,

ते श्रोता-बकता समसीला। समदरसी जानहिं हरि-लीला। (३)
जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतल-गत आमलक-समाना।
औरौ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना। (४)
दो०—मैं पुनि निज गुरु-सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥ ३० क॥
श्रोता बकता ग्याननिधि, कथा राम-कै गूढ़।
४१० किमि समुझौं मैं जीव जड़, कलिमल-ग्रसित बिमूढ़॥ ३० ख॥
तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति-अनुसारा।
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई। (१)
जस कछु बुधि-बिबेक-बल मेरें। तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरें।
निज संदेह-मोह-भ्रम-हरनी। करौं कथा भव-सरिता-तरनी। (२)
बुध-बिश्राम सकल-जन-रंजिनि। राम-कथा कलि-कलुष-बिभंजिनि।

(समान गुण, विचार और स्वभाववाले) और समदर्शी (सबको अपने समान ही समझनेवाले) तो हैं ही, वे हरि (राम) की सारी लीलाएँ भी (भली भाँति) जानते-समझते हैं (३) और वे तीनों कालकी बातें अपने ज्ञानसे इस प्रकार जान लेते हैं जैसे हथेलीपर रक्खे हुए आँवलेको कोई भी भली प्रकार देख और जान लेता है। इस कथाको भली भाँति जानने-समझनेवाले और भी जितने हरिके भक्त हैं वे भी इस कथाको (निरन्तर) अनेक प्रकारसे कहते, सुनते और समझते रहते हैं। (४) वही कथा मैंने सूकरखेत (शूकरक्षेत्र)-में अपने गुरुसे सुनी थी, पर उस समय बहुत बचपन (अज्ञान, अल्पबुद्धि और चंचलता)-के कारण मैं इतना उदासीन था कि सुन लेनेपर भी उसे भली प्रकार समझ नहीं पाया॥ ३०क॥ श्रीरामकी इस गूढ (रहस्यसे भरी हुई) कथाके जितने श्रोता (सुननेवाले) और वक्ता (कहनेवाले) रहे हैं वे सब परम ज्ञानी रहे हैं इसलिये कलियुगमें होनेवाले सारे अवगुणोंसे ग्रसा हुआ मैं मूर्ख और विवेकहीन भला उसे कैसे समझ पा सकता था॥ ३० ख॥ फिर भी जब गुरु बार-बार वही कथा सुनाते चले गए तब बुद्धिके अनुसार (जैसे-जैसे समझ पकती चली गई वैसे-वैसे) वह कथा कुछ-कुछ समझमें बैठने लगी। वही गुरुसे सुनी हुई कथा अब मैं लोक-भाषामें इसलिये कह रहा हूँ कि उससे मेरे मनको सन्तोष हो। (१) मुझमें जितनी बुद्धि और जितना विवेक (भले-बुरेकी पहचान)-का बल है उसीके अनुसार मैं अपने हृदयमें भगवान्की प्रेरणा पाकर वही कथा सुनानेका प्रयत्न करूँगा। मैं अपने मनके सारे सन्देह, अज्ञान और भ्रमको हरनेवाली उस कथाकी रचना कर रहा हूँ, जो (पढ़ने-सुननेवालेको इस) संसार-रूपी नदीको पार करानेवाली नौकाके समान (सहायक) होगी। (२) रामकी कथा (कहने-सुनने)-से पण्डितोंको सुख और संतोष मिलता है, सब (प्रकारके वर्गोंके) मनुष्योंका हृदय प्रसन्न होता है तथा कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले सारे दोषोंका नाश होता है (कलियुगका

रामकथा कलि - पन्नग - भरनी। पुनि विवेक - पावक - कहँ अरनी। (३)
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन - सजीवनि - मूरि सोहाई।
सोइ वसुधा - तल सुधा - तरंगिनि। भय-भंजिनि भ्रम - भेक-भुअंगिनि। (४)
असुर - सेन - सम नरक - निकंदिनि। साधु-विबुध-कुल-हित गिरि-नंदिनि।
४२० संत - समाज - पयोधि - रमा - सी। विस्व-भार-भर अचल छमा-सी। (५)
जम-गन-मुँह-मसि जग जमुना-सी। जीवन - मुकुति - हेतु जनु कासी।
रामहिं प्रिय पावनि तुलसी - सी। तुलसिदास-हित हिय - हुलसी - सी। (६)
सिव-प्रिय मेकल-सैल - सुता - सी। सकल-सिद्धि - सुख - संपति - रासी।
सदगुन-सुरगन - अंब अदिति - सी। रघुबर-भगति - प्रेम - परिमिति-सी। (७)

कोई दोष मनमें नहीं आ पाता)। मोरनी जैसे साँपको खा जाती है वैसे ही रामकी यह कथा भी कलियुग (-में उत्पन्न होनेवाले सारे दोषों)-को समाप्त कर डालती है; और जैसे अरणी (लकड़ीपर रखकर मथानीके समान रगड़कर यज्ञोंके लिये आग प्रकट कर देनेवाली लकड़ी)-से अग्नि प्रकट हो जाती है वैसे ही (यह कथा कहते-सुनते रहनेसे) विवेक (अच्छे और बुरेका ज्ञान) प्रकट होने लगता है। (३) रामकी यह कथा कलियुगमें कामधेनु (सब मनोरथ पूरे करनेवाली) है और सज्जनोंके लिये सुन्दर संजीवनी (सदा सजीव, चेतन बनाए रखनेवाली) बूटी है। यह (कथा) इस पृथ्वीपर (सदा अमर बनाए रखनेवाली) अमृतकी नदी है और जैसे मेंढकको सर्पिणी निगल जाती है वैसे ही यह कथा भी मोहको निगल जाती (सब भ्रम दूर कर देती) है। (४) जैसे पार्वतीने (शुंभ, निशुंभ, महिषासुर, चंड, मुंड, रक्तबीज आदि) असुरोंका नाश करके देवताओंका कल्याण किया वैसे ही यह कथा भी नरकोंका नाश करके (कथा कहने-सुननेवालोंको नरकसे बचाकर) साधुओं (सज्जनों)-का कल्याण करती है। जैसे क्षीर-समुद्र मथनेसे लक्ष्मी प्रकट हुई थीं वैसे ही सन्त-समाज (-के विचार-विमर्श)-से यह कथा निकलती है और जैसे (विश्वके बहुत भारी बोझसे भरे हुए) पर्वतोंको पृथ्वी अपने ऊपर लादे हुए है वैसे ही यह (रामकथा) भी सबका बड़ेसे बड़ा भार (बड़ेसे बड़ा कष्ट) अपने सिरपर झेल लेती (सदाके लिये दूर कर देती) है। (५) जैसे यमुना काली हैं (यमुनाके जलका रंग काला है) वैसे ही इस (रामकथा)-को भी संसारमें यमदूतोंके मुँहपर पोती जानेवाली मसि (कालिख) और जीवोंको मुक्ति देनेके लिये काशी समझो। यह कथा रामको वैसी ही प्यारी है जैसे पवित्र तुलसीदल, और तुलसीदासके लिये माता हुलसीके मातृहृदयके समान कल्याण ही करनेवाली है। (६) यह कथा शिवको वैसी ही प्यारी है जैसे मेकलकी पुत्री (मेकल पर्वतसे निकलनेवाली) नर्मदा, (क्योंकि नर्मदाके पत्थर ही नर्मदेश्वर बनाकर पूजे जाते हैं)। (इतना ही नहीं,) यह सब सिद्धियों तथा सुख-सम्पत्तिकी राशि (निधि) है (इस कथाको सुननेसे सब सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है)। यह कथा सद्गुण-रूपी देवताओंको उत्पन्न करनेवाली माता अदितिके समान है। इस कथाको रामकी भक्ति और प्रेमकी परम सीमा समझना चाहिए (इससे बढ़कर रामकी भक्ति और रामसे प्रेम करनेका कोई दूसरा साधन नहीं हैं)। (७) तुलसीदास कहते हैं कि रामकी कथा हो मंदाकिनी (चित्रकूटके पास बहनेवाली नदी)

दो०—रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय-रघुबीर-बिहारु॥ ३१॥

रामचरित - चिन्तामनि चारू। संत-सुमति-तिय - सुभग-सिंगारू।
जग मंगल गुन-ग्राम राम - के। दानि मुकुति धन धरम धाम-के। (१)
सदगुरु ज्ञान बिराग जोग - के। बिबुध-बैद भव भीम रोग - के।
४३० जननि जनक सियराम - प्रेम - के। बीज सकल व्रत - धरम - नेम-के। (२)
समन पाप - संताप - सोक - के। प्रिय पालक परलोक - लोक - के।
सचिव सुभट भूपति - बिचार - के। कुंभज लोभ - उदधि अपार - के। (३)
काम - कोह - कलिमल - करिगन - के। केहरि - सावक जन-मन-बन - के।
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि - के। कामद घन दारिद - दवारि - के। (४)

है, निर्मल चित्त ही चित्रकूट है और रामके प्रति स्नेह ही वन (कामद-वन) है जिसमें सीताके साथ राम सदा विहार करते रहते हैं (जिसका चित्त निर्मल होगा और जिसके मनमें रामके प्रति अनुराग होगा वही इस रामकी कथाका आनन्द लेते हुए राम और सीताका निरन्तर दर्शन करता रहेगा) ॥ ३१ ॥ रामका चरित्र ऐसे सुन्दर चिन्तामणिके समान है जो सन्तोंकी सुबुद्धि-रूपी स्त्रीका सलोना शृङ्गार है (सन्तोंकी बुद्धि सदा रामकी कथासे सजी रहती है, उनकी बुद्धि राम-कथामें रमी रहती है)। रामके गुण कहने-सुननेसे जगत्का कल्याण होता तथा (कहने-सुननेवालेको) मुक्ति, धन, धर्म और परम धाम (भगवान्के लोकमें वास) प्राप्त होता है। (१) (रामके गुण ही) ज्ञान, वैराग्य और योगके श्रेष्ठ गुरु हैं (रामकी कथा सुनकर ज्ञान, वैराग्य, योगकी शिक्षा मिलती है)। जैसे देवताओंके वैद्य (अश्विनीकुमार) सब रोगोंको समूल नष्ट कर डाल सकते हैं वैसे ही रामके गुण (चरित्रोंका वर्णन) भी संसार-रूपी भयंकर रोगका नाश कर सकते हैं। जैसे माता-पितासे बालकका जन्म होता है, वैसे ही रामका चरित सुनते रहनेसे सीता और रामके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। रामके ये चरित ही सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमोंके बीज हैं (रामके सुन्दर चरितसे ही सारे व्रत, धर्म और नियमोंका पालन करनेकी प्रेरणा मिलती है; रामके चरितके आधारपर ही ज्ञात होता है कि क्या ठीक व्रत है, किसका क्या धर्म है, किसे किस नियमका पालन करना चाहिए)। (२) रामका चरित कहने-सुननेसे पाप, दुःख और शोक सब नष्ट हो जाते हैं तथा इस लोक और परलोकमें सबका पालन (कल्याण) होता है। ये (रामके चरित) ज्ञान-रूपी राजाके शूरवीर मंत्री हैं (जैसे मंत्रीके परामर्शसे राजा ठीक व्यवहार करता है वैसे ही रामचरित सुननेसे शुद्ध ज्ञान बढ़ता है।) और जैसे अगस्त्यने समुद्र सोख लिया था वैसे ही रामके चरितसे लोभ सूख जाता है (मनमें लोभ नहीं आने पाता)। (३) जैसे सिंहके बच्चे वनके हाथियोंको फाड़ खाते हैं वैसे ही रामके चरित भी भक्तोंके मनमें निवास करनेवाले काम, क्रोध और कलियुगके अवगुणों नष्ट कर डालते हैं। रामके चरित तो शिवके भी पूज्य और परम-प्रिय अतिथि हैं (शिव सदा रामके चरितका स्वागत करते रहते, सुननेको तत्पर रहते हैं) तथा दरिद्रताकी दावाग्नि बुझानेके लिये सब कामनाएँ पूर्ण कर डालनेवाले मेघ हैं (जैसे

मंत्र महामनि विषय - व्याल - के । मेटत कठिन कुअंक भाल - के ।
हरन मोह - तम दिनकर - कर - से । सेवक - सालि - पाल जलधर-से । (५)
अभिमत - दानि देव - तरुवर - से । सेवत सुलभ सुखद हरि-हर-से ।
सुकबि - सरद - नभ-मन उडगन-से । राम - भगत - जन जीवन-धन-से । (६)
सकल सुकृत-फल भूरि भोग-से । जगहित निरुपधि साधु लोग-से ।
४४० सेवक - मन - मानस - मराल - से । पावन गंग - तरंग - माल - से । (७)

दो०—कुपथ कुतरक[1] कुचालि कलि , कपट दंभ पाखंड ।
दहन राम-गुन-ग्राम जिमि , इँधन अनल प्रचंड ।।३२ क।।
रामचरित राकेस-कर-सरिस , सुखद सब काहु ।
सज्जन-कुमुद - चकोर - चित , हित बिसेष बड़ लाहु ।।३२ख।।

बादलकी वर्षासे अग्नि बुझ जाती है वैसे ही रामके चरित्र भी सुननेवालेकी दरिद्रता दूर करके उसकी सब कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं । (४) जैसे (विष उतारनेवाले) मन्त्र और महामणि (नागमुद्रा)-से सर्पका विष उतर जाता है वैसे ही रामचरित भी ऐसा परम मन्त्र है जिसके कहने-सुननेसे सांसारिक भोगोंकी सारी इच्छाएँ मिट चलती हैं । (यही क्यों ?) विधाताने सबके ललाटपर जो घोर दुर्भाग्यके लेख लिख डाले हैं वे भी रामका चरित्र कहने-सुननेसे धुल मिटते हैं । जैसे सूर्यकी किरण फूटते ही अँधेरा मिट चलता है वैसे ही रामका चरित्र कहने-सुननेसे मनुष्यका सारा अज्ञान दूर हो जाता है । जैसे बादलोंके पानीसे धान लहलहा उठता है, वैसे ही रामका चरित्र कहने-सुननेसे रामके सेवकोंका भी पालन होता चलता है (उन्हें सुख मिलता रहता है) । (५) रामका चरित्र ऐसा श्रेष्ठ कल्पवृक्ष है कि उससे जो माँगो तत्काल मिल जाय । जैसे सेवा करनेसे विष्णु और शिव सरलतासे प्राप्त हो जाते और सुख देते हैं, वैसे ही रामका चरित्र भी सबके लिये बहुत सुलभ है और उससे सबको सुख ही सुख मिलता है । जैसे शरद् ऋतुका (निर्मल) आकाश, (चारों ओर छिटके हुए) तारों से जगमगा उठता है वैसे ही रामके चरित्रसे सुकविका मन भी जगमगा उठता है । और फिर, रामके ये चरित्र रामके भक्तोंके तो जीवनके धन ही हैं । (६) ये रामके चरित्र ऐसे हैं जैसे सारे पुण्योंके फल हों या कोई अत्यन्त सुखसे भरा भांडार हो । निष्कपट भावसे रामके चरित्रका पाठ करते रहनेसे जगत्का उसी प्रकार कल्याण होता रहता है जैसे सन्त लोग संसारका कल्याण करते रहते हैं । सेवकों (भक्तों)-के मनमें तो रामके चरित्र उसी प्रकार बसे रहते हैं, जैसे मानसरोवरमें हंसके झुण्ड जाकर बसेरा डाले रहते हैं । जैसे गंगाजीकी लहरें सबको पवित्र करती रहती हैं, वैसे ही रामके चरित्र भी सबको पवित्र करते रहते हैं । (७) अग्नि जैसे इँधनको जलाकर राख कर डालती है वैसे ही रामके गुण भी कुपन्थ, कुतर्क, कुचाल और कलियुगके कपट, दम्भ और पाखण्ड सबको जलाकर भस्म कर डालते हैं (रामके गुण सुन लेनेपर मनके सारे दोष अपने आप दूर हो मिटते हैं (।। ३२ क ।। पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणें जैसे सबको सुख देती हैं वैसे ही रामके चरित्र भी यों तो सभीको सुख देते हैं परन्तु कुमुद और चकोरके समान सज्जनोंके चित्त तो वे विशेष रूपसे खिलाए रखते हैं (उनके लिये हितकर और लाभकारी हैं) ।। ३२ ख ।।

---

१. कुतरक कुपथ ।

कीन्हि प्रस्न जेहि भाँति भवानी। जेहि बिधि संकर कहा बखानी।
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा - प्रबंध बिचित्र बनाई। (१)
जेहि यह कथा सुनी नहिँ होई। जनि आचरज करै सुनि सोई।
कथा अलौकिक सुनहिँ जे ज्ञानी। नहिँ आचरज करहिँ अस जानी। (२)
रामकथा कै मिति जग नाहीँ। असि प्रतीति तिन्हके मन - माहीँ।
४५० नाना भाँति राम - अवतारा। रामायन सत - कोटि अपारा। (३)
कलप - भेद हरि - चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन गाए।
करिय न संसय अस उर आनी। सुनिय कथा सादर रति मानी। (४)
दो०—राम अनंत, अनंत गुन, अमित कथा - बिस्तार।
सुनि आचरज न मानिहहिं, जिन्हके बिमल बिचार ॥ ३३ ॥
यहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुरु-पद-पंकज-धूरी।
पुनि सबही प्रनवौं कर जोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी। (१)
सादर सिवहिँ नाइ अब माथा। बरनौं बिसद रामगुन - गाथा।

पार्वतीने शंकरसे जो-जो प्रश्न किए थे और जिस-जिस प्रकार शिवने उन प्रश्नोंका उत्तर दिया था उसका सब कारण मैं विचित्र कथाकी रचनाके सहारे विस्तारसे वर्णन किए डाल रहा हूँ। (१) जिसने यह कथा पहले कभी न सुनी हो उसे यह कथा सुनकर कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि जो भी ज्ञानी लोग यह अलौकिक कथा सुनते हैं, वे जानते हैं और उनके मनमें यह विश्वास भी है कि संसारमें रामकी कथाकी कोई सीमा नहीं है। इसीलिये जब उन्हें रामकी कोई नई कथा सुनाई पड़ जाती है तो वे कभी आश्चर्य नहीं करते। (२) रामने इतनी बार अवतार लिए हैं और रामायण भी (एक दो कोटिकी नहीं) सैकड़ों कोटि (प्रकार)-की है। (३) भिन्न भिन्न कल्पोंमें भगवान्ने (अवतार लेकर) जो-जो सुन्दर-सुन्दर चरित्र किए हैं उनका वर्णन मुनीश्वरोंने भी अनेक प्रकारसे किया है। यह बात भली भाँति समझकर (आप लोग) इस कथापर भी सन्देह मत कर बैठिएगा और आदरके साथ भक्ति-पूर्वक मन लगाकर यह कथा सुनिएगा। (४) जैसे रामका कोई अन्त नहीं है वैसे ही न तो उनके गुणोंका ही कोई अन्त है, न उनकी कथाका ही कोई अन्त है। इसलिये जो लोग निर्मल विचारवाले होंगे वे यह कथा सुनकर कोई आश्चर्य नहीं करेंगे ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सबके सारे सन्देह दूर करके और अपने गुरुके चरण-कमलोंकी धूल सिरपर चढ़ाकर मैं फिर हाथ जोड़कर सबसे सहयोगके लिये विनम्र प्रार्थना करता हूँ, जिससे इस कथाकी रचनामें कहीं कोई दोष न आ पैठे। (१) अब मैं शिवके चरणोंमें आदरके साथ सिर नवाकर रामके निर्मल गुणोंकी कथाका वर्णन प्रारम्भ कर दे रहा हूँ। भगवान् रामके चरणोंमें सिर टेककर सम्वत्

४४५ एकदा पार्वती देवी योगिध्येयपदांबुजम्। अर्धं निमीलिताक्षं तं पर्यपृच्छत्प्रियं सती ॥
भक्तेः रहस्यं मे स्वामिन् कथयस्व विचार्य च। इति पृष्टस्तदा देवः पार्वत्या करुणाकरः ॥
उवाच रामभक्तेस्तु माहात्म्यं पुण्यवर्धनम्। —महारामायण

४४९-५० रामायणान्यनेकानि पृथगग्रे मुनीश्वराः।
भागाद्भारतखंडान्तर्गताकुंभोद्भवादयः। करिष्यन्त्यत्र शतशस्तानि सर्वाणि पार्वति ॥
वाल्मीकीयाद्विना देवि न ज्ञेयानि मनीषिभिः। मानं रामचरित्रस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ॥म०रा०

४५३ चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥—आ० रा०

संवत सोरह सै इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा। (२)
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।
४६० जेहि दिन राम-जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं। (३)
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक - सेवा।
जनम - महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम - कल - कीरति गाना। (४)
दो०—मज्जहिं सज्जन - वृन्द वहु , पावन सरजू - नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर , सुंदर स्याम सरीर ॥ ३४ ॥
दरस परस मज्जन अरु पाना। हरै पाप, कह वेद - पुराना।
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै सारदा बिमल-मति। (१)
राम - धाम - दा पुरी सुहावनि। लोक समस्त विदित अति पावनि।
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तनु, नहिं संसारा। (२)
सब विधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल - खानी।
४७० बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम - मद - दंभा। (३)

१६३१ (सोलह सौ इकतीस विक्रमाब्द)-के चैत्र मासकी नवमी तिथिको मंगलके दिन अयोध्यापुरीमें मैं रामका यह चरित्र लिखना प्रारंभ कर रहा हूँ। (२) वेद (वैदिक साहित्य, श्रुति, स्मृति, पुराण, आदि) कहते हैं कि जिस दिन रामका जन्म हुआ उस दिन (प्रत्येक चैत्र शुक्ला नवमीको) सारे तीर्थ चलकर यहाँ अयोध्यामें आ डटते हैं। (३) उस दिन असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब यहाँ आ-आकर रामकी सेवामें जुट जाते हैं। उस दिन (ये) सभी सुजान वहाँ रामका जन्मोत्सव मनाते और उनका सुयश गाते हैं (गुणोंका कीर्तन करते हैं)। (४) उस दिन सज्जनोंके झुण्डके झुण्ड सरयूके पवित्र जलमें स्नान करके रामके सुन्दर साँवले शरीरका हृदयमें ध्यान करते हुए रामके नामका जप किया करते हैं ॥ ३४ ॥

वेद और पुराण कहते हैं कि इस सरयू नदीका दर्शन और स्पर्श करने, इसमें स्नान करने और इसका जल पीनेसे प्राणीके सारे पाप दूर हो मिटते हैं। यह नदी इतनी अधिक पवित्र है और इसकी महिमा भी इतनी असीम है कि निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती भी उसका वर्णन करना चाहें तो उनके किए भी नहीं हो पा सकता। (१)

यह सुन्दर अयोध्यापुरी सभी लोकोंमें अत्यन्त प्रसिद्ध और पवित्र है। यहाँ जो भी आकर बस रहता है उसे बिना कुछ किए-धरे अन्तमें रामका धाम (साकेत) प्राप्त हो ही जाता है। इस संसारमें चारों आकर (प्रकार)-के (अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज) जितने भी अगणित जीव हैं उनमें-से जो भी अयोध्यामें आकर शरीर छोड़ दे उसे फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता (वह भगवान्के साकेत धाम पहुँच जाता है)। (२) ऐसी अयोध्या-पुरीको सब प्रकारसे सुन्दर, सम्पूर्ण सिद्धियाँ दे डालनेवाली और सदा सब प्रकारका कल्याण करनेवाली जानकर ही मैंने यहीं अयोध्यामें ही यह निर्मल राम-कथा लिखनी आरम्भ की है जिसे सुनते ही काम, मद और दम्भ सब तत्काल भाग खड़े होते हैं। (३) इस कथाका नाम भी मैंने 'रामचरितमानस' रक्खा है क्योंकि यह नाम

रामचरित - मानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइय बिश्रामा।
मन-करि विषय - अनल - वन जरई। होइ सुखी जौं यहि सर परई। (४)
रामचरित - मानस मुनि-भावन। विरचेउ संभु सुहावन पावन।
त्रिविध - दोष - दुख - दारिद - दावन। कलि-कुचालि-कुल-कलुष-नसावन। (५)
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ[1] सिवा-सन भाखा।
तातें रामचरित - मानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर। (६)
कहौं कथा सोई सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई। (६।।)
दो०—जस मानस जेहि विधि भयउ, जग - प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहौं प्रसंग सब, सुमिरि उमा - बृषकेतु ।। ३५ ।।
४८० संभु - प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित - मानस, कवि तुलसी।
करइ मनोहर मति - अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी। (१)
सुमति भूमि, थल हृदय अगाधू। वेद - पुरान उदधि, घन साधू।

कानोंमें पड़ते ही सुननेवालेको पूर्ण शान्ति मिल जाती है। जैसे जंगलमें लगी हुई आगकी तौंससे झुलसा हुआ हाथी सरोवरमें पहुँचकर (उसके जलकी ठंढकसे) सुखी हो जाता है वैसे ही संसारकी विषय-वासनाओंसे झुलसा हुआ मन भी इस मानसमें पहुँचकर (मानस पढ़कर) शान्त, सन्तुष्ट और तृप्त हो जाता है। (४) मुनियोंको प्रिय लगनेवाले इस सुन्दर और पवित्र राम-चरित-मानसकी रचना सबसे पहले शिवने की थी। यह मानस तीनों प्रकारके (दैहिक, दैविक भौतिक) तापों, और दरिद्रताओंको तथा दुष्ट कलियुगके कारण उत्पन्न सारे कुकर्मों और पापोंका नाश कर डालता है। (५) इसे रचकर पहले महादेवने (बहुत दिनों-तक) अपने मानस (मन)-में छिपाए रक्खा और जब-जब वे उचित अवसर पाते रहे तब-तब वे उस मानसकी कथा पार्वतीको सुनाते रहे। (शिवने इसे पहले अपने मानसमें रक्खा था इसलिये) शिवने बहुत सोच-समझकर और बड़ी प्रसन्नताके साथ इसका यह बढ़िया नाम राम-चरित-मानस रख डाला। (६) वही रामचरित-मानसकी सुन्दर और मनभावनी कथा ही मैं भी यहाँ आपको सुनाने चला हूँ। देखो सज्जनो! (आपसे प्रार्थना है कि) आप लोग आदरपूर्वक मन लगाकर यह कथा सुनिएगा। (७) इस मानसका जो रूप है, जिस प्रकार इसकी रचना की गई तथा जिस कारण संसारमें इसका प्रचार हुआ वह सब कथा मैं उमा और महेश्वरको स्मरण करके आपको सुनाए डाल रहा हूँ।। ३५ ।।

शिवकी कृपासे तुलसीदासके हृदयमें सहसा ऐसी सद्बुद्धि जाग उठी कि वह (बातकी बातमें) रामचरित-मानसका कवि बन बैठा। यद्यपि अपनी बुद्धिके अनुसार तो मैंने इसे बहुत ही सुन्दर ढंगसे रचा है फिर भी सज्जनो! (आपसे प्रार्थना है कि) आप लोग मन लगाकर ध्यानसे इसे सुनते चलिएगा और (इसमें जहाँ कहीं कोई त्रुटि दिखाई दे) वहाँ उसे सुधारते चलिएगा। (१)

अच्छी निर्मल बुद्धि ही राम-चरित-मानसकी भूमि है। हृदय ही उस भूमिमें खोदा हुआ गहरा स्थल (खोदा हुआ सरोवरका गढ़ा) है। वेद और पुराण ही वे समुद्र हैं जिनसे (जल लेकर)

---

१. सुसमउ पाइ।

वरषहिं राम-सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मंगलकारी। (२)
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करै मलहानी।
प्रेम-भगति जो वरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई। (३)
सो जल सुकृत-सालि-हित होई। राम-भगत-जन-जीवन सोई।
मेधा-महि-गत सो जल पावन। सकिलि स्रवन-मग चलेउ सुहावन। (४)
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना। (४॥)

दो०—सुठि सुंदर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि।
४९० तेइ ऐहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥ ३६॥

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान-नयन निरखत मन माना।
रघुपति-महिमा अगुन अवाधा। वरनव सोइ वर वारि अगाधा। (१)
राम-सीय-जस सलिल सुधा-सम। उपमा वीचि-विलास मनोरम।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई। (२)

साधु-सन्त ही मेघ बनकर रामके सुन्दर, मधुर, मनोहर और कल्याणकारी यशका जल ला बरसाते हैं (साधु और सन्त ही वेद और पुराणोंसे रामका निर्मल यश ढूँढ़-ढूँढ़कर निर्मल बुद्धिवाले मनुष्योंको सुनाकर उनके हृदयमें रामकी कथा ला भरते हैं)। (२) भगवान्की इस सगुण लीलाका विस्तारपूर्वक वर्णन ही रामके यशके जलकी वह स्वच्छता है जो मनके सारे विकार मिटा डालती है। जिस प्रेम-पूर्ण भक्तिका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता वही भक्ति इस जलकी मधुरता और शीतलता है (३) रामके सुयशका वह जल ही सत्कर्मका धान पनपनेमें सहायक होता है (रामका यह चरित कहने-सुननेसे पुण्यके काम करनेकी वृत्ति वैसे ही बढ़ चलती है जैसे वर्षासे धान लहलहा उठता है), (४) और रामके भक्तोंका तो यह जीवन ही है। वही पवित्र जल मेरी बुद्धिकी धरतीपर बरसकर, सिमिट-सिमिटकर कानके सुहावने मार्गसे बहकर आता हुआ मेरे मानस (हृदय) के श्रेष्ठ गहरे गढ़ेमें भर-भरकर थिरा गया (स्थिर हो गया)। वही धीरे-धीरे कुछ समयमें, सुखदायी, शीतल, बहुत स्वच्छ और रुचिकर (स्वादिष्ट) होता चला गया। (४॥) इस कथामें मैंने अपनी बुद्धिसे विचारकर जो अत्यन्त सुन्दर और उत्तम चार संवाद (शिव और पार्वतीके, काक-भुशुण्डि और गरुडके, याज्ञवल्क्य और भरद्वाजके तथा तुलसीदास और सन्त-समाजके) रचे हैं, वे ही इस पवित्र और सुन्दर सरोवरके चार मनोहर घाट हैं॥ ३६॥ सातों काण्ड (बाल, अयोध्या, आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका और उत्तरकाण्ड) ही इस मानसरोवरकी सुन्दर सात पैड़ियाँ हैं जिन्हें ज्ञानके नेत्रोंसे देखते ही (भली प्रकार समझते ही) मन प्रसन्न हो उठता है। इसमें रामकी जिस निर्गुण (सत्व, रजस् और तमस्से रहित) और बाधाओंसे रहित महिमाका वर्णन किया जायगा वही इसके निर्मल जलकी अथाह गहराई है। (१) राम और जानकीका विवाह ही इसमें अमृतके समान मधुर जल है। इसमें जो उपमाएँ दी गई हैं, वे ही जलकी तरंगोंको लहराती हुई लहरें हैं। इसकी सुन्दर चौपाइयाँ ही इसमें छाई हुई पुरइन (कमलके पत्ते) हैं। इसमें स्थान-स्थानपर कविताकी जो नई-नई युक्तियाँ (चमत्कार-योजनाएँ) दिखाई गई हैं वे ही मोती उपजानेवाली सीपियाँ हैं। (२) इसमें जो मनोहर छन्द, सोरठे और दोहे हैं वे ही ऐसे

छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल - कुल - सोहा।
अरथ अनूप, सुभाव, सुभासा। सोई पराग, मकरंद, सुवासा। (३)
सुकृत - पुंज मंजुल अलि - माला। ज्ञान - विराग - विचार मराला।
धुनि अवरेव कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते वहु भाँती। (४)
अरथ धरम कामादिक चारी। कहव ज्ञान विज्ञान विचारी।
५०० नव रस जप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा। (५)
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल-बिहग समाना।
संत-सभा चहुँ दिसि अँवराई। श्रद्धा रितु वसंत सम गाई। (६)
भगति - निरूपन विविध विधाना। छमा - दया द्रुम[1] लता-विताना।
सम - जम - नियम फूल, फल ज्ञाना। हरिपद रस-वर[2] बेद वखाना। (७)

रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं, जिनके अनुपम अर्थ ही उनके पराग हैं। उनका एकसे एक बढ़िया भाव ही मकरन्द (रस) है और सुहावनी, कानोंको भली लगनेवाली भाषा ही उसकी सुगन्ध है। (३) इसमें जो पुण्योंका वर्णन किया गया है वही भौरोंकी सुन्दर पाँत है। ज्ञान और वैराग्यके विचार ही इसमें कूजनेवाले हंस हैं। इसकी कवितामें ध्वनि (व्यंजना), वक्रोक्ति और अनेक प्रकारके गुण[3] (प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि) ही इसकी सुन्दर मछलियाँ हैं। (४) अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान-विज्ञानका विचार-पूर्वक वर्णन, काव्यके सभी रस[4], जप, तप, योग और वैराग्यके प्रसंग ही इस सुहावने सरोवरके जलचर जीव हैं। (५) इसमें पुण्यात्माओं, साधु-सन्तों तथा रामनामके गुणोंके जो वर्णन हैं, वे ही सब इस सरोवरके रंग-बिरंगे जल-पक्षी हैं। सन्तोंकी सभा ही इस सरोवरके चारों ओर छाई हुई अमराई है। श्रद्धा ही इसे सदा सुहावना बनाए रखनेवाली वसन्त ऋतु है। (६) इसमें अनेक प्रकारसे भक्तिका निरूपण और क्षमा, दया, आदिके जो वर्णन किए गए हैं वे ही चारों ओर छाए हुए वृक्ष और लताओंके मण्डप हैं। शम (मनकी शान्ति), यम[5] और नियम[6] ही इन लताओंके फूल हैं। ज्ञान ही इन वृक्षों और लताओंके फल हैं; और भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम उत्पन्न होना ही इन फलोंका रस है— ऐसा ही वेदों (वेद, शास्त्र, पुराण आदि)-में स्थान-स्थानपर समझाया गया है। (७) अन्य अनेक प्रसंगोंकी जो दूसरी-दूसरी कथाएँ इसमें कही गई

---

१. छमा-दया-दम = क्षमा, दया और दम ही लताओंके मंडप हैं।
२. हरि-पद-रति-रस = भगवान्‌के चरणोंमें प्रेमको ही वेदोंने परमानन्द बताया है।
३. गुण : प्रसाद, माधुर्य, ओज, श्लेष, समता, समाधि, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता, कान्ति।
४. शृङ्गार, हास्य, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, भक्ति (शान्त, वात्सल्य, सख्य, दास्य, माधुर्य)।
५. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।
६. शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान।

औरौ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा। (७॥)
दो०—पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन, सनेह - जल, सींचत लोचन चारु॥ ३७॥
जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ यहि ताल चतुर रखवारे।
सदा सुनहिं सादर नर - नारी। तेइ सुरबर मानस - अधिकारी। (१)
५१० अति खल जे बिषई बग कागा। ऐहि सर निकट न जाहिं अभागा।
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय - कथा - रस नाना। (२)
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे।
आवत यहि सर अति कठिनाई। राम - कृपा - बिनु आइ न जाई। (३)
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्हके बचन बाघ - हरि - ब्याला।
गृह - कारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला। (४)
बन बहु बिषम मोह - मद - माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना। (४॥)
दो०—जे श्रद्धा - संबल - रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन कहँ मानस अगम अति, जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥ ३८॥

हैं वे सब इस सरोवरके सुग्गे, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं। (७॥) यह कथा पढ़नेसे जो रोमांच हो-हो उठता है वही इस सरोवरके चारों ओर लगी हुई वाटिका, उपवन और वन हैं। यह कथा सुननेसे जो सुख प्राप्त होता है, वही यहाँके मनहर पक्षियोंका विहार है। भक्तका स्वच्छ मन ही यहाँका माली है और (कथा पढ़ने-सुननेसे श्रोता और पाठकके) नेत्रोंसे जो प्रेमके आँसू बह निकलते हैं वही उस वनको सींचनेवाला जल है॥ ३७॥ जो लोग एकाग्र मनसे यह चरित्र वर्णन करते रहते हैं, वे ही इस तालके चतुर रखवाले हैं। जो स्त्री-पुरुष आदरपूर्वक यह कथा सुनते हैं वे ही इस मानसके सच्चे अधिकारी देवता हैं। (१)

जो लोग बहुत दुष्ट और विषयी (लम्पट) हैं, वे अभागे ही ऐसे बगले और कौवे हैं जो इस सरोवरके पास-तक नहीं फटक पाते, क्योंकि इस मानसरोवरमें (उनकी रुचिकी वस्तुएँ) घोंघे, मेंढक और सेवारके समान विषय-रसकी कथाएँ ढूँढे नहीं मिल पातीं। (२) इसलिये जो बेचारे कौओं और बगलोंके समान जो विषयी लोग हैं, उनका मन यहाँ आनेको ही नहीं करता। यों भी इस मानसरोवर-तक आनेमें बड़ी अड़चनें हैं क्योंकि रामकी कृपा हुए बिना यहाँ कोई आ ही नहीं पा सकता। (३) (और फिर,) कठिन कुसंग ही जिनके लिये बड़ा भयानक मार्ग है और जिनके वचन ही बाघ, सिंह और सर्पके समान प्राण-घातक होते हैं; झंझटोंसे भरी हुई गृहस्थीके काम-काज ही जिनके लिये बड़े-बड़े दुर्गम पहाड़ बने खड़े रहते हैं; (४) मोह, मद और मान (झूठी शान) ही जिनके लिये भयंकर वन हैं, (जिनके मनमें उठनेवाले) अनेक प्रकारके कुतर्क ही भयानक नदियाँ हैं; (४॥) जिनके साथ श्रद्धाका सम्बल (मनमें श्रद्धा) नहीं है; जो कभी सन्तोंके साथ उठते-बैठते नहीं; और जो रामसे स्नेह नहीं करते, उनके लिये तो इस मानस-तक पहुँच पाना और भी अधिक कठिन है (मनमें श्रद्धा, सत्संग और भगवत्प्रेमके बिना कोई भी व्यक्ति मानसका अधिकारी नहीं हो सकता)॥ ३८॥ यदि कोई ऐसा मनुष्य कष्ट उठाकर

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई।
५२० जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहु न मज्जन पाव अभागा। (१)
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना।
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर-निन्दा करि ताहि बुझावा। (२)
सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही।
सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई। (३)
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल चाऊ।
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करौ मन लाई। (४)
अस मानस मानस-चख चाही। भइ कबि-बुद्धि बिमल अवगाही।
भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम - प्रमोद प्रवाहू। (५)
चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल-जस-जल-भरिता सो।
५३० सरजू नाम सुमंगल - मूला। लोक - वेद - मत मंजुल कूला। (६)
नदी पुनीत सुमानस - नंदिनि। कलि-मल-तृन-तरु-मूल - निकंदिनि। (६॥)

वहाँतक पहुँच भी जाय तो वहाँ पहुँचते ही उसे निद्रा-रूपी जूड़ी आने लगती है (मानसकी कथा सुनने पहुँच भी जाय तो उसे नींद सताने लगती है); उसके हृदयको मूर्खताका कड़ाकेका जाड़ा आ कँपाने लगता है। ऐसे अभागे उस मानस-तक पहुँचकर भी उसमें डुबकी नहीं लगा पाते (मानसकी कथा जहाँ होती है वहाँ पहुँचकर भी उसमें मन नहीं लगाते)। (१) उस सरोवर (मानस)-में स्नान और आचमनकी बात तो दूर रही, उलटे बड़ी ऐंठके साथ वे वहाँसे उलटे पैरों लौट आते हैं। यदि कोई उनसे उस सरोवरके विषयमें पूछ-ताछ भी करता है तो वे सरोवर (मानस)-की निन्दा करके उसमें दोष ही दोष निकाल सुनाते हैं। (२) पर जिसपर राम अपनी कृपाकी मधुर दृष्टि एक बार भी फेर बैठते हैं उसके मार्गमें इनमें से कोई भी विघ्न कोई अड़चन नहीं डाल पाते और वही व्यक्ति इस सरोवरमें आकर आदरपूर्वक स्नान कर पा सकता है। भयानक त्रिताप (दैहिक, दैविक और भौतिक ताप) उसे कष्ट नहीं दे पाते। (३) जिनके हृदयमें रामके चरणोंसे सच्चा प्रेम है ऐसे भक्त तो इस सरोवरको छोड़कर कभी कहीं जाते ही नहीं (वे श्रद्धापूर्वक मानसका पाठ करते ही रहते हैं)।

इसलिये भाई ! यदि इस सरोवरमें स्नान करनेका मन हो ही तो मन लगाकर पहले जाकर सत्संग तो करो, (४) क्योंकि (मैं अपने अनुभवकी बात बताता हूँ कि) ऐसे मानसरोवरको हृदयके नेत्रोंसे देखने और उसमें डुबकी लगानेसे इस कवि (तुलसीदास)-की बुद्धि भी निर्मल हो उठी, उसका हृदय भी आनन्द और उत्साहसे भर उठा और उसके हृदयमें प्रेम तथा आनन्दका ऐसा प्रवाह उमड़ चला (५) कि उसके हृदय-रूपी सरोवरसे ऐसी सुन्दर कविता-रूपी सरयू बह निकली जिसमें रामके निर्मल यशका ऐसा (निर्मल) जल लहराए जा रहा है जो सभी प्रकारका कल्याण और मङ्गल करनेवाला है। लोगोंका मत और वेदका मत ही इस सरयूके दो सुन्दर तट हैं। (६) मान-सरोवर (मानस)-की यह सुन्दर कविता-रूपी कन्या सरयू ऐसी पवित्र है कि यह कलियुगके दोष-रूपी तिनकों, वृक्षों तथा जड़ोंको उखाड़-उखाड़कर दूर बहा पहुँचाती है। (६॥)

दो०—श्रोता त्रिबिध समाज पुर, ग्राम, नगर दुहुँ कूल।
संत - सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल - मूल ॥ ३९ ॥
राम - भगति - सुर-सरितहि जाई। मिली सुकीरति - सरजु सुहाई।
सानुज राम - समर - जस पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन। (१)
जुग बिच भगति देव - धुनि - धारा। सोहति सहित सुबिरति[१]-बिचारा।
त्रिबिध ताप - त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिंधु समुहानी। (२)
मानस - मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन - मन पावन करिही।
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि - तीर - तीर बन बागा। (३)
५४० उमा - महेस - बिबाह - बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती।
रघुबर - जनम - अनंद - बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई। (४)
दो०—बाल-चरित चहुँ - बंधु के, बनज बिपुल बहुरंग।
नृप - रानी-परिजन सुकृत, मधुकर, बारि - बिहंग ॥ ४० ॥

तीनों प्रकारके (जीवन्मुक्त, विरक्त और सांसारिक) श्रोताओंके समाज ही इस सरयूके दोनों तटोंपर बसे हुए पुर (छोटे टोले), गाँवँ और नगरोंके समूह हैं और सन्तोंकी सभा ही सब प्रकारका मंगल और कल्याण करनेवाली (इस कविता-रूपी सरयूके तटपर बसी हुई) अनुपम अयोध्या है ॥ ३९ ॥ (एक ओरसे) रामकी सुन्दर कीर्तिसे भरी हुई यह सुहावनी कविताकी सरयू नदी राम-भक्तिकी गङ्गामें जा मिली (और दूसरी ओरसे) रामके छोटे भाई लक्ष्मणके साथ रामने रावणके साथ युद्ध करके जो यश प्राप्त किया उस रामके समर-यशका विशाल महानद शोण उस (राम-भक्तिकी गंगा)-में आ मिला। (१) इन दोनों (सरयू और शोण अर्थात् रामकी कीर्ति और समर-यश)-के बीचमें भक्तिकी गङ्गाकी धारा सच्चे वैराग्यके विचारके साथ लहराती चली जाती है। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकारके तापोंको डराती (नष्ट करती) चलनेवाली यह त्रिधारा (सरयू, गंगा और शोण अर्थात् रामकी कीर्ति, रामकी भक्ति और रामके पराक्रमकी कथा) रामके स्वरूपके समुद्रकी ओर बह चलती है (रामकी कीर्ति, रामकी भक्ति और रामका पराक्रम जान लेनेपर ही रामके स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान हो पाता है)। (२) रामकी कीर्ति-रूपी जो सरयू मानससे निकली है (राम-चरित-मानससे ही रामकी जिस कीर्तिका परिचय मिलता है), वह राम-भक्तिकी गङ्गासे मिलकर सज्जनोंका मन पवित्र कर डालतीहै (रामकी कीर्ति सुननेसे भक्ति होती और सज्जनोंका मन पवित्र हो जाता है)। इसके बीच-बीचमें जो अनेक प्रकारकी विचित्र कथाएँ हैं वे ही इस कविता-रूपी सरयूके किनारे-किनारे फैले हुए अनेक वन और उपवन हैं; (३) शिव-पार्वतीके विवाहके बाराती ही इस सरयूके अनेक प्रकारके अगणित जल-जन्तु हैं। रामके जन्म-कालकी आनन्द-बधाई ही इस सरयूमें पड़ी हुई मनोहर भँवरें और लहरें हैं; (४) चारों भाइयोंके बाल-चरित्र ही इसमें खिले हुए बहुतसे रंग-बिरंगे कमल हैं; राजा दशरथ तथा रानियाँ (कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा) और उनके परिवारके पुण्य ही उन कमलोंपर मँडराते रहनेवाले भौंरे और जलमें विचरते रहनेवाले जल-पक्षी

---

१. सुबिरति-सहित।

सीय - स्वयंवर - कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई।
नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका। (१)
सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक - समाज सोह सरि सोई।
घोर धार भृगुनाथ - रिसानी। घाट सुबद्ध राम - बर - बानी। (२)
सानुज राम - बिवाह - उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू।
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं। (३)
५५० रामतिलक - हित मंगल साजा। परब - जोग जनु जुरे समाजा।
काई कुमति केकई - केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी। (४)
दो०—समन अमित उतपात सब, भरत - चरित जप - जाग।
कलि-अघ-खल - अवगुन-कथन, ते जल - मल, बग, काग ॥ ४१ ॥
कीरति - सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि, पावनि भूरी।
हिम हिमसैल-सुता - सिव - ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उछाहू। (१)
बरनब राम - बिवाह - समाजू। सो मुद - मंगलमय रितुराजू।
ग्रीषम दुसह राम - बन - गवनू। पंथ - कथा खर आतप - पवनू। (२)
बरषा घोर निसाचर - रारी। सुर - कुल - सालि-सुमंगल-कारी।

हैं; ॥ ४० ॥ सीताके स्वयंवरकी मनोरम कथा ही इस नदीपर सुहावनी छटा बनकर छाई हुई है; अनेक प्रकारके विचारपूर्ण प्रश्न ही इस नदीमें तैरते हुए डोंगे हैं और उन प्रश्नोंके समाधान ही डोंगे खेते चलनेवाले चतुर केवट हैं। (१) यह कथा सुननेके पश्चात् जो लोग आपसमें राम-चर्चा करते हैं; वे ही इस नदीके पार जानेवाले भले यात्री हैं। परशुरामका क्रोध ही इस नदीकी प्रचण्ड धारा है और रामके शान्त वचन ही इस नदीपर बँधे हुए मनोहर घाट हैं। (२) भाइयोंके सहित रामका विवाह ही इस कथाकी नदीकी ऐसी कल्याण करनेवाली उमड़ चलनेवाली बाढ़ है जिससे सबको सुख ही सुख मिलता है (रामके विवाहकी कथा सुननेसे सबका कल्याण होता और सबको सुख मिलता है); जो पुण्यात्मा लोग यह कथा कहकर और सुनकर हर्षित होते रहते हैं वे ही इस रामकी कीर्त्तिकी सरयूमें प्रसन्न मनसे स्नान करनेवाले स्नानार्थी हैं। (३) रामके राजतिलकके जो मंगल साज सजाए गए हैं वे ही पर्वके दिन एकत्र होनेवाले यात्री हैं; और कैकेयीकी कुबुद्धि ही इस नदीकी काई है, जिसके कारण इतना भारी संकट (रामका वनवास) आ खड़ा हुआ। (४) सारे उत्पात शान्त कर डालनेवाला भरतका चरित्र ही इस नदीके तटपर किए हुए जप और यज्ञ आदिका समूह है। स्थान-स्थानपर कलियुगके पापों और दुष्टोंके दोषोंके जो वर्णन किए गए हैं वे ही इस नदीके कीचड़, बगले और कौवे हैं ॥४१॥ रामकी कीर्तिकी यह नदी सब ऋतुओंमें सबको बड़ा सुख देती है और सदा सुन्दर और परम पवित्र बनी रहती है। इस राम-चरित्रकी नदीमें शिव और पार्वतीका विवाह ही हेमन्त ऋतु है; रामका जन्मोत्सव ही सबको सुहावनी लगनेवाली शिशिर ऋतु है; (१) रामके वन-गमनका वर्णन ही ग्रीष्म ऋतु है और वनके मार्गकी कथा उस ग्रीष्म ऋतुकी चिलचिलाती धूप और सनसनाती लू है। (२) राक्षसोंके साथ रामका घोर युद्ध ही वर्षा ऋतु है, जो देवताओंका उसी प्रकार

राम - राज सुख, विनय, बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई। (३)

५६० सती - सिरोमनि सिय - गुन - गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा।

भरत - सुभाउ सु सीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। (४)

दो०—अवलोकनि, बोलनि, मिलनि , प्रीति, परसपर हास।

भायप भलि चहुँ बंधु - की , जल - माधुरी, सुबास ॥ ४२ ॥

आरति, बिनय, दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी।

अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस - पियास - मनोमल-हारी। (१)

राम - सुप्रेमहि पोषक पानी। हरत सकल कलि - कलुष-गलानी।

भव - श्रम - सोषक तोषक तोषा। समन दुरित-दुख - दारिद - दोषा। (२)

काम - कोह - मद - मोह - नसावन। बिमल - बिवेक- बिराग - बढ़ावन।

सादर मज्जन - पान किए तें। मिटहिँ पाप - परिताप हिए तें। (३)

५७० जिन्ह यहि बारि न मानस धोये। ते कायर कलि - काल बिगोए।

तृषित निरखि रबिकर - भव बारी। फिरिहहिँ मृग-जिमि जीव दुखारी। (४)

कल्याण करती है जैसे वर्षाके जलसे धान लहलहा उठता है। रामके राज्यमें जो सुख, आपसका आदर और सबके सम्मानकी भावना है वही सबके मनको सुख देनेवाली मनोहर निर्मल शरद् ऋतु है। (३) सतियोँमें श्रेष्ठ सीताके गुणोंकी गाथा ही इस नदीका निर्मल और अनुपम जल है। भरतका स्वभाव ही सुखद और सदा एक जैसी बनी रहनेवाली ऐसी सुहावनी शीतलता है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। (४) चारों भाइयोंका परस्पर एक दूसरेकी ओर प्रेमसे देखना, बोलना-चालना, मिलना-जुलना, प्रेमपूर्वक हँसना-मुसकराना और आपसमें प्यारभरा भाईपन निबाहना ही इस रामभक्तिकी नदीके जलकी मिठास और सुगन्ध है ॥ ४२ ॥ मेरा आर्त्त-भाव (दैन्य तथा अपने कष्टोंका निवेदन), विनय (कृपाके लिये प्रार्थना) और दीनता ही इस नदीके सुन्दर और स्वच्छ जलका अत्यन्त पाचक हलकापन है। यह जल इतना विचित्र है कि इसकी चर्चा होते ही यह लाभ पहुँचाने लगता है और (सांसारिक वस्तुओंकी) आशाकी प्यास बुझाकर मनका सारा मैल दूर कर डालता है। (१) यह जल रामके सच्चे प्रेमको पुष्ट करता और कलियुगके सारे पाप और दुःख दूर कर डालता है। यह जल संसारका सारा श्रम (जन्म और मृत्यु) दूर कर डालता, सन्तोषको भी सन्तुष्ट कर देता (जो सन्तुष्ट हैं उन्हें भी सुख देता) तथा पाप, दुःख, दरिद्रता और सभी दोष पल भरमें निकाल बाहर करता है। (२) यह जल काम, क्रोध, मद और मोह (अज्ञान)-का तो नाश करता ही है, साथ ही निर्मल ज्ञान और वैराग्य भी बढ़ाता चलता है। जो लोग इसमें आदरपूर्वक स्नान नहीं करते तथा इसका जल नहीं पीते, (३) जिन्होंने इस जलसे अपना हृदय मल-मलकर धोया नहीं, उन्हें समझना चाहिए कि दुष्ट कलिकालने बड़ा धोखा देकर उन्हें ठग लिया। जैसे बालूपर पड़नेवाली सूर्यकी किरणोंको भ्रमसे जल समझकर प्यासा हिरन उसे पीनेके लिये ललच-ललचकर बढ़ता चलता है और जल न पानेपर दुखी होकर प्राण दे डालता है, वैसे ही (जो लोग सांसारिक विषयोंको ही परम सुख माने बैठे हैं वे) जीव भी कभी दुःख पाए बिना न रहेंगे। (४) इस गुणकारी जलके

दो०—मति अनुहारि सुबारि-गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी-संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥ ४३ क ॥
अब रघुपति-पद-पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहौं जुगल मुनिबर्य-कर, मिलन सुभग संबाद ॥ ४३ ख ॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहिं रामपद अति अनुरागा।
तापस सम-दम-दया-निधाना। परमारथ-पथ परम सुजाना। (१)
माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथ-पतिहिं आव सब कोई।
देव, दनुज, किन्नर, नरश्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी। (२)
५८० पूजहिं माधव-पद-जलजाता। परसि अछय-बट हरषहिं गाता।
भरद्वाज-आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर-मन-भावन। (३)
तहाँ होइ मुनि-रिषय-समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि-गुन-गाहा। (४)

गुणोंपर विचार करके, उसमें अपने मनको भली भाँति नहलाकर और भवानी तथा शंकरका स्मरण करके कवि (तुलसीदास) अपनी बुद्धिके अनुसार आज आप सबको यह सुन्दर कथा सुनाने बैठा है ॥ ४३ क ॥

अब मैं अपने हृदयमें रामके चरण-कमल धारण करके और उनका प्रसाद (प्रसन्नता तथा आशीर्वाद) पाकर दोनों प्रसिद्ध मुनियों (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज)-की भेंटका और उनके मनोहर संवादका वर्णन आपको सुनाए दे रहा हूँ ॥ ४३ ख ॥

भरद्वाज मुनि प्रयागमें निवास किया करते थे। रामके चरणोंमें उनका बहुत ही अधिक प्रेम था। वे बड़े तपस्वी, शान्त चित्तवाले, जितेन्द्रिय (इन्द्रियोंको वशमें किए रखनेवाले), परम दयालु और परमार्थ (ब्रह्मज्ञान)-के बहुत बड़े ज्ञाता थे। (१) माघ मासमें जब मकर राशिपर सूर्य पहुँच जाते हैं, तब बहुतसे लोग तीर्थराज प्रयागमें आ एकत्र होते हैं। उस समय देवता, दैत्य, किन्नर और मनुष्य सभी आ-आकर आदरपूर्वक त्रिवेणीमें स्नान करते, (२) वेणीमाधवके चरण-कमलोंकी पूजा करते और अक्षय वटका स्पर्श कर-करके पुलकित (प्रसन्न) होते हैं। वहीं (त्रिवेणीके पास) भरद्वाज मुनिका वह परम पवित्र आश्रम है जो इतना रमणीय है कि मुनियोंका मन भी उसपर लुभाया पड़ता है। (३) उन दिनों वहाँ (भरद्वाज मुनिके आश्रममें) उन ऋषि-मुनियोंका समाज आ भी जुटता है जो (उस समय) तीर्थराज प्रयागमें स्नान करने आए रहते हैं। वे सब प्रातःकाल बड़े उत्साहसे स्नान करते और परस्पर भगवान्के गुणोंकी कथा कहते रहते हैं। (४) उस अवसरपर वे ब्रह्मका निरूपण, धर्मका विधान और दार्शनिक तत्त्वोंके

---

५७८ माघमासि समायान्ति गंगायमुनसंगमम्। ब्रह्मविष्णुमहेशानशक्राद्या हि मरुद्गणाः ॥ पु०सं०
५७९ अणिमादिगुणोपेता ये चान्ये तत्वदर्शिनः। स्नातुमायान्ति ते सर्वे माघं वेण्यां द्विजोत्तमाः ॥
५८० अर्चन्ति मुनयः सर्वे माधवांघ्रिसरोरुहम्। भवन्ति हर्षिताः स्पर्शादक्षयस्य वटस्य च ॥
५८१-८२ भरद्वाजाश्रमे पुण्ये रम्ये मुनिमनोहरे। स्नातुं समागतानां च सभा भवति शोभना ॥
५८३ स्नानं कुर्वन्ति प्रत्यूषे सर्वे तूत्साहपूर्वकम्। परस्परं हरिगुणान् गायन्ति मुनयो मुदा ॥मत्स्य०पु०

दो०—ब्रह्म-निरूपन, धर्म - बिधि , बरनहिं तत्व - बिभाग ।
कहहिं भगति भगवंत - कै , संजुत ज्ञान - बिराग ॥ ४४ ॥
ऐहि प्रकार भरि माघ नहाहीं । पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ।
प्रति संबत अस होइ अनन्दा । मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृन्दा । (१)
एक बार भरि मकर नहाए । सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ।
जागबलिक मुनि परम बिबेकी । भरद्वाज राखे पद टेकी । (२)
५९० सादर चरन - सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे ।
करि पूजा मुनि सुजस बखानी । बोले अति पुनीत मृदु बानी । (३)
नाथ एक संसे बड़ मोरे । कर-गत बेद - तत्व सब तोरे ।
कहत सो मोहि लागत भय लाजा । जौं न कहौं बड़ होइ अकाजा । (४)
दो०—संत कहहिं अस नीति प्रभु , श्रुति पुरान मुनि गाव ।
होइ न बिमल बिबेक उर , गुर - सन किये दुराव ॥ ४५ ॥

भेदोंका वर्णन करनेके साथ साथ ज्ञान और वैराग्यसे भरी भगवद्भक्तिका भी विवेचन करते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सब ऋषि-मुनि पूरे माघ-भर त्रिवेणीमें स्नान करके फिर अपने-अपने आश्रम लौट जाते हैं । वहाँ प्रति वर्ष इसी प्रकारका समारोह होता रहता है और फिर मकर (सौर माघ मास) भर स्नान करके मुनिगण लौट जाते हैं । (१)

एक बार पूरे मकर (माघ)-भर स्नान करके जब सभी मुनिगण अपने-अपने आश्रम लौट गए, तब भरद्वाजने परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनिके चरणोंमें पड़कर उन्हें अपने आश्रममें रोक बिठाया । (२) भरद्वाजने आदरपूर्वक उनके चरण धोए और बड़े पवित्र आसनपर उन्हें ले जा बैठाया । फिर वे अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणीमें याज्ञवल्क्यसे बोले—(३) 'नाथ ! मेरे मनमें एक बड़ा सन्देह उठ खड़ा हुआ है । इधर आप तो वेदोंका सारा तत्त्व छाने बैठे हैं (इसलिये मैं आपसे ही पूछना ठीक समझता हूँ) पर आपके आगे अपना सन्देह प्रकट करनेमें मुझे भय भी लगता है (कि आप मुझे योग्य पात्र भी समझेंगे या नहीं) और लाज भी आती है (कि आप मुझे कितना बड़ा मूर्ख समझेंगे कि मेरे मनमें ऐसा संदेह उठा); (साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि) यदि (आपके आगे सन्देह) न कहूँ तो बड़ी हानि हो जायगी (सन्देह बना रह जायगा, मनमें उलझन बनी रहेगी); (४) क्योंकि प्रभो ! संत लोग भी ऐसी नीति (कर्त्तव्य) बताते हैं और वेद, पुराण तथा लोग भी यही कहते हैं कि यदि गुरुसे अपने मनका भाव छिपा रक्खा जाय तो हृदयमें कभी निर्मल ज्ञान नहीं आ पाता ॥ ४५ ॥ यह

५८४-५८५ कुर्वन्ति ते ब्रह्मनिरूपणं विधिं धर्मस्य तत्त्वस्य तथा विभागम् ।
वदन्ति भक्तिं सुरमर्दनस्य सुज्ञानवैराग्यसमन्वितां मुदा ॥
५८६-५८७ एणसंक्रममारभ्य यावत्कलशसंक्रमः । स्नात्वा त्रिवेण्यां प्रत्यब्दं स्वाश्रमं यान्ति योगिनः ॥
५८७-५८९ एकदा मकरे स्नानं कृत्वा मुनिगणे गते । भरद्वाजो वासितवान् याज्ञवल्क्यं विवेकिनम् ॥
५९०-५९१ तमर्चयित्वा विधिवत्सूपविष्टं मुनीश्वरम् । कृतांजलिर्भरद्वाजः शोभनामाह शारदाम् ॥
५९२-५९३ संदेहो मे महानेको विद्यते वेदतत्त्ववित् । न वदेयं तदानर्थो भाषणे ह्रीर्भयं महत् ॥–म०पु०
५९४-५९५ गुरुतो गोपने राजन् ज्ञानं नो निर्मलं हृदि । उदेत्यतः प्रवक्तव्यं सुगुप्तमपि यद्भवेत् ॥–शु० नी०

अस बिचारि प्रगटौं निज मोहू। हरहु नाथ करि जन-पर छोहू।
राम-नाम-कर अमित प्रभावा। संत-पुरान-उपनिषद गावा। (१)
संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ज्ञान-गुन-रासी।
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासी मरत परद पद लहहीं। (२)
६०० सोपि राम-महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया।
राम कवन प्रभु पूछौं तोहीं। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं। (३)
एक राम अवधेसकुमारा। तिन्ह-कर चरित बिदित संसारा।
नारि बिरह-दुख लहेउ अपारा। भयउ रोप, रन रावन मारा। (४)
दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम, कहहु बिबेक बिचारि॥ ४६॥
जैसे मिटै मोह भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी।

समझकर मैं अपनी सारी अज्ञानता आपके आगे खोले डालता हूँ; और नाथ! आपसे यही निवेदन करता हूँ कि सेवक (मुझ)-पर कृपा करके मेरा यह अज्ञान दूर कर डालिए। (मैं जानता हूँ कि) रामके नामका इतना अधिक प्रभाव है कि सन्त, पुराण और उपनिषद्, सबने उसके निःसीम प्रभावका बहुत विस्तारसे वर्णन किया है। (१) (यहाँतक कि) जो भगवान् शंकर, कल्याणकी साक्षात् मूर्ति तथा ज्ञान और गुणोंके भांडार हैं, वे भी निरन्तर बैठे रामके ही नामका जप किया करते हैं (और उनसे तारक मन्त्र 'राम' नामका उपदेश पाकर) संसारके चारों प्रकारके जीव (अण्डज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज) काशीमें मरनेपर बैठे-बिठाए मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। (२) हे मुनिराज! यह भी तो रामकी ही महिमा है कि स्वयं शिव भी कृपा करके (काशीमें मरनेवाले प्राणियोंको मृत्युके समय केवल) इसी (राम-नाम)-का ही उपदेश करते हैं। इसलिये कृपानिधान प्रभो! मैं आपसे यही जानना चाहता हूँ कि (जिन रामकी इतनी महिमा बताई गई है) वे राम हैं कौन? यही आप मुझे समझाकर बतला दीजिए। (३) एक राम तो अवधके नरेश महाराज दशरथके पुत्र थे जिनका चरित्र सारा संसार जानता है कि उन्होंने अपनी स्त्रीके विरहमें बहुत दुःख उठाए और क्रोध करके युद्धमें रावणको मार डाला। (४) तो प्रभो! (मैं पूछता हूँ कि) क्या ये वे ही राम हैं जिनका नाम शंकर जपा करते हैं अथवा वे कोई दूसरे ही राम हैं? आप तो सत्यके भाण्डार है और सब कुछ जानते हैं (आपसे कुछ छिपा नहीं है, इसलिये) नाथ! (कृपा करके) विवेक-पूर्वक विचारकर यह बता दीजिए॥ ४६॥ मुझे वह सारी कथा आप विस्तार-पूर्वक इस ढंगसे सुना डालिए कि मेरे मनमें उठा हुआ यह भारी भ्रम दूर हो जाय।

५९६-९७ विचार्यैवं वदाम्यद्य स्वकीयां हर मूढताम्। श्रीरामनाममहिमा गीतः सद्भिरनेकधा॥
५९८-९९ सदा जपति यच्छंभुर्गुणज्ञानार्णवोऽव्ययः। काश्यां तनुत्यजो जीवा लभन्ते परमं पदम्॥
६००-७१ यच्छिवश्चोपदिशति दयां कृत्वा दयानिधे। सोपि श्रीराममहिमा स रामः कोऽस्ति कथ्यताम्॥
६०२-३ एको दाशरथी रामः ख्यातं यच्चरितं क्षितौ। भार्यावियोगदुःखाढ्यो हतवान् रावणं रणे॥
६०४-५ स एव रामः किं कश्चिदन्यो जपति यं शिवः। सत्यधामासि सर्वज्ञो विचार्य वद मे प्रभो॥
६०६-७ यथा गुरुभ्रमो नश्येत्तथा कथय मे कथाम्। याज्ञवल्क्यः स्मयन्नाह भवान्रामप्रभाववित्॥म०पु०

ज़ागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि विदित रघुपति-प्रभुताई। (१)
राम - भगत तुम मन - क्रम - बानी। चतुराई तुम्हार मैं जानी।
चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हेउ प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा। (२)
६१० तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ राम - कै कथा सुहाई।
महा - मोह - महिषेस बिसाला। राम-कथा कालिका कराला। (३)
राम-कथा ससि - किरन समाना। संत-चकोर करहिं जेहि पाना।
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी। (४)

दो०—कहौं सो मति अनुहारि अब, उमा - संभु - संवाद।
भयउ समय जेहि, हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥ ४७ ॥

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं।
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी। (१)

यह सुनकर याज्ञवल्क्य मुसकरा पड़े और बोले कि रामकी महिमा क्या आपसे छिपी हुई है ? आप तो सब जानते ही हैं, (१) क्योंकि आप तो मन, वचन और कर्मसे रामके सच्चे भक्त हैं। (रही संदेहकी बात, तो) आपकी सारी चतुराई मैं भली भाँति ताड़ रहा हूँ कि आप रामका सारा गूढ रहस्य जान लेनेके फेरमें हैं। इसीसे आपने इस प्रकार प्रश्न किया है जैसे कुछ जानते ही न हों। (२) तो अब आप आदरपूर्वक मन लगाकर सुनते चलिए, मैं रामकी सारी हृदयहारिणी कथा आपको सुनाए डालता हूँ। जैसे कालिका (दुर्गा) ने महिषासुरका वध किया था वैसे ही रामकी कथा भी प्रचण्ड अज्ञानका नाश कर डालती है। (३) जैसे चकोर टकटकी लगाए चन्द्रमाकी किरणें पीता रहता है वैसे ही सन्त लोग भी सदा रामकी कथा पीते रहते (सुनते रहते हैं)। (आपके ही मनमें नहीं, एक बार) पार्वतीके मनमें भी यही सन्देह उठ खड़ा हुआ था जिसका समाधान महादेवने बड़े विस्तारसे किया था। (४) वही उमा और शिवका संवाद अब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपको सुनाए डालता हूँ। हे मुनि ! उमा और शिवका (संवाद) जिस समय और जिस कारण हुआ था, वह सब आप सुन लेंगे तो आपका सारा विषाद (सन्देह, भ्रम) अवश्य मिट जायगा ॥ ४७ ॥

एक बार त्रेता युगमें शंकर, जगज्जननी भवानी सतीको साथ लिए हुए अगस्त्य ऋषिके आश्रममें जा पहुँचे। ऋषिने शंकरको सारे जगत्‌का ईश्वर जानकर (भली भाँति) उनकी पूजा की (१)

६०८-१० भरद्वाज चिरं जीव साधु स्मारितमद्य नः। शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् ! काकुत्स्थचरितं महत् ॥
६११ अज्ञानमहिषस्यान्तकारिणी परिकीर्तिता। श्रीरामस्य कथा दिव्या कराला कालिका बुधैः ॥अद्०रा०
६१२ कवीन्दुन्नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम्। चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः॥सु०
३१३ एतादृशी कृता शंका भवान्यापि महामुने। तदोक्तवान्महादेवो मुदा रामायणीं कथाम् ॥
६१४-१५ गौरीशंकरयोरत्र संवादं ते वदाम्यहम्। यस्य श्रवणमात्रेण विषादस्ते गमिष्यति ॥ अद्०रा०
६१६-१७ त्रेतायामेकदा शंभुर्गतोऽगस्त्याश्रमं मुदा। जगदंबिकया सार्धं पूजयामास तौ मुनिः ॥शिवपु०

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी।
रिषि पूछी हरि-भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई। (२)
६२० कहत सुनत रघुपति-गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरि-नाथा।
मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छ-कुमारी। (३)
तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघु-बंस लीन्ह अवतारा।
पिता-बचन, तजि राज उदासी। दंडक-बन बिचरत अबिनासी। (४)
दो०—हृदय बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसन होइ।
गुपुत रूप अवतरेउ प्रभु, गए, जान सब कोइ ॥ ४८ क ॥
सो०—संकर उर अति छोभ, सती न जानइ मरम सोइ।
तुलसी दरसन-लोभ, मन डर, लोचन लालची ॥ ४८ ख ॥

और (फिर पूजा) करके अगस्त्यने भगवान् शंकरको विस्तारसे रामकी कथा कह सुनाई जिसे शिव भी बड़ा रस लेते हुए सुनते रहे। कथा कह चुकनेपर मुनिवर अगस्त्यने भी शंकरसे भगवान्‌की भक्तिका रहस्य पूछ दिया। शिवने भी मुनिवर अगस्त्यको अधिकारी (ज्ञान पानेके योग्य) जानकर विस्तारसे भगवान्‌की भक्तिका पूरा निरूपण कर बताया। (२) इस प्रकार रामके गुणोंकी कथाएँ कहते-सुनते शंकर कुछ दिनों-तक वहीं (अगस्त्यके आश्रमपर) ही ठहरे रह गए और फिर मुनि (अगस्त्य)-से बिदा लेकर (प्रजापति) दक्षकी पुत्री सतीके साथ वे (शिव) अपने भवन (कैलास) लौट चले। (३) उन्हीं दिनों पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही भगवान्‌ने रघुके वंशमें (दशरथके पुत्रके रूपमें) अवतार जा लिया था और वे अविनाशी भगवान् अपने पिताके वचन (जो दशरथने कैकेयीको दे डाले थे) मानकर राज्य छोड़-छाड़कर उदासी (साधु)-के वेशमें दण्डक वनमें भटकते घूम रहे थे। (४) उसी समय शंकर अपने हृदयमें (ऐसा कोई उपाय) सोचते चले जा रहे थे कि किसी प्रकार मुझे गुपचुप भगवान्‌के दर्शन प्राप्त हो जायँ, क्योंकि प्रभुने तो गुप्त रूपसे अवतार लिया है इसलिये मैं (सीधे उनसे मिलने) चला गया तो सब लोग जान जायँगे ॥४८ क॥ इसी उधेड़-बुनमें पड़े हुए शंकरके हृदयमें बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी परन्तु सती यह भेद नहीं ताड़ पाईं। तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि प्रभु (राम)-के दर्शनोंके लिये शंकरके नेत्र तो तड़फड़ाए पड़ रहे थे पर उनके मनमें रह-कर शंका भी हुई जा रही थी (कि मेरे जानेसे कहीं भगवान्‌के अवतारका भेद न खुल जाय)। ॥ ४८ ख ॥ बात यह हुई थी कि रावणने ब्रह्मासे यह वर ले

६१८ श्रीरामस्य कथां दिव्यामुक्तवान्कुंभजो मुनिः। शंकरः श्रुतवान्ब्रह्मन्परमानंदसंभृतः ॥
६१९ शोभनां श्रीहरेर्भक्तिं पृष्टवान्कुंभसंभवः। ज्ञात्वाधिकारिणं तं तु वर्णयामास शंकरः ॥
६२०-२१ शृण्वन्वदन्हरिकथां कियत्कालमुवास सः। चचाल स शिवः पृष्ट्वा मुनिं कैलासपर्वतम् ॥शिवपु०
६२२ दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च। परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ॥अ०सं०
६२३ राज्यं त्यक्त्वा पितुर्वाक्याद्धृत्वा वेषं तपस्विनः। विचचार तदा रामो भीषणे दंडके वने ॥
६२४-२५ कुर्वन् विचारं व्रजति शिवः स्याद्दर्शनं कथम्। गुप्तरूपेणावतीर्णः साक्षान्नारायणो हरिः ॥
६२६-२७ शिवस्य चित्ते क्षोभोऽस्ति किंचिज्जानाति नो सती। दर्शनस्य महालोभो बिभेति च मनः पुनः ॥शिवपु०

रावन मरन मनुज-कर जाँचा। प्रभु विधि-बचन कीन्ह चह साँचा।
जौं नहिं जाउँ रहै पछितावा। करत बिचार न बनत बनावा। (१)
६३० ऐहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा।
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा। (२)
करि छल मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही।
मृग बधि बंधु-सहित प्रभु आए। आश्रम देखि नयन जल छाए। (३)
बिरह-बिकल नर-इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई।
कबहूँ जोग-बियोग न जाके। देखा प्रगट बिरह-दुख[1] ताके। (४)
दो०—अति बिचित्र रघुपति-चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह-बस, हृदय धरहिं कछु आन।। ४९।।

लिया था कि मेरी मृत्यु हो तो मनुष्यके हाथों हो। इसलिये (भगवान्‌ने मनुष्यके ही रूपमें अवतार लिया क्योंकि) ब्रह्माके दिए हुए वचन वे सत्य करना चाहते थे। (साथ ही शिवके मनमें यह भी उलझन थी कि) यदि मैं उनके पास जाता नहीं हूँ तो मनमें बड़ा पछतावा रह जायगा (कि इतने पास पहुँचकर भी दर्शन नहीं किए)। शंकर इसी उधेड़बुनमें पड़े चले जा रहे थे पर कोई उपाय मनमें ठीक-ठीक बैठ नहीं पा रहा था। (१) इस प्रकार (इधर) शंकर इस उलझनमें पड़े चले जा रहे थे, (उधर) उसी समय नीच रावणने मारीचको साथ ले लिया जो तुरन्त कपटका मृग बनकर वनमें जाकर चौकड़ी भरने लगा। (२) इसी बीच मूर्ख रावण छलसे सीताको आश्रमसे हर ले भागा। वह (मूर्ख तनिक भी) नहीं जानता था कि रामका सचमुच कितना प्रभाव है। इधर जब उस कपटके मृगको मारकर अपने भाई लक्ष्मणके साथ राम अपने आश्रम लौटे तो वहाँ आते ही वे देखते क्या हैं कि वहाँ सीता कहीं हैं ही नहीं। ऐसा (सीता-रहित) आश्रम देखकर उनकी आँखें डबडबा आईं। (३) (सामान्य) मनुष्योंके समान राम भी (सीताके) विरहसे व्याकुल हो उठे और दोनों भाई सीताको खोजते हुए उस वनमें इधर-उधर भटकते फिरने लगे। (कितनी विचित्र-बात है कि) जिन्हें संयोग-वियोग (सुख-दुःख)-का कभी अनुभव नहीं होता वे ही प्रत्यक्षतः विरहके दुःखसे दुखी दिखाई पड़ रहे थे।। ४।। रामका चरित्र ऐसा विचित्र है कि उसे वही ठीक-ठीक जान पा सकता है जो परम ज्ञानी हो। मोह (अज्ञान)-में पड़े हुए मन्द बुद्धिवाले तो (यह

१. दुसह दुख='असह्य दुःख'। उसे भी असह्य दुःखमें पड़े देखा।

६२८ नरहस्तान्मृतिस्तेऽस्ति सत्यं जानीहि रावण। पुरोक्तं ब्रह्मणा रामस्तत्सत्यं कर्तुमिच्छति।।
६२९-३० न गच्छेयं तदा पश्चात्तापोऽवश्यं भविष्यति। इत्थं विचारयन् शंभुर्जातः शोकाकुलस्तदा।।
६३१-३३ मृगरूपं स मारीचं कृत्वाऽग्रेऽथ त्रिदंडधृक्। रावणोऽन्तरमासाद्य हृतवान् जानकीं छलात्।
सीतया प्रेरितो रामो मारीचं प्रजघान ह।
६३४-३५ तत्र रामं ददर्शासौ लक्ष्मणेनान्वितं हरः। अन्विष्यन्तं प्रियां सीतां रावणेन हृतां छलात्। शिवपु०
हा सीतेति प्रोच्चरन्तं विरहाविष्टमानसम्। ततस्ततश्च पश्यन्तं रुदन्तं हि मुहुर्मुहुः।—गरुडपु०
६३६-३७ विचित्रं रामचरितं जानंत्येव विपश्चितः। ये सन्ति मूढमतयः किमप्यन्यद्धरंति ते।।—शिवपु०

संभु समय तेहि रामहिँ देखा। उपजा हिय अति हरष विसेखा।
भरि लोचन छवि-सिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी। (१)
६४० जय सच्चिदानन्द जग-पावन। अस कहि चले मनोज-नसावन।
चले जात सिव सती-समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा-निकेता। (२)
सती सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेह विसेखी।
संकर जगत-वंद्य जगदीसा। सुर-नर-मुनि सव नावत सीसा। (३)
तिन्ह नृप-सुतहिँ कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द पर-धामा।
भए मगन छवि तासु विलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी। (४)

दो०—ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥ ५०॥

विस्नु जो सुर-हित नर-तनु-धारी। सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी।

देखकर अपने) हृदयमेँ कुछ और ही सोच वैठते हैं (कि राम साधारण मनुष्य थे जो पत्नीके वियोगमेँ सामान्य मनुष्यकी भाँति रोते फिर रहे थे)॥ ४९॥ रामको शंकरने उस रूपमेँ देखा तो वे हर्षसे उछल पड़े। पर अत्यन्त सुन्दर रामको उस कुसमयमेँ (पत्नीके वियोगके समय) देखकर शंकरने अपना परिचय देना ठीक नहीँ समझा और कामदेवको भस्म कर डालनेवाले शंकर, केवल इतना ही कहकर आगे वढ़ गए—(१) 'संसारको पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्द राम! आपकी जय हो।' कृपाके निधान शिव इतना कहकर सतीके साथ वढ़े तो चले जा रहे थे पर इतने हर्ष-विभोर हुए जा रहे थे कि आनन्दसे फूले नहीँ समा रहे थे। (२) सतीने शंकरकी जो यह दशा देखी तो उनके मनमेँ वड़ा सन्देह उठ खड़ा हुआ, (और वे मनमेँ सोचने लगीँ) कि जिन शंकरको सारा जगत् हाथ जोड़ता है, जो इस सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैँ, जिनके आगे देवता, मनुष्य और मुनि सब आ-आकर सिर नवाते हैँ, (३) उन्होँने राजा दशरथके पुत्रको 'सच्चिदानन्द और परम धाम (परमेश्वर) कहकर कैसे प्रणाम कर दिया और उनकी शोभासे प्रभावित होकर वे प्रेममेँ कितने वेसुध हुए जा रहे हैँ कि उनके हृदयमेँ उमड़ता हुआ प्रेम रोके नहीँ रुक पा रहा है। (४) (वे सोचने लगीँ कि) जो ब्रह्म सर्वव्यापक है, जिसपर मायाका कोई जादू नहीँ चल पाता, जो कभी जन्म नहीँ लेता, जिसके मनमेँ कभी कोई इच्छा नहीँ होती, जो कभी किसी प्रकारका भेद-भाव नहीँ करता और जिसे वेद भी भली प्रकार नहीँ जान पा सके हैँ, वह क्या देह धारण करके कभी मनुष्य होकर आ सकता है ?॥ ५०॥ देवताओँका हित करनेके लिये मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले जो विष्णु भगवान् भी शिवके ही

६३८-४१ जयेत्युक्त्वान्यतो गच्छन्नदात्तस्मै स्वदर्शनम्। रामाय विपिने तस्मिन् शंकरो भक्तवत्सलः॥
६४२ इतीदृशीं सती दृष्ट्वा शिवलीलां विमोहिनीम्। सुविस्मिता शिवं प्राह शिवमायाविमोहिता॥
६४३ देव देव परब्रह्मन् सर्वेश परमेश्वर। सेवन्ते त्वां सदा सर्वे हरिब्रह्मादयः सुराः॥
त्वं प्रणम्यो हि सर्वेषां सेव्यो ध्येयश्च सर्वदा। वेदान्तवेद्यो यत्नेन निर्विकारी परप्रभुः॥
६४४ काविमौ पुरुषौ नाथ विरहव्याकुलाकृती। विचरंतौ वने क्लिष्टौ दीनौ वीरौ धनुर्धरौ॥
६४५ तयोर्ज्येष्ठं कंजश्यामं दृष्ट्वा वै केन हेतुना। मुदितः सुप्रसन्नात्माऽभवो भक्त इवाधुना॥ शिवपु०

खोजै सो कि अज्ञ इव नारी। ज्ञान - धाम श्रीपति असुरारी। (१)
६५० संभु - गिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्वज्ञ जान सब कोई।
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध - प्रचारा। (२)
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी।
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिय उर काऊ। (३)
जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहिं सुनाई।
सोइ मम इष्ट-देव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा। (४)
छंद—मुनि धीर, योगी, सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं।
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन - निकाय - पति माया-धनी।
अवतरेउ अपने भगत-हित निजतंत्र नित रघु-कुल-मनी [२]

समान सर्वज्ञ हैं (सब कुछ जानते हैं), ज्ञानके धाम हैं (सारा ज्ञान उनके हाथमें है), लक्ष्मीके पति और असुरोंके शत्रु हैं, वे भगवान् विष्णु क्या अज्ञानीके समान इस प्रकार स्त्रीको खोजते हुए वन-वन भटकते फिरेंगे ? (१) (साथ ही यह भी निश्चय है कि) शम्भुकी वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती क्योंकि सभी लोग जानते हैं कि शिव सर्वज्ञ हैं।

इस प्रकारका जो अपार सन्देह सतीके मनमें उठ खड़ा हुआ, उसे दूर कर सकनेवाला कोई भी समाधान उन्हें लाख माथा पटकनेपर भी सूझ नहीं पड़ रहा था। (२) यद्यपि सतीने खुलकर एक शब्द भी नहीं कहा, पर सबके घट-घटकी जाननेवाले भगवान् शंकरने झट सब ताड़ लिया। उन्होंने सतीसे कहा—'देखो सती ! तुम्हारा स्वभाव तो स्त्रियोंका-सा ही है (इसीलिये तुम्हारे मनमें यह सन्देह उठ खड़ा हुआ है)। ऐसा सन्देह तो मनमें कभी आने ही नहीं देना चाहिए। (३) (यह समझ लो कि) जिन रामकी कथा अगस्त्य ऋषि दिन-रात बैठे कहा करते हैं और जिनकी भक्तिका रहस्य मैंने उन अगस्त्य मुनिको जा समझाया है, ये वे ही तो मेरे इष्टदेव राम हैं, जिनकी सेवा सभी ज्ञानी मुनि लोग सदा करते रहते हैं। (४) ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध अत्यन्त निर्मल चित्तसे जिनका सदा ध्यान करते रहते हैं; वेद, पुराण और शास्त्र नेति-नेति (इतना ही नहीं, वरन् इससे भी अधिक है) कहकर जिनके महत्त्वका वर्णन किया करते हैं; उन्हीं सर्वव्यापक ब्रह्म, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके स्वामी, मायापति, नित्य और परम स्वतन्त्र भगवान् रामने ही अपने भक्तोंका कल्याण करनेके लिये (उनका दुःख दूर करनेके लिये) यह अवतार धारण किया है। [२]

६५१ इति मे संशयं स्वामिन् शंकरच्छेत्तुमर्हसि। सेव्यस्य सेवकेनैव घटते प्रणतिः प्रभो ॥
६५३-५६ परमेश्वर उवाच—शृणु देवि सति प्रीत्या यथार्थं वच्मि न च्छलम् ॥
सूर्यवंशोद्भवो देवि प्राज्ञो दशरथात्मजो। गौरवर्णो लघुर्बन्धुः शेषांशो लक्ष्मणाभिधः।
ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः। अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः॥शिवपु०

६६० सो०—लाग न उर उपदेस, जदपि कहेउ सिव वार बहु।
बोले बिहँसि महेस, हरि-माया-बल जानि जिय॥ ५१॥
जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू।
तब लगि बैठि अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम ऐहहु मोहि पाहीं। (१)
जैसे जाइ मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन बिबेक बिचारी।
चली सती सिव-आयसु पाई। करहि बिचार करौं का भाई। (२)
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता - कहँ नहिं कल्याना।
मोरेहु कहे न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत, भलाई नाहीं। (३)
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तरक बढ़ावै साखा।
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुख-धामा। (४)

यद्यपि शिवने सतीको बार-बार बहुत प्रकारसे समझाया पर उनकी एक भी बात सतीके मनमें घर न कर पाई। तब महादेवने मनमें समझ लिया कि भगवान्‌की माया बड़ी ही प्रबल है (वह माया ही सतीकी बुद्धि फेरे हुए है) इसलिये वे मुसकराते हुए सतीसे कहने लगे—॥ ५१ ॥ 'देखो सती ! यदि तुम्हारे मनमें यह सन्देह जमकर ही बैठ गया है तो तुम स्वयं जाकर उनकी परीक्षा क्यों नहीं ले आती ? (तुम जाओ) और जबतक तुम लौट नहीं आती, तबतक मैं यहीं वटकी छाया-तले बैठा तुम्हारी बाट जोहता रहूँगा। (१) तुम अपने विवेकसे काम लेकर वही करना जिससे तुम्हारा यह अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला भारी भ्रम दूर हो मिटे।'

शिवकी आज्ञा पाकर (रामकी परीक्षा लेनेके लिये) सती वहाँसे चल दीं और चलते हुए मनमें यही सोचती जा रही थीं कि मैं करूँ तो क्या करूँ ? (परीक्षा लूँ तो कैसे लूँ ?) (२)

इधर शिव भी अपने मनमें भली भाँति समझ चुके थे कि इस परीक्षासे दक्षकी पुत्री सतीका कल्याण नहीं होनेवाला है क्योंकि जब मेरे इतना समझाने-पर भी उनका सन्देह नहीं मिट पाया तो (समझना चाहिए कि) उनके लिये विधाता ही मुँह फेरे बैठा है (उनके बुरे दिन आ चले हैं), अब सतीका कल्याण होता नहीं दिखाई पड़ता। (३) अब तो जो कुछ राम करना चाहते हैं वही होगा। अब उसके लिये मनमें उधेड़बुन करके कौन इस बातपर माथा खपावे (तूल दे)। यह निश्चय करके इधर तो शिव उस वटकी छाँह-तले बैठे रामका नाम जपने लगे उधर

६६०-६१ श्रुत्वापीत्थं वच: शंभोर्न विशश्वास तन्मनः। शिवमाया बलवती सैव त्रैलोक्यमोहिनी।
अविश्वस्तं मनो ज्ञात्वा तस्याः शंभुः सनातनः। अवोचद्वचनं चेति प्रभुर्लीलाविशारदः॥
६६२ शृणु मद्वचनं देवि न विश्वसिति चेन्मनः। तव राम परीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया॥
६६३ विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये। गत्वा तत्र स्थितस्तावद् वटे भव परीक्षिका॥
६६५ शिवाज्ञया सती तत्र गत्वा चिन्तयदीश्वरी। कुर्यां परीक्षां च कथं रामस्य वनचारिण:॥—शिवपु०
६६६-६७ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥ —शिशुपालवध
६६८ करोतु नाम नीतिज्ञो व्यवसायमितस्ततः। फलं पुनस्तदेवास्य यद्विधेर्मनसि स्थितम्॥—सुभाषित

६७० दो०—पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीता - कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नर-भूप ॥ ५२ ॥
लछिमन दीख उमाकृत वेषा। चकित भए भ्रम हृदय विसेषा।
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु-प्रभाउ जानत मतिधीरा। (१)
सती - कपट जानेउ सुर-स्वामी। सब-दरसी सब - अंतरजामी।
सुमिरत जाहि मिटै अज्ञाना। सोइ सरबज्ञ राम भगवाना। (२)
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ। देखहु नारि - सुभाव - प्रभाऊ।
निज माया-बल हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी। (३)
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू।
कहेउ बहोरि, कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू। (४)

सती चलती-चलती वहाँ जा पहुँची जहाँ सुखके धाम राम (सीताको ढूंढते हुए) वनमें चले जा रहे थे। (४) अपने मनमें बहुत सोच-विचारकर सतीने सीताका रूप बना लिया और उसी मार्गकी ओर आगे बढ़ चलीं जिधरसे मनुष्योंके राजा (राम) बढ़े चले आ रहे थे ॥५२॥ लक्ष्मणने ज्योंही सतीका यह बनावटी (सीताका) रूप देखा तो वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गए और उनके मनमें बड़ी उलझन उठ खड़ी हुई (कि सीता यहाँ कहाँसे चली आ रही हैं)। वे बहुत गम्भीर हो उठे (और सोचने लगे कि अवश्य कुछ दालमें काला है) पर वे मुँहसे एक शब्द नहीं बोले क्योंकि स्थिर बुद्धिवाले लक्ष्मण अपने प्रभु रामका प्रभाव भली भाँति जानते ही थे (कि यदि कहीं इसमें कुछ कपट होगा भी तो राम तत्काल ताड़ जायँगे)। (१) सब कुछ समझनेवाले और सबके घट-घटकी जाननेवाले, देवताओंके स्वामी राम झट सतीका यह कपट ताड़ ही गए क्योंकि राम तो वे ही सर्वज्ञ भगवान् ठहरे न, जिनका स्मरण करने भरसे ही सारा अज्ञान मिट जाता है। (२) (तुलसीदास कहते हैं—) स्त्री जातिके स्वभावकी माया तो देखिए कि सती-जैसी देवी भी, वहाँ (रामके सम्मुख) भी कपट करनेसे नहीं चूकीं। (राम तो समझ ही गए कि यह सब मेरी मायाका ही खेल हो रहा है, इसलिये उस मायाकी शक्तिकी मन ही मन प्रशंसा करते हुए हँसते हुए मधुर वाणीमें (३) पहले हाथ जोड़कर रामने सतीको प्रणाम किया और फिर अपने पिताका नाम बताकर अपना भी नाम बताते हुए पूछा—'कहिए ! वृषकेतु (जिनके झण्डेपर बैल बना हुआ है, वे शिव) कहाँ रह गए और आप इस वनमें अकेली कैसे घूमती दिखाई पड़ रही हैं ?' (४)

६७०-७१ सीतारूपमहं धृत्वा गच्छेयं रामसन्निधौ। यदि रामो हरिः सर्वं विज्ञास्यति न चान्यथा ॥
इत्थं विचार्य सीता सा भूत्वा रामसमीपतः। अगमत् तत्परीक्षार्थं सती मोहपरायणा ॥—शिवपु०
६७१-७७ ऐश्वर्येण च धर्मेण यशसा च श्रियैव च। वैराग्यमोक्षषट्कोणैः संजातो भगवान् हरिः।
पोषणं भरणाधारं शरण्यं सर्वव्यापकम्। कारुण्यं षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम् ॥महा०
६७८-७९ सीतारूपां सतीं दृष्ट्वा जपन्नाम शिवेति च। विहस्य तत्प्रविज्ञाय नत्वावोचद्रघूद्वहः ॥
प्रेमतस्त्वं सति ब्रूहि क्व शंभुस्ते नमो गतः। एका हि विपिने कस्मादागता पतिना विना ॥शिवपु०

६८० दो०—राम-वचन मृदु गूढ़ सुनि , उपजा अति संकोच ।
सती सभीत महेस-पहँ , चलीं हृदय बड़ सोच ॥ ५३ ॥

मैं संकर-कर कहा न माना । निज अज्ञान राम - पर आना ।
जाइ उतरु अब देइहौं काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा । (१)
जाना राम सती दुख पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ।
सती दीख कौतुक मग जाता । आगे राम सहित - श्री - भ्राता । (२)
फिरि चितवा पाछे प्रभु देखा । सहित-बंधु-सिय सुन्दर वेखा ।
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध - मुनीस प्रवीना । (३)
देखे सिव, बिधि, विष्नु अनेका । अमित प्रभाउ एक-तें एका ।
वंदत चरन करत प्रभु-सेवा । विविध वेष देखे सब देवा । (४)

६९० दो०—सती विधात्री इंदिरा , देखीं अमित अनूप ।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर , तेहि तेहि तन अनुरूप ॥ ५४ ॥

रामके कोमल और गूढ (रहस्यसे भरे हुए) वचन सुनकर तो सती पानी-पानी हो चलीं (बहुत सकुचा गईं) और अत्यन्त चिन्तासे भरी घबराई हुई उलटे पावों शिवके पास लौट पड़ीं । ॥ ५३ ॥ (वे अपने मनमें सोचने लगीं–) 'मैंने शंकरका कहना भी नहीं माना और यहाँ भी अपना सारा अज्ञान लाकर रामपर ठेल दिया (अज्ञानी तो मैं स्वयं थी पर मैं रामको अज्ञानी बनाने चल दी) । अब मैं जाकर शिवको क्या उत्तर दूँगी ?' ऐसा सोच-सोचकर उनके हृदयमें बड़ी उथल-पुथल मच उठी । (१) रामने समझ लिया कि सतीको इस घटनासे बहुत चोट पहुँची है । तब उन्होंने सतीको अपना प्रभाव भी प्रकट करके दिखला दिया (जो देखनेके लिये सती वहाँ आई थीं) । (शंकरके पास लौटते हुए) मार्गमें सती क्या विचित्र लीला देखती हैं कि सीता और लक्ष्मणके साथ सुन्दर वेषमें राम बढ़े चले आ रहे हैं । वे जिस ओर मुँह घुमाती हैं, उधर ही देखती हैं कि राम विराजमान हैं और बड़े-बड़े सिद्ध और मुनीश्वर बैठे उनकी सेवा किए जा रहे हैं । (३) वे क्या देखती हैं कि एकसे एक बढ़कर प्रभावशाली अनेक शिव, ब्रह्मा, विष्णु और सभी देवता अनेक वेषोंमें वहाँ बैठे रामकी सेवा और उनकी वन्दना किए जा रहे हैं । (४) (इतना ही नहीं,) जिस-जिस वेषमें ब्रह्मा आदि देवता थे उसी-उसी वेषमें उनकी शक्तियाँ सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी आदि भी अगणित अनुपम वेषोंमें उनके साथ वहाँ विराजमान हैं ॥५४॥

६८०-८१ इति रामवचः श्रुत्वा चकितासीत्सती तदा । स्मृत्वा शिवोक्तं मत्वा चावितथं लज्जिता भृशम् ॥
स्मृत्वा स्वकर्म मनसाकार्षीच्छोकं सुविस्तरम् । प्रत्यागच्छदुदासीना विवर्णा शिवसन्निधौ ॥
६८२ अचिन्तत्पथि सा देवी संचलन्ती पुनः पुनः । नांगीकृतं शिवोक्तं मे रामं प्रति कुधीः कृता ॥
६८३ किमुत्तरमहं दास्ये गत्वा शंकरसन्निधौ । इति संचिन्त्य बहुधा पश्चात्तापमवाप सा ॥-शि०पु०
६८८-९१ ताव सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् । व्यदृश्यन्त घनश्यामः पीतकौशेयवाससः ॥
चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः । किरीटिनः कुंडलिनो हारिणो वनमालिनः ॥-भाग०

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह-सहित सकल सुर तेते ।
जीव चराचर जे संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा । (१)
पूजहिं प्रभुहिं देव बहु बेखा । राम - रूप दूसर नहिं देखा ।
अवलोके रघुपति बहुतेरे । सीता - सहित न वेष घनेरे । (२)
सोइ रघुवर सोइ लछिमन-सीसा । देखि सती अति भईं सभीता ।
हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूँदि बैठीं मग माहीं । (३)
वहुरि विलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छ-कुमारी ।
पुनि पुनि नाइ राम-पद सीसा । चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा । (४)

७०० दो०—गईं समीप महेस तव , हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीछा कवन विधि , कहहु सत्य सब बात ।। ५५ ।।

सती समुझि रघुबीर-प्रभाऊ । भय-वस सिव-सन कीन्ह दुराऊ ।
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं । कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं । (१)
जो तुम कहा सो मृषा न होई । मोरे मन प्रतीति अति सोई ।

सतीने जहाँ जितने वेषोंमें रामको देखा वहाँ उतनी ही शक्तियोंके साथ उतने ही देवता और संसारके अनेक प्रकारके चर-अचर जीव भी वहाँ उपस्थित देखे । (१) उन्होंने देखा कि सब देवता तो अनेक वेषोंमें वहाँ बैठे रामकी पूजा किए जा रहे हैं पर रामका रूप सर्वत्र एक ही है । यद्यपि उन्हें सीताके साथ अनेक राम दिखाई दे रहे थे तथापि रामके रूप और वेषमें कहीं कोई अन्तर नहीं था । (२) चारों ओर वही राम, वही लक्ष्मण और वही सीता देखकर तो सतीका माथा चकरा गया । उनका हृदय काँप उठा । उन्हें अपने शरीरकी सुध भी नहीं रही और वे आँखें मूँद-कर वहीं मार्गमें ही बैठ रहीं । (३) फिर ज्योंही दक्षकी पुत्री सतीने आँखें खोलीं तो वहाँ उन्हें कहीं कुछ नहीं दिखाई दिया । फिर तो वे बार-बार रामके चरणोंमें सिर नवाते हुए शंकरके पास लौटी चली आईं । (४)

सती जब महादेवके पास पहुँची तब शिवने हँसकर कुशल पूछते हुए छेड़ा—'तुमने रामकी परीक्षा किस प्रकार ली, सारी बात ठीक-ठीक सुना जाओ' ।।५५।। सतीकी समझ (बुद्धि)-पर रामकी मायाका ऐसा प्रभाव पड़ गया था कि डरके मारे शंकरसे भी उन्होंने कपट किया और बोलीं—'मैंने उनकी कोई परीक्षा-वरीक्षा नहीं ली । केवल जाकर वैसे ही प्रणाम करके लौट आई जैसे आपने किया था । (१) मेरे मनमें पक्का विश्वास है कि रामके विषयमें आपने जो कुछ कहा वह झूठ थोड़े ही हो सकता है ।'

६९२-९८ आत्मादिस्तंबपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः । नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ।।
एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् । यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ।।
ततोऽतिकुतुकोद्वृत्य स्तिमितैकादशेन्द्रियः । तद्धाम्ना भूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिकाः ।।भा०
७००-१ गत्वा शंभुसमीपं च प्रणनाम शिवं हृदा । विषण्णवदना सा शोकव्याकुला विगतप्रभा ।।
अथ तां दुःखितां दृष्ट्वा पप्रच्छ कुशलं हरः । प्रोवाच वचनं प्रीत्या तत्परीक्षा कृता कथम् ।।
७०२-४ श्रुत्वा शिववचो नाहं किमपि प्रणतानना । सती शोकविषण्णा सा तस्थौ तत्र समीपतः ।।शिव०

तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना। (२)
बहुरि राम-मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा।
हरि-इच्छा भावी बलवाना। हृदय बिचारत संभु सुजाना। (३)
सती कीन्ह सीता कर बेषा। सिव-उर भयउ बिषाद बिसेषा।
जौं अब करौं सती सन प्रीती। मिटै भगति-पथ, होइ अनीती। (४)
७१० दो०—परम पुनीत न जाइ तजि, किए प्रेम बड़ पाप।
प्रगटि न कहत महेस कछु, हृदय अधिक संताप ॥५६॥
तब संकर प्रभुपद सिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा।
ऐहि तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं। सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। (१)
अस बिचारि संकर मति-धीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा।
चलत गगन भइ गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई। (२)

तब शंकरने ध्यान लगाया और सतीने जो कुछ किया था वह सब जान लिया। (२) यह जानकर उन्होंने रामकी उस मायाके आगे सिर नवा लिया जिसने प्रेरणा करके सतीसे भी झूठ बुलवा डाला। परम ज्ञानी शंकरने मनमें विचार किया कि हरिकी इच्छा और भावी (होनहार) बड़ी प्रबल होती है। (३) शिवके मनमें यही जानकर बहुत दुःख हुआ जा रहा था कि सतीने जाकर सीताका रूप धारण कर डाला। उन्होंने सोचा कि अब यदि सतीके साथ प्रीति करता हूँ (उन्हें पत्नी मानता हूँ) तो भक्तिका मार्ग मिट चलता है और बड़ा अन्याय होता है (क्योंकि सती तो इष्टदेवकी पत्नीका स्वरूप धारण करनेके कारण पूज्य हो गई हैं)। (४)

शिवने खुलकर तो कुछ नहीं कहा पर उनके हृदयमें इस बातसे बड़ी उथल-पुथल मच उठी। एक ओर परम पवित्र सतीको छोड़ते भी नहीं बन रहा था और दूसरी ओर उनके साथ प्रेमका (पत्नीका) सम्बन्ध भी नहीं बनाए रखा जा सक रहा था (पत्नी नहीं माना जा सकता था) क्योंकि ऐसा करते तो बहुत बड़ा पाप होता ॥ ५६ ॥

तब शंकरने प्रभु रामके चरणोंमें झुककर सिर नवा लिया। रामका स्मरण करते ही उनके मनमें यह निश्चय जाग उठा और उन्होंने संकल्प कर लिया कि सतीके इस शरीरसे अब (पति-पत्नी रूपमें) मेरा सम्बन्ध समाप्त हो गया। (१) ऐसा निश्चय करके शान्त बुद्धिवाले शंकर मार्ग-भर रामका स्मरण करते हुए अपने भवन (कैलास)-की ओर चल पड़े। वे जब चलते चले जा रहे थे तभी यह आकाशवाणी हुई—'हे शंकर! आपकी जय हो! आपने अपने संकल्पसे भक्ति-मार्ग दृढ करके दिखला दिया (भक्तको ऐसा ही करना चाहिए)। (२) ऐसा प्रण और दूसरा कर कौन

७०५ अथ ध्यात्वा महेशस्तु बुबोध चरितं हृदा। दक्षजाया महायोगी नानालीलाविशारदः ॥शि०
७०६-७ कर्मणा बाध्यते बुद्धिर्न बुद्धया कर्म बाध्यते। सुबुद्धिरपि यद्रामो हैमं हरिणमन्वगात् ॥सुभा०
७०८-८ विषादोऽभूत्प्रभोस्तस्य मनस्येवमुवाच ह। कुर्यां चेद्दक्षजाया हि स्नेहं पूर्वं यथा महान् ॥
नश्येन्मम पणः शुद्धो लोकलीलानुसारिणः ॥
७१२-१३ इत्थं विचार्य बहुधा हृदा तामत्यजत्सतीम्। पणं न नाशयामास वेदधर्मप्रपालकः ॥
७१४ ततो विहाय मनसा सतीं तां परमेश्वरः। जगाम स्वगिरिं भेदं न प्रकाशितवान् प्रभुः ॥
७१५-१६ चलन्तं पथि तं व्योमवाण्युवाच महेश्वरम्। सर्वान् संश्रावयन् तत्र दक्षजां च विशेषतः ॥शिवपु०

अस पन तुम बिनु करै को आना। राम-भगत, समरथ भगवाना।
सुनि नभ-गिरा सती-उर सोचा। पूछा सिवहिं समेत सँकोचा। (३)
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्य-धाम प्रभु दीन-दयाला।
जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर - आराती। (४)

७२० दो०—सती हृदय अनुमान किय, सब जानेउ सर्वग्य।
कीन्ह कपट मैं संभु - सन, नारि सहज जड़ अग्य ॥ ५७ क ॥

सो०—जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत पुनि ॥ ५७ ख ॥

हृदय सोच समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी।
कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा। (१)

हो सकता है ? आप रामके भक्त हैं। आपको छोड़कर ऐसा समर्थ भगवान् कौन है ?' यह आकाशवाणी सुनते ही सती बड़ी चिन्तित हो उठीं और उन्होंने सकुचाते हुए शिवसे पूछा— (३) 'हे कृपालु ! आप सत्यनिष्ठ और दीनदयालु हैं। बताइए, आपने कौन-सी प्रतिज्ञा कर ठानी है ?' यद्यपि सतीने बहुत घेर-घारकर उनसे पूछा, पर त्रिपुरारि शंकरने (इस विषयमें) उन्हें कुछ भी वताकर न दिया। (४)

सती अपने हृदयमें ताड़ गईं कि स्त्री होनेके कारण मैं स्वभावसे ही मूर्ख और ना-समझ हूँ। हो न हो, शंकरसे जो मैंने कपट किया है वह सब ये सर्वज्ञ शिव जान गए हैं ॥ ५७ क ॥ (तुलसीदास कहते हैं) प्रीतिकी यह विचित्र रीति तो देखिए कि पानी भी (दूधके साथ मिलकर) दूधके ही भाव बिकने लगता है पर उसमें जहाँ थोड़ी भी कपटकी खटाई पड़ी कि वह झट फट चलता है (और उसका सारा स्वाद बिगड़ जाता है। प्रेममें कपट करनेसे प्रेम बना नहीं रह सकता)। ॥ ५७ ख । अपनी (यह खोटी) करनी समझकर सतीके मनमें इतना पछतावा और इतनी अपार चिन्ता हो चली जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता (कि मैंने रामसे जो कपट किया सो तो किया ही; यहाँ शंकरसे भी आकर झूठ बोल बैठी)। 'शिव तो कृपाके अथाह समुद्र (इतने कृपालु) हैं, इसीलिये उन्होंने खुलकर मुझे मेरा अपराध नहीं बताया।' (१) और यह समझकर वे

---

७१६ धन्यस्त्वं परमेशान त्वत्समोऽद्य तथा पणः। न कोऽप्यन्यस्त्रिलोकेऽस्मिन् महायोगी महाप्रभुः ॥
७१७-१८ श्रुत्वा व्योमवचो देवी शिवं पप्रच्छ विप्रभा। कं पणं कृतवान्नाथ ब्रूहि मे परमेश्वर ॥
७१९ इति पृष्टोऽपि गिरिशः सत्या हितकरः प्रभुः। नह्याह स्वपणं तस्यै हयंग्रे यत्कृतं पुरा ॥
७२०-२१ तदा सती शिवं ध्यात्वा स्वपतिं प्राणवल्लभम्। सर्वं बुबोध हेतुं तं प्रियत्यागमयं मुने ॥ शिवपु०
७२२-२३ क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिलाः,
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः।
गन्तुं पावकमुन्मनास्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं,
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ —भर्तृहरिशतक

संकर - रुख अवलोकि भवानी । प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ।
निज अघ समुझि, न कछु कहि जाई । तपै अवाँ - इव उर अधिकाई । (२)
सतिहि ससोच जानि वृषकेतू । कही कथा सुंदर सुख - हेतू ।
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा । बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा । (३)
७३० तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन । बैठे बट-तर करि कमलासन ।
संकर सहज सरूप सम्हारा । लागि समाधि अखंड अपारा । (४)
दो०—सती बसहिं कैलास तब , अधिक सोच मन-माहिं ।
मरम न कोऊ जान कछु , जुग - सम दिवस सिराहिं ।।५८।।
नित नव सोच सती - उर भारा । कब जैहौं दुख - सागर - पारा ।
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पति-बचन मृषा करि जाना । (१)
सो फल मोहिं बिधाता दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ।
अब बिधि अस बूझिय नहिं तोहीं । संकर - बिमुख जियावसि मोहीं । (२)

हृदयमें बड़ी व्याकुल हो उठीं कि भगवान् शंकरने सदाके लिये मेरा परित्याग कर दिया । पर यह सब अपना ही पाप समझकर वे उनसे कुछ कह न सकीं । (अत्यन्त ग्लानिके कारण) उनका हृदय (कुम्हारके) आँवेंकी भाँति भीतर ही भीतर सुलगा पड़ रहा था । (२) सतीको इतना चिन्तित जानकर वृषकेतु शंकर उन्हें सान्त्वना देनेके लिये बहुत-सी सुन्दर-सुन्दर कथाएँ सुनाने लगे । इस प्रकार मार्गमें इतिहासकी अनेक कथाएँ सुनाते हुए भगवान् विश्वनाथ कैलास जा पहुँचे । (३) वहाँ पहुँचकर और अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके वे कमलासन लगाकर (दोनों जाँघोंपर दोनों पैर जमाकर) वट-वृक्षके नीचे जा बैठे और वहाँ शंकरने अपना स्वाभाविक रूप सँभालकर गहरी अखण्ड समाधि जा लगाई । (४)

तब सती भी कैलासपर जाकर बैठ रहीं । उनके मनमें बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी । यह भेद कोई दूसरा तो जानता नहीं था पर उनका एक-एक दिन एक-एक युगके समान बीता जा रहा था । ।। ५८ ।। सतीके हृदयमें नित्य नई-नई चिन्ताएँ उठती चल रही थीं । (अब रह-रहकर वे सोचे जा रही थीं) कि इस दुःखके सागरको मैं कब पार कर पाऊँगी ? मैंने जो रामका अपमान किया और अपने पतिके वचनोंको झूठ समझा (१) उसीका फल विधाता मुझे दिए डाल रहा है और जो उचित दंड मिलना चाहिए था वही दिए जा रहा है । पर हे विधाता ! अब तुम्हें यह नहीं करना चाहिए कि शंकरसे अलग होनेपर भी तुम मुझे जिलाए चले जाओ । (२) सतीके

७२४-२७ ततोऽतीव शुशोचाशु बुद्ध्वा सा त्यागमात्मनः । शंभुना दक्षजा तस्मान् निःश्वसन्ती मुहुर्मुहुः ।।
७२८ शिवस्तस्याः समाज्ञाय गुप्तं चक्रे मनोभवम् । सत्यै पणं स्वकीयं हि कथा बह्वीर्वदन् प्रभुः ।।
७२९-३१ सत्या प्राप स कैलासं कथयन् विविधाः कथाः । वटे स्थित्वा निजं रूपं दध्यौ योगी समाधिभृत् ।।
७३२-३३ तत्र तस्थौ सती धाम्नि महाविषण्णमानसा । न बुबोध चरित्रं तत् कश्चिच्च शिवयोर्मुने ।।शिव०

कहि न जाइ कछु हृदय गलानी । मन महँ रामहिं सुमिरि सयानी ।
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा । आरति-हरन बेद जस गावा । (३)
७४० तौ मैं बिनय करौं कर जोरी । छूटै बेगि देह यह मोरी ।
जौं मोरे सिव-चरन सनेहू । मन - क्रम - बचन सत्य व्रत एहू । (४)

दो०—तौ सब-दरसी सुनिय प्रभु , करौ सो बेगि उपाइ ।
होइ मरन जेहि बिनहि श्रम , दुसह बिपत्ति बिहाइ ॥ ५९ ॥

ऐहि बिधि दुखित प्रजेस-कुमारी । अकथनीय दारुन दुख भारी ।
बीते संबत सहस सतासी । तजी समाधि संभु अबिनासी । (१)
राम-नाम सिव सुमिरन लागे । जानेउ सती जगत-पति जागे ।
जाइ संभुपद बंदन कीन्हा । सनमुख संकर आसन दीन्हा । (२)

हृदयमें इतनी ग्लानि आ समाई थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । बुद्धिमती सती मन ही मन रामका स्मरण करके कहने लगीं—'हे प्रभो ! आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदोंने भी आपको दुःख-हरण करनेवाला मानकर आपके यशका वर्णन किया है, (३) इसलिये मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि जैसे भी हो मुझे शीघ्र उठा लो (जीवनसे छुटकारा दिला दो) । यदि शिवके चरणोंमें मेरा सच्चा प्रेम है तथा मन, वचन और कर्मसे मेरा यह व्रत सत्य है तो हे सर्वदर्शी प्रभो ! मेरी प्रार्थना सुन लीजिए और शीघ्र ही ऐसा उपाय कीजिए (४) कि मैं जीवनसे छुटकारा पा लूँ और बिना परिश्रम के ही इस असह्य विपत्तिसे छुटकारा पा जाऊँ' ॥ ५९ ॥ इस प्रकार दक्षकी पुत्री सती इतनी अधिक दुखी हो चली थीं कि उनके प्रचण्ड दुःखका वर्णन नहीं किया जा सकता ।

सत्तासी हज़ार वर्ष बीत जानेपर तब कहीं जाकर अविनाशी शंकरने अपनी समाधि तोड़ी (१) और जब वे (शिव) समाधिसे जागकर राम-नामका जप करने लगे तब सतीने जाना कि जगत्के स्वामी शंकर (समाधिसे) जाग उठे हैं । उन्होंने झट शंकरके चरणोंमें जा प्रणाम किया और शंकरने भी उन्हें अपने सामने[1] बैठनेके लिये आसन बढ़ा दिया (२) और वे (शिव) बैठकर सतीको हरिकी रसीली-रसीली कथाएँ सुनाने लगे ।

---

१. पत्नी-रूपसे सतीका परित्याग कर देनेपर शंकरने सतीको अपनी बाईं ओर आसन न देकर भक्त और शिष्यके रूपमें अपने सम्मुख आसन दिया ।

७४४-४५ महान् कालो व्यतीयाय तयोरित्थं महामुने । स्वोपात्तदेहयोः प्रभ्वोर्लोकलीलानुसारिणोः॥
ध्यानं तत्याज गिरिशस्ततस्स परमार्तिहृत् ।
७४६-४७ तज्ज्ञात्वा जगदंबा हि सती तत्राजगाम सा । ननामाथ शिवं देवी हृदयेन विदूयता ॥
आसनं दत्तवान् शम्भुः स्वसम्मुख उदारधीः । कथयामास संप्रीत्या कथा बह्वीर्मनोरमाः ॥शिवपु०

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भये तेहि काला।
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहिं कीन्ह प्रजापति-नायक। (३)
७५० बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमान हृदय तब आवा।
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं। (४)

दो०—दच्छ लिए मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख-भाग ॥ ६० ॥

किन्नर, नाग, सिद्ध, गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा।
बिष्नु बिरंचि महेस बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई। (१)
सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना।
सुरसुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि-ध्याना। (२)
पूछेउ तब, सिव कहेउ बखानी। पिता-जग्य सुनि कछु हरषानी।

उन्हीं दिनों दक्ष नये-नये प्रजापति हुए थे। ब्रह्माजीने दक्षको सब प्रकारसे योग्य जानकर उन्हें ही प्रजापतियोंका नायक बना दिया था। (३) इतना बड़ा अधिकार पाना था कि दक्षके हृदयमें बड़ा अभिमान जाग उठा। (तुलसीदास कहते हैं—) संसारमें ऐसा कोई माईका लाल नहीं जनमा जिसे प्रभुता (ऊँचा पद) पाकर मद न हो गया हो। (४) दक्ष (प्रजापति[1])-ने सब मुनियोंको बुलाकर बहुत बड़ा यज्ञ ठान दिया। यज्ञका भाग पानेवाले जितने भी देवता थे उन सबको दक्षने बड़े आदरके साथ निमन्त्रण दिया ॥ ६० ॥ (दक्षका निमन्त्रण पाते ही) किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ (दक्षके यज्ञमें आमन्त्रित होकर) चल दिए। विष्णु, ब्रह्मा और महादेवको छोड़कर सभी देवता अपने-अपने विमान सजा-सजाकर उड़ चले। (१) सतीने बैठे-बैठे सिर उचकाकर देखा कि आकाशमें अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर विमान उड़े चले जा रहे हैं जिनपर बैठी देवताओंकी स्त्रियाँ ऐसे मधुर गान गाए चली जा रही हैं कि उन्हें सुन-सुनकर मुनियोंका ध्यान भी छूटा पड़ रहा है। (२) तब सतीने (आकाश-मार्गका दृश्य देखकर) शिवसे पूछा (कि ये सब कहाँ चले जा रहे हैं)? शिवने विस्तार-पूर्वक (दक्षके) यज्ञकी सारी बातें उन्हें कह सुनाईं। पिताके यहाँ यज्ञ होनेकी बात सुनकर सतीको बड़ी प्रसन्नता हुई और

---

१. 'प्रजापति'का पद इन्द्र आदि देवताओंसे भी बड़ा है। ब्रह्माके बाद 'प्रजापति'का ही पद है।

---

७४८ यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना। प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥ भाग०
७५१ कोऽर्थान्प्राप्य न गर्वितः ॥ —सुभाषित
७५२-५३ दृष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च। बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥
तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षि-पितृदेवताः। आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥भा०
७५४-५७ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम्। सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥
व्रजतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः। विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककंठीः सुवाससः ॥
दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्यासे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः। पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥शिवपु०

जौं महेस मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं। (३)
७६० पति - परित्याग हृदय दुख भारी। कहै न निज अपराध विचारी।
बोलीं सती मनोहर बानी। भय - संकोच - प्रेम - रस - सानी। (४)
दो०—पिता-भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥ ६१ ॥
कहेहु नीक मोरेहु मन भावा। यह अनुचित, नहिं नेवत पठावा।
दच्छ सकल निज सुता बोलाई। हमरे बयर तुम्हउँ बिसराई। (१)
ब्रह्म-सभा हम सन दुख माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना।
जौं बिनु बोले जाहु भवानी। रहै न सील, सनेह न कानी। (२)
जदपि मित्र-प्रभु-पितु-गुरु - गेहा। जाइय बिनु बोलेहु, न सँदेहा।
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गये कल्यान न होई। (३)
७७० भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी-बस न ज्ञान उर आवा।
कह प्रभु, जाहु जो बिनहिं बोलाए। नहिं भलि बात हमारे भाए। (४)

वे सोचने लगीं कि यदि शंकर आज्ञा दे दें तो मैं इसी बहाने कुछ दिन पिताके घर जाकर रह आऊँ ॥ ३ ॥ उनके हृदयमें इस बातका बड़ा भारी दुःख था कि पतिने मेरा परित्याग कर दिया है पर इसमें उनका अपना ही अपराध था, यह समझकर वे कुछ कह नहीं रही थीं। अन्तमें सतीने भय, संकोच और प्रेमसे भरी मनोहर वाणीमें (शंकरसे) कहा—(४) 'पिताके घरमें इतना बड़ा उत्सव हो रहा है। यदि प्रभुकी आज्ञा हो तो मैं भी आदर-सहित जाकर यज्ञ देख आऊँ' ॥ ६१ ॥ (यह सुनकर) शंकरने कहा कि 'तुमने बात तो बड़ी अच्छी कही और मुझे भी ठीक ही जँच रही है पर उन्होंने हमें निमंत्रण न देकर बड़ा अनुचित काम किया है। दक्षने अपनी सब कन्याओंको तो बुला भेजा पर मुझसे बैर रखनेके कारण ही वे तुम्हें भी बुलाना भूल गए। (१) (बात यह हुई थी कि) एक बार ब्रह्माकी सभामें वे हमसे अप्रसन्न हो गए थे। उसी कारण वे आजतक हमारा अपमान किए चले जा रहे हैं। देखो भवानी ! (यह भली प्रकार समझ लो कि) यदि तुम बिना बुलाए वहाँ चली भी जाओगी तो शील, स्नेह और मान-मर्यादा कुछ भी न रह जायगी। (२) यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरुके घर बिना बुलाए भी जाया जा सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर जहाँ कोई अपनेसे वैर मानता हो वहाँ जानेसे कभी कल्याण नहीं होता।' (३) यद्यपि शंकरने सतीको बहुत समझाया, पर होनहार कुछ ऐसी थी कि सतीके हृदयमें एक भी बात लगकर न दी (कुछ भी बोध न हो सका)। शंकरने फिर कहा कि 'यदि तुम बिना बुलाए चली जाओगी तो

७५८-५९ पितुर्मम महान् यज्ञो भवतीति मया श्रुतम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मया गच्छ सह प्रभो ।।–शिवपु०
७६४-६६ व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता।
अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥ –भागवत
७६७ अनाहूताश्च ये देवि गच्छन्ति परमन्दिरम्। अवमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं तथा ।।–शिवपु०
७६८-६९ त्वयोदितं शोभनमेवशोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बंधुषु।
ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसा नात्म्यमदेन मन्युना ॥
७७१ यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति।
संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ –भागवत

दो०—कहि देखा हर जतन बहु , रहै न दच्छकुमारि ।
दिए मुख्य गन संग तब , बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ ६२ ॥

पिता - भवन जब गई भवानी । दच्छ - त्रास काहु न सनमानी ।
सादर भलेहि मिली एक माता । भगिनी मिलीं बहुत मुसुकाता । (१)
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ।
सती जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभु - कर भागा । (२)
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ।
पाछिल दुख अस हृदय न व्यापा । जस यह भयउ महा परितापा । (३)
७८० जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब तें कठिन जाति-अपमाना ।
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा । बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा । (४)

हमारी समझमें यह अच्छी बात न होगी ।' (४) शंकर अनेक प्रकारसे समझाकर हार गए किन्तु जब (उन्होंने देखा कि) सती जानेपर तुली ही हुई हैं तो शिवने अपने मुख्य गण उनके साथ करके उन्हें भेज ही दिया ॥ ६२ ॥

भवानी जब पिता (दक्ष)-के घर पहुँचीं, तब दक्षके डरके मारे किसीने उनका आगत-स्वागत नहीं किया । केवल उनकी माता ही एक थीं जो बड़े प्रेमसे मिलीं और उनकी बहिनें भी मिलीं तो (व्यंग्यसे) बहुत मुसकराती हुई मिलीं (कि तुम बिना बुलाए कैसे चली आई ?) । (१) दक्षने तो उनसे कुशल-तक न पूछी । (यहाँतक नहीं,) सतीको देखकर उनके अङ्ग-अङ्ग जल उठे । सतीने जाकर जब यज्ञ-मण्डप देखा तो वहाँ शंकरका यज्ञ-भाग ही कहीं दिखाई नहीं दिया । (२) तब तो शिवने जो कुछ कहा था वह सब उनकी समझमें आने लगा और इस व्यवहारको प्रभु (शंकर)-का अपमान समझकर उनका हृदय जल उठा । उस समय पिछला (पति-द्वारा परित्यागका) दुःख उनके हृदयमें उतना नहीं कसक रहा था जितना महान् दुःख इस समय (पतिके अपमानके कारण) होने लगा । (३) तुलसीदास कहते हैं की यद्यपि संसारमें एकसे एक बढ़कर भयंकर दुःख भरे पड़े हैं, फिर भी जाति-अपमान (अपने सगे-संबंधियोंके हाथों अपमान)-का दुःख सबसे भयंकर होता है । यह समझकर

७७२-७३ शिव उवाच । यद्येवं ते रुचिर्देवि तत्र गन्तुमवश्यकम् । सुव्रते वचनान्मे त्वं गच्छ शीघ्रं पितुर्मखम् ॥
गणाः षष्टिसहस्राणि रौद्रा जग्मुः शिवाज्ञया ।

७७४-७६ दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभः ॥
आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी । अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम् ॥
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि कंचन । नान्योपि तद्भयात्तत्र शिवमायाविमोहितः ॥

७७७-७८ भागानपश्यद् देवानां हर्यादीनान्तदध्वरे । न शम्भुभागमकरोद् क्रोधं दुर्विषहं सती ॥शिवपु०

७७९ एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहम्पारमिवार्णवस्य ।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितम्मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ —हितोपदेश

७८०-८१ सम्भावितस्य स्वजनात् पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ —भाग०

दो०—सिव-अपमान न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहिं हठि हटकि तब, बोलीं बचन सक्रोध॥ ६३॥
सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर-निंदा।
सो फलु तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू॥ (१)
संत-संभु-श्रीपति-अपबादा। सुनिय जहाँ, तहँ असि मरजादा।
काटिय तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि नत चलिय पराई॥ (२)
जगदातमा महेस पुरारी। जगत-जनक सबके हितकारी।
पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ-सुक्र-संभव यह देही॥ (३)
७६० तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू।
अस कहि जोग-अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥ (४)

सतीको इतना क्रोध आया कि वे आपेसे बाहर हो गईं। माताने उन्हें बहुत समझाना चाहा (४) पर शिवका अपमान सतीसे सहा नहीं गया। (अपनी माताकी बातोंसे) उनके हृदयमें कुछ भी सन्तोष नहीं हो पाया। वे सारी सभाको फटकारती हुई क्रोधसे लाल होकर गरज उठीं—॥६३॥ 'अरे सभासदो और मुनीश्वरो! तुम सब कान खोलकर सुन लो! यहाँ जिन लोगोंने भी शंकरका अपमान किया है अथवा उनकी निन्दा सुनी है उन सबको तो उसका तुरन्त फल भोगना ही पड़ेगा, मेरे पिताको भी भली भाँति पछताना पड़ जायगा। (१) जहाँ कहीं सन्तोंकी, शिवकी और लक्ष्मीके पति (विष्णु)-की निन्दा सुनी जाय, वहाँ (-के लिये) ऐसा ही नियम है कि वश चले तो निन्दा करनेवालेकी जीभ काट ले और यदि यह न हो सके तो अपने कान मूँदकर वहाँसे चलता बने। (२) त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले शंकर तो जगत्के आत्मा, जगत्के पिता और सबके हितकारी हैं। मन्द बुद्धिवाले मेरे पिताने उन्हींका अपमान किया है। यह (मेरा) शरीर (दुर्भाग्यसे) इन्हीं दक्षके ही तेजसे उत्पन्न हुआ है, (३) इसलिये चन्द्रमौलि वृषकेतु शंकरको हृदयमें धारण करके मैं तुरन्त इस शरीका परित्याग किए डालती हूँ।' ऐसा कहकर योगकी अग्नि धधकाकर सती देखते-देखते जलकर भस्म हो गईं। फिर क्या था! सारी यज्ञशालामें हाहाकार मच उठा। (४) सतीका भस्म होना

७८२-८३ ततः संक्रुद्धय सा दक्षं निश्शंकं प्राह तानपि। सर्वान् विष्ण्वादिकान्देवान् मुनीनपि सती ध्रुवम्॥
७८४-८५ यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति वा। तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
७८६-८९ यस्य लोकेऽप्रियो नास्ति प्रियश्चैव परात्मनः। तस्मिन्न वैरे शर्वेऽस्मिन् त्वां विना कः प्रतीपकः॥
किं बहूक्तेन वचसा दुष्टस्त्वं सर्वथा कुधीः। त्वदुद्भवेन देहेन मा मे कश्चित् प्रयोजनम्॥—शि०
७६०-६१ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो, जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते॥ —भाग०
हतकल्मषतद्देहः प्राप तच्च तदग्निना। भस्मसादभवत् सद्यो मुनिश्रेष्ठ तदिच्छया॥
तत्पश्यताञ्च खे भूमौ नादोभूत् सुमहांस्तदा। हाहेति सोद्भुतश्चित्रं सुरादीनाम्भयावहः॥शिवपु०

दो०—सती - मरन सुनि संभुगन , लगे करन मख खीस ।
जग्य-बिधंस बिलोकि भृगु , रच्छा कीन्हि मुनीस ।। ६४ ।।

समाचार जब संकर पाए । बीरभद्र करि कोप पठाए ।
जग्य - बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह बिधिवत फल दीन्हा । (१)
भइ जग बिदित दच्छ गति सोई । जसि कछु संभु - बिमुख - कै होई ।
यह इतिहास सकल जग जाना । तातें मैं संछेप बखाना । (२)
सती मरत हरि - सन बर माँगा । जन्म - जन्म सिवपद - अनुरागा ।
तेहि कारन हिमगिरि - गृह जाई । जनमी पारबती - तनु पाई । (३)
८०० जब तें उमा सैल - गृह जाई । सकल सिद्धि - संपति तहँ छाई ।
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे । उचित बास हिम - भूधर दीन्हे । (४)

दो०—सदा सुमन-फल-सहित सब , द्रुम नव नाना जाति ।
प्रगटीं सुन्दर सैल पर , मनि - आकर बहु भाँति ।। ६५ ।।

सुनते ही शिवके गणोंने आव देखा न ताव, सब लगे यज्ञका विध्वंस करने ! यज्ञका विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगु किसी-किसी प्रकार कठिनाईसे उसकी रक्षा कर पाए ।। ६४ ।। जब शंकरको यह समाचार मिला तब तो वे क्रोधसे लाल हो उठे । उन्होंने झट वीरभद्रको (वहाँ) भेज दिया जिसने जाते ही सारा यज्ञ पल-भरमें तहस-नहस कर डाला और जितने देवता वहाँ आए थे सबको उनकी करनीका उचित फल चखा दिया । (१) सारा संसार जान गया कि दक्षकी वही गति हुई जो शिवके द्रोहीकी होनी चाहिए थी । (याज्ञवल्क्यने भरद्वाजसे कहा कि) यह इतिहास इतना प्रसिद्ध है कि सारा संसार यह कथा जानता है, इसलिये मैंने बहुत थोड़ेमें ही इसका वर्णन किया है । (२)

शरीर छोड़ते समय सतीने हरिसे यह वरदान माँगा था कि प्रत्येक जन्ममें शिवके चरणोंमें ही मेरा अनुराग (प्रेम) बना रहे । इसी कारण उन्होंने हिमाचलके (अधिपतिके) घरमें पार्वतीके रूपमें जन्म लिया । (३) जबसे हिमाचलके घरमें उमा आईं तबसे संसारकी सारी सिद्धि और सम्पति वहाँ आ छाईं । जहाँ-तहाँ जो भी मुनि आकर सुन्दर आश्रम बसाना चाहता था उसे हिमाचल उचित स्थान देते चलते थे (हिमाचलपर बहुतसे मुनियोंने आकर आश्रम बसा लिए और उन्हें हिमाचलने ही स्थान भी दिया) । (४) उस मनोहर पर्वतपर अनेक प्रकारके नये-नये वृक्ष सदा फल-फूलसे लदे रहते थे । वहाँ अनेक खानें विभिन्न प्रकारके रत्नोंसे पटी पड़ी थीं ।।६५।।

७९२-९३ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् । दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ।।
तेषामापततं वेगं निशम्य भगवान् भृगुः । यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहावह ।।
अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा । ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ।।
तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सह गुह्यकाः । हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ।।
७९४-९७ रुद्रे क्रुद्धे कथं लोके सुखं भवति सत्तमाः । रुद्रस्यानुचरैस्तत्र वीरभद्रादिभिः कृते ।।
यज्ञध्वंसे तथा जाते देवलोकेऽथ जीविते ।। —शिवपुराण
७९८-९९ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् । जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ।।भाग०
८००-१ श्रुत्वा तु मुनयस्तत्र विस्मयं परमं गताः । दर्शनार्थं समाजग्मुस्तस्थुः शैलेन्द्रपूजिताः ।।
८०२-३ वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च । पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन्नृषिसत्तमा।।शिवपु०

सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।
सहज बैर सब जीवन्ह त्यागा। गिरि-पर सकल करहिं अनुरागा। (१)
सोह सैल गिरिजा गृह आए। जिमि जग रामभगति-के पाए।
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रम्हादिक गावहिं जस जासू। (२)
नारद समाचार सब पाए। कौतुक-हीं गिरि-गेह सिधाए।
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसन दीन्हा। (३)
८१० नारि-सहित मुनिपद सिर नावा। चरन-सलिल सब भवन सिंचावा।
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि-चरना। (४)
दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता-के दोष-गुन, मुनिवर हृदय बिचारि ॥ ६६ ॥

वहाँकी सभी नदियोंमें सदा पवित्र जल बहता रहता है। वहाँ पक्षी, पशु और भौंरे सभी सुखसे विचरते रहते हैं। सभी जीव अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर उस पर्वतपर परस्पर प्रेमपूर्वक बसे रहते हैं। (१) पार्वतीके जन्म लेनेसे हिमाचल ऐसा हराभरा हो उठा जैसे रामकी भक्ति करके मनुष्य खिल उठता है। उस हिमाचलके घर नित्य ऐसे-ऐसे नये-नये मंगलोत्सव होते रहते थे जिनके यशका वर्णन ब्रह्मा आदि नित्य करते ही रहते हैं। (२) जब नारद मुनिको यह (पार्वतीके जन्मका) समाचार मिला तो वे भी एक दिन कौतुकवश हिमाचलके घर जा पहुँचे। आते ही शैलराज हिमाचलने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उनके पाँव धोकर उन्हें सुन्दर आसन-पर ले जा बैठाया। (३) हिमवान् और उनकी पत्नी (मेना)-ने मुनिके चरणोंमें सिर आ नवाया और उनका चरणोदक सारे घरमें ले जा छिड़कवाया। (नारदके आगमनसे) हिमवान्ने अपने भाग्यकी बड़ी सराहना की तथा अपनी पुत्री (पार्वती)-को उनके चरणोंपर बुला नमन कराया। (४) यह सब कर चुकनेपर (वे बोले)—'हे मुनिश्रेष्ठ ! आप तो तीनों कालोंकी सब बातें जानते हैं और आपकी गति भी सर्वत्र है (आप जहाँ चाहें वहाँ आ-जा सकते हैं) इसलिये आप भली भाँति विचार करके इस कन्याके सब दोष और गुण बता डालिए ॥ ६६ ॥

८०४ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः। द्विजालिकुलसन्नादस्स्तवका वनराजयः ॥—भाग०
८०५ सिंहा गावस्तथान्ये च रागादिदोषसंयुताः। तन्महिम्नैव ते तत्र नाबाधन्त परस्परम् ।—शिव०
८०७ स महेन्द्र-हरि-ब्रह्म-वायु-वह्निपुरोगमाः। पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तु हिमभूधरे ॥
८०८ अवगम्यार्थमखिलं तत आमंत्र्य नारदः। शक्रं जगाम भगवान् हिमशैलनिवेशनम् ॥
८०९-१० निवेदिते स्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते। महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः ॥
यथार्हं चार्घ्यपाद्यं च शैलस्तस्मै न्यवेदयत्। —मत्स्यपुराण
८११-१३ आहूय च स्वतनयां त्वदंघ्र्योस्तामपातयत्। पुनर्नत्वा मुनीश त्वामुवाच हिमभूधरः ॥
साञ्जलिः स्वविधिं मत्वा बहुसन्नतमस्तकः। हे मुने नारद ज्ञानिन् ब्रह्मपुत्र वरप्रभो ॥
सर्वज्ञस्त्वं सकरुणः परोपकरणे रतः। मत्सुताजातकं ब्रूहि गुणदोषसमुद्भवम् ॥—शिवपु०

कह मुनि बिहँसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी।
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी। (१)
सब लच्छन - संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहिं पियारी।
सदा अचल ऐहि कर अहिवाता। ऐहि तें जस पैहहिं पितु-माता। (२)
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। ऐहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।
ऐहि कर नाम सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत-असि-धारा। (३)
८२० सैल ! सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ-चारी।
अगुन, अमान, मातु-पितु-हीना। उदासीन, सब संसय - छीना। (४)

दो०—जोगी, जटिल, अकाम-मन, नगन, अमंगल - बेख।
अस स्वामी ऐहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख॥ ६७॥

सुनि मुनि-गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतिहि, उमा हरषानी।
नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक, समुझब बिलगाना। (१)
सकल सखी, गिरिजा, गिरि, मैना। पुलक सरीर, भरे जल नैना।

यह सुनकर नारद मुनि हँसकर गूढ (रहस्य-भरे) किन्तु मधुर वचन बोले—'हे गिरिराज ! आपकी इस पुत्रीमें सभी गुण ही गुण तो हैं। सुन्दर होनेके साथ-साथ यह स्वभावसे ही सुशील और चतुर है। इसका नाम उमा, अम्बिका और भवानी है। (१) इस कन्यामें सभी (शुभ) लक्षण विद्यमान हैं। जो इसका पति होगा वह सदा इससे प्यार करेगा। इसका सोहाग (सौभाग्य) सदा अचल रहेगा। इसके कारण इसके माता-पिताका भी बड़ा नाम होगा। (२) सारा जगत् इसकी पूजा करेगा। जो इसकी सेवा करेगा उसे कुछ भी प्राप्त कर लेना दुर्लभ न होगा। संसारमें केवल इसका नाम स्मरण करके स्त्रियाँ पातिव्रत धर्मकी तलवारकी पैनी धारपर बेरोक-टोक चढ़ी चली जायँगी (पातिव्रत धर्मका निर्वाह करेंगी)। (३) हे शैलराज ! सचमुच आपकी पुत्रीमें सब अच्छे ही अच्छे लक्षण हैं। अब इसके जो दो-चार दोष हैं, वे भी सुनाए देता हूँ। इसे ऐसा पति मिलेगा जिसमें न कोई गुण होगा (सत्त्व, रजस् और तमस्से परे होगा), न मान होगा (जिसका महत्त्व नापा नहीं जा सकता), जिसके माता-पिताका ठिकाना न होगा (अनादि)। वह बड़ा उदासीन (समदर्शी) होगा और संशय (चिन्ता, भय)-से मुक्त होगा। (४) वह योगी, जटाधारी, कामना-रहित (निष्काम), नंगा और अशुभ वेषवाला (कपाल लिए, चिता-भस्म पोते, सर्प लपेटे, मुंड-माला गलेमें डाले) होगा। इस कन्याके हाथमें रेखाएँ ही ऐसी आ पड़ी हैं॥ ६७॥ नारदके ये वचन सुनकर और उन्हें अपने हृदयमें सच मानकर दम्पती (हिमाचल और उनकी पत्नी)को तो बड़ा दुःख हुआ, किन्तु पार्वतीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। नारद भी इस रहस्यको समझ नहीं पाए क्योंकि एक परिस्थितिको भी लोग भिन्न-भिन्न ढंगसे समझते हैं। (१) सारी सखियाँ, पार्वती, हिमवान् और मेना (पार्वतीजीकी माता) तो दुःखसे किन्तु पार्वती हर्षसे पुलकित हुई जा रही थीं और

८१४ एषा ते तनया मेने सुधांशोरिव वर्धिता। आद्या कला शैलराज सर्वलक्षणशालिनी॥
८१५-१६ स्वपतेः सुखदात्यन्तं पित्रोः कीर्तिविवर्द्धिनी। महासाध्वी च सर्वासु महानन्दकरी सदा॥
८२० सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे। एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्वतः॥
८२१-२३ योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातापितृविवर्जितः। अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः॥
८२४ इत्याकर्ण्य वचस्ते हि सत्यं मत्वा च दंपती। मेना हिमाचलश्चापि दुःखितौ तौ बभूवतुः॥
शिवाकर्ण्य वचस्ते हि तादृशं जगदम्बिका। लक्षणैस्तं शिवं मत्वा जहर्षाति मुने हृदि॥—शिवपु०

होइ न मृषा देवरिषि - भाखा। उमा सो वचन हृदय धरि राखा। (२)
उपजेउ सिव - पद - कमल - सनेहू। मिलन कठिन, मन भा संदेहू।
जानि कुअवसर प्रीति दुराई। सखि - उछंग बैठी पुनि जाई। (३)
८३० झूठ न होइ देवरिषि-बानी। सोचहिं दंपति सखी सयानी।
उर धरि धीर कहै गिरि-राऊ। कहहु नाथ का करिय उपाऊ। (४)

दो०—कह मुनीस हिमवंत सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव, दनुज, नर, नाग, मुनि, कोउ न मेटनहार ॥ ६८ ॥

तदपि एक मैं कहौं उपाई। होइ, करै जौ दैव सहाई।
जस बर मैं बरनेउँ तुम पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं। (१)
जे जे बर - के दोष बखाने। ते सब सिव - पहिं मैं अनुमाने।
जौं बिबाह संकर - सन होई। दोषौ गुन - सम कह सब कोई। (२)

सबके नेत्रोंमें दुःखसे तथा उमाके नेत्रोंमें हर्षसे आँसू उमड़ चले थे। (यह समझकर कि) देवर्षि (नारद)के वचन कभी झूठे नहीं हो सकते, पार्वती उनके वचनपर पूर्ण विश्वास कर बैठीं (२) उन्हें शिवके चरणोंमें स्नेह उत्पन्न हो उठा। पर साथ ही उनके मनमें यह भी संशय हुआ जा रहा था कि शिवको प्राप्त कर लेना कोई हँसी-खेल नहीं है। (अपने मनकी बात खोलकर कहनेका) ठीक समय न जानकर पार्वतीने अपना प्रेम अपने हृदयमें ही छिपाए रक्खा और वे उठकर अपनी सखीकी गोदमें जा समाईं। (३) 'देवर्षि नारदकी वाणी झूठ तो हो नहीं सकती' यह जानकर हिमवान्, मेना और सारी चतुर सखियाँ चिन्तामें डूब चलीं। तब हृदयमें धीरज बटोरकर (नारदसे) गिरिराज कहने लगे—'नाथ! यह तो बतलाइए, कि अब किया क्या जाय?' (४) मुनिराजने—कहा 'देखो हिमवान्! विधाताने जो कुछ ललाट (भाग्य)-में लिख दिया है उसे देवता, दानव, मनुष्य, नाग या मुनि कोई भी मिटा नहीं सकता ॥ ६८ ॥ तो भी, मैं एक उपाय आपको बताए देता हूँ। यदि दैव (भगवान्) सहायता कर दें तो वह (उपाय) अवश्य सफल हो सकता है। मैंने जैसा आपको बताया है, पति तो उमाको वैसा ही मिलेगा, इसमें तो कोइ सन्देह है नहीं। (१) पर मैं समझता हूँ कि वरके जो-जो दोष मैंने गिनाए हैं, वे सभी शिवमें विद्यमान हैं। यदि इनका विवाह शंकरसे हो जाय तो उनके दोषोंको भी लोग गुण ही समझेंगे। (२) जैसे

८२७-२८ न मृषा नारदवचस्त्विति संचिन्त्य सा शिवा। स्नेहं शिवपदद्वन्द्वे चकाराति हृदा तदा ॥—शिवपु०
८३० आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ॥ —उत्तररामचरित
८३१ उवाच दुःखितः शैलस्त्वां तदा हृदि नारद। कमुपायं मुने कुर्य्यामतिदुःखमभूदिति ॥
८३२-३३ नारद उवाच—स्नेहाच्छृणु गिरे वाक्यं मम सत्यं मृषा नहि।
कररेखा ब्रह्मलिपिर्न मृषा भवति ध्रुवम् ॥
८३४-३५ तादृशोऽस्याः पतिः शैल भविष्यति न संशयः। तत्रोपायं शृणु प्रीत्या यं कृत्वा लप्स्यसे सुखम् ॥
८३६-३७ तादृशोस्ति वरः शम्भुर्लीलारूपधरः प्रभुः। कुलक्षणानि सर्वाणि तत्र तुल्यानि सद्गुणैः ॥शिवपु०

जौं अहि-सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह-कर दोष न धरहीं।
भानु, कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं। (३)
८४० सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।
समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाईं। रबि - पावक - सुरसरि - की नाईं। (४)

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ बिबेक - अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान ॥ ६९ ॥

सुरसरि - जलकृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना।
सुरसरि मिले सो पावन जैसे। ईस - अनीसहिं अंतर तैसे। (१)
संभु सहज समरथ भगवाना। ऐहि बिबाह सब बिधि कल्याना।
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोस पुनि किए कलेसू। (२)
जौं तप करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। ऐहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं। (३)

शेषकी शय्यापर सोए रहनेवाले विष्णुको भी विद्वान् लोग बुरा नहीं कहते। सूर्य और अग्नि दोनों सभी रसों (भले और बुरे पदार्थों)-का भक्षण करते रहते हैं, पर उन्हें कोई बुरा नहीं कहता। (३) गंगामें स्वच्छ और गन्दा सभी प्रकारका जल आ-आकर मिलता चलता है, पर उन्हें (गंगाको) कोई अपवित्र नहीं मानता। सूर्य, अग्नि और गंगाके समान जो समर्थ (शक्तिशाली) होते हैं उन्हें कोई दोष नहीं लगा पा सकता। (४) किन्तु यदि कोई मूर्ख मनुष्य अपने ज्ञानके अभिमानमें ऐंठकर इस प्रकारकी होड़ लगा बैठे (अपनेको उन्हींके समान शक्तिशाली समझ बैठे) तो वह कल्पभर नरकमें पड़ा सड़ता रहता है (क्योंकि यह शक्ति तो ईश्वरोंमें ही होती है।) क्या कभी जीव कहीं ईश्वरके समान हो पा सकता है ? ॥ ६९ ॥ गंगाजलसे बनी हुई मदिरा देखकर भी संत लोग उसे नहीं ग्रहण करते, पर वही (मदिरा) यदि गंगाकी धारामें पड़ जाय तो पवित्र हो जाती है। यही भेद ईश्वर और जीवमें है (ईश्वर सब कुछ कर सकनेमें समर्थ होता है, जीव असमर्थ होता है)। (१) शिव तो स्वभावसे ही समर्थ और भगवान् हैं। इसलिये यदि उनके साथ इस कन्याका विवाह हो जाय तो क्या पूछना है ? सब कल्याण ही कल्याण है। यद्यपि महादेवकी आराधना करना कठिन तो है, फिर भी कष्ट (तप)-से तो वे शीघ्र ही प्रसन्न कर लिए जा सकते हैं। (२) यदि आपकी पुत्री तप करनेको तैयार हो सके तो त्रिपुरारि शंकर भावी (भविष्य या भाग्यका लेख) भी मिटा डाल सकते हैं। यद्यपि संसारमें वरोंकी कोई कमी नहीं है पर इस (कन्या)-के लिये तो शिवके अतिरिक्त दूसरा कोई भी वर मुझे ठीक नहीं जँच पा रहा है। (३) शिव

८४१ प्रभौ दोषो न दुःखाय दुःखदोऽस्त्यप्रभौ हि सः। रविपावकगंगानां तत्र ज्ञेया निदर्शना ॥—शिवपु०
८४२-४३ नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः। विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्॥भाग०
८४७-४८ शीघ्रप्रसादः स शिवस्तां ग्रहीष्यत्यसंशयम्। तपःसाध्यो विशेषेण यदि कुर्याच्छिवा तपः ॥ शिवपु०
८४९ तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥ —कुमारसंभव

८५० वरदायक प्रनतारति - भंजन । कृपा-सिन्धु सेवक - मन - रंजन ।
इच्छित फल, बिनु सिव अवराधे । लहिय न कोटि जोग जप साधे । (४)
दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि यह कल्यान अब[1], संसय तजहु गिरीस ।। ७० ।।
कहि अस ब्रह्म - भवन मुनि गयऊ । आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ।
पतिहि एकान्त पाइ कह मैना । नाथ न मैं समुझे मुनि-बैना । (१)
जौ घर, वर, कुल होइ अनूपा । करिय बिवाह सुता - अनुरूपा ।
नत कन्या बरु रहउ कुँआरी । कंत ! उमा मम प्रान-पियारी । (२)
जौं न मिलिहि वर गिरिजहि जोगू । गिरि जड़ सहज, कहिहिं सब लोगू ।
सोइ बिचारि पति करहु बिवाहू । जेहि न बहोरि होइ उर दाहू । (३)

तो सबको वर देनेवाले, शरणागतोंके दुःख मिटा डालनेवाले, कृपाके समुद्र और सेवकोंका मन प्रसन्न करनेवाले देव हैं। जबतक शिवकी आराधना न की जाय तबतक करोड़ों योग और जप करनेपर भी मनचाहा फल नहीं मिल सकता । (४) यह कहकर नारदने भगवान्‌का स्मरण करके पार्वतीको आशीर्वाद दिया और हिमाचलसे कहा—'देखिए गिरिराज ! अब आप अपने मनका सन्देह मिटा डालिए । इस विवाहसे कल्याण ही कल्याण होगा' ।। ७० ।। इस प्रकार समझा-बुझाकर नारद वहाँसे उठकर ब्रह्मलोक चले गए ।

अब आगे जो हुआ वह भी सुन लीजिए। (एक दिन) एकान्तमें मेनाने पति (हिमवान्)-से कहा—'नाथ ! मैं नारद मुनिके वचनोंका अर्थ (अभिप्राय) अभीतक ठीक-ठीक समझ नहीं पाई । (१) देखिए ! यदि घर, वर और कुल उत्तम हो और हमारी कन्याके योग्य हो तभी विवाह कीजिएगा चाहे कन्या भले ही कुमारी क्यों न रह जाय ! क्योंकि स्वामिन् ! पार्वती हमें प्राणोंके समान प्यारी है (इसे किसी ऐसे-वैसेके साथ बाँधकर इसका जीवन नष्ट नहीं करेंगे) । (२) यदि गिरिजाके योग्य वर न मिला तो लोग यही कहेंगे कि पर्वत तो स्वभावसे ही जड़ (पत्थर, मूर्ख) होते हैं । इसलिये स्वामी ! बहुत सोच-विचारकर (समझ-बूझकर) ही विवाह कीजिएगा, जिससे पीछे पछताना ही

१. होइहि अब कल्यान सब = अब सब प्रकारसे कल्याण होगा ।

८५१ महेश्वरमनाराध्य न सन्तीप्सितसिद्धयः ।। —कथासरित्सागर
८५२-५३ एवमुक्त्वा मुनिस्तस्या आशिषं दत्तवान् हि सः । संशयं त्यज शैलेन्द्र नूनं श्रेयो भविष्यति ।।
८५५ गते त्वयि मुने स्वर्गे कियत्काले गते सति । मेना प्राप्यैकदा शैलनिकटं प्रणनाम सा ।।
स्थित्वा स विनयं प्राह स्वनाथं गिरिकामिनी । मुनिवाक्यं न बुद्धं मे सम्यङ्नारीस्वभावतः ।।
८५६-५७ विवाहं कुरु कन्यायाः सुन्दरेण वरेण ह । प्राणप्रिया सुता मे हि सुखिता स्याद्यथा प्रिय ।।
सद्वरं प्राप्य सुप्रीता तथा कुरु नमोस्तु ते । —शिवपु०

८६० अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित-सनेह गिरीसा।
बरु पावक प्रगटै ससि माहीँ। नारद-वचन अन्यथा नाहीँ। (४)
दो०—प्रिया ! सोच परिहरहु सब , सुमिरहु श्रीभगवान।
पारवतिहि निरमयउ जेहि , सोइ करिहि कल्यान ॥ ७१ ॥
अब जौं तुम्हहिं सुता-पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावन देहू।
करै सो तप जेहि मिलहिं महेसू। आन उपाय न मिटिहि कलेसू। (१)
नारद - वचन सगर्भ, सहेतू। सुन्दर, सब गुन-निधि बृषकेतू।
अस विचारि तुम तजहु असंका। सबहिं भाँति संकर अकलंका। (२)
सुनि पति-वचन हरषि मन माहीँ। गईं तुरत उठि गिरिजा-पाहीँ।
उमहिं बिलोकि नयन भरे वारी। सहित सनेह गोद बैठारी। (३)
८७० बारहि बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई।
जगत-मातु सर्बज्ञ भवानी। मातु सुखद बोली मृदु बानी। (४)

हाथ न लगे। (३) ऐसा कहकर मेना अपन पतिके चरणोंपर सिर टेककर बैठ गई। तब हिमवान्ने (मेनासे) प्रेमसे कहा—'देखो ! चाहे चन्द्रमासे अग्नि भले ही प्रकट हो उठे, पर नारदके वचन कभी व्यर्थ नहीँ हो सकते। (४) इसलिये सब चिन्ताएँ छोड़कर भगवान्पर भरोसा रक्खो। जिन्होंने पार्वतीको रचा है वे ही उसका कल्याण भी करेंगे ॥ ७१ ॥ यदि कन्या तुम्हें सचमुच बहुत प्यारी है तो जाकर उसे ऐसा तप करनेकी शिक्षा दो कि इसे पतिके रूपमें शिव मिल ही जायँ। किसी भी दूसरे उपायसे यह संकट नहीँ टल पावेगा। (१) नारदके वचन बहुत रहस्यसे भरे और सहेतुक (अर्थपूर्ण) होते हैं। शिव (सचमुच) सारे गुणोंके भाण्डार हैं। यह विचारकर तुम संदेह छोड़ दो, क्योंकि शंकर सब प्रकारसे निष्कलंक हैं (उनमें दोषका नामतक नहीँ है)। (२)

पतिके ये वचन सुनकर मेना बड़ी प्रसन्न हुईं और तुरन्त उठकर पार्वतीके पास चली गईं। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ पार्वतीको अपनी गोदमें ले बिठाया। (३) वे बार-बार उन्हें हृदयसे चिपटाए ले रही थीं। जगज्जननी भवानी तो सर्वज्ञ ही हैं। वे (स्वयं) माताको सुख देनेवाली कोमल वाणीसे बोलीं— (४) 'माता ! मैंने एक सपना देखा है जो आपको सुनाए देती

८६० इत्युक्त्वाश्रुमुखी मेना पत्यंघ्र्योः पतिता तदा। तामुत्थाप्य गिरिः प्राह यथावत् प्राज्ञसत्तमः ॥
८६१ भ्रमं त्यज मुनेर्वाक्यं वितथं न कदाचन।
८६४ यदि स्नेहः सुतायास्ते सुतां शिक्षय सादरम्।
८६५ तपः कुर्याच्छंकरस्य भवत्या सा स्थिरचेतसा। चेत् प्रसन्नः शिवः काल्याः पाणिं गृह्णाति मेनके ॥
सर्वं भूयाच्छुभं नश्येन्नारदोक्तममङ्गलम्।
८६६-६७ अमंगलानि सर्वाणि मंगलानि सदा शिवे। तस्मात्सुतां शिवप्राप्त्यै तपसे शिक्षय द्रुतम् ॥
८६८ इत्याकर्ण्य गिरेर्वाक्यं मेना प्रीततराऽभवत्। सुतोपकंठमगदुपदेष्टुं तपो रुचिम् ॥
८६९-७० सुतांगं सुकुमारं हि दृष्ट्वातीवाय मेनका। विव्यथे नेत्रयुग्मे चाश्रुपूर्णेऽभवतां द्रुतम् ॥
सुतां समुपदेष्टुं तन्न शशाक गिरिप्रिया।
८७१ अथ सा कालिका देवी सर्वज्ञा परमेश्वरी। उवाच जननीं सद्यः समाश्वास्य पुनः पुनः ॥—शिवपु०

दो०—सुनहि मातु ! मैं दीख अस , सपन सुनावौं तोहिं ।
सुंदर गौर सुविप्रवर , अस उपदेसेउ मोहिं ।। ७२ ॥
करहि जाइ तप सैलकुमारी । नारद कहा सो सत्य बिचारी
मातु-पितहि पुनि यह मत भावा । तप सुखप्रद, दुख - दोष नसावा । (१)
तप-बल रचै प्रपंच विधाता । तप-बल विष्नु सकल-जग-त्राता ।
तप-बल संभु करहिं संघारा । तप-बल सेष धरैं महि-भारा । (२)
तप - अधार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तप अस जिय जानी ।
सुनत वचन विसमित महतारी । सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी । (३)
८८० मातु-पितहि बहु बिधि समुझाई । चली उमा तप - हित हरषाई ।
प्रिय परिवार पिता अरु माता । भए विकल, मुख आव न बाता । (४)
दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब , सबहिं कहा समुझाइ ।
पारबती - महिमा सुनत , रहे प्रबोधहि पाइ ।। ७३ ।।

हूं । (सपनेमें देखती क्या हूँ कि) एक गोरे-गोरे सुन्दर और सुशील ब्राह्मण मुझे ऐसा उपदेश दे रहे हैं कि—।। ७२ ।। देखो पार्वती ! नारदका कहा हुआ वचन सत्य मानकर तुम जाकर तपस्या करने लगो । तुम्हारे माता-पिताको भी यही बात ठीक जँची है । तपसे सुख मिलता तथा दुःख और दोषोंका नाश होता है । (१) तपके बलसे ही ब्रह्मा इस संसारकी रचना करते हैं, तपके बलसे ही विष्णु भगवान् सारे जगत्का पालन करते हैं, तपके बलसे ही शंकर इस सृष्टिका संहार करते हैं, तपके बलसे ही शेष नाग भी पृथ्वीका भार (अपने फणोंपर) सँभाले हुए हैं । (२) देखो भवानी ! तप ही सारी सृष्टिका आधार है । ऐसा अपने मनमें निश्चय करके तुम जाकर तपस्या करनेमें जुट जाओ ।' यह (स्वप्नकी) बात सुनकर माताको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने हिमवान्को भी बुलाकर वह स्वप्न कह सुनाया । (३) (फिर क्या था !) माता-पिताको अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर बड़े हर्षके साथ पार्वती तप करनेके लिये चल पड़ीं । (यह देखकर) उनके माता-पिता और प्रिय परिवारके लोग इतने व्याकुल हो उठे कि उनके मुँहसे कोई बात-तक नहीं निकल पा रही थी । (४) तब वेदशिरा[1] मुनिने आकर सबको (पार्वतीकी महिमा) कह समझाई । जब पार्वतीकी वह महिमा सबने सुनली तब कहीं सबके मनको सन्तोष हो पाया ।।७३।। (वहाँसे चलकर)

१. वेदशिरा मुनि भृगुमुनिके प्रपौत्र थे । (विजया टीका)

८७२-७३ मातः शृणु महाप्राज्ञेऽद्यतनेऽजमुहूर्तके । रात्रौ दृष्टो मया स्वप्नस्तं वदामि कृपां कुरु ।।
८७४ गिरीन्द्रजा तपः कुर्यात्समेत्य सुखदं वनम् । श्रेयो विधायकं वाक्यं नारदस्यान्यथा नहि ।। शिवपु०
८७६-७७ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः । विभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ।।–भाग०
८७८ तपोमूलमिदं सर्वं दैवं मानुषजं जगत् । –विष्णुसंहिता
८७९ तच्छ्रुत्वा मेनका शीघ्रं पतिमाहूय तत्र च । तत्स्वप्नं कथयामास सुतादृष्टमशेषतः ।।–शिवपु०
८८० पुनः पुनः स्वमात्रा च पित्रा च विनिवारिता । गता सा स्वनंदीतीरं तपः कर्त्तुं गिरीन्द्रजा।।ब्र०वै०पु०
८८१-८३ सबान्धवौ च पितरौ विव्यथाते सुतां प्रति । तदा वेदशिरा एत्य सर्वानाश्वासयन्मुहुः ।।
गिरीन्द्रजाया माहात्म्यं श्रुत्वाऽभूवन् सुमानसाः ।। —शिवपुराण

उर धरि उमा प्रान - पति - चरना। जाइ बिपिन लागीं तप करना।
अति सुकुमार, न तनु तप-जोगू। पति-पद सुमिरि तजेउ सब भोगू। (१)
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मन लागा।
संबत सहस मूल - फल खाए। साग खाइ सत बरष गँवाए। (२)
कछु दिन भोजन बारि - बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा।
बेलपत्र महि परै, सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई।
८९० पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भएउ अपरना।
देखि उमहिं तप-खीन सरीरा। ब्रह्म - गिरा भइ गगन गँभीरा। (४)
दो०—भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराज - कुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि ॥ ७४॥
अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी।

उमा (पार्वती) अपने पति (शंकर)-के चरणोंका हृदयमें स्मरण करके वनमें जाकर तप करने लगीं। यद्यपि अत्यन्त सुकुमार (कोमल) होनेके कारण उनका शरीर तप करनेके योग्य नहीं था, (फिर भी) उन्होंने पतिके चरणोंका स्मरण करके सब भोगों (सुखके साधनों)-का तत्काल परित्याग कर डाला। (१) उनके हृदयमें शंकरके चरणोंमें नित्य नया-नया अनुराग उत्पन्न होने लगा। उन्हें अपनी देहकी सुध-बुध जाती रही और तपमें ही उनका मन रम गया। उन्होंने एक सहस्र वर्ष मूल-फल खाकर और फिर एक सौ वर्ष साग खाकर बिता दिए। (२) कुछ दिन केवल जल और पवन पीकर ही वे रह गईं और कुछ दिन उन्होंने कठिन उपवास (निराहार) करके बिता दिए। तीन सहस्र वर्षों तक पृथ्वीपर झड़ी हुई सूखी बेलकी पत्तियाँ ही वे चबाती रह गईं। (३) फिर तो उन्होंने सूखे पत्ते चबाना भी छोड़ दिया और तभीसे उमाका नाम 'अपर्णा' पड़ गया। (इस कठोर) तपस्यासे उमाका शरीर जब बहुत क्षीण हो चला तब आकाशसे यह गम्भीर ब्रह्मवाणी सुनाई दी—(४) हे गिरिराज-कुमारी ! तुम्हारे सब मनोरथ सफल हो गए हैं। तुम अब यह सब कठिन तप करना छोड़ दो। अब तुम्हें (निश्चय ही) त्रिपुरारि (शंकर) पतिके रूपमें प्राप्त होंगे ॥ ७४ ॥ हे भवानी ! (संसारमें) बहुतसे धीर, मुनि और ज्ञानी हो चुके हैं पर ऐसा कठिन तप आजतक

८८४ वर्षमेकं च सम्पूर्णमनाहारा स्वभक्तितः। देवी तपः कठोरं च चकार जगदम्बिका ॥—शिवपु०
८८८ अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।
बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥
८८९-९० स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदत्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥ —कुमारसंभव
८९१ तपःकृशशरीरां तां दृष्ट्वा चाहाशरीरवाक्।
८९२-९३ अभीप्सितं ते सफलं मे वचः शृणु शैलजे। मिलिष्यति शिवो नूनं खेदं च दुःसहं त्यज ॥ब्रह्मवै०पु०
८९४ मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।
तपः शरीरैः कठिनैरुपार्जितं तपस्विनां दूरमधश्चकार सा ॥ —कुमारसंभव

अब उर धरहु ब्रह्म-बर-बानी। सत्य सदा संतत सुचि जानी। (१)
आवहिँ पिता बुलावन जवहीँ। हठ परिहरि घर जायहु तबहीँ।
मिलहिँ तुम्हहिँ जब सप्तरिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा। (२)
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी।
उमाचरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु-कर चरित सुहावा। (३)
९०० जब तेँ सती जाइ तनु त्यागा। तब तेँ सिव-मन भयउ बिरागा।
जपहिँ सदा रघुनायक-नामा। जहँ-तहँ सुनहिँ राम-गुन-ग्रामा। (४)
दो०—चिदानंद सुख-धाम सिव, बिगत-मोह-मद-काम।
बिचरहिँ महि धरि हृदय हरि, सकल-लोक-अभिराम ॥ ७५ ॥
कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिँ ज्ञाना। कतहुँ राम-गुन करहिँ बखाना।
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत-बिरह-दुख-दुखित सुजाना। (१)
एहि बिधि गयउ काल बहु बीती। नित नव होइ रामपद-प्रीती।
नेम-प्रेम संकर-कर देखा। अबिचल हृदय भगति-कै रेखा। (२)
प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला। रूप-सील-निधि तेज बिसाला।

किसीने नहीँ किया। अब तुम ब्रह्माकी यह मधुर वाणी सदा सत्य और पवित्र समझकर अपने हृदयमेँ सत्य मान लो। (१) जब तुम्हारे पिता तुम्हेँ बुलाने आवेँ तब तुम हठ छोड़कर (उनके साथ) चली जाना और जब सप्तर्षि (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ) तुमसे आकर मिलेँ तब समझ लेना कि यह (आकाश-) वाणी सत्य थी। (२) ब्रह्माकी यह आकाशवाणी सुनते ही पार्वती प्रसन्न हो उठीँ और उनका शरीर भी पुलकित हो उठा।

(भरद्वाजसे याज्ञवल्क्य कहते हैँ कि) मैँने आपको पार्वतीका सुन्दर चरित्र तो सुना दिया, अब शिवका सुहावना चरित्र भी सुन लीजिए। (३)

जबसे सतीने (पिताके घर) जाकर शरीर छोड़ा तभीसे शिवके मनमेँ बहुत वैराग्य हो चला। वे सदा रामका ही नाम जपते रहते थे और जहाँ-तहाँ जा-जाकर रामके गुण ही सुनाते रहते थे। (४) चिदानन्द, सुखके धाम, मोह, मद और कामसे रहित शिव तभीसे समस्त लोकोँको आनन्द देनेवाले रामको हृदयमेँ धारण किए हुए पृथ्वीपर विचरने लगे ॥७५॥ वे कहीँ तो जाकर मुनियोँको ज्ञानका उपदेश देते और कहीँ रामके गुणोँका वर्णन करते। यद्यपि सुजान (परम ज्ञानी) शंकर निष्काम और भगवान् हैँ फिर भी वे अपने भक्त (सती)-के वियोगसे उत्पन्न होनेवाले दुःख-से बहुत दुखी हो चले थे। (१) इस प्रकार बहुत समय निकल गया। रामके चरणोँमेँ उनकी नित्य नवीन प्रीति बढ़ने लगी। जब रामने शिवके हृदयमेँ नियम, प्रेम, और अचल भक्तिके चिह्न देखे तब वे कृतज्ञ, कृपालु, रूप-शीलके निधान परम तेजस्वी राम (शिवके सम्मुख) आ खड़े हुए।

९००-९०३ यदा दक्षसुता ब्रह्मन् सती याता यमक्षयम्। विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः ॥
ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च सरित्सु च। पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च ॥
पर्वतेषु च रम्येषु कानने गह्वरे तथा। विचरन् स्वेच्छया नैव शर्म लेभे महेश्वरः॥वाम०पु०
९०८ तस्मिन्नवसरे राम आविरासीद्दयानिधिः। धूर्जटिप्रेमलेखां च वीक्ष्यात्मनि शशंस तम् ॥ स्कन्दपु०

बहु प्रकार संकरहिँ सराहा। तुम बिनु अस ब्रत को निरबाहा। (३)
९१० बहु बिधि राम सिवहिँ समुझावा। पारबती - कर जनम सुनावा।
अति पुनीत गिरजा - कै करनी। बिस्तर - सहित कृपानिधि बरनी। (४)
दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मो - पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहिँ, यह मोहिँ माँगे देहु॥७६॥
कह सिव, जदपि उचित अस नाहीँ। नाथ - बचन पुनि मेटि न जाहीँ।
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा। (१)
मातु - पिता - गुरु - प्रभु - कै बानी। बिनहिँ बिचार करिय सुभ जानी।
तुम सब भाँति परम हितकारी। अज्ञा सिर - पर नाथ तुम्हारी। (२)
प्रभु तोषेउ सुनि संकर - बचना। भक्ति - बिबेक - धरम - जुत रचना।
कह प्रभु, हर! तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ। (३)
९२० अंतरधान भए अस भाखी। संकर सोइ मूरति उर राखी।
तबहिँ सप्तरिषि सिव - पहँ आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए। (४)

(प्रकट होकर) वे बहुत प्रकारसे शंकरकी सराहना करके बोले—'आपको छोड़कर ऐसा (कठोर) व्रत दूसरा निवाह कौन सकता है !' (३) रामने अनेक प्रकारसे शिवको समझाया और पार्वतीके जन्म लेनेकी बात भी कह सुनाई। कृपानिधान रामने पार्वतीकी अत्यन्त पवित्र करनी (तपस्या)-का भी विस्तारसे वर्णन कर सुनाया। (४) फिर उन्होंने शिवसे कहा कि—'हे शिव ! यदि आप सचमुच मुझसे स्नेह करते हैं तो मेरी यह प्रार्थना मान लीजिए और मुझे यह वचन दीजिए कि आप जाकर पार्वतीसे विवाह कीजिएगा' ॥ ७६ ॥ शिव ने कहा—'यद्यपि ऐसा करना उचित तो नहीँ जान पड़ता पर स्वामीकी बात क्या कभी टाली जा सकती है ? (इसलिये) नाथ ! यह मैं अपना परम धर्म मानता हूँ कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए उसका पालन जा करूँ। (१) क्योंकि माता-पिता और गुरुके वचनोंको सदा कल्याणकारी समझकर उनपर बिना कुछ विचारे ही उनका पालन करना चाहिए। (और फिर) आप तो सब प्रकारसे मेरे हितैषी हैं। इसलिये नाथ ! आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर है।' (२) शंकरकी यह भक्ति, विवेक और धर्मसे भरी वाणी सुनकर राम बहुत सन्तुष्ट हुए और बोले—'प्रभो ! आपका प्रण तो पूरा हो गया। अब हमने जो कहा है उसका भी ध्यान रखिएगा।' (३) यह कहकर राम वहीँ अन्तर्धान हो गए। शंकरने भी वही (रामकी) मूर्ति अपने हृदयमें ला बसाई (धारण कर ली)।

इसी समय शिव (देखते क्या हैं कि उनके) पास सप्तर्षि बढ़े चले आ रहे हैं। आते ही उनसे वे

९१०-९११ नानावाक्यविनोदेन शैलजाजन्म शोभनम्। कृत्यं तदीयमखिलं वर्णयामास विस्तरात्॥
९१२-९१३ संप्रत्यभ्यर्थनं मे हि दयामाधाय श्रूयताम्। सममेतच्च पार्वत्या विधेहि पाणिपीडनम्॥
९१४-१७ नैतत्समुचितं यद्वि दुर्वारं वचनं तव। त्वदीयाज्ञा शिरोधार्या ह्येष धर्मो सनातनः॥वाम०पु०
९१६ आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया। —रघुवंश
९१८-२० वचनं शांकरं चैतच्छ्रुत्वा तुष्टस्ततो हि सः। यत्कृतं मानसं कर्म ह्युपावृत्तं वृषध्वज॥
मदुक्तिस्मरणं नूनमेवमुक्त्वा तिरोऽभवत्। —स्कन्द पु०
९२१ सप्तापि ऋषयः शीघ्रमाययुः स्मृतिमात्रतः। प्रोवाच विहसन् प्रीत्या प्रोत्फुल्लनयनाम्बुजाः॥शिवपु०

दो०—पारवती - पहँ जाइ तुम , प्रेम - परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन , दूर करेहु संदेहु ।। ७७ ।।

तब रिषि तुरत गौरि - पहँ गएऊ । देखि दसा मुनि बिसमय भएऊ[1] ।
रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी । मूरतिमंत तपस्या जैसी । (१)
बोले मुनि, सुनु सैल - कुमारी । करहु कवन कारन तप भारी ।
केहि अवराधहु, का तुम चहहू । हम सन सत्य मरम किन कहहू । (२)
सुनत रिषिन - के बचन भवानी । बोलीं गूढ़ मनोहर बानी[2] ।
कहत बचन[3] मन अति सकुचाई । हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई । (३)
९३० मन हठ परा, न सुनै सिखावा । चहत बारि - पर भीति उठावा ।
नारद कहा सत्य सोइ जाना । बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना । (४)

मधुर वाणीसे बोले—(४) 'आप लोग पार्वतीके पास चले जाइए और उनके प्रेमकी परीक्षा कर देखिए । आप हिमवान्‌को उनके पास भेज दीजिए और कह दीजिए कि उन्हें घर लिवा ले जायें । इससे उनका सन्देह भी दूर हो जायगा (कि कहीं ये लोग धोखा देने तो नहीं चले आए)' ।। ७७ ।।

(यह सुनकर) ऋषियों ने (पार्वतीके पास जाकर) देखा कि पार्वती स्वयं तपस्याकी मूर्ति-जैसी (दुबली-पतली) हुई बैठी हैं । (१) ऋषियों ने—कहा—'बताओ शैलकुमारी ! तुम किस लिये इतनी कठोर तपस्या ठाने बैठी हो ? (१) (इस तपस्याके द्वारा) तुम किसकी आराधना किए जा रही हो और (इस तपस्यासे) क्या (प्राप्त करना) चाहती हो ? हमसे अपना ठीक-ठीक भेद क्यों नहीं बता डालती हो ?'

(पार्वती बोली—) 'देखिए ! मुझे अपने मनकी बात बताते बड़ी झिझक हो रही है । मैं अपनी मूर्खता (की बात) सुनाने लगूँगी तो आप लोग हँसे बिना न रहेंगे । (२) मेरा मन ऐसा हठ पकड़ बैठा है कि वह किसीका उपदेश-सुननेको तैयार ही नहीं हो रहा है । वह पानीपर दीवार उठानेकी धुनमें है । नारदने जो कुछ कहा है उसे सत्य मानकर अब मैं बिना पंखके ही उड़ना चाह रही हूँ । (३) मुनिराज ! आप लोग मेरा अज्ञान तो देखिए कि मैं सदाशिवको ही (सदाके लिये शिवको ही) अपना पति बनानेकी धुन ठाने बैठी हूँ (४)

---

१. यह अर्द्धाली कुछ प्रतियोंमें नहीं है । २. यह अर्द्धाली अयोध्या और श्रावणकुंजकी प्रतियोंमें नहीं है, शेष प्रतियोंमें है । ३. मरम=मनकी बात, रहस्य ।

९२२-२३ तपश्चरति देवेशि पार्वती गिरिजाऽधुना । तत्र गच्छत यूयं मच्छासनान्मुनिसत्तमा: ।।
परीक्षां दृढतायास्तत् कुरुत प्रेमचेतस: ।।
९२४-२५ इत्याज्ञप्ताश्च मुनयो जग्मुस्तत्र द्रुतं हि ते । तत्र दृष्ट्वा शिवा साक्षात् तप:सिद्धिरिवापरा ।।
मूर्त्ता परमतेजस्का विलसन्ती सुतेजसा ।।
९२९ पार्वत्युवाच—करिष्यथ प्रहासं मे श्रुत्वा वाचो ह्यसंभवा: ।
संकोचो वर्णनाद् विप्रा भवत्येव करोमि किम् ।।
९३० इदं मनो हि सुदृढमनशं परकर्मकृत् । जलोपरि महाभित्तिं चिकीर्षति महोन्नताम् ।।
९३१ सुरर्षे: शासनं प्राप्य करोमि सुदृढं तप: । अपक्षो मन्मन: पक्षी व्योम्नि उड्डीयते हठात् ।।शिवपु०

देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिय सदा सिवहि भरतारा। (४॥)
दो०—सुनत वचन बिहँसे रिषय, गिरि - संभव तव देह।
नारद - कर उपदेस सुनि, कहहु, बसेउ किसु गेह॥ ७८॥
दच्छ - सुतन्ह उपदेसिन्हि जाई। तिन्ह फिरि भवन न देखा आई।
चित्रकेतु - कर घर उन घाला। कनक-कसिपु-कर पुनि अस हाला। (१)
नारद - सिख जे सुनहिं नर-नारी। अवसि होहिं, तजि भवन, भिखारी।
मन कपटी, तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा। (२)
तेहि - के वचन मानि बिस्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा।
निर्गुन, निलज, कुवेस, कपाली। अकुल, अगेह, दिगंबर, ब्याली। (३)

पार्वतीकी यह बात सुनते ही सातों ऋषि ठठाकर हँस पड़े (और बोले) कि 'तुम तो सचमुच पर्वतकी बेटी निकली! (पत्थरसे उत्पन्न प्राणीको पत्थर-जैसा ही जड तो होना चाहिए, पत्थरसे उत्पन्न प्राणीमें पत्थर-जैसी दृढता होनी ही चाहिए)। भला यह तो बताओ कि नारदका कहना आजतक जिसने भी माना, उनमेंसे बताओ किसका घर बस पाया है? ॥ ७८ ॥ दक्षके पुत्रोंको उन्होंने ऐसा उपदेश जा दिया कि एक वार जो वे घरसे निकले तो कभी लौटकर अपने घरका मुँह नहीं देख पाए। उन्हींके उपदेशोंसे चित्रकेतुका घर चौपट हो गया और यही दशा हिरण्यकशिपुकी भी हुई। (१) (आजतक) जो स्त्री या पुरुष नारदकी वातोंके चक्करमें पड़ा वह घरबार छोड़कर भिखमंगा बनता ही दिखाई दिया। नारदके शरीरपर सज्जनोंके-से चिह्न (मुनिके-कपड़े लत्ते) भले ही दिखाई पड़ते हों, पर वे मनके बड़े भारी कपटी हैं। वे सबको अपने ही जैसा (वे-घरबारका) बनानेपर तुले हुए हैं (२) उनकी बातोंमें आकर और उनका ही विश्वास करके तुम ऐसा (बेढंगा) पति पानेके फेरमें पड़ गई हो जो स्वभावसे ही उदासीन, गुणोंसे हीन और निर्लज्ज है, बेढंगा वेष बनाए रहता है, नरमुण्डोंकी माला पहने रहता है, कुल-हीन, गृहहीन और नंगा है और अपने शरीरपर सर्प लपेटे रहता है। (३) भला यह तो बताओ कि

९३२ तानुवाच ततो देवी सलज्जा गौरवान्मुनीन्। अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता॥ मत्स्यपु०
९३३-३४ नारदः कूटवादी च परचित्त - प्रमंथकः। तस्य वार्त्ता श्रवणतो हानिर्भवति सर्वथा॥
९३५ ब्रह्मपुत्रो हि यो दक्षः सुपुत्रे पितुराज्ञया। स्वपत्न्यामयुतं पुत्रानयुङ्क्त तपसि प्रियान्॥
ते सुताः पश्चिमदिशि नारायणसरो गताः। तपोर्थे ते प्रतिज्ञाय नारदस्तत्र वै ययौ॥
कूटोपदेशमाश्राव्य तत्र तान्नारदो मुनिः। तदाज्ञया च ते सर्वे पितुर्न गृहमाययौ॥
९३६ विद्याधरश्चित्रकेतुर्यो बभूव पुराकरोत्। स्वोपदेशमयं दत्वा तस्मै शून्यं च तद् गृहम्॥
प्रह्लादाय स्वोपदेशान् हिरण्यकशिपोः परम्। दत्वा दुःखं ददौ चापं परबुद्धि-प्रभेदकः॥
९३७ मुनिना निजविद्या यच्छ्राविता कर्णरोचना। स स्व गेहं विहायाशु भिक्षां चरति प्रायशः॥
९३८ नारदो मलिनात्मा हि सर्वदोज्ज्वलदेहवान्।
९३८-३९ लब्ध्वा तदुपदेशं हि त्वमपि प्राज्ञसंमता। यदर्थमीदृशं बाले करोषि विपुलं तपः॥
सदोदासी निर्विकारो मदनारिर्न संशयः। अमंगलवपुर्धारी निर्लज्जोऽसदनोऽकुली॥
कुवेषी प्रेतभूतादिसंगी नग्नो हि शूलभृत्॥ —शिवपुराण

९४० कहहु कवन सुख अस वर पाए। भल भूलिहु ठग-के बौराए।
पंच कहे, सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही। (४)
दो०—अब सुख सोवत, सोच नहिं, भीख माँगि भव खाहिं।
सहज ऐकाकिन्ह-के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं॥ ७९॥
अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम-कहँ वर नीक बिचारा।
अति सुंदर, सुचि, सुखद, सुसीला। गावहिं बेद जासु जस-लीला। (१)
दूषन-रहित सकल-गुन-रासी। श्रीपति पुर-बैकुंठ-निवासी।
अस बर तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहँसि कह वचन भवानी। (२)
सत्य कहेहु गिरि-भव तनु एहा। हठ न छूट छूटै वरु देहा।

ऐसा पति पाकर तुम्हें सुख क्या मिलेगा? तुम उस ठग (नारद)-के बहकावेमें आकर अच्छी फँस गई हो। देखो! पंचोंके बहुत कहने-सुननेसे शिवने पहले सतीसे विवाह किया, फिर उन्हें त्यागकर (दक्षके यज्ञमें) उन्हें भेजकर मरवा डाला। (४) अब शिवको चिन्ता किस बातकी रह गई है? अब वे भिक्षा माँगकर खाते और पड़कर सुखकी नींद सोते हैं। भला कहीं ऐसे अकेले निठल्लोंके घर स्त्रियाँ टिका करती हैं? ॥ ७९ ॥ अब भी हमारा कहना मान लो (और यह हठ छोड़ दो)। हमने तुम्हारे लिये बड़ा अच्छा वर सोच रक्खा है। वह बहुत ही सुन्दर, भला, सबको सुखदेनेवाला और सुशील है। उसके यश और चरित्रोंका वर्णन वेद-तक करते रहते हैं। (१) उसमें कोई दोष भी नहीं है और वह अत्यन्त सुशील भी है। वह लक्ष्मीका स्वामी है और वैकुण्ठपुरीमें रहता है। तुम कहो तो हम ऐसे (सुन्दर, श्रेष्ठ) वरसे तुम्हारा विवाह रचा डालें।

यह सुनते ही पार्वती हँसकर बोलीं—(२) 'आपने यह तो सच कहा कि मैं पर्वतकी बेटी हूँ। इसलिये जो मैं (पर्वतके समान अचल) हठ ठान बैठी हूँ वह तो अब छूट नहीं पावेगा, चाहे शरीर

९४० ईदृशं हि वरं लब्ध्वा किं सुखं संभविष्यति। स धूर्त्तस्तव विज्ञानं विनाश्य निजमायया॥
मोहयामास सद्युक्त्या कारयामास वै तपः।
९४१ प्रथमं दक्षजां साध्वीं विवाह्य सुधिया सतीम्॥
निर्वाहं कृतवान्नैव मूढः किञ्चिद्दिनानि हि। तां तथैव स वै दोषं दत्त्वात्याक्षीत्स्वयं प्रभुः॥
९४२-४३ ध्यायन् स्वरूपमकलमशोकमरमत्सुखी। एकलः परनिर्वाणो ह्यसंगोऽद्वय एव च॥
तेन नार्याः कथं देवि निर्वाहः संभविष्यति॥
९४४-४७ अद्यापि शासनं प्राप्य गृहमायाहि दुर्मतिम्। त्यजास्माकं महाभागे भविष्यति च शं तव॥
त्वद्योग्यो हि वरो विष्णुः सर्वसद्गुणवान् प्रभुः। वैकुण्ठवासी लक्ष्मीशो नानाक्रीडा-विशारदः॥
तेन ते कारयिष्यामो विवाहं सर्वसौख्यदम्। इतीदृशं त्यज हठं सुखिता भव पार्वती॥
९४७ इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वती जगदम्बिका। विहस्य च पुनः प्राह मुनीन् ज्ञानविशारदान्॥
सत्यं भवद्भिः कथितं स्वज्ञानेन मुनीश्वराः। परंतु मे हठो नैव मुक्तो भवति हे द्विजाः॥
स्वतनोः शैलजातत्वात्काठिन्यं सहजं स्थितम्॥ —शिवपुराण

९५० कनकौ पुनि पषान - ते होई। जारेहु सहज न परिहर सोई। (३)
नारद - वचन न मैं परिहरऊँ। वसौ भवन, उजरौ, नहिँ डरऊँ।
गुरु - के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख-सिधि तेही। (४)
दो०—महादेव अवगुन - भवन , विष्नु सकल गुन - धाम।
जेहि-कर मन रम जाहि सन , तेहि ताही - सन काम ॥८०॥
जौ तुम मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा।
अब मैं जनम संभु - हित हारा। को गुन-दूषन करै विचारा। (१)
जौ तुम्हरे हठ हृदय विसेखी। रहि न जाइ बिनु किए बरेखी।
तौ कौतुकिअन्ह आलस नाहीँ। वर - कन्या अनेक जग - माहीँ। (२)
जनम कोटि - लगि रगरि हमारी। बरौं संभु नतु रहौं कुआँरी।
९६० तजौं न नारद - कर उपदेसू। आपु कहहिँ सत बार महेसू। (३)
मैं पा परौं, कहै जगदंबा। तुम गृह गवनहु, भयउ बिलंबा।

भले ही छूट जाय। देखिए, सोना भी तो पत्थरसे ही उत्पन्न होता है न ! किन्तु लाख तपाए जानेपर भी वह अपना स्वभाव (सोनापन) नहीँ छोड़ता (३) इसलिये (अब तो चाहे जो हो जाय) मैं नारदकी बात नहीँ टाल पाऊँगी चाहे घर बसे या उजड़े, इससे भी मैं डरती नहीँ हूँ; क्योँकि जिसे अपने गुरुके वचनोँमें विश्वास न हो, उसे स्वप्नमें भी सुख और सिद्धि प्राप्त नहीँ होती। (४) माना कि महादेवमें सारी बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं और विष्णुमें सारे गुण ही गुण भरे पड़े हैं पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो वही अच्छा लगता है ॥ ८० ॥ हाँ मुनीश्वरो ! यदि आप लोग पहले मिल गए होते तो मैं आपका उपदेश सिर-माथे रखकर सुन भी लेती। पर अब तो मैं अपना सारा जीवन शिवको अर्पण कर बैठी हूँ। अब उनके गुण-दोषोँपर विचार करनेका प्रश्न ही कहाँ रह जाता है (नहीँ किया जा सकता) ? (१) यदि आप लोग यही प्रण ठानकर चले हैं (कि विवाह पक्का करके ही दम लेंगे) और विवाह पक्का किए बिना आप लोगोँके पेटका पानी न पच रहा हो तो संसारमें वर-कन्याएँ बहुत हैं। जिन्हें ऐसे खेल रचानेमें ही आनन्द मिला करता है उनमें आलस्य तो होता नहीँ (इसलिये यहाँ न सही तो कहीँ दूसरे स्थानपर ब्याहकी गोटी जा बैठाइए)। (२) अब तो मैं करोड़ोँ जन्मोँके लिये यही हठ ठान बैठी हूँ कि विवाह करूँगी तो शिवसे ही करूँगी नहीँ तो सारा जीवन कुमारी रहकर ही बिता डालूँगी। यदि स्वयं शिव भी सौ बार आकर रोक-टोक करें तो भी नारदका उपदेश मैं टालनेवाली नहीँ हूँ'। (३) जगज्जननी पार्वती फिर कहने लगी—'मैं आपके पैरोँ पड़ती हूँ। अब आप लोग अपने घरकी बटिया पकड़िए, बहुत देर हो गई है।'

---

९५१ गुरर्वे वचनं पथ्यं त्यक्ष्ये नैव कदाचन। गृहं वसेद् वा शून्यं स्यान् मे हठः सुखदः सदा ॥
९५२ गुरूणां वचनं सत्यमिति यद्धृदये न धीः। इहामुत्रापि तेषां हि दुःखं न च सुखं क्वचित् ॥—शिवपु०
९५३-५४ अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥ —कुमारसंभव
९५६ चेच्छिवस्स हि मे विप्रा विवाहं न करिष्यति। अविवाहा सदाहं स्यां सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ शिवपु०
९६१ यात यूयं स्वकं गेहं मुनयो मद्विधायकाः। —मत्स्यपुराण

देखि प्रेम, बोले मुनि ज्ञानी। जय जय जगदंबिके भवानी। (४)
दो०—तुम माया, भगवान सिव, सकल - जगत - पितु - मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु॥८१॥
जाइ मुनिन्ह हिमवंत पठाए। करि विनती गिरिजहि गृह ल्याए।
बहुरि सप्तरिषि - सिव पहँ जाई। कथा उमा - कै सकल सुनाई। (१)
भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा।
मन थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक - ध्याना। (२)
तारक असुर भयउ तेहि काला। भुज-प्रताप-बल - तेज विसाला।
९७० तेहि सब लोक - लोकपति जीते। भए देव सुख - संपति - रीते। (३)
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर, करि बिबिध लराई।
तब बिरंचि - सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे। (४)

ज्ञानी मुनियोंने (शंकरके प्रति) पार्वतीका (ऐसा सच्चा) प्रेम देखकर कहा—' हे भवानी ! आपकी जय हो ! जय हो ! (४) आप तो माया हैं और शिव भगवान् हैं। आप दोनों सारे जगत् के माता-पिता हैं।' यह कहकर मुनि लोग जब पार्वतीके चरणोंमें सिर नवाकर वहाँसे चले तब उनके शरीर बार-बार पुलकित हुए पड़ रहे थे ॥ ८१ ॥

तब सातों ऋषियोंने जाकर हिमवान्को पार्वती (को लिवा लानेके लिये उन)-के पास भेज दिया और वे (हिमवान्) उन्हें (पार्वती को) मनाकर घर लिवा लाए। फिर सप्तर्षियोंने जाकर शिवको सब कह सुनाया कि पार्वतीसे क्या-क्या बातें हुई हैं। (१) (अपने प्रति) पार्वतीके सच्चे स्नेह-की बात सुनकर शिव भी आनन्दमें मग्न हो गए और सातों ऋषि भी बड़े प्रसन्न मनसे अपने आश्रमोंको लौट गए। उनके चले जानेपर परम ज्ञानी शिव अपना मन स्थिर करके रामके ध्यानमें डूब गए। (२)

उन्हीं दिनों तारक नामके एक असुरने अपनी भुजाओंके बल, प्रताप और प्रचंड तेजसे इतना आतंक मचा रक्खा था कि उसने सभी लोक और लोकपाल जीत धरे और सब देवताओंके सुखके साथ-साथ उनकी सारी सम्पत्ति भी छीन धरी। (३) अजर-अमर हो जानेके कारण उसे (तारकासुरको) कोई भी जीत ही नहीं पा रहा था। जब देवता लोग उससे अनेक लड़ाइयाँ लड़ते-लड़ते हारकर थक बैठे तब उन्होंने ब्रह्माको जा पुकारा। ब्रह्माने देखा कि सब देवता बड़े दुखी

९६२ ऋषियोऽपीत्यमाज्ञाय गिरिजायाः सुनिश्चयम्। प्रोचुर्जयगिरं तत्र ददुश्चाशिषमुत्तमाम् ॥ शिवपु०
९६३-६४ एवं निशम्य वचनं देव्या मुनिवरस्तदा। ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः ॥
अत्यद्भुतास्यहो पुत्रि ज्ञानमूर्त्तिरिवामला। अथ प्रणम्य तां देवीं वव्रजुर्मुनयो मुदा ॥
९६५ एवं तदानीं स्वपितुर्गृहं गता संशोभमाना परमेण वर्चसा ॥ —स्कन्दपुराण
९६६-६७ शिवस्थानं ततो जग्मुस्तत्परीक्षाकरा मुने ॥
तत्र गत्वा शिवं नत्वा वृत्तान्तं विनिवेद्य तम्। तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥
९६८-७० देवाश्च दानवाश्चान्ये यक्षाः किंपुरुषास्तदा। सर्वे वै पीडितास्तेन तारकेण दुरात्मना ॥
९७१-७२ एवं वर्षाण्यनेकानि गतानि पीडितास्तदा। सर्वे देवा मिलित्वा च ब्रह्माणं शरणं गता ॥ शिवपु०

दो०—सब-सन कहा बुझाइ बिधि , दनुज-निधन तब होइ।
संभु - सुक्र - संभूत सुत , ऐहि जीतै रन सोइ ॥८२॥
मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई।
सती जो तजी दच्छ-मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल - गेहा। (१)
तेहि तप कीन्ह संभु - पति - लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी।
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात ऐक सुनहु हमारी। (२)
पठवहु काम जाइ सिव - पाहीँ। करै छोभ संकर - मन माहीँ।
९८० तब हम जाइ सिवहिँ सिर नाई। करवाउब बिबाह बरिआई। (३)
ऐहि बिधि भलेहि देवहित होई। मत अति नीक कहै सब कोई।
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषमबान झखकेतू। (४)

हुए जा रहे हैं। (४) ब्रह्माने सब (देवताओं)-को समझाकर कहा कि इस दैत्य (तारक)-की मृत्यु तभी हो सकती है जब शिवके तेजसे पुत्र उत्पन्न हो (क्योंकि) वही एक ऐसा है जो इसे युद्धमें पछाड़ पावेगा ॥८२॥ इसलिये मैं जो बताता हूँ वही उपाय करो। ईश्वर (शिव) सहायता करदें (चाहें) तो आप लोगोंका सारा काम बन जायगा (तारक मारा जायगा)। (देखो !) शिवकी जिस पहली पत्नी सतीने दक्षके यज्ञमें अपना शरीर त्याग दिया था उन्होंने ही हिमाचलके यहाँ आकर दूसरा जन्म ले लिया है। (१) (इतना ही नहीँ,) उन्होंने शिवको पति-रूपमें पानेके लिये तपस्या भी की है। (किन्तु) इधर शिवकी यह दशा है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर समाधि लगाए बैठे हैं। यद्यपि बात तो बड़े असमंजसकी है, फिर भी एक काम किया जा सके तो कर सकते हो। (२) आप लोग जाकर कामदेवको (यह सिखाकर) शिवके पास भेजो कि वह (कामदेव) शिवके हृदयमें प्रेम (की चाह) उभाड़ दे (काम-वासनाकी खलबली उत्पन्न कर दे)। यह हो जाय तो फिर मैं शिवके चरणोंमें सिर रखकर उनका किसी न किसी प्रकार विवाह करा ही डालूँगा। (३) इस उपायसे देवताओंका सारा काम भली प्रकार बन जायगा। सब देवताओंको ब्रह्माकी यह बात जँच गई और उन्होंने कह भी दिया—'आपने जो सम्मति दी है वह एकदम ठीक है।'

वहाँसे चलकर देवताओंने बड़े प्रेमसे (कामदेवकी) जा स्तुति की तो पञ्चबाण[1] (सम्मोहन,

---

१. जिसके सिर काम चढ़ता है वह सम्मोहित (विवेकहीन), पागल, स्तब्ध (शून्य, सुध-बुध खो बैठनेवाला), शोषित (क्षीण शरीरवाला) और तप्त बना रहता है। अरविन्द (लाल कमल), अशोक, सिरस, आमकी मञ्जरी और श्वेत कमल देखनेवाला कामार्त्त हो जाता है।
सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्त्तिताः ॥
अरविन्दमशोकञ्च शिरीषं चूतमुत्पलम्। पञ्चैतानि प्रकीर्त्यन्ते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

९७३-७४ शिववीर्यसमुत्पन्नो यदि स्यात्तनयस्सुराः। स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नाऽपरः॥
९७५-७६ यमुपायमहं वच्मि तं कुरुध्वं सुरोत्तमाः। महादेवप्रसादेन सिद्धिमेष्यति वै ध्रुवम्॥
सती दाक्षायिणी पूर्वं त्यक्तदेहा तु या भवत्। सोत्पन्ना मेनका गर्भात्सा कथा विदिता हि वः॥
९७७ हिमवच्छिखरे रम्ये शम्भुस्तप्यति नित्यशः। सखिभ्यां सहिता तत्र परिचर्यां शिवस्य ह॥
करोति सततं देवी। —शिवपुराण
९७८-७९ एवमेव त्वया कार्यं महेन्द्र श्रूयतां वचः॥
एतत्कार्यं मदनेनैव राजन्नान्यः समर्थो भविता हि लोके।
विप्लावितं तापसानां तपो हि तस्मात्त्वरात्प्रार्थनीयो हि मारः॥ —स्कन्दपुराण
९८२ गतेषु तेषु देवेन्द्रः सस्मार मकरध्वजम्। आगतस्तत्क्षणादेव सविलासो झषध्वजः॥ शिवपुराण

दो०—सुरन कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
संभु-बिरोध न कुसल मोहिं, बिहँसि कहेउ अस मार ॥ ८३ ॥

तदपि करब मैं काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धरम उपकारा।
पर-हित लागि तजै जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही। (१)
अस कहि चलेउ सबहिं सिर नाई। सुमन-धनुष कर, सहित सहाई।
चलत मार अस हृदय बिचारा। सिव-बिरोध ध्रुव मरन हमारा। (२)
तब आपन प्रभाउ बिस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा।
९९० कोपेउ जबहिं बारि - चर - केतू। छन महँ मिटे सकल श्रुति-सेतू। (३)
ब्रह्मचर्ज, ब्रत, संजम नाना। धीरज, धरम, ज्ञान, बिज्ञाना।
सदाचार, जप, जोग, बिरागा। सभय बिबेक-कटक सब भागा। (४)

उन्मादन, स्तंभन, शोषण और तापन नामक बाण तथा अरविन्द, अशोक, शिरीष, आम्र-मञ्जरी, कमल) धारण करनेवाले मीनकेतु (जिसके झण्डेपर मछली बनी है वे कामदेव) झट सामने आ खड़े हुए। (४) (उनके आते ही) देवताओंने कामदेवको अपनी सारी विपत्तिकी कथा कह सुनाई। उसे सुनकर कामदेवने बहुत आगा-पीछा सोचकर हँसकर देवताओंसे कहा—'शिवसे विरोध ठाननेमें मेरी कुशल तो नहीं है (मैं बच तो नहीं पाऊँगा) ॥ ८३ ॥ फिर भी (जब आप लोग इतना कह रहे हैं तो मैं पीछे भी नहीं हटूँगा और) आपका काम करके ही छोड़ूँगा क्योंकि वेदों (वेद, शास्त्र, पुराण)-में बताया गया है कि दूसरेका उपकार करते रहना ही सबसे बड़ा धर्म (कर्तव्य) है। दूसरेके हितके लिये जो अपना शरीर त्याग दे उसीकी सन्त लोग सदा प्रशंसा किया करते हैं ?' (१) यह कहकर वह (कामदेव) सब देवताओंको प्रणाम करके और पुष्पका धनुष हाथमें लेकर अपने सहायकों (वसन्त आदि)-के साथ (उधर) चल दिया (जिधर शिव समाधि लगाए बैठे थे । चलते समय कामदेव अपने हृदयमें सोच तो रहा था कि शिवसे विरोध करके मैं बच नहीं पाऊँगा (मेरी मृत्यु निश्चित है) पर वह विचलित नहीं हुआ। (२) तब उसने (शिवके पास पहुँचते ही) अपनी ऐसी माया जा फैलाई कि सारा संसार उसके जालमें आ उलझा। ज्यों ही कामदेवने भौंहें तानीं (क्रोध किया), त्यों ही क्षण भरमें वेदों (नीति, धर्म, शील)-की सारी मर्यादाएँ मिट चलीं, (३) ब्रह्मचर्य, नियम, अनेक प्रकारके संयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान (ब्रह्मज्ञान), सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि जितनी विवेककी सेना थी वह सब डरके मारे भाग खड़ी हुई (लोगोंमें संयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य,

९८३-८४ मदन त्वं समर्थोऽसि अस्माञ्जेतुं सदैव हि। महेशं प्रति गच्छाशु सुरकार्यार्थसिद्धये ॥
पार्वत्या सहितं शम्भुं कुरुष्वाद्य महामते। —स्कन्दपुराण
इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये। प्रोवाच पंचबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम् ॥
अनया देवसामग्र्या मुनिदानदभीमया। दुःसाध्यः शंकरो देवः किन्न वेत्सि जगत्प्रभो ॥मत्स्यपु०
९८५-८६ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभंगुरैः। पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥ भाग०
९८७-८९ इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्योमिति तद्वचः। गृहीत्वा शिरसा कामः सदारः स वसन्तकः ॥
यत्र चैव हरः साक्षात्करोति परमं तपः। तत्र गत्वा मधुश्चादौ धर्मं विस्तारयन् स्थितः ॥ शिवपु०
९९०-९२ तावन्महत्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता। यावज् ज्वलति नांगेषु हन्त पंचेषु पावकः ॥—भर्तृ०

छंद—भागेउ विवेक सहाय-सहित[1] सो सुभट संजुग-महि मुरे।
सद्ग्रंथ पर्वत कंदरन्हि महँ जाइ तेहि अवसर दुरे।
होनिहार का करतार, को रखवार, जग खरभर परा।
दुइ माथ केहि, रतिनाथ जेहि कहँ कोपि कर धनु-सर धरा।। [३]
दो०—जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम।। ८४।।
सबके हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहिँ तरु-साखा।
१००० नदी उमगि अंबुधि-कहँ धाई। संगम करहिँ तलाव-तलाई। (१)
जहँ असि दसा जड़न्ह-कै बरनी। को कहि सकै सचेतन्ह-करनी।
पसु-पच्छी नभ-जल-थल-चारी। भए कामबस समय बिसारी। (२)
मदन-अंध व्याकुल सब लोका। निसि-दिन नहिँ अवलोकहिँ कोका।
देव, दनुज, नर, किन्नर व्याला। प्रेत, पिसाच, भूत, बेताला। (३)

विवेक कुछ भी बचा न रह पाया)। (४) विवेक अपनी सारी सेनाके साथ भाग चला और संयम, धैर्य, आदि उसके सुभट (बड़े-बड़े वीर) भी लड़ाईके मैदानमें पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए। उस हलचलमें जितने सद्ग्रन्थ (धर्म और नीतिके ग्रन्थ) थे वे भी पर्वतोंकी कन्दराओंमें जा छिपे (कोई धर्मग्रन्थोंकी बात नहीं मान रहा था)। संसारमें बड़ी खलबली मच गई (और सब लोग पुकार उठे—) 'हे कर्तार ! अब क्या होनेवाला है ? (क्या करनेपर उतारू हुए हो ?) हमारी रक्षा कौन करेगा ? ऐसा कौन दो सिरवाला आ जनमा है जिसपर क्रोध करके कामदेवको अपना धनुष-बाण हाथमें उठाना पड़ा है।' संसारमें स्त्री और पुरुष जातिके जिस भी चर और अचर प्राणीको देखो वही अपनी मर्यादा छोड़कर कामके फेरमें पड़ा दिखाई दे रहा था।। ८४।। सबके हृदयमें (इतनी प्रबल) काम-वासना उत्पन्न हो चली कि लताओंको देख-देखकर पेड़ोंकी शाखाएँ उनपर झुकी पड़ रही थीं। नदियाँ उमड़-उमड़कर समुद्रकी ओर बढ़ी चली जा रही थीं। ताल और तलैया भी आपसमें संगम करने लगी थीं। (१) (बताइए) जहाँ जड-समाजकी ऐसी दशा हो, वहाँ चेतन प्राणियोंकी दशाका तो वर्णन ही कोई क्या कर सकता है ? समय-कुसमय-तकका विचार छोड़कर आकाश, जल और पृथ्वीपर विचरनेवाले सभी पशु-पक्षी आदि जीव काम-पीडित हो चले। (२) सब इतने कामान्ध होकर व्याकुल हो चले कि चकवा-चकवी (जो रातको अलग-अलग रहकर दिनमें ही मिल पाते हैं वे) भी रात-दिनका विचार खो बैठे। देवता, दानव, मनुष्य,

१. सहाय-सह।

९९३-१००१ वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुःसहो ह्यभूत्। अचेतनानां तत्रासीत् कामासक्तिः सचेतसाम्।।शिवपु०
पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि।।
१००२ मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।। —कुमारसंभव
१००३ दिवा पश्यति नोलूको काको नक्तं न पश्यति। अपूर्वः कोपि कामान्धो दिवानक्तं न पश्यति।।सु०

इन्ह-कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम-के चेरे जानी।
सिद्ध, बिरक्त, महामुनि, जोगी। तेपि काम-बस भए बियोगी। (४)
छंद—भए कामबस जोगीस तापस, पामरन्हि-की को कहे।
देखहिं चराचर नारिमय, जे ब्रह्ममय देखत रहे।
अबला बिलोकहिं पुरुषमय, जग पुरुष सब अबलामयं।
१०१० दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ॥ [४]
सो०—धरी न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल-महँ ॥८५॥
उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जब लगि काम संभु पहँ गयऊ।
सिवहिँ बिलोकि ससंकेउ मारू। भएउ जथाथिति सब संसारू। (१)
भए तुरत जग-जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गए मतवारे।
रुद्रहिँ देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना। (२)

किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत और वेताल (-की तो कुछ पूछिए मत)। (३) इनकी दशाका मैंने इसलिये विस्तारसे वर्णन नहीं किया कि ये तो सदासे ही कामके दास (काम-पीडित) बने रहे हैं। (किन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि) सिद्ध, वैरागी, महामुनि और ज्ञानी लोग भी वियोगी (योग-साधना छोड़कर कामी) हो चले। (४) (अब बताइए कि) जहाँ योगीश्वर और तपस्वी भी काममें अंधे हुए जा रहे थे वहाँ पामर (दुर्बल) मनुष्योंकी तो गिनती ही क्या थी ? जो (योगी और तपस्वी लोग) संसारको ब्रह्ममय समझते चले आ रहे थे वे अब सारे संसारको स्त्रीमय देखते चले जा रहे थे। जितनी स्त्रियाँ थीं वे सारे संसारको पुरुषमय और जितने पुरुष थे वे सारे संसारको स्त्रीमय मान बैठे थे। दो घड़ी-तक सारे ब्रह्माण्डमें कामदेवने सबका मन अपने फन्देमें ला फँसा धरा। उस समय तो केवल वे ही मनुष्य (कामके फन्देसे) बच पाए, जिनकी रक्षा रामने कर ली थी ॥८५॥ दो घड़ी-तक जबतक शिवके पास कामदेव नहीं पहुँच गया, (कामदेवकी) यही लीला संसारमें मची रही। पर शिवको देखते ही कामदेवके देवता कूच कर गए (वह डर गया)। उसका डरना था कि सारा संसार फिर वैसे ही ठीक हो गया जैसे पहले था। (१) तुरन्त सब जीव वैसे ही स्वस्थ हो गए जैसे मद (नशा) उतर जानेपर मद्यप (शराबी) लोग स्वस्थ हो जाते हैं। दुराधर्ष (जिसको हराना अत्यन्त कठिन है) और दुर्गम (जिसके पास-तक पहुँच पाना अत्यन्त कठिन है उन) भगवान् रुद्रको देखकर कामदेवकी सिट्टी-पिट्टी भूल गई (वह डरके मारे बहुत घबरा उठा)। (२) (वह बड़ी दुबिधामें पड़

१००४-६ उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रगां त्यक्त्वा मनीषिभिः। भूतप्रेतपिशाचैश्च मदनेन विमोहितैः ॥
तिलोत्तमादयस्तत्र संवृत्ताश्च गणैस्तदा ॥-स्कन्दपु०

१००७-१० वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुःसहो ह्यभूत्।

१०११-१२ ऋते श्रीकृष्णदासानां नष्टकामधियां मुने। चकर्ष चित्तं सर्वेषां कामो धैर्यं पलायितम् ॥ ब्र०पु०

१०१३-१६ स्मरस्तथा भूतमयुग्मनेत्रं पश्यन्नदूरान्मनसाप्यधृष्यम्।
नालक्षयत्साध्वससन्नहस्तः स्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात् ॥ —कुमारसंभव

फिरत लाज, कछु करि नहिं जाई। मरन ठानि मन रचेसि उपाई।
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नव तरु-राजि बिराजा। (३)
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा-बिभागा।
१०२० जहँ-तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि, मुएहु मन मनसिज जागा। (४)
छंद—जागै मनोभव मुएहु मन बन-सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥ [५]

गया कि) यदि (बिना कुछ किए) लौट जाता हूँ तो बड़ी लज्जाकी बात होगी, (देवताओंको जाकर क्या मुँह दिखाऊँगा) और (यहाँ शिवके आगे) कुछ करते-धरते नहीं बन रहा है। निदान उसने मनमें ठान लिया कि अब प्राण तो देना ही है इसलिये उसने झट नई माया रच डाली। (उसने) तुरन्त ऐसा किया कि चारों ओर सुहावना वसन्त आ छाया। चारों ओर फूले हुए नये-नये वृक्षोंकी पाँतें झूम उठीं। (३) वन, उपवन, बावड़ी, तालाब और सारी दिशाएँ ऐसी सुहावनी बन चलीं मानो चारों ओर प्रेम ही प्रेम उमड़ा पड़ रहा हो। उसे देख-देखकर मरे हुए मनमें भी कामदेव जाग उठा। (४) सचमुच मरे हुए मनमें भी कामदेव जागने लगा। वन (ऐसे फूल उठे कि उनकी) सुन्दरताका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। कामदेव-रूपी ज्वालाका सच्चा मित्र (काम जगानेवाला) शीतल मन्द, सुगन्ध पवन बह चला (शीतल, मंद, सुगंधित पवन चलनेसे सबके हृदयमें कामकी ज्वाला वैसे ही भड़क उठी जैसे पवन चलनेसे आग भड़क उठती है)। तालावोंमें जहाँ-तहाँ रंगबिरंगे कमल खिल उठे जिनपर

१०१७-२० हास्यं पराङ्मुखे तत्र गते मृत्युर्भविष्यति। कंदर्पश्च विचार्य्येवं चूतांकुरमहायुधः॥
समं सहचरेणैव वसंतेनाशु संगतः। शिवस्याश्रममागम्य चिक्रीड च यथेच्छया॥स्क०पु०
ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः। निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम्॥
रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः। —वामनपुराण
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका कलिकामजितामपि॥ —रघुवंश
ज्वलन्नास्ते जगत्सर्वं दावाग्निरिव मन्मथः। —महाभारत
अचेतसामपि तदा कामासक्तिरभून्मुने॥ —शिवपुराण
१०२१-२४ स एव सुख-संस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः। गन्धमभ्यवहन्पुण्यमनिलो मित्रमन्मथः॥
पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेम्भसि। पंकजानि विराजन्ते ताड्यमानानि सर्वतः॥
रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते। निलीय पुनरुत्पत्य सहसान्यत्र गच्छति॥
हृष्टं प्रवदमानश्च समाह्वयति कोकिलः। —वाल्मीकीय रामायण
नृत्यन्त्योप्सरसो हंसा रमन्ते प्रियया सह॥ —स्कन्दपुराण
वसन्ते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः। चूतबाणं समाकृष्य स्थितः वामे तु पार्श्वतः॥शिवपु०
श्रुत्वाप्सरो गीतिरपि क्षणेस्मिन् हरः प्रसंख्यानपरो बभूव।
आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेदप्रभवो भवन्ति॥ —कुमारसंभव

दो०—सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदय-निकेत ।। ८६ ।।

देखि रसाल[1] बिटपबर - साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदन, मन माखा।
सुमन-चाप निज सर संधाने। अति रिसि ताकि श्रवन-लगि ताने। (१)
छाँड़ेउ बिषम बिसिष उर लागे। छूटि समाधि, संभु तव जागे।
१०३० भयउ ईस - मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी। (२)
सौरभ-पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप, कंपेउ त्रैलोका।
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत, काम भयउ जरि छारा। (३)

रसीले भौंरे (मँडराते हुए) गुनगुनाए जा रहे थे। जहाँ-तहाँ सुन्दर हंस, कोयल, और शुक भी मीठे स्वरसे कलरव करने लगे और अप्सराएँ उतर-उतरकर आ नाचने लगीं। कामदेव अपनी यह सारी सेना लेकर करोड़ों प्रयत्न करके हार गया, किन्तु शिवकी अचल समाधि न डिग पा सकी, न डिग पा सकी। तब तो कामदेवकी भौंहें तन गईं (वह क्रुद्ध हो उठा) ।। ८६ ।। क्रोधसे तमतमाता हुआ कामदेव झट आमके बड़े-से वृक्षकी सुन्दर डाली पकड़कर उसपर जा चढ़ा। उसने अपने पुष्पके धनुषपर अपने (पाँचों[2]) बाण चढ़ाकर अत्यन्त क्रोधसे कान-तक (धनुष) तान खींचा। (१) धनुष चढ़ाकर कामदेवने अपने पाँचों पैने बाण (ऐसे ताककर) खींच मारे कि वे सीधे शिवके हृदयसे जा टकराए। (बाण लगते ही) शिवकी समाधि टूट गई और वे जाग उठे। शिवके मनमें (काम-पीडाकी) बड़ी हलचल मच उठी पर उन्होंने (सँभलकर) अपने नेत्र खोलकर चारों ओर दृष्टि घुमाई (कि मेरे हृदयमें भी यह खलबली उत्पन्न कर देनेवाला कौन प्रतापी आ पहुँचा है)। (२) ज्यों ही उन्होंने आमके (वृक्षके) पत्तोंकी ओटमें छिपे हुए कामदेवको देखा त्यों ही शिवका क्रोध ऐसा भड़क उठा कि (उनके डरसे) तीनों लोक काँप उठे। (उस क्रोधके आवेगमें ज्यों ही) शिवने अपना तीसरा नेत्र खोला कि देखते-देखते कामदेव जलकर भस्मका ढेर बन गया। (३) (अब तो) सारे संसारमें

---

१. बिसाल: विशाल वृक्षकी अच्छी-सी शाखा देखकर उसपर जा चढ़ा।
२. कामदेवके पाँच बाण:—हर्षणं रोचनाख्यं च मोहनं शोषणं तथा। मारणञ्चेति संज्ञाभिर्मुनि-मोहकराण्यपि ।। (हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण, और मारण नामके कामदेवके पञ्चबाण मुनियोंको भी मोहित कर डालते हैं)।

१०२७-१०२९ एतस्मिन्नन्तरे तत्र मदनो हि धनुर्द्धरः। पंचबाणान् समारोप्य स्वकीये धनुषि द्विजाः ।।
तरोश्छायां समाहृत्य चूतपल्लवमाश्रितः। —स्कन्दपुराण
द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुञ्चत्सुसंयतः। यदा विद्धः शरेणैव मोहनाख्येन च त्वरात् ।।
तदैव शंकरो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः। —शिवपुराण
१०३०-१०३२ तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः ।।
तन्नेत्रविस्फुलिंगेन क्रोशतां नाकवासिनाम्। गमितो भस्मसात्तूर्णं कन्दर्पः कामिदर्पकः ।।मत्स्य०

हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर, भए असुर सुखारी।
समुझि काम-सुख सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी। (४)
छंद—जोगी अकंटक भए पति-गति सुनति रति मुरछित भई।
रोदति, वदति बहु भाँति, करुना करति संकर पहँ गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध बिधि, जोरि कर सनमुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपालु सिव, अबला निरखि बोले सही॥ [६]
दो०—अब-तें रति तव नाथ-कर , होइहि नाम अनंग।
१०४० बिनु बपु ब्यापिहि सबहिं पुनि , सुनु निज मिलन-प्रसंग॥ ८७॥
जब जदु-बंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा-महि-भारा।
कृष्न-तनय होइहि पति तोरा। बचन अन्यथा होइ न मोरा। (१)

भयंकर हाहाकार मच गया। डरके मारे देवताओंकी बुरी दशा हो चली और दैत्य आनन्दसे नाच उठे। भोगी लोग इसी चिन्तामें दुखी हुए जा रहे थे कि कामका सुख कैसे मिल पावेगा ? (अब कैसे भोग-विलास कर पावेंगे), पर साधक और योगी (कामके मायाजालसे मुक्त होनेपर) चैनकी वंशी बजाने लगे (निश्चिन्त हो गए कि चलो, अब कामके फन्देसे सदाके लिये छुटकारा मिल गया)। (४) योगी तो निष्कंटक (निश्चिन्त) अवश्य हो गए पर अपने पतिकी यह गति सुनते ही रति (कामदेवकी स्त्री) मूर्च्छित होकर धड़ामसे गिर पड़ी। वह बहुत रोती, चिल्लाती और बिलखती हुई शंकरके पास जा पहुँची और बड़े प्रेमसे अनेक प्रकारसे उनसे कृपा करनेकी प्रार्थना करके वह हाथ जोड़कर शंकरके सामने खड़ी हो रही। शीघ्र प्रसन्न हो उठनेवाले कृपालु शिव, उस अबला (असहाय स्त्री)-को (अपने सामने इस दशामें) खड़ी देखकर सान्त्वना देते हुए बोले—'देखो रति ! (तुम चिन्ता मत करो) आजसे तुम्हारे पतिका नाम अनंग (अंगरहित) होगा (पर) वह (काम,) बिना शरीरके ही सबको प्रभावित करता रहेगा। अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि तुम अपने पतिसे कब और किस प्रकार पुनः मिल पाओगी। देखो सुनो ! ॥ ८७॥ जब पृथ्वीपर चढ़ा हुआ भारी भार उतार फेंकनेके लिये (पृथ्वीके अत्याचारी दुष्टोंको समाप्त करनेके लिये) यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा तब तुम्हारा पति उनके पुत्र (प्रद्युम्न)-के रूपमें उत्पन्न होगा। (समझी ! तभी तुम उस रूपमें अपने पतिसे मिल पाओगी।) मेरा यह वचन व्यर्थ नहीं होगा।' (१)

१०३३-१०३४ हते तस्मिन् महावीर्ये देवा दुःखमुपागताः। —शिवपुराण
महामोदमना जाता असुरा देवकण्टकाः॥ —स्कन्दपुराण
१०३५-३८ विलोक्य हरहुंकारज्वालाभस्मीकृतं स्मरम्। विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह॥
ततो विलप्य बहुशो मधुना परिसांत्विता। जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम्॥
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणाम्।
त्वमेव नाथो भुवनस्य गोप्ता दयालुरुन्मीलितभक्तभीतिः॥
इत्थं स्तुतः शंकर इन्द्रमौलिर्वृषाकपिर्मन्मथकान्तया तु।
तुतोष दोषाकरखंडधारी उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य॥ —पद्मपुराण
१०३९-४० भवितेति च कामोऽयम् कालात्कान्तोऽचिरादपि। अनंग इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति॥
१०४१-४२ अनंगस्तावदेव स्याद् यावच्च रुक्मिणीपतिः। द्वारकायां स्वयं स्थित्वा पुत्रानुत्पादयिष्यति॥
ततः कृष्णस्तु रुक्मिण्यां काममुत्पादयिष्यति। प्रद्युम्नो नाम तस्यैव भविष्यति न संशयः॥शिवपु०

रति गवनी सुनि संकर-बानी। कथा अपर अब कहौं बखानी।
देवन समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए। (२)
सब सुर, बिष्नु - बिरंचि - समेता। गए जहाँ सिव कृपा-निकेता।
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चंद्र-अवतंसा। (३)
बोले कृपा-सिंधु बृषकेतू। कहहु अमर, आए केहि हेतू।
कह बिधि, तुम प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति-बस बिनवौं स्वामी। (४)
दो०—सकल सुरन-के हृदय अस, संकर ! परम उछाह।
१०५० निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ ! तुम्हार बिवाह।। ८८।।
यह उत्सव देखिय भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन-मद-मोचन।
काम जारि, रति-कहँ बर दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा। (१)

शिवके ये (सान्त्वना भरे) वचन सुनकर रति (वहाँसे उठकर धीरे-धीरे) अपने घर लौट गई।

(भरद्वाजसे याज्ञवल्क्य कहते हैं—) अब मैं आपको दूसरी कथा भी सुनाए डालता हूँ।

जब ब्रह्मा आदि देवताओंको यह (कामदेवके भस्म होनेका) समाचार मिला तब वे (पहले) वैकुण्ठ पहुँचे। (२) वहाँसे विष्णु और ब्रह्माको साथ लेकर सब देवगण कृपाके धाम शिवके पास जा पहुँचे। सब (देवताओंने वहाँ जाकर) पहले अलग-अलग शिवकी स्तुति की। इससे शशि-भूषण (चन्द्रमाको भूषण बनाकर सिरपर सजाए रखनेवाले) शिव बड़े प्रसन्न हुए (३) और परम कृपालु शिवने उनसे पूछा—'कहिए देवगण ! आप लोग कैसे आ पधारे हैं ?' यह सुनकर ब्रह्माने निवेदन किया—'प्रभो ! आप तो अन्तर्यामी हैं (सबके मनकी बात जानते हैं), तब भी स्वामी ! आपमें मेरी बड़ी भक्ति है इसलिये आपसे निवेदन किए देता हूँ—(४) बात यह है नाथ ! कि इन सब देवताओंके मनमें इस बातका बड़ा चाव (उत्साह) जाग उठा है कि अपनी आँखोंसे आपका विवाह देख लें।। ८८।। इसलिये हे कामदेवका मद चूर्ण करनेवाले शंकर ! आप कुछ ऐसा उपाय (कृपापूर्वक ऐसा संयोग उपस्थित) कीजिए कि हम लोग अपनी आँखोंसे यह उत्सव देखकर उसका आनन्द उठा सकें। हे कृपाके सागर ! आपने कामदेवको भस्म करके भी रतिको जो (कामदेवसे पुनः मिलनेका) वर दे दिया वह बहुत ही ठीक किया, (१) क्योंकि

१०४३ कामपत्नी समादिष्टं नगरं सा गता तदा। प्रतीक्षमाणा तं कालं रुद्रादिष्टं मुनीश्वर।।
१०४४ तदाकर्ण्य सुराः सम्यग्विधिं मां शरणं ययुः। दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात्।।
हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम्।
१०४५-४६ एवमुक्तास्तदा देवा विष्णुना प्रभविष्णुना। जग्मुस्सर्वे तेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिनम्।।
अथ विष्ण्वादयस्सर्वे तत्र गत्वा शिवं प्रभुम्। ददृशुस्सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम्।।
ततो विष्णुर्मयान्ये च सुरसिद्धमुनीश्वराः। प्रणम्य तुष्टुवुस्सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः।।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः।।
१०४७ शम्भुरुवाच-कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः। हरिब्रह्मादयस्सर्वे ब्रूत कारणमाशु मे।।
१०४८ सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वन्तर्याम्यखिलेश्वरः। किं न जानासि चित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात्।।
१०४९-५१ देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शंकर। विवाहं तव संद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम्।।
१०५२ रत्यै यद्भवता दत्तो वरो दग्ध्वा स्मरं त्वया। तत्कृतम्भवता सम्यक्।। —शिवपुराण

साँसति करि, पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह-कर सहज सुभाऊ।
पारबती तप कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा। (२)
सुनि बिधि-बिनय, समुझि प्रभु-बानी। ऐसेइ होउ, कहा सुख मानी।
तब देवन दुंदुभी बजाईं। बरषि सुमन, जय जय सुरसाईं। (३)
अवसर जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरि-भवन पठाए।
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल-सानी। (४)
दो०—कहा हमार न सुनेहु तब, नारद - के उपदेस।
१०६० अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ काम महेस ॥८९॥
सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिवर बिज्ञानी।
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सबिकारा। (१)
हमरे जान सदा सिव जोगी। अज, अनवद्य, अकाम, अभोगी।

नाथ ! श्रेष्ठ स्वामियोंका यह सहज स्वभाव है कि वे पहले तो दण्ड दे देते हैं पर फिर कृपा भी कर दिया करते हैं (दंड कम कर देते हैं)। (आप तो जानते ही हैं कि) पार्वतीने आपके लिये बहुत कठोर तप किया है इसलिये अब आप उन्हें अंगीकार कर ही लीजिए। (२) ब्रह्माकी प्रार्थना सुनकर और रामके वचन स्मरण करके शिवने प्रसन्न होकर कहा—'अच्छा ठीक है। आप लोग कहते हैं तो यही किया जायगा।' (फिर क्या था !) देवताओंके नगाड़े गड़गड़ा उठे और वे फूलोंकी वर्षा करते हुए जय-जयकार कर उठे–'हे देवताओंके स्वामी ! आपकी जय हो ! जय हो, जय हो।' (३) यह अवसर ठीक समझकर सप्तर्षि भी वहाँ आ पहुँचे। ब्रह्माने उन्हें तुरन्त हिमाचलके पास भेज दिया। वहाँसे चलकर पहले तो वे (सप्तर्षि) वहाँ पहुँचे जहाँ पार्वती बैठी हुई थीं और वे उनसे व्यंग्य-भरे मधुर बचन बोले—(४) 'कहिए पार्वतीजी ! उस समय तो नारदके उपदेशके फेरमें आपने हमारी सुनी अनसुनी कर दी। अब तो आपकी प्रतिज्ञा जाती रही न ! क्योंकि शंकरने कामदेवको तो भस्म कर डाला' (अब क्या विवाह होगा ?)। (८९) यह सुनकर पार्वती मुसकराती हुई बोलीं—'हे विज्ञानी मुनिवरो ! आप जो कह रहे हैं, ठीक ही कह रहे हैं। आपका कहना यही है न, कि शिवने कामदेवको अब जलाया है। पर यह तो बताइए कि अबतक क्या वे विकारयुक्त (कामी) ही बने हुए थे ? (१) मेरी समझसे तो शिवजी सदासे ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, निष्काम और भोगोंसे दूर रहे हैं और यदि मैंने यही समझकर मन, वचन और कर्मसे उनकी

१०५३-५४ नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः। तत्तेजसाऽखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
वरं दातुं शिवायै वै गच्छ त्वं परमेश्वर। भक्ताधीनः शंकरोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा ॥
१०५५-५६ विहस्य प्रत्युवाचाशु वेदमर्य्यादरक्षकः। हे हरे हे विधे देवाश्शृणुताऽदरतोऽखिलाः ॥
तथाप्यहं करिष्यामि प्रार्थना सफलां च वः। देवा दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्ततोऽभवत् ॥
१०५७-५८ सप्तापि मुनयश्शीघ्रमाययुः स्मृतिमात्रतः। इत्याज्ञप्ताश्च मुनयो जग्मुस्तत्र द्रुतं हि ते ॥
यत्र राजति सा दीप्ता जगन्माता नगात्मजा।
१०५९-६० किं तेन तव रुद्रेण येन दग्धः पुरा स्मरः ॥
जितो हि निर्विकारत्वात्त्वां च दातुं वरं हरः। नाऽगमिष्यति देवेशि तं कथं प्रार्थयिष्यसि ॥शिवपु०

जौं मैं सिव सेए अस जानी। प्रीति-समेत करम - मन - बानी। (२)
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपा-निधि ईसा।
तुम जो कहेहु हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेक तुम्हारा। (३)
तात अनल - कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।
गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मनमथ - महेस - कै नाई। (४)
दो०—हिय हरखे मुनि, बचन सुनि , देखि प्रीति, बिस्वास।
१०७० चले भवानिहि नाइ सिर , गए हिमाचल - पास ॥ ९० ॥
सब प्रसंग गिरिपतिहिं सुनावा। मदन-दहन सुनि अति सुख पावा।
बहुरि कहेउ रति - कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुख माना। (१)
हृदय बिचारि संभु - प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बुलाई।
सुदिन सुनखत सुघरी सोचाई[1]। बेगि बेद-बिधि लगन धराई। (२)
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही।

सेवा की है (किसी वासनासे नहीं) (२) तो हे मुनिवरो ! आप (कान खोलकर) सुन लीजिए। (मैं बताए देती हूँ) कि वे कृपानिधान भगवान् शंकर मेरी प्रतिज्ञा अवश्य सत्य करेंगे। आपका यह कहना ही बहुत बड़ा भ्रम है कि शिवने कामदेवको भस्म कर डाला। (३) देखिए ! अग्निका तो यह स्वभाविक गुण है कि पाला उसके पास पहुँच ही नहीं सकता और यदि कभी पहुँच भी गया तो निश्चय ही वह नष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। यही बात कामदेव और शिवके सम्बन्धमें है।' (काम कभी शिवके पास आ ही नहीं सकता और यदि आया भी तो नष्ट हुए बिना नहीं रह सकता) । (४) पार्वतीके ये वचन सुनकर तथा (शिवके लिये) उनका सच्चा प्रेम और विश्वास देखकर सप्तर्षि अपने हृदयमें बड़े प्रसन्न हुए और वे पार्वतीको प्रणाम करके वहाँसे उठकर हिमाचलके पास जा पहुँचे ॥ ९० ॥ वहाँ जाकर उन्होंने गिरिराजको सारा समाचार कह सुनाया। कामदेवका भस्म होना सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ पर जब ऋषियोंने बताया कि शिवने रतिको वर भी दे दिया है तो वे बहुत प्रसन्न हुए। (१) शंकरका प्रभाव मनमें विचारकर हिमाचलने उन श्रेष्ठ (विचारशील) मुनियोंको आदर-पूर्वक बैठाकर उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ीका विचार कराकर शीघ्र ही वेदकी विधिके अनुसार लग्न (विवाहका समय) ठीक करा लिया। (२) उसीके अनुसार हिमवान्ने लग्न-पत्रिका बनवाकर सप्तर्षियोंके हाथ सौंप दी और उनके चरणोंकी वन्दना करके उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की (कि मेरी कन्याके विवाहके लिये आप

१. सुनखत सुघरी सुदिन सोचाई।

१०६१-६८ यदि दहत्यनलोऽत्र किमद्भुतं यदि च गौरवमद्रिषु किं ततः।
लवणमम्बु सदैव महोदधेः प्रकृतिरेव सतामविषादिता ॥ —देवीशतक

१०६९-७० ऋषयस्तद्वचनं श्रुत्वा हिमाचलमुपागताः। तान् दृष्ट्वा सूर्य्यसंकाशान् हिमवान् विस्मितस्तथा ॥
पूजां विधाय तेषां च दण्डवत्प्रपपात ह।

१०७१-७२ शिवः परोपकाराय कर्त्तुकामः प्रजासुखम्। तस्मै देया त्वया कन्या सार्थकं ते भविष्यति ॥शिवपु०

१०७३-७५ वैवाहिकीं तिथिं पृष्टास्तत्क्षणं हरबन्धुना। ते त्र्यहादूर्ध्वमास्थाय चेरुश्चीरपरिग्रहाः ॥कु०सं०

जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाँचत, प्रीति न हृदय समाती। (३)
लगन बाँचि अज सबहिं सुनाई। हरषे सुनि मुनि - सुर - समुदाई।
सुमन-बृष्टि नभ, बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे। (४)
दो०—लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
१०८० होहिं सगुन मंगल सुभद, करहिं अपछरा गान॥ ९१॥
सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटा-मुकुट अहि-मौर सँवारा।
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति, पट केहरि-छाला। (१)
ससि ललाट, सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि, उपवीत भुजंगा।
गरल कंठ, उर नर - सिर - माला। असिव बेष, सिवधाम कृपाला। (२)

लोगोंने इतना कष्ट उठाया)। सप्तर्षियोंने जब वह लग्न-पत्रिका लाकर ब्रह्माजीको दी तो उनके मनमें शिवके (विवाहके प्रति) इतना प्रेम उमड़ पड़ा कि हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा था। (३) (इतना ही नहीं,) ब्रह्माने वह लग्न-पत्रिका वहाँ सबको बाँच सुनाई जिसे सुनकर सब मुनि और देवता हर्षसे फूले न समाए। (फिर क्या था!) आकाशसे पुष्प बरसने लगे और नगाड़े बज उठे। (जिधर देखो उधर) दसों दिशाओंमें मंगल-कलश सज उठे। (४) चारों ओर जिस देवताको देखो वही अपनी-अपनी सवारी और विमान सजाए जा रहा है। चारों ओर मंगल और शुभ-सूचक शकुन होने लगे और जहाँ-तहाँ अप्सराएँ गाने (नाचने) लगीं॥९१॥ उधर शिवके गण भी शिवका शृङ्गार करनेमें जुट गए। शिवकी जटाओंको मुकुट-जैसा बनाकर उसपर सर्पोंका मौड़ (मुकुट) बना दिया गया। सर्पोंके ही कुण्डल और कंगन बना-बनाकर पहना दिए गए। उनके शरीरपर भस्म पोतकर ऊपरसे बाघंबर उढ़ा दिया गया। (१) उनके मस्तकपर चन्द्रमा और सिरपर तो गंगाकी निर्मल धारा शोभा दे ही रही थीं। उनके तीन नेत्र भी थे ही। उन्होंने सर्पोंका यज्ञोपवीत भी धारण कर ही रक्खा था। उनके कंठमें हलाहल विष (-की नीलिमा चमकी पड़ रही थी) तथा छातीपर नर-मुण्डोंकी माला पड़ी ही हुई थी। इस प्रकार कल्याणके धाम

१०७६-७८ तदाज्ञप्तस्ततः प्रीत्या हिमवान् लग्नपत्रिकाम्। लेखयामास सुप्रीत्या गर्गेण स्वपुरोधसा॥
अथ प्रस्थापयामास तां शिवाय स पत्रिकाम्। नानाविधास्तु सामग्र्यः स्वजनैर्मुदितात्मभिः॥
ते जनास्तत्र गत्वा च कैलासे शिवसन्निधौ। ददुः शिवाय तत्पत्रं तिलकं संविधाय च॥कु०सं०
१०७९-८० सर्वे देवास्तदा तत्र शिवसेवासमीहया। वैवाहिकोपकरणं गृहीत्वा तूर्णमाययुः॥
तत्राऽभवन्मंगलानि शकुनानि शुभानि च। जगुः किन्नरगंधर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणाः॥शिवपु०
१०८१-८४ बभूव भस्मैव सितांगरागः कपालमेवामलशेखरश्रीः।
उपान्तभागेषु च रोचनांको गजाजिनस्यैव दुकूलभावः॥
शंखान्तरद्योतिविलोचनं यदन्तर्निविष्टामलपिंगतारम्।
सान्निध्यपक्षे हरितालमय्यास्तदेव जातं तिलकक्रियायाः॥
यथाप्रदेशं भुजगेश्वराणां करिष्यतामाभरणान्तरत्वम्।
शरीरमात्रं विकृतिं प्रपेदे तथैव तस्थुः फणरत्नशोभाः॥
दिवापि निष्ठ्यूतमरीचिभासा बाल्यादनाविष्कृतलांछनेन।
चन्द्रेण नित्यं प्रतिभिन्नमौलेश्चूडामणेः किं ग्रहणं हरस्य॥ —कुमारसंभव

कर त्रिसूल अरु डमरु बिराजा। चले बसह चढ़ि, बाजहिं बाजा।
देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं। बरलायक दुलहिनि जग नाहीं। (३)
बिष्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता।
सुर-समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह - अनुरूपा। (४)

दो०—बिष्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
१०९० बिलग-बिलग होइ चलहु सब, निज-निज सहित समाज ॥ ९२ ॥

बर - अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर-पुर जाई।
बिष्नु-बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज-निज सेन-सहित बिलगाने। (१)
मनहीं मन महेस मुसुकाहीं। हरि-के बिंग्य बचन नहिं जाहीं।
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय - केरे। भृंगिहिं प्रेरि सकल गन टेरे। (२)
सिव - अनुसासन सुनि सब आए। प्रभु-पद-जलज सीस तिन्ह नाए।
नाना बाहन नाना बेखा। बिहँसे सिव समाज निज देखा। (३)
कोउ मुखहीन, बिपुल-मुख काहू। बिनु-पद-कर, कोउ बहु-पद-बाहू।

कृपालु शिव (इस) अशुभ वेषमें भी बड़े सुन्दर जँच रहे थे। (२) शिवके हाथोंमें त्रिशूल और डमरू (अलग-अलग) शोभा दे रहे थे। वे ज्यों ही बैलपर चढ़कर चले तो बाजे बज उठे। शिवका (यह अशुभ और विचित्र वेष देख-देखकर) देवताओंकी स्त्रियाँ मुसकराती हुई (आपसमें) बातें करने लगीं कि इस वरके अनुरूप (ऐसे ही अशुभ और विचित्र वेष-वाली) दुलहिन संसारमें कहीं कोई ढूँढे न मिल पावेगी। (३)

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवता भी अपने-अपने वाहनोंपर चढ़-चढ़कर बारातके साथ-साथ चल पड़े। देवताओंका समाज सब प्रकारसे इतना अनुपम (ठाठबाटका) था कि वह बारात दूल्हेके अनुरूप नहीं जान पड़ रही थी। (४)

तब विष्णु भगवान्ने सब दिक्पालोंको बुलाकर हँसते हुए कहा कि आप लोग अपना दल अलग बाँध-बाँधकर चलिए ॥ ९२ ॥ क्योंकि भाई ! यह तुम लोगोंके दलवाली बारात वरके रूपसे मेल नहीं खा रही है। पराए नगरमें जाकर क्या अपनी हँसी उड़वाना चाहते हो ? विष्णु भगवान्की यह बात सुनते ही सब देवता मुसकराते हुए अपने-अपने दल बाँधकर अलग-अलग होकर चलने लगे। (१) शंकर भी मन ही मन मुसकराए जा रहे थे कि विष्णुने अपनी ठिठोली करनेकी बान यहाँ भी न छोड़ी (मुझपर भी व्यंग्य कसनेसे नहीं चूके)। तब अपने प्रिय विष्णुके ऐसे रसभरे वचन सुनकर शिवने भृङ्गीको भेजकर अपने सब गणोंको अपने पास बुलवा भेजा। (२) शिवकी आज्ञा पाते ही वे सब बातकी बातमें दौड़े चले आए और पहुँचकर प्रभु (शंकर)-के चरण-कमलोंमें सिर नवाकर आ खड़े हुए। शिव भी अपना वह समाज, अपने समाजके अनेक प्रकारके वाहन और उनके वेष देख-देखकर अपनी हँसी रोक नहीं पा रहे थे (३) (क्योंकि उनके उस समाजमें) किसीके मुँह ही नहीं था तो किसीके बहुतसे मुँह थे, कोई बिना हाथ-पैरका

१०८६-८८ तमभ्यगच्छत् प्रथमो विधाता श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात्।
जयेति वाचा महिमानमस्य संवर्धयन्तो हविषेव वह्निम् ॥ —कुमारसंभव

बिपुल नयन, कोउ नयन-बिहीना। रिष्ट-पुष्ट, कोउ अति तन-खीना। (४)
छंद—तन-खीन कोउ अति पीन, पावन कोउ अपावन गति धरे।
११०० भूषन कराल, कपाल कर सब, सद्य सोनित तन भरे॥
खर-स्वान-सुअर-सृगाल-मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि - जमात बरनत नहिं बनै॥ [७]
सो०—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
११०४ देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥ ९३॥
जस दूलह तसि बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता।
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना। (१)
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु-बिसाल नहिं बरनि सिराहीं।
बन, सागर, सब नदी- तलावा। हिमगिरि सब-कहँ नेवति पठावा। (२)
काम-रूप सुंदर तन धारी। सहित समाज, सहित बर नारी।
१११० गए सकल तुहिनाचल - गेहा। गावहिं मंगल सहित - सनेहा। (३)

था तो किसीके कई-कई हाथ-पैर थे, किसीके बहुतसी आँखें थीं तो किसीके एक भी आँख नहीं थी, कोई शरीरसे हट्टा-कट्टा था तो कोई बड़ा मरियल (दुबला-पतला) था। (४) इस प्रकार कोई दुबला था तो कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र था तो कोई बहुत अपवित्र वेषमें था। वे सब डरावने गहने पहने हुए, हाथमें कपाल लिए हुए और देहमें लहू पोते हुए चले जा रहे थे। गदहे, कुत्ते, सूअर और सियारके-से मुँहवाले वे गण इतने अगणित वेषोंमें थे कि उन्हें गिन कौन पा सकता था? (उस समाजके) अनेक रंग-रूपवाले प्रेत, पिशाच तथा योगिनियोंके समूहका वर्णन क्या किसीके किए हो पा सकता है? [७] वे सब मस्त भूतगण अपनी धुनमें नाचते और गीत गाते चले जा रहे थे। वे देखनेमें तो बड़े तिड़बिड़ङ्गे थे ही, साथ ही बड़ी विचित्र-विचित्र भाषाएँ भी बोलते चले जा रहे थे॥ ९३॥ (सचमुच) जैसा दूल्हा था, वैसी ही (उसके अनुरूप ही) उनकी बारात भी बन गई थी और मार्गमें चलते हुए वे अनेक प्रकारके खेल-तमाशे भी करते चले जा रहे थे।

हिमाचलने ऐसा विचित्र विवाह-मंडप बनाया था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (१) संसारके सभी छोटे-बड़े पर्वतों (के अधिपतियों)-को जिनका वर्णन करना सम्भव नहीं है, तथा जितने वन, समुद्र, नदी और तालाब (-के अधिपति) थे, उन सबको हिमाचलने न्यौत बुलाया था (२) (और) अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाले वे सब भी सुन्दर शरीर सजाकर, सुन्दरी स्त्रियों और समाजोंके साथ हिमाचलके घर पहुँचकर सब स्नेहपूर्वक मंगल-गीत गाए चले जा रहे थे। (३)

१०८९ महाकालश्च नन्दी च तथा शंखकपालकौ। वीरभद्रो महातेजाः शंकुकर्णो महाबलः॥
११०४ नानायुधोद्यतकराः नानावाहनभूषणाः। केचिद् व्याघ्रमुखाः केचित् सूकरास्या मृगाननाः॥शिवपु०
११२५ वरेणातुल्याः कुर्वंतः कुतुकानि बहूनि च। नृत्यन्तश्चैव गायन्तो जग्मुः शिवसमाजिनः॥पद्मपु०
११०६ हिमवानपि तत्रैवस्थानाहूय सुहृद्वृतः। विधिवत् कारयामास मण्डपादिविधिं क्रमात्॥
११०७-१० पर्वताश्च तथा रम्या जंगमं रूपमास्थिताः। तत्पत्न्यश्चैव पुत्राश्च पुत्र्यश्चैव तथाविधाः।
वस्त्रालंकारसंयुक्ताः सर्वे हर्षसमाकुलाः। कार्यं चक्रुश्च तत्रत्यं हिमवद्-गृहसंभवम्॥शिवपु०

प्रथमहिँ गिरि बहु गृह सँवराए। जथा-जोग जहँ तहँ सब छाए।
पुर-सोभा अवलोकि सुहाई। लागै लघु बिरंचि-निपुनाई। (४)

छंद—लघु लागि बिधि-कै निपुनता अवलोकि पुर-सोभा सही।
बन, बाग, कूप, तड़ाग, सरिता सुभग सब सक को कही।
मंगल बिपुल तोरन, पताका, केतु गृह-गृह सोहहीँ।
बनिता-पुरुष सुंदर चतुर, छबि देखि मुनि-मन मोहहीँ॥ [८]

दो०—जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि, सिद्धि, संपत्ति, सुख, नित नूतन अधिकाइ॥९४॥

नगर-निकट बरात सुनि आई[1]। पुर खरभर सोभा अधिकाई।
११२० करि बनाव सब बाहन नाना। चले लेन सादर अगवाना। (१)

हिमाचलने पहलेसे ही (उनके ठहरके लिये) बहुतसे घर सजवा धरे थे। (इसलिये जितने घराती आए) सब यथायोग्य स्थानोंमें जा टिके। (उस ओषधिप्रस्थ) नगर की शोभा इतनी मनोहर थी कि उसके आगे ब्रह्माकी सारी चतुरता भी आ पानी भरे। (४) नगरकी शोभा देख-देखकर विधाताकी सारी चतुराई भी सचमुच बचकानी दिखाई देने लगी थी। वन, उपवन, कुएँ, तालाब और नदियाँ (उनके अधिपति) सभी एकसे एक बढ़कर इतने सुन्दर थे कि उनका वर्णन किसके किए किया जा सकता है। घर-घर मंगल-सूचक तोरण टँगे थे, पताकाएँ और झंडे फरफरा रहे थे। वहाँके सुन्दर और रसीले स्त्री-पुरुषोंकी सुन्दरता देख-देखकर मुनियोंके मन भी मचले जा रहे थे। जिस नगरमें जगत्की माता (पार्वतीजी)-ने अवतार लिया हो उस नगरकी शोभाका भला कौन वर्णन कर पा सकता है ? वहाँ तो नित्य नई-नई ऋद्धि, सिद्धि, संपत्ति और सुख सब धुआँधार बढ़ते चले जा रहे थे॥ ९४॥

नगरके पास बारात चढ़ आनेका समाचार सुनकर सारे नगरमें ऐसी हलचल मच उठी कि उससे नगरकी शोभा और भी (दुगुनी) बढ़ चली। जिसे देखो वही सजधजकर और अपनी-अपनी सवारी सजाकर आदरपूर्वक बारातकी अगवानीके लिये झपटा चला जा रहा है। (१) देवताओंका

१. निकट बरात नगर सुनि आई=जब नगरमें यह सुन पड़ा कि बारात पास आ पहुँची ...।

१११११-१६ अथ शैलेश्वरः प्रीतो हिमवान्मुनिसत्तमम्। स्वपुरं रचयमास विचित्रं परमोत्सवम्॥
सिक्तमार्गं कृतं सम्यक् शोभितं परमर्द्धिभिः। द्वारि द्वारि च रंभादि मंगलं द्रव्यसंयुतम्॥
प्रांगणं रचयामास रम्भास्तम्भसमन्वितम्। पट्टसूत्रैस्सन्निबद्धं रसालपल्लवान्वितम्॥
मालतीमाल्यसंयुक्तं लसन्प्रांगणसुप्रभम्। शोभितं मंगलद्रव्यैश्चतुर्दिक्षु स्थितैश्शुभैः॥
१११७-१८ यत्रावतीर्णा जगदम्बिका स्वयं ह्यवर्णनीयं किल तत्पुरं बुधैः।
ऋद्धिश्च सिद्धिश्च सुखं च संपदा भवन्ति नूतनानि बहूनि संततम्॥
१११९-२० अथाकर्ण्य गिरीशश्च निजपुर्युपकंठतः। प्राप्तमीशं सर्वगं वै मुमुदेऽति हिमालयः॥
अथ संभृतसम्भारः संभाषां कर्त्तुमीश्वरम्। शैलान् प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि सर्वशः॥शिवपु०

हिय हरषे सुर-सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी।
सिव - समाज जब देखन लागे। बिडरि चले, बाहन सब भागे। (२)
धरि धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने।
गए भवन पूछहिँ पितु - माता। कहहिँ बचन भय-कंपित गाता। (३)
कहिय काह, कहि जाइ न बाता। जम-कर धारि, किधौं बरिआता।
बर बौराह, बसह असवारा। ब्याल, कपाल, बिभूषन छारा। (४)

छंद—तन छार, ब्याल, कपाल भूषन, नगन, जटिल[1] भयंकरा।
सँग भूत, प्रेत, पिसाच, जोगिनि, बिकट - मुख रजनीचरा॥
जो जियत रहिहि बरात देखत, पुन्य बड़ तेहि-कर सही।
११३० देखिहि सो उमा-बिबाह[2], घर-घर बात असि लरिकन्ह कही॥ [९]

दो०—समुझि महेस-समाज सब, जननि - जनक मुसुकाहिँ।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु, डर नाहिँ॥९५॥

समाज देखकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और विष्णु भगवान्‌को देखकर तो वे आनन्दसे फूले न समाए। पर ज्यों ही उन्होंने शंकरका (भूत-प्रेतोंका) समाज देखा तो लोगोंमें भगदड़ मच गई और उनकी सवारियाँ भी (बिदककर) भाग खड़ी हुईं। (२) ऐसे कुछ इने-गिने ही सयाने लोग (बच रहे जो) बहुत धीरज बाँधकर वहाँ रुके खड़े रहे, पर बालक तो सब अपने प्राण ले-लेकर भाग ही खड़े हुए। घर पहुँचनेपर जब उनके माता-पिता पूछने लगे तो उनके मुँहसे बात नहीं निकल पा रही थी। (३) वे कहेँ भी तो क्या कहेँ ? उनके मुँहसे तो बोल-तक नहीं निकल पा रहा था—'अरे ! यह बारात है या यमराजकी सेना है ? दूल्हा भी पागल है, जो बैलपर चढ़कर आया है और साँप लपेटे, खोपड़ी लिये और भस्मको ही आभूषण बनाए हुए है। दूल्हेके शरीरपर भस्म पुती हुई है—साँप और खोपड़ी ही उसके आभूषण हैं। वह बड़ी-बड़ी जटाओंवाला, नंगा और देखनेमें बड़ा भयंकर लग रहा है। (४) उसके साथ बहुतसे भयानक मुँहवाले भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियाँ और राक्षस बारातमें चढ़े चले आए हैं। इस बारातको देखकर जिसके प्राण बचे रह जायँ उसे ही समझो बड़ा पुण्यात्मा है और वही पार्वतीका विवाह देख भी सकेगा।' सब लड़कोंने अपने-अपने घर आकर यही बात कही। (५) शंकरके समाजका भेद (सारा रहस्य) समझकर लड़कोंके माता-पिता मुसकराए पड़ रहे थे। उन्होंने अपने-अपने लड़कोंको बहुत प्रकारसे सान्त्वना दी—'घबराओ मत। डरनेकी कोई बात नहीं है'॥ ९५॥

१. जटिल नग्न। २. देखिहि बिबाह उमा सो...।

११२१ देवसेनां तदा दृष्ट्वा हिमवान् विस्मयं गतः। जगाम सम्मुखस्तत्र धन्योहमिति चिन्तयन्॥
११२२-२८ वृषभस्थं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं भूतिभूषितम्। कपर्दिनं चन्द्रमौलिं दशहस्तं कपालिनम्॥
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च पिनाकवरपाणिनम्। शाकिन्यो यातुधानाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च तथान्ये प्रमथादयः। स्तुवन्ति महेश्वरम्॥ —शिवपुराण

लै अगवान बरातहिं आए। दिए सबहिं जनवास सुहाए।
मैना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी। (१)
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चलीं हरहिं हरषानी।
विकट वेष रुद्रहिं जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा। (२)
भागि, भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेस जहाँ जनवासा।
मैना-हृदय भयउ दुख भारी। लीन्ही बोलि गिरीस-कुमारी। (३)
अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम सरोज-नयन भरे बारी।
११४० जेहिं विधि तुम्हहिं रूप अस दीन्हा। तेहिं जड़, वर बाउर कस कीन्हा। (४)
छंद—कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहिं तुम्हहिं सुंदरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम सहित गिरि-तें गिरौं, पावक जरौं, जलनिधि-महँ परौं।
घर जाउ, अपजस होउ जग, जीवत बिवाह न हौं करौं॥ [१०]

अगवान लोग आगे बढ़कर बारात नगरमें लिवा लाए और उन्होंने सबको सुविधाजनक जनवासों (ठहरनेका स्थानों)-में ले जा टिकाया। मैनाने मंगल आरती सजा मँगवाई। उनके साथकी सब स्त्रियाँ (मधुर स्वरसे) मंगल गीत गा उठीं। (१) अपने कोमल हाथोंमें शोभा देनेवाला सोनेका थाल लेकर प्रसन्नताके साथ वे शंकरका परिछन (परीक्षण) करने चल पड़ीं। पर ज्यों ही उन स्त्रियोंने शंकरके उस भयंकर वेषकी झाँकी पाई कि वे डरके मारे चिल्ला उठीं। (२) वे इतनी अधिक डर गईं कि भाग-भागकर अपने-अपने घरोंमें जा घुसीं और शिव भी चुपचाप जनवासेमें लौट आए। मेनाके हृदयमें इतना दुःख हुआ (कि कुछ पूछिए मत)। (३) उन्होंने पार्वतीको अपने पास बुलाकर बड़े स्नेहसे उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर नीले कमलके समान डबडबाए नेत्रोंसे बोलीं—'जिस विधाताने तुम्हें इतना सुन्दर रूप दिया उस मूर्खने तुम्हारे पतिको ऐसा बावला कैसे बना दिया ? (४) जिस विधाताने तुम्हें इतनी सुन्दरता दी, उसने तुम्हारे लिये ऐसा बावला वर कैसे गढ़ खड़ा किया ? जो फल (नन्दन-काननके) कल्पवृक्षमें लगना चाहिए था वह फल बलपूर्वक बबूल (कीकरके कँटीले पेड़)-में ला लगाया जा रहा है। अब मैं तुम्हें लेकर पहाड़से कूद पड़ूँगी, आग में जल मरूँगी या समुद्रमें डूब समाऊँगी पर जीते जी इस बावले वरके साथ तुम्हारा विवाह मैं कभी नहीं होने दूँगी। [१०]

११२९-३३ रचिते शिखरे रम्ये संस्थाप्य देवतादिकम्। जगाम हिमवांस्तत्र यत्रास्ति विधिवेदिका॥
११३४-३५ मेनापि स्त्रीगणैस्तैश्च हिमाचलवरप्रिया। तत उत्थाय स्वगृहाभ्यन्तरं सा जगाम ह॥
नीराजनार्थं शंभोश्च दीपपात्रकरा सती। सर्वर्षिस्त्रीगणैस्साकमगच्छद्द्वारमादरात्॥
११३६-३७ शूलयुक्तं विरूपाक्षं विकृताकारमाकुलम्। गजचर्मवसानं हि वीक्ष्य त्रेसे शिवाप्रसूः॥
११३८-३९ सा पपात द्रुतं भूमौ मेना दुःखभरा सती। संज्ञां लब्ध्वा ततस्सा च मेना शैलप्रिया सती॥
विललापातिसंक्षुब्धा तिरस्कारमथाकरोत्।
११४०-४४ गृहीत्वा तनुजां चैनां बद्ध्वा कंठे तु पार्वतीम्। अधः पातय निःशंके दास्ये तां न हराय हि॥
तथैनामथवा नाथ गत्वा वै सागरे सुताम्। निमज्जय दयां त्यक्त्वा ततोऽद्रीश सुखी भव॥-शिवपु०

दो०—भईं विकल अबला सकल, दुखित देखि गिरि-नारि।
करि बिलाप, रोदति, बदति, सुता - सनेह सँभारि ॥९६॥

नारद - कर मैं काह बिगारा। भवन मोर जिन बसत उजारा।
अस उपदेस उमहिं जिन दीन्हा। बौरे बरहिं लागि तप कीन्हा। (१)
साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन, धन - धाम न जाया।
११५० पर - घर - घालक, लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव - कै पीरा। (२)
जननिहिं विकल विलोकि भवानी। बोली जुत - विवेक मृदु बानी।
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरै जो रचै बिधाता। (३)
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोस लगाइय काहू।
तुम-सन मिटिहि कि बिधि-के अंका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका। (४)

हिमाचलकी पत्नी मेनाको दुखी देखकर और भी सब स्त्रियाँ बिलख उठीं। अपनी कन्याका स्नेह स्मरण कर-करके मेना बिलखती - रोती - कलपती हुई कहने लगीं—॥ ९६ ॥ 'मैंने नारदका क्या बिगाड़ा था कि उन्होंने मेरा बसा-बसाया घर उजाड़ डाला। उन्होंने पार्वतीको ऐसा उपदेश जा दिया कि वह भी उनके कहनेसे उस बावले वरके लिये तप करने चल पड़ी। (१) सचमुच उन्हें (नारद-को) किसीकी मोह-ममता नहीं है। वे सबसे उदासीन हैं (किसीके सुख-दुःखकी उन्हें चिन्ता नहीं है), उनके पास न धन है, न उनके घर है और न घरवाली है। इसीलिये दूसरेका घर उजाड़नेमें उन्हें न लाज लगती है, न डर लगता है। भला बच्चे होनेकी पीडाको बाँझ स्त्री क्या समझ पावेगी? (२)

अपनी माताको इतना व्याकुल होते देखकर पार्वती बहुत विवेकसे भरी मधुर वाणीसे बोलीं—'देखो माँ! विधाता जो (एक बार) रच देते (भाग्यमें लिख देते) हैं उसे कोई मिटा नहीं पा सकता। (३) यदि मेरे भाग्यमें बावला ही वर लिखा है तो इसके लिये किसी दूसरेको क्यों बुरा-भला कहा जाय? तुम्हीं बताओ माँ! क्या विधाताके लिखे हुए अंक तुम धो-मिटा सकती हो? (जब ऐसा नहीं कर सकती तो बिना बातके) तुम व्यर्थ क्यों अपने सिरपर कलंक ओढ़े ले रही हो और प्राण दे डालनेकी बात सोच रही हो)। देखो माँ! (बैठे-बिठाए यह) कलंक मत लो। (४)

११४५-४६ किं करोमि क्व गच्छामि हतं तु मम जीवितम्। कस्यापि किं गतं नैव ममापि च हतं गृहम्॥
११४७-५० संज्ञां लब्ध्वा पुनः सा च तिरस्कारमथाऽकरोत्। नारदस्याथ पुत्र्याश्च निनिन्द चरितं तथा॥
धिक्ते नारद बुद्धिश्च सप्तर्षींश्च सुबुद्धिमान्। साधितं किञ्च सर्वैस्तु मिलित्वा घातितं कुलम्॥
गृह्णन्तु घुक्षितं त्वेतन्मरणं तु ममैव हि। धिक् चोपदेशकर्त्तारं शिवार्थं तप ईदृशम्॥—शिवपु०
नहि वन्ध्या विजानीयात् गुर्वी प्रसववेदनाम्॥ —पंचतंत्र
११५१-५२ मूर्च्छितां जननीं दृष्ट्वा विह्वलां विभ्रमद्धियम्। उवाच वचनं रम्यं पार्वती स्वयमागता॥—शिवपु०
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः। —पंचतंत्र

छंद—जनि लेहु मातु कलंक, करुना परिहरहु, अवसर नहीं।
दुख - सुख जो लिखा लिलार हमरे[1], जाव जहँ, पाउब तहीं।।
सुनि उमा-बचन बिनीत कोमल, सकल अबला सोचहीं।
वहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन, नयन बारि बिमोचहीं।। [११]

दो०—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि - सप्त - समेत।
११६० समाचार सुनि तुहिन-गिरि, गवने तुरत निकेत।। ९७ ।।

तव नारद सबही समुझावा। पूरब - कथा - प्रसंग सुनावा।
मयना! सत्य सुनहु मम बानी। जगदंबा तव सुता भवानी। (१)
अजा, अनादि शक्ति, अविनासिनि। सदा संभु - अरधंग - निवासिनि।
जग - संभव - पालन - लय - कारिनि। निज इच्छा लीला-बपु-धारिनि। (२)
जनमी प्रथम दच्छ-गृह जाई। नाम सती सुंदर तनु पाई।
तहउँ सती संकरहिं बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग - माहीं। (३)
एक बार आवत सिव - संगा। देखेउ रघुकुल - कमल - पतंगा।

रोना-धोना छोड़ो। यह अवसर (रोने-पछतानेका) नहीं है। मेरे भाग्यमें जो दुख-सुख लिखा है वह तो मैं जहाँ भी जाऊँगी वहाँ मुझे भोगना ही पड़ेगा।' (५)

पार्वतीके ऐसे विनय-भरे कोमल वचन सुनकर सभी स्त्रियाँ बड़ी चिन्तित हो उठीं और विधाताको बहुत कोसती और बुरा-भला कहती (दोष देती) हुईं आँखोंसे झरझर आँसू बहा चलीं।

उस समय ज्योंही हिमवान्ने सुना तो वे भी नारद और सप्तर्षियोंको साथ लिए-दिए भीतर घरमें आ पहुँचे।। ९७ ।। (और वहाँ) नारदने (पार्वतीके) पूर्व जन्मकी सारी कथा सुनाकर सबको सान्त्वना दी (ढाढ़स बँधाया) और कहा—'देखो मेना ! मैं जो कहता हूँ वह सत्य मान लो। यह तुम्हारी पुत्री (कोई सामान्य कन्या नहीं, साक्षात्) जगज्जननी भवानी हैं। (१) ये अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति हैं। ये (आज ही नहीं) सदा शिवकी अर्द्धाङ्गिनी बनकर रहती हैं। ये ही संसारकी उत्पत्ति, उसका पालन और लय करती हैं। ये तो अपनी ही इच्छासे लीला-शरीर धारण करती हैं। (२) देखो ! पहले ये ही दक्षके घरमें उत्पन्न हुई थी जहाँ इनका नाम सती था और ये अत्यन्त सुन्दरी थीं। वहाँ भी सतीने शंकरसे ही विवाह किया था। (मैं ही नहीं कहता,) यह कथा तो सारा जगत् जानता है। (३) एक बार शिवके साथ चलते आते हुए इन्होंने रघुवंशके कमलको खिलानेवाले सूर्य रामको देख लिया। यह देखकर इनके मनमें

---

१. दुख-सुख लिलार लिखा जु हमरे।

११५३-५६ यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनम्।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेपि नितरां मेरौ न चातोधिकम्।।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथा:।
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम्।। —भर्तृहरिशतक

११५७-६० इत्येवं ऋषिवर्य्याश्च श्रुत्वा नारदो मुनिः। गता हैमालयं सर्वे गृहं सर्वसमृद्धिमत्।।

११६१-६६ नारदो दुःखितवांस्तांस्तु दृष्ट्वाह मुनिसत्तमः। प्राप्ये कल्पान्तरे जन्म जठरे दक्षयोषितः।।ब्रह्मवै०पु०

भयउ मोह, सिव कहा न कीन्हा। भ्रम - बस वेष सीय-कर लीन्हा। (४)

छंद—सिय - वेष सती जो कीन्ह[1] तेहि अपराध संकर परिहरी।

११७० हर - विरह जाइ बहोरि पितु-के जग्य जोगानल जरी॥

अब जनमि तुम्हरे भवन, निज पति-लागि दारुन तप किया।

अस जानि संसय तजहु, गिरिजा सर्वदा संकर - प्रिया॥ [१२]

दो०—सुनि नारद-के वचन तव, सब-कर मिटा विषाद।

छन-महँ व्यापेउ सकल पुर, घर - घर यह संवाद॥ ९८॥

तव मयना हिमवंत अनंदे। पुनि पुनि पारवती पद बंदे।

नारि - पुरुप सिसु - जुवा - सयाने। नगर - लोग सव अति हरपाने। (१)

लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहि हाटक घट नाना।

भाँति अनेक भई जेवनारा। सूप - सास्त्र जस कछु व्यवहारा। (२)

सो जेवनार कि जाइ वखानी। बसहिँ भवन जेहि मातु भवानी।

११८० सादर वोले सकल वराती। विष्नु, बिरंचि, देव सब जाती। (३)

बड़ा भ्रम उठ खड़ा हुआ। उस समय (शिवजीने उन्हें बहुत समझाया भी पर) उन्होंने शिवकी एक न मान कर दी और उसी झोंकमें सीताका वेष जा धारण किया। (४) सतीने जो सीताका वेष धारण किया, इसी अपराधपर शंकरने सतीका परित्याग कर दिया। तव वे शिवके विरहमें पिताके घर जाकर वहीं यज्ञमें योगाग्निसे भस्म हो गईं। अब उन्होंने ही आपके घरमें जन्म लेकर शिवको पतिके रूपमें पानेके लिये कठोर तप किया है। (५) ये सव वातें भली भाँति समझकर आप अपने मनका संदेह मिटा डालिए। पार्वती (कोई आजसे ही नहीं, वे) तो सदासे ही शंकरकी प्रिया (अर्द्धाङ्गिनी) रही हैं।' जब उन्होंने नारदसे सब वातें सुन लीं तब कहीं जाकर सबका विषाद (शोक, सन्देह) दूर हो पाया (सबको शान्ति मिली)। (फिर क्या था !) बातकी वातमें यह सारी कथा नगरमें घर-घर गूँज गई ॥ ९८॥ नारदके मुँहसे यह कथा सुनकर मेना और हिमवान् इतने आनन्दित हुए कि वे बार-बार पार्वतीके चरणोंकी वन्दना करने लगे। नगरके जिस स्त्री-पुरुप, वालक, युवा और वृद्धने सुना वही सुनकर मगन हो उठा। (१) नगर-भरमें जिधर देखो उधर मंगल-गान छिड़ चले, सवने भाँति-भाँतिके सोनेके कलश घरके वाहर ला सजाए। पाकशास्त्रमें व्यंजन बनानेके जितने ढंग बताए गए हैं उन्हींके अनुसार अनेक व्यंजन बना-पकाकर ज्योनारकी व्यवस्था कर दी गई। भला जिस घरमें साक्षात् माता भवानी आ जनमी हों वहाँके ज्योनारके क्या कहने ! हिमवान्ने बड़े आदरसे विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्य सभी देवताओं और वरातियोंको बुलवा बैठाया। (३) अनेक

१. सिय-वेष कीन्ह जु सती।

११६७-७२ नाम्ना सती शिवं प्राप दक्षस्तस्मै ददौ च ताम्। योगेन देहं तत्याज श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम्॥

पितृणां मानसी कन्या मेनका तव गेहिनी। लेभे हि तस्या जठरे जन्म सा जगदम्बिका॥

शिवा शिवस्य पत्नीयं शैल जन्मनि जन्मनि॥

११७३-७६ मेना मुदान्विता जाता भूधरोऽपि जहर्प च। प्रशशंस स्वभाग्यं सा गिरिजां भूधरं कुलम्।

मेने कृतार्थमात्मानं हिमवांश्च पुनः पुनः। पार्वती चरणौ वन्दे॥ —शिवपुराण

बिबिध पाँति बैठी जेवनारा। लगे परोसन निपुन सुआरा।
नारिबृन्द सुर जेंवत जानी। लगीं देन गारी मृदु बानी। (४)
छंद—गारीं मधुर सुर देहिं सुंदरि, बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजन करहिं सुर अति बिलंब, बिनोद सुनि, सचु पावहीं।
जेंवत जो बढ़्यौ अनंद[1] सो मुख कोटिहू न परै कह्यौ।
अँचवाइ दीन्हे पान, गवने बास जहँ जाको रह्यौ॥ [१३]
दो०—बहुरि मुनिन हिमवंत-कहँ, लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिवाह-कर, पठए देव बोलाइ॥ ९९॥
बोलि सकल सुर सादर लीन्हें। सबहिं जथोचित आसन दीन्हें।
११९० बेदी बेद - बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी। (१)
सिंघासन अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि, बिरंचि बनावा।

प्रकारसे पंगतें लग गईं। चतुर रसोइए ज्योनारके सब पदार्थ ला-लाकर परोसने लगे। ज्योंही देवता लोग जीमने बैठे त्योंही स्त्रियोंने मधुर वाणीमें गाली गाना प्रारंभ कर दिया। (४) सुन्दर स्त्रियाँ बड़े मधुर स्वरोंमें गाली और व्यंग्य गाए चली जा रही थीं और देवता भी उनकी विनोद - भरी गालियाँ सुन-सुनकर इतने मगन हुए जा रहे थे कि वे (और भी धीरे-धीरे) जीमने लगे और बड़ी देरतक (गालियोंका रस लेनेके लिये) जमे बैठे रहे। इस प्रकार जीमते समय जो आनन्द बरसा वह करोड़ों मुखोंसे भी वर्णन किया जाने लगे तो भी नहीं पूरा नहीं हो पा सकता। फिर (जीम लेनेपर) उनके हाथ-मुँह धुलवा लेनेपर उनके आगे पानके थाल ला बढ़ाए गए। पान जमा-जमाकर सब देवता जहाँ-जहाँ ठहरे थे वहाँ-वहाँ लौट गए। (५)

(ज्योनार हो चुकनेपर) मुनियोंने आकर हिमवान्‌को लग्नपत्रिका बाँच सुनाई और विवाहका समय जानकर उन्होंने देवताओंको बुलवा भेजा॥ ९९॥ देवताओंको आदरपूर्वक बुलवा-बुलवाकर सबको यथायोग्य आसन दे दिए गए, वेदके विधानके अनुसार वेदी सजा दी गई और स्त्रियाँ मनोहर मंगल गीत गाने लगीं। (१) (वेदीके निकट) ऐसा सजीला सिंहासन ला रक्खा गया जिसकी शोभाका वर्णन किए नहीं बन पा रहा है, क्योंकि वह ब्रह्माने स्वयं अपने हाथसे गढ़

१. जेंवत अनंद बढ्यो जु।

११७७-८२ तदोत्सवो महानासीदुभयत्र मुदावहः। गीतवाद्यविनोदश्च तत्रोत्सवपुरस्सरम्॥
अथ शैलस्सुरान् सर्वानन्यानपि च सेश्वरान्। भोजनायाह्वयामास पुत्रैः शैलैः परैरपि॥
तदा सर्वे हि मिलिता ऐकपद्येन सर्वशः। पंक्तिभूताश्च बुभुजुर्विहसन्तः पृथक् पृथक्॥
११८३-८६ तदानीं पुरनार्य्यश्च गालीदानं व्यधुर्मुदा। मृदुवाण्या हसन्त्यश्च पश्यन्त्यो यत्नतश्च तान्॥
ते भुक्त्वाऽचम्य विधिवद् गिरिमामंत्र्य नारदे। स्वस्थानं प्रययुः सर्वे मुदितास्तृप्तिमागताः॥
११८७-८८ एतस्मिन्नन्तरे तत्र ज्योतिःशास्त्रविशारदः। हिमवन्तं गिरीन्द्रं तं गर्गो वाक्यमभाषत॥
पाणिग्रहणकालो हि नूनं सद्यः समागतः। अथ तं समयं ज्ञात्वा कन्यादानोचितं गिरिः॥
प्रेषयामास शैलेन्द्रान् देवानयनकाम्यया।
११८९ प्राङ्गणे स्थापयामास रत्नसिंहासनेषु तान्। सर्वान् विष्णुं च मामीशं विशिष्टांश्च विशेषतः॥शिवपु०

बैठे सिव बिप्रन सिर नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई। (२)
बहुरि मुनीसन उमा बोलाई। करि सिंगार सखी लै आई।
देखत रूप सकल सुर मोहें। बरनैं छवि, अस जग कवि को हैं। (३)
जगदंबिका जानि भव - भामा। सुरन मनहि मन कीन्ह प्रनामा।
सुंदरता - मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी। (४)

छंद—कोटिहु बदन नहिं बनै बरनत जग-जननि - सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति - सेष - सारद, मंदमति तुलसी कहा।
छवि-खानि मातु भवानि गवनी मध्य - मंडप सिव जहाँ।
१२०० अवलोकि सकहि न सकुच, पति-पद-कमल मन मधुकर तहाँ॥ [१४]

दो०—मुनि-अनुसासन गनपतिहिं, पूजेउ संभु - भवानि।
कोउ सुनि संसय करइ जनि, सुर अनादि जिय जानि॥१००॥

बनाया था। वहाँ एकत्रित ब्राह्मणोंको सिर नवाकर और अपने प्रभु रामका हृदयमें ध्यान करके उस सिंहासनपर शिव आ बैठे। (२) (उनके बैठ चुकनेपर) मुनियोंने पार्वतीको भी बुलवा भेजा। (पार्वतीकी) सखियाँ उनका सुन्दर शृङ्गार करके उन्हें अपने साथ लिवा ले आईं। उनका (पार्वतीका) स्वरूप जिस देवताने देखा वही सराहना कर उठा। भला संसारमें ऐसे कौन (माईके लाल) कवि जनमे हैं जो उनकी शोभाका वर्णन कर पा सकें। (३) पार्वतीको जगत्‌की माता और शंकरकी पत्नी जानकर सब देवताओंने उन्हें मन ही मन प्रणाम कर लिया। (उस समय पार्वती इतनी सुन्दर जँच रही थीं कि) उनकी सुन्दरता और मर्यादा (शील)-का वर्णन करोड़ों मुखोंसे भी करना संभव नहीं है। (४) (सचमुच) जगत्‌की माता पार्वतीकी उस अपार शोभाका वर्णन करोड़ों मुखोंसे भी किए नहीं बनता। जब वेद, शेष और सरस्वती भी वर्णन करनेमें झिझकी पड़ रही हैं, तब भला इस मन्द बुद्धिवाले तुलसीदासकी तो गिनती क्या है? (५) वह परम सुन्दरी भवानी पार्वती मण्डपके ठीक बीचमें वहाँ आ पहुँचीं जहाँ शिव बैठे हुए थे। वे संकोचके मारे (सिर उठाकर तो शिवको) नहीं देख पा रही थीं इसलिये उनका मनरूपी भौंरा अपने पतिके चरण-कमलोंपर ही जा मँडराने लगा (वे टकटकी लगाए शिवके चरण ही देखने लगीं)। (६) मुनियोंकी आज्ञासे शिव-पार्वतीने पहले गणेशका पूजन किया। इस बातको सुनकर किसीके मनमें सन्देह नहीं उठना चाहिए (कि जब विवाह हुआ ही नहीं, तब पुत्र गणेश कहाँसे आ पधारे

११९०-९२ संपूजितस्तदा शम्भुः प्रविष्टो यज्ञमण्डपम्। संस्तूयमानो बह्वीभिः स्तुतिभिः परमेश्वरः॥ तत्र नीतो महादेवस्तस्थौ सिंहासने मुदा॥

११९३-९६ तत्र तां ददृशुर्देवा निमेषरहिता मुदा। सुनीलाञ्जनवर्णाभां स्वाङ्गैश्च प्रतिभूषिताम्॥ प्रणेमुः शिरसा देवीं भक्तियुक्ताः समेनकाम्। सर्वे सुरादयो दृष्ट्वा जगदाद्यां जगत्प्रसूम्॥

११९७ हैमं कलशमादाय मेना चार्द्धङ्गमाश्रिता। हिमाद्रेश्च महाभागा वस्त्राभरणभूषिता॥—शिवपु०

जस विवाह - कै विधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई।
गहि गिरीस कुस - कन्या - पानी। भवहिं समरपीं जानि भवानी। (१)
पानि-ग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरषे तब सकल सुरेसा।
वेद-मंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय संकर, सुर करहीं। (२)
बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। सुमन-बृष्टि नभ भइ बिधि नाना।
हर - गिरिजा - कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू। (३)
दासी, दास, तुरग, रथ, नागा। धेनु, बसन, मनि, बस्तु-बिभागा।
१२१० अन्न - कनक - भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना। (४)
छंद—दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिम-भूधर कह्यौ।
का देउँ पूरन - काम संकर ! चरन - पंकज गहि रह्यौ।
सिव कृपा-सागर ससुर - कर संतोष सब भाँतिहि कियो।
पुनि गहे पद - पाथोज मयना प्रेम - परिपूरन हियो ॥ [१५]

क्योंकि) गणेश तो अनादि देव हैं ॥ १०० ॥ हाँ, तो वेदोंमें विवाहकी जो-जो विधि बतलाई गई हैं, उसी-उसीके अनुसार मुनियोंने सारा विवाह-कर्म पूर्ण करा डाला। तब गिरिराजने हाथमें कुशा और कन्याका हाथ लेकर उन्हें भवानी (शिवकी शाश्वत पत्नी) जानकर शिवको समर्पित कर दिया। (१)

शंकरने जब पाणि-ग्रहण कर लिया तब तो सभी देवता हृदयमें बड़े प्रसन्न हो उठे (क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि इनका पुत्र अब अवश्य तारकासुरका संहार कर डालेगा।) तत्काल मुनियोंने वेदमंत्र पढ़ना प्रारंभ कर दिया और सभी देवता शंकरकी जय-जयकार कर उठे। (२) अनेक प्रकारके बाजे बज उठे। आकाशसे उनपर अनेक प्रकारके फूल बरसने लगे। (इस प्रकार धूमधामसे) शंकर और पार्वतीका विवाह सम्पन्न हो गया। (शंकर और पार्वतीके विवाहके समाचारसे) सारे ब्रह्माण्डमें जिधर देखो उधर आनन्द ही आनन्द छा गया। (३) हिमवान्ने दासी, दास, घोड़े, रथ, हाथी, गौएँ, वस्त्र, मणि अनेक प्रकारकी वस्तुएँ, अन्न, कनक (गेहूँ, सोना) आदि इतनी सामग्री गाड़ियोंमें भर-भरकर दहेजके रूपमें शंकरको दीं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। (४) अनेक प्रकारका यौतुक (दहेज) देकर हिमवान्ने हाथ जोड़कर शंकरसे कहा—'हे पूर्णकाम शंकर ! मैं भला

१२०४ हिमवान् मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे। स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः॥
१२०५-८ वेदमंत्रेण गिरिशो गिरजाकरपंकजं। जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः॥
महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः। बभूव जय संरावो दिवि भूम्यन्तरिक्षके॥
साधुशब्दं नमः शब्दं चक्रुः सर्वेतिहर्षिताः। गंधर्वाः सुजगुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥
१२०९-१४ हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वती शिवप्रीतये। नानाविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर॥
यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च। चारुरत्नविकाराणि पात्राणि विविधानि च॥
गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा। दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्द्रव्यभूषितम्॥
नगानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने। सुवर्णजटितानां च रत्नसारविनिर्मिताम्॥
इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम्। शिवाय परमेशाय विधिनाऽयं कृतार्थताम्॥
अथ शैलवरो माध्यं दिनोक्तस्तोत्रतो मुदा। तुष्टाव परमेशानं सद्गिरा सुकृतांजलिः॥शिवपु०

१२१५ दो०—नाथ उमा मम प्रान-सम , गृह - किंकरी करेहु ।
छमेहु सकल अपराध अव , होइ प्रसन्न वर देहु ॥ १०१ ॥

वहु विधि संभु सासु समुझाई । गवनी भवन चरन सिर नाई ।
जननी उमा वोलि तव लीन्हीँ । लै उछंग सुंदर सिख दीन्हीँ । (१)
करेहु सदा संकर - पद - पूजा । नारि-धरम पतिदेउ, न दूजा ।
१२२० वचन कहत भरे लोचन वारी । वहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी । (२)
कत विधि सृजीँ नारि जग माहीँ । पराधीन सपनेहु सुख नाहीँ ।
भइ अति प्रेम - विकल महतारी । धीरज कीन्ह कुसमय[1] विचारी । (३)
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना । परम प्रेम कछु जाइ न वरना ।
सव नारिन्ह मिलि भेँटि भवानी । जाइ जननि - उर पुनि लपटानी । (४)

आपको क्या दे सकता हूँ ?, (यह कहकर हिमवान्ने) शिवके चरण-कमलोँमेँ सिर जा नवाया । कृपाके सागर शिवने भी अपने श्वशुर (हिमवान्)-को वहुत (समझा-वुझाकर) सन्तुष्ट किया । तव मेना भी प्रेम-पूर्ण हृदयसे शिवके चरण-कमल छूकर कहने लगीँ—(१५) 'नाथ ! यह पार्वती मेरे प्राणोँके समान (प्यारी) है । अव इसे आप अपने घरकी दासी ले जा वना रखिए । (यह कभी कोई अपराध भी कर वैठे) तो इसके सारे अपराध आप क्षमा करते रहिएगा । आप प्रसन्न होकर वस मुझे इतना ही आश्वासन दे दीजिए' ॥ १०१ ॥

शंकरने जव अपनी सास (मेना)-को भली प्रकार आश्वासन दे दिया तव वे शिवके चरणोँमेँ सिर नवाकर भीतर चली गईँ । वहाँ भीतर माता (मेना)-ने पार्वतीको वुलाकर और उन्हेँ अपनी गोदमेँ वैठाकर इस प्रकार वहुत-सी शिक्षा दी—(१) 'देखो वेटी ! तुम सदा शंकरके चरणोँकी पूजा किया करना । देखो ! स्त्रीको अपना यह धर्म समझ लेना चाहिए कि स्त्रियोँके लिये पतिको छोड़कर और कोई दूसरा (पूज्य) नहीँ है ।' वे ये वातेँ कह ही रही थीँ कि उनकी आँखोँमेँ आँसू छलछला आए और उन्होँने पुत्री (पार्वती)-को फिर खीँचकर छातीसे चिपटा लिया । (२) वे (रो-रोकर) कहने लगीँ—'विधाताने संसारमेँ स्त्रियोँको रचा ही क्योँ ? क्योँकि पराधीनको तो सपनेमेँ भी ढूँढ़े सुख नहीँ मिल पाता ।' यह कहती हुई माता (मेना) वहुत अधीर हो उठीँ । किन्तु कुसमय (पुत्रीसे विछुड़ना अनिवार्य) जानकर वे सँभल गईँ । (३) वे वार-वार पार्वतीको गले लगाए जाती थीँ और उनके चरण पकड़-पकड़कर गिरी-गिरी पड़ती थीँ । उनके हृदयमेँ इतना प्रेम उमड़ा पड़ रहा था कि उसका कुछ वर्णन नहीँ किया जा सकता । (वहाँसे उठकर) भवानीने जाकर पहले अन्य सव स्त्रियोँसे भेँट की और फिर दौड़ी अपनी माताकी छातीसे आ लिपटीँ । (४)

१. कुसमय धीरज कीन्ह ।

१२१५-१६ कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्दत्तां पालयिष्यसि । सहस्रदोषं भगवानाशुतोषः क्षमिष्यसि ॥
१२१७ संतोषं विविधैर्वाक्यैः श्वश्र्वाः शंभुश्चकार वै । प्रणम्य शिरसा मेना पादयोर्भवनं गता ॥ ब्रह्मवै०
१२१८-१९ पतिरेको गुरुस्त्रीणाम् । —पंचतंत्र
सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात्सर्वदा शंकरः प्रभुः । दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यः सतां गतिः ॥—शिवपु०
१२२०-२१ पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्रस्तु स्थविरेभावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥—मनु०

छंद—जननिहि बहुरि मिलि चलीं उचित असीस सब काहू दईं।
फिरि फिरि बिलोकति मातु-तन तब सखी लै सिव-पहँ गईं।
जाचक सकल संतोषि संकर, उमा-सहित भवन चले[1]।
सब अमर हरषे सुमन बरषि, निसान नभ बाजे भले ॥ [१६]

दो०—चले संग हिमवंत तब, पहुँचावन अति हेतु।
१२३० बिबिध भाँति परितोष करि, बिदा कीन्ह बृषकेतु ॥ १०२ ॥

तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल-सर लिए बोलाई।
आदर, दान, बिनय, बहु माना। सब-कर बिदा कीन्ह हिमवाना। (१)
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज-निज लोक सिधाए।
जगत-मातु-पितु संभु-भवानी। तेहि सिंगार न कहौं बखानी। (२)
करहिं बिबिध बिधि भोग-बिलासा। गनन-समेत बसहिं कैलासा।

जब पार्वती अपनी मातासे मिलकर विदा होने लगीं तब सबने उन्हें वे-वे आशीर्वाद दिए जो-जो देने चाहिएँ थे । वे (पार्वती) बार-बार उलट-उलटकर माताकी ओर देखे चली जा रही थीं। तब उनकी सखियाँ (किसी-किसी प्रकार) उन्हें लिवाकर शिवके पास-तक पहुँचा आईं। (५) वहाँ जितने मँगते आ इकट्ठे हुए थे उन सबको मुँहमाँगा पुरस्कार दिया गया और पार्वतीको साथ लेकर शिव अपने घर (कैलास) लौट चले । (यह देखकर) देवताओंने प्रसन्न हो-होकर उनपर फूलोंकी झड़ी लगा दी और आकाशमें नगाड़े बज उठे । हिमवान् भी बड़े प्रेमसे शिवको (नगरके बाहरतक) पहुँचा आनेके लिये साथ हो चले । (नगरके बाहर पहुँचकर) वृषकेतु शंकर उन्हें किसी-किसी प्रकार बहुत समझा-बुझाकर और सान्त्वना देकर वहाँसे लौटा पाए ॥ १०२ ॥ पर्वतेश्वर हिमवान्ने तुरन्त घर लौटकर अपने यहाँ आए हुए सभी पर्वतों और सरोवरों (के अधीश्वरों)-को बुला-बुलाकर उन्हें दान देकर और सहयोगके लिये धन्यवाद देकर सम्मानके साथ सबको बिदा किया । (१)

जब शिव कैलास पर्वतपर पहुँच गए तब सब देवता भी (उनसे विदा लेकर) अपने-अपने लोक लौट गए। (तुलसीदास कहते हैं कि) पार्वती और शंकर तो जगत्के माता-पिता हैं, इसलिये उनके शृङ्गार (विलास) का वर्णन मैं नहीं कर सकता (कैसे कर सकता हूँ ?) । (२) शिव और पार्वती अनेक प्रकारसे भोग-विलास करते हुए अपने गणोंके साथ कैलासपर निवास करने लगे । शंकर और पार्वती नित्य नये-नये ढंगसे विहार करते थे। इस प्रकार (विहार करते हुए जब)

१. उमा सह भवनहिं चले ।

१२२२-२८ धृतिं धृत्वाहूय कालीं विश्लेषविरहाकुला । अत्युच्चै रोदनं चक्रे संश्लिष्य च पुनः पुनः ॥
पार्वत्यपि रुरोदोच्चैरुच्चरन्ती कृपावचः । सर्वाश्च रुरुदु र्नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥शिवपु०

१२२९-३० अन्वगच्छन्त ते तत्र गिरिराजादयस्तदा । गंधमादनपर्यन्तं गत्वानुज्ञामवाप्य च ॥
सोत्सुकाश्च पराजग्मुः स्वस्थानं ते गिरीश्वराः ॥—ब्रह्मवै०

१२३१-३२ मेनया सह धर्मात्मा यथास्थानगतस्ततः । सर्वान् विसर्जयामास पर्वतान् पर्वतेश्वरः ॥—स्कन्दपु०

१२३३ अच्युताद्याश्च ये देवा ऋषयो निर्मलाशयाः । मुहूर्त्तार्द्धेन मुदिताः संप्रापुः शंकरालयम् ॥स्कन्दपु०

हर - गिरिजा-बिहार[1] नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ। (३)
तब जनमेउ षट - बदन - कुमारा। तारक असुर, समर जेहि मारा।
आगम, निगम, प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख-जनम सकल जग जाना। (४)
छंद—जग जान षन्मुख - जनम, करम, प्रताप, पुरुषारथ महा।
१२४० तेहि हेतु मैं बृषकेतु - सुत - कर चरित संछेपहि कहा।
यह उमा - संभु - बिवाह जे नर-नारि कहहिं, जे गावहीं।
कल्यान - काज, बिवाह मंगल, सर्वदा सुख पावहीं॥ [१७]
दो०—चरित-सिंधु गिरिजा-रमन , बेद न पावहिं पार।
बरनै तुलसीदास किमि , अति मति - मंद गँवार॥ १०३॥
संभु - चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुख पावा।
बहु लालसा कथा - पर बाढ़ी। नयन नीर, रोमावलि ठाढ़ी। (१)
प्रेमबिबस - मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ज्ञानी।

बहुत दिन निकल गए (३) तब वहाँ छह मुँहवाले उनके पुत्र स्वामिकार्तिकेयका जन्म हुआ जिन्होंने लड़ाईमें तारकासुरको मार गिराया। स्वामिकार्तिकेयकी कथा वेद, शास्त्र और पुराणोंमें इतनी प्रसिद्ध है कि सारा संसार उसे भली भाँति जानता है (उसे सुनानेकी आवश्यकता नहीं है)। (४) षडानन (छह मुँहवाले स्वामिकार्तिकेय)-के जन्म, कर्म, प्रताप और पुरुषार्थको सारा संसार जानता है इसलिये मैंने शंकरके पुत्र षडाननकी कथा बहुत संक्षेपमें कह सुनाई है। शिव और पार्वतीके विवाहकी यह कथा जो स्त्री-पुरुष सुनावेंगे और वर्णन करेंगे उन्हें विवाह आदि सभी शुभ और मंगल कार्योंमें सदा सुख ही सुख मिलेगा। गिरिजाके पति शंकरका चरित तो समुद्रके समान इतना अपार है कि वेद भी उसका पार नहीं पा सकते। फिर भला मंदबुद्धि गँवार तुलसीदास कैसे उसका पार पा सकता है ? (उसे कैसे समझ सकता और उसका कैसे वर्णन कर पा सकता है ?) ॥१०३॥

शिवका यह रसीला और सुहावना चरित्र सुनकर भरद्वाज मुनि इतने अधिक प्रसन्न हुए कि कथा सुननेकी उनकी लालसा और भी अधिक बढ़ चली। उनके नेत्रोंसे (स्नेहके) आँसू उमड़ चले और शरीर रोमांचित हो उठा। वे प्रेममें इतने बेसुध हो चले कि बोलना चाहनेपर भी मुँहसे वचन नहीं निकल पा रहे थे। ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्यने उनकी (भरद्वाजकी) यह दशा देखी तो प्रसन्न हो उठे (और बोले)—'हे मुनीश ! आपका जन्म सचमुच धन्य है कि आप शंकरको अपने प्राणोंके

१. गिरिजा-हर-बिहार।

१२३४-३६ शिवोऽपि स्वगिरौ तस्थौ पार्वत्या विहरन्मुदा। सर्वे गणाः सुखं प्रापुरतीव स्वभुजञ्छिवौ॥
१२३७-४२ गते बहुतिथे काले बालोऽजनि षडाननः। महाबलीयः समरे हतवान् तारकासुरम्॥
इत्येवं कथितस्तात शिवोद्वाहस्सुमंगलः। शोकघ्नो हर्षजनकः आयुष्यधनवर्धनः॥
य इमं शृणुयान्नित्यं शुचिस्तद्गतमानसः। श्रावयेद्वाथ नियमाच्छिवलोकमवाप्नुयात्॥
१२४३-४४ पारं गच्छन्ति वेदा गौरीशचरितोदधेः। किं पुनर्वर्णने शक्ता मादृशाः क्षुद्रजन्तवः॥शिवपु०
१२४५-४७ ईशानचरितं श्रुत्वा भरद्वाजोतिहर्षितः। तत्प्रेम शंकरे वीक्ष्य याज्ञवल्क्य उवाच तम्॥मत्स्यपु०

अहो धन्य तव जनम मुनीसा। तुम्हहिं प्रान - सम प्रिय गौरीसा। (२)
सिव-पद-कमल जिन्हहिं रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहुँ न सुहाहीं।
१२५० बिनु छल बिस्वनाथ - पद - नेहू। राम-भगत - कर लच्छन एहू। (३)
सिव-सम को रघुपति - व्रत - धारी। बिनु अघ तजी सती - असि नारी।
पन करि रघुपति - भगति दिखाई। को सिव-सम रामहिं प्रिय भाई। (४)

दो०—प्रथमहिं मैं कहि सिव-चरित, बूझा मरम तुम्हार।
सुचि सेवक तुम राम-के, रहित समस्त बिकार ॥ १०४ ॥

मैं जाना तुम्हार गुन - सीला। कहौं, सुनहु अब रघुपति-लीला।
सुनु मुनि, आज समागम तोरे। कहि न जाइ जस सुख मन मोरे। (१)
राम - चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत-कोटि अहीसा।
तदपि जथाश्रुत कहौं बखानी। सुमिरि गिरा-पति, प्रभु धनु-पानी। (२)
सारद दारु - नारि - सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी।
१२६० जेहि - पर कृपा करहिं जन जानी। कबि-उर - अजिर नचावहिं बानी। (३)

समान प्रिय माने हुए हैं। (२) (सचमुच) जिन्हें शिवके चरण-कमलोंमें प्रीति नहीं है, उन्हें राम कभी स्वप्नमें भी अच्छा नहीं समझते। रामके भक्तका तो यही (सबसे बड़ा) लक्षण है कि विश्वनाथ (शिव)-के चरणोंमें उसका निष्कपट प्रेम हो। (३) रामकी भक्तिके व्रतका पालन करनेवाला शिवके समान दूसरा है कौन जो किसी प्रकारका भी अपराध न करनेवाली सती-जैसी (पवित्र) पत्नीको भी त्याग बैठे और प्रतिज्ञा करके रामके प्रति अपनी भक्ति सच्ची कर दिखावे। इसीलिये भाई ! रामको भी शिवके समान कोई प्यारा नहीं है। (जिस प्रकार राममें शिवकी प्रगाढ भक्ति है, वैसे ही शिवमें रामकी भी प्रगाढ भक्ति है)। (४)

(भरद्वाज मुनिसे याज्ञवल्क्य कहते हैं कि) मैंने आपको रामके चरित्रसे पहले शिवका चरित्र सुनाकर आपको भली भाँति परख लिया कि आप सारे दोषोंसे रहित रामके बड़े पवित्र सेवक हैं ॥ १०४ ॥ मैंने आपका गुण और शील-स्वभाव सब (भली प्रकार) परख लिया है। (इसलिये) अब मैं रामकी जो लीला सुना रहा हूँ, वह ध्यानसे सुनते जाइए। देखिए मुनि ! आज आपसे मिलकर मेरे मनमें जो अपार आनन्द हो रहा है, वह मैं कह नहीं पा सक रहा हूँ। (१) हे मुनीश ! रामका चरित्र इतना अपार है कि सौ करोड़ शेष भी चाहें तो उसका वर्णन नहीं कर पा सकते। फिर भी मैंने जैसा सुना है वैसा ही, वाणीपर शासन करनेवाले प्रभु (रामका) स्मरण करके, आपको सुनाए दे रहा हूँ। (२) सरस्वती तो (रामके हाथकी) कठपुतली मात्र है जिसे अन्तर्यामी स्वामी राम ही सूत्रधार (कठपुतली नचानेवाले) बनकर जैसा चाहें वैसा नाच नचा सकते हैं। जिस

१२४८-४९ अहोति धन्यं भवतो जनुर्मुने यस्य प्रियः प्राणसमो महेश्वरः।
करोति नो यः शिवपादपद्मयोः प्रीतिं हि रामस्य च नास्ति स प्रियः ॥ —मत्स्यपुराण

१२५० ईशांघ्रौ निश्छलः स्नेहो रामभक्तस्य लक्षणम्। —सनत्कुमारसंहिता

१२५७-५८ अमितं रामचरितमशक्यं वक्तुमीश्वरे। ध्यात्वा तथापि लक्ष्मीशं वदिष्यामि यथाश्रुतम्॥पु०सं०

१२५९-६० यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया। एवमीशेच्छया ब्राह्मी कवीन्द्रहृदयांगणे ॥—पद्मपु०

प्रनवौं सोइ कृपालु रघुनाथा। बरनौं बिसद तासु गुन-गाथा।
परम रम्य गिरिवर कैलासू। सदा जहाँ सिव-उमा-निवासू। (४)
दो०—सिद्ध तपोधन जोगि-जन, सुर किन्नर मुनिबृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकंद॥ १०५॥
हरि-हर-बिमुख धरम-रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं।
तेहि गिरि-पर बट-बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला। (१)
त्रिबिध समीर सुसीतल छाया। सिव-बिश्राम-बिटप श्रुति गाया।
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुख भयऊ। (२)
निज कर डासि नाग-रिपु-छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला।
१२७० कुंद-इंदु-दर-गौर सरीरा। भुज प्रलंब, परिधन मुनि-चीरा। (३)
तरुन-अरुन-अंबुज-सम चरना। नख-दुति भगत-हृदय-तम-हरना।

कविको वे अपना भक्त जानकर उसपर कृपा कर बैठते हैं उसीके हृदयके आँगनमें वे सरस्वतीको ला नचाते हैं। (३) उसी कृपालु रामको प्रणाम करके मैं उनके ही निर्मल गुणोंकी कथा अब आपसे कहने चला हूँ।

सब पर्वतोंमें कैलास ही परम श्रेष्ठ और अत्यन्त रमणीय पर्वत है क्योंकि वहाँ शंकर और पार्वती सदा निवास करते रहते हैं। (४) वहाँपर बहुतसे सिद्ध, तपस्वी, योगी, देवता, किन्नर और मुनि भी आ-आकर निवास करते रहते हैं और वहाँ रहकर वे सब पुण्यात्मा लोग सदा आनन्द-कन्द शिवकी सेवामें लगे रहते हैं॥ १०५॥ (देखिए!) जो मनुष्य विष्णु और शंकरमें भक्ति नहीं करते और धर्ममें जिनकी रुचि नहीं होती वे वहाँ स्वप्नमें भी नहीं पहुँच पा सकते। उसी (कैलास) पर्वतपर एक बहुत बड़ा वट (बरगद)-का वृक्ष है, जो नित्य नया और सदा हराभरा बना रहता है। (१) वहाँ सदा तीनों प्रकारका (शीतल, मंद, सुगंध) पवन बहता रहता है। उस बरगदकी छाया भी बहुत ही ठंडी है। उसीके तले बैठे शिव सदा विश्राम किया करते हैं। वेदोंमें भी उसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। एक दिन शिव जब उस वृक्षके नीचे पहुँचे तो (न जाने क्यों उस दिन) उसे देखकर उन्हें बड़ा आनन्द मिला। (२) (उन्हें वहाँ इतना अच्छा लगा कि) अपने हाथसे अपना बाघंबर बिछाकर कृपालु शंकर वहीं आसन लगाकर साधारण रीतिसे बैठ गए। उनका शरीर कुंद (-के फूल), चन्द्रमा और शंखके समान उजला था, उनकी भुजाएँ लम्बी थीं और वे मुनियोंके-से वस्त्र (वल्कल) लपेटे हुए थे। (३) उनके चरण नये लाल कमलके समान लाल थे। उनके नखोंकी चमकसे भक्तोंके हृदयका सारा अन्धकार दूर होता चलता था। (उनके तनपर लिपटे

१२६१ तमेवाहं रमानाथं प्रणमामि दयानिधिम्। यस्यामलां गुणकथां कथयामि तवाग्रतः॥—मत्स्यपु०
१२६२-६४ जन्मौषधि-तपोमंत्र-योगसिद्धैर्नरेतरैः। जुष्टः किन्नर-गंधर्वैरप्सरोभिर्वृतः सदा॥
कैलासपर्वतो रम्यः शिवया सह शंकरः। यत्र नित्यं निवसति कृपालुर्लोकवन्दितः॥
१२६५ विष्णवीशाभ्यां हि विमुखा धर्महीना नराधमाः। स्वप्नेऽपि तत्र नो यान्ति भरद्वाज महामुने॥मत्स्यपु.
१२६६-६७ तस्मिन्नद्रौ नित्यनूत्नो विशालो यो वटद्रुमः। स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायुतः॥
पर्यंक्कृताऽचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः॥—भागवत

भुजग - भूति - भूषन त्रिपुरारी । आनन सरद-चंद-छबि - हारी । (४)
दो०—जटा-मुकुट सुर-सरित-सिर , लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्य - निधि , सोह बाल - बिधु भाल ॥ १०६ ॥
बैठे सोह काम - रिपु कैसे । धरे सरीर सांत रस जैसे ।
पारवती भल अवसर जानी । गईं संभु - पहँ मातु भवानी । (१)
जानि प्रिया आदर अति कीन्हा । बाम भाग आसन हर दीन्हा ।
बैठीं सिव - समीप हरषाई । पूरब - जनम - कथा चित आई । (२)
पति - हिय हेत अधिक अनुमानी । बिहँसि उमा बोलीं प्रिय बानी ।
१२८० कथा जो सकल - लोक - हितकारी । सोइ पूछन चह सैल-कुमारी । (३)
बिस्वनाथ ! मम नाथ ! पुरारी । त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ।
चर, अरु अचर, नाग, नर, देवा । सकल करहिं पद - पङ्कज - सेवा । (४)
दो०—प्रभु समरथ सर्बज्ञ सिव , सकल-कला-गुन - धाम ।
जोग - ज्ञान - बैराग्य-निधि , प्रनत - कल्प-तरु नाम ॥ १०७ ॥

हुए) सर्प और (तनपर पुती हुई) भस्म ही उनका आभूषण था । (उस समय) उन त्रिपुरारि शंकरका मुख शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी शोभाको भी धुँधला किए डाल रहा था । (४) उनके सिरपर जटाओंका मुकुट और गंगाजी बड़ी सुहावनी लग रही थीं । कमलके समान उनके बड़े-बड़े नेत्र थे । उनका कण्ठ नीला था और वे बहुत ही सुन्दर लग रहे थे । उनके माथेपर टँका हुआ बाल (द्वितीयाका) चन्द्रमा बहुत छबीला लग रहा था ॥ १०६ ॥ कामदेवके शत्रु शंकर वहाँ बैठे हुए ऐसे अच्छे लग रहे थे मानो शान्त रस ही शरीर धारण करके वहाँ आ बैठा हो । माता पार्वतीने देखा यह अवसर अच्छा है, वे शंकरके पास जा पहुँची । (१) अपनी प्यारी पत्नीको वहाँ आया देखकर शिवने बहुत आदर किया और उन्हें अपनी बाई ओर बैठनेके लिये आसन (स्थान) दे दिया । पार्वती भी बहुत प्रसन्न होकर शिवके पास ही जा बैठीं । बैठते ही उन्हें अपने पिछले जन्मकी सारी बातें एक-एक करके स्मरण हो आईं । (२) यह समझकर कि मुझपर स्वामीके हृदयमें इतना अधिक प्रेम है, वे (पार्वती) हँसकर शंकरसे प्यार-भरी वाणीमें पूछने लगीं । (याज्ञवल्क्य कहते हैं कि) पार्वती वही कथा सुनना चाह रही थीं जिससे सबका कल्याण होता है । पार्वतीने (शिवसे) पूछा—'हे संसार के स्वामी ! हे मेरे नाथ ! हे त्रिपुरासुरका वध करनेवाले ! आपकी महिमा तो तीनों लोक जानते हैं । चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरण-कमलोंकी सेवा करते हैं । (४) हे प्रभो ! आप समर्थ, सब कुछ जानते हैं, कल्याणके रूप हैं तथा आपमें सम्पूर्ण कलाएँ और गुण भरे हुए हैं । आप योग, ज्ञान और वैराग्यके मूल भाण्डार हैं । आपका नाम ही शरणागतोंके लिये कल्पवृक्ष के समान (सब फल देनेवाला) है (जो आपका नाम जपता है उसे सारे फल मिल जाते हैं) । ॥ १०७ ॥ हे सुखके भांडार !

१२६८-७५ तत्रैकदा समासीनं जटाभस्मधरं हरम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिचन्द्रसुशीतलम् ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं नागयज्ञोपवीतिनम् । व्याघ्रचर्माम्बरधरं वरदाभयधारिणम् ॥
पंचवक्त्रं चन्द्रमौलिं त्रिशूलडमरूधरम् ॥—पद्मपुराण

१२७६-८० दृष्ट्वा प्रोवाच शर्वाणी कथां लोकशुभावहाम् । प्रष्टुमिच्छामि देवेश विश्वनाथ सदाशिव ॥ सम्मो०तं०

जौं मो - पर प्रसन्न सुख - रासी । जानिय सत्य मोहि निज दासी ।
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना । कहि रघुनाथ - कथा विधि नाना । (१)
जासु भवन सुर - तरु - तर होई । सह कि दरिद्र - जनित दुख सोई ।
ससि - भूषन ! अस हृदय विचारी । हरहु नाथ ! मम मति - भ्रम भारी । (२)
प्रभु जे मुनि परमारथ - बादी । कहहिं राम - कहँ ब्रह्म अनादी ।
१२९० सेस, सारदा, बेद, पुराना । सकल करहिं रघुपति-गुन - गाना । (३)
तुम पुनि राम - राम दिन - राती । सादर जपहु अनंग - अराती ।
राम सो अवध - नृपति - सुत सोई । की अज, अगुन, अलख-गति कोई । (४)

दो०—जौं नृप-तनय तो ब्रह्म किमि , नारि-बिरह मति - भोरि ।
देखि चरित, महिमा सुनत , भ्रमति बुद्धि अति मोरि ।। १०८ ।।

(सदा सुखसे भरे रहनेवाले, सबको सदा सुख देनेवाले !) यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी दासी समझते हैं तो प्रभो ! आप रामकी बहुत प्रकारकी कथाएँ सुना-सुनाकर मेरा अज्ञान दूर कर डालिए । (१) कल्पवृक्षके तले जिसका घर हो वह भी क्या कहीं दरिद्रके लिये उत्पन्न होनेवाला दुःख सहा करता है ? हे शशिभूषण नाथ ! यह विचारकर मेरी बुद्धिका सारा भ्रम आप अब दूर कर ही डालिए । (२) हे प्रभो ! (भ्रम यह है कि) जो मुनि लोग परम तत्त्व (ब्रह्म) -का विवेचन किया करते हैं, वे रामको अनादि ब्रह्म बतलाते हैं । यहाँतक कि शेष, सरस्वती, वेद, और पुराण सभी रामका गुणोंका वर्णन करते अघाते नहीं । (३) हे कामदेवके शत्रु ! आपको भी देखती हूँ कि आप भी दिन-रात बहुत आदरपूर्वक बैठे-बैठे राम-राम ही जपते रहते हैं । (इसीलिये मैं जानना चाहती हूँ कि) क्या वे राम अयोध्यानरेश (दशरथ)-के पुत्र ही हैं या अजन्मा, निर्गुण और अलक्ष्य गतिवाले (जिन्हें कोई समझ नहीं पा सकता ऐसे) कोई दूसरे राम हैं ? । (४) (प्रश्न यह है कि) यदि वे किसी राजाके ही पुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे हो सकते हैं ? (और यदि वे ब्रह्म हैं तो) स्त्रीके वियोगमें उनकी बुद्धि कैसे बिगड़ गई (कि रोते-कलपते वन-वन भटकते फिर रहे थे) । एक ओर उनका यह व्यवहार (स्त्रीके वियोगमें रोना) देखकर और दूसरी ओर (उनकी) इतनी अधिक महिमा सुनकर मेरी बुद्धि तो चकराई

१२८१-८६ पार्वत्युवाच-नमोस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक्त्वं परमेश्वरोसि ।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि ।।
पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ।
श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे भक्तिर्दृढास्यात्तु यथा मदीया ।।
१२८७-८८ तथापि हृत्संशयबंधनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम् ।
१२८९-९४ वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः ।।
वदन्ति केचित् परमोपि रामः स्वविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम् ।
जानाति चात्मानमतः परेण संबोधितो वेद परात्मतत्त्वम् ।।
यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण ।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः ।।
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भिस्तद् ब्रूत मे संशयभेदिवाक्यम् ।। —अध्यात्मरामायण

जौं अनीह व्यापक विभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ।
अज्ञ जानि, रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटै, सोइ करहू। (१)
मैं बन दीखि राम - प्रभुताई। अति-भय-बिकल न तुम्हहिं सुनाई।
तदपि मलिन मन बोध न आवा। सो फल भली भाँति हम पावा। (२)
अजहूँ कछु संसय मन मोरे। करहु कृपा, बिनवौं कर जोरे।
१३०० प्रभु तब मोहिं बहु भाँति प्रबोधा। नाथ! सो समुझि करहु जनि क्रोधा। (३)
तब - कर - अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा - पर रुचि मन माहीं।
कहहु पुनीत राम - गुन - गाथा। भुजग - राज - भूषन ! सुर-नाथा। (४)
दो०—बंदौं पद धरि धरनि सिर, बिनय करौं कर जोरि।
बरनहु रघुबर-बिसद-जस, श्रुति - सिद्धांत निचोरि।। १०९।।
जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन - क्रम - बचन तुम्हारी।
गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं। (१)

पड़ रही है।। १०८।। यदि इच्छा-रहित, व्यापक और समर्थ ब्रह्म कोई दूसरा ही है तो नाथ ! मुझे भली-भाँति समझाकर उसका पूरा परिचय दे डालिए। मुझे नासमझ जानकर अपने हृदयमें क्रोध न कर बैठिएगा। जैसे भी आप उचित समझें मेरा यह मोह (अज्ञानसे उत्पन्न भ्रम) अवश्य दूर कर डालिए। (१) पिछले जन्ममें मैंने वनमें जाते समय रामकी प्रभुता भली भाँति देख ली है (कि वे मेरे चारों ओर सीता और लक्ष्मणके साथ दिखाई पड़ रहे थे और सब देवता उनकी सेवा किए जा रहे थे), पर उस समय मैं भयसे इतनी व्याकुल हो उठी थी कि मैं आपसे भी कुछ बता नहीं पाई। इतना देख लेनेपर भी मेरे खोटे मनको समझ न आ पाई और उसका फल भी मैंने पूरा-पूरा भोग लिया। (आपने मुझे त्याग दिया और मैं दक्षके यज्ञमें जल मरी) (२) पर (न जाने क्यों) अबतक भी मेरे मनमें कुछ न कुछ सन्देह बना ही हुआ है। इसलिये प्रभो ! आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप कृपा करके (मुझे भली भाँति सब समझा दीजिए)। नाथ ! आप (यह समझकर) बिगड़ न बैठिएगा (कि उस समय इतना समझाया था फिर भी सन्देह दूर नहीं हुआ)। (३) (मैं बता दूँ कि) अब मेरे मनमें पहले-जैसा मोह (भ्रम) नहीं रह गया है। अब तो मेरे मनमें रामकी कथा सुननेका ही चाव भर उठा है। सर्पराजको आभूषण बनाकर धारण करनेवाले हे देवताओंके स्वामी ! अब आप मुझे रामके पवित्र गुणोंकी सारी कथा सुना डालिए। (४) मैं धरतीपर माथा टेककर आपकी वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप वेदके सारे सिद्धान्त निचोड़कर रामका निर्मल यश मुझे सुना डालिए।। १०९।। यद्यपि स्त्री होनेके कारण मैं (वेदोंके सिद्धान्तका निचोड़) सुननेकी अधिकारिणी तो नहीं हूँ, फिर भी मन, वचन और कर्मसे आपकी दासी (अर्द्धांगिनी) तो हूँ न ! संत लोग भी जब कोई आर्त्त (दुखी) अधिकारी देखते हैं, तो गूढ़से गूढ़ तत्त्व भी उसे खोल समझाते हैं (उससे नहीं छिपाते)। (१) हे देवताओंके स्वामी

१३०५-७ गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः।
तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम्। —अध्यात्मरामायण

अति आरति पूछौं सुरराया। रघुपति - कथा कहहु करि दाया।
प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन - वपु - धारी। (२)
पुनि प्रभु कहहु राम - अवतारा। वाल - चरित पुनि कहहु उदारा।
१३१० कहहु जथा जानकी बिबाही। राज तजा सो दूषन काही। (३)
वन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा।
राज वैठि कीन्हीं वहु लीला। सकल कहहु संकर सुख - सीला। (४)

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा-सहित रघुबंस - मनि, किमि गवने निज धाम ॥ ११० ॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्व वखानी। जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी।
भगति, ज्ञान, बिज्ञान, बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा। (१)
औरौ राम् - रहस्य अनेका। कहहु नाथ ! अति बिमल बिबेका।

(महादेव) ! मैं अत्यन्त दीन भावसे आपसे पूछ रही हूँ, (इसलिये) आप कृपा करके रामकी सारी कथा मुझे (क्रमसे) सुना ही डालिए। पहले तो आप विचार करके यह बतलाइए कि निर्गुण ब्रह्मको सगुण रूप (शरीर) धारण करनेकी आवश्यकता ही क्या पड़ गई। (२) फिर प्रभो ! मुझे वह कथा सुनाइएगा कि रामने अवतार कैसे लिया ? उसके पश्चात् उनके उदार बाल-चरित्रका वर्णन कर सुनाइएगा। तब यह कथा सुनाइएगा कि किस प्रकार जानकीसे उनका विवाह हुआ और उन्होंने कौन-सा ऐसा अपराध कर डाला कि उन्हें राज्य छोड़ देना पड़ा ? (३) हे नाथ ! फिर यह बताइएगा कि उन्होंने वनमें रहकर कौन-कौनसे अद्‌भुत चरित्र किए और किस प्रकार उन्होंने युद्धमें रावणको मार डाला। हे सुखशील शंकर ! उसके पश्चात् आप वह सारी कथा कह सुनाइएगा कि उन्होंने राज-सिंहासनपर बैठकर कौन-कौन-सी अनेक लीलाएँ की। (४) हे कृपायतन ! फिर आप रामके उस अद्‌भुत चरित्रका वर्णन कीजिएगा कि रघुवंश-शिरोमणि राम अपनी प्रजाको लिए-दिए किस प्रकार अपने धाम (साकेत) लौट गए ॥ ११० ॥ हे प्रभो ! फिर वह तत्त्व भी समझाकर बताइएगा जिसका अनुभव करके ज्ञानी मुनि उसी तत्त्वमें निरन्तर मग्न हुए रहते हैं। इसके पश्चात् आप भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यके सब भेदोंका विस्तारसे वर्णन कर सुनाइएगा। (१) अत्यन्त निर्मल ज्ञानसे परिपूर्ण हे नाथ ! इनके अतिरिक्त रामके और भी जो रहस्य हों उन्हें भी आप कह डालिएगा। इतना ही नहीं, प्रभो ! जो बातें मैंने न

१३०९-१२ अयोध्या नगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले। विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः ॥
विवाह्य जानकीं सीतां राज्यं त्यक्त्वा वनं गतः। रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः ॥
अयोध्यागमनं पश्चाद् राज्ये रामाभिषेचनम् ॥

१३१३-१४ मायामानुषतां प्राप्य कति वर्षाणि भूतले। स्थितवाँल्लीलया देवः परमात्मा सनातनः ॥
अत्यजन्मानुषं लोकं कथमन्ते रघूद्वहः। एतदाख्याहि भगवञ्छ्रद्दधत्या मम प्रभो ॥

१३१५-१६ ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्तिवैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत्।
पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ॥

१३१७ रामचन्द्रस्य भगवन् ब्रूहि विस्तरतः कथाम् ॥ —अध्यात्मरामायण

जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयालु राखहु जनि गोई। (२)
तुम त्रिभुवन - गुरु बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना।
१३२० प्रश्न उमा - कै सहज सुहाई। छल-बिहीन सुनि सिव-मन भाई। (३)
हर - हिय राम - चरित सब आए। प्रेम - पुलक लोचन जल छाए।
श्रीरघुनाथ - रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा। (४)
दो०—मगन ध्यान-रस दंड जुग, पुनि मन बाहर कीन्ह।
रघुपति - चरित महेस तब, हरषित बरनै लीन्ह॥ १११॥
झूठउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने।
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन - भ्रम जाई। (१)
बंदौं बाल - रूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू।
मंगल - भवन, अमंगल - हारी। द्रवहु सो दसरथ-अजिर-बिहारी। (२)
करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधा-सम गिरा उचारी।
१३३० धन्य धन्य गिरिराज - कुमारी। तुम समान नहिं कोउ उपकारी[1]। (३)

भी पूछी हों, उन्हें भी हे दयालु! आप छिपाकर न रख छोड़िएगा (रामके रहस्यकी जो बातें मैंने पूछी हैं और जो नहीं भी पूछी हैं वे सब बतलानेकी कृपा कीजिएगा)। (२) वेदोंने आपको तो तीनों लोकोंका गुरु बताया है (इसलिये आपको छोड़कर संसारके) अन्य तुच्छ जीव भला इस रहस्यको क्या जान सकते हैं ?

पार्वतीके सभी प्रश्न ऐसे स्वाभाविक, सुन्दर और छल-रहित थे कि उन्हें सुनकर शिवजी बड़े प्रसन्न हुए। (३) (तत्काल) शंकरके हृदयमें रामके सारे चरित्र अपने आप कौंध गए। (रामके) प्रेममें उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा और उनकी आखें डबडबा चलीं। अपने हृदयमें रामके स्वरूपका ध्यान आते ही उनका हृदय परम आनन्द और अत्यधिक सुखसे भर उठा। (४) दो घड़ी-तक तो वे (शिव) बैठे रामके ध्यानका ही आनन्द लेते रह गए। फिर अपना मन बाहर करके (ध्यान-मुक्त होकर) उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर रामके चरित्रका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया—॥ १११॥

'जिसको भली प्रकार जाने बिना झूठ भी वैसे ही सत्य-सा प्रतीत होता है जैसे रस्सीको बिना पहचाने उसे भ्रमसे साँप समझ लिया जाता है पर जिसे ठीक-ठीक जान लेनेपर यह संसारका (भ्रम) उसी प्रकार लुप्त हो जाता है जैसे निद्रासे जाग उठनेपर स्वप्नका भ्रम मिट जाता है; (१) उन्हीं रामके बाल-रूपकी मैं वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपनेसे सारी सिद्धियाँ (अपने आप) हाथमें आ पहुँचती हैं। सदा मंगल-स्वरूप और अमंगल दूर करनेवाले और महाराज दशरथके आंगनमें खेलनेवाले वे (बाल रूपवाले राम) मुझपर कृपा करें।' (२) रामको प्रणाम करके त्रिपुरारि शंकर आनन्दपूर्वक अमृतके समान वाणीमें बोले—'हे गिरिराज-कुमारी! (पार्वती!) तुम सचमुच धन्य हो! तुम्हारे समान संसारका हित करनेवाला कोई दूसरा हुआ

१. अधिकारी।

१३१६ नमोस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक्त्वं परमेश्वरोऽसि॥ —अध्यात्मरामायण
१३२५ रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्। नाहं जीवः परात्मेति ज्ञानं चेन्निर्भयो भवेत्॥ आत्म०
१३२७ तमेव जानकीनाथं वंदेहं बालरूपिणम्। यस्य स्मरणमात्रेण सुलभाः सर्वसिद्धयः॥ पुल०सं०

पूछेहु रघुपति - कथा - प्रसंगा। सकल लोक जग-पावनि गंगा।
तुम रघुबीर - चरन - अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत - हित लागी। (४)

दो०—रामकृपा - तें पारबति[1], सपनेहु तव मन माहिं।
सोक, मोह, संदेह, भ्रम, मम विचार कछु नाहिं॥ ११२॥

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब - कर हित होई।
जिन्ह हरि-कथा सुनी नहिं काना। श्रवन - रंध्र अहि - भवन समाना। (१)
नयनन्हि संत - दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख - कर लेखा।
ते सिर कटु तुंबरि - सम - तूला। जे न नमत हरि - गुरु-पद - मूला। (२)
जिन्ह हरि - भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव - समान तेइ प्रानी।
१३४० जो नहिं करै राम - गुन - गाना। जीह सो दादुर - जीह समाना। (३)
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि - चरित न जो हरषाती।
गिरिजा सुनहु राम - कै लीला। सुर-हित दनुज - बिमोहन - सीला। (४)

दो०—राम - कथा सुर-धेनु - सम, सेवत सब-सुख - दानि।
सत-समाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि॥ ११३॥

नहीं है, (३) क्योंकि तुमने मुझसे रामकी उस कथाके प्रसंग पूछे हैं जो सब लोकोंके प्राणियोंको गंगाजीके समान पवित्र कर डालते हैं। तुम भी रामके चरणोंसे प्रेम करती हो, इसलिये तुमने जगत्के कल्याणके लिये ही ये प्रश्न पूछे हैं। (४) देखो पार्वती ! मैं समझता हूँ कि रामकी कृपासे ही तुम्हारे मनमें शोक, मोह, सन्देह और भ्रम स्वप्नमें भी नहीं उठ पाते॥ ११२॥ तुमने शंका तो वही (पुरानी) छेड़ दी है, फिर भी यह प्रसंग (रामकी कथा) कहने और सुननेसे सबका कल्याण ही होगा। जिन्होंने अपने कानोंसे कभी भगवान्की कथा नहीं सुनी उनके कानोंके छेदोंको साँपके बिल ही समझना। (१) जिन्होंने अपने नेत्रोंसे सन्तोंके दर्शन नहीं किए उनके नेत्र भी मोरके पंखपर बने बनवाटी (झूठे) नेत्रोंके समान हैं। वे सिर भी कड़वी तुंबीके समान हैं जो भगवान् और गुरुके चरणोंपर नहीं झुकते। (२) जिनके हृदयमें भगवान्की भक्ति नहीं है, वे प्राणी जीते जी शव (मुर्दे) के समान हैं। जो जीभ रामके गुण नहीं गा पाती, वह जीभ मेंढककी जीभके समान (व्यर्थ टर्र टर्र करती) है। (३) वह हृदय भी वज्रके समान कठोर और निष्ठुर है जो भगवान्के चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं हो उठता। इसलिये पार्वती ! मैं तुम्हें रामकी वह लीला सुनाता हूँ जिससे देवताओंका हित होता है और दैत्य अधिक मोह (भ्रम)-में पड़ जाते हैं। (४) रामकी कथा उस कामधेनुके समान है जिसकी सेवा करनेसे (जिसे सुननेसे) सब प्रकारके सुख प्राप्त होते चलते हैं। सत्पुरुषोंके समाज और सब देवताओंके लोकवालोंमेंसे कौन ऐसा है जो (यह कथा) न सुनेगा?' ॥ ११३॥

---

१. हिमसुता।

१३३०-३२ धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम्॥ —अध्यात्मरामायण
यतो जगन्मंगलाय त्वयाहं विनियोजितः। अतस्ते कथयिष्यामि यद् विश्वकृतहिद् भवेत्। नि०तं०

राम-कथा सुन्दर कर - तारी । संसय - बिहग उड़ावनिहारी ।
राम - कथा कलि - बिटप - कुठारी । सादर सुनु गिरिराज - कुमारी । (१)
राम - नाम - गुन - चरित सुहाए । जनम - करम अगनित श्रुति गाए ।
जथा अनंत राम भगवाना । तथा कथा, कीरति, गुन नाना । (२)
तदपि जथाश्रुत, जसि मति मोरी । कहिहौं, देखि प्रीति अति तोरी ।
१३५० उमा ! प्रस्न तव सहज सुहाई । सुखद, संत - संमत, मोहि भाई । (३)
एक बात नहिं मोहिं सोहानी । जदपि मोहबस कहेहु भवानी ।
तुम जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव, धरहिं मुनि ध्याना (४)
दो०—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह - पिसाच ।
पाखंडी, हरि - पद-बिमुख , जानहिं झूठ न साँच ।।११४।।

'रामकी कथा (दोनों) हाथोंसे बजाई जानेवाली वह ताली है जिसे बजाते ही सन्देह-रूपी पक्षी उड़ भागते हैं । रामकी कथा कलियुग-रूपी वृक्ष को काट डालनेवाली कुल्हाड़ी है (रामकी कथा सुननेसे सारे संदेह दूर हो जाते हैं और कलियुगके सारे दोष मिट जाते हैं) । इसलिये गिरिराजकुमारी ! तुम इसे बहुत आदरपूर्वक सुनना । (१) देखो ! वेदोंने रामके अगणित नाम, गुण, चरित्र, जन्म और कर्म बतलाए हैं । जिस प्रकार भगवान् राम अनन्त है, वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुण भी अनन्त हैं । (२) तो भी तुम्हारी इतनी अधिक प्रीति देखकर मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा कुछ मैंने सुना है वही सब तुम्हें भी सुनाए देता हूँ । देखो पार्वती ! तुम्हारे प्रश्न स्वभावत: ऐसे सुन्दर और सुखदायक हैं कि सन्त लोग भी ऐसे ही प्रश्न किया करते हैं और मुझे भी बड़े अच्छे लगते हैं । (३) परन्तु पार्वती ! तुम्हारी एक बात मुझे नहीं जँची यद्यपि वह तुमने भ्रमके कारण ही कही है कि—जिन रामका वर्णन वेदोंमें किया गया है और मुनि-जन जिनका ध्यान किया करते हैं वे राम कोई और हैं । (४) देखो ! ऐसी बात वे ही नीच लोग कहा-सुना करते हैं जो मोह-रूपी पिशाचके पंजेमें जकड़े हुए, पाखण्डी, भगवान्के चरणोंसे विमुख, झूठ-सच कुछ भी

१३३९-४१ बिलेबतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वत: कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथा: ।।
बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षितो ये ।
भार: परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गन्न नमेन् मुकुन्दम् ।।
जीवञ्छवो भागवतांघ्रिरेणुन्न जातु मर्त्योभिलभेत यस्तु ।
तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनाममधेयै: ।।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्ष: । —भागवत
१३४३-४४ कामधेनुसमां रामकथां सर्वसुखप्रदाम् । ज्ञात्वाऽमरास्तथा सन्त: सर्वे शृण्वन्ति सर्वदा ।।
१३४५ उड्डीयन्ते खगा राजन् सर्वे संशयरूपिण: । श्रुत्वा रामकथारूपां रम्यां करतलध्वनिम् ।।
१३४६ कलिद्रुमकुठारी या कीर्तिता मुनिभिर्बुधै: । तां श्रीरामकथां रम्यां सादरं शृणु पार्वति ।।प्र०रा०
१३४७-४८ जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रश: । न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ।।
क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभि: । गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ।। भाग०

अज्ञ, अकोविद, अंध, अभागी। काई - विषय मुकुर - मन लागी।
लंपट, कपटी, कुटिल बिसेखी। सपनेहु संत - सभा नहिँ देखी। (१)
कहहिँ ते बेद - असंमत बानी। जिन्ह - के भूठ, लाभ नहिँ हानी।
मुकुर मलिन अरु नयन-बिहीना। राम - रूप देखहिँ किमि दीना। (२)
जिन - के अगुन न सगुन - बिबेका। जलपहिँ कलपित बचन अनेका।
१३६० हरि - माया - बस जगत भ्रमाहीँ। तिन्हहिँ कहत कछु अघटित नाहीँ। (३)
बातुल, भूत - बिबस, मतवारे। ते नहिँ बोलहिँ बचन बिचारे।
जिन्ह कृत महा - मोह - मद - पाना। तिन्ह-कर कहा करिय नहिँ काना। (४)
सो०—अस निज हृदय बिचारि, तजु संसय, भजु राम-पद।
सुनु गिरिराज - कुमारि, भ्रम-तम-रबि-कर बचन मम ॥११५॥

न समझनेवाले, ॥ ११४ ॥ अज्ञानी, मूर्ख, अभागे, मनरूपी दर्पणपर विषयकी काई जमाए हुए (विषयी), लम्पट, छली और धोखा देनेवाले हैं तथा जिन्होंने स्वप्नमें भी कभी संत-समाजके दर्शन नहीं किए। (१) वेदके विरुद्ध ऐसे ही लोग बका करते हैं जो झूठ बकनेमें कुछ हानि-लाभ नहीं समझते, जिनके हृदय-रूपी दर्पणपर मैल जमा रहता है और जिन्हें नेत्र (ज्ञान) भी नहीं हैं। वे बेचारे भला रामका स्वरूप (अपने हृदयमें) देख कैसे पा सकते हैं ? (२) जिन लोगोंको निर्गुण-सगुणका कोई ज्ञान नहीं है, जो सदा अनेक मनगढ़न्त बातें बकते फिरते हैं, जो भगवान्‌की मायाके चक्करमें पड़े हुए संसारमें (जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े) भटकते फिरते हैं, उनके लिये कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है (वे अच्छा-बुरा सब कुछ कह डाल सकते हैं)। (३) जिन्हें वातव्याधि (सन्निपात, उन्माद आदिकी पीडा) हुई रहती है, जिनके सिर भूत चढ़ा होता है और जो मद (नशे)-में चूर हुए रहते हैं, वे कभी विचारकर बात नहीं कहते। जो महा मोह (अज्ञान)-में उन्मत्त हुए रहते हैं, उनकी बातोंपर कभी ध्यान ही नहीं देना चाहिए। (४) ऐसा मनमें विचारकर संदेह छोड़ दो और रामके चरणोंका भजन जा करो (भक्तिके साथ रामके चरणोंमें ध्यान जा लगाओ)। देखो गिरिराज-कुमारी ! जैसे सूर्य-की किरणें अन्धकारको मिटा डालती हैं वैसे ही मेरी ये बातें सुन लो, जिनसे सारा भ्रम मिट भागता है ॥११५॥ मुनि, पुराण,

१३५३-६० श्रीरामे ये च विमुखा खलमतिनिरता ब्रह्म चान्ये वदन्ति,
ते मूढा नास्तिकास्ते शुभगुणरहिताः सर्वबुद्ध्यातिरिक्ताः।
पापिष्ठा धर्महीना गुरुजनविमुखा वेदशास्त्रे विरुद्धा—
स्ते हित्वा गाङ्गमम्भो रविकिरणजलं पातुमिच्छन्ति भीताः॥ —महारामायण
एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वविद्यया संवृतमानसा ये।
स्वज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये॥
संसारमेवानुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः॥ —अध्यात्मरामायण
१३६१-६२ आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम्।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते॥
दृष्ट्वा जन्म - जराविपत्ति - मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥ —भर्तृहरिशतक
१३६३-६४ विचार्यैव हृदि भज रामं त्यक्त्वा स्वसंशयम्। भ्रमस्तमो रविकरा वचनानि प्रिये मम। कृष्णगीता

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि - पुरान - बुध - वेदा।
अगुन, अरूप, अलख, अज जोई। भगत-प्रेम - बस सगुन सो होई। (१)
जो गुन-रहित सगुन सोइ कैसे। जल-हिम-उपल बिलग नहिं जैसे।
जासु नाम भ्रम - तिमिर - पतंगा। तेहि किमि कहिय बिमोह - प्रसंगा। (२)
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह - निसा - लवलेसा।
१३७० सहज प्रकास-रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिज्ञान-बिहाना। (३)
हरप - बिषाद, ज्ञान - अज्ञाना। जीव-धरम, अहमिति, अभिमाना।
राम ब्रह्म, व्यापक, जग जाना। परमानंद, परेस, पुराना। (४)
दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास-निधि , प्रगट परावर - नाथ।
रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ, कहि, सिव नायउ माथ ॥ ११६ ॥

विद्वान् और वेद सभीने यही कहा है कि सगुण और निर्गुण (ब्रह्ममें) कोई भेद नहीं है। जो ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अलक्ष्य और अजन्मा है, वही भक्तोंके प्रेमके कारण सगुण हो आता है। (१) (यह पूछा जा सकता है कि) जो निर्गुण है वही सगुण कैसे हो सकता है ? (उत्तर यह है कि) जैसे पानी और हिम (बरफ)-में भेद नहीं है (पानीसे ही बरफ बनता है और वही बरफ फिर पानी होकर अपने पहले रूपमें आ जाता है। हैं दोनों एक ही, केवल उनके रूपमें ही भेद दिखाई पड़ता है, वैसे ही निर्गुणसे सगुण हो जाता है)। जिसका नाम ही भ्रमके अन्धकारको वैसे ही मिटा डालता है जैसे सूर्य, उसके सम्बन्धमें मोहकी बात उठ ही कैसे सकती है ? (२) राम तो सच्चिदानन्द-स्वरूप सूर्य हैं, वहाँ तो मोह-रूपी रात्रिका लेशमात्र भी नहीं है। भगवान् तो स्वभावसे ही प्रकाश-रूप हैं, इसलिये वहाँ विज्ञानका प्रातःकाल होता ही नहीं (क्योंकि वहाँ तो सदा प्रकाश हुआ रहता है, अनन्त प्रकाशको इस कृत्रिम प्रकाशकी आवश्यकता ही क्या है ?) । (३) राम तो हर्ष-शोक, ज्ञान-अज्ञान, जीव-धर्म, अहंकार और गर्वसे परे व्यापक ब्रह्म हैं, यह बात सारा संसार जानता है। वे तो परमानन्द, परात्पर (बड़ेसे भी बड़े), प्रभु और पुराण (अनादि) पुरुष हैं। (४) ऐसे जो पुराण पुरुषके नामसे प्रसिद्ध हैं, प्रकाशके निधान हैं, सब रूपोंमें प्रकट हैं, जो जीव, माया और जगत्के

१३६५-६६ अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ गीता
सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एकः स्वयं ज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोकविमोहनीयां धत्ते परानुग्रह एक रामः ॥
१३६७-६८ तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे न हि विद्यते तमः।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम् ॥
१३६९-७० रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥
नाहर्नरात्रिः सवितुर्यथा भवेत्प्रकाशरूपा व्यभिचारतः क्वचित्।
ज्ञानं तथाऽज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने ॥
१३७१-७२ यावद्देहमनः प्राणबुद्ध्यादिष्वभिमानवान्। तावत्कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिभाग्भवेत्।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥ —अध्यात्मरामायण
१३७३-७४ तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरितविश्वमेकम्।
राजाधिराजं रविमंडलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥ —सनत्कुमारसंहिता

निज भ्रम नहिँ समुझहिँ अज्ञानी । प्रभु-पर मोह धरहिँ जड़ प्रानी ।
जथा गगन घन - पटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहिँ कुबिचारी । (१)
चितव जो लोचन अंगुलि लाए । प्रगट जुगल ससि तेहि - के भाए ।
उमा ! राम - बिषयक अस मोहा । नभ तम, धूम, धूरि-जिमि सोहा । (२)
बिषय, करन - सुर, जीव - समेता । सकल एक- तेँ एक सचेता ।
१३८० सब - कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई । (३)
जगत प्रकास्य, प्रकासक रामू । मायाधीस ज्ञान - गुन - धामू ।
जासु सत्यता - तेँ जड़ माया । भास सत्य - इव मोह - सहाया । (४)
दो०—रजत-सीप महँ भास जिमि , जथा भानुकर - बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ , भ्रम न सकै कोउ टारि ।। ११७ ।

स्वामी हैं, वही रघुवंशमणि राम मेरे स्वामी हैं ।' ऐसा कहकर शंकरने उन्हें (रामको) मस्तक नवाकर प्रणाम कर लिया (और कहने लगे—) ।।११६।। 'अज्ञानी लोग अपना भ्रम तो समझते नहीं । वे मूर्ख तो प्रभु रामपर वैसे ही उस भ्रमका आरोप कर डालते हैं (और कहने लगते हैं कि वे निर्गुण होते हुए सगुण कैसे हो सकते हैं) जैसे आकाशमें बादल छाए देखकर मूर्ख लोग कह दिया करते हैं कि बादलोंने सूर्यको ढक लिया । (१) जो मनुष्य अपनी आँखोंके आगे उँगली लगाकर देखता है, उसे तो दो चन्द्रमा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते ही हैं । उसी प्रकार हे पार्वती ! रामके विषयमें भी इस प्रकारके मोह (भ्रम) की कल्पना वैसी ही है जैसे (रात्रिके कारण) आकाशमें स्वाभाविक अन्धकारको देखकर उसे भ्रमसे धुआँ और धूल समझ बैठनेकी कल्पना कर ली जाती है । (२) विषय, इन्द्रियोंके देवता और जीवात्मा, ये सब क्रमशः परस्पर एक दूसरेकी सहायतासे सचेतन होते हैं (विषयका प्रकाश इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंका प्रकाश इन्द्रियोंके देवताओंसे और इन्द्रिय-देवताओंका प्रकाश चेतन जीवात्मासे होता है), इन सबके जो परम प्रकाशक (इन्हें प्रकाश देनेवाले) हैं वे ही अनादि ब्रह्म अयोध्यापति राम हैं । (३) हमारे प्रकाशित होनेवाले (प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले) जगत्की माया (जगत्की बनानेवाली शक्ति)-के स्वामी तथा ज्ञान और गुणोंसे भरे हुए वे राम ही इसे प्रकाशित (प्रकट) करते हैं जो (राम) सत्य हैं, इसलिये यह जड माया भी भ्रमके कारण सत्यके ही समान वैसे ही प्रकाशमान् (चेतन) जान पड़ती है (४) जैसे भ्रमके कारण सीपीमें चाँदीकी और (बालूपर पड़नेवाली) सूर्यकी किरणोंमें पानीकी प्रतीति होती है । यद्यपि यह प्रतीति (केवल भ्रम होनेके कारण) तीनों कालोंमें (सदा) झूठी ही होती है, तथापि यह भ्रम किसीके मनसे दूर नहीं हो पाता (सब इस संसारको सत्य ही समझ बैठते हैं) ।। ११७ ।। इसी प्रकार यह सारा संसार

१३७५-७६ घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः ।
तथा बद्धवद् भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।। —हस्तामलक
१३७७-८२ यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः । तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।—रा०ता०उ०
आत्मनः संसृतिर्नास्ति बुद्धेर्ज्ञानं न जात्वति । अविवेकाद् द्वयं युक्तं संसारातिप्रवर्त्तते ।। अ०रा०
१३८३-८४ तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा । यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ।।आत्मबोध
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि ।। —अध्यात्मरामायण

ऐहि विधि जग हरि-आस्रित रहई। जदपि असत्य, देत दुख अहई।
जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूर दुख होई[1]। (१)
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई।
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा। (२)
बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना। कर-बिनु करम करै बिधि नाना।
१३९० आनन - रहित सकल-रस - भोगी। बिनु बानी बकता, बड़ जोगी। (३)
तन - बिनु परस, नयन - बिनु देखा। ग्रहै घ्रान - बिनु बास असेखा[2]।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी। (४)
दो०—जेहि इमि गावहिं बेद बुध , जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ-सुत भगत-हित , कोसल-पति भगवान ॥ ११८ ॥
कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम - बल करौं बिसोकी।
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर - अंतरजामी। (१)

भगवान्‌पर आश्रित है। यद्यपि यह (जगत्) झूठा है, फिर भी दुःख तो देता ही है। जैसे कोई स्वप्न देखे कि किसीने मेरा सिर काट लिया है तो जबतक वह जाग नहीं जाता तबतक उसका वह कष्ट दूर नहीं होता (वैसे ही मिथ्या जगत्‌को भ्रमवश सत्य मान लेनेपर तबतक उसकी असत्यता दूर नहीं होती जबतक चित्तमें भ्रम बना रहता है। भ्रम दूर होते ही वास्तविक सत्य प्रत्यक्ष रूपमें जान पड़ने लगता है। अतः 'भ्रम' मिथ्याका बोधक है और 'प्रतीति' सत्यका)। (१) हे पार्वती ! जिनकी कृपासे इस प्रकारका भ्रम मिट जाता है, वही कृपालु राम हैं जिनका आदि और अन्त कोई भी नहीं पा सका और वेदोंने भी बुद्धिके अनुमानसे उनका इसी प्रकार (सर्वशक्तिमान् बताकर) वर्णन किया है (२) कि वह (ब्रह्म) बिना पैरके चल सकता है, बिना कानके सुन सकता है, बिना हाथके अनेक प्रकारके काम कर सकता है, बिना मुँह (जिह्वा)-के सब रसोंका आनन्द ले सकता है, वह बहुत बड़ा योगी है और बिना वाणीके ही बहुत वेगसे बोल सकता है। (३) वह बिना शरीरके स्पर्श कर सकता है, बिना आँखोंके देख सकता है और बिना नाकके सभी गन्ध ग्रहण कर सकता (सूँघ सकता) है (उस ब्रह्मके कोई भी ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय नहीं है पर वह चैतन्य-स्वरूप है इसलिये किसी इन्द्रियका कोई गुण ग्रहण कर लेना उसके लिये कठिन नहीं है)। उस ब्रह्मकी सारी करनी ऐसी अलौकिक है कि उसकी महिमाका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता। (४) सभी वेद और विद्वान् लोग इस रूपमें जिसका वर्णन करते हैं और मुनि लोग जिसका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, वही तो दशरथके पुत्र, भक्तोंका हित करनेवाले अयोध्याके स्वामी भगवान् राम हैं ॥११८॥ काशीमें प्राण छोड़नेवाले प्रत्येक प्राणीको देखते ही मैं जिनके नाम (राम नाम)-का मन्त्र देकर उसे शोक-रहित (मुक्त) कर देता हूँ, वे ही चर और अचरके स्वामी और सबके हृदयमें बसनेवाले मेरे

१. बिनु जागे दुख दूर न होई। २. असेख=अशेष, सब।

१३८७-९२ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ —श्वेताश्वतरोपनिषद्
१३९३-९४ जातो राम इति ख्यातो भक्तानुग्रहकाम्यया। असौ दाशरथिर्भूत्वा ब्रह्मादिभिरुपासितः॥अ०रा०

बिवसहु जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव - बारिधि गोपद - इव तरहीं। (२)
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम, अति अबिहित तव बानी।
१४०० अस संसय आनत उर माहीं। ज्ञान, बिराग, सकल गुन जाहीं। (३)
सुनि सिव - के भ्रम - भंजन बचना। मिटि गइ सब कुतरक कै रचना।
भइ रघुपति - पद - प्रीति - प्रतीती। दारुन असंभावना बीती। (४)
दो०—पुनि पुनि प्रभु-पद-कमल गहि, जोरि पंकरुह-पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेम - रस सानि॥ ११९॥
ससि-कर - सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह - सरदातप भारी।
तुम कृपालु सब संसय हरेऊ। राम - सरूप जानि मोहिं परेऊ। (१)
नाथ-कृपा अब गएउ बिषादा। सुखी भइउँ प्रभु-चरन-प्रसादा।

स्वामी राम हैं। (१) जब विवश होकर (दबावसे) भी रामका नाम ले लेनेवालेके अनेक जन्मोंके संचित पाप (नाम लेने भरसे) नष्ट हो जाते हैं तब आदरपूर्वक उनका स्मरण करते रहनेवाले लोग तो संसारके समुद्रको (विपत्तियों, आवागमनके झंझटों)-को इस प्रकार (सुगमतासे) पार कर जाते हैं जैसे गौके खुरके समान नन्हीं-सी गढ़ैयाको पार कर लिया जाय। (२) देखो भवानी ! तुम्हें यह कहना ही नहीं चाहिए कि उनके परमात्मा होनेमें भ्रम है। ऐसा सन्देह मनमें आते ही ज्ञान, वैराग्य आदि मनुष्यके सारे सद्‌गुण (तत्काल) नष्ट हो मिटते हैं।' (३) शिवके ये भ्रमनाशक वचन सुनकर पार्वतीके (मनमें उठी हुई) सारी शंकाएँ जाती रहीं। रामके चरणोंमें उनका प्रेम और विश्वास बढ़ चला और (निर्गुण भी कैसे सगुण हो सकता है इस) अत्यन्त असम्भावनाकी कल्पना भी उनके मनसे दूर हो गई। (४) फिर पार्वती बार-बार प्रभु शंकरके चरण-कमलोंमें प्रणाम करके और कमलके समान अपने कोमल हाथ जोड़कर प्रेम-रससे भरी हुई वाणीसे बोलीं—॥ ११९॥ 'देव ! जैसे शरद ऋतुकी दिनकी गर्मीका भीषण ताप दूर करके रातको चन्द्रमाकी किरणें ठंढक ला देती हैं वैसे ही आपकी शीतल (शान्ति देनेवाली) वाणीने मेरा मोह (अज्ञान) दूर करके मेरे मनको शान्ति प्रदान कर दी है। हे कृपालु ! आपने मेरा सारा संदेह मिटा डाला। अब मुझे रामके सच्चे स्वरूपका पूरा-पूरा ज्ञान हो गया है। (१) हे नाथ ! आपकी ही कृपासे अब मेरा यह विषाद (मानसिक भ्रम) दूर हो पाया। आपके चरणोंकी

१३९५-९८ यन्नाम विवशो गृह्णन् म्रियमाणः परं पदम्। —अध्यात्मरामायण
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्। नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥रा०र०
१३९९ रमन्ते योगिनो यत्र सत्यानन्दे चिदात्मके। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते॥
संदेहोऽत्र न कर्तव्यः। —योगवाशिष्ठ
१४००-२ स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयंतीह निरस्तमाये।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि।
१४०३-६ प्रणम्य शिरसा पादौ जगाद वचनं सती। धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि जगत्प्रभो।
विच्छिन्ना मम संदेहग्रन्थिर्भवदनुग्रहात्। —अध्यात्मरामायण

अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी। (२)
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौ मो-पर प्रसन्न प्रभु अहहू।
१४१० राम ब्रह्म, चिन्मय, अविनासी। सर्ब - रहित सब-उर-पुर-वासी। (३)
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू।
उमा - बचन सुनि परम बिनीता। राम - कथा - पर प्रीति पुनीता। (४)
दो०—हिय हरषे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपा-निधान ॥ १२० क ॥
सो०—सुनु सुभ कथा भवानि, राम - चरित - मानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना बिहग-नायक गरुड़ ॥ १२० ख ॥
सो संबाद उदार, जेहि बिधि भा, आगे कहब।
सुनहु राम - अवतार, चरित परम सुंदर, अनघ ॥ १२० ग ॥
हरि - गुन - नाम अपार, कथा-रूप अगनित, अमित।
१४२० मैं निज - मति - अनुसार, कहौं उमा ! सादर सुनहु ॥ १२० घ ॥
सुनु गिरिजा ! हरिचरित सुहाए। बिपुल, बिसद निगमागम गाए।

कृपासे अब मैं सुखी (पूर्णतः संतुष्ट) हो गई। यद्यपि मैं स्वभावसे ही मूर्ख और ज्ञान-हीन हूँ फिर भी मुझे अपनी दासी जानकर, (२) यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वह कथा कह सुनाइए जो मैंने आपसे अभी पूछी है। यदि राम ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) हैं, अविनाशी हैं, सबसे अलग रहते हुए भी सबके हृदय-रूपी नगरमें निवास करते हैं, (३) तब नाथ ! उन्हें मनुष्यका शरीर धारण करनेकी आवश्यकता क्या पड़ गई ? हे वृषकेतु ! यह बात आप मुझे समझाकर बता डालिए।'

पार्वतीके ये अत्यन्त नम्र वचन सुनकर तथा रामकी कथा सुननेका उनका पवित्र चाव देखकर (४) कामके शत्रु, सहज ज्ञानी, कृपानिधान शंकर मनमें बड़े प्रसन्न हुए और तब अनेक प्रकारसे पार्वतीकी प्रशंसा करते हुए बोले—॥ १२० क ॥ 'देखो भवानी ! अब मैं तुम्हें निर्मल रामचरितमानसकी वह पवित्र (मंगलकारी) कथा सुना रहा हूँ जो काकभुशुण्डिने विस्तारपूर्वक पक्षिराज गरुडको सुनाई थी ॥ १२० ख ॥ वह मधुर संवाद जिस प्रकार हुआ वह तो मैं आगे बताऊँगा। अभी तो मैं तुम्हें रामका परम सुन्दर और पापनाशक चरित्र सुनाए दे रहा हूँ, (उसे ध्यानसे सुनो) ॥ १२० ग ॥ देखो पार्वती ! हरि (राम)-के गुण, नाम, कथा और रूपका न तो कोई वर्णन ही कर सकता न उन्हें गिनवा ही सकता है। फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार जो सुना रहा हूँ वह आदरपूर्वक सुनती चलो ॥ १२० घ ॥ देखो पार्वती ! मैं तुम्हें रामका वह निर्मल, सुन्दर और विस्तृत चरित्र सुना रहा

१४०७-११ जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं तथा तथा ब्रूहि तरंति येन।
पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष ॥
वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसंप्रवाहम् ॥ —अध्यात्मरामायण
दधार कस्मात्पुरुषः पुराणः निरस्तमायोऽपि मनुष्यदेहम् ॥ —आनन्दरामायण
१४१२-२० चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। तथापि भो मया तुभ्यं वक्तव्यं स्वीयशक्तितः ॥ रा०मे०

हरि - अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई। (१)
राम अतर्क्य बुद्धि - मन - बानी। मत हमार अस, सुनहि सयानी।
तदपि संत - मुनि - वेद - पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति-अनुमाना। (२)
तस मैं सुमुखि सुनावौं तोहीं। समुझि परै जस कारन मोहीं।
जब जब होइ धरम - कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी। (३)
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र, धेनु, सुर, धरनी।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा। (४)
दो०—असुर मारि, थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति-सेतु।
१४३० जग बिस्तारहिं बिसद जस, रामजन्म - कर हेतु॥ १२१॥
सोइ जस गाइ, भगत भव तरहीं। कृपा-सिन्धु जन-हित तनु धरहीं।
राम - जनम - के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक-तें एका। (१)

हूँ जिसका वर्णन वेद और शास्त्रोंमें भी किया गया है। हरिका अवतार किस कारणसे होता है उसके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि बस उनके अवतारका यही एक मात्र कारण है। (१) देखो सयानी पार्वती! मैं तो यही मानता हूँ कि बुद्धि, मन और वाणीसे रामके अवतारका कोई स्पष्ट (ठीक-ठीक) कारण तो न समझा जा सकता न समझाया जा सकता फिर भी संतों, मुनियों, वेदों और पुराणोंने अपनी-अपनी बुद्धिसे जैसा कुछ वर्णन किया है (२) और जैसा कुछ मेरी समझमें आया है वही कारण मैं तुम्हें सुनाए देता हूँ। देखो! जब-जब धर्म (सदाचार) कम होने लगता है और (संसारमें) नीच, अभिमानी राक्षस बढ़ चलते हैं, (३) और जब वे ऐसा भयंकर अत्याचार करने लगते हैं कि उसका वर्णन तक नहीं किया जा सकता और जब वे ब्राह्मण गौ, देवता और पृथ्वीको कष्ट पहुँचाने लगते हैं, तब-तब कृपानिधान प्रभु अनेक प्रकारके शरीर धारण कर-करके (अवतार ले-लेकर) सज्जनोंके कष्ट मिटाते रहते हैं। (४) वे (अवतार ले-लेकर) असुरों (अत्याचारियों)-का नाश करके देवताओं (सज्जनों)-की चिन्ता दूर करते, वेदोंकी मर्यादाका रक्षण करते और संसारमें अपना निर्मल यश फैलाते हैं। रामके जन्म लेनेका यदि कोई कारण है, तो यही है॥ १२१॥ (भगवान्‌के) उसी (लोक-कल्याणकारी) यशका वर्णन कर-करके ही संसारके भक्त लोग भवसागर पार कर जाते हैं (संसारको बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं), और कृपाके सागर भगवान् भी अपने भक्तोंके कल्याणके निमित्त सदा (अनेक प्रकारके) शरीर धारण करते ही रहते हैं। यों तो रामके जन्मके एकसे एक बढ़कर अनेक विचित्र-विचित्र कारण हैं (१)

१४२१-२४ यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। —श्रुति
तथेतिहासपुराणानि नारदाद्या महर्षयः। येषां यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम्। रामाश्वमेध
१४२५-२८ अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमतिदुर्लभम्।
अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः। भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः।
अनुग्रहाय भक्तानां धेनूनां रक्षणाय च। यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मनं सृजते हरिः। —भागवत
१४२९-३२ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे। गीता
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ। नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः॥ भाग०

जनम एक - दुइ कहौं बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ।
द्वारपाल हरि - के प्रिय दोऊ । जय अरु विजय जान सब कोऊ । (२)
बिप्र - साप - तें दूनौं भाई । तामस असुर - देह तिन्ह पाई ।
कनक-कसिपु अरु हाटक - लोचन । जगत-बिदित सुरपति-मद-मोचन । (३)
बिजई समर - बीर बिख्याता । धरि बराह - बपु एक निपाता ।
होइ नर - हरि दूसर पुनि मारा । जन - प्रहलाद - सुजस बिस्तारा । (४)
दो०—भए निसाचर जाइ तेइ , महाबीर बलवान ।
१४४० कुंभकरन, रावन सुभट , सुर - बिजई जग जान ।। १२२ ।।
मुकुत न भए हते भगवाना । तीनि जनम द्विज-बचन प्रमाना ।
एक बार तिन्हके हित लागी । धरेउ सरीर भगत - अनुरागी । (१)
कस्यप - अदिति तहाँ पितु - माता । दसरथ - कौसल्या बिख्याता ।
एक कलप एहि बिधि अवतारा । चरित पवित्र किए संसारा । (२)

पर हे सुबुद्धिमती पार्वती ! (भगवान्‌के अनेक अवतारोंमेंसे) मैं यहाँ उनके केवल दो-एक अवतारोंका ही विस्तारसे वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनती चलो ।

सब लोग जानते हैं कि भगवान् शिवके जय और विजय नामके दो बड़े प्रिय द्वारपाल थे । (२) ब्राह्मणके शापसे उन दोनोंने हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामसे असुरोंका तामसी शरीर पाया । दोनों ही संसारमें इतने प्रतापी हुए कि उन्होंने देवराज इन्द्र-तकका गर्व चूर कर डाला था (इन्द्रको भी हरा डाला था) । (३) वे सर्वत्र इस बातके लिये विख्यात हो गए कि रणमें न उनसे कोई लड़ पा सकता न उन्हें कोई जीत पा सकता है । अतः, इनमेंसे एक (हिरण्याक्ष)-को तो भगवान्‌ने वराहका अवतार लेकर मार डाला और दूसरे (हिरण्यकशिपु)-को नरसिंहके रूपमें भगवान्‌ने मारकर अपने भक्त प्रह्लादका यश बढ़ाया । (४) वे ही दोनों (अगले जन्ममें) अत्यन्त वीर और बलवान् कुंभकर्ण और रावण नामके राक्षस हुए जिन्होंने देवताओंको भी जीत लिया, यह बात भी सारा संसार जानता है ।। १२२ ।। (तुम पूछोगी कि भगवान्‌के हाथसे मारे जानेपर तो उन्हें मुक्त हो जाना चाहिए था पर) वे भगवान्‌के हाथसे मारे जानेपर भी इसलिये मुक्त नहीं हो पाए कि ब्राह्मण (नारद-) ने उन्हें तीन जन्मों (-तक राक्षस होने)-के लिए शाप दे डाला था । (अतः,) उनके कल्याणके लिये भक्तवत्सल भगवान्‌को एक बार फिर अवतार लेना पड़ा । (१) इस अवतारमें कश्यप और अदिति उनके पिता और माता हुए जो (आगे चलकर) दशरथ और कौशल्या नामसे प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार एक कल्पमें अवतार लेकर उन्होंने संसारमें अपनी अनेक पवित्र लीलाएँ कर

१४३३-३५ तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः । हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ।।
१४३६ प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद् यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूतमग्रतः ।।
१४३७-३८ हतो हिरण्यकशिपु र्हरिणा सिंहरूपिणा । हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ।।
१४३९-४० पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः । कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ।।—भागवत

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर - सन सब हारे।
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरै न मारा। (३)
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल, ताहि न जितहिं पुरारी। (३।।)
दो०—छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर-कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब, श्राप कोप करि दीन्ह।। १२३ ।।
१४५० तासु श्राप हरि कीन्ह प्रवाना। कौतुक-निधि कृपाल भगवाना।
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति, राम परम पद दयऊ। (१)
एक जनम - कर कारन एहा। जेहि - लगि राम धरी नर-देहा।
प्रति - अवतार कथा प्रभु - केरी। सुनु मुनि, बरनी कबिन घनेरी। (२)
नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा।
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नु-भगत मुनि ज्ञानी। (३)

दिखाईं। (२) दूसरे कल्पमें (ऐसा हुआ कि) जलन्धर नामके दैत्यने जब देवताओंको हरा भगाया और देवता बहुत दुखी हो चले तब शिव ही जाकर उस (जलन्धर)-से जा भिड़े और उन्होंने अत्यन्त घोर युद्ध किया, पर वह दैत्य इतना अधिक बली था कि उनके मारे भी नहीं मर पा रहा था। (३) (कारण यह था कि) उस दैत्यराजकी पत्नी (वृन्दा) इतनी बड़ी पतिव्रता थी कि उसके पातिव्रत्यके प्रतापसे त्रिपुरारि शंकर भी उसे नहीं जीत पा सक रहे थे। (४) (तब) भगवान्‌ने छल करके उसका पातिव्रत्य भंग किया और देवताओंका संकट जा मिटाया। पर जब वृन्दाको ज्ञात हुआ कि मेरे साथ छल किया गया है तब वह बड़ी क्रुद्ध हो उठी और उसने भगवान्‌को भी शाप दे डाला ।।१२३।। लीला करनेमें आनन्द लेनेवाले कृपालु भगवान्‌ने उस (वृन्दा)-का शाप झट अंगीकार कर लिया। उसी शापके कारण वह जलन्धर ही रावण हुआ, जिसे रामने संग्राममें मारकर परम पद दिया। (१) यह भगवान्‌के एक अवतारका कारण था जिसके लिये रामने मनुष्यका शरीर धारण किया था।'

याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं—'भरद्वाज मुनि ! सुनिए ! कवियोंने भगवान्‌के प्रत्येक अवतारकी कथाका अनेक प्रकारसे वर्णन किया है।' (२)

(पार्वतीसे शंकर कहते जा रहे थे कि—) 'एक बार नारदने भगवान्‌को शाप दे डाला (और उसीके कारण) एक कल्पमें (भगवान्‌को) अवतार आ लेना पड़ा।' यह सुनकर तो पार्वती बहुत चकित हुईं (और शंकरसे बोलीं—) 'नारद तो विष्णु भगवान्‌के परम भक्त भी हैं और ज्ञानी

१४४१-४९ विष्णुर्जलंधरं गत्वा तद्दैत्यपुटभेदनम्। पातिव्रतस्य भंगाय वृन्दायाश्चाकारोन्मतिम्।।
अथ वृन्दापि भर्तारं दृष्ट्वा हर्षितमानसा। रेमे तद्वनमध्यस्था तद्युक्ता बहुवासरम्।।
कदापि सुरतस्यान्ते दृष्ट्वा विष्णुं तमेव हि। निर्भर्त्स्य क्रोधसंयुक्ता वृन्दा वचनमब्रवीत्।।
धिक् त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः। ज्ञातोऽसि त्वं मया सम्यङ्मायी प्रत्यक्षतापसः।।
यौ त्वया मायया द्वास्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम। तावेव राक्षसौ भूत्वा तव भार्यां हरिष्यतः।।पद्मपु०
१४५०-५१ अहं च शैलरूपेण गंडकीतीरसन्निधौ। अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः।।-देवीभा०

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा।
यह प्रसंग मोहिं कहहु पुरारी। मुनि-मन-मोह, आचरज भारी। (४)
दो०—बोले बिहँसि महेस तब, ज्ञानी - मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ ॥ १२४ क ॥
१४६० सो०—कहौं राम - गुन - गाथ, भरद्वाज ! सादर सुनहु।
भव-भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद ॥ १२४ ख ॥
हिम - गिरि - गुहा एक अति पावनि। वह समीप सुर-सरी सुहावनि।
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा। (१)
निरखि सैल, सरि, बिपिन - बिभागा। भयउ रमा-पति-पद अनुरागा।
सुमिरत हरिहि श्राप - गति बाधी। सहज बिमल मन, लागि समाधी। (२)

मुनि भी हैं। (३) तब (नारद) मुनिने भगवान्‌को शाप कैसे दे डाला ? लक्ष्मीके पति भगवान् विष्णुने ऐसा-उनका क्या बिगाड़ किया था ? पुरारि ! यह कथा आप मुझे अवश्य सुना डालिए क्योंकि नारद (जैसे देवर्षि)-के मनमें मोह उत्पन्न हो जाना तो बड़े आश्चर्यकी बात है।' (४)

तब महादेवने हँसकर कहा—'देखो ! कोई भी व्यक्ति न तो स्वयं ज्ञानी होता न मूर्ख होता। वह तो राम ही हैं कि जब जिसे जैसा बनाना चाहते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही बन बैठता है' ॥ १२४ (क) ॥

(याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं—) 'हे भरद्वाज मुनि ! अब मैं रामके गुणोंकी कथा सुनाता हूँ। आप आदरपूर्वक सुनते चलिए।'

तुलसीदास कहते हैं कि मान (अपनेको बहुत बड़ा समझ बैठना) और मद (अभिमान) छोड़कर भवबन्धनका नाश करनेवाले (सांसारिक झंझटें दूर कर देनेवाले) रामकी शरणमें पहुँच जाओ (रामका नाम जा भजो) ॥ १२४ (ख) ॥

(नारदके मोहकी कथा यह है कि) 'हिमालय पर्वतमें एक बड़ी पवित्र खोह थी, जिसके पास ही गंगाकी निर्मल धारा बह रही थी। यह सुन्दर और पवित्र आश्रम (स्थान) देखते ही नारदको बहुत जँच गया। (१) वहाँके पर्वत, नदी और सुहावने वन देखकर नारदको लक्ष्मीके पति भगवान्‌के चरणोंमें इतना प्रेम उमड़ पड़ा कि भगवान्‌का स्मरण करते ही नारद मुनिको जो शाप मिला हुआ था (कि ढाई घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकते), उस शापकी गति रुक गई (शापका प्रभाव समाप्त हो गया)। उनका मन स्वभावतः निर्मल था ही, इसलिये झट उनकी समाधि लग गई (वे भगवानके ध्यानमें लीन हो गए)। (२) नारदकी गति (तपस्या) देखकर

१४६२ हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना। यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः ॥
१४६३ तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः। तपोर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ॥
१४६४ तां दृष्ट्वा मुनि शार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः। बद्ध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ।
१४६५ चक्रे मुनिः समाधिं तमहं ब्रह्मेति यत्र ह। विज्ञानं भवति ब्रह्म साक्षात्कारकरं द्विजाः ॥शिवपु०

मुनि - गति देखि सुरेस डेराना। कामहिं बोलि कीन्ह सनमाना।
सहित - सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जल-चर-केतू। (३)
सुनासीर मन-महुँ अति त्रासा। चहत देव-रिषि मम पुर बासा।
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक-इव सबहिं डेराहीं। (४)

१४७० दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृग-राज।
छीन लेइ जनि जानि जड़, तिमि सुर-पतिहि न लाज॥ १२५॥

तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ।
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुञ्जहिं भृंगा। (१)
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम - कृसानु बढ़ावनिहारी।
रंभादिक सुर - नारि नवीना। सकल असम-सर-कला-प्रबीना। (२)
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु बिधि क्रीडहिं पानि-पतंगा।
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना। (३)

इन्द्र घबरा उठे (कि कहीं ये मेरा आसन न छीन बैठें अतः) उसने कामदेवको बुलाकर उसकी बड़ी आवभगत की और कहा —मेरा एक काम आ पड़ा है, उसे पूरा कर डालो। तुम अपने सहायकों (वसन्त, अप्सरा आदि)-को साथ लेकर (नारदकी तपस्या भंग करनेके लिये) चले जाओ। (फिर क्या था !) मकरध्वज (जिसके झंडेपर मछली बनी है वह) कामदेव बहुत प्रसन्न होकर उधर चल दिया। (३) इन्द्रके मनमें यह डर समा चला था कि देवर्षि नारद (तपस्या करके) कहीं मेरी पुरी (अमरावती) हथिया लेनेके फेरमें न हों। जैसे दुष्ट कौवा सदा सबसे चौकन्ना (भयभीत) हुआ रहता है वैसे ही संसारमें कामी और लोभी लोग भी सबसे सशंक हुए रहते हैं (कि न जाने कब कोई क्या हानि पहुँचा बैठे)। (४) जैसे मूर्ख कुत्ता सिंहको देखकर (कहींसे लाई हुई अपने मुँहकी) सूखी हड्डी उठाकर इस डरसे भाग खड़ा होता है कि कहीं यह सिंह हड्डी न छीन ले वैसे ही इन्द्रको भी यह सोचनेमें लाज न आई कि नारद कहीं मेरा राज्य न छीन बैठें॥ १२५॥ कामदेव जब उस आश्रममें (स्थानपर) गया, तब उसने अपनी ऐसी माया फैलाई कि वहाँ चारों ओर वसन्त ही वसन्त छा गया। अनेक प्रकारके वृक्षोंपर रंग-विरंगे फूल खिल उठे। कोयलें कूक उठीं और भौंरे गूँजने लगे। (१) (सबके मनमें) कामकी अग्नि भड़कानेवाला तीन प्रकारका (शीतल, मन्द, सुगन्ध) सुहावना पवन बह चला। इधर काम (जगानेकी) कलामें प्रवीण रम्भा आदि नवेली अप्सराएँ (२) अनेक प्रकारकी तानें भरती हुईं तरंगमें गाती हुई झूम उठीं उधर सैकड़ों जल-पक्षी अनेक प्रकारकी किलोलें कर उठे। अपने ऐसे सहायक देखकर कामदेवका जी

१४६६ इत्थं तपति वै तस्मिन्नारदे मुनिसत्तमे। चकंपेऽथ शुनासीरो मनः संतापविह्वलः॥
सस्मार स स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः। आजगाम द्रुतं कामः समधीर्महिषीसुतः॥
अथागतं स्मरं दृष्ट्वा संबोध्य सुरराट् प्रभुः। उवाच तं प्रपश्याशुस्वार्थे कुटिलशेमुषिः॥
१४६७ मित्रवर्य महावीर सर्वदा हितकारक। शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना॥
१४६८ याचेन्न विविधो राज्यं सममेति विशंकितः।
१४७०-७१ शुष्कमस्थिं गृहीत्वा श्वा सिंहं दृष्ट्वा पलायितः। विचार्य्येत्यं स्वमनसि किमिदं न ग्रहीष्यति॥
इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामः समधुप्रियः। जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वं चकार ह॥
१४७२ रचयामास तत्राशु स्वकलाः सकला अपि। वसन्तोऽपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात्॥शिवपु०

काम - कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी।
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू। (४)

१४८० दो०—सहित-सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि-चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥ १२६॥

भयउ न नारद - मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा।
नाइ चरन सिर, आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित - सहाई। (१)
मुनि - सुसीलता आपनि करनी। सुरपति - सभा जाइ सब बरनी।
सुनि सबके मन अचरज आवा। मुनिहि प्रसंसि, हरिहि सिर नावा। (२)
तब नारद गवने सिव - पाहीं। जिता काम, अहमिति मन-माहीं।
मार - चरित संकरहिं सुहाए। अति प्रिय जानि, महेस सिखाए। (३)
बार बार बिनवौं मुनि तोहीं। जिमि यह कथा सुनायहु मोहीं।

खिल उठा। तब उसने और भी अनेक प्रकारके जाल फैलाने प्रारम्भ किए। (३) पर कामदेवकी कोई भी कला नारदपर चल नहीं पा रही थी। तब तो पापी कामदेव अपने ही भयसे काँप उठा (कि इस फेरमें कहीं मैं ही अपने प्राण न गँवाँ बैठूँ)। (बताइए कि) जिसके बहुत बड़े रक्षक स्वयं लक्ष्मीके पति भगवान् हों उसकी मर्यादा भला कोई क्या नष्ट कर पा सकता है? (४) तब अपने सहायकोंको लिए-दिए कामदेवने बहुत डरते-डरते और अपने मनमें हार मानकर गिड़गिड़ाते हुए नारद मुनिके चरण जा पकड़े॥ १२६॥ (पर) नारदके मनमें तनिक भी क्रोध नहीं आया। उलटे, बड़ी प्रेमभरी बातें कह-कहकर (नारदने) उसे (कामको) बड़ी सान्त्वना दी। तब नारदके चरणोंमें सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकोंके साथ वहाँसे उलटे पैरों लौट गया। (१) इन्द्रकी सभामें जाकर उसने नारदके शील-युक्त (सज्जनोचित) व्यवहारका (कि वे इन्द्रका राज्य नहीं चाहते) तथा अपनी सारी करनीका वर्णन विस्तारसे सुना डाला। वह वर्णन जिसने सुना उसके ही मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और सबने नारदकी प्रशंसा करते हुए भगवान्को (मन ही मन) प्रणाम कर लिया। (२)

नारद भी वहाँसे उठे तो झट शिवके पास जा पहुँचे। अब उनके मनमें यह अहंकार जाग उठा कि (मुझे कौन पा सकता है?) मैंने तो कामदेवको हरा डाला। उन्होंने कामदेवकी सारी करनी शिवको सुना डाली। इसपर महादेवने उन्हें अपना अत्यन्त प्रिय पात्र मानकर समझाते हुए कहा—(३) 'देखो मुनि! (तुमने मुझसे जो कहा सो कहा पर) मैं तुमसे बार-बार प्रेमपूर्ण अनुरोध करता हूँ कि जिस ढङ्गसे तुमने मुझे यह कथा सुनाई है वैसे भगवान् विष्णुको कहीं न सुना

१४७८ न बभूव मुनेश्चेतो विकृतं मुनिसत्तमाः। भ्रष्टो बभूव तद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह॥
१४८२-८३ इति शंभूक्तितः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा। नारदे स जगामाशु देवमिन्द्रं समीपतः॥
१४८४-८५ आचख्यौ सर्ववृत्तान्तं प्रभावं च मुनेः स्मरः। विस्मितोऽभूत्सुराधीशः प्रशशंसाथ नारदम्॥
१४८६-८७ कामाजयं निजं मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वरः। कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं मुदा॥
रुद्रं नत्वाऽब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तं गर्ववान् मुनिः। तच्छ्रुत्वा शंकरः प्राह नारदं भक्तवत्सलः॥शिवपु०

तिमि जनि हरिहिं सुनाएहु कवहूँ। चलेहु प्रसंग दुराएहु तवहूँ। (४)
१४९० दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहिं सोहान।
भरद्वाज ! कौतुक सुनहु, हरि - इच्छा वलवान ॥ १२७ ॥
राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई।
संभु-वचन मुनि - मन नहिं भाए। तव विरंचि - के लोक सिधाए। (१)
एक वार करतल वर वीना। गावत हरिगुन - गान प्रवीना।
छीर - सिन्धु गवने मुनि - नाथा। जहँ वस श्रीनिवास श्रुति-माथा। (२)
हरषि मिलेउ उठि रमा - निकेता। वैठे आसन रिषिहि समेता।
वोले विहँसि चराचर - राया। वहुते दिनन्ह कीन्हि मुनि दाया। (३)
काम - चरित नारद तव भाखे। जद्यपि प्रथम वरजि सिव राखे।

वैठना और यदि वहाँ इसकी चर्चा चलने भी लगे तो भी चुप मार जाना (कुछ कहना-सुनना मत)।'

यद्यपि शिवने तो नारदकी ही भलाईके लिये यह शिक्षा दी थी पर नारदको यह बात कुछ अच्छी नहीं लगी (क्योंकि नारदने समझा कि शिव मेरे इस महत्त्वसे ईर्ष्या करने लगे हैं)। (याज्ञवल्क्य कहते हैं–) 'लीजिए भरद्वाज ! अव आप (आगेकी) लीला सुनिए। (आप जानते ही हैं कि) भगवान्की इच्छा वड़ी वलवती होती है ॥ १२७ ॥ राम जो करना चाहते हैं वही होकर रहता है। ऐसा कोई माईका लाल नहीं है जो उसमें तनिक-सा भी हेरफेर कर सके। शिवका उपदेश जव नारदको अच्छा न लगा, तव वे वहाँसे उठकर ब्रह्मलोक चल दिए। (१)

एक वार संगीत-कलामें निपुण मुनिवर नारद अपने हाथमें अपनी (महती नामकी) वीणा वजाते और भगवान्के गुण गाते हुए क्षीरसागर जा पहुँचे, जहाँ वेदोंके अधिष्ठाता और लक्ष्मीके पति भगवान् (विष्णु) सदा निवास करते रहते हैं। (२) रमाके पति भगवान्ने उठकर नारदको गले लगा लिया और ऋषिको साथ लेकर अपने आसनपर जा वैठे। तव चर और अचरके स्वामी भगवान् हँसकर वोले—'कहिए मुनि ! आज तो आपने वहुत दिनोंपर (यहाँ आनेकी) कृपा की'। (३) यद्यपि शिवने उन्हें पहले ही सावधान कर दिया था, फिर भी नारदका मन कहाँ माननेवाला था। उन्होंने झट कामदेवकी सारी करनी भगवान्को ज्योंकी त्यों कह सुनाई। रामकी

१४८८-८९ हे तात नारद प्राज्ञ धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः। वाच्यमेवं न कुत्रापि हरेरग्रे विशेषतः॥
पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान्।
१४९०-९१ शास्तिस्मेत्थं च बहुशो रुद्रः सूतिकरः प्रभुः। नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः॥
१४९२ प्रवला भाविनी कर्मगतिर्ज्ञेया विचक्षणैः। न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शांकरी॥
१४९३ ततः स मुनिवर्यो हि ब्रह्मलोकं जगाम ह।
१४९५ नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः।
१४९६ आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा नारदं विष्णुरादरात्। उत्थित्वाऽग्रे गतोऽरं तं शिश्लेष ज्ञातहेतुकः॥
१४९७ स्वासनं समुपावेश्य मुनिं प्राह हरिर्वचः। धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तीर्थोऽहं तु तवागमात्॥
१४९८ विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः। स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहितः॥—शिवपु०

अति प्रचंड रघुपति-कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया। (४)
१५०० दो०—रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन-तें मिटहिं, मोह, मार, मद, मान॥ १२८॥
सुनु मुनि! मोह होइ मन ताके। ज्ञान-बिराग हृदय नहिं जाके।
ब्रह्मचरज-ब्रत-रत मति-धीरा। तुम्हहिं कि करै मनोभव-पीरा। (१)
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना।
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकरेउ गर्ब-तरु भारी। (२)
बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक-हितकारी।
मुनि-कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करब मैं सोई। (३)
तब नारद हरिपद सिर नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई।
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी। (४)

माया इतनी अधिक प्रबल है कि संसारमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं जनमा है जिसे वह (भगवान्‌की माया) मोहित न कर डाले (चक्करमें न डाल दे)। (४) भगवान्‌ने बहुत रूखा-सा मुँह बनाकर बड़े कोमल शब्दोंमें (नारदको बनाते हुए व्यंग-भरे वचनोंमें) कहा—'मुनिराज (आपके क्या कहने!) आपका स्मरण करके तो लोगोंके मोह, काम, मद और अभिमान-तक सब छूट बिखरते हैं॥ १२८॥ देखो मुनिराज! मोह तो उसके मनमें हुआ करता है जिसके हृदयमें ज्ञान और वैराग्य न हो। फिर आप तो पक्के ब्रह्मचारी और अत्यन्त धीर हैं। भला आपको काम क्या सता पा सकता है?' (१)

नारदने बड़े अभिमानके साथ कहा—'भगवन्! यह सब आपकी कृपा है।' सदा करुणासे भरे रहनेवाले भगवान्‌ने मनमें समझ लिया कि नारदके मनमें अभिमानके विशाल वृक्षका अँकुआ (अंकुर) आ जमा है, (२) इसे शीघ्रसे शीघ्र उखाड़ फेंकना ही होगा क्योंकि सेवकों (भक्तों)-का हित करना तो हमारा प्रण (कर्त्तव्य) ही है। मुझे अवश्य कोई ऐसा उपाय रचना ही पड़ेगा कि उससे मुनिका कल्याण हो। मेरे लिये यह खेलका खेल हो जायगा।' (३)

'जब भगवान्‌के चरणोंमें सिर नवाकर नारद वहाँसे चले तो उनके हृदयका अहंकार और भी अधिक बढ़ चला था (अपने सामने किसीको कुछ समझ नहीं रहे थे। फिर क्या था!) लक्ष्मीके पति भगवान्‌ने (तत्काल) अपनी माया फेर चलाई। (मायाने जो कुछ किया) उसकी करनी भी सुनती चलो।' (४)

१४९९ प्रबला रघुनाथस्य माया सर्वविमोहनी।
१५००-२ विष्णुउवाच—धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तपोनिधि रुदारधीः।
भक्तिस्त्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने। विकारास्तस्य सद्यो वै भवन्त्यखिलदुःखदाः॥
१५०३ नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवान् सदा। कथं कामविकारी स्याज्जन्मनाविकृतस्सुधीः॥
१५०४ नारद उवाच—किं प्रभावः स्मरः स्वामिन् कृपया यद्यस्ति ते मयि।
१५०५-७ मुनिराजस्य हृदये जातं गर्वद्रुमांकुरम्। ज्ञात्वा चोत्पाटनोपायं कृतवान् करुणानिधिः॥
१५०८ इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ यादृच्छिको मुनिः।
१५०९ मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन् हि नारदे। शिवेच्छया चकाराशु मायां मायाविशारदः॥शिवपु०

१५१० दो०—बिरचेउ मग-महुँ नगर तेहि , सत जोजन बिस्तार ।
श्री-निवास-पुर-तें अधिक , रचना बिबिध प्रकार ।। १२९ ।।
बसहिं नगर सुंदर नर - नारी । जनु बहु मनसिज-रति तनु-धारी ।
तेहि पुर बसै सीलनिधि राजा । अगनित हय-गय-सेन-समाजा । (१)
सत सुरेस - सम बिभव - बिलासा । रूप - तेज - बल - नीति - निवासा ।
बिस्वमोहिनी तासु कुमारी । श्री बिमोह जिसु रूप निहारी । (२)
सोइ हरि-माया सब - गुन - खानी । सोभा तासु कि जाइ बखानी ।
करै स्वयंबर सो नृपबाला । आए तहँ अगनित महिपाला । (३)
मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ । पुरबासिन सब पूछत भयऊ ।
सुनि सब चरित भूप - गृह आए । करि पूजा नृप, मुनि बैठाए । (४)

'जिधरसे होकर नारद चले जा रहे थे उसी मार्गमें मायाने सौ कोसका (बहुत लम्बा-चौड़ा) एक नगर रच खड़ा किया जो ऐसी बनावट और सजावटके साथ रचा हुआ था कि वैकुण्ठपुरी भी उसके आगे कुछ नहीं थी ।। १२९ ।। उस नगरमें ऐसे सुन्दर-सुन्दर और ऐसी छबीली-छबीली स्त्रियाँ बसी हुई थीं मानो कामदेव और रति ही बहुतसे मनुष्य-शरीर धारण कर-करके वहाँ आ बसी हों। उस नगरमें शीलनिधि नामका राजा राज्य करता था, जिसके यहाँ इतने घोड़े, हाथी और सेनाएँ थीं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी। (१) उसका वैभव और विलास (ठाट-बाट) सैकड़ों इन्द्रोंके वैभवके समान भड़कीला था। रूप, तेज और बलमें भी वह किसीसे कम न था। उसकी एक विश्वमोहिनी नामकी कन्या थी जो इतनी सुन्दरी थी कि लक्ष्मी भी उसे देखें तो उसपर रीझ मरें (उसपर मोहित हो जायँ)। (२) वह तो सब गुणोंसे भरी भगवान्की माया ही थी, इसलिये उसकी शोभाका वर्णन किया भी जाय तो क्या जाय। उस समय वहाँकी राजकन्याका स्वयंवर होनेवाला था, इसलिये वहाँ (दूर-दूरसे) अगणित राजा आए बैठे थे। (३) कुतूहलके कारण नारद भी उस नगरमें जा पहुँचे और नगरवासियोंसे वहाँका सारा वृत्तान्त पूछने लगे (कि यहाँ इतनी चहल-पहल क्यों दिखाई दे रही है ?)। नारदने सारा समाचार सुना तो बढ़कर राजभवनमें जा पहुँचे। राजाने उन्हें देखा तो मुनिकी (भली-भाँति) पूजा की और उन्हें (आसनपर ले जा) बैठाया। (४)

१५१०-११ मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् । शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ।।
स्वलोकादधिकं रम्यं नानावस्तुविराजितम् ।
१५१२ नरनारीविहाराढ्यं चतुर्वर्णाकुलं परम् ।
१५१३-१४ तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः ।
१५१५-१६ तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी । जगन्मोहिन्यभिख्याता त्रैलोक्येऽप्यति सुन्दरी ।।
१५१७ सुता स्वयंवरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः । चतुर्दिग्भ्यः समायातैः संयुतं नृपनन्दनैः ।।
एतादृशं पुरं दृष्ट्वा मोहं प्राप्तोऽथ नारदः ।
१५१८-१९ कौतुकी तन्नृपद्वारं जगाम मदनैधितः । आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः ।।
उपवेश्यार्हयांचक्रे रत्नसिंहासने वरे । —शिवपुराण

१५२० दो०—आनि दिखाई नारदहि , भूपति राजकुमारि।
कहहु ! नाथ गुन दोष सब , ऐहि - के हृदय विचारि ।। १३० ।।
देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार - लगि रहे निहारी।
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरष, नहिँ प्रगट बखाने। (१)
जो ऐहि बरै, अमर सोइ होई। समर-भूमि तेहि जीत न कोई।
सेवहिँ सकल चराचर ताही। बरै सीलनिधि - कन्या जाही। (२)
लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप - सन भाखे।
सुता सुलच्छन, कहि नृप - पाहीँ। नारद चले, सोच मन - माहीँ। (३)
करौँ जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी।
जप-तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि ! मिलै कवन बिधि बाला। (४)
१५३० दो०—ऐहि अवसर चाहिय परम , सोभा, रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुँअरि , तब मेलइ जयमाल ।। १३१ ।।

राजाने (तत्काल) राजकुमारीको मुनिके आगे ला खड़ा किया (और निवेदन किया—) 'नाथ ! आप भली-भाँति विचारकर इस कन्याके सारे गुण-दोष ठीक-ठीक बता डालिए' ।। १३० ।। नारद तो उसे देखते ही उसके रूपपर ऐसे लट्टू हुए कि अपना सारा वैराग्य वहीँ भूल बैठे और बड़ी देर-तक टकटकी बाँधे उसकी ओर देखते रह गए। फिर जब नारदने उसके लक्षण देखे तब तो वे अपनी सारी रही सही सुधबुध भी भूल गए। (उसके लक्षण देखकर तो) उनका हृदय हर्षसे बाँसों उछला पड़ रहा था, पर उन्होंने कन्याके लक्षण खोलकर किसीको नहीं बताए। (१) (उसके लक्षणोंपर विचार करके वे मन ही मन सोचने लगे—) 'इस कन्यासे जिसका भी विवाह होगा वह अमर हो जायगा और युद्धमें उसे कोई जीत न पावेगा। राजा शीलनिधिकी यह कन्या जिसे पतिके रूपमें स्वीकार करेगी, उसकी सेवा संसारके सभी चर और अचर प्राणी आकर करेंगे।' (२) ये सब लक्षण विचारकर तो नारदने अपने मनमें ही छिपा रक्खे और कुछ इधर-उधरकी बातें बनाकर राजाको केवल यह बताकर वहाँसे वे उठ चले कि कन्या सुलक्षणी है। अब उनके मनमें यही चिन्ता उठ खड़ी हुई कि (३) जाकर कोई ऐसा उपाय ढूँढ़ा जाय जिससे यह कुमारी मुझे ही पतिके रूपमें चुन ले। (वे सोचने लगे कि) इतनी शीघ्रतामें इस समय जप-तप तो कुछ हो नहीं पावेगा तब 'हे विधाता ! यह कन्या किस उपायसे मेरे हाथ लग पावेगी। (४) अब इस समय मुझे केवल ऐसी अनुपम शोभा और ऐसा निराला रूप मिल जाना चाहिए कि उसे देखते ही राजकुमारी मुझपर रीझ उठे और (मेरे गलेमें) जयमाला ला डाले ।। १३१ ।। तो चलूँ भगवान्‌से ही क्यों न उनकी सुन्दरता माँग लूँ !

१५२०-२१ अथ राजा स्वतनयां नामतः श्रीमतीं वराम्। समानीय नारदस्य पादयोः समपातयत् ।।
अस्या भाग्यं वद मुने सर्वं जातकमादरात्।
१५२२-२५ सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः। अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः।।
१५२६-२७ सुतेयं तव भूपाल सर्वलक्षणलक्षिता। इत्युक्त्वा नृपमामंत्र्य ययौ याहच्छिको मुनिः।।
१५२८-२९ चित्ते विचिन्त्य स मुनिराप्नुयां कथमेनकाम्। स्वयंवरे नृपालानामेकं मां वृणुयात्कथम् ।।
१५३०-३१ सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा। तद्‌दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा भविष्यति न संशयः।।शिवपु०

हरि - सन माँगौं सुन्दरताई । होइहि जात गहरु अति भाई ।
मोरे हित हरि - सम नहिं कोऊ । ऐहि अवसर सहाय सोइ होऊ । (१)
वहु बिधि विनय कीन्हि तेहि काला । प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ।
प्रभु बिलोकि मुनि - नयन जुड़ाने । होइहि काज, हिये हरषाने । (२)
अति आरति कहि कथा सुनाई । करहु कृपा हरि ! होहु सहाई ।
आपन रूप देहु प्रभु ! मोही । आन भाँति नहिं पावौं ओही । (३)
जेहि विधि नाथ ! होइ हित मोरा । करहु सो वेगि, दास मैं तोरा ।
निज माया - वल देखि विसाला । हिय हँसि बोले दीनदयाला । (४)

१५४० दो०—जेहि विधि होइहि परम हित , नारद ! सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करव न आन कछु , वचन न मृषा हमार ।। १३२ ।।

कुपथ माँग रुज-व्याकुल रोगी । वैद न देइ, सुनहु मुनि जोगी ।

पर भाई ! उनके पास-तक पहुँचते-पहुँचते तो वहुत देर हो जायगी । इधर भगवान्‌के समान कोई मेरा हित करनेवाला भी नहीं दिखाई दे रहा है । अब इस समय यदि कोई सहायक हो सकता है तो वे ही मेरे सहायक हो सकते हैं ।' (१) (यह सोचकर उसी समय ज्यों ही) उन्होंने मन ही मन अनेक प्रकारसे भगवानकी स्तुति की, त्यों ही देखते क्या हैं कि खेल खेलनेवाले कृपालु भगवान् वहीं सामने आए खड़े हैं । अपने प्रभुको सामने देखते ही नारदके नेत्र शीतल हो गए (खिल उठे) । वे हर्षसे फूले नहीं समाए कि अब तो हमारा काम वना ही समझो । (२) नारदने गिड़गिड़ाते हुए पहले तो सारी कथा उन्हें कह सुनाई, फिर बोले—'अब कृपा करके आप मेरी थोड़ी सी सहायता कर दीजिए और प्रभो ! मुझे आप अपना हरि (हरि=विष्णु; हरि = वानर)-वाला रूप दीजिए क्योंकि और किसी उपायसे वह कन्या हाथ लगती नहीं दिखाई देती । (३) नाथ ! मैं आपका दास हूँ इसलिये जिस प्रकार मेरा हित हो वही आप झटपट कर डालिए ।'

(नारदपर अपनी मायाका इतना अधिक प्रभाव देखकर दीनदयालु भगवान् मन ही मन हँसते हुए वोले––(४) 'देखो नारद ! हम वही करेंगे, जिससे तुम्हारा परम हित हो । (तुम जानते हो कि) जो कुछ हमारे मुँहसे निकल जाता है वह कभी असत्य नहीं होता ।। १२३ ।। देखो योगी मुनि ! यदि कोई रोगमें पड़ा हुआ रोगी कुपथ्य (गड़वड़ खाने-पीनेको) माँग वैठे तो वैद्य उसे वह कभी नहीं देता, उसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा कल्याण करनेकी बात मनमें ठान ली है ।'

१५३२-३४ विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः । विष्णुलोकं जगामाशु नारदः स्मरविह्वलः ।।
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।।
१५३५-३६ त्वदीयो भूपतिः शीलनिधिस्स वृषतत्परः । तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी ।।
१५३७ यदि दास्यति रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम् । त्वद्रूपं सा विना कंठे जयमालां न धास्यति ।।
१५३८ स्वरूपं देहि मे नाथ सेवकोऽहं प्रियस्तव । वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा ।।
१५३९ वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसूदनः । शांकरीं प्रभुतां वुद्ध्वा प्रत्युवाच दयापरः ।।
१५४०-४१ स्वेष्टदेशं मुने गच्छ करिष्यामि हितं तव ।।
१५४२ भिषग्वरो यथात्तंस्य यतः प्रियतरोऽसि मे ।। —शिवपु०

ऐहि बिधि हित तुम्हार मैं ठएऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भएऊ ॥ (१)
माया - बिवस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरि-गिरा निगूढ़ा।
गवने तुरत तहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंवर - भूमि बनाई। (२)
निज-निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित-समाजा।
मुनि - मन हरष, रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे। (३)
मुनि - हित - कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप, न जाइ बखाना।
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहि सिर नावा। (४)
१५५० दो०—रहे तहाँ दुइ रुद्र-गण, ते जानहिं सब भेउ।
बिप्र - बेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ ॥ १३३ ॥
जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदय रूप - अहमिति अधिकाई।
तहँ बैठे महेस - गन दोऊ। बिप्र - बेष, गति लखै न कोऊ। (१)

यह कहते ही प्रभु अन्तर्धान हो गए। (१) भगवान्‌की मायाके फेरमें मुनिकी बुद्धि ऐसी चकरा गई थी कि वे भगवान्‌की इस दुहरे अर्थोंवाली व्यंग्य वाणीका अर्थ ही नहीं ताड़ पाए। ऋषिराज नारद चलकर तुरन्त वहाँ जा पहुँचे, जहाँ स्वयंवरका मण्डप बना हुआ था। (२) बड़ी सजधजके साथ बहुतसे राजा अपने-अपने समाजके साथ अपने-अपने आसनों (स्थानों) पर डटे बैठे थे। मुनि भी अपने मनमें यही समझ-समझकर फूले नहीं समा रहे थे कि मेरा रूप तो इतना सुन्दर है कि मुझे छोड़कर यह कन्या भूलकर भी किसी दूसरेके गलेमें जयमाला न डालेगी। (३) कृपानिधान भगवान्‌ने मुनिका हित करने (उनका अभिमान मिटाने)-के लिये ही उन्हें हरि (= वानर)-का रूप देकर ऐसा कुरूप बना दिया था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पर यह बात वहाँ कोई जान न पाया। सब लोग उन्हें नारद जानकर ही उन्हें प्रणाम किए जा रहे थे (४)

वहींपर शिवके दो गण भी आए बैठे थे जो यह सारा भेद भली-भाँति भाँप चुके थे। इसलिये वे ब्राह्मणका रूप धरकर यह सारी लीला बैठे देखे जा रहे थे। वे दोनों भी बड़े ही कौतुकी (खेलाड़ी थे जो नारदके मूर्ख बनाए जानेका आनन्द ले रहे) थे ॥ १३३ ॥ जिस समाजमें नारद अपने घमण्डमें फूले बैठे थे, वहींपर शिवके ये दोनों गण भी पहुँचकर जा बैठे। वे ब्राह्मणके वेषमें थे इसलिये उनकी चाल-ढाल कोई ताड़ भी न पाया। (१) वे नारदको सुना-सुनाकर इस प्रकार ठिठोली किए

१५४३ इत्युक्त्वा मुनये तस्मै तिरोधानं जगाम सः ॥
१५४४ एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूपं प्राप्य वै हरेः। मेने कृतार्थमात्मानं तद्यत्नं न बुबोध सः ॥
१५४५ अथ तत्र गतः शीघ्रं नारदः मुनिसत्तमः। चक्रे स्वयंवरं यत्र राजपुत्रैः समाकुलम् ॥
५५४६ स्वयंवरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता। शुशुभेतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभापरा ॥
१५४७ स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा। मां वरिष्यति नान्यं सा विष्णुरूपधरं ध्रुवम् ॥
१४४८ नारदस्य हितार्थं हि ददौ विष्णुर्मुखं हरेः ॥
१५४९ पूर्वरूपं मुनिं सर्वे ददृशुस्तत्र मानवाः। तद्भेदं बुबुधुस्तेन राजपुत्रादयो द्विजाः ॥
१५५०-५१ तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद् रक्षणार्थं समागतौ। विप्ररूपधरौ गूढौ तद्भेदं जज्ञतुः परम् ॥
१५५२-५३ मूढं मत्वा मुनिं तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ ॥ —शिवपु०

करहिँ कूट नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुंदरताई।
रीझिहि राजकुँअरि छबि देखी। इनहिँ बरिहि हरि जानि बिसेषी। (२)
मुनिहि मोह, मन हाथ पराए। हँसहिँ संभु-गन अति सचुपाए।
जदपि सुनहिँ मुनि अटपटि बानी। समुझि न परै बुद्धि भ्रम-सानी। (३)
काहु न लख सो चरित बिसेखा। सो सरूप नृप - कन्या देखा।
मर्कट - बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही। (४)
१५६० दो०—सखी संग लै कुँअरि तब, चलि जनु राज-मराल।
देखत फिरै महीप सब, कर - सरोज जयमाल ॥ १३४ ॥
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली।
पुनि-पुनि मुनि उकसहिँ अकुलाहीँ। देखि दसा हर-गन मुसुकाहीँ। (१)

जा रहे थे—'वाह ! भगवान्ने क्या अच्छी 'सुन्दरता' इन्हें दे डाली है ! राजकुमारी इनकी झलक भी पा जाय तो बिना रीझे न रहे और यदि किसीके गलेमें जयमाला डाली भी तो इन्हें साक्षात् हरि (वानर) जानकर चुनकर इनके गलेमें जयमाल ला डालेगी।' (२) मोह (अज्ञान)-के कारण मुनिका मन तो पराए (भगवान्)-के हाथका (खिलौना) बना नाच रहा था। इधर शिवके गण इन्हें देख-देखकर मन ही मन मुसकाए पड़ रहे थे। यद्यपि मुनि इनकी अटपटी (व्यंग्यभरी) वाणी सुन तो रहे थे पर उनकी बुद्धि ऐसे भ्रममें पड़ी चक्कर खाए जा रही थी कि वे उस (हरि)-का कुछ भी अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। (३) उनका यह विशेष (वानरका) रूप उस सभामें बैठा हुआ कोई दूसरा तो नहीं जान पाया, पर राजकन्याको (नारदका) वही (वानरका) रूप दिखाई पड़ रहा था। उनका वन्दरका-सा रूप और भयंकर शरीर देखकर ही कन्याको बड़ा क्रोध आ रहा था (कि सभामें यह वन्दर कहाँसे पकड़वा मँगा बैठाया)। (४) वह राजकुमारी अपनी सखियोंके साथ इस प्रकार चली जा रही थी मानो कोई राजहंसिनी बढ़ी चली जा रही हो। वह हाथमें जयमाला लिए हुए एक-एक राजाको देखती हुई चारों ओर घूमती जा रही थी ॥१३४॥ जिस ओर नारद अपने मनमें फूले बैठे थे, उस ओर तो उस (राजकन्याने) भूलकर भी आँखें न उठाईं। इधर नारद बार-बार उचक-उचककर व्याकुल हुए जा रहे थे। उनकी यह दशा देख-देखकर शिवके गण मन ही मन बहुत मुसकराए पड़ रहे थे। (१) (इतनेमें सब देखते क्या हैं कि) कृपालु भगवान् ही वहाँ राजाका

१५५४ कुरुतस्तत्प्रहासं वै भाषमाणौ परस्परम् ॥
१५५५ इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः ॥
१५५६ इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः ॥
१५५७ न शुश्राव यथार्थन्तुत द्वाक्यं स्मरविह्वलः ॥
एतस्मिन्नन्तरे भूपकन्या चान्तःपुरात्तु सा। स्त्रीभिः समावृता तत्राऽऽजगाम वरवर्णिनी ॥
बभ्राम सा सभां सर्वां मालामादाय सुव्रता। वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं नृपात्मजा ॥
वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्ट्वा चुकोप सा।
१५६२-६३ दृष्टिं निवार्य्य च ततः प्रस्थिता प्रीतिमानसा। —शिवपु०

धरि नृप-तनु तहँ गयउ कृपाला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला।
दुलहिनि लै गे लच्छि-निवासा। नृप-समाज सब भएउ निरासा। (२)
मुनि अति बिकल मोह-मति नाँठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।
तब हर-गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई। (३)
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी।
बेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहिं सराप दीन्ह अति गाढ़ा। (४)

१५७१ दो०—होहु निसाचर जाइ तुम, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥ १३५॥

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा।
फरकत अधर कोप मन-माहीं। सपदि चले कमला-पति पाहीं। (१)

वेष बनाए आ पहुँचे हैं। देखते-देखते राजकुमारीने हर्षित होकर उनके गलेमें जयमाला उठा पहनाई और वे लक्ष्मीके पति विष्णु उस दुलहिनको साथ लिए हुए वहाँसे चलते बने। (यह देखकर तो वहाँका) राजाओंका सारा समाज निराश हो उठा। (२) मोह (अज्ञान)-के कारण मुनिकी बुद्धि तो भ्रष्ट हो ही गई थी, इसलिये वे इतने अधिक व्याकुल हो उठे मानो उनकी गाँठसे मणि छूट गिरा हो। तब तो शिवके गण और भी मुसकरा उठे और बोले—'श्रीमान्! जाकर दर्पणमें अपना मुँह तो तनिक देख आइए।' (३) यह कहकर वे दोनों तो वहाँसे डरके मारे भाग खड़े हुए (कि कहीं नारद बिगड़ न खड़े हों और शाप न दे बैठें)। नारद मुनिने जाकर पानीमें अपना मुँह जो देखा तो देखते ही क्रोधसे भभक उठे और (उसी क्रोधके आवेगमें) उन्होंने आव देखा न ताव, झट शिवके गणोंको बहुत कठोर शाप दे डाला कि—(४) 'जाओ! तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने जो हमारी इतनी हँसी उड़ाई उसका जाकर फल भोगो। अब फिर उड़ाना किसी मुनिकी हँसी!'॥ १३५॥ जब फिर (दूसरी बार) उन्होंने जलमें अपना मुँह देखा तो उन्हें अपना (नारद-रूप) दिखाई देने लगा। पर इतनेसे भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उनके ओठ फड़क उठे और मनमें बड़ा क्रोध भड़क उठा। वे तुरन्त कमला (लक्ष्मी)-के पति

१५६४ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः। अर्पयामास तत्कंठे तां मालां वरवर्णिनी॥
१५६५ तामादाय ततो विष्णुर्राजरूपधरः प्रभुः। अन्तर्धानमगात्सद्यः स्वस्थानं प्रययौ किल॥
सर्वे राजकुमाराश्च निराशाः श्रीमतीं प्रति।
१५६६ मुनिस्तु विह्वलोऽतीव बभूव मदनातुरः॥
१५६७ तदा तावुचतुस्सद्यो नारदं स्मरविह्वलम्। तल्लिप्सुः स्वमुखं पश्य वानरस्येव गर्हितम्॥
१५६८ मुखं ददर्श मुकुरे शिवमायाविमोहितः। इत्याकर्ण्य तयोर्वाक्यं नारदो विस्मितोऽभवत्॥
१५६९ स्वमुखं वानरस्येव दृष्ट्वा चुक्रोध सत्वरम्। शापं ददौ तयोस्तत्र गणयोर्मोहितो मुनिः॥
१५७०-७१ युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मणस्य हि। भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती॥
१५७२ विमोहितो मुनिर्दत्वा तयोः शापं यथोचितम्। जले मुखं निरीक्ष्याथ स्वरूपं गिरिशेच्छया॥
शिवेच्छया न प्रबुद्धः स्मृत्वा हरिकृतच्छलम्।
१५७३ क्रोधं दुर्विषहं कृत्वा विष्णुलोकं जगाम ह॥ —शिवपु०

देहौं श्राप कि मरिहौं जाई। जगत मोर उपहास कराई।
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी। (२)
बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि ! कहँ चले बिकल-की नाईं।
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा। माया-बस न रहा तन बोधा। (३)
पर-संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेखी।
मथत सिन्धु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि, बिष-पान करायहु। (४)
१५८० दो०—असुर सुरा, विष संकरहिं, आपु रमा, मनि चारु।
स्वारथ-साधक कुटिल तुम, सदा कपट-व्यवहारु॥ १३६॥
परम स्वतंत्र न सिर-पर कोई। भावै मनहिं करहु तुम सोई।
भलेहिं मंद, मंदहिं भल करहू। बिसमय-हरप न हिय कछु धरहू। (१)
डहकि डहकि परचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू।

भगवान्‌के पास जानेके लिये चल पड़े। (वे अपने मनमें सोचते जा रहे थे कि) मैं या तो उन्हें ही शाप दे डालूँगा या अपने ही प्राण दे डालूँगा। (उनका यह कर्म कि) उन्होंने संसारमें मेरा (इतना) उपहास करा डाला ! पर (अभी वे कुछ ही दूर चल पाए थे कि) दैत्योंके शत्रु भगवान् उन्हें बीच मार्गमें ही आते दिखाई पड़ गए। उनके साथ लक्ष्मी भी थीं और वह नवेली राजकुमारी भी थी। (२) (नारदको देखते ही) देवताओंके स्वामी भगवान्‌ने बड़ी मीठी वाणीमें पूछा—'कहो मुनि ! किधर घबराए बढ़े चले जा रहे हो ?' इतना सुनना था कि नारदकी त्यौरियाँ चढ़ गईं। उनके सिर माया तो चढ़ी ही थी। (उनके मनमें) भले-बुरेका तो कुछ भी ज्ञान रह नहीं गया था। (३) (क्रोधके आवेशमें नारद कहने लगे—) 'आप कभी दूसरोंकी बढ़ती नहीं देख सकते। आपके मनमें डाह और कपट कूट-कूटकर भरा हुआ है। समुद्र-मन्थनके समय आप ही तो थे कि शिवको पागल बना छोड़ा और देवताओंको उकसा-उकसाकर उन्हें (शिवको) विष-पान करा डाला। (४) आप ही तो थे जो असुरोंको मदिरा और शिवको विष दिलवाकर स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर कौस्तुभ-मणि हथियाकर चलते बने। आप बहुत बड़े स्वार्थी और बड़े खोटे हैं। (आजसे ही नहीं) आप सदासे यही कपटकी चाल चलते आए हैं॥ १३६॥ आप तो परम स्वतन्त्र ठहरे, इसलिये आपके सिरपर न कोई देखनेवाला न कहनेवाला (जो आपको ठीक करता रहे), इसलिये जो आपके मनमें आता है वही कर बैठते हैं। आप भलेको बुरा और बुरेको भला बनाते रहते हैं। आपके हृदयमें न किसी बातका हर्ष है न विषाद (दुःख)। (१) सबको चकमा देते-देते आप बहुत परच गए हैं। इसीलिये निडर होकर जो मनमें आता है वही कर बैठते हैं और आपके मनमें सदा यही सब कतर-ब्योंत करते रहनेका चाव भी बना रहता है। अच्छे या बुरे जैसे भी काम हों

१५७८ हे हरे त्वं महादुष्टः कपटी विश्वमोहनः। परोत्साहं न सहते मायावी मलिनाशयः॥
१५७९-८१ मोहिनीरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा। असुरेभ्योऽपाययस्त्वं वारुणीममृतं न हि॥
चेत्पिबेन्न विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वरः। भवेन्नष्टाऽखिला माया तव व्याजरते हरे॥
गतिः स कपटा तेऽतिप्रिया विष्णो विशेषतः।
१५८२ साधुस्वभावो न भवान् स्वतन्त्रः प्रभुणा कृतः॥ शिवपु०

करम सुभासुभ तुम्हहिं न बाधा। अब लगि तुम्हहिं न काहू साधा। (२)
भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा।
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु, श्राप मम एहा। (३)
कपि - आकृति तुम कीन्ह हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि - बिरह तुम होब दुखारी। (४)
१४९० दो०—श्राप सीस धरि, हरषि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया - कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि॥ १३७॥
जब हरि माया दूर निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी।
तब मुनि अति सभीत हरि-चरना। गहे, पाहि प्रनतारति - हरना। (१)
मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा, कह दीनदयाला।

उन्हें कर डालनेमें आपको कभी कोई झिझक नहीं होती। अभीतक आपको कोई ऐसा गुरु नहीं मिल पाया जो आपको ठीक कर दे। (२) पर इस बार आपने अच्छे घर बायना दिया है (इस बार अच्छेमे अर्थात् मुझसे पाला आ पड़ा है)। अब आप अपने किएका फल भोगनेसे बच नहीं पायँगे। (कान खोलकर सुन लीजिए) जो शरीर धारण करके आपने मुझे धोखा दिया है, वही शरीर आपको भी जाकर धारण करना पड़ेगा, यही मेरा शाप है। (३) आपने मेरा रूप बन्दरका-सा बना दिया था, तो जाइए काम पड़नेपर बन्दर ही आपकी सहायता करेंगे। आपने मेरा जो बड़ा अहित किया (कि मेरा बसा-बसाया घर उजाड़ डाला, विवाह नहीं होने दिया) है, तो आप भी स्त्रीके वियोगमें ऐसे ही दुखी हुए (मारे-मारे) फिरेंगे।' (४)

नारदका शाप सिर-आँखों चढ़ाकर हृदयमें हर्षित होते हुए भगवान्ने नारदको बहुत कह-सुनकर पहले तो बहुत मनाया और फिर कृपा-निधान भगवान्ने अपनी मायाका सारा प्रभाव खींच उतारा॥ १३७॥ मायाका हटना था कि न तो वहाँ लक्ष्मी ही रह गईं न वह राजकुमारी ही। यह देखकर तो नारद (घबरा उठे और उन्हों)-ने बहुत भयभीत होकर भगवान्के चरण जा पकड़े और कहा—'हे शरणागतका दुःख हरण करनेवाले! मेरी रक्षा कर लीजिए। (१) हे कृपालु! मैंने जो (भ्रमवश) आपको अभी शाप दे डाला है वह सब व्यर्थ हो जाय।' तब, दीनों-पर दया करनेवाले भगवान्ने कहा—'(देखो नारद! यह सब जो कुछ हुआ है) मेरी ही

१५८३-८५ अद्यापि निर्भयस्त्वं हि संगं नापस्तरस्विना।
१५८६ इदानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणः।
१५८७ अन्वकार्षीस्स्वरूपेण येन कापट्यकर्मकृत्। तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भव तद्दुःखभुग्घरे॥
१५८८ यन्मुखं कृतवान्मे त्वं ते भवन्तु सहायिनः।
१५८९ त्वं स्त्रीवियोगजं दुःखं लभस्व परदुःखदः॥
१९८०-९१ विष्णुर्जग्राह तं शापं प्रशंसञ्छाम्भवीमजाम्। अथ शंभुर्महालीलो निश्चकर्ष विमोहिनीम्॥
१५९१-९३ अथ ज्ञात्वा मुनिः सर्वं मायाविभ्रममात्मनः। अपतत्पादयोर्विष्णोर्नारदो वैष्णवोत्तमः॥
१५९४ दत्तः शापोऽपि ते नाथ वितथं कुरु तं प्रभो॥ शिवपु०

मैं दुर्वचन कहे बहुतेरे। कह मुनि, पाप मिटहिं किमि मेरे। (२)
जपहु जाइ संकर - सत - नामा। होइहि हृदय तुरत बिश्रामा।
कोउ नहिं सिव-समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे। (३)
जेहि-पर कृपा न करहिं पुरारी[1]। सो न पाव मुनि भगति हमारी।
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुमहि माया नियराई। (४)
१५०० दो०—बहु बिधि मुनिहिं प्रबोधि प्रभु, तब भए अंतरधान।
सत्यलोक नारद चले, करत राम - गुन - गान ।। १३८ ।।
हर - गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत - मोह, मन हरष बिसेखी।
अति सभीत नारद - पहँ आए। गहि पद, आरत बचन सुनाए। (१)
हर - गन हम, न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह, फल पाया।
श्राप - अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीनदयाला। (२)
निसिचर जाइ होहु तुम दोऊ। बैभव बिपुल तेज - बल होऊ।
भुज-बल बिस्व जितब तुम जहिया। धरिहहिं बिस्नु मनुज-तनु तहिया। (३)

इच्छासे हुआ है।' नारदने कहा—'मैंने जो आपको बहुत दुर्वचन कह डाले, उसका पाप कैसे मिट पावेगा'? (२) (भगवान्‌ने कहा)—'आप जाइए और जाकर शंकरके सौ नाम जप डालिए। इससे आपका हृदयके सारी व्यथा तुरन्त नष्ट हो जायगी। शिवसे बढ़कर मैं किसीको प्रिय नहीं मानता हूँ, यह विश्वास आप भूलकर भी न छोड़िएगा। (३) देखो मुनि! जिसपर शिवकी कृपा नहीं होती, वह मेरी भी भक्ति नहीं पा सकता। यह बात हृदयमें धारण करके जाकर पृथ्वीपर विचरिए। अब कभी मेरी माया आपके पास नहीं फटक पावेगी।' (४) मुनिको अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए और नारद भी रामका गुणगान करते हुए सत्यलोक चले गए ।। १३८ ।।

शिवके गणोंने जब देखा कि नारदका सारा मोह (अज्ञान) भली भाँति मिट चुका है और वे बहुत प्रसन्न मनसे मार्गमें बढ़े चले जा रहे हैं तो वे बहुत डरते-डरते नारदके पास आए और उनके पैर पड़कर गिड़गिड़ाकर बोले—(१) 'ऋषिराज! हम लोग ब्राह्मण नहीं हैं। हम तो शंकरके गण हैं। हमने आपका बड़ा अपराध किया (कि आपकी इतनी हँसी उड़ाई) जिसका फल हमें (शापके रूपमें) मिल भी गया। पर कृपालु! अब आप अपना शाप शान्त कर दीजिए।'

दीनदयालु नारदने कहा—(२) 'तुम दोनोंको जाकर राक्षस तो होना ही पड़ेगा पर हाँ, तुम्हें अत्यधिक वैभव, तेज और बल प्राप्त होगा। जब तुम अपनी भुजाओंके बलसे संसार जीत लोगे,

१. जेहि-पर करहिं न कृपा पुरारी।

१५९५ मया दुरुक्तय: प्रोक्ता मोहितेन कुबुद्धिना। येन पापकुलं नश्येत्तमुपायं त्वमादिश ।।
१५९६ शतनामशिवस्तोत्रं सदाऽनन्यमतिर्जप। यज्जपित्वा द्रुतं सर्वं तव पापं विनश्यति ।।
१५९७ न मे शिवसमानोऽस्ति प्रिय: कोऽपि महामुने ।।
१५९८-९९ उरस्याधाय विशदे शिवस्य चरणाम्बुजौ। शिवतीर्थानि विचर प्रथमं मुनिसत्तम ।।
१६०७ सर्वब्रह्माण्डराजानौ शिवभक्तौ जितेन्द्रियौ ।। शिवपु०

समर - मरन हरि - हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत, न पुनि संसारा।
चले जुगल मुनि - पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई। (४)
१६१० दो०—एक कल्प ऐहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज - अवतार।
सुर - रंजन सज्जन-सुखद, हरि भंजन - भुवि-भार ॥ १३९ ॥
ऐहि विधि जनम, करम हरि - केरे। सुंदर, सुखद, बिचित्र, घनेरे।
कल्प - कल्प - प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं। (१)
तब - तब कथा मुनीसन गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई।
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरज सयाने। (२)
हरि अनंत, हरि कथा अनंता। कहहिं, सुनहिं बहु विधि सब संता।
रामचंद्र - के चरित सुहाए। कल्प कोटि लगि जाहिं न गाए। (३)
यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरि - माया मोहहिं मुनि ज्ञानी।
प्रभु कौतुकी प्रनत - हित - कारी। सेवत सुलभ, सकल दुखहारी। (४)

तब भगवान् विष्णु आकर मनुष्य रूपमें अवतार लेंगे (३) और भगवान्के हाथों ही युद्धमें तुम्हारी मृत्यु होगी। तब तुम मुक्त हो जाओगे और तुम्हें फिर कभी संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा।' (यह सुनकर) वे दोनों गण, मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर चले गए और वे ही कुछ समयके पश्चात् (रावण और कुंभकर्ण नामके) राक्षस हुए। (४)

देवताओंको प्रसन्न करनेवाले, सज्जनोंको सुख देनेवाले, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले भगवान्ने एक कल्पमें इस कारणसे भी मनुष्यके रूपमें अवतार लिया था ॥ १३९ ॥ इस प्रकार भगवान्के अनेक सुन्दर, सुख देनेवाले और विचित्र (अलौकिक) जन्म और कर्म हुए हैं। प्रत्येक कल्पमें जब-जब प्रभु अवतार लेकर अनेक प्रकारकी सुन्दर लीलाएँ आ करते हैं (१) तब-तब बड़े-बड़े मुनि लोग अपनी-अपनी परम पवित्र काव्य-रचनाके द्वारा उनकी कथाओंका वर्णन किया करते हैं और उनके जीवनके ऐसे-ऐसे अनेक अनुपम प्रसंगोंका वर्णन ला किया करते हैं कि उन्हें सुनकर कोई समझदार व्यक्ति कभी आश्चर्य करता ही नहीं। (२) भगवान् अनंत (रूपोंमें अवतरित होते) हैं, इसलिये उनकी कथाएँ भी अनंत हैं जिन्हें सन्त लोग अनेक प्रकारसे कहते और सुनते हैं। रामके मनभावने चरित्रोंका वर्णन करोड़ों कल्पों-तक भी कोई वर्णन करता रह जाय फिर भी वे पूरे नहीं हो पा सकते। (३) (पार्वतीसे शिव कहते हैं–) 'देखो पार्वती ! यह प्रसंग मैंने इसलिये छेड़ दिया था कि कभी-कभी (नारदके समान) ज्ञानी मुनि भी भगवान्की मायाके फेरमें पड़कर ज्ञान खो बैठते हैं।

१६०८ शिवापरतनोर्मृत्युं प्राप्य स्वपदमास्यथः ॥
१६०९ इत्याऽकर्ण्य मुनेर्वाक्यं नारदस्य महात्मनः। उभौ हरगणौ प्रीतौ स्वं पदं जग्मतुर्मुदा ॥शिवपु०
१६१३ पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च। अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु क्वचित् क्वचित्॥आ०रा०
१६१४-१५ तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः। भौमान् रेणून् स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद् गुणान् ॥
१६१८-१९ अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये यया वशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥ —भागवत

१६२० सो०—सुर, नर, मुनि कोउ नाहिँ, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिँ, भजिय महा-माया-पतिहि ॥ १४० ॥
अपर हेतु सुनु सैल-कुमारी। कहौं बिचित्र कथा बिस्तारी।
जेहि कारन अज, अगुन, अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर-भूपा। (१)
जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बंधु-समेत धरे मुनि-बेखा[1]।
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती-सरीर रहिहु बौरानी। (२)
अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु, भ्रम-रुज-हारी।
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौं मति-अनुसारा। (३)
भरद्वाज ! सुनि संकर-बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी।
लगे बहुरि बरनै बृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू। (४)

प्रभु बड़े कौतुकी (खेल करनेवाले खेलाड़ी) हैं और सदा शरणागतका हित ही करते रहते हैं। उनकी सेवा करनेसे सब कुछ पा सकना सुलभ हो जाता है (सरलतासे प्राप्त हो जाता है) क्योंकि उनमें इतनी शक्ति है कि वे सबके सारे दुःख दूर कर सकते हैं। (४) अभीतक ऐसा कोई देवता, मनुष्य और मुनि हमारे देखनेमें नहीं आया जिसे भगवान्‌की बलवती माया चक्करमें न डाल पाई हो। इसीलिये मनमें इस बातको भली-भाँति समझकर महामाया-पति रामका ही भजन करते रहना चाहिए' (उनकी ही शरणमें पहुँच जाना चाहिए) ॥ १४० ॥

'अच्छा पार्वती ! अब मैं तुम्हें भगवान्‌के अवतारका दूसरा कारण भी सुनाए डालता हूँ। अब मैं विस्तारसे वह विचित्र घटना सुना रहा हूँ जिसके कारण अजन्मा (जिसका कभी जन्म नहीं हुआ), निर्गुण (जिसमें सत्त्व, रज और तम कोई गुण नहीं है) और निराकार ब्रह्म जाकर कोशलपुरी (अयोध्या)-के राजा बने। (१) अपने भाई (लक्ष्मणके) साथ मुनिका वेष धारण किए हुए जंगलमें भटकते हुए जिस प्रभु रामको तुमने देखा था और जिनकी लीला देखकर सतीके रूपमें तुम भी ऐसी चकरा गई थी कि (२) उस भ्रमकी छाया तुम्हारे हृदयसे अबतक नहीं मिट पाई, उन्हीं भ्रमका रोग दूर करनेवाले (भगवान् राम)-के सारे चरित्र मैं तुम्हें सुनाए दे रहा हूँ। (ध्यान देकर सुनती चलो)। उस अवतारमें उन्होंने जो-जो लीलाएँ कीं वे सबकी सब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हें सुनाए दे रहा हूँ। (३)

याज्ञवल्क्य कहते हैं—'हे भरद्वाज ! शंकरकी यह बात सुनकर पार्वती (पिछले जन्मकी अपनी भूलकी बात स्मरण करके) सकुचाकर (झेंपकर) प्रेमसे मुसकरा उठीं। फिर वृषकेतु शंकर वह

१. नर-वेष।

१६२०-२१ न यस्य कश्चातितितर्तिमायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम्।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं भजेत भूतेषु समं चरन्तम् ॥
११२२-२३ श्रीमहादेव उवाच—त्वमद्य भक्त्या परिनोदितोऽहं वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादिर्जातो हि साकेतपुरे पुराणः ॥—अ०रा०
१६२४-२६ यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात् समासहस्रान्त उपारतं वै।
स एष साक्षात् पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्त संसारपरिभ्रमापहम्। —भागवत

१६३० दो०—सो मैं तुम-सन कहउँ सब , सुनु मुनीस ! मन लाइ ।
राम-कथा कलि-मल-हरनि , मंगल - करनि, सुहाइ ।। १४१ ।।
स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह-तें भइ नर - सृष्टि अनूपा ।
दंपति - धरम - आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह-कै लीका । (१)
नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरि-भगत भयउ सुत जासू ।
लघु - सुत - नाम प्रियव्रत ताही । वेद - पुरान प्रसंसहिं जाही । (२)
देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम - कै प्रिय नारी ।
आदिदेव प्रभु दीन - दयाला । जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला । (३)
सांख्यसास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्व - विचार - निपुन भगवाना ।
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला । प्रभु-आयसु बहु विधि प्रतिपाला । (४)
१६४० सो०—होइ न विषय - विराग , भवन बसत भा चौथपनु ।
हृदय बहुत दुख लाग , जनम गयउ हरि-भगति-बिनु ।।१४२।।
बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि - समेत गवन बन कीन्हा ।
तीरथ - वर नैमिष बिख्याता । अति पुनीत साधक-सिधि-दाता । (१)

दूसरा कारण सुनाने लगे जिस कारण भगवान्ने वह अवतार लिया था । (४) हे मुनीश्वर ! (भरद्वाज !) वह सारी कथा मैं आपको सुनाए देता हूँ, मन लगाकर सुनिए । यह रामकी कथा कलियुगके सब पाप हर लेती है, कल्याण करती है और बड़ी मनभावनी है ।' ।। १४१ ।।

'जिन स्वायम्भुव मनु और (उनकी पत्नी) शतरूपासे यह मनुष्योंकी अनुपम सृष्टि हुई उन दोनों पति-पत्नीके धर्म-कर्म और आचरण इतने अच्छे थे कि वेद भी उनकी श्रेष्ठताका वर्णन आजतक किए चले जा रहे हैं । (१) उनके ही पुत्र राजा उत्तानपाद थे, जिनके पुत्र ध्रुव भगवान्के परम भक्त हुए थे । ध्रुवके छोटे पुत्रका नाम प्रियव्रत था, जिसकी वेदों और पुराणोंमें बहुत प्रशंसा की गई है । (२) उनकी कन्याका नाम देवहूति था जिसका विवाह उन कर्दम मुनिसे हुआ जो (देवहूति)-से बहुत स्नेह भी करते थे । उन्हीं (देवहूति)-के गर्भसे दीनोंपर दया करनेवाले आदिदेव कृपालु प्रभु कपिलका जन्म हुआ था (३) जो (आध्यात्मिक) तत्त्वोंका विवेचन करनेमें निपुण थे और जिन (कपिल) भगवान्ने सांख्य दर्शनका प्रकट रूपमें वर्णन किया है । (स्वायम्भुव) मनु बहुत कालतक पृथ्वीपर राज्य करते रहे और सब प्रकार भगवान्की आज्ञाका ही पालन करते रहे । (४) (उनके मनमें यह सोचकर बहुत दुःख हुआ कि) गृहस्थीके जंजालमें पड़े-पड़े बुढ़ापा भी आ धमका, पर विषयोंसे वैराग्य नहीं हो पाया । भगवान्की भक्तिके विना ही जीवन ढला चला जा रहा है ।। १४२ ।। तब वे बलपूर्वक अपने पुत्रको राज्य सौंपकर पत्नीको साथ लिए-दिए वन चले गए । तीर्थोंमें श्रेष्ठ नैमिषारण्य बड़ा

१६३२-३३ यदा स्वभार्यया साकञ्जातः स्वायम्भुवो मनुः । तथा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ।।भाग०
१६३४-३५ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ बभूवतुः । इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ।।
१६३६ देवहूतिर्मनुसुता कर्दमस्य प्रिया स्मृता । अवतीर्णः स्वकलया यस्यां कृष्णः स्वयं हरिः ।। गर्गसं०
१६३८ अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यः सुसंमतः । लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ।।भाग०
१६४०-४२ विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः । विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ।।भागवत

बसहिं तहाँ मुनि - सिद्ध - समाजा। तहँ हिय हरषि चलेउ मनु राजा।
पंथ जात सोहहिं मति-धीरा। ज्ञान - भगति जनु धरे सरीरा। (२)
पहुँचे जाइ धेनुमति - तीरा। हरषि नहाने निरमल नीरा।
आए मिलन सिद्ध, मुनि, ज्ञानी। धरम - धुरंधर नृप - रिषि जानी। (३)
जहँ - जहँ तीरथ रहे सुहाए। मुनिन्ह सकल सादर करवाए।
कृस सरीर, मुनि - पट परिधाना। सत-समाज नित सुनहिं पुराना। (४)
१४५० दो०—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव - पद - पंकरुह, दंपति- मन अति लाग ॥ १४३ ॥
करहिं अहार साक - फल - कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा।
पुनि हरि - हेतु करन तप लागे। बारि - अधार, मूल - फल त्यागे। (१)
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई।
अगुन, अखंड, अनंत, अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथबादी। (२)

प्रसिद्ध तीर्थ है, जो इतना पवित्र है कि जो भी साधक वहाँ पहुँचकर साधना करने लगे उसे सिद्धि मिलकर ही रहती है। (१) (वह स्थान ऐसा है कि) वहाँ बहुतसे मुनि और सिद्ध सदा निवास करते ही रहते हैं। बस प्रसन्न-चित्त होकर राजा मनु भी वहीं जा पहुँचे। वे धीर बुद्धिवाले (राजा और रानी) मार्गमें चलते हुए ऐसे शोभा देते थे मानो ज्ञान और भक्ति (दोनों एक साथ) शरीर धारण करके चले जा रहे हों। (२) (चलते-चलते) वे गोमती नदीके तटपर जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होंने वहीं (गोमतीके) निर्मल जलमें जाकर स्नान किया। जब लोगोंको ज्ञात हुआ कि ये धर्म-धुरन्धर राजर्षि (मनु) हैं तब तो वहाँके सभी सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने वहाँ आने लगे। (३) वहाँके मुनियोंने बहुत आदरपूर्वक जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, सभी तीर्थ उन्हें करवा डाले। (तपसे) उनका शरीर सूख चला था। वे मुनि-पट (वल्कलके वस्त्र) धारण करने लगे थे। नित्य संतोंके समाजमें बैठकर वे पुराण आदिकी कथाएँ सुनते रहते थे (४) और प्रेमपूर्वक द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)-का जप किया करते थे। उन (पति-पत्नी)-का मन वासुदेवके चरण-कमलोंमें भली-भाँति रम गया ॥ १४३ ॥ वे साग, फल और कंदका आहार किया करते और सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते रहते थे। फिर वे भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये तप करने लगे और मूल-फलका भी आहार छोड़कर केवल जल-पर रहने लगे। (१) उनके हृदयमें यही एक लालसा बनी हुई थी कि 'उन परम प्रभुको हम कब अपनी आँखोंसे देख पावें, जो निर्गुण, अखंड, अनंत और अनादि हैं, परमार्थवादी (तत्त्ववेत्ता महात्मा) जिसका निरन्तर चिन्तन किया करते हैं, (२) जिन्हें वेद 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर उनका परिचय देते हैं,

---

१६५०-५१ स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णमहामनुम्। जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले वने ॥ पद्मपुराण
१६५२-५३ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद् विभुम्।
अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत् समाधिना ॥ —भागवत
१६५४ प्रसीद विष्णो भक्तानां व्रज नो दृष्टिगोचरम् ॥ —विष्णुपुराण

नेति - नेति जेहि बेद निरूपा । निजानंद[1], निरूपाधि, अनूपा ।
संभु, बिरंचि, बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अंस - तें नाना । (३)
ऐसेउ प्रभु सेवक - बस अहई । भगत - हेतु लीला - तनु गहई ।
जो यह बचन सत्य श्रुति भाषा । तौ हमार पूजिहि अभिलाषा । (४)
१६६० दो०—एहि बिधि बीते बरष पट , -सहस बारि - आहार ।
संवत सप्त सहस्र पुनि , रहे समीर - अधार ।। १४४ ।।
बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ । ठाढ़े रहे एक पग[2] दोऊ ।
बिधि - हरि - हर तप देखि अपारा । मनु - समीप आए बहु बारा । (१)
माँगहु बर, बहु भाँति लोभाए । परम धीर, नहिं चलहिं चलाए ।
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा । तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा । (२)
प्रभु सर्बज्ञ, दास निज जानी । गति अनन्य, तापस नृप-रानी ।
माँगु - माँगु बर[3] भइ नभ - बानी । परम गँभीर कृपामृत - सानी । (३)

जो आनन्दके स्वरूप हैं, जिनकी कोई उपाधि और उपमा नहीं है और जिनके अंश मात्रसे अनेक शंभु, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते रहते हैं । (३) ऐसे प्रभु भी सेवक (भक्त)-के वशमें हुए रहते हैं और भक्तोंके लिये ही अपनी लीला-मात्रसे (जब जैसा चाहें वैसा) शरीर धारण करके आ पहुँचते हैं । यदि वेदोंका यह वचन सत्य है तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी ।' (४) इस प्रकार केवल जल पी-पीकर जीवित रहते हुए वे छह सहस्र वर्षतक तपस्या चलाते रहे । फिर सात सहस्र वर्षोंतक वे वायु पीकर ही तप करते रहे । फिर दस सहस्र वर्षोंतक वे दोनों वायु पीना भी छोड़कर एक पैरपर खड़े तप करते रहे । जब देवताओंने उनका ऐसा कठोर तप देखा तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव कई बार मनुके पास आए (१) और उन्होंने मनुको बहुत ललचाया भी और वर माँगनेको भी कहा पर परम धैर्यवान् (मनु और शतरूपा) तनिक भी डिगकर न दिए । उनका शरीर हड्डीका ढाँचा-भर रह गया फिर भी उनके मनमें उसका कोई कष्ट नहीं था । (२) तब सर्वज्ञ प्रभुने समझ लिया कि ये राजा-रानी मेरे सच्चे दास (भक्त) हैं जो हमें छोड़कर और किसीका आश्रय नहीं चाहते । तब परम गम्भीर और कृपाका अमृत बरसाती

१. चिदानंद=चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप । २. पद । ३. धुनि : आकाशवाणीकी ध्वनि सुनाई दी ।

१६५५-५८ न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ।।
१६५९ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ।। —भागवत
१६५०-६२ निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः । एकपादेन संतिष्ठन् धरायामनिशं स्थिरः ।। देवीभा०
१६६३-६४ ब्रह्मोवाच--उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते तपः सिद्धोऽसि काश्यप ।
वरदोहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ।।
१६६५-६७ अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् । दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ।। —भागवत
ततो गगनसम्भूता वाणी समुदपद्यत । —अद्भुतरामायण

मृतक - जियावनि गिरा सुहाई । श्रवन - रंध्र होइ उर जब आई ।
हृष्ट - पुष्ट तन भए सुहाए । मानहुँ अबहिं भवन - तें आए । (४)
१६७० दो०—श्रवन-सुधा-सम वचन सुनि , पुलक प्रफुल्लित गात ।
बोले मनु, करि दंडवत , प्रेम न हृदय समात ॥ १४५ ॥
सुनु सेवक - सुरतरु सुर - धेनू । बिधि - हरि - हर - बंदित - पद - रेनू ।
सेवत सुलभ, सकल सुख - दायक । प्रनत - पाल सचराचर - नायक । (१)
जौं अनाथ - हित ! हम - पर नेहू । तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ।
जो सरूप बस सिव मन - माहीं । जेहि कारन मुनि जतन कराहीं । (२)
जो भुसुंडि - मन - मानस - हंसा । सगुन-अगुन जेहि निगम प्रसंसा ।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन । कृपा करहु प्रनतारति - मोचन । (३)

हुई आकाशवाणी हुई—'वर माँगो-वर माँगो' । (३) अमृतको भी जिला देनेवाली वह सुन्दर वाणी ज्योंही उनके कानोंके छेदोंसे होकर हृदयमें पहुँची, त्योंही उनका शरीर सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट हो उठा और वे ऐसे लगने लगे मानों अभी घरसे उठे चले आ रहे हों । (४) अपने कानोंसे अमृतके समान ऐसे (सुखदायक) वचन सुनकर उनका शरीर आनन्दसे पुलकित और प्रफुल्लित हो उठा । (भगवान्‌को) दंडवत् प्रणाम करते हुए मनु जब बोलने लगे तो भगवान्‌के प्रति उनका जो प्रेम उमड़ा पड़ रहा था वह हृदयमें समाए नहीं समा नहीं पा रहा था ॥ १४५ ॥ वे कहने लगे—'प्रभो ! सुनिए ! आप अपने सेवकों (भक्तों)-के लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं । ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी आपके चरण-रजकी निरन्तर वन्दना करते रहते हैं । आपकी जो सेवा करता है उसे आप सहज ही मिल जाते हैं और उसे सब सुख दे डालते हैं । जो आपकी शरणमें पहुँच जाय उसकी आप अवश्य रक्षा करते हैं । आप चर और अचर सबके स्वामी हैं । (१) हे अनाथोंका कल्याण करनेवाले भगवन् ! यदि सचमुच हमसे आप स्नेह करते हैं तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिए कि आपका जो स्वरूप शिवके मनमें (सदा) बसा रहता है, जिसे नेत्र-भर देख पानेके लिये मुनि लोग निरन्तर यत्न करते रहते हैं (छटपटाते रहते हैं, योग, जप, ध्यान करते रहते हैं), (२) जो रूप काकभुशुंडिके मनके मानसरोवरमें हंस बनकर सदा विहार करता रहता है (काकभुशुंडिके मनमें आपका जो रूप बसा रहता है), सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं,—हे शरणागतके सब दुःख मिटा डालनेवाले भगवन् ! आप ऐसी कृपा कीजिए कि—वही स्वरूप हम भी भर-आँखों देख लें ।' (३)

१६६८-६९ स तत्कीचकवल्मीकात् सह ओजोबलान्वितः । सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा ॥ भागवत
१६७०-७१ उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् । हर्षाच्च पुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात् ॥
१६७२-७४ यज्ञेश यज्ञ पुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्यशन्नः कृधीशभगवन्नसि दीननाथः ॥
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥ —भागवत
१६७५-७७ श्रीनीलकण्ठेन विचिन्त्यते यच्छ्रीकाकराजेन भुशुण्डिनापि ।
तदेव माम् दर्शय रूपमद्भुतम् दयानिधे सद्दयार्तिहारिन् ॥ —अगस्त्यसंहिता

दंपति - बचन परम प्रिय लागे। मृदुल, बिनीत, प्रेम - रस - पागे।
भगत-बछल प्रभु कृपा - निधाना। बिस्व - बास प्रगटे भगवाना। (४)
१६८० दो०—नील-सरोरुह, नील - मनि , नील - नीरधर - स्याम।
लाजहिं तनु-सोभा निरखि , कोटि - कोटि सत काम ॥ १४६ ॥
सरद - मयंक - बदन छबि - सींवा। चारु कपोल, चिबुक, दर ग्रीवा।
अधर अरुन, रद सुंदर नासा। बिधु - कर - निकर - बिनिंदक हासा। (१)
नव-अंबुज अंबक - छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी - की।
भृकुटि मनोज - चाप - छबि - हारी। तिलक ललाट-पटल दुतिकारी। (२)
कुंडल मकर, मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप - समाजा।
उर श्रीबत्स, रुचिर बनमाला। पदिक, हार, भूषन मनि - जाला। (३)
केहरि - कंधर चारु जनेऊ। बाहु - बिभूषन सुंदर तेऊ।
करि - कर - सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग, कर सर-कोदंडा। (४)

उन पति-पत्नीके ये कोमल, विनयसे पूर्ण और प्रेम-रसमें भरे हुए वचन भगवान्‌को इतने अधिक प्रिय लगे कि वे भक्तवत्सल, कृपानिधान, समस्त विश्वमें व्यापक समर्थ भगवान् वहीं उनके सामने आ खड़े हुए। (४) नीले कमल, नीलमणि (नीलम) और नीले मेघके समान भगवान्‌के शरीरकी शोभा ऐसी अनुपम थी कि सैकड़ों करोड़ कामदेव भी आ इकट्ठे हों तो उनकी झलक पाकर पानी-पानी हो उठें (लज्जित हो जायँ) ॥ १४६ ॥ शरद्‌की पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान उनका मुखड़ा ऐसा सुन्दर था कि उसे सुन्दरताकी सीमा (सबसे अधिक सुन्दरता) ही समझना चाहिए (उससे बढ़कर सुन्दर कुछ हो नहीं सकता)। उनके गाल और ठुड्डीकी सुन्दरताका भला कौन वर्णन कर सकता है। शंखके समान (उतार-चढ़ाव-वाला ढलवाँ) गला, लाल-लाल होठ, सुन्दर (उठी हुई लंबी) नाक और उनके सुन्दर (चमकीले) दाँत थे। (उनसे फूटी हुई) हँसी तो चन्द्रमाकी किरणोंकी चाँदनीको भी फीकी किए डाल रही थी। नये कमलके समान उनकी आँखें खिली पड़ रही थीं। (१) उनकी मनहर चितवन सबका जी लुभाए ले रही थी। उनकी भौंहें कामदेवके धनुषकी सारी शोभा छीने ले रही थीं। उनके मस्तकपर लगा हुआ सुन्दर तिलक चमचमाए जा रहा था। कानोंमें (उछलती हुई) मछलीके कटानका (गोल) कुण्डल था और सिरपर मुकुट सजा हुआ था। उनके (सिरपर) लहराती हुई घुँघराली लटें ऐसी (लहरें ले रही) थीं मानो झुंडके झुंड भौंर कहींसे आ मँडराने लगे हों। (२) उनकी छातीपर उभरा हुआ श्रीवत्सका चिह्न[1] अलग झलक रहा था, गलेमें सुन्दर वनमाला और पदिक (गल-बंध) तथा छातीपर रत्नका हार झूल रहा था और शरीरपर मणियोंके अनेक आभूषण जगमगा रहे थे। (३) सिंहके समान उठे हुए उनके कंधेपर सुन्दर जनेऊ और भुजाओंपर चमचमाता भुजबन्ध दोनों बहुत सुहावने लग रहे थे। हाथीकी सूंडके समान (उनकी

१. विष्णुकी छातीपर दाहिनी ओर श्वेत बालोंकी अँगूठे-भर बड़ी भँवरी जो भृगुकी लातका चिह्न है।

१६७८० प्रादुर्भूतस्तयोः सम्यक् दम्पत्योर्मिषतोस्ततः। नीलोत्पलदलश्यामः कोटिकन्दर्पमोहनः॥ दे० भा०
१६८२-८५ प्रसादाभिमुखं शश्वत् प्रसन्नवदनेक्षणम्। सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम्॥
तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम्। —भागवत

१६९० दो०—तड़ित-विनिंदक पीत-पट, उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन-भँवर-छवि छीनि॥ १४७॥
पद-राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि-मन-मधुप बसहिं जिन्ह माहीं।
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि-सक्ति छवि-निधि, जग-मूला। (१)
जासु अंस उपजहिं गुन-खानी। अगनित लच्छि-उमा-ब्रह्मानी।
भृकुटि-विलास जासु जग होई। राम-बाम-दिसि सीता सोई। (२)
छवि-समुद्र हरि-रूप बिलोकी। एकटक रहे नयन-पट रोकी।
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु-सतरूपा। (३)
हरष-बिवस तन-दसा भुलानी। परे दंड-इव गहि पद पानी।
सिर परसे प्रभु निज-कर-कंजा। तुरत उठाए करुना-पुंजा। (४)

गोल, ढलवाँ) भुजाएँ बड़ी सुन्दर लग रही थीं। उनकी कटिपर तूणीर लटका हुआ था और हाथोंमें धनुप-बाण शोभा दे रहे थे। (४) उनका पीताम्बर तो बिजलीकी चमकको भी धुँधला किए डाल रहा था। उनके उदरपर बड़ी सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिवली) पड़ी झलक रही थीं। उनकी नाभि तो ऐसी लगती थी मानो यमुनाके जलमें पड़ी हुई भँवरकी शोभाको भी छीने ले डाल रही हो॥१४७॥ उनके उन चरण-कमलोंका वर्णन करना तो संभव ही नहीं है जिनमें मुनियोंके मन-रूपी भौंरे सदा बसेरा डाले रहते हैं। उनकी बाईं ओर संसारको उत्पन्न करनेवाली, शोभाकी खान, आदि शक्ति उनके ही रूपके समान रूपमें शोभा दे रही थीं (१) जिनके अंशसे सारे गुणोंवाली अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती रहती हैं, जिनकी भौंहोंके तनिकसे संकेत मात्रसे (भौंह चलाने-भरसे) जगत्‌की उत्पत्ति होती है, वे ही सीता वहाँ रामकी बाईं ओर बैठी हुई शोभायमान थीं। (२) (अपने सम्मुख) शोभाके समुद्र भगवान्‌का यह स्वरूप देखते ही मनु और शतरूपा दोनों पलकें रोककर उन्हें एकटक निहारते रह गए। उनका वह अनुपम रूप आदरपूर्वक देखते वे अघाते न थे। (३) उनके मनमें ऐसी प्रसन्नता उमड़ी पड़ रही थी कि उन्हें अपने तन-बदनकी भी सुध नहीं रह गई थी। दंडके समान भूमिपर लेटकर उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे भगवान्‌के चरण जा थामे। तभी उनके सिरोंपर अपने कमलके समान कोमल हाथ फेरकर करुणानिधान प्रभुने उन्हें तुरन्त

१६८६-९२ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम्। शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम्॥
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम्। कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम्॥
काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम्। दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम्॥
पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम्॥ —भागवत

१६९३-९५ श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥
सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता। प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥रा०ता०

१६९६-९८ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत्।
दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन्॥

१६९९ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम्॥ —भागवत

१७०० दो०—बोले कृपा-निधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन, महा-दानि अनुमानि ॥ १४८ ॥
सुनि प्रभु-बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरज बोले मृदु बानी।
नाथ! देखि पद-कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे। (१)
एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम-अगम कहि जाति सो नाहीं।
तुम्हहिं देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहिं निज कृपनाईं। (२)
जथा दरिद्र बिबुध-तरु पाई। बहु संपति माँगत सकुचाई।
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदय मम संसय होई। (३)
सो तुम जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी।
सकुच बिहाइ माँगु नृप! मोहीं। मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं। (४)
१७१० दो०—दानि-सिरोमनि! कृपा-निधि, नाथ! कहौं सति भाउ।
चाहौं तुम्हहि समान सुत, प्रभु-सन कवन दुराउ ॥ १४९ ॥

ऊपर उठा लिया। (४) फिर उनसे कृपानिधान भगवान् बोले—'मैं आप लोगोंसे बहुत प्रसन्न हूँ। (यह समझ लो कि) मुझसे बड़ा कोई दानी नहीं है, इसलिये इस समय जो वर तुम चाहो वही वर मुझसे माँग लो ॥' १४८ ॥

प्रभुके ये वचन सुनकर मनु दोनों हाथ जोड़कर बड़े धैर्यके साथ कोमलतासे भरे वचन बोले—'नाथ! (यों तो) आपके चरण-कमल देखने-भरसे ही हमारी सारी आशाएँ पूरी हो गईं, (१) फिर भी हमारे मनमें एक बड़ी लालसा बनी हुई है (जिसका पूरा होना) सुगम भी है और कठिन भी है, इसलिये वह मुझसे कहते नहीं बन रही है। हे गोस्वामी! आपको तो वह दे डालना अत्यन्त सुगम है, परन्तु अपनी क्षुद्रता, दीनता (अयोग्यता) देखकर मुझे वैसे ही कठिन जान पड़ रही है (२) जैसे कोई दरिद्र व्यक्ति कल्पवृक्ष पाकर भी यह समझकर उससे बहुत सम्पत्ति माँगनेमें संकोच करे (और उससे तुच्छ वस्तु ही माँग बैठे) क्योंकि वह उस (कल्पवृक्ष)-का पूरा महत्त्व नहीं जानता। उसी प्रकार मेरे हृदयमें भी (आपको सब कुछ दे सकनेवाला जानकर भी) कुछ कहते बड़ा असमंजस हो रहा है (कि मैं जो माँग भी रहा हूँ वह उचित और आपकी महत्ताके अनुकूल है भी या नहीं।) स्वामी! आप तो अन्तर्यामी हैं, इसलिये आप तो (मेरा मनोरथ) जानते ही हैं, बस वही पूरा कर दीजिए।'

(तब भगवान्ने कहा—) 'राजन्! संकोच छोड़कर जो चाहो मुझसे माँग लो। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें दे देनेमें मुझे संकोच हो।' (४)

(तब मनुने साहस बटोरकर कहा—) 'हे दानियोंके शिरोमणि! कृपानिधान! प्रभो! मैं जो

१७००-१ उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप। प्रसन्नं माञ्च विज्ञाय महादानाय सुव्रत ॥—देवीभाग०
१७०२-३ ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायम्भुवो हरिम्। पूर्णोऽभिलाषो मे नाथ त्वत्पादाब्जविलोकनात् ॥
१७०४-७ त्वाम्पुत्रलालसत्वेन भजामि पुरुषोत्तम। कामना विषमा भाति निजकार्पण्यदोषतः ॥—पद्मपुराण
ईश्वरात् क्षीणपुण्येन फलीकारानि बाधन ॥
१७०८-९ तांस्तान् कामान् हरिर्दद्यात् यान् यान् कामयते जनः। आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ॥
मत्तो वरं वृणीष्वेति तमाह भगवान् हरिः। अदेयं मम नैवास्ति प्रीते मयि च किञ्चन ॥—भागवत
१७११ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा हर्षगद्गदया गिरा। पुत्र त्वं मे भवेत्याह देवदेवं जनार्दनम् ॥ —पद्मपु०

देखि प्रीति, सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुना-निधि बोले।
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप! तव तनय होब मैं आई। (१)
सतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देवि! माँगु बर जो रुचि तोरे।
जो बर नाथ! चतुर नृप माँगा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा। (२)
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत-हित तुम्हहिं सुहाई।
तुम ब्रह्मादि-जनक, जग-स्वामी। ब्रह्म, सकल-उर-अंतरजामी। (३)
अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई।
जे निज भगत नाथ! तव अहहीं। जो सुख पावहिं, जो गति लहहीं। (४)
१७२० दो०—सोइ सुख, सोइ गति, सोइ भगति, सोइ निज-चरन-सनेहु।
सोइ बिबेक, सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु॥ १५०॥
सुनि मृदु, गूढ़, रुचिर बच-रचना[1]। कृपासिंधु बोले मृदु बचना।
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब, संसय नाहीं। (१)

कुछ कह रहा हूँ सच्चे भावसे कह रहा हूँ। प्रभुसे छिपाना भी क्या? मैं बस यही चाहता हूँ कि आपके ही समान मेरे पुत्र हो'॥ १४९॥

राजाका यह प्रेम देखकर और उनके ये अनमोल वचन सुनकर करुणानिधान भगवान्‌ने कह दिया—'एवमस्तु' (ठीक है, यही होगा)। फिर भगवान्‌ने कहा—'देखो राजन्! मैं अपने समान खोजने कहाँ जाऊँगा? अतः, मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र होकर अवतार धारण करूँगा।' (१)

फिर भगवान्‌ने देखा कि शतरूपा भी अभी हाथ जोड़े खड़ी है। (तब उनसे भी) भगवान्‌ने कहा—'देवि! आप भी जो चाहें वर माँग लीजिए।' शतरूपा बोली—'नाथ! मेरे चतुर (पति) राजाने जो वर माँगा है, वही वर कृपालु! मुझे भी अत्यन्त प्रिय है। (२) फिर भी हे प्रभु! कहते बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तवत्सल! (मैं जानती हूँ कि) आपको तो भक्तोंकी ढिठाई भी अच्छी ही लगती है। आप ब्रह्मा आदि (देवताओं)-के पिता और जगत्‌के स्वामी हैं। आप सबके घट-घटकी बातें जाननेवाले ब्रह्म हैं। (३) पर ऐसा समझते ही मनमें सन्देह होने लगता है (कि जो 'ब्रह्म सबके घट-घटमें रमता है' वह हमारा पुत्र होकर कैसे आ सकेगा?) फिर भी प्रभुने जो कहा है (एवमस्तु), वह तो प्रमाण (सत्य) है ही। इसलिये नाथ! आपके निज जन (परम प्रिय भक्त) जो सुख और जो गति प्राप्त करते हैं, (४) वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणोंमें प्रीति, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके प्रभु! हमें भी दे दीजिए॥१५०॥

(रानीकी यह) प्रेमभरी, गूढ (रहस्य-भरी) सुन्दर और श्रेष्ठ वाक्य-रचना सुनकर कृपानिधान भगवान् बड़े कोमल स्वरमें बोले—'देवि'! आपने जो कुछ मनमें इच्छा की है वह सब मैं

१. वर-रचना।

१७१२-१३ भविष्यति नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम्। ममैव च महाप्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे॥
१७१४ तुष्टोहमद्य तव मानिनि मानदायाः शुश्रूषया परमया हृदि चैकभक्त्या॥
१७१५ वृतन्नृपेणातितरां मदीय चित्तस्य प्रेयो न परं विकांक्षे॥
१७२३ भगवानपि विश्वात्मा मृदु वाचमुवाच ह। यत्ते मनसि हे देवि कांक्षितं पूर्णमस्तु तत्॥पद्मपु०

मातु ! विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे।
बंदि चरन, मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी। (२)
सुत-बिषइक तव पद-रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।
मनि-बिनु फनि जिमि जल-बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना। (३)
अस बर माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु, करुनानिधि कहेऊ।
अब तुम मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति-रजधानी। (४)
१७३० सो०—तहँ करि भोग बिसाल[२], तात गए कछु काल पुनि।
होइहहु अवध-भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥ १५१॥
इच्छामय नर-बेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे।
अंसन-सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत-सुख-दाता। (१)
जेहि सुनि सादर नर बड़-भागी। भव तरिहहिं ममता-मद त्यागी।
आदि-सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। (२)

दिए देता हूँ (वह पूर्ण होगी), इसमें संशय नहीं है। (१) हे माता ! मेरी कृपासे आपका अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा।' फिर मनुने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! मेरी एक प्रार्थना आपसे और है। (२) आपके चरणोंमें मेरी वैसी ही प्रीति रहे जैसी पुत्रके लिये (पिताके हृदयमें) होती है। इस ढिठाईके लिये कोई भले ही मुझे बड़ा भारी मूर्ख क्यों न कहे (कि बड़े भगवान्‌के पिता बनने चले हैं !) पर जैसे मणिके बिना सर्प और जलके बिना मछली जीवित नहीं रह पाती वैसे ही मेरा जीवन सदा आपके अधीन रहे (आपके बिना मैं भी जीवित न रह सकूँ)।' (३)

यह वर माँगकर राजा मनु भगवान्‌के चरण थामे पड़े रह गए। तब करुणानिधान भगवान्‌ने कहा—'ठीक है, ऐसा ही होगा। अब आप लोग मेरी आज्ञा मानकर जाकर देवराज इन्द्रके राज्य (अमरावती)-में निवास कीजिए। (४) वहाँ (स्वर्गके) सब दिव्य भोग भोगकर कुछ कालके पश्चात् आप जब अवधके राजा बनेंगे तब मैं आकर आपका पुत्र होऊँगा॥१५१॥ और अपनी इच्छाके अनुसार मनुष्यका शरीर धारण करके मैं आपके घर प्रकट हो जाऊँगा। (उस समय) मैं अपने अंशोंके साथ मनुष्यका शरीर धारण करके भक्तोंको सुख देनेवाली ऐसी-ऐसी (अनेक) लीलाएँ करूँगा (१) जिन (लीलाओं)-को सुन-सुनकर बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदर-सहित ममता और मद त्यागकर भवसागरसे पार उतर जायँगे (संसारकी झंझटोंसे छूट जायँगे)। (मेरे साथ) मेरी वह माया आदिशक्ति भी जन्म लेगी जिसने यह जगत् उत्पन्न किया है। (२) मैं आपकी सारी अभिलाषाएँ पूरी

२. श्रावण कुञ्जकी प्रतिमें 'बिलास' पर हरताल लगाकर 'साल' बनाया गया है।

१७२७ ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायम्भुवो हरिम्। सूनुसम्बन्धि मत्प्रेम स्यात्ते चरणकञ्जयोः॥
१७३१ इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रोवाच सुमहागिरा। स्थितिः प्रयोजने काले तत्र तत्र नृपोत्तम॥
त्वयि जाते त्वहमपि जनिष्ये सदने तव॥—पद्मपु०
१७३२-३३ अंशकलयावतरिष्यामि आत्मतुल्यमनुपलभमानः।
१७३४ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वञ्च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः॥
१७३५ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितञ्जगत्। आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति॥भाग०

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य, सत्य, पन सत्य हमारा।
पुनि पुनि अस कहि कृपा - निधाना। अंतरधान भए भगवाना। (३)
दंपति उर धरि भगति कृपाला। तेहि आश्रम निवसे कछु काला।
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति - वासा। (४)
१७४० दो०—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कहा वृषकेतु।
भरद्वाज! सुनु अपर पुनि, राम-जनम - कर हेतु॥ १५२॥
सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी।
बिस्वबिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेसू। (१)
धरम - धुरंधर, नीति - निधाना। तेज - प्रताप - सील, बलवाना।
तेहि - के भए जुगल सुत बीरा। सब - गुन - धाम महा-रनधीरा। (२)
राज-धनी जो जेठ सुत आही[1]। नाम प्रतापभानु अस ताही।
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुज-बल अतुल, अचल संग्रामा। (३)
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल-दोष-छल-बरजित प्रीती।
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि-हित आपु गवन बन कीन्हा। (४)

करूँगा यह मेरा सत्य प्रण है ! सत्य प्रण है ! सत्य प्रण है !' बार-बार यह कहते हुए कृपानिधान भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गए। (३) वे स्त्री-पुरुष (राजा-रानी) भी भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान्को हृदयमें धारण करके कुछ कालतक उस आश्रममें बसे रहे। फिर उन्होंने समय पाकर बिना कष्टके शरीर छोड़कर जाकर अमरावती (इन्द्रपुरी)-में वास किया। (४)

यह अत्यन्त पवित्र इतिहास महादेवने पार्वतीको कह सुनाया। (याज्ञवल्क्य कहते हैं—) 'हे भरद्वाज ! अब मैं रामके जन्मका जो दूसरा कारण सुनाता हूँ वह भी ध्यानसे सुन लो॥ १५२॥ देखो मुनि ! मैं आपको वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनाए डालता हूँ जो शिवने पार्वतीको सुनाई थी—

'संसार (-के देश)-में कैकय नामका एक प्रसिद्ध देश है। वहाँका राजा था सत्यकेतु। (१) वह बड़ा धर्मात्मा, नीतिको जाननेवाला, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान् था। उसके दो पुत्र हुए। दोनों ही बड़े वीर, सब गुणोंसे सम्पन्न और युद्धमें सदा डटे रहनेवाले थे। (२) उस राज्यके उत्तराधिकारी बड़े पुत्रका नाम प्रतापभानु और दूसरे पुत्रका नाम अरिमर्दन था, जो बड़ा बली था और युद्धमें कभी पीछे नहीं हटता था। (३) दोनों भाइयोंमें परस्पर इतना अधिक स्नेह था कि उनके आपसके प्रेममें कहीं कोई कमी या छलका नाम नहीं था। (वृद्ध हो जानेपर) राजा भी

१. जेठ जु राजधनी सुत आही।

१७३६-३७ एवं दत्वा वरस्तस्मै तत्रैवान्तर्दधे हरिः॥ —पद्मपुराण
१७४४ कैकयो नाम विदितः स्फीतो जनपदो महान्। तत्र राजा सत्यकेतुः सर्वधर्मपरायणः॥
१७४५ तत्पुत्रौ धीरधिषणौ सर्वक्षत्रगुणान्वितौ।
१७४८ प्रतापभानुर्बलवानपरश्चारिमर्दनः॥
१७४९ ज्येष्ठं राज्ये प्रतिष्ठाप्य सत्यकेतुर्वनं गतः। —लोमशरामायण

१७५० दो०—जब प्रतापरबि भयउ नृप , फिरी दोहाई देस ।
प्रजा-पाल अति बेद-बिधि , कतहुँ नहीं अघ-लेस ।। १५३ ।।
नृप - हित - कारक सचिव सयाना । नाम धरम-रुचि सुक्र-समाना ।
सचिव सयान, बंधु बलबीरा । आप प्रताप - पुंज, रन - धीरा । (१)
सेन संग चतुरंग अपारा । अमित सुभट सब समर-जुझारा ।
सेन बिलोकि राउ हरषाना । अरु बाजे गहगहे निसाना । (२)
बिजय - हेतु कटकई बनाई । सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ।
जहँ - तहँ परी अनेक लराईं । जीते सकल भूप बरिआईं । (३)
सप्त दीप भुजबल बस कीन्हें । लै-लै दंड छाँड़ि नृप दीन्हें ।
सकल - अवनि - मंडल तेहि काला । एक प्रतापभानु महि-पाला । (४)
१७६० दो०—स्वबस बिस्व करि बाहु-बल , निज पुर कीन्ह प्रबेस ।
अरथ-धरम-कामादि - सुख , सेवै समय नरेस ।। १५४ ।।

ज्येष्ठ पुत्र (प्रतापभानु)-को राज्य सौंपकर आप (भगवान्‌के भजनके लिये) वन चला गया (४)

जब प्रतापभानुने राज्य सँभाला तो देश भरमें उसकी दुहाई[1] फिर गई (जो भी कष्टमें होता उसके शरणमें पहुँचकर निर्भय हो जाता, उसके प्रतापकी धूम मच गई) । वह वेदकी विधि (नीति)-के अनुसार यथोचित रीतिसे प्रजाका (इस प्रकार) पालन करने लगा कि उसके राज्यमें कहीं पापका नामतक नहीं रह गया ।। १५३ ।। उसका मंत्री धर्मरुचि भी सदा राजाके हितका ही ध्यान रखता था और शुक्राचार्यके समान बहुत बुद्धिमान् था । ऐसे बुद्धिमान् मंत्री और (अरिमर्दनके समान) बलवान् तथा वीर भाईके साथ-साथ स्वयं राजा भी बड़ा प्रतापी और रणधीर था । (१) उसके पास अपार चतुरंगिणी (हाथी, रथ, घोड़े, पैदलकी) सेना थी, जिसमें ऐसे-ऐसे असंख्य वीर योद्धा भरे पड़े थे कि रणमें उतर जायँ तो जूझ मरें (पर पीठ दिखानेका नाम न लें) । अपनी ऐसी बलवती सेना देख-देखकर राजा फूला नहीं समाता था । ढमाढम डंके बज उठे । (२) राजाने सेना सजाकर, शुभ मुहूर्त देखकर और डंका (ढक्का, नगाड़ा) बजाकर दिग्विजयके लिये प्रस्थान कर दिया । जहाँ-जहाँ जितने राजाओंसे लड़ाइयाँ हुई उन सब राजाओंको उसने बलपूर्वक जीत लिया । (३) अपनी भुजाओंके बलसे उसने सातों (जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाल, पुष्कर) द्वीपोंके राजाओंको (सारी पृथ्वीको) जीतकर अपने हाथमें कर लिया और फिर उनसे राज-कर ले-लेकर उन्हें भी छोड़ दिया (उनका राज्य उन्हें लौटा दिया) । इस प्रकार उस समय सारे भूमण्डलका एकमात्र (चक्रवर्ती) राजा कोई था तो प्रतापभानु ही था । (४) अपनी भुजाके बलसे सारा विश्व (सारी पृथ्वी) जीतकर राजा (प्रतापभानु) अपने नगर लौट आया और लौटकर वह अर्थ, धर्म

---

१. दुहाई='हा-हा' (हम संकटमें हैं, आप ही हमारी रक्षा कीजिए) ।

१७५०-५१ प्रतापभानुर्नृपतिर्वेदबोधितवर्त्मना । पालयामास तद्राज्यं नाकं नाकपतिर्यथा ।।
१७५२ मन्त्री धर्मरुचिस्तस्य नीतौ शुक्रांगिरः समः ।।
१७५३-५६ बलं सर्वगुणोपेतं सेनानीः षण्मुखोऽपरः । एवं सर्वगुणोपेतो विजयाय विनिर्गतः ।
१७५७-६१ सप्तद्वीपवतीं चक्रे धरित्रीं शासने निजे । —लोमशरामायण

भूप प्रतापभानु - बल पाई । काम - धेनु भइ भूमि सुहाई ।
सब - दुख - बरजित प्रजा सुखारी । धरम - सील सुंदर नर - नारी । (१)
सचिव धरम-रुचि, हरि - पद - प्रीती । नृप-हित-हेतु सिखव नित नीती ।
गुरु, सुर, संत, पितर, महिदेवा । करै सदा नृप सबकै सेवा । (२)
भूप - धरम जे बेद बखाने । सकल करै सादर सुख माने ।
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना । सुनै सास्त्रबर, बेद, पुराना । (३)
नाना बापी, कूप, तड़ागा । सुमन - बाटिका, सुंदर बागा ।
बिप्र - भवन, सुर - भवन सुहाए । सब तीरथन बिचित्र बनाए । (४)
१७७० दो०—जहँ लगि कहे पुरान - श्रुति , एक - एक सब जाग ।
बार सहस्र - सहस्र नृप , किए सहित अनुराग ।। १५५ ।।
हृदय न कछु फल अनुसंधाना । भूप बिबेकी परम सुजाना ।
करै जे धरम, करम - मन - बानी । बासुदेव - अरपित नृप ज्ञानी । (१)

और कामसे प्राप्त होनेवाले सब सुखोंका यथासमय उपभोग करने लगा ।। १५४ ।। राजा प्रतापभानुका बल (आश्रय) पाकर पृथ्वी भी कामधेनु बन गई (धन-धान्य-सम्पन्न हो गई) । उसके राज्यमें प्रजाको किसी प्रकारका कोई दुःख नहीं रह गया । जिधर देखो उधर सब लोग सुखसे जीवन बिताने लगे । उसके राज्यमें सभी स्त्री-पुरुष बड़े सुन्दर (स्वस्थ) और धर्मात्मा थे । (१) उसका मंत्री धर्मरुचि भी भगवान्‌के चरणोंका बड़ा भक्त था और वह राजाके कल्याणके लिये राजाको नित्य नई-नई नीति सिखलाता रहता था । राजा भी गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करता रहता था (२) और वेदों (वेद, शास्त्र, स्मृति, पुराण)-में जो कुछ राज-धर्म बताया गया है, सबका वह आदरपूर्वक प्रसन्न चित्तसे व्यवहार करता चलता था । वह प्रतिदिन अनेक प्रकारके दान देता रहता और श्रेष्ठ शास्त्रके ग्रन्थ, वेद, और पुराण सुनता रहता था । (३) (उस राजाने) अनेक बावड़ियाँ, कुएँ, सरोवर, फुलवारी, सुन्दर उद्यान, ब्राह्मणोंके लिये घर और विभिन्न देवताओंके सुन्दर-सुन्दर और नये-नये प्रकारके मंदिर सब तीर्थोंमें जा बनवाए थे । (४) वेदों और पुराणोंमें जितने प्रकारके यज्ञ बताए गए हैं, वे सभी यज्ञ राजाने एक-एक बारके बदले प्रेमपूर्वक सहस्र-सहस्र बार कर डाले ।। १५५ ।। राजाने इसलिये वे यज्ञ नहीं किए थे कि उनके हृदयमें (यज्ञोंसे) कुछ फल प्राप्त करनेकी भावना रही हो । वह बड़ा ज्ञानी और बहुत बुद्धिमान् था । वह ज्ञानी राजा इतना कामना-रहित था कि मन, वचन और कर्मसे जो भी कुछ धर्म-कार्य करता था, सब वासुदेवको अर्पण कर डालता था । (१)

१७६२ प्रतापभानौ नृपतौ मही कामदुघाऽभवत् ।।
१७६३ सर्वदुःखविनिर्मुक्ताः प्रजा धर्मपरायणाः ।
१७६४-६६ वेदे स्मृतौ च ये धर्मा राज्ञः प्रोक्तास्शुभावहाः । सर्वान्चकार नृपतिर्विधिवद् वेदवित्तमः ।।लो०रा०
१६६७-७१ स राजा सकलास्त्रज्ञः शास्त्रज्ञः श्रुतिपारगः । वीरोऽत्यन्तबलोत्साही नित्योद्योगी दयानिधिः ।।
विप्रानर्च्य महातेजा नाना यागान् समाप्य च । सानुरागेण मनसा दक्षिणान्दत्तवान् बहु ।।
१७७२-७३ फलाभिलाषां सन्त्यज्य कर्म क्लेशहेतुकम् । कृतवान् धर्ममर्मज्ञो नरपालो महामनाः ।।स्क०पु०

चढ़ि बर बाजि बार ऐक राजा। मृगया-कर सब साजि समाजा।
बिंध्याचल गँभीर बन गयऊ। मृग पुनीत बहु मारत भयऊ। (२)
फिरत बिपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू।
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोधबस उगिलत नाहीं। (३)
कोल - कराल - दसन - छबि गाई। तनु बिसाल, पीवर अधिकाई।
घुरघुरात हय - आरव पाए। चकित बिलोकत कान उठाए। (४)
१७८० दो०—नील महीधर - सिखर सम , देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ, हय सुटुकि नृप , हाँकि न होइ निबाहु ॥ १५६ ॥
आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत - गति भाजी।
तुरत कीन्ह नृप सर - संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना। (१)
तकि - तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा।
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस-बस भूप चलेउ सँग लागा। (२)

एक बार वह राजा (प्रतापभानु) बढ़िया घोड़ेपर सवार होकर आखेटकी पूरी तैयारी करके विन्ध्याचलके घने जङ्गलमें जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने एकसे एक उत्तम बहुतसे मृगोंका आखेट किया। (२) इतनेमें राजा देखता क्या है कि वनमें एक बड़ा-सा बनैला सूअर भूमता चला जा रहा है। (उसके द्वितीयाके चन्द्रमाके समान चमकनेवाले दाँत ऐसे दिखाई दे रहे थे) मानो राहु ही चन्द्रमाको ग्रसकर वनमें आ छिपा हो, पर चन्द्रमा इतना बड़ा हो कि न तो वह उसे निगल ही पा रहा हो और न क्रोधके मारे उगल ही पा रहा हो। (३) उधर एक ओर उस सूअरके भयंकर दाँतोंकी यह शोभा थी जो ऊपर बताई गई है, इधर उसका शरीर भी कुछ कम भारी-भरकम और मोटा न था (बहुत बड़ा और मोटा था)। (वह सूअर) घोड़ेकी आहट पाते ही घुरघुरा उठा और आश्चर्यसे चौकन्ना होकर कान उठाकर इधर-उधर चकपकाकर देखने लगा। (४) नीले पर्वतकी चोटीके समान उस विशाल-काय सूअरको देखते ही राजाने चट एड़ देकर (चाबुक लगाकर) उसके पीछे वेगसे घोड़ा छोड़ दिया, क्योंकि अब घोड़ेको केवल हाँक देने-भरसे तो काम चलनेवाला नहीं था ॥ १५६ ॥ (टाप बजाते हुए) घोड़ेको बड़े वेगसे अपनी ओर आते देखकर, वह सूअर भी वायुकी गतिसे भाग खड़ा हुआ। पर राजाने तुरन्त धनुषपर बाण जो चढ़ाया तो वह सूअर बाण चढ़ा देखते ही धरतीपर फैल गया। (१) राजा उसपर जितना ताक-ताककर बाण चलावें, उतने ही अधिक छलसे वह सूअर उनका वार बचाता चला जाय। इस प्रकार वह पशु (सूअर) कभी दिखता कभी छिपता वेगसे सरपट भाग चला और राजा भी क्रोधके मारे उसके पीछे-पीछे लग चला। (२)

१७७४-७५ एकदा हयमारुह्य मृगयार्थे नरेश्वरः। ससेनः श्वापदान् निघ्नन् विन्ध्याटव्यां विवेश ह॥लो०रा०
तत्र विव्याध विशिखैः शार्दूलान् गवयान् मृगान्। रुरून् वराहान् महिषान् मृगेन्द्रानपि भूरिशः॥—स्कन्दपु०
१७७६-७७ तत्र कश्चिद् दीर्घदंष्ट्रो वराहः पुरतोऽभवत्। मुखेन चन्द्रमादाय यथा स्यात् सिंहिकासुतः॥
१७७८-८४ करालं कोलमालोक्य घुर्घुरारावसंयुतम्। नाराचपूगानसृजन् नरनाथो जिघांसया॥लो०रा०

गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिंन गज-बाजि-निबाहू।
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग-मग तजै नरेसू। (३)
कोल, बिलोकि भूप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरि-गुहा गँभीरा।
अगम देखि, नृप अति पछिताई। फिरेउ, महाबन परेउ भुलाई। (४)

१७९० दो०—खेद खिन्न, छुद्धित, तृषित, राजा बाजि-समेत।
खोजत ब्याकुल सरित-सर, जल-बिनु भयउ अचेत ॥ १५७ ॥

फिरत बिपिन आश्रम ऐक देखा। तहँ बस नृपति कपट-मुनि-बेखा।
जासु देस नृप लीन्ह छुड़ाई। समर सेन तजि, गयउ पराई। (१)
समय प्रतापभानु-कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी।
गयउ न गृह, मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी। (२)
रिस उर मारि, रंक जिमि, राजा। बिपिन बसइ तापस-के साजा।
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरबि, तेहि तब चीन्हा। (३)
राउ तृषित, नहिं सो पहिचाना। देखि सुबेष, महामुनि जाना।

भागते-भागते वह सूअर बहुत दूर ऐसे घने जङ्गलमें जा घुसा, जहाँ हाथी-घोड़ेकी पहुँच ही नहीं हो सकती थी। राजा नितान्त अकेला रहा गया था (उसके साथी सब पीछे छूट गए थे) और जङ्गल भी बड़ा बीहड़ था फिर भी राजाने उस पशु (सूअर)-का पीछा नहीं छोड़ा (३) राजाको इतना धैर्यवान् (इतने जीवटका वीर) जानकर वह सूअर भागता-भागता पहाड़की एक लंबी गुफामें जा घुसा। उस गुफाके भीतर पहुँच पाना कठिन देखकर बहुत पछताते हुए राजा लौटा तो वहींपर उस बीहड़ वनमें भटककर मार्ग भूल गया। (४) राजा थकावटसे चूर होकर घोड़ेपर चढ़ा भूखा-प्यासा उस घने वनमें नदी-जलाशय खोजता हुआ प्यासके मारे व्याकुल होकर अधमरा-सा हो चला ॥ १५७ ॥ इस प्रकार वनमें घूमते-भटकते हुए राजाने देखा कि सामने किसी मुनिका आश्रम है। वहाँ कपटी मुनिका वेष धरे एक राजा आश्रम बनाकर जा बसा था जिसका देश राजा प्रतापभानुने छीन लिया था और जो सेना छोड़कर युद्ध-भूमिसे पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ था। (१) राजा प्रतापभानुके सौभाग्य या ऐश्वर्यके दिन समझकर और अपने बुरे दिन देखकर वह अभिमानी राजा ग्लानिके मारे न तो अपने घर ही लौटा और न राजा प्रतापभानुसे ही जाकर मिला (शरणमें गया)। (२) अपना क्रोध अपने मनमें दबाए हुए वह राजा दरिद्रकी भाँति उस वनमें जाकर तपस्वीका वेष बनाए रहने लगा।

(जलाशयकी खोजमें भटकते हुए) राजा प्रतापभानु ज्योंही उस (कपट मुनि)-के पास पहुँचे त्योंहीं वह (कपटमुनि) राजाको पहचान गया कि हो न हो यह राजा प्रतापभानु ही है। (३) पर प्रतापभानु प्याससे इतने व्याकुल थे कि वे उसे न पहचान पाए और उसका सुन्दर (तपस्वीका) वेष देखकर वे उसे बड़ा तपस्वी समझ बैठे। (इसलिये) घोड़ेसे उतरकर राजा

१७८६-८७ दृश्यादृश्यतनुः कोलः पलायनपरोऽभवत्। अनुगच्छन् महीनाथो विवेश गहनं वनम् ॥
१७८८-८९ तत्रादृश्यं किरिं बुद्ध्वा स राजा श्रान्तवाहनः। निवृत्तो घोरगहने मार्गभ्रष्टो बभूव ह ॥
१७९०-९१ सघोटको महाराजः क्षुत्तृपार्तो भ्रमन् वने। वापीकूपतडागांश्च गवेषयतेस्म मुग्धवत् ॥लो०रा०

उतरि तुरग-तें कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा[1]। (४)
१८०० दो०—भूपति तृषित बिलोकि तेहि, सरवर दीन्ह देखाइ।
मज्जन-पान समेत-हय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥ १५८॥
गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ।
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी। (१)
को तुम, कस बन फिरहु अकेले। सुंदर जुवा जीव-पर हेले।
चक्रवर्ति-के लच्छन तोरे। देखत, दया लागि अति मोरे। (२)
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं, सुनहु मुनीसा।
फिरत अहेरे परेउँ भुलाई। बड़े भाग देखेउँ पद आई। (३)
हम कहँ दुरलभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा।
कह मुनि, तात! भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा। (४)
१८१० दो०—निसा घोर, गंभीर बन, पंथ न, सुनहु सुजान।
बसहु आज अस जानि तुम, जायहु होत बिहान॥ १९५ क॥

प्रतापभानुने उस मुनिको जा प्रणाम किया। पर (वह कपटी मुनि) इतना धूर्त्त था कि उसने अपना (वास्तविक) नाम खोलकर बताया ही नहीं। (४) राजाको प्यासा देखकर उस मुनिने जलाशय जा दिखाया। राजाने वहाँ पहुँचकर प्रसन्नता-पूर्वक अपने घोड़ेको भी ठंढा करके पानी पिलाया और स्वयं भी स्नान करके जल पीया॥ १५८॥ (इस स्नान और जलपानसे) राजाकी सारी थकावट भी उतर गई और उसमें फुर्ती भी आ गई। यह सब हो चुकनेपर वह तपस्वी उस राजा प्रतापभानुको अपने आश्रम ले गया और सूर्यास्तका समय होनेके कारण उस तपस्वीने राजाको (बैठनेके लिये) आसन दे दिया (क्योंकि रातको लौट सकना सम्भव नहीं था)। यह सब कर चुकनेपर वह मधुर वाणीमें बोला—(१) 'बताइए! आप कौन हैं? इतने सुन्दर युवक होकर आप अपनी जानपर खेलकर इस वनमें अकेले कैसे भटकते फिर रहे हैं? आपके (शरीरपर) चक्रवर्ती राजाके-से लक्षण देखकर मुझे आपपर बड़ी दया आ रही है।' (२)

(यह सुनकर राजाने कहा) 'देखिए मुनीश्वर! मैं प्रतापभानु नामके राजाका मन्त्री हूँ। आखेट करता-करता मैं इस वनमें आ भटका हूँ। बड़े भाग्यसे यहाँ आपके चरणोंके दर्शन हो गए। (३) हम (-जैसे लोगों)-को तो आप (-जैसे महात्माओं)-का दर्शन मिल ही कहाँ पाता है? जान पड़ता है हमारा कुछ भला ही होनेवाला है।'

तब मुनिने कहा—'देखिए! अँधेरा हो चला है और आपका नगर भी यहाँसे सत्तर योजन (४४८ किलो मीटर)-पर है। (४) आप तो जानते ही हैं कि रात भी बड़ी घनी अँधेरी है, जङ्गल भी बड़ा बीहड़ है, मार्ग भी कहीं ढूँढ़े नहीं सूझेगा, इसलिये आप आज रातको यहीं टिक रहिए। दिन निकले यहाँसे चले जाइएगा।'

---

१. परम चतुर निज कहेउ न नामा।

दो०—तुलसी जसि भवितब्यता, तैसी मिलै सहाइ।
आपुन आवै[1] ताहि-पहँ, ताहि तहाँ लै जाइ॥ १५९ ख॥
भलेहि नाथ, आयसु धरि सीसा। बाँधि तुरग तरु, बैठ महीसा।
नृप बहु भाँति प्रसंसेउ ताही। चरन बंदि निज भाग्य सराही। (१)
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता, प्रभु! करौं ढिठाई।
मोहि मुनीस! सुत, सेवक जानी। नाथ! नाम निज कहहु बखानी। (२)
तेहि न जान नृप, नृपहि सो जाना। भूप सुहृद, सो कपट सयाना।
बैरी, पुनि छत्री, पुनि राजा। छल-बल कीन्ह चहै निज काजा। (३)
१८२० समुझि राज-सुख दुखित अराती। अवाँ-अनल-इव सुलगै छाती।
सरल बचन नृप-के सुनि काना। बैर सँभारि हृदय हरषाना। (४)
दो०—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति-समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन, रहित-निकेत॥ १६०॥
कह नृप, जे बिज्ञान-निधाना। तुम सारिखे गलित-अभिमाना।

तुलसीदास कहते हैं कि जिसकी जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है उसे वैसी ही सहायता (प्रेरणा) भी आ मिलती है। वह (भवितव्यता) या तो आप ही उसके पास आ पहुँचती है, या उसे ही वहाँ ले जा पहुँचाती है॥ १५९॥

'बहुत अच्छा नाथ! यही सही।' यह कहकर और उस (कपटी मुनि)-की आज्ञा शिरोधार्य करके राजाने घोड़ेको तो पेड़से ले जा बाँधा और स्वयं (आसनपर) आ बैठा। राजाने उस मुनिकी बहुत-बहुत प्रशंसा की और उसके चरणोंकी वन्दना करके अपने भाग्यकी बड़ी सराहना की। (१) फिर राजा मधुर वाणीसे बोला—'प्रभो! आपको अपने पिताके समान पूज्य समझकर मैं कुछ ढिठाई किए डाल रहा हूँ। हे मुनीश्वर! (आपसे यही निवेदन है कि कृपा करके) मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम (परिचय) विस्तारसे बतला दीजिए। (२) (पीछे बताया जा चुका है कि) राजा तो उसे नहीं पहचान पाए थे पर उस (कपटी मुनि)-ने राजाको भली भाँति पहचान लिया था। राजाका हृदय तो शुद्ध था, पर वह मुनि तो कपटकी चाल चलनेमें बड़ा काइयाँ था। एक तो शत्रु, दूसरे क्षत्रिय और तीसरे राजा, इसलिये वह छलसे अपना काम निकालने (पिछले वैरका बदला लेने)-की पूरी घात लगाने लगा। (३) वह शत्रु अपने पुराने राजसुखको स्मरण कर-करके बड़ा दुखी हुआ रहता था। कुम्हारके आँवेकी आगकी भाँति उसकी छाती निरन्तर सुलगती रहती थी। राजाकी सीधी-सादी बातें सुनकर और अपना पिछला वैर स्मरण कर-करके वह मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ जा रहा था। (४) बड़ी लाग-लपेटके साथ कपटसे भरी मीठी वाणीमें वह बोला—'निर्धन और बिना घर-द्वारका होनेके कारण अब तो मेरा नाम केवल भिखारी ही समझिए'॥ १६०॥

इसपर राजा प्रतापभानुने कहा—'जो लोग आपके समान विज्ञानके भांडार और सदा

१. आपु न आवै : स्वयं उसके पास न आकर उसे ही वहाँ ले जा पहुँचाती है।

१८१२-१३ तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः। सहायास्तादृशाश्चैव यादृशी भवितव्यता॥ सु०

सदा अपनपौ रहहिं दुराए। सब विधि कुसल, कुबेप बनाए। (१)
तेहि - तें कहहि संत - श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि-केरें।
तुम सम अधन, भिखारि, अगेहा। होत बिरंचि - सिवहि संदेहा। (२)
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो - पर कृपा करिय अब स्वामी।
सहज प्रीति भूपति - कै देखी। आपु - विषय विस्वास बिसेखी। (३)
१८३० सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई।
सुनु, सति भाउ कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला। (४)

दो०—अब लगि मोहिं न मिलेउ कोउ, मैं न जनावौं काहु।
लोकमान्यता अनल- सम , कर तप - कानन दाहु ॥ १६१ क ॥

सो०—तुलसी देखि सुवेखु , भूलहिं मूढ़, न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु , वचन सुधा-सम, असन अहि ॥ १६१ ख ॥

तातें गुपुत रहौं जग माहीं। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं।
प्रभु जानत सब बिनहि जनाए। कहहु, कवन सिधि लोक रिझाए। (१)

अभिमानसे दूर रहनेवाले सन्त होते हैं, वे अपनेको सदा छिपाए ही रहते हैं क्योंकि कुवेष बनाए रखनेमें ही वे अपना सब प्रकारसे कल्याण समझते हैं। (१) इसीलिये संत लोग और वेद (वेद, शास्त्र, स्मृति, पुराण) पुकार-पुकारकर कहते हैं कि जो अपनेको परम अकिञ्चन, अत्यन्त दीन-हीन समझते हैं उन्हें ही भगवान् अपना प्रिय समझते हैं। आपके समान निर्धन, भिखारी और गृह-हीन संतोंको देख-देखकर तो ब्रह्मा और शिव भी संदेहमें पड़ जाते हैं (कि ये सर्वशक्तिमान होते हुए भी क्यों सब वैभव छोड़कर भिखारी बने बैठे हैं।) (२) आप जो भी हों वह हों, मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। स्वामी ! अब मुझपर कृपा कीजिए।' राजाकी स्वाभाविक प्रीति और अपने ऊपर इतना अधिक विश्वास देखकर (३) तथा पूर्ण रूपसे राजाको वशमें करके बहुत स्नेह दिखाता हुआ वह बोला—'सुनो राजन् ! मैं सच्ची बात आपको बताए देता हूँ। मुझे यहाँ रहते बहुत दिन बीत गए हैं। (४) अभीतक न तो मुझे ही यहाँ आपको छोड़कर कोई दूसरा मिल पाया और न मैंने ही किसीको बताया है कि मैं कौन हूँ क्योंकि लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके फेरमें पड़ना उस अग्निके समान है जो तपस्याके वनको भस्म कर डालती है।

तुलसीदास (उस मुनिके लिये) कहते हैं कि 'किसीका चमाचम वेष देखकर केवल मूर्ख ही धोखा खा जाते हैं, चतुर लोग उसके चंगुलमें नहीं फँस पाते। सुन्दर मोरको ही देख लो; जो बोलनेको तो कैसी मीठी बोली बोलता है पर साँपको भी पकड़कर कच्चा चबा जाता है' ॥ १६१ ॥

कपटी मुनि कहता जा रहा था—'इसलिये मैं संसारसे दूर यहाँ छिपा बैठा रहता हूँ और भगवान्को छोड़कर और किसीसे कोई प्रयोजन नहीं रखता। प्रभु (भगवान्) तो बिना जनाए ही सब कुछ जानते हैं, फिर संसारको (नाच-कूदकर) रिझानेसे क्या हाथ लगता है ? तुम बड़े शुद्ध

---

१. बंदि।

तुम सुचि, सुमति, परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि-पर तोरे।
अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही। (२)
१८४० जिमि-जिमि तापस कथै उदासा। तिमि-तिमि नृपहि उपज बिस्वासा।
देखा स्ववस करम-मन-बानी। तब बोला तापस बग-ध्यानी। (३)
नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप, बोलेउ पुनि सिर नाई।
कहहु नाम-कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी। (४)
दो०—आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उतपति भइ मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥ १६२॥
जनि आचरज करहु मन-माहीं। सुत! तप-तें दुरलभ कछु नाहीं।
तप-बल-तें जग सृजै बिधाता। तप-बल बिष्नु भए परित्राता। (१)
तप-बल संभु करहिं संघारा। तप-तें अगम न कछु संसारा।
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा (२)
१८५० करम, धरम, इतिहास अनेका। करै निरूपन बिरत-बिबेका।
उद्भव-पालन-प्रलय-कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी। (३)

हृदयवाले, बुद्धिमान् और मेरे परम प्रिय हो। तुम भी मुझपर प्रेम और विश्वास करते हो, तो भाई! ऐसी स्थितिमें यदि मैं तुमसे कुछ दुराव कर बैठूँ (छिपाऊँ) तो मुझे भयंकर पाप चढ़ेगा। (२) जैसे-जैसे वह (कपटी) तपस्वी उदासीनता (निर्लिप्तता)-की बातें करता जाता था, वैसे-वैसे राजाके मनमें उसके प्रति और भी अधिक विश्वास जमता चला जा रहा था। जब उसने समझ लिया कि यह राजा कर्म, मन और वाणीसे पूरा मेरे चंगुलमें आ फँसा है तब वह बगला-भगत बताने लगा—(३) 'देखो भाई! मेरा नाम है एकतनु।' यह सुनकर राजा उसके (चरणोंमें) सिर नवाकर बोला—'मुझे अपना परम सेवक (भक्त) समझकर आप इस (एकतनु) नामका अर्थ विस्तारपूर्वक समझा दीजिए।' (४) (कपटी मुनिने कहना प्रारंभ किया—) 'जब पहले पहल सृष्टि उत्पन्न हुई, उसीके साथ-साथ मैं भी उत्पन्न हुआ। तबसे मैंने कोई दूसरा शरीर धारण नहीं किया, इसीलिये मेरा नाम 'एकतनु' है॥ १६२॥ (देखो भाई! इस बातपर अपने) मनमें कुछ आश्चर्य मत करो। तपसे संसारकी कोई भी वस्तु पा सकना दुर्लभ नहीं है। तपके ही बलपर ब्रह्मा इस सृष्टिकी रचना करते हैं, तपके ही बलपर विष्णु भी (उस सृष्टिका) पालन करते हैं (१) और तपके ही बलपर शंभु भी (उसका) संहार कर पाते हैं। इस संसारमें तपस्याके द्वारा कोई भी वस्तु अगम नहीं है (तपसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है)।' यह सुनकर तो राजाके मनमें (उस मुनिके प्रति) और भी अधिक प्रेम बढ़ चला। तब उस (मुनि)-ने बहुतसी पुरानी-पुरानी कथाएँ छेड़ दीं' (जिनके द्वारा) वह कर्म, धर्म तथा अनेक प्रकारका इतिहास सुनाकर वैराग्य और ज्ञानका निरूपण करने लगा। (इतना ही नहीं, उसने) सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय (नाश) की ऐसी-ऐसी अनेक आश्चर्यपूर्ण कहानियाँ विस्तारसे

१८४६ तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषजं जगत्। तपो मध्यं तपोन्तश्च तपसा च तथा धृतम्॥ विष्णु सं०
१८४७-४८ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः। बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरन्तपः॥ भागवत

सुनि महीप, तापस - बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ।
कह तापस, नृप ! जानौं तोही। कीन्हेहु कपट, लाग भल मोही। (४)
सो०— सुनु महीस ! असि नीति, जहँ-तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहिं तोहिं-पर अति प्रीति, सोइ चतुरता विचारि तव ।। १६३ ।।
नाम तुम्हार प्रतापदिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा।
गुरु-प्रसाद सब जानिय राजा। कहिय न, आपन जानि अकाजा। (१)
देखि तात ! तव सहज सुधाई। प्रीति, प्रतीति, नीति - निपुनाई।
उपजि परी ममता मन मोरे। कहौं कथा निज, पूछे तोरे। (२)
१८६० अब प्रसन्न मैं, संसय नाहीं। माँगु, जो भूप ! भाव मन माहीं।
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद, विनय कीन्हि विधि नाना। (३)
कृपासिंधु मुनि ! दरसन तोरे। चारि पदारथ कर - तल मोरे।
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बर, होउँ असोकी[1]। (४)
दो०—जरा-मरन-दुख-रहित तनु, समर जितै जिनि कोउ।
एक-छत्र रिपु - हीन महि, राज कलप - सत होउ ।। १६४ ।।
कह तापस, नृप ! ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन, सुनु सोऊ।

कह सुनाईं कि (३) उन्हें सुन-सुनकर राजा उस तपस्वीके हाथ ऐसा बिक गया कि उसने अपना भी (प्रतापभानु) नाम उसे खोल बताया।

तपस्वीने कहा—'राजन् ! मैं आपको पहले ही भली भाँति जान गया था। आपने जो मुझसे कपट किया (अपना नाम पहले नहीं बताया) वह अच्छा ही किया (मुझे उचित ही लगा), (४) (क्योंकि) राजन् ! यही राजनीति है कि राजाको जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं बताते फिरना चाहिए। आपकी यह चतुराई देखकर मुझे आपसे और भी अधिक प्रीति बढ़ चली है ।।१६३।। आपके पिता महाराज सत्यकेतु थे और आपका नाम प्रतापभानु है। देखो राजन् ! गुरुके प्रसादसे मैं सब कुछ जानता हूँ। सर्वत्र अपना परिचय दे-देनेसे कभी-कभी अपनी बड़ी हानि हो जाती है। (१) आपकी स्वाभाविक सरलता, प्रेम, विश्वास और नीतिकी कुशलता देखकर आपके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर जाग उठा है। इसीलिये जब आप पूछ ही रहे हैं तो मैं आपको भी अपना परिचय दिए देता हूँ। (२) अब मैं आपपर बहुत प्रसन्न हूँ यह आप निःसंदेह जान लें। इसलिये राजन् ! इस समय आप जो वर चाहें मुझसे माँग लें।' ये मधुर वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और मुनिके चरण थामकर अनेक प्रकारसे उनकी प्रशंसा करने लगा। (३) (राजा कहने लगा—) 'हे कृपासिन्धु मुनि ! आपके दर्शनसे ही चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) मेरे हाथ लग गए हैं। फिर भी स्वामी ! (आप)-को प्रसन्न जानकर मैं यह दुर्लभ वर माँगकर प्रसन्न (निश्चिन्त) हो जाना चाहता हूँ कि (४) मेरे शरीरमें न कभी बुढ़ापा आ पावे, न मृत्यु आ पावे और न युद्धमें मुझे कोई जीत पावे। इस प्रकार सौ कल्पों-तक मैं पृथ्वीपर अकण्टक राज्य करता रहूँ ।। १६४ ।।'

यह सुनकर तपस्वी बोला—'ठीक है राजन् ! ऐसा ही होगा। परन्तु इसमें एक जो बाधा है,

---

१. बिसोकी।

कालौ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्र-कुल छाँड़ि महीसा। (१)
तप-बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह-के कोप न कोउ रखवारा।
जौं बिप्रन वस करहु नरेसा। तौ तुअ-बस बिधि-बिष्नु-महेसा। (२)
१८७० चल न ब्रह्मकुल-सन बरिआई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई।
बिप्र-श्राप-बिनु, सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेहुँ काला। (३)
हरषेउ राउ वचन सुनि तासू। नाथ! न होइ मोर अब नासू।
तव प्रसाद प्रभु! कृपा-निधाना। मो-कहँ सर्व काल कल्याना। (४)
दो०—एवमस्तु कहि कपट मुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार, भुलाब निज, कहहु त हमहिं न खोरि॥ १६५॥
तातें मैं तोहिं बरजौं राजा। कहे कथा तव परम अकाजा।
छठे श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार, सत्य मम बानी। (१)
यह प्रगटे अथवा द्विज-श्रापा। नास तोर, सुनु भानुप्रतापा।
आन उपाय निधन तव नाहीं। जौं हरि-हर कोपहिं मन माहीं। (२)
१८८० सत्य नाथ! पद गहि नृप भाखा। द्विज-गुरु-कोप कहहु को राखा।
राखै गुरु जौं कोप बिधाता। गुरु-बिरोध नहिं कोउ जग त्राता। (३)

वह भी समझ लीजिए। देखो राजन्! केवल एक ब्राह्मण-कुलको छोड़कर काल भी आपके चरणोंपर सिर आ झुकावेगा। (१) तपस्याका बल पा लेनेके कारण ब्राह्मण सदा बलवान् बना रहता है। यदि वह कहीं बिगड़ बैठे तब किसीके भी किए रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये नरपति! यदि आप किसी प्रकार ब्राह्मणोंको वशमें कर पा सकें तो ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी आपके वशमें हो जायँगे। (२) मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहे देता हूँ कि ब्राह्मण-कुलपर किसीका कोई बल नहीं चल सकता। इसलिये राजन्! ब्राह्मणोंका शाप छोड़कर और किसी प्रकारसे किसी समय भी आपका नाश नहीं हो सकता।' (३) उसकी बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—'तब तो नाथ! अब मेरा कभी नाश नहीं हो सकता। कृपानिधान प्रभु! आपके प्रसादसे अब मेरा सदा कल्याण हो कल्याण होगा।' (४) 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि बोला—'देखिए! हमसे भेंट होने और अपने मार्ग भूलकर इधर आ निकलनेकी बात यदि आपने किसीको भी बताई और (आपपर कुछ संकट आया) तो मुझे दोष न दीजिएगा॥ १६५॥ मैं आपको इसलिये सावधान किए दे रहा हूँ कि यह प्रसंग जहाँ आपने किसीको बताया कि आपपर बहुत बड़ा संकट आ सकता है। यह बात जहाँ छठे कानमें पड़ी कि आपका नाश हो जायगा। मेरी यह बात आप पक्की समझ लेना। (वहाँ घोड़ा भी खड़ा था इसलिये छठे कानमें बात पड़ ही गई थी। यह समझ कर ही कपटी मुनिने यह बात कही थी)। (१) देखो भानुप्रताप! यदि इस प्रसंगकी भनक-तक किसीके कानमें पड़ी अथवा ब्राह्मणोंने शाप दिया तब तो आपका अवश्य नाश हो जायगा; किन्तु इसके अतिरिक्त चाहे विष्णु और शंकर भी मनमें कोप कर बैठें तब भी अन्य किसी उपायसे आपकी मृत्यु नहीं हो सकती'। (२) राजाने (मुनिके) चरण पकड़कर कहा—'नाथ! आप जो कह रहे हैं, सत्य कह रहे हैं। भला ब्राह्मण और गुरुके कुपित हो जानेपर कोई किसीको कैसे रक्षा कर पा सकता है? यदि कहीं

जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास, नहिं सोच हमारे।
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु! महिदेव-श्राप अति घोरा। (४)
दो०—होहिं बिप्र बस कवन बिधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम तजि दीनदयाल निज[1], हितू न देखौं कोउ॥ १६६॥
सुनु नृप! बिबिध जतन जग-माहीं। कष्ट-साध्य पुनि, होहिं कि नाहीं।
अहै एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई। (१)
मम आधीन जुगुति नृप! सोई। मोर जाब तव नगर न होई।
आजु लगे, अरु जब-तें भयऊँ। काहू-के गृह-ग्राम न गयऊँ। (२)
१८९० जौं न जाउँ, तव होइ अकाजू। बना आइ असमंजस आजू।
सुनि महीस, बोलेउ मृदु बानी। नाथ! निगम असि नीति बखानी। (३)
बड़े सनेह लघुन-पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं।
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू। (४)
दो०—अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपालु।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीन-दयालु॥ १६७॥

ब्रह्मा क्रोध कर बैठें तो गुरु बचा लेते हैं, पर यदि कहीं गुरु ही क्रोध कर बैठें तब तो संसारमें कोई भी नहीं बचा पा सकता। (३) यदि आपके कथनानुसार मैं न चलूं तो मेरा नाश भले ही हो जाय, मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। हां प्रभो! मेरा मन केवल एक ही डरसे डरा जा रहा है कि ब्राह्मणका शाप सचमुच बड़ा कठोर होता है। (४) इसलिये कृपा करके ऐसी रीति भी आप ही बता दीजिए कि ब्राह्मणोंको किस प्रकार वशमें (प्रसन्न) किया जाय। दीनोंपर दया करनेवाले मुनि! अब तो आपको छोड़कर मुझे अन्य कोई भी अपना हितैषी नहीं दिखाई पड़ रहा है' ॥१६६॥ (मुनिने कहा)—'देखो राजन्! संसारमें उपायकी तो कोई कमी है नहीं (बहुतसे हैं), पर उन्हें कर पाना ही बहुत कठिन है। इतना करनेपर भी काम हो पावे या न हो पावे (इसका कोई निश्चय नहीं)। हाँ, एक उपाय है तो बहुत सुगम, पर उसमें भी थोड़ी अड़चन हो रही है। (१) वह उपाय भी है तो मेरे ही हाथमें, पर (कठिनाई यह है कि) आपके नगरमें मेरा जा सकना सम्भव नहीं है। मैंने जबसे जन्म लिया है, तबसे आजतक किसीके घर या गाँवमें मैंने पैर नहीं धरा। (२) (फिर यह भी सोचता हूँ कि) यदि आपके यहाँ जाता नहीं हूँ तो काम नहीं बनता दिखाई देता। यही बड़ी भारी दुविधा मेरे सामने आ खड़ी हुई है।'

यह सुनकर राजा बड़े चाटुकारी-भरे स्वरमें बोले—'नाथ! वेदोंमें तो नीति ही यही बतलाई गई है कि—(३) बड़े लोग सदा छोटोंपर वैसे ही स्नेह किया करते हैं जैसे पर्वत अपने सिरपर घास उगाए रहते हैं, अगाध समुद्र अपनी छातीपर फेन लहराए चलता है और पृथ्वी अपने ऊपर धूल चढ़ाए रहती है।' (४) यह कहकर राजाने झुककर मुनिके चरण जा पकड़े और कहा—'स्वामी! अब तो आपको मुझपर इतनी कृपा करनी ही पड़ेगी (मेरे नगरमें चलना ही होगा)। आप तो संत हैं, सदा दीनोंपर दया करते ही रहते हैं, अतः, मेरे लिये आपको इतना कष्ट उठाना ही

---

१. अब।

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट-प्रवीना।
सत्य कहौं भूपति! सुनु तोहीं। जग नाहिंन दुर्लभ कछु मोहीं। (१)
अवसि काज मैं करिहौं तोरा। मन-तन[1]-बचन भगत तैं मोरा।
जोग, जुगुति, तप[2], मंत्र-प्रभाऊ। फलै तबहिं, जब करिय दुराऊ। (२)
१६०० जौं नरेस मैं करौं रसोई। तुम परसहु, मोहि जान न कोई।
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तव आयसु अनुसरई। (३)
पुनि तिनके गृह जेंवै जोऊ। तव बस होइ भूप! सुनु सोऊ।
जाइ उपाइ रचहु नृप एहू। संवत-भरि संकलप करेहू। (४)

दो०—नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित-परिवार।
मैं तुम्हरे संकलप-लगि, दिनहिं करबि जेवनार॥ १६८॥

एहि बिधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहहिं सकल बिप्र बस तोरे।
करिहहिं बिप्र होम, मख-सेवा। तेहि प्रसंग सहजहिं बस देवा। (१)
और एक तोहिं कहौं लखाऊ। मैं एहि वेष न आउब काऊ।
तुम्हरे उपरोहित-कहँ राया। हरि आनब मैं करि निज माया। (२)
१६१० तप-बल तेहि करि आपु समाना। रखिहौं इहाँ बरष-परवाना।

पड़ेगा'॥ १६७॥ जब कपटी मुनिने समझ लिया कि राजा अब पूर्ण रूपसे मेरे चंगुलमें आ फँसा है, तो वह कपटकी चाल खेलनेमें कुशल तपस्वी बोला—'सुनो राजन्! मैं आपसे सत्य बताए देता हूँ कि संसारमें कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो मेरे लिये कठिन हो। (१) आप मन, शरीर और वचनसे मेरे भक्त हैं। इसलिये आपका कार्य तो जैसे भी होगा करना ही पड़ेगा। (देखो! इतना समझ लो कि) योग, युक्ति (गोपनीय ढंगसे किया जानेवाला उपाय), तपस्या और मंत्रका तभी ठीक प्रभाव होता है जब किसीको उसकी भनक-तक न लगे (वह गुप्त रूपसे किया जाय)। (२) इसलिये राजन्! वहाँ मैं जो भी रसोईं बनाऊँ वह आप स्वयं ही जाकर परोसिएगा। दूसरे किसीको मेरी झलक-तक भी न मिल पावे। फिर तो वह (मेरा राँधा हुआ) अन्न जिसके भी मुँहमें एक बार पड़ा कि वह आपकी आज्ञा कभी टाल नहीं सकेगा (३)। और फिर उसके घर भी जो कोई भोजन कर लेगा वह भी कभी आपके कहनेके बाहर न जा पावेगा। इसलिये राजन्! जाकर यही प्रबन्ध कीजिए और-वर्ष-भर तक (ऐसा ही ब्रह्म-भोज करानेका) संकल्प कर लीजिए (४)। आप नित्य नये-नये एक लाख ब्राह्मणोंके कुटुम्बको निमंत्रित करते जाइए और मैं भी आपका संकल्प पूरा हो जाने-तक भोजनके लिये नित्य दिनमें रसोई बनाता जाता रहूँगा॥ १६८॥ राजन्! इस प्रकार बहुत थोड़े ही परिश्रमसे सब ब्राह्मण आपके अधीन हो जायँगे। वे सब ब्राह्मण जो भी हवन, यज्ञ, सेवा-पूजा आदि करेंगे उससे सब देवता भी अपने-आप आपके वशमें आ जायँगे। (१) मैं यह भी आपको बताए देता हूँ कि मैं अपने इस रूपमें (आपके यहाँ) कभी नहीं आऊँगा। मैं अपनी मायासे आपके पुरोहितको तो यहाँ उठा लाऊँगा (२) और अपनी तपस्याके बलसे मैं उसे अपने-जैसा बनाकर एक वर्ष-तक

१. क्रम = कर्म। २. जप।

मैं धरि तासु बेष, सुनु राजा। सब बिधि तोर सँवारब काजा। (३)
गईं निसि बहुत, सयन अब कीजै। मोहिं तोहिं भूप भेंट दिन तीजै।
मैं तपबल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहौं सोवतहि निकेता। (४)

दो०—मैं आउब सोइ बेष धरि, पहिचानेउ तब मोहिं।
जब एकांत बुलाइ सब, कथा सुनावौं तोहिं ॥ १६९ ॥

सयन कीन्ह नृप, आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छल - ज्ञानी।
श्रमित भूप, निद्रा अति आई। सो किमि सोव, सोच अधिकाई। (१)
कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा।
परम मित्र तापस - नृप - केरा। जानै सो अति कपट घनेरा। (२)
१९१० तेहि - के सत सुत अरु दस भाई। खल, अति अजय, देव - दुखदाई।
प्रथमहिं भूप समर सब मारे। बिप्र - संत - सुर देखि दुखारे। (३)
तेहि खल पाछिल बैर सँभारा। तापस - नृप - मिलि मंत्र बिचारा।
जेहि रिपु - छय, सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी - बस न जान कछु राऊ। (४)

दो०—रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिय न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि - ससिहि, सिर - अवसेषित राहु ॥ १७० ॥

यहाँ छिपाए रक्खूंगा। फिर मैं ही उसका रूप बनाकर सब प्रकारसे आपका कार्य सँभाले रक्खूँगा। (३) देखो राजन् ! अब रात बहुत चढ़ आई है, जाकर सो रहो। आजसे तीसरे दिन मुझसे वहाँ आपकी भेंट होगी। मैं अपनी तपस्याके बलसे आपको और आपके घोड़ेको सोतेमें ही आपके घर पहुँचावा भिजवाऊँगा। (४) अब मैं उसी (पुरोहितके) वेषमें आपके यहाँ आऊँगा और वहाँ जब मैं आपको एकान्तमें बुलाकर यहाँकी सारी कथा कह सुनाऊँ, तभी आप समझिएगा कि वह मैं ही हूँ' ॥१६९॥ राजा तो उसकी आज्ञा मानकर जाकर पड़कर सो रहे और वह कपटी मुनि वहाँसे उठकर अपने आसनपर जा बैठा। राजा थका तो था ही, पड़ते ही उसे गहरी नींद आ गई। पर भला उस (कपट मुनि)-को कहाँ नींद आनेवाली थी ! उसे तो (अपना काम सिद्ध करनेकी) चिन्ता लगी हुई थी। (१)

इसी बीच वह राक्षस कालकेतु भी वहाँ आ पहुँचा जो सूअर बनकर राजाको वहाँतक भटका लाया था। वह उस कपटी तपस्वी राजाका बड़ा गहरा मित्र था और छल-प्रपञ्च ठानने (दाँवपेंच खेलने)-में बड़ा गुरुघंटाल था। (२) उसके सौ पुत्र और दस भाई ऐसे बड़े दुष्ट और अजेय थे कि देवताओं-तकको उन्होंने तंग कर मारा था। राजा (प्रतापभानु)-ने जब देखा कि ब्राह्मण, साधु-संत और देवता उन दुष्टोंसे दुखी हुए जा रहे हैं तो उन सबको प्रतापभानुसे संग्राममें पहले ही मार पछाड़ा था। (३) उसी दुष्ट (कालकेतु)-ने पिछला बैर स्मरण करके उस ढोंगी तपस्वी राजासे मिलकर ऐसी चाल चलनेकी सोची कि शत्रु (प्रतापभानु)-का कोई नाम-लेवा पानी-देवातक न बच रह जाय। भावी (होनहार) कुछ ऐसी थी कि राजाको उसकी भनक-तक न मिल पाई। (४) (तुलसीदास कहते हैं कि—) 'तेजस्वी शत्रु चाहे अकेला भी हो, फिर भी उसे छोटा समझनेकी भूल नहीं करनी चाहिए। देखिए ! जिस राहुका केवल सिर-भर बचा रह गया था वह भी आज-तक सूर्य

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी।
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई। (१)
अब साधेउँ रिपु, सुनहु नरेसा। जौं तुम कीन्ह मोर उपदेसा।
परिहरि सोच, रहहु तुम सोई। बिनु औषध, बिआधि बिधि खोई। (२)
२९३० कुल-समेत रिपु-मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई।
तापस-नृपहिं बहुत परितोषी। चला महा-कपटी अति रोषी। (३)
भानुप्रतापहि बाजि-समेता। पहुँचाएसि छन-माँझ निकेता।
नृपहि नारि-पहँ सयन कराई। हय-गृह बाँधेसि बाजि बनाई। (४)
दो०—राजा-के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि-खोह-महँ, माया करि, मति भोरि॥ १७१॥
आपु बिरचि उपरोहित-रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा।
जागेउ नृप अनभए बिहाना। देखि भवन, अति अचरज माना। (१)
सुनि महिमा मन-महँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं, जेहि जान न रानी।
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेही। पुर-नर-नारि न जानेउ केही। (२)
१९४० गए जाम-जुग भूपति आवा। घर-घर उत्सव बाज बधावा।
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोक सुमिरि सोइ काजा। (३)

और चन्द्रमाको सताए चला जा रहा (ग्रसता रहता) है' ॥ १७० ॥ तपस्वी राजाने अपने मित्रको वहाँ आया देखा तो बड़े हर्षसे उठ खड़ा हुआ और उससे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। (तपस्वी राजाने) अपने मित्र (कालकेतु)-से अब-तककी सारी कथा पूरी कह सुनाई। राक्षस (कालकेतु)-ने यह सब सुना तो प्रसन्न हो उठा और बोला—(१) 'राजन् ! जब आपने मेरे कहनेके अनुसार इतना काम कर डाला तो समझ लीजिए कि शत्रु मेरी मुट्ठीमें आया धरा है। अब आप सब चिन्ता छोड़कर पड़कर सो रहिए। अब तो विधाताने स्वयं बिना औषधके ही सारा रोग मिटा धरा है। (२) शत्रु और उसके सारे कुटुम्बको जड़-मूलसे उजाड़-पजाड़कर आजके चौथे दिन मैं आपसे यहीं आया मिलता हूँ।

इस प्रकार उस तपस्वी राजाको बहुत कुछ ढाढ़स बँधाकर उस महा मायावी और अत्यन्त क्रोधी राक्षसने वहाँसे चलकर क्षण भरमें राजा भानुप्रतापको और उनके घोड़ेको उनके घर ले जा पहुँचाया। (३) राजाको तो उसने रानीके पास ले जा सुलाया और घोड़ेको भली प्रकार घुड़सालमें ले जा बाँधा। (४) तब वह धीरेसे राजाके पुरोहितको वहाँसे उड़ा ले भागा और अपनी मायासे उसकी बुद्धि भ्रममें डालकर उसे पहाड़की उसी गुफामें ले जाकर सुला छोड़ा॥ १७१॥ यह सब कर-कराकर वह स्वयं पुरोहितका रूप बनाकर उस (पुरोहित)-के घर उसके बढ़िया पलँगपर जा लेटा। अँधेरे मुँह ज्यों ही राजाकी नींद खुली तो अपना घर देखकर वह बड़े आश्चर्यमें पड़ गया, (१) पर वह समझ गया कि यह सब मुनिकी ही महिमा है। बस वह ऐसे धीरेसे उठा कि रानी-को भी आहट न मिल पावे और अपने घोड़ेपर सवार होकर वनकी ओर निकल गया। यह बात नगरका कोई भी स्त्री-पुरुष जान नहीं पाया। (२) जब दो पहर बीते राजा लौटकर आया तो (राजाके सकुशल लौट आनेके उपलक्ष्यमें) घर-घर उत्सव होने और बधावे बजने लगे। वहाँ

जुग - सग नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि-पद रहि मति लीनी।
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा। (४)
दो०—नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम - बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर, विप्र कुटुम्ब - समेत ॥ १७२ ॥
उपरोहित जेवनार बनाई। छ रस, चारि विधि, जसि श्रुति गाई।
मायामय तेहि कीन्हि रसोई। बिंजन बहु, गनि सकै न कोई। (१)
बिबिध मृगन - कर आमिष राँधा। तेहि महँ बिप्र - माँस खल साँधा।
भोजन - कहँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए। (२)
१९५० परुसन जबहिं लाग महिपाला। भइ अकासबानी तेहि काला।
बिप्र - बृन्द उठि - उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि, अन्न जनि खाहू। (३)

पुरोहितको देखते ही राजाको उसी कार्य (ब्रह्म-भोज)-का स्मरण हो आया और वह उसे बड़े आश्चर्यसे देखने लगा। (३) (पर तीन दिन तो रुकना ही था।) राजाके वे तीन दिन किसी-किसी प्रकार एक युगके समान बीते। उसका मन उस कपटी मुनिके चरणोंमें ही लगा हुआ था। निश्चित समयपर (तीसरे दिन) वह पुरोहित (कालकेतु राक्षस) स्वयं राजाके पास जा पहुँचा और उसने राजाको (एकान्तमें बुलाकर सारी कथा सुनाकर) सब कुछ समझा दिया। (४) गुरुको पहचानकर राजाकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उसे ऐसा भ्रम हो गया कि वह ठीक-ठीक समझ नहीं पाया (कि यह तपस्वी मुनि है या राक्षस कालकेतु)। (फिर क्या था ?) राजाने तुरन्त एक लाख श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके कुटुम्बोंका वरण करके उन्हें ब्रह्म-भोजके लिये बुला भेजा (निमन्त्रण दे दिया) ॥ १७२ ॥

पुरोहितने छहों रसों (कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, अम्ल, लवण) और चारों प्रकारके (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय) भोजन बना धरे जैसा वेदों (पाकशास्त्र) में बताया गया है।[1] उसने तो अपनी मायासे ही रसोई बनाई थी इसलिये वहाँ इतने प्रकार व्यञ्जन बना धरे गए कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। (१) उसने वहाँ अनेक पशुओंके जो मांस पकाए उसीमें उस दुष्टने ब्राह्मणोंका मांस भी ला मिलाया। (बन चुकनेपर) ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलवा लिया गया और उनके चरण धो-धोकर आदरपूर्वक उन्हें आसनोंपर ला बैठाया गया। (२) ज्योंही राजाने ब्राह्मणोंको भोजन परोसना प्रारंभ किया, त्यों ही आकाशवाणी सुनाई पड़ी (जो उस कालकेतु राक्षसने ही की थी)—'हे ब्राह्मणो ! आप सब उठ-उठकर अपने-अपने घर चलते बनिए। यह अन्न जहाँ मुंहमें पड़ा कि बड़ा पाप लग जायगा। (३) यह जो रसोई परोसी जा रही है इसमें ब्राह्मणोंका मांस

---

१. चार प्रकारके भोजन-पदार्थ—(१) भक्ष्य : जो निगलकर खाया जाय, हलुआ, मलाई, रबड़ी आदि; (२) भोज्य : जो दाँतोंसे चबाकर खाया जाय जैसे दाल, भात, रोटी पूरी आदि; (३) लेह्य : जो चाटकर खाया जाय, जैसे चटनी, श्रीखण्ड आदि; (४) पेय : (जो पिया जाय, जैसे-दूध, खीर, रायता, शर्बत आदि। इनके अतिरिक्त दो और प्रकार हैं जो भोजनके अतिरिक्त समयमें खाए जाते हैं–(५) चर्व्य : जो दाँतोंसे चबाकर खाया जाय, जैसे–चबैना, चिउड़ा आदि; (६) चोप्य : जो चूस कर खाया जाय जैसे आम, गन्ना, आदि।

भयउ रसोईं भूसुर - माँसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू।
भूप बिकल, मति मोह - भुलानी। भावी - बस न आव मुख बानी। (४)
दो०—बोले बिप्र सकोप तव, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ ! सहित - परिवार ॥ १७३ ॥
छत्रबंधु ! तैं बिप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई।
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत - परिवारा। (१)
संवत - मध्य नास तव होऊ। जल - दाता न रहिहि कुल कोऊ।
नृप सुनि श्राप, बिकल अति त्रासा। भइ बहोरि बर गिरा अकासा। (२)
१९६० बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा।
चकित बिप्र सब, सुनि नभ-बानी। भूप गयउ जहँ भोजन-खानी। (३)
तहँ न असन, नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ, मन सोच अपारा।
सब प्रसंग महि - सुरन सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई। (४)
दो०—भूपति ! भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर।
किए अन्यथा होइ नहिं, बिप्र-श्राप अति घोर ॥ १७४ ॥

मिला हुआ है। (आकाशवाणी सुननी थी कि उसे) सत्य मानकर सब ब्राह्मण अपने-अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए। राजाको काटो तो लहू नहीं (राजा व्याकुल हो उठे)। उनकी बुद्धि चकरा गई (समझमें ही नहीं आया कि यह हो क्या गया)। होनहार ऐसी कि उनके मुँहसे भी एक शब्द न निकल पाया। (४) बिना कुछ उचित-अनुचितका विचार किए ही ब्राह्मण बड़े क्रोधमें गरज उठे— 'अरे मूर्ख राजा ! जा तू परिवार-सहित जाकर राक्षस हो जा ॥ १७३ ॥ अरे अधम क्षत्रिय ! तूने ब्राह्मणोंको बुलाकर उनके सारे समाजको पतित करना चाहा था किन्तु भगवान्‌ने हमारे धर्मकी रक्षा कर ली। जा, परिवार-सहित तेरा सर्वनाश हो जायगा। (१) एक वर्षके भीतर तेरा ऐसा सर्वनाश हो जायगा कि तेरे कुलमें कोई नामलेवा पानीदेवा-तक न बच रहेगा।

शाप सुनना था कि मारे डरके राजाकी घिग्घी बँध गई। इतनेमें ही फिर यह मनोहर (दैवी) आकाशवाणी सुनाई पड़ी—(२) 'हे ब्राह्मणो ! आप लोगोंने बिना विचारे ही यह शाप दे डाला है। राजाने कोई अपराध नहीं किया है।' यह आकाशवाणी सुनकर तो सब ब्राह्मण चकित होकर एक दूसरेका मुंह निहारने लगे। तब राजा झट उधर गया, जहाँ रसोई बन रही थी। (३) वहाँ जाकर राजा देखता क्या है कि वहाँ न तो भोजनका सामान ही है, न रसोई बनानेवाला ब्राह्मण ही है। राजाके मनमें धुकधुकी बढ़ चली। उसने बाहर आकर सारा वृत्तान्त ब्राह्मणोंको कह सुनाया और घबराकर धरतीपर मूर्च्छित होकर जा गिरा। (४) (यह सुनकर सब ब्राह्मण पछताते हुए बोले—) 'राजन् ! यद्यपि इसमें आपका कोई दोष नहीं था, तथापि होनहार क्या किसीके टाले टल पाती है। ब्राह्मणोंका शाप बड़ा कठोर होता है। वह किसीके मिटाए नहीं मिट सकता' ॥ १७४ ॥

१९५५-५६ अभोज्यं यद्विघाताय दत्तं हि पृथिवीपते। तस्मात् तवापि भवतु ह्येतदेव हि भोजनम् ॥
तद्या हि राक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप। इति शापं ददुर्विप्राः ॥ —नारदपुराण

अस कहि, सब महि-देव सिधाए। समाचार पुर - लोगन पाए।
सोचहिं, दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस, काग किय जेहीं। (१)
उपरोहितहिं भवन पहुँचाई। असुर, तापसहिं खबरि जनाई।
तेहि खल जहँ - तहँ पत्र पठाए। सजि - सजि सेन भूप सब धाए। (२)
१९७० घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई।
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु - समेत परेउ नृप धरनी। (३)
सत्यकेतु - कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्र - श्राप किमि होइ असाँचा।
रिपु जिति, सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय - जस पाई। (४)

दो०—भरद्वाज ! सुनु, जाहि जब , होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम, जनक जम , ताहि ब्याल-सम दाम ॥ १७५ ॥

काल पाइ, मुनि ! सुनु, सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित - समाजा।
दस सिर ताहि, बीस भुजदण्डा। रावन नाम, बीर बरिबंडा[१]। (१)

इतना कहकर वे सब ब्राह्मण वहाँसे उठ-उठकर अपने-अपने घर लौट गए। उधर नगरवासियोंके कानमें यह बात पड़ी तो सुनते ही उनका जी धक रह गया और वे जी भरकर लगे विधाता (भाग्य)-को कोसने कि उस (विधाता)-को यह क्या सूझी कि (राजाको) हंस बनाते-बनाते कौआ बना डाला। (जिस पुण्यात्मा राजाको देवता बनाना चाहिए था उसे राक्षस बना डाला)। (१) (उधर कालकेतुने) राजाके पुरोहितको गुफासे उठाकर उसके घर ला सुलाया और कपटी-मुनिको सारी घटना जा सुनाई। तब उस दुष्ट (कपटी मुनि)-ने जहाँ-तहाँ (एक-एक करके सब राजाओंको) पत्र लिख भेजे (कि आकर राजा प्रतापभानुपर चढ़ाई कर दो क्योंकि उसके बुरे दिन आ गए हैं)। (फिर क्या था !) सब राजा सेनाएँ सजा-सजाकर आ चढ़े। (२) उन सबने धौंसे बजा-बजाकर सारा नगर घेर लिया। नित्य अनेक प्रकारसे युद्ध होने लगा। भानुप्रतापके सब बड़े-बड़े वीर युद्धमें काम आए और अपने भाई (अरिमर्दन)-के साथ-साथ राजा प्रतापभानु भी युद्धमें खेत आया। (३) इस प्रकार राजा सत्यकेतुके कुलमें एक भी प्राणी जीता नहीं बच पाया। भला ब्राह्मणोंका शाप कैसे असत्य हो पा सकता था ? सब राजा लोग शत्रु (भानुप्रताप)-को जीतकर और फिरसे अपने-अपने नगर (राज्य) बसा-बसाकर विजय और यश लेकर अपने-अपने नगरों (राज्यों)-को लौट गए। (४)

(मुनि याज्ञवल्क्य कहते हैं—) 'हे भरद्वाज ! सुनिए। विधाता जब जिसके बुरे दिन ला देता है तब उसके लिये धूल भी सुमेरु पर्वतके समान (विशाल), पिता भी यमराज (काल)-के समान (कराल) और रस्सी भी साँपके समान घातक हो उठती है ॥ १७५ ॥ तो मुनि ! कुछ समयके पश्चात् वही राजा (प्रतापभानु) परिवार-सहित जाकर (ऐसा विकराल) राक्षस हुआ कि उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं। वही रावण नामका बड़ा ही प्रचण्ड वीर हुआ। (१) उसका

---

१. बीरबर चंडा।

१९७४-७५ गुणोपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि। सानुकूले पुनस्तस्मिन दोषोपि च गुणायते ॥सुभा०
१९७६-७८ पुष्पोत्कटायामज्ञाते द्वौ पुत्रौ राक्षसेश्वरौ। कुम्भकर्णदशग्रीवौ बलेनाप्रतिमौ भुवि ॥म०भा०

भूप - अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बल - धामा।
सचिव जो रहा धरम-रुचि जासू। भयउ विमात्र - बंधु लघु तासू। (२)
१९८७ नाम विभीषन जेहि जग जाना। विष्नु - भगत विज्ञान - निधाना।
रहे जे सुत, सेवक, नृप - केरे। भए निसाचर घोर घनेरे। (३)
काम - रूप खल जिनिस अनेका। कुटिल, भयंकर बिगत - बिबेका।
कृपा - रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाइ बिस्व - परितापी। (४)
दो०—उपजे जदपि पुलस्त्य-कुल , पावन, अमल, अनूप।
तदपि महीसुर-श्राप-बस , भए सकल अघ-रूप ।। १७६ ।।
कीन्ह बिबिध तप तीनिहु भाई। परम उग्र, नहिँ बरनि सो जाई।
गयउ निकट, तप देखि बिधाता। माँगहु बर, प्रसन्न मैं ताता। (१)
करि बिनती, पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन, सुनहु जगदीसा।
हम काहू - के मरहिँ न मारे। बानर - मनुज - जाति, दुइ बारे। (२)

छोटा भाई (अरिमर्दन) ही अत्यन्त बली कुम्भकर्ण नामसे उत्पन्न हुआ। राजाका मन्त्री धर्मरुचि ही रावणका सौतेला छोटा भाई हुआ, (२) जिसका विभीषण नाम संसारमें प्रसिद्ध है। वह विष्णुका बड़ा भक्त और बड़ा भारी ज्ञानी था। राजा (प्रतापभानु)-के जितने पुत्र और सेवक थे वे सब भी बड़े-बड़े भयंकर राक्षस होकर उत्पन्न हुए। (३) वे सब दुष्ट अनेक प्रकारका रूप धारण कर सकनेमें बड़े कुशल, कुटिल, भयंकर, विवेक-रहित, निर्दयी, हिंसक और संसार-भरको दुःख देनेवाले ऐसे बड़े पापी निकले कि उनका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता। (४) यद्यपि वे सब पुलस्त्य मुनिके पवित्र, निर्मल और अनुपम कुलमें उत्पन्न हुए थे, फिर भी ब्राह्मणोंके शापसे वे सबके-सब पापी होकर ही उत्पन्न हुए ।। १७६ ।। उन तीनों भाइयोंने ऐसी अनेक प्रचंड तपस्याएँ कीं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी (कठोर) तपस्या देखकर ब्रह्मा सबसे पहले रावणके पास पहुँचकर बोले—'पुत्र ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे जो चाहो वर माँग लो।' (१) यह सुनकर दस सिरवाले रावणने उनकी प्रशंसा करते हुए उनके चरण पकड़कर कहा -- 'हे जगत्‌के स्वामी ! (यदि देना ही चाहते हैं तो मुझे यही वर दीजिए कि) मैं बन्दर और मनुष्यको छोड़कर और किसीके मारे न मर पाऊँ।' (२) (पार्वतीसे शंकर कहते हैं कि—) मैंने और ब्रह्माजीने

१९७९-८० मालिनी जनयामास पुत्रमेकं विभीषणम्। विभीषणस्तु रूपेण सर्वेभ्योऽभ्यधिकोऽभवत् ।।
स बभूव महाभागो धर्मगोप्ता क्रियारतिः।
१९८१-८५ ऋषीणां शापतोऽवाप्तो दैत्यत्वं दनुजान्तक। रावणोपि न वै दैत्यो वैकुण्ठे तव सेवकः ।।
१९८६ ब्रह्माणं तोषयामासुर्घोरेण तपसा तदा ।। —महाभारत
१९८७ प्रीतोऽस्मि वो निवर्तध्वं वरान् वृणुत पुत्रकाः।
१९७८-८९ सुपर्णनागयक्षाणां देवतानां तथाऽसुरैः। अवध्यत्वं तु मे देहि तृणभूता हि मानुषाः।।
१९९०-९३ वाण्या व्याप्तोऽथ तं प्राह कुंभकर्णः पितामहम्। स्वप्स्यामि देव षण्मासान् दिनमेकं तु भोजनम्।।
१९९४-९५ ततः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमथाऽब्रवीत्। वत्स त्वं धर्मशीलोऽसि तथैव च भविष्यसि ।।
अयाचितोऽपि ते दास्ये ह्यमरत्वं विभीषण ।। —अ०रा०

१९९० एवमस्तु, तुम बड़ तप कीन्हा। मैं ब्रह्मा मिलि, तेहि वर दीन्हा।
पुनि प्रभु कुंभकरन-पहँ गयऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ। (३)
जौं यह खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि संसारू।
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नींद मास षट-केरी। (४)
दो०—गए बिभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र! वर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवंत-पद,-कमल अमल अनुरागु॥ १७७॥
तिन्हहिं देइ बर, ब्रह्म सिधाए। हरषित ते, अपने गृह आए।
मय-तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुन्दरी, नारि ललामा। (१)
सोइ मय दीन्हि रावनहिं आनी। होइहि जातुधान-पति जानी।
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई। (२)
२००० गिरि त्रिकूट ऐक सिंधु मँझारी। बिधि-निर्मित दुर्गम अति भारी।
सोइ मय दानव बहुरि सँवारा। कनक-रचित मनि-भवन अपारा। (३)
भोगावति-जसि अहि-कुल-बासा। अमरावति-जसि सक्र-निवासा।

मिलकर उसे वर दे दिया—'एवमस्तु (ऐसा ही हो), क्योंकि तुमने सचमुच बड़ी भारी तपस्या की है।' फिर प्रभु (ब्रह्मा) वहाँसे उठकर कुम्भकर्णके पास पहुँच गए। उसे देखकर ब्रह्माके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। (३) (उन्होंने मनमें सोचा कि) यदि यह दुष्ट नित्य भोजन ही करने बैठ जाया करेगा तो सारे संसारका मटियामेट कर डालेगा। इसलिये सरस्वतीसे प्रेरणा कराकर उन्होंने उसकी बुद्धि ऐसी उलटी कि उसने यही वर माँग लिया कि—'मैं निरन्तर छह महीने-तक पड़ा सोया करूँ।' (४) फिर विभीषणके पास जाकर ब्रह्माजी बोले—'पुत्र! तुम भी जो चाहो वर माँग लो।' उसने यही वर माँगा कि भगवान्‌के चरण-कमलोंमें सदा मेरी निर्मल भक्ति बनी रहे॥ १७७॥ उनको वर देकर ब्रह्मा (अपने ब्रह्मलोकको) चले गए और वे (तीनों भाई) प्रसन्न होकर घर लौट आए। मय दानवके मन्दोदरी नामकी ऐसी अनिन्द्य सुन्दरी पुत्री थी कि वह स्त्रियोंमें रत्न थी। (१) मय दानवने जब समझ लिया कि रावण ही राक्षसोंका राजा होगा तब उसने अपनी पुत्री (मन्दोदरी) रावणसे जा ब्याही। ऐसी परम सुन्दरी स्त्री पाकर रावणका हृदय खिल उठा। फिर उसने अपने दोनों भाइयों (कुम्भकर्ण और विभीषण)-का भी विवाह करा दिया[1]। (२) समुद्रके बीचमें ब्रह्माने अत्यन्त दुर्गम त्रिकूट नामका पर्वत बना छोड़ा था। उसीको मय दानवने साज-सँवारकर उसमें सोने और मणियोंसे जड़े अनेक भवन बना खड़े किए। (३) जैसे (पाताल-लोकमें) नागकुलकी भोगावती पुरी और (स्वर्गलोकमें) इन्द्रकी अमरावती है, उससे भी अधिक रमणीक और बाँकी

१. वैरोचन राजा बलिकी नातिन वृत्रज्वालासे कुम्भकर्णका तथा शैलूष नामके गन्धर्व-राजकी धर्मिष्ठ पुत्री सरमासे विभीषणका विवाह हुआ।

१९९७-९८ ततो मयो विश्वकर्मा राक्षसानां दितेः सुतः। सुतां मन्दोदरीनाम्नीं ददौ लोकैकसुन्दरीम्॥
१९९९ वैरोचनस्य दौहित्रीं वृत्रज्वालेतिविश्रुताम्। स्वयं दत्तामुदवहत् कुम्भकर्णाय रावणः॥
गन्धर्वराजस्य सुतां शैलूषस्य महात्मनः। विभीषणस्य भार्यार्थे धर्मज्ञां समुदावहत्॥

तिन्ह-तें अधिक रम्य अति बंका। जग-बिख्यात नाम तेहि लंका। (४)
दो०—खाईं सिन्धु गँभीर अति, चारिहु दिसि फिरि आव।
कनक-कोट मनि-खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव ॥ १७८ क ॥
हरि-प्रेरित जेहि कलप जोइ, जातुधानु - पति होइ।
सूर, प्रतापी, अतुल बल, दल-समेत बस सोइ ॥ १७८ ख ॥
रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन समर संघारे।
अब तहँ रहहिं सक्र - के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति - केरे। (१)
२०१० दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि, गढ़ घेरेसि जाई।
देखि बिकट भट, बड़ि कटकाई। जच्छ, जीव लै गये पराई। (२)
फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच, सुख भयउ बिसेखा।
सुंदर, सहज, असम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी। (३)
जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे।
एक बार कुबेर - पर धावा। पुष्पक - जान जीति लै आवा। (४)

वह लंकापुरी जगत्‌में विख्यात हो गई। (४) गहरा समुद्र ही उस लंकाकी खाई बनकर उसे चारों ओरसे घेरे हुए था और सुवर्ण तथा मणि जड़-जड़कर वह दुर्ग ऐसा सुन्दर बना दिया गया था कि उसकी रचनाका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १७८ क ॥ भगवान्‌की प्रेरणासे जिस कल्पमें जो भी राक्षसोंका शूर, वीर, प्रतापी और अतुल बलशाली राजा होता है, वही दल-बल-सहित वहीं (लंकामें ही) आकर रहने लगता है ॥ १७८ ख ॥ पहले वहाँ (लंकामें) जो बड़े-बड़े योद्धा राक्षस थे उन सबको देवताओंने युद्धमें मार डाला था और इन्द्रकी प्रेरणासे कुबेरके एक करोड़ रक्षक वहाँ आकर बस गए थे। (१) कहींसे रावणके कानमें इसकी भनक पड़ी तो उसने सेना लेकर उस दुर्गको जा घेरा। उस (रावण)-की विशाल सेना और उसके बड़े विकट-विकट योद्धाओंको देखते ही वहाँ जितने यक्ष थे सब अपने प्राण ले-लेकर भाग खड़े हुए। (२) उनके भाग जानेपर रावणने सारा नगर घूम-घूमकर भली प्रकार देखा-भाला। उसकी सारी चिन्ता दूर हो गई (कि कहाँ जाकर बसा जाय) और उसे (यह जानकर) बहुत सुख मिला बैठे बिठाए (यह अच्छा स्थान हाथ आ लगा है)। जब रावणने समझ लिया कि यह पुरी स्वभावतः सुन्दर और दुर्गम है तब उसने वहाँ अपनी राजधानी बना बसाई। (३) (उसके सेवकोंमें) जो-जो जिस-जिस भवनके योग्य था उसे वैसा-वैसा भवन दे दिया गया। इस प्रकार जितने राक्षस साथ आए थे वे भी सब प्रसन्न हो उठे। वहाँसे एक बार (रावणने) कुबेर पर चढ़ाई करके उसका पुष्पक विमान छीन

२०००-३ दक्षिणस्योदधेस्तीरे त्रिकूटो नाम पर्वतः। तस्याग्रे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी यथा ॥
लंका नाम पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा।
हेमप्राकारपरिघा यन्त्रशस्त्रसमावृता। रमणीया पुरी सा हि रुक्मवैडूर्यतोरणा ॥—वा०रा
२००५-१५ अस्ति प्रशस्तविभवैर्विबुधैरलंघ्या लंकेतिनाम रजनीचरराजधानी।
माणिक्यमन्दिरभुवां महसां प्ररोहैस्तेजो जयाय दिनदीपदशान्दिशन्ती ॥
एनां पुराणनगरीं नगरीतिशालां सालाभिरामभुजनिर्जितयक्षराजः।
हेलाभिभूतजगतां रजनीचराणां राजा चिरादवति रावणनामधेयः ॥ —चम्पूरामायण
२०१५ ततः क्रुद्धो दशग्रीवो जगाम धनदालयम्। विमानं पुष्पकं तस्य जहाराक्रम्य रावणः ॥अध्या०रा०

दो०—कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहु-बल, चला बहुत सुख पाइ॥ १७९॥

सुख, संपति, सुत, सेन, सहाई। जय, प्रताप, बल, बुद्धि, बड़ाई।
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रति-लाभ लोभ अधिकाई। (१)
२९२० अति-बल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग-जाता।
करै पान, सोवै षट मासा। जागत, होइ तिहूँ पुर त्रासा। (२)
जौं दिन-प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई।
समर-धीर, नहिं जाइ बखाना। तेहि-सम अमित बीर बलवाना। (३)
बारिद-नाद जेठ सुत तासू। भट-महँ प्रथम लीक जग जासू।
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई। (४)

दो०—कुमुख, अकंपन, कुलिस-रद, धूमकेतु, अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय॥ १८०॥

लिया (४)। फिर उसने एक बार खेल-खेलमें ही कैलास पर्वत हाथोंपर जा उठाया मानो अपनी भुजाओंका बल तौलकर (और अपने बलके विश्वाससे बहुत संतुष्ट होकर) वहाँसे चला हो॥१७९॥ उसके सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई—ये सब नित्य नये-नये रूपोंमें वैसे ही बढ़ते चले गए जैसे लाभ होते चलनेके साथ-साथ लोभ बढ़ता चलता है। (१) कुम्भकर्णके समान उसके अत्यन्त बलवान भाईकी जोड़का कोई योद्धा संसारमें उत्पन्न ही नहीं हुआ। वह मदिरा पीकर छह महीने-तक सोता रहता और जिस दिन जागता उस दिन तीनों लोकमें हाहाकार मच जाता। (२) यदि वह कहीं प्रतिदिन भोजन करने लगा करता तो थोड़े ही दिनोंमें सारे संसारको धो-पोंछकर चट्ट कर जाता। वह युद्धमें ऐसा धीर (जमकर लड़नेवाला) था कि उसकी धीरताका वर्णन नहीं किया जा सकता। (लंकामें) एक-दो नहीं, उसीके समान और भी न जाने कितने योद्धा थे। (३) उस (रावण) का ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद भी (किसीसे कम नहीं था। वह भी) संसारके योद्धाओंमें सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। कोई ऐसा माईका लाल नहीं जनमा था जो संग्राममें उसके सामने डटा रह सके। देवलोकमें तो प्रतिदिन (उसका नाम सुनते ही) भगदड़ मच जाती थी। (४) (इनके अतिरिक्त) दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदन्त, धूम्रकेतु और अतिकाय आदि ऐसे-ऐसे अनेक योद्धा वहाँ थे, जो अकेले-अकेले ही सारा विश्व जीत ले सकते थे॥ १८०॥ कोई ऐसी माया (जादू, छल, इन्द्रजाल) नहीं

१०१६-१७ कैलासं तोलयासास बाहुभिः परिघोपमैः॥ —अध्या० रा०

२०१८-२३ कुम्भकर्णस्तु दुष्टात्मा नाना प्रहरणोद्यतः। नाज्ञायत तदा युद्धे सह केनाप्ययुध्यत॥

२०२४-२५ ततो मन्दोदरी पुत्रं मेघनादमजीजनत्। स एष इन्द्रजिन्नाम युष्माभिरभिधीयते॥
जातमात्रेण हि पुरा तेन रावणसूनुना। रुदता सुमहान् मुक्तो नादो जलधरोपमः॥
जडीकृता च सा लंका तस्य नादेन राघव। पिता तस्याकरोन्नाम मेघनाद इति स्वयम्॥

२०२६-२७ अकम्पनो निकुम्भश्च धूमकेतुर्घटोदरः। महाकायोऽतिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ॥
एतैः सर्वैः परिवृतो महावीर्यो महाबलः॥ —वाल्मीकीय रामायण

काम - रूप, जानहिँ सब माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया।
दसमुख बैठ सभा ऐक वारा। देखि अमित आपन परिवारा। (१)
२०३० सुत - समूह, जन, परिजन, नाती। गनै को पार निसाचर - जाती।
सेन विलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध - मद - सानी। (२)
सुनहु सकल रजनीचर - जूथा। हमरे बैरी विबुध - वरूथा।
ते सनमुख नहिँ करहिँ लराई। देखि सबल रिपु, जाहिँ पराई। (३)
तिन्ह-कर मरन एक विधि होई। कहौँ बुझाइ, सुनहु अब सोई।
द्विज - भोजन, मख, होम, सराधा। सब - कै जाइ करहु तुम बाधा। (४)
दो०—छुधा - छीन, बल - हीन सुर, सहजहिँ मिलिहहिँ आइ।
तब मारिहौँ कि छाँड़िहौँ, भली भाँति अपनाइ॥ १८१॥
मेघनाद - कहँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख, बल - वैर बढ़ावा।
जे सुर समर - धीर बलवाना। जिनके लरिबे - कर अभिमाना। (१)
२०४० तिन्हहिँ जीति रन, आनेसु बाँधी। उठि सुत, पितु - अनुसासन काँधी।

छूट गया था जो ये मायावी राक्षस जानते न रहे हों। धर्म और दयाका भाव तो इनमें स्वप्नमें भी नाम-मात्रको नहीं था।

एक वार रावण अपने दरबारमें बैठा अपना विशाल परिवार देख रहा था, (१) जिसमें पुत्र, कुटुम्बी, सेवक और नाती-पोते इतने अधिक थे कि उन राक्षसोंकी गिनती कोई कर नहीं पा सकता था। रावण तो स्वभावसे ही अभिमानी था। उसने जब अपनी यह (विशाल) सेना देखी तो क्रोध और गर्वसे भरी वाणीमें बोला—(२) 'देखो राक्षसो! (मेरी बात भली भाँति) सुन लो (समझ लो)। देखो! ये जितने भी देवता हैं सब हमारे परम शत्रु हैं। उनमें सामने आकर युद्ध करनेका कभी साहस नहीं होता। बलवान् शत्रुको देखते ही वे भाग खड़े होते हैं। (३) उन्हें ठिकाने लगानेका एक ही उपाय है। वह (उपाय) मैं समझाए दे रहा हूँ, कान खोलकर सुन लो। जहाँ-जहाँ ब्रह्म-भोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध होता दिखाई दे वहाँ-वहाँ पहुँचकर उसे तहस-नहस कर डालो। (४) (इन्हीं कामोंसे देवताओंको बल मिलता है। इसके अभावमें) जब ये देवता भूखके मारे दुर्बल और बलहीन हो जायँगे तब वे सहजमें ही हमारी शरणमें आ पहुँचेंगे। उस समय या तो मैं उन्हें एक-एक करके मार बिछाऊँगा या भली प्रकार उन्हें अपने अधीन करके सेवक बना छोड़ूँगा'॥ १८१॥ यह कहकर उसने मेघनादको पास बुलाया और उसे सिखा-समझाकर उसका बल और (देवताओंसे) वैर भड़काते हुए कहा—'देखो मेघनाद! जो देवता युद्धमें वीर और बलवान् (अच्छे लड़ाके) हैं और जिन्हें लड़नेका अभिमान है, (१) उन सबको तुम रणमें जीतकर

२०२७-३३ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे। ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान्॥अध्या०
२०३४-३७ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः। तस्य च ब्रह्मगोविप्रस्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः॥
विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः। श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः॥
स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः। तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः॥
अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम्॥—भागवत
२०३८-४० शृणु पुत्र च मद्वाक्यं यत्तावन् मम रोचते। युद्धाभिमानिनो देवान् जित्वा बद्ध्वानय द्रुतम्॥वा०रा०

यहि विधि सबहीं आज्ञा दीन्ही । आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही । (२)
चलत दसानन डोलत अवनी । गर्जत, गर्भ स्रवहिं सुर - रवनी ।
रावन आवत सुनेउ सकोहा । देवन तके मेरु - गिरि - खोहा । (३)
दिगपालन्ह - के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ।
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी । देइ देवतन्ह गारि पचारी । (४)
रन - मद - मत्त फिरै जग धावा । प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा ।
रवि, ससि, पवन, बरुन, धनधारी । अगिनि, काल, जम सब अधिकारी । (५)
किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर , नागा । हठि सबही - के पंथहिं लागा ।
ब्रह्म - सृष्टि जहँ - लगि तनुधारी । दस - मुख - बसवर्ती नर - नारी । (६)
२०५० आयसु करहिं सकल भय - भीता । नवहिं आइ नित चरन बिनीता । (६।।)
दो०—भुज - बल बिस्व बस्य करि , राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीक - मनि रावन , राज करै निज मंत्र ।। १८२ क ।।

बाँधे लिए चले आओ ।' पुत्र (मेघनाद)-ने उठकर झट पिताकी आज्ञा सिर-माथे चढ़ाई (और चल दिया)। रावणने सबको इसी प्रकार बुला-बुलाकर यही आदेश दिया और अपने आप भी हाथमें गदा लेकर निकल पड़ा । (२) रावण जब चला तो धरती डगमगा उठी और उस (रावण)-का गर्जन सुन-सुनकर देवाङ्गनाओंके गर्भ गिरने लगे । जब देवताओंने सुना कि रावण क्रोधमें भरा हमपर चढ़ा चला आ रहा है तो वे सब भाग-भागकर सुमेरु पर्वतकी गुफाओंमें जा छिपे । (३) रावणने घूम-घूमकर देखा कि दिक्पालोंके जितने लोक हैं सब सूने हुए पड़े हैं । वह बार-बार भयंकर सिंह-गर्जन करता हुआ और देवताओंको ललकारता हुआ गालियोंपर उतर आया । (४) रणके मदमें मतवाला होकर वह अपनी जोड़का योद्धा खोजता हुआ सारे जगत्में घूम फिरा, पर उसे कहीं कोई ऐसा योद्धा ढूँढ़े न मिल पाया (जो उससे लोहा ले सके) । सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम आदि जितने भी बड़े-बड़े अधिकारी देवता थे और (५) किन्नर, सिद्ध, मनुष्य और नाग आदि जितने भी थे सबके पीछे वह हठ ठानकर पड़ गया । ब्रह्माकी सृष्टिमें जहाँ-तक शरीरधारी स्त्री-पुरुष थे सभी रावणसे हार मान बैठे । (६) सबके सब डरके मारे वही करते जो रावणकी आज्ञा होती और नित्य उसके चरणोंमें विनयपूर्वक सिर जा नवाते । (६।।) रावणने अपनी भुजाओंके बलपर ही सारे संसारको ऐसा अपनी मुट्ठीमें कर डाला कि कोई भी स्वतन्त्र नहीं बच पाया । इस प्रकार वह सार्वभौम सम्राट् बनकर अपनी इच्छाके अनुसार राज्य चलाने लगा । ।। १८२ क ।।

२०४१-४३ तस्य राक्षससैन्यस्य समन्तादुपयास्यतः । देवलोकं ययौ शब्दो मथ्यमानार्णवोपमः ।।
श्रुत्वा तु रावणं प्राप्तं सक्रोधं देवतागणाः । ततः प्रदुद्रुवुः सर्वे दृष्ट्वा रक्षः पराक्रमम् ।।
सरितः कन्दराश्चैव विविशुर्भयपीडिताः ।।—वा०रा०

२०४४-४६ सिद्धचारणविद्याधानृपीन् पितृपतीन्मनून् । यक्षरक्षांसि भूतानि प्रेतभूतपतीनथ ।।
सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित् । जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ।।भाग०

२०५० सभयं देवताः सर्वा आज्ञामापालयन्ति ताः ।।

२०५१-५२ निज बाहुबलेनैव स्वतन्त्रीकृत्य रावणः । भूपालराजितिलको विश्वं शास्तिस्म पार्थिवान्।।अध्या.रा.

देव - जच्छ - गन्धर्व - नर, किन्नर - नाग - कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु - बल, बहु सुन्दर बर नारि ॥ १८२ ख ॥
इंद्रजीत - सन जो कछु कहेउ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ।
प्रथमहिं जिन्ह - कहँ आयसु दीन्हा। तिन्ह - कर चरित सुनहु जो कीन्हा। (१)
देखत भीम - रूप सब पापी। निसिचर - निकर देव - परितापी।
करहिं उपद्रव असुर - निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। (२)
जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहिं बेद - प्रतिकूला।
२०६० जेहि जेहि देस धेनु - द्विज पावहिं। नगर - गाउँ - पुर आगि लगावहिं। (३)
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव[1] - बिप्र - गुरु मान न कोई।
नहिं हरि भगति, जग्य, तप, ग्याना। सपनेहुँ सुनिय न बेद पुराना। (४)
छंद—जप, जोग, बिरागा, तप, मख - भागा, श्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै, रहै न पावै, धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा, भा संसारा, धरम सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै, देस निकासै, जो कह बेद - पुराना॥ [१८]

(इतना ही नहीं,) उसने देवता, यक्ष, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नाग-कन्याओं तथा और भी बहुत सी सुन्दरी स्त्रियोंको अपने बाहुबलसे जीतकर उनसे विवाह कर लिया ॥ १८२ ख ॥ उधर मेघनादको उसने जो कुछ कहा था, वह सब उसने मानो पहले ही पूरा कर छोड़ा था। जिन (निशाचरों)-को पहले आज्ञा दी गई थी अब उनका वर्णन सुनिए कि उन सबने क्या-क्या करतब किया। (१) उन सब राक्षसोंका समूह देखनेमें भयानक, पापी और देवताओंको दुःख देनेवाला था। वे असुर अनेक प्रकारके उपद्रव किया करते और मायासे जब जहाँ जैसा चाहते वहाँ वैसा रूप धारण कर लेते। (२) वे सदा ऐसे ही सब काम करते रहते थे जो वेदके विरुद्ध होते और जिनसे धर्मका सर्वनाश होता हो। वे जहाँ भी गौ और ब्राह्मणोंको पाते, उसी नगर, गाँव और पुरको जाकर आग लगा आते थे। (३) (इन राक्षसोंका इतना डर छा गया था कि) कहीं भी कोई शुभ आचरण नहीं हो पाता था। देवता, ब्राह्मण और गुरुका कहीं कोई आदर नहीं रह गया था। भगवान्‌की भक्ति, यज्ञ, जप, दान आदि तथा वेद-पुराणोंका कहीं स्वप्नमें भी नाम नहीं सुनाई पड़ता था। (४) जहाँ कहीं जप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञमें (देवताओंको) भाग मिलनेकी बात रावण कानमें पड़ती तो वह स्वयं वहाँ उठकर दौड़ पहुँचता और तहस-नहस कर डालता और जो वहाँ मिलता सबको पकड़-पकड़कर मार डालता था। संसार-भरमें ऐसा भयंकर भ्रष्टाचार फैल चला कि धर्मका कहीं नाम-तक नहीं सुनाई पड़ रहा था। यदि कोई कहीं वेद-पुराण कहता-सुनता मिल भी जाता तो

१. वेद।

२०५३-५४ उत्साद्य त्रिलोकीं स स्त्रियश्चाप्युपकर्षति। —अध्यात्मरामायण
२०५७-५८ ततः प्रकम्पितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्। कामरूपधरा दैत्या धर्मं निर्मूलयन्ति ते॥
२०६१-६२ न वेदयज्ञा नहि दानयज्ञा न विप्रयज्ञा नहि जप्ययज्ञाः।
समन्ततो राक्षसराजसेविते दशानने संपरितप्रमाने॥ —वा०रा०

सो०—बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिँ।
हिंसा - पर अति प्रीति, तिन्हके पापहिँ कवनि मिति॥ १८३॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट, पर - धन, पर - दारा।
२०७० मानहिँ मातु, पिता, नहिँ देवा। साधुन - सन करवावहिँ सेवा। (१)
जिनके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब[1] प्रानी।
अतिसै देखि धरम - कै ग्लानी[2]। परम सभीत धरा अकुलानी। (२)
गिरि - सरि - सिन्धु - भार नहिँ मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही।
सकल धरम देखै बिपरीता। कहि न सकै रावन - भय - भीता। (३)
धेनु - रूप धरि, हृदय बिचारी। गई तहाँ, जहँ सुर - मुनि - झारी।
निज संताप सुनाएँसि रोई। काहू - तें कछु काज न होई। (४)
छंद—सुर - मुनि - गंधर्बा, मिलि करि सर्बा, गे बिरंचि - के लोका।
सँग गो - तनु - धारी, भूमि बिचारी, परम बिकल भय सोका॥

उसे वह अनेक प्रकारसे यातना दे कर उसे देश-निकाला दे देता था। [१८] इस प्रकार वे प्रचंड राक्षस जो अनीति (और अत्याचार) करते जा रहे थे (वह इतना भयंकर था कि) उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (यही समझ लीजिए कि) जिन्हें केवल हिंसा करना ही अच्छा लगता हो उनके पापोंका क्या ठिकाना है॥ १८३॥ परिणाम यह हुआ कि चारों ओर पराए धन और पराई स्त्रीके लोभी, लम्पट, दुष्ट, चोर और जुआरियोंकी बाढ़ आ गई। लोग इतने उद्दंड हो गए कि माता-पिता और देवताओंका जो निरादर करते थे सो तो करते ही थे, उलटे साधुओंसे भी सेवा करवाने लग गए थे। (१) (पार्वतीसे शिव कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! जो प्राणी ऐसा आचरण करने लगें उन सबको तुम पूर्ण राक्षस ही समझो।'

'इस प्रकार धर्मकी अत्यन्त ग्लानि (नाश) देखकर पृथ्वी भी भयके मारे थर्रा उठी। (२) (वह कहने लगी कि—) 'पर्वत नदी और समुद्रका बोझ भी मुझे उतना भारी नहीं लग रहा है जितना मुझे इन पर-द्रोहियोंका बोझ भारी लग रहा है।' पर वह भी धर्मके विपरीत सारे काम होते देखती हुई भी रावणके डरके मारे कुछ कर-धर नहीं पा रही थी। (३) अपने मनमें विचार करके और गौका रूप बनाकर वह वहाँ जा पहुँची जहाँ देवता और मुनि सब एकत्र हुए बैठे थे। वहाँ पहुँचकर उसने बहुत रो-रोकर अपना सारा दुखड़ा उन सबको कह सुनाया पर वहाँ किसीके भी किए वह काम (राक्षसोंका नाश) होता दिखाई नहीं पड़ रहा था। (४) तब सभी देवता, मुनि और गंधर्व मिलकर (ब्रह्मासे मिलने) ब्रह्मलोकके लिये चल पड़े और उनके साथ-साथ

१. सम। २ हानी।

२०६३-६६ नहि वैष्णवता कुत्र सम्प्रदायपुरःसरा। एवं प्रलयतां प्राप्ता वस्तुसारः स्थले स्थले॥
नास्ति सत्यं तपः शौचं दया दानं न विद्यते। —पद्मपुराण

२०६७-७१ मातापितृकृतद्वेषाः साधुसेवा पराङ्मुखाः। परवित्तकलत्रेषु सस्पृहा द्यूतकारिणः॥—अध्या०
तेऽमी मानुपराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये॥ —भर्तृहरिशतक

ब्रह्मा सब जाना, मन अनुमाना, मोर कछू न बसाई।
२०८० जाकर तैं दासी, सो अविनासी, हमरेउ - तोर सहाई ॥ [१९]
सो०—धरनि ! धरहि मन धीर , कह बिरंचि, हरिपद सुमिरु।
जानत जन - की पीर , प्रभु भंजिहि दारुन बिपति ॥ १८४ ॥
बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइय प्रभु, करिय पुकारा।
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि - बस प्रभु सोई। (१)
जाके हृदय भगति जस प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट, सदा तेहि रीती।
तेहि समाज गिरिजा ! मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ। (२)
हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम - तें प्रगट होहिं मैं जाना।
देस - काल - दिसि - बिदिसिहु - माहीं। कहहु, सो कहाँ, जहाँ प्रभु नाहीं। (३)
अग - जग - मय, सब - रहित, बिरागी। प्रेम - तें प्रभु प्रगटै, जिमि आगी।

भय और शोकसे अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौका रूप धारण किए हुए चल दी। ब्रह्मा (इन्हें आते देखते ही) सब समझ गए और मनमें विचार करने लगे कि (राक्षसोंपर) मेरा तो कुछ वश चल नहीं पावेगा (क्योंकि मेरे ही वरदानसे तो रावण यह सब किए जा रहा है), अतः, वे पृथ्वीसे बोले—'जिस विष्णुकी तू दासी है, वही अविनाशी (विष्णु) हमारी और तेरी दोनोंकी सहायता करेंगे।' ब्रह्माने (पृथ्वीको समझाते हुए) कहा—'देखो पृथ्वी ! तुम कुछ दिन धैर्य धारण करके भगवानके चरणोंमें ध्यान लगाए रहो। वे प्रभु अपने भक्तोंके सब दुःख जानते हैं। वे ही चाहेंगे तो तुम्हारा यह कठिन दुःख दूर कर सकेंगे' ॥ १८४ ॥ अब सभी देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभुको पावें भी तो कहाँ पावें कि उन्हें अपनी पुकार जा सुनावें। कोई कहता कि चलो वैकुण्ठ-पुरी उठ चला जाय, तो कोई कहता था कि वे क्षीरसागरमें रहते हैं (वहीं चला जाय)। (१) (किन्तु) भगवान्‌की तो सदासे यही रीति बनी चली आई है कि जिसके मनमें जहाँ जैसी भक्ति और प्रीति देखते हैं, वहीं झट आ प्रकट होते हैं। (पार्वतीसे) शिव कहते हैं—'हे गिरिराज-कुमारी ! देवताओं और मुनियोंके उस समाजमें उस दिन मैं भी था। अवसर पाकर मैंने उन्हें यह सुझाया कि— (२) 'भगवान् तो समान रूपसे सर्वत्र व्यापक हैं। मैं तो यही जानता हूँ कि वे (प्रभु जहाँ कहीं भी) प्रेम देखते हैं वहीं आ प्रकट होते हैं। देश, काल, दिशा और विदिशा (अन्तर्दिशाएँ), इनमेंसे बताओ, प्रभु कहाँ नहीं हैं ? (वे तो सब कालमें और सभी दिशाओं-विदिशाओंमें विद्यमान रहते हैं)। (३) वे चर और अचर (सबमें व्याप्त) होते हुए भी सबसे अलग और विरागी बन बैठे रहते हैं (उनका किसीसे कोई लगाव नहीं है)। वे तो प्रेमसे वैसे ही प्रकट हो उठते हैं, जैसे

२०७२-८० भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखा शेषरक्षोगणानां ,
धृत्वा गोरूपमादौ दिविजमुनिजनैः साकमब्जासनस्य ।
गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वं ,
ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदा वेद शेषात्मकत्वात् ॥ —अध्यात्मरामायण
२०८१-८२ सर्वथैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः । सत्त्वांशे नावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितिम् ॥—वि०पु०
२०८३-८५ ब्रह्मा तदुपधार्याथ सहदेवैस्तया सह । —भागवत

२०९० मोर वचन सबके मन माना। साधु - साधु करि ब्रह्म बखाना। (४)
दो०—सुनि बिरंचि, मन हरष तन, पुलक, नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर[1], सावधान मति - धीर।। १८५।।
छंद—जय जय सुर - नायक, जन - सुख - दायक, प्रनत - पाल भगवंता।।
गो - द्विज - हितकारी, जय असुरारी, सिन्धु - सुता - प्रिय - कंता।।
पालन सुर - धरनी, अद्भुत करनी, मरम न जानै कोई।
जो सहज कृपाला, दीनदयाला, करौ अनुग्रह सोई।। [२०]
जय जय अबिनासी, सब - घट - बासी, व्यापक परमानंदा।
अविगत गोतीतं, चरित पुनीतं, माया - रहित मुकुंदा।।
जेहि लागि बिरागी, अति अनुरागी, बिगत मोह - मुनि - बृन्दा।
२१०० निसि - बासर ध्यावहिं, गुन - गन गावहिं, जयति सच्चिदानन्दा।। [२१]
जेहि सृष्टि उपाई, त्रिबिध बनाई, संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी, चिंत हमारी, जानिय भगति न पूजा।।

(कहीं भी रगड़ खानेसे) अग्नि प्रकट हो जाती है (जो अव्यक्त रूपसे सर्वत्र व्याप्त रहती है और रगड़से कहीं भी प्रकट हो सकती है)।' मेरी बात सबके मनमें ऐसी जम गई कि ब्रह्मा तो 'साधु-साधु' कह-कहकर मेरी बड़ी सराहना कर उठे। (४) मेरी बात सुनकर ब्रह्माके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकायमान हो उठा और उनके नेत्रोंसे (प्रेमके) आँसू बह चले। जब वे धीर बुद्धिवाले ब्रह्मा कुछ सावधान हुए तो हाथ जोड़कर इस प्रकार (विष्णुकी) स्तुति करने लगे'—।। १८५ ।। 'हे देवताओंके स्वामी ! भक्तोंको सुख देनेवाले ! शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान्। आपकी जय हो ! जय हो !! हे गौ-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले ! हे असुरोंके शत्रु ! हे लक्ष्मीके प्रिय पति ! आपकी जय हो ! हे देवता और पृथ्वीका पालन करनेवाले ! आपकी लीला ऐसी अद्भुत है कि उसका भेद कोई जान नहीं पा सकता। ऐसे स्वभावसे ही कृपालु और दीनोंपर दया करनेवाले प्रभु ! आप आकर हमपर कृपा कीजिए। [२०] हे अविनाशी ! सबके हृदयमें निवास करनेवाले ! सर्व-व्यापक ! परम आनन्दके स्वरूप ! अव्यक्त ! (दिखाई न पड़नेवाले) ! इन्द्रियोंके फेरमें न पड़नेवाले ! पवित्र चरित्रवाले ! मायासे रहित ! मोक्षदाता ! आपकी जय हो ! जय हो !! विरागी तथा मोहके फन्देसे छूटे हुए मुनि लोग भी बड़े प्रेमसे दिन-रात जिनका ध्यान करते और जिनके गुणोंका वर्णन करते हैं, ऐसे सच्चिदानन्दकी जय हो। [२१] जिन्होंने किसी दूसरेकी सहायताके बिना अकेले ही यह सारी सृष्टि रच डाली और उसे तीन प्रकारकी (देव-सृष्टि, तिर्यक्-सृष्टि और नर-सृष्टि या सत्त्व, रजस् तमस्-गुणवाली) बना डाला, वे ही सब पापोंका नाश करनेवाले भगवान् आकर हमारी भी सुध ले लीजिए। हम लोग भक्ति या पूजा-पाठ तो कुछ जानते नहीं। संसार के भय (जन्म-जरा-मृत्यु)-का

१, करत अस्तुती जोरि कर।

२०९३-९६ जय माधव देवेश जय भक्तजनार्तिहन्।।
विलोकय महादेवाऽलोकयस्व सेवकान्। इच्युच्चैर्जगदुः सर्वे देवाः सर्वपुरोगमाः।।
२०९७ जय दीनदयाकर प्रभो जय दुःखापह मङ्गलाह्वय।
जय भक्तजनार्तिनाशन कृतवर्म्मन् जय दुष्टघातक।। —रामाश्वमेध

जो भव-भय-भंजन, मुनि-मन-रंजन, गंजन बिपति-बरूथा।
मन-वच-क्रम-बानी, छाँड़ि सयानी, सरन सकल-सुर-जूथा ॥ [२२]
सारद-श्रुति-सेषा, रिषय असेषा, जा-कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहि दीन पियारे, बेद पुकारे, द्रवौ सो श्रीभगवाना ॥
भव-बारिधि-मंदर, सब बिधि सुंदर, गुन-मंदिर सुख-पुंजा।
मुनि-सिद्ध-सकल-सुर, परम भयातुर, नमत नाथ पद-कंजा ॥ [२३]

दो०—जानि सभय सुर-भूमि, सुनि, वचन समेत-सनेह।
२११० गगन-गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक-संदेह ॥ १८६ ॥

जनि डरपहु मुनि-सिद्ध-सुरेसा। तुमहिं लागि धरिहौं नर-बेसा।
अंसन-सहित मनुज अवतारा। लैहौं दिनकर-बंस-उदारा। (१)
कस्यप-अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह-कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा।

नाश करनेवाले, मुनियोंका मन आनन्दित कर डालनेवाले, सभी विपत्तियाँ नष्ट कर डालनेवाले, उन्हीं (सच्चिदानन्द भगवान्)-की शरणमें मन, वचन, और कर्मसे सारी चतुराई (छल, कपट, आदि)-की बान (अभ्यास) छोड़कर हम सब देवता यहाँ आ इकट्ठे हुए हैं। [२२] सरस्वती, वेद, शेष और दिव्य ऋषियोंमेंसे कोई भी जिन्हें ठीक-ठीक नहीं जानता और जिन्हें वेद भी पुकार-पुकारकर दीनोंका हित करनेवाला ही बताए जाते हैं ऐसे हे भगवान्! आप हमपर दया कीजिए! हे संसार-रूपी समुद्रके लिये मन्दराचल (संसारकी विपत्तियाँ मथ डालनेवाले)! सब प्रकारसे सुन्दर! सब गुणोंसे भरे हुए! समस्त सुखोंके भाण्डार! ये सब मुनि, सिद्ध और देवता भयसे कातर होकर (गिड़गिड़ाकर) आपके चरण-कमलोंको नमस्कार किए जा रहे हैं। [२३] देवताओंको और पृथ्वी-को इतना भयभीत जानकर और उनके स्नेह-पूर्ण वचन सुनते ही सब शोक और सन्देह दूर कर डालनेवाली यह गम्भीर आकाशवाणी सबको सुनाई देने लगी—॥ १८६ ॥ 'हे मुनि, सिद्ध, और बड़े-बड़े देवताओ! आप लोग डरिए मत! (क्यों डरे जा रहे हैं?) लोगोंके कल्याण लिये मैं मनुष्यका शरीर धारण करूँगा और अपने अंशोंके साथ जाकर पवित्र सूर्य-वंशमें मनुष्यका अवतार लूँगा। (१) कश्यप और अदितिने मेरे लिये (मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त करनेके लिये) बड़ी तपस्या की

२१०१-४ यदि भवन्निदधात्यभयं भुवो मदनमूर्तितिरस्कृतकान्तिभृत्।
सुरगणा हि कथं सुखिनः पुनर्ननु भवन्ति घृणामय पावन ॥

२१०५-८ यदा यदास्मान् दनुजा हि दुःखदास्तदा तदा त्वं भुवि जन्मभाग्भवेः।
अजोऽव्ययोपीशवरोपि सन् विभो स्वभावमास्थाय निजं निजार्चितः ॥
हरविरंचिनुतं तव पादयोर्युगलमीप्सितकाम-समृद्धिदम्।
हृदि पवित्रयवादिकचिह्नितैः सुरचितं मनसा स्पृहयामहे ॥

२१०९-११ भो ब्रह्म शर्वेन्द्र पुरोगमाऽमराः शृण्वन्तु वाचं भवतां हिते रताम्।
जाने दशग्रीवकृतं भयं वो तन्नाशयाम्यद्य कृतावतारः ॥ —रामाश्वमेध

२११२ सूर्यवंशोद्भवः श्रीमान् राजाऽभूद्भुवि वीर्यवान्। नाम्ना दशरथः ख्यातस्तस्य पुत्रो भवाम्यहम् ॥
रावणस्य विनाशाय चतुर्धांगेन सत्तम ॥ —नृसिंहपुराण

ते दसरथ - कौसल्या - रूपा । कोसलपुरी प्रगट नर - भूपा । (२)
तिन्हके गृह अवतरिहौं जाई । रघुकुल - तिलक सो चारिउ भाई ।
नारद - वचन सत्य तब करिहौं । परम सक्ति - समेत अवतरिहौं[1] । (३)
हरिहौं सकल भूमि गरुआई । निर्भय होहु देव - समुदाई ।
गगन ब्रह्म - वानी सुनि काना । तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना । (४)
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा । अभय भई[2] भरोस जिय आवा । (४॥)
२१२० दो०—निज लोकहि बिरंचि गे, देवन इहै सिखाइ ।
वानर - तनु धरि-धरि महि , हरि - पद सेवहु जाइ ॥ १८७ ॥
गए देव सब निज - निज धामा । भूमि - सहित मन-कहँ बिश्रामा ।
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा । हरषे देव, बिलम्ब न कीन्हा । (१)
बनचर - देह धरी छिति - माहीं । अतुलित बल-प्रताप तिन्ह-पाहीं ।
गिरि - तरु - नख - आयुध सब बीरा । हरि-मारग चितवहिं मति-धीरा । (२)

थी। उन्हें मैं बहुत पहले ही वर दे चुका हूँ। वे ही आजकल दशरथ और कौशल्याके रूपमें कोशलपुरी (अयोध्या)-के राजा बने हुए हैं। (२) उन्हींके यहाँ मैं रघुकुलमें श्रेष्ठ चार भाइयोंके रूपमें जाकर अवतार लूँगा। मैं नारदका वचन (शाप) सत्य करनेके लिये अपनी परा शक्तिके साथ ही जाकर अवतार लूँगा। (३) इसलिये देवताओ! आप लोग अब निर्भय होकर जा सकते हैं! पृथ्वीपर जितना भार चढ़ा है वह सब मैं उतार डालूँगा।' यह सुनकर ब्रह्माने देवताओंसे कहा—'अब आप लोग भी वानरोंका शरीर धारण कर-करके पृथ्वीपर जा पहुँचिए और भगवान्‌के चरणोंकी सेवामें जा जुटिए।' यह कहकर वे भी अपने (ब्रह्म)-लोकको लौट गए ॥१८७॥ और भी जितने देवता वहाँ आए थे वे सब भी अपने अपने-अपने लोक चले गए। पृथ्वीको तथा सभी देवताओंके मनको अब जाकर शान्ति मिली। ब्रह्माने देवताओंको जो कुछ आदेश दिया उससे वे सब बहुत प्रसन्न हुए और (आज्ञा- पालन करनेमें) उन्होंने तनिक भी देर न लगाई। (१) वे सब वानरका शरीर धारण कर-करके जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर आ जनमे। वे कोई ऐसे-वैसे वानर नहीं थे। उनमें बहुत अपार बल और शक्ति भरी हुई थी। पहाड़, वृक्ष और नख ही उनके हथियार थे। (वे पहाड़की चट्टानें, वृक्षकी शाखा और अपने नखोंसे ही शत्रुको मार भगा सकते थे)। वे धीर बुद्धि-वाले (वानरके रूपमें देवता, सब पृथ्वीपर पहुँच-पहुँचकर) भगवान्‌के आनेकी बाट जोहने लगे। (२)

१. परम समेत-सक्ति अवतरिहौं। २. भइ निरभय।

२११३-१६ कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे। याचितः पुत्रभावाय तथेत्यङ्गीकृतं मया ॥
स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले। तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने ॥
योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा। उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥
२११८-२१ ब्रह्मोवाच–विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले। यूयं सृजध्वं सर्वेपि वानरेष्वंशसंभवान् ॥
विष्णोः सहायं कुरुत यावत् स्थास्यति भूतले। इति देवान् समादिश्य समाश्वास्य च मेदिनीम् ॥
ययौ ब्रह्मा स्वभवनं विज्वरः सुखमास्थितः ॥—अध्यात्मरामायण
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ —भागवत

गिरि, कानन जहँ-तहँ भरि पूरी। रहे निज-निज अनीक रचि रूरी।
यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु, जो बीचहिं राखा। (३)
अवधपुरी रघुकुल - मनि - राऊ। वेद - विदित तेहि दसरथ नाऊ।
धरम - धुरंधर, गुन-निधि, ग्यानी। हृदय भगति, मति सारँगपानी। (४)

२१३० दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति - अनुकूल, प्रेम दृढ़, हरि-पद-कमल विनीत॥ १८८॥

एक वार भूपति मन - माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं।
गुरु - गृह गए तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला। (१)
निज दुख-सुख सब गुरुहिं सुनायउ। कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझायउ।
धरहु धीर, होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन-बिदित भगत-भय हारी। (२)
शृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्र - काम सुभ जग्य करावा।

वे (वानर) जहाँ-तहाँ पर्वतों और जंगलोंमें अपनी सुन्दर सेनाएँ सजा-सजाकर चारों ओर छा गए।'

याज्ञवल्क्य कहते हैं—'हे भरद्वाज! यह सब सुन्दर कथा मैंने आपको कह सुनाई। अब वह कथा सुनो जो मैं सुनानेके लिये मनमें रक्खे हुए था।' (३)

'अयोध्यापुरीमें रघुवंशके शिरोमणि (रघुवंशमें सर्वश्रेष्ठ) दशरथ नामके राजाका नाम वेदों (वैदिक साहित्य तथा पुराणों)-में प्रसिद्ध है। वे बड़े धर्मात्मा, सब गुणोंसे भरे हुए और बड़े ज्ञानी थे। वे अपने हृदयमें शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले (विष्णु)-की बड़ी भक्ति करते थे और उनकी बुद्धि भी सदा उन्हींमें लगी रहती थी। (४) कौशल्या आदि (सुमित्रा, कैकेयी) उनकी सभी प्रिय रानियाँ बड़े पवित्र आचरणवाली थीं। वे सदा पतिकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करती (पतिको प्रसन्न किए रखती) थीं और उनके चरण-कमलोंमें उनका अत्यन्त दृढ प्रेम और भक्ति थी॥ १८८। एक वार राजा दशरथके मनमें इस बातकी बड़ी कसक हो उठी कि मेरे एक भी पुत्र नहीं हुआ। राजा (दशरथ) तुरन्त गुरु (वशिष्ठ)-के घर (आश्रममें) जा पहुँचे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने बहुत आदर-सम्मान दिखाकर अपना सारा दुखड़ा गुरुजीको रो सुनाया। गुरु वसिष्ठने उन्हें बहुत प्रकारसे ढाढ़स देते हुए समझाया (और कहा—)'देखो! धीरज धरो। (एक नहीं) तुम्हारे चार पुत्र-होंगे, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होंगे और आकर भक्तोंका सारा भय दूर कर डालेंगे।' (२) यह कहकर वशिष्ठने ऋष्यशृङ्ग (दशरथके जामाता और दशरथकी पुत्री शान्ताके पति)-को कहलवा भेजा और उन्हें बुलवाकर उनसे शुभ पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। ज्यों ही मुनि

२१२४-२६ देवाश्च सर्वे हरिरूपधारिणः स्थिताः सहायार्थमितस्ततो हरेः।
महाबलाः पर्वत-वृक्षयोधिनः प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम्॥ —भागवत

२१२८-२९ अथ राजा दशरथः श्रीमान् सत्यपरायणः। अयोध्याधिपतिर्वीरः सर्वलोकेषु विश्रुतः॥

२१३२-३४ सोऽनपत्यत्वदुःखेन पीडितो गुरुमेकदा। वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमभिवाद्येदमब्रवीत्॥
स्वामिन्पुत्राः कथं मे स्युः सर्वलक्षणलक्षिताः। पुत्रहीनस्य मे राज्यं सर्वं दुःखाय कल्पते॥

२१३५ ततोऽब्रवीद् वसिष्ठस्तं भविष्यंति सुतास्तव। चत्वारः सत्त्वसंपन्ना लोकपाला इवापराः॥

२१३६ शान्ताभर्त्तारमानीय ऋष्यशृंगं तपोधनम्। यज्ञकर्म समारेभे मुनिभिर्वीतकल्मषैः॥

२१३७ श्रद्धयाहूयमानेऽग्नौ तप्तजाम्बूनदप्रभः। पायसं स्वर्णपात्रस्थं गृहीत्वोवाच हव्यवाट्॥ अध्या०

भगति-सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे। (३)
जो बसिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा।
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा-जोग जेहि भाग बनाई। (४)
२१४० दो०—तब अदृस्य भए पावक, सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप, हरष न हृदय समाइ॥ १८९॥
तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं।
अर्द्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा। (१)
कैकेई - कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयउ।
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि। (२)
ऐहि बिधि गर्भ - सहित सब नारी। भईं हृदय हरषित, सुख भारी।
जा दिन - तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख - संपति छाए। (३)
मंदिर - महँ सब राजहिं रानी। सोभा - सील - तेज - की खानी।

(ऋष्य शृङ्ग)-ने भक्ति-पूर्वक आहुतियाँ दीं त्यों ही अग्निदेव हाथमें चरु (भात) लिए हुए आ प्रकट हुए (३) (और राजा दशरथसे बोले—) 'वशिष्ठने अपने मनमें जो कुछ सोचा है (कि आपके चार पुत्र हों) वह आपका सब कार्य सिद्ध हो गया। इसलिये राजन्! अब यह चरु (भात) लेकर और उसके यथोचित भाग करके (रानियोंमें) बाँट दीजिए।' (४) यह कहकर अग्निदेव सारी सभाको (अपने प्रकट होनेका कारण) समझाकर अन्तर्धान हो गए। यह देखकर राजा तो इतने अधिक आनन्दमें मग्न हो गए कि उनका वह हर्ष उनके हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा था (हर्ष उमड़ा पड़ रहा था)॥ १८९॥ (फिर क्या था!) राजाने उसी समय अपनी प्यारी पत्नियोंको बुलवा भेजा। सुनते ही कौशल्या आदि (सुमित्रा, कैकेयी) सभी रानियाँ वहाँ आ पहुँचीं। उनके आते ही राजाने उस चरुका आधा भाग तो कौशल्याको दे दिया और शेष आधेके दो भाग कर दिए। (१) उन दो भागोंमेंसे एक भाग तो राजाने कैकेयीको दे दिया। शेष जो एक भाग बच रहा उसके फिर उन्होंने दो भाग कर डाले। उन दोनों भागोंको राजाने कौशल्या और कैकेयीके हाथोंमें देकर उन दोनोंके हाथोंसे सुमित्राको दिलवा दिया। (२) इस प्रकार (बँटा हुआ चरु खाने)-से सब रानियाँ गर्भवती हो गईं (उनमें गर्भ धारण करनेकी दैवी शक्ति आ समाई)। वे अपने हृदयमें बहुत प्रसन्न हो उठीं और उन सबको बड़ा सुख मिलने लगा। जिस दिनसे भगवान् (राम) गर्भमें आए (उसी दिनसे) समस्त लोकोंमें (संसार भरमें) चारों ओर सुख-सम्पत्ति आ छाई। (३) शोभा, शील और तेजसे भरी हुई सब रानियाँ राज-भवनमें बड़ी भली लगती थीं। इस प्रकार सुखसे कुछ दिन बीत चुकनेपर वह अवसर भी आ गया जब प्रभु (राम)-को

२१३८-४१ गृहाण पायसं दिव्यं पुत्रीयं देवनिर्मितम्। लप्स्यसे परमात्मानं पुत्रत्वेन न संशयः॥
इत्युक्त्वा पायसं दत्वा राज्ञे सोऽन्तर्दधेऽनलः। ववन्दे मुनिशार्दूलौ राजा लब्धमनोरथः॥
२१४३-४५ वशिष्ठऋष्यशृङ्गाभ्यामनुज्ञातो ददौ हविः। कौसल्यायै च कैकेय्यै अर्धमर्धं प्रयत्नतः॥
ततः सुमित्रा संप्राप्ता जगृधुः पौत्रिकं चरुम्। कौसल्या तु स्वभागार्धं ददौ तस्यै मुदान्विता॥
कैकेयी च स्वभागार्धं ददौ प्रीतिसमन्विताम्।
२१४८ उपभुज्य चरुं सर्वाः स्त्रियो गर्भसमन्विताः। देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमंदिरे॥ अध्या०

सुख-जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ। (४)

२१५० दो०—जोग, लगन, ग्रह, बार, तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत, राम-जनम सुख-मूल ॥ १९० ॥

नौमी तिथि, मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ, अभिजित हरि-प्रीता।
मध्य दिवस, अति सीत न घामा। पावन काल, लोक-बिश्रामा। (१)
सीतल-मंद-सुरभि वह बाऊ। हरषित सुर, संतन मन चाऊ।
बन कुसुमित, गिरि-गन मनिआरा। स्रवहिं सकल सरितामृतधारा। (२)
सो अवसर बिरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि बिमाना।
गगन बिमल संकुल सुर-जूथा। गावहिं गुन गंधर्व-बरूथा। (३)
बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगह गगन दुदुंभी बाजी।
अस्तुति करहिं नाग, मुनि, देवा। बहु बिधि लावहिं निज-निज-सेवा। (४)

२१६० दो०—सुर-समूह बिनती करी, पहुँचे निज-निज धाम।
जग-निवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक-बिश्राम ॥ १९१ ॥

प्रकट होना था (जन्म लेना था)। योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि (मुहूर्त्तके पाँचों अंग) शुभ (मंगलकारी) हो गए। जड और चेतन सब हर्षसे फूल उठे। (क्योंकि) रामका जन्म ही तो सारे सुखोंकी जड़ है (रामके जन्मसे ही तो सारे सुख उत्पन्न होते हैं)। चैत्रका पवित्र महीना, नवमी तिथि, शुक्ल पक्ष, भगवान्का प्रिय अभिजित् नक्षत्र, मध्याह्नका ऐसा समय जब न तो अधिक सर्दी थी न अधिक गर्मी, ऐसी पवित्र वेला कि सभी लोकोंको विश्राम (आनन्द) मिल रहा था, (१) शीतल, मन्द और सुगन्धित बयार चलने लगी थी, देवता भी प्रसन्न हुए जा रहे थे (कि अब हमारा काम बना धरा है, राक्षस मारे जायँगे), सन्तोंके मनमें भी बड़ा चाव उठ खड़ा हुआ था (कि भगवान्के दर्शन मिलेंगे), वन भी फूल उठे थे, पर्वतोंपर भी अनेक प्रकारके रत्न जगमगा उठे थे और सब नदियोंमें अमृतके समान मधुर जलकी धाराएँ बह चली थीं। (२) ऐसा समय देखकर जब ब्रह्माने (भगवान्के प्रकट होनेका) अवसर जान लिया तब वे भी विमान सजा-सजाकर सब देवताओंके साथ उतर चले। सारा निर्मल आकाश देवताओं ही देवताओंसे भर चला। उधर गन्धर्वोंका दल भी (आकाशमें चढ़ा हुआ) भगवान्के गुण अलापने लगा। (३) वे सबके सब अपनी-अपनी अंजलियोंमें फूल भर-भरकर (आकाशसे) बरसाए जा रहे थे। आकाशमें ढमाढम नगाड़े गड़गड़ा उठे। नाग, मुनि और देवता सब भगवान्की स्तुति करने लगे (कि अब आप प्रकट हो जाइए) और अनेक प्रकारसे अपनी-अपनी सेवाका उपहार अर्पण करने लगे (सेवाके लिये अपनी तत्परता दिखाने लगे)। (४) इस प्रकार नम्र निवेदन करके देवता लोग अपने-अपने लोक लौट गए और (उसी समय) सम्पूर्ण संसारको शान्ति देनेवाले सर्वव्यापक राम प्रकट हो गए ॥ १९१ ॥ दीनोंपर कृपा और दया करनेवाले,

---

२१५२ दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम् ! मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे ॥
पुनर्वस्वृक्षसहिते उच्चस्थे ग्रहपंचके। मेषे पूषणि संप्राप्ते पुष्पवृष्टिसमाकुले ॥
२१६१ आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः। —अध्यात्मरामायण

छंद—भए प्रगट कृपाला, दीन - दयाला, कौसल्या - हितकारी।
हरषित महतारी, मुनि - मन - हारी, अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा, तनु घन-स्यामा, निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला, नयन बिसाला, सोभा-सिंधु, खरारी॥ [२४]
कह दुइ कर जोरी, अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं, अनंता।
माया - गुन - ज्ञानातीत, अमाना, वेद - पुरान भनंता॥
करुना-सुख-सागर, सब-गुन-आगर, जेहि गावहिं श्रुति-संता।
सो मम हित लागी, जन-अनुरागी, भयउ प्रगट श्रीकंता॥ [२५]
२१७० ब्रह्मांड-निकाया निर्मित माया रोम - रोम प्रति, वेद कहै।
मम उर सो बासी, यह उपहासी, सुनत, धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई, मातु बुझाई, जेहि प्रकार सुत - प्रेम लहै॥ [२६]

कौशल्या (माता)-का हित (पिछले जन्ममें दिया हुआ वचन पूरा) करनेवाले, मुनियोंका मन हरनेवाले (मुनियोंको प्रसन्न करनेवाले) राम प्रकट हो गए। उस (अपने नवजात शिशु)-का अद्भुत रूप देखकर माता कौशल्या मगन हुई पड़ रही थीं। रसीले नेत्रोंवाले, मेघके समान साँवले शरीरवाले, हाथमें गदा और पद्म, (शरीरपर) आभूषण और गलेमें वनमाला डाले, बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, शोभाके सागर (अवर्णनीय शोभावाले) और (भविष्यमें) खर (नामक राक्षस)का- नाश करनेवाले भगवान् राम सामने आ खड़े हुए। [२४] (यह अद्भुत विष्णु-रूप देखकर) माता (कौशल्या) दोनों हाथ जोड़कर कहने लगीं—'हे अनन्त ! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ! वेद-पुराण कहते हैं कि माया, गुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) और ज्ञान भी आप-तक नहीं पहुँच पाते (ऐसे निर्लिप्त हो) और आप मान-रहित (अभिमानसे अछूते) हो, ऐसे लक्षणवाले जिनको वेद और संत-जन करुणा, सुख और सब गुणोंसे भरा हुआ बतलाते हैं वही भक्तोंपर प्रेम करनेवाले आप लक्ष्मीके पति (भगवान् विष्णु), मेरे हितके लिये (मुझे सुख देनेके लिये) आ प्रकट हुए हो। [२५] आपके विषयमें वेद कहते हैं कि आपके रोम-रोममें मायाने अनेक ब्रह्माण्ड ला खड़े किए हैं। ऐसे विराट् भगवान् आकर मेरे गर्भमें आ रहें, इस हँसीकी (अविश्वसनीय) बात सुनकर बड़े-बड़े धीर पुरुषोंकी बुद्धि भी चकरा जाती है।' पर उसी समय जब माताको ज्ञान उत्पन्न हो आया तब प्रभु मुसकरा दिए। वे तो अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेके लिये आए ही थे। इसलिये

२१६४-६५ नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः। जलजारुणनेत्रांतः स्फुरत्कुण्डलमंडितः।
सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः। शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः॥
दृष्ट्वा तं परमात्मानं कौसल्या विस्मयाकुला। हर्षाश्रुपूर्णनयना नत्वा प्राञ्जलिरब्रवीत्॥
२१६६-६९ देवदेव नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर। परमात्माऽच्युतोनंतः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः॥
वदन्त्यगोचरं वाचां बुद्ध्यादीनामतीन्द्रियम्। त्वां वेदवादिनः सत्तामात्रं ज्ञानैकविग्रहम्॥
भक्तेषु पारवश्यं ते दृष्टं मेऽद्य रघूत्तम॥
२१७०-७१ जठरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः। त्वं ममोदरसंभूत इति लोकान् विडंबसे॥
२१७३ श्री भगवानुवाच—यद्यदिष्टं तवास्त्यम्ब तत्तद्भवतु नान्यथा। —अध्यात्मरामायण

माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।
कीजे सिसु-लीला, अति - प्रिय - सीला, यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना, रोदन ठाना, होइ बालक सुर-भूपा।
यह चरित जे गावहिं, हरिपद पावहिं, ते न परहिं भव-कूपा॥ [२७]

दो०—विप्र - धेनु-सुर - संत - हित , लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा-निर्मित तनु , माया - गुन - गो - पार॥ १९२॥

२१८० सुनि सिसु-रुदन, परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी।
हरषित जहँ - तहँ धाईं दासी। आनँद-मगन सकल पुर-बासी। (१)
दसरथ पुत्र-जनम सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना।
परम प्रेम मन, पुलक सरीरा। चाहत उठन, करत मति धीरा। (२)
जा - कर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा। (३)

उन्होंने अनेक सुन्दर कथाएँ (अपने जन्मका रहस्य) कह-कहकर माताको समझाया जिससे उन्हें पुत्रका स्नेह मिलने लगे। [२६] सुनते ही माताकी वह बुद्धि बदल गई। वे फिर बोलीं— 'देखो ! अब अपना यह रूप छोड़कर मुझे बहुत प्रिय लगनेवाली बाल-लीला (बच्चोंका-सा व्यवहार) करने लगो। मुझे तो उसीसे अत्यन्त अनुपम सुख मिलेगा।' तब देवताओंके स्वामी सुजान (राम) माताकी बात सुनते ही झट बालक बनकर रो उठे।

तुलसीदास कहते हैं कि जो लोग इस (रामके जन्मकी) कथा (पढ़ते, कहते, सुनते और इस-)का वर्णन करते हैं वे सब तत्काल भगवान्के चरणोंके समीप जा पहुँचते हैं और वे कभी भवकूप (संसारके फेर)-में नहीं पड़ पाते (उनका मोक्ष हो जाता है)। [२७] इस प्रकार माया, गुण और समस्त इन्द्रियोंके प्रभावसे दूर रहनेवाले और अपनी इच्छासे धारण किए हुए शरीरसे भगवान्ने ब्राह्मण, गौ, देवता और सन्तोंके कल्याणके लिये मनुष्यके रूपमें अवतार ले ही लिया॥१९२॥

बालकके रोनेकी प्यारी ध्वनि सुनते ही जितनी रानियाँ थीं सब हड़बड़ाई हुई उठी (कौशल्याके पास) दौड़ी चली आईं। इधर-उधर जो दासियाँ (काम कर रही थीं) वे भी सब प्रसन्न हो-होकर दौड़ आईं। जिस पुरवासीने भी सुना वही आनन्दमें झूम उठा। (१) राजा दशरथके कानोंमें ज्यों ही पुत्रके जन्मका समाचार पड़ा त्यों ही वे ऐसे प्रसन्न हो उठे जैसे ब्रह्मानन्दमें समा गए हों। हृदयमें अत्यन्त प्रेम उमड़ आनेके कारण उनका सारा शरीर रोमांचित हो उठा। वे आनन्दके मारे उठकर चलने ही वाले थे कि उन्होंने धीरजके साथ अपनी बुद्धि सँभाले रक्खी। (२) जिसका नाम सुनते ही सबका कल्याण हो जाता है, वही प्रभु मेरे घर (जन्म लेकर) आए हैं यह सोच-सोचकर राजाका मन आनन्दसे गद्गद हुआ पड़ रहा था। (इसी प्रसन्नतामें) उन्होंने बाजा बजानेवालोंको आज्ञा दे दी कि तुम लोग (बिना रुके) बाजे बजाने लगो। (३) फिर क्या था !

२१७८-७७ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्। दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम्॥
संवादमावयोर्यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि। स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत्॥
इत्युक्त्वा मातरं रामो बालो भूत्वा रुरोद ह॥ —अध्यात्मरामायण

२१७८-७९ गोसाधुदेवताविप्रवेदानां रक्षणाय वै। तनुं धत्ते हरिः साक्षाद् भगवानात्मलीलया॥ गर्ग सं०

गुरु बसिष्ठ - कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन - सहित नृप-द्वारा।
अनुपम बालक देखिन्ह जाई। रूप-रासि, गुन कहि न सिराई। (४)
दो०—नंदीमुख सराध करि, जात-करम सब कीन्ह।
हाटक, धेनु, बसन, मनि, नृप बिप्रन्ह - कहँ दीन्ह ॥ १९३ ॥
२१९० ध्वज, पताक, तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा।
सुमन - बृष्टि आकास - तें होई। ब्रह्मानंद - मगन सब लोई। (१)
बृन्द बृन्द मिलि चलीँ लोगाईं। सहज सिंगार किए उठि धाईं।
कनक - कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप - दुआरा। (२)

झट गुरु वशिष्ठके यहाँ बुलावा भेज दिया गया। वे भी सुनते ही अनेक ब्राह्मणोंको लिए-दिए राजद्वार-पर आ पहुँचे। उन्होंने पहुँचते ही उस अनुपम बालकको जा देखा, जिसके अत्यन्त सुन्दर रूप और गुणका किसी भी प्रकार कोई वर्णन नहीं कर पा सकता। (४) फिर राजाने नान्दीमुख-श्राद्ध (मंगल कार्योंमें पितरोंका पूजन) और सब जात-कर्म संस्कार[1] करके ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र और रत्न दानमें दिए ॥ १९३। नगर (अयोध्या) भरमें (घर-घर) ध्वजा, पताका और बन्दनवार टँग गए। उस अवसरपर जैसी सजावट हुई, उसका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता। आकाशसे फूल बरसने लगे। जिसे देखो वहीं ब्रह्मानन्दमें मग्न हो चला था। (१) स्त्रियोंने सुना तो वे भी झुण्डकी झुण्ड मिलकर (राजभवनको) चल पड़ीं। साधारण शृङ्गार किए ही (घरेलू कपड़े-गहने पहने ही) वे उठ-उठकर दौड़ पड़ीं और सोनेके कलसों और थालोंमें मांगलिक सामग्री सजा-सजाकर गाती-बजाती राजद्वार जा पहुँचीं। (२) (बालक रामकी) आरती करके वे न्यौछावर किए जा

१. जातकर्म : पुत्रका जन्म होते ही उसका पिता सौरी गृह-पर जाकर कहता है कि अभी इसकी नाल न काटना और स्तनका दूध न पिलाना। फिर वस्त्र-सहित स्नान करके नवीन वस्त्र पहनकर षष्ठी देवी, मार्कण्डय और षोडस मातृकाका पूजन करके वसुधारा और नान्दीमुख श्राद्ध करके, किसी ब्रह्मचारी, गर्भवती, कुमारी या वेदाध्यायी ब्राह्मणसे एक शिला धुलवाकर और उसपर धान और जौ पिसवाकर अनामिका और अँगूठेसे लेकर यह मन्त्र पढ़कर बालककी जीभपर छुआया जाता है—'कुमारस्य जिह्वां निर्माष्टि इत्याज्ञा' (बालककी जीभ स्वच्छ कर दो)। तब स्वर्ण-पत्रपर घी लेकर बालककी जीभसे छुआया जाता और तब आज्ञा दी जाती है कि अब नाल काटो और स्तनका दूध पिलाओ।

२१८७ अथ राजा दशरथः श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम्। आनन्दार्णवमग्नोऽसावाययौ गुरुणा सह ॥
२१८८-८९ रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसंप्लुतः। गुरुणा जातकर्माणि कर्त्तव्यानि चकार सः ॥
तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा। सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः ॥अ०रा०
२१९०-९१ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम्। —श्रीमद्भागवत
उत्सवश्च महानासीत्पुष्पवृष्टिस्तदाऽभवत् ॥ —वाल्मीकीय रामायण
२१९२-९३ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राऽकल्पांजनादिभिः। नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः ॥
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः ॥ —भागवत

करि आरति निवछावरि करहीं। वार वार सिसु - चरननि परहीं।
मागध, सूत, वंदिगन, गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक। (३)
सरबस दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा, राखा नहिं ताहू।
मृग - मद - चंदन कुंकुम - कीचा। मची सकल वीथिन्ह विच-बीचा। (४)

दो०—गृह-गृह बाज वधाव सुभ, प्रगटे सुषमाकंद।
हरपवंत सब जहँ तहँ, नगर नारि - नर - वृंद॥ १९४॥

२२०० कैकयसुता - सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ।
वह सुख, संपति, समय, समाजा। कहि न सकै सारद अहिराजा। (१)
अवधपुरी सोहै एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती।
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी। (२)
अगर-धूप बहु जनु अँधियारी। उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी।
मंदिर - मनि - समूह जनु तारा। नृप-गृह-कलस सो इंदु उदारा। (३)

रही थीं और वार-वार शिशु (राम)-के पैरों पड़ती जा रही थीं। मागध, सूत, वन्दीजन (भाट) और गवैए जिसे देखो वही रामके पवित्र गुण गाए चला जा रहा है। (इतना ही नहीं, सबके सब इतने प्रसन्न थे कि) जिसके पास जो कुछ था सबने अपना सब कुछ लुटा डाला और जिसने (वह दान) पाया उसने भी वह दानका सामान (लुटा डाला), अपने पास कुछ नहीं रक्खा (सब दान कर दिया)। लोगोंमें इतना उल्लास था (कि एक दूसरेपर छिड़कनेके कारण) गली-गलीमें कस्तूरी, चन्दन और केसरकी कीच हो चली। (४) घर-घर मंगलमय बधावे (बधाईके मंगल गीत)-के साथ-साथ वाजे वज उठे, क्योंकि वहाँ शोभाके मूल (शोभा उत्पन्न करनेवाले, अत्यन्त शोभावाले राम) प्रकट हुए थे न ! (यह दशा हो गई कि) नगरमें स्त्री-पुरुष जिसे भी देखो वही जहाँ-तहाँ आनन्दमें मग्न हुआ घूमे जा रहा था॥ १९४॥ उधर कैकेयी और सुमित्राके भी सुन्दर-सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए। वह सुख, सम्पत्ति (वैभव), समय और समाज ऐसा मधुर और सुहावना था कि उसका वर्णन सरस्वती और (सहस्रों मुखवाले) शेष भी नहीं कर पा सकते। (१) (सजावटसे भरी) अयोध्यापुरी उस समय ऐसी सुन्दर लग रही थी मानो रामका दर्शन करनेके लिये आई हुई रात्रि वहाँ सूर्यकी चमक देखकर झिझकके मारे संध्या बन बैठी हो (इधर रात्रि मिलनेको आई उधर सूर्य चमक रहा था इसलिये दोनोंके मिलनेसे दिनमें ही साँझ हो गई)। (२) (उस समय इस लिये सन्ध्या लग रही थी कि) जो अगर और धूपका धुआँ घर-घरसे उठ रहा था वही ऐसा लगता था कि मानो साँझका झुटपुटा हो, नगर भरमें उड़ता हुआ अबीर मानो (सायंकालकी) लालिमा हो, (अयोध्याके) भवनोंमें जड़े हुए रत्न ही मानो तारे हों, राजा (दशरथके) भवनके शिखरका कलश ही मानो उदार (सबको सुख पहुँचानेवाला) चन्द्रमा हो और घर-घरमें अत्यन्त

२१९४-९५ सौमंगल्यगिरो विप्राः सूतामागधवन्दिनः। गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः॥ –भागवत
२१९६ दातारः सन्ति सर्वत्र न प्रतिग्राहिणः क्वचित्॥ –पद्मपुराण
२१९७ रथ्या वीथ्यश्च देहल्यो भित्यः प्राङ्गणवेदिकाः। तोलिका मंडपसमा रेजुर्गन्धिजलाम्बरैः॥गर्गसं०
२१९८-२२०० कैकेयीचाथ भरतमसूत कमलेक्षणम्। सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दुसदृशाननौ॥अ० रा०

भवन - वेद - धुनि अति मृदु बानी। जनु खग-मुखर समय जनु सानी।
कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना। (४)
दो०—मास दिवस-कर दिवस भा, मरम न जानै कोई।
रथ-समेत रबि थाकेऊ, निसा कवनि विधि होइ॥ १९५॥
२२१० यह रहस्य काहू नहिँ जाना। दिन-मनि चले करत गुन-गाना।
देखि महोत्सव सुर - मुनि - नागा। चले भवन बरनत निज भागा। (१)
औरौ एक कहौं निज चोरी। सुनु गिरिजा! अति दृढ़ मति तोरी।
काकभुसुंडि - संग हम दोऊ। मनुज - रूप जानै नहिँ कोऊ। (२)
परमानंद प्रेम - सुख - फूले। वीथिन्ह फिरहिँ मगन मन भूले।
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम - कै जा-पर होई। (३)
तेहिँ अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।
गज, रथ, तुरग, हेम, गो, हीरा। दीन्हें नृप, नाना विधि चीरा। (४)
दो०—मन संतोषे सबन - के, जहँ - तहँ देहिँ असीस।
सकल तनय चिरजीवहू, तुलसिदास - के ईस॥ १९६॥

मधुर ध्वनिसे जो वेद-पाठ हो रहा था वही मानो साँझके समय बसेरा लेने जाते हुए पंछियोंका कलरव हो। (३) यह कौतुक (-दिनमें ही सन्ध्या होती) देखकर सूर्य भी अस्त होना भूल गया और उसे यह भी न जान पड़ा कि एक महीना निकल गया। (४) इस प्रकार एक महीने-तक दिन ही दिन बना रहा, पर यह भेद कोई जान नहीं पाया। अपना रथ लेकर जब सूर्य ही रुके खड़े रह गए फिर भला रात्रि कैसे हो सकती थी ॥ १९५॥ यह एक महीने-तक सूर्यके ठहर जानेका रहस्य कोई भी भाँप नहीं पाया। (इतने दिनों पश्चात् रामका) गुण-गान करते हुए सूर्य अस्ताचलकी ओर चल दिए। उनके अतिरिक्त जितने देवता, मुनि और नाग वह महोत्सव देखने आए थे वे भी महोत्सव देख-देखकर अपने-अपने भाग्यकी सराहना करते हुए अपने-अपने घर लौट गए। (१) (पार्वतीसे) शिव कहते हैं—'हे पार्वती ! देखो, तुम्हारी बुद्धि रामके चरणोंमें दृढतासे लगी हुई है इसलिये मैं और भी एक गुप्त बात तुम्हें यहां बताए देता हूँ। देखो ! वहाँ कोई भी यह न जान पाया कि भुशुण्डिके साथ मैं भी मनुष्यका रूप बनाकर वहाँ पहुँचा हुआ था (२) (और हम दोनों) परम आनन्द और प्रेमके सुखमें मगन हुए वहाँ दिनरात घूमते-फिरते रहे। इस शुभ चरित्रको कोई जान भी सकता है तो वही जान सकता है जिसपर रामकी अपार कृपा हो। (३) उस समय जो जिस कामनासे वहाँ आया, राजाने उसे उसीके मनके अनुसार दान दे डाला। राजाने इतने हाथी, रथ, घोड़े, सोना, गौ, हीरा और अनेक प्रकारके वस्त्र आदि दे डाले कि सब सन्तुष्ट हो गए (सबको मुँह माँगा इतना सब कुछ दे डाला कि कोई ऐसा न बचा जिसे अपने मनके अनुकूल वस्तु न मिल गई हो)। जहाँ देखो वहीं सब लोग आशीर्वाद दिए जा रहे थे कि राजाके

२२१२-१३ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यात् गुह्यतरं महत्॥ —अध्यात्मरामायण
भुशुंडश्च शिवश्चापि रामदर्शनलालसौ। अपश्यतां तदा रामं ब्रह्मवेषधरौ च तौ॥ सत्योपा०
२२१७-१९ तदा ग्रामसहस्राणि ब्राह्मणेभ्यो मुदा ददौ। सुवर्णानि च रत्नानि वासांसि सुरभीः शुभाः॥ अ०रा०
अयोध्यावासिनस्तुष्टा रामायाशीर्ददौ मुदा। —आनन्द-रामायण

२२२० कछुक दिवस बीते यहि भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती।
नाम-करन-कर अवसर जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी। (१)
करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा।
इनके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहव स्वमति-अनरूपा। (२)
जो आनन्द-सिंधु, सुख-रासी। सीकर-तें त्रैलोक सुपासी।
सो सुख-धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक-बिश्रामा। (३)
बिस्व-भरन-पोषन कर जोई। ता-कर नाम भरत अस होई।
जा-कर सुमिरन-तें रिपु-नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा। (४)
दो०—लच्छन-धाम, राम-प्रिय, सकल-जगत-आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार॥ १९७॥
२२३० धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। वेदतत्व नृप-तन-सुत चारी।
मुनि-धन, जन-सरवस, सिव-प्राना। बाल-केलि-रस तेहि सुख माना। (१)
बारेहि-तें निज हित-पति जानी। लछिमन राम-चरन-रति मानी।
भरत-सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु-सेवक-जसि प्रीति बढ़ाई। (२)

वे चारों पुत्र (जो तुलसीदासके प्रभु हैं) युग-युग जिएँ॥ १९६॥ इस प्रकार कुछ दिन यों ही निकल चले। दिन-रात बीतते देर क्या लगती है? नामकरण-संस्कारका समय जानकर राजाने ज्ञानी मुनी वशिष्ठको बुलवा भेजा। (१) गुरुकी पूजा करके राजाने कहा—'मुने! आपने इन बालकोंके जो नाम निश्चित कर रक्खे हों वे रख दीजिए।' (यह सुनकर मुनिने कहा—) 'देखो राजन्! यों तो इनके अनेक अनुपम नाम (हो सकते) हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार इनके नाम बताए देता हूँ। (२) ये जो आनन्दके सागर और सुखोंकी राशि हैं (सुखसे ऐसे भरे हुए हैं) कि इनके इस सुख-भरे रूपके कण-मात्रसे तीनों लोक सुखी हो उठते हैं, उन्हीं सुखके धाम (ज्येष्ठ पुत्र)-का नाम मैं 'राम' रखता हूँ। यह नाम जपनेसे सब लोकोंको शान्ति मिलती है। (३) यह जो (द्वितीय पुत्र) विश्वका पालन-पोषण करनेवाला है इसका नाम 'भरत' होगा और जिसके स्मरण मात्रसे शत्रु नष्ट हो जायँगे इसका 'शत्रुघ्न' नाम वेदोंमें प्रसिद्ध है। (४) वे जो शुभ लक्षणों-वाले, रामके प्रिय और सम्पूर्ण जगत्के[1] आधार हैं, उनका वशिष्ठने श्रेष्ठ नाम 'लक्ष्मण' रक्खा॥ १९७॥

गुरु वशिष्ठने अपने हृदयमें बहुत सोच-विचारकर ये नाम रखकर कहा—'राजन्! आपके ये चारों पुत्र वेदोंके तत्त्व, मुनियोंके धन, भक्तोंके सर्वस्व और शिवके प्राण हैं। इन्हें (आपके ही घरमें) बाल-क्रीडा करना अच्छा लगा। (१) बचपनसे ही अपना परम हितैषी और स्वमी मानकर लक्ष्मण तो रामके चरणोंमें प्रीति करने लगे। भरत और शत्रुघ्न, दोनों भाइयोंमें स्वामी और

१. लक्ष्मण शेषके अवतार हैं, जो अपने शीशपर पृथ्वी धारण किए रहते हैं।

२२२०-२१ अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाऽकरोत्॥ —वाल्मीकीय
२२२८-२९ रमणाद्राम एवासौ लक्षणैर्लक्ष्मणस्त्विति। भरणाद् भरतश्चेति शत्रुघ्नः शत्रुतर्जनात्॥आन०रा०
२२३२-३३ लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वन्द्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः॥ अध्या०रा०

स्याम - गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृन तोरी।
चारिउ सील - रूप - गुन - धामा। तदपि अधिक सुख - सागर रामा। (३)
हृदय अनुग्रह - इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारैं कहि प्रिय ललना। (४)
दो०—ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत - बिनोद।
सो अज, प्रेम-भगति-बस, कौसल्या - के गोद॥ १९८॥
२२४० काम - कोटि - छबि स्याम सरीरा। नील - कंज - बारिद - गंभीरा।
अरुन - चरन - पंकज - नख-जोती। कमल - दलन्हि बैठे जनु मोती। (१)
रेख कुलिस - ध्वज - अंकुस सोहे। नूपुर-धुनि सुनि, मुनि - मन मोहे।

सेवककी भाँति प्रीति और आदरका भाव बढ़ चला। (२) साँवलों और गोरोंकी इन दोनों सुन्दर जोड़ियोंको देख-देखकर माताएँ तृण तोड़े डालती थीं[१] (बलैया लिए जा रही थीं, न्योछावर हो-हो जा रही थीं)। यद्यपि चारों ही भाइयोंमें शील, रूप और गुण कूट-कूटकर भरे थे फिर भी राममें सबसे अधिक (गुण) थे। (३) उनके हृदयमें कृपाके चन्द्रमाका ऐसा प्रकाश भरा था मानो उनकी मनोहर हँसी ही उस कृपाके चन्द्रमाकी चाँदनी हो (जैसे चन्द्रमा अपनी चाँदनी फैलाकर सबको सुख देता है वैसे ही राम भी सबपर कृपा करके सबको सुख देते थे)। माताएँ भी अपने पुत्रों (-का इतना लाड़ लड़ाती थीं कि उन)-को कभी अपनी गोदमें तो कभी पालनेमें 'प्यारे लाल' कह-कहकर झुलाती और दुलार करती रहती थीं। (४) जिस सर्वव्यापक परमेश्वरको माया, गुण और विनोद छू नहीं पा सकते, वही अजन्मा (परब्रह्म) अपने भक्तके प्रेम और वशमें पड़कर कौशल्याकी गोदमें आकर बालक बना खेले जा रहा था॥ १९८॥ नीले कमल और घने बादलके समान उनके साँवले शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी शोभा भरी पड़ी थी। उनके लाल-लाल चरण-कमलोंपर पड़ती हुई नखोंकी चमक ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलकी पंखड़ियोंपर किसीने मोती ला जड़े हों। (१) (उनके पैरके तलवोंपर) वज्र, ध्वजा और अंकुशके चिह्न शोभा दे रहे थे। (पैरोंमें पहनाई हुई) उनकी पैंजनीकी रुनझुन तो मुनियों-तकका मन मोहित किए डाल रही थी। उनकी कमरमें तगड़ी और

---

१. सारी अला-बला (विपत्तियाँ) तिनकेके सिर पड़ें और सारी आनेवाली विपत्तियाँ तिनकेके टूटनेके साथ नष्ट हो जायँ और इन्हें कुदृष्टि न लगे।

२२३४ श्रीरामचन्द्रस्य निरीक्ष्य शोभां तथा तृणं त्रोटयतिस्म माता।
मा दृष्टिदोषो मम बालकेऽभूदेवं विचारं मनसा चकार॥ —सत्योपाख्यान
२२३५ सर्वे जनोपसंपन्ना सर्वे प्रमुदिता गुणैः। तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः॥
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशांक इव निर्मलः॥ —वाल्मीकीय रामायण
२२३६ अनुग्रहाख्यहृत्स्थेन्दुसूचकस्मितचन्द्रिकः। —अध्यात्मरामायण
२२३७-३९ आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरंजनम्। सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥ अध्या० रा०
२२४०-४२ पादांगुलीभिर्नखचंद्रिकाश्च चिह्नानि सर्वाणि पदारविन्दे। प्रदर्शयन्तं निज सेवकेभ्यः॥
पदं च धेन्वाः कुलिशं च बिन्दुं तथा ध्वजं ह्यमृतं कुंडकं च।
वस्त्रांकुशं जंबुफलं च मत्स्यं धनुर्महेन्द्रस्य तथा त्रिकोणम्॥ —सत्योपाख्यान

कटि, किंकिनी, उदर त्रय रेखा। नाभि गँभीर, जान जिहिं देखा। (२)
भुज बिसाल भूषन-जुत भूरी। हिय हरि-नख सोभा अति रूरी।
उर मनि-हार-पदिक-की सोभा। बिप्र-चरन देखत मन लोभा। (३)
कंबु कंठ, अति चिबुक सुहाई। आनन अमित-मदन-छबि छाई।
दुइ दुइ दसन, अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे। (४)
सुंदर श्रवन, सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला।
नील जलज दोउ नयन बिसाला। बिकट भृकुटि, लटकन बर भाला। (५)
२२५० चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।
पीत झिंगुलिया तनु पहिराई। जानु-पानि- बिचरनि मोहि भाई। (६)

पेटपर पड़ी हुई त्रिवली (सिकुड़नकी तीन रेखाएँ) तथा गहरी नाभिकी शोभा तो वे हो (भली प्रकार) जान सकते हैं जिन्होंने भर आँखों उन्हें देखा हो। (२) उनकी लम्बी-लम्बी भुजाओंपर आभूषण सजे हुए थे। छातीपर बहुत सुन्दर और सुहावना बघनखा, मणियोंके हार और विप्र (भृगु)-के चरणके-चिह्नकी शोभा ऐसी मनोहर थी कि जो देखे उसपर लट्टू हो जाय। (३) शंखके समान (ढलावदार) कण्ठ और ठोड़ी (अपनी अलग) अत्यन्त शोभा दे रही थी और मुखपर तो असंख्य कामदेवोंकी शोभा छाई हुई थी। (ऊपर-नीचेकी) दो-दो दँतुलियाँ, लाल-लाल ओठ, नासिका और तिलककी ऐसी अनोखी शोभा थी कि उसका वर्णन भला कर कौन सकता है ? (४) उनके कान और गाल बड़े ही सुन्दर थे। उनकी मीठी और तोतली बोली बड़ी प्यारी लगती थी। उनके दोनों नेत्र बड़े-बड़े नीले कमलोंके समान थे। उनकी भौंहें बड़ी-बड़ी और कँटीली थीं और माथेपर सुन्दर लटें लटकी पड़ रही थीं। उनके सिरपर चिकने, घुँघराले और घने बालोंको माताने अनेक प्रकारसे सँवारकर गूँथ दिया था। (५) वे पीली झँगुलिया (ढीला कुरता) पहने हुए थे। घुटनों और हाथोंके बल उनका चलना मुझे बहुत ही प्यारा लगता है। (६) उनके उस स्वरूपका वर्णन तो वेद और शेष भी नहीं कर पा सकते। उस स्वरूपकी शोभा वही जान सकता है जिसने कभी स्वप्नमें भी उन्हें (इस रूपमें) देखा

वज्रं च पद्मं च तथा यवं च षट्कोणकं चाथ मनुष्यमेकम्।
शंखं च चक्रं च तथाष्टकोणकमूर्द्ध्वं च रेखां घटस्वस्तिके च।।
हिमांशुमूर्त्तेश्च तथैव चार्द्धमेतानि चिह्नानि पदा दधन्तम्। —सत्योपाख्यान
नूपुरादीनि दिव्यानि सर्वांगेषु व्यधारयन्।। —अध्यात्मरामायण

२२४३ नरेन्द्रपुत्रस्य तु नाभिकुण्डं तत्रैव जातं विधिलोकपद्मम्।।

२२४४ तथैव रामस्य निबोध वक्षः विशोभमानं नखरैर्हरेश्च। जाम्बूनदस्वर्णपरिष्कृतैश्च।। —सत्यो०

२२४५-४७ श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः।। —अध्यात्मरामायण
कंठं त्रिरेखं जलजेन तुल्यमोष्ठादधस्ताच्चिबुकं सुरम्यम्।
दंताश्च बीजानि तु दाडिमस्य ओष्ठद्वयं दाडिमपुष्पभासम्।।

२२४८-४९ कर्णौ च दिव्यौ रघुनन्दनस्य गंडौ च रम्यौ शुभकुंडलाभ्याम्।
नेत्रद्वयं ह्यंजनरंजितं च भ्रुवौ च नीलौ धनुराकृती च।।

२२५०-५१ शिरोरुहाश्चितमुखः पीतवेष्टनशोभितः। अंगणे रिंगमाणश्च भ्रातृभिः सहितोऽनघः।।
क्रीडां चकार रामो हि ज्ञातीनां सुखमावहन्।। —सत्योपाख्यान

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेखा[1]। सो जानै सपनेहुँ जेहि देखा। (६।।)
दो०—सुख - संदोह मोह - पर , ज्ञान - गिरा - गोतीत।
दंपति परम प्रेम - बस , कर सिसु - चरित पुनीत ।। १९९ ।।
ऐहि बिधि राम जगत - पितु - माता। कोसलपुर - बासिन सुख - दाता।
जिन्ह रघुनाथ - चरन रति मानी। तिन्ह-की यह गति प्रगट भवानी। (१)
रघुपति - विमुख जतन कर कोरी। कवन सकै भव - बंधन छोरी।
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया, प्रभु - सों भय भाखे। (२)
भृकुटि - विलास नचावै ताही। अस प्रभु छाँड़ि, भजिय कहु काही।
२२६० मन - क्रम - वचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। (३)
ऐहि विधि सिसु-विनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगर-बासिन्ह सुख दीन्हा।
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै। (४)
दो०—प्रेम - मगन कौसल्या , निसि-दिन जात न जान।
सुत - सनेह - बस माता , बाल - चरित कर गान ।। २०० ।।

हो। (६।।) जो सुखके भांडार, मोहसे परे तथा ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंकी पहुँचसे बाहर हैं, वे भगवान् ही दशरथ और कौशल्याके परम प्रेमके कारण उनके घर पवित्र बाल-लीला किए जा रहे थे ।। १९९ ।। इस प्रकार जगत्के माता-पिता राम अवधपुरके वासियोंको सुख दिए जा रहे थे। पार्वतीसे शिव कहते हैं—'देखो भवानी ! जो लोग रामके चरणोंसे प्रेम जोड़े रखते हैं, उनकी यह प्रत्यक्ष गति है (उन्हें यह प्रत्यक्ष सुख मिलता है कि भगवान् बाल-लीलाएँ कर-करके उन्हें आनन्द ही आनन्द लुटाते रहते हैं)। (१) जो रामसे विमुख (मुँह फेरे) रहते हैं वे चाहे करोड़ों यत्न क्यों न कर लें फिर भी उन्हें कोई इस भवबन्धन (संसारकी मायाके जाल)-से नहीं छुड़ा पा सकता। जिस मायाने चर और अचर सभी जीवोंको अपने वशमें किए डाल रक्खा है, वह भी यदि किसीसे घबराती है तो प्रभु (राम) से ही घबराती है। (२) इसलिये जो प्रभु, अपनी भृकुटिके संकेतसे उस (माया)-को भी नचाते रहते हैं, उन (प्रभु)-को छोड़कर बताओ अन्य किसका भजन किया जाय ? जो प्राणी अपनी सारी चतुराई छोड़कर मन, वचन और कर्मसे केवल रामका ही भजन करते रहते हैं उनपर राम अवश्य कृपा करते हैं। (३) इस प्रकार प्रभु (राम)-ने शिशु-लीला करते हुए सब (अयोध्याके) नगरवासियोंको आनन्द-मग्न कर दिया। (माता कौशल्या भी) कभी तो उन्हें गोदमें लेकर हिलाती-डुलाती रहती थीं, कभी पालनेमें लिटाकर झुलाती रहती थीं (४) पुत्रके प्रेममें माता कौशल्या इतनी मगन रहती थीं कि उन्हें यही सुध नहीं रह पाती थी कि कब दिन हुआ कब रात हुई। वे दिन-रात पुत्रके स्नेहमें पड़ी उनके बाल-चरित्रका ही बखान किए जाती थीं ।। २०० ।।

---

१. सेखा=शेष।

२२५३-५४ एवमानन्दसंदोहजगदानन्दकारकः । मायाबालवपुर्धृत्वा रमयामास दंपती ।।—अ० रा०
२२६१-६२ नानाशिशुक्रीडनकैश्चेष्टितैः मुग्धभाषितैः । पितरं रञ्जयामासुः पौराञ्जानपदानपि ।। आनंद रा०
२२६३-६४ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च। स्मरन्ती तान्यगायत ।। —भागवत

एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलना पौढ़ाए।
निज - कुल - इष्टदेव भगवाना। पूजा-हेतु कीन्ह अस्नाना। (१)
करि पूजा नैवेद चढ़ावा। आप गई जहँ पाक बनावा।
वहुरि मातु तहँवाँ चलि आई। भोजन करत देखि सुत जाई। (२)
गइ जननी सिसु - पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता।
२२७० वहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कंप, मन धीर न होई। (३)
इहाँ उहाँ दुइ वालक देखा। मति भ्रम मोर, कि आन विसेखा।
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी। (४)
दो०—दिखरावा मातहि निज, अद्‌भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥ २०१ ॥
अगनित रवि, ससि, सिव, चतुरानन। बहु गिरि, सरित, सिन्धु, महि, कानन।
काल, करम, गुन, ज्ञान, सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ। (१)
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी।
देखा जीव, नचावै जाही। देखी भगति, जो छोरै ताही। (२)
तन पुलकित, मुख वचन न आवा। नयन मूँदि चरननि सिर नावा।

एक वार ऐसा हुआ कि माता (कौशल्या)-ने रामको नहला-धुलाकर कपड़े-गहने पहनाकर उन्हें पालनेमें ले जा लिटाया और अपने कुल-देवता (सूर्य)-की पूजा करनेके लिये स्वयं भी जा स्नान किया। (१) (इष्टदेवकी) पूजा करके, नैवेद्य चढ़ाकर वे सीधे रसोई-घरमें चली गईं। वहाँसे लौटकर वे (पूजा-घरमें) आकर देखती क्या हैं कि वालक (राम, वह चढ़ाया हुआ नैवेद्य) जीमे चले जा रहे हैं। (२) माता घवराई हुई, जब पालनेके पास लौटकर गई तो देखा कि शिशु राम पालनेमें आँखें मूँदे सोए पड़े हैं। वे फिर लौटकर (पूजा-घरमें) आईं तो देखा वालक राम वहाँ बैठे (जीमे जा रहे) हैं। (यह अद्भुत लीला देखकर तो) उनका हृदय भयसे काँप उठा और वे अधीर हो उठीं। (३) (माता कौशल्या अपने मनमें सोचने लगीं कि) मैंने यहाँ (पूजा-घरमें) और वहाँ (पालनेमें) जो दो वालक (राम) देखे यह मेरी ही बुद्धिका भ्रम है या कोई और विशेष बात है ? रामने माताको इस प्रकार व्याकुल देखा तो वे मधुर मुसकानके साथ हँस दिए। (४) और तब (रामने) अपनी माताको अपना वह अखण्ड और विचित्र रूप खोल दिखलाया जिसके एक-एक रोएँमें करोड़-करोड़ ब्रह्माण्ड लिपटे पड़े थे ॥ २०१ ॥ (माताने) देखा कि वहाँ असंख्य सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा, अनेक पर्वत, नदी, समुद्र, पृथ्वी, वन तथा काल, कर्म, गुण, ज्ञान और स्वभाव सब दिखाई दे रहे हैं; यहाँतक कि जो कुछ कभी किसीने सुना भी न था वह भी वहाँ दिखाई पड़ रहा था। (१) उन्होंने देखा कि सब प्रकारकी शक्तिवाली माया भी वहाँ (प्रभुके सामने) डरी हुई हाथ जोड़े खड़ी है। फिर उस जीवको भी देखा जिसे माया नचाती रहती है, और भक्तिको भी देखा, जो जीवको मायाके बन्धनसे छुड़ाती चलती है। (२) यह अद्भुत और अलौकिक दृश्य देखकर माताका शरीर काँपकर रोमांचित हो उठा। (घबराहटके मारे) उनके मुँहसे वचन नहीं निकल पा रहा था। (डरके

२२७५-७८ सा तत्र ददृशे रूपं जगत्स्थास्नु च खं दिशः। साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान् वियदेव च। वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥भाग०

२२८० बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसु-रूप खरारी। (३)
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत - पिता मैं सुत करि जाना।
हरि, जननी बहु बिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई। (४)
दो०—बार बार कौसल्या, विनय करै कर जोरि।
अब जनि कवहूँ व्यापै, प्रभु मोहि माया तोरि॥ २०२॥
बाल-चरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन - कहँ दीन्हा।
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन - सुखदाई। (१)
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। विप्रन पुनि दछिना बहु पाई।
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा। (२)
मन - क्रम - बचन - अगोचर जोई। दसरथ - अजिर विचर प्रभु सोई।
२२९० भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल-समाजा। (३)
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक - ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।

मारे) उन्होंने अपनी आँखें मूँदकर रामके चरणोंमें सिर झुका लिया। माताको इतने आश्चर्यसे चकित देखकर खरारि (खरके शत्रु) राम फिर जैसेके तैसे बालक बन गए। (३) माता ऐसी भौचक्की रह गई कि उनसे स्तुति भी किए नहीं बन पा रही थी। उन्हें यही घबराहट हुई जा रही थी कि मैं जगत्के पिता (परमात्मा)-को अपना पुत्र क्यों समझे बैठी रही। तब भगवान् रामने अपनी माताको अनेक प्रकारसे समझाकर कहा—'देखो माता ! (आपने जो कुछ देखा है) यह बात किसीसे कहिएगा मत।' (४) तब माता कौशल्याने हाथ जोड़कर बार-बार उनसे विनय की—'प्रभो ! आज जो मुझे आपकी मायाने चक्करमें डाला सो डाला, आगे फिर कभी यह मुझे चक्करमें न डाल पावे'॥ २०२॥ इस प्रकार भगवान् बहुत-सी बाल-लीलाएँ करते हुए अपने सेवकों (भक्तों)-को बहुत आनन्द देते रहे।

कुछ समय बीतनेपर जब चारों भाई बड़े (तीन बरसके) हो चले और कुटुम्बियोंको (सब प्रकारसे) सुख देने लगे, (१) तब गुरुने आकर उनका चूडाकर्म (मुण्डन) संस्कार करा दिया और ब्राह्मणोंने फिर भरपूर दक्षिणा पाई। इस प्रकार चारों सुन्दर राजकुमार अनेक मनोहर और अपार लीलाएँ करते हुए निरन्तर घूमने लगे। (२) (कितने आश्चर्यकी बात है कि) मन, कर्म, वचन तथा इन्द्रियोंसे परे जो ब्रह्म है, वे ही प्रभु आकर दशरथके आँगनमें इधर-उधर डोलते फिर रहे हैं। जीमनेके समय राजा दशरथ उन्हें बहुत बुलाते, (पर वे अपने साथी) बालकोंका साथ छोड़कर आनेका नाम ही न लेते। (३) जब कौशल्या माता उन्हें बुलाने आ पहुँचती, तब प्रभु राम ठुमुक-ठुमुककर वहाँसे भाग चलते। 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर वेदने जिनका निरूपण

२२७९-८० चेतो मनः कर्मवचोभिरञ्जसा सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम्।
वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः॥ —श्रीमद्भागवत
२२८१ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः। उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम्॥भाग०
२२८४ देव त्वद्रूपमेतन्मे सदा तिष्ठतु मानसे। आवृणोतु न मां माया तव विश्वविमोहिनी॥
२२८६ अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे। —अध्यात्मरामायण
२२९० भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीति चासकृत्। आह्वयत्यतिहर्षेण प्रेम्णा नायाति लीलया॥अ०रा०

निगम नेति, सिव अन्त न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा। (४)
धूसरि धूरि भरे तनु पाए। भूपति बिहँसि गोद बैठाए। (४॥)
दो०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकात मुख, दधि - ओदन लपटाइ ॥ २०३ ॥
बाल-चरित अति सरल सुहाए। सारद, सेष, संभु, श्रुति गाए।
जिन - कर मन इन - सन नहिं राता। ते जन वंचित किए बिधाता। (१)
भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु - पितु - माता।
गुरु - गृह गए पढ़न रघुराई। अल्प काल बिद्या सब आई। (२)
२३०० जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़, यह कौतुक भारी।
बिद्या - बिनय - निपुन, गुनसीला। खेलहिं खेल सकल नृप-लीला। (३)
कर-तल बान - धनुष अति सोहा। देखत रूप, चराचर मोहा।
जिन बीथिन बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग - लुगाई। (४)

किया है और शिव भी जिनका अन्त नहीं पा सके, उन्हीं प्रभुको माता कौशल्या हठपूर्वक पकड़ने दौड़ी जा रही थीं।' (४) उधर वे (राम) थे कि शरीरमें धूल लपेटे चले आ रहे थे, इधर राजा दशरथ थे कि हँसकर उठाकर उन्हें गोदमें बैठाए ले रहे थे। (४॥) (चारों भाई) जीमते तो जाते थे, पर उनका चित्त कहीं और (खेलमें) लगा रहता था। (इसलिये) जहाँ आँख बची कि मुँहमें दही-भात लपेटे ही वे किलकारी मारते हुए इधर-उधर भाग निकलते थे ॥ २०३ ॥ रामकी इन अनेक भोली-भाली बाल-लीलाओंका वर्णन सरस्वती, शेष, शिव और वेदोंने बहुत अधिक किया है। जिन लोगोंका मन इनकी लीलाओंमें अनुरक्त नहीं हुआ, तो यही समझिए कि विधाताने उन्हें ठग लिया (वे अभागे हैं)। (१)

जब सब भाई कुमार (दस-दस वर्षके) हो चले, तब गुरु, पिता और माताने उनका यज्ञोपवीत-संस्कार कर दिया। यज्ञोपवीत हो चुकनेपर राम (अपने भाइयोंके साथ) पढ़नेके लिये गुरु (वशिष्ठ)-के घर (आश्रममें) पहुंचा दिए गए। वहाँ पहुँचाना था कि थोड़े ही दिनोंमें उन्हें सारी विद्याएँ आ गईं। चारों वेद जिनकी स्वाभाविक साँस ही हैं, वह भगवान् पढ़ने बैठें, यह क्या कम आश्चर्यकी बात है? थोड़े ही दिनोंमें (चारों भाई) विद्या, विनय, गुण और शीलमें बड़े निपुण हो निकले। वे सब मिलकर अब राजाओंके खेल खेलने लगे। (३) उनके हाथोंमें धनुष और बाण बहुत अच्छे लगने लगे थे। उनका रूप जो भी चर या चर (जड या चेतन) देखता वहीं मोहित हो उठता था। ये चारों भाई खेलते हुए जिधरसे होकर निकलते जाते थे उधरके सभी स्त्री-पुरुष उन्हें टकटकी बाँधे देखते हुए स्नेहके मारे शिथिल हो-हो पड़ते थे (सुधबुध खोकर एकटक देखते रह जाते थे)। (४)

२२९१-९२ आनयेति च कौसल्यामाह सा सस्मिता सुतम्। धावत्यपि न शक्नोति स्प्रष्टुं योगिमनोर्गतम्।
२२९३-९५ प्रहसन् स्वयमायाति कर्दमांकितपाणिना। किंचिद् गृहीत्वा कवलं पुनरेव पलायते॥
२२९८ अथ कालेन ते सर्वे कौमारं प्रतिपेदिरे। उपनीता वशिष्ठेन सर्वविद्याविशारदाः॥ अ०रा०
२२९९ गुरोराश्यात्सुमुहूर्ते वेदान् सांगांश्चतुर्विधान्। चक्रुर्मुखोद्गतान्येव कलाः शास्त्रादिकान्यपि॥आ०रा०

दो०—कोसल-पुर-बासी नर, नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत, सब-कहँ राम कृपाल ॥ २०४ ॥
बंधु - सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई।
पावन मृग मारहिं जिय जानी। दिन प्रति नृपहिं दिखावहिं आनी। (१)
जे मृग रामबान - के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे।
अनुज - सखा - सँग भोजन करहीं। मातु - पिता - अज्ञा अनुसरहीं। (२)
२३१० जेहिं बिधि सुखी होहिं पुर-लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।
बेद - पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन समुझाई। (३)
प्रातकाल उठि - कै रघुनाथा। मातु - पिता - गुरु नावहिं माथा।
आयसु माँगि करहिं पुर - काजा। देखि चरित हरषै मन राजा। (४)
दो०—ब्यापक, अकल, अनीह, अज, निर्गुन, नाम न रूप।
भगत - हेतु नाना बिधि, करत चरित्र अनूप ॥ २०५ ॥

कोसलपुरी (अयोध्या)-के रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बालक सभीको राम अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझते थे ॥ २०४ ॥ राम अपने भाइयों और साथियोंको साथ लेकर नित्य आखेटके लिये वनमें निकल जाते थे। अपने मनमें वे जिन्हें पवित्र समझते थे (जिन्हें पवित्र करके मुक्त करना चाहते थे) उन्हीं मृगोंको आखेट जा करते थे और प्रतिदिन राजा दशरथको ला दिखलाते थे। (१) रामके बाणोंसे जो भी मृग मारे जाते थे वे सब शरीर छोड़-छोड़कर सीधे देवलोक पहुँच जाते थे। राम जब भी जीमने बैठते तो अपने छोटे भाइयों और साथियोंको भी साथ बैठा लेते थे और (सदा) माता-पिताकी आज्ञाओंका पालन करते रहते थे। (२) कृपानिधान राम सदा ऐसा ही काम करते रहते थे जिससे नगरके लोगोंको सुख मिले। वे बहुत मन लगाकर वेद-पुराण सुनते चलते थे और अपने छोटे भाइयोंको उसका अर्थ समझाते चलते थे। (३) प्रातःकाल उठते ही राम अपने माता, पिता और गुरु (बड़ों)-के चरणोंमें जा प्रणाम करते थे और उनसे आज्ञा लेकर ही नगरका कार्य (लोक-सेवाका काम) किया करते थे। उनके चरित्र (व्यवहार) देख-देखकर राजा (दशरथ) भी मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए रहते थे। (४) जो परमात्मा, सर्वव्यापी, निराकार, इच्छारहित, अजन्मा और गुणों (सत्त्व रजस् तमस्)-की पहुँचसे बाहर हैं तथा जिनका न नाम है न रूप है, वे ही (परमात्मा अपने) भक्तोंके लिये अनेक प्रकारकी अलौकिक लीलाएँ करते फिर रहे थे ॥ २०५ ॥

२३०८ रामश्चापधरो नित्यं तूणी बाणान्वितः प्रभुः। अश्वारूढो वनं याति मृगयायै सलक्ष्मणः॥
हत्वा दुष्टमृगान् सर्वान् पित्रे सर्वं निवेदयेत्। —अ०रा०

२३०९ सहोपविष्टा बुभुजुः समं भगवता मुदा। एवं ते मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः॥ भाग०

२३१०-११ बंधुभिः सहितो नित्यं भुक्त्वा मुनिभिरन्वहम्। धर्मशास्त्ररहस्यानि शृणोति व्याकरोति च॥अ०रा०

२३१२-१३ प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च। पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः॥अ०रा०

२३१४-१५ एवं परात्मा मनुजावतारो मनुष्यलोकाननुसृत्य सर्वम्।
चक्रेऽविकारी परिणामहीनो विचार्यमाणे न करोति किंचित्॥ —अध्यात्मरामायण

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई।
बिस्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी। (१)
जहँ जप - जज्ञ - जोग मुनि करहीं। अति मारीच - सुबाहुहि डरहीं।
देखत जज्ञ, निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव, मुनि दुख पावहिं। (२)
२३२० गाधि - तनय - मन चिंता ब्यापी। हरि-बिनु मरिहि न निसिचर पापी।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि - भारा। (३)
एहू मिस देखौं पद जाई। करि बिनती, आनौं दोउ भाई।
ज्ञान - बिराग - सकल - गुन - अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना। (४)
दो०—बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरजू - जल, गए भूप - दरबार॥ २०६॥
मुनि - आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै बिप्र - समाजा।
करि दंडवत मुनहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी। (१)

(भरद्वाजसे याज्ञवल्क्य कहते हैं–) 'इतनी सब कथा मैंने विस्तारसे सुना डाली। अब मन लगाकर आगेकी कथा सुनिए।' महामुनि ज्ञानी विश्वामित्र वनमें अपना सुन्दर आश्रम बनाकर रहते थे (१) जहाँ वे (निरन्तर) जप, यज्ञ और योग करते रहते थे। (पर) वे मारीच और सुबाहुसे बहुत तंग हुए रहते थे, (क्योंकि) वे (राक्षस) यज्ञ होता देखते ही झट दौड़ आते और इतना उपद्रव करने लगते थे कि मुनिको बहुत क्लेश होता था। (२) गाधिके पुत्र (विश्वामित्र)-के मनमें यही सबसे (बड़ी) उलझन बनी हुई थी कि जबतक भगवान् नहीं आवेंगे तबतक ये पापी राक्षस नष्ट नहीं हो पावेंगे। इसी बीच मुनिके मनमें विचार आया कि प्रभुने तो पृथ्वीका भार मिटानेके लिये अवतार ले ही लिया है; (३) तो चलूँ, इसी बहाने जाकर मैं उनके चरणोंका दर्शन भी कर लूँ और प्रार्थना करके दोनों भाइयोंको यहाँ साथ भी लेता आऊँ। इस प्रकार ज्ञान, वैराग्य और सम्पूर्ण गुणोंवाले प्रभु रामको मैं भर-आँखों देख भी लूँगा। (४) बहुत प्रकारसे मनमें नई-नई अभिलाषाएँ लिए हुए वे झटपट वहाँसे चल दिए। (अयोध्या पहुँचकर और) सरयूमें स्नान करके (मुनि विश्वामित्र) राजा दशरथके द्वारपर जा पहुँचे॥ २०६॥ जब राजा दशरथने सुना कि मुनि (विश्वामित्र) आ पधारे हैं तो वे अनेक ब्राह्मणोंको साथ लेकर उनका स्वागत करने द्वारपर आ पहुँचे। राजा (दशरथ)ने मुनिको दण्डवत् (साष्टांग प्रणाम[1]) करके सम्मान के साथ अपने आसनपर ला बैठाया। (१)

१. उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते॥
[छाती, सिर, दोनों आँखें, मन, वचन, दोनों पैर, दोनों हाथ और दोनों घुटने पृथ्वीपर फैलाकर जो दण्डके समान लेटकर प्रणाम किया जाता है उसे साष्टांग या आठों अंगोंवाला प्रणाम कहते हैं।]

२३१७-२२ क्रतुविध्वंसिनोऽभूवन् रावणानुचराश्च ते। कौशिकश्चिन्तयित्वाथ रघुवंशोद्भवं हरिम्॥
आनेतुमिच्छन् धर्मात्मा लोकानां हितकाम्यया। —पद्मपुराण
२३२३ किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः। किं वाऽथाऽप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम्॥
इति संचितयन्॥ —श्रीमद्भागवत
२३२४-२५ कदाचित्कौशिकोऽभ्यागादयोध्यां निर्मलप्रभः। द्रष्टुं रामं परात्मानं जातं ज्ञात्वा स्वमायया॥

चरन पखारि कीन्हि अति पूजा। मो सम आज धन्य नहिं दूजा।
बिबिध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा। (२)
२३३० पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी।
भए मगन देखत मुख-सोभा। जनु चकोर पूरन-ससि लोभा। (३)
तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि ! अस कृपा न कीन्हिहु काऊ।
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु, सो करत न लावौं बारा। (४)
असुर-समूह सतावहिं मोहीं। मैं जाचन आयउँ नृप तोहीं।
अनुज-समेत देहु रघुनाथा। निसिचर-बध मैं होब सनाथा। (५)

दो०—देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह, अज्ञान।
धर्म-सुजस प्रभु तुम कहँ, इन-कहँ अति कल्यान ॥ २०७ ॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप, मुख-दुति कुँभिलानी।

(राजाने मुनिके) चरण धोकर उनकी बहुत पूजा की। (और बोले—) 'आज मेरे समान धन्य और कोई दूसरा नहीं है।' (यह कहकर) उन्होंने अनेक प्रकारसे (विश्वामित्रको) खिलाया-पिलाया। (इस सब सत्कारसे) श्रेष्ठ मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। (२) फिर राजा दशरथने अपने चारों पुत्रोंको बुलाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराया। रामको देखकर मुनि अपनी देहकी सारी सुध-बुध भूल चले। रामके मुखकी शोभा देखते ही वे ऐसे तल्लीन हो गए जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर चकोर लुभा गया हो। (३) तब राजाने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'मुनिवर ! आपने पहले तो कभी ऐसी कृपा की नहीं थी। इसलिये आज्ञा कीजिए कि आपने किस कारण यहाँ पधारनेका कष्ट किया। आपके कहने भरकी देर है, उसे पूरा करनेमें कुछ देर नहीं लगेगी।' (४) (तब मुनि बोले—) राजन् ! राक्षस मुझे बहुत सताते रहते हैं, इसीलिये मैं आपसे कुछ याचना करने आ पहुँचा हूँ। (वह याचना यह है कि) छोटे भाई (लक्ष्मण)-के साथ रामको मेरे साथ भेज दीजिए। (इनके हाथसे) राक्षस मार डाले जायँगे तो मैं सनाथ (निश्चिन्त) हो जाऊँगा (मुझे शान्ति मिल जायगी)। (५) राजन् ! आप प्रसन्न होकर, मोह और अज्ञान छोड़कर इन्हें मेरे साथ भेज दीजिए। इससे आपको तो धर्म और सुयश मिलेगा ही, साथ ही इनका भी परम कल्याण होगा ॥ २०७ ॥

यह अत्यन्त जी दुखानेवाली बात सुनते ही राजाका हृदय व्याकुल हो उठा और उनका मुँह सूख गया। (वे बोले—) हे ब्राह्मण ! मैंने चौथेपन (बुढ़ापे)-में ये चार पुत्र पाए हैं

२३२६-२९ दृष्ट्वा दशरथो राजा प्रत्युद्गत्वाचिरेण तु। वसिष्ठेन समागम्य पूजयित्वा यथाविधि ॥
अभिवाद्य मुनिं राजा प्रांजलिर्भक्तिनम्रधीः। कृतार्थोस्मि मुनीन्द्रोहं त्वदागमनकारणात्॥अ०रा०
२३३० पुत्रैः सह महातेजा ववन्दे मुनिसत्तमम्। —पद्मपुराण
२३३२-३३ उवाच परमोदारः स्वागतं ते महामुने। ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति ॥
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थं परिवृद्धये। कार्यस्य न विमर्शं च गंतुमर्हसि सुव्रत ॥वाल्मी०
२३३४-३७ अहं पर्वणि संप्राप्ते दृष्ट्वा यष्टुं सुरान् पितॄन्। यदारेभे तदा दैत्या विघ्नं कुर्वन्ति नित्यशः ॥
अतस्तेषां वधार्थाय ज्येष्ठं रामं प्रयच्छ मे। लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा तव श्रेयो भविष्यति ॥अध्या०

चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र! बचन नहिं कहेहु बिचारी। (१)
२३४० माँगहु भूमि, धेनु, धन, कोसा। सरबस देउँ आज सहरोसा[१]।
देह - प्रान - तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष ऐक माहीं। (२)
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनै गुसाईं।
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा। (३)
सुनि नृप - गिरा प्रेम - रस - सानी। हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी।
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप - संदेह नास - कहँ पावा। (४)
अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ, बहु भाँति सिखाए।
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता, आन नहिं कोऊ। (५)

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहु बिधि देइ असीस।
जननी - भवन गए प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥ २०८ क ॥

(इन्हें मैं कैसे दे सकता हूँ)। आपने यह विचारकर बात नहीं कही। (१) देखिए मुनि ! आप पृथ्वी, गौ, धन और राजकोष जो चाहे मुझसे माँग लीजिए, मैं हर्षके साथ आपको अपना सर्वस्व दे डालूँगा। शरीर और प्राणसे अधिक प्यारी तो और कोई वस्तु नहीं होती, पर वह भी (आप माँगें तो) क्षण भरमें दे डालूँगा। (२) यद्यपि पुत्र तो चारों मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं, परन्तु उनमेंसे रामको तो (किसी भी प्रकार) देते नहीं बनेगा। बताइए, कहाँ तो अत्यन्त भयानक और क्रूर राक्षस और कहाँ ये परम किशोर अवस्थावाले मेरे सुन्दर पुत्र ! (राक्षसोंसे लड़नेके लिये आप इन बच्चोंको लिवाए जा रहे हैं !)। (३) राजाकी यह प्रेम-भरी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि हृदयमें बहुत प्रसन्न हुए। जब वशिष्ठने राजाको अनेक प्रकारसे समझाया तब कहीं उनका सन्देह दूर हो पाया (४) और तब राजाने बड़े आदरसे दोनों पुत्रोंको बुलवाकर उन्हें हृदयसे लगाकर बहुत प्रकारसे सिखाया-समझाया। (फिर वे विश्वामित्रसे बोले—) 'नाथ ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राण हैं। अब आप ही इनके पिता हैं, दूसरा कोई नहीं है।' (५) राजा दशरथने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद देकर अपने दोनों पुत्रों (राम-लक्ष्मण)-को ऋषि विश्वामित्रके हाथ सौंप दिया। फिर प्रभु (राम) अपनी माताके प्रकोष्ठमें गए और उनके चरणोंमें प्रणाम करके (उनसे आज्ञा लेकर)

१. सहरोसा = सह + रहसा = आनन्दके साथ। (कोश देखिए : रहस = आनन्द)।

२३३८-३९ स शुश्रुवांस्तद् वचनं मुमोह राजाऽसहिष्णुः सुतविप्रयोगम्। —भट्टिकाव्य
षष्टिवर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक। दुःखेनोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि ॥वाल्मीकीय
२३४०-४२ गजाश्वादीनि रत्नानि वस्त्राणि च धनानि च। मन्दिराणि विचित्राणि गृहाण त्वं यदीच्छसि॥गर्ग.
चत्वारोऽमरतुल्यास्ते तेषां रामोऽतिवल्लभः। किं करोमि मुने रामं त्यक्तुं नोत्सहते मनः ॥अध्या.
२३४३-४४ ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः। न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥
कथं च प्रतिकर्त्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम्। —वाल्मीकीयरामायण
२३४५ प्रेषयस्व रमानाथं राजेन्द्र सहलक्ष्मणम्। वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु राजा दशरथस्तदा।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने प्रमुदितां वरः ॥
२३४६-४८ आहूय राम रामेति लक्ष्मणेति च सादरम्। आलिङ्ग्य मूर्ध्न्यवघ्राय कौशिकाय समर्पयत् ॥
मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः। रेजतुः ॥ —रघुवंश

२३५० सो०—पुरुष - सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भय-हरन।
कृपा - सिंधु मति - धीर, अखिल-बिस्व-कारन-करन।। २०८ ख।।
अरुन नयन, उर बाहु बिसाला। नील जलद-तनु स्याम तमाला।
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर - चाप - सायक दुहुँ हाथा। (१)
स्याम - गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महा - निधि पाई।
प्रभु ब्रह्मन्य देव मैं जाना। मोहि निति[1] पिता तजेउ भगवाना। (२)
चले जात मुनि दीन्हि दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि, तेहि निज पद दीन्हा। (३)
तब रिषि निज नाथहि जिय चीन्हीं। बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्हीं।
जा-तें लागि न छुधा - पिपासा। अतुलित बल, तनु तेज-प्रकासा। (४)

मुनिके साथ चल दिए ।। २०८ क ।। पुरुषोंमें सिंहके समान वीर दिखाई देनेवाले वे दोनों भाई (राक्षसोंको मारकर) मुनिका भय मिटानेके लिये बड़े उत्साहके साथ चले जा रहे थे जो कृपाके समुद्र, धीर-बुद्धि और सम्पूर्ण विश्वके कारणके भी कारण (इस विश्वको बनानेवाले ब्रह्माको भी जन्म देनेवाले) थे ।। २०८ ख ।। भगवान् रामके नेत्र लाल, छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल थीं। नीले मेघ और तमालके वृक्षके समान उनका साँवला शरीर था। उनकी कमरमें पीताम्बर बँधा था जिसपर सुन्दर तरकश कसा हुआ था। उनके दोनों हाथोंमें धनुष-बाण थे। (१) साँवले और गोरे दोनों भाई चलते हुए बड़े सुन्दर लग रहे थे। (उन्हें साथ पाकर) विश्वामित्रको तो ऐसा लग रहा था जैसे महानिधि (सबसे बड़ी संपत्ति) हाथ लग गई हो। (वे सोचने लगे—) अब मैंने जाना कि प्रभु राम सचमुच ब्राह्मणोंके भक्त हैं। देखो, मेरे लिये भगवान् अपने प्यारे पिताको भी छोड़कर साथ चले आए। (२) वे अभी मार्गमें बढ़े चले ही जा रहे थे कि मुनिने दोनों भाइयोंको उँगली उठाकर दिखाया कि देखो, वही है ताड़का (राक्षसी) जो सामनेसे दौड़ी चली आ रही है। इतना सुनना था कि ताड़का क्रोधसे भरी दाँत पीसती इनकी ओर दौड़ ही तो पड़ी। पर प्रभु रामने एक ही बाण ऐसा तानकर उसे मारा कि वह तत्काल वहीं ढेर हो गई। उसे दीन जानकर रामने अपना पद (परमपद, मोक्ष) दे डाला। (३) यह देखकर मुनिने अपने प्रभु (राम)-को और (उनकी अलौकिक शक्तिको) भली भाँति पहचान लिया और यह समझते हुए भी कि इन्हें कौन-सी विद्या नहीं आती और ये सारी विद्याओंके पूर्ण ज्ञाता हैं, उन्हें ऐसी (बला और अतिबला नामकी) विद्याएँ विश्वामित्रने दे डालीं जिनसे कभी भूख-प्यास भी न सतावे और शरीरमें अतुलित बल और तेज भी निरन्तर बना रहे। (४) अपने सब अस्त्र-शस्त्र

१. 'हित' या 'लगि'।

२३५०-५१ ततोतिहृष्टो भगवान् विश्वामित्रः प्रतापवान्। आशीर्भिरभिनन्द्याथ ह्यागतौ रामलक्ष्मणौ ।। गृहीत्वा चापतूणीरबाणखड्गधरौ ययौ ।।
२३५६-५७ विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं सत्यपराक्रमम। अत्रास्ति ताडका नाम राक्षसी कामरूपिणी ।। तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि। पपात विपिने घोरा वमंती रुधिरं बहु ।।अ०रा०
२३५८-५९ ददौ बलां चातिबलां द्वे विद्ये देवनिर्मिते। ययोर्ग्रहणमात्रेण क्षुत्क्षामादि न जायते ।।अध्या०रा०

२३६० दो० –आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम आनि ।
कंद - मूल - फल भोजन, दीन्ह भगत - हित जानि ।। २०९ ।।
प्रात कहा मुनि - सन रघुराई । निर्भय जज्ञ करहु तुम जाई ।
होम करन लागे मुनि - भारी । आपु रहे मख-की रखवारी । (१)
सुनि मारीच निसाचर कोही । लै सहाय धावा मुनि - द्रोही ।
विनु फर वान राम तेहि मारा । सत जोजन गा सागर - पारा । (२)
पावक - सर सुवाहु पुनि मारा । अनुज, निसाचर - कटक सँघारा ।
मारि असुर, द्विज - निर्भय - कारी । अस्तुति करहिं देव - मुनि - भारी । (३)
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया । रहे कीन्हि बिप्रन - पर दाया ।
भगति - हेतु बहु कथा पुराना । कहे विप्र, जद्यपि प्रभु जाना । (४)

रामको समर्पित करके प्रभु रामको मुनि अपने आश्रममें लिवाते ले आए और उन्हें भक्तिपूर्वक कन्द-मूल-फल मँगा खिलाए ।। २०९ ।। प्रातःकाल होते ही रामने मुनिसे कहा—'आप जाइए, निडर होकर यज्ञ कीजिए ।' (यह सुनकर) सब मुनि तो जाकर यज्ञ करने लगे और प्रभु राम यज्ञकी रखवाली करने डट गए । (१) मुनियोंके शत्रु क्रोधी राक्षस मारीचने ज्यों ही यह समाचार सुना तो झट सहायकोंको साथ लिए-दिए दौड़ पड़ा । पर रामने विना फलवाला ऐसा बाण ताककर उसे मारा कि वह ढुलमुली खाता हुआ सौ योजन समुद्रके पार (लंकामें) जा पड़ा (बाणकी चोटसे तिलमिलाकर उठकर भागा लंका जा पहुँचा) । (२) फिर (रामने) तो अग्निबाण (आग्नेयास्त्र) चला-चलाकर सुबाहुको ढेर कर डाला और (उनके) छोटे भाई लक्ष्मणने बची-खुची सारी राक्षसी सेनाके धुर्रे उड़ा दिए । (इस प्रकार रामने) राक्षसोंको मटियामेट करके ब्राह्मणों (मुनियों)-को निर्भय कर दिया । यह सब हो चुकनेपर सब देवता और मुनियोंने वहाँ आ-आकर रामकी बड़ी स्तुति की । (३) इसके अनन्तर भी कुछ दिनों-तक वहाँ (आश्रममें) रहकर रघुनाथजी उन ब्राह्मणोंका बड़ा उपकार करते रहे । यद्यपि राम पहलेसे ही सब जानते थे फिर भी वहाँके ब्राह्मण, भक्ति उत्पन्न करनेवाली पुराणोंकी अनेक कथाएँ कह-कहकर उन्हें सुनाते रहे । (४)

२३६०-६१ ततोऽतिहृष्टः परिरभ्य रामं मूर्धन्यवघ्राय विचिन्त्य किंचित् ।
सर्वास्त्रजालं सरहस्यमंत्रं प्रीत्याभिरामाय ददौ मुनीन्द्रः ।।
सिद्धाश्रमं गताः सर्वे सिद्धचारणसेवितम् । विश्वामित्रेण संदिष्टा मुनयस्तन्निवासिना ।।
पूजां महतीं चक्रू रामलक्ष्मणयोर्द्रुतम् ।। अध्या०रा०
२३६२-६३ कुरु यागं मुने त्वं तु रक्षके मय्यवस्थिते । तथेत्युक्त्वा मुनिर्यष्टुमारेभे मुनिभिः सह ।।नृसिंहपु०
२३६४ मध्याह्ने ददृशाते तौ राक्षसौ कामरूपिणौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वर्षन्तौ रुधिरास्थिनी ।।
२३६५ रामोऽपि धनुरादाय द्वौ बाणौ संदधे सुधीः । आकर्णान्तं समाकृष्य विससर्ज तयोः पृथक् ।।
तयोरेकस्तु मारीचं भ्रामयन् शतयोजनम् । पातयामास जलधौ तदद्भुतमिवाभवत् ।। अध्या०रा०
२३६६ द्वितीयोऽग्निमयो बाणः सुबाहुमजयत्क्षणात् । अपरे लक्ष्मणेनाशु हतास्तदनुयायिनः ।। –अ०रा०
२३६७ देवदुन्दुभयो नेदुस्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः । —अध्यात्मरामायण
२३६८-६९ पुराणवाक्यैर्मधुरैर्निनाय दिवसत्रयम् ।। —अध्यात्मरामायण

२३७० तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु, देखिय जाई।
धनुष-जज्ञ सुनि रघुकुल-नाथा। हरषि चले मुनिवर-के साथा। (५)
आश्रम एक दीख मग माहीँ। खग-मृग-जीव-जंतु तहँ नाहीँ।
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी। (६)
दो०—गौतम-नारी श्राप-बस, उपल-देह धरि धीर।
चरन-कमल-रज चाहती, कृपा करहु रघुबीर॥ २१०॥
छंद—परसत पद-पावन, सोक-नसावन, प्रगट भई तप-पुंज सही।
देखत रघु-नायक, जन-सुख-दायक, सनमुख होइ कर जोरि रही।
अति प्रेम अधीरा, पुलक सरीरा, मुख नहिँ आवै बचन कही।
अतिसय बड़भागी, चरननि्ह लागी, जुगल नयन जल-धार बही॥ [२८]

एक दिन मुनिने आदरपूर्वक (धनुष-यज्ञका रूप) समझाते हुए कहा—'चलिए प्रभो ! एक नया खेल (धनुषयज्ञ) चलकर देख आया जाय।' धनुष-यज्ञकी बात सुनकर रघुकुलके स्वामी राम उन श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्रके साथ प्रसन्न चित्तसे जनकपुरको चल दिए। (५) वे मार्गमें चले ही जा रहे थे कि अचानक उन्हें एक (ऐसा विचित्र) आश्रम दिखाई पड़ गया जहाँ न कोई पशु था, न पक्षी, न कोई जीव-जन्तु। वहाँ पड़ी हुई पत्थरकी चट्टान देखकर रामने मुनिसे पूछा कि यह चट्टान यहाँ कहाँसे आई पड़ी है। तब मुनिने उन्हें (उस चट्टानकी सारी) कथा विस्तारसे बताते हुए कहा—(६) 'यह तो गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्या है जो उनके शापके कारण यहाँ पत्थर बनी हुई बड़े धैर्यसे (बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा करती हुई) आपके चरण-कमलोंकी धूलि छू पानेके लिये यहाँ ऐसे ही पड़ी हुई है। इसलिये राम ! आप इसपर कृपा कर ही दीजिए (अपने चरण-कमलोंसे इसे छू दीजिए)' ॥ २१० ॥ ज्यों ही रामने (आगे बढ़कर) सब प्रकारके शोकका नाश करनेवाले अपने पवित्र चरणोंसे (उस चट्टानको) स्पर्श किया कि वह सचमुच तपकी मूर्ति अहल्या बनकर उठ खड़ी हुई। भक्तोंको सुख देनेवाले रामको सामने देखते ही वह कुछ देर-तक उनके आगे हाथ जोड़े खड़ीकी-खड़ी रह गई। (रामके प्रति) अत्यन्त प्रेमके कारण वह इतनी अधीर हो उठी कि उसके शरीरके रोम-रोम फरफरा उठे और मुँहसे कुछ कहते नहीं बन पाया। निदान, वह अत्यन्त बड़भागिनी अहल्या प्रभु (राम)-के चरणोंसे जा लिपटी और उसके दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बह चलीं। [२८] अपनेको बहुत सँभाल चुकनेपर वह प्रभु रामको पहचान पाई और रामकी कृपासे

२३७०-७१ राम राम महायज्ञं द्रष्टुं गच्छामहे वयम्। विदेहराजनगरे कौशिकः प्राह सादरम्॥—अ०रा०
स मिथिलां व्रजन्वशी। राघवावपि निनाय बिभ्रतौ तद्धनुःश्रवणजं कुतूहलम्॥ —रघुवंश
२३७२-७३ गौतमस्याश्रमे पुण्ये नानाजंतुविवर्जिते।
शिलां दृष्ट्वा मुनिः पृष्टो रामेणाह कथां शुभाम्॥ —अध्यात्मरामायण
२३७४-७५ तव पादरजःस्पर्शं कांक्षते पवनाशना। पावयस्व मुनेर्भार्यामहल्यां ब्रह्मणः सुताम्॥अ०रा०
२३७६-७९ सा ततस्तस्य रामस्य पादस्पर्शान्महात्मनः। अभूत्सुरूपा वनिता समाक्रान्ता महाशिला॥ पद्मपु०
ततो दृष्ट्वा रघुश्रेष्ठं पीतकौशेयवाससम्। पुलकांकितसर्वांगा गिरा गद्गदयेलत॥
हर्षाश्रुजलनेत्रान्ता दंडवत् प्रणिपत्य सा॥ —अध्यात्मरामायण

२३८० धीरज मन कीन्हा, प्रभु कहँ चीन्हा, रघुपति - कृपा भगति पाई[1]।
अति निर्मल बानी, अस्तुति ठानी, ज्ञान-गम्य जय रघुराई।
मैं नारि अपावन, प्रभु जग - पावन, रावन - रिपु, जन - सुखदाई।
राजीव - विलोचन, भव - भय - मोचन, पाहि पाहि सरनहि आई॥ [२९]
मुनि साप जो दीन्हा, अति भल कीन्हा, परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन, हरि भव-मोचन, इहै लाभ संकर जाना।
विनती प्रभु मोरी, मैं मति भोरी, नाथ न माँगौं बर आना।
पद - कमल - परागा, रस अनुरागा, मम मन मधुप करै पाना॥ [३०]
जेहि पद सुर - सरिता, परम पुनीता, प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद-पंकज, जेहि पूजत अज, मम सिर धरेउ कृपाल हरी।
२३९० ऐहि भाँति सिधारी, गौतम-नारी, बार - बार हरि - चरन परी।
जो अति मन भावा, सो बर पावा, गइ पति-लोक अनंद - भरी॥ [३१]

उसके (हृदयमें) पूरी भक्ति आ समाई। तब अत्यन्त निर्मल वाणीसे वह इस प्रकार (रामकी) स्तुति करने लगी—'केवल ज्ञानसे ही जाने जा सकनेवाले हे राम ! आपकी जय हो ! कहाँ तो मैं इतनी अपवित्र स्त्री और कहाँ संसारको पवित्र करनेवाले, रावणके शत्रु और भक्तोंको सुख देनेवाले आप ! हे कमलनयन ! हे संसारका भय (जन्म-मृत्युका बन्धन) मिटा डाल सकनेवाले !! मैं आपकी शरणमें आई हूँ, मेरी रक्षा कर लीजिए। [२९] मुनि (गौतम ऋषि)-ने बहुत अच्छा किया कि मुझे शाप दे डाला। मैं तो उनकी बड़ी कृपा मानती हूँ क्योंकि उसके ही कारण तो आज मैं संसारके भयसे मुक्त करनेवाले भगवान्‌को भर-आँखों देख पाई हूँ। यह (आपका दर्शन कर पाना) तो शंकर भी बहुत बड़ा लाभ समझते हैं। हे प्रभो ! मैं तो बुद्धिकी बड़ी भोली हूँ (मुझमें कुछ भी बुद्धि नहीं है इसलिये) नाथ ! मेरी एक विनति है। मैं आपसे और कोई वर नहीं माँगती, केवल इतना ही चाहती हूँ कि मेरे मनका भौंरा आपके चरण-कमलकी धूलसे प्रेम करते रहनेके रस (आनन्द)- का सदा पान करता रहे (मेरा मन सदा आपके चरणोंमें लगा रहे)। [३०] (यह आपकी बड़ी कृपा है कि) जिन चरणोंसे ऐसी परम पवित्र गंगा प्रकट हुई जिन्हें शिवने अपने सिरपर उठा चढ़ाया और जिन चरण-कमलोंकी पूजा ब्रह्मा भी करते रहते हैं वे ही चरण-कमल कृपालु हरि (आप)-ने मेरे सिरपर ला रक्खा' यह कहकर वह गौतमकी पत्नी अहल्या बार-बार रामके चरणोंमें पड़ती हुई मनचाहा वर पाकर, आनन्दमें मग्न होकर पतिलोक चली गई। [३१]

१. रघुपति भगति कृपा पाई : रामकी भक्ति और कृपा प्राप्त कर ली।

२३८०-८३ त्वन्मायामोहितधियस्त्वां न जानंति तत्त्वतः। योषिन्मूढाहमज्ञा ते तत्त्वं जाने कथं विभो॥अ०रा०
२३८६-८७ देवमे यत्रकुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा। त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥अ०रा०
२३८८-९१ यत्पादपंकजपरागपवित्रगात्रा भागीरथी भवविरंचिमुखान्पुनाति।
साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम्॥
स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम्। परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम्॥

दो०—अस प्रभु दीन - बंधु हरि, कारन - रहित, दयाल।
तुलसिदास सठ! तेहि[1] भजु, छाँड़ि कपट - जंजाल ॥ २११ ॥

चले राम - लछिमन मुनि - संगा। गए जहाँ जग - पावनि गंगा।
गाधि - सूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुर - सरि महि आई। (१)
तब प्रभु रिषिन्ह - समेत नहाए। बिबिध दान महि - देवन पाए।
हरषि चले मुनि - बृन्द - सहाया। बेगि बिदेह - नगर नियराया। (२)
पुर-रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज - समेत बिसेखी।
बापीं, कूप, सरित, सर नाना। सलिल सुधा-सम, मनि - सोपाना। (३)
२४०० गुंजत मंजु मत्त - रस भृङ्गा[2]। कूजत कल बहु बरन बिहंगा।
बरन - बरन बिकसे बन - जाता। त्रिबिध समीर सदा सुख-दाता। (४)

दो०—सुमन, बाटिका, बाग, बन, बिपुल बिहंग - निवास।
फूलत, फलत, सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास ॥ २१२ ॥

तुलसीदास (अपने मनसे) कहते हैं—'अरे दुष्ट मन ! बिना कारण दीनोंपर दया करनेवाले ऐसे दीन-बंधु हरि (राम)-को, तू सारा कपट-जंजाल छोड़कर अबसे भी भजने लग' ॥ २११ ॥

वहाँसे उठकर मुनिके साथ चलते हुए वे वहाँ जा पहुँचे जहाँ जगत्को पवित्र करनेवाली गंगा बह रही थीं। गाधिके पुत्र विश्वामित्रने (राम और लक्ष्मणको) सारी कथा कह सुनाई कि किस प्रकार गंगा इस पृथ्वीपर आई थीं। (१) (फिर क्या था !) प्रभु रामने सब ऋषियोंके साथ उतरकर गंगामें स्नान किया और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिए। फिर वहाँसे नहा-धोकर मुनियोंके साथ वे हर्षपूर्वक चल पड़े और शीघ्र ही जनकपुरके पास जा पहुँचे। (२)

जनकपुरकी शोभा देखकर तो राम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हो उठे। वहाँ (स्थान-स्थानपर) अनेक बावड़ियाँ, कुएँ, नदी और जलाशय बने हुए थे जिनमें अमृतके समान मीठा जल भरा था और जिनमें (उतरने-चढ़नेके लिये) रत्नोंसे जड़ी पैड़ियां बनी हुई थीं। (३) मकरन्द (फूलोंका रस) पी-पीकर मतवाले बने हुए भौंरे मधुर-मधुर गुंजार करते हुए इधर-उधर मँडराते फिर रहे थे, अनेक प्रकारके पक्षी भी वहाँ मधुर कलरव किए जा रहे थे, उन जलाशयोंमें रंग-विरंगे कमल खिले हुए थे और वहाँ सदा-सुहावनी तीन प्रकारकी (शीतल-मंद-सुगंध) बयार बह रही थी। (४) उस नगर (जनकपुर)-के चारों ओर फल, फूल और पत्तोंसे लदे तथा पक्षियोंकी चहल-पहलसे भरे हुए अनेक उद्यान, उपवन, वन बीच-बीचमें फैले हुए नगरकी शोभा

१. ताहि। २. गुंजत मत्त रहत रस भृंगा।

२३६४ इत्युक्त्वा प्रययौ गंगामुत्तत्तुं सह राघवः ॥ —अध्यात्मरामायण
२३६५ यथा समागता गंगा पुण्यक्षेत्रे च भारते। रामाय श्रावयामास कथां सर्वां तु गाधिजः। पुल०सं०
२३६६-६७ ततः स्नात्वा यथान्यायं संतर्प्य पितृमानवान्। सर्षिसंघः सकाकुत्स्थः कौशिको मिथिलां गतः।
२३६८ राघवौ मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम्। साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन् ॥वाल्मी०
२३६९ पल्वलानि तडागानि नदीः वापीजलाशयान्। पतत्त्रिभिर्बहुविधैः समन्तादनुनादिताम् ॥
२४०२-३ नाना गुल्मलतोपेतैः स्वादुकामफलप्रदैः। बहुपुष्पफलैर्वृक्षैः कृत्रिमैरुपशोभिताम् ॥ महाभारत

बनै न बरनत नगर - निकाई। जहाँ जाइ मन, तहँइ लुभाई।
चारु बजार विचित्र अँबारी। मनिमय, बिधि जनु स्वकर सँवारी। (१)
धनिक बनिक - बर धनद - समाना। बैठे सकल बस्तु लै नाना।
चौहट सुंदर, गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध - सिँचाई। (२)
मंगलमय मंदिर सब - केरे। चित्रित जनु रतिनाथ - चितेरे।
पुर नर - नारि सुभग, सुचि, संता। धरमसील, ज्ञानी, गुनवंता। (३)
२४१० अति अनूप जहँ जनक - निवासू। बिथकहिँ बिबुध बिलोकि बिलासू।
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन - सोभा जनु रोकी। (४)
दो०—धवल धाम मनि-पुरट-पट , सुघटित नाना भाँति।
सिय-निवास सुन्दर सदन , सोभा किमि कहि जाति ।। २१३ ।।
सुभग द्वार सब, कुलिस कपाटा। भूप - भीर, नट - मागध - भाटा।
बनी बिसाल बाजि - गज - साला। हय-गय-रथ-संकुल सब काला। (१)

बढ़ाए जा रहे थे ।। २१२ ।। वह नगर इतना अधिक मनोहर था कि उसकी शोभाका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता । उस नगरकी यह विशेषता थी कि जिधर भी मन चला जाता उधर ही रमा रह जाता । वहाँके सभी हाट (एकसे-एक बढ़कर) सुन्दर थे, जिनमें मणियोंसे बनी हुई रंग-बिरंगी अंबारियाँ ऐसी लगती थीं मानो ब्रह्माने स्वयं अपने हाथोंसे ला गढ़ी हों। (१) (उन हाटोंमें) कुबेरके समान बड़े-बड़े सेठ, धनी और व्यापारी अनेक (विक्रयकी) वस्तुएँ सजाए, आसन जमाए बैठे थे । वहाँके एकसे-एक सुन्दर चौराहे और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्धित जलसे सींची जाती रहती थीं। (२) सबके घर मंगल (आनन्द)-से भरे हुए थे और उनपर ऐसी चित्रकारी की हुई थी मानो कामदेवने ही चितेरा बनकर उन्हें आ चीता हो। नगरके जितने स्त्री और पुरुष थे वे सब भी एकसे-एक सुन्दर, साधु, कोमल स्वभाववाले, धर्मशील, ज्ञानी और गुणी थे । (३) जहाँ जनकजीका निवास-स्थान था वह राजभवन तो इतना अधिक सुन्दर था कि वहाँका ऐश्वर्य देखकर देवता भी स्तब्ध रह जाते थे । राजभवनका परकोटा ही देखकर चित्त ऐसा चकित हो जाता था मानो वह सारे लोकोंकी शोभा बाहर ही रोके खड़ा हो (सारे लोकोंकी शोभा भी उसके आगे कुछ नहीं थी) । (४) उन उज्ज्वल भवनोंमें अनेक प्रकारके सुन्दर रत्नजटित सुनहरे परदे टँगे हुए थे । रही सीताके सुन्दर भवनकी बात, उसकी शोभाका वर्णन तो किया ही कैसे जा सकता है ? (वह तो वर्णनसे परे है) ।। २१३ ।। राजभवनके सभी फाटक बहुत सुन्दर तो थे ही, साथ ही (उन फाटकों)-में वज्रके समान दृढ किवाड़ भी लगे हुए थे । वहाँ (फाटकोंपर) अनेक राजाओं, नटों, मागधों और भाटोंकी भीड़ जुटी रहती थी। वहाँकी घुड़सालें और हथसालें भी बहुत बड़ी-बड़ी थीं जिनमें सदा खचाखच घोड़े, हाथी और रथ भरे रहते थे । (१)

२४०४-७ विततं वणिजापणेऽखिलं पणितुं यत्र जनेन वीक्ष्यते । —नैषधीयचरित
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वराम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमद्रवर्चाचिताम् ।। —भागवत
२४०९ अत्रत्याश्च जनाः सर्वे धर्मशीलाश्च साधवः। हरिध्यानरताश्चैव ज्ञानिनः समदर्शिनः।।—पद्मपु०
२४१२-१३ स्फटिकोपलविग्रहा गृहाः सममृद्धित्तनिरंकभित्तयः ।। —नैषधीयचरित
द्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् । —भागवत

सूर, सचिव, सेनप बहुतेरे। नृप-गृह - सरिस सदन सब-केरे।
पुर - बाहर सर - सरित - समीपा। उतरे जहँ - तहँ विपुल महीपा। (२)
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास, सब भाँति सुहाई।
कौसिक कहेउ, मोर मन माना। इहाँ रहिय रघुबीर सुजाना। (३)
२४२० भलेहि नाथ ! कहि कृपा - निकेता। उतरे तहँ मुनि - वृन्द - समेता।
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिला - पति पाए। (४)
दो०—संग सचिव सुचि, भूरि भट , भूसुर-बर, गुरु, ज्ञाति।
चले मिलन मुनि-नायकहिं , मुदित राउ यहि भाँति ॥ २१४ ॥
कीन्ह प्रनाम चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनि - नाथा।
बिप्र - वृन्द सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे। (१)
कुसल - प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहिं बैठारा।
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई। (२)

(जनकके यहाँ जो) अनेक शूर वीर, मन्त्री और सेनापति थे उनके भवन भी किसी राजभवनसे कम नहीं थे। नगरके बाहर नदी और जलाशयोंके आसपास धनुष-यज्ञके लिये आए हुए बहुतसे राजा अपने अपने डेरे डाले पड़े हुए थे। (२) वहीं एक बड़ी सुन्दर (घनी) अमराई (आमोंकी बगिया) थी जहाँ (जल, छाया आदि) सब प्रकारकी सुविधाके साथ-साथ वह स्थान भी बड़ा सुहावना था। उसे देखकर विश्वामित्रने कहा—'देखो सुजान राम ! मेरा मन कहता है कि यहीं रुककर डेरा डाल रहा जाय।' (३) कृपालु (राम)-ने भी कहा—'ठीक है स्वामिन् !' और यह कहकर वहीं मुनियोंके साथ वे ठहर रहे।

जब मिथिलाके नरेश जनकको विश्वामित्रके आगमनका समाचार मिला तो (४) वे अपने विश्वस्त मंत्री, योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु (शतानन्द) तथा अपनी जातिके अनेक लोगोंको साथ लेकर अत्यन्त प्रसन्न होकर मुनियोंके नायक (विश्वामित्र)-की अगवानीके लिये चल दिए ॥ २१४ ॥ राजा जनकने जाते ही मुनिके चरणोंपर माथा टेककर प्रणाम किया और मुनिराजने भी अत्यन्त प्रसन्न मनसे उन्हें आशीर्वाद किया। फिर जनकने (विश्वामित्रके साथ आए हुए) ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक प्रणाम किया और (उनके शुभागमनको) अपना बड़ा सौभाग्य मानकर राजा बहुत आनन्दित हुए। (१) विश्वामित्रने बार-बार कुशल-मंगल पूछते हुए राजा जनकको बैठा लिया। (यह सब शिष्टाचार हो ही रहा था कि) इसी बीच दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) भी वहाँ आ पहुँचे जो (जनकपुरकी) फुलवारी देखने चले गए थे। (२) किशोर अवस्थावाले उन दोनों साँवले और

२४१७ मिथिलोपवने तत्र राजानो बहवः स्थिताः ॥ —सत्योपाख्यान
२४१८-२० देशो विधीयतां ब्रह्मन् यत्र वत्स्यामहे वयम्। रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः ॥
निवासमकरोद्देशे विविक्ते सलिलान्विते ॥
२४२१-२३ विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा नृपवरस्तदा। शतानंदं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिंदितः ॥
अन्यैश्च नागरैश्चैव नानामंगलपाणिभिः। दर्शनार्थं समायातः कौशिकस्य मुनेर्मुदा ॥
२४२४-२६ यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत् प्रहृष्टवत्। पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् ॥
आसनेषु यथान्यायमुपविष्टाः समंततः ॥ —वाल्मीकीय रा०

स्याम - गौर, मृदु बयस, किसोरा। लोचन - सुखद, बिस्व-चित-चोरा।
उठे सकल जब रघुपति आए। बिस्वामित्र निकट बैठाए। (३)
२४३० भे सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन, पुलकित गाता।
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह, बिदेह बिसेखी। (४)
दो०—प्रेम-मगन मन जानि नृप, करि बिवेक धरि[1] धीर।
बोलेउ मुनि-पद नाइ सिर, गदगद गिरा गँभीर ॥ २१५ ॥
कहहु नाथ! सुन्दर दोउ बालक। मुनि-कुल-तिलक कि नृपकुल-पालक।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा। (१)
सहज बिराग - रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद-चकोरा।
तातें प्रभु पूछौं सति भाऊ। कहहु नाथ! जनि करहु दुराऊ। (२)
इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म-सुखहि मन त्यागा।
कह मुनि बिहँसि, कहेहु नृप! नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका। (३)
२४४० ये प्रिय सबहिं जहाँ - लगि प्रानी। मन मुसुकाहिं राम, सुनि बानी।

गोरे कुमारोंकी सुन्दरता देखकर सबके नेत्र खिल गए क्योंकि उनकी सुन्दरता (जनकके समाजका ही नहीं,) सारे विश्वका चित्त चुराए लिए डाल रही थी। ज्यों ही राम वहाँ आए कि सब (हड़बड़ाकर) उठ खड़े हुए। आते ही विश्वामित्रने उन्हें अपने पास बुला बैठाया। (३) दोनों भाइयोंको देखकर सब लोगोंका जी हुलसा पड़ रहा था। सबके नेत्रोंमें (प्रेमके) आँसू आ छाए और उनके शरीरमें फुरफुरी हो उठी। रामकी मधुर मनोहर मूर्ति देखकर विदेह जनक (जो देहके धर्मोंसे परे हो चुके थे) भी अपनी देहकी सारी सुध-बुध खो बैठे। (४) अपने मनमें इतना प्रेम उमड़ता देखकर राजा जनक अत्यन्त विवेक और धैर्यके साथ मुनिके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रेम-भरी गम्भीर वाणीसे पूछने लगे।।२१५।। 'कहिए नाथ! ये दोनों सुन्दर बालक कोई मुनिकुलके तिलक (श्रेष्ठ मुनि-कुमार) हैं, या किसी राजकुलके पालक (राजाके पुत्र) हैं, या वेदोंने 'नेति' कहकर जिसका परिचय दिया है वह ब्रह्म ही तो कहीं यह युगल रूप धरकर नहीं उतरा चला आया है? (१) मेरा मन तो स्वभावसे ही रागसे दूर खिंचा रहता है (किसीकी ओर आकृष्ट नहीं होता) पर (इन्हें देखकर) मेरा मन ऐसा मुग्ध हो चला है जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर उसकी ओर ललक उठता है। प्रभो! इसीसे मैं आपसे अत्यन्त सत्य भाव-से पूछ रहा हूँ (और नाथ! आपसे प्रार्थना है कि) सब खोलकर (स्पष्ट रूपसे) बता देनेका कष्ट कीजिएगा। (२) इन्हें देखते ही मेरा मन इनके प्रति इतना प्रेम-विह्वल हो उठा है कि वह अनायास ब्रह्मका सुख भी त्याग बैठा है।' यह सुनकर मुनि हँसकर बोले—'राजन्! आप जो कह रहे हैं ठीक कह रहे हैं। आपकी बात क्या कहीं झूठ हो पा सकती है? (३) जगत्में जितने भी प्राणी हैं, वे सब इन्हें अपना प्यारा समझते हैं।' उधर मुनिकी वाणी सुन-सुनकर राम अपने मन ही मन मुसकराए चले जा रहे थे। (मुनिने कहा–) 'ये (दोनों राजकुमार) रघुकुलके मणि

१. मति।

२४३०-३१ रामरूपं समालोक्य मुमोह जनको नृपः। मिथिलायां जनाः सर्वे आनन्दं लेभिरे मुहुः॥ सत्यो०
२४३९ प्रत्युवाच मुनिः प्रीतो हर्षयन् जनकं तदा। —अध्यात्मरामायण

रघुकुल - मनि दसरथ - के जाए। मम हित - लागि नरेस पठाए। (४)
दो०—राम - लखन दोउ बंधु-बर, रूप - सील - बल - धाम।
मख राखेउ सब साखि जग, जिते असुर संग्राम ॥ २१६ ॥
मुनि ! तव चरन देखि, कह राऊ। कहि न सकौं निज पुन्य - प्रभाऊ।
सुंदर स्याम - गौर दोउ भ्राता। आनँदहू - के आनँददाता। (१)
इन - कै प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाइ, मन भाव सुहावनि।
सुनहु नाथ ! कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म - जीव - इव सहज सनेहू। (२)
पुनि - पुनि प्रभुहि चितव नर - नाहू। पुलक गात, उर अधिक उछाहू।
मुनिहि प्रसंसि, नाइ पद सीसू। चलेउ लिवाइ नगर अवनीसू। (३)
२४५० सुंदर सदन, सुखद सब काला। तहाँ बास लै दीन्ह भुआला।
करि पूजा, सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह, बिदा कराई। (४)

राजा दशरथके पुत्र हैं। मेरा हित करनेके लिये (मेरे यज्ञमें बाधा डालनेवाले राक्षसोंको मार डालनेके लिये) राजा दशरथने इन्हें मेरे साथ कर दिया है। (४) ये दोनों श्रेष्ठ भाई राम और लक्ष्मण तो रूप, शील और बलके भांडार हैं। सारा जगत् जानता है कि इन्होंने युद्धमें राक्षसोंको मारकर मेरे यज्ञकी रक्षा की है' ॥ २१६ ॥ (यह सुनकर) राजा जनकने कहा—'हे मुनि ! मेरे जिन पुण्योंके प्रभावसे आपके चरणोंका दर्शन हुआ है, उन (पुण्योंके प्रभाव)-का मैं वर्णन नहीं कर पा सकता। ये साँवले और गोरे दोनों भाई तो ऐसे आनन्दसे भरे हैं कि आनन्द भी इन्हें देख ले तो उसे भी आनन्द मिलने लगे। (१) इनका आपसका प्रेम-व्यवहार इतना सच्चा (निश्छल) है कि हमारा मन उनके प्रेमपर रीझा पड़ रहा है और इनका वह आपसका प्रेम-व्यवहार ऐसा भला लगता है कि उसका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता।' विदेह (जनक)-ने आनन्दित होकर कहा—'नाथ ! इन दोनों भाइयोंका पारस्परिक स्नेह वैसा ही स्वाभाविक है जैसा ब्रह्म और जीवका होता है (वे कभी एक दूसरेसे अलग हो नहीं सकते)।' (२) राजा जनक बार-बार प्रभुकी ओर देखते चले जा रहे थे। (अत्यन्त प्रेमके कारण) उनका शरीर रोमाञ्चित हुआ जा रहा था और (राम-लक्ष्मणको देखकर) हृदयमें और भी आनन्द बढ़ चला था। मुनि (के आगमन)-की बड़ी सराहना करके राजा जनक उनके चरणोंमें सिर नवाकर उन्हें वहाँसे नगरमें लिवा ले चले। (३) वहाँ राजा (जनक)-ने उन्हें ऐसे सुन्दर भवनमें ले जा ठहराया जिसमें सदा सब प्रकारकी सुविधा विद्यमान थी। सब प्रकार उनकी पूजा और सेवा कर चुकनेपर राजा जनक

२४४१-४३ पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। मखसंरक्षणार्थाय मया नीतौ पितुः पुरात् ॥
ततो ममाश्रमं गत्वा मम यज्ञविहिंसकान्। सुबाहुप्रमुखान् हत्वा मारीचं सागरेऽक्षिपत् ॥ अ०रा०

२४४४-४७ एतयोः प्रकृतिरम्यरूपयोरुल्लसत्सहजसौहृदश्रियोः।
आंतरः स्फुरति कोपि संनिधिः प्रत्यगात्मपरमात्मनोरिव ॥ —प्रसन्नराघव

२४४८-४९ रामरूपं समालोक्य राजा लेभे परां मुदम्। जग्राह राजा तौ बालौ कराभ्यां करयोर्मुदा ॥सत्यो०
विश्वामित्रं समादाय जगाम स्वपुरीं प्रति ॥ —पद्मपु०

२४५०-५१ विश्वामित्रोऽपि रामेण लक्ष्मणेन तपस्विभिः। एकान्ते सर्वसुखदे उवास मुनिभिः सह ॥
पाद्यादिभिश्च विधिवत्पूजितेन महर्षिणा। विश्वामित्रेण चाज्ञप्तो जगाम जनको नृपः ॥सत्यो

दो०—रिषय - संग रघुबंस - मनि , करि भोजन - बिश्राम ।
बैठे प्रभु भ्राता - सहित , दिवस रहा भरि जाम ।। २१७ ।।

लखन - हृदय लालसा बिसेखी । जाइ जनकपुर आइय देखी ।
प्रभु - भय, बहुरि मुनिहिं सकुचाहीं । प्रगट न कहहिं, मनहिं मुसुकाहीं । (१)
राम अनुज - मन - की गति जानी । भगत - बछलता हिय हुलसानी ।
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुरु - अनुसासन पाई । (२)
नाथ ! लखन पुर देखन चहहीं । प्रभु - सकोच - डर प्रगट न कहहीं ।
जौं राउर आयसु मैं पावौं । नगर दिखाइ, तुरत लै आवौं । (३)
२४६० सुनि मुनीस, कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम राखहु[१] नीती ।
धरम - सेतु - पालक तुम ताता । प्रेम - बिबस सेवक - सुख - दाता । (४)
दो०—जाइ देखि आवहु नगर , सुख - निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सबके नयन , सुंदर बदन दिखाइ ।। २१८ ।।
मुनि - पद - कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक - लोचन - सुख - दाता ।
बालक - बृंद देखि अति सोभा । लगे[२] संग, लोचन - मन - लोभा । (१)

उनसे विदा लेकर अपने भवन लौट गए। (४) रघुवंशके मणि राम ऋषियोंके साथ भोजन और विश्राम करके जब अपने भाईके साथ आकर वैठे तब पहर-भर दिन रह गया था ।।२१७।। लक्ष्मणके हृदयमें बड़ी लालसा थी कि चलकर जनकपुर देख आया जाय, पर वे प्रभु रामके डरसे (कि राम यह बेतुकी बात सुनकर क्या कहेंगे ?) और मुनिके संकोचसे (कि मुनि सोचेंगे कि मुनियोंके साथ आकर नगर घूमने चले हैं !) खुलकर तो कुछ नहीं कह पा रहे थे पर मन ही मन मुसकराए अवश्य जा रहे थे। (१) राम झट अपने छोटे भाईके मनकी बात ताड़ गए और उनके मनमें भक्त-वत्सलता (भक्तके प्रति प्यारकी भावना) उमड़ पड़ी। वे बहुत नम्रताके साथ, सकुचाते हुए, गुरुसे आज्ञा पाकर बोले—(२) 'नाथ ! लक्ष्मणके मनमें घूमकर नगर देख आनेकी बड़ी इच्छा हो रही है, पर आपके डर और संकोचके मारे खुलकर कुछ कह नहीं पा रहे हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन्हें नगर घुमाकर शीघ्र ही लौटा ले आऊँ।' (३) (रामकी यह नीति-पूर्ण बात) सुनकर (कि लक्ष्मणको अकेले न भेजकर साथ ले जा रहे हैं और छोटोंकी भावनाका आदर कर रहे हैं) मुनीश्वर (विश्वामित्र)-ने प्रेमपूर्वक कहा—'ठीक है राम ! भला तुम नीतिकी रक्षा क्यों न करोगे ? वत्स ! तुम तो (सदा ही) धर्मकी मर्यादाका पालन करते रहते हो और प्रेमके नाते अपने सेवकों (भक्तों)-की इच्छा पूरी करते रहते हो। (४) जाओ, सुखके निधान तुम दोनों भाई जाकर नगर भी देख आओ और अपने सुन्दर मुखड़े दिखला-दिखलाकर सबके नेत्र भी सफल कर आओ।। २१८ ।।

(मुनिकी आज्ञा पाकर) सबके नेत्र शीतल कर देनेवाले दोनों भाई मुनिके चरण-कमलोंकी वन्दना करके वहाँसे चल पड़े। नगरमें इनका निकलना था कि बालकोंके झुण्डके झुण्ड इनकी सुन्दरता देख-देखकर इनके साथ लग लिए। उन सबके नेत्र और मन (इनकी सुन्दरतापर)

१. राखहु तुम। २. चले।

२४६४ विश्वामित्रं प्रणम्याथ सुन्दरौ रामलक्ष्मणौ । जग्मतुर्नगरीं द्रष्टुं जनकस्य महात्मनः ।।आन०रा०

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप - सर सोहत हाथा।
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल - गौर मनोहर जोरी। (२)
केहरि - कंधर, बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग - मनि - माला।
सुभग सोन - सरसीरुह - लोचन। बदन मयंक, ताप - त्रय - मोचन। (३)
२४७० काननि कनक - फूल छबि देहीं। चितवत चितहिं चोरि जनु लेहीं।
चितवनि चारु, भृकुटि वर बाँकी। तिलक - रेख - सोभा जनु चाँकी। (४)

दो०—रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नख - सिख - सुंदर बंधु दोउ, सोभा सकल सुदेस ॥ २१९ ॥

लद्दू हुए जा रहे थे। (१) (दोनों भाई) पीताम्बर पहने और कमरमें तूणीर कसे चले जा रहे थे। उनके हाथोंमें सुन्दर धनुष-बाण शोभा दे रहे थे। अपने-अपने शरीरके रंगके अनुसार (राम-ने पीला और लक्ष्मणने लाल) चन्दनका खौर (आड़ा तिलक) लगा रक्खा था। साँवले और गोरे कुमारोंकी यह जोड़ी जो देखता उसे ही बड़ी मनोहर लग रही थी। (२) सिंहके समान (पुष्ट) कंधे, लम्बी भुजाएँ और उनकी चौड़ी छातीपर लटकती हुई गज-मुक्ताओंकी मालाएँ बड़ी फब रही थीं। सुन्दर लाल कमलके समान उनके नेत्र थे। उनका चन्द्र-मुख (ऐसा शीतल आनन्दमय था कि) देखते ही तीनों प्रकारके (दैहिक, दैविक, भौतिक) ताप तत्काल ठंढे पड़ जाते थे। (३) उनके कानोंमें जो सोनेके कर्णफूल चमक रहे थे वे दर्शकोंके चित्त चुराए लिए डाल रहे थे। उनकी चितवन बड़ी रसीली और भौंहें बड़ी बाँकी और मनोहर थीं। उनके माथेपर तिलककी रेखाएँ इतनी छबीली लगती थीं मानो सारी शोभाओंको भीतर बन्द करके उनपर मुद्रा ठोक दी गई हो (कि मेरी सुन्दरताके आगे कोई बाहर निकलनेके योग्य नहीं है)। (४) वे अपने सुहावने सिरोंपर चौकोर टोपियाँ लगाए हुए थे। उनके सिरपर काली गुँथी हुई चोटियाँ सजी हुई थीं। इस प्रकार वे दोनों भाई नखसे शिख-तक (नीचेसे ऊपर-तक) बहुत ही सुन्दर लग रहे थे। उनकी सारी शोभा उनके प्रत्येक अंगके अनुकूल थी (जिस अंगकी जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी ही थी) ॥ २१९ ॥

२४६६-६९ कट्यां पीतं च कौशेयं दधतं घनविग्रहे। त्रिनतं च धनुःस्कन्धे दधानं चेषुधिद्वयम् ॥
रत्नमुद्राशोभितेन करेण दक्षिणेन च। कस्तूरीगंधयुक्तेन चन्दनेन विलेपितम् ॥
इन्द्रनीलमणिश्यामं सुन्दरं रघुनन्दनम्। लक्ष्मणेनापि गौरेण भूषितेन तथैव च ॥
सेव्यमानं सदा तेन शेषभूतेन बन्धुना। आजानुबाहुं पीनांसं कंठे कौस्तुभधारिणम् ॥
पूर्णचन्द्राननं रामं कर्णान्तं दीर्घलोचनम्। —सत्योपाख्यान

२४७०-७१ कुण्डलेन सुदीप्तेन मकराकारशोभिना। अलकैश्च महानीलैः शोभयन्तं मुखाम्बुजम् ॥
बिभ्रतं च मनोजस्य दिव्यचापाकृती भ्रुवौ। ऊर्ध्वपुंड्रेण शुभ्रेण भालदेशे विराजितम् ॥ सत्यो०

२४७२-७३ अलकैश्च महानीलैः शोभयन्तौ मुखाम्बुजौ। घटितेन मणीनां तु किरीटेन विराजितौ ॥
सर्वांगसुन्दरौ वीरौ कामेन सदृशावुभौ ॥ —आनन्दरामायण

देखन नगर भूप - सुत आए। समाचार पुर - बासिन पाए।
धाए धाम - काम सब त्यागी। मनहुँ रंक, निधि लूटन लागी। (१)
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन - फल पाई।
जुवती भवन - झरोखनि लागी। निरखहिं राम - रूप अनुरागी। (२)
कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि! इन कोटि-काम-छबि जीती।
सुर, नर, असुर, नाग, मुनि - माहीं। सोभा असि, कहुँ सुनियत नाहीं। (३)
२४८० बिष्नु चारि भुज, बिधि मुख चारी। बिकट बेष, मुख पंच पुरारी।
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी! पटतरिय जाही। (४)
दो०—बय किसोर, सुखमा - सदन , स्याम - गौर सुख - धाम।
अंग - अंग - पर वारियहि , कोटि - कोटि - सत काम ।। २२० ।।

जब जनकपुरके लोगोंने सुना कि (कोई दो) राजकुमार नगर देखने आ निकले हैं, तो जिसे देखो वही अपना-अपना सारा काम-धाम छोड़-छाड़कर (उन्हें देखनेके लिये) ऐसा सरपट दौड़ा चला जा रहा है मानो रंक लोग धनका भांडार लूटने दौड़ पड़े हों। (१) स्वभावसे ही सुन्दर दिखाई पड़नेवाले उन दोनों भाइयोंको देख-देखकर लोग यही सोच-सोचकर मगन हुए जा रहे थे कि आज हमें नेत्र पानेका पूरा फल मिल गया (हमने सुन्दरतम रूप देख लिया)। नगरकी नवेलियाँ अपने-अपने घरोंके झरोखोंसे झाँक-झाँककर बड़े प्रेमसे रामके रूपकी झाँकी लिए चली जा रही थीं (२) और आपसमें प्रेमपूर्वक कहे जा रही थीं— 'देखो सखि ! ये तो करोड़ों कामदेवों-की सुन्दरता भी जीते बैठे हैं। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियों-तकमें ऐसी सुन्दरता कहीं (देखी क्या) सुनी-तक नहीं गई। (३) (बड़े-बड़े देवताओंको ही ले लिया जाय तो) विष्णुके चार भुजाएँ हैं, ब्रह्माके चार मुँह हैं और (गलेमें मुंडमाल और सर्प, पीठपर हाथीकी खाल और देहपर चिता-भस्मके साथ) विकट वेषवाले शिवके पाँच मुँह हैं। (इनके अतिरिक्त) अन्य कोई देवता ऐसा बचा नहीं रह गया जिससे इनकी सुन्दरताकी बराबरी आँकी जाय। (४) ये दोनों साँवले और गोरे कुमार अभी किशोर ही हैं और सुन्दरता भी इनके अंग-अंगमें कूट-कूटकर भरी हुई है।' इन साँवले और गोरे कुमारोंको जो देखता था उसीका जी खिल पड़ता था। (ऐसा मन करता था कि) इनके एक-एक अंगपर करोड़ों-अरबों कामदेव ला-लाकर निछावर कर डाले जायँ ।। २२० ।।

---

१. अपर देउ अस कोऊ नाहीं। यह छबि सखि पटतरिए जाही।

२४७४-७५ श्रीरामागमनं श्रुत्वा नरा नार्यः समागताः। रथ्यासु राजमार्गेषु दृष्ट्वा रामं मुदं ययुः।।
२४७६-७८ एवं ब्रुवन्ति ते सर्वे करान् गृह्य परस्परम्। अयं नारायणः साक्षाद्भूभारहरणाय च ।। जातः।
रामदर्शनकांक्षिण्यो हर्म्याण्यारुरुहुर्मुदा। दृष्ट्वा रामं रमानाथं मनसा परिषस्वजे ।।
काचिन्नेत्रपथे रामं कृत्वा ध्याने च तत्परा। कोटिकंदर्पलावण्यं दृष्ट्वा देहं च विस्मृता ।। –सत्यो०
२४७९-८१ विष्णुश्चतुर्भुजो नैव न चतुर्वदनो विधिः। नहि पंचमुखः शम्भुरिन्द्राद्या देवतागणाः।
न तेन सदृशः कश्चिल्लावण्येन गुणेन च ।। —पद्मपुराण
२४८२-८३ कोटिकंदर्पलावण्यौ किशोरौ रामलक्ष्मणौ। ऊचुः परस्परं नार्यो दृष्ट्वेमौ कस्य बालकौ ।। सत्यो०

कहहु सखी ! अस को तनु - धारी । जो न मोह यह[1] रूप निहारी ।
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी । जो मैं सुना सो सुनहु सयानी । (१)
ए दोऊ दसरथ - के ढोटा । बाल मरालनि - के कल जोटा ।
मुनि - कौसिक - मख - के रखवारे । जिन्ह रन - अजिर निसाचर मारे । (२)
स्याम गात, कल कंज-बिलोचन । जो मारीच - सुभुज - मद - मोचन ।
कौसल्या - सुत सो सुख - खानी । नाम राम, धनु - सायक - पानी । (३)
२४९० गौर किसोर बेष - बर काछे । कर सर - चाप राम - के पाछे ।
लछमन नाम राम - लघु - भ्राता । सुनि सखि ! तासु सुमित्रा माता । (४)
दो०—बिप्र - काज करि बंधु दोउ , मग मुनि - बधू उधारि ।
आए देखन चाप - मख , सुनि हरषीं सब नारि ।। २२१ ।।
देखि राम - छबि कोउ ऐक कहई । जोग जानकिहि यह बर अहई ।

बताओ सखी ! ऐसा कौन प्राणी हो सकता है जो इनके इस रूपपर लट्टू न हो बैठे !' इतनेमें ही कोई दूसरी सखी प्रेमके साथ मधुर वाणीमें बोल उठी—'देखो सयानी ! मैंने जो कुछ (इनके विषयमें) सुना है वह मैं बताए देती हूँ । (१) ये दोनों (अयोध्याके राजकुमार) राजा दशरथके पुत्र हैं । इनकी सुन्दर जोड़ी वैसी ही लगती है जैसे दो बाल-राजहंसोंका जोड़ा आ निकला हो । इन्हीं दोनों कुमारोंने ही मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की है और रणक्षेत्रमें राक्षसोंको मारकर ढेर कर डाला है । (३) ये जो साँवले-साँवलेसे हैं न ! जिनके सुन्दर कमल-जैसे नेत्र हैं, जिन्होंने मारीच और सुबाहुका मद चूर किया है, जो सुखके भांडार-जैसे लग रहे हैं और जो हाथोंमें धनुष-बाण लिए हुए हैं, वे ही रानी कौशल्याके पुत्र हैं । इनका नाम राम है । (३) और वे जो दूसरे गोरे-चिट्टे, किशोर अवस्थावाले, सुन्दर वेष बनाए, हाथोंमें धनुष-बाण लिए रामके पीछे-पीछे चले जा रहे हैं, वे ही रामके छोटे भाई हैं । उनका नाम लक्ष्मण है और उनकी माताका नाम सुमित्रा है । (४) ये दोनों भाई विश्वामित्र तथा ब्राह्मणोंका कार्य करके (उनके यज्ञकी रक्षा करके) मार्गमें (गौतम) मुनिकी पत्नी (अहल्या)-का शाप मिटाते हुए यहाँ धनुष-यज्ञ देखने चले आए हैं ।' सब स्त्रियोंने यह विवरण सुना तो सबकी बाछें खिल उठीं ।। २२१ ।। रामकी सुन्दरता देखकर एक सखी कह बैठी—'बहन ! चाहे जो कहो ! पर जानकीके योग्य यदि कोई

१. अस : 'ऐसा' रूप देखकर ।

२४८४-८५ मोहिता रामरूपेण नो चेत् कतमाः स्त्रियः ।
प्रमदोवाच-श्रुतपूर्वं यथावृत्तं शृणुष्व कथितं मया ।। —विष्णुपुराण
२४८६-९१ पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ । —वाल्मीकीय
मारीचं भ्रामयामास बाणेनैकेन राघवः । सुबाहोर्निधनं चक्रे बाणेनैकेन राघवः ।।
अतसीपुष्पसंकाशो नाम्ना रामस्तु कथ्यते । द्वितीयः कांचनाकारो लक्ष्मणश्चेति भण्यते ।।सत्यो०
कौसल्या च सुमित्रा च जनन्यावनयोः सतोः ।
२४९२-९३ रामस्य पादरजसा पूता गौतमगेहिनी । इदानीं च धनुर्यज्ञं समायातो रघूत्तमः ।
२४९४ तदा परस्परं प्रोचुः सीतायोग्यो वरो ह्ययम् । —आनन्दरामायण

जो सखि ! इन्हहिं देख नरनाहू । पन परिहरि हठि करै बिबाहू । (१)
कोउ कह ए भूपति पहिचाने । मुनि - समेत सादर सनमाने ।
सखि ! परंतु पन राउ न तजई । बिधि-बस हठि अबिबेकहि भजई । (२)
कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता । सब-कहँ सुनिय उचित-फल-दाता ।
तौ जानकिहि मिलिहि बर एहू । नाहिंन आलि ! इहाँ संदेहू । (३)
२५०० जौं बिधि-बस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू ।
सखि ! हमरें आरति अति तातें । कबहुँक ए आवहिं एहि नातें । (४)

दो०—नाहिं त हम-कहँ सुनहु सखि , इन्ह - कर दरसन दूरि ।
यह संघट तब होइ जब , पुन्य पुराकृत भूरि ॥ २२२ ॥

बोली अपर कहेहु सखि ! नीका । एहिं बिवाह अति हित सबही-का ।
कोउ कह संकर - चाप कठोरा । ए स्यामल मृदु - गात किसोरा । (१)

वर हो सकता है तो यही है। यदि कहीं राजा जनक इनकी झलक-भर पा जायँ तो सारी प्रतिज्ञा छोड़कर जैसे भी हो इन्हींसे (जानकीका) विवाह कर डालें।' (१) इतनेमें दूसरी सखी (उसे टोकती हुई) बोल उठी—'हुँ: ! (वे क्या जानते नहीं ?) राजा जनक इन्हें भली भाँति जानते हैं। जब उन्होंने विश्वामित्रकी आवभगत की थी उनके साथ ही उन्होंने इनकी भी आवभगत की थी। रही राजा जनकको प्रतिज्ञाकी बात ! वे प्रतिज्ञासे टससे मस नहीं हो पा रहे हैं। होनहार ही कुछ ऐसी है कि वे हठ ठानकर अविवेकका पल्ला थामे बैठे हैं।' (२) (इतनेमें) कोई दूसरी बोल उठी—'यदि विधाता सचमुच भले होंगे और सुनते हैं कि सबको सबका उचित फल देते भी हैं, तो समझ लो कि जानकीको कोई वर मिला तो यही मिलेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। (३) (भगवान् करता और) दैवयोगसे ऐसा संयोग बन जाता तो हम सबकी मनचीती हो जाती। मैं तो सखी ! बस इसीलिये इतनी अकुलाई जा रही हूँ कि (यह विवाह हो जाता तो) इसी नाते वे कभी-कभी यहाँ आते तो रहते। (४) नहीं तो सखी ! हमें तो इनके दर्शन भी दुर्लभ हो जायँगे। पर यह (जानकीसे इनका विवाह) तो तभी हो सकता है, जब हमारे पूर्व जन्मोंके सारे पुण्य आकर बल लगा दें (सहायक हो जायँ)' ॥ २२२ ॥ तभी दूसरी सखी बोल उठी—'यह तो तुम ठीक कह रही हो ! यह विवाह हो जाय तो इससे सभीको लाभ ही लाभ होगा।' इसी बीच एक सखी बोल उठी—'अरी सखी ! (यह सब ठीक तो है पर) इधर शिवका धनुष कितना कठोर धरा पड़ा है और उधर इन साँवले राजकुमारको देखती हो कितने सुकुमार और किशोर अवस्थाके हैं। (१)

२४९६-९७ अन्यच्च सत्कृतौ राज्ञा कुमारौ सह भार्गवौ । —पद्मपुराण
एवमेतत्परं च नापि कस्याप्यनुरोधेन स्वयंप्रतिज्ञातमन्यथा करिष्यति महाक्षत्रियो विदेहराजः ॥

२४९८-२५०० क्व तादृशं भागधेयमस्माकं येन भगवता विश्वामित्रेण नाथवन्तो वयम् मैथिलीमेतस्मै रघुकुलकुमाराय प्रतिपद्य चिराय कृतार्थी भवामः ॥ —अनर्घराघव

२५०१ एतावदेव दुःखं मे सावधानतया शृणु । कुमारौ केन व्याजेन कदान्वत्रागमिष्यतः ॥

२५०२-०३ पूर्वपुण्यप्रभावेण संबंधस्तादृशो भवेत् । अन्यथा दर्शनं दूरं रामचन्द्रस्य धीमतः ॥ महाभारत

सब असमंजस अहइ सयानी। यह सुनि अपर कहइ मृदु बानी।
सखि! इन-कहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बहु प्रभाउ, देखत लघु अहहीं। (२)
परसि जासु पद - पंकज - धूरी। तरी अहल्या कृत - अघ - भूरी।
सो कि रहिहि बिनु सिव - धनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिय न भोरे। (३)
२५१० जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बर रचेउ बिचारी।
तासु बचन सुनि सब हरपानी। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी। (४)
दो०—हिय हरषहिं, बरषहिं सुमन, सुमुखि-सुलोचनि - बृंद।
जाहिं जहाँ-जहँ बंधु दोउ, तहँ - तहँ परमानंद ॥ २२३ ॥
पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनु-मख-हित भूमि बनाई।
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी। (१)
चहुँ दिसि कंचन - मंच बिसाला। रचे, जहाँ बैठहिं महि-पाला।

इसलिये सयानी ! सब असमंजस ही असमंजस तो दिखाई दे रहा है।' यह सुनकर दूसरी सखी अपनी वाणीमें मिसरी घोलती हुई बोली—'सखी ! इनके सम्बन्धमें कोई-कोई कहते हैं कि ये देखनेमें ही छोटे लगते हैं, पर हैं बड़े प्रभावशाली (शक्तिशाली)। (२) जिनके चरण-कमलोंकी धूलका स्पर्श पाते ही पापसे भरी हुई अहल्या तर गई, वह क्या शिवका धनुष तोड़े बिना मानेंगे ? यह विश्वास भूलकर भी नहीं छोड़ना चाहिए। (३) जिस ब्रह्माने सीताको बनाया-सँवारा है, उसीने बहुत सोच-विचारकर उनके लिये यह साँवला वर भी रच छोड़ा है।' उसकी बात सुनकर तो स्त्रियाँ सब हर्षसे उछल पड़ीं और कोमल वाणीसे कहने लगीं—'भगवान् करे ऐसा ही हो (तेरे मुँहमें घी-शक्कर)।' (४) सुन्दर मुखड़ोंवाली और रसीले नयनोंवाली वे नवेलियाँ सब प्रसन्न हो-होकर उनपर फूल बरसाए जा रही थीं। जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते थे, वहाँ-वहाँ चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा जाता था (सब उल्लास-मग्न हो जाते थे) ॥ २२३ ॥ वहाँसे चलकर दोनों भाई नगरके पूरबकी ओर उधर घूम गए जहाँ धनुष-यज्ञके लिये मंडप बना खड़ा किया गया था। वह बहुत लम्बा-चौड़ा सुन्दर ढाला हुआ-सा आँगन था जिसपर मनोहर निर्मल सजीली वेदी बनी हुई थी। (१) (उस वेदीके चारों ओर) राजाओंके बैठनेके लिये सोनेके बड़े-बड़े मंच बने हुए थे। उसके पीछे पास ही

२५०४-०६ कलहंसिका - सर्वजनमनीषितानुकूलमिव तत्र भवतः शतानन्दस्य वचनम्। अन्यच्च सर्वजनसंमतोपि संबन्धः ॥
तथा चान्या—तत् किं मन्यसे शंकरशरासनव्यवसायेन राजर्षिणो जनकस्य प्रतिज्ञां निर्वाहयिष्यति राघवः इत्येकोद्वेगः।
२५०७-०९ किंत्वस्यराघवशिशोः सहजानुभावगम्भीरभीषणमतिस्फुटमेव वृत्तम्।
सत्यमचिन्त्यो मणिमंत्रौषधीनामिव रघुकुलकुटुम्बकानामनुभावः ॥ —अनर्घराघव
यस्य पादतलस्पर्शात्पूता गौतमगेहिनी। धनुषो भंजनन्तस्माद् राम एव करिष्यति ॥
मनोरथो मदीयस्तु पूर्णोऽभून्नात्र संशयः ॥ —सत्योपाख्यान
२५१०-११ येनेयं सुन्दरी सृष्टा राजराजस्य कन्यका। तस्या योग्यं ससर्जाथ सोप्येनं नरभूषणम् ॥ म० भा०
२५१२-१३ राजपुत्रौ तथा दृष्ट्वा स्त्रियो बालाश्च कन्यकाः। मुक्ताभिरक्षतैः पुष्पैः किरन्त्यो गीतमुज्जगुः ॥
जग्मतुर्यत्र यत्रैव राघवौ रामलक्ष्मणौ। मंगलानि प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र च भूरिशः ॥ सत्योपा०

तेहि पाछे समीप चहुँ पासा। अपर मंच-मंडली बिलासा। (२)
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई।
तिन्ह-के निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहु बरन बनाए। (३)
२५२० जहँ बैठे देखहिं सब नारी। जथा-जोग निज कुल अनुहारी।
पुर-बालक कहि-कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना। (४)
दो०—सब सिसु यहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं, अति हरष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात॥ २२४॥
सिसु सब राम प्रेम-बस जाने। प्रीति-समेत निकेत बखाने।
निज निज रुचि सब लेहिं बुलाई। सहित-सनेह जाहिं दोउ भाई। (१)
राम दिखावहिं अनुजहिं रचना। कहि मृदु, मधुर, मनोहर बचना।
लव-निमेष-महँ भुवन-निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। (२)
भगत-हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष-मख-साला।
कौतुक देखि चले गुरु-पाहीं। जानि बिलंब, त्रास मन माहीं। (३)

चारों ओर (पैड़ियोंवाले) मचानोंका मंडलाकार घेरा शोभा दे रहा था। (२) नगरके लोगोंको बैठानेके लिये कुछ ऊँचेपर सुन्दर स्थान बना हुआ था। उन्हींके पास विशाल और भड़कीले अनेक प्रकारके धवल भवन बना खड़े किए गए थे (३) जहाँ सब स्त्रियाँ अपने-अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार यथोचित स्थानोंपर बैठकर (धनुष-यज्ञ) देख सकें। (४) इसी (धनुष-यज्ञका मंडप और नगर दिखाने)-के बहाने सब बालक प्रेमके मारे रामका सलोना शरीर छू-छूकर पुलकित हुए जा रहे थे और दोनों भाइयोंको देख-देखकर हृदयमें फूले नहीं समा रहे थे॥ २२४॥ सब बालकोंको अपने प्रेममें भरा देखकर राम भी वहाँ (यज्ञस्थल)-के भवनोंके निर्माणकी बहुत प्रशंसा करने लगे। वे सब बालक अपनी-अपनी रुचिके अनुसार (जिसे जहाँ जो अच्छा लगता) जिधर उन्हें बुलाते उधर ही दोनों भाई प्रेमके साथ उनकी ओर घूम जाते। (१) कोमल, मधुर और मनोहर वचनोंसे राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणको (यज्ञ-भूमिकी) रचनाका सारा वर्णन करते चले जा रहे थे। जिनकी आज्ञासे उनकी माया क्षण भरमें असंख्य ब्रह्माण्ड रच डालती है (२) वही दीनोंपर दया करनेवाले राम अपने भक्तोंकी भक्तिके कारण अत्यन्त चकित होकर यज्ञशाला देखे चले जा रहे थे। इस प्रकार वहाँकी सब विचित्र रचना देखकर और विलम्ब होता जानकर, मनमें डरते हुए वे गुरु विश्वामित्रके पास लौट चले॥ ३॥ जिनके डरसे डरको भी डर लगता है, वही प्रभु, भजनका प्रभाव

२५१६-१८ तत्रासनानि स्यातानि पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः। प्रकीर्णश्च कुथाश्चित्रास्सपुष्पस्तवकैर्वृता॥
अन्ये च मंचा बहवः काष्ठसंचयबंधनाः। रेजुः प्रस्तरणास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः॥
श्रेणीनां च गणानां च मंचा भान्त्यचलोपमाः॥
२५१९-२० अन्तःपुरचारीणां च प्रेक्षागाराण्यनेकशः। रेजुः कांचनचित्राणि रत्नज्वालाकुलानि च॥
तानि रत्नौघक्लृप्तानि ससानुप्रग्रहाणि च। रेजुर्जवनिकाक्षेपैस्सपक्षा इव खे नगाः॥ –वि०पु०
२५२२-२३ स्पर्शं स्पर्शमेतेन व्याजेन पुरबालकाः। रामं रामानुजं दर्शं दर्शमानन्दमाययुः॥ —पद्मपु०
२५२८ रामोऽपि दर्शयामास यज्ञस्य रचनां शुभाम्॥ —विष्णुपुराण

२५३० जासु त्रास डर - कहँ डर होई। भजन - प्रभाउ दिखावत सोई।
कहि बातैं मृदु, मधुर, सुहाई। किए बिदा बालक बरिआई। (४)
दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति, सकुच- सहित दोउ भाइ।
गुरु-पद-पंकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥ २२५ ॥
निसि - प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सब ही संध्या - बंदन कीन्हा।
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी। (१)
मुनिबर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई।
जिन्हके चरन - सरोरुह लागी। करत बिबिध जप - जोग बिरागी। (२)
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरु - पद - कमल पलोटत प्रीते।
बार बार मुनि आज्ञा दीन्हीँ। रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीँ। (३)
२५४० चाँपत चरन लखन उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाए।
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद - जल जाता। (४)
दो०—उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुन सिखा - धुनि कान।
गुरु तें पहिलेहि जगत-पति, जागे राम सुजान ॥ २२६ ॥

दिखाकर गुरु विश्वामित्रसे डरे जा रहे हैं। उन्होंने बड़ी मीठी-मीठी बातें कह-कहकर किसी-किसी प्रकार उन बालकोंको विदा किया (उनसे पिण्ड छुड़ाया)। (४) फिर (विलंब हो जानेके) भय, (गुरुसे) प्रेम, (गुरुके प्रति) विनय और (बड़ोंके प्रति स्वाभाविक) संकोचके साथ दोनों भाई गुरुके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें सिर नवाकर उनकी आज्ञा पाकर उनके पास जा बैठे ॥२२५॥ साँझ हो आनेपर मुनिकी आज्ञा पाकर सबने संध्या-वंदन जा किया। उसके पश्चात् इतिहास और पुराणोंकी कथा कहते-सुनते दो पहर रात निकल गई। (१) तब तो मुनि भी उठकर अपने बिस्तर-पर जा लेटे। जब श्रेष्ठ मुनि (विश्वामित्र) सोने लगे तब दोनों भाई बैठकर उनके चरण-कमल दाबने लगे। जिनके दर्शन और जिनके (चरणों)-का स्पर्श पानेके लिये विरागी पुरुष भाँति-भाँतिके जप और योग किया करते हैं (२) उन दोनों भाइयोंको विश्वामित्रने अपने प्रेमसे ऐसा जीत लिया था कि वे प्रेमपूर्वक बैठे गुरुके चरण-कमल दबाए जा रहे थे। जब गुरु विश्वामित्रने बार-बार उन्हें (जाकर सो रहनेकी) आज्ञा दी, तब कहीं राम वहाँसे उठकर जाकर सोए। (३) लक्ष्मण भी रामके चरणोंको हृदयसे लगाकर (नींद टूट जानेके) भय और (स्वाभाविक) प्रेमके साथ परम सुखका अनुभव करते हुए बैठे उनके पैर दबाने लगे। जब रामने कई बार कहा —'जाओ भैया ! अब जाकर सो रहो,' तब रामके चरणोंका ध्यान करते हुए लक्ष्मण भी जाकर लेट रहे। (४) रात बीतने-पर कुक्कुटकी बोली कानमें पड़ते ही लक्ष्मणकी आँखें खुल गईं और जगत्के स्वामी राम भी गुरुसे पहले ही जागकर उठ बैठे ॥ २२६ ॥ (दोनों भाइयोंने) शौच इत्यादिसे निवृत्त होकर जाकर

२५२९-३० बालकौ कौतुकं दृष्ट्वा भयसंत्रस्तमानसौ। ज्ञात्वा वेलामतिक्रान्तां गुरोर्निकटमाययौ॥ वि०पु०
यद्भयात् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात्। वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति यद्भयात्॥
एवं संदर्शिताह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता। —श्रीमद्भागवत
२५३६ सुप्तस्य च मुनेः पादौ बालकौ द्वौ पिपीडतुः॥ —विष्णुपुराण

सकल सौच करि, जाइ नहाए। नित्य निबाहि, मुनिहि सिर नाए।
समय जानि, गुरु - आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई। (१)
भूप - बाग[१] - बर देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लुभाई।
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन - बरन बर बेलि - बिताना। (२)
नव पल्लव, फल, सुमन सुहाए। निज संपति सुर - रूख लजाए।
चातक, कोकिल, कीर, चकोरा। कूजत विहग, नटत कल मोरा। (३)
२५५० मध्य बाग सर सोह सुहावा। मनि - सोपान बिचित्र बनावा।
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल - खग कूजत, गुंजत भृंगा। (४)

दो०—बाग, तड़ाग, बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु - समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥ २२७॥

चहुँ दिसि चितइ पूछि माली - गन। लगे लेन दल - फूल मुदित मन।
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा - पूजन जननि पठाई। (१)

स्नान किया और फिर नित्य कर्म करके गुरुको जा प्रणाम किया। (गुरुकी पूजाका) समय जानकर वे गुरुकी आज्ञा पाकर पूजाके लिये पुष्प लाने चल दिए। (१) जाकर उन्होंने राजा जनककी वह सुहावनी फुलवारी देखी, जिसमें चारों ओर छाई हुई वसंत ऋतु उनका जी लुभाए ले रही थी। वहाँ अनेक प्रकारके एकसे एक हरे-भरे वृक्ष लगे थे, जिनपर भाँति-भाँतिकी सुन्दर-सुन्दर लताएँ चढ़ी हुई थीं। (२) नये-नये पत्ते, सुन्दर फल और फूलोंसे लदे हुए वृक्ष अपनी सम्पत्तिसे कल्पवृक्षको भी लज्जित किए डाल रहे थे। (उन वृक्षोंपर) पपीहे, कोयल, सुग्गे और चकोर फुदकते हुए चहक रहे थे तथा सुन्दर मोर जहाँ-तहाँ पंख फैलाए नृत्य किए जा रहे थे। (३) फुलवारीके बीचमें मनोहर (जल-भरा) कुण्ड लहरा रहा था जिसके चारों ओर रत्न-जटित विचित्र पैड़ियाँ बनी हुई थीं। उसके निर्मल जलमें अनगिनत रंग-बिरंगे कमल खिले हुए थे जिनपर भौंरे गुञ्जार रहे थे और जहाँ अनेक जल-पक्षी तैरते हुए कलरव किए जा रहे थे। (फुलवारी और जलकुण्ड देखकर) राम और लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए। रामके जीको सुहानेवाली वह फुलवारी (सचमुच) अत्यन्त रमणीक थी॥ २२७॥ चारों ओर देखकर और मालियोंसे पूछकर बहुत प्रसन्न मनसे राम वहाँ फूल-पत्ती उतारने लगे। (वे अभी वहाँ फूल उतार ही रहे थे कि) इसी बीच सीता भी वहाँ आ पहुँची जिन्हें उनकी माता (सुनयना)-ने गिरिजा (पार्वती)-की पूजाके लिये वहाँ भेज दिया था। (१)

---

१. बाग भूप कर।

२५४४-४५ स्पृष्टोदकौ शुची जप्यं समाप्य नियमेन च। हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्॥ वा०रा०
तस्मिन् क्षणे श्रीरामप्रभुरपि पुष्पाण्यानेतुं गतः सानुजः॥ —ललितरामचरित
२५५२ इयमसौ मदकलहंसोत्तंसितसरोजराजिराजिता सरसी सरसीकरोति मे चेतः॥
२५५४ लताविटपान्तरितः कुसुमावचयं नाटयति। —प्रसन्नराघव
२५५५ ततो जानकी सखीवेष्टिता देवीं पूजयितुं नंदनोदरतर्वालिललितमुपवनं गता॥ल०रा०च०

संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर-समीप गिरिजा-गृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा। (२)
मज्जन करि सर सखिन-समेता। गईं मुदित-मन गौरि-निकेता।
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर माँगा। (३)
२५६० एक सखी सिय-संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई।
तेहि दोउ बंधु विलोके जाई। प्रेम-बिबस सीता-पहँ आई। (४)

दो०—तासु दसा देखी सखिन, पुलक गात, जल नैन।
कहु कारन निज हरष-कर, पूछहिं सब मृदु बैन॥ २२८॥

देखन बाग कुँअर दुइ आए। बय-किसोर सब भाँति सुहाए।
स्याम-गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन, नयन बिनु बानी[1]। (१)
सुनि हरषीं सब सखी सयानी। सिय-हिय अति उतकंठा जानी।
एक कहइ नृप-सुत तेइ आली। सुने जे मुनि-सँग आए काली। (२)

उनके साथ जितनी सब सखियाँ थी वे सब एकसे एक बढ़कर सुन्दरी और सयानी थीं और सभी बड़े लयसे मंगल गीत गाए चली आ रही थीं। जल-कुण्डके पास ही गिरिजाका बड़ा सुन्दर मंदिर था। उसकी सुन्दरताका वर्णन किसीके किए नहीं किया जा सकता। (सीता और उनकी सखियोंने) पहले जलाशयमें उतरकर स्नान किया और फिर सीता अपनी सखियोंके साथ गिरिजाके मंदिरमें जा पहुँची। वहाँ उन्होंने बड़ प्रेमसे पहले तो पार्वतीकी पूजा की और फिर उनसे यह वर माँगा कि मुझे मेरे योग्य वर मिले। (३) (इसी बीच क्या हुआ था कि) एक सखी सीताका साथ छोड़कर फुलवारी घूमने निकल गई थी। वहाँ उसने जो दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण)-को देखा तो प्रेमसे विह्वल होकर सीताके पास झपटी चली आई। (४) सखियोंने जब उसकी यह यह दशा देखी कि उसका शरीर रोमाञ्चित हुआ जा रहा है और नेत्रोंमें (प्रेमके) आँसू छलके पड़ रहे हैं, तब (सबको बड़ी उत्सुकता हुई और वे) कोमल वाणीमें उससे पूछने लगीं—'यह तो बता कि तू इतनी मगन क्यों हुई जा रही है' ॥ २२८ ॥ (वह कहने लगी—'क्या बताऊँ ?) 'दो राजकुमार यहाँ फुलवारी घूमने आए हुए हैं। वे अभी किशोर अवस्थाके ही हैं और बहुत ही सुन्दर हैं। उन साँवले और गोरे राजकुमारोंका मैं वर्णन करूँ तो कैसे करूँ क्योंकि वाणीको भगवान्ने नेत्र नहीं दिए और नेत्रोंमें बोलनेकी शक्ति नहीं है। (जिन आँखोंने देखा है वे बोल नहीं पा सकतीं, और जो वाणी बोल सकती है उसने उन्हें देखा नहीं), वे राजकुमार इतने सुन्दर हैं कि उनकी सुन्दरताका वर्णन हो नहीं किया जा सकता। (१) जब सखियोंने देखा कि (इस सखीकी बातें सुनकर) सीताके मनमें भी (उन राजकुमारोंको देखनेकी) उत्सुकता जाग उठी है तो वे सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हो उठीं (क्योंकि उन्हें राजकुमारोंका परिचय देनेका अवसर मिल गया)। एकने कहा—'देखो सखो! ये वे ही राजकुमार हैं जो सुनते हैं कल ही मुनि विश्वामित्रके साथ आ पधारे हैं (२)

---

१. गिरा नयन बिनु, अनयन बानी।

२५६५ यत्पश्यति न तद्ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पश्यसि पुनः पुनः॥ —महाभारत

जिन्ह निज रूप - मोहनी डारी । कीन्हें स्वबस नगर - नर - नारी ।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू । अवसि देखियहि, देखन जोगू । (३)
२५७० तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस - लागि लोचन अकुलाने ।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई । (४)
दो०—सुमिरि सीय नारद - बचन , उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु-मृगी सभीत ।। २२९ ।।
कंकन - किंकिनि - नूपुर - धुनि सुनि । कहत लखन-सन राम हृदय गुनि ।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व-बिजय-कहँ कीन्ही । (१)
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा । सिय-मुख-ससि भे नयन चकोरा ।
भये बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल[१] । (२)

और जिन्होंने अपने रूपकी मोहिनी डालकर नगरके सब स्त्री-पुरुषोंको अपने वशमें कर डाला है। जहाँ देखो वहीं लोग उनकी सुन्दरताकी चर्चा छेड़े चले जा रहे हैं। चलकर उन्हें अवश्य देख लेना चाहिए। वे सचमुच देखने-योग्य हैं।' (३) उस (सखी)-की बात सीताको बहुत भाई और (राजकुमारोंको) देखनेके लिये उनके नेत्र भी मचल उठे। उसी प्यारी सखीको आगे करके वे सब बढ़ चलीं। रामसे जो उनका पुरातन प्रेम (पूर्व जन्मका लक्ष्मी-नारायणका संबंध था उसे) कोई भाँप नहीं पा रहा था। (४) (सीताको) झट नारदके वचन स्मरण हो आए और उनके मनमें पवित्र प्रेम जाग उठा। वे चकपकाकर इस प्रकार चारों ओर देखने लगीं मानो कोई डरी हुई मृगछौनी (इधर-उधर) देखे जा रही हो ।। २२९ ।। कंगन, घुँघरूदार करधनी और बिछुओंकी छमछम सुनकर राम अपने मनमें विचार करके लक्ष्मणसे कहने लगे—'देखो लक्ष्मण ! (यह ध्वनि ऐसी लग रही है) मानो कामदेवने दुंदुभी (नगाड़ा) बजाकर संसार जीतनेकी मनमें ठान ली हो।' (१) ऐसा कहकर उन्होंने उधर जो दृष्टि घुमाई तो सीताके मुख-चन्द्रके लिये उनके नेत्र चकोर बन बैठे। उनके सुन्दर नेत्र वहीं जा टिके (वे टकटकी लगाकर सीताका रूप देखने लगे) मानो निमि[२] भी संकोचके मारे पलकोंसे उतरकर कहीं हट-बढ़ गए हों। (२) सीताकी सुन्दरता देखकर उनका जी खिल

---

१. दृगंचल। २. निमि, राजा जनकके पूर्व पुरुष थे। पलकोंपर निमिका वास माना गया है। अपने कुलकी कन्याकी ओर राजकुमार-द्वारा प्रेमपूर्वक देखे जानेपर मानो वे संकोचवश पलकसे हट गए हों।

२५७१ आशु बध्नाति हि प्रेम प्राग्जन्मांतरसंस्तवः ।। —कथासरित्सागर

२५७४-७५ अये क एष मदकलकरिकनकशृङ्खलामणिरणितानुकारी मनोहारी कोपि कलकलः समुल्लसति [विमृश्य] नूनं राजहंससिञ्जितहारि मञ्जीरगुञ्जितमेतत् । तदवश्यमिह सलीलचंलच्चरणरणन् मणिनूपुरयो पुरांगनया कयाचन चण्डिकायतनमागच्छन्त्या भवितव्यम् । तदलमस्माकमितोऽवलोकनेन । [नेपथ्ये] भर्तृदारिके ! इतः इतः ।
राम:—कथमियं राजकुमारिका ।

२५७६ विलोक्य सहर्षकौतुकी—चकोरवन्मां मुदितं करोति ।। —प्रसन्नराघव

देखि सीय-सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व-कहँ प्रगटि दिखाई। (३)
२५८० सुंदरता-कहँ सुंदर करई। छबि-गृह दीप-सिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं[1] बिदेह-कुमारी। (४)
दो०—सिय-सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज-सन, बचन समय अनुहारि॥ २३०॥
तात! जनक-तनया यह सोई। धनुष-जग्य जेहि कारन होई।
पूजन गौरि, सखी लै आई। करत प्रकास फिरहिं फुलवाई। (१)
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद[2] अंग, सुनु भ्राता। (२)

उठा। वे मन ही मन तो उस (सुन्दरता)-की सराहना किए जा रहे थे पर मुँहसे कुछ नहीं कह पा रहे थे। (उन्हें ऐसा जान पड़ रहा था) मानो ब्रह्माने सीताका रूप गढ़कर अपनी सारी कारीगरी संसारके आगे प्रकट कर दिखाई हो। (३) वे मन ही मन सोचते जा रहे थे कि 'सीताकी शोभा' तो सुन्दरताको भी वैसे ही सुन्दर किए डाल रही है जैसे छवि-गृह (शीशमहल)-में दीप-शिखा (दीपककी लौ) जाग उठी हो (छविघर या शीश-महलमें चारों ओर गोल-गोल सहस्रों दर्पण जड़े रहते हैं जिनके कारण वह छबिगृह स्वयं बहुत सुन्दर लगता है पर जब रातको बीचमें एक दीपक, मोमबत्ती या मशाल रख दी जाती है तो उन सहस्रों दर्पणोंमें प्रतिबिंबित होनेसे दमक उठनेवाले प्रकाश-पुञ्जके कारण वह और भी सुन्दर लगने लगता है, वैसे ही सीताकी सुन्दरताके कारण ही संसारकी सुन्दरता खिली पड़ रही है। संसारकी सुन्दरियाँ सीताकी सुन्दरता देख-देखकर ऐसी प्रसन्न हुई रहती हैं कि उस प्रसन्नताके ही कारण वे अधिक सुन्दर दिखाई देने लगती हैं)। कवियोंने संसारकी सारी उपमाएँ (साधारण स्त्रियोंकी शोभाके वर्णनमें प्रयोग करके) जूठी कर डालीं। इसलिये जानकीकी शोभाकी उपमा यदि दी भी जाय तो किससे दी जाय? (ये बेजोड़ हैं)।' (४) सीताकी शोभाका मन ही मन वर्णन करते हुए और साथ ही अपनी स्थितिका विचार करके (कि मैं रघुवंशी हूँ, पराए नगरमें विश्वामित्रके साथ आया हूँ और यहाँ मेरा छोटा भाई मेरे साथ है) वे अवसर देखकर पवित्र मनसे लक्ष्मणसे कहने लगे—॥ २३०॥ 'देखो भाई लक्ष्मण! ये ही वे जनककी कन्या हैं, जिनके लिये यह धनुष-यज्ञ रचाया जा रहा है। इनकी सखियाँ गौरीका पूजन करनेके लिये इन्हें (अपने साथ) यहाँ लिवा लाई हैं। ये ही वे सीता हैं जो अपनी शोभाकी उजास फैलाती हुई फुलवारीमें घूम रही हैं (१) और जिनकी अलौकिक शोभा देखकर मेरा स्वाभाविक पवित्र मन भी डगमगा उठा है। यह सब क्यों हो रहा है यह तो विधाता ही जानें। इधर भाई! मेरा शुभ-सूचक (दाहिना) अंग भी

१. पटतरिय। २. सुभग=सुन्दर।

२५७९ सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव॥ —कुमारसंभव

रघुबंसिन - कर सहज सुभाऊ। मन कुपंथ पग धरैं न काऊ[1]।
मोहि अतिसय प्रतीति मन - केरी। जेहि सपनेहु पर - नारि न हेरी। (३)
२५९० जिन-कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं पर - तिय मन डीठी।
मंगन लहहिं न जिन-कै नाहीं। ते नर-बर थोरे जग माहीं। (४)
दो०—करत बतकही अनुज-सन, मन सिय-रूप लुभान।
मुख-सरोज - मकरंद-छबि, करइ मधुप इव पान॥ २३१॥
चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप-किसोर मन - चीता।
जहँ बिलोक मृग - सावक - नैनी। जनु तहँ बरिस कमल-सित- श्रेनी। (१)
लता - ओट तब सखिन लखाए। स्यामल, गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप, लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने। (२)

फड़के जा रहा है। (२) रघुवंशियोंका यह जन्मजात स्वभाव है कि वे कभी मनसे भी कुमार्गकी ओर पैर नहीं बढ़ाते। मुझे तो अपने मनपर पूरा भरोसा है कि उसने (मेरे मनने) स्वप्नमें भी कभी पराई स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली। (३) रणक्षेत्रमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते (जो शत्रुको पीठ दिखाकर रणक्षेत्रसे भागते नहीं), पराई स्त्रीपर जिनका मन नहीं मचलता और दृष्टि नहीं उठती (पराई स्त्रीपर मन और दृष्टि नहीं डालते), भिखारी जिनके यहाँसे 'नहीं' नहीं पाते, (जो भिखारियोंको कभी रीते हाथ नहीं जाने देते), ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसारमें कहीं इने-गिने ही होते हैं।' (४) यों तो राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे बातें करते जा रहे थे, पर उनका मन सीताके रूपपर ही मँडराए जा रहा था और उनके मुख-कमलके सौन्दर्य-रूपी मकरन्द (रस)-को भौंरेके समान पीए चला जा रहा था (जैसे भौंरा कमलका मकरन्द पीता रहता है वैसे ही रामका मन भी सीताके रूपका रस पीए जा रहा था, सीताके रूपका ही ध्यान किए जा रहा था)॥ २३१॥ (रामके चले जानेपर) सीता चकपकाकर चारों ओर देखने लगीं। अब उनके मनमें यही धुकधुकी मच उठी कि वे राजकुमार चले कहाँ गए। मृगछौनेके समान नेत्रवाली सीता जिधर भी दृष्टि घुमा लेती थीं, उधर ही ऐसा जान पड़ता था मानो श्वेत कमलोंके ढेर बरस पड़े हों। (१) तब सखियोंने लताकी ओटसे झाँक उन सुन्दर साँवले-गोरे कुमारोंको दिखलाया। उनका रूप देखते ही सीताके नेत्र ललक उठे। उनके नेत्र ऐसे खिल उठे मानो उन्होंने अपना (खोया हुआ) धन पहचान लिया हो। (२) रामकी सुन्दरता देखकर वे टकटकी लगाए उधर देखती ही रह गईं।

१. भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।

२५८८-९१ आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्तिः। —रघुवंश
श्लाघ्यः स एको भुवि मानवानां स उत्तमः सत्पुरुषः स धन्यः।
यस्यार्थिनो वा शरणागता वा नाशाभिभंगाद्विमुखा प्रयान्ति॥ —सुभाषित
पूजिताश्चार्थिनो यैस्तु दानैर्मानैर्विशेषतः। रघूणां हृदये नैव प्रापुरन्याः किल स्त्रियः॥
पृष्ठं न लेभिरे युद्धे रिपवः शस्त्रपाणयः॥ —सत्योपाख्यान
न ह्यर्थिनः कार्यवशादुपेताः ककुत्स्थवंशे विमुखाः प्रयान्ति॥ —विष्णुपुराण
२५९७ निधिर्लाभात् दरिद्रस्य तस्य प्रेम तु तत्र वै॥ —सत्योपाख्यान

थके नयन रघुपति - छबि देखे। पलकनिहू परिहरीं निमेखे।
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी। (३)
२६०० लोचन - मग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक - कपाट सयानी।
जब सिय सखिन प्रेम-बस जानी। कहि न सकहिं कछु,मन सकुचानी। (४)
दो०—लता - भवन-तें प्रगट भे , तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद - पटल बिलगाइ ।। २३२ ।।
सोभा-सींव सुभग दोउ बीरा। नील - पीत - जलजाभ[1]- सरीरा।
मोर-पंख सिर सोहत नीके। गुच्छे बिच-बिच कुसुम-कली-के। (१)
भाल तिलक, श्रम - बिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए।
बिकट भृकुटि, कच घूँघरवारे। नव - सरोज - लोचन रतनारे। (२)
चारु चिबुक, नासिका, कपोला। हास-बिलास लेत मन मोला।
मुख-छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं। (३)
२६१० उर मनि-माल, कंबु कल ग्रीवा। काम-कलभ-कर-भुज बल-सींवा।
सुमन - समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर,सखी! सुठि लोना। (४)

उनकी पलकें टँगी रह गईं। अधिक स्नेहके कारण उन्हें शरीरकी भी कुछ सुध न रह गई मानो कोई चकोरी शरत्के चन्द्रमाको सुध-बुध खोकर देखे जा रही हो। (३) तब सयानी जानकीने नेत्रोंके मार्गसे राम (-का रूप) अपने हृदयमें बसाकर पलकके किवाड़ दे लिए (रामका ध्यान करके आँखें मुँद लीं)। जब सखियोंने देखा कि सीता प्रेममें डूबी जा रही हैं तो मारे संकोचके वे (एक दूसरीकी ओर देखकर) मुसकराए तो जा रही थीं पर मुँहसे कुछ नहीं कह पा रही थीं। (४) उसी समय दोनों भाई इस प्रकार लता-कुञ्जसे बाहर निकलकर आ खड़े हुए मानो दो चन्द्रमा बादलोंका परदा हटाकर बाहर आ निकले हों ।। २३२ ।। वे दोनों वीर सुन्दर क्या थे बस शोभाकी सीमा ही समझिए, (उनसे बढ़कर कोई सुन्दर हो नहीं सकता)। उन दोनोंके शरीरोंसे नीले और पीले कमलोंकी आभा झलकी पड़ रही थी। उनके सिर (-के बालों)-में सुन्दर मोर-पंख गुँथे हुए शोभा दे रहे थे। उनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियोंके गुच्छे टँके हुए थे। (१) उनकी ठोड़ी, नाक और गालकी सुन्दरताका तो कहना ही क्या था और हँसी तो ऐसी मनोहर थी कि सबका मन मोहे ले रही थी (मन उनकी हँसीपर लट्टू हुआ जा रहा था)। उनके मुखकी वह मनोहर शोभा मुझसे तो कहते नहीं बन पा रही है पर उसे यदि अनेक कामदेव भी मिलकर आ देखें तो जाकर लाजसे मुँह छिपा बैठें। (३) उनकी छातीपर झूलती हुई मणियोंकी माला, शंखके समान सुन्दर कंठ और कामदेवके हाथीके बच्चेकी सूँड़के समान उनकी ढली हुई सुन्दर भुजाएँ ऐसी गठी हुई थीं कि उनमें बल ही बल भरा पड़ा था। (एक सखीने कहा—) 'देखो सखी ! अपने बाँएँ हाथमें जो फूलोंसे भरा दोना लिए खड़े हैं,

१. जलजात=कमल।

२६०५ दधतौ मस्तके दिव्यं किशोरौ रामलक्ष्मणौ। स्तवकं मणिमुक्तानां पुष्पाणाञ्च तथाविधम् ।।
२६०६-९ इन्दोरर्धं समं रुच्यं ललाटं सुमनोहरम्। ऊर्ध्वपुण्ड्रेण शुभ्रेण भालदेशे विराजितम् ।।
कुण्डलेन सुदीप्तेन मकराकारशोभिना। राजन्तं तु कपोलेन हरिन्मणिनिभेन च ।। सत्यो०

दो०—केहरि-कटि, पट-पीत - धर , सुषमा - सील - निधान ।
देखि भानु-कुल - भूषनहि , बिसरा सखिन अपान ।। २३३ ।।
धरि धीरज ऐक आलि सयानी । सीता - सन बोली गहि पानी ।
बहुरि गौरि - कर ध्यान करेहू । भूप - किसोर देखि किन लेहू । (१)
सकुचि सीय तब नयन उघारे । सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे ।
नख - सिख देखि राम-कै सोभा । सुमिरि पिता-पन मन अति छोभा । (२)
पर-बस सखिन लखी जब सीता । भए गहरु, सब कहहिँ सभीता ।
पुनि आउब इहि बिरियाँ काली । अस कहि मन बिहँसी ऐक आली । (३)
२६२० गूढ़ गिरा सुनि, सिय सकुचानी । भयउ बिलंब, मातु - भय मानी ।
धरि बड़ि धीर, राम उर आने । फिरी अपनपउ पितु - बस जाने । (४)
दो०—देखन मिस मृग, बिहँग, तरु , फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर-छबि , बाढ़इ प्रीति न थोरि ।। २३४ ।।

वे साँवले कुँवर तो बड़े ही सलोने हैं ।' (४) सिंहकी-सी पतली कमरवाले, पीताम्बर पहने-ओढ़े हुए, शोभा और शीलसे भरे हुए सूर्य-वंशके भूषण रामको देखते ही सब सखियाँ अपनी देहकी सारी सुध-बुध खो बैठीं ।। २३३ ।। इतनेमें एक सयानी सखी बड़ा धीरज बटोरकर सीताका हाथ पकड़कर उनसे बोली—'अजी ! गिरिजाका ध्यान फिर करती रहिएगा । अभी इन राजकुमारको क्यों नहीं भर आँख देख लेती ।' (१) तब बहुत सकुचाकर सीताने अपनी आँखें खोल दीं और देखा कि रघुवंशके दोनों सिंह सामने आए खड़े हैं । नखसे शिख-तक रामकी वह अपार शोभा देखकर और साथ ही अपने पिताका प्रण स्मरण करके (कि जो शिवका धनुष तोड़ेगा उसीसे सीताका विवाह होगा) उनका मन भीतर ही भीतर कसमसाकर रह गया (बहुत व्याकुल होकर रह गया) । (२) जब सखियोंने देखा कि सीता अपने वशमें नहीं रह गई हैं तो सब (विलंब हो जानेके भयसे) भयभीत होकर कहने लगीं—'चलो चलो, बहुत देर हुई जा रही है । कल फिर इसी समय यहाँ आया जायगा ।' यह कहकर एक सखी मन ही मन हँस दी । (३) सखी की यह गूढ (रहस्य-भरी) बात सुनकर सीता बहुत झेंप उठीं (कि कल फिर आनेकी मेरी इच्छा ये सखियाँ ताड़ गईं) । बहुत देर हुई जानकर उन्हें माताका भी भय होने लगा । फिर बहुत धीरज धरकर रामको अपने हृदयमें बसाकर और अपनेको पिताके अधीन जानकर (कि मेरा विवाह तो पिताके प्रणके अनुसार ही होगा), वे (भारी मनसे) घर लौट चलीं । (४) मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके बहाने सीता बार-बार पीछे घूम-घूमकर देखती जा रहीं थीं और रामकी छवि देख-देखकर उनके मनमें कुछ कम प्रीति नहीं (अधिक ही) बढ़ रही थी (जितना ही रामको देखती थीं उतनी ही प्रीति

२६१०-११ बिभ्रतं च मनोजस्य दिव्यचापाकृती भ्रुवौ । अलकैश्च महानीलैः शोभयन्तं मुखाम्बुजम् ।।
नासया शुकनासाया कर्पन्तं च महाछविम् । पूर्णचन्द्राननं रामं कर्णान्तं दीर्घलोचनम् ।।
त्रिरेखया शोभमानं कम्बुकंठं मनोहरम् । त्रिगूढजत्रुपीनांसं हृदि कौस्तुभधारिणम् ।।
महत्या वैजयन्त्या च हारेणापि सुशोभितम् । भुजद्वयेन शोभन्तमंगदैर्वलयैरपि ।।
इन्द्रनीलमणिश्यामं कोमलाकृतिमव्ययम् ।
२६१७ जनकजा तु विलोक्य गुणालयं मधुरमूर्तिमुदारहसास्यकम् ।
स्मरति शम्भुधनुर्गुरुतां पुनः श्वसिति याचति रामकरं विभोः ।। —सत्योपाख्यान

जानि कठिन सिव - चाप बिसूरति । चलीं राखि उर स्यामल मूरति ।
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख-सनेह - सोभा - गुन - खानी । (१)
परम - प्रेम - मय मृदु मसि कीन्हीं । चारु चित्त - भीती लिखि लीन्हीं ।
गई भवानी - भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी । (२)
जय-जय गिरि - बर - राज - किसोरी । जय महेस-मुख - चंद - चकोरी ।
जय गज - बदन - षडानन - माता । जगत-जननि दामिनि-दुति-गाता । (३)
२६३० नहिं तव आदि, अंत, अवसाना । अमित प्रभाउ, बेद नहिं जाना ।
भव - भव - बिभव - पराभव - कारिनि । बिस्व-बिमोहिनि स्वबस-बिहारिनि । (४)
दो०—पति - देवता - सुतीय-महँ , मातु ! प्रथम तव रेख ।
महिमा अमित न सकहिं कहि , सहस सारदा सेख[1] ।। २३५ ।।
सेवत तोहि सुलभ फल चारी । बर - दायिनी पुरारि - पियारी ।
देबि ! पूजि पद - कमल तुम्हारे । सुर - नर-मुनि सब होहिं सुखारे । (१)

अधिक बढ़ती जा रही थी) ।। २३४ ।। शिवके धनुषकी कठोरताकी कल्पना कर-करके उसी चिन्तामें अकुलाती हुई और हृदयमें (रामकी) साँवली मूर्ति बसाए वे घर लौट चलीं । उधर रामने भी जब सुख, स्नेह, शोभा और गुणोंसे भरी जानकीको चले जाते देखा (१) तो उन्होंने भी सच्चे प्रेमकी सुहावनी स्याहीसे अपने सुन्दर चित्तकी भीतपर सीताकी मूर्ति बना अंकित की (हृदयमें सीताकी मूर्ति बसा ली) । वहाँसे चलकर गिरिजाके मंदिरमें सीता जा पहुँची और उनके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर कहने लगीं—(२) 'हे पर्वत-राजकी पुत्री ! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो !!! हे महेशके मुख-चन्द्रकी ओर टकटकी लगाए रहनेवाली चकोरी ! आपकी जय हो ! हे गणेश और षडानन (स्वामिकार्तिकेय)-की माता ! आपकी जय हो ! आप जगत्की माता हैं, आपका शरीर बिजलीके समान चमाचम चमचमाता है । (३) आपका न कोई आदि है, न मध्य है न अन्त ही है । आपका इतना अधिक प्रभाव है कि उसे वेद-तक भली-भाँति नहीं जान पाए । आप ही संसारको उत्पन्न करतीं, उसका पालन करतीं और उसका नाश करती हैं । आप ही संसारको मोहमें डाले रहती हैं और जहाँ जैसा मनमें आता है वहाँ वैसा रूप बनाकर विहार करती रहती हैं । (४) हे माता ! संसारकी सर्वश्रेष्ठ पतिव्रताओंमें आपकी सबसे प्रथम गणना की जाती है । यदि सहस्रों सरस्वतियाँ और शेष भी मिलकर आपकी अपार महिमाका वर्णन करना चाहें तो भी वे कर नहीं पा सकते ।। २३५ ।। सबको मनचाहा वर दे सकनेवाली हे देवि ! हे त्रिपुरारी

[1]. सेख = सेष, शेष ।

२६२९ नमस्ये त्वामंबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् । —श्रीमद्भागवत
२६३१ त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः । त्वत्तो जातं जगत्सर्वं त्वं जगज्जननी शिवे ।।महानि०
२६३०-३१ त्वमाद्या सर्वविद्यानामस्माकमपि जन्मभूः । त्वं जानासि जगत्सर्वं न त्वां जानाति कश्चन ।।
साकारापि निराकारा मायया बहुरूपिणी । त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका ।।

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर-पुर सबही-के।
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि, चरन गहे बैदेही। (२)
बिनय-प्रेम-बस भई भवानी। खसी माल, मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोली गौरि, हरष हिय भरेऊ। (३)
२६४० सुनु सिय! सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन-कामना तुम्हारी।
नारद-बचन सदा सुचि, साँचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राँचा। (४)
छंद—मन जाहि राँचेउ, मिलिहि सो बर, सहज, सुंदर, साँवरो।
करुनानिधान, सुजान, सील-सनेह जानत रावरो।
यहि भाँति गौरि-असीस सुनि, सिय-सहित हिय हरषीं अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि, मुदित मन मंदिर चली।। [३२]
सो०—जानि गौरि अनुकूल, सिय-हिय हरष न जाइ कहि।
मंजुल-मंगल-मूल, बाम अंग फरकन लगे।। २३६ ।।
हृदय सराहत सीय-लुनाई। गुरु-समीप गवने दोउ भाई।
राम कहा सब कौसिक-पाहीं। सरल सुभाउ, छुआ छल नाहीं। (१)

(शिव)-की प्यारी ! जो आपकी सेवा करने लगे उसे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) सरलतासे प्राप्त हो जाते हैं। हे देवि ! जो भी देवता, मनुष्य और मुनि आपके चरण-कमलोंकी पूजा करने लगे उन सबको सुख ही सुख मिलने लगता है। (१) आप तो मेरे मनकी सारी बातें भली भाँति जानती ही हैं क्योंकि आप सबके हृदयके नगर (घट-घट)-में बसी हुई हैं। इसीसे मैंने अपने मनकी बात आपसे खोलकर नहीं कही।' यह कहकर सीताने झुककर देवीके चरण जा पकड़े। (२) भवानी भी सीताका यह विनय और प्रेम देखकर उनपर रीझ उठीं। झट (उनके गलेकी) माला ऐसी खिसकी कि नीचे (सीताके गलेमें) आ झूली और भवानीकी वह मूर्ति भी मुसकरा उठी। सीताने वह (मालाका) प्रसाद आदरपूर्वक सिर-माथे चढ़ा धरा। पार्वतीका हृदय हर्षसे इतना खिल उठा कि वे बोल उठीं— (३) 'देखो सीता ! हमारा यह सत्य आशीर्वाद है कि तुम्हारी जो भी मनोकामना है वह पूरी होकर ही रहेगी। नारदके वचन सदा निश्छल और सच्चे होते हैं। तुम्हारा मन जिस वरके रंगमें रँग उठा है (जिसे तुम मनमें चुने बैठी हो) वही (वर) तुम्हें मिलकर रहेगा। (४) तुम्हारा मन जिसमें रम चुका है वे ही सहज सुन्दर साँवले वर (राम) तुम्हें मिल जायँगे। वे तो यों ही करुणासे भरे हुए और सुजान हैं। वे तुम्हारे शील और स्नेहको भी भली भाँति जानते-समझते हैं।' गौरीका यह आशीर्वाद उन्होंने सुना तो सखियाँ भी और सीता भी बहुत हर्षित हो उठीं। तुलसीदास कहते हैं कि सीता बार-बार भवानीकी पूजा करती हुई बहुत प्रसन्न मनसे अपने घर लौट चलीं। [३२] गौरी (पार्वती)-को अपने अनुकूल (प्रसन्न और सहायक) जानकर सीताके हृदयमें जो प्रसन्नता हुई जा रही थी वह कोई वर्णन नहीं कर पा सकता। (इतना ही नहीं) उनके सुन्दर और कल्याण-सूचक सारे बाँएँ अंग भी उस समय फड़के पड़ रहे थे ।। २३६ ।। उधर सीताकी सुन्दरताकी मन ही मन प्रशंसा करते हुए दोनों भाई गुरु (विश्वामित्र)-के पास लौट चले। रामने आते ही गुरुको सब कुछ (जो जनककी पुष्प-वाटिकामें हुआ था) कह सुनाया क्योंकि उनका स्वभाव इतना सरल था कि उसमें छलका

२६५० सुमन पाइ, मुनि पूजा कीन्हीं। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्हीं।
सफल मनोरथ होहिँ तुम्हारे। राम - लखन सुनि भये सुखारे। (२)
करि भोजन मुनिवर बिज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी।
बिगत दिवस गुरु-आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई। (३)
प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय-मुख-सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि विचार कीन्ह मन माहीँ। सीय - बदन-सम हिमकर नाहीँ। (४)

दो०—जनम सिंधु, पुनि बंधु बिष , दिन - मलीन, सकलंक।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक ॥ २३७ ॥

घटइ - बढ़इ, बिरहिनि - दुखदाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई।
कोक - सोकप्रद, पंकज - द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही। (१)
२६६० बैदेही - मुख पटतर दीन्हें। होइ दोष बड़, अनुचित कीन्हें।
सिय-मुख-छबि बिधु-ब्याज बखानी। गुरु-पहँ चले निसा बड़ि जानी। (२)
करि मुनि - चरन - सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा।

नाम-तक न था। (१) उनके हाथसे पुष्प लेकर मुनिने बैठकर पूजा की और दोनों भाइयोंको आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होकर रहेँगी। यह आशीर्वाद पाकर राम और लक्ष्मण दोनों बड़े प्रसन्न हो उठे (कि मुनिने हमारे व्यवहारको बुरा नहीँ बताया)। (२) विज्ञानी श्रेष्ठ मुनि जीम-जामकर बहुत-सी पुरानी-पुरानी कथाएँ बैठे सुनाते रहे। दिन ढल चलनेपर मुनिकी आज्ञा पाकर दोनों भाई उठकर सन्ध्या-वन्दन करने चले गए। (३) इतनेमें वे देखते क्या हैं कि पूर्व दिशामें सुन्दर (पूर्ण) चन्द्रमा आ निकला है। सीताके मुखके समान सुहावना वह चन्द्रमा रामको बड़ा प्यारा लगा। पर फिर झट वे मनमें निश्चय कर उठे कि यह चन्द्रमा भला सीताके मुखकी क्या बराबरी कर पावेगा ? (४) क्योंकि एक तो इस चन्द्रमाका जन्म (खारे) समुद्रमें हुआ, दूसरे उसको सगा भाई भी मिला तो हलाहल विष। दिनमेँ उसे देखो तो धुँधला हुआ रहता है और फिर उसमें कलंक भी कुछ कम नहीं है। बताइए, बेचारा दरिद्र चन्द्रमा कहीं सीताके मुखकी बराबरी कर पा सकता है ? (कभी नहीं) ॥ २३७ ॥ दूसरी बात यह भी है कि यह चन्द्रमा (कभी एक-सा तो रहता नहीं) कभी घटता रहता है, कभी बढ़ता रहता है। (इतना ही नहीं,) बेचारी विरहिणी नारियाँ तो जहाँ इसकी झलक पा लेती हैं कि उनके विरहका ताप और अधिक भड़क उठता है। फिर इसका शत्रु राहु भी जहाँ संधि (अवसर, दाँवँ) पाता है (पूर्णिमा और प्रतिपदाकी संधि होते ही) झट उसे दबोच बैठता है। बेचारे चकवेको भी इसके कारण (चकवीसे रातभर अलग रहनेसे) कष्ट ही होता है और कमलका तो यह वैरी ही है (क्योंकि चन्द्रको देखकर कमल मुँद जाते हैं)। अतः, हे चन्द्रमा ! तुम तो पूरेके पूरे अवगुण ही अवगुणसे भरे पड़े हो। (१) ऐसे चन्द्रमासे सीताके मुखकी तुलना कर बैठें तो बड़ा अनुचित कर्म करनेका दोष सिर आ चढ़ेगा।' इस प्रकार चन्द्रमाके बहाने सीताके मुखकी शोभाका वर्णन करते-करते जब रात अधिक चढ़ आई तो वे गुरु (विश्वामित्र)-के पास उठे चले आए। (२) वहाँ मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके वे उनकी आज्ञा पाकर विश्राम करने (सोने) चले गए। रात बीतनेपर जब रामकी नींद टूटी तो

विगत - निसा रघुनायक जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे । (३)
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता । पंकज - लोक - कोक - सुख - दाता ।
बोले लखन जोरि जुग पानी । प्रभु - प्रभाउ - सूचक मृदु बानी । (४)
दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद , उडुगन - जोति मलीन ।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि , भये नृपति बल-हीन ।। २३८ ।।
नृप सब नखत करहिं उजियारी । टारि न सकहिं चाप-तम भारी ।
कमल, कोक, मधुकर, खग नाना । हरषे सकल निसा - अवसाना । (१)
२६७० ऐसेहिं प्रभु ! सब भगत तुम्हारे । होइहहिं टूटे धनुष सुखारे ।
उएउ भानु, बिनु श्रम तम नासा । दुरे नखत, जग तेज - प्रकासा । (२)
रबि निज - उदय - ब्याज रघुराया । प्रभु-प्रताप सब नृपन दिखाया ।
तव भुज - बल - महिमा उदघाटी । प्रगटी धनु - बिघटन - परिपाटी । (३)
बंधु - बचन सुनि प्रभु मुसुकाने । होइ सुचि सहज पुनीत नहाने ।
नित्य - क्रिया करि गुरु - पहँ आए । चरन - सरोज सुभग सिर नाए । (४)

भाई लक्ष्मणको वहीं बैठा देखकर वे उनसे कहने लगे—(३) 'देखो लक्ष्मण ! उधर देख रहे हो न ! कमलको, चकवेको और सारे संसारको सुख देनेवाला अरुण उधर उदय हो चला है (आकाशमें कैसी लाली आ छाई है) ।' लक्ष्मणने दोनों हाथ जोड़कर प्रभु (राम)-का प्रभाव बतानेके लिये बड़ी मधुर बात कह डाली । (४) उन्होंने कहा—'अरुणका' उदय होनेसे कुमुदिनी (कोईं) उसी प्रकार सकुचा (मुँद) गई हैं और तारोंकी चमक भी वैसे ही फीकी पड़ गई है जैसे आपका यहाँ आगमन सुनकर सब राजा लोग बलहीन (तेजहीन) हो चले हैं (आपका आगमन सुनकर स्वयंवरमें आए हुए सब राजा निराश और उदास हो बैठे हैं) । सब राजा लोग तारोंके समान टिमटिमा तो रहे हैं पर वह शिवका धनुष जो घना अँधेरा बना छाया हुआ है, उसे नहीं मिटा पा रहे हैं (धनुष नहीं तोड़ पा रहे हैं) । रात बीतनेपर जैसे इस समय कमल, कोक (चकवा), भौंरे तथा अनेक प्रकारके पक्षी प्रसन्न हो-होकर चहक उठे हैं, (१) वैसे ही प्रभो ! आपके सब भक्त भी धनुष टूटते ही प्रसन्न हो उठेंगे । सूर्य निकल आया, बिना परिश्रमके ही अँधेरा मिट गया । तारे छिप गए और संसारमें तेज (सूर्य) का प्रकाश फैल गया । (२) देव ! यह सूर्य क्या उदय हुए हैं इससे आपका ही प्रताप सब राजाओंको दिखाई देने लगा है (जैसे सूर्यके उदय होनेसे सारे संसारका अँधेरा दूर हो गया वैसे ही आपके आनेसे सारे राजाओंके मुँह उतर गए हैं) । मैं तो यही समझता हूँ कि आपकी भुजाओंके बलकी महिमा संसारमें प्रकट करनेके लिये ही यह धनुष तोड़नेकी परिपाटी प्रारंभ की गई है ।' (३) भाई (लक्ष्मण) की यह बात सुनकर प्रभु (राम) थोड़ा मुसकरा दिए । यद्यपि राम तो स्वभावसे ही पवित्र थे फिर भी रामने शौच आदिसे निवृत्त होकर स्नान जा किया । फिर (सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि) नित्य-क्रिया करके वे गुरु (विश्वामित्र) के पास जा पहुँचे और उनके चरण-कमलोंमें उन्होंने सिर जा नवाया । (४)

२६६२-६३ प्रणम्याथ गुरोः पादौ सुप्त्वापामितविक्रमः । प्रत्युत्थायाग्रजः प्रातर्भ्रातरं प्रत्यवोचत ।।—पद्मपु०
२६६४ धुनाति ध्वान्तानि व्यपनयति नीहारपटलम् । कुलं राजीवानां दलयति रथांगं रमयति।।बृ०शा०पु०
२६७१ पूर्वाह्ने प्रतिबोध्य पंकजवनान्युत्सार्य नैशं तमः । कृत्वा चन्द्रमसं प्रकाशरहितं निस्तेजसंस्तेजसा ।।

सतानंद तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि - पहँ तुरत पठाए।
जनक - बिनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे, बोलि लिये दोउ भाई। (५)
दो०—सतानंद - पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु - पहँ जाइ।
चलहु तात! मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बोलाइ ॥ २३९ ॥
२६८० सीय - स्वयंबर देखिय जाई। ईस काहि धौं देइ बड़ाई।
लखन कहा, जस - भाजन सोई। नाथ! कृपा तव जा-पर होई। (१)
हरषे मुनि सब, सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुख मानी।
पुनि मुनि - बृंद - समेत कृपाला। देखन चले धनुष - मख - साला। (२)
रंग - भूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन पाई।
चले सकल गृह - काज बिसारी। बाल, जुवान, जरठ नर - नारी। (३)
देखी जनक, भीर भइ भारी। सुचि सेवक सब लिये हँकारी।
तुरत सकल लोगन - पहँ जाहू। आसन उचित देहु सब - काहू। (४)
दो०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर - नारि।
उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, निज निज थल अनुहारि ॥ २४० ॥

तभी जनकने भी शतानन्दको बुलाकर कहा कि तत्काल मुनि विश्वामित्रके पास चले जाओ। उन्होंने झट वहाँ पहुँचकर राजा जनककी प्रार्थना उन्हें कह सुनाई (कि चलकर धनुष-यज्ञमें आ पधारें)। यह सुनकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनों भाइयोंको पास बुला लिया। (५) प्रभु रामने शतानन्दके चरणोंमें आ प्रणाम किया और वे धीरेसे गुरु (विश्वामित्र)-के पास जा बैठे। तब मुनिने रामसे कहा—'देखो राम! राजा जनकका बुलावा आया है ॥ २३९ ॥ चलो, चलकर सीताका स्वयंवर देख आया जाय। देखें, ईश्वर किसका (सीताका पति बननेका) यश देते हैं।' इसपर लक्ष्मणने कहा—'नाथ! यदि यह यश किसीको मिलना भी है तो उसीको मिलेगा जिसपर आपकी कृपा होगी।' (१) लक्ष्मणकी यह मनोहर वाणी सुनकर सब मुनि प्रसन्न हो उठे और सबने प्रसन्न होकर उन्हें बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए। तब मुनियोंके साथ-साथ कृपालु राम भी वहाँसे धनुष-यज्ञ-शाला देखने चल पड़े। (२) जब नगर-वासियोंने सुना कि वे दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) रंगभूमि देखने आ पधारे हैं तब तो वहाँके बालक, युवा, वृद्ध नर-नारी सब अपने-अपने घरका सारा काम-काज छोड़-छाड़कर उधर लपक चले। (३) जब राजा जनकने देखा कि भीड़ बहुत बढ़ चली है, तब उन्होंने विश्वासी सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुरन्त सब लोगोंके पास जा पहुँचो और जाकर सबको यथोचित आसनोंपर ले जा - ले जाकर बैठा दो। (४) उन सेवकोंने भी बड़े कोमल और नम्र वचन कह-कहकर उत्तम, मध्यम, नीच और लघु (सभी श्रेणीके) नर-नारियोंको बुला-बुलाकर उनके-उनके योग्य आसनोंपर उन्हें ले जा बैठाया ॥ २४० ॥

२६७७-७९ एतस्मिन्नंतरे गत्वा शतानंदो महामतिः। जनकानुमतेनैव वाक्यं चेदमुवाच ह ॥
गम्यतां भगवन् शीघ्रं जनकस्य गृहे त्वया। कुमाराभ्यां सह... ... ॥—वृहत् शार्ङ्गधर-पद्धति
ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः। विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥वाल्मी०रा०

२६९० राज - कुँअर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तनु छाए।
गुन - सागर, नागर, बर बीरा। सुंदर, स्यामल - गौर - सरीरा। (१)
राज - समाज बिराजत रूरे। उडुगन - महँ जनु जुग बिधु पूरे।
जिनके रही भावना जैसी। प्रभु - मूरति देखी तिन तैसी। (२)
देखहिं भूप महा रन-धीरा। मनहुँ बीर रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप, प्रभुहिं निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी। (३)
रहे असुर छल - छोनिप - बेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल - सम देखा।
पुरबासिन देखे दोउ भाई। नर-भूषन, लोचन - सुख - दाई। (४)

दो०—नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज निज रुचि-अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि, मूरति परम अनूप॥ २४१॥

२७०० बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहु-मुख-कर-पग-लोचन - सीसा।
जनक - जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे। (१)
सहित - बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु - सम प्रीति न जाइ बखानी।
जोगिन परम तत्त्वमय भासा। सांत, सुद्ध, सम, सहज - प्रकासा। (२)

(यह प्रबन्ध हो ही रहा था कि) इसी बीच दोनों राजकुमार (राम-लक्ष्मण) भी वहाँ आ ही पहुँचे। (वे दोनों ऐसे छबीले लग रहे थे) मानो उनके शरीरपर कहींसे बड़ी मनोहरता आ छाई हो। वे दोनों सब गुणोंसे भरे हुए, बड़े चतुर और पराक्रमी वीर दिखाई दे रहे थे। उनमेंसे एकका रंग सलोना साँवला और दूसरेका गोरा चिट्टा था। (१) उस राजसभामें वे ऐसे भले लग रहे थे, मानो तारोंके बीच दो पूर्ण चन्द्रमा आ खिले हों। (उस समय) वहाँ जिस-जिसके हृदयमें जैसी-जैसी भावना थी उसी-उसी भावनाके अनुसार उन्हें प्रभु रामकी मूर्ति दिखाई पड़ रही थी। (२) बड़े-बड़े रणधीर राजाओंको तो राम ऐसे लग रहे थे मानो वीर रस ही वहाँ शरीर धारण करके आ पहुँचा हो। जो कुटिल राजा वहाँ आए बैठे थे वे तो रामको देखते ही ऐसे डर गए मानो कोई बड़ी भयानक मूर्ति सामने आ खड़ी हुई हो। (३) राजाओंका-सा कपट वेष बनाए जो बहुतसे असुर (राक्षस) वहाँ आए बैठे थे, उन्हें राम ऐसे दिखाए दिए जैसे साक्षात् काल ही आ पहुँचे हों। नगर-वासियोंको दोनों भाई ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे वे मनुष्योंके शृङ्गार हों और सबके नेत्रोंको ठंढक पहुँचाए डाल रहे हों। (४) वहाँ आई बैठी स्त्रियाँ भी हर्षित हो-होकर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उन्हें ऐसे देखे जा रही थीं मानो शृङ्गार रस ही अत्यन्त सुन्दर वेष धारण करके (रामके रूपमें) वहाँ आ पहुँचा हो॥ २४१॥ विद्वानोंको ऐसा दिखाई पड़ रहा था मानो बहुतसे मुख, हाथ, पैर, आखों और सिरोंवाले साक्षात् विराट् भगवान् ही आ पहुँचे हों। राजा जनकके सम्बन्धियोंको वे अपने सगे स्वजनोंके समान दिखाई पड़ रहे थे। (१) जनक और उनकी रानियोंको वे ऐसे लग रहे थे जैसे हमारे अपने बच्चे हों और उनके प्रति उनकी इतनी प्रीति उमड़ी पड़ रही थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। योगियोंने देखा कि शान्त, शुद्ध, सम और सहज प्रकाश-रूप परम तत्त्व (ब्रह्म) ही आया खड़ा हो। (२) हरि-भक्तोंको दोनों भाई ऐसे लग रहे थे जैसे सब सुखोंके

हरि - भगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव - इव सब सुखदाता।
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह, सुख[1] नहिं कथनीया। (३)
उर अनुभवति, न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ।
जेहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कोसल-राऊ। (४)
दो०—राजत राज - समाज - महँ , कोसल - राज - किसोर।
सुंदर - स्यामल - गौर - तनु , विस्व - विलोचन - चोर॥ २४२॥
२७१० सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि - काम - उपमा लघु सोऊ।
सरद - चंद - निंदक मुख नीके। नीरज - नयन भावते जी - के। (१)
चितवनि चारु मार - मन[2] - हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी।
कल कपोल, श्रुति - कुंडल लोला। चिबुक, अधर सुंदर, मृदु बोला। (२)
कमुद - बंधु - कर - निंदक हासा। भृकुटी विकट, मनोहर नासा।

दाता हमारे इष्टदेव ही आ विराजे हों। सीताने रामको जिस प्रेमके भावसे देखा उस प्रेमके भावका कोई वर्णन नहीं कर पा सकता। (३) क्योंकि जब वे स्वयं अपने हृदयका अनुभव नहीं कह पा रही थीं तब भला कोई कवि उसका कैसे वर्णन कर पा सकता है। इस प्रकार जिसके मनमें जैसा भाव था उसने कोशलके पति रामको वैसा ही देखा। (४) सुन्दर, साँवले और गोरे शरीरवाले तथा विश्व-भरके नेत्रोंको चुरा ले चलनेवाले कोशलराजके दोनों कुमार उस राजसभामें बहुत ही खिल रहे थे॥२४२॥ उन दोनोंकी मूर्तियाँ स्वभावसे ही सबका मन हरे ले रही थीं। करोड़ों कामदेवोंसे उनकी उपमा देना उनकी (शोभाका परिचय देने)-के लिये कुछ भी नहीं है। उनके सलोने मुखड़ेके आगे शरत्-का चन्द्रमा भी फीका-फीका-सा दिखाई पड़ रहा था। उनके कमलके समान नेत्र बड़े प्यारे-प्यारे लग रहे थे। (१) उनकी चितवन इतनी रसीली थी कि वह कामदेवका मन भी हरे ले रही थी और सबके मनको इतनी भाए जा रही थी कि उसका वर्णन कर पाना संभव नहीं है। उनके सुन्दर-सुन्दर कपोल, उनके कानोंमें झूमते - झूमते हुए गोल-गोल कुण्डल, उनकी मनहर ठोडी, उनके (लाल-लाल) ओठ और उनकी मनभावनी मीठी बोली सब सुहावनी ही सुहावनी तो थी। (२) उनकी हँसीके आगे चन्द्रमाकी किरणें भी धुँधली लगती जा रही थीं। उनकी बाँकी भौंहे, मनोहर

१. मुख : मुँहसे नहीं कहा जा सकता। २. मद : उनकी रसीली चितवन कामदेवका अभिमान भी झाड़े डाल रही थी।

२६६४ मल्लाश्च मल्लं च नरा नरेन्द्रं स्त्रियः स्मरं गोपगणा व्रजेशम्।
२७०७ पिता सुतं दंडधरं ह्यसन्तो मृत्युं च कंसो विबुधा विराजम्॥
तत्त्वं परं योगिवराश्च भोजा देवं तदा रंगगतं बलेन।
पृथग् पृथग् भावनया ह्यपश्यन् सर्वे जनास्तं परिपूर्णदेवम्॥ —गर्गसंहिता
२७०८-९ तेषां महार्हासनसंस्थितानामुदारनेपथ्यभृतां स मध्ये।
रराज धाम्ना रघुसूनुरेव कल्पद्रुमाणामिव पारिजातः॥ —रघुवंश
२७१०-११ को हि मन्मथलावण्यं दधतो निजविग्रहे। मुखं मनोहरं रम्यं शरच्चन्द्रातिशोभनम्।
२७१३ नाना रत्नमये दिव्ये दधतो कर्णकुण्डले। —पद्मपु०

भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि-अवलि लजाहीं। (३)
पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम - कली बिच - बीच बनाई।
रेखैं रुचिर कंबु कल ग्रीवा। जनु त्रिभुवन-सुषमा[१] - की सींवा। (४)
दो०—कुंजर - मनि - कंठा कलित , उरन्हि तुलसिका - माल।
बृषभ - कंध, केहरि- ठवनि , बल - निधि बाहु बिसाल ॥ २४३ ॥
२७२० कटि तूनीर - पीत पट बाँधे। कर सर, धनुष बाम बर काँधे।
पीत जग्य - उपबीत सुहाए। नख-सिख मंजु महा - छबि छाए। (१)
देखि लोग सब भये सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे[२]।
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि - पद - कमल गहे तब जाई। (२)
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग-अवनि सब मुनिहि दिखाई।
जहँ - जहँ जाहिं कुँअर - बर दोऊ। तहँ-तहँ चकित चितव सब कोऊ। (३)
निज - निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेखा।

नासिका और उनके चौड़े मस्तकपर सारा हुआ तिलक अलग झलका पड़ रहा था। (उनकी घुँघराली) लटें देख-देखकर भौंरोंकी पाँतें भी लजाई पड़ रही थीं। (३) उनके सिरपर लिपटी हुई सुनहरी चार-चार तनियोंवाली पट्टियाँ अलग शोभा दे रही थीं जिनके बीच-बीचमें फूलोंकी कलियाँ गुँथी हुई थीं। शंखके समान उनके सुहावने कंठमें पड़ी हुई तीन रेखाएँ ऐसी सुन्दर लगती थीं मानो तीनों लोकोंकी सारी शोभा बस यहीं-तक हो (इसके आगे नहीं)। (४) उन दोनोंके गलेमें गजमुक्ताके कंठे पड़े थे और छातीपर तुलसीकी मालाएँ झूल रही थीं। साँड़के डिल्ल-जैसे उनके ऊँचे-ऊँचे पुष्ट कंधे उभरे पड़ रहे थे, उनकी चाल भी सिंहकी-सी बड़ी मस्तानी थी। उनकी विशाल भुजाओंमें मानो बल ही बल भरा हुआ था ॥ २४३ ॥ वे कटिमें तूणीर और पीताम्बर कसे हुए हाथमें बाण लिए और बाएँ कंधेपर धनुष लटकाए हुए थे। उनके गलेमें पीला जनेऊ बड़ा फब रहा था। इस प्रकार नखसे शिख-तक (नीचेसे ऊपर-तक) उनपर सुन्दरता ही सुन्दरता लहराई पड़ रही थी। उन्हें देख-देखकर लोग ऐसे मुग्ध हुए जा रहे थे कि वे सबके सब टकटकी बाँधे देखे जा रहे थे और किसीके हटाए भी नहीं हट पा रहे थे। दोनों भाइयोंको देखकर जनक तो और भी अधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनि (विश्वामित्र) के चरण-कमल जा पकड़े। (२) जनकने मुनिके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उन्हें अपने प्रणकी सारी कथा कह सुनाई और सारी रंगभूमि भी मुनि (विश्वामित्र)-को (घूम-घूमकर) ले जा दिखलाई। रंगभूमिमें जिधर-जिधर वे दोनों सलोने राजकुमार निकल जाते थे, उधर-उधरके सब लोग आँखें फाड़-फाड़कर उन्हें देखते रह जाते थे। (३) सबको ऐसा जान पड़ रहा था कि राम हमारी ही ओर मुँह किए हुए देख रहे हैं। पर इसमें जो विशेष रहस्य था (कि ये तो

१. सोभा। २. टरत न टारे : दृष्टि हटाए नहीं हट पा रही थी।

२७१५ तिलकं धारयन्ती च रोचनाकुंकुमोद्भवम्। —सत्योपाख्यान
२७१६ दधतो मस्तके दिव्यां कांचनीं पट्टिकां शुभाम्। स्तबकं मणिमुक्तानां पुष्पाणां च तथाविधाम् ॥
२७१७ त्रिरेखया शोभमानं कम्बुकंठं मनोहरम्।
२७२०-२१ धनुर्बाणधरौ तौ च कट्यां वै पीतवाससम्। पीतयज्ञोपवीते च ॥ —सत्योपाख्यान

भलि रचना, मुनि नृप - सन कहेऊ। राजा मुदित महा सुख लहेऊ। (४)
दो०—सब मंचन - तें मंच एक, सुंदर, बिसद, बिसाल।
मुनि - समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महि - पाल ॥ २४४ ॥
२७३० प्रभुहिँ देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भए, तारे।
अस प्रतीति सबके मन माहीँ। राम चाप तोरब, सक नाहीँ। (१)
बिनु भंजेहु भव - धनुष बिसाला। मेलिहि सीय राम - उर माला।
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जस, प्रताप, बल, तेज गँवाई। (२)
बिहँसे अपर भूप, सुनि बानी। जे अबिबेक - अंध, अभिमानी।
तोरेहु धनुष ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बियाहा। (३)
एक बार कालहु किन होऊ। सिय-हित समर जितब हम सोऊ।
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरम - सील, हरि - भगत, सयाने। (४)
दो०—सीय बियाहबि राम, गरब दूरि करि नृपन्ह-के।
जीति को सक संग्राम, दसरथ - के रन-बाँकुरे ॥ २४५ ॥
२७४० व्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मन - मोदकनि कि भूख बुताई।

साक्षात् भगवान् हैं, इनके लिये यह क्या कठिन बात है) यह कोई न जान पाया। मुनिने (रंग-भूमिकी प्रशंसा करते हुए) राजा जनकसे कहा कि आपकी यह रंगभूमि सचमुच बड़ी कलाके साथ बनाई-सँवारी गई है। यह सुनकर राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ (कि हमारा परिश्रम सफल हुआ)। (४) वहाँपर जो अकेला एक मंच सब मंचोंसे कहीं अधिक सुन्दर, मनोहर और विशाल बनाया गया था उसीपर राजा जनकने मुनिको और दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण)-को ले जा बैठाया ॥ २४४ ॥ प्रभु (राम)-को देखते ही सब राजा अपने-अपने हृदयोंमें वैसे ही हार मान बैठे (कि अब हमें कौन पूछेगा) जैसे पूर्ण चन्द्रके उदय होनेपर सब तारे मन्द पड़ जाते हैं। अब सबके मनमें विश्वास हो चला (और भले राजा सबसे कहने लगे—) 'या तो राम यह धनुष तोड़कर ही रहेंगे (१) या फिर शिवका यह विशाल धनुष तोड़े बिना ही रामके गलेमें सीता जयमाला डालेंगी। यह विचारकर अपना यश, प्रताप, बल और तेज सब यहीं लुटाकर आप लोग यहांसे चलते बनिए।' (२) यह सुनकर जो राजा अविवेकसे अंधे और अभिमानमें चूर थे वे सब (उपेक्षासे) हँस दिए कि—('इस फेरमें न रहना'।) यदि धनुष टूट भी गया तो भी विवाह हो जाना कोई हँसी-खेल नहीं है और फिर धनुष तोड़े बिना तो राजकुमारीको व्याह ले जानेका साहस ही किसमें है ? (३) (इतना ही नहीं) एक बार काल भी क्यों न आ जाय, तब भी हम लोग सीताके लिये उसे लड़ाईमें पछाड़े बिना न छोड़ेंगे।' उनकी ये गर्वोक्तियाँ सुन-सुनकर जितने धर्मशील, हरिभक्त और सयाने राजा थे वे सब बैठे-बैठे मुसकराए जा रहे थे। (४) (वे कहने लगे—'यह समझ रक्खो कि सब) 'राजाओंका गर्व चूर करके यदि सीताको कोई व्याहेगा तो राम ही व्याहेंगे। (किसकी माँने इतना दूध पिलाया है कि) राजा दशरथके इन रणवीर सुपुत्रोंको कोई युद्धमें लड़कर जीत ले ? ॥ २४५ ॥ तुम लोग गाल बजा-बजाकर (व्यर्थ बक-बक करके) अकारण क्यों प्राण दिए डाल रहे हो ? मनके (कल्पनाके) लड्डू खानेसे कहीं किसीकी भूख बुझ

सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदंबा जानहु जिय सीता। (१)
जगत-पिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी।
सुंदर, सुखद, सकल गुनरासी। ए दोउ बंधु संभु-उर-बासी। (२)
सुधा-समुद्र समीप बिहाई। मृग-जल निरखि मरहु कत धाई।
करहु जाइ, जा-कहँ, जोइ भावा। हम तौ आज जनम-फल पावा। (३)
अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे।
देखहिं सुर नभ चढ़े बिमाना। बरषहिं सुमन, करहिं कल गाना। (४)

दो०—जानि सुअवसर, सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुंदर सकल, सादर चलीं लवाइ॥ २४६॥

२७५० सिय-सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप-गुन-खानी।
उपमा सकल मोहिं लघु लागी। प्राकृत-नारि-अंग-अनुरागी। (१)
सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ, अजसु को लेई।
जौं पटतरिय तीय-सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया। (२)

करती है? (कभी नहीं!) अपना भला चाहो तो हमारी यह बात गाँठ बाँध लो। तुम्हारा भला ही होगा। तुम लोग अपने मनमें यह पक्का समझ लो कि सीता (कोई साधारण नारी नहीं हैं। ये तो साक्षात्) जगत्की माता हैं (१) और राम भी (कोई ऐसे-वैसे पुरुष नहीं, साक्षात्) जगत्के पिता हैं। यह भली भाँति समझकर उनकी शोभाकी झाँकी पानी हो तो भर-आँख पा लो। ये दोनों सुन्दर भाई सबको सदा सुख ही सुख देते रहते हैं। इनमें सारे गुण हैं। गुण भरे हुए हैं और ये वे ही हैं जो भगवान् शंकरके हृदयमें डेरा डाले वहीं बसे रहते हैं। (२) अपने पास लहराता हुआ अमृतका समुद्र छोड़कर तुम लोग मृग-जलके पीछे दौड़-दौड़कर क्यों अपने प्राण दिए डाल रहे हो? (हमने अपना कर्त्तव्य कर दिया कि इतना बता दिया। अब) आप लोगोंमेंसे जिसके जो मनमें आवे वही करो। (जहाँ तक हमारी बात है,) हमें तो आज (इनका दर्शन करके) मनुष्य-जन्म लेनेका पूरा-पूरा फल हाथ लग गया।' (३) यह कहकर भले राजा तो रामके प्रेममें मग्न हो-होकर बैठे एकटक रामका अनुपम रूप निहारने लगे। आकाशमें छाए हुए देवता भी अपने-अपने विमानोंपर चढ़े उन्हें (राम-लक्ष्मणको) टकटकी बाँधे देखने लगे और उनपर पुष्प बरसाते हुए (उनकी प्रशंसाके) सुन्दर गीत अलापने लगे। (४) तभी ठीक अवसर देखकर, जनकने सीताको बुलवानेके लिये कहला भेजा और यह सुनकर उनकी सब सुन्दर और चतुर सखियाँ उन्हें आदरपूर्वक यज्ञ-मंडपमें लिवा ले चलीं॥ २४६॥ संसारकी माता तथा रूप और गुणोंसे भरी हुई सीताकी शोभाका वर्णन कोई करना भी चाहे तो कर नहीं पा सकता। मुझे (तुलसीदासको) तो उनके लिये संसारकी सारी उपमाएँ बड़ी तुच्छ जान पड़ रही हैं, क्योंकि यदि वे उपमाएँ ठीक भी हों तो भी वे सांसारिक स्त्रियोंके अंगोंके लिये ही ठीक होंगी। इसलिये कौन ऐसा (मूर्ख) होगा, जो सीताका वर्णन करनेके लिये उन तुच्छ उपमाओंका प्रयोग करके कुकवि कहलानेका अपयश मोल ले? यदि किसी स्त्रीसे सीताकी तुलना करनेको कर भी दी जाय, तो ऐसी सुन्दरी स्त्री

२७४७ रथानारुह्य पश्यन्ति सुन्दर्य्यः पतिभिर्मुदा। आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे॥ पद्मपु०

गिरा मुखर, तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।
विष - बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा - सम किमि बैदेही। (३)
जौं छवि - सुधा - पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु, मंदर सिंगारू। मथै पानि - पंकज निज मारू। (४)
दो०—यहि विधि उपजै लच्छि जव, सुंदरता - सुख - मूल।
तदपि सकोच-समेत कवि, कहहिं सीय - सम तूल ॥ २४७ ॥
२७६० चलीं संग लै सखी सयानी। गावति गीत मनोहर बानी।
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत-जननि अतुलित छवि भारी। (१)
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग - अंग रचि सखिन बनाए।
रंग - भूमि जव सिय पग धारी। देखि रूप मोहे नर - नारी। (२)
हरषि सुरन दुन्दुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई।
पानि - सरोज सोह जय-माला। अवचट चितए सकल भुआला। (३)

जगत्‌में दूसरी ढूंढ़े मिलेगी कहाँ ? (२) (देवियोंको ही देखिए !) सरस्वतीको तो (दिनरात) बोलनेसे छुट्टी नहीं मिलती (दिनरात चख-चख मचाए रहती हैं)। रहीं पार्वती, उनके सारे अंग ही आधे-आधे हैं (शिवकी अर्धांगिनी हैं)। रति भी बेचारी अपने पति (कामदेव)-के शरीर-रहित होनेके कारण सदा दुखी हुई रहती है। और वैदेहीको लक्ष्मीके समान तो भला बताया ही कैसे जा सकता है जिसके सगे प्यारे भाई भी हैं तो विष और वारुणी (मदिरा) हैं ? (३) हाँ, यदि कहीं सौन्दर्यके अमृतका समुद्र दिखाई पड़ जाय, परम रूप ही उसमें कच्छप बनकर आ बैठे, शोभा ही कहीं नेती (मथनेकी रस्सी) आ बने, शृंगार रस ही मंदराचल (पर्वत) बनकर आ खड़ा हो और स्वयं कामदेव ही अपने कर-कमलोंसे (उस सौन्दर्यके अमृतके समुद्रका) मन्थन आ करे (४) और इस प्रकार (मन्थन करनेसे) यदि सुन्दरता और सुखसे भरी कोई लक्ष्मी उत्पन्न भी हो उठे तब भी कवि बड़े संकोचसे ही कह पावेंगे कि हाँ, ये कुछ-कुछ सीताके समान कही जा सकती हैं। (पर ऐसा होना संभव ही नहीं है) ॥ २४७ ॥ (सीताकी) बड़ी सयानी-सयानी सखियाँ मधुर स्वरसे गीत गाती हुई सीताको संग लेकर चल पड़ीं। उन (सीताकी) छबीली देहपर पड़ी हुई सुन्दर साड़ी बड़ी फब रही थी। जगत्‌की माता जानकीकी शोभा उस समय ऐसी बन उठी थी कि उसकी कोई तुलना को नहीं जा सक रही थी। (१) उनके शरीरपर वे सभी आभूषण अपने-अपने स्थानपर शोभा दिए जा रहे थे जो उनकी सखियोंने उनके प्रत्येक अंगपर भली भाँति सजा पहनाए थे। जिस समय सीताने रंगभूमिमें पदार्पण किया उस समय उनका (दिव्य) रूप जिन्होंने भी देखा वे सब नर और नारी वाह-वाह कर उठे (उनके रूपकी सराहना कर उठे) (२) (इतना ही नहीं,) देवता भी हर्षित हो-होकर डंके बजाने लगे और अप्सराएँ भी पुष्प बरसा-बरसाकर गीत गाने लगीं। उस समय सीताके कर-कमलोंमें (दूबकी डंठलमें गुँथी हुई महुएकी) जयमाला बड़ी शोभा दे रही थी। उनके आते ही सब राजाओंकी

२७६४-६५ दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तदाऽभवत्। राज्ञा चाऽऽकारिता सीता वरमालां प्रगृह्य सा॥पद्मपु०

सीय चकित चित रामहिं चाहा। भए मोह - वस सब नर - नाहा।
मुनि - समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन - निधि पाई। (४)

दो०—गुरु-जन-लाज, समाज बड़, देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन-तन, रघुबीरहिं उर आनि॥ २४८॥

२७७० राम - रूप अरु सिय - छवि देखी। नर - नारिन परिहरी निमेखी।
सोचहिं सकल, कहत सकुचाहीं। विधि-सन विनय करहिं मन-माहीं। (१)
हरु विधि! वेगि जनक - जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई।
विनु विचार पन तजि नर - नाहू। सीय - राम - कर करहिं विवाहू। (२)
जग भल कहहिं, भाव सब काहू। हठ कीन्हे, अंतहु उर दाहू।
यहि लालसा मगन सब लोगू। वर साँवरो जानकी जोगू। (३)
तब बंदीजन जनक बोलाए। विरुदावली कहत चलि आए।
कह नृप, जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट, हिय हरष न थोरा। (४)

दृष्टि चकित होकर उस ओर घूम गई। (३) उधर सीता भी चकित होकर रामको ही देखने लग गईं। सीताको देखकर वहाँ जितने भी राजा आए बैठे थे वे सब (सीताको देखते ही) उनके रूपपर मुग्ध हो उठे। सीताने ज्योंही आँख उठाकर देखा कि दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) मुनिके पास आए बैठे हैं त्योंही उनके नेत्र अपनी सारी निधि (सर्वस्व राम)-को वहाँ पाकर ऐसे ललचाए कि वहीं जाकर टिक रहे। (४) परन्तु गुरुजनोंकी लाज तथा वहाँ एकत्र हुआ बड़ा समाज देखकर सीता कुछ सकुचा गईं और वे रामका रूप अपने हृदयमें बसाकर (उधरसे दृष्टि हटाकर) सखियोंकी ओर घूम गईं॥ २४८॥ सब स्त्री-पुरुष अपलक नेत्रोंसे यह सब देखे जा रहे थे और सब अपने-अपने मनमें यह मनाते तो जा रहे थे (कि राम और सीताका विवाह हो जाय) किन्तु कहते बहुत सकुचा रहे थे। वे मन ही मन विधातासे मनाए जा रहे थे—(१) 'हे विधाता! जनककी जड़ता (हठवादिता) दूर करके उन्हें हमारी-जैसी ही बुद्धि दे डालिए कि वे अपने प्रणका हठ छोड़कर विना आगा-पीछा सोचे रामसे सीताका विवाह कर डालें। (२) (ऐसा कर देनेपर कोई उनपर उँगली भी नहीं उठावेगा, उलटे) संसार उनकी प्रशंसा ही करेगा क्योंकि जितने भी लोग हैं वे सब भी तो यही चाहते हैं। ये (जनक कहीं) अपने हठपर अड़े रह गए तो अन्तमें हृदयमें कसक बनी ही रह जायगी (कि हाय! हमने सीताका विवाह रामसे पहले ही क्यों नहीं कर डाला)।' सब लोग यही लालसा किए जा रहे हैं कि जानकीके योग्य यदि कोई वर हो सकता है तो वे साँवले (राम) ही हो सकते हैं (दूसरा कोई नहीं हो सकता)। (३) इसी बीच राजा जनकने वन्दीजनों (चारणों) को बुलवा भेजा जो विरुदावली (जनकके कुलकी कीर्ति) कहते हुए वहाँ तत्काल चले आए। राजाने उन्हें आदेश दिया—'जाओ! जाकर मेरा प्रण सभामें सबको कह सुनाओ।' (यह सुनना था कि) भाट बढ़ चले। उनके हृदयमें भी इसका कुछ कम हर्ष नहीं था। (४) सभाके बीच पहुँचकर उन भाटोंने वह सुन्दर प्रण सुनाना प्रारम्भ कर दिया—

दो०—बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महि-पाल।
पन बिदेह-कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल ॥ २४९ ॥
२७८० नृप-भुज-बल-बिधु सिव-धनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू।
रावन, बान महा-भट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे। (१)
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज-समाज आज जोइ तोरा।
त्रिभुवन-जय-समेत बैदेही। बिनहिं बिचारि बरै हठि तेही। (२)
सुनि पन, सकल भूप अभिलाखे। भट-मानी अतिसय मन माखे।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन सिर नाई। (३)
तमकि, ताकि, तकि सिव-धनु धरहीं। उठइ न, कोटि भाँति बल करहीं।
जिनके कछु बिचार मन-माहीं। चाप-समीप, महीप न जाहीं। (४)

'हे राजागण ! आप लोग बहुत ध्यानसे सुन लीजिए। हम अपनी बड़ी-बड़ी भुजाएँ उठा-उठाकर महाराज जनकका पण (प्रण) आपको सुनाए दे रहे हैं । २४९ ॥ (देखिए !) सब राजाओंकी भुजाओंका बल ही चन्द्रमा है और शिवका धनुष उनका बल ग्रस लेनेवाला राहु है। (यह धनुष राजाओंका बल हर लेता है, कोई इसे उठा नहीं सका) । सब जानते हैं कि यह धनुष (ऐसा-वैसा धनुष नहीं है, यह) बड़ा कठोर भी है, भारी भी है। रावण और बाणासुर-जैसे बड़े-बड़े (विश्व-प्रसिद्ध) योद्धा भी इस धनुषको देखकर ही चुपकेसे खिसक गए। (१) शंकरके ऐसे कठोर धनुषको इस राज-समाजमें जो (झुकाकर चिल्ला चढ़ा देगा,) तोड़ देगा[१], उसे त्रैलोक्यके विजयका यश तो मिलेगा ही, साथ ही जानकी भी हठपूर्वक उसीको पति स्वीकार कर लेंगी।' (२) यह प्रण सुनकर यों तो सभी राजाओंके मनमें उत्सुकता जग उठी परन्तु अपनेको बड़ा बली समझनेवाले राजाओंको तो इतना ताव चढ़ा कि वे हड़बड़ाकर कमर कस-कसकर अपने-अपने इष्टदेवोंको सिर नवा-नवाकर (मना-मनाकर) उठ-उठकर धनुषकी ओर बढ़ चले। (३) वे बड़े तपाकसे जा-जाकर वह शिवका धनुष देखने लगे और दृष्टि जमाकर उसे मुट्ठीमें पकड़ सकनेका प्रयत्न भी करने लगे पर अनेक प्रकारसे बल लगानेपर भी वह किसीसे भी टससे मस नहीं हो पाया। वहाँ जो इने-गिने विचारशील राजा आए बैठे थे वे तो धनुषके पास-तक भी नहीं गए (उन्होंने धनुषके पासतक जाना भी ठीक नहीं समझा)। (४) केवल मूढ

१. इस प्रसंगमें सत्योपाख्यानको छोड़कर सब ग्रन्थों तथा नाटकोंमें 'नमयति' (झुका देगा) पाठ है। अपने गुरु महादेवके धनुषको तोड़नेवालेसे सीताका विवाह करनेका प्रण जनक कैसे कर सकते थे ? किन्तु गोस्वामीजीने सत्योपाख्यानवाला प्रसंग ही ग्रहण किया है।

२७७८-७९ मागधास्तु पणं सर्वं जनकस्य च भूपतीन्। श्रावयामासुस्ते सर्वे बाहुमुत्क्षिप्य संसदि ॥आन०रा०
२७८०-८३ शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेतद्दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा ॥ —हनुमन्नाटक
२७८४-८५ तच्छ्रुत्वा भूभुजः सर्वे व्यायामं चक्रिरे मुदा। कश्चित्परिकरं बद्ध्वा धनुषो निकटं ययौ ॥
२७८६ मध्ये जग्राह चापस्य पाणिभ्यां च बलेन वै। न चकर्ष धनुस्तत्र लोममात्रं च संसदि ॥ —सत्यो०

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप , उठै न, चलहिं लजाइ ।
मनहुँ पाइ भट-बाहु-बल , अधिक-अधिक गरुआइ ।। २५० ।।

२७९० भूप सहस-दस एकहि बारा[1] । लगे उठावन, टरै न टारा ।
डगै न संभु-सरासन कैसे । कामी-वचन सती-मन जैसे । (१)
सब नृप भये जोग-उपहासी । जैसे बिनु बिराग संन्यासी ।
कीरति, बिजय, बीरता भारी । चले चाप-कर बरबस हारी । (२)
श्री-हत भये हारि हिय[2] राजा । बैठे निज-निज जाइ समाजा ।
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने । बोले बचन रोष जनु साने । (३)
दीप-दीप-के भूपति नाना । आए सुनि, हम जो पन ठाना ।
देव, दनुज धरि मनुज-सरीरा । बिपुल बीर आए रन-धीरा । (४)

राजा ही बड़े तावसे जा-जाकर धनुष उठानेकी चेष्टा किए जा रहे थे पर जब वह धनुष उनके उठाए उठ नहीं पाता था तो लजा-लजाकर अपना-सा मुंह लिए लौट जाते थे। (ऐसा लग रहा था) मानो वह (धनुष) उन सब योद्धाओंका बल पी-पीकर और भी अधिक भारी हुआ चला जा रहा था ।। २५० ।। बहुतसे राजाओंने एक साथ मिलकर भी धनुष उठानेका प्रयत्न किया पर वह (अपने स्थानसे) टसकाए नहीं टसक पाया । शिवका धनुष उसी प्रकार सरकाए नहीं सरक पा रहा था जैसे कामी पुरुषोंके (चाटुकारी-भरे) वचनोंसे सती स्त्रीका मन विचलित नहीं हो पाता (कामियोंकी चिकनी-चुपड़ी बातोंके फेरमें नहीं पड़तीं) । (१) सब राजा वैसे ही हँसी उड़ानेके योग्य हो गए जैसे वह संन्यासी हँसी उड़ाने-योग्य हो जाता है जिसमें वैराग्य नहीं होता । वे सब अपनी-अपनी कीर्ति, विजय और वीरता सब धनुषके हाथ लुटाकर मुँह लटकाए वहाँसे लौट गए । (२) भरी सभामें ऐसी करारी हार (बदनामी) हो जानेके कारण उन सबके मुँह उतर गए और वे हार झक मारकर अपने-अपने समाजमें पहुँच-पहुँचकर दुबक-दुबककर जा बैठे । राजाओंकी यह दशा (असफलता) देखकर जनक बहुत दुखी हो उठे और क्रोधमें भरे हुए-से बोले—(३) 'मैंने जो प्रण ठाना था उसे सुन-सुनकर द्वीप-द्वीपके अनेक राजा यहाँ आ इकट्ठे हुए, यहाँतक कि देवता और दैत्य भी मनुष्यका चोला धारण कर-करके यहाँ आ पधारे । उनके अतिरिक्त और भी न जाने कितने वीर, रणधीर यहाँ आए

१. सहस्र=अनेक । भूप सहस-दस एकहि बारा : (क) दस सहस्र राजाओंने आ-आकर एक ही एक बार उठानेका प्रयत्न किया । (ख) जो दस सहस्र (अनेक) राजा एक दिन आए बैठे थे, उनमेंसे जिसने भी उठानेका प्रयत्न किया कोई नहीं उठा पाया । (ग) अनेक राजाओंने मिलकर आसन (चौकी)-के साथ धनुषको उठानेका प्रयत्न किया । २. सब ।

२७८८ क्रमादादाय ते तत्तु सज्जीकर्तुमथारभन् ।　　—नृसिंहपुराण

२७९०-९१ एकदा संविदं कृत्वा भूपानां शतमुत्तमम् । उत्थापयामासुरव्यग्रा न चचाल धनुस्तदा ।। —सत्यो०
बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं नेदं धनुश्चलति किंचिदपींदुमौलेः ।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानैरभ्यर्थितं प्रकृतिचारुमनः सतीनाम् ।।　　—प्रसन्नराघव

दो०—कुँअरि मनोहरि, बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु-दमनीय ॥ २५१ ॥

२८०० कहहु काहि यह लाभ न भावा। काहु न संकर-चाप चढ़ावा।
रहौ चढ़ाउब, तोरब भाई। तिल-भरि भूमि न सके छुड़ाई[1]। (१)
अब जनि कोउ माखै भट-मानी। बीर-बिहीन मही मैं जानी।
तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि-बिबाहू। (२)
सुकृत जाइ जौं पन परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहउ, का करऊँ।
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई। तौ पनि करि होतेउँ न हँसाई। (३)
जनक-बचन सुनि सब नर-नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी।
माखे लखन, कुटिल भइ भौंहैं। रद-पट फरकत, नयन रिसौंहैं। (४)

बैठे हैं, (४) पर जान पड़ता है ब्रह्माने ऐसा एक भी सूरमा नहीं बना छोड़ा जो धनुष तोड़कर (झुकाकर) इतनी मनोहर कन्या (सीता), इतनी बड़ी विजय-श्री और अत्यन्त व्यापक कीर्ति पा सके ।।२५१।। भला बताइए इतना बड़ा लाभ (मनोहर कन्या, विजय और विश्व-कीर्ति पा लेना) किसे अच्छा नहीं लगेगा ? किन्तु इतनेपर भी यहाँ (इतने वीरोंमें) कोई (माईका लाल) ऐसा नहीं निकल पाया जो शिवका धनुष चढ़ा पा सके। और भाई ! चढ़ाना और तोड़ना (झुकाना, खींचना) तो दूर रहा, (कोई भला आदमी) उसे भूमिसे (अपने स्थानसे) तिल-भर सरका-तक न सका। (१) अब आप लोगोंमेंसे जो भी अपनी वीरताका दम भरता हो वह बुरा न मान बैठे, पर मैंने समझ लिया कि पृथ्वीपर अब कोई वीर रह नहीं गया है। अब आप लोग सब आशा छोड़-छोड़कर कृपा करके अपने-अपने घर पधारिए। (मैं यही समझ लूँगा कि) ब्रह्माने सीताके भाग्यमें विवाह लिखा ही नहीं है। (२) (मेरे साथ कठिनाई यह है कि) यदि मैं प्रण छोड़े देता हूँ तो धर्म नष्ट हो जाता है (मुझे पाप लगता है)। इसलिये यदि कन्या कुमारी ही रह जाती है तो रहे; दूसरा चारा ही क्या है ? (मेरा वश ही क्या है ?)। देखो भाई ! यदि मैं पहले जान गया होता कि पृथ्वीपर कोई वीर रह ही नहीं गया है तो (ऐसा) प्रण करके इस प्रकार मैं अपनी हँसी कभी न उड़वाता।' (३) जनककी ऐसी (निराशा-भरी) बात सुनकर वहाँ जितने स्त्री-पुरुष थे सब जानकीकी ओर देख-देखकर बहुत दुखी हो चले। पर लक्ष्मण थे कि वे यह सुनते ही क्रोधसे तमतमा उठे। उनकी भौंहें तन गईं। उनके ओठ फड़क उठे और नेत्रोंसे चिनगारियाँ बरस चलीं। (४)

१. उठाई : तिल-भर धरतीसे ऊपर नहीं 'उठा पाए'।

२७९६-२८०२ आद्वीपात्परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्यायाः कलधौतकोमलरुचेः कीर्तेश्च लाभः परः।
नाऽकृष्टं न च टंकितं न नमितं नोत्थापितं स्थानतः
केनापीदमहो महद्धनुरिदं निर्वीरमुर्वीतलम् ॥ –हनुमन्नाटक

दो०—कहि न सकत रघुबीर-डर , लगे बचन जनु बान ।
नाइ राम-पद-कमल सिर , बोले गिरा प्रमान ॥ २५२ ॥

२८१० रघुबंसिन-महँ जहँ कोउ होई । तेहि समाज अस कहइ न कोई ।
कही जनक जस अनुचित बानी । बिद्यमान रघु-कुल-मनि जानी । (१)
सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू । कहौं सुभाउ, न कछु अभिमानू ।
जौं तुम्हार अनुसासन पावौं । कंदुक-इव ब्रह्मांड उठावौं । (२)
काँचे घट-जिमि डारौं फोरी । सकौं मेरु, मूलक-जिमि तोरी ।
तव प्रताप-महिमा भगवाना । का बापुरो पिनाक पुराना । (३)
नाथ ! जानि अस, आयसु होऊ । कौतुक करौं, बिलोकिय सोऊ ।
कमल-नाल-जिमि चाप चढ़ावौं । जोजन-सत-प्रमान लै धावौं । (४)

दो०—तोरौं छत्रक-दंड जिमि , तव प्रताप-बल नाथ ।
जौं न करौं, प्रभु-पद-सपथ , कर न धरौं धनु-भाथ ॥ २५३ ॥

२८२० लखन सकोप बचन जब बोले । डगमगानि[1] महि, दिग्गज डोले ।

रामके डरके मारे वे कुछ कह तो नहीं पा रहे थे, पर जनकके वचन उनके हृदयमें बाण-जैसे चुभ चले थे। इसलिये रामके चरण-कमलोंमें सिर नवाकर खड़े होकर बड़ी दो-टूक बातें वे कह उठे—॥२५२॥ 'देखिए ! जहाँ कहीं रघुवंशियोंमेंसे कोई एक भी बैठा हुआ हो, उस समाजमें ऐसी अनुचित बात किसीके मुँहसे नहीं निकल पा सकती जैसी रघुके कुलमें सर्वश्रेष्ठ (राम)-को यहाँ बैठे देखकर भी राजा जनकने कह डाली है। (१) (लक्ष्मणने रामकी ओर घूमकर कहा—) हे सूर्यकुलके कमलोंको खिलानेवाले सूर्य (राम) ! मैं स्वभावसे ही यह कहे दे रहा हूँ, कुछ अभिमानसे नहीं, कि यदि आप आज्ञा दें तो मैं अभी इस सारे ब्रह्माण्डको गेंदके समान उठाकर (२) उसे कच्चे घड़ेके समान पटककर फोड़ डालूँ। (इतना ही नहीं,) कहिए तो सुमेरु पर्वतको मूलीके समान तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर धरूँ। फिर भला आपके प्रतापकी महिमाके आगे इस बेचारे पुराने धनुषकी तो गिनती ही क्या है ! (३) यह समझकर नाथ ! आप आज्ञा दें तो मैं ऐसा खेल कर दिखाता हूँ कि आप भी देखिएगा। मैं इस धनुषको कमलकी नाल (डंठल) के समान चढ़ाकर सौ योजन-तक उठाए लिए दौड़ा चला जा सकता हूँ। (४) और नाथ ! आपके प्रतापके बलसे इस धनुषको मैं ऐसे टूक-टूक किए डालता हूँ जैसे कुकुरमुत्ता तोड़ डाला जाता है। यदि मैं ऐसा न कर पाऊँ तो आपके चरणोंकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं फिर कभी धनुष और तूणीरको हाथ-तक न लगाऊँगा' ॥ २५३ ॥ जब लक्ष्मण क्रोधमें भरे यह सब कहने लगे तो पृथ्वी काँप उठी, दिशाओंके हाथी लड़खड़ा चले और वहाँ आए हुए लोग और सब राजा काँप उठे (कि कहीं यह सचमुच

१. डगमगात ।

२८०३-९ तीक्ष्णारोपसमैर्वाक्यैर्लक्ष्मणो विव्यथे मुहुः ।
२८१०-१९ देव श्रीरघुनाथ किं बहुतया दासोस्मि ते लक्ष्मणो
मेर्वादीनपि भूधरान्न गणये जीर्णः पिनाकः कियान् ।
तन्मामादिश पश्य च बलं भृत्यस्य यत्कौतुकं
प्रोद्धर्तुं प्रतिनामितुं प्रचलितुं नेतुं निहंतुं क्षमः ॥ —हनुमन्नाटक

सकल लोक, सब भूप डेराने। सिय - हिय हरष, जनक सकुचाने। (१)
गुरु, रघुपति, सब मुनि, मन - माहीं। मुदित भये पुनि-पुनि पुलकाहीं।
सैनहि रघुपति लखन निवारे। प्रेम - समेत निकट बैठारे। (२)
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी।
उठहु राम! भंजहु भव - चापा। मेटहु तात! जनक - परितापा। (३)
सुनि गुरु - वचन, चरन सिर नावा। हरष - विषाद न कछु उर आवा।
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाए[1]। ठवनि जुवा मृगराज लजाए। (४)
दो०—उदित उदयगिरि - मंच-पर, रघुबर बाल - पतंग।
बिकसे संत - सरोज सब, हरषे लोचन - भृंग ॥ २५४ ॥
२८३० नृपन - केरि आसा - निसि नासी। वचन - नखत-अवली न प्रकासी।
मानी - महिप - कुमुद सकुचाने। कपटी भूप - उलूक लुकाने। (१)
भये बिसोक कोक - मुनि - देवा। बरषहिं सुमन, जनावहिं सेवा।

प्रलय न मचा बैठे)। पर सीता ही एक ऐसी थीं जो यह सुनकर प्रसन्न हुई जा रही थीं। जनक तो बहुत ही झेंप गए (कि सचमुच मेरे मुँहसे कैसी अनुचित बात निकल गई)। (१) गुरु विश्वामित्र, राम तथा सब मुनि अपने-अपने मनमें बड़े प्रसन्न हो-होकर बार-बार पुलकित हुए जा रहे थे। तब रामने लक्ष्मणको आँखके संकेतसे टोककर प्रेमपूर्वक अपने पास पकड़ बैठाया। (२) विश्वामित्रने देखा कि अब ठीक अवसर आ गया है। तब वे बड़े स्नेहसे (रामसे) बोले—'वत्स राम! लो उठो, और यह शिवका धनुष तोड़कर (झुकाकर) जनकके मनमें उठा हुआ सारा संताप (दुःख) दूर कर डालो।' (३) गुरुका वचन सुनते ही रामने उठकर उनके चरणोंमें सिर आ नवाया (कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है)। उनके मनमें न तो इससे कोई हर्ष ही हो रहा था न कोई दुःख ही था। वे स्वाभाविक ढंगसे ऐसे उठकर खड़े हुए कि उनके खड़े होनेका ढंग कोई जवान सिंह भी देख ले तो लाजसे मुँह छिपा बैठे। (४) जैसे उदयाचलपर (पूर्वमें) तड़केका सूर्य उगता है वैसे ही मंचपर राम चढ़ पहुँचे और जैसे सूर्य निकलनेपर कमल खिल उठते हैं और उनपर भौंरे प्रसन्नतासे गूँज उठते हैं वैसे ही (वहाँ रामको देखते ही) सभी सन्त प्रसन्न हो उठे और उनके नेत्र खिल उठे ॥ २५५ ॥ (इतना ही नहीं) जैसे रात ढलनेपर तारे धुँधले पड़ जाते हैं, कुमुद मुँद जाते हैं, उल्लू दुबक बैठते हैं और चकवे प्रसन्न हो उठते हैं, वैसे ही रामका मंचपर पहुँचना था कि वहाँ आए हुए राजाओंकी सारी रही-सही आशा जाती रही, उनकी बोलती बन्द हो गई, यहाँतक कि अभिमानी राजा भी सब अपना-आपना मुँह छिपा बैठे और कपटी राजा तो खिसक-खिसककर इधर-उधर जा दुबके। (१) मुनियों और देवताओंका तो सारा शोक ही जाता रहा और वे फूल बरसा-

१. सुहाए।

२८२४-२५ तेषां तु वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः। उवाच रामं सुश्रोतश्चापभंगं कुरुष्व भोः ॥ —सत्यो०
विश्वामित्रस्तदा प्राह रामं चोत्तिष्ठ राघव। तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः ॥
तदोत्थायासनाद् वेगात्प्रणनाम मुनीश्वरम् ॥ —आनन्दरामायण

गुरु - पद बंदि सहित - अनुरागा । राम मुनिन - सन आयसु माँगा । (२)
सहजहि चले सकल - जग स्वामी । मत्त - मंजु - वर - कुंजर - गामी ।
चलत राम सब पुर - नर - नारी । पुलक - पूरि - तन भये सुखारी । (३)
बंदि पितर, सब सुकृत सँभारे । जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ।
तौ सिव - धनु मृनाल - की नाईं । तोरहु[२] राम, गनेस गोसाईं । (४)

दो०—रामहिं प्रेम - समेत लखि , सखिन समीप बोलाइ ।
सीता - मातु सनेह - बस , बचन कहै बिलखाइ ।। २५५ ।।

२८४० सखि ! सब कौतुक देखनिहारे । जेउ कहावत हितू हमारे ।
कोउ न बुझाइ कहै गुरु[३] - पाहीं । ए बालक, असि हठ भलि नाहीं । (१)
रावन - बान छुआ नहिं चापा । हारे सकल भूप करि दापा ।
सो धनु राजकुँअर - कर देहीं । बाल मराल कि मंदर लेहीं । (२)
भूप - सयानप सकल सिरानी । सखि बिधि-गति कछु जाति न जानी ।
बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत, लघु गनिय न रानी । (३)

बरसाकर रामकी सेवा करने लगे (हर्ष प्रकट करने लगे) । तब रामने बड़े प्रेमसे गुरुके चरणोंकी वन्दना करके मुनियोंसे आज्ञा माँगी (२) और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, सुहावने, मस्त हाथी-की-सी चालवाले राम बड़े स्वाभाविक ढंगसे (धनुषकी ओर) बढ़ चले । रामका उधर बढ़ना था कि नगरके सब स्त्री-पुरुषोंमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गई और उनके शरीर भी पुलकित हो उठे । (३) वे अपने-अपने देवताओं और पितरोंसे मनौतियाँ मनाते हुए अपने पुण्योंका स्मरण करते हुए कहने लगे—'हे स्वामी गणेश ! यदि हमारे पुण्योंका कुछ भी प्रभाव कहीं बचा पड़ा रह गया हो तो शिवके इस धनुषको (इतना हलका कर डालो कि इसे) राम कमलकी नालके समान उठा तोड़ें (उठा झुका दें) । (४) उधर रामकी ओर प्रेम-पूर्वक देखती हुई सीताकी माता सुनयना अपनी सखियोंको पास बुलाकर प्रेममें बिलख-बिलखकर उनसे कहने लगीं—।। २५५ ।। 'देखो सखी ! यहाँ जो हमारे हितैषी आए हुए हैं, वे भी बैठे तमाशा तो देखे जा रहे हैं, पर किसीसे यह नहीं हो रहा है कि जाकर गुरु विश्वामित्र-को समझाकर कह दे कि इन बालकोंके साथ जो ऐसा हठ ठाने जा रहे हैं यह ठीक नहीं है (इन बच्चोंको इस धनुषके झमेलेमें क्यों डाले दे रहे हैं ?) । (२) जिस धनुषको रावण और बाणासुर-जैसे बड़े-बड़े योद्धाओंने हाथ-तक नहीं लगाया और यहाँ आए हुए सब राजा भी डींग मार-मारकर जिसके आगे मुँह-सा मुँह लिए हार-मानकर बैठ रहे वही धनुष ये राजकुमारके हाथों दिए डाल रहे हैं । भला कहीं मंदराचल उठा सकना किसी हंसके बच्चेके बसका काम है ! (३) राजा जनककी तो सारी बुद्धि ही मारी गई है । समझमें नहीं आता कि विधाता क्या करनेपर उतारू है ?' यह सुनकर एक चतुर सखी बड़ी मधुरताके साथ बोली—'देखो रानी ! जो तेजस्वी पुरुष होते हैं उन्हें छोटा समझ

२. तोरहिं । ३. नृप : राजा जनक (से) ।

२८३५-३७ एवं दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभांगणविराजितम् । न्यस्तकोदंडतूणीरं शिवचापाभिसंमुखम् ।।
ताः सर्वाः प्रार्थयामासुरूर्ध्वस्या ऊर्ध्वसत्कराः । हे शंभो हे रमाकान्त हे विधेऽस्मत्पुरा कृतैः ।।
व्रतदानादिपुण्यैश्च चापं सज्जाकरोत्वयम् ।
२८४२-४३ यत्रैते रावणाद्याश्च नृपाः सर्वेऽतिकुण्ठिताः । तस्मिंश्चापं स्वयं बालः किमागत्य करिष्यति ।।आन०

कहँ कुंभज, कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ, सुजस सकल संसारा।
रबि-मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु, त्रिभुवन - तम भागा। (४)
दो०—मंत्र परम लघु, जासु बस , बिधि-हरि-हर, सुर सर्ब।
महा मत्त गजराज - कहँ, बस कर अंकुस खर्ब॥ २५६॥
२८५० काम कुसुम - धनु - सायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें।
देवि ! तजिय संसउ अस जानी। भंजब धनुष राम, सुनु रानी। (१)
सखी - बचन सुनि भइ परतीती। मिटा बिषाद, बढ़ी अति[1] प्रीती।
तब रामहिँ बिलोकि बैदेही। सभय हृदय, बिनवति जेहि तेही। (२)
मन ही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस - भवानी।
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित, हरहु चाप-गरुआई। (३)

बैठनेकी भूल नहीं करनी चाहिए। (३) बताओ, कहाँ तो छोटेसे कुम्भज (अगस्त्य) ऋषि, और कहाँ अपार समुद्र ! पर उसे भी उन्होंने पल भरमें सोख डाला और संसार भरमें उनका इतना नाम जा फैला। सूर्य-मण्डलको ही देख लो। वह देखनेमें कितना छोटा-सा लगता है पर उसके उदय होते ही तीनों लोकोंका अन्धकार तत्काल भाग खड़ा होता है। (४) मंत्रको ही देख लो ! वह होता तो है कितना नन्हाँ-सा, पर उसे जपकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर या कोई भी देवता झट वशमें कर लिया जा सकता है। अंकुशको ही देख लो ! वह होता तो है कितना छोटा-सा, पर जहाँ लगा कि बड़ेसे बड़ा मतवाला हाथी भी (पल भरमें) सीधा हो बैठता है ॥ २५६॥ कामदेवको ही देख लो ! वह केवल फूलका ही धनुष-बाण तो लिए रहता है पर उसीसे वह सभी लोक अपने वशमें किए बैठा है। यह विश्वास करके देवि ! आप भी अपने मनमें कुछ संदेह न कीजिए। देखो रानी ! मैं (हाथ मारकर) कहे देती हूँ कि जैसे भी होगा राम यह धनुष तोड़कर ही रहेंगे।' (१) उस सखीकी बात सुनकर रानीको बड़ा ढाढ़स हुआ। उनका सारा दुःख (संदेह) मिट गया और रामके लिये उनकी प्रीति और भी उमड़ चली।

उस समय रामको देख-देखकर सीताका मन भी धुक-धुक किए जा रहा था और वे भी सब देवताओंको मनाए जा रही थीं। वे व्याकुल हो-होकर मन ही मन कहे जा रही थीं—'हे महेश ! हे भवानी ! आप मुझपर प्रसन्न हो जाइए (कृपा कर दीजिए) और मैंने जो आजतक आपको सेवा की है उसे सफल कर डालिए। मुझपर कृपा करके आप इस धनुषका सारा भारीपन खींच निकालिए।

१. भई मन : मनमें प्रेम हो आया।

२८४५-५० हस्ती स्थूलतरः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रांकुशः
वज्रेणाभिहता पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रं नगाः।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।
तेजो यस्य विराजते स बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः॥ —चाणक्यनीति
२८५२ एवमाप्तवचनात्स पौरुषं काकपक्षकधरेऽपि राघवे।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि॥ —रघुवंश

गन - नायक बर - दायक देवा। आजु लगे कीन्हिउँ तुम-सेवा।
बार - बार सुनि बिनती मोरी। करहु चाप-गरुता अति थोरी। (४)
दो०—देखि देखि रघुबीर - तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम - जल, पुलकावली सरीर ॥ २५७ ॥
२८६० नीके निरखि नयन - भरि सोभा। पितु-पन सुमिरि, बहुरि मन छोभा।
अहह ! तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी। (१)
सचिव सभय[1] सिख देइ न कोई। बुध - समाज बड़ अनुचित होई।
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु - गात किसोरा। (२)
बिधि ! केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस - सुमन-कन[2] बेधिय हीरा।
सकल सभा - कै मति भइ भोरी। अब मोहि संभु-चाप ! गति तोरी। (३)
निज जड़ता लोगन - पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी।
अति परिताप सीय - मन माहीं। लव - निमेष जुग-सय-सम जाहीं। (४)

सबको वर देनेवाले देवता गणेश ! मैं आज-तक (बड़ी श्रद्धासे) आपकी सेवा करती आ रही हूँ। अब मैं बार-बार आपसे यही विनति कर रही हूँ कि इस धनुषका सारा भारीपन आप कम कर डालिए। (४) वे बार-बार रामकी ओर देखे जा रही थीं और बड़ा धीरज बाँधकर देवताओंको मनाए जा रही थीं। उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छल-छलाए पड़ रहे थे और उनका सारा शरीर पुलकित हुआ जा रहा था ॥ २५७ ॥ भली प्रकारसे भर-आँखों रामकी शोभा देख-देखकर और पिताका प्रण स्मरण कर-करके सीताके मनमें बड़ी धुक-धुकी मची जा रही थी। (वे मन ही मन कहे जा रही थीं—) 'ओ हो ! मेरे पिता भी बिना कुछ लाभ-हानि सोचे ऐसा कठोर प्रण ठान बैठे। (१) उनके इतने मन्त्री यहाँ चुप मारे बैठे हैं, पर कोई डरके मारे उन्हें समझा नहीं पा रहा है। इतना बड़ा विद्वानोंका समाज जुटा बैठा है फिर भी इतना अनुचित कार्य यहाँ हुआ चला जा रहा है। कहाँ तो यह वज्रसे भी अधिक कठोर धनुष और कहाँ ये इतने कोमल शरीरवाले साँवले किशोर ! (२) हे विधाता ! ऐसी स्थितिमें मैं धैर्य धारण करना भी चाहूँ तो किस प्रकार करूँ ? भला सिरसके फूलसे कहीं हीरा बेधा जा सकता है ? (जान पड़ता है) इस सारी सभाकी बुद्धि चरने चली गई है। (ऐसी स्थितिमें) हे शंभुके धनुष (पिनाक) ! अब मैं तुम्हारी ही शरण लिए ले रही हूँ। (३) तुम अपनी सारी जडता (भारीपन) सब लोगोंपर उतार फेंको और राम (की कोमलता)-का ध्यान करके हलके हो जाओ।' सीताका मन भीतर ही भीतर बहुत कचोटें जा रहा था। उनके पलका एक-एक खंड सौ-सौ युगोंके समान बीत रहा था। (४) वे कभी तो प्रभु (राम)-को देखती थीं, कभी

१. सत्रय : सभी। २. कत : 'कैसे' हीरेको बेध सकता है ?

२८५३-५७ एतस्मिन्नन्तरे सीता रामं दृष्ट्वा सभांगणे। अब्रवीन्मधुरं वाक्यं रत्नालंकारमंडिता ॥
हे शंभो हे विधे दुर्गे हे सावित्रि सरस्वति। युष्मान् संप्रार्थयाम्यद्य प्रसार्य करपल्लवम् ॥
सर्वैरेतन्महच्चापं करणीयं तु पुष्पवत् ॥ —आनन्दरामायण

२८६०-६३ कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दनः।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः ॥ —हनुमन्नाटक

दो०— प्रभुहि चितइ, पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज - मीन - जुग , जनु विधु - मंडल डोल ।। २५८ ।।

२८७० गिरा - अलिनि मुख - पंकज रोकी । प्रगट न, लाज-निसा अवलोकी ।
लोचन - जल रह लोचन कोना । जैसे परम कृपन - कर सोना । (१)
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरज प्रतीति उर आनी[1] ।
तन-मन - वचन मोर पन[2] साँचा । रघुपति - पद - सरोज चित[3] राँचा । (२)
तौ भगवान सकल - उर - बासी । करिहहिं मोहिं रघुबर - कै दासी ।
जेहि - के जेहि - पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै, न कछु संदेहू । (३)
प्रभु - तन चितइ प्रेम - तन[4] ठाना । कृपा-निधान राम सब जाना ।
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे । चितव गरुड़ लघु ब्यालहिं जैसे । (४)

धरतीकी ओर देखती जा रही थीं । इस प्रकार (एक ओर स्नेहकी दृष्टि, दूसरी ओर संकोचकी दृष्टिके नीचे-ऊपर होनेके कारण) उनके चंचल नेत्र ऐसे शोभा दे रहे थे मानो चन्द्र-मण्डल (मुख) पर कामदेवकी दो मछलियाँ (नेत्र) चढ़ी हिंडोला झूल रही हों[5] ।। २५८ ।। (जैसे रातको मुँद जानेवाले कमलमें भौंरी बन्द हो बैठती है वैसे ही) लज्जा (रात्रि)-के कारण वाणी (भौंरी)-को मुख (कमल) रोके बैठा था, जिससे वह (वाणी) प्रकट नहीं हो पा रही थी (लाजके कारण सीता कुछ बोल नहीं पा रही थीं)। (नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर-भर आ रहे थे) पर नेत्रोंमें उमड़े हुए आँसू नेत्रोंके कोनेतक झलककर भी वैसे ही आगे नहीं बढ़ पा रहे थे, जैसे वे परम कृपण (कंजूस)-का धन हों, (जो कंजूसीके कारण तिजोरीसे बाहर न निकल पा रहे हों) । (१) अपने मनमें यह अधीरता बढ़ती देखकर सीताको बड़ा संकोच हो आया (कि जो देखेगा वह क्या कहेगा) । परन्तु धैर्य धारण करके वे यही सोच-सोचकर मनको ढाढ़स दिए जा रही थीं कि यदि तन, मन और वचनसे मेरा प्रण सच्चा है और मेरा मन सचमुच रामके चरण-कमलोंमें जा लगा है (२) तो सबके घटघटमें बसनेवाले भगवान् मुझे अवश्य रामकी दासी (पत्नी) बनाकर रहेंगे, क्योंकि जिसका जिसपर सच्चा प्रेम होता है वह उसे मिलता ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।' (३) सीताने प्रभु (राम)-की ओर देखकर अपने प्रेमका पक्का प्रण ठान लिया (कि जैसे भी होगा मैं आपकी ही दासी होकर रहूँगी) और कृपाके निधान रामने भी वह भाँप लिया । तब रामने एक बार सीताकी ओर देखकर फिर धनुषकी ओर ऐसे (तुच्छ दृष्टिसे) देखा जैसे गरुड किसी छोटेसे सर्पको देखता है (उस दृष्टिसे सीताको यह विश्वास दिलाया कि इस धनुषको तोड़ डालना मेरे बाएँ हाथका खेल है, तुम चिन्ता न करो) । (४) लक्ष्मणने

१. धरि प्रतीति धीरज उर आनी । २. मन । ३. मन । ४. पन । ५. खेलत ··· ···डोल : चन्द्रमण्डलमें कामदेवकी मछलियाँ खेलती फिर रही हों (किलोलें कर रही हों) ।

२८७२ हा विधे किं करोष्यद्य किमस्त्यन्तर्गतन्तव ।
२८७३-७५ कायेन मनसा वाचा यदि सत्यः पणो मम । रामचन्द्रस्य पादाब्जे मच्चितं च रतिं गतिम् ।।
तर्हि सर्वगतो देवस्तद्दासीं मां करोतु वै । यस्य यस्मिन् परः स्नेहः स तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।प्रा०

दो०—लखन लखेउ, रघुबंस-मनि , ताकेउ हर - कोदंड ।
पुलकि गात बोले बचन , चरन चापि ब्रम्हंड ।। २५९ ।।

२८८० दिसि - कुंजरहु, कमठ, अहि, कोला । धरहु धरनि, धरि धीर, न डोला ।
राम चहहिं संकर - धनु तोरा । होहु सजग, सुनि आयसु मोरा । (१)
चाप - समीप राम जब आए । नर - नारिन्ह सुर - सुकृत मनाए ।
सब - कर संसउ अरु अज्ञानू । मंद महीपन्ह - कर अभिमानू । (२)
भृगु - पति - केरि गरब - गरुआई । सुर - मुनि - बरन्ह - केरि कदराई ।
सिय - कर सोच, जनक - पछितावा । रानिन्ह - कर दारुन - दुख - दावा । (३)
संभु - चाप बड़ बोहित पाई । चढ़े जाइ सब संग बनाई ।
राम - बाहु - बल - सिंधु अपारू[1] । चहत पार नहिं कोउ कनहारू । (४)

जब देखा कि रघुवंशके मणि राम उस शंकरके धनुषकी ओर देखने लगे हैं (तो वे समझ गए कि बस ये अब उसे उठाकर तोड़ने (झुकाने) ही वाले हैं) तो ब्रह्माण्डको अपने चरणोंसे चाँपकर वे पुलकित होकर गम्भीर वाणीसे बोल उठे—।। २५९ ।। 'हे दिग्गज, कच्छप, शेष और कोल (वराह) ! आप लोग बड़े धैर्यके साथ पृथ्वी सँभाले रहिए । देखिए, तनिक भी हिलने-डुलने न पावे क्योंकि राम अब शिवका धनुष तोड़ने-ही-वाले हैं । मेरी आज्ञासे तुम सब सावधान हो जाओ । (१)

इधर ज्योंही धनुषके पास राम पहुँचे कि सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने देवता तथा पुण्य मनाने लगे । उस समय सब लोगोंका संदेह (कि ये कोमल किशोर इस कठोर धनुषको तोड़ सकेंगे या नहीं) और अज्ञान (कि वे रामको परात्पर ब्रह्म न जानकर केवल राजकुमार मात्र समझते थे), मूढ (घमंडी) राजाओंका अभिमान, (२) परशुरामके गर्वका महत्त्व, देवताओं और मुनियोंका भय, सीताकी चिन्ता, जनकका पश्चात्ताप और रानियोंके भयंकर दुःखकी लपट, (३) ये सबके सब शिवके धनुषको बड़ा भारी जहाज पाकर और उसपर चढ़कर रामकी भुजाओंके बलके समुद्रको पार तो कर जाना चाहते थे (शिवके धनुषकी कठोरताके कारण ही सबको संदेह था, दुष्ट राजाओंको अज्ञान और अभिमान था कि यह धनुष टूटेगा नहीं और टूटनेपर भी रामसे सीताका विवाह नहीं होने देंगे, परशुरामका गर्व था कि मैंने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रिय-रहित कर दिया है, सुनयनाको भय, सीताको चिन्ता, जनकका पश्चात्ताप और दुःख था कि यह धनुष किसीके तोड़े न टूटेगा, झुकाए न झुकेगा रामकी भुजाओंके बलका अपार समुद्र पार कर लेनेपर, रामके द्वारा धनुष तोड़ दिए जानेपर ही सबके संदेह, अज्ञान, अभिमान, गर्व, भय, चिन्ता, दुःखकी निवृत्ति अवलंबित थी) पर कोई कर्णधार (केवट) नहीं मिल रहा था (जो रामके बाहुबलकी थाह लगाकर, रामकी शक्तिका विश्वास दिलाकर सबका संदेह, अज्ञान, अभिमान, गर्व, चिन्ता, पश्चात्ताप, चिन्ता और दुःख दूर कर डाल सके) । (४) रामने देखा कि सब ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं

१. राम सिंधु घन बाँह अपारू ।

२८८०-८१ पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः ।
दिक्कुंजराः कुरुत तत्त्रितये दिधीषां रामः करोति हरकार्मुकमाततज्यम् ।। —हनुमन्नाटक
२८८२ किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् । अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदेह्याः पाणिमच्युतः ।।आन०

दो०—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे-से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेखि॥ २६०॥

२८९० देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप-सम तेही।
तृषित बारि-बिनु जो तनु त्यागा। मुए करै का सुधा-तड़ागा। (१)
का बरषा सब[1] कृषी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने।
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी। (२)
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा।
दमकेउ दामिनि-जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ-मंडल-सम भयऊ। (३)
लेत, चढ़ावत, खैंचत गाढ़े। काहु न लखा, देख सब ठाढ़े।
तेहि छन, राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर, कठोरा। (४)
छंद—भरे भुवन घोर, कठोर रव, रबि-बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज, डोल महि, अहि-कोल-कूरम कलमले॥

जैसे (स्थिर होकर एकटक देखते रहनेके कारण) चित्रमें बने हों। फिर कृपानिधानने जानकीकी ओर देखा तो जान पड़ा कि वे बहुत घबराई पड़ रही हैं॥ २६०॥ उन्होंने देखा कि जानकी इतनी अधिक घबराई पड़ रही हैं कि उनका एक-एक क्षण एक-एक कल्प (४३२०००००० वर्ष)-के समान बीता जा रहा है। (वे मनमें सोचने लगे कि) यदि कोई प्यासा पानी न मिलनेसे शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जानेपर अमृतका तालाब भी वहाँ ला उँडेला जाय तो किस कामका ! (१) सब खेती सूख जानेपर वर्षा हो भी जाय तो किस कामकी ! समय चूक जानेपर पछतानेसे हाथ क्या लगता है ! अपने मनमें यह समझकर, उन्होंने जानकीकी ओर देखा और हृदयमें (अपने प्रति) बहुत प्रेम उमड़ता देखकर वे पुलकित हो उठे। (२) उन्होंने मनही मन गुरुको प्रणाम करके सरलतासे धनुष उठा लिया। उन्होंने धनुष उठाया ही था कि वह बिजलीकी भाँति सहसा चमका और फिर (खींचनेके कारण) आकाशमें गोल होता दिखाई दिया। (३) यह सब इतने वेगसे हो गया कि सबने उन्हें खड़े तो देखा, पर (धनुष) उठाते, चिल्ला चढ़ाते और खींचते कोई नहीं देख पाया। इसी बीच, देखते-देखते रामने वह धनुष बीचसे दो-टूक कर डाला। धनुषका टूटना था कि सारे लोकोंमें उसकी भयंकर कड़क गूँज गई। (४) वह भयंकर कड़क सब लोकोंमें ऐसी गूँज गई कि सूर्यके घोड़े भी लीक छोड़-छोड़कर बहक भागे, दिग्गज चिग्घाड़-चिग्घाड़ उठे, सारी पृथ्वी दहल उठी, शेष, वराह और कच्छप-तक थर्रा उठे। देवता, राक्षस और मुनि सब कान मूँद-मूँदकर व्याकुल हो उठे कि यह सब हो क्या गया। तुलसीदास

१. जब।

२८९१-९२ निर्वाणदीपे किमु तैलदानं चौरे गते वा किमु सावधानम्।
वयोगते किं वनिताविलासः पयोगते किं खलु सेतुबन्धः॥ —बृहच्छार्ङ्गधरपद्धति
२८९४-९७ गृहीत्वा वामहस्तेन लीलया तोलयन्धनुः। आरोपयामास गुणं पश्यत्स्वखिलराजसु॥
ईषदाकर्षयामास पाणिना दक्षिणेन सः। बभंजाखिलहृत्सारो दिशः शब्देन पूरयन्॥ अध्या० रा०

२६०० सुर, असुर, मुनि कर कान दीन्हें, सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम, तुलसी, जयति वचन उचारहीं ।। [३३]

सो०—संकर - चाप जहाज, सागर रघुबर- बाहु - बल।
बूड़ सो[1] सकल समाज, चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस ।। २६१ ।।

प्रभु दोउ चाप - खंड महि डारे। देखि लोग सब भये सुखारे।
कौसिक रूप - पयोनिधि पावन। प्रेम - बारि अवगाह सुहावन। (१)
राम - रूप - राकेस निहारी। बढ़त बीचि - पुलकावलि भारी।
बाजे[2] नभ गह-गहे[3] निसाना। देव - बधू नाचहिं करि गाना। (२)
ब्रह्मादिक सुर, सिद्ध, मुनीसा। प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा।
बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला। (३)

कहते हैं कि (इतना सब हो चुकनेपर) तब कहीं लोग समझ पाए कि रामने धनुष तोड़ डाला है और फिर तो वे सब 'रामकी जय' कह-कहकर हर्षसे चिल्ला उठे।

रामकी भुजाओंके बलके समुद्रमें शंकरके धनुषका जहाज जो डूबा सो तो डूबा ही (धनुष तो रामने तोड़ ही दिया) साथ ही उस धनुषके जहाजपर (धनुषको कठोर समझनेके कारण) जो (सन्देह आदि) समाज अज्ञानके कारण पहले चढ़ा बैठा था (कि धनुष नहीं टूटेगा) वह सब भी उसके साथ डूब मरा (समाप्त हो गया। लोगोंका सन्देह और अज्ञान, मूढ राजाओंका अभिमान, परशुरामका गर्व, देवता और मुनियोंका भय, सीताकी चिन्ता, जनकका पश्चात्ताप और रानियोंका जितना दुःख था, सब समाप्त हो गया)। प्रभु (राम)-ने धनुषके वे दोनों टुकड़े पृथ्वीपर उठा फेंके। यह देखते ही जितने लोग वहाँ एकत्र थे सबके सब प्रसन्नतासे नाच उठे। विश्वामित्रके हृदयके जिस पवित्र समुद्रमें सुन्दर प्रेमका अथाह जल भरा हुआ था (१) उसमें रामके पूर्ण चन्द्रको देख-देखकर पुलकावलीके रूपमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ चलीं (रामको देखकर विश्वामित्रको बड़ी प्रसन्नता हुई)। आकाशमें ढमाढम नगाड़े गड़गड़ा उठे, अप्सराएँ गाने-नाचने लगीं। (२) ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर सब प्रभु रामकी प्रशंसा करते और उन्हें आशीर्वाद देते हुए ऊपरसे उनपर रङ्ग-बिरङ्गे फूल और मालाएँ बरसाने लगे और किन्नर लोग एकसे एक रसीले गीत अलापने लगे। (३) समस्त लोकोंमें जय-

१. बूड़ा। २. बाजत। ३. डिमडिमी।

२८९८-२९०१ त्रुट्यद् भीमधनुः कठोरनिनदस्तत्राऽकरोद् विस्मयम्
वस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शम्भोः शिरं कम्पनम्।
दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलनं सप्तार्णवोन्मेलनम्
वैदेहीमदनं मदान्धदमनं त्रैलोक्यसंमोहनम् ।।

२९०२-५ उत्क्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः सार्द्धं मुखैर्नामितम्
भूपानां जनकस्य संशयधिया साकं समास्फालितम्।
वैदेही मनसा समं च सहसाकृष्टं ततो भार्गवः ।। —हनुमन्नाटक

२९०७ देवाः दुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरो गणाः। —सत्योपाख्यान

२९१० रही भुवन भरि जय - जय बानी। धनुष - भंग - धुनि जात न जानी[1]।
मुदित कहहिं जहँ - तहँ नर - नारी। भंजेउ राम संभु - धनु भारी। (४)
दो०—बंदी, मागध, सूत - गन, बिरद बदहिं मति - धीर।
करहिं निछावर लोग सब, हय, गय, धन, मनि, चीर॥ २६२॥
झाँझ, मृदंग, संख, सहनाई। भेरि, ढोल, दुंदुभी सुहाई।
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ - तहँ जुवतिन मंगल गाए। (१)
सखिन - सहित हरषीं सब रानी। सूखत धान परा जनु पानी।
जनक लहेउ सुख, सोच विहाई। पैरत थके, थाह जनु पाई। (२)
श्री-हत भये भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप-छबि छूटे।
सीय - सुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जल स्वाती। (३)
२९२० रामहि लखन बिलोकत कैसे। ससिहि चकोर - किसोरक जैसे।
सतानंद तब आयसु दीन्हाँ। सीता गमन राम - पहँ कीन्हाँ। (४)

जय-जयकारकी इतनी धूम मच उठी कि धनुष टूटनेकी कड़क भी उसमें डूब समाई (सुनाई नहीं पड़ी)। जिधर देखो उधर ही प्रसन्न हो-होकर सभी स्त्री-पुरुष यही कहते फिर रहे थे कि (जानते नहीं ?) शंकरका वह भारी धनुष रामने दो टूक कर डाला। (४) धीर बुद्धिवाले भाट, मागध और सूत भी सब आ-आकर रामकी विरुदावली (कीर्ति)-का वर्णन करने लगे और सब लोग उनपर घोड़े, हाथी, रत्न, धन और वस्त्र न्यौछावर कर-करके बाँटने लगे॥ २६२॥ चारों ओर झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल, दुन्दुभी (नगाड़े) तथा और भी बहुतसे मधुर-मधुर बाजे बज उठे। जहाँ-तहाँ अनेक नवेलियाँ मिल-मिलकर मंगल गीत अलाप उठीं। (१) रानी और उनकी सखियाँ तो ऐसी हर्षित हुई पड़ रही थीं मानो सूखते धानपर अच्छा पानी बरस गया हो। सारी चिन्ताएँ मिट जानेसे जनक भी ऐसे मगन हो उठे मानो किसीको तैरते-तैरते थक जानेपर थाह (पैर टेकनेकी ठौर) मिल गई हो। (२) धनुष टूटते ही सब राजा ऐसे श्रीहत (निस्तेज, उदास) हो चले, जैसे दिन निकल आनेपर दीपककी लौकी उजास फीकी पड़ जाती है। उधर सीताके मनमें जो उल्लास हुआ जा रहा था, उसका तो कहना ही क्या ? (ऐसा जान पड़ता था) मानो किसी चातकीके मुँहमें अचानक स्वातिका जल आ टपका हो। (३) उस समय रामकी ओर लक्ष्मण ऐसे टकटकी लगाए (प्रेमसे) देख रहे थे जैसे किसी चकोरका बच्चा चन्द्रमाकी ओर टकटकी बाँधे देखे जा रहा हो। तब शतानन्दके कहनेसे रामके पास सीता बढ़ चलीं। (४) उनके साथ एकसे एक सुन्दर और चतुर सखियाँ मंगल

१. काशिराजकी प्रतिमें यह अर्धाली नहीं है।

२९१० तदा जयजयारावो जनैरुक्ता बभूव ह। आच्छादयन्तः कुसुमैर्देवाः स्तुतिभिरीडिरे॥
२९११ बभंज रामो हर कार्मुकं च इतस्ततो नागरिका वदन्ति॥ —सत्योपाख्यान
२९१२ तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे॥ —आनन्दरामायण
२९१६ (तच्छ्रुत्वा) राजपत्न्यस्तु परमं हर्षमाययुः॥
२९२१ शतानन्देन ह्यादिष्टा सीता रामान्तिकं ययौ। —सत्योपाख्यान

दो०—संग सखी सुंदर चतुर, गावहिँ मंगलचार।
गवनी बाल-मराल-गति, सुषमा अंग अपार ॥ २६३ ॥
सखिन-मध्य सिय सोहति कैसे[1]। छबि-गन-मध्य महाछबि जैसे[1]।
कर-सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व-बिजय-सोभा जेहि छाई[2]। (१)
तन सकोच, मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू।
जाइ समीप राम-छबि देखी। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी। (२)
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम-बिबस पहिराइ न जाई[3]। (३)
२६३० सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहिँ सभीत देत जयमाला।
गावहिँ छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम-उर मेली। (४)
सो०—रघुबर-उर जयमाल, देखि देव बरिसहिँ सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुद-गन ॥ २६४ ॥

गीत गाती चली जा रही थीं। सीता जब बाल-हंसिनीकी चालसे (धीरे-धीरे पैर रखती हुई) चली जा रही थीं उस समय उनका एक-एक अंग इतना सुहावना जान पड़ रहा था कि उस शोभाका वर्णन कोई करना भी चाहे तो नहीं कर पा सकता ॥ २६३ ॥ सखियोंके बीच चलती हुई सीता ऐसी सुहावनी लग रही थीं जैसे अनेक छवियों (सुन्दर मूर्तियों)-के बीच कोई महाछवि (और भी अधिक सुन्दर मूर्ति) आ सुशोभित हुई हो। कमलके समान उनके हाथोंमें उठाई हुई सुन्दर जयमाला ऐसी लग रही थी जैसे विश्वके विजयकी सारी शोभा उसीपर आ छाई हो। (१) यद्यपि सीताका मन तो बहुत हुलसा पड़ रहा था पर उनके शरीरमें बड़ संकोच भरा हुआ था (वे बहुत धीरे-धीरे सकुचाती चली जा रही थीं) इसीलिये उनका वह गुप्त प्रेम वहाँ कोई भाँप नहीं पा सका। रामके पास जाकर और उनकी सुन्दरता देखकर राजकुमारी (सीता) ऐसी ठक रह गईं मानो किसीने (सीताका) चित्र बना खड़ा किया हो। (२) साथकी चतुर सखियोंने उनकी यह दशा देखी तो उन्हें समझाते हुए कहा—('देख क्या रही हो ?) 'अपनी यह सुन्दर जयमाला (राम)-के गलेमें डाल क्यों नहीं दे रही हो ?' यह सुनकर सीताने दोनों हाथोंमें माला उठा तो ली पर प्रेम इतना उमड़ा पड़ रहा था कि पहनाते नहीं बन पड़ रहा था। (३) (माला पहनाते समय उनके हाथ ऐसे सुहावने लग रहे थे) मानो नालके साथ दो कमल बहुत डरते-डरते चन्द्रमाको जयमाला पहनाने चले हों (सीताके हाथ ही कमल हैं, उनकी भुजाएँ नाल हैं और रामका मुख ही चन्द्रमा है। स्थिति यह हो गई है कि कमल तो चन्द्रमाको देखकर सकुचा ही जाता है इसलिये जयमाल हाथोंमें फँसीकी फँसी रह गई)। (माला पहनाते समयकी) यह शोभा देखकर सखियाँ हर्षसे गीत अलाप उठीं और इसी बीच सीताने वह जयमाल उठाकर रामके गलेमें डाल पहनाई। (४) रामके हृदयपर जयमाला झूलती देखते ही देवताओंने पुष्पोंकी झड़ी लगा दी। वहाँ बैठे हुए सभी

१. कैसी, जैसी। २. जनु छाई; जेहि पाई। ३. यह अर्धाली काशिराजकी प्रतिमें नहीं है।

२६२२-२३ राजहंसीव गच्छन्ती दीपयन्ती च भूपणैः।
२६३१ सीता च मालामादाय शुभां रामस्य वक्षसि। क्षिप्त्वा तं वरयामास सर्वक्षत्रियसन्निधौ ॥ नृ० पु०

पुर अरु व्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन, साधु सब राजे।
सुर, किन्नर, नर, नाग, मुनीसा। जय-जय-जय कहि देहिं असीसा। (१)
नाचहिं गावहिं बिबुध - बधूटी। बार बार कुसुमांजलि छूटी।
जहँ - तहँ बिप्र बेद - धुनि करहीं। बंदी बिरदावलि उच्चरहीं। (२)
महि, पाताल, नाक[1] जस ब्यापा। राम बरी सिय, भंजेउ चापा।
करहिं आरती पुर - नर - नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी। (३)
२९४० सोहति सीय राम - कै जोरी। छबि - सिंगार मनहुँ इक ठोरी।
सखी कहहिं, प्रभु-पद गहु सीता। करति न चरन-परस अति भीता। (४)

दो०—गौतम-तिय-गति सुरति करि, नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे[2] रघुबंस-मनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥ २६५ ॥

तब सिय देखि, भूप अभिलाखे। क्रूर, कपूत, मूढ़ मन माखे।

राजा ऐसे लजा-लजाकर मुँह छिपा बैठे मानो सूर्यको देखकर कुमुद मुँद चले हों ॥ २६४ ॥ नगरमें भी और आकाशमें भी बाजे बज उठे। जितने दुष्ट वहाँ आए बैठे थे उन सबके मुँहपर तो स्याही फिर गई (वे सब उदास हो चले), पर सज्जनोंके हर्षका ठिकाना न था। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और श्रेष्ठ मुनिगण सभी रामकी जय-जयकार करते हुए उन्हें जी भर-भरकर आशीर्वाद देने लगे। (१) अप्सराएँ भी नाचने-गाने लगीं और बार-बार अपने हाथोंमें पुष्पाञ्जलियाँ भर-भरकर बरसाने लगीं। जहाँ-तहाँ ब्राह्मण बैठकर वेदपाठ करने लगे और भाट लोग आ-आकर विरुदावली बखानने लगे। (२) पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग—तीनों लोकोंमें रामकी कीर्त्तिका यह समाचार जा फैला कि रामने शिवका धनुष तोड़कर सीताको ब्याह लिया। अब तो नगरके जितने स्त्री-पुरुष थे सब आ-आकर रामकी आरती उतारने लगे और जितनी शक्ति नहीं थी उससे कहीं अधिक उनपर न्योछावर किए जा रहे थे। (३) सीता और रामकी वह जोड़ी उस समय ऐसी लुभावनी लग रही थी मानो सुन्दरता और शृङ्गार रस दोनों एक ही स्थानपर आ विराजे हों। उधर सखियाँ सीतासे कहे जा रही हैं—'अजी सीता! तनिक झुककर अपने स्वामीके चरण तो छू लो,' पर सीता हैं कि डरके मारे चरण नहीं छू रही हैं। (४) गौतमकी पत्नी (अहल्या)-की दशाका स्मरण कर-करके वे अपने हाथोंसे रामके चरणोंका स्पर्श करनेमें झिझकी पड़ रही हैं। रामने उनकी यह अलौकिक प्रीति देखी तो वे रघुवंशके मणि (राम) मन ही मन हर्षसे मुसकरा उठे ॥ २६५ ॥ उस समय सीता (-की सुन्दरता)-को देख-देखकर बहुतसे राजाओंका जी ललच उठा। उनमें जो दुष्ट, कपूत और मूर्ख राजा थे वे सब क्रोधसे

१. व्योम। २. हिय हरषे।

२९३४-३६ दिवि दुंदभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तदाऽभवत्। तदा वाद्या अवादन्त जनकस्य महात्मनः ॥
२९३९ नीराजनं प्रकुर्वन्ति नरा नार्यश्च सर्वतः। ददौ दानं द्विजातिभ्यो दीनांधकृपणेषु च ॥
गुणिभ्यो याचकेभ्यश्च ये च तत्र समागताः ॥ —नृसिंहपुराण
२९४१-४२ शिक्षितापि सखिभिर्ननु सीता रामचन्द्रचरणौ न ननाम।
किं भविष्यति मुनीशवधूवद् भालरत्नमिह तद्रजसेति ॥ —सुभाषित

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ-तहँ गाल बजावन लागे। (१)
लेहु छड़ाइ सीय, कह कोऊ। धरि बाँधहु[1] नृप-बालक दोऊ।
तोरे धनुष चाँड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुँअरि को बरई। (२)
जौं बिदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर, सहित दोउ भाई।
साधु भूप बोले, सुनि बानी। राज-समाजहि लाज लजानी। (३)
२६५० बल, प्रताप, बीरता, बड़ाई। नाक, पिनाकहि संग सिधाई।
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि, तौ बिधि मुँह मसि लाई। (४)
दो०—देखहु रामहिं नयन भरि, तजि इरिषा, मद, कोहु[2]।
लखन-रोष-पावक-प्रबल, जानि सलभ जनि होहु॥ २६६॥
बैनतेय-बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहै नाग-अरि-भागू।
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिव-द्रोही। (१)
लोभी-लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।

तमतमा चले। वे अभागे उठ-उठकर और अपने-अपने कवच बाँध-बाँधकर जहाँ-तहाँ खड़े हो-होकर लगे गाल बजाने (लगे बढ़-बढ़कर बातें करने)। (१) एक कहने लगा—'देख क्या रहे हो ? छीन ले चलो सीताको ! और बाँध ले चलो इन दोनों राजकुमारोंको। धनुष तोड़ने भर-से क्या होता है ? हम भी देखते हैं, कौन हमारे जीते जी राजकुमारीको यहाँसे व्याहकर ले जाता है ? (२) (इतना ही नहीं,) यदि जनक भी कुछ चीं-चपड़ करें (इनकी सहायता करने चलें) तो दोनों भाइयों-के साथ-साथ उन्हें भी रणमें मार पछाड़ो !' यह सब सुनकर वहाँ जितने भले राजा थे, वे बोल उठे—('अरे निर्लज्जो !) 'तुम्हारे इस राजसमाजने तो लज्जाको भी लजा डाला है। (३) (अरे राजाओ !) जहाँतक तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़प्पन और अभिमान था वह सब तो धनुषके साथ ही सिधार गया। (इस समय जो तुम इतना बमक रहे हो तो क्या) अपनी उसी वीरतापर बमक रहे हो या कहीं से और उधार माँगे लिए चले आए हो ? तुम्हारी इसी (उलटी) बुद्धिके कारण तो विधाताने पहले ही तुम्हारे मुँहपर कालिख पोत डाली है। (४) (देखो ! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है।) अपने-अपने मनसे ईर्ष्या, मद और क्रोध निकाल फेंको और बैठकर रामको भर-आँख निहारते चलो। तुम सब जान-बूझकर लक्ष्मणके क्रोधकी प्रचंड अग्निमें क्यों पतङ्गे बननेपर उतारू हुए जा रहे हो ? (लक्ष्मणको क्रोध हो आया तो तुममेंसे एकको भी जीता न छोड़ेंगे)॥२६६॥ देखो राजाओ ! जैसे गरुडका भाग पानेको कौआ मचलता हो, सिंहका भाग लेनेको खरगोश झपटता हो, बिना कारण क्रोध करनेवाला व्यक्ति अपना कल्याण मनाना चाहता हो, शिवका द्रोही बहुत सुख-सम्पत्ति बटोरना चाहता हो, (१) लोभी पुरुष संसारमें बड़ाई पाना चाहता हो, कामी पुरुष चाहता हो कि मुझपर कोई उँगली न उठावे और भगवान्के चरणोंसे दूर रहकर कोई परम गति

१. मारहु। २. मोहु।

२६५२-५३ वैराभिमानं सन्त्यज्य राममपश्यत हार्दतः।
अन्यथा लक्ष्मणस्तस्मिन् रोषाद् वो निहनिष्यति॥ —सत्योपाख्यान

हरि-पद-बिमुख परम-गति[1] चाहा। तस तुम्हार लालच नरनाहा। (२)
कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखी लिवाइ गईं जहँ रानी।
राम सुभाय चले गुरु-पाहीं। सिय-सनेह बरनत मन-माहीं।
२९६० रानिन-सहित सोच-बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया।
भूप-बचन सुनि इत-उत तकहीं। लखन, राम-डर बोलि न सकहीं। (४)
दो०—अरुन नयन, भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गज-गन निरखि, सिंघ-किसोरहु[2] चोप ॥ २६७ ॥
खरभर देखि बिकल पुर[3]-नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी।
तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा। आयउ भृगु-कुल-कमल-पतंगा। (१)
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज-झपट जनु लवा लुकाने।
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा। (२)

(मोक्ष) पाना चाहता हो, वैसा ही (असंगत) तुम्हारा यह (सीताको पानेका) लोभ भी दिखाई दे रहा है। (२) यह कोलाहल सुन-सुनकर सीता तो इतनी घबरा उठीं कि उनकी सखियोंने झट उन्हें वहाँसे हटाकर रानी सुनयनाके पास ले जा पहुँचाया। उधर राम भी मन ही मन सीताके स्नेहपर रीझते हुए अपनी स्वाभाविक चालसे चलकर गुरु विश्वामित्रके पास जा पधारे। (३) उधर सीताके साथ-साथ रानियाँ भी बड़े सोचमें पड़ गईं कि विधाता अब न जाने क्या करनेपर तुला बैठा है। इधर लक्ष्मण भी (उन दुष्ट) राजाओंकी बातें सुन-सुनकर (भौंहें तानकर) इधर-उधर ताकते तो जा रहे थे, पर रामके डरसे कुछ बोल नहीं पा रहे थे। (४) आँखें तरेरकर और भौंहें तानकर लक्ष्मण क्रोधसे लाल होकर (उन दुष्ट) राजाओंकी ओर ऐसे घूरे जा रहे थे जैसे मतवाले हाथियोंको देखकर सिंहका बच्चा ताव खा गया हो ॥ २६७ ॥ चारों ओर खलबली मची देखकर अयोध्याकी स्त्रियाँ घबरा उठीं और सब मिलकर (उन दुष्ट राजाओंको) गालियाँ देने (कोसने) लगीं।

उसी समय (सब देखते क्या हैं कि) शिवके धनुषका टूटना सुनकर भृगुके कुलके कमलके (खिलानेवाले) सूर्य परशुराम वहाँ वेगसे बढ़े चले आ रहे हैं। (१) उन्हें देखते ही भयके मारे सब राजाओंकी सिट्टी-पिट्टी भूल गई मानो बाज़के झपट्टेसे डरे हुए वटेर कहीं जा दुबके हों। परशुरामके गोरे-चिट्टे शरीरपर लगी हुई भस्म बहुत सुन्दर लग रही थी। उनके चौड़े मस्तकपर फैला हुआ त्रिपुंड बहुत खिल रहा था। (२) उनके सिरपर जटा बँधी हुई थी। चन्द्रमाके समान चमकता

१. परागति; सुगति जिमि। २. किसोरहि। ३. नर।

२९५४-५७ तार्क्ष्यभागं यथा ध्वांक्षः सिंहस्य शशको यथा।
वाञ्छेत् सुखं शिवद्रोही लुब्धः कीर्तिलतामिव ॥
सौगत्यं हरिपादाब्जविमुखश्चेच्छतीव ते। —गर्गसंहिता

२९५८-५९ राज्ञां कलकलं श्रुत्वा शङ्किताभूद् विदेहजा। तदा सख्यस्समादाय राज्ञीभवनमाहरन् ॥सत्यो०

२९६३ सिंहश्शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ॥ —भर्तृहरिशतक

२९६५ यद्बभञ्ज जनकात्मजाकृते राघवः पशुपतेर्महद्धनुः।
तद्धनुर्गुणरवेण रोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनिः ॥ —हनुमन्नाटक

सीस जटा, ससि - वदन सुहावा। रिस-बस कछुक अरुन होइ आवा।
भृकुटी कुटिल, नयन रिस-राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते। (३)
२६७० वृषभ - कंध, उर-बाहु बिसाला। चारु जनेउ, माल, मृगछाला।
कटि मुनि - बसन, तून दुइ बाँधे। धनु-सर कर, कुठार कल काँधे। (४)
दो०—सांत[1] बेष, करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनि-तनु जनु बीर रस, आयउ जहँ सब भूप॥ २६८॥
देखत भृगुपति - बेष कराला। उठे सकल भय-बिकल भुआला।
पितु-समेत कहि निज - निज नामा[2]। लगे करन सब दंड - प्रनामा। (१)
जेहि सुभाय चितवहिं, हितु जानी। सो जानै जनु आउ[3] खुटानी।
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा। (२)
आसिष दीन्हि, सखी हरखानीं। निज समाज लै गईं सयानी।

हुआ उनका गोरा मुख क्रोधके कारण कुछ-कुछ लाल हो चला था। उनकी भौंहे टेढ़ी हो चलीं और आँखें भी क्रोधसे लाल हुई जा रही थीं। यों साधारण रीतिसे देखनेपर भी वे सदा ऐसे लगते थे मानो क्रोधमें भरे हों। साँड़के डिल्लके समान उनके कंधे ऊँचे, उठे और भरे हुए थे। उनकी छाती चौड़ी और भुजाएँ मोटी-मोटी और लम्बी-लम्बी थीं। (३) उनके कंधेपर सुन्दर जनेऊ, गलेमें (रुद्राक्षकी) माला और पीठपर मृगचर्म पड़ा हुआ था। वे कटिमें मुनिवस्त्र (वल्कलके वस्त्र) लपेटे, दो-दो तूणीर बाँधे, हाथमें धनुष-बाण लिए और कंधेपर कुठार (परशु) टिकाए हुए थे। (४) यद्यपि उनका वेष तो शान्त मुनियों-जैसा था पर उनका व्यवहार बहुत ही कठोर था। उनका यह दुरंगा स्वरूप ऐसा विचित्र था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा लगता था, मानो वीर रस ही मुनिका वेष धारण करके राजाओंके बीच आ खड़ा हुआ हो॥ २६८॥ परशुरामका वह भयानक वेष देखते ही सब राजा डरके मारे घबरा-घबराकर उठ-उठकर खड़े हो गए और अपने-अपने पिताके नामके साथ अपना-अपना नाम बता-बताकर परशुरामके आगे पड़-पड़कर साष्टांग दण्ड-प्रणाम करने लगे। (१) वहाँ सबकी यह दशा हुई जा रही थी कि परशुराम जिसकी ओर प्रसन्न मुद्रामें उसे भला समझकर भी देख लेते थे वह भी समझता था कि मेरे दिन पूरे हो चले। (सब राजा जब प्रणाम कर चुके तब) जनकने आकर उन्हें प्रणाम किया और सीताको बुलवाकर उनसे प्रणाम कराया। (२) परशुरामने भी सीताको बहुत आशीर्वाद दिए। यह देखकर सीताके साथ-

१. साधु। २. कहि कहि निज नामा। ३. आइ; आयु।

२६७०-७१ चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो भस्मस्निग्धपवित्रलाञ्छितमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्। मौञ्ज्या मेखलया नियंत्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं पाणौ कार्मुकसाक्षसूत्रवलयं दंडोऽपर: पैप्पल:॥हनु०
२६७२-७३ अयं स भृगुनन्दनस्त्रिभुवनैकवीरो मुनिर्य एष निचयो महानिव दुरासदस्तेजसाम्।
प्रतापतपसोरिव व्यतिकर: स्फुरन् मूर्तिमान् प्रचण्ड इव पिण्डतामुपगतश्च वीरो रस:॥महा०च०
२६७४-७५ दृष्ट्वा भयंकरं रामं जामदग्न्यं महाबलम्। समागताश्च राजानो दंडवत् पतिता भुवि॥ अग०रा०
२६७६-७८ हितदृष्टयापि यं पश्येत् सोऽमन्यत गतासुवत्। जनकश्च तदागत्यापातयत् तत्पदोस्सुताम्॥
भव त्वं वीरसूस्सीते ह्याशिषा योजयत् स ताम्॥

बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पद-सरोज मेले दोउ भाई। (३)
२९८० राम-लखन दसरथ-के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा।
रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार-मद-मोचन। (४)
दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह-सन, कहहु काह अति भीर।
पूछत जानि अजान-जिमि, व्यापेउ कोप सरीर॥ २६९॥
समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए।
सुनत बचन, फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे। (१)
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक! धनुष केहि तोरा।
बेगि देखाउ मूढ़! नत आजू। उलटौं महि, जहँ-लगि तव राजू[1]। (२)
अति डर, उतर देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं।

की सखियाँ बहुत प्रसन्न हुईं (कि चलो, विपदा दूर हुई) और वे चतुर सखियाँ झट उन्हें अपनी मण्डलीमें लिवा ले गईं। फिर विश्वामित्र भी आकर उनसे मिले और दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण)-से कहकर उनके कमलके समान चरणोंमें उनसे प्रणाम कराया। (३) तब विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणका परिचय देते हुए कहा कि ये राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मण हैं। परशुरामने जब देखा कि यह बहुत अच्छी जोड़ी है तो उन्हें भी प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। इतना ही नहीं, कामदेव (-की सुन्दरता)-का घमण्ड चूर-चूर कर डालनेवाले रामका अपार सौन्दर्य देखकर परशुराम भी उनकी ओर टकटकी बाँधे देखते रह गए। (४) फिर चारों ओर दृष्टि घुमाकर, सब जानते हुए भी अनजानके समान वे जनकसे पूछने लगे—'कहो, यह इतनी भीड़ क्यों दिखाई दे रही है ?' उनका सारा शरीर क्रोधसे काँप उठा॥ २६९॥ तब जिस कारण वे सब राजा वहाँ आए हुए थे वह सब समाचार जनकने उन्हें कह सुनाया। यह सुनते ही जब उन्होंने दूसरी ओर दृष्टि घुमाई तो देखा कि धनुषके दो टुकड़े हुए पृथ्वीपर पड़े हैं। (१) शिवका वह धनुष टूटा हुआ देखते ही वे अत्यन्त क्रोधसे कड़ककर बोले—'अरे जड़ जनक! बता, यह धनुष किसने तोड़ा है ? देख मूढ़! या तो तू उसे तत्काल मेरे सामने ला खड़ा कर, नहीं तो जहाँतक भी तेरा राज्य है वहाँ-तककी सारी पृथ्वी मैं उलटे डालता हूँ।' (२) राजा जनक तो तने घबरा गए कि उनके मुँहसे

1. जहँ लगे समाजू।

२९७९-८१ जामदग्न्यः (निर्वर्ण्य स्वगतम्)—रमणीयः क्षत्रियकुमारः आसीत्।
चञ्चत्काकशिखण्डमण्डलमसौ मुग्धप्रगल्भं शिशुर्गम्भीरं च मनोहरं च सहजश्रीलक्ष्मरूपं दधत्।
द्रागदृष्टोपि हरत्यलं मम मनः सौन्दर्यसारश्रिया॥ —महावीरचरित
२९८२-८३ कथमत्र जनसंबाधो बहु दृश्यते इति जनकं संबोध्याभिदधे सः।
२९८६ प्रविश्य च जनकम्प्रति जगाद। कः खण्डं मृडकार्मुकस्य कृतवानुर्व्यामपूर्वो नरो।
रे रे मूर्ख विदेहवंशदहन भ्रातास्य किं विस्मृतः॥
२९८८ भयाक्रान्तो नोत्तरयतिस्म विदेहराजः। तदा वक्रा भूपा मनसि जहृषुः॥—ललितरामचरित

सुर, मुनि, नाग, नगर - नर - नारी[1] । सोचहिँ सकल त्रास उर भारी । (३)
२६९० मन पछिताति सीय - महतारी । बिधि अब सँवरी[2] बात बिगारी ।
भृगुपति - कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेष कलप-सम बीता । (४)
दो०—सभय बिलोके लोग सब , जानि जानकी[3] भीर ।
हृदय न हरष - बिषाद कछु , बोले श्रीरघुबीर ।। २७० ।।
नाथ ! संभु - धनु - भंजनिहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ।
आयसु काह कहिय किन मोही । सुनि, रिसाइ बोले मुनि कोही । (१)
सेवक सो, जो करै सेवकाई । अरि-करनी करि, करिय लराई ।
सुनहु राम ! जेइ सिव - धनु तोरा । सहसबाहु - सम सो रिपु मोरा । (२)
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा । नत मारे जइहहिँ सब राजा ।

उत्तर नहीँ निकल पा रहा था । यह सब देखकर दुष्ट राजा तो मनमेँ बड़े प्रसन्न हुए जा रहे थे पर देवता, मुनि, नाग और नगरके स्त्री-पुरुष सब इतने भयभीत हो चले कि उनके मनमेँ धुकधुकी चढ़ चली । (३) इधर सीताकी माता सुनयना बैठी मनमेँ पछताए जा रही थीँ कि 'न जाने विधाताको क्या हुआ है कि सब बनी-बनाई बात बिगाड़े दे रहा है ।' परशुरामके (कठोर) स्वभावका वर्णन सुन-सुनकर सीताका तो आधा-आधा क्षण भी एक-एक कल्पके[4] समान बीता जा रहा था । (४) जब रामने देखा कि लोग डरके मारे घबराए जा रहे हैँ और सीता भी अकुला उठी हैँ तब वे उठ खड़े हुए । उस समय उनके मनमेँ न हर्ष था न दुःख (भय) । उन्होँने कहा—।।२७०।। 'नाथ ! शिवका धनुष जिसने तोड़ा है वह आपका कोई सेवक ही होगा । उसके लिये जो आज्ञा हो आप मुझसे कह डालिए ?' इतना सुनना था कि वे क्रोधी मुनि चिढ़ उठे और बोले—(१) 'देखो । सेवक वह है जो सेवा करे । जो शत्रुका-सा काम कर बैठे उसे तो लड़ाई ही करनी चाहिए । देखो राम ! सुनो । जिसने भी शिवका यह धनुष तोड़ा है, वह सहस्रबाहुके समान मेरा कट्टर शत्रु है । (२) अब या तो वह समाज छोड़कर अलग होकर आ खड़ा हो, नहीँ तो (उसके धोखेमेँ) इनमेँसे एक भी राजा जीता न बचेगा, सब मारे जायँगे ।'

१. सिद्ध, नर - नारी । २. विधि सँवारि सब । ३. सीय अति । ४. कल्प=४ अरब ३२ करोड़ (४३२०००००००) वर्ष ।

२६८९ एवमुक्ताः सर्वे पौरा दुःखिता जाताः—अहो विधे ! विधाय सुखतां पुनर्भग्नवान् ।।
२६९०-९१ जनयित्री च सीताया मनस्युद्विजते पुनः । शुशोच सीता ज्ञात्वास्य भृगुपुत्रस्य मन्युताम् ।।
२६९२-९३ तदा श्रीरामो विचारयति–अन्यदीयस्य चेत् परशोः प्रहारं दास्यति तदा महाननयः स्वयमेव जगाद ।
२६९४ नाथ शंभुधनुषो जरायुषः खण्डनं तु भवदंघ्रिसेवकः । कश्चिदत्र कृतवान् ।।
२६९५ आज्ञा कास्ति प्रभो ब्रूहि श्रुत्वाऽमृष्यन् जगौ मुनिः । —ललितरामचरित
२६९७ बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ ।
धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्वं च कीर्तिमपहर्तुमुद्यतः ।। —रघुवंश
२६९८ समाजेन पृथक् कार्यः खलोऽसौ कार्मुकान्तकृत् ।
न चेत् सर्वे निहन्तव्याः क्षत्रियान्तकृता मया ।। —ललितरामचरित

सुनि मुनि - बचन लखन मुसुकाने। बोले परसु - धरहि अपमाने। (३)
३००० बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न अस रिस[१] कीन्ह गोसाईं।
यहि धनु - पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल - केतू। (४)
दो०—रे नृपबालक ! काल - बस , बोलत तोहि न सँभार।
धनुही-सम त्रिपुरारि - धनु , बिदित सकल संसार ॥ २७१ ॥
लखन कहा हँसि, हमरे जाना। सुनहु देव ! सब धनुष समाना।
का छति - लाभ जून धनु तोरे। देखा राम नये - के भोरे। (१)
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि! बिनु काज करिय कत रोसू।
बोले, चितइ परसु - की ओरा। रे सठ ! सुनेहि सुभाउ न मोरा। (२)
बालक बोलि बधौं नहिं तोहीं। केवल मुनि जड़ ! जानहि मोहीं।

मुनि (परशुराम)-के वचन सुनकर लक्ष्मण मुसकरा दिए और परशुरामकी खिल्ली उड़ाते हुए बोले—(३) 'मुनि महाराज ! मैंने तो लड़कपनमें ऐसी-ऐसी न जाने कितनी धनुहियाँ तोड़ डालीं पर गोसाईं ! तब तो आप कभी ऐसे लाल-पीले हुए नहीं आए। इसी धनुषपर आपकी इतनी ममता क्यों टपकी पड़ रही है ?' इतना सुनना था कि भृगुकुलके केतु परशुराम भड़क उठे और बोले—(४) 'अरे राजाके बेटे ! जान पड़ता है तू कालके मुँहमें जानेपर तुला बैठा है, इसीलिये तू मुँह सँभालकर बात नहीं कह रहा है ? त्रिपुरारिका जो धनुष सारे संसारमें विख्यात है उसे तू धनुहीके समान (बतानेकी ढिठाई कर) रहा है ?' ॥ २७१ ॥ यह सुनकर लक्ष्मण हँस पड़े और बोले—'देव ! मेरी समझमें तो धनुष-धनुष सब एकसे (जैसा यह धनुष वैसे ही अन्य धनुष)। इस धनुषके टूटने न टूटनेसे हानि-लाभ क्या हुआ जाता है ? और फिर रामने तो इसे नयेके धोखेमें परखा-भर था। (१) पर यह इतना सड़ा निकला कि रामका हाथ लगते ही टूटकर दो-टूक हो गया। तब बताइए इसमें उनका क्या दोष है ? (मैं पूछता हूँ कि) आप बिना बातके इतने उबले क्यों पड़ रहे हैं ?' यह सुनते ही परशुराम अपने परशुकी ओर देखकर लक्ष्मणसे बोले—'अरे शठ ! क्या तूने अभीतक मेरा स्वभाव नहीं सुना है ? (२) (यह समझ ले कि) मैं तुझे बालक समझकर नहीं मारे डाले रहा हूँ (नहीं तो अबतक मार ही डालता)। अरे मूर्ख ! तू मुझे कोरा मुनि ही

१. रिस तुम्ह।

२९९९ तदा श्रीमन्मनोहरमूर्तिः परशुरामं कोपयन् जगाद लक्ष्मणः। —ललितरामचरित
३०००-१ भिन्नान्यनेकानि धनूंषि बाल्ये न चेदृशः क्वहि कृतो विमन्युः।
न वेद्म्यमुष्मिन् बहुहेतुता ते कस्मात् प्रजाता भृगुवंशवर्य ॥
३००२-३ रे राजपुत्र ! आसन्नमृत्युरिव कथमेतद् ब्रवीषि ? किं प्राकृताल्पधनुरिव जगत्प्रसिद्धं पुरवैरिणो धनुः।
३००४-५ विहस्य सौमित्रिरिदं समब्रवीत् दृष्टौ ममाशेषधनुः समम्भुवि।
न हानिलाभौ धनुषोऽस्यभञ्जनाज्जरायुषोऽपश्यदसौ नवभ्रमात् ॥ —अनर्घराघव
३००६ भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत्तत्करोमि किम् ॥ —प्रसन्नराघव
३००७-८ परशुम्प्रदर्शयन् अवोचत्-किं रे शठ मत्स्वभावन्न जानासि। बालकं ज्ञात्वा न हन्मि। -अनर्घराघव

बाल ब्रह्मचारी, अति कोही। बिस्व-बिदित छत्रिय[1] कुल-द्रोही। (३)
३०१० भुज - बल भूमि भूप - बिनु कीन्हीं। बिपुल बार महि - देवन्ह दीन्हीं।
सहसबाहु - भुज - छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीप - कुमारा। (४)
दो०—मातु-पितहि जनि सोच-बस, करसि[2] महीप - किसोर।
गरभन - के अर्भक - दलन, परसु मोर अति घोर॥ २७२॥
बिहँसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस! महा भट-मानी।
पुनि - पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू। (१)
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।
देखि कुठार - सरासन - बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना। (२)

समझे बैठा है? सुन! एक तो मैं बाल-ब्रह्मचारी हूँ, दूसरे अत्यन्त क्रोधी हूँ और तीसरे क्षत्रियोंका जगद्विख्यात शत्रु हूँ। (३) मैंने अपनी इन्हीं भुजाओंके बलसे इस पृथ्वीके सब राजाओंका नाश करके अनेक (इक्कीस) बार यह पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें दे डाली है। अरे राजाके छोकरे! देख! सहस्रबाहुकी भुजाएँ काट डालनेवाला यह परशु देख रहा है न! (४) मैं कहे देता हूँ कि तू अपने माता-पिताको शोकमें मत डाल (तू मेरा अपमान करेगा तो मैं तुझे मार डालूँगा और तेरे माता-पिता तेरे लिये रोएँ-पीटेंगे)। देख! गर्भके बच्चोंको भी काट फेंकनेवाला मेरा यह परशु कितना भयानक है'॥ २७२॥

लक्ष्मण फिर हँस दिए और स्वरमें कोमलता भरकर कहने लगे—'अपनेको बड़ा भारी योद्धा समझनेवाले मुनीश्वर! आप बार-बार मेरी ओर अपना फरसा क्या चमकाए जा रहे हैं? क्या आप फूँकसे पहाड़ उड़ानेके फेरमें हैं? (१) यहाँ (हम) कोई कुम्हड़ेकी बतिया (कूष्माण्डका नया उगता हुआ फल) नहीं हैं कि तर्जनी उँगली दिखाई और मुरझा झड़े। मैंने आपके हाथमें कुठार और धनुष-बाण देखकर ही कुछ अभिमानके साथ कह डाला था। अब जब मैं आपको भृगुवंशी समझ गया हूँ और आपके कंधेपर यज्ञोपवीत देख रहा हूँ तब तो आप जो भी कुछ कहेंगे उसे अपना क्रोध रोककर सहना ही पड़ेगा, क्योंकि हमारे कुलमें देवता, ब्राह्मण, भगवान्के भक्त और गौपर वीरता नहीं दिखाई जाती। (२) कारण यह है कि यदि इन्हें मार डालें तो पाप लगे और

१. छत्री। २. करहि।

३००९ आजन्म ब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्तम्भविभ्राजमानज्याघातश्रेणिसंज्ञान्तरितवसुमतीचक्रजैत्रप्रशस्तिः॥
३०१० अवनिमधिकर्विशानभ्यवस्कन्धवारान् अवभृथभृतकेभ्यः संप्रदाय द्विजेभ्यः॥
६०११-१३ आश्चर्यं कार्तवीर्यार्जुनभुजविपिनच्छेदलीलाविदग्धः
केयूरग्रन्थिरत्नोत्करकषणरणत्कारघोरः कुठारः।
तेजोभिः क्षत्रगोत्रप्रलयसमुदितद्वादशार्कानुकारः
किं न प्राप्तः स्मृतिं ते स्मरदहनधनुर्भंगपर्युत्सुकस्य॥ —हनुमन्नाटक
३०१४-१५ स्मयमानस्समुवाच-अहो मुने! त्वमात्मानं महाभटंमन्यमानोऽसकृत्
कुठारं दर्शयित्वा फूःकारेण शिलोच्चयमुड्डीयतुमिच्छसीव॥ —महावीरचरित

भृगु - सुत[1] समुझि, जनेउ बिलोकी । जो कछु कहहु, सहौं रिस रोकी ।
सुर, महिसुर, हरिजन अरु गाई । हमरे कुल, इन - पर न सुराई । (३)
३०२० बधे पाप, अपकीरति हारे । मारतहू, पाँ परिय तुम्हारे ।
कोटि - कुलिस - सम बचन तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु - बान - कुठारा । (४)
दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ , छमहु महा - मुनि धीर ।
सुनि सरोष भृगुबंस - मनि , बोले गिरा गँभीर ।। २७३ ।।
कौसिक ! सुनहु, मंद यह बालक । कुटिल, कालबस, निज-कुल-घालक ।
भानु - बंस - राकेस - कलंकू । निपट निरंकुस, अबुध, असंकू[2] । (१)
काल - कवल होइहि छन माहीं । कहौं पुकारि, खोरि मोहिं नाहीं ।
तुम हटकहु जौ चहहु उबारा । कहि प्रताप, बल, रोष हमारा । (२)
लखन कहेउ, मुनि ! सुजस तुम्हारा । तुम्हहिं अछत, को बरनै पारा ।
अपने मुँह तुम आपनि करनी । बार अनेक भाँति, बहु बरनी । (३)

इनसे हार जायँ तो अपकीर्ति होती है (कि क्षत्रिय होकर ब्राह्मणसे हार बैठे) । इसलिये आप मारने भी लगें तो भी आपके पैरों ही पड़ना होगा । और फिर जब आपके वचन ही करोड़ों वज्रोंके समान भयंकर हैं तब आप यह धनुष-बाण और कुठार क्या व्यर्थ लिए घूमते हैं ? (४) यदि आपके अस्त्र-शस्त्र देखकर मेरे मुँहसे कुछ अनुचित निकल गया हो तो धीर महामुनि ! मुझे क्षमा कीजिएगा ।' यह सुनकर तो भृगुवंशके मणि (परशुराम) क्रोधसे लाल हो उठे और (विश्वामित्रसे) बहुत गम्भीर होकर कहने लगे—।। २७३ ।। 'देखिए विश्वामित्र ! यह मूर्ख बालक बड़ा ही खोटा जान पड़ता है । इसका काल तो आ ही गया है पर ऐसा लगता है कि अपने साथ-साथ यह अपने कुलका भी नाश करा डालनेपर उतारू है । यह तो सूर्यवंश-रूपी चन्द्रमाका घोर कलंक है । देख रहे हैं ! यह कितना बड़ा उद्दण्ड, मूर्ख और निडर है । (१) अब यह क्षण भरमें कालके मुँहमें पहुँचा जाता है । मैं पुकारकर कहे देता हूँ कि अब मुझे दोष न दीजिएगा । यदि आप इसके प्राण बचाना चाहते हों तो मेरा प्रताप, बल और क्रोध (आनेपर मैं क्या कर डाल सकता हूँ यह) बताकर इसका मुँह बन्द करा रखिए ।' (२) लक्ष्मण यह सुनते ही बोल उठे—'देखिए मुनि ! जब आप स्वयं विद्यमान हैं तब आपके सुयशका वर्णन आपके रहते दूसरा कर ही कौन सकता है । आप अभी अपने ही मुँह अपनी करनीका

---

१. भृगुकुल । २. निठुर निसंकू ।

३०१८ लक्ष्मणः—जामदग्न्य ! एवमेतत् । भृगोश्च गोत्रापत्यत्वादुपवीतधरत्वतः ।।
दुरुक्तमन्तः संछाद्य तावकं सोढवानहम् ।। —प्रसन्नराघव
३०१९ गोविप्रदेवनारीषु राघवा नास्त्रधारिणः ।। —आनन्दरामायण
३०२० अमीषां हननात् पापमयशः स्यात्पराजयात् । हिंसतोऽपि पदौ ते वै प्रणम्यौ मम सादरम् ।।
३०२२ अस्त्र-शस्त्रधारिणं त्वम समीक्ष्यैव दुरुक्तं मदुक्तं क्षन्तव्यम् तत्त्वया ।।
३०२४-२६ शृणु गाधेय मूर्खोऽसौ बालो निजकुलान्तकृत् । भवितुं शमनग्रासः सपद्येवेच्छति प्रिय ।।
३०२७ उद्दिधीर्षुश्चेदिमन्तर्हि मत्प्रतापादि कथयित्वा रुन्धि ।। —अनर्घराघव

३०३० नहिँ संतोष तौ पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू[1]।
बीर-ब्रती तुम, धीर, अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा। (४)
दो०—सूर समर करनी करहिँ, , कहि न जनावहिँ आप।
बिद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहिँ प्रलाप[2] ॥ २७४॥
तुम तौ काल हाँकि जनु लावा। बार-बार मोहि - लागि बोलावा।
सुनत लखन - के बचन कठोरा। परसु सुधारि, धरेउ कर घोरा। (१)
अब जनि देइ दोस मोहि लोगू। कटु - वादी बालक बध - जोगू।
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनिहार भा साँचा। (२)
कौसिक कहा, छमिय अपराधू। बाल-दोष - गुन गनहिँ न साधू।
खर[3] कुठार, मैं अकरुन[4], कोही। आगे अपराधी गुरु - द्रोही। (३)
३०४० उतर देत छाँड़ौं बिनु मारे। केवल कौसिक! सील तुम्हारे।

अनेक प्रकारसे अनेक बार वर्णन कर चुके हैं। (३) यदि इतनेपर भी आपको सन्तोष न हो पाया हो तो और भी जो चाहें कह डालिए। आप अपना क्रोध रोककर अपना जी मत छोटा कीजिए। आप तो सदा वीरता दिखानेवाले, धीर और क्षोभ-रहित (शान्त) पुरुष हैं। इसलिये इस प्रकार गाली दिए जाना आपको शोभा नहीं देता। (४) शूरवीरको तो जो कुछ पराक्रम दिखाना होता है सब युद्धक्षेत्रमें दिखाते हैं, कभी अपने मुँहसे उसका वर्णन नहीं किया करते। रणमें शत्रुको सामने पाकर बहकी-बहकी बातें करना तो कायरोंका काम है (वीरोंका नहीं) ॥ २७४॥ आप तो ऐसे बार-बार कालकी दुहाई दिए जा रहे हैं मानो कालको अपने साथ हाँके लिए चले आए हों जिसे बार-बार मेरे लिये हँकारते रहते हैं।' लक्ष्मणके ऐसे कठोर वचन सुनते ही परशुरामने अपना कठोर फरसा सँभालकर हाथमें उठा लिया (१) और बोले—'देखो लोगो। अब मुझे कोई दोष न देना। ऐसी जली-कटी सुनानेवाले बालकको मार ही डालना पड़ेगा। मैंने बालक समझकर अभीतक इसे बहुत बचाया, पर जान पड़ता है यह सचमुच मरनेपर तुल गया है।' (२) इसपर विश्वामित्रने उनसे कहा—'देखिए! यह अभी बालक है। जो साधु पुरुष होते हैं, वे बालकके दोष-गुणपर कभी विचार नहीं किया करते।' यह सुनकर परशुरामने उनसे कहा—'देखिए! (मेरे हाथमें) यह तीखी धारवाला कुठार है, मेरे हृदयमें करुणाका नाम नहीं है, क्रोधी मैं प्रसिद्ध हूँ और यह मेरे गुरु (शंकर)-का शत्रु अपराधी मेरे सामने (खड़ा जीभ लड़ा रहा) है, (३) इतने पर भी, विश्वामित्र! मैं जो इसे बिना मारे छोड़े दे रहा हूँ वह केवल आपके संकोचके कारण ही, नहीं तो आज इसी भयंकर कुठारसे इसे काटकर

१. दहहू। २. करहिँ प्रलापु : बढ़-बढ़कर बका करते हैं। ३. कर : हाथमें कुठार है। ४. अकरुन : मैं 'अकारण' क्रोधी हूँ।

३०३२ न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम्। —भागवत
३०३४-३८ कौशिकस्तं समाचष्ट क्षम्यतामस्य दूषणम्। बालस्य सुजना नैव गणयन्ति गुणागुणान्॥
३०३९-४० जामदग्न्यः—अहो अस्य क्षत्रियबटोर्वाग्परिपाटीपाटवम्
हे कौशिक! ते संकोचात्तदिदं क्षान्तमेव मया॥ —अनघंराघव

नत ऐहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे। (४)

दो०—गाधि-सूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरियरे सूझ।

अयमय खाँड़, न ऊखमय[1], अजहुँ न बूझ अबूझ ॥ २७५ ॥

कहेउ लखन, मुनि! सील तुम्हारा। को नहि जान, बिदित संसारा।

मातहिं - पितहिं उरिन भये नीके। गुरु-रिन रहा, सोच बड़ जी-के। (१)

सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ व्याज बड़[2] बाढ़ा।

अब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली। (२)

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा।

भृगुबर! परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौं नृप - द्रोही। (३)

२०५० मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज, देवता घरहि - के बाढ़े।

अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लखन निवारे। (४)

थोड़े ही श्रमसे गुरुके ऋणसे भी उऋण हो जाता (अपने गुरु शंकरका धनुष तोड़नेवालेने जो उनका अपमान किया उसका वदला ले लेता)। (४) विश्वामित्र मन ही मन हँसकर कहने लगे—'मुनिको (सावनके अंधेके समान) हरा ही हरा सूझे जा रहा है। ये नासमझ अभीतक नहीं समझ पाए कि ये (राम-लक्ष्मण) लोहेके खाँडे या खड्ग (प्रचण्ड वीर) हैं, ईखसे बनी शक्करके खंड (सामान्य क्षत्रिय) नहीं कि उठाया गड़प कर लिया (सरलतासे मार डाले जा सकें।) ॥ २७५ ॥ पर लक्ष्मण (कब माननेवाले थे। उन्होंने परशुरामको फिर छेड़ा)—'देखिए मुनि ! आपका शील (सौजन्य) तो संसारमें प्रसिद्ध है। उसे भला कौन नहीं जानता। जहाँतक आपके माता-पिताकी बात है, उनसे तो (पिताके कहनेपर माताको काटकर) भली प्रकार उऋण हो ही चुके हैं। अब बच रहा है केवल गुरुऋण। उसकी चिन्ता आपको बहुत सताए डाल रही थी। इसलिये वह ऋण आपने मानो मेरे ही मत्थे ला चढ़ाया है। दिन भी बहुत निकल गए हैं, उसका ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। इसलिये अब किसी मुनीमको बुलवा लें तो मैं तुरन्त थैली खोलकर (ब्याज-सहित मूल) चुकाए डालता हूँ।' (२) यह तीखा व्यंग्य सुनते ही परशुरामने ज्यों ही अपना कुठार सँभाला (मारनेको उठे) कि सारी सभा 'हाय ! हाय !' करके चिल्ला उठी। यह देखकर लक्ष्मण बोले—'देखिए भृगुवर ! क्या आप मुझे फरसा दिखाकर डराना चाहते हैं ? देखिए क्षत्रियोंके वैरी ! मैं तो ब्राह्मण समझकर (आपको अभीतक) छोड़ता आ रहा हूँ। (ऐसा जान पड़ता है कि) रणमें कभी किसी बाँके योद्धासे आपका पाला नहीं पड़ा। ब्राह्मण और देवता तो घरके ही सिंह होते हैं।' लोगोंने यह सुना तो सब एक साथ चिल्ला उठे—'यह बहुत अनुचित है, बहुत अनुचित है।' (इतना ही नहीं,) रामने भी लक्ष्मणको संकेतसे

---

१. (क) अयमय खंड न– : यह लक्ष्मण लोहे का बना है, ईखका बना नहीं कि उठाया चूस डाला। (ख) अयमय खंडन उषम इव : लक्ष्मण तो लोहेको भी टुकड़े-टुकड़े कर डालनेवाले ऊष्मा (ताप)-के समान हैं। (ग) अजगव खंडेउ ऊखमय : शिवके धनुषको ईखके समान तोड़ डाला। २. व्याज बहु।

२०४१ अयं तु न क्षमते प्रकृतिकठोरः कुठारः ॥ —प्रसन्नराघव

दो०—लखन-उतर आहुति-सरिस , भृगुबर - कोप कृसानु ।
बढ़त देखि, जल-सम बचन , बोले रघुकुल - भानु ॥ २७६ ॥
नाथ ! करहु बालक - पर छोहू । सूध दूध-मुख करिय न कोहू ।
जौं पै प्रभु - प्रभाउ कछु जाना । तौ कि बराबरि करत अयाना । (१)
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुरु पितु-मातु मोद मन भरहीं ।
करिय कृपा, सिसु, सेवक जानी । तुम सम-सील, धीर, मुनि, ज्ञानी । (२)
राम - बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु, लखन बहुरि मुसुकाने ।
हँसत देखि नख-सिख रिस ब्यापी । राम ! तोर भ्राता बड़ पापी । (३)
३०६० गौर सरीर, स्याम मन - माहीं । कालकूट - मुख, पय-मुख नाहीं ।
सहज टेढ़, अनुहरै न तोहीं । नीच मीच-सम देख न मोहीं । (४)

रोका कि अब चुप रहो (ऐसे बोलना ठीक नहीं है) । परशुरामके क्रोधकी अग्निमें लक्ष्मणका उत्तर आहुतिके समान पड़ रहा था (लक्ष्मणकी बातोंसे परशुरामका क्रोध और भी भड़क उठा था । अतः, क्रोधकी) वह ज्वाला भड़कती देखकर रघुवंशके सूर्य राम ऐसे शीतल वचन बोले जो मानो उस ज्वालाको बुझाने लिये जलके समान हों—॥ २७६ ॥ 'नाथ ! इस बालकपर दया कीजिए । यह अभी भोला दुधमुहाँ बच्चा है, इसपर तनिक भी क्रोध न कीजिए । प्रभो ! यदि यह आपका कुछ भी प्रभाव जानता होता तो क्या यह भोला बालक आपकी बराबरी करनेका साहस करता । (१) यदि बालक कुछ ढिठाई भी कर बैठे तो गुरु, पिता और माताको उससे आनन्द ही मिलता है । आप इसे बच्चा और अपना सेवक जानकर इसपर कृपा कर दीजिए; क्योंकि आप तो बड़े समदर्शी, धीर, मुनि और ज्ञानी हैं ।' (२) रामके वचन सुनकर परशुराम कुछ शान्त हुए ही थे कि इतनेमें लक्ष्मण फिर कुछ सुर्री छोड़कर (कहकर) मुसकरा उठे । लक्ष्मणको हँसते देखकर परशुरामके नखसे शिखतक आग लग गई । वे बमक उठे—'देख राम ! तेरा यह भाई बड़ा भारी पापी (नीच) है । (३) यह देखनेमें तो गोरा है पर इसका मन बड़ा काला है । यह दुधमुहाँ नहीं विषमुँहा (सर्प) है । इसका स्वभाव बड़ा ही खोटा है । इसमें तेरा एक भी गुण नहीं दिखाई देता । यह नीच समझ नहीं रहा है कि मैं साक्षात् कालके समान हूँ (जब चाहूँ इसे मसल डालूँ) ।' (४) यह सुनकर लक्ष्मणने हँसकर कहा—'देखिए मुनि ! क्रोध तो पापका

३०५२-५३ सरसवचनैः कोपाग्निं शमयन् परशुरामं रामोऽभिदधौ ।
३०५४ रामः—अलमिह क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया ॥ —प्रसन्नराघव
३०५५-५६ यद् ब्रह्मवादिभिरुपासितवंद्यपादे विद्यातपोव्रतनिधौ तपतां वरिष्ठे ।
दैवात् कृतस्त्वयि मया विनयापराधस्तत्त्वम्प्रसीद भगवन् अयमंजलिस्ते ॥ —महावीरचरित
३०५७ तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिंभस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ।
३०५८ अवाप शान्तिं रघुनन्दनोक्तितो रामानुजः किञ्चिदुवाच सस्मितम् । —हनुमन्नाटक
३०६० जामदग्न्य—आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति विषकण्ठः खल्वसौ ॥ —प्रसन्नराघव
३०६१ स्वभावतो वक्रोऽसौ पुरोजन्मानं त्वां न सन्दधाति ॥ —अनर्घराघव

दो०—लखन कहेउ हँसि, सुनहु मुनि, क्रोध पाप - कर मूल।
जेहि[1] बस जन अनुचित करहिं, होहिं[2] बिस्व-प्रतिकूल ।। २७७ ।।

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप, करिय अब दाया।
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिय, होइहि पाँय पिराने। (१)
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई।
बोलत लखनहिं जनक डेराहीं। मष्ट करहु, अनुचित, भल नाहीं। (२)
थर थर काँपहिं पुर - नर - नारी। छोट कुमार खोट बड़ भारी।
भृगु-पति सुनि-सुनि निरभय बानी। रिस तन जरै, होइ बलहानी। (३)
३०७० बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा।
मन मलीन, तनु सुंदर कैसे। बिष - रस भरा कनक-घट जैसे। (४)

दो०—सुनि, लछिमन बिहँसे बहुरि[3], नयन तरेरे राम।
गुरु - समीप गवने सकुचि[4], परिहरि बानी बाम ।। २७८ ।।

मूल बताया गया है। जिसे क्रोध चढ़ आता है वह मनुष्य बहुत अनुचित और सांसारिक व्यवहारके विरुद्ध आचरण कर बैठता है ।। २७७ ।। देखिए मुनिराज ! मैं आपका सेवक हूँ। क्रोध छोड़कर अब दया कीजिए। क्रोध करके आप यह टूटा हुआ धनुष तो जोड़ नहीं पा सकते। आप थोड़ा बैठ जाइए। इतनी देर खड़े-खड़े आपके पाँव दुखने लगे होंगे। (१) यदि आप को यही धनुष इतना अधिक प्रिय है तो किसी गुणी (कारीगर)-को बुलवाकर इसे जुड़वा डालिए।' जैसे-जैसे लक्ष्मण बोलते जा रहे थे वैसे-वैसे जनकके प्राण सूखे जा रहे थे। इसलिये (उन्होंने लक्ष्मणको समझाते हुए) कहा—'बस, अब चुप हो रहो। यह अच्छी बात नहीं है।' (२) नगरके स्त्री-पुरुष अलग थर-थर काँपे जा रहे थे कि यह छोटा कुमार बड़ा खोटा है। उधर लक्ष्मणके निर्भय वचन सुन-सुनकर क्रोधके मारे परशुरामका शरीर ऐसा जला जा रहा था कि उनका बल ही घटता जा रहा था। (३) वे रामपर निहोरा (अहसान) लादते हुए बोले—'देख ! तेरा छोटा भाई जानकर मैं इसे छोड़े दे रहा हूँ। खोटे मन और सुन्दर शरीरवाला यह बालक वैसा ही है जैसे विषसे भरा हुआ सोनेका घड़ा हो।' (४) यह सुनकर तो लक्ष्मण फिर हँस दिए। तब रामने लक्ष्मणकी ओर आँखें तरेरी (कि यह सब चपलता मत करो)। यह देखकर लक्ष्मण व्यंग्य वचन कहना छोड़कर सकुचाते हुए गुरु विश्वामित्रके पास आ बैठे ।। २७८ ।।

१. तेहि। २. चरहिं। ३. बोले बिहँसि। ४. बहुरि।

३०६२-६३ यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकर: पर:। स्वर्गापवर्गव्याषेधकारणं परमर्षय: ।।
तेन हि विरम त्वेतत् क्षमासारा हि साधव:। वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ।वि०पु०
३०६४ भृगुतिलक नमस्ते मुञ्च वैमत्यमेतत् कुरु करुणमिदानीं मानसं मानशौण्ड ।। —अनर्घराघव
३०६५-६६ भग्नं शरासनं कोपान्न संश्लिष्येन्महामुने। सन्धेयं कारुणा केन स्नेहाधिक्यम्भवेद् यदा ।।
३०६८ सर्वे पौरा: परस्परं गदन्ति—लक्ष्मणोति चपल: ।।
३०६९-७० सधार्ष्ट्यं परुषं वचो मुहु: शृण्वतो जामदग्न्यस्य गात्रं महाक्रोधोद्भवे नोषतिस्म।
वत्स रामभद्र ! ते कनीयस्त्वान्न चास्यासून् हरामि।
३०७१ परशुराम:—अहो राम ! गौरो गरेण सम्पूर्ण: श्याम एव मतो मम। —ललितरामचरित

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोरि जुग पानी ।
सुनहु नाथ ! तुम सहज सुजाना । बालक - बचन करिय नहिं काना । (१)
बररै बालक एक सुभाऊ । इनहिं न संत[1] बिदूषहिं काऊ ।
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा । अपराधी मैं नाथ ! तुम्हारा । (२)
कृपा, कोप, बध, बंध गोसाईं । मो - पर करिय दास - की नाईं ।
कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई । मुनि-नायक ! सोइ करौं उपाई । (३)
३०८० कह मुनि, राम ! जाइ रिस कैसे । अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे ।
ऐहि - के कंठ कुठार न दीन्हाँ । तौ मैं काह कोप करि कीन्हाँ । (४)
दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप - रवनि , सुनि कुठार-गति घोर ।
परसु अछत देखौं जियत , बैरी भूप-किसोर ॥ २७९ ॥
बहै न हाथ, दहै रिस छाती । भा कुठार कुंठित नृप - घाती ।
भयउ बाम बिधि, फिरेउ सुभाऊ । मोरे हृदय कृपा, कसि, काऊ । (१)

तब रामने दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र, कोमल और शीतल वाणीसे कहा—'नाथ ! आप तो स्वभावसे ही सुजान (ज्ञानी) हैं, इसलिये आप इस बालकके वचनोंपर कोई ध्यान न दीजिए । (१) बर्रे और बालकोंका स्वभाव तो एक-सा होता है । इसीलिये सन्त लोग इन्हें कभी नहीं छेड़ते । सच पूछिए तो इसने आपका कुछ बिगाड़ा भी नहीं । आपका अपराधी तो वास्तवमें मैं हूँ । (धनुष तोड़कर जो अपराध किया है वह तो मैंने किया है) । (२) इसलिये गोसाईं ! कृपा, क्रोध, वध, बन्धन (जो कुछ भी आप दंड देना चाहें) वह सब अपना सेवक जानकर मुझे दीजिए । तो आप शीघ्र ऐसा उपाय बताइए जिससे आपका क्रोध दूर हो । मैं वही उपाय कर दूँगा ।' (३) इसपर मुनिने कहा—'बता राम ! मेरा क्रोध दूर हो तो कैसे हो ! देख ! अब भी तेरा भाई मेरी ओर टेढ़ी चितवन किए घूरे जा रहा है । (यदि अब भी मैं) इसके गलेपर कुठार नहीं चला पाया तब मैंने क्रोध करके किया ही क्या ? (४) मेरे जिस कुठारका भयंकर प्रभाव सुन-सुनकर राजाओंकी रानियांके गर्भ गिर-गिर जाते हैं, वही कुठार हाथमें होते हुए भी मैं इस वैरी राजकुकारको अपने सामने जीता खड़ा देख रहा हूँ (यह क्या मेरे लिये कम क्षोभकी बात है ?) । मेरा हाथ (इसे मारनेको) उठ नहीं रहा है, इधर क्रोधसे मेरी छाती जली जा रही है । राजाओंका वध करनेवाला यह कुठार भी कुण्ठित हुआ जा रहा है । जान पड़ता है कुछ विधाता ही विपरीत हो चला है कि मेरा स्वभाव बदला जा रहा है; नहीं तो मेरे हृदयमें कोई कृपा कहाँ आनेवाली थी । (१) आज इसी

१. विदुष ।

३०७४-७५-प्रणतो रामभद्रश्च जगाद जमदग्निजम् । बालोक्ति श्रद्धधीरन्नो प्रज्ञावन्तो भवादृशः ॥
३०७७ रामः—नायमस्यापराधः सापराधोहमिति विद्धि ।
३०८१ परश्वधेन न स्पृष्टः कंठः कोपेन किन्नु मे । उपरामं कथं यायादमर्षोऽसति पश्यति ॥ म०च०
३०८५ अहो गरीयान् कालः । आः शान्तो मे राजन्यशत्रुकुठारः । यदश्रुतचरमपि श्रावयति । अदृष्टचरमपि दर्शयति । —अनर्घराघव

आज दैव[1] दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि, बिहँसि, सिर नावा।
बाउ-कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला। (२)
जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भये, तनु राखु बिधाता।
देखु जनक! हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू। (३)
३०९० बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट, खोट नृप-ढोटा।
बिहँसे लखन, कहा मुनि-पाहीं[2]। मूँदे आँखि, कतहुँ कोउ नाहीं। (४)
दो०—परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोध।
संभु-सरासन तोरि सठ, करसि हमार प्रबोध॥ २८०॥
बंधु कहै कटु, संमत तोरे। तू छल-बिनय करसि कर जोरे।
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहिं त छाँड़ कहाउब रामा। (१)
छल तजि, करहि समर सिव-द्रोही। बंधु-सहित न त मारौं तोही।
भृगु-पति बकहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम, सिर नाए। (२)

दयाके कारण मैं इतना दुःसह दुःख सहे चला जा रहा हूँ।' यह सुनकर लक्ष्मणने हँसकर सिर नवाते हुए कहा—'आपकी कृपाका वायु भी आपकी मूर्तिके अनुकूल है क्योंकि जब आप बोलते हैं तब मानो उस कृपाके वायुके झोंकेसे फूल झड़े पड़ते हैं। (२) हे मुनि! यदि कृपा करनेपर आपका शरीर जला जा रहा है तब यदि आप कहीं क्रोध कर बैठते तब तो विधाता ही रक्षा कर पाते तो होती।' तब परशुरामने जनकको ललकारा—'देख जनक! यह मूर्ख बालक अब हठ करके यमपुरीमें घर बसानेको मचला पड़ रहा है। (३) इसे शीघ्र मेरी आँखोंकी ओट क्यों नहीं कर डालते? यह राजकुमार देखनेमें ही छोटा है पर है यह बड़ा खोटा।' इसपर लक्ष्मणने हँसकर कहा—'आप ही आँखें मूँद बैठिए तो कहीं कोई दिखाई नहीं देगा।' (४) इसपर तो परशुराम हृदयमें अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और वे रामसे बोले—'अरे शठ! तू शंकरका धनुष तोड़कर हमींको पाठ पढ़ाने चला है? ॥ २८०॥ तेरा भाई तेरे उभाड़नेपर इतनी कड़वी बातें बकता चला जा रहा है और तू बगलाभगत बना हाथ-जोड़ जोड़कर विनय किए जा रहा है। या तो तू संग्राममें मुझे संतुष्ट कर (मुझसे युद्ध कर) नहीं तो आजसे 'राम' कहलाना छोड़ दे। (१) अरे शिवके द्रोही! या तो तू छल (झूठा विनय) छोड़कर मुझसे युद्ध कर, नहीं तो तुझे और तेरे भाईको, दोनोंको यहीं ढेर किए डालता हूँ।' परशुराम कुठार उठाए बके चले जा रहे थे और राम सिर झुकाए मन ही मन मुसकराए जा रहे थे। (२) (वे मन ही मन कह रहे थे—) 'अपराध

[1] दया। [2] मन-माहीं।

३०८६ धिक् क्षत्रगोत्रे कृपाम्। —प्रसन्नराघव
३०८६-९० पश्य-पश्य जनकास्य धार्ष्ट्यं हठादयं संयमनीगेहं कर्तुमिच्छति। सपद्येनं दूरे कुरु॥
३०९१ संमीलिते च नयने नहि किञ्चिदस्ति। —अनर्घराघव
३०९४ संमत्या तव बन्धुश्च परुषं वक्ति दुर्जनः। कापट्येनैव विनयं करोषि त्वं छली महान्॥
परितोषय मां युद्धात् जामदग्न्यं युधप्रियम्। —ललितरामचरित

गुनहु लखन-कर हम-पर रोपू। कतहुँ सुधाइहु-तें बड़ दोषू।
टेढ़ जानि बंदइ[1] सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू। (३)
३१०० राम कहेउ रिस तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा।
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी। मोहि जानिय आपन अनुगामी। (४)
दो०—प्रभु सेवकहि समर कस, तजहु बिप्र-बर रोस।
वेष बिलोके कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोस॥ २८१॥
देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहि रिस, बीर बिचारी।
नाम जान, पै तुमहिं न चीन्हाँ। बंस सुभाय उतरु तेइ दीन्हाँ। (१)
जौं तुम औतेहु मुनि-की नाईं। पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं।
छमहु चूक अनजानत-केरी। चहिय बिप्र-उर कृपा घनेरी। (२)
हमहिं तुमहिं सरवरि कस नाथा। कहहु न, कहाँ चरन, कहँ माथा।
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु-सहित बड़ नाम तुम्हारा। (३)
३११० देव! एक गुन धनुष हमारे। नव गुन परम पुनीत तुम्हारे।

तो लक्ष्मणका है और क्रोध मुझपर उतारे ले रहे हैं। कभी-कभी सीधेपनसे भी बड़ी हानि हो बैठती है। टेढ़ेके आगे सब हाथ जोड़ते हैं। राहु भी ग्रसता है तो टेढ़े (द्वितीयाके) चन्द्रमाको नहीं ग्रसता।' (३) अब रामने कहना प्रारम्भ किया—'मुनीश्वर! आपके हाथमें कुठार है और उसके आगे यह लीजिए मेरा सिर है। स्वामी! आपका क्रोध जैसे भी मिटे आप वही कीजिए। मुझे आप अपना अनुचर (आपके पश्चात् आनेवाला अवतार) ही समझिए। (४) श्रेष्ठ विप्र! स्वामी और सेवकमें युद्धका क्या प्रश्न है! आप क्रोध छोड़िए (न कीजिए)। बालकने यदि कुछ कह भी दिया तो आपका वीर वेष देखकर ही कहा था। इसलिये उसका भी कोई दोष नहीं है॥ २७१॥ कुठार, बाण और धनुष धारण किए हुए देखकर और आपको वीर समझकर ही बालकको क्रोध हो आया। आपका नाम तो यह (पहलेसे ही) जानता था पर वह आपको पहचानता नहीं था। इसीलिये अपने वंशके स्वभावसे वह उत्तरपर उत्तर दिए चला जा रहा था। (१) यदि आप मुनिके वेषमें आते तो गोस्वामी! यह बालक आपके चरणोंकी धूल उठाकर सिर चढ़ाता। अब इस अबोधकी भूल क्षमा कर दीजिए। ब्राह्मणके हृदयमें तो यों ही बड़ी दया होनी चाहिए। (२) और फिर नाथ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी? कहाँ चरण और कहाँ मस्तक (इन दोनोंमें समता कैसी?)। मेरा तो छोटा-सा 'राम' मात्र नाम है और आपका 'परशु' लगा हुआ बड़ा-सा 'परशु-राम' नाम है। (३) देव! हमारे पास तो केवल एक गुणवाला धनुष है (जिसमें एक डोरी है) और आपके पास तो परम पवित्र नौ गुणों[2]वाला यज्ञोपवीत लटक रहा

१. संका। २. गुण=धागे। यज्ञोपवीतके ९ तन्तुओं (धागों)-में क्रमशः ओंकार, अग्नि, नाग, सोम, इन्द्र, प्रजापति, वायु, सूर्य और विश्वेदेवकी प्रतिष्ठा होती है।

३०९९ सरलं सम्मुखीकर्तुं सर्वोप्युत्सहते जनः। वंकुरं शङ्कते वक्तुं पूर्णमिन्दुं यथा तमः॥ललितराम०
३१०० अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम्। —हनुमन्नाटक
३१०७ रामः—क्षम्यतामज्ञास्यापराधः वीरस्वच्छन्दकं रूपमालोक्यैव दुरुक्तमनेन॥ —अनर्घराघव

सब प्रकार हम तुम-सन हारे। छमहु विप्र! अपराध हमारे। (४)

दो०—बार-बार मुनि, विप्रबर, कहा राम-सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हँसि[1], तहूँ बंधु-सम बाम॥ २८२॥

निपटहि द्विज करि जानहि मोहीं। मैं जस विप्र सुनावौं तोहीं।
चाप स्रुवा, सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू। (१)
समिध सेन चतुरंग सुहाई। महा-महीप भये पसु आई।
मैं यहि परसु काटि बलि दीन्हें। समर-जग्य जग कोटिक[2] कीन्हें। (२)
मोर प्रभाउ विदित नहिं तोरे। बोलसि निदरि विप्र-के भोरे।
भंजेउ चाप, दाप बड़[3] बाढ़ा। अहमिति, मनहुँ जीति जग ठाढ़ा। (३)
३१२० राम कहा, मुनि! कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि, लघु चूक हमारी।
छुअतहि टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना। (४)

है। हम तो यों भी आपसे सब प्रकारसे हारे ही हैं। हे विप्र! हमारे अपराध क्षमा कीजिए।' (४)

जब रामने परशुरामको बार-बार मुनि, विप्रवर आदि (ब्राह्मणवाची) शब्दोंसे सम्बोधित किया तब वे क्रोधकी हँसी हँसते हुए बोले—'हूँऽऽऽ! देख रहा हूँ तू भी अपने भाईसे कम खोटा नहीं है॥ २८२॥ तू मुझे निरा ब्राह्मण समझे बैठा है? देख सुन! मैं बताता हूँ मैं कैसा ब्राह्मण हूँ। धनुष ही मेरा स्रुवा हैं, बाण ही आहुति है, मेरा क्रोध ही धधकती हुई आग है, (१) सुन्दर चतुरंगिणी सेना ही समिधा (यज्ञकी लकड़ी) है, बड़े-बड़े राजागण ही बलि-पशु हैं जिन्हें इसी परशुसे काट-काटकर मैं उनकी बलि देता रहता हूँ। ऐसे-ऐसे करोड़ों समर-यज्ञ मैं संसारमें किए बैठा हूँ। (२) मेरा प्रभाव अभी तू जान नहीं पाया इसीलिये ब्राह्मणके धोखेमें मेरा निरादर किए चला जा रहा है। धनुष तोड़नेसे तेरा घमण्ड बढ़ गया है और तुझे इतना अहंकार हो गया है मानो संसार जीते खड़ा हो।' (३) यह सुनकर राम बोले—'मुनि! आप जो भी कुछ कहिए विचारकर कहिए। मेरे छोटेसे अपराधपर आप इतना अधिक क्रोध किए चले जा रहे हैं। यह पुराना धनुष तो छूते ही अपने आप दो-टूक हो गया। फिर भला मैं अभिमान करूँ भी तो किस बातपर करूँ! (४) भृगुनाथ! यदि आप समझते हैं कि हमने सचमुच ब्राह्मण कहकर आपका निरादर

१. हँसि। २. जप कोटिन्ह : संसारमें ऐसे करोड़ों समर-यज्ञ और जप कर डाले हैं। ३. बल।

३१०८-११ भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते संग्रामवार्तापि नो, सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि। यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजामस्माकं भरतो महो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम्॥ हनु०

३११३ जामदग्न्यः (सक्रोधम्)

३११४ आः पाप दुर्मुख! वशिष्ठ इव विश्वामित्र इव स्वस्तिवाचनिको ब्राह्मणस्ते परशुरामः।

३११७ क्षत्रसत्रे दीक्षितिनां तु चिरस्य होतायं परशुरस्माकमस्त्येव। —अनर्घराघव

३११८ कथं क्षत्रियजातिर्गर्वितो ब्राह्मणजातिं तृणाय मन्यसे॥

३११९ भार्गवः—अहो दर्पान्धता यदात्मनाकृतमस्माभिरुक्तमपि नावधारयति निजदुर्विनयम्।

३१२०-२१ रामः—मया स्पृष्टं न वाऽस्पृष्टं कार्मुकं पुरवैरिणः। भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत करोमि किम्। प्र०रा०

दो०—जौं हम निदरहिं बिप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ, अस को जग सुभट, जेहि, भय-बस नावहिं माथ ॥ २८३ ॥

देव, दनुज, भूपति, भट नाना। सम-बल, अधिक होउ बलवाना।
जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन, काल किन होऊ। (१)
छत्रिय[1]-तनु धरि समर सकाना। कुल-कलंक तेहि पाँवर आना।
कहौं सुभाउ न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी। (२)
बिप्र-बंस-कै असि प्रभुताई। अभय होइ, जौ तुमहिं डेराई।
सुनि मृदु, गूढ़ बचन रघुपति-के। उघरे पटल परसु-धर-मति-के। (३)
३१३० राम! रमा-पति! कर धनु लेहू। खैंचहु, मिटै मोर संदेहू।
देत चाप आपुहि चलि[2] गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ। (४)

दो०—जाना राम प्रभाउ[3] तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेम अमात ॥ २८४ ॥

किया है तो यह सच्ची बात भी सुन लीजिए कि संसारमें ऐसा योद्धा है कौन जिससे डरकर हम उसके आगे सिर झुका बैठें (उससे हार मान लें) ॥ २८३ ॥ हमारे समान या हमसे अधिक बलवान् कोई भी देवता, दानव, राजा तथा योद्धा यदि युद्धमें हमें ललकार बैठे तो हम उससे लड़े बिना नहीं मानेंगे चाहे वह काल ही क्यों न हो। (१) क्षत्रियका शरीर पाकर जो पुरुष युद्धसे डर भागे वह नीच तो कुलका कलंक और कोई कायर होगा। मैं अपने स्वभावकी बात कह रहा हूँ, कुलकी प्रशंसा नहीं करता कि रघुवंशी तो युद्धमें कालसे भी नहीं डरते। (२) ब्राह्मण-वंशकी कुछ ऐसी महत्ता ही है कि जो आपसे डरता रहता है वह सदा निर्भय हुआ रहता है। रामके कोमल और गूढ वचन सुनते ही (कि मैं कालका भी काल हूँ। मैं ब्राह्मणोंका आदर करता हूँ क्योंकि आपके पूर्व पुरुष भृगुकी लात मैंने आदरपूर्वक छातीपर सह ली थी और उसका चिह्न सदा धारण करता हूँ और उन्हींके आशीर्वादसे निर्भय होकर आपसे बात कर रहा हूँ), परशुरामकी बुद्धिके परदे सरक गए (उनका अहंकार मिट गया और वे रामको पहचान गए कि ये विष्णुके अवतार हैं।) (३) (वे रामसे बोले)—'हे राम! हे लक्ष्मी-पति! (विष्णु भगवान्‌का दिया हुआ) यह धनुष अपने हाथमें लीजिए और ऐसे खींचिए कि मेरा (रहा-सहा) सन्देह भी मिट जाय।' परशुराम अभी वह धनुष उतारकर (रामके हाथोंमें) थमा ही रहे थे कि वह उनके कंधेसे उतरकर रामके हाथमें जा पहुँचा।[4] यह देखकर तो परशुराम चकित रह गए। (४) अब वे रामका ठीक-ठीक प्रभाव समझ पाए। उनका शरीर पुलकित और प्रसन्न हो उठा। उनके मनमें ऐसा प्रेम उमड़ा कि वह उनके हृदयमें समा नहीं पा रहा था। वे हाथ

१. छत्री। २. चढ़ि। ३. प्रताप। ४. देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ : 'परशुराम धनुष दे ही रहे थे कि वह अपने आप चढ़ गया (उसकी प्रत्यञ्चा अपने आप धनुषकी कोरपर जा चढ़ी)।

३१२६ राजन्यो भयशीलस्तु संख्यात् कातर उच्यते। —महाभारत
३१२७-२८ राघवा न विशङ्कन्ते युद्धे शत्रुदलात् क्वचित्। विप्रप्रसादतस्सर्वे सदा सन्नद्धकन्धराः ॥सत्यो०
३१२९-३० राजन्यकप्रधनसाधनमस्मदीयमाकर्ष कार्मुकमिदं गरुडध्वजस्य ॥
३१३१ रामस्तदादाय धनुः सहेलं बाणं गुणे योज्य तदा चकर्ष। —हनुमन्नाटक

जय रघुबंस - बनज - बन - भानू । गहन - दनुज - कुल - दहन कृसानू ।
जय सुर - बिप्र - धेनु - हितकारी । जय मद - मोह - कोह - भ्रम-हारी । (१)
बिनय - सील - करुना - गुन - सागर । जयति बचन - रचना - अति-नागर ।
सेवक - सुखद, सुभग सब अंगा । जय सरीर छबि कोटि अनंगा । (२)
करौं काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस - मन - मानस - हंसा ।
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता । छमहु छमा - मंदिर दोउ भ्राता । (३)
३१४० कहि जय जय जय रघुकुल - केतू । भृगु - पति गये बनहिं तप - हेतू ।
अपभय कुटिल[1] महीप डेराने । जहँ - तहँ कायर गँवहिं पराने । (४)
दो०—देवन दीन्हीं दुंदुभी , प्रभु - पर बरसहिं फूल ।
हरषे पुर - नर - नारि सब , मिटेउ मोहमय[2] सूल ।। २८५ ।।
अति गहगहे बाजने बाजे । सबहिं मनोहर मंगल साजे ।

जोड़कर कहने लगे—।। २८४ ।। 'हे रघुवंशके कमलोंके वनके (खिलानेवाले) सूर्य ! राक्षसोंके कुलका वन भस्म कर डालनेवाले अग्निदेव ! आपकी जय हो । देवता, ब्राह्मण और गौके हितकारी ! आपकी जय हो । मद, मोह, क्रोध और भ्रम दूर कर डालनेवाले ! आपकी जय हो । (१) विनय, शील, कृपा आदि गुणोंके भांडार ! (अवसरके अनुकूल) वचनोंकी (ठीक-ठीक) रचना करनेमें अत्यन्त चतुर ! आपकी जय हो । हे सेवकोंको सुख देनेवाले ! सब अंगोंसे सुन्दर ! शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी शोभा धारण करनेवाले ! आपकी जय हो । (२) मैं एक मुखसे भला आपकी प्रशंसा ही क्या कर सकता हूँ ? शिवके मनके मानसरोवरके हंस ! आपकी जय हो । आपको विना पहचाने (कि आप सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं) मैंने आपको बहुत अनुचित शब्द कह डाले । आप दोनों भाई तो क्षमाके निधान हैं, मुझे क्षमा कीजिए । (३) हे रघुके कुलकी (दिग्विजयका परिचय देनेवाली) पताकाके समान राम ! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो !!!' इस प्रकार रामकी स्तुति करके परशुराम वहाँसे तप करने वन चले गए । (यह देखकर) वहाँ जितने कुटिल राजा अपभय (नि:शंक) हुए बैठे थे वे सब सहम उठे और सभी कायर वहाँसे धीरेसे खिसक भागे । (४) (फिर क्या था !) देवताओंने नगाड़े बजा-बजाकर रामपर पुष्पोंकी झड़ी लगा दी । अब तो नगरके स्त्री-पुरुषोंके भी जीमें जी आया । अज्ञानतासे (रामको ठीक-ठीक न जाननेके कारण) जो कष्ट (चिन्ता, भय) सबके मनमें उत्पन्न हो चला था वह सब मिट गया ।। २८५ ।।

चारों ओर ढमाढम बाजे बज उठे । सब लोगोंने मंगल साज सजाने प्रारंभ कर दिए । सलोने

१. सकल । २. मोह भय : अज्ञानसे उत्पन्न भयका कष्ट जाता रहा ।

३१३४-३६ नमोऽस्तु जगतान्नाथ नमस्ते भक्तिभावन । नमः कारुणिकानन्त रामचन्द्र नमोऽस्तुते ।।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय रामाय गोविन्दाय नमो नमः।।—अ०रा०
३१३७ कोटिकन्दर्पलावण्यप्रणतार्तिप्रणाशन । रामचन्द्र महाभाग गुणांस्ते वक्तुमक्षमः ।।—सत्योपा०
३१४० जामदग्न्यः—रामभद्र ! मामनुमोदस्व अरण्यगमनाय । —महावीरचरित
३१४१ दुद्रुवुर्भयसंविग्ना दुर्भूपा ये समागताः ।
३१४२ दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तदाऽभवत् ।। —सत्योपाख्यान

जूथ - जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी । करहिं गान कल कोकिल - बयनी । (१)
सुख विदेह - कर बरनि न जाई । जन्म - दरिद्र मनहुँ निधि पाई ।
बिगत - त्रास भइ सीय सुखारी । जनु बिधु-उदय चकोर - कुमारी । (२)
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा । प्रभु - प्रसाद धनु भंजेउ रामा ।
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई । अब जो उचित सो कहिय गोसाईं । (३)
३१५० कह मुनि, सुनु नरनाथ ! प्रवीना । रहा बिबाह चाप - आधीना ।
टूटत ही धनु भयउ बिबाहू । सुर, नर, नाग, बिदित सब काहू । (४)
दो०—तदपि जाइ तुम करहु अब , जथा - बंस ब्यवहार ।
बूझि बिप्र, कुल-बृद्ध, गुरु , वेद - बिदित आचार ।। २८६ ।।
दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दसरथहिं बोलाई ।
मुदित राउ, कहि भलेहि कृपाला । पठए दूत बोलि तेहि काला । (१)
बहुरि महाजन सकल बोलाए । आइ सबन सादर सिर नाए ।
हाट बाट मंदिर सुर - वासा । नगर सँवारहु चारिहु पासा । (२)

मुखड़े, रसीले नेत्र तथा कोयलके समान मधुर स्वर-वाली स्त्रियाँ झुण्डकी झुण्ड मिलकर मधुर गीत गा उठीं । (१) राजा जनकको तो इतना हर्ष हुआ, इतना हर्ष हुआ कि वर्णन नहीं किया जा सकता मानो किसी जन्मसे दरिद्र व्यक्तिको ढेरका ढेर धन हाथ आ लगा हो । सीताकी भी सारी घबराहट जाती रही । वे तो ऐसी प्रसन्न हो उठीं जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर कोई चकोर-की बच्ची झूम उठी हो । (२) जनकने जाकर विश्वामित्रके पैर पकड़ लिए और कहा— 'आज प्रभु (आप)-की कृपासे ही राम धनुष तोड़ पाए हैं । इन दोनों भाइयोंने (आज) मुझे कृतार्थ कर डाला । गोस्वामी ! अब जो कुछ करना उचित हो, वह आज्ञा कीजिए (तो कर डाला जाय) ।' (३) इसपर मुनि विश्वामित्र बोले—'हे चतुर नरेश ! देखो । देवता, मनुष्य और नाग सब जानते हैं कि (जानकीका) विवाह तो धनुष टूटनेपर ही अवलम्बित था । इसलिये जहाँतक विवाहकी बात है, वह तो धनुष टूटते ही हो चुका । (४) फिर भी आप जाकर अपने कुलके व्यवहारके अनुसार ब्राह्मणों, कुलके बड़े-बूढ़ों और गुरुजनोंसे पूछकर वेदकी विधिसे जैसा कुछ उचित आचार हो वैसी ही व्यवस्था कर लीजिए ।। २८६ ।। आप अभी जाकर अपना दूत अयोध्यापुरी भेज दीजिए जो राजा दशरथको निमन्त्रण दे आवे ।' राजा जनकने बहुत प्रसन्न होकर कहा—'बहुत अच्छा !' और उसी समय उन्होंने दूत बुलाकर (अयोध्यापुरी) भेज दिए । (१) यह करके जनकने (नगरके) सब महाजनोंको बुलवा भेजा । वे (सुनते ही) सब लपके चले आए और सबने राजा जनकको आदर-पूर्वक आ प्रणाम किया । (राजा जनकने उनसे कहा—) 'अब आप लोगोंका काम यही है कि सभी

३१४५ तदा वाद्यान्यवाद्यन्त जनकस्य महात्मनः । गायन्ति ललनास्तत्र कलकण्ठ्यो वराननाः ।।
३१४६ मोदमापुर्विदेहस्तु यथा लब्धधनोऽधनः ।।
३१४८-४६ मनोरथो मदीयस्तु पूर्णोऽभूत् त्वद्दयावशात् । एताभ्यां राजपुत्राभ्यां कृतार्थोऽहं न संशयः।।सत्यो०
३१५४ विवाहार्थं कुमाराणां दूतान् प्रेषय सत्वरम् । राजा दशरथः शीघ्रमागच्छतु सपुत्रकः ।।
३१५५ तथेति प्रेषयामास दूतांस्त्वरितविक्रमान् ।। —अध्यात्मरामायण
३१५७ स्वपुरं रचयामास विचित्रं परमोत्सवम् । सिक्तमार्गं संस्कृतं च शोभितम्परमर्द्धिभिः ।।–सत्यो०

हरषि चले निज-निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए[1]।
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन, चले सचु पाई। (३)
३१६० पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान-बिधि-कुसल, सुजाना।
बिधिहिं बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक-कदलि-के खंभा। (४)
दो०—हरित मनिनके पत्र-फल, पदुमराग-के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि-कर भूल ॥ २८७ ॥
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल, सपर्व, परहिं नहिं चीन्हें।
कनक-कलित अहि-बेलि बनाई। लखि नहिं परै सपर्न सुहाई। (१)
तेहि-के रचि पचि बंध बनाए। बिच-बिच मुकुता-दाम सुहाए।
मानिक, मरकत, कुलिस, पिरोजा। चीरि, कोरि, पचि, रचे सरोजा। (२)
किए भृंग, बहुरंग बिहंगा। गुंजहिं, कूजहिं पवन-प्रसंगा।
सुर-प्रतिमा खंभनि गढ़ि काढ़ीं। मंगल-द्रव्य लिये सब ठाढ़ीं। (३)

हाट, मार्ग, देवालय तथा पूरा नगर चारों ओरसे झकाझक सजा डालिए।' (२) यह सुनना था कि महाजन लोग प्रसन्न हो-होकर अपने-अपने घर लौट आए। फिर राजाने सब परिचारकों (सेवकों)-को बुलवाकर उन्हें आज्ञा दी कि (विवाहके लिये) बढ़िया सुहावना रंग-बिरंगा मण्डप सजाकर बना खड़ा करो। आज्ञाकी देर थी कि झट उनकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ाकर वे प्रसन्न होकर चल पड़े। (३) उन्होंने तत्काल ऐसे बहुतसे चतुर कारीगरोंको बुलवा भेजा जो मण्डप सजानेके काममें बड़े कुशल थे। उन (कारीगरों)-ने आते ही विधाता (विश्वकर्मा)-की वन्दना करके (मण्डप बनानेका) कार्य आरम्भ कर दिया। सोनेके केलेके खंभे बना दिए गए। (४) उनमें हरित-मणि (पन्नों)-के पत्ते और फल बनाकर लटका दिए गए और माणिक्य (लाल)-की घौर बनाकर लटका दी गई। मण्डपकी ऐसी अनोखी बनावट देखकर तो विधाताका मन भी चक्करमें पड़ा जा रहा था (कि हमसे भी बढ़िया यह कारीगरी यहाँ किसने कर दिखाई।) ॥ २८७ ॥ पन्ने जड़-जड़कर सीधे और गाँठवाले ऐसे बाँस बना खड़े किए गए कि वे पहचानमें ही नहीं आ रहे थे (कि ये पन्नेके बने हैं या बाँस ही हैं)। पत्तोंसे लदी पानकी लताएँ सोनेसे ऐसी बनाई गई थीं कि पहचान नहीं पड़ रही थीं (कि ये लताएँ सचमुच पानकी ही हैं या बनावटी)। (१) उन्हीं (लताओं)-से बने और पच्चीकारी किए हुए बन्धन (बाँधनेके डोरे) बनाए गए थे जिनके बीच-बीचमें लटकी हुई मोतीकी मालाएँ शोभा दे रही थीं। काट-काटकर और छील-छीलकर माणिक (लाल), नीलम, हीरा और फीरोजेकी पच्चीकारी कर-करके कमल बना डाले गए थे। (२) उन (कमलों)-पर बहुतसे भौंरे और रंग-बिरंगे पक्षी बना बैठाए गए थे जो वायु चलते ही गूँजने और चहचहाने लगते थे। (मंडपके) खम्भोंपर देवताओंकी ऐसी मूर्तियाँ

१. परिचारक निकर बोलाए : सब सेवकोंको बुलवा लिया।

३१६१ प्रांगणं रचयामास रंभास्तम्भसमन्वितम्। सवितानं मण्डपं च गुणज्ञैः कारुभिर्नृपः ॥
३१६८ क्वचित् सिंहाः कृत्रिमाश्च क्वचित्सारसपंक्तयः। क्वचित् शिखंडिनस्तत्र कृत्रिमाश्च मनोहराः ॥
३१६९ दर्शिता वररत्नाढ्या लोकपालास्तथैव च। सर्वे देवा यथार्थं वै कृताश्च विश्वकर्मणा ॥ सत्यो०

३१७० चौकें भाँति अनेक पुराईं। सिंधुर - मनिमय सहज सुहाईं। (३॥)

दो०—सौरभ - पल्लव सुभग सुठि , किए नील - मनि कोरि।
हेम - बौर, मरकत - घवरि , लसत पाटमय डोरि ॥ २८८ ॥

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहु मनोभव - फंद सँवारे।
मंगल - कलस अनेक बनाए। ध्वज, पताक, पट, चँवर सुहाए। (१)
दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि, बिचित्र बिताना।
जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै, अस मति कबि केही। (२)
दूलह राम रूप - गुन - सागर। सो बितान तिहुँ-लोक - उजागर।
जनक - भवन - कै सोभा जैसी। गृह - गृह प्रति, पुर देखिय तैसी। (३)
जेहि तिरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगति[1] भुवन दस-चारी।
३१८० जो संपदा नीच - गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा। (४)

गढ़कर खड़ी कर दी गई थीं जो मंगल द्रव्य[2] लिए हुए थीं। (३) अनेक प्रकारकी कला लगाकर गज-मुक्ताओंसे ऐसा सुन्दर चौक पूर दिया गया था कि वह स्वभावसे ही सुहावना दिखाई पड़ रहा था। (३॥) नीलम छील-छीलकर आमके मनोहर पत्ते बना दिए गए थे और उनपर सोनेकी बौर (आमकी मंजरी) बनाकर रेशमकी डोरमें बाँध लटकाई गई थी ॥ २८८ ॥ बन्दनवार तो ऐसी सुन्दर और मनोहर बनाई गई थी मानो कामदेवने (सबके चित्त बरबस फँसा लेनेके लिये) फंदे बना टाँगे हों। (स्थान-स्थान पर) अनेक मंगल कलश सजा-सजाकर रख दिए गए थे जिनपर ध्वजा, पताका, वस्त्र और चँवर ला टाँगे गए थे (१) और जिनपर सुन्दर मणियोंके दीपक सजे धरे थे। वह मण्डप ऐसा सजीला बन गया था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। भला जिस मण्डपमें जानकी दुलहिन (बनकर बैठनेवाली) हों, उसका वर्णन करनेकी बुद्धि (शक्ति) हो ही किस कविमें सकती है ? (२) जिस मण्डपमें रूप और गुणके निधान राम दूल्हा (बनकर बैठनेवाले) हों, उस मंडपकी प्रसिद्धि तो तीनों लोकोंमें हो ही जानी चाहिए। जैसी शोभा जनकके भवनकी थी, वैसी ही नगरके घर-घरमें दिखाई पड़ रही थी। (३) उस समय जिस किसीने भी तिरहुत (तीरभुक्ति, जनकपुर) देख लिया, उसे (उसके आगे) चौदहों लोकों[3]की शोभा भी तुच्छ जान पड़ने लगी। उस समय सामान्य छोटे घरमें भी जो सम्पत्ति सजी धरी थी, उसे देख-देखकर इन्द्र भी तरसे जा रहे थे (कि हाय ! इतना तो हमारे पास भी नहीं है)। (४) जिस नगरमें

---

१. लाग। २. मंगल द्रव्य : दूर्वा (दूबके अंकुर), दधि, रोचना, कुंकुम, चन्दन, पान, सुपारी, हलदी, पुष्प, माला, स्वर्ण, अक्षत, धूप, दीपक, मोदक, जल-भरा पात्र। ३. चौदह लोक : भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, तल अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल।

३१७१-७२ पट्टसूत्रैः संनिबद्धं रसालपल्लवान्वितम् ॥
३१७३-७५ मालतीमाल्यसंयुक्तं लसत्तोरणसुप्रभम्। शोभितं मंगलद्रव्यैश्चतुर्दिक्षु स्थितैश्शुभैः ॥
३१७६-७७ मंडपं यत्र वैदेही वधूरूपेण भासते। वरत्वेन तथा रामः को हि तद्वर्णनक्षमः ॥ सत्यो०

दो०—बसै नगर जेहि लच्छि, करि, कपट, नारि - वर - बेष ।
तेहि पुर - कै सोभा कहत, सकुचहिं सारद - सेष ।। २८९ ।।

पहुँचे दूत राम - पुर पावन । हरषे नगर बिलोकि सुहावन ।
भूप - द्वार तिन्ह खबरि जनाई । दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई । (१)
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्हीं । मुदित महीप आपु उठि लीन्हीं ।
बारि बिलोचन बाँचत पाती । पुलक गात, आई भरि छाती । (२)
राम - लखन उर, कर बर चीठी । रहि गये कहत न खाटी-मीठी ।
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची । हरषी सभा, बात सुनी साँची । (३)
खेलत रहे, तहाँ सुधि पाई । आए भरत सहित - हित[1] भाई ।
३१९० पूछत अति सनेह सकुचाई । तात ! कहाँ - तें पाती आई । (४)

दो०—कुसल प्रान-प्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहि देस ।
सुनि सनेह - साने बचन, बाँची बहुरि नरेस ।। २९० ।।

साक्षात् लक्ष्मी (जानकी) अपनी मायाके बलसे सुन्दरी स्त्रीका कपट रूप बनाए आई बैठी हों उस नगरकी शोभाका वर्णन करनेमें (मुझे ही नहीं) सरस्वती और शेषको भी झिझक होगी ।। २८९ ।।

इधर राजा जनकने जो दूत भेजे थे वे चलकर रामकी पवित्र पुरी (अयोध्या) जा पहुँचे । वह सुहावना नगर देखते ही वे प्रसन्न हो उठे । दूतोंने राजा दशरथकी ड्योढीपर (पहुँचते ही अपने आनेका) समाचार कहला भेजा । ज्यों ही समाचार मिला त्यों ही राजा दशरथने उन्हें भीतर बुलवा लिया । (१) (दूतने) राजाको प्रणाम करके (जनकका) पत्र उनके हाथमें जा दिया । राजा दशरथने बहुत प्रसन्न होकर स्वयं उठकर उनके हाथसे पत्र ले लिया । पत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखें डबडबा चलीं, शरीर रोमाञ्चित हो उठा और प्रेमसे छाती भर आई । (२) राम और लक्ष्मण उनके हृदयमें आ बसे और उन (-के विवाह)-का पत्र हाथका हाथमें ही रक्खा रह गया । उसमें भला-बुरा क्या लिखा है यह भी न कह पाए । फिर बहुत धीरज धरकर (सँभलकर) उन्होंने जब पत्र बाँचा तो पूरी बात जानकर राजा दशरथके साथ-साथ सारी राजसभा हर्षित हो उठी । (३) पत्र आनेका समाचार पाते ही भरत, जहाँ अपने मित्रों और भाई शत्रुघ्नके साथ खेल रहे थे, वहाँसे झट दौड़े चले आए और अत्यन्त स्नेहसे सकुचाते हुए पूछने लगे—'क्यों पिताजी ! पत्र कहाँसे आया है ? (४) प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हमारे दोनों भाई कुशलसे तो हैं न ? इस समय वे हैं कहाँ ?' उनकी स्नेह-भरी वाणी सुनकर राजा दशरथने वह चिट्ठी पूरी बाँच

१. दोउ ।

३१८१-८३ दृष्ट्वा विदेहालयकान्तिमुत्तमां लुलोभ शक्रोपि महामनाः पुनः ।
विराजते यत्र स्वयं रमा कुतः शेषोप्यशेषं कथितुं न च क्षमः ।। —आनन्दरामायण

३१८३ जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः । त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्याम्प्राविशन् पुरीम् ।।वा०

३१८६-८७ ते राजवचनाद् गत्वा रामश्रेयोऽन्यवेदयन् । श्रुत्वा रामकृतं राजा हर्षेण महताप्लुता ।।

३१८८ धैर्यमाधाय राजा तु वाचयामास पत्रिकाम् । —अध्यात्मरामायण

३१८९-९२ तातागतम्पत्रमदः कुतश्चित् चेद् भ्रातृसम्बन्धि वद द्रुतन्त्वम् ।
सहानुजः क्वापि सुवर्तते सः श्रुत्वा मुहुर्वाचितवान् पलाशम् ।। —ललितरामचरित

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु, समात न गाता।
प्रीति पुनीत भरत-कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी। (१)
तब नृप, दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे।
भइया! कहहु कुसल दोउ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे। (२)
स्यामल-गौर, धरे धनु-भाथा। बय किसोर, कौसिक मुनि साथा।
पहिचानहु तुम? कहहु सुभाऊ। प्रेम-बिबस पुनि-पुनि कह राऊ। (३)
जा दिन-तें मुनि गए लिवाई। तब-तें आज साँचि सुधि पाई।
३२०० कहहु, बिदेह कवन बिधि जाने। सुनि प्रिय बचन, दूत मुसुकाने। (४)

दो०—सुनहु महीपति-मुकुट-मनि, तुम सम धन्य न कोउ।
राम-लखन जिनके तनय, बिस्व-बिभूषन दोउ॥ २९१॥

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुष-सिंघ तिहुँ-पुर-उजियारे।
जिनके जस-प्रताप-के आगे। ससि मलीन, रबि सीतल लागे। (१)
तिन्ह-कहँ कहिय नाथ किमि चीन्हे। देखिय रबि कि दीप कर लीन्हे।
सीय-स्वयंबर भूप अनेका। सिमटे सुभट एक-तें एका। (२)

सुनाई ॥ २९० ॥ पत्र सुनते ही दोनों भाई पुलकित हो उठे (हर्षसे उछल पड़े)। उनके (हृदयमें अपने भाइयोंके लिये) इतना अधिक स्नेह उमड़ पड़ा कि वह शरीरमें समा नहीं पा रहा था। भरतका यह पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा खिल उठी। (१) तब राजा दशरथने दूतको अपने पास बुला बैठाया और मधुर मनोहर वाणीमें उनसे पूछा—'कहो भैया ! दोनों बच्चे कुशलसे तो हैं न ! तुमने स्वयं अपनी आँखोंसे उन्हें भली भाँति देखा है न ! (२) देखो ! उनमें एक साँवले हैं और दूसरे गोरे हैं। वे हाथोंमें धनुष लिए और पीठपर तूणीर बाँधे रहते हैं। वे किशोर अवस्थाके हैं और मुनि विश्वामित्रके साथ गए हैं। तुम उन्हें पहचान गए हो तो बताओ उनका रंग-ढंग, उनकी बोल-चाल (शीलता) तुम्हें कैसी लगी ?' राम और लक्ष्मणके प्रेममें राजा दशरथ इतने मग्न हो चले थे कि दूतोंसे वे बार-बार बस यही पूछे जा रहे थे। (३) राजा दशरथ कहते जा रहे थे—'जिस दिनसे मुनि विश्वामित्र उन्हें यहाँसे लिवाकर ले गए, तबसे आज पहले-पहल उनका ठीक-ठीक समाचार हमें मिल रहा है। अच्छा बताओ, राजा जनकने उन्हें पहचाना कैसे ?' राजा दशरथके ऐसे प्रिय वचन सुन-सुनकर दूत मुसकराए पड़ रहे थे। (४) (दूतोंने कहा—) 'हे राजाओंके मुकुट-मणि ! आपके समान धन्य संसारमें दूसरा कोई है नहीं, जिसके पुत्र विश्वके विभूषण राम और लक्ष्मण-जैसे हों ॥ २९१ ॥ आपके सुपुत्रों (को पहचाननेके लिये) क्या किसीसे पूछनेकी आवश्यकता होती है। वे पुरुष-सिंह तो पृथ्वीको ही नहीं, तीनों लोकोंको चमकाए डाल रहे हैं। उनके यश और प्रतापके आगे चन्द्रमा भी धुँधला और सूर्य भी ठंढा जान पड़ने लगता है। (१) बताइए नाथ ! ऐसे (प्रतापी पुत्रों)-के लिये आप पूछ रहे हैं कि (राजा जनकने) उन्हें पहचाना कैसे ? क्या सूर्यको भी दीपक लेकर पहचाना जाता है ? (मैं आपको सब बता रहा हूँ कि) सीताके स्वयंवरमें न जाने कितने अनगिनत राजा

३१९३-९४ रचनान्निशम्य पत्रस्य प्रोतम्भ्रातृद्वयं तदा। सभ्याः स्नेहम्परं दृष्ट्वा ननन्दुर्भरतस्य च॥ल०रा०च०

संभु - सरासन काहु न टारा। हारे सकल बीर बरियारा।
तीनि लोक - महँ जे भट - मानी। सब-कै सकति संभु-धनु भानी। (३)
सकै उठाई सुरासुर[1] मेरु। सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू।
२२१० जेहि कौतुक सिव - सैल उठावा। सोउ तेहि सभा पराभउ पावा। (४)
दो०—तहाँ राम रघुबंस - मनि , मुनिय महा - महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास - बिनु , जिमि गज पंकज - नाल ।। २९२ ।।
सुनि सरोष भृगुनायक आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए।
देखि राम - बल, निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय, गवन बन कीन्हा। (१)
राजत राम अतुल बल जैसे। तेज - निधान लखन पुनि तैसे।

और एकसे एक बढ़कर योद्धा आ एकत्र हुए थे। (२) पर शिवका धनुष वहाँ किसीके सरकाए न सरक पाया। वहाँ जितने बड़े-बड़े वीर आए हुए थे सब अपना-सा मुंह लिए हार मानकर बैठ रहे। यहां-तक कि जो देवता और दैत्य (अपने हाथपर) सुमेरु पर्वत भी उठा ले सकते हैं वे भी अपने हृदयमें हार मानकर धनुषकी परिक्रमा करके (फेरी लगाकर) अपने घर लौट गए। जिस (रावण)-ने खेल-खेलमें कैलास पर्वत अपने हाथोंपर उठा धरा था, वह भी उस सभा में हारकर अपना सा मुंह लिए लौट गया। (४) राजाधिराज ! आपको मैं क्या सुनाऊँ ? उसी सभामें रघुवंशके मणि रामने बिना प्रयासके ही शिवका वह धनुष उठाकर वैसे ही दो-टूक कर डाला जैसे कोई हाथी कमलकी नाल तोड़ डालता हो ।। २९१ ।। इसी बीच धनुष टूटनेकी कड़क सुनकर क्रोधमें भरे हुए परशुराम भी वहाँ आ धमके और उन्होंने बहुत लाल-पीली आँखें कीं। पर अन्तमें जब उन्होंने रामका बल देख लिया तो वे अपना धनुष (रामको) देकर और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करके (तपस्या करने) वन चले गए। (१) राजन् ! जैसे राम अतुलनीय बलवान् हैं, वैसे ही लक्ष्मण भी इतने बड़े तेजस्वी हैं कि उनका मुंह देखते ही सब

१. सरासुर=बाणासुर : जो बाणासुर अपने हाथपर सुमेरु उठा ले सकता है। [यही पाठ ठीक है]

३२०९-१० हे पिता हि बहवो नरेश्वरास्तेन तात धनुषा धनुर्भृतः।
ज्यानिघातकठिनत्वचाभुजान् स्वान् विधूय धिगिति प्रतस्थिरे ।। —रघुवंश
३२११-१२ तच्च रत्नं धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना। रामेण हि महाबाहो महत्याञ्जनसंसदि।।
यो लोकवीरसमितौ धमुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ।।–भागवत ९।१०।६
करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम्।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदंडं मदकयु रुक्रमः ।।–भागवत १०।४२।१७
३२१३-१४ जमदग्नेस्तदा पुत्रः क्षत्रियाणां कुलान्तकः। नाम्ना परशुरामश्च हरेर्दर्शनकांक्षया ।।
प्रोवाचागत्य रामं तु धनुर्बाणधरः स्वयम्।
परशुराम उवाच–रामचन्द्र महाभाग धनुर्भंगस्त्वया कृतः। विश्वासस्तेन मे जातो रामो नारायणः स्वयम्।
इदं धनुर्वरं राम विष्णोरमिततेजसः ।। —वाल्मीकीयरामायण
गृह्णीष्व भो महाराज पादौ ते प्रणमाम्यहम्। रामं च सीतया सार्धं हृदि न्यस्य ययौ वनम् ।।सत्योपा०

कंपहिं भूप बिलोकत जाके। जिमि गज, हरि-किसोर-के ताके। (२)
देव ! देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि-तर आवत कोऊ[1]।
दूत - वचन - रचना प्रिय लागी। प्रेम - प्रताप - बीर - रस - पागी। (३)
सभा - समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे।
३२२० कहि अनीति, ते मूँदहिं काना। धरम बिचारि, सबहिं सुख माना। (४)

दो०—तब उठि भूप बसिष्ठ-कहँ, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरुहि सब, सादर दूत बोलाइ॥ २९३॥

सुनि, बोले गुरु,[2] अति सुख पाई। पुन्य पुरुष-कहँ महि सुख छाई।
जिमि सरिता सागर - महँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं। (१)
तिमि सुख - संपति बिनहिं बोलाए। धरम - सील - पहँ जाहिं सुभाए।
तुम गुरु - विप्र - धेनु - सुर - सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी। (२)

राजा ऐसे थर्रा उठते थे जैसे सिंहके बच्चेको देखकर हाथी काँप जाता है। (२) देव ! आपके दोनों बालकोंको एक बार देखकर अब कोई दूसरा आँखों-तले आ नहीं पा रहा है (जँच नहीं रहा है)'। राजा दशरथकी सभामें जितने लोग बैठे थे उन सबको दूतोंकी यह प्रेम, प्रताप और वीर रससे भरी हुई वचन-चातुरी बहुत अच्छी लगी। (३) सभाके सदस्य और राजा दशरथ सब प्रेममें इतने मग्न हो गए कि वे तो दूतोंको न्योछावरपर न्योछावर लुटाए दे रहे थे, पर वे थे कि कुछ ले ही नहीं रहे थे और दोनों हाथोंसे अपने कान मूंदे कहे जा रहे थे कि आपसे भला हम ले कैसे सकते हैं। यह तो व्यवहारके विरुद्ध बात है (हम कन्या-पक्षवाले आपसे कैसे कुछ ले सकते हैं ?)। यह बात सबको उचित प्रतीत हुई और इससे सब बड़े प्रसन्न भी हुए। (४)

वहाँसे उठकर राजाने वह जनकका भेजा हुआ पत्र वशिष्ठको ले जा दिखाया और आदर-पूर्वक दूतोंको बुलवाकर उन्हींके मुंहसे सारी कथा गुरु वशिष्ठको भी कहलवा सुनवाई॥ २९३॥ सारा समाचार सुनकर, गुरु वशिष्ठ बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले—'पुण्यात्मा पुरुषके लिये पृथ्वीपर चारों ओर सुख ही सुख बरसता रहता है। यद्यपि समुद्रको यह कामना नहीं रहती कि नदियाँ आ-आकर मुझमें मिलें किन्तु जैसे सब नदियाँ समुद्रमें जा-जाकर गिरती ही हैं (१) वैसे ही सारी सुख और सम्पत्ति बिना बुलाए ही धर्मात्माओंके पास दौड़ी चली आती है। फिर आप तो गुरु, ब्राह्मण, देवता और गौओंकी सेवा करते रहते हैं और आपकी रानी कौशल्या भी वैसी ही धर्मात्मा हैं (इसलिये यह सुफल आपको मिलना ही चाहिए।) (२) आपके समान पुण्यात्मा पुरुष इस

---

१. अवनि आँखि-तर आव न कोऊ : धरतीपर कोई ऐसा नहीं जँचता जो आँखोंतले ठहर पावे।
२ सुनि मुनि बोले।

३२१५-१६ अप्रमेयबली रामस्तेजीयाँल्लक्ष्मणस्तथा। यं दृष्ट्वैव प्रकम्पन्ते भूपाः सिंहं गजा इव।—सत्यो०
३२१८ दूतस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः॥ —वाल्मीकीयरामायण
३२२१-२२ तत उत्थाय भूपालो गुरवे पत्रिकामदात्। चरद्वारा कथां सर्वां श्रावयामास विस्तरात्॥ अ०रा०
३२२३-२५ सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणहिते रतः। निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः॥वि०पु०

सुकृती तुम - समान जग माहीं। भयउ, न है कोउ, होनेउ नाहीं।
तुम - तें अधिक पुन्य बड़ काके। राजन राम - सरिस सुत जाके। (३)
बीर, बिनीत, धरम - व्रत - धारी। गुन - सागर बर बालक चारी।
३२३० तुम - कहँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना।
दो०—चलहु बेगि, सुनि गुरु-बचन, भलेहिं नाथ, सिर नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन बास देवाइ ॥ २९४ ॥
राजा सब रनिवास बोलाई। जनक - पत्रिका बाँचि सुनाई।
सुनि संदेस सकल हरखानी। अपर कथा सब भूप बखानी। (१)
प्रेम - प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद-बानी।
मुदित असीस देहिं गुरु - नारी। अति - आनंद - मगन महतारी। (२)
लेहिं परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती।

संसारमें न कोई हुआ है, न है और न होनेवाला है। बताइए राजन्! आपसे बढ़कर पुण्य और किसका होगा जिसके यहाँ 'राम'-जैसे पुत्र आ जनमे हों (३) और जिसके चारों बालक वीर, विनीत, धर्मका व्रत पालनेवाले और सारे गुणोंके निधान हों। आपके लिये तो सदा कल्याण ही कल्याण है। इसलिये डंका बजवाकर तत्काल बारात चढ़ा ले चलनेकी तैयारी कराइए (४) और झटपट चल दीजिए। गुरुके ये वचन सुनकर राजा दशरथ बोले—'ठीक है नाथ !' (यही करता हूँ) और फिर उन्हें प्रणाम करके तथा दूतोंके (विश्रामके लिये) स्थानकी व्यवस्था करके वे अपने राजभवनमें जा पहुँचे ॥ २९४ ॥ राजा दशरथने झट अपनी सब रानियोंको बुलाकर जनककी पत्रिका बाँच सुनाई। सारा समाचार पाकर रानियाँ भी फूली नहीं समाईं। इतना ही नहीं, राजाने एक-एक करके सब कथाएँ (ताडका-सुबाहुका वध, धनुषयज्ञ, सीताका स्वयंवर तथा परशुरामका आगमन और रामसे हारकर परशुरामका तपस्याके लिये वन-गमन) विस्तारसे कह सुनाईं। (१) सब रानियाँ प्रेमके मारे ऐसी खिली पड़ रही थीं जैसे बादलोंकी गरज सुन-सुनकर मोरनियाँ नाच उठी हों। गुरुजनोंकी स्त्रियोंने सुना तो वे भी आ-आकर प्रसन्न मनसे आशीर्वाद देने लगीं। और फिर माताओंके आनन्दका तो पूछना ही क्या था ! (२) वे परस्पर (एक-दूसरीसे) वह अत्यन्त प्यारी पत्रिका ले-लेकर हृदयसे लगा-लगाकर छाती ठंढी किए जा रही थीं। राजा दशरथ भी राम और

३२२६-२८ धन्यः कोऽपि न त्वादृशो क्षितितले त्वं साधुसेवी महान्।
कौशल्यापि कृताशया मतिमती त्वत्तोऽपरः कः परः।
३२३१-३२ विवाहः क्रियतां राजन् जनकेषु न संशयः। इत्युक्त्वा राजशार्दूलो विवेश भवनं शुभम् ॥
३२३३-३५ कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च तथाऽपराः। प्रहसन्नृपतिः प्राह श्रूयतां वचनं मम ॥
जनकस्य पुरे राज्ञो वर्तते रामलक्ष्मणौ। विश्वामित्रेण मुनिना धनुर्भंगं च राघवः ॥
चकार भूभृतां रामः पश्यतां सर्वदेहिनाम्। जनकेन सुता दत्ता सीता परमसुन्दरी ॥
तेनाहूतो विवाहार्थं गमिष्यामि सुसेनया। तच्छ्रुत्वा राजपत्न्यस्तु परमं हर्षमाययुः ॥
पुनः पुनश्च प्रपच्छुः राजानं सस्मिताननाः। प्रहृष्टनरनारीकं राज्ञश्चान्तःपुरं बभौ ॥
३२३६-३७ गुरुपत्न्यो विप्रपत्न्यः प्रयुञ्जानाः शुभाशिषम्। प्रियपत्रं समादाय सन्न्यधुर्हृत्तले मिथः ॥सत्यो०

राम लखन-कै कीरति करनी। बारहिं बार भूप-बर बरनी। (३)
मुनि-प्रसाद कहि, द्वार सिधाए। रानिन तब महिदेव बोलाए।
३२४० दिए दान आनंद-समेता। चले बिप्र-बर आसिष देता। (४)
सो०—जाचक लिए हँकारि, दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरजीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ-के॥ २९५॥
कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना।
समाचार सब लोगन पाए। लागे घर-घर होन बधाए। (१)
भुवन चारि-दस भरा उछाहू। जनकसुता-रघुबीर-बियाहू।
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग, गृह, गली सँवारन लागे। (२)
जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। राम-पुरी मंगलमय पावनि।
तदपि प्रीति-कै रीति सुहाई। मंगल-रचना रची बनाई। (३)
ध्वज, पताक, पट, चामर चारू। छावा परम बिचित्र बजारू।
३२५० कनक-कलस, तोरन, मनि-जाला। हरद, दूब, दधि, अच्छत, माला। (४)

लक्ष्मणकी कीर्ति और पराक्रमका बार-बार वर्णन करते अघा नहीं रहे थे—(३) 'जानती हो! यह सब मुनि विश्वामित्रकी कृपासे हुआ है।' यह कहकर वे रनिवाससे बाहर चले गए। उनके जाते ही रानियोंने ब्राह्मणोंको बुलवा भेजा और अत्यन्त आनन्दके साथ उन्हें बहुत-सा दान देकर संतुष्ट किया। (दान पा-पाकर) ब्राह्मण भी आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर लौट गए। (४) फिर रानियोंने भिखमंगोंको बुलवा-बुलवाकर उन्हें करोड़ों प्रकारकी न्योछावरें लुटा डालीं और वे (भिखमंगे) भी 'चक्रवर्ती महाराज दशरथके चारों पुत्र चिरंजीवी हों'॥ २९५॥ यह कहते हुए अनेक प्रकारके सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहन-ओढ़कर बड़े हर्षके साथ नगाड़े बजाते हुए चल दिए। जब यह समाचार (नगरके) लोगोंको मिला तो घर-घर बधावे बज उठे। (१) चौदहों लोकोंमें यह सुनकर उत्साह उमड़ चला कि राम और जानकीका विवाह होने जा रहा है। यह शुभ-समाचार सुनते ही लोग प्रेममें मग्न हो-होकर सब अपने-अपने मार्ग, घर और गली सजाने लगे। (२) यद्यपि अयोध्यापुरी तो सदा ही सुहावनी बनी रहती है क्योंकि वह रामकी मंगलमयी पवित्र पुरी है, फिर भी प्रीतिकी रीति सुन्दर ढंगसे प्रकट करनेके लिये वह और भी सुन्दर मंगलमयी रचनाओंसे सजाई जाने लगी। (३) ध्वजा, पताका, परदे और सुन्दर चँवर टाँग-टाँगकर सारा हाट बहुत ही विचित्र ढंगसे सजा दिया गया। सोनेके कलश, वन्दनवार, मणियोंकी झालरें, हलदी, दूब, दही, अक्षत और मालाओंसे (४) सजा-सजाकर

३२४०-४१ ददुर्दानं द्विजातीनां दीनान्धकृपणेषु च।
३२४४ काश्चिद् गायन्ति सुभगा वादयन्त्यस्तथाऽपराः।
नृत्यन्तः सुप्रहुलपनाश्चक्रुः कर्म्माण्यनेकशः॥
३२४५-४८ अयोध्यानगरं रम्यं नानारत्नैश्च मंडितम्। ततान रचनां पूर्वादधिकं पौरमानवाः॥
सीतारामविवाहस्य चरितम्प्रसृतम्भुवि॥ —सत्योपाख्यान

दो०—मंगलमय निज-निज-भवन , लोगन रचे बनाइ ।
बीथी सींची, चतुरसम[1] , चौके चारु पुराइ ॥ २९६ ॥
जहँ-तहँ जूथ-जूथ मिलि भामिनि । सजि नव-सप्त सकल दुति-दामिनि ।
बिधु - बदनी, मृग - सावक - लोचनि । निज सरूप रति-मान-बिमोचनि । (१)
गावहिं मंगल, मंजुल बानी । सुनि कल-रव, कल-कंठि लजानी ।
भूप - भवन किमि जाइ बखाना । बिस्व - बिमोहन रचेउ बिताना । (२)
मंगल द्रव्य मनोहर नाना । राजत, बाजत बिपुल निसाना ।
कतहुँ बिरुद बंदी उच्चरहीं । कतहुँ बेद-धुनि भूसुर करहीं । (३)
गावहिं सुन्दरि मंगल गीता । लेइ - लेइ नाम राम अरु सीता ।
३२६० बहुत उछाह, भवन अति थोरा । मानहु उमगि चला चहुँ ओरा । (४)
दो०—सोभा दसरथ भवन - कै , को कबि बरनै पार ।
जहाँ सकल सुर-सीस-मनि , राम लीन्ह अवतार ॥ २९७ ॥

लोगोंने प्रत्येक घर मंगलमय बना डाला । सब गलियाँ सींच-सींचकर चतुरसम[1] (कलात्मक ढंगसे) चौक पूर डाले गए थे ॥ १९६ ॥ बिजलीकी-सी छबीली, मृग-छौनेके नेत्रोंके समान (भोले) नेत्रोंवाली और अपनी सुन्दरताके आगे रतिका अभिमान (सौन्दर्यका अभिमान) चूरकर डालनेवाली चन्द्रमुखी नारियाँ सोलह[2] (नौ+सात) शृङ्गार कर-करके झुण्डकी झुण्ड मिलकर (१) ऐसी मधुर वाणीसे मंगल गीत गाए जा रही थीं कि उनके मधुर शब्द सुन-सुनकर कोयल भी लजाई पड़ रही थी । राज-भवनका वर्णन तो भला किया ही कैसे जा सकता है ! उसीमें संसार-भरको विमोहित कर डालनेवाला वह मण्डप बना खड़ा किया गया था (२) जिसमें अनेक प्रकारके सुन्दर मंगल द्रव्य स्थान-स्थानपर रक्खे शोभा दे रहे थे । (चारों ओर चहल-पहल मची हुई थी ।) कहीं बहुतसे नगाड़े बज रहे थे, कहीं ब्राह्मण बैठे वेद-पाठ कर रहे थे, (३) कहीं सुन्दरी नवेलियां राम और सीताका नाम जोड़-जोड़कर मंगल गीत गाए चली जा रही थीं। ऐसा जान पड़ रहा था कि उनका निःसीम उल्लास प्रकट करनेके लिये वहाँके सब भवन छोटे पड़े जा रहे थे (उन भवनोंके छोटे पड़ जानेके कारण वह अत्यधिक उल्लास उनमें समा नहीं पा रहा था) इसीलिये मानो वह उत्साह उमड़-उमड़कर चारों ओर फैला पड़ रहा था । (४) उन राजा दशरथके राजभवनकी शोभाका वर्णन कोई कवि कर ही कैसे सकता है जहाँ सब देवताओंके शिरोमणि रामने आ अवतार लिया हो ! ॥ २९७ ॥ राजाने भरतको बुलवाकर उनसे

१. चतुरसम = चतुरस्रम् : सुडौल, नियमित, 'कलात्मक' ढंगसे सुन्दर चौक पूर दिए गए ।
२. सोलह शृङ्गार : १ शौच, २ उबटन, ३ स्नान, ४ केश-बन्धन, ५ अंगराग, ६ आंजन, ७ जावक (महावर), ८ दन्त-रञ्जन, ९ ताम्बूल, १० वसन (विविध प्रकारके वस्त्र), ११ आभूषण, १२ सुगन्ध, १३ पुष्पहार, १४ कुंकुम, १५ भाल-तिलक और १६ चिबुक-बिन्दु ।

३२४९-५२ पताकैर्हेमकलशैर्वितानैस्तोरणैश्शुभैः । रथ्या वीथ्यश्च देहल्यो भित्तिप्रांगणवेदिकाः ॥
३२५३-५५ पुरन्ध्र्यश्शुभवस्त्राश्च कलशैर्मूर्ध्नि चास्थितैः । गायन्त्यो ता विवाहस्य मंगलानि पुनः पुनः ॥
३२५८ स्वस्त्युच्चरन्ति विप्रास्तु यशोगानञ्च बन्दिनः ।
३२६१-६२ राज्ञो दशरथस्यापि को वदेत् सदनच्छविम् । यत्रावतीर्णो भगवान् रामो राजमणिः प्रभुः ॥गर्ग०

भूप, भरत पुनि लिये बोलाई। हय - गय - स्यंदन साजहु जाई।
चलहु बेगि रघुबीर - बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता। (१)
भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए।
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन - बरन बर बाजि बिराजे। (२)
सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय - इव जरत धरत पग धरनी।
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवन जनु चहत उड़ाने। (३)
तिन्ह सब छैल भये असवारा। भरत - सरिस वय राजकुमारा।
३२७० सब सुंदर सब भूषन - धारी। कर सर - चाप, तून कटि भारी। (४)
दो०—छरे छबीले छैल सब , सूर, सुजान, नबीन।
जुग पद-चर असवार प्रति , जे असि - कला - प्रबीन ।। २९८ ।।
बाँधे बिरद बीर रन - गाढ़े। निकसि भये पुर बाहर ठाढ़े।
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि-सुनि पनव, निसाना। (१)

कहा कि जाकर घोड़े, हाथी और रथ सजवा डालो और झटपट रामकी व्रात (बारात) सजा ले चलो। आज्ञा पाते ही दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) पुलकित हो उठे। (१) भरतने झट सभी घुड़सालोंके अध्यक्षोंको बुला-बुलाकर यह आज्ञा कह सुनाई। वे भी प्रसन्न होकर (घोड़े ले आने) दौड़ पड़े। उन्होंने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार घोड़ोंपर ज़ीनें कस डालीं। वे सब घोड़े भी एकसे एक विभिन्न रंग (जाति)-के थे, जो साज़ोंसे सज-सजकर बड़े अच्छे लग रहे थे। (२) सभी घोड़े बड़े सुन्दर और बड़े चुलबले थे। वे इस प्रकार सुमोंसे धरती खूँदे जा रहे थे, मानो उनके पैर जलते हुए लोहेपर पड़ रहे हों (जैसे गरम लोहेपर पड़ते ही पैर तत्काल उठ जाता है वैसे ही घोड़े इतने चंचल थे कि उनके पैर धरतीपर कब पड़ते और कब उठते थे, यही नहीं जान पड़ता था)। ऐसे-ऐसे अनेक जातियोंके घोड़े[1] वहाँ ला खड़े किए गए थे जिनका वर्णन नहीं हो सकता। वे ऐसे चपल थे मानो पवन (के वेग)-को भी हराकर उड़ चलना चाहते हों। (३) उन घोड़ोंपर भरतकी अवस्था-वाले ऐसे अनेक छैले राजकुमार आ सवार हुए जो सुन्दर भी थे और आभूषणोंसे सजे हुए भी थे। वे अपने हाथोंमें धनुष-बाण और कमरमें तूणीर कसे हुए थे। (४) वे सभी चुने हुए सुन्दर छैले बड़े शूर, चतुर और जवान थे। ऐसे प्रत्येक घुड़सवारके साथ-साथ दो-दो पैदल सिपाही चले जा रहे थे जो तलवार चलानेमें बड़े कुशल थे ।। २९८ ।। वे सब शूर और रणधीर वीर निकल-निकलकर नगरसे बाहर आ खड़े हुए। (नगरके बाहर) वे चतुर सवार अपने उन घोड़ोंकी चालें दिखाते हुए उन्हें फेरे जा रहे थे, जो मृदंगों और नगाड़ोंकी गड़गड़ सुन-सुनकर हर्षसे उछले पड़ रहे थे। (१) सारथियोंने

१. ताजी, अरबी, सुरंग, ताखी, टाँघन, गर्रा, सब्ज़ा, कुम्मैत, अबलक, श्यामकर्ण, सिर्गा, मुश्की, तुर्की, पँचकल्यान, नोकड़ा, कच्छी, देवमान, तेलिया आदि।

३२६३-६५ तदा तु भरतं श्रीमानाजुहाव नृपोत्तमः। हस्त्यश्वरथमासज्ज्य वरातार्थे सुसज्जितम् ।।
तच्छ्रुत्वा भरतः सेनाध्यक्षान् ह्यादिदेश ह ।।
३२६६ नानाविधांस्तुरंगांश्च धृतपर्याणकान् व्यधुः ।
३२६९-७० वयस्या भरतस्याथ अश्वानारुरुहुर्वरान् । सर्वालंकारसंयुक्ताश्शरचापासिधारिणो ।।—गर्गसं०

रथ सारथिन विचित्र बनाए। ध्वज, पताक, मनि, भूषन लाए।
चँवर चारु, किंकिनि धुनि करहीं। भानु - जान - सोभा अपहरहीं। (२)
साँवकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन सारथिन जोते।
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिँ विलोकत मुनि-मन मोहे। (३)
जे जल चलहिँ थलहि कि नाँई। टाप न बूड़, वेग अधिकाई।
३२८० अस्त्र - सस्त्र सव साज बनाई। रथी सारथिन्ह लिये बोलाई। (४)

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ, बाहर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि, जो जेहि कारज जात ॥ २९९ ॥

कलित करिवरन्हि परी अँबारी[1]। कहि न जाइ, जेहि भाँति सँवारी।
चले मत्त गज घंट[2] विराजी। मनहुँ सुभग सावन - घन - राजी[3]। (१)
वाहन अपर अनेक विधाना। सिविका सुभग, सुखासन जाना।
तिन्ह चढ़ि चले विप्र - वर - बृन्दा। जनु तनु धरे सकल-श्रुति-छंदा। (२)

ध्वजा, पताका, मणि और आभूषणोंसे अपने-अपने रथ सजाकर बहुत सजीला बना दिया था। उन पर बहुत अच्छे-अच्छे चँवर टँगे हुए थे और उन रथोंमें बँधी हुई घंटिया बड़े मधुर स्वरोंमें टनटना रही थीं। वे रथ ऐसे सुन्दर थे कि अपनी सुन्दरताके आगे सूर्यके रथकी शोभा भी छीने ले रहे थे। (४) सारथियोंने उन रथोंमें अनेक श्यामकर्ण घोड़े ला जोते थे, जो देखनेमें इतने सुन्दर और आभूषणोंसे सुसज्जित थे कि उन्हें देख-देखकर मुनियोंके मन भी मोहित हुए पड़ रहे थे। (३) ये (घोड़े) जलपर भी थलके ही समान ऐसे उड़े चलते थे कि अधिक वेगसे सरपट दौड़नेके कारण उनकी टापें पानी छू नहीं पाती थीं। सब अस्त्र-शस्त्र आदि सजाकर सारथियोंने रथियों (रथ-सवारों)-को बुला लिया। (४) इस प्रकार रथोंपर चढ़-चढ़कर बारात नगरके बाहर जुटने लगी। (विचित्र बात यह हुई कि) जो जिस कार्यके लिये जाता था सभीको शुभ ही शुभ शकुन मिलते चलते थे॥२९९॥ बड़े-बड़े श्रेष्ठ हाथियोंपर अम्बारियाँ पड़ गईं। जिस ढंगसे वे अम्बारियाँ सजाई गई थी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। घंटोंसे सुशोभित मतवाले हाथी ऐसे चले जा रहे थे, मानो सावनके सुहावने बादल चले जा रहे हों। (१) (एकसेएक) सुन्दर पालकियाँ और सुखासन (ताम-जाम) वहाँ आए खड़े थे, जिनपर चढ़-चढ़कर श्रेष्ठ ब्राह्मण ऐसे चले जा रहे थे मानो वेदोंके छन्द ही शरीर धारण किए चले जा रहे हों। (२) मागध, सूत, बंदी

१. कलित परी करिवरन्हि अँबारी। २. गज घटा; गज घट्टः हाथियोंका समूह। ३. चले मत्त गज-घंट बिराजे। मनहु सुभग सावन-घन गाजे। : घंटोंसे सुशोभित (घंटे बजाते हुए) मतवाले हाथी ऐसे चले जा रहे थे मानो सावनके सुहावने बादल गरज रहे हों। [यह पाठ अधिक स्पष्ट है।]

३२७५-७७ रथाः षष्टिसहस्राणि ह्यासन् यत्र सुवाजिनः। पवनातिपातिनस्सर्वे मणिग्रैवेयभूषिताः॥
३२८१-८२ दिवसे शुभनक्षत्रे स्थित्वा सुरयन्दने जनाः। नगराद् बहिश्च संगत्य प्रस्थिता जनकालयम्॥
३२८३-८४ पदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः। परयश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतो मिथिलां ययुः ॥गर्गसं०

मागध, सूत, बंदि, गुन - गायक । चले जान चढ़ि जो जेहि लायक ।
बेसर, ऊँट, बृषभ बहु जाती । चले बस्तु भरि अगनित भाँती । (३)
कोटिन काँवरि चले कहारा । बिबिध बस्तु, को बरनै पारा ।
३२९० चले सकल - सेवक - समुदाई । निज निज साज - समाज बनाई । (४)

दो०—सबके उर निर्भर हरष ,-पूरित पुलक सरीर ।
कबहिं देखिबै नयन भरि , राम - लखन दोउ बीर ।। ३०० ।।

गरजहिं गज घंटा - धुनि घोरा । रथ-रव, बाजि हिंस चहुँ ओरा ।
निदरि घनहिँ घुम्मरहिँ निसाना । निज - पराइ कछु सुनिय न काना । (१)
महा भीर भूपति - के द्वारे । रज होइ जाइ पखान पँवारे ।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी । लिए आरती मंगल थारी । (२)
गावहिँ गीत मनोहर नाना । अति आनंद न जाइ बखाना ।
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी । जोते रबि - हय - निंदक बाजी । (३)
दोउ रथ रुचिर भूप - पहँ आने । नहिं सारद - पहँ जाहिं बखाने ।

और गुण बखाननेवाले (भाट) भी जो जिस योग्य थे वैसी सवारियोंपर चढ़-चढ़कर चल दिए । अनेक प्रकारके खच्चर, ऊँट और बैलोंपर अनेक प्रकारकी वस्तुएँ लाद-लादकर वे साथ ले चले । (३) कहार करोड़ों (असंख्य) काँवर लाद-लादकर साथ लिये चले जा रहे थे जिनमें अनेक प्रकारकी ऐसी वस्तुएं लदीं थी जिनका वर्णन कर कौन सकता है ? इस प्रकार सब सेवकोंका समुदाय अपना-अपना साज-समाज बना-बनाकर वहाँसे चल पड़ा । (४) सबके हृदय हर्षसे उमड़े पड़ रहे थे, शरीर पुलकित हुए जा रहे थे (और सबके मनमें यही प्रबल लालसा हुई जा रही थी कि) हम कब पहुँचकर दोनों वीर राम-लक्ष्मणको भर आखें जा देखें ।। ३०० ।। चारों ओर हाथियोंकी चिग्घाड़, घंटोंकी कनफोड़ टनन-टनन, रथोंकी घनघनाहट और घोड़ोंकी हिनिहिनाहट ही सुनाई पड़ रही थी । डंके ऐसे बज रहे थे कि उनके आगे बादलोंकी गड़गड़ाहट भी कुछ नहीं रह गई थी । (सब अपने-अपनेमें इतने मगन थे कि) किसीको अपने-परायेकी कुछ सुध नहीं रह गई थी । (१) राजा दशरथके द्वारपर इतनी भारी भीड़ आ जुटी थी कि उसमें पत्थर उछाल फेंका जाय तो उनके (पैरों तले) चूर-चूर होकर धूल हो मिटे । अटारियोंपर चढ़ी नवेलियाँ हाथोंमें आरती और मंगल थाल लिए खड़ी सब देखे जा रही थीं (२) और अनेक प्रकारके मनोहर गीत गाए जा रही थीं । उनके मनमें जो आनन्द उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इतनेमें सुमंत्रने दो रथ सजाकर ला खड़े किए जिनमें ऐसे घोड़े ला जोते गए थे जो (अपनी चालसे) सूर्यके घोड़ोंको भी हराए डाल रहे थे । (३) वे दोनों सुन्दर रथ जो राजा दशरथके आगे ला खड़े किए गए उनका वर्णन कर सकना सरस्वतीके लिये भी दूभर हो रहा था । उनमें एक रथ तो

३२८६ वसिष्ठो वामदेवश्च जावालिरथकश्यपः । एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे ।।
यथा कालात्ययो न स्यात्………… ।। —वाल्मीकीयरामायण

३३०० राज - समाज एक रथ साजा[1] । दूसर तेज - पुंज अति भ्राजा[2] । (४)

दो०—तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ-कहँ , हरषि चढ़ाइ नरेस ।
आपु चढ़ेउ स्यंदन, सुमिरि , हर, गुरु, गौरि, गनेस ।। ३०१ ।।

सहित - बसिष्ठ सोह नृप कैसे । सुर - गुरु - संग पुरंदर जैसे ।
करि कुल - रीति, वेद - बिधि राऊ । देखि सबहिं, सब भाँति बनाऊ । (१)
सुमिरि राम, गुरु - आयसु पाई । चले मही-पति संख बजाई ।
हरषे बिबुध बिलोकि बराता । बरषहिँ सुमन सुमंगल - दाता । (२)
भयउ कोलाहल, हय - गय गाजे । ब्योम बरात - बाजने बाजे ।
सुर, नर, नारि सुमंगल गाई । सरस राग बाजहिँ सहनाई । (३)
घंट - घंटि - धुनि बरनि न जाहीँ । सरव[3] करहिँ पाइक[4] फहराहीँ ।
३३१० करहिँ बिदूषक कौतुक नाना । हास - कुसल, कल-गान-सुजाना । (४)

दो०—तुरग नचावहिँ कुँअर-वर , अकनि मृदंग निसान ।
नागर नट चितवहिँ चकित , डगहिँ न ताल - बँधान ।। ३०२ ।।

बड़े राजसी ठाटबाटसे सजाया गया था और दूसरा रथ अग्निकी लपटके समान चमाचमा दमक रहा था । (४) उस दूसरे रथपर राजा दशरथने बड़े हर्षसे गुरु वशिष्ठको ले जा चढ़ाया और फिर शिव, गुरु, पार्वती और गणेशका स्मरण करके वे स्वयं दूसरे रथपर जा बैठे ।। ३०१ ।। वशिष्ठके साथ जाते हुए राजा ऐसे शोभा दे रहे थे जैसे बृहस्पतिके साथ इन्द्र चले जा रहे हों । राजा दशरथने वेद और कुलकी सारी रीति पूरी करके तथा (बारातमें चलनेवाले) सब लोगोंको और सब प्रकारकी (बारातकी) सजावट देखकर रामका स्मरण करके और गुरु वशिष्ठसे आज्ञा लेकर शंख बजाकर प्रस्थान कर दिया । यह बारात देखकर देवता भी हर्षित हुए जा रहे थे और वे मंगलदायक पुष्पोंकी वर्षा किए जा रहे थे । (२) (चलते समय) ऐसा कोलाहल मच उठा कि उधर घोड़े-हाथी हिनहिनाने-चिग्घाड़ने लग रहे थे उधर आकाशमें और बारातमें बाजोंकी ढमाढम होने लगी थी । देवांगनाएँ तथा नगरकी नवेलियाँ सब मनभावने मंगल गान कर उठीं और मधुर रागोंमें शहनाई बज उठी । (३) घंटों और घंटियोंकी जो घनघन-टनटन मच उठी थी उसका तो वर्णन ही नहीँ हो सकता । पैदल चलनेवाले सेवक (पटेबाज) चिल्ला-चिल्लाकर (अनेक प्रकारकी कला दिखाते और पटा-बनेठी घुमाते हुए) झंडे फहराते चले जा रहे थे । भाँड़ और हँसोड़ लोग भी अनेक प्रकारके विनोद करके लोगोंका मनोरंजन करते चले जा रहे थे । वे हँसने-हँसाने और मनोहर गीत-गानेमें बेजोड़ थे । (४) अच्छे-अच्छे राजकुमार मृदंग और डंकेकी तालपर अपने-अपने घोड़े इस प्रकार नचाए जा रहे थे कि भला एक भी ताल चूक तो जाय । उनकी यह कला देख-देखकर चतुर नट लोग

१. भ्राजा । २. लखि राजा । ३. सर्रौ = पटा-बनेठीका खेल । ४. पाइक = पटेबाज ।

३३०१-२ एवं प्रस्थाप्य सकलं राजर्षिर्विपुलं रथम् । महत्या सेनया सार्धमारुह्य त्वरितो ययौ ।। अध्या०
३३०३-५ एवं चचाल भूपालः सेनया गजशोभया । घंटाशंखादिनादैश्च प्रकुर्वन् गमदिप्टके ।। –सत्यो०
३३०६-९ पुष्पैर्देवेषु वर्षत्सु तांडवे नटराजवत् । वादयन्तो मुदा वीणाऽऽनक दुंदुभिवेणुकान् ।। गर्ग०

बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभ-दाता।
चारा चाष बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई। (१)
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल-दरस सब-काहू पावा।
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट, सवाल आव बर-नारी। (२)
लोवा फिरि फिरि दरस दिखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा।
मृग-माला फिरि दाहिनि आई। मंगल-गन जनु दीन्हि देखाई। (३)
छेमकरी कह छेम बिसेखी। स्यामा बाम सुतरु-पर देखी।
३३२० सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना। (४)

दो०—मंगलमय कल्यानमय, अभिमत-फल-दातार।
जनु सब साँचे होन-हित, भए सगुन एक बार ॥ ३०३ ॥

मंगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाके।

भी दाँतोंतले उँगली दबाए जा रहे थे (कि हमारी सारी नट-विद्या इन्होंने कहाँसे सीख ली ?) ॥३०२॥ इस सजी-धजी बारातके ठाट-बाटका वर्णन मुझसे करते नहीं बन पा रहा है। इस सुहावनी बारातको चारों ओर मंगल और शुभ शकुन ही मिलते चले जा रहे थे। नीलकंठ (पक्षी) बाईं ओर चुग्गा ले रहा था मानो कहे दे रहा हो कि सब मंगल ही मंगल होगा। (१) दाहिनी ओर हरे-भरे खेतमें कौवा आया बैठा था। उधर सबको नेवला दिखाई दे गया। तीनों प्रकारकी (शीतल, मंद, सुगंध) बयार अपने अनुकूल (सुहावनी) चलने लगी। सौभाग्यवती स्त्रियाँ गोदमें बच्चे लिए और भरे घड़े सिरपर धरे सामनेसे आती दिखाई पड़ गईं। (२) इतनेमें देखते क्या हैं कि एक लोमड़ी घूम-घूमकर देखे चली जा रही है। सामने गौ खड़ी अपने बछड़ेको दूध पिलाए जा रही थी। दाहिनी ओरसे मृगोंके झुण्ड निकले चले आ रहे थे मानो सारे मंगलोंका दर्शन कराए डाल रहे हों। (३) क्षेमकरी (सफेद सिरवाली चील) विशेष रूपसे क्षेम (कुशल मंगल होने)-का संकेत कर रही थी। बाँई ओर श्यामा (कृष्ण सारिका, काली मैना) पेड़पर बैठी दिखाई दे रही थी। सामनेसे (एक स्त्री) दही और मछली लाती दिखाई दे गई। फिर देखा कि दो विद्वान् ब्राह्मण हाथोंमें पुस्तक लिए चले आ रहे हैं। (४) इस प्रकार मंगलमय, कल्याणमय और सारी मनो-कामनाएँ पूर्ण कर देनेवाले सभी शकुन अपनी सत्यता प्रमाणित करनेके लिये सबको एक साथ दिखलाई पड़ने लगे थे ॥३०३॥ साक्षात् सगुण ब्रह्म ही जिनके पुत्र हों उनके लिये तो सभी मंगल शकुन सुलभ थे (कौन

३३१३-२० गच्छन् ददर्श रामश्च यात्रामंगलसूचकम्। दधिलाजं शुक्लधान्यं शुक्लपुष्पं च कुंकुमम् ॥
धेनुं वत्सप्रयुक्तां च रथस्थं भूमिपं तथा। ज्वलत्प्रदीपं विभ्रन्तीं पतिपुत्रवतीं सतीम् ॥
शिवं शिवां पूर्णकुंभां चापं च नकुलं तथा। सद्योमांसं सजीवं च मत्स्यं शंखसुवर्णकम् ॥
मृगं वेश्यां च भ्रमरं कर्पूरं पीतवाससम्। सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभाम् ॥
इत्येतन्मंगलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदान्वितः। —ब्रह्मवैवर्तपुराण
भारद्वाजमयूराणां चापस्य नकुलस्य च। इत्येतद्दर्शनं पुण्यं वामभागे विशेषतः ॥
सिद्धिस्सदा सर्वसमाहितानां स्याल्लोमशी दर्शनमध्वमध्ये। —वसन्तराज

राम - सरिस बर, दुलहिनि सीता। समधी दसरथ - जनक पुनीता। (१)
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हें बिरंचि हम साँचे।
यहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय - गय गाजहिं हने निसाना। (२)
आवत जानि भानु - कुल - केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू।
बीच - बीच बर बास बनाए। सुरपुर - सरिस संपदा छाए। (३)
असन, सयन, बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज-निज मन भाए।
३३३० नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले। (४)

दो०—आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज, रथ, पद-चर, तुरग, लेन चले अगवान ॥ ३०४ ॥

कनक - कलस भरि कोपर, थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।
भरे सुधा - सम सब पकवाने। नाना भाँति न[1] जाहिं बखाने। (१)
फल अनेक, बर बस्तु सुहाई। हरषि भेंट - हित, भूप पठाई।

मंगल शकुन असम्भव है जहाँ राम-जैसे वर, सीता-जैसी दुलहिन तथा जनक और दशरथ-जैसे पवित्र संकल्पवाले समधी हों। (१) वहाँ विवाह होते सुनकर सारे मंगल शकुन (इस प्रसन्नतामें) नाच उठे (प्रकट हो गए) कि आज विधाताने सत्य प्रमाणित कर दिया हम सचमुच मंगल शकुन हैं। इस प्रकार (मंगल शकुनोंके साथ) बारातने प्रस्थान कर दिया। (चलते ही) घोड़े हिनहिना उठे, हाथी चिग्घाड़ उठे और डंके बज उठे। (२) भानुकुलके केतु राजा दशरथके आनेकी बात सुनते ही राजा जनकने मार्गकी सब नदियोंपर पहले ही पुल बँधवा डाले और मार्गमें स्थान-स्थानपर बढ़िया-बढ़िया डेरे खड़े करवा दिए जिनमें देवलोकके समान सारी सम्पदा (सुख-सुविधाकी सामग्रियाँ) सजा-सजाकर रख दी गईं (३) जिससे कि बरातियोंको अपनी-अपनी रुचिके अनुसार भोजन, पलँग और सुन्दर वस्त्र आदि मिल जायँ। (आगे चलते हुए प्रत्येक नये डेरेपर) नित्य नये-नये प्रकारकी ऐसी मनचाही सुख-सामग्रियाँ मिलती चली जा रही थीं कि सब बाराती अपने-अपने घर-तक भूल बैठे। (४) वह सजीली बारात आई जानकर, डंकेकी गड़गड़ाहट सुनते ही राजा जनककी ओरसे अगवानी करनेवाले लोग हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सजा-सजाकर बारातकी अगवानी करने चल पड़े ॥ ३०४ ॥ भरे हुए सोनेके घट, परात और थालोंमें भरे हुए अमृतके समान भाँति-भाँतिके पकवान (दूध, शर्बत और जल आदि पेय पदार्थोंसे भरे हुए सोनेके घड़े तथा अमृतके समान उत्तम पकवानोंसे भरी हुई परातें और थाल) और ऐसे एकसे एक बढ़िया पात्र सजाए लिये चले जा रहे थे जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। (१) राजा जनकने बढ़िया-बढ़िया फल तथा अनेक प्रकारकी और भी एकसे एक सुन्दर वस्तुएँ हर्षित होकर भेंटमें

१. भाँति भाँति नहिं।

३३२७-२८ ज्ञात्वा शुभागतिं राज्ञो राजा सेतून् नदीषु च। पथिवासान् कतिपयान् चकार द्रव्यसंयुतान् ॥
३३३१-३२ श्रुत्वा तु जनको राजा प्रजाभिर्ब्राह्मणैः सहः। निर्जगाम नृपं नेतुं स्वपुरं प्रति मैथिलः ॥
अश्ववारैर्मतंगैश्च शिविकाभिश्च नागराः।
३३३४-३५ नानाविधानि चान्नानि दधिव्यञ्जनयुतानि च। प्रेषयामास राजापि सैन्यानां भोजनाय च ॥सत्यो०

भूषन, बसन, महामनि नाना। खग, मृग, हय, गय, बहुबिधि जाना। (२)
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए।
दधि - चिउरा, उपहार अपारा। भरि - भरि काँवरि चले कहारा। (३)
अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद, पुलक भर - गाता।
३३४० देखि बनाव - सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना। (४)
दो०—हरषि परसपर मिलन-हित, कछुक चले बग - मेल।
जनु आनंद - समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल ॥ ३०५ ॥
बरषि सुमन, सुर - सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभी बजावहिं।
बस्तु सकल राखी नृप - आगे। बिनय कीन्हि तिन्ह, अति अनुरागे। (१)
प्रेम - समेत राय सब लीन्हा। भइ बकसीस, जाचकन्हि दीन्हा।
करि पूजा, मान्यता, बड़ाई। जनवासे - कहँ चले लिवाई। (२)
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनद धन - मद परिहरहीं।
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब-कहँ सब भाँति सुपासा। (३)
जानी सिय, बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई।

भेज पहुँचाई थीं। इतना ही नहीं, राजा जनकने अनेक प्रकारके आभूषण, वस्त्र, बहुमूल्य रत्न, पशु, पक्षी, घोड़े, हाथी, रथ और भाँति-भाँतिके सुगंधित तथा शुभ, मनभावने मंगल द्रव्य वहाँ सजा भेजे। कहार लोग दही-चिउड़ेके साथ-साथ और भी न जाने कितनी उपहारकी वस्तुएँ काँवरोंमें सजा-सजाकर भर ले चले। (३) अगवानी करनेवाले तो बारात देखते ही हर्षसे झूम उठे और उनके शरीर पुलकित हो उठे। अगवानियोंको इस प्रकार सज-धजके साथ आते देखकर बराती भी प्रसन्न होकर नगाड़े बजा उठे। (४) दोनों ओरके कुछ गिने-चुने घुड़सवार परस्पर मिलनेके लिये हर्षित हो-होकर घोड़ोंकी पाँत बाँधकर इस प्रकार एक दूसरेकी ओर बढ़ चले मानो दो आनन्दके समुद्र अपनी-अपनी मर्यादा छोड़कर एक दूसरेकी ओर बढ़े चले जा रहे हों ॥ ३०५ ॥ देवियाँ पुष्प-वर्षा कर-करके गीत गा उठीं और देवता भी प्रसन्न हो-होकर नगाड़े बजा उठे। (अगवानियोंने) साथमें आई हुई सभी वस्तुएँ राजा दशरथके आगे रखकर अत्यन्त प्रेमसे उनकी बड़ी सराहना की। (१) राजा दशरथने प्रेमसे सब वस्तुएँ उनसे लेकर वहाँ आ जुटे हुए भिखमंगोंको उठा-उठाकर बाँट डालीं। फिर सबकी पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग बारातको जनवासेकी ओर लिवा ले चले। (२) मार्गमें ऐसे रंग-बिरंगे वस्त्रोंके पाँवड़े बिछे हुए थे जिन्हें देख-देखकर कुबेर भी अपने धनका अभिमान भूले जा रहा था। सारी बारातको ले जाकर ऐसे बढ़िया जनवासेमें ठहरा दिया गया जहाँ सबके लिये सब प्रकारकी सुविधा विद्यमान थी। (३) सीताने भी जब देखा कि जनकपुरमें बारात आ पहुँची है तो उन्होंने भी कुछ अपनी

३३४१-४२ जनकस्य महासेना तथा दशरथस्य च। मिलित्वा विरराजेव पूर्वपश्चिमसागरौ ॥ सत्यो०

३३४६ राजा च जनकः श्रीमाञ्छ्रुत्वा पूजामकल्पयत्। स्वागतन्ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या मे पूजितं कुलम् ॥ राघवैः सह सम्बन्धाद् वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः ॥ —वाल्मीकीयरामायण

३३४८ सेनां निवेशयामास पुरस्य निकटे नृपः। पटवेश्मानि शोभन्ते सहस्राणि ध्वजैस्सह ॥ सत्यो०

३३५० हृदय सुमिरि, सब सिद्धि बुलाई। भूप - पहुनई करन पठाई। (४)

दो०—सिधि सब सिय-आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास।
लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर - भोग - बिलास ॥ ३०६ ॥

निज - निज बास बिलोकि बराती। सुर-सुख सकल सुलभ सब भाँती।
बिभव - भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक - कर करहिं बखाना। (१)
सिय - महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय, हेत पहिचानी।
पितु - आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनंद अमाई[1]। (१)
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु - पाहीं। पितु - दरसन - लालच मन माहीं।
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोष बिसेखी। (३)
हरषि बंधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अंग, अंबक जल छाए।
३३६० चले जहाँ दसरथ जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पियासे। (४)

दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि, आवत सुतन्ह - समेत।
उठेउ हरषि सुखसिंधु - महँ, चले थाह - सी लेत ॥ ३०७ ॥

महिमा प्रकट कर दिखलाई। उन्होंने सब सिद्धियोंको स्मरण करते ही बुला मँगाया और उन्हें राजा दशरथका स्वागत-सत्कार करने भेज दिया। (४) सीताकी आज्ञा पाते ही सारी सुख-सम्पदा तथा देवलोकका सारा भोग-विलास अपने साथ लेकर सब सिद्धियाँ[2] जनवासेमें जा पहुँची ॥ ३०६ ॥ बरातियोंने जब अपने-अपने डेरे जाकर सँभाले तो देखा कि वहाँ सुखके सभी देव-सुलभ साधन सजे धरे हैं। इतने सब वैभव (सीताके कारण आ पहुँचे हैं इस)-का रहस्य तो कोई नहीं जान सका इसलिये सब लोग इसके लिये राजा जनककी ही प्रशंसा किए जा रहे थे। (१) पर सीताकी यह महिमा राम ताड़ गए और अपने लिये उनका इतना प्रेम देखकर वे हृदयमें फूले नहीं समाए। पिताका आगमन सुनते ही दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) इतने अधिक मग्न हो उठे कि वह आनन्द उनके हृदयमें समा नहीं पा रहा था। (२) उनके मनमें पिताके दर्शनकी लालसा तो बहुत जाग उठी थी पर संकोचके मारे वे गुरु विश्वामित्रसे कुछ कह नहीं पा रहे थे। उनकी यह विनय-शीलता देखकर विश्वामित्रके हृदयमें इतना सन्तोष हुआ (३) कि उन्होंने दोनों भाइयोंको बड़े हर्षसे गले उठा लगाया। उनके नेत्रोंमें आँसू छलछला आए, उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा और वे दोनों राजकुमारोंको साथ लेकर दशरथसे मिलने जनवासे चल दिए मानो सरोवर ही किसी प्यासेकी ओर लपक चला हो। (४) जब दशरथने देखा कि दोनों पुत्रोंके साथ लिए हुए मुनि विश्वामित्र बढ़े चले आ रहे हैं तो वे भी हर्षित होकर ऐसे उठ चले मानो वे सुखके समुद्रकी थाह लेने चले जा रहे हों (दशरथको अपार सुख हो रहा था)॥ ३०७ ॥

---

१. समाई। २. सिद्धियाँ :—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व।

३३५१-५२ सर्वास्तु सिद्धयस्तत्र सीताज्ञावशतस्समान्। सेवन्ते सैनिकांस्तत्र नानासंभारभूतिभिः ॥
३३५३-५४ सैनिकाश्च तदा मोदं लेभिरे परमाद्भुतम्। रहस्यं केऽपि नाबागुः सीताकृतमृते प्रभुम् ॥
३३६० एतस्मिन्नन्तरे विप्रो विश्वामित्रो महामुनिः। सौमित्रिणा च रामेण ह्यागतो नृपसन्निधौ ॥ सत्यो०

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार - बार पद - रज धरि सीसा।
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस, पूछी कुसलाई। (१)
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि, नृपति-उर सुख न समाई।
सुत हिय[1] लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे। (२)
पुनि वसिष्ठ - पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम - मुदित मुनिबर उर लाए।
बिप्र - बृन्द बंदे दुहुँ[2] भाई। मनभावती असीसैं पाई। (३)
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिये उठाइ, लाइ उर रामा।
३३७० हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम - परिपूरित गाता। (४)
दो०—पुर-जन, परिजन, जाति-जन, जाचक, मंत्री, मीत।
मिले जथा-बिधि सबहि प्रभु, परम कृपालु, बिनीत ॥ ३०८ ॥
रामहिँ देखि बरात जुड़ानी। प्रीति-कि रीति न जाति बखानी।

मुनिको दण्डवत् (साष्टांग) प्रणाम[3] करके महाराज दशरथ उनके चरणकी रज बार-बार उठा-उठाकर सिर पर लगाए जा रहे थे। पर विश्वामित्रने राजा दशरथको झट उठाकर हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद देकर वे उनसे सब कुशल-मंगल पूछने लगे। (१) फिर जब दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) बढ़कर दशरथको दण्डवत् प्रणाम करने लगे तो उन्हें देखकर राजा दशरथके हृदयमें ऐसा आनन्द उमड़ पड़ा कि उन्होंने दोनों पुत्रोंको उठाकर हृदयसे लगाकर (उनके इतने दिनोंके वियोगसे उत्पन्न) सारा दुःसह दुःख मिटा लिया (अपना जी ठंढा किया और इतने हर्षित हुए) मानो किसी मृतकके शरीरमें प्राणोंका संचार हो चला हो। (२) फिर राम-लक्ष्मणने गुरु वशिष्ठके चरणोंमें सिर जा नवाया और मुनि वशिष्ठने भी प्रेमपूर्वक उठाकर उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। फिर दोनों भाइयोंने सब ब्राह्मणोंको जा प्रणाम किया और सबने उन्हें उनके मनके अनुकूल आशीर्वाद भी दिया। (३) तब भरतने अपने छोटे भाई शत्रुघ्नके साथ रामको जा प्रणाम किया। रामने झट उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। लक्ष्मण भी दोनों भाइयोंको देखकर बड़े हर्षित हुए और अत्यन्त प्रेमसे परिपूर्ण होकर उनसे मिले। (४) तत्पश्चात् परम कृपालु और विनयी रामने अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, स्वजातियों, याचकों, मन्त्रियों और मित्रों-से उनकी-उनकी मर्यादाके अनुसार सबसे जा भेंट की ॥ ३०८ ॥

रामको देखते ही सारी बारात हरी हो उठी (सब आनन्दित हो उठे) क्योंकि उन

१. उर। २. दोउ। ३. साष्टांग प्रणाम : उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांग उच्यते। [हृदय, सिर, नेत्र, मन, वाणी, पैर, हाथ और घुटनोंसे लेटकर जो प्रणाम किया जाता है उसे साष्टांग प्रणाम कहते हैं।]

३३६३ आयान्तन्तु मुनिं वीक्ष्य तथा तौ च कुमारकौ। उत्थाय जगृहे पादौ विश्वामित्रस्य राजराट् ॥
३३६५-६६ भ्रातरौ राजराजस्य पादौ जगृहतुर्मुदा। पुत्रौ संकृत्य राजा च दोर्भ्यां कृत्वा तु वक्षसि ॥
स्नापयामास प्रेम्णा वै नेत्राभ्यां वारिविन्दुभिः।
३३६७-६८ वशिष्ठादींस्तथा चान्यान् नेमतुर्धरणीसुरान् ॥
३३७३ रामं दृष्ट्वैव ते सर्वे सैनिकाः क्लिन्नचेतसः ॥ —सत्योपाख्यान

नृप - समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन - धरमादिक तनु-धारी। (१)
सुतन - समेत दसरथहिं देखी। मुदित नगर - नर - नारि बिसेखी।
सुमन बरषि, सुर हनहिं निसाना। नाक-नटी नाचहिं करि गाना। (२)
सतानंद, अरु बिप्र, सचिव - गन। मागध, सूत, बिदुप, बंदी-जन।
सहित - बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना। (३)
प्रथम बरात लगन - तें आई। तातें पुर प्रमोद अधिकाई।
३३८० ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं। बढ़हु दिवस-निसि बिधि-सन कहहीं। (४)

दो०—राम - सीय सोभा-अवधि, सुकृत-अवधि दोउ राज।
जहँ-तहँ पुर-जन कहहिं अस, मिलि नर-नारि-समाज ॥ ३०९ ॥

जनक - सुकृत - मूरति बैदेही। दसरथ - सुकृत राम धरे देही।
इन - सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन - समान फल लाधे। (१)

(राम) का प्रीति करनेका ढंग ऐसा विचित्र और सुन्दर था कि (वह देखते ही बनता था) उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। राजा दशरथके पास बैठे हुए उनके चारों पुत्र ऐसे शोभा दे रहे थे मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों शरीर धारण करके वहाँ आ बैठे हों। (१) पुत्रोंके साथ राजा दशरथको देख-देखकर जनकपुरके स्त्री-पुरुष बहुत प्रसन्न हुए जा रहे थे। देवता लोग भी पुष्प-वर्षा कर-करके नगाड़े बजाए जा रहे थे और अप्सराएँ गाए - नाचे चली जा रही थीं। (२) अगवानीके लिये आए हुए शतानन्द (जनकके मन्त्री), ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, विद्वान् और बन्दीजन सबने बारातका और महाराज दशरथका बड़ा सम्मान किया और उनसे आज्ञा ले-लेकर वे (अगवानी करनेवाले) लोग लौट चले। (३) पहले तो बारात ही ऐसे लग्नसे (शुभ मुहूर्त-में) आई थी कि सारे नगरमें आनन्द ही आनन्द छा गया। वहाँके सब लोग ब्रह्मानन्दमें[1] मग्न हुए जा रहे थे और विधातासे यही मनाए जा रहे थे कि दिन-रात और भी बड़े हो चलें। (४) जहाँ-कहीं भी दो-दो चार-चार नर-नारी मिल जाते वहीं यह चर्चा छेड़ देते कि राम और सीता तो शोभाकी सीमा हैं (इनसे बढ़कर सुन्दरता और किसीकी हो नहीं सकती) और दोनों राजा (जनक और दशरथ) पुण्यकी सीमा हैं (इनसे बढ़कर पुण्यशाली कोई हो ही नहीं सकता) ॥ ३०९ ॥ जनकके पुण्यकी मूर्ति हैं जानकी, और दशरथके पुण्यकी मूर्ति हैं राम। इन दोनों (जनक और दशरथ)-ने शिवकी जैसी आराधना की वैसी न तो कोई आराधना ही कर सका न वैसा कोई फल ही पा सका। (१) इन दोनोंके समान इस जगत्में न कोई हुआ, न है,

१. 'आनन्द' ढाई प्रकारका होता है : १. ब्रह्मानन्द या परमानन्द : जीवात्माका परमात्मामें लीन हो जाना। २. काव्यानन्द : काव्यका आनन्द, जो ब्रह्मानन्दका सहोदर बताया गया है। २॥. आधा है 'विषयानन्द' (सांसारिक आनन्द) : इन्द्रियों-द्वारा क्षणिक मनस्तृप्ति।

३३७४-७५ चतुर्भिस्तनयै राजा चतुर्वर्गैरिवावभौ। नगरीस्थनरास्तन्तु प्रसमीक्ष्य मुदं ययुः ॥
३३७६ विकिरन्ति सुरास्सर्वे कुसुमानि सुपुष्करात्। नट्यो नृत्यन्ति नाकस्था गीतं गायन्ति पुष्कलम् ॥ सत्यो०

इन सम कोउ न भयउ जग माहीँ। है नहिँ, कतहूँ होनेउ नाहीँ।
हम सब सकल सुकृत-कै रासी। भे जग जनमि जनकपुर-बासी। (२)
जिन्ह जानकी-राम-छबि देखी। को सुकृती हम-सरिस बिसेखी।
पुनि देखब रघुबीर-बिबाहू। लेब भली बिधि लोचन-लाहू। (३)
कहहिँ परसपर कोकिल-बयनी। यहि बिबाह बड़ लाभ सुनयनी।
३३९० बड़े भाग बिधि बात बनाई। नयन-अतिथि होइहँइ दोउ भाई। (४)

दो०—बारहिँ बार सनेह-बस, जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहँइ बंधु दोउ, कोटि-काम-कमनीय॥ ३१०॥

बिबिधि भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर भाई।
तब-तब राम-लखनहिँ निहारी[1]। होइहँइ सब पुर-लोग सुखारी। (१)
सखि! जस राम-लखन-कर जोटा। तैसेइ भूप-संग दुइ ढोटा।
स्याम-गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिँ, देखि जे आए। (२)
कहा एक, मैँ आज निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे।

न होने ही वाला है। (वे सब जनकपुर-वासी अपनेको भी भाग्यशाली मानते हुए कह रहे हैं कि) हम सब लोग भी तो पुण्योंके समूह हैं, जिन्हें संसारमें जन्म लेनेपर यहाँ जनकपुरमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हो पाया है (२) और जिन्हें जानकी और रामकी यह छवि देखनेका अवसर मिल पाया है। हमारे समान अत्यन्त पुण्यात्मा और कौन होगा कि हम लोग रामका विवाह भी अपनी आँखोंसे देख पावेंगे और भली प्रकार नेत्र होनेका वास्तविक लाभ प्राप्त कर सकेंगे। (३) उधर कोयलके समान मिठबोली नवेलियाँ आपसमें कहे जा रही थीं—'देखो सुनयनी! विधाताने बड़े भाग्यसे यह संयोग ला बनाया है कि ये दोनों भाई (जब-जब यहाँ आया करेंगे तब-तब) हमारे नेत्रोंके अतिथि बने रहा करेंगे (हम उन्हें भर-आँख देख-पा सकेंगी) (४) क्योंकि जनक अपने स्नेहके कारण सीताको बार-बार बुलावेंगे ही और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर ये दोनों भाई जानकीको लिवा ले जानेके लिये आया ही करेंगे॥ ३१०॥ तब उनकी अनेक प्रकारसे पहुनाई (आतिथ्य-सत्कारकी रीति)-की जाया करेगी। (जब-जब ये दोनों भाई आवेंगे) तब-तब राम और लक्ष्मणको देख-देखकर नगरके सब लोग इसी प्रकार सुख पाते रहेंगे। बताओ सखी! ऐसी अच्छी ससुराल भला किसे नहीं भावेगी? (१) देखो सखी! राम और लक्ष्मणकी जैसी जोड़ी है वैसी ही राजा दशरथजीके साथ दो राजकुमारोंकी एक और (भरत-शत्रुघ्नकी) जोड़ी है। जो लोग उन्हें देख आए हैं वे सब यही कह रहे हैं कि वे साँवले और गोरे रंगवाले राजकुमार भी कुछ कम सजीले नहीं हैं।' (२) इतनेमें एक (नवेली) बोल उठी—'अरी! मैं तो उन्हें आज ही देखे चली आ रही हूँ। (वे तो इतने सुन्दर हैं) मानो विधाताने उन्हें स्वयं अपने ही हाथों रच बनाया हो।

१. तब रामहि लछिमनहिँ निहारी।

३३८६-८७ वयं धन्याः स्त्रियस्सर्वाः पुरुषास्सकला वराः। ये ये पश्यन्ति सर्वेशं रामचन्द्रं कुजापतिम्॥
३३८८ धन्या वयं विशेषेण राघवस्य करग्रहम्। द्रक्ष्यामः परमप्रीत्या जगतां मंगलालयम्॥
३३९५-९६ रामानुजावित्वालि द्वौ कुमारौ श्यामगौरकौ। सर्वांगसुन्दरावित्थं कृतालोका वदन्ति ह॥—सत्यो०

भरत राम-ही-की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिँ नर-नारी। (३)
लखन - सत्रुसूदन ऐक - रूपा। नख - सिख-तेँ सब अंग अनूपा।
३४०० मन भावहिँ, मुख बरनि न जाहीँ। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीँ। (४)
छंद—उपमा न कोउ कह, दास तुलसी कतहुँ कवि-कोबिद कहैँ।
बल - बिनय-बिद्या-सील-सोभा-सिंधु इनसम ऐइ अहैँ।
पुर-नारि सकल पसारि अंचल, बिधिहिँ बचन सुनावहीँ।
ब्याहियहु चारिउ भाइ यहि पुर, हम सुमंगल गावहीँ॥ [३४]
सो०—कहहिँ परसपर नारि, बारि बिलोचन, पुलक तन।
सखि ! सब करब पुरारि, पुन्य-पयोनिधि भूप दोउ॥ ३११॥
यहि बिधि सकल मनोरथ करहीँ। आनँद उमगि-उमगि उर भरहीँ।
जे नृप सीय - स्वयंबर आए। देखि बंधु सब, तिन्ह सुख पाए। (१)
कहत राम-जस बिसद, बिसाला। निज-निज भवन गये महिपाला।
३४१० गये बीति कछु दिन यहि भाँती। प्रमुदित पुर-जन सकल बराती। (२)
मंगल - मूल लगन दिन आवा। हिम-रितु, अगहन मास सुहावा।

भरत तो ज्योँके त्योँ राम-जैसे ही (राम-जैसे रूप-रंगके) हैँ। सहसा कोई स्त्री-पुरुष पहचान-तक नहीँ पा सकता (कि इनमेँ कौन राम हैँ और कौन भरत हैँ)। (३) इसी प्रकार लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी दोनोँ एक ही रूप-रंगके हैँ। दोनोँ ही नखसे शिख-तक (नीचेसे ऊपर-तक) बहुत ही सुन्दर हैँ। वे इतने प्यारे लगते हैँ कि मुँहसे कोई वर्णन करना चाहे भी तो कर नहीँ सकता। तीनोँ लोकोँमेँ कोई ऐसा नहीँ दिखाई देता जिससे उनकी उपमा दी जा सके। (४) तुलसीदास कहते हैँ कि संसारके कवियोँ और विद्वानोँको इनके लिये कहीँ कोई उपमा ढूँढ़े नहीँ मिल पा रही है। इसलिये बल, विनय, विद्या, शील और शोभामेँ इनके समान कोई हैँ तो ये ही हैँ। नगरकी स्त्रियाँ आंचल पसार-पसारकर विधातासे यही मनाए जा रही थीँ कि भगवान् करे इन चारोँ भाइयोँका विवाह इसी नगरमेँ हो जाय और हम सबको उनका बधावा गानेका अवसर मिले। [३४] सब स्त्रियाँ प्रेमभरे डबडबाए नेत्रोँसे पुलकित हो-होकर आपसमेँ कहे जा रही थीँ—'देखो सखी ! दोनोँ राजा पुण्यके सागर (बहुत पुण्यशाली) हैँ। इसलिये त्रिपुरारि (शिव) हमारी सब कामनाएँ अवश्य पूर्ण करेँगे'॥ ३११॥ सब स्त्रियाँ इसी प्रकार मनौतियाँ मनाए जा रही थीँ और अपने हृदयमेँ मगन हुई जा रही थीँ। सीताके स्वयंवरमेँ जो राजा आए हुए थे वे सब भी चारोँ भाइयोँको देख-देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। (१) रामके निर्मल और महान् यशका वर्णन करते हुए वे सब राजा अपने-अपने देश लौट गए। इस प्रकार बड़े आनन्दसे वहाँ रहते हुए बारातियोँको कई दिन निकल गए। (२) इसी बीच सब मंगलोँसे पूर्ण विवाहके शुभ लग्नका दिन भी आ पहुँचा। हेमन्त ऋतु, सुहावना

३३९७-९९ तदैकोवाच सख्यद्य मया दृष्टौ कुमारकौ। रामोपमश्च भरतश्शत्रुघ्न इव लक्ष्मणः॥
३४१०-११ सुखेनैवं प्रयाता निक् सैनिकानां पुरोकसाम्। तदैतं मंगलं लग्नं विवाहस्याग्रहायणे॥-सत्यो०

ग्रह, तिथि, नखत, जोग, वर बारू। लगन सोधि, बिधि कीन्ह बिचारू। (३)
पठै दीन्हि नारद - सन सोई। गनी जनक - के गनकन जोई।
सुनी सकल लोगन यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता। (४)
दो०—धेनु - धूरि - बेला बिमल, सकल - सुमंगल - मूल।
बिप्रन कहेउ बिदेह - सन, जानि सगुन अनुकूल ॥ ३१२ ॥
उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब - कर कारन काहा।
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि, सब ल्याए। (१)
संख, निसान, पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे।
३४२० सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं वेद - धुनि विप्र पुनीता। (२)
लेन चले सादर यहि भाँती। गये जहाँ जनवास बराती।
कोसल-पति - कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहिं सुर-राजू। (३)
भयउ समउ, अब धारिय पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ।
गुरुहि पूछि, करि कुल-विधि राजा। चले संग मुनि - साधु - समाजा। (४)

अगहनका महीना, सभी श्रेष्ठ ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वारका जब बढ़िया मेल हो आया तब ब्रह्माने सब मुहूर्त शोधकर लग्न निश्चित कर दिया (३) और वह लग्न-पत्रिका (स्वयं) नारदके हाथ जनकके पास लिख भेजी। (संयोग यह देखिए कि) जनकके ज्योतिषियोंने भी जो मुहूर्त निश्चय कर रक्खा था वही मुहूर्त ब्रह्माने भी लिख भेजा। लोगोंने जब यह सुना तो सब कह उठे कि ज्योतिषियोंको भी ब्रह्मासे कम न समझो (ब्रह्मा ही समझो)। (४) उसी समय ब्राह्मणोंने जनकसे जा कहा—'गोधूलि-वेलासे बढ़कर कोई अच्छा, शुभ, पवित्र और सर्वमंगलकारी समय नहीं होता ॥ ३१२ । राजा जनकने पुरोहित शतानन्दको बुलाकर पूछा—'अब देर किस बातकी की जा रही है ?' यह सुनते ही शतानन्दने अन्य मन्त्रियोंको बुला भेजा और वे विवाहका सारा मंगल साज जुटाए लिए चले आए। (१) शंख, नगाड़े और मृदंग आदि बहुतसे बाजे बज उठे। स्थान-स्थानपर मंगल कलश और शुभ शकुनकी वस्तुएँ ला-लाकर सजा धरी गईं। छबीली सुहागिन नवेलियाँ मंगल गीत गा उठीं। आचारवान् ब्राह्मण आकर वेद-पाठ करने लगे। (२) इतनी तैयारी हो चुकनेपर सब लोग आदरके साथ बारात लिवाने चल पड़े और वहाँ जा पहुँचे जहाँ जनवासा दिया गया था। वहाँ जाकर उन्होंने राजा दशरथका जो ठाट-बाट देखा तो इन्द्र (-के वैभव) भी उसके सामने उन्हें बहुत तुच्छ जान पड़े। (३) उन्होंने जाकर (महाराज दशरथसे) निवेदन किया—'विवाहका समय हुआ जा रहा है। आप लोग मंडपमें आ पधारनेकी कृपा करें।' सुनते ही नगाड़े गड़गड़ा उठे। राजा दशरथने गुरु वशिष्ठसे पूछकर कुलकी सब रीतियाँ पूरी करके मुनियों और साधुओंको साथ लेकर प्रस्थान कर दिया। (४)

३४१९-२० ततश्शंखाश्च भेर्यश्च पटहानकगोमुखाः। पुनः पुनरवाद्यन्त वादित्राणि महोत्सवे ॥
तथैव गायिकाः सर्वा जगुः परममंगलम् ॥ —सत्योपाख्यान
३४२३ अयोध्याधिपते वीर विदेहो मिथिलाधिपः। स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम्॥ वा०रा०

दो०—भाग्य-विभव अवधेस-कर , देखि देव ब्रह्मादि ।
लगे सराहन सहस-मुख , जानि जनम निज वादि ।। ३१३ ।।
सुरन सुमंगल अवसर जाना । बरपहिँ सुमन, बजाइ निसाना ।
सिव ब्रह्मादिक बिबुध-बरूथा । चढ़े बिमाननि नाना जूथा । (१)
प्रेम - पुलक - तन हृदय उछाहू । चले बिलोकन राम-बिबाहू ।
३४३० देखि जनक-पुर सुर अनुरागे । निज-निज लोक सबहि लघु लागे । (२)
चितवहिँ चकित बिचित्र बिताना । रचना सकल अलौकिक नाना ।
नगर - नारि - नर रूप - निधाना । सुघर, सुधर्म, सुसील, सुजाना । (३)
तिन्हहिँ देखि सब सुर, सुर-नारी । भये नखत जनु बिधु - उजियारी ।
बिधिहि भयउ आचरज बिसेखी । निज करनी कछु कतहुँ न देखी । (४)
दो०—सिव समुझाए देव सब , जनि आचरज भुलाहु ।
हृदय बिचारहु धीर धरि , सिय - रघुबीर - बियाहु ।। ३१४ ।।
जिन - कर नाम लेत जग माहीँ । सकल - अमंगल - मूल नसाहीँ ।

ब्रह्मा आदि सब देवता उस समय राजा दशरथका सौभाग्य और वैभव देख-देखकर अपना जन्म व्यर्थ समझ चले थे (कि इनके वैभवका वर्णन हम क्या कर पा सकते हैं और शेष नागकी सराहना किए जा रहे थे (कि वे ही सौ मुखोंसे वर्णन कर पा सकते हैं) ।। ३१३ ।। देवता भी मंगल (विवाह)-का अवसर देखकर नगाड़े बजा-बजाकर पुष्प बरसाने लगे । (उत्सव देखनेके लिये) शिव तथा ब्रह्मा आदि सब देवता टोलियाँ बना-बनाकर अपने-अपने विमानोंपर जा चढ़े (१) और प्रेमसे पुलकित हो-होकर उत्साहसे रामका विवाह देखने चल पड़े । जनकपुर (-की सजावट) देखकर तो देवता इतने लुभा गए कि जनकपुरके आगे उन्हें अपने-अपने लोक भी बहुत ओछे जान पड़ने लगे । (२) वहाँका विचित्र विवाह-मण्डप और अनेक प्रकारकी अलौकिक सजावट देख-देखकर वे चकित हो-हो पड़ रहे थे । नगर तो नगर, वहाँके स्त्री-पुरुष भी एकसे एक बढ़कर रूपवान्, सुघर (शिष्ट), धर्मात्मा, सुशील और चतुर थे । (३) उन्हें देख-देखकर सब देवता और देवियोंका मुँह ऐसा फीका पड़ा जा रहा था जैसे चन्द्रमाके प्रकाशमें तारे फीके पड़ जाते हैं । ब्रह्माको तो सबसे अधिक इसी बातका आश्चर्य हुआ जा रहा था कि मेरी कोई रचना यहाँ कहीं दिखाई ही नहीं पड़ रही है । (४) उसी समय शिवने सब देवताओंको समझाकर कहा—'आप लोग आश्चर्य क्या किए जा रहे हैं ? कुछ ठंढे हृदयसे मनमें सोचिए तो सही कि (यह किसका विवाह हो रहा है ।) यह तो (शक्ति-स्वरूपा) सीता और (साक्षात् भगवान्) रामका विवाह होने जा रहा है (फिर यहाँ क्या कमी हो सकती है ?)' ।। ३१४ ।। कामदेवको भस्म कर डालनेवाले शिव समझाने लगे—जिनका नाम 'भर लेनेसे संसारके सारे अमंगल जड़से नष्ट हो मिटते हैं और चारों पदार्थ (धर्म,

---

३४२७-२८ सुवर्षन्ति प्रसूनानि वादित्राणि सुमंगले । वादयन्तो विरिञ्च्यादिलेखावैमानिकास्तदा ।।
३४३१-३२ चार्वालोक्य वितानं चामरास्सम्भ्रमताङ्गताः । वनिताः पुरुषास्सर्वे बुद्धिशीलादिधर्म्मिणः ।।वा०

करतल होहिँ पदारथ चारी। तेइ सिय-राम कहेउ कामारी। (१)
यहि बिधि संभु सुरन समुझावा। पुनि आगे बर बसह चलावा।
३४४० देवन देखे दसरथ जाता। महा मोद मन, पुलकित गाता। (२)
साधु-समाज, संग महि-देवा। जनु तनु धरे करहिँ सुख[1] सेवा।
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनु-धारी। (३)
मरकत-कनक-बरन बर जोरी। देखि सुरन भइ प्रीति न थोरी।
पुनि रामहिँ बिलोकि हिय हरषे[2]। नृपहिँ सराहि सुमन तिन्ह बरषे। (४)
दो०—राम-रूप नख-सिख-सुभग, बारहि बार निहारि।
पुलक गात, लोचन सजल, उमा-समेत पुरारि ॥ ३१५ ॥
केकि-कण्ठ-दुति स्यामल अंगा। तड़ित-विनिन्दक बसन सुरंगा।
ब्याह-बिभूषन बिबिध बनाए। मंगलमय सब भाँति सुहाए। (१)

अर्थ, काम और मोक्ष) मुट्ठीमें आए धरे रहते हैं, ये वे ही सीता और राम तो हैं।' (१) इस प्रकार शिवने सब देवताओंको समझा-बुझाकर अपना बैल आगे हाँक बढ़ाया। देवताओंने देखा कि जनकके यहाँ जाते हुए दशरथ अपने हृदयमें बड़े मगन हुए जा रहे हैं और उनका शरीर भी पुलकायमान हुआ जा रहा है। (२) उनके साथ चलती हुई साधुओं और ब्राह्मणोंकी मण्डली ऐसी शोभा दे रही थी मानो संसारके समस्त सुख ही शरीर धारण कर-करके उनकी सेवा करते हुए साथ चले जा रहे हों। उनके चारों श्रेष्ठ पुत्र (उनके साथ) ऐसे शोभा दे रहे थे, मानो चारों प्रकारके मोक्ष[3] शरीर धारण किए साथ चले जा रहे हों। (३) नीलम और सुवर्णकी बराबरकी सुहावनी जोड़ियाँ (नीलमके समान साँवले राम-भरतकी जोड़ी तथा सुवर्णके समान गोरे लक्ष्मण-शत्रुघ्नकी जोड़ी) देख-देखकर देवताओंको भी उनपर बहुत प्रीति हुई जा रही थी। फिर, रामको देखकर तो वे इतने फूल उठे कि राजा दशरथकी सराहना करते हुए उनपर फूल बरसाने लगे। (४) नखसे शिख-तक (नीचेसे ऊपर-तक) रामका सलोना रूप बार-बार देख-देखकर पार्वती और शिवके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़े चले जा रहे थे और उनके शरीर पुलकायमान हो-हो उठ रहे थे ॥ ३१५ ॥ रामका रंग तो मोरके कण्ठकी सुन्दर साँवली झलक मार रहा था जिसपर बिजलीकी चमकको भी लजा देनेवाले सुहावने पीताम्बर पड़े हुए थे। इतना ही नहीं, उनके शरीरपर अनेक प्रकारके मंगलकारी और सुहावने विवाहके आभूषण भी सजे हुए थे। (१) उनका मुख शरत्की पूर्णिमाके

१. सुर=देवता। २. पुनि बिलोकि रामहिँ हिय हरषे। ३. चार प्रकारके मोक्ष : सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य।

३४३७-३८ यन्नामोच्चारणात् सद्यस्सर्वा बाधा विनश्यति। चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सीतारामस्स एव हि ॥वा०
३४३९-४० खे खेलगामी तमुवाह वाहः सशब्दचामीकरकिंकिणीकः ॥ —कुमारसम्भव
३४४१-४२ विप्राग्र्यैः साधुभी राजा अपवर्गोपमैस्सुतैः। शुशुभे सेव्यमानो हि निर्जरैर्निर्जरोपमः ॥
३४४३-४६ उभौ हिरण्याकारौ तु महामारकतप्रभौ। तथारूपांश्च तान्दृष्ट्वा देवा हर्षमुपागताः ॥
रामं सर्वांगसम्पन्नं शिवः शक्तियुतो मुहुः। दर्शं दर्शं कृतात्मा सुप्रेमाद्राश्रुविलोचनः ॥
३४४७-४८ पीताम्बरः केकिकण्ठद्युतिविग्रहवान् हरिः। करग्रहालंकृतिभिरलंकृत उदारधीः ॥—सत्यो०

सरद - बिमल - बिधु - बदन सुहावन । नयन नवल - राजीव - लजावन ।
३४५० सकल अलौकिक सुंदरताई । कहि न जाइ, मन ही मन भाई । (२)
बंधु मनोहर सोहहिं संगा । जात नचावत चपल तुरंगा ।
राजकुँअर बर - बाजि दिखावहिं । बंस - प्रसंसक बिरद सुनावहिं । (३)
जेहि तुरंग - पर राम बिराजे । गति बिलोकि, खग-नायक लाजे ।
कहि न जाइ, सब भाँति सुहावा । बाजि - बेष जनु काम बनावा । (४)
छंद—जनु बाजि - बेष बनाइ मनसिज राम - हित अति सोहई ।
अपने बय[1], बल, रूप, गुन, गति, सकल भुवन बिमोहई ।
जगमगत जीन-जराव - जोति, सुमोति मनि - मानिक लगे ।
किंकिनि ललाम लगाम ललित बिलोकि सुर - नर - मुनि ठगे ।। [३५]
दो०—प्रभु मनसहिं लय-लीन मन , चलत बाजि, छबि पाव ।
भूषित उडुगन, तड़ित, घन , जनु बर-बर्हि नचाव ।। ३१६ ।।

चन्द्रमाके समान निर्मल था और नेत्र भी तत्काल खिले हुए कमलको लजाए डाल रहे थे । उनकी सारी सुन्दरता ऐसी अलौकिक थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, उसका रस मनही मन लिया जा सकता था । (२) उनके साथ उनके तीनों छबीले भाई भी बड़े भले लग रहे थे जो अपने चंचल घोड़े नचाते हुए उनके साथ चले जा रहे थे । अन्य राजकुमार भी उनके साथ अपने-अपने घोड़ोंकी विभिन्न चालें[2] दिखाते चल रहे थे, और (रघुके) वंशकी कीर्तिका गान करनेवाले भाट (साथ-साथ चलते हुए) उनकी विरुदावली सुनाए जा रहे थे । (३) जिस घोड़ेपर राम बैठे जा रहे थे उसकी चाल देख-देखकर तो गरुड भी सिर नीचा किए ले रहे थे । वह इतना अधिक चटक था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । ऐसा लगता था मानो कामदेव ही घोड़ा बनकर रामकी सवारीके लिये आ पहुँचा हो । (४) सचमुच ऐसा लग रहा था मानो कामदेव ही घोड़ा बनाकर रामके लिये सजा चला आया हो । वह घोड़ा अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चालसे वहाँ सबको लुभाए डाल रहा था । सुन्दर मणि और माणिक्यसे जड़ा हुई जड़ाऊ जीन, (मणियोंकी) चमकसे चमचमा उठा था । घुंघरूदार लगाम देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सब ऐसे स्तब्ध हुए खड़े थे जैसे उन्हें कोई ठग बैठा हो । [३५] वह घोड़ा प्रभु रामके मनसे मन मिलाए हुए (रामकी इच्छाके अनुसार) चलता हुआ ऐसा अच्छा लग रहा था जैसे तारों तथा बिजलीसे सजा हुआ बादल किसी सुन्दर मोरको नचाए डाल रहा हो (घोड़ा ही मोर है, राम ही मेघ हैं, रामके आभूषण ही तारे हैं, रामका पीताम्बर ही बिजली है) ।। ३१६ ।। जिस बढ़िया घोड़ेपर राम चढ़े चले जा रहे थे वह इतना सुन्दर था

१. आपने वय, रूप, गुन, बल, गति भुवन सब मोहई । २. दुलकी, सरपट, पोई, चाल ।
३४४९-५० शारदाम्भोजवदनो रामो राजीवलोचनः । सौन्दर्य्यमखिलन्तस्यनिर्वचनीयमद्भुतम् ।।
३४५१-५२ मौलौ निबध्य वेगेन वनमालाश्च पाणिना । तुरगन्नर्तयामास रेजे चञ्चलकुण्डलः ।।
नर्तयन्ति तथा ह्यश्वान् भ्रातरो गतिभेदतः ।। —सत्योपाख्यान

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा।
संकर राम - रूप - अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे। (१)
हरि हित - सहित राम जब जोहे। रमा-समेत रमा - पति मोहे।
निरखि राम-छबि बिधि हरषाने। आठइ नयन जानि पछिताने। (२)
सुर - सेनप - उर बहुत उछाहू। बिधि - तें डेवढ़ सुलोचन - लाहू।
रामहिँ चितव सुरेस सुजाना। गौतम - श्राप परम हित माना। (३)
देव सकल सुरपतिहि सिहाहीँ। आजु पुरंदर - सम कोउ नाहीँ।
मुदित देव - गन रामहिँ देखी। नृप - समाज दुहुँ हरष बिसेखी। (४)
छंद—अति हरष राज - समाज दुहुँ दिसि दुंदुभी बाजहिँ घनी।
३४७० बरपहिँ सुमन सुर, हरपि कहि जय जयति जय रघुकुल - मनी।
यहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीँ।
रानी सुआसिनि बोलि परिछनि - हेतु मंगल साजहीँ॥ [३६]

कि यदि सरस्वती भी उसकी शोभाका वर्णन करने बैठ जायँ तो भी कभी न कर पा सकें। रामका रूप निहारते रहनेमें ही शिव इतने लीन हो चले कि उन्हें अपने पन्द्रहों नेत्र[1] आज बड़े वरदान जा पड़ने लगे (कि इतने नेत्रोंसे मैं आज रामको देख सक रहा हूँ)। भगवान् विष्णुने भी जब रामको देखा तो वे और लक्ष्मी दोनों उनपर रीझ उठे। ब्रह्मा भी रामकी शोभा देख-देखकर हर्षित हुए जा रहे थे, पर उन्हें रह-रहकर इसी बातका पछतावा हुआ जा रहा था कि मेरे आठ ही नेत्र क्यों हैं (अधिक क्यों न हुए)। (२) देवताओंके सेनापति स्वामिकार्तिकेयके मनमें उनसे अधिक उत्साह था क्योंकि वे ब्रह्माके ड्योढ़े (छह मुख होनेके कारण १२) नेत्र होनेका लाभ उठा रहे थे (बारह नेत्रोंसे देखते जा रहे थे)। पर रामका दर्शन करते समय सबसे अधिक प्रसन्नता यदि किसीको हो रही थी तो सुजान इन्द्रको हो रही थी और वह गौतम ऋषिके शापका बड़ा भला मनाए जा रहे थे (कि गौतमके शापसे मेरे सहस्र नेत्र हो गए, जिनसे मैं रामकी शोभाका दर्शन जमकर किए जा रहा हूँ)। (३) उस समय सब देवता इन्द्रको देख-देखकर मनमें तरसे जा रहे थे कि इन्द्रके समान आज कोई भाग्यवान् नहीं है (कि वे सहस्र नेत्रोंसे रामकी शोभा निहारे जा रहे हैं)। सभी देवता बहुत प्रसन्न हो-होकर रामके दर्शन किए जा रहे थे। (दशरथ और जनक) दोनों राजाओंके समाजोंमें बड़ा हर्ष छाया हुआ था। (४) सचमुच दोनों राजसमाजोंमें इतना अधिक हर्ष छाया हुआ था कि ढमाढम नगाड़े गड़गड़ाते चले जा रहे थे। उधर देवता भी फूलोंकी वर्षा करते हुए चिल्लाए चले जा रहे थे—'हे रघुकुलके मणि राम ! आपकी जय हो, जय हो।' इस प्रकार सज-धजकर आती हुई बारातकी बात सुनते ही बहुतसे बाजे बज उठे। रानी सुनयना भी सुहागिन नवेलियोंको बुला-बुलाकर परिछन[2] (परीक्षण)-के लिये मंगल साज सजाने बैठ गईं। [३६]

१. शिवके पाँच मुख हैं—अघोर, कामदेव, सद्योजात, तत्पुरुष, ईशान; और प्रत्येक मुखपर तीन-तीन नेत्र हैं (५ × ३ = १५ नेत्र)। २. परिछन : वरकी माताएँ या सास ही मूसल, सूप, सिलका बट्टा, कलश लेकर ठोक-बजाकर-झाड़-फटककर सवारीका परीक्षण करती हैं कि कहीं कोई दोष या कमी तो नहीं है जिससे वरको हानि पहुँच सके।

दो०—सजि आरती अनेक विधि , संगल सकल सँवारि ।
चलीँ मुदित परिछन करन , गज-गामिनि वर नारि ।। ३१७ ।।
विधु - बदनी सब, सब मृग-लोचनि । सब निज तन-छबि रति-मद-मोचनि ।
पहिरे बरन - बरन वर चीरा । सकल बिभूपन सजे सरीरा । (१)
सकल सुमंगल अंग बनाए । करहिं गान, कल - कंठि लजाए ।
कंकन, किंकिनि, नूपुर बाजहिं । चाल बिलोकि, काम-गज लाजहिं । (२)
बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा । नभ अरु नगर सुमंगलचारा ।
३४८० सची, सारदा, रमा, भवानी । जे सुर-तिय सुचि, सहज सयानी । (३)
कपट - नारि - बर - वेप बनाई । मिलीँ सकल रनिवासहिँ जाई ।
करहिँ गान कल मंगल वानी । हरप - बिवस सब, काहु न जानी । (४)
छंद—को जानि केहि, आनंद - बस सब, ब्रह्म - वर परिछन चलीँ ।
कल गान, मधुर निसान, बरपहिँ सुमन सुर, सोभा भलीँ ।

सब प्रकारके मंगल[२] द्रव्योंसे सजी आरती बड़े ढंगसे उठा-उठाकर हाथीके समान झूमती चलनेवाली अलवेली नवेलियाँ प्रसन्न मनसे परिछन करने चल पड़ीं ।।३१७।। उन सभी नवेलियोंके मुखड़े चाँद-जैसे और आँखें हरिणकी-सी बड़ी-बड़ी और रसीली थीं । वे सभी ऐसी एक-से-एक बढ़कर छबीली थीं कि अपनी शोभासे रतिका भी घमंड चूर किए डाल रही थीं । उन सबने एकसे एक बढ़िया रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहन रक्खी थीं और उनके तनपर सभी प्रकारके सुन्दर-सुन्दर आभूपण सजे हुए थे । (१) मंगल द्रव्योंसे अपने अंग सजाए हुए वे नवेलियाँ कोयलोंको भी लजानेवाले मधुर स्वरसे गीत गाए चली जा रही थीं । उनके हाथोंके कंगन, कमरकी करधनी (किंकिणी) और पैरोंके नूपुर (पायल) भी साथ-साथ बजते चले जा रहे थे और उनकी चाल देख-देखकर तो कामदेवका हाथी भी लज्जित हुआ पड़ रहा था । (२) (जिधर देखो उधर) अनेक प्रकारके बाजे बजे चले जा रहे थे । ऊपर आकाशमें और नगरमें मंगलाचार (मंगल गान) हो रहा था । इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती तथा अन्य जितनी भी स्वभावत: पवित्र और सयानी देवियाँ थीं (३) सब अपनी-अपनी मायासे साधारण स्त्रियोंका-सा सजीला वेप बना-बनाकर रनिवास (की स्त्रियों)-में जा मिलीं और अपनी सुरीली तानोंसे वे भी मंगल गीत गाने लगीं । रनिवासकी सभी स्त्रियाँ हर्पमें इतनी मग्न थीं कि उन देवियोंके आनेका भेद कोई भाँप-तक न पाया । (४) सभी आनन्दमें इतनी मग्न हुई पड़ी थीं कि वहाँ किसीको जानने-पहचाननेकी सुध किसे थी । वे सभी मिलकर ब्रह्म-रूपी वर (राम)-का परिछन करनेके लिये चल पड़ीं । (उस समय चारों ओर) मधुर गीत गाए जा रहे थे, नगाड़े बज रहे थे और देवता पुष्प बरसाए जा रहे थे । यह सारा दृश्य बड़ा सुहावना लग रहा था । आनन्दकंद दूल्हेको देख-

२. मंगल द्रव्य : दूध, दही, रोचना, हरिद्रा, कुंकुम, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, पान, सुपारी, जलपान ।

३४७३-७४ नीराजनार्थं रामस्य दीपपात्रकरा सती । राज्ञी तास्समवेताश्च प्रहृष्टा द्वारमाययु: ।।
३४७९ दुंदुभ्यादिप्रणादाश्च श्रूयन्ते तत्र भूरिश: ।
३४८०-८१ ब्रह्माणी तत्र रुद्राणी इन्द्राणी शारदा तथा । अन्या वै लोकपालानां स्त्रियस्तत्र समागता: ।।
गन्धर्व्योप्सरसस्तत्र तथा नार्यो ह्यनेकश: । दर्शनार्थं तु देवस्य रामचन्द्रस्य धीमत: ।।—सत्योपा०
३४८२ गायन्तो राजदाराश्च हर्षव्याकोचतुण्डका: । न पर्यचैपुस्तान् देवदारान् नाकसमागतान् ।।

आनंदकंद बिलोकि दूलह, सकल हिय हरषित भईं।
अंभोज - अंबक - अंबु उमगि , सुअंग पुलकावलि छईं।। [३७]
दो०—जो सुख भा सिय-मातु-मन , देखि राम - बर - बेष।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा, सेष।। ३१८।।
नयन नीर हटि, मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी।
३४९० बेद - बिहित अरु कुल आचारू[1]। कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू। (१)
पंच सबद सुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना।
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हाँ। राम गवन मंडप तब कीन्हाँ। (२)
दसरथ सहित - समाज बिराजे। बिभव बिलोकि, लोक-पति लाजे।
समय - समय सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महि-सुर अनुकूला। (३)
नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन - पर कछु सुनै न कोई।
यहि बिधि राम मंडपहिं आए। अरघ देइ, आसन बैठाए। (४)

देखकर वे सब नवेलियाँ हृदयमें फूली नहीं समा रही थीं। वर रामको देख-देखकर उनके कमलके समान नयनोंमें प्रेमाश्रु उमड़े पड़ रहे थे और शरीर पुलकित हुआ जा रहा था। [३७] रामका वह सलोना वेष देख-देखकर सीताकी माता (सुनयना)-के मनमें तो इतना आनन्द उमड़ा पड़ रहा था कि सहस्रों सरस्वतियाँ और शेष भी चाहें तो सौ कल्पों-तक उसका वर्णन नहीं कर पा सकते।। ३१८।। पर मंगल अवसरके कारण अपने नेत्रोंमें उमड़ते हुए आँसू रोककर प्रसन्न-चित होकर रानी सुनयना बढ़कर रामका परिछन करने लगीं और जो कुछ वेद-विहित (वैदिक) आचार या कुलकी रीति थी उसके अनुसार उन्होंने सभी व्यवहार भली प्रकार पूरे कर डाले। (१) पाँच प्रकारके बाजोंके शब्द[2] (पंच-ध्वनि) तथा मंगल-गीत आरंभ होते ही अनेक प्रकारके पाँवड़े बिछाए जाने लगे। रानी जब आरती करके अर्घ्य[3] दे चुकीं तब रामने मण्डपमें आ पदार्पण किया। (२) दशरथ भी अपनी मण्डलीके साथ वहाँ आ विराजे। उनका वैभव देख-देखकर इन्द्र बहुत लज्जित हुए जा रहे थे (कि मैं झूठे ही इन्द्र बना बैठा हूँ। इनके वैभवके आगे मेरे पास तो कुछ भी नहीं है)। बीच-बीचमें देवता लोग भी फूलोंकी वर्षा करते जा रहे थे। ब्राह्मण लोग प्रसन्न हो-होकर शान्तिपाठ करने लगे। (३) ऊपर आकाशमें और नगरमें ऐसा कोलाहल मच उठा कि किसीको अपना-पराया कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। इस प्रकार धूमधामसे राम मण्डपमें आ पधारे और उन्हें अर्घ्य देकर आसनपर

१. श्रावणकुंजकी प्रतिमें प्रतिलिपि करनेवालेने भूलसे 'आचारू'के बदले 'व्यवहारू' लिख दिया है।
२ पंचशब्द : वेदध्वनि, बन्दीध्वनि, जयध्वनि, शंखध्वनि और नगाड़ेकी ध्वनि।
३. अर्घ्य : गन्ध, पुष्प, अक्षत, जल।

३४८७-८८ रामं दृष्ट्वा सुनेत्रा च आत्मानन्न विवेद सा.।
३४८९-९२ नीराजनं चकारासौ प्रफुल्लवदना सती। वदत्सु पंचशब्देषु रामो मण्डपमागतः।।
३४९३-९४ स्वकैः पंक्तिरथो राजा मण्डलैः परिशोभितः। विपुलं वैभवं वीक्ष्य यदीयं विस्मिताः सुराः।।
पुष्पवृष्टिं यथाकालं महतीं चक्रुरादरात्। शोभितं मंगलैः सर्वैर्वेदपाठैस्तथा पुरम्।।
३४९६ पीठे निवेशितो रामो नानारत्नविभूषिते। जग्राह मधुपर्कं च राज्ञा दत्तं च राघवः।—सत्योपाख्यान

छंद—बैठारि आसन, आरती करि, निरखि वर, सुख पावहीं।
मनि, बसन, भूषन भूरि वारहिं, नारि मंगल गावहिं।
ब्रह्मादि सुर - वर, बिप्र - बेष बनाइ, कौतुक देखहीं।
३५०० अवलोकि रघुकुल - कमल - रबि - छबि, सुफल जीवन लेखहीं।। [३८]
दो०—नाऊ, बारी, भाट, नट, राम - निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरप न हृदय समाइ।। ३१९।।
मिले जनक - दसरथ अति प्रीती। करि बैदिक - लौकिक सब रीती।
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि - खोजि कवि लाजे। (१)
लही न कतहुँ हारि हिय मानी। इन सम ऐइ उपमा उर आनी।
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि, जस गावन लागे। (२)
जग बिरंचि उपजावा जब - तें। देखे - सुने ब्याह बहु तब - तें।
सकल भाँति सम साज - समाजू। सम - समधी देखे हम आजू। (३)

ला वैठाया गया। (४) आसनपर बैठाकर और उनकी आरती करके वरको देख-देखकर सब नारियाँ बड़ी मगन हुई जा रही थीं। अनेक प्रकारके रत्न, वस्त्र और आभूषण न्यौछावर करती हुई स्त्रियाँ मंगल गीत गाए जा रही थीं। ब्रह्मा आदि सब देवता भी ब्राह्मणोंका-सा वेष बना-बनाकर यह सब कौतुक (आनन्दमय दृश्य) बैठे देख रहे थे और रघुकुल-रूपी कमलको खिला देनेवाले सूर्यके समान रामकी छबि देख-देखकर अपना जीवन सफल समझ रहे थे। [३८] नाई, तमोर्ली, भाट और नट भी सब रामका न्यौछावर पा-पाकर सिर नवा-नवाकर प्रसन्न मनसे आशीष दिए जा रहे थे। उन्हें इतना हर्ष हुआ जा रहा था कि उनके हृदयमें समा नहीं पा रहा था, उमड़ा पड़ रहा था।। ३१९।। सब प्रकारके वैदिक तथा लौकिक आचार पूर्ण करके राजा दशरथ और राजा जनक दोनों बड़े प्रेमसे आकर मिले। दोनों राजा परस्पर मिलते हुए ऐसे खिल रहे थे कि उसकी उपमा खोजे भी न पाकर सब कवि लज्जित हो बैठे। (१) जब कहीं कोई उपमा उन्हें न मिल पाई तब हृदयसे हार मानकर उन्होंने यही निर्णय किया कि इनके समान यदि कोई हैं तो ये ही हैं। उन दोनों समधियोंका मिलना देख-देखकर सब देवता प्रेममें मग्न हो-होकर उनपर फूल बरसाते हुए उनका यशोगान करते जा रहे थे (२) (और कह रहे थे कि) जबसे विधाताने संसार रचा है तबसे हमने न जाने कितने विवाह देखे और सुने, पर सब प्रकारसे एक-जैसा साज-समाज तथा (रूप, गुण, शील, स्वभाव, वैभव तथा यशमें) एक-जैसे समधी यदि हमें कहीं देखनेको मिले तो आज ही मिल पाए

३४९७-९९ प्रणम्य विधिवद् भक्त्या नीराजनमथाकरोत्। प्रहृष्टनरनारीकं राजश्चान्तःपुरं बभौ।।
काश्चिद् गायन्ति सुभगा वादयंत्यस्तथाऽपराः। नृत्यन्त्यः सुष्ठुलपनाश्चक्रुः कर्माण्यनेकशः।।
ददुर्दानं द्विजातीनां दीनांधकृपणेषु च। ब्रह्माद्याः सकला देवाः स्त्रियो हि कमलादयः।।
द्वारे तस्मिन् विराजन्ते मंगलैर्हस्तपूरितैः।।
३५०१-२ युञ्जन्ति स्वाशिषं प्राप्य याचकाः पारितोषिकम्। स्वया पत्न्या चिरंजीव वर्धयस्व निजान् जनान्।।
३५०३-५ जनकस्तु महाबुद्धिर्नृपस्य चरणान्तिके। प्रेम्णा ननाम वै राजा कृत्वाञ्जलिं तु मस्तके।।
तदा दशरथो राजा दोर्भ्यां तं परिषस्वजे।।
३५०६ सम्बन्धिनौ तुल्यबलौ समीक्ष्यामराः प्रसन्ना विकिरन्ति पुष्पम्। —सत्योपाख्यान

देव - गिरा सुनि सुंदर, साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माची।
३५१० देत पाँवड़े अरघ सुहाए। सादर जनक मंडपहिं ल्याए। (४)

छंद—मंडप विलोकि विचित्र रचना, रुचिरता मुनि - मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सव - कहँ आनि सिंघासन धरे।
कुल - इष्ट - सरिस वसिष्ठ पूजे, विनय करि, आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति - कि रीति, तौ न परै कही।। [३६]

दो०—वामदेव आदिक रिपय, पूजे मुदित महीस।
दिए दिव्य आसन सवहिं, सव - सन लही असीस।। ३२०।।

वहुरि कीन्ह कोसल-पति - पूजा। जानि ईस - सम, भाउ न दूजा।
कीन्हि जोरि कर विनय, वड़ाई। कहि निज भाग्य - बिभव - वहुताई। (१)
पूजे भूपति सकल वराती। समधी - सम सादर सव भाँती।
३८२० आसन उचित दिए सव - काहू। कहउँ काह मुख एक उछाहू। (२)

हैं। (३) देवताओंकी यह सुन्दर और सच्ची वाणी सुन-सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रेम आ छाया। राजा दशरथके आगे-आगे सुन्दर-सुन्दर पाँवड़े विछाते हुए तथा उन्हें अर्घ्य देते हुए राजा जनक उन्हें वड़े आदरके साथ मण्डपमें लिवा लाए। (४) मण्डपकी विचित्र रचना और उसकी सजावट देख-देखकर मुनियोंका मन भी लुभाया पड़ रहा था। राजा जनकने स्वयं अपने हाथोंसे सवके लिये सिंहासन ला धरे। सवसे पहले उन्होंने कुलके इष्ट-देवकी भाँति विनय-पूर्वक वशिष्ठकी पूजा की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तव उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ ऐसी सुन्दर रीतिसे विश्वामित्रकी पूजा की कि उस रीतिका वर्णन किया नहीं जा सकता। [३६] राजा जनकने फिर वामदेव आदि ऋषियोंकी भी पूजा की और सवको दिव्य आसन दे-देकर सवका आशीर्वाद प्राप्त किया।। ३२०।। फिर जनक जव कोशल-नरेश राजा दशरथकी पूजा करने चले तो उनके हृदयमें केवल यही शुद्ध भावना वनी हुई थी कि मैं साक्षात् शिवकी पूजा कर रहा हूँ। उन्होंने दशरथके आगे हाथ जोड़कर और विनयपूर्वक उनकी सराहना करते हुए कहा—(१) 'यहाँ आपके पधारनेसे मुझे परम सौभाग्य और संसारका समस्त वैभव प्राप्त हो गया।' राजा जनकने सभी वरातियोंको अपने समधी (राजा दशरथ)-के समान मानकर वड़े आदरसे सवकी पूजा की और सवको उचित आसन दिया। उस समय उनके मनमें जो उत्साह उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन मैं एक मुखसे भला क्या कर पा सकता हूँ। (२)

३५११-१३ रत्नस्तम्भगुविस्तारे मुनिनाने मनोरमे। मंडपे सर्वशोभाढ्ये मुक्तापुष्पफलान्विते।।
दिव्यरत्नाचिते स्वर्णपीठे रामं न्यवेशयन्। वशिष्ठं कौशिकं चैव शतानन्दः पुरोहितः।।
यथाक्रमं पूजयित्वा रामस्योभयपार्श्वयोः। —वाल्मीकीयरामायण

३५१५-१६ पीठानि मुनिमुख्येभ्यो दत्वा भुवि स्वयं स्थितः। पाद्यमर्घ्यं स्वयं चक्रे नीराजनविधिं तथा।।पद्मपु०

३५१७-१८ ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम्। प्रेम्णा ननाम वै राजाञ्जलिं कृत्वा तु मस्तके।।
उवाच वचनं श्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम्। स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव।। वाल्मी०

सकल बरात जनक सनमानी। दान, मान, बिनती, बर बानी।
बिधि-हरि-हर-दिसिपति-दिनराऊ। जे जानहिँ रघुबीर-प्रभाऊ। (३)
कपट-बिप्र-बर-बेष बनाए। कौतुक देखहिँ अति सचु पाए।
पूजे जनक देव-सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने। (४)
छंद—पहिचानि को केहि जान, सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंदकंद बिलोकि दूलह, उभय दिसि आनँदमई।
सुर लखे राम सुजान, पूजे, मानसिक आसन दए।
अवलोकि सील-सुभाउ प्रभु-को, बिबुध-मन प्रमुदित भए॥ [४०]
दो०—रामचंद्र-मुख-चंद्र-छबि, लोचन चारु चकोर।
३५३० करत पान सादर सकल, प्रेम, प्रमोद न थोर॥ ३२१॥
समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंद मुनि आए।
बेगि कुँअरि अब आनहु जाई। चले मुदित, मुनि-आयसु पाई। (१)

जनकने दान, मान, शील-प्रदर्शन और मधुर वाणीसे (दशरथका ही नहीं,) सारी बारातका सम्मान किया। रामका प्रभाव जाननेवाले ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य आदि जो देवता (३) मायासे अच्छे-अच्छे ब्राह्मण बन-बनकर वहाँ आ बैठे थे और (मण्डपका) यह सब दृश्य देख रहे थे उनको भी देवताके समान जानकर जनकने उनकी पूजा की और बिना पहचाने ही उन्हें सुन्दर आसनोंपर ले जा बिठाया। (४) वहाँ कौन किसीको जान और पहचान सकता था क्योंकि किसीको अपने तन-तककी तो सुध रह नहीं गई थी क्योंकि दोनों पक्षवाले लोग आनन्दकन्द दूल्हे (राम)-को ही देख-देखकर आनन्दमें मग्न हुए पड़े थे। पर सुजान रामने सब देवताओंको पहचान लिया और उन सब प्रत्यक्ष उपस्थित देवताओंकी मानसिक पूजा करके उन्हें (मानसिक) आसन भी दे डाले। प्रभु रामका यह शील (शिष्टाचार) और (उदार) स्वभाव देखकर सब देवता अपने-अपने मनमें बड़े आनन्दित हुए। [४०] वहाँ जितने लोग बैठे थे वे सब रामके मुखकी सुन्दरता वैसे ही आदरके साथ पीए जा रहे थे (उनके मुखकी ओर टकटकी बाँधे देखे चले जा रहे थे) जैसे चकोर टकटकी लगाकर चाँदकी चाँदनी पीया करता है (चन्द्रमाको देखा करता है)। उस समय उनके हृदयमें जो प्रेम और आनन्द उमड़ा हुआ था वह थोड़ा नहीं था, अपार था ॥३२१॥ लग्न (विवाह)-का समय होता जानकर वशिष्ठने आदरपूर्वक शतानन्दको बुला भेजा और सुनते ही शतानन्द आ भी गए। (वशिष्ठने कहा—) 'जाइए! अब राजकुमारीको शीघ्र मंडपमें लिवाते लाइए।' मुनि वशिष्ठकी आज्ञा पाते ही वे प्रसन्न होकर चल दिए। (१) जब यह सन्देश

३५१९-२१ सेनां निवेशयामास पुरस्य निकटे नृपः। पट्टवेश्मानि शोभन्ते सहस्राणि ध्वजैः सह॥
उवास तेषु धर्मात्मा सैन्यैः सह महामतिः। जनकोपि तमामन्त्र्य पौरैः सह गृहं ययौ॥
नानाविधानि चान्नानि दधिव्यंजनयुतानि च। प्रेषयामास राजापि सैन्यानां भोजनाय च॥सत्यो०
३५२२-२४ प्राङ्गणे स्थापयामास रत्नसिंहासनेषु तान्। सर्वान् विप्रं च मामीशं विशिष्टांश्च विशेषतः॥
३५२७-२८ दाशरथिस्तदा तत्रागतानां च पृथक् पृथक्। सर्वेषाममराद्यानां सत्कारं व्यदधान् मुदा॥ पद्म०
३५३१-३२ वसिष्ठो भगवानेत्य शतानन्दमुवाच ह। अत्र सीतामानयस्वलंकृत्य यथाविधि॥ आनन्दरा०

रानी सुनि उपरोहित - बानी । प्रमुदित सखिन - समेत सयानी ।
बिप्र - बधू, कुल - बृद्ध बोलाई । करि कुल-रीति, सुमंगल गाई । (२)
नारि - बेष जे सुर - बर - बामा । सकल सुभाय सुंदरी स्यामा ।
तिन्हहिं देखि सुख पावहिं नारी । बिनु पहिचानि प्रान - तें प्यारी । (३)
बार बार सनमानहिं रानी । उमा - रमा - सारद - सम जानी ।
सीय सँवारि, समाज बनाई । मुदित मंडपहिं चलीं लिवाई । (४)

छंद—चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर, सजि सुमंगल भामिनी ।
३५४० नव - सप्त साजे सुंदरी सब मत्त - कुंजर - गामिनी ।
कल गान सुनि, मुनि ध्यान त्यागहिं, काम - कोकिल लाजहीं ।
मंजीर, नूपुर, कलित कंकन, ताल-गति बर बाजहीं ।। [४१]

दो०—सोहति वनिता - बृन्द - महँ, सहज सुहावनि सीय ।
छबि-ललना-गन मध्य जनु, सुखमा तिय कमनीय ।। ३२२ ।।

पुरोहित (शतानन्द)- ने रानी सुनयनासे कहा तो प्रसन्न होकर सयानी सखियोंके साथ उन्होंने ब्राह्मणोंकी पत्नियों और कुलकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंको बुलाकर पहले कुलकी रीति पूरी करके मनभावने मंगल गीत गाने प्रारंभ कर दिए । (२) मनुष्योंकी सुन्दरी नवेलियोंके वेषमें जो देवियाँ वहाँ आई हुई थीं वे स्वभावसे ही इतनी सुन्दरी और श्यामा (सलोनी) थीं कि उन्हें देख-देखकर रनिवासकी स्त्रियाँ उनपर इतनी रीझी पड़ रही थीं कि बिना पहचाने ही वे सबको प्राणोंसे प्यारी लगी जा रही थीं । (३) रानी सुनयना भी उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वतीके समान मान-मानकर बार-बार उनका सम्मान किए जा रही थीं । वे सब (देवियाँ) सीताको सजा-सँवारकर और अपनी टोली बनाकर हँसती-मुसकराती उन्हें मण्डपमें लिवा ले चलीं । (४) जो नारियाँ सुमंगल (मांगलिक द्रव्य) सजाकर सीताको आदरके साथ (मंडपमें) लिवाए लिए जा रही थीं वे सभी सुन्दरियाँ सोलहों शृङ्गार किए मतवाले हाथीकी चालसे झूमती चली जा रही थीं । उनके मधुर कंठके गीत इतने मनोहर थे कि उन्हें सुन-सुनकर मुनियोंका ध्यान भी टूटे बिना नहीं रह पा सकता था । उनके कंठोंकी मधुर तानसे कामदेवकी कोयलें भी लजाई पड़ रही थीं । उनके हाथके मंजीर, नूपुर (पायल) और घुँघरूदार सुन्दर कंकण, हाथकी तालके साथ-साथ किनकिन-रुनझुन-छमछम किए जा रहे थे । [४१] स्वभावसे परम सुन्दरी सीता उन सुन्दरियोंके बीच ऐसी शोभा दे रही थीं मानो सुन्दरता तो उन सुन्दरियोंका रूप बनाकर चल रही हो और उनके बीच परम शोभा ही

३५३३-३४ पुरोधास्तु विदेहानां शतानन्दो महामतिः । तस्य श्रुत्वा वचो राज्ञी ह्यालिभिः सहिता मुदा ।।
ग्रामाचारं कुलाचारं वृद्धाचारं तथाऽकृत । —प्रसन्नराघव

३५३५-३७ ब्रह्माणी तत्र रुद्राणी इन्द्राणी शारदा तथा । अन्या वै लोकपालानां स्त्रियस्तत्र समागताः ।।
गन्धर्व्योऽप्सरसस्तत्र नारीरूपेण भूरिशः । —सत्योपाख्यान

३५३९-४२ सभाजयित्वा पटभूषणादिभिस्सख्यो विनिन्युर्जनकात्मजाम्प्रियाः ।
सन्मण्डपं ताः कलगानतत्पराश्शनैश्शनैर्यान्त्य उदाननाः किल ।। —प्रसन्नराघव

सिय - सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति, बहुत मनोहरताई।
आवत दीखि बरातिन सीता। रूप - रासि, सब भाँति पुनीता। (१)
सबहिं मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम, भे पूरनकामा।
हरषे दसरथ सुतन - समेता। कहि न जाइ, उर आनँद जेता। (२)
सुर प्रनाम करि, बरिसहिं फूला। मुनि-असीस-धुनि मंगल - मूला।
३५५० गान - निसान - कोलाहल भारी। प्रेम - प्रमोद - मगन नर - नारी। (३)
यहि विधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई।
तेहि अवसर करि विधि - व्यवहारू। दुहुँ कुल-गुरु सब कीन्ह अचारू। (४)
छंद—आचार करि गुरु, गौरि - गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं, देहिं असीस, अति सुख पावहीं।

सीता बनकर आ सुशोभित हुई हो ॥ ३२२ ॥ सीताकी सुन्दरताका वर्णन मुझसे करते नहीं बन पा रहा है क्योंकि कहाँ तो मेरी बड़ी छोटी-सी बुद्धि और कहाँ सीताका अपार सौन्दर्य !

जब बरातियोंने उस रूपकी देवी और परम शुद्ध चरित्रवाली सीताको (मण्डपमें) आते देखा—(१) तो सबने मनही मन (सीताको) प्रणाम करनेके लिये सिर झुका लिया। उस समय रामको (सीताके योग्य) देखकर सभी कृतकृत्य हो गए (कि यह जोड़ी सचमुच ठीक है)। राजा दशरथ और उनके सब पुत्र भी (सीताको देखकर) प्रसन्न हो उठे। उनके हृदयमें जो आनन्द भरा था उसका किसी भी प्रकार वर्णन कर सकना असंभव है। (२) सब देवता भी (राम और जानकीको) प्रणाम करके उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। मुनियोंने भी उन्हें अनेक अत्यंत मंगलकारी आशीर्वाद दिए। उस समय इस प्रकार गीतों और नगाड़ोंकी सम्मिलित ध्वनिसे बड़ा धूमधड़ाका मच उठा था क्योंकि सभी स्त्री-पुरुष प्रेम और आनन्दमें मग्न हो उठे। थे (३) इस धूमधामके साथ ज्यों ही सीताने मण्डपमें प्रवेश किया त्यों ही मुनि लोग शान्ति-पाठ[1] करने लगे। उस समय दोनों ओरके कुलगुरुओंने वे सब रीति, व्यवहार और कुलाचार पूर्ण करा डाले जो पहलेसे होते चले आ रहे थे। (४) सब कुलाचार पूर्ण करके ब्राह्मण लोग प्रसन्न हो-होकर गुरु, गौरी और गणेश-का पूजन कराने लगे। सभी देवता प्रकट हो-होकर अपनी-अपनी पूजा ले-लेकर आशीर्वाद देते हुए मन ही मन मगन हुए जा रहे थे। मधुपर्क[2] आदि जो-जो कुछ मांगलिक पदार्थ जिस-जिस

---

१. शान्ति-पाठ : 'द्यौः शान्तिः' आदि मन्त्र। २. मधुपर्क : घी, मधु और दही, जो समान न हों।

३५४५ षड्वर्षापि च वैदेही रूपातिशयतां ययौ। श्यामेव लक्ष्यते पौरैरवरोधैश्च मातृभिः ॥
वाणी न शक्यते स्तोतुं सीतासौन्दर्य्यमद्भुतम्।
३५४६-४७ तथा सर्वे जनाश्चैव समीक्ष्य जनकात्मजाम्। सर्वांगसुन्दरीं शुद्धां प्रणेमुस्सादरं हृदि ॥
३५४८ जहर्ष च महाराजस्सात्मजो रघुवंशजः। प्रमोदश्चाधिको जातोऽवर्णनीयो मनीषिभिः ॥
३५५० गीतवाद्यविनोदश्च तत्रोत्सवपुरस्सरम्।
३५५१ तदा वादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा। महोत्साहोऽभवत्तत्र गीतनृत्यान्वितेन हि ॥—प्रसन्न०

मधुपर्क, मंगल द्रव्य, जो जेहि समय मुनि मन - महँ चहैं ।
भरे कनक - कोपर- कलस सो तब लिऐहि परिचारक रहैं ॥ [४२]
कुल - रीति, प्रीति - समेत रबि कहि देत, सब सादर किये ।
यहि भाँति देव पुजाइ, सीतहिं सुभग सिंघासन दिये ।
सिय - राम - अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै ।
३५६० मन - बुद्धि - बर बानी - अगोचर, प्रगट कबि कैसे करै ॥ [४३]
दो०—होम-समय तनु धरि अनल, अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र-बेष धरि बेद सब, कहि बिबाह - बिधि देहिं ॥ ३२३ ॥
जनक - पाट - महिषी जग जानी । सीय - मातु किमि जाइ बखानी ।
सुजस, सुकृत, सुख, सुंदरताई । सब समेटि बिधि रची बनाई । (१)
समउ जानि मुनिबरन बोलाई । सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ।

समय मुनि लोग माँगते थे वह सब सोनेके कलशों और कोपरों (ऊँची बाड़के थालों)-में रख-रखकर सेवक लोग प्रस्तुत करते जा रहे थे । [४२] (विचित्र बात यह थी कि कुलके गुरु) स्वयं सूर्यनारायण ही बड़े प्रेमसे आकर कुलकी सारी रीति बताते जा रहे थे और सब लोग आदरपूर्वक उसीके अनुसार उस रीतिका पालन करते जा रहे थे । इस प्रकार पहले देवताओंका पूजन कराकर उन्होंने सीताको सुन्दर सिंहासनपर ला बिठाया । उस समय राम और जानकी जिस प्रकार परस्पर एक दूसरेको (कनखियोंसे) देखते जा रहे थे वह उनका प्रेम वहाँ कोई ताड़ न पाया । उनके उस प्रेमका वर्णन जब मन, बुद्धि, और वाणी भी नहीं कर पा सकती तब कवि भला उसका वर्णन कैसे कर पा सकता है ? [४३] (विवाहका) हवन करते समय साक्षात् अग्निदेव ही प्रकट होकर बड़े हर्षसे आहुति लिए जा रहे थे और स्वयं वेद ही ब्राह्मणका वेष बना-बनाकर वहाँ बैठे विवाहकी विधि बताते जा रहे थे ॥ ३२३ ॥ सीताकी माता और महाराज जनककी पटरानी (सुनयनाके शील और स्वभाव)-को सारा संसार ही जानता है । उनकी प्रशंसा भला किस प्रकार की जा सकती है ? (ऐसा जान पड़ता है मानो) संसारका सारा सुयश, समस्त पुण्य और सारी सुन्दरता एकत्र करके विधाताने उनकी रचना की है । (१) समय जानकर मुनियोंने उन्हें (सुनयनाको) भी बुलवा भेजा । सुनते ही सुहागिन नारियाँ उन्हें आदरके साथ (मण्डपमें)

३५५२-५६ पीठे निवेशितो रामो नानारत्नविभूषिते । जग्राह मधुपर्कं च राज्ञा दत्तं च राघवः ॥सत्योपा०
कृत्वा गणपतेः पूजां पुण्याहोद्वाचनन्तथा । कारयामास विधिना प्रतिष्ठा देवकस्य च ॥ आ०रा०
३५५९-६० तयोर्विलोचनान्येव लज्जां प्रापुः परस्परम् । व्याजेन होमधूमस्य चोन्मेषणनिमेषणम् ॥
बभूव वरवध्वोश्च मण्डपे जनसन्निधौ । —सत्योपाख्यान
३५६१-६२ अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनिपुंगवः ॥वा०रा०
३५६३-६४ रूपेणाऽप्रतिमा लोके सर्वाभरणभूषिता । जनकस्य पट्टराज्ञी सौन्दर्य्यशेवधिः प्रिया ॥अध्या०रा०

जनक-बाम-दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि - संग बनी जनु मयना । (२)
कनक-कलस, मनि - कोपर रूरे । सुचि - सुगंध - मंगल - जल - पूरे ।
निज कर मुदित राय अरु रानी । धरे राम - के आगे आनी । (३)
पढ़हिँ बेद, मुनि मंगल - बानी । गगन सुमन झरि, अवसर जानी ।
३५७० बर बिलोकि दंपति अनुरागे । पायँ पुनीत पखारन लागे । (४)
छंद—लागे पखारन पायँ - पंकज प्रेम, तन पुलकावली ।
नभ, नगर गान-निसान - जय - धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ।
जे पद - सरोज मनोज - अरि - उर - सर सदैव बिराजहीँ ।
जे सकृत सुमिरत, बिमलता मन, सकल - कलिमल भाजहीँ ।। [४४]
जे परसि, मुनि - बनिता लही गति, रही जो पातकमई ।
मकरंद जिन - को संभु - सिर, सुचिता - अवधि सुर बरनई ।

लिवाती लाईं (और उन्होंने उन्हें[१] जनककी बाईं ओर ले जा बैठाया) । जनककी बाईं ओर बैठी हुई सुनयना ऐसी शोभा दे रही थीं मानो हिमाचलके साथ उनकी पत्नी मेना शोभित हो रही हों । (२) (ज्यों ही) पवित्र और सुगंधित मंगल-जलसे भरा हुआ सोनेका कलश तथा रत्न-जटित कोपर (ऊँची बाड़का थाल) राजा जनक और रानी सुनयनाने रामके आगे ला बढ़ाया (३) (त्यों ही) मुनि लोग मंगल वाणीसे वेदके मन्त्र पढ़ने लगे । (विवाहका) अवसर समझकर आकाशसे फूलोंकी झड़ी लग गई । वर (राम)-को देखकर राजा जनक और रानी सुनयना प्रेमसे फूले नहीं समाए और वे बैठकर (रामके) पवित्र चरण धोने लगे । (४) राजा जनक और रानी सुनयना दोनों अत्यन्त पुलकित होकर रामके चरण-कमल धोते जा रहे थे । चारों ओर नगर और आकाशमें गीतोंकी, नगाड़ोंकी और जय-जयकारकी ध्वनि गूँज उठी थी । रामके जो कमलके समान चरण कामके वैरी शिवके हृदयके सरोवरमें सदा बिराजे रहते हैं, जिन चरणोंका एक बार स्मरण मात्र कर लेनेसे मन निर्मल हो उठता और कलिके सारे पाप भाग खड़े होते हैं, [४४] जिनका स्पर्श पाते ही ऋषि-पत्नी पापमयी अहल्याने परम गति प्राप्त कर ली, जिन चरणोंका वह रस (गंगा बनकर) शिवके मस्तकपर चढ़ा रहता है जिसे देवता भी सबसे अधिक पवित्र बताते हैं, जिन चरण-कमलोंमें

१. कन्या-पुत्र-विवाहे च गोदाने व्रतबन्धने । आशीर्वादेऽभिषेके च पत्नी उत्तरतो भवेत् । कन्यादाने वृषोत्सर्गे, अध्वरे सोमदर्शने । पत्नीं दक्षिणतः कुर्यादन्यथा वामतः शुभा ।। [कन्या और पुत्रके विवाहमें, गोदानमें, व्रतबन्धमें, आशीर्वाद देते समय तथा अभिषेकमें पत्नीको पतिके वाम भागमें बैठना चाहिए । कन्यादान, वृषोत्सर्ग, यज्ञ तथा सोमदर्शनके समय पत्नी अपने पतिकी दाहिनी ओर बैठे । इनके अतिरिक्त वाम भाग ही शुभ है]।।—दानचंद्रिका ।

३५६५-६६ सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् । —अध्यात्मरामायण
३५६७-७० पाद्यादिभाजनं राजा सभार्यो रामसन्निधौ । आनिनाय प्रहृष्टात्मा वारिपाटीरभूषितम् ।।
पठन्ति मुनयो वेदान् प्रसूनानि स्रवन्ति खात् । भार्यापती सानुरागौ क्षालयामासतुः पदौ ।।
३५७१-७४ तनूरुहं हृष्टमन्तदानीमालोकशब्दो गवि पुष्करेऽभूत् ।
विराजते यत्पदपुण्डरीकं हरोरसि स्वच्छतमे वरेण्ये ।। —पद्मपु०

करि मधुप मुनि मन, जोगि - जन जे सेइ, अभिमत गति लहैं ।
ते पद पखारत भाग्य - भाजन जनक, जय जय सब कहैं ॥ [४५]
वर - कुँअरि - कर - तल जोरि साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं ।
३५८० भयो पानि-गहन बिलोकि, बिधि, सुर, मनुज, मुनि आनँद भरैं ।
सुख - मूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु, हुलस्यो हिये ।
करि लोक - वेद - विधान कन्या - दान नृप - भूषन किये ॥ [४६]
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिँ, हरिहिँ श्री सागर दई ।
तिमि, जनक रामहिँ सिय समरपी, बिस्व कल कीरति नई ।
क्यों करैं विनय बिदेह, कियउ बिदेह मूरति साँवरी ।
करि होम विधिवत, गाँठि जोरी, होन लागी भाँवरी ॥ [४७]

मुनि लोग अपना मन भौंरा बनाकर और योगी लोग जिनकी सेवा करके मनचाही गति (सिद्धि, मुक्ति) प्राप्त कर लेते हैं, वे ही चरण बड़भागी जनकके हाथों धोए जाते देखकर सब लोग उनकी जय-जयकार कर उठे । [४५] (रघु और निमि) दोनों कुलोंके गुरु तब वरकी हथेलीपर कन्याकी हथेली रखकर शाखोच्चार[1] करने लगे । इस प्रकार पाणिग्रहण होता देखकर ब्रह्मा आदि देवता, मनुष्य और मुनि सब प्रसन्न हो उठे । सुखके निधान (सबको सुख ही सुख देनेवाले) दूल्हे (राम)-को देख-देखकर राजा जनक और महारानी सुनयनाका हृदय बाँसों उछला पड़ रहा था और शरीर पुलकित हुआ जा रहा था । राजा जनकने लोक और वेदके विधानके अनुसार उसी प्रकार रामके हाथों सीता सौंप दी जिस प्रकार हिमवान्‌ने शंकरको पार्वती और सागरने विष्णुको लक्ष्मी सौंप दी थी । [४६] (इस कन्यादानसे) संसारमें उनकी बड़ी कीर्ति फैल गई । साँवली मूर्ति (राम)-ने विदेह (जनक)-को सचमुच विदेह कर दिया (उन्हें देखकर जनक अपनी देहकी सारी सुध भूल गए) । वे (जब प्रेममें इतने मग्न हो उठे थे तब भला वे) रामका अभिनन्दन किस प्रकार कर पा सकते थे ? हवन करनेके उपरान्त विधिपूर्वक (वर-कन्या)-की गाँठ जोड़ दी गई और भाँवरी पड़ने लगी (वे अग्निकी परिक्रमा करने लगे) । [४७] चारों ओर जय-जयकार, वन्दीजनोंकी

१. शाखोच्चार : विवाहके समय वर तथा कन्याके पुरोहित तीन-तीन बार वर और कन्याके गोत्र और प्रवरके साथ उनके प्रपितामह, पितामह और पिताके नामका परिचय देते हैं ।

३५७५-७८ यस्याः स्पर्शनमात्रेण मुक्तशापा बभूव ह । सुन्दरी साऽभवत् क्षिप्रं रामचन्द्रप्रसादतः ॥सत्योपा०
यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ —भागवत
सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम् । पादौ प्रक्षाल्य विधिवत् तदपो मूर्ध्न्यधारयत् ॥
या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा । —अध्यात्मरामायण
३५८२ ततः सीतां करे धृत्वा साक्षतोदकपूर्वकम् । रामाय प्रददौ प्रीत्या पाणिग्रहविधानतः ॥
३५८३-८६ सीता कमलपत्राक्षी स्वर्णमुक्तादिभूषिता । दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम ॥
इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन् । मुमुदे जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे ॥अ०रा०

दो०—जय-धुनि, बंदी - वेद - धुनि, मंगल - गान, निसान।
सुनि हरषहिं, बरसहिं विबुध , सुरतरु - सुमन सुजान ।। ३२४ ।।

कुँअर-कुँअरि कल भाँवरि देहीं। नयन - लाभ सब सादर लेहीं।
३५९० जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी[1] । (१)
राम - सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगाति मनि - खंभन-माहीं[1] ।
मनहुँ मदन - रति धरि बहु रूपा। देखत राम - बियाह अनूपा। (२)
दरस - लालसा, सकुच न थोरी। प्रगटत - दुरत बहोरि बहोरी।
भये मगन सब देखनिहारे। जनक - समान अपान बिसारे। (३)
प्रमुदित मुनिन भाँवरी फेरी। नेग - सहित सब रीति निबेरी।
राम सीय - सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति विधि केहीं। (४)

विरुदावलीका गान, वेद-पाठ, मंगल गान और नगाड़ेकी ध्वनि गूँज उठी, जिसे सुन-सुनकर चतुर देवता भी हर्षित हो-होकर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा कर उठे ।। ३२४ ।। उधर कुंवर राम और कुँवरि जानकीकी भाँवरें पड़ रही थीं, इधर सब लोग (भाँवरें पड़ती देखकर) बड़े आदरके साथ उस मनोहर जोड़ीको भर-आँखें देख-देखकर मगन हुए जा रहे थे । उस (दृश्य)-का वर्णन किसीके किए किया नहीं जा सकता । उसकी जो भी उपमा दी जाय वह घटिया ही पड़ेगी (ठीक नहीं जमेगी) । (१) मणिके खंभोंपर पड़ती हुई राम और जानकीकी सुन्दर परछाहीं ऐसी झिलमिल-झिलमिल कर रही थी मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण कर-करके रामका वह मंगल विवाह देखने आ तो खड़े हुए हों पर (२) दर्शनोंकी लालसाके साथ-साथ बहुत संकोच होनेके कारण (कि हम तो इनके रूपके पासँग बरावर भी नहीं हैं) उनकी परछाहीं झिलमिल-झिलमिल करती हुई बार-बार लुका-छिपी करती चल रही हो । यह झाँकी देखनेवाले सब इतने मग्न हुए जा रहे थे कि जनकके समान सभी अपनी सुध-बुध गँवा बैठे थे । (३) मुनियोंने प्रसन्न होकर भाँवरी फिराई (फेरे कराए) और सबको नेग (दक्षिणा) दिलवाकर (विवाहकी) सब रीतियाँ पूरी करा डालीं । इसके पश्चात् रामने सीताकी माँगमें सिंदूर उठा भरा । उस (सिन्दूर-भरी माँग)-की शोभा ऐसी थी कि उसका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता । (४) ऐसा जान पड़ता था मानो कमलमें

---

१. यह चौपाई (दोनों अर्द्धालियाँ) काशिराजकी प्रतिमें नहीं है ।

३५८७-८८ महोत्सवो महानासीत् सर्वत्र प्रमुदावहः । बभूव जयसंरावो दिवि भूम्यन्तरिक्षके ।।
साधुशब्दं नमःशब्दं चक्रुः सर्वेतिहर्षिताः । गंधर्वाः सुजगुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।। अ०रा०
३५८९-९० परिक्रमां विदधतौ वीक्ष्य कन्यावरौ जनाः । नेत्रैरनिमिषैस्सर्वे चक्षुष्मत्ताफलं ययुः ।।
३५९१-९२ शुशुभे च तदा रामः कामो रत्येव मण्डपे । यत्र स्वर्णमयाः स्तम्भाः सौधे सौधे निरूपिताः ।।
तेषु तत्प्रतिबिम्बेन सजीवा इव वै गृहाः ।
३५९३-९४ किं बहूक्तेन भो देव मदना इव भूरिशः । दृष्ट्वा रामं तु ते सर्वे नात्मानं विविदुस्तदा ।।
३५९५ यथोक्तेन तथा चक्रे विवाहं विधिपूर्वकम् ।
३५९६ सीता शिरसि सिन्दूरं ददौ रामो द्विजाज्ञया । तदानीं क्षितिजाभिस्याद्भुतावर्ण्या बभूव ह ।।सत्यो०

अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहिं भूष अहि, लोभ अमी-के।
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बर-दुलहिनि बैठे एक आसन। (५)
छंद—बैठे बरासन राम-जानकि मुदित-मन दसरथ भये।
३६०० तनु पुलक, पुनि पुनि देखि अपने सुकृत-सुरतरु-फल नये।
भरि भुवन रहेउ उछाह राम-बिवाह भा, सब ही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक, एहु मंगल महा॥ [४८]
तब जनक, पाइ बसिष्ठ-आयसु, ब्याह-साज सँवारि-कै।
मांडवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिलि लइय कुँअरि हँकारि-कै[1]।
कुसकेतु-कन्या प्रथम जो गुन-सील-सुख-सोभा-मई।
सब-रीति-प्रीति-समेत करि, सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥ [४९]
जानकी-लघु-भगिनि सब सुंदर-सिरोमनि जानि-कै[2]।
सो दीन्हि तनया[3] ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि-कै।
जेहि नाम श्रुतिकीरति, सुलोचनि, सुमुखि, सब-गुन-आगरी।
३६१० सो दई रिपु-सूदनहि भूपति, रूप-सील-उजागरी॥ [५०]

भरपूर लाल पराग भरकर कोई सर्प अमृत पानेके लोभसे चन्द्रमाका सिंगार किए डाल रहा हो (रामका हाथ ही कमल, सिंदूर ही लाल पराग, रामकी भुजा ही सर्प और सीताका मुख ही चन्द्रमा है)। तब वशिष्ठकी आज्ञासे वर और दुलहिन दोनों एक आसनपर जा विराजे। (५) राम और जानकीको सुहावने आसनपर बैठे देखकर दशरथके मनमें बड़ा हर्ष हुआ जा रहा था और वे मनमें समझे जा रहे थे कि मेरे पुण्यके कल्पवृक्षमें यह (राम-जानकीका विवाह) नया फल बनकर आ लगा है। (यह समझ-समझकर) वे बार-बार रोमांचित हुए पड़ रहे थे। सब लोकोंमें इतना अधिक उत्साह छा गया था कि सब (हर्षसे) चिल्ला उठे—'लो! रामका विवाह सम्पन्न हो गया, हो गया।' इस विवाहका वर्णन कोई कर भी कैसे सकता है? क्योंकि जीभ तो (ले-देकर) एक ही मिल पाई है और वह विवाहका मंगल कार्य इतना विशाल (अनेक प्रकारकी एकसे एक निराली शोभाओंसे भरा हुआ) था। [४८] तब वशिष्ठकी आज्ञासे जनकने विवाहका सारा साज सजवाकर माण्डवी, श्रुत-कीर्ति और उर्मिलाको भी बुलवा लिया। जनकने अपने भाई कुशध्वजकी गुण, शील, सौख्य और शोभासे पूर्ण बड़ी कन्या (माण्डवी)-का विवाह सब रीतियोंके साथ भरतके साथ कर दिया। [४९] जानकीकी छोटी बहिन (उर्मिला)-को सुन्दरियोंमें सर्वश्रेष्ठ जानकर उसका विवाह सम्मानपूर्वक सब विधियोंके साथ लक्ष्मणसे कर दिया गया और जिस कन्याका नाम श्रुतिकीर्ति था, उस रसीले नेत्रोंवाली, सुमुखी और सब गुणोंमें निपुण रूप-शीलवती कन्याका विवाह शत्रुघ्नके साथ कर दिया गया। [५०]

१. मांडवी श्रुतिकीरति उर्मिला कुँअरि लई हँकारि कै।
२. जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै। ३. सो जनक दीन्ही।

३५९८ ततो विप्राज्ञया तौ द्वावेकासनसमास्थितौ। लेभाते परमां शोभां भक्तचित्तमुदावहाम्॥
३६०५-६ वसिष्ठस्याज्ञया राजा भरताय गुणात्मने। माण्डवीं शीलसम्पन्नान्दत्तवान् जनको मुदा॥
३६०७-१० एतस्मिन्नन्तरे राजा आहूय लक्ष्मणं पुनः। उर्मिलां च विधानेन लक्ष्मणाय स्वयन्ददौ॥
कुशध्वजसुतां रम्यां श्रुतिकीर्तिं च विश्रुताम्। शत्रुघ्नाय ददौ राजा विधिना बलशालिने॥सत्यो०

अनुरूप बर - दुलहिनि परसपर लखि, सकुचि, हिय हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं, सुमन सुर-गन बरषहीं।
सुंदरी सुंदर बरन - सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव - उर चारिउ अवस्था बिभुन - सहित बिराजहीं॥ [५१]
दो०—मुदित अवध-पति सकल सुत, बधुन - समेत निहारि ।
जनु पाये महिपाल - मनि , क्रियन-सहित फल चारि ॥ ३२५ ॥
जसि रघुबीर ब्याह - बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी।
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक - मनि मंडप पूरी। (१)
कंबल, बसन, बिचित्र पटोरे। भाँति - भाँति, बहुमोल, न थोरे।
३६२० गज, रथ, तुरग, दास अरु दासी। धेनु अलंकृत कामदुहा - सी। (२)
बस्तु अनेक करिय किमि लेखा। कहि न जाइ, जानहिं जिन्ह देखा।

वर और दुलहिनोंके ये तीनों जोड़े भी परस्पर एक दूसरेको अपने-अपने मनके अनुकूल पा-पाकर सब (शीलके कारण) सकुचा भी रहे थे और हृदयमें प्रसन्न भी हुए जा रहे थे। वहाँ सभी लोग आनन्दमग्न होकर उनकी सुन्दरताकी सराहना किए जा रहे थे और देवता आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे। सभी सुन्दरी कन्याएँ अपने-अपने सलोने वरोंके साथ एक ही मण्डपमें बैठी ऐसी शोभा दे रही थीं, मानो जीवके हृदयमें चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) अपने चारों विभुओं (स्वामियों : विश्व, तैजस, प्राज्ञ और ब्रह्म)-के सहित आ विराजमान हुई हों। [५१] राजा दशरथ अपने चारों पुत्रोंको बहुओंके साथ देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जा रहे थे मानो राजाओंमें श्रेष्ठ दशरथ चारों क्रियाओं (श्रद्धा, सेवा, तपस्या और भक्ति)-के साथ-साथ चारों फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) पा गए हों॥ ३२५ ॥ रामके विवाहकी जिन-जिन विधियोंका ऊपर वर्णन किया गया है ठीक उन्हीं-उन्हीं विधियोंसे अन्य (तीनों) राजकुमारोंका विवाह भी सम्पन्न कर दिया गया। यौतुक (दहेज, दायजे)-की तो कुछ पूछिए मत। वह इतना ढेरों था कि उसे गिनाया नहीं जा सकता। सोने और मणियों (-की सामग्री)-से सारा मण्डप भर चला था। (१) उसमें न जाने कितने प्रकारके बहुमूल्य अनेक कम्बल, वस्त्र और बहुत रंग-बिरंग विचित्र-विचित्र रेशमी वस्त्र, हाथी, रथ, घोड़े, दास और दासियाँ, आभूषणोंसे सजी हुई कामधेनुके समान गौएँ दायजमें दी गईं (२) और भी अन्य अनेक प्रकारकी इतनी वस्तुएँ थीं कि उन्हें गिनावें भी तो कहाँतक गिनाया जाय ? उसे तो केवल वे ही लोग ठीक-ठीक आँक पा सके जिन्होंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा

३६११-१४ ततो रामादिकाः सर्वे स्वस्वपत्न्या पृथङ्मुदा। विरेजुः प्रभया सर्वे लोकपाला इवापरे ॥ सत्यो०
३६१५-१६ स चतुर्धा बभौ व्यस्तः प्रसवः पृथिवीपतेः। धर्मार्थकाममोक्षाणामवतार इवांगवान् ॥—रघुवंश
३६१७ एवं दत्वा कुमारीश्च प्रीत्या तेभ्यो नराधिपः।
३६१८-२० अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु। कम्बलानां च मुख्यानां क्षौमान् कोट्यम्बराणि च॥ सत्यो०
इति स्तुत्वा नृपः प्रादाद्राघवाय महात्मने। दीनाराणां कोटिशतं रथानामयुतन्तथा॥
अश्वानामयुतं प्रादाद्गजानां षट्शतं तदा। पत्तीनां लक्षमेकं तु दासीनां त्रिशतं ददौ॥ अध्यात्म०
३६२१ प्रददौ राघवादिभ्यो येषां संख्या न विद्यते। —आनन्दरामायण

लोक-पाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुख माने। (३)
दीन्ह जाचकनि जो जेहि भावा। उबरा, सो जनवासेहि आवा।
तव कर जोरि जनक मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी। (४)
छंद—सनमानि सकल वरात आदर, दान, विनय, वड़ाइ - कै।
प्रमुदित महा मुनि - वृन्द बंदे, पूजि, प्रेम लड़ाइ - कै।
सिर नाइ, देव मनाइ, सव - सन कहत कर संपुट किए।
सुर - साधु चाहत भाव, सिंधु कि तोष जल - अंजलि दिए।। [५२]
कर जोरि जनक, वहोरि, बंधु - समेत कोसलराय - सों।
३६३० वोले मनोहर वयन, सानि सनेह, सील, सुभाय - सों।
संबंध राजन रावरे हम वड़े अव सब बिधि भये।
यहि राज - साज - समेत सेवक जानिवे बिनु गथ लये।। [५३]

था और जिसे देख-देखकर लोकपाल भी तरसते रह गए थे। अवधके स्वामी राजा दशरथने यह सब कुछ (जो वहाँ मिला सब) प्रसन्नतासे स्वीकार करके (३) (वहाँ आए हुए) याचकोंको जो जिसे अच्छा लगा उसे वह बाँट दिया। जो बचा-खुचा रह गया वह जनवासे चला आया। तब जनकने हाथ जोड़कर सब वरातियोंका सम्मान करते हुए मधुर वचनोंसे उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। (४) आदर, दान, विनय, सराहना तथा पूरी बारातका सम्मान करके राजा जनकने प्रेम और आनन्दके साथ मुनियोंकी वन्दना और पूजा की और फिर सिर नवाकर उनके आगे हाथ जोड़कर सबसे कहा—'देवता और साधु तो भावके भूखे होते हैं (वे तो पूर्ण-काम होते हैं, वे केवल प्रेमसे ही सन्तुष्ट होते हैं उन्हें कोई कुछ देकर क्या सन्तुष्ट कर सकता है) ? भला कहीं अंजलि-भर जलसे समुद्रको सन्तोष हो पा सकता है?' (उसका जल बढ़ पा सकता है) [५२] फिर हाथ जोड़कर जनक और उनके भाई (कुशध्वज) दोनोंने अत्यन्त शीलके साथ स्वाभाविक और स्नेह-भरी मनोहर वाणीमें राजा दशरथसे कहा—'राजन् ! आपके यहाँ सम्बन्ध करके हम सब प्रकारसे बड़े हो गए हैं। आजसे आप यही समझिएगा कि हमारा यह सब राजपाट और हम सब आपके बिना मोलके सेवक हैं। [५३]

३६२२-२३ याचकस्पर्शनाच्छेषं राजा स्वयमथाग्रहीत्। द्विजातिभ्यो ददौ सम्यङ् मनोभिलषितं धनम्। आनन्द०
३६२४ अब्रवीत् प्रणतो राजा वरातस्थान् प्रपूज्य च।
३६२५-२८ वसिष्ठादीन् समभ्यर्च्य प्रार्थयामास भूमिपः। —प्रसन्नराघव
अपान्निधिं वारिभिरर्चयन्ति दीपेन सूर्यं प्रतिबोधयन्ति।
ताभ्यान्तयोः किं परिपूर्णता स्याद्भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावाः।। —सुभाषित
३६२९-३२ जातजन्मकृतार्थतां विकसितं पुण्याम्बुजानां वनम्।
छिन्ना संप्रति सर्वपापपटली दुःखान्धकारो गतः।।
आनन्दांकुरकोटयः प्रकटिता विघ्नाटवी पाटिता।
सम्बन्धे भवतां कृते सुकृतिनां किं किं न लब्धम्मया।। —विवाहपद्यावली

ए दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई।
अपराध छमिबो, बोलि पठए, बहुत हौं ढीठ्यो[1] कई।
पुनि भानु - कुल - भूपन सकल - सनमान - निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परसपर प्रेम - परिपूरन हिए॥ [५४]
बृन्दारका-गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी, जय - धुनि, बेद - धुनि नभ नगर कौतूहल भले।
तब सखी मंगल - गान करत मुनीस - आयसु पाइ - कै।
३६४० दूलह - दुलहिनिन - सहित सुंदरि चलीं कोहबर[2] ल्याइ - कै॥ [५५]
दो०—पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचति, मन सकुचै न।
हरत मनोहर - मीन - छवि, प्रेम - पियासे नैन॥ ३२६॥
स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि - मनोज - लजावन।

इन (चारों) कन्याओंको अपनी टहलुई जानकर इनपर करुणा करते हुए इनका भी पालन करते रहिएगा। हमने आपको यहाँ (विवाहके लिये) बुलवा भेजा, यही हमने बहुत बड़ी ढिठाई कर डाली है। उस अपराधके लिये आप हमें क्षमा कीजिएगा।' तत्पश्चात् सूर्यकुलके भूषण राजा दशरथने समधी (जनक)-का सब प्रकारसे बड़ा सम्मान किया। वे परस्पर एक दूसरेके प्रति जो विनय प्रदर्शित कर रहे थे उसका कोई चाहे भी तो वर्णन नहीं कर सकता। उसे देख-देखकर ही सबके हृदयमें प्रेम उमड़ा पड़ रहा था। [५४] देवता भी फूल बरसाए जा रहे थे। (यह सब पारस्परिक शिष्टाचार हो चुकनेपर) महाराज दशरथ वहाँसे उठकर जनवासे चल दिए। नगाड़े बज उठे, जय-जयकार होने लगा, वेद-पाठ होने लगा और इस प्रकार आकाश और नगरमें (चारों ओर) बड़ा धूम-धड़ाका मच गया। तब मुनीश्वर (वसिष्ठ)-की आज्ञासे सीताकी सखियाँ मंगल गीत गाती हुई, दूल्हों और दुलहिनोंको कोहबर (कौतुकागार) -की ओर लिवा ले चलीं। [५५] सीता तो बार-बार रामकी ओर निहारती हुई झेंपे चली जा रही थीं, पर उनका मन नहीं सकुचा रहा था क्योंकि मछलीकी शोभा हर लेनेवाले उनके सुन्दर नेत्र प्रेमके प्यासे होकर ऊभचूभ किए जा रहे थे॥ ३२६॥ रामका स्वभावसे ही सुहावना साँवला रंग करोड़ों कामदेवोंकी शोभाको लजाए डाल रहा था। महावर

१. ढीठी। २. कोहबर=कुहवर : कुहक = हाथकी सफाई, इन्द्रजाल; वर=श्रेष्ठ। बढ़िया हस्त लाघवके खेल-विनोदका प्रकोष्ठ जहाँ सालियाँ और सरहजें पदके अनुसार वरके साथ लोकाचार-पूर्वक आमोद-प्रमोद करतीं, खेलतीं और वरको नेग (दक्षिणा) देती हैं।

३६३३-३४ कन्या न जानाति गृहस्य कर्म मात्रा सदा लालनपालितेयम्।
तथापि विद्वन् भवतस्सुताय समर्पिता चांगनलेपनाय॥ —विवाहपद्यावली
३६३५-३६ विद्यावृत्तयुताः प्रसन्नहृदया विद्वत्सु बद्धादराः। श्रीनारायणपादपंकजयुगध्यानावधूतांहसः॥
श्रौताचारपरायणाः सविनया विश्वोपकारक्षमाः। जाता यत्र भवादृशास्तदमलं केनोपमेयं कुलम्। वि०प०
३६३७-४० पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदंतरिक्षात् सुभास्वरा। दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः।
पश्चाद्रामः समुत्थाय शतानन्दस्य चाज्ञया। विवेशान्तःपुरं वीरो भ्रातृभिः सह सीतया॥सत्योपा०

जावक-जुत पद - कमल सुहाए। मुनि-मन-मधुप रहत जिन्ह छाए। (१)
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल - रबि - दामिनि-जोती।
कल किंकिनि, कटि - सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल, बिभूषन सुंदर। (२)
पीत जनेउ महाछबि देई। कर-मुद्रिका चोरि चित लेई।
सोहत ब्याह - साज सब साजे। उर आयत उर - भूषन राजे। (३)
पियर उपरना, काँखा - सोती। दुहुँ आँचरनि लगे मनि - मोती।
३६५० नयन - कमल, कल कुंडल काना। बदन सकल सौन्दर्ज - निधाना। (४)
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलक रुचिरता - निवासा।
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता - मनि गाथे। (५)

लगे हुए उनके वे चरण-कमल बड़े सुन्दर लग रहे थे जिनपर मुनियोंके मन भौंरे बनकर सदा मँडराते रहते हैं। (१) उनके पवित्र पीले वस्त्र (पीताम्बर) सबेरेके सूर्यकी और बिजलीकी चमकको भी हराए डाल रहे थे। उनकी कमरमें मनोहर घुँघरूदार करधनी (क्षुद्रघण्टिका) और डोरेकी करधन, लम्बी-लम्बी भुजाओंपर बँधे आभूषण (भुजबन्ध, केयूर) बड़े फब रहे थे। (२) गलेमें पीला जनेऊ तो शोभा दे ही रहा था, हाथकी अँगूठी भी सबका चित्त चुराए डाल रही थी। इस प्रकार विवाहकी वेषभूषामें राम बहुत ही जँच रहे थे। उनकी चौड़ी छातीपर भी छातीके (हार आदि) सुन्दर आभूषण बड़े फबे जा रहे थे। (३) कंधोंपर काँखा-सोतीकी[1] भाँति लपेटे हुए (बाएँ कंधेसे होकर दाएँ हाथके नीचे और दाएँ कंधेसे होकर बाएँ हाथके नीचे बँधे हुए) पीले दुपट्टेके दोनों आँचलोंपर मणि और मोतीकी झालरें टँकी हुई थीं। उनके नेत्र कमलके-से थे, कानोंमें कुण्डल झलक रहे थे और मुख-मण्डलका तो कहना ही क्या था ! वहाँ तो संसारका सारा सौन्दर्य ही सिमटा धरा था। (४) उनकी भौंहें बड़ी ही सुन्दर और नाक बड़ी सजीली थी। मस्तकपर लगा हुआ तिलक तो मानो शोभाका केन्द्र हो बना हुआ था। उनके मनोहर मस्तकपर सजे हुए मौड़ (मुकुट)-में मनोहर मणि और मोती जड़े हुए थे। (५) उस सुन्दर मौड़में महामणि (बड़े-बड़े

१. काँखासोती : जनेऊके समान बाएँ कंधेसे होता हुआ दुपट्टा दाएँ हाथके नीचे और पुनः दाएँ कंधेसे होता हुआ बाईं ओर लटक जाता है।

३६४१-४४ पश्यन्त्यस्तु रमानाथं कोटिकंदर्पसंनिभम्। इन्द्रनीलमणिश्यामं कोमलाकृतिमव्ययम्॥
३६४५-४६ कट्यां पीतं च कौशेयं दधतं घनविग्रहे। विद्युल्लतोपमं दिव्यं कांच्या बद्धं सुरत्नया॥
केयूरं किल रत्नानां दधतं भुजयोर्द्वयोः॥
३६४७-४८ अमूल्यैरंगुलीयैश्च नानारत्नैश्च शोभितम्। कञ्चुकादि महादिव्यं दधतं श्यामविग्रहे॥
उपानहोश्च युग्मेन शोभितम्पादपंकजम्। ग्रैवेयं मणिमुक्तानामुरसा च महामणिम्॥
३६४९ उत्तरीयेण राजन्तं संध्यामेघनिभेन च।
३६५० नेत्रद्वयं ह्यञ्जनरंजितं च कर्णौ च रम्यौ कलकुण्डलाभ्याम्।
३६५१-५२ बिभ्रतं तु मनोजस्य दिव्यचापाकृती भ्रुवौ। नासायाश्शुकनासायाः कर्षन्तं च महाछबिम्॥
दीर्घे ललाटदेशे च ऊर्ध्वपुंड्रं मनोहरम्। मस्तके मणिमुक्तानां बिभ्रतं मौलिमुत्तमम्॥सत्योपा०

छंद—गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुर-नारि, सुर - सुंदरी, बरहिं बिलोकि, सब तिन तोरहीं।
मनि - बसन - भूषन वारि, आरति करहिं, मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं, सूत - मागध - बंदि सुजस सुनावहीं ॥ [५६]
कोहबरहिं आने कुँअर - कुँअरि सुआसिनिन सुख पाइ - कै।
अति प्रीति, लौकिक रीति लागीं करन, मंगल गाइ - कै।
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं, सीय - सन सारद कहैं।
३६६० रनिवास हास - बिलास - रस - बस, जन्म-को फल सब लहैं ॥ [५७]
निज - पानि - मनि - महँ देखियति मूरति[1] सु-रूप - निधान-की।
चालति न भुजबल्ली, बिलोकनि - बिरह - भय - बस जानकी।
कौतुक, बिनोद, प्रमोद, प्रेम न जाइ कहि, जानहिं अली।
बर - कुँअरि सुंदर सकल आलि[2] लवाइ जानवासेहि चलीं ॥ [५८]

रत्न) जड़े हुए थे और उनके अंगोंकी शोभा सबका चित्त चुराए ले रही थी। नगरकी सभी नारियाँ और देवियाँ वर (राम)-को देख-देखकर तृण तोड़े जा रही थीं (कि इन्हें कुडीठ न लगे, इनकी अला-बला या विपत्ति सब इस तृणपर बीते) और (अनेक प्रकारके) मणि, वस्त्र और आभूषण न्यौछावर करती हुईं, आरती उतारती हुईं मंगल गीत गाए जा रही थीं। देवता पुष्प-वर्षा किए जा रहे थे तथा सूत, मागध और भाट उनका सुयश बखाने जा रहे थे। [५६] तब सुहागिनी नारियाँ अत्यन्त प्रसन्न हो-होकर कुँवरों और कुँवरियोंको कोहबरमें लिवा ले गईं जहाँ मंगल गीत गाती हुईं वे बड़े प्रेमसे लौकिक रीतियाँ करने लगीं। वहाँ रामको पार्वती लहकौरि[3] (कौड़ियोंसे लाभ या जीतका दाँव फेंकना) सिखाए जा रही थीं और सीताको सरस्वती लहकौरि सिखा रही थीं। इस प्रकार रनिवासमें सब हास-विलासके रसमें डूबी हुई अपना-अपना जन्म सुफल माने जा रही थीं (कि हमें यह दृश्य देखनेको मिला) [५७] अपने हाथके मणिमें रूपके निधान (राम)-की मूर्ति (-की परछाहीं पड़ी) देखकर जानकी अपनी बाहु-रूपी लतासे अपनी दृष्टि इस भयसे नहीं हटा रही थीं कि कहीं इसमें बाधा न पड़ जाय (इस मूर्तिका दर्शन न रुक जाय)। उस समयके आमोद-प्रमोदका वर्णन किसीके किए किया नहीं जा सकता। उसे केवल वे ही सखियाँ जानती थीं (जो वहाँ उपस्थित थीं)। तत्पश्चात् वे सखियाँ वरों और कुँवरियोंको (पालकियोंपर बिठाकर)

१. देखि प्रतिमूरति; देखि पति-मूरति। २. सखी। ३. लहकौरि = लाभ-कोटि : जितानेवाला दाँव; जुआ खेलते समय जितानेवाले दाँवकी कला। लघुकोटि : लघु = फुर्तीला, हस्तलाघवसे युक्त; कोटि = दाँव। ऐसा हाथकी सफाईका दाँव जिससे अवश्य विजय हो। सूरदासने रामके विवाहके प्रसंगमें इसे स्पष्ट कर दिया है—खेलत जूआ सकल जुवतिनिमें हारे रघुपति, जिती जनककी।—सूरसागर

३६५३-६० मिथिलानगरस्थाश्च स्त्रियः प्रीताननाः वरम्। वधूवरौ समानीय ययुः कुहवरालयम् ॥
लौकिकाचारमाजह्रुस्ताः स्त्रियस्तत्र चाहताः।
३६६१-६४ वीक्षमाणा च वैदेही रघुवंशमणिच्छविम्। कराभूषामणौ बाहुवल्लीं नो धवति क्षणम् ॥
कृत्वा जयध्वनिं चक्रुर्ग्रन्थिनिर्मोचनादिकम्। सस्मितास्सकटाक्षाश्च पुलकांचितविग्रहाः ॥
प्रशंसन्त्यः स्वभाग्यानि पश्यन्त्यः परमेश्वरम्। वधूवरौ पुरस्कृत्य जनवासमगुर्द्रुतम् ॥—सत्यो०

तेहि समय सुनिय असीस जहँ - तहँ, नगर - नभ आनँद महा।
चिर जियहु जोरी चारु चार्यौ, मुदित मन सब ही कहा।
जोगीन्द्र, सिद्ध, मुनीस, देव, बिलोकि प्रभु, दुंदुभि हनी।
चले हरषि, बरषि प्रसून, निज-निज-लोक, जय जय जय भनी ॥ [५९]

दो०—सहित बधूटिन कुँअर सब , तब आए पितु - पास।
३६७० सोभा - मंगल - मोद भरि , उमगेउ जनु जनवास ॥ ३२७ ॥

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती।
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन - समेत गवन किय भूपा। (१)
सादर सबके पाँयँ पखारे। जथाजोग पीढ़न्ह बैठारे।
धोये जनक अवधिपति - चरना। सील, सनेह जाइ नहिँ बरना। (२)
बहुरि राम - पद - पंकज धोए। जे हर - हृदय - कमल - महँ गोए।
तीनिउ भाइ राम - सम जानी। धोये चरन, जनक निज पानी। (३)

जनवासेकी ओर लिवा ले चलीं। [५८] उस समय जहाँ-तहाँ जिसे देखो वही उन्हें आशीर्वाद दिए जा रहा था। आकाशमें (विमानोंपर बैठे हुए देवताओंके मनमें) भी बड़ा आनन्द छाया हुआ था। सब प्रसन्न मनसे मनाए जा रहे थे कि चारों (वरों और वधुओंकी) जोड़ियाँ चिरजीवी हों। योगिराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवता सभी प्रभु (राम)-को देखते ही नगाड़े बजाते, फूल बरसाते और प्रसन्न चित्तसे जय-जयकार करते हुए अपने-अपने लोक लौट गए। [५९] बहुओंके साथ जब सब कुमार पिता (दशरथ)-के पास जनवासे आ पहुँचे तब शोभा, मंगल और आनन्दसे सारा जनवासा झूम उठा ॥३२७॥ (यह सब हो चुकनेपर) जनकने बरातियोंको बुलवा भेजा। उन सबके लिये अनेक प्रकारके जेवनार (भोज)-की सुन्दर व्यवस्था कर दी गई थी। पुत्रोंके साथ महाराज दशरथ भी वहाँ जा पहुँचे। मार्गमें सुन्दर वस्त्रोंके पाँवड़े ला बिछाए गए थे। (वहाँ पहुँच जानेपर जनकने) आदर-पूर्वक सबके पाँव धोए और जो जिस योग्य था उसे उसके योग्य आसनपर ले जा बैठाया। (१) फिर जनकने अवध-नरेश राजा दशरथके चरण धोते समय जो शील और स्नेह प्रदर्शित किया उसका किसी भी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता। (२) फिर (जनकने) रामके वे चरण-कमल आ धोए जो सदा शिवके हृदय-कमलके भीतर बसे रहते हैं। अन्य तीनों भाइयों (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न)-को भी रामके ही समान जानकर जनकने स्वयं अपने हाथोंसे उनके भी चरण धोए। (३) राजा जनकने

३६६५-६८ तदानीममरास्सर्वे परे जीवाश्चराचरा: । मुमुदुश्चेतसातीव बभूवातिजयध्वनि: ॥
मंगलध्वनिगानञ्च बभूव बहु सर्वत: । वाद्यध्वनिरभूद्रम्य: सर्वानन्दप्रवर्धन: ॥ आनन्दरा०

३६६९-७० अथोपकार्यां जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दना: ।

३६७१ भोजनोत्सवमारेभे नानाविधिविधानत: ।

३६७२-७३ जनकाह्वानमाकर्ण्य राजा दशरथो मुदा । चतुर्भिस्तनयै: सार्धं भोजनाय प्रचक्रमे ॥
राजोपवेशयामास सत्पीठेषु गृहान्तरे ॥

३६७४-७६ परिवारसमेतस्य मुदा दशरथस्य च । चरणौ क्षालयामास स्नेहेन महता नृप:– ॥सत्योपा०

आसन उचित सबहिं नृप दीन्हें। बोलि सूपकारी[1] सब लीन्हें।
सादर लगे परन पनवारे। कनक-कील, मनि-पान सँवारे। (४)
दो०—सूपोदन, सुरभी-सरपि, सुंदर, स्वादु, पुनीत।
३६८० छन-महँ सबके परुसि गे, चतुर सुआर बिनीत॥ ३२८॥
पंच-कवल करि जेंवन लागे। गारि-गान सुनि अति[2] अनुरागे।
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा-सरिस नहिं जाहिं बखाने। (१)
परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध, नाम को जाना।
चारि भाँति भोजन-बिधि[3] गाई। एक-एक बिधि बरनि न जाई। (२)
छ रस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती।
जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी। (३)

सबको उचित आसद देकर आदरके साथ बुला वैठाया और सब परोसनेवालोंको बुलवा भेजा। बड़े आदरके साथ सबके आगे ऐसी पत्तलें ला बिछाई गईं जो (छीले हुए) मणियों (पन्नों)-से बने पत्तोंमें सोनेकी कीलें लगा-लगाकर बनाई गई थीं। (४) चतुर और विनीत रसोइयोंने क्षण भरमें सुन्दर, स्वादिष्ट, शुद्ध दाल-भात और गौका घी सबके सामने ला परोसा॥ ३२८॥ फिर क्या था, सब लोगोंने पंचकौर[4] कर-करके भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। (गानेवाली स्त्रियोंके मुँहसे) गालियाँ सुन-सुनकर तो वे और भी प्रेम-मग्न हुए चले जा रहे थे। (बरातियोंके आगे) अमृतके समान ऐसे-ऐसे अगणित पकवान ला परोसे गए जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। (१) चतुर रसोइयोंने इतने अधिक प्रकारके व्यञ्जन ला-ला परोस धरे कि उनके नाम गिनवा कौन सकता है? जिन चार प्रकारके भोजनकी[5] विधियाँ बताई गई हैं उनमेंसे एक-एक विधिके इतने-इतने पदार्थ बना धरे गए थे जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। (२) षड्रसों (मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल)-वाले इतने व्यञ्जन थे कि उनमेंसे एक-एकके अनेक-अनेक प्रकार वहाँ बना धरे गए थे। जिस समय बाराती भोजन करते जा रहे थे उस समय दशरथके पक्षके पुरुषों और स्त्रियोंके नाम ले-लेकर

१. सूपकारक। २. गारी-गान सुनहिं। ३. श्रुति।
४. पंचकौर:—प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा और उदानाय स्वाहा—इन पाँच मंत्रोंसे भोजन करनेसे पहले पाँच ग्रास खाकर आचमन करना।
५. चार प्रकारके भोजन-पदार्थ: (१) भक्ष्य: जो बिना चबाए निगला जा सके—जैसे—हलुवा; (२) भोज्य: जो चबाकर खाया जाय, जैसे—भात, रोटी, पूरी आदि); (३) पेय: जो पीया जाय, जैसे— शरबत आदि; (४) लेह्य: जो चाटकर खाया जाय, जैसे—रायता, चटनी आदि। षड् भोजन-पदार्थोंमें (५) चर्व्य: चबाकर खाए जानेवाले चबैना आदि और (६) चोष्य: चूसे जा सकनेवाले आम, ईख आदि भोजनमें नहीं परोसे जाते।

३६७७-७८ आसयामास सुप्रीत्या सर्वांस्तान् विमलासने। सूपकारान् समावाह्य परिवेष्टुं समादिशत्॥
३६७९-८० नानासुभोज्यवस्तूनि परिविप्य च तत्पुनः। साञ्जलिर्भोजनायाज्ञां चक्रे विज्ञप्तिमानतः॥
३६८१-८४ अथ संमानितास्तत्र राजप्रभृतयश्च ते। पञ्चग्रासविधिं कृत्वा जघसुः क्षत्रियर्षभाः॥सत्यो०

समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ, सुनि सहित-समाजा।
यहि बिधि सबही भोजन कीन्हा। आदर-सहित आचमन दीन्हा। (४)
दो०—देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित-समाज।
३६९० जनवासेहिं गवने मुदित, सकल-भूप-सिरताज ॥ ३२९॥
नित नूतन मंगल पुर-माहीं। निमिष-सरिस दिन-जामिनि जाहीं।
बड़े भोर भूपति-मनि जागे। जाचक गुन-गन गावन लागे। (१)
देखि कुँअर-वर वधुन-समेता। किमि कहि जात, मोद मन जेता।
प्रात-क्रिया करि गे गुरु पाहीं। महा-प्रमोद प्रेम, मन-माहीं। (२)
करि प्रनाम-पूजा, कर जोरी। बोले गिरा, अमिय जनु बोरी।
तुम्हरी कृपा, सुनहु मुनिराजा। भयउँ आज मैं पूरन-काजा। (३)
अब सब विप्र बोलाइ गोसाँई। देहु धेनु सब भाँति बनाई।
सुनि गुरु, करि महिपाल-बड़ाई। पुनि पठए मुनिवृन्द बोलाई। (४)

स्त्रियाँ मधुर स्वरमें गालियाँ गाए जा रही थीं। (३) उस समय उनकी सुहावनी गालियाँ भी बड़ी अच्छी लग रही थीं। गालियाँ सुन-सुनकर राजा दशरथ और उनके सब बाराती हँसते-हँसते लोट-पोट हुए जा रहे थे। इस प्रकार बड़े ठाटसे सबने भोजन किया और (भोजन कर चुकनेपर) उन्हें आदरपूर्वक आचमन (कुल्ला) कराया गया। (४) सबको पान देकर जनकने दशरथका और बारातियोंका भली-भाँति पूजन किया (चन्दन, अक्षत लगाकर, माला पहनाकर सबको दक्षिणा दी)। वहाँ भोजन करके राजाओंके शिरोमणि, चक्रवर्ती दशरथ अत्यन्त प्रसन्न होकर जनवासे लौट आए ॥ ३२९ ॥

जनकपुरमें नित्य नये-नये मंगल उत्सव होते जा रहे थे। वहाँ इतनी धूमधाम मची हुई थी कि दिन-रात चुटकी बजाते निकल जाते थे। बड़े तड़के राजा दशरथ जाग जाते थे और याचकगण उनके द्वारपर पहुँचकर उनके गुण गाते हुए आ खड़े होते थे। (१) अपनी बहुओंके साथ चारों पुत्रोंको देख-देखकर राजा दशरथके मनमें जो आनन्द उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है? (एक दिन) प्रातःक्रियासे निवृत्त होकर गुरु वशिष्ठके पास जब वे पहुँचे तो उनके मनका प्रेम और आनन्द उमड़ा पड़ रहा था। (२) गुरु वशिष्ठको प्रणाम करके, उनका पूजन करके और उनके आगे हाथ जोड़कर वे अमृत-भरी वाणीसे बोले—'मुनिराज! आपकी ही कृपासे आज मेरी सब कामनाएँ पूर्ण हो पाई हैं। (३) गोस्वामी! अब आप सब ब्राह्मणोंको बुलवा-बुलवाकर उन्हें पूरी साज-सज्जासे सजी हुई गौएँ दान करा डालिए।' यह सुनकर गुरु वशिष्ठने राजा दशरथ (-की इस सात्त्विक भावना)-की बड़ी सराहना की और जितने मुनि साथ आए थे सबको बुलवा

३६८५-८७ तदन्नं परमं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। तदानीं पुरनार्यश्च गालिदानं व्यधुर्मुदा ॥
मृदुवाण्या हसन्त्यश्च पश्यन्त्यो यत्नतश्च तान् ॥
३६८८-९० भुक्त्वाचम्य यथान्यायं वस्त्राण्याधाय विग्रहे। रामादयस्तु ते सर्वे शिविराय विनिर्ययुः ॥
३६९१ दिनानि क्षणवत् तेषां व्यतीयन्ति महोत्सवात्।
३६९२-९३ अरुणोदयवेलायामहो निद्राञ्च राघवः। वधूभिस्सहितान् वीक्ष्य महामोदमवाप सः ॥
३६९४-९६ जगाम मुनिसान्निध्यमुषःकृत्यं समाप्य च। वसिष्ठञ्च नमस्कृत्य राजा वचनमब्रवीत् ॥
प्रसादात्तव ब्रह्मर्षे पूर्णश्चाद्य मनोरथः। —सत्योपाख्यान

दो०—बामदेउ अरु देवरिषि, बालमीकि, जावालि।
३७०० आए मुनिवर - निकर तब, कौसिकादि तप - सालि॥ ३३०॥
दंड - प्रनाम सबहि नृप कीन्हें। पूजि सप्रेम, बरासन दीन्हें।
चारि लच्छ बर धेनु मँगाई। काम - सुरभि - सम सील, सुहाई। (१)
सब विधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महि-देवन्ह दीन्हीं।
करत बिनय बहु विधि नर-नाहू। लहेउँ आज जग जीवन-लाहू। (२)
पाइ असीस, महीस अनंदा। लिये बोलि पुनि जाचक-बृन्दा।
कनक, बसन, मनि, हय, गय, स्यंदन। दिये बूझि रुचि, रबि-कुल-नंदन। (३)
चले पढ़त, गावत गुन - गाथा। जय जय जय दिनकर-कुल-नाथा।
यहि बिधि राम - बियाह - उछाहू। सकै न बरनि सहस - मुख जाहू। (४)
दो० —बार-बार कौसिक - चरन, सीस नाइ कह राउ।
३७१० यह सब सुख मुनिराज तव, कृपा - कटाच्छ - पसाउ॥ ३३१॥

भेजा। (४) (समाचार पाते ही) वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि जितने भी बड़े-बड़े तपस्वी और पहुँचे हुए मुनिगण बारातमें विद्यमान थे वे सब वहाँ आ पहुँचे ॥ ३३० । राजा दशरथने सबको दण्ड-प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें सुन्दर आसनोंपर ला बिठाया। उन्होंने कामधेनुके समान सीधी और सुन्दर चार लाख उत्तम गौएँ वहाँ मँगवा खड़ी कीं (१) और वे सब गौएं सब प्रकारसे सजाकर राजाने आनन्द-पूर्वक सब ब्राह्मणोंको दान दे डालीं। इतना करके भी राजा दशरथ सबसे अनेक प्रकारसे कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए यही कहे जा रहे थे कि आज ही हमने संसारमें जीनेका लाभ पाया है कि आप-जैसे महामुनियोंके दर्शन हुए और उनकी सेवाका हमें अवसर मिला। (२) उन सब ब्राह्मणोंका आशीर्वाद पाकर राजाको बड़ा आनन्द मिला। फिर उन्होंने याचकोंको बुलवा एकत्र कराया और सूर्यकुलको आनन्दित करनेवाले राजा दशरथने सबको उनका मनचाहा सुवर्ण, वस्त्र, मणि, घोड़े, हाथी और रथ आदि दे डाला। (३) वे सब भी (मनचाही वस्तुएँ पा-पाकर राजा दशरथके) गुण गाते (प्रशंसा करते हुए) और 'सूर्यकुल-पतिकी जय हो! जय हो!!' कहते हुए अपने-अपने घर लौट गए। इस प्रकार रामका विवाह (ऐसी धूमधामसे) सम्पन्न हो गया जिसका वर्णन यदि सहस्रों मुखवाले शेष भी करना चाहें तो भी नहीं कर पा सकते। (४) राजा दशरथ बार-बार विश्वामित्रके चरणोंमें सिर धरे कहे जा रहे थे—'मुनिराज! हमें यह जितना भी सुख मिल पाया है सब आपके कृपा-कटाक्षका ही प्रसाद है'॥ ३३१॥

३७०१ पीठानि मुनिमुख्येभ्यो दत्वा भुवि स्वयं स्थितः। पाद्यमर्घ्यं स्वयं चक्रे नीराजनविधिं तथा॥
मालां पुष्पमयीं प्रादाच्चन्दनेन विलिप्य च॥ —सत्योपाख्यान

३७०२-३ गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः। वित्तमन्यच्च सुबहुर्द्विजेभ्यो रघुनन्दनः॥
ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः॥ —वाल्मीकीयरामायण

३७०७ तदा जयजयारावो विप्रैरुक्तो बभूव ह। —सत्योपाख्यान

३७०९-१० मुनेरनुग्रहात्सर्वं सम्पन्नं मम शोभनम्। —वाल्मीकीयरामायण

जनक - सनेह, सील, करतूती । नृप सब भाँति सराह बिभूती[1] ।
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा । राखहिं जनक, सहित - अनुरागा । (१)
नित नूतन आदर अधिकाई । दिन - प्रति सहस भाँति पहुनाई ।
नित नव नगर अनंद उछाहू । दसरथ - गवन सुहाइ न काहू । (२)
बहुत दिवस बीते ऐहि भाँती । जनु सनेह - रजु बँधे बराती ।
कौसिक - सतानंद तब जाई । कहा बिदेह नृपहि समुझाई । (३)
अब दसरथ - कहँ आयसु देहू । जद्यपि छाँड़ि न सकहु सनेहू ।
भलेहि नाथ ! कहि सचिव बोलाए । कहि जय जीव ! सीस तिन्ह नाए । (४)
दो०—अवध-नाथ चाहत चलन , भीतर करहु जनाउ ।
३७२० भए प्रेम-बस सचिव, मुनि , विप्र, सभासद, राउ ॥ ३३२ ॥
पुर-बासी सुनि, चलिहि बराता । बूझत बिकल परसपर बाता ।
सत्य गवन सुनि, सब बिलखाने । मनहुँ साँझ सरसिज सकुचाने । (१)

जनकके स्नेह, शील, व्यवहार और ऐश्वर्यकी सराहना करते राजा दशरथ अघा नहीं रहे थे । अयोध्यापति दशरथ प्रतिदिन सवेरे उठते ही जनकसे बिदा माँगने लगते थे, पर जनक थे कि उन्हें प्रेमके मारे जाने ही नहीं देते थे । (१) नित्य नये-नये प्रकारसे राजा दशरथका आदर-सत्कार किया जाता रहता था । प्रतिदिन सहस्रों प्रकारसे पहुनाई (आतिथ्यसेवा) होती रहती थी । नगरमें नित्य ही नये-नये प्रकारके आनन्द-भरे उत्सव होते चले जा रहे थे । वहाँ राजा दशरथके जानेकी बात किसीको अच्छी ही नहीं लग रही थी । (२) इसी प्रकार इतने अधिक दिन निकल गए मानो सभी बराती स्नेहके बन्धनमें बँधे रुके पड़े हों । (जब बहुत दिन हो गए) तब विश्वामित्र और शतानन्दने जनकको समझाकर कहा—(३) 'यद्यपि आपका स्नेह कभी कम नहीं हो सकता फिर भी अब आप दशरथको अयोध्या जानेकी आज्ञा दे ही दीजिए ।' जनकने विश्वामित्र (-की बात मानकर उन)-से कहा—'ठीक है नाथ ! यही होगा ।' उन्होंने सभी मन्त्रियोंको बुला भेजा और उन सबने राजा जनक-की जय-जयकार करते हुए उन्हें आ प्रणाम किया । (४) (जनकने मंत्रियोंसे कहा–) 'देखो ! भीतर रनिवासमें जाकर समाचार दे दो कि अयोध्यानाथ (दशरथ) अब लौटना चाहते हैं ।' यह सुनकर मंत्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक सब प्रेममें मग्न हो (-कर उदास हो) चले ॥ ३३२ ॥ जब पुरवासियोंने सुना कि बारात बिदा होनेवाली है तब तो जिसे देखो वही व्याकुल हो-होकर एक दूसरेसे पूछे जा रहा है (कि यह समाचार कहाँतक सत्य है) । जब सब जान गए कि बारात सचमुच लौटनेवाली है तब सबके मुँह वैसे ही लटक गए (उदास हो चले) जैसे सन्ध्या होनेपर कमल मुँद जाते हैं । (१) (अयोध्यासे जनकपुर) आते समय जहाँ-जहाँ बीच-बीचमें

१. नृप सब राति सराहत बीती ।

३७१२ उषित्वा चैव राजा तु दिनानि कतिचिन्मुदा । अयोध्यां स्म पुनर्गन्तुं याचते जनकन्नृपम् ॥
३७१३-१५ स्नेहतस्तं महाराजमधिकं सच्चकार ह । इत्थं व्यतीयुर्दिवसा बहवो वसताञ्च तत् ॥ सत्योपा०
१८१६-१८ कौशिकश्च शतानन्दो जनकायोचतुर्मुनी । अनुमन्यस्व गन्तुं त्वमवधम्प्रति भूमिपम् ॥ आनन्द रा०
३७२२ प्रयागे चैव रामस्य मिथिलापुरवासिनः । पश्यन्तस्तन्मयं सर्वमश्रुकण्ठा बभूविरे ॥ सत्योपा०

जहँ - जहँ आवत बसे बराती । तहँ - तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ।
बिबिध भाँति मेवा - पकवाना । भोजन-साज न जाइ बखाना । (२)
भरि - भरि बसह, अपार कहारा । पठये जनक अनेक सुआरा ।
तुरग लाख, रथ सहस पचीसा । सकल सँवारे नख अरु सीसा । (३)
मत्त सहस दस सिंधुर साजे । जिन्हहिं देखि दिसि-कुंजर लाजे ।
कनक, वसन, मनि भरि-भरि जाना । महिषी, धेनु, वस्तु बिधि नाना । (४)

दो०—दाइज अमित, न सकिय कहि, दीन्ह बिदेह बहोरि ।
३७३० जो अवलोकत लोक - पति , लोक - संपदा थोरि ।। ३३३ ।।

सब समाज यहि भाँति बनाई । जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ।
चलिहि बरात सुनत सब रानी । बिकल मीन-गन जनु लघु पानी । (१)
पुनि - पुनि सीय गोद करि लेहीँ । देइ असीस सिखावन देहीँ ।
होयहु संतत पियहिं पियारी । चिर अहिवात असीस हमारी । (२)

बारात ठहरी थी, वहाँ-वहाँ बहुत प्रकारका सिद्धान्न (रसोईका सामान, अन्न आदि) भिजवाया जाने लगा । अनेक प्रकारके मेवे और पकवान आदिसे युक्त इतना भोजनका सामान भिजवाया गया कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । (२) सब सामान अगणित बैलों (-की पीठ) और कहारों (-की बहँगियों)-पर लाद-लादकर जनकने भिजवा दिए और अनेक रसोइए भी साथ कर दिए । नीचेसे ऊपर-तक सजे हुए एक लाख घोड़े और पचीस हज़ार रथ भी बारात ले जानेके लिये मँगा खड़ा कराए । (३) दस हज़ार सजे हुए ऐसे मतवाले हाथी साथ जानेके लिये सजाकर ला खड़े किए गए जिन्हें दिशाओंके हाथी[1] देख लें तो लाजसे सिर झुका लें । इतना ही नहीं, गाड़ियोंमें सोना, वस्त्र और रत्न भर-भरकर और भैंस, गाय आदि न जाने कितने प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुएँ साथ कर दी गईं । (४) इस प्रकार जनकने बिदाईके समय इतनी अधिक (उपहारकी) सामग्री दी, जो कहे नहीं बनती और जिसे देखकर लोकपालोंके लोकोंकी सारी सम्पदा भी थोथी जान पड़ रही थी ।।३३३।। जनकने वह सब सामान भली प्रकार सजाकर अयोध्यापुरी भेजनेकी पूरी व्यवस्था कर दी । जनकपुरसे बारात बिदा होती सुनते ही सब रानियाँ ऐसी व्याकुल हो उठीं जैसे छिछले पानीमें मछलियाँ तड़फड़ाने लगती हैं । (१) वे बार-बार सीताको गोदमें लिए उन्हें (आशीर्वाद और) सीख दिए जा रही थीं—'भगवान करे तुम्हारे पति सदा तुमसे प्यार करें । तुम्हारा सुहाग अचल हो । यही हमारा आशीष है । (२) देखो, जाकर सास-ससुर और गुरुओं (बड़े-

१. दिग्गज : पूर्वमें ऐरावत, आग्नेयमें पुण्डरीक, दक्षिणमें वामन, नैऋत्यमें कुमुद, पश्चिममें अंजन, वायव्यमें पुष्पदन्त, उत्तरमें सार्वभौम, ईशानमें सुप्रतीक ।

३७२३-२५ नानाविधानि चान्नानि दधिव्यञ्जनयुतानि च । प्रेषयामास राजापि सैन्यानां भोजनाय च ।।
३७२६-३० अयुतं वारणेन्द्राश्च लक्षसंख्यांस्तुरंगमान् । नानालङ्कारवासांसि गोदासीसेवकादिकान् ।।
ददौ स राघवादिभ्यो येषां संख्या न विद्यते । —सत्योपाख्यान

सासु - ससुर-गुरु-सेवा करेहू। पति-रुख लखि आयसु अनुसरेहू।
अति - सनेह - बस सखी सयानी। नारि-धरम सिखवहिं मृदु बानी। (३)
सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन बार - बार उर लाई।
बहुरि - बहुरि भेंटहिं महतारी। कहहिं, बिरंचि रची कत नारी। (४)
दो०—तेहि अवसर भाइन-सहित, राम भानु - कुल - केतु।
३७४० चले जनक - मंदिर मुदित, बिदा करावन - हेतु॥ ३३४॥
चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर - नारि - नर देखन धाए।
कोउ कह चलन चहत हैं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा - कर साजू। (१)
लेहु नयन - भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप - सुत चारी।
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन-अतिथि कीन्हें बिधि आनी। (२)
मरनसील जिमि पाव पियूखा। सुर-तरु लहै जनम - कर भूखा।
पाव नारकी हरि - पद जैसे। इन - कर दरसन हम - कहँ तैसे। (३)

वृद्धों)-की सेवा करती रहना। पतिकी जैसी इच्छा हो उसीके अनुसार उनकी आज्ञाका पालन करना।' सीताकी सयानी सखियाँ भी अत्यन्त स्नेहके साथ कोमल वाणीमें उन्हें स्त्री-धर्मकी शिक्षा दिए चली जा रही थीं। (३) सब पुत्रियोंको बड़े आदरसे स्त्रीका धर्म समझा-समझाकर रानियाँ बार-बार उन्हें हृदयसे लगाए ले रही थीं। माताएँ बार-बार उन्हें छातीसे लगाती हुई यह भी कहती जा रही थीं—'ब्रह्माने नारी-जाति (कन्याओं)-की रचना ही क्यों की ?' (जिन्हें अपना माता-पिताका बिछोह सहनेको विवश होना पड़ता है)। (४)

(इधर-जनकके यहाँ जब यह सब हो रहा था) उसी समय सूर्यवंशकी पताकाके समान (उसका यश फैलानेवाले) राम अपने तीनों भाइयोंके साथ प्रसन्न होकर बहुओंको बिदा करानेके लिये जनकके राजभवनकी ओर चल पड़े॥ ३३४॥ स्वभावसे ही सुन्दर लगनेवाले उन चारों भाइयोंको देखनेके लिये सारा नगर वहाँ उलट पड़ा। उनमें एक कह रही थी—'ये बस आज ही जानेवाले हैं। विदेह जनकने इनकी बिदाईकी सारी तैयारी कर दी है। (१) चलो, इन प्रिय पाहुनों (अथितियों)-का, राजा दशरथके इन चारों पुत्रोंका रूप भर-आँख चलकर देख तो लिया जाय! क्योंकि सयानी! कौन जाने हमारे किस पुण्यसे विधाताने इन्हें यहाँ लाकर हमारे नेत्रोंका अतिथि बना दिया है (इन्हें देख लेनेका सौभाग्य दिया है)। (२) इनका दर्शन हमारे लिये वैसा ही है जैसे किसी मरतेको अमृत मिल जाय, जन्मके भूखेको कल्पवृक्ष हाथ लग जाय और नारकी जीवको भगवान्‌का परम पद प्राप्त हो जाय। (३) आओ चलो, चलकर रामकी शोभा

३७३३-३५ आलिंग्य मातरस्सर्व्वा जानकीं प्रेमतो मुहुः। मोक्तुं नेच्छन्ति कन्यां तां वियोगभयकातराः॥
चिरायुर्भव सीते त्वं कृपया श्रीधवस्य च। श्रीपार्वतीप्रसादेन सौभाग्यन्ते विवर्धताम्॥—सत्यो०
श्वश्रूशुश्रूषणपरा नित्यं राममनुव्रता। पातिव्रत्यमुपालम्ब्य तिष्ठ वत्से यथासुखम्॥
३७३८ सीतामालिंग्य रुदतीं मातरः साश्रुलोचनाः। —अध्यात्मरामायण
३७३९-४० रामो नृपाज्ञया प्राप श्वश्रूणां निकटे हरिः। उवाच प्रणतो भूत्वा श्वश्रूस्सर्वाः समाहिताः॥
३७४१-४३ दर्शनीयकुमाराणान्नागरीणां यतस्ततः। धावनं समभूत्काश्चित् काश्चिदेवमयाऽब्रुवन्॥
नेत्रप्रियातिथीन् प्राप्य निरीक्षध्वं वरान् मुहुः॥ —सत्योपाख्याने
३७४६ ममैतद्दुर्लभं मन्ये ह्युत्तमश्लोकदर्शनम्। विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्त्तनं शूद्रजन्मनः॥—भागवत

निरखि राम - सोभा उर धरहू। निज मन-फनि मूरति-मनि करहू।
यहि विधि सवहि नयन-फल देता। गये कुँअर सब राज-निकेता। (४)
दो०—रूप-सिंधु सब बंधु लखि, हरषि उठेउ रनिवासु।
३७५० करहिं निछावरि, आरती, महा - मुदित-मन सासु॥ ३३५॥
देखि राम - छवि अति अनुरागीं। प्रेम-विबस पुनि - पुनि पद लागीं।
रही न लाज, प्रीति उर छाई। सहज सनेह, बरनि किमि जाई। (१)
भाइन - सहित उबटि अन्हवाए। छ रस असन, अति हेत जेंवाए।
बोले राम, सुअवसर जानी। सील - सनेह - सकुचमय बानी। (२)
राउ अवधपुर चहत सिधाए। विदा होन हम इहाँ[1] पठाए।
मातु! मुदित मन आयसु देहू। वालक जानि, करब नित नेहू। (३)

निहारकर हृदयमें बसा ली जाय। चलो, चलकर अपने मनको सर्प और इनकी मूर्तिको मणि बना रक्खा जाय (जैसे सर्प अपने मणिको बहुत यत्नके साथ सुरक्षित रखता है वैसे ही हम लोग अपने मनमें रामकी मूर्ति ऐसे सुरक्षित कर लें कि कभी वहाँसे हट न पावे)'। इस प्रकार सबके नेत्र सुफल करते हुए सब राजकुमार राजा जनकके राजभवनमें जा पहुँचे। (४) सुन्दरतासे भरे हुए समुद्रके समान सुन्दर उन चारों भाइयोंको देखकर सारा रनिवास खिल उठा। सासुएँ तो अत्यन्त प्रसन्न हो-होकर न्यौछावर[2] कर-करके आरती[3] करने लगीं॥ ३३५॥ रामकी शोभा देख-देखकर तो वे इतनी प्रेम-मग्न हुई जा रही थीं कि बार-बार उनके पैरों पड़ने लग रही थीं। उनका सारा संकोच जाता रहा था और उनके हृदयमें इतनी (स्वाभाविक) प्रीति उमड़ आई थी कि उस स्वाभाविक स्नेहका वर्णन किया कैसे जाय (यही समझमें नहीं आता)। राम और उनके भाइयोंको पहले उवटन[4] मल-मलकर स्नान कराया गया। फिर बड़े स्नेहसे उन्हें षड्रस (मधुर, लवण, अम्ल, कटु, तिक्त, कषायसे बनाया हुआ) भोजन कराया गया। तब ठीक अवसर देखकर शील, स्नेह और संकोचसे भरी वाणीमें राम बोले—(२) 'महाराज दशरथ अब अयोध्यापुरी लौटना चाहते हैं। (इस कारण बहुओंको) बिदा करा ले जानेके लिये उन्होंने हमें यहाँ भेजा है। इसलिये माताजी! आप प्रसन्न मनसे आज्ञा दे दीजिए और हमें अपना बालक जानकर सदा हमपर स्नेह बनाए

१. हित हमहिं। २. न्यौछावर : किसीके सिरपर द्रव्य घुमाकर बाँट देना कि इनका कुशल हो। ३. आरती : चार बार चरणोंकी, दो बार नाभिकी, एक या तीन बार मुखकी और सात बार सब अङ्गोंकी आरती करनी चाहिए। ४. उवटन : सरसों या चिरौंजी पानीमें पीसकर मलकर मैल छुड़ाना।

३७४५ म्रियमाणस्य मर्त्यस्य पीयूषं मंगलं यथा।
क्षुधातुरोऽन्नं लभते यथैव सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः॥ —गर्गसंहिता
३७४८ चक्षुष्मत्ताफलं यच्छन् सर्वाभ्यो वीरपुङ्गवः। विवेशान्तःपुरं धीरो भ्रातृभिस्सह राघवः।
३७४९-५० श्वश्रूजनास्ते संदृश्य भ्रातृवर्यं मुदं ययुः। नीराजनं प्रकुर्वन्ति प्रीतिचित्ताः पुनः पुनः॥
३७५६ आज्ञां देहि महाराज्ञि अयोध्यां गन्तुमीहते। अहं चैव गमिष्यामि भ्रातृभिस्सह तां पुरीम्॥
धर्म्मतस्तव पुत्रोऽहं विस्मर्तुं क्वापि न क्षमः॥ —सत्योपा०

सुनत वचन विलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेम-बस सासू[1]।
हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्हीं। (४)

छंद—करि विनय, सिय रामहिं समरपी, जोरि कर पुनि-पुनि कहै।
३७६० बलि जाउँ तात सुजान ! तुम कहँ विदित गति सबकी अहै।
परिवार, पुरजन, मोहिं, राजहिं, प्रान-प्रिय सिय जानिबी।
तुलसी, सुसील, सनेह लखि, निज किंकरी करि मानिबी॥ [६०]

सो०—तुम परिपूरन काम, जान-सिरोमनि, भाव-प्रिय।
जन - गुन - गाहक राम, दोष-दलन, करुनायतन[2]॥ ३३६॥

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम - पंक जनु गिरा समानी।
सुनि सनेह - सानी वर बानी। बहु विधि राम सासु सनमानी। (१)
राम विदा माँगत कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी।
पाइ असीस बहुरि सिर नाई। भाइन - सहित चले रघुराई। (२)

रखिएगा।' (३) यह सुनना था कि सारे रनिवासमें उदासी छा गई। प्रेमके मारे सासुओंके मुँहसे बोल नहीं निकल पा रहा था। सब कन्याओंको हृदयसे लगाकर उन्होंने उन्हें उनके पतियोंके हाथ सौंप दिया और उनकी सराहना भी की। (४) विनय करके रामके हाथ सीताको समर्पित करती हुई वे हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगीं—'सुजान ! मैं तुमपर बलि जाती हूँ। यह समझ लो कि परिवारको, पुरजनोंको, मुझे और राजा जनकको सबको सीता प्राणोंके समान प्यारी हैं। (हे तुलसीदासके स्वामी) राम ! इसका शील और स्नेह देखकर आप इसे सदा अपनी दासीके समान मानते रहिएगा। [६०] आप पूर्णकाम हैं (आपको किसी वस्तुकी इच्छा नहीं है। आपको किस बातकी कमी है ?)। आप सुजानों (चतुरों)-के शिरोमणि (चतुरोंसे भी चतुर) हैं और भावनाओंके प्रेमी (भावके भूखे) हैं। राम ! आप भक्तोंके गुण ग्रहण करते रहते, उनके दोष दूर करते रहते और दयाके भांडार हैं' ॥ ३३६ ॥ यह कहकर रानी उनके चरण पकड़कर ऐसी चुप हो रहीं मानो उनकी वाणी प्रेमके दलदलमें जा फँसी हो। उनकी यह स्नेह-भरी सुन्दर वाणी सुनकर रामने सासका बहुत प्रकारसे सम्मान किया (उन्हें बहुत आश्वासन दिया, सान्त्वना दी, समझाया)। (१) रामने हाथ जोड़कर उनसे विदा माँगते हुए उन्हें फिरसे प्रणाम किया और भाइयोंके साथ साथ राम चलनेको उठ खड़े हुए। (२) सब रानियाँ उनकी सुन्दर और सुकुमार मूर्ति हृदयमें

१. आँसू। २. करुना अयन।

३७५७ तदुक्तं वचनं श्रुत्वा राज्ञ्यो जातास्समाकुलाः। सर्वा वक्तुमशक्ताश्च तेभ्यो दत्त्वात्मजा नताः॥
३७५९-६२ कृपानिधे कृपां कृत्वा सीतां सम्पालयिष्यसि। सहस्रदोषं जानवया आशुतोष क्षमिष्यति॥
इत्युक्त्वा महिषी तस्मै समर्प्य स्वसुतां तदा। अत्युच्चै रोदनं कृत्वा मूर्च्छामाप तयोः पुरः॥
३७६३-६४ आप्तकामो रघुपते त्वमसि ज्ञानिनां वरः। भक्तानुग्रहकर्ता च तथा पापप्रणाशनः॥
३७६६ इत्यादिवाक्यैः सन्तोष्य रामं जामातरन्तु ताः। गिरः प्रेमनिपण्णत्वात् पुनर्वक्तुं न चाशकन्॥
एकाग्रमानसेनैव मम ध्यानं विधीयताम्। भवतीभिर्निजस्वान्त उपकण्ठे वसाम्यहम्॥
३७६७ अनुजानीहि मां यातुं साकेतम्प्रति सत्वरम्। —सत्योपाख्यान

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह - सिथिल सब रानी।
३७७० पुनि धीरज धरि कुँअरि हँकारी। बार - बार भेंटहिं महतारी। (३)
पहुँचावहिं, फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी।
पुनि-पुनि मिलति सखिन बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई। (४)
दो०—प्रेम - बिबस नर-नारि सब, सखिन - सहित रनिवास।
मानहुँ कीन्ह बिदेह-पुर, करुना - बिरह निवास ॥ ३३७ ॥
सुक - सारिका जानकी ज्याए। कनक पींजरन्हि राखि पढ़ाए।
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि, धीरज परिहरै न केही। (१)
भये बिकल खग - मृग ऐहि भाँती। मनुज - दसा कैसे कहि जाती।
बंधु - समेत जनक तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए। (२)
सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी।
३७८० लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा - मरजाद ज्ञान - की। (३)

बसाकर स्नेहसे व्याकुल हो उठीं। फिर धीरज धरकर अपनी जाती हुई कन्याओंको बुला-बुलाकर माताएँ बार-बार उन्हें हृदयसे लगाए ले रही थीं। सखियोंने बार-बार आ-आकर मिलनेवाली माताओंको किसी-किसी प्रकार अलग किया। उस समय (उनको वही कठिनाई हो रही थी) जो लवाई (तत्काल ब्याई हुई) गायसे उसका बछड़ा अलग करनेमें होती है। (४) सारा रनिवास, रानियोंकी सखियाँ और सब नर-नारी प्रेममें ऐसे विह्वल हो उठे मानो करुणा और विरहने जनकपुरमें डेरा आ डाला हो ॥ ३३७ ॥ जानकीने सोनेके पिंजड़ोंमें जो सुग्गे और मैना पाल रक्खे थे वे भी व्याकुल हो-होकर पुकार उठे—'वैदेही कहाँ हैं ? वैदेही कहाँ हैं ?' भला उनके ये वचन सुनकर कौन ऐसा होगा जिसका धीरज न छूट पड़ता हो ?। (१) जहाँ पशु-पक्षियोंकी यह व्याकुल दशा हुई जा रही थी, वहाँके मनुष्योंकी दशाका तो पूछना ही क्या था ? उसी समय अपने भाई (कुशध्वज)-के साथ जनक भी वहाँ आ पहुँचे। आते ही और पुत्रियोंको देखते ही उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ चले। (२) जो राजा जनक परम विरागी समझे जाते थे, वे भी सीताको देखते ही (अनुरागके मारे) अपना धीरज खो बैठे। राजा जनकने आते ही जानकीको हृदयसे चिपटा लिया। (प्रेमका प्रभाव देखिए कि) उनके ज्ञानकी सारी प्रबल मर्यादा (कि मोह उनके पास आ नहीं सकता, देखते-देखते) मिट चली। (३) उनके सब बुद्धिमान् मंत्रियोंने जब

३७६९-७० धृतिं धृत्वाहूय सीतां विश्लेषविरहाकुला। अत्युच्चै रोदनं चक्रे संश्लिष्य च पुनः पुनः ॥
३७७२ सुभगादयस्तु सख्यस्ता आलिंग्यालिंग्य सादरम्।
३७७३-७४ प्रेमातुरास्तदा सख्यो नरा नार्यश्च भूरिशः। सर्वाश्च रुरुदुर्भूयस्सर्वमासीदचेतनम् ॥
३७७५-७६ पंजरस्थाश्शुकास्ते च प्रबोधाय पठन्त्यमी। प्रपठन्ति तथा रम्यं पंजरस्थाश्च सारिकाः ॥
अजडाश्च जडाश्चैव पक्षिणः कुक्कुरास्तथा। सर्वे व्याकुलतां प्रापुर्मनुष्याणाञ्च का कथा ॥—सत्योपा०
३७७९-८० स्वयं रुरोद मोहेन सुतां कृत्वा स्ववक्षसि। क्व यासीत्येवमुच्चार्य शून्यं कृत्वा मुहुर्मुहुः ॥—आ०रा०

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचार अनवसर जाने।
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मँगाई। (४)

दो०—प्रेम - बिबस परिवार सब , जानि सुलग्न नरेस।
कुँअरि चढ़ाई पालकिन्हि , सुमिरे सिद्ध, गनेस ॥ ३३८ ॥

बहु बिधि भूप सुता समुझाई। नारि - धरम कुल-रीति सिखाई।
दासी - दास दिए बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय - केरे। (१)
सीय - चलत व्याकुल पुर - वासी। होहिं सगुन सुभ मंगल-रासी।
भूसुर - सचिव - समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा। (२)
समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ, गज, बाजि बरातिन साजे।
३७९० दसरथ बिप्र बोलि सब लीन्हें। दान - मान परिपूरन कीन्हें। (३)
चरन - सरोज - धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा।
सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना। मंगल - मूल सगुन भे नाना। (४)

उन्हें बहुत समझाया-बुझाया तब कहीं उन्हें यह सुध आई कि यह अवसर इतना प्रेम प्रकट करनेका नहीं है। बार-बार अपनी पुत्री (जानकी)-को हृदयसे लगाकर उन्होंने सुन्दर सजी हुई पालकियाँ मँगवा भेजीं। (४) सारे परिवारको प्रेममें मग्न देखकर, राजाने सुन्दर मुहूर्त देखकर सिद्धियोंके साथ गणेशका स्मरण करके सब कन्याओंको पालकियोंपर ले जा चढ़ाया ॥ ३३८ ॥ (उन्हें पालकियोंपर चढ़ाकर) राजा जनकने अपनी सब पुत्रियोंको अनेक प्रकारसे समझाकर, उन्हें स्त्रीका धर्म और कुलकी सारी रीति सिखा सुनाई और सीताके जो विश्वासपात्र और निष्ठावान् दास-दासी थे वे सब साथ कर दिए। (१) सीताकी पालकी उठते ही पुरवासी व्याकुल हो उठे। उस समय सब मंगलदायक शुभ शकुन हो चले। राजा जनक भी ब्राह्मणों और दरबारियोंको साथ लेकर सीताको पहुँचाने साथ चल दिए। (२) विदाका अवसर देखकर बाजे बज उठे। बरातियोंने भी अपने-अपने रथ, हाथी और घोड़े सजा खड़े किए। दशरथने सब ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर उन्हें (पुनः) दान और सम्मान देकर पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट कर दिया। (३) उनके चरणोंकी धूल माथेसे लगाकर, उनका आनन्दपूर्ण आशीर्वाद पाकर और गणेशका स्मरण करके राजा दशरथने (जनकपुरसे) प्रस्थान कर दिया। जितने मंगल-सूचक शकुन हो सकते थे सब उस समय होने लगे। (४) देवता

३७८१ तदा विप्राः समागत्य बोधयामासुरादरात्।
३७८२-८४ आनाय्य शिविकां राजा सीतारोहणहेतवे। ज्ञात्वा सुलग्नं यात्रायास्सुतामारोहयत्सुधीः। ।आ० र०
३७८५ अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधौ तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः॥ वृ०स्मृ०
३७८७ प्रयातीं जानकीं वीक्ष्य बभूवुर्व्यग्रचेतसः। राजा विप्रास्तथामात्या ययुः स्नेहवशंगताः॥
३७८८ रथाः पदातयो वाहास्सज्जिता दन्तिनो वराः। आनकाः पटहा ढक्का अवाद्यन्त सुवादकैः॥
३७९०-९२ ददौ दानं द्विजातिभ्यो याचकेभ्यः पुनः पुनः। तद्दत्ताशिषमादाय प्रस्थितोऽधीत्य विघ्नपम्॥आ०

दो०—सुर प्रसून बरषहिं हरषि , करहिं अपछरा गान ।
चले अवध-पति अवध-पुर , मुदित बजाइ निसान ॥ ३३९ ॥
नृप, करि बिनय, महाजन फेरे। सादर सकल माँगने टेरे।
भूषन, बसन, बाजि, गज दीन्हें। प्रेम पोषि, ठाढ़े सब कीन्हें। (१)
बार - बार बिरदावलि भाखी। फिरे सकल, रामहिं उर राखी।
बहुरि - बहुरि कोसलपति कहहीं। जनक प्रेम - बस फिरै न चहहीं। (२)
पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिय महीस ! दूरि बड़ि आए।
३८०० राउ बहोरि उतरि भे ठाढ़े। प्रेम - प्रबाह बिलोचन बाढ़े। (३)
तब बिदेह बोले कर जोरी। बचन सनेह - सुधा जनु बोरी।
करौं कवन बिधि बिनय बनाई। महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई। (४)
दो०—कोसल-पति समधी सजन, सनमाने सब भाँति।
मिलनि, परसपर बिनय अति, प्रीति न हृदय समाति ॥ ३४० ॥
मुनि-मंडलिहि जनक सिर नावा। आसिरवाद सबहि - सन पावा।

भी प्रसन्न हो-होकर पुष्पकी वर्षा करने लगे और अप्सराएँ गीत गाने लगीं। इस प्रकार अयोध्या-नरेश आनन्द-पूर्वक डंका बजाकर अयोध्याके लिये चल पड़े ॥ ३३९ ॥ राजा दशरथने बहुत विनति करके (समझा-बुझाकर) वहाँ विदा करने आए हुए (जनकपुरके) प्रतिष्ठित नागरिकोंको बिदा किया। फिर उन्होंने आदर-सहित सब भिखमंगोंको बुलाकर उन्हें बहुतसे गहने, कपड़े, घोड़े और हाथी बाँट दिए और उन्हें प्रेमपूर्वक सब प्रकारसे सम्पन्न करके सन्तुष्ट और सम्पत्ति देकर पुष्ट (धनी) कर दिया। (१) वे बार-बार रामके वंश (सूर्यवंश)-की प्रशंसा करते हुए और उन्हें हृदयमें बसाए हुए अपने-अपने स्थानोंपर लौट गए। दशरथ जितना ही जनकसे लौटनेको कहते थे उतना ही वे प्रेमके मारे लौटनेका नाम नहीं ले रहे थे। (२) फिर राजाने बड़ी मधुरताके साथ जनकसे कहा—'राजन् ! अब आप बहुत दूर निकल आए हैं। कृपया अब पधारिए।' यह कहकर राजा दशरथ अपने रथसे उतरकर नीचे खड़े हो गए और उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ पड़े। (३) तब जनकने हाथ जोड़कर स्नेहके अमृतमें वाणी डुबोकर कहना प्रारंभ किया—'मैं किन शब्दोंमें आपकी प्रशंसा करूँ महाराज ! आपने तो मुझे बहुत ही बड़ा यश दे डाला है (कि मेरी पुत्रीका विवाह साक्षात् परब्रह्म रामसे हो गया)।' (४) अयोध्याके स्वामी राजा दशरथने अपने समधी (जनक)-का सब प्रकारसे बहुत सम्मान किया। उनका परस्पर मिलन ऐसे विनय और प्रेमसे भरा था कि वह हृदयमें समा नहीं पा रहा था ३४० ॥ राजा जनकने फिर समस्त मुनियोंको प्रणाम करके उन सबका भी आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। फिर

३७९३-९४ ननृतुर्वारनार्यश्च जगुर्मागधबन्दिनः। वर्षितः पुष्पवृष्ट्या सः प्रययौ कोसलाम्प्रति ॥
३७९५-९७ सत्कृत्य दानमानाभ्यान्नृपेणाशु निर्वतिताः। सर्वे रामं प्रशंसन्तस्स्वगेहं च ययुर्जनाः ॥
३७९८-९९ शश्वन्निर्वर्तितो राजा कोशलेशेन धीमता। अनिष्टावर्तनोऽप्यैशो विदेहः प्राह भूपतिम् ॥
३८०१ वचनञ्च सुधाहारि विनयावनतस्सुधीः। —आनन्दरामायण
३८०५ प्रेम्णा ननाम वै राजा वसिष्ठप्रमुखानृषीन्। —सत्योपाख्यान

सादर पुनि भेंटे जामाता । रूप-सील-गुन-निधि सब भ्राता । (१)
जोरि पंकरुह-पानि सुहाए । बोले बचन प्रेम जनु जाए ।
राम ! करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि-महेस-मन-मानस-हंसा । (२)
करहिं जोग जोगी जेहि-लागी । कोह, मोह, ममता, मद त्यागी ।
३८१० ब्यापक, ब्रह्म, अलख, अबिनासी । चिदानंद, निरगुन, गुनरासी । (३)
मन-समेत जेहि जान न बानी । तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।
महिमा निगम नेति कहि कहई । जो तिहुँ काल एकरस अहई । (४)
दो०—नयन-बिषय मो-कहँ भयउ , सो समस्त-सुख-मूल ।
सबइ लाभ जग जीव-कहँ , भए ईस अनुकूल ।। ३४१ ।।
सबहि भाँति मोहिं दीन्हि बड़ाई । निज जन जानि लीन्ह अपनाई ।
होहिं सहस दस सारद, सेखा । करहिं कलप कोटिक भरि लेखा । (१)
मोर भाग्य, राउर गुन-गाथा । कहि न सिराहिं, सुनहु रघुनाथा ।
मैं कछु कहौं, एक बल मोरे । तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे । (२)

आदरके साथ वे अपने चारों जामाताओंसे मिले जो सभी रूप, शील और गुणके भाण्डार थे । (१) अपने कमल-जैसे सुन्दर हाथ जोड़कर वे प्रेम-भरे वचन बोले—'वत्स राम ! मैं आपकी किस प्रकार प्रशंसा करूँ ? आप तो मुनियोंके और शिवके मनरूपी मानसरोवरमें हंस बनकर विचरण करते रहते हैं । (२) जिसे (प्राप्त करने)-के लिये योगी लोग क्रोध, मोह, ममता और मद त्यागकर योगकी साधना करते हैं, जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अलक्ष्य, अविनाशी (अनश्वर) चिदानन्द, निर्गुण और समस्त गुणोंका भंडार है, (३) जिसे न मनसे जाना जा सकता और न वाणीसे जिसका वर्णन किया जा सकता, जिनका सब लोग केवल अनुमान-मात्र ही कर पाते हैं किसी तर्कसे सिद्ध नहीं कर पा सकते, जिसकी महिमाका वर्णन वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कह-कहकर किया करते हैं और जो तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य)-में सदा एक-रस (एक-जैसे निर्विकार) बने रहते हैं, (४) वे ही समस्त सुखोंके मूल (ब्रह्म) आप इस समय मेरे नेत्रोंके विषय बने (मेरे सामने रामके रूपमें) खड़े हुए हैं । जब ईश्वर अनुकूल हो जाय (कृपा कर दे) तो प्राणीको जगत्में सब प्रकारका लाभ होने लगता है ।।३४१ ।। आपने (मेरी कन्यासे विवाह करके) मुझे सब प्रकारकी बड़ाई दे डाली और अपना जन (भक्त) समझकर अपना लिया । यदि दस सहस्र सरस्वतियाँ और शेष करोड़ों कल्पों-तक वर्णन करते रहें (१) तब भी हे रघुनाथ ! मेरे सौभाग्य और आपके गुणोंकी कहानी उनके समाप्त किए पूरी नहीं हो पा सकती । (२) मैं जो कुछ कह

३८०८-१० यान् ब्रह्मेशो रमादेवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ।
यत्पादपंकजपरागसुरागयोगिवृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपराजितदुःखशोका देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये । —भागवत
३८१२ अतीतः पंथानं तव च महिमा वाङ्मनसयोरतद्व्यावृत्यायं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि । म०स्तो०
३८१३-१४ अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया । एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ।
३८१५ धन्योस्म्यहं कुलं धन्यं धन्यौ तौ पितरौ मम । योऽहं रामस्य श्वशुरश्चेति लोके प्रथांगतः ।अ०रा०
३८१६-१७ लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति । —महिम्नस्तोत्र

बार बार माँगौं कर जोरे। मन परिहरै चरन जनि भोरे।
३८२० सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम राम परितोषे। (३)
करि बर बिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने।
विनती बहुरि भरत-सन कीन्हीं। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्हीं। (४)

दो०—मिले लखन रिपुसूदनहिं, दीन्हि असीस महीस।
भये परसपर प्रेम-बस, फिरि-फिरि नावहिं सीस ॥ ३४२ ॥

बार-बार करि बिनय, बड़ाई। रघु-पति चले संग सब भाई।
जनक गहे कौसिक-पद जाई। चरन-रेनु सिर-नयननि लाई। (१)
सुनु मुनीसबर! दरसन तोरे। अगम न कछु, प्रतीति मन मोरे।
जो सुख-सुजस लोक-पति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं। (२)
सो सुख-सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन-अनुगामी।
३८३० कीन्हि बिनय पुनि-पुनि सिर नाई। फिरे महीस आसिषा पाई। (३)

रहा हूँ वह केवल अपने इसी बलके आधारपर कि आप थोड़ा-सा भी सच्चा प्रेम देखते ही झट रीझ उठते हैं। (२) मैं हाथ जोड़कर आपसे बार-बार यही प्रार्थना कर रहा हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणोंसे कभी अलग न हो पावे।' जनककी ये प्रेम-भरी सुन्दर बातें सुनकर राम इतने प्रसन्न हुए कि (३) रामने महाराज जनकको अपने पिता दशरथ, विश्वामित्र और वशिष्ठके समान (पूज्य) जानकर अत्यन्त विनय-पूर्वक जनकका बड़ा सम्मान किया। फिर जनकने भरतकी भी विनति की और प्रेमके साथ मिलकर उन्हें आशीर्वाद दिया। (४) राजा जनकने फिर लक्ष्मण और शत्रुघ्नसे मिलकर उन्हें भी आशीर्वाद दिया। उनका स्नेह देखकर दोनों भाई (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) परस्पर प्रेम-मग्न होकर बार-बार जनकको सिर नवाए जाने लगे ॥ ३४२ ॥ बार-बार जनककी विनती और बड़ाई करके राम अपने सब भाइयोंके साथ चल दिए। फिर जनकने विश्वामित्रके चरण जा पकड़े और उनके चरणोंकी रज माथे और नेत्रोंसे लगाकर बोले—'हे मुनीश्वर! मैं पक्के विश्वासके साथ कहता हूँ कि आपका दर्शन कर लेनेपर मेरे लिये (१) कुछ भी अगम (अप्राप्य) नहीं रह गया है (मुझे सब कुछ प्राप्त करनेकी शक्ति मिल गई)। जिस सुख और सुयशके लिये लोकपाल तरसते रह जाते हैं और अपनी कामना खुलकर कहनेमें भी संकोच करते हैं, (२) वही सुख और सुयश, मुझे सुलभ (सरलतासे प्राप्त) हो गया है, क्योंकि संसारकी सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनके पीछे-पीछे ही तो चलती हैं (आपके दर्शन-मात्रसे सारी सिद्धियाँ मिल जाती हैं)। बार-बार (उनके चरणोंमें) अपना सिर नवाकर जनकने उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की और

३८१९ यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन। त्वद्भक्तसंगस्त्वत्पादे मम भक्तिस्सदास्तु वै ॥
३८२०-२४ एवं सम्मानितास्तेन ते बाला जनकेन हि। प्रीत्याभिरेभिरे सर्वे महोत्सवपरस्परम् ॥ आ०रा०
३८२६ उत्थाय जगृहे पादौ विश्वामित्रस्य राजराट्। —सत्योपाख्यान
३८२७-२९ कृपया तव विप्रेन्द्र संबन्धो हीदृशोऽभवत् प्रसादात्तव रामस्य लाभो जातोऽद्य मे मुने ॥
३८३० इत्युक्त्वा नृपतिर्नत्वा मिथिलाञ्जनको ययौ। —आनन्दरामायण

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट - बड़ सब समुदाई।
रामहिँ निरखि ग्राम - नर - नारी। पाइ नयन - फल होहिँ सुखारी। (४)

दो०—बीच-बीच बर बास करि, मग - लोगन सुख देत।
अवध-समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥ ३४३ ॥

हने निसान, पनव बर बाजे। भेरि-संख-धुनि हय - गय गाजे।
झाँझ, बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिँ सहनाई। (१)
पुर - जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता।
निज - निज सुंदर सदन सँवारे। हाट, बाट, चौहट, पुर, द्वारे। (२)
गली सकल अरगजा सिँचाई। जहँ - तहँ चौके चारु पुराई।
३८४० बना बजार न जाइ बखाना। तोरन, केतु, पताक, बिताना। (३)
सफल पूगफल, कदलि, रसाला। रोपे बकुल, कदंब, तमाला।
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलवाल कल करनी। (४)

उनका आशीर्वाद पाकर वे लौट चले। (३) जनकके लौटते ही डंका बजाकर बारात (अयोध्याकी ओर) चल पड़ी। छोटे बड़े सब लोग हर्षसे फूले नहीँ समा रहे थे। (मार्गमेँ पड़नेवाले) गाँवोंके स्त्री-पुरुष रामको देख-देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जा रहे थे (४) मानो अपने नेत्र होनेका सारा सुफल पा गए हों। बीच-बीचमेँ सुन्दर पड़ाव डालती हुई तथा मार्गके लोगोंको सुख देती हुई वह बारात अत्यन्त शुभ मुहूर्तमेँ अयोध्याके निकट जा पहुँची ॥ ३४३ ॥

डंकोंपर चोटें पड़ चलीं। बढ़िया-बढ़िया ढोल गड़गड़ा उठे। भेरी और शंख बज उठे। घोड़े हिनिहिनाने और हाथी चिग्घाड़ने लगे। सुहावनी झाँझें, डफलियाँ और रसीले रागोंमेँ शहनाइयाँ बज उठीं। (१) बारात आनेकी भनक पाते ही अयोध्याके सारे नगरवासी मगन हो उठे। उनके शरीर पुलकित हो उठे। सबने अपने-अपने सुन्दर घर, गली, चौराहे और नगरके फाटक सजा डाले। सभी गलियाँ अरगजे[1]से सींच डाली गईं और जहाँ-तहाँ सुन्दर चौक पूर दिए गए। तोरण, ध्वजा, पताका और मण्डपोंकी सजावटसे एक-एक हाट भली भाँति ऐसा सजा दिया गया कि उस सजावटका वर्णन हो नहीं सकता। (३) स्थान-स्थानपर सुपारी, केले, आम, मौलसिरी, कदम्ब और तमालके फलवाले पेड़ ला लगाए गए। वे पृथ्वीमेँ ला जमाए गए थे और मणियोंसे उनके बहुत सुन्दर थाँवले बना दिए गए थे। (४) घर-घरमेँ लोगोंने अनेक प्रकारके मंगल कलश सजा छोड़े थे।

१. अरगजा : कपूर और चन्दनका चोवा।

३८३३-३४ ततो दशरथश्चापि स्नुषाभिस्तनयैः सह। पथि विश्रम्य विश्रम्य साकेतासन्नमाययौ ॥
३८३५-३६ वीणावेणुमृदंगानां झर्झराणां च भूरिशः। शंखदुंदुभिनादं च गोमुखानां तथैव च ॥ आ०रा०
३८३७-४० अयोध्यायां सुमन्तोपि नृपं श्रुत्वा समागतम्। नगरीं शोभयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥
सिक्तो मार्गः संस्कृतं च शोभितं परमर्द्धिभिः। द्वारि द्वारि च रंभादि मंगलं द्रव्यसंयुतम् ॥ सत्यो०
३८४१ रम्भापूगोपशोभिता। —भागवत

दो०—विविध भाँति मंगल कलस, गृह - गृह रचे सँवारि।
सुर - ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुबर - पुरी निहारि ॥ ३४४ ॥
भूप-भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन - मन मोहा।
मङ्गल सगुन, मनोहरताई। रिधि, सिधि, सुख, संपदा सुहाई। (१)
जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि-धरि दसरथ-गृह आए।
देखन - हेतु राम - बैदेही। कहहु लालसा होइ न केही। (२)
जूथ - जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन-बिलासिनि।
३८५० सकल सुमंगल सजे आरती। गावहिं, जनु बहु बेष भारती। (३)
भूपति - भवन कोलाहल होई। जाइ न बरनि समउ, सुख सोई।
कौसल्यादि राम - महतारी। प्रेम - बिबस तनु-दसा बिसारी। (४)
दो०—दिए दान बिप्रन बिपुल, पूजि गनेस - पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ॥ ३४५ ॥

रामकी पुरी (अयोध्या)-को देखकर ब्रह्मा आदि देवता तरस-तरसकर रह जाते थे (कि हाय ! हमारी पुरी ऐसी सुन्दर क्यों न बन पाई !) ॥ ३४४ ॥ उस समय राज-भवन ऐसा भव्य लग रहा था कि उसकी रचना देख-देखकर कामदेवका मन भी उसपर लुभाया पड़ रहा था। (ऐसा लग रहा था कि) मंगल शकुन, सुन्दरता, ऋद्धि, सिद्धि, सुख, सम्पत्ति (१) और सब प्रकारके उल्लास मानो स्वाभाविक सुन्दर शरीर धारण कर-करके राजा दशरथके घरमें आ छाए हों। ऐसे अवसरपर राम और जानकीको भर-आँखों देख लेनेकी लालसा भला किसके मनमें नहीं उठेगी ? (२) झुंडकी झुंड ऐसी-ऐसी (एकसे एक सुन्दरी) सौभाग्यवती स्त्रियाँ एक साथ मिलकर चल दीं जो अपनी सुन्दरतासे कामदेवकी पत्नी रतिको भी लजाए डाल रही थीं। वे सभी सुन्दर मंगल द्रव्य और आरती सजाकर हाथमें लिए जाती हुईं इस ढंगसे गाती चली जा रही थीं मानो सरस्वती ही अनेक रूप धारण करके गाती चली जा रही हों। (३) राजा जनकके भवनमें उस समय इतना धूम-धड़ाका मचा हुआ था कि उस समयके आनन्द और उल्लासका वर्णन कोई करना भी चाहे तो किया नहीं जा सकता। कौशल्या (सुमित्रा, कैकेयी) आदि रामकी सभी माताएँ प्रेममें ऐसी बेसुध हुई बैठी थीं कि उन्हें अपने तन-मनका भी चेत नहीं रह गया था। उन्होंने गणेश और शिवकी पूजा करके ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बहुत-सा दान दे डाला। वे ऐसी मगन हुई जा रही थीं मानो किसी दरिद्रको चारों पदार्थ (धर्म,

---

३८४३-४४ अयोध्यानगरं रम्यं नानारत्नैश्च मण्डितम्। वैजयन्ती पताकाभी राजितं बहुधोन्नतम् ॥
ब्रह्माद्यास्सकला देवाः प्रसेदुर्वीक्ष्य तत्पुरम्।
३८४५ तदा सौधस्य सुषमां दृष्ट्वा कामोऽपि मोहितः। द्वारं चापि महादिव्यं मुक्तादामादिभिर्वृतम्। मा०रा०
३८४६-४८ ब्रह्माद्याः सकला देवाः स्त्रियो हि कमलादयः। ऋद्धयस्सिद्धयस्सर्वा रामन्द्रष्टुमिहागताः ॥
३८४९-५१ स्वर्णपात्रे महादिव्ये नानारत्नैश्च पूरिते। दीपं स्वर्णमयं स्थाप्य गोघृतेन समन्वितम् ॥
मङ्गलानि प्रगायन्ति नरानार्यस्तु भूरिशः। महाराजांगणे सर्वाश्चक्रुः कौतूहलं परम् ॥
३८५२ कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी राजयोषितः। दृष्ट्वा रामं तु ताः सर्वानात्मानं विविदुस्तदा ॥
३८५३-५४ गणनाथं समभ्यर्च्य विप्रेभ्योऽदाद्धनं बहु। चतुर्वर्गफलप्राप्तेरकिञ्चन इवा बभौ ॥ —सत्यो०

मोद - प्रमोद - बिबस सब माता। चलहिं न चरन, सिथिल भे गाता।
राम - दरस - हित अति अनुरागीं। परिछनि-साज सजन सब लागीं। (१)
बिबिध बिधान बाजने बाजे। मंगल, मुदित सुमित्रा साजे।
हरद, दूब, दधि, पल्लव, फूला। पान, पूगफल, मंगल - मूला। (२)
अच्छत, अंकुर, रोचन, लाजा। मंजुल मंजरि[1] तुलसि बिराजा।
३८६० छुहे पुरट - घट सहज सुहाए। मदन - सकुन जनु नीड़ बनाए। (३)
सगुन - सुगंध न जाहिं बखानी। मंगल सकल सजहिं सब रानी।
रचीं आरती बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना। (४)
दो०—कनक - थार भरि मंगलनि, कमल-करनि लिय मात।
चलीं मुदित परिछन करन, पुलक - पल्लवित गात ॥ ३४६ ॥
धूप - धूम नभ मेचक भयऊ। सावन घन-घमंड जनु ठयऊ।
सुर-तरु-सुमन-माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक-अवलि मन करषहिं। (१)

अर्थ, काम, मोक्ष) हाथ आ लगे हों ॥ ३४५ ॥ सब माताएँ आनन्द और उल्लासमें मग्न होकर इतनी बेसुध हुई जा रही थीं कि उनके पैर आगे नहीं पड़ पा रहे थे। वे रामके दर्शनकी उत्सुकतामें भरी हुई परिछनका सब सामान ला सजाने लगीं। (१) इसी बीच अनेक प्रकारके बाजे बज उठे। सुमित्राने बड़े आनन्दके साथ सारे मंगल साज ला सजा धरे जिसमें हलदी, दूब, दही, पल्लव, फूल, पान, सुपारी, आदि मंगलमय वस्तुएँ (२) तथा अक्षत, दूबके अंकुर, गोरोचन, लावा (लाजा) और तुलसीकी सुन्दर मँजरियाँ शोभा दे रही थीं। अनेक रंगोंसे रँगे हुए सहज सुहावने सुवर्णके कलश ऐसे शोभा दे रहे थे मानो कामदेवके पक्षियोंके लिये सुन्दर घोंसले बना डाले गए हों। (३) शकुनकी इतनी सुगन्धित वस्तुएँ ला सजाई गई थीं कि उनका वर्णन करना चाहनेपर भी किया नहीं जा सकता। सब रानियाँ बड़ी मगन हो-होकर मंगल साज सजाए जा रही थीं। अनेक प्रकारकी आरतियाँ सजाई गईं और फिर सब स्वरमें स्वर मिलाकर आनन्द-पूर्वक सुन्दर मंगलगान करने लगीं। (४) सोनेके थालोंमें सब मांगलिक वस्तुएं सजा-सजाकर सब माताएँ अपने कर-कमलोंमें उठा-उठाकर परिछन करने जब चलने लगीं तो उनके शरीर (हर्षसे) रोमाञ्चित हो-हो उठ रहे थे ॥ ३४६ ॥ धूपके धुएँसे आकाश ऐसा काला हो चला मानो सावनके बादल उमड़-घुमड़कर आ छाए हों। देवता आकाशसे जो कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाएँ बरसाए जा रहे थे, वे ऐसी लगती थीं मानो मनको अपनी ओर खींचे लेनेवाली बगलोंकी पाँतें आ छाई हों। (१) चमचमाते

१. मंजुल मंगल।

३८५६ कौसल्याद्या मातरस्ताः पुत्रदर्शनकांक्षया। नीराजनविध्यर्थमभूवन् सज्जितास्तदा ॥
३८५७-५८ हरिद्रांकितधान्यानि मंगल्यानि सुमित्रया। संगृहीतानि वस्तूनि पुष्पपूगफलानि च ॥
३८६५ प्रावृट्काला‌भ्रमिव तद्धूमं चागुरुसंभवम् ॥
३८६६ ववृषुः सुरसंघाश्च पुष्पमालां मनोहराम्। —सत्योपाख्यान

मंजुल मनिमय बंदनिवारे। मनहुँ पाकरिपु-चाप सँवारे।
प्रगटहिं, दुरहिं अटनि-पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि। (२)
दुंदुभि-धुनि घन-गरजनि घोरा। जाचक चातक-दादुर-मोरा।
३८७० सुर सुगंध-सुचि बरषहिं बारी। सुखी सकल ससि[1] पुर-नर-नारी। (३)
समउ जानि, गुरु आयसु दीन्हा। पुर-प्रबेस रघुकुल-मनि कीन्हा।
सुमिरि संभु, गिरिजा, गनराजा। मुदित महीपति सहित-समाजा। (४)

दो०—होहिं सगुन, बरषहिं सुमन, सुर दुंदुभी बजाइ।
बिबुध-बधू नाचहिं मुदित, मंजुल मंगल गाइ॥ ३४७॥

मागध, सूत, बंदि, नट, नागर। गावहिं जस तिहुँ-लोक-उजागर।
जय-धुनि, बिमल बेद-बर-बानी। दस दिसि सुनिय सुमंगल-सानी। (१)
बिपुल बाजने बाजन लागे। नभ-सुर, नगर-लोग अनुरागे।
बने बराती, बरनि न जाहीं। महा मुदित, मन सुख न समाहीं। (२)

रत्न टँके हुए बन्दनवार (प्रत्येक भवनके फाटकपर लटके हुए) ऐसे लग रहे थे मानो घर-घर इन्द्र-धनुष ला टाँगे गए हों। अटारियोंपर चढ़ी छबीली चुलबुली नवेलियाँ इधर-उधर आती-जाती ऐसी लग रही थीं मानो बिजलियाँ इधर-उधर चमचमाती फिर रही हों। (२) (ऐसा लगता था कि) नगाड़ोंकी गड़गड़ाहट ही मानो बादलोंका घोर गर्जन हो; (चिल्ला-चिल्लाकर माँगते जानेवाले) याचक-गण ही मानो पपीहे, मेंढ़क और मोर हों, देवता लोग जो ऊपरसे पवित्र, सुगन्धित जल बरसा रहे थे वही मानो वर्षा हो और उससे नगरके जो स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए जा रहे थे वे ही मानो वर्षासे लहलहा उठनेवाले सस्य (धान)-के खेत हों। (३) ठीक मुहूर्तपर मुनिने जब आज्ञा दी तब रघुकुलके मणि महाराज दशरथने शिव, पार्वती और गणेशका स्मरण करके अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पूरे समाज (बारात)-के साथ नगरमें प्रवेश किया। (४) (उस समय मंगल) शकुन होने लगे। देवता पुष्प-वृष्टि करते हुए नगाड़े बजा उठे। अप्सराएँ प्रसन्न हो-होकर सुमंगल गीत गाती हुई नृत्य कर उठीं॥ ३४७॥ मागध, सूत, भाट और चतुर नट तीनों लोकोंको प्रकाश देनेवाले रामका यश गा चले। जय-जयकारकी ध्वनि तथा पवित्र और शुद्ध वेद-पाठकी ध्वनिसे सभी मंगलमयी दसों दिशाएँ गूँज उठीं। (१) ढेरों बाजे बज उठे। आकाशमें देवता और नगरमें नागरिक जिसे देखो वही प्रेममें मगन हुआ जा रहा था। बाराती ऐसे बने-ठने चले आ रहे थे कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। वे सब इतने अधिक प्रसन्न थे कि उनका वह सुख उनके मनमें समा नहीं पा रहा था। (२)

१. सस्य सब।

३८६७ तोरणानि विचित्राणि भान्तीवेन्द्रशरासनम्।
३८६८ राजन्ति ललना: सर्वा: अट्टे अट्टे विद्युतोपमा:।
३८६९ दुंदुभिप्रणिनादाश्च पयोदस्येव गर्जनम्। कूजन्ति चातका भेका शिखिनश्च पुन: पुन:॥
३८७१ वसिष्ठो ब्राह्मणैर्युक्तो राजा रामादिभिर्मुदा। विवेश नगरं पौरै: पश्यन्नृत्यादिकम्पथि॥
३८७३-७४ दिवि दुन्दुभयो नेदु: पुष्पवृष्टिस्तदाभवत्। गायन्ति ता विवाहस्य मंगलं विबुधांगना:॥
३८७५-७६ वाद्यमानेषु तूर्य्येषु स्तूयमानेषु बन्दिषु। वेदेषु पठ्यमानेषु विप्रवर्य्यै: समन्तत:॥—सत्यो०

पुर - वासिन तब राय जोहारे। देखत रामहिँ भये सुखारे।
३८८० करहिँ निछावरि मनि-गन, चीरा। बारि बिलोचन, पुलक सरीरा। (३)
आरति करहिँ मुदित पुर - नारी। हरषहिँ निरखि कुँअर-बर चारी।
सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिँ सुखारी। (४)
दो०—यहि बिधि सबही देत सुख, आए राज - दुआर।
मुदित मातु परिछन करहिँ, बधुन - समेत कुमार ॥ ३४८ ॥
करहिँ आरती वारहिँ वारा। प्रेम - प्रमोद कहै को पारा।
भूषन, मनि, पट नाना जाती। करहिँ निछावरि अगनित भाँती। (१)
बधुन - समेत देखि सुत चारी। परमानंद - मगन महतारी।
पुनि - पुनि सीय - राम - छवि देखी। मुदित सुफल जग - जीवन लेखी। (२)
सखी सीय-मुख पुनि-पुनि चाही। गान करहिँ निज सुकृत सराही।
३८९० बरपहिँ सुमन छनहिँ छन देवा। नाचहिँ, गावहिँ, लावहिँ सेवा। (३)

अयोध्याके पुरवासियोंने आगे बढ़कर महाराज दशरथकी वन्दना की और रामको देखकर तो वे फूले नहीं समाए। वे (इतने मगन हुए जा रहे थे कि) वे (रामपर) रत्न और वस्त्र उठा-उठाकर न्योछावर करने लग गए थे (लुटाने लग गए थे)। उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंकी झड़ी लग गई थी और आनन्दके मारे उनके शरीर पुलकित हो उठे थे। (३) अपने सजीले चारों कुमारोंको देख-देखकर नगरकी नारियाँ बड़े हर्षमें भरी आरती उतारे जा रही थीं और पालकियोंकी सुनहरी उहारें (आवरण) हटा-हटाकर दुलहिनें देख-देखकर मगन हुई जा रही थीं। (४) इस प्रकार सबको हर्षित करते हुए (भाइयोंके साथ राम) राजद्वारपर आ पहुँचे। (वहाँ पहुँचते ही सब) माताएँ आनन्दित होकर बहुओंका और चारों कुमारोंका परिछन करने लगीं ॥ ३४८ ॥ जिस समय वे बार-बार आरती किए जा रही थीं उस समय उनके मनमें जो प्रेम और आनन्दका नद उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन किसके किए हो सकता है ? (वे प्रेममें मग्न होकर) अनेक प्रकारके आभूषण, रत्न और वस्त्र न्योछावर किए डाल रही थीं (लुटाए डाल रही थीं)। (१) माताएँ अपने चारों पुत्रों और चारों बहुओंको देख-देखकर आनन्दमें मग्न हुई जा रही थीं। सीता और रामकी छवि बार-बार देख-देखकर वे मनमें यही समझ-समझकर फूली जा रही थीं कि संसारमें जन्म लेना हमारा सफल हो गया। (२) (उनकी) सखियाँ झाँक-झाँककर सीताका मुखड़ा निहारती हुई अपने पुण्योंकी सराहना करती हुई गीत गाए जा रही थीं। देवता (ऊपरसे) क्षण-क्षणपर पुष्प-वृष्टि किए जा रहे थे। वे नाच-गाकर ही अपनी सेवा अर्पण करते जा रहे थे। (३) उन चारों मनोहर

३८७९-८१ राजपुत्रांस्तथा दृष्ट्वा स्त्रियो बालाश्च कन्यकाः। वयं धन्यतमास्ते तु मुखचन्द्रावलोकिनः ॥
पौरा निर्गत्य पुर्य्यास्तु पूजया तानपूजयन्। याचकेभ्यो गुणिभ्यश्च दत्वा दानानि भूरिशः ॥
३८८२ उत्साय शिविकावस्त्रं भगिनीभिस्तु जानकीम्। उदीक्ष्यावधवासिन्यो नार्यो याताः प्रसन्नताम् ॥
३८८३-८५ यच्छन्तश्शमं पौरेभ्यो ह्याययू राजसूनवः। नीराजयन्ति तद्वाश्व्यस्सपत्नीकान् कुमारकान् ॥
३८८६ कम्बलान् मणिमुक्तादीन् ददुर्वस्तून्यनेकधा। याचकेभ्यो गुणीभ्यश्च कौसल्याद्याः समुन्नताः ॥
३८८७-८८ दर्शं दर्शं वधूपुत्रानानन्दं लेभिरे मुहुः। अद्य मे सफलञ्जन्म अद्य मे सफलाः क्रियाः ॥
३८९० वाद्यानि वादयामासुर्देवास्ते गगनस्थिताः। अवाकिरन् प्रसूनानि ननृतुश्च पुनः पुनः ॥सत्यो०

देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढँढोरी।
देत न बनहिं निपट लघु लागी। ऐकटक रही रूप अनुरागी। (४)
दो०—निगम-नीति कुल-रीति करि , अरघ - पाँवड़े[1] देत।
बधुन-सहित सुत परिछि सब , चलीं लवाइ निकेत ।। ३४९ ।।
चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए।
तिन्ह - पर कुँअरि - कुँअर बैठारे। सादर पाँयँ पुनीत पखारे। (१)
धूप - दीप - नैबेद बेद - बिधि। पूजे बर - दुलहिनि मंगल - निधि।
बारहिं बार आरती करहीं। ब्यजन, चारु चामर सिर ढरहीं। (२)
बस्तु अनेक निछावर होहीं। भरी प्रमोद मातु सब सोहीं।
३९०० पावा परम-तत्त्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी। (३)
जनम - रंक जनु पारस पावा। अंधहिं लोचन - लाभ सुहावा।
मूक - बदन जनु सारद छाई। मानहुँ समर सूर जय पाई। (४)

जोड़ियोंको देखकर (उनका वर्णन करनेके लिये) सरस्वतीने उनके लिये सारी उपमाएँ खोज मारीं पर (जो मिलीं भी) वे इतनी ओछी जान पड़ीं कि देते नहीं बन पा रही थीं। (उपमा देनेमें) हार मानकर वे भी रामके रूपमें उलझकर टकटकी लगाए उन्हें देखती ही रह गईं। (४) सारी वैदिक विधियाँ और कुल-रीतियाँ पूरी करके माताएँ अपनी बहुओं और अपने पुत्रोंका परिछन करके उनके पैरोंके आगे-आगे अर्घ्य देती हुई (जल-धार गिराती हुई) उन्हें भीतर रनिवासमें लिवा ले चलीं ।। ३४९ ।। बिना सजाए ही सुन्दर लगनेवाले चार सिंहासन उन (पुत्रों और बहुओंके लिये) ला धरे गए जो ऐसे लगते थे मानो कामदेवने ही अपने कर-कमलोंसे उन्हें गढ़ बनाया हो। माताओंने चारों राजकुमारों और बहुओंको उनपर ला बिठाया और आदरके साथ उनके पवित्र चरण आ धोए। (१) फिर वैदिक विधिके अनुसार धूप, दीप और नैवेद्यसे अत्यन्त मंगल दूल्हों और दुलहिनोंकी पूजा की। माताएँ बार-बार उनकी आरती उतारती हुई उनके सिरपर चँवर और पंखे डुलाए जा रही थीं (२) और अनेक वस्तुएँ न्यौछावर किए डाल रही थीं (लुटाए डाल रही थीं)। सब माताएँ ऐसी आनन्दमें मग्न हुई भली लग रही थीं, मानो योगीको परम-तत्त्व (ईश्वर) प्राप्त हो गया हो, या सदा रोगी रहनेवालेको अमृत मिल गया हो, (३) या जन्मके दरिद्रके हाथ पारस लग गया हो या अंधेको सुहावने नेत्र मिल गए हों, या गूँगेके मुखमें सरस्वती आ विराजी हों (गूँगेका मुँह खुल गया हो और वह बोलने लगा हो) या शूरवीर युद्धमें जीत गया हो। (४) माताएँ तो इन

१. अर्घ-पाँवड़े = अर्घ्यके पाँवड़े : स्वागतके लिये आगे-आगे जल गिराते चलना।

३८९१-९४ एवं नीराजनं कृत्वा कौशल्याद्या नृपस्त्रियः। उपजग्मुर्गृहन्ताश्च समादाय बधूश्शुभाः।। सत्यो०
३८९५-९७ सिंहासनेषु दिव्येषु रेजुस्तत्र कुमारकाः। पाद्यमर्घ्यं स्वयञ्चक्रुर्नीराजनविधिन्तदा ।।अध्या०रा०
३८९८-०० मालापुष्पमयी दत्वा चन्दनानि विलिप्य च। व्यजनेन चामरेण वीज्यमानाः पुनः पुनः ।।
३८९९-०० याचकेभ्यो गुणिभ्यश्च दुदुर्दानानि भूरिशः। आनन्दं लेभिरे सर्वा मातरो लोकमातरः ।।प०पु०
३९०१-०२ यथांधस्येक्षणप्राप्तिः सुनिधिन्निर्धना यथा। —योगवाशिष्ठ
यथा मूको भवेद्वक्ता युद्धे लब्धजयो यथा। —गर्गसंहिता

दो०—ऐहि सुख-तें सत-कोटि-गुन , पावहिं मातु अनंद ।
भाइन - सहित बियाहि घर , आए रघुकुल - चंद ।। ३५० क ।।
लोक - रीति जननी करहिं , बर - दुलहिनि सकुचाहिं ।
मोद, बिनोद बिलोकि बड़ , राम मनहिं मुसुकाहिं ।। ३५० ख ।।
देव - पितर पूजे बिधि नीकी । पूजीं सकल बासना जी - की ।
सबहिं बंदि माँगहिं बरदाना । भाइन - सहित राम-कल्याना । (१)
अंतर्हित सुर आसिष देहीं । मुदित मातु अंचल भरि लेहीं ।
३९१० भूपति बोलि बराती लीन्हें । जान, बसन, मनि, भूषन दीन्हें । (२)
आयसु पाइ राखि उर रामहिं । मुदित गये सब निज-निज धामहिं ।
पुर - नर - नारि सकल पहिराए । घर - घर बाजन लगे बधाए । (३)
जाचक जन जाचहिं जोइ - जोई । प्रमुदित राउ देहिं सोइ - सोई ।
सेवक सकल बजनिया नाना । पूरन किए दान - सनमाना । (४)

सब सुखोंसे सैकड़ों करोड़ गुना आनन्दित हुई जा रही थीं क्योंकि आज रघुकुलके चन्द्र राम और उनके तीनों भाई विवाह करके घर लौटे थे ।। ३५० क ।। माताएँ जो (पुत्रों और बहुओंके पैर धोने आदिकी) लौकिक रीतियाँ कर रही थीं, उन्हें देख-देखकर वर और दुलहिनें बहुत सकुचाई जा रही थीं और राम यह आनन्द और विनोद देख-देखकर मन ही मन मुसकराए पड़ रहे थे ।। ३५० ख ।। देवता और पितरोंकी भली-भाँति पूजा करके माताएँ मन ही मन मनौतियाँ मनाए जा रही थीं । वे सब देवता और पितरोंकी वन्दना करके उनसे यही मना रही थीं कि राम और उनके भाइयोंका सदा कल्याण होता रहे । (१) सब देवता आकाशसे ही आशीर्वाद देते जा रहे थे और माताएँ आनन्दपूर्वक आँचल फैला-फैलाकर उनके आशीर्वाद लेती जा रही थीं । उधर राजा दशरथने सभी बरातियोंको एक-एक करके बुलवाकर उन्हें सवारी, वस्त्र, रत्न और आभूषण आदि जी भरकर बाँट डाले । (२) वे भी यह सब लेकर और आज्ञा पाकर राम (-की मूर्ति) हृदयमें बसाए हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर चले गए । फिर महाराजने नगरके सब स्त्री-पुरुषोंको बुला-बुलाकर उन्हें वस्त्र और आभूषण ला पहनाए । (फिर क्या था ?) घर-घर बधावे बजने लगे । (३) राजा दशरथके द्वारपर जो-जो याचक जो-जो वस्तु माँगता उसे राजा दशरथ वही-वही वस्तु प्रसन्नतापूर्वक दिए डाल रहे थे । (इतना ही नहीं,) सब सेवकों और बजनियोंको भी राजाने इतना दान और सम्मान दिया कि सभी पूर्णतः सन्तुष्ट हो गए । (४)

३९०३-०४ लेभिरे परमानन्दमन्तःपुरवरांगनाः । आगतो भ्रातृभिस्सार्धं विवाह्य रघुनन्दनः ।। गर्गसं०
३९०५-०८ देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन् । अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तथा ।।–वा०
चिरजीवी भवेद्येन तथा वै क्रियतां शुभम् ।
३९०९-०० तथा भवतु वाक्यं ते प्रत्यूचुश्च सुरेश्वराः ।
३९१०-११ पूजयामास तान् सर्वान् भूपालो बहुवैभवैः । ततस्ते सुहृदस्सर्वे नृपाश्च स्वस्थलं ययुः ।।
३९१२-१३ देहि देहि धनं देहि मा नेति ब्रूहि कस्यचित् । ददौ दानं च सर्वेभ्यो हर्षितो नृपसत्तमः ।।–सत्यो०

दो०—देहिं असीस जोहारि सब , गावहिं गुन-गन - गाथ ।
तब गुरु - भूसुर - सहित गृह , गवन कीन्ह नरनाथ ।। ३५१ ।।

जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्हीं । लोक - बेद - बिधि सादर कीन्हीं ।
भूसुर - भीर देखि सब रानी । सादर उठीं, भाग्य बड़ जानी । (१)
पाँय पखारि सकल अन्हवाए । पूजि भली बिधि भूप जेँवाए ।
३९२० आदर, दान, प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे । (२)
बहु बिधि कीन्हि गाधि - सुत पूजा । नाथ ! मोहि सम धन्य न दूजा ।
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी । रानिन - सहित लीन्हि पग-धूरी । (३)
भीतर भवन दीन्ह बर बासू । मन जोगवत रह नृप[1], रनिवासू ।
पूजे गुरु - पद - कमल बहोरी । कीन्हि बिनय, उर प्रीति न थोरी । (४)

दो०—बधुन - समेत कुमार सब , रानिन - सहित महीस ।
पुनि पुनि बंदत गुरु - चरन , देत असीस मुनीस ।। ३५२ ।।

सब लोग राजा दशरथको प्रणाम कर-करके आशीर्वाद दिए जा रहे थे और उनके गुणोंका वर्णन किए जा रहे थे । यह सब कर चुकनेपर गुरु वशिष्ठ और ब्राह्मणोंके साथ राजा दशरथने राजभवनकी ओर प्रस्थान कर दिया ।। ३५१ ।। वशिष्ठ जो-जो आज्ञा देते गए वह-वह महाराज दशरथ लोक और वेदकी रीतिके अनुसार आदरपूर्वक करते चले गए । ब्राह्मणोंको आते देखकर सब रानियाँ इसे अपना बड़ा सौभाग्य मानकर बड़े आदरके साथ उठ खड़ी हुईं । (१) उनके पैर धो-धोकर सबको नहलाया-धुलाया गया और फिर राजा दशरथने उन सबकी विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें भोजन करवाया । (उन सब ब्राह्मणोंको) वहाँ इतना आदर, दान और प्रेम मिला कि वे पूर्णतः सन्तुष्ट होकर (राजा दशरथको) आशीर्वाद देते हुए (अपने-अपने घर) चले गए । (२) फिर (राजा दशरथने) गाधिके पुत्र (विश्वामित्र)-की बहुत प्रकारसे पूजा की और कहा —'नाथ ! आज सचमुच मेरे समान धन्य कोई दूसरा नहीं है ।' राजाने यह कहकर उन (विश्वामित्र)-की बड़ी प्रशंसा की और उन्होंने तथा उनकी रानियोंने उनके चरणोंकी रज अपने माथेपर उठा लगाई । (३) अन्तःपुर (रनिवासके एक कक्ष)-में ही उन (विश्वामित्र)-के रहनेकी उत्तम व्यवस्था कर दी गई । स्वयं राजा और उनकी सब रानियाँ निरन्तर उनकी सेवामें लगी रहीं । फिर राजा दशरथने गुरु वशिष्ठके चरण-कमलोंकी पूजा करके प्रेमपूर्वक हृदयसे उनके प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट की । (४) बहुओं, राजकुमारों, रानियों और राजा दशरथने बार-बार गुरु (वशिष्ठ)-के चरणोंकी वन्दना की और मुनीश वशिष्ठने (सबको हृदयसे) आशीर्वाद दिया।। ३५२ ।।

१. सब रनिवासू ।

३९१४-१५ जगाम राघवो विप्रैर्गृहं गुरुसमन्वितः । —सत्योपाख्यान
३९१७ ततो रामस्तु सन्तुष्टः कृत्वा सर्वं यथोचितम् । लौकिकं वैदिकं कर्म नमतिस्म मुदा द्विजान् ।।
३९१८-२० एतस्मिन्नन्तरे राजा समभ्यर्च्य महीसुरान् । भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मंगलम् ।।
३९२१-२२ महत्या पूजया राजा गाधेयश्च समर्चितः । सभार्येणात्मनाऽदभ्रप्रशंसाविहिता सता ।।
३९२३-२३ तत्र राजा महाबुद्धिः पत्नीपुत्रसमन्वितः । मुनिपुंगवमानम्य ववन्दे शिरसा गुरुम् ।।—सत्योपा०
पुनः पुनस्तं संपूज्य स्वीचकार तदाशिषः ।। —आनन्दरामायण

विनय कीन्हि उर अति अनुरागे। सुत, संपदा राखि नृप-आगे।
नेग माँगि मुनि-नायक लीन्हाँ। आसिरवाद बहुत विधि दीन्हाँ। (१)
उर धरि रामहि सीय-समेता। हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता।
३९३० विप्र-बधू सब भूप बोलाई। चैल[1], चारु भूपन पहिराई। (२)
बहुरि बोलाइ सुआसिनि लीन्हीं। रुचि विचारि पहिरावनि दीन्हीं।
नेगी नेग-जोग सब लेहीं। रुचि-अनुरूप भूप-मनि देहीं। (३)
प्रिय पाहुने पूज्य[2] जे जाने। भूपति[3] भली भाँति सनमाने।
देव देखि रघुवीर-विवाहू। बरषि प्रसून, प्रसंसि उछाहू। (४)

दो०—चले निसान बजाइ सुर, निज-निज पुर, सुख पाइ।
कहत परसपर राम-जस, प्रेम न हृदय समाइ ॥ ३५३ ॥

सब विधि सबहिं समदि नर-नाहू। रहा हृदय भरि पूरि उछाहू।
जहँ रनिवास तहाँ पग धारे। सहित-बधूटिन कुँअर निहारे। (१)

महाराज दशरथने अपने पुत्र और अपनी सारी सम्पदा (वशिष्ठके) आगे रखकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनसे निवेदन किया (कि जो इच्छा हो आप दक्षिणामें ले लें)। मुनिने उसमेंसे अपना नेग (पौरोहित्यकी दक्षिणा) लेकर अनेक प्रकारसे उन्हें आशीर्वाद दिया। (१) सीता और राम (-की मूर्ति) हृदयमें बसाकर मुनि वशिष्ठ हर्षपूर्वक अपने आश्रम लौट गए। फिर राजाने सब ब्राह्मणियोंको बुलवा-बुलवाकर उन्हें बढ़िया-बढ़िया वस्त्र और आभूषण मँगा पहनाए। (२) फिर उन्होंने सौभाग्यवती नारियोंको बुलवा भेजा और जिसकी जैसी रुचि देखी उसे वैसे ही पहननेके वस्त्र दे डाले। नेगी लोग (दक्षिणा और पुरस्कार प्राप्त करनेवाले) आ-आकर अपना-अपना नेग-जोग (यथायोग्य पुरस्कार) माँगने लगे। उनमेंसे जिसने जो माँगा उसे वही पुरस्कार दिया गया। (२) राजा दशरथने अपने पूज्य प्रिय पाहुनों (विवाहमें बाहरसे आए हुए संबंधी और कुटुम्बी लोगों)-का भी भली-भाँति सम्मान किया। उधर देवगण भी रामका विवाह देख-देखकर बड़े उत्साहके साथ पुष्पवर्षा करते हुए उनकी प्रशंसा करते नहीं अघा रहे थे। (४) देवता भी डंके बजाते हुए हर्षित हो-होकर अपने-अपने धाम लौटते हुए (मार्गमें) परस्पर रामके यशका वर्णन करते चले जा रहे थे। उनके हृदयमें रामके लिये अगाध प्रेम उमड़ा पड़ रहा था ॥ ३५३ ॥ सब प्रकारसे सबका आदर-सम्मान कर चुकनेपर भी राजाके हृदयमें (इतना अधिक) उत्साह उमड़ा पड़ रहा था (कि और किसको क्या दे डालें)। वे (यह सब कर चुकनेपर) रनिवासमें जा

१. चीर। २. भूप। ३. ते सब भली भाँति सनमाने।

३९२८-२९ वसिष्ठो विपुलां गृह्य दक्षिणां प्रययौ गृहम्। रामं च सीतया सार्धं हृदि न्यस्य समुत्सुकः ॥सत्यो०
३९३०-३१ अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासः स्रङ्माल्यभूषणैः। विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ॥
३९३२-३३ पुत्राणाञ्च विवाहेषु प्रीतिदानन्ददौ नृपः। —भागवत
३९३४-३६ सुरास्सर्वे प्रहृष्टाश्च ययुर्लोकस्वकं स्वकम्। —पद्मपुराण
कथयन्तो विवाहस्य मंगलानन्दनमद्भुतम्।
३९३७-३८ इत्थं प्रसाद्य भूपालो महामोदेन संयुतः। जगामान्तःपुरं यत्र महिष्यः सन्ति सस्नुषाः ॥—सत्यो०

लिये गोद करि मोद - समेता। को कहि सकै भयउ सुख जेता।
३६४० बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार - बार हिय हरषि दुलारी। (२)
देखि समाज मुदित रनिवासू। सबके उर अनंद किय बासू।
कहेउ भूप, जिमि भयउ बिवाहू। सुनि - सुनि हरष होत सब काहू। (३)
जनकराज - गुन, सील, बड़ाई। प्रीति - रीति, संपदा सुहाई।
बहु बिधि भूप भाट - जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी। (४)
दो० — सुतन - समेत नहाइ नृप, बोलि बिप्र, गुरु, ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक बिधि, घरी पंच गइ राति ॥ ३५४ ॥
मंगल - गान करहिं बर भामिनि। भइ सुख-मूल मनोहर जामिनि।
अँचै, पान सब काहू पाए। स्रग - सुगंध - भूषित छबि छाए। (१)

पहुँचे और वहाँ उन्होंने बहुओं और राजकुमारोंको देखकर (१) (पहले उन्होंने राजकुमारोंको) बड़े प्रेमसे अपनी गोदमें ले बैठाया। उस समय उन्हें जितना सुख मिल रहा था उसका वर्णन कर ही कौन सकता है ? फिर उन्होंने बड़े प्रेमसे चारों बहुओंको उठाकर गोदमें ले बिठाया और बार-बार मनमें प्रसन्न हो-होकर उनका बहुत दुलार (प्यार) किया। (२) यह दृश्य देख-देखकर सारा रनिवास इतना प्रसन्न हुआ जा रहा था कि सबके हृदयमें आनन्द लहरें मारने लगा था। इसके पश्चात् राजा दशरथने सबको विस्तारसे कह सुनाया कि किस प्रकार विवाह हुआ (और राजा जनकने स्वागत-सत्कार किया)। यह सुन-सुनकर सब बड़े गद्गद हुए जा रहे थे (३) राजा जनकके गुण, शील, बड़ाई, प्रीति, रीति और भव्य सम्पदाका महाराजने अनेक प्रकारसे इस प्रकार भाटोंके समान विस्तारसे वर्णन किया कि वह सब विवरण सब रानियाँ सुनती जा रही थीं और प्रसन्न हुई जा रही थीं। (४) सब पुत्रोंने और राजा दशरथने स्नान करके सब ब्राह्मणों और घरके बड़े-बूढ़ोंको बुलाकर उनके साथ बैठकर जब अनेक प्रकारका भोजन किया उस समय पाँच घड़ी[1] (१ घंटा २० मिनट) रात चढ़ चुकी थी ॥ ३५४ ॥ (भोजनके समय) अनेक छबीली नारियाँ मिलकर ऐसे सुन्दर मंगल गीत गाए जा रही थीं कि वह रात सचमुच बड़े सुखसे भरी हुई और मनोहारिणी रात बन गई। हाथ-मुँह धोकर सबने पानके बीड़े ले जमाए और सुगन्धित मालाएँ गलेमें डाल-डालकर, फुलेल लगा-लगाकर सब बड़े सुन्दर लगने लगे। (१)

---

१. घड़ी = २४ मिनट।

३६३६-४० आलिंग्य सुदृढं राजा नेत्राभ्यां बाष्पमुत्सृजन्। लालयतेस्म ताः प्रेम्णा तदानीं न ममौ सुखम् ॥
३६४१-४४ पाणिपीडनसद्वृत्तं शीलोदार्यं महात्मनः। जनकस्य नृपोऽवोचन् महिषीणां पुरोऽखिलम् ॥
ऋषयो राजसंघाश्च सत्कृता भूभृता यथा ॥
३६४५-४६ तदानीं भोजनञ्चक्रुर्वसिष्ठाद्यैस्तु राघवाः।
३६४७- मंगलानि प्रगायन्ति वरा नार्यस्तु भूरिशः। —सत्योपाख्यान
हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन् सुखम्। —वाल्मीकीय
३६४८-०० भुक्त्वाचम्य यथान्यायं वस्त्राण्याधाय विग्रहे।
ताम्बूलं च ददौ प्रेम्णा सर्वेभ्यो राजसत्तमः ॥ —सत्योपाख्यान

रामहिं देखि रजायसु पाई। निज-निज-भवन चले सिर नाई।
३९५० प्रेम, प्रमोद, विनोद, बड़ाई। समउ, समाज, मनोहरताई। (२)
कहि न सकहिं सत सारद, सेसू। बेद, बिरंचि, महेस, गनेसू।
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी। भूमि-नाग सिर धरै कि धरनी। (३)
नृप सब भाँति सबहिं सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाईं रानी।
बधू लरिकिनी पर-घर आईं। राखेहु नयन-पलक-की नाईं। (४)
दो०—लरिका श्रमित उनींद-बस, सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे विश्राम-गृह, राम-चरन चित लाइ॥ ३५५॥
भूप-बचन सुनि सहज सुहाए। जटित कनक-मनि पलँग डसाए।
सुभग-सुरभि-पय-फेन समाना। कोमल, कलित सुपेतीं नाना। (१)
उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग-सुगंध मनि-मंदिर माहीं।
३९६० रतन-दीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनै, जान जेहि जोवा। (२)

रामका दर्शन करके, उनसे आज्ञा लेकर तथा उन्हें सिर नवाकर सब लोग अपने-अपने घर चल दिए। वहाँ (राजा दशरथ)-के प्रेम, आनन्द, विनोद, बड़ाई, समय, समाज और मनोहरता का वर्णन (२) सैकड़ों सरस्वती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेव तथा गणेश भी नहीं कर सकते तो भला मैं (तुलसीदास उसका) किस प्रकार वर्णन कर पा सकता हूँ? क्या कहीं केँचुआ भी अपने सिरपर पृथ्वी उठाए रह सकता है? (३) राजा दशरथने सबका सब प्रकारसे सम्मान करके सबसे कोमल वचन कहकर रानियोंको बुलाकर समझाया—'देखो! बहुएँ अभी बच्ची हैं। पराए घर आई हैं। इनकी सब प्रकारसे वैसे ही देखभाल करती रहना जैसे नेत्रोंकी रक्षा पलकें किया करती हैं। (४) देखो! थके होनेके कारण राजकुमारोंको नींद आने लगी है।। इन्हें ले जा ले जाकर शयन कराओ।' ऐसा कहकर रामके चरणोंमें चित्त लगाए हुए राजा दशरथ अपने विश्राम-गृहमें (शयन करने) चले गए॥ ३५५॥

राजा दशरथकी स्वाभाविक मधुर बात सुनकर मणि जड़े हुए सोनेके पलँग ला बिछाए गए। उनपर सुन्दर गौके दूधके फेनके समान उजली और चिकनी अनेक श्वेत चादरें ला बिछाई गईं। (१) तकिये तो इतने कोमल और गुदगुदे थे कि उनकी कोमलताका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। मणियोंके कोठोंमें फूलोंकी मालाएँ और सुगन्धित द्रव्य (चन्दन, कपूर, इत्र आदि) सजा रखे गए थे। उन भवनोंमें जगमगाते हुए रत्नोंके जगमग दीपकों और चँदोवोंकी शोभाका वर्णन किया नहीं जा सकता। उसका वर्णन वही कर पा सकता है जिसने अपनी आँखोंसे उन्हें देखा

३९४९-०० ततो दृष्ट्वा च ते रामं नानारत्नविभूषितम्। प्रशंसन्तो विवाहञ्च स्वधामानि ययुस्ततः॥
३९५०-५२ प्राप्यद्वर्षपूरं हि सहस्रास्यो न वेद्म्यहम्। अलं वक्तुं न शक्नोस्ति राघवोद्वहनोद्भवम्॥ प्र० किं चातकस्तृपार्तश्च समुद्रं शोषयिष्यति॥ —आनन्दरामायण
३९५३-५४ यदि चेदपराधं हि चरेयुर्बालिका इमाः। हृदये न तु मन्तव्यं रक्षणीयाः प्रयत्नतः॥ आ०रा० पक्ष्मपंक्तिरिवादृशः। —रघुवंश
३९५५-६० यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च। पयःफेन निभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः॥ भागवत

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम - समेत पलँग पौढ़ाए।
अज्ञा पुनि - पुनि भाइन दीन्हीं। निज-निज सेज सयन तिन्ह कीन्हीं। (३)
देखि स्याम, मृदु, मंजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता।
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़का मारी। (४)
दो०—घोर निसाचर, बिकट भट, समर गनहिं नहिं काहु।
मारे सहित - सहाय किमि, खल मारीच - सुबाहु ॥ ३५६ ॥
मुनि - प्रसाद, बलि, तात ! तुम्हारी। ईस अनेक करवरै टारी।
मख - रखवारी करि दुहुँ भाई। गुरु - प्रसाद सब बिद्या पाई। (१)
मुनि - तिय तरी लगत पग - धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी।
३९७० कमठ पीठि - पबि - कूट कठोरा। नृप-समाज-महँ सिव - धनु तोरा। (२)
बिस्व - बिजय, जस, जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई।

हो। (२) सुन्दर पलँग लग जानेपर माताने रामको प्रेम-सहित पलँगपर उठा लिटाया। फिर रामने जब बार-बार अपने भाइयोंसे सोने जानेको कहा तब कहीं वे भी अपने-अपने पलँगों-पर जा-जाकर सोए। (३) रामका साँवला किन्तु कोमल और सुन्दर शरीर देख-देखकर माताएँ प्रेमपूर्वक पूछने लगीं—'कहा बेटो ! मार्गमें जाते हुए तुम उस बड़ी भयावनी ताड़काको कैसे मार पाए ? (४) जो बड़े-बड़े भयानक अत्यन्त विकट राक्षस योद्धा युद्धमें अपने आगे किसीको कुछ नहीं गिनते थे, उन दुष्ट मारीच और सुबाहुको और उनकी सेनाको तुम कैसे पछाड़ पाए ? ॥३५६॥ बेटा ! मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। मुनि (विश्वामित्र)-की कृपासे ही ईश्वरने तुम्हारे सभी अनिष्ट (कष्ट) दूर कर डाले हैं। (यह बड़ा अच्छा हुआ कि) तुम दोनों भाइयोंने (विश्वामित्रके) यज्ञ-की रखवाली करके गुरुकी कृपासे सारी विद्याएँ (बला और अतिबला) प्राप्त कर लीं। (१) तुम्हारे चरणकी धूल छू जाते ही मुनिकी पत्नी (अहल्या) तर गई (पवित्र होकर अपने पति गौतमके पास चली गई)। तुम्हारी यह कीर्ति आज सारे विश्वमें भली प्रकार फैल गई है कि कच्छप-की पीठ, वज्र, और पर्वतसे भी कठोर शिवके धनुषको राजाओंकी भरी सभामें तोड़कर (२) विश्व-भरमें तुमने विजय, यश और जानकी प्राप्त कर ली और सब भाई विवाह करके यहाँ अपने

३९६१-०० शय्यां रुचिरमारच्य रामं समुपवेशयत्।
३९६२-०० आज्ञापयामास पुनर्भ्रातॄन् संवेशहेतवे। —सत्योपाख्यान
३९६३-६४ पथि पांथजनध्वंसकारिणीं पुत्र ताटकाम्। राक्षसीमेकवाणेन जघान त्वं कथम्प्रिय ॥
३९६५-६६ मारीचञ्च सुबाहुञ्च ससहायं कथं व्यहः। —आनन्दरामायण
३९६७-०० प्रसादन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणाम्। —भागवत
३९६८-०० सर्वविद्यास्त्वयाप्याथ ह्युभौ रामलक्ष्मणौ। रक्षां कौशिकयज्ञस्य चक्रतू तौ रघुनन्दनौ ॥आ०रा०
३९६९-०० त्वत्पादपांसुसंस्पृष्टा ततार मुनिगेहिनी। कीर्तिस्ते प्रसृता लोके चतुर्दिक्षु महत्यतः ॥
३९७०-७१ राज्ञां सहस्रे सदसि धनुर्भंगस्त्वया कृतः। तेषां मानमपाकृत्य सीता चोद्वाहिता त्वया ॥ सत्यो०

सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक-कृपा सुधारे। (३)
आज सुफल जग जनम हमारा। देखि तात! बिधु-बदन तुम्हारा।
जे दिन गए तुमहिं बिनु देखे। ते बिरंचि जनि पारहिं लेखे। (४)
दो०—राम प्रतोषी मातु सब, कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु-गुरु-बिप्र-पद, किये नींदबस नैन॥ ३५७॥
नींदउ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना।
घर-घर करहिं जागरन नारी। देहिं परसपर मंगल गारी। (१)
पुरी बिराजति राजति रजनी। रानी कहहिं बिलोकहु सजनी।
३९८० सुंदरि बधुन सासु लै सोई। फनिकन जनु सिर-मनि उर गोई। (२)
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुन-चूड़ बर बोलन लागे।

घर लौट आए हो। तुम्हारे सभी कार्य ऐसे हैं जो किसी मनुष्यके किए हो नहीं सकते। ये सब काम केवल विश्वामित्रकी कृपासे ही पूरे उतर पाए हैं। (३) देखो बेटा! आज तुम्हारा चन्द्र जैसा मुख देख-देखकर हमें ऐसा लग रहा है कि हमारा संसारमें जन्म लेना सफल हो गया। भगवान् ऐसा करें कि हमारे जितने दिन तुम्हें देखे बिना बीते हैं उन (जबसे विश्वामित्र तुम्हें अपने साथ लिवा ले गए तबसे आज तकके) दिनोंकी गिनती (वे हमारी आयुमें) न जोड़ें (क्योंकि उतने दिनों-तक तुम्हारा दर्शन न होते रहनेके कारण वे दिन व्यर्थ ही बीते हैं।' (४) रामने अत्यन्त विनयके साथ मधुर बातें कह-कहकर सब माताओंको सन्तुष्ट किया (उनका मन बहलाया) और फिर शिव, गुरु और ब्राह्मणोंके चरणोंका स्मरण करके उनके नेत्रोंमें नींद भर आई (वे सो गए)॥ ३५७॥

सोते समय भी उनका मुख-मण्डल ऐसा सुहावना और सलोना जान पड़ता था, मानो सन्ध्याके समयका कुछ-कुछ संकुचित होता हुआ-सा लाल कमल सुहावना लग रहा हो। नगरकी नवेलियाँ घर-घर रतजगा कर-करके (रातभर जागकर) परस्पर मंगल गालियाँ गाती रहीं। (१) सब रानियाँ आपसमें बैठी बतकही करती रहीं—'देखो सजनी! आजकी रात कैसी भली लग रही है कि सारी अयोध्यापुरी जगमगा उठी है।' यह सब कहती हुई वे सासुएँ अपनी सुन्दर बहुओंको गोदमें सुला-सुलाकर इस प्रकार जा सोईं मानो सर्पोंने अपने सिरके मणि अपने हृदयमें (कुण्डलीमें घेरकर) छिपा ले रक्खे हों। (२) प्रातःकाल होते ही पवित्र वेला (ब्राह्ममुहूर्त[1])-में प्रभु राम उठ बैठे। मुर्गे

१. ब्राह्म-मुहूर्त=रात्रिके अन्तिम पहरका अन्तिम तीसरा भाग। [रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः। स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने।]

३९७२-०० कौशिकानुग्रहादेव चरित्रैश्चाप्यमानुषैः। —आनन्दरामायण
३९७३-७४ त्वां चन्द्रवदनं दृष्ट्वा अद्य मे सफलन्तपः।
विनम्रवचसा मातृस्तोषयामास राघवः। गुरुं गिरीशं ध्यात्वा च निद्रामुपगतो हि सः। सत्यो०
३९७५-७६ रात्रौ जागरणं चक्रुर्वरा नार्यस्तथैव च। काश्चिन्नृत्यति गायन्ति मियो गालीन्ददत्यथ॥
३९७७-७८ अयोध्येयं पुरी रम्या नानावृक्षैश्च शोभिता। प्रवृत्ता रजनी शुक्ला क्षणदा सर्वदेहिनाम्॥
३९७८-८० अरुणोदयवेलायां जहौ निद्रां च राघवः। —सत्योपाख्यान

बंदि - मागधनि गुन - गन गाए। पुर - जन, द्वार जोहारन आए। (३)
बंदि बिप्र, सुर, गुरु, पितु, माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता।
जननिन सादर बदन निहारे। भूपति - संग द्वार पग धारे। (४)
दो०—कीन्ह सौच सब सहज सुचि , सरित पुनीत नहाइ।
प्रात - क्रिया करि तात-पहँ , आए चारिउ भाइ ॥ ३५८ ॥
भूप बिलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई।
देखि राम सब सभा जुड़ानी। लोचन - लाभ - अवधि अनुमानी। (१)
पुनि बसिष्ठ मुनि, कौसिक आए। सुभग आसननि मुनि बैठाए।
३९९० सुतन - समेत पूजि पद[1] लागे। निरखि राम, दोउ गुरु अनुरागे। (२)
कहहिं बसिष्ठ धरम - इतिहासा। सुनहिं महीस सहित-रनिवासा।

भी कुकड़ूँ-कूँ कर उठे। भाट और मागध उनके गुणोंका वर्णन करने लगे और नगरके लोग द्वारपर राजाको प्रणाम करने आ जुटे[2]। (३) ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माताको वन्दना कर-करके और उनके आशीर्वाद पा-पाकर सब भाई बहुत प्रसन्न हुए। माताओंने बड़े आदरके साथ उनके मुख देखे (और बलैया लीं)। तब वे राजा के साथ-साथ बाहर (सबको दर्शन देने) निकल आए। (४) यद्यपि चारों भाई स्वभावसे ही पवित्र थे फिर भी उन्होंने सब शौच आदिसे निवृत्त होकर पवित्र सरयूमें स्नान किया और प्रातः-क्रिया (सन्ध्या-वन्दन आदि) करके वे पिता दशरथके पास चले आए ॥ ३५८ ॥ आते ही राजाने उन्हें हृदयसे लगा लिया। उनकी आज्ञा पाकर हर्षित होकर वे (उनके पास) आ बैठे। रामको देखकर सारी सभाका हृदय यह समझ-समझकर शीतल हुआ जा रहा था (संतुष्ट हो रहा था) कि हमें अपने नेत्रोंका सबसे अधिक लाभ मिल गया। (१) इतनेमें मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र भी वहाँ आ पहुँचे। आते ही राजा दशरथने उन्हें सुन्दर-सुन्दर आसनोंपर ला बैठाया। राजा दशरथने और उनके पुत्रोंने उनकी पूजा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। रामको देखते ही दोनों गुरु (वशिष्ठ और विश्वामित्र) प्रेममें मग्न हो उठे। (२) वशिष्ठ तब धर्मका इतिहास सुनाने बैठ गए जो रानियाँ और राजा दशरथ (ध्यानसे) सुनते जा रहे थे। वशिष्ठने अनेक प्रकारसे विश्वामित्रके उन अलौकिक कृत्यों

१. पग। २. प्रातःकाल राजा, देवता, माता, पिता, पृथ्वी, तीर्थ, नदी आदिको प्रणाम करना मंगलदायक माना जाता है।

३९८२ ततो जगुर्यशस्सूता मागधा वन्दिनस्तथा ॥
३९८३-८४ उत्थाय चाह्निकं कृत्वा जगाम पितुरन्तिके। नित्यं यत्राकरोत् स्नानं निर्म्मले सरयूजले ॥सत्यो०
३९८७ आलिलिंग तदा राजा पुत्रान् सर्वान् महामतिः। सभायां पितरं नत्वा तस्थुः सिंहासनोपरि ॥
३९८८-०० शतशो नागरास्तत्र रामं दृष्ट्वा मुदं ययुः ॥
३९८९-९० गुरुं पुनः प्रपूज्याथ बंधुभिः परिवेष्टितः। प्रार्थितश्च मुहुः पत्न्या ब्राह्मणैः परिवारितः ॥
३९९१ गुरोर्मुखाच्च पौराणीं कथां सुश्राव सस्त्रियः। —आनन्दरा०

मुनिमन - अगम गाधि - सुत-करनी । मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी । (३)
बोले बामदेव सब साँची । कीरति कलित लोक तिहुँ माची ।
सुनि आनंद भयउ सब काहू । राम-लखन-उर अधिक[1] उछाहू । (४)
दो०—मंगल, मोद, उछाह नित , जाहिँ दिवस यहि भाँति ।
उमगी अवध अनंद - भरि , अधिक अधिक अधिकाति ।। ३५९ ।।
सुदिन सोधि[2], कल कंकन छोरे । मंगल, मोद, बिनोद न थोरे ।
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीँ । अवध जनम जाँचहिँ बिधि-पाहीँ । (१)
बिस्वामित्र चलन नित चहहीँ । राम - सप्रेम - बिनय - बस रहहीँ ।
४००० दिन - दिन सयगुन भूपति - भाऊ । देखि सराह महा - मुनि - राऊ । (२)
माँगत बिदा राउ अनुरागे । सुतन - समेत ठाढ़ भे आगे ।
नाथ ! सकल संपदा तुम्हारी । मैं सेवक समेत - सुत - नारी । (३)

(तपस्या और तेजसे नई सृष्टिकी रचना कर डालने)-का वर्णन किया । (३) वामदेवने कहा—'सचमुच विश्वामित्रकी यह सुन्दर कीर्ति तीनों लोकोंमें व्याप्त है (इसे सब जानते हैं) ।' उनकी यह सब कथा सुनकर सब आनन्द-मग्न हो उठे । राम और लक्ष्मणके हृदयमें तो (वह सब सुनकर) बहुत ही अधिक आनन्द हुआ । (अयोध्यामें) तो नित्य ही मंगल आनन्द और उत्सव मनाए जाते रहते थे और इसी प्रकार दिनपर दिन निकलते चले जा रहे थे । आनन्दसे भरी हुई अयोध्या ऐसी उमड़ी कि उसका आनन्द दिन प्रतिदिन अधिकसे अधिक बढ़ता ही चला गया ।। ३५९ ।। शुभ दिन देखकर (शुभ मूहूर्त आनेपर वरों और बहुओंके हाथोंमें बँधे हुए) सुन्दर कंकण खोल डाले गए । चारों ओर बहुत अधिक मंगल, आनन्द और विनोद छाया रहने लगा । वहाँ नित्य नये-नये उत्सव देखकर देवता तरसे जा रहे थे और विधातासे यही याचना किए जा रहे थे कि किसी प्रकार अयोध्यापुरीमें ही हमारा जन्म हो जाय । (१)

उधर विश्वामित्र भी नित्य चलनेकी सोचते तो थे, पर रामके प्रेम और विनयके कारण बार-बार रुक जाते थे । दिन प्रतिदिन राजा दशरथका यह सौगुना (नित्य बढ़ता हुआ) प्रेमका भाव देख-देखकर महामुनि (विश्वामित्र) उनकी निरन्तर सराहना किए जाते थे । (२) जब विश्वामित्र अन्तमें विदा माँग ही बैठे तब राजा दशरथ इतने प्रेममें मग्न हो गए कि वे अपने पुत्रोंको लेकर उनके आगे जा खड़े हुए और बोले—'नाथ ! यह सारी सम्पदा आपकी ही है । मैं, मेरी स्त्री और पुत्र सब आपके सेवक हैं । (३) हे मुनि ! आपसे यही निवेदन है कि इन

१. अतिहि । २. साधि ।

३९९२-९३ गाधेयचरितं दिव्यं वसिष्ठो विस्तरादवात् । वामदेवोऽनुमुमुदे सत्यं सत्यं वदन् मुनिः ।
३९९४ सर्वे मुमुदिरे रामलक्ष्मणावधिकन्तदा ।
३९९७ शुभे मुहूर्ते शुभकंकणं च विमोचयामास तदा विधिज्ञः ।।
३९९९-०१ गाधिपुत्रस्तदा भूपमनुज्ञां याचतेस्म तम् । उदस्थात् प्रणतो राजा पत्नीपुत्रसमन्वितः ।।आ०रा०

करब सदा लरिकन-पर छोहू। दरसन देत रहब मुनि मोहूँ।
अस कहि राउ सहित-सुत-रानी। परेउ चरन, मुख आव न बानी। (४)
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले, न प्रीति-रीति कहि जाती।
राम सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई। (५)
दो०—राम-रूप, भूपति-भगति, ब्याह-उछाह, अनंद।
जात सराहत मनहिं मन, मुदित गाधि-कुल-चंद ॥ ३६० ॥
बामदेव रघुकुल-गुरु ज्ञानी। बहुरि गाधि-सुत कथा बखानी।
४०१० सुनि मुनि सुजस मनहिं मन राऊ। बरनत आपन पुन्य-प्रभाऊ। (१)
बहुरे लोग, रजायसु भयऊ। सुतन-समेत नृपति गृह गयऊ।
जहँ-तहँ राम-ब्याह सब गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा। (२)
आए ब्याह राम घर जब-तें। बसै अनंद अवध सब तब-तें।
प्रभु-बिबाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा, अहि-नाहू। (३)

बालकोंपर सदा अपना स्नेह बनाए रखिएगा और मुझे भी समय-समयपर दर्शन देते रहिएगा।' यह कहकर राजा दशरथ, उनकी रानियाँ और उनके चारों पुत्र सब मुनिके चरणोंपर जा गिरे। (वे इतने प्रेममें भरे हुए थे कि उनके जानेके समयकी चिन्ताके मारे) उनके मुखसे कुछ वचन निकल पा रहे नहीं थे। (४) तब ब्राह्मण (विश्वामित्र)-ने उन्हें अनेक प्रकारसे आशीर्वाद दिया और वे अपने आश्रमके लिए चल दिए। उस समय उन्होंने जिस प्रकार प्रेम प्रदर्शित किया उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सब भाइयोंको साथ लेकर राम प्रेमके साथ उन्हें नगरके बाहर तक पहुँचाकर और उनकी आज्ञा पाकर लौट आए। (५) गाधिकुलके चन्द्रमा विश्वामित्र अपने आश्रमकी ओर जाते हुए बड़े हर्षके साथ रामके रूप, राजा दशरथकी भक्ति तथा सब भाइयोंके विवाह, उत्सव और समारोहके आनन्द आदिकी मन ही मन सराहना करते चले जा रहे थे ॥ ३६० ॥ वामदेव और रघुकुलके ज्ञानी गुरु वशिष्ठने विश्वामित्रकी सारी कथा फिर सबको दुहरा सुनाई। मुनि विश्वामित्रका यह धवल यश सुनकर राजा दशरथ मन ही मनमें कहते जा रहे थे कि यह हमारे पुण्योंका प्रभाव है (कि विश्वामित्रके दर्शन हुए और उनकी कृपासे सभी राजकुमारोंका विवाह हो गया)। [१] (राजा दशरथकी आज्ञा लेकर सब लोग अपने-अपने घर लौट गए। राजा दशरथ भी पुत्रोंको साथ लिए हुए राजभवनमें जा पहुँचे। जहाँ देखो वहीं सब रामके विवाहकी ही चर्चा किए जा रहे थे कि रामके विवाहका पवित्र सुयश तीनों लोकोंमें जा छाया है। (२) जबसे विवाह करके राम घर (अयोध्या)आए तभीसे अयोध्यामें नित्य अनेक प्रकारका नया-नया आनन्द आ-आकर बरसने लगा। (नित्य नया आनन्दमय उत्सव होता दिखाई देने लगा)। सचमुच प्रभु रामके विवाहमें जो आनन्द और उत्सव हुआ था उसे सरस्वती और शेष भी नहीं कह पा सकते। (३)

४००५ आशिषं प्रददौ राज्ञे प्रणताय महामुनिः।
४०१२ जनाश्च कथयामासुर्विवाहानन्दमद्भुतम्।
४०१३-१४ इत्येवं कथितस्तात रामोद्वाहं सुमंगलः। शोकघ्नो हर्षजनक आयुष्यधनवर्धनः ॥आ०रा०

कवि - कुल - जीवन - पावन जानी। राम - सीय - जस मंगल-खानी।
तेहि - तें मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी। (४)
छंद—निज गिरा-पावनि-करन-कारन राम-जस तुलसी कह्यो।
रघुबीर-चरित अपार बारिधि, पार कबि कौने लह्यो॥
उपवीत-ब्याह-उछाह-मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
४०२० वैदेहि - राम - प्रसाद - तें जन सर्बदा सुख पावहीं॥ [६१]
सो०—सिय - रघुबीर - बिवाह, जे सप्रेम गावहिं, सुनहिं।
४०२२ तिन्ह कहँ सदा उछाह, मंगलायतन राम - जस॥ ३६१॥

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
प्रथमः सोपानः समाप्तः॥

यह जानकर कि सीता और रामका यश कवियोंका जीवन पवित्र करता है और सब प्रकारके मङ्गल ही मङ्गलसे भरा हुआ है, इसलिये मैंने भी अपनी वाणी पवित्र करनेके निमित्त उसका कुछ थोड़ा-सा ही वर्णन कर दिया है। (४) अपनी वाणी पवित्र-करनेके लिये ही तुलसीदासने रामके यशका वर्णन किया है अन्यथा रामका चरित्र तो इतना अपार समुद्र है कि उसका पार कौन कवि पा सका है ? जो लोग (रामके) यज्ञोपवीत और विवाहके मंगलमय उत्सवका वर्णन आदरके साथ सुनेंगे और वर्णन करेंगे, वे लोग राम और जानकीकी कृपासे सदा सुख ही सुख पाते रहेंगे। [६१] रामके विवाहकी कथा जो प्रेमके साथ कहें या सुनेंगे उन्हें रामका मंगलमय यश सदा आनन्द और उल्लास देता रहेगा॥ ३६१॥

४०१५-०० शृणुयाद् वा शुचिर्भूत्वा श्रीरामचरितं शुभम्। सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि सत्यं सत्यं न संशयः॥

॥ कलियुगके सारे दोष नष्ट करनेवाले श्रीरामचरित-मानसका प्रथम सोपान
(बालकाण्ड) समाप्त हुआ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

•

द्वितीय सोपान

(अयोध्याकांड)

•

[श्लोकाः]

१ यस्याङ्के[1] च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥ १ ॥
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले[2] वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा[3] ॥ २ ॥

जिनकी गोदमें पर्वतराजकी पुत्री पार्वती, मस्तकपर गंगा, ललाटपर बाल (द्वितीयाका)-चन्द्रमा, कण्ठमें हलाहल (विष) और छातीपर सर्पराज वासुकि सुशोभित हैं, वे (देहपर पुती हुई चिताकी) भस्मसे सजे हुए, देवताओंमें श्रेष्ठ, सबके स्वामी, सबका संहार करनेवाले, घट-घटमें व्यापक, कल्याणमय रूपवाले और चन्द्रमाके समान (शीतल, सुहावने) प्रकाशसे भरे शंकर सदा मेरी रक्षा करते रहें ॥ १ ॥

रघुकुलको आनन्द देनेवाले रामके कमल-जैसे मुखकी वह ज्योति (दमक) सदा मेरा मंगल करती रहे जो राज्याभिषेककी बात सुनकर न तो प्रसन्न हुई (अधिक खिली, चमकी) और न वनवासकी बात सुनकर धुँधली पड़ी (जो राम न तो राज्याभिषेकका समाचार सुनकर प्रसन्न हुए न वनवासका समाचार सुनकर उदास हुए) उन रामके मुखका तेज सदा मेरा मंगल करता रहे ॥ २ ॥

---

१. वामाङ्के । २. मम्लौ ।
३. प्रसन्नतां यो न गतोऽभिषेकस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजः श्रीरघुनन्दस्य सदाऽस्तु मे मंजुलमङ्गलप्रदः ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।। ३ ।।

दो०—श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज मन-मुकुर सुधारि ।
१० बरनौं रघुबर-बिमल-जस, जो दायक फल चारि ।। क ।।

जब-तें राम ब्याहि घर आये । नित नव मंगल-मोद बधाये ।
भुवन चारि-दस भूधर भारी । सुकृत-मेघ बरषहिं सुख-बारी । (१)
रिधि-सिधि-संपति नदी सुहाई । उमगि अवध-अंबुधि-कहँ आई ।
मनि-गन पुर-नर-नारि-सुजाती । सुचि, अमोल, सुंदर सब भाँती । (२)

जिनके अंग-अंग नीले कमलके समान साँवले और कोमल हैं, जिनकी बाईं ओर सीता विराजमान हैं और जो अपने दोनों हाथोंमें-से एकमें बड़ा-सा बाण और दूसरेमें बड़ा-सा चमचमाता धनुष लिए हुए हैं ऐसे रघुवंशके स्वामी रामको मैं प्रणाम करता हूँ ।। ३ ।।

श्रीगुरुके चरण-कमलोंकी धूलसे अपने मनका दर्पण स्वच्छ करके मैं उन रघुवरों (दशरथ, राम, भरत और लक्ष्मण)-की विमल कीर्त्तिका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका वर्णन पढ़ने-सुननेसे चारों फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सरलतासे) प्राप्त हो जाते हैं ।। क ।।

जबसे राम अपना व्याह करके घर आए, तबसे (अयोध्यामें) नित्य नये-नये मंगल होते रहते थे और घर-घर आनन्दके बधावे बजते रहते थे । चौदहों भुवन ही बड़े-बड़े पर्वत थे जिनपर पुण्यके मेघ सुखके जलकी धुआँधार वर्षा किए जा रहे थे (चौदहों भुवनोंमें सुख ही सुख छा गया था) । (१) (उस सुखकी वर्षासे) ऋद्धि[1], सिद्धि[2] और सम्पत्तिकी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्याके समुद्रमें आ-आकर समाती जा रही थीं (अयोध्यामें संसार-भरकी समस्त सम्पत्ति आ इकट्ठी हुई) । (समुद्रमें मोती आदि रत्न भी होने चाहिएँ तो) अयोध्या-रूपी समुद्रमें अच्छी जातियोंके नगरके नर-नारी ही सब प्रकारके पवित्र, अनमोल और सुन्दर मोती थे । (२) (ऐसे समुद्रके समान) नगरका वैभव इतना अधिक

१. ऋद्धि : सम्पत्ति, सम्पन्नता । २. सिद्धि : अणिमा (सूक्ष्म हो जाना); महिमा (बहुत विशाल हो जाना; गरिमा (भारी हो जाना); लघिमा (हलका हो जाना); प्राप्ति (जो चाहे वह प्राप्त कर सकना); प्राकाम्य (किसी बातकी कमी न रहना); ईशित्व (सबपर शासन करना); वशित्व (सबको वशमें कर रखना); ये आठ सिद्धियाँ हैं । किन्तु यहाँ सिद्धि = अभ्युदय; उन्नति । ३. इस श्लोकके पहले चरणमें रामके बाल-रूपकी, दूसरेमें विवाहित रामकी, तीसरेमें वनवासी रामकी तथा चौथेमें राजा रामकी वन्दना की गई है ।

९-१० नत्वा गुरोरंघ्रिसरोजरेणुं रामायणं वांछितदं करोमि ।
प्रेम्णा श्रुतं यन्निखिलामरेशास्पदं प्रयच्छत्यपि पण्डितेभ्यः ।। —आनन्दरामायण

११ कृतदारो महातेजा रामः कमललोचनः । मातापित्रोर्जनानां च प्रीतिमुत्पादयन्पराम् ।।
अयोध्यायां स्थितो रामः सर्वभोगसमन्वितः । —नृसिंहपुराण

१२-१४ पर्वतश्रेणयो राजन् भुवनानि चतुर्दश । तेषु चोत्तमकर्माणि मेघा भूत्वा स्थले स्थले ।।
पूर्णानन्दपयोवृष्टिं कुर्वन्ति वसुधातले । ऋद्धयः सिद्धयश्चापि समस्तसुखसम्पदः ।।
नद्यो भूत्वा त्वयोध्याब्धिं मिलन्त्यवधवासिनः । नरा नार्यश्च सम्पूर्णाः सदा सुकृतकारिणः ।।
बहुमूल्यानि रत्नानि पवित्राणि पराणि च । —आनन्दरामायण

कहि न जाइ कछु नगर - बिभूती। जनु ऐतनिय बिरंचि[1]-करतूती।
सब बिधि सब पुर - लोग सुखारी। रामचंद - मुख - चंद निहारी। (३)
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित[2] बिलोकि मनोरथ-बेली।
राम - रूप - गुन - सील - सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि - सुनि राऊ। (४)
दो०—सबके उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेस।
२० आपु अछत जुवराज - पद, रामहिं देउ नरेस॥ १॥
एक समय सब सहित - समाजा। राज - सभा रघु-राज बिराजा।
सकल - सुकृत - मूरति नर - नाहू। राम-सुजस सुनि अतिहि उछाहू[3]। (१)
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। लोकप करहिं प्रीति - रुख राखे।
तिभुवन तीनि काल जग - माहीं। भूरि भाग दसरथ - सम नाहीं। (२)

विशाल था कि कुछ कहते नहीं बन रहा है। ऐसा लगता है मानो ब्रह्माकी जितनी कारीगरी थी वह सब उन्होंने यहीं ला लगाई थी। (जैसे चन्द्रमाको देखकर समुद्र लहरें उछाल-उछालकर अपना हर्ष प्रकट करता है वैसे ही) रामका चन्द्र-जैसा मुख देख-देखकर नगरके सब लोग सब प्रकारसे हर्षसे उछले पड़ते थे। (३) सब माताएँ और सब सखी-सहेलियाँ अपनी मनोकामनाकी लता फूली-फली देखकर (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और उनकी बहुओंको स्वस्थ, प्रसन्न और सुखी देख-देखकर) मगन हुई रहती थीं। राजा दशरथ भी रामका रूप, गुण, शील और स्वभाव देखकर और दूसरोंके मुँहसे सुन-सुनकर फूले नहीं समाते थे। (४) सबके हृदयमें अब यही एक अभिलाषा बनी हुई थी और सब महादेवसे यही मनाए जा रहे थे कि बस जैसे बने वैसे राजा अपनी आँखोंके आगे रामको युवराज बना डालें॥ १॥

एक दिनकी बात है। राजा दशरथ अपने दरबारियोंके साथ राजसभामें बैठे हुए थे और वहाँ सारे पुण्योंकी मूर्त्ति राजा दशरथ लोगोंके मुँहसे अपने पुत्र रामकी बहुत बड़ाई सुन-सुनकर बड़े मगन हुए पड़ रहे थे। (१) वहाँ जितने राजा आए हुए थे सबके मनमें यही अभिलाषा बनी रहती थी कि हमपर महाराज दशरथकी सदा कृपा बनी रहे। वे ही नहीं, सारे लोकपाल (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, शिव, ब्रह्मा और शेष) भी उनका प्रेम प्राप्त करनेका प्रयत्न करते रहते थे (सब देवता उनकी इच्छाएँ पूरी करते रहते थे)। इसलिये तीनों लोकों (आकाश, पृथ्वी और पाताल)-में और तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्यत्)-में

१. बिरंचि एतनिय। २. फुलित। ३. कुछ प्रतियोंमें यह अर्द्धाली नहीं है।

---

१५ अयोध्यानगरैश्वर्यं वर्णनातीतमस्ति को। दृष्ट्वानुमीयते धीरैश्चैतावत् स्रष्टुकौशलम्॥
१६ सर्वथा सुखिनश्चासन्नयोध्यावासिनो जनाः। वीरस्य रामचन्द्रस्य दृष्ट्वाननकलानिधिम्॥
१७ आलोक्य मुदिताः सर्वा मातरः फलितां लताम्। स्ववांछारूपिणीं राजन् सर्वाश्चापि सखीगणाः॥ प्रा०
१८ एतैस्तु बहुभिर्युक्तं गुणैरनुपमैः सुतम्। दृष्ट्वा दशरथो राजा मुनिश्च मुदितोऽभवत्॥ वा०
१९-२० सर्वेषां हृदये ह्यासीदेष एव मनोरथः। स्वजीवने सुदयया तव शङ्कर बुद्धिमान्॥
युवराजपदं राजा रामचन्द्राय यच्छतु। —अगस्त्यरामायण
२१ एकदा राजगोष्ठ्यां तु ससभ्यः संस्थितो नृपः॥
२२ पुण्यमूर्तिर्नरेन्द्रोऽसौ श्रुत्वा रामयशोऽमलम्। जनेभ्यः परमानन्दं प्राप धीमान् महायशाः॥
२३ यस्य राज्ञः कृपादृष्टिं वांछन्तिस्म नरेश्वराः। लोकपालाश्च यत्प्रेम वांछन्तिस्म दिवानिशम्॥ व०रा०

मंगल - मूल राम सुत जासू । जो कछु कहिय थोर सब तासू ।
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हाँ । बदन बिलोकि, मुकुट सम कीन्हाँ । (३)
स्रवन - समीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपन अस उपदेसा ।
नृप ! युवराज राम - कहँ देहू । जीवन-जनम-लाहु किन लेहू । (४)
दो०—यह बिचार उर आनि नृप , सु-दिन सु-अवसर पाइ ।
३० प्रेम पुलकि तन मुदित मन , गुरुहि सुनायउ जाइ ॥ २ ॥
कहइ भुआल, सुनिय मुनिनायक । भये राम सब बिधि सब लायक ।
सेवक, सचिव, सकल पुरवासी । जे हमार अरि, मित्र, उदासी । (१)
सबहि राम प्रिय, जेहि बिधि मोहीं । प्रभु-असीस जनु, तनु धरि सोहीं ।
बिप्र, सहित - परिवार गोसाईं । करहिं छोह सब, रउरेहि नाईं । (२)
जे गुरु - चरन - रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।
मोहि सम यह अनुभयउ न दूजे । सब पायउँ रज पावन पूजे । (३)

उस समय राजा दशरथके समान भाग्यशाली दूसरा कोई था ही नहीं । (२) सब मंगलके मूल (मंगल फल देनेवाले) राम ही जिनके पुत्र हों, उनके लिये जो कुछ कहा जाय, सब थोड़ा है ।

(एक दिन) राजा दशरथ स्वाभाविक ढंगसे हाथमें दर्पण लेकर ज्यों ही अपना मुँह देखकर मुकुट सीधा करने लगे (३) (त्यों ही देखते क्या हैं कि) कनपटीके कुछ बाल धौले हो चले हैं, मानो (उन बालोंके रूपमें) बुढ़ापा यह उपदेश दे रहा हो—'राजन् ! (अब देख क्या रहे हो ?) रामको युवराज बनाकर अपना जीवन और जन्म क्यों नहीं सफल कर डालते ?' (४) हृदयमें यह विचार आते ही (रामको युवराज बनानेका निश्चय करते ही) राजा दशरथने एक दिन शुभ घड़ी और अच्छे मुहूर्तमें प्रेमसे पुलकित और मनमें आनन्दित होकर अपना यह विचार गुरु वशिष्ठको जा सुनाया (२) और साथ ही उनसे (यह भी) कहा—'मुनिराज ! राम अब सब प्रकार सब राज-कार्य करने-योग्य हो गए हैं । सेवक, मंत्री, सभी पुरवासी, हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन (जो न शत्रु हैं न मित्र) (१) सभीको राम उतने ही प्यारे हैं जितने मुझे हैं, मानो आपका आशीर्वाद ही (रामका) शरीर धारण करके शोभा देने लगा हो । स्वामी ! सभी ब्राह्मण और उनके परिवारवाले उनसे वैसा ही स्नेह करते हैं जैसा आप करते हैं । (२) जो लोग गुरुके चरणोंकी रज माथे चढ़ाते हैं, वे मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्य अपनी मुट्ठीमें किए रखते हैं । इसका जैसा अनुभव मुझे हुआ है वैसा किसी दूसरेको नहीं हो पाया । आपके पवित्र चरण-रजकी पूजा करनेसे (चरण-रज सदा सिर-माथे चढ़ाए रखनेसे) मुझे तो जो कुछ पाना था मैंने सब पा लिया । (३)

२४-२५ त्रिलोक्यां त्रिकाले दशस्यन्दनेन समो नैव राजाऽस्ति नाऽभून् न भावी ।
सुतो यस्य सन्मंगलानां हि मूलं स्वयं रामचन्द्रो ह्यतश्चाधिकं किम् ॥
२६ गृहीत्वा दर्पणं श्रीमान् स्वभावादेव सत्करे । विलोक्य चाननं राजा किरीटं कृतवान् समम्॥व०रा०
२७-२८ तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति । कैकेयीशंकयेवाह पलितच्छद्मना जरा ॥ –रघुवंश
२९-३० राजा स्वान्तोत्थितान् कस्मिन् विचारान् सुदिनेऽखिलान् ।
श्रीगुरोरन्तिकं गत्वा श्रावयामास तं मुदा ॥ –वशिष्ठरामायण
३१-३४ भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः । पौराश्च नैगमा वृद्धा मंत्रिणश्च विशेषतः ॥ अध्या०
३५-३६ ये धारयन्ति गुरुपादरजः स्वशीर्षे ते कौ विभूतिमखिलां वशयन्ति नूनम् ।
नो मादृशो भुवि बभूव नृपस्तु कश्चिद् यः प्राप्तवान् बहुसुखं भवतोऽर्हणाद् वै ॥ –वशिष्ठरामायण

अब अभिलाष एक मन मोरे । पूजिहि नाथ ! अनुग्रह तोरे ।
मुनि प्रसन्न, लखि सहज सनेहू । कहेउ, नरेस ! रजायसु देहू । (४)
दो०—राजन ! राउर नाम, जस , सब अभिमत - दातार ।
४० फल-अनुगामी महिप-मनि , मन - अभिलाष तुम्हार ।। ३ ।।
सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी । बोलेउ राउ रहसि, मृदु बानी ।
नाथ ! राम करियहि जुवराजू । कहिय कृपा करि, करिय समाजू । (१)
मोहि अछत यह होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन - लाहू ।
प्रभु - प्रसाद, सिव सबइ निबाही । यह लालसा एक मन माँही । (२)
पुनि न सोच, तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछे पछिताऊ ।
सुनि मुनि दसरथ - बचन सुहाए । मंगल - मोद - मूल मन भाए । (३)
सुनु नृप ! जासु बिमुख पछिताहीं । जासु भजन-बिनु जरनि न जाहीं ।
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । राम पुनीत - प्रेम - अनुगामी । (४)

अब मेरे मनमें बस एक ही लालसा बच रही है, वह भी आपकी कृपा हो जायगी तो पूरी होकर ही रहेगी ।' राजाका सहज स्नेह देखकर मुनि वशिष्ठने प्रसन्न होकर उनसे पूछा—'बताइए नरेश !' (आपको क्या लालसा है ?) (४) देखिए ! आपके नाम और यशका ही इतना अधिक प्रताप है कि आप जो भी कुछ चाहें वह आपको मिल जाय । देखिए राजाओंके शिरोमणि ! आपके मनकी अभिलाषा तो उसके फलके पीछे-पीछे चलती है (आपके मनमें कोई इच्छा उत्पन्न होनेसे पहले ही उसका फल मिल जाता है, वह इच्छा पूरी हो जाती है)' ।। ३ ।। जब राजाने अपने मनमें समझ लिया कि गुरु सब प्रकारसे प्रसन्न हैं तो वे हर्षित होकर नम्र भावसे बोले—'नाथ ! (अभिलाषा यही है कि) रामको युवराज बना दिया जाय (आप उन्हें युवराज बना दीजिए) । यदि आप कृपा करके आज्ञा दे दें तो उसकी सारी तैयारी कर ली जाय । (१) मेरे रहते-रहते यह उत्सव भी हो जाय तो सब लोग अपने नेत्र सफल कर लें (अपनी आँखोंसे इस उत्सवका भी आनन्द ले लें) । आपके आशीर्वादसे शिवने और सब काम तो बना दिए, बस एक यही लालसा मनमें बची रह गई है । (२) (यह भी हो जाय तो) फिर कोई चिन्ता नहीं, चाहे यह शरीर रहे या न रहे, जिससे पीछे फिर पछतावा न रह जाय (कि हाय ! रामको युवराज नहीं बना पाए) ।' दशरथके ये आनन्द और मंगलके मूल (आनन्द देनेवाले और मंगलकारी) मन-भावने वचन मुनिको बड़े अच्छे लगे (३) (और मुनि बोले—) 'सुनिए राजन् ! पछतावा तो वे करते हैं जो रामके विमुख (विरोधी) होते हैं । जिसका भजन किए बिना मनका ताप नहीं मिट पाता वही स्वामी राम तो आपके पुत्र होकर आए हैं क्योंकि वे तो सदा पवित्र प्रेमके ही पीछे-पीछे दौड़ते रहते हैं (जहाँ सच्चा

---

३७ एषा ह्यस्य परा प्रीतिर्हृदि संपरिवर्तते । कदा नाम सुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमहं प्रियम् ।। वा०
३८ राजानं मुदितं वीक्ष्य तत्प्रेम सहजं तथा । वशिष्ठो मधुरं प्राह स्वाशयं वद भूपते ।। व० रा०
४० लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते । ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।। उ० रा० च०
४२-४३ अथ राज्ञो बभूवैव वृद्धस्य चिरजीविनः । प्रीतिरेषा कथं रामो राजा स्यान्मयि जीवति ।।
४४-४५ देवर्षिपितृविप्राणामनृणोऽस्मि तथाऽऽत्मनः । न किंचिन् मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात् ।। वा०
४६ नरेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा मंगलानन्ददं मुनिः । प्रहसन् प्राह राजेन्द्रं सत्यं सुखकरं वचः ।। व० रा०
४७-४८ पश्चात्तापं प्रकुर्वन्ति सदा यस्य विरोधिनः । विना यत्स्मरणं चिन्ता दूरीभवति नो नृप ।।
स एव व्यापकः श्रीशो जातस्त्वत्तनयो हरिः । साक्षाद् राघवरूपेण पवित्रप्रेमसागरः ।। वाल्मी०

दो०—बेगि, बिलंब न करिय नृप, साजिय सबइ समाज।
५० सुदिन सुमंगल तबहिं, जब, राम होहिं जुबराज॥ ४॥
मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक, सचिव, सुमंत्र बोलाए।
कहि जय जीव, सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए। (१)
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू। रामहिं राय! देहु जुबराजू।
जौं पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय, रामहिं टीका। (२)
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी।
बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जियहु जगत-पति बरिस करोरी। (३)
जग - मंगल, भल काज बिचारा। बेगिय नाथ! न लाइय बारा।
नृपहिं मोद, सुनि सचिव - सुभाखा। बढ़त बौंड़, जनु लही सुसाखा। (४)
दो०—कहेउ भूप, मुनिराज - कर, जोइ जोइ आयसु होइ।
६० राम - राज - अभिषेक - हित, बेगि करहु सोइ सोइ॥ ५॥

प्रेम देखते हैं वही पहुँच जाते हैं, उन्हींके हो रहते हैं)। (४) इसलिये राजन्! आप शीघ्रता कीजिए। देर न कीजिए और सारी व्यवस्था करा डालिए। (जहांतक शुभ दिनकी बात है,) शुभ दिन और सुमंगल घड़ी वही है जब राम युवराज बना दिए जायँ'॥ ४॥ (यह सुनकर) राजा मनमें बहुत प्रसन्न होकर राजभवन लौट आए। आते ही उन्होंने सेवकोंको, मन्त्रियोंको तथा सुमन्त्रको बुलवा भेजा। उन लोगोंने 'जय जीव!' कहकर राजाके आगे सिर झुकाकर आ प्रणाम किया। राजाने उन्हें यह सारा मंगलमय समाचार कह सुनाया (१) और कहा—'यदि पंचोंको यह बात अच्छी जँचे तो प्रसन्न मनसे रामका राजतिलक कर दिया जाय।' (२) राजा दशरथकी यह मन-भावनी बात सुनकर मन्त्री ऐसे प्रसन्न हो उठे मानो उनके मनकी अभिलाषाके पौधेपर पानी बरस गया हो (उनकी मनोकामना हरी-भरी उठी हो, पूरी हो गई हो)। मन्त्रियोंने हाथ जोड़कर राजाकी सराहना करते हुए कहा—'जगत्पति! आप करोड़ों वर्ष जीएँ। (३) आपने यह जगत्का कल्याण करनेवाला जो शुभ कार्य करनेका विचार किया है इसे झटपट कर डालिए, देर न कीजिए।' मन्त्रियोंकी यह मनचाही सम्मति सुनकर राजा (दशरथ) ऐसे आनन्दित हुए मानो ऊपर चढ़ती हुई लताको किसी अच्छी (पक्की) डाली का सहारा मिल गया हो। (४) राजाने उनसे कहा—'देखो! जाकर मुनिराज वशिष्ठसे पूछ देखो। वे जो-जो आज्ञा देते चलें (जैसा-जैसा बताते चलें) वह सब व्यवस्था आप लोग रामके राज्याभिषेकके लिये करते चलिए'॥ ५॥ (उन सेवकोंने छूटते ही गुरु वशिष्ठसे जा

४९-५० तथेति च स राजानमुक्तवान् सर्वविन्मुनिः। —वाल्मीकीय रामायण

५२ सुमंत्रः शनकैः प्रायाद् यत्र राजाऽवतिष्ठति। वर्धयन् जयशब्देन प्रणमच्छिरसा नृपम्॥ —अ०

५३-५४ यदिदं मेऽनुरूपार्थं मया साधु सुमंत्रितम्। भवंतो मेऽनुमन्यन्तां कथं वा करवाण्यहम्॥

५५-५६ इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन् जना नृपम्। वृष्टिमन्तं महामेघं नदंन्त इव बर्हिणः॥—वा०

५७ तं देवदेवोपममात्मजं ते सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम्।
हिताय नः क्षिप्रमुदारजुष्टं मुदाभिषेक्तुं वरद त्वमर्हसि॥

५८ अहोऽस्मि परमप्रीतः प्रभावश्चातुलो मम। यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ॥वा०रा०

५९-६० रामाभिषेकद्रव्याणि मुनिप्रोक्तानि यानि वै। तानि भृत्याः समाहृत्य शीघ्रमानेतुमर्हथ॥—नृ०पु०

हरषि, मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ-पानी।
औषध, मूल, फूल, फल, पाना। कहे नाम गनि, मंगल नाना। (१)
चामर, चरम, बसन बहु भाँती। रोम-पाट-पट अगनित जाती।
मनिगन, मंगल वस्तु अनेका। जो जग जोग भूप-अभिषेका। (२)
वेद-बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ, रचहु पुर बिबिध बिताना।
सफल रसाल, पूँगफल, केरा। रोपहु बीथिन्ह, पुर चहुँ फेरा। (३)
रचहु मंजु, मनि-चौकइँ चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू।
पूजहु गनपति, गुरु, कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमि-सुर-सेवा। (४)

दो०—ध्वज, पताक, तोरन, कलस, सजहु तुरग, रथ, नाग।
७० सिर धरि मुनिवर-वचन सब, निज-निज काजहिं लाग॥ ६॥

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हीं। सो तेहि काज प्रथम जनु कीन्हीं।

पूछा तो) हर्षित होकर मुनि वशिष्ठने बड़े प्रेमसे समझाकर बताया—'जाओ, पहले सब श्रेष्ठ तीर्थोंका जल एकत्र कर ले आओ।' यह कहकर उन्होंने अनेक प्रकारके औषध, मूल, फूल, फल, पान आदि अनेक मांगलिक पदार्थोंके नाम गिनवा-गिनवाकर मँगवानेका आदेश दे दिया। (१) फिर उन्होंने राजाके राज्याभिषेकके योग्य चँवर, व्याघ्र-चर्म, अनेक प्रकारके ऊनी, रेशमी और सूती वस्त्र, मणि तथा अन्य सब जो मंगल द्रव्य आवश्यक होते हैं उन्हें मँगा रखनेका आदेश दिया (क्योंकि युवराजके अभिषेकमें भी वे ही वस्तुएँ काम आती हैं जो राजाके राज्याभिषेकमें आती हैं)। (२) तब उन्होंने सब वैदिक विधान बतलाकर कहा कि नगरमें स्थान-स्थानपर बहुतसे मण्डप तैयार करा डालो, गलियोंमें और नगरके चारों ओर फल लगे हुए आम, सुपारी, केले आदिके पेड़ मँगवा लगवाओ, (३) मनोहर मणियोंसे सुन्दर चौक पुरवा डालो और अभी जाकर सबसे कह दो कि लोग अपने-अपने हाट सजा डालें। यह सब करके जाकर गणेश, गुरु और कुल-देवताकी पूजा करो और सब प्रकारसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करो। (४) राजभवनमें और घर-घर ध्वजा, पताका और बन्दनवार जा टँगवाओ और (जलसे भरे हुए धातुके) कलश (घर-घरके आगे जा रखवाओ)। घोड़े, हाथी और रथ भी ठाट-बाटके साथ सजवा डालो।' मुनिराज वशिष्ठकी आज्ञा पाते ही (जिसे-जिसे जो-जो काम करना था) सब अपने-अपने काममें जुट गए॥ ६॥ मुनि वशिष्ठने जिसे जो काम करनेकी आज्ञा दी थी उसने वह काम इतनी फुर्तीसे कर डाला मानो उसने वह काम पहलेसे

---

६१ मुनीशः प्राह सन्तुष्टः सुन्दरं मधुरं वचः। प्रसिद्धाखिलतीर्थानां जलमानीयतां द्रुतम्॥ वा०रा०

६२-६४ दिव्यमाल्यानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च। सुवर्णादीनि रत्नानि बलीन् सर्वौषधीरपि॥
यच्चान्यत् किंचिदेष्टव्यं तत्सर्वमुपकल्प्यताम्। चामरव्यजने चोभे व्याघ्रचर्माणि चानय॥ अध्यात्म०

६५-६६ अन्तःपुरस्य द्वाराणि सर्वस्य नगरस्य च। चन्दनस्रग्भिरर्च्यन्तां धूपैश्च घ्राणहारिभिः॥

६७-६८ ब्राह्मणाश्च निमंत्र्यंतां कल्प्यन्तामासनानि च। आवध्यन्तां पताकाश्च राजमार्गश्च सिच्यताम्॥ वा.रा.

६९-७० उच्छ्रीयन्तां पताकाश्च नानावर्णाः समंततः। तोरणानि विचित्राणि स्वर्णमुक्तामयानि वै॥
हस्त्यश्वरथपादाता बहिस्तिष्ठन्तु सायुधाः। नगरे यानि तिष्ठन्ति देवतायतनानि च॥
तेषु प्रवर्ततां पूजा नानाबलिभिरादृता। —अध्यात्मरामायण

७१ तथैव चक्रुस्ते सर्वे वशिष्ठाज्ञानुसारिणः॥ —नृसिंहपुराण

विप्र, साधु, सुर पूजत राजा। करत राम - हित मंगल काजा। (१)
सुनत राम - अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा।
राम - सीय - तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए। (२)
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत - आगमन - सूचक अहहीं।
भए बहुत दिन, अति अवसेरी। सगुन - प्रतीति, भेंट प्रिय - केरी। (३)
भरत - सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन - फल, दूसर नाहीं।
रामहिं बंधु - सोच दिन - राती। अंडनि कमठ - हृदय जेहि भाँती। (४)

दो०—ऐहि अवसर मंगल परम, सुनि रहसेउ रनिवास।
८० सोभत लखि बिधु बढ़त जनु, बारिधि - बीचि - बिलास॥ ७॥

प्रथम जाइ जिन बचन सुनाए। भूषन - बसन भूरि तिन्ह पाए।

ही पूरा कर धरा हो। राजा दशरथ भी रामके हितके लिये ब्राह्मणों, साधुओं और देवताओंकी पूजा करते हुए सब मंगल कर्म करनेमें जुट गए। (१) रामके राज्याभिषेकका मनचीता समाचार पाते ही अयोध्या भरमें बड़ी धूम-धामसे बधावे बज उठे। राम (-के दक्षिण अङ्ग) और जानकीके मंगलकारक शुभ (वाम) अङ्ग फड़कने लगे, जिससे उनके शरीरमें (अच्छे) शकुनके लक्षण प्रकट हो चले। (२) वे (राम और जानकी) पुलकित हो-होकर प्रेम-पूर्वक आपसमें कहने लगे--'इन शुभ शकुनोंसे यही लग रहा है कि भाई भरत लौटे चले आ रहे हैं। उन्हें गए भी बहुत दिन हो गए। बड़ी उत्कण्ठा हो चली है। इस शकुनसे विश्वास हो रहा है कि शीघ्र ही अपने प्रियजन (भरत और शत्रुघ्न)-से अवश्य भेंट होनेवाली है (३) क्योंकि भरतके समान इस जगत्में हमारा प्रिय और है ही कौन ? (सबसे अधिक प्यारे भरत ही हैं)। बस हमें तो इसे छोड़कर शकुनका कोई दूसरा फल समझमें नहीं आ रहा है।' रामको दिन-रात भाई (भरत)-की उसी प्रकार चिन्ता लगी रहती थी जिस प्रकार कछुवेको अपने अण्डोंकी चिन्ता लगी रहती है। (४) इस अवसरपर यह परम मङ्गल समाचार सुनकर सारा रनिवास भी हर्षसे उसी प्रकार प्रसन्न हो उठा जैसे चन्द्रमाको बढ़ता देखकर समुद्रमें ऊँची-ऊँची लहरें उछलने लगती हैं॥ ७॥ यह शुभ समाचार जिस-जिसने भी रनिवासमें जिसे-जिसे पहले जा-जाकर सुनाया उस-उसने उन सबको आभूषणों और वस्त्रोंसे

७२ साधुब्राह्मणदेवानां करोत्यर्चां महीपतिः। कल्याणार्थं हि रामस्य शुभकर्म करोति च॥ व०रा०
७३ रामाभिषेकवृत्तान्तं श्रुत्वायोध्यापुरे शुभे। वाद्यानां घनघोरस्तु शब्दो जातः सुखप्रदः॥
७४ रामसीताशरीरेषु शुभानि शकुनानि च। अभवंश्च तदंगानि प्रस्फुरन्ति शुभानि हि॥
७५-७६ रोमांचितौ दंपती तौ प्राहतुः प्रीतिपूर्वकम्। इमानि शकुनानीत्थं सूचयन्ति परस्परम्॥
मिलिष्यत्याशु भरतो व्यतीतानि बहूनि च। दिनानि चिन्ता महती वर्तते हृदये मम॥
विश्वासः शकुनेभ्यश्च जायते सर्वथा मम। प्रियस्य भरतस्यापि संगमो भवति ध्रुवम्॥
७७-७८ भरतेन समो लोके कः प्रियो राघवस्य हि। शकुनस्य फलं तस्मादेतदेव परं नहि॥
रामस्य हृदये चिन्ता भरतस्यैव सर्वदा। कच्छपस्य यथांडानां चिन्ता भवति सर्वदा॥श्वेत०रा०
७९-८० कौशल्या लक्ष्मणश्चैव सुमित्रा नगरीजनाः। रामाभिषेकमाकर्ण्य मुदं प्राप्यातिहर्षिताः॥ नृ०पु०
८१ यदा तत्रैव नगरे श्रुत्वा कश्चित् पुमान् जगौ। कौशल्यायै राममात्रे सुमित्रायै तथैव च॥
श्रुत्वातिहर्षसंपूर्णा ददतुर्हारमुत्तमम्। तस्मै ततः प्रीतमनाः कौशल्या पुत्रवत्सला॥ अध्या०

प्रेम - पुलकि, तन - मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं। (१)
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरीं। मनिमय, बिबिध भाँति, अति रूरी।
आनँद - मगन राम - महतारी। दिए दान, बहु बिप्र हँकारी। (२)
पूजी ग्रामदेवि, सुर, नागा। कहेउ बहोरि, देन बलि - भागा।
जेहि बिधि होइ राम - कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू। (३)
गावहिं मंगल कोकिल - बयनी। बिधु - बदनी मृग-सावक-नयनी। (३॥)

दो०—राम - राज - अभिषेक सुनि , हिय हरषे नर-नारि।
लगे सुमंगल सजन सब , बिधि अनुकूल बिचारि॥ ८॥

९० तब नर - नाह बसिष्ठ बोलाये। राम - धाम सिख देन पठाये।
गुरु - आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ, पद नायउ माथा। (१)

लाद दिया। सब रानियाँ प्रेमसे इतनी पुलकित हुई जा रही थीं कि उनका मन आनन्दसे नाच-नाच उठ रहा था। वे सब उठ-उठकर मङ्गल कलश ला-लाकर सजा धरने लगीं। (१) सुमित्राने चमचमाते रत्न लेकर उनसे अनेक प्रकारसे मनोहर चौक पूर डाले। रामकी माता कौशल्या तो आनन्दमें इतनी मगन हुई पड़ रही थीं कि उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंको बुलवा-बुलवाकर उन्हें मुंह-माँगा दान देना प्रारम्भ कर दिया। (२) यह सब करके उन्होंने ग्राम-देवी, देवता और नागोंकी जा पूजा की और यह मनौती मानी कि 'राज्याभिषेक कुशलसे पूरा हो गया तो तुम्हें बलि चढ़ाऊँगी। जिस प्रकार भी रामका कल्याण होता हो, कृपा करके वही वर दीजिए।' (३) फिर क्या था ! कोकिलके समान मधुर स्वरोंवाली चन्द्रमुखी और मृगके बच्चेके समान भोली आँखोंवाली नवेलियाँ सब मिलकर मङ्गल गीत गा उठीं। (३॥) रामके राज्याभिषेकका समाचार जिस भी स्त्री और पुरुषने सुना वही हर्षित हो उठा। सब लोग विधाताको अपने अनुकूल समझकर (कि विधाता हमारा कल्याण करेंगे) अपने-अपने घर मङ्गलके साज सजाने लगे ॥ ८॥ इसी बीच राजा दशरथने गुरु वशिष्ठको बुलवाकर उन्हें रामके भवन भेज दिया कि उन्हें अवसरके अनुकूल शिक्षा जा दें। गुरुका आगमन सुनते ही राम अपने द्वार-तक दौड़े चले आए और अपने गुरुके चरणों में उन्होंने मस्तक आ नवाया। (१)

८२ वर्ष्माणि राजपत्नीनां सरोमांचानि चेतसि। ऐधतैताहशी प्रीतिर्याः सर्वा राजनायिकाः॥
अस्यार्थं सुप्रसंगस्य मंगलं कर्तुमुद्यताः।
८३ सुमित्रा रामकल्याणार्थं मंगलानि बहून्यकरोन्मुदा॥ —श्वेतकेतुरामायण
८४ तस्मै ततः प्रीतमनाः कौसल्या पुत्रवत्सला। लक्ष्मीं पर्यचरद् देवीं रामस्यार्थप्रसिद्धये॥ अध्या०
८५-८६ ग्रामदेव्याः सुराणां च शेषनागस्य पूजनम्। चकारानन्दयुक्ता सा कौशल्या प्राह निर्जरान्॥
पुनर्बलिं प्रदास्यामि परश्वायं प्रदीयताम्। श्रीरामचन्द्रकल्याणं भवत्वेवं निवेदनम्॥ मंगलरा०
८७ चन्द्राननाः स्त्रियो रम्या गीतं गायन्ती सुस्वरम्। —मंगलरामायण
८८-८९ ते चापि पौरा नृपतेर्वचस्तच्छ्रुत्वा तदा लाभमिवेष्टमाशु।
नरेन्द्रमामंत्र्य गृहाणि गत्वा देवान्समानर्चुरभिप्रहृष्टाः॥ —वाल्मीकीयरामायण
९० रथमारुह्य भगवान् वशिष्ठो मुनिसत्तमः। स्वयं जगाम भवनं राघवस्यातिशोभनम्॥
९१ गुरुमागतमाज्ञाय रामस्तूर्णं कृतांजलिः। प्रत्युद्गम्य नमस्कृत्य दण्डवद् भक्तिसंयुतः॥ अध्या०रा०

सादर अरघ देइ, घर आने। सोरह भाँति पूजि, सनमाने।
गहे चरन सिय-सहित बहोरी। बोले राम, कमल-कर जोरी। (२)
सेवक-सदन स्वामि-आगमनू। मंगल-मूल, अमंगल-दमनू।
तदपि उचित, जन बोलि सप्रीती। पठइय काज, नाथ! असि नीती। (३)
प्रभुता तजि, प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आज यह गेहू।
आयसु होइ सो करउँ गोसाईं। सेवक लहै स्वामि-सेवकाईं। (४)
दो०—सुनि सनेह-साने बचन, मुनि रघुबरहिं प्रसंस।
राम! कस न तुम कहहु अस, हंस-बंस-अवतंस ॥ ६ ॥
१०० बरनि राम-गुन-सील-सुभाऊ। बोले प्रेम-पुलकि मुनि-राऊ।

वहाँसे आदरपूर्वक गुरु वशिष्ठको अर्घ्य[1] देकर वे अपने भवनमें उन्हें लिवा ले गए। वहाँ सोलहों प्रकारोंसे उनका पूजन करके रामने उनका बड़ा सम्मान किया। फिर सीता और रामने उनके चरण छूए और कमलके समान हाथ जोड़कर कहा—(२) 'सेवकके घरमें स्वामीका आगमन तो सब मङ्गलका मूल (सब प्रकारसे कल्याण करनेवाला) और अमङ्गलों (दोषों, पापों)-का नाश करनेवाला हुआ करता है। फिर भी नाथ! नीति तो यही है कि सेवकको ही प्रेम-पूर्वक बुलवाकर काम सौंपा जाय। (३) प्रभु! आपने अपनी प्रभुता (महत्ता) छोड़कर (मुझपर) जो स्नेह दिखाया है उससे आज हमारा घर पवित्र हो गया। गोस्वामी! आप जो भी आज्ञा दें मैं वही करनेके लिये तैयार हूँ जिससे सेवकको (मुझे) आपकी सेवा करनेका लाभ तो प्राप्त हो।' (४) रामके ऐसे स्नेह-भरे वचन सुनकर मुनि वशिष्ठने रामकी बड़ी सराहना करते हुए कहा—'देखो राम! तुम तो सूर्यवंशके शिरोमणि (सर्वश्रेष्ठ) हो, इसलिये ऐसा क्यों न कहोगे?' ॥ ६ ॥ रामके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करके मुनिराज वशिष्ठ प्रेमसे पुलकित होते हुए बोले—'देखो राम! राजा

---

१. षोडशोपचार पूजन : आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमस्नानं वसनाभरणानि च ॥ गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं वन्दनं तथा ॥ [आसन, स्वागत, पाद्य (पैर धोनेका जल), अर्घ्य (दूर्वा, तिल, कुशा, सरसों, गंध, पुष्प, अक्षत, जल), आचमनके लिये जल, मधुपर्क (दधि, मधु और घृत जो बराबर न हों), आचमनके लिये जल, स्नानके लिये जल, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा प्रणाम—इन १६ प्रकारोंसे पूजन किया जाता है।]

९२-९३ रत्नासने समावेश्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। तदपः शिरसा धृत्वा सीतया सह राघवः ॥
धन्योऽस्मीत्यब्रवीद् रामस्तव पादाम्बुधारणात्। —अध्यात्मरामायण
९४ दासस्य भवने विद्वन् गुरोरागमनं मुने। मंगलानां महन्मूलं कल्मषध्वंसकं तथा ॥ वृहस्पति सं०
९५ तथापि नाथ सप्रेम सति कार्ये महत्यपि। आह्वानकरणं योग्यं दासस्य हितकारिणः ॥ वशि०रा०
९६-९७ स्वकीयां प्रभुतां त्यक्त्वा स्वागमात्प्रेम दर्शितम्। पवित्रं मन्दिरं जातं श्रीमच्चरणरेणुना ॥
शीघ्रं तं कर्तुमिच्छामि निदेशो यो भवेत्तव। —सुतीक्ष्णरामायण
९८-९९ प्रेमपूर्णं वचश्चेत्थं श्रुत्वा रामं प्रशस्य च। कथं स्यान्न मुनिः प्राह राम त्वं कुलदीपकः॥ वशि०रा०

भूप सजेउ अभिषेक - समाजू । चाहत देन तुमहिं जुवराजू । (१)
राम ! करहु सब संजम आजू । जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू ।
गुरु, सिख देइ, राय - पहँ गयऊ । राम-हृदय अस बिसमय भयऊ । (२)
जनमे एक संग सब भाई । भोजन, सयन, केलि, लरिकाई ।
करन - बेध, उपबीत, बियाहा । संग - संग सब भये उछाहा । (३)
बिमल - बंस यह अनुचित एकू । बंधु बिहाइ, बड़ेहि अभिषेकू ।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत - मन - कै कुटिलाई । (४)
दो०—तेहि अवसर आए लखन , मगन - प्रेम - आनंद ।
सनमाने प्रिय बचन कहि , रघुकुल - कैरव - चंद ।।१०।।
११० बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना । पुर - प्रमोद नहिं जाइ बखाना ।

दशरथने (तुम्हारे) राज्याभिषेककी सारी तैयारी कर डाली है । वे तुम्हें युवराज बना देना चाहते हैं । (१) इसलिये आज तुम सब संयमका पालन कर डालो यदि विधाता यह काम कुशलपूर्वक पूरा हो जाने दें ।' रामको सब शिक्षा देकर जब गुरु वशिष्ठ (राजा दशरथके यहाँ) लौट गए तब राम अपने हृदयमें यही सोच-सोचकर पछताए जा रहे थे—(२) 'हम सब भाइयोंका जन्म भी एक ही साथ हुआ, हम सबका खाना-पीना, सोना-उठना, लड़कपनका खेलना-कूदना, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि सब मंगल कार्य भी साथ ही साथ हुए । (३) पर इस निर्मल वंश (रघुवंश)-में यही एक बड़ी असंगत बात होती चली आ रही है कि अन्य सब भाइयोंको छोड़कर केवल सबसे बड़ेका ही राज्याभिषेक होता है ।' (तुलसीदास कहते हैं—) 'प्रभु रामका यह मनभावना प्रेम-भरा पछतावा सदा भक्तोंके मनकी सारी कुटिलता दूर करता रहे ।' (४) उसी समय वे देखते क्या हैं कि प्रेम और आनन्दमें भरे लक्ष्मण भी वहाँ झपटे चले आ रहे हैं । रघुकुलके कुमुदोंके (खिलानेवाले) चन्द्रके समान रामने बड़ी प्रेमभरी वाणीमें उन्हें आदरके साथ अपने पास बुला बैठाया ।। १० ।। (ज्यों ही रामके राज्याभिषेकका समाचार नगरमें फैला कि) नगर-भरमें तरह-तरहके बाजे बज उठे । नगरमें उस समय ऐसा धूम-धड़ाका मच उठा कि उसका

१००-१०१ गुणान् प्रशस्य रामस्य प्रहसन् मुनिरब्रवीत् । राज्ञा दशरथेनाहं प्रेषितोऽस्मि रघूद्भव ।।
त्वामामंत्रयितुं राज्ये श्वोऽभिषेक्ष्यति राघव ।।
१०२ अद्य त्वं सीतया सार्धमुपवासं यथाविधि । कृत्वा शुचिर्भूमिशायी भव राम जितेन्द्रियः ।।
१०३ गच्छामि राजसान्निध्यं त्वं तु प्रातर्गमिष्यति । इत्युक्त्वा रथमारुह्य ययौ राजगुरुर्द्रुतम् ।।अ०रा०
१०४-१०५ एकस्मिन् समये जन्म जातं भ्रातृगणस्य च । भोजनं शयनं केलिः समं बाल्येऽभवत्सदा ।।
कर्णवेधोपवीते च विवाहान्ताश्च चोत्सवाः । जाताः समं समं सर्वे रामो मनसि दुखितः ।।
१०६-७ त्यक्त्वानुजान् प्रियान् नाहं राज्यमिच्छामि पुष्कलम् ।
पश्चात्तापः प्रभोरित्थं भक्तानां मनसि स्थितम् ।।
कौटिल्यं हरतु क्षिप्रं मंगलं च प्रयच्छतु । —मंगलरामायण
१०८-९ रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् । सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति ।।
निमित्तमात्रमेवाहं कर्ता भोक्ता त्वमेव हि । —अध्यात्मरामायण
११० तेषां पुण्याहघोषोऽथ गंभीरमधुरस्तथा । अयोध्यां पूरयामास तूर्यघोषानुनादितः ।। —वा०

भरत - आगमन सकल मनावहिं । आवहु बेगि नयन - फल पावहिं । (१)
हाट, बाट, घर, गली, अथाई । कहहिं परसपर लोग - लुगाई ।
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलाष हमारा । (२)
कनक - सिंघासन सीय-समेता । बैठहिं राम होइ चित - चेता ।
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली । (३)
तिन्हहिं सुहाइ न अवध - बधावा । चोरहिं चाँदनि राति न भावा ।
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहि बार पायँ लै परहीं । (४)

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिय ! सोइ आज ।
राम जाहिं बन, राज तजि , होइ सकल सुर - काज ।।११।।

१२० सुनि सुर - बिनय ठाढ़ि पछिताती । भइउँ सरोज - बिपिन हिम - राती ।
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु ! तोहिं नहिं थोरिय खोरी । (१)

वर्णन नहीं किया जा सकता । सब लोग यही मनाए जा रहे थे कि इस समय भरत भी आ पहुँचते तो कितना अच्छा होता ! वे भी शीघ्र आ जाते तो हम लोग अपने-अपने नेत्र सुफल कर डालते (सब भाइयोंके साथ रामका राज्याभिषेक देख लेते) । (१) हाट, सड़क, घर, गली और चौतरोंपर खड़े और बैठे स्त्री और पुरुष सब आपसमें यही कहे जा रहे थे कि वह शुभ मुहूर्त कल कब आवेगा जब विधाता हमारी यह अभिलाषा पूरी करेंगे (२) कि सीताके साथ राम सोनेके सिंहासनपर आ विराजें और हमारी मनोकामना पूरी हो । इधर अयोध्यामें तो सब लोग यह मनाए जा रहे थे कि वह 'कल' कब होगा ? (झटपट हो जाय), उधर कुचाली देवता यही मनाए जा रहे थे कि इसमें विघ्न कैसे आ पड़े (कि यह राज्याभिषेक हो ही न पावे) । (३) उन्हें अयोध्याका यह आनन्द-भरा बधावा वैसे ही फूटी आँखों नहीं सुहा रहा था (अच्छा नहीं लग रहा था) जैसे चोरोंको चाँदनी रात अच्छी नहीं लगती । इसलिये देवताओंने झट सरस्वतीको बुलाकर उनके आगे बहुत गिड़गिड़ाकर और बार-बार उनके पैरों पड़कर कहा—(४) 'माता ! हमपर आ पड़ी हुई यह विपत्ति देखकर आप कुछ ऐसा उपाय कर डालिए कि राम यह राज्य छोड़कर वन चले जायँ और देवताओंका सारा काम बन चले' ।। ११ ।। देवताओंकी यह प्रार्थना सुन-सुनकर सरस्वती अलग खड़ी-खड़ी पछताए जा रही थीं कि मैं कहाँ इस (अयोध्याके) कमल-वनके लिये हेमन्त ऋतुकी रात बननेको विवश की जा रही हूँ' (जैसे हेमन्तकी रातके पालेसे कमल जल जाते हैं वैसे ही अयोध्याका नाश करनेका काम मुझे सौंपा जा रहा है) । (उन्हें पछताते) देखकर देवता फिर उनके हाथ-पैर जोड़कर कहने लगे—'देखो माता । आप इतना-भर कर देंगी तो आपको तनिक भी दोष नहीं लग पावेगा (१) क्योंकि रामको तो न हर्ष होता है न शोक होता है (उन्हें न तो राज्य

१११ भरतागमनं सर्वे वाञ्छन्ति पुरवासिनः । नेत्राभ्यां भरतं दृष्ट्वा सुखं मन्यामहेऽमलम् ।। आ० रा

११२-११५ आकांक्षमाणा रामस्य यौवराज्याभिषेचनम् । समेत्य संघशः सर्वे चत्वरेषु सभासु च ।।
कथयन्तो मिथस्तत्र प्रशशंसुर्जनाधिपम् । रामं कदा वा द्रक्ष्यामः प्रभातं वा कदा भवेत् ।
इत्युत्सुकधियः सर्वे बभूवुः पुरवासिनः ।। —वाल्मीकीय

११६ विघ्नमिच्छन्ति कुटिला देवास्तानवधोत्सवः । नैवाभूत्सुखदो रात्रि चन्द्रिकासंयुतामिव ।।
चौरा दुष्यन्ति कुटिलाः प्रशंसन्ति च सज्जनाः । —अगस्त्यरामायण

विसमय - हरप - रहित　रघुराऊ। तुम जानहु सव राम - प्रभाऊ।
जीव करम - वस सुख-दुख-भागी। जाइय अवध देव - हित लागी। (२)
बार - वार गहि चरन सँकोची। चली विचारि, विवुध-मति पोची।
ऊँच निवास, नीचि करतूती। देखि न सकहिँ पराइ विभूती। (३)
आगिल काज विचारि वहोरी। करिहँइ चाह कुसल कवि मोरी।
हरपि हृदय दसरथ - पुर आई। जनु ग्रह - दसा दुसह दुखदाई। (४)
दो०—नाम मंथरा मंद - मति, चेरी कैकइ - केरि।
अजस-पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥ १२॥
१३० दीख मंथरा नगर बनावा। मंजुल, मंगल, बाज बधावा।

मिलनेका हर्ष है, न उसे छोड़ देनेसे शोक होगा)। आप तो रामका सब प्रभाव (शक्ति, स्वभाव) जानती ही हैं। यह तो सामान्य जीव ही होते हैं जिन्हें अपने (पूर्व जन्मके) कर्मके कारण दुःख और सुख भोगना पड़ता है (रामके लिये न कुछ दुःख है, न सुख है)। इसलिये आप देवताओंका इतना काम बनानेके लिये कृपया अयोध्या चली जाइए।' (२) वार-बार चरण पकड़कर देवताओंने सरस्वतीको बड़े फेरमें डाल दिया। मनमें यही विचारती हुई वे (अयोध्याको) चल दीं कि 'देवताओंकी यह करनी सचमुच बड़ी ओछी है। ये रहते तो बहुत ऊँचेपर (स्वर्गमें) हैं पर इनकी करनी बहुत नीची है। इन्हें दूसरेका ऐश्वर्य (बढ़ना) फूटी आखों नहीं सुहाता।' (३) पर जब उन्होंने भविष्यका विचार किया कि चतुर कवि इसी कारण (कि रामके वन चले जानेसे राक्षसोंका वध हो जायगा और सारा जगत् सुखी हो जायगा,) हमारी कामना किया करेंगे (कि मैं उन्हें रामके चरित्रका वर्णन करनेकी शक्ति प्रदान करूँ), तब वे (सरस्वती) हृदयमें हर्षित होकर दशरथकी पुरी (अयोध्या)-में इस प्रकार घड़घड़ाती जा पहुँचीं मानो भयंकर दुःख देनेवाली कोई ग्रहदशा[1] ही वहाँ आ पहुँची हो। (४) (अयोध्याके रनिवासमें) कैकेयीकी एक बड़ी मूर्ख दासी थी जिसका नाम था मन्थरा। बस उसीको सारे अपयशकी पिटारी बनाकर (रामके वन जानेका सारा अपयश उसीके सिर मढ़कर) सरस्वती झट उसकी बुद्धि फेरकर (मन्थराको उलटी बुद्धि देकर) वहाँसे चलती बनी॥ १२॥

उधर जब मंथराने जाकर देखा कि सारा नगर बड़े ठाट-बाटसे सजाया जा रहा है, (स्थान-स्थानपर) आनन्द-मंगलके वधावे वजे चले जा रहे हैं तो उसने जा-जाकर लोगोंसे पूछना प्रारंभ किया कि आज यह धूम-धाम कैसी मची हुई है ? ज्यों ही उसने सुना कि यह सब धूमधड़ाका रामके राज्याभिषेकके लिये हो रहा है तो वह जल-भुनकर राख हो चली (ईर्ष्यासे जल उठी)।

१. दुःसह दुःख देनेवाली ग्रह-दशा : मेषका शनि, तुलाका सूर्य, वृश्चिकका चन्द्र, कर्कका मंगल, कन्याका शुक्र, मकरका बृहस्पति, मीनका बुध, धनुका राहु।

११७-२२ एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन्॥
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः। रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः॥
मंथरां प्रविशत्वादौ कैकेयीं च ततः परम्। ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे॥
१२६ तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मंथराम्॥
१३० सापि कुब्जा त्रिवक्रा तु प्रासादाग्रमथारुहत्। नगरं परितो दृष्ट्वा सर्वतः समलंकृतम्॥—अ०रा०

पूछेसि लोगन काह उछाहू। राम-तिलक सुनि भा उर-दाहू। (१)
करइ विचार कुबुद्धि, कुजाती। होइ अकाज कवन बिधि राती।
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती। (२)
भरत - मातु - पहँ गइ बिलखानी। का अनमनि हसि, कह हँसि रानी।
ऊतरु देइ न, लेइ उसाँसू। नारि-चरित करि, ढारइ आँसू। (३)
हँसि कह रानि, गाल बड़ तोरे। दीन्हि लखन सिख, अस मन मोरे।
तबहुँ न बोल, चेरि बड़ि पापिनि। छाँड़इ स्वाँस, कारि जनु साँपिनि। (४)
दो०—सभय रानि कह, कहसि किन, कुसल राम, महिपाल।
लखन, भरत, रिपुदमन, सुनि, भा कुबरी - उर साल।। १३।।
१४० कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गाल करब केहि - कर बल पाई।
रामहिं छाँड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेस देइ जुवराजू। (१)

वह खोटी वुद्धिवाली, नीच जातिकी दासी अब उसी प्रकार इस उधेड़बुनमें पड़ गई कि रातों-रात यह काम कैसे विगाड़ा जाय जैसे कोई कुटिल भिलनी मधुमक्खीका छत्ता लगा देखकर उसे उतारनेकी ताकमें लगी हुई हो। (२) वह झट वहुत मुँह लटकाए (उदास मुँह किए हुए) भरतकी माता कैकेयीके आगे जा खड़ी हुई। रानी कैकेयीने उससे हँसकर पूछा—'आज तू इतनी अनमनी-सी क्यों दिखाई पड़ रही है ?' (बहुत पूछनेपर भी) वह कुछ भी उत्तर नहीं दे रही थी, उलटे रह-रहकर लंबी साँसें भरती चली जा रही थी और त्रिया-चरित्र करती हुई झर-झर आँसू वहाए चली जा रही थी। (३) यह देखकर रानी बोली—'तू वहुत बढ़-बढ़कर बोलती रहती है न ! इसीलिये लगता है आज लक्ष्मणने तेरी अच्छी कुटम्मस कर डाली है।' इतना कहनेपर भी वह पापिनी दासी एक शब्द वोलकर नहीं दे रही थी और काली नागिनके समान फुफकारें छोड़े जा रही थी। (४) यह देखकर तो रानी घवरा उठी और पूछने लगी—'अरी ! बताती क्यों नहीं ? राम, राजा दशरथ, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सब कुशलसे तो हैं न ?' यह सुनकर तो कुवड़ी (मंथरा दासी) और भी झुँझला उठी (कि सवसे पहले रामका ही कुशल क्यों पूछे डाल रही है ? अपने सगे वेटे भरतका कुशल क्यों नहीं पूछती ?)।। १३।। तव तो उसका मुँह खुल पड़ा (और वह तड़पकर वोली)—'नहीं माता ! हमारी कोई क्यों कुटम्मस करेगा ? और मेरा है ही कौन जिसके बलपर मैं गाल बजाऊँ (बढ़-बढ़कर वोलूँ ?) (रही कुशलकी वात ! तो) रामको छोड़कर आज कुशल है ही, किसका जिसे राजा (दशरथ) युवराज वनाए डाल रहे हैं ? (१) आज विधाता किसीके दाहिने (पक्षमें)

१३१ धात्रीं पप्रच्छ मातः किं नगरं समलंकृतम्। तामुवाच तदा धात्री रामचन्द्राभिषेचनम्।।
तच्छ्रुत्वा विमना भूत्वा—
१३२-३४ कैकेयी निकटं गता। कैकेयी त्वब्रवीत् कुब्जां कच्चित् क्षेमं न मंथरे। अध्या०
१३५ उत्तरो नैव कौटिल्यात्तया दत्तस्तथा स्त्रियः। चरित्राद् रोदनं सा तु चकार विपुलं भृशम्।। वा०
१३६-३७ कैकेयी मंथरां प्राह स्वदुःखं वद मंथरे। प्रददौ लक्ष्मणो दण्डं किमपि प्राह नैव सा।।
१३८-३९ रामस्य कुशलं ब्रूहि नृपस्य भरतस्य च। लक्ष्मणस्याह कैकेयी शत्रुघ्नस्य च मंथरे।। भरद्वाज रा०
१४०-४१ रामं च कौशलीपुत्रं श्वोऽभिषेक्ष्यति भूतले। त्वत्पतिस्तु महाराजस्तव नाशाय चोद्यतः।।नृ०पु०

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत, गरब रहत उर नाहिंन।
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा। (२)
पूत बिदेस, न सोच तुम्हारे। जानतिहउ, बस नाह हमारे।
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप - कपट - चतुराई। (३)
सुनि प्रिय वचन, मलिन मन जानी। झुकी रानि, अब रहु अरगानी।
पुनि अस कबहुँ कहेसि घरफोरी। तव धरि जीभ कढ़ावौं तोरी। (४)
दो०—काने, खोरे, कूबरे, कुटिल, कुचाली जानि।
तिय बिसेषि, पुनि चेरि, कहि, भरत - मातु मुसुकानि॥ १४॥
१५० प्रिय - बादिनि ! सिख दीन्हिउँ तोहीँ। सपनेहु तो - पर कोप न मोहीँ।
सुदिन सुमंगल - दायक सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई। (१)

हो रहे हैं तो कौशल्याके हो रहे हैं, जिन्हें देखो तो ऐसा लगता है कि उनके पैर धरतीपर नहीँ पड़ रहे हैं (उनके हृदयमें गर्व समा गया है)। आप स्वयं जाकर (नगरकी) सारी शोभा अपनी आँखोंसे क्यों नहीं देखे लेती हैं जिसे देख-देखकर मेरा मन भुँझला उठा है। (२) आपके पुत्र (भरत) परदेश (अपनी ननिहाल)-में पहुँचे बैठे हैं और आप (यही समझे निश्चिन्त बैठी) हैं कि पति (दशरथ) मेरे वशमें है। इसलिये आपको तो बढ़िया गद्देदार पलँगपर दिन-रात पड़े-पड़े करवटें लेना ही अच्छा लगता है। राजा (दशरथ) जो आपके साथ कपटका खेल खेले जा रहे हैं वह आप अभी नहीं भाँप सक पा रही हैं।' (३) मन्थराकी यह सुहावनी बात सुनकर (कि रामको युवराज बनाया जा रहा है) तथा उसका हृदय खोटा जानकर (कि वह ईर्ष्यासे जली जा रही है), रानी कैकेयी उसे क्रोधसे डपटती हुई बोलीं —'बस ! अब तू यहाँसे चलती-फिरती दिखाई दे। यदि आजसे तूने फिर कभी ऐसी घर-फोड़ी (घरमें लड़ाई लगानेवाली) बात की तो तेरी जीभ पकड़कर खिंचवा लूँगी। (४) एक तो काने, लंगड़े और कुबड़े यों ही कुटिल और कुचाली होते हैं, उसपर भी स्त्री और उनमें भी दासी ! (उसकी कुटिलताका तो कहना ही क्या ?) !' इतना कहकर भरतकी माता (कैकेयी) मुसकरा पड़ी (कि मैं तेरी सारी कुटिलता भली भाँति ताड़ रही हूँ।) ॥ १४॥ (और फिर बोलीं –) 'देख मिठबोली मन्थरा ! मैंने यह बात तो तुझे शिक्षा देनेके लिये कही है (कि तू फिर कभी ऐसी बात मुँहसे न निकाल पावे)। तुझपर तो मुझे स्वप्नमें भी क्रोध नहीं आता। देख ! सुन्दर मंगलदायक शुभ दिन सचमुच वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (रामका राज्याभिषेक होगा)। (१) यह तो सूर्य-वंशकी

१४२ सुभगा किल कौशल्या यस्या पुत्रोऽभिषेक्ष्यते। —वाल्मीकीयरामायण
१४४ भरतोपि गतो दूरं मातुलस्य गृहं प्रति। चलं हि तव सौभाग्यं नद्याः स्रोत इवोष्णगे॥ —नृ०पु०
१४५ किं शेसे दुर्भगे मूढे महद् भयमुपस्थितम्॥
त्वां तोषयन् सदा राजा प्रियवाक्यानि भाषते। कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन्॥अ.रा.
१४७ ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता। जिह्वायाश्छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनी॥ सत्योपाख्यान
१४८-४९ काणाः कुब्जाः पंगुजनाः भवन्ति कुटिलाः सदा। विशेषतः स्त्रियो दास्यः कैकेयी च जहास ह॥
१५१ शोभनं दिनमेव स्यात् प्रियवादिनि मंगलम्। यदा रामाभिषेकश्च भविष्यति सुखावहः॥वशि०रा०

जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई। यहि दिनकर-कुल-रीति सुहाई।
राम-तिलक जौं साँचेहु काली। देउँ, माँगु मन-भावत आली। (२)
कौसल्या-सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाय पियारी।
मो-पर करहिं सनेह बिसेखी। मैं करि प्रीति-परीछा देखी। (३)
जौं बिधि जनम देइ करि छोहू। होहु राम-सिय पूत-पतोहू।
प्रान-तें अधिक राम प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक, छोभ कस तोरे। (४)

दो०—भरत-सपथ तोहिं, सत्य कहु, परिहरि कपट-दुराउ।
हरष-समय, बिसमउ करसि, कारन मोहिं सुनाउ ॥१५॥

१६० एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
फोरै जोग कपार अभागा। भलेउ कहत, दुख रउरेहिं लागा। (१)
कहहिं झूठि-फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं, करुइ मैं माई।
हमहुँ कहबि अब ठकुरसुहाती। नाहिं त मौन रहब दिन-राती। (२)

बड़ी सुन्दर रीति (परम्परा) ही बनी चली आई है कि बड़ा भाई स्वामी बने और छोटा भाई सेवक बनकर रहे। देख सखी! यदि सचमुच कल ही रामका तिलक है, तो तू जो चाहे मुझसे माँग ले, मैं अभी दिए दे डालती हूँ। (१) राम तो सहज स्वभावसे ही सब माताओंको कौशल्याके समाने प्यार करते हैं पर मुझसे तो वे और भी अधिक प्रेम करते हैं। (मैं कोई सुनी-सुनाई बात नहीं कर रही हूँ) मैं तो बहुत परीक्षा करके उनकी प्रीति देख चुकी हूँ। (३) यदि विधाता कृपा करके (कभी मनुष्यका) जन्म दे भी तो राम-जैसा पुत्र दे और सीता-जैसी पतोहू (पुत्र-वधू) दे। मुझे तो राम प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं; फिर उनके तिलकके अवसर पर तू क्यों कुढ़ी पड़ रही है? (४) तुझे भरतकी सौगंध, तू सारा छल-कपट छोड़कर मुझसे सब सच-सच कह डाल कि तू इस हर्षके समय आँसू क्यों बहाए जा रही है? मुझे बता तो सही, क्या बात है?' ॥ १५ ॥ (व्यंग्य-भरी वाणीमें विष घोलते हुए मंथराने कहा)—'एक बार ही (मैंने जो इतना-सा कह दिया उसीसे) मेरी सारी साध पूरी हो गई (मुझे इतनी बातें सुननी पड़ीं), इसलिये अब तो (जो कुछ कहना होगा वह) दूसरी जीभ लगाकर ही कुछ कह सकूँगी। मेरा अभागा सिर सचमुच फोड़ने ही योग्य है कि मेरी अच्छी बात भी आपको कड़वी लगी जा रही है। (१) माता! आपको तो बस ऐसे ही लोग प्यारे लगते हैं जो आपको (दिन रात) झूठी-सच्ची बातोंमें भरमाए रक्खें, (और मैं सच्ची कहनेपर भी बुरी लग रही हूँ)। आजसे या तो मैं भी ठकुर-सुहाती ही कहा करती रहूँगी (हाँमें हाँ मिलाया करती रहूँगी) या दिन-रात मुँह पर ताला दिए चुपचाप पड़ी रहा करूँगी। (२) क्या करूँ? विधाताने ही मुझे

१५२	रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ॥
१५३	न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
	तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥
१५५	कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु।	—वाल्मीकीयरामायण
१५६-५६	भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः।
	कौशल्यां मां समं पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम्। रामाद् भयं किमापन्नं तव मूढे वदस्व माम्॥अ०रा०
१६०	तच्छ्रुत्वा विषसादाथ कुब्जाकारणवैरिणी।	—वाल्मीकीयरामायण

करि कुरूप, बिधि परबस कीन्हाँ। ववा सो लुनिय, लहिय जो दीन्हाँ।
कोउ नृप होउ, हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी। (३)
जारइ जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।
तातें कछुक बात अनुसारी। छमिय देबि ! बड़ि चूक हमारी। (४)
दो०—गूढ़, कपट, प्रिय बचन सुनि, तीय अधर-बुधि[1] रानि।
सुर-माया-बस वैरिनिहिं, सुहृद जानि पतियानि॥ १६॥
१७० सादर पुनि-पुनि पूछति ओही। सवरी-गान, मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी, अहइ जसि भावी। रहसी चेरि, घात जनु फावी। (१)
तुम पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ।
सजि प्रतीति, वहुविधि गढ़ि-छोली। अवध साढ़साती तव बोली। (२)
प्रिय सिय-राम कहा तुम रानी। रामहिं तुम प्रिय, सो फुरि वानी।

कुवड़ी बनाकर (दासीका काम करनेको) परवश कर डाला है। (ठीक भी है,) मैंने जो बोया है वही काट रही हूँ और जो दिया है वही पा रही हूँ (जैसा कर्म किया वैसा भोग रही हूँ)। (हमारे लिये क्या है ?) हमारी ओरसे कोई भी राजा हो, हमारा क्या बनता-बिगड़ता है ? (भरत राजा बन जायँगे तब भी) मैं दासी छोड़कर रानी तो बननेसे रही। (३) मेरा स्वभाव सचमुच जला डालने योग्य है, पर क्या करूँ आपका अनभल (अहित) मुझसे देखा नहीं जाता इसीलिये मैंने इतनी बात कह डाली थी। तो देवी ! (जो मुँहसे निकल गया वह) क्षमा कीजिएगा। बड़ी भूल हुई (आगेके लिये कान पकड़े)'। (४) एक तो कैकेयी यों ही अस्थिर बुद्धिवाली स्त्री थी, दूसरे, देवताओंकी मायाके फेरमें पड़नेके कारण ये रहस्य-भरी कपटकी मीठी-मीठी बातें सुनकर उस वैरिन मन्थराको भी अपना हित करनेवाली समझकर रानी कैकेयी उसपर पूरा विश्वास जमा बैठी॥ १६॥ रानी (कैकेयी) बड़े आदरके साथ बार-बार उससे (खोद-खोदकर) ऐसे पूछे जा रही थी मानो भीलनीका गीत सुनकर कोई हरिणी अपनी सारी सुध-बुध खोए खड़ी हो। जैसी होनहार होनेवाली थी वैसी ही (रानीकी) बुद्धि भी फिर गई। जब दासी (मंथरा)-ने देखा कि मेरा दाँव सच्चा बैठ गया है तो वह फूल उठी (१) (और मंथरा कहने लगी)—'आप पूछे तो जा रही हैं, पर मैं कहते डर रही हूँ क्योंकि आपने पहले ही मेरा नाम 'घरफोड़ी' रख छोड़ा है।' फिर बहुत प्रकारसे गढ़-छीलकर (इधर-उधरकी बातोंमें भुलावा देकर) रानी कैकेयीपर अपना विश्वास जमाकर वह अयोध्याके लिये साढ़ेसाती[2] शनिकी दशा बनी हुई मन्थरा कह उठी—(२) 'देखिए रानी ! आप जो यह कहा करती हैं कि सीता और राम मेरे बड़े प्यारे हैं और राम भी मुझसे बहुत स्नेह करते हैं, यह बात पहले कभी सत्य

१. अथिर बुधि। २. जिसपर शनिकी साढ़े सात वर्षकी दशा होती है, उसका बहुत बड़ा अहित होने लगता है।

१६८-६९ स्त्रीजातित्वाच्च कैकेयी तथा क्षणिकबुद्धितः॥
देवमायावशाद्राज्ञी छलसम्मिलितां गिरम्। प्रियां श्रुत्वा हितां मत्वा विश्वासं च चकार सा॥भर०रा०
१७० पुनः पुनः पृच्छति केकयी तां वद स्ववृत्तं झटिति त्रिवक्रे।
गीतं शबर्या मधुरं निशम्य मृगीव मुग्धा भवितव्यनिघ्ना॥ —सुतीक्ष्णरामायण

रहा प्रथम, अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं, पिरीते। (३)
भानु कमल - कुल - पोषनिहारा। बिनु जल जारि, करइ सोउ छारा।
जरि तुम्हारि, चह सवति उखारी। रूँधहु, करि उपाय - बर - बारी। (४)
दो०—तुमहिं न सोच सोहाग-बल , निज बस जानहु राउ।
मन मलीन, मुँह मीठ नृप , राउर सरल सुभाउ॥ १७॥
चतुर गँभीर राम - महतारी। बीच पाइ, निज बात सँवारी।
पठये भरत भूप ननिऔरे। राम - मातु - मत जानब रौरे। (१)
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरत - मातु, बल पी-के।
साल तुम्हार कौसिलहिं माई। कपट चतुर, नहिं परइ लखाई[1]। (२)
राजहिं तुम - पर प्रेम बिसेखी। सवति - सुभाउ सकइ नहिं देखी।
रचि प्रपंच, भूपहि अपनाई। राम - तिलक - हित लगन धराई। (३)
यह कुल उचित राम-कहँ टीका। सबहिं सुहाइ, मोहिं सुठि नीका।

रही होगी, पर अब वे दिन गए (वह बात नहीं रही)। समय फिरनेपर (बुरे दिन आनेपर) गाढ़े मित्र भी शत्रु बन बैठते हैं। (३) जो सूर्य कभी कमलोंका पालनेवाला कहलाता है, वही जल सूख जानेपर उन्हें जलाकर सुखा डालता है। देखिए! (मैं आपको बताए देती हूँ कि) आपकी सौत कौशल्या, आपकी जड़ उखाड़नेपर तुली हुई हैं। इसलिये अब आप कोई उपायकी अच्छी बाड़ (घेराव) लगाकर उसे रोक दीजिए। (४) आपको अपने सुहागका इतना बल है कि उसके भरोसे आप अपनी कुछ भी चिन्ता नहीं करतीं। (आप समझे बैठी हैं कि) राजा आपके वशमें हैं। पर राजा, मनके बड़े मैले (खोटे, धोखा देनेवाले) और मुँहके बड़े मीठे हैं। इधर आप स्वभावसे ही बड़ी भोली-भाली हैं (छल-कपटका नाम नहीं जानतीं)॥ १७॥ जहाँ-तक रामकी माता कौशल्याकी बात है, वे बड़ी चतुर (धूर्त) और गम्भीर (घुन्नी, चुप्पी साधे रहनेवाली) हैं। देखा न! उन्होंने कैसे बात लगाकर (जब भरत यहाँ नहीं हैं) अपनी बात साध ली (रामको युवराज बनवा डाला)। (वे देखती हैं कि) दूसरी सौत (सुमित्रा) तो मेरी भली प्रकार सेवा करती जाती है पर भरतकी माता सदा पतिके बलपर (पतिकी अधिक प्यारी होनेके कारण) ऐंठी फिरती है। कौशल्याको आपसे इसी बातकी बड़ी चिढ़ है। पर वे कपट करनेमें (मनकी बात मनमें ही छिपाए रखनेकी कलामें) इतनी चतुर हैं कि (अपने मनकी यह कुढ़न) वे प्रकट नहीं होने देतीं। (२) राजा दशरथ आपसे बहुत अधिक प्रेम करते हैं, यह बात भी सौत होनेके कारण कौशल्याको दिनरात कसकती रहती है। इसलिये प्रपंच (तिकड़म) रचकर उन्होंने राजाको अपने अनुकूल करके (उलटा-सीधा समझाकर, उनकी लल्लो-चप्पो करके) रामके राजतिलकका लग्न ठहरा धरा। (३) इस कुलकी रीतिके अनुसार तो यह उचित ही है कि रामको राजतिलक किया जाय। सबको यह अच्छा भी लग रहा है और मुझे भी

[1] होइ जनाई।

१७७ राममाता सपत्नी ते कथं वैरं न यापयेत्। दर्पान्निराकृता पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्तया॥
१७९ धर्मवादी शठो भर्ता श्लक्ष्णवादी च दारुणः। शुद्धभावेन जानीषे तेनैव मतिसंधिता॥वा०रा
१८०-८१ कामुकोऽतथ्यवादी च त्वां वाचा परितोषयन्। कार्यं करोति तस्या वै राममातुः सुपुष्कलम्॥
मनस्येतन्निधायैव प्रेषयामास ते सुतम्। भरतं मातुलकुले प्रेषयामास सानुजम्॥—अ०रा०

आगिल बात समुझि, डर मोही। देउ दैव फिरि, सो फल ओही। (४)
दो०—रचि,पचि,कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि - कपट प्रबोध।
कहेसि कथा सत सवति-कै, जेहि विधि बाढ़ विरोधु ॥ १८ ॥
१९० भावी - बस प्रतीति उर आई। पूछ रानि, पुनि सपथ देवाई।
का पूछहु तुम, अबहुँ न जाना। निज हित-अनहित पसु पहिचाना। (४)
भयउ पाख दिन सजत समाजू। तुम पाई सुधि मोहि-सन आजू।
खाइय, पहिरिय, राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोष हमारे। (२)
जौ असत्य कछु कहब बनाई। तौ विधि देइहि हमहिं सजाई।
रामहिं तिलक कालि जौ भयऊ। तुम-कहँ बिपति-बीज विधि वयऊ। (३)
रेख खँचाइ कहउँ, बल भाखी। भामिनि! भइउ दूध - कइ माखी।
जौ सुत-सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु, न आन उपाई। (४)

बहुत ठीक लगता है पर मेरा जो तो भविष्यकी बात सोच-सोचकर धड़का पड़ रहा है। भगवान् करे उसका वह फल (जो वे तुम्हारे लिये सोच रही हैं) उलटकर उन्हींके सिर पड़े।' (४) इस प्रकार करोड़ों उलटी सीधी बातें बना-बनाकर मन्थराने कैकेयीके हृदयमें यह विश्वास जमा बैठाया कि (कौशल्या) मेरे साथ कपटका खेल खेले जा रही है। मंथराने फिर सौ सौतोंवाली[1] कथा भी कैकेयीको कह सुनाई जिससे कैकेयीके मनमें (कौशल्याके प्रति) विरोधका भाव और भी वेगसे भड़क उठा ॥१८॥ होनहार ऐसी प्रबल कि मन्थराकी बातोंपर कैकेयीको इतना विश्वास जम चला कि रानीने उसे सौगंध दिलाकर पूछा—'(तू सचमुच बता) क्या कुचक्र रचा जा रहा है ?' (मन्थरा बोली—) 'मुझसे आप क्या पूछे जा रही हैं ? आप क्या अबतक भी नहीं समझ पाईं ? अजी ! अपना भला-बुरा तो पशु-तक भी पहचानता है (फिर न जाने आप ही क्यों नहीं समझ पा रही हैं ?) (१) (यहाँ अयोध्यामें) एक पखवाड़ेसे राजतिलककी तैयारियाँ होती चली आ रही हैं और आपको आज समाचार मिल रहा है मेरे मुँहसे। मैं तो आपके राजमें खा-पहन रही हूँ इसलिये मुझे सच्ची बात कह डालनेमें किसका डर पड़ा है ? (२) यदि इसमें मैंने कुछ भी झूठ बनाकर कहा हो तो विधाता ही मुझे इसका दण्ड दें। (आप यह पक्का जान लीजिए कि) यदि कल कहीं रामका राजतिलक हो गया तो समझो विधाताने आपके लिये विपत्तिका बीज बो दिया (आपपर विपत्ति आई धरी है)। (३) मैं लकीर खींचकर पक्की बात कहे डालती हूँ भामिनी ! कि आप तो अब दूधकी मक्खी बना डाली गईं (आप कहींकी नहीं रह गईं)। यदि आप और आपके पुत्र दोनों रामकी सेवा-टहल करते रहे तब तो घरमें रह पानेका ठिकाना हो सकेगा नहीं तो दूसरा कोई चारा नहीं रह जायगा। (४) कद्रूने विनताको जैसी साँसत दी थी वैसी ही

१. राजा चित्रकेतुकी सौ रानियोंमेंसे केवल एक रानीके पुत्र हुआ। इससे शेष रानियाँ जल उठीं। सौतियाडाहसे उन्होंने यह समझकर उस बालकको विष देकर मार डाला कि आगे चलकर यही राजा होगा और इसकी माता राजमाता होगी।

१८७ भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः। राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते ॥
१८८-८९ शोचामि दुर्मतिं त्वं ते का हि प्राज्ञा प्रहर्षयेत्। अरेः सपत्नीपुत्रस्य वृद्धिं मृत्योरिवागताम् ॥ वा०रा०
१९० दैवयोगाद्धि कैकेयी मंथरा परिपृच्छति। मदीयं शपथं शीघ्रं वृत्तान्तं वद मंथरे ॥ —भरद्वाजरा०
१९५-९७ यदा च रामः पृथिवीमवाप्स्यते प्रभूतरत्नाकरशैलसंयुताम्।
तदा गमिष्यस्यशुभं पराभवं सहैव दीना भरतेन भामिनि ॥ —वाल्मीकीयरामायण

दो०—कद्रू, विनतहिं दीन्ह दुख, तुमहिं कौसिला देव।
भरत बंदि-गृह सेइहहिं, लखन, राम-के नेव ॥ १९ ॥

२०० कैकय-सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु, सहमि सुखानी।
तन पसेउ, कदली-जिमि काँपी। कुबरी, दसन जीभ तब चाँपी। (१)
कहि-कहि कोटिक कपट-कहानी। धीरज धरहु, प्रबोधिसि रानी।
कीन्हिसि कठिन, पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठि कुकाठू। (२)
फिरा करम, प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ, मानि मराली।
सुनु मंथरा ! बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी। (३)
दिन-प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहिं, मोह-वस अपने।
काह करौं सखि ! सूध सुभाऊ। दाहिन-बाम न जानउँ काऊ। (४)

सांसत कौशल्या आपको देंगी[1] और भरत भी बंदीगृह (जेलखाने)-में पड़े-पड़े सड़ा करेंगे। लक्ष्मण अकेले रामके पल्ले पड़े रह जायँगे (वे रामके साथ बने रहेंगे)' ॥ १९ ॥ राजा कैकयकी पुत्री (कैकेयी), उस मन्थराकी कड़वी-कड़वी बातें सुन-सुनकर सहमकर ऐसी सूख गई कि उसके मुँहसे बोल-तक नहीं निकल पा रहा था। उसके शरीरसे पसीना छूट चला और वह केलेके खंभेके समान थर-थर काँपने लगी। तब उस कुबड़ी मन्थराने (ढोंग रचकर) अपनी जीभ दाँतों तले काट ली (कि मैंने जो कहा उसका भला-बुरा मुझपर बीते) (१) और फिर बहुत-सी मनगढ़न्त कहानियाँ सुना-सुनाकर रानीको बहुत उलटा-सीधा समझाकर धीरज बँधाया। (कैकेयीके) भाग्यने ऐसा पलटा खाया कि उसे मन्थराके कुचक्रकी सारी बातें ठीक और हितकर जान पड़ने लगीं (और वह इस प्रकार उसकी बड़ाई करने लगी) मानो कोई किसी बगुलीको हंसिनी कह-कहकर उसकी सराहना करने लगा हो। (कैकेयी कहती जा रही थी—) 'मन्थरा ! तू जो कह रही है सच कह रही है। मेरी दाहिनी आँख कई दिनसे नित्य फड़के जा रही है। (२) प्रतिदिन रातको बुरे-बुरे सपने दिखाई देते रहते हैं (क्योंकि उसे भरतके कटुवचन और पति दशरथका मरण सहना था)। मेरी मूर्खता तो देख कि मैंने तुझे आज-तक बताया नहीं। (३) क्या बताऊँ सखी ! मैं तो इतनी भोली-भाली हूँ कि मैं किसीके दाएँ-बाएँका फेर (छल-कपट) भाँप ही नहीं पाती हूँ (४) मैंने तो अपनी जानमें आजतक

१. नागों (सर्पों)-की माता कद्रू और गरुडकी माता विनता आपसमें बहुत डाह करती थीं। एक दिन विनताने कद्रूसे कहा—'सूर्यके घोड़ोंकी पूँछ श्वेत है।' कद्रूने कहा—'नहीं, काली है'। निश्चय हुआ कि जिसकी बात सच हो वह दूसरीकी दासी बन रहे। कद्रूने अपने पुत्र नागोंसे कहा तो वे सूर्यके घोड़ोंकी पूँछमें जा लिपटे और वह काली दिखाई पड़ने लगी। विनताको कद्रूकी दासी बन जाना पड़ा। फिर विनताके पुत्र गरुडको देखकर जब सर्प भाग खड़े हुए तब कहीं विनताको दासत्वसे मुक्ति मिल पाई।

१९७-९९ भरतो राघवस्याग्रे किंकरो वा भविष्यति। विवास्यते वा नगरात् प्राणैर्वा हास्यतेऽचिरात् ॥
त्वं तु दासीव कौशल्यां नित्यं परिचरिष्यसि। —अध्यात्मरामायण

२००-२०१ एवमुक्ता तु कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना। दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मंथरामिदमब्रवीत् ॥वाल्मी०

दो०—अपने चलत न आजु-लगि , अनभल काहुक कीन्ह ।
केहि अघ एकहि बार मोहि , दैउ दुसह दुख दीन्ह ॥२०॥

२१० नैहर जनम भरब बरु जाई । जियत, न करब सवत सेवकाई ।
अरि - बस दैउ जियावत जाही । मरन नीक, तेहि जीव न चाही । (१)
दीन बचन कह बहु विधि रानी । सुनि कुबरी, तिय - माया ठानी ।
अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुख सोहाग तुम-कहँ दिन दूना । (२)
जेहि राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि यह फल परिपाका ।
जब - तें कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर, नींद न जामिनि । (३)
पूछेउँ गुनिन्ह, रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं, यह साँची ।
भामिनि ! करहु, त कहउँ उपाऊ । हइ तुम्हरी सेवा-बस राऊ । (४)

किसीका बुरा नहीं चीता पर न जाने किस पापसे विधाता एक साथ मुझे ऐसा भयंकर दुःख देनेपर तुला बैठा है' ॥ २० ॥ (कैकेयी कहती जा रही थी—) 'मैं अपने मैके जाकर भले ही सारा जीवन बिता डालूँ, पर जीते जी सौतके तलवे नहीं सहलाऊँगी (सौतकी सेवा नहीं करूँगी) । यदि विधाता किसीको शत्रुके अधीन रखकर जिलाता है तो उसके जीने-से उसका मर जाना कहीं अच्छा है ।' (१) रानी न जाने क्या-क्या बक-झक करती हुई ऐसी रोए-कलपे जा रही थी कि वह सुन-सुनकर कुबरीने (मन्थरा) और भी तिरिया-चरित्र ठान फैलाया । (वह कहने लगी—) 'आप अपना जी छोटा करके इतनी बिलखी क्यों पड़ रही हैं ? (घबराइए मत) आपका सुख-सुहाग तो दिन-दूना रात-चौगुना बढ़नेवाला है । (२) जिसने आपका बुरा चीता है अन्तमें उसीको अपनी करनीका फल भोगना पड़ेगा । देखो स्वामिनी ! जबसे मैंने उनके इस छल-कपटकी बात सुनी है तभीसे न तो मुझे दिनमें भूख लगती न रातको नींद । (३) मैंने गुणियों (ज्योतिषियों)-के पास जाकर पूछ देखा है और उन्होंने रेखा खींचकर (निश्चयपूर्वक) बताया है कि राजा होंगे तो भरत ही होंगे । सुनो भामिनी ! यदि (किसी प्रकार) आप कर सकें (करनेको तैयार हो जायँ) तो उपाय मैं बताए देती हूँ । देखिए ! राजा दशरथकी आपने इतनी सेवा (युद्धमें रथके पहिएकी किल्लीके बदले अपनी उँगली डालकर) की[1] है कि वे आपकी मुट्ठीमें हैं' । (४) (बात काटकर कैकेयी बोल उठी—) 'तू कहे तो

१. दण्डकारण्यमें वैजयन्त नगरके राजा तिमिध्वजसे शम्बरासुर और इन्द्रका युद्ध हुआ था । उस युद्धमें इन्द्रकी ओरसे लड़ने गए हुए महाराज दशरथके साथ कैकेयीने महाराजके मूर्च्छित होनेपर रथकी रक्षा करके महाराजके प्राण बचाए थे । उस समय राजा दशरथने कैकेयीको दो वर माँगनेको कहा था । कैकेयीने उन्हें थातीके रूपमें राजा दशरथके पास छोड़कर कहा कि आवश्यकता होगी तो माँग लूँगी । (पं० विजयानन्द त्रिपाठी) ।

२०८-९ मंथरे दैवयोगेन मे विपत्तिः समागता । स्वकीयं विविधं दुःखं प्रिये किन्ते ब्रवीम्यहम् । पुल०रा०
२१० ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सपत्न्याः पराभवः ॥ —अध्यात्मरामायण
२१७ मयोच्यमानं यदि ते श्रोतुं छन्दो विलासिनि । श्रूयतामभिधास्यामि श्रुत्वा चैतत् विधीयताम् ॥ वा०रा०

दो०—परउँ कूप तुव वचन-पर, सकौं पूत - पति त्यागि।
कहसि, मोर दुख देखि बड़, कस न करब हित-लागि ॥२१॥
२२० कुवरी करि कवुली कैकेई। कपट - छुरी उर - पाहन टेई।
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तिन वलि-पसु जैसे। (१)
सुनत बात मृदु, अंत कठोरी। देति मनहु मधु, माहुर घोरी।
कहइ चेरि, सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि! कहिहु कथा मोहिं-पाहीं। (२)
दुइ वरदान भूप - सन थातीं। माँगहु आज, जुड़ावहु छाती।
सुतहि राज, रामहिं वनवासू। देहु, लेहु सब सवति-हुलासू। (३)
भूपति राम - सपथ जब करई। तव माँगेहु, जेहि वचन न टरई।

मैं कूएँमें कूद सकती हूँ, पति और पुत्रको भी छोड़ दे सकती हूँ। जब तू मेरा इतना बड़ा संकट काटनेवाला (उपाय) वतावेगी, तो भला अपने हितके लिये वह कर डालनेमें मैं क्यों हिचकूँगी ?' ॥२१॥ वह कुवरी मन्थरा उस वेचारी कैकेयीको कुवलि (जिसे वलि नहीं बनाना चाहिए उस भोली-भालीको वलिका जीव) बनाकर अपने हृदयके पत्थरपर कपटकी छुरी लेकर (पैनी करनेके लिये) उसपर शान चढ़ाने लगी[१] (मन्थराने भोली-भाली कैकेयीको अपनी कपट-भरी कुटिल बातोंसे ऐसा काम करनेके लिये तैयार कर लिया जो कैकेयीसे नहीं कराना चाहिए था)। (रानी कैकेयी सचमुच इतनी भोली थी कि मन्थराके फेरमें) अपने सिरपर आनेवाले संकट (दशरथका प्राण-त्याग, भरतकी भिड़की)-को उसी प्रकार नहीं समझ पा रही थी जैसे वलि किया जानेवाला पशु (अपनी मृत्यु निकट जानकर भी) हरी-हरी घास चरनेमें लगा रहता है। (१) (मन्थराकी) बातें सुननेमें तो वड़ी मीठी लगती थीं, पर उनका परिणाम इतना अधिक कठोर (भयंकर) था मानो वह मधु (शहद)-में घोलकर विष पिलाए डाल रही हो। वह दासी (मन्थरा) कहने लगी—'देखो स्वामिनि ! आपने मुझे (एक बार) एक कथा सुनाई थी, वह आपको स्मरण है या नहीं ? (२) आपके दो वर राजा (दशरथ)-के पास धरोहर रक्खे हुए हैं। बस आज (अच्छा अवसर हाथ लग गया है), आप वे ही वर माँगकर अपनी छाती ठंढी कर लीजिए (अपनी कसक मिटा लीजिए)। (एक वरसे) पुत्रको राज और (दूसरेसे) रामको वनवास दिलाकर आप अपनी सौत (कौसल्या)-का सारा आनन्द छीन धरिए। (३) (और देखिए) ये वरदान तभी माँगिएगा, जब रामकी सौगंध राजा दशरथ ले लें जिससे वचन टलनेका अवसर ही न बचा रह जाय। (देखिए !) यह काम आज ही रातको हो जाना चाहिए क्योंकि आजकी रात जहाँ बीती कि सारा काम चौपट

१. करि कवुली कैकेयी : कैकेयीको वलि चढ़ानेके लिये क़बूल किया हुआ (मनौती माना हुआ) जीव बनाकर। 'क़बूली' करना=मनौती मानना; किसी जीव या वस्तुकी वलि देनेके लिये किसी देवता आदिके सामने कवूल करना (स्वीकार करना, मनौती मानना)।
करि कवुला कैकेयी : कैकेयीको कपिला (सीधी गौ) बनाकर उसके वधके लिये अपने हृदयके पत्थरपर कपटकी छुरी पैनाने लगी। [उज्जैनकी प्रतिका यह पाठ अधिक संगत और स्पष्ट है।] देखो : जिमि मलेच्छ-बस कपिला गाई।

२१८-१९ श्रुत्वैवं वचनं तस्या मंथरायास्तु कैकयी। कथयस्व ममोपायं मन्थरामिदमब्रवीत्॥वा०रा०
२२०-२१ एवमुक्ता तदा देव्या मंथरा पापदर्शिनी। रामार्थमुपहिंसन्ती कैकेयीमिदमब्रवीत्॥
२२३ कथैपा तु तव स्नेहान्मनसा धार्यते मया। रामाभिषेकसंभारान्निगृह्य विनिवर्तय॥
२२५ तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्। प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥वा०रा०

होइ अकाज, आज निसि बीते। बचन मोर, प्रिय मानहु जी-ते। (४)
दो०—बड़ कुघातु करि, पातकिनि, कहेसि, कोप-गृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु॥ २२॥

२३० कुबरिहिं रानि, प्रान-प्रिय जानी। बार-बार बड़ि बुद्धि बखानी।
तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात-कइ, भइसि अधारा। (१)
जौं बिधि पुरब मनोरथ काली। करौं तोहि चख-पूतरि आली।
बहु बिधि चेरिहिं आदर देई। कोप-भवन गवनी कैकेई। (२)
बिपति-बीज, बरषा-रितु-चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकई-केरी।
पाइ कपट-जल, अंकुर जामा। बर दोउ दल, दुख फल परिनामा। (३)
कोप-समाज साजि सब सोई। राज करत, निज कुमति बिगोई।
राउर नगर कोलाहल होई। यह कुचालि कछु जान न कोई। (४)

हुआ। (आज रातमें ही दोनों वरदान माँग लो, तभी काम बनेगा। नहीं तो) रात बीतनेपर (तिलक हो चुकनेपर) किसीके कुछ किए-धरे न बनेगा। मेरी यह बात आप अपने हृदयसे भी अधिक प्रिय समझिएगा। (४) पापिनी मन्थराने बड़ी कुघात करके (खोटा दाँव खेलकर, कुचक्र रचकर) रानी-को प्रेरणा दे डाली कि अब आप रूठकर कोपभवनमें जा लेटिए। और देखिए! सब काम बड़ी सावधानी-से साधिएगा। ऐसा न हो कि राजा दशरथके बहकावेमें आकर सहसा उनकी बातोंपर विश्वास कर बैठें'॥ २२॥ रानीने कुबरी (मन्थरा)-को प्राणोंके समान प्यारी समझकर बार-बार उसकी अनोखी सूझ-बूझकी सराहना करते हुए कहा—'संसारमें तुझसे बढ़कर मेरा भला चाहनेवाला कोई दूसरा है नहीं। आज (मुझ) बही जाती हुईके लिये तू बड़ा सहारा बनकर चली आई (तूने मेरा जीवन नष्ट होते-होते बचा लिया)। (१) देख सखी! यदि विधाताने कल मेरी कामना पूरी कर डाली तो मैं तुझे अपनी आँखोंकी पुतली बनाकर (आदरसे) रक्खूँगी।' अनेक प्रकारसे उस दासी (मंथरा)-की पीठ ठोककर (उसका सम्मान करके) कैकेयी झट कोपभवनमें जा लेटी (२) आनेवाला संकट ही वह बीज था जिसे अंकुरित करनेके लिये दासी (मंथरा) ही वर्षा ऋतु बन गई। कैकेयीकी कुबुद्धि ही भूमि थी। दासीके कपट (-के व्यवहार)-का जल पाकर, दोनों वरदान ही उस विपत्तिके बीजके अँखुएके दो दल फूट निकले थे जिसमें अन्तमें दुःखके फल लगनेवाले थे। (३) वह (रानी) कोप (रूठने)-का सारा कुसाज बनाकर आसन-पाटी लेकर कोपभवनमें जा लेटी। वह राज-सुख भोगती हुई भी अपनी ही दुष्ट बुद्धिसे अपना नाश कर डालनेपर उतारू हो चली। राजभवन और नगरमें इतनी धूम-धाम मची हुई थी कि इस कुचाल (कुचक्र)-की किसीको भनक-तक न लग पाई। (४) नगरके

२२८-२२९ अतः शीघ्रं प्रविश्याद्य क्रोधागारं रुषान्विता। विमुच्य सर्वाभरणं सर्वतो विनिकीर्य च॥
भूमावेव शयाना त्वं तूष्णीमातिष्ठ भामिनि। यावत्सत्यं प्रतिज्ञाय राजाऽभीष्टं करोति ते॥
२३०-२३३ तामाह कैकयी दुष्टा कुतस्ते बुद्धिरीदृशी। एवं त्वां बुद्धिसम्पन्नां न जाने वक्रसुंदरि॥
भरतो यदि राजा मे भविष्यति सुतः प्रियः। ग्रामाञ्छतं प्रदास्यामि मम त्वं प्राणवल्लभा॥
इत्युक्त्वा कोपभवनं प्रविश्य सहसा रुषा। —अध्यात्मरामायण
२३६-२३७ विमुच्य सर्वाभरणं परिकीर्य समंततः। भूमौ शयाना मलिना मलिनाम्बरधारिणी॥वाल्मी०

दो०—प्रमुदित पुर-नर-नारि सब , सजहिं सुमंगलचार ।
ऐक प्रबिसहिं, ऐक निर्गमहिं , भीर भूप - दरबार ।।२३।।

२४० बाल - सखा, सुनि हिय हरषाहीं । मिलि दस-पाँच राम - पहँ जाहीं ।
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी । पूछहिं कुसल - खेम मृदु बानी । (१)
फिरहिं भवन, प्रिय आयसु पाई । करत परसपर राम - बड़ाई ।
को रघुबीर - सरिस संसारा । सील - सनेह निवाहन - हारा । (२)
जेंहि - जेंहि जोनि करम-बस भ्रमहीं । तहँ - तहँ ईस, देउ यह हमहीं ।
सेवक हम, स्वामी सिय - नाहू । होउ नात यह ओर - निबाहू । (३)
अस अभिलाष, नगर सब काहू । कैकय - सुता - हृदय अति दाहू ।
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच - मते, चतुराई । (४)

सभी स्त्री-पुरुष आनन्दमें फूले हुए मंगलाचारकी सारी तैयारियाँ करनेमें जी-जानसे जुटे हुए थे। राजभवनमें इतनी भारी भीड़ हो चली थी कि बहुतसे लोग भीतर चले आ रहे थे तो बहुतसे बाहर निकले चले जा रहे थे ।। २३ ।।

रामके बचपनके जिन साथियोंने यह (राजतिलकका) समाचार सुना था, वे हृदयमें फूले नहीं समा रहे थे। वे भी दस-दस पाँच-पाँचकी टोलियाँ बना-बनाकर रामके पास (उन्हें बधाई देने) चले आ रहे थे। उनका यह प्रेम (आत्मीयत्व) देख-देखकर प्रभु (राम) सबका बड़ा आदर करते जा रहे थे और मधुर स्वरमें उनका कुशल-मंगल पूछते जा रहे थे। (१) और फिर वे सब भी रामकी मधुर आज्ञा पा-पाकर अपने घर लौटते हुए आपसमें रामकी बड़ाई करते नहीं अघा रहे थे। वे कहते जा रहे थे—'बताओ ! रामके समान शील और स्नेहका निर्वाह करनेवाला संसारमें दूसरा होगा कौन ? (२) भगवान् शंकरसे यही कामना है कि वे हमारे कर्मके अनुसार हमें जिस-जिस योनिमें भी जन्म देते रहें, उस-उसमें हम रामके सेवक बने रहें (सीता-पति राम ही हमारे स्वामी हों) और उनसे हमारा यह नाता जीवनके अन्त-तक निभता चला जाय।' (३) (उनकी ही नहीं), नगरमें जिससे भी पूछो उसीके मनमें यही अभिलाषा बनी हुई थी। पर उस समय केवल कैकेयी ही ऐसी रह गई थी जो अपने हृदयमें इस उत्सवके कारण रह-रहकर कुढ़े चली जा रही थी। (सच कहा गया है कि) कुसंगति पाकर कौन नहीं मटियामेट हो जाता। जब बुद्धि बिगड़ जाती है तब उसमें विवेक

२३८-२३९ अयोध्यावासिनः सर्वे मंगलाचारसंयुताः । प्रविश्य मन्दिरं राज्ञो निर्गच्छन्ति मुदान्विताः ।।
२४०-२४१ रामाभिषेकमाकर्ण्य प्रसन्नाः पंच सप्त च । सखायो रामचन्द्रस्य व्रजन्ति हरिसन्निधिम् ।।
तत्प्रेम निर्मलं दृष्ट्वा करोत्यत्यादरं प्रभुः । गिरा मधुरया तेषां कुशलं परिपृच्छति ।।
२४२-२४३ रामाज्ञया निवर्तन्ते मंदिरं च परस्परम् । रामचन्द्रप्रशंसां च कुर्वन्तः सखि सुन्दराः ।।
श्रीरामसदृशः कोपि प्रेमनिर्वाहको भुवि । नाभून्न भावी नास्त्येव सत्यशीलनिधिः प्रभुः ।।वा.रा.
२४४-२४५ कर्माधीनं यत्र कुत्रापि जीवकार्टो जन्मास्माकमत्यद्भुतं स्यात् ।
स्वामी सीतानायकः सेवकाः स्मः सर्वत्रेत्थं शंकरं प्रार्थयन्ते ।। —वशिष्ठरामायण
२४६-२४७ धीरोऽत्यन्तदयान्वितोऽपि सुगुणाचारान्वितो वाथवा ।
नीतिज्ञो विधिवाददेशिकगुरो विद्याविवेकोऽथवा ।।
दुष्टानामतिपापभावितधियां संगं सदा चेद् भजेत् ।
तद्बुद्ध्या परिभावितो व्रजति तत्साम्यं क्रमेण स्फुटम् ।। —अध्यात्मरामायण

दो०—साँझ समय, सानंद नृप , गयउ कैकई - गेह।
गवन निठुरता-निकट किय , जनु धरि देह सनेह ॥ २४ ॥

२५० कोप-भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय-बस अगहुड़ परइ न पाँऊ।
सुरपति बसइ बाँह - बल जाके। नर-पति सकल रहहिं रुख ताके। (१)
सो सुनि तिय-रिस गयउ सुखाई। देखहु काम - प्रताप - बड़ाई।
सूल, कुलिस, असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन - सर मारे। (२)
सभय नरेस प्रिया - पहँ गयऊ। देखि दसा, दुख दारुन भयऊ।
भूमि - सयन, पट मोट पुराना। दिये डारि तन - भूषन नाना। (३)
कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी। अन - अहिवात सूच जनु भावी।
जाइ निकट, नृप कह मृदु बानी। प्रानप्रिया ! केहि हेतु रिसानी। (४)

(भले बुरेका ज्ञान) नहीं रह जाता । (४) संध्या होते ही कैकेयीके भवनकी ओर राजा दशरथ ऐसे आनन्दमें मगन हुए चले जा रहे थे मानो स्नेह ही शरीर धारण करके निष्ठुरताके पास चला जा रहा हो (दशरथ मानो स्नेह हों और कैकेयी निष्ठुरता हो) ॥ २४ ॥

राजा दशरथने ज्यों ही सुना कि कैकेयी कोपभवनमें जा बैठी हैं तो वे एकाएक सहम उठे। वे ऐसे सकपका उठे कि उनका पैर ही आगे नहीं पड़ पा रहा था । स्वयं इन्द्र जिसकी भुजाओंके बलके भरोसे स्वर्गका राज्य चलाते हों, सब राजा बैठे-बैठे जिसका मुँह ताकते हों (कि हमें कुछ आज्ञा दें और हम इनकी सेवा करें), (१) वे ही (राजा दशरथ) केवल पत्नीके रूठनेकी बात सुनते ही सूख चले । कामदेवके प्रतापकी महिमा तो देखिए कि जो (राजा दशरथ) शूल, वज्र और खड्गका वार झेलनेमें भी आगा-पीछा नहीं करते थे, उन्हें ही आज कामदेवने फूलके बाणोंसे घायल कर डाला। (२) राजा (दशरथ) बहुत डरते-डरते जब अपनी प्रिया कैकेयीके पास पहुँचे तो उसकी दशा देखते ही उनका जी सन्न रह गया । (वे देखते क्या हैं कि वह (कैकेयी) मोटा-सा पुराना वस्त्र लपेटे धरतीपर पसरी पड़ी है । उसने शरीरके सब आभूषण उतार फेंके हैं । (३) उस दुर्बुद्धि कैकेयीका यह अशुभ वेष ऐसा लग रहा था मानो वह वेष भविष्यमें उसके विधवा होनेकी सूचना दिए डाल रहा हो । राजा दशरथ बढ़कर उसके पास जा बैठे और बड़े प्रेमसे पूछने लगे—'कहो प्रिये ! तुम रूठी क्यों पड़ी हो ? (४) बताओ रानी ! तुम क्यों रूठी पड़ी हो ?' ऐसा कहकर ज्यों हो राजा दशरथने

२४८-२४९ ततो दशरथो राजा रामाभ्युदयकारणात् । आदिश्य मंत्रिप्रकृतीः सानंदो गृहमाविशत् ॥
२५० पप्रच्छ दासीनिकरं तत्रादृष्ट्वा नृपः प्रियाम् । ता ऊचुः क्रोधभवनं प्रविष्टा नैव विद्महे॥अध्या०
२५२-२५३ शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां येनाक्रियंत सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ —भर्तृहरिशतक
२५४ तत्र तां पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम् । प्रतप्त इव दुःखेन सोपश्यज्जगतीपतिः ॥
२५५-२५६ अथैवमुक्त्वा वचनं सुदारुणं निधाय सर्वाभरणानि भामिनी ।
असंस्कृतामास्तरणेन मेदिनीं तदाधिशिश्ये पतितेव किन्नरी ॥
२५७ कामी कमलपत्राक्षीमुवाच वनितामिदम् । न तेऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संश्रुतम्॥वा०रा०

छंद—केहि हेतु रानि ! रिसानि, परसत पानि, पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग - भामिनि, विषम भाँति निहारई॥
२६० दोउ बासना रसना, दसन बर, मरम ठाहरु देखई।
तुलसी, नृपति - भवितव्यता बस - काम - कौतुक लेखई॥ [१]

सो०—बार बार कह राउ, सुमुखि, सुलोचनि, पिक - बचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि ! निज कोप - कर॥२५॥

अनहित तोर प्रिया ! केइ कीन्हा। केइ दुइ सिर, केहि जम चह लीन्हा।
कहु केहि रंकहिं करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहिं निकासउँ देसू। (१)
सकौं तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर - नारी।
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मन तव आनन - चंद चकोरू। (२)
प्रिया ! प्रान, सुत, सरबस मोरे। परिजन, प्रजा, सकल बस तोरे।
जौं कछु कहउँ कपट करि तोहीं। भामिनि ! राम-सपथ सत मोहीं। (३)

उसकी ओर हाथ बढ़ाया कि उसने उनका हाथ झटक दिया। वह ऐसे घूरने लगी मानो क्रोधसे भरी हुई कोई ऐसी साँपिन क्रूर दृष्टिसे देखे जा रही हो जिसकी दोनों इच्छाएँ (कि भरत राजा हों और रामको वनवास मिले) ही दो जीभें हों, और दोनों वर (माँगें) ही उसके पैने दाँत हों और वह (राजाको डसनेके लिये) कोई मर्म-स्थान (कोमल स्थान, दाँवें) खोजनेकी ताक लगा रही हो। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय दशरथका सारा भविष्य ही कामदेवके हाथका खिलौना बना दिखाई दे रहा था (कैकेयीके सौन्दर्यपर रीझे रहनेके कारण दशरथका भविष्य बिगड़ा जा रहा था)। [१] राजा दशरथ बार-बार उसे यही कह-कहकर मनाए जा रहे थे—'हे सुमुखि ! हे सुलोचनि ! हे पिकवचनी ! हे गज-गामिनी ! यह तो बताओ कि तुम आज रूठी क्यों पड़ी हो ? ॥ २५ ॥ प्यारी ! यह तो बताओ कि तुम्हारा अपमान कौन कर बैठा है ? ऐसा कौन अभागा है जो अपने एक सिरके दो करा डालनेपर उतारू है ? ऐसा कौन है जिसे यमराज फाँस ले जानेपर तुला हुआ है ? (कौन मरना चाहता है ?) तुम जिस दरिद्रको कहो उसे अभी राजा बना डालूँ और जिस राजाको कहो उसे अभी यहाँसे देशनिकाला दे डालूँ। (१) यह समझ लो कि यदि तुम्हारा शत्रु कोई देवता भी हो तो उसे भी ढेर कर डाल सकता हूँ फिर कीड़ों-मकोड़ोंके समान इन बेचारे साधारण नर-नारियोंकी तो गिनती ही क्या है ? देखो सुन्दरी ! तुम तो भली भाँति जानती ही हो कि मेरा मन तो सदा तुम्हारे मुखचन्द्रका चकोर ही बना रहता है (मैं सदा तुम्हें जी जानसे प्यार करता रहा हूँ)। (२) प्रिये ! (तुम जानती हो कि) मेरे प्राण, पुत्र, मेरा सर्वस्व, मेरे कुटुम्बी और मेरी प्रजा सब तुम्हारी ही मुट्ठीमें हैं। प्यारी भामिनी ! मुझे रामकी सौ-सौ सौगन्ध है यदि मैंने तुमसे तनिक भी कपट

२५८ इत्युक्तो भयसंत्रस्तो राजा तस्याः समीपगः। उपविश्य शनैर्देहं स्पृशन् वै पाणिनाब्रवीत्॥
२६२-६३ किं शेषे वसुधापृष्ठे पर्यंकादीन् विहाय च। मां त्वं खेदयसे भीरु यतो मां नावभाषसे॥
२६४ का वा तवाहितं कर्ता नारी वा पुरुषोऽपि वा। स मे दंड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः॥अध्या०
२६५ दरिद्रः को भवेदाढ्यो द्रव्यवान् वाप्यकिञ्चनः। —वाल्मीकीयरामायण
२६७ जानासि त्वं ममस्वान्तं प्रियं मां स्ववशे स्थितम्। —अध्यात्मरामायण
२६८-२७१ मम प्राणात् प्रियतरो रामो राजीवलोचनः। तस्योपरि शपे ब्रूहि त्वद्धितं तत्करोम्यहम्॥अ०रा०

२७० बिहँसि माँगु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता।
घरी-कुघरी[1] समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू। (४)
दो०—यह सुनि, मन गुनि सपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति, बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फंद ॥२६॥
पुनि कह राउ, सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि, मृदु, मंजुल बानी।
भामिनि! भयउ तोर मन-भावा। घर-घर, नगर, अनंद-बधावा। (१)
रामहिँ देउँ कालि जुवराजू। सजहि सुलोचनि! मंगल साजू।
दलकि उठेउ, सुनि, हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू। (२)
ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोर-नारि जिमि प्रगटि न रोई।
लखहि न भूप कपट-चतुराई। कोटि-कुटिल-मनि गुरू पढ़ाई। (३)

करके यह बात कही हो। (३) इसलिये तुम जो चाहो मुझसे माँग लो और अपनी इस सलोनी देहपर सब आभूषण सजा डालो। कभी मनमें कुछ समय-कुसमयका भी तो ध्यान कर लिया करो। इसलिये प्रिये! अपना यह कुवेष तत्काल बदल डालो।' (४) यह सुनकर और विचारकर कि अब तो इन्होंने बहुत बड़ी शपथ (रामकी सौगन्ध) ले ली है, वह मूर्ख कैकेयी उठकर हँसती हुई इस प्रकार उठा-उठाकर गहने पहनने लगी मानो कोई भीलनी मृग देखकर उसे फँसानेके लिये फंदा (जाल) ठीक करने लग रही हो ॥ २६ ॥ कैकेयीको सुहृद् (मित्र, हितैषी, भला) जानकर राजा बड़े प्रेमसे पुलकित होकर बड़ी कोमल और मधुर वाणीमें कहने लगे—'लो भामिनी! अब तो तुम्हारी मनचाही बात हो गई न! नगरमें घर-घर आनन्दके बधावे बजे चले जा रहे हैं (१) क्योंकि मैं कल ही रामको युवराज बनाए दे रहा हूँ। इसलिये सुलोचनी! तुम अपने सब मंगल साज भली भाँति सजा डालो।' यह सुनना था कि उसका कठोर हृदय वैसे ही तड़क उठा (वह भड़क उठी) जैसे पका हुआ बलतोड़ फोड़ा छूते ही फूट उठता है। (२) पर इतना बड़ा कष्ट (जलन) भी वह हँसीमें वैसे ही उड़ा ले गई जैसे चोरकी स्त्री (चोरके पकड़े जानेपर) खुलकर सबके सामने नहीं रो पाती (जिससे लोग यह न समझ बैठें कि यह भी चोर है या चोरीमें सम्मिलित है किन्तु मनसे तो अपने चोर पतिके पकड़े जानेपर रोती ही है। इसी प्रकार कैकेयी भी प्रत्यक्ष तो हँस रही थी पर उसका मन तो भीतर ही भीतर कचोटे ही जा रहा था)।[2] कैकेयीकी यह कपट-भरी चाल राजा दशरथ न ताड़ पाए क्योंकि उसे तो करोड़ों धूर्तोंकी सरदारनी गुरु (मन्थरा)-ने सिखा-पढ़ाकर पक्का कर रक्खा

१. कुघरी घरी।
२. चोरकी स्त्रीको सब कहते रहते हैं 'यह चोरकी स्त्री है', पर वह प्रत्यक्ष रूपसे तो यह अपमान हँसकर टाल जाती है और सह लेती है पर पीछे यह सोच-सोचकर अवश्य रोती रहती है कि सब मुझे चोरकी स्त्री कहते हैं। मेरे घरवालोंने मुझे किसके साथ ला बाँधा। [यह अर्थ अधिक स्पष्ट है।]

२७२ तथोक्ता सा समाश्वस्ता वक्तुकामा तदोत्थिता ॥ —वाल्मीकीयरामायण
२७५-२७६ स्वमातुरधिकां नित्यं यस्ते भक्तिं करोति वै। तस्याभिषेको रामस्य श्वो भविष्यति शोभने ॥
२७७-२७८ इत्युक्ते पार्थिवे तस्मिन् किंचिन्नोवाच सा शुभा। मुंचन्ती दीर्घमुष्णं तु रोषाच्छ्वासं मुहुर्मुहुः॥नृ.पु.

२८० जद्यपि नीति - निपुन नर - नाहू। नारि - चरित - जलनिधि अवगाहू।
कपट - सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन - मुँह मोरी। (४)
दो०—माँगु - माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु, न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ।।२७।।
जानेउँ मरम, राउ हँसि कहई। तुमहिं कोहाब परम प्रिय अहई।
थाती राखि, न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहिं, भोर सुभाऊ। (१)
झूठेहु हमहिं दोस जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू।
रघुकुल - रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु, बचन न जाई। (२)
नहिं असत्य - सम पातक - पुंजा। गिरि - सम होहिं कि कोटिक गुंजा।
सत्य - मूल सब सुकृत सुहाये। वेद - पुरान - विदित, मनु गाये। (३)

था। (३) यद्यपि राजा दशरथ भी नीतिमें बड़े निपुण थे (सब प्रकारकी नीति समझते थे) किन्तु स्त्रीका चरित्र तो अथाह समुद्र है (उसका कौन पार पा सकता है ? उसे कौन समझ पा सकता है)। कपटका प्रेम दिखाती (ऊपरी प्रेमका नाट्य करती) हुई और आँख-मुँह तिरछे करके (बड़े हाव-भावसे) हँसकर वह बोली—(४) प्रियतम ! आप जब देखो तब माँग-माँग तो कहे जाते हैं, पर लेने-देनेके नाम कहीं कुछ नहीं। (आपने न जाने कबसे) मुझे दो वर देनेको कह रक्खा है पर वे भी मिल पावेंगे या नहीं इसमें भी सन्देह हुआ जा रहा है' ।। २७ ।। राजा (दशरथ)-ने हँसकर कहा—'अच्छाऽऽऽ ! अब मैं समझ पाया हूँ कि तुम्हें बात-बातपर रूठनेमें बड़ आनन्द मिला करता है (इसलिये बिना रूठे तुम यह बात भी नहीं कहना चाह रही थी)। तुमने तो वे वर स्वयं थाती बनाकर मेरे पास रख छोड़े थे, पर माँगे तुमने भी कभी नहीं। मेरा भी कुछ ऐसा भोला स्वभाव कि वह बात ही मेरे ध्यानसे उतर गई। (१) इसलिये मुझे झूठे ही दोष मत लगाओ। तुम चाहो तो अब दोके बदले चार (वर) माँग सकती हो। रघुकुलकी तो सदासे यह रीति बनी चली आ रही है कि प्राण जायँ तो जायँ पर जो बात एक बार मुँहसे निकल गई वह पत्थरकी लकीर बन गई (वह पूरी करके ही छोड़ते हैं)। (२) संसारमें पापोंके समूह भी वचन देकर नकार जानेके समान (बुरे) नहीं हो सकते (असत्य तो सब पापोंसे बढ़कर पाप है)। कहीं करोड़ों घुँघचियाँ (पापके समूह) इकट्ठी कर देनेसे भी पहाड़ (सत्य) बन पा सकता है ? (वास्तवमें) सत्य ही सारे पुण्योंकी जड़ (पुण्य देनेवाला) है। यह बात वेद और पुराणमें भी प्रसिद्ध है और मनुने भी यही बात कही है[1]। (३)

१. न हि सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातकं महत्। [सत्यसे बढ़कर धर्म और झूठसे बड़ा कोई पाप नहीं।]

२८० अश्वप्लुतं वासवगर्जितं च स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्।
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ।। —सुभाषित

२८१ इति ब्रुवन्तं राजानं शपतं राघवोपरि। शनैर्विमृज्य नेत्रे सा राजानं प्रत्यभाषत ।।

२८२-२८३ पूर्वं देवासुरे युद्धे मया त्वं परिरक्षितः। तदा वरद्वयं दत्तं त्वया मे तुष्टचेतसा ।।
तद् द्वयं न्यासभूतं मे स्थापितं त्वयि सुव्रत। —अध्यात्मरामायण

२८४ सत्यं च पालयन् सत्यसंधितो नैति विक्रियाम् ।।
प्राणबाधेष्वपि व्यक्तमार्यो नो यात्यनार्यताम् ।। —कामन्दकीयनीतिसार

२८८ न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।। —ब्रह्मवैवर्तपुराण

२८९ सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः। सत्येन वायवो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।सुभाषित

२६० तेहि - पर राम - सपथ करि आई। सुकृत - सनेह - अवधि रघुराई।
बात दृढाइ, कुमति हँसि बोली। कुमत-कुबिहँग[1]-कुलह जनु खोली। (४)
दो०—भूप - मनोरथ सुभग बन , सुख सुबिहंग - समाज।
भिल्लिनि-जिमि छाँड़न चहति, बचन भयंकर बाज ॥ २८ ॥
सुनहु प्रानप्रिय ! भावत जी - का। देहु एक बर, भरतहि टीका।
माँगौं दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ ! मनोरथ मोरी। (१)
तापस बेष, बिसेषि उदासी। चौदह बरिस राम बन-बासी।
सुनि मृदु बचन भूप - हिय सोकू। ससि-कर छुअत,बिकल जिमि कोकू। (२)
गयउ सहमि, नहिँ कछु कहि आवा। जनु सचान, बन झपटेउ लावा।
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहु तरु तालू। (३)
३०० माथे हाथ, मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोच, लाग जनु सोचन।

और फिर मैं तो रामकी सौगन्ध ले चुका हूँ। (तुम जानती हो कि) राम तो मेरे पुण्य और स्नेहकी सीमा हैं (राम ही मेरे सारे पुण्योंके फल हैं और रामसे बढ़कर मैं किसीसे स्नेह नहीं करता)।' इस प्रकार सब बात पक्की कराकर वह खोटी बुद्धिवाली कैकेयी हँसती हुई इस प्रकार बोली मानो उसने बुरे विचार-रूपी दुष्ट पक्षी (बाज)-की कुलही (आँखोंपरकी टोपी) उतार धरी हो (कि वह झपट्टा मार सके।) (बुरे विचार प्रकट करनेवाली हो) (४) राजाकी लालसा (कि रामका राजतिलक हो) ही सुन्दर वन था और (उससे प्राप्त होनेवाले) सुख ही (उस वनके) पक्षीगण थे (जिनपर झपट्टा मारनेके लिये) भीलनी कैकेयी अपने वचन (वर)-रूपी भयंकर बाज छोड़ देना चाह रही थी (कैकेयी वर माँगकर राजाकी लालसा और रामका राजतिलक पूर्ण होनेसे मिलनेवाला सुख सब नष्ट कर डालना चाह रही थी)॥ २८ ॥ वह कहने लगी—'हे प्राणप्यारे ! सुनिए। (जब आप वर देना ही चाहते हैं तो) मेरे मनको भानेवाला एक वर तो यह दे दीजिए कि (रामके बदले) भरतको राजतिलक हो। दूसरा वर मैं हाथ जोड़कर (नम्रतापूर्वक) माँगती हूँ (और प्रार्थना करती हूँ कि) मेरी यह कामना अवश्य पूरी कर दीजिए (१) कि तपस्वीका वेष बनाकर, विशेष रूपसे (राज्य, कुटुम्ब, परिजन और पुरजनोंसे) उदासीन होकर (सबको छोड़कर) राम चौदह वर्षके लिये वनमें जा रहें।' कैकेयीके ऐसे मधुर ढंगसे कहे हुए वचन सुनकर राजाके हृदयमें वैसी ही व्याकुलता उभड़ खड़ी हुई जैसे चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होते ही चकवा अकुला उठता है। (२) राजा दशरथ ऐसे सहम उठे कि उनसे कुछ कहते नहीं बन पड़ रहा था मानो वनमें किसी बटेरपर बाजने झपट्टा आ मारा हो। राजा दशरथके मुँहका रंग ऐसे उड़ गया मानो ताड़के पेड़पर बिजली आ टूट पड़ी हो। (३) वे माथा पकड़कर दोनों आँखें मूँदकर ऐसे शोकाकुल हो उठे मानो स्वयं शोक ही शरीर धारण करके शोकाकुल हो उठा हो। (वे सोचने लगे—) 'मेरे अभिलाषका कल्पवृक्ष फूल

१. कुबिहँग-कुमत। २. शिकार देखकर बाज़की आँखोंपर बँधी टोपी जब उतार दी जाती है तब वह झपटकर शिकार पकड़ लाता है।

२६०-६३ तेन वाक्येन संहृष्टा तमभिप्रायमात्मनः। व्याजहार महाघोरमभ्यागतमिवान्तकम् ॥-वाल्मीकीय
२६४ तत्रैकेन वरेणाशु भरतं मे प्रियं सुतम्। एभिः संभृतसंभारैर्यौवराज्येऽभिषेचय ॥ अध्या०
२६५-६६ द्वितीयेन वरेणाशु रामो गच्छतु दंडकान्। मुनिवेषधरः श्रीमान् जटावल्कलभूषणः ॥
चतुर्दशसमास्तत्र कंदमूलफलाशनः।
२६७-६८ स तद्राजावचः श्रुत्वा विप्रियं दारुणोपमम्। दुःखार्तो भरतश्रेष्ठ न किंचिद् व्याजहार ह ॥महारा०

मोर मनोरथ सुरतरु - फूला। फरत, करिनि-जिमि हतेउ समूला। (४)
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति-कै नेई। (४॥)
दो०—कवने अवसर का भयउ, गयउ नारि - बिस्वास।
जोग-सिद्धि-फल-समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥२९॥
ऐहि बिधि राउ मनहि मन झाँखा। देखि कुभाँति, कुमति मन माँखा।
भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं। (१)
जो सुनि सर - अस लाग तुम्हारे। काहे न बोलेहु बचन सँभारे।
देहु उतर, अरु करहु[1] कि नाहीं। सत्य - संध तुम रघुकुल - माहीं। (२)
देन कहेहु, अब जनि बर देहू। तजहु सत्य, जग - अपजस लेहू।
३१० सत्य सराहि, कहेहु बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना। (३)
सिबि, दधीचि, बलि जो कछु भाखा। तन-धन तजेउ, बचन-पन राखा।
अति कटु बचन कहति कैकेई। मानहु लोन जरे - पर देई। (४)

तो उठा था, पर जब फलनेका समय आया तो इस हथिनी (कैकेयी)-ने उसे जड़से उखाड़कर रौंद फेंका। (४) कैकेयीने अयोध्याको उजाड़कर विपत्तिकी अचल (पक्की) नींव ला डाली (सदाके लिये विपत्ति ला खड़ी की)। (५) क्या होनेवाला था, क्या हो गया ? पूरी स्त्री जातिपरसे आज मेरा विश्वास उठ चला। स्त्रीके फेरमें मैं वैसे ही मारा गया, जैसे ठीक योगकी सिद्धिका फल मिलनेके समय अविद्या आकर योगीको नष्ट कर डाले।' ॥ २९ ॥ राजाको इस प्रकार मन ही मन झींकते-कलपते देखकर कुबुद्धिवाली कैकेयी बहुत बौखला उठी और (बोली)—'क्यों ? क्या भरत आपका पुत्र नहीं है ? या मुझे कहींसे मोल लिए चले आए हैं ? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ ? कि मेरी बात आपको बाण-सी जा लगी।) (१) (आपको यही करना था) तो आपने पहले ही सोच-समझकर मुँह क्यों नहीं खोला था ? अब या तो आप इस (मेरी बात)-का उत्तर दीजिए (स्वीकार कर लीजिए) या सीधे कह दीजिए कि मैं नहीं दूँगा। आप तो अपनी सत्य प्रतिज्ञाके लिये रघुकुलमें (प्रसिद्ध) हैं। (२) आपने ही तो वर देनेको कहा था। नहीं देना चाहते हों तो मत दीजिए और सत्यका पल्ला छोड़कर संसारमें कलंक ढोते फिरिए। आपने जब सत्यका डंका पीटते हुए वर देनेका वचन दिया था तब क्या आप समझ बैठे थे कि मैं चबेना माँग लूँगी ? (३) (आपसे अच्छे तो) शिवि, दधीचि और राजा बलि (थे जिन्हों)-ने जो मुँहसे कह दिया वह कर दिखाया। (शिवि और दधीचि अपने शरीर त्यागकर और बलि अपनी सम्पत्ति त्यागकर भी अपने वचनपर डटे रहे)।' कैकेयी इस प्रकार तानेपर ताने मारे जा रही थी, मानो जलेपर नमक छिड़के जा रही हो

१. अनुकरहु।

२९९-३०४ ततः श्रुत्वा महाराजः कैकेय्या दारुणं वचः। चिन्तामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥—वाल्मी०
३०५-३०८ इति दुःखाभिसंतप्तं विलपन्तमचेतनम्। घूर्णमानं महाराजं शोकेन समभिप्लुतम् ॥
प्रत्युवाचाथ कैकेयी रौद्रा रौद्रतरं वचः। यदि दत्त्वा वरौ राजन् पुनः प्रत्यनुतप्यसे ॥
धार्मिकं त्वं कथं वीर पृथिव्यां कथयिष्यसि।
३०९-१० किल्बिषं त्वं नरेन्द्राणां करिष्यसि नराधिप। यो दत्त्वा वरमद्यैव पुनरन्यानि भाषसे ॥
३११ संश्रुत्य शैब्यः श्येनाय स्वां तनुं जगतीपतिः। प्रदाय पक्षिणे राजा जगाम गतिमुत्तमाम् ॥वा०रा०
३१२ लेपनं चैव क्षारस्य ह्यग्निदग्धे वचो यथा ॥ —सत्योपाख्यान

दो०—धरम - धुरंधर धीर धरि , नयन उघारे राय ।
सिर धुनि, लीन्हि उसास असि, मारेसि मोहिं कुठाय ॥३०॥
आगे दीखि जरति रिस भारी । मनहु रोष - तरवारि उघारी ।
मूठि कुबुद्धि, धार निठुराई । धरी कूबरी सान बनाई । (१)
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवन लेइहि मोरा ।
बोले राउ, कठिन करि छाती । बानी सविनय, तासु सोहाती । (२)
प्रिया ! बचन कस कहसि कुभाँती । भीरु ! प्रतीति - प्रीति करि हाँती ।
३२० मोरे भरत - राम दुइ आँखी । सत्य कहउँ करि संकर साखी । (३)
अवसि दूत मैं पठउब प्राता । अइहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ।
सुदिन सोधि सब साज सजाई । देउँ भरत - कहँ राज बजाई । (४)
दो०—लोभ न रामहिं राज-कर , बहुत भरत - पर प्रीति ।
मैं बड़-छोट बिचारि जिय , करत रहेउँ नृप - नीति ॥ ३१ ॥
राम - सपथ - सत कहउँ सुभाऊ । राम - मातु कछु कहेउ न काऊ ।
मैं सब कीन्ह तोहिं बिनु पूछे । तेहि - तें परेउ मनोरथ छूछे । (१)

(४) धर्मके धुरन्धर (रक्षक) पालक राजाने बड़े धैर्यसे अपनी आँखें खोलीं, अपना सिर पीट लिया और लंबी साँस भरकर कहा—'इस (चुड़ैल)-ने मुझे बड़े बुरे दाँवपर (धोखेसे) पटक मारा' ॥ ३० ॥ उन्होंने देखा कि क्रोधसे जलती हुई (कैकेयी) ऐसी डटी खड़ी है मानो क्रोधकी ऐसी नंगी तलवार खिंची खड़ी हो जिसमें कुबुद्धि ही (तलवार की) मूठ हो, निष्ठुरता ही उसकी (पैनी) धार हो जिसपर शान चढ़ाकर कुबड़ी (मन्थरा)-ने उसे और भी पैना कर डाला हो । (१) राजा (दशरथ)-को यह भय होने लगा कि यह भयानक और कठोर (तलवार, कैकेयी) कहीं सचमुच मेरा प्राण न ले बैठे ! इसलिये राजा अपना जी कड़ा करके उससे ऐसी मीठी वाणीमें कहने लगे जो उसे भली लगे–(२) 'देखो प्रिये ! भीरु ! तुम विश्वास और प्रेमकी हत्या करके ऐसे कठोर वचन क्यों मुँहसे निकाले चली जा रही हो ? मैं शंकरको साक्षी देकर सत्य कहता हूँ कि भरत और राम दोनोंको मैं अपनी दोनों आँखें मानता हूँ (मैं भरत और राम दोनोंको समान समझता हूँ) । (३) मैं प्रातःकाल होते ही दूत भेजकर दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न)-को बुलवाए लेता हूँ (और मुझे विश्वास है कि) वे सुनते ही चले भी आवेंगे । शुभ मुहूर्त देखकर और सब तैयारी करके मैं डंका बजाकर भरतको ही राज्य दे डालूँगा । (४) (तुम यह भली-भाँति समझ लो कि) रामको राज्यका तनिक भी लोभ नहीं है । वे तो स्वयं भरतसे बहुत प्रेम करते हैं (भरतको राज्य दे देनेसे राम प्रसन्न ही होंगे) । मैंने तो बड़े-छोटेका विचार करके केवल राजनीतिका पालन-भर किया था ॥ ३१ ॥ मैं सौ बार रामकी सौगंध खाकर स्वभावसे ही (सत्य) बताए देता हूँ कि रामकी माताका इसमें कोई हाथ नहीं है । (मुझसे यही बड़ी भारी भूल हो गई कि) मैंने बिना तुमसे पूछे ही यह सब कर डाला, इसीसे मेरा सारा करा-कराया व्यर्थ हुआ जा रहा है । (१) अब तुम अपना क्रोध उतार डालो और

३१३-१८ शनैरुन्मील्य नयने विमृज्य परया भिया । दुःस्वप्नो वा मया दृष्टो ह्यथवा चित्तविभ्रमः ॥
इत्यालोक्य पुरः पत्नीं व्याघ्रीमिव पुरः स्थिताम् । किमिदं भाषसे भद्रे मम प्राणहरं वचः ॥अ०रा०
३१९-२२ पृथिव्यां सागरान्तायां यत् किंचिदधिगम्यते । तत्सर्वं तव दास्यामि मा च त्वं मृत्युमाविश ॥वाल्मी०
३२३-२४ शाश्वतोऽयं सदा धर्मः स्थितोऽस्मासु नरर्षभ ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थिते राज्ञो न कनीयान् भवेन् नृपः ॥ —धर्मशास्त्र

रिस परिहरु, अब मंगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू।
एकहि बात मोहिं दुख लागा। बर दूसर असमंजस माँगा। (२)
अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिस, परिहास, कि साँचेहु साँचा।
३३० कहु तजि रोषु राम - अपराधू। सब कोउ कहइ, राम सुठि साधू। (३)
तुहूँ सराहसि, करसि सनेहू। अब सुनि मोहिं भयउ संदेहू।
जासु सुभाउ अरिहि - अनुकूला। सो किमि करिहि मातु - प्रतिकूला। (४)
दो०—प्रिया हास-रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेक।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत - राज - अभिषेक ॥३२॥
जियइ मीन बरु बारि - बिहीना। मनि-बिनु फनिक जियइ दुख दीना।
कहउँ सुभाउ, न छल मन - माहीं। जीवन मोर राम - बिनु नाहीं। (१)
समुझि देखु जिय, प्रिया! प्रवीना। जीवन, राम - दरस - आधीना।
सुनि मृदु वचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई। (२)

मंगल साज सजा लो। कुछ दिनों पश्चात् भरतको युवराज बना ही दिया जायगा। मुझे बस एक ही बात बड़ी कसक रही है कि तुम यह दूसरा वर बड़ा असंगत माँग बैठी हो। (२) उसकी आँचसे अभीतक मेरा हृदय जला चला जा रहा है। (सच-सच बताओ) यह वर तुम क्रोधमें माँग बैठी हो या हँसी कर रही हो या यह सचमुच सत्य है। तुम अपना सारा क्रोध ठंढा करके यह तो बताओ कि रामने तुम्हारा बिगाड़ा क्या है? मैं तो जिससे सुनता हूँ वही कहता है कि राम अत्यन्त साधु (सज्जन) हैं। (३) वे ही क्या, तुम भी तो सदा रामकी सराहना करते नहीं थकती थीं। यही सब देख-सुनकर मेरे मनमें सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि जिस रामका स्वभाव शत्रुको भी प्रिय लगता हो, वह भला ऐसा व्यवहार कैसे कर सकता है जो माताको बुरा लगे। (४) इसीलिये प्रिये! हँसी या क्रोध छोड़कर भली-भाँति समझ-बूझकर (वर) माँग लो जिससे मैं अब भर-आँखों भरतका राज्याभिषेक देख सकूँ॥ ३२॥ देखो! मछली भले ही पानीके बिना जीती रह जाय, सर्प भले ही मणिके बिना दीन और दुखी रहकर अपना जीवन काट ले, पर अपनी बात मैं स्पष्ट कहे देता हूँ कि मैं रामके बिना जीवित नहीं रह पाऊँगा। (१) चतुर प्रिये! तुम भली-भाँति समझ लो कि मेरा जीवन तो रामके दर्शनपर ही टँगा हुआ (आश्रित) है (राम मेरी आँखोंसे ओट हुए कि मेरे प्राण गए)।' राजा दशरथके ये मार्मिक वचन सुनकर वह मूर्ख कैकेयी और भी अधिक झुँझला उठी मानो अग्निमें घीकी आहुति पड़ गई हो। (२) वह तमककर बोली—'आप चाहे करोड़ों

३२५-३० न किंचिदाहाऽहितमप्रियं वचो न वेत्ति रामः परुषाणि भाषितुम्।
कथं तु रामे ह्यभिरामवादिनि ब्रवीषि दोषान् गुणनित्यसम्मते ॥ - वाल्मीकीयरामायण
३३१-३२ ममाग्रे राघवगुणान् वर्णयस्यनिशं शुभान्। कौशल्यां मां समं पश्यन् शुश्रूषां कुरुते सदा॥
इति ब्रुवन्ती त्वं पूर्वमिदानीं भाषसेऽन्यथा। —अध्यात्मरामायण
३३३-३४ अनुगृह्णीष्व मां वामे रामान्नास्ति भयं तव। राज्यं गृहाण पुत्राय रामस्तिष्ठतु मन्दिरे॥अ०रा०
३३५-३६ कदाचिद् धारयेन् मीनो जीवनं जीवनं विना। निरुपाय: फणी जीवेन्मणिहीनोऽतिदु:खित:॥
जीवितं धारयिष्यामि नैव श्रीराघवं बिना। चेतसा निश्छलेनैव वदामीदं वच: प्रिये॥अग०रा०
३३७ श्रीरामदर्शनाधीनं जीवनं चतुरे प्रिये। विचार्य पश्य मनसि सत्यं सत्यं वचो मम॥—पुल०रा०

कहइ, करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।
३४० देहु, कि लेहु अजस, करि नाहीं। मोहिं न बहुत प्रपंच सोहाहीं। (३)
राम साधु, तुम साधु - सयाने। राम - मातु भलि, सब पहिचाने।
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फल उनहिं देउँ करि साका। (४)
दो०—होत प्रात, मुनि - वेष धरि , जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरन, राउर अजस , नृप समुझिय मन माहिं ॥ ३३ ॥
अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष - तरंगिनि बाढ़ी।
पाप - पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध - जल जाइ न जोई। (१)
दोउ बर कूल, कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी - बचन - प्रचारा।
ढाहत भूप - रूप - तरु - मूला। चली बिपति - बारिधि - अनुकूला। (२)
लखी नरेस, बात फुरि साँची। तिय-मिस मीचु सीस - पर नाची।

उपाय क्यों न करें (चाहे जितनी चिकनी-चुपड़ी बातें क्यों न बनावें), यहाँ आपकी दाल नहीं गलनेवाली है (एक भी चाल न चल पावेगी) । या तो मुझे (दोनों) वर दे डालिए नहीं तो स्पष्ट 'नहीं' कर दीजिए और माथेपर कलंकका टीका लगाए घूमिए । मुझे यह लटर-पटरकी बात अच्छी नहीं लगती। (३) राम जितने सीधे हैं, आप जितने बड़े सयाने साधु हैं, और रामकी माता जितनी भली हैं, मैं सबकी नस-नस पहचान गई हूँ। कौशल्याने जैसा मेरा भला चाहा है, वैसा ही मैं भी उन्हें ऐसा फल चखाऊँगी कि वे भी स्मरण रक्खेंगी (कि किससे पाला पड़ा था) (४) (मैं कहे देती हूँ कि) यदि सबेरा होते ही मुनिका-सा बाना बनाकर राम वन नहीं चले गए तो राजन् ! आप पक्का समझ लीजिए कि मैं अपनी जान दे डालूँगी और उसका सारा कलंक आपके ही सिर पड़ेगा' ॥ ३३ ॥ यह कहकर वह कुटिल कैकेयी तमककर ऐसी खड़ी हो गई मानो उसके क्रोध-की उस नदीमें बाढ़ आ चली हो जो पापके पहाड़से निकली हो और जिसमें क्रोधका ऐसा जल भरा हो कि भयंकरताके कारण उसे देखनेमें भी डर लगता हो । (१) दोनों वर ही मानो उस (क्रोधकी नदी)-के दोनों तट हों, उसका कठोर हठ ही उस नदीकी हरहराती धारा हो, कुबरीके वचनोंकी प्रेरणा ही भँवर हो और वह राजा दशरथ-रूपी वृक्षको जड़से उजाड़कर विपत्तिरूपी समुद्रकी ओर बहाए ले जाती हुई सीधी बढ़ी चली जा रही हो । (२) राजाने समझ लिया कि यह जो कह रही है वह झूठ नहीं है। स्त्रीके रूपमें यह मेरी मृत्यु ही मेरे सिरपर चढ़ी नाचे जा रही है । (तब राजा

३३८-४२ कोमलं वचनं श्रुत्वा कुमतिर्ज्वलिता सती । अब्रवीत् केकयी तेऽत्र माया नैव चलिष्यति ॥
दीयतामथवा कृत्वा नकारमयशो नृप । गृह्यतां शीघ्रमेवाऽत्र प्रपंचा नैव मे प्रिया: ॥
स्वभावसरलो रामो राममाता भवानपि । मया परिचिता: सर्वे स्वभावसरला जना: ॥
विचारितं राममात्रा यथा मम हितं तथा । प्रदास्यामि फलं तस्यै सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥याज्ञ०रा०
३४३-४४ वनं न गच्छेद् यदि रामचन्द्र: प्रभातकालेऽजिनचीरयुक्त: ।
उद्बन्धनं वा विषभक्षणं वा कृत्वा मरिष्ये पुरतस्तवाऽहम् ॥
सत्यप्रतिज्ञोऽहमितीह लोके विडम्बसे सर्वसभान्तरेषु ।
रामोपरि त्वं शपथं च कृत्वा मिथ्याप्रतिज्ञो नरकं प्रयाहि ॥ —अध्यात्मरामायण
३४५-४८ अनर्थरूपा सिद्धार्था ह्यभीता भयदर्शिनी । पुनराकारयामास तमेव वरमंगना —॥वाल्मी०रा०

३५० गहि पद, विनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी। (३)
माँगु माथ, अबहीं देउँ तोहीं। राम-बिरह जनि मारसि मोहीं।
राखु राम-कहँ जेहि-तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम-भरि छाती। (४)
दो०—देखी ब्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम! राम! रघुनाथ॥ ३४॥
ब्याकुल राउ, सिथिल सब गाता। करिनि कलप-तरु मनहुँ निपाता।
कंठ सूख, मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु-पानी। (१)
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय-महँ माहुर देई।
जौं अंतहु अस करतब रहेऊ। माँगु-माँगु तुम केहि बल कहेऊ। (२)
दुइ कि होइ ऐक समय भुआला। हँसब ठठाइ, फुलाउब गाला।
३६० दानि कहाउब, अरु कृपनाई। होइ कि खेम-कुसल रौताई। (३)

दशरथने कैकेयीके) पैरों पड़कर उसे पकड़ बैठाया और बहुत गिड़गिड़ाकर समझाया—'तू सूर्य-कुलके वृक्षके लिये कुल्हाड़ी क्यों बनी जा रही है (सूर्यकुलको मत नष्ट कर)। (३) तू मेरा सिर माँग तो मैं तेरी हथेलीपर उतार रखता हूँ, पर रामके विछोहमें (तिल-तिल करके) मुझे मत मार। जैसे भी हो तू रामको यहाँ रहने दो, नहीं तो जन्म-भर तेरी ही छाती जलती रहेगी (तुझे शान्ति नहीं मिलेगी)।' (४) जब राजा दशरथने देख लिया कि इस रोगकी कोई औषधि नहीं रही (यह टससे मस नहीं हो रही है) तब वे अत्यन्त बिलख-बिलखकर 'हा राम ! हा रघुनाथ' कहते हुए सिर ठोककर धरतीपर जा लुढ़के ॥ ३४॥ राजा दशरथ ऐसे व्याकुल हुए जा रहे थे और उनके अंग-अंग ऐसे ढीले पड़े जा रहे थे, मानो किसी हथिनीने किसी कल्पवृक्षको जड़से उखाड़ फेंका हो। राजाका कंठ सूख चला। उनके मुँहसे बोल नहीं निकल पा रहा था। (वे इतने व्याकुल हुए जा रहे थे) मानो पहिना मछली पानीके बिना छटपटाई पड़ रही हो। (१) कैकेयी फिर तीखे-कड़वे वचनोंकी चोट करती हुई ऐसे बोली मानो घावमें विष भरे जा रही हो। (वह कहने लगी—) 'जब अन्तमें आपको यही सब करना था तो (इतनी देरसे) आप 'माँग' माँग' किस बिरते (बल)-पर रटे जा रहे थे ?। (२) देखो राजन् ! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाकर बैठना, ये दोनों काम एक साथ नहीं हुआ करते ? दानी कहलवानेकी साध भी रखना और कंजूसी भी करना (मुट्ठी भी बन्द रखना), रजपूतीकी आन भी रखना (लड़ाईमें जानेको तैयार रहना) और कुशल-क्षेम भी चाहना (कि हमपर वार न हो, प्राण न जायें) ये दोनों प्रकारके काम-साथ नहीं हुआ करते। (३) या तो आप अपना वचन तोड़ डालिए या धीरज धरकर वचन पूरे कीजिए। बिना घर-बारकी स्त्रीके समान

३४९-५० वत्सं कठोरहृदये नयनाभिरामं रामं विना न खलु तिष्ठति जीवितं मे।
न जीवितं मेऽस्ति कुतः पुनः सुखं विनात्मजेनात्मवतां कुतो रतिः।
ममाहितं देवि न कर्तुमर्हसि स्पृशामि पादावपि ते प्रसीद मे॥ —चंपूरामायण
३५१-५२ क्रियतां मे दया भद्रे रचितोऽयं मयांजलिः। —वाल्मीकीयरामायण
३५३-५४ श्रुत्वैतद् दारुणं वाक्यं कैकेय्या रोमहर्षणम्। निपपात महीपालो वज्राहत इवाचलः॥
रामेत्युक्त्वा तु वचनं बाष्पपर्याकुलेक्षणः। शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्॥अध्या०
३५५-५६ स देव्या व्यवसायं च घोरं च शपथं कृतम्। ध्यात्वा रामेति निःश्वस्य छिन्नस्तरुरिवापतत्॥
३५७-६० त्वं कत्थसे महाराज सत्यवादी दृढव्रतः। मम चेदं वरं कस्माद् विधारयितुमिच्छसि॥वा०

छाँड़हु बचन, कि धीरज धरहू। जनि अबला-जिमि करुना करहू।
तनु, तिय, तनय, धाम, धन, धरनी। सत्यसंध-कहँ तृन-सम बरनी। (४)
दो०—मरम बचन सुनि, राउ कह, कहु, कछु दोष न तोर।
लागेउ तोहिँ पिसाच-जिमि, काल कहावत मोर॥ ३५॥
चहत न भरत भूपतहि[1] भोरे। बिधि-बस कुमति बसी जिय तोरे।
सो सब, मोर पाप-परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू। (१)
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन-धाम राम-प्रभुताई।
करिहहिँ भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम-बड़ाई। (२)
तोर कलंक, मोर पछिताऊ। मरेहु न मिटिहि, न जाइहि काऊ।
३७० अब तोहि नीक लाग, करु सोई। लोचन-ओट बैठु, मुँह गोई। (३)
जब लगि जियउँ, कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी।
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू[2]-लागी। (४)
दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदान।
कपट सयानि न-कहति कछु, जागति मनहुँ मसान॥ ३६॥

बैठे आँसू वृथा बहाए जा रहे हैं। कहा है कि सत्यका व्रत लेनेवाले अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और धरती सबको तिनकेके समान समझते हैं (सत्यका पालन करनेवाला सत्यके लिये इन सबको तुच्छ वस्तुके समान क्षण भरमें छोड़ देता है)।' (४) रानीकी ये जली-कटी बातें सुनकर राजाने कहा—'अब तू जो चाहे बके जा। तेरा इसमें कोई दोष नहीं है। मेरा काल ही पिशाच बनकर तेरे सिर ऐसा आ चढ़ा है कि वही तुझसे यह सब कहलाए जा रहा है॥ ३५॥ जहाँतक भरतकी बात है, वह भूलकर भी राजा नहीं बनना चाहता। यह तो होनहार ही कुछ ऐसी हो बैठी है कि तेरे जीमें यह कुबुद्धि आ समाई। यह सब (और कुछ नहीं,) मेरे पापोंका ही फल है कि बड़े बेढंगे समय विधाता मुझसे मुँह फेर बैठा है। (१) देख ! यह सुन्दर अयोध्या फिर भली भाँति बस जायगी, सम्पूर्ण गुणोंवाले राम ही फिर राजा होंगे, सब भाई उनकी फिर वैसे ही सेवा करेंगे और तीनों लोकोंमें फिर रामका यश फैलेगा, (२) पर हाँ, तेरा यह कलंक और मेरा पछतावा मेरे मर जानेपर भी नहीं मिट पावेगा ! नहीं मिट पावेगा !! नहीं मिट पावेगा !!! जा, अब तुझे जो अच्छा लगे, वही कर। अब तू अपना मुँह छिपाकर मेरी आँखोंकी ओट होकर जा बैठ। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि जबतक मैं जीता रहूँ तबतक फिर तू मुझसे आकर कभी बात मत करना। देख अभागिन ! मैं कहे देता हूँ कि तू अन्तमें फिर इसी बातपर पछतावेगी कि तूने नाहर (सिंहका पालन करने)-के लिये गाय मार डाली (पुत्रको राज दिलानेके लिये पतिकी हत्या कर डाली)।' (४) राजाने उसे बहुत-बहुत समझाया—'तू क्यों सर्वनाश कर डालनेपर उतारू है' (और फिर धड़ामसे पछाड़ खाकर) धरतीपर जा गिरे। पर कपट करनेकी कलामें चतुर रानी कैकेयी ऐसी चुपचाप खड़ी रही मानो मौन होकर श्मशान जगाए

१. भूप-पद। २. नाहरू।

३६१-६२ त्वं राजराजो भव सत्यसंगरः कुलं च शीलं च हि जन्म रक्ष च।
परत्रवासे हि वदत्यनुत्तमं तपोधनाः सत्यवचो हितं नृणाम्॥
३६३-६४ एवमुक्तस्तु कैकेय्या राजा दशरथस्तदा। प्रत्युवाच ततः क्रुद्धो मुहूर्तं विह्वलन्निव॥
३६५-६६ न कथं चिद् ऋते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्॥
मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुंगवे। त्वमनार्ये ममामित्रे सकामा सुखिनी भव॥—वा०रा०
३६७-७४ रामः काममुपाश्रयिष्यति वनं त्यक्त्वा धृतं कौतुकं लोकस्त्यक्ष्यति कौतुकं चिरधृतं तस्याभिषेके कथम्
धर्मापायभयेन वत्सविरहं वक्ष्यामि वक्ष्यामि किम्।
यावत्कल्पमकीर्तिरार्तिजननी जायेत जाये तव॥ —चम्पूरा०

राम - राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू।
हृदय मनाव, भोर जनि होई। रामहिँ जाइ कहइ जनि कोई। (१)
उदउ करहु जनि रवि रघुकुल-गुर। अवध बिलोकि, सूल होइहि उर।
भूप - प्रीति, कैकइ - कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई। (२)
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना - बेनु - संख - धुनि द्वारा।
३८० पढ़हिँ भाट, गुन गावहिँ गायक। सुनत, नृपहिँ जनु लागहिँ सायक। (३)
मंगल सकल सोहाहिँ न कैसे। सहगामिनिहि बिभूषन जैसे।
तेहि निसि नींद परी नहिँ काहू। राम - दरस - लालसा - उछाहू। (४)
दो०—द्वार भीर, सेवक, सचिव , कहहिँ उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारन कवन बिसेखि ।। ३७ ।।

जा रही हो ।। ३६ ।। राजा (दशरथ) बस राम ही राम रटे जा रहे थे और ऐसे छटपटाए जा रहे थे जैसे पंख-कटा पक्षी पड़ा तड़फड़ा रहा हो । वे हृदयमें यही मनाए जा रहे थे कि (भगवान करे) 'सवेरा ही न हो और कोई यहाँकी बात जाकर रामसे न कह पावे' (कि रानीने तुम्हारे लिये चौदह वर्षका वनवास माँगा है और इसके लिये राजा पहले ही तुम्हारी सौगन्ध ले चुके हैं) । (१) हे रघुकुलके गुरु सूर्य भगवान् ! आप उदय ही न होइए क्योंकि अयोध्याको (व्याकुल और उजाड़) देखकर आपका हृदय भी टूक-टूट हो रहेगा ।' विधाताने राजाके हृदयमें (रामकी) प्रीति और कैकेयीके हृदयमें निष्ठुरता पूरी-पूरी कूट-कूटकर भर दी थी (दशरथके हृदयमें रामके लिये जितना अधिक प्रेम था और कैकेयीके हृदयमें जितनी निष्ठुरता थी उतनी कहीँ देखनेको न मिलेगी) । (२) राजाको इसी प्रकार रोते-कलपते सवेरा हो चला । राजद्वार-पर वीणा, वंशी और शंख बज उठे । भाटोंने विरुदावली सुनानी प्रारम्भ कर दी और गवैयोंने उनके गुणोंके गीत गाने प्रारम्भ कर दिए । जैसे-जैसे राजा यह सब सुनते जाते थे वैसे-वैसे उन्हें लग रहा था जैसे बाण चुभे जा रहे हों । (३) वे सब मांगलिक कार्य राजाको वैसे ही नहीं सुहा रहे थे, जैसे सहगामिनी (मृत पतिके साथ सती होनेके लिये जानेवाली पत्नी)-के शरीरपर आभूषण नहीं सुहाते (अमंगलसे लगते हैं) । उधर सब (पुरवासियों)-के हृदयमें रामके दर्शनोंकी इतनी प्रबल लालसा और इतना उत्साह उमड़ा पड़ रहा था कि उस रात किसीने झपकी-तक न ली । (४)

(सवेरे) राजद्वारपर खड़ी भीड़ने, सेवकों और मंत्रियोंने जब देखा है कि दिन चढ़ आया तो वे आपसमें कहने लगे—आज ऐसी क्या विशेष बात हो गई कि अभी-तक अवधपति राजा दशरथ जाग नहीं पाए ? ।। ३७ ।। क्योंकि राजा दशरथ तो नित्य रातके पिछले पहर (ब्राह्म मुहूर्त)-में जाग

१. रात्रिका नाम ही त्रियामा (तीन पहरवाली) है । चौथे पहरको 'ब्रह्मवेला' या 'ब्राह्ममुहूर्त' कहते हैं । मनुस्मृति ४-९२ ।

३७५-७६ न प्रभातं त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते । क्रियतां मे दया भद्रे ममायं रचितोऽञ्जलिः ।।वाल्मी०
३७७-७८ सहस्रांशूदयो माभूद् राजा चिन्तां चकार सः ।
राज्ञः प्रीतिस्तथा राज्ञ्याः काठिन्यं ब्रह्मणा कृतम् ।। –वशिष्ठरामायण
३७९-८० एवं रात्रिर्गता तस्य दुःखात्सम्वत्सरोपमा । अरुणोदयकाले तु वन्दिनो गायका जगुः ।। अध्यात्म०
३८१-८४ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च रात्रौ निद्रां न लेभिरे । कदा द्रक्ष्यामहे रामं पीतकौशेयवाससम् ।।
ततः प्रभातसमये मध्यकक्षमुपस्थिताः । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषयः कन्यकास्तथा ।।वा०

पछिले पहर भूप नित जागा। आज हमहिँ बड़ अचरज लागा।
जाहु सुमंत्र! जगावहु जाई। कीजिय काज, रजायसु पाई। (१)
गये सुमंत्र तब राउर-पाहीँ[1]। देखि भयावन, जात डेराहीँ।
धाइ खाइ जनु, जाइ न हेरा। मानहुँ विपति-विषाद-बसेरा। (२)
पूछे कोउ न ऊतर देई। गये जेंहि भवन भूप-कैकेई।
३६० कहि जय जीव! बैठ सिर नाई। देखि भूप-गति गयउ सुखाई। (३)
सोच-बिकल, बिबरन, महि परेऊ। मानहुँ कमल, मूल परिहरेऊ।
सचिउ सभीत, सकै नहिं पूछी। बोली असुभ-भरी सुभ-छूछी। (४)
दो०—परी न राजहिं नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम-राम रटि भोर किय, कहइ न मरम महीस॥ ३८॥
आनहु रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तब पूछेउ आई।
चलेउ सुमंत्र राय-रुख जानी। लखी, कुचालि कीन्हि कछु रानी। (१)

जाया करते थे। बड़े आश्चर्यकी बात है (कि वे अबतक उठे क्यों नहीं)।' (सबने सुमन्तसे कहा–) 'सुमन्त्र! जाइए, जाकर राजाको जगाइए जिससे हम लोग उनकी आज्ञाके अनुसार जो प्रबन्ध करें, कर डालें। (१) यह सुनकर सुमन्त्र भीतर राजभवनमें बढ़ चले। पर राजभवन भाँयें-भाँयें करते देखकर वे भीतर जानेमें सहमे जा रहे थे। राजभवन उनसे देखते नहीं बन रहा था, (जान पड़ता था) जैसे काट खानेको दौड़ रहा हो। ऐसा लग रहा था मानो विपत्ति और शोक वहाँ बसेरा डाले बैठे हों। (२) वहाँ जिससे पूछो कोई उत्तर ही नहीं दे रहा था। तब वे उसी भवनमें चले गए, जिसमें राजा और कैकेयी थे। वहाँ जाकर वे 'जय जीव' कहकर (ज्योंही) सिर नवाकर बैठे त्यों ही राजा दशरथकी दशा देखकर उनसे मुँहका रंग उड़ गया। (३) राजा शोकमें इतने व्याकुल हुए पड़े थे कि उनके मुँहका रंग उतर चला था। वे पृथ्वीपर ऐसे पड़े हुए थे, जैसे जड़से उखाड़कर कमल फेंका पड़ा हो। सुमन्त्र डरके मारे उनसे कुछ पूछ नहीं पा रहे थे। तभी सारे अशुभसे भरी हुई वह कैकेयी शुभ-विहीन (अमंगल, झूठी) बात बोल उठी–(४) 'राजाको रातभर नींद नहीं आ पाई, इसका कारण तो परमात्मा ही जानें। उन्होंने 'राम-राम' रटते सबेरा कर डाला है। राजा इसका भेद भी कुछ नहीं बतला रहे हैं॥३८॥ इसलिये आप झटपट चले जाइए और जाकर रामको बुला लाइए, तब आकर समाचार पूछिएगा।' राजाका संकेत पाकर सुमंत्र चल दिए। वे ताड़ गए कि रानीने कुछ न कुछ कुचाल अवश्य रच खड़ी की है। (१) चिन्ताके मारे वे इतने घबरा उठे कि मार्गमें

१. माहीँ।

३८५-९० नेदानीमुत्थितो राजा किमर्थं चेति चिन्तयन्। सुमंत्रः शनकैः प्रायाद् यत्र राजावतिष्ठति।'
वर्धयन् जयशब्देन प्रणम्य शिरसा नृपम्॥ —वाल्मीकीयरामायण
३९३-९४ अतिखिन्नं नृपं दृष्ट्वा कैकेयीं समपृच्छत। तमाह कैकयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान्।
राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन्। प्रजागरेण वै राजा ह्यस्वस्थ इव लक्ष्यते॥
३९५ राममानय शीघ्रं त्वं राजा द्रष्टुमिहेच्छति। सुमंत्र उवाच-अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि।
३९६ तच्छ्रुत्वा मंत्रिणो वाक्यं राजा मंत्रिणमब्रवीत्॥
सुमंत्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्। इत्युक्तः स ययौ शीघ्रं सुमंत्रो राममन्दिरम्॥अध्या०

सोच - विकल, मग परइ न पाँऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ।
उर धरि धीरज, गयउ दुआरे। पूछहिं सकल, देखि मन-मारे। (२)
समाधान करि सो सबही - का। गयउ जहाँ दिनकर - कुल-टीका।
४०० राम, सुमंत्रहिं आवत देखा। आदर कीन्ह पिता - सम लेखा। (३)
निरखि बदन, कहि भूप - रजाई। रघुकुल - दीपहिं चलेउ लिवाई।
राम कुभाँति सचिव - सँग जाहीं। देखि, लोग जहँ-तहँ बिलखाहीं। (४)
दो०—जाइ दीख रघुबंस - मनि , नर - पति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहिं, मनहुँ बृद्ध गजराज ।। ३९ ।।
सूखहिं अधर, जरइँ सब अंगू। मनहुँ दीन मनि - हीन भुअंगू।
सरुख समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई। (१)
करुनामय, मृदु, राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख, सुना न कोऊ।
तदपि धीर धरि, समउ बिचारी। पूछी मधुर बचन महतारी। (२)
मोहिं कहु मातु ! तात- दुख - कारन। करिय जतन, जेहिं होइ निवारन।

उनके पैर ही सीधे नहीं पड़ रहे थे। वे यही सोचते चले जा रहे थे कि रामको बुलाकर राजा कहेंगे क्या ? किसी-किसी प्रकार हृदयमें धीरज रखकर वे जब द्वारपर आए तो उनका उतरा हुआ (उदास) मुँह देखकर सब लोग उनसे पूछने लगे—'कहिए (क्या बात है ?)'। (२) सब लोगोंको उलटा-सीधा समझा-बुझाकर वे सीधे उस भवनमें जा पहुँचे जिसमें सूर्यकूलके तिलक राम रहते थे। रामने सुमन्त्रको आते देखते ही उठकर पिताके समान उनका आदर-सत्कार किया। (३) रामका मुख देखकर और उन्हें राजाकी आज्ञा सुनाकर वे रघुकुलके दीपक रामको अपने साथ लिवा ले चले। राम भी मन्त्रीके साथ ऐसे अटपटे ढंगसे चले जा रहे थे कि उन्हें देखकर जहाँ-तहाँ लोगोंको बड़ा खटका होने लगा (कि आज राम ऐसे कैसे चले जा रहे हैं)। (४) रघुवंशके मणि रामने राजा दशरथको वहाँ ऐसी बुरी दशामें पड़ा देखा, मानो कोई बूढ़ा गजराज किसी सिंहिनीको देखकर डरके मारे घबराकर ढह पड़ा हो ।। ३९ ।। (उन्होंने देखा कि) दशरथके ओठ सूखे पड़े हैं, सारा शरीर जला जा रहा है, मानो मणि छिन जानेपर कोई सर्प छटपटाया पड़ रहा हो। उन्होंने राजा दशरथके पास ही क्रोधमें भरी खड़ी कैकेयीको देखा, मानो मृत्यु ही खड़ी उनकी अन्तिम घड़ी गिने जा रही हो (वही राजाकी मृत्युकी घड़ी गिन रही हो)। (१) कोमल स्वभाववाले और दयासे भरे रामने ऐसा जी दुखानेवाला दृश्य अपने जीवनमें न तो इससे पहले कभी देखा ही था न पहले दुःखका नाम-तक सुना था। फिर भी बहुत धीरज धरकर और समयका ध्यान करके उन्होंने बड़ी मधुरतासे माता कैकेयीसे पूछा—(१) 'माता ! पिता इतने दुखी हुए क्यों पड़े हैं ? इस दुःखका कारण ज्ञात हो जाय तो उनका दुःख मिटानेका कोई उपाय ढूँढ़ा जाय।' (कैकेयीने कहा—) 'सुनो राम ! इनके दुःखका एक

४०१ अवारितः प्रविष्टोऽयं त्वरितं राममब्रवीत्। शीघ्रमागच्छ भद्रं ते राम राजीवलोचन ।।
पितुर्गेहं मया सार्धं राजा त्वां द्रष्टुमिच्छति।
४०२ इत्युक्तो रथमारुह्य संभ्रमात्त्वरितो ययौ। समः सारथिना सार्धं लक्ष्मणेन समन्वितः ।।अ०रा०
४०३-६ स ददर्शासने रामो विषण्णं पितरं शुभे। कैकेय्या सहितं दीनं मुखेन परिशुष्यता।।
४०७ तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा रूपं भयावहम्। रामोऽपि भयमापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ।।वा०रा०
४०९ रामः पप्रच्छ किमिदं राज्ञो दुःखस्य कारणम्।। —अध्यात्मरामायण

४१० सुनहु राम ! सब कारन एहू । राजहिं तुम - पर बहुत सनेहू । (३)
देन कहेन्हि मोहिं दुइ बरदाना । माँगेउँ, जो कछु मोहिं सोहाना ।
सो सुनि भयउ भूप - उर सोचू । छाँड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू । (४)
दो०—सुत-सनेह इत, बचन उत , संकट परेउ नरेस ।
सकहु, त आयसु धरहु सिर , मेटहु कठिन कलेस ।। ४० ।।
निधरक बैठि कहति कटु बानी । सुनत कठिनता अति अकुलानी ।
जीभ कमान, बचन सर नाना । मनहुँ महिप मृदु लच्छ - समाना । (१)
जनु कठोरपन धरे सरीरू । सिखइ धनुष - विद्या वर - बीरू ।
सब प्रसंग रघुपतिहिं सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई । (२)
मन मुसुकाइ भानु - कुल - भानू । राम सहज - आनंद - निधानू ।
४२० बोले बचन, बिगत सब दूषन । मृदु, मंजुल, जनु बाग - बिभूषन । (३)
सुनु जननी ! सोई सुत बड़ भागी । जो पितु - मातु - बचन-अनुरागी ।
तनय मातु - पितु - तोषनिहारा । दुरलभ जननि ! सकल संसारा । (४)

मात्र कारण यही है कि राजा तुमसे बहुत स्नेह करते हैं । (३) मुझे उन्होंने दो वर देने कहे थे । मेरे जो जीमें आए, मैंने माँग लिए । वही सब सुनकर राजाका हृदय बैठा जा रहा है (वे शोकाकुल हो रहे हैं) । तुम्हारा संकोच उनसे छोड़ा नहीं जा रहा है (तुमसे स्नेह होनेके कारण वे वचनका पालन नहीं कर पा रहे हैं ।) । एक ओर पुत्रका स्नेह और दूसरी ओर वचनका बन्धन, बस इन्हीं दोके धर्मसंकटमें राजा आ फँसे हैं । यदि तुमसे हो सके तो राजाकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ाकर इनका दुःख दूर कर डालो' ।। ४० ।।

कैकेयी निधड़क बैठी हुई ऐसी कड़वी बातें बोले चली जा रही थी कि उसे सुन-सुनकर कठोरता भी व्याकुल हो-हो उठ रही थी। उसकी जीभ ही धनुष बनी हुई थी। उसके वचन ही अनगिनत बाण बने हुए थे और राजा दशरथ मानो उसके कोमल (मार्मिक) लक्ष्य बने हुए थे । (१) इस प्रकार मानो स्वयं कठोरता ही प्रतापी वीरका शरीर लेकर आकर धनुर्विद्या सीख रही हो । (अपने वरदान माँगनेका) सारा समाचार रामको वह इस प्रकार बैठी सुना रही थी मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किए बैठी हो । (२) सूर्यवंशके सूर्य और स्वभावसे ही आनन्दके निधान राम मन ही मन मुसकराकर ऐसे निश्छल, कोमल और मधुर वचन बोले जो मानो वाणीके शृंगार ही हों–(३) 'सुनो माता ! भाग्यशाली (बड़भागी) पुत्र वही है जो पिता-माताके वचनोंका पालन करता हो । देखो माता ! (आज्ञाका पालन करके) अपने माता और पिताको प्रसन्न किए रखनेवाला पुत्र संसारमें कोई विरला ही मिलता है ? (४) (मुझे तो इस वरसे सबसे बड़ा लाभ यह मिल रहा है कि) वनमें बड़े-बड़े

४१० एवं पृच्छति रामे सा कैकेयी राममब्रवीत् । त्वमेव कारणं ह्यत्र राज्ञो दुःखापशान्तये ।।
४११-१२ राज्ञा वरद्वयं दत्तं मम संतुष्टचेतसा । त्वदधीनं तु तत्सर्वं वक्तुं त्वां लज्जते नृपः ।।
सत्यपाशेन संबद्धं पितरं त्रातुमर्हसि । —अध्यात्मरामायण
४१३-१४ धर्ममूलमिदं राम विदितं च सतामपि । तत्सत्यं न त्यजेद् राजा कुपितस्त्वत्कृते यथा । वाल्मी०
४१५-१६ इतीव तस्यां परुषं वदंत्यां न चैव रामः प्रविवेश शोकम् ।
प्रविव्यथे चापि महानुभावो राजा च पुत्रव्यसनाभितप्तः ।।
४२०-२२ आयुर्यशो बलं वित्तमाकांक्षद्भिः प्रियाणि च । पितैवाराधनीयोऽग्रे दैवतं हि पिता महत् ।।वा०रा०

दो०—मुनिगन-मिलन बिसेषि बन , सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि-महँ पितु-आयसु, बहुरि , संमत जननी तोर ॥ ४१ ॥
भरत प्रान - प्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहिं सनमुख आजू ।
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिय मोहिं मूढ़-समाजा । (१)
सेवहिं अरँड, कलप - तरु त्यागी । परिहरि अमृत, लेहिं बिष माँगी ।
तेउ[1] न पाइय समउ चुकाहीं । देखु बिचारि, मातु मन - माहीं । (२)
अंब ! एक दुख मोहिं बिसेखी । निपट बिकल नर - नायक देखी ।
थोरिहि बात, पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी । (३)
४३० राउ धीर, गुन - उदधि अगाधू । भा मोहि - तें कछु बड़ अपराधू ।
जातें मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथ तोहि, कहु सति भाऊ । (४)
दो०—सहज, सरल, रघुबर-बचन , कुमति, कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक, जल बक्र गति , जद्यपि सलिल समान ॥ ४२ ॥
रहसी रानि राम - रुख पाई । बोली कपट - सनेह जनाई ।
सपथ तुम्हार, भरत - कै आना । हेतु न दूसर मैं कछु जाना । (१)

मुनियोंसे भेंट होगी, जिससे मेरा कल्याण ही कल्याण होगा । उसपर पिताकी आज्ञा है और माता ! आपकी भी सम्मति है । (४१) और सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्राणोंसे भी प्रिय भरतको राज्य मिलेगा । (इन सब बातोंको देखते हुए मैं तो यही समझता हूँ कि) आज विधाता सब प्रकार मुझपर प्रसन्न हैं । यदि इतने-पर भी मैं वन न जाऊँ तो मूर्खोंके समाजमें सबसे पहले मेरी गिनती होनी चाहिए । (१) देखो माता ! यह समझ लो कि मैं ही नहीं, जो लोग कल्पवृक्ष छोड़कर रेंड़ सींचते फिरते हैं और अमृत त्यागकर विष माँगते फिरते हैं वे भी ऐसा हाथमें आया अवसर नहीं चूकने देते । (२) माता ! मुझे बस यही देखकर बड़ी व्यथा हुई जा रही है कि महाराज इतने अधिक व्याकुल हुए क्यों पड़े हैं । मुझे विश्वास नहीं पड़ रहा है कि इतनी छोटी-सी बातपर पिताजीको इतना अधिक दुःख हुआ जा रहा है (३) क्योंकि महाराज तो बड़े धीर और गुणोंके अथाह समुद्र हैं । मुझसे कोई बड़ा भारी अपराध अवश्य हो गया है कि महाराज मुझसे कुछ कह नहीं रहे हैं । आपको मेरी सौगंध है माता ! आप सच्ची-सच्ची बात मुझे बतला दीजिए न !' (४) कैकेयी-की बुद्धि ऐसी मारी गई थी (उलट गई थी) कि रामके स्वाभाविक सीधे वचनको भी वह वैसे ही छलपूर्ण समझे जा रही थी (उसका उलटा अर्थ लगा रही थी) जैसे समान (शान्त) जलमें भी जोंक सदा टेढ़ी ही चालसे चलती है । (४२) रामका इतना संकेत पाकर रानी कैकेयी हर्षित हो उठी और कपट-भरा (बनावटी) स्नेह दिखाती हुई बोली—'मैं तुम्हारी और भरतकी सौगंध लेकर कहती हूँ कि मैं राजाके दुःखका कोई अन्य कारण नहीं समझती । (१) बेटा ! तुम क्या

१. तेऊ पाइ न समउ चुकाहीं; तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं ।

४२३-२५ राज्यात् कोटिगुणं सौख्यं मम मातर्वने सतः । अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च ॥
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः । किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः ॥
तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥
४३१ तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् । करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥
कच्चिन् मया नापराद्धमज्ञानाद् येन मे पिता । कुपितस्तन्ममाचक्ष्व त्वमेवैनं प्रसादय ॥ वा०रा०

तुम अपराध - जोग नहिँ ताता। जननी - जनक - बंधु - सुख - दाता।
राम ! सत्य सब, जो कछु कहहू। तुम पितु - मातु - बचन - रत अहहू। (२)
पितहिँ बुझाइ कहहु, बलि, सोई। चौथेपन जेहि अजस न होई।
४४० तुम-सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हें। उचित न तासु निरादर कीन्हें। (३)
लागहिँ कुमुख, बचन सुभ कैसे। मगह, गयादिक तीरथ जैसे।
रामहिँ मातु - बचन सब भाए। जिमि सुरसरि-गत सलिल सुहाए। (४)
दो०—गइ मुरछा, रामहिँ सुमिरि , नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव, राम-आगमन कहि , बिनय समय-सम कीन्ह ॥ ४३ ॥
अवनिप, अकनि राम पग धारे। धरि धीरज तब नयन उघारे।
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत, नृप, राम निहारे। (१)
लिये सनेह - बिकल उर लाई। गै मनि, मनहुँ फनिक फिरि पाई।
रामहिँ चितइ रहेउ नर - नाहू। चला बिलोचन बारि - प्रवाहू। (२)

कभी अपराध कर सकते हो ? तुम तो माता, पिता और बंधु सभीको सुख ही सुख देते रहे हो। देखो राम ! तुम जो कुछ भी कह रहे हो वह सब सत्य है। तुम सदा पिता और माताके वचन पालन करनेमें तत्पर रहते हो। (२) मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। तुम अपने पिताको वही समझाओ जिससे इस चौथेपनमें उनके नामपर कलंक न लगे। जिस पुण्यके कारण इन्हें (राजाको) तुम्हारे-जैसा पुत्र मिला है उस पुण्यकी उपेक्षा करना तुम्हारे लिये ठीक नहीं है।' (३) कैकेयीके खोटे मुँहमें ये भले वचन वैसे ही लग रहे थे, जैसे मगध[1]में गया आदि तीर्थ। पर रामको माताके सब वचन वैसे ही अच्छे लगे, जैसे गंगामें आ गिरनेवाला (गंदा) जल भी (वैसा ही) शुभ और पवित्र हो जाता है (जैसा गंगा-जल)। (४) इतनेमें ही राजाकी मूर्च्छा हट चली और उन्होंने 'राम-राम' कहते हुए करवट बदल ली। (उसी समय) मन्त्री (सुमन्त्र)-ने उनसे निवेदन किय-कि—'राम आए हुए हैं' ॥ ४३ ॥ ज्यों ही राजाने सुना कि राम आ पधारे हैं तो उन्होंने बहुत धीरज धरकर (किसी-किसी प्रकार) अपनी आँखें खोल दीं। मंत्रीने सँभालकर (सहारा देकर) राजा को उठा बैठाया। राजाने देखा कि राम चरणोंपर आ गिरे हैं (प्रणाम कर रहे हैं[2])। (१) रामके प्रेममें व्याकुल राजाने (रामको) छातीसे ऐसे उठा लगाया मानो सर्पको अपना खोया हुआ मणि फिरसे हाथ आ लगा हो। राजा कुछ देर-तक टकटकी बाँधे रामको देखते ही रह गए। उनके नेत्रोंसे सावन-भादोंकी झड़ी लग चली। (२) राजा शोकसे इतने विह्वल हो चले कि उनसे

१. अंगवंगकलिंगेषु सौराष्ट्रमगधेषु च। तत्र गत्वा न शुध्येत प्रायश्चित्तं विना क्वचित्। २. लेटे या सोए हुएके चरणोंमें प्रणाम करना अमंगल होता है। केवल लेटे हुए मृतकके ही चरणोंमें प्रणाम किया जाता है, जीवितके नहीं। इसलिये रामने तभी प्रणाम किया जब राजा उठ बैठे।

४३७-४० न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन। किंचिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नानुभाषते ॥
प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते। तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेन श्रुतं मम ॥
एष मह्यं वरं दत्वा पुरा मामभिपूज्य च। स पश्चात्तप्यते राजा यथाऽन्यः प्राकृतस्तथा ॥ वा०रा०
४४१ कुदेशे मगधाख्ये तु गयातीर्थं जगच्छ्रुतम्। शुभा वाणी तथा भाति कैकेय्याः कुत्सिते मुखे॥नार०रा०
४४२ यथा गंगागतं पाथः पवित्रं कथितं बुधैः। धिमातुर्वचनं सर्वं तथा रामं मनोहरम् ॥ नील०सं०
४४३ हा राम हा जगन्नाथ हा राम प्राणवल्लभ। मां विसृज्य कथं घोरं विपिनं गन्तुमर्हसि ॥ अध्या०

सोक - बिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा।
४५० बिधिहिं मनाव राउ मन - माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं। (३)
सुमिरि महेसहिं कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव ! मोरी।
आसुतोष तुम, अवढर दानी। आरति हरहु दीन जन जानी। (३)
दो०—तुम प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहिं देहु।
वचन मोर तजि, रहहिं घर, परिहरि सील - सनेह ॥ ४४ ॥
अजस होउ जग, सुजस नसाऊ। नरक परौं, बरु सुरपुर जाऊ।
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं। लोचन - ओट राम जनि होहीं। (१)
अस मन गुनइ, राउ नहिं बोला। पीपर - पात - सरिस मन डोला।
रघुपति, पितहि प्रेम - बस जानी। पुनि कछु कहहि मातु अनुमानी। (२)
देस - काल - अवसर - अनुसारी। बोले बचन बिनीत, बिचारी।
४६० तात ! कहौं कछु, करौं ढिठाई। अनुचित छमब, जानि लरिकाई। (३)

बोला नहीं जा रहा था। वे बार-बार रामको छातीसे चिपटाए जा रहे थे और मन ही मन विधाता से यही मनाए जा रहे थे कि राम किसी भी प्रकार वन न जायँ। (३) महादेवका स्मरण कर-करके उनसे निहोरा (नम्र प्रार्थना) करते हुए वे कहने लगे—'हे सदाशिव ! मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) और अवढर दानी (सबको बिना विचारे मनचाहा दान देनेवाले) हैं। मुझे भी अपना दीन सेवक जानकर मुझपर घहराई हुई यह विपत्ति दूर कर डालिए। (४) आप ही तो सबके हृदयमें बैठकर जैसी चाहते हैं वैसी प्रेरणा देते रहते हैं। आप रामको ऐसी बुद्धि दे डालिए कि वे मेरे वचन ठुकराकर और सारा शील तथा स्नेह छोड़कर घरमें (अयोध्यामें) ही रुके रह जायँ (अयोध्यासे जानेका नाम न लें) ॥ ४४ ॥ संसारमें चाहे अपयश फैले, चाहे मेरे सारे सुयश नष्ट हो जायँ, चाहे मैं नरकमें पड़ूँ, चाहे स्वर्ग भी हाथसे निकल जाय और चाहे जो दुःसह दुःख आप मुझे भोगनेको दें पर ऐसा कीजिए कि राम मेरी आँखोंकी ओट न हो पावें।' (१) मनमें तो राजा यह सब मनाए जा रहे थे, पर मुँहसे कुछ नहीं बोल रहे थे। पीपलके पत्तेके समान उनका मन (इस अनिश्चयके कारण) थर-थर काँपे जा रहा था (कि राम मेरे वचनोंका आदर करते हुए वन चले जायँगे, या मेरी आज्ञा टालकर अयोध्यामें ही रुके रह जायँगे ?) । रामने देखा कि पिता मेरे प्रेममें बहुत भर चले हैं और यह समझकर कि माता फिर कहीं कुछ टेढ़ा-सीधा न कह बैठें, (२) वे देश, काल और अवसरका विचार करके बड़े विनीत स्वरमें कहने लगे—'पिता ! मैं कुछ निवेदन करने चला हूँ यही बड़ी ढिठाई कर रहा हूँ। (पर विश्वास है कि आप) मेरा लड़कपन समझकर मेरी यह ढिठाई क्षमा करेंगे। (३) इतनी छोटी-सी बातके लिये आपको व्यर्थ इतना दुःख

४४८-४९ पितुः समीपं संगम्य ननाम चरणौ पितुः। राममालिंगितुं राजा समुत्थाय ससंभ्रमः ॥
बाहू प्रसार्य रामेति दुःखान्मध्ये पपात ह। वसुधासक्तनयनो मन्दमश्रूणि मुंचति ॥वाल्मी०
४५५-५६ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥—भर्तृहरिशतक
विमृज्य नयने रामः पितुः सजलपाणिना। आश्वासयामास नृपं शनैः सनयकोविदः ॥
४५९-६२ किमत्र दुःखेन विभो राज्यं शास्तु मेऽनुजः। अहं प्रतिज्ञां निस्तीर्य पुनर्यास्यामि ते पुरम् ॥अध्या०

अति - लघु - बात - लागि दुख पावा। काहु न मोहिं कहि प्रथम जनावा।
देखि गोसाँइहिं पूछिउँ माता। सुनि प्रसंग, भे सीतल गाता। (४)
दो०—मंगल - समय सनेह - बस , सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय[1] हरपि हिय , कहि पुलके प्रभु - गात ॥ ४५ ॥
धन्य जनम जगती-तल तासू। पितहि प्रमोद, चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ कर - तल ताके। प्रिय पितु - मातु प्रान-सम जाके। (१)
आयसु पालि, जनम - फल पाई। अइहउँ बेगिहि, होउ रजाई।
विदा मातु - सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहिं, बहुरि पग लागी। (२)
अस कहि राम गवन तब कीन्हाँ। भूप सोक - बस उतर न दीन्हाँ।
४७० नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी। (३)
सुनि भे बिकल सकल नरनारी। बेलि - बिटप जिमि देखि दवारी।
जो जहँ सुनइ, धुनइ सिर सोई। बड़ बिपाद, नहिं धीरज होई। (४)

सहना पड़ रहा है। मुझे पहले किसीने कुछ बताया-तक नहीं। आपको (दुखी) देखकर जब मैंने मातासे पूछा तो सारा समाचार जानकर शरीर शीतल हो गया (मुझे बड़ा सन्तोष मिला)। (४) पिता ! ऐसे मंगलके समय आप स्नेहके कारण जो शोक किए बैठे हैं वह सब छोड़िए और प्रसन्न होकर मुझे (वन जाने की) आज्ञा दे दीजिए।' यह कहते-कहते प्रभु (राम) पुलकित हो उठे ॥४५॥ (वे कहने लगे) 'संसारमें उसी पुत्रका जन्म लेना सराहनीय है, जिसका चरित्र सुन-सुनकर पिताको आनन्द प्राप्त हो। जो पुत्र अपने माता-पिताको प्राणोंके समान प्रिय समझता हो उस पुत्रको चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) सरलतासे मिल जाते हैं। (१) आपकी आज्ञाका पालन करके और इस प्रकार, जन्म धारण करनेका फल पाकर मैं शीघ्र ही लौटकर आया जाता हूँ। (इसलिये आपसे निवेदन है कि मुझे वन जानेकी) आज्ञा देनेकी कृपा कीजिए। मैं अभी जाकर मातासे विदा माँगे आता हूँ और फिर आपको प्रणाम करके वन चल देता हूँ।' (२) यह कहकर राम वहाँसे निकल चले। राजाको इतना अधिक शोक हो चला था कि उनके मुँहसे कोई उत्तर नहीं निकल पा रहा था। बातकी बातमें यह जी दहलानेवाला समाचार सारे नगरमें ऐसे फैल गया मानो (डंक लगते ही) विच्छूका विप सारे शरीरमें फैल चढ़ा हो। (३) यह समाचार जिसके भी कानोंमें पड़ा वही स्त्री या पुरुप ऐसे व्याकुल हो उठा जैसे दावानल (जंगलकी आग) लगी देखकर लता और वृक्ष झुलस उठते हैं। जिसने जहाँ यह समाचार सुना उसने वहीं सिर पीट लिया। चारों ओर इतना भयंकर शोक छा गया कि (बहुत समझाने-बुझानेपर भी) किसीको धैर्य नहीं हो पा रहा था। (४) लोगोंके मुँह सूख चले, आँखोंसे आँसू बह निकले और शोक इतना प्रबल हो चला कि

१. दीजिय

४६३-६४ यत्तत्रभवतः किंचिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया। प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ॥
४६५ न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्। यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ॥वा०रा०
४६८ मातरं च समाश्वास्य अनुनीय च जानकीम्। आगत्य पादौ वंदित्वा सुखं यास्ये ततो वनम्॥अ०रा०
४६९ इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य मातरं द्रष्टुमाययौ। रामस्य तु वचः श्रुत्वा भृशं दुःखगतः पिता ॥
शोकादशक्नुवन् वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम्। —वाल्मीकीयरामायण

दो०—मुख सुखाहिँ, लोचन स्रवहिँ, सोक न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन - रस - कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥ ४६ ॥
मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ - तहँ देहिँ कैकइहि गारी।
ऐहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ, भवन - पर पावक धरेऊ। (१)
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा, बिष चाहत चीखा।
कुटिल, कठोर, कुबुद्धि, अभागी। भइ रघुबंस - बेनु - बन आगी। (२)
पालव बैठि, पेड़ यहि काटा। सुख - महँ सोक - ठाट धरि ठाटा।
४८० सदा राम यहि प्रान - समाना। कारन कवन कुटिलपन ठाना। (३)
सत्य कहहिँ कबि, नारि - सुभाऊ। सब बिधि अगह[1], अगाध, दुराऊ।
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारि - गत भाई।
दो०—काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करइ अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ॥ ४७ ॥

हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा था। (ऐसा लग रहा था) मानो करुण रस (शोक)-की सेनाएँ डंका बजाकर अयोध्यापर चढ़ाई कर बैठी हों ॥ ४६ ॥ (सब लोग वहाँ यहाँ कहे जा रहे थे कि) विधाताने बीचमें ही सारी बनी बनाई बात आ बिगाड़ी। (ऐसा कह-कहकर) लोग जहाँ देखो वहीं कैकेयीको (भरपेट) गालियाँ सुनाए जा रहे थे कि–'इस पापिनको ऐसी क्या सूझी कि छाए-छवाए घरपर सुलगती आग ला धरी। (१) यह (कैकेयी) अपने हाथों अपनी आँखें निकालकर भी चाह रही है कि मुझे दिखाई देता रहे। यह अमृत फेंककर विष चखनेपर उतारू हो गई है। यह खोटी, निर्दयी, उलटी बुद्धिवाली और अभागिन कैकेयी आज रघुवंश-रूपी बाँसके वन (-को जला डालने)-के लिये आग बन उठी है। (२) यह जिस पेड़के पत्तेपर बैठी है उसी पेड़को काटे डाल रही है। इसने सुखकी घड़ीमें शोकका ठाठ बना खड़ा किया है। इसे तो राम सदा प्राणोंके समान प्रिय लगते थे। आज ऐसी क्या बात हो गई कि यह ऐसी कुटिलतापर उतर आई है। (३) कवियोंने सत्य ही कहा है कि स्त्रीका स्वभाव इतना अथाह और रहस्यसे भरा होता है कि कोई किसी भी प्रकार उसकी थाह नहीं पा सकता। अपनी परछाहीं भले ही कोई पकड़ ले, पर भाई ! स्त्री कब क्या कर बैठेगी यह कोई नहीं समझ सकता (४) (संसारमें) क्या है जिसे अग्नि जला नहीं पा सकती ? क्या है जो समुद्रमें डूब नहीं पा सकता ? क्या है जो अबला कहलाकर भी स्त्री कर नहीं पा सकती और कौन है जिसे इस संसारमें काल खा नहीं पा सकता ? ॥४७॥ विधाताने

१. अगम।

४७१-७४ तस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रे निष्क्रामति कृतांजलौ। आर्तशब्दो महाञ्जज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे तदा ।.वा०रा०
४७५ धिक् केकयीमित्यपरो जगाद ॥ —भट्टिकाव्य
४८१-८२ अग्राह्यं हृदयं तथैव वदनं यद् दर्पणान्तर्गतं भावः पर्वतसूक्ष्ममार्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ॥
अन्तःक्रूरा सौम्यमुखा अगाधहृदयाः स्त्रियः। अन्तर्विषा बहिः सौम्या भक्ष्या विषकृता इव ॥
यदन्तस्तन्न जिह्वायां यज्जिह्वायां न तद् बहिः। यद् बहिस्तन्न कुर्वन्ति विचित्रचरिताः स्त्रियः॥अ.रा.
४८३-८४ नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ॥ —भर्तृहरिशतक

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ, चह काह देखावा।
एक कहहिं भल भूप न कीन्हाँ। बर बिचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हाँ। (१)
जो हठि भयउ सकल दुख - भाजनु। अबला-बिबस ग्यान-गुन गा जनु।
एक धरम - परमिति पहिचाने। नृपहिं दोस नहिं देहिं सयाने। (२)
सिबि - दधीचि - हरिचंद - कहानी। एक एक - सन कहहिं बखानी।
४९० एक भरत - कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं। (३)
कान मूँदि कर, रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा।
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। राम, भरत - कहँ प्रानपियारे। (४)
दो०—चंद चवइ बरु अनल-कन, सुधा होइ बिष - तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं कछु, भरत, राम - प्रतिकूल ॥ ४८ ॥
एक बिधातहिं दूषन देहीं। सुधा देखाइ, दीन्ह बिष जेहीं।

भी क्या (राजतिलक) सुनाकर यह क्या (वनवास) सुना डाला और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखानेपर तुला हुआ है ?' कुछ लोग कहने लगे—'राजाने यह अच्छा नहीं किया कि बिना आगा-पीछा सोचे दुर्बुद्धि कैकेयीको ऐसा वर दे डाला (१) और उसपर ऐसे अड़ बैठे कि उन्हें बैठे-बिठाए ये सब दुःख सहने पड़ रहे हैं। जान पड़ता है स्त्रीके फेरमें उनका ज्ञान और उनके गुण सब जाते रहे।' कुछ ऐसे भी सयाने (समझदार) लोग थे जो धर्मकी मर्यादा समझते थे, इसलिये वे इसमें राजाका कोई दोष नहीं समझते थे। (२) वे एक दूसरेको शिवि, दधीचि और हरिश्चंद्रकी कहानी सुना-सुनाकर धर्म और सत्यकी महिमा बताए जा रहे थे। कोई कह रहा था—'इस कुचक्रमें भरतका भी हाथ अवश्य रहा होगा।' कुछ लोग ऐसे भी थे जो सब सुनकर भी उदासीन हुए रह जाते थे (कुछ कहते-सुनते नहीं थे)। (३) कोई दोनों हाथोंसे कान मूँदकर और दाँतों-तले जीभ दबाकर टोक रहे थे—'यह सब झूठ है (इसमें भरतका हाथ नहीं है)। ऐसा कहोगे तो तुम्हारे सारे पुण्य नष्ट हो जायँगे। भरत तो रामको प्राणोंके समान प्यार करते हैं। (४) चन्द्रमा भले ही आगकी चिनगारियाँ बरसा चले, अमृत भले ही विष बन जाय, पर भरत स्वप्नमें भी कभी रामके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते (विरोध करनेकी सोच भी नहीं सकते)' ॥ ४८ ॥ इस सब कांडके लिये कोई उस विधाताको ही दोष दिए जा रहा था जिसने दिखाया अमृत, और दे डाला विष। (अयोध्या) नगर-भरमें बड़ा हड़कम्प मच गया था और सब (इसी) सोचमें पड़े जा रहे थे (कि अब करें तो क्या

४८५ यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति यच्चेतसाऽपि न कृतं तदिहाभ्युपैति।
प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्त्ती सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी।—वाल्मीकीयरामायण
४८६-८७ केचिन्निनिन्दुर्नृपमप्रशान्तम्। —भट्टिकाव्य
अबुद्धिर्वत नो राजा जीवलोकं चरत्ययम्। यो गतिं सर्वभूतानां परित्यजति राघवम्॥वाल्मी०
४८८-८९ केचिद्वदन्ति धर्मज्ञा राजा नैवापराधभाक्। हरिश्चंद्रादिकानां च सत्यं ध्यायन्तु पण्डिताः॥भर०रा०
४९०-९४ ऊचुस्तथाऽन्ये भरतस्य मायाम्।
उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनाम्॥—सुभाषित
४९५ अहो विधातस्तव नो क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा॥ —श्रीमद्भागवत।

खरभर नगर, सोच सब काहू। दुसह दाह उर, मिटा उछाहू। (१)
बिप्र-बधू, कुल-मान्य, जठेरी। जे प्रिय परम कैकई-केरी।
लगीं देन सिख, सील सराही। बचन बान-सम लागहिं ताही। (२)
भरत न मोहिं प्रिय राम-समाना। सदा कहहु, यह सब जग जाना।
५०० करहु राम-पर सहज सनेहू। केहि अपराध आज बन देहू। (३)
कबहुँ न किएहु सवति-आरेसू। प्रीति-प्रतीति जान सब देसू।
कौसल्या अब काह बिगारा। तुम जेहि लागि, बज्र पुर पारा। (४)
दो०—सीय कि पिय-सँग परिहरिहि, लखन कि रहिहहिं धाम।
राज कि भूँजब भरत पुर, नृप कि जिइहिं बिनु राम॥ ४९॥
अस बिचारि उर छाँड़हु कोहू। सोक-कलंक-कोठि जनि होहू।
भरतहिं अवसि देहु जुवराजू। कानन काह राम-कर काजू। (१)
नाहिंन राम राज-के भूखे। धरम-धुरीन, बिषय-रस-रूखे।

करें)। उनके हृदय भीतर ही भीतर कचोटे जा रहे थे। सबका सारा उत्साह ठंढा पड़ चला था। (१) ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ, कुलकी मानी-जानी बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ और कैकेयीकी परम प्रिय सखियाँ सबने कैकेयीके शीलकी सराहना कर-करके उन्हें बहुत सीख देनी चाही, परन्तु उन सबके वचन कैकेयीको ऐसे लग रहे थे जैसे वे उसपर बाण बरसाए चली जा रही हों। (२) (वे समझाए जा रही थीं—) 'सारा जगत् जानता है कि तुम सदा यही कहा करती थीं कि रामके समान मुझे भरत भी प्रिय नहीं है। रामसे तो तुम स्वभावसे ही स्नेह करती रही हो, फिर आज उनसे ऐसा क्या अपराध आ बना कि तुम उन्हें वन भेजे दे रही हो? (३) सारा देश जानता है कि अपनी सौतोंसे तुम कितना प्रेम करती थीं और उनका कितना विश्वास करती थी कि तुमने कभी उनसे सौतिया-डाह नहीं किया। आज कौशल्याने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ कर डाला कि तुम सारे नगरपर वज्र घहरानेको तुली बैठी हो। (४) तुम क्या समझती हो कि राम जब वन जाने लगेंगे तब जानकी अपने पतिका साथ छोड़कर अयोध्यामें बैठी रह जायँगी? (रामके बिना) क्या लक्ष्मण घर (अयोध्यामें) टिके बैठे रहेंगे? क्या तुम समझती हो कि भरत इस अयोध्यापुरीका राज भोगनेको कभी तैयार होंगे? क्या रामके बिना राजा (दशरथ) जीवित रह सकेंगे?॥४९॥ हृदयमें यह सब विचारकर अपना क्रोध उतार धरो। तुम क्यों बैठे-बिठाए शोक और कलंककी कोठी (पाठां० कोटि=सीमा) बनी जा रही हो। भरतको युवराज बनाना हो अवश्य बनाओ, पर रामको वन भेजनेमें क्या तुक है?। (१) राम तो (इस अयोध्याके) राज्यके भूखे हैं नहीं। वे तो धर्मकी धुरी सँभाले रखनेवाले (धर्मके-अनुसार काम करनेवाले) और विषय-रस (सांसारिक वैभव)-से दूर रहनेवाले हैं। (यदि तुम यही चाहती हो कि राम घरमें न रह पावें तो)

४९६ नगरे च महाशोकः सर्वस्य हृदयेऽभवत्। —वाल्मीकीयरामायण
४९७-९८ कथं पुत्रं महात्मानं ज्येष्ठं राममपश्यतः। शरीरं धारयिष्यन्ति प्राणा राज्ञो महात्मनः॥वा०रा०
४९९-५०० भरतादधिको रामः प्रियकृन्मे प्रियंवदः। इत्थं ब्रवीषि जानाति सर्वदा सकलं जगत्।
करोषि रामे सुप्रेम वनं कस्माद् ददासि च॥ —अध्यात्मरामायण
५०१-२ कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु। —वाल्मीकीयरामायण
५०३-४ सीता त्यक्ष्यति किं रामं लक्ष्मणो रघुनन्दनम्।अयोध्यानगरीराज्यं भरतः किं करिष्यति॥महा०रा०
५०६ भरतश्च महाबाहुरयोध्यां पालयिष्यति। रामस्य विपिने कार्यं किंचिन्नैव हि विद्यते। वाल्मीकीय

गुरु - गृह वसहु राम, तजि गेहू । नृप - सन, अस वर दूसर लेहू । (२)
जौ नहिँ लगिहहु कहे हमारे । नहिँ लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ।
५१० जौ, परिहास कीन्ह कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई । (३)
राम - सरिस सुत, कानन - जोगू ? काह कहिहिँ सुनि तुम-कहँ लोगू ।
उठहु वेगि, सोइ करहु उपाई । जेहिँ विधि सोक-कलंक नसाई । (४)
छंद—जेहिं भाँति सोक - कलंक जाइ, उपाय करि कुल पालही ।
हठि फेरु रामहिँ जात वन , जनि बात दूसरि चालही ।
जिमि भानु - विनु दिन , प्रान-विनु तन, चंद-विनु जिमि जामिनी ।
तिमि अवध तुलसीदास-प्रभु-विनु, समुझि धौं जिय भामिनी ।। [२]
सो०—सखिन सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर, परिनाम हित ।
तेइ कछु कान न कीन्ह , कुटिल प्रबोधी कूबरी ।। ५० ।।

तुम राजासे दूसरा वर यही माँग लो कि राम घर छोड़कर गुरुके घर (आश्रममें) जा रहें । (२) (हम बताए देती हैं कि) यदि हमारे कहनेपर तुम न चलीं तो तुम्हारे भी कुछ पल्ले न पड़ेगा (राम, लक्ष्मण और जानकी वन चले जायँगे, राजा बिना रामके जीवित न रह सकेंगे, भरत भी राज्य स्वीकार न करेंगे और तुम भी राजमाता न बन सकोगी) । हाँ, यदि तुमने कुछ परिहास (हँसी-विनोद) ही किया हो तो वह भी खुलकर बतला दो । (३) भला राम-जैसा पुत्र क्या वन भेजे जाने-योग्य है ? जो सुनेगा वह क्या तुम्हारे जन्मपर थूकेगा (तुम्हें क्या कहेगा कि कैकेयी कितनी निष्ठुर और विवेकहीन है ?) इसलिये झटपट उठो और ऐसा काम करो कि सबका शोक भी दूर हो और (तुम्हारा) यह कलंक भी मिट धुले । (४) देखो, जिस उपायसे भी यह शोक और कलंक दूर हो सके, वही उपाय करके तुम कुलकी रक्षा कर लो । वन जाते हुए रामको (जैसे भी हो) हठ करके रोक लो । अब कोई दूसरी बात चलाओ ही मत । देखो भामिनी ! अपने हृदयमें यह तुम भली प्रकार समझ लो कि जैसे सूर्यके बिना दिन, प्राणके बिना शरीर और चन्द्रमाके बिना रात्रि (निरर्थक हो जाती है), वैसे ही तुलसीदासके स्वामी रामके बिना अयोध्या भी (सूनी और निरर्थक) हो जायगी ।' [२] इस प्रकार उस (कैकेयी)-की सखियोंने उसे ऐसी (अच्छी और ठीक) सीख दी जो सुननेमें भी प्रिय थी और जिसका परिणाम भी कल्याण करनेवाला था, पर उस कुटिल (दुष्टा) कुबरीने कैकेयीको सिखा-पढ़ाकर ऐसा पक्का कर दिया था कि सबकी बात उसने सुनी-अनसुनी कर डाली (किसीकी बात उसके हृदयमें उतरनेका नाम नहीं ले रही थी) ।।५०।।

५०७-८ लोकभोगविरक्तस्य धर्मज्ञस्य च धीमतः । राज्यं कर्तुं मनो नैव रामस्येच्छाविहारिणः ।।
राज्ञो वरं द्वितीयं त्वं गृहाण जगदीश्वरि । त्यक्त्वा गेहं गुरोर्गेहे निवसेद् राघवः सुखम् ।नारदोक्तरा०
५०९-१० यदि त्वं मदीयं सुवाक्यं शृणोसि न दिव्यं सुखं लप्स्यसे राजराज्ञि ।
यदा चैव हास्यं कृतं हास्यशीले तदप्यद्य तूर्णं वद स्वस्वभावम् ।। —अगस्त्यरामायण
५११-१२ श्रीरामसदृशः पुत्रो वनवासं न चार्हति । उत्तिष्ठ कुरु चोपायं कलंको नश्यति ध्रुवम् ।। गरुडरा०
५१३-१८ तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना । न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम् ।।
तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये ।। —वाल्मीकीयरामायण

उतर न देइ, दुसह रिस - रूखी । मृगिन चितव जनु बाघिनि भूखी ।
५२० ब्याधि असाधि जानि, तिन्ह त्यागी । चलीं कहत, मतिमंद, अभागी । (१)
राज करत, यह दैव बिगोई । कीन्हेसि अस, जस करइ न कोई ।
ऐहि बिधि बिलपहिं पुर - नर - नारी । देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी । (२)
जरहिं बिषम - जर, लेहिं उसाँसा । कवनि राम - बिनु जीवन-आसा ।
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी । जनु जलचर - गन, सूखत पानी ।
अति बिषाद - बस लोग - लुगाई । गये मातु - पहँ राम गोसाँई ।
मुख प्रसन्न, चित चौगुन चाऊ । मिटा सोच, जनि राखइ राऊ । (४)
दो०—नव गयंद रघुबीर मनु, राज अलान - समान ।
छूट जानि, बन - गवन सुनि, उर अनंद अधिकान ।। ५१ ।।

(पूछनेपर भी) वह (कैकेयी) किसी की बातका कोई उत्तर ही नहीं दे रही थी । वह भयङ्कर क्रोधसे बौखलाकर बड़ी रूखी (कठोर) हो चली थी और उनकी ओर ऐसे घूरे चली जा रही थी मानो हिरनियों (-को धर दबोचनेके लिये उन)-की ओर कोई सिंहिनी (ताक लगाए) घूरे जा रही हो । सखियोंने जब उसका यह व्यवहार देखा तो समझ लिया कि रोग हाथसे बाहर हो गया है, इसलिये उसे छोड़ दिया (उससे बात करना बन्द कर दिया) और सभी उसे मूर्ख और अभागिनी कहती हुई उसके पाससे उठकर चल दीं । (१) नगरके सभी स्त्री-पुरुष यही कह-कहकर रोए-बिलखे जा रहे थे और कैकेयीको करोड़ों गालियाँ दिए जा रहे थे कि इस दैवकी मारी (अभागिन)-ने सब राजसुख भोगते हुए भी ऐसा (खोटा काम) कर डाला जैसा करनेका दूसरा कोई सोच भी नहीं सकता । (२) वे सब इसी विषम ज्वर (ताप)-से जलते और उसाँसें भरते हुए कहते चले जा रहे थे कि 'रामके बिना अब जीते रहनेकी आशा क्या की जाय ?' रामसे इतने दिनोंका वियोग हो जानेकी चिन्तासे प्रजा ऐसी व्याकुल हुई जा रही थी जैसे (जलाशयका) पानी सूख जानेपर वहाँके जलजन्तु छटपटाने लगते हैं । (३)

जब इधर सब नर-नारी दुखी हो-होकर रो-पीट रहे थे तभी उधर प्रभु राम अपनी माता कौशल्याजीके पास जा पहुँचे । उनका मुख खिला पड़ा रहा था और चित्तमें चौगुना उत्साह भरा हुआ था (कि वनमें मुनियोंसे मिलना होगा, पिताकी आज्ञाका पालन होगा, माताकी सम्मतिका भी आदर हो जायगा और प्राणप्रिय भरतको राज्य मिल जायगा) । उनकी यह शंका अब जाती रही थी कि कहीं राजा रोक न बैठें । (४) राम ही मानो नये फँसाये हुए गजराज हों और राज्य ही (हाथी बाँधनेका) खूँटा हो जिससे मुक्त होकर वन जानेकी आज्ञा सुनकर उनका हृदय आनन्दसे (वैसे ही) उछल पड़ा (जैसे नये पकड़े हुए हाथीको अपना बन्धन खुला जानकर वन चले जानेकी सुविधा मिल गई हो) ।।५१।।

५१९ असह्यक्रोधसंतप्ता कैकेयी पश्यति स्त्रियः । यथा बुभुक्षिता व्याघ्री मृगीयूथं विलोकयेत् ।।अद्भुतरा०
५२१-२२ राज्ञी चेयं दैवयोगाद् विनष्टा कृत्वा नेत्थं कर्मकर्त्ता यथाऽन्यः ।
इत्थं सर्वे सर्वदा वै विलापं कुर्वन्त्येनां गालिदानं च चक्रुः ।। —नृसिंहपुराण
५२३-२४ जीवनाशा विना रामं का चेत्थं व्याकुला च सा । यथा जलचराः शुष्के नीरे चाकुलितास्तथा ।।
महता च वियोगेन विषमज्वरपीडिताः । —पद्मपुराण
५२५-२६ धारयन्मनसा दुःखमिन्द्रियाणि निगृह्य च । प्रविवेशात्मवान् वेश्म मातुरप्रियशंसिवान् ।।
सर्वोऽप्यभिजनः श्रीमान् श्रीमतः सत्यवादिनः । नालक्षयत रामस्य कंचिदाकारमानने ।।वा०रा०
५२७-२८ पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ्महीं प्रत्यपद्यत । पश्चाद् वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ।।रघु०

रघुकुल - तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु - पद नायेउ माथा।
५३० दीन्हि असीस, लाइ उर लीन्हें। भूषन - बसन निछावरि कीन्हें। (१)
बार - बार मुख चुंबति माता। नयन नेह - जल, पुलकित गाता।
गोद राखि, पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेम - रस पयद सुहाए। (२)
प्रेम - प्रमोद न कछु कहि जाई। रंक धनद - पदवी जनु पाई।
सादर सुंदर बदन निहारी। बोली मधुर बचन महतारी। (३)
कहहु तात ! जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगल - कारी।
सुकृत, सील, सुख - सींवँ सुहाई। जनम-लाभ-कइ अवधि अघाई। (४)
दो०—जेहि चाहत नर-नारि सब , अति आरत ऐहि भाँति।
जिमि चातक-चातकि तृपित , बृष्टि सरद - रितु स्वाति ।। ५२ ।।
तात ! जाउँ बलि, बेगि नहाहू। जो मन भाव, मधुर कछु खाहू।
५४० पितु - समीप तब जायहु भैया। भइ बड़ि बार, जाइ बलि मैया। (१)
मातु - बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह - सुरतरु - के फूला।
सुख - मकरंद - भरे श्रिय - मूला। निरखि राम-मन-भँवर न भूला। (२)

रघुकुलके तिलक रामने दोनों हाथ जोड़कर अत्यन्त आनन्दमें भरकर माताके चरणोंमें सिर झुका धरा और माताने भी आशीर्वाद देकर उन्हें अपनी छातीसे लगाकर उनपर बहुतसे आभूषण और वस्त्र न्योछावर कर डाले। (१) माता बार-बार उनका मुँह चूमने लगी। उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक चले और शरीर पुलकित हो उठा। उन्होंने रामको गोदमें बैठाकर उन्हें हृदयसे चिपका लगाया। उनके भरे हुए स्तनोंसे मधुर प्रेम-रस (प्रेमके कारण वह चलनेवाला दूध) बह निकला। (२) माता कौशल्याके हृदयमें इतना प्रेम और आनन्द उमड़ा पड़ रहा था कि कुछ कहा नहीं जा सकता मानो किसी कंगालको उठाकर कुबेर बना बैठाया हो। रामका सुन्दर मुखड़ा देखकर माता बड़े आदरसे मधुर वचन बोलीं—'बेटा ! माता तुमपर बलिहारी जाती है। कहो, वह आनंद-मङ्गल (तुम्हारे राजतिलक)-का श्रेष्ठ लग्न कब है जिसे मैं अपने पुण्य, शील और सुखका सबसे बड़ा फल और (मानव)-जन्म लेनेका बहुत बड़ा लाभ समझती हूँ (४) और सभी नर-नारी अत्यन्त उत्सुक होकर जिस (लग्न)-की इस प्रकार बाट जोह रहे हैं जैसे प्याससे व्याकुल चातक और चातकी शरद-ऋतुके स्वाती नक्षत्रकी वर्षाके जलकी आस लगाए बैठे हों ।।५२।। बेटा ! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम झटपट नहा-धो लो और जो अच्छा लगे कुछ मीठा मुँह करके तब पिताके पास जाना क्योंकि देर बहुत हो गई है (भूख लगी होगी)। माता तुमपर बलिहारी जाती है।' (१) माताके ऐसे स्नेहके कल्पवृक्षके फूल-जैसे मधुर वचनोंपर भी रामके मनका भौंरा नहीं लुभाया जो सुखके मकरन्दसे भरे और परम सुन्दर थे (स्नेहभरे वचनोंसे भी नहीं डिगे)। (२) धर्म पालन करनेवाले रामने

५२६ कृतांजली रघुश्रेष्ठः प्रणनाम स्वमातरम्। —आनन्दरामायण
५३०-३२ रामं दृष्ट्वा विशालाक्षमालिंग्यांके न्यवेशयत्। मूर्ध्न्यवघ्राय पस्पर्श गात्रं नीलोत्पलच्छविम्।।अ०रा०
५३४ तमुवाच दुराधर्षं राघवं सुतमात्मनः। कौसल्या पुत्रवात्सल्यादिदं प्रियहितं वचः।।
५३५ सत्यप्रतिज्ञं पितरं राजानं पश्य राघव। अद्यैव त्वां स धर्मात्मा यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति।।वा०रा०
५३६ भुंक्ष्व पुत्रेति च प्राह मिष्टमन्नं क्षुधार्दितः। —अध्यात्मरामायण

धरम - धुरीन धरम - गति जानी । कहेउ मातु-सन अति - मृदु-बानी ।
पिता - दीन्ह मोहि कानन - राजू । जहँ, सब भाँति, मोर बड़ काजू । (३)
आयसु देहि मुदित - मन माता । जेहि मुद - मंगल कानन जाता ।
जनि सनेह - बस डरपसि भोरे । आनँद अंब ! अनुग्रह तोरे । (४)
दो०—बरस चारि-दस बिपिन बसि, करि पितु - बचन - प्रमान ।
आइ पायँ पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान ॥ ५३ ॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर - के । सर - सम लगे, मातु - उर करके ।
५५० सहमि, सूखि, सुनि सीतल बानी । जिमि जवास पर पावस - पानी । (१)
कहि न जाइ कछु हृदय - बिषादू । मनहुँ मृगी सुनि केहरि - नादू ।
नयन सजल, तन थर - थर काँपी । माँजहि खाइ मीन जनु मापी । (२)
धरि धीरज, सुत - बदन निहारी । गदगद बचन कहति महतारी ।
तात ! पितहि तुम प्रान - पियारे । देखि मुदित, नित चरित तुम्हारे । (३)

धर्मकी मर्यादा समझकर (कि जब वन जानेकी आज्ञा मिल गई है तब भोजन-पानी करना ठीक नहीं है) अपनी मातासे अत्यन्त कोमल वाणीमें कहा—'देखो माता ! पिताने मुझे वनका वह राज्य दे डाला है जहाँ सब प्रकारसे मेरा हित ही हित होगा । (३) इसलिये अब आप भी प्रसन्न मनसे आज्ञा दे दीजिए जिससे मेरी यह वन-यात्रा आनन्दसे पूर्ण हो जाय । मेरे स्नेह (-के फेर)-में पड़कर भूलकर भी घबराइएगा मत । आपकी कृपा बनी रहेगी तो सदा आनंद ही आनंद मिलता रहेगा । (४) कुल चौदह वर्ष वनमें रहकर और पिताके वचनका पालन करके मैं शीघ्र ही लौटकर आपके चरणोंका दर्शन आ करूँगा । आप मनमें तनिक भी दुःख न मानिएगा' ॥ ५३ ॥ रामके ये मधुर और विनीत वचन माताके हृदयमें ऐसे आ धँसे जैसे किसीने बाण खींच मारा हो । रामकी यह शीतल वाणी सुनकर माता कौशल्या उसी प्रकार सहमकर मुरझा गईं जैसे वर्षाका जल पड़नेसे जवासा सूख झड़ता है । (१) उनके हृदयमें उस समय जो दुःख भड़क उठा वह कुछ कहते नहीं बनता मानो सिंहका गर्जन सुनकर हिरनी सकपका उठी हो । उनकी आँखें डबडबा चलीं और शरीर ऐसे थर-थर काँपने लगा, मानो मछली माँजा (पहली वर्षाके जलका वह फेन, जिसे मछलियाँ खाद्य समझकर खा तो लेती हैं पर उसका नशा होते ही तड़फड़ाने लगती हैं) खाकर तड़फड़ाने लगी हो । (२) पर बहुत धीरज धरकर और पुत्र (राम)-का मुँह देखकर भरे कंठसे कौशल्या बोलीं—'बेटा ! तुम्हारे पिता दशरथ तुम्हें प्राणोंके समान प्यार करते थे और तुम्हारे चरित्र (व्यवहार) देख-देखकर वे निरन्तर प्रसन्न भी हुए रहते थे । (३) उन्होंने ही तुम्हें राज्य देनेके

५४३ दत्तमासनमालभ्य भोजनेन निमन्त्रितः । मातरं राघवः किंचित् प्रसार्यांजलिरब्रवीत् ॥ वा०रा०
५४४ रामः प्राह न मे मातर्भोजनावसरः कृतः । दण्डकागमने शीघ्रं मम कालोऽद्य निश्चितः ।
कैकेयीवरदानेन सत्यसंधः पिता मम । भरताय ददौ राज्यं ममाऽप्यारण्यमुत्तमम् ॥–अध्यात्म०
५४५ अनुमन्यस्व मामम्ब दुःखं संत्यज्य दूरतः । एवं चेत्सुखसंवासो भविष्यति वने मम ॥
५४७-४८ चतुर्दशसमास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् । आगमिष्ये पुनः शीघ्रं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥
५५० सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने । पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥
५५१ ममैव नूनं मरणं न विद्यते न चावकाशोऽस्ति यमक्षये मम ।
यदन्तकोऽद्यैव न मां जिहीर्षति प्रसह्य सिंहो रुदतीं मृगीमिव ॥ —वाल्मीकीयरामायण
५६३ धृत्वा धैर्यं मुखं दृष्ट्वा माता प्राह वचः शुभम् । पितुः प्राणप्रियस्तात सर्वदुःखविनाशकः । –वशि०रा०

राज देन - कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन, केहि अपराधा।
तात ! सुनावहु मोहिं निदानू। को दिनकर - कुल भयउ कृसानू। (४)
दो०—निरखि राम-रुख, सचिव-सुत, कारन कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग, रहि मूक-जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥ ५४ ॥
राखि न सकइ, न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।
५६० लिखत सुधाकर, गा लिखि राहू। बिधि-गति बाम, सदा सब काहू। (१)
धरम, सनेह, उभय मति घेरी। भइ गति साँप - छछूँदर-केरी।
राखौं सुतहिं, करौं अनुरोधू। धरम जाइ, अरु बंधु - बिरोधू। (२)
कहौं जान बन, तौ बड़ि हानी। संकट - सोच - बिवस भइ रानी।
बहुरि समुझि तिय - धरम, सयानी। राम - भरत दोउ सुत, सम जानी। (३)
सरल सुभाउ राम - महतारी। बोली बचन, धीर धरि भारी।
तात ! जाउँ बलि, कीन्हेहु नीका। पितु-आयसु सब धरम-क टीका। (४)

लिये शुभ-मुहूर्त निकलवाया था, फिर इतनी देरमें तुमने कौन-सा ऐसा अपराध कर डाला कि वे तुम्हें वन भेजनेपर तुल गए हैं ? बताओ बेटा ! सूर्यवंशको जलानेके लिये कौन अग्नि बनकर आ भड़का है ?' (४) रामका संकेत पाकर (साथ आए हुए) मंत्रीके पुत्रने सारा कारण समझाकर कह सुनाया। वह सब सुनकर कौशल्या माता ऐसी गुमसुम होकर बैठ रहीं कि उनकी उस समयकी दशाका वर्णन किया नहीं जा सकता ॥ ५४ ॥ माता कौशल्या ऐसी दुविधामें पड़ गईं कि न तो वे रामको रुकनेके लिये ही कह पा रही थीं न वन जानेको ही। इस उलझनके कारण उनके हृदयमें बड़ी उथल-पुथल मच उठी। (वे मनमें सोचती जा रही थीं—'देखो) 'विधाताकी गति सदा सबके लिये कैसी टेढ़ी चलती है कि जहाँ चन्द्रमाका चित्र बनाया जा रहा था वहाँ (उसपर स्याही टपक पड़नेसे) राहु बन गया (जहाँ राजतिलक मिलनेवाला था, वहाँ वनवास मिल गया)। (१) (एक ओर) धर्म (-की मर्यादा) और दूसरी ओर (पुत्रका) स्नेह दोनोंने माताकी बुद्धि ऐसे चक्करमें डाल दी कि उनकी दशा साँप-छछूँदर-जैसी दुविधा-भरी हो गई (साँप यदि छँछूदरको निगले तो अन्धा और उगले तो कोढ़ी हो जाय)। (वे सोचने लगीं कि) 'यदि मैं भी इस समय अड़ बैठती हूँ और पुत्र (राम)-को (वन जानेसे) रोक रखती हूँ तो धर्म (-का गौरव) नष्ट हो जाता है, और भाइयों (राम-भरत)-में विरोध उठ खड़ा होता है। (२) यदि इन्हें वन जानेको कह देती हूँ तो सारा काम ही बिगड़ जाता है (अयोध्या चौपट हो जाती है)।' इस प्रकार धर्म-संकटमें पड़कर रानी बड़ी उलझनमें पड़ गई। पर (इस विपत्तिमें) स्त्रीके धर्मका विचार करके तथा भरत और राम दोनों पुत्रोंको समान जानकर (३) वह सरल (उदार, भले) स्वभाववाली रामकी माता चतुर कौशल्या अपना जी कड़ा करके बोलीं—'बेटा ! मैं तुमपर (सौ जानसे) बलिहारी हुई जाती हूँ। तुमने जो निश्चय किया वही ठीक है। पिताकी आज्ञाका पालन करना सब धर्मोंमें

५५६ किमर्थं वनवासाय त्वामाज्ञापयति प्रियम्। त्वया किमपराद्धं हि कैकेय्या वा नृपस्य वा ॥अ०रा०
५५७-५८ ज्ञात्वा रामाशयं सर्वं वृत्तान्तं कथितं च सा। दुःखिता मूकवद् देवी न किंचित् व्याजहार ह ॥महा०
५५९ कौशल्या राघवं किंचिन्न वक्तुं कुशलाभवत् ॥ —अगस्त्यरामायण
५६१ कौशल्या दुःखिता रामं प्राह किंचिद् वचः शुभम्। तवावस्थानतः पुत्र धर्मः शुद्धः प्रणश्यति।पुल०सं०
५६३-६४ नारीधर्मं परं ज्ञात्वा रामं च भरतं समम्। दुःखेन महता राज्ञी शोकेन विकला च सा॥–भर०सं०
५६६ धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्। धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ॥

दो०—राज देन कहि, दीन्ह बन, मोहिं न सो दुख-लेस।
तुम-बिनु भरतहि, भूपतिहि, प्रजहि, प्रचंड कलेस ॥ ५५ ॥

जौं केवल पितु-आयसु ताता। तौ जनि जाहु, जानि बड़ि माता।
५७० जौं पितु-मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन, सत-अवध-समाना। (१)
पितु बन-देव, मातु बन-देवी। खग-मृग चरन-सरोरुह-सेवी।
अंतहु उचित नृपहिं बन-बासू। बय बिलोकि, हिय होइ हरासू। (२)
बड़-भागी बन, अवध अभागी। जो रघुबंस-तिलक तुम त्यागी।
जौं सुत ! कहौं, संग मोहिं लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू। (३)
पूत ! परम-प्रिय तुम सबही-के। प्रान प्रान-के, जीवन जी-के।
ते तुम कहहु, मातु ! बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ। (४)

सबसे अच्छा धर्म बताया गया है। (४) तुम्हारे पिताने तुम्हें राज्य देनेको कहकर तुम्हें वनवास दे डाला इसका मुझे लेश-मात्र भी दुःख नहीं है। पर (इस बातका दुःख अवश्य है कि) तुम चले गए तो भरत, राजा दशरथ और प्रजा सबके दुःख ही दुःख हाथ लगेगा ॥ ५५ ॥ इसलिये बेटा ! यदि केवल पिताने ही आज्ञा दी हो तब तो तुम माताको (मुझे) पितासे बड़ा जानकर वन मत जाओ। पर यदि पिता और माता (कैकेयी) दोनोंने वन जानेको कह दिया हो तब तो वह वन ही तुम्हारे लिये सौ अयोध्याओंके समान सुखकर होगा। (१) वहाँ वनके देवता तुम्हारे पिता होंगे और वन-देवियाँ तुम्हारी माता होंगी और पशु-पक्षी तुम्हारे चरण-कमलोंके सेवक होंगे। और फिर, अन्तमें तो राजाको वनमें वास करना ही चाहिए, केवल तुम्हारी यह (कोमल) अवस्था (इसी अवस्थामें वन जाते) देखकर ही हृदय भरा जा रहा है। (२) देखो, रघुवंशके तिलक (राम) ! आज तो वन ही बड़ा भाग्यशाली हो उठा है और जिस अयोध्याको तुम छोड़े चले जा रहे हो, वही आज बड़ी अभागिन बन बैठी है। (ऐसे समयमें) बेटा ! यदि मैं कहती हूँ कि मुझे भी साथ लेते चलो तो तुम्हारे ही मनमें सन्देह उठ खड़ा होगा (कि मैं पुत्रसे ही स्नेह करती हूँ, पति दशरथसे नहीं; कि मैं कैकेयीसे सौतियाडाह करती हूँ; कि मैं भरतको अपना पुत्र नहीं मानती; कि भरतके राजतिलकसे मुझे दुःख हो रहा है)। देखो बेटा ! तुम्हें तो सभी लोग अपना प्रिय समझते हैं। तुम सबके प्राणोंके भी प्राण और सबके जीवनके भी जीवन हो (तुम न रहो तो न किसीका प्राण रहे न जीवन)। वही तुम (प्राणोंके प्राण) जब मुझसे पूछ रहे रहे हो कि माता ! मैं वनको जाऊँ और मैं तुम्हारी बात सुनकर बैठी झींकने—पछताने लगूँ (तो ठीक

५६७-६८ राज्यं दातुं वचश्चोक्त्वा दत्तवान् काननं तव। तस्य दुःखं न शोकश्च विद्यते हृदये मम।
त्वां विना भरतश्चापि राजा सर्वाः प्रजास्तथा। क्लेशेन महतात्यार्ता भविष्यन्ति जगाद सा ॥
५६९ पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा ॥वशि०रा०
५७१-७२ वनेशं पितरं विद्धि मातरं च वनेश्वरीम्। यथासुखं वनं गच्छ दासान् विद्धि खगान् मृगान् ॥
अन्तेपि राजभिः कार्यः वनवासः सुखाकरः। वयो विलोक्य कौमारं चित्तं भवति दुःखितम् ॥
५७३-७४ अहोभाग्यं वनस्येव यत्र त्वं निवसिष्यसि। हतभाग्या त्वयोध्येयं त्वया त्यक्ता यतः पुरी ॥
मां नय त्वं वनं नेत्थं वदामि तव शंकया।
५७५-७६ लोकप्रियोऽसि पुत्र त्वं प्राणाधारः प्रियस्य च। जीवनं जीवनानां च गच्छामि सुखदं वनम् ॥
वदस्येवं वचः श्रुत्वा पश्चात्तापं करोम्यहम्। —पुलस्त्यसंहिता

दो०—यह विचारि, नहिं करउँ हठ , झूठ सनेह बढ़ाइ ।
मानि मातु-कर नात, बलि , सुरति बिसरि जनि जाइ ।। ५६ ।।

देव - पितर सब तुमहिं गोसाईं । राखहु नयन - पलक - की नाईं ।
५८० अवधि अंबु, प्रिय परिजन मीना । तुम करुनाकर धरम - धुरीना । (१)
अस बिचारि, सोइ करहु उपाई । सबहि जियत जेहि भेंटहु आई ।
जाहु सुखेन बनहिं, बलि जाऊँ । करि अनाथ जन - परिजन - गाँऊँ । (२)
सब - कर आज सुकृत - फल बीता । भयउ कराल काल बिपरीता ।
बहु बिधि बिलपि, चरन लपटानी । परम अभागिनि आपुहिं जानी । (३)
दारुन - दुसह - दाह उर व्यापा । बरनि न जाहि बिलाप-कलापा ।
राम, उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदु वचन बहुरि समुझाई । (४)

दो०—समाचार तेहि समय सुनि , सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ, सासु-पद-कमल-जुग , बंदि, बैठि सिर नाइ ।। ५७ ।।

न होगा) (४) यह समझकर और झूठा स्नेह दिखाकर मैं हठ नहीं पकड़ना चाहती। मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। बस, तुम मुझसे माताका नाता मानते रहना, मुझे भूल न जाना ।। ५६ ।। सब देवता, पितर और परमेश्वर तुम्हारी उसी प्रकार रक्षा करें जैसे आँखोंकी रक्षा पलकें किया करती हैं। वनवासकी अवधि (चौदह वर्षका समय) ही जल है जिसके सहारे अयोध्याके प्रिय कुटुम्बी लोग ही मछली बने जीएँगे। तुम धर्मका पालन करनेवाले ही उनपर कृपा कर सकते हो। (१) ऐसा समझकर वही उपाय करो कि सबके जीते-जी (वनसे लौटकर) सबसे आ मिलो। (२) मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। तुम्हारे चले जानेसे सब सेवक, कुटुम्बी और नगरवासी तो अवश्य अनाथ हो जायँगे फिर भी तुम सुखपूर्वक (धर्मका पालन करते हुए) अवश्य वन चले जाओ। (२) आज सबके पुण्योंका फल समाप्त हो गया। निर्दयी काल आज हमारा बड़ा वैरी बन बैठा है।' (इस प्रकार) बहुत बिलखती हुई माता कौशल्या अपना भाग्य कोसती हुई रामके चरणोंसे जा लिपटीं। (३) उनके हृदयमें दुःखका भयंकर बवंडर उठ खड़ा हुआ। उस समय वे जिस प्रकार बिलखे जा रही थीं उसका वर्णन किया नहीं जा सकता। रामने उठाकर माताको हृदयसे लगा लिया और फिर वे मधुर वचन कह-कहकर उन्हें बहुत ढाढ़स बँधाने लगे।

इसी बीच रामके वन जानेका समाचार सुनकर सीता व्याकुल हो उठीं। वे सास (कौशल्या)-के

५७७-७८ प्रिय पुत्र त्वया नित्यं स्मर्तव्याहं स्वभक्तितः। धर्ममेवाग्रतः कृत्वा वने निवसता शुभे ।। सुमन्त्रसं०
५७९ येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च । ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभिः ।। वाल्मीकीय
५८०-८१ चतुर्दशाब्दावधिरंबु मीनाः प्रियाः प्रजास्त्वं करुणासमुद्रः ।
विचार्य चेत्थं भुवि धर्मधुर्यः करोषि यत्नं तव दर्शनं स्यात् ।। —वशिष्ठरामायण
५८२ आनन्देन वनं गच्छ त्वयि घोरवने गते । अनाथाश्च भविष्यन्ति प्रियाः साकेतवासिनः ।। आदिशक्तिसं०
५८३ व्यतीतमद्य सर्वस्य सुकृतस्य फलं मुने । जातः कालः करालश्च विपरीतः क्षयंकरः ।। पुलस्त्यसं०
५८४ विलप्य बहुशो राज्ञी पादयोः पतिताथ सा । आत्मानं चिन्तयित्वा च मग्ना दुःखार्णवे परे।।भ०रा०
५८५ हृदये दारुणो दाहो व्याप्तश्चातीव दुःसहः । विलापस्य कलापश्चावर्णनीयः कवीश्वरैः ।।सनकसं०
५८६ उत्थाप्य मातरं रामो हृदयेनालिलिंग ताम् । पुनराश्वासयामास कथित्वा वचनं मृदु ।।—वशि०रा०
५८७-८८ तदा श्रुत्वा समाचारं सीता चोत्थाय दुःखिता । गत्वा श्वश्रूपदद्वन्द्वं नत्वा मूर्ध्ना स्थिता सती ।।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि, अकुलानी।
५९० बैठि नमित मुख, सोचति सीता। रूप - रासि, पति - प्रेम - पुनीता। (१)
चलन चहत बन, जीवन - नाथू। केहि सुकृती-सन होइहि साथू।
की तनु - प्रान, कि केवल प्राना। बिधि-करतब, कछु जाइ न जाना। (२)
चारु चरन - नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर, कबि बरनी।
मनहुँ प्रेम - बस बिनती करहीं। हमहिं सीय-पद जनि परिहरहीं। (३)
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली, देखि, राम - महतारी।
तात! सुनहु, सिय अति सुकुमारी। सासु - ससुर - परिजनहिं पियारी। (४)
दो०—पिता जनक भूपाल- मनि, ससुर भानु - कुल - भानु।
पति, रबि-कुल-कैरव-बिपिन, -बिधु, गुन - रूप - निधानु ॥ ५८ ॥
मैं पुनि पुत्र - बधू प्रिय पाई। रूप - रासि, गुन - सील -सुहाई।
६०० नयन - पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई। (१)

पास पहुँचकर उनके दोनों चरण-कमलोंमें प्रणाम करके, सिर झुकाकर उनके पास जा बैठीं ॥ ५७ ॥ सास (कौशल्या)-ने मधुर वाणीसे उन्हें आशीर्वाद दिया और उन्हें अत्यन्त सुकुमारी देखकर (कि इस छोटी अवस्थामें पतिके साथ जाय या बिछुड़ रहे), वे अकुला उठीं। पतिसे सच्चा प्रेम करनेवाली रूपवती सीता सिर नीचा किए बैठी सोचे जा रही थीं कि—(१) मेरे जीवनके स्वामी (राम) जब वन जा रहे हैं, तब मैं भी किस पुण्यसे उनके साथ चली जा पा सकूँ? विधाताकी करनी कुछ समझमें नहीं आती। मेरे शरीर और प्राण दोनों ही उनके साथ (वन) जायँगे या (उनके चले जानेपर) केवल प्राण ही प्राण जा पायँगे ?' (२) सीता उस समय वहाँ बैठी अपने मनोहर चरणके नखसे जो धरती कुरेदे जा रही थी, उस समय उनके बिछुओंके बजनेके मधुर शब्दका वर्णन, कवि इस प्रकार करता है मानो वे (नूपुर) प्रेमके मारे (सीतासे) यह विनति किए जा रहे हैं— सीता! (और कोई अलग होता हो तो हो जाय पर) तुम अपने चरणोंसे हमें अलग न करना।' (३) वे अपने रसीले नेत्रोंसे झरझर आँसू बहाए चली जा रही थीं। यह देखकर रामकी माता (कौशल्या) रामसे बोलीं—'देखो पुत्र! सीता बड़ी सुकुमारी हैं। सास, ससुर तथा सभी कुटुम्बीजन इनका बड़ा लाड़ करते हैं। (४) इनके पिता जनक सब राजाओंके शिरोमणि, ससुर सूर्यवंशके सूर्य और पति सूर्यकुल-रूपी कुमुदके (खिलाए रखनेवाले) चन्द्रमा तथा रूप और गुणोंके भाण्डार हैं ॥ ५८ ॥ उसपर मैंने यह अत्यन्त रूपवती, सभी अच्छे गुण और शीलसे भरी प्यारी पुत्रवधू पाई है। मैंने सदा इसे अपनी आँखोंकी पुतली बनाकर बड़े प्यार-दुलारसे रक्खा है और अपने प्राण इसीमें लगा रक्खे हैं। (अपने प्राणके समान इससे प्यार करती हूँ)। (१)

५८९ शुभाशिषं ददौ श्वश्रूर्वाण्या कोमलया च ताम्। दृष्ट्वातिकोमलां बालां बहु व्याकुलिता च सा॥सु.रा
५९०-९५ कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद् बिंबाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः॥
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥—श्रीभागवत
५९६-९८ शृणु पुत्रातिबालास्ति सीता परिजनप्रिया। जनको जनकश्चास्याः सूर्यवंशशिरोमणिः॥
श्वसुरश्च तथा भर्ता शीलरूप-गुणार्णवः। —वशिष्ठरामायण
५९९-६०० रूपशीलगुणोपेता लब्धा पुत्रवधूः प्रिया। रक्षिता च मया प्रीत्या प्राणवज्जनकात्मजा॥ या०सं०

कलप - बेलि - जिमि बहु बिधि लाली । सींचि सनेह - सलिल प्रतिपाली ।
फूलत - फलत, भयउ बिधि बामा । जानि न जाइ, काह परिनामा । (२)
पलँग, पीठ, तजि गोद, हिंडोरा । सिय न दीन्ह पग, अवनि कठोरा ।
जियन-मूरि-जिमि जोगवत रहेऊँ । दीप - बाति नहिं टारन कहेऊँ । (३)
सोइ सिय, चलन चहति बन साथा । आयसु काह होइ रघुनाथा ।
चंद - किरन - रस - रसिक चकोरी । रबि-रुख नयन सकै किमि जोरी । (४)
दो०—करि, केहरि, निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु, बन भूरि ।
विष-बाटिका कि सोह सुत , सुभग सजीवनि - मूरि ॥ ५९ ॥
बन - हित कोल - किरात-किसोरी । रची बिरंचि, विषय - सुख - भोरी ।
६१० पाहन - कृमि - जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेस न कानन काऊ । (१)
कै तापस - तिय कानन - जोगू । जिन्ह तप - हेतु, तजा सब भोगू ।
सिय बन बसिहि तात ! केहि भाँती । चित्र - लिखित कपि देखि डेराती । (२)

मैंने इस कल्पलताको अनेक प्रकारसे लाड़-प्यार करके अपने स्नेहके जलसे सींच-सींचकर पाला है । अब जब इसके फूलने-फलनेके दिन आए तो विधाता ही वैरी बन बैठा । कुछ समझमें नहीं आता कि इसका परिणाम क्या होनेवाला है । (२) सीताने आजतक पलँग, पीढ़ा, गोद और हिंडोला छोड़कर कभी इस कठोर धरतीपर पैर नहीं उतारा । मैं तो इसे संजीवनी बूटी मानकर सदा इसकी ऐसी देखभाल करती रही हूँ कि कभी इसे मैंने दीवेकी बत्ती-तक उसकाने (दीपककी लौ बढ़ाने)-को भी नहीं कहा (अत्यन्त साधारण काम भी इससे नहीं कराया) । (३) वही सीता आज तुम्हारे साथ वन जानेपर उतारू हो बैठी है । बताओ राम ! तुम्हीं बताओ ? चन्द्रकी किरणोंका रस (अमृत) लेनेवाली चकोरी कहीं सूर्यसे आँखें मिला सकती है ? (४) वनमें न जाने कैसे-कैसे भयंकर हाथी, सिंह, राक्षस तथा अनेक प्रकारके दुष्ट जीव-जन्तु घूमते रहते हैं । बताओ बेटा ! क्या कभी विषके उपवनमें सुन्दर संजीवनी बूटी शोभा पाया करती है ? (ऐसे भयंकर वनमें सीता कभी रह पावेगी ?) ॥ ५९ ॥ वनमें रहनेके लिये तो विधाताने कोल-भीलोंकी कन्याएँ रच ही रक्खी हैं जो विषय-सुख (बढ़िया खान-पान, पहनना-ओढ़ना आदि) क्या होता है यह भी नहीं जानतीं और जिनका स्वभाव भी पत्थरके कीड़ोंके समान कठोर होता है । वे ही हैं जिन्हें वनमें रहनेमें कोई क्लेश नहीं होता । (१) या फिर तपस्वियोंकी स्त्रियाँ वनमें रह सकती हैं, जो तपस्याके लिये सारे सुख-भोग ही त्याग बैठती हैं । भला बताओ बेटा ! जो चित्रमें बना बन्दर देखकर डर उठती है यह सीता भला वनमें कैसे रह पावेगी ? । (२) मानसरोवरके सुहावने कमलोंके बीच विहार करनेवाली

६०१-२ कल्पवृक्षलतातुल्यं कृत्वा बहुविधं प्रियम् । सिक्ता प्रेमजलेनास्या वामो जातोऽधुना विधिः ॥भ०रा०
६०५ प्राणेभ्योऽपि प्रिया सीता गन्तुमिच्छति काननम् । त्वया साकं तवाज्ञा का कथ्यतां रघुनन्दन॥म०रा०
६०७-८ चरन्ति विपिने सिंहा राक्षसाः करिणोऽपरे । संजीवनी विषारामे शोभते किं रघूत्तम ॥सन०सं०
६०९-१० विनिर्मिताः कोलकिरातकन्याः पितामहेनैव रसैर्विहीनाः ।
कठोरशीला इव वज्रकीटा अदुःखिताः काननवासहेतोः ॥ —पुलस्त्यरामायण
६११ तपस्विनार्यो ह्यथवा वनयोग्या भवन्ति हि ।
याभिस्त्यक्तास्तपः कर्तुं सर्वे भोगाः सुखात्मकाः ॥ —भरद्वाजरामायण
६१२ वसिष्यति वने सीता कथं कथय पुत्र माम् । या चित्रलिखितं दृष्ट्वा भीता भवति वानरम् ॥-म०रा०

सुर-सर सुभग - बनज - बन - चारी। डाबर - जोग कि हंस - कुमारी।
अस बिचारि, जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई। (३)
जौं सिय भवन रहइ, कह अंबा। मोहिं - कहँ होइ बहुत अवलंबा।
सुनि रघुबीर मातु - प्रिय - बानी। सील - सनेह - सुधा जनु सानी। (४)
दो०—कहि प्रिय बचन, बिबेकमय , कीन्ह मातु - परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं , प्रगटि बिपिन-गुन - दोष ।। ६० ।।
मातु - समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि, मन - माहीं।
६२० राज-कुमारि ! सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू। (१)
आपन - मोर नीक जौं चहहू। बचन हमार मानि, गृह रहहू।
आयसु मोरि, सासु - सेवकाई। सब बिधि भामिनि ! भवन भलाई। (२)
ऐहि - तें अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु - ससुर - पद - पूजा।
जब - जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम-बिकल मति-भोरी। (३)
तब - तब तुम कहि कथा पुरानी। सुंदरि ! समुझायहु मृदु बानी।

हंसकी बच्ची क्या कभी (गन्दे पानीके) गढ़ेमें रखकर पाली जाती है ? यह सब सोच-समझकर जैसा कहो वैसी ही सीख मैं जानकीको दे डालूँ ।' (३) माता कौशल्या कहने लगीं—'यदि सीता घर रह जाय तो मुझे बहुत बड़ा सहारा हो जायगा ।' अपनी माता (कौशल्या)-के ये शील और स्नेहके अमृतमें लिपटी वाणी सुनकर (४) रामने विवेकसे भरे हुए प्रिय वचन कहकर पहले अपनी माताको सन्तुष्ट किया और फिर वनके गुण और दोष बताते हुए जानकीको समझाया । ।। ६० ।। माताके सामने सीतासे कुछ कहनेमें उन्हें संकोच तो हो रहा था पर मनमें उस अवसरका विचार करके बोले–'देखो राजकुमारी ! तुम मेरी बात सुन लो । अपने मनमें तुम उसका कुछ और अर्थ मत लगा बैठना (कि मैं तुम्हें साथ नहीं ले जाना चाहता) । (१) यदि तुम अपना और मेरा भला चाहो तो मेरी बात मान लो और घर रह जाओ । देखो भामिनी ! मेरी आज्ञा यही है कि तुम यहाँ रहकर सासकी सेवा करती रहो । घरपर रुके रहनेमें ही तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण है । (२) देखो ! आदरके साथ सास-ससुरकी सेवा करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म (तुम्हारे लिये) नहीं है । देखो, जब-जब माताको मेरा स्मरण हुआ करे और वे प्रेममें व्याकुल होनेके कारण घबरा-घबरा उठें (३) तब-तब सुन्दरी ! तुम अपनी कोमल वाणीसे पुरानी-पुरानी कथाएँ सुना-सुनाकर इन्हें ढाढ़स बँधाती रहना । देखो सुमुखि ! मैं सैकड़ों सौगन्ध खाकर निश्छल भावसे कह रहा हूँ कि मैं तुम्हें

६१३-१४ आनन्दं लभते हंसी यथा सरसि मानसे । तथा शिक्षां हि सीतायै दद्यामाज्ञा प्रदीयताम् ।।–अग०सं०
६१५ कौशल्या जननी प्राह गृहे स्थास्यति जानकी । यदि प्राणावलम्बा मे भविष्यति न संशयः ।।सुमं०सं.
६१६-१८ कल्याणवादमुखितां सहसैव कान्तां कान्तारचारकथया कलुषीचकार ।
अम्भोदनादमुदितां विपिने मयूरीं संत्रासयन्निव धनुर्ध्वनिना पुलिन्दः ।।-चंपूरामायण
६१९-२० मातुः समीपे गदितुं न च क्षमः विचार्य चित्ते भगवानुवाच ह ।
शिक्षां मदीयां शृणु राजकन्यके न चान्यथा त्वं हृदये स्म मन्यथाः ।। —मार्तण्डसंहिता
६२२-२३ याते च मयि कल्याणि वनं मुनिनिषेवितम् । वन्दितव्यो दशरथः पिता मम जनेश्वरः ।
माता च मम कौशल्या वृद्धा संतापकर्शिता । धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति ।।वा०रा०

कहौं सुभाय, सपथ सत मोहीं। सुमुखि ! मातु-हित राखौं तोहीं। (४)
दो०—गुरु-श्रुति-संमत धरम-फल , पाइय बिनहिं कलेस ।
हठ - बस सब संकट सहे , गालव, नहुष नरेस ।। ६१ ।।
मैं पुनि करि प्रवान पितु - बानी। बेगि फिरब, सुनु सुमुखि ! सयानी ।
६३० दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि ! सिखवन सुनहु हमारा। (१)
जौं हठ करहु प्रेम - बस बामा। तौ तुम दुख पाउब परिनामा।
कानन कठिन, भयंकर भारी। घोर घाम, हिम, बारि, बयारी। (२)
कुस, कंटक, मग काँकर नाना। चलब पयादेहि, बिनु पदत्राना।
चरन - कमल मृदु - मंजु तुम्हारे। मारग अगम, भूमिधर - भारे। (३)

केवल माता (-का मन बहलाए रखने)-के लिये ही घर रह जानेको कह रहा हूँ। (४) इस प्रकार (मेरी आज्ञाका पालन और सास-ससुरकी सेवा करनेसे) तुम्हें गुरु (बड़ों)-की आज्ञा और वेद-विहित धर्मके पालनका फल बिना तपस्याके ही मिल जायगा। (देखो ! हठ करना ठीक नहीं होता।) हठके कारण ही गालव[1] मुनि और राजा नहुष[2] आदि सबको बहुत संकट झेलने पड़े ।। ६१ ।। देखो सयानी सुमुखि ! सुनो। मैं अपने पिताका वचन पूरा करके शीघ्र ही आया जाता हूँ। दिन जाते देर क्या लगती है ? इसलिये सुन्दरी ! हमारी इतनी बात मान जाओ। (१) देखो बामा ! यदि इस प्रकार प्रेममें पड़कर तुम हठ पकड़ बैठोगी तो उसका परिणाम तुम्हारे लिये अच्छा नहीं होगा (दुःखमय ही होगा)। देखो ! वन बड़ा कष्टदायक और भयानक होता है। वहाँ धूप, सर्दी, वर्षा और पवन सबसे कष्ट ही कष्ट मिलता है। (२) (वनके) मार्गमें भी अनेक प्रकारके कुश, काँटे और कंकड़-पत्थर बिछे रहते हैं। उन्हींपर बिना जूतोंके पैदल ही चलना पड़ेगा। तुम्हारे चरण कोमल और सुन्दर कमल-जैसे हैं। वहाँ बड़े-बड़े पर्वतोंके कारण मार्ग चलना (पहाड़ी मार्गोंपर उतरना-चढ़ना) बड़ा दूभर होता है। (३) पर्वतकी कन्दराएँ, खोह, नदी, नद और नाले ऐसे बीहड़

१. गालव : इन्होंने अपने गुरु विश्वामित्रसे गुरु - दक्षिणा माँगनेके लिये हठ किया तो विश्वामित्रने आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े दक्षिणामें माँग लिए। बड़ी कठिनाईसे ययातिकी पुत्री माधवीको सहायतासे वे गुरुदक्षिणा दे पाए।

२. नहुष : इन्द्रका पद पाकर नहुषने हठपूर्वक इन्द्राणीको प्राप्त करना चाहा। इन्द्राणीने उसे कहलाया कि तुम सप्तर्षियों-द्वारा ढोई हुई पालकीमें बैठकर आ जाओ। जब वह सप्तर्षियोंसे ढोई हुई पालकीमें चढ़कर उन्हें वेगसे चलनेके लिये 'सर्प-सर्प' (वेगसे चलो) कहने लगा तब अगस्त्य ऋषिके शापसे वह सर्प हो गया।

६२४-२६ अहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वया हि वस्तव्यमिहैव भामिनि ।
यथा व्यलीकं कुरुते न कस्यचिद् तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम ।।—वाल्मीकीय रा०
६२७-२८ अक्लेशेनैव लभ्यं स्यात् धर्मस्य च फलं त्वया। श्रीगुरोः सम्मतं चेदं वेदानामपि सम्मतम् ।।
लब्धाः क्लेशाः समस्ताश्च हठान्नहुषगालवैः। —भरतसंहिता
६२९-३० आगमिष्याम्यहं शीघ्रं पुनः कृत्वा पितुर्वचः। शिक्षां शृणु मदीयां त्वं तूर्णं गच्छन्ति वासराः ।।ब०
६३१-३२ सीते यथा त्वां वक्ष्यामि तथा कार्यं त्वयाबले। सीता विमुच्यतामेषा वनवासकृता मतिः ।।
बहुदोषं हि कान्तारं वनमित्यभिधीयते ।
६३३-३४ लताकंटकसंकीर्णाः कृकवाकूपनादिताः। निरापाश्च सुदुःखाश्च मार्गा दुःखमतो वनम्। वा०रा०

कंदर, खोह, नदी, नद, नारे। अगम, अगाध, न जाहिं निहारे।
भालु, बाघ, बृक, केहरि, नागा। करहिं नाद, सुनि धीरज भागा। (४)
दो०—भूमि-सयन, बलकल-बसन, असन कंद - फल - मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय-अनुकूल ॥ ६२॥
नर - अहार रजनीचर करहीं[1]। कपट-वेष, विधि कोटिक धरहीं[2]।
६४० लागइ अति पहार - कर पानी। विपिन-विपति नहिं जाइ बखानी। (१)
ब्याल कराल, बिहँग बन घोरा। निसिचर - निकर नारि-नर-चोरा।
डरपहिं धीर गहन, सुधि आए। मृगलोचनि ! तुम भीरु सुभाए। (२)
हंस-गवनि ! तुम नहिं बन - जोगू। सुनि अपजस मोहिं देइहिं लोगू।
मानस - सलिल - सुधा प्रतिपाली। जियइ कि लवन-पयोधि मराली। (३)
नव - रसाल - बन बिहरन-सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।

और गहरे होते हैं कि उनकी ओर ताका-तक नहीं जाता (देखने-तकमें डर लगता है)। (वहाँ दिन रात) भालू, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे गरजते और चिग्घाड़ते रहते हैं कि सुन-सुनकर (बड़े-बड़ोंका) धीरज छूट चलता है। (४) वहाँ धरतीपर (बिना कुछ बिछाए) सोना पड़ेगा, पेड़ोंकी छालसे तन ढकना होगा, कन्द, फल और मूल खाकर दिन काटना पड़ेगा। और वे भी क्या सदा मिल पाते हैं ? (सदा नहीं मिल पाते), अपने-अपने समय (ऋतु)-के अनुसार ही कभी-कभी मिल पाते हैं ॥ ६२ ॥ वहाँ ऐसे-ऐसे राक्षस घूमते रहते हैं जो मनुष्योंको पावें तो उन्हें भी चट्ट कर जायँ। वे अनेक प्रकारके जैसे चाहें वैसे कपटके रूप बना बैठते हैं। पहाड़का पानी भी बहुत लगता है (अस्वस्थ कर देता है)। कौन-सी ऐसी विपत्ति है जो वनमें नहीं आ पाती। (१) वनमें बड़े-बड़े भयंकर सर्प और पक्षी तो होते ही हैं, ऐसे बहुतसे राक्षस भी घूमते रहा करते हैं, जो स्त्री-पुरुषोंको उठा ले भागते हैं। वनका स्मरण होते ही बड़े-बड़े धीर पुरुषोंके छक्के छूट जाते हैं, फिर तुम तो मृगलोचनी ! स्वभावसे ही डरपोक स्वभावकी हो। (२) इसलिये हंसगामिनी ! तुम तनिक भी वन जाने-योग्य नहीं हो। जो भी सुनेगा (कि तुम्हें मैं साथ ले गया हूँ) वही मुझे बुरा-भला कहने लगेगा। तुम्हीं बताओ कि मानसरोवरके अमृत-जैसे (मधुर) जलमें पली हुई हंसिनी क्या कभी खारे समुद्रमें पहुँचकर जीती रह सकती है ?। (३) नई बौराई हुई अमराईमें कूकनेवाली कोयलको क्या कभी करीलकी

१. चरहीं। २. करहीं।

६३५ सग्राहाः सरितश्चैव पंकवत्यस्तु दुस्तराः। मत्तैरपि गजैर्नित्यमतो दुःखतरं वनम् ॥
६३६ सिंहव्याघ्रवराहाश्च संचरन्ति समंततः। सिंहानां निनदा दुःखाः श्रोतुं दुःखमतो वनम् ॥वा०रा०
६३७-३८ काले काले फलं वापि विद्यते कुत्र सुन्दरि। कट्वम्लफलमूलानि भोजनार्थं सुमध्यमे ॥—अध्यात्म
६३९ राक्षसादीन् वने दृष्ट्वा जीवितं हास्यसेऽचिरात्।
६४० शैलस्य सलिलं बाले सर्वथा हानिकारकम्। विपिनस्य विपत्तिर्हि वर्णनीया न भामिनि ॥व०रा०
६४१-४२ सरीसृपाश्च बहवो बहुरूपाश्च भामिनि। चरन्ति पथि ते दर्पात् ततो दुःखतरं वनम् ॥
राक्षसा घोररूपाश्च संति मानुषभोजिनः। भवन्ति पण्डिता भीता वनं संस्मृत्य भीषणम् ॥ वा०रा०
६४३-४४ वनं गन्तुं न योग्यासि मरालगमने शुभे। अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति मेऽव्ययाम् ॥
मानसामृतसंपुष्टा मराली लवणार्णवे। किं प्राणधारणं कर्तुं समर्थो वद मां प्रिये ॥पुल०रा०
६४५ नवीनाम्रवने या सा कोकिला मधुरस्वरा। शोभते विहरत्येवं किं करीरवने सदा ॥ महा०रा०

रहहु भवन, अस हृदय बिचारी। चंद-बदनि ! दुख कानन भारी। (४)
दो०—सहज सुहृद-गुरु-स्वामि-सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ, अघाइ उर, अवसि होइ हित-हानि ॥ ६३ ॥
सुनि मृदु बचन मनोहर पिय-के। लोचन ललित भरे जल सिय-के।
६५० सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद-चंद-निसि जैसे। (१)
उतर न आव, बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि, सनेही।
बरबस रोकि बिलोचन-बारी। धरि धीरज उर, अवनिकुमारी। (२)
लागि सासु-पग, कह कर जोरी। छमबि देवि ! बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई। (३)
मैं पुनि समुझि दीखि मन-माहीं। प्रिय-बियोग-सम दुख जग नाहीं। (३॥)
दो०—प्राननाथ ! करुनायतन, सुंदर ! सुखद ! सुजान।
तुम-बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक-समान ॥ ६४ ॥

झाड़ियाँ अच्छी लग सकती हैं ? इसलिये चन्द्रमुखी ! अपने हृदयमें यह सब सोच-विचारकर चुपचाप घर बैठ रहो। वनमें जिधर देखो उधर कष्ट ही कष्ट तो हैं। (४) मित्र, गुरु और स्वामी तो स्वभावसे ही सबका भला सोचा करते हैं। उनकी बात जो नहीं मानता उसे पीछे पछताना ही हाथ लगता है और उसका अहित भी अवश्य होता ही है' ॥ ६३ ॥ अपने पति (राम)-की यह मनोहारिणी वाणी सुनकर सीताके छबीले नेत्र डबडबा चले। इस शीतल शिक्षाने उनका हृदय ऐसा सुलगा धरा जैसे चकवीको शरद् ऋतुकी रात (दुःखदायिनी) हो जाती है (जिसमें उसे चाँदनी रहते हुए भी चकवेसे बिछुड़कर रहना पड़ता है)। (१) सीतासे कुछ उत्तर देते नहीं बन पा रहा था। वे यही सोच-सोच कर दुखी हुई जा रही थीं कि स्नेही स्वामी मुझ (घरपर ही) छोड़ जाना चाहते हैं। पृथ्वीकी पुत्री सीता ज्यों-त्यों करके अपने नेत्रोंके आँसू रोककर, हृदयमें धैर्य धरकर, (२) सासके पाँव पड़कर, हाथ जोड़कर बोलीं—'देवी ! मैं बड़ी ढिठाई तो करने जा रही हूँ, पर आप क्षमा कर दीजिएगा। मुझे मेरे प्राण-पति (राम)-ने ऐसी ही शिक्षा दी है कि उससे मेरा परम कल्याण हो। (३) पर मैंने फिर अपने मनमें विचार किया तो देखा कि संसारमें स्त्रीके लिये पतिके वियोगके समान दूसरा कोई दुःख है नहीं।' (३॥) (फिर वे रामसे बोलीं—) 'प्राणनाथ ! आप बड़े कृपालु हैं, सुन्दर हैं, सबको (मुझे भी) सुख देनेवाले हैं और सुजान हैं। हे रघुवंशरूपी कुमुदके (खिलानेवाले) चन्द्रमा ! आपके बिना तो मुझे स्वर्ग भी

६४६ तदलं ते वनं गत्वा क्षेमं नहि वनं तव। विमृशन्निव पश्यामि बहुदोषकरं वनम् ॥ वा०रा०
६४७-४८ स्वभावादेव सुहृदां गुरूणां स्वामिनां तथा। यो न शिक्षां हितां मत्वा करोति हृदये भृशम्। पश्चात्तापं करोत्येव हितहानिश्च जायते। —भरद्वाजसंहिता
६४९-५० मनोहारि वचो मिष्टं श्रुत्वा भर्तुः प्रियस्य च। जानक्या दाहिका जाता सुशिक्षात्यन्तशीतला ॥ चक्रवाकीं यथा रात्रौ शारदी चन्द्रिका तथा। दहत्येव वियोगेन चक्रवाकस्य सुन्दरि ॥ कपिल०सं०
६५१ सीतेत्थं व्याकुला जाता किंचिद् वक्तुं न च क्षमा। स्वचित्ते चिन्तयामास प्रेमकर्ता शुचिः पतिः ॥ मां त्यक्त्वा विपिनं घोरं गन्तुमद्य समुद्यतः। —भरद्वाजरामायण
६५२-५३ निरुध्य नयनाश्रूणि बलाद् धैर्यं विधाय च। धरित्रीकन्यका चित्ते श्वश्रूं मूर्ध्ना प्रणम्य च ॥ हस्तौ बद्ध्वाब्रवीद् देवि क्षन्तव्या धृष्टता मम ॥ —याज्ञवल्क्यसंहिता
६५४-५५ प्राणनाथेन मे शिक्षा प्रदत्ता हितकारिणी। विचार्य चित्ते दृष्टं तु मया स्वेपि धरातले ॥ विरहेण समं दुःखं प्रियस्यास्ति न किंचन। —श्वेतकेतुरामायण

मातु, पिता, भगिनी, प्रिय भाई। प्रिय परिवार, सुहृद-समुदाई।
सासु, ससुर, गुरु, सजन, सहाई। सुत सुंदर, सुसील, सुखदाई। (१)
६६० जहँ-लगि नाथ! नेह अरु नाते। पिय-बिनु, तियहि तरनिहुँ-तें ताते।
तन, धन, धाम, धरनि, पुर, राजू। पति-बिहीन सब सोक-समाजू। (२)
भोग रोग-सम, भूषन भारू। जम-जातना-सरिस संसारू।
प्राननाथ! तुम-बिनु जग-माहीं। मो-कहँ सुखद, कतहुँ, कछु नाहीं। (३)
जिय-बिनु देह, नदी बिनु-बारी। तैसिय नाथ! पुरुष-बिनु नारी।
नाथ! सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल-बिधु-बदन निहारे। (४)
दो०—खग, मृग, परिजन, नगर, बन, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ-साथ सुर-सदन-सम, परन-साल सुख-मूल॥ ६५॥
बन-देवी, बन-देव, उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-सम सारा।
कुस-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु-सँग मंजु मनोज-तुराई। (१)
६७० कंद, मूल, फल अमिय-अहारू। अवध-सौध-सत-सरिस पहारू।

नरकके समान ही लगता है॥ ६४॥ माता, पिता, बहिन, प्यारे भाई, परिवारके प्रिय लोग, मित्र, सास, ससुर, गुरु, आत्मीय लोग, सहायक, तथा सुन्दर सुशील और सुखदेनेवाले पुत्र आदि (१) जहाँतक स्नेह और नाते हैं, वे सब पतिके बिना स्त्रीको सूर्यके समान ताप ही तो देनेवाले होते हैं। शरीर, धन, धाम, धरणी, नगर और राज्य, ये सब पतिके बिना केवल शोक ही शोक देते हैं। (२) प्राणनाथ! आपके बिना संसारके सब भोग-विलास रोगके समान, आभूषण भारके समान, और यह सारा संसार यमलोककी यातनाके समान है। अतः, मुझे (आपको छोड़कर) कहीं किसीसे भी सुख नहीं मिल सकता। (३) नाथ! जैसे प्राणके बिना शरीर और जलके बिना नदी (व्यर्थ) होती है, वैसे ही पुरुषके बिना स्त्रीका जीवन (निरर्थक) होता है। नाथ! शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान आपका निर्मल मुख देख-देखकर आपके साथ मुझे सदा सुख ही सुख मिलता रहेगा। आपके साथ रहनेसे पशु-पक्षी ही मेरे कुटुम्बी बन रहेंगे, वन ही नगर बन रहेगा, पेड़ोंकी छाल ही निर्मल वस्त्र बन जायँगे और पत्तोंकी कुटिया ही स्वर्गके समान सब प्रकारका सुख देनेवाली बन जायगी॥ ६५॥ आपके साथ मैं जहाँ भी रहूँगी वहाँ वनकी उदार देवियाँ और देवता सब सास-ससुरकी भाँति मेरी रक्षा करते रहेंगे, कुशा और कोमल पत्तोंके बिछौने ही कामदेवकी तोशकके समान कोमल बन जायँगे, (१) कंद, मूल और फलका भोजन अमृतके समान (स्वादिष्ट) लगने लगेगा, वहाँके पहाड़ अयोध्याके सैकड़ों

६५६-५७ स्वर्गेपि च विना वासो भविता यदि राघव। त्वया विना नरव्याघ्र नाहं तदपि रोचये॥
६५८-६० न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः। इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥
६६१-६३ प्रासादाग्रे विमानैर्वा वैहायसगतेन वा। सर्वावस्थागता भर्तुः पादच्छाया विशिष्यते॥वा०रा०
६६४-६५ जीवं विना यथा देहो यथा नद्यो जलं विना। पुरुषेण विना नारी तथा नाथ न शोभते॥
दृष्ट्वा तवाननं नाथ शरच्चन्द्रसमोज्ज्वलम्। त्वया सार्धं सुखं सर्वं जानीहि रघुनन्दन॥सुतीक्ष्णसं०
६६६-६७ अहं दुर्गं गमिष्यामि वनं पुरुषवर्जितम्। नानामृगगणाकीर्णं शार्दूलगणसेवितम्॥
सुखं वने निवत्स्यामि यथैव भवने पितुः। अचिन्तयन्ती त्रींल्लोकांश्चिन्तयन्ती पतिव्रतम्॥वा०
६६८-६९ त्वयासह चरंत्या मे कुशाः काशाश्च कंटकाः। पुष्पास्तरणतुल्या मे भविष्यंति न संशयः॥अ०

छिन - छिन प्रभु-पद-कमल विलोकी । रहिहौं मुदित, दिवस जिमि कोकी । (२)
बन - दुख नाथ ! कहे बहुतेरे । भय, बिषाद, परिताप घनेरे ।
प्रभु - बियोग - लव - लेस - समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना । (३)
अस जिय जानि, सुजान - सिरोमनि । लेइय संग, मोहिं छाँड़िय जनि ।
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय, उर - अंतर - जामी । (४)
दो०—राखिय अवध जो अवधि-लगि, रहतन जानिय[1] प्रान ।
दीनबंधु ! सुंदर ! सुखद, सील - सनेह - निधान ।। ६६ ।।
मोहिं मग चलत, न होइहि हारी । छिन-छिन, चरन-सरोज निहारी ।
सबहिं भाँति पिय - सेवा करिहौं । मारग-जनित सकल श्रम हरिहौं । (१)
६८० पाँयँ पखारि बैठि - तरु - छाहीं । करिहउँ बाउ, मुदित मन - माहीं ।
श्रम - कन - सहित स्याम तन देखे । कहँ दुख - समउ, प्रानपति - पेखे । (२)
सम महि, तृन - तरु - पल्लव डासी । पाँयँ पलोटिहि सब निसि दासी ।

भवनोंके समान (सुखकर) लगने लगेंगे । वहाँ निरन्तर प्रभु (आप)-के चरण-कमलका दर्शन करके मैं इतनी प्रसन्न हुई रहूँगी जितनी दिनमें चकवी प्रसन्न हुई रहती है । (२) नाथ ! आपने वनके बहुत कष्टोंका वर्णन किया है तथा वहाँ होनेवाले बड़े-बड़े भय, दुःख और कष्टके कारण भी बताए हैं । पर कृपानिधान ! आपके वियोगसे उत्पन्न होनेवाले तनिकसे दुःखके बराबर भी वे सब मिलकर कष्टकर न हो सकेंगे । (३) सुजान-शिरोमणि ! यह भली-भाँति समझकर आप मुझे अपने साथ लेते चलिए, यहाँ न छोड़िए । स्वामी ! आप अन्तर्यामी और करुणामय हैं । मैं आपसे और बहुत क्या निवेदन करूँ ? (४) दीनबन्धु ! आप सुन्दर हैं, सबको सुख देते रहते हैं, शील और और स्नेहके भांडार हैं । यदि आप चाहते हों कि वनवासकी अवधि-तक मेरे प्राण बचे रह जायँ, तो मुझे अयोध्यामें मत छोड़ जाइए ।। ६६ ।। मैं निरन्तर आपके चरण-कमल देखती चलूँगी तो मुझे (वनके मार्गमें) चलनेकी थकावट होगी ही नहीं । मैं सब प्रकारसे पतिदेवकी सेवा करके मार्गकी सारी थकावट दूर करती चलूँगी । (१) आपके पाँवँ धोकर, प्रसन्न चित्तसे पेड़की छायामें बैठी आपको पंखा झला करूँगी । आपके साँवले शरीरपर पसीनेकी बूँदें और आपको सदैव आँखों से देखती रहूँगी तो दुःख आने ही कहाँ पावेगा । (२) जहाँ समतल भूमि देखूँगी वहीं घास-पातका बिछौना बनाकर मैं दासी सारी रात बैठी आपके पाँवँ दबाती रहूँगी । मैं जब निरन्तर आपकी सलोनी मूर्ति आँखोंमें बसाए

---

१. रहत जानिअहि प्रान । 'रहतन' एक ही बुंदेलखडी शब्द है ।

६७०-७१ फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः । न ते दुःखं करिष्यामि निवसंती त्वया सदा ।।
इच्छामि परतः शैलान् पल्वलानि सरांसि च । द्रष्टुं सर्वत्र निर्भीता त्वया नाथेन धीमता ।।वा०
६७२-७३ अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं मृगायुतं वानरवारणैश्च ।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तवैव पादावुपगृह्य संमता ।।
६७४-७७ अनन्यभावामनुरक्तचेतसं त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।
नयस्व मां साधु कुरुष्व याचनां नातो मया ते गुरुता भविष्यति ।।
६७८-७९ अग्रतस्ते गमिष्यामि भोक्ष्ये भुक्तवति त्वयि । शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी।।वा.रा.
६८०-८१ वृक्षच्छायां समाश्रित्य पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः। हृष्टा वायुं करिष्यामि दृष्ट्वा श्यामं तनुं तव ।।
स्वेदबिन्दुयुतां दुःकालो नात्रागमिष्यति ।। —अत्रिरामायण

वार - बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात ! बयारि न मोही। (३)
को प्रभु - सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघ-बधुहिँ जिमि ससक-सियारा।
मैं सुकुमारि ? नाथ वन - जोगू ? तुम्हहिं उचित तप ? मो कहुँ भोगू ? (४)

दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु - विषम-वियोग-दुख, सहिहँइ पाँवर प्रान ॥ ६७ ॥

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन - वियोग न सकी सँवारी।
देखि दसा, रघुपति जिय जाना। हठि राखे, नहिं राखिहि प्राना। (१)
६६० कहेउ कृपालु भानु - कुल - नाथा। परिहरि सोच, चलहु बन साथा।
नहिं बिसाद - कर अवसर आजू। वेगि करहु वन - गवन - समाजू। (२)
कहि प्रिय बचन, प्रिया समुझाई। लगे मातु - पद, आसिष पाई।
वेगि प्रजा - दुख मेटब आई। जननी निठुर, बिसरि जनि जाई। (३)

रक्खूँगी तो नाथ मुझे लू लग कहाँसे पावेगी ? (नहीं लगेगी)। (३) जब मैं सदा प्रभुके साथ रहती रहूँगी तब मेरी ओर आँख उठाकर देख कौन सकता है ? खरहे और सियारोंमें कहाँ सामर्थ्य हो सकता है कि सिंहकी वधूकी ओर ताक तक सकें ? नाथ ! आप मुझे तो सुकुमारी वताए दे रहे हैं और आप क्या वनमें रहनेके योग्य हैं ? क्या आपको जाकर तप करना और मुझे राजसुख भोगना उचित लगेगा ? (४) आपके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी यदि मेरा हृदय फट नहीं गया तो समझ लीजिए कि मेरे ये नीच प्राण आपके परम कष्टदायक वियोगका दुःख सहनेके लिये भी बने रह जायँगे' ॥ ६७ ॥ यह कहकर सीता बहुत व्याकुल हो उठीं क्योंकि (रामसे) अलग होकर रहनेकी बात वे सह नहीं पा रही थीं। सीताकी यह दशा देखकर रामने समझ लिया कि यदि मैं हठ करके इन्हें यहाँ छोड़ भी चलूँ तो ये अवश्य प्राण दे डालेंगी। (१) इसलिये कृपालु सूर्यकुलके नाथ रामने उनसे कहा—'(अच्छा, ठीक है) 'चिन्ता छोड़ो और चलो तुम भी हमारे साथ वनको। अब रोने-धोनेका अवसर नहीं है। झटपट वन चलनेको तैयार हो जाओ।' (२) यह प्रिय वचन कहकर और अपनी प्रिया (सीता)-को समझाकर उन्होंने माताको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद ग्रहण कर लिया। (माताने कहा—) ('अच्छा जा तो रहे हो पर) 'शीघ्र ही आकर प्रजाका दुःख दूर कर डालना और अपनी

६८२-८३ समानभूमौ तृणवृक्षपल्लवानास्तीर्य पादांबुजमर्दनं तव।
करिष्यतीयं निखिलां निशीथिनीं निरीक्ष्य मूर्ति च पुनः पुनर्मुदम् ॥
त चोष्णवायुर्मम नाथ विग्रहे लगिष्यति स्वामिवर प्रसीद मे। —ऋष्यशृंगसंहिता
६८४ न हि मां त्वत्समीपस्थामपि शक्रोपि राघव। सुराणामीश्वरः शक्तः प्रधर्षयितुमोजसा ॥
६८५ भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः। नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम् ॥
६८६-८७ पश्चादपीह दुःखेन मम नैवास्ति जीवितम्। उज्झितायास्त्वया राम तदेव मरणं वरम् ॥
६८८ एवमुक्ता तु सा चिन्तां मैथिली समुपागता। स्नापयंतीव गामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥
६८९-९१ सा हि दिष्टानवद्यांगि वनाय मदिरेक्षणे। अनुगच्छस्व मां भीरु सह धर्मचरी भव ॥
आरभस्व शुभश्रोणि वनवासक्षमाः क्रियाः। नेदानीं त्वदृते सीते स्वर्गोपि मम रोचते॥वा०रा०
७९२-९३ समाश्वास्य प्रियां वाग्भिः प्रियाभी रघुनन्दनः। स्वमातुश्चरणौ नत्वा आशिषं प्राप्य हर्षितः ॥
आगन्तव्यं त्वया शीघ्रं प्रजादुःखक्षयाय च। निष्ठुरा जननी तात विस्मर्तव्या न च त्वया॥पुल०सं०

फिरिहि दसा विधि ! बहुरि कि मोरी । देखिहौं नयन - मनोहर जोरी ।
सुदिन सुघरी[1] तात ! कब होइहि । जननी जियत बदन-बिधु जोइहि । (४)
दो०—बहुरि बच्छ कहि, लाल कहि , रघुपति, रघुबर, तात ।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय , हरषि निरखिहौं गात ।। ६८ ।।
लखि सनेह - कातरि महतारी । बचन न आव, बिकल भइ भारी ।
राम, प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ, सनेह, न जाइ बखाना । (१)
७०० तब जानकी सासु - पग लागी । सुनिय माय ! मैं परम अभागी ।
सेवा - समय, दैउ[2] बन दीन्हाँ । मोर मनोरथ सुफल न कीन्हाँ । (२)
तजब छोभ, जनि छाँड़िय छोहू । करम कठिन, कछु दोस न मोहू ।
सुनि सिय - बचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौं बखानी । (३)
बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं । धरि धीरज, सिख, आसिष दीन्हीं ।

इस निष्ठुर माताको भूल मत जाना ।' (३) (वे अपने आप कह उठीं—) 'विधाता ! क्या ये दिन कभी फिर पावेंगे ? क्या मैं अपने नेत्रोंसे यह सुन्दर जोड़ी फिर देख पाऊँगी ?' (वे रामसे बोलीं—) 'बेटा ! वह सुन्दर दिन और शुभ घड़ी कब होगी , जब तुम्हारी माता जीते-जी फिर तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा देख पावेगी (४) और फिर कब मैं तुम्हे 'वत्स', 'लाल', 'रघुपति', 'रघुवर' कह-कहकर, तुम्हें हृदयसे लगा-लगाकर हर्षित होकर तुम्हें निहारूँगी' ।। ६८ ।। जब रामने देखा कि माता स्नेहसे इतनी विह्वल हो चली हैं कि उनके मुँहसे वचन नहीं निकल पा रहा है और वे अत्यन्त विकल हुई जा रही हैं तो रामने उन्हें बहुत ढाढ़स बँधाया । (कौशल्याका) उस समयका स्नेह ऐसा था कि उसका वर्णन करते नहीं बनता । (१) तब जानकी भी सासके पाँव पकड़कर बोलीं—'माता ! मैं बड़ी अभागिन हूँ कि जब आपकी सेवा करनेका अवसर आया तब दैवने मुझे बनवास दे डाला और (आपकी सेवा कर सकनेका) मेरा मनोरथ सफल नहीं होने दिया । (२) आप शोक करना छोड़ दीजिए पर मुझपर अपना छोह (प्रेम) न छोड़िएगा । भाग्य ही इतना बलवान् है कि इसमें मेरा तनिक भी दोष नहीं है ।' सीताके ये वचन सुनकर तो सास (कौशल्या माता) इतनी व्याकुल हो उठीं कि उस समयकी उनकी दशाका वर्णन किस प्रकार किया जाय, यही समझमें नहीं आता । (३) सासने बार-बार सीताको हृदयसे लगा-लगाकर धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जबतक गंगा और यमुनामें जलकी धारा बनी रहे तबतक

१. सुघरी सुदिन । २. दइय; दैव ।

६९४-९५ किं विधे परिवृत्ता मे भविष्यति दशा त्वरम् । यल्लोचनाभ्यां द्रक्ष्यामि त्वां जगन्मोहनं सुतम् ।।
कदा भविष्यति दिनं शोभनं सुघटी तथा । यद् द्रक्ष्यति मुखाब्जं ते जीवन्ती जननी सुत ।।ब०सं०
६९६-९७ वत्स राघव राम त्वं रघुनाथ गुणाकर । इत्युक्त्वा त्वां समाहूय आश्लिष्य हृदयेन च ।
हर्षिता हि भवद्गात्रं निरीक्ष्येऽहं पुनः पुनः ।। —पुलस्त्यसंहिता
६९९ रामः परमधर्मात्मा मातरं वाक्यमब्रवीत् । क्षयोऽपि वनवासस्य क्षिप्रमेव भविष्यति ।। वाल्मीकीय
७००-१ पतित्वा पादयोः श्वश्र्वाः सीता प्राह वचः शुभम् । अहं च परमाभाग्या सेवाकाले वनं ददौ ।।
मनोरथं न सफलं मदीयं कृतवान् विधिः ।
७०२-३ सीताया वचनं श्रुत्वा कौशल्या हृदयंगमम् । शुद्धसत्वा मुमोचाश्रुः सहसा दुःखहर्षजम् ।।

अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जब लगि गंग - जमुन - जल - धारा । (४)
दो०—सीतहिँ सासु असीस, सिख, दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद - पदुम सिर, अति हित बारहिँ बार ।। ६९ ।।
समाचार जब लछिमन पाये । ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाये ।
कंप - पुलक तन, नयन सनीरा । गहे चरन, अति प्रेम - अधीरा । (१)
७१० कहि न सकत कछु, चितवत ठाढ़े । मीन दीन, जनु जल - तें काढ़े ।
सोच हृदय, बिधि का होनिहारा । सब सुख - सुकृत सिरान हमारा । (२)
मो - कहँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिँ भवन, कि लइहहिँ साथा ।
राम बिलोकि बंधु कर जोरे । देह, गेह, सब - सन तृन तोरे । (३)
बोले बचन राम नय - नागर । सील - सनेह - सरल - सुख - सागर ।
तात ! प्रेम - बस जनि कदराहू । समुझि हृदय, परिनाम उछाहू । (४)

तुम्हारा सौभाग्य भी अचल बना रहे । (४) सासने सीताको अनेक प्रकारसे आशीर्वाद दिया और शिक्षा दी । सीता भी अत्यन्त प्रेमके कारण बार-बार सासके चरणोंमें सिर नवाती हुई वहाँसे चुपचाप चल दीं ।। ६९ ।।

जब लक्ष्मणको (रामके वन-गमनका) समाचार मिला तो वे भी व्याकुल होकर छटपटाते हुए उठकर दौड़ चले । उनका शरीर काँपा जा रहा था, उन्हें रोमाञ्च हो आया था और उनकी आँखें डबडबा चली थीं । उन्होंने पहुँचते ही प्रेमसे अत्यन्त अधीर होकर (रामके) चरण जा पकड़े । (१) वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे, खड़े-खड़े टकटकी बाँधे देखे जा रहे थे । वे जलसे बाहर निकाली हुई मछलीके समान तड़फड़ाए पड़ रहे थे । वे हृदयमें सोचे जा रहे थे—'विधाता ! अब न जाने मेरा क्या होनेवाला है ? मेरा तो जैसे सारा सुख और पुण्य ही समाप्त हो बीता । (२) न जाने राम मुझे क्या आदेश दे बैठेंगे ? वे मुझे यहीं छोड़ जायँगे या अपने साथ लिवाते ले चलेंगे ?' रामने जब देखा कि भाई (लक्ष्मण) अपने शरीर और घर सबसे नाता तोड़े हाथ जोड़े आए खड़े हैं, (३) तब नीतिमें निपुण, शील, स्नेह, सरलता और सुखके भांडार राम बोले—'देखो भाई ! प्रेममें पड़कर धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए ! यह भली भाँति हृदयमें समझ लो कि इस (मेरे वन जाने)-का परिणाम अच्छा ही होगा । (४) जो लोग स्वभावसे ही माता, पिता, गुरु और स्वामीका

७०५ तां भुजाभ्यां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत् । सौभाग्यं तेऽचलं सीते यावद् गंगाजलं क्षितौ।।वा०रा०
७०६-७ सीतायै चाशिषं शिक्षां कौशल्या बहुधा ददौ ।।
पुन: पुनरतिप्रेम्णा श्वश्रूपदसरोरुहम् । जानकी शिरसा नत्वा जगाम निखिलेश्वरी ।।संवर्तसंहिता
७०८-१० एवं श्रुत्वा स संवादं लक्ष्मण: पूर्वमागतः । बाष्पपर्याकुलमुख: शोकं सोढुमशक्नुवन् ।।
स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दन: । सीतामुवाचातियशां राघवं च महाव्रतम् ।।
यदि गन्तुं कृता बुद्धिर्वनं मृगगजायुतम् । अहं त्वनुगमिष्यामि वनमग्रे धनुर्धर: ।।वाल्मीकीय
७११ चिन्तां चकार हृदये विधात: किं भविष्यति । अस्माकं सुकृतं सर्वं सुखं चापि क्षयं गतम् ।।अग०रा०
६१२ किं वदिष्यति मामद्य राघवेन्द्र: प्रतापवान् । निवासयिष्यति गृहे तेन यास्यामि वा वनम्।।नारदसं०
७१४-१५ ततोऽब्रवीन् महातेजा रामो लक्ष्मणमग्रत: । स्थितं प्राग्गामिनं धीरं याचमानं कृतांजलिम् ।। वा०रा०

दो०—मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख , सिर धरि करहिं सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम-कर , नतरु, जनम जग जाय ।। ७० ।।
अस जिय जानि, सुनहु सिख भाई । करहु मातु - पितु - पद -सेवकाई ।
भवन भरत - रिपुसूदन नाहीं । राउ बृद्ध, मम दुख मन - माहीं । (१)
७२० मैं बन जाउँ तुमहिं लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ।
गुरु - पितु - मातु - प्रजा - परिवारू । सब-कहँ परइ दुसह - दुख - भारू । (२)
रहहु, करहु सब - कर परितोषू । नतरु तात ! होइहि बड़ दोषू ।
जासु राज, प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप, अवसि नरक-अधिकारी । (३)
रहहु तात ! असि नीति बिचारी । सुनत, लखन भे ब्याकुल भारी ।
सियरे बचन सूखि गे कैसे । परसत तुहिन, तामरस जैसे । (४)
दो०—उतर न आवत प्रेम - बस , गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ ! दास मैं, स्वामि तुम , तजहु त कहा[1] बसाइ ।। ७१ ।।
दीन्हि मोहिं सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम अपनी कदराई ।

कहा सिरमाथे चढ़ाते रहते हैं उन्हींका जन्म सुफल है, नहीं तो संसारमें जन्म लेनेसे लाभ क्या? ।।७०।। यह समझकर भाई ! मेरी बात (ध्यान देकर) सुन लो । (तुम यहाँ रहकर) माता और पिताके चरणोंकी सेवा करते रहो । देखो, भरत और शत्रुघ्न भी घरपर नहीं हैं । राजा वृद्ध हो चले हैं और उनके हृदयमें मेरे वन जानेका भी बड़ा भारी दुःख है । (१) यदि मैं अपने साथ तुम्हें भी वन लिए चला जाता हूँ तो अयोध्या सब प्रकारसे अनाथ हो जायगी । गुरु, पिता, माता, प्रजा और कुटुम्बी सबपर भयंकर दुःख आ घहरावेगा । (२) इसलिये भाई ! तुम घरपर रहकर सबको ढाढ़स बँधाए रहो नहीं तो बड़ा दोष लगेगा, क्योंकि जिस राजाके राज्यमें प्रिय प्रजा दुखी हुई रहे उस राजाको तो नरक ही भोगना चाहिए । (३) यह नीति समझकर तुम यहीं घरपर रुके रह जाओ ।' यह सुनना था कि लक्ष्मण बहुत बिलख उठे । (भाईके ये) शीतल वचन सुनकर वे ऐसे मुरझा गए जैसे कमलको पाला मार गया हो । (४) प्रेमके मारे लक्ष्मणसे कुछ कहते नहीं बन रहा था । इसलिये उन्होंने अकुलाकर रामके चरण जा पकड़े और कहा—'नाथ ! मैं आपका दास हूँ, आप मेरे स्वामी हैं । यदि आप मुझे त्याग ही बैठें तो मैं कर ही क्या सकता हूँ ? ।। ७१ ।। प्रभु ! आपने मुझे जो शिक्षा दी है वह तो ठीक ही है । पर अपनी कायरता (असमर्थता)-के कारण मैं उसे पूरा कर नहीं पाऊँगा । जो धीर

---

१. काह ।

७१६-१७ मातुः पितुर्गुरोश्चाज्ञां धृत्वा शिरसि च प्रभोः । स्वभावादेव कुर्वन्ति ये ते जन्मवतां वराः ।।
७१८-१९ मयाद्य सह सौमित्रे त्वयि गच्छति तद् वनम् । को भजिष्यति कौसल्यां सुमित्रां वा यशस्विनीम् ।।
सौमित्रे भर कौसल्यामुक्तमर्थममुं चर । एवं कुरुष्व सौमित्रे मत्कृते रघुनन्दन ।।—वाल्मीकीय
७२०-२१ एवं मयि च ते भक्तिर्भविष्यति सुदर्शिता । धर्मज्ञ गुरुपूजायां धर्मश्चाप्यतुलो महान् ।।
७२२-२३ प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः । राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान् नादग्ध्वा विनिवर्तते ।।याज्ञव०
७२४-२५ विचार्य चेदृशीं नीतिं तिष्ठ भ्रातरसशंयम् । शीतलं वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो व्याकुलोऽभवत् ।
उपस्पृश्य हिमं पद्मं शुष्कं भवति तत्क्षणम् । —व्याससंहिता
७२६-२७ एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्युवाच तदा रामं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ।।वा०

नरवर धीर, धरम - धुर - धारी । निगम नीति - कहँ ते अधिकारी । (१)
७३० मैं सिसु, प्रभु - सनेह - प्रतिपाला । मंदर - मेरु कि लेहिं मराला ।
गुरु पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ, नाथ पतियाहू । (२)
जहँ लगि जगत सनेह - सगाई । प्रीति - प्रतीति निगम निज गाई ।
मोरें सबइ एक तुम स्वामी । दीनबंधु उर - अंतरजामी । (३)
धरम - नीति उपदेसिय ताही । कीरति - भूति - सुगति-प्रिय जाही ।
मन - क्रम - बचन चरत - रत होई । कृपा - सिंधु परिहरिय कि सोई । (४)

दो०—करुना - सिंधु सुबंधु - के, सुनि मृदु बचन बिनीत ।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ।। ७२ ।।

माँगहु बिदा मातु -सन जाई । आवहु बेगि, चलहु मन भाई ।
मुदित भये सुनि रघुबर - बानी । भयउ लाभ बड़, गइ बड़ हानि । (१)
७४० हरषित हृदय मातु पहँ आए । मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए ।

पुरुष डटकर धर्मका पालन करना जानते हैं, वे ही शास्त्र और नीतिके अनुसार चल सकते हैं । (१) मैं तो (अभी कोरा अनाड़ी) बालक हूँ । (आजतक मैं केवल) आपके स्नेहकी छायामें ही पलता आया हूँ । कहीं हंसके उठाए मंदराचल उठ पा सकता है ? नाथ ! मैं अपना (दुर्बल) स्वभाव आपको स्पष्ट बताए डालता हूँ, आप विश्वास मानिए । गुरु, पिता, माता किसीको मैं कुछ नहीं जानता । (२) संसारमें जहाँतक स्नेहके और कुटुम्बके नाते हैं और शास्त्रोंने भी जिस प्रेम और विश्वासके सम्बन्धका वर्णन किया है (वे सब भी मैं एक नहीं जानता) । मेरे स्वामी ! दीनबन्धु ! आप तो सबके घट-घटकी जानते हैं । (सच्ची बात यह है कि) मेरे तो जो कुछ हैं सब आप ही हैं । (३) धर्म और नीतिका उपदेश तो उसे दिया जाना चाहिए, जिसे कीर्ति, ऐश्वर्य या मोक्षका लोभ हो । (आप ही बताइए कि) मन वचन-कर्मसे जो आपके ही चरणोंसे लिपटा पड़ा हो, उसे कृपासिंधु ! क्या इस प्रकार छोड़ चलना चाहिए ।' (४) करुणाके सागर (कृपालु) रामने अपने भाईके मृदु और विनयपूर्ण वचन सुनकर तथा उन्हें स्नेहके कारण आकुल समझकर बहुत सान्त्वना दी और उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया ।। ७२ ।। (और कहा—) 'अच्छा भाई ! (चलना ही चाहते हो) तो जाकर मातासे आज्ञा ले आओ और झटपट वन चले चलो ।' रामकी वाणी सुनते ही लक्ष्मण ऐसे प्रसन्न हो उठे जैसे उनके सिरसे बहुत बड़ी विपत्ति टल गई हो और बहुत बड़ा लाभ प्राप्त हो गया हो । (१) वे ऐसे हर्षित हृदयसे माता (सुमित्रा)-के पास जा पहुँचे मानो अन्धेको फिरसे नेत्र मिल गए हों ।

७२८-२९ दत्ता मे चोत्तमा शिक्षा भवता नाथ किं त्वहम् । तां कर्तुं न समर्थोऽस्मि शक्ता धर्मधुरंधराः ।।महा०
७३० बलोऽहं स्वामिनः स्नेहाद् रक्षितः सर्वदा तव । हंसः किं मन्दाराद्रेश्च मेरोश्चाप्यधिकारभाक् ।।व.सं
७३१-३३ त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव-देव ।। —गर्गसंहिता
७३४-३५ यः कीर्तिभूतिसुगतीः सततं हि वांछेत् तस्मै सुनीतिशुभधर्मकथोपदेशः ।
कार्यः कृपाजलधिना मनसा च वाचा यः कर्मणापि च भवेत खलुसेवको नो ।। —वशि०सं०
७३६-३७ कोमलं वचनं श्रुत्वा सुबन्धो रघुनन्दनः । आश्वासयामास मुदां तं वाक्यैर्हृदयंगमैः ।—व०रा०
७३८-३९ रामस्त्वनेन वाक्येन सुप्रीतः प्रत्युवाच तम् । व्रजापृच्छस्व सौमित्रे सर्वमेव सुहृज्जनम् ।।वा०रा०

जाइ जननि - पग नायेउ माथा। मन रघुनंदन - जानकि - साथा। (२)
पूछे मातु, मलिन - मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेखी।
गई सहमि, सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव, जनु चहुँ ओरा। (३)
लखन लखेउ, भा अनरथ आजू। ऐहि सनेह - बस करब अकाजू।
माँगत बिदा, सभय सकुचाहीं। जाइ संग, बिधि! कहहि कि नाहीं।

दो०—समुझि सुमित्रा राम - सिय ,-रूप - सुसील - सुभाउ।
नृप-सनेह लखि, धुनेउ सिर , पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥ ७३ ॥

धीरज धरेउ कुअवसर जानी , सहज, सुहृद, बोली मृदु बानी।
तात! तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम, सब भाँति सनेही। (१)
७५० अवध तहाँ, जहँ राम - निवासू। तहँइ दिवस, जहँ भानु-प्रकासू।
जौ पै सीय - राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं। (२)
गुरु, पितु, मातु, बंधु, सुर, साईं। सेइयहि सकल प्रान - की नाईं।

उन्होंने माताके चरणोंमें सिर तो आ नवाया किन्तु मन तो उनका राम और जानकीके ही साथ था। (२) जब माताने लक्ष्मणका उतरा हुआ मुँह देखा तो पूछनेपर लक्ष्मणने सारी कथा विस्तारसे कह सुनाई। यह कठोर (वनवासकी) बात सुनकर सुमित्रा वैसे ही सहम उठीं जैसे वनमें चारों ओर आग लगी देखकर मृगी घबरा उठती है। (३) लक्ष्मणने देखा कि यह तो बना-बनाया काम बिगड़ा चाहता है। कहीं ऐसा न हो कि (यह मेरी माता) स्नेहके कारण (बना-बनाया) काम चौपट कर डाले! अतः, उनसे विदा माँगते हुए वे बहुत घबरा और सकुचा रहे थे। (वे मनमें सोचे जा रहे थे—) 'हे विधाता ? यह (मेरी माता) मुझे रामके साथ जाने भी देगी या 'नहीं' कर देगी।' (४) सुमित्राने राम और जानकीके रूप और सुशील स्वभावको समझकर तथा (कैकेयीपर) राजाका स्नेह देखकर अपना सिर धुन लिया और कहा—'इस पापिन (कैकेयी)-ने बड़ा बुरा दाँव खेल डाला है' ॥७३॥ फिर कुसमय जानकर, धीरज धरकर, स्वभावसे ही अच्छे हृदयवाली सुमित्रा बड़ी कोमल वाणीमें बोलीं - 'देखो बेटा! (आजसे) जानकी ही तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले राम ही तुम्हारे पिता हैं। जैसे दिन वहीं होता है जहाँ सूर्यका प्रकाश हो वैसे ही जहाँ रामका निवास हो वहीं अयोध्या है। यदि राम और जानकी वन जा रहे हों तो (तुम भी चले जाओ,) अयोध्यामें तुम्हारा कोई काम नहीं है। (२) गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी—इन सबको अपना प्राण समझकर इनकी सेवा करनी चाहिए और राम तो प्राणोंसे भी प्यारे और जीवनके भी

७४०-४१ लक्ष्मणो हृष्टहृदयः समीपं मातुरागतः। लोचने प्राप्तवानन्धः प्रणनाम च तां मुदा ॥पुल०सं०
७४२-४३ पप्रच्छ जननी दृष्ट्वा मलिनं पुत्रमानसम्। कथां सर्वां विशेषेण कथयामास लक्ष्मणः ॥
कठोरं वचनं श्रुत्वा सुमित्रा विह्वलाऽभवत्। वनाग्निं सर्वतो दृष्ट्वा सम्भ्रान्ता हरिणी यथा॥सनत्.सं.
७४४-४५ लक्ष्मणो दृष्टवानद्य जातोऽनर्थो मम त्वतः। करिष्यतीयं चाकार्यं गन्तुमाज्ञां न याचते।
भीत्या करोति संकोचं दास्यत्याज्ञां न वा विधे।
७४६-४७ शीलस्वभावरूपाणि ज्ञात्वा श्रीरामसीतयोः। स्नेहं दृष्ट्वा महीपस्य सुमित्रा दुःखिताऽभवत्॥सूतसं०
७४८-५१ दृष्ट्वा सुमित्रा वचनं लक्ष्मणं प्राह दुःखिता। रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ॥
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्। —वाल्मीकीय रामायण

राम प्रान - प्रिय, जीवन जी - के । स्वारथ - रहित सखा सबही - के । (३)
पूजनीय, प्रिय परम जहाँ-ते । सब मानियहि राम - के नाते[१] ।
अस जिय जानि, संग बन जाहू । लेहु तात ! जग - जीवन - लाहू । (४)
दो०—भूरि भाग - भाजन भयहु , मोहिं समेत, बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल , कीन्ह राम - पद ठाउँ ।। ७४ ।।
पुत्रवती, जुवती, जग सोई । रघुपति - भगत जासु सुत होई ।
नतरु बाँझ भलि, बादि बिआनी । राम-बिमुख सुत तें - हित - हानी । (१)
७६० तुम्हरेहि भाग राम बन जाहीं । दूसर हेतु, तात ! कछु नाहीं ।
सकल सुकृत - कर बड़ फल एहू । राम - सीय - पद सहज सनेहू । (२)
राग, रोष, इरिषा, मद, मोहू । जनि सपनेहुँ इनके बस होहू ।
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन - क्रम - बचन करेहु सेवकाई । (३)
तुम - कहँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु - मातु राम - सिय जासू ।

जीवन हैं । वे सबके निःस्वार्थ सखा हैं । (३) जहाँतक (जितने) भी पूज्य और परम प्रिय संबंध हैं, सबको रामके ही नातेसे पूज्य और प्रिय मानना चाहिए । (जो रामको मानते हैं, जिन्हें राम प्यारे लगते हैं, वे ही पूज्य और परम प्रिय हैं) । यह समझकर बेटा ! तुम उनके साथ सीधे वन चले जाओ और संसारमें जन्म लेनेका पूरा लाभ उठा लो । (४) बेटा ! मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ । तुम और मैं दोनों ही बड़े भाग्यशाली हैं कि तुम्हारा मन निश्छल होकर रामके चरणोंकी शरण लिए ले रहा है । ।। ७४ ।। संसारमें वही स्त्री पुत्रवती कहलाने-योग्य है जिसका पुत्र रामका भक्त हो, नहीं तो उसका बाँझ ही बने रहना अच्छा है (उसका पुत्र जनना व्यर्थ है) क्योंकि रामसे विमुख रहनेवाला पुत्र सदा उसका अहित ही करता रहेगा, (१) बेटा ! यह समझ लो कि) राम तुम्हारे ही भाग्यसे वन जा रहे हैं, दूसरा कोई कारण नहीं है । सारे पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि राम और जानकीके चरणोंमें सहज प्रेम हो चले । (२) देखो, कभी भूलकर भी, स्वप्नमें भी राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह-के फेरमें मत फँस बैठना । सब प्रकारके विकार छोड़कर मन, वचन और कर्मसे सीता और रामकी सेवा करते रहना । (३) तुम्हें तो वनमें सब प्रकारसे सुख ही सुख है, क्योंकि माता-पिताके समान सीता और राम सदा तुम्हें साथ लिए रहेंगे । देखो बेटा !

१. सबहि राम-के मनियहि नाते ।

७५२-५३ गुरुः पिता प्रभुर्माता भ्राता देवोऽखिलो जनैः । प्राणवत् सेवितव्यश्च प्राणानां च प्रियो हरिः ।। जीवानां स्वार्थशून्योऽयं सर्वेषां च प्रियः सखा ।। —श्रीकंठसंहिता
७५४-५५ सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने । रामे प्रमादं माकर्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति ।।
७५६-५७ अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम् । भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि । महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान् । एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ।।वा०रा०
७५८-५९ सा भूमौ पुत्रिणी रामा हरिदासो हि यत्सुतः । करोति हितहानिं च श्रीरामविमुखः सुतः ।।कुमारसं.
७६०-६१ वनं व्रजति रामो नान्यहेतुस्त्वदर्थं व्रज सुकृतफलं श्रीरामपादारविन्दे । वदति मुनिगणस्तन्निश्चलं प्रेम यत्स्यात् कपटछलविहीनं भक्तिसम्पत्तियुक्तम् ।।—महारामायण
७६३ व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ । एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठवशगो भवेत् ।। वाल्मीकीय

जेहि न राम, बन लहहिँ कलेसू। सुत! सोइ करेहु, इहइ उपदेसू। (४)
छंद—उपदेस इहि, जेहि जात तुम्हरे, राम-सिय सुख पावहीँ।
पितु, मातु, प्रिय परिवार, पुर[1]-सुख-सुरति बन बिसरावहीँ।
तुलसी, प्रभुहिँ सिख देइ, आयसु दीन्ह, पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल, अमल, सिय-रघुबीर-पद नित-नित नई॥ [३]
७७० सो०—मातु-चरन सिर नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर बिषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग, भाग-बस॥ ७५॥
गये लखन जहँ जानकि-नाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू।
बंदि राम-सिय-चरन सुहाए। चले संग, नृप-मंदिर आए। (१)
कहहिँ परसपर पुर-नर-नारी। भलि बनाइ, बिधि बात बिगारी।
तन कृस, मन दुख, बदन मलीने। बिकल, मनहुँ माखी मधु-छीने। (२)
कर मीँजहिँ, सिर धुनि पछिताहीँ। जनु बिनु-पंख बिहँग अकुलाहीँ।

वनमेँ सदा साथ रहकर तुम ऐसा ही प्रबन्ध किए रखना कि वनमेँ रामको कोई क्लेश न होने पावे। बस तुम्हेँ मेरा यही उपदेश है। (४) देखो बेटा! मैँ तुम्हेँ यही उपदेश दे रही हूँ कि तुम जब उनके साथ हो तो राम-जानकीको वनमेँ इतना सुख मिलता रहे कि वे अपने पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सारे सुख भूल चलेँ।' तुलसीदास कहते हैँ कि (सुमित्रा माताने इस प्रकार) पहले तो हमारे प्रभु (लक्ष्मण)-को शिक्षा दी, फिर उन्हेँ (वन जानेकी) आज्ञा देकर यह आशीर्वाद दिया कि 'रामके चरणोँमेँ तुम्हारी अत्यन्त निर्मल और सदा बसी रहनेवाली भक्ति नित्य नई-नई होती हुई बनी रहे।' [३] माताके चरणोँमेँ सिर नवाकर हृदयमेँ डरते हुए (कि कहीँ रुक जानेको न कह बैठेँ) तुरन्त इस प्रकार झपट भागे जैसे सौभाग्यवश कोई कसकर बँधा हुआ हरिण फंदा तुड़ाकर निकल भागा हो॥ ७५॥ (मातासे बिदा लेकर) लक्ष्मण वहीँ जा पहुँचे जहाँ जानकीके नाथ[2] राम बैठे हुए थे। वे अपने मनकी इच्छाके अनुकूल (रामका) साथ पाकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए जा रहे थे। उन्होँने राम और जानकीके चरणोँमेँ सिर जा नवाया और उनके साथ-साथ राजभवन (राजा दशरथके भवन)-मेँ जा पहुँचे। (१)

इधर नगरके सब नर-नारी आपसमेँ (पछता-पछताकर) एक दूसरेसे कहते जा रहे थे कि विधाताने सारी बात बनाकर भी बिगाड़ डाली। सब लोगोँके शरीर मुरझाए हुए, मन दुखी हुए और मुँह उतरे हुए दिखाई पड़ रहे थे। वे सब ऐसे छटपटाए पड़ रहे थे, जैसे मधु निकाल लिए जानेपर मधुमक्खियाँ अकुला उठती हैँ। (२) सब हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर ऐसे छटपटाए जा रहे थे जैसे पंख कट जानेपर पक्षी तड़फड़ा उठता है। देखते-देखते राजद्वारपर बड़ी भारी भीड़ आ जुटी। उस

१. 'पुर' शब्द राजापुरकी प्रतिमेँ छूट गया है। २. जहाँ जानकी और नाथ (राम) बैठे थे।

७६४-६५ इदं हि वृत्तमुचितं कुलस्यास्य सनातनम्। दानं दीक्षा च यज्ञेषु तनुत्यागो मृधेषु हि॥
७६६-६८ लक्ष्मणं त्वेवमुक्त्वासौ संसिद्धं प्रियराघवम्। सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनः पुनरुवाच तम्॥
७७०-७१ मात्रैवमुक्तो धर्मात्मा लक्ष्मणो भ्रातृवत्सलः। नत्वा स्वमातरं शीघ्रमाजगामाथ लक्ष्मणः॥ वा०रा०
७७२-७३ रुद्धाऽपि यान्तमनुगच्छति मैथिली मां वत्सो जहाति न कदाचन लक्ष्मणोऽपि।
इत्येतयोरनुगतिं प्रतिबोध्य गन्तुं भूयोऽपि राजभवने प्रविवेश रामः॥ चम्पूरामायण

भइ बड़ि भीर भूप - दरबारा । बरनि न जाइ बिषाद अपारा । (३)
सचिव, उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय बचन, राम पग धारे ।
सिय - समेत[1] दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयउ भूमि-पति भारी । (४)

७८० दो०—सीय-सहित सुत सुभग दोउ, देखि - देखि अकुलाइ ।
बारहिं बार सनेह - बस , राउ, लेइ उर लाइ ।। ७६ ।।

सकइ न बोलि विकल नर - नाहू । सोक - जनित उर दारुन दाहू ।
नाइ सीस पद, अति अनुरागा । उठि रघुवीर बिदा तब माँगा । (१)
पितु असीस - आयसु मोहिं दीजै । हरष-समय, बिसमउ कत कीजै ।
तात किये प्रिय - प्रेम प्रमादू । जस जग जाइ, होइ अपवादू । (२)
सुनि सनेह बस उठि नर - नाहा । बैठारे रघुपति गहि बाँहा ।
सुनहु तात ! तुम - कहँ मुनि कहहीं । राम, चराचर - नायक अहहीं । (३)
सुभ अरु असुभ करम - अनुहारी । ईस देइ फल हृदय विचारी ।

समय सबको जो अपार दुःख हो रहा था उसका किसी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता । (३) मन्त्री (सुमंत्र)-ने राजाको सहारा देकर उठा बैठाया और मधुर शब्दोंमें सूचना दी—'राम आ पधारे हैं !' सीताके साथ दोनों भाइयोंको (वन जानेको तैयार) देखकर तो राजा दशरथ आर्त्तनाद कर उठे । (४) सीताके साथ दोनों सुन्दर पुत्रोंको देख-देखकर राजा व्याकुल हुए पड़ रहे थे और स्नेहके मारे बार-बार उन्हें हृदयसे लिपटाए ले रहे थे ।। ७६ ।। राजा इतने व्याकुल हो चले थे कि उनके मुँहसे एक बोल नहीं निकल पा रहा था । शोकके कारण उनका हृदय व्याकुल हो चला था । तभी अत्यन्त प्रेमसे उनके चरणोंमें सिर नवाकर राम उठकर उनसे वन जानेकी आज्ञा लेनेके लिये प्रार्थना करते हुए (१) (कहने लगे—) 'पिताजी ! अब कृपा करके आप मुझे आशीर्वाद दीजिए, और (वन जानेकी) आज्ञा भी दे दीजिए । ऐसे हर्षके समय आप शोक क्यों किए जा रहे हैं ? अपने किसी प्रियके प्रेममें पड़कर प्रमाद कर बैठनेसे (कर्तव्यका पालन करनेसे) तो संसारमें बड़ा अपयश होता और बड़ी निन्दा होती है ।' (२) यह सुनकर स्नेहमें भरे राजाने उठकर रामकी बाँह थामकर उन्हें पास पकड़ बैठाया (और कहा)—'देखो बेटा ! तुम्हारे सम्बन्धमें मुनि लोग कहते हैं कि राम तो चर और अचर सबके स्वामी हैं । (३) वेद भी यही बताते हैं और लोग भी यही कहते हैं कि शुभ और अशुभ कर्मोंका विचार करके ही ईश्वर फल देता है (जो जैसा

१. सीय सहित ।

७७४-७७ ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता। राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा ।।
७७८ अयं स पुरुषव्याघ्रो द्वारि तिष्ठति ते सुतः । स त्वां पश्यतु भद्रं ते रामः सत्यपराक्रमः।।
७७९-८२ एवं स राजा व्यसनाभिपन्नस्तापेन दुःखेन च पीड्यमानः ।
आलिंग्य पुत्रं सुविनष्टसंज्ञो भूमिं गतो नैव विचष्ट किंचित् ।।
७८३-८५ अथ रामो मुहूर्त्तस्य लब्धसंज्ञं महीपतिम् । उवाच प्राञ्जलिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम् ।।
आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोसि नः । प्रस्थितं दण्डकारण्ये पश्य त्वं कुशलेन माम् ।।
अनुजानीहि सर्वान् नः शोकमुत्सृज मानद । लक्ष्मणं मां च सीतां च प्रजापतिरिवात्मजान् ।।
७८६ प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः । उवाच राजा सम्प्रेक्ष्य वनवासाय राघवम् ।। वा०रा०
७८७ शृणु तात वदन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मदर्शिनः । रामश्चराचराणां च नायकोस्त्यवधाधिपः ।।वशि०रा०

करइ जो करम, पाव फल सोई। निगम-नीति, असि कह सब कोई। (४)
७९० दो०—और करै अपराध, कोउ, और पाव फल-भोग।
अति विचित्र भगवंत-गति, को जग जानइ जोग ॥ ७७ ॥
राय, राम-राखन-हित-लागी। बहुत उपाय किये छल-त्यागी।
लखी राम-रुख, रहत न जाने। धरम-धुरंधर, धीर, सयाने। (१)
तब नृप, सीय लाइ उर लीन्हीं। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्हीं।
कहि बन-के दुख दुसह सुनाए। सासु-ससुर-पितु-सुख समुझाए। (२)
सिय-मन राम-चरन-अनुरागा। घर न सुगम, बन बिषम न लागा।
औरउ सबहि सीय समुझाई। कहि-कहि बिपिन-बिपति अधिकाई। (३)
सचिव-नारि, गुरु-नारि सयानी। सहित-सनेह कहहिं मृदु बानी।
तुम-कहँ तौ न दीन्ह बन-बासू। करहु, जो कहहिं ससुर-गुरु-सासू। (४)

कर्म करता है, उसे उसका वैसा ही फल मिलता है)। (४) (किन्तु इस समय तो) अपराध किसी दूसरेने किया और फल किसी दूसरेको भोगना पड़ रहा है (अपराध तो मैंने किया कि कैकेयीके चक्करमें पड़कर ऐसा वर दे बैठा और अपराध किया कैकेयीने कि तुम्हारे-जैसे सुशील पुत्रको वनवास दिला रही है, पर वन जानेका दंड तुम्हें मिल रहा है)। भगवान्‌की इस बड़ी विचित्र लीलाको संसारमें कौन जान सकता है (कि हमारे अपराधका दंड तुम्हें क्यों भोगना पड़ रहा है) ?' ॥ ७७ ॥ राजाने रामको रोक रखनेके लिये छल छोड़कर बहुत बातें कहीं पर जब दशरथने समझ लिया कि धर्म-धुरन्धर, धीर और बुद्धिमान् राम किसी भी प्रकार रोके न रुक पावेंगे (१) तब राजा दशरथने सीताको हृदयसे लगा लिया और बड़े प्रेमसे उन्हें बहुत समझाया भी, वनके कठिन दुःख भी कह सुनाए और सास, ससुर तथा पिताके पास रहनेके सुखका भी वर्णन कर सुनाया, (२) पर सीताका मन तो रामके ही चरणोंमें इतना अनुरक्त हो गया था कि कि उन्हें न तो घर रह जानेकी बात अच्छी लग रही थी और न वनमें रहना दुःखदायी प्रतीत हो रहा था। फिर घरके और लोगोंने भी उन्हें वनमें होनेवाले कष्टोंका वर्णन कर-करके बहुत फुसलाया। (३) मन्त्रियोंकी पत्नियाँ गुरुओंकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ स्नेह-पूर्वक कोमल वाणीसे उन्हें समझाए जा रही थी–'देखो ! तुम्हें तो वनवास दिया नहीं गया है, इसलिये ससुर, सास और गुरु जो कहें, वह तुम्हें आँख मूँदकर मान लेना

७८८-८९ यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति ॥ —पञ्चतंत्र
७९०-९१ दुर्वृत्तसंगतिरनर्थपरम्पराया हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र।
लंकेश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं प्राप्नोति बन्धनमसौ किल सिंधुराजः ॥ —सुभाषित
७९२-९३ वंचना या तु लब्धा मे तां त्वं निस्तर्तुमिच्छसि। अनया वृत्तसादिन्या कैकेय्याभिप्रचोदितः ॥
न चैतदाश्चर्यतमं यत् त्वं ज्येष्ठः सुतो मम। अपानृतं कथं पुत्र पितरं कर्तुमिच्छसि॥—वा०रा०
७९४-९५ तदा सीतां समाश्लिष्य स्वोरसा मानवाधिपः। बहुधा प्रददौ तस्यै शिक्षां सुहितकारिणीम् ॥
वनस्य दुःसहं दुःखं कथयामास भूपतिः। अयोध्यामिथिलापुर्यां जगाद बहुशः सुखम्॥कात्या०सं०
७९६-९७ सीताचित्तं रामपादाब्जलग्नं गेहं श्रेष्ठं कुत्सितं नाप्यरण्यम्।
अन्यैः सर्वैर्बोधिता चापि सीता तूक्त्वा सम्यक् काननस्यापदं वै ॥ —आदिपुराण
७९८-९९ सस्नेहं मृदुभारत्या मंत्रिपत्न्यो गुरुस्त्रियः। वदन्ति काननं दत्तं न ते केनापि सुन्दरि ॥
श्वशुरो च गुरुश्चापि यद् वदन्ति कुरुष्व तत्। —वशिष्ठरामायण

दो०—सिख सीतल, हित, मधुर, मृदु, सुनि, सीतहिँ न सोहानि ।
८००　　सरद - चंद - चाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥ ७८ ॥
सीय सकुच - वस उतर न देई । सो सुनि, तमकि उठी कैकेई ।
मुनि - पट - भूषन - भाजन आनी । आगे धरि, बोली मृदु बानी । (१)
नृपहिँ प्रान - प्रिय तुम रघुवीरा । सील - सनेह न छाँड़िहि भीरा ।
सुकृत, सुजस, परलोक नसाऊ । तुमहिँ जान बन कहिहि न काऊ । (२)
अस विचारि, सोइ करहु जो भावा । राम, जननि-सिख सुनि, सुख पावा ।
भूपहि, वचन वान - सम लागे । करहिँ न प्रान पयान अभागे । (३)
लोग विकल, मुरछित नर - नाहू । काह करिय, कछु सूझ न काहू ।
राम तुरत मुनि - वेष वनाई । चले जनक - जननी सिर नाई । (४)
८१०　दो०—सजि वन-साज-समाज सव , वनिता - बंधु - समेत ।
वंदि बिप्र - गुरु - चरन प्रभु , चले करि सवहिँ अचेत[1] ॥ ७९ ॥

चाहिए । (४) किन्तु यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख भी सीताके हृदयको एक न लगकर दी । (वे यह सब सुन-सुनकर ऐसी व्याकुल हो उठीं) मानो शरत्‌के चन्द्रकी चाँदनी लगनेसे चकवी व्याकुल हो उठी हो ॥ ७८ ॥ सबके संकोचके कारण सीताने तो कुछ उत्तर नहीं दिया पर उनकी बातें सुनकर कैकेयी झट तमककर उठी । उसने मुनियोंके वस्त्र, आभूषण और वर्तन आदि उनके आगे ला धरे और बहुत मिठबोली बनकर कहा—(१) 'देखो राम ! राजा तुम्हें प्राणोंके समान प्यार करते हैं । ये भीरु (दुर्वल हृदयके) राजा अपना शील और स्नेह छोड़ नहीं पावेंगे । उनका चाहे पुण्य, सुयश और परलोक भले भी नष्ट हो जाय, पर वे अपने मुँहसे तुम्हें वन जानेको कभी नहीं कहेंगे । (२) यह विचारकर तुम जो ठीक समझो वही करो ।' माताकी यह बात सुनकर रामको तो बहुत आनन्द हुआ पर कैकेयीके इन वचनोंने राजा दशरथको बाणके समान जा बेधा । वे मन ही मन पछता उठे—'हाय ! हमारे अभागे प्राण यह देखकर भी निकल क्यों नहीं जा रहे हैं (रामको वन जाते देखकर भी मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते) ।' (३) राजाको मूर्च्छा आने लगी । वहाँ जितने भी लोग उपस्थित थे सब यह देख-सुनकर व्याकुल हो उठे । किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था कि अब किया क्या जाय । पर रामने तुरन्त मुनिका-सा वेष बना लिया और वे माता-पिताको सिर नवाकर वहाँसे चल पड़े । (४) वनका सब साज सजाकर (मुनियोंकेसे वेषमें) अपनी धर्मपत्नी (सीता) और भाई (लक्ष्मण)-को साथ लेकर ब्राह्मणों और

१. सब करि चले अचेत ।

८००-१　शीतलां हितसम्पन्नां मधुरां कोमलां तथा । शिक्षामाकर्ण्य सुखिता सीता नैव बभूव सा ॥
शरदः साममूर्णायाश्चन्द्रिका दुःखितां यथा । चक्रवाकीं करोत्येव संलग्ना पृथिवीपते ॥ पुल० रा०
८०२-३　अथ चीराणि कैकेयी स्वयमाहृत्य राघवम् । प्रस्थानं श्रद्दधाना सा त्वरयामास राघवम् ॥ वा०
८०४-५　राज्ञः प्राणप्रियोऽसि त्वं रघुवीर मनोहर । त्वां त्यक्तुं न नृपः शक्तः सुशीलस्नेहकारणात् ॥
सुकृतं सुयशश्चापि परलोकमथापि वा । नश्यन्तु वक्तुं त्वां शक्तो न गन्तुं विपिनं नृपः ॥ भर० रा०
८०६-७　तत्र त्वहं क्षमं मन्ये नोत्सुकस्य विलम्बनम् । राम तस्मादितः शीघ्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ।
व्रीडान्वितः स्वयं यच्च नृपस्त्वां नाभिभाषते । नैतत् किंचिन्नरश्रेष्ठ मन्युरेषोपनीयताम् ॥
८०८　स चीरे पुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्य ते । सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्य मुनिवस्त्राण्यवस्त ह ॥
जननीं जनकं चापि नमस्कृत्य पुनः पुनः । सीतालक्ष्मणरामश्च जगाम विपिनं घनम् ॥ वा० रा

निकसि, बसिष्ठ - द्वार भे ठाढ़े। देखे लोग बिरह - दव - दाढ़े।
कहि प्रिय बचन, सकल समुझाए। बिप्र - बृन्द रघुबीर बोलाए। (१)
गुरु - सन कहि, बरषासन दीन्हें। आदर - दान - बिनय - बस कीन्हें।
जाचक दान - मान संतोषे। मीत, पुनीत प्रेम परितोषे[१]। (२)
दासी - दास बोलाइ बहोरी। गुरुहिं सौंपि, बोले कर जोरी।
सब - कै सार - सँभार गोसाईं। करबि जनक - जननी - की नाईं। (३)
बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत राम, सब - सन मृदु बानी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि - तें रहइँ भुआल सुखारी। (४)

८२० दो०—मातु सकल, मोरे बिरह , जेहिं न होहिं दुख - दीन।
सोइ उपाय तुम करेहु सब , पुर - जन परम प्रबीन ॥ ८० ॥

ऐहि बिधि राम सबहिं समुझावा। गुरु-पद - पदुम हरषि सिर नावा।
गनपति, गौरि, गिरीस मनाई। चले असीस पाइ रघुराई। (१)

गुरुके चरणोंमें प्रणाम करके तथा सबको अचेत करके राम वनके लिये चल दिए ॥ ७९ ॥ राजभवनसे निकलकर गुरु वशिष्ठके द्वारपर राम जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग मेरे (भावी) वियोगकी (चिन्ताकी) ज्वालासे जले जा रहे हैं (रामके वनगमनसे अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं)। रामने सबको मधुर वचन कह-कहकर बहुत समझाया-बुझाया और फिर वहाँके सब ब्राह्मणोंको बुलवा भेजा (१) (और) गुरु वशिष्ठसे कहकर रामने उन ब्राह्मणोंके वर्ष भरके भोजनकी व्यवस्था करके आदर, दान और विनयके द्वारा उन्हें वशमें कर लिया (उनका आशीर्वाद पा लिया)। फिर उन्होंने याचकोंको बुलाकर उन्हें दान और सम्मान देकर सन्तुष्ट किया तथा मित्रोंके प्रति सच्चा प्रेम दिखाकर उन सबका मन रक्खा। (२) फिर वे अपने दास और दासियोंको बुलाकर; उन्हें गुरुके हाथ सौंपकर हाथ जोड़कर बोले—'स्वामी ! माता-पिताके समान आप इन सबकी देख-भाल करते रहिएगा।' (३) राम बार-बार दोनों हाथ जोड़-जोड़कर सबसे विनम्रताके साथ यही कहते जा रहे थे—'मैं उसीको अपना सच्चा हितैषी समझूँगा जिसकी सेवा-परिचर्यासे महाराजको सुख मिले। (४) देखो, परम चतुर नागरिको ! आप सब लोग वही उपाय करते रहिएगा, जिससे मेरे वियोगके दुःखसे मेरी माताएँ दुखी न हो पावें' ॥ ८० ॥ इस प्रकार रामने सबको समझाकर प्रसन्न होकर गुरुके चरण-कमलोंमें सिर झुका लिया। फिर गणेश, पार्वती और शंकरको स्मरण करके तथा सबसे आशीर्वाद

१. परिपोषे।

८१०-११ ततस्तु तत्र ये वृद्धास्तान् प्रणम्य मुनीश्वरान्। चचाल काननं रामो वनिताबन्धुसंयुतः ॥
८१२-१३ अयोध्याया विनिष्क्रान्तमनुयातः पुरोहितः। मंत्रिणः पौरमुख्याश्च दुःखेन महतावृताः ॥
८१४-१५ आत्मीयं सकलं द्रव्यं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मजः। श्रद्धया परया दत्वा वस्त्राणि विविधानि च॥नृ०पु०
८१६-१७ अरुंधत्यै ददौ सीता मुख्यान्याभरणानि च। रामो मातुः सेवकेभ्यो ददौ धनमनेकधा ॥अध्या०
८१८-१९ न संतप्येद् यथा चासौ वनवासं गते मयि। महाराजस्तथा कार्यं मम प्रियचिकीर्षया ॥
८२०-२१ इमां महेन्द्रोपमजातगर्धिनीं तथा विधातुं जननीं ममार्हसि।
यथा वनस्थे मयि शोककर्शिता न जीवितं न्यस्य यमक्षयं व्रजेत् ॥ –वाल्मीकीयरामायण
८२२-२३ सम्बोध्यैवं प्रजा रामो गुरुपादसरोरुहम्। ननाम शिरसा हृष्टः सर्वाः सौजन्यभूषितः ॥
श्रीगणेशस्य दुर्गायाः शंकरस्य च वंदनाम्। कृत्वा शुभाशिषः प्राप्य चचाल रघुनायकः ॥गणे०सं०

राम चलत, अति भयउ विषादू। सुनि न जाइ पुर - आरत - नादू।
कुसगुन लंक, अवध अति सोकू। हरष - विषाद - बिबस सुर-लोकू। (२)
गइ मुरछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्र, कहन अस लागे।
राम चले वन, प्रान न जाहीँ। केहि सुख - लागि रहत तन-माहीँ। (३)
ऐहि - तें कवन व्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजहिं तन प्राना।
पुनि धरि धीर, कहइ नरनाहू। लै रथ, संग, सखा ! तुम जाहू। (४)

८३० दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनक - सुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ, देखराइ वन, फिरेहु गये दिन चारि॥ ८१॥

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध, दृढ़व्रत, रघुराई।
तौ तुम विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु ! मिथिलेस - किसोरी। (१)
जब सिय, कानन देखि डेराई। कहेहु मोर सिख, अवसर पाई।
सासु - ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि ! फिरिय, वन बहुत कलेसू। (२)

पाकर राम (वनको) चल दिए। (१) रामके चलते ही वहाँ सब लोग दहाड़ मार-मारकर रो उठे। नगरमें ऐसा हाहाकार मच उठा कि सुनते नहीं बन रहा था। उधर लंकामें अनेक अपशकुन हो चले और इधर सारीकी सारी अयोध्या बिलखी पड़ रही थी। देवलोकके देवताओंको हर्ष भी हुआ (कि हमारे शत्रु मारे जायँगे) और दुःख भी हुआ (कि हमारे कारण रामको कष्ट उठाना पड़ रहा है)। (२) इधर जब राजाको चेत हुआ और उन्होंने आँखें खोलीं तो सुमन्त्रको बुलाकर वे कहने लगे--'देखो ! राम तो वन चले गए, पर मेरे प्राण अब भी नहीं जा रहे हैं। अब न जाने और कौन-सा सुख देखनेके लिये ये मेरे शरीरसे बँधे पड़े हैं। (३) इससे बड़ा और कौन-सा दुःख आनेवाला है जिसके लिये मेरे प्राण यह शरीर त्यागनेकी बाट जोह रहे हैं।' फिर कुछ धीरज धरकर राजा कहने लगे—'देखो सखा ! तुम रथ लेकर रामके साथ चले जाओ। (४) दोनों कुमार बड़े सुकुमार हैं और जानकी भी बहुत सुकुमारी हैं। तुम इन सबको रथपर चढ़ाकर और वन दिखलाकर (तीन-) चार दिनमें लौटाते लाना॥ ८१॥ यदि दोनों धैर्यवान् भाई लौटनेको तैयार न हों, क्योंकि राम तो सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले और अपने प्रणपर अटल रहनेवाले हैं, तो तुम हाथ जोड़कर (रामसे) प्रार्थना करना कि प्रभो ! (आप नहीं लौटते तो न सही,) जानकीको ही लौटा भेजिए। (१) जब जान पड़े कि सीता वन (-के कष्ट) देखकर घबरा उठी हैं तभी अवसर देखकर मेरी बात कह डालना कि सास-ससुरने ऐसा संदेश दिया है कि—पुत्री ! वनमें कष्ट ही कष्ट तो हैं (वहाँ क्या धरा है ?) इसलिये अब घर (अयोध्या) लौट चलो, (२) और वहाँ कभी पिताके घर (जनकपुरमें)

८२४-२५ यथा यथा राघवराजधानीं विहाय सीता विपिनोत्सुकाऽभूत्।
तथा तथा जायत यातुकामा लंकां विना राक्षसराजलक्ष्मीः॥ —चंपूरामायण

८२६-२७ संज्ञां तु प्रतिलभ्यैव मुहूर्तात् स महीपतिः। नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुमंत्रमिदमब्रवीत्॥वा०

८२८-३१ दिव्यं दिव्यैर्हयैर्युक्तं सुमंत्र रथमानय। रथमारुह्य गच्छन्तु वनं वनचरप्रियाः॥अध्या०

८३२-३३ धीरौ द्वौ भ्रातरौ चेन्नो निवृत्तौ भवतां कुतः। अटलप्रणधारी च सत्यसंधो रघूत्तमः॥
तत् त्वं कृतांजलिर्भूत्वा विनयं कुरु यत्नतः। मिथिलेशसुता तात भवनं याति सुंदरी॥व०रा०

८३४-३५ यदा सीता भवेद् भीतारण्यं दृष्ट्वा भयानकम्। प्राप्य चावसरं वाक्यं कथनीयं ममाद्भुतम्॥
श्वश्रूश्च श्वसुरः पुत्रि संदेशं चोक्तवांस्तव। दुःखं भवति चात्यन्तं वने तस्माद् गृहं व्रज॥भ०रा०

पितु - गृह कवहुँ, कवहुँ ससुरारी । रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ।
ऐहि बिधि करेहु उपाय - कदंबा । फिरइ, त होइ प्रान - अवलंबा । (३)
नाहित मोर मरन परिनामा । कछु न वसाइ, भये विधि वामा ।
अस कहि, मुरुछि परा महि राऊ । राम - लखन - सिय आनि देखाऊ । (४)
८४० दो०—पाइ रजायसु, नाइ सिर, रथ अति वेग वनाइ ।
गयउ जहाँ बाहर नगर, सीय - सहित दोउ भाइ ॥ ८२ ॥
तब सुमंत्र नृप - वचन सुनाए । करि बिनती, रथ राम चढ़ाए ।
चढ़ि रथ, सीय - सहित दोउ भाई । चले, हृदय अवधहिं सिर नाई । (१)
चलत राम, लखि अवध अनाथा । विकल लोग, सब लागे साथा ।
कृपा - सिंधु वहु बिधि समुझावहिं । फिरहिं, प्रेम-वस पुनि फिरि आवहिं । (२)
लागति अवध भयावनि भारी । मानहुँ काल - राति - अँधियारी ।

और कभी ससुराल (अयोध्या)-में जहाँ तुम्हारा मन करे वहीं जा रहा करना । इस प्रकार जैसे भी हो (कमसे कम सीताको) लौटा लानेका उपाय अवश्य करना । यदि वह भी लौट आवे तब भी मेरे प्राणोंको बड़ा सहारा मिल जायगा (३) नहीं तो अन्तमें मेरी मृत्यु हुए विना न रहेगी । विधाता जब वैर ठान वैठता है तब किसीका कुछ किया-धरा नहीं हो पाता ।' यह कहकर राजा (यह कहते हुए) मूर्च्छित होकर गिर पड़े—'जाओ ! राम, लक्ष्मण और सीताको मेरी आँखोंके आगे ला दिखाओ ।' (४) राजाकी आज्ञा पाते ही उन्हें सिर नवाकर सुमन्त्र वहुत वेगसे चलनेवाला रथ तैयार करके वातकी वातमें नगरके वाहर वहाँ जा पहुँचे जहाँ सीताके साथ राम और लक्ष्मण चले जा रहे थे ॥ ८२ ॥

वहाँ पहुँचकर सुमंत्रने राजाका सारा संदेश रामको कह सुनाया और वहुत अनुनय करके उन्हें रथपर चढ़ा बैठाया। सीताके साथ दोनों भाई (राम और लक्ष्मण) उस रथपर चढ़कर अयोध्याको प्रणाम करके आगे बढ़ चले । (१) रामको जाते और अयोध्याको अनाथ होते देखकर सब अयोध्यावासी भी व्याकुल हो-होकर उनके पीछे-पीछे लग चले । कृपालु राम उन्हें बहुत समझा-बुझाकर लौटा-लौटा देते थे, पर वे थे कि प्रेमके कारण फिर-फिर (रामके ही पास) लौट-लौट चले आते थे । (२) उन्हें अयोध्यापुरी ऐसी भयावनी लगी जा रही थी मानो वह कालरात्रि[1]के अन्धकारसे भरी हुई हो; और

१. कालरात्रि : प्रलयकी वह रात्रि जिसमें सारी सृष्टि नष्ट होकर केवल अँधेरा ही अँधेरा रह जाता है ।

८३६-३७ कदापि च पितुर्गेहे श्वशुरस्य गृहे तथा । भवत्या खलु वस्तव्यं रुचिपूर्वकमेव हि ॥
इत्थं च विविधोपायाः कर्तव्या भवता ध्रुवम् । निवृत्ता चेद् भवेत् सीता ममप्राणावलम्बनम्॥पुल०रा०
८३८-३९ अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवं दिदृक्षमाणो न लभे सलक्ष्मणम् ।
इतीव राजा विलपन् महायशाः पपात तूर्णं शयने स मूर्च्छितः ॥ —वाल्मीकीयरामायण
८४०-४१ राज्ञो वचनमाज्ञाय सुमंत्रः शीघ्रविक्रमः । योजयित्वा ययौ तत्र रथमश्वैरलंकृतम् ॥
८४२-४३ तं रथं राजपुत्राय सूतः कनकभूषितम् । आचचक्षेऽञ्जलिं कृत्वा युक्तं परमवाजिभिः ॥
तं रथं सूर्यसंकाशं सीता हृष्टेन चेतसा । आरुरोह वरारोहा कृत्वालंकारमात्मनः ॥
अथोज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम् । तमारुरुहतुस्तूर्णं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥
८४४-४५ सीतातृतीयानारूढान् दृष्ट्वा रथमचोदयत् । सुमंत्रः संमतानश्वान् वायुवेगसमाञ्जवे ॥
प्रयाते तु महारण्यं चिररात्राय राघवे । वभूव नगरे मूर्च्छा बलमूर्च्छा जनस्य च ॥वा०रा०

घोर जंतु - सम पुर - नर - नारी। डरपहिँ एकहिं एक निहारी। (३)
घर मसान, परिजन जनु भूता। सुत - हित - मीत मनहुँ जम-दूता।
बागन बिटप - बेलि कुम्हिलाहीं। सरित - सरोवर देखि न जाहीं। (४)
८५० दो०—हय, गय, कोटिन केलि-मृग, पुर - पसु, चातक, मोर।
पिक, रथांग, सुक, सारिका, सारस, हंस, चकोर ॥ ८३ ॥
राम - वियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ - तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।
नगर सकल, बन गहवर भारी। खग-मृग बिपुल, सकल नर-नारी। (१)
बिधि, कैकई किरातिनि कीन्हीं। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्हीं।
सहि न सके रघुबर - बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। (२)
सबहि बिचार कीन्ह मन - माहीं। राम-लखन-सिय-बिनु सुख नाहीं।
जहाँ राम, तहँ सबइ समाजू। बिनु - रघुबीर, अवध नहिं काजू। (३)
चले साथ, अस मंत्र दृढ़ाई। सुर - दुर्लभ सुख - सदन बिहाई।
राम - चरन - पंकज प्रिय जिन्हहीं। बिषय-भोग, बस करहिं कि तिन्हहीं। (४)
८६० दो०—बालक - बृद्ध बिहाय गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा - तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥ ८४ ॥

नगरके नर-नारी उन भयानक जन्तुओंके समान लग रहे थे जो सब एक दूसरेको देख-देखकर डरे जा रहे हों। (३) अपने-अपने घर सबको श्मशानके समान, कुटुम्बीजन सब भूत-प्रेतके समान और पुत्र, हितैषी तथा मित्र सब यमराजके दूतोंके समान भयंकर लगे जा रहे थे। (रामके जाते ही) उद्यानोंके वृक्ष और लताएँ कुम्हला चलीं और नदी-सरोवर तो ऐसे भद्दे दिखाई देने लगे कि उनकी ओर देखनेका मन नहीं कर रहा था। (४) घोड़े, हाथी, मन-बहलावके लिये पाले हुए खेलके हरिण, नगरके पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, मैना, शुक, सारस, हंस और चकोर, ॥ ८३ ॥ सब रामके वियोगमें व्याकुल हो-होकर ऐसे ठक हुए खड़े रह गए, मानो किसीने उनके चित्र बना खड़े किए हों। ऐसा लगता था जैसे सारा नगर घना जंगल हो, वहाँके नर-नारी सब वहाँके पशु-पक्षी हों (१) और विधाताने कैकेयीको ऐसी भीलनी बना धरा हो, जिसने (इस पशु-पक्षियोंसे भरे हुए वनमें) दसों दिशाओंमें (चारों ओर) ऐसी भयंकर आग लगा दी हो कि वहाँके जीव (निवासी) इस विरहकी आगकी लपटें न सह सकनेके कारण व्याकुल होकर वहाँसे भाग खड़े हुए हों। (२) अपने मनमें सभी यही समझ बैठे थे कि—'राम, लक्ष्मण और सीता जहाँ नहीं हैं वहाँ कहाँ सुख धरा है? इसलिये राम जहाँ भी जाकर रहेंगे, वहीं हम सब भी जा रहेंगे। रामके बिना अयोध्यामें हम लोगोंका रक्खा ही क्या है?' (३) यही निश्चय करके और अपने-अपने ऐसे सुखकी सामग्रियोंसे भरे घर छोड़-छोड़कर लोग रामके पीछे-पीछे हो लिए जो देवताओंको भी नहीं मिल पा सकतीं! (बात भी ठीक है) जिन्हें रामके चरण-कमल प्यारे हैं, उन्हें संसारके सुख फँसा कहाँ पा सकते हैं? (४) वहाँके सभी लोग, बच्चों और बूढ़ोंको घरोंमें छोड़कर (रामके) साथ लग चले।

८४६-५५ रुदिताश्रुपरिद्यूनं हाहाकृतमचेतनम्। प्रयाणे राघवस्यासीत् पुरं परमपीडितम्॥
सुस्राव नयनैः स्त्रीणामस्रमायाससंभवम्। मीनसंक्षोभचलितैः सलिलं पंकजैरिव॥
तत्समाकुलसंभ्रांतं मत्तसंकुपितद्विपम्। हयसिंजितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम्॥
८५६-६१ रामस्तु तमसातीरं गत्वा तत्रावसत्सुखी। जलं प्राश्य निराहारो वृक्षमूलेऽस्वपद् विभुः॥वा०रा०

रघुपति, प्रजा प्रेम - बस देखी , सदय हृदय, दुख भयउ बिसेखी।
करुनामय, रघुनाथ, गोसाईं। बेगि पाइयहि पीर पराई। (१)
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहु बिधि राम, लोग समझाए।
किए धरम - उपदेस घनेरे। लोग प्रेम - बस, फिरहिं न फेरे। (२)
सील - सनेह छाँड़ि नहिं जाई। असमंजस - बस भे रघुराई।
लोग सोग - श्रम - बस गे सोई। कछुक देव - माया मति मोई। (३)
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव - सन कहेउ सप्रीती।
खोज मारि, रथ हाँकहु ताता। आन उपाय, बनिहि नहिं बाता। (४)
८७० दो०—राम, लखन, सिय जानि चढ़ि , संभु - चरन सिर नाइ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ , इत - उत खोज दुराइ ॥ ८५ ॥
जागे सकल लोग भएँ भोरू। गे रघुनाथ, भयउ अति सोरू।
रथ - कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम-राम कहि चहुँ दिसि धावहिं। (१)
मनहु बारि-निधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक - समाजू।

पहले दिन चलकर रामने तमसा (टौंस)-के तटपर डेरा जा डाला ॥ ८४ ॥ अपनी प्रजाको प्रेममें इतना मग्न देखकर रामके दयालु हृदयमें बड़ा दुःख हुआ जा रहा था। राम तो करुणामय हैं। उन्हें दूसरोंकी पीडा समझते देर क्या लगती है ? (वे दूसरोंको दुखी देखकर स्वयं दुखी हो उठते हैं)। (१) बड़े प्रेमभरे मधुर शब्दोंमें रामने अनेक प्रकारसे लोगोंको बहुत समझाया और बहुतसे धर्मके उपदेश भी दिए पर लोगोंको उनसे ऐसा गहरा प्रेम था कि वे लोग लौटाए नहीं लौट रहे थे। (२) रामसे जो उनका शील और स्नेह था उसे वे छोड़ नहीं पा रहे थे। वे बड़ी दुबिधामें पड़े हुए थे (कि इधर राम लौटनेको कह रहे हैं, उधर हमारा मन इन्हें छोड़कर जानेको नहीं कहता)। जब वे शोक और थकावटके मारे पड़कर सो गए और कुछ देवताओंकी मायाने भी उनकी बुद्धि चक्करमें डाल दी (३) तब दो पहर रात चढ़ चुकनेपर रामने बहुत प्रेम-पूर्वक मंत्रीसे कहा—'तात ! ऐसे लीक मारकर रथ चलाइए कि उसकी लीक भी किसीके खोजे न मिल पा सके। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी उपायसे काम बनता नहीं दिखाई देता (लोगोंको अयोध्या लौटानेका और दूसरा कोई उपाय नहीं है)।' (४) (इस निश्चयके अनुसार) राम, लक्ष्मण और जानकी रथपर चढ़ गए। शंकरके चरणोंमें (मन ही मन) प्रणाम करके मंत्रीने तुरन्त (पहले अयोध्याकी ओर रथ घुमाकर) ऐसे ढंगसे रथ हांका कि पहियोंकी लीकसे कहीं किसीको मार्ग ही ढूंढे न मिल पावे ॥ ८५ ॥

सवेरा होनेपर जब सबकी नींद खुली तो चारों ओर बड़ा कोलाहल मच उठा—'राम चले गए, राम चले गए।' रथकी लीक भी कहीं किसीको ढूंढे नहीं मिल पा रही थी। सब लोग 'राम-राम' पुकारते-चिल्लाते हुए इधर-उधर भटकते ढूंढने लगे। (१) वे ऐसे व्याकुल हो उठे जैसे समुद्रमें जहाज डूब जानेपर (उसपर लदा माल डूब जानेसे) व्यापारी अकुला उठे हों। सब आपसमें यही कहे जा

८६२-६९ पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः। शक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद् गच्छामहे वनम् ॥
इति निश्चयमाज्ञाय तेषां रामोऽतिविस्मितः। नाहं गच्छामि नगरमेते वै क्लेशभागिनः ॥
भविष्यंतीति निश्चित्य सुमंत्रमिदमब्रवीत्। इदानीमेव गच्छामः सुमंत्र रथमानय ॥
८७०-७१ इत्याज्ञप्तः सुमंत्रोऽपि रथं वाहैरयोजयत्। आरुह्य रामः सीता च लक्ष्मणोऽपि ययुर्द्रुतम् ॥
अयोध्याभिमुखं गत्वा किंचिद् दूरं ततो ययुः। —अध्यात्मरामायण

एकहिँ एक देहिँ उपदेसू । तजे राम हम, जानि कलेसू । (२)
निंदहिँ आप, सराहहिँ मीना । धिग जीवन रघुबीर - विहीना ।
जौं पै प्रिय - वियोग विधि कीन्हाँ । तौ कस मरन न माँगे दीन्हाँ । (३)
ऐहि विधि करत प्रलाप - कलापा । आए अवध, भरे परितापा ।
बिषम बियोग न जाइ बखाना । अवधि - आस सब राखहिँ प्राना । (४)
८८० दो०—राम-दरस - हित नेम - व्रत , लगे करन -नर - नारि ।
मनहुँ कोक - कोकी - कमल , दीन, बिहीन - तमारि ॥ ८६ ॥
सीता - सचिव - सहित दोउ भाई । सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई ।
उतरे राम देव - सरि देखी । कीन्ह दंडवत हरष बिसेखी । (४)
लखन, सचिव, सिय किये प्रनामा । सबहिँ - सहित सुख पायउ रामा ।
गंग सकल - मुद - मंगल - मूला । सब सुख-करनि, हरनि सब सूला । (२)
कहि - कहि कोटिक कथा - प्रसंगा । राम बिलोकहिँ गंग - तरंगा ।
सचिवहिँ, अनुजहिँ, प्रियहिँ सुनाई । बिबुध - नदी - महिमा अधिकाई । (३)

रहे थे—'हमारा दुःख देखकर राम हमेँ छोड़कर चले गए ।' (२) वे अपनी निन्दा और मछलियोँकी प्रशंसा किए जा रहे थे (कि हमसे तो मछली ही अच्छी कि पानीसे अलग होते ही प्राण दे डालती है और एक हम हैँ कि रामके चले जानेपर भी जीए चले जा रहे हैँ) । (वे कहते जा रहे थे—) 'रामके बिना जीना धिक्कार (व्यर्थ) है । जब विधाताने ऐसे प्रिय रामका वियोग होना भाग्यमेँ लिख मारा तो माँगनेपर भी हमेँ मृत्यु क्योँ नहीँ दे डाल रहा है ?' (३) इस प्रकार रोते-झीँखते वे सब अयोध्या लौट आए । उनके मनमेँ जो दुःख हुआ जा रहा था वह इतना भयंकर था कि उसका वर्णन करना संभव नहीँ है । अब वे सब इसी आशापर जीए जा रहे थे कि वनवासकी अवधि (१४ वर्ष) कब बीतेँ (और कब रामके दर्शन होँ) । (४) सूर्यके बिना जैसे चकवा, चकवी और कमल उदास हो बैठते हैँ वैसे ही (उदास होकर उस दिनसे) अयोध्याके नर और नारी रामका दर्शन पानेके लिये व्रत आदि नियम पालन करनेमेँ लग गए ॥ ८६ ॥ उधर सीता और मंत्रीके साथ दोनोँ भाई शृङ्गवेरपुर पहुँच गए । गंगाका दर्शन करते ही वे लोग रथसे उतर पड़े और अत्यन्त हर्षित होकर पहले रामने गंगाको जा प्रणाम किया । (१) फिर लक्ष्मण, मंत्री और सीताने भी जाकर गंगाको प्रणाम किया । सबके साथ (गंगाको प्रणाम करके) रामको बड़ा आनन्द मिल रहा था क्योँकि गंगा तो सब प्रकारका कल्याण और मंगल ही करती हैँ, सब सुख देती रहती हैँ और सब दुःख दूर कर डालती हैँ । (२) (गंगाके प्रभावकी) अनेक कथाएँ सुना-सुनाकर राम खड़े हुए गंगाकी तरंगोँका आनन्द लेने लगे । फिर उन्होँने मंत्री, भाई और सीताको गंगाकी विशेष महिमा कह

८७२-८१ तेऽपि राममदृष्ट्वैव प्रानरुत्थाय दुःखिताः । कृपणाः कृपणा वाचो वदंति स्म मनीषिणः ॥
रथनेमिगतं मार्गं पश्यन्तस्ते पुरं ययुः । हृदि रामं ससीतं ते ध्यायन्तस्तस्थुरन्वहम् ॥
८८२-८४ सुमन्त्रोऽपि रथं शीघ्रं नोदयामास सादरम् । स्फीताञ्जनपदान् पश्यन् रामः सीतासमन्वितः ॥
गंगातीरं समागच्छच्छृंगवेराविदूरतः । गंगां दृष्ट्वा नमस्कृत्य स्नात्वा सानन्दमानसः ॥अध्या०
८८५-८६ तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयामशैवलाम् । ददर्श राघवो गंगां रम्यामृषिनिषेविताम् ॥
आश्रमैरविदूरस्थैः श्रीमद्भिः समलंकृताम् । कालेऽप्सरोभिर्हृष्टाभिः सेवितांभोह्रदां शिवाम् ॥वा०

मज्जन कीन्ह, पंथ - श्रम गयऊ। सुचि जल पियत, मुदित मन भयऊ।
सुमिरत जाहि, मिटइ श्रम - भारू। तेहि श्रम? यह लौकिक व्यवहारू। (४)

८९० दो०—सुद्ध सच्चिदानंदमय, -कंद भानुकुल - केतु।
चरित करत, नर - अनुहरत, संसृति - सागर - सेतु ॥ ८७ ॥

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित, लिए प्रिय बंधु बोलाई।
लै फल - मूल - भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरष अपारा। (१)
करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं विलोकत अति - अनुरागे।
सहज - सनेह - बिवस रघुराई। पूछी कुसल, निकट बैठाई[१]। (२)
नाथ! कुसल पद - पंकज देखे। भयउँ भाग - भाजन जन - लेखे।
देव! धरनि, धन, धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित - परिवारा। (३)

सुनाई। (३) यह सब करके उन्होंने उतरकर स्नान किया जिससे मार्गकी सारी थकावट जाती रही और फिर (गंगाका) पवित्र जल पीते ही उनका चित्त हरा (प्रसन्न) हो उठा। (तुलसीदास कहते हैं कि) जिसके स्मरण मात्रसे संसार (जन्म-मृत्यु)-के श्रम (-के संकट) मिट जाते हैं, उन्हें भी श्रम हो ? वे तो लोक-दिखावेके लिये यह थकावटका नाटक कर रहे थे (वास्तवमें उन्हें कोई थकावट नहीं हुई)। सूर्यकुलकी पताका (झंडे)-के समान (यश प्रकट करनेवाले) जो राम शुद्ध, (सत्, चित्, आनन्दके भांडार हैं और जो संसारके समुद्रसे पार उतारनेके लिये स्वयं पुल हैं, वे भी उस समय मनुष्योंके समान व्यवहार किए जा रहे थे ॥ ८७ ॥ जब केवटोंके सरदार गुहको यह (रामके आनेका) समाचार मिला तो उसे इतना उल्लास हुआ कि उसने अपने सब बन्धु-बान्धवोंको बुलवा इकट्ठा किया। वह हृदयमें हर्षसे फूला नहीं समा रहा था। वह टोकरों और बहँगियोंमें कंद-मूल-फल भर-भरकर रामसे मिलनेके लिये चल पड़ा। (रामके पास पहुँचकर) वह उन्हें दण्डवत् करके और अपनी सब भेंट उनके आगे रखकर बड़े प्रेमसे टकटकी बाँधे रामको देखने लगा। स्वाभाविक स्नेहके कारण राम उस केवटोंके सरदारको अपने पास बैठाकर उसका सब कुशल-मंगल पूछने लगे। (२) (इसपर केवटोंके सरदारने कहा—) 'नाथ ! आपके चरण-कमलोंके दर्शन हो गए तो कुशल ही कुशल है। आजसे लोगोंकी दृष्टिमें मेरी भी गिनती भाग्यवान् पुरुषोंमें होने लगी। देव ! यह सब जो कुछ भूमि, धन, और घर आप देख रहे हैं सब आपका ही है। मैं नीच भी परिवार-सहित आपका ही तुच्छ सेवक हूँ। (३) अब कृपा करके आप नगर (शृङ्गवेरपुर)-में पधार चलिए और इस

१. यह पूरी अर्द्धाली राजापुरकी प्रतिमें नहीं है।

८८७-९१ राम रामेति ये नित्यं जपन्ति मनुजा भुवि। तेषां मृत्युभयादीनि न भवन्ति कदाचन ॥
का पुनस्तस्य रामस्य दुःखशंका महात्मनः। रामनाम्नैव मुक्तिः स्यात् कलौ नान्येन केनचित्॥
मायामानुषरूपेण विडम्बयति लोककृत्।

८९२-९३ ततो गुहो जनैः श्रुत्वा रामागममहोत्सवम्। सखायं स्वामिनं द्रष्टुं हर्षात्तूर्णं समापतत् ॥
फलानि मधुपुष्पादि गृहीत्वा भक्तिसंयुतः।

८९४-९५ रामस्याग्रे विनिक्षिप्य दंडवत्प्रापतद् भुवि। गुहमुत्थाप्य तं तूर्णं राघवः परिषस्वजे ॥

८९६-९७ संपृष्टकुशलो रामं गुहः प्रांजलिरब्रवीत्। धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन ॥
बभूव परमानंदः स्पृष्ट्वा तेऽङ्गं रघूत्तम। नैषादराज्यमेतत्ते किंकरस्य रघूत्तम।
त्वदधीनं वसन्नत्र पालयास्मान् रघूद्वह॥ अ०रा०

कृपा करिय, पुर धारिय पाँऊ। थापिय जन, सब लोग सिहाऊ।
कहेउ सत्य सब सखा! सुजाना। मोहिं दीन्ह, पितु आयसु आना। (४)
९०० दो०—बरस चारि - दस बास बन, मुनि - व्रत - बेष - अहार।
ग्राम-बास नहिं उचित, सुनि, गुहहिं भयउ दुख - भार ॥ ८८ ॥
राम - लखन - सिय - रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम - नर - नारी।
ते पितु - मातु कहहु सखि! कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे। (१)
एक कहहिं, भल भूपति कीन्हा। लोयन - लाहु हमहिं बिधि दीन्हा।
तब निषाद - पति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना। (२)
लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम, सब भाँति सुहावा।
पुरजन, करि जोहार, घर आए। रघुबर, संध्या करन सिधाए। (३)
गुह, सँवारि साथरी डसाई। कुस-किसलयमय, मृदुल, सुहाई।

दासका गौरव बढ़ाइए जिससे सब लोग मेरे-जैसा भाग्य पानेके लिये तरस उठें।' (तब रामने कहा—) 'देखो भले मित्र! तुमने जो कहा वह तो ठीक ही कहा पर मुझे तो पिताने कुछ दूसरी ही आज्ञा दे रक्खी है (कि वनमें ही रहना)। (४) मुनियोंका-सा व्रत, वेष और आहार करते हुए मुझे अभी चौदह वर्ष वनमें ही बिताने हैं। ऐसी स्थितिमें मेरे लिये गाँवमें जाकर रहना उचित नहीं होगा।' गुहने यह सब सुना तो उसका जी कचोट उठा। ॥८८॥ राम, लक्ष्मण और जानकीका रूप देख-देखकर गाँव (शृङ्गवेरपुर)-के नर और नारियाँ सब प्रेमके साथ आ-आकर कहने लगीं—'भला बताओ तो सखी! वे माता-पिता कैसे (पत्थरके हृदयवाले) हैं जिन्होंने ऐसे सुकुमार (कोमल तनवाले) बालकोंको वनमें निकाल भेजा है।' (१) एक स्त्री कहने लगी—'मेरी समझमें तो राजाने अच्छा ही किया कि इन्हें वन भेज दिया। (इसी बहाने) विधाता (-ने ऐसा संयोग तो ला खड़ा किया कि उस)-की कृपासे हमें भी नेत्रोंका लाभ मिल गया (हमने इन्हें भर आँखों देख लिया।' तब निषादराज गुहने अपने मनमें निश्चय किया कि (रामके निवासके लिये) शीशमके वृक्षके नीचे ही (व्यवस्था कर देना) ठीक रहेगा। (२) उसने रामको वह स्थान भी ले जा दिखलाया। (रामको भी वह स्थान बड़ा जँचा और) रामने भी कहा—'हाँ, यह स्थान बहुत ठीक है।' (जब वहाँ सब व्यवस्था हो गई) तब शृङ्गवेरपुरके लोग रामको प्रणाम कर-करके अपने-अपने घर लौट गए और राम भी सन्ध्या-वन्दन करने (गंगाके तीरपर) चले गए। (३) (इसी बीच) केवटोंके सरदार गुहने कुशा और कोमल पत्तोंकी गुदगुदी सुहावनी साथरी (गद्दी)

८९८ आगच्छ यामो नगरं पावनं कुरु मे गृहम्। गृहाण फलमूलानि त्वदर्थं संचितानि मे॥
अनुगृह्णीष्व भगवन् दासस्तेऽहं सुरोत्तम।

८९९-९०१ रामस्तमाह सुप्रीतो वचनं शृणु मे सखे। न वेक्ष्यामि गृहं ग्रामं नववर्षाणि पंच च॥
दत्तमन्येन नो भुंजे फलमूलादि किंचन। राज्यं ममैतत्ते सर्वं त्वं सखा मेऽतिवल्लभः॥अ०रा०

९०२-४ श्रीरामलक्ष्मणविदेहसुतासुरूपं ग्राम्या नराश्च ललना जगदुर्विलोक्य।
सख्यः कथं हि पितरौ विपिनं च याम्यां संप्रेषितौ शुभसुतौ शुभलक्षणौ तौ॥
एको जगाद कृतवान् शुभकर्म महीपतिः। नयने सफले जाते दृष्ट्वेमौ रामलक्ष्मणौ॥वशिष्ठसंहिता

९०५-६ शिंशपावृक्षमूले स निषसाद रघूत्तमः। —अध्यात्मरामायण

९०७-८ ततश्चीरोत्तरासंगः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्। —वाल्मीकीयरामायण

सुचि फल, मूल मधुर, मृदु जानी। दोना भरि - भरि राखेसि पानी। (४)

९१० दो०—सिय-सुमंत्र - भ्राता - सहित , कंद - मूल - फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंस - मनि , पाँय पलोटत भाइ ॥ ८९ ॥

उठे लखन, प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहिं सोवन, मृदु बानी।
कछुक दूरि, सजि बान - सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। (१)
गुह, बुलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँवँ - ठाँवँ राखे अति प्रीती।
आपु लखन - पहँ बैठेउ जाई। कटि भाथी, सर - चाप चढ़ाई। (२)
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम - बस हृदय बिषादू।
तनु पुलकित, जल लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन - सन कहई। (३)
भूपति - भवन सुभाय सुहावा। सुरपति - सदन न पटतर आवा[२]।
मनि - मय - रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे। (४)

९२० दो०—सुचि, सुबिचित्र, सुभोगमय , सुमन - सुगंध - सुबास।
पलँग मंजु, मनि-दीप, जहँ , सब बिधि सकल सुपास ॥ ९० ॥

बिबिध बसन, उपधान, तुराई। छीर - फेन - मृदु, बिसद, सुहाई।

सजा बिछाई, अच्छे (टटके, ताज़े) और मीठे स्वादिष्ट कोमल फल और मूल (कन्द) ला धरे और दोनोंमें भर-भरकर पानी ला रक्खा। (४) सीता, लक्ष्मण, सुमंत्र और राम सबने बैठकर वे कंद[१]-मूल[२]-फल जीमे। फिर रघुवंशके मणि राम तो साँथरीपर जा लेटे और भाई लक्ष्मण बैठकर उनके पैर पलोटने लगे ॥८९॥ जब लक्ष्मणने देखा कि रामकी आँख लग गई है तो लक्ष्मणने उठकर धीरेसे मंत्रीसे कहा कि आप भी जाकर सो रहिए। फिर वे (लक्ष्मण) कुछ दूरपर हाथमें धनुष-बाण लिए, वीरासन लगाए बैठे रातभर जागते रहे। (१) गुहने विश्वासी पहरेदारोंको बुलाकर बड़े प्रेमसे यहाँ-वहाँ ला खड़ा किया और फिर वह स्वयं तूणीर बाँधकर, धनुषपर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणके पास ही पहुँचकर जा बैठा। (२) रामको इस प्रकार भूमिपर सोए देखकर प्रेमके कारण निषादराजको बड़ा दुःख हुआ जा रहा था। उसका शरीर रोमाञ्चित हो आया और उसकी आँखोंसे आँसू बह चले। वह बड़े प्रेममें भरकर लक्ष्मणसे कहने लगा—(३) 'राजा दशरथका राजभवन स्वभावसे ही इतना भव्य है कि इन्द्रका भवन भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। मणियोंसे रचे हुए उसके सुन्दर चौबारे (भवन) इतने सुन्दर हैं, मानो स्वयं कामदेवने अपने हाथोंसे गढ़कर ला सजाए हों। (४) वे भवन बड़े पवित्र, विलक्षण, सारे सुखकी सामग्रियोंसे सजे हुए और सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित हुए रहते हैं। वहाँ एकसे एक सुन्दर पलंग बिछे रहते, मणियोंके दीपक जगमगाते रहते और सब प्रकारकी सुविधा हुई रहती है ॥ ९० ॥ वहाँ न जाने कितने दूधके फेनके समान कोमल, सफेद और सुन्दर बिछावन, तकिये और गद्दे बिछे पड़े रहते हैं। जो राम और जानकी रात्रिमें वहाँ जाकर सोते थे और

१. आनी। २. पावा। १. कंद : शकरकंद-जैसे पदार्थ। २. मूल : मूली-गाजर-जैसे पदार्थ।

९०९-११ जलमात्रं तु संप्राश्य सीतया सह राघवः। आस्तृतं कुशपर्णाद्यैः शयने लक्ष्मणेन हि ॥
उवास तत्र नगरप्रासादाग्रे यथा पुरा। सुष्वाप तत्र वैदेह्या पर्यंक इव संस्कृते ॥

९१२-१५ ततो विदूरे परिगृह्य चापं सबाणतूणीरधनुः स लक्ष्मणः।
ररक्ष रामं परितो विपश्यन् गुहेन सार्धं सशरासनेन ॥

९१६-१७ सुप्तं रामं समालोक्य गुहः सोऽश्रुपरिप्लुतः। लक्ष्मणं प्राह विनयाद् भ्रातः पश्यसि राघवम् ॥ अ०

तहँ सिय - राम सयन निसि करहीं। निज छबि रति-मनोज-मद हरहीं। (१)
ते सिय - राम साथरी सोए। श्रमित, बसन-बिन, जाहिं न जोए।
मातु, पिता, परिजन, पुर - बासी। सखा, सुसील, दास अरु दासी। (२)
जोगवहिं जिन्हहिं प्रान - की नाईं। महि सोवत, तेइ राम गोसाईं।
पिता जनक जग - बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस - सखा रघुराऊ। (३)
रामचंद्र पति, सो बैदेही। सोवत महि, बिधि बाम न केही।
सिय - रघुबीर कि कानन जोगू? करम प्रधान, सत्य कह लोगू। (४)

९३० दो०—कैकय - नंदिनि मंद - मति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहि रघुनंदन - जानकिहि, सुख - अवसर, दुख दीन्ह ॥ ९१ ॥

भइ दिनकर - कुल - बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी।
भयउ बिषाद निषादहि भारी। राम - सीय महि - सयन निहारी। (१)
बोले लखन मधुर, मृदु, बानी। ग्यान - बिराग - भगति - रस सानी।
काहु न कोउ सुख - दुख - कर दाता। निज - कृत करम-भोग सब भ्राता। (२)
जोग - बियोग - भोग - भल - मंदा। हित - अनहित - मध्यम भ्रम-फंदा।

अपनी शोभासे रति और कामदेवका गर्व भी चूर किए डालते थे (रति और कामदेवसे भी अधिक सुन्दर लगते थे) उन राम और जानकीको आज घास-पत्तोंकी साँथरी (बिछावन)-पर थके हुए, बिना चादरके पड़कर सोते देखा नहीं जाता। माता, पिता, कुटुम्बी जन, नगरके लोग, मित्र, सुशील स्वभावके दास और दासियाँ, (२) सभी अपने प्राणोंके समान जिनकी सेवा और देख-रेख करते रहते थे, वे ही प्रभु राम आज यहाँ धरतीपर सोए पड़े हैं। जिनके पिता जनकका प्रभाव विश्व-भरमें विख्यात है, इन्द्रके मित्र दशरथ जिनके ससुर हैं (३) और राम जिनके पति हैं, वे ही जानकी आज धरतीपर सोई पड़ी हैं! सचमुच विधाता किसको बिना सताए चैन लेता है। सब लोग सत्य कहते हैं कि (पिछले जन्मका) कर्म ही बलवान् होता है (जैसा कर्म होता है वैसा फल भोगना पड़ता है) नहीं तो राम और जानकी क्या वनमें भेजे जानेके योग्य थे? (४) कैकयराजकी पुत्री बड़ी नीच बुद्धिकी है जिसने इतनी बड़ी कुटिलता करके राम और जानकीपर सुखके समय बिपदा ला बरसाई ॥ ९१ ॥ कैकेयी तो सूर्यकुलका वृक्ष काट डालनेवाली कुल्हाड़ी बन बैठी है। उस मूर्खाने सारे विश्वको दुःख (-की आगमें) धकेल झोंका है।' राम और जानकीको धरतीपर पड़े सोते देखकर निषाद बड़ा दुखी हुआ जा रहा था। (१) यह देखकर ज्ञान, वैराग्य और भक्ति-रससे भरी हुई मधुर और कोमल वाणीसे लक्ष्मण कहने लगे—'देखो भाई! न कोई किसीको सुख देता है न दुःख। सबको अपने-अपने किए कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है। (२) मिलना और बिछुड़ना, अच्छे और बुरे भोग, मित्र, शत्रु तथा उदासीन (न शत्रु और न मित्र), ये सब तो भ्रमके फंदे हैं भ्रमके।

९१८-२९ शयानं कुशपत्रौघसंस्तरे सीतया सह। यः शेते स्वर्णपर्यंके स्वास्तीर्णे भवनोत्तमे ॥
९३०-३३ कैकेयी राम दुःखस्य कारणं विधिना कृता। मन्थराबुद्धिमास्थाय कैकेयी पापमाचरत् ॥
९३४-३५ तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणः प्राह सखे शृणु वचो मम। कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा ॥
स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः।
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥ —अध्यात्मरामायण

जनम, मरन, जहँ लगि जग - जालू। संपति, बिपति, करम अरु कालू। (३)
धरनि, धाम, धन, पुर, परिवारू। सरग, नरक, जहँ-लगि व्यवहारू।
देखिय, सुनिय, गुनिय मन - माहीं। मोह - मूल, परमारथ नाहीं। (४)
९४० दो०—सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे, लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥ ९२॥
अस बिचारि, नहिं कीजिय रोसू। काहुहि बादि न देइय दोसू।
मोह - निसा सब सोवनिहारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा। (१)
ऐहि जग - जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी, प्रपंच - बियोगी।
जानिय तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय-बिलास-बिरागा। (२)
होइ बिवेक, मोह - भ्रम भागा। तब रघुनाथ - चरन अनुरागा।
सखा ! परम परमारथ एहू। मन - क्रम - बचन राम - पद नेहू। (३)
राम ब्रह्म, परमारथ - रूपा। अबिगत, अलख, अनादि, अनूपा।

जहाँतक संसारमें जन्म और मरणका जाल फैला है, जहाँतक सम्पत्ति, विपत्ति, धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदिका व्यवहार दिखाई पड़ता है, उसे भली भाँति देखा-सुना और समझा जाय तो जान पड़ेगा कि सबका कारण मोह (अज्ञान) है, परमार्थ (ज्ञान) नहीं है। (४) स्वप्नमें राजा भी भिखारी हो रहता है और दरिद्र भी स्वर्गका राजा बन बैठता है पर जागनेपर किसीको न कोई लाभ होता न हानि ही होती (न कोई राजा होता, न रंक)। वही दशा इस संसारकी भी समझनी चाहिए। यह सारा संसार सपने-जैसा है (इसमें दिखाई देनेवाला सुख-दुःख सत्य नहीं है)। यह समझकर न तो किसीपर क्रोध ही करना चाहिए और न किसीको व्यर्थ दोष ही देना चाहिए। इस मोह (अज्ञान)-की रात्रिमें सब सोने ही वाले तो हैं जो (सोए पड़े हुए) अनेक प्रकारके स्वप्न देखते रहते हैं (अज्ञानके कारण सुख और दुःखकी बात करते हैं)। (१) इस मोहकी रात्रिमें योगी ही जागते हैं (योगी इस अज्ञानसे बचे रहते हैं) क्योंकि वे तो परमार्थ (परम ज्ञान) प्राप्त करनेमें लगे रहते हैं और इस मायासे लिपटे हुए जगत्‌की झंझटोंमें बचे रहते हैं। संसारमें जागता हुआ प्राणी उसीको समझना चाहिए जो सारे भोग-विलासोंसे छुटकारा पा बैठा हो। (२) देखो ! ज्ञानकी आँखें खुलते ही जब मोह (अज्ञान)-का सारा भ्रम दूर हो जाता है तभी रामके चरणोंमें प्रेम जाग पाता है। (३) राम ही तो परम तत्त्व और परम ब्रह्म हैं जिन्हें ठीक-ठीक जाना ही नहीं जा सकता, जो अलख, आदिरहित और उपमा-रहित हैं, जिनका वास्तविक रूप कोई देख नहीं पा सकता, जो सदासे हैं और जिनके जैसा कोई दूसरा है ही नहीं, जिनमें कभी

९३६-३९ सुहृन्मित्रायुदासीनद्वेष्यमध्यस्थबांधवाः । स्वयमेवाचरन् कर्म तथा तत्र विभाव्यते॥
सुखं वा यदि वा दुःखं स्वकर्मवशगो नरः। यद् यद् यथागतं तद् तद् भुक्त्वा स्वस्थमना भवेत्॥
९४०-४२ तस्माद्धैर्येण विद्वान्स इष्टानिष्टोपपत्तिषु। न हृष्यन्ति न मुह्यन्ति सर्वं मायेति भावनात्॥
अलं हर्षविषादाभ्यां शुभाशुभफलोदये। विधात्रा विहितं यद् यत्तदलंघ्यं सुरासुरैः॥ अध्यात्म
९४३-४५ या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥गीता
९४६-४७ न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च।
९४८ एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्॥ —कैवल्योपनिषद्

सकल - बिकार - रहित, गत - भेदा । कहि नित नेति निरूपहिं बेदा । (४)

९५० दो०—भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि , सुर - हित - लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज-तनु , सुनत मिटहिं जग - जाल ॥ ९३ ॥

सखा ! समुझि अस, परिहरि मोहू । सिय - रघुबीर - चरन - रत होहू ।
कहत राम - गुन भा भिनुसारा । जागे जग - मंगल - दातारा[1] । (१)
सकल सौच करि राम नहावा । सुचि, सुजान, बटछीर मँगावा ।
अनुज - सहित सिर जटा बनाए । देखि, सुमंत्र - नयन जल छाए । (२)
हृदय - दाह, अति बदन मलीना । कह कर जोरि, बचन अति दीना ।
नाथ ! कहेउ अस कोसल - नाथा । लै रथ, जाहु राम - के साथा । (३)
बन दिखाइ, सुरसरि अन्हवाई । आनेहु फेरि, बेगि दोउ भाई ।
लखन - राम - सिय आनेहु फेरी । संसय, सकल सँकोच निबेरी । (४)

विकार (परिवर्तन) नहीं होता (जो सदा एक-जैसे रहते हैं), जिनके लिये सब बराबर हैं (जो अपने-परायेका कोई भेद नहीं करते) और वेदने भी सदा 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर जिनका परिचय दिया है । (४) वे ही कृपालु राम, अपने भक्त, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताके कल्याणके लिये मनुष्यका रूप बनाकर ऐसी-ऐसी लीलाएँ आ करते हैं, जिन्हें सुनने-भरसे जगत्‌की सारी झंझटें दूर हो मिटती हैं ॥ ९३ ॥ इसलिये मित्र ! ऐसा समझकर और मोह छोड़कर सीता और रामके चरणोंसे प्रेम करने लगो ।' इस प्रकार रामके गुण कहते-सुनते सबेरा हो चला और जगत्‌का कल्याण करनेवाले, सबको सुख देनेवाले राम जाग उठे (१) सभी शौच - क्रिया करके पवित्र और सुजान रामने स्नान जा किया । फिर बड़का दूध मँगाकर रामने और उनके छोटे भाई लक्ष्मणने उस दूधसे सिरपर जटा बनाकर बाँध लपेटी । यह देखते ही सुमंत्र फूट-फूटकर रो पड़े । (२) उनका हृदय कचोट उठा और मुँह कुम्हला गया । वे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए रामसे बोले— 'नाथ ! मुझे कोशलके नाथ दशरथने यह आज्ञा दी थी कि तुम रामके साथ रथ लेते जाओ (३) और दोनों भाइयोंको वन दिखाकर और गंगा-स्नान कराकर तुरन्त लौटा लाओ । तुम सब संशय और संकोच छोड़कर (कि लोग क्या कहेंगे और ऐसा करनेसे धर्म रहेगा या जायगा) लक्ष्मण, राम और सीताको लौटाते लाना । (४) नाथ ! महाराजने तो यही कहा है । अब प्रभु (आप) जो

1. सुखदारा ।

९४८-४९ रामः सत्यं परं ब्रह्म रामादन्यन्न विद्यते । तस्माद् रामस्वरूपं हि सत्यं सत्यमिदं जगत् ॥सनत्०सं०

९५०-५१ गोसाधुदेवताविप्रवेदानां रक्षणाय वै । तनुं धत्ते हरिः साक्षाद् भगवानात्मलीलया ॥ गर्गसं०

९५३-५५ गुहलक्ष्मणयोरेवं भाषतोर्विमलं नभः । बभूव रामः सलिलं स्पृष्ट्वा प्रातः समाहितः ॥
वटक्षीरं समानाय्य जटामुकुटमादरात् । बबंध लक्ष्मणेनाथ सहितो रघुनन्दनः ॥—अध्यात्म०

९५६-५७ बभूव हृदये दाहो बभूव मलिनं मुखम् । भूत्वातिदीनः प्रोवाच रामं भूत्वा कृतांजलिः ॥
कोसलाधिपतिः प्राह गृहीत्वा स्यन्दनं शुभम् । सार्धं रामेण गच्छ त्वं सुमंत्र विपिनं शुभम् ॥नार०पु०

९५८-५९ दर्शयित्वा वनं गंगास्नानं सर्वमलापहम् । कारयित्वा ह्युभौ बन्धू शीघ्रमानय कोसलाम् ॥
लक्ष्मणं चापि रामं च सीतां जनकनन्दिनीम् । शीघ्रमानय संकोचं शंकां त्यक्त्वा वनात् प्रिय ॥वशि०सं०

९६० दो०—नृप अस कहेउ, गोसाइँ! जस, कहइ, करौं, बलि, सोइ।
करि बिनती पाँयँन परेउ, दीन्ह बाल-जिमि रोइ॥ ९४॥
तात! कृपा करि कीजिय सोई। जातें अवध अनाथ न होई।
मंत्रिहिँ राम उठाइ प्रबोधा। तात! धरम-मत तुम सब सोधा। (१)
सिबि, दधीचि, हरिचंद नरेसा। सहे धरम-हित कोटि कलेसा।
रंतिदेव, बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ, सहि संकट नाना। (२)
धरम न दूसर सत्य-समाना। आगम-निगम-पुरान बखाना।
मैं सोइ धरम, सुलभ करि पावा। तजे, तिहूँ पुर अपजस छावा। (३)
संभावित-कहँ अपजस-लाहू। मरन-कोटि-सम दारुन दाहू।
तुम-सन तात! बहुत का कहऊँ। दिये उतर, फिरि पातक लहऊँ। (४)
९७० दो०—पितु-पद गहि, कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात-कै, तात! करिय जनि मोरि॥ ९५॥
तुम पुनि पितु-सम अति हित मोरे। बिनती करौं तात! कर जोरे।
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु, सोच हमारे। (१)

कहें, मैं वही करूँ। मैं आपपर बलिहारी जाता हूँ।' इस प्रकार निवेदन करके वे रामके चरणोंमें जा गिरे और बालकके समान फफक-फफककर फुक्का फाड़कर रो उठे॥ ९४॥ (और कहने लगे—) 'तात! कृपा करके वही कीजिए, जिससे अयोध्या अनाथ न हो।' रामने मंत्रीको उठाकर उन्हें धैर्य बँधाते हुए बहुत समझाया—'तात! आपने तो धर्मके सभी सिद्धान्त छान डाले हैं। (१) बताइए, शिवि, दधचि और राजा हरिश्चन्द्रने धर्मके लिये कितने कष्ट नहीं झेले? परम बुद्धिमान् राजा रन्तिदेव और बलिने अनेक संकट सहकर भी धर्मका ही पालन किया। (२) वेद, शास्त्र और पुराण सबमें यही कहा गया है कि सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं है। मुझे तो वह धर्मका पन्थ बड़ी सरलतासे हाथ आ लगा है। यदि अब इसे छोड़े देता हूँ तो तीनों लोकोंमें मेरी कितनी जगहँसाई (बदनामी) होने लगेगी। (३) अपयशसे तो प्रतिष्ठित पुरुषको करोड़ों बार मृत्यु होनेके समान संताप होने लगता है। तात! मैं आपको बहुत क्या समझाऊँ? आपको उत्तर देनेमें भी मुझे पाप ही लगेगा (कि इतने ज्ञानी पुरुषपर भी ज्ञान झाड़े जा रहे हैं)। (४) आप जाकर पिताके चरण पकड़कर और हाथ जोड़कर नम्रता-पूर्वक विनय कीजिएगा कि आप मेरी कोई चिन्ता न करें॥ ९५॥ देखिए तात! आप भी तो मेरे पिताके समान ही मेरा बड़ा हित चाहनेवाले हैं। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आपका (इस समय) सबसे बड़ा यही

९६०-६१ राज्ञा यदुक्तं तत् तात कथितं प्रार्थितं च मे। श्रुत्वा यथा तवाज्ञा स्यात् कर्तुमिच्छामि तत्तथा॥ एवमुक्त्वा च पतितः पादयोर्लघुबालवत्। चकार रामचन्द्रस्य सुमंत्रो बहु रोदनम्॥शिवसं०
९६२ ध्रुवमद्य पुरी राम अयोध्या युधिनां वर। निष्प्रभा त्वयि निष्क्रान्ते गतचन्द्रेव शर्वरी॥वा०
९६३ उत्थाप्य मन्त्रिणं रामो बोधयामास धर्मवित्। धर्ममार्गस्त्वया ज्ञातः सकलो मंत्रिसत्तम॥व०सं०
९६४-६५ हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिविर्बलिः। व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः॥भागव०
९६६-६७ सत्यान्नास्ति परो धर्म इति होवाच भूरियम्। सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्॥गर्गसंहिता
९६८ संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्॥गीता
९७०-७१ सुमंत्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते। साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति॥अध्या०
९७२-७३ इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यं सुहृदं नोपलक्षये। यथा दशरथो राजा न मां शोचेत् तथा कुरु॥अ०रा०

सुनि रघुनाथ - सचिव - संवादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू।
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ, बड़ अनुचित जानी। (२)
सकुचि राम, निज सपथ दिवाई। लखन-सँदेस, कहिय जनि जाई।
कह सुमंत्र, पुनि भूप - सँदेसू। सहि न सकिहि सिय, बिपिन-कलेसू। (३)
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहिं, तुमहिं, करनीया।
नतरु निपट अवलंब - बिहीना। मैं न जियब जिमि जल-बिनु मीना। (४)
८८० दो०—मइके, ससुरे, सकल सुख, जबहिं, जहाँ मन मान।
तहँ, तब, रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति-बिहान ॥ ९६ ॥
बिनती भूप कीन्हि जेहि भाँती। आरति, प्रीति, न सो कहि जाती।
पितु - सँदेस सुनि कृपा-निधाना। सियहिं दीन्हि सिख कोटि बिधाना। (१)
सासु, ससुर, गुरु, प्रिय, परिवारू। फिरहु त, सब-कर मिटइ खँभारू।

कर्तव्य है कि हम लोगोंकी चिन्तासे पिताजीको दुःख न हो पावे।' (१) राम और मंत्री सुमंत्रकी यह बात-चीत सुन-सुनकर निषादराज और उसके कुटुम्बी सब बहुत व्याकुल हुए जा रहे थे। इसी बीच लक्ष्मणके मुँहसे कुछ ऐसी कड़वी बातें निकल गईं जो उनको नहीं कहनी चाहिए थीं (कि कामी पिताने स्त्रीके कहनेसे जब वनवासकी आज्ञा दी थी तब यह विवेक कहाँ चला गया था। अब चले हैं डंडा मारकर पीठ सहलाने)। पर रामने तत्काल उसे अनुचित समझकर रोक दिया (२) मंत्रीको अपनी शपथ दिलाकर कहा कि 'लक्ष्मणकी कही हुई बात पितासे जाकर मत कह दीजिएगा।' फिर सुमंत्रने राजाका यह (दूसरा) संदेसा कह सुनाया कि 'सीता (किसी भी प्रकार) वनके क्लेश नहीं सह पावेंगी। (३) इसलिये आप (सुमंत्र) और राम कोई ऐसे उपाय करें कि सीता अयोध्या लौट आवें नहीं तो बिना अवलम्बके मेरा (दशरथका) जीना वैसे ही असम्भव हो जायगा जैसे पानीके बिना मछलीका होता है। (४) सीताके पिता (जनक)-के घर और ससुराल (अयोध्या)-में सभी सुविधाएँ विद्यमान हैं। जब, जहाँ उनका जी चाहे तब, वहाँ सीता तबतक जाकर सुखसे रहती रहें जबतक यह विपत्ति (१४ वर्ष वनवासकी अवधि) टल नहीं जाती।॥ ९६ ॥ महाराजने जिस व्यथा और प्रेमसे भरकर यह प्रार्थना की है, वह मैं वर्णन नहीं कर सकता।' कृपाके निधान रामने पिताका यह सन्देश सुनकर सीताको बहुत समझाया—(१) 'देखो! तुम यदि घर लौट जाओगी तो सास, ससुर, गुरु और प्रिय परिवार सबका दुःख मिट जायगा।'

८७४ श्रुत्वा श्रीरामचन्द्रस्य संवादं सचिवस्य च। कुटुम्बैः सहितः सर्वैर्निषादो व्याकुलोऽभवत् ॥भर सं.
८७५-७६ लक्ष्मणो दुर्वचः प्राह तच्छ्रुत्वा तं हि राघव। कारयित्वा स्वशपथं प्रतिषेधितवान् भृशम् ॥ सूतसं०
८७७-७८ जगाद राजसंदेशं सुमंत्रो मंत्रिसत्तमः। जानकी काननक्लेशान् सोढुं शक्ता न कोमला ॥
आगच्छेत् सा यथायोध्यां तथा कार्यं सुत त्वया। —पुलस्त्यसं०
८७९ नागमिष्यति चेत् सीता नाहं जीवामि राघव। यथा जलं विना मीनो न जीवति कदाचन ॥
८८०-८१ मिथिलायामयोध्यायां सन्त्यनेकानि राघव। सा सुखानि सुखेनैव वसिष्यति यथारुचि ॥
यावद् भवान् न चायाति साकेतं धाम पुण्यदम् ॥ —भरतसंहिता
८८२-८३ आर्तो यथा महाराजः कृतवान् प्रार्थनां शुभाम्। प्रेम्णा सावर्णनीयास्ति ब्रह्मणा शंकरेण च ॥
संदेशं पितुराकर्ण्य रघुवीरो दयाकरः। सीतायै सुन्दरीं शिक्षां प्रददौ बहुलां मुदा ॥ वशिष्ठसं०
८८४ श्वशुरस्य तथा श्वश्र्वोः गुरोः परिजनस्य च। सर्वस्य दुःखं नश्येत् तु सीते तव निवर्तनात् ॥ पु०सं०

सुनि पति - बचन, कहति बैदेही। सुनहु प्रान - पति परम सनेही। (२)
प्रभु ! करुनामय ! परम बिबेकी। तनु तजि, रहति छाँह किमि छेंकी।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंद तजि जाई। (३)
पतिहिं प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव - सन गिरा सुहाई।
तुम पितु - ससुर - सरिस हितकारी। उतर देउँ, फिरि अनुचित भारी। (४)

९९० दो०—आरति-बस सनमुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरज-सुत-पद-कमल-बिनु, बादि जहाँ - लगि नात ॥ ९७ ॥

पितु - बैभव - बिलास मैं डीठा। नृप-मनि-मुकुट-मिलित पद-पीठा।
सुख - निधान अस पितु-गृह मोरे। पिय - बिहीन मन भाव न भोरे। (१)
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारि-दस प्रगट प्रभाऊ।
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध, सिंघासन, आसन देई। (२)
ससुर एतादृस, अवध निवासू। प्रिय परिवार, मातु - सम सासू।
बिनु रघुपति - पद - पदुम - परागा। मोहि कोउ सपनेहुँ सुखद न लागा। (३)

अपने पति (राम)-की बातें सुनकर सीता कहने लगीं—'परम स्नेही प्राणपति ! सुनिए। (२) आप तो बड़े दयालु और परम विवेकी हैं (आपको क्या समझाना है ?)। भला बताइए कि शरीरको छोड़कर क्या छाँह (छाया) कहीं अलग रह सकती है ? सूर्यको छोड़कर उसकी चमक (धूप) क्या कहीं हटी रह सकती है और चन्द्रमाको छोड़कर क्या उसकी चाँदनी कहीं चली जा सकती है ?' (३) इस प्रकार सीताने पहले अपने पतिसे प्रेम-भरा निवेदन करके फिर मंत्रीसे मधुर वाणीमें कहा—'आप तो हमारे पिता और श्वसुरके समान हमारा भला चाहनेवाले हैं। यदि मैं आपकी बात काटकर उत्तर दूँ तो बड़ा अनुचित होगा। (४) तात ! मैं (आज) इस विपत्तिके ही कारण आपके सम्मुख होकर मुँह खोल रही हूँ। आप बुरा न मान बैठिएगा। आर्यपुत्र (पति)-के चरण-कमल छोड़कर (संसारके) जितने नाते हैं सब मुझे व्यर्थ लगते हैं ॥ ९७ ॥ मैंने अपने उन पिता (जनक)-के ऐश्वर्यका महत्त्व भी आँखोंसे देखा है, जिनके चरण रखनेके पीढ़ेपर राजाओंके मुकुट-मणि (श्रेष्ठ राजा) आ-आकर सिर झुकाते थे। इतने सुखोंसे भरा हुआ होनेपर भी मेरे पिताका घर (मायका) मुझे पतिके बिना भूलकर भी नहीं अच्छा लगता। (१) हमारे ससुर चक्रवर्ती राजा दशरथका प्रभाव चौदहों लोकोंमें प्रकट है कि इन्द्र भी आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं और अपने आधे सिंहासनपर ही उन्हें ले जा बैठाते हैं (अपने बराबर ही उनका सम्मान करते हैं)। (२) ऐसे (प्रतापी) ससुर, अयोध्या (जैसी सुन्दर नगरी)-का निवास, प्रेम करनेवाले सभी कुटुम्बीजन और माताके समान सासें—यह सब कुछ होनेपर भी यदि रामके चरण-कमलोंकी धूल सदा

९८५-८७ चन्द्रो न खलु भात्येष यथा चन्द्रिकया विना। न भाति विद्यमानोऽपि यथा शक्त्या विना शिवः ॥
प्रभया हि विना यद्वद् भानुरेष न विद्यते। प्रभा च भानुना तेन सुतरां तदुपाश्रया ॥ शिवपु०
९८८-९१ आश्राव्य वचनं रामं जानकी प्रेमपूरितम्। सचिवं प्रत्युवाच त्वं पित्रा च श्वशुरेण च ॥
सदृशो हितकर्ता मे तस्माद् वक्तुं न चोत्सहे। सन्मुखीभवने तात दुःखमेव हि कारणम् ॥
विद्धयार्यपुत्रपादाब्जं विना सर्वं वृथा जगत्। —वशिष्ठसं०
९९२-९४ शोभासम्पत्तिसम्पन्नं मह्यं नैव हि रोचते। पितुर्गृहं वियोगे तु स्वप्रियस्य कदाचन ॥ धनेश्वरसं०
९९४-९७ श्वशुरश्चक्रवर्ती मे साकेताधिपतिर्महान्। श्वश्रूर्मातृसमाना च प्रियः परिजनस्तथा ॥
स्वप्नेऽपि सुखदा नैते विना रामपदांबुजम् ॥ —अगस्त्यरामायण

अगम पंथ, वन - भूमि, पहारा। करि, केहरि, सर, सरित अपारा।
कोल, किरात, कुरंग, बिहंगा। मोहिं, सब सुखद प्रानपति - संगा। (४)
१००० दो०—सासु-ससुर-सन मोरि-हुँति, बिनय करबि परि पायँ।
मोरि सोच जनि करिय कछु, मैं बन सुखी सुभाय॥ ९८॥
प्रान - नाथ, प्रिय देवर साथा। धीर - धुरीन, धरे धनु - भाथा।
नहिं मग-श्रम-भ्रम - दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिय जनि भोरे। (१)
सुनि सुमंत्र, सिय - सीतल - बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि-हानी।
नयन सूझ नहिं, सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु, अति अकुलाना। (२)
राम, प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतल छाती।
जतन अनेक साथ - हित कीन्हें। उचित उतर रघुनंदन दीन्हें। (३)
मेटि जाइ नहिं राम - रजाई। कठिन करम-गति, कछु न बसाई।

न मिलती रहे तो मुझे स्वप्नमें भी कुछ सुखदायक नहीं जान पड़ेगा। (३) अपने प्राणपति (राम)-के संग रहनेपर मुझे वनकी (नीची ऊँची) धरती, बीहड़ मार्ग, पहाड़, हाथी, सिंह, अपार नदी, सरोवर, कोल, किरात, पशु, पक्षी आदि सब अच्छे ही लगेंगे। (४) आप जाकर मेरे सास-ससुरसे मेरी ओरसे पाँव पड़कर निवेदन कीजिएगा कि मैं वनमें बहुत ही सुखी रहूँगी। वे मेरी कोई चिन्ता न करें॥ ९८॥ (आप देख ही रहे हैं कि) धनुष और तूणीर लिए हुए वीरोंमें अग्रगण्य मेरे प्राणनाथ (राम) तथा प्रिय देवर (लक्ष्मण) जब साथ हैं, तब मुझे (वनके) मार्गमें चलनेकी न थकावट होगी, न भ्रम होगा और न मेरे मनमें कोई दुःख ही होगा। आप मेरे लिये भूल-कर भी चिन्ता न करें' (१) सीताकी यह शीतल वाणी सुनकर भी सुमंत्र ऐसे व्याकुल हो उठे जैसे मणि खो जानेपर सर्प छटपटाने लगता है। न तो उनके नेत्रोंसे ही कुछ सूझ पा रहा था, न कानोंसे कुछ सुनाई पड़ पा रहा था। वे इतने व्याकुल हो चले कि मुँहसे एक शब्द नहीं निकल पा रहा था (२) यद्यपि रामने उन्हें बहुत समझाया, पर उन्हें शान्ति नहीं मिल पाई। मंत्रीने साथ वन चलनेके लिये भी जितने तर्क दिए उन सबका भी वे यथोचित उत्तर देते गए (३) (यह स्थिति हो गई कि) रामकी आज्ञा मिटाए नहीं मेटी जा सक रही थी। कर्मकी गति ऐसी कठिन है कि उसपर किसीका वश नहीं चल

९९८-९९ दुर्गो मार्गो वनान्ताद्रिः करी सिंहः सरो नदी। कोलः किरातः सारंगो विहंगो निखिलः सुखम्॥
दास्यन्ति प्राणनाथस्य संगान्मंत्रिवरोत्तम। —अगस्त्यरामायण

१०००-१ पतित्वा पादयोः श्वश्र्वोः कर्तव्यो विनयस्त्वया। मम शोको न कर्तव्यश्चाहं सुखयुता वने॥ब्रह्म०रा०

१००२-३ प्राणप्रियो वीरधुरीण आस्ते मे देवरस्तूणधनुर्धरश्च।
संगेऽनयोः संचलनान् न दुःखं कार्यो न शोको गुरुणा कदाचित्॥ —वशिष्ठरामायण

१००४-५ सीतायाः शीतलां वाणीं श्रुत्वातिविकलोऽभवत्। सुमन्त्रो मणिनाशेन यथा सर्पोऽस्ति दुःखितः।
नेक्षते नयनाभ्यां च श्रोत्राभ्यां च शृणोति नो। वक्तुं नैव स शक्नोति जिह्वयात्यन्तदुःखितः॥पुल.सं.

१००६-७ निवर्त्यमानो रामेण सुमंत्रः प्रतिबोधितः। तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत्।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि। एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः।
रामो भृत्यानुकारी तु सुमन्त्रमिदमब्रवीत्। नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी॥
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः। —वाल्मीकीयरामायण

राम - लखन - सिय - पद सिर नाई । फिरेउ, बनिक जिमि मूर गँवाई । (४)

१०१० दो०—रथ हाँकेउ, हय राम-तन , हेरि - हेरि हिहिनाहिं ।

देखि निषाद, बिषाद-बस , धुनहिं सीस, पछिताहिं ॥ ९९ ॥

जासु बियोग, बिकल पसु ऐसे । प्रजा मातु - पितु जिइयहिं कैसे ।

बरबस राम, सुमंत्र पठाये । सुरसरि - तीर आप तब आये । (१)

माँगी नाव, न केवट आना । कहइ, तुम्हार मरम मैं जाना ।

चरन - कमल - रज - कहँ सब कहई । मानुष - करनि मूरि कछु अहई । (२)

छुअत, सिला, भइ नारि सुहाई । पाहन - तें न काठ कठिनाई ।

पाता । अन्तमें राम, लक्ष्मण और सीताके चरणोंमें सिर नवाकर सुमंत्र इस प्रकार लौट चले, जैसे कोई व्यापारी अपना मूल धन गँवाकर लौटा जा रहा हो । (४) ज्योंही सुमंत्रने रथ हाँकना चाहा कि रथके घोड़े रामकी ओर देख-देखकर हिनहिना उठे । यह देखकर तो सब निषाद सिर पीट-पीटकर पछताने लगे (—'हाय ! कैसी विपदा इनके सिर आ पड़ी है') ॥ ९९ ॥—'भला बताइए कि जिनके वियोगमें पशुतक इस प्रकार व्याकुल हुए जा रहे हैं, उनके वियोगमें उनकी प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रह सकेंगे ?' किसी-किसी प्रकार सुमंत्रको लौटाकर राम वहाँसे गंगाके तटपर उतर आए । (१) (जब रामने एक केवटसे, गुहसे नहीं,) नाव लानेको कहा तो नाव लानेके बदले वह केवट (उलटे) कहता क्या है कि (यह न समझ बैठिए कि मैं कुछ जानता नहीं), मैं आपका सारा भेद भली-भाँति जानता हूँ (कि आप साक्षात् परब्रह्म हैं । पर सीता और लक्ष्मण समझते थे कि रामके पैरकी धूल छू जाने-भरसे हो पत्थरकी पटिया झट किस प्रकार गौतम मुनिकी पत्नी अहल्या बनकर उठ खड़ी हुई, यही बात जानता है) । केवट कहने लगा कि मैं ही नहीं, जिसे सुनो वही कहता है कि आपके इन कमलके समान कोमल चरणोंमें लगी धूलमें ही कुछ ऐसी (जादूकी) जड़ी है कि वह जिसे छू जाय, (जो उसकी शरणमें चला जाय) उसे सच्चा मनुष्य बना डालती है (उसमें ऐसी धर्म-भावना भरकर पवित्र कर देती है कि वह सबकी भलाई करने और चाहने लगता है) । (२) (इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि) आपके चरणोंकी धूलका स्पर्श पाते ही पत्थरकी, पटिया भी (गौतमकी) सुन्दर (पवित्र) नारी बनकर उठ खड़ी हुई । (इसलिये इस काठकी नावको मेरी इस काठी या देहको पवित्र बनाते आपको देर क्या लगेगी ?) क्योंकि काठ तो पत्थरसे कड़ा नहीं होता (यह हमारी काठी या शरीर तो पत्थरसे कहीं अधिक कोमल है, इसे पापरहित

१००८-९ आज्ञा श्रीरामचन्द्रस्यानुल्लंध्या प्रबलो विधिः । स कस्यापि वशे नास्ति सुमन्त्रो मंत्रिसत्तमः ॥
रामलक्ष्मणसीतांघ्री प्रणम्य शिरसावधम् । निवृत्तोऽयमुदासीनो नष्टमूलोयथा वणिक् ॥ब्रह्मरा०

१०१०-११ सारथिर्नोदयामास रथं रामं विलोक्य च । हयाश्च ह्रेषणां चक्रुर्दृष्ट्वेदं शोककारणात् ॥
शिरः संताड्य कुर्वन्ति पश्चात्तापं गुहादयः । —याज्ञवल्क्यरामायण

१०१२ वियोगे यस्य पशवो भवन्तीत्थं हि दुःखिताः । प्रजा माता पिता चापि तस्य जीवन्ति वै कथम् ॥महा.रा०

१०१३ अयोध्यां प्रेषयामास सुमंत्रं राघवो हठात् । तदा भागीरथीनीरं पवित्रं स्वयमाययौ ॥अगस्त्यरा०

१०१४ उवाच शीघ्रं सुहृद्वां नावमानय मे सखे । तस्मिन् काले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ।अध्यात्म०

१०१५ क्षालयामि तव पादपंकजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते इति लोके हि कथा प्रथीयसी ॥

१०१६-१७ आदावहं क्षालयित्वा पादरेणूंस्तव प्रभो । पश्चान्नौकां स्पर्शयामि तव पादौ रघूद्वह ।
नो चेत् त्वत्पादरजसा स्पृष्टा नारी भविष्यति ॥ —आनन्दरामायण

तरनिउ मुनि - घरिनी होइ जाई । बाट परइ, मोरि नाव उड़ाई । (३)
एहि प्रतिपालउँ सब परिवारू । नहिं जानउँ कछु और कबारू ।
जौं प्रभु ! पार अवसि गा चहहू । मोहिं पद-पदुम पखारन कहहू । (४)
१०२० छंद—पद - कमल धोइ, चढ़ाइ नाव, न नाथ उतराई चहौं ।
मोहिं, राम ! राउरि आन, दसरथ - सपथ, सब साँची कहौं ।
बरु तीर मारहु लखन, पै, जब - लगि न पाँयँ पखारिहौं ।
तब - लगि, न तुलसीदास - नाथ ! कृपाल ! पार उतारिहौं ।। [४]
सो०—सुनि केवट-के बैन, प्रेम - लपेटे अटपटे ।
बिहँसे करुना - ऐन, चितइ जानकी-लखन-तन ।। १०० ।।

मनुष्य बनाते आपको क्या देर लगेगी ?) पर कहीं मेरी यह नाव ही मुनिकी पत्नी बनकर उड़ गई तो मेरा सारा धन्धा ही चौपट हो रहेगा । (मेरी यह भवसागरमें पड़ी हुई नाव-रूपी देह भले ही मुनिकी पत्नी (पवित्र) बनकर उड़ जाय और सारा धन्धा ही क्यों न चौपट हो जाय पर मेरे पाप तो कट जायँगे) (३) क्योंकि इसीके सहारे तो मैं अपने घरवालोंका पेट पाले जा रहा हूँ ('एहि' अर्थात् इसी दिनके लिये मैं आजतक नाव खेकर अपना कुटुम्ब पालता आ रहा हूँ कि एक दिन राम आवेंगे, उनके चरणोंकी धूल मिलेगी जिससे मैं बातकी बातमें अपने सब पुरखोंको भवसागरसे तार दूँगा । इसी भरोसे) मैं कोई दूसरा कारबार जानता नहीं (सीखा नहीं, जाना-तक नहीं) । इसलिये यदि आपको पार जाना ही हो तो कहिए (मुझे आज्ञा दीजिए कि) मैं आपके कमल-जैसे (कोमल) चरण धो डालूँ (और अपने पितरोंको भवसागरसे पार कर दूँ क्योंकि मैं और मेरे परिवारवाले तो आपके दर्शनसे ही तर गए हैं) । (४) देखिए स्वामी ! आपके कमल-जैसे चरण धोकर और (आपको) नावपर चढ़ाकर पार उतारनेकी मैं कोई उतरवाई नहीं लेना चाहता (क्योंकि आप मेरे पितरोंको भवसागरके पार उतार देंगे और मैं आपको इस गंगाके पार उतार दूँगा । लेन-देन बराबर हो जायगा) । मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे आप पत्थरकी लकीर समझिए । आपकी मर्यादा समझकर और (महाराज) दशरथकी सौगन्ध लेकर मैं सत्य कहे दे रहा हूँ कि लक्ष्मण भले ही अपना बाण मारकर मुझे यहीं ढेर कर डालें पर जबतक मैं आपके (कमल-जैसे पवित्र और कोमल) पावँ नहीं धो लेना तबतक हे तुलसीदासके कृपालु स्वामी ! मैं आपको पार नहीं उतारूँगा ।' [४] केवटकी ऐसी प्रेम-भरी अटपटी (सबकी समझमें न आ सकनेवाली) बातें सुनकर (जिन्हें राम और केवट ही समझते थे), सीता और लक्ष्मणकी ओर देखकर राम मुसकरा दिए (कि तुम लोग इतने दिनोंसे साथ रहकर भी मुझे नहीं पहचान पाए और यह देखते ही मेरा सारा भेद समझ बैठा है । क्योंकि सीता और लक्ष्मण तो इस सारी बात-चीतसे केवल अहल्या-वाली कथाका ही सम्बन्ध

१०१८-१९ पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नयामि ।
नो चेत् तरिः स्याद् युवतिर्मलेन स्याच्चेद् विभो विद्धि कुटुम्बहानिः ।। —वशिष्ठसंहिता
१०२०-२३ पादाम्बुजं ते प्रक्षाल्य नावमाराहयामि नो । करमूल्यं ग्रहीष्यामि शपथो मेऽपि ते पितुः ।।
लक्ष्मणो मां शरैर्हन्यादप्रक्षाल्य च पदाम्बुजम् । पारं नोत्तारयिष्यामि त्वमेव वदाम्यहम् ।।व०रा०
१०२४-२५ निषादवाक्यमाकर्ण्यासम्बद्धं प्रेमपूरितम् । लक्ष्मणं वीक्ष्य सीतां च जहास करुणाकरः।। अग०रा०

कृपा-सिंधु बोले मुसुकाई । सोइ करु, जेहि, तव नाव न जाई ।
बेगि आनु जल, पाँयँ पखारू । होत बिलंब, उतारिहि पारू । (१)
जासु नाम, सुमिरत ऐक बारा । उतरहिं नर, भव - सिंधु अपारा ।
सोइ कृपालु, केवटहिं निहोरा । जेहि जग किय तिहुँ पगहुँ-तें थोरा । (२)
१०३० पद - नख निरखि देवसरि हरषी । सुनि प्रभु-बचन मोह मति करषी ।
केवट, राम - रजायसु पावा । पानि कठवता भरि लेइ आवा । (३)
अति आनंद उमगि अनुरागा । चरन - सरोज पखारन लागा ।
बरषि सुमन, सुर सकल सिहाहीं । ऐहि सम पुन्य-पुंज, कोउ नाहीं । (४)
दो०—पद पखारि, जल पान करि , आपु, सहित - परिवार ।
पितर पार करि, प्रभुहिं पुनि , मुदित गयउ लेइ पार ।। १०१ ।।

जोड़े जा रहे थे । वे क्या जानते थे कि केवट बड़ी भेदभरी बातें कह रहा है) ।।१००।। कृपाके सागर (सबपर कृपा करनेवाले राम)-ने मुसकराकर केवटसे कहा—('ठीक है) 'तुम वही करो जिससे तुम्हारी नाव न जाय (भवसागरमें तुम चक्कर न खाओ, पर) झटपट जल लाकर पैर धो लो और पार उतार दो क्योंकि देर बहुत हुई जा रही है ।' (तुलसीदास कहते हैं कि) जिसका एक बार नाम भर लेनेसे लोग अपार भव-सागरसे पार हो जाते हैं (संसारमें जन्म लेने और मरनेके झंझटसे छूटकर मुक्त हो जाते हैं) और जिसने इस संपूर्ण संसारको (उस समय) तीन पगसे भी छोटा कर दिया था (जब वामन रूप बनाकर बलिके यहाँ तीन पग धरती माँगी थी, और दो-पगमें ही स्वर्ग और पृथ्वी नाप ली थी), वही कृपालु (राम, पार उतरनेके लिये) केवटसे प्रार्थना किए जा रहे हैं । (विष्णुके अवतार) रामके पैरोंके नख देखकर गंगा (मनमें बड़ी) प्रसन्न हुईं और प्रभु (राम)-के मुखसे (पैर धोनेकी आज्ञाके) वचन सुनकर (गंगाजीकी) बुद्धि मोह (भ्रम)-से भर गई (कि आज इतने दिनोंपर भगवान्‌के चरण-नखका स्पर्श पानेका अवसर मिल रहा है क्योंकि जब भगवानने वामनसे विराट् रूप बनाया था उसी समय ब्रह्माने उनके चरणोंके नख धोकर जो मुझे अपने कमण्डलुमें भरा था तबसे तो मैं त्रिपथगा बनकर तीनों लोकोंके पाप हरती ही आ रही हूँ । अब केवटसे पैर धुलाकर, सम्भवत: ये मुझे और भी कोई अधिक महत्त्वका पद दे डालें) । रामकी आज्ञा पाते ही केवट एक कठौतेमें गंगाजल भर लाया (३) और अत्यन्त आनन्द और प्रेमकी उमंगमें वह प्रभु (राम)-के चरण-कमल धोने लगा । सब देवता फूलोंकी वर्षा करते हुए मनमें तरसे जा रहे थे कि (हाय ! हमें यह पैर धोनेका पुण्य नहीं मिल पाया,) सचमुच, इसके समान पुण्यात्मा (संसारमें) कोई दूसरा नहीं है । (४) पैर धोकर उसने स्वयं चरणोदकका आचमन किया, परिवार-भरको आचमन कराया और इस प्रकार (चरणोदक लेकर) पहले अपने पितरोंको पार करके वह प्रभु (राम, सीता, लक्ष्मण और गुह)-को

१०२६-२७ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विहस्य रघुनन्दनः । तेन संक्षालितपदो नौकां तामारुरोह सः ।। आन०रा०
१०२८-२९ यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिम्
तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम् ।
सोऽयं श्रीरघुनायकस्तु कृतवान् सुप्रार्थनां धीवरात्
श्रीगंगोत्तरणार्थमेव दयया तं त्वं कृपालुं भज ।। —अध्यात्मरामायण
१०३०-३३ वीक्ष्य पादनखान् गंगा हृष्टाकर्ण्य विभोर्वचः । पुष्पाणि ववृपुर्देवाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ।। ब्रह्मपु०
१०३४-३५ पादौ प्रक्षाल्य पीत्वा च जलं परिजनैर्वृतः । नीत्वा पारं पितृन् हृष्टः प्रभुं पारं निनाय सः।।श०सं०

उतरि ठाढ़ भे सुरसरि-रेता। सीय-राम-गुह-लखन-समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हाँ। प्रभुहि सकुच, ऐहि नहिं कछु दीन्हाँ। (१)
पिय-हिय-की सिय जाननिहारी। मनि-मुँदरी मन-मुदित उतारी।
कहेउ कृपाल, लेहि उतराई। केवट, चरन गहे अकुलाई। (२)
१०४० नाथ ! आज मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद-दावा।
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आज दीन्ह विधि बनि, भलि, भूरी। (३)
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीन-दयाल ! अनुग्रह तोरे।
फिरती बार मोहिं जो देवा। सो प्रसाद मैं सिर-धरि लेवा। (४)
दो०—बहुत कीन्ह प्रभु-लखन-सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल, बर देइ ॥ १०२ ॥
तब मज्जन करि रघुकुल-नाथा। पूजि पारथिव, नायउ माथा।
सिय सुरसरिहिं कहेउ कर जोरी। मातु ! मनोरथ पुरउबि मोरी। (१)

पार ले ले गया ॥१०१॥ सीता, राम, निषाद गुह और लक्ष्मण सब नावसे उतरकर गंगाके उस पार रेतीपर जा खड़े हुए। केवटने[1] उतरकर जब प्रेमके मारे दंडवत्-प्रणाम किया तब प्रभु रामके मनमें बड़ी झिझक हुई कि (यह पुरस्कार पानेके लिये प्रणाम कर रहा है और) हमने इसे कुछ नहीं दिया। (१) सीता तत्काल अपने पति रामके मनकी दुविधा ताड़ गईं और उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर अपनी मणि जड़ी हुई अँगूठी उतारकर (रामके हाथपर रख) दी। कृपालु रामने (केवटको अँगूठी देते हुए) कहा—'यह लो अपनी उतराई।' यह सुनते ही केवट तो व्याकुल होकर उनमें चरणोंमें जा लिपटा। (२) (केवट बोला—) 'नाथ ! आज आपके चरणोंका अमृत पीकर और आपको गंगा पार करनेकी सेवा करके रह क्या गया जो मैंने नहीं पा लिया ? (मैंने सब कुछ पा लिया)। मेरे सारे दोष, दुःख और दरिद्रताकी सारी जलन शान्त हो मिटी (मेरे दोष, दुःख, दारिद्रय सब मिट गए।) जहाँतक मजूरीकी बात है, वह मैं करता तो बहुत दिनोंसे चला आ रहा हूँ, पर विधाताने भरपूर और अच्छी बनि (मजदूरी) दिलवाई है तो आज ही दिलवा पाई है। (३) अब तो नाथ ! दीनदयालु ! आपकी कृपासे मुझे कुछ भी पाना बच नहीं रह गया है। हाँ, लौटती बार आप मुझे जो कुछ दे देंगे तो वह मैं प्रसाद मानकर सिरमाथे चढ़ा धरूँगा।' (४) राम सीता और लक्ष्मणने बहुत कहा, बहुत आग्रह किया, पर केवट कुछ भी लेनेको तैयार नहीं हो रहा था। फिर करुणाके धाम रामने उसे यही वर देकर बिदा किया कि—'जाओ, आजसे मुझमें तुम्हारी निर्मल भक्ति बनी रहेगी' ॥ १०२ ॥ फिर रघुकुलके स्वामी रामने जाकर स्नान किया और पार्थिव पूजन[2] करके गंगाजीको प्रणाम किया। सीताने भी हाथ जोड़कर गंगासे प्रार्थना की—'हे माता ! मेरी यह इच्छा पूरी कीजिएगा (१) कि मेरे पति और देवर कुशल-पूर्वक लौट आवें और मैं

१. यह केवट सामान्य केवट था, केवटोंका सरदार गुह नहीं। २. मिट्टीके शिवलिंग बनाकर उनका पूजन करना।

१०३६-३९ पारं गत्वाब्रवीत् वाक्यं निषादं रघुनन्दनः। गृहाण करमूल्यं त्वं जग्राह चरणौ हरेः ॥वशि०रा०
१०४०-४३ किं न प्राप्तं त्वया स्वामिन्नद्य श्रीपाददर्शनात्। नापरा हृदये वांछा विहायैकां कृपां तव ॥
१०४४-४५ उक्तवान् बहुधा रामो निषादो न गृहीतवान्। पुण्यभक्तिवरं दत्त्वा प्रेषयामास तं गृहम् ॥
१०४६ तदा गंगाजले स्नात्वा रघुवंशपतिर्महान्। समर्च्य पार्थिवं देवं शिरसा प्रणनाम च ॥अग०रा०

पति - देवर - सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी।
सुनि सिय - विनय प्रेम - रस- सानी। भइ तब बिमल वारि - बर - बानी। (२)
१०५० सुनु रघुबीर-प्रिया ! बैदेही। तव प्रभाउ, जग बिदित न केही।
लोकप होहिँ बिलोकत तोरे। तोहिँ सेवहिँ सब सिधि, कर जोरे। (३)
तुम जु हमहिँ बड़ि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि, मोहिँ दीन्हि बड़ाई।
तदपि देवि ! मैं देवि असीसा। सफल होन - हित निज बागीसा। (४)
दो०—प्राननाथ - देवर - सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन - कामना, सुजस रहिहि जग छाइ ॥ १०३ ॥
गंग - बचन सुनि मंगल - मूला। मुदित सीय, सुरसरि अनुकूला।
तब प्रभु गुहहि कहेउ, घर जाहू। सुनत सूख मुख, भा उर दाहू। (१)
दीन बचन गुह कह, कर जोरी। विनय सुनहु रघुकुलमनि ! मोरी।
नाथ - साथ रहि, पंथ दिखाई। करि दिन चारि चरन-सेवकाई। (२)
१०६० जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई।
तब मोहिँ - कहँ जस देब रजाई। सोइ करिहौं रघुबीर - दोहाई। (३)

आपकी पूजा करूँ। विनय और प्रेमसे भरी हुई सीताकी यह वाणी सुनकर गंगाके निर्मल जलसे ये मधुर शब्द फूट निकले—(२) 'हे रामकी प्रिया वैदेही ! सुनो ! तुम्हारा प्रताप संसारमें कौन नहीं जानता ? जिसकी ओर एक बार तुम्हारी कृपा-दृष्टि घूम जाय वही लोकपाल बन उठे। जितनी सिद्धियाँ हैं सब हाथ जोड़े आपकी सेवा करती रहती हैं। (३) आपने मेरी इतनी स्तुति करके मुझपर ही बड़ी कृपा की है और मुझे बड़ी बड़ाई दी है। फिर भी देवि ! मैं आपको आशीर्वाद दिए देती हूँ। मेरी यह वाणी सत्य हो (४) कि आप अपने प्राणनाथ और देवर (लक्ष्मण)-के साथ कुशलपूर्वक अयोध्या लौट आवें। आपकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हों और आपकी उज्ज्वल कीर्ति सारे संसारमें छा फैले' ॥ १०३ ॥ गंगाके ये मंगल-भरे वचन सुनकर और उन्हें प्रसन्न जानकर सीता बहुत हर्षित हुईं। तब रामने गुहसे कहा—'देखो भैया ! 'तुमने बहुत कष्ट उठाया। अब तुम घर लौट जाओ।' यह सुनना था कि उसका मुँह उतर गया और हृदयमें आग-सी धधक उठी। (१) हाथ जोड़कर गुहने बड़े दीन शब्दोंमें कहा—'रघुकुलके मणि राम ! मेरी बस एक प्रार्थना मान लीजिए। मैं प्रभु (आप)-के साथ रहकर मार्ग दिखलाता चलूँगा और (दो-) चार दिन आपके चरणोंकी सेवा करके (२) फिर आप जिस वनमें रहना चाहेंगे वहाँ पर्ण-कुटी छा बनाऊँगा और तब आप जो आज्ञा दे देंगे वही करूँगा।' (३) रामने उसका

१०४७-४८ गंगामध्ये गता गंगां प्रार्थयामास जानकी। देवि गंगे नमस्तुभ्यं निवृत्ता वनवासतः ॥
रामेण सहिताऽहं त्वां लक्ष्मणेन च पूजये। सुरामांसोपहारैश्च नानाबलिभिराहता ॥ अध्यात्म०

१०४९-५५ श्रुत्वा सीतावचो रम्यं वाणी गंगाजलेऽभवत्। शृणु रामप्रिये सीते वचो मे जनकात्मजे ॥
महिमा निगमे ख्यातो लोके च तव सुन्दरि। तथाप्याशीर्वचस्तुभ्यं ददाम्यहमनुत्तमम् ॥
प्राणेशदेवराभ्यां च सहितागत्य कोसलाम्। करिष्यसि शुभं कार्यं भवती चिरवांछितम् ॥
लोके च ते शुभा कीर्तिर्भविष्यत्येव निश्चितम्। —ललितरामायण

१०५६ मंगलानन्ददं श्रुत्वा गंगावचनमुत्तमम्। जानकी मुदितात्यन्तं दृष्ट्वा गंगानुकूलताम् ॥ अगस्त्य०

१०५७-६१ गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह। अनुज्ञां देहि राजेन्द्र नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ अध्या०

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह, गुह-हृदय-हुलासू।
पुनि गुह, ग्याति बोलि सब लीन्हें। करि परितोष, बिदा तब कीन्हें। (४)
दो०—तब गनपति, सिव, सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा-अनुज-सिय-सहित-बन, गवन कीन्ह रघुनाथ॥ १०४॥

तेहि दिन भयउ बिटप-तर बासू। लखन, सखा, सब कीन्ह सुपासू।
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथ-राज देखि प्रभु जाई। (१)
सचिव सत्य, श्रद्धा प्रिय नारी। माधव-सरिस मीत हितकारी।
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस, देस अति चारू। (२)
१०७० छेत्र अगम गढ़ गाढ़, सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन पावा।
सेन सकल तीरथ बर-बीरा। कलुष-अनीक-दलन रन-धीरा। (३)
संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अछयबट मुनि-मन-मोहा।
चँवर जमुन अरु गंग-तरंगा। देखि, होहिं दुख-दारिद भंगा। (४)
दो०—सेवहिं सुकृती, साधु, सुचि, पावहिं सब मन-काम।
बंदी बेद-पुरान-गन, कहहिं बिमल गुन-ग्राम॥ १०५॥

स्वाभाविक प्रेम देखकर जब उसे अपने साथ ले लिया तब वह प्रसन्न हो उठा। उसने झट अपने जातिवालोंको बुलाकर उन्हें सब काम-काज समझाकर उन्हें विदा कर दिया। (४) तब गणेश और शिवका स्मरण करके तथा गंगाको प्रणाम करके सखा (निषाद), सीता और भाई लक्ष्मणके साथ राम वनकी ओर चल दिए॥ १०४॥

उस दिन उन्होंने एक पेड़के नीचे डेरा जा डाला। लक्ष्मण और सखा गुहने मिलकर वहाँ सारा प्रबन्ध ठीक कर दिया। प्रातःकाल उठकर रामने नित्यका कृत्य करके तीर्थराज प्रयागका जा दर्शन किया। (१) सत्य ही तो (तीर्थराज प्रयागके) मन्त्री हैं, श्रद्धा ही उनकी प्रिय रानी है, माधव (विष्णु) ही उनके हितकारी मित्र हैं, चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)-का भांडार ही उनका कोष है और वहाँका पुण्य प्रदेश ही तीर्थराजका अत्यन्त सुन्दर राज्य है। (२) अगम प्रयाग क्षेत्र ही उनका सुन्दर दुर्गम दुर्ग है, जिसे स्वप्नमें भी कोई शत्रु नहीं ले पा सकता। (प्रयाग तो तीर्थोंका राजा है इसलिये वहाँ राजाके छहों अंग—मंत्री, मित्र, राज्य, कोष, दुर्ग और सेना सब विद्यमान हैं)। अन्य सब तीर्थ ही (तीर्थराज प्रयागकी) श्रेष्ठ वीरोंकी सेना है जो पापकी सेनाका नाश करनेमें बड़े रणधीर हैं। (३) संगम (गंगा, जमुना और गुप्तधारा सरस्वतीका मिलाप) ही उनका सिंहासन है, मुनिजनोंका मन मोहित करनेवाला अक्षयवट ही उनका छत्र है, गंगा-जमुनाकी तरङ्गें ही उनके चँवर हैं, जिन्हें देखते ही दुःख और दरिद्रताका नाश हो मिटता है। (४) पुण्यात्मा और पवित्र साधु ही ऐसे तीर्थराजकी सेवा करते हुए सब मनोरथ प्राप्त करते रहते हैं। वहाँ वेद-पुराणोंका जो पाठ होता

१०६२ रामस्तस्य निरीक्ष्यैव सहजं प्रेम तं गुहम्। हर्षपूर्णेन मनसा चकार सहगामिनम्॥ वशिष्ठरा०
१०६३ आहूय सर्वानाश्वास्य गुहः सम्बन्धिबान्धवान् कृत्वा तेषां परीतोषं प्रेषयामास तान् गृहम्॥अग.रा.
१०६४-६५ गणेशं च शिवं ध्यात्वा नमस्कृत्य च जाह्नवीम्। सीतानुजगुहैः साकं जगाम विपिनं हरिः॥पुल०रा०
१०६६-६७ ते तु तस्मिन् महावृक्षे उषित्वा रजनीं शुभाम्। विमलेऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद् देशात्प्रतस्थिरे॥
यत्र भागीरथी गंगा यमुनामभिवर्तते। जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद् वनम्॥वाल्मीकीय
१०६८-६९ तस्य प्रयागराजस्य सत्यं मन्त्री महामतिः। श्रद्धाऽत्यन्तप्रिया रामा मित्रं साक्षाद् रमापतिः॥
धर्मार्थकाममोक्षैश्च पूर्णं कोशगृहं शुभम्। पुण्यप्रदेशो देशोऽस्ति तस्य चात्यन्तसुन्दरः। महा०रा०

को कहि सकइ प्रयाग - प्रभाऊ । कलुष - पुंज - कुंजर - मृगराऊ ।
अस तीरथ - पति देखि सुहावा । सुख - सागर रघुबर सुख पावा । (१)
कहि सिय - लखनहिँ, सखहिँ सुनाई । श्री - मुख तीरथराज - बड़ाई ।
करि प्रनाम, देखत बन - बागा । कहत महातम, अति अनुरागा । (२)
१०८० एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी । सुमिरत, सकल सुमंगल देनी ।
मुदित नहाइ, कीन्हि सिव - सेवा । पूजि जथाबिधि तीरथ - देवा । (३)
तब प्रभु भरद्वाज - पहँ आए । करत दंडवत, मुनि उर लाए ।
मुनि - मन - मोद[1] न कछु कहि जाई । ब्रह्मानंद - रासि जनु पाई । (४)

है वही मानो वंदीजनों के मुँहसे राजाका निर्मल गुण-गान है ।।१०५।। ऐसे प्रयागराजका माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है जो पाप-रूपी हाथीके लिये सिंहके समान है (पाप नष्ट कर डालता है) । ऐसे सुहावने तीर्थराज प्रयागको देखकर सुखोंके सागर रामको बड़ा आनन्द हुआ । (१) रामने अपने श्रीमुखसे सीता, लक्ष्मण और सखा गुहको तीर्थराजकी सारी महिमा कह सुनाई और फिर तीर्थराजको प्रणाम करके वहाँके वन और उपवन देखते हुए, बड़े प्रेमसे (तीर्थराजका) माहात्म्य कहते हुए (२) (उन्होंने) उस त्रिवेणीका दर्शन जा किया जिसका स्मरण मात्र करनेसे सब सुमंगल (अच्छे) फल अपने आप हाथ आ लगते हैं । अत्यन्त आनन्दपूर्वक (त्रिवेणीमें) स्नान करके तथा विधिपूर्वक तीर्थके देवताओंकी[2] पूजा करके उन्होंने शिवका पूजन जा किया । (३) प्रभु राम तत्पश्चात् भरद्वाज मुनिके यहाँ चले गए । रामको दण्डवत् करते देखकर मुनिने उन्हें हृदयसे उठा लगाया । मुनि भरद्वाजको उस समय जैसा आनन्द प्राप्त हो रहा था उसका वर्णन नहीं किया जा सकता मानो सारा ब्रह्मानन्द उन्हें एक साथ हाथ आ लगा हो । (४) (उन्हें) आशीर्वाद देते समय मुनीश्वर

१. मोह । २. तीर्थराज प्रयागके देवता : त्रिवेणी माधवं सोमं भरद्वाजञ्च वासुकिम् । वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम् । [त्रिवेणी, माधव, सोमनाथ, भरद्वाज, वासुकी, अक्षयवट, शेषनाग] ।

१०७०-७५ क्षेत्रं च दुर्गमं दुर्गः पुष्टश्चारुश्च वैरिभिः । स्वप्नेऽपि दुर्जनः सैन्यतीर्थान्येवाखिलानि च ।।
गंगायमुनयोर्नद्योः सरस्वत्यास्तथैव च । संगमो मुनिभिः प्रोक्तं रम्यं सिंहासनं परम् ।।
अक्षयो वटवृक्षस्तु छत्रं मुनिमनोहरम् । गंगायमुनयोर्वीचिव्रजो दिव्ये तु चामरे ।।
पुण्यात्मानो महात्मानः सेवकास्तस्य सेवया । धर्मार्थकाममोक्षाख्यं लभन्ते वांछितं फलम् ।।
वेदशास्त्रपुराणानि वंदिनो गुणगायकाः । —महारामायण
१०७६-७७ प्रयागराजमहिमा महान् वेदेषु वर्णितः । पापानां नाशकोऽयं श्रीतीर्थराजः प्रकीर्तितः ।।
शुभं तीर्थपतिं दृष्ट्वा श्रीरामः सुखसागरः । लेभे सुसुखमत्यन्तं दुःखितानां तु का कथा ।।वशिष्ठरा०
१०७८-७९ श्रावयामास सीतां च लक्ष्मणं सुहृदं तथा । श्रीरामः श्रीमुखेनोक्त्वा तीर्थराजस्तुतिं मुदा ।।
कृत्वा प्रणामं पश्यंश्च वनं रम्यां च वाटिकाम् । माहात्म्यं कथयन् प्रेम्णा परमेण चचाल सः ।। सनत्०सं०
१०८०-८१ एवमागत्य रामस्तु त्रिवेणीं दृष्टवान् प्रभुः । या वै स्मरणमात्रेणाखिलमंगलदायिका ।।
तत्र स्नात्वा मुदा सेवां महेशस्य चकार सः । चकार तीर्थराजस्य पूजां चापि यथाविधि ।। अग०रा०

दो०—दीन्हि असीस, मुनीस-उर, अति अनंद, अस जानि।
लोचन - गोचर सुकृत-फल, मनहुँ किये बिधि आनि ॥ १०६ ॥
कुसल - प्रस्न करि आसन दीन्हें। पूजि, प्रेम - परिपूरन कीन्हें।
कंद - मूल - फल - अंकुर नीके। दिए आनि मुनि, मनहुँ अमी-के। (१)
सीय - लखन - जन - सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल - फल खाये।
भये बिगत - श्रम राम सुखारे। भरद्वाज, मृदु बचन उचारे। (२)
१०९० आज सुफल तप - तीरथ - त्यागू। आज सुफल जप - जोग - बिरागू।
सफल सकल सुभ - साधन - साजू। राम ! तुमहिं अवलोकत आजू। (३)
लाभ - अवधि, सुख - अवधि, न दूजी। तुम्हरे, दरस आस सब पूजी।
अब करि कृपा, देहु बर एहू। निज - पद - सरसिज सहज सनेहू। (३)
दो०—करम, बचन, मन छाँड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं[1], किये कोटि उपचार ॥ १०७ ॥

भरद्वाजको ऐसा प्रतीत होनेके कारण आनन्द हुआ जा रहा था मानो विधाताने सम्पूर्ण पुण्योंका फल आँखोंके सामने ला उँडेला हो ॥ १०६ ॥ मुनिराजने उनका कुशल-मंगल पूछकर उन्हें आसनपर ले जा बैठाया और प्रेमपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें बहुत संतुष्ट किया। तब मुनि भरद्वाजने अमृतके समान मीठे-मीठे कंद-मूल-फल और अंकुर (भिगोनेसे अँखुआ निकले हुए चने आदि अन्नके दाने आदि) उनके आगे ला धरे। (१) सीता, लक्ष्मण, सेवक गुह और रामने बहुत स्वाद ले-लेकर जो मूल-फल खाए तो उनकी सारी थकावट जाती रही और रामको तो बहुत ही आनन्द मिला। तब भरद्वाजने बड़ी विनम्रतासे कहा—(२) 'देखिए राम ! आपका दर्शन करनेसे आज मेरा तप, तीर्थ-सेवन और त्याग सब सफल हो गया। इतना ही नहीं, आज मेरा जप, योग और वैराग्य तथा मेरे सारे शुभ साधन (धर्मके कार्य) भी सफल हो गए। (३) आपके दर्शनसे बड़ा न कोई लाभ है न सुख। आपके दर्शनसे मेरी सारी आशाएँ पूरी हो गईं। 'अब आप कृपा करके यह वर दीजिए कि आपके चरण-कमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम बना रहे। (४) जबतक मनुष्य कर्म, वचन और मनसे छल छोड़कर आपका दास नहीं हो जाता, तबतक वह चाहे जितने (करोड़) उपाय क्यों न

१. सपनेहुँ तब लगि सुख नहीं; तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं।

१०८८-८५ ततो रामस्तु वैदेह्या लक्ष्मणेन समन्वितः। भरद्वाजाश्रमपदं गत्वा बहिरुपस्थितः ॥
तत्रैकं बटुकं दृष्ट्वा रामः प्राह च हे बटो। रामो दाशरथिः सीतालक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ॥
आस्ते बहिर्वनस्येति ह्युच्यतां मुनिसन्निधौ। तच्छ्रुत्वा सहसा गत्वा पादयोः पतितो मुनेः ॥
स्वामिन् रामः समागत्य वनाद् बहिरवस्थितः। सभार्यः सानुजः श्रीमानाह मां देवसन्निभः ॥
भरद्वाजाय मुनये ज्ञापयस्व यथोचितम्। तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय भरद्वाजो मुनीश्वरः ॥
गृहीत्वार्घ्यं च पाद्यं च रामसामीप्यमाययौ। —अध्यात्मरामायण
१०८६-८८ पित्रा नियुक्ता भगवन् प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम्। धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः। उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं ततः ॥
नानाविधानन्नरसान् वन्यमूलफलाश्रयान्। तेभ्यो ददौ तप्ततपा वासं चैवाभ्यकल्पयत् ॥ वाल्मी०
१०८६ राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः। भरद्वाजोऽब्रवीद् वाक्यं धर्मयुक्तमिदं तदा ॥
१०९०-९२ अद्याहं तपसः पारं गतोऽस्मि तव संगमात्। —अध्यात्मरामायण
१०९३ कृत्वा कृपां वरं देहि स्वपादाम्बुजसेवनम्। —भरद्वाजरामायण
१०९४-९५ मनसा कर्मणा वाचा छलं त्यक्त्वा रघूत्तम। यावत् त्वदीयो न जनस्तावत् स्वप्नेऽपि नो सुखम् ॥

सुनि मुनि - बचन, राम सकुचाने । भाव - भगति - आनंद अघाने ।
तब रघुवर, मुनि - सुजस सुहावा । कोटि भाँति कहि, सबहिं सुनावा । (१)
सो बड़, सो सब - गुन - गन - गेहू । जेहि मुनीस ! तुम आदर देहू ।
मुनि - रघुबीर परसपर नवहीं । बचन - अगोचर - सुख अनुभवहीं । (२)
११०० यह सुधि पाइ प्रयाग - निवासी । बटु - तापस - मुनि - सिद्ध - उदासी ।
भरद्वाज - आश्रम सब आये । देखन दसरथ - सुअन सुहाये । (३)
राम, प्रनाम कीन्ह सब - काहू । मुदित भये, लहि लोयन - लाहू ।
देहिं असीस, परम सुख पाई । फिरे, सराहत सुंदरताई । (४)

दो०—राम कीन्ह विश्राम निसि , प्रात प्रयाग नहाइ ।
चले सहित-सिय-लखन-जन , मुदित मुनिहिं सिर नाइ ॥ १०८ ॥

राम सप्रेम कहेउ मुनि - पाहीं । नाथ ! कहिय, हम केहि मग जाहीं ।
मुनि, मन बिहँसि, राम - सन कहहीं । सुगम सकल मग तुम-कहँ अहहीं । (१)

कर डाले, और उसे स्वप्नमें भी सुख हाथ नहीं लग सकता ॥१०७॥ मुनिके ये वचन सुनकर राम बहुत सकुचाए जा रहे थे और उनकी भाव-भक्तिके आनन्दसे छके जा रहे थे । तब रामने भरद्वाज मुनिका सब उज्ज्वल सुयश अनेक प्रकारसे सबको कह सुनाया । (१) और फिर मुनिसे भी उन्होंने कहा–'मुनीश्वर ! आप जिसे आदर दे डालें उसे महान् और सब गुणोंका निधान बनते क्या देर लगती है ? मुनि और राम दोनों एक दूसरेके प्रति आदर प्रदर्शित करते हुए इतने प्रसन्न हुए जा रहे थे कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । (२) प्रयागमें रहनेवाले जितने ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासीन थे वे सब (रामके आनेका) समाचार पाते ही भरद्वाज मुनिके आश्रमपर दशरथके उन मनोहर पुत्रोंको देखनेके लिये आ जुटे । (३) रामने उन सबको (बड़े आदरसे) प्रणाम किया और वे सब भी बड़े प्रसन्न हुए कि हमें अपने नेत्रोंका फल मिल गया । उन सबने बहुत आनन्दित हो-होकर आशीर्वाद दिया और उनकी मनोहरताकी प्रशंसा करते हुए वे अपने-अपने घर लौट गए । (४) रामने रात्रि तो वहीं (भरद्वाज मुनिके आश्रममें) विश्राम करके बिता दी और प्रातःकाल प्रयाग (त्रिवेणी)-में स्नान करके लक्ष्मण, जानकी और सखा निषादको साथ लेकर बड़े प्रसन्न मनसे मुनिको प्रणाम करके वहाँसे चलनेकी तैयारी कर ली ॥ १०८ ॥ तब रामने बड़े प्रेमके साथ मुनि भरद्वाजसे पूछा—'नाथ ! (कृपया इतना और) बतला दीजिए कि हम किधरसे होकर जायँ ?' (यह सुनकर) मुनिने मन ही मन हँसते हुए कहा—'(आप मुझसे मार्ग पूछ रहे हैं पर) यह तो बताइए कि ऐसा कौनसा मार्ग है जो

१०९६-९७ रामः श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं संकोचेन युतोऽभवत् । आनन्दभक्तिभावांश्च विलोक्य मुदितोऽभवत् ॥
मनोऽभिरामां कीर्तिं च भरद्वाजस्य राघवः । सर्वान् संश्रावयामास बहुधा प्रेमपूर्वकम् ॥पुल०रा०
१०९८-९९ यस्य त्वमादरं कुर्याः स महान् स गुणाकरः । प्रणामं कुरुतोऽन्योन्यं मुनीन्द्रं मुनिराघवौ ॥
वागगोचरमानन्दमनुभवतस्तु तावुभौ । –श्वेतकेतुरामायण
११००-१ रामागमनमाकर्ण्य तीर्थराजनिवासिनः । योगिसिद्धमुनिब्रह्मचारिणश्च तपस्विनः ॥
भरद्वाजाश्रमं सर्वे समाजग्मुः सहस्रशः । श्रीरामलक्ष्मणौ द्रष्टुं शुभौ दशरथात्मजौ ॥
११०२-३ रामो ननाम तान् सर्वान् बभूवुर्मुदितास्च ते । संप्राप्तसुमहानंदा दत्वा चाशीर्वचः शुभम् ॥
शंसन्तो राममाधुर्यं निवृत्तास्ते स्वमाश्रमम् । –अगस्त्यरामायण
११०४-५ उषित्वा रजनीं तत्र राजपुत्रावरिंदमौ । महर्षिमभिवाद्याथ जग्मतुस्तं गिरिं प्रति ॥ वा०रा०
११०६-७ रामः प्रोवाच सप्रेम मुनिं केन पथा प्रभो । यामाहृ तं मुनिः सर्वो मार्गोऽस्ति सुगमस्तव ॥याज्ञ.रा.

साथ - लागि, मुनि शिष्य बोलाये । सुनि मन - मुदित पचासक आये ।
सबन्हि राम - पर प्रेम अपारा । सकल कहहिं, मग दीख हमारा । (२)
१११० मुनि, बटु चारि संग तब दीन्हें । जिन्ह, बहु जनम सुकृत सब कीन्हें ।
करि प्रनाम रिषि आयसु पाई । प्रमुदित हृदय चले रघुराई । (३)
→१
१११२ ग्राम - निकट जब निकसहिं जाई । देखहिं दरस नारि - नर धाई ।
हहिं सनाथ जनम - फल पाई । फिरहिं दुखित, मन संग पठाई । (४)
दो०—बिदा किये बटु बिनय करि , फिरे पाइ मन - काम ।
उतरि नहाये । जमुन - जल , जो सरीर - सम स्याम ॥ १०९ ॥
सुनत तीर - बासी नर - नारी । धाए निज - निज काज बिसारी ।
लखन - राम - सिय - सुंदरताई । देखि, करहिं निज भाग्य बड़ाई । (१)

आपका देखा-भाला (सुगम) नहीं है ।' (१) (फिर भी) मुनिने उन्हें मार्ग दिखानेके लिये अपने शिष्योंको पुकारा तो सुनते ही पचासके लगभग शिष्य बहुत प्रसन्न हो-होकर (साथ चलनेके लिये) आ खड़े हुए । सभीको रामसे बड़ा प्रेम हो चला था और सभी कहते जा रहे थे कि इधरका सारा मार्ग हमारा देखा पड़ा है । (२) पर मुनिने उनमेंसे चार ऐसे ब्रह्मचारियोंको चुनकर उनके साथ कर दिया जिन्होंने पिछले अनेक जन्मोंमें बहुत पुण्य कर रक्खे थे । मुनिको प्रणाम करके और उनका आशीर्वाद पाकर राम प्रसन्न होकर (उन ब्रह्मचारियोंके साथ) चल पड़े । (३) जहाँ-जहाँ वे किसी गाँवके पाससे होकर निकल जाते, वहाँ-वहाँ गाँवके स्त्री-पुरुष उनके दर्शनके लिये दौड़ पड़ते मानो (उनका दर्शन करके) उन्हें जन्म लेनेका सारा फल मिला जा रहा हो । वे भर आँखों इन्हें देख-देखकर सनाथ हुए जा रहे थे और फिर प्रभु (राम)-के साथ अपना मन भेजकर वे बड़े भारी मनसे घर लौटते थे । (४) (कुछ दूर पहुँचनेपर) रामने बहुत विनय-पूर्वक उन ब्रह्मचारियोंको विदा कर दिया और लौटते हुए उन ब्रह्मचारियोंको भी ऐसा लगा मानो हम मनचाही वस्तु पाकर लौट रहे हों । फिर यमुना पार करके रामने यमुनामें उतरकर स्नान किया जिसका जल उनके शरीरके ही समान साँवला था ॥ १०९ ॥ यमुनाके तीरपर रहनेवाले नर-नारियोंने ज्योंही सुना कि कहींके राजकुमार आए हुए हैं त्यों ही वे अपना-अपना सब काम-धाम छोड़-छोड़कर दौड़ पड़े । राम, लक्ष्मण और जानकीकी मनोहरता देख-देखकर सब अपना-अपना भाग्य सराहे जा रहे थे । (१) उन सबके मनमें बड़ी

१. आगेकी ११२२ से ११३१ तक पंक्तियाँ यहाँ होनी चाहिए थीं । यह तापस-प्रसंग प्रतिलिपिकारोंके प्रमादसे नीचे-ऊपर हो गया है और विवादका विषय बन गया है ।

११०८-९ सह गन्तुं मुनिः शिष्यान् रामेणाहूतवान् मुदा । श्रुत्वा तु शतशस्तात्रा ययुः श्रीरामसेवकाः ॥
उक्तवन्तस्तु ते सर्वे मार्गो दृष्टो मम प्रभो । —कपिलरामायण
१११०-११ मुनिरेतादृशान् शिष्यान् कृतवान् सहगामिनः । यैः कृतं चतुरः सर्वं सुकृतं बहुजन्मसु ॥
कृत्वा प्रणाममादेशं प्राप्य रामो महामुनेः । प्रसन्नहृदयो रम्यं प्रस्थितः काननं प्रति ॥पु०रा०
१११२-१३ ग्रामांतिके यदा यांति दर्शनार्थं तदा नराः । धावंति ललना दृष्ट्वा कृतार्थाश्च भवंति वै ॥
तैः सार्धं हृदयं कृत्वा निवर्ततेऽति दुःखिताः । —वशिष्ठरामायण
१११४-१५ भरद्वाजमुनेः शिष्यान् प्रेषयामास राघवः । उत्तीर्य यमुनास्नानं चकार रघुनन्दनः ॥सौभरिरा०
१११६-१७ रामागमनमाकर्ण्य यमुनातीरवासिनः । स्वस्वकार्याणि संत्यज्य प्रधावन् पुरुषा स्त्रियः ॥
श्रीरामसीतासौमित्रिसौन्दर्यं वीक्ष्य हर्षिताः । स्वस्वभाग्यप्रशंसां च प्रकुर्वन्ति परस्परम् ॥अग०रा०

अति लालसा सबहि[1] मन माहीं। नाउँ - गाउँ बूझत सकुचाहीं।
जे तिन्ह - महँ बय - बिरिध, सयाने। तिन्ह, करि जुगुति, राम पहिचाने। (२)
११२० सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहिं चले पितु - आयसु पाई।
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी - राय कीन्हि भल नाहीं। (३)
११२२ तेहिं अवसर एक तापस[2] आवा। तेज - पुंज लघु बयस सुहावा।
कबि - अलखित - गति, वेष बिरागी। मन - क्रम - बचन राम - अनुरागी। (४)
दो०—सजल नयन, तन पुलकि, निज, इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दंड - जिमि धरनि-तल, दसा न जाइ बखानि॥११०॥

लालसा बनी हुई थी (कि चलकर इनका परिचय प्राप्त कर लिया जाय), पर नाम-ग्राम पूछनेमें सबको बड़ी झिझक हुई जा रही थी। उनमेंसे जो चतुर और बड़े-बूढ़े थे उन्होंने बड़ी युक्तिसे रामका पूरा परिचय प्राप्त कर लिया और फिर (२) उन्होंने (रामके वन जानेकी) सारी कथा सबको कह सुनाई कि 'इनके पिताने इन्हें (१४ वर्ष) वनमें रहनेकी आज्ञा दे डाली है इसलिये ये वन चले जा रहे हैं।' यह सुनकर सभी दुखी हो-होकर पछता-पछताकर कहने लगे कि 'राजा और रानीने (यह काम) अच्छा नहीं किया।' (३) (यह बात अभी चल ही रही थी कि) इसी बीच वहाँपर एक तापस (तपस्वी सनत्कुमार[4]) आ पहुँचे जो बड़े तेजस्वी, सुन्दर और बच्चे-जैसे ही थे। वे ऐसे थे कि कवि भी उसे नहीं पहचान पाया। वे वेषसे विरक्त जान पड़ रहे थे और मन, वचन और कर्मसे रामके प्रेमी थे। (४) अपने इष्टदेव रामको पहचानते ही उनकी आँखें डबडबा आईं, शरीर पुलकित हो उठा और वे प्रणाम करनेके लिये धरणीपर दंडके समान लेट गए। उनकी जो दशा (रामके प्रति प्रेमके कारण हुई जा रही थी उस)-का वर्णन किया नहीं जा सकता॥ ११०॥

---

१. बसहि। २ कुछ लोग तापस-प्रसंग 'तेहि अवसर' (पंक्ति ११२२) से 'जिमि भूखा' (पंक्ति ११३१) तक क्षेपक मानते हैं। परन्तु यह अंश ११११ पंक्ति के पश्चात् आना चाहिए था। प्रतिलिपिकारके प्रमादसे यह अंश यहाँ जुड़ गया है। राजापुरकी प्रतिमें यह अंश हाशिएपर दूसरे कलमसे लिखा मिलता है। ३. तापस=सनत्कुमार। ४. 'तापस' सनत्कुमार निरन्तर अगस्त्यके यहाँ जाकर रामकथा सुना करते थे? देखिए उत्तरकांड और मिलाइए दोनों प्रसंगोंके विशेषण और व्यवहार—

४५२ जानि समय सनकादिक आए। तेजपुञ्ज गुन - सील सुहाए।
ब्रह्मानन्द सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना॥
रूप धरे जनु चारिउ वेदा। समदरसी मुनि, बिगत - बिभेदा।
४५५ आसा बसन, व्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति-चरित होइ तहँ सुनहीं॥

तेजपुंज=तेजपुंज। लघु बयस=सिसु, देखत बालक। सुहावा = रूप धरे जनु चारिहु वेदा। वेष बिरागी = मुनि, बिगत-बिभेदा, आसा बसन। मन क्रम बचन राम अनुरागी = रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं। सजल नयन तन पुलक निज इष्टदेव पहिचानि = सुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी, भए मगन मन सके न रोकी। पियत नयन-पुट रूप-पियूखा = एकटक रहे निमेष न लावहिं।

१११८-१९ ग्रामाख्यौ ज्ञातुमिच्छंति नैव पृच्छन्ति लज्जया। वृद्धैश्च ज्ञानिभिर्युक्त्या ज्ञातो रामो जगत्पतिः॥
११२०-२१ सर्वान् संश्रावयामासुस्ते वृद्धा निखिलां कथाम्। श्रुत्वा सर्वे विषीदंतः पश्चात्तापं प्रकुर्वते॥पु०रा०

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा।
मनहुँ प्रेम - परमारथ दोऊ। मिलत धरे तन, कह सब कोऊ। (१)
बहुरि लखन पाँयँन सो लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा।
पुनि सिय - चरन - धूरि धरि सीसा। जननि, जानि सिसु, दीन्हि असीसा। (२)

रामने उसे देखते ही प्रेमसे पुलकित होकर जब उसे हृदयसे उठा लगाया तो उसे ऐसा जान पड़ा मानो परम दरिद्रीको पारस हाथ लग गया हो। यह देखकर वहाँ खड़े हुए सब लोग कह उठे—'देखो! प्रेम और परमार्थ दोनों शरीर धारण करके कैसे परस्पर गले मिले जा रहे हैं' (परम-तत्त्व तो 'राम' हैं और प्रेम है 'सनत्कुमार')। (१) फिर वह तपस्वी जब लक्ष्मणके पाँवों पड़ने बढ़ा तो लक्ष्मणने उसे प्रेमकी उमंगमें ऊपर उठा लिया। फिर जब उसने सीताका चरण-रज सिरपर उठा धरा तो सीताने उसे केवल यही समझकर आशीर्वाद दे दिया कि यह छोटा-सा बालक चला आया है। (२)

सनत्कुमारके सम्बन्धमें ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म-खंड अध्याय १२८ में कहा गया है—
तत्राजगाम नग्नश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा। सनत्कुमारो भगवान् साक्षाच्च बालको यथा ॥२६॥
सृष्टेः पूर्वश्च वयसा यथैव पञ्चहायनः। अचूडोऽनुपनीतश्च वेदसन्ध्याविहीनकः ॥२७॥
कृष्णेति मन्त्रं जपति यस्य नारायणो गुरुः। वैष्णवानामग्रणीशो ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥२८-२६॥

[(तब) वहाँ (नारदके पास) नंगे (आसा-वसन), ब्रह्म-तेजसे देदीप्यमान (तेजपुंज), साक्षात् बालक रूप (लघु बयस) भगवान् सनत्कुमार आ पहुँचे। सृष्टिके पूर्वसे ही उनकी पाँच वर्षकी अवस्था थी (लघु बयस; देखत बालक बहु कालीना); उनका न मुण्डन हुआ था न यज्ञोपवीत, वे न वेद पढ़ते थे न सन्ध्या करते थे (वेष बिरागी), उनके गुरु नारायण ही हैं (निज इष्टदेव पहिचानि), उन्हींका कृष्ण नाम जपते रहते हैं, वैष्णवोंके अग्रणी हैं (मनक्रम वचन राम-अनुरागी) और ज्ञानियोंके गुरुओंके भी गुरु हैं।]

हरिवंश-पुराणके अध्याय १७ में भी सनत्कुमारका ऐसा ही वर्णन है—
······ज्वलितादित्यसन्निभम्······दीप्ततेजसम् ॥ ६ ॥ अंगुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम् ॥ ७ ॥
वयं तु यतिधर्माणः संयोज्यात्मानमात्मनि ॥१६॥
यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्। तस्मात्सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम् ॥१७॥

[वे (सनत्कुमार) जलते हुए सूर्यके समान तेजस्वी (तेजपुञ्ज), अंगुष्ठ मात्र (सिसु, लघु बयस), ऐसे तेजपुञ्ज थे जैसे अग्निमें अग्नि ला रक्खी हो। (उन्होंने नारदसे कहा कि) हम लोगों (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार)-ने यति-धर्म स्वीकार किया है। (तापस; वेष बिरागी) और अपनेको अपने आपमें लीन कर लिया है। मैं (सनत्कुमार) जैसा (ब्रह्माका मानस पुत्र) उत्पन्न हुआ था वैसा ही अभीतक कुमार बालक बना हुआ हूँ, इसीलिये मुझे लोग सनत्कुमार (सदा ही कुमार ही बना रहनेवाला) कहते हैं।]

अनेक विद्वानोंने इस तापसको अग्नि, चित्रकूट, गालव मुनिका शिष्य और स्वयं तुलसीदास बताया है किन्तु यदि गोस्वामीजी अपना वर्णन करते तो अपने लिये 'तापस, तेजपुञ्ज, लघुवयस, सुहावा' विशेषण न लगाते। सनत्कुमारका जो विवरण ऊपर दिया गया है वह मानसके तापसके वर्णनमें सटीक मिल जाता है। किसी भी धर्म-ग्रन्थ या पुराणमें ये सब विशेषण अन्य किसीके लिये नहीं मिलते।

११३० कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित, लखि राम-सनेही।
११३१ पियत नयन - पुट रूप - पियूखा। मुदित, सु-असन पाइ जिमि भूखा[1]। (३)
२ ते पितु - मातु कहहु सखि ! कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे।
राम - लखन - सिय - रूप निहारी। होहिं सनेह - बिकल नर - नारी। (४)
दो०—तब रघुबीर अनेक बिधि, सखहिं, सिखावन दीन्ह।
राम - रजायसु सीस धरि, भवन गवन तेइ कीन्ह ॥ १११ ॥
पुनि सिय - राम - लखन कर जोरी। जमुनहिं कीन्ह प्रनाम बहोरी।
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबि - तनुजा - कइ करत बड़ाई। (१)
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता।
राज - लछन सब अंग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे। (२)
११४० मारग चलहु पयादेहिं पाँए। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाए।
अगम पंथ, गिरि - कानन भारी। तेहि-महँ, साथ नारि सुकुमारी। (३)

तब निषादने भी उसे दंडवत् प्रणाम किया और उसने भी निषादको रामका प्रिय मित्र जानकर हृदयसे लगा लिया। फिर वह अपने नेत्रके सम्पुटमें रामके सौन्दर्यका अमृत भर-भरकर पीने लगा (रामको एकटक निहारने लगा), जिससे वह इतना प्रसन्न हुआ जा रहा था जैसे उत्तम भोजन पाकर कोई भूखा प्रसन्न हुआ जा रहा हो। (३) (इधर गाँवकी स्त्रियाँ आपसमें कहती जा रही थीं—) 'सखी ! वे माता-पिता कैसे (निष्ठुर) हैं, जिन्होंने ऐसे (सुकुमार) बालकोंको वन भेज दिया।' जो नर या नारी राम, लक्ष्मण और जानकीका रूप देखे जा रही थीं वे देख-देखकर प्रेमके मारे व्याकुल हुई जा रही थीं। (४) रामने सखा (गुह)-को जब बहुत समझाया तब कहीं वह रामकी आज्ञा लेकर घर लौटनेको तैयार हुआ ॥ १११ ॥ फिर राम, लक्ष्मण और जानकीने हाथ जोड़कर यमुनाको प्रणाम किया और सीता तथा दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) यमुनाकी प्रशंसा करते हुए (यमुनाका महत्त्व वर्णित करते हुए) आनन्दके साथ आगे बढ़ चले। (१) मार्गमें चलते हुए उन्हें जितने भी आते-जाते मिलते थे सभी दोनों भाइयोंको देख-देखकर प्रेमसे कह उठते थे—'आपके तो अङ्ग-अङ्गमें राजाके लक्षण दिखाई दे रहे हैं। (इसलिये) हमें तो यही देख-देखकर बड़ी चिन्ता हुई जा रही है (२) कि (राजाके लक्षण होनेपर भी) आपको ऐसे (बीहड़) मार्गमें पैदल क्यों चलना पड़ रहा है। हमारी समझमें तो सारा ज्योतिष झूठा है। एक तो यहाँका पहाड़ी और जंगली मार्ग यों ही बड़ा

१. सु-असन पाइ मुदित जिमि भूखा। २. तापस-प्रसंगकी ११२२ से ११३१ तक की पंक्तियाँ पीछे ११११ के पश्चात् होनी चाहिए थीं।

११३२-३३ याभ्यामेतादृशौ बालौ विपिनं प्रेषितौ शुभौ। कीदृशौ पितरौ तौ तु वद त्वं सखि शोभने ॥
श्रीरामसीतासौमित्रिरूपं वीक्ष्य मनोहरम्। भवंति स्नेहशोकाभ्यां विकला: पुरुषा: स्त्रिय:॥वशि०रा०
११३४-३५ इत्युक्त्वालिंग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुन: पुन:।निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छ्राद् ययौ गृहम्॥अध्या०
११३६-३७ राम: सीता च सौमित्रि: प्रणेमुर्यमुनां पुन:। हस्तौ बद्ध्वा ससीतौ च मुदितौ भ्रातरावुभौ ॥
सूर्यात्मजाप्रशंसां तु कुर्वन्तौ प्रस्थितौ पथि। —अगस्त्यरामायण
११३८-३९ बहवो व्रजतो दृष्ट्वा मिलंति पथिका: पथि। वदंति भ्रातरौ द्वौ ते सर्वे वै प्रेमसंयुता: ॥
त्वदंगे राजचिह्नानि वर्तन्ते निखिलानि च। विलोक्य तानि चास्माकं चिन्ता भवति मानसे॥ब्रह्म०
११४०-४१ पद्भ्यां चलसि मार्गे त्वं ज्योतिषं व्यर्थमेव मे। पर्वतानां वनानां च मार्गोऽस्त्यन्ततदुर्गम: ॥
सुकुमारी प्रिया याति विपिनं च त्वया सह। —पुलस्त्यरामायण

करि, केहरि, बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं, जो आयसु होई।
जाब जहाँ लगि, तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि, तुमहिं सिर नाई। (४)
दो०—एहि बिधि पूछहिं प्रेम-बस, पुलक गात, जल नैन।
कृपा-सिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदु बैन॥ ११२॥
जे पुर-गाँव बसहिं मग-माहीं। तिनहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं।
केहि सुकृती, केहि घरी बसाए। धन्य, पुन्यमय, परम सुहाए। (१)
जहँ-जहँ राम-चरन चलि जाहीं। तिन्ह-समान अमरावति नाहीं।
पुन्य-पुंज मग-निकट-निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुरपुर-वासी। (२)
११५० जे भरि नयन बिलोकहिं रामहिं। सीता-लखन-सहित घनस्यामहिं।
जे सर-सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव-सर-सरित-सराहहिं। (३)
जेहि-तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलप-तरु तासु बड़ाई।
परसि राम-पद-पदुम-परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा। (४)

बीहड़ है, उसपर आप अपने साथ यह सुकुमारी स्त्री भी लिए चले जा रहे हैं। (३) वनके हाथियों और सिंहोंको तो यों ही देखते नहीं बनता (देखनेमें डर लगता है)। यदि आप कहें तो हम आपके साथ चले चलें और जहाँतक आप जाना चाहें वहाँतक आपको पहुँचाकर, हम आपको प्रणाम करके वहाँसे लौट आवें।' (४) इस प्रकार वे (सब पथिक) प्रेमसे पुलकित हो-होकर और डबडबाई आँखोंसे आ-आकर रामसे पूछते चलते थे और कृपालु राम भी सबको बड़े प्रेम-भरे विनम्र वचन कह-कहकर (धन्यवाद दे-देकर) उन्हें लौटाते चलते थे॥ ११२॥

नाग-लोक और देव-लोकके सभी प्राणी रामके मार्गमें पड़नेवाले नगर और गाँव देख-देखकर तरसे पड़ रहे थे कि किस पुण्यवान्ने किस घड़ी ये पवित्र, धन्य और सुंदर नगर और ग्राम ला बसाए कि राम इधरसे होकर चले जा रहे हैं। (१) जहाँ-जहाँ रामके चरण जा पड़ते थे वहाँकी बराबरी स्वर्ग भी नहीं कर पा सक रहा था। उन मार्गोंके आसपासके रहनेवाले इतने पुण्यात्मा थे कि स्वर्गके निवासी भी उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते थे (२) क्योंकि वे (ग्रामवासी) अपने नेत्रों-भर सीता, लक्ष्मण और घनश्याम रामको देखे चले जा रहे थे। जिन सरोवरों और नदियोंमें राम उतर-उतरकर स्नान कर लेते थे उनकी प्रशंसा देवलोकके सरोवर और नदी किए जा रही थीं (कि ये सरोवर और नदी हमसे कहीं अधिक भाग्यवान् हैं)। (३) प्रभु राम जिन वृक्षोंके तले जा बैठते थे उनकी प्रशंसा कल्पवृक्ष किए जा रहे थे (कि हमसे तो ये ही वृक्ष कहीं अच्छे हैं)। वहाँकी भूमि भी रामके चरण-कमलोंकी

११४२-४३ दुर्दर्शा वन्यपशवो व्रजेमाज्ञा भवेद्यदि। त्वया सार्धं महाराज यावद् गन्तुं त्वमिच्छसि॥महा०रा०
११४४-४५ एवं पुलकिता भूत्वा पृच्छंति प्रेमकारणात्। निवर्तयति तान् रामो गदित्वा कोमलां गिरम्॥वशि रा.
११४६-४७ ग्रामा वसंति ये मार्गे तान्निरीक्ष्यातिलज्जितम्। भवत्यमरनागानां नगरं लोकमोहनम्॥
धर्मात्मा वासयामास कस्यां घट्यां तु कः पुमान्। ग्रामानिमान् शुभान् रम्यान् पवित्रान् परमोत्सवान्॥अग.रा.
११४८-५० चरणौ रामचन्द्रस्य यत्र यत्र च गच्छतः। तेन स्थानेन सदृशी नास्तीन्द्रस्यामरावती॥
ये वै सुकृतिनो लोका मार्गांतिकनिवासिनः। तान् प्रशंसन्ति विबुधाः सीतालक्ष्मणसंयुतम्॥
पश्यंति रामं चक्षुर्भ्यां सुन्दराभ्यां मनोहरम्। —ब्रह्मरामायण
११५१-५३ यस्मिन् सरसि नद्यां च स्नाति श्रीरघुनायकः। करोति तत् प्रशंसां च मानसं जाह्नवी तथा।
स्थितो यद्द्रुतले गत्वा श्रीरामो भवति क्षणम्। कल्पवृक्षः प्रशंसां च तस्य द्रोः प्रकरोति वै॥
श्रीरामचन्द्रपादाब्जरजः स्पृष्ट्वा वसुंधरा। स्वकीयं शोभनं भाग्यं मन्यते लोकधारिणी॥सु०रा०

दो०—छाँह करहिं घन, बिबुध-गन , बरषहिं सुमन, सिहाहिं ।
देखत गिरि, बन, बिहँग, मृग, राम चले मग जाहिं ।। ११३ ।।
सीता - लखन - सहित रघुराई । गाँव - निकट जब निकसहिं जाई ।
सुनि, सब बाल - बृद्ध नर - नारी । चलहिं तुरत गृह - काज बिसारी । (१)
राम - लखन - सिय - रूप निहारी । पाइ नयन - फल होहिं सुखारी ।
सजल बिलोचन, पुलक सरीरा । सब भे मगन, देखि दोउ बीरा । (२)
११६० बरनि न जाइ दसा तिन्ह - केरी । लहि जनु रंकन सुर - मनि - ढेरी ।
एकन्ह एक बोलि सिख देहीं । लोचन - लाहु लेहु, छन एहीं । (३)
रामहिं देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहिं, सँग - लागे ।
एक नयन - मग छबि उर आनी । होहिं सिथिल तन - मन - बर बानी । (४)
दो०—एक देखि बट - छाँह भलि , डासि मृदुल तृन - पात ।
कहहिं, गँवाइय छिनक श्रम , गवनब अबहिं कि प्रात ।। ११४ ।।

धूलका स्पर्श पाकर अपना भाग्य सराहे जा रही थी । (४) राम भी पहाड़, वन, पशु और पक्षियोंको निहारते चले जा रहे थे । बादल उनपर छाया करते चल रहे थे और देवता मनमें तरसते हुए उनपर फूल बरसाए चले जा रहे थे ।।११३।। सीता और लक्ष्मणके साथ जब राम किसी गाँवके पाससे होकर निकल जाते थे तब वहाँके बाल, वृद्ध नर-नारी सब सुनते ही घरका सब काम-धंधा छोड़-छाड़कर तुरन्त (उनका दर्शन करनेके लिये) उनके पास दौड़ पहुँचते थे (१) और राम, लक्ष्मण, सीताकी झाँकी पाकर वे ऐसे सुखी हो जाते थे जैसे उन्हें नेत्रोंका फल मिल गया हो (आँखोंसे जो देखना चाहिए वह देख लिया हो) । दोनों वीरों (राम और लक्ष्मण)-को देख-देखकर उनकी आँखें भर-भर आती थीं, शरीर रोमांचित हो-हो जाता था और वे सब आनन्दमें मग्न हो जाते थे । (२) उनकी ऐसी दशा हो जाती थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, मानो दरिद्रोंको चिंतामणियोंका ढेर हाथ आ लगा हो । वे सब एक दूसरेको पुकार-पुकारकर यही कहे जा रहे थे—'जिसे अपने नेत्र सुफल कर लेने हों चले आओ और आकर अपने नेत्र सुफल कर लो ।' (३) कुछ ऐसे लोग भी मिल जाते थे जो रामको देखकर इतने प्रेममें मग्न हो जाते थे कि उन्हें देखते ही उनके साथ लग चलते थे । कुछ ऐसे थे जो नेत्रोंसे उनकी शोभाकी छाप हृदयपर छापकर ऐसे तन्मय हो उठते थे कि तन, मन और वाणीकी कोई सुध नहीं रह पाती थी । (४) कोई बड़के पेड़की घनी छाया देखकर वहाँ कोमल घास-पात बिछाकर आ कहते थे—'आइए, थोड़ी देर यहाँ बैठकर सुस्ता लीजिए । फिर, अभी जाना हो तो

११५४-५५ छायां कुर्वन्ति जलदाः पुष्पं वर्षन्ति देवताः । वनाद्रिहरिणान् पश्यन् मार्गे व्रजति राघवः।। मनुरा०
११५६-६७ सीतासौमित्रिसंपन्नः श्रीरामो ग्रामसन्निधौ । यदा याति तदा सर्वे श्रुत्वा वृद्धाश्च बालकाः ।
गेहकृत्यं त्वरं त्यक्त्वा आयांति पुरुषाः स्त्रियः ।। —भरतरामायण
११५८-५९ श्रीसीतारामसौमित्रिसौन्दर्यं वीक्ष्य हर्षिताः । निजनेत्रफलं प्राप्य भवन्ति निखिला जनाः ।।
द्वौ वीरौ ते निरीक्ष्यैवं निमग्नाः प्रेम्णि लोचने । सजले पुलकश्रेणी जाता देहे महात्मनाम् ।। धर्मसं.
११६०-६१ तेषां दशाऽवर्णनीया दरिद्रो लब्धवान् मणिम् ।एकश्चोपदिशत्येकं गृहाणाक्ष्णोः फलं क्षणे।।वशि.रा.
११६२-६३ श्रीराघवं विलोक्यैके मग्नाः प्रेमार्णवे नराः । दर्शनं तस्य कुर्वन्तः साकं तेन व्रजन्ति वै ।।
एके नयनमार्गेण निधाय हृदये छविम् । मनसा कर्मणा वाचा शान्तचित्ता भवन्ति हि ।।भरतरा०
११६४-६५ वटस्य सघनां छायां दृष्ट्वैके तृणपल्लवान् । आस्तीर्य कोमलानाहुः श्रमापनयनाय च ।।
मुहूर्तं वस वा प्रातरद्य त्वं वा गमिष्यसि । —ब्रह्मरामायण

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइय नाथ! कहहिं मृदु बानी।
सुनि प्रिय बचन, प्रीति अति देखी। राम कृपाल, सुसील बिसेखी। (१)
जानी स्रमित सीय, मन-माहीं। घरिक बिलम्ब कीन्ह, बट-छाँहीं।
मुदित नारि-नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन-मन लोभा। (२)
११७० ऐकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र-मुख-चंद्र-चकोरा।
तरुन-तमाल-बरन तनु सोहा। देखत कोटि-मदन-मन मोहा। (३)
दामिनि-बरन लखन सुठि नीके। नख-सिख सुभग, भावते जी-के।
मुनि-पट, कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहिं कर-कमलनि धनु-तीरा। (४)

दो० जटा-मुकुट सीसनि सुभग, उर, भुज, नयन बिसाल।
सरद-परब-बिधु-बदन बर, लसत स्वेद-कन-जाल॥ ११५॥

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा-बहुत, थोरि मति मोरी।

अभी, नहीं तो सबेरे उठकर चले जाइएगा' ॥११४॥ कोई उनके लिये घड़े भर-भरकर लिए चले आ रहे हैं और प्रेमसे कह रहे हैं—'नाथ! लीजिए, थोड़ा जल पी लीजिए।' उनके प्रेमभरे वचन सुन-सुनकर, उनका इतना अधिक प्रेम देखकर तथा सीताको थकी देखकर सुशील और कृपालु राम वटकी छाया-तले बैठकर घड़ीभर सुस्ताने लग जाते थे। (१) उस समय वहाँके सब नर-नारी अत्यन्त प्रसन्न होकर खड़े उनकी शोभा देखते रह जाते थे। रामका अनूप रूप सबके नेत्र और मन लुभाए लिए डाल रहा था (२) सब लोग चारों ओरसे घेरकर रामके चन्द्र-जैसे मुखड़ेको चकोर बनकर खड़े एकटक देखते बड़े अच्छे लग रहे थे। रामका नये तमालके वृक्षके जैसा (नीला) शरीर ऐसा अच्छा लग रहा था कि उसे देखकर करोड़ों (अनेक) कामदेवोंका मन भी उनपर रीझा पड़ता था। (३) बिजलीके समान चमाचम गोरे लक्ष्मण भी बड़े भले लग रहे थे। नखसे शिखतक उनकी सुन्दरता सबका मन लुभाए डाल रही थी। उन दोनोंके शरीरपर मुनियोंके-से वस्त्र, कमरमें तूणीर और हाथोंमें धनुष-बाण बड़े अच्छे लग रहे थे। (४) उनके सिरपर जटाओंका सुन्दर मुकुट बँधा था। उनकी छाती चौड़ी, उनके नेत्र बड़े-बड़े और भुजाएँ विशाल थीं। उनके शरत्‌की पूर्णिमाके चन्द्रके समान मुखपर छाई हुई पसीनेकी बूँदें बड़ी अच्छी लग रही थीं ॥११५॥ मुझ (तुलसीदास)-से राम और लक्ष्मणकी उस सुन्दर जोड़ीका वर्णन करते नहीं बन रहा है क्योंकि कहाँ उनकी इतनी अधिक शोभा और कहाँ मेरी छोटी-सी बुद्धि।

११६६-६८ एके च सजलं कुम्भमानयंति वदंति च। नाथ कोमलया वाण्याचमनं कुरु चाधुना॥
श्रुत्वा प्रियं वचः प्रीतिं विलोक्य बहुलां तथा। दयालुः परमो रामः शीलवांश्च विशेषतः॥
मनसि श्रमितां सीतां विज्ञाय घटिकावधि। विश्रामं कृतवान् धीमान् न्यग्रोधद्रुतले शुभे॥ब्रह्मरा०
११६९-७० मुदिताश्च नरा नार्यः शोभां पश्यंति मानसम्। रूपं चानुपमं दृष्ट्वा तेषां नेत्रं च मोहितम्।
भूत्वा चानिमिषा लोका राजंते परितो हरेः। चकोरा इव रामस्य मुखचन्द्रसुधां पपुः॥वशिष्ठरा०
११७१-७३ तमालश्यामलां मूर्तिं दृष्ट्वा कंदर्पकोटयः। मुग्धा भवंति सौमित्रिं दृष्ट्वा नखशिखावधि।
सुंदरं च तडिद्वर्णं मनो मुग्धं भवत्यति। वल्कलं वसनं कट्यां तूणीरश्च विराजते।
अत्युत्तमौ धनुर्बाणौ राजेते हस्तपद्मयोः। —महारामायण
११७४-७५ रामलक्ष्मणयोः शीर्षं जटामुकुटमंडितम्। बाहुवक्षःस्थलाक्षीणि विशालानि मुखं वरम्॥
स्वेदबिंदुलसद्दिव्यं शरत्पर्वशशांकवत्। —पुलस्त्यरामायण

राम - लखन - सिय - सुंदरताई । सब चितवहिँ चित-मन-मति लाई । (१)
थके नारि - नर प्रेम - पियासे । मनहुँ मृगी - मृग देखि दिआसे ।
सीय - समीप ग्राम - तिय जाहीँ । पूछत अति सनेह सकुचाहीँ । (२)
११८० बार - बार सब लागहिँ पाँए । कहहिँ बचन मृदु, सरल, सुभाए ।
स्वामिनि ! अविनय छमबि हमारी । बिलग न मानब जानि गँवारी । (३)
राजकुमारि ! बिनय हम करहीँ । तिय - सुभाय, कछु पूछत डरहीँ ।
राजकुँअर दोउ सहज सलोने । इन - तेँ लहि दुति मरकत-सोने । (४)

दो०—स्यामल-गौर किसोर - बर , सुन्दर, सुखमा - ऐन ।
सरद - सर्बरी - नाथ मुख , सरद - सरोरुह नैन ।। ११६ ।।

कोटि - मनोज - लजावनिहारे । सुमुखि ! कहहु को आहिँ तुम्हारे ।
सुनि सनेहमय मंजुल बानी । सकुची सिय, मन-महँ मुसुकानी । (१)
तिन्हहिँ बिलोकि, बिलोकति धरनी । दुहुँ सकोच, सकुचति बर-बरनी ।

(वहाँ खड़े हुए) सब लोग चित्त, मन और बुद्धि (अन्तःकरणकी तीन वृत्तियाँ) लगाए उन्हेँ देखे चले जा रहे थे । (१) प्रेमके प्यासे नर-नारी उन्हेँ ऐसे एकटक देखते तृप्त नहीँ हो पा रहे हैँ, जैसे दिआसे[1] (मरीचिका)-की ओर (जलके प्यासे) मृगी और मृग उधर ही देखते बढ़ते चले जाते हैँ । गाँवोंकी स्त्रियाँ भी सीताके पास जाती तो थीँ परन्तु अत्यन्त स्नेहके कारण उनसे कुछ बात करते झिझकी पड़ रही थीँ । (२) पर साहस करके वे बार-बार उनके पाँव पड़-पड़कर स्वाभाविक सीधी कोमल वाणीमेँ पूछने लगीँ—'कहिए राजकुमारी ! हम आपसे (कुछ जाननेके लिये) प्रार्थना करती हैँ पर स्त्री-स्वभाव (लाज) के कारण कुछ पूछते बड़ी झिझकी जा रही हैँ । (३) स्वामिनी ! (हम कुछ पूछेँ तो) हमारी ढिठाई क्षमा कीजिएगा और हमेँ गँवार जानकर बुरा न मान बैठिएगा । (यह बताइए कि आपके साथ जो ये) दोनोँ राजकुमार हैँ और जो स्वभावसे ही इतने सुन्दर हैँ कि जान पड़ता है (बड़े राजकुमारसे) मरकत (नीलम)-को और (छोटे राजकुमारसे) सोनेको इन्हीँसे आभा (दमक) मिली है । (४) ये दोनोँ किशोर अवस्थावाले साँवले और गोरे राजकुमार सुन्दरता और शोभाके तो भांडार हैँ । (देखो न ! कैसा) शरत्‌के चन्द्रमाके समान इनका मुखड़ा दमका पड़ रहा है और शरत्‌के कमलके समान इनके नेत्र खिले पड़ रहे हैँ ।। ११६ ।। सुमुखी ! यह बताइए कि ये करोड़ोँ कामदेवोंकी सुन्दरताको लजानेवाले आपके कौन लगते हैँ ?' उनकी ऐसी प्रेमभरी प्यारी बात सुनकर सीता कुछ झेंपकर मन ही मन मुसकरा उठीँ । (१) सुन्दरी सीता कभी तो उनकी ओर देखती थीँ, कभी पृथ्वीकी ओर देखने लगती थीँ । उन्हेँ दोनोँके संकोचने बहुत आ घेरा (न बतावेँ तो स्त्रियाँ बुरा मान जायँ और समझेँ कि बड़ी ऐँठू हैँ और इधर अपने

१. दिआसा=मृग-मरीचिका । दिव = प्रकाश; आस = स्थान । चमकती हुई भूमि । गरमीके दिनोँमेँ मरुभूमिपर जब वायुकी तहोंका घनत्व असमान हो जाता है तब पृथ्वीके निकटका वायु तो अधिक गरम होकर ऊपर उठना चाहता है पर वायुकी ऊपरवाली तहेँ उसे ऊपर नहीँ उठने देतीँ । इसलिये वायुकी लहरेँ पृथ्वीके तलपर ही बहती हुई हरिणोंको जलधाराके समान दिखाई देने लगती हैँ और वे प्यासे हिरण उसकी ओर दौड़ते चले जाते हैँ ।

११७६ रामलक्ष्मणयोः शोभावर्णनीया मुनीश्वरैः । श्रीरामसीतासौमित्रिसौन्दर्यं मनसा धिया । चित्तेन सर्वे पश्यन्ति प्रमोदं प्राप्नुवंति च ।। —वशिष्ठरामायण
११७७ प्रेमातुरा नरा नार्यो रामं वीक्ष्य विमोहिताः । —पुलस्त्यरामायण

सकुचि सप्रेम बाल - मृग - नयनी । बोली मधुर बचन पिक - बयनी । (२)
११९० सहज सुभाय, सुभग, तन गोरे । नाम - लखन, लघु देवर मोरे ।
बहुरि बदन - बिधु अंचल ढाँकी । पिय-तन चितइ, भौंह करि बाँकी । (३)
खंजन - मंजु तिरीछे नैननि । निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ।
भईं मुदित सब ग्राम - बधूटी । रंकन राय - रासि जनु लूटी । (४)
दो०—अति सप्रेम सिय-पाँयँ परि , बहु बिधि देहिं असीस ।
सदा सोहागिनि होहु तुम , जब-लगि महि अहि-सीस ।। ११७ ।।
पारबती - सम पति - प्रिय होहू । देबि ! न हम - पर छाँड़ब छोहू ।
पुनि - पुनि बिनय करिय कर जोरी । जौं एहि मारग फिरिय बहोरी । (१)
दरसन देब, जानि निज दासी । लखी सीय, सब प्रेम - पियासी ।
मधुर बचन कहि - कहि परितोषी । जनु कुमुदिनी कौमुदी[1] पोषी । (२)
१२०० तबहिं लखन, रघुबर - रुख जानी । पूछेउ मग, लोगन्हि मृदु बानी ।

पतिका परिचय दें तो कैसे दें और विशेषत: अपनी माता पृथ्वीके सामने अपने पतिका परिचय कैसे दें ? पर सीताने युक्ति निकाल ही ली) । मृग-छौनेके नेत्रोंके समान नेत्रोंवाली और कोयलकी-सी मिठबोली सीताने बहुत सकुचाते हुए उन्हें प्रेमसे बताया—(२) 'ये जो बड़े सीधे स्वभाववाले सुन्दर गोरे-गोरेसे हैं न ! इनका नाम लक्ष्मण है और ये मेरे छोटे देवर हैं ।' फिर सीताने अपने चन्द्र-जैसे मुखपर आँचलकी ओट करके (घूँघट मारकर) बाँकी चितवनकी लपकसे पतिकी ओर देखकर (३) खंजन पक्षीके-समान सुन्दर (चंचल) नेत्र तिरछे घुमाकर ही उन्हें (पूछनेवाली स्त्रियोंको) संकेतसे समझा दिया कि ये (राम) मेरे पति हैं । इस ढंगसे परिचय पाकर वे गाँवकी नवेलियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानो कंगालोंने राजाका भांडार लूट धरा हो । (४) बड़े प्रेमसे सीताके पैरों पड़-पड़कर वे उन्हें अनेक आशीर्वाद देने लगीं—'जबतक शेषनागके सिरपर पृथ्वी टिकी है तबतक आप सदा-सोहागिन (अचल सौभाग्यवती) बनी रहें ।। ११७ ।। और देवि ! जैसे पार्वतीको शिव प्यार करते हैं वैसे ही आपके पति भी सदा आपसे प्यार करते रहें । आप हमपर अपना स्नेह सदा बनाए रखिएगा । बार-बार हाथ जोड़कर हम यही प्रार्थना करती हैं कि यदि इसी मार्गसे फिर लौटना हो (१) तो हमें अपनी सेविका जानकर हम सबको दर्शन अवश्य दे जाइएगा ।' सीताने जब देखा कि ये सब प्रेमकी इतनी प्यासी हैं तो उनसे मीठी-मीठी बातें करके सीताने उन्हें ऐसा प्रसन्न कर दिया जैसे कुमुदिनियोंको चाँदनी रातका आनन्द मिल गया हो । (२) तब लक्ष्मणने रामका संकेत पाकर वहाँ आए हुए लोगोंसे बड़े प्रेमसे जाकर पूछा—'कहिए, आगे किधरसे जाना चाहिए ? यह सुनना था कि वहाँ आए

१. कौमुदी कुमुदिनी ।

११८६-८६ पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ।
स्मितविकसितगंडं व्रीडविभ्रांतनेत्रं मुखमवनमयंती स्पष्टमाचष्ट सीता ।। हनुमन्नाटक
११९३-९५ अभवन् मुदिता ग्रामवधूट्यो निखिलास्तथा । द्रव्यराशिं यथा प्राप्य निर्धनास्तुष्टमानसाः ।
जानकी परमप्रेम्णा निपत्यांघ्र्योः गृशोभनाम् । आशिषं ताः प्रयच्छन्ति सौभाग्यं ते प्रवर्द्धताम् ।।ब्रह्मरा०
११९६-९९ भव भर्तुः प्रिया देवि पार्वती सदृशी कृपाम् । कदाप्यस्मासु मा मुंचेः कुर्वंति विनयं भृशम् ।
बद्धहस्ताः पथानेन निवृत्ता चेद् भवेः प्रिये । पुनर्नो निजदासीस्त्वं ज्ञात्वा दद्याः स्वदर्शनम् ।
दृष्ट्वा प्रेमातुराः सीता कौमुदीव कुमुद्वतीः । सर्वाः संबोधयामास व्याहारैर्मधुरैः प्रिया ।।मंगलरा०
१२०० तदैव लक्ष्मणो ज्ञात्वा रामचन्द्रमनोरथम् । लोकान् पप्रच्छ पंथानं वाण्या कोमलया शुभम् ।।

सुनत नारि - नर भये दुखारी। पुलकित गात, बिलोचन बारी। (३)
मिटा मोद, मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्ह, लेत जनु छीने।
समुझि करम - गति, धीरज कीन्हाँ। सोधि सुगम मग, तिन्ह कहि दीन्हाँ। (४)
दो०—लखन-जानकी-सहित तब , गवन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय वचन कहि , लिये लाइ मन साथ ॥ ११८ ॥
फिरत नारि - नर अति पछिताहीं। दैवहिं दोष देहिं मन - माहीं।
सहित - बिषाद परसपर कहहीं। बिधि - करतब उलटे सब अहहीं। (१)
निपट निरंकुस, निठुर, निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज, सकलंकू।
रूख कलप-तरु, सागर खारा। तेहि पठये बन राजकुमारा। (२)
१२१० जौ पै इन्हहिं दीन्ह बनवासू। कीन्हि बादि बिधि भोग-बिलासू।
ए बिचरहिं मग बिनु - पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना। (३)
ए महि परहिं, डासि कुस - पाता। सुभग सेज, कत सृजत बिधाता।
तरुवर - बास इन्हहिं बिधि दीन्हाँ। धवल धाम रचि-रचि श्रम कीन्हाँ। (४)

हुए सभी स्त्री-पुरुष दुखी हो उठे। उनके शरीर रोमाञ्चित हो चले और सबके नेत्र डबडबा चले। (३) उनका सारा आनन्द फीका पड़ चला और मन ऐसा उदास हो चला मानो विधाताने धनका भांडार सौंपकर फिर छीन धरा हो। पर इसे भाग्यका फेर समझकर उन सबने बहुत धीरजसे काम लेकर और भली प्रकार विचारकर वनकी ओर जानेका सबसे सुगम मार्ग उन्हें समझा बताया। (४) तब रामने सबसे मीठी-मीठी बातें करके उन सबको तो विदा किया पर उनका मन अपने साथ लेकर लक्ष्मण और जानकीके साथ उन्होंने वनका मार्ग जा पकड़ा ॥ ११८ ॥ अपने-अपने घर लौटते हुए स्त्री और पुरुष सब बहुत पछताए जा रहे थे और मन ही मन विधाताको कोसे जा रहे थे (कि ऐसे सुन्दर राजकुमारों और राजकुमारीको उसने इस संकटमें डाल छोड़ा)। वे सब बड़े दुखी हो-होकर आपसमें कहते जा रहे थे—'विधाताके सब काम उलटे ही होते हैं। (१) उस (विधाता)-पर न किसीका अंकुश (शासन) है, न उसे किसीका डर है और न उसके हृदयमें दया है। जिस विधाताने चन्द्रमाको (क्षयका) रोगी (सदा घटता-बढ़ता रहनेवाला) और कलंकी (कलंकवाला) बना डाला, कल्पवृक्षको वृक्ष बना डाला और समुद्रको खारा कर डाला, उसी (खोटे विधाता)-ने इन राजकुमारोंको भी वनमें धकेल भेजा है। (२) यदि विधाताको इन्हें वनवास ही देना था तो भोग-विलास (-की इतनी सामग्रियों)-का व्यर्थ निर्माण करने वह बैठा ही क्यों ? जब विधाता इन्हें नंगे पाँव चलनेको विवश किए हुए है, तो अनेक प्रकारकी सवारियोंकी रचना उसने व्यर्थ कर क्यों डाली ? (३) जब इन्हें कुशा और पत्ते बिछाकर धरतीपर ही पड़ रहना पड़ रहा है, तो विधाताने सुन्दर-सुन्दर सेजें बना किसके लिये छोड़ी हैं ? जब विधाताने इनके लिये पेड़ोंके नीचे निवास करनेका विधान बनाया तो बढ़िया-बढ़िया भवन बना खड़े करनेका परिश्रम उसने व्यर्थ

१२०१-३ श्रुत्वा नार्यो नरा जाता दुःखिता मलिनास्तथा। ज्ञात्वा कर्मगतिं विज्ञाः सुमार्गं जगदुः स्फुटम् ॥ धर्मसं०
१२०४-५ सीतालक्ष्मणसंयुक्तः प्रस्थितो राघवस्तदा। निवर्त्य सकलाँल्लोकान् कथयित्वा वचो मृदु। महारा०
१२०८-९ शशिनि खलु कलंकः कंटकः पद्मनाले युवतिकुचनिपातः पक्वता केशजाले।
जलधिजलमपेयं पंडिते निर्धनत्वं वयसि धनविवेको निर्विवेको विधाता ॥—सुभाषित

दो०—जौ ए मुनि-पट-धर, जटिल , सुंदर, सुठि सुकुमार ।
विविध भाँति भूषन - बसन , वादि किये करतार ॥ ११९ ॥
जौ ए कंद - मूल - फल खाहीं । बादि सुधादि असन जग - माहीं ।
एक कहहिं ए सहज सुहाए । आपु प्रगट भे, बिधि न बनाए । (१)
जहँ - लगि वेद कही विधि - करनी । श्रवन - नयन - मन - गोचर बरनी ।
देखहु खोजि, भुवन दस - चारी । कहँ अस पुरुष, कहाँ असि नारी । (२)
१२२० इन्हहि देखि, बिधि - मन अनुरागा । पटतर - जोग बनावइ लागा ।
कीन्ह बहुत श्रम, एक न आये । तेहि इरिषा, बन आनि दुराये । (३)
एक कहहिं, हम बहुत न जानहिं । आपुहि परम धन्य करि मानहिं ।
ते पुनि पुन्य - पुंज हम लेखे । जे देखहिं, देखिहहिं, जिन्ह देखे । (४)

किया ही क्यों ? (४) जब इन सुन्दर और अत्यन्त कोमल राजकुमारोंको मुनिके-से वस्त्र (वल्कल आदि) पहनकर और जटा बढ़ाए रहना पड़ रहा है, तब विधाता अनेक प्रकारके आभूषण और वस्त्र व्यर्थ क्यों बनाए बैठा है ॥ ११९ ॥ जब इन–जैसे सुकुमारोंको कंद-मूल फल खाने पड़ रहे हैं, तब संसारमें अमृतके समान (उत्तम और स्वादिष्ट) भोजनकी सामग्रियाँ सब व्यर्थ ही रची धरी हैं ।' कोई कहने लगा—'ये तो स्वभावसे ही सुन्दर हैं और अपने आप ही प्रकट हुए हैं । भला ब्रह्मा इन्हें क्या बना पा सकता है ! (१) क्योंकि जहाँतक हमें अपने कानों, नेत्रों और मनसे हमारे अनुभवमें आया हुआ और वेदोंमें किया हुआ विधाताकी रचनाका वर्णन मिलता है, वहाँतक चौदहों लोक छान मारनेपर भी ऐसे पुरुष और स्त्री कहीं ढूँढ़े नहीं मिल पा सकते हैं । (२) (हमें तो ऐसा लगता है कि) जब इन्हें देख-देखकर विधाताका मन इनकी सुन्दरतापर रीझ उठा, तब उसे भी इन्हींकी जोड़के पुरुष और स्त्री गढ़नेकी धुन चढ़ बैठी । पर बहुत परिश्रम करनेपर भी जब वह एक भी ऐसा न बना पाया, तो इसी डाहके मारे उसने इन्हें वनमें ला छिपाया (कि न कोई इन्हें देख पावेगा न मुझपर उँगली उठा पावेगा कि ब्रह्मा ऐसा रूप कहाँ बना पाया है) ।' (३) कोई कहने लगा—'हम बहुत तो नहीं जानते, पर हाँ ! अपनेको बहुत धन्य (सौभाग्यशाली) अवश्य मानते हैं (कि इनके दर्शन हमें मिल रहे हैं) । हम तो उन सबको बड़ा पुण्यात्मा समझते हैं जो इन्हें अपनी आँखोंसे देख रहे हैं, जो आगे देखेंगे और जो देख चुके हैं ।' (४) इस प्रकार प्यारी-प्यारी बातें कह-कहकर सब

१२१०-१६ विधात्रा भोग्यवस्तूनि रचितानि निरर्थकम् । प्रेषितौ यद् वनं वीरौ सुन्दरौ रामलक्ष्मणौ॥धर्मसं०
१२१७-१९ स्वभावसुन्दरौ चेमौ प्रादुर्भूतौ स्वयं क्षितौ । विधात्रा रचितौ नैव वेदोक्तानि च यानि वै ।
उक्तानि ब्रह्मकर्माणि कर्णाक्षिगोचराणि च । चित्तस्य गोचराणीत्थं चान्विष्य भुवनत्रये ।
पश्यन्तु पुरुषो नारी कुत्र चैतादृशी किल । —महारामायण
१२२०-२१ दृष्ट्वेमौ सुन्दरौ स्रष्टुः सुचित्तं मोहितं ह्यभौ । ईदृशौ राजपुत्रौ तु स्रष्टुमिच्छां चकार ह ॥
एकोऽपि नागतो रम्यः श्रमे च बहुले कृते । तयोरीर्ष्यया समानीय गहने गोपिताविमौ ॥पुल०रा०
१२२२-२३ बहुलं कथयन्त्येके नैव जानीमहे वयम् । आत्मानं परमं धन्यं कृत्वा मन्यामहे परम् ॥
मन्यामहे सुकृतिनस्तान् ये पश्यन्ति सुन्दरौ । द्रक्ष्यंति चाथवाद्राक्षुर्वयं श्रीरामलक्ष्मणौ ॥ संवर्तसं०

दो०–ऐहि बिधि कहि-कहि बचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥ १२०॥
नारि, सनेह - बिकल - बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं।
मृदु - पद - कमल कठिन मग जानी। गहबरि हृदय कहइ बर बानी। (१)
परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि, जिमि हृदय हमारे।
जौं जगदीस इन्हहिं बन दीन्हाँ। कस न सुमन - मय मारग कीन्हाँ। (२)
१२३० जौं माँगा पाइय बिधि - पाहीं। ए रखियहि सखि! आँखिन-माँहीं।
जे नर - नारि न अवसर आए। ते[1] सियराम न देखन पाए। (३)
सुनि सरूप, बूझहिं अकुलाई। अब - लगि गये कहाँ-लगि भाई।
समरथ, धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनम - फल पाई। (४)

डबडबाई आँखोंसे कहते जा रहे थे—'भला बताओ तो सही, ये इतने सुकुमार (कोमल) शरीरवाले (राजकुमार और राजकुमारी) इस जंगलके बीहड़ मार्गमें कैसे (पैदल) चल पावेंगे ? ॥ १२० ॥ उधर स्नेहके मारे स्त्रियाँ अलग ऐसी व्याकुल हुई पड़ रही थीं जैसे संध्या होते ही चकवी छटपटा उठती है। राम, लक्ष्मण और सीताके कोमल चरण (देख-देखकर) और ऊबड़-खाबड़ मार्गकी कल्पना कर-करके स्त्रियाँ व्याकुल हो-होकर ऐसी प्यारी-प्यारी बातें कहे जा रही थीं—(१) 'इनके कोमल और लाल-लाल चरणोंका स्पर्श पा-पाकर पृथ्वी वैसे ही सकुचाई पड़ रही है जैसे हमारे हृदय सकुचाए पड़ रहे हैं। यदि जगदीश्वरको इन्हें वनवास ही देना था तो सारे मार्गमें उसने फूल क्यों नहीं बिछा धरे ? (२) सखि ! यदि ब्रह्मासे कहीं (ऐसा वरदान) माँगे मिल जाय तो इन्हें हम अपनी आँखोंमें ही ला बसावें।' जो स्त्री और पुरुष इस अवसरपर वहाँ पहुँच नहीं पाए थे और सीता तथा रामको नहीं देख पाए थे (३) वे उनके सौन्दर्यका वर्णन सुन-सुनकर व्याकुल हो-होकर पूछे जा रहे थे—'बताओ भाई ! अबतक वे कहाँतक पहुँचे होंगे ?' उनमें जो समर्थ थे (वेगसे चल या दौड़ सकते थे) वे तो दौड़े-दौड़े वहाँ पहुँचकर दर्शन पाकर यह समझ-समझकर प्रसन्न हो-होकर लौटे आ रहे थे कि हमारा जन्म सफल हो गया। (४) असमर्थ स्त्रियाँ, बालक

१. तिन्ह।

१२२४-२५ एवं प्रियं वचश्चोक्त्वा जलं बिभ्रति चक्षुषोः। अत्यन्तसुकुमाराश्च राजपुत्रा कथं पथि॥
गन्तुं शक्ता भविष्यन्ति ते शोचन्ति यदा नृप। —शक्तिसंहिता

१२२६-२८ भवन्ति व्याकुलाः सर्वाः प्रमदाः प्रीतिकारणात्। सायंकाले यथा कोकयो दुःखितास्तु भवंति वै॥
पन्थानं कठिनं ज्ञात्वा पदपद्मौ च कोमलौ। कथयन्ति वरां वाणीं प्रेमपूर्णां वराङ्गनाः॥
सर्वंसहा स्पृशन्ती च चरणौ कोमलारुणौ। संकुचत्येव चास्माकं सख्यः सुहृदयं यथा॥महे०सं०

१२२९ यदि प्रदत्तवानाभ्यां काननं जगदीश्वरः। तदा तेन कथं नैव मार्गाः पुष्पमयाः कृताः॥क्षेमे०सं०

१२३० सख्यो यदि विधातास्मान् वरं दद्यात् मुखोदितम्। तदेमौ चक्षुषोर्मध्ये धारयेम वयं प्रियाः॥—नार०सं०

१२३१-३२ अस्मिन् क्षणे नरा नार्यो ये चासन्ननुपस्थिताः। ते दृष्टवन्तौ श्रीसीतारामचन्द्रौ न शोभनौ॥
आकर्ण्य सुन्दरं रूपं पृच्छन्त्याकुलिताः प्रियाः। इदानीं कुत्र पर्यन्तं प्रयाता भ्रातरश्च ते॥ गालवसं०

१२३३ समर्थास्त्वरितं गत्वा पश्यन्ति मुदिताः पुनः। प्राप्य जन्मफलं गेहं समायान्ति महामुने॥मार्कं०सं०

दो०—अबला, बालक, वृद्ध जन, कर मींजहिं, पछिताहिं।
होहिं प्रेम - बस लोग इमि, राम जहाँ - जहँ जाहिं ॥ १२१ ॥
गाँवँ - गाँवँ अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल - कैरव - चंदू।
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप - रानिहिं दोष लगावहिं। (१)
कहहिं एक, अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जेइ लोचन - लाहू।
कहहिं परसपर लोग - लुगाई। बातैं सरल, सनेह - सुहाई। (२)
१२४० ते पितु - मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगर, जहाँ - तें आए।
धन्य सो देस, सैल, बन, गाऊँ। जहँ - जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ। (३)
सुख पायेउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहिके सब भाँति सनेही।
राम - लखन - पथि - कथा सुहाई। रही सकल मग - कानन छाई। (४)
दो०—एहि बिधि रघुकुल-कमल-रबि, मग - लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन, सिय - सौमित्रि - समेत ॥ १२२ ॥
आगे राम, लखन बने पाछे। तापस - बेष बिराजत काछे।
उभय बीच, सिय सोहति कैसे। ब्रह्म - जीव - बिच माया जैसे। (१)

और वृद्ध (जो दर्शन नहीं पा सके, वे) हाथ मल-मलकर पछताए जा रहे थे। इस प्रकार जिधर-जिधर राम जा रहे थे, उधर-उधरके लोग उनके प्रेममें मग्न हो-हो जा रहे थे ॥ १२१ ॥ सूर्यवंश-रूपी-कुमुदको प्रफुल्लित कर देनेवाले चन्द्रमाके समान रामके दर्शन पाकर गाँवँ-गाँवँके सभी लोग इसी प्रकार आनन्दमें मग्न हुए जा रहे थे। इनका (वन जानेका) वृत्तान्त जो भी सुनता था, वही राजा दशरथ और रानी कैकेयीको कोसने लगता था। (१) उनमें कोई-कोई ऐसे भी थे जो कहते थे कि 'राजा बड़े अच्छे हैं कि उन्होंने हमें अपने नेत्रोंका लाभ पानेका यह अवसर तो दिया।' इस प्रकार जितने स्त्री और पुरुष थे सब आपसमें निश्छल और स्नेहभरी प्यारी-प्यारी बातें कहते चले जा रहे थे। (२) (वे कह रहे थे–) 'वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँसे ये चले आ रहे हैं। उसी देश, पर्वत, वन और गाँवँको रचनेमें (ब्रह्माको) सुख मिला है जो रामको अपना सबसे बड़ा स्नेही समझता है।' (३) बटोही (पथिक) बनकर चलते हुए राम और लक्ष्मणके वन जानेकी यह कथा सारे मार्ग और वनमें जा छाई (बच्चा-बच्चा जान गया)। (४) इस प्रकार सूर्यकुलके कमलको खिलानेवाले सूर्य राम उस मार्गके लोगोंको आनन्द देते हुए सीता और लक्ष्मणके साथ वन देखते हुए चले जा रहे थे ॥ १२२ ॥ आगे-आगे राम और पीछे-पीछे लक्ष्मण तपस्वीका वेष बनाए चलते हुए बहुत अच्छे लग रहे थे और दोनोंके बीच सीता ऐसी शोभा दे रही थीं जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया (सजधजके साथ) चली जा रही हो। (१) उस समयकी उनकी जो

१२३४-३५ पश्चात्तापं प्रकुर्वन्ति वृद्धा बालास्तथाबला:। यत्रैव याति श्रीराम: प्रेमवश्या भवंति च ॥महारा०
१२३६-३७ विलोक्य भानुवंशेन्दुं ग्रामे ग्रामे च जायते। आनंदो ये समाचारं किंचिज्जानन्ति ते नृपम् ॥
राज्ञीं चापि विनिन्दन्ति प्रेमपूर्णा: सुनिर्मला:। —वसिष्ठसंहिता।
१२३८-३९ वदन्त्येके महाराजो धन्यो यो न: प्रदत्तवान्। नेत्रलाभं नरा नार्यो वदन्ति सरलां गिरम् ॥ब्रह्मरा०
१२४०-४२ धन्याऽयोध्या दशरथनृप: सा च धन्या च माता। धन्यो वंशो रघुकुलभवो यत्र रामावतार: ॥
धन्या वाणी कविवरमुखे रामनामप्रपन्ना। धन्यो लोक: प्रतिदिनमसौ रामवार्तां शृणोति ॥रामताप०
१२४४-४५ इत्थं श्रीरघुवंशाब्जभास्करो मार्गमानवान्। सुखं प्रयच्छन् पश्यंश्च वनं व्रजति सप्रिय: ॥धर्मसं०
१२४६-४७ अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धर:। आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनो: ॥ अध्या०

बहुरि कहउँ, छबि जसि मन बसई। जनु मधु-मदन-मध्य रति लसई।
उपमा बहुरि कहउँ जिय जोही। जनु बुध-बिधु-बिच रोहिनि सोही। (२)
१२५० प्रभु-पद-रेख बीच-बिच सीता। धरति चरन, मग चलति सभीता।
सीय-राम-पद-अंक बराए। लखन चलहिं मग दाहिन लाए। (३)
राम-लखन-सिय-प्रीति सुहाई। बचन-अगोचर, किमि कहि जाई।
खग-मृग मगन, देखि छबि, होंही। लिये चोरि चित, राम बटोही। (४)
दो०—जिन्ह-जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय-समेत दोउ भाइ।
भव-मग-अगम अनंद तेइ, बिनु श्रम रहे सिराइ॥ १२३॥
अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ। बसहु लखन-सिय-राम बटाऊ।
राम-धाम-पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई। (१)
तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बट, सीतल पानी।

छवि मेरे (तुलसीदासके) मनमें बसी हुई है वह बताऊँ तो (ऐसा लगता था) मानो वसन्त और कामदेवके बीच रति शोभा दे रही हो। फिर अपना मन टटोलकर दूसरी उपमा यह ढूंढकर लाया हूँ मानो बुध और चन्द्रमाके बीच रोहिणी शोभित हो रही हो। (२) रामके पैरोंकी छापके बीच-बीचमें सीता बहुत डरती-डरती पाँव रखती चल रही थीं (कि कहीं पतिके पैरोंकी छापपर मेरा पैर न पड़ जाय और उनका अनादर न हो जाय)। लक्ष्मण भी सीता और रामके पैरोंकी छाप बचाते हुए उन्हें दाहिना देते चले जा रहे थे (क्योंकि अपने बड़ोंको और पूज्योंको सदा अपने दाहिने रखना चाहिए)। (३) जब वाणीसे राम, लक्ष्मण और सीताकी प्रीतिका वर्णन कर सकना संभव ही नहीं है तब वर्णन किया कैसे जा सकता है। (मनुष्य तो मनुष्य,) उनकी छवि देख-देखकर पशु-पक्षी भी उनमें प्रेममें मग्न हुए जा रहे थे क्योंकि बटोही राम उनका भी चित्त चुराए बैठे थे (उनको भी लुभा बैठे थे) (४) जिन-जिन लोगोंने सीताके साथ दोनों बटोही भाइयों (राम-लक्ष्मण)-को देखा, उन्होंने बिना परिश्रमके ही भव (संसार)-का अगम मार्ग सरलतासे पार कर लिया (वे रामके दर्शन मात्रसे संसारके आवागमनके चक्रसे छूटकर मुक्त हो गए)॥ १२३॥ इतना ही नहीं, आज भी जिसके हृदयमें कभी स्वप्नमें भी लक्ष्मण, सीता और राम—ये तीनों बटोहीके रूपमें आ समावें, तो उसे भी रामके धाम पहुँचनेका वह मार्ग मिल जाय, जिसे कोई विरला ही मुनि कभी प्राप्त कर पाता होगा। (१) रामने देखा कि सीता थक चली हैं और पास ही बटका वृक्ष और शीतल

१२४८-४९ वसंतकामयोर्मध्ये शोभते च यथा रतिः। बुधचन्द्रमसोर्मध्ये यथा राजति रोहिणी॥ –ब्रह्म०
१२५०-५१ रामांघ्र्यंकान् विमुच्याथ सीता भीतियुता पथि। धरां स्पृशंती पादाभ्यां वनं चलति लक्ष्मणः॥
सीतारामपदाब्जांकान् मुक्त्वा दक्षिणतः स्वतः। वनं चलति वीरेन्द्रः श्रीरामचरणाश्रितः। –धन्व०सं०
१२५२-५३ रामलक्ष्मणसीतानां प्रीतिः सुन्दरि शोभना। वर्णनीया कथं देवि या सरस्वत्यगोचरा॥
खगा मृगाश्छवि वीक्ष्य भवंति किल मोहिताः। तच्चित्तं चोरितं हेतू रामेण पथि गामिना॥ग.सं
१२५४-५५ श्रीसीतासंयुतौ पांथौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। विलोकितौ प्रियौ द्वौ यैः सार्थकं जन्म तैः कृतम्॥कू.सं
१२५६-५७ अद्यापि यस्य स्वप्नेऽपि वसंति हृदये प्रियाः। सौमित्रिजानकीरामा पथिका लभते तु सः॥
वैकुण्ठधाममार्गं यं कर्हिचिल्लभते मुनिः। —जमदग्निसंहिता
१२५८ रामचंद्रस्तदा सीतां विज्ञाय श्रमितां वटे। शीतलं सलिलं वीक्ष्य प्रचकार मुदा स्थितिम्॥ नंदि०सं०

तहँ बसि, कंद - मूल - फल खाई। प्रात नहाइ, चले रघुराई। (२)
१२६० देखत बन, सर, सैल सुहाए। बालमीकि - आश्रम प्रभु आए।
राम दीख मुनि - बास सुहावन। सुंदर गिरि, कानन, जल पावन। (३)
सरनि सरोज, बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस - भूले।
खग - मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर, मुदित मन चरहीं। (४)
दो०—सुचि, सुंदर आश्रम निरखि, हरषे राजिव - नैन।
मुनि[1] सुनि रघुबर-आगमन, आगे आयउ लैन ॥ १२४ ॥
मुनि - कहँ राम दंडवत कीन्हाँ। आसिरबाद बिप्र - बर दीन्हाँ।
देखि राम - छबि, नयन जुड़ाने। करि सनमान, आश्रमहिं आने। (१)
मुनिवर, अतिथि प्रान - प्रिय पाए। कंद - मूल - फल मधुर मँगाए।

जलकी सुविधा भी है तो वे रातको वहीं ठहर गए और कंद-मूल-फल खाकर सो रहे। सवेरा होते ही स्नान आदि करके वे फिर आगे बढ़ चले। (२) सुन्दर वन, सरोवर और पर्वत देखते हुए प्रभु (राम) चलते-चलते वाल्मीकि मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर रामने मुनिका वह सुन्दर आश्रम जा देखा जहाँ (सुन्दर हरियालीसे लदा) पर्वत, वन और पवित्र जल सब कुछ विद्यमान था (३) वहाँके सरोवरोंमें कमल खिले हुए थे, वनोंके वृक्ष फलोंसे लदे हुए थे और भौंरे मस्त होकर मँडराते हुए गूँजे जा रहे थे। रंग-बिरंगे अनेक पशु-पक्षी वहाँ चलते-उड़ते हुए मधुर कलरव कर रहे थे और आपसका वैर भूलकर प्रसन्न होकर कुलाँचे भर रहे थे। (४) मुनिका पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर कमलके समान लोचनोंवाले-राम प्रसन्न हो उठे। मुनिने ज्यों ही सुना कि राम आए हैं तो वे झट उनको लिवा ले आनेके लिये आगे बढ़ आए ॥ १२४ ॥ रामने मुनिको देखते ही झुककर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और विप्रवर वाल्मीकिने भी (उन्हें जी भरकर) आशीर्वाद दे डाला। रामकी छवि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गए और फिर वे अत्यन्त सम्मानपूर्वक उन्हें आश्रममें लिवा लाए। (१) मुनियोंमें श्रेष्ठ (वाल्मीकि)-को तो ऐसा लग रहा था मानो प्राणसे भी प्यारे अतिथि आ मिले हों। उन (राम-लक्ष्मण-सीता)-के लिये उन्होंने मीठे-मीठे कंद, मूल और

१. मुनि रघुवर आगमन मुनि।

१२५९ कंदमूलफलं भुक्त्वा प्रातः स्नानं विधाय च। तस्माद् देशान्महातेजा राघवः प्रस्थितो वनम्॥नंदि०सं०
१२६० सरांसि विपिने शैलान् पश्यन् रघुकुलोद्भवः। श्रीमद्ब्रह्मर्षिवाल्मीकेरागतश्चाश्रमांतिकम्॥विष्णु.सं०
१२६१-६३ रामो ददर्श विप्रर्षेराश्रमं सुमनोहरम्। तदीयं काननं शैलं जलमासीच्च पावनम्॥
तडागेषु सरोजानि विपिने तरवस्तथा। पुष्पिता मंजु गुञ्जन्ति भ्रमरा रसलंपटाः॥
कोलाहलं प्रकुर्वन्ति विपुलाश्च खगा मृगाः। चरंति त्यक्तवैराश्च प्रसन्नमनसस्तथा॥ सन०सं०
१२६४-६५ राजीवलोचनो हृष्टो दृष्ट्वा सुन्दरमाश्रमम्। राघवागमनं श्रुत्वा मुनिरग्रे समागतः॥ भ० सं०
१२६६-६७ प्रणनाम मुनिं रामस्चाशीर्वादं ददौ मुनिः। शीतले नयने जाते दृष्ट्वा श्रीराघवच्छविम्॥
संमानपूर्वकं रामं चानयामास चाश्रमम्। —रुद्रसंहिता
१२६८-६९ दृष्ट्वा रामं रमानाथं वाल्मीकिर्लोकसुन्दरम्। जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमंडितम्॥
फलमूलैः स मधुरैर्भोजयित्वा च लालितः। —अध्यात्मरामायण

सिय, सौमित्रि, राम, फल खाए। तब मुनि, आसन दिये सुहाये। (२)
१२७० बालमीकि - मन आनँद भारी। मंगल - मूरति नयन निहारी।
तब कर - कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन - सुखदाई। (३)
तुम त्रिकाल - दरसी मुनि - नाथा। बिस्व बदर - जिमि तुम्हरे हाथा।
अस कहि, प्रभु सब कथा बखानी। जेहि - जेहि भाँति दीन्ह बन रानी। (४)

दो०—तात-बचन, पुनि मातु-हित, भाइ भरत - अस राउ।
मो - कहँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुन्य - प्रभाउ ॥ १२५ ॥

देखि पाँयँ मुनिराय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे।
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेग न पावइ कोई। (१)
मुनि - तापस जिन्ह-तें दुख लहहीं। ते नरेस बिनु - पावक दहहीं।
मंगल - मूल बिप्र - परितोषू। दहइ कोटि कुल, भूसुर - रोषू। (२)

फल मँगवा ला धरे। सीता, लक्ष्मण और राम जब फलाहार कर चुके, तब मुनिने (उनके विश्रामके लिये) अच्छा-सा स्थान उन्हें ले जा दिखाया। (२) मंगलकी मूर्ति रामको अपने नेत्रों-भर देखकर वाल्मीकि मुनिके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ जा रहा था। तब राम हाथ जोड़कर मधुर वाणीमें पूछ बैठे—(३) 'मुनि-नाथ ! आप तो त्रिकालदर्शी हैं (सब जानते ही हैं कि मुझे यहाँ क्यों आना पड़ा, भूत, वर्तमान, भविष्यका सारा भेद जानते हैं)। यह सारा संसार तो हाथपर रक्खे हुए बेरके फलके समान आपके लिये सर्वज्ञात है (संसारका कोई भेद ऐसा नहीं जो आपसे छिपा हो)। यह कहकर प्रभु रामने वह सारी कथा उन्हें कह सुनाई कि किस प्रकार रानी कैकेयीने उन्हें वनवास दिया है। (४) (वे कहने लगे—) 'प्रभो ! एक तो पिताके वचनका पालन करना, दूसरे, माता कैकेयीकी इच्छा पूरी करना, तीसरे, भाई भरतका राजा होना, और चौथे मुझे आपका दर्शन प्राप्त होना—ये सब मेरे पुण्योंका ही प्रभाव तो है ॥ १२५ ॥ मुनिराज ! आपके चरणोंका दर्शन पाकर आज हमारे सारे पुण्य सफल हो गये। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो (वहीं मैं जाकर रहने लगूँ) जिससे किसी मुनिकी शान्तिमें बाधा न पड़े, (१) क्योंकि मुनियों और तपस्वियोंको जो दुःख देते हैं, वे राजा लोग बिना अग्निके ही जलकर भस्म हो मिटते हैं। ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर लेनेसे सब मङ्गल ही मङ्गल होता है और यदि कहीं ब्राह्मण बिगड़ बैठें तो उनका क्रोध करोड़ों कुलोंको भस्म कर डाल सकता है। (२) यह विचारकर, कृपालु !

१२७०-७१ राममूर्तिं शुभां वीक्ष्य वाल्मीकिर्हृदि हर्षितः।रामः प्राहाथ वाल्मीकिं श्रवणानन्ददं वचः॥पुल०रा०
१२७२ करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः। पश्यंति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी॥वास.
१२७३ राघवः प्रांजलिः प्राह वाल्मीकिं विनयान्वितः। पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दंडकानागता वयम् ॥
भवंतो यदि जानन्ति किं वक्ष्यामोऽत्र कारणम्। —अध्यात्मरामायण
१२७४-७५ पितुर्वचो हितं मातू राजा च भरतोऽनुजः। दर्शनं श्रीमतां प्राप्तं मया स्वसुकृतोदयात् ॥इन्द्रपु०
१२७६-७७ ब्रह्मर्षे त्वत्पदद्वन्द्वं विलोक्य सुकृतं मम। सकलं सफलं जातं निदेशो यत्र सांप्रतम् ॥
भवेन्मुनिवरः कश्चिन्नोद्वेगं प्राप्नुयात् तव। —गौतमसंहिता
१२७८-७९ धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णवे। तरंत्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतंत्यधः ॥
आप्तद्वेषाद् भवेन्मृत्युः परद्वेषाद् धनक्षयः। राजद्वेषाद् भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात् कुलक्षयः ॥चा.नी.

१२८० अस जिय जानि, कहिय सोइ ठाउँ। सिय - सौमित्रि-सहित जहँ जाऊँ।
तहँ रचि रुचिर परन - तृन - साला। बास करउँ कछु काल कृपाला। (३)
सहज, सरल, सुनि रघुबर - बानी। साधु - साधु बोले मुनि ज्ञानी।
कस न कहहु अस रघुकुल - केतू। तुम पालक संतत श्रुति - सेतू। (४)
छंद- श्रुति - सेतु - पालक राम, तुम जगदीस, माया जानकी।
जो सृजति जग, पालति, हरति, रुख पाइ कृपानिधान - की।
जो सहस-सीस, अहीस, महिधर, लखन सचराचर - धनी।
सुर-काज, धरि नर-राज-तन, चले दलन खल-निसिचर-अनी॥ [५]
सो०—राम सरूप तुम्हार, बचन-अगोचर, बुद्धि-पर।
अबिगत, अकथ, अपार, नेति-नेति नित निगम कह॥ १२६॥
१२९० जग - पेखन तुम देखनिहारे। बिधि - हरि - संभु - नचावनिहारे।
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुमहिं को जाननिहारा। (१)

आप मुझे कोई ऐसा स्थान बतला दीजिए जहाँ मैं घास-पातकी सुन्दर कुटिया बनाकर सीता और लक्ष्मणके साथ कुछ दिनों जा रह सकूँ।' (३) रामकी यह सहज और निश्छल बात सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले—'धन्य है राम ! धन्य है ! रघुवंशके ध्वजारूप (रघुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले) राम ! भला ऐसी बात आप न कहेंगे तो कौन कहेगा ? क्योंकि आप तो सदासे ही वेदकी मर्यादाकी रक्षा करते चले आए हैं। (४) देखो राम ! आप तो वेदकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले जगदीश्वर हैं और जानकी आपकी माया हैं जो कृपाके निधान (आप)-का संकेत पाकर जगत्की रचना, उसका पालन और उसका संहार करती रहती हैं। सहस्र फणोंवाले सर्पोंके स्वामी और पृथ्वीको अपने सिरपर टिकाए रखनेवाले चराचरके स्वामी शेष ही तो ये लक्ष्मण हैं। देवताओंका कार्य (हित) करनेके लिये आप यह राजकुमारका-सा शरीर बनाकर दुष्ट राक्षसोंकी सेनाओंका नाश करने निकले हैं। [५] आपका स्वरूप न तो वाणीसे ही बताया जा सकता न बुद्धिसे ही समझा जा सकता है। आप अव्यक्त (कभी वास्तविक रूपमें प्रकट नहीं होते) हैं, अकथ हैं (आपका वर्णन नहीं किया जा सकता) और अपार हैं (आपको कोई समझ नहीं पा सकता)। वेद भी आपको नेति' 'नेति' (इतना ही नहीं है) कहकर चुप हो रहते हैं॥ १२६॥ तो राम ! इस दिखाई पड़नेवाले जगत्की (सारी गतिविधि) देखनेवाला (उसका संचालन करनेवाला) यदि कोई है तो एक आप ही हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शंभुको भी बैठे नचाया करते हैं (उनसे जो चाहें करा लेते हैं)। जब वे-तक आपका मर्म नहीं जान पाए तब भला और दूसरा कोई कैसे जान सकता है ? (१) आपको वही जान

१२८०-८१ यत्र मे सुखवासाय भवेत् स्थानं वदस्व तत्। सीतया सहितः कालं किंचित् तत्र नयाम्यहम्॥
१२८२-८३ इत्युक्तो राघवेणासौ मुनिः सस्मितमब्रवीत्। त्वमेव सर्वभूतानां निवासस्थानमुत्तमम्॥
तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि ह। —अध्यात्मरामायण
१२८४-८७ लोकेशः श्रुतिसेतुपालक हरे माया च सीता सती
उत्पत्तिस्थितिसंहृतीश्च जगतो या ते करोतीच्छया।
यश्च स्थावरजंगमप्रभुरयं शेषोऽनुजस्ते प्रियः
कार्यार्थं च दिवौकसां नरवरा भूत्वाऽऽगता काननम्॥ —हनुमत्संहिता
१२८८-८९ न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो
यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद् विदितादथो अविदितादधि॥ —केनोपनिषद्
१२९०-९१ त्वं द्रष्टासि जगद् दृश्यं नटोऽसि रघुनन्दन। भेदं ते नैव जानन्ति ब्रह्मविष्णुशिवा अपि॥ शिवसं०

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमइ होइ जाई।
तुम्हरिहि कृपा तुमहिं रघुनंदन। जानहिं भगत, भगत-उर-चंदन। (२)
चिदानंद - मय देह तुम्हारी। विगत - विकार, जान अधिकारी।
नर-तनु धरेहु संत-सुर-काजा। कहहु, करहु, जस प्राकृत राजा। (३)
राम! देखि-सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं, बुध होहिं सुखारे।
तुम जो कहहु, करहु, सब साँचा। जस काछिय, तस चाहिय नाचा। (४)
दो०—पूछेहु मोहिं कि रहौं कहँ, मैं पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु, तहँ देहु कहि, तुमहिं दिखावउँ ठाउँ॥ १२७॥
१३०० सुनि मुनि-बचन प्रेम-रस-साने। सकुचि, राम मन-महँ मुसुकाने।
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिय-रस-बोरी। (१)

सकता है, जिसे आप जाननेकी शक्ति दे दें। पर (कठिनाई यह है कि) जब वह आपको जान लेता है तब वह आपका ही रूप बन बैठता है (वह स्वयं ब्रह्म हो जाता है इसलिये बता नहीं पाता, आपमें ही समा बैठता है)। रघुनन्दन राम! भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले चन्दन! जब आपकी कृपा होती है तभी भक्त आपको ठीक-ठीक जान पाते हैं। (२) आपकी देह चिदानन्दमय है (नित्य अस्तित्व, ज्ञान और आनन्दसे भरी हुई है)। उसमें कभी कोई विकार (उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और नाश आदि) आ ही नहीं सकता। किन्तु यह रहस्य भी वे ही जान पाते हैं जो अधिकारी (ज्ञानी) होते हैं। आप तो देवता और सन्तोंके कार्य (हित)-के लिये ही यह मनुष्यका चोला धारण किए बैठे हैं और साधारण राजाओंके समान आप बात-चीत और व्यवहार किए जा रहे हैं। (३) राम! आपका चरित्र देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोहमें पड़ जाते हैं (समझते हैं कि आप साधारण राजकुमार हैं), पर जो ज्ञानी हैं, वे (आपको देखते ही) सुखी हो उठते हैं (कि हमें ब्रह्मका साक्षात्कार हो गया)। आप इस समय जो कुछ कह और कर रहे हैं वह ठीक ही है क्योंकि जैसा वेष बनाया जाय उसीके अनुसार नाचना (कार्य करना) भी चाहिए। (आपने मनुष्यका रूप बनाया है तो मनुष्योंके समान कार्य और व्यवहार करना ही चाहिए)। (४) (बताइए)! आप मुझसे पूछ रहे हैं कि कहाँ रहा जाय? पर मैं तो आपसे ही यह पूछते झिझक रहा हूँ कि पहले वह स्थान मुझे बतला दीजिए, जहाँ आप न हों (ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ आप न हों) (४) तब मैं बताऊँ कि आप कहाँ जाकर रहें॥ १२७॥ मुनिके ये प्रेम-रससे भरे हुए वचन सुनकर राम सकुचाकर मन ही मन मुसकरा उठे। फिर वाल्मीकिने हँसकर अपनी अमृत-भरी मधुर वाणीसे कहा—(१) 'सुनो राम! (जब आप पूछ ही रहे हैं तो) मैं वे सब स्थान

१२९२-९३ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नाम रूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥ —मुण्डकोपनिषद्
१२९४-९५ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥केनोपनि०
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ गीता
१२९६-९७ आकर्ण्य चरितं गूढं रामस्य मुनिपंडिताः। वैराग्यं प्राप्नुवंत्यज्ञा मुह्यन्ति च गिरीन्द्रजे॥शिवसं०
१२९८-९९ त्वमेव सर्वलोकानां निवासस्थानमुत्तमम्। तवापि सर्वभूतानि निवाससदनानि हि॥अध्या०
१३००-१ प्रेमपूर्णवचः श्रुत्वा वाल्मीकेः रघुनन्दनः। हृष्टो विहस्य वाल्मीकिः प्राह वाणीं सुधामयीम्॥सू०सं०

सुनहु राम ! अव कहहुँ निकेता। जहाँ वसहु सिय-लखन-समेता।
जिन्हके श्रवन समुद्र-समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना। (२)
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम-कहँ गृह रूरे।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस-जलधर अभिलाखे। (३)
निदरहिं सरित, सिंधु, सर भारी। रूप-बिंदु जल होहिं सुखारी।
तिन्हके हृदय-सदन सुख-दायक। वसहु बंधु-सिय-सह रघुनायक। (४)
दो०—जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकता-हल गुन-गन चुनइ, राम ! वसहु हिय तासु ॥ १२८ ॥
१३१० प्रभु-प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा।
तुमहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु-प्रसाद पट-भूषन धरहीं। (१)
सीस नवहिं सुर-गुरु-द्विज देखी। प्रीति-सहित करि विनय बिसेखी।
कर नित करहिं राम-पद-पूजा। राम-भरोस हृदय नहिं दूजा। (२)

वताए डालता हूँ जहाँ सीता और लक्ष्मणको लेकर आप प्रेमसे निवास कर सकते हैं। जिनके कान ऐसे समुद्रके समान हैं जिनमें आपकी कथाओंकी अनेक सुन्दर नदियाँ आ-आकर पड़ती रहती हैं (२) और जिनके निरन्तर आ-कर पड़ते रहनेपर भी कानका समुद्र कभी पूरा भर नहीं पाता, उनके हृदय ही आपके लिये सुंदर निवास-स्थान हैं (आप ऐसे लोगोंके हृदयमें जा बसिए जो निरन्तर आपकी कथाएँ सुनते रहते हैं)। जिन्होंने अपने नेत्रोंको ऐसा चातक (पपीहा) बना रक्खा है जो आपके दर्शनके मेघके लिये सदा लालायित रहते हुए (३) बड़ी-बड़ी नदियों, समुद्रों औरझी लोंको भी तुच्छ समझते हैं और आपके सौन्दर्यकी झलककी एक बूँद पाकर ही मगन हो उठते हैं उनके ही हृदयके सुखदायी भवनमें, राम ! आप अपने भाई (लक्ष्मण) और सीताके साथ सुखसे जा बसिए (जो आपके दर्शनके लिये लालायित रहते और आपकी झाँकी पाकर तृप्त हुए रहते हैं उनके हृदयमें जा रहिए)। (४) आपके यशके निर्मल मानसरोवरमें जिनकी जीभ सदा हंसिनी बनी आपके गुणोंके मोती चुगती रहती है (जो सदा आपके यशका वर्णन करते रहते हैं), बस राम ! आप उन्हींके हृदयमें जा बसिए ॥१२८॥ जो आपके पवित्र और सुगन्धित सुन्दर प्रसाद (तुलसी, पुष्प आदि)-को आदर-पूर्वक नाकसे सूँघते रहते हैं, आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके उतारे हुए वस्त्र और आभूषण प्रसादके रूपमें धारण करते रहते हैं, (१) देवता, गुरु और ब्राह्मणको देखते ही जो प्रेम और नम्रताके साथ सिर नवाते हैं, जो अपने हाथसे रामके चरणोंकी नित्य पूजा किया करते हैं, जिनके हृदयमें रामको छोड़कर और किसी दूसरेका भरोसा नहीं है, जो पैरोंसे चलकर रामके तीर्थ (अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी और रामेश्वर आदि) जा पहुँचते हैं, बस राम ! आप उनके हृदयमें प्रेमसे जा निवास

१३०१-४ तद् वक्ष्यामि रघुश्रेष्ठ यत् ते नियतमन्दिरम्। शान्तानां समदृष्टीनामद्वेष्टॄणां च जंतुषु ॥
त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽधिमन्दिरम्। —अध्यात्मरामायण

१३०५-७ धर्माधर्मान् परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम्। सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुखमंदिरम् ॥अ०रा०

१३०८-९ श्रीरामचन्द्र विमलं यशस्ते मानसं सरः। जिह्वा यस्य च हंसीव मुक्तापंक्तीर्गुणावलीः।
ज्ञात्वा भक्षति राम त्वं तस्यैव हृदये वस। —जैमिनिसंहिता

१३१०-१३ प्रभोः प्रसादं जिघ्रन्ति ये ये दधति भूषणम्। वस्त्रं भक्षन्ति चान्नानि वन्दन्ते वीक्ष्य भूसुरान् ॥
कराभ्यां रामपूजां च कुर्वन्ति शुभमानसाः। —लोमशसंहिता

चरन, राम - तीरथ चलि जाहीं। राम ! बसहु तिन्ह के मन-माहीं।
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित - परिवारा। (३)
तरपन - होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना।
तुम - तें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाय सेवहिं सनमानी। (४)
दो०—सब करि, माँगहिं एक फल , राम - चरन - रति होउ।
तिन्हके मन - मंदिर बसहु , सिय - रघुनंदन दोउ ॥ १२९ ॥
१३२० काम, कोह, मद, मान, न मोहा। लोभ, न छोभ, न राग, न द्रोहा।
जिन्हके कपट, दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय बसहु रघुराया। (१)
सबके प्रिय, सबके हित-कारी। दुख - सुख सरिस प्रसंसा - गारी।
कहहिं सत्य, प्रिय बचन बिचारी। जागत, सोवत, सरन तुम्हारी। (२)
तुमहिं छाँड़ि, गति दूसरि नाहीं। राम ! बसहु तिनके मन - माहीं।
जननी - सम जानहिं पर - नारी। धन पराव, बिष - तें बिष भारी। (३)
जे हरषहिं पर - संपति देखी। दुखित होहिं पर - बिपति बिसेखी।

कीजिए। जो नित्य आपका मन्त्रराज (राम नाम) जपा करते हैं और परिवार-सहित आपकी पूजा किया करते हैं, (३) जो अनेक प्रकारसे तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दान देते हैं; जो आपसे भी अधिक गुरुको हृदयमें विराजमान जानकर सब प्रकारसे सम्मान-पूर्वक उनकी सेवा किया करते हैं, (४) और जो, इतने सब कर्म करके भी सबका एक ही फल माँगते हैं कि रामके चरणोंमें हमारी प्रीति हो, उनके मन-रूपी मंदिरमें हे राम ! आप दोनों भाई, सीताके साथ जाकर निवास कीजिए ॥ १२९ ॥ हे रघुनाथ ! जिनके मनमें काम क्रोध, मद, अभिमान और मोहका नाम नहीं है और जिनके मनमें न लोभ है, न क्षोभ (व्याकुलता, व्यग्रता) है, न राग है, न द्वेष है, न कपट है, न दम्भ है और न माया ही है, आप उनके हृदयमें आनन्दसे जाकर निवास कीजिए। (१) राम ! कहीं बसना ही है तो आप उनके मनमें जा बसिए जो लोग सबको प्रिय लगते हैं और सबका हित करते रहते हैं, जो दुःख और सुख तथा प्रशंसा और गाली सबको समान समझते हैं, जो सदा बहुत सोच-विचारकर प्रिय और सत्य वचन ही बोलते हैं, जो जागते-सोते आपको ही शरण देनेवाला मानते, (२) आपको छोड़कर जिनका कोई दूसरा कहीं सहारा नहीं है, जो साधु पुरुष पराई स्त्रीको माताके समान मानते हैं, दूसरेके धनको विषसे भी अधिक विषैला समझते हैं, (३) जो दूसरेकी सम्पत्ति (उन्नति) देखकर प्रसन्न होते और दूसरेकी विपत्ति (कष्ट) देखकर बहुत दुखी होते हैं और जो आपको प्राणोंके समान प्यार करते हैं उनके

१३१४ पादाभ्यां रामतीर्थानि यान्ति तेषां मनो गृहम् ॥ —लोमशसंहिता

१३१५-१९ ये जपंति महामंत्रं सकुटुम्बं यजन्ति च। कुर्वन्ति तर्पणं होमं ब्राह्मणान् भोजयन्ति च ॥
अर्चन्ति स्वगुरुं प्रीत्या श्रीरामांघ्रिरतिं सदा। प्रार्थयंते वस स्वांते तेषां सीतापते गृहे ॥शिवसं०

१३२०-२१ कामं क्रोधं मदं मानं लोभं क्षोभं विहाय च। रागं द्रोहं छलं दंभं मायां त्वां भजतां सदा ॥
हृदयं मन्दिरं तेऽत्र वस सीतापते हरे। —ब्रह्मरामायण

१३२२-२४ सर्वप्रियाः सुखे दुःखे समाः सर्वहितैषिणः। सत्यां ये भारतीं नित्यं प्रियां ध्यात्वा वदन्ति च ॥
स्वापे जागरणे चापि भवन्तं शरणं गताः। ये चानन्या वस स्वान्ते तेषां त्वं रघुपुंगव ॥भरतसं०

जिन्हहिं राम ! तुम प्रान - पियारे । तिन्हके मन, सुभ सदन तुम्हारे । (४)
दो०—स्वामि, सखा, पितु, मातु, गुरु, जिनके सब तुम तात ।
मन - मंदिर तिन्हके बसहु, सीय-सहित दोउ भ्रात ॥ १३० ॥
१३३० अवगुन तजि, सबके गुन गहहीं । बिप्र - धेनु - हित संकट सहहीं ।
नीति-निपुन जिन्ह - कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह - कर मन नीका । (१)
गुन तुम्हार, समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ।
राम - भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित - बैदेही । (२)
जाति, पाँति, धन, धरम, बड़ाई । प्रिय परिवार, सदन सुखदाई ।
सब तजि, तुमहिं रहइ उर लाई । तेहि - के हृदय रहहु रघुराई । (३)
सरग, नरक, अपबरग समाना । जहँ - तहँ देख धरे धनु - बाना ।
करम - बचन - मन राउर चेरा । राम ! करहु तेहि - के उर डेरा । (४)

मन ही आपके रहने-योग्य सुन्दर भवन हैं (उनके मनमें निवास करनेमें आपको आनन्द मिलेगा । (४) हे राम ! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मनके मन्दिरमें सीताके साथ आप दोनों भाई जाकर भली-भाँति निवास कर सकते हैं ॥ १३० ॥ जो किसीके भी अवगुणों-पर ध्यान न देते हों, सबके गुण ही गुण देखते-परखते हों । जो ब्राह्मण और गौकी रक्षा और सेवाके लिये सब प्रकारके संकट सहते हों, जो नीतिके अनुसार कार्य करनेमें संसारमें प्रसिद्ध हों उनके सुन्दर मनमें ही आप चाहें तो भली प्रकार जाकर बस सकते हैं । (१) जो आपके गुणों और अपने दोषोंको भली प्रकार जानता-समझता हो, जिसे सब प्रकारसे एक मात्र आपका ही भरोसा हो, जिसे रामके भक्त सदा प्रिय लगते हों, उसके हृदयमें आप जानकीके साथ जाकर आनन्दसे निवास कर सकते हैं । (२) जाति, पांति, धन, धर्म, लोक-यश, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर सबको छोड़-छाड़कर जो केवल आपको ही हृदयमें बसाए बैठा रहता हो, रघुनाथ ! आप उसके हृदयमें जाकर रह सकते हैं । (३) स्वर्ग, नरक और मोक्षको जो समान (व्यर्थ) समझता हो, जो यही देखता हो कि चारों ओर आप ही धनुष-बाण लिए खड़े हैं, जो कर्म, वचन और मनसे केवल आपका ही दास हो, उसके हृदयमें राम ! आप जाकर डेरा जमा बैठिए । (४) जिसके मनमें कभी किसी भी वस्तुकी चाह न रहती हो

१३२५-२७ निरहंकारिण: शांता ये रागद्वेषवर्जिता: । समलोष्ठाश्मकनकास्तेषां ते हृदयं गृहम् ॥ –अध्या०
१३२८-२९ त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव येषां हृदि त्वं वस राम तेषाम् ॥ —गर्गसंहिता
१३३०-३१ दुर्गुणान् सकलान् त्यक्त्वा गुणान् गृह्णन्ति ये सदा । विप्रगोरक्षणार्थे च सहन्ते कष्टमेव ये ॥
न्यायप्रवीणा: ख्यातास्ते राम तेषां मनो गृहम् । —कात्यायनसंहिता
१३३२-३३ भवद्गुणान् निजान् दोषान् मन्यंते बहुधा च ये।त्वामाश्रिता: प्रियास्तेषां राम त्वं हृदये वस।।अद्.रा.
१३३३-३५ जाति पंक्ति धनं धर्मं प्रियं परिजनं तथा । महत्त्वं सदनं सर्वं त्यक्त्वा ध्यायन्ति ये सदा ॥
राम त्वां सीतया युक्तं तेषां त्वं हृदये वस । —भरद्वाजसंहिता
१३३६-३७ स्वर्गापवर्गनरकान् मन्यन्ते ये समान् जना: । त्वां सर्वत्रैव पश्यंति धनुर्बाणधरं सदा ॥
कर्म्मणा मनसा वाचा दासास्ते रघुनन्दन । तेषां त्वं हृदये वासं कुरु सीतापते हरे ॥ अग०सं०

दो०—जाहि, न चाहिय कबहुँ कछु , तुम - सन सहज सनेह ।
बसहु निरंतर तासु मन , सो राउर निज गेह ॥ १३१ ॥
१३४० ऐहि बिधि मुनिवर भवन देखाए । वचन सप्रेम राम - मन भाए ।
कह मुनि, सुनहु भानु - कुल - नायक । आश्रम कहउँ समय - सुखदायक । (१)
चित्रकूट - गिरि करहु निवासू । तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू ।
सैल सुहावन, कानन चारू । करि - केहरि - मृग - बिहँग - विहारू । (२)
नदी पुनीत, पुरान - बखानी । अत्रि - प्रिया निज तप-बल आनी ।
सुरसरि - धार, नाउँ मंदाकिनि । जो सब पातक - पोतक - डाकिनि । (३)
अत्रि - आदि मुनिवर बहु बसहीं । करहिं जोग, जप, तप तन कसहीं ।
चलहु, सफल श्रम सब - कर करहू । राम ! देहु गौरव गिरिवरहू । (४)

और जो केवल आपसे ही स्वाभाविक स्नेह करता हो, आप जाकर उसके मनमें निरन्तर निवास करते रहिए क्योंकि वह तो आपका अपना ही घर है' ॥ १३१ ॥ इस प्रकार मुनिवर वाल्मीकिने रामको वे सब स्थान बता डाले (जहाँ उन्हें जा बसना चाहिए) । उनके प्रेमभरे वचन रामको बड़े अच्छे लगे । फिर मुनिने कहा—'सूर्यकुलके स्वामी ! सुनिए, अब मैं आपको सब समयके अनुकूल सुख-सुविधासे भरा आश्रम बतलाए देता हूँ । (१) वह है चित्रकूट, जहाँ जाकर आप निश्चिन्त होकर निवास कर सकते हैं । वहाँ आपको सारी सुविधाएँ अपने आप प्राप्त हो जायँगी । एक तो वह पर्वत स्वयं ही बहुत सुहावना है फिर उसके साथ ऐसा सुन्दर वन लगा फैला है जिसमें निरन्तर अनेक हाथी, सिंह, हिरन और पक्षी विचरते ही रहते हैं । (२) वहीं (मन्दाकिनी नामकी) वह पवित्र नदी भी बहती है जिसकी पुराणोंमें बड़ी प्रशंसा की गई है और जिसे अत्रि मुनिकी पत्नी अनसूया अपने तपोबलसे पृथ्वीपर ले आई हैं । इस मंदाकिनी नदीको गंगाकी ही धारा समझिए । इस नदीको सब पापरूपी बालकोंको खा डालनेवाली डाकिनी ही समझिए । (३) वहाँ अत्रि आदि बहुतसे बड़े-बड़े मुनि भी बसे हुए हैं जो निरन्तर योग, जप और तपके द्वारा अपने शरीर साधते रहते हैं । राम ! आप वहाँ पहुँचकर जा रहिए और सबका परिश्रम (तप) सफल कर डालिए (अपना दर्शन देकर तपस्वियोंकी तपस्या सफल कर दीजिए) । साथ ही पर्वतराज चित्रकूटको भी यह गौरव प्रदान कर डालिए (कि राम यहाँ आकर रहे थे) । (४) (यह कहकर)

१३३८-३९ निष्किञ्चनो यः शान्तश्च त्वत्प्रियो वस संततम् । स्वमन्दिरमसौ राम त्वं तस्य हृदये प्रभो ॥शिवसं०
१३४० वाल्मीकिर्भवनानीत्थं दर्शयामास राघवम् । श्रुत्वा रामोऽतितुष्टोऽभूद्वचनं प्रेमपूरितम् ॥आन०रा०
१३४१-४२ कालानुकूलं शुभमाश्रमं ते वदामि मार्तण्डकुलप्रदीप ।
श्रीचित्रकूटे वस पर्वतेन्द्रे सुखावहे प्राह मुनिर्महात्मा ॥ —अगस्त्यरामायण
१३४३ तत्रत्यश्चाचलो रम्यः काननं च मनोहरम् । हस्तिसिंहमृगाद्याश्च विहरन्ति विहंगमाः ।वशि०रा०
१३४४-४५ तपोबलान्निजादत्रिप्रियानीता श्रुतिश्रुता । मन्दाकिनी नदी तत्र पापपोतकडाकिनी ॥ वेव०सं०
१३४६-४७ अत्र्यादयो मुनिश्रेष्ठाः सन्ति योगं जपं तथा । कुर्वन्ति तपसा देहं क्षीणं चापि निरंतरम् ॥
व्रज राघव सर्वेषां श्रमं च सफलं कुरु । गौरवं गिरिराजाय वितर त्वं च सांप्रतम् ॥—प्रा०न०रा०

दो०—चित्रकूट - महिमा अमित , कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाये सरित - बर , सिय - समेत दोउ भाइ ॥ १३२ ॥

१३५० रघुबर कहेउ, लखन ! भल घाटू । करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ।
लखन दीख पय उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष-जिमि नारा । (१)
नदी पनच, सर सम - दम - दाना । सकल - कलुष-कलि, साउज नाना ।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात, मार मुठभेरी । (२)
अस कहि, लखन ठाँवँ देखरावा । थल बिलोकि, रघुबर सुख पावा ।
रमेउ राम - मन, देवन जाना । चले सहित - सुर - थपति - प्रधाना । (३)
कोल - किरात - बेष सब आए । रचे परन - तृन - सदन सुहाए ।
बरनि न जाहिं, मंजु दुइ साला । एक ललित लघु, एक बिसाला । (४)

महामुनि वाल्मीकिने चित्रकूटकी महिमा उन्हें विस्तारसे कह सुनाई ।

वहाँसे चलकर सीताके साथ दोनों भाइयोंने उस सुहावनी नदी मंदाकिनीमें उतरकर स्नान जा किया ॥ १३२ ॥ (वहाँ स्नान करके) रामने (लक्ष्मणसे) कहा—'देखो लक्ष्मण ! यह घाट तो बड़ा अच्छा जँच रहा है । अब यहीं कहीं रहनेका प्रबन्ध कर डालो । लक्ष्मणने देखा कि उस पयस्विनी (नदी) का उत्तरवाला तट तीन ओरसे धनुष-जैसे घुमावदार नालेसे घिरा हुआ है । (१) मंदाकिनी नदी ही इस धनुष-जैसे नालेकी प्रत्यञ्चा है, शम, दम और दान ही इसके बाण हैं, कलियुगके समस्त पाप ही आखेटके पशु हैं (यहाँ सारे पाप नष्ट कर दिए जाते हैं) । चित्रकूट ही निश्चल शिकारी है, जिसका निशाना (लक्ष्य) कभी चूकता नहीं और जो निकटसे ही आखेट (पापों)-को बेध डालता है (जो चित्रकूटपर रहता और मंदाकिनीमें स्नान करता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं) । (२) यह कहकर लक्ष्मणने वह स्थान (रामको) भी ले जा दिखलाया । वह स्थान रामको भी बहुत जँचा । जब देवताओंने देखा कि रामका मन इस स्थानमें रम गया है तो वे विश्वकर्माको मिस्त्रियोंका सरदार बनाकर चित्रकूटके लिये चल पड़े । (३) सब देवता भी कोल-किरातका वेष बना-बनाकर वहाँ जा पहुँचे और सबने मिलकर घास-पातकी ऐसी दो सुन्दर कुटिएँ बना खड़ी कीं जिनकी सुन्दरताका वर्णन कोई कर नहीं पा सकता । उनमेंसे एक सुन्दर-सी छोटी कुटिया लक्ष्मणके लिये थी और दूसरी सुन्दर-सी बड़ी कुटिया (राम और सीताके लिये) थी । (४) लक्ष्मण और जानकीके साथ

१३४८-४९ महिमा चित्रकूटस्य मुनिना वर्णितो मुदा । सीतालक्ष्मणसम्पन्नो रामचन्द्रस्तदागतः ॥
मन्दाकिनी जले स्नानं चकार विधिवद्धरिः ॥ —ब्रह्मरामायण

१३५०-५१ रामः प्राह वरो घट्टः कुरु लक्ष्मण कुत्रचित् ।
निवासाय च मे स्थानं लक्ष्मणो दृष्टवान् स्थलम् ॥ —वैनेतेयसंहिता

१३५२-५३ मंदाकिनी नदी मौर्वी शराः शमदमादयः । कलेरखिलपापिनी लक्ष्याणि विविधानि च ॥
चित्रकूटोऽचलो व्याधो लक्ष्यं हन्ति समीपतः ॥ —महारामायण

१३५४-५५ एवमुक्त्वा स्थलं रामं दर्शयामास लक्ष्मणः । प्राप्तवांश्च सुखं रामो दृष्ट्वा तत्सुन्दरं स्थलम् ॥
रामचन्द्रमनस्तुष्टं ज्ञात्वा तत्र समागताः । विश्वकर्मप्रधानास्तं देवा द्रष्टुं रघूत्तमम् ॥ अग०सं०

१३५६-५७ देवव्रजाः कोलकिरातवेषं धृत्वागताः पर्णतृणालयं च ।
चक्रुर्द्वयं सुन्दरमेकमन्यमवर्णनीयं च लघुं विशालम् । —रामसंहिता

दो०—लखन-जानकी-सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदन मुनि-बेष जनु, रति-रितुराज-समेत ॥ १३३ ॥
१३६० अमर, नाग, किन्नर, दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला।
राम, प्रनाम कीन्ह सब-काहू। मुदित देव, लहि लोचन-लाहू। (१)
बरषि सुमन, कह देव-समाजू। नाथ! सनाथ भये हम आजू।
करि बिनती, दुख दुसह सुनाए। हरषित निज-निज सदन सिधाए। (२)
चित्रकूट रघुनंदन छाए। समाचार सुनि-सुनि मुनि आए।
आवत देखि मुदित मुनि-बृन्दा। कीन्ह दंडवत रघुकुल-चंदा। (३)
मुनि रघुबरहिँ लाइ उर लेहीँ। सुफल होन-हित आसिष देहीँ।
सिय-सौमित्रि-राम-छबि देखहिँ। साधन सकल सफल करि लेखहिँ। (४)
दो०—जथा-जोग सनमानि प्रभु, बिदा किए मुनिबृन्द।
करहिँ जोग, जप, जाग, तप, निज आश्रमनि सुछन्द ॥ १३४ ॥
१३७० यह सुधि कोल-किरातन पाई। हरषे, जनु नव निधि घर आई।

राम उन सुन्दर कुटियोंमें ऐसे अच्छे लग रहे थे मानो मुनियोंका वेष बनाकर कामदेव ही ऋतुराज (वसंत) और रतिके साथ वहाँ आ बसा हो ॥ १३३ ॥ उसी समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल भी चित्रकूट आ पहुँचे। रामने आदरसे सबको प्रणाम किया और देवता भी अपने नेत्रोंका लाभ पाकर बड़े प्रसन्न हुए। (१) (रामपर) फूलोंकी वर्षा करके देवताओंने कहा—'नाथ! आज हम सनाथ हो गए।' उन्होंने (रामकी) स्तुति करके अपनी सारी (रावणके अत्याचारकी) विपत्ति कह सुनाई और फिर प्रसन्न हो-होकर सब अपने लोक लौट गए। (२) मुनियोंने जब सुना कि राम चित्रकूटमें आ बसे हैं तो सब मुनि भी उनसे मिलने वहाँ चले आए। रघुकुलके चन्द्र रामने मुनियोंको प्रसन्न मनसे आते देखकर बढ़कर सबको दण्डवत् किया। (३) मुनियोंने रामको हृदयसे उठा लगाया और आशीर्वाद दिया कि आपके सब काम सफल हों। वे राम, लक्ष्मण और जानकीको छवि देख-देखकर ही समझ लेते थे कि हमारे सारे साधन (जप, तप, ध्यान आदि) सफल हो गए। (४) प्रभु रामने सबका यथोचित सम्मान करके उन मुनियोंको बिदा किया और वे मुनि भी निश्चिन्त होकर अपने-अपने आश्रमोंमें जप, तप, योग और यज्ञ आदि करने लगे ॥ १३४ ॥ जब वहाँके कोल-किरातोंको यह (रामके आ बसनेका) समाचार मिला तो वे इतने प्रसन्न हुए मानो नवों

१३५८-५९ सीतालक्ष्मणसंयुक्तो रामो राजति मंदिरे। वसंतरतिसंपन्नो मुनिवेषः स्मरो यथा ॥
१३६०-६१ अमराः किन्नरा नागा दिक्पालाश्च तदागताः। चित्रकूटं रघुश्रेष्ठः प्रणनामाखिलान् सुराः ॥
लब्ध्वा स्वनेत्रयोर्लाभं कृतपुण्याश्च हर्षिताः ॥ —आनन्दरामायण
१३६२-६३ कृत्वा च सुमनोवृष्टिं प्राहुर्देवगणाः प्रभो। वयमद्य सनाथाश्च जाताः प्राहुर्निजाशुभम् ॥
हर्षिता विनयं कृत्वा प्रयाता निजमन्दिरम् ॥ —पुलस्त्यसंहिता
१३६४-६५ चित्रकूटे गिरिश्रेष्ठे राजते रघुनन्दनः। श्रुत्वा सर्वं समाचारं मुनयस्तत्र चागताः ॥
प्रणनाम रघुश्रेष्ठस्तान्सर्वानागतान्मुनीन्। —धर्मसंहिता
१३६६-६७ आशीर्वादं प्रयच्छन्ति हृदा संश्लिष्य राघवम्। श्रीरामसीतासौमित्रिशोभां वीक्ष्य मुनीश्वराः ॥
साधनान्यखिलान्येव मन्यन्ते सफलानि च। —पुलस्त्यसंहिता
१३६८-६९ प्रेषयामास सत्कृत्याश्रमे रामो मुनीश्वरान्। जपं यज्ञं तपो योगं कुर्वन्तीच्छानुसरतः ॥ शिवसं०

कंद - मूल - फल भरि - भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना। (१)
तिन्ह - महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहिं पूछहिं मग - जाता।
कहत - सुनत रघुबीर - निकाई। आइ सबनि देखे रघुराई। (२)
करहिं जोहार, भेंट धरि आगे। प्रभुहिं बिलोकहिं अति अनुरागे।
चित्र - लिखे - जनु जहँ - तहँ ठाढ़े। पुलक शरीर, नयन जल बाढ़े। (३)
राम सनेह - मगन सब जाने। कहि प्रिय वचन, सकल सनमाने।
प्रभुहिं जोहारि बहोरि - बहोरी। बचन विनीत कहहिं कर जोरी। (४)

दो०—अब हम नाथ ! सनाथ सब , भए देखि प्रभु - पाँय।
भाग हमारे आगमन , राउर कोसलराय ॥ १३५ ॥

१३८० धन्य भूमि, वन, पंथ, पहारा। जहँ - जहँ नाथ ! पाँउ तुम धारा।
धन्य बिहग, मृग, काननचारी। सफल जनम भे तुमहिं निहारी। (१)
हम सब धन्य सहित - परिवारा। दीख दरस, भरि नयन तुम्हारा।

निधियाँ घर बैठे आ मिली हों। वे कंद, मूल और फल भरे हुए दोने (भेंट देनेके लिये) लेकर ऐसे झपटे चल दिए जैसे दरिद्र लोग सोना लूटने दौड़े चले जा रहे हों। (१) उनमेंसे जिन लोगोंने दोनों भाइयोंको पहले देख लिया था उनसे मार्गमें जाते हुए दूसरे लोगोंने (रामके विषयमें) पूछताछ करते हुए और रामकी सुन्दरताका वर्णन करते - सुनते रामको वहाँ बैठे जा देखा। (२) भेंटके लिये लाया हुआ सामान उनके आगे धर-धरकर सब जोहार (प्रणाम) किए जा रहे थे और प्रभु (राम)-का दर्शन पा-पाकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए जा रहे थे। वे सब जहाँ-तहाँ एक ओर खड़े होकर उन्हें ऐसे स्तब्ध होकर एकटक देखे जा रहे थे जैसे वे चित्रमें बने हुए हों। उनके शरीर पुलकित हुए जा रहे थे और आँखें डबडबाई पड़ रही थीं। (३) रामने उन सबको इतना स्नेहमें मग्न देखकर बड़े प्रिय वचन कह-कहकर उनका सम्मान किया। वे बार-बार प्रभु राम)-को प्रणाम करते हुए हाथ जोड़-जोड़कर प्रार्थना करने लगे—(४) 'नाथ ! आज आपके चरणोंका दर्शन पाकर हम लोग सनाथ हो गए। कोशलनाथ ! हम बड़े भाग्यशाली हैं कि आपका यहाँ आगमन हुआ ॥ १३५ ॥ नाथ ! जहाँ-जहाँ आपके चरण पड़े हैं वहाँ-वहाँकी भूमि, वन, मार्ग और पहाड़ सब धन्य हो गए। ये वनके पशु-पक्षी भी धन्य हैं जिनके जन्म आपका दर्शन पाकर सफल हो गए। (१) हम सब भी परिवार-सहित भर आँखों आपके दर्शन पाकर धन्य हो गए। आपने रहनेके लिये यह अच्छा स्थान

१३७०-७१ श्रुत्वेमं सुसमाचारं किराताद्याश्च हर्षिताः। कंदमूलफलानीमे गृहीत्वा द्रष्टुमागताः ॥आ०रा०
१३७२-७३ ये दृष्टवन्तो द्वौ बंधू तान् पृच्छन्त्यपरे जनाः। शृण्वंतः कथयन्तश्च सौदर्यं राघवस्य ते ॥
आगता ददृशुः सर्वे भ्रातरौ द्वौ मनोहरौ। —ब्रह्मरामायण
१३७४-७५ प्रणमंति पुरो धृत्वा कन्दमूलफलानि ते। प्रेम्णा परेण पश्यन्ति किराताः परमेश्वरम् ॥
यत्रतत्रस्थिताः सर्वे ते चित्रलिखिता यथा। रामांचितं शरीरं च चक्षुषी चाश्रुपूरिते ॥वासु०र०
१३७६-७७ एवं रामोऽखिलान् प्रेम्णि पूर्णान् प्राप्याखिलान् गिरा।
पीयूषमिष्टयाऽनर्च नमस्कृत्य मुहुर्मुहुः। हस्तौ बद्ध्वा वचो नम्रं वदन्ति रघुनन्दनम् ॥पौल.सं.
१३७८-७९ त्वदंघ्र्योर्दर्शनं कृत्वा सनाथा नाथ सांप्रतम्। मद् भाग्यात् कोशलाधीश जातमागमनं तव॥जै.सं.
१३८०-८१ भूमार्गवनशैलाश्च धन्याः स्वामिन् कृता त्वया। यत्रयत्र सरोजांघ्री धन्या मृगविहंगमाः ॥
त्वां वीक्ष्य धन्यजन्मानो जाताः काननचारिणः। —पुलस्त्यसंहिता

कीन्ह बास, भल ठाँउँ विचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी। (२)
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि - केहरि - अहि - बाघ बराई।
बन बेहड़, गिरि, कंदर, खोहा। सब हमार प्रभु पग - पग जोहा। (३)
तहँ - तहँ तुमहिं अहेर खेलाउब। सर, निरझर, भल ठाउँ देखाउब।
हम सेवक परिवार - समेता। नाथ ! न सकुचब आयसु देता। (४)

दो०—बेद-बचन-मुनि-मन-अगम , ते प्रभु करुना - ऐन।
वचन किरातन - के सुनत , जिमि पितु बालक - बैन ॥ १३६ ॥

१३९० रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेउ, जो जाननिहारा।
राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु वचन, प्रेम परिपोषे। (१)
बिदा किये, सिर नाइ सिधाये। प्रभु - गुन कहत-सुनत घर आए।
एहि विधि सिय - समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन, सुर-मुनि-सुखदाई। (२)
जब - तें आइ रहे रघुनायक। तब - तें भा[1] बन मंगल - दायक।

ढूंढा है। यहां सब ऋतुओंमें आपको सुख मिलेगा। (२) हम लोग यहाँ एक भी हाथी, सिंह, सर्प और बाघ आदि कोई हिंसक पशु आने ही नहीं देंगे और जो भी सेवा होगी सब करते रहेंगे। यहाँके बीहड़ वन, खड़े पहाड़, कंदराएँ और खोहें सब कुछ हमारा चप्पा-चप्पा छाना पड़ा है। (३) हम लोग इधर-उधर आपको शिकार खेलवाया करेंगे तथा सरोवर, झरने और अच्छे-अच्छे स्थान घुमा-घुमाकर दिखला लाया करेंगे। हम और हमारे परिवारवाले सब आपके सेवक हैं। इसलिये नाथ ! (किसी प्रकारकी कोई) आज्ञा देनेमें आप कुछ संकोच न कीजिएगा। (४) जिस (राम)-का न वेद अपने वचनोंसे वर्णन कर पा सके हैं और न मुनियोंके मन ही जिनतक पहुँच पा सकते, वे ही करुणानिधान राम बैठे किरातोंके वचन ऐसे (प्रेमसे) सुने जा रहे थे, जैसे पिता, अपने बच्चोंकी बातें (मन लगाकर प्रसन्न होता हुआ) सुनता चलता है ॥ १३६ ॥ जो जानना चाहे वह जान ले कि रामको केवल प्रेम ही प्यारा है। तब रामने उन सभी वनवासियोंको बहुत सन्तुष्ट किया और कोमल वचन कह-कहकर प्रेमसे उनका परितोष करके उन्हें विदा किया और वे भी सिर नवा-नवाकर (अपने-अपने गाँवके लिये) चल दिए और प्रभुके गुण कहते-सुनते वे सब अपने-अपने घर जा पहुँचे।

इस प्रकार देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले दोनों भाई सीताके साथ चित्रकूटके वनमें निवास करने लगे। (२) जबसे राम उस वनमें आकर रहने लगे, तबसे जंगलमें मंगल हो चला।

१. भएउ।

१३८२-८३ सकुटुंबा वयं धन्याः कृत्वा त्वद्दर्शनं प्रभो। विदित्वा सुस्थलं वासं कृतवानसि सर्वदा ॥
१३८४-८५ व्याघ्रसिंहगजाहिभ्यो रक्षंतः सेवनं तव। सर्वथा च वयं कुर्मः काननं सलिलस्थलम् ॥
अस्माभिर्निखिला नाथ गिरिदर्यो विलोकिताः ॥ —रुद्रसंहिता
१३८६-८७ मृगयां कारयमस्त्वां यत्र तत्र स्थले प्रभो। सरांसि निर्झरांश्चापि दर्शयामो वराणि च ॥
सकुटुंबा वयं सर्वे सेवकाः कोशलेश्वर ॥ —वशिष्ठरामायण
१३८८-८९ यो वेदवचसो मुनिमानसस्याप्यगम्यः प्रभुः करुणाकरः।
किरातवचांसि स शृणोति यथा पिता बालकवचांसि ॥ —शंकरसंहिता
१३९०-९१ प्रेमप्रियः सदा रामो विज्ञा जानन्तु सेवकाः। रामः कोमलया वाण्या तान् प्रसन्नांश्चकार ह॥अग०सं०
१३९२-९३ ततः प्रणम्य ते जग्मुर्गृहं रामगुणान् शुभान्। शृण्वन्तः कथयंतश्च वसंति विपिने प्रियौ ॥
सुखदौ मुनिदेवानां ससीतौ भ्रातरावुभौ। —आनन्दरामायण

फूलहिँ फलहिँ बिटप बिधि नाना । मंजु - बलित बर - बेलि - बिताना । (३)
सुर - तरु - सरिस सुभाय सुहाए । मनहुँ बिबुध - बन परिहरि आए ।
गुंज मंजुतर मधुकर - श्रेनी । त्रिबिध बयारि बहइ सुख - देनी । (४)
दो०—नीलकंठ, कलकंठ, सुक , चातक, चक्क, चकोर ।
भाँति-भाँति बोलहिँ बिहँग, श्रवन - सुखद चित-चोर ।। १३७ ।।
१४०० करि, केहरि, कपि, कोल, कुरंगा । बिगत - बैर बिचरहिँ सब संगा ।
फिरत अहेर, राम - छबि देखी । होहिँ मुदित मृग - बृन्द बिसेखी । (१)
बिबुध-बिपिन जहँ-लगि जग-माहीँ । देखि राम - बन सकल सिहाहीँ ।
सुर-सरि, सरसइ, दिनकर - कन्या । मेकल - सुता, गोदावरि धन्या । (२)
सब सर, सिंधु, नदी, नद नाना । मंदाकिनि - कर करहिँ बखाना ।
उदय - अस्त - गिरि, अरु कैलासू । मंदर, मेरु, सकल - सुर - बासू । (३)
सैल हिमाचल - आदिक जेते । चित्रकूट - जस गावहिँ तेते ।

वहाँके वृक्ष सब फूल और फलसे लद चले और उनपर सुन्दर लताओंका मण्डप-सा आ छाया । (३) ये सब वृक्ष कल्पवृक्षके समान स्वभावसे ही ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो वे स्वर्गके उपवन छोड़-छोड़कर यहाँ आ उतरे हों । उनपर पाँतें बाँध-बाँधकर अत्यन्त सलोने भौंरे गूँजे जा रहे थे और तीनों प्रकारकी (शीतल, मंद, सुगंधित) सुहावनी बयार बहती जा रही थी । (४) वहाँ नीलकंठ, कोयल, सुग्गे, पपीहे, चकवे, चकोर आदि भाँति-भाँतिके पक्षी चारों ओर चहचहाए चले जा रहे थे, जो कानोंको बड़े भले लगते और सबका चित्त चुराए ले रहे थे ।। १३७ ।। हाथी, सिंह, बन्दर, बनैले सूअर और मृग सब आपसका वैर छोड़-छोड़कर वहाँ साथ-साथ घूमते रहते थे । जब कभी राम आखेटके लिये निकलते, तब उनकी छबि देख-देखकर वहाँके मृग बहुत आनन्दित हो उठते थे । (१) जगत्के जितने देव-कानन हैं वे सब रामका वन (चित्रकूटका वन) देख-देखकर तरसते रह जाते थे (कि यह सौभाग्य हमें क्यों नहीं मिला) । (२) गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी आदि पवित्र नदियाँ, सब सरोवर, समुद्र, नदी और नद उस मंदाकिनीकी प्रशंसा करते नहीं अघाते थे (जिसमें राम स्नान किया करते थे) । उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मंदराचल, देवताओंके सभी लोक (३) और हिमालय पर्वत आदि जितने पर्वत थे सभी चित्रकूटकी कीर्तिका सदा वर्णन करते रहते थे (चित्रकूटकी सराहना करते रहते थे कि रामके निवासके कारण

१३९४-९५ यस्या घट्या रघुश्रेष्ठो निवासं कृतवान् गिरौ । ततो मंगलदं जातं वनं च विविधा द्रुमाः ।।
जाताः पुष्पैः फलैः पूर्णास्तिदूर्ध्वं भान्ति वै लताः । —मंगलरामायण
१३९५-९७ कल्पवृक्षसमा वृक्षास्त्यक्त्वा देववनं शुभाः । आगता इव गुञ्जन्ति मंजुलं भ्रमरालयः ।।
त्रिविधः पवनो वाति चराचरसुखप्रदः । —रामचरितचिन्तामणि
१३९८-९९ चकोराश्चातकाश्चक्रा नीलकंठाः शुकाः पिकाः । विहंगमा बहुविधा वदन्ति मधुरां गिरम् ।।वैशं.सं.
१४००-१ कुरंगहस्तिहर्यक्षकपिकोलाः सदैव हि । विहाय वैरं क्रीडन्ति मृगवृन्दा विशेषतः ।।
आखेटार्थं विचरता श्रीरामस्य शुभां छविम् । भवन्ति मुदिता वीक्ष्य साकेताधिपतेः प्रभोः।।नृ०पु०
१४०२-४ यावंति संति संसारे देवारण्यानि वीक्ष्य वै । रामारण्यं प्रशंसन्ति तानि गंगा सरस्वती ।।
कालिंदी नर्मदा चैव धन्या गोदावरी नदी । मंदाकिनीं प्रशंसंति सरांस्यब्धिनदास्तथा ।। पुल०सं०
१४०५-६ मेरुमंदरकैलासोदयोस्ताः सर्वपर्वताः । देवस्थानानि गायंति चित्रकूटयशोऽमलम् ।। –भर०सं०

बिधि मुदित मन, सुख न समाई। श्रम - बिनु बिपुल बड़ाई पाई। (४)
दो० —चित्रकूट - के बिहँग, मृग , बेलि, बिटप, तृन-जाति ।
पुन्यपुंज, सब धन्य, अस , कहहिँ देव दिन - राति ।। १३८ ।।

१४१० नयनवंत रघुबरहिँ बिलोकी। पाइ जनम - फल होहिँ बिसोकी।
परसि चरन - रज, अचर सुखारी। भये परम पद - के अधिकारी। (१)
सो बन, सैल, सुभाय सुहावन। मंगलमय अति - पावन - पावन।
महिमा कहिय कवनि बिधि तासू। सुख - सागर जहँ कीन्ह निवासू। (२)
पय - पयोधि तजि, अवध बिहाई। जहँ सिय - लखन - राम रहे आई।
कहि न सकहिँ सुखमा जसि कानन। जौं सत - सहस होहिँ सहसानन। (३)
सो मैं बरनि कहौं बिधि - केही। डाबर - कमठ कि मंदर लेहीं।
सेवहिँ लखन करम - मन - बानी। जाइ न सील - सनेह बखानी। (४)
दो०—छिन-छिन लखि सिय-राम-पद, जानि आप-पर नेह।
करत न सपनेहुँ लखन-चित, बंधु - मातु - पितु - गेह ।। १३९ ।।

यह धन्य हो गया है)। विन्ध्य पर्वत तो इसी प्रसन्नता और सुखके मारे फूला नहीं समाता था कि मुझे बिना परिश्रमके ही इतना बड़ा सम्मान मिल गया (कि राम, जानकी और लक्ष्मण यहीं आकर रहने लगे हैं)। (४) देवता लोग भी दिनरात यही कहते रहते थे कि चित्रकूटके पशु-पक्षी, लता, वृक्ष, घास आदि सबके सब बड़े पुण्यात्मा और धन्य हैं ।। १३८ ।। जिन जीवोंके आँखें थीं वे तो रामका दर्शन करके ही अपना जन्म सफल मान ले रहे थे और उनका सारा क्लेश कट चलता था पर जितने अचर (पर्वत, भूमि, नदी वृक्ष आदि) भी थे वे रामके चरणोंकी धूलका स्पर्श पाकर ही सुखी हो उठते थे। इस प्रकार वहाँ (चर, अचर) सबको परम पद (मुक्ति) पानेका पूरा अधिकार मिल गया था। (१) वह वन और पर्वत स्वभावसे ही सुन्दर, मंगलमय और अत्यन्त पवित्रको भी पवित्र करनेवाला बन गया जहाँ सब सुखोंके भांडार राम आ बसे थे। उसकी महिमाका वर्णन भला कोई किस प्रकार कर पा सकता है। (२) क्षीरसागर और अयोध्या (-जैसे सुन्दर स्थान) छोड़कर सीता, लक्ष्मण और राम जहाँ आकर रहने लगे हों, उस वनकी शोभाका वर्णन करना जब सहस्रों मुखोंवाले एक लाख शेषोंके बसकी बात नहीं है (३) तब भला मेरे (तुलसीदासके) किए उसका वर्णन कैसे हो पा सकता है। गड़हीका कछुआ कहीं मंदराचल उठा पा सकता है ? (४) लक्ष्मण भी क्षण-क्षणपर सीता और रामके चरण देख-देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर (इतने सन्तुष्ट हुए रहते थे कि उन्हें) स्वप्नमें भी भाई (भरत और शत्रुघ्न),

१४०७ परिश्रमं विनैवाऽभूत् प्रशंसा विपुला यतः। अतो विन्ध्याचलो हृष्टश्चात्यन्तं निजमानसे ।।शौनकसं०
१४०८-९ चित्रकूटस्य विहगा मृगा वल्ल्यो द्रुमास्तथा। तृणानि पुण्यपूर्णानि धन्या देवा वदंति च ।।क०सं०
१४१०-११ नेत्रवंतो रघुश्रेष्ठं प्रेक्ष्य जन्मफलं शुचा। स्पृष्ट्वा विरहिताः प्राप्य भवंत्यंघ्रिरजोऽचराः ।।
जाता वैकुण्ठनाथस्य श्रीवैकुण्ठाधिकारिणः। —अगस्त्यरामायण
१४१२-१३ चित्रकूटप्रभावं तु वक्तुं नालं चतुर्मुखः। निवास कृतवान् रामो यत्रानंदपयोनिधिः ।।मार्कं०सं०
१४१४-१५ क्षीराब्धिमवधं त्यक्त्वा सीतालक्ष्मणसंयुतः। श्रीरामो यत्र चोवास धन्यं तत्काननं क्षितौ ।।शांडि.सं.
१४१६-१७ कर्मणा मनसा वाचा सेवते रघुनन्दनम्। वीरेन्द्रः प्रेमवान् वाग्मी लक्ष्मणः सज्जनप्रियः ।।वाम०सं०
१४१८-१९ वीक्ष्य प्रतिक्षणं सीतारामांघ्री प्रेम लक्ष्मणः। स्वस्मिन् स्वप्नेऽपि गेहस्य भ्रातुर्मातुःपितुस्तथा ।।
करोति स्मरणं नैव रामसेवापरायणः। —देवलसंहिता

१४२० राम - संग सिय रहति सुखारी। पुर - परिजन - गृह - सुरति बिसारी।
छिन-छिन पिय-बिधु-बदन निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर - कुमारी। (१)
नाह - नेह नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति, दिवस जिमि कोकी।
सिय - मन, राम - चरन अनुरागा। अवध-सहस-सम बन प्रिय लागा। (२)
परन - कुटी प्रिय, प्रियतम - संगा। प्रिय परिवार कुरंग - बिहंगा।
सासु-ससुर-सम मुनि-तिय, मुनिबर। असन अमिय-सम कंद-मूल-फर। (३)
नाथ - साथ साथरी सुहाई। मयन - सयन - सय - सम सुखदाई।
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय-बिलासू। (४)
दो०—सुमिरत रामहिं, तजहिं जन, तृन-सम बिषय-बिलासु।
राम-प्रिया जग-जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥ १४०॥
१४३० सीय-लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं, सोइ कहहीं।

माता, पिता और घरका स्मरण-तक नहीं हो पाता था ॥ १३९ ॥ सीता भी अयोध्याके कुटुम्बियों और घरको भूलकर रामके साथ बहुत सुखसे रह रही थीं। क्षण-क्षण अपने पति (राम)-का चन्द्र-जैसा सलोना मुखड़ा देख-देखकर वे वैसे ही परम प्रसन्न हुई रहती थीं जैसे चकोरकी बच्ची (चन्द्रमाको देखकर सुखी हुई रहती है)। (१) अपने ऊपर स्वामीका प्रेम दिन-दिन बढ़ता देखकर तो वे इतनी मगन हुई रहतीं जैसे दिनमें चकवी मगन हुई रहती है। सीताका मन रामके चरणोंमें इतना रम गया था कि वह वन उन्हें सहस्रों अयोध्याओंके समान प्यारा लगने लगा था। (२) अपने प्रियतम (राम)-के साथ पर्णकुटीमें रहना उन्हें बहुत अच्छा लगने लगा था। वहाँके पशु-पक्षी सब कुटुम्बियोंके समान प्यारे लगने लगे थे। वनके मुनि और उनकी पत्नियाँ सब सास-ससुरके समान हितकारी और कन्द, मूल, फल अमृत-भरे भोजनके समान स्वादिष्ट लगने लगे थे। (३) स्वामीके साथ गुलगुली साथरी (घास-पातकी गद्दी) कामदेवकी सैकड़ों सेजोंके समान सुख देनेवाली बन गई थी। (ठीक भी है,) जिस किसी जीवकी ओर वे (सीता) कृपाकी दृष्टिसे एक बार देख भर दें वह जब लोकपाल हो जा सकता था, तब उन्हें भला कोई भोग-विलास कैसे लुभा पा सकता था। (४) जिन रामका स्मरण मात्र करनेसे भक्त लोग तृणके समान सारे भोग-विलास त्याग बैठते हैं, उनकी प्रिया और जगत्‌की माता जानकीके लिये यह (भोग-विलासका त्याग कर बैठना) कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी ॥ १४० ॥ राम सदा वही करते और कहते चलते थे जिससे सीता और लक्ष्मणको सुख ही मिले (किसी प्रकार मन दुखी न हो पावे)। जब वे बैठकर (उनका मन बहलानेके लिये)

१४२०-२१ श्रीरामसंगे वैदेही सुखिताऽऽसीत् पुरस्य च। कुटुम्बस्य गृहस्यापि स्मृतिं विस्मृत्य सुन्दरी॥
प्रियचन्द्राननं दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता यथा। प्रतिक्षणं विधुं वीक्ष्य चकोरस्य कुमारिका॥आन०रा०
१४२२-२३ नित्यं स्वस्मिन् प्रियप्रेम वर्द्धमानं निरीक्ष्य च। रामपत्नी प्रमुदिता चक्रवाकी यथा दिने।
जानकीमानसं जातं रामपादानुरागि वै। कोसलानन्ततुल्यं तु प्रियं जातं हि काननम्॥ गौतमसंहिता
१४२४-२५ पर्णशाला प्रिया जाता प्रियसंगे विहंगमाः। कुटिम्बिनः कुरंगाश्च मुनयश्च मुनिस्त्रियः॥
श्वशुरेण च श्वश्र्वाश्च समाः कंदफलानि च। मूलानि चैषामशनं सुधातुल्यं प्रतीयते॥वशि०रा०
१४२६-२७ प्रियसंगे पर्णशय्या कामशय्यासमा स्मृता। यस्या विलोकनेनैव भवंति किल लोकपाः॥पुल०सं०
१४२८-२९ श्रीरामस्मरणाल्लोकाः सर्वा विषयवासनाः। तृणतुल्या विमुंचन्ति जगदंबा हरिप्रिया॥
यदि त्यक्तवती तस्या आश्चर्यं नास्ति किञ्चन॥ —याज्ञवल्क्यसंहिता

कहहिँ पुरातन कथा - कहानी । सुनहिँ लखन-सिय अति सुख-मानी । (१)
जब - जब राम अवध-सुधि करहीँ । तब - तब बारि बिलोचन भरहीँ ।
सुमिरि मातु - पितु, परिजन, भाई । भरत - सनेह - सील - सेवकाई । (२)
कृपासिंधु प्रभु होहिँ दुखारी । धीरज धरहिँ कुसमउ बिचारी ।
लखि, सिय-लखन बिकल होइ जाहीँ । जिमि पुरुषहिँ अनुसर परिछाहीँ । (३)
प्रिया - बंधु - गति लखि रघुनंदन । धीर, कृपाल, भगत - उर - चंदन ।
लगे कहन कछु कथा पुनीता । सुनि, सुख लहहिँ लखन अरु सीता । (४)

दो०—राम-लखन-सीता - सहित , सोहत परन - निकेत ।
जिमि बासव बस अमरपुर , सची - जयंत - समेत ॥ १४१ ॥

१४४० जोगवहिँ प्रभु सिय - लखनहिँ कैसे । पलक, बिलोचन - गोलक जैसे ।
सेवहिँ लखन, सीय - रघुबीरहिँ । जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिँ । (१)
ऐहि बिधि प्रभु, बन बसहिँ सुखारी । खग-मृग - सुर - तापस - हितकारी ।

प्राचीन कथा-कहानी सुनाने लगते तो लक्ष्मण और सीता भी अत्यन्त सुखसे (ध्यानसे) बैठकर सुनने लगते थे । (१) जब कभी रामको अयोध्याका स्मरण हो आता था, तब उनकी आँखें डबडबा चलती थीं । माता, पिता, कुटुम्बी, भाई तथा भरतके शील-स्वभावको स्मरण कर-करके (२) कृपालु राम कभी-कभी बहुत दुखी हो उठते थे, किन्तु कुसमय (बुरे दिन) समझकर वे अपनेको सँभाल लेते थे । सीता और लक्ष्मण भी जहाँ रामको दुखी देखते कि वे भी वैसे ही व्याकुल हो उठते थे जैसे किसी पुरुषकी परछाहीं उसीके समान चेष्टा करने लगती है । (३) धीर, कृपालु और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले चन्दनके समान राम जब देखते थे कि प्रिया (सीता) और भाई लक्ष्मण व्याकुल हो उठे हैं तो वे कुछ (त्यागी महापुरुषोंकी) पवित्र कथाएँ सुनाने लग जाते थे जिन्हें सुन-सुनकर सीता लक्ष्मण अपना सब दुःख भूल जाते थे । (४) लक्ष्मण और सीताके साथ पर्णकुटीमें रहते हुए राम वैसे ही अच्छे लग रहे थे जैसे स्वर्गमें शची (इन्द्राणी) और (अपने पुत्र) जयन्तके साथ इन्द्र शोभा दे रहे हों ॥ १४१ ॥ वहाँ रहते हुए राम उसी प्रकार सीता और लक्ष्मणकी देखभाल करते रहते थे जैसे आँखके कोयों (गोलकों)-की रक्षा पलकें किया करती हैं । लक्ष्मण भी राम और सीता-की सेवा वैसी ही (तन्मयताके साथ) करते रहते थे जैसे अज्ञानी मनुष्य अपने शरीरकी सेवा किया करता है । (१) इस प्रकार पशु-पक्षी और देवताओंका हित करनेवाले प्रभु राम उस वनमें बड़े आनन्दके साथ निवास किए जा रहे थे ।

१४३०-३१ जानकी लक्ष्मणौ येन प्राप्नुयातां सुखं हितम् । तं करोति रघुश्रेष्ठो ब्रवीति परमेश्वरः ॥
आख्यायिकां कथां रामो ब्रवीत्यतिपुरातनीम् । शृणुतः परमप्रेम्णा जानकीलक्ष्मणौप्रियौ ॥ शौनकसं०
१४३२-३४ यदा यदा समायाति श्रीराममवधस्मृतिः । तदा तदाक्षिणी तस्य भवतश्चाश्रुपूरिते ॥
कृपासरित्पती रामो मातरं पितरं तथा । कुटुम्बमनुजं स्नेहशीलसेवादिका अपि ॥
भरतस्य च संस्मृत्य भवत्यत्यंतदुःखितः । न दुःखसमयोऽस्तीत्थं धैर्यं धत्ते विचार्य च ॥ सनंदनसं०
१४३५-३७ व्याकुलौ भवतः सीतालक्ष्मणौ वीक्ष्य पूरुषम् । यथानुसरति च्छाया कृपालुर्धैर्यवान् प्रभुः ॥
प्रियाबंधुदशां वीक्ष्य कथां वदति पावनीम् । आकर्ण्य प्राप्नुतः सीतालक्ष्मणौ बहुलं सुखम् ॥ स्कंदसं०
१४३८-३९ सीता लक्ष्मणसंयुक्तः श्रीराम: पर्णमंदिरे । भातीव चामरावत्यामिंद्रः स्त्रीपुत्रसंयुतः ॥ स्कंदरा०
१४४०-४१ प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः । प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः ॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोभवत् । हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ उ० रामचरित

कहेउँ राम - बन - गवन सुहावा। सुनहु, सुमंत्र अवध जिमि आवा। (२)
फिरेउ निषाद प्रभुहिं पहुँचाई। सचिव-सहित रथ देखेसि आई।
मंत्री बिकल बिलोकि, निषादू। कहि न जाइ, जस भयउ बिषादू। (३)
राम, राम, सिय, लखन पुकारी। परेउ धरनि - तल ब्याकुल भारी।
देखि दखिन दिसि, हय हिंहिनाहीं। जनु बिनु पंख, बिहँग अकुलाहीं। (४)
दो०—नहिं तृन चरहिं,न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब, रघुबर - बाजि निहारि।। १४२।।
१४५० धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमंत्र! परिहरहु बिषादू।
तुम पंडित, परमारथ - ग्याता। धरहु धीर, लखि बिमुख बिधाता। (१)
बिबिध कथा कहि - कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी।
सोक - सिथिल, रथ सकइ न हाँकी। रघुबर - बिरह - पीर उर बाँकी। (२)

तुलसीदास कहते हैं कि—रामके वन जानेकी सुन्दर कथा तो मैंने पूरी कह सुनाई, अब वह कथा सुनो कि अयोध्यामें सुमन्त्र किस प्रकार पहुँचे। (२)

प्रभु (राम)-को पहुँचाकर जब केवटोंका सरदार गुह लौटा तो आकर देखता क्या है कि रथ लिए मंत्री सुमंत्र जहाँके तहाँ खड़े हुए हैं। मंत्रीकी वह व्याकुल दशा देखकर केवटोंके सरदारको जैसा दुःख हुआ वह कहा नहीं जा सकता। (३) (केवटोंके सरदारको अकेले लौटा देखकर) सुमन्त्र 'हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण!' पुकारते हुए व्याकुल होकर पछाड़ खाकर धरतीपर गिर पड़े। उनके घोड़े (भी जिधर राम गए थे उस) दक्षिण दिशाकी ओर देख-देखकर ऐसे हिनहिनाए जा रहे थे जैसे पंख कट जानेपर पक्षी तड़फड़ा उठते हैं। (४) वे (घोड़े) न तो घास ही खा रहे थे, न पानी ही पी रहे थे। केवल खड़े-खड़े चुपचाप आँखोंसे आँसू बहाए चले जा रहे थे। रामके घोड़ोंकी यह दशा देखकर वहाँके सब केवट व्याकुल हो उठे।। १४२।। तब बहुत धीरज धरकर केवटोंके सरदार गुहने सुमंत्रसे कहा—'देखिए सुमंत्र! अब यह रोना-धोना छोड़िए। आप तो बड़े पंडित और बड़े ज्ञानी हैं। अब तो यही समझकर धीरज धरे रखिए कि विधाता ही हमसे मुँह फेरे बैठा है।' (१) कोमल वाणीसे अनेक प्रकारकी कथाएँ कह-कहकर केवटोंके सरदारने किसी-किसी प्रकार सुमंत्रको रथपर पकड़ चढ़ाया। सुमंत्र शोकसे बहुत व्याकुल हुए जा रहे थे और उनके हृदयमें रामके वियोगका इतना अधिक दुःख समाया हुआ था कि उनसे रथ हाँका नहीं जा रहा था। (२) घोड़े भी तड़फड़ाए जा रहे थे और लीक छोड़-छोड़कर

१४४२-४३ खगानां च मृगाणां च मुनीनां च दिवौकसाम्। हितकारी रघुश्रेष्ठस्त्वेवं वसति कानने।
रामस्यारण्यगमनं शोभनं वर्णितं मया। शृण्वंतु श्रीसुमंत्रश्च यथा साकेतमागतः।।आनन्दरा०
१४४४-४५ आगतो यमुनापारात् सरथं सचिवं गुहः। ददर्श व्याकुलं वीक्ष्य मंत्रिणं दुःखितोऽभवत्।।शांडिल्यसं०
१४४६-४७ पृथिव्यां पतितो मंत्री हा राम रघुनायक। हा हा लक्ष्मण हा सीते वदतीत्थं मुहुर्वचः।।
हया ह्रेषंति वै दृष्ट्वा दक्षिणां हरितं यथा। भवन्ति व्याकुला राजन् पक्षहीना विहंगमाः।।अगस्त्यरा०
१४४८-४९ न चरंति तृणं तोयं न पिबन्ति हया जलम्। मुंचंति सुंदराक्षिभ्यां निषादो व्याकुलोऽभवत्।
दृष्ट्वा श्री रामचन्द्रस्य हयान् सर्वांगसुन्दरान्। —पुलस्त्यसंहिता
१४५०-५१ धृत्वा धैर्यं गुहः प्राह विषादं त्यज सांप्रतम्। त्वं सुमंत्र तदा विद्वान् धैर्यं धर परार्थवित्।। आन०रा०
१४५२-५३ गुहः प्रियाभिर्वाणीभिराश्वास्य च रथोपरि। सुमंत्रं स्थापयामास शोकेन शिथिलं बलात्।। वशि रा.

चरफराहिँ, मग चलहिँ न घोरे। बन - मृग मनहु आनि रथ जोरे।
अढुकि परहिँ, फिरि हेरहिँ पीछे। राम - वियोग-विकल दुख तीखे। (३)
जो कह राम, लखन, वैदेही। हिँकरि - हिँकरि हित हेरहिँ तेही।
बाजि-बिरह-गति कहि किमि जाती। बिनु-मनि फनिक विकल जेहि भाँती। (४)
दो०—भयउ निपाद बिपाद-बस , देखत सचिव - तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब , दिये सारथी - संग॥ १४३॥
१४६० गुह सारथिहिँ फिरे पहुँचाई। बिरह - बिपाद बरनि नहिँ जाई।
चले अवध, लै रथहिँ निपादा। होहिँ छनहिँ छन मगन बिपादा। (१)
सोच सुमंत्र, बिकल, दुख - दीना। धिग जीवन, रघुबीर - बिहीना।
रहिहि न अंतहु अधम सरीरू। जस न लहेउ, बिछुरत रघुबीरू। (२)
भये अजस - अघ - भाजन प्राना। कवन हेतु नहिँ करत पयाना।
अहह ! मंद मन, अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका। (३)

बहके-बहके चल रहे थे। (उन्हें देखकर) ऐसा लगता था कि कहीं से जंगली घोड़े रथमें ला जोते गए हों। रामके वियोगमें वे (घोड़े) इतने व्याकुल हो चले थे कि कभी तो वे ठोकरें खाकर लड़खड़ा पड़ते थे, कभी उचक-उचककर पीछे मुड़-मुड़कर देखने लगते थे। जहाँ किसीने कहीं राम, लक्ष्मण या सीताका नाम लिया कि वे हींस-हींसकर (उधर ही मुँह घुमाकर) उन्हें ढूँढ़ने लगते थे। इन घोड़ोंके विरहकी व्यथाका वर्णन कैसे किया जा सकता है जिनकी दशा उस सर्पकी-सी हो चली थी जिसका मणि खो गया हो। (४) मंत्रीकी और उनके घोड़ोंकी दशा देख-देखकर निषादको बहुत ही दुःख हुआ और उसने चार चतुर केवट बुलाकर सारथि (सुमन्त्र)-के साथ कर दिए (कि इन्हें सँभालकर अयोध्यातक पहुँचा आओ) ॥ १४३ ॥ सारथि (सुमन्त्र)-को विदा करके केवटोंका सरदार गुह (घाटपर) लौटा तो सही पर उसके मनमें भी सुमन्त्र और रामके वियोगकी इतनी अधिक टीस हो रही थी कि उसका वर्णन करते नहीं बन रहा है। वे चारों केवट रथके साथ-साथ अयोध्या चले तो जा रहे थे पर वे भी क्षण-क्षणपर दुखी हुए पड़ रहे थे। (१) व्याकुलता और दुःखके मारे सुमन्त्रकी बुरी दशा हो चली थी। वे यही सोचे जा रहे थे कि 'रामके बिना हमारे जीवनको अत्यन्त धिक्कार है (जीवन निरर्थक है) । इस अधम शरीरको जब अन्तमें रहना है ही नहीं तब यह रामसे बिछुड़ते ही छूटकर यश क्यों नहीं प्राप्त कर ले रहा है ? (कि रामके वियोगमें शरीर छूटा है) । (२) न जाने मेरे प्राणों में (ऐसा) अपयश और पाप क्यों आ समाया है (कि ये निकल नहीं पा रहे हैं) ? हाय ! यह हृदय कैसा नीच है कि इतना अच्छा अवसर हाथमें आ जानेपर भी इसने हाथसे निकल जाने दिया और अब भी (यह अभागा) हृदय दो-टूक नहीं हो जा रहा है। (३)

१४५४-५७ गन्तुं समर्था नाभूवन्नयोध्यां वाजिनः शुभाः। रामचन्द्रवियोगेन व्याकुला वेगसंयुताः ॥महारा०
१४५८-५९ सुमंत्रं वाजिनो वीक्ष्य निषादो व्याकुलोऽभवत्। आहूय चतुरो दासान् मंत्रिसंगे चकार सः॥का०सं०
१४६०-६१ निषादा रथमादाय प्रस्थिताः कोसलां पुरीम्। प्रतिक्षणं वियोगेन निमग्नाः शोकसागरे ॥सुमं०
१४६२-६३ धिग् जीवनं रामहीनं मंत्री शोचति दुःखितः। नैव स्थास्यति चान्तेऽपि देहः कीर्ति न लब्धवान्।
अधमो रामचन्द्रस्य वियोगसमये किल। —वामदेवसंहिता
१४६४-६५ अकीर्तिभागिनः प्राणा निःसरंति न देहतः। भिद्यते हृदयन्नैवाद्यापि कस्मान्न दुःखितम्॥भरद्वाजसं०

मींजि हाथ, सिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन, धन - रासि गँवाई।
बिरद बाँधि, बर - बीर कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई। (४)
दो०—विप्र, बिबेकी, बेदबिद, संमत, साधु, सुजाति।
जिमि धोखे मद - पान कर, सचिव सोच तेहि भाँति ॥ १४४ ॥
१४७० जिमि कुलीन तिय, साधु, सयानी। पति - देवता करम - मन - बानी।
रहै करम - बस परिहरि नाहू। सचिव - हृदय, तिमि दारुन दाहू। (१)
लोचन सजल, डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन, बिकल मति भोरी।
सूखहिं अधर, लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ, उर अवधि-कपाटी। (२)
बिबरन भयउ, न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता - महतारी।
हानि, गलानि, बिपुल मन - ब्यापी। जम - पुर - पंथ सोच जिमि पापी। (३)
बचन न आव, हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई।
राम - रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई। (४)

(सुमन्त्र) हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर ऐसे पछताए जा रहे थे मानो कोई कृपण अपना धनका ढेर गँवाए बैठा हो। वे इस प्रकार चले जा रहे थे जैसे कोई योद्धा, वीरका बाना पहनकर और श्रेष्ठ वीर कहलाकर भी रणभूमिसे पीठ दिखाकर भागा चला जा रहा हो, या (४) जैसे कोई विवेक-शील, वेदोंका ज्ञाता, साधु-सम्मत आचरणवाला और श्रेष्ठ कुलका ब्राह्मण धोखेसे मदिरा पीकर पछताए जा रहा हो वैसे ही सुमन्त्र भी चिन्ता करते हुए पछताए जा रहे थे ॥१४४॥ मन्त्रीके हृदयमें वैसी ही व्यथा हो रही थी जैसे उस उत्तम कुलवाली सुशील, सयानी तथा मन, वचन और कर्मसे पतिव्रता स्त्रीको उस समय होती है जब अभाग्यवश उसे अपने पतिको छोड़कर अलग रहना पड़ गया हो। (१) उनकी आँखें डबडबा चलीं, आँखोंके आगे अँधेरा छा चला, कान बहरे हो चले, दु:खसे व्याकुल बुद्धि भी ठिकाने नहीं रह गई, ओठ सूख चले और मुँह पपड़िया चला, फिर भी प्राण थे कि नहीं निकल पा रहे थे, क्योंकि हृदयमें अवधि (चौदह वर्षपर मिलनेकी आशा) के किवाड़ लगे पड़े थे। (२) सुमन्त्रके मुँहका रंग ऐसा पीला पड़ गया था कि उनकी ओर देखा नहीं जा रहा था। ऐसा लगता था मानो वे अपने पिता-माताकी हत्या किए चले आ रहे हों। उनका मन रामके वियोगसे इतना अधिक भीतर ही भीतर कचोटे जा रहा था जैसे नरक जाता हुआ कोई पापी मार्ग-भर अपने किएपर पछताता चला जा रहा हो। (३) उनके हृदयमें इतना अधिक पछतावा हो रहा था कि मुँहसे बोल नहीं निकल पा रहा था। वे सोचते जा रहे थे—'मैं अयोध्यामें जाऊँ भी तो क्या मुँह लेकर जाऊँ। जो देखेगा कि मैं रामको छोड़कर सूना रथ लिए लौटा आ रहा हूँ तो वह मेरा मुँह भी नहीं देखना चाहेगा। (४) जब अयोध्याके नर-नारी व्याकुल हो-होकर दौड़े आकर मुझसे

१४६६-६७ हस्तयोर्मर्दनं कृत्वा शिर: संताड्य चाकरोत्। पश्चात्तापं महामंत्री नष्टेऽर्थे कृपणो यथा ॥
पलायितो महावीर: संग्रामाच्च यथा तथा। —आनंदरामायण
१४६८-६९ विवेकी वेदविद् विप्र: सुजाति: साधुसम्मत:। यथा च मदिरां पीत्वा मंत्री शोचति वै तथा ॥
१४७०-७१ यथा कुलोद्भवा साध्वी प्रवीणा पतिदेवता। मनसा कर्मणा वाचा नारी कर्मवशात् प्रियम् ॥
त्यक्त्वा वियोगजं दु:खं सहते मंत्रिणस्तथा। हृदये दारुणो दाहश्चासीद् रामवियोगत: ॥वशिष्ठरा०

दो०—धाइ पूछिहहिं मोहिं जब , बिकल नगर नर - नारि ।
उतर देब मैं सबहि तब , हृदय बज्र बैठारि ।। १४५ ।।

१४८० पुछिहहिं दीन दुखित सब माता । कहब काह मैं तिन्हहिं बिधाता ।
पूछिहि जबहिं लखन - महतारी । कहिहौं कवन सँदेस सुखारी । (१)
राम - जननि जब आइहि धाई । सुमिरि बच्छ, जिमि धेनु लवाई ।
पूछत, उतर देब मैं तेही । गे बन राम - लखन - बैदेही । (२)
जोइ पूछिहि तेहि ऊतर देवा । जाइ अवध अब यह सुख लेवा ।
पूछिहि जबहिं राउ दुख - दीना । जिवन जासु रघुनाथ - अधीना । (३)
देहौं उतर कौन मुँह लाई । आयउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ।
सुनत लखन - सिय - राम सँदेसू । तृन-जिमि तनु परिहरिहि नरेसू । (४)

दो०—हृदय न बिदरेउ पंक-जिमि , बिछुरत प्रीतम नीर ।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि , जम - जातना सरीर ।। १४६ ।।

१४९० एहि बिधि करत पंथ पछितावा । तमसा - तीर तुरत रथ आवा ।
बिदा किए, करि बिनय, निषादा । फिरे पाँयँ परि, बिकल-बिषादा । (१)

पूछेंगे (कि रामको कहाँ छोड़ आए ? लक्ष्मण और सीता कहाँ हैं ?) तब अपने हृदयपर वज्र रखकर मैं सबको क्या उत्तर दे पाउँगा ? ।। १४५ ।। जब दीन और दुखी माताएँ आ-आकर पूछेंगी, तब विधाता ! उन्हें मैं क्या उत्तर दे पाऊँगा ? जब लक्ष्मणकी माता आकर पूछेंगी तो मैं उन्हें कौन-सी सुखकी बात सुना पाऊँगा ? (१) जब रामकी माता इस प्रकार दौड़ी आवेंगी जैसे बछड़ेका स्मरण करके नई ब्याई हुई गौ दौड़ी आती है, तब उनके पूछनेपर क्या मैं यही उत्तर दूँगा कि राम, लक्ष्मण और सीता वनमें ही रह गए ? (मैं उन्हें वनमें छोड़ आया हूँ) । (२) जो भी पूछेगा उसे उत्तर तो देना ही होगा ? तो क्या मेरे भाग्यमें अयोध्या जाकर अब यही सुख लेना बदा रह गया है । जिन (राजा दशरथ)-का जीवन रामपर ही आश्रित है, वे जब (रामके बिछोहके) दुःखसे बेहाल होकर मुझसे पूछ बैठेंगे कि क्या रामको वन दिखाकर लौटा ले आए, (३) तब मैं किस मुँहसे कह पाऊँगा कि आपके राजकुमारोंको मैं कुशल-पूर्वक वनमें छोड़े चला आ रहा हूँ । ज्यों ही उनके कानमें लक्ष्मण, सीता और राम (-के वनमें रह जाने)-का समाचार पड़ेगा कि राजा दशरथको अपना शरीर तृणके समान छोड़नेमें वैसे ही देर न लगेगी जैसे जल सूखते ही कीचड़ फट पड़ता है। (४) (हाय !) प्रियतम रामके बिछुड़ते ही जब मेरा हृदय नहीं फट पाया तभी मैं समझ गया कि विधाताने मुझे (रामके वियोगकी) यम-यातना (अपार कष्ट) सहनेके लिये ही यह शरीर दे रक्खा है' ।।१४६।। सुमन्त्र इसी प्रकार सारे मार्ग-भर झींकते-पछताते चले जा रहे थे । अन्तमें उनका रथ तमसाके तीरपर आ खड़ा हुआ । तब उन्होंने बहुत

१४७२-७८ रामचन्द्रवियोगेन व्याकुलो मंत्रिणां वरः । सुमंत्रो विविधां चिन्तां चकार मनसि स्वके।।महारा०
१४८०-८१ विधातर्मातरः सर्वा यदा प्रक्ष्यंति दुःखिताः । तदोत्तरं किं दास्यामि जननी लक्ष्मणस्य च ।।
यदा प्रक्ष्यति संदेशं किं वक्ष्याम्यहमुत्तमम् । —पुलस्त्यसंहिता
१४८२-८३ श्रीराममाता संस्मृत्य यदायास्यति वेगतः । मां प्रक्ष्यति तदा तस्यै किं दास्याम्यहमुत्तरम् ।।ब्रह्मरा०
१४८४-८७ ये ये प्रक्ष्यंति दास्यामि तानहं तूत्तरं नृपः । यदा प्रक्ष्यति मां तस्मै किं वदिष्यामि चोत्तरम्।।आन.रा.
१४८८-८९ शुष्के नीरे यथा पंकं तथा हृन्न विदीर्य्यते । अतो जानामि दैवेन दत्ता मे यमयातना।।पुलस्त्यसं०
१४९०-९१ कुर्वन्मंत्रिवरो विद्वान् विप्रतीसारमध्वनि । सरथस्तमसातीरं सुमंत्रस्तूर्णमागताः ।।
नम्रतापूर्वकं मंत्री प्रेपयामास मंदिरम् । निषादास्तं प्रणम्याशु निवृत्ताः शोकसंयुताः ।। अग्निपु०

पैठत नगर सचिब सकुचाई। जनु मारेसि गुरु - बाँभन - गाई।
बैठि बिटपतर दिवस गँवावा। साँझ समय तव अवसर पावा। (२)
अवध - प्रवेस कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन, रथ राखि दुआरे।
जिन्ह - जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूप - द्वार रथ देखन आये। (३)
रथ पहिचानि, विकल लखि घोरे। गरहिं गात, जिमि आतप ओरे।
नगर नारि - नर व्याकुल कैसे। निघटत नीर, मीन - गन जैसे। (४)

दो०—सचिव-आगमन सुनत सब, बिकल भयउ रनिवास।
भवन भयंकर लाग तेहि, मानहुँ प्रेत - निवास॥ १४७॥

१५०० अति आरति सब पूछहिं रानी। उतर न आव बिकल भइ बानी।
सुनइ न श्रवन, नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप, जेहि-तेहि बूझा। (१)
दासिन्ह दीख सचिव - बिकलाई। कौसल्यागृह गईं लवाई।
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिय - रहित जनु चंद बिराजा। (२)
आसन - सयन - बिभूषन - हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना।
लेइ उसाँस, सोच एहि भाँती। सुरपुर - तें जनु खसेउ जजाती। (३)

विनय करके चारों केवटोंको वहाँसे विदा कर लौटाया और वे केवट भी उनके पाँव पड़कर बहुत दुखी मनसे व्याकुल होते हुए लौट चले। (१) अयोध्यामें प्रवेश करते हुए सुमन्त्र ऐसे झिझके जा रहे थे मानो गुरु, ब्राह्मण और गायकी हत्या किए चले आ रहे हों। उन्होंने सारा दिन एक पेड़के नीचे बैठ बिताया। सन्ध्या होनेपर उन्होंने देखा कि अब अवसर अच्छा है (कोई देख नहीं पावेगा), (२) इसलिये कुछ झुटपुटा होते ही वे अयोध्यामें जा प्रविष्ट हुए और धीरेसे द्वारपर रथ खड़ा करके (दबे पाँव) राजभवनके भीतर चले गए। (पर ऐसी बात क्या छिपाए छिपती है !) जिस-जिसने यह समाचार सुना वह झट रथ देखने राजद्वारकी ओर दौड़ पड़ा। (३) रथ पहचानकर और घोड़ोंको व्याकुल देखकर उनकी दशा वैसी ही हो चली जैसे धूपमें पड़कर गलते हुए ओलेकी होती है (सबका जी बैठ गया)। अयोध्याके स्त्री और पुरुष ऐसे छटपटा उठे जैसे पानी घट जानेपर मछलियाँ छटपटा उठती हैं। (४) मन्त्रीको (अकेले) लौटे सुनते ही जब सारा रनिवास आर्तनाद कर उठा तब सुमंत्रको ऐसा लगा मानो वह राजभवन न हो वरन् प्रेतोंका निवास (श्मशान) बन चला हो ॥१४७॥ सब रानियाँ अत्यन्त आर्त्त हो-होकर मंत्रीसे पूछे चली जा रही थीं पर मंत्रीकी वाणी इतनी विकल हो गई थी (उनका गला इतना रुँध गया था) कि वे किसीको कोई उत्तर नहीं दे पा रहे थे। उन्हें न तो कुछ सुनाई पड़ रहा था न दिखाई पड़ रहा था। उनसे जो मिलता था उससे यही पूछते जा रहे थे—'कहो ! राजा (दशरथ) कहाँपर हैं ?' (१) दासियोंने जब देखा कि मंत्री सब सुध-बुध खोए बैठे हैं तो वे उन्हें कौशल्याके महलमें लिवाए चली गईं। वहाँ जाकर सुमंत्रने देखा कि राजा ऐसे पड़े हैं जैसे अमृतसे रहित चन्द्रमा धरतीपर लुढ़का पड़ा हो। (२) राजा (दशरथ) नंगी धरतीपर बिना आसन (बिछावन), शय्या और आभूषणके अत्यन्त मलिन (उदास) हुए लेटे पड़े थे। शोकके कारण उनका वे लंबी-लंबी साँसें लिए जा रहे थे मानो राजा ययाति ही स्वर्गसे नीचे आ

१४९२-९८ नगरद्वारमासाद्य त्वरितः प्रविवेश ह। सुमंत्रमभिधावंतः शतशोऽथ सहस्रशः।
क्व राम इति पृच्छंतः सूतमभ्यद्रवन्नराः। —वाल्मीकीयरामायण
१५०४-५ अपश्यद् महाराजं शयानमतथोचितम्। ययातिमिव पुण्यांते देवलोकात्परिच्युतम्॥ वा०रा०

लेत सोच भरि छिन - छिन छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती।
राम - राम कह राम - सनेही। पुनि कह राम - लखन - बैदेही। (४)
दो०—देखि, सचिव जय जीव ! कहि , कीन्हेउ दंड प्रनाम।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति , कहु सुमंत्र ! कहँ राम ॥ १४८ ॥
१५१० भूप, सुमंत्र लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई।
सहित - सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ, नयन भरि बारी। (१)
राम - कुसल कहु, सखा सनेही। कहँ रघुनाथ, लखन, बैदेही।
आने फेरि, कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिव - लोचन जल छाए। (२)
सोक - बिकल पुनि पूछ नरेसू। कहु सिय - राम - लखन - संदेसू।
राम - रूप - गुन - सील - सुभाऊ। सुमिरि - सुमिरि, उर सोचत राऊ। (३)
राज सुनाय, दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष-हरासू।
सो सुत बिछुरत, गए न प्राना। को पापी बड़ मोहिं समाना। (४)
दो०—सखा ! राम-सिय-लखन जहँ , तहाँ मोहिं पहुँचाउ।
नाहिंत चाहत चलन अब , प्रान, कहौं सति भाउ ॥ १४९ ॥

गिरे हों। (३) शोकके कारण क्षण-क्षणपर उनकी छातीऐसी भर-भर आती थी, मानो पंख जल जानेपर सम्पाती धरतीपर पड़ा लम्बी-लम्बी साँसें लिए सिसक रहा हो। रामसे स्नेह करनेवाले राजा (दशरथ) निरन्तर पहले राम-राम, फिर राम, लक्ष्मण और सीताका स्मरण किए चले जा रहे थे। (४) मन्त्रीने उनकी यह स्थिति देखकर (धीरेसे) 'जय जीव !' कहकर दण्ड-प्रणाम कर लिया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठकर पूछ बैठे—'कहो सुमंत्र ! राम कहाँ रह गए ?' ॥ १४८ ॥ राजाने उठकर सुमंत्रको हृदयसे लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी डूबतेको सहारा मिल गया हो। उन्होंने (सुमंत्रको) बड़े प्रेमसे अपने पास पकड़ बैठाया और डबडबाई आँखोंसे पूछा—(१) 'मेरे प्रेमी सखा ! रामकी कुशल सुना जाओ। बताओ राम, जानकी और लक्ष्मण कहाँ है ? तुम उन्हें लौटा लाए या वे वन चले ही गए ?' यह सुनते ही मंत्रीके नेत्रोंमें आँसू छलछला आए। (२) शोकसे व्याकुल राजाने फिर पूछा—'कहो ! राम, लक्ष्मण और सीताका क्या समाचार है ?' रामके सौन्दर्य, गुण, शील और स्वभावका स्मरण कर-करके राजा (दशरथ) हृदयमें इस प्रकार पछताए जा रहे थे—(३) 'जिस पुत्रको राज्य देनेका शुभ समाचार सुनाकर उसे मैंने वनवास दिया, उसपर न तो वह राजतिलकके समाचारसे प्रसन्न हुआ और न वन जानेका समाचार सुनकर दुखी ही हुआ, ऐसे (योग्य) पुत्रके बिछुड़ते ही जब मेरे प्राण निकल नहीं गए, (तब बताओ) मुझसे बड़ा पापी (संसारमें) और कौन निकलेगा ? (४) देखो सखा ! अब या तो तुम मुझे वहीं ले जा पहुँचाओ जहाँ राम, लक्ष्मण और सीता हैं, नहीं तो मैं सत्य कहे देता हूँ कि मेरे प्राण बस अब निकलने ही वाले हैं' ॥ १४९ ॥ राजा (दशरथ) बार-बार मंत्रीसे पूछे

१५०८-९ बहिरेव रथं स्थाप्य राजानं द्रष्टुमाययौ। जयशब्देन राजानं स्तुत्वा तं प्रणनाम ह ॥
१५११-१२ ततो राजा नमंतं तं सुमंत्रं विह्वलोऽब्रवीत्। सुमंत्र रामः कुत्रास्ते सीतया लक्ष्मणेन च ॥
१५१४ हा राम हा गुणनिधे हा सीते प्रियवादिनि। दुःखार्णवे निमग्नं मां म्रियमाणं न पश्यसि ॥
विलप्यैवं चिरं राजा निमग्नो दुःखसागरे। —अध्यात्मरामायण
१५१८-१९ सूत यद्यस्ति ते किंचिन् मयापि सुकृतं कृतम्। त्वं प्रापयाशु मां रामं प्राणाः संत्वरयन्ति माम्॥वा.रा.

१५२० पुनि - पुनि पूछत मंत्रिहिं राऊ। प्रियतम - सुअन - सँदेस सुनाऊ।
करहि सखा ! सोइ वेगि उपाऊ। राम - लखन - सिय नयन देखाऊ। (१)
सचिव धीर धरि, कह मृदु बानी। महाराज ! तुम पंडित, ज्ञानी।
बीर - सुधीर - धुरंधर देवा। साधु - समाज सदा तुम सेवा। (२)
जनम - मरन, सब दुख - सुख भोगा। हानि-लाभ, प्रिय - मिलन-वियोगा।
काल - करम - बस होहिं गोसाईं। बरवस राति - दिवस - की नाईं। (३)
सुख हरषहिं जड़, दुख बिलखाहीं। दोउ सम, धीर धरहिं मन - माहीं।
धीरज धरहु, बिवेक बिचारी। छाँड़िय सोच, सकल हितकारी। (४)

दो०—प्रथम बास तमसा भयउ , दूसर सुरसरि - तीर।
न्हाइ रहे जल पान करि , सिय - समेत दोउ वीर ॥ १५० ॥

१५३० केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाई।
होत प्रात, बटछीर मँगावा। जटा - मुकुट निज सीस बनावा। (१)
राम - सखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ, चढ़े रघुराई।
लखन बान - धनु धरे बनाई। आपु चढ़े प्रभु - आयसु पाई। (२)

जा रहे थे—'मेरे परम प्रिय पुत्र (राम)-का समाचार सुना क्यों नहीं डालते। देखो सखा ! अब तुम झटपट जैसे भी हो राम, लक्ष्मण और जानकीको इन आँखोंके सामने ला ही खड़ा करो।' (१) मंत्री बहुत धीरज धरकर अत्यन्त कोमल वाणीसे समझाने लगे—'महाराज ! आप तो बड़े पण्डित और ज्ञानी हैं। आप बड़े वीरों और धीरधारियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। आपने सदा सज्जनोंकी ही संगति की है (इसलिये चिन्ता छोड़िए)। (२) देखिए स्वामी ! जन्म और मरण, सुख और दुःखका भोग, हानि और लाभ, प्रियका मिलन और वियोग, ये सब तो समय-समयपर और कर्म-वश दिन और रातके समान अनायास होते ही रहते हैं। (३) केवल मूर्ख लोग ही सुख मिलनेपर प्रसन्न और दुःख पड़नेपर दुखी हो उठते हैं पर धैर्यवान् लोग तो दोनों (सुख और दुःख)-को एक-सा ही मानते हैं। इसलिये आप विवेकसे विचार करके धैर्य धारण कीजिए क्योंकि इसीसे सबकी भलाई हो सकती है। इसलिये शोक छोड़ दीजिए। (४) (रामका समाचार यह है कि राम, लक्ष्मण और जानकीने) पहला डेरा तमसाके तीरपर डाला और दूसरा गंगाके तीरपर, जहाँ सीताके साथ दोनों वीरोंने स्नान किया और जल पीया ॥ १५० ॥ वहाँ केवट (निषादराज)-ने उनकी बड़ी आवभगत और सेवा की। वह रात उन्होंने शृङ्गवेरपुरमें ही बिता दी। फिर सवेरा होते ही उन्होंने बरगदका दूध मँगाकर उससे अपने सिरपर जटाका मुकुट बना बाँधा। (१) तब रामके सखा केवट (निषादराज)-ने नाव मँगवा खड़ी की। उसपर पहले प्रिया (जानकी)-को चढ़ाकर तब वे स्वयं चढ़ गए। लक्ष्मणने पहले धनुष-बाण ठीक करके नावपर ला रक्खे और तब प्रभुकी आज्ञासे वे भी नावपर चढ़ गए (२)

१५२०-२१ यद्यापि ममैवाज्ञा निवर्तयतु राघवम्। न शक्ष्यामि विना रामं मुहूर्तमपि जीवितुम्॥वा०रा०
१५२५-२७ ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य संपद्यते सुखम्। दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्संतोषमाश्रयेत्॥
शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्। शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः ॥चा०नी०
१५२८-२९ एवं मंत्री रुदन्तं तं प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत्। रामः सीता च सौमित्रिर्मया नीता रथेन ते॥
१५३० शृङ्गवेरपुराभ्याशे गंगाकूले व्यवस्थिताः। —अध्यात्मरामायण
१५३०-३१ गुहेन किंचिदानीतं फलमूलादिकं च यत्। स्पृष्ट्वा हस्तेन संप्रीत्या नाग्रहीद् विससर्ज तत्॥
वटक्षीरं समानाय्य गुहेन रघुनन्दनः। जटामुकुटमाबद्ध्य ममाह नृपते स्वयम्॥ अध्या०

बिकल बिलोकि मोहिँ, रघुबीरा। बोले मधुर बचन, धरि धीरा।
तात ! प्रनाम तात - सन कहेहू। बार - बार पद - पंकज गहेहू। (३)
करबि पाँय परि बिनय बहोरी। तात ! करिय जनि चिंता मोरी।
बन - मग मंगल - कुसल हमारे। कृपा - अनुग्रह - पुन्य तुम्हारे। (४)
छंद—तुम्हरे अनुग्रह तात ! कानन जात, सब सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु, कुसल देखन पाँयँ पुनि फिरि आइहौं।
१५४० जननी सकल परितोषि, परि - परि पाँयँ, करि बिनती घनी।
तुलसी, करेहु सोइ जतन, जेहिं, कुसली रहहिँ कोसल - धनी ॥ [६]
सो०—गुरु - सन कहब सँदेस, बार-बार पद-पदुम गहि।
करब सोइ उपदेस, जेहि न सोच मोहि अवधपति ॥ १५१ ॥
पुरजन, परिजन, सकल निहोरी। तात ! सुनायेहु बिनती मोरी।
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातेँ रह नर - नाह सुखारी। (१)
कहब सँदेस, भरत - के आए। नीति न तजिय राज-पद पाए।
पालेहु प्रजहि, करम - मन - बानी। सेऐहु मातु सकल, सम जानी। (२)

रामने मुझे व्याकुल देखा तो धैर्यके साथ मधुर वचनोंमें कहा—'तात ! पितासे मेरा प्रणाम कहिएगा और बार-बार मेरी ओरसे उनके चरण पकड़िएगा। (३) फिर उनके चरणोंपर गिरकर निवेदन कीजिएगा कि आप मेरे लिये चिन्ता न करें। आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्यसे वनका मार्ग सदा सुखदायक और मङ्गलमय ही होगा। (४) आपके अनुग्रहसे वनमें मैं सब प्रकारसे सुखी रहूँगा। आपकी आज्ञाका पालन करके (चौदह वर्ष वनमें बिताकर) फिर कुशल-पूर्वक लौटकर आपके चरणोंका दर्शन करूँगा। और यह भी कहा कि सब माताओंके पैरों पड़कर बड़े विनयके साथ उन्हें बहुत समझाकर कह दीजिएगा कि वे सदा ऐसा ही प्रयत्न करती रहें जिससे कोशलाधीश दशरथ कुशलसे रहें (उन्हें कोई कष्ट न हो पावे)। [६] (और कहा कि) गुरुके चरण-कमलोंमें बार-बार पड़कर मेरा यही संदेश कहिएगा कि वे राजाको यही उपदेश दें कि वे मेरी चिन्ता न करें ॥ १५१ ॥ (और यह भी कहा कि) पुरवासियों और कुटुम्बी-जनोंसे बड़ी विनम्रताके साथ मेरी ओरसे प्रार्थना कीजिएगा कि मैं उसीको सब प्रकारसे अपना हितकारी समझूँगा जो राजा (दशरथ)-को सब प्रकारसे सुखी रक्खे। (१) भरतके आनेपर उनसे मेरा यह संदेश कहिएगा कि राजपद पाकर नीति न छोड़ें, मन, वचन और कर्मसे प्रजाका पालन करें, सब माताओंको समान जानकर उनकी सेवा करें, (२)

१५३४-३५ अब्रवीन्मे महाराज धर्ममेवानुपालयन्। अंजलिं राघवः कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य च ॥
सूत मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः। शिरसा वंदनीयस्य वंद्यौ पादौ महात्मनः ॥वा०रा०
१५३६-३७ सुमंत्र ब्रूहि राजानं शोकस्तेऽस्तु न मत्कृते। साकेतादधिकं सौख्यं विपिने नो भविष्यति ॥अ०रा०
१५४१ मातुर्मे वंदनं ब्रूहि शोकं त्यजतु मत्कृते। आश्वासयतु राजानं वृद्धं शोकपरिप्लुतम् ॥
१५४२-४३ गृहीत्वा गुरुपद्यांघ्री त्वया वाच्यं पुनः पुनः। न मां शोचेन्महाराजो यथा कार्यं तथा त्वया ॥पुल०सं०
१५४४-४५ सर्वमंतःपुरं वाच्यं सूत मद्वचनात्त्वया। आरोग्यमविशेषेण यथार्हमभिवादनम् ॥
१५४६-४७ भरतः कुशलं वाच्यो वाच्यो मद्वचनेन च। सर्वास्वेव यथान्यायं वृत्तिं वर्तस्व मातृषु ॥वा०रा०

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु - मातु - सुजन - सेवकाई।
तात! भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ। (३)
१५५० लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम, पुनि मोहिं निहोरा।
बार - बार निज सपथ दिवाई। कहबि न तात! लखन - लरिकाई। (४)
दो०—कहि प्रनाम, कछु कहन-लिय, सिय भइ सिथिल-सनेह।
थकित बचन, लोचन सजल, पुलक - पल्लवित देह ॥ १५२ ॥
तेहि अवसर, रघुबर - रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई।
रघु-कुल-तिलक चले ऐहि भाँती। देखेउँ ठाढ़, कुलिस धरि छाती। (१)
मैं आपन किमि कहउँ कलेसू। जियत फिरेउँ लेइ राम - सँदेसू।
अस कहि सचिव बचन, रहि गयऊ। हानि - गलानि - सोच - बस भयऊ। (२)
सूत - बचन सुनतहि नर - नाहू। परेउ धरनि, उर दारुन दाहू।
तलफत बिषम मोह, मन - मापा। माँजा मनहुँ मीन - कहँ ब्यापा[1]। (३)

पिता-माता तथा स्वजनोंकी सेवा करते हुए भाइयोंके साथ भ्रातृत्वका निर्वाह करें और राजाकी इस प्रकार सेवा करें जिससे उन्हें मेरे लिये किसी प्रकारकी चिन्ता न हो (वे मेरी ओरसे पूर्ण निश्चिन्त रहें)। (३) लक्ष्मण कुछ कठोर वचन भी कहने लगे थे, पर रामने उन्हें टोककर मुझसे अनुरोध किया और बार-बार अपनी सौगंध दिलाई कि तात! लक्ष्मणका लड़कपन वहाँ जाकर मत कह दीजिएगा। (४) प्रणाम करके सीता भी कुछ कहना चाहती थीं पर स्नेहके कारण उनका गला रुँध आया, वे कुछ बोल न पाईं, उनकी आँखें डबडबा चलीं और सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा ॥ १५२ ॥ उसी समय रामका संकेत पाकर केवटने पार जानेके लिये नाव खोल दी। इस प्रकार रघुकुलके तिलक राम (मुझे छोड़कर) चले गए और मैं अपनी छातीपर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा (उन्हें जाते) देखता रह गया। (१) मैं आपको अपना दुखड़ा क्या सुनाऊँ कि रामका यह संदेश लेकर भी मैं जीता-जागता लौटा चला आ रहा हूँ (मुझे तो वहाँ ही मर जाना चाहिए था)।' ऐसा कहते-कहते मन्त्रीका गला रुँध आया (इससे अधिक वे कुछ बोल नहीं पाए) और वे इस (रामको न लौटा ला सकनेकी) हानिकी ग्लानि (कसक) और शोकमें डूब गए। (२) सारथि सुमंत्रके वचन सुनते ही राजा धरतीपर पछाड़ खाकर गिर पड़े। उनके हृदयमें भयंकर दुःखकी ज्वाला धधक उठी। वे भीषण मोहसे तड़प उठे और उनका मन इतना व्याकुल हो गया मानो मछलीको

१. मनहुँ मीन कहँ माँजा ब्यापा।

१५४८-४९ वक्तव्यश्च महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनंदनः। पितरं यौवराज्यस्थो राज्यस्थमनुपालय ॥
अतिक्रांतवयो राजा मास्मैनं व्यपरोरुधः। कुमार राज्ये जीवस्य तस्यैवाज्ञाप्रवर्तनात् ॥
१५५० लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो निःश्वसन् वाक्यमब्रवीत्। केनायमपराधेन राजपुत्रो विवासितः ॥
१५५२-५३ जानकी तु महाराज निःश्वसंती तपस्विनी। भूतोपहतचित्तेवाविष्टिता विस्मृता स्थिता ॥
अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी। तेन दुःखेन रुदती नैव मां किंचिदब्रवीत् ॥वा०रा०
१५५४-५५ ततस्तेऽश्रुपरीताक्षा नावमारुरुहुस्तदा। यावद् गंगां समुत्तीर्य गतास्तावदहं स्थितः ॥
१५५६-५७ ततो दुःखेन महता पुनरेवाहमागतः। —अध्यात्मरामायण
१५५८ अशोभनं योऽहमिहाद्य राघवं दिदृक्षमाणो न लभे सलक्ष्मणम्।
इतीव राजा विलपन् महायशाः पपात तूर्णं शयने स मूर्च्छितः ॥ —वाल्मीकीयरामायण

१५६० करि बिलाप, सब रोवहिँ रानी। महा - बिपति किमि जाइ बखानी।
सुनि बिलाप, दुखहू दुख लागा। धीरजहू - कर धीरज भागा। (४)
दो०—भयउ कोलाहल अवध अति, सुनि नृप-राउर सोर।
बिपुल बिहँग-बन परेउ निसि, मानहुँ कुलिस कठोर॥ १५३॥
प्रान कंठ-गत भयउ भुआलू। मनि - बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू।
इंद्री सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर-सरसिज-बन बिनु-बारी। (१)
कौसल्या, नृप दीख मलाना। रवि-कुल-रबि अथएउ जिय जाना।
उर धरि धीर, राम - महतारी। बोली बचन समय - अनुसारी। (२)
नाथ! समुझि मन, करिय बिचारू। राम - बियोग - पयोधि अपारू।
करनधार तुम, अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय-पथिक-समाजू। (३)
१५७० धीरज धरिय त पाइय पारू। नाहिँ त बूड़िहि सब परिवारू।
जौं जिय धरिय, बिनय पिय मोरी। राम - लखन-सिय मिलहिँ बहोरी। (४)
दो०—प्रिया बचन मृदु सुनत नृप, चितएउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत सीतल बारि॥ १५४॥

माँजा आ चढ़ा हो (वर्षाकी पहली झड़ीसे उत्पन्न फेन खानेसे व्याकुल हो उठी हो)। (३) सब रानियाँ धाड़ मार-मारकर रो उठीं। उस समय जैसा शोक उमड़ चला था उसका वर्णन कोई कैसे कर पा सकता है ? उनका रोना-पीटना सुन-सुनकर 'दुःख' भी दुखी हो उठा और 'धैर्य'-का धीरज भी भाग खड़ा हुआ। (४) राजाके रनिवासका यह रोना-पीटना सुनकर अयोध्यामें भी ऐसा प्रचण्ड हा-हाकार मच उठा, मानो (बसेरा लेते हुए) पक्षियोंसे भरे विशाल वनपर रातको कड़ककर बिजलियाँ टूट गिरी हों ॥१५३॥ राजाके प्राण कण्ठमें आ गए, मानो मणिके बिना सर्प व्याकुल हो उठा हो। उनकी सारी इन्द्रियाँ ऐसी संज्ञाशून्य (सुन्न) हो चलीं जैसे बिना पानीके सरोवरके कमल मुरझा चले हों (१) कौशल्याने राजाको इतना अधिक दुखी देखकर मनमें समझ लिया कि सूर्यवंशका सूर्य बस अब डूबा ही चाहता है। पर हृदयमें बहुत धैर्य धारण करके रामकी माता (कौशल्या) समय देखकर समझाने लगी—(२) 'नाथ ! आप मनमें यह तो समझकर विचार करें कि रामके बिछोहका यह जो अपार समुद्र है इसमें आप ही तो अयोध्याके उस जहाजको बचा रखनेवाले कर्णधार (खेवैया) हैं जिसपर प्रिय, परिजन और प्रजा सब यात्री बने चढ़े हुए हैं। (३) आप धैर्य रक्खेंगे तो सब इस संकटसे पार हो जायेंगे, नहीं तो सारा समाज डूबा ही समझिए। प्रिय स्वामी ! मेरी इतनी प्रार्थना आप मान लें कि राम, लक्ष्मण और सीता तो फिर (अवधि पूरी होनेपर) आकर मिलेंगे ही (उनके लिये क्यों बेचैन हुए जा रहे हैं)।' (४) प्रिया (कौशल्या)-के ये मधुर वचन सुनते ही राजाने आँखें खोल दीं और उन्हें ऐसी शान्ति मिली मानो (जलके बिना) तड़पती हुई दीन मछलीपर किसीने ठंढा पानी ला छिड़का हो ॥ १५४ ॥ बहुत धीरज धरकर राजा उठ बैठे और सुमंत्रसे

१५६०-६२ ततस्तमंतःपुरनादमुत्थितं समीक्ष्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुः समंततः पुरं तदासीत्पुनरेव संकुलम्॥ —वाल्मीकीयरामायण

१५६८ त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले धैर्यात्कदाचिद् गतिमाप्नुयात्सः।
यथा समुद्रेऽपि च पोतभंगे सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव॥ —पंचतन्त्र

धरि धीरज, उठि बैठि भुआलू। कहु सुमंत्र! कहँ राम कृपालू।
कहाँ लखन, कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्र-बधू बैदेही। (१)
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग-सरिस, सिराति न राती।
तापस-अंध-साप सुधि आई। कौसल्यहिं सब कथा सुनाई। (२)
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम-रहित धिग जीवन-आसा।
सो तनु राखि करबि मैं काहा। जेहि न प्रेम-पन मोर निबाहा। (३)
१५८० हा रघुनंदन! प्रान-पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते।
हा जानकी! लखन! हा रघुबर। हा, पितु-हित-चित-चातक-जलधर। (४)
दो०—राम-राम कहि, राम कहि, राम-राम, कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर-बिरह, राउ गयउ सुरधाम॥ १५५॥
जियन-मरन-फल दसरथ पावा। अंड अनेक, अमल जस छावा।
जियत राम-बिधु-बदन निहारा। राम-बिरह करि[1] मरन सँवारा। (१)

पूछने लगे—'बताओ सुमंत्र! कृपालु राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? मेरी प्यारी बहू (पुत्रवधू) जानकी कहाँ हैं?' (१) राजा व्याकुल हो-होकर अनेक प्रकारसे बिलख-बिलखकर रो उठे। वह रात भी युगके समान (लंबी) हुई जा रही थी। किसी प्रकार बिताए नहीं बीत पा रही थी। इसी समय उन्हें अन्धे तपस्वी (श्रवणकुमारके पिता)-के शापकी बात स्मरण हो आई और उन्होंने उस तपस्वीके शापकी सारी कथा कौशल्याको कह सुनाई[2]। (२) यह कथा कहते-कहते राजा व्याकुल हो उठे और कहने लगे—'रामके बिना जीनेकी आशा करना ही धिक्कारकी बात है। मैं ऐसा शरीर रखकर करूँगा ही क्या जो मेरे प्रेमका प्रण निबाह न सके।' (मैंने प्रण किया था कि रामके बिना जीवित नहीं रहूँगा इसलिये शरीर नहीं रक्खूँगा)। (३) 'हाय रघुनन्दन! हाय मेरे प्राण-प्यारे राम! तुम्हारे बिना मैं बहुत दिन जीता रह चुका। हाय लक्ष्मण! हाय रघुवर! हाय! पिताके प्रेम-भरे चित्तके चातककी प्यास बुझानेवाले मेघ!' (४) (इस प्रकार तड़पते हुए राजा दशरथ) बार-बार राम-राम, राम-राम, राम-राम कहते हुए रामके वियोगमें शरीर त्यागकर स्वर्गलोक सिधार गए॥ १५५॥ जीने और मरनेका (सच्चा) फल यदि किसीने पाया तो राजा दशरथने पाया (कि जीते रहे तो रामसे प्रेम करते रहे और मरे तो रामके विरहमें मरे)। उनका यह निर्मल यश सारे ब्रह्माण्डमें फैल गया। जीते जी वे रामका चन्द्र-जैसा मुखड़ा देखकर जीते रहे और मरे तो रामके विरहमें मरे और इस प्रकार अपना मरण भी उन्होंने

१. मरि। २. युवावस्थामें राजा दशरथ आखेट करने गए तो रात्रिके समय नदीमें श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिताको जल पिलानेके लिये घड़ा भर रहा था। दशरथने समझा कि हाथी पानी पी रहा है। बाण चला चुकनेपर आर्त स्वरसे ज्ञात हुआ कि वह मुनिपुत्र श्रवणकुमार है। उसकी मृत्यु होनेपर उसके अन्धे माता-पिताने दशरथको शाप दिया कि तुम भी अपने पुत्रके वियोगमें प्राण दोगे।

१५७७-७८ इदानीमेव मे प्राणा उत्क्रमिष्यंति निश्चयः। शप्तोहं बाल्यभावेन केनचिन्मुनिना पुरा॥
स इदानीं मम प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः। इत्युक्त्वा विललापाथ राजा शोकसमाकुलः॥
१५८०-८३ हा राम पुत्र हा सीते हा लक्ष्मण गुणाकर। त्वद्वियोगादहं प्राप्तो मृत्युं कैकेयिसंभवम्॥
वदन्नेवं दशरथः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः॥ —अध्यात्मरामायण

सोक - बिकल सब रोवहिं रानी। रूप - सील - बल - तेज बखानी।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि - तल बारहिं बारा। (२)
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर - घर रुदन करहिं पुर - बासी।
अथएँउ आज भानु - कुल - भानू। धरम-अवधि, गुन-रूप-निधानू। (३)
१५९० गारी सकल कैकइहि देहीं। नयन - बिहीन कीन्ह जग जेहीं।
ऐहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी। (४)
दो०—तब बसिष्ठ मुनि, समय-सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि - कर, निज बिग्यान - प्रकास ।। १५६ ।।
तेल नाव भरि नृप - तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा।
धावहु बेगि, भरत - पहँ जाहू। नृप-सुधि कतहुँ, कहहु जनि काहू। (१)
ऐतनेइ कहेउ भरत - सन जाई। गुरु बोलाइ पठयेउ दोउ भाई।
सुनि मुनि - आयसु, धावन धाए। चले बेगि, बर - बाजि लजाए। (२)

सँवार (यशःपूर्ण बना) लिया। (१) सब रानियाँ (दशरथके प्राण त्यागते ही) शोकसे व्याकुल हो-होकर आर्त्तनाद कर उठीं। वे राजाके रूप, शील, बल और तेज (प्रताप)-का वर्णन करती हुई अनेक प्रकारसे विलाप करती हुई बार-बार पछाड़ें खा-खाकर धरतीपर लोटी पड़ रही थीं। (२) सब दास और दासियाँ भी व्याकुल हो-होकर रोने-पीटने लगीं और सारी अयोध्यामें घर-घर रोना-पीटना मच गया। सब (रोते हुए) कहते जा रहे थे—'आज धर्म पालनेवाला, रूप और गुणका भांडार और सूर्यकुलका सूर्य अस्त हो गया।' (३) जिसे देखो वही उस कैकेयीको गालियाँ दिए जा रहा था जिसने संसार भरको अंधा कर डाला (सबकी आँखोंकी ज्योति दशरथको छीन लिया, मार डाला)। (इस प्रकार रोते-कलपते) सारी रात बीत गई। सबेरा होते ही परम ज्ञानी (वशिष्ठ) मुनि वहाँ आ पहुँचे। (४) वशिष्ठ मुनिने आते ही इतिहासकी अनेक घटनाएँ सुना-सुनाकर अपने विज्ञानका प्रकाश देकर (किसी-किसी प्रकार समझा-बुझाकर) सबका शोक दूर किया ।।१५६।। (फिर मुनि वशिष्ठने) नावमें तेल भरवाकर राजाका शरीर उसमें उठवा रखवाया और दूतोंको बुलाकर उनसे कहा—'तुम लोग झटपट भरतके पास (राजा युधाजित्‌के नगर) दौड़े चले जाओ। पर राजाकी मृत्युकी भनक-तक भी कहीं किसीको न लग पावे। (१) भरतसे केवल इतना-भर कहना कि तुम दोनों भाइयोंको गुरुने अभी बुला भेजा है।' मुनिकी आज्ञा पाते ही दूत दौड़ चले। वे इतने वेगसे चले जा रहे थे कि उनकी चालके आगे अच्छे-अच्छे घोड़ोंकी चाल भी लजाई पड़ती थी। (२) जबसे अयोध्यामें यह

१५८६-८७ कौशल्या च सुमित्रा च तथाऽन्या राजयोषितः। चुक्रुशुश्च विलेपुश्च उरस्ताडनपूर्वकम् ।।अध्या०
१५८८-९० नराश्च नार्यश्च समेत्य संघशो विगर्ह्यमाणा भरतस्य मातरम्।
तदा नगर्यां नरदेवसंक्षये बभूवुरार्ता न च शर्म लेभिरे ।। —वाल्मीकीयरामायण
१५९१ व्यतीतायां तु शर्वर्यामादित्यस्योदये ततः। समेत्य राजकर्तारः सभामीयुर्द्विजातयः।।वा०रा०
१५९२-९३ कालानुकूलं विविधान् इतिहासान् मनोरमान्। वसिष्ठः कथयामास सर्वशोकहराय च।।आन०रा०
१५९४-९६ वसिष्ठः प्रययौ तत्र प्रातर्मंत्रिभिरावृतः। तैलद्रोण्यां दशरथं क्षिप्त्वा दूतानथाब्रवीत् ।।
गच्छत त्वरितं साश्वा युधाजिन्नगरं प्रति। तत्रास्ते भरतः श्रीमाञ्छत्रुघ्नसहितः प्रभुः ।।
उच्यतां भरतः शीघ्रमागच्छेति ममाज्ञया। —अध्यात्मरामायण
१५९७ ततः प्रास्थानिकं कृत्वा कार्यशेषमनंतरम्। वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाता दूताः संत्वरितं ययुः ।।वा०रा०

अनरथ अवध अरंभेउ जब - तें। कुसगुन होहिं भरत - कहँ तब-तें।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना। (३)
१६०० बिप्र जेवाँइ, देहिं दिन दाना। सिव-अभिषेक करहिं बिधि नाना।
माँगहिं हृदय, महेस मनाई। कुसल मातु - पितु - परिजन - भाई। (४)
दो०—ऐहि बिधि सोचत भरत-मन, धावन पहुँचे आइ।
गुरु-अनुसासन श्रवन सुनि, चले गनेस मनाइ ॥ १५७ ॥
चले समीर - बेग हय हाँके। नाँघत सरित, सैल, बन बाँके।
हृदय सोच बड़, कछु न सोहाई। अस जानहिं जिय, जाउँ उड़ाई। (१)
एक निमेष बरस - सम जाई। ऐहि बिधि भरत नगर नियराई।
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा। (२)
खर, सियार, बोलहिं प्रतिकूला। सुनि - सुनि होइ भरत-मन सूला।
श्रीहत सर, सरिता, बन, बागा। नगर बिसेषि भयावन लागा। (३)
१६१० खग, मृग, हय, गय जाहिं न जोए। राम - बियोग - कुरोग बिगोए।
नगर - नारि - नर निपट दुखारी। मनहुँ सबनि, सब संपति हारी। (४)

सब अनर्थ आरम्भ हुआ था तभीसे उधर भरतको भी अपशकुन होने लगे थे। उन्हें रातको बड़े भयानक-भयानक सपने दिखाई देने लगे थे और जागनेपर वे (उन स्वप्नोंके फलके विषयमें) बैठे अनेक प्रकारको अटकलें लगाने लगते थे (कि अयोध्यामें किसीपर कोई विपदा तो नहीं आ पड़ी)। (३) वे प्रतिदिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दान देने लगे थे और अनेक प्रकारसे शिवका अभिषेक करने लगे थे। वे अपने हृदयमें शिवसे यही मनाए जा रहे थे कि हमारे माता, पिता, कुटुम्बीजन और भाई सब कुशलसे बने रहें। (४) अपने मनमें भरत इस प्रकारकी चिन्ता कर ही रहे थे कि (अयोध्याके) दूत वहाँ आ पहुँचे। दूतोंके मुँहसे गुरुकी आज्ञा सुनते ही वे गणेशको मनाकर तत्काल वहाँसे चल पड़े ॥ १५७ ॥ आँधीके समान वेगवाले घोड़े सरपट भगाते हुए, बड़े-बड़े बीहड़ नद, नदी, पहाड़ और वन लाँघते हुए वे चले तो जा रहे थे पर साथ ही उनके हृदयको बड़ी दुश्चिन्ताएँ भी घेरे चली जा रही थीं। उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वे मन ही मन यही कामना किए जा रहे थे कि मैं कैसे उड़कर (शीघ्रसे शीघ्र अयोध्या) जा पहुँचूँ। (१) उनका एक-एक क्षण एक-एक वर्षके समान बीता जा रहा था। इस प्रकार सोचते-विचारते भरत अपने नगरके निकट जा ही तो पहुँचे। नगरमें प्रवेश करते ही अनेक (भयंकर) अपशकुन हो चले। कहीं कौए बुरे ढंगसे (नकियाकर) घूरोंपर बैठे काँव-काँव किए जा रहे थे। (२) कहीं गधे और सियार अपशकुन बतानेवाले ढंगसे रेंकते और हुआँ-हुआँ करते जा रहे थे। यह सब सुन-सुनकर भरतका जी बैठा चला जा रहा था। (अयोध्याके) सरोवर, नदी, वन और उपवन सबमें सन्नाटा छाया हुआ था। नगर तो और भी अधिक भयावना दिखाई पड़ रहा था। (३) पशु, पक्षी, घोड़े, हाथी-तक देखते नहीं बन रहे थे। रामके वियोगके रोगसे वे सबके सभी बहुत सुस्त हुए पड़े थे। नगरके स्त्री और पुरुष सभी ऐसे दुखी दिखाई पड़ रहे थे मानो वे अपनी सारी

१५९८-९९ यामेव रात्रिं ते दूताः प्रविशंतिस्म तां पुरीम्। भरतेनापि तां रात्रिं स्वप्नो दृष्टोयमप्रियः ॥वा०रा०
१६०२-३ आययौ गुरुणादिष्टः सहदूतस्तु सानुजः। राज्ञो वा राघवस्यापि दुःखं किंचिदुपस्थितम् ॥
इति चिन्तापरो मार्गे चिंतयन्नगरं ययौ ॥
१६०४-११ नगरं भ्रष्टलक्ष्मीकं जनसंबाधवर्जितम्। उत्सवैश्च परित्यक्तं दृष्ट्वा चिंतापरोभवत् ॥अध्यात्मरा०

दो०—पुरजन मिलहिँ, न कहहिँ कछु, गँवहिँ जोहारहिँ, जाहिँ।
भरत, कुसल पूछि न सकहिँ, भय-बिषाद मन - माहिँ ॥ १५८ ॥
हाट - बाट नहिँ जाइ निहारी। जनु पुर - दहुँ - दिसि लागि दवारी।
आवत सुत, सुनि कैकय-नंदिनि। हरषी रबि-कुल-जलरुह-चंदिनि। (१)
सजि आरती, मुदित उठि धाई। द्वारेहि भेँटि भवन लेइ आई।
भरत दुखित परिवार निहारा। मानहुँ तुहिन बनज - बन मारा। (२)
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित, दव लाइ किराती।
सुतहि ससोच देखि, मन मारे। पूछति नैहर कुसल हमारे। (३)
१६२० सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज - कुल - कुसल भलाई।
कहु, कहँ तात, कहाँ सब माता। कहँ सिय, राम, लखन प्रिय भ्राता। (४)
दो०—सुनि सुत - बचन सनेह- मय, कपट - नीर भरि नैन।
भरत - श्रवन - मन - सूल - सम, पापिनि बोली बैन ॥ १५९ ॥
तात ! बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी।

सम्पत्ति गँवाए बैठे हों। (४) नगरके जो लोग मिलते भी थे, वे भी (भरतसे) कुछ बोल नहीं रहे थे, आकर चुपचाप प्रणाम करके सरक जाते थे। भरत भी किसीसे कुछ कुशल नहीं पूछ पा रहे थे क्योंकि उनके मनमें बड़ा भय और संशय आ समाया था ॥१५८॥ हाट और मार्ग भी सब देखते नहीं बन रहे थे (सूने पड़े थे) मानो नगरमें चारों ओरसे आग लगा दी गई हो। जैसे रातकी चाँदनीमें कमल संकुचित हो जाता है वैसे ही कैकेयी भी सूर्य-वंशके कमलको दुःख देनेवाली बन चली थी। उसने जब सुना कि मेरा पुत्र भरत आ पहुँचा है तो वह प्रसन्न हो उठी। (१) वह आरती सजाकर प्रसन्नतासे उठ दौड़ी। द्वारपर ही उनसे भेंट करके वह उन्हें अपने भवनमें लिवा ले गई। भरतने देखा कि सारा परिवार ऐसा दुखी हुआ पड़ा है मानो कमलके वनको पाला मार गया हो। (२) केवल एक कैकेयी ही वहाँ ऐसी मिली जो इतनी प्रसन्न दिखाई पड़ रही थी, मानो कोई भिल्लिनी वनमें चारों ओरसे आग लगाकर प्रसन्नतासे नाचे जा रही हो। पुत्रको बहुत अधिक चिन्तामें मग्न और अत्यन्त उदास देखकर वह (कैकेयी) पूछ उठी—'कहो बेटा ! हमारे मायकेमें सब कुशल तो है न ! (३) भरतने ननिहालका सारा कुशल-क्षेम कह सुनाया और फिर वे अपने घरका कुशल-मंगल पूछने लगे—'बताओ ! पिता कहाँ हैं ? सब माताएँ कहाँ हैं ? और प्रिय भाई राम, लक्ष्मण और सीता कहाँ हैं ?' (४) अपने पुत्रके ऐसे स्नेह-भरे वचन सुनकर और अपनी आँखोंमें कपटके आँसू झलकाकर उस पापिनीने ऐसी बातें कहनी प्रारम्भ कीं जो भरतके हृदयको शूल (बरछे)-के समान बेधे चली जा रही थीं ॥ १५९ ॥ (वह कहती जा रही थी)—'देखो बेटा ! मैंने तो सारी बातें ठीक-ठाक कर डाली थीं और

१६१२-१९ प्रविश्य राजभवनं राजलक्ष्मीविवर्जितम्। अपश्यत्कैकयीं तत्र एकामेवासने स्थिताम् ॥
ननाम शिरसा पादौ मातुर्भक्तिसमन्वितः। आगतं भरतं दृष्ट्वा कैकयी प्रेमसंभ्रमात् ॥
उत्थायालिंग्य रभसात्स्वांकमारोप्य संस्थिता। मूर्ध्न्यवघ्राय पप्रच्छ कुशलं स्वकुलस्य सा ॥
१६२०-२१ इति पृष्टः स भरतो मात्रा चिंताकुलेंद्रियः। दूयमानेन मनसा मातरं समपृच्छत ॥
मातः पिता मे कुत्रास्ते एका त्वमिह संस्थिता। —अध्यात्मरामायण

कछुक काज, विधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति-पुर पग धारेउ। (१)
सुनत भरत भे बिवस - बिपादा। जनु सहमेउ करि, केहरि - नादा।
तात! तात! हा तात! पुकारी। परे भूमि - तल ब्याकुल भारी। (२)
चलत, न देखन पायउँ तोहीं। तात! न रामहि सौंपेहु मोहीं।
बहुरि धीर धरि, उठे सँभारी। कहु पितु - मरन - हेतु महतारी। (३)
१६३० सुनि सुत - बचन, कहति कैकेई। मरम पाँछि जनु माहुर देई।
आदिहुँ - तें सब आपनि करनी। कुटिल, कठोर, मुदित मन बरनी। (४)

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु-मरन, सुनत राम - बन - गौन।
हेतु अपनपउ जानि जिय, थकित रहे धरि मौन॥ १६०॥

बिकल बिलोकि सुतहि, समुझावति। मनहुँ जरे - पर लोन लगावति।
तात! राउ नहिं सोचइ जोगू। बिढइ सुकृत - जस, कीन्हेउ भोगू। (१)
जीवत, सकल जनम - फल पाए। अंत, अमरपति - सदन सिधाए।

बेचारी मन्थरा भी बड़ी सहायक हो गई थी, पर विधाताने ही बीचमें कुछ ऐसी बाधा ला खड़ी की कि महाराज स्वर्ग सिधार गए।' (१) यह सुनते ही भरतके हृदयको ऐसा धक्का लगा मानो सिंहकी दहाड़ सुनकर हाथी सहम उठा हो। 'हा पिता! हा पिता! हा पिता!' कह-कहकर भरत अत्यन्त व्याकुल होकर पछाड़ खाकर धरतीपर जा पड़े। (२) (और फिर वे रो-रोकर पुकार उठे)—'हा पिता! (मैं इतना अभागा हूँ कि) अन्त समयमें आपके दर्शन-तक न कर पाया और आप भी मुझे रामके हाथ नहीं सौंप गए।' फिर बहुत धैर्य धारण करके वे सँभलकर उठ बैठे और (मातासे पूछने लगे)—'बताओ माता! पिताकी मृत्यु हुई तो कैसे हुई?' (३) पुत्रकी बात सुनकर कैकेयी इस प्रकार बोलने लगी मानो मर्मस्थल-पर घाव करके उसमें विप भरे दे रही हो। उस कठोर, कुटिला कैकेयीने आरम्भसे अब-तककी अपनी सारी करनी बहुत मगन हो-होकर (भरतको) सुना डाली। (४) रामका वन जाना सुनकर तो भरतको पिताका मरना भी भूल गया। उस (रामके वन जाने)-का कारण अपनेको ही समझकर तो वे हक्के-बक्के रह गए॥१६०॥ अपने पुत्रको इतना व्याकुल देखकर कैकेयी ऐसे समझाने लगी मानो जलेपर नमक छिड़क रही हो— 'बेटा! राजाके लिये तो कोई शोक करनेकी बात है नहीं क्योंकि उन्होंने तो बहुत पुण्य और यश कमाकर संसारके सारे सुख भोग लिए थे। (१) उन्होंने जीते जी भी जन्म पानेका सारा फल पा लिया था और अन्तमें भी वे इन्द्रपुरी सिधार गए। ऐसा विचार करके उनके लिये कोई शोक न करो और सारा समाज जुटाकर

१६२२-२५ अथाह कैकयी पुत्रं किं दुःखेन तवानघ। या गतिर्धर्मशीलानामश्वमेधादियाजिनाम्॥
तां गतिं गतवानद्य पिता ते पितृवत्सल॥
१६२६-२८ तच्छ्रुत्वा निपपातोर्व्यां भरतः शोकविह्वलः। हा तात क्व गतोसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे॥
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोसि भोः॥
१६२९-३१ एवं विलपितं पुत्रं पतितं मुक्तमूर्धजम्। उत्थाप्यामृज्य नयने कैकेयी पुत्रमब्रवीत्॥
समाश्वसिहि भद्रं ते सर्वं संपादितं मया॥
१६३२-३३ इति मातुर्वचः श्रुत्वा वज्राहत इव द्रुमः। पपात भूमौ निःसंज्ञः— —अध्यात्मरामायण

अस अनुमानि, सोच परिहरहू। सहित-समाज, राज पुर करहू। (२)
सुनि, सुठि सहमेउ राज-कुमारू। पाके छत, जनु लाग अँगारू।
धीरज धरि, भरि लेहि उसासा। पापिनि! सबहि भाँति कुल नासा। (३)
१६४० जौ पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही।
पेड़ काटि, तैं पालउ सींचा। मीन जियन, निति बारि उलीचा[1]। (४)
दो०—हंस-बंस, दसरथ जनक, राम-लखन-से भाइ।
जननी! तू जननी भई, विधि-सन कछु न बसाइ॥ १६१॥
जब तैं कुमति! कुमत जिय ठयऊ। खंड-खंड होइ हृदय न गयऊ।
बर माँगत, मन भई न पीरा[2]। गरि न जीह! मुँह परेउ न कीरा। (१)
भूप, प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन-काल विधि मति हरि लीन्ही।
बिधिहु न नारि-हृदय-गति जानी। सकल कपट-अघ-अवगुन-खानी। (२)
सरल, सुसील, धरम-रत राऊ। सो किमि जानइ तीय-सुभाऊ।
अस को जीव-जंतु जग-माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान-प्रिय नाहीं। (३)

नगरपर शासन करना प्रारंभ कर दो। (२) यह सुनते ही राजकुमार भरत ऐसे सहम उठे, मानो पके घावपर अंगारा छू गया हो। बहुत धीरज धरकर लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए वे कैकेयीसे बोले—'अरी पापिनी! तूने सब प्रकारसे हमारा कुल चौपट कर डाला। (३) यदि तेरे मनमें ऐसी ही खोट भरी हुई थी तो तूने जनमते ही गला घोंटकर मुझे क्यों नहीं मार डाला? तूने पेड़ काटकर पत्तेको जा सींचा और मछलीको जिलानेके लिये सारा पानी उलीच डाला। (मेरा भला मनानेके लिये तूने मेरा वैसे ही अहित कर डाला जैसे कोई पेड़ काटकर पत्तेको सींचकर हरा बनाए रखना चाहे और पानी निकालकर मछलीको जिलाना चाहे)। (४) कहाँ तो सूर्यवंश-जैसा मेरा कुल, दशरथ-जैसे मेरे पिता, राम और लक्ष्मण-जैसे मेरे भाई, और कहाँ मुझे जन्म देनेके लिये माता मिली तो तू (इतनी खोटी) मिली। सचमुच विधाताकी इच्छाके आगे किसीका कोई वश नहीं चल पाता॥१६१॥ अरी खोटी बुद्धिवाली! जिस समय तेरे मनमें ऐसी बुरी बात आ समाई थी उस समय तेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े नहीं हो बिखरा? वर माँगते समय क्या तेरे हृदयमें कुछ भी व्यथा नहीं हुई? (उस समय) तेरी जीभ गल नहीं गिरी? तेरे मुँहमें कीड़े नहीं पड़ गए? (१) (मेरी समझमें नहीं आता कि) राजा (दशरथ) तेरा विश्वास कर कैसे बैठे? जान पड़ता है विधाताने मरते समय उनकी भी बुद्धि हर डाली थी। स्त्रियाँ तो कपट, पाप और अवगुणोंकी ऐसी खान होती हैं कि उनके हृदयकी गति विधाता भी नहीं समझ पा सकता। (२) और, राजा ठहरे सीधे, सुशील और धर्मात्मा! वे भला क्या जानें कि स्त्रीका स्वभाव कैसा होता है! बता, संसारके जीव-जन्तुओंमें भी ऐसा कौन है जो रामको प्राणोंके समान प्यारा न समझता हो? (३) वही (सबके प्यारे) राम तेरे लिये बैरी हो गए?

१. मीन जियन-हित वारि उलीचा। २. भइ नहिं पीरा।

१६३४-३७ —तं दृष्ट्वा दुःखिता तदा।
कैकेयी पुनरप्याह वत्स शोके न किं तव। राज्ये महति संप्राप्ते दुःखस्यावसर. कुतः॥अ०रा०
दुःखे मे दुःखमकरोर्व्रणे क्षारमिवाददाः। राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम्।
१६४६ अंतकाले हि भूतानि मुह्यंतीति पुरा श्रुतिः। राज्ञैवं कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुतिः कृता॥
१६४७-४९ लोके न हि स विद्येत यो न रामममनुव्रतः। —वाल्मीकीयरामायण

१६५० मे अति अहित राम तेउ तोहीं। को तू अहसि, सत्य कहु मोहीं।
जो हसि, सो हसि, मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई। (४)
दो०—राम - बिरोधी हृदय - तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहिं।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहिं॥ १६२॥
सुनि सत्रुघन मातु - कुटिलाई। जरहिं गात रिस, कछु न बसाई।
तेहि अवसर, कुबरी तहँ आई। बसन - बिभूषन बिबिध बनाई। (१)
लखि, रिस भरेउ लखन-लघु भाई। बरत अनल, घृत - आहुति पाई।
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह-भरि महिं, करत पुकारा। (२)
कूबर टूटेउ, फूट कपारू। दलित दसन, मुख रुधिर - प्रचारू।
आह दइउ! मैं काह नसावा। करत नीक, फल अनइस पावा। (३)
१६६० सुनि रिपुहन, लखि नख-सिख-खोटी। लगे घसीटन धरि - धरि झोंटी।
भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या - पहँ गे दोउ भाई। (४)
दो०—मलिन बसन, बिबरन, बिकल, कृस सरीर, दुख-भार।
कनक - कलप - बर - बेलि - बन, मानहुँ हनी तुसार॥ १६३॥

सच-सच बता, तू है कौन (जो डायन बनकर यहाँ आ पहुँची है)? अच्छा, तू जो हो, वही बनी रह, पर अब अपना मुँह काला करके, यहाँसे उठकर मेरी आँखोंकी ओट होकर कहीं दूर जा बैठ। (४) मैं तुझे व्यर्थ ही इतना कुछ कहे डाल रहा हूँ (दोष दिए डाल रहा हूँ)। वास्तवमें मेरे समान पापी संसारमें दूसरा कौन होगा जिसे विधाताने ऐसे कठोर हृदयवाली (कैकेयी)-की कोखसे ला जनमाया जो रामकी शत्रु है? ॥१६२॥ माताकी यह कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नको भी क्रोध तो बहुत चढ़ आया था, पर वेचारे कुछ कर नहीं पा रहे थे? (क्रोध पीकर रह जा रहे थे)। उसी समय बहुत बन-ठनकर, कपड़े-लत्तों और गहनोंसे सज-धजकर कुबरी (मन्थरा) वहाँ धीरेसे आ खड़ी हुई। उस मन्थराको देखना था कि लक्ष्मणके छोटे भाई (शत्रुघ्न)-का क्रोध ऐसा भड़क उठा मानो धधकती हुई आगमें घीकी आहुति पड़ गई हो। उन्होंने उसका कूबड़ ताककर उसपर ऐसी कसकर लात जमाई कि वह हाय-हाय चिल्लाती हुई औंधे मुँह धरतीपर जा पड़ी। (२) उसका कूबड़ अलग टूटा, सिर अलग फूटा, दाँत अलग झड़ गए और मुँहसे भी लहू बह चला। वह चिल्लाने लगी—'हाय दैव! मैंने किसीका क्या बिगाड़ डाला था कि हवन करते हाथ जल रहा है (अच्छा करनेपर भी बुरा फल मिल रहा है)।' (३) यह सुनकर और उसे ही सारे झगड़ेकी जड़ (विषकी गाँठ) समझकर शत्रुघ्नने झट उसका झोंटा जा पकड़ा और लगे सारे भवनमें उसे घसीटते फिरने। दयालु भरतने किसी-किसी प्रकार उसे छुड़वा हटाया (तब कहीं उसकी जान बच पाई)। वे दोनों भाई (वहाँ एक क्षण न ठहरे, और) सीधे कौशल्याके पास जा पहुँचे। (४) भरतने देखा कि माता कौशल्याके तनपर मैले वस्त्र पड़े हैं, उनके मुँहका रंग उतर गया है, वे बड़ी व्याकुल हैं, दुःखके मारे उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया है (और वे ऐसी लग रही हैं) मानो नन्दन-वनकी सुनहरी सलोनी कल्पलताको पाला मार गया हो ॥१६३॥ भरतको

१६५०-५३ इति ब्रुवंतीमालोक्य मातरं प्रदहन्निव। असंभाव्यासि पापे मे घोरे त्वं भर्तृघातिनी॥
पापे त्वद्गर्भजातोऽहं पापवानस्मि सांप्रतम्। अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम्॥
खड्गेन वाथ चात्मानं हत्वा यामि यमक्षयम्। भर्तृघातिनि दुष्टे त्वं कुंभीपाकं गमिष्यसि।
इति निर्भर्त्स्य कैकेयीम्। —अध्यात्मरामायण

भरतहिँ देखि, मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी, झइँ आई।
देखत, भरत बिकल भे भारी। परे चरन तन-दसा बिसारी। (१)
मातु! तात कहँ, देहि देखाई। कहँ सिय, राम-लखन दोउ भाई।
कैकइ कत जनमी जग-माँझा। जौ जनमि त, भइ काहे न बाँझा। (२)
कुल-कलंक जेहि जनमेउ मोहीं। अपजस-भाजन, प्रियजन-द्रोही।
को तिभुवन, मोहिं सरिस अभागी। गति असि तोरि, मातु! जेहि-लागी। (३)
१६७० पितु सुरपुर, बन रघुकुल[1]-केतू। मैं केवल सब अनरथ-हेतू।
धिग मोहिं, भयउँ बेनु-बन आगी। दुसह दाह-दुख-दूपन-भागी। (४)

दो० - मातु, भरत-के बचन मृदु, सुनि, पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ, लगाइ उर, लोचन मोचति बारि॥ १६४॥

सरल सुभाय, माय हिय लाए। अति हित, मनहुँ राम फिरि आए।
भेंटेउ बहुरि लखन-लघु-भाई। सोक, सनेह, न हृदय समाई। (१)

देखते ही माता कौशल्या उठ दौड़ीं, पर चक्कर आ जानेसे धरतीपर लड़खड़ा गिरीं। यह देखकर भरत बहुत व्याकुल हो उठे और अपने तनकी सब सुध-बुध भुलाकर उनके चरणोंमें जा गिरे (१) और बोले—'माता! बताओ पिता कहाँ चले गए? लाओ, लाओ, उन्हें ला दिखाओ। सीता और मेरे दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) कहाँ चले गए? कैकेयीने संसारमें जन्म ही क्यों लिया? और जनमी भी तो वह बाँझ क्यों नहीं हो गई (२) जिसने मुझ-जैसे कुलके कलंक, अपयश कमानेवाले और प्रिय-जनोंके द्रोही पुत्रको जन्म दे डाला। तीनों लोकोंमें मेरे समान कौन अभागा होगा, जिसके कारण माता! आपको यह दशा भोगनी पड़ी (३) कि पिता सुरलोक चले गए और रघुकुलकी पताकाके समान (यश फैलानेवाले) रामको वन जाना पड़ा। इस सारी विपत्तिकी जड़ एकमात्र मैं ही हूँ। मुझे धिक्कार है कि मैं बाँसके वनमें आग होकर (भयंकर आग लगाकर) अपने सिरपर दुःख और दोषका बोझा लादे घूम रहा हूँ।' (४) भरतकी कोमल वाणी सुनकर माता कौशल्या सँभलकर उठ बैठीं। उन्होंने भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनकी आँखोंसे झरझर आँसू बह चले॥ १६४॥ सरल स्वभावसे माता कौशल्याने ऐसे प्रेमसे भरतको हृदयसे उठा लगाया, मानो राम ही (वनसे) लौट आए हों। फिर उन्होंने लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नको हृदयसे उठा लगाया। उनके हृदयमें इतना शोक और स्नेह उमड़ा पड़ रहा था कि हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा था। (पुत्रके बिछोह

---

१. रघुबर।

१६५४-५५ प्राग्द्वारेऽभूत्तदा कुब्जा सर्वाभरणभूषिता।

१६५६-५७ गृहीता बलवत् कुब्जा सा तद् गृहमनादयत्।

१६५८-६० स च रोषेण संवीतः शत्रुघ्नः शत्रुशासनः। संचकर्ष तथा कुब्जां क्रोशंतीं पृथिवीतले॥
तस्यां ह्याकृष्यमाणायां मंथरायां ततस्ततः। चित्रं बहुविधं भांडं पृथिव्यां तद् व्यशीर्यत॥

१६६१ तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्। अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः। न्यवर्तत ततो दोषात्तां मुमोच च मूर्च्छिताम्॥
कौशल्याभवनं ययौ। —अध्यात्मरामायण

१६६२-७३ सापि तं भरतं दृष्ट्वा मुक्तकंठा रुरोद ह। पादयोः पतितस्तस्या भरतोऽपि तदा रुदत्॥

देखि सुभाउ, कहत सब कोई। राम - मातु अस काहे न होई।
माता, भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि, मृदु बचन उचारे। (२)
अजहुँ बच्छ! बलि, धीरज धरहू। कुसमउ समुझि, सोक परिहरहू।
जनि मानहु हिय, हानि - गलानी। काल - करम - गति अघटित जानी। (३)
१६८० काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहिं सब बिधि बाम बिधाता।
जौं एतेहु दुख मोहिं जियावा। अजहुँ को जानइ, का तेहि भावा। (४)
दो०—पितु-आयसु, भूषन-बसन, तात! तजे रघुबीर।
बिसमउ, हरष, न हृदय कछु, पहिरे बलकल - चीर॥ १६५॥
मुख प्रसन्न, मन राग[1] न रोषू। सब-कर सब बिधि करि परितोषू।
चले बिपिन, सुनि, सिय सँग -लागी। रहइ न राम - चरन - अनुरागी। (१)
सुनतहि, लखन चले उठि साथा। रहहिं न, जतन किये रघुनाथा।
तब रघुपति सबही सिर नाई। चले, संग सिय, अरु लघु भाई। (२)
राम, लखन, सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग, न प्रान पठाए।

और पतिकी मृत्युका शोक, तथा भरत-शत्रुघ्नके प्रति स्नेह, ये दोनों भाव उनके हृदयमें प्रबल हो उठे थे)। कौशल्याका यह व्यवहार जिसने भी देखा वही कह उठा—'(ये तो रामकी माता हैं न !) भला रामकी माता ऐसी क्यों न हों !' माता कौशल्याने भरतको अपनी गोदमें बैठाकर (अपने आँचलमें) उनके आँसू पोंछ डाले और कहा—(२) 'बेटा ! मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। अब तो तुम्हें धीरज ही धरना चाहिए। यह सब समयका फेर समझकर शोक करना छोड़ दो। काल और कर्मकी गति किसीके अपने हाथकी बात नहीं होती (वह तो होकर ही रहती है), यह जानकर अपने मनसे हानि और ग्लानिकी सब बात निकाल डालो बेटा ! (३) देखो, इसके लिये तुम किसीको भी दोष मत दो। मेरा भाग्य ही कुछ ऐसा पलटा खा बैठा है। इतना दुःख आ पड़नेपर भी जो विधाता मुझे अभीतक जिलाए चला जा रहा है, वह आगे चलकर और न जाने क्या-क्या करने (दुःख दिखाने)-पर तुला बैठा है। (४) बेटा ! पिताकी आज्ञा पाते ही रामने झट अपने आभूषण और (राजसी) कपड़े उतार फेंके। उनके हृदयमें इससे न हर्ष हो रहा था न दुःख। उन्होंने वल्कलके वस्त्र (पेड़ोंकी छालके कपड़े) तनपर डाल लिए ॥१६५॥ उनका मुखड़ा खिला पड़ रहा था। उनके मनमें न किसीसे राग था न किसीपर रोष। वे सबको सब प्रकारसे समझा-बुझाकर सीधे वन चल दिए। सीताने जब यह समाचार सुना तो वह भी उनके संग लग चली। रामके चरणोंसे अनुराग करनेवाली (सीता) भला कहाँ किसीके रोके रुकनेवाली थीं। (१) लक्ष्मणने भी यह सुना तो वे भी उठकर साथ हो लिए। रामने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया पर वे भी रुकनेको तैयार न हुए। (रामने जब देखा कि ये टससे मस होनेवाले नहीं हैं) तब वे सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मणके साथ वनके लिये निकल पड़े। (२) राम, लक्ष्मण और सीता मेरे देखते-देखते वन चले गए पर न तो मैं ही (अभागी) उनके साथ

१. राग।

१६७४-७७ आलिंग्य भरतं साध्वी राममाता यशस्विनी। कृशातिदीनवदना साश्रुनेत्रेदमब्रवीत् ॥अध्या०रा०

ऐह सब भा इन आँखिन आगे। तउ न तजा तन, प्रान[1] अभागे। (३)
१६९० मोहिं न लाज, निज नेह निहारी। राम-सरिस सुत, मैं महतारी।
जिअइ, मरइ, भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस-समाना। (४)
दो०–कौसल्या-के वचन सुनि, भरत-सहित रनिवास।
व्याकुल बिलपत, राज-गृह, मानहुँ सोक-निवास॥ १६६॥
बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिय हृदय लगाई।
भाँति अनेक भरत समुझाए। कहि बिवेकमय बचन सुनाए। (१)
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुरान-श्रुति-कथा सुहाई।
छल-विहीन, सुचि, सरल, सुबानी। बोले भरत, जोरि जुग पानी। (२)
जे अघ, मातु-पिता-सुत-मारे। गाइ-गोठ, महिसुर-पुर जारे।
जे अघ, तिय-बालक-बध कीन्हें। मीत-महीपति माहुर दीन्हें। (३)
१७०० जे पातक-उपपातक अहहीं। करम-बचन-मन-भव कबि कहहीं।
ते पातक मोहिं होहु बिधाता। जौ ऐह, होइ मोर मत माता। (४)

जा पाई न अपने प्राणोंको ही उनके साथ भेज पाई। यह सारी घटना इन आंखोंके आगे ही हो गई फिर भी मेरे अभागे प्राण शरीर नहीं छोड़ पाए। (३) मुझे अपने स्नेहपर विचार करके लज्जा भी नहीं आती कि राम-जैसे पुत्रकी माता मैं हूं (और उनके चले जानेपर भी जीए चली जा रही हूं)। जीना और मरना यदि किसीने जाना तो महाराजने ही भली प्रकार जाना (जो रामको देख-देखकर जीते रहे और उनके बिछुड़ते ही चल बसे)। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रोंके समान कठोर हो चला है।' (४) कौशल्याके वचन सुनकर भरत और सारा रनिवास सब व्याकुल होकर धाड़ मार-मारकर रो पड़े। सारा राजभवन ऐसा लगने लगा मानो वह शोक-भवन बन गया हो॥ १६६॥ (जब कौशल्याने देखा कि) दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न भी) व्याकुल हो-होकर रोए चले जा रहे हैं तब कौशल्याने उन्हें हृदयसे उठा लगाया और अनेक प्रकारकी ज्ञानकी बातें कह-कहकर भरतको बहुत समझा-बुझाकर शान्त किया (१) (शान्त होकर) भरतने भी अपनी सब (कौशल्या, सुमित्रा) माताओंको वेद और पुराणकी सुन्दर-सुन्दर कथाएँ कह-कहकर ढाढ़स बँधाया और तब अपने दोनों हाथ जोड़कर वे निश्छल सुन्दर और पवित्र वचन बोले—(२) 'माता! माता, पिता और पुत्रकी हत्या करनेसे, गोशाला और ब्राह्मणोंका गाँव जला डालनेसे, स्त्री और बालकको मार डालनेसे तथा मित्र और राजाको विष देनेसे जो पाप लगता है वे सब पाप और (३) इनके अतिरिक्त कर्म, वचन और मनसे होनेवाले जितने पातक या उपपातक कवियोंने गिनाए हैं, वे सब पाप मुझे आ लगें यदि

[1] जीव।

१६७८-८९ पुत्रः सभार्यो वनमेव यातः सलक्ष्मणो मे रघुरामचन्द्रः।
चीराम्बरो बद्धजटाकलापः संत्यज्य मां दुःखसमुद्रमग्नाम्॥
१६९०-९१ हा राम हा मे रघुवंशनाथ जातोऽसि मे त्वं परतः परात्मा।
तथापि दुःखं न जहाति मां वै विधिर्बलीयानिति मे मनीषा॥ —अध्यात्मरामायण
१६९२-९३ पपात चरणौ तस्यास्तदा सं भ्रांतचेतनः। विलप्य बहुधाऽसंज्ञो लब्धसंज्ञस्तदाभवत्॥
१६९४-९७ एवं विलपमानां तां प्रांजलिर्भरतस्तदा। कौशल्यां प्रत्युवाचेदं शोकैर्बहुभिरावृताम्॥
१६९८-१७०१ राजस्त्रीबालवृद्धानां वधे यत्पापमुच्यते। भृत्यत्यागे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्॥वा.रा.

दो०—जे परिहरि हरि - हर - चरन , भजहिं भूत - गन घोर ।
तिन्ह-कइ गति मोहिं देउ विधि , जौं जननी ! मत मोर ।। १६७ ।।
बेंचहिं बेद, धरम दुहि लेहीं । पिसुन, पराय पाप कहि देहीं ।
कपटी, कुटिल, कलह - प्रिय, क्रोधी । बेद - बिदूषक, बिस्व - बिरोधी । (१)
लोभी, लंपट, लोलुप - चारा । जे ताकहिं पर - धन, पर - दारा ।
पावउँ मैं तिन्ह - कै गति घोरा । जौं जननी ! एेह संमत मोरा । (२)
जे नहिं साधु - संग - अनुरागे । परमारथ - पथ - बिमुख, अभागे ।
जे न भजहिं हरि, नर - तनु पाई । जिन्हहिं न हरि - हर - सुजस सुहाई । (३)
१७१० तजि श्रुति-पंथ, बाम - पथ चलहीं । बंचक, बिरचि बेष, जग छलहीं ।
तिन्ह - कइ गति मोहिं संकर देऊ । जननी ! जौं एेह जानउँ भेऊ । (४)
दो०—मातु, भरत-के बचन सुनि , साँचे, सरल, सुभाय ।
कहति, राम-प्रिय तात ! तुम, सदा बचन - मन - काय ।। १६८ ।।
राम प्रानतेहुँ[1] प्रान तुम्हारे । तुम रघुपतिहि प्रानतेहुँ[1] प्यारे ।

इसमें (रामको वन भेजनेमें) मेरा (तनिक भी) हाथ रहा हो । (४) माता ! यदि इसमें मेरा कुछ भी हाथ रहा हो तो ईश्वर मेरी वही दशा करे जो विष्णु और शिवके चरणोंको छोड़कर भूत-प्रेतकी पूजा करनेवालोंकी होती है ।। १६७ ।। माता ! यदि इस पापमें मेरा तनिक भी हाथ रहा हो तो मेरी वही दुर्दशा हो जो वेद वेचनेवालों, धर्म दुहनेवालों (धर्मके नामपर पैसा कमानेवालों), चुगलखोरों (दूसरोंके दोष कहनेवालों), कपटी, झगड़ालू, क्रोधी, वेदकी निन्दा या खिल्ली उड़ानेवालों, विश्वके विरोधियों, (१) लोभी, लम्पट पैसेके पीछे प्राण देनेवालों तथा पराये धन या पराई स्त्रीपर ताक लगाए रहनेवालोंकी होती है । (२) माता ! यदि इस पापका तनिक भी भेद मुझे पहलेसे ज्ञात रहा हो तो भगवान् शंकर मेरी उन लोगोंकीसी दुर्गति करें जो कभी साधुओंकी संगतिकी इच्छा-तक नहीं करते, जो अभागे परमार्थके मार्ग (भगवान्‌की भक्ति)-से मुँह फेरे बैठे रहते हैं, जो मनुष्यका शरीर पाकर भी भगवान्‌का भजन नहीं करते, जिन्हें विष्णु और शिवके गुणोंकी कथा भाती ही नहीं है, (३) जो वेदमें बताए नियमके अनुसार आचरण न करके वाममार्गका (उलटा, खोटा) आचरण करते हैं, जो ठग हैं अथवा जो सज्जनोंका-सा बाना बनाकर संसारको ठगते फिरते हैं ।' माता कौशल्याने सरल स्वभावसे कहे हुए, सच्चे (हृदयसे निकले हुए) भरतके ये वचन सुनकर कहा—'बेटा ! मन, वचन और तनसे सदा राम तुम्हें प्यार करते रहे हैं ।। १६८ ।। राम तो तुम्हारे प्राणोंके भी प्राण हैं और तुम भी सदा रामको प्राणोंसे अधिक प्यारे लगते रहे हो । चन्द्रमासे भले ही विष

१. प्रानहुते : इसमें एक मात्रा अधिक होनेसे कुछ प्रतियोंमें 'हु' छोड़कर 'प्रानते' कर दिया गया है ।

१७०२-३ कृतशास्त्रानुगा बुद्धिर्माभूत्तस्य कदाचन । सत्यसंधः सतां श्रेष्ठो यस्यार्योनुमते गतः ।।
१७०४-७ अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तश्च निरपत्रपः । लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योनुमते गतः ।।
धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम् । त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योनुमते गतः ।।—वा०रा०
१७०८-११ कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराज्याभिषेचने । अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ।।
पापं मेऽस्तु तदा मातर्ब्रह्महत्याशतोद्भवम् । हत्वा वसिष्ठं खड्गेन अरुंधत्या समन्वितम् ।।
भूयात्तत्पापमखिलं मम जानामि यद्यहम् । इत्येवं शपथं कृत्वा रुरोद भरतस्तदा ।।—अ० रा०
१७१२-१३ तदा तं शपथैः कष्टैः शपमानमचेतनम् । भरतं शोकसन्तप्तं कौशल्या वाक्यमब्रवीत् ।।
दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सह लक्ष्मणः । वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि ।।वा०रा०

बिधु बिष चवइ, स्रवइ हिम आगी। होइ बारिचर बारि - बिरागी। (१)
भये ग्यान, बरु मिटइ न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू।
मत तुम्हार एहु, जो जग कहहीं। सो सपनेहु सुख - सुगति न लहहीं। (२)
अस कहि मातु, भरत हिय लाये। थन पय स्रवहिं, नयन जल छाये।
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती। (३)
१७२० बामदेउ बसिष्ठ तब आए[1]। सचिव - महाजन सकल बोलाए।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ - बचन, सुदेसे। (४)
दो०—तात ! हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आज।
उठे भरत, गुरु-वचन सुनि, करन कहेउ सब काज[2] ॥ १६९ ॥

टपकने लगे, हिमसे भले ही आगकी लपटें निकलने लगें, जलके जन्तु भले ही जलसे अलग (होकर जीवित) रह जायँ, (१) ज्ञान हो जानेपर भी मोहका नाश भले ही न हो, (पर मैं जानती हूँ कि) तुम रामकी बुराई कभी नहीं सोच सकते। यदि संसारका कोई भी प्राणी कहे कि इस सारी घटनामें तुम्हारा हाथ रहा तो स्वप्नमें भी न उसे सुख मिलेगा न सद्गति (मोक्ष, भगवान्‌की कृपा)।' (२) यह कहकर माता कौशल्याने भरतको छातीसे चिपटा लिया। उनकी छातीसे दूधकी धार वह चली और नेत्रोंसे आँसू छलक पड़े। इस प्रकार रोते-कलपते सारी रात बैठे ही बैठे निकल गई। (३) (सवेरा होनेपर) वामदेव और वशिष्ठ वहाँ आ पहुँचे और आते ही उन्होंने सब मंत्रियों और नगरके प्रतिष्ठित लोगोंको बुलवा भेजा। मुनि वशिष्ठने अनेक प्रकारसे समयके अनुकूल भरतको ज्ञान और विवेकका उपदेश देते हुए कहा (४)—'देखो बेटा ! (जो होना था हो गया।) अब धैर्य धारण करके इस समय जो तुम्हारा कर्त्तव्य है, वही तुम्हें करना चाहिए।' गुरुकी आज्ञा सुनते ही भरत उठ खड़े हुए। (तब वशिष्ठने भरतको) आगेके (पिताके अन्तिम संस्कारके) सब काम-काज कर डालनेकी व्यवस्था

१. वामदेउ तब वसिष्ठ आये। २. साजु=व्यवस्था।

१७१४-१८ कौशल्या तमथालिंग्य पुत्र जानामि मा शुचः। —अध्यात्मरामायण

१७१९ लालप्यमानस्य विचेतनस्य प्रणष्टबुद्धेर्पतितस्य भूमौ।
मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्च दीर्घं सा तस्य शोकेन जगाम रात्रिः॥ —वाल्मीकीयरामायण

१७२०-२१ एतस्मिन्नन्तरे श्रुत्वा भरतस्य समागमम्। वसिष्ठो मन्त्रिभिः सार्धं प्रययौ राजमंदिरम्॥
रुदंतं भरतं दृष्ट्वा वसिष्ठः प्राह सादरम्। वृद्धो राजा दशरथो ज्ञानी सत्यपराक्रमः॥
भुक्त्वा मर्त्यसुखं सर्वमिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः। अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्लब्ध्वा रामं सुतं हरिम्॥
अंते जगाम त्रिदिवं देवेन्द्रार्धासनं प्रभुः। तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनः॥
आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः। शरीरं जडमत्यर्थमपवित्रं विनश्वरम्॥
विचार्यमाणे शोकस्य नावकाशः कथंचन। पिता वा तनयो वापि यदि मृत्युवशं गतः॥
मूढास्तमनुशोचन्ति स्वात्मताडनपूर्वकम्। निःसारे खलुसंसारे वियोगे ज्ञानिनां यदा॥
भवेद् वैराग्यहेतुः स शांतिसौख्यं तनोति च।

१७२२-२३ इत्यात्मानं दृढं ज्ञात्वा त्यक्त्वा शोकं कुरु क्रियाम्। तैलद्रोण्याः पितुर्देहमुद्धृत्य सचिवैः सह॥
कृत्यं कुरु यथान्यायमस्माभिः कुलनन्दन। इति संबोधितः साक्षाद् गुरुणा भरतस्तदा।
विसृज्याज्ञानजं शोकं चक्रे स विधिवत् क्रियाम्। —अध्यात्मरामायण

नृप - तनु वेद - विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमान बनावा।
गहि पग, भरत, मातु सब राखीं। रहीं राम - दरसन अभिलाखीं। (१)
चंदन - अगर - भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए।
सरजु - तीर रचि चिता बनाई। जनु सुर - पुर - सोपान सुहाई। (२)
ऐहि विधि दाह - क्रिया सब कीन्हीं। विधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्हीं।
सोधि सुमृति, सब वेद - पुराना। कीन्ह भरत, दस-गात-विधाना। (३)
१७३० जहँ, जस, मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ, तस, सहस भाँति सब कीन्हा।
भये बिसुद्ध, दिये सब दाना। धेनु, बाजि, गज, वाहन नाना। (४)
दो०—सिंहासन, भूषन, बसन , अन्न, धरनि, धन, धाम।
दिये भरत, लहि भूमिसुर , भे परिपूरन काम॥ १७० ॥

समझा बताई ॥१६६॥भरतने राजाके शवको वेदकी विधिसे स्नान कराया और फिर बहुत ही रंग-बिरंगा विमान बना सजवाया। भरतने माताओंके चरण पकड़कर (आग्रह करके उन्हें सती होनेसे) रोक दिया। रानियाँ भी रामके दर्शनोंकी इच्छासे कहना मान गईं। (१) चन्दन और अगरकी लकड़ीके ढेरों बोझ और बहुत प्रकारके अन्य अच्छे सुगन्धित पदार्थ (केशर, कपूर, गुग्गुल आदि) मँगवा लिए गए। सरयूके तीरपर सजाकर ऐसी अच्छी चिता बनाई गई मानो (राजा दशरथके लिये) देवलोक जानेकी सुन्दर सीढ़ी बना खड़ी की गई हो। (२) इस प्रकार दाह-क्रियाकी सारी रीति पूरी करके सब लोगोंने विधिवत् स्नान करके राजा (दशरथ)-को तिलाञ्जलि[१] दी। वेद, शास्त्र और पुराणोंके विधानके अनुसार भरतने दशगात्र (दस दिन पिण्ड देनेके कृत्य)-का कार्य पूरा किया। (३) मुनिवर वशिष्ठने जहाँ-जहाँ जैसा करनेको कहा वहाँ-वहाँ भरतने अनेक प्रकारसे वैसा ही किया। शुद्ध हो जानेपर (दस दिनके पश्चात्) उन्होंने बहुत-सा दान भी दिया। भरतने गौ, घोड़े, हाथी, अनेक प्रकारके वाहन (सवारियाँ), (४) सिंहासन, गहने, वस्त्र, अन्न, भूमि, धन और भवन आदि दान कर डाले। सब ब्राह्मण दान पा-पाकर इतने संतुष्ट हो गए कि उन्हें किसी वस्तुकी

१. दाहिने हाथमें तिल और जल लेकर सबने अपसव्य होकर (दाएँ कंधेपर जनेऊ टाँगकर) पितृ-तीर्थ (अँगूठे और तर्जनीके बीच)-से दाहिनी ओर 'दशरथस्तृप्यताम्' कहकर जल और तिल गिराया।

१७२४ शिविकायामथारोप्य राजानं गतचेतनम्। वाष्पकंठा विमनसस्तमूहुः परिचारकाः॥
हिरण्यं च सुवर्णं च वासांसि विविधानि च। प्रकिरंतो जना मार्गे नृपतेरग्रतो ययुः॥
१७२५-२७ चंदनागुरुनिर्यासान्सरलं पद्मकं तथा। देवदारूणि चाहृत्य क्षेपयंति यथापरे॥
गंधानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्र गत्वाथ भूमिपम्। तत्र संवेशयामासुश्चितामध्ये तमृत्विजः॥वा०रा०
१७२८ संस्कारं लंभयामास विधिदृष्टेन कर्मणा। अग्निहोत्राग्निना दग्धः पितुर्देहो विधानतः॥
स्नात्वा तु सरयूतोये कृत्वा तस्योदकांजलिम्। —नृसिंहपुराण
१७२९ कृत्वोदकं ते भरतेन सार्धं नृपांगना मन्त्रिपुरोहिताश्च।
पुरं प्रविश्याश्रुपरीतनेत्रा भूमौ दशाहं व्यनयंत दुःखम्॥ —वाल्मीकीयरामायण
१७३०-३३ ततो दशाहेतिगते कृतशौचो नृपात्मजः। द्वादशेहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत्॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं रत्नं ददावन्नं च पुष्कलम्। वास्तिकं बहु शुक्लं च गाश्चापि बहुशस्तदा॥
दासीर्दासांश्च यानानि वेश्मानि सुमहांति च। ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुत्रो राज्ञस्तस्यौर्ध्वदैहिकम्॥वा.रा.

पितु - हित भरत कीन्हि जसि करनी । सो मुख लाख जाइ नहिँ बरनी ।
सुदिन सोधि, मुनिवर तब आए । सचिव, महाजन, सकल बोलाए । (१)
बैठे राजसभा सब जाई । पठए बोलि, भरत दोउ भाई ।
भरत, वसिष्ठ निकट बैठारे । नीति - धरममय बचन उचारे । (२)
प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी । कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी ।
भूप - धरम - व्रत - सत्य सराहा । जेहि तनु परिहरि, प्रेम निबाहा । (३)
१७४० कहत राम - गुन - सील - सुभाऊ । सजल नयन, पुलकेउ मुनिराऊ ।
बहुरि लखन - सिय - प्रीति बखानी । सोक - सनेह - मगन मुनि ग्यानी । (४)
दो०—सुनहु भरत ! भावी प्रबल , बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि, लाभ, जीवन, मरन , जस, अपजस, बिधि-हाथ ॥ १७१ ॥
अस बिचारि, केहि देइय दोषू । ब्यरथ काहि - पर कीजिय रोषू ।
तात ! बिचार करहु मन - माहीँ । सोच - जोग दसरथ नृप नाहीँ । (१)

इच्छा ही नहीं रह गई ॥ १७० ॥ भरतने पिताकी तृप्तिके लिये जो कुछ (श्राद्ध, दान आदि) किया उसका वर्णन लाखों मुखोंसे भी किया नहीं जा सकता । (यह सब हो चुकनेपर अच्छा) दिन देखकर मुनि वशिष्ठने आकर सभी मंत्रियों और प्रतिष्ठित नागरिकों (सेठों)-को बुलवा भेजा (१) और सब लोग राज-सभामें पहुँचकर आ बैठे । उन सबके आ चुकनेपर मुनि वशिष्ठने दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न)-को भी बुलवा भेजा । उनके आ जानेपर वशिष्ठने भरतको अपने पास बुला बैठाया और उन्हें नीति तथा कर्त्तव्यकी बहुत शिक्षा दी । (२) पहले वशिष्ठने सबको कैकेयीकी सारी कुटिल करनी कह सुनाई । फिर उन्होंने राजा दशरथकी उस धर्मशीलता और सत्य-शीलताकी सराहना की कि उन्होंने किस प्रकार (रामके लिये) शरीर त्याग करके अपना प्रेम निभाया । (३) रामके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करते हुए मुनिके नेत्रोंमें आँसू आ छाए और उनका शरीर पुलकित हो उठा । फिर रामके प्रति लक्ष्मण और सीताकी प्रीतिका वर्णन करते हुए उन-जैसे ज्ञानी मुनि भी शोक और प्रेममें मग्न हो उठे । (४) जो मुनियोंके नाथ थे (वे वशिष्ठ भी विह्वल हो उठे और) उन्होंने बिलखकर कहा—'सुनो भरत ! होनहार बहुत बलवती होती है । (उसके आगे किसीके कुछ किए-धरे नहीं हो पाता) । हानि और लाभ, जीवन और मृत्यु, यश और अपयश सब भाग्यके हाथमें है (उनपर किसीका कोई वश नहीं चलता) ॥ १७१ ॥ यह समझकर (सारी घटनाके लिये) दोष

१७३४-३७ वसिष्ठो मुनिभिः सार्धं मंत्रिभिः परिवारितः । राज्ञः सभां देवसभासन्निभामविशद्विभुः ॥
तत्रासने समासीनश्चतुर्मुख इवापरः । आनीय भरतं तत्र उपवेश्य सहानुजम् ॥
अब्रवीद्वचनं देशकालोचितमरिन्दमम् ॥ —अध्यात्मरामायण
१७३८-३९ कैकेय्या याचितं राज्यं त्वदर्थे पुरुषर्षभ । सत्यसंधो दशरथः प्रतिज्ञाय ददौ किल ॥
१७४०-४१ इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः । —अध्यात्मरामायण
आचचक्षेऽथ सद्भावं लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ —वाल्मीकीयरामायण
१७४२-४३ सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायतः सर्वमवाप्नुवंति तस्माद्धीरो नैव तुष्येन्न शोचेत् ॥ —महाभारत
१७४४-४५ तं शोचसि वृथैव त्वमशोच्यं मोक्षभाजनम् । —अध्यात्मरामायण

सोचिय बिप्र जो बेद - बिहीना। तजि निज धरम, बिषय-लयलीना।
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान-समाना। (२)
सोचिय बैस कृपन धनवानू। जो न अतिथि-सिव-भगति-सुजानू।
सोचिय सूद्र बिप्र - अवमानी। मुखर, मान-प्रिय, ग्यान - गुमानी। (३)
१७५० सोचिय पुनि पति - बंचक नारी। कुटिल, कलह - प्रिय, इच्छाचारी।
सोचिय बटु, निज ब्रत परिहरई। जो नहिं गुरु - आयसु अनुसरई। (४)
दो० – सोचिय गृही जो मोहबस, करइ करम - पथ त्याग।
सोचिय जती प्रपंच - रत, बिगत - बिबेक - बिराग॥ १७२॥
बैखानस सोइ सोचन[1] - जोगू। तप बिहाइ जेहि भावइ भोगू।

किसे दिया जाय और व्यर्थ क्रोध किसपर उतारा जाय? (न किसीको दोष लगाना चाहिए न किसीपर क्रोध करना चाहिए)। देखो बेटा! मनमें भली प्रकार समझ लो कि राजा दशरथ ऐसे थे ही नहीं कि उनके लिये शोक किया जाय। (१) शोक तो उस ब्राह्मणके लिये करना चाहिए जिसने वेद न पढ़ा हो और जो, अपना धर्म (कर्तव्य) छोड़कर संसारके विषयोंमें डूबा पड़ा हो। शोक उस राजाके लिये करना चाहिए जो न तो नीति जानता हो न अपनी प्रजाको प्राणोंसे समान प्यार करता हो। (२) शोक उस वैश्यके लिये करना चाहिए जो धनवान् होकर भी कंजूस हो और जो न तो अतिथिका सत्कार करता हो न शिवकी भक्ति करता हो। शोक उस शूद्रके लिये करना चाहिए जो ब्राह्मणोंका अपमान करता हो, बहुत बकवादी हो, मान-प्रतिष्ठा पानेके लिये जान देता हो और अपने ज्ञानपर ऐंठा फिरता हो। (३) शोक उस स्त्रीके लिये करना चाहिए जो पतिसे छल करती हो, कुटिल हो, झगड़ालू हो और अपनी मनमानी करती हो। शोक उस ब्रह्मचारीके लिये करना चाहिए जो न तो ब्रह्मचर्यके व्रतका पालन करता हो, न गुरुकी आज्ञाके अनुसार चलता हो। (४) शोक उस गृहस्थके लिये करना चाहिए, जो मोह (अज्ञान)-में पड़कर अपने सारे धर्म-कर्म छोड़ बैठा हो। शोक उस संन्यासीके लिये करना चाहिए, जो संसारके प्रपंचमें जा फँसा हो और जिसमें न ज्ञान हो न वैराग्य॥ १७२॥ शोक उस वानप्रस्थीके लिये करना चाहिए, जो तपस्या छोड़कर भोगके फेरमें जा पड़ा हो। शोक ऐसे व्यक्तिके लिये करना चाहिए

१. सोचइ।

१७४६ योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥
१७४७ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि। सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥
१७४८ धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्। दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः॥
१७४९ विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्। शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः॥
शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः। ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥
१७५० बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने। पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम्॥
यस्मै दद्यात् पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः। तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत्॥
१७५१ नोदितो गुरुणा नित्यमप्रणोदित एव वा। कुर्यादध्ययने यत्नं तथैवास्य हितेषु च॥
१७५२-५३ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ मनुस्मृति
१७५४ वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद् व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम्॥ –शाकुन्तल

सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि - जनक - गुरु - बंधु-बिरोधी। (१)
सब बिधि सोचिय पर - अपकारी। निज तनु - पोषक, निरदय भारी।
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरि - जन होई। (२)
सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारि - दस प्रगट प्रभाऊ।
भएउ, न अहइ, न अब होनिहारा। भूप, भरत ! जस पिता तुम्हारा। (३)
१७६० बिधि-हरि-हर - सुरपति - दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ - गुन - गाथा। (३॥)
दो०—कहहु तात! केहि भाँति कोउ, करिहि बड़ाई तासु।
राम, लखन, तुम, सत्रुहन,-सरिस सुअन सुचि जासु॥ १७३॥
सब प्रकार भूपति बड़- भागी। बादि बिषाद करिय तेहि लागी।
एहु सुनि - समुझि, सोच परिहरहू। सिर धरि राज - रजायसु करहू। (१)
राय, राज - पद तुम - कहँ दीन्हाँ। पिता - बचन फुर चाहिय कीन्हाँ।
तजे राम जेहि बचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम - बिरहागी। (२)
नृपहिं बचन प्रिय, नहिं प्रिय प्राना। करहु तात ! पितु - बचन प्रवाना।

जो चुग़लखोर हो, बिना कारण ही बात-बातपर बिगड़ खड़ा होता हो और माता, पिता, गुरु और भाई-बन्धुओंके साथ वैर ठाने बैठा हो। (१) शोक तो उसके लिये करना चाहिए जो दूसरोंको हानि पहुँचाता हो, दिन-रात अपने शरीरके ही पोषणमें लगा रहता हो और बड़ा निर्दयी हो। सबसे अधिक शोक तो उसके लिये करना चाहिए जो निश्छल भावसे भगवान्की भक्ति न करता हो। (२) जिस कोशलराज दशरथका प्रताप चौदहों लोकोंमें प्रसिद्ध है उनके लिये शोक कैसा ? (वे ऐसे नहीं थे कि उनके लिये शोक किया जाय)। देखो भरत ! तुम्हारे पिताके समान न कोई राजा हुआ, न है और न आगे होने ही वाला है। (३) (वे इतने महान् थे कि) ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र और दिक्पाल सब निरन्तर उनके गुणोंका वर्णन करते थकते नहीं हैं। (४) देखो बेटा ! उनकी बड़ाई किसीके किए क्या की जा सकती है जिनके ऐसे सुशील पुत्र हों जैसे राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न॥ १७३॥ राजा (दशरथ) तो इतने अधिक भाग्यशाली थे कि उनके लिये शोक करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। यह सुन और समझकर उनके लिये रोना-धोना छोड़ो और राजाने जो तुम्हें आज्ञा दी है उसे सिरमाथे चढ़ाकर उसका पालन करो। (१) राजाने तुम्हें ही राजा बनाया है। तुम्हें पिताकी उस आज्ञाका पालन करना ही चाहिए जिसने अपने वचनकी रक्षाके लिये रामको छोड़ दिया (वन भेज दिया) और रामके विरहकी आगमें अपना शरीर झोंक दिया (प्राण दे डाले)। (२) राजाको अपने वचनके आगे अपने प्राणका कोई मूल्य नहीं प्रतीत हुआ, इसलिये बेटा !

१७५५ अत्यंतकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम्॥ —चाणक्यनीतिदर्पण
१७५६ परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्। नश्यंति विपदस्तेषां संपदः स्युः पदे पदे॥चाण०
१७५७ गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो वटोरपि। तपस्विभ्यो ग्रामसेवा भिक्षोरिंद्रियलौल्यता॥
आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडंबकाः। —श्रीमद्भागवत
१७५८-६१ तदेतद्राज्ञो महाभाग्यमप्युक्तवान्। —महाभारत
१७६२-६३ धन्यस्त्वं यस्य तनयः साक्षान्नारायणोऽभवत्। रामोऽयं लक्ष्मणः शेषो भरतोऽब्जोऽरिःशत्रुहा॥आन०
१७६४-६७ रामस्तु सह सौमित्रिः प्रेषितः सह सीतया। तमपश्यन् प्रियं पुत्रं महीपालो महायशाः॥
पुत्रशोकपरिद्यूनः पंचत्वमुपपेदिवान्। —वाल्मीकीयरामायण

करहु सीस धरि भूप - रजाई। हइ तुम कहँ सब भाँति भलाई। (३)
परसुराम पितु - अग्या राखी। मारी मातु, लोग सब साखी।
१७७० तनय - जजातिहि जौवन दयऊ। पितु-अग्या अघ-अजस न भयऊ। (४)
दो०—अनुचित-उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु - बैन।
ते भाजन सुख - सुजस - के , बसहिं अमरपति - ऐन ॥ १७४ ॥
अवसि नरेस - बचन फुर करहू। पालहु प्रजा, सोक परिहरहू।
सुरपुर, नृप पाइहि परितोपू। तुम - कहँ सुकृत - सुजस, नहिं दोपू। (१)
वेद - बिदित[1] संमत सबही - का। जेहिं पितु देइ, सो पावइ टीका।
करहु राज, परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन, हित जानी। (२)
सुनि, सुख लहब राम - वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही।
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा - सुख होहिं सुखारी। (३)

तुम भी अपने पिताका वचन सत्य कर डालो और राजाकी आज्ञा सिर चढ़ाकर (मानकर) उसका पालन कर डालो। अब इसीमें तुम्हारी भलाई है। (३) देखो, सारा संसार जानता है कि परशुरामने पिता (जमदग्नि)-की आज्ञा मानकर अपनी माता (रेणुका)-को मार डाला था और राजा ययातिके कहनेसे उनके पुत्र (पुरु)-ने अपने पिताको अपनी जवानी दे डाली थी। पिताकी आज्ञाका पालन करनेके कारण न परशुरामको (मातृ-हत्या)-का पाप लगा, न पुरुको (विलासी पिताको जवानी दे डालनेका) दोष लगा (न तो परशुरामका ही यह अच्छा काम था कि अपनी माताकी हत्या कर डाली, न पुरुका ही अच्छा काम था कि विलासी पिताको विलासके लिये जवानी दे डाली)। जो उचित या अनुचितका विचार न करके अपने पिताके वचनोंका पालन कर ही डालते हैं उन्हें सुख भी मिलता है और सुयश भी तथा अन्तमें भी वे इन्द्रलोकमें जाकर निवास करते हैं ॥ १७४ ॥ इसलिये तुम शोक छोड़कर राजाके वचन पूरे करके प्रजाके पालनका काम सँभाल लो। ऐसा करनेसे स्वर्गमें गए हुए राजाको भी सन्तोष होगा और तुम्हें भी बहुत पुण्य और सुयश मिलेगा, कोई दोष नहीं लगेगा। (१) वेद (धर्मशास्त्र)-के अनुसार भी यही ठीक है और लोग भी ऐसा ही ठीक समझते हैं कि पिता जिसे राज-तिलक दे वही राजा हो। इसलिये सब झिझक छोड़कर तुम राज्य सभाल लो और मैं जो कह रहा हूँ उसे हितकर समझकर मेरी बात मान लो। (२) यह सुनकर राम और जानकीको भी बड़ा सुख मिलेगा (सन्तोष होगा कि तुमने राज्य सँभाल लिया है)। कोई भी समझदार पुरुष (तुम्हारे व्यवहार)-को अनुचित नहीं बतावेगा और कौशल्या आदि सब

१. विहित।

१७६८ अत: पितुर्वच: कार्यम्। —अध्यात्मरामायण
१७६९ तात राजा दशरथ: स्वर्गतो धर्ममाचरन्। धनधान्यवतीं स्फीतां प्रदाय पृथिवीं तव ॥
रामस्तथा सत्यवृत्ति: सतां धर्ममनुस्मरन्। नाजहात् पितुरादेशं शशी ज्योत्स्नामिवोदित: ॥
पित्रा भ्रात्रा च ते दत्तं राज्यं निहतकंटकम्। तद् भुङ्क्ष्व मुदितामात्य: क्षिप्रमेवाभिषेचय ॥वा.रा.
१७७० जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम्। कृत्ता परशुनारण्ये पितुर्वचनकारिणा ॥महाभा०
१७७१ आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया। —रघुवंश
१७७४-७५ त्वमद्य भव नो राजा राजपुत्र महायश:। संगत्या नापराध्नोति राज्यमेतदनायकम् ॥
१७७६ आभिषेचनिकं सर्वमिदमादाय राघव। प्रतीक्षते त्वां स्वजन: श्रेणयश्च नृपात्मज ॥
१७७७ राज्यं गृहाण भरत पितृपैतामहं ध्रुवम्। अभिषेचय चात्मानं पाहि चास्मान्नरर्षभ ॥वा.रा.

मरम[1] तुम्हार - राम - कर जानिहिं । सो सब बिधि तुम-सन भल मानिहिं ।
१७८० सौंपेहु राज, राम - के आए। सेवा करेहु सनेह सुहाए। (४)
दो०—कीजिय गुरु-आयसु अवसि , कहहिं सचिव कर जोरि ।
रघुपति आए, उचित जस , तस, तब, करब बहोरि ।। १७५ ।।
कौसल्या धरि धीरज कहई । पूत ! पथ्य[2] गुरु-आयसु अहई ।
सो आदरिय करिय हित मानी । तजिय बिषाद काल - गति जानी । (१)
बन रघुपति, सुरपुर[3] नर-नाहू । तुम ऐहि भाँति तात ! कदराहू ।
परिजन, प्रजा, सचिव, सब अंबा । तुमही सुत ! सब - कहँ अवलंबा । (२)
लखि बिधि बाम, काल - कठिनाई । धीरज धरहु, मातु बलि जाई ।
सिर धरि गुरु - आयसु अनुसरहू । प्रजा पालि, परिजन[4]-दुख हरहू । (३)
गुरु - के बचन, सचिव - अभिनंदन । सुने भरत, हिय-हित जनु चंदन ।

माताएँ भी जब प्रजाको सुखी देखेंगी तो उन्हें भी सुख होगा। (३) जो तुम्हारे और रामके मर्म (आपसके प्रेम)-को समझते हैं सबका इससे उपकार ही होगा (सब इसका समर्थन ही करेंगे)। (तुम चाहो तो) रामके लौटनेपर उन्हें राज्य सौंप देना और भली भाँति प्रेमपूर्वक उनकी सेवा किया करना।' (४) मंत्रीने भी हाथ जोड़कर भरतसे कहा—'अब तो गुरुकी आज्ञाका पालन कर ही डालिए। रामके लौट आनेपर जैसा ठीक समझिएगा कीजिएगा' ।। १७५ ।। कौशल्याने भी बहुत धैर्य धारण करके भरतसे कहा—'देखो बेटा ! गुरुकी यह आज्ञा इस समय सबसे अधिक पथ्य[2] (लाभकारी) है, उसीके अनुसार आचरण करो और इससे ही (अपना और सबका) हित समझकर उसका पालन कर डालो। यह सब समयका फेर समझकर शोक करना छोड़ दो। (१) देखो, राम तो वन चले गए; राजा (दशरथ) इन्द्रके यहाँ (स्वर्ग-लोक) पहुँच गए; और बेटा ! तुम इस प्रकार व्याकुल हुए जा रहे हो ! देखो बेटा ! अब तो कुटुम्बी, प्रजा, मंत्री और माता सबके एक मात्र तुम्हीं सहारे रह गए हो। (२) भाग्यका यह उलटा फेर देखकर और बुरे दिन आए जानकर धीरज न खो बैठो। माता तुमपर बलिहारी जाती है। गुरुकी आज्ञा सिर-माथे चढ़ाकर उसका पालन करो और प्रजाका पालन करके सब आत्मीय लोगोंका संकट मिटा डालो।' (३) गुरुकी आज्ञा और मंत्रियोंकी सम्मति भी भरतने चन्दनके समान शीतल और हितकारी जानकर (ध्यानसे) सुनी और शील, स्नेह और निश्छलतासे

१. प्रेम। २. पथ्य : रोगीको जो पदार्थ खाने-पीनेके लिये बताया जाता है। ३. सुरपति : राजा भी इन्द्र बन गए हैं, इन्द्र के समान देवता बनकर इन्द्रपुरी (अमरावती) जा पहुँचे हैं। ४. पुरजन।

१७७९ विपुलां च मम प्रीतिं स्थितां जानासि राघवे । —वाल्मीकीयरामायण
१७८३-८४ कौसल्या तमथालिंग्य पुत्र जानामि मा शुचः ।—अध्या०रा० ।। गुरूणां वचनं पथ्यम् ।।—सारस्वत
१७८५ गतो दशरथः स्वर्गं यो नो गुरुतरो गुरुः । रामं प्रव्राज्य वै ज्येष्ठं लक्ष्मणं च महाबलम् ।।
१७८६ अस्य राजकुलस्याद्य त्वदधीनं हि जीवितम् । त्वां दृष्ट्वा पुत्र जीवामि रामे सभ्रातृके गते ।।
वृत्ते दशरथे राज्ञि नाथ एकस्त्वमद्य नः । —वाल्मीकीयरामायण
१७८७ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता । —साहित्यदर्पण
कालस्य कुटिला गतिः ।—सुभाषित ।। मा शोकं मा च संतापं धैर्यमाश्रय पुत्रक ।—वाल्मी०रा०
१७८८ तदाशु कुर्वन्वचनं महर्षेर्मनोरथान्नः सफलीकुरुष्व । —किरातार्जुनीय

१७९० सुनी बहोरि, मातु - मृदु - बानी । सील - सनेह - सरल - रस - सानी । (४)
छं०—सानी सरल - रस मातु - बानी सुनि, भरत व्याकुल भये ।
लोचन - सरोरुह स्रवत, सींचत बिरह - उर - अंकुर नये ।
सो दसा देखत, समय तेहि, बिसरी सबहि सुधि देह - की ।
तुलसी, सराहत सकल सादर, सीँव सहज सनेह - की ॥ [७]
सो०—भरत, कमल - कर जोरि , धीर - धुरंधर, धीर धरि ।
बचन अमिय जनु बोरि , देत उचित उत्तर सबहि ॥ १७६ ॥
मोहिं उपदेस दीन्ह गुरु नीका । प्रजा, सचिव, संमत सबही - का ।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हाँ । अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हाँ । (१)
गुरु - पितु - मातु - स्वामि - हित - बानी । सुनि, मन मुदित करिय, भलि जानी ।
१८०० उचित कि अनुचित किये बिचारू । धरम जाइ, सिर पातक भारू । (२)
तुम तउ देहु सरल सिख सोई । जो आचरत, मोर भल होई ।
जद्यपि एह समुभत हउँ नीके । तदपि होत परितोष न जी - के । (३)
अब तुम बिनय मोरि सुनि लेहू । मोहि अनुहरत, सिखावन देहू ।
ऊतरु देउँ छमब अपराधू । दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू । (४)

भरी माताकी कोमल वाणी भी सुनी । (४) माताकी प्रेमभरी वाणी सुनकर भरत व्याकुल हो उठे । उनके कमल-जैसे नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर हृदयमें जमे हुए नये विरहके अंकुरोंको सींचने लगे । (उनकी बातें सुन-सुनकर रामका वियोग उन्हें और भी अधिक कसकने लगा) । उनकी यह दशा देखकर और भी सब लोग अपनी-अपनी देहकी सुध-बुध भूल चले । तुलसीदास कहते हैं कि भरतको देखकर सब लोग आदरपूर्वक उनकी सराहना करने लगे कि स्वाभाविक स्नेहकी यही सीमा है (इससे बढ़कर स्वाभाविक स्नेह हो नहीं सकता) । [७] धीरजके धुरे (धीरजको भी सँभाले रखनेवाले) भरत अपने कमलके समान हाथ जोड़कर अमृत-भरे वचनोंसे सबका उचित उत्तर देने लगे—॥ १७६ ॥ 'गुरुने मुझे बहुत ही उचित उपदेश दिया है जिसका समर्थन भी प्रजा, मन्त्री और सब लोगोंने किया है । माताने भी उचित समझकर वही आज्ञा दी है और मैं भी यह आज्ञा सिरमाथे चढ़ाकर मान लेना ही उचित समझता हूँ । (१) गुरु, पिता, माता, स्वामी तथा अपना हित चाहनेवालोंकी बात सुनकर और उसे प्रसन्न चित्तसे ठीक समझकर मानना ही चाहिए । उसमें उचित या अनुचितका विचार करना अधर्म भी है और ऐसा करनेसे सिरपर भारी पाप भी आ चढ़ता है । (२) आप लोग मुझे वही उपदेश दे रहे हैं, जिसे माननेसे मेरा भला हो । यद्यपि मैं यह सब भली-भाँति समझ रहा हूँ फिर भी मेरे जीको संतोष नहीं हो पा रहा है । (३) इसलिये आप लोग मेरी (थोड़ी-सी) प्रार्थना सुन लें, फिर जैसी मेरी योग्यता समझें वैसा करनेकी आज्ञा दें । मैं (आपकी बातोंका) उत्तर देनेको मुँह खोल रहा हूँ मेरी यह ढिठाई आप क्षमा करें क्योंकि सज्जन लोग दुखी लोगोंके दोष-गुण-पर कभी ध्यान नहीं दिया करते । (४) (मेरा निवेदन है कि) पिता स्वर्ग चले गए

१७९६ अमृतद्रव माधुरीधुरीणां गिरम् । —बृहच्छार्ङ्गधरपद्धति
१७९७ बहुभिरिह किमुक्तैर्युष्मदाज्ञा हि पूज्या । —चंपूरामायण
१७९८ आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया । —रघुवंश
१८०१ आपद्येऽस्मिन्महत्यर्थे तत्र: श्रेयस्तदुच्यताम् । —महाभारत

दो०—पितु सुरपुर, सिय-राम वन , करन कहहु मोहिं राज ।
एहि - तें जानहु मोर हित , कै आपन बड़ काज ।। १७७ ।।
हित हमार सिय - पति - सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु - कुटिलाई ।
मैं अनुमानि दीखि मन - माहीं । आन उपाय मोर हित नाहीं । (१)
सोक - समाज - राज केहि लेखे । लखन-राम-सिय-पद बिनु[1] देखे ।
१८१० वादि वसन - बिनु भूषन - भारू । वादि बिरति - बिनु ब्रह्म-बिचारू । (२)
सरुज सरीर, वादि वहु भोगा । बिनु हरि-भगति, जाय जप-जोगा ।
जाय जीव - बिनु, देह सुहाई । वादि मोर सव, बिनु - रघुराई । (३)
जाउँ राम - पहँ, आयसु देहू । एकहि आँक मोर हित एहू ।
मोहिं नृप करि, भल आपन चहहू । सोउ सनेह - जड़ता - बस कहहू । (४)
दो०—कैकेई-सुत[2], कुटिल - मति , राम - बिमुख, गत-लाज ।
तुम चाहत सुख मोह - बस , मोहिं-से अधम-के राज ।। १७८ ।।

और राम-जानकी वनमें हैं फिर भी आप लोग जो मुझे राज सँभालनेको कह रहे हैं इसमें या तो आप लोग कुछ मेरी भलाई समझे बैठे हैं या इससे आप लोगोंका ही कोई बड़ा काम बना जा रहा होगा (आप लोगोंका हित होनेवाला होगा) । ।। १७७ ।। जहाँतक मेरी भलाईकी बात है, वह तो केवल सीता-पति रामकी सेवा करनेमें ही है, पर वह (सौभाग्य) भी मेरी माताकी कुटिलता मुझसे छीन बैठी है । मैं भली भाँति सोच चुका हूँ कि अन्य किसी भी उपायसे मेरा (कोई) हित होनेवाला है नहीं । (१) राम, लक्ष्मण और जानकीके चरण देखे बिना इस शोकसे भरे राज्यका महत्त्व ही क्या है ? जैसे कपड़े पहने बिना आभूषण लाद लेना व्यर्थ है, जैसे वैराग्य हुए बिना ब्रह्मपर विचार करना व्यर्थ है, (२) जैसे रोगी शरीरके लिये अनेक प्रकारके भोग व्यर्थ हैं, जैसे भगवान्‌की भक्तिके बिना जप और योग व्यर्थ हैं और जैसे जीवके बिना यह सुन्दर देह व्यर्थ है, वैसे ही रामके बिना मेरा सब कुछ करना व्यर्थ है । (३) मेरा हित केवल एक ही बातमें है कि आप लोग मुझे रामके पास चले जानेकी आज्ञा दे दीजिए । यदि आप समझे बैठे हों कि मुझे राजा बनाकर आप लोगोंका कोई हित हो सकेगा तो वह भी स्नेहके कारण उत्पन्न होनेवाला आपका अज्ञान ही है (मुझसे आप इतना स्नेह करते हैं कि उसके कारण आप भले-बुरेका विचार नहीं कर पा रहे हैं) । (४) मुझ-जैसे (अधम), कैकेयीके पुत्र, कुटिल बुद्धिवाले, रामका अहित करनेवाले और निर्लज्जके राज्यमें

१. बिनु पद । २. कैकइ सुअन ।

१८०४-१८०६ किं नु कार्यं हतस्येह मम राज्येन शोचतः । विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ।।
तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः । जगाम मनसा रामं धर्मज्ञो धर्मकांक्षया ।।
स बाष्पकलया वाचा कलहंसस्वरो युवा । विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम् ।।
चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः । धर्मे प्रयतमानस्य को राज्यं मद्विधो हरेत् ।।वा० रा०
१८०७ ९ अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन्रामलक्ष्मणौ । केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे ।। वा० रा०
धिग्राज्यमिदमस्माकम् । —महाभारत
१८१० वस्त्रहीनमलंकारं घृतहीनं च भोजनम् । पतिहीना यथा नारी विद्याहीनास्तथा द्विजाः ।।चाण० नीति
१८११ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता।भाग०
१८१२ मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि । —अध्यात्मरामायण
१८१३ ताते पितृवनं याते यातुं भ्रातृवनं तथा । भरतः प्रार्थयामास प्रांजलिः प्रकृतीः कृती ।।

कहौं साँच, सब सुनि पतियाहू। चाहिय धरम - सील नर - नाहू।
मोहिं राज हठि देइहहु जबहीं। रसा[1] रसातल जाइहि तबहीं। (१)
मोहि समान को पाप - निवासू। जेहि - लगि सीय-राम बनवासू।
१८२० राय, राम - कहँ कानन दीन्हाँ। बिछुरत, गमन अमरपुर कीन्हाँ। (२)
मैं सठ, सब अनरथ - कर हेतू। बैठि, बात सब सुनउँ सचेतू।
बिनु - रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान, सहि जग - उपहासू। (३)
राम पुनीत, बिषय - रस - रूखे। लोलुप भूमि - भोग - के भूखे।
कहँ - लगि कहौं हृदय - कठिनाई। निदरि कुलिस, जेहि लही बड़ाई। (४)
दो०—कारन - तें कारज कठिन, होइ, दोस नहिं मोर।
कुलिस अस्थि-तें, उपल - तें, लोह, कराल कठोर।। १७९।।

रहकर आप लोग जो सुखकी आशा लगाए बैठे हैं यह केवल आपका मोह (अज्ञान) नहीं तो और है क्या ? ।। १७८ ।। मैं जो कहता हूँ उसे आप सत्य समझिए और उसपर विश्वास कीजिए कि राजा वही होना चाहिए जो धर्मात्मा हो। यदि हठ करके आप लोगोंने मुझे राजा बना ही डाला तो उसी समय यह पृथ्वी रसातलमें उतर जायगी। (१) भला मुझ-जैसा बड़ा पापी और मिलेगा कहाँ जिसके कारण राम और जानकीको वन जाना पड़ा। (मुझसे अच्छे तो) राजा (दशरथ) थे कि उन्होंने (वचनकी रक्षाके लिये) रामको वनवास तो दे डाला पर उनके बिछुड़ते ही आप भी सुरपुर चल दिए। (२) मैं कितना शठ हूँ कि सारे अनर्थोंकी जड़ होते हुए भी मैं यहाँ बैठा इतने ध्यानसे आप सबकी बातें सुने जा रहा हूँ। जिस घरमें राम नहीं रहे उस घरको देखकर भी मेरे प्राण सारी जग-हँसाई सहते हुए भी अभी बचे हुए हैं। (३) राम तो इतने पवित्र हैं कि उन्हें विषय-रस (संसारके सुख और भोग)-से कुछ लेना-देना है नहीं ! यह तो लालची लोगोंका काम है कि वे पृथ्वीके भोगोंके भूखे बने फिरते हैं। मेरा हृदय कितना कठोर है यह मैं क्या बताऊँ, जिसने वज्रको भी नीचा दिखानेमें नाम कमा लिया है (मेरा हृदय वज्रसे भी अधिक कठोर है)। (४) (यह तो होना ही चाहिए क्योंकि) कारणसे कार्य सदा कठिन होता ही है, इसलिये इसमें मेरा कुछ दोष नहीं है क्योंकि (दधीचिकी) हड्डीसे (इन्द्रका) वज्र बना और (पहाड़ोंके) पत्थरोंसे निकलनेवाला लोहा भी पत्थरसे अधिक कठोर होता है। (ये दोनों ही, वज्र और लोहा अधिक भयंकर और कठोर बताए गए हैं, इसलिये कैकेयीकी कोखसे जन्म लेनेके कारण मुझे कैकेयीसे अधिक कठोर होना ही चाहिए।) ।। १७९ ।। कैकेयी-जैसी स्त्रीकी कोखसे उत्पन्न होनेवाली देहसे

१. राज रसातल : यह 'राज्य' रसातलमें चला जायगा।

१८१७ यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः। धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ।। मनु०
१८१८ एतदेवं भविष्यति विदीर्येतसकला भूमिः। —महाभारत
१८१९ धिङ् मां जातोस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः। मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः।।अ०रा०
स रामः सत्वसंपन्नः स्त्रिया प्रव्राजितो वनम्। —वाल्मीकीयरामायण
१८२३ निमित्तभूता हि वयं कर्मणोऽस्य द्विजोत्तम। —महाभारत
न तस्य राज्ञो विषयाभिलाषः। आसक्तास्तास्वमी मूढाः। —किरातार्जुनीय
१८२४-२६ आयसं हृदयं नूनं मंदस्य मम सज्जनाः। दीर्यते यन्न शतधा रामचन्द्रमपश्यतः ।।
अश्मनो लोहमुत्थितम्। —महाभारत

कैकेई - भव - तनु अनुरागे। पाँवर[1] प्रान अघाइँ अभागे।
जौं प्रिय - विरह, प्रान प्रिय लागे। देखव, सुनव, वहुत अव आगे। (१)
लखन - राम - सिय - कहँ वन दीन्हाँ। पठइ अमरपुर, पति-हित कीन्हाँ।
१८३० लीन्ह विधवपन, अपजस आपू। दीन्हेंउ प्रजहिं सोक - संतापू। (२)
मोहिं दीन्ह सुख, सुजस, सुराजू। कीन्ह कैकई सब - कर काजू।
ऐहि - तें मोर काह अव नीका। तेहि - पर, देन कहहु तुम टीका। (३)
कैकइ - जठर जनमि जग - माहीं। ऐह मोहिं-कहँ कछु अनुचित नाहीं।
मोरि वात सब विधिहिं वनाई। प्रजा, पाँच, कत करहु सहाई। (४)
दो०—ग्रह - ग्रहीत, पुनि वात-वस , तेहि पुनि वीछी मार।
तेहि पिआइय वारुनी, कहहु काह[2] उपचार ।। १८०।।
कैकइ - सुअन - जोग जग जोई। चतुर विरंचि, दीन्ह मोहिं सोई।
दसरथ - तनय, राम - लघु - भाई। दीन्हि मोहिं विधि, वादि वड़ाई। (१)

प्रेम किए रखनेवाले ये अभागे प्राण अब भी आनन्द मनाए चले जा रहे हैं। जब (राम-जैसे परम) प्रियके वियोगमें भी मुझे अपने प्राण प्यारे लगे जा रहे हैं (मैं प्राण नहीं छोड़ पा रहा हूँ), तब आगे चलकर तो मुझे और भी न जाने क्या-क्या देखना-सुनना पड़ेगा। कैकेयीने राम, लक्ष्मण और जानकीको वनवास दे दिया (उनका अहित किया)। (१) पतिको स्वर्ग भेज दिया (उनका अहित किया), स्वयं विधवा होकर इतना अपयश लिया (अपना अहित किया), प्रजाको शोक और सन्ताप दे डाला (प्रजाका अहित किया)। (२) और मुझे सुख, सुयश और उत्तम राज्य दे डाला (मेरा अहित किया)। इस प्रकार कैकेयीने सबका हित (अहित) कर ही डाला है। अब इससे बढ़कर मेरे लिये और क्या होना बचा रह गया ? उसपर भी आप लोग मुझे राजतिलक देनेपर तुले बैठे हैं। (३) जगत्में कैकेयीको कोखसे जन्म लेनेवालेके (मेरे) लिये जो कुछ भी हो जाय वह भला अनुचित माना जा सकता है ? मेरा सब काम तो स्वयं विधाता ही बनाए बैठा है, फिर न जाने प्रजा और पंच लोग क्यों झूठे ही उसमें सहायक बने जा रहे हैं ? (४) जिसे (खोटे) ग्रह घेरे बैठे हों, वायु रोग भी उसे सताए डाल रहा हो, उसपर उसे बिच्छूने भी डंक मार दिया हो और फिर उसे मदिरा भी पिला दी जाय, तो बताइए वह किसके बचाए बच सकता है ? (मेरी भी यही दशा हो गई है। मुझे कोई सर्वनाशसे बचा नहीं सकता) ।। १८० ।। कैकेयी (जैसी कुटिल माता)-के पुत्रको संसारमें जो कुछ मिलना चाहिए, वह सब तो चतुर विधाताने ही मुझे दे डाला है। हाँ, (ऐसी स्थितिमें) विधाताने 'दशरथका पुत्र' और 'रामका छोटा भाई'

---

१. पावन : ये अभागे प्राण फिर भी अपनेको 'पवित्र' समझकर सुखी हुए बैठे हैं। २. कौन।

१८२७-२८ कैकेयीभवदेहे तु कृतस्नेहा अभागिनः। प्राणा भवंतु संतुष्टा वियोगो यदि वै प्रियः ।।
प्राणप्रियस्य रामस्य पुरो जातस्तदा पुनः। बहु द्रक्ष्यन्ति वै प्राणाः श्रोष्यंति करुणाकर ।।अग.रा.
१८२४-२६ श्रीराम सीता सौमित्रीन् प्रेषयामास काननम्। हत्वा दशरथं जाता कैकेयी विधवा पतिम् ।।
संतापं चापि शोकं च प्रजानां प्रददौ किल। राज्यं सुखं यशश्चापि कैकेयी प्रददौ मम। पुलस्त्यरा०
पश्य शत्रुघ्न कैकेय्या लोलस्योपकृतं महत। —वाल्मीकीयरामायण
१८२७-३१ (उत्पथा उद्भूटा दैतास्त त्रापि कंसनोदिताः। कपिः सुराप्यलिहतो भूत ग्रसूत इवाभवन् ।। गर्ग०सं०
१८३२ योग्यं योग्येन युज्यते। —सत्यार्थविवेक
१८३३-३५ भरतस्तं जनं सर्वं प्रत्युवाच धृतव्रतः।
१८३६ अयशो जीव लोके च त्वयाहं प्रतिपादतः। —वाल्मीकीयरामायण

तुम सब कहहु कढ़ावन टीका। राय - रजायसु सब - कहँ नीका।
१८४० उतर देउँ केहि विधि केहि - केही। कहहु सुखेन, जथा-रुचि जेही। (२)
मोहिं कुमातु - समेत बिहाई। कहहु, कहिहि के, कीन्हि भलाई।
मो - बिनु को सचराचर - माहीं। जेहि सिय - राम प्रान-प्रिय नाहीं। (३)
परम हानि, सब - कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर, नहिं दूषन काहू।
संसय - सील - प्रेम - बस अहहू। सबइ उचित सब, जो कछु कहहू। (४)
दो०—राम-मातु, सुठि, सरल चित , मो - पर सरल बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह - बस , मोरि दीनता देखि॥ १८१॥
गुरु बिवेक - सागर, जग जाना। जिन्हहिं बिस्व,कर - बदर - समाना।
मो कहँ तिलक - साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख, बिमुख सब कोऊ। (१)
परिहरि राम - सीय जग माहीं। कोउ न कहहि, मोर मत नाहीं।
१८५० सो मैं सुनब, सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ, जहँ पानी। (२)

होनेकी बड़ाई मुझे व्यर्थ दे डाली। (१) आप सब भी मुझे राजतिलक करानेको कह ही रहे हैं। राजा (दशरथ)-की आज्ञा भी आप लोगोंकी दृष्टिसे ठीक ही है। बताइए, मैं किस-किसको किस-किस प्रकार बैठकर समझाता चलूँ? इसलिये आप लोगोंकी जैसी इच्छा हो वैसा आप लोग सुखसे कहते चलिए (मैं सुनता चलूँगा)। (२) बताइए, मुझे और मेरी कुमाता कैकेयीको छोड़कर और कौन (भला आदमी) कह देगा कि यह (रामको वन भेजनेका) काम अच्छा किया गया? जगत्‌में मेरे अतिरिक्त और कौन है जो राम और जानकीको प्राणोंके समान प्यारा न समझता हो? (यह बड़ी विचित्र बात लगती है कि) जिस कामसे मेरी सबसे अधिक हानि हुई जा रही है उसीमें आप सबको बड़ा लाभ दिखाई पड़ा जा रहा है। (बात यह है कि) मेरे दिन ही कुछ बुरे आ गए हैं, इसके लिये किसीको व्यर्थ क्यों दोष दिया जाय? आप लोगोंके मन तो संशय, शील और प्रेमसे भरे हुए हैं (संशय इस बातका कि मेरे विरोधमें कुछ कहकर रामकी प्रशंसा की जाय तो कहीं मैं रुष्ट न हो जाऊँ क्योंकि भावी राजाको सब प्रसन्न रखना चाहते हैं। शील यही है कि राजा जो कह गए वह मानना ही चाहिए। प्रेम इसलिये कि आप लोग मुझे भला समझे बैठे हैं)। इसलिये आप लोग जो कुछ कह रहे हैं सब ठीक ही है। जहाँतक रामकी माता (कौशल्या)-की बात है, वे बहुत ही सरल स्वभाव की हैं और मुझसे बहुत प्रेम भी करती हैं। वे मुझे व्याकुल देखकर अपने स्नेह और स्वभावके कारण ही ऐसा (राजतिलक करा लेनेको) कह रही हैं॥ १८१॥ सारा संसार जानता है कि गुरु (वशिष्ठ) तो विवेकके समुद्र हैं, सारे संसारको वे ऐसा स्पष्ट जानते हैं जैसे हथेलीपर बेर धरा रक्खा हो। पर वे भी मेरा राजतिलक करनेकी तैयारी किए बैठे हैं। ठीक भी है, जब भाग्य रूठ बैठता है तब अपने-पराए भी सभी मुँह मोड़ बैठते हैं। (१) राम और सीताको छोड़कर संसारमें कोई ऐसा नहीं है जो यह मान ले कि इस (घटना)-में मेरा हाथ नहीं था। वह सब भी मुझे सुनना और हँसकर सहना पड़ेगा

१. पावन : ये अभागे प्राण अब भी अपनेको 'पवित्र' समझकर सुखी हुए जा रहे हैं।

१८४२ चराचरे विना मां को यस्य रामः प्रियो न हि। —महारामायण
१८४५ सानुक्रोशां वदान्यां च धर्मज्ञां च यशस्विनीम्। कौशल्यां शरणं यामः सा हि नोऽस्ति ध्रुवा गतिः॥
१८४७ तच्छ्रुत्वा भरतो वाक्यं शोकेनाभिपरिप्लुतः। विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्॥
करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः। पश्यंति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी॥वासवदत्ता

डर न मोहिं, जग कहहि[1] कि पोचू । परलोकहु-कर नाहिंन सोचू ।
एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहिं-लगि भे सिय-राम दुखारी । (३)
जीवन-लाहु लखन भल पावा । सब तजि, राम - चरन मन लावा ।
मोर जनम रघुवर-बन-लागी । झूठ काह पछिताउँ अभागी (४)
दो०—आपन दारुन दीनता , कहउँ सबहिं सिर नाइ ।
देखे बिनु रघुनाथ - पद , जिय-कै जरनि न जाइ ।। १८२।।
आन उपाउ मोहिं नहिं सूझा । को जिय - कै रघुबर-बिनु बूझा ।
एकहि आँक इहै, मन - माहीं । प्रातकाल चलिहौं प्रभु - पाहीं । (१)
जद्यपि मैं अनभल, अपराधी । भइ मोहि कारन सकल उपाधी ।
१८६० तदपि सरन सनमुख मोहिं देखी । छमि सब, करिहहिं कृपा बिसेखी । (२)

क्योंकि जहाँ पानी होगा वहीं तो कीच होगी (जहाँ दोष होगा वहाँ बदनामी होगी ही) । (२) इसका मुझे तनिक भी डर नहीं है कि संसार मेरी बुराई किए जा रहा है । मुझे यह भी चिन्ता नहीं है कि मेरा परलोक बिगड़ जायगा (मुझे नरकमें जाना पड़ेगा) । मेरे हृदयमें बस एक ही भयंकर आग धधकी पड़ रही है कि मेरे कारण राम और जानकीको दुःख भोगना पड़ रहा है । (३) हाँ, लक्ष्मण (भाग्यवान् हैं कि उन्हों)-ने अपने जीवनका सारा लाभ पा लिया कि सब कुछ छोड़-छाड़कर रामके चरणोंमें अपना मन जा रमाया । मेरा तो जन्म ही रामको वनवास दिलानेके लिये हुआ है इसलिये मैं अभागा झूठ-मूठ बैठा क्या पछताऊँ ? (४) मैं आप सबके आगे सिर नवाकर अपने मनकी भयंकर व्यथा बताए देता हूँ कि जबतक मैं रामके चरणोंका दर्शन नहीं कर लेता हूँ तबतक मेरे हृदयकी जलन नहीं मिट पावेगी ।।१८२।। इसके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा उपाय सूझ ही नहीं पड़ रहा है क्योंकि रामको छोड़कर मेरे मनकी दशा और कोई जान ही क्या पा सकता है ? मैंने अपने जीमें ठान लिया है कि मैं कल ही सवेरे प्रभु (राम)-के पास जानेके लिये चल दूँगा । (१) यद्यपि मैं बहुत खोटा हूँ, अपराधी भी हूँ और मेरे ही कारण यह सारा उपद्रव भी उठ खड़ा हुआ है, फिर भी (मुझे विश्वास है कि) जब वे मुझे सामने शरणमें आया देखेंगे तो मेरे सारे अपराध क्षमा करके मुझपर अवश्य कृपा कर देंगे । (२) राम तो बड़े,

---

१. कहहि = कहेगा ।

१८५२ मदर्थं जानकीरामावभूतां दुःखितौ जनाः । शोकश्चायं मम स्वांते वर्तते बुद्धिनाशकः ।।
१८५३-५४ लेभे जन्मफलं वीरो लक्ष्मणः शुभ लक्षणः । सर्वं त्यक्त्वानुरागं यः कृतवान् रामपादयोः।।
रामस्य वनवासार्थं जन्म जातं मम क्षितौ । निष्फलं भाग्यहीनश्च पश्चात्तापं करोम्यहम् ।।सनं०सं०
१८५५-५६ रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां सुघोरं
माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं दर्शनादेव सद्यः ।।
गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यं
रामं सीतासमेतं स्मितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे ।। —अध्यात्मरामायण
१८५७-५८ रामो राजाधिराजश्च वयं तस्यैव किंकराः । श्वः प्रभाते गमिष्यामो राममानेतुमंजसा।।अ०रा०
१८६० न स्मरन्त्यपराधानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि । असंभिन्नार्यमर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः ।।भारत

सील, सकुचि, सुठि सरल सुभाऊ। कृपा - सनेह - सदन रघुराऊ ।
अरिहुँ-क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु, सेवक, जद्यपि बामा। (३)
तुम पै पाँच, मोर भल मानी। आयसु, आसिष, देहु सुबानी।
जेहिं सुनि विनय, मोहिं जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। (४)
दो०—जद्यपि जनम कुमातु - तें, मैं सठ, सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहिं रघुबीर - भरोस ॥ १८३ ॥
भरत - बचन सब - कहँ प्रिय लागे। [राम - सनेह - सुधा जनु पागे[१]।
लोग वियोग - विषम - विष - दागे[१]]। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे। (१)
मातु, सचिव, गुरु, पुर - नर - नारी। सकल सनेह - बिकल भे भारी।
१८७० भरतहिं कहहिं सराहि सराही। राम - प्रेम - मूरति - तनु आही। (२)
तात भरत ! अस काहे न कहहू। प्रान - समान राम - प्रिय अहहू।

सुशील, अत्यन्त सरल तथा संकोची स्वभावके हैं। कृपा और प्रेमके तो वे भांडार ही हैं। (मेरी बात तो दूर रही) रामने कभी अपने शत्रु-तकका भी बुरा नहीं चीता। मैं तो उनका अहित करनेवाला होनेपर भी उनका बालक और सेवक ही हूँ। (३) इसलिये आप पंच लोग भी इसी (रामके पास चले जाने)-में मेरा कल्याण समझकर आज्ञा दीजिए और मंगल भावसे आशीर्वाद भी दीजिए जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर और मुझे अपना सेवक जानकर राम फिर राजधानी (अयोध्या) लौट आवें। (४) यद्यपि मेरा जन्म (कैकेयी-जैसी) कुमाताकी कोखसे हुआ है, मैं दुष्ट भी हूँ और बड़ा भारी अपराधी भी हूँ तथापि मुझे रामपर इतना भरोसा अवश्य है कि वे अपना जानकर मुझे ठुकरावेंगे कभी नहीं' ॥१८३॥ भरतके वचन सबको ऐसे प्रिय लगे, मानो उन वचनोंमें लबालब रामके प्रेमका अमृत भरा हो। रामके भीषण वियोगके विषसे जले हुए लोग ऐसे जाग उठे (चेतन हो उठे, प्रसन्न हो उठे) मानो बीज (ॐ, ऐं, ह्रीं, क्लीं आदि)-के साथ (विष उतारनेका) मन्त्र सुनकर सब जाग उठे हों। (१) (भरतकी बात सुनकर) माताएँ (कौशल्या और सुमित्रा), मंत्री, गुरु (वशिष्ठ) और नगरके सब स्त्री-पुरुष, (रामके लिये) भरतका यह भाव देखकर स्नेहसे बहुत व्याकुल हो उठे (उनके मनमें भी रामके लिये स्नेह उमड़ पड़ा)। सभी बार-बार भरतकी सराहना किए जा रहे थे—'तुम्हारा शरीर तो रामके प्रेमकी साक्षात् मूर्ति ही है। (२) इसलिये भरत ! तुम भला ऐसी बात क्यों न कहोगे ? क्योंकि राम तो तुम्हें अपने प्राणोंके समान प्रिय मानते हैं।

१. ये दोनों चरण राजापुरकी प्रतिमें नहीं हैं।

१८६१-६२ न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता। —रघुवंश
१८६३-६४ यद्यप्यहं महापापी तथापि रघुनंदनः। करिष्यत्यनुकंपां हि मयि प्रेमदयार्णवः ॥ वसिष्ठसं०
दृष्ट एव हि नः शोकमपनेष्यति राघवः। —वाल्मीकीयरामायण
रामो यथा वने यातस्तथाहं वल्कलांबरः। फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने ॥
भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते। इति निश्चित्य भरतस्तूष्णीमेवावतस्थिवान् ॥अ०र०
१८६५-६६ तद्वाक्यं धर्मसंयुक्तं श्रुत्वा सर्वे सभासदाः। हर्षान्मुमुचुरश्रूणि रामे निहितचेतसः ॥
१८७०-७१ साधु साध्विति तं सर्वे प्रशशंसुर्मुदान्विताः। त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान् ॥अध्या०
तस्य तद्वचनं धर्म्यमनुमान्य गुणोत्तरम्। साधु साध्विति सर्वः स्वजनः प्रतिगृहीतवान् ॥भारत
एवं संभाषमाणं तं रामहेतोर्नृपात्मजम्। प्रत्युवाच जनः सर्वः श्रीमद्वाक्यमनुत्तमम्।
एवं ते भाषमाणस्य पद्मा श्रीरुपतिष्ठताम्। यस्त्वं ज्येष्ठे नृपसुते पृथिवीं दातुमिच्छसि ॥वा०रा०

जो पाँवर आपनि जड़ताई। तुमहिं सुगाइ मातु-कुटिलाई। (३)
सो सठ कोटिक - पुरुष - समेता। बसहिं कलप सत नरक - निकेता।
अहि - अघ - अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल, दुख - दारिद दहई। (४)
दो०—अवसि चलिय बन, राम जहँ, भरत ! मंत्र भल कीन्ह।
सोक - सिंधु बूड़त सबहिं, तुम अवलंबन दीन्ह ॥ १८४ ॥
भा सब - के मन मोद न थोरा। जनु घन-धुनि सुनि चातक-मोरा।
चलत प्रात, लखि निरनउ नीके। भरत प्रान - प्रिय भे सबही - के। (१)
मुनिहि वंदि, भरतहिं सिर नाई। चले सकल घर, बिदा कराई।
१८८० धन्य भरत - जीवन जग - माहीं। सील - सनेह सराहत जाहीं। (२)
कहहिं परसपर भा बड़ काजू। सकल चलइ - कर साजहिं साजू।
जेहि राखहिं, रहु घर रखवारी। सो जानइ, जनु गरदनि मारी। (३)
कोउ कह, रहन कहिय नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन-लाहू। (३॥)

जो नीच पुरुष अपनी मूर्खताके कारण माताकी इस कुटिलतामें तुम्हारा हाथ बतावे, (३) वह शठ अपने करोड़ों पितरोंके साथ सैकड़ों कल्पोंतक नरकमें जाकर सड़ता रहेगा। सर्पका मणि (सर्पके सिरमें रहनेपर भी) कभी साँपके पाप और अवगुण नहीं ग्रहण करता वरन् वह (नागमणि, सर्पका) विष भी खींच लेता है, और (जिसके पास रहता है) उसके दुःख और उसकी दरिद्रता भी भस्म कर डालता है। (४) देखो भरत ! तुमने यह ठीक निश्चय किया है कि राम जहाँ कहीं भी वनमें हों वहीं हम सबको चले चलना चाहिए। तुमने तो शोकके समुद्रमें डूबते हुए हम सबको बड़ा सहारा दे डाला ॥ १८४ ॥ यह (रामके पास चलनेका निश्चय) सुनकर सब लोग वैसे ही प्रसन्न हो उठे जैसे मेघकी गड़गड़ाहट सुनकर पपीहे और मोर प्रसन्न हो उठते हैं। (१) सब लोग मुनि (वशिष्ठ) और भरतको सिर नवाकर और उनसे विदा माँगकर अपने-अपने घर लौट गए। लौटते हुए वे भरतके स्नेह और शीलकी सराहने करते हुए कहते जा रहे थे—'संसारमें भरतका जीवन धन्य है।' (२) सब लोग आपसमें यही कहते जा रहे थे—'यह बड़ा भारी काम हो गया।' सब लोग (रामके पास) चलनेकी तैयारी करनेमें जुट गए। वहाँ जिसे भी घरकी रखवालीके लिये रुक जानेको कहा जाता था वही समझता था कि हमारा सिर काट लिया जा रहा है। (३) कुछ लोगोंने यह भी कहा कि किसीको भी घर-पर रुकनेके लिये मत कहो। अरे भाई ! संसारमें कौन अपने जीवनका लाभ नहीं लेना चाहता ? (तब क्यों किसीको उस लाभसे वंचित किया जाय ?) (३॥)

१८७५-७५ अनुत्तमं तद्वचनं नृपात्मजाः प्रभाषितं संश्रवणे निशम्य च।
प्रहर्षजास्तं प्रति बाष्पबिंदवो निपेतुरार्याननेत्रसंभवाः ॥
ऊचुस्ते वचनमिदं निशम्य हृष्टाः सामात्याः सपरिषदो वियातशोकाः।
पंथानं नरवरभक्तिमाञ्जनश्च व्यादिष्टस्तव वचनाच्च शिल्पिवर्गः ॥—वाल्मीकीयरामायण
१८७७-७८ मयूराणां मेघः प्रथयति यथा चेतसि सुखम्।—सुभाषित ॥ सारंगा घनगर्जितम्—पद्यपंचाशिका ॥
१८७९ विसर्जयामास तदा प्रकृतीस्तु शनैः शनैः। —महाभारत
१८८१ ताः प्रहृष्टाः प्रकृतयो बलाध्यक्षा बलस्य च। श्रुत्वा यात्रां समाज्ञप्तां राघवस्य निवर्तने ॥
ततो योधांगनाः सर्वा भर्तॄन्सर्वान्गृहे गृहे। यात्रागमनमाज्ञाय त्वरयंतिस्म हर्षिताः ॥वा०रा०

दो०—जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ ।
सनमुख होत जो राम-पद, करइ न सहस[1] सहाइ ।। १८५ ।।
घर-घर साजहिं बाहन नाना । हरष हृदय, परभात पयाना ।
भरत, जाइ घर कीन्ह बिचारू । नगर, बाजि, गज, भवन, भँडारू । (१)
संपति सब रघुपति-कै आही । जौं बिनु-जतन चलौं तजि ताही ।
तौ परिनाम न मोरि भलाई । पाप-सिरोमनि साइँ-दुहाई । (२)
१८९० करइ स्वामि-हित, सेवक सोई । दूषन कोटि, देइ किन कोई ।
अस बिचारि, सुचि सेवक बोले । जे सपनेहुँ निज धरम न डोले । (३)
कहि सब मरम, धरम भल भाखा । जो जेहि लायक, सो तेहि राखा ।
करि सब जतन, राखि रखवारे । राम-मातु-पहँ भरत सिधारे । (४)
दो०—आरत जननी जानि सब, भरत सनेह-सुजान ।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन-जान ।। १८६ ।।

वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता और भाई जल मिटें (किस कामके ?) जो रामके चरणोंके पास जानेमें प्रसन्न होकर सहायता नहीं करते ।। १८५ ।। घर-घर जिसे देखो वही सवारियाँ सजाए जा रहा है । सबके हृदयमें यह जानकर बड़ा हर्ष हुआ जा रहा था कि अँधेरे-मुँह पौ फटते ही कल सवेरे चल देना है ।

भरतने भीतर जाकर विचार किया कि नगर, घोड़े, हाथी, भवन और कोष यह सारी सम्पत्ति तो रामकी है । (१) यदि मैं इनका ठीक प्रबन्ध किए बिना यों ही छोड़कर चल दूँ तो यह मेरे लिये किसी प्रकार ठीक न होगा । स्वामी (राम)-की दोहाई, यदि मैंने यह न किया तो मैं पापियोंका शिरोमणि कहलाया जाने लगूँगा । (२) सच्चा सेवक वही है जो स्वामीका हित करे, चाहे लोग भले ही उसे लाख दोष लगाते रहें । ऐसा विचारकर उन्होंने ऐसे सच्चे सेवकों-को बुलवा भेजा जो स्वप्नमें भी अपने धर्म (कर्तव्य)-से डिगनेवाले नहीं थे । (३) भरतने उन्हें सब भेद (व्यवस्था) समझाकर पहले उन्हें धर्म (कर्तव्य)-का उपदेश दिया और फिर जिसे जिस कार्यके योग्य समझा उसे वह कार्य सौंप दिया । सब प्रकारकी व्यवस्था करके और (अयोध्यामें) रक्षक नियुक्त करके भरत उठकर रामकी माता (कौशल्या)-के पास चले गए । (४) प्रेमके पारखी भरतने सब माताओंको (रामके लिये) दुखी जानकर उनके लिये गद्दीवाली अच्छी अच्छी सुखद पालकी आदि सवारियाँ सजाने तथा तैयार करनेको कह

१. सहज । रहस=प्रसन्न होकर ।

१८८४-८५ वेदस्याध्ययनं कृतं परिचितं शास्त्रं पुराणं स्मृतम् ।
सर्वं व्यर्थमिदं पदं न कमलाकांतस्य चेत्कीर्तितम् ।। —सुभाषित

१८७५ ततः समुत्थाय कुले कुले ते राजन्यवैश्या वृषलाश्च विप्राः ।
अयूयुजन्नुष्ट्ररथान् खरांश्च नागान्हयांश्चैव कुलप्रसूतान् ।।
ततो योधांगनाः सर्वा भर्तॄन्सर्वान् गृहे गृहे । यात्रागमनमाज्ञाय त्वरयंतिस्म हर्षिताः ।।वा०रा०

१८८६ सा सेवा या प्रभुहिता । —पंचतन्त्र

१८९२ सुमंत्र: स्थाप्यतां पुर्यां रक्षणार्थं ममाज्ञया । —आनन्दरामायण

चक्क - चक्कि - जिमि पुर - नर - नारी । चलत[1] प्रात, उर आरत भारी ।
जागत सब निसि भयउ बिहाना । भरत बोलाए सचिव सुजाना । (१)
कहेउ, लेहु सब तिलक - समाजू । बनहिं देब मुनि, रामहिं राजू ।
बेगि चलहु, सुनि, सचिव जोहारे । तुरत तुरग - रथ - नाग सँवारे । (२)
१९०० अरुंधती अरु अगिनि - समाऊ । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ।
बिप्र - बृन्द चढ़ि बाहन नाना । चले सकल तप - तेज - निधाना । (३)
नगर - लोग सब सजि - सजि जाना । चित्रकूट - कहँ कीन्ह पयाना ।
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी । चढ़ि - चढ़ि चलत भईं सब जानी । (४)
दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकनि , सादर सकल[2] चलाइ ।
सुमिरि राम-सिय-चरन तब , चले भरत दोउ भाइ ।। १८७ ।।

दिया ।। १८६ ।। जैसे चकवे और चकवी सवेरा होनेके लिये छटपटाते हैं वैसे ही नगरके नर-नारी भी सवेर चलनेके लिये छटपटाए पड़ रहे थे (कि कब सवेरा हो और कब चल दें) । सबने सारी रात जागते बिता दी और सवेरा हो चला । (तड़के ही) भरतने चतुर मन्त्रियोंको बुलवा भेजा (१) और कहा—'राजतिलकका सारा सामान साथ लिए चलिए । मुनि वशिष्ठ वनमें ही रामको राजतिलक कर देंगे । झटपट चलिए ।' यह सुनकर मन्त्रियोंने उन्हें प्रणाम किया और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा खड़े किए । (२) पहले मुनि वशिष्ठ और देवी अरुन्धती अपने अग्निहोत्र[3]के सामानके साथ रथपर चढ़ चले । फिर बड़े-बड़े तपस्वी और तेजस्वी ब्राह्मण अनेक प्रकारके वाहनोंपर चढ़-चढ़कर चल पड़े । (३) नगरके लोग भी अपनी-अपनी सवारियाँ सजा-सजाकर चित्रकूटको चल पड़े । सब रानियाँ भी ऐसी सुन्दर-सुन्दर पालकियोंपर चढ़-चढ़कर चलीं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता : (४) कर्त्तव्यशील सेवकोंको नगर सौंपकर और सबको आदरके साथ भेजकर राम और जानकीके चरणोंका स्मरण करके दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) भी चल दिए ।। १८७ ।। रामके

१. चहत २. सबहिं । ३. अग्निहोत्र : नित्यका हवन । अग्निहोत्री लोग जहाँ जाते हैं वहाँ अपनी अग्निहोत्रकी अग्नि साथ ले जाते हैं ।

१८९७ तूर्णं त्वमुत्थाय सुमंत्र गच्छ । —आनन्दरामायण
१८९८-९९ रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः । अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पंच च ।।
युज्यतां महती सेना चतुरंगमहाबला । आनयिष्याम्यहं ज्येष्ठं भ्रातरं राघवं वनात् ।।
आभिषेचनिकं चैव सर्वमेतदुपस्कृतम् । पुरस्कृत्य गमिष्यामि रामहेतोर्वनं प्रति ।।
तत्रैव तं नरव्याघ्रमभिषच्य पुरस्कृतम् । आनयिष्यामि वै रामं हव्यवाहमिवाध्वरात् ।।वा०रा०
१९०१ समाहिता वेदविदो ब्राह्मणा वृत्तसम्मताः । गोरथैर्भरतं यांतमनुजग्मुः सहस्रशः ।। वाल्मीकीय
१९०३ स्त्रीसंघाः शिविकायुताः । स्त्र्यध्यक्षगुप्ताः प्रययुर्विसृजंतोऽमितं वसु ।। महाभारत
१९०५ सुमंत्राय ददौ वस्त्रं तदधीनां पुरीं व्यधात् । —आनन्दरामायण
ततः समुत्थितः कल्यमास्थायस्यंदनोत्तमम् । प्रययौ भरतः शीघ्रं रामदर्शनकाम्यया ।
अग्रतः प्रययुस्तस्य सर्वे मंत्रिपुरोहिताः । अधिरुह्य हयैर्युक्तान्रथान्सूर्यरथोपमान् ।।
नवनागसहस्राणि कल्पितानि यथाविधि । अन्वयुर्भरतं यांतमिक्ष्वाकुकुलनंदनम् ।।
षष्टीरथसहस्राणि धन्विनो विविधायुधाः । अन्वयुर्भरतं यांतं राजपुत्रं यशस्विनम् ।। वा०रा०

राम - दरस - बस सब नर-नारी । जनु करि - करिनि चले तकि बारी ।
बन सिय-राम समुझि मन-माहीं । सानुज भरत पयादेहि जाहीं । (१)
देखि सनेह लोग अनुरागे । उतरि चले हय - गय - रथ त्यागे ।
जाइ समीप, राखि निज डोली । राम - मातु मृदु बानी बोली । (२)
१९१० तात ! चढ़हु रथ, बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ।
तुम्हरे चलत, चलिहि सब लोगू । सकल सोक-कृस, नहिं मग-जोगू । (३)
सिर धरि वचन, चरन सिर नाई । रथ चढ़ि, चलत भए दोउ भाई ।
तमसा प्रथम दिवस करि बासू । दूसर, गोमति - तीर निवासू । (४)
दो०—पय-अहार, फल-असन ऐक , निसि - भोजन ऐक लोग ।
करत राम - हित नेम, व्रत , परिहरि भूपन - भोग ।। १८८ ।।
सई तीर बसि, चले बिहाने । शृंगबेरपुर सब नियराने ।
समाचार सब सुने निषादा । हृदय बिषाद करैं सविषादा । (१)

दर्शनकी लालसासे सब स्त्री और पुरुष ऐसे लपके चले जा रहे थे मानो प्यासे हाथी और हथिनी जल देखकर (पानी पीनेके लिये उतावले होकर) बढ़े चले जा रहे हों। राम-जानकी वनमें पैदल ही चलते होंगे यह समझकर भरत अपने छोटे भाई (शत्रुघ्न)-के साथ पैदल ही चलने लगे। (१) जब अन्य लोगोंने (रामके प्रति) उनका ऐसा स्नेह देखा तो सब मनमें ऐसे मगन हो उठे कि वे भी अपने-अपने घोड़े, हाथी, रथ छोड़-छोड़कर पैदल ही चलने लगे। तब रामकी माता (कौशल्या)-ने भरतके पास अपनी पालकी रुकवाकर प्रेमसे कहा—(२) 'देखो बेटा ! माता तुमपर बलिहारी जाती है। तुम रथपर चढ़ चलो नहीं तो प्रिय परिवारके सब लोगोंको बड़ा कष्ट होगा। एक तो शोकके कारण सब लोग यों ही बहुत दुबले हुए पड़े हैं, उसपर जब वे तुम्हें पैदल चलते देख रहे हैं तो वे भी पैदल ही चलने लगे हैं।' (३) माताकी आज्ञा मानकर और उनके चरणोंमें सिर नवाकर, दोनों भाई रथपर चढ़ चले। पहले दिन तमसा नदीके तीरपर डेरा डालकर, दूसरे दिन उन्होंने गोमतीके तीरपर डेरा जा डाला। (४) कुछ लोग केवल दूध पीकर, कुछ केवल फलाहार करके और कुछ लोग केवल एक बार रात्रिमें भोजन करके ही रामके लिये भूषण और सभी भोग-पदार्थ छोड़कर नियम और व्रत पालन करते चले जा रहे थे ।। १८८ ।। सई नदीके तीरपर रात बिताकर सब लोगोंने प्रातःकाल ही डेरा कूच कर दिया और (थोड़ी ही देरमें) शृङ्गवेरपुर (वर्तमान सिंगरौर) गाँवके पास जा पहुँचे। जब वहाँके केवटोंने समाचार सुना (कि भरत सेना लेकर चढ़े

१९०६ शतं सहस्राण्यश्वानां समारूढानि राघवम् । अन्वयुर्भरतं यांतं राजपुत्रं यशस्विनम् ।।
कैकेयी च सुमित्रा च कौशल्या च यशस्विनी । रामानयनसंतुष्टा ययुर्यानेन भास्वता ।।
प्रयाताश्चार्यसंघाता रामं द्रष्टुं सलक्ष्मणम् । तस्यैव च कथाश्चित्राः कुर्वाणा हृष्टमानसाः।।वा०रा०
रामं प्रति ययुर्हृष्टाः सर्वाः प्रकृतयः शुभाः ।—वाल्मीकीय।।वनगजा ध्यायंति रेवाजलम्।।—पद्यपंचाशिका
१९०७ तच्छ्वोभूते गमिष्यामि पादचारेण दंडकान् । शत्रुघ्नसहितस्तूर्णम् । —अध्यात्मरामायण
१९१० एहि त्वं रथमारोह सुखमाप्नुहि केवलम् । —महाभारत
१९१३ संप्राप्य तीरं तमसापगायाः । —भट्टिकाव्य
१९१४-१५ फलमूलकृताहारः शत्रुघ्नसहितो मुने । भूमिशायी जटाधारी यावद्रामो निवर्तते ।। अध्यात्म०
१९१६ ते गत्वा दूरमध्वानं रथयानाश्वकुंजरैः । समासेदुस्ततो गंगां शृङ्गवेरपुरं प्रति ।।वा०रा०

कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपट-भाउ मन-माहीं।
जौं पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई। (२)
१६२० जानहिं, सानुज रामहिं मारी। करउँ अकंटक राज सुखारी।
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंक, अब जीवनहानी। (३)
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतनिहारा।
का आचरज भरत अस करहीं। नहिं विष-बेलि अमिय-फल फरहीं। (४)
दो०—अस बिचारि[1] गुह, ग्याति-सन, कहेउ, सजग सब होहु।
हथवाँसहु बोरहु तरनि, कीजिय घाटारोहु ।। १८९ ।।
होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ-के ठाटा।
सनमुख लोह भरत-सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ। (१)

चले) आ रहे हैं तो वे बड़े दुःखके साथ अपने मनमें विचार करने लगे—(१) 'भरत वन क्यों चले आ रहे हैं ? अवश्य कुछ दालमें काला है (उनके मनमें कुछ खोट अवश्य है)। यदि मनमें खोट न होती तो सेना क्यों साथ लेकर चलते ?। (२) वे समझ बैठे हैं कि छोटे भाई (लक्ष्मण) और रामको मारकर सुखसे वेखटके बैठे राज्य भोगेंगे। भरतने राजनीतिकी दृष्टिसे ठीक नहीं किया। (वे अयोध्यामें बैठे राज करते रहते) तब तो केवल कलंक ही लगता (कि रामको वनमें भेजकर राज भोग रहे हैं) पर अब तो उन्हें अपने प्राणोंसे हाथ धोना होगा (हमारे हाथों मारे जायँगे)। (३) (भरतने यह नहीं सोचा कि) सारे देवता और दैत्य भी जुटकर सामने आ डटें तब भी वे रामको लड़ाईमें नहीं जीत पा सकते। पर, भरत यदि ऐसा करने भी लगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? क्योंकि विषकी लतामें अमृतका फल थोड़े ही फलता है।' (कैकेयी जब खोटी हैं तो उनका पुत्र भी वैसा ही खोटा होगा)।' (४) यह सोचकर केवटने अपने जातिवालोंसे कहा—'सब लोग सावधान हो जाओ। डाँड़ों (नाव चलानेके बाँसों) साथ नावें डुबा दो और सब घाट रोक दो ।। १८९ ।। सब लोग लड़ाईके हथियार बाँध-बाँधकर घाट रोक लो और मरनेके लिये तैयार हो जाओ। पहले तो मैं ही भरतसे सामने भिड़ जाता हूँ और

१. बिचार।

१६१७-१९ आगतं भरतं श्रुत्वा गुहः शंकितमानसः। महत्या सेनया सार्धमागतो भरतः किल ।।
पापं कर्तुं न वा याति रामस्याविदितात्मनः। —अध्यात्मरामायण
१६२० संपन्नां श्रियमन्विच्छँस्तस्य राज्ञः सुदुर्लभाम्। भरतः केकयीपुत्रो हंतुं समुपगच्छति।। वा०रा०
१६२१ जेतुं न शक्ताः सहिताः सेन्द्रा अपि सुरासुराः।
स दीर्घबाहुर्दृढधन्वा महात्मा भिद्याद् गिरीन् संहरेत् सर्वलोकान्।
अस्त्रे कृती निपुणः क्षिप्रहस्तो दिवि स्थितः सूर्य्य इवाभिभाति ।। —महाभारत
१६२३ नहि निंबात्स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः। —वाल्मीकीयरामायण
१६२४-२६ भर्ता चैव सखा चैव रामो दाशरथिर्मम। तस्यार्थकामाः सन्नद्धा गंगानूपेत्र तिष्ठत ।।
तिष्ठंतु सर्वदाशाश्च गंगामन्वाश्रितानदीम्। बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः ।।
नावां शतानां पंचानां कैवर्त्तानां शतं शतम्। सन्नद्धानां तथा यूनां तिष्ठंत्वित्यभ्यचोदयत्।।वा०रा०
१६२७-२८ होमार्घैर्विधिवत्प्रदानविधिना सद्विप्रवृन्दार्चनैः
यज्ञैर्भूरिसुदक्षिणैः सुविहितैः संप्राप्यते यत्फलम्।
सत्तीर्थाश्रमवासहोमनियमैश्चांद्रायणाद्यैः कृतैः
पुंभिस्तत् फलमाहवे विनिहतैः संप्राप्यते तत्क्षणात् ।। —पंचतंत्र

समर - मरन, पुनि सुरसरि - तीरा। राम-काज, छन-भंगु सरीरा।
भरत भाइ, नृप, मैं जन नीचू। बड़े भाग असि पाइय मीचू। (२)
१९३० स्वामि-काज करिहउँ[1] रन रारी। जस धवलिहउँ[2] भुवन दसचारी।
तजउँ प्रान रघु - नाथ - निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे। (३)
साधु - समाज न जाकर लेखा। राम - भगत - महँ जासु न रेखा।
जाय जियत जग, सो महि-भारू। जननी - जौवन - बिटप - कुठारू। (४)
दो०—बिगत-बिषाद निषाद-पति, सबहिं बढ़ाइ उछाह।
सुमिरि राम, माँगेउ तुरत, तरकस - धनुष - सनाह॥ १९०॥
बेगहु भाइहु! सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ, कदराइ न कोऊ।
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा। (१)
चले निषाद, जोहारि जोहारी। सूर सकल, रन रूचै रारी।

देखता हूँ कि मेरे जीते जी वे गंगा पार उतरते कैसे हैं (अपने जीते जी गंगा-पार नहीं उतरने दूँगा)। (१) एक तो युद्धमें मरना, दूसरे गंगाका तट, तीसरे, इस क्षण-भंगुर शरीरसे रामका कार्य हो रहा है, चौथे, रामके भाई भरतके हाथसे मृत्यु और पाँचवें, राजा (भरत)-के हाथसे मरना, यह बड़ा अच्छा संयोग आ बना है (बड़े भाग्यसे ही ऐसी मृत्यु मिलती है, क्योंकि इन सभी कारणोंसे सीधा स्वर्ग मिलता है)। (२) मैं अपने स्वामी (राम)-की रक्षाके लिये उनसे जमकर मोरचा लूँगा और चौदहों लोकोंमें अपना उज्ज्वल यश फैला जाऊँगा। रामके लिये प्राण देनेमें तो हमारे दोनों हाथोंमें आनन्दके लड्डू होंगे (रामके लिये मृत्यु होनेसे यश भी मिलेगा और मरनेपर मुक्ति भी मिलेगी)। (३) जिसकी गिनती सज्जनोंमें न हो और रामके भक्तोंमें जिसका स्थान न हो वह तो केवल पृथ्वीका बोझ ही बनकर जीता है। वह अपनी माताके यौवनके वृक्षके लिये कुल्हाड़ी ही बना हुआ है (उसे जन्म देकर उसकी माताका यौवन व्यर्थ ही गया)।' (४) सब दुःख भूलकर निषादराज (केवटोंके सरदार)-ने सबका उत्साह बढ़ाकर रामका स्मरण करके तुरन्त तूणीर, धनुष और कवच उठवा मँगवाया॥ १९०॥ (और उसने अपने जातिवालोंसे कहा—) 'देखो भाइयो! देर मत करो। सब तैयारी पूरी किए रक्खो। मेरी यह आज्ञा सुनकर कोई साहस न छोड़ बैठना।' यह सुनकर-सब एक स्वरसे प्रसन्न होकर बोल उठे—'बहुत अच्छा नाथ!' (जैसा कहते हैं वैसा ही होगा), और वे सब मिलकर एक दूसरेको बढ़ावा देने लगे। (१) सब केवट (निषादराजको) प्रणाम कर-करके बढ़ चले। वे सभी शूरवीर थे और सबको युद्ध करनेमें आनन्द भी आता था। रामके

१. करिहहु। २. धवलिहहु।

१९२९ दत्ताभये त्वयि यमादपि दंडधारे संजीवितः शिशुरयं मम चेयमृद्धिः।
शंबूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते सत्संगजानि निधनान्यपि तारयंति॥ —उत्तररामचरित
१९३०-३१ मृतैः संप्राप्यते स्वर्गो जीवद्भिः कीर्तिरुत्तमा। तदुभावपि शूराणां गुणावेतौ सुदुर्लभौ॥ —पंचतंत्र
१९३२-३३ न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसारविच्छित्तये। स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोपि नोपार्जितः॥
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेपि नालिंगितम्। मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥भर्तृ०श०
१९३४-३५ निबध्यतां मे कवचं विचित्रं हैमं शुभ्रं मणिरत्नावभासि।
शिरस्त्राणं चार्कसमानभासं धनुः शरांश्चाग्निविषाहिकल्पान्॥
उपासङ्गान् षोडश योजयंतु असींश्च।
१९३६-३७ एवमुक्तास्तु ते राजन्नुदक्रोशन्मुहुर्मुहुः। संवाश्च दध्मिरे वीरा हर्षयंतः परस्परम्॥महाभारत

सुमिरि राम - पद - पंकज - पनहीं। भाथी बाँधि, चढ़ाइन्हि धनुहीं। (२)
१६४० अँगरी पहिरि, कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा, बाँस, सेल, सम करहीं।
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े। (३)
निज निज साज - समाज बनाई। गुहराउतहिं जोहारे जाई।
देखि सुभट सब लायक जाने। लै - लै नाम सकल सनमाने। (४)
दो०—भाइहु ! लावहु धोख जनि, आज, काज बड़ मोहिं।
सुनि सरोप बोले सुभट, वीर अधीर न होहिं॥ १९१ ॥
राम-प्रताप, नाथ ! बल तोरे। करहिं कटक बिनु-भट, बिनु-घोरे।
जीवत पाउँ न पाछे धरहीं। रुंड - मुंड - मय मेदिनि करहीं। (१)
दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ, बजाउ जुझाऊ ढोलू।
एतना कहत, छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनियन्ह खेत सुहाए। (२)
१६५० बूढ़ एक कह सगुन विचारी। भरतहि मिलिय, न होइहि रारी।
रामहिं भरत मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस, विग्रह नाहीं। (३)
सुनि गुह कहइ, नीक कह बूढ़ा। सहसा करि, पछिताहिं बिमूढ़ा।
भरत - सुभाउ - सील बिनु - बूझे। बड़ि हित-हानि, जानि-बिनु जूझे। (४)

कमल-जैसे चरणोंकी पादुकाओंका स्मरण करके, पीठ पीछे तूणीर बाँधकर, सबने धनुषपर डोरियाँ चढ़ा लीं। (२) वे कवच बाँध-बाँधकर सिरोंपर कूँडी (लोहेके टोप) धर-धरकर फरसे (गँड़ासे), लाठियाँ और भाले ठीक करने लगे। उनमें जो तलवार-ढालमें कुशल थे वे आकाशमें ऐसे उछलते-कूदते चले जा रहे थे मानो धरती छोड़कर उड़े चले जा रहे हों। (३) सबने अपना-अपना साज-समाज तैयार करके निषादराज गुहको जा प्रणाम किया। सब शूरवीरोंको देखकर और उन्हें रणमें कुशल समझकर, केवटोंके सरदारने उनके नाम ले-लेकर सबका बड़ा आदर-सम्मान किया (४) और कहा—'देखो भाइयो ! कुछ भी कोर-कसर न उठा रखना (प्राणकी बाज़ी लगा देना)। आज मेरा बड़ा भारी कर्तव्य आ खड़ा हुआ है।' यह सुनकर सभी वीर योद्धा तमककर बोल उठे—'वीर लोग धैर्य नहीं छोड़ते (हम लोग पीठ दिखाकर नहीं भागेंगे) ॥१९१॥ नाथ ! रामके प्रताप और आपके बलसे हम भरतकी सेनाके एक-एक योद्धा और एक-एक घोड़ेको चुन-चुनकर ढेर कर डालेंगे। हम जीते जी पीछे हटनेवाले नहीं हैं। (आप देखिए तो सही), हम अभी सारी धरती रुण्ड-मुण्डसे पाटे डालते हैं।' (१) निषादराजने देखा कि वीरोंकी सेना तो अच्छी बन गई है। तब उसने कहा–'चलो, जुझाऊ (युद्धके) ढोल बजने दो।' इतना कहते ही बाईं ओर छींक हो गई। सगुन विचारनेवालोंने कहा–'रणमें अवश्य सफलता मिलेगी।' (२) पर एक बूढ़ेने सगुन विचारकर कहा—'भरतसे जाकर मिल लीजिए। लड़ाईका अवसर ही नहीं आवेगा। सगुन बताए दे रहा है कि भरत तो रामको मनाकर लौटा लिवा जाने आ रहे हैं। लड़ाई होगी ही नहीं।' (३) यह सुनकर गुहने कहा—'बूढ़ा ठीक कहता है। बिना बिचारे जो काम कर बैठते हैं उन्हें पीछे पछताना ही हाथ लगता है। भरतका शील और स्वभाव समझे बिना उनसे लड़ाई ठान बैठनेमें अपना ही काम बिगड़ेगा।

१९५२ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्। —किरातार्जुनीय

दो०—गहहु घाट भट सिमिट सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र, अरि, मध्य गति, तब तस करिहउँ आइ ॥ १९२ ॥
लखब सनेह-सुभाय सुहाए। बैर-प्रीति नहिं दुरइ दुराए।
अस कहि, भेंट सँजोवन लागे। कंद-मूल-फल-खग-मृग माँगे। (१)
मीन पीन, पाठीन पुराने। भरि-भरि भार कहारन आने।
मिलन साज सजि, मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन, सुभ पाए। (२)
१९६० देखि दूरि-तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहिं दंड-प्रनामू।
जानि राम-प्रिय दीन्हि असीसा। भरतहिं कहेउ बुझाइ मुनीसा। (३)
राम-सखा सुनि, स्यंदन[1] त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा।
गाउँ, जाति, गुह नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहार, माथ महि लाई। (४)
दो०—करत दंडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन-सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥ १९३ ॥

(४) इसलिये तुम सब लोग इकट्ठे होकर घाटपर डटे रहो, मैं जाकर सारा भेद लिए आता हूँ। उन्हें मित्र, शत्रु या उदासीन जैसा भी देखूँगा वैसा समझकर जैसा ठीक होगा, वैसा करूँगा ॥१९२॥ उनका स्नेह और स्वभाव भली भाँति परखकर ही मैं भाँप लूँगा (कि वे रामसे सचमुच प्रेम करते हैं या नहीं) क्योंकि वैर और प्रीति किसीके छिपाए थोड़े ही छिप पाती है ?' यह कहकर वह भेंटकी सारी सामग्री जुटाने लगा। उसने बहुत ढेरसे कंद, मूल, फल, पशु, पक्षी आदि मँगवा जुटाए। (१) कहार लोग मोटी-मोटी मछलियाँ और पुरानी-पुरानी पहिना मछलियाँ बहुँगियोंमें भर-भरकर उठा लाए। भेंटकी सामग्री सजाकर जब केवटोंके सरदार भरतसे मिलनेके लिये चलने लगे, तब अनेक मंगलदायक अच्छे-अच्छे शकुन दिखाई देने लगे। (२) केवट-सरदारने उन लोगोंको दूरसे ही अपना नाम बताकर दंडवत् प्रणाम किया। मुनि वशिष्ठने उसे रामका प्रिय सखा जानकर (हृदयसे) आशीर्वाद दिया और भरतको भी बताया (कि यह रामका सखा है)। (३) यह सुनकर कि यह रामका सखा है, भरत झट रथसे कूद पड़े और उतरकर बड़े प्रेममें भरे आगे बढ़ आए। केवट-सरदारने अपना नाम, जाति और गाँव बताकर धरतीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया। (४) उसे दंडवत् प्रणाम करते देखकर भरतने जब उसे छातीसे उठा लगाया तो उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ आया मानो लक्ष्मणसे ही भेंट हो गई हो ॥१९३॥ भरत जब उससे अत्यन्त प्रेमसे भेंट रहे थे तो

[1] संदनु।

१९५४-५६ गत्वा तद्धृदयं ज्ञेयं यदि शुद्धस्तरिष्यति। गंगां नो चेत्समाकृष्य नावस्तिष्ठंतु सायुधाः ॥
ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यंतः सर्वतो दिशम्। —अध्यात्मरामायण

१९५७ इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च। अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः ॥ वा०रा०

१९५९ इति सर्वान्समादिश्य गुहो भरतमागतः। उपायनानि संगृह्य विविधानि बहून्यपि ॥
प्रययौ ज्ञातिभिः सार्धं बहुभिर्विविधायुधैः।

१९६० निवेद्योपायनान्यग्रे भरतस्य समंततः। दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मंत्रिभिः ॥
चीरांबरं घनश्यामं जटामुकुटधारिणम्। राममेवानुशोचंतं राम रामेति वादिनम् ॥
ननाम शिरसा भूमौ गुहोहमिति चाब्रवीत्। —अध्यात्मरामायण

भेंटत भरत, ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम - कै रीती।
धन्य धन्य धुनि मंगल-मूला। सुर सराहिं तेहि, बरिसहिं फूला। (१)
लोक-वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा।
तेहि भरि अंक राम - लघु - भ्राता। मिलत पुलक-परिपूरित गाता। (२)
१९७० राम - राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप-पुंज समुहाहीं।
ऐहि तौ राम लाइ उर लीन्हाँ। कुल - समेत जग पावन कीन्हाँ। (३)
करमनास - जल सुरसरि परई। तेहि को, कहहु, सीस नहिं धरई।
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म - समाना। (४)
दो०—स्वपच, सबर, खस, जमन, जड़, पाँवर कोल, किरात।
राम कहत, पावन[1] परम, होत भुवन बिख्यात।। १९४।।
नहिं अचरज, जुग - जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई।
राम - नाम - महिमा सुर कहहीं। सुनि - सुनि अवध-लोग सुख लहहीं। (१)

उनकी प्रेमकी यह रीति देख-देखकर लोग इसी बातके लिये तरसे जा रहे थे (कि हमें यह अवसर क्यों नहीं मिल पाया)। चारों ओरसे लोग मंगल भावसे 'धन्य-धन्य' पुकार उठे और देवता भी (इस प्रेमकी) सराहना करते हुए उनपर फूल बरसाने लगे (१) (वे कहने लगे—) 'जो (केवट) लौकिक और शास्त्रीय सभी दृष्टियोंसे नीच समझा जाता है और जिसकी छाया छू जाने-भरसे लोगोंको स्नान करना पड़ जाता है, उसी (केवट -)को रामके छोटे भाई भरत हृदयसे लगाकर भेंट किए जा रहे हैं और उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हुआ जा रहा है। (२) जब जम्हाई लेनेके साथ 'राम' कह देनेवालोंके सामने पाप नहीं आ पाते, तब इस (निषादके तो कहने ही क्या हैं) जिसे रामने हृदयसे लगाकर इसे और इसके सारे कुलको संसारमें पवित्र कर डाला। (३) कर्मनाशा नदीका जल जब गंगामें मिल जाता है तब वह जल कौन सिरपर नहीं चढ़ाता ? सारा संसार जानता है कि (रामका) उलटा नाम ('मरा मरा') जपते-जपते वाल्मीकि भी ब्रह्मके समान (पूज्य) हो गए। (४) (इतना ही नहीं, रामके नामका ऐसा विचित्र प्रभाव है कि यदि) श्वपच (चाण्डाल), शबर, खस, यवन, कोल, किरात आदि मूर्ख और नीच जातियाँ भी 'राम'का नाम ले लें तो परम पवित्र हो जायँ और संसारमें उनका यश फैल जाय।। १९४।। यह कोई आश्चर्यकी बात हम नहीं कह रहे हैं। वह बात तो युग-युगान्तरसे (प्रसिद्ध) चली आती है कि रामके नामने किसे यश नहीं दे डाला ?' इस प्रकार देवता लोग जब रामके नामकी यह महिमा सुनाते जा रहे थे उसे सुन-सुनकर अयोध्याके लोग बड़े प्रसन्न हुए जा रहे थे। (१)

१. पाँवर : रामका नाम लेते ही अत्यन्त 'नीच' भी पवित्र और संसारमें प्रसिद्ध हो जाता है।

१९६९ एवं द्वावपि तौ विहितालिंगनौ परस्परं पुलकितशरीरौ। —पंचतंत्र
१९७० राम रामेति ये नित्यं जपंति मनुजा भुवि। तेषां मृत्युभयादीनि न भवंति कदाचन।।अध्यात्मरा०
१९७१ त्वद्दर्शनेनापि वयं पाविताः सकुटुम्बकाः। —गर्गसंहिता
१९७३ इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्। एकाग्रमनसाऽत्रैव मरेति जप सर्वदा।।अध्यात्मरा०
१९७४-७५ किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खशादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यंति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।। —श्रीमद्भागवत
१९७६ युगे युगे च गावो हि ब्राह्मणाः साधवस्तथा। पृथिवी च महाराज ह्यनेन परिरक्षिताः।।सत्योपा०

राम-सखहिँ मिलि भरत सप्रेमा। पूछी कुसल[1] - सुमंगल - खेमा।
देखि भरत - कर सील - सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू। (२)
१९८० सकुच, सनेह, मोद मन बाढ़ा। भरतहिँ चितवत एकटक ठाढ़ा।
धरि धीरज, पद बंदि बहोरी। विनय सप्रेम करत कर जोरी। (३)
कुसल - मूल पद - पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल, कुसल निज लेखी।
अब प्रभु ! परम अनुग्रह तोरे। सहित - कोटि कुल मंगल मोरे। (४)
दो०—समुझि मोरि करतूति, कुल, प्रभु - महिमा जिय जोइ।
जो न भजइ रघुवीर - पद, जग, बिधि - बंचित सोइ॥ १९५॥
कपटी, कायर, कुमति, कुजाती। लोक - वेद - बाहर सब भाँती।
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन - भूषन तबही - तें। (१)
देखि प्रीति, सुनि विनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत - लघु - भाई।
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानी। (२)

जिस समय भरतने बड़े प्रेमसे रामके सखा (केवटोंके सरदार)-को गले लगाकर उसका कुशल-क्षेम और मंगल समाचार पूछा उस समय भरतका शील और स्नेह देखकर केवटोंका सरदार गुह इतना मगन हो उठा कि वह अपनी देहकी सारी सुध-बुध खो बैठा। (२) केवटोंके सरदारके मनमें संकोच भी हुआ (कि मुझ जैसे नीचको भी भरतने गले लगा लिया पर उसके मनमें) साथ ही इतना स्नेह और आनन्द भी उमड़ पड़ा कि वह खड़ा-खड़ा एकटक भरतको देखता ही रह गया। फिर बहुत धैर्य धारण करके और (भरतके) चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर वह प्रेम-पूर्वक उनसे प्रार्थना करने लगा—(३) 'आपके जिन चरण-कमलों (के दर्शन)-से सब कुशल ही कुशल उत्पन्न होता है उन्हें देखकर ही मैंने मान लिया कि तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान)-में मेरा कुशल ही कुशल है। प्रभो ! अब तो आपकी कृपासे मेरा और मेरे करोड़ों कुलोंका सबका मंगल ही मंगल है। (४) मेरा (नीच) काम (मछली पकड़ना और नाव खेना) तथा (नीच) कुल देखकर और रामकी महिमाका मनमें विचारकर (कि मुझ जैसे नीचको भी उन्होंने गले लगा लिया था) भी जो मनुष्य रामसे चरणोंका भजन नहीं करते तो समझ लेना चाहिए कि उन्हें विधाताने सचमुच ठग धरा है॥ १९५॥ मेरे-जैसे कपटी, कायर, मूर्ख, कुजाति (ओछी जातिके) और सब प्रकारसे लोक और शास्त्रकी दृष्टिसे गए-बीतेको भी जबसे रामने अपना बना लिया तभीसे मैं संसारका भूषण (श्रेष्ठ) बन बैठा हूँ (सब लोग मेरा आदर करने लगे हैं)।' (१) केवटोंके सरदारकी प्रीति देखकर और उसकी यह प्रेम-भरी विनय सुनकर भरतके छोटे भाई शत्रुघ्नने भी उसे गले लगा लिया। फिर केवटोंके सरदारने जाकर बड़ी विनम्रतासे सब रानियोंको बड़े आदरसे प्रणाम किया। (२) उसे

---

१. सकल।

१९७८ शीघ्रमुत्थाप्य भरतो गाढमालिंग्य सादरम्। पृष्ट्वानामयमव्यग्र: सखायमिदमब्रवीत्॥
भ्रातस्त्वं राघवेणात्र समेत: समवस्थित:। रामेणालिंगित: सार्द्रनयनेनामलात्मना॥
धन्योसि कृतकृत्योसि यत्त्वया परिरंभित:। रामो राजीवपत्राक्षो लक्ष्मणेन च सीतया॥अ०रा

१९७९ विस्मित: स जनस्तं तु ददर्शानिमिषेक्षण:। —महाभारत

१९८४-८५ मानुषं जन्म संप्राप्य रामं न भजते हि य:। वंचित: कर्मणा पाप इति जानीहि बुद्धिमन्॥

१९८७ विचक्षणा विश्वविभूषणास्ते ये भक्तियुक्ता भगवत्यनंते। अस्य प्रसादादाशंसे लोकेस्मिन्सुहृद्यश:॥सत्यो०

१९९० जानि लखन - सम, देहिं असीसा । जियहु सुखी, सय लाख बरीसा ।
निरखि निषाद, नगर - नर - नारी । भये सुखी जनु लखन निहारी । (३)
कहहिं, लहेउ ऐहि जीवन - लाहू । भेंटेउ रामभद्र भरि - बाहू ।
सुनि निषाद निज - भाग - बड़ाई । प्रमुदित मन, लइ चलेउ लिवाई । (४)
दो०—सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि - रुख पाइ ।
घर, तरु-तर, सर, बाग, बन, बास बनाएन्हि जाइ ।। १९६ ।।
शृंगबेरपुर भरत दीख जब । भे सनेह - बस[1] अंग सिथिल तब ।
सोहत दिए निषादहि लागू । जनु तनु[2] धरे बिनय - अनुरागू । (१)
ऐहि बिधि भरत, सेन सब संगा । दीख जाइ जग - पावनि गंगा ।
रामघाट - कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मन मगन, मिले जनु रामू । (२)
२००० करहिं प्रनाम नगर - नर - नारी । मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ।
करि मज्जन, माँगहिं कर जोरी । रामचंद्र - पद प्रीति न थोरी । (३)
भरत कहेउ, सुरसरि ! तव रेनू । सकल सुखद, सेवक सुर-धेनू ।
जोरि पानि बर माँगउँ एहू । सीय - राम - पद सहज सनेहू । (४)

(केवटोंके सरदारको) लक्ष्मणके समान (पुत्र) जानकर रानियोंने आशीर्वाद दिया कि 'तुम सौ-लाख वर्षोंतक सुखसे जीओ ।' केवटोंके सरदारको देखकर अयोध्याके नर-नारी ऐसे सुखी हुए जा रहे थे मानो उन्होंने लक्ष्मणको ही देख लिया हो । (३) वे आपसमें कहने लगे—'जीवनका लाभ यदि किसीने पाया तो इसने पाया, क्योंकि इसने अपनी भुजाओंमें भरकर रामसे भेंटकी है ।' केवट अपने भाग्यकी यह सराहना सुन-सुनकर मन ही मन बहुत प्रसन्न होता हुआ सबको साथ लेकर आगे बढ़ चला । (४) वहाँ पहुँचकर केवट-सरदारने सेवकोंको संकेत किया तो स्वामीका संकेत पाकर उन्होंने जाकर घरोंमें, वृक्षोंके नीचे, सरोवरपर, वन और उपवनोंमें सबके ठहरनेके लिये डेरे बना खड़े किए ।। १९६ ।। जब भरतने शृङ्गवेरपुर जाकर देखा तो मारे प्रेमके उनके अंग-अंग शिथिल हो चले । केवट-सरदारके साथ-साथ चलते हुए वे ऐसे शोभा दे रहे थे मानो विनय और प्रेम दोनों शरीर धारण किए साथ-साथ चले जा रहे हों । (१) इस प्रकार (केवटके साथ चलकर) भरतने और उनकी सेनाने संसारको पवित्र करनेवाली गंगाके दर्शन जा किए और रामघाट (जहाँ रामने स्नान किया था उस घाट)-को जाकर प्रणाम किया । उस समय उनका मन प्रेममें इतना मगन हुआ जा रहा था मानो साक्षात् रामसे ही भेंट हो गई हो । (२) गंगाका वह ब्रह्ममय जल देखकर अयोध्यावासी सभी स्त्री-पुरुषोंने उसे जा प्रणाम किया । गंगामें स्नान कर-करके हाथ-जोड़कर सब यही वर माँगने लगे—'रामके चरणोंमें हमारा अधिकसे-अधिक प्रेम बढ़ता चले ।' (३) भरतने कहा—'गंगे ! आपका रेणु (बालू) सब सुख देनेवाला और सेवा करनेवालोंके लिये कामधेनुके समान है । (जो आपके तीरपर पहुँच जाय उसे सब सुख मिल जाते हैं और उसकी सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं) । मैं हाथ जोड़कर आपसे यही वर माँगता हूँ कि राम और जानकीके चरणोंमें मेरा सहज

---

१. सब = सबके । २. धनु : मानो विनय (गृह) और अनुराग (भरत) दोनों धनुष लिए चले जा रहे हों । (यह पाठ अशुद्ध है) ।

दो०—ऐहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु - अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लिवाइ ॥ १९७॥
जहँ - तहँ लोगन डेरा कीन्हाँ। भरत सोध सबही - कर लीन्हाँ।
गुरु[1] - सेवा करि, आयसु पाई। राम - मातु - पहँ गे दोउ भाई। (१)
चरन चाँपि, कहि - कहि मृदु बानी। जननी सकल भरत सनमानी।
भाइहिं सौंपि मातु - सेवकाई। आपु निपादहिं लीन्ह बोलाई। (२)
२०१० चले सखा - कर - सों कर जोरे। सिथिल सरीर, सनेह न थोरे।
पूछत सखहिं, सो ठाउँ देखाऊ। नैकु नयन - मन - जरनि जुड़ाऊ। (३)
जहँ सिय, राम, लखन निसि सोए। कहत, भरे जल लोचन - कोए।
भरत - वचन सुनि, भयउ विपादू। तुरत तहाँ लइ गयउ निपादू। (४)
दो०—जहँ सिंसपा पुनीत तरु, रघुबर किय विश्राम।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड - प्रनाम ॥ १९८॥
कुस - साथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई।
चरन - रेख - रज आँखिन लाई। बनइ न कहत प्रीति - अधिकाई। (१)
कनक - बिंदु दुइ - चारिक देखे। राखे सीस सीय - सम लेखे।

स्नेह बना रहे।' (४) इस प्रकार भरतने उतरकर स्नान किया और गुरुकी आज्ञा पाकर तथा सब माताओंको भी स्नानसे निवृत्त जानकर वे सबको डेरेपर लिवा ले चले ॥ १९७॥ लोगोंने जहाँ-तहाँ डेरे डाल दिए और भरत सबके पास जा-जाकर सबकी देखभालमें लग गए (कि सबकी रहने-खाने-पीनेकी व्यवस्था ठीक हो गई या नहीं)। तत्पश्चात् गुरुकी सेवा करके और उनसे आज्ञा लेकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रामकी माताके पास पहुँच गए। (१) भरतने माताओंके पैर पलोटकर नम्रतासे बातें करके सब माताओंका बड़ा सम्मान किया। फिर भाई शत्रुघ्नको माताओंकी सेवाका भार सौंपकर उन्होंने केवटोंके सरदारको बुलवा भेजा। (२) (केवट-सरदारके आ जानेपर) उस सखाके हाथमें हाथ डालकर जब वे चले तो अत्यन्त स्नेहके कारण उनका शरीर शिथिल हुआ जा रहा था। उन्होंने सखा (केवट)-से कहा—'चलो, चलकर मुझे वे सब स्थान दिखा लाओ, जहाँ राम, लक्ष्मण और सीता रातमें पड़कर सोए थे जिससे मेरे नेत्रोंको शान्ति मिले और मनकी जलन मिटे, (३) यह कहते-कहते उनकी आँखें डबडबा आईं। भरतकी बात सुनकर केवटको बड़ा दुःख हुआ। वह तुरन्त भरतको वहाँ लिवा ले गया (जहाँ उस दिन रातको राम, लक्ष्मण और सीताने शयन किया था)। (४) जिस पवित्र शीशमके वृक्षके नीचे रामने विश्राम किया था (उस स्थानको) भरतने बड़े स्नेह और आदरसे दंड-प्रणाम किया ॥१९८॥ फिर कुशाकी गुलगुली गद्दीको प्रणाम करके उन्होंने उसकी प्रदक्षिणा की। रामके चरणके चिह्न जहाँ-जहाँ पड़े थे वहाँ-वहाँकी रज उठाकर जब भरत अपनी आँखोंसे लगाने लगते थे उस समय उनके मनमें जो बहुत प्रीति उमड़ी पड़ती थी वह कहते नहीं बन पा रही है। (१) भरतने वहाँ दो-चार सोनेके दाने पड़े देखे जिन्हें (भरतने) सीताके समान ही जानकर

१. मुर : देवताओंकी पूजा करके। (यह पाठ अशुद्ध है।)

२०११-१२ यत्र रामस्त्वया दृष्टस्तत्र मां नय सुव्रत। सीताया सहितो यत्र सुप्तस्तद्दर्शयस्व मे ॥
त्वं रामस्य प्रियतमो भक्तिमानसि भाग्यवान्। इति संस्मृत्य संस्मृत्य रामं साश्रुविलोचनः ॥
२०१३-१६ गुहेन सहितस्तत्र यत्र रामः स्थितो निशि। ययौ ददर्श शयनस्थलं कुशसमास्तृतम् ॥
सीताभरणसंलग्नस्वर्णबिन्दुभिरंचितम्। दुःखसंतप्तहृदयो भरतः पर्यदेवयत् ॥ अ०रा०

सजल बिलोचन, हृदय गलानी। कहत सखा - सन बचन सुबानी। (२)
२०२० श्रीहत, सीय - बिरह दुति - हीना। जथा अवध - नर - नारि बिलीना।
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग - जोग जग जेही। (३)
ससुर भानु - कुल - भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावति - पालू।
प्राननाथ रघुनाथ गोसाँई। जो बड़ होत, सो राम - बड़ाई। (४)
दो०—पति - देवता सुतीय - मनि, -सीय - साथरी देखि।
बिहरत हृदउ न हहरि, हर, पबि - तें कठिन बिसेखि ॥ १९९ ॥
लालन - जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस, अहहिं, न होने।
पुरजन - प्रिय, पितु - मातु - दुलारे। सिय - रघुबीरहिं प्रान - पियारे। (१)
मृदु मूरति, सुकुमार सुभाऊ। ताति बाउ, तन लाग न काऊ।
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस ऐहि छाती। (२)
२०३० राम जनमि, जग कीन्ह उजागर। रूप, सील, सुख, सब गुन - सागर।
पुर-जन, परिजन, गुरु, पितु, माता। राम - सुभाउ सबहिं सुखदाता। (३)

(आदरसे) सिरपर धर चढ़ाया। उनकी आँखोंमें आँसू छलछला आए और हृदयमें बड़ी ग्लानि हुई (कि मेरे कारण ही रामको इतना कष्ट झेलना पड़ा)। फिर सखा (केवट)-से वे बड़े प्रेमसे बोले—(२) 'ये सोनेके दाने भी सीताके विरहमें वैसे ही अपनी दमक खोए बैठे हैं जैसे अवधके नर-नारी (रामके वियोगमें) कान्तिहीन हुए पड़े हैं। जिन सीताके पिता महाराज जनककी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती (३) जिनकी मुट्ठीमें संसारके भोग और योग दोनों ही धरे रक्खे हैं; जिनके ससुर सूर्यवंशके सूर्य (-के समान वैभवशाली होने)-के लिये अमरावतीके स्वामी इन्द्र भी तरसते रहते थे; और जिनके प्राणनाथ (पति) वे राम हैं, जिनसे बड़ाई पा लेनेपर ही कोई बड़ा हो पाता है, (४) उन पतिव्रता स्त्रियोंमें मणिके समान सीताकी यह कुश-शय्या देखकर हे हर (शिव)! मेरा यह वज्रसे भी कठोर हृदय हहरकर (हाय मारकर) फट नहीं जा रहा है ॥ १९९ ॥ मेरे छोटे, सुन्दर, प्यार करनेके योग्य भाई लक्ष्मण-जैसा न कोई भाई हुआ, न है, न होगा ही। उन्हें पुरवासी भी प्यार करते हैं, वे माता-पिताके भी दुलारे हैं और राम तथा जानकीके तो वे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। (१) वे बड़े कोमल हैं और बड़े सुकुमार स्वभावके हैं। गरम बयार कभी उनके शरीरमें लगी नहीं। ऐसे (लक्ष्मण) वनमें सब प्रकारका कष्ट सहे चले जा रहे हैं (यह देखकर भी) मेरी कठोर छाती वज्रको लजाए जा रही है (वज्रसे भी अधिक कठोर बनी हुई है) (२) रामने जन्म लेकर जगत्‌को उज्ज्वल कर डाला। वे रूप, शील, सुख और सब गुणोंके भंडार हैं। पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता और माता सबको रामके स्वभावसे सुख ही सुख मिलता है (३)

२०२०-२४ अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम दुर्हृदः। यमौ यदेतौ दृष्ट्वाद्य पतितौ नावदीर्यते ॥
अहोतिसुकुमारी या सीता जनकनंदिनी। प्रासादे रत्नपर्यंके कोमलास्तरणे शुभे ॥
रामेण सहिता शेते सा कथं कुशविष्टरे। सीतारामेण सहिता दुःखेन मम दोषतः ॥भारत
२९२६-२८ अहोतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महात्मनः। राममेव सदान्वेति वनस्थमपि हृष्टधीः ॥अ०रा०
२९२९ क्षत्रियस्य विशेषेण हृदयं वज्रसन्निभम्। —महाभारत

वैरिउ राम - बड़ाई करहीं। बोलनि, मिलनि, बिनय, मन हरहीं।
सारद[1] कोटि, कोटि - सत सेखा[2]। करि न सकहिं प्रभु-गुन-गन-लेखा। (४)
दो०—सुख - सरूप रघुबंस - मनि , मंगल - मोद - निधान।
ते सोवत कुस डासि महि , बिधि-गति अति बलवान ।। २०० ।।
राम सुना दुख कान न काऊ। जीवन - तरु - जिमि जोगवइ राऊ।
पलक नयन, फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन-राती। (१)
ते अब फिरत बिपिन, पद - चारी। कंद - मूल - फल - फूल अहारी।
धिग कैकई अमंगल - मूला। भइसि प्रान - प्रियतम - प्रतिकूला। (२)
२०४० मैं धिग - धिग, अघ - उदधि, अभागी। सब उतपात भयउ जेहि - लागी।
कुल-कलंक करि सृजेउ बिधाता। साइँ - दोह मोहिं कीन्ह कुमाता। (३)
सुनि, सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ! करिय कत बादि बिषादू।
राम तुम्हहिं प्रिय, तुम प्रिय रामहिं। यह निरजोस[3] दोस, बिधि बामहिं। (४)

यहाँतक कि जो शत्रु भी हैं वे भी रामकी बड़ाई करते नहीं अघाते। उनका बोलना, मिलना और विनय करना सबका मन हरे लेता है। (और कहाँ तक कहें) करोड़ों सरस्वती और अरबों शेष भी प्रभु रामके गुण गिनना चाहें तो नहीं गिन पा सकते, (४) ऐसे सुखके स्वरूप (सबको सुख देनेवाले), रघुवंशके मणि, मंगल और आनन्दके निधान रामको भी धरतीपर कुशा बिछाकर सोना पड़ रहा है। भाग्यकी गति सचमुच बड़ी बलवान् है (जो न करा दे- थोड़ा है।) ।। २०० ।। रामने कभी कानोंसे भी दुःखका नाम तक नहीं सुना था। महाराज (दशरथ अपने) जीवनके वृक्ष (जीवन देनेवाले)-की भाँति उनकी देख-भाल करते थे। जैसे आँखोंकी रक्षा पलकें करती हैं और मणिकी रक्षा सर्प किया करता है, उसी प्रकार रात-दिन उनकी सब माताएँ उनकी सार-सँभाल करती रहती थीं। (१) वे ही राम आज जंगलोंमें पैदल घूम रहे हैं और कंद-मूल-फल-फूलोंपर दिन काट रहे हैं। सारा अमंगल उत्पन्न कर बैठनेवाली कैकेयीको धिक्कार है जो अपने प्राणोंके प्रियतम (दशरथ)-की भी वैरिन बन बैठी (उनके प्राण ले बैठी)। (२) मुझ पापोंके समुद्र और अभागेको भी धिक्कार है जिसके कारण यह सारा बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। एक ओर विधाताने मुझे कुलका कलंक बनाकर उत्पन्न किया और दूसरी ओर खोटी माताने मुझे स्वामी (राम)-का द्रोही बना डाला।' (३) (भरतका यह पछतावा) सुन-सुनकर केवट बड़े प्रेमसे (भरतको) समझाने लगा—'नाथ! आप व्यर्थ क्यों अपना जी छोटा किए डाल रहे हैं? आप रामको प्यार करते हैं और राम आपको प्यार करते हैं। यह सब जो निर्जोष (आनन्द-रहित, कष्टदायक) घटना हो गई है इसका सारा दोष तो वैरी विधाताके सिर है। (४) यह तो भाग्यका फेर था कि उसने माताकी बुद्धि पलट डाली। उस रात (जब

१. सादर : आदरके साथ। २. कोटि सत सेखा : सौ करोड़ शेष। ३. निरजोस=निर्जोष= निः (नहीं) जोष (आनन्द)= आनन्द-रहित या कष्टदायक।

२०३०-३८ हा हतोस्मि नृशंसोस्मि यत्सभार्यः कृते मम। ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत् ।।
सार्वभौमकुले जातः सर्वलोकसुखावहः। सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् ।।
कथमिदीवरश्यामो रक्ताक्षः प्रियदर्शनः। सुखभागी न दुःखार्हः शयितो भुवि राघवः ।।
२०३९ अस्या पापेन मायाया मृतश्च स महीपतिः। —वाल्मीकीयरामायण
२०४० धिङ् मां जातोस्मि कैकेय्यां पापराशि समानतः। मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः।।अ.रा.
२०४२ शृणु मद्वचनं राजन्सर्वं शोकं विहाय च ।। —गर्गसंहिता

छंद—विधि बामकी करनी कठिन, जेहि मातु कीन्हीं बावरी।
तेहि राति पुनि - पुनि करहिं प्रभु ! सादर सरहना रावरी।
तुलसी, न तुम - सों राम प्रीतम, कहत हौं सौंहें किये।
परिनाम मंगल जानि, अपने आनिए धीरज हिये ॥ ७ ॥

सो०—अंतरजामी राम, सकुच, सप्रेम, कृपायतन।
चलिय, करिय बिश्राम, ऐह बिचार[1] दृढ़ आनि मन ॥ २०१ ॥

२०५० सखा - बचन सुनि, उर धरि धीरा। बास चले, सुमिरत रघुबीरा।
ऐह सुधि पाइ, नगर - नर - नारी। चले बिलोकन आरत भारी। (१)
परदखिना करि, करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा।
भरि - भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहिं दूषन देहीं। (२)
एक सराहहिं भरत - सनेहू। कोउ कह, नृपति निबाहेउ नेहू।
निंदहिं आपु, सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह - बिषादहिं। (३)

राम यहाँ आकर सोए थे तब) प्रभु राम, बार-बार बड़े आदरसे आपकी सराहना किए जा रहे थे।' तुलसीदास कहते हैं (कि केवट उन्हें समझाए जा रहा था—) 'राम किसीको भी उतना प्रिय नहीं समझते जितना आपको समझते हैं, यह मैं सौगन्ध खाकर कह सकता हूँ। अन्तमें सब मंगल ही मंगल होगा यह समझकर आप हृदयमें धीरज धरिए। राम तो अन्तर्यामी हैं (घट-घटकी जानते हैं)। वे बड़े संकोची, प्रेमी और कृपालु हैं। यह पक्का विश्वास करके अब चलिए, चलकर विश्राम कीजिए ॥ २०१ ॥ सखा (केवट)-की बात मानकर और हृदयमें धीरज धरकर रामका स्मरण करते हुए भरत (विश्राम करनेके लिये) डेरेकी ओर चल दिए। जब अयोध्या नगरके नर-नारियोंको यह समाचार मिला तो वे भी हड़बड़ाकर उन स्थानोंको देखने झपट चले (जहाँ राम और जानकीने कुशाकी साँथरीपर उस रात विश्राम किया था)। (१) (उस स्थानकी) प्रदक्षिणा कर-करके सबने प्रणाम किया और सबने जिसके जो मनमें आया कैकेयीको सब ऊँच-नीच कह डाला। (२) उनमेंसे कुछ ऐसे भी थे, जो भरतके स्नेहकी सराहना किए जा रहे थे और कोई-कोई यह भी कह रहे थे कि यदि प्रेम किसीने निबाहा तो राजा (दशरथ)-ने अच्छा निबाहा (कि रामके प्रेममें प्राण दे डाले)। सब लोग अपनी निन्दा और निषाद (केवट)-की सराहना किए जा रहे थे (कि हम तो रामकी कुछ सेवा न कर पाए और इसने उनकी इतनी सेवा की)। उस समय लोगोंके मनमें जो विमोह (प्रेम) और विषाद (दुःख) उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन कौन कर सकता है ? (३)

१. बिचारि : 'विचारकर' और धीरज धरकर चलिए, विश्राम कीजिए।

२०४३-४७ स तु संहृष्टवदनः श्रुत्वा भरतभाषितम्। पुनरेवाब्रवीद् वाक्यं भरतंप्रति हर्षितः ॥
धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले। अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥
शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननुचरिष्यति। यस्त्वं कृच्छ्रगतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥वा०रा०

२०५१ आकुमारं च पौरास्ते चिंताशोकसमारताः। तत्रतत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम् ॥ –भारत
एतस्मिन्नन्तरे पौराः सर्वे शोकपरायणाः। जगृहुः परुषैर्वाक्यैर्दुष्टां तां बहुनिन्दिताम् ॥स्कंदपुराण

एहि बिधि राति लोग सब जागा। भा भिनुसार, गुदारा लागा।
गुरुहिं सु-नाव चढ़ाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई। (४)
दंड चारि-महँ भा सब पारा। उतरि, भरत तब सबहिं सँभारा। (४।।)
दो०—प्रात-क्रिया करि, मातु-पद, बंदि, गुरुहिं सिर नाइ।
२०६० आगे किये निषाद-गन, दीन्हेउ कटक चलाइ।। २०२।।
कियेउ निषादनाथ अगुआई। मातु-पालकी सकल चलाई।
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हाँ। बिप्रन-सहित गवन गुरु कीन्हाँ। (१)
आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन-सहित सिय-रामू।
गवने भरत पयादेहि पाँए। कोतल संग जाहिं डोरिआए। (२)
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइय नाथ अस्व-असवारा।
राम पयादेहि पाँयँ सिधाए। हम-कहँ रथ-गज, बाजि बनाए। (३)
सिर-भर जाउँ उचित अस मोरा। सब-तें सेवक-धरम कठोरा।
देखि भरत-गति, सुनि मृदु बानी। सब सेवक-गन गरहिं गलानी। (४)

इस प्रकार (बातें करते) वह रात तो सब लोगोंने जागते बिता दी। सवेरा होते ही खेवा लग गया (नावपर चढ़कर सब चल दिए)। अच्छी-सी नावपर गुरुको चढ़ाकर नई नावपर सब माताओंको ला चढ़ाया गया। (४) चार घड़ीमें सब लोग गंगा पार उतर गए। भरतने उतरकर सबकी सँभाल कर ली (कि कहीं कोई छूट तो नहीं गया)। (५) प्रातःकालकी क्रियाएँ करके, माताओंके चरणोंमें प्रणाम करके, गुरुको सिर नवाकर और केवटको आगे-आगे करके भरतने सेनाको बढ़ चलनेको आदेश दे दिया।। २०२।। केवट-सरदारको आगे करके सब माताओंकी पालकियाँ आगे बढ़ा दी गईं और छोटे भाई (शत्रुघ्न)-को उनकी देखभालके लिये उनके साथ कर दिया गया। उनके चल चुकनेपर ब्राह्मणोंको साथ लेकर गुरु (वशिष्ठ)-ने भी प्रस्थान कर दिया। (१) तत्पश्चात् गंगाको प्रणाम करके और राम, लक्ष्मण तथा जानकीका स्मरण करके भरत पैदल ही चल पड़े। उनके साथ बागडोरमें बँधे हुए (बिना सवारके घोड़े) पीछे-पीछे चले आ रहे थे। (२) उनके स्वामि-भक्त सेवक उनसे बार-बार कह जा रहे थे—'नाथ ! घोड़ेपर सवार हो लीजिए।' (पर भरत उनसे कहते जा रहे थे—) 'राम जायँ तो पैदल जायँ और हम रथ, हाथी और घोड़ेपर चढ़कर चलें ? (क्या यह अच्छा लगेगा ?)। (३) मुझे तो (सच पूछिए) सिरके बल चलकर जाना चाहिए था (पर मैं यह कर नहीं पा रहा हूँ)। सेवकका धर्म बड़ा कठिन होता है (मैं उसे निभा नहीं पा सक रहा हूँ)। भरतकी यह दशा देखकर और उनकी यह मृदु वाणी सुनकर सब सेवक ग्लानिके मारे गले जा रहे थे (कि हमने व्यर्थ घोड़ेपर चढ़ चलनेकी बात कहकर भरतका जी क्यों दुखाया)। (४) अनुराग

२०५५-५६ ये तु रामस्य सुहृदः सर्वे ते मूढचेतसः। शोकभारेण चाक्रांताः शयनं नैव भेजिरे।। वाल्मीकीय
२०५७-५९ इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा नावः पंचशतानि हि। समानयत्ससैन्यस्य ततुं गंगां महानदीम्।।
स्वयमेवानिनायैकां राजनावं गुहस्तदा। आरोप्य भरतं तत्र शत्रुघ्नं राममातरम्।।
वसिष्ठं च तथाऽन्यत्र कैकेयीं चान्य योषितः। तीर्त्वा गंगां ययौ शीघ्रं भरद्वाजाश्रमं प्रति।।अ०रा०
महानदीं समुत्तीर्य प्रातः कृत्यं समाप्य च। चिन्तयन्नेव श्रीरामं प्रतस्थे।। —स्कन्दपुराण
२०६० अग्रे गुहः प्रयातिस्म वननिर्णयकोविदः।। —सत्योपाख्यान
२०६१-६७ सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।। —भर्तृहरिशतक

दो०—भरत तीसरे पहर-कहँ, कीन्ह प्रवेस प्रयाग।
२०७० कहत राम-सिय, राम-सिय, उमगि उमगि अनुराग॥ २०३॥
झलका झलकत पाँयन्ह कैसे। पंकज-कोस ओस-कन जैसे।
भरत पयादेहि आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। (१)
खबरि लीन्ह सब, लोग नहाये। कीन्ह प्रनाम त्रिबेनिहि आये।
सबिधि सितासित-नीर नहाने। दिये दान, महिसुर सनमाने। (२)
देखत स्यामल-धवल हलोरे। पुलकि सरीर, भरत कर जोरे।
सकल काम-प्रद तीरथराऊ। बेद-बिदित, जग प्रगट प्रभाऊ। (३)
माँगउँ भीख, त्यागि निज धरमू। आरत, काह न करइ कुकरमू।
अस जिय जानि सुजान, सुदानी। सफल करहिं जग, जाचक-बानी। (४)
दो०—अरथ, न धरम, न काम-रुचि, गति न चहौं निरवान।
२०८० जनम-जनम रति राम-पद, यह बरदान, न आन॥ २०४॥
जानहु राम, कुटिल-करि मोहीं। लोग कहउ, गुरु-साहिब-द्रोही।
सीता-राम-चरन-रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे। (१)

(प्रेम)-की उमंगमें भरे हुए भरत 'सीताराम-सीताराम' रटते हुए तीसरे पहर प्रयाग जा पहुँचे ॥२०३॥ भरतके पैरोंमें पड़े हुए छाले ऐसे झलके पड़ रहे थे जैसे कमलके कोषपर ओसके कण पड़े चमक रहे हों। सारा समाज यह जानकर बड़ा दुखी हो चला कि भरत आज पैदल ही चलकर आए हैं। (१) जब भरतको यह समाचार मिल गया कि सब लोग नहा-धो चुके, तब भरतने भी त्रिवेणीको आ प्रणाम किया। विधिपूर्वक (यमुनाके) श्याम और (गंगाके) श्वेत जलके संगममें स्नान करके और ब्राह्मणोंको दान देकर उन्होंने उनका बड़ा सम्मान किया। (२) त्रिवेणीकी श्याम और श्वेत लहरें देखकर भरतने पुलकित होकर हाथ-जोड़कर कहा—'हे तीर्थराज! सबकी समस्त कामनाएँ आप पूरी कर डालते हैं। आपके प्रभावका वर्णन वेदोंमें भी किया गया है और संसारमें भी प्रकट है। (३) मैं अपना (क्षत्रियका) धर्म छोड़कर (कि क्षत्रियको भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए) आपसे भिक्षा माँग रहा हूँ क्योंकि श्रेष्ठ दानीका स्वभाव होता है कि वे यह समझकर माँगनेवालेकी इच्छा पूरी कर डालते हैं कि दुखी मनुष्य कौन-सा कुकर्म नहीं कर डालता। मुझे न अर्थ चाहिए, न धर्म, न काम, न मोक्ष। मैं तो इस वरके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता कि मेरा जब-जब जन्म हो तब-तब रामके ही चरणोंमें ही मेरा प्रेम बना रहे॥ २०४॥ राम भले ही मुझे कुटिल समझ बैठें और अन्य लोग भी मुझे भले ही गुरुसे द्रोह करनेवाला और स्वामीसे द्रोह करनेवाला कहते रहें पर आप (कमसे कम) ऐसा अनुग्रह अवश्य कीजिए कि सीता और रामके चरणोंमें मेरा प्रेम दिनपर दिन निरन्तर बढ़ता

२०६९-७० सा पुण्या ध्वजिनी गंगां दासैः संतारिता स्वयम्। मैत्रे मुहूर्ते प्रययौ प्रयागवनमुत्तमम्॥
यत्र भागीरथीं गंगां यमुनाऽभिप्रवर्तते। जग्मुस्तं देशं॥ —वाल्मीकीयरामायण
२०७४-७५ सितासिते यत्र तरंगचामरे नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके।
लीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥ —मत्स्यपुराण
२०७७ क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत। दद्याद्राजन्न याचेत॥ —भारत
२०७८ अपि मे देवताः कुर्युरिमं सत्यं मनोरथम्। —वाल्मीकीयरामायण
२०७९-८० न याचे तीर्थराजेन्द्र सुखं विषयसंभवम्। रामांघ्रिकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥पुल०सं०

जलद, जनम - भरि सुरति बिसारउ। जाँचत जल, पबि - पाहन डारउ।
चातक रटनि, घटे, घटि जाई। बढ़े प्रेम, सब भाँति भलाई। (२)
कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहे। तिमि प्रियतम - पद नेम-निबाहे।
भरत - बचन सुनि, माँझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल - देनी। (३)
तात भरत ! तुम सब बिधि साधू। राम - चरन - अनुराग - अगाधू।
बादि गलानि करहु मन - माहीं। तुम सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं। (४)
दो०—तनु पुलकेउ, हिय हरष, सुनि , बेनि - बचन अनुकूल।
२०९० भरत ! धन्य, कहि धन्य, सुर , हरषित बरषहिं फूल ॥ २०५ ॥
प्रमुदित तीरथराज - निवासी। बैखानस, बटु, गृही, उदासी।
कहहिं परसपर मिलि दस-पाँचा। भरत - सनेह - सील सुचि, साँचा। (१)
सुनत राम - गुन - ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर - पहँ आए।
दंड - प्रनाम करत मुनि देखे। मूरतिमंत[1] भाग्य - निज लेखे। (२)
धाइ, उठाइ, लाइ उर लीन्हें। दीन्हि असीस, कृतारथ कीन्हें।
आसन दीन्ह, नाइ सिर बैठे। चहत, सकुच-गृह जनु भजि पैठे। (३)

ही चलता रहे। (१) मेघ चाहे जन्म-भर चातक की सुधि न ले और पानी माँगनेपर चाहे उसपर वज्र (बिजली) और पत्थर (ओले) ही क्यों न घहरा बरसावे, पर यदि इस सबसे चातककी रटन कम हो गई तो समझो उसकी आन ही मिट गई। उसके प्रेमकी बड़ाई तो इसीमें है कि उसका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही रहे। (२) जिस प्रकार तपानेसे सोनेमें और भी दमक आ जाती है, उसी प्रकार प्रियतमके चरणोंमें प्रेम करते रहनेसे सेवकका गौरव भी बढ़ जाता है।' भरतके ये वचन सुनकर त्रिवेणीके बीचसे यह मंगल-भरी प्यारी वाणी सुनाई दे उठी—(३) 'तात भरत ! तुम सब प्रकारसे साधु (सज्जन भले) हो। रामके चरणोंमें तुम्हारा अथाह अनुराग है। तुम व्यर्थ ही मनमें पछताए और दुखी हुए जा रहे हो। राम किसीको भी अपना उतना प्रिय नहीं समझते जितना तुम्हें समझते हैं।' (४) त्रिवेणीके ये प्रिय वचन सुनकर भरतका शरीर पुलकित और हृदय प्रसन्न हो उठा। देवता भी प्रसन्न होकर 'भरत धन्य हैं ! धन्य हैं !!' कह-कहकर उनपर फूल बरसाने लगे ॥२०५॥ तीर्थराज (प्रयाग)-में बसनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सभी दस-दस पाँच-पाँचकी टोलीमें आपसमें यही कहते मिलते थे कि 'भरतका प्रेम और शील (सौजन्य) बड़ा पवित्र और सच्चा है (इसमें कोई लाग-लपेट नहीं है)।' (१) (सबके मुँहसे) रामके एकसे एक बढ़कर गुण सुनते-सुनते वे मुनिवर भरद्वाजके (आश्रमके) पास जा पहुँचे। मुनिने जब भरतको दंड-प्रणाम करते देखा तो यह समझा कि मेरा सौभाग्य ही भरतका रूप धारण किए चला आया है। (२) उन्होंने लपककर भरतको हृदयसे उठा लगाया और आशीर्वाद देकर उन्हें बहुत संतुष्ट कर दिया। मुनिने उन्हें आसनपर ले जा बिठाया, पर भरत वहाँ ऐसे

१. मूरतिवंत।

२०८५-८६ गंगायमुनयोः संधौ वाणुवाचा शरीरिणी। —स्कन्दपुराण

२०९३-९५ दूरे स्थाप्य महासैन्यं भरतः सानुजो ययौ। आश्रमे मुनिमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥
दृष्ट्वा ननाम भरतः साष्टांगमतिभक्तितः। ज्ञात्वा दाशरथिं प्रीत्या पूजयामास मौनिराट् ॥
पप्रच्छ कुशलं दृष्ट्वा जटावल्कलधारिणम्। —अध्यात्मरामायण

मुनि पूछब कछु, यह बड़ सोचू। बोले रिषि, लखि सील-सकोचू।
सुनहु भरत, हम सब सुधि पाई। बिधि-करतब-पर किछु न बसाई। (४)
दो०—तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु-करतूति।
२१०० तात! कैकइहि दोस नहिं, गई गिरा मति धूति॥ २०६॥
यहउ कहत, भल कहिहि न कोऊ। लोक-वेद बुध-संमत दोऊ।
तात! तुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकउ-बेद बड़ाई। (१)
लोक-बेद-संमत सब कहई। जेहि पितु देइ, राज सो लहई।
राउ सत्यब्रत, तुमहिं बोलाई। देत राज, सुख, धरम, बड़ाई। (२)
राम-गवन-बन अनरथ-मूला। जो सुनि, सकल बिस्व भइ सूला।
सो भावी-बस रानि अयानी। करि कुचालि, अंतहु पछितानी। (३)
तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ, सो अधम, अयान, असाधू।
करतेहु राज, त तुम्हहिं न दोसू। रामहिं होत सुनत संतोसू। (४)
दो०—अब अति कीन्हेहु भरत! भल, तुमहिं उचित मत एहु।
२११० सकल-सुमंगल-मूल जग, रघुबर-चरन-सनेहु॥ २०७॥

सिर नवाकर जा बैठे, मानो भागकर संकोच (लज्जा)-के घरमें घुसे चले जाना चाह रहे हों। (३) भरत अपने मनमें इसी चिन्तामें घुले जा रहे थे कि मुनि (जब) पूछ बैठेंगे (कि यह सब कैसे हो गया तो मैं क्या उत्तर दूँगा)? भरतका शील और संकोच देखकर ऋषि (भरद्वाज) स्वयं बोल उठे—'सुनो भरत! जो कुछ हुआ है, वह हम सब जान चुके हैं। विधाता जो कुछ करनेपर तुल जाता है उसपर किसीका कोई वश नहीं चलता। (४) माताकी करतूतपर तुम अपने हृदयमें पछतावा मत करो। देखो भरत! इस (सारे उपद्रवमें) कैकेयीका कोई दोष नहीं है। सरस्वतीने ही जाकर उनकी बुद्धि फेर डाली थी॥ २०६॥ इसलिये यह बात भी कोई सत्य नहीं मानेगा (कि इस कुचालमें तुम्हारा भी हाथ था) क्योंकि लोकमत और वेदमत इन दोको ही विद्वान् लोग ठीक मानते हैं। ये लोकमत और वेदमत दोनों ही तुम्हारे निर्मल यशका वर्णन करके बड़ाई प्राप्त करेंगे। (१) लोक और वेद दोनों यह मानते हैं और सबका यही मत भी है कि पिता जिसको राज्य दे दें उसीको राज्य मिलना चाहिए। राजा दशरथ बड़े सत्यव्रती (सत्यका पालन करनेवाले) थे। यदि वे तुम्हें बुलाकर भी राज्य दे डालते तो भी (उन्हें और सबको) सुख भी मिलता, धर्मकी भी रक्षा होती और यश भी मिलता। सच पूछिए तो रामका वन जाना ही सारी विपत्तियोंकी जड़ बन बैठा, जिसे सुनकर सारा संसार दुखी हो उठा है। पर वह भी तो होनहारके हाथकी ही बात थी। नासमझ रानी भी होनहारके हाथका खिलौना बनकर ही यह कुचाल कर बैठी और अन्तमें स्वयं उसे भी पछतावा ही हाथ लगा। (३) इतनेपर भी कोई कहे कि इसमें तुम्हारा थोड़ा भी हाथ रहा तो वह अधम, मूर्ख और दुष्ट है। यदि तुम राज्य सँभाल भी लेते तो भी तुम्हें कोई दोष न देता और यह बात सुनकर रामको भी सन्तोष ही होता। (४) पर भरत! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया। यही व्यवहार करना उचित भी था। देखो! रामके चरणोंसे जिसे प्रेम हो जाय तो समझो कि संसारमें उसका मंगल ही मंगल है॥ २०७॥

२०९८ वत्स ज्ञातं पुरैवैतद् भविष्यं ज्ञानचक्षुषा। मा शुचस्त्वं परो भक्तः श्रीरामे लक्ष्मणादपि॥ अध्या०
भरद्वाजोऽपि तं प्राह कालेन कृतमीदृशम्। दुःखं तावन्न कर्तव्यं रामायेति त्वयाधुना॥
२१०० न दोषेणावगंतव्या कैकेयी भरत त्वया॥ —वाल्मीकीयरामायण

सो तुम्हार धन, जीवन, प्राना। भूरि भाग, को तुमहिं समाना।
यह तुम्हार, आचरज न ताता। दसरथ-सुअन, राम-प्रिय-भ्राता। (१)
सुनहु भरत! रघुबर-मन माहीँ। प्रेम-पात्र तुम-सम कोउ नाहीँ।
लखन-राम-सीतहिं अति प्रीती। निसि सब तुम्हहिं सराहत बीती। (२)
जाना मरम नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा।
तुम-पर अस सनेह रघुबर-के। सुख-जीवन जग जस जड़ नर-के। (३)
यह न अधिक रघुबीर-बड़ाई। प्रनत-कुटुंब-पाल रघुराई।
तुम तउ भरत! मोर मत एहू। धरे देह जनु राम-सनेहू। (४)

दो०—तुम-कहँ भरत! कलंक यह, हम-सब-कहँ उपदेस।
२१२० राम-भगति-रस-सिद्धि-हित, भा यह समउ गनेस॥ २०८॥

नव-बिधु-बिमल तात! जस तोरा। रघुबर-किंकर कुमुद-चकोरा।
उदित सदा, अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न, जग-नभ दिन-दिन दूना। (१)
कोक-तिलोक प्रीति अति करिहीँ। प्रभु-प्रताप-रबि, छबिहिं न हरिहीँ।

वही (रामके चरणोंमें प्रेम) तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है, इसलिये तुम्हारे समान भाग्यशाली और कौन हो सकता है? तुम्हारे इस व्यवहारसे (कि रामको लिवा लाने जा रहे हो), मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। (तुम्हें तो ऐसा करना ही चाहिए था) क्योंकि तुम दशरथ (-जैसे महापुरुष)-के पुत्र और राम (-जैसे महापुरुष)-के प्यारे भाई हो। (१) देखो भरत! राम भी अपने मनमें तुम्हारे समान किसी दूसरेको अपना प्रेमपात्र नहीं समझते (राम सबसे अधिक तुमसे प्रेम करते हैं)। राम, लक्ष्मण और सीता तीनोंने उस दिन बड़े प्रेममें भरकर तुम्हारी ही सराहना करते सारी रात बिता दी थी। (२) मुझे तो उनका यह रहस्य उस समय ज्ञात हो पाया (कि वे सबसे अधिक प्रेम तुम्हींसे करते हैं) जब वे प्रयागराजमें उतरकर स्नान किए जा रहे थे और तुम्हारे प्रेममें मगन हुए जा रहे थे। रामका तुमपर वैसा ही (अन्धा, निर्बाध) स्नेह है जैसा मूर्खोंका प्रेम संसारके भोग-विलासपर होता है। (३) यह रामकी कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, क्योंकि राम तो ऐसे महान् हैं कि जो उनकी शरणमें पहुँच जाय केवल उसीको नहीं, वरन् उसके सारे कुटुम्ब-भरका पालन करनेका बोझ अपने सिर ले बैठते हैं। देखो भरत! मैं तो तुम्हें देखकर यही समझ रहा हूँ मानो रामका प्रेम ही तुम्हारा रूप बनाए चला आया हो (तुम ही रामके साकार प्रेम हो)। (४) देखो भरत! (तुम्हारी समझमें तो) यह तुम्हारे लिये कलंक है (कि तुम्हारे कारण राम वनको गए) पर इसमे हम सबको तो बड़ा अच्छा उपदेश मिल गया, क्योंकि हम लोगोंके लिये तो रामकी भक्तिके रसकी सिद्धिका श्रीगणेश ही इसी समयसे हुआ है (तुम्हारी रामभक्ति सुन-सुनकर ही हम लोग भी ऐसी ही राम-भक्ति करना आरम्भ कर रहे हैं)। ॥ २०८ ॥ देखो भरत! जैसे चन्द्रमाके उदय होते ही कुमुद और चकोर खिल पड़ते और प्रसन्न हो जाते हैं वैसे ही तुम्हारा यश तो ऐसा नवीन निर्मल चन्द्रमा है जो सदा उदित ही हुआ रहेगा, कभी अस्त न होगा और रामके भक्त सब कुमुद और चकोर बनकर उसका सदा रस लेते रहेंगे (रामके भक्त लोग भरतका यश कहते-सुनते हुए आनन्द-मग्न हुए रहेंगे) और यह तुम्हारे यशका चन्द्रमा संसार-रूपी आकाशमें घटनेके बदले, दिन दूना रात चौगुना बढ़ता (चमकता) चला जायगा। (१) तीनों लोक चकवे बनकर इससे प्रीति करते रहेंगे (तीनों लोकोंमें लोग चावसे तुम्हारे यशका वर्णन किया करेंगे)। (विचित्र बात तो यह

२११९-२० भरतस्य भरद्वाजः प्रशंसां बहुलां मुदा। चकार भक्तिसिद्ध्यर्थं लोकानां सुखहेतवे॥ धर्मसं०

निसि दिन सुखद, सदा, सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ - करतब - राहू। (२)
पूरन राम - सुप्रेम - पियूषा। गुरु - अपमान - दोष नहिं दूपा।
राम - भगत अब अमिय अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू। (३)
भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत, सकल - सुमंगल - खानी।
दसरथ - गुन - गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा, जेहि सम जग नाहीं। (४)

दो०—जासु सनेह - सकोच - बस, राम प्रगट भे आइ।
२१३० जे हर-हिय-नयननि कबहुँ, निरखे नहीं अघाइ ॥ २०९ ॥

कीरति - बिधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम - पेम, मृग - रूपा।
तात ! गलानि करहु जिय जाए। डरहु दरिद्रहि, पारस पाए। (१)
सुनहु भरत ! हम झूठ न कहहीं। उदासीन, तापस, बन रहहीं।
सब साधन - कर सुफल सुहावा। लखन - राम - सिय - दरसन पावा। (२)

है कि) रामके प्रतापका सूर्य भी इसकी चमक कम नहीं कर पा सकेगा (तुम्हारा यश रामके यशसे कभी कम न होगा)। इस (यश)-की कथा जो भी सुनेगा उन सबको सदा दिन-रात सुख ही सुख मिलता रहेगा। यहाँतक कि कैकेयीने जो कुकृत्य किया है वह राहु भी इसे (तुम्हारे यशको) ग्रस न सकेगा (कैकेयीके कुकृत्यसे भी तुम्हारा यश कभी मलिन न होगा), (२) क्योंकि यह (तुम्हारे यशका चन्द्रमा) रामके पवित्र प्रेमके अमृतसे लबालब भरा हुआ है। (चन्द्रमा तो अपने गुरु बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लाया था जिससे उसकी बड़ी बदनामी हुई पर तुम्हारे यशके चन्द्रमाको) गुरु (राम -)का अपमान (अपराध) करनेका (वन भिजवाने) दोष भी नहीं लग सकता। अब रामके सभी भक्त इस चन्द्रमा (भरतके यश)-का अमृत पाकर पूर्ण तृप्त हो रहेंगे। तुमने तो इस पृथ्वीपर अपने यशके चन्द्रमासे मिल सकनेवाला अमृत सबके लिये सुलभ कर डाला (तुम्हारे यशकी कथा कहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको सरलतासे पुण्य मिल जायगा)। (३) राजा भगीरथको तो केवल उन गंगाको पृथ्वीपर उतार लानेका श्रेय है, जिनका स्मरण मात्र कर लेनेसे सारे सुमंगल (सारे कल्याणकारी फल) बैठे-बिठाए अनायास मिल जाते हैं किन्तु जहाँतक राजा दशरथके गुणोंकी बात है, उनका तो वर्णन ही करना असंभव है। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है कि दशरथके समान संसारमें आजतक कोई दूसरा हो ही नहीं पाया (४) क्योंकि उन (मनु और शतरूपाके रूपमें तप करनेवाले दशरथ-कौशल्या)-के प्रेम और संकोचके कारण ही तो उन रामने उनके यहाँ आ अवतार लिया है जिन्हें शंकर अपने ज्ञान-नेत्रोंसे निरन्तर देखते रहनेपर भी कभी अघाते नहीं ॥ २०९ ॥ पर तुमने तो (इन भगीरथ, दशरथ और रामसे भी बढ़कर) ऐसा अनुपम कीर्तिका चन्द्रमा उत्पन्न कर दिखाया है जिसमें रामके प्रेमका मृग-चिह्न सदा ही बसा रहता है। इसलिये भरत ! तुम अपने मनमें व्यर्थ क्यों पछताए जा रहे हो ? हाथमें पारस लिए रहनेपर भी तुम दरिद्रतासे क्यों डरे जा रहे हो ? (तुम्हारी कीर्ति इतनी प्रबल है कि कोई तुम्हारी निन्दा कर ही नहीं सकता)। (१) देखो भरत ! हम तो उदासीन हैं, तपस्वी हैं और वनमें रहते हैं। इसलिये हम यह बात कुछ बनाकर नहीं कह रहे हैं कि हमें तो अपने सभी साधनों (योग, जप, तप, व्रत, हवन)-का सबसे उत्तम फल यही मिल गया कि राम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन हो गए। (२) उस फल (राम, लक्ष्मण, सीताके दर्शन)-का ही यह फल है कि

तेहि फल-कर फल, दरस तुम्हारा। सहित-पयाग सुभाग हमारा।
भरत ! धन्य तुम, जग जस जयऊ। कहि अस, पेम-मगन मुनि भयऊ। (३)
सुनि मुनि-बचन, सभासद हरषे। साधु सराहि, सुमन सुर बरसे।
धन्य-धन्य-धुनि गगन-प्रयागा। सुनि-सुनि, भरत मगन-अनुरागा। (४)
दो०—पुलक गात, हिय राम-सिय, सजल सरोरुह-नैन।
२१४० करि प्रनाम मुनि-मंडिलिहिं, बोले गदगद बैन ॥ २१० ॥
मुनि-समाज, अरु तीरथ-राजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू।
ऐहि थल, जौं किछु कहिय बनाई। ऐहि सम अधिक न अघ-अधमाई। (१)
तुम सर्वग्य, कहउँ सति भाऊ। उर-अंतरजामी रघुराऊ।
मोहि न मातु करतब-कर सोचू। नहिं दुख जिय, जग जानहि पोचू। (२)
नाहिंन डर बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन-कर मोहिं न सोकू।
सुकृत-सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन-राम-सरिस सुत पाए। (३)
राम-बिरह तजि तनु, छन-भंगू। भूप-सोच-कर कवन प्रसंगू।
राम-लखन-सिय, बिनु-पग-पनही। करि मुनि-बेष फिरहिं बन-बनहीं। (४)
दो०—अजिन-बसन, फल-असन, महि,-सयन, डासि कुस-पात।
२१५० बसि तरुतर, नित सहत हिम, आतप, बरषा, बात ॥ २११ ॥

आज तुम्हारा भी दर्शन हो गया। प्रयागराजका और हमारा, दोनोंका ही यह अहोभाग्य है और भरत ! तुम तो सचमुच धन्य हो (क्योंकि) तुम तो अपने यशसे सारा जगत् अपनी मुट्ठीमें किए बैठे हो (तुम्हारे यशके कारण सारा संसार तुम्हारी प्रशंसा किए जा रहा है)।' इतना कहकर मुनि भरद्वाज तो प्रेममें मग्न हो उठे। (३) मुनिके वचन सुनकर सारे सभासद् भी हर्षित हो उठे और देवता भी 'साधु-साधु' कहकर भरतकी सराहना करते हुए फूलोंकी वर्षा कर उठे। (४) भरतका शरीर पुलकित हुआ जा रहा था (क्योंकि उनके) हृदयमें सीता और राम विराजमान थे और इसीलिये कमलके समान उनकी (बड़ी-बड़ी, सुन्दर) आँखें भी डबडबा चलीं। उन्होंने पहले मुनियोंकी उस मंडलीको झुककर प्रणाम किया और फिर वे रुँधे हुए कंठसे बोले—॥ २१० ॥ 'इस मुनियोंके समाजके सामने और तीर्थराजके पवित्र स्थलमें सच्ची सौगन्ध खाना भी अच्छा नहीं होगा। इस (पवित्र) स्थलपर यदि कुछ बनाकर (असत्य) कहने भी लगा जाय तो उसके समान न कोई बड़ा पाप होगा, न नीचता। (१) मैं स्वयं भी शुद्ध हृदयसे कह रहा हूँ, आप भी सर्वज्ञ हैं और राम भी मेरे हृदयकी बात जानते हैं। मुझे न तो माताकी (काली) करतूतकी ही चिन्ता है, न तो इसी बातका दुःख है कि संसार मुझे कितना नीच समझे बैठा है, (२) न मुझे अपने परलोक बिगड़नेका डर है (कि मुझे नरकमें जाना पड़ेगा) और न मुझे पिताके मरनेका ही शोक है, क्योंकि उनके महान् पुण्योंका उज्ज्वल यश तो सारे विश्व भरमें पहले ही फैल चुका है। राम और लक्ष्मण-जैसे योग्य जिनके पुत्र हों (३) और रामके वियोगमें जिसने अपना क्षण-भंगुर शरीर छोड़ डाला हो, ऐसे राजाके लिये शोक करनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है ? (चिन्ता तो मुझे केवल इसी बातकी है कि) राम, लक्ष्मण और सीता नंगे पाँवों मुनियोंका-सा वेष बनाए वन-वन भटकते फिर रहे हैं और (४) मृगचर्म ओढ़कर, फल खाकर और धरतीपर घास-पात बिछा-बिछाकर सोते हुए, वृक्षोंके नीचे नित्य सर्दी, गर्मी, वर्षा और आँधी झेलते हुए दिन काटे जा रहे हैं ॥ २११ ॥ बस इसी दुःखकी

ऐहि दुख-दाह, दहइ दिन छाती। भूख न बासर, नींद न राती।
ऐहि कुरोग-कर औषध नाहीं। सोधेउँ सकल विस्व मन-माहीं। (१)
मातु-कुमत बढ़ई अघ-मूला। तेहिं हमार हित, कीन्ह बँसूला।
कलि-कुकाठ-कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि, पढ़ि कठिन कुमंत्रू। (२)
मोहिं-लगि यह कुठाट तेहिं ठाटा। घालेसि सब जग बारह-बाटा।
मिटइ कुजोग, राम फिरि आए। बसइ अवध नहिं आन उपाए। (३)
भरत-बचन सुनि, मुनि सुख पाई। सबहिं कीन्हिं बहु भाँति बड़ाई।
तात! करहु जनि सोच विसेखी। सब दुख मिटिहि राम-पग देखी। (४)
दो०—करि प्रबोध, मुनिबर कहेउ, अतिथि प्रेम-प्रिय होहु।
२१६० कंद, मूल, फल, फूल, हम, देहिं, लेहु, करि छोहु॥ २१२॥

जलनसे मेरी छाती निरन्तर जली चली जा रही है। इसी कारण न मुझे दिनको भूख लगती, न रातको नींद आती। मैंने यह कष्ट दूर करनेके लिये मन ही मन विश्वके (न जाने कितने) उपाय सोच डाले, पर यह ऐसा बुरा रोग आ लगा है कि इसकी ओषधि कहीं ढूँढे नहीं मिल पा रही है। (१) (यह रोग इसलिये आ लगा कि मुझपर मंत्र चला दिया गया है)। माता (कैकेयी)-का बुरा विचार (कि रामको वन भेजा जाय) ही वह सारे पापोंका मूल (यन्त्र गढ़नेवाला) बढ़ई है जिसने मेरे हित (राजतिलक)-के ही (कुयन्त्र गढ़नेके) बसूलेसे कलियुग (नीचता, भिलावे)-के कुकाठका कुयन्त्र (वह यन्त्र जिसपर मन्त्र लिखा जाता है) गढ़ डाला और कठोर मन्त्र पढ़कर (वर माँगकर) वह (यन्त्र) अयोध्यामें ला गाड़ा गया (जैसे मारण-यन्त्रका प्रयोग करनेवाले लोग किसी बढ़ईसे कहकर उसके बसूलेसे भिलावेकी लकड़ीका यन्त्र गढ़वाकर जिसे मारना होता है उसके यहाँ मन्त्र पढ़कर ला गाड़ते हैं, वैसे ही कैकेयीने भी घातक संकल्प करके मुझे राज्य दिलानेके लिये कलियुगी बुद्धिसे दूषित वर माँगकर मेरे विनाशका प्रबन्ध कर डाला)। (२) उसने मेरे लिये यह कुचक्र रचकर मुझे और अयोध्याको बारह-बाट (नष्ट) कर डाला। यह कुचक्र तभी मिट सकता है (यह मन्त्र तभी उतर सकता है) और तभी अयोध्या भी सुखसे बस सकती है जब राम घर लौट आवें। दूसरा कोई उपाय नहीं है।' (३) भरतकी बात मुनिको बहुत अच्छी लगी और सब लोगोंने (उनका यह उच्च विचार सुनकर) उनकी बहुत प्रशंसा की। (फिर मुनिने कहा—) 'देखो भरत! अब अधिक शोक करनेसे कोई लाभ नहीं है। रामके चरणोंका दर्शन करते ही तुम्हारा सारा दुःख तत्काल मिट जायगा।' (४) इस प्रकार मुनि भरद्वाजने भरतको बहुत समझा-बुझाकर कहा—'अब आप लोग मेरे प्रेमपूर्ण प्रिय अतिथि बन

२१४०-५६ भरद्वाजवचः श्रुत्वा भरतः साश्रुलोचनः। सर्वं जानासि भगवन् सर्वभूताशयस्थितः॥
तथापि पृच्छसे किंचित्तदनुग्रह एव मे। कैकेय्या यत्कृतं कर्म रामराजविघातनम्॥
वनवासादिकं वापि नहि जानामि किंचन। भवत्पादयुगं मेऽद्य प्रमाणं मुनिसत्तम॥
इत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः स्पृष्ट्वार्तमानसः। ज्ञातुमर्हसि मां देव शुद्धो वाशुद्ध एव वा॥
मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि। किंकरोऽहं मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्रस्य शाश्वतः॥
अतो गत्वा मुनिश्रेष्ठ रामस्य चरणांतिके। पतित्वा राजसंभारान् समर्प्यात्रैव राघवम्॥
अभिषेक्ष्ये वसिष्ठाद्यैः पौरजानपदैः सह। नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽपि नीचवत्॥ अ०रा०
२१५७-६० इत्युदीरितमाकर्ण्य भरतस्य वचो मुनिः। आलिंग्य मूर्ध्न्यवघ्राय प्रशशंस स विस्मयः॥
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि ससैन्यस्य तवानघ। अद्य भुक्त्वा ससैन्यस्त्वं श्वो गंता रामसन्निधिम्॥

सुनि मुनि-बचन, भरत-हिय सोचू। भयउ कुअवसर, कठिन सँकोचू।
जानि गरुइ गुरु-गिरा बहोरी। चरन बंदि, बोले कर जोरी। (१)
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।
भरत-बचन, मुनिबर-मन भाए। सुचि सेवक-सिष निकट बोलाए। (२)
चाहिय कीन्हिँ भरत पहुनाई। कंद-मूल-फल आनहु जाई।
भलेहि नाथ ! कहि, तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज-निज काज सिधाए। (३)
मुनिहिँ सोच, पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिय, जस देवता।
सुनि रिधि, सिधि, अनिमादिक आईं। आयसु होइ सो करहिँ गोसाईं। (४)

दो०—राम-बिरह ब्याकुल भरत, सानुज, सहित-समाज।
२१७० पहुनाई करि, हरहु श्रम, कहा मुदित मुनिराज ॥ २१३ ॥

रिधि-सिधि, सिर धरि मुनिबर-बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी।
कहहिँ परसपर सिधि-समुदाई। अतुलित अतिथि राम-लघु-भाई। (१)
मुनि-पद बंदि, करिय सोइ आजू। होइ सुखी सब राज-समाजू।
अस कहि, रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिँ बिमाना। (२)

रहिए और जो कुछ कंद-मूल-फल-फूल हम दे पा सकते हैं वह प्रेमके साथ स्वीकार कर लीजिए' ॥२१२॥ मुनिके वचन सुनकर भरतके हृदयमें बड़ी चिन्ता उठ खड़ी हुई कि यह असमयमें (जब हम रामको लिवाने जा रहे हैं) बड़े संकोच (दुविधा)-का अवसर आ पड़ा (कि एक ओर मुनिकी आज्ञा, दूसरी ओर हमारा नियम)। फिर गुरुकी बातका आदर करना ही उचित समझकर उनके चरणोंमें वन्दना करके वे हाथ जोड़कर बोले—(१) 'नाथ ! आपकी आज्ञा सिरमाथे है। उसका पालन करना मेरा परम धर्म है।' भरतकी यह बात मुनिको बहुत ही अच्छी लगी। उन्होंने विश्वासी सेवकों और शिष्योंको बुलवा भेजा (२) (और कहा)—'देखो भरतका भली-भाँति आतिथ्य-सत्कार होना चाहिए। इसलिये जाकर (बढ़िया) कंद-मूल-फल लिवाते ले आओ।' उन्होंने—'ठीक है नाथ !' कहकर सिर नवाया और बहुत प्रसन्न हो-होकर अपने-अपने काममें जा जुटे। (३) मुनिके मनमें यह चिन्ता उठ खड़ी हुई कि हमने जब इतने बड़े अतिथिको न्योत डाला है तब जैसा देवता हो उसीके अनुसार उसकी पूजा भी होनी चाहिए। यह सुनते ही सब ऋद्धियाँ (सब प्रकारकी संपत्तियोंकी शक्तियाँ) और सिद्धियाँ (वे शक्तियाँ, जिनसे कुछ भी कराया जा सकता है) उनके पास आ पहुँचीं (और बोलीं)—'कहिए स्वामी ! जो आज्ञा हो वह सब हम अभी पूरा किए डालती हैं।' (४) मुनिने प्रसन्न होकर कहा—'देखो ! भरतके साथ उनके छोटे भाई शत्रुघ्न और उनका सारा समाज रामके विरहमें बहुत व्याकुल हुआ बैठा है। इनका ऐसा (यथोचित) आतिथ्य-सत्कार करो कि इनको सारी थकावट (चिन्ता) दूर हो मिटे' ॥ २१३ ॥ (कहने-भरकी देर थी)। ऋद्धि-सिद्धियोंने मुनिकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ाई और अपना यह बड़ा भाग्य समझा (कि भरतकी सेवा करनेका अवसर मिला)। सब सिद्धियाँ आपसमें परामर्श करने लगीं—'रामके छोटे भाई भरत हमारे अनुपम अतिथि हैं (ऐसे अतिथि मिलते कहाँ हैं ?)। (१) अतः, मुनिकी वन्दना करके आज ऐसा प्रबन्ध कर दिखाना चाहिए जिससे इस सारे राज-समाजको पूरा सुख मिल सके।' यह कहकर उन्होंने ऐसे-ऐसे बहुतसे सुन्दर-सुन्दर भवन बना खड़े किए, जिन्हें देख-देखकर देवताओंके विमान भी (लाजसे) रो दें। (२) उन सब भवनोंमें

२१६३ यथाज्ञापयासि भवाँस्तथेति भरतोऽब्रवीत्। —अध्यात्मरामायण

भोग, विभूति, भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे।
दासी - दास, साज सब लीन्हें। जोगवत रहहिं, मनहिं मन दीन्हें। (३)
सब समाज सजि सिधि पल - माहीं। जे सुख, सुरपुर सपनेहु नाहीं।
प्रथमहिं, बास दिये सब - केही। सुंदर, सुखद, जथारुचि, जेही। (४)
दो०—बहुरि, सपरिजन भरत-कहँ, रिषि अस आयसु दीन्ह।
२१८० विधि-बिसमय-दायक-बिभव, मुनिबर तप - बल कीन्ह ॥ २१४ ॥
मुनि - प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति - लोका।
सुख - समाज नहिं जाइ बखानी। देखत, बिरति बिसारहिं ग्यानी। (१)
आसन, सयन, सुबसन, बिताना। बन, बाटिका, बिहग, मृग नाना[1]।
सुरभि फूल, फल अमिय - समाना। बिमल जलासय, बिबिध बिधाना। (२)
असन - पान सुचि अमिय अमी - से। देखि लोग सकुचात जमी - से।
सुर - सुरभी, सुर - तरु सबही - के। लखि, अभिलाप सुरेस सची - के। (३)
रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब - कहँ सुलभ पदारथ चारी।

इतना अधिक सुख-भोग और ऐश्वर्यका समान उन्होंने ला भरा कि उन्हें देख-देखकर देवताओंके मुँहमें भी पानी भर आया (ललचाने लगे)। उन नवीन भवनोंमें दास और दासियाँ सब प्रकारकी सामग्री लिए हुए अतिथियोंकी इच्छाके अनुकूल उनकी आज्ञाका पालन करनेकी बाट जोहती हुई आ खड़ी हुईं। (३) उधर सिद्धियोंने क्षण भरमें ऐसे-ऐसे सुखके सामान ला जुटाए जो स्वर्गवालोंको स्वप्नमें भी नहीं जुड़ पा सकते। पहले तो मुनिने जिसकी जैसी रुचि थी उसके अनुकूल उन्हें सुन्दर और सुखदायक निवास-स्थानोंमें ले जा ठहराया। (४) फिर मुनिने भरतको भी सपरिवार जाकर निवास करनेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार मुनिने ब्रह्माको भी आश्चर्यसे चकित कर देनेवाला सारा ऐश्वर्य अपने तपोबलसे वहाँ मँगवा जुटाया ॥२१४॥ जब भरतने मुनि भरद्वाजका यह प्रभाव देखा तब उन्हें इस (वैभव और सुखके समस्त साधनों)-के सामने सारे लोकपतियों (इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, ब्रह्मा, अनन्त)-के लोक भी तुच्छ जान पड़ने लगे। वहाँ इतनी सुखकर सामग्रियाँ थीं कि उनका वर्णन किसीके किए किया नहीं जा सकता। (वे इतनी थीं कि) ज्ञानी भी उनकी झलक पा लें तो अपना सारा वैराग्य भूलकर उनपर जा टूटें। (१) बिस्तर, सेज, सुन्दर वस्त्र, चँदोवे, वन, वाटिका, पशु, पक्षी, सुगन्धित फूल, अमृतके समान मीठे फल, अनेक प्रकारके सुन्दर जलाशय (सरोवर, कुएँ, बावड़ी आदि) (२) तथा अमृतसे भरे ऐसे एकसे एक बढ़िया स्वादिष्ट खाने-पीनेके पदार्थ वहाँ सजे धरे थे जिन्हें देख-देखकर सब लोग ऐसे सकुचाए जा रहे जैसे संयमी (अपना मन अपने वशमें कर रखनेवाले पुरुष ऐसी वस्तुएँ देखकर) सकुचाया करते हैं। भवन-भवनमें (मनचाही वस्तु दे सकनेवाली) कामधेनु और कल्पवृक्ष ला खड़े किए गए थे जिन्हें देख-देखकर इन्द्रके साथ इन्द्राणी भी ललचाई पड़ रही थीं। (३) वहाँ वसन्त ऋतु आ छाई थी। तीनों प्रकारकी (शीतल, मंद, सुगंध) बयार बहने लगी थी। सबको चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) सुलभ हो गए थे। फूलोंकी

१. सुबसन आसन सयन बिताना। बिहग बाटिका बन मृग नाना।

२१७१-७७ भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः। दध्यौ कामदुघां कामवर्षिणीं कामदो मुनिः ॥
असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम्।

स्रक, चंदन, बनितादिक भोगा। देखि हरप - बिसमय - बस लोगा। (४)
दो०—संपति चकई, भरत चक , मुनि - आयसु खेलवार।
२१९० तेहि निसि आस्रम-पींजरा , राखे, भा भिनुसार।। २१५ ।।
कीन्ह निमज्जन तीरथ - राजा। नाइ मुनिहिँ सिर, सहित - समाजा।
रिपि - आयसु असीस सिर राखी[1]। करि दंडवत, बिनय बहु भाखी। (१)
पथ - गति - कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिँ चित दीन्हें।
रामसखा - कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू। (२)
नहिँ पदत्रान, सीस नहिँ छाया। पेम - नेम - ब्रत - धरम अमाया।
लखन - राम - सिय - पंथ - कहानी। पूछत सखहिँ, कहत मृदु बानी। (३)

माला, चन्दन, सुन्दरियाँ आदि भोगोंके सब साधन देखकर सब लोग हर्ष और विस्मयमें पड़े जा रहे थे (कि मुनिने ऐसे सुर-दुर्लभ पदार्थ क्षण-भरमें कैसे और कहाँसे ला इकट्ठे किए)। (४) किन्तु यह (भोग-विलासकी सामग्रीकी) सम्पत्ति ऐसी चकवी थी जिसके लिये भरत चकवे बने बैठे थे (सम्पत्तिको छू नहीं रहे थे, उससे उदासीन हुए बैठे थे)। यद्यपि मुनिकी आज्ञा ही वह खेलवाड़ थी जिसने चकवी (सम्पत्ति)-को उस रात चकवे (भरत)-के साथ आश्रम-रूपी पिंजड़ेमें एक-साथ लाकर बन्द किए रक्खा फिर भी इसी प्रकार (पिंजड़ेमें साथ-साथ बन्द हुए रहनेपर भी, वैभव पास होनेपर भी) सबेरा हो गया (भरतने उस वैभवकी ओर आँखतक उठाकर न देखा)। (जैसे कोई तमाशा देखनेके लिये चकवी और चकवेको रातको पिंजड़ेमें बन्द कर रक्खे कि पिंजड़ेमें रहकर तो वे रातमें मिल ही लेंगे पर रात होनेपर वहाँ भी जैसे वे आपसमें नहीं मिल पाते वैसे ही मुनिने भरत और सम्पत्ति (ऐश्वर्य) दोनोंको आश्रममें उस रात ला तो बसाया पर रामके विरहमें व्याकुल भरतने उस सम्पत्तिकी ओर ताका-तक नहीं)।। २१५ ।। (प्रातःकाल होते ही) भरतने प्रयागराज (त्रिवेणी)-में स्नान जा किया और पूरे समाजको लेकर उन्होंने मुनि भरद्वाजको जा प्रणाम किया। मुनिकी आज्ञा और आशीर्वाद सिरमाथे चढ़ाकर उन्होंने मुनिको प्रणाम करके उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता आ प्रकट की। (१) वहाँसे चतुर मार्ग-दर्शकोंको साथ लेकर चित्रकूटमें ही मन लगाए हुए भरत सबको संग लेकर चल पड़े। रामके सखा (केवटोंके सरदार)-के हाथमें हाथ डाले भरत ऐसे चले जा रहे थे मानो साक्षात् प्रेम ही दो शरीर धारण किए चला जा रहा हो। (२) न तो भरतके पैरोंमें जूते ही थे न सिरपर (छाते आदिकी) छाया ही थी। उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म सब माया (आडम्बर)-से दूर (निश्छल) था। जिस मार्गसे राम, लक्ष्मण और जानकी होकर गए थे उस मार्गकी सारी बातें वे केवटोंके सरदारसे पूछते चले जा रहे थे और केवटोंका सरदार भी बड़े प्रेमसे उन्हें सब बताता चला जा रहा था। (३) जहाँ-जहाँ राम बीच-बीचमें

१. रिपि असीस आयसु सिर राखी।

२१७९-८६ प्रविवेश महाबाहुरनुज्ञातो महर्षिणा। वेश्म तद्रत्नसंपूर्णं भरतः केकयीसुतः ।।
अनुजग्मुश्च ते सर्वे मंत्रिणः सपुरोहिताः। बभूवुश्च मुदा युक्तास्तं दृष्ट्वा वेश्मसंविधिम् ।।
व्यस्मयंत मनुष्यास्ते स्वप्नकल्पं तदद्भुतम्। दृष्ट्वातिथ्यं कृतं तावद् भरद्वाजमहर्षिणा ।।
इत्येवं रममाणानां देवानामिव नंदने। भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्तत।। —वा०रा०
२१९१-९३ उषित्वा दिनमेकं तु आश्रमे स्वर्गसन्निभे। अभिवाद्य पुनः प्रातर्भरद्वाजं सहानुजः ।।
भरतस्तु कृतानुज्ञः प्रययौ रामसन्निधिम्। —अध्यात्मरामायण
२१९६ धर्मात्मा भरतः शृण्वन् पथि रामकथामृतम्। चित्रकूटगिरिं याति श्रीरामप्रेमविह्वलः।। ध०सं०

राम - वास - थल - बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिँ रोके।
देखि दसा, सुर बरिसहिँ फूला। भइ मृदु महि, मग मंगल-मूला। (४)
दो०—किये जाहिँ छाया जलद, सुखद बहइ बर - बात।
२२०० तस मग भयउ न राम - कहँ, जस भा भरतहिँ जात।। २१६ ।।
जड़ - चेतन मग - जीव घनेरे। जे चितए प्रभु, जिन्ह प्रभु हेरे।
ते सब भये परम - पद - जोगू। भरत - दरस, मेटा भव - रोगू। (१)
यह बड़ि बात भरत - कइ नाहीँ। सुमिरत जिनहिँ राम मन - माहीँ।
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन - तारन नर तेऊ। (२)
भरत राम - प्रिय, पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मग मंगलदाता।
सिद्ध, साधु, मुनिवर अस कहहीँ। भरतहिँ निरखि, हरष हिय लहहीँ।
देखि प्रभाउ सुरेसहिँ सोचू। जग भल भलेहि, पोच कहँ पोचू।
गुरु - सन कहेउ, करिय प्रभु सोई। रामहिँ - भरतहिँ भेंट न होई। (४)

रुके थे उन स्थानों और वहाँके वृक्षोंको देख-देखकर भरतके हृदयका प्रेम किसी भी प्रकार रोके नहीं रुक पा रहा था (उमड़ा पड़ रहा था)। उनकी यह दशा देख-देखकर देवता भी उनपर ऊपरसे फूल बरसाए चले जा रहे थे। (भरतके लिये) कड़ी (बीहड़, पथरीली) धरती भी इतनी कोमल हो चली थी कि उस मार्गपर चलनेमें उन्हें बड़ा सुख मिल रहा था। (४) बादल उनके ऊपर छाया किए चले जा रहे थे और सुहावनी ठंढी-ठंढी बयार भी बहती चली जा रही थी। जिस समय भरत चले जा रहे थे उस समय मार्ग जैसा सुखदायक हो चला था, वैसा रामके जाते समय भी नहीं हो पाया था ।।२१६।। मार्गमें जितने भाँति-भाँतिके असंख्य जड और चेतन जीव मिलते चलते थे उनमेंसे जिसने भी प्रभु भरतकी झाँकी पा ली या जिसकी ओर भरतने देख भी लिया उन सबको परमपद प्राप्त हो गया (वे मुक्त हो गए, उन सबको ऐसा लगा जैसे परमानन्द मिल गया हो)। इस प्रकार भरतका दर्शन कर पा लेनेसे उनका सारा भव-बन्धन ही छूट गया (वे जन्म-मरणकी झंझटसे छूट गए)। (१) जिन भरतको राम भी (निरन्तर) मनमें स्मरण करते रहते हैं, उनके लिये यह कर डालना (सबको मुक्त कर देना) कोई बड़ी बात नहीं थी। संसारमें एक बार भी जो मनुष्य 'राम' कह लेता है, वह संसारसे स्वयं तो तर ही जाता है, साथ ही औरोंको भी तार ले जाता है, वही राम स्वयं जिन भरतको स्मरण करते रहते हैं उन भरतके प्रभावका तो फिर कहना ही क्या ? (२) सिद्ध, साधु (सज्जन) और मुनि लोग यह कहते जा रहे थे और भरतको देख-देखकर प्रसन्न हुए जा रहे थे कि—'एक तो भरतको राम स्वयं प्यार करते हैं, दूसरे वे रामके छोटे भाई ठहरे। फिर भला वनका मार्ग उनके लिये सुख देनेवाला क्यों न बन रहता ?' (३) भरतका ऐसा प्रभाव देखकर देवराज इन्द्रके मनमें बड़ी चिन्ता उठ खड़ी हुई (कि कहीं ये रामको लौटा न ले जायँ)। होनी भी चाहिए, क्योंकि यह संसार भलेके लिये भला और बुरेके लिये बुरा है। इन्द्रने जाकर गुरु बृहस्पतिसे कहा— 'प्रभो ! अब कुछ ऐसा उपाय कर डालिए कि रामसे भरतकी भेंट ही न हो पावे, (४) क्योंकि

२१९८ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः। महीमंगलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकराः ।। —भागवत
२१९९ वायवस्सुरभिपुष्परेणुभिश्छायया च जलदाः सिषेविरे ।। —रघुवंश
२२०४ सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।। —पद्मपु०
२२०५-६ विलोक्य भरतं सिद्धाः प्रसन्नाः साधवस्तथा। मुनयश्च वदन्तीत्थं भवन्ति विपिनं कथम् ।।
स्यान्मंगलप्रदन्नैव रामचन्द्रानुजं प्रियम्। —वसिष्ठरामायण

दो०—राम सँकोची, प्रेम-बस, भरत सुप्रेम[1] - पयोधि ।
२२१० बनी बात बिगरन चहति, करिय जतन छल सोधि ॥ २१७ ॥
बचन सुनत सुर-गुरु मुसुकाने । सहस - नयन, बिनु - लोचन जाने ।
कह गुरु, बादि छोभ - छल - छाँड़ू । इहाँ कपट - कर होइहि भाँड़ू ।[2] (१)
मायापति - सेवक सन माया । करइ त उलटि परइ सुरराया ।
तब किछु कीन्ह, राम - रुख जानी । अब कुचालि करि, होइहि हानी । (२)
सुनु सुरेस ! रघुनाथ - सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिँ न काऊ ।
जो अपराध भगत - कर करई । राम - रोष - पावक सो जरई । (३)
लोकहुँ - बेद - बिदित - इतिहासा । यह महिमा जानहिँ दुरबासा ।
भरत - सरिस को राम - सनेही । जग जप राम, राम जप जेही । (४)

राम बड़े संकोची हैं और भरत भी प्रेमके समुद्र हैं (उनसे बहुत अधिक प्रेम करनेवाले हैं इसलिये भरत उन्हें लौटने कोकह देंगे तो राम उनकी बात झट मान बैठेंगे) । ऐसी स्थितिमें अब तो हमारी सारी बनी-बनाई बात बिगड़ी जा रही है। इसलिये अब आप भी कुछ चाल चलिए (ऐसा तिकड़म कीजिए कि राम और भरतकी भेंट ही न हो पावे) ॥ २१७ ॥ इन्द्रकी यह बात सुनकर देवताओंके गुरु बृहस्पति मन ही मन बहुत मुसकराए और समझ गए कि यह इन्द्र है तो सहस्र (असंख्य) नेत्रोंवाला, पर इसे (ज्ञानका) नेत्र एक भी नहीं है (यह मूर्ख है), और बोले—'देखिए देवराज ! आप व्यर्थ चिन्तामें घुले जा रहे हैं। चाल चलनेकी बात ही आप अपने मनसे निकाल डालिए । इस समय यदि कहीं आप कपट कर बैठे तो आपकी (बड़ी) खिल्ली उड़ेगी (ऐसी बदनामी होगी कि कहीं मुँह दिखाने-योग्य नहीं रह जायँगे) । (१) देखिए ! मायाके पति रामसे जो छल कर बैठता है वह छल उलटकर उसीके सिर आ धमकता है (उसीको ले बीतता है) । उस (राजतिलकके) समय तो स्वयं रामकी ही वैसी इच्छा थी, इसीलिये (सरस्वतीको भेजकर) छल किया गया था, पर यदि इस समय कहीं कुचाल कर बैठे तो लेनेके देने पड़ जायँगे । (२) देखिए सुरेश ! रामका कुछ ऐसा (विचित्र) स्वभाव है कि यदि कोई उनके विरुद्ध अपराध कर भी बैठे तो वे कभी रुष्ट नहीं होते, पर यदि कोई उनके भक्तके साथ कुचाल कर बैठे तो वह रामके क्रोधकी अग्नि (-से बच नहीं पा सकता, उस अग्नि)-में जलकर भस्म हो जाता है । (३) लोग भी इसके अनेक उदाहरण जानते हैं और वेद (पुराण आदि)-में यह बात प्रसिद्ध है। रामकी यह महिमा दुर्वासा भली-भाँति जानते हैं (जो भगवान्‌के भक्त अंबरीषका अपमान करनेके कारण सारे संसारमें भागते फिरे पर कहीं ठौर-ठिकाना न मिल पाया । अन्तमें जब उन्होंने अंबरीषसे ही जाकर क्षमा माँगी तब कहीं उन्हें छुटकारा मिल पाया) । देखिए भरतसे बढ़कर रामका प्यारा और कोई नहीं है क्योंकि सारा संसार तो रामका नाम जपता है, पर राम हैं कि बैठे दिनरात भरतका नाम जपा करते हैं, । (४)

१. सपेम । २. यह अर्द्धाली राजापुरकी पोथीमें नहीं है ।

२२०७-८ इन्द्रः प्रभावं भरतस्य वीक्ष्य प्रोवाच वाक्यं स्वगुरुं महान्तम् ।
यथा च रामं भरतो न पश्येत्तथा प्रयत्नो भवता विधेयः ॥ —धर्मसंहिता
२२११-१२ तदा गुरुगुरुः प्राह सहस्राक्षोपि नेक्षते । मोहं त्यज सुरेश त्वमन्यथा स्वार्थता तव ॥—सत्योपाख्यान
२२१३-१४ द्रोहं मोहेन यस्तस्मिन्नाचरेदचिरेण सः । तत्तापसम्भवन्तापमाप्नुयात् ॥ —नैषध
साधुषु प्रहृतं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् । —भागवत

दो०—मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुबर - भगत - अकाज।
२२२० अजस लोक, परलोक दुख, दिन - दिन सोक-समाज॥ २१८॥
सुनु सुरेस! उपदेस हमारा। रामहिं सेवक परम पियारा।
मानत सुख सेवक - सेवकाई। सेवक - बैर, बैर अधिकाई। (१)
जद्यपि सम, नहिं राग, न रोषू। गहहिं न पाप - पुन्न, गुन - दोषू।
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ, सो तस फल चाखा। (२)
तदपि बिषम - सम करहिं बिहारा। अभगत - भगत - हृदय-अनुसारा[१]।
अगुन, अलेप, अमान, एक रस। राम सगुन भे भगत - प्रेम - बस। (३)
राम सदा सेवक - रुचि राखी। बेद - पुरान - साधु - सुर साखी।
अस जिय जानि, तजहु कुटिलाई। करहु भरत - पद प्रीति सुहाई। (४)

देखिए अमरपति! रामके भक्तके मार्गमें किसी प्रकारका भी रोड़ा अटकानेका विचार मनमें न आने देना। उससे संसार तो तुम्हारे नामपर थूकेगा ही (तुम्हारा अपयश तो होगा ही), साथ ही परलोक भी बिगड़ जायगा और निरन्तर रोते-पछताते रहना ही हाथ लगेगा ॥ २१८॥ देखिए देवराज! हमारा यह उपदेश गाँठ बाँध लो (पक्का समझ लो) कि राम अपने सेवक (भक्त)-से इतना अधिक प्यार करते हैं कि जो उनके सेवककी सेवा करने लगता है उसे तो वे और भी अधिक मानने लगते हैं, पर जो उनके सेवकसे वैर ठान बैठता है (१) उसे वे कभी क्षमा नहीं करते। यद्यपि वे सदा एकसे रहते हैं, उनके मनमें न किसीसे राग है न रोष और न वे किसीके पाप-पुण्य या गुण-दोष-पर ही कभी ध्यान देते हैं (क्योंकि) उन्होंने विश्वमें कर्म (-के फल)-का ऐसा पक्का नियम बना छोड़ा है कि जो जैसा करता है उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है। (२) फिर भी वे अपने भक्त और अभक्तकी भावनाके अनुसार उनके साथ कभी सम (अच्छा) और कभी विषम (कठोर) व्यवहार कर डालनेसे नहीं चूकते। उनपर न तो गुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) ही अपना प्रभाव डाल पाते हैं, न वे किसीसे लिप्त ही रहते हैं (किसीको अपना-पराया या अच्छा-बुरा समझते हैं) और न उनमें मान (अभिमान)-का ही नाम है। वे तो सदा एक-रस रहते हैं। फिर भी राम जो सगुण रूपमें दिखाई दे रहे हैं वह तो केवल भक्तोंके प्रेमके कारण ही सगुण होकर उतरे चले आए हैं। (३) वेद, पुराण, साधु और देवता सब इस बातके साक्षी हैं कि राम सदा अपने सेवककी इच्छाके अनुसार ही कार्य करते चले आए हैं। ऐसा अपने मनमें समझकर उनसे कपटकी चाल खेलनेकी बात छोड़कर भरतके चरणोंसे जा प्रेम करो। (४) देखिए सुरपाल (इन्द्र)! भरत एक तो रामके भक्त हैं; दूसरे, सदा दूसरोंका ही

१. भगत अभगत हृदय अनुसारा।

२२२१-२२ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥—भागवत
२२२२-२३ नहि विषमता तस्य कल्पवृक्षोपमो हरिः॥ —सत्योपाख्यान
नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः। —गीता
२२२४ स्वकर्मणा भवेद्दुःखं सुखं तेनैव कर्मणा। तस्माच्च पूज्यते कर्म सर्वं कर्मणि संस्थितम्॥—शिवपु०
२२२५ प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु। —कुमारसंभव
२२२६ रामो नारायणः साक्षात् सर्वदेवैश्च प्रार्थितः। पृथ्व्यां भारावताराय जातो दशरथात्स्वयम्॥
२२२७ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च वादिने। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥सत्यो०

दो०—राम-भगत, परहित-निरत, परदुख - दुखी, दयाल ।
२२३० भगत सिरोमनि भरत - तें, जनि डरपहु सुरपाल ।। २१९ ।।
सत्य - संध प्रभु सुर - हितकारी । भरत राम - आयसु - अनुसारी ।
स्वारथ - बिबस बिकल तुम होहू । भरत - दोस नहिं, राउर मोहू । (१)
सुनि सुरबर सुर-गुरु - बर - बानी । भा प्रमोद मन, मिटी गलानी ।
बरषि प्रसून, हरषि सुरराऊ । लगे सराहन भरत - सुभाऊ । (२)
ऐहि बिधि भरत चले मग जाहीं । दसा देखि मुनि - सिद्ध सिहाहीं ।
जबहिं राम कहि लेहिं उसासा । उमगत पेम मनहुँ चहुँ पासा । (३)
द्रवहिं, बचन सुनि, कुलिस - पषाना । पुरजन - पेम न जाइ बखाना ।
बीच बास करि, जमुनहिं आए । निरखि नीर, लोचन जल छाए । (४)
दो०—रघुबर -बरन बिलोकि बर, बारि, समेत - समाज ।
२२४० होत मगन बारिधि - बिरह, चढ़े बिबेक - जहाज ।। २२० ।।

हित करनेमें लगे रहते हैं; तीसरे, वे दूसरोंके दुःखसे दुखी होते रहते और दयालु हैं। इसलिये ऐसे भरतसे डरनेकी कोई बात नहीं है जो भक्तोंके सिरमौर हैं ।।२१९।। प्रभु राम तो स्वयं अपनी प्रतिज्ञा सत्य करते रहते और वही चाहते रहते हैं जिससे देवताओंका हित हो। इधर भरत भी वही करेंगे जो राम कहेंगे। आप तो केवल अपने स्वार्थकी सिद्धिमें बाधा पड़ती देखकर व्याकुल हुए जा रहे हैं। (पर यह समझ लीजिए कि) भरत आपको कुछ हानि पहुँचाने नहीं जा रहे हैं। यह तो आपके ही मनपर मोह (अज्ञान) आ चढ़ा बैठा है (जिससे ऐसा सोच बैठे हैं)।' (१) देवताओंके गुरु बृहस्पतिकी बात सुनकर इन्द्रको बड़ा सन्तोष हुआ और उनकी सारी चिन्ता भी मिट गई। तब इन्द्रने प्रसन्न होकर (भरतपर) पुष्प ला बरसाए और भरतके स्वभावकी बहुत-बहुत सराहना की। (२) भरत जिस प्रकार (राममें मन लगाए) चले जा रहे थे उनकी वह दशा देख-देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी तरसे पड़ रहे थे (कि हाय ! हम क्यों नहीं ऐसे भक्त बन पाए)। भरत जब-जब 'राम'का नाम ले-लेकर लम्बी-लम्बी साँसें खींचते थे तब-तब ऐसा लगता था मानो (साँसके साथ-साथ) चारों ओरसे प्रेम उमड़ा खिंचा चला आ रहा हो। (३) उनके (प्रेम तथा दुःखसे भरे) वचन सुन-सुनकर वज्र और पत्थर-तक पिघले जा रहे थे। (रामके लिये) उस समय अयोध्या-वासियोंका जो प्रेम था वह कहते नहीं बन सक रहा है। बीचमें एक बार ठहरकर भरत सीधे यमुनाके तीर-पर आ पहुँचे। यमुनाका (श्याम) जल देखकर (उन्हें रामके साँवले रंगका स्मरण हो आया जिससे) उनकी आँखें डबडबा आईं। (४) भरत और उनके साथके समाजने जब (यमुनाके जलका साँवला) रंग देखा तो उन्हें रामके शरीरके रंगका स्मरण हो आया जिससे रामके विरहके समुद्रमें डूबते-डूबते भरत विवेकके जहाजपर जा चढ़े। (वे रामके विरहमें बहुत व्याकुल हो चले थे पर फिर उन्होंने यह सोचकर अपनेको सँभाल लिया कि इस प्रकार धीरज खो बैठना ठीक नहीं

२२२९-३० गुरुरिन्द्रं शुभैर्वाक्यैर्बोधयामास सादरम् । प्रशंसां भरतस्यापि चकार बहुला मुदा ।। —अगस्त्यरा०
२२३३-३४ गुरोर्गरीयसीं वाणीं श्रुत्वा शक्रस्य मानसे । प्रमोदो बहुलो जातः प्रशंसां भरतस्य सः ।।
कृत्वा प्रसूनवृष्टिञ्च चकारानन्ददायिनीम् । —गरुडसंहिता
२२३६-३७ एवञ्च प्रयतस्तस्य श्रीरामं वदतो मुदा । वचो निशम्य विलपन्ति प्रस्तराः किन्तु नागराः।
२२३८ चित्रकूटगिरिं याति भरतो राघवं स्मरन् । मार्गे श्रीयमुनानीरं दृष्ट्वाभूत् प्रेमविह्वलः ।।वसिष्ठरा०

जमुन - तीर, तेहि दिन करि बासू । भयउ समय - सम सबहिं सुपासू ।
रातिहिं घाट - घाट - की तरनी । आईं अगनित जाहिं न बरनी । (१)
प्रात पार भे एकहि खेवा । तोषे, राम-सखा - की सेवा ।
चले नहाइ, नदिहिं सिर नाई । साथ निषाद - नाथ, दोउ भाई । (२)
आगे मुनिबर - बाहन आछे । राम - समाज जाइ सब पाछे ।
तेहि पाछे दोउ बंधु पयादे । भूषन - बसन - बेष सुठि, सादे । (३)
सेवक - सुहृद - सचिव - सुत साथा । सुमिरत लखन - सीय - रघुनाथा ।
जहँ - जहँ राम - बास - बिश्रामा । तहँ - तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा । (४)
दो०—मग - बासी नर-नारि, सुनि, धाम - काम तजि, धाइ ।
२२५० देखि सरूप, सनेह - बस , मुदित, जनम - फल पाइ ।। २२१ ।।
कहहिं सपेम एक, ऐक - पाहीं । राम - लखन सखि ! होहिं कि नाहीं ।
बय, बपु, बरन, रूप सोइ आली । सील - सनेह - सरिस, सम - चाली । (१)
बेष न सो सखि ! सीय न संगा । आगे अनी चली चतुरंगा ।

है ।) ।। २२० ।। उस दिन वे यमुनाके तटपर ही रुके रह गए । समयके अनुसार सब लोगोंके ठहरनेकी सारी व्यवस्था वहाँ ठीक कर दी गई । रातों रात सब घाटोंकी इतनी अधिक नावें वहाँ मँगवा जुटाई गईं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती (१) और प्रातःकाल होते ही सब एक ही खेवेमें पार उतार दिए गए । रामके सखा और केवटोंके सरदारकी इस सेवासे सबको बड़ा संतोष हुआ । केवट-सरदारके साथ दोनों भाइयोंने उतरकर यमुनामें स्नान किया और यमुनाको सिर नवाकर सब आगे बढ़ चले । (२) सबके आगे-आगे मुनियोंकी बढ़िया-बढ़िया सवारियाँ चली जा रही थीं और उनके पीछे-पीछे शेष सारा समाज चलता चला जा रहा था । सबसे पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण-वस्त्र पहने पैदल ही चले जा रहे थे । (३) उनके सेवक, मित्र और मंत्रीके पुत्र भी उनके साथ ही चल रहे थे । वे निरन्तर लक्ष्मण, सीता और रामका ही स्मरण करते चले जा रहे थे । बीच-बीचमें जहाँ-जहाँ रामने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ रुक-रुककर, वे उन स्थानोंको अत्यन्त प्रेमसे प्रणाम करते चले जा रहे थे । (४) (जब लोगोंने सुना कि भरत चले आ रहे हैं तो) मार्ग (के गाँवों)-में रहनेवाले सब स्त्री-पुरुष अपना-अपना घरका काम-धन्धा छोड़-छोड़कर दौड़े चले आ रहे थे और उनका दर्शन करके सब इसी बातपर प्रसन्न हुए जा रहे थे कि हमें जन्म लेनेका सारा फल अनायास हाथ आ लगा ।। २२१ ।। (ग्रामकी स्त्रियाँ बड़े प्रेमसे आपसमें एक दूसरेसे कहे जा रही थीं—) 'क्यों सखी ! ये कहीं राम-लक्ष्मण ही तो नहीं चले आ रहे हैं (क्योंकि) आली ! इनकी अवस्था, शरीर, रंग-रूप, शील, स्नेह और चाल-ढाल सब कुछ उन्हींके जैसी ही तो है । (१) पर सखी ! न तो इनका वेष वैसा (मुनियों-जैसा) है और न इनके साथ जानकी ही

२२४१-४४ तद्दिने यमुनातीरे ह्युषित्वा भरतोऽसा । यथाकालञ्चकाराशसम्भारान् प्रातरेव हि ।।
समाजसहितो तीर्त्वा प्रीतो गुहनिषेवया । स्नात्वा नत्वा नदीं यातो भ्रातरो सुहृदा सह ।।
२२४५-४६ कौसल्याद्या राजदारा वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः । छादयन्तो भुवं सर्वे पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।।
पादचारेण गच्छन्तं भरतं सर्वसैनिकाः । अनुजग्मुः ।। —अध्यात्मरामायण
२२४८-४९ रामवासस्थलं पश्यन् भरतो याति काननम् । त्यक्त्वा कार्याणि तं द्रष्टुं धावन्ति पुरुषाः स्त्रियः।।स०
२२५१-५४ काचित् काञ्चित् ब्रवीतिस्म सखीमौ रामलक्ष्मणौ । भवतो ह्यथवा नैव संदेहो भेदकारणात् ।।
प्रसन्नवदनौ नेमौ खेदपूरितमानसौ । सीताविरहितौ सेनासंयुतौ सरलौ शुभौ ।। —कात्यायनसं०

नहिं प्रसन्न-मुख, मानस खेदा। सखि! संदेह होइ एहि भेदा। (२)
तासु तरक, तिय-गन मन-मानी। कहहिं सकल, तोहि सम न सयानी।
ताहि[1] सराहि, बानी फुरि पूजी। बोली मधुर-बचन तिय दूजी। (३)
कहि सपेम सब कथा-प्रसंगू। जेहि बिधि राम-राज-रस-भंगू।
भरतहिं बहुरि सराहन लागी। सील, सनेह, सुभाय, सुभागी। (४)
दो०—चलत पयादे, खात फल, पिता-दीन्ह तजि राज।
२२६० जात मनावन रघुबरहिं, भरत-सरिस को आज॥ २२२॥
भायप, भगति, भरत-आचरनू। कहत-सुनत दुख-दूषन-हरनू।
जो कुछ कहब, थोर सखि! सोई। राम-बंधु, अस काहे न होई। (१)
हम सब सानुज भरतहिं देखे। भइन्हि धन्य जुबती-जन-लेखे।
सुनि गुन, देखि दसा, पछिताहीं। कैकइ-जननि-जोग सुत नाहीं। (२)
कोउ कह, दूषन रानिहिं नाहिन। बिधि सब कीन्ह, हमहिं जो दाहिन।
कहँ हम लोक-बेद-बिधि-हीनी। लघु तिय, कुल-करतूति-मलीनी। (३)

हैं। दूसरी बात यह है कि इनके आगे-आगे चतुरंगिणी (हाथी, घोड़े, रथ, पैदलवाली) सेना सजी चली जा रही है और इनके मुखपर वैसी प्रसन्नता भी नहीं दिखाई दे रही है। इनका मन तो बड़ा दुखी लग रहा है। इसी भेदके कारण ही सखी! (इनके राम-लक्ष्मण होनेमें) मुझे संदेह हुआ जा रहा है।' (२) अन्य स्त्रियोंको भी उसकी बात ठीक जँची और सब कह उठीं—'सचमुच तेरी-जैसी चतुर (हममें-से) कोई नहीं है।' उसकी प्रशंसा करती हुई और उसकी इस सत्य बातका आदर करती हुई दूसरी स्त्री मधुर वाणीसे उन्हें समझाने लगी (३) और उसने बड़े प्रेमसे वह सारी कथा कह सुनाई कि किस प्रकार रामके राजतिलकमें विघ्न आ पड़ा। यह कहकर वह सौभाग्यवती फिर भरतके शील, स्नेह और (त्यागी) भ्रातृभक्त स्वभावकी सराहना करती हुई कहने लगी—(४) 'ये अपने पिताका दिया हुआ राज्य छोड़-छाड़कर केवल फलपर दिन काट रहे हैं और पैदल चलकर रामको मनाने चले जा रहे हैं। आज भरत-जैसा दूसरा कौन (ऐसा प्यारा और भक्त भाई) ढूंढ़े मिलेगा?॥ २२२॥ भरतके भाईपन, भक्ति और आचरणका जो वर्णन करता और सुनता है उसके सारे दुःख और दोष मिट चलते हैं। देखो सखि! (भरतकी) जितनी भी प्रशंसा की जाय सब थोड़ी है। वे रामके भाई हैं न! तब ऐसे (साधु और भाईके भक्त) क्यों न होंगे? (१) हम सब युवतियाँ रामको और उनके छोटे भाई भरतको देखकर धन्य हो गईं।' भरतके गुण सुन-सुनकर और उनकी वह दशा देखकर सब पछताए जा रही थीं कि—'कैकेयी-जैसी (कुटिल) माँकी कोखसे ऐसा योग्य पुत्र कहाँ आ जनमा (नहीं होना चाहिए था)।' (२) एक कह उठी—'इसमें रानीका क्या दोष है? यह सब करतूत तो विधाताकी है। पर हमारे लिये तो यह ठीक ही हुआ, नहीं तो, कहाँ एक ओर हम लौकिक और वैदिक विधि न जाननेवाली, ओछे कुलोंवाली, मलिन कर्मवाली, बुरे देश और बुरे गाँवमें रहनेवाली सामान्य स्त्रियाँ, और कहाँ इनका दर्शन! हमने कोई बड़े ही पुण्य कर

१. तेहि।

२२५६-६० तां प्रशस्यापरा वाणीं मधुरां प्राह हे सखि। रामस्त्यक्त्वा पितुर्वाक्यादयोध्याराज्यमुत्तमम्॥
जगाम काननं घोरं तमागंतुं व्रजत्यसौ। पित्रा दत्तं परित्यज्य राज्यं पद्भ्यां फलान्यदन्॥वसि०सं०
२२६१-६२ स्नेहंभ्रातृगणे भक्तिं रामचन्द्रपदाब्जयोः। आचारं भरतस्यास्मिंल्लोके को गदितुं क्षमः॥—सूतसं०

बसहिँ कुदेस, कुगाँव, कुबामा। कहँ यह दरस, पुन्य - परिनामा।
अस अनंद, अचरज, प्रति-ग्रामा। जनु मरुभूमि कलप-तरु जामा (४)
दो०—करत दरस, देखत खुलेउ, मग लोगन्ह - कर भाग।
२२७० जनु सिंघल-बासिन्ह भयउ, विधि-बस सुलभ प्रयाग ॥ २२३ ॥
निज - गुन - सहित राम - गुन - गाथा। सुनत, जाहिँ सुमिरत रघुनाथा।
तीरथ, मुनि - आश्रम, सुर - धामा। निरखि, निमज्जहिँ, करहिँ प्रनामा। (१)
मन ही मन माँगहिँ बर एहू। सीय - राम - पद - पदम सनेहू।
मिलहिँ किरात, कोल, बनबासी। बैखानस, बटु, जती, उदासी। (२)
करि प्रनाम, पूछहिँ जेहि - तेही। केहि बन लखन - राम - बैदेही।
ते प्रभु - समाचार सब कहहीँ। भरतहिँ देखि, जनम-फल लहहीँ। (३)
जे जन कहहिँ, कुसल हम देखे। ते प्रिय राम - लखन - सम लेखे।
एहि बिधि बूझत सबहिँ सुबानी। सुनत राम - बन - बास - कहानी। (४)
दो०—तेहि बासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
२२८० राम - दरस - की लालसा, भरत - सरिस सब साथ ॥ २२४ ॥
मंगल सगुन होहिँ सब काहू। फरकहिँ सुखद बिलोचन - बाहू।

रक्खे थे जिसका हमें यह फल मिल रहा है।' गाँवँ-गाँवँमें इसी बातपर (उनके दर्शनका) ऐसा आनन्द और (अपने सौभाग्यपर) आश्चर्य हुआ जा रहा था मानो मरुभूमिमें कहींसे कल्पवृक्ष आ जमा हो। (४) भरतका दर्शन पाते ही मार्गके लोगोंका भाग्य ऐसे खुल गया मानो सिंहल (लंका)-वासियों-को संयोगसे प्रयागराज आ मिला हो ॥ २२३ ॥ अपने गुणोंके साथ-साथ रामके गुणोंकी कथा सुनते हुए और रामका स्मरण करते हुए भरत चलते चले जा रहे थे। बीचमें जहाँ कहीं भी कोई तीर्थ, मुनियोंका आश्रम या देवालय मिलता उनमें-से कहींपर स्नान करते और कहीं प्रणाम करते वे चलते चले जा रहे थे। (१) उन सबसे वे मन ही मन केवल एक ही वर माँगते चलते थे कि सीता और रामके चरण-कमलोंमें हमारा प्रगाढ प्रेम बना रहे। मार्गमें जो भी कोल, किरात वनवासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और उदासी मिलते थे (२) उन सबको प्रणाम कर-करके वे यही पूछते चलते थे कि—'लक्ष्मण, राम और सीता यहाँ किस वनमें रहते हैं ?' वे भी (बड़े प्रेमसे) प्रभु रामका सारा समाचार उन्हें बताते चलते थे। जो लोग (भरतको) यह बता देते थे कि हमने उन्हें कुशलपूर्वक देखा है, उन्हें भरत ऐसा प्रिय समझते थे जैसे वे ही राम-लक्ष्मण हों। इस प्रकार सबसे मधुर वाणीसे पूछते और (सबके मुँहसे) रामके वनवासकी कहानी सुनते वे बढ़े चले जा रहे थे। (४) उस दिन (बीचमें) विश्राम करके दूसरे दिन प्रात:काल ही वे रामका स्मरण करते हुए चल दिए क्योंकि रामके दर्शनोंकी लालसा साथवालोंके मनमें भी उतनी ही उत्कट थी जितनी भरतके मनमें थी ॥ २२४ ॥ सबको मंगल (अच्छे-अच्छे) शकुन हुए जा रहे थे और उनकी सुख-दायक (पुरुषोंकी दाईं और स्त्रियोंकी बाईं) आँखें और भुजाएँ फड़की पड़ रही थीं। भरतको और

२२६५-६७ काचिदाह न दोषोऽस्ति राज्ञ्या मे दक्षिणो विधि:। यस्माच्च सानुजो दृष्टो मयासौ कैकयीसुत:॥सु०रा०
२२७१ स्वकीर्तिं रामकीर्तिञ्च शृण्वन् व्रजति काननम्। ध्यात्वा श्रीभरतो रामं रामदर्शनलालस: ॥ रा०चि०च०
२२७५ आश्रमं तस्य धर्मज्ञ धार्मिकस्य महात्मन:। आचक्ष्व कतमो मार्ग: कियानिति च शंस मे॥वा०रा०
२२७८ एवं सम्पृष्टकुशलो भरतो राममनुस्मरन्। उषित्वा तदहे प्रात: जगामाश्रममुन्मुख: ॥ भरतरा०

भरतहिँ सहित-समाज उछाहू। मिलिहहिँ राम, मिटिहि दुख-दाहू। (१)
करत मनोरथ, जस जिय जाके। जाहिँ सनेह-सुरा सब छाके।
सिथिल अंग, पग मग डगि डोलहिँ। बिह्वल बचन पेम-बस बोलहिँ। (२)
राम-सखा तेहि समय देखावा। सैल-सिरोमनि सहज सुहावा।
जासु समीप सरित-पय-तीरा। सीय-समेत बसहिँ दोउ बीरा। (३)
देखि, करहिँ सब दंड-प्रनामा। कहि जय जानकि-जीवन रामा।
प्रेम-मगन अस राज-समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू। (४)

दो०—भरत-प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकइ न सेषु।
२२९० कबिहिँ अगम, जिमि ब्रह्मसुख, अह-मम-मलिन जनेषु॥ २२५॥

सकल सनेह-सिथिल रघुबर-के। गये कोस दुइ, दिनकर ढरके।
जल-थल देखि बसे, निसि बीते। कीन्ह गवन रघुनाथ-पिरीते। (१)
उहाँ राम रजनी-अवसेखा। जागे, सीय सपन अस देखा।
सहित-समाज भरत जनु आए। नाथ-बियोग, ताप तन ताए। (२)

उनके साथ-साथ समाजको (यह विश्वास और) आनन्द हो चला था कि राम अवश्य मिलेंगे और जहाँ उनके दर्शन हुए कि हमारे दुःखकी सारी तपन तत्काल मिट भागी। (१) जिसके मनको जो भाता था वह वैसी ही मनौती मनाए चला जा रहा था। सब लोग प्रेमकी मदिरामें मस्त हुए (प्रेमसे भरे) चले जा रहे थे। उनके अंग-अंग शिथिल हुए जा रहे थे, पैर डगमगाए-डगमगाए पड़ रहे थे। प्रेम इतना उमड़ा पड़ रहा था कि उनके मुखसे ठीक-ठीक शब्द नहीं निकल पा रहे थे। (२) उसी समय रामके सखा केवट-सरदारने स्वभावसे ही सुहावना (सदाबहार) दिखलाई देनेवाला वह पर्वतोंका शिरमौर 'कामद गिरि' (चित्रकूट पर्वत) भरतको दिखा बताया जिससे लगी हुई पयस्विनी (मन्दाकिनी)-के तीरपर सीताके साथ-साथ दोनों वीर भाई कुटिया छाकर निवास कर रहे थे। (३) 'कामद गिरि'को देखते ही 'सीतापति रामकी जय' चिल्लाकर सब दंड-प्रणाम कर उठे। सारा समाज प्रेमसे इतना पागल हो उठा मानो राम सचमुच अयोध्या लौटे चल रहे हों। (४) उस समय भरतके हृदयमें जैसा प्रेम उमड़ा पड़ रहा था उसका वर्णन जब शेषनाग-तक नहीं कर पा सकते तब कवि (तुलसीदास)-के लिये तो उसका वर्णन करना उसी प्रकार असंभव है जैसे अहंकार और ममतासे मलिन मनवाले मनुष्यके लिये ब्रह्मसुखका वर्णन करना॥ २२५॥ सब लोग रामके स्नेहमें इतनी सुध-बुध खोए बैठे थे कि (उनसे चला नहीं जा रहा था जिससे) दो कोस जाते-जाते दिन ढल चला। तब जल और स्थानका सुपास देखकर सब लोगोंने एक स्थानपर ठहरकर वह रात वहीं बिता डाली। रात बीत जानेपर रामके प्यारे भरत फिर उठ चले। (१) उधर (चित्रकूटपर) रात ढलनेसे पहले ही राम जाग उठे। सीताने रातको स्वप्न देखा कि 'रामके विरहकी तपनसे अपनी देह तपाए हुए भरत सारा समाज साथ लिए चले आ रहे हैं। (२) सबका

२२८२ सेनासमेतो भरतो यात्युत्साहसमन्वितः। नानामनोरथान् कुर्वन् श्रीरामप्रेमविह्वलः॥ भरतरा०
२२८५-८७ भरतं दर्शयामास चित्रकूटं गुहस्तदा। यत्समीपे पयस्विन्या नद्यास्तीरे महाबलौ॥
जानकीसहितौ रामलक्ष्मणौ वसतो मुने। दण्डप्रणामं कुर्वन्ति सर्वे दृष्ट्वा महागिरिम्॥
जय सीतापते नाथ जय राम वदन्ति च। तत्क्षणे भरतप्रेमावर्णनीयं मुनीश्वरैः॥ —कौण्डिन्यसं०
२२९०-९४ ददर्श जानकी स्वप्नं निशान्ते भरतः प्रियः। आगतो रामविरहतापतप्ततनुर्महत्॥
समाजसहितः श्वश्रूगणमत्यंतदुःखितम्॥ —वशिष्ठसंहिता

सकल मलिन - मन, दीन, दुखारी। देखीं सासु, आन अनुहारी।
सुनि सिय - सपन, भरे जल लोचन। भये सोच - बस सोच - बिमोचन। (३)
लखन ! सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।
अस कहि, बंधु - समेत नहाने। पूजि पुरारि, साधु सनमाने।
छंद—सनमानि सुर - मुनि, बंदि बैठे, उतर दिसि देखत भये।
२३०० नभ धूरि, खग - मृग भूरि भागे बिकल, प्रभु - आश्रम गये।
तुलसी, उठे, अवलोकि कारन काह, चित सचकित रहे।
सब समाचर किरात - कोलन, आइ, तेहि अवसर कहे ॥ [८]
सो०—सुनत सुमंगल बैन, मन - प्रमोद, तन पुलक - भर।
सरद-सरोरुह नैन, तुलसी, भरे सनेह - जल ॥ २२६ ॥
बहुरि सोच - बस भे सिय - रवनू। कारन कवन भरत - आगमनू।
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी। (१)

मन मुरझाया हुआ है, और सभी लोग बड़े दीन (विकल) और दुखी दिखलाई दे रहे हैं। सासुओंकी कुछ दूसरी ही (विधवाकी) दशा हो गई है।' सीताका स्वप्न सुनकर रामकी आँखें डबडबा आईं। सबकी चिन्ता हर लेनेवाले राम स्वयं चिन्तित हो उठे (३) (और बोले—) 'देखो लक्ष्मण ! यह स्वप्न कुछ अच्छा नहीं है। जान पड़ता है कोई बहुत बुरा समाचार आ सुनानेवाला है।' ऐसा कहकर उन्होंने और लक्ष्मणने (मन्दाकिनीमें) स्नान जा किया और शंकरकी पूजा करके साधुओंका भी सम्मान किया। (४) देवताओंका (पूजन) और मुनियोंकी वन्दना करके राम आकर बैठे ही थे कि उत्तर दिशाकी ओर वे देखते क्या हैं कि आकाशमें धूल चढ़ चली है, अनेक पशु और पक्षी (प्राण लेकर) घबराए रामके आश्रमकी ओर भागे-उड़े चले आ रहे हैं। (तुलसीदास कहते हैं कि) यह सब दृश्य देखकर रामका माथा ठनका और वे (यह देखनेके लिये) उठ खड़े हुए कि बात क्या है। उनका चित्त भी आश्चर्यसे चकित हो चला। इतनेमें ही कोल और किरातोंने उन्हें सब समाचार आ सुनाया (कि भरत अपने छोटे भाई शत्रुघ्नके साथ इधर ही बढ़े चले आ रहे हैं)। [८] तुलसीदास कहते हैं कि (भरतके आगमनके समाचारका) मंगल वचन सुनते ही रामका मन आनन्दित हो उठा, शरीर पुलकित हो उठा और उनके शरत्के कमलोंके समान सुन्दर नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलछला आए ॥ २२६ ॥ फिर तत्काल सीताके पति राम सोचने लगे कि—'भरत आ रहे हैं तो क्यों आ रहे हैं ?' इतनेमें ही एकने आकर बताया कि वे अपने साथ बहुत बड़ी चतुरंगिणी सेना भी लिए चले आ रहे हैं। (१) यह (सेनाके साथ आना)

२२९६-९८ सीताया अशुभं स्वप्नं श्रुत्वा शोकविलोपकः। बभूव नितरां दुःखी रामः सजललोचनः ॥
नायं शुभफलः स्वप्नो राघवः प्राह लक्ष्मणम्। श्रीरामलक्ष्मणौ स्नानं चक्रतुश्चन्द्रशेखरम् ॥
संपूज्य साधुसम्मानं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ —भरतसंहिता

२२९९-२३०२ नमस्कृत्य मुनीन् देवान् स्थितो यावद् रघूत्तमः। ददर्शोत्तरकाष्ठायां रजव्याप्तं नभस्तलम्॥
आश्रमांतिकमायान्ति व्याकुलाश्च खगा मृगाः। उत्थितो राघवो हेतुं ज्ञातुं यस्मिन्क्षणे तदा ॥
किराताः कथयामासुः समाचारं समागताः। —पुलस्त्यसंहिता

२३०३-४ श्रुत्वा सुमंगलं वाक्यं श्रीरामो हर्षितोऽभवत्। नयनेऽश्रुसमाकीर्णे मनो मोदयुतं तथा॥—अत्रिरा०

२३०५ पश्चात्तापं रघुश्रेष्ठं कथमत्र चकार ह। आगतो भरतो भ्राता त्यक्त्वायोध्यां मनोहराम्॥अगस्त्यसं०

सो सुनि, रामहिँ भा अति सोचू। इत पितु - बच, उत बंधु - सँकोचू।
भरत - सुभाउ समुझि मन - माहीँ। प्रभु चित, हित-थिति पावत नाहीँ। (२)
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे - महँ, साधु, सयाने।
२३१० लखन लखेउ प्रभु हृदय - खँभारू। कहत समय-सम, नीति-बिचारू। (३)
बिनु पूछे, कछु कहउँ गोसाँई। सेवक समय, न ढीठ ढिठाई।
तुम सर्बग्य - सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी। (४)

दो०—नाथ सुहृद, सुठि, सरल चित, सील - सनेह - निधान।
सब-पर प्रीति-प्रतीति, जिय, जानिय आपु समान॥ २२७॥

बिपई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़, मोह - बस होहिँ जनाई।
भरत नीति - रत, साधु, सुजाना। प्रभु - पद - प्रेम, सकल जग जाना। (१)
तेऊ आज राज - पद पाई। चले धरम - मरजाद मिटाई।
कुटिल कुबंधु, कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास ऐकाकी। (२)
करि कुमंत्र मन, साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू।

सुनकर रामको बड़ी चिन्ता हो चली कि 'इधर तो पिताके वचनका पालनका वन्धन है ही उधर भाई भरतका भी संकोच हो रहा है' (कि वेकहीं मुझ पर लौट चलनेका दवाव डालने न आ रहे हों) भरतका (प्रेम-भरा) स्वभाव मनमें समझकर रामके चित्तमें यह वात स्थिर नहीं हो पा रही थी कि हित किस वातमें है (पिताका वचन पालन करनेमें या भरतके प्रेमकी रक्षा करके उनकी वात माननेमें)। (२) किन्तु तुरन्त यह समझकर वे निश्चिन्त हो गए कि भरत हमारे कहनेमें हैं, सज्जन हैं (हठ नहीं करेंगे) और ज्ञानी हैं (उचित वात स्वीकार कर लेंगे)। लक्ष्मणने देखा कि प्रभु रामके हृदयमें कुछ उथल-पुथल-सी मच उठी है। तव वे समयके अनुसार नीतिकी वात छेड़ वैठे–(२) 'स्वामी ! मैं विना पूछे ही वोलने लगा हूँ (क्षमा कीजिएगा), क्योंकि सेवक यदि विशेष समय आ पड़नेपर ढिठाई भी कर वैठे तो ढीठ नहीं माना जाता। देखिए स्वामी ! आप तो सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं (सब कुछ जानते हैं)। मैं आपका अनुगामी (सेवक) ठहरा। अतः, मेरी समझमें जो कुछ आ रहा है वही मैं कहे दे रहा हूँ। (४) देखिए नाथ ! आप वड़े सहृदय और सरल चित्त-वाले हैं, शील (दूसरेके गुणका आदर करना) और स्नेह तो आपमें इतना भरा है (शील और स्नेहके तो आप इतने वड़े भांडार ही हैं) कि आप सबको अपने ही समान समझकर सबसे प्रेम करने लगते हैं और सबका विश्वास कर वैठते हैं॥ २२७॥ स्वामी ! (वड़ोंकी वात तो जाने दीजिए), किसी मूढ़ और विषयी प्राणीको भी प्रभुता मिल जाय तो फिर देखिए उसका पैर धरतीपर नहीं पड़ पाता। (उसमें इतना अभिमान और अज्ञान आ भरता है कि) उसके मनकी खोट (कुटिलता) छिपाए नहीं छिपती (प्रकट हो जाती है)। यद्यपि भरत वड़े नीतिवान्, सज्जन और ज्ञानी हैं और सारा संसार जानता है कि आपके चरणोंमें भी उनकी सदा प्रीति ही रहती है (१) पर वे भी आज राजपद पा वैठे हैं, इसलिये वे आज धर्मकी सारी मर्यादाएँ उलट चले हैं। (राजमदके कारण वे) कुटिल (दुष्ट) और कुबन्धु (शत्रु) हो गए हैं। वे समझ वैठे हैं कि राम वनमें अकेले हैं, (२) इसीलिये मनमें वैर ठानकर समाज (सेना आदि) इकट्ठा करके यहाँ चले आ रहे हैं कि (हम लोगोंको

२३०६-७ कश्चिदागत्य सर्वेशं प्राह सेना समागता। तच्छ्रुत्वा राघवः शोकं चकार जगदीश्वरः॥–वशि० रा०
२३१५ अवंशप्रभवो राजा मूर्खपुत्रो हि पंडितः। अधनी च धनं प्राप्य तृणवन्मन्यते जगत्॥–हितोपदेश

२३२० कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई। (३)
जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ-बाजि-गजाली।
भरतहिं दोस देइ को जाए। जग बौराइ राजपद पाए। (४)
दो० - ससि गुरु-तियगामी, नहुष, चढ़ेउ भूमि - सुर - जान।
लोकबेद - तें बिमुख भा, अधम, न बेन[1] - समान ॥ २२८ ॥
सहसबाहु[2], सुरनाथ[3], त्रिसंकू[4]। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु - रिन रंच न राखब काऊ। (१)
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम, जानि असहाई।
समुझि परिहि सोउ आज बिसेखी। समर, सरोष राम - मुख पेखी। (२)
एतना कहत नीति - रस भूला। रन-रस-बिटप पुलक-मिस फूला।
२३३० प्रभु - पद बंदि, सीस - रज राखी। बोले, सत्य, सहज बल भाखी। (३)
अनुचित, नाथ! न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा[5] न थोरा।

यहीं ढेर करके) अपना राज्य अकंटक कर लें। ये दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) कुछ ऐसे ही कुचक्र रचकर सेना चढ़ाए चले आ रहे हैं। (३) यदि इनके मनमें कोई कपट और कुचाल न होती तो रथ, हाथी और घोड़े यहाँ किसे दिखाने लाते? (यदि केवल भेंट करने ही आना था तो सीधे अकेले चले आते; हाथी, घोड़े, रथ आदि लेकर आनेकी क्या आवश्यकता थी)। पर, भरतको ही क्यों दोष दिया जाय, राज-पद पाकर सारा संसार ही पागल हो उठता है। (४) देखिए, (राज-पद पानेसे ही) चन्द्रमा अपने गुरु (बृहस्पति)-की पत्नी (तारा)-को ले भागा था, राजा नहुष भी (राजमदके कारण ब्राह्मणोंसे कन्धा लगवाकर) पालकीपर चढ़ चले थे और राजा वेनके समान अधम तो कोई हुआ ही नहीं जिसने न तो लोक-सम्मत ही आचरण किया न वेदसम्मत ही ॥२२८॥ सहस्रबाहु, इन्द्र और त्रिशंकु आदिमें कौन ऐसा है जिसे राजमदने बदनाम न कर डाला हो। भरतने भी ठीक ही सोचा कि शत्रु और ऋणको तनिक-सा भी नहीं बचा रहने देना चाहिए। (१) हाँ, भरतने एक ही काम अच्छा नहीं किया कि रामको असहाय समझ लिया और यही समझकर उन्हें नीचा दिखाने यहाँतक चले आए। पर आज युद्धमें जब वे रामका क्रोधपूर्ण मुख देख लेंगे तब उनकी आँख खुल जायँगी और उनकी भली भाँति समझमें आ जायगा (कि रामको अकेला समझना कितनी बड़ी भूल थी)।' (२) इतना कहते-कहते वे नीति (विवेक) भूल चले (और उन्हें रोमांच हो आया) मानो वीर-रसका वृक्ष ही (रोमांचके रूपमें) फूल उठा हो। फिर उन्होंने प्रभु (राम)-के चरणोंमें प्रणाम करके और उनकी चरण-रज माथे चढ़ाकर अपने सच्चे और स्वाभाविक बलका परिचय देते हुए कहा—(३) 'नाथ! मेरे कहनेका बुरा न मान बैठिएगा। भरतने हमारे साथ

१. राजा वेन सब ब्राह्मणोंसे अपनी ही पूजा कराना चाहता था। २. सहस्रबाहु भी जमदग्निको मारकर उनकी कामधेनु गौ छीन भागा था। ३. इन्द्रने अहल्याका शील भंग किया था। ४. त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाना चाहता था। ५. उपचार।

२३१८-२० सम्पन्नं राज्यमिच्छँस्तु व्यक्तं प्राप्याभिषेचनम्। आवां हन्तुं समभ्येति कैकेय्या भरतः सुतः॥वा०रा
२३२२ कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितः —सुभाषित
२३२३ गर्वितो बलवांश्चापि नहुषो वरसंश्रयात्। —महाभारत
२३२६ ऋणशेषश्चाग्निशेषः शत्रुशेषस्तथैव च। पुनः पुनः प्रवर्तन्ते तस्माच्छेषं न शेषयेत्॥—सुभाषित
२३२७-२८ एकाकिनं प्रभुं ज्ञात्वा नादरम्भरतो व्यधात्। अनौचित्यफलं शीघ्रं लप्स्यतेऽत्र न संशयः ॥अग०सं०

कहँ लगि सहिय, रहिय - मन मारे। नाथ साथ, धनु हाथ हमारे। (४)
दो०—छत्रि जाति, रघुकुल-जनम, राम - अनुग, जग जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच, को धूरि - समान ।। २२९ ।।
उठि, कर जोरि, रजायसु माँगा। मनहुँ बीर - रस सोवत जागा।
बाँधि जटा सिर, कसि कटि भाथा। साजि सरासन - सायक हाथा। (१)
आज राम - सेवक - जस लेऊँ। भरतहिं, समर - सिखावन देऊँ।
राम - निरादर - कर फल पाई। सोवहु समर - सेज दोउ भाई। (२)
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू।
२३४० जिमि करि-निकर - दलइ, मृग-राजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू। (३)
तैसेहि भरतहिं सेन - समेता। सानुज निदरि, निपातउँ खेता।
जौं सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन, राम - दोहाई। (४)
दो०—अति सरोष माखे लखन, लखि, सुनि, सपथ - प्रवान।
सभय लोक, सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ।। २३० ।।

कुछ कम बुराई नहीं की है (उन्हींके कारण तो हमें आज ये दिन देखने पड़े हैं)। अब बताइए कि जब आप हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथमें है तब कहाँतक यह सब सहा जाय और अपना मन कहाँतक दबाए रक्खा जाय। (४) सारा संसार जानता है कि मैं क्षत्रिय हूँ, मेरा जन्म रघुकुलमें हुआ है और मैं रामका अनुगामी सेवक हूँ। बताइए, धूलके समान नीच तो कोई पदार्थ नहीं हो सकता, पर उसपर भी ठोकर लगा दी जाय तो वह भी सिरपर आ चढ़ती है' ।। २२९ ।। (यह कहकर) लक्ष्मणने उठकर रामको हाथ जोड़कर (लड़ने जानेकी) आज्ञा माँगनी चाही मानो सोता हुआ वीररस ही जाग खड़ा हुआ हो। सिरकी जटा लपेटकर, कमरमें तूणीर कसकर और हाथोंमें धनुष-बाण सँभालकर (वे बोले—)। (१) 'आज मैं जाकर रामका सेवक होनेका भी यश कमाए लेता हूँ और भरतको भी सिखाए देता हूँ कि युद्धमें कैसे लड़ा जाता है। रामका निरादर करनेका फल भोगकर तुम दोनों (भरत-शत्रुघ्न) भाई जाकर रण-शय्यापर सदाके लिये पड़ रहो (रणमें प्राण दे डालो)। (२) यह भी अच्छा हुआ कि (अयोध्याका) सारा समाज उठा चला आया है। आज मैं जी भरकर सारा पिछला क्रोध (बैर) निकाले लेता हूँ। जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह पछाड़ डालता है और जैसे लवेको बाज झपट दबोचता है (३) वैसे ही भरतको, उनकी सेनाको और उनके छोटे भाई शत्रुघ्नको ललकारते हुए उन्हें भरे मैदान पछाड़े डालता हूँ। इस समय यदि स्वयं शंकर भी उनकी सहायता करने चले आवें तो भी मैं रामकी सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि उन्हें (भरत-शत्रुघ्नको) रण-भूमिसे जीवित नहीं लौटने दूँगा।' (४) लक्ष्मणका क्रोधसे तमतमाया हुआ मुँह जिसने भी देखा और जिसने भी उनकी यह घोर प्रतिज्ञा सुनी वे सब तथा लोकपाल भयसे घबराकर भाग खड़े होनेकी तैयारी करने लगे (कि कहीं जौके साथ घुन भी न पिस जाय, कहीं हम भी लपेटमें न आ जायँ)

२३३४ पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति। स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः।।—शिशुपालवध
२३३६-४२ संग्रामायमरिर्वीर भरतो वध्य एव हि। भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव ।।
पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते। पूर्वापकारी भरतस्त्यागे धर्मश्च राघव ।।
एतस्मिन्निहते कृत्स्नामनुशाधि वसुंधराम्। अद्य पुत्रं हतं संख्ये कैकेयी राज्यकामुका ।।
मया पश्येत्सुदुःखार्ता हस्तिभिन्नमिव द्रुमम्। कैकेयीञ्च वधिष्यामि सानुबंधांसबांधवाम् ।।वा०रा०

जग भय - मगन, गगन भइ बानी । लखन - बाहु - बल बिपुल बखानी ।
तात ! प्रताप - प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ, को जाननिहारा । (१)
अनुचित - उचित काज किछु होऊ । समुझि करिय, भल कह सब कोऊ ।
सहसा करि, पाछे पछिताहीं । कहहिं बेद - बुध, ते बुध नाहीं । (२)
सुनि सुर - बचन, लखन सकुचाने । राम - सीय, सादर सनमाने ।
२३५० कही तात ! तुम नीति सुहाई । सब - तें कठिन राज-मद भाई । (३)
जो अँचवत, मातहिं नृप तेई । नाहिंन साधु - सभा जेहि सेई ।
सुनहु लखन ! भल भरत - सरीसा । बिधि-प्रपंच-महँ सुना, न दीसा । (४)
दो०—भरतहिं होइ न राज-मद , बिधि - हरि - हर - पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि , छीर - सिंधु बिनसाइ ॥ २३१ ॥
तिमिर, तरुन तरनिहिं मकु गिलई । गगन, मगन मकु मेघहि मिलई ।
गोपद - जल, बूड़हिं घट - जोनी । सहज छमा, बरु छाँड़इ छोनी । (१)

॥ २३० ॥ (लक्ष्मणकी प्रतिज्ञा सुनकर) सारा जगत् थर्रा उठा । तभी लक्ष्मणके बाहु-बलकी बहुत सराहना करती हुई यह आकाशवाणी सबको सुनाई दे गई—'देखो लक्ष्मण ! तुमारे प्रताप और प्रभावको न कोई जान पा सका है न कोई बता पा सकता है । (१) पर जो कुछ भी उचित या अनुचित करना हो वह यदि समझ-बूझकर किया जाय तभी उसकी प्रशंसा होती है । वेदका भी यही मत है और विद्वान् लोग भी यही कहते हैं कि जो मनुष्य बिना सोचे-समझे, हड़बड़ीमें कोई काम कर बैठता है और (काम बिगड़ जानेपर) पीछे हाथ मल-मलकर पछताने लगता है, वह बुद्धिमान् नहीं समझा जाता ।' (२) यह देववाणी सुनकर लक्ष्मण कुछ सकुचा (झेंप) गए । राम और जानकीने बड़े प्रेमके साथ उनकी सराहना की (और रामने कहा—) 'लक्ष्मण ! तुमने बात तो बड़ी ठीक नीतिको ही कही है । सचमुच ! संसारमें यदि कोई सबसे बुरा मद है तो राजमद ही है । (३) पर राजमद (रूपी मदिरा)-का आचमन करके (पाकर) वे ही राजा मतवाले हुआ करते हैं जिन्होंने कभी साधुओंकी सत्संगति नहीं की । देखो लक्ष्मण ! जहाँतक भरतकी बात है, उनके समान श्रेष्ठ पुरुष न तो ब्रह्माकी सृष्टिमें हुआ हो सुना गया है और न कहीं देखा ही गया है । (४) भरतको तो (यह अयोध्याका राज्य क्या,) यदि ब्रह्मा, विष्णु और महादेवका पद भी दे दिया जाय तब भी उन्हें राजमद छू नहीं पा सकता । भला कहीं काँजी (खटाई)-के छींटे मारनेसे क्षीर-समुद्र फटा करता है ? ॥ २३१ ॥ देखो, अन्धकार भले ही (दोपहरके) प्रचण्ड सूर्यको निगल जाय, सारा आकाश भले ही बादलमें समाकर लुप्त हो जाय, गौके खुर-जितने नन्हेंसे गढ़े(-भर जल)-में भले ही अगस्त्य (जिन्होंने एक आचमनमें समुद्र

२३४७ उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यजातम् । परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ॥ –भर्तृहरि०
२३४८ सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥ –किरातार्जुनीय
२३४९ लक्ष्मणः प्रविवेशेव स्वानि गात्राणि लज्जया ।
२३५०-५४ मन्येहमागतोऽयोध्यां भरतो भ्रातृवत्सलः । मम प्राणैः प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ।
श्रुत्वा प्रव्राजितं मां हि जटावल्कलधारिणम् । जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः । द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथागतः ॥
विकृतिं नैव गच्छन्ति संगदोषेण साधवः । क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि महतां विकृतिः कुतः॥वा०रा०

मसक - फूँक, मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृप - मद भरतहिं भाई ।
लखन ! तुम्हार सपथ, पितु - आना । सुचि, सुबंधु, नहिं भरत - समाना ।
सगुन-खीर, अवगुन - जल ताता । मिलइ रचइ, परपंच बिधाता ।
२३६० भरत हंस, रबि - बंस - तड़ागा । जनमि, कीन्ह गुन-दोप-बिभागा । (३)
गहि गुन-पय, तजि अवगुन - वारी । निज जस, जगत कीन्हि उजियारी ।
कहत भरत - गुन - सील - सुभाऊ । पेम - पयोधि - मगन रघुराऊ । (४)
दो०—सुनि रघुबर-बानी बिबुध , देखि भरत - पर हेत ।
सकल सराहत, राम - सों , प्रभु को कृपानिकेत ।। २३२ ।।
जौं न होत जग, जनम भरत - को । सकल धरम-धुर, धरनि धरत को ।
कबि-कुल-अगम भरत - गुन - गाथा । को जानइ, तुम बिनु रघुनाथा । (१)
लखन - राम - सिय सुनि सुर - बानी । अति सुख लहेउ, न जाइ बखानी ।
इहाँ भरत, सब - सहित - सहाए । मंदाकिनी पुनीत नहाए । (२)
सरित - समीप राखि सब लोगा । माँगि मातु - गुरु - सचिव-नियोगा ।

पी डाला था) डूब जायँ, पृथ्वी भले ही अपनी स्वाभाविक क्षमा-शीलता छोड़ दे, (१) मच्छड़की फूँकसे भले ही सुमेरु पर्वत उड़ जाय, पर भाई ! भरतको राजमद कभी नहीं सता पा सकता । देखो लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी सौगन्ध और पिताकी दोहाई (आन) देकर कहता हूँ कि भरत-जैसा सच्चा और भला भाई दूसरा कोई हो नहीं सकता । (२) देखो भाई ! विधाताने सद्गुणके दूधमें अवगुणका जल मिलाकर इस सृष्टिकी रचना की है (सृष्टिके प्रत्येक पदार्थमें गुण और अवगुण दोनों मिले रहते हैं) पर सूर्यवंशके सरोवरमें भरत ही ऐसे हंस बनकर आ जनमे हैं कि गुण और दोष दोनोंको अलग-अलग करके (३) गुणका दूध ग्रहण करके और अवगुणका जल छोड़कर भरतने संसारमें अपना उज्वल यश प्रकट कर दिखाया है (भरतमें केवल गुण ही गुण हैं, अवगुण एक भी नहीं) ।' इस प्रकार भरतके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करते-करते प्रेमके समुद्रमें राम डूब चले (प्रेमसे भर उठे) । (४) रामकी यह बात सुनकर और भरतपर उनकी कृपा देखकर सब देवता उनकी सराहना करते हुए कहने लगे—'कृपाके धाम राम-जैसा स्वामी संसारमें और कहाँ ढूँढे मिल पावेगा ।।२३२।। यदि संसारमें भरतका जन्म न हुआ होता, तो इस पृथ्वीपर धर्मकी धुरी सँभालता कौन ? राम ! भरतके गुणोंका जो रहस्य कवि लोग भी नहीं जान पा सकते उन्हें आपको छोड़कर दूसरा जान कौन पा सकता है ?' (१) देवताओंकी यह वाणी सुनकर राम, लक्ष्मण और सीताको इतना अधिक सुख मिला कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इधर भरतने और उनकी सेनाने पहले तो मंदाकिनीकी पवित्र धारामें स्नान जा किया, (२) फिर सब लोगोंको वहीं नदीके तीरपर छोड़कर, माता, गुरु और

२३५८ शुचिमाप्तं प्रियं चैव भरतेन समं क्वचित् । न प्रपश्यामि सौमित्रे प्रतिश्रुत्य ब्रवीम्यहम् ।। महा०
२३५९-६१ नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् । विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ।।सुभाषित
२३६३-६४ आकर्ण्य वाणीं रघुनन्दनस्य स्नेहं च दृष्ट्वा भरते तु लेखाः ।
सर्वे प्रशंसन्ति प्रभोः स्वभावं श्रीरामचन्द्रस्य कृपाकरस्य ।।
२३६५ अपिचेज्जननं न स्यात् भरतस्य महात्मनः । बिभृयात्को भरं कृत्स्नं धर्मस्य जगतीतले।।अग०सं०
२३६७ देववाणीं समाकर्ण्य सीतालक्ष्मणसंयुतः । रामचन्द्रः सुखं लेभे चित्रकूटविहारकृत् ।।पुल०सं०
२३६९-७० स चित्रकूटे तु गिरौ निशम्य रामाश्रमं पुण्यजनोपपन्नम् ।
गुरुन सार्धं त्वरितो जगाम पुनर्निवेश्यैव चमूं महात्मा ।। —वाल्मीकीयरामायण

२३७० चले भरत, जहँ सिय - रघुराई। साथ निषाद - नाथ, लघु भाई। (३)
समुझि मातु - करतव सकुचाहीं। कुतरक कोटि करत[1] मन - माहीं।
राम - लखन - सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। (४)
दो० - मातु-मते-महँ मानि मोहिं, जो कछु कहहिं सो थोर।
अघ-अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥ २३३॥
जौ परिहरहिं मलिन - मन जानी। जौ सनमानहिं सेवक मानी।
मोरे सरन राम - की पनहीं। राम सुस्वामि, दोस सब जनहीं। (१)
जग जस - भाजन चातक - मीना। नेम - पेम निज निपुन, नवीना।
अस मन गुनत, चले मग जाता। सकुच - सनेह - सिथिल सब गाता। (२)
फेरति मनहुँ मातु - कृत खोरी। चलत भगति - बल धीरज - धोरी।
२३८० जब समुझत रघुनाथ - सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ। (३)
भरत - दसा तेहि अवसर कैसी। जल - प्रवाह जल-अलि-गति जैसी।
देखि भरत - कर सोच - सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू। (४)

मंत्रियोंसे आज्ञा लेकर केवटोंके सरदार और छोटे भाई शत्रुघ्नके साथ भरत उस ओर बढ़ चले जिधर राम और जानकी रहते थे। (३) अपनी माताकी करतूनका ध्यान कर-करके भरत बड़े झिझके जा रहे थे और मनमें इसी उधेड़बुनमें पड़े हुए थे कि—'कहीं ऐसा न हो कि मेरा नाम सुनते ही राम, लक्ष्मण और सीता वहाँसे उठकर कहीं और चल दें। (४) यदि माताकी कुचालमें वे मेरा भी हाथ समझ बैठे होंगे, तब तो वे जो कुछ भी करें वह थोड़ा ही है। पर यदि वे समझते हों कि भरत हमसे कभी ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता तो मेरे पाप और अवगुण क्षमा करके वे मुझपर प्रेम दिखावेंगे ही॥ २३३॥ चाहे राम मुझे खोटे मनवाला समझकर छोड़ दें चाहे अपना सेवक मानकर मुझसे प्यार करें (वे जैसा समझें वैसा करें) पर मैं तो रामकी जूतियोंकी ही शरणमें हूँ (मुझे तो उनकी कृपाका ही भरोसा है)। राम तो श्रेष्ठ स्वामी हैं ही, जो कुछ दोष है वह सब सेवकका (मेरा) ही है। (१) संसारमें पपीहा और मछली सचमुच सराहनीय हैं जो अपने नियम और प्रेममें सदा सन्नद्ध और नये बने रहते हैं।' यही सब मनमें सोचते हुए भरत मार्गमें चले चले जा रहे थे। संकोच (कि कैकेयीके कुचालके कारण मुझे वे न जाने क्या समझे बैठे हों गे) और (रामके लिये) स्नेह (-से शिथिल हो जाने)-के कारण उनके पैर आगे नहीं बढ़ पा रहे थे। (२) माताने जो कुचाल की थी वह उन्हें पीछे धकेलती जा रही थी, पर रामकी भक्तिके बलपर धीरजकी धुरी सँभालनेवाले (धैर्यवान्) भरत आगे बढ़ते चले जा रहे थे। जब-जब वे रामके स्वभावका ध्यान करते थे तब-तब उनके पैर मार्गमें हड़बड़ (झट-झट) पड़ रहे थे। (३) उस समय (कभी धीरे चलते, कभी वेगसे चलते हुए) भरतकी दशा ऐसी हो गई थी जैसे जलके प्रवाहमें जल-भौंरा (कभी वेगसे आगे, कभी रुककर धीरे) चलता है। उस समय भरतकी चिन्ता और उनका स्नेह देखकर केवट अपनी देहकी सुध-बुध भूल

१. करत कुतरक कोटि मन माहो। २. रामहिंकी।

२३७१-७४ मत्कृते व्यसनं प्राप्तो लोकनाथो महाद्युतिः। सर्वान कामान् परित्यज वने वसति राघवः॥
२३७५-७६ इति लोकसमाक्रुष्टः पादेष्वद्य प्रसादयन्। रामं तस्य च पतिष्यामि सीताया लक्ष्मणस्य च॥ वा० रा०

दो०—लगे होन मंगल सगुन, सुनि, गुनि कहत निषाद।
मिटिहि सोच, होइहि हरष, पुनि परिनाम बिषाद ॥ २३४ ॥

सेवक - बचन सत्य सब जाने। आश्रम - निकट जाइ नियराने।
भरत दीख, बन - सैल - समाजू। मुदित, छुधित जनु पाइ सुनाजू। (१)
ईति - भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप - पीड़ित, ग्रह भारी।
जाइ सुराज - सुदेस सुखारी। होहिं, भरत - गति तेहि अनुहारी। (२)
राम - बास, बन संपति - भ्राता। सुखी प्रजा, जनु पाइ सुराजा।
२३९० सचिव बिराग, बिबेक नरेसू। बिपिन, सुहावन - पावन देसू। (३)
भट जम - नियम, सैल रजधानी। सांति, सुमति, सुचि, सुंदर रानी।
सकल अंग - संपन्न सुराऊ। रामचरन - आश्रित चित - चाऊ। (४)

दो०—जीति मोह - महिपाल दल, -सहित, बिबेक-भुआल।
करत अकंटक राज पुर, सुख, संपदा, सुकाल ॥ २३५ ॥

चला। (४) उस समय (जिधर देखो उधर) मंगल-सूचक शकुन होने लगे थे, जिन्हें देख-देखकर और विचार-विचारकर केवट कहने लगा—'आप घबराइए मत। आपकी चिन्ता मिटकर रहेगी और आपको हर्ष भी होगा। हाँ, अन्तमें कुछ बाधा खड़ी हो सकती है' ॥ २३४ ॥ भरतने समझ लिया कि सेवक केवट जो कह रहा है ठीक ही कह रहा है। तबतक तो वे आश्रमके समीप ही जा पहुँचे थे। भरतने जब वहाँके वन और पर्वत देखे, तो वे इतने प्रसन्न हुए मानो किसी भूखेको स्वादिष्ट भोजन मिल गया हो। (१) जैसे अच्छे राजा (राज्य-व्यवस्था)-के सुन्दर देशमें पहुँचकर ईति[1] (अकाल), तीनों प्रकारके ताप[2] और दुष्ट ग्रहोंकी पीडासे पीडित प्रजा सुखी हो उठती है, वैसी ही दशा उस समय भरतके चित्तकी भी हुई चली जा रही थी (भरत बड़े प्रसन्न हुए चले जा रहे थे)। (२) रामके आ बसनेसे वह वन ऐसा हरा-भरा और फल-फूलसे लदकर लहलहा उठा था जैसे अच्छा राजा पाकर प्रजा सुखी हो जाती है। वैराग्य ही उस वनके राज्यका मंत्री था, विवेक ही राजा था, वन ही सुन्दर और पवित्र देश था। (३) यम[3], और नियम[4] ही वहाँके सैनिक (योद्धा) थे, पर्वत ही राजधानी था, शान्ति, सुमति और शुचि ही (विवेक राजाकी) सुन्दर रानियाँ थीं। श्रीरामचन्द्रके चरणोंमें आश्रित रहनेसे अपने सम्पूर्ण अंगोंमे संपन्न इस विवेक (-रूपी-राजा -के चित्तमें बड़ा चाव (उमंग) भी भरा हुआ था। (४) यह विवेक-रूपी राजा, सेना-सहित मोह (अज्ञानता)-रूपी राजाको जीतकर इस (तपोवन-रूपी) नगरमें बैठा अकंटक राज्य कर रहा था, जिससे

१. ईति : अकाल=अतिवृष्टिरनावृष्टि: शलभा: मूषका: शुका:। प्रत्यासन्नाश्च राजान: षडेता ईतय: स्मृता: ॥ [अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियाँ, चूहे, सुग्गे तथा राजाओंका आक्रमण—ये छओं ईतियाँ मानी जाती हैं।] २. त्रिताप : १. दैहिक, (शरीरमें रोगादिका कष्ट) २. दैविक : आकस्मिक दुर्घटनाएँ, और भौतिक : दूसरे जीवोंके द्वारा प्राप्त कष्ट। ३. यम=अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (दान न लेना)। ४. नियम = शौच (पवित्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान (ईश्वरकी उपासना)।

२३८५ एवं स विलपंस्तस्मिन् वने दशरथात्मज:। ददर्श महतीं पुण्यां पर्णशालां मनोरमाम् ॥वा०रा०
इत्यद्भुतप्रेमरसाप्लुताशयो विगाढचेता रघुनाथभावने।
आनन्दजाश्रुस्नपितस्तनान्तर: शनैरवापाश्रमसन्निधिं हरे: ॥ —अध्यात्मरामायण

बन - प्रदेस, मुनि - बास घनेरे। जनु पुर - नगर - गाउँ गन - खेरे।
बिपुल, बिचित्र, बिहग - मृग नाना। प्रजा - समाज न जाइ बखाना। (१)
खगहा, करि, हरि, बाघ, बराहा। देखि महिष - बृष - साज सराहा।
बैर बिहाय, चरहिं एक संगा। जहँ - तहँ, मनहुँ सेन चतुरंगा। (२)
झरना झरहिं, मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध-बिधि बाजहिं।
२४०० चक, चकोर, चातक, सुक, पिक-गन। कूजत मंजु मराल, मुदित मन। (३)
अलि - गन गावत, नाचत मोरा। जनु सुराज, मंगल चहुँ ओरा।
बेलि - बिटप - तृन सफल, सफूला। सब समाज मुद - मंगल - मूला। (४)
दो०—राम - सैल-सोभा निरखि, भरत - हृदय अति प्रेम।
तापस, तप-फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥ २३६॥
तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत - सन भुजा उठाई।
नाथ! देखियहि बिटप बिसाला। पाकरि, जंबु, रसाल, तमाला। (१)
जिन्ह तरुबरन - मध्य बट सोहा। मंजु, बिसाल, देखि मन मोहा।
नील - सघन पल्लव, फल लाला। अबिरल छाँह, सुखद सब काला। (२)
मानहुँ तिमिर - अरुनमय रासी। बिरची बिधि, सकेलि सुषमा-सी[1]।

चारों ओर सुख, सम्पत्ति और सुकाल व्याप्त था॥ २३५॥ उस वनमें जो बहुतसे मुनियोंके आश्रम आदि थे, वे ही पुर, नगर, गाँवँ और खेड़े (छोटे गाँवँ) थे। उस वनके अगणित रंग-बिरंगे पशु-पक्षी ही ऐसी प्रजा थी जिनका वर्णन किया नहीं जा सकता। (१) गैंडे, हाथी, सिंह, चीते, सूअर, भैंसे और साँड़ोंको देख-देखकर वहाँके वन-राज्यका सारा साज ऐसा बढ़िया लग रहा था कि उसकी सराहना करते नहीं बन रहा है। वे सब अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ जहाँ-तहाँ चरते हुए ऐसे रह रहे थे, मानो वे ही विवेक राजाकी चतुरंगिणी सेना बने हुए हों। (२) हरहराकर गिरते हुए झरनोंका कलकल नाद और मतवाले हाथियोंकी चिग्घाड़ ऐसी लगती थी मानो अनेक प्रकारसे डंके आदि बाजे बजे चले जा रहे हों। चकवे, चकोर, पपीहे, सुग्गे, कोयल और हंसोंका प्रसन्न हो-होकर चहकना, (३) भौरोंका गुनगुनाना और मोरोंका नाचना देखकर ऐसा लगता था मानो (विवेक राजाके) सुखी राज्यमें चारों ओर मंगल ही मंगल (आनन्द) छाया हुआ हो। वहाँकी लताएँ और वृक्ष सब फलों और फूलोंसे लदे पड़े थे। इस प्रकार इस (वनके) राज्यका सारा समाज आनन्द और मंगलसे भरा हुआ था। (४) रामके पर्वत (रामगिरि या चित्रकूट)-की शोभा देख-देखकर भरतके हृदयमें वैसा ही प्रेम उमड़ पड़नेसे सुख मिला जैसे अपनी तपस्या पूरी हो जानेपर उस तपका फल पाकर तपस्वीको सुख मिलता है॥ २३६॥ तब केवटने ऊँचे टीलेपर चढ़कर हाथ उठाकर भरतसे कहा—'नाथ! ये बड़े-बड़े पाकड़, जामुन, आम और तमालके वृक्ष देख रहे हैं न! (१) इन्हींके बीचमें बहुत सुहावना और देखते ही मन लुभानेवाला बहुत बड़ा-सा बरगदका वृक्ष है जिसके पत्ते घने हरे-हरे हैं, जिसमें लाल-लाल बड़पीपलियाँ लगी हैं और जिसकी सदा बनी रहनेवाली छाया सब ऋतुओंमें बड़ा सुख देती है। (२) (वह बड़का वृक्ष ऐसा जान पड़ता है) मानो ब्रह्माने अँधेरा और लालीका ढेर इकट्ठा करके ला

१. बिधि सकेलि बिरची सुषमा सी।

२३९८-४ नाना मृगगणैर्द्वीपितरक्षवृक्षगणैर्वृतः। अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः॥
जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्यंदैश्च क्वचित् क्वचित्। स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः॥ वा० रा०
यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम्। —श्रीमद्भागवत

२४१० ए तरु, सरित - समीप गोसाँई। रघुबर परन - कुटी जहँ छाई। (३)
तुलसी - तरुवर विविध सुहाए। कहुँ-कहुँ सिय, कहुँ लखन लगाए।
वट - छाया बेदिका बनाई। सिय निज - पानि - सरोज सुहाई। (४)
दो०—जहाँ बैठि मुनि-गन - सहित, नित सिय - राम सुजान।
सुनहिं कथा - इतिहास सब, आगम - निगम - पुरान॥ २३७॥
सखा - वचन सुनि, विटप निहारी। उमगे भरत - बिलोचन बारी।
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति, सारद सकुचाई। (१)
हरषहिं निरखि राम - पद - अंका। मानहुँ पारस पायउ रंका।
रज सिर धरि, हिय-नयनहिं लावहिं। रघुबर-मिलन-सरिस सुख पावहिं। (२)
देखि भरत - गति अकथ अतीवा। प्रेम - मगन मृग, खग, जड़ जीवा।
२४२० सखहिं सनेह - बिवस मग भूला। कहि सुपंथ, सुर बरषहिं फूला। (३)

सजा धरा हो। स्वामी ! ये सब पेड़ वहीं नदी (मंदाकिनी)-के समीप ही हैं, जहाँ रामकी पर्णकुटी छाई हुई है। (३) वहाँ बहुतसे तुलसीके पौधे लगे हुए हैं जिनमेंसे कुछ सीताने और कुछ लक्ष्मणने स्वयं ला लगाए हैं। उसी बरगदकी छायाके तले एक चौतरा बना हुआ है, जिसे स्वयं सीताने अपने कर-कमलोंसे लीप-पोतकर चिकना बना डाला है। (४) इसी (चौतरे)-पर मुनियोंके साथ सुजान सीता और राम नित्य वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास आदिकी कथाएँ बैठे सुना करते हैं' ॥२३७॥ सखा (केवट)-की बात सुनकर, (बरगदका) वृक्ष देखते ही भरतकी आँखें डबडबा आईं। दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) उसे प्रणाम करते हुए जो (प्रेमसे) चले तो उनकी प्रीतिका वर्णन करनेमें सरस्वती भी हार मान बैठती है। (१) वे (भरत और शत्रुघ्न) रामके चरण-चिह्न देख-देखकर ऐसे प्रसन्न हुए जा रहे थे मानो किसी दरिद्रके हाथ पारस लग गया हो। उन चरण-चिह्नोंकी धूल सिरपर चढ़ाते तथा हृदय और आँखोंसे लगाते हुए उन्हें ऐसा सुख मिला जा रहा था मानो राम ही उन्हें आ मिले हों। (२) भरतकी इस दशाका वर्णन किया ही नहीं जा सकता। उनकी यह दशा देख-देखकर पशु, पक्षी आदि जीव ही नहीं, जड भी प्रेममें मग्न हुए जा रहे थे। (केवट)-के मनमें तो इतना स्नेह उमड़ उठा कि वह बटिया ही भूल गया। तब देवता ही आकर उन्हें ठीक बटिया बताकर उनपर फूल बरसाने लगे। (३) इन्हें देख-देखकर (बड़े-बड़े) सिद्ध तथा साधक लोग

२४१०-१३ सालतालाश्वकर्णानां पर्णैर्बहुभिरावृताम्। विशालां मृदुविस्तीर्णां कुशैर्वेदिमिवाध्वरे ॥वा०रा०
ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम्।
वृक्षाग्रसंलग्नसुवल्कलाजिनं रामाभिरामं भरतः सहानुजः॥ —अध्यात्मरामायण
२४१७-१८ स तत्र वज्रांकुशवारिजांचितध्वजादि चिह्नानि पदानि सर्वतः।
ददर्श रामस्य भुवोतिमंगलान्यचेष्ट यत्पादरजःसु सानुजः॥
अहो सुधन्योहममूनि रामपादारविन्दांकितभूतलानि।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम्॥
२४१९-२० तान् पार्थिवान् वारणयूथपार्हान् समागतांस्तत्र महत्यरण्ये।
वनौकसस्तेभिसमीक्ष्य सर्वे त्वश्रूण्यमुञ्चन् प्रविहाय हर्षम्॥ —वाल्मीकीयरामायण

निरखि सिद्ध - साधक अनुरागे । सहज सनेहु, सराहन लागे ।
होत न भूतल भाउ भरत - को । अचर सचर, चर अचर करत को । (४)
दो०—प्रेम अमिय, मंदर बिरह , भरत पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित , कृपासिंधु रघुबीर ।। २३८ ।।
सखा - समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन-ओटा ।
भरत दीख प्रभु - आश्रम पावन । सकल - सुमंगल - सदन सुहावन । (१)
करत प्रवेस, मिटे दुख - दावा । जनु जोगी परमारथ पावा ।
देखे भरत, लखन प्रभु - आगे । पूछे बचन, कहत अनुरागे । (२)
सीस जटा, कटि मुनिपट बाँधे । तून कसे, कर सर, धनु काँधे ।
२४३० बेदी - पर, मुनि - साधु - समाजू । सीय - सहित राजत रघुराजू । (३)
बलकल बसन, जटिल, तनु स्यामा । जनु मुनि - बेष कीन्ह रति-कामा ।
कर - कमलनि धनु - सायक फेरत । जिय-की जरनि हरत, हँसि हेरत । (४)

भी प्रेमके मारे इनके स्वाभाविक प्रेमकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि भरतके मनमें (रामके लिये) जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम यदि पृथ्वीपर उदय न हुआ होता तो अचलको चल और चलको अचल कौन कर पाता ? (उनका प्रम देखकर वृक्ष आदि अचल भी प्रेमसे काँप उठते हैं और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि चल भी सुन्न हो जाते हैं, स्तब्ध रह जाते हैं) । (४) कृपालु रामने भरतके (हृदयके) गंभीर समुद्रमें, विरहका मंदराचल खड़ा करके, देवताओं तथा सज्जनोंके हितके लिये प्रेमका अमृत मथ निकाला है (रामने भरतके हृदयमें विरह उत्पन्न करके उससे यह सबको सुख देनेवाला प्रेम उत्पन्न कर दिया है । भरतका हृदय ही समुद्र है, विरह ही मंदराचल है, राम ही मथनेवाले हैं) ।।२३८।। घने वनकी ओट होनेके कारण केवटको और दोनों भाइयों (भरत, शत्रुघ्न)-की मनोहर जोड़ीको लक्ष्मण तो नहीं देख पाए पर भरतने प्रभु रामका वह पवित्र आश्रम झट देख लिया जो सब मंगलोंसे भरा हुआ और सुहावना था । (१) आश्रममें पैर धरते ही उनके दुःखकी सारी आग ऐसे ठंढी पड़ गई जैसे योगीको परमार्थ (मोक्ष) पा लेनेपर पूरी शान्ति मिल जाती है । भरतने देखा कि वहाँ रामके आगे लक्ष्मण खड़े हुए हैं और रामके पूछनेपर कुछ प्रेमसे कहते जा रहे हैं । (२) भरतने देखा कि लक्ष्मणके सिरपर जटा बँधी है, कमरमें वल्कलका वस्त्र लिपटा है और तूणीर कसा है, हाथमें बाण है और कंधेपर धनुष है । उन्होंने देखा कि चौतरेपर मुनियों और साधुओंके साथ राम और जानकी दोनों बैठे हुए हैं । (३) साँवले शरीरवाले राम भी वल्कल वस्त्र पहने हुए और सिरपर जटा बाँधे हुए (सीताके साथ बैठे) ऐसे लग रहे हैं मानो रति और कामदेव ही मुनियोंका-सा बाना बनाए आ बैठे हों । वे अपने कमलके समान हाथोंसे धनुष और बाण घुमाए जा रहे हैं । उनकी मुसकराहट ऐसी (जादू भरी)-है कि एक बार हँसकर जिसकी ओर देख दें उसके हृदयकी सारी ज्वाला ठंढी हो बैठे । (४) बड़े-बड़े मुनियोंकी उस मंडलीके बीच सीता और राम ऐसे शोभा दे रहे थे मानो

२४२२ निश्चेतनत्वमुपपादि सचेतनानां यच्चेतनत्वमुपपन्नमचेतनानाम् ।। —आनन्दवृन्दावन
२४२६-३१ निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् । उटजे राममासीनं जटामंडलधारिणम् ।।
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम् । ददर्श राममासीनमभीत: पावकोपमम् ।।
सिंहस्कन्धं महाबाहुं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । पृथिव्या: सागरान्ताया भर्तारं धर्मचारिणम् ।।
उपविष्टं महाबाहुं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् । स्थंडिले दर्भसंस्तीर्णे सीतया लक्ष्मणेन च ।।वा०रा

दो०—लसत मंजु मुनि - मंडली , –मध्य सीय - रघुचंद ।
ग्यान - सभा, जनु तनु धरे , भगति - सच्चिदानंद ॥ २३९ ॥

सानुज सखा - समेत, मगन - मन । बिसरे हरष-सोक-सुख-दुख-गन ।
पाहि नाथ ! कहि, पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट - की नाईं । (१)
बचन सपेम लखन पहिचाने । करत प्रनाम भरत, जिय जाने ।
बंधु - सनेह सरस ऐहि ओरा । इत साहिब - सेवा बरजोरा[1] । (२)
मिलि न जाइ, नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन - मन - की गति भनई ।
२४४० रहे राखि, सेवा - पर भारू । चढ़ी चंग[2], जनु खैंच खेलारू । (३)
कहत सप्रेम, नाइ महि माथा । भरत, प्रनाम करत रघुनाथा ।
उठे राम, सुनि, पेम - अधीरा । कहुँ पट, कहुँ निषंग - धनु - तीरा । (४)

दो०—बरबस लिए उठाइ, उर , लाये कृपानिधान ।
भरत राम-की मिलनि लखि , बिसरे सबहिं अपान ॥ २४० ॥

मिलनि - प्रीति किमि जाइ बखानी । कबि-कुल-अगम करम-मन-बानी ।
परम - पेम - पूरन दोउ भाई । मन-बुधि-चित-अहमिति बिसराई । (१)

ज्ञानकी सभामें भक्ति और सच्चिदानन्द भगवान् शरीर धारण किए आ विराजे हों ॥ २३९ ॥ छोटे भाई शत्रुघ्न, सखा केवट और भरतका मन (प्रेममें) ऐसा मग्न हो चला कि वे हर्ष, शोक, सुख और दुःख सब भूल चले । 'हे नाथ ! रक्षा करो, हे स्वामी ! रक्षा करो'—कहते हुए वे दण्डके समान उनके आगे पृथ्वीपर जा पड़े । (१) लक्ष्मणने भरतके प्रेम-भरे वचन सुनते ही उन्हें पहचान लिया और मनमें समझ लिया कि भरत (विनीत भावसे) प्रणाम कर रहे हैं । इधर भाई (भरत)-के प्रति सरस प्रेम उमड़ रहा था, उधर स्वामी (राम)-की प्रबल सेवा थी, (भरतके प्रेमके कारण उन्हें उठाकर गले लगाना चाहते थे पर रामकी सेवामें खड़े रहनेके कारण वहाँसे हट नहीं सक रहे थे । इस दुविधाके कारण) (२) न तो वे भरतसे मिल ही पा रहे थे और न सेवाका काम ही छोड़ पा रहे थे । सुकवि (तुलसीदास) कहते हैं कि उस समय लक्ष्मणके मनकी दशा ऐसी होगई थी जैसे पतंगके खेलाड़ीको चढ़ी चढ़ाई पतंग बल लगाकर खींच उतारनी पड़ गई हो । अन्तमें उन्होंने सेवाको ही अधिक महत्त्वपूर्ण समझकर खड़े रह जाना ही ठीक समझा (भाई भरतके प्रति प्रेम दिखानेकी अपेक्षा बड़े भाईकी सेवाको अधिक महत्त्व प्रदान किया) । (३) तब लक्ष्मणने पृथ्वीपर सिर नवाकर मधुरताके साथ (रामसे) कहा—'भगवन् राम ! भरत आपको प्रणाम कर रहे हैं ।' यह सुनना था कि प्रेममें अधीर होकर राम ऐसे हड़बड़ाकर उठ दौड़े कि कपड़ा कहीं, तूणीर कहीं, धनुष कहीं और बाण कहीं जा छितराया । (४) कृपानिधान रामने भरतको बलपूर्वक उठाकर छातीसे खींच लगाया । राम और भरतका यह मिलाप देखकर सब लोग अपनी सुध-बुध भूल बैठे ॥ २४० ॥ इस मिलनेके प्रेमका वर्णन किया कैसे जा सकता है, क्योंकि कोई कवि मन, वचन और कर्मसे किसी प्रकार भी इसका वर्णन नहीं कर पा सकता । दोनों भाई मन, बुद्धि, चित्त और

१. बस जोरा । २ चंग=वह पतंग जिसमें दीपक रखकर उड़ाया जाता है ।

२४३-३३८ तं दृष्ट्वा भरतः श्रीमान् दुःखमोहपरिप्लुतः । अभ्यधावत धर्मात्मा भरतः केकयीसुतः ॥ वाल्मी०
२४४२-४४ रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहुर्दोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिच नेत्रजैः ।
जलैरथांकोपरि सन्यवेशयत् पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः ॥ –अध्यात्मरामायण

कहहु, सु पेम प्रगट को करई। केहि छाया कवि-मति अनुसरई।
कबिहिं अरथ-आखर-बल साँचा। अनुहरि ताल-गतिहिं, नट नाचा। (२)
अगम सनेह भरत-रघुबर-को। जहँ न जाइ मन, बिधि-हरि-हर-को।
२४५० सो मैं कुमति कहउँ केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर-ताँती। (३)
मिलनि बिलोकि भरत-रघुबर-की। सुरगन सभय धकधकी धरकी।
समुझाये सुरगुरु, जड़ जागे। बरषि प्रसून, प्रसंसन लागे। (४)
दो०—मिलि सपेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाय भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम॥ २४१॥
भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई।
पुनि, मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे। (१)
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर, सिय-पद-पदुम-परागा।
पुनि-पुनि करत प्रनाम, उठाए। सिर कर-कमल परसि बैठाए। (२)
सीय, असीस दीन्हि मन-माहीं। मगन-सनेह, देह-सुधि नाहीं।

अहंकार भूलकर (सुध-बुध भूलकर, पूरे अन्तःकरणसे) परम प्रेममें उमगे जा रहे थे। (१) फिर भला ऐसे प्रेमको समझा कौन सकता है? (जब भरत और राम स्वयं अपने आपको भूले बैठे थे और स्वयं उनके ही अन्तःकरणकी सारी वृत्तियाँ प्रेमके मारे कुंठित हुई बैठी थीं तब दूसरा कोई उसे कैसे समझ सकता है)। (उस प्रेमका वर्णन करनेके लिये) कविकी बुद्धि किसका सहारा पकड़े? क्योंकि जैसे नटको नाचनेके लिये तालका सहारा रहता है, वैसे ही कविको भी अक्षर (शब्द) और उसके अर्थका ही तो एक बल होता है। (२) पर भरत और रामका स्नेह तो ऐसा अगम था कि वहाँतक जब ब्रह्मा, विष्णु और महादेवतक-का मन नहीं पहुँच पा सकता फिर भला मैं दुर्बुद्धि (तुलसीदास) उस प्रेमका वर्णन किस प्रकार कर पा सकता हूँ? भला कहीं भेड़का ऊन धुननेकी ताँतसे कभी बढ़िया राग बजाया जा सकता है? (३) भरत और रामका वह मिलन देखते ही डरके मारे देवताओंकी छातीमें धुकधुकी मच उठी (कि कहीं भरतकी बात मानकर राम अयोध्या न लौट चलें), पर जब देवगुरु बृहस्पतिने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया तब कहीं उनके मनकी शंका दूर हो पाई और वे पुष्प-वर्षा करते हुए भरतकी प्रशंसा करने लगे। (४) शत्रुघ्नसे प्रेमसे मिलकर रामने केवटको गले उठा लगाया। जब भरतने देखा कि लक्ष्मण मुझे प्रणाम किए जा रहे हैं तो भरतने उन्हें भी बड़े प्रेमसे गले खींच लगाया॥ २४१॥ फिर लक्ष्मणने बड़े चावसे छोटे भाई शत्रुघ्नको छातीसे उठा लगाया और फिर निषादको छातीसे चिपटा लिया। फिर दोनों भाइयों (भरत और शत्रुघ्न)-ने मुनियोंको जा प्रणाम किया और उनसे मनोवाञ्छित आशीर्वाद पाकर वे बड़े प्रसन्न हो उठे। (१) भरत और उनके छोटे भाई शत्रुघ्नने उमगकर सीताके चरण-कमलोंकी धूल सिरपर ले चढ़ाई और बार-बार उन्हें प्रणाम भी करते रहे। यह देखकर सीताने उन्हें उठाकर, उनके सिरपर हाथ फेरकर उन्हें अपने पास बुला बैठाया। (२) उन्हें देखकर सीता इतनी प्रेममें मग्न हो उठीं कि उन्हें अपनी देह-तककी सुध न रह गई इसलिये उन्होंने उन्हें केवल मन ही मन आशीर्वाद दे दिया। भरतने

२४५३ शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववंदे चरणौ रुदन्। तावुभौ च समालिंग्य रामोप्यश्रूण्यवर्तयत्॥ वा०रा०
२४५४-५५ प्रणनाम पुनर्भ्रातृद्वयं मुनिगणं मुदा। प्राप्याशिषं महानन्दं यथेच्छं प्राप तत्क्षणे॥
२४५७-५८ सानुजो भरतः श्रीमान् सानुरागो दयानिधिः। ववन्दे भूमिजापादसारसं प्राप्य स्वाशिषम्॥
स्नेहार्द्रहृदयो धीरो महामोदमवाप्तवान्। —आनन्दरामायण

२४६० सब - बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच, उर अपडर बीता। (३)
कोउ किछु कहइ, न कोउ किछु पूछा। प्रेम - भरा मन, निज - गति छूछा।
तेहि - अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनाम करि। (४)
दो०—नाथ ! साथ मुनि - नाथ - के , मातु, सकल पुर - लोग।
सेवक, सेनप, सचिव सब , आए बिकल - बियोग ॥ २४२ ॥
सील - सिंधु, सुनि गुरु - आगवनू। सिय - समीप राखे रिपु-दवनू।
चले सबेग राम, तेहि काला। धीर, धरम - धुर, दीनदयाला। (१)
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दंड - प्रनाम करन प्रभु लागे।
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई। (२)
प्रेम - पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि - तें दंड - प्रनामू।
२४७० राम - सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु, महि लुठत सनेह समेटा। (३)
रघुपति - भगति सुमंगल - मूला। नभ, सराहि सुर, बरिसहिं फूला।
ऐहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ - सम, को जग माहीं। (४)
दो०-जेहि लखि, लखनहुँ-तें अधिक , मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति - भजन - को , प्रगट प्रताप - प्रभाउ ॥ २४३ ॥

जब समझ लिया कि वनवासके कारण सीता मुझपर तनिक भी रुष्ट नहीं है तब कहीं उनकी चिन्ता कम हो पाई और उनके हृदयका भय भी मिट पाया। (३) उस समय न तो किसीने कुछ कहा ही न किसीने कुछ पूछा ही, क्योंकि सबका मन इतना प्रेमसे भरा हुआ था कि किसीका मन कुछ काम नहीं कर पा रहा था। उसी समय केवटने बड़े धीरजसे काम लेकर, हाथ जोड़कर प्रणाम किया और नम्रताके साथ निवेदन किया—(४) 'नाथ ! मुनिनाथ (वशिष्ठ)-के साथ सब माताएँ (कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी), नगरवासी, सेवक, सैनिक और मंत्री आदि सभी आपके वियोगसे व्याकुल होकर यहाँ उठे चले आए हैं' ॥२४२॥ शीलके सागर रामने ज्यों ही गुरुके आगमनका समाचार सुना त्यों ही शत्रुघ्नको सीताके पास छोड़कर, धैर्यवान्, धर्म-रक्षक, दीनदयालु राम उठकर प्रेमसे लपक चले। (१) गुरुको देखते ही दोनों भाई भरत और राम बड़े प्रेमसे गुरुको दंड-प्रणाम करने लगे। मुनिवर वशिष्ठ भी दौड़कर दोनों भाइयोंको हृदयसे लगाकर बड़े प्रेमसे उनसे मिले। (२) प्रेमसे पुलकित केवट अपना नाम बताकर दूरसे ही वशिष्ठको दण्ड-प्रणाम करने लगा, पर ऋषिराजने केवटको रामका सखा जानकर उसे बलपूर्वक उठाकर इस प्रकार गलेसे खींच लगाया मानो पृथ्वीपर बिखरा हुआ प्रेम ही समेट उठाया हो। (३) 'रामकी भक्तिसे मंगल ही मंगल होता है' यह कहते हुए और केवटकी सराहना करते हुए सब देवता आकाशसे पुष्प-वर्षा करने लगे (और कहने लगे—) 'देखो ! इस केवटके समान कोई ओछा नहीं हो सकता और गुरु वशिष्ठके समान संसारमें कोई महान् नहीं है ? पर (उनकी महत्ता तो देखो कि) (४) उसे देखकर लक्ष्मणसे भी अधिक प्रेमसे मुनिराज वशिष्ठने उसे गले उठा लगाया। यह सीताके पति रामके भजनका प्रत्यक्ष प्रभाव और प्रताप

२४६८ आलिलिंग वसिष्ठस्तु दृष्ट्वा श्रीरामलक्ष्मणौ ॥ —आनन्दरामायण
२४६९-७० प्रणनाम वशिष्ठन्तु प्रेम्णा पुलकितांगकः। गुहस्तदा मुनिस्तं वै प्रसभात् परिषस्वजे ॥सनं०सं०
२४७३-७४ भक्तस्यैव वशगो हरिरादिदेवः सदा प्रमाणं किल चात्र गोप्यः।
योगं न सांख्यं न कृतं कदापि प्रेम्णैव यस्य प्रकृतिं गताः स्युः ॥ —गर्गसंहिता

आरत लोग, राम, सब जाना। करुनाकर, सुजान, भगवाना।
जो, जेहि भाय रहा अभिलाखी। तेहि-तेहि-कै, तसि-तसि रुख राखी। (१)
सानुज मिलि, पल - महँ सब काहू। कीन्हि दूरि दुख, दारुन दाहू।
यहि बड़ि बात राम - कै नाहीं। जिमि घट कोटि, एक रबि छाहीं। (२)
मिलि केवटहिँ उमगि अनुरागा। पुरजन सकल, सराहहिँ भागा।
२४८० देखी राम, दुखित महतारी। जनु सुबेलि - अवली हिम-मारी। (३)
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभाय, भगति - मति-भेई।
पग परि, कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल-करम-बिधि-सिर धरि खोरी। (४)
दो०—भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अंब ! ईस - आधीन जग, काहु न देइय दोष ।। २४४ ।।
गुरु - तिय - पद, बंदे दुहुँ भाई। सहित - बिप्र - तिय जे सँग आई।
गंग - गौरि - सम सब सनमानी। देहिँ असीस, मुदित, मृदु बानी। (१)
गहि पद, लगे सुमित्रा - अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका।

है' ।।२४३।। जब करुणाके धाम सुजान भगवान् रामने देखा कि सब लोग बड़े दुखी दिखाई पड़ रहे हैं तब जो जिस भावसे उनसे मिलना चाहता था, उससे उसी भावसे मिलकर उन्होंने सबको संतुष्ट कर दिया। (१) भाई लक्ष्मणके साथ रामने क्षण-भरमें सबसे मिलकर सबका दुःख और मनका ताप मिटा डाला। रामके लिये यह वैसे ही कोई बड़ी बात नहीं थी जैसे (जलसे भरे) अनेक घड़ोंमें समान रूपसे एक ही सूर्यका बिम्ब झलक मारता है (वैसे ही भगवान् राम एक होते हुए भी सबकी भावनाके अनुसार अनेक होकर सबसे अलग अलग मिल लिए)। (२) (सब अयोध्या-वासी) केवटसे बड़े प्रेमसे मिल-मिलकर उसके भाग्यकी सराहना कर उठे। फिर रामने देखा कि माताएँ ऐसी मुरझाई हुई लग रही हैं मानो सुन्दर लताओंको पाला मार गया हो। (३) सबसे पहले रामने माता कैकेयीसे जाकर भेंट की और अपने सरल और स्वाभाविक भक्ति-भावसे उन्हें संतुष्ट कर दिया और फिर उनके चरणोंपर गिरकर उन्हें सान्त्वना दी कि यह सब तो समय, कर्म और विधाताका फेर है (आप अपना जी मत दुखाइए)।' (४) रामने सब माताओंको सान्त्वना देते हुए और सबका परितोष करते हुए उनसे भेंट की। उन्होंने कहा—'देखो माताओ ! यह सारा संसार ईश्वरके अधीन है (वह जैसा चाहता है, वैसा ही होता है)। इसके लिये किसीको भी दोष नहीं देना चाहिए' ।।२४४।। जो ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ साथ आई थीं उनके और गुरुकी पत्नी अरुन्धती देवीके चरणोंमें दोनों भाइयों (राम और लक्ष्मण)-ने जा प्रणाम किया और सबका वैसा ही सम्मान किया जैसे गंगा तथा पार्वतीका किया जाता है। उन सबने भी प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उन्हें बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए। (१) दोनों भाई सुमित्रा माताके चरण पकड़कर (प्रणाम करके) उनकी गोदमें ऐसे लिपटकर जा बैठे

२४७५-७७ आर्तान् सर्वान् विलोक्यायं श्रीरामः करुणानिधिः। सानुजः क्षणमात्रेण मिलित्वा रुचिपूर्वकम् ।।
दूरीचकार दुःखानि दारुणानि महामुने। —सनन्दनसंहिता
२४८० अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ।। —रघुवंश
२४८३-८४ तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजम्। मातृणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः ।।वा०रा०
दैवाधीनञ्जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभाशुभम्। संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम् ।।ब्रह्मवै०पु०
२४८५-८६ ववन्दे गुरुपत्नींश्च विप्रपत्नियुता मुदम्। आशिषं प्राप्य मनुजव्याघ्रोऽगात् सत्कृतास्तथा ।।आन०

पुनि जननी - चरननि दोउ भ्राता। परे पेम - व्याकुल सब गाता। (२)
अति अनुराग, अंब उर लाए। नयन - सनेह - सलिल अन्हवाए।
२४९० तेहि अवसर - कर हरप - विपादू। किमि कवि कहइ, मूक जिमि स्वादू। (३)
मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरु-सन कहेउ कि धारिय पाँऊ।
पुर - जन पाइ मुनीस - नियोगू। जल - थल तकि-तकि, उतरेउ लोगू। (४)
दो०—महिसुर, मंत्री, मातु, गुरु, गने लोग लिय साथ।
पावन आश्रम गवन किय, भरत, लखन, रघुनाथ॥ २४५॥
सीय, आइ मुनिवर - पग लागी। उचित असीस लही मन - माँगी।
गुरु-पतिनिहिं मुनि - तियन समेता। मिली पेम, कहि जाइ न जेता। (१)
वंदि - वंदि पग, सिय सबही - के। आसिरबचन लहे प्रिय जी - के।
सासु सकल, जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि, सुकुमारी। (२)
परी बधिक - बस मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली।
२५०० तिन्ह, सिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय, जो दैउ सहावा। (३)
जनक - सुता तब, उर धरि धीरा। नील - नलिन - लोयन भरि नीरा।

मानो किसी अत्यन्त दरिद्रने सम्पत्ति उठा समेटी हो। फिर दोनों भाई माता कौशल्याके चरणोंपर जा गिरे। प्रेमके कारण उनके अंग-अंग व्याकुल हुए जा रहे थे। (२) माता (कौशल्या)-ने बड़े प्रेमसे उन्हें हृदयसे उठा लगाया और प्रेमके आँसुओंसे उन्हें (नीचेसे ऊपरतक) तर कर डाला। जैसे कोई गूँगा अच्छे स्वादिष्ट भोजनका स्वाद किसीको कैसे बता सकता है उसी प्रकार उस समयके हर्ष और विषादका वर्णन भी कोई कवि कैसे कर पा सकता है? (३) माताओंसे मिलकर लक्ष्मण और रामने गुरुसे जाकर निवेदन किया—'चलिए, चलकर आश्रम पवित्र कीजिए।' गुरुकी आज्ञा पाकर सभी नगर (अयोध्या)-वासियोंने जल और स्थलका विचार करके (जहाँ जलकी सुविधा थी और स्थल ठीक था वहाँ) डेरा जा डाला। (४) भरत, लक्ष्मण तथा रामने ब्राह्मणों, मंत्रियों, माताओं, गुरु तथा गिने-गिनाए कुछ लोगोंको साथ लेकर पवित्र आश्रमकी ओर प्रस्थान कर दिया॥ २४५॥

(वहाँ पहुँचनेपर) सीताने बाहर निकलकर मुनि वशिष्ठके चरणोंमें आ प्रणाम किया और मनचाहा आशीर्वाद पा लिया। फिर वे मुनियोंकी स्त्रियोंसे और गुरुकी पत्नी अरुन्धती देवीसे जाकर मिलीं। सीताका उन सबके लिये जितना प्रेम था, वह कहे नहीं कहा जा सकता। (१) सीताने सबके चरणोंको प्रणाम करके मन-भाए आशीर्वाद पाए। जब सुकुमारी सीताने सब सासुओंको (विधवा-वेषमें) देखा तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखें बन्द कर लीं। (२) उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो राजहंसिनियाँ किसी बधिकके हाथोंमें जा फँसी हों। (सीता मनमें सोचने लगीं कि)—'कुचाली विधाताने यह क्या अनर्थ कर डाला?' सब रानियाँ भी सीताको देखकर बड़ी दुखी हुईं (और सोचने लगीं कि—) 'भाग्य जो कुछ सहावे सब सहना ही पड़ता है।' (३) जब जानकी अपने हृदयमें धीरज धरकर और नीले कमलके समान अपने नेत्रोंमें आँसू भरकर सब सासुओंसे जाकर मिलीं उस समय सारी पृथ्वीपर

२४९१ अथ ता मातरः सर्वाः समाजग्मुस्त्वरान्विताः। राघवं द्रष्टुकामास्तास्तृषार्ता गौर्यथा जलम्॥
रामः स्वमातरं वीक्ष्य द्रुतमुत्थाय पादयोः। ववन्दे साश्रु सा पुत्रमालिंग्यातीव दुःखिता॥अ०रा०
२४९३-९४ ततो गुरुवरान् मंत्रिद्विजानादाय राघवः। प्रतस्थे स्वाश्रमं दिव्यं भरतेन सह लक्ष्मणः॥आन०रा०

मिलीं सकल सासुन्ह, सिय जाई। तेहि अवसर, करुना महि छाई। (४)

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।

हृदय असीसहिं पेम-बस, रहियहु भरी सोहाग ॥ २४६ ॥

बिकल - सनेह सीय, सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुरु ग्यानी।

कहि जग - गति मायिक, मुनि - नाथा। कहे कछुक परमारथ - गाथा। (१)

नृप - कर सुरपुर - गवन सुनावा। सुनि, रघुनाथ दुसह दुख पावा।

मरन - हेतु निज नेह बिचारी। भे अति बिकल धीर - धुर - धारी। (२)

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन, सीय, सब रानी।

२५१० सोक - बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ, राज अकाजेउ आजू। (३)

मुनिबर, बहुरि राम समुझाए। सु - सरित सहित - समाज नहाए[1]।

ब्रत निरंबु, तेहि दिन प्रभु कीन्हाँ। मुनिहुँ कहे, जल काहु न लीन्हाँ। (४)

करुणा ही करुणा आ छाई (सारी धरतीपर शोक छा गया)। (४) सीता सबके पैरों पड़-पड़कर बड़े प्रेमसे अपनी सासोंसे मिल रही थी और सब सासें भी बड़े स्नेहसे उन्हें आशीर्वाद दिए जा रही थीं—'तुम सदा सौभाग्यवती बनी रहो' ॥ २४६ ॥ सीता और सब रानियोंको प्रेमसे व्याकुल होते देखकर ज्ञानी गुरु (वशिष्ठ)-ने सबको बैठ जानेकी आज्ञा दी और फिर मुनिनाथ वशिष्ठने उन्हें समझाया कि—'सारा संसार ही मायासे भरा है।' फिर उन्होंने कुछ परमार्थ-सम्बन्धी (ज्ञानकी) बातें कहकर (१) यह समाचार कह सुनाया कि—'महाराज दशरथ स्वर्ग चले गए।' यह सुनना था कि रामका जी धक हो गया और अत्यन्त धैर्यशाली राम भी यह समझकर और अधिक व्याकुल हो उठे कि मुझपर अत्यधिक स्नेह होनेके कारण ही उनकी मृत्यु हुई है। (२) वज्राघातके समान यह भयंकर समाचार सुनकर लक्ष्मण, सीता और सब रानियाँ दाढ़ मार-मारकर रो उठीं। फिर तो सारे समाजमें ऐसा कुहराम मच गया, मानो राजा दशरथ आज ही स्वर्गवासी हुए हों। (३) तब रामको बहुत समझा-बुझाकर ज्ञानी मुनि वशिष्ठ सबको नदी (मंदाकिनी)-के तीरपर लिवा ले गए जहाँ सबने उतर-उतरकर स्नान किया। प्रभु राम उस दिन निर्जल व्रत रह गए और मुनि वशिष्ठके लाख कहनेपर भी किसीने उस दिन जल-तक नहीं ग्रहण किया। (४) अगले दिन सवेरा होनेपर मुनि

१. सहित-समाज सुसरित नहाए।

२५०२ सीतापि चरणाँस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता। श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी संबभूवाग्रतः स्थिता ॥ वा०रा०

२५०६ ततस्तत्र कथाश्चासँस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः। विचित्रपदसंचारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥महा०

२५१० वसिष्ठस्तमुवाचेदं पिता ते रघुनन्दन। त्वद्वियोगाभितप्तात्मा त्वामेव परिचिन्तयन् ॥
राम रामेति सीतेति लक्ष्मणेति ममार ह। श्रुत्वा तत्कर्णशूलाभं गुरोर्वचनमंजसा।
हा हतोऽस्मीति पतितो रुदन् रामः सलक्ष्मणः। ततोनुरुरुदुः सर्वा मातरश्च तथापरे ॥
हा तात मां परित्यज्य क्व गतोसि घृणाकर। अनाथोस्मि महाबाहो मां को वा लालयेदितः ॥
सीता च लक्ष्मणश्चैव विलेपतुरतो भृशम् ॥ —अध्यात्मरामायण

२५११ वशिष्ठः शान्तवचनैः शमयामास तं शुचम्। ततो मंदाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ॥

२५१२ तस्मिंस्तु दिवसे सर्वे उपवासं प्रचक्रिरे ॥ —अध्यात्मरामायण

दो०—भोर भये, रघुनंदनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा - भगति - समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह ॥ २४७ ॥
करि पितु - क्रिया, वेद जसि बरनी। भे पुनीत, पातक - तम - तरनी।
जासु नाम पावक, अघ - तूला। सुमिरत, सकल सुमंगल - मूला। (१)
सुद्ध सो भयउ, साधु - संमत अस। तीरथ - आवाहन, सुरसरि जस।
सुद्ध भए दुइ बासर बीते। बोले गुरु - सन, राम पिरीते। (२)
नाथ ! लोग सब निपट दुखारी। कंद - मूल - फल - अंबु - अहारी।
२५२० सानुज भरत, सचिव, सब माता। देखि मोहिं, पल-जिमि जुग जाता। (३)
सब - समेत पुर धारिय पाँऊ। आपु इहाँ, अमरावति राऊ।
बहुत कहेउ सब, कियउँ ढिठाई। उचित होइ, तस करिय गोसाँई। (४)
दो०—धरम - सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित, दिन दुइ दरस, देखि लहहिं[1] विश्राम ॥ २४८ ॥
राम - बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि-महँ विकल जहाजू।

(वशिष्ट)-ने रामको जो-जो आज्ञा दी, वह सब प्रभु रामने श्रद्धा, भक्ति और आदरके साथ पूर्ण कर डाला ॥ २४७ ॥ वैदिक विधिके अनुसार पिताकी क्रिया (श्राद्ध आदि) करके वे राम भी पवित्र हो गए जो स्वयं पापके अन्धकारको सूर्यके समान दूर कर डालते हैं, जिनका नाम ही पापकी रुईको अग्निके समान भस्म कर डालता है और जिन्हें स्मरण मात्र करनेसे सारे सुमंगल आ मिलते हैं। (१) वे राम भी सज्जनोंके कथनानुसार उसी प्रकार शुद्ध हो गए जैसे गंगाको शुद्ध करनेके लिये तीर्थोंका आवाहन किया जाता है (वैसे राम तो सदा स्वयं शुद्ध हैं, पर श्राद्ध आदि कर्म करके वे लौकिक दृष्टिसे शुद्ध हो गए)। शुद्ध होनेके दो दिन पश्चात् सबके प्यारे रामने गुरु वशिष्ठसे कहा—(२) 'नाथ ! यहाँ सब लोगोंको बड़ा कष्ट हो रहा है। वे कंद, मूल, फल और जलपर ही दिन काटे जा रहे हैं। भाई शत्रुघ्न, भरत, मंत्री और सब माताओंको (इस दशामें) देख-देखकर मेरा एक-एक पल एक-एक युगके समान बीता जा रहा है। (३) इसलिये इन सबको लेकर आप अयोध्या जा पधारिए क्योंकि आप भी यहाँपर हैं और महाराज स्वर्ग जा पहुँचे हैं (अयोध्यामें कोई नहीं है)। मैंने इतना भी कह डाला यही आपसे बड़ी धृष्टता की। अब स्वामी ! जैसा आप उचित समझें वैसा ही करें।' (४) (इसपर गुरु वशिष्ठने कहा—) 'राम ! तुम धर्मके रक्षक और करुणाके धाम (सबके दुःखको

१. प्रतिलिपिकारकी असावधानीसे राजापुरकी प्रतिमें 'लहहुँ' लिख गया है।

२५१३-१४ ततः परेद्युर्विमले स्नात्वा मन्दाकिनीजले। राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकांक्षिणे ॥
पिंडान् निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः। इंगुदीफलपिण्याकरचितान् मधुसंप्लुतान् ॥
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः। इति दुःखाश्रुपूर्णाक्षः पुनः स्नात्वा गृहं ययौ ॥
सर्वे रुदित्वा सुचिरं स्नात्वा जग्मुस्तथाश्रमम् ॥
२५१५-१६ यथाम्नायं पितुः कर्म कृत्वा श्रीरघुनन्दनः। शुद्धोभूत् स्मरणाद्यस्य पातकं नश्यति क्षणात्॥स्कन्द०
२५१८-१९ कर्मशुद्धिसमाप्तेस्तु व्यतीते वासरद्वये। अभ्यधायि गुरुस्तेन कन्दमूलफलाशतः ॥
अतिदुःखाब्धिमापन्ना इमे परिजनादय। —कश्यपसंहिता
२५२१ तस्मादितो निवर्तस्व साकेतं मुनिपुंगव। यूयमत्र स्थिताः सर्वे राजा चापि दिवं गतः ॥
२५२५ एकार्णवे महाघोरे नौरिवक्षेत्रमीक्ष्यते ॥ —स्कन्दपुराण
एकवृक्षसमारूढा नानावर्णविहंगमाः। प्रभाते दिक्षु दशसु यान्ति का परिदेवना ॥चाणक्य०

सुनि गुरु-गिरा, सुमंगल-मूला। भयउ मनहुँ, मारुत अनुकूला। (१)
पावन पय तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि, अघ-ओघ नसाहीं।
मंगल-मूरति, लोचन भरि-भरि। निरखहिं, हरषि दंडवत करि-करि। (२)
राम-सैल-बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल, सकल दुख नाहीं।
२५३० झरना झरहिं सुधा-सम बारी। त्रिबिध ताप-हर त्रिबिध बयारी। (३)
बिटप, बेलि, तृन अगनित जाती। फल, प्रसून, पल्लव, बहु भाँती।
सुंदर सिला, सुखद तरु-छाहीं। जाइ बरनि बन-छबि केहि-पाहीं। (४)
दो०—सरनि सरोरुह, जल-बिहग, कूजत, गुंजत भृंग।
बैर-बिगत बिहरत बिपिन, मृग-बिहंग बहुरंग ॥ २४९ ॥
कोल, किरात, भिल्ल, बनवासी। मधु, सुचि, सुंदर, स्वादु सुधा-सी।
भरि-भरि परन-पुटी, रचि रूरी। कंद-मूल-फल-अंकुर-जूरी। (१)
सबहिं देहिं करि बिनय-प्रनामा। कहि-कहि स्वाद-भेद गुन-नामा।

अपना दुःख समझनेवाले) हो। भला तुम ऐसा क्यों न कहोगे? लोग (वास्तवमें तुम्हारे विरहमें ही) दुखी हैं (फलाहारके कारण नहीं)। वे अभी दो दिन ठहरकर जब तुम्हारा भरपूर दर्शन पा लेंगे तब कहीं उन्हें चैन मिल पावेगा' ॥ २४८ ॥ रामकी बात सुनकर तो सारा समाज ऐसे डर चला था मानो समुद्रमें जहाज डगमगा उठा हो पर गुरु वशिष्ठकी मंगलदायिनी वाणी सुनकर सब (ऐसे प्रसन्न हो उठे) मानो पवन फिर ठीक चल पड़ा हो। (१) (मंदाकिनीके) जिस जलके दर्शन-मात्रसे सारे पाप नष्ट हो मिटते हैं, उस (मंदाकिनीके) जलमें लोग तीनों समय (प्रातः मध्याह्न, संध्या) स्नान करते चलते थे और प्रसन्नतापूर्वक मंगलकी मूर्ति रामका दर्शन भर-आँखों करके बार-बार आ-आकर उन्हें दण्डवत् करते चलते थे। (२) वे घूम-घूमकर राम-गिरि (चित्रकूट) और राम-वन देखते जाते थे, जहाँ दुःखका नाम नहीं था, केवल सुख ही सुख था, अमृतके समान जलवाले झरने बहे चले जा रहे थे, जहाँ तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-को हरनेवाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्ध) बयार बहे जा रही थी, (३) जहाँ अनेक प्रकारके वृक्षों, लताओं और अन्य वनस्पतियोंकी हरियाली चारों ओर आ छाई थी, जहाँके वृक्ष अनेक प्रकारके फल-फूल और पत्तोंसे लदे पड़े थे, जहाँ स्थान-स्थानपर सुन्दर-सुन्दर शिलाएँ पड़ी थीं और वृक्षोंकी सुखद (घनी, ठंढी) छाया छाई रहती थी। भला ऐसे सुन्दर वनकी शोभाका वर्णन कोई कर कैसे पा सकता है? (४) सरोवरोंमें कमल खिले फैले थे, जलपक्षी दिन-रात कलरव किए जा रहे थे, भौंरे गूंजे जा रहे थे और अनेक प्रकारके पशु और पक्षी आपसका बैर भुलाकर इधर-उधर मस्त हो-होकर विचरे जा रहे थे ॥२४९॥ वनवासी कोल, किरात और भील, पत्तोंके सुन्दर दोनोंमें शुद्ध, बढ़िया, अमृतके समान स्वादिष्ट मधु (शहद) भर-भरकर तथा कंद, मूल, फल और अंकुर आदिके जुट्टे सजा-सजाकर (१) उनके स्वाद, गुण, भेद और नाम बता-बताकर सब लोगोंको विनयपूर्वक प्रणाम कर-करके दिए चले जा रहे थे। लोग उन सब

२५२७-३० सरितो निर्झरांश्चैव ददर्शाद्भुतदर्शनान् ॥ —महाभारत
२५३१-३२ मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः। कन्दमूलफलै रम्यो वटच्छायासमन्वितः॥
२५३३-३४ एषा प्रसन्नसलिला पद्मनीलोत्पला शुभा। जले तरुणसूर्याभैः षट्पदाहतकेसरैः॥
पंकजैः शोभते हृद्या सरसी सारसान्विता। —वाल्मीकीयरामायण
२५३६ कन्दैर्मूलैर्वनोद्भूतैरर्हणं चक्रुरादरात् ॥ —आनन्दरामायण

देहिं लोग बहु मोल, न लेहीं। फेरत राम-दोहाई देहीं। (२)
कहहिं सनेह-मगन मृदु बानी। मानत साधु, पेम-पहिचानी।
२५४० तुम सुकृती, हम नीच निषादा। पावा दरसन राम-प्रसादा। (३)
हमहिं अगम अति, दरस तुम्हारा। जस मरुधरनि देव-धुनि-धारा।
राम कृपाल, निषाद-नेवाजा। परिजन-प्रजउ चहिय, जस राजा। (४)
दो०—यह जिय जानि, सँकोच तजि, करिय छोह, लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ-करन-लगि, फल, तृन, अंकुर लेहु॥ २५०॥
तुम प्रिय पाहुन, बन पग धारे। सेवा-जोग न भाग हमारे।
देब काह हम तुमहिं गोसाँई। इँधन-पात किरात-मिताई। (१)
ऐहि हमार अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन-बसन चोराई।
हम जड़ जीव, जीवगन-घाती। कुटिल, कुचाली, कुमति, कुजाती। (२)
पाप करत, निसि-बासर जाहीं। नहिं पट कटि, नहिं पेट अघाहीं।

वस्तुओंका बहुत-बहुत मूल्य निकाल-निकालकर दिए जा रहे थे, पर वनवासी लोग थे कि उनसे एक कौड़ी लेनेको तैयार नहीं थे। जब लोग उनकी दी हुई वस्तु उन्हें लौटाने लगते थे (कि हम बिना मूल्य दिए नहीं लेंगे) तो वे (वनवासी) रामकी दुहाई (शपथ) देने लगते थे और मूल्य नहीं लेते थे। (२) (कारण पूछनेपर) वे सब प्रेममें मग्न हो-होकर विनम्रतासे कहने लगते थे—'सज्जन तो केवल प्रेम ही पहचानकर मान जाते हैं' (हम आप सज्जनोंसे प्रेम करते हैं उसी प्रेमके नाते आप हमारी भेंट स्वीकार कर लीजिए)।' आप सब कितने बड़े पुण्यवान् लोग ठहरे औरहम सब ठहरे नीच केवट ! यह तो रामकी ही कुछ कृपा हो गई कि हमें आप-जैसे लोगोंके दर्शन मिल गए। (३) (नहीं तो) हमें आपका दर्शन पाना वैसा ही कठिन था, जैसे मरुभूमिमें रहकर गंगाकी धारा पा लेना (कठिन है)। कृपालु रामने जब केवट गुहपर इतनी कृपा कर डाली, तब आप सबको भी जो उनके कुटुम्बी हैं और उनकी प्रजाको भी हम केवटोंसे वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा राजा करता हो। (४) यह जानकर, संकोच छोड़कर आप हमारा प्रेम देखकर हमपर कृपा करके हमें कृतार्थ करनेके लिये यह हमारा फल और तृण-अंकुर स्वीकार (करनेका कष्ट) कर लीजिए॥ २५०॥ (इस समय तो) आप लोग हमारे प्रिय पाहुने (अतिथि) होकर वनमें पधारे हैं, (नहीं तो) आपकी सेवा करना हमारे भाग्यमें लिखा कहाँ था ? स्वामी ! भला हम लोग किस योग्य हैं ही कि आपको कुछ दे सकें। किरातोंकी मित्रता तो इँधन और पत्ते-तक ही होती है (किरात बहुत करेगा इँधन और पत्ते ला जुटा देगा, बस)। (१) हमारी तो यही बहुत बड़ी सेवा समझिए कि हम आपके कपड़े-लत्ते और बर्तन-भाँड़े नहीं चुरा ले जा रहे हैं। हम सब बड़े अबोध लोग हैं और दिनरात जीवों (मछलियों, कछुओं और हिरन आदि)-की हिंसा करते रहते हैं। हम सब तो बड़े कुटिल, कुचाली, बुद्धिहीन और नीच जातिके हैं। (२) हमारा तो रात-दिन केवल पाप ही कमाते बीतता है। न तो हमें तनपर कपड़ा ही जुट पाता न पेट-भर भोजन ही (भोजन और वस्त्र-तकका नितान्त अभाव है)। हम स्वप्नमें भी नहीं जान पाते कि धर्म क्या होता है (अतिथिकी

२५४०-४१ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्। निःश्रेयसाय भगवान् कल्पते नान्यथा क्वचित्॥भागवत
२५४६-४७ ग्रहीतुकामास्तिष्ठामो वयं किं आणितुं क्षमाः। अरण्येऽत्र महाराज यूयं शासितुमर्हथ। आन०रा०
२५४८-४९ अहह जन्म गतञ्च निरर्थकं न यजनं जपनं भजनं कृतम्।
न गुरुपादसरोरुहसेवनं प्रतिदिनं जठरस्य विपोषणम्॥ —नारदपुराण

२५५० सपनेहुँ धरम - बुद्धि कस, काऊ। यह रघुनंदन - दरस प्रभाऊ। (३)
जब - तें प्रभु - पद - पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख - दोष हमारे।
बचन सुनत, पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे। (४)
छं०—लागे सराहन भाग, सब अनुराग - बचन सुनावहीं।
बोलनि, मिलनि, सिय-राम-चरन-सनेह लखि, सुख पावहीं।
नर-नारि निदरहिं नेह निज, सुनि कोल-भिल्लनि-की गिरा।
तुलसी, कृपा रघुबंस - मनि - की, लोह लै[1] लौका[2] तिरा।। [६]
सो०—बिहरहिं बन चहुँ ओर, प्रतिदिन, प्रमुदित, लोग सब।
जल ज्यों दादुर - मोर , भये पीन, पावस प्रथम।। २५१।।
पुर - नर[3] - नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक - सम बीती।
२५६० सीय, सासु प्रति - बेप बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई। (१)
लखा न मरम राम - बिनु काहू। माया सब, सिय - माया - माहू।
सीय, सासु सेवा - बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख, सिख-आसिष दीन्हीं। (२)

सेवा कैसे करनी चाहिए। । यह सब तो रामके दर्शनका ही प्रभाव है (कि हम आपकी यह सेवा किए जा रहे हैं)। (३) जबसे हम लोगोंने प्रभु रामके चरण-कमलोंके दर्शन पाए, तभीसे हमारे सारे कष्ट और पाप मिट भागे।' केवटोंके ऐसे वचन सुन-सुनकर अयोध्यावासी इतने प्रेममें मगन हो उठे कि वे सब उन केवटोंके भाग्यकी सराहना करने लगे (कि ये बड़े भाग्यशाली हैं जो इनपर रामकी इतनी कृपा है)। (४) सब लोग उनके भाग्यकी सराहना करते हुए बड़े प्रेमसे उनसे घुल-मिलकर बातें किए जा रहे थे। (अयोध्यावासी इन कोल-भीलोंकी) बातें, इनका मिलना, सीता और रामके चरणोंमें उनकी प्रीति देख-देखकर प्रसन्न हुए जा रहे थे। इन कोल-भीलोंकी बातें सुन-सुनकर अयोध्यावासी स्त्री-पुरुष कहे जा रहे थे–'रामसे इनको जितना प्रेम है उसके सामने हमारा प्रेम तो कुछ भी नहीं है।' तुलसीदास कहते हैं—'भगवान् रामकी ऐसी कृपा हुई कि अपनेको लोहेके समान भारी समझनेवाले (रामसे अधिक प्रेम करनेका दम भरनेवाले अयोध्यावासी तो डूब रहे) तो प्रेममें पिछड़ गए और तुम्बी–जैसे हलके कोल-भीलोंका प्रेम तैरकर आगे निकल गया (अयोध्यावासियोंके प्रेमकी अपेक्षा कोल-भीलोंका प्रेम अधिक बढ़ गया)। [६] सब लोग प्रतिदिन वनमें इधर-उधर वैसे ही आनन्दित हो-होकर घूमते-फिरते रहते थे, जैसे प्रथम वर्षा होनेपर प्रसन्नतासे मोर नाचते और मेंढक फुदकते फिरते हैं।। २५१।। नगर (अयोध्या)-के स्त्री और पुरुष रामके प्रेममें इतने अधिक मग्न हुए रहते कि पलक मारते दिन निकल जाता था। सीता भी अनेक रूप बनाकर आदरपूर्वक सब सासोंकी अलग-अलग बराबर सेवा किए जा रही थीं। (१) यह भेद रामके अतिरिक्त और कोई भाँप नहीं सका (कि उन्होंने इतने रूप बना रक्खे हैं) क्योंकि सीताकी मायामें ही तो जगत्की सारी मायाएँ पलती हैं (उनके लिये यह कौन कठिन काम था)। सीताने अपनी सेवासे सब सासोंका इतना मन मोह लिया कि उन्होंने उनकी सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें बहुत शिक्षाएँ भी दीं और आशीर्वाद भी दिए। (२) सीता और दोनों भाइयों

१. लै=से;लेकर। २. नौका, लौका = नौका : नौकाको ऊपर चढ़ाकर लोहा तैर गया। (अयोध्यावालोंके प्रेमसे बढ़कर कोल-भीलोंका प्रेम सिद्ध हुआ)। ३. जन।

२५५१-५७ श्रियं विकर्षत्यपहन्त्यघानि श्रेयः परिस्नौति तनोति कीर्त्तिम्।
संदर्शनं लोकगुरोरमोघं तवात्मयोनेरिव किन्न धत्ते।। –किरातार्जुनीय
२५६०-६२ सर्वं श्वश्रूजनं सीता सिषेवेऽनेकरूपतः। ततस्तुष्टाश्च सीतायै दत्तवत्यः शुभाशिषम्।।आन०रा०

लखि सिय-सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि, पछितानि अघाई।
अवनि - जमहिँ[1] जाँचति कैकेई। महि न बीचु, बिधि मीचु न देई। (३)
लोकहु, वेद - बिदित, कवि कहहीं। राम-बिमुख, थल नरक न लहहीं।
यह संसउ सबके मन - माहीं। राम-गवन, बिधि! अवध कि नाहीं। (४)

दो०—निसि न नींद, नहि भूख दिन, भरत बिकल सुठि[2] सोच।
नीच-कीच-बिच मगन जस, मीनहिँ सलिल-सँकोच ॥ २५२ ॥

कीन्ह मातु-मिस काल कुचाली। ईति - भीति जस पाकत साली।
२५७० केहि बिधि होइ राम - अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाय न एकू। (१)
अवसि फिरहिँ गुरु - आयसु मानी। मुनि, पुनि कहब, राम-रुचि जानी।
मातु कहेउ बहुरहिँ रघुराऊ। राम-जननि, हठ करबि कि काऊ।
मोहिँ अनुचर - कर केतिक बाता। तेहि - महँ कुसमउ, बाम बिधाता। (२)
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हर - गिरि - तें गुरु सेवक-धरमू।
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिँ रैनि बिहानी। (३)

(राम, लक्ष्मण)-का निश्छल व्यवहार देख-देखकर कुटिल रानी (कैकेयी) भी बहुत पछताए जा रही थी (कि हाय ! ऐसे अच्छे लोगोंके साथ मैंने यह क्या कर डाला ! इस पछतावेके मारे) कैकेयी पृथ्वी (से फट जानेकी) और विधाता (काल)-से अपनी मृत्युकी याचना किए जा रही थी। पर न तो पृथ्वी ही फट पा रही थी और न विधाता[3] (काल) ही मृत्यु दे पा रहा था। (३) लोक-व्यवहारमें तथा वेद (वैदिक साहित्य, स्मृति, पुराण आदि)-में भी यह बात प्रसिद्ध है और कवि भी यही कहते हैं कि रामकी ओरसे जो मुँह फेर बैठता है उसे नरकमें भी ठौर नहीं मिल पाती। (वहाँ जितने लोग आए हुए थे) सबके मनमें यही धुकधुकी हुई जा रही थी कि—'हे भगवान् ! राम किसी प्रकार अयोध्या लौट भी चल सकेंगे या नहीं।' (४) भरतको तो न रातमें नींद, न दिनको भूख। वे इसी चिन्तामें वैसे ही घुले चले जा रहे थे जैसे गढ़ेके कीचड़के तलमें पड़ी हुई मछली, पानी कम हुए जानेकी चिन्तामें बेचैन हुई रहती है ॥ २५२ ॥ (भरत इसी चिन्तामें पड़े थे कि–) 'भाग्यने माताकी आड़में मेरे साथ वैसे ही कुचाल खेल डाली है जैसे पकते हुए धानको ईति (चूहे, टिड्डियों)-का संकट आ लगे। (इसीलिये यह आशंका हुई जा रही है कि) रामका राज्याभिषेक हो भी पावेगा या नहीं ? मुझे तो एक भी उपाय सोचे नहीं सूझ पड़ रहा है। (१) हाँ, यदि गुरु वशिष्ठ आज्ञा दे दें तो वे अवश्य लौट चल सकते हैं। पर मुनि वशिष्ठ भी तो जब रामकी वैसी इच्छा देखेंगे तभी (लौट चलनेको) कहेंगे। हाँ, माता कौशल्या यदि कह दें तब भी वे लौट चल सकते हैं। पर माता क्या उनसे लौट चलनेके लिये कभी हठ कर पावेंगी ? । (जब उनके लौटाए नहीं लौट चल पा सकेंगे तब) मुझ-जैसे सेवककी तो गिनती ही क्या है ? (२) उसपर भी, कुछ तो मेरे दिन ही खोटे आ गए हैं और कुछ भाग्य भी साथ नहीं दे पा रहा है। यदि मैं (लौट चलनेके लिये) हठ करनेकी सोचूं भी तो भी बड़ा कुकर्म होगा क्योंकि सेवकका धर्म तो कैलास पर्वतसे भी कहीं

१. अव निज मन। २. सुचि। ३. कालको यम भी कहते हैं, विधाता भी।

२५६४ तथा विश्वम्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि। –रघुवंश
२४६६-६८ न लेभे स तु निद्रां वै दह्यमानो हि मन्युना। –महाभारत
भरतो हृदये नित्यं दुःखितो व्याकुलोऽभवत्। अयोध्यागमनं वा नो राघवस्य भविष्यति॥प्रजेशसं०
२५७५ न तस्य निश्चयो जज्ञे तस्मिन्कृत्ये कथंचन। व्यतिक्रान्ता निशा विप्रा कृच्छ्रेण महता ततः॥स्कंदपु०

प्रात नहाइ, प्रभुहिँ सिर नाई। बैठत, पठये रिषय बोलाई। (३॥)
दो० - गुरु-पद-कमल प्रनाम करि, बैठे आयसु पाइ।
बिप्र, महाजन, सचिव सब, जुरे सभासद आइ॥ २५३॥
बोले मुनिवर समय - समाना। सुनहु सभासद ! भरत सुजाना।
२५८० धरम - धुरीन भानु - कुल - भानू। राजा राम स्वबस भगवानू। (१)
सत्यसंध, पालक - श्रुति - सेतू। राम - जनम जग - मंगल हेतू।
गुरु - पितु - मातु - बचन - अनुसारी। खल - दल - दलन, देव - हितकारी। (२)
नीति, प्रीति, परमारथ, स्वारथ। कोउ न राम-सम जान जथारथ।
बिधि-हरि-हर-ससि-रबि - दिसिपाला। माया - जीव - करम - कुल - काला। (३)
अहिप - महिप जहँ - लगि प्रभुताई। जोग - सिद्धि निगमागम गाई।
करि बिचार, जिय देखहु नीके। राम - रजाइ, सीस सबही - के। (४)
दो०—राखे राम - रजाइ - रुख, हम सब-कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि संमत सोइ॥ २५४॥

अधिक भारी होता है (उसे तो केवल आज्ञा ही माननी चाहिए, स्वामीसे हठ नहीं करना चाहिए)।' (३) भरतके मनमें एक भी उपाय जम नहीं पा रहा था। इसी उधेड़बुनमें सारी रात निकल गई। प्रातःकाल स्नान करके और रामको सिर नवाकर वे बैठे ही थे कि इतनेमें ही गुरु वशिष्ठका बुलावा आ पहुँचा। (३॥) भरत (तत्काल) उठकर गुरु वशिष्ठके (पास जा पहुँचे और उनके) चरण-कमलोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञासे वहाँ जा बैठे। तबतक और भी अनेक ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभासद् भी वहाँ आ एकत्र हुए थे ॥ २५३॥ जैसा समय आ पड़ा था उसे देखते हुए मुनि वशिष्ठ कहने लगे—'सभासदो ! सुजान भरत ! सुनो। सूर्यकुलमें सूर्यके समान प्रतापी राजा राम तो धर्म-धुरन्धर (धर्मके रक्षक) और स्वतन्त्र भगवान् हैं। (१) वे बड़े सत्यनिष्ठ और वेदकी मर्यादाके रक्षक हैं। रामने संसारके कल्याणके लिये ही जन्म लिया है। वे सदा गुरु, पिता और माताकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करते, दुष्टोंका नाश करते तथा देवताओंका हित करते हैं। (२) रामके समान ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो नीति, प्रेम, परमार्थ (ज्ञान) और स्वार्थ (अपने हित)-को ठीक-ठीक समझता-बूझता हो। मनमें भली प्रकार विचारकर समझोगे (तो ज्ञात हो जायगा) कि रामकी आज्ञा तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म, सब (भूत, वर्त्तमान, भविष्य) काल, (३) शेष और संसारके सभी शक्ति-शाली राजाओंपर चलती है (सबको माननी पड़ती है)। (४) इसलिये रामकी जो आज्ञा हो और जैसी उनकी इच्छा हो वैसा ही किए चलनेमें हम सबका कल्याण होगा। अब आप सब वृद्ध लोग मिलकर जो विचार स्थिर करें वही चलकर किया जाय॥ २५४॥ (इसमें कोई सन्देह

२५७६ ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्णिकक्रियः। प्रणम्य शिरसा रामं ततः प्राह सुदुःखितः॥
२५७७-७८ भरतः स्वगुरुं नत्वा सभायां संस्थितस्तथा। सदस्यैः सहितः श्रीमान् रामस्नेहामलद्युतिः॥ महारा०
२५७९-८६ कालानुकूलं प्रोवाच मुनीशो भरतं तथा। सभ्यान् धर्मविदां श्रेष्ठो मार्तंडकुलभास्करः॥
भगवान् स्ववशो राजा रामचन्द्रः प्रतापवान्। सत्यसंधः श्रुतीनां च रक्षिता रामजन्म वै॥
अयोध्यानगरे जातं जगन्मंगलहेतवे। गुरोः पितुस्तथा मातुर्वाक्यपालनतत्परः॥
देवानां हितकारी च दुष्टसंघविनाशकः। नीतिं प्रीतिं निजार्थं च यथार्थं परमार्थताम्॥ काश्यपसं०

सब - कहँ सुखद राम - अभिषेकू । मंगल - मोद - मूल मग एकू ।
२५९० केहि विधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि, सोइ करिय उपाऊ । (१)
सब सादर सुनि मुनिबर - बानी । नय - परमारथ - स्वारथ - सानी ।
उतर न आव, लोग भे भोरे । तब सिर नाइ, भरत कर जोरे । (२)
भानु - बंस भे भूप घनेरे । अधिक एक - तें एक बड़ेरे ।
जनम - हेतु सब - कहँ पितु - माता । करम सुभासुभ देइ विधाता । (३)
दलि दुख, सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि, जग जाना ।
सोइ गोसाइँ ! विधि - गति जेहि छेंकी । सकइ को टारि, टेक जो टेकी । (४)
दो०—बूझिय मोहिं उपाय अब , सो सब मोर अभाग ।
सुनि सनेहमय वचन, गुरु ,-उर उमगा अनुराग ।। २५५ ।।
तात ! बात फुरि राम - कृपाहीं । राम - बिमुख, सिधि सपनेहुँ नाहीं ।
२६०० सकुचउँ तात ! कहत एक बाता । [१अरध तजहिं बुध, सरबस जाता । (१)

नहीं कि) सबको सुख देनेवाला, मंगल और आनन्ददायक कार्य एक ही है कि रामका राजतिलक हो जाय । अब रामको किस प्रकार अयोध्या लौटा ले चला जाय यह आप सब लोग समझकर बताइए जिससे वही उपाय किया जाय ।' (१) प्रसिद्ध मुनि वशिष्ठकी नीति, परमार्थ और स्वार्थसे युक्त यह बात सबने सुनी तो बड़े आदरसे, पर किसीसे उसका कुछ उत्तर देते न बना । सब लोग सन्न रह गए । तब भरत हाथ जोड़कर, सिर नवाकर (कह उठे)—(२) 'सूर्यवंशमें एकसे एक बड़े बहुतसे राजा हो गए हैं, पर सबको उनके माता-पिताने केवल जन्म-भर दिया, उन्हें उनके शुभ और अशुभ कर्मोंका फल देनेवाला विधाता ही रहा । (३) किन्तु सारा संसार जानता है कि आपका तो आशीर्वाद ही उन सबके दुःखोंका नाश करके सबका कल्याण करता रहा है । गोसाइँ ! आप तो वही हैं न, जो विधाताकी गति भी रोके बैठे हैं (आपपर विधाताका भी वश नहीं चलता क्योंकि कई युगोंसे केवल रामका दर्शन पानेकी लालसासे आप जीवित रहते चले आ रहे हैं)। अतः, आप जो निश्चय कर देंगे उसे भला टाल कौन पा सकता है ? (४) यह मेरा अभाग्य ही है कि (ऐसे समर्थ होकर भी) आप मुझसे उपाय पूछे जा रहे हैं ।' भरतके ऐसे स्नेहसे भरे हुए वचन सुनकर गुरु वशिष्ठके हृदयमें बहुत प्रेम उमड़ चला ।। २५५ ।। (वे बोले—) 'देखो भरत ! तुम बात तो ठीक कह रहे हो, पर यह सब (जो मुझमें शक्ति देख रहे हो वह) रामकी कृपाका ही फल है । रामसे मुँह फेर लेनेपर तो स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती । वत्स ! मैं एक बात कहते झिझका पड़ रहा हूँ । (वह यह कि) बुद्धिमान् लोग जब देखते हैं

१. यहाँसे चार चरण आगे 'दोउ भ्राता'-तक प्रतिलिपिकारकी भूलसे राजापुरकी प्रतिमें छूट गया है ।

वेत्त्येको भगवान् रामः शरणागतवत्सलः । विधिर्हरिर्हरश्चन्द्रः सूर्यो दिक्पालकास्तथा ।।
माया जीवोऽखिलः कालः कर्माहीशो नरेश्वराः । अन्ये च प्रभवो सिद्धा योगिनो वेदवादिनः ।।
रामाज्ञां नातिवर्त्तन्ते रामसेवापरायणाः । —काश्यपसंहिता
२५८९-९५ रामराज्याभिषेकश्च सर्वेषां मंगलप्रदः । कथं भवेद्वचो लोका उत्तरं प्रवदन्तु मे ।।
२५९५-९६ मुनिराजवचः श्रुत्वा तं प्रणम्य कृतांजलिः । प्रोवाच भरतः स्वामिन् त्वदाशीर्वचनं क्षमम्।।संव०सं०
दैवं पुरुषकारेण निवर्त्तयितुमर्हसि । —वाल्मीकीयरामायण
२५९७-९८ विधातुं सकलं कर्म ममाभाग्यं हि पृच्छसि । यत्त्वं प्रेममयं वाक्यं श्रुत्वा प्रेमाकुलो गुरुः ।।
२६०० सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः । अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुस्तरः ।। शुक्रनीति

तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरियहिं लखन - सीय - रघुराई।
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता][1]। भे प्रमोद - परिपूरन गाता। (२)
मन प्रसन्न, तन तेज बिराजा। जनु जिय, राउ राम भे राजा।
बहुत लाभ लोगन, लघु हानी। सम दुख-सुख, सब रोवहिं रानी। (३)
कहहिं भरत, मुनि कहा सो कीन्हें। फल, जग-जीवन्ह अभिमत दीन्हें।
कानन करउँ जनम - भरि बासू। ऐहि तें अधिक न मोर सुपासू। (४)
दो०—अंतरजामी राम - सिय, तुम सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु, त नाथ! निज, कीजिय बचन - प्रवान ॥ २५६ ॥
भरत - बचन सुनि, देखि सनेहू। सभा - सहित मुनि भये बिदेहू।
२६१० भरत - महा - महिमा जल - रासी। मुनि-मति ठाढ़ि तीर अबला-सी। (१)
गा चह पार, जतन हिय - हेरा। पावति नाव, न बोहित, बेरा।

कि सर्वस्व चला जा रहा है तो, आधा छोड़ देना ही उचित समझते हैं। (१) (इसलिये अच्छा यह होगा कि)– 'तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन चले जाओ और लक्ष्मण, सीता तथा रामको (अयोध्या) लौटा ले चला जाय।' यह मनभावन प्रस्ताव सुनना था कि दोनों भाई प्रसन्न हो उठे। उनके अङ्ग-अङ्गमें परमानन्द लहरा उठा। (२) उनका मन ऐसा प्रसन्न हो उठा मानो उनके शरीरमें तेज आ छाया हो, मानो राजा दशरथ ही जी उठे हों और मानो राम राजा हो गए हों। वहाँ और भी जो लोग थे उन्हें भी इस प्रस्तावमें लाभ अधिक और हानि थोड़ी प्रतीत हो रही थी किन्तु जहाँतक रानियोंके दुःख-सुखकी बात थी वह ज्योंकी त्यों बनी रहीं (क्योंकि अब भी दो बेटोंका वियोग था और इस प्रस्तावसे भी दो अन्य बेटोंका वियोग बना रहनेवाला था)। इसलिये यह प्रस्ताव सुनकर रानियाँ तो सब फिर रोने-कलपने लगीं। (३) भरतने (माताओंसे) कहा—'मुनि जो कह रहे हैं, वही (ठीक है और वही) करना भी चाहिए। ऐसा करनेसे संसार जो फल (राम-राज्यका सुख) चाहता है वह उसे प्राप्त हो जायगा। मैं जीवन-भर वनमें जा रहूँ इससे बढ़कर मेरे लिये सुखकी और क्या बात होगी।' (४) फिर उन्होंने वशिष्ठसे कहा—'राम और जानकी तो सबके हृदयकी बात जानते हैं, और आप भी सर्वज्ञ और सुजान हैं (आप भी सबके मनकी बात जानते हैं)। इसलिये नाथ! यदि आपने यही निश्चय कर दिया हो तो इस निश्चयको पूरा कर डालिए' ॥२५६॥ भरतके वचन सुनकर और उनका स्नेह देखकर सब सभासद् और मुनि वशिष्ठ अपनी देहकी सुध-बुध भूल बैठे। जिस भरतकी विराट् महिमाके समुद्रके तीरपर मुनि वशिष्ठकी बुद्धि उस अबला (शक्तिहीन स्त्री)-के समान भौचक खड़ी रह गई (१) जो पार तो जाना चाह रही हो पर बहुत ढूँढ़नेपर भी जिसे न तो नाव ही मिल पा रही हो, न जहाज, न बेड़ा, ऐसे भरतकी प्रशंसा कोई कर कैसे पा सकता है? कहीं तालाबकी सीपोमें समुद्र समा पा सकता है? (जैसे सीपीमें समुद्र

१. 'अधँ तजहिं' (पंक्ति २६००) से यहाँतक राजापुरकी प्रतिमें छूट गया है।

२६०१ गच्छतां भ्रातरौ द्वौ तु प्रियानुजयुतो वनम्। रामो गच्छतु साकेतं श्रुत्वा हृष्टौ बभूवतुः॥
२६०४ समदुःखसुखा राज्ञ्यः परिदीव्यन्ति नेतरे॥ —सनकसंहिता
२६०७-८ अन्तर्गतं प्राणभृतां हि वेद सर्वं भवान् भावमतोऽभिधास्ये। —रघुवंश
त्वदधीनं तु तत्सर्वं कुरु सत्यं निजं वचः। —अध्यात्मरामायण

और करिहि को भरत - बड़ाई । सरसी सीपि कि सिंधु समाई । (२)
भरत, मुनिहिं मन - भीतर भाए । सहित - समाज राम-पहँ आए ।
प्रभु, प्रनाम करि, दीन्ह सुआसन । बैठे सब, सुनि मुनि - अनुसासन । (३)
बोले मुनिबर, बचन बिचारी । देस - काल - अवसर - अनुहारी ।
सुनहु राम ! सरबग्य, सुजाना । धरम - नीति - गुन - ग्यान - निधाना । (४)
दो०—सबके उर - अंतर बसहु , जानहु भाउ - कुभाउ ।
पुरजन - जननी - भरत - हित , होइ, सो कहिय उपाउ ।। २५७ ।।
आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहिं आपुन दाऊ ।
२६२० सुनि मुनि - बचन कहत रघुराऊ । नाथ ! तुम्हारेहि हाथ उपाऊ । (१)
सब - कर हित, रुख राउरि राखे । आयसु किए, मुदित फुर भाखे ।
प्रथम जो आयसु मो - कहँ होई । माथे मानि, करउँ सिख सोई । (२)
पुनि जेहि-कहँ, जस कहब गोसाईं । सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ।

नहीं समा सकता वैसे ही किसीकी बुद्धि भी भरतका पूरा महत्त्व समझ नहीं पा रही थी कि वह उसका ठीक-ठीक वर्णन कर पा सके) । (२) मुनि वशिष्ठको तो भरत बहुत ही सज्जन-प्रतीत हुए । वे सबको लिए-दिए सीधे रामके पास जा पहुँचे । प्रभु रामने सबको प्रणाम करके उन्हें अच्छे-अच्छे आसनोंपर ले जा बैठाया । मुनि वशिष्ठकी आज्ञा पाकर सब लोग अपने-अपने आसनोंपर जा बैठे । (३) सबके बैठ चुकनेपर मुनि वशिष्ठने देश, काल और अवसर देखते हुए विचार-पूर्वक कहना प्रारंभ किया—'देखो राम ! तुम तो सब कुछ जानते भी हो और बुद्धिमान् भी हो । धर्म, नीति, गुण और ज्ञानका कोई अंग ऐसा नहीं है जो तुमसे अछूता बच रहा हो । (४) तुम सबके घट-घटमें बसे हुए हो और सबके मनकी अच्छाई और बुराई भली-भाँति जानते हो । इसलिये कोई ऐसा उपाय ढूंढ निकालो जिससे नगरवासियोंको, माताओंको तथा भरतको सबको सन्तोष हो ।। २५७ ।। (हम लोग तो सब बड़े दुखी हैं) इसलिये दुखी लोग कोई बात वैसे ही भली भाँति विचारकर नहीं कह पाते जैसे जुआड़ीको सदा अपने ही दाँवकी बात सूझनी है (दूसरोंका हित-अनहित वह नहीं सोच पाता) ।' मुनिके वचन सुनकर रामने कहा—'नाथ ! (आप मुझसे क्या पूछ रहे हैं ?) उपाय तो सब आपके हाथमें धरे रक्खे हैं । (१) आपकी इच्छाके अनुसार चलनेसे, आपकी आज्ञा माननेसे और प्रसन्न होकर उचित कहनेसे ही सबका हित होगा तो होगा । इसलिये पहले आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपका आदेश सिरमाथे चढ़ाकर उसका पालन किए डालता हूँ । (२) फिर गोस्वामी ! आप जिसे जैसा आदेश देंगे, वह

२६०९-१२ भारतीं भारतीं श्रुत्वा स्नेहं दृष्ट्वा च भारतम् । वशिष्ठः सभ्यसहितो विदेहस्तत्क्षणेऽभवत् ।।
प्रभावं भरतस्येशः समर्थो न कथंचन । वक्तुं फणीशो ब्रह्मा च शारदा नारदस्तथा।।सनं०सं०
२६१३-१४ ससमाजो मुनिश्रेष्ठो रामचन्द्रमुपागतः । प्रभुः प्रणम्य सर्वेभ्यो दत्तवान् शुभमासनम्।।सना०सं०
२६१५-१८ कालानुकूलं प्रोवाच वचनं मुनिपुंगवः । भरतस्य च मातॄणां प्रजानां च हितं भवेत् ।।
यथा राम तथोपायं वद शीघ्रं ममाग्रतः ।। —सनत्कुमारसंहिता
२६१९ न पश्यति जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति । मदोन्मत्ता न पश्यन्ति अर्थी दोषं न पश्यति ।।चाण०
यत्नं कुरु महाप्राज्ञ यथा स्वस्त्यावयोर्भवेत् । —महाभारत
२०२०-२३ रामो मुनिवचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिपुंगवम् । यथा नाथ तवाज्ञास्यात्कर्त्तुमिच्छाम्यहं तथा।।का०सं०

कह मुनि, राम ! सत्य तुम भाखा । भरत - सनेह - विचार न राखा । (३)
तेहि - तें कहउँ बहोरि - बहोरी । भरत-भगति-बस भइ मति मोरी ।
मोरे जान, भरत - रुचि - राखी । जो कीजिय, सो सुभ, सिव साखी । (४)
दो०—भरत - बिनय सादर सुनिय , करिय बिचार बहोरि ।
करब साधुमत, लोकमत , नृप-नय, निगम निचोरि ।। २५८ ।।
गुरु - अनुराग भरत - पर देखी । राम - हृदय आनंद बिसेखी ।
२६३० भरतहिं धरम - धुरंधर जानी । निज सेवक तन - मानस - बानी । (१)
बोले, गुरु - आयसु - अनुकूला । बचन मंजु, मृदु, मंगल - मूला ।
नाथ - सपथ, पितु - चरन दोहाई । भयउ न भुवन भरत - सम भाई । (२)
जे गुरु - पद - अंबुज - अनुरागी । ते लोकहुँ, बेदहुँ बड़ - भागी ।
राउर जा - पर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत - कर भागू । (३)
लखि लघु बंधु, बुद्धि सकुचाई । करत बदन - पर भरत - बड़ाई ।
भरत कहहिं सोइ किए भलाई । अस कहि, राम रहे अरगाई । (४)

सब प्रकारसे आपकी आज्ञा पालन करेगा ही ।' यह सुनकर मुनिने कहा—'देखो राम ! तुमने बात तो ठीक कही, पर तुमने भरतके स्नेहका विचार करके नहीं कहा (कि उनपर कैसी बीती जा रही है) । (३) इसलिये मैं बार-बार यही कहता हूँ कि मेरी बुद्धि तो भरतके हाथ बिक चुकी है । मैं शिवकी दुहाई देकर कहता हूँ कि मेरी समझमें तो आप भरतकी इच्छाका ध्यान रखते हुए जो कुछ करेंगे वही ठीक होगा (उसीसे सबका कल्याण होगा) । (४) इसलिये पहले आप आदरके साथ भरतकी प्रार्थना सुन लीजिए । फिर उसपर विचार करके वैसा ही कीजिए जिसे सज्जन भी ठीक कहें, लोक-मत भी जिसका समर्थन करे और राजनीति तथा वेदमतके अनुसार भी जो उचित हो' ।।२५८।। भरत-पर गुरु वशिष्ठका इतना प्रेम देखकर रामका हृदय आनन्दसे फूल उठा । भरतको धर्म-धुरन्धर (धर्मके अनुसार आचरण करनेवाला) जानकर और मनसे, वाणीसे और कर्मसे अपना सेवक (भक्त) समझकर (१) गुरुकी आज्ञाके अनुसार उन्होंने कोमल, मधुर और मंगल-दायक शब्दोंमें कहना प्रारंभ किया—'नाथ ! आपकी सौगंध लेकर तथा पिताके चरणोंकी दुहाई देकर कहता हूँ कि भरतके समान भाई इस लोकमें कोई दूसरा हुआ नहीं (जिसे आपकी कृपा मिल गई हो), (२) क्योंकि अपने गुरुके चरण-कमलोंसे जो प्रेम करता हो, उसे संसार भी बड़ा भाग्यवान् मानता है और वेद भी । जिस भरतपर आपका इतना स्नेह हो, उसके सौभाग्यका वर्णन भला कर कौन सकता है ? (उससे बढ़कर दूसरा कौन भाग्यवान् होगा ?) (३) भरत मेरे छोटे भाई हैं, इसलिये उनके मुँहपर उनकी बड़ाई करनेमें मुझे थोड़ी झिझक हुई जा रही है । भरत जो कुछ कहेंगे वैसा ही करनेमें मैं (सबकी) भलाई समझता हूँ ।' इतना कहकर राम चुप हो

२६२४-२६ भरतस्य वचः कुर्वन् याचमानस्य राघव । आत्मानं नातिवर्तेस्त्वं सत्यधर्मपराक्रम ।। वा.रा.
२६२७-२८ रामं मुनिवरश्चाह भरताभ्यर्थनं शृणु । लोकवेदमतं बुद्ध्वा रामकार्यं पुनः कुरु ।। जम०सं०
२६२९-३० भरते मुनिनाथस्य प्रेम दृष्ट्वा रघूत्तमः । चकार भरतश्लाघां लीलानरवपुर्हरिः ।। कण्वसं०
२६३१-३४ कोमलं वचनं रामोऽब्रवीत् मुनिवरं तदा । भरतेन समो भ्रातः नाथ नो दृश्यते क्वचित् ।।
गुरुभक्तिविशिष्टस्य भाग्यं किं वर्णयाम्यहम् । यस्य भक्त्या भवान् प्रीतो धन्यः सोऽत्र न संशयः ।।कण्वसं०
२६३५ तूष्णीम्भूतोऽनुजासन्ने प्रत्यक्षे गौरवं ददत् । —शांडिल्यसंहिता

दो०—तब मुनि बोले भरत - सन , सब सँकोच तजि तात ।
कृपासिंधु प्रिय - बंधु - सन , कहहु हृदय - कै बात ।। २५९ ।।
सुनि मुनि - बचन, राम - रुख पाई । गुरु - साहिब - अनुकूल अघाई ।
२६४० लखि अपने सिर सब छरुभारू । कहि न सकहिं कछु, करहिं बिचारू । (१)
पुलकि सरीर, सभा भे ठाढ़े । नीरज - नयन, नेह - जल बाढ़े ।
कहब मोर, मुनि - नाथ निबाहा । ऐहि - तें अधिक कहौं मैं काहा । (२)
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु - पर कोह न काऊ ।
मो - पर कृपा - सनेह बिसेखी । खेलत खुनिस न कबहूँ देखी । (३)
सिसुपन - तें परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ।
मैं प्रभु - कृपा - रीति जिय जोही । हारेहु खेल जितावहिं मोंही । (४)
दो०—महूँ सनेह - सकोच - बस , सनमुख कहे न बैन ।
दरसन-तृपित न आज लगि , प्रेम - पियासे नैन ।। २६० ।।

बैठे । (४) तब मुनि वशिष्ठने भरतसे कहा—'भरत ! अब तुम सारा संकोच छोड़कर अपने प्यारे भाई और कृपाके सागर रामसे जो कुछ कहना चाहते हो, जी खोलकर कह डालो' ।। २५९ ।। मुनिकी बात सुनकर, रामका संकेत पाकर, गुरु तथा स्वामी (राम)-को पूर्ण रूपसे अपने पक्षमें समझकर तथा अपने ही ऊपर सारा भार (पड़ा) देखकर वे (भरत) कुछ भी कह न पाए और बड़ी चिन्तामें पड़ गए । (१) वे प्रेमसे पुलकित होकर उठकर सभामें खड़े हो गए । उनके कमलके समान नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलछला आए (और वे कहने लगे)—'मुझे जो कुछ कहना था वह तो सब मुनि वशिष्ठने ही कह डाला है । उससे अधिक और मैं कह क्या सकता हूँ ? (२) मैं अपने स्वामी (आप)-का स्वभाव (भली भाँति) जानता हूँ कि आप तो अपराधीपर भी क्रोध नहीं कर सकते, फिर मुझपर तो सदासे आपकी बहुत कृपा और बड़ा स्नेह रहा है । (लड़कपनमें) खेलते समय भी मैंने आपके मुखपर कभी क्रोध नहीं देखा । (३) मैं बचपनसे ही आपके साथ रहता चला आया हूँ इसलिये जानता हूँ कि आपने कभी भी मेरा मन छोटा नहीं होने दिया (मेरी इच्छाका सदा ध्यान रक्खा) । मैं तो प्रभु (आप)-की कृपाकी रीति (भली भाँति) जानता हूँ कि खेलमें भी जब मैं हारने लगता था तब भी आप मुझे जिताते चलते थे । (४) इसलिये मैंने आपके स्नेह और संकोचके कारण कभी आपके सामने मुँह नहीं खोला । मेरे नेत्र तो सदा आपके प्रेमके ऐसे प्यासे रहे हैं कि वे आज-तक कभी आपके दर्शनोंसे तृप्त नहीं हो पाए (जितना ही आपको देखता रहता हूँ उतना ही आपको देखते रहनेकी इच्छा बढ़ती रहती है) । किन्तु मेरा यह प्यार विधाताकी आँखोंमें इतना खटक चला कि उसने उस नीच माता (कैकेयी)-के हाथों (मेरे और आपके बीच)

२६३७-३८ वशिष्ठो भरतं प्राह त्वं वदाशु मनोरथम् । भ्रातुरग्रे दयासिन्धोस्त्यक्त्वा लज्जां प्रियस्य च ।।
२६३९-४२ श्रुत्वा मुनिवचो धीरो दृष्ट्वा भ्रात्रनुकूलताम् । न च वक्तुं शशाकाहो गुरुभारसमन्वितः ।।
रोमाञ्चितशरीरत्वात् साश्रुनेत्रोऽभवत्तदा । वक्तव्यं मम पूर्वं हि गुरुणा च प्रकाशितम् ।।शांडिल्यसं०
२६४३ अविकारी विकारी वा सर्वदोषैकभाजनः । परमेशपदं याति रामनामानुकीर्तनात् ।। वृ.विष्णु.पु.
२६४४-४५ कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम् । —कुमारसम्भव
२६४७-४८ आभिमुख्ये च रामस्य साहसं कथितुं मम । नावजातन्नेत्रयुगलं परितृप्तं सुदर्शना ।।याज्ञ०रा०

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच, बीच जननी - मिस पारा ।
२६५० यहउ कहत मोहिँ आज न सोभा । अपनी समुझि साधु, सुचि, को भा । (१)
मातु मंद, मैं साधु, सुचाली । उर अस आनत, कोटि कुचाली ।
फरइ कि कोदवँ बालि सुसाली । मुकता प्रसव कि संबुक काली । (२)
सपनेहुँ दोस - कलेस न काहू । मोर अभाग - उदधि अवगाहू ।
बिनु समुझे निज - अघ - परिपाकू । जारिउँ जाय जननि कहि काकू । (३)
हृदय हेरि हारेउँ[1] सब ओरा । एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ।
गुरु गोसाइँ, साहिब सिय - रामू । लागत मोहिँ नीक परिनामू । (४)
दो०—साधु-सभा, गुरु-प्रभु-निकट , कहउँ सुथल, सति-भाउ ।
प्रेम, प्रपंच, कि झूठ, फुर , जानिहिँ[2] मुनि, रघुराउ ॥ २६१ ॥
भूपति - मरन पेम - पन राखी । जननी कुमति, जगत सब साखी ।
२६६० देखि न जाहिँ बिकल महतारी । जरहिँ दुसह जर, पुर-नर - नारी । (१)

भेद डलवाकर ही छोड़ा । आज तो मैं इतना कहते भी लाजसे गड़ा जा रहा हूँ क्योंकि अपनी समझसे तो सभी अपनेको बड़ा सज्जन और पवित्र समझे रहते हैं ? (१) पर यह भी सोचना बहुत बड़ा अपराध है कि माता ही खोटी है और मैं बड़ा सज्जन और सच्चरित्र हूँ, क्योंकि कोदोंकी बालीमें क्या कभी बढ़िया धान फल सकता है ? काले (पुराने) घोंघेसे क्या कभी मोती उपजा करता है ? (खोटी माँका पुत्र तो खोटा होना ही चाहिए । जब कैकेयी खोटी है तो मैं भी खोटा हूँ), (२) यह जितनी कुचाल हुई है उसमें स्वप्नमें भी किसीका कोई अपराध नहीं । (सच पूछिए तो) यह सब मेरे ही अभाग्यका अथाह समुद्र है (मेरे ही खोटे भाग्यका फल है) । मैं ने यह सोचा ही नहीं था कि यह सब मेरे ही पापोंका परिणाम है और मैं व्यर्थ अपनी मातापर व्यंग्य कस-कसकर उसे जलाए चला जा रहा था । (३) मैं अपने हृदयमें सब प्रकारसे विचारकर हार गया पर मुझे केवल एक ही उपायसे अपना निश्चित हित दिखाई पड़ रहा है कि गुरु समर्थ हैं (जो चाहें कर सकते हैं) और सीता तथा राम मेरे स्वामी हैं । इसीसे मुझे पूरा विश्वास हो चला है कि इस सबका परिणाम अच्छा ही होगा । (४) सज्जनोंकी इस सभामें, गुरु वशिष्ठ और स्वामी (राम)-के सामने, ऐसे उत्तम (चित्रकूट तथा मंदाकिनीके तट-जैसे पवित्र) स्थानमें मैं जो कुछ कह रहा हूँ, सब सत्य कह रहा हूँ । यह मैं प्रेमसे कह रहा हूँ या छलसे, यह झूठ है या सत्य, यह तो बस मुनि (वशिष्ठ) तथा राम ही जान सकेंगे ॥२६१॥ सारा संसार जान गया है कि रामके प्रेममें महाराज (दशरथ) मरते मर गए पर अपने प्रणसे नहीं डिगे और यह सब कुचाल मेरी माताकी दुर्बुद्धिने ला खड़ी की । माताएँ दिन-रात जो रोती-बिलखती रहती हैं यह मुझसे देखा नहीं जाता । नगर (अयोध्या)-के स्त्री और पुरुष अलग इस भयंकर

१. हारेउं । २. जानहिं=जानते हैं ।

२६५० परस्तुतगुणो यस्तु निर्गुणोपि गुणी भवेत् । इन्द्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥ चा.नी
२६५१ न मंथराया न च मातुरस्य दोषो न राज्ञो न च राघवस्य ।
मत्पापमेवात्र निदानभूतं वनप्रवेशे रघुनन्दनस्य ॥ —याज्ञवल्क्यरामायण
२६५४ कल्याणबुद्धेरथवातवायं न कामचारो मयि शंकनीयः ।
ममैवजन्मांतरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥ —रघुवंश
२६५७-५८ सत्यं वा यदि वातथ्यं यन्ममैतत्प्रभाषितम् । तद्विद्धि पृथिवीपालो जानाति मुनिसत्तम ॥महाभा०
२६६० कौशल्या च सुमित्रा च याश्चान्या मम मातरः । दुःखेन महता विष्टास्त्वां प्राप्य कुलदूषिणीम् ॥वा.रा

महीं सकल अनरथ - कर मूला । सो सुनि, समुझि, सहउँ सब सूला ।
सुनि बन - गवन कीन्ह रघुनाथा । करि मुनि-बेष लखन-सिय-साथा । (२)
बिनु पानहिंन पयादेहि पाए । संकर साखि, रहउँ एहि घाए ।
बहुरि निहारि निषाद - सनेहू । कुलिस - कठिन उर भयउ न बेहू । (३)
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई । जियत जीव जड़, सबइ सहाई ।
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि - बीछी । तजहिं बिषम बिष तामस तीछी । (४)
दो०—तेइ रघुनंदन, लखन, सिय , अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि, दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ।। २६२ ।।
सुनि अति बिकल भरत-बर - बानी । आरति - प्रीति - बिनय - नय - सानी ।
२६७० सोक - मगन सब सभा खँभारू । मनहुँ कमल - बन परेउ तुसारू । (१)
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी । भरत प्रबोध कीन्ह मुनि ग्यानी ।
बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर - कुल - कैरव - बन - चंदू । (२)
तात ! जाय जिय करहु गलानी । ईस - अधीन जीव - गति जानी ।

(विरहके) दुःखके ज्वरसे जले चले जा रहे हैं । (१) इन सब अनर्थोंकी जड़ (मूल कारण) यदि कोई है तो केवल मैं हूँ । किन्तु यह सब सुनकर (देखकर) और समझकर भी मैं यह सारा दुःख अभीतक झेले चला जा रहा हूँ । शंकर साक्षी हैं कि, मैं इतनी बड़ी चोट खाकर भी जीता बचा रह गया कि (मेरे जीतेजी) लक्ष्मण, सीता और राम मुनियोंका-सा वेष बनाकर नंगे पैर पैदल वन चल दिए ! (इतना दुःखद समाचार सुनकर भी मेरे प्राण निकल नहीं पाए) । (२) इतना ही क्यों ? केवटका प्रेम देखकर भी मेरा यह वज्रसे भी अधिक कठोर हृदय टूक-टूक नहीं हो गया (कि मुझसे अधिक सहृदयता और प्रेम तो केवटमें है) । (३) अब तो मैं यहाँ आकर सब कुछ अपनी आँखोंसे देख-सुनकर भी जीए चला जा रहा हूँ । अभी यह जड़ जीव (मैं) जीता रहकर न जाने और क्या-क्या दुःख सहनेके अवसर खड़ा करता रहेगा । जिनका दर्शन पाते ही भयानक विषैली और चुटीली साँपिनें और बिच्छू भी मार्गसे हट जाते हैं, (४) ऐसे राम, लक्ष्मण और सीता भी जिस (कैकेयी)-को बुरे लगने लगे हों, उसके पुत्र (भरत)-को छोड़कर और किसके भाग्यमें ये सब दुःख सहने लिखे हो सकते हैं ?' ।। २६२ ।। अत्यन्त व्याकुलता, दुःख, प्रेम, विनय और नीतिसे भरी हुई भरतकी यह लुभावनी बात सुनकर जितने लोग वहाँ थे सब रो पड़े और सारी सभा ऐसी मुरझा पड़ी जैसे कमलोंको पाला मार गया हो । (१) तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठने बहुत-सी प्राचीन कथाएं सुना-सुनाकर भरतको बहुत समझा-बुझाकर शान्त किया और सूर्यवंशके कुमुदोंके खिलानेवाले चन्द्रमा रामने बहुत अच्छे ढंगसे समझाना प्रारम्भ किया—(२) 'देखो भाई ! तुम तो व्यर्थ अपना जी छोटा किए जा रहे हो । जीव तो ईश्वरके हाथमें हैं (वह उसे सुख देना चाहे सुख दे या दुःख देना चाहे दुःख दे) । तीनों कालों और तीनों लोकोंमें जितने

२६६२-६३ स हि राजसुतः पुत्रश्चीरवासा महावनम् । दंडकान् सहवैदेह्या लक्ष्मणानुचरो गतः ।।वा०रा०
पद्भ्यामत्र समायातः शपामि शिवपादयोः । —स्कन्दपुराण
२६६४-६५ गुहसौहार्दमालोक्य हृदयं मे न चास्फुटत् । इत आगत्य सर्वं चापश्यञ्जीवन्नहं पुनः ।।
२६६६-६८ सभायां भरतः श्रीमान् विलपन्नातिदुःखितः । गच्छन्तं पथि यन्नागा दृष्ट्वैवार्जवमागताः ।।
सोऽप्रियो यस्य जगति दुःखभाक् स कथं नहि । —महेश्वरसंहिता
२६६९-७० आर्तिप्रीतिप्रार्थनानीतिमिश्रां वाणीं श्रुत्वा केकयीनंदनस्य ।
सर्वे सभ्याः शोकसिंधौ निमग्नाः पद्मारण्ये प्रापतद् वै तुषारः ।। —भरद्वाजरामायण
२६७१ नानाविधां मुनिर्ज्ञानी प्राच्य पौराणिकीं कथाम् । प्रबोधं कृतवान् राजन् भरतस्य महात्मनः ।।परा०सं०

तीन काल, तिभुवन मत मोरे। पुन्य - सिलोक तात ! तर तोरे। (३)
उर आनत तुम - पर कुटिलाई। जाइ लोक - परलोक नसाई।
दोस देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन्ह गुरु - साधु - सभा नहिं सेई। (४)

दो०—मिटिहहिं पाप - प्रपंच सब, अखिल अमंगल - भार।
लोक सुजस, परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥ २६३ ॥

कहउँ सुभाउ सत्य, सिव साखी। भरत ! भूमि रह, राउरि राखी।
२६८० तात ! कुतर्क करहु जनि जाए। बैर - पेम नहिं दुरइ दुराए। (१)
मुनि - गन-निकट बिहग - मृग जाहीं। बाधक - बधिक बिलोकि पराहीं।
हित - अनहित पसु - पच्छिउ जाना। मानुष - तनु गुन - ग्यान - निधाना। (२)
तात ! तुम्हहिं मइँ जानउँ नीके। करउँ काह, असमंजस जीके।
राखेउ राय सत्य, मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ, पेम - पन लागी। (३)
तासु बचन मेटत, मन सोचू। तेहि - तें अधिक तुम्हार सँकोचू।

पुण्यात्मा पुरुष हुए हैं उन सबसे भी अधिक पुण्यात्मा यदि कोई हो सकता है तो तुम हो। (३) जो कोई मनमें (झूठ) भी तुमपर कुटिल होनेका आरोप लगावेगा उसका यह लोक भी नष्ट हो जायगा और परलोक भी (उसे न तो संसारमें ही सुख मिलेगा न मोक्ष ही मिलेगा)। माता (कैकेयी)-पर वे ही मूर्ख लोग दोष मढ़े जा रहे हैं, जो न तो गुरुके ही पास बैठ पाए, न जिन्होंने साधुओंकी ही सत्संगति की। (४) देखो भरत ! तुम्हारा नाम (तो इतना पवित्र है कि उसे जो स्मरण कर ले) स्मरण करते ही सब पाप, छल, कपट और सारे दोष तत्काल मिट जायँ, (इतना ही नहीं), उसे इस लोकमें यश भी मिले और परलोकमें सुख (मोक्ष) भी ॥ २६३ ॥ देखो भाई ! मैं शंकरको साक्षी देकर, स्वभावसे ही यह सत्य कह सकता हूँ कि यह पृथ्वी तुम्हारे ही रक्खे रह पाई है (तुम्हारे ही पुण्यसे यह धरती टिकी है, नहीं तो न जाने कब की नष्ट हो गई होती)। इसलिये तुम व्यर्थ मनकी उलझनमें न पड़ो (यह सब मत सोचो)। 'बैर' और 'प्रेम' क्या किसीके छिपाए छिपते हैं। (१) देखो ! सभी पशु-पक्षी मुनियोंके पास तो (निर्भय होकर) चले जाते हैं पर जहाँ कष्ट पहुँचनेवालों और बहेलियोंको देखते हैं तत्काल भाग खड़े होते हैं। जब पशु-पक्षी-तक अपने साथ भलाई करनेवालों और बुराई करनेवालोंको पहचानते हैं तब मनुष्यकी बात तो पूछनी ही क्या, वह तो गुण और ज्ञानका भाण्डार ही होता है (वह तो पहचानता ही है)। (२) देखो भाई ! जहाँतक मेरी बात है, मैं तो तुम्हें भली भांति जानता ही हूँ (कि तुम्हारे हृदयमें छल-कपट आ नहीं सकता)। पर मैं करूँ तो क्या करूँ ? मैं बड़े धर्म-संकट (असमंजस)-में आ फँसा हूँ। जिन महाराज दशरथने मुझे त्यागकर सत्यकी रक्षा की और मुझसे प्रेम करनेका प्रण निभानेके लिये शरीर-तक छोड़ दिया, (३) उनकी बात टालते मुझे बड़ी उलझन हो रही है। पर उससे भी अधिक मुझे तुम्हारा संकोच है (कि मैं कहीं कोई ऐसा काम न कर बैठूँ जिससे तुम्हें दुःख हो)। उसपर भी गुरुकी आज्ञा

२६७२-७८ पुनः प्राह रघुश्रेष्ठो भरतं भ्रातृवत्सलं। ग्लानिं कुरु त्वं मा तात ज्ञात्वा जीवगतिं हरेः॥
अधीनां त्रिषु लोकेषु पुण्यश्लोकोत्तमाग्रणिः। त्वन्नामस्मरणात्सद्यः सर्वमंहो विनश्यति ॥
जननीन्दूषयन्त्यन्ये अबुधा अशुभाशयाः।　　—वशिष्ठसंहिता

२६७९-८८ त्वं धराधारकस्तात प्रेममूर्तिस्त्वमेव को। मां त्यक्त्वा रक्षितं सत्यं राज्ञा परिहृता तनुः ॥
तस्य वाक्यपरित्यागे चिन्ता भवति मानसे। तथापि त्वद्वचः कर्तुमिच्छामि वद सांप्रतम्॥धनं०सं०

ता-पर गुरु मोहिं आयसु दीन्हाँ। अवसि जो कहहु, चहउँ सोइ कीन्हाँ। (४)

दो०—मन प्रसन्न करि, सकुच तजि, कहहु, करउँ सोइ आज।

सत्य - संध रघुवर - वचन, सुनि, भा सुखी समाज ॥ २६४ ॥

सुरगन - सहित सभय सुर - राजू। सोचहिं, चाहत होन अकाजू।

२६६० वनत उपाउ करत कछु नाहीँ। राम - सरन सब गे मन माहीँ। (१)

बहुरि विचारि परसपर कहहीँ। रघुपति भगत-भगति-वस अहहीँ।

सुधि करि अंबरीप, दुरबासा। भे सुर, सुरपति निपट निरासा। (२)

सहे सुरन्ह बहुकाल विषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा।

लगि-लगि कान कहहिं, धुनि माथा। अब सुर - काज भरत - के हाथा। (३)

आन उपाउ न देखिय देवा। मानत राम सुसेवक - सेवा।

हिय सपेम, सुमिरहु सब भरतहिं। निज-गुन-सील राम-वस - करतहिं। (४)

है (कि भरत जो कहें वही करो)। इसलिये अब तुम्हीं जो कहोगे, मैं वही करूँगा। (४) तुम प्रसन्न होकर सब झिझक छोड़कर जो कुछ मनमें हो खुलकर कह डालो। मैं वही करूँगा।' सत्यव्रती रामके ये वचन सुनते ही सारा समाज (यह समझकर) प्रसन्न हो उठा (कि अब तो राम अयोध्या चले ही चलेंगे, क्योंकि भरत इनसे कहेंगे तो यही कहेंगे) ॥ २६४ ॥

अब तो देवता और देवराज (इन्द्रके मनमें बड़ी खलबली मच उठी और वे) सब भयभीत होकर सोचने लगे कि अब तो बना-बनाया काम चौपट हुआ चाहता है। उनकी समझमें ही नहीं आ रहा था कि अब किया क्या जाय। तब सब (देवताओं)-ने मन ही मन अपनेको रामके भरोसे छोड़ दिया। (१) वे आपसमें विचार करने लगे कि राम तो अपने भक्तोंकी भक्तिके वशमें हुए रहते हैं (जैसा भक्त लोग चाहते हैं, वैसा ही करते हैं)। अंबरीप और दुर्वासाकी कथाका स्मरण कर-करके देवता और इन्द्र पूर्णतः निराश हो चले। (२) (वे कहने लगे—) 'जब देवताओंने बहुत कालतक दुःख भोग लिया तब कहीं प्रह्लादने नृसिंहको ला प्रकटाया, (वैसे ही अब तो भरत ही भगवान्‌को प्रकट करें तो करें, चाहें तो रामको वनमें रहने दें)।' इसलिये सब अपना-अपना सिर पीट-पीटकर एक दूसरेसे यही कहे जा रहे थे—'अब तो देवताओंका जीवन यदि किसीके हाथमें है तो भरतके ही हाथमें है। (३) देखो देवताओ! राम तो अपने सच्चे सेवकोंकी सेवाको ही सबसे अधिक मानते हैं। हमें तो अब इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं सूझ पड़ रहा है कि प्रेमपूर्वक बैठकर अपने-अपने हृदयमें उन भरतका ही स्मरण किया जाय जो अपने शील और गुणोंसे रामको अपने वशमें किए बैठे हैं।' (४) देवताओंका यह विचार

२६८६-९० त्रिदशैस्सहाखण्डलस्तु भयभीतोऽवदन् मिथः। मे विनाशोन्मुखं कार्यं भाति स्वान्ते दधानि किम् ॥
पुनर्विमृश्यैत्यावोचच्छरणं मे भवाच्युत। —धनञ्जयसंहिता

२६९१-९५ अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे। कृतागसोऽपि यद्राजन् मंगलानि समीहसे।
दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम्। यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः ॥
तस्य तीर्थपदः किंवा दासानामवशिष्यते। —भागवत
मत्पूजनाच्छतगुणं मद्भक्तस्य तु पूजनम्। मद्वन्दनाच्छतगुणं मद्भक्तस्य तु वन्दनम् —॥पद्मपु०

दो०—सुनि सुर-मत, सुर-गुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़भाग।
सकल सुमंगल-मूल जग, भरत-चरन-अनुराग ॥ २६५ ॥
सीता-पति-सेवक-सेवकाई। कामधेनु-सय-सरिस सोहाई।
२७०० भरत-भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच, बिधि बात बनाई। (१)
देखु देव-पति! भरत-प्रभाऊ। सहज-सुभाय-बिबस रघुराऊ।
मन थिर करहु, देव! डर नाहीं। भरतहिं जानि राम-परछाहीं। (२)
सुनि सुरगुरु-सुर-संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं सँकोचू।
निज सिर-भार भरत जिय जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना। (३)
करि बिचार मन, दीन्हीं ठीका। राम-रजायसु आपन नीका।
निज पन तजि, राखेउ पन मोरा। छोह, सनेह, कीन्ह नहिं थोरा। (४)
दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीता-नाथ।
करि प्रनाम, बोले भरत, जोरि जलज-जुग-हाथ ॥ २६६ ॥
कहउँ-कहावउँ का अब स्वामी। कृपा-अंबुनिधि अंतरजामी।

सुनकर देवताओंके गुरु बृहस्पतिने उनसे कहा—'यह आप लोगोंका बड़ा सौभाग्य है कि सब प्रकारका कल्याण करनेवाले भरतके चरणोंमें आप लोगोंका इतना अनुराग जाग उठा है ॥ २६५ ॥ सीताके पति रामके सेवक (भरत)-की सेवा करना (उनसे अनुराग करना) वैसा ही फलदायक होगा जैसा सौ कामधेनुओंकी सेवा करना (भरतकी सेवासे सारी इच्छाएँ पूरी हो जायँगी)। यदि आप लोगोंके मनमें भरतके लिये भक्ति आ समाई है, तो सब चिन्ताएँ मिटा छोड़ो और समझ लो कि ब्रह्माने तुम्हारा साराका सारा काम सँवार डाला। (१) देखो सुरेश! भरतका प्रभाव तो इसीसे समझ सकते हो कि राम भी उनके सहज स्वभावके वशमें हुए बैठे हैं। इसलिये देवताओ! घबराओ मत! डरकी कोई बात नहीं है। भरतको आप लोग रामकी छाया ही समझिए (जैसे राम हैं वैसे ही भरत भी हैं)।' (२) देवगुरु बृहस्पति और देवताओंकी यह सम्मति और उनकी चिन्ताकी बात सुनकर अन्तर्यामी (सबके घट-घटमें बसनेवाले) प्रभु रामको बड़ा संकोच हुआ जा रहा था (कि भरतकी बात मानी जाय या देवताओंकी)। इधर भरत भी सारा भार अपने ऊपर पड़ा देखकर इसी उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे (कि रामसे कहूँ तो क्या कहूँ)। (३) फिर (बहुत सोच-विचारकर) उन्होंने मनमें यही निश्चय कर लिया कि 'अपना भला इसीमें है कि जो राम कहें उन्हींकी आज्ञा सिरमाथे चढ़ाई जाय। रामने अपना प्रण छोड़कर मेरे प्रणका इतना आदर किया इतना ही मुझपर उनका क्या कुछ कम स्नेह है? (४) रामने सब प्रकारसे मुझपर बड़ी ही कृपा की है।' यह सोचकर अपने कमलके समान दोनों हाथ जोड़कर रामको प्रणाम करके भरत बोले—॥ २६६ ॥ 'स्वामी! अब आप ही बता डालिए कि मैं क्या तो स्वयं कहूँ और क्या आपसे कहनेको कहूँ? आप तो कृपाके सागर और

२७०१-२ देवराज तथा देवाः सर्वे शृणुत मद्वचः। भरतो रामचन्द्रस्य छाया प्राह बृहस्पतिः ॥
भयं मा कुरुत स्वांतं स्थिरं कुरुत सर्वथा ॥ —विरिञ्चिरामायण
२७०५ भरतः स्वहृदये दिव्यं विचारं कृतवान्मुदा। रामाज्ञा सर्वथा मान्या ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥
२७०८ स रामं प्राञ्जलिर्भूत्वा बभाषे पूर्णमानसः। —महाभारत
२७०९-१० नाथ किं कथनीयं मे भवतोऽपसाक्षिणः। मनःकल्पितदुःखानि नष्टानि तव दर्शनात् ॥ कौ० मं०

२७१० गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन-मन-कलपित सूला। (१)
अपडर डरेउँ, न सोच समूले। रबिहिं न दोष देव दिसि भूले।
मोर अभाग, मातु-कुटिलाई। बिधि-गति बिषम, काल-कठिनाई। (२)
पाँउ रोपि, सब मिलि मोहिं घाला। प्रनतपाल-पन आपन पाला।
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु-बेद-बिदित, नहिं गोई। (३)
जग अनभल, भल एक गोसाईं। कहिय होइ भल, कासु भलाई।
देउ! देवतरु-सरिस सुभाऊ। सनमुख-बिमुख न काहुहि काऊ। (४)
दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह, समनि सब सोच।
माँगत, अभिमत पाव जग, राउ, रंक, भल, पोच॥ २६७॥
लखि सब बिधि गुरु-स्वामि-सनेहू। मिटेउ छोभ, नहिं मन संदेहू।
२७२० अब करुनाकर कीजिय सोई। जन-हित, प्रभु-चित छोभ न होई। (१)

अन्तर्यामी हैं। गुरुको प्रसन्न और स्वामी (आप)-को अपनेपर प्रसन्न देखकर मेरे मलिन मनकी जितनी भी कल्पित उलझनें थीं वे सब दूर हो मिटीं। (१) (अब मुझे विश्वास हो गया कि) मैं व्यर्थ ही मनमें डरे जा रहा था और बिना कारण ही चिन्तित हुआ जा रहा था। जो मनुष्य दिशाका ज्ञान भूल जाय उसे दिशाका ज्ञान न होनेका दोष सूर्यके सिर नहीं मढ़ बैठना चाहिए। मेरे खोटे भाग्य, माताकी कुटिलता, विधाता और समयके फेर, (२) इन सबने हठ करके मेरा सत्यानाश कर डाला। पर आप तो शरणागतके ऐसे रक्षक हैं कि आपने अपने (शरणागतकी रक्षाके) प्रणका पालन करके मुझे सचमुच उबार उठाया (मेरी चिन्ता मिटा दी)। आपके लिये यह कोई नहीं बात तो है नहीं, क्योंकि लोक और वेद दोनोंमें आपका यह स्वभाव विख्यात है, किसीसे छिपा नहीं है (आप सदासे ऐसा करते चले आए हैं)। (३) संसार बुरा हो जाय तो हो जाय (बुरा कहे तो कहे), पर यदि अपना स्वामी भला कहता रहे तो फिर बताइए किसके भला कहनेसे मेरा भला हो सकता है (संसारके या स्वामीके)? देव! आपका स्वभाव तो कल्पवृक्षके समान है। आप न तो किसीके मित्र हैं न किसीके शत्रु (आप पूर्ण रूपसे निष्पक्ष हैं)। (४) जो मनुष्य उस (कल्पवृक्ष)-के पास जाकर उसे पहचान ले तो उसकी छाया ही उसकी सारी चिन्ता दूर कर डालनेको पर्याप्त है। वहाँ कल्पवृक्षके पास (पहुँचनेपर) चाहे राजा हो या दरिद्र, भला हो या नीच, सभी अपना मनचाहा पदार्थ प्राप्त कर ही लेते हैं।।२६७।। अपने ऊपर गुरु (वशिष्ठ) और स्वामी (आप)-का पूर्ण स्नेह देखकर अब मेरे मनकी सारी दुविधा निश्चित रूपसे जाती रही। करुणाके निधान! अब आप वही कीजिए जिससे मुझ सेवक (भक्त)-के कारण आपके चित्तमें किसी प्रकारकी उलझन

२७१६ येषां तु यादृशी बुद्धिः फलदाता तथैव सः। नहि विषमता तस्य कल्पवृक्षोपमो हरिः॥सत्योपा०
२७१९-२० सर्वथा श्रीगुरोः स्नेहं विलोक्य स्वामिनस्तथा। नष्टा ग्लानिर्न संदेहः करुणाकर सांप्रतम्॥
कर्तव्यं भवता येन ममाभीष्टं भवेत्प्रभोः। चित्ते चिंता प्राणहरा नैव स्यात्कोशलेश्वर॥रामेश्वरसं०
२७२०-२८ तस्य मे दासभूतस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि। अभिषिंचस्व चाद्यैव राज्येन मघवानिव॥
तथानुपूर्व्यायुक्तश्च युक्तं चात्मनि मानद। राज्यं प्राप्नुहि धर्मेण सकामान् सुहृदः कुरु॥
अद्य प्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा। फलमूलाशनो नित्यञ्जटाचीराणि धारयन्॥
तस्याहमुत्तरं कालं निवत्स्यामि सुखं वने। तत्प्रतिश्रुतमार्यस्य नैव मिथ्या भविष्यति॥
वसन्तं भ्रातुरर्थाय शत्रुघ्नो मानुवत्स्यति॥ —वाल्मीकीयरामायण

जो सेवक साहिबहिं सँकोची । निज हित चहइ, तासु मति पोची ।
सेवक-हित साहिब-सेवकाई । करइ, सकल सुख-लोभ बिहाई । (२)
स्वारथ नाथ ! फिरे, सबही-का । किए रजाइ कोटि बिधि नीका ।
यह स्वारथ-परमारथ-सारू । सकल सुकृत-फल, सुगति-सिंगारू । (३)
देव ! एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस, करब बहोरी ।
तिलक-समाज साजि सब आना । करिय सुफल प्रभु ! जौं मन माना । (४)
दो०—सानुज पठइय मोहिं बन, कीजिय सबहिं सनाथ ।
नतरु फेरियहि बंधु दोउ, नाथ ! चलउँ मैं साथ ॥ २६८ ॥
नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई । बहुरिय सीय-सहित रघुराई ।
२७३० जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुना-सागर ! कीजिय सोई । (१)
देव दीन्ह सब मोहिं अभारू । मोरे नीति, न धरम-बिचारू ।
कहउँ बचन सब स्वारथ-हेतू । रहत न आरत-के चित चेतू[1] । (२)
उतर देइ, सुनि स्वामि-रजाई । सो सेवक लखि, लाज लजाई ।
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू । स्वामि-सनेह सराहत साधू । (३)

न उठ खड़ी हो, (१) क्योंकि जो सेवक अपने स्वामीको उलझनमें डालकर अपना भला मनानेके फेरमें रहता है उसके समान नीच कोई हो नहीं सकता। सेवकका हित तो इसीसे हैं कि वह अपना सारा सुख और लोभ छोड़कर स्वामीकी सेवा ही करता चला जाय। (२) यद्यपि आप लौट चलते तो सबका बड़ा हित होता पर आपकी आज्ञाका पालन करना उससे भी कई करोड़ गुना अच्छा है (क्योंकि) स्वार्थ और परमार्थका यही निचोड़ है और यही सारे पुण्योंका फल और मुक्तिका शृङ्गार है (इसीसे स्वार्थ, परमार्थ, पुण्योंका फल और मुक्ति, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब मिल जाता है कि स्वामीकी आज्ञा मानी जाय)। (३) इसलिये देव ! मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिए, फिर जैसा आप उचित समझें वैसा कीजिएगा। मैं तिलक (राज्याभिषेक)-की सारी सामग्री अपने साथ सजाए लिए चला आया हूँ। यदि आप कहें तो (स्वीकार करके उस सामग्रीको) सुफल कर दीजिए। (४) नाथ ! आप मेरे छोटे भाई (शत्रुघ्न)-के साथ मुझे वनमें छोड़ दीजिए और आप (अयोध्याका राज्य सँभालकर) जाकर सबको सनाथ कर डालिए। यदि आप वन ही जाना चाहते हों तो इन दोनों भाइयों (लक्ष्मण और शत्रुघ्न)-को अयोध्या लौटा दीजिए, मैं आपके साथ यहाँ (वनमें) रहा जाता हूँ॥ २६४ ॥ (या यदि आप स्वीकार करें तो) हम तीनों भाई वनमें रहे जाते हैं, आप सीताके साथ (अयोध्या) लौट जाइए। करुणा-सागर ! आपको इनमेंसे जो भी प्रस्ताव ठीक लगे वही आप स्वीकार कर लीजिए। (१) देव ! आपने निर्णयका सारा भार मेरे ऊपर डाल तो दिया है, पर मैं तो न नीति जानता हूँ न धर्म। मैं तो केवल अपने ही स्वार्थकी दृष्टिसे ये सब बातें कहे डाल रहा हूँ, क्योंकि दुखी मनुष्यके मनमें विवेक कहाँ रह जाता है ? (२) स्वामीकी आज्ञा सुनकर भी जो सेवक उसका उत्तर दे बैठे (आज्ञाके अनुसार काम न करे या विरोध करे) उसे देखकर तो लज्जा भी लजाने लगती है (वह बड़ा निर्लज्ज होता है)। मैं तो ऐसे-ऐसे न जाने कितने दोषोंका

१. आरत के चित रहत न चेतू ।

२७२९ न च भ्रातृत्रयं स्वामिन् गच्छेयं विपिनं त्वहम् । जानक्या सहितोऽयोध्यां निवर्तेत भवानितः॥ अग.सं.
२७३४ पापिनामहमेवाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः । दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये ॥—मंगलरा०

अब कृपाल ! मोहिं सो मत भावा । सकुच स्वामि-मन जाइ न पावा ।
प्रभु - पद - सपथ कहउँ सति - भाऊ । जग - मंगल - हित एक उपाऊ । (४)
दो०–प्रभु प्रसन्न मन, सकुच तजि , जो, जेहि आयसु देव ।
सो, सिर धरि-धरि, करिहि सब , मिटिहि अनट, अवरेब ॥ २६९ ॥
भरत-बचन सुचि सुनि, सुर हरषे । साधु सराहि, सुमन सुर बरषे ।
२७४० असमंजस - बस अवध - निवासी । प्रमुदित मन तापस - बनबासी । (१)
चुपहि रहे रघुनाथ सँकोची । प्रभु-गति देखि, सभा सब सोची ।
जनक - दूत तेहि अवसर आए । मुनि बसिष्ठ, सुनि, बेगि बोलाए । (२)
करि प्रनाम, तिन्ह राम निहारे । बेष देखि, भे निपट दुखारे ।
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता । कहहु बिदेह - भूप - कुसलाता । (३)
सुनि सकुचाइ, नाइ महि माथा । बोले चर - बर जोरे हाथा ।
बूझब राउर सादर साईं । कुसल - हेतु सो भयउ गोसाईं । (४)

अथाह समुद्र (दोषोंसे भरा) हूँ किन्तु स्वामी (आप) हैं कि मुझे स्नेहके कारण साधु कह कहकर मेरी प्रशंसा किए जा रहे हैं। (३) कृपालु ! अब तो मैं वही निर्णय ठीक समझता हूँ जिससे स्वामीके मनमें किसी प्रकारकी दुविधा न उठ खड़ी हो । आपके चरणोंकी सौगंध लेकर मैं सच कहे देता हूँ कि संसारका कल्याण बस इसीमें है कि आप मेरा संकोच छोड़कर जो भी उचित समझें वही कर डालें । (४) आप प्रसन्न होकर निःसंकोच जिसे जो आज्ञा देंगे वही आपकी आज्ञा बजा लावेगा । इससे सबके मनकी दुविधा भी दूर हो जायगी और तनाव भी' ॥ २६९ ॥ भरतके सच्चे हृदयसे निकली बातें सुनकर सारे देवता प्रसन्न हो उठे और 'साधु-साधु' कह-कहकर भरतकी सराहना करते हुए उनपर पुष्प-वर्षा करने लगे । पर अयोध्या-वासियोंके मनमें बड़ी उलझन उठ खड़ी हुई (कि राम लौट चलेंगे या नहीं) किन्तु तपस्वी और वनवासी प्रसन्न हो उठे (कि अब राम जायेंगे नहीं । उनके रहनेसे हम सबकी रक्षा होती रहेगी) । (१) संकोची स्वभाववाले राम (भरतकी बात सुनकर) चुप हो रहे । प्रभु रामकी यह चुप्पी देखकर सारी सभा बड़ी चिन्तामें पड़ गई। इसी बीच राजा जनकके भेजे हुए दूत वहाँ जा पहुँचे । (यह सुनते ही) मुनि वशिष्ठने उन्हें शीघ्र वहीं (सभामें) बुलवा भेजा । (२) उन्होंने आते ही सबको प्रणाम किया और जब उन्होंने वह रामका (तपस्वीका-सा) वेष देखा तो देखते ही वे रो पड़े । मुनि (वशिष्ठ)-ने पहले तो दूतोंको अपने यहाँका सारा समाचार बता डाला, फिर मुनिने पूछा—'महाराज विदेह तो कुशल से हैं न !' (३) यह सुनकर बड़े संकोचसे सिर नवाते हुए हाथ जोड़कर दूतोंने कहा—'गोसाईं ! आपने जो आदरपूर्वक ('विदेह' कहकर) पूछा बस उसीसे उनका कुशल समझ लीजिए (वे 'विदेह' हो गए हैं । उन्हें सचमुच अपनी देहकी सुध-बुध नहीं रह गई है, फिर उनका कुशल-क्षेम कैसा ?) (४) नहीं तो नाथ ! कुशल तो

२७३९-४० भरतस्य वचः श्रुत्वा पुष्पाणि ववृषुः सुराः । तापसा हर्षिता दुःखं प्रापुः साकेतवासिनः ॥सनत्०सं०
२७४१ किंचिन्नोवाच राजेन्द्रो रामचन्द्रः प्रतापवान् । दृष्ट्वा रामगतिं सभ्याः शुशुचुर्मनसि स्वके ॥अग०सं०
२७४२-४३ तदा समागता दूता जनकस्य महात्मनः । श्रुत्वा जुहाव तांस्तूर्णं वसिष्ठो मुनिपुंगव ॥
प्रणम्य ददृशू रामं वेषं दृष्ट्वातिदुःखिताः ॥
२७४४-४६ पप्रच्छ कुशलं राज्ञो विदेहस्य महामुनिः । दूताः प्राहुर्भवत्प्रश्नो भवत्कुशलहेतुकः ॥ परमहंसरा:

दो०—नाहिँ त, कोसलनाथ - के, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला - अवध विसेष - तें, जग सब भयउ अनाथ ॥ २७० ॥

कोसलपति-गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोक - बस, बौरा।
२७५० जेहि देखे, तेहि समय बिदेहू। नाम सत्य, अस लाग न केहू। (१)
रानि कुचालि सुनत नरपालहिं। सूझ न कछु, जस मनि-बिनु ब्यालहिं।
भरत राज, रघुवर बनवासू। भा मिथिलेसहिँ हृदय हरासू। (२)
नृप बूझे बुध - सचिव - समाजू। कहहु बिचारि, उचित का आजू।
समुझि अवध, असमंजस दोऊ। चलिय, कि रहिय, न कह कछु कोऊ। (३)
नृपहि धीर धरि, हृदय विचारी। पठए अवध, चतुर चर चारी।
बूझि भरत सति - भाउ - कुभाऊ। आयहु बेगि, न होइ लखाऊ। (४)

दो०—गये अवध चर, भरत-गति, बूझि, देखि करतूत।
चले चित्रकूटहिँ भरत, चार चले तिरहूत ॥ २७१ ॥

कोशल-नाथ (दशरथ)-के साथ ही चलती बनी। वैसे तो उनके स्वर्गवासी हो जानेसे सारा जगत् ही अनाथ हो गया, पर मिथिला और अयोध्या तो विशेष रूपसे अनाथ हो गए ॥ २७० ॥ कोशल-पति (राजा दशरथ)-की (मृत्यु) का समाचार सुनकर जनकपुरमें सब लोग शोकसे पागल उठे हैं। उस (समाचार मिलनेके) समय जिसने भी 'विदेह' (जनक)-को देखा, उनमें-से किसीको भी उनका 'विदेह' नाम ठीक नहीं लगा (क्योंकि जनक उस समय शोकसे इतने व्याकुल हो गए थे कि उनका विदेहपना लुप्त हो गया था) । (१) फिर रानी कैकेयीकी कुटिलताकी बातें सुनकर राजा जनकको (व्याकुलताके कारण) इस प्रकार कुछ नहीं सूझ पड़ रहा था जैसे मणि खो जानेपर सर्पको कुछ नहीं सूझता। फिर जब उन्होंने सुना कि भरतको राज्य और रामको वनवास दे डाला गया तब तो वे और बहुत भी दुखी हो उठे। (२) राजा जनकने झट विद्वानों तथा मंत्रियोंको बुलाकर पूछा कि आप लोग विचार करके बताइए कि इस अवसरपर क्या करना ठीक होगा ? अवधमें इस समय जो दो असमंजस (दशरथकी मृत्यु और रामको वनवास) उठ खड़े हुए हैं उन्हें देखते हुए वहाँ जाना ठीक भी होगा या यहीं रह जाना ठीक होगा (क्योंकि राम और भरत दोनों ही जामाता हैं, वहाँ जाकर किसी एकका पक्ष लेना कहाँतक ठीक होगा)? पर इसका कोई कुछ समाधान नहीं निकाल पाया। (३) तब राजा जनकने ही धैर्य धारण करके हृदयमें बहुत सोच-विचारकर चार चतुर गुप्तचर यह समझाकर अयोध्या भेज दिए कि तुम गुपचुप जाकर यह देखकर झटपट लौट आओ कि (रामके प्रति) भरतका अच्छा भाव है या बुरा (४) गुप्तचरोंने अयोध्या जाकर भरतकी सारी गति-विधि समझ ली और उनका सारा व्यवहार देख-समझ लिया। बस ज्यों ही भरत इधर चित्रकूटकी ओर चले त्यों ही उधर जनकके चारों गुप्तचर तिरहुत (जनकपुर) लौट आए ॥ २७१ ॥ दूतोंने

२७४९ कोशलेशगतिं श्रुत्वा विदेहपुरवासिनः। विदेहा अभवन् सर्वे विदेहश्चातिदुखितः ॥महेश्वररा०
२७५५ राजा विचार्य मनसि साकेतं चतुरः शुभान्। दूतान् संप्रेषयामास शीघ्रं वै शीघ्रगामिनः॥सनंदनसं०
२७५६ दूता भरतवृत्तान्तं ज्ञात्वा जनकसंसदि। यथावत्कथयामासुः स्वमनीषानुसारतः ॥नारदपुराण
२७५७-५८ श्रुत्वा महीपतिर्विप्रैः सचिवैः सहितस्त्वरम्। प्रतस्थे चित्रकूटाद्रिं द्रष्टुं रामं सलक्ष्मणम् ॥ व०रा०

दूतन आइ भरत - कै करनी । जनक - समाज जथा - मति बरनी ।
२७६० सुनि गुरु, परिजन, सचिव, महीपति । भे सब सोच - सनेह - बिकल अति । (१)
धरि धीरज, करि भरत - बड़ाई । लिए सुभट साहनी बोलाई ।
घर, पुर, देस, राखि रखवारे । हय - गय - रथ बहु जान सँवारे । (२)
दुघरी साधि, चले ततकाला । किय बिश्राम न मग महिपाला ।
भोरहिं आज नहाइ प्रयागा । चले जमुन उतरन सब लागा । (३)
खबरि लेन हम पठए नाथा । तिन्ह कहि अस, महि नायउ माथा ।
साथ किरात छ - सातक दीन्हें । मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हें । (४)

दो०—सुनत जनक-आगवन, सब , हरषेउ अवध - समाज ।
रघुनंदनहिं सँकोच बड़ , सोच - बिबस सुरराज ।। २७२ ।।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई । काहि कहइ, केहि दूषन देई ।
२७७० अस मन आनि मुदित नर - नारी । भयउ बहोरि रहब दिन चारी । (१)
ऐहि प्रकार गत बासर सोऊ । प्रात नहान लाग सब कोऊ ।
करि मज्जन, पूजहिं नर - नारी । गनप, गौरि, तिपुरारि, तमारी । (२)

जब जनककी सभामें आकर भरतके व्यवहारका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन कर सुनाया तो उसे सुनकर गुरु (शतानन्द), कुटुम्बी लोग, मंत्री और राजा, सभी (अयोध्याकी) चिन्ता और (भरतका) स्नेह देखकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे । (१) फिर जनकने धीरज धरकर भरतकी बड़ी बड़ाई की । उन्होंने वीरों और सेनाध्यक्षोंको बुलवाकर राजभवन, नगर और देशकी सुरक्षाके लिये रक्षक नियुक्त करके घोड़े, हाथी, रथ तथा बहुत सी सवारियाँ तैयार करके (२) द्विघटिका[1] मुहूर्त साधकर तुरन्त प्रस्थान कर दिया । राजाने मार्गमें भी कहीं विश्राम नहीं किया । आज प्रात:काल ही प्रयागमें स्नान करके जब सब लोग यमुना पार करने लगे थे (३) तभी नाथ ! महाराजने हमें पहले ही यहाँका समाचार लेने भेज दिया ।' यह कहकर उन दूतोंने पृथ्वीपर माथा टेककर प्रणाम कर लिया। तब मुनिवर वशिष्ठने (मार्ग बतलानेके लिये) छह-सात किरातोंको दूतोंके साथ करके उन्हें (राजा जनकको लिवा ले लानेके लिये) विदा कर भेजा । (४) महाराज जनकका आगमन सुनकर अयोध्याका पूरा समाज हर्षित हो उठा । पर रामको बहुत संकोच हो चला (कि वे आकर कोई ऐसी आज्ञा न दे बैठें जो पिताकी आज्ञा माननेमें बाधक हो) और उधर इन्द्र भी बड़ी चिन्तामें जा पड़े ।।२७२।। इधर कुटिल कैकेयी बैठी अलग ग्लानि (पछतावे)-के मारे गली जा रही थी। वह कहे भी तो किससे क्या कहे और दोष भी दे तो किसे दे । इधर अयोध्याके सब नर और नारी यही समझ-समझकर प्रसन्न हुए जा रहे थे कि चलो, (राजा जनकके आनेके बहाने) चार दिन और ठहरनेको मिल जायगा । (१) इस प्रकार वह दिन भी यों ही निकल गया । दूसरे दिन प्रात:काल सब लोग उठ-उठकर स्नान करने चल दिए । सब नर और नारियोंने स्नान करके गणेश, पार्वती, शंकर और सूर्यकी पूजा की और फिर लक्ष्मीके पति भगवान् विष्णुके चरणोंकी वन्दना करके (पुरुष) अंजलि बाँधकर और (स्त्रियाँ) आँचल पसारकर विनती करने लगीं—(२) 'राम राजा हो जायँ, जानकी रानी

१. यदि यात्राके दिन दिशाशूल हो तो रातदिनकी साठ घड़ियोंको दो-दो घड़ियोंकी ३० द्विघटिकाओं-में बाँट लेते हैं । इनमें-से जिस द्विघटिका (दुघड़िया)-में शुभ मुहूर्त मिले उसीमें यात्रा प्रारंभ कर दी जाती है ।

२७६७-६८ जनकागमनं श्रुत्वा तुष्टा अवधवासिन: । संकोचसंयुतो राम: शक्र: शोकाकुलस्तथा ।। धर्मरा०

रमा - रमन - पद बंदि बहोरी। विनवहिँ अंजुलि-अंचल जोरी।
राजा राम, जानकी रानी। आनँद - अवधि अवध रजधानी। (३)
सुवस बसउ फिरि सहित - समाजा। भरतहिँ, राम करहु जुबराजा।
ऐहि सुख - सुधा सींचि सब काहू। देव ! देहु जग - जीवन - लाहू। (४)
दो०—गुरु - समाज भाइन - सहित, राम - राज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय, माँग सब कोउ ॥ २७३ ॥
सुनि सनेहमय पुरजन - बानी। निंदहिँ जोग - बिरति मुनि ग्यानी।
२७८० ऐहि विधि नित्य करम करि पुरजन। रामहिँ करहिँ प्रनाम पुलकि तन। (१)
ऊँच, नीच, मध्यम नर - नारी। लहहिँ दरस, निज-निज अनुहारी।
सावधान सबही सनमानहिँ। सकल सराहत कृपानिधानहिँ। (२)
लरिकाइहि - तेँ रघुवर - बानी। पालत नीति - प्रीति पहचानी।
सील - सँकोच - सिंधु रघुराऊ। सुमुख, सुलोचन, सरल सुभाऊ। (३)
कहत राम - गुन - गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे।
हम - सम पुन्य-पुंज जग थोरे। जिन्हहिँ राम जानत करि मोरे। (४)
दो०—प्रेम-मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेस।
सहित-सभा संभ्रम उठेउ, रवि-कुल-कमल - दिनेस ॥ २७४ ॥

हो जायँ, आनन्दसे भरी अयोध्या इनकी राजधानी हो जाय, (३) सारे समाजके साथ अयोध्या फिर स्वतंत्र रूपसे बस चले और भरतको राम युवराज बना दें। इस सुखके अमृतसे हम सबको सींचकर संसारमें जन्म लेनेका हमें लाभ प्रदान कर दीजिए। (४) गुरु, समाज और तीनों भाइयोंके साथ अयोध्यामें रामका राज्य हो और राजा रामके सामने ही भगवान् उठा ले।' यही वर सब लोग देवताओंसे माँगे जा रहे थे ॥२७३॥ नगरवासियोंकी यह स्नेहमयी वाणी सुन-सुनकर ज्ञानी मुनि भी कहते जा रहे थे कि इनके स्नेह और इनकी निष्ठाके आगे योग और वैराग्य भी कुछ नहीं है। इस प्रकार सब पुरवासी अपनी नित्य क्रियासे निवृत्त हो-होकर पुलकित हो-होकर रामको जा-जाकर प्रणाम करते रहते थे। (१) ऊँची, नीची और मध्यम जातिके सभी स्त्री और पुरुष अपनी-अपनी भावनाके अनुसार रामका दर्शन जा-जाकर करते जाते थे। राम भी बड़ी सावधानीसे सबका सम्मान करते जाते थे (कि कहीं कोई छूट न जाय)। जिसे देखो वही यह कह-कहकर कृपानिधान रामकी प्रशंसा किए जा रहा था— (२) 'रामकी तो लड़कपनसे ही यह बान रही है कि वे जैसी जिसकी प्रीति देखते हैं वैसा ही उसके साथ व्यवहार करते चलते हैं। राम तो बहुत शीलवान् और संकोची हैं। उनका मुख और उनके नेत्र तो सुन्दर हैं ही, उनका स्वभाव भी बड़ा ही सरल है।' (३) वे सब रामके गुणोंका वर्णन कर-करके प्रेममें मग्न हो-हो जाते थे और सब अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करते जाते थे कि हमारे समान पुण्यात्मा संसारमें बहुत थोड़े लोग हैं जिन्हें राम अपना इतना सगा मानते हैं। (४) उस समय जब सब लोग इस प्रकार प्रेममें मग्न हुए जा रहे थे, तभी राजा जनकका आगमन सुनकर सारी सभाके

२७७२-७५ मंदाकिनीजले स्नात्वा पुरुषाः प्रमदास्तथा। श्रीगणेशांबिकाशंभुसूर्यविष्ण्वर्चनं मुदा॥
कुर्वन्ति प्रार्थनां राजा रामचन्द्रो भवेत्तथा। राज्ञी सीता शुभायोध्या राजधानी भवेत् किल ॥महे०सं०
२७७९ श्रुत्वा स्नेहमयं वाक्यं कोशलावासिनां नृणाम्। निन्दंति योगं वैराग्यं मुनयो ज्ञानिनस्तथा ।नारदपु०
२७८०-८५ नित्यकर्म जनाः कृत्वा लभंते रामदर्शनम्। निजं भाग्यं प्रशंसंति रामभक्तवराश्च ते ॥ धर्मसं०
२७८७-८८ जनकागमनं श्रुत्वा ससभ्यो रघुनंदनः। उत्थितः संभ्रमात्सूर्यवंशपद्मप्रभाकरः ॥ पुलस्त्यसं०

भाइ - सचिव - गुरु - पुरजन - साथा। आगे गवन कीन्ह रघुनाथा।
२७६० गिरिवर दीख जनक-पति, जबहीं। करि प्रनाम, रथ त्यागेउ तबहीं। (१)
राम - दरस लालसा - उछाहू। पथ - श्रम लेस - कलेस न काहू।
मन तहँ, जहँ रघुबर - बैदेही। बिनु मन, तन-दुख-सुख-सुधि केही। (२)
आवत, जनक चले ऐहि भाँती। सहित-समाज प्रेम - मति - माती।
आए निकट, देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे। (३)
लगे जनक मुनि - जन - पद बंदन। रिषिन्ह प्रनाम कीन्ह रघुनंदन।
भाइन-सहित राम मिलि राजहिं। चले लिवाइ समेत - समाजहिं। (४)

दो०—आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथ।
सेन मनहुँ करुना - सरित, लिए जाहिं रघुनाथ॥ २७५॥

बोरति ग्यान - बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद - नारे।
२८०० सोच - उसाँस, समीर - तरंगा। धीरज - तट - तरु - बर कर भंगा। (१)
बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय - भ्रम - भँवर - अवर्त अपारा।

साथ सूर्यवंशके कमलोंके खिलानेवाले सूर्य राम भी बड़े आदरके साथ उठ खड़े हुए॥ २७४॥ भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियोंको साथ लेकर (राजा जनककी अगवानीके लिये) राम आगे-आगे चल दिए। ज्योंही राजा जनकने पर्वतोंमें श्रेष्ठ कामद गिरि (चित्रकूट) देखा, त्योंही उसे (पर्वतको) प्रणाम करके वे रथसे उतर पड़े। (१) जनक और उनके साथके लोगोंके हृदयमें रामके दर्शनोंकी लालसा इतनी उत्कट थी कि किसीको भी मार्गकी तनिक थकावट नहीं जान पड़ रही थी। उन सब लोगोंका मन तो वहाँ जा लगा था जहाँ राम और जानकी थे, फिर बिना मनवाले शरीरको सुख-दुःखकी सुध ही कहाँ रह पा सकती थी। (२) इस प्रकार जनक अपने सारे समाजके साथ उधर झपटे चले जा रहे थे। प्रेमके कारण उन लोगोंको बुद्धि भी डगमगाई जा रही थी। एक दूसरेके पास आते ही सब (अयोध्या और जनकपुरवाले) प्रेममें इतने बेसुध हो गए कि वे आदरपूर्वक (मार्गमें ही) परस्पर एक दूसरेसे गले मिलने लगे। इधर जनकने बढ़कर वशिष्ठ आदि मुनियोंके चरणोंकी वन्दना की, उधर रामने जनकपुरके मुनियोंको जा प्रणाम किया। (३) तीनों भाइयोंके साथ रामने राजा जनकसे जा भेंट की और फिर उनके सारे समाजको वे (अपने आश्रमपर) साथ लिवा ले चले। (४) रामका आश्रम क्या था, शान्त रसका समुद्र था, जो पवित्रताके जलसे भरा हुआ था, (जिससे मिलानेके लिये) राम यह करुण रसकी नदी अपने साथ बहाए लिए चले जा रहे थे। (रामके आश्रममें यह शोकका वातावरण मिलनेवाला था)॥ २७५॥ यह करुणाकी सरिता उमड़कर ज्ञान और वैराग्यके दोनों तट डुबाए चली जा रही थी जिसमें शोकसे भरे वचनोंकी नदियाँ और नाले मिलते चले जा रहे थे। चिन्ताके कारण जो लोग लंबी-लंबी साँसें लिए चले जा रहे थे वे ही मानो वायुके झकोरोंसे उटनेवाली जलकी तरंगें हों। ये लहरें किनारेके धैर्य-रूपी वृक्षको ढाती चली जा रही थीं (जनकके आते ही सबका दबा हुआ शोक उमड़ पड़ा। सब लोग ज्ञान और वैराग्यकी बातें भूलकर शोकसे भरी बातें करने लगे, सबकी चिन्ता बढ़ चली और धैर्य जाता रहा)। (१) भयंकर दुःखके तोड़से भरी (तीव्र) धारामें भय और भ्रमकी भँवरें चक्कर काटे जा रही थीं।

२७९२-९५ रामः प्रणम्य जनकं मुनीन् सर्वान्प्रणम्य च। निजाश्रमोदधिं शांतरसनीरप्रपूरितम्॥
करुणासरितं सेनां गृहीत्वा याति राघवः। —नारायणसंहिता

केवट बुध, बिद्या बड़ि नावा। सकहिँ न खेइ, अइक नहिँ आवा। (२)
बनचर, कोल, किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय - हारे[१]।
आश्रम - उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई। (३)
सोक-बिकल दोउ राज - समाजा। रहा न ग्यान, न धीरज, लाजा।
भूप - रूप - गुन - सील सराही। रोवहिँ सोक - सिंधु अवगाही। (४)
छंद—अवगाहि सोच - समुद्र, सोचहिँ नारि - नर ब्याकुल महा।
दै दोष, सकल सरोष बोलहिँ, बाम बिधि कीन्हों कहा।
सुर, सिद्ध, तापस, जोगिजन, मुनि, दसा देखि बिदेह - की[२]।
२८१० तुलसी, न समरथ कोउ, जो तरि सकै सरित सनेह - की ॥ [१०]
सो०—किए अमित उपदेस, जहँ-तहँ लोगन मुनिबरन।
धीरज धरिय नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह - सन ॥ २७६॥
जासु ग्यान - रबि, भव - निसि नासा। बचन-किरन, मुनि-कमल बिकासा।

विद्याकी बड़ी-बड़ी नाव खे ले चल सकनेवाले जो पंडित लोग केवट थे वे भी इस नदीमें अपने ज्ञानकी नाव चला नहीं पा रहे थे क्योंकि वे भी यह थाह नहीं पा रहे थे कि पानीकी कहाँ क्या गति है। (२) वनवासी कोल-किरात जो बेचारे नावपर चढ़े थे वे तो देखते ही ठक रह गए और साहस खो बैठे। जब यह नदी आश्रम-रूपी समुद्रमें मिली तो (रोने-पीटनेका ऐसा कोलाहल मचा) मानो समुद्रमें ज्वार उठ चला हो (आश्रममें पहुँचते ही रोना-पीटना मच गया) (३) दोनों (अयोध्या और मिथिला)-का राज-समाज शोकसे इतना व्याकुल हो उठा कि उन्हें न धैर्य रह गया और न लज्जा (कि किसके सामने रोना चाहिए, किसके सामने नहीं)। (अयोध्याके विनाशका वहाँ सबके मनमें भय भी बना हुआ था और यह भ्रम भी था कि राम लौट भी सकेंगे या नहीं; और ऐसा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा था जो कोई समाधान निकाल सके क्योंकि किसीकी यही समझमें नहीं आ रहा था कि राम चाहते क्या हैं। वनवासी कोल-किरातोंको बड़ी निराशा हो चली थी कि कहीं राम सचमुच अयोध्या न लौट जायँ। जब यह सारा समाज आश्रममें पहुँचा तो वहाँ भयंकर रोना-पीटना मच गया)। सब लोग राजा दशरथके रूप, गुण और शीलकी प्रशंसा करते हुए शोकके समुद्रमें डूबे पड़े रोए जा रहे थे। (४) सभी स्त्री-पुरुष शोक-सागरमें डूबे व्याकुल और चिन्तित दिखाई दे रहे थे। वे अपना-अपना भाग्य कोसते हुए क्रोधसे कहे जा रहे थे—'हमारे खोटे भाग्यने ये क्या (बुरे) दिन ला दिखाए ?' देवता, सिद्ध तपस्वी, योगी और मुनि भी विदेह (राजा जनक)-की व्याकुलता देख-देखकर कहे जा रहे थे कि अब किसीमें भी ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि प्रेमकी इस सरिताको (सरलतासे) पार कर पा सके। (जब राजा जनक जैसे महान् ज्ञानी और विरागी प्रेमसे इतने अधीर हुए जा रहे हैं तो साधारण जन कहाँ धीरज रख पा सकते हैं)। [१०] मुनि लोग जहाँ-तहाँ जा-जाकर सबको बहुत उपदेश दे-देकर शान्त किए जा रहे थे। वशिष्ठने भी राजा जनकको जा समझाया कि—'महाराज ! (आप क्यों धैर्य खो बैठे हैं ?) आप तो धैर्य न खोइए ॥ २७६ ॥ जिसके ज्ञानके सूर्य (-के प्रकाश)-से संसारके दुःखकी रात्रि मिट भागती है, (जिसके ज्ञानसे सबका दुःख मिट जाता है और जिसके वचनकी किरणोंसे मुनियोंके हृदय-कमल

१. पथिक बिलोकि थके हिय हारे। २. देखि दसा बिदेह की।

२८११-१२ सर्वेषां जनकस्यापि दुःखप्रशमनाय च। वसिष्ठः कथयामास कथा बह्वीर्मनोरमाः ॥—महाभारत

तेहि कि मोह - ममता नियराई । यह सिय - राम - सनेह बड़ाई । (१)
बिषई, साधक, सिद्ध सयाने । त्रिबिध जीव जग, बेद बखाने ।
राम - सनेह - सरस मन जासू । साधु - सभा बड़ आदर तासू । (२)
सोह न राम - पेम बिनु ग्यानू । करनधार - बिनु जिमि जल-जानू ।
मुनि, बहु बिधि बिदेह समुझाए । राम - घाट सब लोग नहाए । (३)
सकल सोक - संकुल नर - नारी । सो बासर बीतेउ बिनु - बारी ।
२८२० पसु - खग - मृगन न कीन्ह अहारू । प्रिय परिजन - कर कौन बिचारू । (४)
दो०—दोउ समाज निमिराज, रघु , -राज नहाने प्रात ।
बैठे सब बट - बिटप - तर , मन मलीन, कृस गात ।। २७७ ।।
जे महिसुर दसरथ - पुर - बासी । जे मिथिला - पति - नगर - निवासी ।
हंस - बंस - गुरु, जनक - पुरोधा । जिन्ह जग, मग-परमारथ सोधा । (१)
लगे कहन उपदेस अनेका । सहित - धरम-नय - बिरति-बिबेका ।
कौसिक[1] कहि - कहि, कथा पुरानी । समुझाई सब सभा सुबानी । (२)
तब रघुनाथ कौसिकहिं कहेऊ । नाथ ! कालि जल-बिनु सब रहेऊ ।

खिल उठते हैं (जिसके उपदेशसे मुनि लोग प्रसन्न हो उठते हैं) क्या उसके पास भी कहीं मोह और ममता फटक पा सकती है ? यह तो सीता और रामके प्रति किए हुए प्रेमकी विशेषता है । (कि वह प्रेम, जनक-जैसे विरक्तको भी शोकाकुल किए डाल रहा है) । (१) वेदोंमें बताया गया है कि संसारमें तीन प्रकारके जीव होते हैं—विषयी, साधक और बुद्धिमान् सिद्ध । इनमेंसे जिनका मन रामके प्रेममें डूबा रहे, साधु लोग उन्हींका बड़ा आदर करते हैं । (२) रामसे प्रेम न रहे तो ज्ञान भी वैसे ही अकारथ होता है जैसे कर्णधार (केवट)-के बिना नाव (व्यर्थ हो जाती है) ।' (इस प्रकार) मुनि वशिष्ठने अनेक प्रकारसे समझाकर जनकको किसी-किसी प्रकार शान्त किया । फिर सब लोग उठे, और उठकर सबने रामघाटपर स्नान जा किया । (३) सभी स्त्री-पुरुष इतने शोकाकुल थे कि उस दिन लोगोंने जल-तक नहीं ग्रहण किया । जब वहाँके पशु, पक्षी और मृग-तक चारा नहीं चर रहे थे तब प्रिय कुटुम्बियोंका तो पूछना ही क्या था ? (४) दोनों समाज (अयोध्या और मिथिला)-के लोग प्रातःकाल स्नान करके वट वृक्षके नीचे आ जुटे । सबके मन उदास थे और सबके शरीर सूख चले थे ।। २७७ ।। राजा दशरथके नगर (अयोध्या)-से आनेवाले तथा राजा जनकके नगर (मिथिला)-से आनेवाले ब्राह्मणोंने, सूर्यवंशके गुरु वशिष्ठ मुनिने, जनकके पुरोहित शतानन्दने (१) धर्म, नीति, वैराग्य और विवेकसे पूर्ण अनेक उपदेश दे सुनाए क्योंकि वे तो जगत् और मोक्षका सारा तत्त्व छाने बैठे थे । विश्वामित्रने पुराणोंकी कथाएँ कह-कहकर सारी सभाको बड़े अच्छे ढंगसे ज्ञानका उपदेश दे समझाया । (२) तब रामने (जनकसे) कहा—'नाथ ! कलसे किसीने जल-तक नहीं ग्रहण किया है ।

१. कौशिक (विश्वामित्र)-के आनेका पहले कहीं उल्लेख नहीं है । यह अंश कौशिक-संहितासे लिया गया है ।

२८१३-१८ वसिष्ठो जनकं प्रेम्णा बोधयामास पंडितम् । रामे प्रेम न यस्यास्ति स साधुः कथितो बुधैः ।।अग०सं०
२८१८-१९ अयोध्यावासिनः सर्वे मिथिलापुरवासिनः । मंदाकिनीजले स्नानं कृत्वा वटतरोस्तले ।।
उपविष्टाः क्षीणदेहाश्चिन्तापूरितमानसाः । —कण्वसंहिता
२८२४-२६ मिथिलावासिनो विप्रास्तथायोध्यानिवासिनः । वसिष्ठश्च शतानंदो विश्वामित्रस्तथैव च ।।
अनेकान् कथयामासुरुपदेशान्पुरातनान् ।। -कौशिकसंहिता

मुनि कह, उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन, पहर अढ़ाई। (३)
रिषि-रुख लखि, कह तिरहुति-राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू।
२८३० कहा भूप भल, सबहिं सुहाना। पाइ रजायसु, चले नहाना। (४)
दो०—तेहि अवसर फल, फूल, दल, मूल अनेक प्रकार।
लइ आये बनचर बिपुल, भरि-भरि काँवरि-भार॥ २७८॥
कामद भे गिरि राम-प्रसादा। अवलोकत, अपहरत बिषादा।
सर, सरिता, बन, भूमि-बिभागा। जनु उमगत आनँद-अनुरागा। (१)
बेलि-बिटप सब सफल, सफूला। बोलत खग-मृग-अलि अनुकूला।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू। (२)
जाइ न बरनि मनोहरताई। [1][जनु महि करति जनक-पहुनाई।
तब सब लोग नहाइ-नहाई][1]। राम-जनक-मुनि-आयसु पाई। (३)
देखि-देखि तरुवर अनुरागे। जहँ-तहँ पुर-जन उतरन लागे।
२८४० दल, फल, मूल, कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा-समाना। (४)

इसका समर्थन करते हुए मुनि वशिष्ठने कहा—'राम ठीक कह रहे हैं। देखिए, आज भी ढाई पहर दिन ढल चुका है।' (अतः, अब आप सब लोग जाकर भोजन-पानी करनेका प्रबन्ध करें)।' (३) ऋषिराज (वशिष्ठ)-का संकेत पाकर, राजा जनकने कहा—'यहाँ (आश्रममें) अन्न ग्रहण करना तो उचित है नहीं' (एक तो यह जामाताका स्थान है, दूसरे आश्रम है)।' राजा जनकने ऐसी अच्छी बात कह दी कि वह सबको ठीक जँच गई। फिर आज्ञा पाकर सब लोग स्नान करनेके लिये उठ गए। (४) इसी बीच वनवासी (कोल-किरात आदि) अनेक प्रकारके फल, फूल, पत्ते और मूल आदि काँवरोंमें भर-भरकर लादे लिए चले आए॥ २७८॥ रामकी कृपासे चित्रकूटके सब पर्वत ऐसे कामनाएँ पूरी करनेवाले बन चले थे कि उन्हें देखते ही सारे दुःख दूर हो मिटते थे। वहाँके सरोवर, नदी, वन और भूमिमें जिधर देखो उधर आनन्द ही आनन्द और प्रेम ही प्रेम उमड़ा पड़ रहा था। (१) वहाँकी लताएँ और वृक्ष सब फल-फूलसे लदे पड़े थे। पशु, पक्षी और भौंरे सब मधुर स्वरमें दिनरात बोलते, चहकते और गूँजते ही चले जाते थे। जान पड़ता था सारे वनमें उत्साह ही उत्साह छाया हुआ था। तीनों प्रकारकी बयार (शीतल, मन्द, सुगन्ध) सबको सुख देती हुई बही चली जा रही थी। (२) वहाँ उस समय जो सुन्दरता आ छाई थी उसका वर्णन कोई कर नहीं पा सकता। (ऐसा लग रहा था) मानो वहाँकी सारी भूमि ही राजा जनककी पहुनाई (आतिथ्य) करने आ जुटी हो। तब सब लोग राम, राजा जनक और मुनि वशिष्ठकी आज्ञा पा-पाकर स्नान कर-करके (३) अच्छे-अच्छे (छायावाले) वृक्ष देख-देखकर उन्हींके तले प्रेमपूर्वक जहाँ-तहाँ अपने डेरे जमाने लगे। तब अनेक प्रकारके शुद्ध और अमृतके समान मीठे कंद, मूल, फल, पत्ते

१. [1][से][1] तक दोनों चरण राजापुर एवं काशिराजकी रामायण-परिचर्य्यामें नहीं हैं।

२८३० रामाज्ञया गताः सर्वे स्नातुं मंदाकिनीतटम्। तदा वनचराः कंदफलमूलानि सादरम्॥
आनिन्युर्भोजनार्थं हि प्रीतये राघवस्य च।
२८३२ रामप्रसादात् सुखदश्चित्रकूटो महागिरिः। जातो यद्दर्शनं सर्वकामदं पापनाशकम्॥ —सूतसं०
२८४०-४१ कन्दमूलफलान्येव प्रेषयामास सादरम्। सर्वेषां भोजनार्थं तु वशिष्ठो मुनिपुंगवः॥ जैमिनीसं०

दो०—सादर सब - कहँ राम - गुरु , पठए भरि - भरि भार ।
पूजि पितर, सुर, अतिथि, गुरु , लगे करन फलहार ।। २७९ ।।

ऐहि बिधि, बासर बीते चारी । राम - निरखि, नर - नारि सुखारी ।
दुहुँ समाज असि रुचि मन - माहीँ । बिनु - सियराम, फिरब भल नाहीँ । (१)
सीता - राम - संग बन - बासू । कोटि अमरपुर - सरिस सुपासू ।
परिहरि लखन - राम - बैदेही । जेहि घर भाव, बाम बिधि तेही । (२)
दाहिन दैउ होइ जब सबहीँ । राम - समीप बसिय बन तबहीँ ।
मंदाकिनि - मज्जन तिहुँ काला । राम - दरस मुद - मंगल - माला । (३)
अटन राम - गिरि, बन, तापस - थल । असन अमिय-सम कंद-मूल-फल ।
२८५० सुख - समेत संबत दुइ - साता । पल-सम होहिँ न जनियहिँ जाता । (४)

दो०—ऐहि सुख-जोग न, लोग सब , कहहिँ, कहाँ अस भाग ।
सहज सुभाय समाज दुहुँ , राम - चरन - अनुराग ।। २८० ।।

ऐहि बिधि, सकल मनोरथ करहीँ । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीँ ।
सीय - मातु, तेहि समय पठाई । दासी, देखि सुअवसर आई । (१)
सावकास सुनि, सब सिय - सासू । आयउ जनकराज - रनिवासू ।

आदि (४) राम और गुरु वशिष्ठने आदर-पूर्वक बहुँगियोंमें भरवा-भरवाकर जनकपुरवालोंके पास भेज दिए और वे सब लोग देवता, पितर, अतिथि और गुरुकी पूजा करके वहाँ निश्चिन्त होकर फलाहार करने लगे ।। २७९ ।। यों करते-करते चार दिन निकल गए । रामको देख-देखकर सभी स्त्रियों और पुरुषोंको बड़ा आनन्द मिला जा रहा था । दोनों समाजोंके मनमें यही इच्छा बनी हुई थी कि 'राम और जानकीको साथ लिवा ले चले बिना लौटना ठीक नहीं है । (१) राम और जानकीके साथ वनमें रहना भी करोड़ों स्वर्गोंके समान सुखकारी है । राम, लक्ष्मण, जानकीको यहाँ छोड़कर जिसे अपने घर लौट जाना अच्छा लगता हो, उसे समझना चाहिए कि उसका भाग्य ही खोटा है । (२) जब भाग्य अच्छा होता है तभी रामके पास वनमें भी निवास कर सकनेका सौभाग्य मिल पाता है । (ऐसा हो जाय) तो यहाँ तीनों समय मंदाकिनीमें स्नान किया जायगा, सदा आनन्द तथा मंगल करनेवाला सीता और रामका दर्शन करते रहा जायगा । (३) दिनरात पर्वतों, वनों और तपस्वियोंके स्थानोंमें घूमते रहा जायगा और अमृतके समान कन्द, मूल, फल भोजन करते रहा जायगा । इस प्रकार रहते-रहते चौदह वर्षका समय तो चुटकी बजाते (पलके समान) ऐसे बीत जायगा कि जान भी न पड़ेगा कि कबमेंको निकल गया ।' (४) कुछ लोग कहने लगे—'हमारे भाग्यमें कहाँ ये सुख मिलने लिखे हैं । हमारे ऐसे भाग्य कहाँ है ?' यह सब कह-कहकर दोनों समाजोंके लोग स्वभावसे ही रामके चरणोंमें प्रेम जनाए जा रहे थे ।। २८० ।। इस प्रकार सब लोग अनेक कामनाएँ करते जा रहे थे और ऐसी-ऐसी प्रेम-भरी बातें करते जा रहे थे जो सुनते ही मन हरे लेती थीं ।

इसी समय सीताकी माता (सुनयना)-की भेजी हुई दासी भी (कौशल्या आदि रानियोंसे मिलनेका) सुअवसर देख आई । (१) यह सुनकर कि सीताकी सब सासोंसे मिलनेकी अब सुविधा है तो राजा जनककी रानियोंने सोचा कि उनसे मिलनेका अच्छा अवसर हाथ आ लगा

२८४७-४७ रामान्तिके वने वासस्तदास्याच्च विधिर्यदा । दक्षिणः स्नपनं नीरे मन्दाकिन्यास्तु निर्मले ।।
श्रीरामदर्शनं पुण्यं चित्रकूटाचलाटनम् । वदन्ति सकला लोका अनुरागो हरेः पदेः ।।काश्यपसं०

कौसल्या सादर सनमानी । आसन दिये समय - सम आनी । (२)
सील - सनेह सकल दुहुँ ओरा । द्रवहिं देखि-सुनि कुलिस कठोरा ।
पुलक - सिथिल तनु, बारि बिलोचन । महि नख लिखन लगीं सब सोचन । (३)
सब सिय - राम - प्रीति - सी मूरति । जनु करुना बहु बेष बिसूरति ।
२५६० सीय - मातु कह, बिधि - बुधि बाँकी । जो पय - फेन, फोर पबि - टाँकी । (४)
दो०—सुनिय सुधा, देखियहि गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ - तहँ काक, उलूक, बक, मानस सकृत मराल ।। २८१ ।।
सुनि ससोच, कह देबि सुमित्रा । बिधि - गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा ।
जो सृजि, पालइ, हरइ बहोरी । बाल-केलि-सम, बिधि-मति भोरी । (१)
कौसल्या कह, दोस न काहू । करम-बिबस दुख - सुख, छति- लाहू ।
कठिन करम - गति जान बिधाता । जो सुभ-असुभ, सकल फल-दाता । (२)

है, चलें, चलकर भेंट कर हो लें । इसलिये वे सब उठीं वहाँ चली आईं । कौशल्याने सबको बड़े आदर-सम्मानसे आश्रमके साधनोंके अनुसार आसनोंपर बुला बैठाया । (२) दोनों ओरका वह शील, स्नेह और (उनका) विलाप ऐसा हृदय-द्रावक था कि उसे कठोर वज्र भी सुन ले तो पिघल उठे । वे रानियाँ लड़खड़ाई पड़ रही थीं और पुलकित हुई जा रही थीं । उनके नेत्रोंसे झरझर आंसू बहे जा रहे थे । सब (रानियाँ) शोकके मारे चुपचाप बैठी नखोंसे धरती कुरेदे जा रही थीं । (३) सब रानियाँ ऐसी लगती थीं जैसे सीता और रामके प्रेमकी मूर्तियाँ ही आई बैठी हों, मानो करुणा ही अनेक रूप धारण करके चिन्तित होकर आ बैठी हो । सीताकी माता (दशरथकी रानियोंसे) समझाने लगीं—'विधाताकी खोपड़ी ही कुछ ऐसी उलटी है कि वह दूधके फेनको वज्रकी टाँकीसे फोड़नेपर तुला हुआ है (कोमल हृदयवाले राजा रामसे दशरथका वियोग कराकर उनके प्राण लिए, और राम, सीता तथा लक्ष्मण-जैसे सुकुमारोंको वनका कष्ट झेलने यहाँ ठेल भेजा । राम, सीता और लक्ष्मण-जैसे कोमल कुमार-कुमारीको वनका कष्ट भोगनेको विवश किए हुए है) । विधाताकी सारी करतूतें इतनी बेसिर-पैरकी होती हैं कि जहाँ अमृत सुनकर पहुँचिए वहाँ विष हाथ लगता है । जहाँ देखिए वहाँ कौवे, उल्लू और बगुले तो मिल जाते हैं, पर हंस ढूँढिए तो मानसरोवरपर भी कोई-कोई मिल पाता है' ।।२८१।। यह सुनकर शोककी मुद्रामें सुमित्राने भी कहा—'विधाताका सारा काम ऐसा उलटा और ऊटपटांग होता है कि वह जिस जगत्‌की रचना करता है और पालता है उसका भी नाश कर डालता है । बच्चोंके खेलके समान विधाताका सारा काम उलटा और नासमझीसे भरा होता है ।' (१) कौशल्या भी (सुनयनासे) कहने लगी—'इसमें किसीको दोष क्या दिया जाय ? दुःख-सुख और हानि-लाभ तो सब भाग्यके हाथकी बात है । भाग्य किस

२८५५-५६ सीतामाता च कौशल्यादर्शनार्थं समागता । दत्वा कालानुकूलं चासनं कोसलकन्यका ।।
चकार तस्या सम्मानं शुभैर्वाक्यैर्मनोहरैः ।। —आनन्दरामायण
२८६१-६२ अमृतं श्रूयते स्वर्गे विषमत्र प्रदृश्यते । यत्र-तत्र बकाः काका हंसाः सरसि मानसे।। मुहूर्त्तदीपक
२८६४ अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्य पार्थकं विक्रीडितं चार्भकचेष्टितं यथा ।। —श्रीमद्भागवत
२८६५ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।। —भगवद्गीता
२८६६ दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभाशुभम् । संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम्।। ब्रह्मवैवर्तपु०

ईस - रजाइ सीस सबही - के । उतपति, थिति, लय, बिषहु, अमीके ।
देबि ! मोह - बस सोचिय बादी । बिधि-प्रपंच अस अचल, अनादी । (३)
भूपति जियब - मरब उर आनी । सोचिय सखि! लखि निज-हित-हानी।
२८७० सीय - मातु कह, सत्य सुबानी । सुकृती - अवधि, अवधपति - रानी। (४)
दो०—लखन-राम-सिय जाहु बन , भल परिनाम, न पोच ।
गहबरि हिय कह कौसिला , मोहिं भरत-कर सोच ।। २८२ ।।
ईस-प्रसाद, असीस तुम्हारी । सुत - सुतबधू देवसरि - बारी ।
राम - सपथ मैं कीन्हि न काऊ । सो करि कहौं सखी ! सति भाऊ । (१)
/भरत सील - गुन - बिनय - बड़ाई । भायप, भगति, भरोस, भलाई । /
कहत सारदहु - कर मति हीचे । सागर सीप कि जाहिं उलीचे । (२)
जानउँ सदा भरत कुल - दीपा । बार - बार मोहिं कहेउ महीपा ।
कसे कनक, मनि पारिखि पाए । पुरुष परिखियहि समय सुभाए । (३)

समय क्या कर बैठेगा यह तो वही विधाता जानता है जो सबको अच्छे और बुरे सब कर्मोंका फल देता रहता है । (२) ईश्वरकी जो आज्ञा हो वह चाहे उत्पत्ति, स्थिति, लय, विष, या अमृत कुछ भी हो, सब (झख मारकर) झेलनी ही पड़ती है । इसलिये देवी ! आप मोहमें पड़कर व्यर्थ चिन्तामें न घुलिए । विधाताका जितना माया-चक्र है वह किसीके टाले नहीं टल पा सकता और वह अनादि (कबसे चला आ रहा है, नहीं कहा जा सकता) है । (३) महाराज (दशरथ)-के जीने और मरनेपर विचार करके जो लोग चिन्ता किए जा रहे हैं, वे तो सखि ! सब अपने हितकी हानि हो जानेके कारण ही कर रहे हैं ।' यह सुनकर सीताकी माता सुनयनाने (कौशल्यासे) कहा—'आप ठहरीं बहुत पुण्यात्मा और अयोध्या-नरेशकी महारानी । इसीलिये आप इतनी अच्छी और सत्य बात कह रही हैं (यह कथन आपके गौरवके अनुकूलके ही है) ।' (४) शोकसे विह्वल हृदयसे कौशल्या कह उठीं—'राम, लक्ष्मण, और सीता वनमें रहें तो रहें । इसका फल अच्छा ही होगा, बुरा नहीं । पर मुझे तो बस भरतकी चिन्ता बड़ी सताए डाल रही है (कि रामके बिना वह रह कैसे पावेंगे) ।।२८२।। ईश्वरकी कृपा और आपके आशीर्वादसे मुझे पुत्र (राम) और पुत्रवधू (सीता) दोनों गंगाजलके समान (परम पवित्र) मिल गए । देखो सखी ! मैंने रामकी सौगंध कभी नहीं ली, पर आज रामकी सौगन्ध लेकर सच कहती हूँ कि सरस्वतीकी बुद्धि भी भरतके शील, गुण, विनय, बड़प्पन, भ्रातृस्नेह, भक्ति, विश्वास और भलाई आदिका वर्णन करने बैठ जाय तो भी नहीं कर पा सकती । भला सीपीसे कहीं समुद्र उलीचा जाया करता है ? (जैसे सीपीसे समुद्र उलीचना संभव नहीं है वैसे ही सरस्वतीके लिये भी अपनी बुद्धिसे भरतके गुणोंका वर्णन कर सकना संभव नहीं है) । (२) मुझसे न जाने कितनी बार महाराज (दशरथ) कह चुके हैं कि भरतको सदा कुलका दीपक समझना । जैसे (कसौटीपर) कसनेसे सोनेकी और पारखी मिल जानेसे मणिकी परख की जाती है, वैसे ही समय पड़नेपर उसका

२८६८ संसारस्य लयो ह्युक्तो न प्रपंचस्य कर्हिचित् ।। —पद्मपुराण
२८७७ शर्वरी दीपकश्चन्द्रः रविर्दिवसदीपकः । त्रैलोक्यदीपको धर्मः सुपुत्रः कुलदीपकः ।।
२८७८ यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।। —चाणक्यनीति

अनुचित आज कहब अस मोरा। सोक - सनेह सयानप थोरा।
२८८० सुनि सुरसरि - सम - पावनि बानी। भईं सनेह - बिकल सब रानी। (४)
दो०—कौसल्या कह धीर धरि, सुनहु देबि ! मिथिलेसि।
को बिवेक-निधि-बल्लभहिं, तुम्हहिं सकइ उपदेसि ॥ २८३ ॥
रानि ! राय - सन अवसर पाई। आपुनि भाँति कहब समुझाई।
रखियहि लखन, भरत गवनहिं बन। जौं यह मत मानइ महीप - मन। (१)
तौ भल जतन करब सुबिचारी। मोरे सोच भरत - कर भारी।
गूढ़ सनेह भरत - मन - माहीं। रहे, नीक मोहिं लागत नाहीं। (२)
लखि सुभाउ, सुनि सरल सुबानी। सब भइँ मगन करुन-रस रानी।
नभ प्रसून झरि धन्य - धन्य धुनि। सिथिल सनेह सिद्ध, जोगी, मुनि। (३)
सब रनिवास बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर, सुमित्रा कहेऊ।
२८९० देबि ! दंड जुग जामिनि बीती। राम - मातु, सुनि उठी सप्रीती। (४)
दो०—बेगि पाउ धारिय थलहिं, कह सनेह सति भाय।
हमरे, कै[1] अब ईस - गति, कै मिथिलेस - सहाय ॥ २८४ ॥

व्यवहार देखकर ही मनुष्यकी भी परीक्षा होती है। (३) यह सब कहना (भरतकी प्रशंसा करना) आज मुझे इसलिये बेतुका नहीं लग रहा है कि शोक और स्नेहमें यों ही विवेक कम हुआ रहता है।' गंगाजीके समान उनकी यह पवित्र वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेहसे व्याकुल हो उठीं। (४) फिर कौशल्याने बहुत धीरज धरकर (सुनयनासे) कहा—'देवि मिथिलेश्वरी ! आप तो साक्षात् विवेकके भांडार महाराज जनककी प्रिया (पत्नी) हैं। भला आपको उपदेश देनेकी ढिठाई कर कौन सकता है ? ॥ २८३ ॥ पर रानी ! अवसर पाकर राजा (जनक)-से अपनी ओरसे इतना और समझाकर कह दीजिएगा कि यदि राजा जनक ठीक समझें तो लक्ष्मणको लौटा ले चलें (१) और उनके बदले भरतको रामके साथ वन चले जाने दें। आप इसके लिये पूरा-पूरा प्रयत्न कीजिएगा क्योंकि मुझे भरतकी बड़ी चिन्ता है कि रामके बिना वे रह भी पावेंगे या नहीं। भरतके मनमें रामके लिये बहुत गहरा छिपा प्रेम है (कौन जाने भरत प्राण छोड़ दें)। उनके अयोध्या रह जानेमें मुझे कुशल नहीं दिखाई पड़ता।' (२) कौशल्याका स्वभाव देखकर और उनकी सरल, विवेकसे भरी वाणी सुनकर सब रानियाँ शोकमें जा डूबीं। आकाशसे फूल बरसने लगे, धन्य-धन्यकी ध्वनि होने लगी और यह देखकर सिद्ध, योगी और मुनि भी स्नेहके कारण सुध-बुध खो बैठे। (३) यह (करुण दृश्य) देखकर पूरा रनिवास स्तब्ध हो उठा। तब धीरज धरकर सुमित्राने (सुनयनासे) कहा—'देवि ! इस समय दो दंड[2] रात चढ़ आई है।' तब रामकी माता (कौशल्या) प्रेमके साथ उठ खड़ी हुईं। (४) कौशल्याने प्रेमपूर्वक सच्चे भावसे (सुनयना आदिसे) कहा—

१. तौ। २. दो दंड = दो घड़ी = ४८ मिनट

२८८१-८२ विधाय धैर्यं कौशल्या मिथिलाधिश्वरि प्रिये। शृणु त्वं विज्ञाननिधेर्वल्लभासि सुधीमती॥वशिष्ठरा.
२८८३-८६ राज्ञि मद्वचनाद्वाच्यो मिथिलाधिपतिस्त्वया। लक्ष्मणो रक्षणीयोऽत्र भरतो यातु काननम् ॥
भरतस्य कृते शोको वर्तते हृदये मम। गूढस्नेहो च भरतो वसेन्नात्र तथा कुरु ॥ –अद्भुतरा०
२८९१-९२ कौशल्या प्राह राज्ञीं तां मिथिलाधीश्वरप्रियाम्। ईश्वरो मे गतिः किंवा सहायो मिथिलापतिः ॥म.सं.

लखि सनेह, सुनि बचन बिनीता। जनक-प्रिया गह पाँय पुनीता।
देवि ! उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ - घरिनि, राम - महतारी। (१)
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अगिनि धूम, गिरि सिर तिनु धरहीं।
सेवक राउ करम - मन - बानी। सदा सहाय महेस - भवानी। (२)
रउरे अंग - जोग जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै।
राम जाइ बन, करि सुर - काजू। अचल अवधपुर करिहँइ राजू। (३)
अमर, नाग, नर, राम बाहु - बल। सुख बसिहँइ अपने - अपने थल।
२९०० यह सब जागबलिक कहि राखा। देवि ! न होइ मुधा मुनि-भाखा। (४)
दो०–अस कहि, पग परि पेम अति , सिय-हित, बिनय सुनाइ।
सिय - समेत सिय - मातु तब , चली सुआयसु पाइ॥ २८५॥
प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहि जोग, भाँति तेहि तेही।
तापस - बेष जानकी देखी। भा सब बिकल, बिषाद बिसेखी। (१)
जनक, राम - गुरु - आयसु पाई। चले थलहिं, सिय देखी आई।
लीन्हि लाइ उर जनक, जानकी। पाहुनि पावन पेम - प्रान - की। (२)
उर उमगेउ, अंबुधि - अनुरागू। भयउ भूप - मन मनहुँ पयागू।

'आप लोग भी चलकर अब अपने स्थानपर विश्राम करें। हमें तो अब या तो ईश्वरका ही भरोसा है या मिथिलेश जनककी सहायताका' ॥ २८४ ॥ कौशल्याका स्नेह देखकर और उनकी विनम्र वाणी सुनकर, जनककी प्रिया सुनयनाने कौशल्याके पवित्र चरण पकड़ लिए और कहा—'देवि ! आपका यह विनय-भरा वचन आपके बड़प्पनके अनुकूल है क्योंकि आप महाराज दशरथकी गृहिणी और रामकी माता हैं। (१) बड़े लोग अपनेसे छोटोंका सदा वैसे ही आदर किया करते हैं जैसे धुएँको अग्नि और तिनकों (घास-फूस)-को पहाड़ अपने सिरपर चढ़ाए रखता है। राजा (जनक) तो कर्म, मन और वचनसे आपके सेवक हैं (वे भला सहायक बननेकी ढिठाई कैसे कर सकते हैं ?)। जब शंकर (सदाशिव) और पार्वती ही आपके सदा सहायक रहे हैं (२) तब आपकी सहायता करनेकी ढिठाई संसारमें कर कौन सकता है ? कहीं दीपक दिखानेसे सूर्यकी चमक बढ़ा करती है ? (आप देखिएगा कि) वन जाकर राम सब देवताओंका कार्य करके अयोध्या लौटकर अचल राज्य आ करेंगे। (३) रामके बाहुबलसे ही देवता, नाग और मनुष्य सभी निश्चिन्त हो-होकर अपने-अपने स्थानपर जा-जाकर बस पावेंगे। यह सब याज्ञवल्क्यने हमें (पहलेसे ही) बता रक्खा है। देखो देवि ! मुनि लोग जो कह देते हैं वह कभी झूठ नहीं होता।' (४) यह कहकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक (कौशल्याके) पैरों पड़कर 'सीताको अपने साथ डेरेपर लिवा ले जानेके लिये प्रार्थना करके, (कौशल्याकी) आज्ञासे, सीताको साथ लेकर सीताकी माता अपने डेरेपर लौट आईं ॥ १८५ ॥ वहाँ पहुँचकर जानकी अपने सब प्रिय कुटुम्बियोंमेंसे, जो जिस योग्य था उससे उसी मर्यादाके साथ मिलीं। जानकीको तपस्विनीके वेषमें देखकर सब लोग शोकसे अत्यन्त अधीर हो उठे। (१) गुरु वशिष्ठसे आज्ञा लेकर जनक भी जब अपने डेरेपर लौटे तो देखा कि सीता वहाँ आई बैठी हैं। जनकने सीताको उठाकर हृदयसे लगा लिया जो आज प्रेमके साथ-साथ प्राणकी भी पाहुनी (अतिथि) बनकर आ गई थीं (जिन्हें प्रेमके साथ-साथ प्राण भी दिए जा सकते थे)। (२) उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र लहरा उठा। आज राजा जनकका मन ही मानो ऐसा प्रयागराज हो चला हो जिसमें सीताके

२८९३ दृष्ट्वा स्नेहं वचो नम्रं प्रोवाच जनकप्रिया। कौशल्यां सखि देवेंद्रो रामचन्द्रो महावनम्॥
गत्वा कृत्वा सुराणां च कार्यं राज्यं करिष्यति। निष्कंटकमयोध्यायां याज्ञवल्क्यो जगाद ह॥हनु०सं०

सिय - सनेह - बट बाढ़त जोहा । तापर राम - पेम - सिसु सोहा । (३)
चिरजीवी मुनि ग्यान, बिकल जनु । बूड़त, लहेउ बाल - अवलंबनु ।
२९१० मोह-मगन - मति नहिँ बिदेह - की । महिमा सिय - रघुबर - सनेह - की । (४)
दो०–सिय पितु-मातु-सनेह-बस , बिकल, न सकी सँभारि ।
धरनि-सुता धीरज धरेउ , समउ, सुधरम बिचारि ।। २८६ ।।
तापस - वेस, जनक, सिय देखी । भयउ पेम - परितोष बिसेषी ।
पुत्रि ! पवित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल, जग कह, सब कोऊ । (१)
जिति सुरसरि, कीरति - सरि तोरी । गवन कीन्ह, बिधि - अंड - करोरी ।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे । यहि किय, साधु - समाज घनेरे । (२)
पितु कह, सत्य - सनेह - सुबानी । सीय सकुचि, महि मनहुँ समानी ।
पुनि पितु - मातु लीन्हि उर लाई । सिष, आसिष हित दीन्हि सुहाई । (३)
कहति न सीय, सकुचि मन - माहीँ । इहाँ बसब रजनी भल नाहीँ ।

प्रति उनका प्रेम ही ऐसा अक्षयवट बनकर बढ़ा चला जा रहा था जिसके पत्तेपर रामके प्रति प्रेम ही बालमुकुन्द बना शोभा दे रहा था । (३) जनकका ज्ञान ही मानो चिरंजीवी मार्कण्डेय मुनि हो, जिसने (इस मोहके प्रलय-सागरमें) डूबते हुए रामके प्रेम (-रूपी बालमुकुन्द)-का अवलम्ब पा लिया हो ।[1] राम-जानकीके प्रति प्रेमकी यह महिमा थी कि राजा जनकके ज्ञानको भी रामके प्रेमका आश्रय लेना पड़ा (उनकी बुद्धि भी रामके प्रेममें पड़ गई) । (४) प्रेमसे व्याकुल माता-पिताका (उमड़ा हुआ) प्रेम देखकर सीता भी अपनेको न सँभाल पाई, पर भूमि-कुमारी जानकीने दिनोंका फेर और धर्मका विचार करके बड़े धैर्यसे काम लिया ।। २८६ ।। तपस्विनीके वेषमें सीताको देखकर जनकके हृदयमें बड़ा प्रेम और सन्तोष हुआ । उन्होंने कहा—'पुत्री ! तुमने (निमि और रघुके) दोनों कुल पवित्र कर डाले । तुम्हारा यश इतना उज्ज्वल है कि संसारके सभी लोग उसका निरन्तर वर्णन करते ही रहेंगे । (१) पुत्री ! तुम्हारी कीर्तिकी सरिताने गंगाको भी जीत धरा है (जो केवल तीन लोकोंमें हो जा पाई हैं) क्योंकि तुम्हारी कीर्ति तो करोड़ों ब्रह्माण्डोंतक जा पहुँची है । गंगा तो इस पृथ्वीपर केवल तीन स्थानों[2] (हरिद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर-संगम)-को ही महत्त्व दे पाईं पर तुम्हारी कीर्ति तो पृथ्वीपर साधु-समाजोंके रूपमें न जाने कितने तीर्थ बनाए बैठी है (साधुओंके समाजमें तुम्हारा यश निरन्तर सुनाया जाता रहेगा) ।' पिता (जनक) तो सत्य और स्नेहसे भरी बात कहे जा रहे थे, पर सीता (सुन-सुनकर) ऐसी सकुचाई जा रही थीं मानो धरतीमें गड़ी जा रही हों । फिर माता-पिताने उन्हें अपने हृदयसे लगा-लगाकर बहुतसी

१. महाप्रलयके समय प्रयागके अक्षयवटके पत्तेपर केवल बालरूप भगवान् लेटे रहते हैं, और मार्कण्डेय मुनि उसमें डूबते समय उन्हीं बालमुकुन्दको पकड़ लेते हैं ।
२. गंगाके तीन महत्त्वके स्थान : 'हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे । सर्वत्र दुर्लभा गंगा त्रिस्थानेषु सुदुर्लभा । [यों तो गंगा सर्वत्र ही दुर्लभ हैं किन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर संगमपर तो बहुत ही दुर्लभ हैं ।]

२९०८-९ जनको जानकीं दृष्ट्वा परमानन्दसंकुलः । किंचिन्नोवाच मनसि प्रसन्नो ज्ञानवान् कविः ।।विश्वा०सं०
२९११-१२ सीता स्नेहेन मातुश्च पितुरत्यंतदुःखिता । वसुंधरात्मजा धैर्यं दधार समयात् किल ।।–भरद्वाज सं०

२९२० लखि रुख, रानि जनायउ राऊ। हृदय सराहत सील-सुभाऊ। (४)
दो०–बारबार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय-सिर भरत-गति, रानि, सुबानि, सयानि ॥ २८७ ॥
सुनि भूपाल भरत-व्यवहारू। सोन-सुगंध, सुधा ससि-सारू।
मूँदे सजल नयन, पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित-मन। (१)
सावधान सुनु सुमुखि! सुलोचनि। भरत-कथा भव-बंध-बिमोचनि।
धरम, राज-नय, ब्रह्म-बिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू। (२)
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहइ काह, छलि छुअति न छाहीं।
बिधि, गनपति, अहिपति, सिव, सारद। कवि, कोबिद, बुध, बुद्धि-बिसारद। (३)
भरत-चरित, कीरति, करतूती। धरम, सील, गुन, बिमल बिभूती।
२९३० समुझत, सुनत, सुखद सब-काहू। सुचि सुरसरि-रुचि, निदर सुधाहू। (४)
दो०–निरवधि गुन, निरुपम पुरुष, भरत भरत-सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर-सम, कवि-कुल-मति सकुचानि ॥ २८८ ॥

हितकारक अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ दीं और आशीर्वाद दिए। (३) सीताने मुँहसे तो कुछ नहीं कहा, पर उनके मनमें यह बड़ी झिझक हुई रही थी कि रातको यहाँपर टिक रहना ठीक नहीं है। उनका भाव समझकर रानीने राजासे कहा तो वे सीताके शील और स्वभावकी हृदयसे प्रशंसा करने लगे। (१) सीतासे बार-बार भेंट करके उन्होंने बहुत सम्मानपूर्वक वहाँसे सीताको विदा किया। तब सयानी रानीने अवसर पाकर जनकसे भरतके व्यवहारकी बड़ी प्रशंसा कर सुनाई ॥ २८७ ॥ सोनेमें सुगन्धके समान तथा चन्द्रमासे निचोड़े हुए अमृतके समान (अद्भुत और पवित्र) भरतके व्यवहारका वर्णन सुन-सुनकर राजा जनक तो इतने भाव-विभोर हो चले कि उनकी आँखें डबडबा आईं, उन्होंने आँखें मूँद लीं, उनका शरीर रोमांचित हो उठा और वे अत्यन्त हर्षविह्वल होकर भरतके यशका वर्णन करते हुए उनकी सराहना करने लगे (१) (वे रानीसे कहने लगे)—'देखो सुमुखी! सुलोचनी! यह बात ध्यानसे सुन लो कि जो कोई भरतके इस व्यवहारकी कथा सुन भी ले वह भी संसारके बन्धनोंसे छूट भागे। यद्यपि धर्म, राजनीति और ब्रह्म-विचारको मैं अपनी बुद्धिके अनुसार भली-भाँति समझता हूँ (२) पर मेरी वह बुद्धि भी भरतकी महिमाका वर्णन करना तो दूर रहा, छलसे भी उसकी छाया-तकका स्पर्श नहीं कर पा सक रही है। ब्रह्मा, गणेश, शेषनाग, शिव, सरस्वती, कवि, विद्वान्, पंडित और बुद्धिमान जो भी (३) भरतका चरित्र, उनकी कीर्ति, उनका व्यवहार, धर्म शील और गुण सुने और समझेगा उसे आनन्द ही आनन्द मिलेगा क्योंकि (भरतका चरित्र तो) गंगाके समान पवित्र, सबको अच्छा लगनेवाला और अमृतसे भी अधिक जीवनी-शक्ति देनेवाला है। (४) निःसीम गुणवाले, अनुपम पुरुष भरतके समान यदि कोई हो सकता है तो भरत ही हो सकते हैं (इनकी बराबरी कोई दूसरा कर नहीं सकता) इसीलिये कविकी बुद्धि (उपमा देनेमें) सकुचाई पड़ रही है कि सुमेरुको क्या कहीं सेर भरके बाटके बराबर बताना उचित हो सकता है। ॥ २८८ ॥ देखो

२९२८-२९ ब्रह्मा गणेशः शेषश्च शंकरश्च सरस्वती। कविरन्ये च ये केचित् सन्ति बुद्धिविशारदाः ॥
भरतस्य चरित्रं च सर्वे गायन्ति सुन्दरम्। –अगस्त्यसंहिता

अगम सबहिँ बरनत बरबरनी। जिमि जल-हीन मीन गम धरनी।
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिँ राम, न सकहिँ बखानी। (१)
बरनि सप्रेम भरत-अनुभाऊ। तिय-जिय-की रुचि लखि, कह राऊ।
बहुरहिँ[1] लखन, भरत बन जाहीँ। सब-कर भल, सबके मन-माहीँ। (२)
देबि! परंतु भरत-रघुबर-की। प्रीति-प्रतीति जाइ नहिँ तरकी।
भरत-सनेह, अवधि ममता-की[2]। जद्यपि राम, सीम[3] समता-की। (३)
परमारथ, स्वारथ, सुख सारे। भरत न सपनेँहुँ मनहुँ निहारे।
२९४० साधन, सिद्धि राम-पग-नेहू। मोहिं लखि परत, भरत-मत एहू। (४)

दो०—भोरेहुँ भरत न पेलिहँइ, मनसहुँ राम-रजाइ।
करिय न सोच सनेह-बस, कहेउ भूप बिलखाइ॥ २८९॥

राम-भरत-गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहिँ पलक-सम बीती।
राज-समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ-न्हाइ सुर पूजन लागे। (१)
गे नहाइ गुरु-पहँ रघुराई। बंदि चरन, बोले रुख पाई।
नाथ! भरत, पुरजन, महतारी। सोक-बिकल, बनबास-दुखारी। (२)

सुन्दरी! भरतकी महिमाका वर्णन करना किसीके लिये भी उतना ही असंभव है जितना सूखी पृथ्वीपर मछलीका रेंगना। देखो रानी! भरतकी महिमा इतनी अधिक है कि उसे रामको छोड़कर कोई जानता नहीं, पर उन(राम)-से भी उस (महिमा)-का वर्णन करनेको कहो तो कर नहा पा सकते।' (१) भरतके सम्बन्धमें राजा जनकने बड़े प्रेमसे अपने मनकी बात कहकर और रानी जो पूछना चाहती थी उसे समझकर कहा—'सब लोग यही चाह रहे हैं कि लक्ष्मण तो अयोध्या लौट चलें और उनके बदले भरत ही रामके साथ वन चले जायँ। इससे ही सबका भला हो सकता है। (२) पर देवि! भरत और रामका परस्पर इतना प्रेम है और एक दूसरे पर इतना अटूट विश्वास है कि उसे तर्कसे (किसी प्रकारकी भी अटकल लड़ाकर) नहीं समझा जा सकता। यद्यपि राम सबको समान समझते भी हैं और सबसे समान व्यवहार भी करते हैं तथापि भरतके प्रति उनका जो प्रेम है उसे ममताकी सीमा (अत्यन्त ममता) ही समझना चाहिए। (३) परमार्थ, स्वार्थ और सुखकी बात तो भरतके मनमें स्वप्नमें भी नहीं आ पाती। हम तो यही समझते हैं कि भरत केवल रामके चरणोंमें स्नेह करना ही साधना (कर्तव्य) और सिद्धि (फल) सब कुछ समझे बैठे हैं।' (४) राजा जनकने रानी (सुनयना)-को बहुत विस्तारसे समझाकर कहा—'रामकी जो आज्ञा होगी उसे भरत भूलकर भी नहीं टालेंगे। तुम स्नेहमें पड़कर किसी प्रकारकी कोई चिन्ता मत करो।' ॥२८९॥ राम और भरतके गुणोंका प्रेम-पूर्वक वर्णन करते हुए राजा जनक और रानी सुनयनाकी सारी रात पलक मारते बीत गई।

प्रातःकाल दोनों राजाओंके समाजोंने जागकर स्नान करके जा-जाकर अपने इष्ट-देवोंका पूजन किया। (१) इधर रामभी स्नान करके गुरु वशिष्ठके पास पहुँच गए और उनके चरणोंकी वन्दना करके और उनका संकेत पाकर बोले—'नाथ! भरत, अयोध्यावासी और माताएँ सभी शोकसे तो व्याकुल हैं ही, साथ ही यहाँ वनमें आ रहनेसे सबको बड़ा कष्ट हुआ जा रहा है। (२) महाराज

१ राजापुरकी प्रति में भूलसे 'बरनहि' लिख गया है। २. भरत अवधि सनेह ममता की। ३. सीय।

२९३९-४२ भरतस्य प्रशंसां च कृतवान् मिथिलापतिः। रामाज्ञापालकश्चैतां भरतो देवि मा कुरु॥ सनं०सं०

सहित - समाज राउ मिथिलेसू । बहुत दिवस भे सहत कलेसू ।
उचित होइ, सोइ कीजिय नाथा । हित सब - ही - कर रउरे हाथा । (३)
अस कहि, अति सकुचे रघुराऊ । मुनि पुलके, लखि सील - सुभाऊ ।
२९५० तुम बिनु राम ! सकल सुख-साजा । नरक - सरिस दुहुँ राज - समाजा । (४)
दो०–प्रान प्रान - के, जीव - के , जिव, सुख - के सुख, राम ।
तुम तजि, तात ! सुहात गृह , जिन्हहिं, तिन्हहिं बिधि बाम ।।२९०।।
सो सुख, करम, धरम जरि जाऊ । जहँ न राम - पद - पंकज भाऊ ।
जोग, कुजोग, ग्यान, अग्यानू । जहँ नहिं राम - पेम परधानू । (१)
तुम बिनु दुखी, सुखी तुम तेही । तुम जानहु जिय, जो जेहि - केही ।
राउर आयसु सिर सबही - के । बिदित कृपालहिं गति सब नीके । (२)
आपु आश्रमहिं धारिय पाँऊ । भयउ सनेह - सिथिल मुनिराऊ ।
करि प्रनाम, तब राम सिधाये । [1][रिषि, धरि धीर, जनक-पहँ आये । (३)
राम - बचन गुरु, नृपहिं सुनाये][1] । सील - सनेह - सुभाय - सुहाये ।

जनकको भी अपने समाजके साथ (यहाँ वनमें) इतने दिनों-तक टिके रहनेसे कष्ट ही हो रहा है । ऐसी स्थितिमें नाथ ! जो आप उचित समझें वही ठीक होगा । क्योंकि आप ही जो कुछ निश्चय कर देंगे उसीसे सबका कल्याण होगा ।' (३) (कहनेको तो राम कह गए पर) यह कहकर रामको बहुत संकोच होने लगा (कि वशिष्ठजी तो स्वयं ज्ञानवान् हैं, उन्हें यह सुझाव देना अनुचित तो नहीं हो गया !) । रामका शील-स्वभाव देखकर मुनि वशिष्ठको बड़ा हर्ष हुआ (कि सर्व-सामर्थ्यवान् होते हुए भी इन्होंने सारा निर्णयका भार मुझपर ला डाला है और वे कहने लगे—) 'देखो राम ! दोनों राजा-समाजोंका सारा सुख नरक बन चला है । (४) तुम्हीं सब प्राणियोंको प्राण देनेवाले हो, सब जीवोंको जीवन देनेवाले हो और सबसे बड़े सुख भी तुम्हीं हो । तुम्हें छोड़कर जिन्हें अपने घर अच्छे लगते हों, उनके भाग्य ही फूटे समझो ।। २९० ।। वह सुख, यह कर्म और वह धर्म किस कामका, जब रामके चरण-कमलोंमें भक्ति ही न हो । उस योगको कुयोग और उस ज्ञानको अज्ञान समझना चाहिए जिसमें रामका प्रेम प्रधान रूपसे न हो । (१) सब लोग तुम्हारे चले आनेसे दुखी और तुम्हारे साथ रहनेसे सुखी हैं । तुम तो सबके मनकी बात अपने हृदयमें जानते ही हो । तुम जो भी आज्ञा दे दोगे, वही सब मान लेंगे । देखो कृपालु ! तुम तो सारी स्थिति भली भाँति जानते ही हो (इसलिये वैसी ही व्यवस्था कर डालो जिससे सबको संतोष हो) । (२) अब तुम भी जाकर अपने आश्रममें विश्राम करो ।' ऐसा कहकर मुनिराज प्रेम-विभोर हो उठे । उधर गुरुको प्रणाम करके राम (अपने आश्रमकी ओर) गए, इधर मुनि वशिष्ठ बहुत धीरज धरकर जनकके पास उठे चले आए । (३) रामने अपने शील, स्नेह और स्वभावसे शोभित जो-जो बातें कही थीं वे सब गुरु वशिष्ठने राजा जनकको ज्योंकी त्यों कह सुनाईं और कहा—'महाराज ! अब कुछ ऐसा उपाय

१. [1][से][1] तक दो चरण राजापुरकी प्रतिमें नहीं हैं ।

२९४५-४८ प्रात: स्नात्वा गतो राम: श्रीगुरोरन्तिके मुदा । भूत्वा कृतांजलि: प्राह स्वामिन् पुरजनस्तथा ।।
भरतो मातर: सर्वा व्याकुला: सन्ति शोकत: । त्वद्धस्ते सर्वकल्याणं यथायोग्यं तथा कुरु ।।भरतसं०
२९५९-६० रामोक्तं मिथिलेशाय सर्वं कथितवान् मुनि: । पुनराह महाराज कार्यं कुरु यथोचितम् ।।कपिल सं०

२६६० महाराज ! अब कीजिय सोई । सब-कर धरम - सहित हित होई । (४)
दो०—ग्यान-निधान, सुजान, सुचि , धरम - धीर, नर - पाल ।
तुम बिनु असमंजस - समन , को समरथ ऐहि काल ।। २९१ ।।
सुनि मुनि - बचन, जनक अनुरागे । लखि गति, ग्यान - बिराग बिरागे ।
सिथिल - सनेह, गुनत मन - माहीं । आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं । (१)
रामहिं राय कहेउ बन जाना । कीन्ह आप प्रिय प्रेम - प्रवाना ।
हम अब बन - तें बनहिं पठाई । प्रमुदित फिरब बिबेक बढ़ाई । (२)
तापस, मुनि, महिसुर सुनि, देखी । भये प्रेम - बस बिकल बिसेखी ।
समउ समुझि, धरि धीरज राजा । चले भरत-पहँ सहित-समाजा । (३)
भरत, आइ आगे भइ लीन्हें । अवसर - सरिस सुआसन दीन्हें ।
२६७० तात भरत ! कह तिरहुति-राऊ । तुमहिं बिदित रघुबीर - सुभाऊ । (४)
दो०—राम सत्यव्रत, धरम - रत , सब - कर सील, सनेहु ।
संकट सहत सँकोच - बस , कहिय, जो आयसु देहु ।। २९२ ।।

कीजिए कि धर्मकी भी रक्षा हो और सबका कल्याण (सन्तोष) भी हो (४) राजन् ! आप ज्ञानके भाण्डार तो हैं ही, साथ ही अत्यन्त बुद्धिमान्, पवित्र, धर्मनिष्ठ और धीर प्रजापालक भी हैं । आपको छोड़कर इस समय और दूसरा कोई सामने दिखाई नहीं दे रहा है ।।२९१।।—जो इस उलझनको सुलझा सके । मुनि वशिष्ठके वचन सुनकर राजा जनक इतने प्रेम-मग्न हो उठे कि उनकी (उस समयकी) दशा देखकर उनके ज्ञान और वैराग्यको भी 'वैराग्य' हो चला (प्रेमके कारण उनका ज्ञान और वैराग्य भी जाता रहा) । वे स्नेहमें अत्यन्त मग्न होते हुए मनमें यही बार-बार सोचते चले जा रहे थे कि—'हमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया । (१) (एक तो) राजा दशरथ (थे जिन्हों)-ने रामको वन जानेकी आज्ञा तो दे दी पर स्वयं (प्राण देकर) अपने प्रिय (राम)-के प्रति अपना प्रेम सच्चा कर दिखाया । इधर मैं हूँ कि अब, मेरे भाग्यमें रामको एक वनसे दूसरे वनमें भेजकर अपने विवेकपर ऐंठते हुए आनन्दपूर्वक घर लौटना बदा है ।' (२) राजा जनककी बातें सुनकर और उनकी दशा देखकर वहाँके तपस्वी, मुनि, और ब्राह्मण सब प्रेममें मग्न हो-होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे । पर (इस संकटके) अवसरका ध्यान करके और धीरज धरकर राजा जनक अपना सारा समाज साथ लेकर भरतके पास जा पहुँचे । भरतने आगे बढ़कर राजा जनकका बहुत स्वागत किया और वनमें जो अच्छेसे अच्छा आसन मिल सकता था उसपर उन्हें ले जा बैठाया । (बैठ चुकनेपर) राजा जनकने (भरतसे) कहा—'देखो भरत ! तुम तो रामका स्वभाव जानते ही हो । (४) राम सदा सत्यपर डटे रहनेवाले और धर्मात्मा हैं । वे सबके शील और स्नेहकी रक्षा करते हुए बड़े संकोचमें पड़े दुखी हुए जा रहे हैं (कि यहाँ वनमें सबको हमारे कारण कष्ट हुआ जा रहा है) इसलिये तुम जैसा कहो

२६६०-६१ त्वं विज्ञाननिधिर्धीमान् शुद्धचित्तश्च धैर्यवान् । धर्मात्मा पालको नृणामसामञ्जस्यनाशकः।।महे०सं०
२६६३-६४ श्रुत्वा मुनिवचः प्रेम्णि निमग्नो मिथिलेश्वरः । चिंतयामास मनसि न ममागमनं वरम् ।। अग्निपु०
२६६९-७२ भरतश्चाग्रतो गत्वा ह्यानयामास तं स्थलम् । स्वासनं दत्तवान्कालानुकूलं जनकाय वै ।।
प्रोवाच जनकस्तात त्वं शीलं वेत्सि च प्रभो । सत्यव्रतो धर्मरतः सर्वस्नेहस्वभाववित् ।।
संकटं सहते रामः संकोचात्त्वं वदाशु मे । स्वाभिप्रायमहं वक्ष्ये सर्वं रामं जगत्प्रभुम् ।।धनं०सं०

सुनि, तन पुलकि, नयन भरि बारी। बोले भरत, धीर भरि भारी।
प्रभु ! प्रिय, पूज्य पिता - सम आपू। कुल-गुरु-सम-हित माय न बापू। (१)
कौसिकादि मुनि, सचिव - समाजू। ग्यान-अंबु-निधि आपुन आजू।
सिसु, सेवक, आयसु - अनुगामी। जानि मोहिं, सिख देइय स्वामी। (२)
ऐहि समाज, थल बूझब राउर। मौन, मलिन, मैं बोलब बाउर।
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता। छमब तात ! लखि बाम बिधाता। (३)
आगम, निगम, प्रसिद्ध पुराना। सेवा - धरम कठिन जग जाना।
२९८० स्वामि - धरम स्वारथहिं बिरोधू। बैर अंध प्रेमहिं न प्रबोधू। (४)
दो०—राखि राम-रुख, धरम-व्रत, पराधीन मोहिं जानि।
सबके संमत, सर्वहित, करिय प्रेम पहिचानि॥ २९३॥
भरत - वचन सुनि, देखि सुभाऊ। सहित - समाज सराहत राऊ।
सुगम, अगम, मृदु, मंजु, कठोरे। अरथ अमित अति, आखर थोरे। (१)

वैसा मैं उनसे जाकर कह दूँ।' ॥ २९२ ॥ राजा जनककी बात सुनते ही भरत पुलकित हो उठे। उनकी आँखें भर आईं। बहुत धीरज धरकर भरत बोले—'प्रभो ! आप स्वयं पिताके समान प्रिय और पूज्य हैं। कुल-गुरु वशिष्ठ हमारे इतने अधिक हितैषी हैं कि माता-पिता भी वैसे हितैषी नहीं हो सकते। (१) संयोगसे आज यहाँ विश्वामित्र आदि मुनि, सभी मंत्री और स्वयं आप ज्ञानके समुद्र आए बैठे हैं। (ऐसी दशामें आप) मुझे अपना शिशु और आज्ञाकारी सेवक समझकर जो कहिए वह मैं करूँ। (२) इतने बड़े समाजके बीच और ऐसे पुण्य-स्थल (चित्रकूट)-में आप मुझसे कुछ पूछें भी तो मौन रहना ही मेरे लिये अच्छा है क्योंकि मेरा मन ठीक नहीं है, इसलिये मेरे मुँहसे जो कुछ निकलेगा भी, वह सब पागलपन छोड़कर कुछ न होगा। मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहे जा रहा हूँ। प्रभो ! मेरा भाग्य ही साथ नहीं दे रहा है, यह समझकर आप (मेरी ढिठाई) क्षमा कर दीजिएगा। (३) वेद, शास्त्र और पुराणोंमें प्रसिद्ध है तथा सारा संसार जानता है कि सेवा-धर्मका पालन करना बड़ा कठिन काम है। स्वामि-भक्ति और स्वार्थ, ये दोनों एक दूसरेके विरोधी होते हैं (जो स्वार्थी होगा वह अपने स्वामीकी सेवा कर नहीं सकता)। जैसे बैर अंधा होता है वैसे ही प्रेममें भी कुछ ज्ञान नहीं रहता (बैर और प्रेम दोनों ही अवस्थाओंमें मनुष्यकी बुद्धि ठीक काम नहीं करती। रामसे प्रेम होनेके कारण मेरी बुद्धि ठीक काम नहीं कर रही है)। (इसलिये) धर्मका पालन करनेवाले रामकी इच्छाका आदर करते हुए तथा मुझे पराधीन (रामके प्रेमके अधीन) जानते हुए, मेरा प्रेम पहचानकर वही कीजिए जिससे सबका हित होता हो और जिसपर सबका एक मत हो' ॥ २९३ ॥ भरतके वचन सुनकर तथा उनके इतने ऊँचे विचार देखकर राजा जनक और उनके साथके लोग सब भरतकी प्रशंसा कर उठे। भरतके वचन सुननेमें तो बहुत सीधे-सादे लगते थे पर उनकी गहराईमें पैठकर उनका अर्थ समझ पाना सरल काम नहीं था। उनके वचन सुननेमें बड़े कोमल और मधुर लगते थे पर उनमें कठोरता (दृढ़ता) भी ऐसी थी कि उसे समझ

२९७९ सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ —भर्तृहरिशतक

२९८३-८४ भरतस्य वचः श्रुत्वा स्वभावमवलोक्य च। समाजसहितो राजा जनकः प्रशशंस च ॥
नम्रं मनोहरं वाक्यं कठिनं सुगमं तथा। अगमं बह्वभिप्रायं स्तोकाक्षरयुतं च तत् ॥ अग० सं०

ज्यों मुख - मुकुर मुकुर निज पानी । गहि न जाइ, अस अद्भुत बानी ।
भूप, भरत, मुनि, साधु - समाजू । गे जहँ बिबुध - कुमुद - द्विजराजू । (२)
सुनि सुधि, सोच - बिकल सब लोगा । मनहुँ मीनगन नव - जल - जोगा ।
देव, प्रथम कुल - गुरु - गति देखी । निरखि बिदेह-सनेह बिसेखी । (३)
राम - भगति - मय भरत निहारे । सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ।
२९९० सब कोउ राम पेममय पेखा । भए अलेख सोच - बस लेखा । (४)
दो०—राम सनेह - सकोच - बस , कह ससोच सुरराज ।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि , नाहिं त भयउ अकाज ।। २९४ ।।

पाना कठिन था । उन्होंने थोड़े ही अक्षरों (शब्दों)-में बहुत) विस्तृत बातें (उसी प्रकार कह डालीं (१) जैसे (दर्पण देखनेवालेका) मुख तो दर्पणमें रहता है और दर्पण भी वह अपने ही हाथमें लिए रहता है, फिर भी दर्पणमें पड़ा हुआ मुखका प्रतिबिम्ब वह पकड़ नहीं पाता, वैसे ही भरतकी वाणी बड़ी अद्भुत थी (जो सुननेमें सरल लगती थी पर उसे समझ पाना सबके लिये सरल नहीं था । भरतने कहा कि आप (जनक), ऐसा उपाय कीजिए कि रामको धर्मसे विचलित न होना पड़े । उनकी इच्छाका आदर हो और मैं रामके अधीन हूँ, जैसा वे कहेंगे, करूँगा । मेरा उनके प्रति जो प्रगाढ प्रेम है उसकी भी रक्षा हो, सबका हित हो और जिसमें सबका एक मत हो । इन सब बातोंका समाधान क्या सरल कार्य था ?) । राजा जनक, भरत, मुनि, साधु और सब लोग वहाँसे उठकर देवकुलके कुमुदोंको खिलानेवाले चन्द्रमा रामके पास जा पहुँचे । (२) यह समाचार पाते ही सब देवता ऐसे चिन्तित हो उठे, मानो नया जल[1] पाकर मछलियाँ तड़फड़ा उठी हों। देवताओंने पहले कुलगुरु वशिष्ठके मनकी स्थिति समझी, फिर देखा कि राजा जनकके मनमें भी बहुत स्नेह बढ़ चला है । (३) उधर भरतको देखा कि उनके मनमें भी रामके प्रति भक्ति उमड़ी पड़ रही है, तब तो व्याकुलताके कारण उन स्वार्थी देवताओंका जी बैठ चला । जब देवताओंने देखा कि यहाँ सभी रामके प्रेममें पागल हुए बैठे हैं तो वे इतने चिन्तित हो उठे जिसका कोई हिसाब नहीं (बहुत अधिक चिन्तित हो उठे) (४) उसी चिन्तामें घुलते हुए देवताओंके राजा इन्द्रने कहा—'राम अपने भक्तके प्रेम और संकोचमें बँधे पड़े हैं । अतः, सब लोग मिलकर झटपट कोई जाल रच डालो नहीं तो अब बना बनाया काम बिगड़ा ही समझो ।। २९४ ।। देवताओंने झट सरस्वतीको जा स्मरण किया

१. नया जल :—वर्षाका नया जल आते ही नदियोंमें मांजा (मज्जा = फेन) उतराने लगता है जिसे मछलियाँ खा-खाकर उसकी गर्मीसे तड़प तड़पकर मर जाती हैं ।

२९८५ यथा मुखप्रतिच्छाया दर्पणे दर्पणः करे । तिष्ठति प्रतिबिंबं च नायाति ग्रहणे तथा ।।
भरतस्याद्भुता वाणी गूढभावसमन्विता । —अगस्त्यसंहिता
२९८६ जनको भरतश्चापि मुनयः साधवो ययुः । तत्र यत्र स्थितो रामः सुरकैरवचन्द्रमाः ।। सूतसं०
२९८७ श्रुत्वा सर्वे समाचारं जाता एवं तु दुःखिताः । नवीन जलयोगेन यथा मीना भवन्ति च ।।कपिलरा०
२९८८-९० प्रथमं ददृशुर्देवा दशां कुलगुरोः पुनः । स्नेहाधिक्यं विदेहस्य भरतं वीक्ष्य निर्जराः ।।
रामभक्तिमयं स्वान्ते स्वार्थिनश्च पराजिताः । रामचन्द्र प्रेममग्नान्निरीक्ष्य निखिलान् जनान् ।।
इत्थं शोकाकुला जाता यदलेख्यं विपश्चिताम् । —शांडिल्यसंहिता
२९९० शोकमग्नो ब्रवीदिंद्रः प्रेमाधीनो रघूत्तमः । यूयं प्रपंचं कुरुत न चेत्कार्यं विनश्यति ।। वि०सं
२९९१-९२ संस्मृत्य शारदां देवास्तस्याश्चक्रुः स्तुतिं पराम् । देवि देवान् महाभागे पाहि नः शरणागतान् ।।
पालनं च छलं कृत्वा कुरु देवकुलस्य च । —सनन्दनसंहिता

सुरन सुमिरि, सारदा सराही। देबि ! देव सरनागत, पाही।
फेरि भरत-मति करि निज माया। पालु बिबुध-कुल करि छल-छाया। (१)
बिबुध - बिनय सुनि देबि सयानी। बोली, सुर स्वारथ-जड़ जानी।
मो-सन कहहु, भरत - मति फेरू। लोचन - सहस न सूझ सुमेरू। (२)
बिधि - हर - हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत-मति सकइ निहारी।
सो मति, मोहिं कहत, करु भोरी। चंदिनि कर कि चंड - कर चोरी। (३)
भरत - हृदय सिय - राम - निवासू। तहँ कि तिमिर, जहँ तरनि-प्रकासू।
३००० अस कहि, सारद गइ बिधि-लोका। बिबुध बिकल, निसि मानहुँ कोका। (४)

दो०—सुर स्वारथी, मलीन - मन , कीन्ह कुमंत्र, कुठाट।
रचि प्रपंच माया प्रबल , भय, भ्रम, अरति, उचाट॥ २९५॥

करि कुचालि, सोचत सुरराजू। भरत - हाथ सब काज-अकाजू।
गये जनक रघुनाथ - समीपा। सनमाने सब रबि कुल - दीपा। (१)

और (सरस्वतीके आते ही) उनकी प्रशंसा करते हुए कहा –'देवि ! हम सब देवता अब आपकी ही शरण लिए बैठे हैं। अब आप ही रक्षा करें तो हमारी रक्षा हो सकती है। अपनी माया चलाकर कुछ ऐसा चक्र रच डालिए कि भरतकी बुद्धि फिर चले। इस प्रकार देवताओंपर कृपा करके आप हम सबकी रक्षा कर लीजिए।' (१) देवी सरस्वती क्या कम चतुर थीं ! वे देवताओंकी विनति सुनते ही ताड़ गईं कि ये सब बड़े स्वार्थी और जड बुद्धिवाले हैं। यह समझकर वे बोलीं—'आप लोग मुझसे कह रहे हैं कि मैं भरतकी बुद्धि फेर दूँ। (बड़े खेदकी बात है कि) आप अपने सहस्र (अगणित) नेत्रोंसे भी सामने खड़ा सुमेरु पर्वत नहीं देख पा रहे हैं (भरतकी महत्ता नहीं समझ पा रहे हैं) (२) ब्रह्मा, विष्णु और महादेवकी शक्ति तो बहुत बड़ी मानी जाती है, पर भरतकी बुद्धि (विचार)-तक उनकी भी पहुँच नहीं हो पा सकती। उसी बुद्धिको आप लोग मुझसे फेर देने (धोखेमें डाल देने)-को कह रहे हैं ? भला (चन्द्रमाकी) चाँदनी कहीं सूर्यको चुरा ले जा सकती है ? (३) (आप लोग जानते हैं कि) भरतके हृदयमें सीता और राम सदा बसे रहते हैं। तब (बताइए कि) जहाँ सूर्य चमके जा रहा हो वहाँ अंधकार भला कैसे पहुँच सकता है ?' यह (मुँह-तोड़) उत्तर देकर सरस्वती (जहाँसे आई थीं वहीं) ब्रह्मलोकको लौट गईं। अब तो देवताओंके देवता वैसे ही कूच कर गए (देवता घबरा उठे) जैसे रातको चकवे घबराए पड़े रहते हैं। (४) तब स्वार्थी और खोटे मनवाले देवताओंने आपसमें कुचक्र रचकर बड़ा ओछा षड्यन्त्र रच डाला। उन्होंने अपना ऐसा भारी माया-जाल फैलाया कि सबको (दोनों राजसमाजोंकी) बुद्धिमें भय आ छाया, भ्रम उठ खड़ा हुआ, दुःख बढ़ चला और मन उचटने लगा॥ २९५॥ यह कुचाल चलकर भी सुरराज इन्द्र इसी सोचमें पड़े ऊभचूभ करते रहे कि अब तो काम बनाना-बिगाड़ना सब भरतके ही हाथमें है। उधर जनक भी उठकर रामके पास जा पहुँचे। उनके पहुँचते ही रघुकुलके दीपक रामने सबका

२९९५ देवानां विनयं श्रुत्वा चतुरा शारदाब्रवीत्। ज्ञात्वा स्वार्थजडान्देवान् मुख्यश्चान्येषु वै भवान्॥ब्रह्मरा०
२९९६ भरतस्य मतिं द्रष्टुं माया शक्ता न वै हरेः। कथं कर्तुं समर्थाहं तद्बुद्धिपरिवर्तनम्॥
सीतारामनिवासोऽस्ति भरतस्य च मानसे। इत्युक्त्वा शारदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह॥या०रा०
३००० कृत्वा कुसम्मतिं देवाः स्वार्थिनो निजमायया। तत्र भ्रमं भयं दुःखं चक्रुरुच्चाटनं तथा॥ क०रा०
३००२ कृत्वोत्पातं सुरेशस्तु शुशोच हृदये निजे। भरतस्य करे सर्वं कार्याकार्यं च विद्यते॥ जम०रा०

समय, समाज, धरम - अविरोधा। बोले तब रघुबंस - पुरोधा।
जनक - भरत - संवाद सुनाई। भरत - कहाउति कही सुहाई। (२)
तात राम ! जस आयसु देहू। सो सब करइ, मोर मत एहू।
सुनि रघुनाथ, जोरि जुग पानी। बोले सत्य, सरल, मृदु बानी। (३)
बिद्यमान आपुन, मिथिलेसू। मोर कहब, सब भाँति भदेसू।
३०१० राउर - राय - रजायसु होई। राउरि सपथ, सही सिर सोई। (४)

दो०—राम-सपथ सुनि, मुनि-जनक , सकुचे सभा - समेत।
सकल बिलोकत भरत-मुख , बनइ न ऊतर देत ।। २९६ ।।

सभा सकुच - बस भरत निहारी। राम - बंधु, धरि धीरज भारी।
कुसमउ देखि, सनेह सँभारा। बढ़त बिंधि, जिमि घटज निवारा। (१)
सोक कनक - लोचन, मति छोनी। हरी, बिमल गुन - गन जग-जोनी।

बड़ा स्वागत-सत्कार किया। (१) तब रघुवंशके पुरोहित वशिष्ठ उन्हें समय, समाज और धर्मके अनुकूल विचार करते हुए समझाने लगे। पहले उन्होंने भरत और जनकमें जो बात-चीत हुई थी वह कह सुनाई। फिर उन्होंने भरतके उच्च विचारोंका परिचय देकर रामसे कहा—'देखो राम ! मेरा तो इतना ही कहना है कि तुम जो आज्ञा दो, वही सब लोग मान लें।' यह सुनकर दोनों हाथ जोड़कर सत्य, सरल और कोमल वाणीमें राम बोले—(३) ('नाथ !) 'जहाँ आप तथा मिथिलेश जनक जैसे (महापुरुष) विद्यमान हों वहाँ कुछ भी कहनेके लिये मुँह खोलना बड़ी ढिठाईका काम होगा। मैं आपकी सौगंध लेकर कहता हूँ कि आप तथा महाराज (मिथिलेश) जो आज्ञा देंगे वही मैं ठीक मानकर शिरोधार्य कर लूँगा।' (४) रामकी यह सौगंध सुनकर सारी सभाके लोग, मुनि वशिष्ठ और जनक सब बड़े संकोचमें पड़ गए। सब लोग भरतका मुँह ताकने लगे। (रामने ऐसी बात कह दी कि) किसीसे कुछ कहते-सुनते नहीं बन पड़ रहा था ।। २९६ ।। सारी सभा संकोचके मारे भरतका मुँह देखने लगी (कि देखें भरत क्या कहते हैं)। यह देखकर रामके छोटे भाई भरतने धीरजके साथ कुसमय समझकर अपने उमड़े हुए स्नेहको वैसे ही रोक सँभाला जैसे ऊपर उठते हुए विन्ध्य पर्वतको अगस्त्य मुनिने रोक दिया था। (१) शोक-रूपी हिरण्याक्ष जब सबकी मति-रूपी पृथ्वी हर ले गया, उस समय विमल गुणोंके विधाता-रूपी भरतके विवेक-रूपी विशाल वराहने अनायास सबकी शोकग्रस्त मतिका उद्धार कर दिया (जब शोकके

३००४-६ जनको रामनिकटं जगाम रघुनन्दनः। चकार सर्वसम्मानं रघुवंशपुरोहितः ।।
धर्मकालानुकूलं च वचनं प्राह संसदि। प्रथमं श्रावयामास संवादं भरतस्य च ।।
जनकस्य च संभाषां शोभनां भरतस्य च ।। —महेश्वरसंहिता

३००७-८ यथाज्ञा ते भवेत्तात तथा कुर्याज्जनोऽखिलः। कृतांजली रघुश्रेष्ठः कोमलां प्राह भारतीम् ।।सुचन्द्रसं०

३००९-१० विद्यमानो भवान् यत्र मिथिलाधिपतिस्तथा। तत्रायोग्या मदुक्तिस्तु सर्वथा भवतः प्रभो:।
वच्मि मे शपथं कृत्वा साज्ञा मान्या भविष्यति। —गणेश्वररामायण

३०१२ रामस्य शपथं श्रुत्वा वशिष्ठो जनकस्तथा। सभासमेतः संकोचं गतः श्रीभरताननम् ।।
ददर्श किंचिन्नोवाच राघवस्य पुरो वचः। —भरद्वाजरामायण

३०१३-१४ धीरो रामानुजो दृष्ट्वा सभ्यान् मौनावलंबिनः। विंध्याचलं यथाऽगस्त्यस्तथा स्नेहं रुरोध च ।।पु०सं०

भरत - बिबेक बराह बिसाला । अनायास उधरी तेहि काला । (२)
करि प्रनाम सब-कहँ कर जोरे । राम, राउ, गुरु, साधु निहोरे ।
छमब आज अति अनुचित मोरा । कहउँ बदन मृदु, बचन कठोरा । (३)
हिय सुमिरी सारदा सुहाई । मानस - तें मुख - पंकज आई ।
३०२० बिमल - बिबेक - धरम - नयसाली । भरत - भारती मंजु मराली । (४)
दो०—निरखि बिबेक - बिलोचननि , सिथिल - सनेह समाज ।
करि प्रनाम, बोले भरत , सुमिरि सीय - रघुराज ।। २९७ ।।
प्रभु ! पितु, मातु, सुहृद, गुरु, स्वामी । पूज्य, परम हित, अंतरजामी ।
सरल, सुसाहिब, सील - निधानू । प्रनतपाल, सर्बग्य, सुजानू । (१)
समरथ, सरनागत - हितकारी । गुन-गाहक, अवगुन-अघ-हारी ।
स्वामि ! गोसाइँहिं सरिस गोसाईं । मोहिं समान मैं साइँ दोहाई । (२)
प्रभु - पितु - बचन मोह - बस पेली । आयउँ इहाँ समाज सँकेली ।
जग भल - पोच, ऊँच अरु नीचू । अमिय-अमरपद, माहुर - मीचू । (३)

कारण किसीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी, उस समय भरतकी विवेकपूर्ण वातोंने सबका समाधान कर दिया, सबको अच्छी लगनेवाली बात कह दी) । (२) भरतने पहले सबको हाथ जोड़कर प्रणाम किया । फिर वे राम, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ तथा साधु-समाजसे विनय-पूर्वक बोले—'आप लोग मेरा यह अत्यन्त अनुचित व्यवहार क्षमा कर दीजिएगा कि मैं अपने कोमल मुँहसे इतने कठोर वचन कहे डाल रहा हूँ ।' (३) भरतने ज्यों ही हृदयमें देवी सरस्वतीका स्मरण किया त्यों ही वे सुन्दर वाणी बनकर उनके मानससे चढ़कर उनमें मुखारविन्दमें आ पधारीं । भरतकी वह वाणी क्या थी, विमल, विवेक, धर्म और नीतिकी सुन्दर हंसिनी ही थी (भरतने जो बातें कहीं वे विवेक, धर्म और नीतिसे भरी हुई थीं) । (४) भरतने पहले उस सारे समाजको अपने विवेककी दृष्टिसे देखा (समझा) जो स्नेहसे व्याकुल हुआ पड़ रहा था और फिर मनमें सीता और रामका स्मरण करते हुए सबको प्रणाम करके वे रामसे कहने लगे— ।।२९७।। 'प्रभो ! आप मेरे पिता, माता, मित्र, गुरु और स्वामी भी हैं तथा परम पूज्य, परम हितकारी और अन्तर्यामी भी हैं । आप इतने सरल शीलवान्, भक्तके पालक, सर्वज्ञ, ज्ञानी और समर्थ स्वामी हैं कि जो आपकी शरणमें पहुँच जाय उसका कल्याण कर डालते हैं । आप सबके गुण ही गुण ग्रहण करते रहते हैं और अवगुण-रूपी पाप दूर कर डालते हैं । स्वामी ! आपके समान यदि कोई है तो आप ही हैं और इधर मेरे समान भी (स्वामिद्रोही) यदि कोई है तो बस मैं ही हूँ । (२) मैं अपने अज्ञानके कारण आपके और पिताजीके वचन टालकर यह सारा समाज लिए-दिए यहाँ चला आया हूँ । संसारमें

३०१५-१६ शोकः सुवर्णनयनः पृथ्वीं बुद्धिं जहार ह । भरतो गुणवान् ब्रह्मा तस्माद्विज्ञानशूकरः ।।
आविर्भूय हिरण्याक्षं शोकरूपं निहत्य च । उद्धाराश्रमेणैव बुद्धिरूपां वसुन्धराम् ।। नारदरा०
३०१७-१८ प्रणम्य भरतः सर्वान् प्रोवाच सरलां गिरम् । क्षंतव्यानुचिता वाणी भवद्भिर्मम सांप्रतम् ।। गरुडपु०
३०१९-२० स्वांते स्मृता समायाता शारदा मानसाच्छुभा । मुखारविंदं विमलज्ञानधर्मनयान्विता ।।
भारती भरतस्यासीन्मधुरा वरटा यथा । —अग्निपुराण
३०२१-२२ भरतः स्नेहशिथिलां सभां विज्ञानचक्षुषा । दृष्ट्वा सीतापतिं ध्यात्वा प्राह सर्वान्प्रणम्य च ।। कौ०सं०
३०२३-२६ प्रभो त्वं मे पिता माता सुहृत्स्वामी तथा गुरुः । पूज्यश्चात्यंतहितकृदन्तर्यामी च दक्षिणः ।।
शीलवान् सुंदरो नेता शरणागतपालकः । सर्वज्ञश्चतुरः शक्तः शरणागतकार्यकृत् ।।
गुणग्राही च पापानां दुर्गुणानां च नाशकः । स्वामिस्ते शपथं कृत्वाहं ब्रवीमि भवत्समः ।।
जितेन्द्रियो भवानेव मत्समश्चाहमेव हि । —नृसिंहपुराण

राम - रजाइ मेट मन - माहीं । देखा - सुना कतहुँ कोउ नाहीं ।
३०३० सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई । प्रभु मानी, सनेह - सेवकाई । (४)
दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ ! कीन्ह भल मोर ।
दूषन भे भूषन - सरिस, सुजस चारु चहुँ ओर ।। २९८ ।।
राउरि रीति, सुबानि, बड़ाई । जगत - बिदित, निगमागम गाई ।
क्रूर, कुटिल, खल, कुमति, कलंकी । नीच, निसील, निरीस, निसंकी । (१)
तेउ सुनि, सरन सामुहें आए । सकृत प्रनाम किहें अपनाए ।
देखि दोष, कबहुँ न उर आने । सुनि गुन, साधु-समाज बखाने । (२)
को साहिब, सेवकहिं नेवाजी । आपु समान साज[1] सब साजी ।
निज करतूति न समुझिय सपने । सेवक सकुच - सोच उर अपने । (३)
सो गोसाइँ, नहिं दूसर कोऽपी । भुजा उठाइ कहौं, पन रोपी ।

भला और बुरा, बड़ा और छोटा, अमृत और अमरत्व, विष और मृत्यु, (३) जो कुछ भी है उनमेंसे किसीको भी मैंने कभी न देखा न सुना कि वह मनसे भी कभी रामकी आज्ञा टाल दे । पर वही काम करनेकी (रामकी आज्ञा टालनेकी) बड़ी ढिठाई मैं कर बैठा हूँ (कि आपकी आज्ञाके बिना ही मैं यहाँ आ धमका) । किन्तु प्रभु (आप)-ऐसे अच्छे हैं कि उसे भी (मेरी धृष्टता न मानकर) मेरा स्नेह और सेवकका धर्म ही मान बैठे । (४) नाथ ! आपने अपनी कृपा और सौजन्यसे इस समय भी मेरा उपकार ही कर डाला । मेरे सारे दोष मेरे लिये भूषण बन बैठे और चारों ओर मेरा यश जा छाया ।।२९८।। आपकी प्रेमकी रीति, मधुर स्वभाव और बड़प्पन सारे संसारमें विख्यात है और वेद-शास्त्रोंने भी उसका बहुत वर्णन किया है कि आप यदि सुन-भर लें कि कोई बड़ा क्रूर, कुटिल, दुष्ट, दुर्बुद्धि, कलंकी, नीच, शील-रहित, अनाथ और निष्ठुर भी आपकी शरणमें पहुँचकर एक बार भी आकर प्रणाम कर ले तो आप उसे ऐसा अपना बैठते हैं कि उसके सारे दोष जानते हुए भी कभी अपने हृदयमें उसके दोषोंका विचार-तक न करके साधु-समाजमें केवल उसके गुण सुनकर ही उसकी प्रशंसा किए जाते हैं । (२) संसारमें ऐसा स्वामी है कौन जो अपने सेवकोंकी रक्षा करते हुए उसे अपने समान बना डाले और स्वप्नमें भी अपनी इस कृपाका ध्यान न करके सदा अपने सेवकके किए हुए कार्यके संकोचसे ही दबा रहे और उसीका स्मरण करता रहे । (३) मैं भुजा उठाकर प्रणपूर्वक (निश्चयके साथ) कह सकता हूँ कि ऐसा स्वामी तो आपके अतिरिक्त मुझे कोई दूसरा कहीं दिखाई नहीं

१. समाज-साज : स्वयं सेवकका सारा काम पूरा कर डाले ।

३०२७-३० प्रभो: पितुर्वचश्चापि मोहादुल्लंघ्य चागतः । समाजसहितोऽप्यहं संसारे संति सज्जनाः ।।
दुर्जना उच्चनीचाश्च सर्वे स्वर्गप्रदा सुधा । मृत्युप्रदं विषं चास्ति विचार्य मनसा त्वहम् ।।
दृष्टवान् रामचन्द्राज्ञाभंगकृत् कोपि न श्रुतः । न दृष्टः सर्वथा स्वामिन् धृष्टतां कृतवानहम् ।।
परंतु भवता प्रेम्णा निजसेवैव मानिता । —वशिष्ठरामायण
३०३१-३२ नाथ कल्याणमूर्तित्वात्कृपया च कृतं मम । कल्याणं भवतैतावद् ज्ञाता दोषाश्च मे गुणाः ।।
यतो मे सुयशश्चारु चतुर्दिक्षु च विस्तृतम् । —महीधरसंहिता
३०३६ तेषां दोषं निरीक्ष्यापि नोरस्यानीतवान्परम् । आकर्ण्य वर्णयामास तद्गुणान् साधुसंसदि ।।वा०रा०
३०३७-३८ एतादृशोऽन्यः कः स्वामी यः कृत्वा दासरक्षणम् । सामग्रीभिश्च सर्वाभिस्तं कुर्यादात्मसंनिभम् ।
स्वप्नेऽपि निजकर्तव्यं मन्यते नैव राघवः । निजसेवककार्येण संकुचत्येव मानसे ।। भरद्वाजसं०
३०३९ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भुजमुत्थाय चोच्यते । न वेदाच्च परं शास्त्रं न देवः केशवात्परः ।। महा०

३०४० पसु नाचत, सुक पाठ - प्रबीना । नट - गुन - गति[1] पाठक - आधीना । (४)
दो०—यों सुधारि, सनमानि जन , किये साधु - सिरमोर ।
को कृपाल - बिनु पालिहै , बिरुदावलि बरजोर ।। २९९ ।।
सोक, सनेह कि बाल - सुभाए । आयउँ लाइ रजायसु बाँए ।
तबहुँ कृपाल, हेरि निज ओरा । सबहि भाँति भल मानेउ मोरा । (१)
देखेउँ पाँयँ सुमंगल - मूला । जानेउँ, स्वामि सहज अनुकूला ।
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू । बड़ी चूक साहिब - अनुरागू । (२)
कृपा, अनुग्रह अंग अघाई । कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ।
राखा मोर दुलार गोसाँई । अपने सील, सुभाय, भलाई । (३)
नाथ ! निपट मैं कीन्हि ढिठाई । स्वामि - समाज सँकोच बिहाई ।
३०५० अबिनय, बिनय, जथारुचि बानी । छमिहि देव ! अति आरति जानी । (४)

पड़ा । जैसे पशु (वानर, रीछ)-के नाचने, तोतेके पढ़ने और रस्सीपर नटके नाचनेके गुण और कौशलका श्रेय सिखानेवालेको ही होता है (४) उसी प्रकार भक्तोंको सहारा तो आप देते हैं पर सम्मान देकर आप उन्हें साधुओंका सिरमौर बना डालते हैं (आप ऐसे ही स्वामी हैं कि प्रेरणा-देकर सब काम तो आप ही सेवकोंसे कराते हैं पर उसका सारा यश दे डालते हैं सेवकोंको) । आप-जैसे कृपालुको छोड़कर बलपूर्वक भक्तको पालनेकी ख्यातिवाला संसारमें दूसरा कौन है ? (कोई नहीं) ।। २९९ ।। यद्यपि मैं शोकके कारण या स्नेहके कारण या बचपनके कारण आपकी आज्ञाके बिना ही यहाँ चला आया, तब भी कृपालु (आप) ऐसे अच्छे हैं कि (अपने बड़प्पनके कारण) सब प्रकारसे यही समझे हुए हैं कि मैंने अच्छा ही किया जो यहाँ चला आया । (१) (यहाँ आनेसे मुझे लाभ यह हुआ कि) आपके मंगलदायक चरणोंका दर्शन मिल गया और विश्वास हो गया कि स्वामी (आप)-की स्वाभाविक कृपा मुझपर अभी-तक बनी हुई है। इतने बड़े समाजमें यह मैं अपना सौभाग्य मान रहा हूँ कि इतनी बड़ी भूल करनेपर पर भी स्वामीकी कृपा मुझपर ज्यौंकी-त्यौं बनी हुई है । (२) कृपानिधि ! मुझपर आपकी कृपा तथा आपका अनुग्रह इतना अधिक है कि मेरा अंग-अंग उससे अघाया (तृप्त हुआ) जा रहा है । स्वामी ! आपने अपने शील-भरे स्वभाव और कृपासे सदा मेरा दुलार रक्खा (मेरे हठकी भी प्रेमसे रक्षा की) । (३) नाथ ! मैंने आपकी और समाजकी सारी मर्यादाओंका ध्यान छोड़कर जो मनमें आई वह मीठी-कड़वी बात कह डाली । तो देव ! आप यही

---

१. गुन गति नट ।

३०४३-४४ उल्लंघ्याहं त्वदादेशं शोकाद्वा स्नेहकारणात् । आगतो बालबुद्धया वा भवता च दयालुना ।
वीक्ष्य स्वामिमुखं कृत्स्नं कर्तव्या मानिता वराः । —नारायणसंहिता
३०४५-४६ दर्शनं कृतवानस्मि पादयोः पुण्यरूपयोः । स्वामिनं ज्ञातवानस्मि स्वानुकूलं स्वभावतः ।।
महासभायामद्राक्षं निजभाग्योदयं तथा । ममापराधोस्ति महान् महत् प्रेमास्ति ते प्रभो ।।धर्मसं०
३०४७-४८ दयया तव तृप्तोस्मि चकाराधिकतां भवान् । प्रभो स्वशीलकारुण्याच्चकार प्रियरक्षणम् ।। ब्रह्मरा०
३०४९-५० नाथाहं त्वत्समज्यायां संकोचं प्रविहाय च । धृष्टतां कृतवानस्म्यामनम्रां च यथारुचि ।।
यां वाणीं प्रोक्तवान् देव तां क्षमस्वातिदुःखितः । —वशिष्ठरामायण

दो०—सुहृद, सुजान, सुसाहिबहिं , बहुत कहब, बड़ि खोरि ।
आयसु देइय देव ! अब , सबइ सुधारी मोरि ।। ३०० ।।
प्रभु - पद - पदुम - पराग दोहाई । सत्य - सुकृत - सुख - सीवँ सुहाई ।
सो करि, कहौं हिये अपने - की । रुचि जागत-सोवत - सपने - की । (१)
सहज सनेह स्वामि - सेवकाई । स्वारथ, छल, फल चारि बिहाई ।
अग्या-सम न सुसाहिब - सेवा । सो प्रसाद, जन पावइ, देवा । (२)
अस कहि, प्रेम - बिबस भे भारी । पुलक सरीर, बिलोचन बारी ।
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई । समउ, सनेह, न सो कहि जाई । (३)
कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ।
३०६० भरत-बिनय सुनि, देखि सुभाऊ । सिथिल-सनेह सभा, रघुराऊ । (४)
छंद—रघुराउ, सिथिल - सनेह साधु - समाज, मुनि, मिथिलाधनी ।
मन - महँ सराहत, भरत - भायप - भगति - की महिमा घनी ।

समझकर मुझे क्षमा कर डालें कि मेरा जी बहुत ही दुखी है । (४) सुहृद (मित्र), ज्ञानी और भले स्वामीके सामने बहुत बोलना ठीक नहीं होता । इसलिये देव ! अब आप मुझे आज्ञा दें और वही करें जिसमें मेरा कल्याण हो ।। ३०० ।। प्रभुके चरण-कमलोंकी रजसे बढ़कर कुछ भी सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुख नहीं है । मैं अपने हृदयकी यह बात स्पष्ट कहे डालता हूँ कि मुझे जागते, सोते और स्वप्न देखते सदा यही अच्छा लगता है कि मैं स्वार्थ, छल और चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-की इच्छा त्यागकर स्वाभाविक स्नेहसे आपकी सेवा करता रहूँ । देव ! (स्वामीकी) आज्ञाका पालन करनेके समान स्वामीकी और कोई सेवा नहीं हो सकती । इस दासकी भी यही इच्छा है कि मुझे भी वही प्रसाद मिले (आप मुझे आज्ञा दें और मैं उसीके अनुसार कार्य करूँ) ।' (२) ऐसा कहकर भरत ऐसे प्रेममें मग्न हो चले कि उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा और उनकी आँखें छलछला आईं । उन्होंने आर्त्त होकर प्रभु (राम)-के चरण-कमल जा पकड़े । भरतकी उस समयकी दशाका और उनके स्नेहका कोई वर्णन करना भी चाहे तो कर नहीं पा सकता । (३) कृपाके सागर रामने प्यार-भरे शब्दोंसे सम्मान करते हुए भरतका हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास खींच बैठाया । भरतकी विनय-भरी बात सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभाके साथ-साथ राम भी स्नेह-विभोर हो उठे । (४) रामके साथ-साथ साधु-समाज, मुनि वशिष्ठ और राजा जनक भी स्नेहमें मग्न हो चले । सब लोग भरतके भ्रातृ-प्रेम और भक्तिकी उस सच्ची महिमाकी जो

३०५१-५२ प्रेमिणश्चतुरस्याग्रे प्रभोरत्यंतगर्हितम् । अत्यंतकथनं दत्वानुज्ञां मां सुखिनं कुरु ।। अध्यात्मरामायण
३०५३-५४ नाथांघ्रिरजसः कृत्वा शपथं वच्मि भूपते । जाग्रतः स्वपतः स्वप्नं पश्यतो मनसो रुचिम् ।।गरुडपु०
३०५५-५६ स्वार्थं छलं चतुर्वर्गं विहाय प्रेमतः प्रभो । स्वामिसेवा प्रकर्तव्या स्वाम्यनुज्ञा समा नहि ।।
काचित्सेवा ततो नाथ सैव दासाय दीयताम् । —सुतीक्ष्णरामायण
३०५७-५८ एवमुक्त्वा बहुप्रेमवशः पुलकितं वपुः । वारिपूरितनेत्रश्च संभ्रमाद्रामपादयोः ।।
पतितोऽवर्णनीयं च प्रेम तात्कालिकं बुधैः । —अगस्त्यरामायण
३०५९-६० कृपासमुद्रः सम्मान्य सुवाण्यादाय तत्करौ । समीपं स्थापितः श्रुत्वा विनयं भरतस्य च ।।
दृष्ट्वा स्वभावं स्नेहेन व्याकुलाः सभ्यराघवाः । —गरुडपुराण
३०६१-६२ श्रीरामः सज्जनाश्चापि मुनयो मिथिलाधिपः । स्नेहेन व्याकुला जाता भ्रातृत्वं भरतस्य च।।महारा.

भरतहिं प्रसंसत, बिबुध बरषत सुमन, मानस मलिन-से।
तुलसी, बिकल सब लोग सुनि, सकुचे निसागम नलिन-से॥ [११]
सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर-नारि सब।
मघवा महा-मलीन, मुये मारि, मंगल चहत॥ ३०१॥
कपट-कुचालि-सीवँ सुरराजू। पर-अकाज-प्रिय, आपन काजू।
काक-समान पाकरिपु-रीती। छली, मलीन, न कतहुँ[1] प्रतीती। (१)
प्रथम कुमत करि, कपट सँकेला। सो उचाट, सबके सिर मेला।
३०७० सुर-माया सब लोग बिमोहे। राम-प्रेम अतिसय न बिछोहे। (२)
भय-उचाट-बस, मन थिर नाहीं। छन बन-रुचि, छन सदन सुहाहीं।
दुबिध मनो-गति प्रजा दुखारी। सरित-सिंधु-संगम जनु बारी। (३)
दुचित, कतहुँ परितोष न लहहीं। एक-एक-सन मरम न कहहीं।

भरकर मन ही मन प्रशंसा कर उठे। खोटे मनवाले देवता भी भरतकी प्रशंसा करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। तुलसीदास कहते हैं कि भरतके वचन सुनकर सब लोग ऐसे मुरझा चले जैसे रात्रि होनेपर कमल मुँद जाते हैं। [११] दोनों समाजोंके स्त्री और पुरुषोंको इतने दीन (आर्त्त) और दुखी देखकर भी वह महामलिन हृदयवाला इन्द्र, मरेको मारकर भी अपना ही कल्याण करनेके फेरमें पड़ा हुआ था॥३०१॥ देवराज इन्द्रसे बढ़कर कोई कपटी और कुचाली हो नहीं सकता। उसे दूसरोंका काम बिगाड़कर अपना काम बनाना बहुत आता है। इन्द्रका रङ्ग-ढङ्ग उस कौवेके समान था जो सदा छल करनेकी ताकमें लगा रहता है, जिसका हृदय बड़ा काला (पापसे भरा) होता है और जो किसीका विश्वास नहीं करता। (१) पहले वह कुमन्त्रणा करके कपट (-का जाल) लाया और फिर वह जाल सबके सिरपर ऐसा फेंका कि उससे सबका मन ऐसा उचाट हो चला कि देवताओंकी मायाके चक्करमें सबकी बुद्धि चक्कर खाने लगी, फिर भी रामके प्रति जो उनके मनमें अत्यन्त प्रेम था वह नहीं ही दूर हो पाया। पर सब लोगोंका जी ऐसा उचाट अवश्य हो चला कि उनका मन डाँवाडोल होने लगा। (२) कभी उन्हें वनमें रहना अच्छा लगे, तो कभी घर लौट चलना। उस दुविधामें पड़े हुए लोगोंके मनमें ऐसी उथल-पुथल मची हुई थी जैसे समुद्रसे मिलते समय नदीके जलमें हल-चल मच उठती है (नदीका जल कभी समुद्रकी ओर बढ़ता है, तो कभी समुद्रकी लहरोंसे टकराकर वही जल पीछेको लौट पड़ता है)। (३) उनका चित्त स्थिर नहीं हो पा रहा था। फिर भी वे एक दूसरेको अपने मनकी दशा बता नहीं रहे थे। उनके मनकी यह दुबिधा देखकर

१. कतहुं न।

३०६३-६४ मानसे प्रशशंसुश्च भक्तिं मलिनमानसाः। प्रशंसां भरतस्यापि कृत्वाऽमरगणास्तथा॥
पुष्पाणि ववृषुः श्रुत्वा लोकाः सर्वेऽतिदुःखिताः। यथा चांभोरुहाणीश संकुचंति निशागमात्॥महारा०
३०६५-६६ समाजयोर्द्वयोर्नारीः पुरुषान् वीक्ष्य दुःखितान्। दीनान्महाधमः शक्रो मृतान् हत्वा शमिच्छति॥गणे.सं.
३०६७-६८ कुमार्गंच्छलयोः सीमा निजकार्यप्रियोऽद्रिभित्। अन्याकार्यप्रियो जिष्णो रीतिः काकसमास्ति वै॥ग०पु.
३०६९-७० प्रथमं कुमतिं कृत्वा छलं दूरीचकार सः। उच्चाटनं च कृतवान् सुरमायाविमोहिताः॥
दूरे बभूवुर्नात्यन्तं श्रीरामप्रेमकारणात्। —याज्ञवल्क्यसंहिता
३०७१-७२ उच्चाटनवशाः सर्वे जाताश्चास्थिरमानसाः। क्षणे वनरुचिस्तेषां क्षणे गृहरुचिस्तथा॥
प्रजाश्च दुःखिता जाता असामंजस्यकारणात्। —अगस्त्यरामायण

लखि, हिय हँसि, कह कृपानिधानू। सरिस स्वान, मघवान, जुवानू। (४)
दो०—भरत, जनक, मुनिजन, सचिव, साधु, सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहिं, जथाजोग जनु पाइ ॥ ३०२ ॥
कृपासिंधु, लखि लोग दुखारे। निज सनेह, सुर - पति - छल भारे।
सभा, राउ, गुरु, महिसुर, मंत्री। भरत - भगति सब-कै मति जंत्री। (१)
रामहिं चितवत चित्र - लिखे - से। सकुचत बोलत, बचन सिखे - से।
३०८० भरत - प्रीति - नति - बिनय - बड़ाई। सुनत सुखद, बरनत कठिनाई। (२)
जासु बिलोकि भगति - लव-लेसू। प्रेम - मगन मुनि-गन, मिथिलेसू।
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी। भगति सुभाय, सुमति हिय तुलसी। (३)
आपु छोटि, महिमा बड़ि जानी। कविकुल - कानि मानि सकुचानी।
कहि न सकति गुन, रुचि अधिकाई। मति - गति, बाल-बचन - की नाँई। (४)

कृपानिधान रामने मन ही मन हँसकर कहा—'कुत्ते, इन्द्र और जवान तीनोंकी दशा एक-सी होती है (तीनोंका मन अस्थिर होता है)।' (४) भरत, राजा जनक, मुनि, मन्त्री और ज्ञानी साधु-सन्तोंको छोड़कर, जो जिस योग्य था उसके सिर देवताओंकी माया वैसी ही जा चढ़ी ॥३०२॥ कृपासिंधु रामने देखा कि सब लोग मेरे स्नेह और इन्द्रके भारी छलसे व्याकुल हो चले हैं और सम्पूर्ण सभा, राजा जनक, गुरु वशिष्ठ, ब्राह्मण तथा मन्त्री, सभीकी बुद्धिपर भरतकी भक्ति ताला जड़े बैठी है (राममें भरतकी ऐसी भक्ति थी कि उसके आगे किसीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी, किसीको कोई उपाय ही नहीं सूझ पड़ रहा था कि ऐसी दशामें कहा क्या जाय)। (१) सब लोग बैठे-बैठे रामको ऐसे एकटक निहारे जा रहे थे जैसे वे लोग चित्रमें बने हुए निर्जीव हों। वे बहुत सकुचाते हुए-से ऐसे बोल रहे थे, मानो कोई सिखाया हुआ कथन ही दुहराए चले जा रहे हों (अपनी ओरसे कुछ न कह रहे हों)। भरतकी वह प्रीति, नम्रता, विनय और बड़प्पनका वर्णन सुननेमें जितना सुखदायक था उतना ही वर्णन करनेमें कठिन भी था। (२) जिस (भरत)-की भक्तिकी तनिक-सी ही झलक पाकर मुनि और राजा जनक-जैसे परम ज्ञानी भी प्रेममें मग्न हो-हो जा रहे थे, उस भक्तिकी महिमा भला तुलसीदास किस मुँहसे कह पा सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि उनकी स्वाभाविक भक्ति (-के श्रवण और वर्णन)-से मेरे (तुलसीदासके) मनमें सुबुद्धि अवश्य उत्पन्न हो गई है। (३) भरतकी इतनी अगाध महिमा देखकर मेरी छोटी बुद्धि बड़ी झिझकी जा रही है कि मैं कवि-कुलकी मर्यादा की किस प्रकार रक्षा करूँ (किस प्रकार कविकी मर्यादाके अनुसार उचित रूपमें भरतकी महिमाका वर्णन करूँ)। मेरे मनमें तो वर्णन करनेकी बहुत साध है पर बुद्धिमें यह सामर्थ्य ही नहीं है कि उनके गुणोंका वर्णन कर सके।

३०७३-७४ द्विचित्ताश्च परीतोषं लभंते नैव कुत्रचित्। स्वस्वभेदं न जल्पंति दृष्ट्वा स्वांते विहस्य च ॥
दयानिधानः प्रोवाच समाः श्वयुववासवाः। —लाट्टायनसंहिता
३०७५-७६ भरतं जनकं चैव मुनीन्मंत्रिगणांस्तथा। तत्त्वज्ञान्साधुलोकांश्च विहाय सकलान् जनान् ॥
संप्राप्य च यथायोग्यान्देवमाया पिपीड सा। —वसिष्ठसंहिता
३०७७-७८ दयार्णवो निजस्नेहात्सुरेन्द्रकपटात्तथा। दुःखिताश्च प्रजा वीक्ष्य सभ्यानां यंत्रितां मतिम् ॥
जनकस्य वसिष्ठस्य भक्त्या श्रीभरतस्य च। —नृसिंहपुराण
३०७९-८० रामचन्द्रं प्रपश्यंति ते चित्रलिखिता इव। शिक्षितानीव वाक्यानि वदंति विनयं मतिम् ॥
भरतस्य महत्त्वं च प्रशंसां सुखदायिनीम्। शृण्वंति शक्ता नो वक्तुं देवा अपि शिवादयः॥वशि०रा०

दो०—भरत-बिमल-जस बिमल बिधु, सुमति चकोर-कुमारि।
उदित बिमल-जन-हृदय-नभ, ऎकटक रही निहारि ॥ ३०३ ॥
भरत-सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु-मति-चापलता, कबि छमहूँ।
कहत-सुनत, सति भाउ भरत-को। सीय-राम-पद होइ न रत को। (१)
सुमिरत भरतहिं, प्रेम राम-को। जेहि न सुलभ, तेहि सरिस बाम-को।
३०९० देखि, दयाल, दसा सबही-की। राम सुजान, जानि जन-जी-की। (२)
धरम-धुरीन, धीर, नय-नागर। सत्य-सनेह-सील-सुख-सागर।
देस, काल, लखि समउ, समाजू। नीति-प्रीति-पालक रघुराजू। (३)
बोले बचन, बानि-सरबस-से। हित परिनाम, सुनत ससि-रस-से।
तात भरत! तुम धरम-धुरीना। लोक-बेद-बिद, प्रेम-प्रबीना। (४)
दो०—करम, बचन, मानस बिमल, तुम समान तुम तात।
गुरु-समाज लघु-बंधु-गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥ ३०४ ॥

मेरी बुद्धि तो बच्चोंकी-सी बुद्धि हो चली है (जिसमें कोई समझ नहीं होती)। (४) भरतका निर्मल यश उस निर्मल चन्द्रमाके समान है, जो भक्तोंके निर्मल हृदयके आकाशमें सदा उदित हुआ रहता है और जिसे बुद्धि-रूपी चकोरी भौचक होकर एकटक देखती रह जाती है (भरतके निर्मल यशका आनन्द तो केवल भक्त ही अपने हृदयमें ही ले पाते हैं। कविकी बुद्धि उसे देखकर आश्चर्य ही करती रहती है कि क्या किसीका चरित्र इतना उदार, इतना शुद्ध भी हो सकता है ? वह उसका वर्णन नहीं कर पा सकती) ॥ ३०३ ॥ (मेरे लिये ही नहीं) भरतके स्वभावका वर्णन कर पा सकना तो वेदोंके लिये भी सुगम नहीं है। इसलिये मैं जो अपनी छोटी बुद्धिसे (भरतके गुणोंका वर्णन करनेकी) ढिठाई कर बैठा हूँ उसे कवि लोग (कृपा करके) क्षमा कर दें। भरतके (मनके) सत्य भावोंका वर्णन करके और सुनकर कौन ऐसा मनुष्य है जो सीता और रामके चरणोंका भक्त न बन बैठे ? (१) भरतका स्मरण कर लेनेपर भी जिसे रामका प्रेम सुलभ न हो पा सके उसके समान अभागा और कौन होगा ? दयालु सर्वज्ञ रामने सबकी जो दशा देखी और भक्त (भरत)-के हृदयकी जो स्थिति समझी, उसके अनुसार (२) धर्म-धुरन्धर, धीर, नीतिमें चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुखके सागर, नीति और प्रीतिका पालन करनेवाले रामने देश, काल, अवसर और समाजका विचार करके (३) ऐसे तोलकर वचन कहे जिसका परिणाम भी सबके लिये हितकारी था और जो सुननेमें भी चन्द्रमाके रस (अमृत)-के समान (सुन्दर) थे। (उन्होंने कहा—) 'देखो भाई भरत ! तुम धर्म-धुरीण (धर्मको सँभाले रखनेवाले) हो, लोककी मर्यादा और वेदकी आज्ञा, दोनों भली भाँति जानते हो, तुम्हारा प्रेम भी अद्वितीय है, (४) और भाई ! तुमने कर्म, वचन और मनसे भी कभी कोई दोष नहीं किया। तुम्हारे समान यदि कोई है तो तुम्हीं हो (तुम्हारी बराबरी करनेवाला कोई दूसरा है नहीं)। जहाँ इतने गुरुजन आए बैठे हों वहाँ ऐसे कुसमय (विपत्तिके समय) छोटे भाईके गुणोंका वर्णन करने लगना अच्छा नहीं जान पड़ता ? (फिर भी तुम्हारे गुणोंका वर्णन करना मुझे बहुत प्रिय लगता है) ॥ ३०४ ॥ देखो

३०९०-९३ दयालुर्ज्ञानवान् रामो दशां दृष्ट्वा जनस्य च। नीतिज्ञो धर्मनिघ्नश्च सत्यस्नेहः सुशीलवान् ॥
सुखार्णवो रघुश्रेष्ठः कालं देशं निरीक्ष्य च। परिणामहितां वाणीं प्राह पीयूषसन्निभाम् ॥ अग०सं०
३०९३-९५ धर्मात्मा लोकवेदज्ञस्त्वं चासि भरतप्रिय। कर्मणा मनसा वाचा त्वत्समानस्त्वमेव हि ॥ पद्मपु०

जानहु तात ! तरनि - कुल - रीती । सत्यसंध - पितु - कीरति, प्रीती ।
समउ, समाज, लाज गुरुजन - की । उदासीन, हित, अनहित-मन-की । (१)
तुमहिं बिदित सबही - कर करमू । आपन - मोर, परम हित, धरमू ।
मोहिं सब भाँति भरोस तुम्हारा । तदपि कहउँ अवसर - अनुसारा । (२)
३१०० तात ! तात - बिनु बात हमारी । केवल कुल - गुरु - कृपा सँभारी ।
नतरु प्रजा, परिजन, परिवारू । हमहिं - सहित सब होत खुआरू । (३)
जौं बिनु - अवसर अथव दिनेसू । जग केहि, कहहु, न होइ कलेसू ।
तस उतपात, तात ! बिधि कीन्हाँ । मुनि, मिथिलेस राखि सब लीन्हाँ । (४)
दो०—राज-काज सब, लाज, पति , धरम, धरनि, धन, धाम ।
गुरु-प्रभाउ पालिहि सबहिं , भल होइहि परिनाम ।। ३०५ ।।
सहित - समाज तुम्हार, हमारा । घर, बन, गुरु - प्रसाद रखवारा ।

भाई ! तुम सूर्यवंशके नियमको, सत्यका पालन करनेवाले पिता (दशरथ)-की कीर्तिको (कि सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने मुझे वन भेजा) और (मेरे प्रति उनकी) उस प्रीतिको (जिसके लिये उन्होंने प्राण दे दिए), समयको, समाजकी दशाको और गुरुजनोंकी मर्यादाको, एवं उदासीन मित्र और शत्रु सबके मनकी बातोंको भली-भाँति समझते हो । (१) किसका क्या कर्त्तव्य है यह भी तुम जानते हो और यह भी जानते हो कि किस धर्म (कर्त्तव्य)-का पालन करनेसे तुम्हारा और मेरा हित हो सकता है । यद्यपि मुझे तुमपर पूरा विश्वास है, तथापि मैं समयको देखते हुए अपने कुछ विचार तुम्हें जनाए देता हूँ । (२) देखो भाई ! पिताके न रहनेपर हमारी मर्यादा केवल कुलगुरु वशिष्ठने ही सँभाले रक्खी है नहीं तो आज हमारी प्रजा, परिजन, और परिवार सबकी बड़ी दुर्दशा हो गई होती । (३) यदि समय (सन्ध्या)-से पहले ही सूर्य अस्त हो जायँ तो बताओ जगत्‌में किसे कष्ट न होगा ? तो भाई ! विधाताने कुछ ऐसी ही विपत्ति हमारे लिये ला खड़ी की (असमयमें ही पिताकी मृत्यु हो गई), पर वह तो कहिए कि मुनि वशिष्ठ तथा मिथिलेश (जनक) ऐसे थे, जिन्होंने (कुशलतासे) सब सँभाल लिया । (४) (मुझे विश्वास है कि) राज्यका सारा कार्य, लज्जा (कुलकी मर्यादा), प्रतिष्ठा, धर्म, धरणी, धन और घर सबका पालन गुरु वशिष्ठके प्रभावसे होता ही रहेगा और अन्तमें सबका परिणाम भी अच्छा ही होगा ।। ३०५ ।। गुरुकी वह कृपा ही घरमें या वनमें इस सारे समाजकी, तुम्हारी और हमारी सर्वत्र रक्षा करती रहेगी ।

३०९६-९७ रीतिं भास्करवंशस्य कीर्तिं प्रीतिं पितुस्तथा । तात त्वं सत्यसंधस्य समाजं समयं त्रपाम् ।।
जानासि गुरुलोकानां मित्रोदासीनवैरिणाम् । जानासि चित्तवृत्तिं च तथैव रघुनन्दन ।।अद्भुतरा०
३०९८ जानासि भेदं सर्वेषां परमं हितमावयोः । त्वदाशा सर्वथा मेऽस्ति वच्मि कालानुसारतः ।।सूतसं०
३१००-१ तात तातं विना वाणी नः स्थिता चानुकंपया । केवलं कुलपूज्यस्य नोचेत्पुरजनाः प्रजाः ।।
कुटुम्बिनो मत्सहिता भवेयुर्दुःखसंयुताः । —पुलस्त्यरामायण
३१०२-३ अकाले यदि चेदस्तं गच्छेत्सूर्यः कथं क्षितौ । क्लेशो न स्यात्प्रियोत्पातं तादृशं कृतवान्विधिः ।।
रक्षणं कृतवान् सर्वं मुनिश्च मिथिलेश्वरः । —अगस्त्यरामायण
३१०४-५ राजकार्यं त्रपा सर्वा प्रतिष्ठा धरणी धनम् । धर्मो गृहं च सर्वस्य प्रभावात्पालनं गुरोः ।।पुल०सं०
३१०६ गुरुप्रसादो विपिने भवने चापि रक्षकः । मातृपितृगुरुस्वामिनिदेशो धर्मभूधरः ।। महारामायण

मातु - पिता - गुरु - स्वामि - निदेसू । सकल धरम - धरनीधर सेसू । (१)
सो तुम करहु, करावहु मोहू । तात ! तरनि - कुल - पालक होहू ।
३११० साधक[1] एक सकल सिधि देनी । कीरति, सुगति, भूतिमय बेनी । (२)
सो बिचारि सहि संकट भारी । करहु प्रजा - परिवार सुखारी ।
बाँटी बिपति सबहिं मोहिं भाई । तुम्हहिं अवधि-भरि बड़ि कठिनाई । (३)
जानि तुम्हहिं मृदु, कहउँ कठोरा । कुसमय तात ! न अनुचित मोरा ।
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाये । ओड़ियहिं हाथ असनिहु-के घाये । (४)
दो०—सेवक कर-पद - नयन - से , मुख - सों साहिब होइ ।
तुलसी, प्रीति-कि रीति सुनि , सुकवि सराहहिं सोइ ।। ३०६ ।।
सभा सकल, सुनि रघुबर - बानी । प्रेम - पयोधि - अमिय जनु सानी ।
सिथिल समाज सनेह - समाधी । देखि दसा चुप सारद साधी । (१)

(पृथ्वीको सिरपर टिकाए रखनेवाले) शेषके समान माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञा ही सभी धर्मों (कर्त्तव्यों)-की रक्षा करनेमें सबको सहारा देती रहती है । (१) इसलिये भाई ! तुम वही काम करो और मुझसे भी वही काम कराओ जिससे सूर्यकुलकी मर्यादाकी रक्षा हो सके । साधक (कोई भी काम करनेवाले)-के लिये एकमात्र यह साधना (आज्ञाका पालन) ही सारी सिद्धियाँ देनेवाली (सब काम पूरा करनेवाली) तथा कीर्ति, सद्गति (मोक्ष) और ऐश्वर्य देनेवाली त्रिवेणी है (इससे कीर्ति भी मिलेगी , मुक्ति भी मिलेगी और ऐश्वर्य भी मिलेगा) । (२) यह विचारकर भारी संकट सहकर भी तुम प्रजा और परिवारको सुख पहुँचाते रहो । देखो भाई ! मेरी विपत्ति (पिताकी मृत्युकी व्यथा) तो सभीने (थोड़ी-थोड़ी) बाँट ली है, पर तुम्हें तो अवधि-भर (१४ वर्ष-तक) सबसे अधिक दुःख सहन करते रहना है । (३) तुम्हें बहुत कोमल जानकर भी मैं ऐसा कठोर आदेश दिए डाल रहा हूँ, क्योंकि ऐसी विपत्तिके समय ऐसा आदेश दे देना भी इसलिये अनुचित नहीं है कि विपत्तिमें सदा अच्छे भाई ही उसी प्रकार सहायता किया करते हैं जैसे वज्रका आघात होनेपर अपना ही हाथ आड़े आकर उसे रोकता है । (४) सेवकको तो हाथ, पैर, और नेत्रोंके समान (सदा सेवा करते रहनेवाला) तथा स्वामीको सदा मुखके समान (सब खा-पीकर भी सब अंगोंका पोषण करनेवाला) होना चाहिए । (तुलसीदास कहते हैं कि) जहाँ स्वामी और सेवकमें ऐसा पारस्परिक सद्भाव हो, उसी (सद्भाव) की सुकवि लोग सराहना किया करते हैं' ।। ३०६ ।। रामकी वह वाणी सुनकर सारा समाज गद्गद हो उठा जो ऐसी मधुर थी मानो प्रेमका समुद्र मथकर निकाले हुए अमृतसे भरी हुई हो । सुनते ही सबको प्रेमकी समाधि-सी लग गई (सब प्रेममें मग्न हो गए) । सरस्वतीने यह दशा देखी तो वह भी तत्काल चुप हो बैठी (भरत भी कुछ नहीं बोल पाए) । (१) भरतको इससे परम सन्तोष हुआ ।

१. साधन ।

३१०८ अतस्त्वं जनकस्याज्ञां कुरु कारय मामपि । तातेत्थं त्वं भवादित्यकुलपालश्च साधनम् ।।
सर्वसिद्धिप्रदं चैकं त्रिवेणीसदृशं फले । —अगस्त्यसंहिता

३१११ विचार्य च महाकष्टं सहित्वा सुखिनं कुरु । प्रजावृन्दं कुटुम्बं च काठिन्यं ते वरावधि ।।गौत०रा०

३११३ ज्ञात्वा त्वां कोमलं वच्मि कठोरं तात बंधवः । कुकाले नास्ति दोषो मे कुर्वन्ति हि सहायताम् ।।जै०पु०

३११५-१६ हस्तांघ्रिनेत्रवद्दासो मुखवन्नायको भवेत् । श्रुत्वा चैतादृशीं प्रीतिं प्रशंसंति च पंडिताः ।।अग०सं०

३११७ सभ्याः श्रुत्वा हरेर्वाणीं प्रेमाब्ध्यमृतपूरिताम् । प्रेम्णि मग्ना दशां दृष्ट्वा वाणी मौनावलंबिनी ।। अग्निपु०

भरतहिं भयउ परम संतोपू। सनमुख स्वामि, बिमुख दुख-दोपू।
३१२० मुख प्रसन्न, मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा-प्रसादू। (२)
कीन्ह सप्रेम प्रनाम बहोरी। बोले पानि-पंकरुह जोरी।
नाथ! भयउ सुख साथ गये-को। लहेउँ लाहु जग जनम भये-को। (३)
अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि, सादर सोई।
सो अवलंब देव! मोहिं देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई। (४)

दो०—देव! देव-अभिषेक हित, गुरु-अनुसासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथ-सलिल, तेहि-कहँ, काह रजाइ॥ ३०७॥

एक मनोरथ बड़ मन-माहीं। सभय, सँकोच, जात कहि नाहीं।
कहहु तात! प्रभु-आयसु पाई। बोले, बानि सनेह-सुहाई। (१)
चित्रकूट सुचि थल, तीरथ, बन। खग, मृग, सरि, सर, निर्झर, गिरिगन।
३१३० प्रभु-पद-अंकित-अवनि बिसेखी। आयसु होइ, त आवउँ देखी। (२)
अवसि अत्रि-आयसु सिर धरहू। तात बिगत-भय कानन चरहू।

स्वामी (राम)-की कृपा अपने ऊपर देखकर भरतके सारे दुःख और दोष (अशान्तिके भाव) दूर हो मिटे। उनका मुख खिल उठा और मनका सारा दुःख ऐसा जाता रहा मानो गूँगेपर सरस्वतीकी कृपा हो गई हो (गूँगा बोलने लगा हो)। (२) भरतने बहुत प्रेमपूर्वक रामको प्रणाम करके अपने कर-कमल जोड़कर कहा—'नाथ! आपके वचन सुनकर मुझे वही सुख प्राप्त हो गया जो आपके साथ वन जानेमें मिलता। (इतना ही नहीं,) संसारमें जन्म लेनेका लाभ भी मुझे आज मिल गया है। ३) कृपालु! अब जैसी आपकी आज्ञा होगी उसीका मैं सिर-माथे चढ़ाकर पालन करूँगा। पर देव! आप मुझे कोई ऐसा सहारा अवश्य दे दीजिए जिसके भरोसे मैं यह अवधि (१४ वर्ष) शान्तिसे बिता पा सकूँ। (४) देव! आपके अभिषेकके लिये गुरु वशिष्ठकी आज्ञाके अनुसार मैं जो सब तीर्थोंका जल अपने साथ लिए चला आया था, उसके लिये क्या आज्ञा होती है? ॥३०७॥ हाँ तात! मेरे मनमें एक और भी बड़ी लालसा है, पर संकोचके कारण मैं कह नहीं पा रहा हूँ।' (रामने कहा)—'हाँ, हाँ भाई! कहो, कहो (संकोचकी क्या बात है?)।' प्रभुकी आज्ञा पाकर स्नेहसे भरी मधुर वाणीमें भरत कहने लगे—(१) 'यदि आपकी आज्ञा हो तो चित्रकूटके मुनियोंके आश्रम, तीर्थ, वन, पशु, पक्षी, नदी, सरोवर, झरने, पर्वत और विशेषकर आपके चरण-चिह्नोंसे अंकित यहाँकी धरती घूमकर देख आऊँ। (२) (रामने कहा)—'भाई! यहाँ (मेरी नहीं), अत्रि मुनिकी आज्ञा लेकर, निर्भय होकर वनमें

३११९-२० प्रसन्नो भरतो जातः प्रसन्नं वीक्ष्य राघवम्। दूषणानि च दुःखानि विनष्टानि तदैव हि॥नृसिंहपु०
३१२१-२२ प्रणम्य राघवं प्राह भरतस्तु कृतांजलिः। जन्म मे सफलं जातं लब्धं च बहुलं सुखम्॥पद्मपुराण
३१२३-२४ यथाज्ञा सांप्रतं नाथ सादरं करवाणि ताम्। ददातु चावलंबं मे कालयापनहेतवे॥महारा०
३१२५-२६ देवदेवाभिषेकाय श्रीगुरोराज्ञया जलम्। आनीतं सर्वतीर्थानामाज्ञा भवति का प्रभो॥वसिष्ठसं०
३१२७ लालसा महती स्वांते भयसंकोचकारणात्। वक्तुं तां नैव शक्नोमि वद तातेति याचये॥
प्रोवाच शोभनां वाणीं भरतः प्रेमपूरिताम्। —अत्रिरामायण
३१३० त्वत्पादचिह्नितान्यत्र यानि स्थानानि संति वै। द्रष्टुमिच्छाम्यहं तानि त्वदाज्ञां प्राप्नुयां यदि॥ अत्रिरा०
३१३१ अत्र्याज्ञां शिरसा धृत्वा काननं पश्य निर्भयः। भ्रातर्मुनिप्रसादेन वनं पुण्यं सुखप्रदम्॥शिवसं०

मुनि - प्रसाद बन मंगलदाता। पावन, परम सुहावन, भ्राता। (३)
रिषिनायक जहँ आयसु देहीं। राखहु तीरथ - जल, थल तेहीं।
सुनि प्रभु - बचन, भरत सुख पावा। मुनि-पद-कमल, मुदित सिर नावा। (४)
दो०—भरत - राम - संवाद सुनि , सकल - सुमंगल - मूल ।
सुर स्वारथी सराहि कुल , बरषत सुर - तरु - फूल ।। ३०८ ।।
धन्य भरत, जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं।
मुनि, मिथिलेस, सभा, सब - काहू। भरत - बचन सुनि, भयउ उछाहू। (१)
भरत - राम - गुन - ग्राम - सनेहू। पुलकि प्रसंसत, राउ बिदेहू।
३१४० सेवक - स्वामि - सुभाउ सुहावन। नेम - पेम, अति पावन - पावन। (२)
मति - अनुसार सराहन लागे। सचिव, सभासद सब अनुरागे।
सुनि - सुनि राम - भरत - संबादू। दुहुँ समाज - हिय हरप - बिषादू। (३)

विचरण कर सकते हो। देखो भाई ! मुनि (अत्रि)-के ही प्रसादसे चारों ओर इस जंगलमें मंगल छाया हुआ है। यह वन परम पवित्र और सुन्दर है। (३) यह जो तीर्थोंका जल तुम ले आए हो वह भी वहीं ले जा रखना जहाँ ऋषियोंके अग्रणी अत्रि मुनि आज्ञा दें।' प्रभुके ये वचन सुनकर भरत प्रसन्न हो उठे।

(वहाँसे अत्रि मुनिके आश्रमपर पहुँचकर) उन्होंने प्रसन्न होकर मुनि (अत्रि)-के चरण-कमलोंमें सिर जा नवाया। (४) सम्पूर्ण मंगल करनेवाला यह भरत-रामका संवाद सुनकर सभी स्वार्थी देवता सूर्य-कुलकी प्रशंसा करते हुए उनपर कल्पवृक्षके फूल ला-लाकर बरसाने लगे ।। ३०८ ।। 'भरत धन्य हैं, प्रभु रामकी जय हो'—कहते हुए देवता लोग उछल-उछलकर हर्ष मनाने लगे। मुनि वशिष्ठ, राजा जनक तथा सभासद् सभीको भरतके वचनोंसे बड़ा संतोष हुआ। (१) राजा जनक तो गद्गद होकर भरत और रामके गुणोंकी और उनके प्रेमकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'सेवक और स्वामीका यह कितना सुन्दर आदर्श इनमें मिल रहा है। इन दोनोंके नियम और प्रेम ऐसे सच्चे हैं कि संसारमें जो कुछ अत्यन्त पवित्र भी है उसे भी पवित्र कर दें।' (२) मंत्री और सभासद् सब प्रेममें मग्न हो-होकर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार उनकी प्रशंसा किए जा रहे थे। राम और भरतकी यह बातचीत सुनकर दोनों समाजोंमें जहाँ एक ओर हर्ष हुआ, वहीं उदासी भी छा गई (हर्ष इस बातका कि सारी समस्या सरलतासे सुलझ गई और उदासी इस बातकी थी रामको वनमें ही रहना पड़ रहा है)। (३) रामकी माता कौशल्याने समझ लिया कि इसमें जितना सुख है

३१३३ यत्राज्ञा स्याद्दपेस्तत्र स्थाप्यं तीर्थजलं त्वया। प्रभोर्वचनमाकर्ण्य भरतः प्राप्तवान् सुखम् ।।अग०रा०
३१३५-३६ भरतस्य च रामस्य संवादं मंगलप्रदम्। आकर्ण्य स्वार्थिनो देवाः प्रशशंसुः कुलं रवेः।।पुल०सं०
३१३७ धन्योसि भरत स्वामिन् जय राम बलात्सुराः। हर्षिताः कथयन्तीत्थं सभ्याश्च जनको मुनिः ।।
३१३९-४० भरतस्य च रामस्य गुणग्रामं महीपतिः। प्रशंसंति सरोमांचः स्नेहं श्रीजनकस्तथा ।।
प्रभुदासस्वभावश्च शोभनो नियमस्तथा। प्रेमातिपावनं पुण्यं पावनानां च सुन्दरम् ।।सनन्दनसं०
३१४१-४२ मुदिताः सचिवाः सभ्याः प्रशशंसुर्यथामति। श्रीरामस्य च संवादं श्रुत्वा श्रीभरतस्य च ।।
व्याकुलौ हर्षशोकाभ्यां समाजौ तावुभावपि। —भरद्वाजसंहिता

राम - मातु, दुख - सुख - सम जानी । कहि गुन, राम प्रबोधीं रानी ।
एक कहहिं रघुबीर - बड़ाई । एक सराहत भरत - भलाई । (४)
दो०—अत्रि कहेउ तब भरत-सन , सैल - समीप सुकूप ।
राखिय तीरथ - तोय तहँ , पावन, अमिय, अनूप ।। ३०९ ।।
भरत, अत्रि - अनुसासन पाई । जल - भाजन सब दिये चलाई ।
सानुज आपु, अत्रि मुनि, साधू । -सहित गये जहँ कूप अगाधू । (१)
पावन पाथ, पुन्य - थल राखा । प्रमुदित प्रेम, अत्रि अस भाखा ।
३१५० तात ! अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल, बिदित नहिं केहू । (२)
तब सेवकन सरस थल देखा । कीन्ह सुजल - हित कूप बिसेखा ।
बिधि - बस भयउ बिस्व - उपकारू । सुगम, अगम अति धरम - बिचारू । (३)
भरत - कूप अब कहिहइँ लोगा । अति पावन तीरथ जल - जोगा ।
प्रेम - सनेम निमज्जत प्रानी । होइहहिँ बिमल करम-मन-बानी । (४)
दो०—कहत कूप - महिमा सकल , गये जहाँ रघुराउ ।
अत्रि सुनायउ रघुबरहिं , तीरथ - पुन्य - प्रभाउ ।। ३१० ।।
कहत धरम - इतिहास सप्रीती । भयउ भोर, निसि सो सुख बीती ।

उतना ही दुःख भी है । यह समझकर (उन्होंने धैर्य धारण करके) सब रानियों (सुमित्रा, कैकेयी, सुनयना आदि) को बहुत ढाढ़स बँधाया ।

(इधर) अत्रि मुनिने भरतसे कहा—'देखो ! इस चित्रकूट पर्वतके निकट बहुत अच्छा एक स्थान है । वहीं यह तीर्थोंका पवित्र, स्वच्छ और अनुपम जल ले जा रखवाओ' ।।३०९।। भरतने अत्रि मुनिकी आज्ञा पाकर (अभिषेकके) सब जल-पात्र उस बताए हुए स्थानपर भिजवा दिए और वे अपने भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि तथा साधु-मंडलीको साथ लेकर उस अगाध कूपके पास जा पहुँचे (१) और उन्होंने वह पवित्र जल उसी पुण्य स्थलमें ले जा रखवाया । भरतके इस प्रेम-भावसे प्रसन्न होकर अत्रिने कहा—'वत्स ! यही अनादि (अत्यन्त प्राचीन) सिद्ध स्थल है जो बहुत पहले लोप हो गया था, और जिसका ज्ञान भी किसीको नहीं रह गया था ।' (२) जब भरतके सेवकोंने देखा कि वह स्थान सरस (गीला, अच्छा) है, तब उन्होंने उस तीर्थ-जलके लिये वहाँपर एक विशेष प्रकारका कुआँ खोद बनाया । (कुआँ बन जानेपर) जगत्का सबसे बड़ा उपकार यह हो गया कि धर्म-भावना (श्रद्धा-भक्ति) जगानेके लिये उचित स्थानका जो बड़ा अभाव हुआ चला आ रहा था वह इस कूपके कारण सबके लिये सुगम हो गया । (३) (अत्रि मुनिने कहा)—'तीर्थोंके जलका संयोग होनेसे इस अत्यन्त पवित्र कूपको आजसे सब लोग 'भरतकूप' कहेंगे । जो प्राणी प्रेमसे नियम-पूर्वक इसमें स्नान आ करेगा वह मन, वचन और कर्मसे निर्मल (पवित्र) हो जायगा ।' (४) सब लोग उस कूपकी महिमाका वर्णन करते हुए रामके पास लौट आए और वहाँ अत्रि मुनिने रामको उस तीर्थका सारा पुण्य और प्रभाव सुना-समझाया ।। ३०१ ।। इस प्रकार प्रेम-पूर्वक धर्मसे संबंध रखनेवाला बहुत-सा इतिहास कहते-सुनते

३१४३-४४ सुखं दुःखं समं ज्ञात्वा गुणदोषौ निगद्य च । राज्यः प्रबोधिताः सर्वा राममात्रा गुणान्विताः ।। रामस्यैके प्रशंसां च कुर्वन्ति भरतस्य च । —महेश्वरसंहिता
३१४५-४६ अत्रिः प्रोवाच भरतं सकूपेः शैलसन्निधौ । तत्र तीर्थजलं स्थाप्यं पावनं निर्मलं शुभम् ।।पुलस्त्यसं०
३१५५-५६ सर्वे वदंतः कूपस्य प्रभावं रामसन्निधौ । प्रययुः श्रावयामास राममत्रिः पवित्रताम् ।।पुलस्त्यसं०

नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम - अत्रि - गुरु - आयसु पाई। (१)
सहित - समाज, साज सब सादे। चले राम - बन अटन पयादे।
३१६० कोमल चरन चलत बिनु - पनहीं। भइ मृदु भूमि, सकुचि मन-मनहीं। (२)
कुस, कंटक, काँकरी, कुराई। कटुक, कठोर, कुबस्तु दुराई।
महि, मंजुल - मृदु मारग कीन्हें। बहत समीर त्रिविध सुख लीन्हें। (३)
सुमन बरषि सुर, घन करि छाँहीं। बिटप फूलि, फलि, तृन मृदुताहीं।
मृग बिलोकि, खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल, राम - प्रिय जानी। (४)

दो०—सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु , राम कहत जमुहात।
राम-प्रान-प्रिय भरत - कहँ , यह, न होइ बड़ि बात ॥ ३११ ॥

यहि बिधि भरत फिरत बन - माहीं। नेम-पेम लखि, मुनि सकुचाहीं।
पुन्य जलासय भूमि - बिभागा। खग,मृग,तरु,तृन,गिरि,बन,बागा। (१)
चारु, बिचित्र, पबित्र बिसेखी। बूझत भरत, दिब्य सब देखी।
३१७० सुनि, मन मुदित, कहत रिषिराऊ। हेतु, नाम, गुन, पुन्य, प्रभाऊ। (२)

वह रात आनन्दसे कट गई और सवेरा हो चला। भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर तथा राम, अत्रि मुनि और गुरु वशिष्ठसे आज्ञा लेकर (१) पूरे समाजसे साथ, सादे वेषमें रामके वन-की यात्राके लिये पैदल ही चल पड़े। इन्हें नङ्गे पैर चलते देखकर कठोर पृथ्वी भी उनके कोमल चरणोंका विचार करके मन ही मन लजाकर कोमल हो चली। (२) पृथ्वीने बनैली कुशा, काँटे, कंकड़, गड्ढे तथा अन्य सभी कष्ट देनेवाली और कठोर वस्तुएँ हटाकर पूरा मार्ग स्वच्छ और सुखद बना दिया। तीनों प्रकारको (शीतल, मंद, सुगंध) सुहावनी बयार बह चली। (३) देवता लोग उनपर फूल बरसाकर, बादल उनपर छाया करके, वृक्ष, फूल-फलसे लदकर, घास कोमल बनकर, पशु उन्हें देखकर तथा पक्षी मधुर-मधुर कूक-कूककर सभी उन सबको रामका प्रिय जानकर उनकी सेवा करने लगे। (४) जिन रामका नाम जम्हाते समय लेनेसे साधारण मनुष्योंको भी सारी सिद्धियाँ सरलतासे आ मिलती हैं, उन्हीं रामके प्राणोंसे प्यारे भरतके लिये (यदि इतनी सुविधाएँ हो भी गईं तो) यहाँ कोई बड़ी बात नहीं हुई ॥३११॥ (इन सुविधाओंके साथ) भरत वहाँ चित्रकूटके वनमें भ्रमण करने लगे। उनका नियम और प्रेम देख-देखकर वहाँके मुनि भी लजाए रहे थे (कि हम भी इतनी दृढताके साथ भगवान्से प्रेमका निर्वाह नहीं कर पा सक रहे हैं)। वहाँके जो सरोवर, धरती, पक्षी, पशु, वृक्ष, पर्वत, वन और उपवन (१) एक से एक सुन्दर, विचित्र और विशेष पवित्र थे उन सब दिव्य स्थानों (और पदार्थों)-को देख-देखकर भरत उनके विषयमें पूछते जाते थे और ऋषिराज अत्रि उनके प्रश्न सुन-सुनकर बहुत प्रसन्न मनसे उनकी उत्पत्ति, नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव बताते चले जा रहे थे। (२) भरत भी, कहीं (किसी जलाशयमें)

३१५७-५९ धर्मेतिहासं सप्रीत्या कथयत्येव चाभवत्। प्रभातं नित्यकृत्यं च विधाय भ्रातरावुभौ ॥
श्रीमद्भरतशत्रुघ्नौ रामात्रिमुनिवांछया। समाजसहितौ रामवनं प्रति तु चेलतुः॥गरुडसंहिता
३१६५-६६ श्रीरामं स्मरतां पुंसां सुलभाः सर्वसिद्धयः। भरतो रामचन्द्रस्य प्रियश्चित्रं न विद्यते.।आनन्दरा०
३१६७-६९ एवं भ्रमति चाटव्यां भरतो नियमं तथा। स्नेहं दृष्ट्वा तु मुनयः संकुचन्त्यखिलास्तथा ॥
विलोक्य दिव्यस्थानानि भरतः परिपृच्छति। —महेश्वरसंहिता
३१७० श्रुत्वा स्वांते प्रसन्नोऽत्रिर्वक्ति नाम गुणं तथा। —कश्यपसंहिता

कतहुँ निमज्जन, कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।
कतहुँ बैठि मुनि - आयसु पाई। सुमिरत सीय-सहित दोउ भाई। (३)
देखि सुभाउ, सनेह, सुसेवा। देहिं असीस मुदित बन-देवा।
फिरहिं, गये दिन पहर अढ़ाई। प्रभु-पद-कमल बिलोकहिं आई। (४)
दो०—देखे थल, तीरथ सकल , भरत पाँच दिन - माँझ।
कहत-सुनत हरिहर - सुजस , गयउ दिवस, भइ साँझ ॥ ३१२ ॥
भोर न्हाइ, सब जुरा समाजू। भरत, भूमि - सुर, तिरहुति - राजू।
भल दिन आज, जानि मन - माहीं। राम कृपाल, कहत सकुचाहीं। (१)
गुरु, नृप, भरत, सभा अवलोकी। सकुचि राम, फिरि अवनि बिलोकी।
३१८० सील सराहि, सभा सब सोची। कहुँ न राम - सम स्वामि सँकोची। (२)
भरत सुजान, राम - रुख देखी। उठि सप्रेम, धरि धीर बिसेखी।
करि दंडवत, कहत कर जोरी। राखी नाथ! सकल रुचि मोरी। (३)

स्नान करते, कहीं प्रणाम करते, कहीं मनको सुहानेवाले स्थानोंके दर्शन करते और कहीं मुनिकी आज्ञा पाकर बैठकर सीता, राम और लक्ष्मणका स्मरण करने लगते थे। (३) वनके देवता भरतके स्वभाव, स्नेह और उनकी निष्ठापूर्ण सेवा-भावना देख-देखकर प्रसन्न हो-होकर आशीर्वाद दिए चले जा रहे थे। ढाई पहर दिन ढलनेपर वे लौट आते थे और आते ही प्रभु (राम) -के चरण-कमलोंका दर्शन करने जा पहुँचते थे। (४) इस प्रकार पाँच दिनोंमें भरतने चित्रकूटके समस्त तीर्थ-स्थान देख डाले। विष्णु और शिवके विमल यशकी कथाएँ कहते-सुनते पाँचवाँ दिन भी ढल चला और सन्ध्या हो आई ॥ ३१२ ॥ (अगले दिन) प्रातःकाल स्नान कर चुकनेपर पूरी-सभा आ जुटी जिसमें भरत, सभी ब्राह्मण और राजा जनक आदि सभी लोग उपस्थित थे। कृपालु राम अपने मनमें तो समझ रहे थे कि आज (इन लोगोंके लौट जानेका) अच्छा दिन है पर कहते हुए बहुत सकुचा रहे थे। (१) गुरु वशिष्ठ, राजा जनक, भरत और सम्पूर्ण सभा जुटी देखकर राम संकोचमें पड़े नीचा सिर किए हुए धरतीकी ओर देखे चले जा रहे थे। सारी सभा रामके इस शीलकी सराहना करती हुई सोचे जा रही थी कि सचमुच रामके समान संकोची स्वामी (संसारमें) कोई दूसरा हो नहीं सकता। चतुर भरतने रामका भाव ताड़ लिया और प्रेमपूर्वक उठकर, विशेष रूपसे धैर्य धरकर, दण्डवत् किया और फिर हाथ जोड़कर वे बोले—

३१७२ क्वचित्प्रणामं प्रकरोति मज्जति मनोभिरामं च निरीक्षते क्वचित्।
स्थित्वा क्वचिच्चात्रिनिदेशतो द्वौ बंधू ससीतौ स्मरति त्वरं पुनः॥ —धर्मसंहिता
३१७३-७४ स्वभावं च तथा स्नेहं सुसेवामवलोक्य च। आशीर्वादं प्रयच्छन्ति हर्षिता वनदेवताः॥
निवर्तते तु गहनात् सार्धं द्विप्रहरे गते। आगत्य रामपादाब्जं भूयो भूयो निरीक्षते॥शिवसं०
३१७५-७६ तीर्थस्थलानि सर्वाणि दृष्टानि पंचवासरैः। भरतेन यशः शृण्वत्यद्भुतं शिवरामयोः॥
वदत्यपि गतोघस्नः सायंकालो बभूव च। —अगस्त्यसंहिता
३१७७-७८ प्रातः स्नात्वा समाजश्चैकत्रितोभून्महीसुराः। भरतो मिथिलाधीशः स्वांते ज्ञात्वा शुभं दिनम्॥
रामचन्द्रः कृपालुश्च संकुचत्येव भाषितुम्॥ —अगस्त्यसंहिता
३१७९-८० गुरुं नृपं च भरतं सभां वीक्ष्य रघूत्तमः। भूमिं ददर्श संकोचाच्छुशोच सकला सभा॥
शीलं प्रशस्य कुत्रापि नास्ति रामसमः प्रभुः। —अगस्त्यसंहिता
३१८१-८२ वीक्ष्य रामेंगितं सुज्ञश्चोत्थाय भरतो द्रुतं। विधाय धैर्यं सप्रेम दंडवत्प्रणिपत्य च॥
भूत्वा कृतांजलिः प्राह रुचिर्मे नाथ रक्षिता। —भरद्वाजरामायण

मोहिँ लगि सहेउ सबहि संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू।
अब गोसाइँ ! मोहिँ देउ रजाई। सेवउँ अवध, अवधि - भरि जाई। (४)
दो०—जेहि उपाय पुनि पाँयँ, जन , देखइ, दीनदयाल।
सो सिख देइय अवधि - लगि , कोसल - पाल कृपाल ॥ ३१३ ॥
पुरजन, परिजन, प्रजा, गोसाँई। सब सुचि, सरस, सनेह, सगाई।
राउर बदि, भल भव - दुख - दाहू। प्रभु - बिनु, बादि परम - पद - लाहू। (१)
स्वामि सुजान, जानि सब ही - की। रुचि लालसा रहनि जन जी - की।
३१९० प्रनतपाल पालहिँ सब काहू। देउ दुहूँ दिसि ओर निबाहू। (२)
अस मोहिँ सब बिधि भूरि भरोसो। किये बिचार, न सोच - खरोसो।
आरति मोर, नाथ - कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ, हठि मोँहू। (३)
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सँकोच, सिखइय अनुगामी।
भरत - बिनय सुनि, सबहि प्रसंसी। खीर - नीर - बिबरन - गति हंसी। (४)

'नाथ ! आपने मेरी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर डालीं। (३) मेरे लिये सब लोगोंने बहुत कष्ट सहे और आपको भी (हम लोगोंके कारण) बहुत कष्ट हुआ। अब स्वामी ! आज्ञा दीजिए कि मैं जाकर अवधि-भर (चौदह वर्ष) अयोध्याकी सेवा करता रहूँ। (४) दीनदयालु ! आप मुझे कोई ऐसा उपाय बता दीजिए जिससे मैं पुनः आपके चरणोंके दर्शन कर सकूँ। कृपालु कोशल-पाल ! इस अवधि (१४ वर्ष) तक मुझे क्या करना होगा यह भी समझानेकी कृपा कीजिएगा ॥ ३१३ ॥ स्वामी ! (अयोध्या) नगरके निवासी, कुटुम्बी लोग और प्रजा सब आपसे शुद्ध प्रेम करनेके नाते बड़े पवित्र हैं, क्योंकि आपसे जिसका सम्बन्ध हो जाता है उसे संसारका दुःख और ताप भी अच्छा लगने लगता है और आपसे संबंध न हो तो परम पद (मोक्ष) भी व्यर्थ लगने लगता है। (१) सुजान, प्रणतपाल स्वामी ! आप अपने सभी भक्तोंके मनकी रुचि, उनकी लालसा और उनका सारा रहन-सहन जानकर उन सबका पालन करते रहते हैं। देव ! अन्त-तक दोनों ओरका निर्वाह करना (इस लोकमें सुयश तथा परलोकमें मोक्ष देना) आपके ही हाथमें है, (२) इसका मुझे सब प्रकारसे पूरा भरोसा है। इसलिये विचार करनेपर लेशमात्र भी चिन्ता और आक्रोशकी बात नहीं रह जाती। मेरे दुःख और आपके प्रेम, दोनोंने मिलकर मुझे हठ-पूर्वक बड़ा ढीठ बना छोड़ा है। (३) इसलिये स्वामी ! मेरा यह बड़ा भारी दोष दूर करके और संकोच त्यागकर, इस दासको आप (कर्त्तव्यकी) शिक्षा (देनेकी कृपा) कीजिएगा।' भरतकी विनय सुनकर सबने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—'यह विनय क्या, यह तो दूध और पानीको अलग-अलगकर देनेवाली हंसिनी है (इस विनयमें गुण और दोष अलग-अलग कर डालनेकी शक्ति भरी है)।

३१८३-८४ मत्कृते व्यसनं प्राप्तं बहुलं भवता प्रभो। सांप्रतं देहि मेऽनुज्ञां गमनायावधस्य च ॥ कश्यपसं०
३१८५-८६ येनोपायेन भूयस्ते पादौ पश्येज्जनः प्रभो। सैव मे दीयतां शिक्षा कृपालो कोशलापते ॥ जैमिनिपु०
३१८७-८८ सर्वेषां सत्यसंबंधो दयालो भवता समम्। त्वदर्थं दुःखसहनं वरं मोक्षोऽफलस्त्वया ॥
३१८९-९० सुज्ञस्त्वं वेत्सि सर्वेषां हृद्रुचि लालसां तथा। सर्वेषां पालनं चापि करोषि नितरां प्रभो ॥
लोकस्य परलोकस्य निर्वाहस्त्वत्करेऽस्ति वै। —सूतसंहिता
३१९१ सर्वथा मेऽस्ति विश्वासः श्रीमान् हृष्टो ममोपरि। —ब्रह्मरामायण
३१९३-९४ दोषं मे दुरितः कृत्वा संकोचं च विहाय च। शिक्षा मे दीयतां नाथ भरतस्य च नम्रताम् ॥
प्रशशंसुर्जनाः सर्वे नीरक्षीरविवेकिनीम्। —वामदेवसंहिता

दो०–दीनबंधु, सुनि बंधु - के, बचन दीन, छल - हीन।
देस - काल - अवसर - सरिस, बोले राम प्रबीन ॥ ३१४ ॥
तात ! तुम्हारि, मोरि, परिजन - की। चिंता गुरुहिं, नृपहिं, घर - बन-की।
माथे - पर गुरु मुनि, मिथिलेसू। हमहिं-तुम्हहिं सपनेहुँ न कलेसू। (१)
मोर - तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ, सुजस, धरम, परमारथ।
३२०० पितु - आयसु पालिहिं दुहुँ भाई। लोक - बेद भल, भूप - भलाई। (२)
गुरु-पितु - मातु - स्वामि - सिख पाले। चलेहु कुमग, पग परहिं न खाले।
अस बिचारि, सब सोच बिहाई। पालहु अवध, अवधि - भरि जाई। (३)
देस, कोस, परिजन, परिवारू। गुरु - पद - रजहिं लाग छरुभारू।
तुम मुनि-मातु-सचिव-सिख मानी। पालहु पुहुमि, प्रजा, रजधानी। (४)
दो०–मुखिया मुख - सों चाहिए, खान - पान - कहँ एक।
पालइ, पोषइ, सकल अँग, तुलसी, सहित - बिबेक ॥ ३१५ ॥

(४) दीनबन्धु, प्रवीण राम अपने भाई (भरत)-के छलहीन, दीन वचन सुनकर देश, काल और अवसरके अनुकूल कहने लगे—॥ ३१४) 'देखो भाई ! तुम्हारी, मेरी, कुटुम्बकी, घरकी और मेरे वनमें रहनेकी सारी चिन्ता तो गुरु वशिष्ठको और राजा जनकको है ही। जबतक हम लोगोंके सिरपर गुरु वशिष्ठ और मिथिलेश बैठे हैं, तबतक तुम्हें और हमें किसी बातका स्वप्नमें भी कोई क्लेश नहीं हो सकता। (२) मेरा और तुम्हारा परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ (कल्याण) इसीमें है कि हम दोनों भाई (मैं और तुम) जा-जाकर पिताकी आज्ञाका पालन करें। लोक और वेद दोनोंकी दृष्टिमें यही करना आवश्यक भी है और इसीसे राजा दशरथका भी यश बढ़ेगा। (२) गुरु, पिता, माता और स्वामीकी शिक्षाका पालन करनेके लिये कुमार्गपर भी चलना पड़े तो भी खालेमें पैर नहीं पड़ता (गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाला व्यक्ति यदि भूलसे कोई बुरा कार्य भी कर बैठे, तो भी वह समाजकी दृष्टिमें बुरा नहीं समझा जाता)। ऐसा विचार करके सब चिन्ता छोड़कर तुम अवधि-भर (१४ वर्ष) जाकर निष्ठाके साथ अयोध्याका पालन करते रहो। (३) देश, कोष (खजाना), नगरवासी और परिवारका उत्तरदायित्व तो गुरुके चरण-रजकी कृपापर है (गुरुकी कृपासे देश, कोष, नगरवासी और परिवार सब सुरक्षित रहेंगे)। मुनि वशिष्ठ, माता और मंत्रियोंकी शिक्षा मानकर तुम पृथ्वी, प्रजा और राजधानीका (सावधानीसे) पालन करते रहो। (४) (तुलसीदास कहते हैं) मुखिया (स्वामी या शासक) तो मुखके समान होना चाहिए, जो खाता-पीता तो अकेले है, पर विवेक-पूर्वक (जिस अंगके लिये जितना आवश्यक हो उतना पोषण देकर) सारे अंगोंका पालन करता रहता है ॥ ३१५ ॥ जिस प्रकार मनमें अनेक

३१९५-९६ दीनबंधुर्वचो बंधुर्दीनं निष्कपटं तथा। श्रुत्वा कालानुकूलं च प्रोवाच चतुरो हरिः॥वामदेवसंहिता
३१९७ आवयोश्च कुटुंबस्य भवनस्य वनस्य च। चितास्ति मुनिराज्ञोश्च स्वप्ने क्लेशो न चावयोः॥अद्०रा.
३२०० आवयोः परमो धर्मः पितुराज्ञाप्रपालनम्। –भगवत्संहिता
३२०१ गुरोश्च मातुश्च पितुः प्रभोश्च शिक्षां सदा ये परिपालयंति।
तेषां हि दोषोपि भवत्यदोषो गन्छावधं तात विचार्य चैवम् ॥ –महेश्वरसंहिता
३२०३-४ देशस्य कोषस्य पुरस्य रक्षा भविष्यति श्रीगुरुपादधूल्या।
मुनेश्च मातुः सचिवस्य शिक्षां मत्वा प्रजाः पालय राजधानीम् ॥ –अगस्त्यसंहिता
३२०५-६ प्रधानो मुखवद् भाव्यो यश्चात्त्येकः पिबत्यपि। पुष्यत्यंगानि सर्वाणि रक्षत्यपि विवेकतः॥शिवसं०

राज - धरम - सरवस ऐतनोई । जिमि मन - माहँ मनोरथ गोई ।
बंधु - प्रबोध कीन्ह बहु भाँती । बिनु अधार, मन तोष न साँती । (१)
भरत - सील, गुरु - सचिव - समाजू । सकुच - सनेह - बिबस रघुराजू ।
३२१० प्रभु, करि कृपा, पाँवरी दीन्हीं । सादर भरत, सीस धरि लीन्हीं । (२)
चरन - पीठ करुनानिधान - के । जनु जुग जामिक प्रजा - प्रान - के ।
संपुट भरत - सनेह - रतन - के । आखर जुग जनु जीव - जतन - के । (३)
कुल - कपाट, कर कुसल करम - के । बिमल नयन, सेवा-सु-धरम - के ।
भरत मुदित, अवलंब लहे - तें । अस सुख, जस सिय - राम रहे-तें । (४)
दो०—माँगेउ बिदा, प्रनाम करि, राम, लिए उर लाइ ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल, कुअवसर पाइ ॥ ३१६ ॥
सो कुचालि सब - कहँ भइ नीकी । अवधि - आस - सम जीवन जी-की ।

मनोरथ छिपे रहते हैं वैसे ही सारे राजधर्मका भी तत्त्व गोपनीयता ही समझो (सब कुछ मनमें छिपाए रखना ही राजनीति है) ।' यद्यपि रामने भाई भरतको अनेक प्रकारसे समझाया पर उन्हें बिना किसी अवलम्बके (जिसे वे रामके स्थानपर प्रतिष्ठित कर सकें) उनके चित्तमें सन्तोष और शान्ति नहीं मिल पा रही थी । (१) भरतके शीलके कारण गुरु, मंत्रियों और सभासदोंके बीच राम बड़े संकोच और स्नेहके फेरमें पड़ गए (कि इतने बड़े ज्ञानियोंके बीचमें कुछ देने चलूं तो बड़ी धृष्टता होगी और न दूँ तो भरतका जी छोटा होगा) । अन्तमें (भरतके विशेष प्रेम और आग्रहपर) रामने उन्हें (अवलम्बके रूपमें) अपनी खड़ाऊँ उठा थमाई जो भरतने आदरपूर्वक अपने सिरपर उठा धरी । (२) करुणानिधान रामकी दोनों खड़ाउएँ क्या थीं मानो प्रजाके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले दो पहरेदार हों, भरतके प्रेमरूपी रत्नको सुरक्षित रक्खे रखनेवाले दो डिब्बे हों, भरतके जीवनकी रक्षा करनेवाले मानो 'राम' नामके दो अक्षर हों, (३) रघुकुलकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले मानो दो किवाड़ हों, काम करनेकी कुशलतासे भरे मानो दो हाथ हों और सेवा-रूपी धर्म भलीभाँति देखनेके लिये मानो दो निर्मल नेत्र हों । ऐसा श्रेष्ठ अवलम्ब (सहारा) पाकर भरत फूले नहीं समाए । उन्हें अब (खड़ाउओंके साथ रहनेकी कल्पनासे) वैसा ही सुख (संतोष) प्रतीत होने लगा जैसा सीता और रामके साथ रहनेमें होता । (४) जब रामको प्रणाम करके भरत बिदा माँगने आए तो रामने उन्हें हृदयसे उठा लगाया । इधर कुटिल इन्द्रने अवसर पाकर लोगोंका चित्त भी बड़ा उचाट कर डाला था ॥३१६॥ पर इन्द्रकी यह कुचाल सबके लिये अच्छी ही सिद्ध हुई, क्योंकि वह उचाट उन्हें अवधि (१४ वर्ष)-तक जिलाए रखनेके लिये आशाकी

३२०७-८ एतावान् राजधर्मोऽस्ति मनस्येव मनोरथाः । बंधुप्रबोधं कृतवान् बहुधा नाभवत्तथा ॥
चित्ते शांतिश्च संतोषो विनाधारं महामते । —गौतमसंहिता

३२०९ मनसा चिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत् । —चाणक्यनीति

३२१० इति निगदितवन्तं राघवस्तं जगाद व्रज भरत गृहीत्वा पादुके त्वं मदीये ।
च्युतनिखिलविशंकः पूज्यमानो जनौघैः सकलभुवनराज्यं पालयास्मन्मतेन ॥ —भट्टिकाव्य

३२१४-१६ प्राप्यावलंबं भरतः प्रसन्नः प्रणिपत्य च । गन्तुमाज्ञां ययाचेत रामः श्लिश्लेष तं मुदा ॥
उच्चाटनं च कृतवान् सर्वेषां सुरनायकः । —वसिष्ठसंहिता

नतरु लखन-सिय - राम - बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा। (१)
राम - कृपा अवरेब सुधारी। बिबुध- धारि, भइ गुनद गोहारी।
३२२० भेंटत भुज भरि, भाइ भरत - सो। राम - प्रेम - रस कहि न परत सो। (२)
तन - मन - वचन उमग अनुरागा। धीर - धुरंधर, धीरज त्यागा।
बारिज - लोचन मोचत बारी। देखि दसा, सुर - सभा दुखारी। (३)
मुनि - गन, गुरु, धुरधीर जनक - से। ग्यान - अनल मन कसे कनक - से।
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम - पत्र जिमि, जग-जल जाए। (४)
दो०—तेउ बिलोकि रघुवर - भरत , -प्रीति अनूप, अपार।
भये मगन मन - तन - वचन , सहित विराग - विचार ॥ ३१७ ॥
जहाँ जनक - गुरु - गति - मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी।
बरनत रघुबर - भरत - बियोगू। सुनि, कठोर कबि जानिहिँ लोगू। (१)
सो सँकोच - रस, अकथ सुबानी। समउ, सनेह, सुमिरि सकुचानी।

संजीवनी वन गई। ऐसा न हुआ होता तो सीता, राम और लक्ष्मणके वियोगके कुरोगसे सब तड़प-तड़पकर प्राण छोड़ बैठते। (१) रामकी कृपाने देवताओंके खड़े किए संकटको इस प्रकार उपकार करनेवाला बना दिया जैसे रक्षाके लिये की हुई पुकार लाभकर होती है। जब रामने भरतको अपने बाहुओंमें लपेट लिया उस समयका भरतका प्रेम वर्णन करते नहीं बन रहा है। (२) उनके तन, मन और वचनसे प्रेम ही प्रेम फूटा पड़ रहा था। धीर-धुरन्धर राम भी उस समय अपना धीरज खो बैठे। उनके कमलके समान नेत्रोंसे भी भरभर आँसू बह चले। देवताओंने जब उनकी भी यह दशा देखी तो देवताओंकी सारी सभा भी दुखी हो चली। (३) सब मुनि, गुरु वशिष्ठ तथा धीर-धुरन्धर राजा जनक, जो ज्ञानरूपी अग्निमें अपने मनको सोनेके समान तपा चुके थे, जिन्हें ब्रह्माने (मोह-मायासे) निर्लिप्त कर रक्खा था तथा जो संसार-रूपी जलमें कमल-पत्रके समान (अछूते) उत्पन्न हुए थे, (४) वे (सब मुनि, वशिष्ठ और जनक) भी राम और भरतका अनुपम और अपार प्रेम देखकर अपना वैराग्य और विवेक लिए-दिए उसमें तन, मन और वचनसे मग्न हो चले ॥ ३१८ ॥ जहाँ जनक तथा वशिष्ठ-जैसे ज्ञानी और पूर्ण विरागीकी बुद्धि भी चकरा उठे, उस प्रेमका वर्णन साधारण सांसारिक प्रेमके समान कर देना कुछ उचित न होगा। जो भी सुनेगा कि तुलसीने राम और भरतके वियोगका वर्णन किया है वह कह उठेगा कि यह बड़ा कठोर कवि है इसलिये मैं उनके वियोगका वर्णन कर ही नहीं रहा हूँ। (१) इसी डरके मारे मेरी काव्य-वाणी उसका वर्णन कर नहीं पावेगी। उस अवसरका और उस प्रेमका

३२१७-१८ उच्चाटनं सर्वहिताय जातं न चेज्जना दुःखयुताः समस्ताः।
श्रीरामरामानुजविप्रयोगे प्राणैर्विहीनाश्च भवन्तु नूनम् ॥ —अगस्त्यसंहिता
३२२०-२२ भरतं भुजाभ्यां रामः शिश्लेषातिपराक्रमः। प्रवृद्धेनानुरागेण धैर्यं तत्याज राघवः ॥
मुमोच वारि नेत्राभ्यां दशां वीक्ष्यातिदुःखिता। काये वचसि चित्ते च सर्वदेवसभा मुने॥पुलस्त्यसं०
३२२३-२६ वसिष्ठो जनकश्चैव तथा मुनिगणा अपि। विलोक्य रामचन्द्रस्य प्रीतिं श्रीभरतस्य च॥
अपारामुपमाशून्यां मनसा कर्मणा गिरा। वैराग्येण विचारेण सार्धं मग्नाश्च तेऽभवन्॥
३२२७-२८ यत्र वृद्धवसिष्ठस्य राजर्षिजनकस्य च। धिषणा चकिता जाता प्रकृतानां न का कथा॥
वियोगवर्णनं श्रुत्वा रामस्य भरतस्य च। ज्ञास्यंति सकला लोकाः कवयः कठिना इति॥

३२३० भेंटि भरत, रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवन, हरषि हिय लाए। (२)
सेवक, सचिव, भरत - रुख पाई। निज-निज काज लगे सब जाई।
सुनि दारुन दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन - के साजन साजा। (३)
प्रभु - पद - पदुम बंदि दोउ भाई। चले, सीस धरि राम - रजाई।
मुनि, तापस, बन - देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि - बहोरी। (४)

दो०—लखनहिं भेंटि, प्रनाम करि , सिर धरि सिय-पद-धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि , सकल - सुमंगल - मूरि ॥ ३१८ ॥

सानुज राम, नृपहिं सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय - बड़ाई।
देव ! दया - बस बड़ दुख पायउ। सहित-समाज काननहिं आयउ। (१)
पुर पग धारिय, देइ असीसा। कीन्ह, धीर धरि, गवन महीसा।
३२४० मुनि, महिदेव, साधु सनमाने। बिदा किए हरि-हर - सम जाने। (२)
सासु - समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग, आसिष पाई।
कौसिक, बामदेव, जावाली। पुरजन, परिजन, सचिव सुचाली। (३)

तो स्मरण करते ही मेरी वाणी लजा बैठी है। रामने भरतको गले उठा लगाया और उन्हें बहुत-बहुत धीरज बँधाया। फिर हर्षके साथ शत्रुघ्नको हृदयसे उठा लगाया। (२) भरतका संकेत पाकर सेवक और मंत्री सब प्रस्थानकी तैयारीमें जुट गए। चलनेकी तैयारीका समाचार सुनते ही दोनों समाजोंमें बड़ा रोना-धोना मच गया। (३) दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) रामके चरण-कमलोंकी वन्दना करके, रामकी आज्ञा सिर-माथे चढ़ाकर वहाँसे चल पड़े। उन्होंने मुनियों, तपस्वियों और वन-देवताओंको प्रणाम करके बार-बार उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। (४) फिर लक्ष्मणसे भेंट करके और उन्हें प्रणाम करके उन्होंने सीताका चरण-रज सिरपर उठा चढ़ाया और प्रेमपूर्वक सब सुमंगल देनेवाला उनका आशीर्वाद पाकर वे चल पड़े ॥ ३१८ ॥ लक्ष्मण और रामने उठकर राजा जनकको जा प्रणाम किया। अनेक प्रकारसे उनका सम्मान करके उनकी प्रशंसा करते हुए वे कहने लगे—'देव ! आपने हमपर दया करके इतना कष्ट उठाया कि सारा समाज लिए-दिए यहाँ वन-तक उठे चले आए। (१) अब हमें आशीर्वाद देकर आप भी अपने नगर पधारनेका कष्ट करें।' तब बहुत धैर्य धारण करके राजा जनकने भी वहाँसे प्रस्थान कर दिया। (चलते समय) जनकने वहाँके मुनि, ब्राह्मण और साधुओंका बड़ा सम्मान किया और उन्हें विष्णु और महादेवके समान जानकर उनसे बिदा ली। (२) फिर दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण)-ने सासोंके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद पाकर वहाँसे लौट आए। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जावालि आदि ऋषियों, शुभ आचरणवाले कुटुम्बिजनों, नगर-वासियों तथा

३२३०-३६ रामो भरतशत्रुघ्नावालिलिंग प्रहर्षितौ। प्रणम्य रामपादाब्जे निदेशं मूर्ध्नि वै हरेः ॥
धृत्वा प्रणम्य वैदेहीं लक्ष्मणं वनदेवताः। श्रुत्वाशिषं शुभां प्रेम्णा साकेतं प्रति चेलतुः ॥आन०रा०

३२३७-३८ सानुजो नृपतिं रामः प्रणम्य प्रशशंस च। महद्दुःखं त्वया प्राप्तं महाराजदयावशात् ॥
समाजसहितो घोरं काननं यत्त्वमागतः।

३२३९-४० दत्वाशिषं व्रज पुरीं धैर्यं धृत्वा महीपतिः। गमनं कृतवान् विप्रान्मुनीन् साधुजनांस्तथा ॥
सम्मान्य प्रेषयामास ज्ञात्वा हरिसमान् हरिः।

जथाजोग करि विनय - प्रनामा। विदा किये सब सानुज रामा।
नारि - पुरुष लघु, मध्य, वड़ेरे। सब सनमानि, कृपानिधि फेरे। (४)
दो० - भरत - मातु - पद बंदि प्रभु , सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी , सकुच-सोच सब मेटि ।। ३१९ ।।
परिजन - मातु - पितहिं मिलि सीता। फिरीं प्रान - प्रिय - प्रेम - पुनीता।
करि प्रनाम, भेंटी सब सासू। प्रीति कहत, कबि-हिय न हुलासू। (१)
सुनि सिख, अभिमत आसिष पाई। रही सीय, दुहुँ प्रीति समाई।
३२५० रघुपति पट - पालकी मँगाईं। करि प्रबोध, सब मातु चढ़ाईं। (२)
बार - बार हिलि - मिलि दुहुँ भाई। सम - सनेह जननी पहुँचाई।
साजि बाजि - गज - वाहन नाना। भरत - भूप - दल कीन्ह पयाना। (३)
हृदय राम - सिय - लखन - समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता।
बसह - बाजि - गज - पसु हिय हारे। चले जाहिं परबस मन मारे। (४)
दो०—गुरु, गुरुतिय - पद बंदि प्रभु , सीता - लखन - समेत।
फिरे हरष - बिसमय - सहित , आये परन - निकेत ।। ३२० ।।

मन्त्रियों आदि सबको (३) राम और लक्ष्मणने यथायोग्य विनयपूर्वक प्रणाम कर-करके विदा किया। फिर जितने अपने-से छोटे, समान अवस्थावाले और बड़े स्त्री-पुरुष थे उन सबका कृपानिधान रामने (यथोचित) सम्मान करके उन्हें भी विदा किया। (४) फिर प्रभु रामने पवित्र स्नेहसे मिल-भेंटकर माता कैकेयीके चरणोंमें जा प्रणाम किया और उनका सब संकोच (ग्लानि) और चिन्ता दूर करके उनकी पालकी सजवाकर उन्हें भी विदा किया ।। ३१९ ।। सबको प्राणके समान प्रिय और पवित्र प्रेम करनेवाली सीता भी अपने कुटुम्बियों और माता-पितासे मिलकर लौट आईं। सीताने आकर प्रणाम करके सब सासुओंसे भेंट की। उनकी उस प्रीतिका वर्णन करनेके लिये कविके हृदयमें तनिक भी शक्ति नहीं आ पा रही है। (१) सीता भी उनसे उपदेश लेकर और मनोवांछित आशीर्वाद पाकर देरतक दोनों ओरके (मायके और ससुरालके) प्रेममें डूबी बैठी रहीं। रामने सब माताओंको बहुत समझा-बुझाकर (ढाढ़स बँधाकर) और बढ़िया पालकी मँगवाकर उसपर ले जा बैठाया। (२) दोनों भाई समान प्रेमसे सब माताओंसे बार-बार मिले और उन्हें (कुछ दूर तक) पहुँचा आए। राजा जनक और भरतके दोनों दलोंने अपने-अपने हाथी-घोड़े सजा-सजाकर वहाँसे प्रस्थान कर दिया। (३) सब लोग अपने-अपने हृदयमें लक्ष्मण, राम और जानकीका ध्यान करते हुए ऐसे चले जा रहे थे जैसे उन्हें चेत न हो कि जा कहाँ रहे हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु भी दुखी मनसे किसी-किसी प्रकार हाँके जानेके कारण मन मारे चले जा रहे थे। (४) सीता और लक्ष्मणके साथ प्रभु रामने गुरु वशिष्ठ तथा गुरु-पत्नी अरुन्धतीके चरणोंमें जा प्रणाम किया और (फिर उन्हें बिदा करके)-वे हर्ष (कि पिताके वचनोंके पालनका अवसर मिल गया) और दुःख (कि

३२४१-४३ श्वश्रूसमीपं रघुनन्दनो गतः सलक्ष्मणस्तां प्रणिपत्य सादरम्।
सर्वान्मुनीन्सर्वजनान् यथोचितं संप्रेषयामास समर्च्य चेश्वरः। —आनन्दरामायण
३२४५-४६ श्रीरामः प्रेषयामास नत्वा भरतमातरम्। अपनीय च संकोचं चिंतां तस्याश्च सादरम् ।।आनन्दरा०
३२४७-४८ सीता प्रणम्य पितरौ निवृत्ता चाश्रमं प्रति। श्वश्रूगणान्समालिङ्ग्य प्रेम वक्तुमलं न कः ।।अगस्त्यरा०
३२५०-५२ प्रणम्य जननीः सर्वा प्रेषयामास कोसलाम्। भरतस्य महीपस्य सेना प्रचलिता पुरीम् ।।
३२५३-५६ ध्यायंतः श्रीपतिं सर्वे गच्छंति किल कोसलाम्। गुरुं गुरुस्त्रियं नत्वा निवृत्तः स्वाश्रमं हरिः ।।आ०रा०

विदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह - बिषादू।
कोल, किरात, भिल्ल, बनचारी। फेरे, फिरे जोहारि जोहारी। (१)
प्रभु - सिय - लखन बैठि बट - छाँहीं। प्रिय - परिजन- बियोग बिलखाहीं।
३२६० भरत - सनेह, सुभाउ, सुबानी। प्रिया-अनुज-सन कहत बखानी। (२)
प्रीति, प्रतीति, बचन, मन, करनी। श्रीमुख, राम, प्रेम - बस बरनी।
तेहि अवसर खग - मृग - जल - मीना। चित्रकूट चर - अचर मलीना। (३)
बिबुध बिलोकि दसा रघुबर - की। बरषि सुमन, कहि गति घर-घरकी।
प्रभु, प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन, डर न खरोसो। (४)

दो०—सानुज सीय - समेत प्रभु , राजत परन - कुटीर।
भगति - ग्यान - बैराग्य जनु , सोहत धरे सरीर ॥ ३२१ ॥

मुनि, महिसुर, गुरु, भरत, भुआलू। राम - बिरह सब साज बिहालू।
प्रभु - गुन - ग्राम गनत मन - माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं। (१)
जमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर, बिनु भोजन गयऊ।
३२७० उतरि देवसरि, दूसर बासू। राम - सखा सब कीन्ह सुपासू। (२)

परिजनोंसे वियोग हो गया)-के साथ अपनी पर्णकुटी (आश्रम)-में लौट आए ॥ ३२० ॥ तब रामने सम्मानके साथ केवटोंके सरदारको भी विदा किया। वह भी अपने हृदयमें (रामके) विरहकी उदासी लिए वहाँसे लौट चला। कोल, किरात, भील, आदि वनचरोंको भी रामने विदा कर दिया जो जोहार (प्रणाम) कर-करके अपने-अपने गाँव लौट गए। (१) सीता, राम और लक्ष्मण जाकर बरगदकी छायामें अपने प्रिय परिजनोंके वियोगसे कुछ देर बड़े दुखी हुए बैठे रहे। राम भी अपनी प्रिया जानकी और लक्ष्मणसे भरतके प्रेम, स्वभाव और उनकी प्रेम-भरी बातोंका बैठे देरतक बखान करते रहे। (२) राम अपने श्रीमुखसे बहुत प्रेममें भरकर मन, वचन और कर्मसे जी खोलकर भरतके प्रेम और विश्वासकी सराहना करते रह गए। उस समय (उनकी बातें सुन-सुनकर) चित्रकूटके पशु, पक्षी, जलजन्तु (मछली आदि) सभी चर और अचर दुखी हो चले। (३) रामको यह दशा देखकर देवताओंने उनपर फूलोंकी झड़ी लगा दी और सबने रामके पास आकर अपने-अपने लोकोंकी सारी दशा कह सुनाई। जब रामने उन्हें प्रणाम करके उन्हें बहुत सान्त्वना दी तब वे प्रसन्न होकर चल दिए और उनके मनमें तनिक भी डर नहीं बचा रह गया। (४) भाई लक्ष्मण, सीता और राम अपनी पर्णकुटीमें बैठे ऐसे शोभा दे रहे थे, मानो भक्ति, ज्ञान, और वैराग्य ही शरीर धारण करके वहाँ आ विराजे हों ॥ ३२१ ॥

मुनि, ब्राह्मण, गुरु वशिष्ठ, भरत और राजा जनक रामके विरहमें बड़े अनमने-से होकर रामका गुणगान करते हुए मार्गमें चुपचाप चले जा रहे थे। (१) उस दिन सब लोग यमुना उतरकर पार हुए और (वहाँ डेरा डालकर) उस दिन बिना भोजनके ही रह गए। दूसरे दिन गंगा पार करके

३२५७ निषादं प्रेषयामास समाहूत्य रघूत्तमः। भरतस्य शुभां प्रीतिं शशंस प्रिययोः पुरः।
३२६२-६३ तदा चराचराः सर्वे चित्रकूटनिवासिनः। देवाश्च दुःखिता जाता रामावस्थां विलोक्य वै॥
३२६५-६६ सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमंदिरे। भक्तिज्ञानविरागाश्च राजन्ते देहिनो यथा॥
३२६७-७० मार्गे गच्छन्ति सर्वे ते श्रीरामविरहाकुलाः। तूष्णीमुत्तीर्य कालिंदीं निराहाराश्च जाह्नवीम्॥
उत्तीर्य लोकाः संतुष्टा बभूवुर्गुहसेवया॥ आनन्दरामायण

सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये।
जनक रहे पुर, बासर चारी। राज - काज सब साज सँभारी। (३)
सौंपि सचिव, गुरु, भरतहिं राजू। तिरहुति चले, साजि सब साजू।
नगर - नारि - नर, गुरु - सिख मानी। बसे सुखेन राम - रजधानी। (४)
दो०—राम - दरस-लगि लोग सब , करत नेम - उपवास।
तजि-तजि भूषन-भोग-सुख , जियत अवधि - की आस ।। ३२२ ।।
सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज-निज काज पाइ सिख ओधे।
पुनि सिख दीन्हि, बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु - सेवकाई। (१)
भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम, बर बिनय निहोरे।
३२८० ऊँच - नीच कारज, भल - पोचू। आयसु देब, न करब सँकोचू। (२)
परिजन, पुरजन, प्रजा बोलाए। समाधान करि, सुबस बसाए।
सानुज गे गुरु - गेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी। (३)
आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि, तन पुलकि सपेमा।
समुझब, कहब, करब तुम जोई। धरम - सार जग होइहि सोई। (४)

उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया। वहाँपर केवटोंके सरदारने उनके लिये सब प्रकारकी सुविधाकी व्यवस्था कर दी थी। (२) फिर सई नदी पार करके उन्होंने गोमतीमें स्नान जा किया और चौथे दिन सब लोग अयोध्या जा पहुँचे। जनकने वहाँ चार दिन ठहरकर राज-काजकी सारी सुव्यवस्था करा डाली। (३) फिर भरत, मंत्री और गुरुको सब राज्य-व्यवस्था सौंपकर जनक अपना सब साज-सामान ठीक करके तिरहुत (तीरभुक्ति, जनकपुर) चले गए। इधर नगरके सब नर-नारी गुरु वशिष्ठकी आज्ञाके अनुसार चलते हुए सुख-पूर्वक रामकी राजधानीमें रहने लगे। (४) रामका पुन: दर्शन पानेकी लालसासे सब लोग नियम और उपवास आदि करने लगे। अपने आभूषण और सुख-भोग त्यागकर सब लोग अवधि (बीतने)-की आस लगाए जीवन धारण किए जा रहे थे ।। ३२२ ।। भरतने भी मंत्रियों और चतुर कर्मचारियोंको राज्यका जो-जो प्रबन्ध सौंपा उसीके अनुसार सब लोग अपने-अपने काममें जुट गए। फिर भरतने भाई शत्रुघ्नको बुलाकर उन्हें सब कर्तव्य समझाकर उनपर माताओंकी सेवा करनेका भार सौंप दिया। (१) भरतने ब्राह्मणोंको बुलाकर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और विनयके साथ उनसे निहोरा (प्रार्थना) करते हुए कहा कि 'आप लोग छोटा-बड़ा ऊँच-नीच जो भी कार्य कराना ठीक समझें बिना संकोचके आज्ञा देते रहिएगा।' (२) उसके पश्चात् भरतने कुटुम्बी, नगरवासी और प्रजाजनोंको बुला भेजा और सबको यह आदेश दे दिया कि आप लोग सन्तोष और स्वतन्त्रताके साथ अपना-अपना काम-धन्धा करते चलिए। यह सब व्यवस्था करके वे अपने छोटे भाईके साथ गुरु वशिष्ठके घर जा पहुँचे और उन्हें दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले—(३) 'आपकी आज्ञा हो तो मैं इस अवधि (चौदह वर्ष)-में विशेष नियमका

३२७१ सयीमुत्तीर्य गोमत्यां स्नात्वा तुर्ये दिनेऽवधे। आगतो जनकः स्थित्वा भरताग्र चतुर्दिनम् ।।
राज्यं समर्प्य मिथिलां गतः कोशलवासिनः। गुरोर्निदेशेनातिष्ठन् अयोध्यायां सुखेन तु ।।
३२७५-७६ नियमं चोपवासं च कुर्वन्ति निखिला जनाः। श्रीरामदर्शनार्थं तु परित्यज्य भूषाणि च ।।
अवधेराशया किंतु जीवनं धारयंति ते ।।
३२७७-८१ नियुज्य मंत्रिणो राज्यकार्ये श्रीभरतानुजम्। सेवां समर्प्य मातृणां प्रणिपत्याह भूसुरान् ।।
आज्ञाप्रदाने संकोचं नैव कार्यं कदाचन। प्रजां निवासयामास समाहूय प्रबोध्य च ।। आन०रा०

दो०—मुनि सिख, पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि, दिन साधि।
सिंघासन प्रभु-पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥ ३२३ ॥
राम-मातु, गुरु-पद सिर नाई। प्रभु-पद-पीठ-रजायसु पाई।
नंदिगाँवँ करि परन-कुटीरा। कीन्ह निवास धरम-धुर-धीरा। (१)
जटा-जूट सिर मुनिपट-धारी। महि खनि, कुस-साथरी सँवारी।
३२९० असन-बसन-बासन-व्रत-नेमा। करत कठिन रिषि-धरम सपेमा। (२)
भूषन-बसन-भोग-सुख भूरी। मन-तन-वचन तजे तिन तूरी।
अवध-राज, सुरराज सिहाई। दसरथ-धन सुनि, धनद लजाई। (३)
तेहि पुर बसत भरत बिनु-रागा। चंचरीक जिमि चंपक-बागा।
रमा-बिलास राम-अनुरागी। तजत वमन-जिमि, जन बड़-भागी। (४)
दो०—राम-पेम-भाजन भरत, बड़े न यहि करतूति।
चातक-हंस सराहियत, टेक, विवेक - बिभूति ॥ ३२४ ॥
देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेज-बल, मुख-छबि सोई।

पालन करने लगूं।' इसपर वशिष्ठ पुलकित होकर प्रेमपूर्वक बोले—'तात! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे वह सब संसारमें धर्मका तत्त्व ही माना जायगा।' (४) गुरुकी शिक्षा और आशीर्वाद पाकर भरतने ज्योतिषीको बुला भेजा और शुभ मुहूर्त शोधकर राज्य-सिंहासनपर (रामकी दी हुई) चरण-पादुका बिना किसी प्रकारकी बाधाके प्रतिष्ठित कर दी ॥३२३॥ रामकी माता कौशल्या और गुरु वशिष्ठके चरणोंमें सिर नवाकर तथा रामकी पादुकाओंसे आज्ञा लेकर धैर्यवान् धर्मात्मा भरतने (अयोध्यासे २५ किलोमीटर दक्षिण) नंदिग्राममें पर्णकुटी (झोंपड़ी) बनाकर निवास करना प्रारम्भ कर दिया। (१) सिरपर जटा बाँधकर, मुनियोंके-से वस्त्र पहनकर, धरती खोदकर उन्होंने कुशाकी चटाई ला बिछाई। इस प्रकार वे प्रेम-पूर्वक कठोर ऋषि-धर्मके अनुसार भोजन, वस्त्र और पात्र आदिके नियम और व्रतका पालन करने लगे। (२) उन्होंने तन, मन और वचनसे आभूषण, वस्त्र तथा अन्य सुख-साधन तृणके समान त्याग दिए। जिस अयोध्याका राज्य देखकर इन्द्र भी तरसता रह जाता है और राजा दशरथके जिस धन (सम्पत्ति)-का विवरण सुनकर धनद (कुबेर) भी लज्जित हो उठता है (३) उसी वैभव-भरे नगर (अयोध्या)-में भरत अनुराग (सांसारिक सुख-भोगके प्रति प्रेम) छोड़कर वैसे ही निवास करने लगे, जैसे चम्पेकी फुलवारीमें भौंरा रहा करता है (पर चम्पेका रस नहीं लेता)। (सच है,) जो रामके प्रेमी भाग्यवान् भक्त होते हैं वे लक्ष्मीके ऐश्वर्यको उसी प्रकार त्याग देते हैं (४) जैसे वमन (उबकाई)-को लोग हाथ नहीं लगाते। रामके प्रेम-पात्र भरतके लिये ऐसा त्याग कोई बहुत बड़प्पनकी बात नहीं थी क्योंकि पपीहे और हंसकी जो इतनी प्रशंसा होती है वह उनके (स्वातिका जल पीनेके) प्रण और नीर-क्षीर-विवेकके ही कारण होती है ॥ ३२४ ॥ भरतका शरीर तो दिन-दिन घुलता जा रहा था और उनका तेज और बल

३२८२-८६ गुरोर्गेहं गतो भूयः सानुजः प्रणिपत्य च। प्रोवाचाज्ञां भवेच्चेत्ते तिष्ठामि नियमेन च ॥
मुनिराज्ञापयामास धर्मसारं कुरु प्रिय। शिक्षां श्रुत्वाशिषं प्राप्य सुमुहूर्तं प्रतिष्ठिते ॥
सिंहासने चकाराशौ श्रीरामपदपादुके। —आनन्दरामायण
३२८८ नंदिग्राममवसद्धीरः ससैन्यो भरतस्तदा ॥ —वाल्मीकीयरामायण
३२९५-९६ रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥आनन्दरा०

नित नव राम - प्रेम - पन पीना । बढ़त धरम-दल, मन न मलीना । (१)
जिमि जल निघटत, सरद प्रकासे । बिलसत बेतस, बनज बिकासे ।
३३०० सम - दम - संजम - नियम - उपासा । नखत भरत-हिय-विमल-अकासा । (२)
ध्रुव बिस्वास, अवधि राका - सी । स्वामि-सुरति सुर-बीथि बिकासी ।
राम - पेम - विधु अचल, अदोखा । सहित समाज सोह नित चोखा । (३)
भरत - रहनि, समुझनि, करतूती । भगति-बिरति-गुन-बिमल-बिभूती ।
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस - गनेस - गिरा - गम नाहीं । (४)

दो० —नित पूजत प्रभु - पाँवरी , प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि-माँगि आयसु, करत , राज-काज बहु भाँति ।। ३२५ ।।

पुलक गात, हिय सिय - रघुबीरू । जीह नाम - जप, लोचन नीरू ।
लखन - राम - सिय कानन बसहीं । भरत भवन बसि, तप तनु कसहीं । (१)
दोउ दिसि समुझि, कहत सब लोगू । सब बिधि भरत सराहन-जोगू ।
३३१० सुनि व्रत - नेम, साधु सकुचाहीं । देखि दसा, मुनिराज लजाहीं । (२)

भी घटा जा रहा था पर उनके मुखकी कांति पहले जैसी बनी हुई थी, उनके हृदयमें नित्य-प्रति प्रेम भी नया और पुष्ट होता चला जा रहा था, उनके मनमें धर्मकी भावना भी बढ़ती चली जा रही थी और मनमें भी किसी प्रकारकी कसक वैसे ही नहीं रह गई थी (१) जैसे शरद्-ऋतुके प्रकाशसे जल तो घट जाता है पर बेंतके पौधे लहलहा उठते हैं और कमल खिल उठते हैं । शम, दम, संयम, नियम और उपवास ही भरतके हृदय-रूपी स्वच्छ आकाशके नक्षत्र थे । (२) राममें अटल विश्वास ही ध्रुव नक्षत्र था, चौदह वर्षकी अवधि ही पूर्णिमा थी, स्वामी (राम)-की स्मृति ही आकाश-गंगा बनकर फैली हुई थी और रामका प्रेम ही अचल और दोष-रहित (निष्कलंक) चन्द्रमा था जो अपने समाज (शम-दम आदि)-के साथ नित्य ही पूर्ण रूपसे प्रकाशित हुआ रहता था । (३) भरतका रहन-सहन, उनके विचार, उनकी कर्त्तव्य-परायणता, भक्ति, वैराग्य, गुणके निर्मल ऐश्वर्यका वर्णन करनेकी बात उठते ही सब कवि हार मान बैठते हैं, यहाँतक कि इनका वर्णन कर पाना शेष, गणेश और सरस्वतीके भी बसकी बात नहीं है । (४) भरत नित्य (नंदिग्रामसे अयोध्या आकर) प्रभुकी चरण-पादुकाका पूजन किया करते थे । उनके हृदयमें (पादुकाओंके प्रति) इतना अधिक प्रेम था कि हृदयमें समाए नहीं समा पाता था । वे उन पादुकाओंसे ही आज्ञा माँग-माँगकर सारा राज-काज चलाते रहते थे । ३२५।।
(रामके प्रेममें) भरतका शरीर दिन-रात पुलकित हुआ रहता था । उनके हृदयमें सीता और रामका निरन्तर ध्यान बना रहता था। वे जिह्वासे सदा 'राम' नाम जपते रहते थे और उनके नेत्रोंसे सदा प्रेमके आँसू बहते रहते थे । राम, लक्ष्मण और जानकी तो वनमें ही निवास कर रहे थे पर भरत तो घर (अयोध्या)-में रहकर भी तपस्यासे अपना शरीर घुलाए डाल रहे थे । (१) दोनों ओर देखकर (राम और भरतके त्यागका विचार करके) सब लोग कह उठते थे कि भरत सचमुच प्रशंसाके योग्य हैं जिनके व्रत और नियमकी बात सुन-सुनकर बड़े-बड़े साधु भी सकुचाए जाते हैं (कि इतना कठोर व्रत और नियम निभा पाना हमारे भी बसकी बात नहीं है) और जिनकी दशा देख-देखकर मुनिराज वशिष्ठ भी लज्जित हुए जा रहे थे (कि भरतने ऋषि-मुनियोंको भी हरा डाला।) (२) भरतका सारा आचरण इतना पवित्र,

---

३३०९ प्रशंसंति जनाः सर्वे भरतं रघुनन्दनम् । संकुचंति व्रतं श्रुत्वा नियमं साधुसत्तमाः ।। आन०रा०

परम पुनीत भरत - आचरनू । मधुर, मंजु, मुद - मंगल - करनू ।
हरन कठिन कलि - कलुस - कलेसू । महा - मोह - निसि - दलन दिनेसू । (३)
पाप - पुंज - कुंजर - मृगराजू । समन सकल संताप - समाजू ।
जन - रंजन, भंजन भव - भारू । राम - सनेह - सुधा - कर - सारू । (४)
छंद—सिय - राम - प्रेम - पियूष - पूरन होत जनम न भरत - को ।
मुनि-मन-अगम जम - नियम - सम - दम-बिषम-ब्रत आचरत को ।
दुख, दाह, दारिद, दंभ, दूषन, सुजस - मिस अपहरत को ।
कलिकाल, तुलसी - से सठनि, हठि राम - सनमुख करत को ।। [१२]
सो०—भरत - चरित करि नेम , तुलसी जो सादर सुनहिं ।
३३२० सीय - राम - पद पेम , अवसि होइ भव-रस-बिरति ।। ३२६ ।।

।। इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्य-
संपादनो नाम द्वितीयः सोपानः समाप्तः ।।

मधुर और सुन्दर था कि उसे जानकर आनन्द मिलता और मंगल होता है, उसे सुनकर कलियुगके घोर क्लेश दूर हो मिटते हैं, वह सूर्यके समान महामोह (अज्ञान)-की रात्रि मिटा डालता है, (३) सिंहके समान पापोंके समूहके हाथीको पछाड़ डालता है, (भरतका चरित्र) भक्तोंके सम्पूर्ण सन्ताप शमन कर डालता है, उसे सुन-सुनकर भक्त प्रसन्न हो उठते हैं, उनकी बाधाएँ दूर भाग खड़ी होती हैं तथा वह रामके प्रेम-रूपी अमृतका सार (तत्त्व) है । (४) यदि सीता और रामके प्रेम-रूपी अमृतसे पूर्ण भरतका जन्म न हुआ होता, तो संसारमें कठोर यम, नियम, शम, दम और व्रतोंका ऐसा आचरण कौन कर दिखाता जिसकी कल्पना-तक मुनि लोग नहीं कर पा सकते ? भरतके सुयश कहनेके बहाने संसारके दुःख , सन्ताप, दरिद्रता, दंभ (ढोंग, पाखंड) और अन्य दोष कौन दूर कर पाता ? और इस कलिकालमें 'तुलसीदास' जैसे शठोंको हठपूर्वक रामके सम्मुख कौन ला पहुँचा पाता ? [१२] तुलसीदास कहते हैं कि भरतका यह चरित्र जो नियम-पूर्वक आदरके साथ सुनते रहेंगे, उनके हृदयमें संसारके सुख-भोगोंसे विराग और सीता तथा रामके चरणोंमें प्रेम अवश्य हो कर रहेगा ।। ३२६ ।।

३३११-१४ पवित्रो भरताचारः सुन्दरो मंगलप्रदः । महामोहतमोहारी कलिकल्मषनाशकः ।।
सर्वसंतापसंहारी च पापकुञ्जरकेसरी । भञ्जनो भवभारस्य जनानां चित्तरंजनः ।।
श्रीरामप्रेमपीयूषकरसारसमो नृप ।।
३३१५-१८ सीतारामप्रेमपीयूषपूर्णं जन्म स्यान्नो केकयीनन्दनस्य ।
चेत्कः कुर्याद् दुर्गमान् वै मुनीनां योगान् राजन् भारतेऽस्मिन् पवित्रे ।।
दारिद्र्यदंभदाहानां दुःखदूषणयोस्तथा । कीर्तिव्याजेन को नाशं कुर्यात्कलियुगे हठात् ।।
शठान्नो कोऽपि राजेन्द्रः कः कुर्याद्रामसन्मुखे ।।
३३१९-२० चरितं भरतस्येदं श्रोष्यन्ति नियमेन ये । सीतारामपदप्रेम प्राप्स्यन्ति विरतिं भवात् ।।प्रान०रा०

।। यहाँ कलियुगके सारे पाप नष्ट कर डालनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह विमल-वैराग्य-
संपादन नामका द्वितीय सोपान (अयोध्याकांड) समाप्त होता है ।।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

•

तृतीय सोपान

(अरण्यकांड)

•

[श्लोकाः]

१ मूलं धर्म-तरोर्विवेक-जलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघन-ध्वान्तापहं तापहम् ।
मोहाम्भोधर-पूग-पाटन-विधौ स्वःसम्भवं[1] शङ्करं
वन्दे ब्रह्म-कुलं कलङ्क-शमनं श्रीराम-भूप-प्रियम् ॥ १ ॥
सान्द्रानन्द-पयोद-सौभग-तनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाण-शरासनं कटि-लसत्तूणीर-भारं वरम् ।
राजीवायत-लोचनं धृत-जटा-जूटेन संशोभितं
सीता-लक्ष्मण-संयुतं पथि-गतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

धर्म-रूपीके वृक्षके मूल (धर्मकी रक्षा करनेवाले), विवेक-रूपी समुद्रमें आनन्दकी लहरें उठानेवाले पूर्ण चन्द्र (विवेक जगानेवाले), वैराग्य-रूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्य (वैराग्य उत्पन्न करनेवाले), पाप-रूपी अन्धकारको पूर्णतः मिटा डालनेवाले, तीनों ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) दूर कर डालनेवाले, मोहके बादलोंको तितर-बितर कर डालनेवाले पवन उन शंकरको मैं वन्दना करता हूँ जो राजा रामको बहुत प्रिय हैं और जो सब प्रकारके कलंक मिटा डाल सकते हैं। (१)

जिनका शरीर आनन्दके जलसे भरे हुए घने मेघोंके समान सुहावना लगता है (जिन्हें देखनेमें ही बहुत आनन्द मिलता है), जो पीताम्बर ओढ़े हुए हैं, सजीले हैं, जिनके हाथोंमें धनुष और बाण हैं, जिनकी कमरमें बढ़िया तूणीर कसा हुआ है, कमलके समान जिनके बड़े-बड़े नेत्र हैं, जो जटाजूटके कारण बहुत प्यारे लग रहे हैं और जो सीता तथा लक्ष्मणके साथ (वनके) मार्गमें बढ़े चले जा रहे हैं, उन आनन्द मूर्त्ति रामको मैं बैठा भजे जा रहा हूँ। (२)

---

१. (क) श्वासं भवं । श्वास = पवन; भवं = शिव । (ख) खे संभवं = आकाशसे उत्पन्न पवन ।
२. शंकरं वन्दे ब्रह्मकुलं = कल्याण करनेवाले और (रामको प्रिय लगनेवाले) ब्राह्मणोंकी वन्दना करता हूँ ।

सो०–उमा ! राम - गुन गूढ़, पंडित - मुनि पावहिँ बिरति ।
१० पावहिँ मोह बिमूढ़ , जे हरि - बिमुख, न धर्म्मरति ।। क ।।
पुर-नर - भरत - प्रीति मैं गाई । मति - अनुरूप, अनूप, सुहाई ।
अब प्रभु - चरित सुनहु, अति पावन । करत जे बन, सुर-नर-मुनि-भावन । (१)
एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर, भूषन राम बनाए ।
सीतहिँ पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिक - सिला - पर सुंदर । (२)
सुरपति - सुत, धरि बायस - बेखा । सठ, चाहत रघुपति - बल देखा ।
जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा - मंद - मति पावन चाहा । (३)
सीता - चरन चोँच हति भागा[1] । मूढ़, मंद - मति - कारन कागा ।
चला रुधिर, रघुनायक जाना । सीँक, धनुष सायक संधाना[2] । (४)
दो० – अति कृपाल रघुनायक , सदा दीन - पर नेह ।
२० ता-सन आइ कीन्ह छल , मूरख अवगुन - गेह ।। १ ।।

(पार्वतीसे शंकर कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! रामचन्द्रके गुण इतने गूढ हैं कि (बड़े-बड़े) पण्डित और मुनि तो उन्हें (ठीक-ठीक) समझकर वैराग्य प्राप्त कर लेते हैं परन्तु जो भगवान्‌की ओरसे मुँह फेरे बैठे रहते हैं और धर्ममें जिनका तनिक भी विश्वास नहीं हैं, वे महामूढ लोग मोह (अज्ञान)-में ही फँसे पड़े रह जाते हैं ।। क ।। अयोध्या-वासियोंका और भरतका (रामके लिये जो) अनुपम और अवर्णनीय प्रेम था उसका वर्णन मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार कर दिया । अब तुम प्रभु रामके वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनती चलो जो वे देवता, मनुष्य और मुनियोंके मनको प्रसन्न करने लिये वनमें किए जा रहे थे ।' (१) एक बार बढ़िया-बढ़िया फूल बटोरकर रामने अपने हाथों (फूलोंके) बहुतसे आभूषण बना गूँथे और सुन्दर स्फटिक शिलापर बैठकर प्रभुने बड़े आदरके साथ वे गजरे सीताके गलेमें उठा पहनाए । (२) देवराज इन्द्रके पुत्र (जयन्त)-को क्या दुष्टता सूझी कि वह मूर्ख भी कौवा बनकर रामके बलकी थाह लेने वैसे ही वहाँ आ पहुँचा जैसे समुद्रकी थाह लेने कोई अत्यन्त मूर्ख चींटी मचली पड़ रही हो । (३) उस मूर्ख कौएको बुद्धि तो थी नहीं । वह मूर्खतावश झट सीताके चरणमें चोँच मारकर वहाँसे उड़ चला । जब रामने देखा कि (सीताके) चरणोंसे रक्त बहा चला जा रहा है तब वे तत्काल ताड़ गए (कि जयन्त चोँच मारकर उड़ भागा है) । उन्होंने झट धनुषपर सींकका बाण चढ़ाकर उस जयन्तपर चला ही तो दिया । (४) (उस जयन्तकी नीचता तो देखिए कि) जो अत्यन्त कृपालु राम दीनोंसे भी सदा स्नेह करते रहते हैं, उन-तकसे भी वह पापी मूर्ख (जयन्त) आकर यह छल करनेसे न चूका ।। १ ।। मन्त्रसे प्रेरित उस ब्रह्म-बाणको पीछे-पीछे

१. हतभागा = अभागा । २. धनुष सींक सायक संधाना ।

९-१० आकर्ण्य चरितं गूढं रामस्य मुनिपंडिताः । वैराग्यं प्राप्नुवन्त्यज्ञा मुह्यन्ति च गिरीन्द्रजे ।।शिवसं०
११ एवं गिरीन्द्रजेऽयोध्यापुर्यां रामेण यत्कृतम् । चरितं तन्मया किंचित्त्वदग्रे विनिवेदितम् ।।आन०रा०
१३-१४ आबद्धवनमालौ तौ कृतापीडावतंसकौ । भार्यापती तावचलं शोभयांचक्रतुर्भृशम् ।।–वा०रा०
१५-१७ ऐन्द्रिः काकस्तदागत्य नखैस्तुंडेन चासकृत् । सीताङ्गुष्ठं मृदु रक्तं विददारामिषाशया ।।आन०रा०
१८ इषीकास्त्रं स चादाय ब्रह्मास्त्रेणाभिमंत्रितम् । काकमुद्दिश्य चिक्षेप सोऽम्यधावद्भयान्वितः ।। नृ०पु०

प्रेरित - मंत्र ब्रह्म - सर धावा । चला भाजि बायस, भय पावा ।
धरि निज रूप, गयउ पितु - पाहीं । राम - बिमुख राखा तेहि नाहीं । (१)
भा निरास, उपजी मन त्रासा । जथा चक्र - भय रिषि दुर्बासा ।
ब्रह्म - धाम, सिव - पुर, सब लोका । फिरा स्रमित, ब्याकुल-भय - सोका । (२)
काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम - कर द्रोही ।
मातु मृत्यु, पितु समन - समाना । सुधा होइ बिष, सुनु हरिजाना । (३)
मित्र करै सत रिपु - कै करनी । ता - कहँ बिबुध - नदी, बैतरनी ।
१← सब जग, ताहि अनल - तें ताता[२] । जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता । (४)
नारद देखा बिकल जयंता । लागि दया, कोमल - चित संता ।
३० पठवा तुरत राम - पहँ ताही । कहेसि पुकारि, प्रनत-हित ! पाही । (५)
आतुर, सभय, गहेसि पद जाई । त्राहि दयाल ! त्राहि रघुराई[३] ।

आते देखते ही उस कौएकी तो जान सूख चली और वह डरके मारे सर-सराता उड़ चला । वह सीधा अपने वास्तविक रूपमें अपने पिता (इन्द्र)-के पास जा पहुँचा । पर जब इन्द्रको ज्ञात हो गया कि यह रामका विरोध (अपमान) किए चला आ रहा है तो इन्द्रने उसे बैठने तक नहीं दिया । यह देखकर तो उसका रहा-सहा धीरज भी जाता रहा । वह (उसी प्रकार) डरके मारे बेहाल हो चला जैसे सुदर्शन चक्रसे डरकर दुर्वासा ऋषि बेहाल हो चले थे । वह भय और शोकसे व्याकुल हो कर सारे ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि जितने भी लोक थे सब लोकोंमें भागता-भटकता फिरा (शरण ढूँढता फिरा), पर (२) किसीने उसे अपने पास-तक न फटकने दिया । भला रामके द्रोहीको अपने मुँह लगाता हीकौन ? (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! सुनो, जो रामसे बैर ठान बैठता है उसकी माता उसके लिये मृत्युके समान, उसके पिता भी यमराजके समान, अमृत भी विषके समान, (३) मित्र भी सैकड़ों शत्रुओंके समान और देवनदी गंगा भी उसके लिये वैतरणी (यम-लोककी नदी)-के समान बन चलती है । इतना ही नहीं भाई ! सारा संसार उसे अग्निसे भी अधिक तपन देने लगता है ।' (४) नारदने जब जयन्तको इतना व्याकुल देखा तो उन्हें बड़ी दया आ गई क्योंकि सन्तोंका चित्त तो बड़ा कोमल (दयालु) होता ही है । उन्होंने उसे यही समझाया कि तुम इधर-उधर कहीं न जाकर सीधे रामके पास चले जाओ । (नारदके कहनेसे रामके पास जाकर) वह पुकार उठा— 'हे शरणागतपर कृपा करनेवाले ! मेरी रक्षा कीजिए ।' (५) घबराए हुए और डरे हुए जयन्तने रामके चरण जा पकड़े (और वह पुकार उठा—) 'दयालु ! रक्षा कीजिए, राम ! रक्षा कीजिए ।

१. कुछ प्रतियोंमें यहाँ पर दोहा मिलता है—
दो०-जिमिजिमि भाजत शक्रसुत व्याकुल, अति दुख-दीन । तिमि-तिमि धावत राम-सर, पाछे परम प्रवीन ।।२।।
२. अनलहु ते ताता । ३. त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ।

२२ स त्विन्द्रस्य सुतो राजन्निन्द्रलोकं विवेश वै । रामास्त्रं प्रज्वलद्दीप्तं तस्यानुप्रविवेश वै ।।
विदितार्थश्च देवेन्द्रो देवैः सर्वैः समन्वितः । निष्क्रामयच्च तं दुष्टं राघवस्यापकारिणम् ।।
२४-२५ रामवध्यो न शक्यः स्याद्रक्षितुं सुरसत्तमैः । ब्रह्मेन्द्ररुद्रसंज्ञश्च त्रैलोक्ये प्रभुभिस्त्रिभिः ।। नृसिंहपु.
यत्र (टिप्पणी) यत्र ययौ काकः शरणार्थी स वायसः । तत्रोतो तदस्त्रं तु प्रविवेष भयावहम् ।। पद्मपु०
२६ निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः । नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चांडालवेश्मसु ।। पञ्चतंत्र

अतुलित बल, अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद, जानि नहिँ पाई। (६)
निज - कृत - कर्म - जनित फल पायउँ। अब प्रभु ! पाहि, सरन तकि आयउँ।
सुनि कृपाल, अति आरत बानी। एक नयन करि तजा, भवानी। (७)
सो०—कीन्ह मोह-वस द्रोह, जद्यपि तेहि-कर बध उचित।
प्रभु छाँड़ेउ करि छोह, को कृपालु रघुबीर - सम ॥ २ ॥
रघुपति, चित्रकूट बसि, नाना। चरित किए स्रुति-सुधा-समाना।
बहुरि राम, अस मन अनुमाना। होइहि भीर, सबहिँ मोहिँ जाना। (१)
सकल मुनिन्ह - सन बिदा कराई। सीता - सहित चले दोउ भाई।
४० अत्रि - आसरम जब प्रभु गयऊ[1]। सुनत महामुनि हरषित भयऊ। (२)
पुलकित गात, अत्रि उठि धाए। देखि राम आतुर चलि आए।
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम - बारि दोउ जन अन्हवाए। (३)
देखि राम - छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आस्रम तब आने।
करि पूजा, कहि बचन सुहाए। दिए मूल - फल, प्रभु मन-भाए। (४)

आपका अतुलित बल और अपनी मन्द बुद्धिके कारण आपकी अद्वितीय प्रभुता मैं समझ नहीं पाया था (६) इसीलिये मैं अपने किए हुए कुकर्मका फल पाए बैठा हूँ। अब प्रभु ! मेरी रक्षा कर लीजिए। मैं यही सोचकर यहाँ चला आया हूँ कि यहाँ मुझे शरण मिल जायगी।' शिव कहते हैं—'देखो भवानी ! कृपालु रामने जब उसकी यह अत्यन्त दुःखभरी वाणी सुनी तो (उसपर कृपा करके) उसे बस एक आँखका (काना) करके उन्होंने छोड़ दिया। (७) अपने अज्ञानके कारण उसने (रामसे) जो द्रोह किया था, उसके बदले तो उसका वध ही कर डालना चाहिए था, पर प्रभुने कृपा करके (इतना ही करके) उसे छोड़ दिया। बताओ रामके समान कृपालु दूसरा कौन होगा ?' ॥ २ ॥

चित्रकूटमें रहते हुए रामने अनेक प्रकारके ऐसे-ऐसे कार्य कर दिखाए जिन्हें सुननेसे ही अमृतके समान सुख (नया जीवन) मिल जाता है। कुछ दिन वहाँ रह चुकनेपर रामने मनमें अनुमान किया कि अब तो सभी लोग जान गए हैं कि मैं यहाँ रहने लगा हूँ। अतः, अब यहाँ निरन्तर बड़ी भीड़ जुटने लगेगी। (१) इसलिये वहाँके मुनियोंसे विदा माँगकर सीताके साथ दोनों भाई वहाँसे आगे चल दिए। जब प्रभु राम चलते-चलते अत्रि मुनिके आश्रमपर पहुँचे तो उनके आनेका समाचार पाते ही महा मुनि हर्षित हो उठे। (२) उनका शरीर पुलकित हो उठा। अत्रि मुनि झट उठे और उठकर दौड़ पड़े। उन्हें (दौड़े) आते देखकर स्वयं राम भी पग बढ़ाए आगे बढ़े चले आए। रामको दण्डवत् करते देखकर मुनिने उन्हें हृदयसे उठा लगाया और अपने नेत्रोंके बहते हुए प्रेमाश्रुओंसे दोनों भाइयोंको नहला डाला। (३) रामकी छवि देख-देखकर (अत्रि मुनिकी) आँखें शीतल (तृप्त) हो गईं और वे आदरके साथ रामको अपने आश्रममें लिवा ले गए। उनकी पूजा करके और उनसे मधुर बातें करके मुनिने उनके आगे बहुतसे मूल-फल ला धरे जिन्हें प्रभुने बहुत सराहना करके ग्रहण कर लिया। (४) आसनपर

१. अत्रि-के आस्रम जब प्रभु गयऊ।

३१-३३ पुनः सोऽभ्येत्य रामं च राजानं शरणं गतः। त्राहि त्राहि महाबाहो अज्ञानादपि कारितम्॥
३४ अस्त्रं च नेत्रमेकं तु भस्मीकृत्य समाययौ। —नृसिंहपुराण
३६ को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो।
३८-३९ दृष्ट्वा तज्जनसंबाधं रामस्तत्याज तं गिरिम्। अन्वगात्सीतया भ्रात्रा ह्यत्रेराश्रममुत्तमम् ॥अध्या०

सो०–प्रभु आसन - आसीन, भरि लोचन - सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ३ ॥
छंद–नमामि भक्त - वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्व - धाम-दं ॥ (१)
निकाम - श्यामसुंदरं। भवांबु - नाथ - मंदरं।
५० प्रफुल्ल - कंज - लोचनं। मदादि - दोष - मोचनं ॥ (२)
प्रलंब - बाहु - विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय - वैभवं।
निषंग - चाप - सायकं। धरं, त्रिलोक - नायकं ॥ (३)
दिनेश - वंश - मंडनं। महेश - चाप - खंडनं।
मुनीन्द्र - संत - रंजनं। सुरारि - वृंद - भंजनं ॥ (४)
मनोज - वैरि - वंदितं। अजादि - देव - सेवितं।
विशुद्ध - बोध - विग्रहं। समस्त - दूषणापहं ॥ (५)
नमामि इंदिरा - पतिं। सुखाकरं सतां गतिं।
भजे सशक्ति - सानुजं। शचीपति - प्रियानुजं ॥ (६)
त्वदंघ्रिमूल ये नराः। भजंति हीनमत्सराः।
६० पतंति नो भवार्णवे। वितर्क - वीचि - संकुले ॥ (७)
विविक्त - वासिन सदा। भजंति मुक्तये मुदा।

विराजमान रामकी शोभा भर-आँखों देखकर परम प्रवीण मुनिवर अत्रि, हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—॥ ३ ॥

'हे भक्तवत्सल (भक्तसे प्यार करनेवाले) ! कृपालु ! कोमल स्वभाववाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप निष्काम पुरुषोंको सदा अपने परम धाम भेजते रहते हैं। मैं भी आपके चरणोंका भजन करता हूँ। (१) आप अत्यन्त श्याम-सुन्दर हैं। संसार-रूपी समुद्रके लिये मन्दराचल हैं (सांसारिक बाधाओंको मथकर समाप्त कर डालते हैं)। आपके नेत्र खिले हुए कमलके समान हैं। मद आदि (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) दोष आप क्षण भरमें मिटा भगाते हैं। (२) प्रभो ! आपकी लम्बी-लम्बी भुजाओंका पराक्रम और आपका ऐश्वर्य समझ पाना किसीकी भी बुद्धिके वशकी बात नहीं है। आप अपने साथ तूणीर, धनुष और बाण लिए रहते हैं। आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं। (३) आप सूर्यकुलके भूषण हैं और आप ही हैं जो शंकरका धनुष दो-टूक कर पाए। आप सदा मुनीशों और सन्तोंको सुख देते रहते तथा देवताओंके शत्रुओंका नाश करते रहते हैं। (४) कामारि (शिव) सदा आपकी वन्दना करते तथा ब्रह्मा आदि देवता आपकी सेवा किया करते हैं। आप विशुद्ध ज्ञानकी मूर्ति हैं और संसारके समस्त दोष नष्ट कर डालते हैं। (५) हे लक्ष्मीके पति ! सुखोंके भांडार ! सत्पुरुषोंके एक मात्र आधार ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे शचीके पति इन्द्रके छोटे भाई (वामन) ! मैं आपका भजन करता हूँ। (६) जो मनुष्य मत्सर-रहित होकर आपके चरणोंकी सेवा करते रहते हैं वे तर्क-वितर्ककी तरङ्गोंसे भरे हुए इस संसार-सागरमें नहीं डूब पाते (संसारके चक्करमें नहीं पड़ पाते)। (७) जो एकान्तवासी पुरुष सदा प्रसन्नता-पूर्वक अपनी सब इन्द्रियाँ अपने वशमें

४०-४६ गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम्। दंडवत्प्रणिपत्याह रामोहमभिवादये ॥
पूजयामास विधिवद्भक्त्या परमया मुनिः। वन्यैः फलैः कृतातिथ्यमुपविष्टं रघूत्तमम् ॥

निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं॥ (८)
तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं।
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥ (९)
भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं।
स्वभक्त - कल्पपादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥ (१०)
अनूप - रूप - भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा - पतिं।
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज - भक्ति देहि मे॥ (११)
पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं।
७० व्रजंति नात्र संशयः। त्वदीय भक्ति - संयुताः॥ (१२)

दो०—बिनती करि, मुनि, नाइ सिर, कह, कर जोरि बहोरि।
चरन - सरोरुह नाथ! जनि, कबहुँ तजै मति मोरि॥ ४॥

अनसुइया - के पद गहि सीता। मिली बहोरि, सुसील, बिनीता।
रिषि - पतिनी - मन सुख अधिकाई। आसिष देइ, निकट बैठाई। (१)
दिव्य बसन - भूषन पहिराए। जे नित नूतन, अमल, सुहाए।
कह रिषि - बधू सरस,[1] मृदु बानी। नारि - धर्म कछु ब्याज बखानी। (२)

करके मुक्ति पानेके लिये आपका भजन किया करते हैं, वे ही आपका स्वरूप प्राप्त कर पाते हैं। (८) मैं उसी एक, और अद्भुत प्रभुका भजन किया करता हूँ जिसमें कोई इच्छा नहीं, जो ईश्वर, व्यापक, जगत्‌का गुरु, नित्य (सनातन), तुरीय (तीनों गुणोंसे परे) और केवल है (वही वह है), (९) जो केवल भावका भूखा है तथा जो कुयोगियों (सकाम तप करनेवाले विषयी पुरुषों)-को कभी मिल नहीं पा सकता, जो अपने भक्तोंको कल्पवृक्ष (-के समान) सब कुछ दे डालता है, जो समदर्शी है (कोई भेद-भाव नहीं करता), और जिसकी सेवा करनेसे सदा सुख ही सुख मिलता है, उसीका मैं भजन करता हूँ। (१०) हे अनुपम रूपवाले पृथ्वीके सुन्दर पति ! हे उर्विजा (पृथ्वीसे उत्पन्न सीता)-के पति ! मैं आपको (अत्यन्त भक्तिके साथ) प्रणाम करता हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होकर अपनी कृपा बरसा दीजिए। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। ऐसा कीजिए कि आपके चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति बढ़ती ही रहे। (११) जो मनुष्य आदर-पूर्वक यह स्तुति पढ़ेगा वह आपकी भक्ति पाकर आपका परम पद प्राप्त कर लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।' (१२) इस प्रकार अत्रि मुनिने स्तुति करके और सिर नवाकर हाथ जोड़कर कहा—'नाथ ! ऐसा कीजिए कि मेरी बुद्धि सदा आपके चरण-कमलोंमें लगी रहे।' ॥४॥ फिर सीता ने भी अनसूया (अत्रि मुनिकी धर्मपत्नी)-के चरण छू लिए और उनसे वे बड़े शील और विनीत भावसे मिलीं। यह देखकर ऋषिकी पत्नीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सीताको आशीर्वाद देकर उन्हें अपने पास बुला बैठाया। (१) उन्होंने (सीताको) ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण ला पहनाए जो सदा नये, निर्मल और चमकदार बने रहते हैं (जो न कभी मैले होते और न जिनकी चमक कम होती)। फिर ऋषिकी पत्नी उन्हें (सीताको) बतानेके बहाने मधुर और कोमल वाणीसे

१. सरल।

६७-७० स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु त्वत्कृतं मत्प्रियं सदा। देहान्ते मम सायुज्यं प्राप्नोत्यत्र न संशयः॥
७१-७२ यदि मेऽनुग्रहो राम तवास्ति मधुसूदन। त्वद्भक्तसंगस्त्वत्पादे मम भक्तिःसदास्तु वै॥आन०रा०
७३ तां तु सीता महाभागामनुसूयां पतिव्रताम्। अभ्यवादयदव्यग्रा स्वं नाम समुदाहरत्॥ —वाल्मी०

मातु - पिता - भ्राता - हितकारी। मित - प्रद सब, सुनु राजकुमारी।
अमित - दानि, भर्ता बैदेही। अधम सो नारि, जो सेव न तेही। (३)
धीरज, धर्म, मित्र, अरु नारी। आपद - काल परिखिअहिं चारी।
८० बृद्ध, रोगबस, जड़, धनहीना। अंध, बधिर, क्रोधी, अति दीना। (४)
ऐसेहु पति - कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धरम, एक ब्रत, नेमा। काय - बचन - मन, पति-पद - प्रेमा। (५)
जग, पति-ब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद - पुरान - संत, सब कहहीं।
उत्तम - के अस बस मन - माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं। (६)
मध्यम, पर - पति देखइ कैसे। भ्राता, पिता, पुत्र निज जैसे।
धर्म बिचारि, समुझि कुल, रहई। सो निकृष्ट त्रिय, स्रुति अस कहई। (७)

स्त्रियोंके धर्मका वर्णन करने लगीं—(२) 'देखो राजकुमारी ! माता, पिता और भाई तो एक सीमा-तक (विवाह होने-तक या भोजन- वस्त्र देनेतक) ही हितकर हो सकते हैं। परन्तु वैदेही ! पति तो अपार (जीवन भर और अगले सब जन्मोंतक) सुख देता रहता है। जो स्त्री ऐसे (हितकारी) पतिकी भी सेवा नहीं करती उसे बहुत अधम समझना चाहिए। (३) धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारोंकी परीक्षा विपत्तिके समय ही होता है। अपना पति यदि वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहिरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन (४) भी क्यों न हो, तब भी ऐसे पतिका अपमान करनेसे स्त्री नरकमें पड़कर अनेक प्रकारके दुःख भोगा करती है। देखो ! संसारमें पतिव्रताएँ चार प्रकारकी होती हैं। स्त्रीके लिये बस एक ही धर्म, एक ही व्रत और एक ही नियम है कि वह शरीर, वचन और मनसे पतिके चरणोंसे ही प्रेम करती रहे। (५) वेद, पुराण और सन्त सभी कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रता वह है जिसके मनमें सदा यह भाव बना रहता हो कि संसारमें स्वप्नमें भी (मेरे पतिके अतिरिक्त) कोई दूसरा पुरुष है ही नहीं। (६) मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता वह है जो दूसरेके पतिको अपने भाई, पिता या पुत्रके समान मानती हो। वेद (स्मृति, पुराण आदि) में कहा गया है कि जो स्त्री केवल इसी भयसे पतिव्रता बनी रहती है कि ऐसा न करूँगी तो धर्म बिगड़ेगा

७६-७८ मृदुना वचसा वत्से योषिद्धर्मं वदाम्यहम्। मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ॥
अमितस्य तु दातारं भर्तारं या न सेवते। साऽधमाः मुनिभिः प्रोक्ता ॥ –शिवपुराण
७९ जानीयात्संगरे भृत्यान् बांधवान् व्यसनागमे। भार्यां क्षीणेषु वित्तेषु युद्धे शूरं घने शुचिम् ॥मातृका.वि.
८०-८१ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोपि वा। पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥भाग०
दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते। सा शुनी जायते मृत्वा शूकरी च पुनः पुनः ॥परा०सं०
८२ भर्तैव योषितां तीर्थं तपो दानं व्रतं गुरुः। तस्मात्सर्वात्मना नारी पतिसेवां समाचरेत् ॥महा.नि.त.
८३ चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः। –शिवपुराण
८४-८५ उत्तमादिविभेदेन स्मरतां पापहारिकाः। उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका ॥
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु।
स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्। नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ॥
या पितृभ्रातृसुतवत् परं पश्यति सद्धिया। मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ॥

बिनु अवसर, भय - तें रह जोई। जानेहु, अधम नारि जग सोई।
पति - बंचक, पर - पति - रति करई। रौरव नरक कलप सत परई। (८)
छन सुख - लागि, जनम सत कोटी। दुख न समुझ, तेहि-सम को खोटी।
९० बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत - धरम छाँड़ि छल गहई। (९)
पति - प्रतिकूल, जनम जहँ जाई। बिधवा होइ, पाइ तरुनाई। (९॥)
सो०—सहज अपावनि नारि, पति सेवत, सुभ गति लहइ।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहिँ प्रिय ॥५ क॥
सुनु सीता! तव नाम, सुमिरि, नारि पतिब्रत करहिँ।
तोहिँ प्रान - प्रिय राम, कहिउँ कथा संसार - हित ॥५ ख॥
सुनि, जानकी परम सुख पावा। सादर, तासु चरन सिर नावा।

या अपने कुलकी मर्यादा नष्ट होगी, वह निकृष्ट श्रेणीकी पतिव्रता स्त्री है, (७) और जो स्त्री (दूसरा पुरुष पा सकनेका) अवसर न मिलनेसे या (समाजके) डरके कारण पतिव्रता बनी रहती है उसे संसारमें अधम स्त्री समझना चाहिए। जो स्त्री अपने पतिको धोखा देकर, पराए पुरुषके साथ गुलछर्रे उड़ाती रहती है, वह तो सौ कल्पोंतक रौरव (भयंकर) नरकमें पड़ी सड़ा करती है। (८) वह स्त्री क्षण-भरका सुख पानेके फेरमें यह नहीं समझ पाती कि सौ करोड़ जन्मोंतक मुझे दुःख ही दुःख भोगने पड़ेंगे उसके समान दुष्टा संसारमें कोई स्त्री नहीं है। किन्तु जो स्त्री, छल छोड़कर पातिव्रत धर्मका पालन करती रहती है (निरन्तर अपने पतिको सेवामें लगी रहती है), वह बिना कोई परिश्रम (जप, तप, व्रत, नियम, पाठ, पूजा) किए ही परम गति (सर्वश्रेष्ठ पद) प्राप्त कर लेती है॥ ९॥ जो स्त्री पतिकी इच्छाके विरुद्ध काम करती है, वह जहाँ (जिस योनिमें) भी जाकर जन्म लेती है, वहाँ जवानीमें ही विधवा हो जाती है। (१०) देखो! जन्मसे ही अपवित्र होनेपर भी जो स्त्री सदा अपने पतिकी सेवामें लगी रहती है, वह अनायास ही उत्तम पद (मुक्ति) प्राप्त कर लेती है। (अपने पातिव्रत धर्मके कारण ही) आज भी तुलसीको भगवान् इतना प्यार करते हैं और चारों वेद भी उनके उस यशका वर्णन करते नहीं अघाते॥ ५ क॥ देखो सीता! तुम्हारा तो नाम ही स्मरण करके स्त्रियाँ पातिव्रत धर्मका पालन करती रहेंगी। तुम्हें तो राम यों हो प्राणोंके समान प्रिय हैं। यह (पातिव्रतकी) कथा तो मैंने संसारके हितके लिये तुम्हें सुना डाली है'॥ ५ ख॥ यह सब सुनकर जानकीको बहुत ही प्रसन्नता हुई (कि जिस धर्मका पालन करनेके कारण ही मैं पतिके साथ वन चली आई उसका समर्थन अनसूयाने भी कर दिया) और उन्होंने बड़े आदरसे अनसूयाके चरणोंमें सिर झुका दिया। यह

८६-८७ बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति नो। निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति॥
पत्युः कुलस्य च भयात् व्यभिचारं करोति नो। पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः॥
८८ या भर्तारं समुत्सृज्य रहश्चरति केवलम्। ग्रामे वा शूकरी भूयाद् बकुली वाश्वविड्भुजा॥
९० न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च। नारी स्वर्गमवाप्नोति केवलं पतिपूजनात्॥ पराशरसंहिता
९१ स्वामिनः प्रातिकूल्येन येषु जन्मसु गच्छति। तारुण्यं प्राप्य सा नारी विधवा भवति वै ध्रुवम्॥
९२-९३ भर्तुः शुश्रूषयैतांल्लोकानिष्टाञ्जयन्ति हि। मा.पु.॥पातिव्रत्यं पुरस्कृत्य राममन्वेहि जानकि।आन.रा.
९४-९५ जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात् पतिस्तव। तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः॥
त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि प्रयोजनम्। तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारतः शिवे॥ शिवपुराण
९६ नत्वा तयालिङ्गिता सा तदङ्के समुपाविशत्। –आनन्दरामायण

तब मुनि - सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ, जाउँ बन आना। (१)
संतत मो - पर कृपा करेहू। सेवक जानि, तजेहु जनि नेहू।
धरम - धुरंधर प्रभु - कै बानी। सुनि, सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी। (२)
१०० जासु कृपा, अज, सिव, सनकादी। चहत सकल परमारथ - बादी।
ते तुम राम! अकाम पियारे। दीनबंधु! मृदु बचन उचारे। (३)
अब जानी मैं श्री - चतुराई। भजी तुम्हहिं, सब देव बिहाई।
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता - कर सील, कस न अस होई। (४)
केहि बिधि कहौं, जाहु, अब स्वामी। कहहु नाथ! तुम अंतरजामी।
अस कहि, प्रभु बिलोकि, मुनि धीरा। लोचन जल बह, पुलक सरीरा। (५)

छंद—तन पुलक निर्भर, प्रेम - पूरन नयन, मुख - पंकज दिये।
मन - ज्ञान - गुन - गोतीत प्रभु मैं दीख, जप - तप का किये।
जप, जोग, धरम - समूह - तें, नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर - चरित पुनीत, निसि - दिन दास तुलसी गावई॥ [१]

सब हो चुकनेपर कृपानिधान रामने मुनि (अत्रि)-से कहा—'आपकी आज्ञा हो तो अब मैं दूसरे वनोंमें भी जाकर घूम आऊँ। (१) आप मुझपर सदा कृपा बनाए रहिएगा और मुझे सदा अपना सेवक जानकर कभी अपना स्नेह कम न कीजिएगा।' धर्म-धुरन्धर रामकी यह बात सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम-पूर्वक बोले—(२) ब्रह्मा, शिव, सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) सभी ब्रह्मानन्दकी खोज करनेवाले लोग जिसकी कृपाके भूखे रहते हैं, वही तो निष्काम भक्ति करनेवालोंके प्यारे दीनबन्धु राम आप हैं जो इस प्रकारकी शील-भरी बातें कहे जा रहे हैं। (३) लक्ष्मीकी चतुराई तो मैं आज भाँप पाया हूँ कि उन्होंने (आपके इस शीलके कारण ही) सब देवताओंको छोड़कर आपको ही पति क्यों बनाया। जिसके बराबर या जिससे बड़ा संसारमें कोई न हो उसका शील (विनम्र स्वभाव) और सौजन्य भला ऐसा क्यों न हो! (४) हे स्वामी! अन्तर्यामी! नाथ! भला आप ही बताइए कि आपको मैं यहाँसे जानेके लिये कह कैसे सकता हूँ।' यह कहकर वे धीर (अत्रि) मुनि, प्रभुके मुँहकी ओर एकटक देखते रह गए। उनके नेत्रोंसे झरझर आँसू बह चले और शरीरपर रोंगटे फरफरा आए। (५) मुनिका हृदय अत्यन्त प्रेमसे उमड़ा पड़ रहा था। उनका शरीर पुलकित हुआ जा रहा था और प्रभुके मुख-कमलकी ओर उनकी टकटकी बँधी हुई थी। वे यही सोचे जा रहे थे कि मैंने ऐसे कौनसे जप-तप किए थे कि जिन प्रभु-तक मन, ज्ञान और इन्द्रियोंकी भी पहुँच नहीं हो पा सकती, उनके मैंने साक्षात् दर्शन पा लिए क्योंकि अनुपम भक्ति तो जप, योग और धर्मका आचरण करते रहनेसे ही मनुष्यको प्राप्त हो पा सकती है। इसीलिये तो तुलसीदास भी रातदिन रामके पवित्र चरित्रका वर्णन करता रहता है। [१] रामके उज्ज्वल यशकी कथा सदा सुख ही सुख देती, कलिके पापोंका नाश करती और मनको

९७ अथ तत्र दिने स्थित्वा प्रभाते रघुनन्दनः। स्नात्वा मुनिं समामन्त्र्य प्रयाणायोपचक्रमे॥
मुने गच्छामहे सर्वे मुनिमंडलमंडितम्। विपिनं दण्डकं यत्र त्वमाज्ञातुमिहार्हसि॥
९८ कृपा विधेया मयि सेवके सदा गाढञ्च हार्दं सततं विधाय॥
९९ रामवाक्यं मुनिः श्रुत्वा जगाद वचनं मृदु। —अध्यात्मरामायण
१००-१ इन्द्रोपेन्द्रविरिंचाद्यैर्यत्कृपा लप्स्यते सुरैः। ब्र.वै.॥ निष्कामो दीनबन्धुश्च उवाच वचनं मृदु॥आ.रा.
१०५ तदा रामं विलोक्यैव साश्रुनेत्रोऽभवन्मुनिः॥ —आनन्दरामायण

११० दो०—कलि-मल-समन, दमन मन, राम - सुजस सुख - मूल।
सार सुनहिं जे तिन्ह - पर, राम रहहिं अनुकूल ॥ ६ क ॥
सो०—कठिन काल मल - कोस, धर्म, न ज्ञान, न जोग-जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर ॥ ६ ख ॥
मुनि - पद - कमल नाइ करि सीसा। चले बनहिं, सुर - नर - मुनि - ईसा।
आगे राम, अनुज पुनि पाछे। मुनिवर - बेष बने अति काछे। (१)
उभय बीच सिय[1] सोहइ कैसी। ब्रह्म - जीव - बिच माया जैसी।
सरिता, बन, गिरि, अवघट घाटा। पति पहिचानि, देहिं बर बाटा। (२)
जहँ - जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ - तहँ नभ छाया।
असुर बिराध मिला मग जाता[2]। आवत ही, रघुवीर, निपाता। (३)
१२० तुरतहिं रुचिर रूप तेंहि पावा। देखि दुखी, निज धाम पठावा।

वशमें किए रखनेमें सहायक होती है। जो लोग आदरके साथ यह कथा सुनते हैं, उनपर राम सदा प्रसन्न हुए रहते हैं ॥ ६ क ॥ यह भयंकर कलिकाल तो पापोंका बड़ा भारी अड्डा है। इसमें न तो धर्मसे काम बन पाता, न ज्ञान से, न योगसे, न जपसे। इसमें तो उन्हीं चतुर लोगोंका काम बन पाता है जो सबका भरोसा छोड़कर केवल रामका ही भजन करते रहते हैं ॥ ६ ख ॥ (अत्रि) मुनिके चरण-कमलोंमें सिर नवाकर, देवता, मनुष्य और मुनियोंके स्वामी राम वहाँसे उठकर दूसरे वनके लिये चल पड़े। आगे-आगे राम चले जा रहे थे और उनके पीछे-पीछे उनके छोटे भाई लक्ष्मण चले जा रहे थे। मुनियोंकेसे सुन्दर वेषमें जाते हुए दोनों ही बड़े अच्छे लग रहे थे। (१) उन दोनोंके बीच जानकी ऐसी शोभा दे रही थीं जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया चली जा रही हो। (मार्गमें पड़नेवाले) नदी, पहाड़ और दुर्गम घाटियाँ सब अपने स्वामी रामको पहचानकर उनके लिये सारा मार्ग सुगम किए डाल रही थीं। (२) जिधर-जिधरसे होकर राम जाते थे, उधर-उधर आकाशमें मेघ छाया करते चलते थे। अभी वे मार्गमें कुछ ही दूर आगे गए थे कि विराध नामका राक्षस सामने आता दिखाई दे गया। फिर क्या था! आते ही रामने उसे वहीं ढेर कर डाला। (३) तुरन्त (मरते) ही वह बड़ा सुन्दर रूप बनाकर उठ खड़ा हुआ। रामने उसे दुखी देखकर झट उसे भी अपने

१. श्री। २. मिला असुर बिराध मग जाता।

१०६-११ अतो नृलोके ननु नास्ति किंचिच्चित्तस्य शोधाय कलौ पवित्रम्।
अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते।
११२-१३ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना। तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥भागवत
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दंडकानहमागतः। वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव ॥ अध्यात्मरा.
तदा जयजयारावः पुष्पवृष्टिः पपात खात्। —सत्योपाख्यान
११४-१६ अग्रे यास्याम्यहं पश्चात्त्वमन्वेहि धनुर्धरः। आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनोः॥अध्या०
११७-१८ जलबिन्दुकणान्मेघाः प्रकिरन्ति तदा प्रभुम्। —सत्योपाख्यान
११९ ददर्श गिरिशृंगाभं पुरुषादं महास्वनम्। द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः ॥
स भग्नबाहुः संविग्नः पपाताशु विमूर्च्छितः। —वाल्मीकीयरामायण
१२० ततो विराधकायात्तु पुरुषश्च विनिर्गतः। इत्युक्त्वा राघवं स्तुत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥आन.रा.

पुनि आए, जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज - जानकी - संगा। (४)

दो०—देखि राम - मुख - पंकज, मुनिवर लोचन - भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जन्म सरभंग ॥ ७ ॥

कह मुनि, सुनु रघुबीर ! कृपाला। संकर - मानस - राजमराला।
जात रहेउँ बिरंचि - क धामा[1]। सुनेउँ स्रवन, बन अइहहिं रामा। (१)
चितवत पंथ रहेउँ दिन - राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती।
नाथ ! सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना। (२)
सो कछु देव ! न मोहिं निहोरा। निज पन राखेहु जन - मन - चोरा।
तब - लगि रहहु दीन - हित - लागी। जब-लगि मिलौं तुम्हहिं तनु त्यागी। (३)
१३० जोग, जग्य, जप, तप, जत[2] कीन्हाँ। प्रभु - कहँ देइ, भगति बर लीन्हाँ।
ऐहि बिधि सर रचि, मुनि सरभंगा। बैठे, हृदय छाँड़ि सब संगा। (४)

दो०—सीता-अनुज - समेत प्रभु, नील - जलद - तनु - स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ॥ ८ ॥

धाम भेज दिया। वहाँसे चलकर राम अपने सलोने भाई लक्ष्मण और जानकीके साथ शरभङ्ग ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे। (४) रामका मुख-कमल देखते ही मुनिवर शरभङ्गके नेत्र भ्रमर होकर आदरके साथ उनकी शोभाका मकरंद पान करने लगे (उनकी ओर एकटक देखने लगे)। सचमुच, शरभङ्ग मुनिका जन्म अत्यन्त धन्य था (कि उन्हें रामका दर्शन मिल गया) ॥ ७ ॥ शरभंग मुनिने कहा—'कृपालु ! शंकरके मानसके राजहंस ! सुनिए। मैं एक बार ब्रह्मलोक जानेकी तैयारी किए बैठे था कि इतनेमें सुना कि राम वन आनेवाले हैं। (१) बस तभीसे दिन-रात आँखें बिछाए मैं आपके दर्शनकी आस लगाए बैठा हूँ। आज प्रभुका दर्शन पाकर हृदय तृप्त हो गया। नाथ ! मैं तो कोई साधना भी नहीं कर पाया हूँ। यह तो बस आपकी ही बड़ी कृपा हो गई कि आपने इस दासको दीन जानकर अपने दर्शन आ दिए। (२) देव ! इसमें आपने मेरे ऊपर कोई विशेष अहसान नहीं किया। भक्तोंका चित्त चुरानेवाले ! यह तो आपने अपने स्वभावके अनुसार ही कार्य किया है। अब जबतक मैं अपना शरीर त्यागकर आपमें मिल नहीं जाता, तबतक आप कृपा करके इस दीनका हित करनेके लिये यहीं रुके रहिए।' (३) मुनिने अबतक जितना कुछ योग, यज्ञ, जप, तप कर रक्खा था वह सब उन्होंने प्रभुको समर्पित कर डाला और उनसे यह वरदान प्राप्त कर लिया कि आपके चरणोंमें मेरी अखंड भक्ति बनी रहे। इस प्रकार मुनि शरभंगने चिता रचकर मनसे संसारकी सब ममताएँ निकाल बाहर कीं और उस चितापर आसन जमा बैठे (४) (उन्होंने इतनी ही प्रार्थना की—) 'नीले बादलके

१. जात रहेउँ बिरंचि के धामा। २ व्रत।

१२१ विराधे स्वर्गते रामो लक्ष्मणेन च सीतया। जगाम शरभंगस्य वनं सर्वसुखावहम् ॥ –अध्यात्म
१२२-२३ शरभंगस्ततो दृष्ट्वा रामं सौमित्रिणा सह। आयान्तं सीतया सार्धं संभ्रमादुत्थितः सुधीः ॥
१२४-२५ प्रीत्याह शरभंगोपि रामं भक्तपरायणम्। अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः ॥
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम्। –वाल्मीकीयरामायण
१२६-२७ बहुकालमिहैवासं तपसे कृतनिश्चयः। तव संदर्शनाकांक्षी राम त्वं परमेश्वरः ॥
१२८-३० अद्य मत्तपसा सिद्धं यत्पुण्यं बहु विद्यते। तत्सर्वं तव दास्यामि ततो मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥
१३१ चितिं समारोहयदप्रमेयं रामं ससीतं सहसा प्रणम्य ॥
१३२-३३ अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा। ससीतानुजः ॥ –अध्यात्मरामायण

अस कहि, जोग - अगिनि तनु जारा। राम - कृपा, बैकुंठ सिधारा।
तातेँ मुनि, हरि - लीन न भयऊ। प्रथमहिँ भेद - भगति बर लयऊ। (१)
रिषि - निकाय, मुनिबर - गति देखी। सुखी भए निज हृदय बिसेखी।
अस्तुति करहिँ सकल मुनि - बृंदा। जयति प्रनत - हित करुना - कंदा। (२)
पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिबर - वृन्द बिपुल सँग लागे।
अस्थि - समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह, लागि अति दाया। (३)
१४० जानत हू पूछिय कस स्वामी। सब - दरसी तुम अंतरजामी।
निसिचर - निकर, सकल मुनि खाए। सुनि, रघुबीर - नयन जल छाए। (४)

दो०—निसिचर - हीन करौँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन-के आस्रमनि, जाइ - जाइ सुख दीन्ह॥ ९ ॥

मुनि अगस्ति - कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन, रति - भगवाना।
मन - क्रम - बचन राम - पद - सेवक। सपनेहु आन भरोस न देव - क। (१)

समान श्याम-शरीरवाले राम! सीता और भाई लक्ष्मणके साथ आप मेरे हृदयमें इसी सगुण रूपसे सदा निवास करते रहिएगा'॥ ८॥ यह कहकर (शरभंग मुनिने) योगकी अग्निसे अपना शरीर भस्म कर डाला और रामकी कृपासे वैकुण्ठ धाम चले गए। भगवान् राममें मुनि शरभंग इसीलिये लीन नहीं हो पाए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्तिका (भगवान्‌को सदा अपनी आँखोंके सामने देखते रहनेका) वर ले लिया था। (१) मुनिवर शरभंगकी यह सद्गति देखकर सब मुनि अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए और सभी भगवान् रामकी स्तुति करते हुए कहने लगे—'शरणागतका हित करनेवाले! करुणाके भांडार! आपकी जय हो।' (२)

वहाँसे जब राम आगे दूसरे वनको जाने लगे तो बहुतसे मुनि उनके साथ लग लिए। (कुछ दूर चलनेपर) जब रामने देखा कि हड्डियोंका बड़ा-सा ढेर सामने पड़ा है तो उनका हृदय पसीज उठा। उन्होंने साथके मुनियोंसे पूछा (कि ये इतनी हड्डियाँ यहाँ कहाँसे आ पहुँची)। (३) (मुनियोंने कहा—) 'स्वामी! आप सब कुछ जानते हुए भी इस प्रकार क्यों पूछे जा रहे हैं? आप तो सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। राक्षसोंने (जिन बहुतसे मुनियोंको मार खाया है (उन्हींकी ये हड्डियाँ हैं)।' यह सुनते ही रामकी आँखें बरस पड़ीं। (४) उन्होंने तत्काल भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की—'जबतक इस पृथ्वीसे मैं राक्षसोंका मटियामेट नहीं कर डालूँगा तब-तक चैन नहीं लूँगा।' फिर रामने वहाँके सभी मुनियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उन सबको सान्त्वना दी और संतुष्ट किया॥ ९॥

अगस्त्य ऋषिके एक बड़े ज्ञानी शिष्य थे जिनका नाम था सुतीक्ष्ण। राममें उनकी बड़ी भक्ति थी। वे मन, वचन और कर्मसे रामके चरणोंके सेवक (बड़े भक्त) थे। उन्होंने रामको छोड़कर स्वप्नमें

१३४-३५ प्रज्वाल्य सहसा वह्निं दग्ध्वा पञ्चात्मकं वपुः। दिव्यदेहधरः साक्षाद् ययौ लोकपतेः पदम्॥अध्या०
१३६-३७ शरभंगे दिवं प्राप्ते मुनिसंघाः समागताः। तुष्टुवुस्तं च काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम्॥वाल्मी०
१३८-४० जगाम मुनिभिः सार्धं द्रष्टुं मुनिवनानि सः। ददर्श तत्र पतितान्यनेकानि शिरांसि सः॥ अस्थिभूतानि सर्वत्र रामो वचनमब्रवीत्॥
१४०-४१ आशीर्भिरभिनंद्याथ रामं सर्वहृदि स्थितम्। ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे धनुर्बाणधरं हरिम्। राक्षसैर्भक्षितानीश मुनिवृन्दानि राघव।
१४२-४३ प्रतिज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम्। एवं क्रमेण संपश्यन्नृषीणामाश्रमान् विभुः॥अध्या०

प्रभु आगवन, स्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ, आतुर धावा।
हे बिधि ! दीनबंधु रघुराया। मो - से सठ - पर करिहहिं दाया। (२)
सहित - अनुज मोहिं राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक - की नाँईं।
मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं। भगति, न बिरति, ज्ञान मन-माहीं[1]। (३)
१५० नहिं सतसंग, जोग, जप, जागा। नहिं दृढ़ चरन - कमल अनुरागा।
एक बानि करुना - निधान - की। सो प्रिय जाके, गति न आन - की। (४)
होइहैं सुफल आज मम लोचन। देखि वदन - पंकज भव - मोचन।
निर्भर प्रेम - मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा, भवानी। (५)
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं, चलेउँ कहाँ, नहिं बूझा।
कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई। (६)
अबिरल प्रेम - भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु - ओट लुकाई।
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय, हरन भव - भीरा। (७)

भी कभी किसी दूसरे देवताकी कृपा नहीं माँगी। (१) जब उन्होंने सुना कि प्रभु (राम) आए हुए हैं तो अपने मनमें बड़ी-बड़ी बातें सोचते हुए तुरन्त दौड़ पड़े कि राम तो सब प्रकारसे दीनबन्धु हैं, वे मुझ-जैसे शठपर कृपा करेंगे भी या नहीं ; (२) मुझे अपना सेवक समझकर भाई लक्ष्मणके साथ राम मुझसे मिलेंगे भी या नहीं। न जाने क्यों मेरे हृदयमें धुकधुकी हुई जा रही है क्योंकि मेरे मनमें न भक्ति है, न वैराग्य है, न ज्ञान है, (३) न मैंने सत्संग किया है और न कभी योग, जप या यज्ञ ही किया है; यहाँतक कि प्रभुके चरण-कमलोंमें सच्चा प्रेम भी मेरा नहीं है। हाँ, करुणानिधान भगवान् रामका स्वभाव अवश्य ऐसा है कि उन्हें ऐसे ही लोग प्रिय लगा करते हैं जिन्हें रामको छोड़कर किसी दूसरेका भरोसा नहीं होता। (४) आज संसारके चक्करसे मुक्त करनेवाले भगवान्के मुख-कमलका दर्शन हो जायगा तो मेरे नेत्र सफल हो जायँगे।' (महादेव कहते हैं—) 'देखो भवानी ! रामके ही प्रेमपर (रामके प्रेमके ही सहारे) निर्भर होकर ज्ञानी मुनि ऐसे मग्न हुए जा रहे थे कि उनकी दशा कुछ कही नहीं जा रही है। (५) उन्हें यहाँतक ध्यान नहीं रह गया था कि मैं जा किधर रहा हूँ, किधर नहीं। उन्हें यह भी सुध नहीं रह गई थी कि मैं कौन हूँ और कहाँ चला जा रहा हूँ ? कभी तो वे पीछेको लौट पड़ते थे और कभी भगवान्के गुणोंका वर्णन करते हुए खड़े नाचने लगते थे (६) मुनिको सचमुच बड़ी प्रगाढ़ प्रेम-भक्ति मिल गई थी।' राम (बहुत देरतक) पेड़की आड़में खड़े मुनिकी यह दशा देखे चले जा रहे थे। जब उन्होंने मुनिकी यह अतिशय प्रीति देखी तो संसारके बन्धनोंसे मुक्त करनेवाले

[1] भगति बिरति न ज्ञान मन माहीं।

१४४-४६ अगस्त्यशिष्यो रामस्य मन्त्रोपासनतत्परः। राममागतमाकर्ण्य सुतीक्ष्णः स्वयमागतः ।। अध्यात्म
१४७-५० न मयाचरितं भद्रं न तप्तं परमन्तप: । दानं न दत्तं सत्पात्रे कथं प्राप्स्यामि केशवम् ।।
१५१ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ।।
१५२ द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ।
अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ।।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ।
१५३ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः । —भागवत

मुनि, मग - माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर, पनस - फल जैसा।
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा, निज-जन मन भाए। (८)
१६० मुनिहिं राम, बहु भाँति जगावा। जाग न, ध्यान - जनित सुख पावा।
भूप - रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप देखावा। (९)
मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन - मनि फनिबर जैसे।
आगे देखि राम - तन स्यामा। सीता - अनुज-सहित सुख - धामा। (१०)
परेउ लकुट इव चरननि लागी। प्रेम - मगन मुनिबर बड़ - भागी।
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई। (११)
मुनिहिं मिलत अस सोह कृपाला। कनक - तरुहिं जनु भेंट तमाला।
राम बिलोक बदन, मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र - माँझ लिखि काढ़ा। (१२)

दो०—तब मुनि, हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निजम आस्र प्रभु आनि, करि, पूजा बिबिध प्रकार॥ १०॥

राम उनके हृदयमें आ प्रकट हुए। (७) बस मुनि सुतीक्ष्ण बीच मार्गमें अचल भावसे बैठ गए, उनका सारा शरीर कटहलके समान पुलकित हो उठा। तब राम ही उनके पास बढ़े चले गए। अपने भक्तकी यह दशा देखकर उन्हें वे बहुत ही प्रिय लगने लगे। (८) रामने मुनि सुतीक्ष्णको आकर बहुत जगाया, बहुत जगाया पर वे थे कि ध्यान ही नहीं तोड़ रहे थे। तब रामने अपना वह राजकुमारवाला रूप छिपा धरा और मुनिके हृदयमें चतुर्भुज विष्णुके रूपका दर्शन जा कराया (९) (यह दर्शन पाते ही) मुनि घबराकर ऐसे हड़बड़ाकर तड़प उठे जैसे मणि खो जानेपर सर्प व्याकुल हो उठता है। पर जब उन्होंने देखा कि सुखके धाम श्याम शरीरवाले राम वहाँ सीता और लक्ष्मणके साथ सामने आए खड़े हैं तो देखते ही—(१०) वे भाग्यशाली मुनिवर प्रेममें मग्न होकर दण्डके समान उनके चरणोंमें आ गिरे। रामने झट अपनी विशाल भुजाओंसे उन्हें सँभाल लिया और बड़े प्रेमसे मुनिको अपने हृदयसे उठा लगाया। (११) मुनिको गले लगाते हुए कृपालु राम ऐसे शोभा दे रहे थे मानो सोनेके वृक्ष (के समान सुनहरे रंगवाले सुतीक्ष्ण ऋषि)-से तमाल (सांवले रँगके राम)-की भेंट हो रही हो। मुनि खड़े-खड़े रामका मुख इस प्रकार एकटक देखने लगे मानो वे (मुनि) चित्रमें बने हुए हों। (१२) तब मुनिने अपनेको सँभालकर बार-बार प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और रामको अपने आश्रममें लिवा लाकर अनेक प्रकारसे

१. राम बदन बिलोक मुनि ठाढ़ा।

१६० भगवद्दर्शनाह्लादवाप्तपर्याकुलेक्षणः। पुलकांचिताङ्ग औत्कठयान् नाबुध्यन्नोदितोऽपि सः॥
१६१ पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम्। दर्शयामास रामस्तु सुतीक्ष्णमुनये प्रभुः॥ भागवत
१६२ विलोक्य मुभृशं प्रीत उदस्थात् स तदा मुनिः। —आनन्दरामायण
१६३-६४ व्यदृश्यत घनश्यामः पीतकौशेयवस्त्रवान्। सीतया सहितो रामो लक्ष्मणेन महर्षिणा॥
उत्थायोत्थाय रामस्य चिरस्य पदयोः पतन्। आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः॥दे.भा.
१६५ उत्थापयामास मुनिं प्रेम्णा चालिंग्य राघवः। —वाल्मीकीयरामायण
१६८-६९ स्वासनं तं समानीय पूजयामास भक्तितः। —अध्यात्मरामातण

१७० कह मुनि, प्रभु ! सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी।
महिमा अमित, मोरि मति थोरी। रबि-सनमुख खद्योत-अँजोरी। (१)
स्याम - तामरस - दाम - शरीरं। जटा - मुकुट, परिधन-मुनि-चीरं।
पानि - चाप - सर, कटि - तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं। (२)
मोह - बिपिन - घन - दहन - कृसानुः। संत - सरोरुह - कानन - भानुः।
निसिचर - करि - बरूथ - मृगराजः। त्रातु सदा नो भव - खग - बाजः। (३)
अरुण - नयन - राजीव - सुवेसं। सीता - नयन - चकोर - निसेसं।
हर - हृदि - मानस - वाल - मरालं। नौमि राम - उर - बाहु - बिसालं। (४)
संसय - सर्प - ग्रसन - उरगादः। समन - सु - कर्कस - तर्क - बिषादः।
भव - भंजन, रंजन - सुर - जूथः। त्रातु सदा नो कृपा - बरूथः। (५)
१८० निर्गुन - सगुन - बिषम - सम - रूपं। ज्ञान - गिरा - गोतीतमनूपं[१]।
अमल - मखिल - मनवद्य - मपारं। नौमि राम, भंजन - महि - भारं। (६)
भक्त - कल्प - पादप - आरामः। तर्ज्जन - क्रोध - लोभ - मद - कामः।

उनकी पूजा की ॥१०॥ यह सब कर चुकनेपर मुनिने कहा—'प्रभो ! अब मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिए। मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि मैं आपकी स्तुति करूँ तो किस प्रकार करूँ। कहाँ तो आपकी अपार महिमा और कहाँ मेरी नन्हीं-सी बुद्धि ! भला कहीं सूर्यके आगे जुगनूका प्रकाश दिखाई दे पा सकता है ? (१) नीले कमलकी मालाके समान (साँवले) शरीरवाले, सिरपर जटाका मुकुट बाँधे, तनपर मुनियोंके-से वस्त्र डाले, हाथोंमें धनुष-बाण लिए और कमरमें तूणीर कसे हुए रामको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। (२) मोह (अज्ञान)-के घने वनको भस्म कर डालनेके लिये अग्निके समान (अज्ञान दूर कर डालनेवाले), सन्त-रूपी कमल-वनको खिला देनेके लिये सूर्यके समान (सन्तजनोंको अपने दर्शनसे प्रसन्न कर देनेवाले), निशिचर-रूपी हाथियोंके लिये मृगराज (सिंह)-के समान (राक्षसोंका नाश करनेवाले) और संसार-रूपी पक्षीके लिये बाजके समान (संसारके सब पाप-ताप दूर कर डालनेवाले) भगवान् ! आप सदा मेरी रक्षा करते रहिए। (३) लाल कमलके समान सुन्दर लाल-लाल नेत्रोंवाले, सीताके नेत्र-रूपी चकोरके चन्द्रमा (जिन्हें सीता निरन्तर देखती रहती हैं), शिवके हृदय-रूपी मानसरोवरमें तैरते रहनेवाले बाल-हंस (शिवके हृदयमें सदा निवास करनेवाले), चौड़ी छाती और लंबी भुजाओंवाले रामको मैं नमस्कार करता हूँ। (४) गरुडके समान संशय-रूपी सर्पोंको ग्रस डालनेवाले (सारे सन्देह दूर कर डालनेवाले), अत्यन्त कर्कश तर्क-रूपी विषादका नाश करनेवाले (कठोरसे कठोर तर्कको भी समाप्त करके सत्यकी स्थापना करनेवाले), देवताओंका भय दूर करके उन्हें आनन्द देनेवाले तथा कृपाके भांडार राम ! आप सदा मेरी रक्षा करते रहिए। (५) अपनी इच्छाके अनुसार जो निर्गुण और सगुण रूप धारण करते रहते हैं, जो विषम (विचित्र और भयंकर नृसिंह, वराह आदि) और सम (राम-कृष्ण जैसे) रूप धारण करते रहते हैं, जिनका रूप किसी भी प्रकार ज्ञान, वाणी तथा इन्द्रियोंसे जाना नहीं जा सकता, जो निर्मल हैं, सम्पूर्ण हैं, जिनमें कोई दोष नहीं है, जिनका अन्त नहीं है और जो सदा पृथ्वीपर चढ़ा हुआ भार (पाप) उतारते रहते हैं, ऐसे रामको मैं नमस्कार करता हूँ (६) जो भक्तोंके लिये कल्प-वृक्षके उपवन हैं (भक्तोंकी सब इच्छाएँ पूरी करते हैं),

१ गोतीतमरूपं : इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे और अरूप हैं।

१७०-७१ स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे।

अति - नागर भव - सागर - सेतुः । त्रातु सदा दिनकर - कुल - केतुः । (७)
अतुलित - भुज - प्रताप - बल - धामः[1] । कलि-मल-विपुल-बिभंजन-नामः[2] ।
धर्म - वर्म, नर्मद गुन - ग्रामः । संतत संतनोतु मम रामः । (८)
जदपि, बिरज, ब्यापक अबिनासी । सबके हृदय निरंतर बासी ।
तदपि अनुज - श्री - सहित खरारी । बसतु मनसि मम, कानन - चारी । (९)
जे जानहिं, ते जानहु स्वामी । सगुन, अगुन, उर - अंतर - जामी ।
जो कोसलपति राजिव - नयना । करौ सो राम, हृदय मम अयना । (१०)
१९० अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक, रघुपति पति मोरे ।
सुनि मुनि - बचन, राम - मन भाए । बहुरि हरषि, मुनिबर उर लाए । (११)
परम प्रसन्न जानु मुनि मोहीं । जो बर माँगहु, देउँ सो तोहीं ।
मुनि कह, मैं बर कबहुँ न जाँचा । समुझि न परै, झूठ का साँचा । (१२)

जो क्रोध, लोभ, मद और कामको ललकारकर भगा देते हैं (जिनके सामने क्रोध, लोभ, मद और काम टिक नहीं पाते), जो अत्यन्त बुद्धिमान् और संसार-रूपी सागरसे पार करा देनेवाले पुलके समान हैं, ऐसे सूर्यकुल (की कीर्तिकी पताका)-के ध्वज-रूपी राम सदा मेरी रक्षा करें । (७) जिनकी भुजाका प्रताप कोई माप नहीं सकता, जो बलके भांडार हैं, जिनका नाम जपनेसे ही कलिके बड़े-बड़े पाप नष्ट हो मिटते हैं, जो धर्मके कवच (रक्षक) हैं, जिनके गुणोंका वर्णन सुन-सुनकर सबको आनन्द मिलता रहता है, ऐसे राम सदा मेरा कल्याण करें । (८) यद्यपि आप निर्मल, व्यापक और अविनाशी हैं, सबके हृदयमें निरंतर वास करते रहते हैं, तब भी हे खरारि ! (खर नामक राक्षसको मार डालनेवाले !) वनमें विचरण करनेवाले ! आप अपने छोटे भाई लक्ष्मण और श्री (सीता)-के साथ मेरे मनमें आकर बस जाइए। (९) स्वामी ! जो लोग यह समझे बैठे हैं कि आप सगुण हैं, निर्गुण हैं और सबके घट-घटमें बसे हुए हैं, वे बैठे समझा करें, पर मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरे हृदयमें आकर बसें तो कमलके समान नेत्रोंवाले कोशलपति राम ही बसें। (१०) (ऐसा कीजिए कि) मेरे मनका यह अभिमान कभी भूलकर भी दूर न हो कि मैं आपका सेवक हूँ और आप (राम) मेरे स्वामी हैं।' मुनिके ये वचन रामको बहुत अच्छे लगे और उन्होंने फिर प्रसन्न होकर भक्त मुनि (सुतीक्ष्ण)-को हृदयसे उठा लगाया (११) और कहा-'देखो मुनि ! मैं आपके प्रेमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। यह समझकर आप जो वर चाहें मुझसे माँग लें, मैं आपको अभी दिए देता हूँ।' मुनिने कहा—'मैंने कभी आजतक किसीसे वर माँगा ही नहीं। मेरी यही नहीं समझमें आता कि कौन वर अच्छा है, कौन बुरा (१२)

१. धामं । २. नामं ।

१८६-८७ त्वं सर्वभूतहृदयेषु कृतालयोऽपि । सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव ।। -अध्यात्मरा०
१८८ जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो । मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ।।भाग०
१८९ या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनुपायिनी । त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु ।।पाण्डवगी०
१९१ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकितपाणिना । परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ।।भागवत
१९२ प्रसन्नं मां मुने ज्ञात्वा वरं प्रार्थय सत्वरम् । -अध्यात्मरामायण

तुम्हहिं नीक लागै रघुराई। सो मोहिं देहु दास - सुखदाई।
अविरल भगति - बिरति - बिज्ञाना। होहु सकल - गुन - ज्ञान - निधाना। (१३)
प्रभु जो दीन्ह, सो बर मैं पावा। अब सो देहु, मोहिं जो भावा। (१३।।)
दो०—अनुज-जानकी-सहित प्रभु, चाप - बान - धर राम।
मम हिय - गगन इंदु - इव, बसहु सदा निहकाम।। ११।।
एवमस्तु करि रमा - निवासा। हरषि चले कुंभज रिसि - पासा।
२०० बहुत दिवस गुरु - दरसन पाए। भए मोहिं एहि आश्रम आए। (१)
अब प्रभु - संग जाउँ गुरु - पाहीं। तुम - कहँ नाथ! निहोरा नाहीं।
देखि कृपानिधि, मुनि - चतुराई। लिए संग, बिहँसे दोउ भाई। (२)
पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि - आश्रम पहुँचे सुर - भूपा।
तुरत सुतीछन गुरु - पहँ गयऊ। करि दंडवत, कहत अस भयऊ। (३)

इसलिये अपने दासों (भक्तों)-को सुख देनेवाले राम ! अब आपको ही जो अच्छा लगता हो वही वर मुझे दे डालिए।' इसपर रामने कहा—'अच्छा तो मुनि ! (मैं यही वर देता हूँ कि आजसे) तीव्र भक्ति, वैराग्य, विज्ञान, समस्त गुण और ज्ञान आपको प्राप्त हो जायँ।' (१३) यह सुनकर मुनिने कहा—'प्रभो ! आपने जो वरदान मुझे दिया है, वह तो सब मैं पा गया। अब मुझे जो अच्छा लगता है वह (वरदान भी) दे डालिए। (१३।।) मेरी यही कामना है प्रभो राम ! कि आप अपने छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीके साथ, हाथमें धनुष-बाण लिए हुए मेरे हृदयमें उसी प्रकार चमकते रहिए जैसे चन्द्रमा चमकता है।' ।।११।। 'एवमस्तु' ('ऐसा ही हो') कहकर लक्ष्मीके पति (विष्णुके अवतार राम) अत्यन्त प्रसन्न होकर अगस्त्य ऋषिके आश्रमकी ओर बढ़ चले। (उन्हें अपने गुरु अगस्त्यकी ओर जाते देखकर सुतीक्ष्णने कहा—) 'मुझे अपने गुरुके दर्शन किए और उनके आश्रम-पर गए बहुत दिन हो गए। (१) इसलिये अब मैं भी प्रभुके साथ ही गुरु अगस्त्यके पास चला चलता हूँ। नाथ ! यह न समझिए कि इसमें (आपको उनके आश्रमका मार्ग दिखानेके बहाने) आपपर कोई अहसान लादे डाल रहा हूँ।' मुनि सुतीक्ष्णकी यह चतुराई (कि इतनी दूरतक रामके साथ चलनेका आनन्द मिलेगा और अगस्त्यके भी दर्शन हो जायँगे) देखकर दोनों भाई (राम, लक्ष्मण) हँस पड़े, और उन्होंने मुनिको भी अपने साथ ले लिया। (२) मार्गमें राम उन्हें यह बताते चले जा रहे थे कि मेरी अनुपम भक्ति कैसी होती है और उसका क्या फल होता है। इस प्रकार देवेश्वर राम चलते-चलते अगस्त्य मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे। तुरन्त सुतीक्ष्ण मुनिने आगे लपककर अपने

१९३-९४ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने। तथापि तत्परा राजन्नहि वाञ्छन्ति किञ्चन।—भागवत
यत्तवाभिमतं राम तन्मे देहि च केशव। —अध्यात्मरामायण
१९५-९६ सद्भक्तिर्मे भवेत्ते वै ज्ञानं च विमलं भवेत्। यद्दत्तं भवता चापि तल्लब्धं च मया प्रभो।।
इदानीं कामये यद्धि तन्मे देहि च सत्पते। —अध्यात्मरामायण
१९७-९८ सीतया सह राम त्वं लक्ष्मणेन च बाणभृत्। मदीये हृदयाकाशे वसेन्दुरिव सर्वदा।।सत्योपा०
१९९ एवमस्त्विति चाभाष्य जग्मुस्तेऽगस्त्यमण्डलम्। —अध्यात्मरामायण
२००-१ प्रणिपत्य मुनिः प्राह श्वो गमिष्यसि राघव। अहमप्यागमिष्यामि चिराद्दृष्टो महामुनिः।।
२०२-३ अथ प्रभाते मुनिना समेतो रामः ससीतः सह लक्ष्मणेन।
ददर्श विमलं स्थानं महामणिसमप्रभम्।। —वाल्मीकीयरामायण

नाथ ! कोसलाधीस - कुमारा । आए मिलन जगत - अधारा ।
अनुज - समेत राम - बैदेही[1] । निसि - दिन देव जपतहहु जेही । (४)
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए । हरि बिलोकि, लोचन जल छाए ।
मुनि - पद - कमल परे दोउ भाई । रिषि, अति प्रीति लिए उर लाई । (५)
सादर कुसल पूछि, मुनि ज्ञानी । आसन बर बैठारे आनी ।
२१० पुनि करि बहु प्रकार प्रभु - पूजा । मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा । (६)
जहँ - लगि रहे अपर मुनि - बृन्दा । हरषे सब बिलोकि सुख - कन्दा । (६।।)
दो०—मुनि - समूह - महँ बैठे , सनमुख सबकी ओर ।
सरद - इंदु - तन चितवत , मानहुँ निकर - चकोर ।। १२ ।।
तब रघुबीर कहा मुनि - पाहीँ । तुम-सन प्रभु ! दुराव कछु नाहीँ ।
तुम जानहु जेहि कारन आयउँ । तातेँ तात ! न कहि समुझायउँ । (१)

गुरु अगस्त्यके पास पहुँचकर उन्हेँ दण्डवत् करके कहा—(३) 'नाथ ! जगत्के आधार, कोशलके महाराज दशरथके पुत्र वे ही राम अपने भाई लक्ष्मण और सीताके साथ आपसे मिलने चले आ रहे हैँ जिनका नाम आप रात-दिन बैठे जपा करते हैँ ।' (४) यह सुनते ही अगस्त्य तुरन्त उठ दौड़े । भगवान्को देखते ही उनकी आँखेँ डबडबा उठीँ । दोनोँ भाई (राम और लक्ष्मण) मुनिके चरण-कमलोँपर आ गिरे । मुनिने बड़े प्रेमसे उन्हेँ उठाकर हृदयसे लगा लिया । (५) ज्ञानी मुनिने आदरपूर्वक कुशल पूछकर, उन्हेँ बढ़िया आसनोँपर ले जा बैठाया । फिर अनेक प्रकारसे प्रभु (राम)-की पूजा (सत्कार) करके वे कहने लगे—'आज मेरे समान दूसरा भाग्यवान् कोई है नहीँ ।' (६) वहाँपर और भी जितने मुनि उपस्थित थे वे सभी आनन्दकंद रामका दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए जा रहे थे । (६।।) मुनियोँकी उस सभामेँ राम सबकी ओर मुँह करके बैठ गए । मुनियोँकी टोली उनकी ओर ऐसे देखे जा रही थी जैसे बहुतसे चकोर शरद्के चन्द्रमाकी ओर टकटकी बाँधे देखे जा रहे होँ । ।।१२।। तब रामने मुनिसे कहा—'प्रभो ! आपसे तो कुछ छिपा नहीँ है । आप जानते ही हैँ कि मैँ किस लिये वन आया हूँ । इसलिये देव ! मैँने बहुत विस्तारसे कहकर नहीँ समझाया है । (१) प्रभो ! अब

१. राम अनुज समेत बैदेही ।

२०४-८ आश्रमं त्वरया तत्र सुतीक्ष्णः प्रययौ गुरोः । दण्डवत्प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः ।।
रामं ससीतं सह लक्ष्मणं च नक्तं दिवं ध्यायसि यं महर्षे । रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन सः ।।
आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति प्राञ्जलिः । श्रुत्वैव द्रुतमुत्थाय ह्यभ्यगात् साश्रुलोचनः ।।
रामोपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः ।।
सीतया लक्ष्मणेनापि दंडवत्पतितो भुवि । द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड्राममालिंग्य भक्तितः ।।
२०९ कुशलप्रश्नमुक्त्वा च स्वासने संन्यवेशयत् ।।
२१० सुखोपविष्टं सम्पूज्य पूजया बहुविस्तरम् । प्रियातिथिममं प्राप्तो ह्यद्य मे सफलं दिनम् ।।
२११ ततो मुनिगणाः सर्वे दंडकारण्यवासिनः । आजग्मू राघवं द्रष्टुं समीक्ष्य जहृषुस्तदा ।।
२१२-१३ स्थित्वा मुनिसमूहेषु जानकीरामलक्ष्मणाः ।
तान् सर्वांश्च निरीक्षन्ते चकोराः शारदेन्दुवत् ।।
२१४-१५ विदितो ह्येष वृत्तान्तो मम सर्वस्तवानघ । कथयामि ह्यतो नाहं यतस्त्वं वेत्सि कारणम् ।।अ०रा०

अब सो मंत्र देहु प्रभु ! मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि - द्रोही।
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु - बानी। पूछेहु नाथ ! मोहि का जानी। (२)
तुम्हरेइ भजन - प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी।
ऊमरि - तरु - बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया। (३)
२२० जीव चराचर जंतु - समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना।
ते फल - भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला। (४)
ते तुम सकल लोकपति साईं। पूछेहु मोहि मनुज - की नाईं।
यह बर माँगौं कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री - अनुज - समेता। (५)
अबिरल भगति, बिरति, सतसंगा। चरन - सरोरुह - प्रीति अभंगा।
जद्यपि ब्रह्म अखंड, अनंता। अनुभवगम्य, भजहिं जेहि संता। (६)
अस तव रूप बखानौं जानौं। फिरि-फिरि सगुन ब्रह्म - रति मानौं।
संतत दासन देहु बड़ाई। तातें मोहि पूछेहु रघुराई। (७)

मुझे ऐसा उपाय बताइए कि मैं (एक-एक करके सब) मुनि-द्रोहियों (राक्षसों)-को समाप्त कर डाल सकूं।' प्रभुकी वाणी सुनकर मुनि मुसकराते हुए बोले—'नाथ ! आप मुझे समझ क्या बैठे हैं जो मुझसे यह पूछे जा रहे हैं ? (२) पापोंका नाश कर डालनेवाले ! सदा आपका ही भजन करते रहनेके कारण ही मैं आपकी कुछ थोड़ी-बहुत महिमा जान पाया हूँ। आपकी माया तो गूलरके उस विशाल वृक्षके समान है जिसके फल क्या हैं अनेक ब्रह्माण्डोंके गुच्छे हैं, (३) जिन (गूलरके फलों)के-भीतर भुनगोंके समान ऐसे चर और अचर जीव बसे पड़े हैं, जो उस फलको छोड़कर और कुछ जानते ही नहीं। उन फलोंको गपकता (भक्षण करता) रहनेवाला भयंकर कराल काल भी सदा आपसे भयभीत हुआ दुबका बैठा रहता है। (४) ऐसे (शक्तिशाली) और समस्त लोकपालोंके स्वामी होकर भी आप मुझसे ऐसे पूछे जा रहे हैं जैसे कोई साधारण मनुष्य पूछता हो ? हे कृपाके भांडार ! मैं तो आपसे यही वर माँगता हूँ कि आप सीता और छोटे भाई लक्ष्मणके साथ सदाके लिये मेरे हृदयमें आकर डेरा डाल बैठिए। (५) अब ऐसा कीजिए कि मुझे प्रगाढ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरण-कमलोंमें अटूट प्रेम प्राप्त हो जाय। यद्यपि आप तो ऐसे अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं कि बहुत अनुभवसे ही जाने जा पा सकते हैं। आपका ही भजन संत जन निरन्तर करते रहते हैं (६) और मैं भी आपका वह रूप जानता और उसका वर्णन भी करता रहता हूँ, तथापि मैं (न जाने क्यों) लौट-लौटकर मैं सगुण ब्रह्मसे ही प्रेम करने लगता हूँ। (मैं तो जानता

२१६-२१८ ऋषीणां रक्षणार्थाय दुष्टानां वध उच्यताम् ॥ —वाल्मीकीय
२१९-२२० त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ।
यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ —भागवत
२२१ कालोयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः । नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाम मानिनाम् ॥ भागवत
२२२ देव जानासि सर्वज्ञ सर्वं त्वं विश्वभावन । तथापि पृच्छसे यन्मां लोकाननुसृतः प्रभो ॥ अध्यात्म
२२३ सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव । गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि ॥अध्या०
२२४-२२५ आत्मा ह्येकः स्वयं ज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ॥ आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ।
त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ —भागवत
२२६ जानन्तु राम तव रूपमशेषदेशकालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम् ।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव रूपं विभातु हृदये न परं विकांक्षे ॥ —अध्यात्मरामायण

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ।
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर-कर हरहू। (८)
२३० बास करहु तहँ रघुकुल-राया। कीजै सकल मुनिन-पर दाया।
चले राम मुनि-आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी नियराई। (९)
दो०—गीधराज-सों[1] भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ[2]।
गोदावरी-निकट प्रभु, रहे पर्न-गृह छाइ॥ १३॥
जब-तें राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि, बीती त्रासा।
गिरि, बन, नदी, ताल छबि-छाए। दिन-दिन-प्रति अति होहिं सुहाए। (१)
खग-मृग-बृन्द अनंदित रहहीं। मधुप, मधुर गुंजत, छबि लहहीं।
सो बन, बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा। (२)

ही हूँ कि) आप सदासे अपने दासों (भक्तों)-को ही बड़ाई देते चले आए हैं, इसीलिये राम ! आप मुझसे यह पूछ रहे हैं। (७) (जब आप पूछ ही रहे हैं तो मैं भी आपको बताए देता हूँ—) प्रभो ! (दंडक वनमें) पंचवटी[3] नामका बड़ा मनोहर और पवित्र स्थान है। बस प्रभो ! आप वहीं जाकर उस दण्डक वन[4]को भी पवित्र कर डालिए और श्रेष्ठ मुनि (भृगु)-का शाप भी मिटा डालिए। (८) रघुकुलके राजा ! आप वहीं जाकर बस रहिए और सब मुनियोंपर कृपा करते रहिए' (उनकी रक्षा कीजिए)।' अगस्त्य मुनिकी यह आज्ञा पाकर राम चल दिए और तुरन्त देखते क्या हैं कि पञ्चवटी सामने ही है। (९) वहाँ पहुँचते ही गीधोंके राजा (जटायु)-से उनकी भेंट हो गई। उसके साथ बहुत प्रेम (जान-पहचान) बढ़ाकर (उसे खिला-पिलाकर) बहुत परचा लिया और गोदावरी नदीके तटपर पर्णकुटी बनाकर प्रभु राम वहीं बस रहे॥ १३॥ जबसे राम वहाँ (पञ्चवटी)-में आकर बसे तबसे वहाँके मुनि निश्चिन्त हो गए, उनका सारा भय जाता रहा। पहाड़, वन, नदी और ताल सभी हरे-भरे मनभावने लगने लगे और दिन-दिन अधिक सुहावने होते चले गए। (१) वहाँ जितने पशु-पक्षी थे वे भी आनन्दसे रहने लगे, गूँजते हुए भौंरे बहुत भले लगने लगे। जहाँ प्रत्यक्ष राम आ बसे हों, उस वनका वर्णन तो शेष भी नहीं कर पा सकते। (२) एक बार प्रभु राम निश्चिन्त हुए

---

१. सँ। २. दृढ़ाइ।
३. अश्वत्था बिल्ववृक्षश्च वटो धात्री अशोककम्। वटीपञ्चकमित्युक्तं स्थापयेत् पञ्च दिक्षु च। [पीपल, बेल, बड़, आँवला और अशोक इन पाँचों वृक्षोंको पाँच दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ईशान)-में, स्थापना करनेसे पंचवटी बनती है।]
४. दण्डक वन विन्ध्य पर्वतके दक्षिणका वह सारा प्रदेश है जहाँ दण्डक राजाका राज्य था। उसने भृगु मुनिकी पुत्रीके साथ बलात्कार किया था। इसपर भृगु मुनिने उसे ऐसा शाप दे डाला कि वह राज्य ही नष्ट हो गया। इसलिये उस जंगलमें राक्षसोंका निवास हो गया।

२२७-२९ अस्ति पञ्चवटी नाम्ना आश्रमो गौतमीतटे। तत्रैव बहुकार्याणि देवानां कुरु सत्तम।—अध्यात्म
२३० अपि चात्र वसन् राम तापसान् पालयिष्यसि।
२३१ यथोपदिष्टेन पथा महर्षिणा प्रजग्मतुः पञ्चवटीं समाहितौ। —वाल्मीकीय
२३२-३३ मार्गे व्रजन् ददर्शाथ शैलशृंगमिव स्थितम्। वृद्धं जटायुषं रामः किमेतदिति विस्मितः। अध्य त्म०
गोदावरीतीरसमाश्रितेषु वनेषु चक्रे निजपर्णशालाम्। —हनुमन्नाटक
२३५-३६ दृश्यन्ते गिरयः सौम्याः फुल्लैस्तरुभिरावृताः। हंसकारण्डवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः॥
यत्र श्रीरामचन्द्रश्च राजते सीतया सह। वर्णितुं तद्वनं चैव सर्पराजोऽपि न क्षमः॥ वाल्मी०

एक बार प्रभु सुख - आसीना। लछिमन, वचन कहे छल - हीना।
सुर - नर - मुनि - सचराचर - साईं। मैं पूछौं, निज प्रभु - की नाईं। (३)
२४० मोहिं समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन - रज - सेवा।
कहहु बिराग, ज्ञान, अरु माया[1]। कहहु सो भगति, करहु जेहि दाया। (४)
दो०—ईश्वर - जीवहिं भेद प्रभु, सकल कहहु[2] समुझाइ।
जातें होइ चरन - रति, सोक - मोह - भ्रम जाइ ॥ १४ ॥
थोरेहि - महँ सब कहौं बुझाई। सुनहु तात! मति - मन - चित लाई।
मैं अरु मोर - तोर - तैं माया। जेहिं - बस कीन्हें जीव - निकाया। (१)
गो - गोचर जहँ - लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।
तेहि - कर भेद सुनहु तुम सोऊ। बिद्या, अपर अबिद्या, दोऊ। (२)
एक दुष्ट अतिसय दुख - रूपा। जा बस जीव परा भव - कूपा।
एक रचै जग, गुन - बस जाके। प्रभु-प्रेरित, नहिं निज बल ताके। (३)

बैठे थे कि लक्ष्मणने निश्छल होकर पूछा—'देवता, मनुष्य, मुनि और समस्त चर तथा अचरके स्वामी ! मैं आपको अपना स्वामी समझकर ही आपसे पूछ रहा हूँ, (३) इसलिये देव ! मुझे कोई ऐसा उपाय समझा दीजिए जिससे मैं सब कुछ त्यागकर निरन्तर आपके चरण-रजकी सेवा करता रहूँ। (इस प्रसंगमें) आप ज्ञान, वैराग्य और मायाका परिचय देते हुए अपनी उस भक्तिका भी परिचय दे डालिए जिसके कारण आप भक्तोंपर दया करते रहते हैं। (४) प्रभो ! आप ईश्वर और जीवका सारा भेद भली भाँति समझाकर ऐसे बताइए जिससे आपके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे और सारा शोक, मोह और भ्रम दूर हो मिटे' ॥ १४ ॥ (इसपर रामने कहना प्रारंभ किया–) 'देखो तात ! बुद्धि, मन और चित्त (अन्तःकरणकी तीन वृत्तियाँ) एकाग्र करके सुनते चलो, मैं संक्षेपमें बताए देता हूँ। यह मैं हूँ और यह मेरा है, यह तू है और यह तेरा है, यह समझना ही ऐसी माया (अज्ञानका चक्कर) है जो सारे जगत्को अपने चक्करमें डाले हुए है। (१) इन्द्रियोंके जितने विषय हैं (इन्द्रियोंसे जिनका भोग किया जा सकता है) और जहाँतक मन पहुँचता है (जिसकी कल्पना की जाती है) उन सबको भाई ! तुम माया ही समझो। देखो ! उस (माया)-का भेद भी समझते चलो। (मायाके दो रूप हैं—) एक विद्या और दूसरी अविद्या। (२) पहली (अविद्या) तो बहुत कष्ट और अत्यन्त दुःख देती रहती है, जिसके चक्करमें पड़नेसे ही जीव इस संसारके कुएँमें पड़ा दुःख झेलता रहता है। दूसरी (सत्त्व, रजस्, तमस्) गुणवाली विद्या है जो प्रभुकी ही प्रेरणासे जगत्की रचना कर पाती है। उस मायामें अपना कोई भी बल नहीं है। (३) ज्ञान वह शक्ति

१. कहहु ज्ञान बिराग अरु माया। २. कहौ।

२३८-३९ एकदा लक्ष्मणो राममेकान्ते समुपस्थितम्। विनयावनतो भूत्वा प्रपच्छ परमेश्वरम् ॥
२४०-४१ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्। ज्ञानविज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम् ॥
आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥
२४४ शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद् गुह्यतरं परम्। यद्विज्ञाय नरो जह्यात्सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ॥
२४५-४६ अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिस्तु या भवेत्। सैव माया तयैवासौ संसारः परिकल्प्यते ॥
२४७-४९ राममाया द्विधा भाति विद्याविद्येति ते सदा। त्वद्भक्तिनिरता ये च ते वै विद्यामयाः स्मृताः ॥
अविद्यावशगा ये तु नित्यं संसारिणश्च ते। —अध्यात्मरामायण

२५० ज्ञान, मान जहँ एकौ नाहीं। ब्रह्म - समान दीख सब - माहीं।
कहिय तात ! सो परम बिरागी। तृन-सम सिद्धि, तीनि गुन त्यागी। (४)
दो०—माया, ईस, न आपु - कहँ , जान, कहिय सो जीव।
बंध - मोच्छप्रद, सर्ब - पर , माया - प्रेरक सीव ॥ १५ ॥
धर्म - तें बिरति, जोग - तें ज्ञाना। ज्ञान मोच्छ - प्रद बेद बखाना।
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति, भगत - सुखदाई। (१)
सो सुतंत्र, अवलंब न आना। तेहि आधीन ज्ञान - विज्ञाना।
भगति, तात ! अनुपम, सुख - मूला। मिलइ, जो संत होइँ अनुकूला। (२)
भगति - क साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ, मोहिं पावहिं प्रानी।

है जिसके कारण मान आदि (मान, दम्भ, हिंसा, क्षमा-रहित होना, कुटिलता, आचार्यकी सेवा न करना, अपवित्रता, अस्थिरता, मनका वशमें न होना, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत्में सुख मानते रहना, स्त्री-पुत्र-घर आदिमें आसक्ति तथा ममता, इच्छित वस्तुकी प्राप्तिसे हर्ष होना, अनिच्छित वस्तुकी प्राप्तिसे शोक होना, भक्ति न होना, एकान्तमें मन न लगना और विषयी मनुष्योंके संगसे प्रेम होना—गीता, १३।७–११) कोई दोष नहीं आ पाते। ज्ञान प्राप्त कर चुकनेपर मनुष्य सबमें समान रूपसे ब्रह्मका दर्शन करने लगता है (सबको ब्रह्म ही समझने लगता है)। देखो भाई ! परम विरागी उसीको समझना चाहिए जो सारी सिद्धियों और और तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम)-को तिनकेके समान त्याग बैठे। (४) माया, ईश्वर और अपने स्वरूपको जो नहीं समझ पाता उसे ही जीव समझना चाहिए। (कर्मके अनुसार) जो सबको बन्धन और मोक्ष देता है, जो सबसे अलग रहता है और मायाको प्रेरणा देता रहता है, वही ईश्वर है ॥ १५ ॥ देखो ! धर्मका आचरण करनेसे तो वैराग्य होता है और योगका अभ्यास करनेसे ज्ञान होता है। वेदोंने बताया है कि ज्ञानसे ही मोक्ष मिलता है। देखो भाई ! मैं एक ही बातसे शीघ्र प्रसन्न होता हूँ और वह है भक्तोंको सुख देनेवाली मेरी भक्ति। (जो भी मेरी भक्ति करने लगता है उससे मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ)। (१) वह (भक्ति) पूर्णतः स्वतंत्र है। उसे किसी दूसरेके अवलम्बकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान और विज्ञान सब उसीके अधीन हैं (भक्ति करनेसे ज्ञान और विज्ञान सब मिल जाते हैं)। देखो भाई ! भक्तिसे ऐसा सुख मिलता है जिसकी कोई समानता ही नहीं, पर वह (भक्ति) उत्पन्न तभी हो पाती है जब संतोंकी कृपा हो जाय। (२) अब मैं विस्तारसे भक्तिके साधनोंका परिचय दे रहा हूँ क्योंकि वही ऐसा सुगम मार्ग है जिससे कोई भी प्राणी मुझे पा सकता है।

२५०-५१ बुद्धि प्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः। चिदात्माहं नित्यशुद्ध-बुद्ध एवेति निश्चयम्॥
येन ज्ञानेन संविन्ते तज्ज्ञानं निश्चितं च मे ॥
सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन।
जह्याद्गुणत्रयं यस्तु विरागी स च कथ्यते ॥
२५२-५३ एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः। यतो हि बन्धमोक्षौ स मायाप्रेरक ईश्वरः ॥
२५४-५५ वैराग्यं जायतो धर्माद्योगाज्ज्ञानसमुद्भवः। ज्ञानात्संजायते मोक्षस्ततो मुक्तिर्न संशयः ॥
मद्भक्तिर्दुर्लभा लोके जाताचेन्मुक्तिदा सतः।
२५६-५७ अतो मद्भक्तियुक्तस्य ज्ञानं विज्ञानमेव च। साधुसंगतिरेवात्र प्राप्तिहेतुरुदाहृता॥अध्यात्मरा०

प्रथमहिं बिप्र - चरन अति प्रीती । निज-निज कर्म-निरत स्रुति-रीती । (३)
२६० यहि कर फल, मन बिषय - बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ।
स्रवनादिक नव भगति दृढ़ाहीं । मम लीला-रति अति मन-माहीं । (४)
संत - चरन - पंकज अति प्रेमा । मन - क्रम-बचन-भजन, दृढ़ नेमा ।
गुरु - पितु - मातु बंधु - पति - देवा । सब मोहिं - कहँ जानै, दृढ़ सेवा । (५)
मम गुन गावत पुलक - सरीरा । गदगद गिरा, नयन बह नीरा ।
काम आदि मद - दंभ न जाके । तात ! निरन्तर बस मैं ताके । (६)
दो०—बचन - कर्म - मन मोरि गति, भजन करहिं निःकाम ।
तिन्हके हृदय - कमल - महँ, करौं सदा बिस्राम ।। १६ ।।
भगति - जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन, प्रभु-चरननि सिर नावा ।

है । (भक्ति जगानेका साधन यह है कि) पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति की जाय और वेदोंमें बताई हुई रीतिके अनुसार अपना-अपना कर्म करते रहा जाय । (३) इससे लाभ यह होगा कि विषयोंसे मन हट जायगा । ऐसा हो जानेपर मेरे कर्म (चरित्र या आचरण)-में प्रेम उत्पन्न होने लगेगा और तब श्रवण आदि (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दासता, सख्य, आत्मनिवेदन) नौ प्रकारकी भक्ति दृढ हो जायगी और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जायगा । (४) जो सन्तोंके चरण-कमलोंमें अत्यन्त प्रेम करता हो जो मन, वाणी और कर्मसे नियमपूर्वक (मेरा) भजन करता हो और जो मुझे ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ समझकर जमकर मेरी ही सेवा करता रहता हो, (५) मेरा गुण गाते-गाते जिसका शरीर पुलकित हो उठता हो, वाणी गद्गद हो-हो जाती हो, नेत्रोंसे झरझर आँसू बह चलते हों, जिसमें काम, मद, दम्भ आदिका नाम न हो, मैं निरन्तर उसीका हुआ रहता हूँ । (६) जो मन, वचन और कर्मसे मुझे ही प्राप्त करनेके फेरमें पड़े रहते हैं और निष्काम भावसे मेरा ही भजन करते रहते हैं, उनके कमलके समान हृदयमें मैं सदा बैठा विश्राम किया करता हूँ' ।। १६ ।। भक्ति-योगका यह विवेचन सुनकर लक्ष्मणको बड़ा सुख मिला और उन्होंने झुककर प्रभु रामके चरणोंमें

२५८-५९ साधनं भक्तिमार्गस्य वदामि शृणु प्रेमतः । देवद्विजगुरुप्राज्ञपादपद्मप्रपूजनम् ।।
प्रीणनं स्वीयधर्मेषु श्रुतिनीत्योस्तथैव च ।
२६०-६१ मनोवाक्कायदंडश्च विषयेषु निरीहता । असक्तिः स्नेहशून्यत्वं पुत्रदारधनादिषु ।।
मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः । मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम् ।।
२६२-६३ मनोवाक्कायसद्भक्त्या सद्गुरोः परिसेवनम् ।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ।।
२६४-६५ सदा गद्गदया वाचा गुणान् गायन्ति ये जनाः । कामादिदोषहीनाश्च तेषां वश्योहमन्वहम् ।।
२६६-६७ निरपेक्षानान्यगतास्तेषां हृद्योहमन्वहम् ।।
२६८ आकर्ण्य भक्तियोगं तु लक्ष्मणः प्रणनाम तम् । —अध्यात्मरामायण
मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् । यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।। गीता

ऐहि बिधि गए कछुक दिन बीती। कहत बिराग - ज्ञान - गुन - नीती। (१)
२७० सूपनखा रावन - कै बहिनी। दुष्ट हृदय, दारुन जसि अहिनी।
पंचवटी सो गइ ऐक बारा। देखि, बिकल भइ, जुगल कुमारा। (२)
भ्राता, पिता, पुत्र, उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।
होइ बिकल सक मनहिँ न रोकी। जिमि रबि-मनि-द्रव रबिहिँ बिलोकी। (३)
रुचिर रूप धरि, प्रभु - पहँ जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।
तुम सम पुरुष, न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी। (४)
मम अनुरूप पुरुष, जग - माहीँ। देखेउँ खोज, लोक तिहुँ नाहीँ।
तातेँ अब - लगि रहिउँ कुमारी। मन माना कछु तुमहिँ निहारी। (५)
सीतहिँ चितइ, कही प्रभु बाता। अहै कुँआर[1] मोर लघु भ्राता।

सिर नवा दिया। इस प्रकार ज्ञान, वैराग्य, गुण और नीतिका विवरण कहते-सुनते बहुत दिन निकल गए। (१)

शूर्पणखा (सूपके समान बड़े-बड़े नखोंवाली) नामकी रावणकी एक बहिन थी, जो सर्पिणीके समान बड़ी भयंकर दुष्टा थी। एक बार वह घूमते-घामते पंचवटीकी ओर आ निकली। वहाँ दोनों कुमारों (राम, और लक्ष्मण)-को देखकर वह उनपर ऐसी रीझ उठी कि वह अपने तन-मनकी सुध खो बैठी। (२) (काक-भुशुण्डि कहते हैं)—'देखो गरुड ! स्त्रीका कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि वह सुन्दर पुरुष देखते ही व्याकुल हो उठती है, चाहे, वह भाई, पिता अथवा पुत्र ही क्यों न हो; और मनको उसी प्रकार नहीं रोक पाती जैसे सूर्यको देखते ही सूर्यकान्त मणि बिना द्रवित हुए नहीं रहती।' (३) इसलिये वह (शूर्पणखा) बहुत बन-ठनकर प्रभु रामके पास पहुँच गई और मुसकराती हुई उनसे बोली—'देखिए ! न तो संसारमें आपके समान कोई पुरुष (सुन्दर) है और न मेरे समान कोई स्त्री ही (संसारमें सुन्दरी) है। यह जोड़ा विधाताने बहुत सोच समझकर ही मिलाया है। (४) मैंने तीनों लोक खोज मारे पर संसारमें मुझे अपने मनका कोई पुरुष कहीं ढूँढ़े नहीं मिल पाया। इसीसे मैं आजतक कुमारी ही रही चली आई। पर आज आपको देखकर मेरा मन कुछ आपपर रीझ पड़ रहा है।' (५) प्रभु रामने सीताकी ओर देखकर (कि मैं तो विवाहित हूँ और यह मेरी पत्नी है) उससे कहा—'देखो ! मेरा छोटा भाई अवश्य कुमार (इस समय कुमारका व्रत लिए हुए) है। उसने यह

१. कुमार।

२६९ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कथयन् विविधाः कथाः। महात्मा राघवश्रेष्ठः कंचित्कालं व्यतीतवान् ॥अध्या०
२७०-७१ एकदा गौतमी तीरे पञ्चवट्यां समीपतः। तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया।
रावणस्य सहोदरी। राममिन्दीवरश्यामं कन्दर्पसदृश प्रभम्। बभूवेन्द्रोपमं दृष्ट्वा राक्षसी काममोहिता॥वा०रा०
२७२-७३ सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्। योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि नारद ॥हितो०
२७४-७५ धृत्वा मायामयं रूपं लावण्यगुणसंयुतम्। उवाच मधुरं वाक्यं वस्त्रालंकारमण्डिता॥
त्वत्समः पुरुषो नास्ति मत्समा नास्ति सुन्दरी। संयोगः संविचार्यैव धात्रा विरचितो ह्ययम्॥
२७६-७७ अहं प्रभावसंपन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी। अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम्॥
चिराय भव मे भर्ता॥ —वाल्मीकीयरामायण

गइ, लछिमन, रिपु - भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि, बोले मृदु बानी। (६)
२८० सुन्दरि ! सुनु, मैं उन्ह - कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा।
प्रभु समर्थ कोसलपुर - राजा। जो कछु करहिं, उन्हहिं सब छाजा। (७)
सेवक सुख चह, मान भिखारी। व्यसनी धन, सुभ गति बिभिचारी।
लोभी जस चह, चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी। (८)
पुनि फिरि राम - निकट सो आई। प्रभु लछिमन - पहँ बहुरि पठाई।
लछिमन कहा, तोहिं सो बरई। जो तृन तोरि, लाज परिहरई। (९)
तब खिसियानि राम - पहँ गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।
सीतहिं सभय देखि, रघुराई। कहा अनुज - सन सैन बुझाई। (१०)

सुना तो लक्ष्मणके पास जा धमकी। वे (लक्ष्मण) देखते ही ताड़ गए कि हो न हो यह तो शत्रु (रावण)-की बहिन है। यह समझकर वे प्रभुकी ओर संकेत करते हुए उससे बोले—(६) 'देखो सुन्दरी ! (उन्हें देख रही हो न !)मैं तो उन्हींका दास हूँ और मैं पराधीन हूँ, इसलिये मुझसे तुम किसी सुखकी आशा न करो (रामकी आज्ञा पाते ही मैं तुम्हारी दुर्दशा कर डालूँगा)। प्रभु (राम) समर्थ (शक्तिशाली) हैं, वे कोशलपुरके राजा हैं, वे जो कुछ भी करें उनके लिये सब ठीक है। (७) यदि सेवक चाहे कि मुझे सुख मिले, भिखारी चाहे कि मुझे सम्मान मिले, व्यसनी चाहे कि मुझे धन मिले, व्यभिचारी चाहे कि मुझे शुभ गति (मोक्ष) मिले, लोभी चाहे कि मुझे यश मिले और अभिमानी चाहे कि मुझे चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) मिल जायँ तो समझना चाहिए कि वे प्राणी आकाशको दुहकर दूध पानेके फेरमें है (असम्भवको सम्भव बनाना चाहते हैं)।' (८) यह सुनकर वह फिर रामके पास ही लोटकर जा पहुँची। पर प्रभुने भी उसे फिर लक्ष्मणके ही पास ठेल भेजा। तब लक्ष्मणने उससे कहा—'देख ! तुझसे तो वही विवाह कर सकता है जिसने तिनकेके समान सब लाज-हया तोड़ फेंकी हो (जो निपट निर्लज्ज हो)।' (९) अब तो वह क्रोधसे बौखलाई हुई रामके पास जा पहुँची और जाते ही उसने अपना भयंकर रूप खोल दिखाया। रामने जब देखा कि (उसका वह भयंकर रूप देखकर) सीता भयभीत हो उठी हैं तो उन्होंने तत्काल लक्ष्मणको सकेतसे कुछ समझा दिया। (१०) लक्ष्मणने आव देखा न ताव, झट (तलवार खींचकर) उसके नाक और कान काट धरे मानो उसके हाथ रावणको चुनौती भेज दी हो (कि ले, तेरी बहन नकटी-बूची करके भेजे

२७८-७९ रामः सीतां कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत्। —अध्यात्मरामायण
कलत्रवानहं बाले कनीयांसं भजस्व मे ॥ —रघुवंश
रामेण प्रेरिता बाला सा ययौ लक्ष्मणान्तिकम्। —वाल्मीकीयरामायण

२८०-८१ तामाह लक्ष्मणः साध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः। दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम् ॥
तमेव गच्छ भद्रे त्वं स तु राजाखिलेश्वरः। —अध्यात्मरामायण

२८२-८३ सेवैव मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहरकथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरति ॥ —हितोपदेश
अर्थी लाघवमुच्छ्रितो निपतनं कामातुरो लाञ्छनम्।
लुब्धोऽकीर्तिमसंगरः परिभवं दुष्टोऽन्यदोषे रतिम् ॥ —नवरत्न

२८४-८६ लज्जिता पुनरप्यागात् राघवं दुष्टमानसा। —अध्यात्मरामायण
रूपं शूर्पणखानाम्नः सदृशं प्रत्यपद्यत ॥ —रघुवंश

२८७ वैदेहीं सभयां दृष्ट्वा अंगुल्या बोधितोऽनुजः। —आनन्दरामायण

दो०—लछिमन अति लाघव-सों, नाक-कान-बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन-कहँ, मनो चुनौती दीन्हि॥ १७॥

२९० नाक-कान-बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु-कै धारा।
खर-दूषन-पहँ गइ बिलपाता। धिग-धिग तव पौरुष-बल भ्राता। (१)
तेहिं पूछा, सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि, सेन बुलाई।
धाए निसिचर-निकर-बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल-गिरि-जूथा। (२)
नाना बाहन, नानाकारा। नानायुध-धर, घोर, अपारा।
सूपनखा आगे करि लीनी। असुभ रूप स्रुति-नासा-हीनी। (३)
असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु-बिबस सब झारी।
गर्जहिं, तर्जहिं, गगन उड़ाहीं। देखि बिकट भट, अति हरषाहीं। (४)
कोउ कह, जियत धरहु दोउ भाई। धरि मारहु, तिय लेहु छुड़ाई।

दे रहे हैं, तुझसे जो करते बने कर ले) ॥ १७॥ (नाक-कान कट जानेके कारण लहू बह चलनेसे) वह शूर्पणखा ऐसी भयंकर लगने लगी मानो किसी काले पहाड़से गेरूकी धारा बही गिर रही हो। वह रोती-चिल्लाती खर-दूषणके पास दौड़ी जा पहुँची (और बोली—) 'भाइयो! तुम्हारे पौरुष (पराक्रम)-को धिक्कार है, तुम्हारे बलको धिक्कार है (तुममें पुरुषार्थ और बल होना न होना बराबर है)।' (१) जब उन्होंने (खर और दूषणने) उससे सारा विवरण पूछा तब शूर्पणखाने विस्तारसे उन्हें सारी कथा कह सुनाई। यह सुनते ही वे (खर और दूषण) राक्षसोंकी सेना बटोर कर चढ़ चले। (फिर क्या था!) राक्षसोंके झुण्डके झुण्ड ऐसे दौड़ चले मानो काजलके पहाड़ पंख लगाए उड़े चले जा रहे हों। (२) वे अनेक आकार-प्रकारके राक्षस अनेक प्रकारके वाहनों-पर चढ़े दौड़े चले जा रहे थे। वे उस नकटी-बूची अमंगल रूपवाली शूर्पणखाको आगे-आगे किए बड़े-बड़े भयंकर हथियार लिए चले जा रहे थे। (३) यद्यपि (मार्गमें उन्हें) बहुत भयंकर-भयंकर अपशकुन हुए चले जा रहे थे, पर उनके सिरपर तो मृत्यु चढ़ी नाच रही थी इसलिये वे सब इन (अपशकुनों) पर कुछ ध्यान ही नहीं दे रहे थे। वे गरजते, ललकारते, आकाशमें उड़ते और अपनी सेनाके योद्धाओंको देख-देखकर हर्षित होते लपके चले जा रहे थे। (४) उनमेंसे कोई चिल्ला रहा था—'दोनों भाइयोंको जीता ही बाँध लो; पकड़कर बोटी-बोटी कर डालो, इनकी स्त्री छीन ले

२८८-२८९ स बुद्ध्वा हृद्गतं बन्धोस्तं सन्धाय शरासने। —आनन्दरामायण
चिच्छेद नासां कर्णौ च लक्ष्मणोऽलघुविक्रमः।
२९०-२९१ ततो घोरध्वनिं कृत्वा रुधिराक्तवपुर्द्रुतम्। क्रन्दमाना पपाताग्रे खरस्य परुषाक्षरा॥
२९२ किमेतदिति तामाह खरः खरतराक्षरः। मामेवं कृतवाँस्तस्य भ्राता तेनैव चोदितः॥
तच्छ्रुत्वा त्वरितः प्रागात् खरः क्रोधविमूर्च्छितः। चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्॥
चोदयामास रामस्य समीपं वधकांक्षया॥
२९३-९४ तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता इव। नीलाद्रिशिखराकाराः कालमेघसमप्रभाः॥
महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैः द्वीपिभिः कृतवाहनाः। खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः॥
२९५ मुखावयवलूनां तां नैर्ऋता यत्पुरो दधुः। रामाभियायिनां तेषां तदेवाभूदमंगलम्।
२९६ मार्जारेण तु युध्यन्ति पन्नगा गरुडेन च। करालो विकटो मुंडः पुरुषः कृष्णपिंगलः॥
एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च। गणयन्ति न दुष्टात्मानः कालवशमागताः॥
२९७ केचिद् गर्जन्ति तर्जन्ति दृष्ट्वा हृष्यन्ति सैनिकान्। संडीयन्ते च ह्याकाशे प्रसीदन्ति मुहुर्मुहुः॥अध्या.
२९८ मानुषौ शस्त्रसंपन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ। प्रविष्टौ दंडकारण्यं घोरं प्रमदया सह॥
युष्माभिस्तौ समाधृत्य हत्वा स्त्री गृह्यतां द्रुतम्। —वाल्मीकीय

धूरि पूरि नभ - मंडल रहा । राम बोलाइ अनुज-सन कहा । (५)
३०० लै जानकिहिँ जाहु गिरि-कंदर । आवा निसिचर - कटक भयंकर ।
रहेहु सजग, सुनि प्रभु - कै बानी । चले सहित-श्री, सर-धनु - पानी । (६)
देखि राम, रिपु - दल चलि आवा । बिहँसि, कठिन कोदंड चढ़ावा । (६।।)
छंद—कोदंड कठिन चढ़ाइ, सिर जट - जूट बाँधत, सोह क्यों ।
सैल मरकत लरत दामिनि कोटि सों, जुग भुजग ज्यों ।
कटि कसि निखंग, बिसाल भुज गहि चाप, बिसिख सुधारि कै ।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु , गजराज - घटा निहारि कै ।। [२]
सो०—आइ गए बग - मेल , धरहु-धरहु, धावत सुभट ।
जथा बिलोकि अकेल , बाल - रबिहिँ घेरत दनुज ।। १८ ।।
प्रभु बिलोकि, सर सकहिँ न डारी । थकित भई रजनीचर - धारी ।
३१० सचिव बोलि, बोले खर-दूषन । यह कोउ नृप - बालक नर-भूषन । (१)

भागो ।' जब रामने देखा कि आकाशमें धूल छाई चली जा रही है, तब रामने लक्ष्मणको बुलाकर कहा—(५) 'तुम जानकीको तत्काल पहाड़की कन्दरामें लिए चले जाओ । राक्षसोंकी भयानक सेना वेगसे बढ़ी चली आ रही है । सावधान रहना ।' प्रभुके वचन सुनते ही लक्ष्मण अपने हाथोंमें धनुष-बाण सँभालकर जानकीको साथ लेकर वहाँसे हट गए । (६) रामको देखते ही राक्षसोंका दल उनपर टूट पड़ा । उन्हें देखते ही हँसकर रामने अपना प्रचण्ड धनुष चढ़ा लिया । (६।।) हाथमें अपना प्रचंड धनुष लिए, दोनों हाथोंसे सिरकी जटाएँ बाँधते हुए राम ऐसे शोभा दे रहे थे, जैसे मरकत (नीलम)-के पहाड़पर करोड़ों बिजलियोंसे दो सर्प लड़े जा रहे हों (राम ही नीलमके पहाड़ हैं, जटाएँ करोड़ों बिजलियाँ हैं और रामके दोनों साँवले हाथ ही दो सर्प हैं) । कमरमें तूणीर कसकर, विशाल भुजामें धनुष लेकर, उसपर सुधारे हुए बाण चढ़ाते हुए राम उन राक्षसोंको इस प्रकार घूर-घूरकर देखे जा रहे थे, जैसे हाथियोंके समूहको सिंह खड़ा घूरता हो । [२] इतनेमें घोड़ोंकी (लगाम) मिलाए हुए, 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते हुए बड़े-बड़े वीर राक्षसों (-के घुड़सवारों)-के दलने झट प्रभुके पास पहुँचकर उन्हें ऐसा घेर लिया जैसे उदयकालीन बाल सूर्यको अकेला देखकर दैत्य[1] आ घेरते हैं ।। १८ ।। पर राक्षसोंकी सेना प्रभु रामको देखकर ऐसी हक्की-बक्की रह गई कि उनमेंसे कोई भी एक बाण-तक न छोड़ पाया । तब खर और दूषणने मंत्रीको बुलाकर कहा—'ये कोई मनुष्योंमें श्रेष्ठ

१. सूर्यके उदय-कालमें नित्य 'सन्देह' नामके दैत्य उन्हें आ घेरते हैं और मारे जाते हैं पर ब्रह्माके वरदानसे वे फिर जी उठते हैं ।

---

२९९ उद्धूतश्च विना वातं रेणुर्जलधरोरुणः । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां रामः सौमित्रिमब्रवीत् ।।
सीतां नीत्वा गुहां गत्वा तत्र तिष्ठ महाबल । श्रूयते विपुलः शब्दो नूनमायान्ति राक्षसाः ।।
३०१-२ तथेति सीतामादाय लक्ष्मणो गह्वरं ययौ । विलोक्य वाहिनीं तेषां राक्षसानां गतायुषाम् ।।
रामः परिकरं बध्वा धनुरादाय निष्ठुरम् । तूणीरावक्षयशरौ बद्ध्वायत्तो भवत्प्रभुः ।।अध्या०
३०३-६ स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान् । बभूव रामस्तिमिरे महानग्निरिवोत्थितः ।।
वितत्य च धनुर्भीमं तूण्याश्चोद्धृत्य सायकान् । बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव महात्मनः ।।
मृगराजो गजानिव दृष्ट्वा चुक्रोध राक्षसान् ।।
३०७-८ अनीकं यातुधानानां समन्तात् प्रत्यपद्यत । वीरालापान् विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम् ।।
३०९ रामं विलोक्य दैत्यास्तु शरान् मोक्तुं न शक्नुयुः ।। —वाल्मीकीयरामायण

नाग, असुर, सुर, नर, मुनि जेते। देखे जिते, हते हम केते।
हम भरि जनम, सुनहु सब भाई। देखि नहीं असि सुंदरताई। (२)
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध - लायक नहिं पुरुष अनूपा।
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीयत भवन जाहु दोउ भाई। (३)
मोर कहा, तुम ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि, आतुर आवहु।
दूतन्ह कहा राम - सन जाई। सुनत राम, बोले मुसुकाई। (४)
हम छत्री, मृगया बन करहीं। तुम-से खल - मृग खोजत फिरहीं।
रिपु बलवंत देखि, नहिं डरहीं। एक बार कालहु - सन लरहीं। (५)
जद्यपि मनुज, दनुज - कुल - घालक। मुनि-पालक, खल-सालक बालक।
३२० जौं न होइ बल, घर फिरि जाहू। समर - बिमुख, मैं हतौं न काहू। (६)
रन चढ़ि, करिय कपट - चतुराई। रिपु - पर कृपा, परम कदराई।
दूतन जाइ, तुरत सब कहेऊ। सुनि खर-दूषन उर अति दहेऊ। (७)

छंद—उर दहेउ, कहेउ कि धरहु, धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर - चाप - तोमर - सक्ति - सूल - कृपान - परिघ - परसु धरा।
प्रभु कीन्हि धनुष टँकोर प्रथम, कठोर, घोर, भयावहा।
भए बधिर, ब्याकुल जातुधान, न ज्ञान तेहि अवसर रहा॥ [३]

राजकुमार हैं। (१) देखो भाई! हमने आजतक अपने जीवनमें न जाने कितने नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि देखे और उनको जीत-जीतकर मार भी डाला पर उनमेंसे किसीमें भी हमने ऐसी सुन्दरता नहीं देखी। (२) यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप तो कर डाला, फिर भी ये अनूप सुन्दर पुरुष इस योग्य नहीं है कि इन्हें मार डाला जाय। (इसलिये इनसे जाकर मेरा सन्देश कह दो कि) इन्होंने अपनी जो स्त्री छिपा छोड़ी है उसे हमें देकर दोनों भाई प्राण लेकर घर लौट जायँ। (३) तुम मेरा यह सन्देश उन्हें जा सुनाओ और उनका उत्तर लेकर तुरन्त आ बताओ।' दूतोंने वह सन्देश ज्योंका त्यों रामको जा सुनाया। यह सुनकर रामने मुसकराते हुए कहा—(४) 'हम क्षत्रिय हैं और वनमें आखेटके लिये तुम्हारे जैसे दुष्ट पशु ही खोजते फिरते हैं। हम बलवान् शत्रु देखकर भी कभी पीठ नहीं दिखाना जानते। एक बार काल भी आ जाय तो उससे भी लड़नेसे हम न चूकें। (५) यद्यपि हम हैं तो मनुष्य, पर हम लोग राक्षसोंका नाश करनेपर तुले बैठे हैं। हम मुनियोंकी रक्षा करने आए हैं, इसलिये जहाँ दुष्ट मिलते हैं वहीं उनकी चटनी बना डालते हैं। यदि तुममें युद्ध कर सकनेका बल न हो, तो जाओ अपना-सा मुँह लिए घर लौट जाओ। जो रणमें पीठ दिखाकर भाग खड़े होते हैं उनपर हम लोग हथियार नहीं उठाते। (६) लड़ाईके लिये चढ़ाई करनेपर कपटका दाँव खेलना और शत्रुपर कृपा करनेकी बात सोचना तो कायरोंका काम होता है।' दूतोंने तुरन्त सब कुछ वहाँ (खर और दूषणको) जा सुनाया, जिसे सुनते ही खर और दूषण क्रोधसे जल उठे। (७) (यह संदेश सुनकर) उनका जी जल उठा और वे चिल्ला उठे—'देखते क्या हो? पकड़ लो इसे।' यह सुनते ही भयंकर वीर राक्षस धनुष, बाण, तोमर, शक्ति, शूल, कृपाण (तलवार), लोहेकी गदा, गँड़ासा आदि ले-लेकर झपट पड़े। रामने पहले ही धनुषकी ऐसी भयानक टंकार की कि सुनते ही सभी राक्षस बहरे हो उठे और ऐसे घबरा उठे कि उस समय उन्हें कुछ भी सूझ नहीं

दो०—सावधान होइ धाए, जानि सबल आराति।
लागे बरपन राम-पर, अस्त्र-सस्त्र बहु भाँति ॥१९ क॥
तिनके आयुध तिल-सम, करि काटे रघुबीर।
३३० तानि सरासर स्रवन लगि, पुनि छाँड़े निज तीर ॥१९ ख॥
छंद—तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥ (१)
अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर बीर।
भए क्रुद्ध तीनिउँ भाइ। जो भागि रन-तें जाइ॥ (२)
तेहि बधब हम निज पानि। फिरे, मरन मन-महँ ठानि।
आयुध अनेक प्रकार। सनमुख ते करहिं प्रहार॥ (३)
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुष सर संधानि।
छाँड़े बिपुल नाराच। लगे कटन, बिकट पिसाच॥ (४)
उर-सीस-भुज-कर-चरन। जहँ-तहँ लगे महि परन।
३४० चिक्करत लागत बान। धर परत, कुधर-समान॥ (५)

पड़ रहा था (अचेत-से हो गए)। शत्रु (राम)-को बहुत बलवान् समझकर सब राक्षस सावधान हो-होकर दौड़ पड़े और रामपर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बरसाने (चलाने) लगे ॥ १९ क ॥ रामने उनके सारे हथियार तिल-तिल करके काट गिराए और फिर वे लगे कानतक धनुष तान-तानकर अपने बाण बरसाने ॥ १९ ख ॥ वे भयानक बाण ऐसे चले, मानो बहुतसे सर्प एक साथ फुफकारते हुए चले जा रहे हों। समर-भूमिमें राम क्रुद्ध होकर अत्यन्त पैने-पैने बाण छोड़े चले जा रहे थे। (१) (रामके) अत्यन्त तीक्ष्ण बाण आते देखकर जितने वीर राक्षस वहाँ आए हुए थे सब भाग खड़े हुए। तब तीनों भाई (खर, दूषण और त्रिशिरा)-ने क्रुद्ध होकर उन (भगोड़ोंको) ललकारकर कहा—'देखो ! जो रण छोड़कर भागेगा (२) उसे हम अपने हाथों काटकर रख देंगे।' तब वे (भगोड़ राक्षस) समझ गए कि मृत्यु तो यों भी होनी है, त्यों भी। यह सोचकर वे लौट पड़े और सामने आकर बहुत रङ्ग-ढङ्गके हथियार धुआँधार चलाने लगे। (३) जब रामने देखा कि शत्रु अत्यन्त कुपित हो चले हैं तो रामने अपने धनुषपर बाण चढ़कर एक साथ इतने अधिक बाण चलाए कि वे भयानक राक्षस सब वहीं कट-कटकर गिरने लगे। (४) उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर कट-कटकर इधर-उधर पृथ्वीपर छितरा चले। बाण लगते ही वे एक बार चिग्घाड़ मारते थे और फिर पहाड़के समान उनके धड़ कट-कटकर धरतीपर आ लोटते थे। (५) उन योद्धाओंके शरीर

३१०-२७ व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानंतकोपमान्। धावन्तस्तु भवन्तश्च गृह्णन्तु पुरुषन्त्विमम् ॥
मुद्गरैरायसैः शूलैः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः। शरैश्चक्रैस्तोमरैश्च भ्राजमानाश्च राक्षसाः ॥
अभ्यधावन्त काकुत्स्थं रामं परपुरंजयम्। ततो रामेण क्रुद्धेन धनुष्टंकारकं कृतम् ॥
धनुष्टङ्कारशब्देन राक्षसा वधिरीकृताः। बभूवुर्ज्ञानशून्याश्च दुर्दैवं मेनिरे निजम् ॥
३२८-२९ ततस्तं भीमधन्वानं क्रुद्धाः सर्वे निशाचराः। रामं नानाविधैः शस्त्रैरभ्यवर्षन्त दुर्जयम् ॥
३३०-३१ तानि चिच्छेद रामोपि लीलया तिलशः क्षणात्। चापं सन्धाय कर्णान्तं मण्डलीकृतकार्मुकः ॥
ससर्ज निशितान् बाणान् शतशोथ सहस्रशः।
३३२-४० केचिद्भीमबलाः शूराः प्रासान् शूलान् परश्वधान्। चिक्षिपुः परमक्रुद्धा रामाय रजनीचराः ॥वा०रा

भट कटत तन सत खंड। पुनि उठत करि पाखंड।
नभ उड़त बहु भुज - मुंड। बिनु - मौलि धावत रुंड॥ (६)
खग, कंक, काक, सृगाल। कटकटहिँ कठिन कराल। (६॥)

छंद—कटकटहिँ जंबुक, भूत, प्रेत, पिसाच खप्पर संचहीँ।
बेताल बीर, कपाल - ताल बजाइ, जोगिनि नंचहीँ।
रघुबीर बान प्रचंड, खंडहिँ भटन - के उर - भुज सिरा।
जहँ-तहँ परहिँ, उठि लरहिँ धर, धरु - धरु करहिँ भयकर गिरा॥ [४]
अंतावरी गहि, उड़त गीध, पिसाच कर गहि धावहीँ।
संग्राम - पुर - वासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीँ।
३५० मारे, पछारे, उर बिदारे, बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल, भट तिसिरादि खर-दूषन फिरे॥ [५]
सर - सक्ति - तोमर - परसु - सूल - कृपान एकहिँ बारहीँ।
करि कोप, श्रीरघुबीर - पर अगनित, निसाचर डारहीँ।

सौ-सौ टुकड़े हो-होकर गिर जानेपर भी अपनी मायासे उठ-उठ कर फिर लड़ने लगते थे। उनकी भुजाएँ और उनके सिर कटकर ऊपर आकाशमें उछल जाते थे फिर भी वे बिना सिरवाले धड़ दौड़ते चले जाते थे। (६) गिद्ध, कौवे आदि पक्षी और सियार (शव खाते हुए) भयंकर कट-कट-कट-कट करते जा रहे थे। (६॥) गीदड़ कटा-कटा रहे थे। भूत, प्रेत और पिशाच खप्परोंमें लहू समेटे जा रहे थे। वीर वैताल बैठे खोपड़ियोंपर ताल दिए जा रहे थे और योगिनियाँ वहाँ खड़ी-खड़ी थिरके जा रही थीं। उधर रामके प्रचंड बाण निरन्तर योद्धाओंकी छाती, भुजा और सिर काटते चले जा रहे थे। वे (भुजा और सिर) तो इधर-उधर जा गिरते थे पर उनके धड़ खड़े लड़ते रहते थे और भयंकर रूपसे 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते जा रहे थे। (३) जब उनकी अँतड़ियोंका एक छोर गिद्ध लेकर उड़ चलते थे तो पिशाच भी उसका दूसरा छोर हाथमें थामे उसके पीछे-पीछे दौड़ चलते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो संग्रामपुरके रहनेवाले बहुतसे बालक खड़े गुड्डी (पतङ्ग) उड़ा रहे हों। वहाँ जो अनेक योद्धा मारे जा चुके थे या घायल हुए पड़े थे या जिनकी छाती फाड़ दी गई थी, वे सब पड़े-पड़े कराहे जा रहे थे। अपनी सेनाके अनेक योद्धाओंको इसपर कराहते देखकर खर, दूषण और त्रिशिरा आदि योद्धा (रामकी ओर) घूम पड़े। [५] वे सब राक्षस खीभ-खीझकर रामपर बाण, शक्ति, तोमर (लोहेकी गदा), फरसा, शूल और कृपाण एक साथ चलाने लगे पर प्रभु (राम)-ने क्षण भरमें शत्रुओंके सब बाण काटकर उन्हें ललकारकर उनपर

तेषां बाणैर्महाबाहुः शस्त्राण्यावार्य्य वीर्यवान्। जहार समरे प्राणांश्चिच्छेद च शिरोधरान्॥
ते छिन्नशिरसः पेतुश्छिन्नचर्मशरासनाः॥
३४१-४८ युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम्। युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत्॥
कवन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि च। भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले॥ वा० रा०
कंक - गोमायुगृद्धाश्च चुक्रुशुर्भयशंसिना। नित्या शिवकरी युद्धे शिवाघोरनिदर्शना॥
भूताश्च प्रमथाः केचित्करालाश्च मदोत्कटाः। प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः॥
अट्टहासं प्रकुर्वन्तो नृत्यन्ति रणमंडले॥ —गर्गसंहिता
रामबाणप्रचण्डेन हताः दैत्याः पतन्ति कौ। उत्पत्य च पुनर्भूमे वदन्ति ह्यशिवां गिरम्॥

प्रभु निमिष - महँ रिपु - सर निवारि, प्रचारि डारे सायका।
दस - दस बिसिख उर - माँझ मारे, सकल निसिचर - नायका ॥ [६]
महि परत, उठि भट भिरत, मरत न, करत माया अति घनी।
सुर डरत, चौदह सहस प्रेत बिलोकि, एक अवध - धनी।
सुर - मुनि सभय प्रभु देखि, मायानाथ अति कौतुक कर्‌यौ।
देखहिँ परसपर राम, करि संग्राम, रिपु - दल लरि मर्‌यौ ॥ [७]

३६० दो०—राम-राम कहि तनु तजहिँ, पावहिँ पद निर्बान।
करि उपाइ रिपु मारे, छन-महँ कृपा - निधान ॥ २० क ॥
हरषित बरषहिँ सुमन सुर, बाजहिँ गगन निसान।
अस्तुति करि-करि सब चले, सोभित बिबिध बिमान ॥ २० ख ॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर - नर - मुनि सबके भय बीते।

धुआँधार बाण बरसाना प्रारम्भ कर दिया। फिर उन्होंने राक्षसोंके सभी नायकोंको छातीमें (गिन-गिनकर) दस-दस बाण खींच मारे। [६] पर वे भी ऐसे बाँके योद्धा थे कि एक बार पृथ्वीपर गिर पड़नेपर भी उठकर फिर लड़ने लगते थे। वे ऐसी माया (छल) फैलाए हुए थे कि वे मारे नहीं मर पा रहे थे। देवता लोग यह देख-देखकर डरे जा रहे थे कि उधर ये प्रेत (राक्षस) तो चौदह सहस्र हैं और इधर अयोध्याके नाथ राम अकेले हैं। जब रामने देखा कि देवता और मुनि डरसे काँपे जा रहे हैं तो मायाके नाथ रामने ऐसा कौतुक (खेल) रच दिया कि वे सब राक्षस आपसमें एक दूसरेको राम ही समझ बैठे और इस प्रकार राक्षसोंकी सारी सेना आपसमें ही लड़ कट मरी। [७] वे सब राक्षस 'राम-राम' कहते हुए शरीर त्याग रहे थे इसलिये सबके सब मोक्ष पद पाते चले जा रहे थे। कृपानिधान रामने इस उपायसे क्षण भरमें सब शत्रुओंके परेके परे काट गिराए ॥ २० क ॥ (फिर क्या था !) देवता लोग हर्षित हो-होकर पुष्प बरसाने लगे। आकाशमें नगाड़े बज उठे और सब देवता (रामकी) स्तुति कर-करके अपने अनेक प्रकारके सुन्दर विमानोंपर चढ़े अपने-अपने लोक लौट गए ॥ २० ख ॥ रामने इस संग्राममें शत्रुओंको जीतकर सभी देवता, मुनि और मनुष्योंका सारा

३४८-५४ गृहीत्वांत्रावलीं गृद्धा उत्पतन्ति च पुष्करम्। पिशाचास्तदनु धावन्ति ॥
रणपू:स्था यथा बाला उड्डीयन्ते च कन्दुकान्। दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं विलोक्य च ॥
खरश्च त्रिशिराश्चैव दूषणश्चैव राक्षसाः। सर्वे रामं ययुः शीघ्रं नाना प्रहरणोद्यताः ॥
तत आगत्य रक्षांसि रामस्योपरि चिक्षिपुः। आयुधानि विचित्राणि पाषाणान्पादपानपि ॥
तानि चिच्छेद रामोपि लीलया तिलशः क्षणात्। ततो बाणसहस्रेण जघान सर्वराक्षसान् ॥
३५५-३५९ तैर्भिन्नवर्म्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः। निपेतुः शोणितादिग्धा धरण्यां रजनीचराः ॥
विषेदुर्देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। एकं सहस्रैर्बहुभिस्तदा दृष्ट्वा समावृतम् ॥
रामस्तान् सभयान्दृष्ट्वा मायां रचितवान् द्रुतम्।—वा०रा०॥ एको दाशरथिः कामं यातुधाना सहस्रशः॥
ते तु यावन्त एवाजौ तावांश्च तद्दृशे स तैः। वीक्ष्य रक्षो रामरूपं मिथो युद्ध्वा स्वयं मृतम्॥रघु०
३६०-३६१ नरो हि मनसा यद्यद् ध्यायन् संत्यजते तनुम्। तत्तदाप्नोति वै लोके मनसा ध्यातमेव च ॥
जघान प्रहरार्धेन सर्वानेव रघूत्तमः ॥ —सत्योपाख्यान
३६२-३६३ एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः। दुंदुभींश्चाभिनिघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः ॥
अहो वीर्यमहोदाक्ष्यं विष्णोरिव हि दृश्यते। इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम् ॥—वाल्मीकीय
३६४ चतुर्दशसहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम्। निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा ॥
जनस्थानमशेषेण मुनीनां निर्भयं कृतम् ॥ —अध्यात्मरामायण

तब लछिमन सीतहिँ लै आए। प्रभु-पद परत, हरषि उर लाए। (१)
सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम, लोचन न अघाता।
पंचवटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर-मुनि-सुखदायक। (२)
धुआँ[1] देखि खर-दूषन केरा। जाइ सुपनखा, रावन प्रेरा।
बोली बचन, क्रोध करि भारी। देस-कोस-कै सुरति बिसारी। (३)
३७० करसि पान, सोवसि दिन-राती। सुधि नहिँ, तव सिर-पर आराती।
राज, नीति-बिनु, धन, बिनु-धर्मा। हरिहिँ समर्पे बिनु, सतकर्मा। (४)
बिद्या, बिनु बिबेक उपजाए। स्रम-फल पढ़े, किए, अरु पाए।
संग-तेँ जती, कुमंत्र-तेँ राजा। मान-तेँ ज्ञान, पान-तेँ लाजा। (५)
प्रीति प्रनय-बिनु, मद-तेँ गुनी। नासहिँ बेगि, नीति असि सुनी। (५॥)

भय मिटा डाला। तब (युद्ध समाप्त होनेपर) लक्ष्मणने सीताको वहाँ ला पहुँचाया और प्रभुके चरणोंमें आ प्रणाम किया। रामने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदयसे उठा लगाया। (१) रामके श्याम और कोमल शरीरको सीता बड़े प्रेमसे देखने लगीं (कि कहीं चोट-चपेट तो नहीं लगी है)। उनके नेत्र (प्रभुको देखकर) अघा नहीं रहे थे (रामको देख-देखकर उनका जी नहीं भर रहा था)। इस प्रकार पञ्चवटीमें बसकर वे (राम) ऐसे-ऐसे काम करने लगे जिनसे देवताओं और मुनियोंको सुख मिलता रहे। (२)

जब शूर्पणखाने देखा कि खर और दूषणके धुए (धुआ = शव) रणमें कटे पड़े हैं तो वह रावणके पास जा पहुँची और बड़े क्रोधके साथ (पैर-पटक पटककर) बोल उठी—'अरे रावण! तुझे न तो देशकी ही कुछ सुध रह गई है न कोष (खजाने)-की ही। (३) तू तो दिन-रात मदिरा पीए सोया पड़ा रहता है। तुझे इतनी भी सुधि नहीं कि तेरे सिरपर शत्रु आया खड़ा है। जो राजनीति जाने बिना राज्य चलाता है, धर्म-कार्यके अतिरिक्त अन्य कामोंपर पैसा लुटाता है, (४) भगवान्‌को समर्पण किए बिना उत्तम कर्म करता है और बिना भली प्रकार समझे-बूझे विद्या पढ़नेका श्रम करता है उसे केवल परिश्रम ही परिश्रम हाथ लगता है (विद्या नहीं आती)। (५) (देखो, मैंने लोगोंके मुँहसे यह नीति सुनी है कि) विषयोंके फेरमें पड़नेसे संन्यासी, खोटी सम्मतिके अनुसार चलनेसे राजा, मान (अहंकार) करनेसे ज्ञान, मदिरा पीनेसे लज्जा, (५) नम्रताका व्यवहार न करनेसे प्रीति और मद (ऐंठ)-में रहनेसे

१. धुआँ : खर-दूषणके जलनेका 'धुआँ' देखकर।

३६५ एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सहसीतया। गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमे सुखी॥
३६६ तं दृष्ट्वा शत्रुहंतारं महर्षीणां सुखावहम्। बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे॥मुदा परमया युक्ता।वा०रा०
३६७ पंचवट्यां वसन्तं च राघवं सहलक्ष्मणम्। विस्तरं सीतया रामं कथयन्तं महाकथाम्॥
दृष्ट्वा मुनयोऽति हर्षिताः। —नृसिंहपुराण
३६८ सापि दुद्राव दृष्ट्वा तान् हतान् राक्षसपुंगवान्। लंकां गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ॥अध्या०रा०
३६९-३७० राक्षसी तमुवाचेदं त्वं प्रमत्तो विमूढधीः। पानासक्तः स्त्रीविजितः षंढः सर्वत्र लक्ष्यसे॥
चारचक्षुर्विहीनस्त्वं कथं राजा भविष्यसि। —अध्यात्मरामायण
३७१-३७४ दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालनात्
पुत्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात् प्रमादाद्धनम्॥ सुभाषित

सो०—रिपु, रुज, पावक, पाप , प्रभु, अहि, गनिय न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि, लागी रोदन करन ॥२१ क॥
दो०—सभा - माँझ परि ब्याकुल , बहु प्रकार कह रोइ।
तोहिँ जियत दसकंधर , मोरि कि असि गति होइ॥२१ ख॥
सुनत सभासद उठि[1] अकुलाई। समुझाई, गहि बाँह उठाई।
३८० कह लंकेस, कहसि निज बाता। केंइ तव नासा - कान निपाता। (१)
अवध - नृपति - दसरथ - के जाए। पुरुष - सिंह बन खेलन आए।
समुझि परी मोहिँ उन्ह - कै करनी। रहित - निसाचर करिहँइ धरनी। (२)
जिन्ह - कर भुज - बल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन।
देखत बालक, काल - समाना। परम धीर, धन्वी, गुन नाना। (३)
अतुलित बल - प्रताप दोउ भ्राता। खल - बध - रत, सुर-मुनि सुखदाता।
सोभा - धाम राम अस नामा। तिन्हके संग नारि ऐक स्यामा। (४)

गुणी पुरुष शीघ्र ही चौपट हो जाते हैं। (५॥) शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको कभी छोटा नहीं समझ बैठना चाहिए।' यह कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकारसे विलाप करती हुई रोने-पीटने लगी ॥ २१ क ॥ रावणकी सभामें व्याकुल होकर पड़ी हुई वह बहुत प्रकारसे रोती-बिलखती हुई कहे चली जा रही थी—'अरे दस सिरवाले रावण ! तेरे जीते जी (तेरे दस सिर होते हुए भी) क्या मेरी यही दशा होनी थी ?' ॥ २१ ख ॥ शूर्पणखाके वचन सुनते ही सारे सभासद् तमतमा उठे। उन्होंने उसे बाँह पकड़कर उठा खड़ा किया और बहुत समझा-बुझाकर ढाढस बँधाया। रावणने उससे पूछा—'बता, वह है कौन जिसने तेरे नाक-कान काट डाले हैं ?' (१) वह कहने लगी—'अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र वनमें शिकार खेलने आए हुए हैं और देखनेमें पुरुषोंमें सिंहके समान लगते हैं। मुझे उनके व्यवहारसे ऐसा लग रहा है कि वे पृथ्वीपर एक भी राक्षस जीता न छोड़ेंगे। (२) देखो रावण ! उनकी भुजाओंके बलके भरोसे अब सब मुनि लोग निर्भय होकर वनमें विचरने लगे हैं। वे (राजकुमार) देखनेमें तो बालक लगतेहैं, पर उन्हें कालके पुतले समझो। वे बड़े धीर हैं, बहुत बड़े धनुर्धर हैं और उनमें इतने अधिक गुण हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। (३) उन दोनों भाइयोंका बल और प्रताप कोई माप नहीं पा सकता। वे आजकल जी-जानसे दुष्टोंका वध करने तथा देवताओं और मुनियोंको सुख देनेमें लगे हुए हैं। उनमेंसे देखनेमें जो बड़े ही सलोने लगते हैं उनका नाम राम है और उनके साथ एक बड़ी सुन्दरी नवेली भी है। (४) विधाताने उस नवेलीको

१. (क) उठे। (ख) उठे सभासद सुनि अकुलाई।

३७७-७८ लंकां गत्वा सभामध्ये क्रोशन्ती पादसन्निधौ।अ.रा.॥इमामवस्थां नीताहं यथाऽनाथा सती तया॥वा.
३८०-८२ रावण उवाच-केनैवं कारितासि त्वं मृत्योर्वक्त्रानुवर्त्तिना। तमाह राक्षसी रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः॥
पुत्रो दशरथस्याथ सिंहसंहननो युवा। यातुधानविहीनाञ्च पृथिवीं कारयिष्यति॥
३८३ यदीयं बलमाश्रित्य चरन्ति मुनयोऽभयम्। —अध्यात्मरामायण
३८४-८५ श्यामः पृथुयशाः श्रीमान् श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्। दिव्यास्त्रगुणसंपन्नः परं धर्मं गतो युधि॥
खलानां तु वधं कर्ता अतुल्यबलविक्रमः॥ —वाल्मीकीयरामायण

रूप - रासि बिधि नारि सँवारी । रति सत - कोटि तासु बलिहारी ।
तासु अनुज काटे स्रुति - नासा । सुनि तव भगिनि, करहिं परिहासा । (५)
खर - दूषन सुनि लगे पुकारा । छन - महँ सकल कटक उन्ह मारा ।
३९० खर - दूषन - तिसिरा - कर घाता । सुनि, दससीस जरे सब गाता । (६)
दो०—सूपनखहिं समुझाइ करि , बल बोलेसि बहु भाँति ।
गयउ भवन अति सोच-बस , नींद परै नहिं राति ।। २२ ।।
सुर - नर - असुर - नाग - खग - माहीं । मोरे अनुचर - कहँ कोउ नाहीं ।
खर - दूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हहिं को मारइ बिनु - भगवंता । (१)
सुर - रंजन, भंजन महि - भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ।
तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ । प्रभु - सर प्रान तजे, भव तरऊँ । (२)

इतना सुन्दर रूप दिया है कि सौ करोड़ रति भी उसकी झलक पा लें तो उस सुन्दरीपर न्योछावर हो मरें । उसी (रामके) छोटे भाईने (आव देखा व ताव, झट) पकड़कर मेरे नाक-कान काट डाले । यह सुनकर कि मैं तेरी बहन हूँ, वे मुझसे हँसी-ठिठोली किए जा रहे थे । (५) मेरी पुकार सुनकर (सहायताके लिये) खर और दूषण आए भी, पर उन दोनोंने क्षण भरमें खर-दूषणकी सारी सेना (गाजर मूलीके समान) काट फेंकी ।' जब रावणने सुना कि खर, दूषण और त्रिशिरा मार डाले गए तब तो रावणका शरीर (क्रोधके मारे) जल उठा । (६) शूर्पणखाको समझा-बुझाकर रावणने अनेक प्रकारसे अपने बलका वर्णन करके उसे तो सान्त्वना दे दी पर उसके मनमें भीतर ही भीतर उथल-पुथल मच उठी । बड़ी चिन्तामें उलझा हुआ वह उठकर अपने भवनमें जा लेटा । इस उधेड़बुनमें भला किसकी नींद और कहाँका सोना? सारी रात उसे जागते बीत गई। ।।२२।। (वह मनमें सोचता जा रहा था कि) 'देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियोंमें तो कोई ऐसा (माईका लाल) दिखाई नहीं देता जो मेरे सेवक-तककी भी बराबरी कर पावे और फिर खर और दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे । भगवान्‌को छोड़कर उन्हें और कोई मार नहीं पा सकता ? (१) यदि देवताओंको आनन्द देनेवाले, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले भगवान् ही अवतार लेकर आ उतरे हों तब तो मैं हठ करके उनसे बैर मोल जा लूंगा और प्रभुके बाणोंसे प्राण छोड़कर भवसागरसे पार उतर जाऊँगा । (२) अब इस तामस

३८६-८७ रामो नाम महातेजा मुनीनां सुखदायकः । भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा ।।
श्यामा समविभक्तांगी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता । मोहिनी नरनारीणां रूपिणी जनहारिणी ।।वा.रा.
३८८ लक्ष्मणो नाम तद्भ्राता चिच्छेद मम नासिकाम् । —अध्यात्मरामायण
३८९-३९० ततोऽहमतिदुःखेन रुदती खरमन्वगाम् । सोपि रामं समासाद्य युद्धं राक्षसयूथपैः ।।
ततः क्षणेन रामेण तेनैव बलशालिना । सर्वे ते प्रविनष्टा वै राक्षसाः भीमविक्रमाः ।।
३९१-९२ श्रुत्वा तत्सूक्तवाक्यैश्च दानमानादिभिस्तथा । आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम् ।।
तत्र चिन्तापरो भूत्वा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् । —अध्यात्मरामायण
३९३ नहि मे विप्रियं कृत्वा शक्यं मघवता सुखम् । प्राप्तुं वैश्रवणेनापि न यमेन न विष्णुना ।।
कालस्य चाप्यहं कालो दहेयमपि पावकम् । —वाल्मीकीयरामायण
३९४ भ्राता कथं मे बलवीर्यदर्पयुतो विनष्टो बत राघवेण । —अध्यात्मरामायण
३९५ निर्दलनार्थं दुष्टानां सज्जनानाञ्च पुष्टये । भूमेर्भारापनुत्यर्थं जातो रामः स्वयं हरिः ।। आनं०
३९६ विरोधबुध्यैव हरिं प्रयामि वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहम् । वैकुण्ठराज्यं परिपालयेहम् ।।अध्या०

होइहि भजन न तामस - देहा। मन - क्रम - बचन, मंत्र दृढ़ एहा।
जौं नर - रूप भूप - सुत कोऊ। हरिहौं नारि, जीति रन दोऊ। (३)
चला अकेल, जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु - तट जहवाँ।
१← इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा, सो कथा सुनाई। (४)
४०१ दो०—लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल - फल - कंद।
जनक - सुता - सन बोले, बिहँसि कृपा - सुख - बृन्द ॥ २३ ॥
सुनहु प्रिया ! ब्रत रुचिर, सुसीला। मैं कछु करबि, ललित नर-लीला।
तुम पावक - महँ करहु निवासा। जौं लगि करौं, निसाचर - नासा। (१)
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु-पद धरि हिय, अनल समानी।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसेइ सील - रूप - सुबिनीता। (२)
लछिमन - हू यह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना।
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ, स्वारथ - रत नीचा। (३)

शरीरसे भजन-वजन तो किए होगा नहीं, इसलिये मन, कर्म और वचनसे यही ठाने लेता हूँ। और यदि वे कोई सामान्य मनुष्य राजकुमार हुए तब तो मैं उन दोनोंको रणमें पछाड़कर उनकी स्त्री छीन ही लाऊँगा।' (३) इसी उधेड़बुनमें वह अकेला रथपर चढ़ा वहाँके लिये चल पड़ा जहाँ समुद्रके किनारे मारीच रहा करता था।

महादेव कहते हैं—'देखो पार्वती ! इधर रामने जो कुछ करतब किया वह सुहावनी कथा भी मैं तुम्हें सुनाए देता हूँ।' (४) (एक दिन) जब लक्ष्मण वनमें मूल, फल, कन्द आदि लेने गए हुए थे तब कृपा और सुखके भांडार रामने जानकीसे हँसकर कहा—॥२३॥ 'देखो सुशीला प्रिये ! सुनो। मैंने एक बहुत बढ़िया संकल्प सोच धरा है। मैं अब कुछ मनुष्योंकी-सी बढ़िया लीला करनेको सोच रहा हूँ। अतः, जबतक मैं सारे राक्षसोंका नाश न कर डालूँ तबतक तुम अग्निमें जाकर समा रहो।' (१) रामने ज्योंही सीताको सब समझा बताया त्योंही सीता अपने हृदयमें प्रभुके चरणोंका ध्यान करके अग्निमें जा समाईं और अपने बदले सीताने अपने ही जैसी शील, रूप और विनम्र स्वभाववाली अपनी छाया-मूर्ति वहाँ ला खड़ी की। (२) भगवान् रामने उनके पीछे यह जो खेल रच डाला था उसका रहस्य लक्ष्मण भी नहीं समझ पाए।

इधर स्वार्थी और नीच रावण वहाँ जा पहुँचा जहाँ मारीच रहा करता था। उसने पहुँचते ही मारीचको जा प्रणाम किया। (३) नीचका झुकना वैसा ही भयङ्कर होता है जैसे अंकुशका झुकना

१. यहाँ कुछ प्रतियोंमें १ दोहा और ३॥ चौपाइयोंमें मारीचके आश्रमका वर्णन मिलता है जो क्षेपक है।

३९९ विचिन्त्यैवं निशायां स प्रभाते रथमास्थितः। रावणो मनसा कार्यमेकं निश्चित्य बुद्धिमान् ॥ ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः। —अध्यात्मरामायण
४०० अथ रामोपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावणचेष्टितम्। गिरिजे शृणु मे प्रोक्तं रघुवंशकथामृतम ॥अध्या०
४०१-२ स गतो लक्ष्मणः श्रीमान् नदीं गोदावरीं तदा। फलमूलादिकार्थं च ॥ —वाल्मीकीयरामायण
उवाच सीतामेकान्ते शृणु जानकि मे वचः। —अध्यात्मरामायण
४०३-४ अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया। रावणस्य वधान्ते च पूर्ववत्प्राप्स्यसे शुभे ॥—अध्या०
४०५-६ श्रुत्वा रामोदितं वाक्यं सापि तत्र तथाऽकरोत्। मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले ॥
४०७ लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम्।
४०८ ययौ मारीचसदनं परं पारमुदन्वतः। निजार्थे तत्परीभूतः प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ अध्यात्म०

नवनि नीच-के अति दुखदाई। जिमि अंकुस, धनु, उरग, बिलाई।
४१० भय-दायक खल-कै प्रिय बानी। जिमि अकाल-के कुसुम भवानी। (४)
दो०—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयहु तात ॥ २३ ॥
दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित-अभिमान अभागे।
होहु कपट-मृग तुम छल-कारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृप-नारी। (१)
तेहि पुनि कहा, सुनहु दस-सीसा। ते नर-रूप चराचर-ईसा।
तासों तात! बैर नहिं कीजै। मारे मरिय, जियाए जीजै। (२)
मुनि-मख राखन गयउ कुमारा। बिनु-फर सर, रघुपति मोहिं मारा।
सत जोजन आयउँ छन-माहीं। तिन्ह-सन बैर किए भल नाहीं। (३)
भइ मति[1] कीट भृंग-की नाईं। जहँ-तहँ मैं देखौं दोउ भाई।

(जो झुककर हाथीका सिर छेद देता है), धनुषका झुकना (जो झुककर प्राण ले लेता है), सर्पका झुकना (जो झुककर डस लेता है) और बिल्लीका झुकना (जो झुककर वार कर बैठती है)। (शिव कहते हैं–) 'देखो भवानी ! जब कोई दुष्ट मीठी-मीठी बातें करने लगता है तो उससे वैसा ही भय लगता है जैसे बिना समय वृक्षके फूलने-फूलनेसे।' (४) मारीचने रावणकी पूजा करके उससे बड़े आदरसे पूछा—'कहिए राजन् ! आप इतने घबराए हुए-से क्यों लग रहे हैं कि यहाँ अकेले ही चले आ रहे हैं' ॥ २४ ॥ अभागे रावणने (शूर्पणखाके नाक-कान कटनेकी) सारी कथा मारीचको बड़े अभिमानसे कह सुनाई (और कहा कि) तुम कपट-मृग (बनावटी मृग) बनकर वहाँ चलकर कुछ छल रच डालो तो मैं उस राजवधू (सीता)-को वहाँसे धीरेसे उठा भागूँ।' (१) यह सुनकर मारीचने कहा—'देखो रावण ! सुनो। उन्हें तुम मनुष्य समझनेकी भूल न कर बैठना। वे तो मनुष्य रूपमें चर और अचरके स्वामी हैं। देखो रावण ! उनसे वैर ठाननेकी बात ही मनसे निकाल फेंको। वे यदि मारें तो मर जाओ और जिलावें तो जीते रहो। ये तो वे ही कुमार हैं जो मुनि (विश्वामित्र)-के यज्ञकी रक्षा करने वहाँ पहुँचे हुए थे। उस समय रामने मुझे बिना फलका ऐसा कसकर बाण मारा था कि मैं क्षण भरमें कुलमुली खाता सौ योजन-तक यहाँ लुढ़कता-पुढ़कता चला आया। उनसे वैर मोल लेना कोई अच्छी बात नहीं है। (३) मेरी दशा तो (तबसे ही) भृंगी कीड़े-जैसी हो गई है कि मैं जिधर देखता हूँ उधर वे

१. मम।

४०९-१० दुर्जनैरुच्यमानानि सम्मतानि प्रियाण्यपि। अकालकुसुमानीव भयं संजनयन्ति च॥ हितो०
४११-१२ द्रुतमुत्थाय चालिंग्य पूजयित्वा यथाविधि। कृतातिथ्यं सुखासीनं मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥
चिंतापर इवाभासि हृदि कार्यं विचिंतयन्। समागमनमेतत्ते कथमेकाकिनोऽभवत्॥
४१३ दशास्येन समग्रं तु तस्मै वृत्तं निवेदितम्।
४१४ रावण उवाच-त्वं तु मायामृगं भूत्वा ह्याश्रमादपनेष्यसि। रामं च लक्ष्मणं चैव तदा सीतां हराम्यहम्॥
आनयिष्यामि विपिने रहिते राघवेण ताम्। —अध्यात्मरामायण
४१५ प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम्। राजा सर्वस्य लोकस्य नररूपः स्वयं हरिः॥वा०रा०
४१७-१८ बालोपि मां कौशिकस्य यज्ञसंरक्षणाय सः। आगतस्त्विषुणैकेन पातयामास सागरे॥
योजनानां शतं रामः। न विरोधो वरं तेन रामेण प्रिय रावण। —अध्यात्मरामायण
४१९ वृक्षे वृक्षे हि पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्। तदा प्रभृति मे बुद्धिः भृंगीवच्च बभूव सा॥

४२० जौ नर, तात ! तदपि अति सूरा । तिन्हहिं बिरोधि, न आइहि पूरा । (४)

दो०—जेहि ताड़का-सुबाहु हति , खंडेउ हर - कोदंड ।
खर-दूषन - तिसिरा बधेउ , मनुज कि अस बरिबंड ॥ २५ ॥

१← जाहु भवन, कुल - कुसल बिचारी । सुनत जरा, दीन्हिसि बहु गारी ।
गुरु - जिमि मूढ़ ! करसि मम बोधा । कहु, जग मोहिं समान को जोधा । (१)
तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहिं बिरोधे, नहिं कल्याना ।
सस्त्री, मर्मी, प्रभु, सठ, धनी । बैद्य, बंदि, कबि, मानस[२]-गुनी । (२)
उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकेसि रघुनायक - सरना ।
उतर देत, मोहिं बधब अभागे । कस न मरौं रघुपति - सर लागे । (३)
अस जिय जानि, दसानन - संगा । चला राम - पद - प्रेम अभंगा ।

ही दोनों भाई दिखाई पड़ते रहते हैं । और, यदि मान लो वे मनुष्य भी हों, तो भी वे बड़े शूर तो हैं ही । उनसे विरोध करके आप पार नहीं पा सकेंगे । (४) जिसने ताड़का और सुबाहुको ढेर कर डाला, शिवका धनुष दो-टूक कर फेंका और खर, दूषण, त्रिशिराको रणमें मार बिछाया ऐसे प्रचण्ड बलवान्को भी क्या आप सामान्य मनुष्य समझे बैठे हैं ? ॥ २५ ॥ यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हों तो चुप मारकर घर बैठ रहिए ।' इतना सुनना था कि रावण आग-बबूला हो उठा । पहले तो उसने मारीचको सैकड़ों गालियाँ सुनाईं और फिर कहा—'अरे मूर्ख ! तू गुरु बनकर मुझे ज्ञान सिखाने चला है ? भला बता तो सही कि मेरे समान संसारमें दूसरा योद्धा है कौन !' (१) तब मारीचने मनमें समझ लिया कि इन नौ व्यक्तियोंसे विरोध करनेमें कल्याण नहीं होता—'शस्त्रधारी, भेद जाननेवाला, स्वामी, दुष्ट, धनी, वैद्य, बंदी (भाट), कवि और रसोइया ।' (२) जब मारीचने समझ लिया कि मरना तो यों भी है त्यों भी, तब उसने रामकी शरण लेना ही ठीक समझा । (उसने सोचा—) 'यदि इसका कहा न किया तो यह अभागा मुझे जीता न छोड़ेगा । (जब मरना ही है) तब जाकर रामके ही बाणसे क्यों न प्राण दे डाले जायँ ।' (३) मनमें यह निश्चय करके वह रावणके साथ हो लिया । रामके चरणोंमें तो उसका अखंड प्रेम जम ही चुका था । उसके मनमें यही बड़ा हर्ष हो रहा था कि 'आज मैं (इसी बहाने) अपने परम स्नेही रामके दर्शन तो पा लूँगा ।' पर उसने अपना

१← ए अस नाम सुनत दसकंधर । रहत प्रान नहिं मम उर अंतर । रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण । रत्नानि च रथांश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे ॥ २. मानस (म्हानस) = महानस = रसोईघर ।

४२० नहि रामं पराक्रम्य जीवन्प्रति निवर्तते । —वाल्मीकीयरामायण
४२१-२२ यमास्यद्दश्वरी तस्य ताडका वेत्ति विक्रमम् । अध्यङ्शस्त्रभृतां रामोन्यच्चस्तं प्राप्य मद्विधः ॥
स कन्याशुल्कमभनङ्मिथिलायां मखे धनुः । संवित्तः सह युध्वानौ तच्छक्ति खरदूषणौ ॥भट्टिका०
अतो न मानुषो रामः साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥ —अध्यात्मरामायण
४२३ प्रसीद लंकेश्वर राक्षसेन्द्र लंकां प्रसन्नो भव साधु गच्छ । —वाल्मीकीयरामायण
तं भीताकारमाक्रुश्य रावणः प्रत्यभाषत ॥ —भट्टिकाव्य
४२५ गुरुरिव शिक्षसे मूढ मत्समः कोऽस्ति वीर्यवान् । —हनुमन्नाटक
४२६ शस्त्री प्रभेदी नृपतिश्शठो वैद्यो धनिः कविः । वंदी गुणीति व्याख्यातैर्नवभिर्न विरुद्धताम् ॥चाण०
४२७ रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि । उभाभ्यां यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः ॥हनु०
४२८ अकुर्वतोस्य वचनं स्यान्मृत्युरपि मे ध्रुवम् । मारीचश्चिन्तयामास विशिष्टान्मरणं वरम् ॥महा०

४३० मन अति हरष, जनाव न तेही। आज देखिहौं परम सनेही। (४)

छंद—निज परम - प्रीतम देखि, लोचन सुफल करि, सुख पाइहौं।
श्री - सहित, अनुज - समेत, कृपानिकेत - पद मन लाइहौं।
निर्बान - दायक क्रोध जा - कर, भगति अबसहिं बस करी।
निज पानि, सर संधानि सो, मोहिं बधिहि, सुख - सागर हरी॥ ८॥

दो०—मम पाछे धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि-फिरि प्रभुहिं बिलोकिहौं, धन्य न मो-सम आन॥ २६॥

तेहि बन - निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट - मृग भयऊ।
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक - देह मनि - रचित बनाई। (१)
सीता, परम रुचिर मृग देखा। अंग - अंग सुमनोहर बेखा।
४४० सुनहु देव! रघुबीर! कृपाला। एहि मृग - कर अति सुंदर छाला। (२)

यह हर्ष (अपने ही मनमें छिपाए रक्खा,) रावणको नहीं जानने दिया। (४) (वह अपने हृदयमें सोचता चला जा रहा था—) 'आज मैं अपने परम प्रियतम (राम)-को देखकर अपने नेत्र सफल करनेका सुख लूटूँगा। सीता और लक्ष्मणके साथ कृपाके भांडार उन रामके चरणोंमें मन लगाऊँगा जिनका क्रोध भी मोक्ष ही देता है और जिनकी भक्ति करनेसे वे भगवान् भी वशमें हो बैठते हैं जो किसीके वशमें नहीं आ पाते। (मुझे यही प्रसन्नता है कि) वे सुखके सागर हरि (राम) ही अपने हाथोंसे मेरा वध करेंगे। [८] मेरे पीछे-पीछे जब प्रभु धनुष-बाण लिए हुए पृथ्वीपर दौड़े आवेंगे और मैं उन्हें बार-बार घूम-घूमकर देखूँगा, उस समय मेरे समान दूसरा कोई धन्य नहीं होगा'॥ २६॥

जब उस वनके निकट रावण पहुँचा (जहाँ रामका आश्रम था), तब मारीच झट कपट-मृग (बनावटी हरिण) बन गया। उसने अपने सुनहरे शरीरपर मणियोंकी पच्चीकारी करके उसे ऐसा विचित्र बना लिया था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (१) सीताने ज्यों ही वह परम सुन्दर मृग देखा, जिसका अङ्ग-अङ्ग सुनहरा और मनोहर था, त्यों ही उन्होंने रामसे कहा—'देखिए देव!

४२९-३० इति निश्चित्य मरणं रामादुत्थाय वेगतः। अब्रवीद्रावणं राजन् करोम्याज्ञां तव प्रभो॥
इत्युक्त्वा रथमास्थाय गतो रामाश्रमं प्रति। प्रहृष्टस्त्वभवच्चित्ते द्रक्ष्याम्यद्य तु केशवम्॥ अध्यात्म०

४३१-३४ त्वं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम्।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः॥ —भागवत
स तु दृष्ट्वा रमानाथं लक्ष्मणं जानकीं तदा मनसा तु स्मरिष्यामि॥ आनन्दरामायण
क्रोधोपि देवस्य वरेण तुल्यः॥ पाण्डवगीता
दृष्टश्चाहं पुनस्तेन शरचापासिधारिणा। मद्वधोद्यतशस्त्रेण निहतं जीवितं च मे॥ वाल्मी०

४३५-३६ तदनु जनकपुत्री याच्ञया तं जिघृक्षुर्हरिणमनुजगाहे चापमादाय रामः॥—चम्पूरामायण
प्रत्यक्षतोद्य भवतश्चरणारविन्दं पश्यामि राम तमसः परतः स्थितस्य।
अतो धन्योस्म्यहं राम नास्त्यन्यो मत्समो जनः॥ —अध्यात्मरामायण

४३७ समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः। जगाम सह मारीचो रावणो राक्षसाधिपः॥
मृगो भूत्वाश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह। —वाल्मीकीयरामायण

४३९ सुललितफलमूलैस्तत्र कालं कियन्तं दशरथ कुलदीपे सीतया लक्ष्मणेन।
गमयति दशकण्ठोत्कण्ठितप्रेरितं द्राक्कनकमयकुरंगं जानकी संददर्श॥ —हनुमन्नाटक

४४० तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता। चर्मानयस्य कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा॥—देवीभा०

सत्य - संध प्रभु ! बधि करि एही । आनहु चर्म, कहति बैदेही ।
तब रघुपति, जानत सब कारन । उठे हरषि सुर - काज सँवारन । (३)
मृग बिलोकि, कटि परिकर बाँधा । कर - तल चाप, रुचिर सर साँधा ।
प्रभु, लछिमनहिं कहा समुझाई । फिरत बिपिन निसिचर बहु, भाई । (४)
सीता - केरि करेहु रखवारी । बुधि, बिबेक, बल, समय बिचारी ।
प्रभुहिं बिलोकि, चला मृग भाजी । धाए राम सरासन - साजी । (५)
निगम नेति, सिव ध्यान न पावा । माया - मृग पाछे सो धावा ।
कबहुँ निकट, पुनि दूरि पराई । कबहुँक प्रगटै, कबहुँ दुराई[1] । (६)
प्रगटत - दुरत, करत छल भूरी । ऐहि बिधि प्रभुहिं गयउ लै दूरी ।
४५० तब तकि, राम कठिन सर मारा । धरनि परेउ करि घोर पुकारा[2] । (७)

कृपालु रघुवीर ! इस मृगकी खाल बड़ी सुन्दर होगी ।' (२) सीता कहने लगीं—'हे सत्य-प्रतिज्ञ प्रभो ! आप इसे मारकर इसकी खाल लेते आइए ।' राम तो सब कारण जानते ही थे (कि यह कपट-मृग है पर रावणको मारकर) देवताओंका काम बनानेके लिये वे प्रसन्नता-पूर्वक उठ खड़े हुए । (३) हरिणको देखते ही रामने कमरमें फेंटा कस लिया और हाथमें धनुष लेकर उसपर दिव्य (तेजसे भरा हुआ) बाण चढ़ा धरा । फिर प्रभु (राम)-ने लक्ष्मणको समझाकर कहा—'देखो भाई ! वनमें बहुतसे राक्षस इधर-उधर घूमते रहते हैं । (४) तुम अपनी बुद्धि, विवेक, बल और समयका विचार करते हुए सीताकी भली प्रकार रखवाली करते रहना ।' ज्योंही हरिणने देखा कि प्रभु (राम) पीछा करते चले आ रहे हैं त्यों ही वह चौकड़ी भरता हुआ भाग चला । इधर राम भी धनुषपर बाण चढ़ाए (उसके पीछे-पीछे) दौड़ चले । (५) (बताइए कितनी विचित्र बात है कि) जिन्हें वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर चुप हो रहते हैं और जिन्हें शिव भी ध्यान लगाकर ठीक-ठीक नहीं देख पाते, वही प्रभु माया-मृग (बनावटी हरिण)-के पीछे-पीछे दौड़े चले जा रहे थे । वह हरिण (भी ऐसा छलिया था कि) कभी (रामके) पास आ जाता, तो कभी दूर निकल जाता, कभी दिखाई देने लगता, तो कभी कहीं जा छिपता । (६) इस प्रकार बहुत प्रकारसे लुका-छिपीका छल करते हुए (धोखेमें डालते हुए) वह प्रभु (राम)-को बहुत दूर निकाल ले गया । तब रामने लक्ष्य साधकर उसे ऐसा

१. छिपाई । २. चिकारा ।

४४३-४४ देवकार्यस्य सिद्ध्यर्थमुत्थितो मर्मवित्प्रभुः । दृष्ट्वा रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः ।। सूर्यरश्मिप्रतीकाशं समधत्त च सायकम् । —वाल्मीकीय

४४५-४६ रक्ष त्वमति यत्नेन सीतां मत्प्राणवल्लभाम् । मायिनः सन्ति विपिने राक्षसा घोरदर्शनाः ।। अतोऽत्रावहितः साध्वीं रक्ष सीतामनिन्दिताम् ।। —अध्यात्मरामायण

४४७ ततः पलायनं चक्रे मृगो रामं विलोक्य च । —आनन्दरामायण
आन्दोलयन्विशिखमेककरेण सार्धं कोदंडकाण्डमपरेण करेण धुन्वन् ।
सन्नह्य पुष्पलतया पटलं जटानां रामो मृगं मृगयते वनवीथिकासु ।। —हनुमन्नाटक

४४८ माया यदाश्रया लोकमोहिनी जगदाकृतिः । निर्विकारश्चिदात्मापि पूर्णोऽपि मृगमन्वगात् ।।अ०

४४९ तिष्ठति प्रचलति प्रान्तेषु मायामृगः ।। —हनुमन्नाटक

४५० बाणेन दिव्येन रघुप्रवीरस्ततो मृगं वक्षसि बद्धलक्ष्यः । विव्याध यावत्तरसा च रामः ।।हनु०ना०
व्यनदद् भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः । —वाल्मीकीय

लछिमन - कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन - महँ रामा।
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत - सनेहा। (८)
अंतर - प्रेम तासु पहिचाना। मुनि - दुरलभ-गति दीन्ह सुजाना। (८॥)
दो०—विपुल सुमन सुर बरषहिं, गावहिं प्रभु - गुन - गाथ।
निज पद दीन्ह असुर - कहँ, दीन - बंधु रघुनाथ॥ २७॥
खल बधि, तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर, कटि तूनीरा।
आरत गिरा, सुनी जब सीता। कह लछिमन - सन परम सभीता। (१)
जाहु बेगि, संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा, सुनु माता।
भृकुटि - बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परै कि सोई। (२)
४६० मरम बचन जब सीता बोला[1]। हरि - प्रेरित लछिमन-मन डोला[1]।

पैना बाण खींच मारा कि वह चिल्लाता हुआ वहीं धरतीपर जा लेटा। (७) उसने पहले तो (ऊँचे स्वरसे) 'लक्ष्मण'को पुकारा और फिर मन ही मन रामको स्मरण करके आँखें उलट दीं। प्राण छोड़ते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट कर दिया था और वह प्रेमके साथ रामका स्मरण करने लगा था। (८) रामने उसके हृदयका प्रेम पहचान लिया और उसे वह गति (पदवी) दी, जो बड़े-बड़े मुनियोंको भी मिलनी दूभर होती है। (६) रामपर देवताओंने ढेरके ढेर फूल ला बरसाए और वे प्रभु रामके गुणोंकी कथाएँ कहने लगे—'रामकी दीनबन्धुता तो देखिए कि उस (मारीच-जैसे) असुर (राक्षस)-को भी उन्होंने अपना परम पद (वैकुण्ठ लोक) दे डाला'॥ २७॥ इस प्रकार उस दुष्ट (मारीच)-को मारकर राम (आश्रमकी ओर) लौट चले। उनके हाथमें धनुष और कमरमें तूणीर बँधा बहुत सुहावना लग रहा था।

इधर जब सीताने ('हा लक्ष्मण!' की) करुण पुकार सुनी तो वे बहुत घबरा उठीं और लक्ष्मणसे बोलीं—(१) 'लक्ष्मण! झटपट जाकर देखो तो! जान पड़ता है तुम्हारे भाई कहीं संकटमें जा फँसे हैं।' यह सुनकर लक्ष्मणने हँसकर कहा—'माता! जिनकी भौंह-भर चलानेसे सारी की सारी सृष्टि उलट-पलट जाती है, वह (राम) क्या कभी स्वप्नमें भी संकटमें फँस सकते हैं।' (२) इसपर सीताने कुछ ऐसी-वैसी बातें कह डालीं कि लक्ष्मणका हृदय चलनी हो चला। भगवान्‌की भी कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि लक्ष्मणका मन भी डगमगा उठा। लक्ष्मणने तत्काल (अपने

१. बोली; डोली।

४५१ हा हतोस्मि महाबाहो त्राहि लक्ष्मण मां द्रुतम्। इत्युक्त्वा राघवं स्मृत्वा प्राणांस्तत्याज सत्वरम्॥
४५२-५३ पपात रुधिरावतास्यो मारीचः पूर्वरूपधृक्। हृदि रामं सदा ध्यात्वा विधूताशेषकल्मषः॥
अन्ते रामेण निहतः पश्यन् राममवाप सः। —अध्यात्मरामायण
४५४-५५ एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः। दुंदुभींश्चापि निघ्नन्तः पुष्पवर्षं समन्ततः॥वा०
द्विजो वा राक्षसो वापि पापी वा धार्मिकोपि वा। त्यजन्कलेवरं रामं स्मृत्वा याति परं पदम्॥अध्यात्मरा०
४५६ निहत्य पृषतं चं वै मांसमादाय राघवः। त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखं तदा॥—वाल्मीकीय
४५७ सीता तद्व्यापितं श्रुत्वा मारीचस्य दुरात्मनः। भीतातिदुःखसंविग्ना लक्ष्मणं त्विदमब्रवीत्॥अ०
४५८-५९ गच्छ लक्ष्मण ते भ्राता राक्षसैनेव पीडितः। जानकीं प्राह सौमित्रिर्मतिः शृणु वचो मम॥
उवाच लक्ष्मणो देवि नैवं भवति कर्हिचित्। न हन्तारं प्रपश्यामि रामस्य भुवनत्रये।—अध्या०

चहुँ दिसि रेख खँचाइ अहीसा। बार - बार नायउ पद सीसा[1]। (३)
बन - दिसि - देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन - ससि - राहू।
सून - बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती - के बेखा। (४)
जाके डर सुर - असुर डेराहीं। निसि न नींद, दिन अन्न न खाहीं।
सो दससीस स्वान - की नाईं। इत - उत चितइ चला भँड़ियाईं। (५)
इमि, कुपंथ पग देत खगेसा। रह न तेज तन[2], बुधि - लव लेसा।
नाना बिधि करि कथा सुहाई। राजनीति, भय, प्रीति दिखाई। (६)
कह सीता ! सुनु जती गोसाईं। बोलेहु बचन दुष्ट - की नाईं।
तब रावन निज रूप दिखावा। भईं सभय जब नाम सुनावा। (७)
४७० कह सीता, धरि धीरज गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु, खल ! रहु ठाढ़ा।

धनुपसे कुटीके) चारों ओर रेखा खींचकर वार-वार (सीताके) चरणोंमें सिर नवाया (और कहा कि आप रेखा लाँघकर वाहर न जाइएगा)। (३) वे वनके और दिशाओंके देवताओंको सीताकी रक्षाका भार सौंपकर उधर चल पड़े जिधर रावण-रूपी चन्द्रमाके राहु (रावणको मार डालनेवाले) राम गए हुए थे। इधर जब रावणने देखा कि चारों ओर सुनसान है तो वह संन्यासीका बाना बनाकर सीताके पास जा पहुँचा। (४) जिस (रावण)-के डरसे देव और दानव इतने डरे बैठे रहते हैं कि उन्हें रातमें नींद और दिनमें भूख नहीं लग पाती, वही रावण, कुत्तेके समान इधर-उधर ताक-झाँक करता और भँड़ैती (भाँड़ोंके समान हास्यास्पद आचरण) करता बढ़ा चला जा रहा था। (५) (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! जो भी इस प्रकार बुरा काम करने चलता है उसके शरीरमें न तो तेज रह पाता, न तनिक-सी भी बुद्धि। वह जाते ही पहले तो सीताको अनेक प्रकारकी सुन्दर कथाएँ गढ़-गढ़कर सुनाने लगा, फिर उसने राजनीतिकी बातें छेड़ दी और फिर वह प्रेमकी बातें करने लगा। (६) (यह सब सुनकर) सीताने कहा–'देखो यति, गोसाईं ! तुम जिस प्रकारकी बातें बके जा रहे हो ऐसी बातें तो केवल दुष्ट पुरुष ही किया करते हैं (भले आदमी नहीं)।' यह सुनकर जब रावणने अपना वास्तविक रूप खोल दिखाया और बता दिया कि मेरा नाम रावण है तब तो सीता भी भयभीत हो उठीं। (७) पर सीताने बहुत धीरज धरकर उसे ललकारा—'अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह। देख, प्रभु आ ही पहुँचे हैं। अरे राक्षसोंके स्वामी ! जैसे

१. यह अर्धाली कुछ प्रतियोंमें नहीं है। २. बल।

४६०-६१ तत्क्रूरवचनं तस्याः श्रुत्वा ज्ञात्वा महद् भयम्। ततः स धनुषः कोटया रेखां कृत्वा समन्ततः। ननाम च पुनस्सीताम्। —आनन्दरामायण
४६३ तदा स वनदेवेभ्यः समर्प्य जनकात्मजाम्। सन्निधिं चन्द्रपौलस्त्यराहोश्चापरंजयः ॥अ० रा०
४६४ ततोन्तरं समालोक्य रावणो भिक्षुवेषधृक्। सीतासमीपमगमत्स्फुरद्दंडकमण्डलुः ॥अध्या० रा०
४६५-६६ येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरमानुषाः। शुनकेन समं सोपि गतः सीतान्तिकं तदा ॥
४६७-६८ मुनिवेषेण रामेण किं करिष्यसि मां भज। भुंक्ष्व भोगान् मया सार्धं त्यज दुःखं वनोद्भवम्। एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना। अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम् ॥अध्यात्म०
४६९ इत्युक्तो दर्शयामास स्वं रूपं राक्षसाधिपः। तं दृष्ट्वा जानकी भीता श्रुतपूर्वं खलं सती ॥
४७० उवाच धैर्यमालम्ब्य यदि त्वं रावणः खलः। क्षणं तिष्ठात्र मे भर्ता सत्वरश्चागमिष्यति। नाशयिष्यति ते गर्वमित्युक्तश्च तया तदा ॥

जिमि हरि - बधुहिं छुद्र सस चाहा। भएँसि कालबस निसिचर - नाहा। (८)
सुनत बचन, दससीस रिसाना। मन - महँ चरन बंदि, सुख माना। (८॥)
दो०—क्रोधवंत तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन - पथ आतुर, भय, रथ हाँकि न जाइ॥ २८॥
हा जगदेक बीर! रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया।
आरति - हरन, सरन - सुख - दायक। हा रघुकुल - सरोज - दिन-नायक। (१)
हा लछिमन! तुम्हार नहिं दोसा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा।
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु, दूरि सनेही। (२)
बिपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा।
४८० सीता - कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी। (३)
गीधराज, सुनि आरत बानी। रघुकुल - तिलक - नारि पहिचानी।

सिंहिनीको नीच खरगोश अपनाना (लेनेके फेरमें अपने प्राण देना) चाहे, वैसे ही जान पड़ता है तेरे भी दिन पूरे हो चले हैं।' (८) यह सुनकर तो रावण क्रोधसे लाल हो उठा पर मन ही मन सीताके चरणोंकी वन्दना करके उसे बड़ा सुख मिला। (८॥) तब क्रोधमें भरकर रावणने (सीताको) रथपर उठा चढ़ाया और वह बड़े वेगसे आकाश-मार्गसे बड़ी हड़बड़ीमें उड़ा ले चला। पर (रामके) डरके मारे उससे रथ हाँकते नहीं बन रहा था॥ २८॥ (रथपर बैठी सीता रोने-चिल्लाने लगीं। वे कहती जा रही थीं)—'हा जगत्के एकमात्र वीर राम ! आपने मेरा क्या अपराध देखा कि मुझपर कृपा करना भूल गए ? हे दु:खोंको हरनेवाले ! हे शरणागतको सुख देनेवाले ! हा रघुकुल रूपी कमलके सूर्य ! (१) हा लक्ष्मण ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। क्रोधमें आकर मैंने जो तुम्हें टेढ़ी-सीधी बातें कह डाली थीं, उसीका मुझे यह फल मिल रहा है।' सीता अनेक प्रकारसे रोए-बिलखे जा रही थीं–'प्रभुकी कृपामें तो कोई कमी नहीं है, पर वे स्नेही प्रभु (राम) अभी न जाने कितनी दूरपर हैं। (२) प्रभु (राम)-को जाकर यह विनति कौन सुनावे कि पुरोडाश[1] (यज्ञमें जौ-चावलके आटेके पके हुए पिंड)-को गदहा खाया चाहता है।' सीताका यह रोना-चिल्लाना जिस भी चर और अचर जीवने सुना वही रो पड़ा। (३) गृध्रराज (जटायु)-ने जब सीताका यह दु:खभरा रोना सुना तो वह झट पहचान गया कि यह तो रघुकुलके तिलक रामकी

१. पुरोडाश : दर्श (अमावास्या) और पूर्णिमाको अग्निहोत्र (इष्टिकर्म)-में देवताओंके निमित्त हवन करनेके लिये जौ-चावलके आटेका ऐसा पिंड बनाया जाता है जो नीचेसे मोटा और गोल तथा ऊपर नोकदार होता है। इसे कपाल (मिट्टीके पात्र)-में पकाया जाता है और वह पुरोडाश तोड़-तोड़कर उसकी आहुति दी जाती है।

४७१ न मां धर्षयितुं शक्तो हरेर्भार्यां शशो यथा।
४७२-७४ इति सीतावच: श्रुत्वा रावण: क्रोधमूर्च्छित:। तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा॥ अध्या०
४७५-७५ हा राम हा रमण हा जगदेकवीर हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्तीमादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम॥ –प्रसन्नराघव
४७७ हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम् वाक्छरेण हतस्त्वं मे क्षंतुमर्हसि देवर।
४७८ एवमादीनि बहुधा विलापानि च जानकी। कुर्वती रथमध्यस्था। –अध्यात्म०
४७९ क्षिप्रं रामाय शंसेयु: सीतां हरति रावण:। वा.रा.। रासभो मन्त्रपूतं तु पुरोडाशमिवाध्वरे॥ अध्या०
४८० सीताविलापमाकर्ण्य तत्रसु: सचराचरा:। –अध्यात्म०

अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ - बस कपिला गाई। (४)
सीते पुत्रि! करसि जनि त्रासा। करिहौं जातुधान - कर नासा।
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटै पवि, पर्वत - कहँ जैसे। (५)
रे रे दुष्ट! ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि, न जानहि मोही।
आवत देखि कृतांत - समाना। फिरि दसकंधर, कर अनुमाना। (६)
की मैनाक, कि खगपति होई। मम बल जान, सहित - पति सोई।
जाना, जरठ जटायू एहा। मम कर - तीरथ छाँड़िहि देहा। (७)
सुनत गीध, क्रोधातुर धावा। कह, सुनु रावन! मोर सिखावा।
४६० तजि जानकिहिं कुसल गृह जाहू। नाहिंत अस होइहि बहु - बाहू। (८)
राम - रोष - पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा।

पत्नी हैं जिन्हें यह अधम राक्षस-(रावण) वैसे ही उठाए लिए चला जा रहा है, जैसे किसी कसाईके हाथ कपिला (सीधी) गऊ पड़ गई हो। (४) उसने पुकारकर कहा —'पुत्री सीते! डरो मत! मैं इस राक्षसको अभी धरती चटाए देता हूँ।' बस वह पक्षी (जटायु) तमतमाकर रावणपर ऐसे टूट पड़ा जैसे पर्वतपर वज्र जा गिरा हो। (५) (उसने रावणको ललकारते हुए कहा)—'अरे दुष्ट! तू खड़ा क्यों नहीं रहता। तू निर्भय होकर चला जा रहा है। मुझे जानता नहीं कौन हूँ?' उसे यमराजके समान वेगसे आते देखकर रावण पीछे मुड़कर मनमें सोचने लगा —'या तो यह मैनाक पर्वत हो सकता है या पक्षिराज गरुड हो सकता है। पर (गरुड तो हो नहीं सकता क्योंकि) वह और उसका स्वामी (विष्णु) तो दोनों मेरा बल पहचानते हैं। (जटायुके कुछ पास आनेपर, उसे देखकर और पहचानकर वह बोला)—'छिः! यह तो बूढ़ा जटायु उड़ा चला आ रहा है। जान पड़ता है आज यह मेरे हाथके तीर्थमें शरीर छोड़नेपर तुला बैठा है (मेरे हाथों मारा जानेवाला है)।' (७) उसकी बात सुनते ही गीध (जटायु) क्रोधमें भरकर उसपर झपट पड़ा और बोला—'अरे रावण! मेरी बात ध्यानसे सुन ले। तू अपना भला चाहता हो तो जानकीको छोड़कर घर लौट जा। नहीं तो अरे बहुत भुजाओंवाले रावण! एक दिन ऐसा आवेगा कि (८) रामके भयंकर क्रोधकी अग्निमें तेरा सारा कुल पतिङ्गा बन मिटेगा (भस्म हो जायगा)।' पर योद्धा दशाननने

४८१-४८२ श्रुत्वा तत्क्रन्दितं दीनं सीतायाः पक्षिसत्तमः। त्रस्यन्तीं तां समादाय याति रात्रिचरो गृहम्। म्लेच्छवश्यां यथा च गाम्।

४८३ मा भैषीः पुत्रि सीते व्रजति मम पुरो नैव दूरं दुरात्मा
रे रे रक्षः क्व दारान् रघुकुलतिलकस्यापहृत्य प्रयासि।
चञ्च्वाक्षेपप्रहार - त्रुटितधमनिभिर्दिक्षु विक्षिप्यमाणै-
राशापालोपहारं दशभिरपि भृशं त्वच्छिरोभिः करोमि॥ —हनुमन्नाटक

४८४-४८५ जटायुरुत्थितः शीघ्रं नगाग्रात्तीक्ष्णतुंडकः। तिष्ठ तिष्ठेति तं प्राह को गच्छति ममाग्रतः॥

४८६-४८८ रावणः (स्वगतम्)
मैनाकः किमयं रुणद्धि पुरतो मन्मार्गमव्याहतं शक्तिस्तस्य कुतः स वज्रपतनाद्भीतो महेन्द्रादपि॥
तार्क्ष्यः सोपि समं निजेन विभुना जानाति मां रावणं हा ज्ञातं स जटायुरेष जरसा क्लिष्टो वधं वाञ्छति॥हनु०

४७६-४६० गृध्रराजः समुत्पत्य रावणं समभिद्रवत्। समावार्य महातेजा जटायुरिदमब्रवीत्॥
क्षिप्रं विसृज्य वैदेहीं कुशलेन गृहं व्रज। अन्यथैवं भविष्यति॥

४६१ समित्रबन्धुः सामात्यः सबलः सपरिच्छदः। शलभा इव नश्यन्ति रामरोषस्य पावके॥वाल्मीकीय

उतर न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध, धावा करि क्रोधा। (९)
धरि कच, बिरथ कीन्ह, महि गिरा। सीतहिं राखि, गीध पुनि फिरा।
चोंचन मारि बिदारेसि देही। दंड एक, भइ मुरछा तेही। (१०)
तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना।
काटेसि पंख, परा खग धरनी। सुमिरि राम - करि अद्भुत करनी। (११)
सीतहिं जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल, त्रास न थोरी।
करति बिलाप जाति नभ सीता। व्याध - बिबस जनु मृगी सभीता। (१२)
गिरि - पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम, दीन्ह पट डारी।
५०० ऐहि बिधि सीतहिं सो लै गयऊ। बन असोक - महँ राखत भयऊ। (१३)

दो०—हारि परा खल, बहु बिधि, भय अरु प्रीति दिखाइ।
तब असोक पादप - तर, राखेसि जतन कराइ॥ २९ क॥

उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी। तब तो गीध (जटायु)-को बड़ा क्रोध चढ़ आया और वह उसपर झपट पड़ा। (९) उसने अपने पंजोंसे रावणके बाल पकड़कर उसे रथसे नीचे ऐसा उछाल फेंका कि वह धरतीपर जा गिरा। सीताको एक ओर बैठाकर गीध फिर लौट आया और उसने मार-चोंच मार-चोंच रावणका सारा शरीर ऐसा लहूलुहान कर डाला कि एक घड़ीतक रावण मूच्छित हुआ पड़ा रहा। (१०) तब रावणने खिसियाकर क्रुद्ध होकर अपना भयंकर कृपाण (चन्द्रहास) खींच निकाला और उससे जटायुके पंख काट गिराए। फिर तो पक्षी (जटायु), रामकी अद्भुत लीलाका स्मरण करता हुआ धरतीपर आ गिरा। (११) रावणने सीताको फिर रथपर उठा चढ़ाया औ निर्भय होकर उतावलोंकी भाँति (झपटता हुआ) चल दिया। आकाश-मार्गमें सीता उसी प्रकार रोती-चिल्लाती चली जा रही थीं जैसे कोई डरी हुई हरिणी किसी व्याधके हाथ बेबस हुई जा पड़ी हो। (१२) सीताने (ऋष्यमूक) पर्वतपर बन्दरोंको बैठे देखा तो रामका नाम लेकर अपने कुछ वस्त्र उठा फेंके। इस प्रकार वह रावण सीताको वहाँसे हर ले गया और उसने उन्हें ले जाकर लंकाके अशोक वनमें बन्दी बना रक्खा। (१३) जब अनेक प्रकारसे भय और प्रीति दिखाकर वह दुष्ट हार गया तब उसने बहुत चौकसीके साथ अशोक वृक्षके नीचे सीताको ले जा बैठाया ॥ २९ क ॥ सीता भी रामकी

४९२-४९४ गृध्रराजः समुत्पत्य रावणं समभिद्रवत्। विददार नखैरस्य तुण्डं पृष्ठे समर्पयन्॥
केशांश्चोत्पाटयामास नखपक्षमुखायुधः। स भग्नधन्वा विरथः पपात भुवि रावणः॥
पक्षतुंडप्रहारैस्तु शतशो जर्जरीकृतम्। मूच्छितं रावणं कृत्वा तां सीतां सन्यवर्तयत्॥
४९५-४९६ ततः क्रोधाद्दशग्रीवः चन्द्रहासं खरं महत्। पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च वेगेनोद्धृत्य सोच्छिनत्॥
निपपात महीपृष्ठे जटायुः क्षीणचेतनः।
४९७ एवं कृत्वा ससीतस्तु जटायुं पात्य भूतले। पुष्पकेण गतः शीघ्रं लंकां दुष्टो निशाचरः॥ नृ०पु०
४९८ हा राम हा जगन्नाथ मां न पश्यसि दुःखिताम्॥ —अध्यात्मरामायण
मृगयूथपरिभ्रष्टा मृगी व्याधैरिवाकृता। इत्थं विहायसा सीता विलपन्ती प्रयाति च॥वा०
४९९ सा ददर्श गिरिप्रस्थे पंच वानरपुङ्गवान्। तत्र वासो महद् दिव्यमुत्ससर्ज मनस्विनी॥महा०
आकृष्यमाणाऽऽभरणानि मुक्त्वा सैरध्वजी मारुतिमद्रिमौलौ।
उवाच रामाय सलक्ष्मणाय वराय देयानि सदेवराय॥ —हनुमन्नाटक
५००-५०२ स्वान्तःपुरे रहस्ये तामशोकविपिनेऽक्षिपत्। राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यानुपालयत्॥ अ०

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग , धाइ चले श्रीराम ।
सो छबि, सीता राखि उर , रटति रहति हरि - नाम ॥ २९ ख ॥
रघुपति अनुजहिँ आवत देखी । बाहिज चिंता कीन्हि बिसेखी ।
जनक - सुता परिहरिहु अकेली । आएहु तात ! बचन मम पेली । (१)
निसिचर - निकर फिरहिँ बन - माहीँ । मम मन, सीता आस्रम नाहीँ ।
गहि पद-कमल, अनुज, कर जोरी । कहेउ, नाथ ! कछु मोहिँ न खोरी । (२)
अनुज - समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि - तट आस्रम जहवाँ ।
५१० आस्रम देखि जानकी - हीना । भए बिकल, जस प्राकृत दीना । (३)
हा ! गुनखानि ! जानकी ! सीता । रूप - सील - ब्रत - नेम - पुनीता ।
लछिमन समुझाये बहु भाँती । पूछत चले, लता - तरु - पाँती । (४)
हे खग ! मृग ! हे मधुकर - स्रेनी । तुम देखी सीता मृग - नैनी ।

वही छबि अपने हृदयमें बसाए हुए बैठी रामका नाम रटने लगीं जिस रूपमें कपट-हरिणके पीछे राम दौड़े गए थे ॥ २९ ख ॥

(इधर) जब रामने अपने भाई लक्ष्मणको अकेले आते देखा तो (मनसे नहीं, केवल बाहरसे) उनका माथा ठनका (बड़े चिन्तित हो उठे और कहने लगे—) 'भाई लक्ष्मण ! तुम जानकीको अकेला छोड़कर मेरी आज्ञा न मानकर यहाँ क्यों चले आए ? (१) (जानते नहीं) यहाँ राक्षस घूमते रहते हैं ! (न जाने क्यों) मुझे तो ऐसा लग रहा है कि आश्रममें सीता हैं नहीं ।' तब लक्ष्मणने रामके पैर पकड़कर हाथ जोड़कर कहा—'नाथ ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है' (मैं अपनी इच्छासे नहीं आया हूँ) । (२) फिर लक्ष्मणके साथ चलकर राम वहाँ जा पहुँचे जहाँ गोदावरीके तटपर उनका आश्रम था । (वहाँ जाकर) वे देखते क्या हैं कि आश्रममें कहीं सीताका चिह्न-तक नहीं है । यह देखते ही वे साधारण पुरुषकी भाँति व्याकुल और दुखी हो उठे । (३) (वे यही पुकार-पुकार लगे रोने-कलपने–) 'हाय गुणवाली जानकी ! हाय रूप, शील व्रत और नियमोंके कारण पवित्र सीते ! (तुम कहाँ चली गईं) ।' यद्यपि लक्ष्मणने उन्हें बहुत धीरज बँधाया फिर भी वे घूम-घूमकर लताओं और वृक्षोंकी पंक्तियोंसे पूछते भटकने लगे— (४) अरे पक्षियो ! पशुओ ! भौंरो ! क्या तुमने कहीं हरिणके नेत्रोंके समान नेत्रोंवाली मृगनयनी सीता देखी है ? देखो सीता ! (तुम्हारे चञ्चल नेत्रोंके समान) ये खंजन, (तुम्हारी नाकके समान) ये सुग्गे, (तुम्हारे कण्ठके समान) ये कबूतर, (तुम्हारी भोली

५०३-५०४ सीतापि दुःखिता तत्र स्मरन्ती राममेव सा । –नृसिंहपुराण
५०५ आयान्तं लक्ष्मणं दीनं मुखेन परिशुष्यता । राघवश्चिन्तयामास स्वात्मन्येव महामतिः ॥प्र०
५०६-५०६ किमर्थमागतोऽसि त्वं सीतां त्यक्त्वा मम प्रियाम् । नीता वा भक्षिता वापि राक्षसैर्जनकात्मजा ॥
५०८ लक्ष्मणः प्राञ्जलिः प्राह सीताया दुर्वचो रुदन् । नापराधोस्ति मे प्रभो ॥
५०९-५१० इति चिंतापरो रामः स्वाश्रमं त्वरितो ययौ । तत्रादृष्ट्वा जनकजां विललापातिदुःखितः ॥
५११ सीतेति हा जनकवंशजवैजयन्ति हा मद्विलोचनचकोरनवेन्दुलेखे ।
इत्थं स्फुटं बहु विलप्य विलप्य रामस्तामेव पर्णवसतिं परितश्चचार ॥ –हनुमन्नाटक
५१२-५१३ मा विषादं महाबाहो कुरु यत्नं मया सह । –वाल्मीकीय
रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना रामोहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः । बिम्बोष्ठी चारुनेत्रा सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकांची हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केन दृष्टा।हृ०

खंजन, सुक, कपोत, मृग, मीना। मधुप - निकर, कोकिला प्रबीना। (५)
कुन्द - कली, दाड़िम, दामिनी। कमल, सरद्-ससि, अहि-भामिनी।
बरुन-पास, मनसिज[१] - धनु, हंसा। गज, केहरि निज सुनत प्रसंसा। (६)
श्रीफल, कनक, कदलि हरषाहीं। नेकु न संक - सकुच मन - माहीं।
सुनु जानकी! तोहिं बिनु आजू। हरषे सकल, पाइ जनु राजू। (७)
किमि सहि जात अनख तोहिं-पाहीं। प्रिया! बेगि प्रगटसि कस नाहीं।
५२० ऐहि बिधि खोजत, बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही, अति कामी। (८)
पूरन - काम राम, सुख-रासी। मनुज-चरित कर अज अबिनासी।
आगे परा गीध - पति देखा। सुमिरत राम - चरन जिन्ह रेखा। (९)

चितवनके समान आँखोंवाले) ये मृग, (तुम्हारी चंचल चितवनके समान) ये मछलियाँ, (तुम्हारी भौंहोंके समान) ये भौंरे, (तुम्हारी वाणीके समान मृदु-भाषी) ये प्रवीण कोकिल, (५) (तुम्हारे दाँतोंके समान) ये कुन्दकी कलियाँ और अनार (-के दाने), (तुम्हारी मुसकानके समान) यह बिजली, (तुम्हारे मुखके समान) यह कमल और यह शरद्‌का चन्द्रमा, (तुम्हारी चोटीके समान) यह नागिन और वरुणका फन्दा, (तुम्हारी बाँकी भौंहोंके समान) यह कामदेवका धनुष, (तुम्हारी चालके समान चलनेवाले) ये हंस और हाथी! (और तुम्हारी कमरके समान पतली कमरवाले) ये सिंह! आज (तुम्हारे न रहनेसे) सब अपनी प्रशंसा सुन-सुनकर फूले नहीं समा रहे हैं। (६) (तुम्हारे स्तनोंके समान) यह बेल, (तुम्हारे रंगके समान रंगवाला) यह सुवर्ण और (तुम्हारे जंघासे होड़ करनेवाला) यह केलेका खंभ, सब हर्षसे झूमे पड़ रहे हैं (कि अब हमसे होड़ करनेवाला कोई नहीं रह गया)। अब इनके मनमें न तनिक भी भय रह गया है न संकोच। देखो जानकी! आज तुम्हारे न रहनेपर ये सब ऐसे मगन हुए जा रहे हैं मानो इन्हें राज मिल गया हो। (७) तुम इनकी अनख (स्पर्धा) कैसे सह पा रही हो प्रिये? तुम शीघ्र ही क्यों नहीं आ दिखाई देती?' इस प्रकार सीताको खोजते हुए स्वामी राम ऐसे बिलखे पड़ रहे थे, मानो कोई महा विरही और अत्यन्त कामी पुरुष (अपनी प्रियाके खो जानेपर बिलख रहा) हो। (८) अपनी सब कामनाएँ पूर्ण किए रखनेवाले, आनन्दके भांडार, अजन्मा (कभी जन्म न लेनेवाले) और अविनाशी (कभी नष्ट न होनेवाले) राम उस समय सामान्य मनुष्योंके समान आचरण किए जा रहे थे। चलते-चलते वे देखते क्या हैं कि सामने गीधराज जटायु धरतीपर पड़ा सिसकता हुआ अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है और रामके उन चरणोंका स्मरण किए जा रहा है जिनमें (ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल आदि की) रेखाएँ पड़ी हुई थीं। (वह रामके चरणोंकी छापका ही स्मरण किए जा रहा है कि किसी प्रकार राम न सही तो उनके पैरोंकी छाप ही दिखाई पड़ जाय)। (९) कृपाके समुद्र रामने जाते ही उसके सिरपर अपना कर-कमल फेरना आरंभ

५१४-५१७ मध्योऽयं हरिभिः स्मितं हिमरुचा नेत्रे कुरंगीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरवो हा हा हृतः कोकिलैः।
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विभज्याधुना
कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुवन्नीतासि भो मैथिलि॥ —हनुमन्नाटक
५१७-५२० इत्थं मृगयते रामो विलपन्निव कामुकः। —अध्यात्मरामायण
५२१ निर्ममो निरहंकारोप्यखंडानंदरूपवान्। एवं मायामनुचरन्नसक्तोपि रघूत्तमः॥
५२२ ददर्श पतितं भुमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम्। —वाल्मीकीयरामायण

दो०—कर-सरोज सिर परसेउ, कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम-छबिधाम-मुख, बिगत भई सब पीर ॥ ३० ॥
तब कह गीध बचन, धरि धीरा। सुनहु राम! भंजन भव - भीरा।
नाथ! दसानन यह गति कीन्हीं। तेहि खल, जनक-सुता हरि लीन्हीं। (१)
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति, कुररी-की नाईं।
दरस - लागि, प्रभु! राखेउँ प्राना। चलन चहत अब, कृपानिधाना। (२)
राम कहा, तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ, कही तेहि बाता।
५३० जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत[1] होइ, स्रुति गावा। (३)
सो मम लोचन - गोचर आगे। राखौं देह, नाथ! केहि खाँगे।
जल भरि नयन, कहहिं रघुराई। तात! करम निज - तें गति पाई। (४)
पर - हित बस जिन्ह-के मन - माहीं। तिन्ह-कहँ, जग, दुरलभ कछु नाहीं।
तनु तजि तात! जाहु मम धामा। देउँ काह, तुम पूरन - कामा। (५)

कर दिया। शोभाके धाम रामका मुख देखना था कि उसकी सारी पीडा न जाने कहाँ विलीन हो गई ॥ ३० ॥ तब बहुत धीरज धरकर (सँभलकर, हँसकर) गीधने कहा—'भव-भयका नाश करनेवाले नाथ राम! मेरी जो आप यह दशा देख रहे हैं यह सब रावणकी करनी है। वही दुष्ट यहाँसे जानकीको हर ले गया है। (१) गोसाईं! वह उन्हें दक्षिण दिशाकी ओर लेता चला गया है। (उसके फन्देमें पड़ी हुई) जानकी कुररी (क्रौञ्ची)-के समान बिलख-बिलखकर रोती चली जा रही थीं। प्रभो! मैं तो केवल आपके दर्शनोंके आसरे अपने प्राण रोके पड़ा था। बस कृपानिधान! अब ये प्राण निकला ही चाहते हैं।' (२) रामने कहा–'देखो जटायु! तुम जीना चाहो तो शरीर बनाए रख सकते हो।' तब वह मुसकराते हुए कहने लगा—'वेदोंमें वर्णन किया गया है कि मृत्युके समय आपका नाम-भर मुँहमें आ जानेसे अधम प्राणी भी मुक्त हो जाता है, (३) और यहाँ तो आप स्वयं मेरे नेत्रोंके सामने आए खड़े हैं। फिर बताइए नाथ! शेष रह क्या गया जिसके लिये शरीर बनाए रखूँ ?' यह सुनकर नेत्रोंमें जल भरकर राम कहने लगे—'देखो जटायु! तुम्हारी यह गति तो तुम्हारे ही उत्तम कर्मोंके कारण मिल रही है (मेरे कारण नहीं)। जिनके मनमें सदा दूसरोंकी भलाई करनेकी इच्छा बनी रहती है, उनके लिये संसारमें कुछ भी पा सकना दुर्लभ नहीं है। देखो जटायु! अब तुम यह शरीर छोड़कर जाओ, मेरे (परम) धाम पहुँच जाओ। मैं तुम्हें दे ही क्या सकता हूँ ? तुम

१. मुकुति।

५२३-२४ गृध्रराजं तदा रामः स्वयं पस्पर्श पाणिना। स्पर्शनाद्वीतपीडः स सद्यो जातश्च गृध्रराट् ॥अ०
५२५ तं दीनदीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्। अभ्यभाषत पक्षी स रामं दशरथात्मजम् ॥ वा०रा०
५२६-२७ उवाच रावणो राम राक्षसो भीमविक्रमः। आदाय मैथिलीं सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ ॥अ०
सा मुक्तकण्ठं व्यसनातिभाराच्चक्रन्द विग्ना कुररीव भूयः। –रघुवंश
५२८ वैदेहि वाक्यादिह जीवितं मया दृष्टो युवां मुक्तिमियामि देहात्।
५२९ रामो जटायुपेत्युक्तः पुनस्तं प्राह शोकतः। तनुं रक्षस्व भो तात तदा वै प्राह गृध्रराट् ॥नृ०पु०
५३०-३१ यन्नामाज्ञोपि मरणे स्मृत्वा तत्साम्यमाप्नुयात्। किमुताग्रे हरिं पश्यन् ॥–अध्यात्मरामायण
५३२ तच्छ्रुत्वा राघवः प्राह दुःखाश्रुवृतलोचनः।–अ०॥ तात त्वं निज तेजसैव गमितः स्वर्गं व्रज स्वस्ति ते। हनु०
५३३ हरिध्यानरताः सर्वे परोपकृतिनस्तथा। प्रपन्नाः पादमूलं ते विष्णोर्नारायणस्य हि ॥सत्योपा०
५३४ इत्युक्त्वा राघवः प्राह जटायुर्गच्छ मत्पदम्। –अध्यात्मरामायण

दो०—सीता - हरन, तात ! जनि , कहेहु पिता - सन जाइ ।
जौं मैं राम, त कुल-सहित , कहिहि दसानन आइ ॥ ३१ ॥

गीध - देह तजि, धरि हरि - रूपा । भूषन बहु, पट - पीत अनूपा ।
स्याम बिसाल गात भुज चारी[1] । अस्तुति करत नयन भरि बारी । (१)

छंद—जय राम, रूप अनूप, निर्गुन - सगुन, गुन - प्रेरक सही ।
५४० दससीस - बाहु - प्रचंड - खंडन, चंड - सर, मंडन मही ।
पाथोद - गात, सरोज - मुख, राजीव - आयत - लोचनं ।
नित नौमि राम, कृपालु, बाहु बिसाल, भव - भय - मोचनं ॥ [८]
बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरं ।
गोविंद, गो - पर, द्वंद्व - हर, बिज्ञान - घन, धरनीधरं ।
जे राम मंत्र - जपंत - संत - अनंत - जन - मन - रंजनं ।
नित नौमि राम, अकाम - प्रिय, कामादि खल दल - गंजनं । [९]

तो यों ही सब कुछ पाए बैठे हो । (५) देखो भाई ! (एक ओर प्रार्थना है कि स्वर्गमें मेरे) पिताजीसे सीताके हरणकी बात मत जा कहिएगा । यदि मैं 'राम' हूँ तो स्वयं रावण ही वह कथा उन्हें जा सुनावेगा' (मैं रावणको मार डालूँगा तो वह स्वयं जाकर कह देगा कि मैं सीताको हर लाया था इसलिये मेरी यह दुर्गति हुई)' ॥ ३१ ॥ जटायुने ज्यों ही अपना गीधका शरीर छोड़ा कि वह हरि (विष्णु)-जैसा बन खड़ा हुआ । उसके शरीरपर बहुतसे आभूषण लदे थे और अनुपम पीताम्बर पड़ा हुआ था । उसका विशाल और साँवला शरीर विशाल चार भुजाएँ शोभा दे रही थीं । इस रूपमें (सारूप्य मुक्ति पाकर) वह नेत्रोंमें जल भरकर स्तुति करने लगा—(१) 'हे राम ! आपकी जय हो । आपका रूप अनुपम है । आप निर्गुण हैं, सगुण हैं (जैसा रूप चाहें बना सकते हैं) और आपसे सदा सत्य गुणोंकी ही प्रेरणा मिलती है (आप सदा अच्छे काम करनेकी ही प्रेरणा देते हैं) । आपने दस सिरवाले रावणकी प्रचण्ड भुजाओंका खण्डन करनेके लिये आपने भयङ्कर बाण धारण कर रक्खे हैं । आपने पृथ्वीको सुशोभित कर रक्खा है । (जलसे भरे हुए) मेघके समान आपका श्याम शरीर है, कमलके समान आपका मुख है और लाल कमलके समान आपके नेत्र हैं । आपकी भुजाएँ विशाल हैं, आप संसारके भव भय दूर कर डालते हैं, ऐसे हे कृपालु राम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ । (८) आपमें अपरिमित बल है, आप अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (अप्रकट), एक, अगोचर (इन्द्रियोंसे न जाने जा सकनेवाले), गोविन्द, इन्द्रियोंकी पहुँचसे दूर, मनका सारा द्वन्द्व (सुख-दुःख, हर्ष-शोक, जन्म-मरण आदि) मिटा डालनेवाले, विज्ञान (परमात्म-तत्त्व)-की बनी बनाई मूर्ति हैं और पृथ्वीको धारण किए हुए हैं । राम-मन्त्र जपनेवाले अपने अनन्य सेवक सन्तोंको आप सदा आनन्द ही आनन्द देते रहते हैं, निष्काम भक्त आपको बहुत प्यार करते हैं, काम आदि दुष्ट दुर्वृत्तियोंका आप नाश कर डालते हैं, ऐसे हे राम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ । [९] जिसे वेद मायासे परे, ब्रह्म,

१. (क) स्याम गात बिसाल भुज चारी ।

५३५-३६ ब्रूमस्त्वेकमिमां वधूहृतिकथां तातान्तिके मा कृथाः, रामोहं यदि तद्दिनैः कतिपयैर्व्रीडानमत्कंधरः ।
साधं बन्धुजनैः सुरेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः । —हनुमन्नाटक
५३७-३८ ततोऽनन्तरमेवासौ दिव्यरूपधरः शुभः । शंखचक्रगदापद्मकिरीटवरभूषणैः ॥
द्योतयन्स्वप्रकाशेन पीताम्बरधरोमलः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव रघुनन्दनम् ॥अध्या०

जेहि स्रुति, निरंजन, ब्रह्म, व्यापक, बिरज, अज, कहि गावहीं।
करि ध्यान - ज्ञान - बिराग - जोग अनेक मुनि जेहिं पावहीं।
सो प्रगट करुनाकंद, सोभा - बृन्द, अग - जग मोहई।
५५० मम हृदय - पंकज - भृंग, अंग अनंग - बहु - छबि सोहई। [१०]
जो अगम, सुगम, सुभाव - निर्मल, असम, सम, सीतल सदा।
पस्यंति जे जोगी जतन करि, करत मन गो - बस सदा।
सो राम, रमानिवास, संतत दास - बस, त्रिभुवन - धनी।
मम उर बसहु सो, समन - संसृति जासु कीरति पावनी। [११]

दो०—अबिरल भगति माँगि बर, गीध गयउ हरि - धाम।
तेहि - की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्हीं राम ॥ ३२ ॥

कोमल - चित अति, दीन - दयाला। कारन - बिनु, रघुनाथ कृपाला।
गीध अधम, खग, आमिष - भोगी। गति दीन्हीं, जो जाँचत जोगी। (१)
सुनहु उमा! ते लोग अभागी। हरि तजि, होहिं बिषय-अनुरागी।
५६० पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई। (२)

सर्वव्यापक, निर्विकार और जन्म-रहित बताते हैं, जिसे अनेक मुनि लोग ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधनोंके द्वारा ही देख पाते हैं, वही करुणासे भरे हुए, शोभाके निधान राम आज इस रूपमें प्रकट होकर समस्त जड और चेतन-जगत्को मोहित किए डाल रहे हैं। मेरे हृदयरूपी कमलपर गूँजनेवाले हे भ्रमर! आपके अङ्ग-अङ्गमें अनगिनत कामदेवोंकी शोभा झलक मारे जा रही है। [१०] जो अगम भी हैं और सुगम भी हैं, जो निर्मल स्वभाववाले हैं, जो विषम (कठोर) भी हैं और सम (शान्त) भी, जो सदा शीतल (शान्त) रहते हैं, जिन्हें योगी लोग अपने मन और इन्द्रियोंको सदा अपने वशमें किए हुए बहुत साधन करनेपर देख पाते हैं, वही रमानिवास (लक्ष्मीके हृदयमें रहनेवाले) सदा भक्त-सेवकोंके वशमें रहनेवाले, तीनों लोकोंके स्वामी राम आकर मेरे हृदयमें निवास करें जिनकी पवित्र कीर्ति सुननेसे आवागमन (संसारमें आने-जाने)-का चक्कर मिट जाता है।' [११] (इस प्रकार स्तुति करके) गृध्रराज जटायु रामसे अखण्ड भक्तिका वर माँगकर श्रीहरिके परम धाम (वैकुण्ठ) चला गया। रामने स्वयं अपने हाथसे उसकी यथोचित क्रिया की ॥ ३२ ॥ रामका चित्त इतना कोमल है कि वे सदा दीनोंपर दया करते ही रहते हैं और बिना कारण ही कृपा करते हैं। इसीलिये तो पक्षियोंमें अधम और मांसाहारी गीधको भी उन्होंने वह दुर्लभ गति दे डालीजो योगी लोग माँगते रह जाते हैं। (१) (शंकर कहते हैं—) 'पार्वती! सुनो, वे लोग बड़े अभागे हैं, जो भगवान्को छोड़कर संसारके विषयोंमें लिपटे पड़े रहते हैं।' दोनों भाई वहाँसे सीताको खोजते और घने वन देखते हुए आगे बढ़ चले। (२) वह वन

५५५-५६ त्वय्येव भक्तिरचलाऽव्यभिचारिणी च। रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्म सुपूजितं पदम् ॥
रामोपि दग्ध्वा तद्देहं ततः स्नात्वा जलाञ्जलिम्।
५५७-५८ किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले। प्रसन्नेऽधमजन्मासौ गतिं प्राप सुयोगिनाम् ॥
५५९ हरिं त्यक्त्वा च ये मर्त्या विषयालीनचेतसः। शृणु पार्वति ते मर्त्या मन्दभाग्या भवन्ति च ॥
५६० पुनर्दुःखं समाश्रित्य सीतान्वेषणतत्परौ। —अध्यात्मरामायण
तां दिशं दक्षिणां गत्वा शरचापासिधारिणौ। अविप्रहतमैक्ष्वाकौ पन्थानं प्रतिपेदतुः ॥ वा०रा०

संकुल - लता - विटप - घन - कानन । बहु खग-मृग, तहँ गज - पंचानन ।
आवत पंथ, कबंध निपाता । तेहि सब कही साप-कै बाता । (३)
दुर्बासा मोहि दीन्हीं सापा । प्रभु - पद पेखि, मिटा सो पापा ।
सुनु गंधर्ब ! कहौं मैं तोही । मोहि न सोहाइ ब्रह्म - कुल - द्रोही । (४)
दो०—मन-क्रम-बचन कपट तजि , जो कर भूसुर - सेव ।
मोहि - समेत बिरंचि-सिव , बस ताके सब देव ।। ३३ ।।
सापत, ताडत, परुष कहंता । बिप्र पूज्य, अस गावहिं संता ।
पूजिय बिप्र सील - गुन - हीना । सूद्र न, गुन - गन - ज्ञान-प्रवीना । (१)
कहि निज धर्म, ताहि समुझावा । निज - पद - प्रीति देखि, मन भावा ।
५७० रघुपति - चरन - कमल सिर नाई । गयउ गगन, आपनि गति पाई । (२)

इतना घना था कि चारों ओर वृक्षों और लताओंसे भरा उलझा पड़ा था जिनमें न जाने कितने पशु, पक्षी, मृग, हाथी और सिंह भरे पड़े थे । राम अभी मार्गमें आगे बढ़े ही थे कि उन्होंने कबन्ध राक्षसको सामने आते देखते ही तुरन्त उसे ढेर कर डाला । (मरते ही वह मुक्त हो गया और) उसने सब कह सुनाया कि शापके कारण मैं कैसे राक्षस हो गया था । (३) (वह कहने लगा)—'दुर्वासा ऋषिने मुझे शाप दे डाला था । पर आज प्रभुके चरणका दर्शन करनेसे वह सारा पाप मिट गया ।' (रामने कहा—)'देखो गन्धर्व ! मैं तुमसे बताए देता हूँ कि जो भी व्यक्ति ब्राह्मणोंसे द्रोह करता है वह मुझे तनिक भी नहीं सुहाता । (४) जो व्यक्ति सारा कपट छोड़कर मन, वचन और कर्मसे ब्राह्मणोंकी सेवा करता रहता है, उसके वशमें तो मैं हुआ ही रहता हूँ, साथ ही ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता भी उसके वशमें हो रहते हैं ।। ३३ ।। सन्त लोग कहते हैं कि जो ब्राह्मण शाप भी दे रहा हो, मार भी रहा हो और गालियाँ भी दे रहा हो उस ब्राह्मणकी भी पूजा करनी चाहिए । जिस ब्राह्मणमें कोई शील और गुण न भी हो उस ब्राह्मणकी भी पूजा करनी चाहिए और सब गुणों-वाला कोई शूद्र बड़ा ज्ञानी ही क्यों न हो तब भी वह पूजा करनेके योग्य नहीं हो पाता ।' (१) रामने उसे अपना धर्म (कि मैं भक्तिसे प्रसन्न होता हूँ) उसे कह समझाया । जब उन्होंने देखा कि मेरे चरणोंमें इसकी प्रीति बहुत बढ़ चली है तब वह (गन्धर्व) उन्हें बहुत अच्छा लगने लगा । फिर वह रामके चरणोंमें सिर नवाकर और अपनी गति (गन्धर्व रूप) पाकर आकाशमें उड़ (कर गन्धर्व-लोक चला) गया । (२)

५६१ गुल्मैर्वृक्षैश्च बहुभिर्लताभिश्च प्रवेष्टितम् । आवृतं सर्वतो दुर्गं गहनं घोरदर्शनम् ।।
दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम् । —वाल्मीकीयरामायण
५६२ पथ्या व्रजन्तं रामस्तु कबन्धं संददर्श ह । —नृसिंहपुराण
भुजौ च कृततुः तस्य निस्त्रिंशाभ्यां रघूत्तमौ । सच्छिन्नबाहुरपतद् विह्वलो विलपन् भुवि ।। भट्टि०
५६३ रक्षो भवेति शप्तोऽहं मुनिना प्राह मां पुनः । छेत्स्यतस्ते महाबाहू तदा शापात् प्रमोक्ष्यसे ।।अ०रा०
५६४-६६ कर्मणा मनसा वाचा भूदेवं यस्तु सेवयेत् । सर्वे वशगतास्तस्य देवा मत्सहिताः सदा ।। हितोपदेश
५६७ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः । घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ।।—भागवत
५६८ पतितोऽपि द्विजः पूज्यो नार्च्यः शूद्रो महामतिः ।। —शुक्रनीति
५६९-७० तुष्टोऽहं देवगन्धर्वभक्त्या स्तुत्या च तेऽनघ । याहि मे परमं स्थानं योगिगम्यं सनातनम् ।।
इत्युक्तो राघवं नत्वा विष्णोः पदमगात्पुनः । —अध्यात्मरामायण

ताहि देइ गति, राम उदारा। सबरी-के आस्रम पग धारा।
सबरी, देखि, राम गृह आए। मुनि-के बचन समुझि जिय भाए। (३)
सरसिज-लोचन, बाहु बिसाला। जटा-मुकुट सिर, उर बनमाला।
स्याम-गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई। (४)
पेम-मगन, मुख बचन न आवा। पुनि-पुनि पद-सरोज सिर नावा।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे। (५)
दो०—कंद-मूल-फल सुरस अति, दिए राम-कहँ आनि।
प्रेम-सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि ॥ ३४ ॥
पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहिं बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी।
५८० केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं, जड़, मति-भारी। (१)
अधम-तें अधम, अधम अति नारी। तिन्ह-महँ मैं मतिमंद, अघारी।
कह रघुपति, सुनु भामिनि ! बाता। मानौं एक भगति-कर नाता। (२)

उसे सद्गति देकर उदार राम वहाँसे शबरीके आश्रममें जा पधारे। शबरीने ज्योंही देखा कि राम मेरे घर आए खड़े हैं त्यों ही उसे मतंग मुनिके वचन स्मरण हो आए (कि एक दिन राम यहाँ आवेंगे) और वह प्रसन्नतासे नाच उठी। (३) कमलके समान नेत्रवाले, विशाल भुजाओंवाले, सिरपर जटाओंका मुकुट बाँधे और हृदयपर वनमाला लटकाए हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंसे शबरी दौड़कर जा लिपटी। (४) वह प्रेममें इतनी मग्न हो गई कि उसके मुखसे वचन नहीं निकल पा रहे थे। वह बार-बार उनके चरण-कमलोंमें सिर नवाए जाय, नवाए जाय। फिर उसने जल लेकर बड़े आदरसे दोनों भाइयोंके चरण धोए और उन्हें सुन्दर आसनोंपर ले जा बैठाया। (५) तब उसने अत्यन्त स्वादिष्ट कन्द, मूल, फल आदि रामके सामने ला रक्खे और राम भी बार-बार (उनके माधुर्यकी) प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रेमपूर्वक जीमने लगे ॥ ३४ ॥ वह शबरी हाथ जोड़कर प्रभु (राम)-के आगे आ खड़ी हुई। प्रभु रामको देखकर उसके हृदयमें अत्यन्त अगाध प्रेम उमड़ चला (और वह कहने लगी—) ('मुझे तो कुछ आता-जाता नहीं है') 'मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ? मैं अधम जातिकी अत्यन्त मूढ़ नारी हूँ। (१) हे पापनाशक ! एक तो मैं यों ही अधमसे भी अधम हूँ, तिसपर स्त्री हूँ और उनमें भी अत्यन्त अधम और उनमें भी मैं बहुत नासमझ, मूर्ख हूँ।' यह सुनकर रामने कहा—'देखो भामिनी ! मेरी बात सुनो। मैं तो बस केवल एक भक्तिका ही नाता

४७१-७२ शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः। शबरी राममालोक्य लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥
आयान्तमाराद्धर्षेण उत्तस्था अचिरेण सा। प्रतीक्ष्यागमनं तेऽद्य सफलं गुरुभाषितम् ॥
५७३-७४ धनुर्बाणधरं श्यामं जटावल्कलभूषितम्। अपीच्यवयसं सीतां विचिन्वन्तं सलक्ष्मणम् ॥
शबरी भक्तिसंपन्ना प्राञ्जलिः प्रणनाम च।
५७५-७६ पतित्वा पादयोरग्रे हर्षपूर्णाश्रुलोचना। रामलक्ष्मणयोः सम्यक् पादौ प्रक्षाल्य भक्तितः ॥
स्वासने सन्न्यवेशयत्।
५७७-७८ फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः। रामेण तानि जग्धानि प्रशस्य च पुनः पुनः ॥
५७९-८० शबरी भक्तिसंपन्ना प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्। स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे ॥
५८१ योषिन्मूढाप्रमेयात्मन् हीनजातिसमुद्भवा। —अध्यात्मरामायण

जाति - पाँति - कुल - धर्म - बड़ाई । धन - बल - परिजन - गुन - चतुराई ।
भगति - हीन नर सोहै कैसा । बिनु - जल बारिद देखिय जैसा । (३)
नवधा भगति, कहौं तोहि पाहीं । सावधान सुनु ! धरु मन - माहीं ।
प्रथम भगति, संतन्ह - कर संगा । दूसरि, रति मम कथा - प्रसंगा । (४)
दो०—गुरु - पद - पंकज - सेवा , तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति, मम गुन - गन , करइ कपट तजि गान ।। ३५ ।।
मंत्र - जाप मम, दृढ़ बिस्वासा । पंचम, भजन, सो बेद प्रकासा ।
५९० छठ, दम - सील - बिरति - बहु - कर्मा । निरत निरंतर सज्जन - धर्मा । (१)
सातवँ, सम मोहिमय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ।
आठवँ, जथा - लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ पर - दोषा । (२)
नवल, सरल, सब-सन छल - हीना । मम भरोस हिय, हरष न दीना ।
नव - महँ एकौ जिन्हके होई । नारि - पुरुष सचराचर कोई । (३)
सोइ अतिसय प्रिय, भामिनि ! मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ।

मानता हूँ । (२) जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और पंडिताई—यह सब होते हुए भी जिस मनुष्यमें भक्ति न हो वह मुझे ऐसा ही (थोथा) लगता है जैसे बिना जलका बादल हो । (३) देखो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि भक्ति नौ प्रकारसे कैसे की जाती है । तुम सावधान होकर इसे भली भाँति समझ लो । भक्ति करनेका पहला ढंग है सन्तोंका सत्संग करना । दूसरा ढंग है मेरी कथाएँ प्रेमसे सुनना । (४) तीसरा ढंग है अभिमान छोड़कर गुरुके चरणोंकी सेवा करना । चौथा ढंग है कपट छोड़कर मेरे गुणोंका कीर्तन करना ।। ३५ ।। पाँचवाँ ढंग है मेरे मन्त्र (राम)-का जप और मुझमें दृढ विश्वास । ये सब बातें वेदों (वैदिक साहित्य)-में वर्णित हैं । छठा ढंग है, इन्द्रियोंका दमन, शील, बहुधन्धेपनसे वैराग्य और निरन्तर सत्पुरुषोंका-सा आचरण करते रहना । (१) सातवाँ ढंग है यह समझना कि सारा जगत् समान भावसे मुझमें ओत-प्रोत है और सन्तोंका मुझसे भी अधिक आदर करना । आठवाँ ढंग है, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तोष करना और स्वप्नमें भी दूसरोंके दोष न देखना । (२) नवाँ ढंग है सरलतासे रहना, किसीके साथ कपट न करना, हृदयमें मेरा ही भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें न प्रसन्न होना न दुखी होना । इन नौ ढंगोंकी भक्तिमें-से जिसमें एक भी प्रकारकी भक्ति आ जमती है, वह चाहे स्त्री, पुरुष, जड, चेतन कोई भी हो, उसीको मैं अत्यन्त प्रिय समझता हूँ । फिर तुममें तो सभी प्रकारकी भक्ति भली भाँति सध चुकी

५८२-८३ श्रीराम उवाच—पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ।।
५८४-८५ नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा । तस्माद्भामिनि संक्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम् ।।
५८६-९५ सतां संगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् । द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं गुरुसेवनम् ।।
व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् । आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्याऽमायया सदा ।।
पंचमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च । निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् ।।
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः । सप्तमं साधनं चैतत् कथितं मुनिभिः पुरा ।।
बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा । अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि ।।
एवं नवविधा भक्तिसाधनं यस्य कस्य वा । स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा ।।
भक्तिः संजायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे । —अध्यात्मरामायण

जोगि बृन्द - दुरलभ गति जोई। तो - कहँ, आज सुलभ भइ सोई। (४)
मम दरसन - फल परम अनूपा। जीव पाव, निज सहज सरूपा।
जनक - सुता - कै सुधि भामिनी। जानहि, कहु करिबर - गामिनी। (५)
पंपा - सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव - मिताई।
६०० सो सब कहिहि देव ! रघुबीरा। जानतहू पूछहु मति - धीरा। (६)
बार - बार प्रभु - पद सिर नाई। प्रेम - सहित सब कथा सुनाई। (६॥)
छंद—कहि कथा सकल, बिलोकि हरि - मुख, हृदय पद - पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह, हरिपद - लीन भइ, जहँ नहिं फिरे।
नर ! बिबिध - कर्म, अधर्म, वहु मत सोकप्रद, सब त्यागहू।
बिस्वास करि, कह दास तुलसी, राम - पद अनुरागहू॥ [१२]
दो०—जाति-हीन, अघ-जन्म महि , मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन ! सुख चहसि , ऐसे प्रभुहि बिसारि॥ ३६॥

है। इसलिये जो गति (पदवी) योगियोंको भी नहीं मिल पाती, वही आज तुम्हारे लिये सुलभ हो गई है। (४) मेरे दर्शनका सबसे अधिक अनोखा फल यही मिलता है कि (मेरा दर्शन करते ही) जीवको अपना सहज स्वरूप (परमात्म-स्वरूप) मिल जाता है। अच्छा भामिनी ! गजगामिनी ! (यह तो हुई तुम्हारी बात, अब) यदि तुम्हें जानकीका कुछ ठौर-ठिकाना ज्ञात हो तो मुझे बता दो।' (५) (शबरीने कहा—) 'देखिए राम ! आप पंपा सरोवरपर चले जाइए। वहाँ जानेपर सुग्रीवसे आपकी मित्रता हो जायगी। देव राम ! वह सुग्रीव ही आपको सारा समाचार बता देगा। हे धीर बुद्धिवाले ! आप तो सभी कुछ जानते हैं फिर भी (मुझे बड़ाई देनेके लिये आप) मुझसे पूछे जा रहे हैं ?' (६) बार-बार प्रभुके चरणोंमें सिर नवाकर प्रेमके साथ उसने अपनी सारी कथा कह सुनाई। (६॥) सब कथा कहकर, भगवान्के मुखका दर्शन करके और अपने हृदयमें उनके चरण-कमल धारण करके शबरीने योगकी अग्निसे देह भस्म कर दी और वह भगवान्के उन दुर्लभ चरणोंमें जा लीन हुई जहाँसे कोई कभी लौटता ही नहीं। तुलसीदास अपने मनसे कहते हैं—'अनेक प्रकारके कर्म, धर्म और बहुतसे मत-संप्रदायोंसे केवल क्लेश ही क्लेश मिलता है, इसलिये इन सबको छोड़-छाड़कर विश्वासके साथ रामके चरणोंमें प्रेम करने लग। [१२] जातिकी नीच और पापोंसे भरी हुई स्त्रीको भी जिन्होंने मुक्ति दे दी ऐसे प्रभुको भूलकर भी अरे महामंदबुद्धि मन ! तू सुख पानेकी लालसा लिए बैठा है ?'॥ ३६॥

५९६-९७ योगिनां दुर्लभा या हि सुलभा साधना त्वयि। भक्तौ संजातमात्रायां मत्तत्वानुभवस्तदा॥
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि।
५९८ यदि जानासि मे ब्रूहि सीता कमललोचना। कुत्रास्ते केन वा नीता प्रिया मे प्रियदर्शना॥अ०
५९९ ततः पुष्करिणीं वीरौ पंपां नाम गमिष्यथ। वा.रा.॥ सख्यस्य तव सुग्रीवः कारकः कपिनन्दनः।—भट्टि०
६०० देव जानासि सर्वज्ञ सर्वं त्वं विश्वभावन। —अध्यात्मरामायण
६०१-५ इति रामं समामंत्र्य प्रविवेश हुताशनम्। रामप्रसादाच्छबरी मोक्षं प्रापातिदुर्लभम्॥
भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे लोकाः कामदुघांघ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रवितर्ति त्यक्त्वा सुदूरे भृशम्। रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः॥
६०६-७ किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले। प्रसन्नेऽधमजन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा॥अध्या०

चले राम, त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल, नर - केहरि दोऊ।
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत अनेक कथा - संबादा[1]। (१)
६१० लछिमन! देखु बिपिन - कइ सोभा। देखत केहि-कर मन नहिं छोभा।
नारि - सहित सब खग - मृग-बृन्दा। मानहुँ, मोरि करतहँइ निंदा। (२)
हमहिं देखि मृग - निकर पराहीं। मृगी कहहिं, तुम - कहँ भय नाहीं।
तुम आनंद करहु मृग! जाए। कंचन - मृग खोजन ए आए। (३)
संग लाइ करिनी, करि लेहीं। मानहुँ मोहिं सिखावन देहीं।
सास्त्र सुचिंतित पुनि - पुनि देखिय। भूप सुसेवित, बस नहिं लेखिय। (४)
राखिय नारि जदपि उर - माहीं। जुवती, सास्त्र, नृपति बस नाहीं।
देखहु तात! बसंत सुहावा। प्रिया - हीन मोहि भय उपजावा। (५)

दो०—बिरह-बिकल, बलहीन मोहिं, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन, मधुकर, बिहग, मदन कीन्हि बगमेल ॥ ३७ क ॥
६२० देखि गयउ भ्राता - सहित, तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहु तब, कटक हटकि मन-जात ॥ ३७ ख ॥

उस वनको भी छोड़कर राम आगे बढ़ चले। मनुष्योंमें सिंहके समान दोनों भाई अतुलनीय बलवान् थे। प्रभु (राम) विरहीकी भाँति रोते-कलपते हुए न जाने क्या-क्या बड़बड़ाए चले जा रहे थे—(१) 'देखो लक्ष्मण! इस वनको देख रहे हो न! इसे देखकर किसका मन दुखी नहीं हो उठेगा? इसमें जितने पशु-पक्षी हैं सब अपनी-अपनी संगिनियोंको साथ लिए घूम रहे हैं मानो वे मेरी हँसी उड़ाए जा रहे हों (कि देखो यह अकेला हाय-हाय करता यहाँ घूम रहा है)। (२) हमें देख-देखकर जब हरिणोंका झुण्ड भागने लगता है तब हिरनियाँ (उन्हें रोककर मुझपर ताना कसते हुए) कहती हैं कि तुम डरे क्यों जा रहे हो (तुम मत डरो) मृगो! तुम आनन्दसे (निर्भय होकर) विचरो। ये तो सोनेका मृग खोजते फिर रहे हैं। (३) हाथी अपनी-अपनी हथिनियोंको अपने साथ लिए घूम रहे हैं मानो वे मुझे यही शिक्षा दे रहे हैं कि भली भाँति चिन्तन किया हुआ शास्त्र भी बार-बार देखते रहना चाहिए; राजाकी चाहे जितने भी मनसे सेवा की जाय पर उसे कभी अपने वशमें नहीं समझना चाहिए; (४) और स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रख लिया जाय, फिर भी युवती स्त्री, किसीके वशमें नहीं रहती। शास्त्र, राजा और स्त्री किसीके वशमें नहीं रहते। देखो भाई! (चारों ओर छाया हुआ) यह सुहावना वसन्त तो देखो। प्रिया सीताके बिना यह मुझे बड़ा डरावना लग रहा है। (५) मुझे विरहसे व्याकुल, बलहीन और अत्यन्त अकेला जानकर कामदेवने यह वन, भौंरे और पक्षी जुटाकर मुझपर धावा बोल दिया है ॥ ३७ क ॥ जब उसका दूत (मलयानिल) देख गया कि मैं भाईके साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ) तब उसकी बात सुनकर कामदेव मानो सेना रोककर डेरा डाल बैठा हो ॥ ३७ ख ॥

१. कहत कथा अनेक संबादा।

६०८ ततो वामं तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य च दक्षिणम्। धन्यो वन्यशरण्यां तामरण्यानीं स्म गाहते ॥ हनु०
६१० पम्पाशोभां विलोक्यैव कस्य नोद्विजते मनः। —सत्योपाख्यान
६१५-१६ शास्त्रं सुचिन्तितमथोपरि चिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपतिः परिशंकनीयः।
क्रोडे कृतापि युवती परिरक्षणीया शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ॥ —शुक्रनीति
६१७ अयं वसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः। सीतया विप्रहीनस्य शोकसंदीपनो मम ॥
६१८-१९ ध्वनीनामुद्धमेरेभिर्मधूनामुद्धमैर्भृशम्। आजिघ्रैः पुष्पगन्धानां पतगैर्लपिता वयम् ॥ भट्टिका०

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी।
कदलि, ताल, बर ध्वजा - पताका। देखि, न मोह, धीर मन जाका। (१)
बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना।
कहुँ - कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग-बिलग होइ छाए। (२)
कूजत पिक, मानहुँ गज माते। ढेक - महोख, ऊँट - बिसराते।
मोर - चकोर - कीर, बर बाजी। पारावत - मराल, सब ताजी। (३)
तीतिर - लावक, पदचर - जूथा। बरनि न जाइ मनोज - बरूथा।
रथ गिरि - सिला, दुंदुभी झरना। चातक बंदी, गुन - गन बरना। (४)
६३० मधुकर मुखर भेरि - सहनाई। त्रिबिध बयारि, बसीठी आई।
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहिं चुनौती दीन्हें। (५)
लछिमन ! देखत काम - अनीका। रहहिं धीर, तिन्ह - कै जग लीका।
ऐहि - के एक परम बल नारी। तेहि - तें उबर, सुभट सोइ भारी। (६)
दो० — तात ! तीनि अति प्रबल खल, काम, क्रोध अरु लोभ।
मुनि - बिज्ञान - धाम - मन , करहिं निमिष - महँ छोभ ।। ३८ क ।।
लोभ-के इच्छा - दंभ बल , काम-के केवल नारि।
क्रोध-के परुष बचन बल , मुनिबर कहहिं बिचारि ।। ३८ ख।

बड़े-बड़ वृक्षोंमें उलझी हुई लताएँ ऐसी लग रही हैं मानो अनेक प्रकारके तम्बू तान दिए गए हों। केलेके बड़े-बड़े पेड़ और ऊँचे-ऊँचे ताड़के पेड़ खड़े ऐसे लग रहे हैं जैसे (सेनाकी) ध्वजा-पताकाएँ फहराए जा रही हों, जिन्हें देखकर केवल धीर पुरुष ही ऐसे होते हैं जो मोह (काम)-में नहीं पड़ पाते। (१) अनेक वृक्षोंमें रंग-बिरंगे फूल फूले हुए थे, मानो अनेक प्रकारका बाना (पोशाक) धारण किए हुए बहुतसे धनुर्धर आ डटे हों। कहीं-कहीं अकेले-अकेले खड़े हुए सुन्दर वृक्ष ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो योद्धा-गण अलग-अलग अपना डेरा डाले ठहरे हुए हों। (२) कोयलकी कूक ऐसी लग रही है मानो मतवाले हाथी चिग्घाड़ रहे हों; ढेक और महोख पक्षी ही मानो ऊँट और खच्चर हों; मोर, चकोर, सुग्गे मानो बढ़िया घोड़े तथा कबूतर और हंस ही अरबी घोड़े हों; (३) तीतर और बटेर ही मानो पैदल सिपाहियोंके झुण्ड हों। कामदेवकी यह सेना ऐसी है कि इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पर्वतकी शिलाएँ ही मानो रथ हों, हरहराते गिरते हुए झरनोंका कलकल-निनाद ऐसा लगता है मानो नगाड़े धज रहे हों, पपीहेकी पिउ-पिउ ऐसी लगती है मानो बंदी (भाट) ही गुण-गान कर रहे हों, (४) भौंरोंकी गूँज ही मानो भेरी और शहनाईके स्वर हों और शीतल, मंद सुगंधित पवन ही मानो दूत बने चले आए हों। इस प्रकार कामदेव अपने साथ चतुरंगिणी सेना लिए हुए सबको ललकारता और चुनौती देता हुआ बिचरे जा रहा है। (५) देखो लक्ष्मण ! कामदेवकी यह सेना देखकर जो डटा खड़ा रहे, उन्हींकी जगत्में प्रतिष्ठा होती है। इस (कामदेव)-का सबसे बड़ा बल 'स्त्री' है। संसारमें स्त्रीसे जो बचा रह गया, उसीको सबसे बड़ा वीर समझना चाहिए। (६) देखो भाई ! काम, क्रोध और लोभ—ये मनुष्यके तीन बड़े प्रबल (शत्रु) हैं। बड़े-बड़े विज्ञानी मुनियोंका मन भी ये क्षण-भरमें विचलित कर डालते हैं ।। ३८ क ।। बड़े-बड़े मुनि लोगोंने विचार कर कहा है कि लोभ तो इच्छा और दम्भके बलपर बढ़ता है, काम केवल स्त्रीके बलपर बढ़ चलता है और क्रोध केवल कठोर वचनोंके बलपर पलता है' ।। ३८ ख ।।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम, उमा! सब अंतरजामी।
कामिन-कै दीनता दिखाई। धीरन-के मन बिरति दृढ़ाई। (१)
६४० क्रोध, मनोज, लोभ, मद, माया। छूटहिं सकल राम-की दाया।
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा-पर होइ सो नट अनुकूला। (२)
उमा! कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरि-भजन, जगत सब सपना।
पुनि प्रभु गए सरोवर-तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा। (३)
संत-हृदय-जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।
जहँ-तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार-गृह जाचक-भीरा। (४)

दो०—पुरइनि-सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिए, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥ ३९ क ॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल-माहिं।
जथा धरम-सीलन-के, दिन सुख-संजुत जाहिं ॥ ३९ ख ॥

(शिव कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! राम तो तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) मेंसे किसीसे प्रभावित नहीं होते। वे चर-अचर जगत्‌के स्वामी हैं और सबके घट-घटकी जानते हैं। रामने (जो कुछ कहा है उसमें) कामी लोगोंकी दीनता (दुर्बलता) दिखाई है और धीर पुरुषोंके मनमें वैराग्यकी भावना दृढ की है। (१) क्रोध, काम, लोभ, मद और माया, इन सबसे तभी छुटकारा मिल पा सकता है जब रामकी कृपा हो जाय। जिसपर नटराज (सबको नचाते रहनेवाले राम) प्रसन्न हो जाते हैं वह मनुष्य इस मायाके इन्द्रजालमें नहीं फँस पाता। (२) देखो पार्वती ! मैं अपने अनुभवकी बात बताता हूँ कि यह सारा संसार स्वप्नके समान झूठा है, केवल हरिका भजन ही सत्य है।'

वहाँ (उस वन)-से चलकर पंपा नामके सुन्दर और गहरे सरोवरके तटपर राम जा पहुँचे। (३) उस सरोवरका जल वैसा ही निर्मल था जैसा सन्तोंका हृदय होता है। उसपर अत्यन्त मनोहर चार घाट बँधे हुए थे। अनेक प्रकारके पशु वहाँ आ-आकर जहाँ-तहाँ खड़े इस प्रकार जल पी रहे थे मानो उदार मनुष्यके घर भिक्षुकोंकी भीड़ आ जुटी हो। (४) उस सरोवरमें इतनी घनी पुरइन (कमलके पत्तोंकी हरियाली) छाई हुई थी कि उनकी ओटमें जलकी झलक-तक वैसे ही नहीं मिल पा रही थी जैसे मायासे घिरे हुए मनुष्यको निर्गुण ब्रह्म नहीं दिखाई पड़ता। उस सरोवरके अत्यन्त गहरे पानीमें डूबी हुई मछलियाँ समान रूपसे ऐसी सुखसे सोई पड़ी हुई थीं, जैसे धर्मात्मा

६३८-३९ निर्ममो निरहङ्कारोप्यखण्डानन्दरूपवान्। मम जायेति सीतेति विललापातिदुःखितः ॥
आसक्त इव मूढानां भाति तत्त्वविदां नहि। —अध्यात्मरामायण

६४०-४१ श्रीरामकृपया क्रोधः कामाद्यास्तत्क्षणं तथा। नश्यन्ति राममायायां मोहितो न भवत्यपि ॥

६४२ प्रिये स्वकीयानुभवं वदामि तवाग्रतो राघवदेवभक्तिः।
सत्या समस्तं च जगद्धि मिथ्या स्वप्नो यथा भाति तथाविदां वै। —सनत्कुमारसंहिता

६४३ श्रीपम्पासरसस्तीरं गतो रामः सलक्ष्मणः। —वाल्मीकीयरामायण

६४४-४५ जलं तत्सरसः स्वच्छं यथा सज्जनमानसम्। सरसः परितो घट्टा बद्धाश्चत्वार उत्तमाः ॥
यत्र तत्र मृगा नीरं पिबन्ति विविधाः खलु। यथा दातुर्गृहं यान्ति याचका बहवस्तथा ॥

६४६-४७ न दृश्यते जलं तस्य पद्मपत्रावृतं मुने। मायामूढा यथा ब्रह्म नेक्षन्ते निर्गुणं तथा ॥

६४८-४९ सर्वे एकरसा मीनाः सुखिनो बहुले जले। दिनानि धर्मशीलानां यथा यान्ति सुखेन हि ॥ वा०रा०

६५० बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर, मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जल-कुक्कुट कल-हंसा। प्रभु बिलोकि, जनु करत प्रसंसा। (१)
चक्रवाक-बक-खग-समुदाई। देखत बनइ, बरनि नहिं जाई।
सुंदर खग-गन-गिरा सोहाई। जात पथिक, जनु लेत बोलाई। (२)
ताल-समीप मुनिन गृह छाए। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए।
चंपक, बकुल, कदंब, तमाला। पाटल, पनस, पलास, रसाला। (३)
नव पल्लव, कुसुमित तरु नाना। चंचरीक-पटली कर गाना।
सीतल-मंद-सुगंध सुभाऊ। संतत बहै मनोहर बाऊ। (४)
कुहू-कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस, ध्यान मुनि टरहीं। (४॥)

दो०—फल भर नम्र बिटप सब, रहे भूमि नियराइ।
६६० पर-उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ॥ ४०॥

देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जन कीन्ह, परम सुख पावा।

पुरुषोंके सब दिन सदा सुखसे ही कटते हैं ॥ ३६ ख ॥ उस सरोवरमें जहाँ-तहाँ रंग-बिरंगे कमल खिले हुए थे जिनपर भौंरोंके झुण्डके झुण्ड मधुर-मधुर गुञ्जार किए जा रहे थे। पनडुब्बे और सलोने हंस इस प्रकार क्रें-क्रें किए जा रहे थे, मानो वे प्रभु रामको देखकर उनको प्रशंसाके गीत गाए जा रहे हों। (१) वहाँ चकवे, बगुले तथा अन्य अनेक पक्षी ऐसे सुन्दर थे कि वे देखते ही बनते थे, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। रंग-बिरंगे पक्षियोंकी चहचहाहट ऐसी सुहावनी लग रही थी मानो वे वे राह-चलते पथिकोंको पुकार-पुकारकर पास बुलाए ले रहे हों। (२)। उस सरोवरके आस-पास मुनियोंने अपने जो आश्रम बना खड़े किए थे, उनके चारों ओर बड़े सुन्दर-सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे थे। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल (काले खैरका वृक्ष), पाटल (गुलाब), कटहल, पलाश (ढाक) और आम आदि (३) अनेक प्रकारके वृक्ष नये-नये पत्तों और फूलोंसे लदे पड़े थे जिनपर मँडराते हुए भौंरे निरन्तर गुनगुनाए जा रहे थे। शीतल, मंद, सुगंधित मनोहर बयार वहाँ स्वभावसे ही सदा बहती रहती थी। (४) वहाँ निरन्तर कोयलें कूकती रहती थीं जिनकी कूक इतनी रसीली होती थी कि उसे सुन-सुनकर मुनियों-तकका ध्यान टूट-टूट जाता था। (५) वे सभी वृक्ष फलोंके भारसे झुके हुए वैसे ही धरती छू चले थे, जैसे दूसरोंका उपकार करनेवाले पुरुष अधिक सम्पत्ति पा जानेपर (विनयसे) झुक जाते हैं ॥ ४० ॥ रामने वह इतना सुहावना सरोवर देखा तो उसमें स्नान करने उतर गए। स्नान करते ही उनका जी बहुत हलका हो गया। नहा-धोकर वे वहीं

६५०-५१ विचित्रवर्णपद्मानि मुने विकसितानि वै। मधुरं सुखदा भृङ्गा बहु गुञ्जन्ति तत्र च॥
कलं वदन्ति हंसाश्च तथैव जलकुक्कुटाः। मन्ये रामं प्रशंसन्ति हर्षिताः सर्वपक्षिणः॥
६५७-५८ त्रिविधो पवनो वाति पिकशब्दं मनोहरम्। श्रुत्वा तु मुनयः सर्वे ध्यानं मुञ्चन्ति तत्क्षणम्॥ वा०रा०
६५९-६० भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥ —भर्तृहरिशतक

देखी सुंदर तरुवर - छाया । बैठे अनुज - सहित रघुराया । (१)
तहँ पुनि सकल देव - मुनि आए । अस्तुति करि, निज धाम सिधाए ।
बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज - सन कथा रसाला । (२)
बिरहवंत भगवंतहिं देखी । नारद - मन भा सोच बिसेखी ।
मोर साप करि अंगीकारा । सहत राम, नाना दुख भारा । (३)
ऐसे प्रभुहिं बिलोकौं जाई । पुनि न बनिहि अस अवसर आई ।
यह बिचारि नारद कर - बीना । गए जहाँ प्रभु सुख-आसीना । (४)
गावत राम - चरित मृदु बानी । प्रेम - सहित बहु भाँति बखानी ।
६७० करत दंडवत लिए उठाई । राखे बहुत बार उर - लाई । (५)
स्वागत पूछि, निकट बैठारे । लछिमन, सादर चरन पखारे । (५।।)
दो०—नाना विधि बिनती करि , प्रभु प्रसन्न - जिय जानि ।
नारद बोले बचन तब , जोरि सरोरुह - पानि ।। ४१ ।।
सुनहु उदार सहज[1] रघुनायक । सुंदर, अगम, सुगम, बर - दायक ।

एक घने वृक्षकी छायाके तले छोटे भाई लक्ष्मणके साथ जा बैठे । (१) इतनेमें वहाँ सब देवता और मुनि भी आ इकट्ठे हुए और वे सब रामकी स्तुति कर-करके अपने-अपने घर लौट गए । कृपालु राम अपने पास बैठे हुए भाई लक्ष्मणको बड़े प्रेमसे बहुत-सी रसीली-रसीली कथाएँ सुनाने लगे । (२) भगवान् (राम)-को इस विरही रूपमें देखकर नारदके मनमें बड़ी कचोटन होने लगी कि 'मेरा ही शाप अंगीकार करनेके कारण जो राम इतने कष्ट उठाए चले जा रहे हैं (३) उन प्रभुको चलकर कमसे कम देख तो आऊँ । फिर ऐसा अवसर कहाँ हाथ आ पावेगा ?' यह सोचकर नारद अपने हाथमें (महती नामकी) वीणा लिए हुए वहीं जा पहुँचे जहाँ प्रभु राम सुखसे (पेड़-तले) बैठे हुए थे । (४) वहाँ पहुँचकर नारद अत्यन्त कोमल वाणीमें प्रेमपूर्वक अनेक प्रकारसे प्रभु रामके चरित्रके गीत गाने लगे । (गा चुकनेपर) जब वे दंडवत् करने लगे तो नारदको प्रभुने उठा लिया और बार-बार अपने हृदयसे चिपटा लगाया । (५) फिर उनका स्वागत करके और कुशल पूछकर रामने उन्हें अपने पास पकड़ बैठाया । लक्ष्मणने भी आदर-पूर्वक उनके चरण आ धोए । (५।।) नारदने अनेक प्रकारसे रामकी प्रशंसा करके और प्रभुको प्रसन्न जानकर हाथ जोड़कर कहना प्रारंभ किया—।।४१।। 'सहज उदार राम ! आप अगम और सुगम दोनों प्रकारके कल्याणकारी वर दे सकनेमें समर्थ हैं । स्वामी ! मैं आपसे एक ही वर माँगता हूँ वह मुझे दे ही दीजिए । आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये सब जानते हैं (कि

[1] परम ।

६५१-६२ एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगता । स्तुतिं कृत्वा च ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम् ।।वाल्मी०
६६४-६८ आजगाम तदाकाशान्नारदो भगवानृषिः । रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम् ।।
६६९-७१ दृष्ट्वा तं राम उत्थाय दण्डवत्प्रणनाम च । कुशलप्रश्नमुक्त्वा च ददावथ शुभासनम् ।।
६७२-७३ उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् । प्रपच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः ।।देवीभा०

देहु एक बर, माँगौं स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी। (१)
जानहु मुनि, तुम मोर सुभाऊ। जन - सन कबहुँ कि करौं दुराऊ।
कवन बस्तु असि प्रिय मोहिं - लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी। (२)
जन - कहँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे।
तब नारद बोले हरषाई। अस बर मागौं, करौं ढिठाई। (३)
६८० जद्यपि प्रभु - के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक - तें एका।
राम सकल नामन - तें अधिका। होउ नाथ अघ-खग-गन-बधिका। (४)

दो० —राका - रजनी भगति तव , राम - नाम सोइ सोम।
अपर नाम, उडुगन बिमल , बसहु भगत - उर - ब्योम॥ ४२ क॥
एवमस्तु मुनि - सन कहेउ , कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरष अति , प्रभु - पद नायउ माथ॥ ४२ ख॥

अति प्रसन्न रघुनाथहिं जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी।
राम ! जबहिं प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहिं सुनहु रघुराया। (१)

मैं क्या चाहता हूँ)।' (१) (रामने कहा—) 'मुनि ! आप तो मेरा स्वभाव जानते ही हैं। मैंने अपने भक्तोंसे क्या कभी कुछ दुराव रक्खा है ? मुनिश्रेष्ठ ! बताइए मेरे लिये ऐसी कौन सी प्रिय वस्तु है जो आप मुझसे माँग नहीं सकते ? (और मैं दे नहीं सकता ?) । (२) यह विश्वास कभी भूलकर भी न छोड़िए कि ऐसी कोई वस्तु नहीं जो अपने भक्तको मैं दे नहीं सकता।' तब बहुत प्रसन्न होकर नारद बोले—'मैं ढिठाई करके ऐसा ही वर माँगे ले रहा हूँ। (३) यद्यपि वेदोंमें (आप)-के एकसे एक बढ़कर अनेक नाम गिनाए गए हैं, पर उन सब नामोंमें राम-नाम ही सर्वश्रेष्ठ है और नाथ ! वह नाम ऐसा है कि पापको ऐसे समाप्त कर डालता है जैसे पक्षियोंको बहेलिया मार डालता है। (४) (मैं यही वर माँगता हूँ कि) आपकी भक्तिकी पूर्णिमाकी रातमें 'राम' नाम हो चन्द्रमा तथा आपके अन्य सभी नाम तारे बनकर भक्तोंके हृदयके निर्मल आकाशमें सदा छिटके रहें।' (आपका 'राम' नाम तथा अन्य नाम भक्त लोग निरन्तर अपने मनमें रटते रहें)' ॥ ४२ क ॥ कृपासिन्धु रामने मुनिसे कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)'। यह सुनना था कि नारदने बहुत प्रसन्न होकर प्रभुके चरणोंमें सिर नवा दिया ॥ ४२ ख ॥ नारदने जब समझ लिया कि राम अत्यन्त प्रसन्न हैं तब वे मधुर वाणीमें कहने लगे—'प्रभु ! आज मुझे यह बता दीजिए कि जब आपने अपनी मायाके चक्करमें डालकर मेरी बुद्धि फेर दी थी और मैं विवाह करनेपर तुला बैठा था उस समय आपने मेरा

६७४-७५ प्रयच्छैकं वरं मह्यं परमोदार राघव। यद्यपि त्वं तु जानासि तथापि कथयाम्यहम्॥महारा०
६७६-७७ मम स्वभावं जानासि तथापि च वदाम्यहम्। नादेयं विद्यते किञ्चिज्जनानां प्रिय नारद॥
६७९-८१ प्रसन्नो नारदः प्राह श्रुत्युक्तानि बहूनि ते। सन्ति यद्यपि नामानि तथाप्यस्तु तवाधिकम्॥
६८२-८३ त्वद्भक्तिर्यामिनी राका त्वन्नाम रजनीपतिः। नक्षत्राण्यन्यनामानि भक्तहृद्व्योम्नि राजतात्॥
६८४-८५ एवं भवतु चेत्युक्त्वा कृपासिन्धुर्हरिः परः। प्रसन्नो नारदो जातः प्रणनाम च पादयोः॥महारा०

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हाँ। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हाँ।
सुनु मुनि! तोहिं कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहिं, तजि सकल भरोसा। (२)
६९० करौं सदा तिन्ह-कै रखवारी। जिमि बालक राखै महतारी।
गह सिसु-बच्छ, अनल-अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। (३)
प्रौढ़ भये तेहि सुत-पर माता। प्रीति करै नहिं पाछिलि बाता।
मोरे प्रौढ़ तनय-सम ग्यानी। बालक सुत-सम दास अमानी। (४)
जिनहिं मोर बल, निज बल ताही। दुहुँ-कहँ काम-क्रोध रिपु आही।
यह बिचारि पंडित मोहिं भजहीं। पाएहु ज्ञान, भगति नहिं तजहीं। (५)
दो०—काम-क्रोध-लोभादि-मद, प्रबल मोह-के धारि।
तिन्ह-महँ अति दारुन दुखद, माया-रूपी नारि॥ ४३॥
सुनु मुनि! कह पुरान-स्रुति-संता। मोह-बिपिन-कहँ नारि बसंता।

(विवाह) होने क्यों नहीं दिया ?' (रामने हँसकर कहा)–'देखो मुनि! मैं (सह+रहस) हर्षके साथ बताए दे रहा हूँ कि जो व्यक्ति सबका भरोसा छोड़कर सदा मेरा ही पल्ला थामे रहते हैं (२) उनकी मैं सदा वैसे ही रखवाली करता रहता हूँ जैसे माता अपने बालककी रक्षा किया करती है। जब बच्चा छोटा होता है उस समय जब वह झपटकर आग (-में हाथ डालने) या सर्प पकड़ने बढ़ता है, तब माता उसे झट खींचकर बचा लेती है। (३) पर वही बालक जब बड़ा हो चलता है तब माता उससे प्रेम तो वैसा ही करती है, पर पिछले जैसा (बचपन-वाला) व्यवहार नहीं करती (क्योंकि प्रौढ हो जानेके कारण माताके रक्षण-पर वह निर्भर नहीं होता (वह स्वयं अपनी रक्षा कर सकता है)। इसी प्रकार ज्ञानी लोग तो मेरे सयाने पुत्रके समान हैं, और अपने बलपर भरोसा न करनेवाला भक्त मेरे शिशु-पुत्रके समान है। (४) मेरे ऐसे सेवक (शिशु भक्त)-को तो केवल मेरा ही बल रहता है पर ज्ञानीको अपने बलका भरोसा रहता है। फिर भी काम और क्रोध तो दोनोंके ही शत्रु हैं। ऐसा समझकर बुद्धिमान् सदा मेरे ही भरोसे पड़े रहते हैं। ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भी वे भक्तिका मार्ग नहीं छोड़ते। (५) यों तो काम, क्रोध, लोभ और मद आदि सब मोह (अज्ञान)-की ही प्रबल सेनावाले हैं पर उनमें भी स्त्री तो और भी दारुण दुःख देनेवाली है, जिसे मायाका ही दूसरा स्वरूप समझना चाहिए॥ ४३॥ देखो मुनि! पुराण, वेद और सन्त लोगोंने कहा है कि मोहके वनके (विकासके) लिये तो स्त्री साक्षात् वसन्त ऋतुके समान है (जैसे वसन्तमें वन फूल उठते हैं वैसे ही स्त्रीके आते ही मोह बढ़ चलता है)। जप, तप और नियमके सब जलाशयोंको स्त्री ही

६८६-८८ ज्ञात्वा प्रसन्नं रघुनन्दनं तदा मृद्व्या गिरा तं च जगाद नारदः।
त्वन्मायया मोहितमानसस्य मे कथं विवाहो भवता निवारितः॥
६८९-९० प्रतिज्ञापूर्वकं वच्मि शृणु नारद मे वचः। ये भजन्ति सदा मां तु तेषां रक्षां करोम्यहम्॥
६९१-९२ शिशुर्वत्सोऽनलं सर्पं स्प्रष्टुं धावति चेत्तदा। ततो रक्षति तं माता प्रौढे नैव कदाचन॥
६९३-९५ प्रौढपुत्रसमो ज्ञानी दासो बालसुतो यथा। दासो मद्बलमाश्रित्य ज्ञानी निजबलं तथा॥
तिष्ठत्युभौ च शत्रुभ्यां पीडितौ भजतोऽथ माम्।
६९६-९७ मोहसेना भटा सर्वे काम-क्रोधमदादयः। दारुणा दुःखदा मायारूपिणी तेषु चाबला॥ महारा०

जप - तप - नेम जलासय - भारी । होइ ग्रीषम सोखै सब नारी । (१)
७०० काम - क्रोध - मद - मत्सर भेका । इन्हहिँ हरष - प्रद बरषा एका ।
दुर्बासना कुमुद - समुदाई । तिन्ह - कहँ सरद सदा सुखदाई । (२)
धर्म सकल सरसीरुह - बृंदा । होइ हिम, तिन्हहिँ दहै सुख - मंदा ।
पुनि ममता - जवास बहुताई । पलुहइ नारि - सिसिर - रितु पाई । (३)
पाप - उलूक - निकर - सुखकारी । नारि, निबिड़ - रजनी - अँधियारी ।
बुधि, बल, सील, सत्य, सब मीना । बनसी - सम त्रिय कहहिँ प्रबीना । (४)

दो०—अवगुन - मूल, सूल - प्रद , प्रमदा सब दुख - खानि ।
तातेँ कीन्ह निवारन[१] , मुनि ! मैँ यह जिय जानि ।। ४४ ।।

सुनि रघुपति - के बचन सुहाए । मुनि - तन पुलक, नयन भरि आए ।
कहहु, कवन प्रभु - कै असि रीती । सेवक - पर ममता अरु प्रीती । (१)

ग्रीष्म ऋतुके समान सोख लेती है (जैसे गर्मीमें जलाशय सूख जाते हैं वैसे ही जहाँ स्त्री रहती है वहाँ जप, तप, नियम कुछ नहीं हो पाते) । (१) वर्षा ऋतु के समान स्त्री ही काम, क्रोध, मद, मत्सर (डाह) आदि मेँढकोंको हर्षित किए रखती है (जहाँ स्त्री होती है वहाँ काम, क्रोध, मद, मत्सर अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं) । बुरी वासनाओंको ऐसे कुमुद समझने चाहिएँ जिन्हें खिलाए रखनेके लिये स्त्री शरद् ऋतुके समान होती है (जहाँ स्त्री होती है वहाँ बुरी वासनाएँ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं) । (२) सारे धर्मके आचरणोंको कमल समझना चाहिए जिन्हें मंद-सुख (विषय आदिका क्षणिक सुख) देनेवाली स्त्री हेमन्त ऋतु बनकर जला डालती है (जैसे हेमन्त ऋतुमें पालेसे कमल झुलस जाते हैं वैसे ही जहाँ स्त्री होती है वहाँ धर्मके काम हो ही नहीं पा सकते) । ममता-रूपी जवासेके समूहको पालनेके लिये स्त्री ही शिशिर ऋतुके समान है (जैसे शिशिरमें जवासेका कँटीला पौधा उग चलता है वैसे ही जहाँ स्त्री होती है वहाँ ममता बढ़ती चली जाती है) । (३) पाप-रूपी उल्लुओंको यह स्त्री घनी अँधेरी रातके समान भली लगती है (जहाँ स्त्री होती है वहाँ पाप ही पाप बढ़ने लगता है) । बुद्धि, बल, शील और सत्य ही ऐसी मछलियाँ हैं, जिन्हें बनसी बनकर स्त्री फँसा मारती है (जहाँ स्त्री होती है वहाँ बुद्धि, बल, शील और सत्य ठहर नहीं पाते) । सभी बुद्धिमान् लोग (स्त्रीके विषयमें) ऐसा ही कहते हैं । (४) यह स्त्री क्या है सारे अवगुणोंकी जड़ है (स्त्रीके कारण ही सारे अवगुण आते हैं), सदा शूल (कष्ट) ही शूल उत्पन्न करती हैं और सब दुःखोंकी खान है । इसीलिये मुनि ! मैंने भली-भाँति जान-बूझकर ही आपको उससे (स्त्रीसे) बचाए रक्खा (आपका विवाह नहीं होने दिया)' ।। ४४ ।। रामकी यह प्रिय बात सुनकर नारद पुलकित हो उठे । उनकी आँखें यह सोचकर डबडबा आईं—'बताओ तो, संसारमें ऐसा कौन दूसरा स्वामी होगा जो अपने सेवक (भक्त)-से इतनी ममता और प्रीति

१. तातेँ कीन्ह विनास ।

६९८-९९ मोहारण्यवसन्तः स्त्री ग्रीष्मरूपा जपादिकम् । जलाशयं जलैः शून्यं करोति च नितंबिनी ।।
७००-१ प्रावृट्कामादि भेकानां सुखदा स्त्री प्रकीर्तिता । शरद् दुर्वासनारूपकुमुदानां सुखप्रदा ।।
७०२-३ समस्तधर्मपद्मानि नश्यन्ति स्त्रीतुषारतः । शिशिरर्तुस्तथा नारी ममतायासवर्धिनी ।।
७०४-७ दुर्गुणानां च न मूलं स्त्री दुःखाढ्या शूलदायिनी । ज्ञात्वा स्वहृदये चेत्थं विवाहस्ते निवारतः ।।महारा०

७१० जे न भजहिँ अस प्रभु, भ्रम त्यागी। ग्यान - रंक नर, मंद, अभागी।
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम ! बिग्यान - बिसारद। (२)
सन्तन - के - लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ ! भवभंजन भीरा।
सुनु मुनि ! संतन - के गुन कहऊँ। जिन्ह - तें मैं उनके बस रहऊँ। (३)
षट - बिकार - जित, अनघ, अकामा। अचल, अकिंचन, सुचि, सुख-धामा।
अमित अनीह - बोध, मित - भोगी[1]। सत्य - सार, कवि, कोबिद, जोगी। (४)
सावधान, मानद, मद-हीना। धीर, धरम - गति, परम - प्रबीना। (४॥)
दो०—गुनागार, संसार - दुख , -रहित, बिगत - संदेह।
तजि मम चरन-सरोज, प्रिय , तिन्ह - कहँ, देह न गेह ॥ ४५ ॥
निज गुन स्रवन सुनत सकुचाहीँ। पर - गुन सुनत, अधिक हरषाहीँ।
७२० सम, सीतल, नहिँ त्यागहिँ नीती। सरल सुभाउ, सबहिँ - सन प्रीती। (१)

करता हो ? (१) जो मनुष्य भ्रम त्यागकर ऐसे प्रभुकी सेवा नहीँ करते उनके जैसा अज्ञानी, दुर्बुद्धि और अभागा कौन होगा ?' नारद मुनिने आदर-पूर्वक रामसे कहा—'हे विज्ञान-विशारद (तत्त्व जाननेवाले) राम सुनिए ! (२) रघुवीर ! भव-भय (संसारके आवागमनके कष्ट)-का नाश करनेवाले मेरे स्वामी ! (यह तो आपने बता दिया) अब कृपा करके सन्तोंके लक्षण भी मुझे बता डालिए।' (राम कहने लगे—)-'देखो मुनि ! मैं सन्तोंके उन गुणोंका परिचय आपको दिए डाल रहा हूँ, जिनके कारण मैं उनका हुआ रहता हूँ। (सन्त वे हैं) जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर— इन छह विकारोंको जीत चुके रहते हैं, (जिनमें ये विकार नहीँ आते), जिनके मनमें न पाप होता और न काई कामना होती, जिनके विचार दृढ़ होते हैं, जो अपने पास कुछ (कानी कौड़ीतक) नहीँ रखते, जो पवित्र, सुखी, अत्यन्त इच्छा-हीन, बहुत ज्ञानवान्, संयमसे सांसारिक भोग भोगनेवाले, सबसे सच्चा व्यवहार करनेवाले, कवि(विचारशील), विद्वान्, योगी, (४) सावधान, दूसरोंका आदर करनेवाले, अभिमान-रहित, धैर्यवान्, सदा धर्मका आचरण करनेमें कुशल, (४॥) गुणोंसे भरे हुए, संसारके दुःख जिन्हें छू नहीं पाते, जिनके मनमें कोई सन्देह नहीँ रहता, जिन्हें मेरे चरण-कमल छोड़कर अपनी देह और अपना घर-तक नहीँ सुहाता, ॥ ४५ ॥ जिन्हें अपने गुण सुननेमें लाज लगती है, जो दूसरोंके गुण सुनकर प्रसन्न हो उठते हैं, जो सदा सम (न सुखमें सुखी और न दुःखमें दुखी होते) और शीतल (निश्चिन्त) बने रहते हैं, जो न्यायका कभी त्याग नहीँ करते (कभी अन्याय नहीँ करते),

१. अमित बोध अनीह मित भोगी।

७०८-१० शोभनं वचनं श्रुत्वा रामचन्द्रस्य नारदः। हर्षितो मनसि प्राह दासेति ममता प्रभोः॥
प्रीतिश्च ताद्दशं त्यक्त्वा भ्रमं नैव भजन्ति ये। स्वामिनं ज्ञानशून्यास्ते दुर्दैवा मन्दबुद्धयः॥
७११-१२ देवर्षिः सादरं प्राह पुनः श्रीरघुनन्दनम्। लक्षणं सज्जनानां च वद राम पुरो मम॥
७१३ लक्षणं सज्जनानां च शृणु नारद सादरम्। —महारामायण
७१४-२० षड्विकारजितोऽपापा निष्कामा अचलास्तथा। अकिंचना पवित्राश्च सुबोधाश्च सुखालयाः॥
भोगिनः परमार्थानां सत्यसाराश्च योगिनः। कोविदा कवयो धीरा ममतामदवर्जिताः ॥महारा०

जप - तप - व्रत - दम - संजम - नेमा । गुरु - गोविंद - बिप्र - पद - प्रेमा ।
स्रद्धा - छमा - मइत्री - दाया । मुदिता, मम पद प्रीति अमाया । (२)
बिरति - बिबेक - बिनय - बिग्याना । बोध जथारथ बेद - पुराना ।
दंभ - मान - मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाँऊ । (३)
गावहिं, सुनहिं, सदा मम लीला । हेतु - रहित पर - हित - रत - सीला ।
मुनि ! सुनु, साधुन - के गुन जेते । कहि न सकैं सारद - स्रुति तेते । (४)
छंद—कहि सक न सारद, सेष, नारद सुनत, पद - पंकज गहे ।
अस दीनबंधु, कृपाल, अपने भगत - गुन निज मुख कहे ।
सिर नाइ बारहिं बार चरननि, ब्रह्मपुर नारद गए ।
७३० ते धन्य, तुलसीदास, आस बिहाइ, जे हरि - रँग रए ।। [१३]
दो०—रावनारि - जस पावन, गावहिं, सुनहिं जे लोग ।
राम - भगति दृढ़ पावहिं, बिनु बिराग, जप, जोग ।। ४६ क ।।

जिनका स्वभाव सरल होता है, जो सबसे प्रेम करते रहते हैं, (१) जो जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियममें लगे रहते हैं, जो गुरु, गोविन्द और ब्राह्मणके चरणोंसे प्रीति करते हैं, जिनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री और दयाका भाव भरा रहता है, सदा प्रसन्न रहते हैं, मेरे चरणोंसे निष्कपट प्रेम करते रहते हैं, (२) जो वैराग्य, विवेक, विनय और विज्ञानके भांडार हैं, जिन्हें वेद और पुराणोंका ठीक-ठीक ज्ञान रहता है, जो न कभी दम्भ करते, न अभिमान, न मद और न भूलकर भी कभी कुमार्ग-पर पैर रखते (बुरा काम करते), (३) जो सदा मेरी लीलाएँ कहते और सुनते रहते हैं और जो बिना कारण ही (निःस्वार्थ भावसे) दूसरोंकी भलाईमें लगे रहते हैं (वे सन्त हैं) । देखो मुनि ! (सच पूछो तो) साधु पुरुषोंके लक्षण इतने अधिक हैं कि सरस्वती और वेद भी उनका वर्णन करना चाहें तो उनके किए भी पूरे नहीं हो पा सकते (सरस्वती और वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पा सकते) ।' (४) इतना सुनते ही नारद मुनिने रामके चरण-कमल पकड़ लिए (और कहा—) 'ऐसा दीनबन्धु और कृपालु (संसारमें) कौन होगा जो अपने मुखसे अपने भक्तोंके गुण बता जाय ।' यह कहकर और रामके चरणोंमें बार-बार सिर नवाकर नारद मुनि ब्रह्मलोक लौट गए ।

तुलसीदास कहते हैं—'वे मनुष्य धन्य हैं जो सभी आशाएँ छोड़कर केवल भगवान् हरिके रंगमें रँगे मगन हुए रहते हैं । जो लोग रावणके शत्रु रामके पवित्र यशका वर्णन कहते तथा सुनते

सावधानाश्च नितरां निपुणा धर्मकर्मणि । निःसन्देहा गुणागारा भवदुःखविवर्जिताः ।।
येषां त्यक्त्वा मदंघ्रयब्जं प्रियं देहं न मन्दिरम् । स्वगुणश्रवणे येषां संकोचश्च प्रसन्नता ।।
गुणानां श्रवणेऽन्येषां समा नीतिविशारदाः । सर्वेषां प्रीतिपात्राणि स्वभावसरलास्तथा।।महारा०
७२१-२६ गुणानुवादं गायन्ति शृण्वन्ति च सदा मम । स्वार्थं विनाऽन्यकार्याणां करणे तत्पराः सदा ।
देवर्षे शृणु साधूनां यावन्तः सन्ति वै गुणाः । शारदा श्रुतयश्चापि तान्सर्वान्वक्तुमक्षमाः ।।
७२७-३० श्रीरामकथितान्साधुगुणान् श्रुत्वा स नारदः । रामचन्द्रं प्रणम्याशु ब्रह्मलोकं ययौ मुदा ।।
७३१-३२ पवित्रं रामचन्द्रस्य यशः शृण्वन्ति ये नराः । गायन्ति च विना योगं लभन्ते भक्तिमुत्तमाम् ।।

दीप-सिखा-सम जुबति-तन, मन ! जनि होसि पतंग ।
७३४ भजहि राम, तजि काम-मद, करहि सदा सतसंग ॥ ४६ ख ॥

॥ इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलवैराग्यसंपादनो नाम
तृतीयः सोपानः समाप्तः ॥

हैं, वे बिना वैराग्य, जप और योग किए ही रामकी अचल भक्ति पा जाते हैं ॥ ४६ क ॥ युवतियोंका शरीर दीपशिखा (दीवेकी लौ)-के समान है जिसपर हे मन ! तू फतिंगा मत बन (-कर जल) । तू काम और मद छोड़कर रामका भजन किया कर और सदा सत्संग किया कर' ॥ ४६ ख ॥

७३३-३४ दीपज्वालासमा नार्यः पतंगो भव मा मनः । रामं भज सतां सङ्गं कुरु मुक्त्वा स्मरादिकम् ॥

॥ कलियुगके समस्त पाप नाश कर डालनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह 'स्वच्छ वैराग्य उत्पन्न करनेवाला' नामका तीसरा सोपान (अरण्यकांड) समाप्त हुआ ॥

॥ अरण्यकाण्ड समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

●

चतुर्थ सोपान

(किष्किंधा-कांड)

●

[श्लोकाः]

१ कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गो-विप्र-वृन्द-प्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्म्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥ १ ॥

ब्रह्माम्भोधि-समुद्भवं कलि-मल-प्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भु-मुखेन्दु-सुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा।
संसारामय-भेषजं सुखकरं श्रीजानकी-जीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥ २ ॥

(जो लक्ष्मण) कुन्द (-के समान) और (राम) नीले कमलके समान सुन्दर हैं, जो (राम और लक्ष्मण) अत्यन्त बलवान्, विज्ञानके भांडार, शोभासे सजीले और श्रेष्ठ धनुर्धर हैं, जिनकी वन्दना वेद भी करते रहते हैं, जिन्हें गो और ब्राह्मण बड़े प्रिय हैं, जो अपनी मायासे मनुष्यका रूप धारण किए हुए हैं, जो कवच बनकर श्रेष्ठ धर्मकी सदा रक्षा करते रहते हैं, सदा सबका हित करते रहते हैं और सीताकी खोज करते हुए वनके मार्गमें चले जा रहे हैं, वे रघुकुलमें श्रेष्ठ दोनों भाई (राम तथा लक्ष्मण) निश्चय ही हमें भक्ति प्रदान करें ॥ १ ॥

वे पुण्यात्मा पुरुष धन्य हैं जो वेद-रूपी समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले, कलियुगका मल सदा नष्ट करते रहनेवाले, कभी नष्ट न होनेवाले, भगवान् शम्भुके सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुख-रूपी चन्द्रमामें सदा शोभा देनेवाले (जिसे शिव सदा अपने मुखसे रटते रहते हैं), जन्म-मरणके रोगको दूर करनेवाली औषध बने हुए, सबको सुख देनेवाले और जानकीके जीवनके आधार बने हुए 'राम' नामका अमृत निरंतर पीते रहते हैं। (२)

सो०—मुक्ति - जन्म महि जानि , ग्यान-खानि अघ-हानि कर ।
१० जहँ बस संभु - भवानि , सो कासी सेइय कस न ।। क ।।
जरत सकल सुर - बृन्द , विषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मति - मंद[1], को कृपालु संकर - सरिस ।। ख ।।
आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्वत नियराया ।
तहँ रह सचिव - सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल - बल - सींवा । (१)
अति सभीत कह, सुनु हनुमाना । पुरुष - जुगल बल - रूप - निधाना ।
धरि बटु रूप, देखु तैं जाई । कहेसु, जानि जिय, सैन बुझाई । (२)
पठए बालि होहिं मन - मैला । भागौं तुरत, तजौं यह सैला ।
बिप्र - रूप धरि, कपि तहँ गयऊ । माथ नाइ, पूछत अस भयऊ । (३)
को तुम स्यामल - गौर - सरीरा । छत्री - रूप फिरहु बन, बीरा ।

जिस धरतीपर मुक्तिका जन्म हुआ है, जहाँ ज्ञान ही ज्ञान भरा हुआ है, जहाँ पहुँचते ही सारे पाप नष्ट हो मिटते हैं, जहाँ शम्भु और भवानी सदा बसे रहते हैं, उस काशी नगरीकी सेवा क्यों न की जाय ? (वहीं चलकर क्यों न रहा जाय ?) ।। क ।।

अरे मन्द बुद्धिवाले मन ! समस्त देवताओंको (विषकी झारमें) झुलसते देखकर जो भगवान् शंकर भीषण हलाहल विष घूँट गए उन्हें भी तू नहीं भजता ? (उनकी भी सेवा नहीं करता तो करेगा किसकी ?) बता ! भगवान् शंकरके समान कृपालु और दूसरा तुझे मिलेगा कौन ? ।। ख ।।

वहाँ (पंपा सरोवर)-से राम जब आगे बढ़े तो चलते-चलते ऋष्यमूक पर्वतकी तलहटीमें जा पहुँचे । उसी पर्वतपर (वानरोंका सरदार) सुग्रीव अपने मंत्रियोंको साथ लेकर रहा करता था । ज्यों ही उसने अत्यन्त बलवान् (राम और लक्ष्मण)-को आते देखा (१) त्यों ही सुग्रीव (-का माथा ठनका और वह) अत्यन्त भयभीत होकर (हनुमानसे) बोला—'देखो हनुमान् ! ये दोनों पुरुष बहुत बली भी दिखाई दे रहे हैं और सुन्दर भी । तुम ब्रह्मचारीका वेष बनाकर (भोले-भाले बनकर) वहाँ जाकर देखो (कि ये हैं कौन और क्यों आए हैं) । उन्हें ठीक-ठीक समझकर तुम मुझे संकेतसे सारा भेद समझा बताना । (२) यदि बालिने मुझसे वैर निकालनेके लिये इन्हें इधर भेजा हो तो मैं तुरन्त यहाँसे खिसक जाऊँ और इस पर्वतपर आनेका नाम-तक न लूँ (यह पर्वत सदाके लिये छोड़ दूँ) ।' (यह सुनकर) ब्राह्मणका-सा रूप बनाकर (भोले-भाले बनकर) हनुमान् वहाँ (रामके पास) जा पहुँचे और उनके आगे मस्तक नवाकर उनसे पूछने लगे—(३) 'कहो वीरो ! आप दोनों साँवले और गोरे हैं कौन जो क्षत्रियका-सा बाना बनाए यहाँ वनमें घूमते फिर रहे हैं ? स्वामी ! वनकी इस

1. मन मंद ।

९-१० मुक्तेर्जन्मधरा काशी ज्ञानखान्यघनाशिनी । सोमः शंभुर्वसत्यत्र सदा सेव्या जनैरियम् ।।ब्रह्मरा०
११-१२ दहतो विबुधान् दृष्ट्वा विषं योपान्महेश्वरः । भ्रान्तं मनो भज त्वं तं कः कृपालुः शिवात्परः ।।
१३-१४ ऋष्यमूकगिरेः पार्श्वे गच्छन्तौ रामलक्ष्मणौ । सुग्रीवस्तु गिरेर्मूर्ध्नि चतुर्भिः सह वानरैः ।।
स्थित्वा ददर्श तौ यांतावारुरोह गिरेः शिरः । —अध्यात्मरामायण
१७ भयादाह हनूमंतं कौ तौ वीरवरौ सखे । गच्छ जानीहि भद्रं ते वटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः ।।
वालिना प्रेषितौ किं वा मां हन्तुं समुपागतौ । ताभ्यां संभाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः ।।
यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः ।
१८ तथेति बटुरूपेण हनूमान् समुपागतः । विनयावनतो भूत्वा रामं नत्वेदमब्रवीत् ।।
१९ को युवां पुरुषव्याघ्रौ युवानौ वीरसंमतौ । द्योतयंतौ दिशः सर्वाः प्रभया भास्कराविव । अध्या०

२० कठिन भूमि, कोमल - पद - गामी । कवन हेतु बिचरहु बन, स्वामी । (४)
मृदुल, मनोहर, सुंदर गाता । सहत दुसह बन - आतप - बाता ।
की तुम तीनि देव - महँ कोऊ । नर - नारायन, की तुम दोऊ । (५)

दो०—जग - कारन, तारन भव , भंजन धरनी - भार ।
की तुम अखिल भुवन-पति , लीन्ह मनुज - अवतार ।। १ ।।

कोसलेस दसरथ - के जाए । हम पितु - बचन मानि, बन आए ।
नाम राम - लछिमन दोउ भाई । संग नारि, सुकुमारि, सुहाई । (१)
इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र ! फिरहिं हम खोजत तेही ।
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु बिप्र ! निज कथा बुझाई । (२)
प्रभु पहिचानि, परेउ गहि चरना । सो सुख, उमा ! जाइ नहिं बरना ।
३० पुलकित तन, मुख आव न बचना । देखत रुचिर बेष - कै रचना । (३)
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्हीं । हरष हृदय, निज नाथहिं चीन्हीं ।

कठोर भूमिमें आप अपने कोमल चरण लेकर इस वनमें क्यों भटकते फिर रहे हैं ? (४) आप इतने कोमल, मनोहर और सुन्दर होकर भी वनकी भयंकर धूप और लू क्यों झेले चले जा रहे हैं। आप लोग ब्रह्मा, विष्णु महादेव तीन देवोंमें-से कोई हैं, या आप दोनों साक्षात् नर और नारायण ही आ उतरे हैं, (५) या आप जगत्को उत्पन्न करनेवाले और सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं, या आप स्वयं भगवान् ही हैं जो लोगोंको संसार-सागरसे पार उतारने तथा पृथ्वीका बोझ उतारने (पापियोंको नष्ट करने)-के लिये मनुष्यके रूपमें आन पधारे हैं ?' (१) (यह सुनकर रामने कहा –) 'भाई ! हम तो कोशल देशके स्वामी महाराजा दशरथके पुत्र हैं और पिताकी आज्ञासे इधर वनमें चले आए हैं। मेरा नाम राम है और ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण हैं। हमारे साथ एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री (वैदेही) भी थी (१) जिसे (वैदेहीको) यहाँ (वनमें) राक्षस उठा ले गए। बस विप्र ! हम उसी (वैदेही)-को खोजते फिर रहे हैं। हमने अपनी राम-कहानी तो तुम्हें कह सुनाई, अब विप्र ! तुम भी अपनी राम-कहानी सुना डालो।' (२) हनुमान्ने झट पहचान लिया कि ये तो मेरे प्रभु (राम) ही हैं और वे उनके चरण पकड़कर धरतीपर लोट गए। (महादेव कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! (जो सुख उस समय हनुमान्को मिल रहा था) उस सुखका वर्णन किसीके किए किया नहीं जा सकता। (हनुमानका) शरीर पुलकित हुआ जा रहा था। उनके मुँहसे वचन नहीं निकल पा रहे थे। वे टकटकी बाँधे प्रभु (राम)-का सुन्दर वेष देखे जा रहे थे। (३) फिर बहुत धीरज धरकर (सँभलकर) वे (रामकी) स्तुति करने लगे और अपने स्वामीको पहचान पानेसे उनके हृदयमें बड़ा हर्ष लहरें मारने लगा। (हनुमान कहने लगे—) 'स्वामी ! मेरा तो आपसे पूछना

२०-२१ प्रयोजनं प्रवेशस्य वनस्यास्य धनुर्द्धरौ । –वाल्मीकीयरामायण
२२ युवां त्रैलोक्यकर्त्ताराविति भाति मनो मम । नरनारायणौ लोके चरन्ताविति मे मतिः ।।
२३-२४ भूभारहरणार्थाय भक्तानां पालनाय च । अवतीर्णाविह परं चरन्तौ क्षत्रियाकृती ।।अ० रा०
२५-२६ अहं दाशरथी रामस्त्वयं मे लक्ष्मणोऽनुजः । सीतया भार्यया सार्धं पितुर्वचनगौरवात् ।।
आगतस्तत्र विपिने स्थितोऽहं दंडके द्विज ।
२७-२८ तत्र भार्या हृता सीता रक्षसा केनचिन्मम । तामन्वेष्टुमिहायातौ त्वं को वा कस्य वा वद।।अध्या०
२९ ज्ञात्वा रामं प्रभुं स्वीयं पादयोरपतद्धरिः । –वशिष्ठरामायण
३० जातः शरीरे रोमाञ्चो मुखाद्वाणी न निःसृता । सुन्दरीं वेषरचनां दृष्ट्वा रामस्य मारुतेः ।। हनु०रा०
३१ पुनः स्तुतिं चकारासौ धृत्वा धैर्यं धरापतेः । नैजं प्रभुमभिज्ञाय हृदये हर्षितोभवत् ।।–विश्वा०रा०

मोर न्याउ, मैं पूछा साईं। तुम पूछहु कस नर-की नाईं। (४)
तव माया-बस फिरौं भुलाना। तातें मैं नहिं प्रभु पहिचाना। (४॥)
दो०—एक मैं मंद मोहबस, कुटिल-हृदय, अज्ञान।
पुनि प्रभु! मोहिं बिसारेउ, दीनबंधु भगवान॥ २॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक, प्रभुहिं परै जनि भोरे।
नाथ! जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा। (१)
ता-पर मैं रघुबीर दोहाई। जानौं नहिं कछु भजन-उपाई।
सेवक पति, सुत मातु-भरोसे[1]। रहै असोच, बनै प्रभु पोसे। (२)
४० अस कहि, परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि, प्रीति उर छाई।
तब रघुपति, उठाइ, उर लावा। निज लोचन-जल सींच जुड़ावा। (३)
सुनु कपि! जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय, लछिमन-तें दूना।
सम-दरसी मोहिं कह सब कोऊ। सेवक-प्रिय, अनन्य गति सोऊ। (४)

ठीक था (क्योंकि मैं तो कुछ जानता नहीं था) पर आप (सर्वज्ञ होकर भी) मनुष्यके समान कैसे पूछे जा रहे हैं? (४) मैं तो आपकी मायाके फेरमें ही पड़ा भटकता रहा हूँ इसीलिये मैं तो प्रभुको पहचान नहीं पाया था। (४॥) एक तो मैं यों ही मंद (मूर्ख) ठहरा, दूसरे, मोहमें पड़ा (अज्ञानी) हूँ, तीसरे हृदयका कुटिल (खोटा) और नासमझ हूँ, इसपर प्रभो दीनवन्धु भगवान्! आप भी मुझे भुला बैठे? ॥ २॥ नाथ! (मैं मानता हूँ कि) मुझमें अवगुण ही अवगुण भरे पड़े हैं, पर स्वामी तो अपने सेवकको कभी नहीं भूल पाते। नाथ! यह जीव जो आपकी मायाके फेरमें पड़ा भटकता फिरता है, वह भी आपकी ही कृपासे उसके फंदेसे छुटकारा पा सकता है। (१) पर भगवन्! मैं तो आपकी दुहाई देकर कह सकता हूँ कि मैं तो कुछ भजन-वजन करना जानता नहीं क्योंकि सेवक तो अपने स्वामीके भरोसे और पुत्र अपनी माताके भरोसे सदा निश्चिन्त हुआ घूमता है, इसलिये सेवकका पोषण तो (जैसे भी हो) प्रभुको ही करना पड़ता है।' (२) यह कहकर वे (हनुमान्) अकुलाकर प्रभु (राम)-के चरणोंपर जा गिरे और अपने वास्तविक रूपमें आ दिखाई दिए। (उस समय) उनके हृदयमें प्रेम उमड़ा पड़ रहा था। रामने उन्हें हृदयसे उठा लगाया और अपने आँसुओंसे सींचकर उन्हें शीतल (निश्चिन्त, प्रसन्न) कर दिया। (३) (राम कहने लगे—) 'देखो हनुमान्! तुम अपना जी छोटा न करो। मैं तो तुम्हें लक्ष्मणसे भी दूना प्यार करता हूँ। यद्यपि मुझे सब लोग सम-दर्शी (सबको समान समझनेवाला) कहते हैं पर (सच पूछो तो) मैं सेवकको (जी जानसे) प्यार करता हूँ, क्योंकि उसे तो मुझे छोड़कर किसी दूसरेका

१. सेवक सुन पति मातु भरोसे।

३२-३३ प्रष्टव्यं योग्यमस्माकं त्वं पृच्छसि कथं नृवत्।विभी.रा.॥मायावश्यो भ्रमाम्यत्र प्रभुं न ज्ञातवानतः।वृत्तरा.
३४-३५ मन्दोऽहमेकः खलु मोहवश्यश्चित्तस्य दुष्टः सुविचारशून्यः।
विस्मारितः स्वामिवरेण भूयो हे दीनबन्धो भगवन्नमस्ते। —शिवरामायण
३६ यद्यप्यवगुणाः सन्ति बहवो मयि सुव्रत। तथापि दासोऽविस्मार्यः प्रभुणाहमुनीश्वराः ॥भार० रा०
३७-३८ त्वन्मयामोहितो जीवस्तरति त्वदनुग्रहात्। जैमि. रा. ॥न जाने भजनोपायं ब्रुवे शपथपूर्वकम्॥कौञ्चरा.
३९ दासपुत्रौ प्रभोर्मातुरधीनौ तिष्ठतः सदा। अशोको प्रभुणावश्यं पालनीयो दयानिधे ॥ भरतरा०
४०-४१ भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः। वा.रा. ॥ उत्थाप्य च तदा रामोऽसिंचन्नेत्राश्रुधारया। मु०रा०
४२ कपे मा मन्यथा न्यूनं लक्ष्मणाद्द्विगुणः प्रियः। —मंगलरामायण
४३ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥म०भा०

दो०—सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक, सचराचर,-रूप, स्वामि भगवंत ॥ ३ ॥

देखि पवनसुत, पति अनुकूला। हृदय हरष, बीती सब सूला।
नाथ! सैल-पर कपि-पति रहई। सो सुग्रीव, दास तव अहई। (१)
तेहि-सन नाथ! मइत्री कीजे। दीन जानि, तेहि अभय करीजै।
सो सीता-कर खोज कराइहि। जहँ-तहँ मरकट कोटि पठाइहि। (२)
५० ऐहि बिधि, सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई।
जब सुग्रीव, राम-कहँ देखा। अतिसय जनम धन्य करि लेखा। (३)
सादर मिलेउ, नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज-सहित रघुनाथा।
कपि, कर मन बिचार ऐहि रीती। करिहँइ बिधि! मो-सन ए प्रीती। (४)

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि,-की[1] सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥ ४ ॥

कीन्हि प्रीति, कछु बीच न राखा। लछिमन, राम-चरित सब भाखा।

सहारा होता नहीं (४) देखो हनुमान्! मेरा अनन्य (सच्चा) भक्त वही है जो सदा यही समझता रहे कि मैं तो इस सारे चराचर जगत्के रूपवाले भगवान्का ही सेवक हूँ' ॥ ३ ॥ पवनके पुत्र हनुमान्को यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि प्रभु मुझपर प्रसन्न हैं। उनका सारा क्लेश तत्काल जाता रहा। (फिर हनुमान्ने रामसे कहा—) 'नाथ! इस पर्वतपर वानरोंका राजा सुग्रीव बसा हुआ है और वह आपका बड़ा पक्का दास (भक्त) भी है। (१) नाथ! आप चलकर उससे मित्रता जोड़ लीजिए और उसे दीन (दुखी, त्रस्त) समझकर उसका सारा भय भी दूर कर डालिए। (उसके पास इतने वानर हैं कि) वह सीताकी भी खोज करा दे सकता है और इस कामके लिये जहाँ-तहाँ अपने करोड़ों वानर भी भेज दे सकता है।' (२) इस प्रकार सारी बातें समझाकर हनुमान्ने दोनों भाइयोंको अपने कंधेपर उठा चढ़ाया (और पर्वतपर चढ़ा पहुँचाया)। रामको देखते ही सुग्रीवको ऐसा लगा कि मेरा जन्म धन्य हो गया। (३) रामके चरणोंपर मस्तक रखकर सुग्रीव बड़े आदरसे उनसे जा मिला। रामने और उनके भाई लक्ष्मणने भी सुग्रीवको हृदयसे लगाकर उससे भेंट की। उस समय कपि (सुग्रीव) अपने मनमें सोचे जा रहा था—'हे विधाता! क्या ये (इतने बड़े महापुरुष) मुझ (वानर)-से मित्रता करना ठीक समझेंगे?' (४) तब हनुमानने दोनों ओरकी सारी कथा सुनाकर और अग्निको साक्षी देकर उनकी मित्रता पक्की करा दी ॥ ४ ॥ (राम और सुग्रीव) दोनोंने परस्पर ऐसी पक्की मित्रता कर ली कि उनके आपसके प्रेममें कोई भी अन्तर नहीं रह गया। लक्ष्मणने रामकी सारी पिछली (वन आनेकी, सीताहरणकी) कथा सुग्रीवको कह सुनाई। सुनते ही सुग्रीवकी आँखें

१. कहि।

४४-४५ सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम। यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ॥शिवगीता
४६ अनुकूलं पतिं दृष्ट्वा सन्तोषं हृदयेऽकरोत्। परितापनिवृत्तश्च मारुतिः प्राह राघवम् ॥श्वेत० रा०
४७ सुग्रीवो नाम राजा यो वानराणां महामतिः। चतुर्भिर्मंत्रिभिः सार्धं गिरिमूर्धनि तिष्ठति ॥प्र० रा०
४८-४९ तेन सख्यं त्वया युक्तं सुग्रीवेण रघूत्तम। भार्यापहारिणं हन्तुं सहायस्ते भविष्यति ॥
५० आरोहतां मम स्कंधौ गच्छामः पर्वतोपरि। अ०रा० ॥ पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः ॥वा०रा०
५१-५२ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवस्समागम्य रघूत्तमम्। हृदः सौहृदमालंब्य पर्यष्वजत पीडितम् ॥
५३ कपिर्विचारयामास मित्रतां किं करिष्यति। —वशिष्ठरामायण
५४-५६ ततो हनुमान् प्रज्वाल्य तयोरग्निं समीपतः। तावुभौ रामसुग्रीवावग्नौ साक्षिणि तिष्ठति ॥
बाहू प्रसार्य चालिंग्य वयस्यत्वमुपागतौ। लक्ष्मणस्त्वब्रवीत्सर्वं रामवृत्तान्तमादितः ॥—अध्या०

कह सुग्रीव, नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ! मिथिलेस-कुमारी। (१)
मंत्रिन - सहित इहाँ ऐक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा।
गगन-पंथ देखी मैं जाता। पर-बस परी बहुत बिलखाता[1]। (२)
राम! राम! हा राम! पुकारी। हमहिं देखि दीन्हेउ पट डारी।
माँगा राम, तुरत तेंहि दीन्हाँ। पट उर लाइ, सोच अति कीन्हाँ। (३)
कह सुग्रीव, सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच, मन आनहु धीरा।
सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेंहि बिधि मिलिहि जानकी आई। (४)

दो०—सखा-बचन सुनि हरषे, कृपा-सिंधु बल-सींव।
कारन कवन बसहु बन, मोहिं कहहु सुग्रीव॥ ५॥

नाथ! बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही, कछु बरनि न जाई।
मय-सुत मायावी तेंहि नाऊँ। आवा सो, प्रभु! हमरे गाऊँ। (१)
अर्द्ध राति पुर-द्वार पुकारा। बाली रिपु-बल सहै न पारा।

डबडबा आईं और उसने आश्वासन दिया—'नाथ! (आप विश्वास रखिए) मिथिलेश-कुमारी (जानकी) आपको अवश्य मिलकर रहेंगी (आप चिन्ता न करें)। (१) एक बार जब मैं अपने मंत्रियोंके साथ यहाँ (पर्वतपर) बैठा कुछ बातचीत कर रहा था तभी देखता क्या हूँ कि पराए (रावण) के हाथमें पड़ी सीता बहुत रोती-चिल्लाती आकाश-मार्गसे चली जा रही है। (२) हमें देखकर उन्होंने राम! राम! हा राम! कहकर एक वस्त्र फेंक गिराया।' रामने उससे जब वह वस्त्र देखनेको माँगा तो सुग्रीवने तुरन्त उनके सामने ला रक्खा। देखते ही रामने वह वस्त्र हृदयसे उठा लगाया और वे बहुत शोकाकुल हो उठे। (३) सुग्रीवने (सान्त्वना देते हुए) कहा—'राम! आप शोक न कीजिए, धीरज रखिए। मैं सब प्रकारसे आपकी ऐसी सेवा (सहायता) करनेका प्रयत्न करूँगा कि जानकी आपको मिल जायँ।' (४) कृपासिन्धु और अत्यन्त बली रामको अपने सखा (सुग्रीव)के वचन सुनकर बड़ा ढाढ़स मिला। (वे बोले—) 'अच्छा सुग्रीव! यह तो बताओ कि तुम यहाँ (इस ऋष्यमूक पर्वतके) बनमें आकर क्यों रहने लगे हो?' ॥ ५॥ (सुग्रीव बताने लगा—) 'नाथ! मैं और बाली दोनों सगे भाई हैं। हम दोनों भाइयोंमें इतनी गहरी प्रीति थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रभो! एक बारकी बात है कि मय दानवका पुत्र मायावी कहींसे घूमता-फिरता हमारे गाँवमें आ धमका (१) और उसने आधी रातको ही नगरके फाटकपर बालीको आ ललकारा। शत्रुकी यह ललकार भला बाली कहाँ सहन करनेवाला था! वह (सुनते ही बाहर निकलकर)

१. बिलपाता।

५७ लक्ष्मणोक्तं वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत्। अहं करिष्ये राजेन्द्र सीतायाः परिमार्गणम्॥
५८-५९ एकदा मंत्रिभिः सार्धं स्थितोहं गिरिमूर्धनि। विहायसा नीयमानां केनचित् प्रमदोत्तमाम्॥
६० क्रोशंती राम रामेति दृष्ट्वास्मान्पर्वतोपरि। आमुच्याभरणान्याशु स्वोत्तरीयेण भामिनी॥
निरीक्ष्याधः परित्यज्य क्रोशन्ती तेन रक्षसा। नीताहं भूषणान्याशु गुहायामक्षिपं प्रभो॥
६१ इत्युक्त्वानीय रामाय दर्शयामास वानरः। विमुच्य रामस्तद्दृष्ट्वा हा सीतेति मुहुर्मुहुः॥
हृदि निक्षिप्य तत्सर्वं रुरोद प्राकृतो यथा। —अध्यात्मरामायण
६२ उवाच रामं सुग्रीवस्त्यज शोकमरिन्दम। अलं वैक्लव्यमालम्ब्य धैर्यमात्मगतं स्मर॥वाल्मीकीय
६३ करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम्।वा.रा.॥पश्चात्पप्रच्छ सुग्रीवं कस्माद्वससि कानने।जटा.रा.
६६ वाली नाम मम भ्राता ज्येष्ठश्शत्रुनिपूदनः। पितुर्बहुमतो नित्यं मम चापि तथा पुरा॥वाल्मी०
६७-६८ मयपुत्रोथ मायावी नाम्ना परमदुर्मदः। अध्या.॥ स तु सुप्ते जने रात्रौ किष्किन्धाद्वारमागतः॥
नर्दतिस्म सुसंरब्धो वालिनं चाह्वयद्रणे। श्रुत्वा न ममृषे वाली निष्पपात जवात्तदा वा.रा.॥

धावा बालि देखि, सो भागा। मैं पुनि गयउँ बंधु-सँग लागा। (२)
७० गिरिवर-गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहिं कहा बुझाई।
परखेसु मोहिं एक पखवारा। नहिं आवौं तव जानेसु मारा। (३)
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर-धार तहँ भारी।
बालि हतेसि, मोहिं मारिहि आई। सिला देइ तहँ, चलेउँ पराई। (४)
मंत्रिन, पुर देखा बिनु- साईं। दीन्हेउ मोहिं राज बरियाईं।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहिं, जिय भेद बढ़ावा। (५)
रिपु-सम मोहिं मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सरबस अरु नारी।
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन-महँ फिरेउँ बिहाला। (६)
इहाँ साप-बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन-माहीं।
सुनि सेवक-दुख दीन-दयाला। फरकि उठी दोउ भुजा बिसाला। (७)

उसपर टूट पड़ा। बालीको देखते ही मायावी वहाँसे पत्ता-तोड़ भाग चला। (बालीने भी उसका पीछा किया) और मैं भी भाईके पीछे-पीछे साथ लगा चला गया। (२) (भागते-भागते) वह (मायावी) एक पर्वतकी गुफामें जा घुसा। यह देखकर बालीने मुझे समझाकर कहा—'देखो! तुम यहाँ एक पखवाड़े (१५ दिन)-तक बैठे मेरी बाट देखते रहना। यदि तबतक मैं न लौटा तो समझ लेना मैं मारा गया। (३) खरको मार डालनेवाले राम! (पखवाड़े-तक क्या) मैं पूरे एक महीने वहाँ जमा बैठा रहा। जब महीने भर-पर मैंने देखा कि वहाँ (गुफामें)-से रक्तकी भारी धारा बही निकली चली आ रही है (तब मेरा माथा ठनका और मैंने समझा कि) बाली काम आया और अब वह (मायावी) आकर मुझे भी मारे बिना न छोड़ेगा। (इसलिये मैं उस गुफाके द्वारपर) एक पत्थरकी चट्टान टिकाकर वहाँसे भाग खड़ा हुआ। (४) इधर जब मंत्रियोंने देखा कि नगरमें कोई राजा नहीं है तो उन्होंने मुझे ही बलपूर्वक वहाँका राजा बना बैठाया। यह हो ही रहा था कि इसी बीच उस (मायावी)-को मारकर बाली भी घर आ पहुँचा। मुझे (राज-सिंहासनपर) बैठे देखते ही वह आग-भभूका हो गया (५) और उसने शत्रुके समान मुझे इतना मारा, इतना मारा कि मारते-मारते मेरा कचूमर निकाल डाला। इतना ही नहीं, वह मेरा सर्वस्व, यहाँतक कि मेरी स्त्री भी छीन ले गया। कृपालु राम! उसके डरके मारे मैं समस्त लोकोंमें बेहाल होकर भटकता फिरा (६) (और अन्तमें यहाँ ऋष्यमूक पर्वततर आकर रहने लगा क्योंकि) शापके कारण बाली यहाँ आ नहीं पा सकता था। फिर भी मेरे मनमें सदा धुकधुकी चढ़ी रहती है (कि कहीं यहाँ भी वह मुझे चैन न लेने दे)।' सेवककी यह दुःख-गाथा सुनकर दीनोंपर दया करनेवाले रामकी दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं। (७) (उन्होंने कहा—) 'सुनो सुग्रीव! (तुम चिन्ता न करो),

६९ ततोऽहमपि सौहार्दान्निःसृतो वालिना सह। स तु मे भ्रातरं दृष्ट्वा जगाम स्वगुहां प्रति ॥वाल्मी०
७० ततः प्रविष्टमालोक्य गुहां मायाविनं रुषा। मामाह वाली तिष्ठ त्वं बहिर्गच्छाम्यहं गुहाम् ॥अ०
७१-७२ प्रतीक्षा पक्षपर्यन्तं कर्तव्या भवता मम। सूर्यरा.॥ मासादूर्ध्वं गुहाद्वारान्निर्गतं रुधिरं बहु ॥अध्या.
७३ तद्दृष्ट्वा परितप्तांगो मृतो वालीति दुःखितः। गुहाद्वारि शिलामेकां निधाय गृहमागतः ॥
७४ तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे मामनिच्छन्तमप्युत। राज्येभिषेचनं चक्रुः सर्वे वानरमन्त्रिणः ॥ अध्या०रा०
७५ आजगाम रिपुं हत्वा दानवं स तु वानरः। अभिषिक्तं तु मां दृष्ट्वा क्रोधात्संरक्तलोचनः ॥वा०
७६ बहुधा भर्त्सयित्वा मां निजघान च मुष्टिभिः।
७७ ततो निर्गत्य नगरादधावं परया भिया। लोकान्सर्वान्परिक्रम्य ऋष्यमूकं समाश्रितः ॥
७८-७९ ऋषेः शापभयात्सोपि नायातीमं गिरिं प्रभो। मित्रदुःखेन सन्तप्तो रामो राजीवलोचनः ॥अध्यात्म०

८० दो०–सुनु सुग्रीव ! मारिहौं, बालिहिं एकहि बान।
ब्रह्म - रुद्र - सरनागत, गए, न उबरिहि प्रान॥ ६ ॥

जे न मित्र - दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।
निज गिरि-सम दुख, रज करि जाना। मित्र - क रज - दुख, मेरु-समाना।[1] (१)
जिन्हके असि मति सहज न आई। ते सठ ! कत हठि करत मिताई।
कुपथ निवारि, सुपंथ चलावा। गुन प्रगटइ, अवगुननि दुरावा। (२)
देत-लेत मन संक न धरई। बल - अनुमान, सदा हित करई।
बिपति काल, कर सत - गुन नेहा। स्रुति कह, संत मित्र - गुन एहा। (३)
आगे कह, मृदु वचन बनाई। पाछे अनहित, मन - कुटिलाई।
जाकर चित अहि - गति - सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई। (४)
९० सेवक सठ, नृप कृपिन, कुनारी। कपटी मित्र, सूल - सम चारी।
सखा ! सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे। (५)

मैं एक ही बाणसे वालिको ढेर किए डालता हूँ। यदि वह ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें भी पहुँच जाय तब भी उसके प्राण नहीं बच पावेंगे (६) देखो ! जो लोग अपने मित्रके दुःखसे दुखी नहीं होते, उन्हें तो देखनेमें भी बड़ा पाप लगता है। (मित्रका कर्तव्य है कि) अपने पर्वतके समान (भारी) दुःखको धूलके समान समझे और मित्रके धूलके समान (साधारण) दुःखको भी सुमेरु पर्वतके समान (भारी) समझे। (१) जिनमें स्वभावसे ही ऐसा विवेक न हो, वे मूर्ख हठ करके किसीसे मित्रता जोड़ते ही क्यों हैं (किसीको मित्र बनाते क्यों हैं) ? (मित्रका धर्म है कि—) मित्रको बुरा काम करनेसे रोककर अच्छा काम करनेकी प्रेरणा दे, सदा दूसरेके सामने अपने मित्रके गुणोंका ही वर्णन करे, उसके अवगुणकी चर्चा भी न करे, (२) देने-लेनेमें कभी मनमें शंका न करे (कि यह लौटा भी पायगा या नहीं), जितनी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार मित्रका सदा हित ही करता रहे और मित्रपर जब विपत्ति आ पड़ी हो उस समय उससे और भी सौ गुना स्नेह करने लगे। वेद (नीति-ग्रन्थों)-में सन्त-मित्रके ये ही लक्षण बताए गए हैं। (३) जो व्यक्ति सामने तो बड़ी चिकनी-चुपड़ी बातें करता रहे पर पीठ-पीछे बुराई करे, मनमें खोट भरे रक्खे और (इस प्रकार) जिसका मन साँपके समान कुटिल हो, ऐसे कुमित्रसे तो सबंध तोड़ रखनेमें ही भलाई है। (४) मूर्ख सेवक (काम बिगाड़ देता है), कंजूस राजा (समयपर सहायता नहीं करता), कुलटा स्त्री (पतिसे विश्वासघात करती है) और कपटी मित्र (समयपर धोखा दे जाता है इसलिये) ये चारों शूल (भयंकर पीडा)-के समान (दुःखदायी) होते हैं। (देखो मित्र !) मेरे

१. निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र-क दुख रज मेरु समाना॥

८०-८१ हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम्। इति प्रतिज्ञामकरोत् सुग्रीवस्य पुरस्तदा।अध्या०
८२ मित्रस्य दुःखेन जना दुःखिता नो भवन्ति ये। तेषां दर्शनमात्रेण पातकं बहुलं भवेत्॥ गालवसं०
८३-८४ पर्वतेन समं नैजं दुःखं ज्ञेयं रजः समम्। धूलितुल्यं सुहृद्दुःखं यदिस्यान्मेरुगोत्रवत्॥
नागतैतादृशी येषां स्वभावादेव धीर्मुने। ते शठाश्चलस्वान्ताः कथं कुर्वन्ति मित्रताम्॥भागुरिसं०
८५-८७ पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥–भर्तृहरिशतक
८८-८९ परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्। वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥ चाण०
९० अविधेया भृत्यजनाः शठानि मित्राण्यदायकः स्वामी। अविनयवती च भार्या मस्तकशूलानि चत्वारि॥प्रस्ता.र.

कह सुग्रीव, सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल, अति रनधीरा।
दुंदुभि-अस्थि, ताल देखराए। बिनु-प्रयास रघुनाथ ढहाए। (६)
देखि अमित बल, बाढ़ी प्रीती। बालि बधब इन्ह, भइ परतीती।
बार-बार नावइ पद सीसा। प्रभुहिं जानि, मन हरष कपीसा। (७)
उपजा ज्ञान, बचन तब बोला। नाथ-कृपा, मन भयउ अलोला।
सुख, संपति, परिवार, बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। (८)
ए सब राम-भगति-के बाधक। कहहिं संत, तव पद-अवराधक।
सत्रु-मित्र सुख-दुख जग-माहीं। माया-कृत, परमारथ नाहीं। (९)
१०० बालि परम हित, जासु प्रसादा। मिलेहु राम! तुम समन-बिषादा।
सपने जेहि-सन होइ लराई। जागे समुझत मन सकुचाई। (१०)
अब प्रभु! कृपा करहु ऐहि भाँती। सब तजि, भजन करौं दिन-राती।

बलपर भरोसा करके तुम चिन्ता छोड़ दो। जैसे होगा वैसे मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूँगा।' (५) (यह सुनकर) सुग्रीव बोला— 'भगवन् राम! बाली (-को आप ऐसा-वैसा न समझ बैठिएगा, वह) बहुत बलवान् और अत्यन्त रणधीर (रणमें डटा रहनेवाला) है।' फिर सुग्रीवने रामको दुन्दुभि राक्षसकी हड्डियोंका ढेर और ताड़के (सात) वृक्ष ले जा दिखलाए। रामने बिना परिश्रम ही उसे (हड्डियोंके ढेरको पैरके अँगूठेसे) तत्काल ढाह गिराया (६) और ताड़के पेड़ एक ही बाणसे बींध गिराए। रामका यह अपार बल देखकर सुग्रीवके हृदयमें उनपर और भी प्रीति बढ़ चली और उसे यह विश्वास हो गया कि बालीका वध ये अवश्य कर पा सकेंगे। कपीश सुग्रीवने बार-बार उनके चरणोंपर सिर जा नवाया। प्रभुको (प्रभुकी शक्ति) पहचानकर उसे अपार हर्ष हुआ। (७) जब उसके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न हुआ (कि ये साक्षात् भगवान् हैं) तब वह कहने लगा —'नाथ! आपकी कृपासे मेरा मन अब जाकर स्थिर (निश्चिन्त) हो पाया है। मैं अपना सारा सुख, सम्पत्ति, परिवार और बड़प्पन (राजाकी पदवी) सब आपको सेवामें लगाए देता हूँ। (८) क्योंकि आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले संत लोग कहते हैं कि ये सब (सुख-सम्पत्ति आदि) रामकी भक्तिमें बाधा ही डालते हैं। संसारमें जितने भी शत्रु, मित्र, सुख और दुःख हैं ये सब मायाने गढ़ रक्खे हैं, वे सत्य नहीं हैं। (९) इसलिये राम! मैं तो बालीका परम उपकार मानता हूँ कि उसकी कृपासे मेरे शोकका नाश कर डालनेवाले आप मुझे आ मिले। अब तो यदि उसके साथ कभी स्वप्नमें भी लड़ाई ठन जाय तो जागनेपर मेरे मनमें संकोच होता रहेगा कि (जिसके कारण आपसे मेरी भेंट हो पाई उससे मैं स्वप्नमें भी क्यों लड़ बैठा)। (१०) प्रभो! अब तो आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर दिन-रात बैठा आपका ही भजन किया करूँ।' सुग्रीवकी यह विराग-भरी

९१ आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वं शोकसागरे। त्वामहं तारयिष्यामि बाढं प्राप्स्यसि पुष्कलम्॥ वा०रा०
९२ सुग्रीवोऽप्याह राजेन्द्र वाली बलवतां बली। —अध्यात्मरामायण
९३ राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम्। दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम्॥
उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः। पादांगुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम्॥
बिभेद च पुनस्तालान् सप्तैकेन महेषुणा। —वाल्मीकीयरामायण
९४ तद् दृष्ट्वा रामसामर्थ्यं तस्मिन् प्रत्ययमाप सः। —आनन्दरामायण
९५-९६ ततोऽतिहर्षात्सुग्रीवो राममाहातिविस्मितः। देव त्वं जगतां नाथः परमात्मा न संशयः॥
९७-९९ दाराः पुत्रा धनं राज्यं सर्वं त्वन्मायया कृतम्। अतोऽहं देवदेवेश नाकांक्षेऽन्यत्प्रसीद मे॥अध्या०
१०१ अस्ति नः परमं मित्रं वीरो वासवनन्दनः। यस्य प्रसादात्त्वं राम मिलितः शोकनाशनः॥सुग्री०रा०
१०१ येन सार्धं भवेद्युद्धं स्वप्नेपि पुरुषोत्तम। मनः संकोचयुक्तं स्यान्मदीयं जाग्रति स्वपम्॥जाबा०सं०

सुनि बिराग - संजुत कपि - बानी। बोले बिहँसि राम धनु - पानी। (११)
जो कछु कहहु, सत्य सब सोई। सखा ! बचन मम मृषा न होई।
नट - मर्कट - इव सबहिं नचावत। राम, खगेस ! बेद अस गावत। (१२)
लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप - सायक गहि हाथा।
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गरजेसि जाइ निकट बल पावा। (१३)
सुनत, बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन, नारि समुझावा।
सुनु पति ! जिन्हहिं मिलेउ सुग्रीवा। ते दोउ बंधु अतुल बल - सींवा। (१४)
११० कोसलेस - सुत लछिमन - रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा। (१४।।)

दो०—कह बाली सुनु ! भीरु प्रिय , सम - दरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहिं मारहिं , तौ पुनि होउँ सनाथ ।। ७ ।।

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन - समान सुग्रीवहिं जानी।

वाणी सुनकर हाथमें धनुष लिए हुए राम मुसकराकर बोले—(११) 'तुमने जो कुछ कहा है वह सब सत्य है, परन्तु सखा ! मेरा वचन तो कभी मिथ्या होता नहीं (वाली तो मारा ही जायगा और तुम्हें राज्य मिलेगा ही)।' (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! वेद कहते हैं कि नट (मदारी)-जैसे बन्दरको नचाता है वैसे राम सदा सबको बैठे नचाया करते हैं।' (१२)

तत्पश्चात् हाथोंमें धनुष-बाण लेकर सुग्रीवके साथ राम चल दिए। रामने पहले सुग्रीवको ही प्रेरणा देकर वालीके पास ठेल भेजा (कि जाओ वालीको ललकार दो)। वह (सुग्रीव) रामका बल पाकर वालीके सामने पहुँचते ही गरज उठा (१३) सुग्रीवका गर्जन सुनते ही वालीकी त्योरियाँ चढ़ गईं और वह क्रोधमें भरा उसकी ओर झपट कर जाने लगा तब उसकी स्त्री ताराने उसके पैर पकड़कर उसे समझाने लगी—'नाथ ! सुग्रीवने जिनसे मित्रता की है, वे दोनों भाई बड़े तेजस्वी और बली हैं। (१४) वे कोशलके स्वामी राज दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मण (ऐसे बली) हैं कि यदि एक बार काल भी सामने आ जाय तो संग्राममें कालको भी पछाड़ मारें। (१४।।) (ताराको) वाली समझाने लगा—'अरी डरपोक प्रिये ! (तू इतनी घबराई क्यों पड़ रही है ?) देख ! राम तो समदर्शी हैं (वे किसीको अपना-पराया नहीं समझते)। यदि वे मुझे मार भी डालें तब भी समझो मैं सनाथ हो गया (मैं परमपद पा जाऊँगा)' ।। ७ ।। ऐसा कहकर सुग्रीवको तिनकेके समान (तुच्छ) समझकर वह अभिमानी वाली निकल चला। (फिर क्या

१०२-३ तत्तिष्ठतु मनो राम त्वयि नान्यत्र मे सदा। इत्थं स्वात्मपरिष्वंगनिर्धूताशेषकल्मषम् ।।
रामः सुग्रीवमालोक्य सस्मितं वाक्यमब्रवीत्। मायां मोहकरीं तस्मिन् वितन्वन् कार्यसिद्धये ।।
१०४ सखे त्वदुक्तं यत्तन्मां सत्यमेव न संशयः ।। किन्तु लोका वदिष्यन्ति मामेवं रघुनन्दन। ।।
कृतवान् किं कपीन्द्राय सत्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम्। इति लोकापवादो मे भविष्यति न संशयः ।।—अध्या०
१०५ रामः सर्वान्नर्तयति नटः शाखामृगानिव। गायंतीत्थं सदा वेदा जानीहि खगनायक ।।भुशुं० रा०
१०६-७ तस्मादाह्वय भद्रं ते गत्वा युद्धाय वालिनम्। तथेति गत्वा सुग्रीवः समाह्वयत वालिनम् ।।अध्या०
१०८ शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः। तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शितसौहृदा ।।
उवाच त्रस्तसंभ्रांता हितादर्कमिदं वचः। —वाल्मीकीयरामायण
१०९-१० अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ। इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रथितौ रामलक्ष्मणौ ।।
सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ। स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ।।वा.रा.
१११-१२ तत्तारावचनं श्रुत्वा वाली तां वाक्यमब्रवीत्। जानाम्यहं राघवं तं नररूपधरं हरिम् ।।
तस्य हस्तान्मृतिर्मेस्ति गच्छामि परमं पदम्। —आनन्दरामायण
११३ एवमाश्वास्य तां तारां शोचन्तीमश्रुलोचनाम्। गतो वाली समुद्युक्तः सुग्रीवस्य वधाय सः ।।अध्या० रा०

भिरे उभौ, बाली अति तर्जा । मुठिका मारि, महा धुनि गर्जा । (१)
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा । मुष्टि - प्रहार बज्र - सम लागा ।
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला । बंधु न होइ, मोर यह काला । (२)
एक रूप तुम भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम - तें नहिं मारेउँ सोऊ ।
कर परसा सुग्रीव - सरीरा । तनु भा कुलिस, गई सब पीरा । (३)
मेली कंठ सुमन - कै माला । पठवा पुनि बल देइ बिसाला ।
१२० पुनि नाना बिधि भई लराई । बिटप - ओट देखहिं रघुराई । (४)
दो०—बहु छल - बल सुग्रीव करि , हिय हारा भय मानि ।
मारा बाली, राम तब , हृदय - माँझ सर तानि ।। ८ ।।
परा बिकल महि, सर - के लागे । पुनि उठि बैठ, देखि प्रभु आगे ।
स्याम गात, सिर जटा बनाए । अरुन नयन, सर - चाप चढ़ाए । (१)

था) दोनों आमने-सामने आ भिड़े । सुग्रीवको बहुत डपटकर और उसे घूँसा मारकर बाली ललकारकर गरज उठा । (१) (घूँसा खाते ही) सुग्रीवकी आँखोंके आगे तारे छिटक चले और वह व्याकुल होकर वहाँसे चला भाग । घूँसेकी धमक उसे ऐसी लगी जैसे वज्र आ लगा हो । (उसने आकर रामसे कहा—) 'कृपालु राम ! मैंने आपसे पहले ही कह दिया था कि (बाली) मेरा भाई नहीं, काल है ।' (२) (रामने कहा–) '(मैं क्या करूँ ?) 'तुम दोनों भाई इतने मिलते-जुलते हो कि मुझे भ्रम हो गया । इसीलिये मैं उसे मार नहीं पाया ।' रामने झट सुग्रीवके शरीरपर हाथ जो फेरा तो उसका सारा शरीर वज्रके समान (पक्का) हो गया और उसकी सारी पीडा जाती रही । तब रामने सुग्रीवके गलेमें अपनी फूलोंकी माला उतार पहनाई (जिससे वह पहचाना जा सके) और उसे बड़ा भारी (आश्वासन) देकर फिर ठेल भेजा । फिर क्या था ? दोनोंमें गुत्थम-गुत्था हो चला । राम भी वृक्षकी आड़में खड़े दोनोंका मल्ल युद्ध देखते जा रहे थे । (४) सुग्रीवने लड़ानेको तो बहुत दाँव-पेंच लड़ाए (पर बालीके आगे उसकी एक न चल पाई) । उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई और वह धीरज खो बैठा । सुग्रीवकी यह (दशा) देखकर रामने तानकर ऐसा बाण (बालीको) खींच मारा कि वह बालीकी छातीमें जा धँसा ।। ८ ।। बाण लगना था कि बाली ढुलमुली खाता हुआ लड़खड़ाकर धरतीपर जा पड़ा । किन्तु जब उसने प्रभु रामको अपने आगे खड़े देखा तो वह सँभलकर उठ बैठा । (वह देखता क्या है कि) श्याम शरीरवाले, सिरपर जटा बाँधे, लाल-लाल नेत्रोंवाले, धनुषपर बाण चढ़ाए राम सामने आए खड़े हैं । (१) प्रभुकी ओर टकटकी बाँधे देखते हुए उसने

११४ तमापतन्तं सुग्रीवः शीघ्रं वक्षस्यताडयत् । सुग्रीवमपि मुष्टिभ्यां जघान क्रोधमूर्च्छितः ।।
११५ ततो दुद्राव सुग्रीवो वमन् रक्तं भयाकुलः । किं मां घातयसे राम शत्रुणा भ्रातृरूपिणा ।
११६ श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः साश्रुविलोचनः ।
११७-१८ आलिंग्य मा स्म भैषीस्त्वं दृष्ट्वा वामेकरूपिणौ । मित्रघातित्वमाशंक्य मुक्तवान् सायकं नहि ।अध्या०
११९ बंधयामास सुग्रीवकण्ठे मालां तु बंधुना । पुनस्तं प्रेषयामास सोपि वालिनमाह्वयत् ।।आनन्द रा०
१२० मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः । वृक्षैः सशाखैः शिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ।।
तयोर्युद्धमभूद्घोरं वृत्रवासवयोरिव । वृक्षैरात्मानमावृत्य ह्यपश्यत्कर्मसंगरम् ।।
१२१-२२ प्रेक्षमाणं दिशो भूयश्चार्त्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् । राघवेण महाबाणो वालिवक्षसि पातितः ।।
१२३ ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः । वेगेनाभिहतो वाली निपपात महीतले ।।
तदा मुहूर्तं निःसंज्ञो भूत्वा चेतनमाप सः । ततो वाली ददर्शाग्रे रामं राजीवलोचनम् ।।वाल्मी०
१२४ धनुरालंब्य वामेन हस्तेनान्येन सायकम् । बिभ्राणं चीरवसनं जटामुकुटधारिणम् ।।अ० रा०

पुनि - पुनि चितै, चरन चित दीन्हाँ। सुफल जनम माना, प्रभु चीन्हाँ।
हृदय प्रीति, मुख बचन कठोरा। बोला, चितै राम - की ओरा। (२)
धरम - हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहिं ब्याध - की नाईं।
मैं बैरी, सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ ! मोहिं मारा। (३)
अनुज - बधू, भगिनी, सुत - नारी। सुनु सठ ! कन्या - सम ए चारी।
१३० इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई। (४)
मूढ़ ! तोहिं अतिसय अभिमाना। नारि - सिखावन करसि न काना।
मम भुज - बल-आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम ! अभिमानी। (५)
दो०—सुनहु राम ! स्वामी - सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु ! अजहूँ मैं पापी, अंत - काल गति तोरि॥ ९॥
सुनत राम, अति कोमल बानी। बालि - सीस परसेउ निज पानी।
अचल करौं, तनु राखहु प्राना। बालि कहा, सुनु कृपानिधाना। (१)

अपना चित्त उनके चरणोंमें बाँध लगाया। प्रभुको पहचानकर (कि ये साक्षात् परमेश्वर हैं) उसने समझ लिया कि मेरा जन्म सफल हो गया ! यद्यपि उसके हृदयमें (भगवान्के प्रति) बड़ी प्रीति थी फिर भी उसने बड़े कठोर वचन कहने प्रारंभ किए। वह रामकी ओर देखकर कहने लगा– (२) 'गोसाईं ! (सुना है) आपने अवतार तो धर्मकी रक्षाके लिये लिया है और मुझे मारना हुआ तो ऐसे (छिपकर) आ मारा जैसे कोई व्याध किसी पशुको (धोखेसे छिपकर) मारे। (ऐसी कौन-सी बात हो गई कि) मैं तो आपका वैरी बन गया और सुग्रीव आपका इतना प्यारा बन बैठा ? नाथ ! बताइए मैंने आपका ऐसा क्या बिगाड़ा था कि आपने मुझे (इस प्रकार) आ मारा ?' (३) (रामने कहा—) 'अरे मूर्ख ! छोटे भाईकी स्त्री, बहिन, पुत्रकी स्त्री और कन्या—ये चारों एक समान मानी जाती हैं। इनपर जो बुरी दृष्टि डाल बैठता है उसे मारनेमें कभी कोई पाप नहीं लगता। (४) अरे मूढ ! तेरा अभिमान इतना बढ़ गया था कि जब तेरी स्त्री तुझे समझाने चली तो उसकी भी बातें तूने सुनी अनसुनी कर दीं। जब तू यह जान गया था कि सुग्रीवको मेरी भुजाओंका बल मिल चुका है तब भी अधम, अभिमानी ! तू उसे मारनेपर तुल बैठा ?' (५) (बालीने कहा—) 'स्वामी ! आपसे मेरी चतुराई तो चल नहीं सकती (बातोंमें तो मैं आपसे जीत नहीं सकता)। पर प्रभो ! (यह बताइए कि) अन्त कालमें आपकी शरणमें आकर भी क्या मैं पापी ही बना रह गया हूँ ?' ॥ ९ ॥ बालीकी यह प्रेमभरी वाणी सुनते ही रामने उसके सिरपर अपना हाथ फेरते हुए कहा—'मैं तुम्हारा शरीर अचल (अमर) किए देता हूँ, तुम अपने प्राण बनाए रक्खो

---

१२५ रामं मुहुर्मुहुर्दृष्ट्वा चित्तं चरणयोर्ददौ। अभिज्ञाय प्रभुं मेने स्वजन्मसफलं कपिः॥

१२६-२८ विलोक्य शनकैः प्राह वाली रामं विगर्हयन्। धर्मिष्ठ इति लोकेस्मिन् कथ्यसे रघुनन्दन॥
वानरं व्याधवद्धत्वा कं धर्मं लप्स्यसे वद। सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु॥

१२९-३१ दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चैव तथा स्नुषा। समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधीः॥
पातकी स तु विज्ञेय सः वध्यो राजभिः सदा। —अध्यात्मरामायण

१३२-३५ तारया प्रतिषिद्धः सन् सुग्रीवेण समागतः। सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा।
प्रत्युवाच ततो रामं प्रांजलिर्वानरेश्वरः। प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयात्॥ वा० रा०
श्रुत्वातिकोमलां वाणीं रामः पस्पर्श पाणिना। —अध्यात्मरामायण

१३६ कुर्यां त्वद्देहमचलं प्राणान् रक्षस्व वानर। —देहरामायण

जनम - जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।
जासु नाम - बल संकर, कासी। देत सबहिं सम - गति अबिनासी। (२)
मम लोचन - गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु! अस बनिहि बनावा। (२॥)
१४० छंद—सो नयन - गोचर, जासु गुन, नित नेति कहि स्रुति गावहीं।
जिति पवन, मन-गो निरसि करि, मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं।
मोहिं जानि अति अभिमान - बस, प्रभु कहेउ, राखु सरीरहीं।
अस कवन सठ, हठि काटि सुरतरु, बारि करिहि बबूरहीं॥ [१]
अब नाथ! करि करुना बिलोकहु, देहु जो बर माँगऊँ।
जेहि जोनि जनमौं करम-बस, तहँ राम - पद अनुरागऊँ।
यह तनय मम, सम - बिनय - बल, कल्यानप्रद प्रभु! लीजिए।
गहि बाँह, सुर - नर - नाह! आपन दास अंगद कीजिए॥ [२]
दो०—राम - चरन दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन-माल जिमि कंठ - तें, गिरत न जानै नाग॥ १०॥

(जीवित रहो)।' इसपर बाली बोल उठा—'कृपानिधान! (१) मुनि लोग न जाने कितने जन्मों-तक यत्न करते-करते हार बैठते हैं फिर भी अन्त समयमें उनके मुखसे 'राम' शब्द नहीं निकल पाता। जिसके नामके बलपर शंकर भगवान् काशीमें सबको अविनाशिनी गति (मोक्ष) देते रहते हैं (२) वही राम जब स्वयं मेरे नेत्रोंके सामने आए खड़े हैं तब प्रभो! ऐसा सुअवसर फिर मेरे हाथ कहाँ लग पावेगा? (२॥) श्रुतियाँ, 'नेति-नेति' कहकर निरन्तर जिनके गुणोंका वर्णन करती रहती हैं, प्राण-वायु खींचकर, मन जीतकर तथा इंद्रियोंको सुखाकर मुनि लोग जिन्हें बड़ी कठिनाईसे ध्यानमें ला पाते हैं, वे ही प्रभु साक्षात् मेरी आँखोंके सामने आए खड़े हैं। आप मुझे अत्यन्त अभिमानी समझकर ही कह रहे हैं कि 'तुम शरीर बनाए रक्खो', पर (बताइए) ऐसा कौन मूर्ख होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष काटकर उसके बदले (कँटीले) बबूलकी वाटिका ला लगावेगा (मोक्षपद छोड़कर इस नश्वर शरीरको बनाए रखना चाहेगा)। [१] नाथ! अब तो मुझपर कृपा करके मुझे यही वर दीजिए कि मैं अपने कर्मोंके कारण जिस भी योनिमें जन्म लूँ वहाँ आपके चरणोंसे ही प्रेम करता रहूँ। मेरा यह पुत्र है अंगद, जो विनय और बलमें मेरे ही समान है। कल्याण करनेवाले प्रभो! इसे (मैं आपके हाथों सौंपे दे रहा हूँ) स्वीकार कर लीजिए और देवता तथा मनुष्योंके नाथ! इसकी बाँह पकड़कर (इसे सहारा देकर) अपना दास (भक्त, सेवक) बना लीजिए।' [२] रामके चरणोंमें बालीकी ऐसी पक्की प्रीति जम गई थी कि बालीने वैसे ही (सरलतासे) शरीर छोड़ दिया जैसे हाथीको अपने गलेमें पड़ी हुई फूलोंकी माला गिरते नहीं जान पड़ती (कि कबमेंको सरक गिरी।) ॥ १० ॥ रामने बालीको अपने परम धाम (वैकुण्ठ) भेज दिया।

१३७ त्यजाम्यसून् महायोगिदुर्लभं दर्शनं तव। —अध्यात्मरामायण
१३८ तनुं त्यजद्भ्यः सर्वेभ्यो वाराणस्यां महेश्वरः। ददाति यन्नामबलात् समानां गतिमव्ययाम्॥ शि.रा.
१३९ साक्षाद्रामः स एवाद्य मुमूर्षोर्मे पुरः स्थितः। —अध्यात्मरामायण
१४०-४३ नेतीत्युक्त्वा गुणान् यस्य गायन्ति श्रुतयः सदा। विजित्य पवनं चेतो नीरसानीन्द्रियाणि च॥
कृत्वा लभन्ते मुनयो ध्याने यद्दर्शनं क्वचित्। स एव प्रभुरस्माकं बभूवाद्याक्षिगोचरः॥ प्रन०सं०
१४४-४७ अनुजानीहि मां राम यान्तं त्वत्पदमुत्तमम्। मम तुल्यबले बाले अंगदे त्वं दयां कुरु॥ अध्यात्मरा०
१४८-४९ शरीरं त्यक्तवान् वाली कृत्वा प्रीतिं दृढां हरौ। —सनन्दनसंहिता

१५० राम, बालि निज धाम पठावा। नगर - लोग सब व्याकुल धावा।
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस, न देह सँभारा। (१)
तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान, हरि लीन्हीं माया।
छिति - जल - पावक - गगन - समीरा। पंच - रचित अति अधम सरीरा। (२)
प्रगट सो तनु, तव आगे सोवा। जीव नित्य, केहि - लगि तुम रोवा।
उपजा ज्ञान, चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी। (३)
उमा ! दारु - जोषित - की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।
तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हाँ। मृतक-कर्म बिधिवत सब कीन्हाँ। (४)
राम कहा, अनुजहिं समुझाई। राज देहु सुग्रीवहिं जाई।
रघुपति - चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा। (५)

वालीका मरण सुनते ही नगरके सब लोग व्याकुल हो-होकर दौड़ पड़े। वालीकी स्त्री तारा विलख-बिलखकर बहुत रोने-पीटने लगी। उसके बाल बिखर चले थे, उसे अपनी देहकी भी सुध नहीं रह गई थी। (१) ताराको व्याकुल देखकर रामने उसे ज्ञान देकर (समझा-बुझाकर) उसकी माया (अज्ञानता) दूर कर डाली। (उन्होंने कहा)—'देखो ! पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन्हीं पाँच तत्वोंसे तो यह अधम शरीर रचा हुआ है, (२) और वह (वालीका) शरीर तुम्हारे आगे प्रत्यक्ष पड़ा धरा है। जहाँतक जीवकी बात है, वह तो नित्य (अमर) है। तब बताओ, तुम किसके लिये रोए जा रही हो ?' जब उसे ज्ञान हो गया (कि यह सब मोह है) तब उसने भगवान्‌के चरणोंमें मन लगाकर उनसे यही वर माँगा कि आपके चरणोंमें मेरी परम भक्ति बनी रहे।' (३) (शिव कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! गोस्वामी राम सबको कठपुतलीके समान बैठे नचाया करते हैं।' रामने जब सुग्रीवको (वालीका) संस्कार (करने)-की आज्ञा दी तब उसने विधि-पूर्वक वालीका अन्त्येष्टि-कर्म कर डाला। (४) तब रामने भाई लक्ष्मणको समझाकर कहा कि 'तुम जाकर सुग्रीवको राजा बना दो।' सुनते ही सब लोग रामके चरणोंमें सिर नवाकर उनकी आज्ञासे (सुग्रीवको राजा बनाने) चल दिए। (५) लक्ष्मणने तुरन्त सब नगर-वासियों और ब्राह्मणोंको

१५०-५२ निहते वालिनि रणे रामेण परमात्मना। दुद्रुवुर्वानराः सर्वे रुदती मुक्तमूर्धजा ॥
निहतं वालिनं श्रुत्वा तारा शोकविमूर्च्छिता। अताडयत् स्वपाणिभ्यां शिरोवक्षश्च भूरिशः ॥
इत्येवं विलपन्तीं तां तारां रामो महामनाः। सांत्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः ॥
१५३-५४ पञ्चात्मको जडो देहस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिमान्। कालकर्मगुणोत्पन्नः सोप्यास्तेद्यापि ते पुरः ॥
मन्यसे जीवमात्मानं जीवस्तर्हि निरामयः। नित्यो ज्ञानमयः शुद्धः स कथं शोकमर्हति ॥
१५५ श्रीरामेणोदितं सर्वं श्रुत्वा तारातिविस्मिता। देहाभिमानजं शोकं त्यक्त्वा नत्वा रघूत्तमम् ॥
आत्मानुभवसंतुष्टा जीवन्मुक्ता बभूव ह। —अध्यात्मरामायण
१५६ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया। एवमीश्वरतन्त्रोयमीहते सुखदुःखयोः ॥ भागवत
१५७ ततः सुग्रीवमाहेदं रामो वानरपुंगवम्। भ्रातुर्ज्येष्ठस्य पुत्रेण यद्युक्तं सांपरायिकम्।
कुरु सर्वं यथान्यायं संस्कारादि ममाज्ञया। गत्वा चकार तत्सर्वं यथाशास्त्रं प्रयत्नतः ॥
१५८-५९ पुरराज्याधिपत्ये त्वं स्वात्मानमभिषेचय। अंगदं यौवराज्ये त्वमभिषेचय सादरम् ॥अध्या०रा०
आगमिष्यति मे भ्राता लक्ष्मणः पत्तनं तव। जग्मू रघुवरं नत्वा प्रेरितास्तेन वानराः ॥ पुलस्त्यसं०

१६० दो०—लछिमन तुरत बोलाए, पुरजन - बिप्र - समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव - कहँ, अंगद - कहँ जुवराज ॥ ११ ॥
उमा ! राम-सम हित जग-माहीं। गुरु - पितु - मातु - बंधु - प्रभु नाहीं।
सुर - नर - मुनि सब-के यह रीती। स्वारथ-लागि करहिं सब प्रीती। (१)
बालि-त्रास व्याकुल दिन - राती। तन बहु व्रन, चिंता जर छाती।
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि-राऊ। अति कृपाल रघुबीर – सुभाऊ। (२)
जानतहू अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपति - जाल नर परहीं।
पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृप - नीति सिखाई। (३)
कह प्रभु, सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस - चारि बरीसा।
गत ग्रीषम, बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल - पर छाई। (४)
१७० अंगद - सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू।
जब सुग्रीव, भवन फिरि आए। राम प्रबरषन गिरि - पर छाए। (५)
दो०—प्रथमहिं देवन गिरि-गुहा, राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछुक दिन, बास करहिंगे आइ ॥१२॥

बुला भेजा और (उनके सामने) सुग्रीवको राजा और अङ्गदको युवराज बना दिया ॥ ११ ॥

(शंकर कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! संसारमें रामके समान हित करनेवाला न कोई गुरु है, न पिता, न माता, न बन्धु और न स्वामी। देवता, मनुष्य और मुनि सब केवल स्वार्थके लिये ही प्रीति करते हैं। (१) देखो, जिस सुग्रीवके मनमें बालीके डरसे दिन रात धुकधुकी मची रहती थी, जिसका शरीर बालीकी मारसे चलनी हो गया था और जो दिन-रात चिन्तामें पड़ा घुलता रहता था, उसी सुग्रीवको उन्होंने वानरोंका राजा बना बैठाया। राम बड़े कृपालु स्वभावके हैं। (२) जो लोग जान-बूझकर भी ऐसे प्रभुको छोड़ भागते हैं, तो बताओ वे विपत्तिके जालमें फँसनेसे कैसे बच पा सकते हैं ?'

रामने सुग्रीवको बुलाकर उसे राजनीतिकी बहुत-सी शिक्षाएँ दी। (३) प्रभुने कहा— 'देखो वानरपति सुग्रीव ! मैं (वनवासके) चौदह वर्ष पूरे होनेतक नगरमें तो जा न सकूँगा। अब ग्रीष्म ऋतु बीत चली है और वर्षा ऋतु आ गई है। अतः, मैं पासके ही पर्वतपर जाकर टिक रहता हूँ। (४) तुम अंगदको साथ लेकर राज्य करो और मेरे कामका सदा ध्यान रखना।' उधर सुग्रीव घर लौट गए और राम इधर प्रवर्षण गिरिपर जा टिके। (५) देवताओंने पहलेसे ही उस पर्वतमें एक सुन्दर गुफा इसीलिये बना छोड़ी थी कि कृपानिधान राम कुछ दिन आकर यहाँ निवास करेंगे ॥ १२ ॥ जबसे प्रभु राम वहाँ आए, तबसे वह सुन्दर वन फूलोंसे लदकर बहुत

१६०-६१ लक्ष्मणो द्रुतमाहूय पौरान् विप्रगणांस्तथा। राज्येभिषिच्य सुग्रीवं यौवराज्येऽङ्गदं गतः ॥लोम.रा.
१६२ श्रीरामेण समः कश्चिद्धितो नास्ति गिरीन्द्रजे। गुरुः पिता तथा माता बन्धुः प्रभुरिलातले ।शिव.रा०
१६३ देवमर्त्यमुनीनां च सर्वेषां रीतिरस्ति वै। इयं कुर्वन्ति यत्प्रीतिं केवलं स्वार्थहेतवे ॥ भार्ग०पु०
१६४-६८ आगत्य राघवं शीघ्रं प्रणिपत्योपतस्थिवान्। नगरं न प्रवेक्ष्यामि चतुर्दश समाः सखे ।अध्या०
१६९-७० प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः। नायमुद्योगसमयः प्रविश त्व पुरीं शुभाम् ॥
अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सह लक्ष्मणः। —वाल्मीकीय
१७१ अभिषिक्ते तु सुग्रीवे प्रविष्टे वानरे गुहाम्। आजगाम सह भ्रात्रा रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥
१७२-७३ देवैः पूर्वत एवाद्रिगुहा वि रचिता शुभा। वसत्यर्थं च रामस्य स्वप्रयोजनसाधकैः ॥आनन्दरा०

सुंदर बन कुसुमित अति सोभा। गुंजत मधुप-निकर मधु-लोभा।
कंद-मूल-फल-पत्र सुहाए। भए बहुत, जब-तें प्रभु आए। (१)
देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज-सहित सुर-भूपा।
मधुकर-खग-मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध-मुनि प्रभु-की सेवा। (२)
मंगल-रूप भयउ बन तब-तें। कीन्ह निवास रमापति जब-तें।
फटिक-सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख-आसीन तहाँ दोउ भाई। (३)
१८० कहत अनुज-सन कथा अनेका। भगति, बिरति, नृप-नीति, बिबेका।
बरषा-काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए। (४)

दो०—लछिमन ! देखहु मोर-गन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति-रत हरष जस, बिष्नु-भगत-कहँ देखि ॥ १३ ॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि-दमक रह न घन-माहीं। खल-के प्रीति जथा थिर नाहीं। (१)
बरषहिं जलद, भूमि नियराए। जथा नवहिं बुध, बिद्या पाए।
बूँद-अघात सहइँ गिरि कैसे। खल-के बचन, संत सह जैसे। (२)

सुहावना लगने लगा। मधुके लोभसे उन (फूलों)-पर भौंरे गूँजने लगे और उसी समयसे सारा वन सुन्दर कन्द, मूल, फल और पत्र आदिसे लद चला। (१) वह सुन्दर और अनुपम पर्वत देखकर देवताओंके अधिपति राम अपने भाई लक्ष्मणके साथ आकर उसपर बस रहे। वहाँ देवता भी भौंरे, पक्षी और मृग बन-बनकर तथा सिद्ध और मुनि भी प्रभु रामकी सेवामें आ जुटे। (२) जबसे उस वनमें लक्ष्मीके पति राम आकर रहने लगे तभीसे उस जंगलमें मंगल हो चला। वहाँपर बहुत उजली और सुन्दर स्फटिक शिलापर बैठे दोनों भाई सुखसे दिन बिताने लगे। (३) राम अपने छोटे भाई लक्ष्मणको भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक-भरी अनेक कथाएँ नित्य सुनाते रहते थे। वर्षा ऋतुमें आकाशमें बादल उमड़-घुमड़कर आ घिरे जो गरजते हुए बहुत सुहावने लग रहे थे। (४) (उन्हें देखकर लक्ष्मणसे राम कहने लगे—) 'देखो लक्ष्मण ! बादलोंको देख-देखकर मोर ऐसे नाचे जा रहे हैं जैसे वैराग्यमें लीन कोई गृहस्थ किसी विष्णुके भक्तको देखकर प्रसन्न हो उठा हो ॥ १३ ॥ आकाशमें बादल उमड़-घुमड़कर कड़क-कड़ककर ऐसे गरजे जा रहे हैं कि प्रिया जानकीके बिना मेरा मन भी डरा जा रहा है (कि कहीं बादलोंकी गरज सुनकर मेरे विरहमें जानकी प्राण न दे डाले)। बिजलीकी चमक भी बादलोंमें इस प्रकार कौंध-कौंधकर लुका-छिपी खेल रही है जैसे दुष्टोंकी प्रीति सदा ढुलमुल हुई रहती है। (१) पृथ्वीसे लग-लगकर बादल ऐसे बरसे जा रहे हैं, जैसे विद्वान् लोग विद्या पा जानेपर झुक जाते (नम्र हो जाते) हैं। वर्षाकी बूँदोंके थपेड़े पर्वत इस प्रकार सहते चले जा रहे हैं, जैसे दुष्टोंके (कटु) वचन सन्त लोग सहते जाते हैं। (२)

१७४-७६ तत्रवार्षिकदिनानि राघवो लीलया मणिगुहासु संचरन्।
पक्वमूलफलभोगतोषितो लक्ष्मणेन सहितोऽवसत्सुखम् ॥
१७७ रामं मानुषरूपेण गिरिकाननभूमिषु। चरन्तं परमात्मानं सिद्धगणा भुवि ॥
मृगपक्षिगणा भूत्वा राममेवानुसेविरे। —अध्यात्मरामायण
१८१ अयं स कालः सम्प्राप्त समयो यो जलागमः। संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृत्तं गिरिसन्निभैः ॥ वाल्मी०
१८२-८३ मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखंडिनः। गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥ भागवत
१८४-८५ न बबन्धाम्बरे स्थैर्यं विद्युदत्यन्तचंचला। मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता ॥ विष्णुपुराण
१८६ व्यालम्बमाना जलदा वर्षन्ति स्फूर्जिताम्बराः ॥ यथा विद्यामुपालभ्य नमन्ति गुणिनो जनाः ॥
१८७ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः। अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः ॥—भागवत

छुद्र नदी, भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन, खल इतराई।
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी। (३)
१९० सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन-पहँ आवा।
सरिता - जल जलनिधि - महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई। (४)
दो०—हरित भूमि तृन - संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड - वाद - तें, गुप्त[1] होहिं सदग्रंथ ॥ १४ ॥
दादुर - धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु - समुदाई।
नव पल्लव भे बिटप अनेका। साधक - मन जस मिले बिबेका। (१)
अर्क - जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज, खल उद्यम गयऊ।
खोजत, कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करै क्रोध, जिमि धरमहिं दूरी। (२)
ससि - संपन्न, सोह महि कैसी। उपकारी - कइ संपति जैसी।
निसि तम घन, खद्योत बिराजा। जनु दंभिन - कर मिला समाजा। (३)

छोटी-छोटी नदियाँ बाढ़ आनेपर किनारे डुबोती हुई ऐसे वेगसे बही चली जा रही हैं जैसे थोड़ा-सा धन हो जानेपर दुष्ट लोग इतरा चलते (घमंड करने लगते) हैं। वर्षाका पानी धरतीपर गिरते ही ऐसा मटमैला हो चलता है जैसे संसारकी मायासे लिपटकर शुद्ध जीव भी कलंकी हो उठता है। (३) सब ओरसे जल एकत्र हो-होकर सरोवरमें इस प्रकार भरता जा रहा है जैसे सज्जनोंके पास सारे सद्‌गुण (अपने आप जुटे) चले आते हैं। नदियोंका सब पानी समुद्रमें पहुँचकर (वैसे ही स्थिर हुआ) जा रहा है, जैसे भगवान्‌को पाकर जीव अचल हो जाता है। (४) चारों ओर घास ही घास छा जानेसे धरती हरी हो उठी है। कहीं भी ठीक-ठीक मार्ग वैसे ही नहीं सूझ पड़ रहे हैं जैसे पाखंडवादके बढ़ जानेसे अच्छे-अच्छे धर्म-ग्रन्थ छिपे पड़े रहते हैं (उन्हें कोई नहीं पूछता) ॥१४॥ चारों ओर मेढकोंकी टर्र-टर्र ऐसी सुहावनी लग रही है मानो बहुतसे ब्रह्मचारी बैठे वेद पढ़ रहे हों। सभी वृक्ष नये-नये पत्तोंसे लदकर ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जैसे विवेक प्राप्त हो जानेपर साधकोंके मन शोभा देने लगते हैं। (१) मदार और जवासेके पत्ते झड़ चले हैं जैसे सुराज (अच्छा राज) हो जानेपर दुष्टोंका धंधा (चोरी, बटमारीका काम) चौपट हो रहता है। कहीं खोजनेपर भी धूल वैसे ही नहीं मिल पाती जैसे क्रोध आनेपर धर्म कहीं नहीं दिखाई देता। (२) अन्नसे लदी हुई (लहलहाती हुई खेतीसे हरी-भरी) पृथ्वी ऐसी शोभा दे रही है जैसे सबका उपकार करनेवालेकी सम्पत्ति शोभा देती है (जिससे दूसरोंका भला होता है)। रातके घने अंधकारमें चमकते हुए जुगुनू ऐसे लग रहे हैं मानो दम्भियों (पाखंडियों)-की मंडली आ जुटी हो। (३)

१. लुप्त।

१८८ ऊहुरुन्मार्गगामीनि निम्नगाम्भांसि सर्वतः। मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य लक्ष्मीं नवामिव ॥विष्णुपु०
१९० वित्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ —ऋग्वेद
१९१ भवन्त्यापो नदीनां तु वारिधिं प्राप्य सुस्थिराः। जन्तवो हि यथा सेव्य स्थैर्यं यान्ति हरिं श्रिताः ॥वि०पु०
१९२-९३ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः। नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥
१९४ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मंडूका व्यसृजन् गिरः। तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥
१९५ पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः। प्राक्क्षामाः तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥भाग०
१९६ बभूवुर्निश्छदा वृक्षा अर्कयावासकास्तथा। सुराज्ये तु यथा राजन् न चलन्ति खलोद्यमाः ॥विष्णुपु०
१९८ क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः। धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥
१९९ निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति नो ग्रहाः। यथा पापेन पाखंडा नहि वेदाः कलौ युगे ॥ भागवत

२०० महा बृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भइ बिगरहिं नारी।
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह-मद-माना। (४)
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धरम पराहीं।
ऊसर बरषै, तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय,उपज न कामा। (५)
बिबिध जंतु-संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ-तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजे ज्ञाना। (६)
दो०—कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ-तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत-के उपजे, कुल-सद्धर्म नसाहिं॥ १५ क॥
कबहुँ दिवस-महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग-सुसंग॥ १५ ख॥
२१० बरषा बिगत, सरद-रितु आई। लछिमन! देखहु परम सोहाई।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा, कृत प्रगट बुढ़ाई। (१)
उदित अगस्ति पंथ-जल सोखा। जिमि लोभहिं सोखइ संतोखा।
सरिता-सर निर्मल जल सोहा। संत-हृदय जस गत-मद-मोहा। (२)

घनघोर वर्षाके कारण खेतोंकी क्यारियाँ ऐसे फूट-फूटकर वह चली हैं, जैसे स्वच्छन्द हो जानेपर स्त्रियाँ बिगड़ चलती हैं। चतुर किसान जा-जाकर अपने खेत निराने (घास-पात निकाल फेंकने)-में ऐसे जुट गए हैं जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और मान अपने मनसे निकाल बाहर करते हैं। (४) चकवे उसी प्रकार कहीं दिखाई नहीं पड़ते जैसे कलियुगमें कहीं धर्म नहीं दिखाई पड़ता। ऊसर भूमिमें वरसे हुए पानीसे उसी प्रकार घास-तक नहीं जम पाती, जैसे भगवान्‌के भक्तोंके हृदयमें काम नहीं उत्पन्न हो पाता। अनेक प्रकारके जन्तुओं (कीड़-मकोड़ों)-से भरी हुई धरती ऐसी अच्छी लग रही है जैसे सुराज (अच्छा राज) होनेपर प्रजा बढ़ती चली जाती है (बाहरके लोग भी अच्छे राज्यमें आ बसते हैं)। जहाँ-तहाँ अनेक वटोही थक-थककर आ टिके हैं जैसे ज्ञान उत्पन्न हो जानेपर इन्द्रियाँ स्थिर (शान्त) हो जाती हैं। (६) कभी वेगसे वायु चलनेपर बादल उसी प्रकार इधर-उधर उड़कर निकल जाते हैं जैसे कुपुत्र उत्पन्न होनेपर कुलके धर्म-कर्म नष्ट हो मिटते हैं॥१५क॥ दिनमें कभी तो वैसे ही घना अँधेरा हो फैलता है जैसे कुसङ्ग पानेपर ज्ञान नष्ट हो जाता है और कभी वैसे ही सूर्य निकल आता है जैसे सुसङ्ग पानेपर फिर ज्ञान उत्पन्न होने लगता है'॥ १५ ख॥
(वर्षा बीत चुकनेपर लक्ष्मणसे राम कहने लगे)—'देखो लक्ष्मण! वर्षा ऋतु बीत गई और अब परम सुहावनी शरद ऋतु आ पहुँची है। फूला हुआ श्वेत कास सारी धरतीपर ऐसा आ छाया है, मानो वर्षाने आ बताया हो कि अब मेरा बुढ़ापा आ चला है। (१) अगस्त्य तारेके उदय होते ही मार्गका जल वैसे ही सूख चला है जैसे सन्तोषको लोभ सोख बैठता है। नदियों और सरवरों-का निर्मल जल ऐसा अच्छा लग रहा है जैसे सन्तोंका वह (निर्मल) हृदय शोभा देता है जिसमें न मद होता है न मोह। नदी और सरोवरोंका जल वैसे ही धीरे-धीरे सूख चला है जैसे ज्ञानी मनुष्य

२०० जलौघैर्निरभिद्यंत सेतवो वर्षतीश्वरे। —भागवत
२०१ कृषिं संस्कृत्य शुन्धन्ति पटीयान्सः कृषीवलाः। यथा कामादिकं त्यक्त्वा बुधाश्चित्तं पुनन्ति च॥विष्णुपु०
२०२ संप्रस्थिता मानसवासलुब्धाः प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकाः॥
२०३ वर्षणेनोषरायाञ्च न रूढं तृणमात्रकम्। यथा साधुजनस्वान्ते कामाद्युत्पद्यते न वा॥वाल्मीकीय
२१३ सर्वत्रातिप्रसन्नानि सलिलानि तथाभवन्। ज्ञाते सर्वगते विष्णौ मनांसीव सुमेधसाम्॥ विष्णुपु०

रस - रस सूख सरित - सर - पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ।
जानि सरद रितु, खंजन आए । पाइ समय, जिमि सुकृत सुहाए । (३)
पंक न रेनु, सोह असि धरनी । नीति - निपुन नृप - कै जसि करनी ।
जल संकोच, बिकल भइँ मीना । अबुध कुटुंबी जिमि धन - हीना । (४)
बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव, परिहरि सब आसा ।
कहुँ - कहुँ बृष्टि सारदी थोरी । कोउ ऐक पाव भगति जिमि मोरी । (५)
२२० दो०—चले हरषि, तजि नगर, नृप, तापस, बनिक, भिखारि ।
जिमि हरि-भगति पाइ, स्रम, तजहिं आस्रमी चारि ।। १६ ।।
सुखी मीन जे नीर अगाधा । जिमि हरि-सरन न एकौ बाधा ।
फूले कमल, सोह सर कैसा । निर्गुन - ब्रह्म सगुन भऐ जैसा । (१)
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा । सुंदर खग - रव नाना रूपा ।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी । जिमि दुर्जन, पर - संपति देखी । (२)
चातक रटत, तृषा अति ओही । जिमि सुख लहइ न संकर - द्रोही ।

(धीरे-धीरे) ममताका त्याग करते चलते हैं (ज्यों-ज्यों ज्ञान होता चलता है त्यों-त्यों मनसे ममता निकलती चलती है) । शरद् ऋतु आई जानकर खंजन भी वैसे ही उड़े चले आए हैं जैसे समय पाकर अच्छे पुण्य प्रकट होने लगते हैं । (३) पृथ्वीपर न तो कहीं कीचड़ रह गई है और न धूल ही उड़ रही है जैसे नीतिमें निपुण राजाके राज्य-संचालनमें कोई दोष नहीं रह जाता । जलकी कमीसे (जलाशयोंकी) मछलियाँ ऐसी तड़फड़ाए जा रही हैं, जैसे धन न रहनेपर मूर्ख कुटुम्बी लोग (गृहस्थ) घबरा उठते हैं । (४) बादलोंके छँट जानेसे निर्मल आकाश ऐसा शोभा दे रहा है जैसे सब आशा छोड़ देनेपर भगवान्‌के भक्त अच्छे लगते हैं । शरद् ऋतुमें कहीं-कहीं थोड़े-बहुत वर्षाके छींटे वैसे ही पड़ चलते हैं, जैसे कोई विरले लोग ही मेरी भक्ति प्राप्त कर सक पाते हैं । (५) (शरद् ऋतु आ जानेपर) राजा (युद्धके लिये), तपस्वी (तपस्याके लिये), व्यापारी (व्यापारके लिये) और भिक्षुक (माँगनेके लिये) सभी घर छोड़-छोड़कर वैसे ही निकल पड़े हैं जैसे भगवान्‌की भक्ति पा जानेपर चारों आश्रमवाले (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी) सब सांसारिक काम-धाम छोड़ बैठते हैं ।। १६ ।। अथाह जलमें बसी हुइ मछलियाँ वैसे ही सुखी हैं, जैसे भगवान्‌की शरणमें चले जानेपर कोई संकट नहीं रह जाता । सरोवरोंमें कमल ऐसे खिले पड़े हैं जैसे सगुण रूप धारण करके निर्गुण ब्रह्म शोभा दे । (१) भौंरे बड़े मधुर स्वरमें गुनगुनाते हुए चारों ओर फूलोंपर मँडरा रहे हैं तथा रंग-बिरंगे पक्षी अनेक प्रकारसे कलरव किए जा रहे हैं । रात आती देखकर चकवा वैसे ही दुखी हो चला है जैसे शंकरसे वैर करनेवाला कभी सुख नहीं पाता । शरद् ऋतुमें दिनमें जो ताप होता

२१४ शनकैः शनकैस्तीरं तत्यजुश्च जलाशयाः । ममत्वं क्षेत्रपुत्रादिरूढं सर्वे यथा बुधाः ।। विष्णुपु०
२१७ गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम् । यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेंद्रियः ।।
२१८ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् । सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ।।
२१९ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् । यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ।।
२२०-२१ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे । वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ।।
२२२ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवणात् । अबिभ्रन्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवणात् ।।—भागवत
२२३ सरो शोभत राजीवैः कथं विकसितैर्नृप । सत्वादिभिरयाच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ।।
२२५ निशि दुःखायते चक्रवाकस्य केवलं मनः । परस्यैश्वर्यमालोक्य दुर्जनस्तप्यते यथा ।।
२२६ चातकोसह्यतृष्णो हि कथं घोषति शारदैः । तापैर्यथा शिवद्रोही लभते न क्वचित्सुखम् ।। वि०पु०

सरदातप, निसि - ससि अपहरई। संत - दरस जिमि पातक टरई। (३)
देखि चकोर, इंदु, समुदाई[1]। चितवहिं, जिमि हरिजन हरि पाई।
मसक - दंस बीते हिम - त्रासा। जिमि द्विज-द्रोह किए कुल-नासा। (४)

२३० दो०—भूमि - जीव - संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय - भ्रम - समुदाइ॥ १७॥

बरषा गत, निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता - कै पाई।
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष - महँ आनौं। (१)
कतहुँ रहौ, जौं जीवति होई। तात! जतन करि आनौं सोई।
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज - कोस - पुर - नारी। (२)
जेहि सायक मारा मैं बाली। तेहि सर हतउँ मूढ़ - कहँ काली।
जासु कृपा छूटहिं मद - मोहा। ता - कहँ उमा कि सपनेहु कोहा। (३)
जानहिं यह चरित्र मुनि ज्ञानी। जिन्ह रघुबीर - चरन रति मानी।

है वह रातको चन्द्रमाकी ठंढक पाकर लोग वैसे ही भूल जाते हैं जैसे सन्तोंके दर्शनसे पाप दूर हो मिटते हैं। (३) चकोर झुण्ड बाँधकर चन्द्रमाको उसी प्रकार एकटक देखे जा रहे हैं जैसे हरिको सामने पाकर हरिके भक्त उन्हें टकटकी बाँधे देखते रह जाते हैं। जाड़ेके मारे मच्छरों और डाँसोंका इस प्रकार नाश हो जाता है, जैसे ब्राह्मणसे द्रोह करनेवालेका कुलका कुल नष्ट हो जाता है। (४) (वर्षा ऋतुके कारण) पृथ्वीपर जो बहुतसे जीव कीड़े-मकोड़े, कीटाणु आदि आ भरे थे, वे शरद् ऋतुके आते ही ऐसे नष्ट हो चले जैसे सद्गुरुके मिल जानेसे सारे संशय और भ्रम नष्ट हो मिटते हैं॥ १७॥ देखो भाई! वर्षा ऋतु भी निकल गई और निर्मल शरद् ऋतु भी आ गई, पर आजतक सीताका कोई खोज-ठिकाना नहीं मिल पाया। एक बार किसी प्रकार ठिकाना पा लेता (कि सीता कहाँ है) तो कालको भी जीतकर क्षण-भरमें सीताको ले आता। (१) वह कहीं भी हो, यदि जीती होगी तो लक्ष्मण! जैसे भी होगा मैं उसे लाए बिना चैन न लूँगा। राज्य, कोष (धन), नगर और स्त्री पाकर सुग्रीवने भी मेरी सुधि भुला दी। (२) (वह नहीं जानता कि) जिस बाणसे मैंने वालीको मारा था, उसी बाणसे कल उस मूढको भी बिना मारे न छोड़ूँगा।' (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा! जिनकी कृपासे मद और मोह दूर हो मिटते हैं, उन्हें क्या कहीं स्वप्नमें भी क्रोध आ सकता है? (३) इसलिये रामके इस आचरण (क्रोध करनेका) ठीक-ठीक रहस्य वे ही जानते हैं कि (यह सब बनावटी है) जो रामके चरणोंसे प्रीति करते हैं।'

१. देखि इंदु चकोर समुदाई। [चन्द्रमाको चकोरोंका समूह ऐसे देखता है ······।]

२२७ शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोहरत्। देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्॥भागवत

२३२ प्रावृट्काले गते कृच्छ्रात्प्राप्ते शरदि राघवः। सीतावियोगव्यथितो रामो राजीवलोचनः॥

२३३-३४ लक्ष्मणं प्राह काकुत्स्थो भ्रातरं भ्रातृवत्सलः। यदि जानामि तां साध्वीं जीवन्तीं यत्र कुत्रचित्॥
हठादेवाहरिष्यामि सुधामिव पयोनिधेः। प्रतिज्ञां शृणु मे भ्रातर्येन मे जनकात्मजा॥
नीता तं भस्मसात्कुर्यां सपुत्रबलवाहनम्।

२३५-३६ सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति। राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतो रहः॥
वाली यथा हतो मेऽद्य सुग्रीवोऽपि तथा भवेत्॥

२३७-३८ बुद्ध्यादिसाक्षिणस्तस्य मायाकार्यातिवर्तिनः। रागादिरहितस्यास्य तत्कार्यं कथमुद्वहेत्॥
विदन्त मुनयः केचिज्जानन्ति सनकादयः। तद्भक्ता निर्मलात्मानः सम्यग्जानन्ति नित्यदा॥नृसिंहपुराण

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ, गहे कर बाना। (४)
२४० दो०—तब अनुजहि समुझावा, रघुपति करुना - सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात! सखा सुग्रीव॥ १८॥
इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। राम - काज सुग्रीव बिसारा।
निकट जाइ, चरननि सिर नावा। चारिहुँ बिधि तेहि कहि समुझावा। (१)
सुनि, सुग्रीव परम भय माना। बिषय, मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।
अब मारुत-सुत! दूत - समूहा। पठवहु जहँ - तहँ बानर - जूहा। (२)
कहहु, पाख - महँ आव न जोई। मोरे कर, ता - कर बध होई।
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब - कर करि सनमान बहूता। (३)
भय, अरु प्रीति, नीति, देखराई। चले सकल चरननि सिर नाई।
ऐहि अवसर लछिमन पुर आए। क्रोध देखि जहँ - तहँ कपि धाए। (४)

लक्ष्मणने जब देखा कि प्रभु (राम)-को क्रोध चढ़ आया है तब उन्होंने भी धनुषपर डोरी चढ़ाकर हाथमें बाण सँभाल लिया। (४) तब सबपर अधिक करुणा करनेवाले रामने छोटे भाई लक्ष्मणको समझाया—'देखो लक्ष्मण! तुम सखा सुग्रीवको (मार मत बैठना), केवल डरा-धमकाकर यहाँ लेते आना'॥ १८॥ इधर पवनके पुत्र हनुमान् भी हृदयमें विचार किए जा रहे थे कि रामका काम (सीताको खोजना) सुग्रीव भुला बैठे हैं। अतः, हनुमान्ने सुग्रीवके पास जाकर उनके चरणोंमें सिर नवाकर उन्हें चारों प्रकारसे (साम, दाम, दंड और भेद)-से समझाया (कि आपको चलकर रामकी सहायता करनी चाहिए, नहीं तो न जाने वे क्या कर बैठें)। (१) (हनुमान्की बात) सुनते ही सुग्रीवकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। (वह पछताता हुआ बोला)—'मैं करूँ तो क्या करूँ! संसारके ये सब भोग-विलास तो मेरा साराका सारा ज्ञान ही हरे बैठे थे। अब भाई मारुत - सुत हनुमान्! तुम तत्काल ऐसा प्रबंध कर डालो कि जहाँ-जहाँ वानर रहते हैं, वहाँ-वहाँ तत्काल दूत भेज दो (२) और सबसे कहला दो कि यदि पन्द्रह दिनोंके भीतर वे यहाँ नहीं आ जाते तो उन्हें अपने हाथोंसे मार बिछाऊँगा।' सुनते ही हनुमानने दूतोंको बुलाकर सबका बहुत सम्मान किया (३) और फिर (हनुमान्ने) उन्हें भय भी दिखलाया (कि जो काम नहीं करेगा वह मारा जायगा), प्रीति भी दिखाई (कि जो काम करके आवेगा उसे पुरस्कार मिलेगा) और नीति भी समझाई (कि स्वामीका काम जो सेवक नहीं करता, वह अधम होता है)।' तब वे सब उनके चरणोंमें सिर नवाकर इधर-उधर चल दिए। (अभी यह व्यवस्था वहाँ हो ही रही थी कि) उसी समय लक्ष्मण भी नगरमें आ धमके। उनकी भौंहें चढ़ी देखकर सब वानर तितर-बितर होकर इधर-

२३९ इति रुष्टं समालोक्य राघवं लक्ष्मणोऽब्रवीत्। इदानीमेव गत्वाहं सुग्रीवं दुष्टमानसम्॥ मामाज्ञापय हत्वा तमायास्ये राम तेऽन्तिकम्।
२४०-४१ गन्तुमभ्युद्यतं वीक्ष्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत्। न हन्तव्यस्त्वया वत्स सुग्रीवो मे प्रियः सखा॥ किन्तु भीषय सुग्रीवं वालिवन्न हनिष्यसे।
२४२-४३ हनूमान् प्राह सुग्रीवमेकान्ते कपिनायकम्। शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तवैव हितमुत्तमम्॥ रामेण ते कृतः पूर्वमुपकारो ह्यनुत्तमः। करोमीति प्रतिज्ञाय सीतायाः परिमार्गणम्॥ कृतघ्नवत्त्वया नूनं विस्मृतः प्रतिभाति मे। न करोषि कृतघ्नस्त्वं हन्यसे वालिवद् द्रुतम्॥
२४४ हनूमद्वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो भयविह्वलः। प्रत्युवाच हनूमन्तं सत्यमेव त्वयोदितम्॥
२४५ शीघ्रं कुरु मदाज्ञां त्वं वानराणां तरस्विनाम्। सहस्राणि दशेदानीं प्रेषयाशु दिशो दश॥
२४६ सप्तद्वीपगतान् सर्वान् वानरानयन्तु ते। पक्षमध्ये समायान्तु सर्वे वानरपुंगवाः॥
२४७-४८ ये पक्षमतिवर्तन्ते ते वध्या मे न संशयः। सुग्रीवाज्ञां पुरस्कृत्य हनूमान्मन्त्रिसत्तमः॥—अध्या०

२५० दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब, जारि करौं पुर छार।
व्याकुल नगर देखि तब, आयउ बालि-कुमार ॥ १९ ॥
चरन नाइ सिर, बिनती कीन्हीं। लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्हीं।
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना। (१)
सुनु हनुमंत! संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा।
तारा-सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि, प्रभु-सुजस बखाना। (२)
करि बिनती, मंदिर लै आए। चरन पखारि, पलँग बैठाए।
तब कपीस, चरननि सिर नावा। गहि भुज, लछिमन कंठ लगावा। (३)
नाथ! बिषय-सम मद कछु नाहीं। मुनि-मन मोह करइ छन-माहीं।
सुनत बिनीत बचन, सुख पावा। लछिमन, तेहि बहु बिधि समुझावा। (४)

उधर भाग खड़े हुए। (४) लक्ष्मणने धनुष चढ़ाकर कहा—'(भागते कहाँ हो ?) मैं अभी सारा नगर जलाकर भस्म किए डालता हूँ।' नगरके लोगोंमें ऐसी भगदड़ मची देखी तो वालीके पुत्र अंगद बाहर निकल आए ॥ १९ ॥ (अंगदने लक्ष्मणके) चरणोंपर सिर नवाकर बहुत क्षमा माँगी और लक्ष्मणने उसे अभय-दान भी दे दिया (कि तुम्हारा बाल बाँका न होगा)। जब सुग्रीवने सुना कि लक्ष्मण बहुत बिगड़े पड़ रहे हैं तो डरके मारे उसे पसीना छूटने लगा। (वह हनुमान्से कहने लगा–) (१) 'देखो हनुमान्! तुम ताराको साथ लिए चले जाओ और हाथ-पैर जोड़कर कुमार लक्ष्मणको किसी प्रकार समझा-बुझाकर शान्त करो।' तब ताराको साथ लेकर लक्ष्मणके पास हनुमान् पहुँच गए और चरणोंमें प्रणाम करके प्रभु रामके सुयशका वर्णन करने लगे। (२) फिर उन्हें (लक्ष्मणको) किसी-किसी प्रकार मनाकर वे घर लिवा ले आए और उनके चरण धोकर उन्हें पलँगपर ला बैठाया। तभी सुग्रीवने भी लक्ष्मणके चरणोंमें सिर आ नवाया। लक्ष्मणने अपनी दोनों भुजाओंमें कसकर उसे गले खींच लगाया। (३) (सुग्रीव कहने लगा—) 'नाथ! विषय (सांसारिक भोग)के-समान दूसरा कोई मद नहीं है, क्योंकि यह क्षण भरमें मुनियों-तकका मन डाँवाडोल कर डालता है।' उसकी विनम्र वाणी सुनकर लक्ष्मणको बहुत सन्तोष हुआ (और वे शान्त हो गए)। फिर लक्ष्मणने उसे बहुत ऊँच-नीच समझाया (कि रामका काम नहीं करोगे तो एक क्षण तुम वानरोंके राजा नहीं रह पाओगे)। (४) तभी पवन-पुत्र हनुमान्ने उन्हें बताया कि किस प्रकार कहाँ-कहाँ दूत

२४९-५१ तत्क्षणे प्रेषयामास हरीन् दशदिशः सुधीः। लक्ष्मणोऽपि तदा गत्वा किष्किन्धानगरांतिकम् ॥
ज्याघोषमकरोत्तीव्रं भीषयन् सर्ववानरान्। निर्मूलान् कर्तुमुद्युक्तो धनुरानम्य वीर्यवान् ॥
ततः शीघ्रं समागत्य ज्ञात्वा लक्ष्मणमागतम्। निवार्य वानरान् सर्वानंगदो मन्त्रिसत्तमः ॥
२५२ गत्वा लक्ष्मणसामीप्यं प्रणनाम स दंडवत्।
ततोंगदं परिष्वज्य लक्ष्मणः प्रियवर्धनः। उवाच वत्स गच्छ त्वं पितृव्याय निवेदय।
२५३-५४ तयेपि त्वरितं गत्वा सुग्रीवाय न्यवेदयत्। तच्छ्रुत्वातीव संत्रस्तः सुग्रीवो वानरेश्वरः।
आहूय मंत्रिणां श्रेष्ठं हनूमन्तमथाब्रवीत्। सांत्वयन् कोपितं वीरं शनैरानय मन्दिरम्।
प्रेषयित्वा हनूमन्तं तारामाह कपीश्वरः। त्वं गच्छ सान्त्वयन्ती तं लक्ष्मणं मृदुभाषितैः।
२५५-५६ शान्तमन्तःपुरं नीत्वा पश्चाद्दर्शय मेऽनघे। हनूमानंगदेनैव सहितो लक्ष्मणान्तिकम्।
गत्वा ननाम शिरसा भक्त्या स्वागतमब्रवीत्। एहि वीर महाभाग भवद्गृहमशंकितम्।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं भक्त्या करे गृह्य स मारुतिः। आनयामास नगरमध्याद्राजगृहं प्रति।
२५९ सुग्रीवोऽप्यर्घ्यपाद्यैर्लक्ष्मणं संप्रपूजयत्। सौमित्रिरपि सुग्रीवं प्राह किंचिन्मयोदितम्।
तत्क्षमस्व महाभाग प्रणयाद्भापितं मया। —अध्यात्मरामायण

२६० पवन-तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गये दूत - समुदाई। (४।।)
दो०—हरषि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि - साथ।
रामानुज आगे करि, आए जहँ रघुनाथ ।। २० ।।
नाइ चरन सिर, कह कर जोरी। नाथ! मोहिं! कछु नाहिंन खोरी।
अतिसय प्रबल देव ! तव माया। छूटहिं, राम ! करहु जौं दाया। (१)
बिषय - बस्य सुर - नर - मुनि स्वामी। मैं पाँवर, पसु, कपि, अति कामी।
नारि - नयन - सर जाहि न लागा। घोर क्रोध - तम - निसि जो जागा। (२)
लोभ - पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम - समान रघुराया।
यह गुन साधन - तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई। (३)
तव रघुपति बोले मुसुकाई। तुम प्रिय मोहिं, भरत - जिमि भाई।
२७० अब सोइ जतन करहु मन लाई। जेहि बिधि सीता - कै सुधि पाई। (४)
दो०—ऐहि बिधि होत बतकही, आए बानर - जूथ।
नाना बरन सकल दिसि, देखिय कीस - बरूथ ।। २१ ।।
बानर - कटक उमा ! मैं देखा। सो मूरख जो कर चह लेखा।

भेज दिए गए हैं (जिन्हें पन्द्रह दिनके भीतर समाचार ला सुनानेको कह दिया गया है)। (४।।) तब अंगद आदि सभी वानरोंको साथ लेकर सुग्रीव प्रसन्न होकर रामके पास चल दिए। लक्ष्मणको आगे-आगे करके चलते हुए वे रामके पास आ पहुँचे ।। २० ।। रामके चरणोंमें सिर नवाकर, हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा—'नाथ ! (मैं इतने दिनोंतक आपके पास नहीं आ पाया इसमें) मेरा कोई दोष नहीं है। देव राम ! आपकी माया ही इतनी अधिक प्रबल है कि उसके फन्देसे तभी छुटकारा मिल पाता है जब आपकी दया हो जाय। (१) स्वामी ! जब देवता, मनुष्य और मुनि-तक विषयोंके फेरमें पड़े चक्कर काट रहे हैं तब मैं तो नीच, पशु, और पशुओंमें भी अत्यन्त कामी वानर ठहरा। स्त्रियोंके नयन-बाणसे जो घायल होनेसे बच गया, भयंकर क्रोधकी अँधेरी रातमें भी जो निरन्तर जागता रहा (जिसे कभी क्रोध नहीं चढ़ा), (२) लोभके फंदेमें जिसने अपना गला नहीं फँसने दिया, वह मनुष्य तो राम ! आपके ही समान है। यह गुण किसी साधनासे नहीं वरन् आपकी कृपासे कोई बिरला ही प्राप्त कर पाता है।' (३) तब रामने मुसकराकर उससे कहा—'देखो भाई ! तुम मुझे वैसे ही प्यारे हो जैसे भरत प्रिय हैं। अब जी-जानसे ऐसा उपाय करो कि मुझे सीताकी टोह मिल सके।' (४) अभी राम और सुग्रीवमें ये बातें चल ही रही थीं कि वानरोंके झुण्डके-झुण्ड वहाँ आ इकट्ठे हुए। चारों ओर अनेक रूप-रंगके दलके दल वानर पहुँचे दिखाई देने लगे ।।२१।। (शिव कहते हैं)—'देखो उमा ! वानरोंकी वह सेना मैंने अपनी आँखोंसे देखी थी। (वह सेना इतनी अपार थी कि) जो भी कोई उसकी गिनती करनेकी बात उठावे उसके समान कोई महा मूर्ख नहीं।

---

२६० त्वत्सहायनिमित्तं हि प्रेषितो हरिपुंगवाः। आनेतुं वानरान् युद्धे सुबहून् हरिपुंगवान् ।।वाल्मी०
२६१-६२ भेरीमृदंगैर्बहुऋक्षवानरैः श्वेतातपत्रैर्व्यजनैश्च शोभितः।
नीलांगदाद्यैर्हनुमत्प्रधानैः समावृतो राघवमभ्यगाद्धरिः ।। —अध्यात्मरामायण।
२६६-६७ कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैर्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः। —भर्तृहरिशतक।
रामः सुग्रीवमालिंग्य हर्षपूर्णाश्रुलोचनः। प्राह सुग्रीव जानासि सर्वं त्वं कार्यगौरवम् ।।
मार्गणार्थं हि जानक्या नियुंक्ष्व यदि रोचते। —अध्यात्मरामायण
२७१-७२ ततो नगेन्द्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः। कृत्स्ना संछादिता भूमिरसंख्येयैः प्लवंगमैः ।।वा०रा०

आइ, राम-पद नावहिँ माथा। निरखि बदन, सब होहिँ सनाथा। (१)
अस कपि एक न सेना-माहीँ। राम, कुसल जेहि पूछा नाहीँ।
यह कछु नहिं प्रभु-कै अधिकाई। बिस्व-रूप, व्यापक, रघुराई। (२)
ठाढ़े जहँ-तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहिँ समुझाई।
राम-काज, अरु मोर निहोरा। बानर-जूथ ! जाहु चहुँ ओरा। (३)
जनक-सुता-कहँ खोजहु जाई। मास दिवस-महँ आयहु भाई।
२८० अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए। आवइ बनिहि सो मोहिँ मराए। (४)

दो०—बचन सुनत सब बानर, जहँ-तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाए, अंगद, नल, हनुमंत ॥ २२ ॥

सुनहु नील ! अंगद ! हनुमाना। जामवंत ! मति-धीर सुजाना।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता-सुधि पूछेहु सब काहू। (१)
मन-क्रम-बचन सो जतन बिचारेहु। रामचंद्र-कर काज सँवारेहु।
भानु पीठि, सेइय उर आगी। स्वामिहिँ सर्ब भाव, छल त्यागी। (२)
तजि माया, सेइय पर-लोका। मिटहिँ सकल भव-संभव सोका।

वे सब वानर आ-आकर रामके चरणोंमें सिर नवाने लगे और प्रभु (राम)-का स्वरूप देख-देखकर मनमें यही समझने लगे कि अब हम सभी सनाथ हो गए हैं। (१) (विचित्र बात यह हुई कि) उस (विशाल) सेनामें ऐसा एक भी वानर न बचा जिससे रामने कुशल न पूछ ली हो। प्रभु रामके लिये यह कोई बड़ी बात तो थी नहीं क्योंकि राम तो सर्वव्यापक विश्वरूप हैं (उन्हें सबसे एक साथ मिलकर कुशल पूछते लगता क्या है)। (२) (सुग्रीवकी) आज्ञा पाकर वे सब जहाँ-तहाँ आ खड़े हुए। तब सुग्रीवने सबको समझाकर कहा—'देखो वानरो ! (जो काम तुम्हें सौंपा जा रहा है) यह रामका कार्य है और मेरा अनुरोध है कि तुम सब चारों ओर देश-विदेशोंमें जा फैलो। (३) और भाई ! तुम लोग जा-जाकर जानकीकी टोह लगाओ (कि वे हैं कहाँ)। देखो, महीने भरके भीतर सब लौट आना। यह अवधि (एक महीना) बीत जानेपर जो बिना टोह लगाए यहाँ लौटा उसे मैं बिना मारे नहीं छोड़ूँगा।' (४) सुग्रीवका आदेश सुनते ही सब वानर तुरन्त इधर-उधर चल दिए। तब सुग्रीवने अंगद, नल और हनुमान आदि (प्रधान वानरों)-को बुलाकर कहा—॥ २२ ॥ 'देखो नील, अंगद, हनुमान् तथा चतुर और धीर बुद्धिवाले जामवन्त ! तुम सब वीर योद्धा दक्षिणकी ओर चले जाओ। वहाँ चारों ओर सीताकी टोह लेकर (१) तुम लोग मन, कर्म और वचनसे ऐसा उपाय करना कि रामका काम बन जाय (सीताका ठिकाना मिल जाय)। देखो ! सूर्यकी ओर पीठ करके और अग्निको हृदयसे (सामनेसे) सेवन करना चाहिए। परन्तु स्वामीकी सेवा तो छल छोड़कर सब ओरसे सब प्रकार (मन, वचन और कर्म)-से करनी चाहिए। (२) माया (विषयोंकी ममता और आसक्ति) छोड़कर सबको परलोक साधनेकी क्रिया

२७७-७८ अस्मिन् कार्ये विनिर्वृत्ते कृते दाशरथेः प्रिये। ऋणान् मुक्ता भविष्यामः कृतार्थार्थविदांवर ॥वाल्मी०
२७९ विचिन्वन्तु प्रयत्नेन भवंतो जानकीं शुभाम्। मासादर्वाङ् निवर्तध्वं मच्छासनपुरस्सराः ॥अध्या०
२८० सीतामदृष्ट्वा यदि वो मासादूर्ध्वं दिनं भवेत्। तदा प्राणान्तिकं दण्डं मत्तः प्राप्स्यथ वानराः ॥अ०रा०
२८१-८२ तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञाय हरिपुंगवाः। शलभा इव संच्छाद्य मेदिनीं संप्रतस्थिरे ।वाल्मीकीय
दक्षिणां दिशमत्यर्थं प्रयत्नेन महाबलान्। युवराजं जांबवंतं हनूमन्तं महाबलम् ॥
२८३-८४ नलं सुषेणं शरभं मैन्दं द्विविदमेव च। प्रेषयमास सुग्रीवो वचनं चेदमब्रवीत् ॥–अध्यात्म।
प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः। –वाल्मीकीय।
२८५-८७ पृष्ठेन सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्। स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया ॥–हितोपदेश

देह धरे-कर यह फल भाई। भजिय राम, सब काम बिहाई। (३)
सोइ गुनज्ञ, सोई बड़ भागी। जो रघुबीर-चरन अनुरागी।
२९० आयसु माँगि चरन सिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई। (४)
पाछे पवन-तनय सिर नावा। जानि काज, प्रभु निकट बोलावा।
परसा सीस सरोरुह-पानी। कर-मुद्रिका दीन्हि जन जानी। (५)
बहु प्रकार सीतहिं समुझाऍहु। कहि बल-बिरह, बेगि तुम आऍहु।
हनुमत, जनम सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना। (६)
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत, सुर-त्राता। (६॥)
दो०—चले सकल बन खोजत, सरिता, सर, गिरि, खोह।
राम-काज लयलीन मन, बिसरा तन-कर छोह॥ २३॥
कतहुँ होइ निसिचर-तें[1] भेंटा। प्रान लेहिं ऐक-एक चपेटा।
बहु प्रकार गिरि-कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ, ताहि सब घेरहिं। (१)

(भगवत्सेवा) करनी चाहिए जिससे संसारके सारे शोक (जन्म-मरणसे उत्पन्न शोक) मिट जायँ। देखो भाई ! देह धारण करनेका सबसे बड़ा फल यही है कि सब काम छोड़कर रामका ही भजन किया जाय। (३) वही पुरुष गुणज्ञ (सद्गुण पहचाननेवाला) और वही बड़भागी है जो रामके चरणोंसे प्रेम करने लगे।' रामसे आज्ञा लेकर और उनके चरणोंमें सिर नवाकर, रामका स्मरण करते हुए सब (अंगद, नल, जामवन्त) हर्षित हो-होकर चल पड़े। (४) सबसे पीछे पवन-पुत्र हनुमानने आकर सिर नवाया। उन्हें देखते ही प्रभुने पहचान लिया (कि मेरा कार्य यदि कोई कर सकता है तो हनुमान् ही कर सकते हैं)। इसलिये उन्होंने हनुमान्को अपने पास बुला बैठाया। उन्होंने अपना कर-कमल हनुमान्के सिरपर फेरते हुए और उन्हें अपना सच्चा सेवक जानकर अपने हाथकी अँगूठी उनके हाथपर उतार धरी (५) और कहा—'देखो ! तुम जा रहे हो तो सीताको मेरा बल और मेरी विरह-दशा भली-भाँति कहकर समझा देना और जहाँतक बने शीघ्र ही लौट आना।' यह सुनकर हनुमान्ने समझ लिया कि मेरा जन्म सफल हो गया (कि रामने अपना यह काम मुझे ही सौंपा)। फिर क्या था ! कृपा-निधान रामको हृदयमें धारण करके वे तत्काल वहाँसे चल दिए। (६) यद्यपि प्रभु जानते तो सब कुछ थे (कि सीता कहाँ हैं) फिर भी देवताओंकी रक्षा करनेवाले प्रभु राजनीतिकी मर्यादाकी रक्षा कर रहे थे (कि पहले हनुमानको टोह लाने भेजकर वहाँकी स्थिति भली भाँति समझ लेनी चाहिए)। (७) वन, नदी, सरोवर और पर्वत-कन्दराओंमें (चारों ओर सीताको) खोजते हुए सभी वानर चले जा रहे थे। सभी वानर रामके कार्यमें इतने जी-जानसे जा जुटे थे कि किसीको अपने शरीर-तककी सुध-बुध नहीं रह गई थी॥ २३॥ मार्गमें चलते हुए उन्हें कहीं कोई राक्षस दिखाई दे जाता तो एक ही चपेटमें उसे धर पछाड़ते थे। इस प्रकार घूमते-फिरते उन्होंने पर्वतों और जंगलोंका चप्पा-चप्पा छान मारा। यदि उन्हें कहीं कोई मुनि मिल जाता तो

१. सैं।

२८८-८९ मानुषं देहमाश्रित्य सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। तत्पदाब्जानुरागा ये ते गुणज्ञा मतं मम॥हितो०
गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत्। अस्मिन् कार्ये प्रमाणं हि त्वमेव कपिसत्तम॥
२९०-९१ जानामि सत्त्वं ते सर्वं गच्छ पन्थाः शुभस्तव। —अध्यात्म
२९२-९३ ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददौ मारुतिसत्करे। मन्नामाक्षरयुक्तेयं सीतायै दीयतां रहः॥
२९४-९५ नत्वा रामं परिक्रम्य जगाम कपिभिः सह॥
२९६-९७ तदांगदाद्याः प्लवगाः सीतार्थे बभ्रमुर्वने।
२९८-९९ रावणोयमिति ज्ञात्वा केचिद्वानरपुंगवाः। जघ्नुः किलकिलाशब्दं मुंचन्तो मुष्टिभिः क्षणात्। अ०

३०० लागि तृषा, अतिसय अकुलाने। मिलै न जल, वन गहन भुलाने।
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल-पाना। (२)
चढ़ि गिरि - सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि - बिबर ऐक कौतुक पेखा।
चक्रवाक, बक, हंस उड़ाहीं। बहुतक खग प्रबिसहिं तेहि - माहीं। (३)
गिरि - तें उतरि पवनसुत आवा। सब - कहँ लै सोइ बिबर दिखावा।
आगे कै हनुमंतहिं लीन्हाँ। पैठे बिबर, बिलंब न कीन्हाँ। (४)

दो०—दीख जाइ उपवन बर, सर बिकसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तप - पुंज ॥ २४ ॥

दूरि - तें ताहि सबनि सिर नावा। पूछे, निज बृत्तांत सुनावा।
तेहि तब कहा, करहु जल - पाना। खाहु सुरस, सुंदर फल नाना। (१)
३१० मज्जन कीन्ह, मधुर फल खाये। तासु निकट पुनि सब चलि आए।
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई। (२)

उन्हें ही सब घेर कर पूछ बैठते थे (कि बताइए सीता कहाँ है ?) (१) (जब वे सब बहुत थक गए और) जब उन्हें प्यास सताने लगी तब वे प्यासके मारे व्याकुल हो उठे। (जब उन्हें कहीं ढूँढे पानी नहीं मिला तो वे खोजते-खोजते) एक घने जंगलमें भटककर बटिया भूल गए। हनुमान्ने मनमें सोचा कि ये वानर तो पानीके बिना कोई जीवित बचते नहीं दिखाई देते। (२) यह सोचकर वे एक पर्वतकी चोटीपर जा चढ़े। वहाँसे उन्होंने चारों ओर दृष्टि डाली तो देखते क्या हैं कि पृथ्वीमें एक गुफा है जिसके आगे बड़ा विचित्र दृश्य यह दिखाई पड़ रहा है कि (उस गुफाके आस-पास) बहुतसे चकवे, बगले और हंस मँडरा रहे हैं और बहुतसे पक्षी उस गुफामें आ-जा भी रहे हैं। (३) यह देखकर पवनपुत्र हनुमान् पर्वतसे नीचे उतर आए और उन्होंने सब वानरोंको वह गुफा ले जा दिखलाई। हनुमानको आगे करके ज्यों ही वे उस गुफाके भीतर पैठते हैं (४) तो देखते क्या हैं कि वहाँ बहुत ही सुन्दर उपवन (बगीचा) है जिसके सरोवरमें बहुतसे कमल खिले हुए लहरा रहे हैं और वहीं पास ही सुन्दर मन्दिरमें एक स्त्री बैठी है (जो ऐसी लगती थी) जैसे तपस्या ही स्त्री बनकर आ बैठी हो ॥ २४ ॥ सबने दूरसे ही उस तपस्विनीको सिर जा नवाया और पूछनेपर अपनी सारी कथा कह सुनाई। सब सुनकर उस तपस्विनीने कहा -- 'अच्छा, पहले जाकर जल पीकर प्यास मिटाओ और यहाँके मीठे-मीठे रसीले फल खाकर भूख बुझाओ।' (१) उसकी आज्ञा पाकर सबने पहले (सरोवरमें) जाकर स्नान किया और फिर वे सब मीठे फल खा-खाकर लौटकर उसी तपस्विनीके पास आ बैठे। उस (तपस्विनी)-ने अपनी सारी कथा कह सुनाई और बताया कि-'मैं तो अब रामके पास जानेकी तैयारी किए बैठी हूँ। (२) तुम सब अपनी आँखें मूँद लो तो गुफासे

३००-१ तृषार्ताः सलिलं तत्र नाविदन् हरिपुंगवाः। विभ्रमन्तो महारण्ये शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः।
३०१-३ ददृशुर्गह्वरं तत्र तृणगुल्मावृतं महत्। आर्द्रपक्षान् क्रौञ्चहंसान् निःसृतान् ददृशुस्ततः॥
अत्रास्ते सलिलं नूनं प्रविशामो महागुहाम्। इत्युक्त्वा हनुमानग्रे प्रविवेश तमन्वयुः।
३०४-५ अन्धकारे महद्दूरं गत्वापश्यन् कपीश्वराः। जलाशयान्मणिनिभतोयान्कल्पद्रुमोपमान्॥
३०६-७ प्रभया दीप्यमानां तां ददृशुः स्त्रियमेकलाम्। ध्यायन्तीं चीरवसनां योगिनीं योगमास्थिताम्॥
३०८ प्रणेमुस्तां महाभागां भक्त्या भीत्या च वानराः। दृष्ट्वा तान्वानरान्देवी प्राह यूयं किमागताः॥
३०९ योगिनी च तदा दृष्ट्वा वानरान् प्राह हृष्टधीः। यथेष्टफलमूलानि जग्ध्वा पीत्वामृतं पयः॥ अ०रा०

मूँदहु नयन, बिबर तजि जाहू। पइहहु सीतहि, जनि पछिताहू।
नयन मूँदि, पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिन्धु-के तीरा। (३)
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल-पद नायेसि माथा।
नाना भाँति बिनय तेहि कीन्हीं। अनपायनी भगति प्रभु दीन्हीं। (४)
दो०—बदरी-बन-कहँ सो गई, प्रभु आज्ञा धरि सीस।
उर धरि राम-चरन जुग, जे बंदत अज-ईस ॥ २५ ॥
इहाँ बिचारहिं कपि मन-माहीं। बीती अवधि, काज कछु नाहीं।
सब मिलि कहहिं परसपर बाता। बिनु सुधि लये करब का भ्राता। (१)
३२० कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी।
इहाँ न सुधि सीता-कै पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई। (२)
पिता बधे-पर मारत मोहीं। राखा राम, निहोर न ओही।
पुनि-पुनि अंगद कह सब-पाहीं। मरन भयउ, कछु संसय नाहीं। (३)

बाहर निकल जाओगे। समझ लो कि सीताकी टोह तुम्हें मिली धरी है। पछताओ मत।' यह सुनकर वीर वानरोंने अपनी आँखें मूँद लीं। (आँखें खोलनेपर) देखते क्या हैं कि सब समुद्रके किनारे आए खड़े हैं। (३) वह तपस्विनी वहाँसे चलकर बातकी बातमें रामके पास जा पहुँची और वहाँ पहुँचकर उसने रामके चरण-कमलोंमें सिर जा नवाया। उसने अनेक प्रकारसे प्रभुकी ऐसी स्तुति की कि प्रभुने झट उसे अपनी अनपायिनी (अचल) भक्ति दे डाली। (४) तब वह (स्वयं प्रभु) रामके उन दोनों चरणोंको हृदयमें धारण करके प्रभुकी आज्ञा पाकर बदरिकाश्रम चली गई जिन (चरणों)-की वन्दना ब्रह्मा और शिव भी करते रहते हैं ॥ २५ ॥

यहाँ (समुद्रके तटपर खड़े) वानर मनमें सोचे जा रहे थे कि एक मासकी अवधि बीतनेको आ रही है और प्रभुका कुछ काम नहीं हो पा रहा है। सब इकठ्ठे होकर आपसमें बातें करने लगे—'देखो भाई! सीताकी टोह लिए बिना हम लौटकर भी करेंगे क्या ?' (१) अंगदने सुबकते हुए कहा—'मैं तो दोनों प्रकारसे मारा गया। यदि यहाँ हमें सीताकी टोह नहीं मिल पाती तो लौटनेपर कपिराज सुग्रीव मुझे जीता न छोड़ेंगे। (२) वे तो पिताके मरते ही मुझे मार डालते, पर वह तो कहो कि रामने मुझे बचा लिया (नहीं तो उसी समय मेरा गला घोंट मारते)। इसमें उनका (सुग्रीवका) कुछ निहोरा (अहसान) नहीं है (यह तो रामकी कृपा थी)।' अंगद बार-बार सबसे यही कहते जा रहे थे कि 'अब हम लोग जीते नहीं बच पावेंगे, इसमें अब कोई संदेह नहीं

३१० तथेति भुक्त्वा पीत्वा च हृष्टास्ते सर्ववानराः। देव्या समीपं गत्वा ते बद्धांजलिपुटाः स्थिताः॥ अध्या०
३११ तान् पूज्य कथयामास नैजं वृत्तं तु योगिनी ॥ —आनन्दरामायण
इतोहं गन्तुमिच्छामि रामं द्रष्टुं त्वरान्विता। —अध्यात्म
३१२-१३ यूयं पिदध्वमक्षीणि गमिष्यथ बहिर्गुहाम्। तथैव चक्रुस्ते वेगात्। —अध्यात्मरामायण
तस्तते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम्। —वाल्मीकीयरामायण
३१४-१५ सापि त्यक्त्वा गुहां शीघ्रं ययौ राघवसन्निधिम्। कृत्वा प्रदक्षिणं रामं प्रणम्य बहुशः सुधीः ॥
सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल। यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो ॥
३१६-१७ श्रुत्वा रघूत्तमवचोऽमृतसारकल्पं गत्वा तदैव बदरीतरुखण्डजुष्टम्। —अध्यात्मरामायण
३१८-१९ ज्ञात्वा मासमतिक्रान्तं व्यथामवललम्बिरे। अकृत्वा नृपतेः कार्यं पूजां लप्स्यामहे कथम् ॥ भट्टि०
३२०-२१ तत्रोवाचांगदः कांश्चिद्वानरान् वानरर्षभः। सीतानाधिगतास्माभिर्न कृतं राजशासनम् ॥
यदि गच्छाम किष्किन्धां सुग्रीवोऽस्मान् हनिष्यति। विशेषतः शत्रुसुतं मां मिषान्निहनिष्यति ॥
३२२-२३ मयि तस्य कुतः प्रीतिरहं रामेण रक्षितः। व्यथिताः साश्रुनयनाः युवराजमथाब्रुवन् ॥ अध्या०

अंगद - बचन सुनत कपि बीरा। बोलि न सकहिं, नयन बह नीरा।
छन - एक सोच मगन होइ रहेऊ। पुनि अस बचन कहत सब भयऊ। (४)
हम सीता - कै सुधि बिन लीना¹। नहिं जैहैं जुवराज प्रबीना।
अस कहि लवन - सिंधु - तट जाई। बैठे कपि सब दरभ डसाई। (५)
जामवंत, अंगद - दुख देखी। कही कथा - उपदेस बिसेखी।
तात! राम - कहँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म, अजित, अज, जानहु। (६)
३३० हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुन - ब्रह्म - अनुरागी। (६॥)
दो०—निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर-महि-गो-द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥ २६॥
यहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती। गिरि - कंदरा सुनी संपाती।
बाहर होइ, देखि बहु कीसा। मोहिं अहार दीन्ह जगदीसा। (१)
आज सबनि - कहँ भच्छन करऊँ। दिन बहु गे अहार बिनु मरऊँ।
कबहुँ न मिलै भरि उदर अहारा। आजु दीन्हि बिधि एकहिं बारा। (२)

रह गया है।' (३) अंगदके ये वचन सुनकर किसी भी वीर वानरके मुँहसे बोल नहीं निकल पा रहा था। सब बैठे-बैठे आँखोंसे झरझर आँसू बहाए जा रहे थे। क्षण-भरके लिये सभी चिन्तामें डूब गए और फिर सब कहने लगे —। (४) 'हे प्रवीण युवराज! तुम चिन्ता न करो। सीताकी टोह लिये बिना हम लोग यहाँसे हिलेंगे नहीं (यहीं प्राण दे देंगे)।' ऐसा कहकर उस खारे समुद्रके किनारे जाकर कुशा बिछा-बिछाकर सब वानर (प्राण देनेके लिये) जा बैठे। (५) जामवंतने जब देखा कि अंगद धीरज खो बैठे हैं तो उसने अंगदको अनेक उपदेशकी कथाएँ कह सुनाईं और समझाया— 'देखो बेटा! तुम रामको ऐसा-वैसा (साधारण) मनुष्य मत समझ बैठना। वे तो साक्षात् निर्गुण ब्रह्म, अजेय और अजन्मा हैं। (६) उनके हम सभी सेवक बड़े भाग्यशाली हैं कि निरन्तर ऐसे सगुण ब्रह्मसे प्रेम किए जा रहे हैं। (६॥) वे प्रभु तो देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये अपनी इच्छासे अवतार धारण करते रहते हैं और जितने भी सगुण ब्रह्मके उपासक होते हैं वे सब प्रकारके मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य) छोड़कर उनकी सेवाके लिये साथ लगे रहते हैं' ॥२६। जामवन्तने इस प्रकार और भी अनेक कथाएँ कह सुनाईं। उसी समय सम्पाती नामका गिद्ध पर्वतकी कन्दरामें बैठा इन सबकी बातें कान लगाए सुने जा रहा था। अपने कोटरसे बाहर झाँककर वह देखता क्या है कि वहाँ बहुतसे वानर ही वानर आए बैठे हैं। (वह मन ही मन कह उठा)—'आ हा! आज भगवान्‌ने मेरे लिये (घर बैठे ही) इतना भोजन भेज दिया। (१) आज मैं इन सबको जीमकर पेट भरे लेता हूँ। बहुत दिनोंसे मैं भोजनके बिना मरा जा रहा था। मुझे कभी भर पेट भोजन मिल नहीं पाता। आज विधाताने मुझे इकट्ठा (भरपेट) भोजन दे डाला

१. सोध बिहीना। २. चलेउ। ३. मिले; मिल।

३२४-२६ इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलक्ष्य वा। नोचेद् गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम्॥वा०रा०
३२७ इति निश्चित्य तत्रैव दर्भानास्तीर्य सर्वतः। उपाविशंस्ते सर्वे मरणे कृतनिश्चयाः॥ अध्या०
३२८-२९ जाम्बवान् दुःखितान् दृष्ट्वा समस्तान् कपिसत्तमान्॥ —भट्टिकाव्य
उवाच-रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः।
३३०-३१ मनुष्यभावमापन्ने स्वेच्छया परमात्मनि। वयं वानररूपेण जातस्तस्यैव मायया॥अध्यात्मरा०
३३२-३४ सम्पातिर्नामनाम्ना तु चिरजीवी विहंगमः। कन्दरादभिनिष्क्रम्य स विन्ध्यस्य महागिरेः।
उपविष्टान् हरीन् दृष्ट्वा हृष्टात्मा गिरमब्रवीत्।
३३५-३६ विधिः किल नरः लोके विधानेनानुवर्तते। यथायं विहितो भक्ष्यश्चिरान् मह्यमुपागतः॥वाल्मी०

डरपे, गीध-बचन सुनि काना। अब भा मरन, सत्य हम जाना।
कपि सब उठे गीध-कहँ देखी। जामवंत-मन सोच बिसेखी। (३)
कह अंगद, बिचारि मन-माहीं। धन्य जटायू-सम कोउ नाहीं।
३४० राम-काज-कारन तनु त्यागी। हरि-पुर गयउ परम बड़-भागी। (४)
सुनि खग, हरष-सोक-जुत बानी। आवा निकट, कपिन भय मानी।
तिन्हहिं अभय करि पूछेसि जाई। कथा सकल, तिन्ह ताहि सुनाई। (५)
सुनि संपाति, बंधु-कै करनी। रघुपति-महिमा बहु बिधि बरनी। (५॥)
दो०—मोहिं लै जाहु सिंधु-तट, देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मइँ, पइहहु, खोजत जाहि॥ २७॥
अनुज-क्रिया करि सागर-तीरा। कहि निज कथा, सुनहु कपि बीरा।
हम दोउ बंधु, प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि-निकट उड़ाई। (१)
तेज न सहि सक, सो फिरि आवा। मैं अभिमानी, रबि नियरावा।

है।' (२) गिद्धके वचन सुनते ही सब वानरोंकी घिग्घी बँध गई और वे सोचने लगे कि 'जान पड़ता है अब सचमुच हमारी मृत्यु आ पहुँची है।' तब अंगदने मनमें विचारकर कहा—'ओ हो! सचमुच जटायुके समान कोई धन्य नहीं। (३) उस परम बड़भागीने रामके कार्य (सीताकी रक्षा)-के लिये अपना शरीर-तक दे डाला और भगवान्‌के परम धाम चला गया।' यह सुनकर वह पक्षी (सम्पाती) उन वानरोंके हर्ष (जटायुके पराक्रमपर) और शोक (जटायुकी मृत्युपर) भरी वाणी सुनकर कुदकता-फुदकता उन वानरोंके पास बढ़ा चला आया। (उसे पास आते देखते ही) वानरोंकी जान सूख चली। (४) उन्हें अभय करके ('मत डरो' कहकर) और उनके पास पहुँचकर उसने जटायुका सारा समाचार आ पूछा। (अब तो वानरोंके जीमें-जी आया और) वानरोंने सारी कथा उसे विस्तारसे कह सुनाई। सम्पातीने अपने भाईका यह सत्कार्य सुनकर और अनेक प्रकारसे रामकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा—(५) 'मुझे सहारा देकर समुद्रके तटतक उठा पहुँचाओ जिससे मैं उसे (जटायुको) तिलांजलि दे सकूँ। देखो भाई! मैं केवल वचनोंसे तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ (बता सकता हूँ) कि जिसे (सीताको) तुम खोजने निकले हो वह तुम्हें अवश्य मिल जायगी'॥ २७॥ समुद्रके तटपर पहुँचकर और अपने भाई (जटायु)-की क्रिया करके उसने अपनी सारी कथा कहते हुए बताया—'देखो वानरो! हम दोनों भाई (जटायु और सम्पाती) अपनी चढ़ती जवानीमें एक बार आकाशमें सूर्यकी ओर उड़ चले। (१) जटायु जब सूर्यका ताप नहीं सह पाया तब वह तो लौट आया, पर मैं घमंडमें ऐंठा हुआ सूर्यके पासतक उड़ा चला गया। सूर्यके प्रचंड तापसे मेरे पंख ऐसे झुलस गए कि मैं

३३७-३८ श्रुत्वा तद् गृध्रवचनं वानरा भीतमानसाः। भक्षयिष्यति नः सर्वानसौ गृध्रो न संशयः॥अ०
३३९-४० अंगदः परमायस्तो हनूमंतमथाब्रवीत्। —वाल्मीकीयरामायण
अहो जटायुर्धर्मात्मा रामस्यार्थे मृतः सुधीः। मोक्षं प्राप दुरावापं योगिनामप्यरिंदमः॥अध्या०
३४१-४३ सम्पातिस्तु तदा वाक्यं श्रुत्वा वानरभाषितम्। उच्यतां वो भयं माभून्मत्तः प्लवगसत्तमाः।
तमुवाचांगदः श्रीमानुत्थितो गृध्रसन्निधौ। रावणेन हतो वीरो राघवार्थं महाबलः॥
रामेण दग्धो रामस्य सायुज्यमगमत् क्षणात्। अंगदस्य वचः श्रुत्वा सम्पातिर्हृष्टमानसः॥
३४४-४५ वाक्साहाय्यं करिष्येहं भवतां प्लवगेश्वराः। भ्रातुः सलिलदानाय नयध्वं मां जलान्तिकम्॥
३४६ सोपि तत्सलिले स्नात्वा भ्रातुर्दत्वा जलांजलिम्। संपातिः कथयामास स्ववृत्तान्तं पुरा कृतम्।
३४७ अहं पुरा जटायुश्च भ्रातरौ रूढयौवनौ। सूर्यमण्डलपर्यन्तं गंतुमुत्पतितौ मदात्॥अध्यात्म

जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि, करि घोर चिकारा। (२)
३५० मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि-करि मोंही।
बहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा। देह-जनित अभिमान छुड़ावा। (३)
त्रेता, ब्रह्म मनुज-तनु धरिहीं। तासु नारि निसिचर-पति हरिहीं।
तासु खोज पठइहिं प्रभु दूता। तिन्हहिं मिले, तैं होब पुनीता। (४)
जमिहहिं पंख, करसि जनि चींता। तिन्हहिं देखाइ दिहेसु तैं सीता।
मुनि-कै गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मन बचन, करहु प्रभु काजू। (५)
गिरि त्रिकूट-ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन, सहज असंका।
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच-रत अहई। (६)

दो०—मैं देखेउँ, तुम नाहीं, गीधहिं दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार॥ २८॥

३६० जो नाँघै सत जोजन सागर। करै सो रामकाज, मति-आगर।
मोहिं बिलोकि, धरहु मन धीरा। राम-कृपा कस भयउ सरीरा। (१)
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं।

भयंकर चीत्कार करता हुआ धरतीपर आ गिरा। (२) वहाँ चन्द्रमा नामके एक मुनिने मेरी जो यह दशा देखी तो उन्हें मुझपर बड़ी दया आ गई। उन्होंने बहुत प्रकारसे ज्ञान देकर 'मेरा अपनी देहका सारा अभिमान दूर कर दिया। (३) (उन्होंने मुझसे कहा—) त्रेता युगमें स्वयं परब्रह्म परमात्मा ही मनुष्यका रूप धारण करके आवेंगे। उनकी पत्नीको जब राक्षसोंका राजा (रावण) हर ले जायगा तब उनकी खोजके लिये प्रभु राम अपने दूत भेजेंगे। उनसे मिलते ही तू पवित्र हो जायगा। (४) तू चिन्ता मत कर। उसी समय तेरे पंख भी जम आवेंगे। तू उन्हें वह स्थान बता देना जहाँ सीताको रावणने ले जा रक्खा हो। मुनिकी वह वाणी आज सत्य हुई जा रही है। अब तुम मेरी बात मानकर प्रभु रामका सारा कार्य पूरा कर डालो। (५) देखो! लंकापुरी त्रिकूटपर बसी हुई है। वहाँ अशोक नामका एक उपवन है, जहाँ सीता चिन्तामें घुलती हुई बैठी हैं। (६) मैं तो बहुत दूरसे उन्हें यहींसे बैठा-बैठा देखे जा रहा हूँ पर तुम नहीं देख पा सकते, क्योंकि गिद्धको बहुत दूर-तक दिखाई दे जाता है। मैं तो बहुत बूढ़ा हो चला हूँ, नहीं तो तुम्हारी कुछ न कुछ सहायता कर ही देता॥ २८॥ देखो! इस सौ योजन (१२८०० किलोमीटर) चौड़े समुद्रको जो लाँघ जाय वही बुद्धिमान् व्यक्ति रामका कार्य कर सकता है। मुझे देखकर तुम भी धीरज (साहस) रक्खो। देखो! रामकी कृपासे मेरा शरीर कैसा (चंगा) हो गया? (पंख निकल आए)। (१) जिनका नाम स्मरण करके पापी पुरुष भी अपार भवसागर तर जाते हैं, उनके तो तुम दूत ही ठहरे।

३४८-४९ निर्दग्धपक्षः पतितो विन्ध्येऽहं वानरर्षभाः। —वाल्मीकीयरामायण
३५०-५१ बोधयामास मां चन्द्रनामा मुनिकुलेश्वरः।
३५२ त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणोऽव्ययः। रावणश्चोरवन्नीत्वा लंकायां स्थापयिष्यति॥
३५३ तस्याः सुग्रीवनिर्देशात् वानराः परिमार्गणे। आगमिष्यन्ति जलधेस्तीरं तत्र समागमः॥
३५४ तदा सीतास्थितिं तेभ्यः कथयस्व यथार्थतः। तदैव तव पक्षौ द्वावुत्पत्स्येते पुनर्नवौ॥
३५६-५७ लंका नाम नगर्यास्ते त्रिकूटगिरिमूर्धनि। तत्राशोकवने सीता राक्षसीभिः सुरक्षिता।
३५८-५९ दृश्यते मे न सन्देहः सीता च परिदृश्यते। गृध्रत्वात् दूरदृष्टिर्मे नात्र संशयितुं क्षमम्॥
३६० शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं यस्तु लंघयेत्। स एव जानकीं दृष्ट्वा तनुरायास्यति ध्रुवम्॥
३६१ पश्यंतु पक्षौ मे जातौ नूतनावतिकोमलौ॥ —अध्यात्मरामायण

तासु दूत तुम, तजि कदराई। राम हृदय धरि, करहु उपाई। (२)
अस कहि, गरुड़ ! गीध जब गयऊ। तिन्हके मन अति बिसमय भयऊ।
निज-निज बल सब काहू भाखा। पार जाइ-के संसय राखा। (३)
जरठ भयउँ अब, कहै रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल-लेसा।
जबहिं त्रिविक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी। (४)
दो०—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी-महँ दीन्हीं, सात प्रदच्छिन धाइ॥ २९॥
३७० अंगद कहइ, जाउँ मैं पारा। जिय संसय कछु, फिरती बारा।
जामवंत कह, तुम सब लायक। पठइय किमि, सब-ही-कर नायक। (१)
कहइ रीछपति, सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना।
पवन-तनय ! बल पवन समाना। बुधि-बिवेक-बिज्ञान-निधाना। (२)
कवन सो काज कठिन जग-माहीं। जो नहिं होइ तात ! तुम-पाहीं।
राम-काज-लगि तव अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्बताकारा। (३)

इसलिये अधीरता छोड़कर रामको हृदयमें धारण करके थोड़े साहससे काम लो।' (२) (काकभुशुण्डि कहते हैं)-'देखो गरुड ! यह कहकर जब वह गिद्ध चला गया तो उसकी बातोंसे उन वानरोंके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ।' फिर क्या था ! सब उठ-उठकर अपना-अपना बल बताने लगे, पर समुद्रके पार जा पा सकनेमें किसीको अपनेपर विश्वास नहीं हो पा रहा था। (३) ऋक्षराज जामवन्तने कहा—'देखो भाई ! मैं तो बहुत बूढ़ा हो चला हूँ। अब शरीरमें पहले-जैसा वह बल भी नहीं रह गया है जब खरको मार डालनेवाले रामने वामन-अवतार लिया था। तब मैं अच्छा हट्टा-कट्टा जवान था और मेरे शरीरमें भी बड़ा बल था। (४) बलिको बाँधते समय प्रभु इतने बड़े हो गए थे कि उनके उस (विराट्) शरीरका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी मैंने दो ही घड़ी (४८ मिनट)-में दौड़कर उनके उस (विराट्) शरीरकी सात प्रदक्षिणाएँ कर डाली थीं॥ २९॥ यह सुनकर अंगदने कहा—'मैं पार तो जा सकता हूँ, पर लौट भी आ सकूँगा या नहीं इसीमें कुछ सन्देह हो रहा है।' जामवन्तने उससे कहा—'देखो, तुम सब कुछ कर सकते (पार जा-आ सकते) हो, पर तुम तो हम सबके नेता हो। तुम्हें भला कैसे भेजा जा सकता है?'॥ १॥ तब जामवन्तने हनुमान्से कहा—'बलवान् हनुमान् ! तुम क्या चुप्पी साधे बैठे हो ? तुम तो पवनके पुत्र हो और बलमें भी पवनके ही समान हो। बुद्धि, विवेक और विज्ञानमें भी तुम किसीसे कम नहीं हो। (२) बताओ ! संसारमें ऐसा कौन-सा कठिन कार्य है जो तुम्हारे किए हो नहीं पा सकता ! तुम्हारा तो अवतार ही रामका कार्य करनेके लिये हुआ है।' इतना सुनना था कि हनुमान् बढ़ते-बढ़ते पर्वतके

३६२-६३ यन्नामस्मृतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं तीर्त्वा गच्छति दुर्जनोपि परमं विष्णोः पदं शाश्वतम्। तस्यैव स्थितिकारिणस्त्रिजगतां रामस्य भक्ताः प्रिया यूयं किं न समुद्रमात्रतरणे शक्ताः कथं वानराः। अध्या०
३६४-६५ इत्युक्त्वा तान् कपीन् पृष्ट्वा स संपातिर्गतस्तदा। अथ ते वानराः सर्वे प्रोचुः स्वं स्वं बलं तदा। न कोपि गमने शक्तः शतयोजनसागरे। —आनन्दरामायण
३६६-६९ पुरा त्रिविक्रमे देवे पादं भूमानलक्षणम्। त्रिसप्तकृत्वोऽहमगां प्रदक्षिणविधानतः॥ इदानीं वार्धकग्रस्तो न शक्नोमि विलंघितुम्। —अध्यात्मरामायण
३७० अंगदोप्याह मे गन्तुं शक्यं पारं महोदधेः। पुनर्लंघनसामर्थ्यं न जानाम्यस्ति वा न वा॥
३७१ तमाह जाम्बवान् वीरस्त्वं राजा नो नियामकः। न युक्तं त्वां नियोक्तुं मे त्वं समर्थोसि यद्यपि॥
३७२ इत्युक्त्वा जाम्बवान् प्राह हनूमन्तमवस्थितम्। हनूमन् किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे॥
३७३-७५ त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः। रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोसि महात्मना। अध्या०

कनक - बरन, तन तेज बिराजा। मानहु अपर गिरिन - कर राजा।
सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहि नाँघउँ जलधि अपारा[1]। (४)
सहित सहाय रावनहिं मारी। आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी।
जामवंत ! मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावन दीजहु मोही। (५)
३८० ऐतना करहु तात ! तुम जाई। सीतहिं देखि, कहहु सुधि आई।
तब निज भुज - बल राजिव - नैना। कौतुक लागि संग कपि - सैना। (६)
छंद—कपि - सेन संग, सँघारि निसिचर, राम सीतहिं आनिहैं।
त्रैलोक - पावन सुजस, सुर - मुनि - नारदादि बखानिहैं।
जो सुनत, गावत, कहत, समुझत, परम - पद नर पावई।
रघुवीर - पद - पाथोज - मधुकर दास - तुलसी गावई॥ [३]
दो०—भव - भेषज रघुनाथ - जस , सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह - कर सकल मनोरथ , सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥३० क॥
सो०—नीलोत्पल तन स्याम , काम-कोटि-सोभा - अधिक।
३८१ सुनिय तासु गुन - ग्राम , जासु नाम अघ-खग-बधिक॥३० ख॥

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विशुद्ध-संतोषसंपादनो नाम चतुर्थः सोपानः समाप्तः॥

समान लंबे ऊँचे होकर उठ चले। (३) उनके सुनहरे शरीरपर ऐसी दमक आ छाई, मानो दूसरा पर्वतोंका राजा सुमेरु सामने आ खड़ा हुआ हो। हनुमान्‌ने बार-बार सिंहनाद करते हुए कहा—'यह अपार समुद्र मेरे सामने है क्या ? मैं इसे खेल-खेलमें लांघे डाल सकता हूँ (४) और रावणके सहायकोंके साथ-साथ उसे मारकर त्रिकूट पर्वत यहाँ उखाड़कर ला धर सकता हूँ। देखो जामवन्त ! इस विषयमें मैं तुमसे ही पूछता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए ?' (५) (जामवंतने कहा—) देखो ! तुम इतना ही करो कि सीताको देख भर आओ और उनका समाचार आकर बता दो। फिर तो कमल-नयन राम अपने साथ वानरोंकी सेना लेकर अपने भुज-बलसे (६) राक्षसोंको मारकर सीताको स्वयं ले ही आवेंगे और फिर देवता और नारद आदि मुनि त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाला वह सुयश बड़े प्रेमसे वर्णन करते फिरेंगे, जिसे सुनने, कहने और समझनेसे ही मनुष्यको परम पद प्राप्त हो जायगा। रामके चरण-कमलका भौंरा यह तुलसीदास भी तो वही (सुयश) सदा गुनगुनाता रहता है। [३] रामका यश तो संसारके सब रोग दूर करनेकी (एक मात्र) औषधि है। इसे जो स्त्री और पुरुष सुनेंगे, उनकी सारी इच्छाएँ त्रिशिराके वैरी राम तत्काल पूरी कर डालेंगे॥ ३० क॥ नीले कमलके समान साँवले और करोड़ों कामदेवोंसे भी बढ़कर शोभावाले उन रामके गुणोंको तो सुनते ही रहना चाहिए जिनका नाम ही पापोंको ऐसे नष्ट कर डालता है जैसे पक्षियोंको बधिक॥ ३० ख॥

१. जलनिधि खारा।

---

३७५ श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमानतिहर्षितः। बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः॥
३७६-७८ चकार नादं सिंहस्य ब्रह्मांडं स्फोटयन्निव। लंघयित्वा जलनिधिं कृत्वा लंकां च भस्मसात्॥
रावणं सकुलं हत्वा नेष्ये जनकनंदिनीम्। लंकां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्॥
३८० श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत्। दृष्ट्वैवागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम्॥
३८१ पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम्। —अध्यात्मरामायण

॥ कलियुगके सारे पाप नष्ट कर डालनेवाले रामचरितमानसका शुद्ध संतोष उत्पन्न करनेवाला नामका चौथा सोपान (किष्किंधाकाण्ड) समाप्त हुआ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

•

पंचम सोपान

(सुन्दर-कांड)

•

[श्लोकाः]

१ शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ॥ १ ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये , सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे , कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥ २ ॥

अतुलितबलधाम[1] स्वर्णशैलाभदेहं , दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं , रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ३ ॥

शान्त, सनातन (सदासे बने रहनेवाले), अप्रमेय (जिसके समान कोई नहीं है), पापसे रहित, साक्षात् मोक्ष रूपवाले, परम शान्ति देनेवाले, ब्रह्मा, शम्भु और शेष जिनकी निरन्तर सेवा करते रहते हैं और वेदान्तसे ही जिनका ठीक परिचय मिलता है (जो केवल ब्रह्म है), उन सर्वव्यापक, देवताओंमें सबसे बड़े, अपनी मायाके बलसे मनुष्य रूपमें दिखाई देनेवाले, सब पाप हरनेवाले, करुणाके भंडार, रघुकुलमें श्रेष्ठ, राजाओंके शिरोमणि, राम कहलानेवाले जगदीश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

राम ! मैं सत्य कह रहा हूँ, और फिर आप तो सबके घट-घटमें विराजमान हैं ही (सब कुछ जानते ही हैं) कि मेरे हृदय में इसके अतिरिक्त दूसरी कोई इच्छा नहीं है कि रघुकुलमें श्रेष्ठ राम ! आप मुझे अपनी निर्भर (तीव्र, दृढ) भक्ति दे डालिए और मेरे मनसे काम आदि सब दोष दूर कर डालिए ॥ २ ॥

जिनकी देहमें अथाह बल भरा है, जिनका शरीर सुवर्ण-पर्वत (सुमेरु)-के समान चमाचम सुनहरा चमकता है, जो दैत्योंको उसी प्रकार नष्ट कर डालते हैं जैसे वनको अग्नि-देव जला डालते हैं, जो ज्ञानियोंमें सबसे बढ़कर हैं और सम्पूर्ण गुणोंसे भरे हैं ऐसे वानरोंके स्वामी तथा रामके प्रिय भक्त पवनपुत्र हनुमान्को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

---

१. धामं ।

जामवंत - के वचन सुहाये। सुनि, हनुमंत - हृदय अति भाये।
१० तब - लगि मोहिँ परिखेहु[१] तुम भाई। सहि दुख कंद - मूल-फल खाई। (१)
जब - लगि आवौं सीतहिँ देखी। होइ[२] काज, मोहिँ हरष बिसेखी।
अस कहि, नाइ सबनि - कहँ माथा। चलेउ हरषि, हिय धरि रघुनाथा। (२)
सिंधु - तीर ऐक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ तेहि[३] ऊपर।
बार - बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन - तनय बल भारी। (३)
जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता। सो चलि गयउ पताल तुरंता[४]।
जिमि अमोघ रघुपति - कर बाना। एही[५] भाँति चला हनुमाना। (४)
जलनिधि रघुपति - दूत बिचारी। तैं मैनाक होइ स्रम हारी। (४॥)
दो०—हनूमान, कर परसा, तेहि[६] पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम - काज कीन्हें बिनु, मोहिँ कहाँ बिस्राम ॥ १ ॥

जामवंतके सुन्दर वचन सुनकर हनुमान् बोले—'अच्छा भाई ! तुम लोग थोड़े दिन कष्ट सहकर और कन्द-मूल-फल खाकर तबतक मेरी बाट जोहते रहना (१) जबतक मैं सीताको टोह लेकर लौट नहीं आता। इस समय मेरा मनमें ऐसा हर्ष उमड़ा पड़ रहा है कि जान पड़ता है काम अवश्य होकर ही रहेगा।' इतना कहकर उन्होंने सबको मस्तक नवाया और हृदयमें रामका ध्यान करते हुए हनुमान् बहुत प्रसन्न होकर चल पड़े। (२) वहीं समुद्रके तीरपर ही बड़ा सुन्दर पर्वत था जिसपर झट सरलतासे उछलकर हनुमान जा चढ़े। बार-बार रामका स्मरण करते हुए अत्यन्त बलवान् हनुमान् उस पर्वतके शिखरोंपर इतनी धमकके साथ उछल-उछलकर कूदने लगे कि (३) जिस भी टेकरीपर हनुमान्के पैर जा पड़ते थे वहीं तुरन्त पातालमें (नीचे) जा धँसता था। फिर वहाँसे हनुमान् ऐसे वेगसे उड़ चले जैसे रामका अमोघ (अचूक) बाण चला जा रहा हो। (४) जब समुद्रने देखा कि रामका दूत उड़ा चला आ रहा है तो उसने समुद्रमें डूबे पड़े हुए मैनाक पर्वतसे कहा—'देख मैनाक ! तू ऊपर उठकर निकल खड़ा हो जिससे ये तुझपर थोड़ी देर सुस्ताकर अपनी थकावट मिटा लें। (४॥) (पर ज्योंही मैनाक पर्वत ऊपर उठकर निकला त्योंही) हनुमान्ने उसे हाथसे छूकर (उसकी सेवा-भावनाका सम्मान करके और उसे)प्रणाम करके कहा—'देखो भाई ! (यह तो तुम्हारी कृपा है कि तुम मुझे विश्राम देनेके लिये निकल खड़े हुए हो। पर) रामका काम किए बिना मुझे विश्राम लेनेका अवकाश कहाँ है ॥१॥ जब देवताओंने देखा कि पवनपुत्र हनुमान्

१. परिखहु। २. होइहि। ३. ता। ४. चलेउ सो गा पाताल तुरंता। ५. तेही। ६. तेहि परसा, कर।

९-१० जाम्बवद्वचनं श्रुत्वा शोभनं वायुनन्दनः। अब्रवीन्मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरया गिरा ॥
दुःखं सहित्वा भुक्त्वा च कन्दमूलफलादिकम्।
भ्रातरो मां प्रतीक्षध्वं तावद् यूयं दृढव्रताः॥ —लोमशरामायण
११-१२ आगच्छेयं मुदा दृष्ट्वा यावज्जनकनन्दिनीम्। भविष्यत्याशुकार्यं च हर्षः सूचयतीव मे ॥
इत्युक्त्वा तान्नमस्कृत्य हर्षेण महता युतः। ध्यायं ध्यायं रघुश्रेष्ठं प्रययौ दक्षिणां दिशम् ॥
१३-१४ सुन्दरं भूधरस्त्वेकमासीदब्धितटे कपिः। ध्यात्वा पुनः पुनः रामं कौतुकादारुरोह तम् ॥
ततो गर्जद्धरिवरो बलेन महता युतः।
१५-१६ प्रक्षिप्तो यत्र दत्वांघ्री स शैलोऽगाद्रसातलम्। यथाऽमोघा रामबाणास्तथैव हनुमान् ययौ ॥लोम०रा०
१७ समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकांचनपर्वतम्। गच्छत्येष महासत्वो हनूमान् मारुतात्मजः ॥
रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थं तस्य त्वं सचिवो भव। —अध्यात्मरामायण
१८-१९ तदा तं हनुमानाह रामकार्ये न मे श्रमः। मैनाकस्तं पुनः प्राह स्वस्पर्शात् पावयस्व माम् ॥
तथेति स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः। —आनन्दरामायण

२० जात पवनसुत देवन देखा। जानै - कहँ बल - बुद्धि बिसेखा।
सुरसा नाम अहिन - कै माता। पठइन्हि, आइ कही तेहि[1] बाता। (१)
आज सुरन मोहिं दीन्ह अहारा। सुनत बचन, कह पवन - कुमारा।
रामकाज करि, फिरि मैं आवौं। सीता - कै सुधि, प्रभुहिं सुनावौं। (२)
तब तुव वदन पैठिहौं आई। सत्य कहौं, मोहिं जान दे माई।
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहिं, कहेउ हनुमाना। (३)
जोजन भरि तेहि बदन पसारा। कपि, तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा।
सोरह जोजन मुख तेहि ठयऊ। तुरत पवन - सुत बत्तिस भयऊ। (४)
जस - जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।
सत जोजन तेहि आनन कीन्हाँ। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हाँ। (५)

(लंका) चले जा रहे हैं, तो उन्होंने सुरसा नामकी सर्पोंकी माताको यह समझनेके लिये कह भेजा कि जाकर देखो इनमें (सीताकी टोह लगा पानेकी) शक्ति और बुद्धि है भी या नहीं। उस सुरसा-ने आते ही हनुमान्‌को देखकर कहा–(१) 'आ हा ! आज तो देवताओंने (हनुमानके रूपमें) मेरे लिये भरपेट भोजन यहाँ जुटा भेजा है।' पवनपुत्र हनुमानने उससे (विनयपूर्वक) कहा––'देखिए ! (अभी तो आप कृपा करके मुझे अपना भोजन मत बनाइए क्योंकि मैं इस समय तो रामके कामसे चला जा रहा हूँ।) रामका काम करके जब मैं लौट आऊँ और सीताका सब समाचार प्रभु-तक पहुँचते आऊँ (२) तब मैं (स्वयं) आपके मुँहमें आ समाऊँगा (आप मुझे खाकर भूख बुझा लीजिएगा)। देखिए माता ! मैं जो कह रहा हूँ उसमें तनिक भी झूठ न समझिए। अभी आप मुझे (मत रोकिए) चला जाने दीजिए।' पर जब वह किसी भी प्रकार उन्हें जाने देनेको तैयार ही न हुई तब हनुमान्‌ने सुरसासे कहा––'जब यही बात है तो ठीक है। लीजिए मुझे खा ही लीजिए।' (३) यह सुनते ही झट उस (सुरसा)-ने अपना मुँह एक योजन (चार कोस) चौड़ा फाड़ खोला। हनुमान्‌ने झट बातकी बातमें अपना शरीर दूना लम्बा कर खड़ा किया। सुरसा भी कम नहीं थी। उस (सुरसा)-ने सोलह योजन चौड़ा मुँह फाड़ खोला तो हनुमान् भी तुरन्त बत्तीस योजन लम्बे-चौड़े बन खड़े हुए। (४) यह समझिए कि सुरसा अपना मुँह जितना-जितना चौड़ाती जाय, उससे दुगने-दुगने हनुमान् भी उससे लम्बे होते चले जायँ। जब वह (सुरसा) सौ योजन लम्बा मुँह फाड़ बैठी तब हनुमान्‌को क्या सूझी कि वे बहुत ही नन्हें‌से बन गए (५) और उसके मुँहमें घुसकर बाहर निकलकर आ खड़े

१. तिहि।

२० दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः। परीक्षणार्थं सत्वस्य वानरस्य मियोऽब्रुवन् ॥
गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः। लंकां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम् ॥
२१ एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम्। अब्रवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः ॥
गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्नं समाचर। ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता ॥
इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात्। आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत् ॥
२२-२३ एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते। देवैस्त्वं कल्पितो भक्ष्यः क्षुधासंपीडितात्मनः ॥
तामाह हनुमान् मातरहं रामस्य शासनात्। गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः ॥
रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम्।
२४-२५ निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोऽस्तुते। इत्युक्ता पुनरेवाह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥
प्रविश्य गच्छ मे वक्त्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम्। इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय॥अध्या०
२६ व्यादाय विपुलं वक्त्रं स्थिता सा मारुतेः पुरः। वा.रा.। हनुमान् द्विगुणं रूपमादधच्छ्र तदद्वचाः ।अ०रा०
२७-२९ चकार सुरसा वक्त्रं शतयोजनमायतम्। स संक्षिप्यात्मनः कायं जीमूत इव मारुतिः ॥
तस्मिन्मुहूर्ते हनुमान् बभूवांगुष्ठमात्रकः। –वाल्मीकीयरामायण

३० वदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगा बिदा, ताहि सिर नावा।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि-बल-मरम तोर मैं पावा। (६)
दो०—राम-काज सब करिहहु, तुम बल-बुद्धि-निधान।
आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान॥२॥
निसिचरि एक सिंधु-महुँ रहई। करि माया नभ-के खग गहई।
जीव-जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह-कै परिछाहीं। (१)
गहै छाँह, सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगन-चर खाई।
सोइ छल हनूमान-कहँ कीन्हाँ। तासु कपट कपि तुरतहिं चीन्हाँ। (२)
ताहि मारि, मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गयउ मति-धीरा।
तहाँ जाइ देखी बन-सोभा। गुंजत चंचरीक मधु-लोभा। (३)
४० नाना तरु फल-फूल सुहाए। खग-मृग-वृन्द देखि मन भाए।
सैल बिसाल देखि एक आगे। ता-पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे। (४)

हुए और उसे सिर नवाकर प्रार्थना करने लगे—'अब तो मुझे जाने दीजिए।' (आपका कहना भी हो गया कि मेरे मुँहमें समा जाओ; इसलिये अब तो जाने दीजिए)। (यह सुनकर सुरसा बोली—)' देवताओंने मुझे तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारे बलकी थाह लेने भेजा था, वह सब मैं ठोक-बजाकर भली-भाँति देख चुकी। (६) (मुझे पक्का विश्वास हो गया कि) तुम रामका सब काम अवश्य करके आओगे। तुममेँ सचमुच बहुत बल भी है और बुद्धि भी है।' यह आशीर्वाद देकर सुरसा तो (देवलोककी ओर) चलती बनी और हनुमान् हर्षित होकर आगे उड़ चले। ॥२॥ वहाँ (लंका)-के समुद्रमें एक ऐसी राक्षसी (सिंहिका) छिपी पड़ी रहती थी जो ऐसी माया जानती थी कि जो भी पक्षी उधरसे उड़ता निकल जाय उसे ही पकड़ खींचती थी। जो भी जीवजन्तु उधर आकाशमें उड़कर आता, उसकी छाया जलमें पड़ी देखते ही (१) वह उसकी परछाहीं ऐसे पकड़ लेती थी कि वह उड़ ही नहीं पाता था और उस पक्षीको धर दबोच खाती थी। बस, उसने वही छल हनुमान्के साथ भी जा खेला। पर हनुमान् तुरन्त उसकी चाल ताड़ गए। (२) वीर और धीर बुद्धिवाले हनुमान्ने उसे वहीं धर पछाड़ा और देखते-देखते समुद्र लाँघकर उस पार लंकामें जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे (लंकाके) वनकी शोभा निहारते हुए देखते क्या क्या हैं कि चारों ओर मधुके लोभी भौंरे गूंजते हुए मँडराए जा रहे हैं। (३) (सारा वन) अनेक प्रकारके सुहावने फलों और फूलों से लदा पड़ा है। वहाँके पशुओं और पक्षियोंको देख-देखकर तो वे मन ही मन और भी प्रसन्न हुए जा रहे थे। आगे बढ़कर ज्योंही उन्होंने देखा कि आगे एक विशाल पर्वत सिर उठाए खड़ा है, तो वे निर्भय होकर उछलकर उसपर जा चढ़े। (४)

३०-३२ प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः। प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः॥
देवैः संप्रेपिताऽहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे। —अध्यात्मरामायण
३२-३३ गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतांवर। दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः॥
इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः। जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट्॥
३४-३८ सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा। आकाशगामिनां छायामाकृष्याकृष्य भक्षयेत्॥
किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहाऽग्रहीत्। तया गृहीतो हनुमांश्चिन्तयामास वीर्यवान्॥
केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा। दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते॥
एवं विचिन्त्य हनुमानधो दृष्टिं प्रसारयत्। तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम्॥
पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा। पुनरुत्प्लुत्य हनुमान् दक्षिणाभिमुखो ययौ॥
३९-४० ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्रुमम्। नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम्॥अध्या०

उमा ! न कछु कपि-कै अधिकाई । प्रभु-प्रताप, जो कालहिं खाई ।
गिरि-पर चढ़ि लंका तेहिं देखी । कहि न जाइ, अति दुर्ग बिसेषी । (५)
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा । कनक कोट-कर परम प्रकासा । (५।।)

छंद—कनक कोट बिचित्र, मनि-कृत, सुंदरायतना घना ।
चउहट्ट, हट्ट, सुबट्ट, बीथी, चारु पुर, बहु बिधि बना ।
गज-वाजि-खच्चर-निकर पदचर-रथ-बरूथनि को गनै ।
बहुरूप निसिचर-जूथ, अति बल सेन, बरनत नहिं बनै ।। १ ।।
बन, बाग, उपबन, बाटिका, सर, कूप, बापी सोहहीं ।
५० नर-नाग-सुर-गंधर्व-कन्या-रूप मुनि-मन मोहहीं ।
कहुँ माल देह बिसाल सैल-समान अति बल गर्जहीं ।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु बिधि एक-एकन्ह तर्जहीं ।। २ ।।
करि जतन, भट कोटिन, बिकट तन, नगर चहुँ दिसि रच्छहीं ।
कहुँ महिष, मानुष, धेनु, खर, अज, खल निसाचर भच्छहीं ।
ऐहि लागि तुलसीदास इनकी कथा कछु ऐक है कही ।
रघुबीर-सर-तीरथ, सरीरनि त्यागि, गति पैहहिं सही ।। ३ ।।

(शिव कहते हैं—) 'देखो उमा ! इसमें हनुमान्‌की कोई विशेषता मत समझ बैठना (कि वे लंकामें इतनी सरलतासे जा पहुँचे), यह तो प्रभु रामके उस प्रतापकी करामात है जो कालको भी खड़े-खड़े निगल जाता है ।'

उस पर्वतपर चढ़कर हनुमान्‌ने देखा कि लंका क्या है इतना लंबा-चौड़ा बड़ा गढ़ है कि उसका वर्णन किसीके किए नहीं हो सकता । (५) वह लंकाका दुर्ग ऊँचा तो है ही, साथ ही चारों ओर समुद्रसे भी घिरा हुआ है । (उस दुर्गके) सब ओर घिरा हुआ सोनेका परकोटा चारों ओरसे बहुत सुनहरा चमचमाए जा रहा है । (५।।) उस सोनेके परकोटेमें स्थान-स्थानपर रंग-बिरंगे मणि (नग) जड़े हुए हैं । उस परकोटेके घेरेमें एकसे एक सुन्दर अनगिनत भवन बने खड़े हैं । स्थान-स्थानपर चौराहे, हाट, बढ़िया-बढ़िया चौड़ी-चौड़ी सड़कें और गलियाँ हैं । सारा नगर बहुत सुन्दर ढंगसे सजा फैला है । उस नगरमें इतने अधिक हाथी, घोड़े, खच्चर, पैदल और रथ भरे पड़े हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती । वहाँ न जाने कितने रूपोंवाले राक्षसोंके दलके दल घूमते फिर रहे हैं जिनकी अत्यन्त बलवती सेनाका वर्णन करते नहीं बन पा रहा है । [१] स्थान-स्थानपर) वन, उपवन, बाग, उद्यान, फुलवारी, सरोवर, कुएँ और बावड़ियाँ उस नगरकी शोभामें चार चाँद लगाए जा रही हैं । वहाँ मनुष्य, नाग, देवता और गन्धर्वोंकी इतनी सुन्दरी-सुन्दरी कन्याएँ घूमती दिखाई दे रही हैं कि उनका सौन्दर्य देखकर मुनियोंका मन भी मोहित हो उठे । हनुमान् देखते हैं कि कहीं पर्वतके समान लंबे-चौड़े बड़े डील-डौलवाले पहलवान गरजते हुए ताल ठोंकते चले जा रहे हैं और अनेक अखाड़ोंमें बहुत दाँव-पेंच लड़ाते, एक दूसरेसे भिड़ते और आपसमें एक दूसरेको ललकारे जा रहे हैं; [२] कहीं बड़े भयंकर-भयंकर रूपोंवाले करोड़ों योद्धा बहुत चौकन्ने होकर चारों ओरसे नगरकी रखवाली किए जा रहे हैं । कहीं देखते हैं कि बहुतसे दुष्ट राक्षस भैंस, मनुष्य, गाय, गदहे और बकरे मार-मारकर कच्चा चबाए जा रहे हैं । तुलसीदासने तो इनका थोड़ा-सा परिचय इसलिये दे डाला है कि ऐसे-ऐसे दुष्ट राक्षस भी रामके बाणोंके तीर्थमें शरीर त्यागकर

४३ ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्द्धनि । —वाल्मीकीयरामायण

दो०—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पइसार ॥ ३ ॥

मसक - समान रूप, कपि धरी। लंकहिं चलेउ, सुमिरि नर - हरी।
६० नाम लंकिनी, एक निसिचरी। सो कह, चलेसि मोहिं निंदरी। (१)
जानेहि नाहिं मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।
मुठिका एक महा - कपि हनी। रुधिर बमत, धरनी ढनमनी। (२)
पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि, कर बिनय ससंका।
जब रावनहिं ब्रह्म बर दीन्हाँ। चलत बिरंचि कहा, मोहिं चीन्हाँ। (३)
बिकल होसि तैं कपि - के मारे। तब जानेसु, निसिचर संघारे।
तात! मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन, राम - कर दूता। (४)

(रामके बाणोंसे मारे जाकर) निश्चय ही परम गति प्राप्त कर लेंगे। [३] जब हनुमान्‌ने देखा कि नगरमें इतने रक्षक पहरेपर डटे खड़े हैं तो उन्होंने मनमें यही निश्चय किया कि रात हो आनेपर नन्हाँ-सा बनकर ही नगरमें निकलना ठीक होगा ॥ ३ ॥ हनुमान् मच्छरके समान (नन्हें-से) बनकर नर-रूपधारी रामका स्मरण करके लंका देखने निकल पड़े। (लंकाके द्वारपर ही) लंकिनी नामकी एक राक्षसी पहरेपर बैठी रहती थी। (हनुमान्‌की पहली मुठभेड़ उसीसे हो गई)। (हनुमान्‌को देखते ही) वह ललकार उठी—'अच्छा! मेरी आँख बचाकर तू किधर डग बढ़ाए घुसा चला जा रहा है? (१) अरे शठ! तू मुझे पहचानता नहीं। देख! यहाँ जो भी कोई चोरी करनेकी नीयतसे आ पहुँचता है उसे मैं यहीं बैठी-बैठी डकार जाती हूँ।' यह सुनते ही महाकपि हनुमान्‌ने आव देखा न ताव, उसके मुँहपर तानकर ऐसा घूँसा जमाया कि वह मुँहसे लहू फेंकती हुई धरतीपर जा लुढ़की। (२) पर तुरन्त ही लंकिनी सँभलकर (कुछ स्मरण करती हुई) उठ बैठी और हाथ जोड़कर बहुत डरती हुई कहने लगी—'जब रावणको वर देने ब्रह्मा आए थे, तभी चलते समय उन्होंने मुझसे भी इतना कह दिया था कि तुझे राक्षसोंके विनाशके समयकी पहचान बताए जाता हूँ कि (३) जब किसी बन्दरका मुक्का खाकर तू तड़प उठेगी तब समझ लेना कि राक्षसोंके दिन पूरे हो चले हैं। देखो हनुमान्! मैं बड़ी पुण्यशालिनी हूँ कि मैं भर-आँखों रामके दूतके दर्शन कर पा रही हूँ। (४)

५५-५६ राक्षसेंद्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम्। पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥
प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः। त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादनिनादितम् ॥
वाजिह्रेषित - संघुष्टमद्भुतैश्चहयैस्तथा। रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः। भूषितं रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥
रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः। —वाल्मीकीयरामायण

५७-५८ प्रवेक्ष्यामि कथं लंकामिति चिन्तातुरोऽभवत्। रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लंकां रावणपालिताम्।
५९-६० एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लंकां जगाम सः। धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान् ॥
प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लंका व्यतर्जयत्। कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लंकिनीम् ॥
६१-६३ हनूमानपि तां वाममुष्टिनाऽवज्ञयाऽहनत्। तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम्।
उत्थाय प्राह सा लंका हनूमन्तं महाबलम्। हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लंका त्वयाऽनघ ॥
६४-६५ पुराऽहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये। त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ॥
तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम्। त्वया च भर्त्सितः सोपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना ॥
तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदाऽनघे। तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥
६६ धन्याऽहमप्यद्य चिराय राघवस्मृतिर्मयासीद् भवपाशमोचनी।
तद्भक्तसंगोऽप्यतिदुर्लभो मम प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥ —अध्यात्मरामायण

दो०– तात ! स्वर्ग - अपबर्ग-सुख , धरिय तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि , जो सुख : लव सतसंग ।। ४ ।।
प्रबिसि नगर कीजै सब काजा । हृदय राखि, कोसलपुर - राजा ।
७० गरल सुधा, रिपु करै मिताई । गोपद सिंधु, अनल सितलाई । (१)
गरुड़ ! सुमेरु रेनु - सम ताही । राम, कृपा करि, चितवा जाही ।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर, सुमिरि भगवाना । (२)
मंदिर - मंदिर प्रति करि सोधा । देखे जहँ - तहँ अगनित जोधा ।
गयउ दसानन - मंदिर - माहीं । अति बिचित्र, कहि जात सो नाहीं । (३)
सयन किए देखा कपि तेही । मंदिर - महँ न दीखि बैदेही ।
भवन एक, पुनि दीख सुहावा । हरि - मंदिर तहँ भिन्न बनावा । (४)
दो०—रामायुध अंकित गृह , सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका - बृन्द तहँ , देखि हरष कपिराइ ।। ५ ।।

देखो भाई ! यदि स्वर्ग और मोक्षके सारे सुख तराजूके एक पलड़ेपर उठा रक्खे जायँ तब भी वे क्षण भरके सत्संगके बराबर नहीं हो पा सकते । ।। ४ ।। आप हृदयमें रामका ध्यान करके नगरमें पहुँचकर (रामके) सब काम पूरे कर डालिए ।' (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! जिसपर रामकी एक बार भी कृपा-दृष्टि घूम जाय, (उस प्राणीके लिये) विष भी अमृत हो जाता है, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, समुद्र भी सिमटकर गौके खुरके गढ़ेके बराबर नन्हाँ-सा हो रहता है, अग्नि भी शीतल हो जाती है (१) और सुमेरु पर्वत भी धूलके कणके समान (नन्हाँ-सा) बन रहता है ।' हनुमान् तत्काल बहुत नन्हेंसे बनकर और भगवान् रामका स्मरण करके नगरमें पैठ चले । (२) उन्होंने जा-जाकर लंकाका एक-एक भवन छान मारा (पर उनमें कहीं सीता नहीं दिखाई पड़ीं) । उन्होंने देखा कि चारों ओर चहल-पहल मची हुई है । जहाँ-तहाँ अगणित योद्धा इधर-उधर घूम रहे हैं । (सबकी आँख बचाकर) वे दबे पाँव रावणके राजभवनमें जा पैठे । वह (भवन) इतने अधिक विचित्र ढंगसे बना हुआ था कि उसका वर्णन किसी भी प्रकार किया नहीं जा सकता । (३) वहाँ जाकर हनुमान्ने देखा कि रावण तो पड़ा खर्राटे भर रहा है, पर उस भवनमें सीता कहीं नहीं दिखाई पड़ रही हैं । वहाँसे निकलकर वे बाहर आए तो लंकामें उन्हें एक सुहावना-सा ऐसा भवन दिखाई पड़ गया जिसके साथ ही भगवान्का मंदिर भी अलग बना हुआ था । (४) रामायुध (धनुष-बाण)-के चिह्नोंसे अंकित वह भवन इतना सुन्दर लगता था कि उसकी शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता । वहाँ तुलसीके हरे-हरे बिरवे देखकर तो कपिराज हनुमान् प्रसन्न

६७-६८ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।भागवत
६९ हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लंका त्वयाऽनघ । —अध्यात्मरामायण
७०-७१ विषं सुधा भवेन्मित्रं रिपुः सिन्धुश्च गोष्पदम् । शीततां च भजत्यग्निर्गुरुर्मेरु रजः समः ।।
यं पश्यति कृपा दृष्ट्या रामस्तं खगनायक । —लोमशरामायण
७२-७३ ततो जगाम हनुमान् लंकां परमशोभनाम् । रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम् ।अ०
अपश्यद्यत्र तत्रैव असंख्याकान् भटान्कपिः । —वैनतेयसंहिता
७४-७५ सीताऽन्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम् । —अध्यात्मरामायण
तस्मिन् सीतामदृष्ट्वा तु रावणस्य गृहे शुभे । तत्पार्श्वे च गृहे शेते राक्षसानां च नायकः । आनंद०
७६ सुन्दरं भवनं त्वेकमपश्यन्मारुतात्मजः । आसीद्यतः पुनर्भिन्नं हरिमन्दिरमद्भुतम् ।।
७७-७८ रामायुधैरंकितमेव गेहमवर्णनीया खलु यस्य शोभा ।
तत्रैव नूत्नं तुलसीसमूहं दृष्ट्वाऽतितुष्टो हनुमान्कपीशः ।। —अगस्त्यरामायण

लंका, निसिचर - निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन - कर बासा।
८० मन - महँ तरक करै कपि लागा। तेही समय बिभीषन जागा। (१)
राम - राम तेहि सुमिरन कीन्हाँ। हृदय हरष, कपि सज्जन चीन्हाँ।
ऐहि - सन हठि करिहौं पहिचानी। साधु - तें होइ न कारज - हानी। (२)
बिप्र - रूप धरि, बचन सुनाए। सुनत बिभीषन, उठि तहँ आए।
करि प्रनाम, पूछी कुसलाई। बिप्र ! कहहु निज कथा बुझाई। (३)
की तुम हरि - दासन - महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।
की तुम राम - दीन - अनुरागी। आयहु मोहिं करन बड़ - भागी। (४)
दो०—तब हनुमंत कही सब, राम - कथा, निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक, मन, मगन, सुमिरि गुन - ग्राम ॥ ६ ॥
सुनहु पवन-सुत ! रहनि हमारी। जिमि दसननि-महँ जीभ बिचारी।

हो उठे। (५) (वे अपने मनमें सोचने लगे कि—) 'लंकामें तो सब राक्षस ही राक्षस भरे पड़े हैं, यहाँ कहाँसे सज्जन आ बसे ?' हनुमान् अभी इसी उधेड़-बुनमें पड़े थे कि उसी समय विभीषणकी नींद खुल गई। (१) वे राम-नाम जपते हुए उठ बैठे। हनुमान्ने (उनके मुँहसे राम-नाम सुनकर) समझ लिया कि ये साधु (सज्जन) पुरुष होंगे और इससे उनके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। (उन्होंने मनमें निश्चय कर लिया कि) जैसे भी होगा मैं इनसे परिचय करके ही रहूँगा क्योंकि साधु पुरुषसे (लाभ भले ही न हो पर) हानि नहीं हो सकती (काम नहीं बिगड़ सकता; इनसे हमारे काममें सहायता ही मिलेगी)। (२) हनुमान्ने ब्राह्मणका रूप बना लिया और उन्हें जा पुकारा। सुनते ही विभीषण झपटे नीचे उतर आए। हनुमान्को प्रणाम करके उन्होंने कुशल पूछकर कहा—'कहिए विप्र ! क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ ? (१) क्या आप भी कोई हरि-भक्त हैं ? (आपको देखकर न जाने क्यों) मेरे हृदयमें बड़ा प्रेम उमड़ा पड़ रहा है। आप दीनोंसे प्रेम करनेवाले स्वयं राम ही तो नहीं हैं जो मुझे यह गौरव प्रदान करने यहाँ उठे चले आए हैं।' (४) यह सुनकर हनुमान्ने रामकी सारी कथा उन्हें कह सुनाई और अपना नाम भी बतला दिया। सुनते ही दोनोंके शरीर पुलकित हो उठे। रामके गुणोंका स्मरण कर-करके दोनों प्रेममें मग्न हो चले। (६) (सब शिष्टाचार हो चुकनेपर विभीषणने कहा—) 'देखिए पवनसुत हनुमान् ! मैं तो यहाँ ऐसा (दबा-दबासा) रहता हूँ जैसे दाँतोंके बीच बेचारी जीभ दबी रहती है (कि न जाने कब दाँतों-तले आ जाय, न जाने कब रावण मुझे मार भगावे)। यह तो बताइए भाई ! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुलके नाथ राम कभी मुझपर भी कृपा करेंगे

७९-८२ लंकानगर्यां निवसन्ति राक्षसाः क्व चेह वासः खलु सज्जनस्य वै।
स्वान्ते वितर्कं कृतवान्कपीश्वरो विभीषणः प्राह तदा हरे हरे॥
श्रुत्वा तदीयां मधुराक्षरां गिरं बभूव हृष्टो हृदये हरीश्वरः।
उवाच चेत्थं मनसि स्वके तदा न साधुयोगो विफलो महीतले॥
८३-८४ भूत्वाथ विप्रः प्रययौ तदन्तिकं सुश्रावयामास मनोहरां गिरम्।
उत्थाय तत्रागतवान्महात्मा विभीषणो भागवतप्रधानः॥
कृत्वा प्रणामं कुशलं तदीयं पप्रच्छ राजेन्द्र कथां च दिव्याम्।
८५-८६ किं भवान्हरिदासो मे प्रीतिरुत्पद्यते हृदि। कृपां कृत्वाऽथवा रामस्त्वमेव स्वयमागतः॥
८७-८८ तदा श्रीहनुमानाह स्वकं नाम हरेः कथाम्। श्रुत्वा विभीषणस्तुष्टः स्मारं स्मारं हरेर्गुणान्॥
८९ कपीश्वरं प्राह मुदा महात्मा वसाम्यहं राक्षसवृन्दमध्ये।
जिह्वेव दन्तावलिमध्यगात्रं वदामि किं वृत्तमतः स्वकीयम्॥ —पुलस्त्यरामायण

९० तात ! कबहुँ मोहिं जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु - कुल - नाथा। (१)
तामस - तन कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद - सरोज मन - माहीं।
अब मोहिं भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि-कृपा मिलहिं नहिं संता। (२)
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हाँ। तौ तुम मोहिं दरस हठि दीन्हाँ।
सुनहु बिभीषन ! प्रभु - कै रीती। करहिं सदा सेवक - पर प्रीती। (३)
कहहु, कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल, सब ही बिधि हीना।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन, ताहि न मिलै अहारा। (४)

दो०—अस मैं अधम, सखा ! सुनु, मोहू - पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा, सुमिरि गुन , भरे बिलोचन नीर॥ ७॥

जानतहू अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी।
१०० एहि बिधि कहत राम - गुन - ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा। (१)
पुनि सब कथा बिभीषन कहई[1]। जेहि बिधि जनक-सुता तहँ रहई[2]।
तब हनुमंत कहा, सुनु भ्राता। देखी[3] चहौं जानकी माता। (२)

या नहीं ? (१) मेरे तामसी शरीरसे न तो कुछ साधन (भजन-पूजन) ही बन पड़ता और न भगवान्‌के चरण-कमलोंमें प्रीति ही हो पाती। देखो हनुमान् ! (न जाने क्यों) अब मुझे विश्वास हो रहा है कि रामने मुझपर कृपा कर दी है, क्योंकि जबतक हरिकी कृपा नहीं हो जाती तबतक सन्तोंसे भेंट नहीं हो पाती। (२) यह रामकी ही कृपा हुई है कि आप अनायास ही मुझसे आ मिले हैं।' (यह सुनकर हनुमान्‌ने कहा—) 'देखिए विभीषण ! यह तो प्रभु रामकी रीति ही है कि जो उनके सेवक होते हैं उनसे वे सदा प्रेम करते ही हैं। (३) मुझे ही देख लीजिए कि मैं ही कहाँका कुलीन हूँ। मैं जातिका तो चञ्चल वन्दर हूँ ही, साथ ही सब प्रकारसे ओछा भी हूँ। यहाँ-तक कि सबेरे-सबेरे कोई मेरा नाम ले बैठे तो वह दिन-भर अन्नका मुँह न देख पावे। (४) देखो सखा ! ऐसा तो मैं अधम हूँ (इससे अधम और कोई क्या हो सकता है ?) पर प्रभु रामकी बड़ाई देखिए कि ऐसे मुझपर भी उनकी कृपा बनी रहती है।' रामके गुणोंका स्मरण कर-करके उनकी आँखें छलछला उठीं॥ ७॥ (वे फिर कहने लगे—) 'प्रभु रामका यह स्वभाव जानकर भी जो ऐसे स्वामीको भूलकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, वे भला दुखी न होंगे तो क्या होंगे।' इस प्रकार रामके गुणोंका वर्णन करके उन्हें बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। (१) तब विभीषणने हनुमान्‌को सब बता दिया कि जानकी लंकामें किस प्रकार कहाँ रह रही हैं। यह सब जान लेनेपर हनुमान्‌ने कहा—'भाई ! अब तो मैं जाकर तत्काल माता जानकीके दर्शन कर ही लेना चाहता हूँ।' (२) विभीषणने भी सब

१. कही। २. रही। ३. देखा।

९० दीनातिदीनं नितरामनाथं कदापि मां श्रीरघुवंशनाथः।
सदा सनाथं करुणार्द्रदृष्ट्या करिष्यतीदं कथय द्रुतं त्वम्॥ —पुलस्त्यरामायण
९१-९२ तामसीयं तनुर्मे हि साधनं नापि विद्यते। अद्याशा मे समुत्पन्ना भवतो दर्शनाद् ध्रुवम्॥हनु०रा०
९३-९४ श्रीरामानुग्रहेणैव दर्शनं प्राप्तवानहम्। सेवके प्रीतिरधिका श्रीरामस्य विभीषण:॥
९५-९८ सखे किं कुलीनो हरिश्चञ्चलोऽहं विहीनः परैः कर्मभिर्ब्रूहि भक्त।
तथापीदृशे चाधमे भक्तवंद्यो ह्यकार्षीत्कृपां रामचन्द्रो दयालुः॥ —हनुमद्रामायण
९९-१०० जानन्तश्चापि विस्मृत्य राममेतादृशं प्रभुम्। भ्रमन्ति ये भवेयुस्ते कथं नो दुःखभागिनः॥
इत्थं रामगुणग्रामं कथयन्तावुभावपि। अनिर्वाच्यञ्च विश्रामं प्रापतुः कपिराक्षसौ॥ आन०रा०
१०१-२ पुनराह कथां सर्वां कपेरग्रे विभीषणः। यथातिष्ठज्जनकजा तत्राशोकवने सती॥
तदाह हनुमान् राजन् भ्रातः शृणु विभीषण। मातरं द्रष्टुमिच्छामि सीतां रामप्रियां सतीम्॥

जुगुति, बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत, बिदा कराई।
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवाँ। बन असोक, सीता रह जहँवाँ। (३)
देखि मनहि-महँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि-जामा।
कृस तनु, सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति-गुन-श्रेनी। (४)
दो०—निज पद नयन दिए, मन, रामचरन-महँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥८॥
तरु-पल्लव-महँ रहा लुकाई। करै बिचार, करौं का भाई।
११० तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि, बहु किए बनावा। (१)
बहु बिधि खल सीतहिँ समुझावा। साम-दाम[1]-भय-भेद देखावा।
कह रावन, सुनु सुमुखि! सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी। (२)
तव अनुचरी करौं पन मोरा। बार बिलोकु एक, मम ओरा[2]।
तृन धरि ओट, कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही। (३)

उपाय उन्हें भली-भाँति समझा बताए (कि किस प्रकार जानकीसे मिला जा सकता है)। सब समझकर हनुमान् उनसे विदा लेकर वहाँसे चल पड़े। फिर वही (ब्राह्मणका-सा) वेष बनाए हुए वे उस अशोक-वाटिकामें जा पहुँचे जहाँ सीता रह रही थीं। (३) सीताको देखते ही उन्होंने मन ही मन उन्हें प्रणाम कर लिया। (वहाँ छिपकर बैठे हुए) हनुमान्ने देखा कि सीताने रातके चारों पहर बैठे-बैठे काट दिए (एक पलको भी सोई नहीं)। (हनुमान्ने देखा कि) सीता सूखकर काँटा हो चली हैं, सिरपर बालोंकी एक चोटी बनी छितराई हुई है और दिन-रात बैठे-बैठे हृदयमें रामके गुण जपे जा रही हैं। (४) वे (जानकी) अपने नेत्र अपने चरणोंकी ओर झुकाए और मन रामके चरणोंमें लगाए बैठी हुई हैं। जानकीकी यह दयनीय दशा देखकर हनुमान्का जी रो उठा ॥ ८ ॥ अशोक वृक्षके पत्तोंकी ओटमें छिपे वे सोचने लगे कि इस दशामें करूँ भी तो क्या करूँ (इनसे मिलूँ तो कैसे मिलूँ)। उसी समय हनुमान् देखते क्या हैं कि रावण अपनी पत्नी (मन्दोदरी)-के साथ बड़े राजसी-ठाट-बाटसे उधर बढ़ा चला आ रहा है। (१) वह दुष्ट आते ही सीताको साम, दाम, दंड और भेदके हथकंडे दिखलाता हुआ बहुत डराने-धमकाने-फुसलाने लगा और कहने लगा—'देखो सयानी, सुमुखी! सुनो मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि तुम बस एक बार मेरी ओर देख भर दो (२) तो मैं अपनी मन्दोदरी आदि सब रानियोंको तुम्हारी दासी बनाकर रख छोड़ूँ।' तत्काल परम स्नेही अयोध्यापति रामका स्मरण करके तिनकेकी ओट देकर (कि तुझे मैं तृणके समान तुच्छ समझती हूँ) जानकीने उसे मुँहतोड़ उत्तर दिया—(३) अरे दशमुख! (तू मुझे समझ

१. दान। २. एक बार बिलोकु मम ओरा।

१०३-४ बिभीषण: समस्तां वै युक्तिमश्रावयत् क्षणात्। आकर्ण्य प्राप्य चानुज्ञां गत: पवननन्दन: ॥
पुन: कृत्वापि तद्रूपं गतस्तत्र कपीश्वर:। यत्राशोकवने सीताऽतिष्ठद्रामा प्रिया सती ॥
१०५-६ दृष्ट्वा स्वान्ते प्रणामं वै कृतवान्पवनात्मज:। उपविष्टो व्यतीता च याममाना विभावरी ॥ आन०रा०
एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम्। भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् ॥ अध्या०
१०७-८ दत्ते स्वपादयोर्नेत्रे रामांघ्रौ लयतां गताम्। मनोऽभवत्कपिर्दु:खी दीनां सीतां विलोक्य च ॥ ब्रह्मरा०
१०९ अशोकवृक्षमारुह्य पुष्पाढ्यं नवपल्लवम्। आशां चक्रे हरिस्तत्र सेयं सीतेति संस्मरन् ॥
सीतां निरीक्ष्य वृक्षाग्रे यावदास्तेऽनिलात्मज:। —नृसिंहपुराण
११०-११ स्त्रीभि: परिवृतस्तत्र रावणस्तावदागत:। आगत्य सीतां प्राहाथ प्रिये मां भज कामुकम् ॥ वा.रा.
११२-१३ मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रिय:। तास्त्वां संप्रचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥ नृ०पु०
११४ रावणस्य वच: श्रुत्वा सीताऽमर्षसमन्विता। उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥ अध्या०

सुनु दसमुख ! खद्योत - प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ।
अस मन समुझु, कहति जानकी । खल ! सुधि नहिं रघुबीर बान - की । (४)
सठ ! सूने हरि आनेहि मोहीं । अधम ! निलज्ज ! लाज नहिं तोहीं । (४।।)
दो०—आपुहिं सुनि खद्योत - सम , रामहिं भानु - समान ।
परुष बचन सुनि,काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ।। ९ ।।
१२० सीता ! तैं मम कृत अपमाना । कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना ।
नाहिं त, सपदि मानु मम बानी । सुमुखि ! होति न त जीवन - हानी । (१)
स्याम - सरोज - दाम - सम सुंदर । प्रभु-भुज करि- कर - सम दसकंधर ।
सो भुज कंठ, कि तव असि घोरा । सुनु सठ ! अस प्रवान पन मोरा । (२)
चंद्रहास ! हर मम परितापं । रघुपति - बिरह - अनल - संजातं ।
सीतल निसित बहसि[1] वर धारा । कह सीता, हरु मम दुख भारा । (३)
सुनत बचन पुनि मारन धावा । मय - तनया कहि नीति बुझावा ।

क्या बैठा है ?) कहीं जुगनूके प्रकाशसे कमलिनी खिला करती है ?' (कुछ रुककर) जानकी फिर ललकार-कर बोल उठीं—'अरे दुष्ट ! तू अपने मनमें भली भाँति समझ रख कि तू अभी रामके बाणोंको पहचानता नहीं है (४) अरे शठ ! नीच, ! निर्लज्ज ! तुझे (अपने इस दुष्कर्मपर) तनिक भी लज्जा नहीं आती कि तू मुझे अकेला पाकर वहाँसे हर ले आया !' (४।।) सीताके मुँहसे यह कठोर वचन सुनकर रावण बहुत खिसिया गया कि मैं जुगनू हूँ और राम सूर्य हैं। वह म्यानसे खड्ग खींचकर बोला—(९) 'देख सीते ! मैं देख रहा हूँ कि तू मेरा बड़ा अपमान किए जा रही है। अब या तो तू झटपट मेरा कहा मान जा, नहीं तो अभी इसी कठोर कृपाणसे तेरा सिर उतारे लेता हूँ। देख, सुमुखी ! (यदि तूने मेरी बात नहीं मानी) तो तुझे अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ जायगा।' (१) सीताने कड़ककर कहा—'अरे शठ ! तू भी कान खोलकर सुन ले। मेरा प्रण है दशकंधर ! कि या तो नीले कमलकी मालाके समान सुन्दर और हाथीकी सूँडके समान पुष्ट प्रभुकी भुजा ही मेरे कण्ठमें पड़ेगी या तेरा कठोर कृपाण ही।' (२) (फिर वे कृपाणसे कहने लगीं)—'अरे चन्द्रहास ! आ बढ़ और रामके विरहकी अग्निसे जो ज्वाला मेरे हृदयमें उठी हुई है वह (मुझे मारकर) तू बुझा डाल।' सीता कहती जा रही थीं—'अरे कृपाण ! तेरी धार बड़ी शीतल, तीखी और पैनी है। अतः, तू मेरा यह दुःखोंका बोझ आकर दूर कर डाल।' (३) यह सुनना था कि वह रावण सीताको मारनेके लिये (इतना बड़ा वीर होकर भी) झपट पड़ा पर मन्दोदरीने

1. निसि तव असि।

११५ अपि खद्योतभासाऽपि समुन्मीलति पद्मिनी। —प्रसन्नराघव
११६-१७ राघवाद्बिभ्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम्। रहिते राघवाभ्यां तु शुनीव हविरध्वरे।।
हृतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात्।
११८-१९ श्रुत्वा रक्षःपतिः क्रुद्धो जानक्या परुषाक्षरम्। वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्य सत्वरः।।अध्या०
१२०-२१ तदिदानीमपि दशकण्ठभुजाश्लेषं मेऽपनमनुजानीहि।
१२२-२३ विरम विरम रक्षः किं मुधा जल्पितेन स्पृशति नहि मदीयं कंठ सीमानमन्यः।
रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्तेर्दशमुख भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात्।।
१२४-२५ चन्द्रहास हर मे परितापं रामचन्द्रविरहानलजातम्।
त्वं हि कान्तिजितमौक्तिकचूर्णं धारया वहसि शीतलमंभः।। —प्रसन्नराघव
१२६ हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनम्। मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता।।

कहेसि सकल निसिचरिन्हि बोलाई। सीतहिं बहु बिधि त्रासहु जाई। (४)
मास दिवस-महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढ़ि कृपाना। (४॥)

दो०—भवन गयउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनि-बृन्द।
१३० सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद॥१०॥

त्रिजटा नाम राछसी एका। राम-चरन-रति-निपुन-बिबेका।
सबन्हौं बोलि सुनाऐसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना। (१)
सपने बानर लंका जारी। जातुधान-सेना सब मारी।
खर-आरूढ़, नगन दससीसा। मुंडित सिर, खंडित भुज बीसा। (२)
ऐहि बिधि, सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर-दोहाई। तब प्रभु, सीता बोलि पठाई। (३)
यह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य, गए दिन चारी।
तासु बचन सुनि, ते सब डरीं[1]। जनकसुता-के चरननि परीं[2]। (४)

उसे रोककर उसे विस्तारसे नीतिकी बात कह समझाई (कि तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, स्त्रीकी हत्या करना पाप है)। तब रावणने वहाँकी सब निशाचरियोंको बुलाकर यह आज्ञा दे दी—'देखो! तुम सब यहाँ रहकर सीताको भली प्रकार डराओ-धमकाओ। (४) यदि यह महीने भरके भीतर सीधी राहपर आ जाती है (मेरा कहना मान लेती है) तो ठीक है, नहीं तो मैं इसी तलवारसे काटकर इसका सिर उड़ा धरूँगा।' (४॥) (यह कहकर) रावण तो अपने राजभवन लौट गया और इधर वे सब निशाचरियाँ अनेक प्रकारके बड़े भयंकर-भयंकर रूप बना-बनाकर सीताको डराने-धमकाने लगीं॥ १०॥ (उन राक्षसियोंमें) एक त्रिजटा नामकी राक्षसी भी थी, जो बड़ी समझदार थी और रामके चरणोंसे प्रीति भी करती थी। उसने सब राक्षसियोंको बुलाकर अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाते हुए समझाया—'देखो! तुम लोग अपना कल्याण चाहो तो (यह डराना-धमकाना छोड़कर) जाकर सीताकी सेवा करने लगो। (१) देखो, मैंने स्वप्न देखा कि एक बंदर लंका आया हुआ है और वह सारी लंका जलाए डाल रहा है। राक्षसोंकी सारीकी सारी सेना मार डाली गई है। रावण नंगे बदन गदहेपर चढ़ा बैठा है, उसके सब (दसों) सिर मुँडे हुए हैं, बीसों भुजाएँ कट गिरी हैं (२) और वह दक्षिण दिशा (यमलोक)-की ओर बढ़ा चला जा रहा है। लंका (-की राजगद्दी) मानो विभीषणको मिल गई है। नगर-भरमें रामकी दुहाई घूम फिरी है और प्रभु रामने सीताको बुला भेजा है। (३) मैं तुम सबसे पुकारकर कहे डालती हूँ; देखती रहना कि यह स्वप्न बस दो-चार दिनमें (शीघ्र) ही सत्य हुआ जाता है।' उस (त्रिजटा)-की बातें सुनकर तो सबके पैरों तलेसे धरती खिसकने लगी (डरके मारे घिघियाने लगीं) और जा-जाकर जानकीके पैरों

१. डरहीं। २. परहीं।

१२७-२८ ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः। यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना॥अध्या०रा०
तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनाहरणादिभिः। अध्या०॥ न मासे प्रतिपत्ताऽसि मां चेन्मर्तासि मैथिलि॥ भट्टि०
१२९-३० गते तस्मिन्समाजग्मुर्भयाय प्रति मैथिलीम्। राक्षस्यो रावणप्रीत्यै क्रूरं चोचुरलं वचः।
१३१-३२ एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः। निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत्॥
१३३-३४ स्वप्ने रामेण संदिष्टः कश्चिदागत्य वानरः। दग्ध्वा लंकापुरीं सर्वां हत्वा सेनां च रावणीम्॥अध्या०
रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः। प्रस्थितो दक्षिणामाशां प्रविष्टः कर्दमं ह्रदम्॥ वा०रा०
१३५-३८ विभीषणायाधिपत्यं दत्वा सीतां शुभाननाम्। अंके निधाय स्वपुरं गमिष्यति न संशयः।
त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रियः। —अध्यात्मरामायण

दो०—जहँ-तहँ गईं सकल तब[1], सीता, कर मन सोच।
१४० मास दिवस बीते मोहिं, मारिहि निसिचर पोच ॥ ११ ॥
त्रिजटा - सन बोली कर जोरी। मातु! बिपति - संगिनि तैं मोरी।
तजौं देह, करु बेगि उपाई। दुसह बिरह, अब नहिं सहि जाई। (१)
आनि काठ, रचु चिता बनाई। मातु! अनल पुनि देहि लगाई।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनइ को स्रवन, सूल - सम बानी। (२)
सुनत बचन, पद गहि समुझाएसि। प्रभु - प्रताप-बल - सुजस सुनाएसि।
निसि न अनल मिल, सुनु सुकुमारी। अस कहि, सो निज भवन सिधारी। (३)
कह सीता, बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक, मिटिहि न सूला।
देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत, एकौ तारा। (४)
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहिं जानि हतभागी।
१५० सुनहि बिनय मम, बिटप असोका। सत्य नाम करु, हरु मम सोका। (५)

पड़-पड़कर क्षमा माँगने लगीं। (४) वे सब (निशाचरियाँ) जब (क्षमा माँगकर) इधर-उधर हो गईं और चली गईं तब सीताके मनमें यह चिन्ता बढ़ चली कि 'यह नीच राक्षस (रावण) एक महीना बीतनेपर तो मुझे मारे बिना छोड़ेगा नहीं' ॥११॥ (यह सोचकर सीताने) हाथ जोड़कर त्रिजटासे कहा—'माता ! तू ही मेरे दुख-सुखकी संगिनी है। तू झटपट कोई ऐसा उपाय कर डाल कि मैं अपना शरीर त्याग दूँ क्योंकि अब यह दुःसह विरह मुझसे सहा नहीं जा रहा है। (१) माता ! तू बस इतना भर कर दे कि थोड़ी लकड़ी लाकर और उनकी चिता रचकर उनमें आग दिखा दे। और सयानी ! (रामसे या तुझसे जो) मेरी प्रीति है उसे तू सत्य कर (डालनेमें बस इतनी-भर सहायता कर) दे। रावणकी वह शूलके समान (कठोर) वाणी अब कौन (रात-दिन बैठे) अपने-कानों सुना करे ?' (२) सीताके वचन सुनकर त्रिजटाने (सीताके) चरण पकड़कर उन्हें बहुत ढाढस बँधाते हुए रामका प्रताप, बल और सुयश सुनाकर कहा—'देखो सुकुमारी ! अब तो बहुत रात चढ़ आई है। इतनी रातको भला आग मिल कहाँ पावेगी ?' इतना कहकर वह तो अपने घर चल दी। (३) इधर सीता मन ही मन सोचे जा रही थीं—(क्या करूँ ?) मेरा भाग्य ही उलट चला है। न कहींसे मुझे आग मिल पावेगी, न मेरी पीडा ही मिट पावेगी। आकाशमें (ये तारे) अंगारे-जैसे दिखाई तो दे रहे हैं, पर इनमेंसे एक भी तारा यहाँ धरतीपर आकर टूट नहीं गिर रहा है। (४) चन्द्रमामें भी अग्नि ही अग्नि भरी पड़ी है, पर वह भी मुझे अभागिन समझकर यहाँ आग नहीं बरसा रहा है।' (फिर वे अशोक-वृक्षसे कहने लगीं)—'अरे अशोकके वृक्ष ! (और कोई नहीं तो) तू ही मेरी प्रार्थना सुनकर मेरा शोक दूर करके अपना 'अशोक' (शोक दूर करनेवाला) नाम सत्य कर डाल। (५) तेरी ये नई-नई कोंपलें भी तो अग्निके ही समान

१. मिलि।

१३९-४० यत्र तत्र गताः सर्वाश्चिन्तयामास जानकी। स्वान्ते मासे व्यतीते वै मां हनिष्यति रावणः॥महा०रा०
१४१-४४ इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥ —अध्यात्म रामायण
१४५-४६ वचः श्रुत्वा गृहीत्वांघ्री त्रिजटा तामबोधयत्। प्रतापं रामचन्द्रस्य बलं चाश्रावयद्यशः ॥
सुकुमारि शृणु त्वं वै निशि नाग्निर्मिलिष्यति। इत्युक्त्वा रामचन्द्रं सा स्मरन्ती स्वगृहं गता ॥नार०
१४७-४८ आह सीता पुनर्वाक्यं प्रतिकूलोऽभवद्विधिः। न मिलिष्यति वह्निर्वै मच्छूलं च न यास्यति ॥
दृश्यते प्रकटं वह्निराकाशेऽवनिमण्डले। आगच्छति न चैकाऽपि तारा दुःखहरो मम ॥
१४९ सोमोऽप्यग्निमयो वह्निं मन्येऽहमिति वर्षति। वियोगव्याकुला नैव ज्ञात्वा मां हतभागिनीम् ॥पुल.रा.

नूतन किसलय अनल - समाना। देहि अगिनि, तन[1] करहि निदाना।
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि, कलप-सम बीता। (६)
सो०—कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि, उठि कर गहेउ॥ १२॥
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम - नाम - अंकित अति सुन्दर।
चकित चितव मुँदरी पहिचानी। हरष - बिषाद हृदय अकुलानी। (१)
जीति को सकै अजय रघुराई। माया-तें असि रचि नहिं जाई।
सीता, मन बिचार कर नाना। मधुर वचन बोलेउ हनुमाना। (२)
रामचंद्र - गुन बरनै लागा। सुनतहि, सीता - कर दुख भागा।
१६० लागी सुनै, श्रवन - मन लाई। आदिहुँ - तें सब कथा सुनाई। (३)

(लाल) हैं। तो तू ही मुझे थोड़ी अग्नि देकर मुझे जला डाल।' सीताको इस प्रकार विरहमें बिलखते देख-देखकर हनुमान्का एक-एक क्षण एक-एक कल्पके समान बीता जा रहा था। (६) तभी हनुमान्के मनमें (न जाने क्या) विचार आया कि उन्होंने (रामकी दी हुई) वह अँगूठी ऊपर पेड़से नीचे टपका गिराई। उसे देखते ही सीताने क्या समझा कि (मेरी प्रार्थनापर) अशोक वृक्षने ही ऊपरसे अँगारा टपका गिराया है। फिर क्या था! वे बहुत हर्षित होकर उठीं और उन्होंने बढ़कर वह अँगूठी हाथमें ले उठाई॥ १२॥ उसे उठाकर हाथमें लेकर सीता देखती क्या हैं कि उस सुन्दर, मनोहर अँगूठीपर तो रामका नाम खुदा हुआ है। अँगूठी पहचानते ही वे भौचक्की रह गईं, और फिर (रामकी अँगूठी मिलनेसे) हर्ष और (यह सोचकर कि रामके हाथसे निकलकर अँगूठी यहाँ आ कैसे पहुँची इस) विषादके कारण वे व्याकुल हो उठीं। (१) (वे सोचने लगीं—) 'रामको जीत पाना संसारमें किसीके भी वशकी बात नहीं है। उन्हें कौन जीतनेवाला है (कि उन्हें जीतकर उनकी अँगूठी उतार लावे)। दूसरी किसी भी माया (कारीगरी, जादू, छल)-से ऐसा अँगूठी गढ़ी जाकर बन नहीं पा सकती।' यह सोच-सोचकर सीताके मनमें बड़ी उलझन बढ़ी चली जा रही थी। (इसी समय) हनुमान्ने (अशोक वृक्षपर बैठे-बैठे) धीरे-धीरे बोलना प्रारंभ कर दिया। (२) पहले तो उन्होंने रामके गुणोंका ऐसा वर्णन किया कि उसे सुनकर सीताका साराका सारा दुःख ही पिघल बहा (जाता रहा)। वे मन और कान लगाकर (एकाग्र होकर रामके गुणोंकी गाथा) ध्यानसे सुनने लगीं। हनुमान्ने सारी (सुग्रीवकी मित्रताके समयसे लेकर लंकामें पहुँचने तककी) कथा वहीं बैठे-बैठे सुना डाली। (३) (यह

---

१ जनि : इसमें कुछ निदान (सोच-विचार या आगा-पीछा) 'मत' करो।

१५०-५१ विशोकां कुरु मां क्षिप्रमशोकं प्रियदर्शनः। सत्यनामा भवाशोक अशोकः शोकनाशनः॥महा.भा.
१५२ दृष्ट्वात्यन्तवियोगेन व्याकुलां वसुधात्मजाम्। व्यतीतः कपिराजस्य समः कल्पेन स क्षणः॥जैमि०रा०
१५३-५४ कपिर्विचिन्त्य हृदये मुद्रिकां पातयत् तदा। अशोकोऽग्निकणं प्रादादिति मत्वा धरासुता॥
हर्षादुत्थाय जग्राह पाणिना तां पतिव्रता॥ —श्वेतकेतुरामायण
१५५-५६ अपश्यन्मुद्रिकां रम्यां रामनामांकितां शुभाम्। तदातिचकिता सीता ज्ञात्वा तां राममुद्रिकाम्॥
आकुलाहर्षशोकाभ्यामीक्षते तां पुनः पुनः॥ —वसिष्ठरामायण
१५७-५८ अजेयं राघवं जेतुं समर्थः को धरातले। माययैतादृशी रम्याऽरचनीया हि मुद्रिका॥
सीताऽनेकान् विचारांश्च चित्ते कृतवती सती। अस्मिन्नवसरे प्राह मारुतिर्मधुरं वचः॥वशि०रा०
१५९-६० देव्या दशाननवचोमयवज्रदीर्णकर्णान्तरव्रणविरोपणभेषजानि।
विस्रंभणार्थमयमन्वयसंगतानि रामाभिकीर्तनमधूनि शनैर्व्यषिंचन्॥ —चम्पूरामायण

श्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कहि, सो प्रगट होत किन भाई।
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी, मन बिसमय भयऊ। (४)
राम - दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान - की।
यह मुद्रिका मातु! मैं आनी। दीन्हि राम, तुम-कहँ सहिदानी। (५)
नर - बानरहिं संग कहु कैसे। कही कथा, भइ संगति जैसे। (५॥)
दो०—कपि-के बचन सप्रेम सुनि, उपजा मन बिस्वास।
जाना मन-क्रम-बचन यह, कृपासिन्धु - कर दास॥ १३॥
हरिजन जानि, प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन, पुलकावलि ठाढ़ी।
बूड़त बिरह - जलधि हनुमाना। भयउ तात मो - कहँ जल-जाना। (१)
१७० अब कहु कुसल, जाउँ बलिहारी। अनुज-सहित सुख-भवन खरारी।
कोमल - चित, कृपालु, रघुराई। कपि! केहि हेतु धरी निठुराई। (२)

सब सुनकर सीता चुप न रह सकीं। वे कह उठीं—) 'भाई! जो मेरे कानोंको यह अमृतके समान सुहावनी प्यारी कथा सुना रहा है, वह सामने क्यों नहीं आ जाता।' इतना सुनना था कि हनुमान् झट सीताके सामने नीचे आ कूदे। उन्हें देखते ही सीताने अपना मुँह फेर लिया। उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ (कि वानरके हाथ राम अपनी अँगूठी कैसे भेज सकते हैं) (४)। (यह देखकर हनुमान्ने कहा—) 'माता जानकी! मैं करुणानिधान प्रभु (राम)-की सत्य शपथ लेकर कहता हूँ कि यह अँगूठी रामने (मेरा विश्वास दिलानेके लिये) पहचानके रूपमें आपके पास भेजी है। (५) सीताने आश्चर्यसे पूछा—'पर यह तो बताओ कि यह मनुष्य और वानरका संग हो कहाँसे गया।' तब हनुमान्ने सारी कथा विस्तारसे कह सुनाई (कि किस प्रकार सुग्रीवसे मित्रता हुई थी) (५॥) जब सीताने बड़े प्रेमसे हनुमान्की सारी बातें सुन लीं तब कहीं उनके मनमें विश्वास जम पाया और वे समझ पाईं कि यह (हनुमान् सचमुच) मन, कर्म और वाणीसे कृपाके सागर रामका (सच्चा) सेवक है ॥ १३ ॥ हनुमान्को रामका दूत समझकर तो उनके मनमें हनुमान्के लिये बहुत ही प्रेम उमड़ पड़ा। उनकी आँखें डबडबा चलीं और शरीर पुलकित हो उठा। (वे गद्गद होकर बोलीं—) 'देखो हनुमान्! तुम तो विरहके सागरमें डूबती हुई मुझे (सीता)-को जहाज (बहुत बड़े आधार आ बनकर आ मिले हो। (१) मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ। अब बताओ कि सुखके धाम और खरको मार डालनेवाले राम और उनके भाई लक्ष्मण कुशलसे तो हैं न! देखो कपि! कृपालु रामका चित्त तो बड़ा ही कोमल (दयालु) है, फिर वे इतने निष्ठुर हुए क्यों बैठे हैं (कि मेरी सुध नहीं लेते)! (२) क्योंकि अपने

१६१ येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम्। स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः॥अध्यात्म
१६२ अवतीर्य शनैः सीता पुरतः समुपस्थितः। मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः॥
१६३ कल्याणि त्वद्वियोगेन तीव्रवेगेन ताम्यतः। राघवेन्द्रस्य दूतं मामन्यथा मास्म मन्यथाः॥ चम्पूरा०
१६४ अंगुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम्। सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम्॥
प्रयत्नेन मया नीतं देवि पश्यांगुलीयकम्॥ —अध्यात्मरामायण
१६५ क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम्। वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः॥वाल्मीकीय
तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः।
१६६-६७ एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्षिता। उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमभिगच्छति॥—वाल्मीकीय
१६८-६९ मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा। कपे मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे।
भक्तोऽसि प्रियकारि त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि॥ —अध्यात्मरामायण
मम चाप्यल्पभाग्यायाः सान्निध्यात्तव वानर। अस्य शोकविपाकस्य मुहूर्तं स्याद्विमोक्षणम्॥
१७० कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतांवरः। गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः॥—वाल्मी०

सहज बानि, सेवक - सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक।
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदुगाता। (३)
बचन न आव, नयन भरि बारी। अहह नाथ! हौं निपट बिसारी।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि, मृदु बचन बिनीता। (४)
मातु! कुसल प्रभु अनुज - समेता। तव दुख-दुखी सु कृपा - निकेता।
जनि जननी! मानहु जिय ऊना। तुम - तें प्रेम राम - के दूना। (५)
१७८ दो०—रघुपति - कर संदेस अब, सुनु जननी! धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर॥ १४॥
१८० राम, बियोग कहेउ तव सीता[1]। मो - कहँ सकल भए बिपरीता।
नव - तरु - किसलय मनहुँ कृसानू। कालनिसा-सम निसि, ससि भानू। (१)
कुबलय-बिपिन कुंत - बन - सरिसा। बारिद, तपत तेल जनु बरिसा।

सेवकों (भक्तों)-को सदा सुखी रखना तो उनकी स्वाभाविक बान (अभ्यास) है। अच्छा यह तो बताओ कि वे कभी मुझे स्मरण भी करते हैं या नहीं? बताओ, क्या कभी उनके श्यामल कोमल अङ्ग देखकर मेरे ये नेत्र शीतल हो सकेंगे? (क्या कभी मैं रामको इन आँखोंसे अब देख सकूँगी)।' (३) यह कहते-कहते जानकीका गला भर आया (उनसे आगे बोला नहीं गया)। उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ चले। (बड़े कष्टसे वे इतना ही कह पाईं—-) 'हा नाथ! आप तो मुझे भुला ही बैठे।' सीताको (रामके) विरहमें इतना अधिक व्याकुल देखकर कपि हनुमान् बड़ी कोमल और नम्र वाणीसे बोले—(४) 'माता! प्रभु (राम) और उनके छोटे भाई (लक्ष्मण) अत्यन्त कुशलसे हैं। उन कृपाके धाम (राम)-को यदि कोई दुःख है तो केवल आपके वियोगका दुःख है जिससे वे दुखी हुए रहते हैं। देखिए माता! आप अपना जी इतना छोटा न कीजिए। जितना प्रेम रामके लिये आपके हृदयमें है उससे दूना रामके हृदयमें आपके लिये प्रेम है। (५) इसलिये माता! अब आप बड़े धीरजके साथ, रामने जो संदेश भेजा है वह सुन लीजिए।' यह कहकर हनुमान् गद्गद हो उठे और उनकी आँखें भी डबडबा चलीं॥१४॥ (वे कहने लगे–) 'देखिए! रामने कहलाया है—हे सीते! तुम्हारे वियोगके कारण मेरे लिये संसारमें सब कुछ उलटा (प्रतिकूल) हो चला है। वृक्षोंकी नई-कोंपलें देखता हूँ तो वे अग्निके समान (ताप देती) हैं। एक-एक रात मुझे कालरात्रिके समान भयानक लगती है। शीतल चन्द्रमा भी सूर्यके समान (तपता हुआ) लगता है। (१) कमलोंके समूह आँखोंमें भालोंके समान चुभे पड़ते हैं। मेघ जब बरसने लगते हैं तो जान पड़ता है मानो वे खौलता हुआ तेल बरसाए जा रहे हैं। जो (भी प्रकृतिमें) पहले हित करनेवाले लगते थे वे सभी मानो अब पीडा देनेवाले बन

१. कहेउ राम वियोग तव सीता।

१७१-७२ मृदुस्वांत: कृपालुश्च रघुराजो दधार वै। हनूमन् कथ्यतां वृत्तं कस्माद्धेतोः कठोरताम्॥
सुखस्य दानं दास्येभ्यस्तस्यास्ति सहजः प्रणः। कदापि स्मरति श्रेष्ठो रघूणां मामपि स्वयम्॥
१७३-७४ कदापि नयने दृष्ट्वा श्यामलं मृदुविग्रहम्। मदीये शीतले तात कपिराज भविष्यतः॥
नयने साश्रुणी जाते न निःसरति तन्मुखात्। वचोऽति विस्मृता नाथ कथमस्मि गुणाकर॥
१७५ दृष्ट्वाऽत्यन्तवियोगेन व्याकुलां वसुधात्मजाम्। कोमलं वचनं प्राह कपिर्विनयपूर्वकम्॥
१७६-७७ दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः। लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानंदवर्धनः॥
तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः। न्यूनं मा मन्यथा मातः स्वचित्तेऽत्यन्तकोमले॥
भवत्यां रामचन्द्रस्य द्विगुणं प्रेम वर्तते॥
१७८-७९ धृत्वा धैर्यं प्रभोर्मातः संदेशं शृणु संप्रति। इत्युक्त्वा नेत्रयोरश्रु भृत्वासीद्गद्गदः कपिः॥वाल्मी०

जे हित रहे, करत तेइ पीरा। उरग-स्वास-सम त्रिबिध समीरा। (२)
कहेहू - तें कछु दुख घटि होइ। काहि कहौं, यह जान न कोई।
तत्त्व प्रेम - कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया! एक मन मोरा। (३)
सो मन, सदा रहत तोहिं पाहीं। जानु प्रीति - रस, ऐतनेहिं - माहीं।
प्रभु - संदेस सुनत बैदेही। मगन-प्रेम, तन सुधि नहिं तेही। (४)
कह कपि, हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम, सेवक - सुख - दाता।
उर आनहु रघुपति - प्रभुताई। सुनि मम बचन, तजहु कदराई। (५)

१९० दो०–निसिचर-निकर पतंग-सम , रघुपति - बान कृसानु।
जननी - हृदय धीर धरु , जरे निसाचर जानु ॥ १५ ॥

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंब रघुराई।
राम - बान - रबि उए जानकी। तम - बरूथ कहँ जातुधान - की। (१)
अबहिं मातु ! मैं जाउँ लेवाई। प्रभु-आयसु नहिं, राम - दोहाई।
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन - सहित अइहहिं रघुराई। (२)

बैठे हैं, यहाँतक कि शीतल, मंद, सुगंधित पवन भी ऐसा ताप देता है जैसे सर्पकी विषैली झार हो। (२) कहते हैं कि अपना दुखड़ा कहनेसे दुःख घट जाता है, पर यह कोई नहीं जानता प्रिये ! कि मैं अपना दुखड़ा रोऊँ भी तो किसके आगे रोऊँ। मेरे और तुम्हारे प्रेमका तत्त्व यदि कोई जानता है तो केवल मेरा मन ही जानता है (३) और वह मन भी सदाके लिये तुम्हारे ही पास जा बसा है। बस इतनेसे ही तुम समझ लो कि मेरा प्रेम कहाँतक पहुँच चुका है।' प्रभुका सन्देश सुनते ही रामके प्रेममें जानकी इतनी डूब चलीं कि उन्हें अपनी देह-तककी सुधि नहीं रह गई। (४) यह देखकर कपि हनुमान्ने कहा—'माता ! आप थोड़ा धीरज धरकर अपने सेवकों (भक्तों)-को सुख देनेवाले रामका स्मरण करती चलिए, अपने हृदयमें रामकी प्रभुता (शक्ति)-का भली-भाँति पूरा विश्वास जमाए रखिए और मेरे कहनेसे यह अधीरता मनसे निकाल फेंकिए। (५) ये सब राक्षस तो फतिंगे हैं जो रामके बाणोंकी आग छूते ही अपने आप भुन मरेंगे। इसलिये माता ! आप हृदयमें धीरज रखिए और राक्षसोंको भस्म हुआ ही समझिए॥ १५॥ देखिए, यदि रामको आपकी टोह मिल गई होती (कि आप यहाँ हैं), तो राम कभी विलम्ब न करते। देखिए जानकी ! अब तो बस रामके बाणका सूर्य उदय होने भरकी देर है। बाणके उस सूर्यका उदय होते ही राक्षसोंकी सेनाका अन्धकार बचा कहाँ रह पावेगा (रामके बाणोंसे सब राक्षस कट मरेंगे) (१) देखिए माता ! मैं तो आपको अभी यहाँसे लिवा ले जाता, पर रामकी दोहाई है (रामकी सौगन्ध है), प्रभु (राम)-ने इसके लिये आज्ञा ही नहीं दी। देखिए जननी ! बस कुछ ही दिन और धीरज धरे रहिए। बस थोड़े ही दिनोंमें वानरोंकी सेना लेकर राम आए जाते

१८०-८३ हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः, सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः ॥
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं, मम त्वद्विश्लेषात्सुमुखि विपरीतं जगदिदम्॥
१८४-८६ कस्याख्याय व्यतिकरममुं मुक्तदुःखो भवेयं, को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् ॥
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे। त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत्प्रिये किं करोमि॥प्रसन्नराघव
१८७ सा रामसंकीर्तनवीतशोका रामस्य शोकेन समानशोका।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा निशेव वैदेहसुता बभूव ॥ —वाल्मीकीयरामायण
१८८-८९ दृष्टा कथंचिद् भवती न कालः परिदेवितुम्। इमं मुहूर्तं दुःखानामन्तं द्रक्ष्यसि भामिनि ॥
१९०-९१ तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ राजपुत्रावनिन्दितौ। त्वद्दर्शनकृतोत्साहौ लंकां भस्मीकरिष्यतः॥ वा०रा०
१९२-९३ देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तम। करिष्यति क्षणाद् भस्म लंकां राक्षसमण्डिताम्॥ अ०

निसिचर मारि, तोहिं लै जइहँइ । तिहुँ पुर नारदादि जस गइहँइ ।
हैं सुत, कपि सब तुमहिं समाना । जातुधान अति भट बलवाना । (३)
मोरे हृदय परम संदेहा । सुनि, कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ।
कनक - भूधराकार सरीरा । समर भयंकर, अति बल - बीरा । (४)
२०० सीता - मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ । (४॥)

दो० – सुनु माता ! साखामृग , नहिं बल - बुद्धि बिसाल ।
प्रभु - प्रताप - तें गरुडहिं , खाइ परम लघु ब्याल ॥ १६ ॥

मन संतोष, सुनत कपि - बानी । भगति - प्रताप - तेज - बल - सानी ।
आसिष दीन्ह, राम - प्रिय जाना । होहु तात ! बल - सील - निधाना । (१)
अजर, अमर, गुन-निधि सुत ! होहू । करहु बहुत रघुनायक छोहू ।
करहु कृपा प्रभु, अस सुनि काना । निर्भर प्रेम - मगन हनुमाना । (२)
बार - बार नाऐसि पद सीसा । बोला बचन, जोरि कर कीसा ।

हैं । (२) वे राक्षसोंको मारकर अपने साथ आपको लिवा ले जायँगे और नारद आदि ऋषि लोग तीनों लोकोंमें प्रभु (राम)-के उस यशका वर्णन करते फिरेंगे ।' (जानकीने पूछा—) 'क्यों पुत्र ! (वानरोंकी सेनामें तो) सब वानर तुम्हारे ही समान (छोटे-छोटे)-से होंगे ? और यहाँ लंकाके राक्षस सब एकसे एक बड़े बलवान् योद्धा हैं । (३) यही देखकर मेरे हृदयमें बड़ा सन्देह हुआ जा रहा है (कि नन्हें-नन्हें वानर उनसे कैसे लोहा ले पावेंगे) ।' यह सुनना था कि हनुमान् बढ़ते-बढ़ते ऐसे लंबे-चौड़े हो खड़े हुए कि सुमेरु पर्वतके समान उनका विशाल, बलशाली और वीर शरीर यदि युद्ध-क्षेत्रमें शत्रु देख लें तो उनके हृदय भी भयसे दहल उठें । (४) (यह देख लेनेपर) सीताके हृदयमें विश्वास जमने लगा (कि हाँ, ये राक्षसोंको अवश्य मार सकेंगे) । (अपना वह विशाल रूप दिखाकर) हनुमान् फिर नन्हेंसे बन बैठे (४॥) (और बोले—) 'देखिए माता ! वानरोंमें तो कोई बहुत बल-बुद्धि होती नहीं, पर प्रभु (राम)-का प्रताप ही कुछ ऐसा है कि नन्हाँ-सा सर्प भी चाहे तो गरुडको खड़े-खड़े निगल जाय' ॥ १६ ॥ भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे भरी हुई हनुमान्‌की यह वाणी सुनकर सीताके मनको बड़ा सन्तोष मिला । उन्होंने हनुमान्‌को रामका प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया—पुत्र ! तुममें बहुत बल और शील भरा रहे । (१) तुम अजर, अमर हो जाओ और तुममें संसारके सारे गुण भी आ जायँ । रामकी सदा तुमपर बड़ी कृपा बनी रहे ।' 'प्रभुकी कृपा बनी रहे', ये शब्द कानोंमें पड़ते ही हनुमान् तो पूर्णतः प्रेममें मग्न हो चले । (२) वे बार-बार सीताके चरणोंमें सिर नवाकर और हाथ जोड़कर बोले—'माता ! बस

१९४-९६ दुःखे मग्नासि वैदेहि स्थिरा भव शुभानने । क्षिप्रं पश्यसि रामं त्वं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥नृसिं०पु०
हत्वा च समरे क्रूरं रावणं सहबान्धवम् । राघवस्त्वां विशालाक्षि स्वपुरीं प्रति नेष्यति ॥वाल्मी०
१९७-२०० जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः । अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥
श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत् । मेरुमंदरसंकाशं रक्षोगणविभीषणम् ॥
दृष्ट्वा सीता नमन्तं तं महापर्वतसन्निभम् । हर्षेण महताविष्टा सूक्ष्मरूपोऽभवत् कपिः ॥ अध्या०
२०१-२०२ इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पुनस्तामाह वानरः । गोष्पदीवन्मया तीर्णः समुद्रोऽयं वरानने ॥
२०३-४ श्रुत्वा वाणीं कपेस्तस्याः सन्तोषो हृदयेऽभवत् । भक्तिप्रतापतेजोभिर्बलेन मिलितां च सा ॥
ददावाशीः प्रियं ज्ञात्वा रामचन्द्रस्य जानकी । हनूमंस्तात भवताद् बलशीलनिधिर्भवान् ॥
२०५-६ भवाजरोऽमरस्तात गुणानां च निधिः कपे । कृपां करोतु बहुलां सदा श्रीरघुनायकः ॥
कृपां करोत्विति श्रुत्वा श्रोत्राभ्यां भरताग्रजः । हनूमानभवन्मग्नो निर्भरे प्रेम्णि भारत ॥नृ०पु०

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता। (३)
सुनहु मातु ! मोहिं अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा।
२१० सुनु सुत ! करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी। (४)
तिन्ह-कर भय, माता ! मोहिं नाहीं। जौं तुम सुख मानहु मन-माहीं। (४।।)
दो०—देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि, कहेउ जानकी, जाहु।
रघुपति - चरन हृदय धरि, तात ! मधुर फल खाहु ।। १७ ।।
चलेउ नाइ सिर, पैठेउ बागा। फल खाएसि, तरु तोरन लागा।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारे, कछु जाय पुकारे। (१)
नाथ ! एक आवा कपि भारी। तेहि असोक - बाटिका उजारी।
खाएसि फल, अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि - मर्दि महि डारे। (२)
सुनि, रावन पठएउ भट नाना। तिन्हहिं देखि गर्जेउ हनुमाना।

अब मैं कृतार्थ हो गया (मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो गईं)। माता ! यह तो प्रसिद्ध है कि आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) होता है। (३) अब माता ! मेरी एक बात थोड़ी सुन लीजिए। यहाँ देख रहा हूँ कि वृक्षोंपर बड़े मीठे-मीठे फल लदे पड़े हैं। उन्हें देख-देखकर मुझे बड़ी भूख लग आई है।' (इसपर जानकीने कहा—) 'देखो पुत्र ! (बात तो तुम ठीक कहते हो पर यह समझ लो कि) बहुत बड़े-बड़े योद्धा राक्षस बैठे इस वनकी रखवाली किया करते हैं।' (४) (इसपर हनुमानने कहा—) 'माता ! आप बस प्रसन्न होकर आज्ञा-भर दे डालिए फिर तो मैं इनसे निपट लूँगा (इनका मुझे कोई भय नहीं है)।' (४।।) जब जानकीने देखा कि बुद्धि और बलमें हनुमानको कोई पा नहीं सकता तो उन्होंने कहा—'तो जाओ बेटा ! रामके चरणोंका हृदयमें ध्यान करते हुए मीठे-मीठे फल जा खाओ' ।। १७ ।। फिर क्या था ! हनुमान् उनके आगे सिर नवाकर वहाँसे चल पड़े और जाकर अमराईमें घुस पड़े। वहाँ उन्होंने फल जो खाए सो तो खाए ही, वे पेड़ भी तोड़-फेंककर गिराने लगे। वहाँ जो बहुतसे राक्षस योद्धा बैठे उस उपवनकी रखवाली कर रहे थे, उनमेंसे कुछको तो उन्होंने वहीं ढेर कर डाला और जो बच निकले उनमेंसे कुछने (रावणके यहाँ जा) पुकारा—(१) 'नाथ ! (न जाने कहाँसे) एक बड़ा भारी बन्दर आ पहुँचा है जिसने सारी अशोक वाटिका तहस-नहस कर डाली है। उसने वहाँके फल तो सब खा ही डाले, वृक्ष भी उखाड़ फेंके और रक्षकोंको भी मसल-मसलकर धरतीमें रौंद मिलाया है।' (२) यह सुनते ही रावणने तत्काल बहुतसे योद्धा वहाँ भेज दिए। उन्हें देखते ही हनुमान् भयंकर स्वरमें गरज उठे और उन्होंने उन सब राक्षसोंको वहीं ढेर कर डाला।

२०७-८ भूयो भूयश्चरणयोर्मूर्ध्ना नमति मारुतिः। कृताञ्जलिर्वचः प्राह कृतकृत्योऽधुनाऽभवम् ।।
अहं मातस्तवामोघा आशिषो विदितं भुवि ।।
२०९-११ शृणु मातः क्षुधात्यन्तं बाधते मां विलोक्य वै। मनोहराणि वृक्षेषु फलानि विविधानि च ।।
रक्षां कुर्वन्त्यरण्यस्य शृणु तात महाभटाः। निशाचराः महान्तश्च मातस्तेषां भयं नहि ।।
मां यदि त्वं सुखं चित्ते मन्यथा जनकात्मजे। निपुणस्य कपेर्बुद्धिं बलं दृष्ट्वाऽह जानकी।
२१२-१३ गच्छ श्रीरामचन्द्रांघ्री धृत्वा स्वहृदये मुदा। भुंक्ष्व त्वमधुना तात मधुराणि फलानि वै।
२१४-१५ कपिः सीतां नमस्कृत्य वाटिकायां प्रविष्टवान्। फलानि बुभुजे धीमान्वृक्षान्क्षेप्तुमथारभत् ।।
अनेके रक्षकास्तत्र भटा आसन्कपीश्वरः। हतवाँस्तेषु वै कांश्चित् केचिद्गत्वाऽब्रुवन्प्रभुम् ।।
२१६-१७ महान्कपिः समायातः स्वामिन्नेकः प्रतापवान्। अशोकवाटिका तेन मुहूर्तादेव नाशिता ।।
भुक्तवान्सुफलान्येष वृक्षाश्चोत्पाटिताः क्षणात्। रक्षसां मर्दनं कृत्वा रक्षका भुवि पातिताः ।। नृ०पु०

सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अध-मारे। (३)
२२० पुनि पठए तेहि अच्छ[1]-कुमारा। चला, संग लै सुभट अपारा।
आवत देखि, बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति, महाधुनि गर्जा। (४)
दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल-भूरि॥ १८॥
सुनि सुत-बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद-बलवाना।
मारेसि जनि सुत! बाँधेसु ताही। देखिय कपिहिं, कहाँ-कर आही। (१)
चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बंधु-निधन सुनि, उपजा क्रोधा।
कपि देखा, दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा। (२)
अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस-कुमारा।
रहे महाभट ताके संगा। गहि-गहि कपि, मर्दइ निज अंगा। (३)
२३० तिन्हहिं निपाति, ताहि सन बाजा। भिरे जुगल, मानहु गजराजा।

उनमेंसे जो अधमरे बच रहे थे वे रावणको पुकारते हुए वहाँसे भाग निकले। (३) यह सुनकर रावणने अपने पुत्र अक्षकुमारको वहाँ भेज दिया। वह अपने साथ अपार योद्धा लेकर हनुमान्‌पर चढ़ चला। उसे आते देखकर हनुमान्‌ने एक वृक्ष उखाड़कर दूरसे ललकारा और फिर उस (अक्ष-कुमार)-को भी मारकर वे कड़ककर गरज उठे। (४) हनुमान्‌ने कुछको मार डाला, कुछको मसल डाला, और कुछको पकड़-पकड़कर धूलमें रगेद मिलाया। जो बच निकले उनमेंसे कुछने फिर जाकर रावणके पास जा पुकारा—'प्रभु! वह बन्दर तो बहुत ही बलवान् है (उसने अक्षकुमारको भी मार डाला)।'॥ १८॥ पुत्रका वध सुनते ही रावणकी त्योरियाँ चढ़ गईं। उसने बलवान् मेघनाद-को बुला भेजा और कहा कि—'तुम चले जाओ पुत्र! पर उस बन्दरको मारना मत, उसे बाँधे लिए चले आना। हम भी तो देखें कि वह बन्दर आया कहाँसे है।' (१) इन्द्रको भी जीत डालनेवाला वह अतुलित योद्धा मेघनाद उठकर चल दिया। अपने भाईका वध सुनकर वह योंही जला-भुना बैठा था। हनुमान्‌ने भी उसे देखकर समझ लिया कि यह साधारण नहीं, बड़ा भयंकर योद्धा आ पहुँचा है। पर वे घबराए नहीं। वे कटकटाकर गरजते हुए उसकी ओर झपट पड़े। (२) उन्होंने झट एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़कर लंकेशकुमार (मेघनाद)-पर ऐसा फेंककर मारा कि वह रथसे नीचे जा गिरा। उसके साथ जो और बहुतसे बड़े-बड़े योद्धा आए हुए थे उन्हें पकड़-पकड़कर हनुमान्‌ने अपने शरीरसे रगड़-रगड़कर चटनी बना डाला। (३) उन सब योद्धाओंको मार-कूटकर वे मेघनादसे जा भिड़े। लड़ते-लड़ते दोनों ऐसे गुत्थम-गुत्था हुए जा रहे थे, मानो दो बड़े-बड़े हाथी

१. अक्षय।

२१८-१९ श्रुत्वाऽनेकान् भटान्वीरः प्रेषयामास रावणः। तान्विलोक्य महातेजा अगर्जद्धनुमान्बली॥
हतवान्हनुमान्वीरः सर्वानेव निशाचरान्। गता अर्धमृताः केचिद् ब्रुवन्तो रावणान्तिकम्॥
२२०-२१ पुनरक्षकुमारं स प्रेषयामास रावणः। अनेकैः सुभटैः सार्धं रावणस्य सुतो गतः॥
दृष्ट्वाऽऽयान्तं गृहीत्वा द्रुं प्रहारं कृतवान्कपिः। महता ध्वनिनाऽगर्जत् तं निपात्य महाबली॥
२२२-२३ मारिता मर्दिता केचिद् धृत्वा रजसि मेलिताः। केचिद् गत्वा पुनः प्रोचुः प्रभोऽतिबलवान्कपिः॥
२२४-२८ कुमारस्य वधं श्रुत्वा लंकेशः कुपितोऽभवत्। बलवन्तं मेघनादं प्रेषयामास तत्क्षणम्॥
मा हन्याः पुत्र तं बद्ध्वा कुत्रत्यः कपिरानय। पश्यामि प्लवगं सार्धमसंख्यैः सुभटैर्गतः॥
इंद्रजिद् बंधुनिधनं श्रुत्वा क्रोधयुतोऽभवत्। दारुणं भटमायान्तं दृष्ट्वाऽगर्जत्कपिर्बहु॥
अधावच्चैकमुत्पाट्य विशालं द्रुं हरीश्वरः। विरथं कृतवान् वीरं मेघनादं महाबलम्॥नृ०पु०

मुठिका मारि, चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई। (४)
२३२ उठि बहोरि, कीन्हेंसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन - जाया। (४॥)
दो०—ब्रह्म-अस्त्र तेहि साधा, कपि, मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानौं, महिमा मिटइ अपार॥ १९॥
ब्रह्म - बान कपि-कहँ तेहि मारा। परतिहु बार कटक संघारा।
तेहि देखा, कपि मुरछित भयऊ। नाग-पास बाँधेसि, लै गयऊ। (१)
जासु नाम जपि, सुनहु भवानी। भव - बंधन काटहिं नर ज्ञानी।
तासु दूत की बँध - तर आवा[1]। प्रभु-कारज-लगि, कपिहि बँधावा। (२)
कपि - बंधन सुनि, निसिचर धाए। कौतुक - लागि, सभा सब आए।
२४० दसमुख - सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु, अति प्रभुताई। (३)

आ भिड़े हों। इसी बीच मेघनादको एक घूँसा जड़कर हनुमान् उछलकर पेड़पर जा चढ़े। एक क्षणके लिये मेघनाद मूर्च्छित हुआ धरतीपर पड़ा रहा। (४) फिर वह सँभलकर उठा और वह बड़ी माया रचने लगा। पर उसकी एक न चल पाई और वह पवनपुत्र हनुमान्‌को जीत न पा सका। (४॥) तब खीझकर मेघनादने ब्रह्मास्त्र निकाल संभाला। यह देखकर हनुमान् सोचने लगे कि यदि मैं ब्रह्मास्त्रका आदर नहीं करता हूँ तो उसकी सारी महिमा समाप्त हो जायगी॥ १९॥ (वे अभी इसी उधेड़बुनमें पड़े ही थे कि) मेघनादने हनुमान्‌पर ब्रह्मबाण चला ही तो दिया। ब्रह्मबाण लगते ही हनुमान् (पेड़पर परसे) नीचे आ गिरे। पर गिरते-गिरते भी वे ऐसे गिरे कि राक्षसोंकी सेनाका कचूमर निकाल दिया। (और फिर गिरकर वे मूर्च्छित हो गए)। मेघनादने जब देखा कि हनुमान् मूर्च्छित हुए पड़े हैं, तब वह उन्हें नाग-पाशमें बाँधकर अपने साथ लेता चला गया। (१)

(महादेव कहते हैं—) 'देखो भवानी ! जिनका नाम-मात्र जपनेसे ज्ञानी मनुष्य इस संसारके सारे बन्धन काट फेंकते हैं, उनका दूत क्या कभी किसी बन्धनमें फाँसा जा सकता है ? पर हनुमान्‌को तो प्रभुका कार्य करना था इसलिये हनुमान्‌ने स्वयं ही अपनेको बंधनमें बँधवा लिया।' (२)

अब तो जिस राक्षसने भी सुना कि बन्दर बाँध लिया गया है वही उन्हें देखनेके लिये दौड़ पड़ा। जिसे देखो वही राक्षस तमाशा देखनेके लिये रावणकी सभाकी ओर झपटा चला जा रहा है। हनुमान्‌ने वहाँ रावणकी सभाका जो ठाट-बाट देखा तो वे दंग रह गए। उस ठाट-बाटका वर्णन कोई करना भी चाहे तो नहीं किया जा सकता। (३) वे देखते क्या हैं कि सभी देवता और दिक्पाल

१. ताकर दूत कि बँध-तर आवा।

२२९-३२ आसन् महाभटास्तस्य सहायास्तान् कपिः क्षणात्। ग्राहं ग्राहं निजांगेभ्योऽमर्दयद्वायुनंदनः॥
तान्निपात्य कपिर्हत्वा मुष्टिनेन्द्रजितं तरुम्। आरुरोह क्षणं वीरः शक्रजिच्चापि मूर्च्छितः॥
कृतवान् बहुलां मायां पुनरुत्थाय राक्षसः। तथापि हनुमान् वीरः कथं नापि पराजितः॥नृ०पु०
२३३-३४ शीघ्रं ब्रह्मास्त्रमादाय मेघनादो महाबलः। —अध्यात्मरामायण
सवीर्यमस्त्रस्य कपिर्विचार्य पिता महानुग्रहमात्मनश्च। विमोक्षशक्तिं परिचिंतयित्वा पितामहाज्ञामनुवर्तते स्म॥
२३५-३६ शीघ्रं ब्रह्मास्त्रमादाय बद्ध्वा वानरपुंगवम्। निनाय निकटं राज्ञो रावणस्य महाबलः॥
२३७-३८ यस्य नाम सततं जपन्ति येऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात्।
सद्य एव परिमुच्य तत्पदं यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम्॥
सर्वेषामेव पर्याप्तो राक्षसानामहं युधि। किन्तु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येहमीदृशम्॥
२३९-४० अधावन् राक्षसा सर्वे कपेराकर्ण्य बन्धनम्। कौतुकार्थं सभां प्राप्ता गत्वाऽपश्यत् कपिः सभाम्॥
रावणस्य प्रभुत्वं को वक्तुं शक्तो महीतले। —वाल्मीकीयरामायण

कर जोरे सुर, दिसिप, बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।
देखि प्रताप, न कपि-मन संका। जिमि अहिगन-महँ गरुड़ असंका। (४)
दो०—कपिहिं बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत-बध-सुरति कीन्हि पुनि, उपजा हृदय बिषाद॥ २०॥
कह लंकेस, कवन तैं कीसा। केहि-के बल घालेसि बन खीसा।
की धौं स्रवन सुनेहि नहिं मोहीं। देखौं अति असंक सठ तोहीं। (१)
मारे निसिचर केहि अपराधा। कहु सठ! तोहिं न प्रान-कै बाधा।
सुनु रावन! ब्रह्मांड - निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया। (२)
जाके बल बिरंचि - हरि - ईसा। पालत - सृजत - हरत दससीसा।
२५० जा बल सीस धरत सहसासन। अंडकोस - संजुत गिरि - कानन[1]। (३)
धरै जो बिबिध देह सुर - त्राता। तुम-से सठन्ह सिखावन-दाता।
हर - कोदंड कठिन जेहि भंजा। तोहिं समेत नृप - दल - मद गंजा। (४)

वहाँ सिर झुकाए हाथ बाँधे खड़े हैं और सभी सहमे हुए-से रावणकी भृकुटी देखे जा रहे हैं (कि न जाने कब किसे डाँट बैठे)। पर उसका इतना दबदबा देखकर भी हनुमान्‌के मनमें वैसे ही उसका भय नहीं हुआ जैसे साँपोंके बीच पहुँचकर गरुडके मनमें डर नहीं होता। (४) हनुमान्‌को देखकर पहले तो वह ठहाका मारकर हँसा पर फिर जब उसे स्मरण हुआ कि मेरा पुत्र मारा गया है तब उसका मन कुछ दुखी हो चला॥ २०॥ हनुमान्‌को सामने देखते ही रावणने डपटकर पूछा—'क्यों रे बन्दर! तू है कौन? किसके बलपर तूने सारा मेरी वाटिका उजाड़कर तहस-नहस कर डाली? क्या कभी मेरा नाम तेरे कानोंमें नहीं पड़ पाया है? अरे शठ! मैं देख रहा हूँ कि तू मेरे सामने भी अत्यन्त निडर हुआ बैठा है। (१) क्यों रे शठ! मेरे राक्षसोंको तूने किस अपराधके कारण मार डाला? क्या तुझे अपने प्राणोंका भय नहीं है?' (हनुमान्‌ने उत्तर दिया—) 'सुन रे रावण! माया भी जिनके बलका सहारा पाकर ही इन ब्रह्माण्डोंकी रचना कर पाती है, (२) जिनके बलपर ही सहस्रों फणोंवाले शेष भी पर्वतों और वनोंसे लदे हुए सारे ब्रह्मांड अपने सिरपर उठाए रहते हैं, (३) जो देवताओंकी रक्षाके लिये अनेक प्रकारके शरीर धारण किया करते हैं, जो तेरे-जैसे दुष्टोंको आ-आकर ठीक करते रहते हैं, जिन्होंने महादेवका कठोर धनुष भी दो टूक कर डाला था और तेरे साथ-साथ वहाँ आए हुए सब राजाओंका मद झाड़ डाला था, (४)

१. अंडकोस समेत गिरि कानन।

२४१-४२ हस्तौ बद्ध्वा सविनयं दिक्पालाः सकलाः सुराः। सभीता अवलोकन्ते भ्रुकुटिं रावणस्य वै॥
शंका नाभूत्कपेश्चित्ते तत्प्रतापं विलोक्य च। निःशंकस्तत्र सर्पाणां मध्ये तार्क्ष्य इव स्थितः॥
२४३-४४ जहास प्लवगं दृष्ट्वा दुर्वाक्यं चाह रावणः। पुनः पुत्रवधं स्मृत्वा सन्तापं हृदयेऽकरोत्॥
२४५-४७ रावणः प्राह कः कीशस्त्वं बलात्कस्य काननम्। विध्वंसितं किं श्रोत्राभ्यां श्रुतं मन्नाम न त्वया॥
पश्यामि शठ निःशंकमागसा केन मारिताः। राक्षसाः किमसूनां ते न भयं विद्यते शठः॥वा रा.
२४८-४९ हे रावण त्वं शृणु भारतीं मे लब्ध्वा बलं यस्य करोति माया।
ब्रह्माण्डवारं च बलाद्धि यस्य लोकेशवैकुण्ठमहेश्वराद्याः॥
सृजन्ति रक्षन्ति हरन्ति लोकं तस्यैव रामस्य वरिष्ठदूतः॥
२५०-५१ शेषो बलाद्यस्य दधाति मूर्ध्नि ब्रह्माण्डकोशं वनशैलसंयुतम्।
नारायणो देववरिरक्षया च यो नानावतारान्विदधाति सर्वदा॥
भवादृशानां च महाशठानां ददाति दण्डं जनशिक्षणार्थम्॥ —हनुमद्रामायण

खर, दूषन, त्रिसिरा अरु बाली । बधे सकल अतुलित बल-साली । (४।।)
दो०—जाके बल लवलेस-तेँ, जितेहु चराचर भारि ।
तासु दूत मैं जा - कर , हरि आनेहु[1] प्रिय नारि ।। २१ ।।
जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई । सहसबाहु - सन परी लराई ।
समर, बालि-सन करि जस पावा । सुनि कपि-बचन, बिहँसि बहरावा । (१)
खायउँ फल प्रभु ! लागी भूखा । कपि - सुभाव - तें तोरेउँ रूखा ।
सबके देह परम प्रिय स्वामी । मारहिं मोहिं कुमारग - गामी । (२)
२६० जिन्ह मोहिं मारा, ते मैं मारे । तेहि - पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ।
मोहिं न कछु बाँधे कइ लाजा । कीन्ह चहौं निज प्रभु-कर काजा । (३)
बिनती करौं जोरि कर रावन । सुनहु, मान तजि, मोर सिखावन ।
देखहु तुम, निज कुलहिं बिचारी । भ्रम तजि भजहु भगत-भय-हारी । (४)

जिन्होंने खर, दूषण, त्रिशिरा और वाली आदि न जाने कितने बड़े-बड़े वलवीरोंको घर पछाड़ा है, (४।।) जिनका तनिक-सा बल पाकर तुमने भी समस्त चर और अचरको जीतकर मुट्ठीमें किए रक्खा है और जिनकी प्रिय पत्नीको तुम चोरके समान चुराए लिए चले आए हो, मैं उन्हीं (राम)-का दूत हूँ ।। २१ ।। रहो तुम्हारी वीरताकी बात, जितने बड़े वीर तुम बने बैठे हो वह मैं सब जानता हूँ । एक बार सहस्रबाहुसे भी तुम्हारी मुठभेड़ हो चुकी है और बालीसे लड़कर भी तुम बड़ा यश कमा चुके हो ।' हनुमान्‌के मुँहसे ऐसे (चुटीले) वचन सुनकर रावण हँसकर बात टाल गया । (१) (हनुमान् भी भाव बदलकर कहने लगे–) 'प्रभो ! (आप पूछ रहे हैं तो बताए दे रहा हूँ कि) मैंने फल तो इसलिये खाए कि मुझे बड़ी भूख सताए डाल रही थी और पेड़ मैंने इसलिये तोड़ गिराए कि बन्दरका स्वभाव ही होता है टहनियाँ तोड़ गिराना । देखिए स्वामी ! अपनी देह तो सभी-को प्यारी होती है । अतः, जब ये कुमार्गपर चलनेवाले राक्षस मुझे मारनेपर उतारू हो चले (२) तब जिस-जिसने मुझे मारा, उसे-उसे मैंने भी दे मारा । फिर भी, न जाने क्यों आपका पुत्र मुझे यहाँ बाँधे लिए चला आया है । जहाँतक बाँधे जानेकी बात है, उसकी तो मुझे कोई लाज है नहीं, क्योंकि मैं तो अपने स्वामीका काम पूरा करनेके लिये यहाँ आया हूँ । (३) देखो रावण ! मैं हाथ जोड़कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम अभिमान छोड़कर मेरी बस एक बात मान लो । तुम विचार तो करो कि तुम्हारा कुल कितना पवित्र है इसलिये तुम अपना सारा भ्रम (कि मुझसे बड़ा कोई नहीं है) छोड़कर भक्तोंका भय मिटानेवाले उस (राम)-की सेवा जा करो (४) जिसके डरसे वह काल भी

१. आनिहु । आनेहु ।

२५२-५३ कठोरमीशस्य धनुर्हि भङ्क्त्वा त्वया समेतस्य नृपव्रजस्य ।
गर्वं मुहूर्तेन जहार यस्तं रामं मम स्वामिनमाशु विद्धि ।।
खरं दूषणं वालिनं यो जघान विराधं महावीर्यवन्तं क्षणेन ।
अयोध्यानरेशस्य रामस्य तस्य त्वहं किङ्करस्त्वामुपेतः प्रबोद्धुम् ।। —हनुमद्रामायण
२५४-५५ शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे रामस्य दूतोऽहमशेषहृत् स्थितेः ।
यस्याखिलेशस्य हृताऽधुना त्वया भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः ।।
२५६-६१ फलानि भुक्तानि बुभुक्षितेन वै मया कपित्वाद्विपिनं विनाशितम् ।
दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागतान् मां हन्तुकामान्धृतचापसायकान् ।।
मया हतास्ते परिरक्षितुं वपुः प्रियोहि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो ।
ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मां ततः समागमन्मेघनिनादनामकः ।। —अध्यात्मरामायण
विमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिवंदितः । केनचिद्रामकार्येण आगतोस्मि तवान्तिकम् ।। वा०रा०

जाके डर अति काल डेराई। जो सुर-असुर-चराचर खाई।
तासों बैर कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै। (५)
दो०—प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गए सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि॥ २२॥
राम-चरन-पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू।
रिषि पुलस्ति-जस बिमल मयंका। तेहि ससि-महँ जनि होउ कलंका। (१)
२७० रामनाम-बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि, त्यागि मद-मोहा।
बसन-हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन-भूषित बर नारी। (२)
राम-बिमुख संपति-प्रभुताई। जाइ रही, पाई बिन पाई।
सरित-मूल जिन्ह सरितन नाहीं। बरषि गए पुनि तबहिं सुखाहीं। (३)
सुनु दसकंठ! कहौं पन रोपी। बिमुख-राम, त्राता नहिं कोऽपी।
संकर सहस, बिष्नु, अज तोंही। सकहिं न राखि राम-कर द्रोही। (४)

थर्राया करता है, जो सारे देवता, राक्षस और चर-अचर सबको खाता रहता है, उनसे बैर ठाननेकी तो बात ही न सोचो और मेरे कहनेसे उन्हें ले जाकर जानकी दे डालो। (५) खरके शत्रु राम तो ऐसे दयाके समुद्र (बड़े दयालु) हैं कि जो उनकी शरणमें जा पहुँचे उसकी रक्षा वे करते ही हैं। इसलिये तुम जहाँ उनकी शरणमें पहुँचे कि प्रभुने तुम्हारे सारे अपराध भुलाकर तुम्हें अपनी शरणमें लिया॥ २२॥ यह करके तुम रामके चरण-कमलोंका हृदयमें ध्यान करते हुए (निश्चिन्त होकर) बैठे लंकामें अचल राज्य करते रहो। देखो! मुनि पुलस्त्यके चन्द्रमाके समान निर्मल यशमें तुम कलंक बननेका प्रयत्न मत करो। (१) अपना मद (अक्खड़पन) और मोह (अज्ञान) त्यागकर भली-भाँति समझ देखो कि जिसकी वाणीसे राम नाम न निकले वह वाणी किसी कामकी नहीं। देखो देवताओंके शत्रु! कोई स्त्री चाहे जितनी भी सुन्दर क्यों न हो और चाहे जितने भी आभूषणों से क्यों न सजी हो पर वह बिना वस्त्रके (नंगी) कभी अच्छी नहीं लगती। (२) जो पुरुष रामसे वैर ठान बैठता है उस पुरुषकी सारी सम्पत्ति और प्रभुता क्षण भरमें नष्ट हो मिटती है ऐसी सम्पत्तिका पाना न पाना बराबर है। जिन नदियोंके उद्गम-स्थानमें जलका स्रोत नहीं होता, उनमें वर्षा बीत जानेपर एक बूँद पानी नहीं रह जाता। (३) देखो रावण! सुनो, मैं ताल ठोककर कहे देता हूँ कि (कोई चाहे भी तो) रामसे वैर ठाने रहनेवालेकी कोई रक्षा नहीं कर पा सकता। सहस्रों शंकर, ब्रह्मा और विष्णु भी क्यों न आ इकट्ठे हों फिर भी रामसे द्रोह करनेपर तुम्हें कोई बचा नहीं पा सकता। (४) इसलिये मेरी बात मानकर अपना यह मोह उत्पन्न करनेवाला

२६२-६५ देहात्मबुद्ध्याऽपि च पश्य राक्षसो नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो न हि।
देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे॥
२६६-६७ विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां भजस्व रामं शरणागतप्रियम्।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात्॥
२६८ हृदि त्वया राघवपादपंकजं निधाय राज्यं त्वनुभूयतां चिरम्।
२६९ त्वं ब्राह्मणोह्युत्तमवंशसंभवः पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः॥ —अध्यात्मरामायण
२७०-७१ रामनामविहीनास्तु न शुम्भन्ति गिरस्तथा। —वैष्णवधर्मरत्नाकर
सर्वभूषाभूषितास्तु यथा नार्यो निरंशुकाः॥ —रामनाममाहात्म्य
२७२-७५ ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥ —वाल्मीकीयरामायण

दो०—मोह - मूल बहु - सूल - प्रद , त्यागहु तम-अभिमान ।
भजहु राम रघुनायक , कृपासिंधु भगवान ।। २३ ।।
जदपि कही कपि, अति हित बानी । भगति-बिबेक-बिरति-नय सानी ।
बोला बिहँसि महा अभिमानी । मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ग्यानी । (१)
२८० मृत्यु निकट आई खल तोहीं । लागेसि अधम सिखावन मोहीं ।
उलटा होइहि, कह हनुमाना । मति भ्रम तोहिं, प्रगट मैं जाना । (२)
सुनि कपि-बचन बहुत खिसियाना । बेगि न हरहु मूढ़-कर प्राना ।
सुनत, निसाचर मारन धाए । सचिवन - सहित बिभीषन आए । (३)
नाइ सीस, करि बिनय बहूता । नीति - बिरोध, न मारिय दूता ।
आन दंड कछु करिय गुसाँई । सबही कहा, मंत्र भल भाई । (४)
सुनत, बिहँसि बोला दसकंधर । अंग-भंग करि, पठइय बंदर । (४।।)
दो०—कपि-कै ममता पूँछ - पर , सबहिं कह्यौ समुझाइ ।
तेल बोरि पट, बाँधि पुनि , पावक देहु लगाइ ।। २४ ।।

और बहुत कष्ट देनेवाला अन्धकार-रूपी अभिमान छोड़कर तुम कृपाके समुद्र (कृपालु) रघुकुलके स्वामी भगवान् रामका भजन करने लगो' ।। २३ ।। यद्यपि हनुमान्ने भक्ति, विवेक, वैराग्य और नीतिसे सनी हुई बहुत ही हितकी बातें कह समझाईं पर परम अभिमानी रावण (-के गले एक न उतर पाई और वह) बहुत खिलखिलाकर हँसकर बोला—'ओ हो ! यह बन्दर तो बड़ा ज्ञानी गुरु आ मिला है ! (१) अरे दुष्ट ! जान पड़ता है तेरी मृत्यु तेरे सिरपर चढ़कर नाचने लगी है । क्यों रे अधम ! (तेरी यह ठिठाई कि) तू मुझे नीति सिखाने चले ?' हनुमान्ने कहा—'तुम जो कह रहे हो उसका उलटा ही होनेवाला है (मेरे तो नहीं, तेरे ही सिरपर मृत्यु नाच रही है) । मैंने भली-भाँति समझ लिया कि तेरी बुद्धि उलट चली है ।' (२) हनुमान्के ये वचन सुनकर रावण क्रोधसे तमतमा उठा और राक्षसोंसे बोला —'अरे ! (तुम सब लोग खड़े ताक क्या रहे हो ?) इस मूर्ख बन्दरको पकड़कर झटपट तलवारके घाट क्यों नहीं उतार डालते ?' यह सुनते ही कुछ राक्षस हनुमान्को मारनेको झपटे ही थे कि उसी समय मंत्रियोंके साथ विभीषण वहाँ आ पहुँचे । (३) आते ही बहुत आदरके साथ सिर नवाकर विभीषणने रावणसे कहा—'स्वामी ! यह दूत होकर आया है । दूतका वध नहीं किया जाता । यह (दूतका वध करना) नीतिके विरुद्ध है । इसे दंड ही देना हो तो कुछ और दंड दे डालिए ।' यह सुनकर तो सभी हाँमें हाँ मिलाते हुए कह उठे—'हाँ, हाँ, यह सम्मति ठीक है ।' (४) यह सुनते ही रावण हँसकर बोला—'अच्छा, तो ऐसा करो कि इस बन्दरको यहाँसे हाथ-पैर तोड़कर भेजो । (४।।) (नहीं तो ऐसा करो कि) बन्दरको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है इसलिये तेलमें

१. तोरि ।

२७६-८० श्रुत्वाऽमृतास्वादसमानभाषितं तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुरः ।
अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वरं जगाद रक्तान्तविलोचनोज्ज्वलन् ।।
कथं ममाग्रे विलपस्य भीतवत् प्लवंगमानामधमोऽसि दुष्टधीः । —अध्यात्मरामायण
२८१-८८ एवं निशम्य कुपितः पिशिताशनेन्द्रः प्राणानमुष्य हरतेति भटानवादीत् ।
आजन्मशुद्धमतिरत्रविभीषणस्तं दूतो न वध्य इति शास्त्रगिरा रुरोध ।। —चंपूरामायण
अतो वधसमं किंचिदन्यच्चिन्तय वानरे । विभीषणवचः श्रुत्वा रावणोप्येतदब्रवीत् ।।
वानराणां हि लांगूले महामानो भवेत्किल । अतो वस्त्रादिभिः पुच्छं वेष्टयित्वा प्रयत्नतः ।।
वह्निना योजयित्वैनं भ्रामयित्वा पुरेऽभितः । विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपाः ।।अध्यात्म०

पूँछ-हीन बानर तहँ जाइहि । तब सठ, निज नाथहि लइ आइहि ।
२९० जिन्ह-कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई । देखौं मैं तिन्ह-कै प्रभुताई । (१)
बचन सुनत, कपि मन मुसुकाना । भइ सहाय सारद, मैं जाना ।
जातुधान, सुनि रावन-बचना । लागे रचै मूढ़ सोइ रचना । (२)
रहा न नगर बसन-घृत-तेला । बाढ़ी पूँछ, कीन्ह कपि खेला ।
कौतुक-कहँ आए पुरबासी । मारहिं चरन, करहिं बहु हाँसी । (३)
बाजहिं ढोल, देहिं सब तारी । नगर फेरि, पुनि पूँछ प्रजारी ।
पावक-जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघु रूप तुरंता । (४)
निबुकि चढ़ेउ कपि, कनक-अटारी । भईं सभीत निसाचर-नारी । (४॥)
दो०—हरि-प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा, कपि, बढ़ि लाग अकास ॥ २५ ॥
३०० देह बिसाल, परम हरुआई । मंदिर-तें मंदिर चढ़ धाई ।

कपड़े डुबोकर इसकी पूँछमें लपेटकर उसमें आग जा दिखाओ ॥ २४ ॥ जब यह बन्दर बाँडा होकर (बिना पूँछके) वहाँ जायगा तब यह दुष्ट अपने स्वामीको अवश्य साथ लिवा लावेगा । तब अपने जिस स्वामीकी यह इतनी डींग हाँके चला जा रहा है उसकी प्रभुता हम भी देख लेंगे (कि वह कितने गहरे पानीमें है) । (१) यह सुनते ही हनुमान मन ही मन मुसकराकर उठे और सोचने लगे कि (इस अवसरपर) सरस्वती ही मेरी सहायक हुई जा रही हैं । (सरस्वतीने ही इसे ऐसी बुद्धि दी कि पूँछमें आग लगानेको कह रहा है । बस जहाँ आग लगाई कि लंका भस्म हुई) । रावणकी बात सुनते ही सब मूढ राक्षस उसी (पूँछमें आग लगानेकी) तैयारीमें जा जुटे (२) (इतना घी-तेल और कपड़ा पूँछमें लपेटा-लगाया गया कि) नगरमें वस्त्र, घी और तेल देखनेको नहीं बच पाया । हनुमान्‌ने कुछ ऐसा खेल कर दिखाया कि पूँछ देखते-देखते बढ़ चली और बढ़ती ही चली गई । अब तो यह नया खेल देखने सारे नगरवासी आ जुटे और लगे हनुमान-पर लात चलाने और उनकी हँसी उड़ाने । (३) इतना ही नहीं, सब लोग लगे ढोल बजा-बजाकर तालियाँ पीटने । पहले तो उन्होंने हनुमान्‌को सारे नगरमें पकड़ घुमाया और फिर उनकी पूँछमें आग जा लगाई । पूछमें आग लगनी थी कि हनुमान् तुरन्त बहुत नन्हेंसे बन गए (४) और सिकुड़कर (राक्षसोंके) बन्धनसे छूटते ही वे झट लंकाकी सोनेकी अटारियोंपर उछल चढ़े । राक्षसोंकी स्त्रियोंने यह काण्ड देखा तो उनका जी धक्क हो उठा (वे अत्यन्त भयभीत हो उठीं) । (४॥) उस समय भगवान्‌की कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि उनचासों पवन आँधी-बवंडर बनकर उठ चले । हनुमान् भी ठहाका मारकर हँसते हुए गरज उठे और बढ़ते-बढ़ते ऐसे बढ़े कि आकाशमें जा लगे ॥ २५ ॥ हनुमान्‌की देह तो बहुत विशाल थी पर वे इतनी हलके हो गए कि सरलतासे एक भवनसे दूसरे भवनपर उछलते-कूदते बढ़े चले जा रहे थे । बातकी बातमें सारा नगर धू-धू करके जल उठा और लोग

२८९-९९ सचिह्नो गच्छतु हरियं दृष्ट्वाऽऽयास्यति द्रुतम् । रामः सुग्रीवसहितस्ततो युद्धं भवेत्तव ॥
तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकशः । तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लांगूलं मारुतेर्दृढम् ॥ अध्या०
संवेष्टयमाने लांगूले व्यवर्धत महाकपिः । तदा कोलाहलश्चासीत् वस्त्रार्थं प्रति सद्मनि ॥
नासीन्निशायां दीपार्थं शिशूनामपि नो घृतम् । —आनन्दरामायण
पुच्छाग्रे किञ्चिदनलं दीप्यित्वाथ राक्षसाः । रज्जुभिः सुदृढं बद्ध्वा धृत्वा तं बलिनोऽसुराः ॥
समन्ताद् भ्रामयामासुश्चोरोऽयमितिवादिनः । तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः ॥
सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ । —अध्यात्मरामायण
श्वसनेन च संयोगादतिवेगो महाबलः । कालाग्निरिव जज्वाल प्रावर्धत हुताशनः ॥वाल्मी०

जरइ नगर, भा लोग बिहाला। झपट[1]-लपट बहु कोटि[2] कराला। (१)
तात! मातु! हा! सुनिय पुकारा। ऐहि अवसर को हमहिं उबारा।
हम जो कहा ऐह कपि नहिं होई। बानर-रूप धरे सुर कोई। (२)
साधु-अवज्ञा-कर फल ऐसा। जरै अनाथ-केर पुर जैसा[3]।
जारा नगर निमिष ऐक माहीं। एक बिभीषन-कर गृह नाहीं। (३)
ताकर दूत, अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो, तेहि कारन गिरिजा।
उलटि-पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु-मँझारी। (४)
दो०—पूँछ बुझाइ, खोइ स्रम, धरि लघु रूप बहोरि।
जनक-सुता-के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि॥ २६॥
३१० मातु! मोहिं दीजै कछु चीन्हाँ। जैसे रघुनायक मोहिं दीन्हाँ।
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। हरष-समेत पवनसुत लयऊ। (१)
कहेहु[4] तात! अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन-कामा।

बेहाल हो-होकर घर-बार छोड़-छोड़कर उधर-उधर भाग चले। आगकी करोड़ों भयंकर-भयंकर लपटें इधर-उधर हरहराती हुई उठ चलीं। (१) (सब राक्षस नगरवासी) हाय बप्पा! हाय भइया! करते हुए रो-रोकर पुकारे जा रहे थे—'अरे कोई तो इस समय आकर बचाओ?' हम तो पहले ही कह रहे थे कि यह बन्दर नहीं, बन्दरके रूपमें कोई देवता आ धमका है। (२) साधु-संतका अपमान करनेका यह प्रत्यक्ष फल दिखाई पड़ रहा है कि रावण (–जैसे पराक्रमी)-का नगर आज अनाथके नगरके समान जलकर भस्म हुआ जा रहा है।' हनुमान्‌ने देखते-देखते सारा नगर जलाकर राख कर डाला, केवल एक विभीषणका घर बिना जले बचा रह गया। (३) (महादेव कहते हैं—) 'देखो पार्वती! जिस (राम)ने अग्नि बनाई है उन्हींके दूत तो हनुमान् हैं। यही कारण है कि वह आग उनका रोआँ-तक न छू पाई (और उन्हीं हनुमान्‌के मित्र होनेके नाते विभीषणका घर भी बचा गई)।' हनुमान्‌ने उलट-पलटकर सारी लंका जलाकर भस्म कर डाली और सब जला-वलाकर वे चट समुद्रमें जा कूदे। (४) वहाँ (समुद्रमें) अपनी जलती पूँछ बुझाकर और थकावट मिटाकर हनुमान् फिर नन्हेंसे बनकर जानकीके सामने हाथ जोड़कर आ खड़े हुए॥ २६॥ (और बोले—) 'माता! आप भी मुझे कुछ वैसा ही चिह्न (पहचान) दे दीजिए जैसा रामने मुझे दिया था।' सीताने झट अपना रत्न-जटित शीशफूल (चूडामणि) हनुमानके हाथपर उतार रक्खा और हनुमान्‌ने भी वह हर्षपूर्वक लेकर सिरमाथे उठा चढ़ाया। (१) (शीशफूल देते हुए जानकीने कहा—) '(देखो

१. दपट। २. कोटि। ३. जरै नगर अनाथ कर जैसा। ४. कहेउ।

३०१-४ विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद् गृहाद्गृहम्। उत्प्लुत्योत्प्लुत्य संदीप्तपुच्छेन महता कपिः॥
ददाह लंकामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम्। हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः॥
३०५ विभीषण-गृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम्।
३१३-७ यन्नाम संस्मरणधूतसमस्तपापास्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः संतप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन॥
तत उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान् मारुतात्मजः।
३०८-९ लांगूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः। ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः।
३१०-११ देवि किंचिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः। विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुकः॥
ततः किंचिद्विचार्याथ सीता कमललोचना। विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ॥ वा०रा०

दीन - दयाल ! बिरद संभारी । हरहु नाथ ! मम संकट भारी । (२)
तात ! सक्र - सुत - कथा सुनायहु । बान - प्रताप प्रभुहिं समुझायहु ।
मास दिवस - महँ नाथ न आवा । तौ पुनि मोहिं जियत नहिं पावा । (३)
कहु कपि ! केहि बिधि राखौं प्राना । तुमहू तात ! कहत अब जाना ।
तोहिं देखि सीतल भइ छाती । पुनि मो-कहँ सोइ दिन, सोइ राती[1]। (४)
दो०—जनक - सुतहि समुझाइ करि , बहु बिधि धीरज दीन्ह ।
चरन-कमल सिर नाइ कपि , गवन राम - पहँ कीन्ह ।। २७ ।।
३२० चलत, महाधुनि गर्जेसि भारी । गर्भ स्रवहिं, सुनि निसिचर-नारी ।
नाँघि सिंधु ऐहि पारहिं आवा । सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा । (१)
हरषे सब, बिलोकि हनुमाना । नूतन जनम कपिन तब जाना ।

हनुमान् ! तुम जा रहे हो तो) प्रभुसे मेरा प्रणाम कहकर निवेदन करना कि प्रभो ! यद्यपि आप सब प्रकारसे पूर्णकाम है (आपके मनमें कोई कामनाएँ नहीं रहतीं) तथापि दीनों (दुखियों)-पर दया करना तो आपका नियम ही है, अत: उस नियमका स्मरण करके, आप मेरे सिर पड़ी हुई यह भारी विपत्ति तो दूर कर डालिए । (३) देखो हनुमान् ! तुम उन्हें इन्द्रके पुत्र जयन्तकी करतूत भी कह सुनाना और प्रभु रामको उनके बाणके प्रतापका भी स्मरण दिला देना । (उनसे कह देना कि) यदि एक महीनेके भीतर नाथ (राम) आकर मुझे यहाँसे नहीं छुड़ा ले गए तो मुझे जीवित नहीं पा सकेंगे । (३) तुम्हीं बताओ हनुमान ! अब मैं जीऊँ भी तो किसके भरोसे जीऊँ । इतने दिनोंपर तुम भी आए तो तुम्हारा सहारा हो चला था पर तुम भी जानेको कह रहे हो । तुम्हें देखकर मेरे मनको बड़ी शान्ति मिली थी । अब फिर मुझे वे ही दिन और वे ही रातें भोगनी पड़ेगी ।' (४) हनुमान्ने जानकीको बहुत समझाया-बुझाया, बहुत ढाढस बँधाया और फिर उनके चरण-कमलोंमें सिर नवाकर रामके पास जानेके लिये चल दिए ।। २७ ।। चलते समय उन्होंने इतनी भयंकर गर्जना की कि उसे सुन-सुनकर राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर-गिर गए ।

समुद्र लाँघकर वे इस पार आ पहुँचे और आते ही वानरोंको सुनाकर (प्रसन्नताकी) किलकारी जा मारी । (१) हनुमान्‌को देखते ही सब वानर हर्षसे नाच उठे और उन्हें ऐसा लगने लगा कि अब हमारा नया जन्म हुआ है । हनुमान्‌को देखा तो वे बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे थे और उनके शरीरमें भी

१. सो दिन सो राती ।

३१२-१३ कौशल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी । तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ।।
मत्त: प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मण: । स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ।।
रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा । त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ।।
३१४-१५ मत्कृते काकमात्रेऽपि ब्रह्मास्त्रं समुदीरितम् । इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुन: पुन: ।।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज: । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ।।वा०रा०
३१६-१७ तत: प्राह हनूमन्तं जानकी शोककर्शिता । त्वं दृष्ट्वा विस्मृतं दु:खमिदानीं त्वं गमिष्यसि ।।
अत: परं कथं वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना । —अध्यात्मरामायण
३१८-१९ सीतायास्तद्वच: श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मज: । शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ।।
क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्वृत: । यस्ते युधि विजित्यारीन् शोकं व्यपनयिष्यति ।।
इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य गतो रामान्तिकं कपि: ।।
३२०-२१ एवं जगर्ज बलवान् हनूमान् मारुतात्मज: । उल्लंघ्याब्धिं समायातस्तूर्णं पारं महोदधे:।।वा०रा०
मारुतिर्गगनान्तस्थो महाशब्दं चकार स: ।। —अध्यात्मरामायण

मुख प्रसन्न, तन तेज बिराजा। कीन्हेसि रामचंद्र - कर काजा। (२)
मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन, पाव जिमि बारी।
चले हरषि, रघुनायक - पासा। पूछत - कहत नवल इतिहासा। (३)
तब मधुबन - भीतर सब आए। अंगद - संमत मधु - फल खाए।
रखवारे जब बरजइ[२] लागे। मुष्टि - प्रहार हनत, सब भागे। (४)

दो०—जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरष, कपि, करि आए प्रभु - काज ॥ २८ ॥

३३० जौं न होत सीता - सुधि पाई। मधुबन-के फल सकहिं कि खाई।
ऐहि बिधि, मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि, सहित - समाजा। (१)
आइ सबनि, नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रीति कपीसा।
पूछी कुसल, कुसल पद देखी। राम - कृपा भा काज बिसेखी। (२)

बड़ा तेज भरा दिखाई दे रहा था। (इसीसे वानरोंने ताड़ लिया कि) हो न हो, हनुमान् अवश्य रामका काम कर आए हैं (सीताकी टोह ले आए हैं)। (२) फिर क्या था ! सब आगे बढ़ बढ़कर हनुमान्को गले लगाए ले रहे थे और सब ऐसे प्रसन्न हुए जा रहे थे जैसे तड़पती हुई मछलीको पानी (का कुण्ड) मिल गया हो। सब हर्षित हो-होकर उनसे सारे नये-नये (लंकाके) समाचार पूछते जा रहे थे और हनुमान् बताते भी जारहे थे। इस प्रकार कहते-सुनते सब रामके पासे जानेको चल पड़े। (३) वहाँसे चलकर सब मधुबनमें जा पहुँचे और अंगदके कहनेसे सब (पेड़ोंपर चढ़-चढ़कर) मीठे-मीठे फल तोड़-तोड़कर गपकने लगे। जब मधुबनके रखवाले आकर उन्हें रोकने-टोकने लगे, तो सबने मिलकर उन्हें ऐसे कस-कसकर घूँसे जमाए कि सब जहाँ-तहाँ भाग खड़े हुए। (४) सब (रखवालों)-ने सुग्रीवके पास पुकार जा लगाई कि युवराज (अंगद) मधुबन उजाड़े डाल रहे हैं। यह सुनते ही सुग्रीव हर्षित हो उठे। (उन्हें विश्वास हो गया कि—) 'प्रभुका काम करके ही हनुमान् लौटे हैं ॥ २८ ॥ क्योंकि यदि उन्हें सीताकी टोह न मिली होती तब भला वे मधुबनके फलोंको कहाँ हाथ लगा पा सकते थे ?' अभी राजा सुग्रीव यह सोच ही रहे थे कि सब वानरोंको साथ लिए-दिए हनुमान् वहाँ आ ही तो पहुँचे। (१) पहुँचते ही सबने सुग्रीवके चरणोंमें जा प्रणाम किया। कपिराज सुग्रीवने भी बड़े प्रेम-पूर्वक सबसे भेंट की और सबसे कुशल-मंगल पूछा। (वानरोंने उत्तर दिया—) 'आपके चरणोंके दर्शनसे सब कुशल ही कुशल है। जिस कामके लिये हम लोग भेजे गए

२. बरजन।

३२२-२३ सर्वे दृष्ट्वा हनूमन्तं हर्षिता कपयोऽभवन्। तस्मिन्मुहूर्ते प्लवगा नूतनं जन्म मेनिरे ॥
प्रसन्नवदनं वीक्ष्य तनुं तेजोविराजिताम्। वानरा रामचन्द्रस्य कृतं कार्यं हनूमता ॥
३२४-२५ इदानीमेव गच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम्। इत्युक्त्वा वानराः सर्वे हर्षेणालिंग्य मारुतिम्॥अ०रा०
हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम्। अध्या०॥ दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥
३२६-२७ ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत्। कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिंगला। ॥—वाल्मी०
अंगद उवाच-हनुमान्कृतकार्योऽयं पिबतैतत्प्रसादतः। ततः प्रविश्य हरयः पातुमारेभिरे मधु ॥
रक्षिणस्ताननादृत्य दधिवक्त्रेण नोदितान्। पिबतस्ताडयामासुर्वानरान् वानरर्षभाः ॥
ततस्तान्मुष्टिभिः पादैश्चूर्णयित्वा पपुर्मधु ॥
३२८-२९ ततो दधिमुखः क्रुद्धः सुग्रीवस्य च मातुलः। जगाम रक्षिभिः सार्धं यत्र राजा कपीश्वरः ॥
गत्वा तमब्रवीद्देव चिरकालाभिरक्षितम्। नष्टं मधुवनं तेऽद्य कुमारेण हनूमता ॥
श्रुत्वा दधिमुखेनोक्तं सुग्रीवो हृष्टमानसः। दृष्ट्वागतो न सन्देहः सीतां पवननन्दनः ॥
३३० नो चेन्मधुवनं द्रष्टुं समर्थः को भवेन्मम ॥

नाथ ! काज कीन्हेउ हनुमाना । राखे सकल कपिन - के प्राना ।
सुनि, सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ । कपिन - सहित रघुपति-पहँ चलेऊ । (३)
राम, कपिन जब आवत देखा । किए काज, मन हरष बिसेखा ।
फटिक - सिला बैठे दोउ भाई । परे सकल कपि चरनन्हि जाई । (४)
दो०—प्रीति - सहित सब भेंटे , रघुपति करुना - पुंज ।
पूछी कुसल नाथ ! अब , कुसल देखि पद - कंज ।। २९ ।।
३४० जामवंत कह, सुनु रघुराया । जा - पर नाथ ! करहु तुम दाया ।
ताहि, सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर - नर - मुनि प्रसन्न ता ऊपर । (१)
सोइ बिजई, बिनई- गुन - सागर । तासु सुजस, त्रैलोक - उजागर ।
प्रभु - की कृपा, भयउ सब काजू । जनम हमार सुफल भा आजू । (२)
नाथ ! पवन-सुत कीन्हि जो करनी । सहसहु मुख न जाइ सो बरनी ।
पवन - तनय - के चरित सुहाए । जामवंत रघुपतिहि सुनाए । (३)
सुनत, कृपानिधि - मन अति भाए । पुनि हनुमान हरषि हिय लाए ।
कहहु तात ! केहि भाँति जानकी । रहति, करति, रच्छा स्व-प्रान-की । (४)

थे, वह रामकी कृपासे सारा पूरा हो गया । (२) नाथ ! यह सारा काम अकेले हनुमान्ने ही पूरा कर निभाया और सब वानरोंके प्राणोंकी रक्षा की ।' यह सुनकर सुग्रीवने हनुमान्से जाकर भेंट की और सब वानरोंको साथ लेकर रामके पास चल दिए । (३) जब रामने देखा कि सब वानर दौड़े चले आ रहे हैं तो समझ गए कि ये हमारा काम (सीताकी खोज) अवश्य कर लाए हैं । अतः, वे भी बहुत हर्षित हो उठे । दोनों भाई स्फटिक शिलापर बैठे ही हुए थे कि सब वानर उनके चरणोंमें आ लोटे (सबने प्रणाम किया) । (४) करुणानिधान रामने बड़े प्रेमसे सबसे मिलकर कुशल पूछा । (वानरोंने कहा—) 'नाथ ! आपके चरण-कमलोंका दर्शन मिल गया तो सब कुशल ही कुशल है' ।। २९ ।। जामवन्तने कहा —'नाथ ! जिसपर आपकी दया हो जाती है, उसका सदा कल्याण और निरन्तर कुशल ही हुआ रहता है । देवता, मनुष्य और मुनि भी सब उसपर प्रसन्न हुए रहते हैं । (१) इतना ही नहीं, वह विजयी, विनयशील और सब गुणोंका भांडार बन जाता है और तीनों लोकोंमें उसका उज्जवल यश फैल चलता है । जो कार्य हमें सौंपा गया था वह सब तो प्रभु (आप)-की कृपासे पूर्ण हो ही गया, साथ ही हमारा जन्म भी आज सफल हो गया (कि हम आपके कुछ काम आ सके) । (२) नाथ ! इस काममें पवनपुत्र हनुमान्ने जो पराक्रम कर दिखाया है उसका वर्णन सहस्रों मुखोंसे भी नहीं किया जा सकता ।' तब जामवन्तने पवनपुत्र हनुमान्के पराक्रमकी वह सब कथा (कि लंकामें जाकर उन्होंने क्या-क्या किया) रामको कह सुनाई । (३) वह सुनकर कृपानिधान रामको हनुमान् इतने प्यारे लग चले कि रामने गद्गद होकर हनुमान्को हृदयसे उठा लगाया और वे पूछने लगे—'बताओ भाई ! वहाँ जानकी किस प्रकार दिन काट रही हैं और वे कैसे इतने दिनों-तक अपने प्राण बचाए रह सकी हैं ।' (४) (हनुमान्ने

३३१-३७ हनूमन्तं पुरस्कृत्य युवराजं तथांगदम् । रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम् ।।
साष्टाङ्गप्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम् ।।
३३८-३९ सप्रेम सर्वान् श्लिष्येण श्रीरामः करुणाकरः । पृष्टवान् कुशलं नाथ कुशलं दर्शनात्तव ।।—अध्यात्म
३४०-४६ यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः । तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ।। भाग०

दो०—नाम पाहरू, दिवस-निसि[1], ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित, जाहिँ प्रान केहि बाट॥ ३०॥

३५० चलत मोहिँ चूड़ामनि दीन्हीँ। रघुपति, हृदय लाइ सोइ लीन्हीँ।
नाथ! जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनक-कुमारी। (१)
अनुज-समेत गहेहु प्रभु चरना। दीनबंधु, प्रनतारति - हरना।
मन-क्रम-बचन चरन-अनुरागी। केहि अपराध नाथ! हौं त्यागी। (२)
अवगुन एक मोर मैं जाना। बिछुरत, प्रान न कीन्ह पयाना।
नाथ! सो नयननि-कर अपराधा। निसरत प्रान, करहिँ हठि बाधा। (३)
बिरह अगिनि, तन तूल, समीरा। स्वाँस, जरइ छन-माहिँ सरीरा।
नयन स्रवहिँ जल, निज हित-लागी। जरै न पाव देह - बिरहागी। (४)
सीता-कै अति बिपति बिसाला। बिनहिँ कहे भलि दीनदयाला। (४॥)
दो०—निमिष-निमिष करुनानिधि, जाहिँ कलप - सम बीति।
३६० बेगि चलिय प्रभु! आनिय, भुज-बल खल-दल जीति॥ ३१॥
सुनि सीता-दुख, प्रभु सुख-अयना। भरि आए जल राजिव-नयना।

बताना प्रारंभ किया)—'नाथ! आपका नाम ही दिन-रात उनका पहरेदार बना हुआ है, आपका ध्यान ही किवाड़ है और वे अपने नेत्र अपने चरणोंसे बाँधे बैठी रहती हैं, तब बताइए प्राण निकलें तो किधरसे निकलें? (सीता दिनरात आपका नाम जपती हुई, आपका ध्यान करती हुई अपना सिर झुकाए बैठी रहती हैं)॥ ३०॥ चलते समय उन्होंने मुझे अपना यह सिर-फूल (पहचानके लिये उतारकर दे दिया था (यह आपको दिए देता हूँ)।' रामने उसे लेते ही हृदयसे लगा लिया। (फिर हनुमान् कहने लगे—) 'नाथ! दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर माता जानकीने यह संदेश कह लाया है—(१) कि लक्ष्मणके और प्रभुके चरण पकड़कर कहना कि आप दीनबन्धु हैं और सदा शरणागतके दुःख हरते आए हैं। मैं जब मन, वचन और कर्मसे आपके चरणोंसे इतना प्रेम करती हूँ तब स्वामी मुझे किस अपराधके कारण छोड़ बैठे हैं (भुलाए बैठे हैं)? (२) हाँ, अपना एक अपराध मैं अवश्य स्वीकार करती हूँ कि आपसे बिछुड़ते समय मेरे प्राण नहीं निकल गए। पर नाथ! वह अपराध तो नेत्रोंका है जो (आपके दर्शनके लोभमें)प्राण निकलनेमें हठ करके बाधक बने बैठे हैं। (३) आपका विरह ही अग्नि है, मेरा शरीर ही रुई है और मेरा श्वास ही पवन है जिनके संयोगसे क्षण भरमें शरीरको जल जाना चाहिए, पर अपने स्वार्थ (आपका दर्शन करनेकी लालसा)-के कारण ये नेत्र निरन्तर जल बरसाते रहते हैं इसलिये विरहकी आगसे भी शरीर जल नहीं पा रहा है (वे आपके वियोगमें तपी जा रही हैं और निरन्तर आँसू बहाए जा रही हैं।) (४) दीनदयालु! माता सीताको इतना अधिक कष्ट है कि उसका न कहना ही अच्छा है। (५) करुणानिधान! उनका एक-एक क्षण एक-एक कल्पके समान बीता जा रहा है, इसलिये, प्रभो! अब आप विलंब न कीजिए और शीघ्र चलकर अपने भुज-बलसे खलोंकी सेना जीतकर माता सीताको लिवाते लाइए'॥३१। सुखके धाम प्रभु रामने

[1] राति-दिनु।

३४७-४९ क्व सीता वर्तते देवी कथं च मयि वर्तते। त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम्॥वाल्मी०
३५०-५१ इत्युक्त्वा सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम्। दत्वा काकेन यद्वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा॥
३५२-५८ तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम्। लक्ष्मणं ब्रूहि मे किंचिद् दुरुक्तं भाषितं पुरा॥
तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन। तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः॥अध्या०
३५९-६१ एतदेव मयाऽख्यातं सर्वं राघव यद्यथा। सर्वथा सागरजले संतारः प्रविधीयताम्॥वाल्मीकीय

वचन - काय - मन मम गति जाही। सपनेहु बूझिय बिपति कि ताही। (१)
कह हनुमंत, बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन - भजन न होई।
केतिक बात प्रभु जातुधान - की। रिपुहिं जीति, आनिबी जानकी। (२)
सुनु कपि! तोहिं समान उपकारी। नहिं कोउ सुर-नर-मुनि-तनु-धारी।
प्रति - उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा। (३)
सुनु सुत! तोहिं उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन - माहीं।
पुनि - पुनि कपिहिं चितव सुर - त्राता। लोचन नीर, पुलक अति गाता। (४)
दो०—सुनि प्रभु-बचन, बिलोकि मुख, गात हरपि हनुमंत।
३७० चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥ ३२॥
बार - बार प्रभु चहइँ[1] उठावा। प्रेम - मगन तेहि उठब न भावा।
प्रभु - कर - पंकज कपि-के[2] सीसा। सुमिरि सो दसा, मगन गौरीसा। (१)
सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर।
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि, परम निकट बैठावा। (२)

सीताके दुःखोंकी कथा सुनी तो उनके कमलके समान नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग चली। वे कहने लगे—'जिसे तन, मन वचनसे केवल एक मेरा ही भरोसा है, उसे क्या कभी स्वप्नमें भी दुःख होना चाहिए?' (१) हनुमान् बोल उठे—'प्रभो! सच पूछिए तो आपका भजन और स्मरण छोड़ बैठना ही सच्ची विपत्ति है। प्रभो! वे राक्षस हैं ही किस गिनतीमें? आप (जब चाहें तो यों चुटकी बजाते) शत्रुको जीतकर जानकीको ले आ सकेंगे।' (२) (रामने बात बदलकर कहा—) 'देखो हनुमान्! तुम्हारे समान मेरा उपकार करनेवाला कोई भी शरीरधारी देवता, मनुष्य या मुनि नहीं है। तुम्हारे उपकारका बदला चुकाना तो दूर रहा, मेरा मन भी तुम्हारे सामने आनेमें हिचकता है। (तनसे क्या, मनसे भी मैं तुम्हारे उपकारका बदला नहीं चुका सकता)। (३) देखो पुत्र! मैं भली प्रकार मनमें विचार करके देख चुका हूँ कि किसी भी प्रकार तुम्हारे उपकारका बदला चुकाए नहीं चुकाया जा सकता।' देवताओंके रक्षक राम बार-बार हनुमानको एकटक देखे चले जा रहे थे। उनके नेत्रोंसे झरझर आँसू बहे चले जा रहे थे और उनका शरीर पुलकित हुआ चला जा रहा था। (४) प्रभुके वचन सुनकर और उनका मुख प्रसन्न देखकर हनुमान् हर्षसे फूले नहीं समाए। वे प्रेमसे अकुलाकर रामके चरणोंपर गिरकर पुकार उठे—'भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो'॥ ३२॥ प्रभु राम बार-बार उन्हें उठाने चलते हैं पर हनुमान हैं कि प्रेममें डूब रहनेके कारण उठाए नहीं उठ रहे हैं। शिवने देखा कि प्रभु राम अपना कर-कमल हनुमान्के सिरपर फेरे जा रहे हैं। बस इस दृश्यका स्मरण करते ही शिव भी प्रेममें मग्न हो उठे। (१) किसी-किसी प्रकार अपनेको सँभालकर शिवने फिर वह सुन्दर कथा सुनानी प्रारंभ कर दी।

प्रभु रामने हनुमान्को हृदयसे उठा लगाया और उनका हाथ थामकर उन्हें अपने पास पकड़ बैठाया। (२) (वे हनुमान्से कहने लगे—) 'भला यह तो बताओ हनुमान्! कि जिस

१. चहैं। २. के।

३६२-६५ श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं रामोऽत्यन्तप्रहृष्टधीः।
३६६-७१ हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम्। उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते। इत्यालिंग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम्॥
साश्रुनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः। हनुमन्तमुवाचेदं राघवो भक्तवत्सलः॥
परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः। अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव॥ अध्यात्म

कहु कपि ! रावन - पालित लंका । केहि विधि दहे दुर्ग अति बंका ।
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन, बिगत - अभिमाना । (३)
साखामृग - कै बड़ि मनुसाई । साखा - तें साखा - पर जाई ।
नाँघि सिंधु, हाटक - पुर जारा । निसिचर-गन बधि, बिपिन उजारा । (४)
३८० सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ ! न कछु मोरी[1] प्रभुताई । (४॥)
दो०—ता-कहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जा-पर तुम अनुकूल ।
तव प्रभाव बड़वानलहिं, जारि सकै खलु तूल ॥ ३३ ॥
नाथ ! भगति अति सुखदायनी । देहु, कृपा करि अनपायनी ।
सुनि प्रभु, परम सरल कपि - बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी । (१)
राम - सुभाउ, उमा ! जेहिं जाना[2] । ताहि भजन तजि, भाव न आना ।
एह संबाद, जासु उर आवा । रघुपति-चरन-भगति सोइ पावा । (२)
सुनि प्रभु - बचन, कहहिं कपिवृन्दा । जय-जय-जय कृपाल ! सुख-कन्दा ।
तब रघुपति कपि - पतिहि बोलावा । कहा, चलै - कर करहु बनावा । (३)
अब बिलंब केहि कारन कीजै । तुरत कपिन्ह - कहँ आयसु दीजै ।
३९० कौतुक देखि, सुमन बहु बरषी । नभ - तें भवन चले सुर हरषी । (४)

लंकाकी रक्षा स्वयं रावण बैठा किए जा रहा है वह लंका और उसका बड़ा बाँका दुर्ग तुम जला कैसे पाए ?' प्रभुको प्रसन्न जानकर अभिमान छोड़कर हनुमान् बोले—(३) 'प्रभो ! बन्दरका तो यही एक पुरुषार्थ है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर कूदता फिरे । जहाँतक समुद्र लाँघकर सोनेका नगर जलाने और राक्षसोंको मारकर अशोक वन उजाड़नेकी बात है, (४) वह सब तो भगवन् ! आपके ही प्रतापसे हो पाया है । उसमें मेरी कोई वीरता नहीं रही । (५) प्रभो ! जिसपर आप प्रसन्न हुए रहें, उसके लिये यह सब कर डाल सकना कौन कठिन काम है ! आपका प्रभाव तो ऐसा है कि रूई भी चाहे तो बड़वानलको भकसे जला डाले ॥ ३३ ॥ अब नाथ ! आप यही कृपा कीजिए कि अत्यन्त सुख देनेवाली अपनी अचल भक्ति मुझे दे डालिए ।'

(महादेव कहते हैं—) 'देखो पार्वती ! (प्रभु रामने) हनुमान्की यह सीधी-सादी निश्छल बात सुनी तो झट 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कह दिया । (१) देखो उमा ! जो एक बार रामका स्वभाव समझ लेता है, उसे रामका भजन छोड़कर दूसरा कुछ अच्छा ही नहीं लगता । यह (स्वामी राम और सेवक हनुमान्का) संवाद जिसके हृदयमें बस जाय (जो इसे भली भाँति गुन ले) उसे रामके चरणोंमें अवश्य भक्ति हो रहेगी ।' (२)

प्रभुके मुखसे ज्यों ही वानरोंने ('एवमस्तु') वचन सुना त्यों ही सब वानर चिल्ला उठे— 'कृपालु सुखकंद रामकी जय हो, जय हो, जय हो ।' उसी समय रामने सुग्रीवको बुला भेजा और उससे कहा—'बस, अब कूचका डंका बजा दिया जाय (चलनेकी तैयारी करो) ! (३) अब क्यों देर की जाय ?' तुरन्त, सब वानरोंको कूचकी आज्ञा दे डाली गई । भगवान्की यह लीला देखकर सब देवता पुष्प-वर्षा करने लगे और हर्षित हो-होकर आकाश-मार्गसे अपने-अपने लोक

१. कछू मोरि । २. उमा राम सुभाउ जेहि जाना ।

३७२-७७ त्रिदशैरपि दुर्द्धर्षा लंकानाम महापुरी । कथं वीर त्वया दग्धा विद्यमाने दशानने ॥
निःश्वासेनैव सीताया राजन् कोपानलेन ते । दग्धपूर्वा तु सा लंका निमित्तमभवत्कपिः ॥
३७८-८० शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः । यत्पुनर्लंघितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव ॥ हनु.ना.

दो०—कपि - पति बेगि बोलाए, आए जूथप - जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर - भालु - बरूथ॥ ३४॥
प्रभु - पद - पंकज नावहिं सीसा। गरजहिं भालु, महाबल कीसा।
देखी राम, सकल कपि - सेना। चितइ कृपा करि राजिव - नैना। (१)
राम - कृपा - बल पाइ कपिंदा। भए पच्छ - जुत मनहुँ गिरिंदा।
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना। (२)
जासु सकल मंगलमय कीती। तासु पयान सगुन, यह नीती।
प्रभु - पयान जाना बैदेही। फरकि बाम अँग जनु कहि देही। (३)
जोइ - जोइ सगुन जानकिहिं होई। असगुन भयउ रावनहिं सोई।
४०० चला कटक, को बरनै पारा। गरजहिं बानर - भालु अपारा। (४)
नख - आयुध, गिरि - पादप - धारी। चले गगन - महि इच्छाचारी।
केहरि - नाद भालु - कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज, चिक्करहीं। (५)

लौट गए (४) फिर क्या था! वानर-राज सुग्रीवने तत्काल सब वानरोंको बुलवा भेजा। देखते-देखते सब सेनापति वहाँ आ जुटे और रंग-विरंगे, अतुलनीय बलवाले न जाने कितने अनगिनत वानर और भालू वहाँ आ खड़े हुए॥ ३४॥ वे सबके सब आ-आकर प्रभु (राम)-के चरणोंमें सिर नवाते चले जा रहे थे। बड़े-बड़े बलवान् भालू और वानर खड़े-खड़े गरजे जा रहे थे। रामने वानरोंकी यह सारी सेना देख ली और ज्योंही उन्होंने अपने कमलके समान नेत्रोंसे कृपा-भरी दृष्टि उनपर घुमाई (१) कि रामकी कृपाका बल पाकर वे बड़े-बड़े वानर ऐसे विशाल और शक्तिशाली बन उठे मानो बड़े-बड़े पर्वतोंके पंख उग आए हों। फिर क्या था! उन्हें साथ लेकर रामने बड़े हर्षसे तत्काल प्रस्थान कर दिया। (उस समय) चारों ओर अच्छे-अच्छे शुभ शकुन हुए चले जा रहे थे। (२) जिनकी कीर्ति ही सब मंगलोंसे भरी है (जिन्हें सदा मंगल ही मंगल कार्य करनेका यश मिलता रहा है) उनके प्रस्थान करते समय अच्छे शकुन होना तो केवल लोक-दिखावा-भर है। उधर प्रभुके प्रस्थान करनेकी सूचना जानकीको भी मिल गई। उनके बाएँ अंग फड़ककर मानो उन्हें सूचना दिए डाल रहे थे कि (अब घबरानेकी कोई बात नहीं है) राम चले आ रहे हैं। (३) जानकीको जो-जो अच्छे शकुन हुए जा रहे थे वे ही मानो रावणके लिये अपशकुन हुए जा रहे थे। वानरोंकी जो विशाल सेना सजी चली जा रही थी उसका वर्णन भला कर कौन सकता है? (उस सेनाके) असंख्य भालू और वानर गरजते-दहाड़ते बढ़े चले जा रहे थे। (४) अपने नखसे ही लड़नेवाले इच्छाचारी (जिधर चाहें उधर बिना रोक-टोक चले जानेवाले) वानर और भालू हाथोंमें चट्टानें और वृक्ष उठाए कोई आकाशमें उड़ता हुआ (उछलता हुआ), तो कोई धरतीपर डग बढ़ाए झपटा चला जा रहा था। वे भालू और वानर सिंहके समान ऐसे दहाड़े चले जा रहे थे कि (उनके चलनेकी धमक और गरजके कोलाहलसे) दिशाओंके हाथी भी लड़खड़ाते हुए चिग्घाड़

३८१-९२ सुग्रीव सैनिकान्सर्वान् प्रस्थानायाभिनोदय। इदानीमेव विजयो मुहूर्तः परिवर्तते॥ —अध्यात्म
श्वेतारक्तपिशंगनीलवपुषः कृष्णाः कियत्कर्बुराः, स्थूला स्थूलतरा गिरीन्द्रसदृशा मत्तेभराजोपमाः॥
लांगूलातपवारणारुणमुखा कालास्यपिंगेक्षणाः, नानावर्णविचित्रवेगपथगास्तत्राययुः कोटयः॥
३९३ धीमन्तो वलबुद्धिविक्रमवतां श्रेष्ठा हिताः स्वामिनः,सुग्रीवस्य निदेशतो रघुपतेः कृत्वा प्रणामं ययुः॥अग्नि.
३९६-०२ अथ विजयदशम्यामाश्विने शुल्कपक्षे, दशमुखनिधनाय प्रस्थितो रामचन्द्रः॥
द्विरदविध्रमहाद्रेर्यूथनाथैस्तथान्यैः, कपिभिरपरिमाणैर्व्याप्तभूदिक् खचक्रः॥
उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिमं मम। अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते॥
वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानरा कामरूपिणः। खेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम्॥ह०ना०

छंद—चिक्करहिं दिग्गज, डोल महि, गिरि लोल, सागर खरभरे।
मन हर्ष दिनकर - सोम - सुर - मुनि - नाग - किन्नर, दुख टरे।
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु, कोटि - कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप, कोसलनाथ - गुन - गन गावहीं॥ [४]
सहि सक न भार, उदार अहिपति बार - बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि - पुनि कमठ पृष्ठ कठोर, सो किमि सोहई।
रघुबीर - रुचिर - पयान - प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
४१० जनु कमठ - खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥ [५]
दो०—ऐहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर - तीर।
जहँ - तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल, कपि बीर॥ ३५॥
उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब - तें जारि गयउ कपि लंका।
निज - निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर - कुल - केर उबारा। (१)
जासु दूत - बल बरनि न जाई। तेहि आए, पुर कवन भलाई।

उठे। (५) हाथी चिग्घाड़ उठे, धरती डगमगा उठी, पर्वत हिल उठे और समुद्रमें ऊँची-ऊँची लहरें उठ चलीं। गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर सब मनमें हर्षित हुए जा रहे थे कि इतने दिनपर हमारी विपदा तो दूर हो पाई। करोड़ों भयानक-भयानक वानर योद्धा दाँत कट-कटाते चले जा रहे थे, करोड़ों दौड़ लगाए जा रहे थे और 'प्रबल प्रतापी कोशलनाथ रामकी जय हो' चिल्लाते हुए बारबार उनके गुण गाए चले जा रहे थे। [४] वह सेना इतनी विशाल हो चली थी कि उदार सर्पराज शेषनाग भी उस सेनाका बोझ नहीं सँभाल पा रहे थे। वे बार-बार डगमगाए पड़ रहे थे और (सँभले रहनेके लिये) बार-बार कच्छपकी कठोर पीठ दाँतोंसे पकड़ते चलते हुए ऐसे शोभा दे रहे थे मानो रामकी सुन्दर प्रस्थान-यात्राको बहुत सुहावना जानकर उसकी अचल और पवित्र कहानी कच्छपकी पीठके खप्परपर लिखते चले जा रहे हों (क्योंकि यह बहुत पुरानी प्रथा रही है कि जब कोई राजा किसी देशपर चढ़ाई करता था तो साथ-साथ एक इतिहास-लेखक भी सारा विवरण लिखता चलता था)। (२) इस प्रकार (अपनी सेनाके साथ कृपानिधान राम समुद्रके तटपर जा उतरे। पहुँचते ही जितने भालू और वीर वानर साथ थे वे सब जहाँ मिला वहीं घूम-घूमकर फल खाने जा जुटे॥ ३५॥ वहाँ (लंकामें) जबसे हनुमान् लंका जलाकर गए थे, तभीसे डरके मारे राक्षसोंका बुरा हाल हुआ जा रहा था। सब अपने-अपने घरोंमें बैठे इसी सोचमें पड़े घुले जा रहे थे कि 'अब राक्षसोंका कल्याण होता नहीं दिखाई देता। (१) जिसके दूतके बलकी कोई थाह नहीं लगा पा सका, वह

४०३-१० श्वासोर्मिप्रतिसंधिरुंधितगलप्रच्छिन्नहारावली, रत्नैरप्यदयालुभिः कृतफणाप्राग्भारभंगक्रमः।
श्रोत्राकाशनिरन्तरालमिलितस्तब्धैः शिरोभिर्भुवं, धत्ते वानरवीरविक्रमभराभुग्नो भुजंगाधिपः॥
कूर्मं क्लेशयितुं दिशः स्थगयितुं भेत्तुं धरित्रीधरान्, सिन्धुं धूलिभरेण कर्दमयितुं तेनैव रोद्धुं नभः॥
नासीरेषु पुरः पुरश्चलबलालापस्य कोलाहलात्, कर्तुं वीरवरूथिनी मम परं जैत्रं पुनस्त्वद्भुजैः॥
नृपतिमुकुटरत्नत्वत्प्रयाणप्रशस्ति प्लवगबलनिमज्जद् भूभराक्रान्तदेहः।
लिखति दशनटंकैरुत्पतद्भिः पतद्भिर्जरठकमठभर्तुः खर्परे सर्पराजः॥ —हनुमन्नाटक
४११-१२ आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम्। भक्षयन्तस्ततः सर्वे फलानि मुमधूनि च॥—अध्यात्म०
४१३-१५ किन्ते भीरु भिया निशाचरपतेर्नासौ रिपुर्मे महान्।
यस्याग्रे समरोद्यतस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः॥ —हनुमन्नाटक

दूतिन्ह - सन सुनि पुरजन - बानी । मंदोदरी अधिक अकुलानी । (२)
रहसि जोरि कर, पति - पद लागी । बोली बचन, नीति - रस - पागी ।
कंत ! करप हरि - सन परिहरहू । मोर कहा अति हित, हिय धरहू । (३)
समुझत जासु दूत - कइ करनी । स्रवहिं गर्भ रजनीचर - घरनी ।
४२० तासु नारि, निज सचिव बोलाई । पठवहु कंत ! जो चहहु भलाई । (४)
तव कुल - कमल - बिपिन दुखदाई । सीता सीत - निसा - सम आई ।
सुनहु नाथ ! सीता बिनु - दीन्हें । हित न तुम्हार, संभु-अज कीन्हें । (५)
दो०—राम - बान अहिगन - सरिस , निकर - निसाचर भेक ।
जब लगि ग्रसत न तब लगि , जतन करहु तजि टेक ।। ३६ ।।
स्रवन सुनी सठ ताकरि बानी । बिहँसा जगत - बिदित अभिमानी ।
सभय सुभाउ नारि - कर साँचा । मंगल-महँ भय, मन अति काँचा । (१)
जौ आवै मर्कट - कटकाई । जियहिं बिचारे निसिचर खाई ।
कंपहि लोकप जाकी त्रासा । नारि सभीत[1] तासु, बड़ि हासा । (२)
अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई । चलेउ सभा ममता अधिकाई ।

स्वयं जब नगरमें आ धमकेगा तब कौन किसीके बचाए बच पावेगा ?' मन्दोदरीने दूतियोंसे जब नगर-वासियोंकी ऐसी-ऐसी (घबराहट-भरी) बातें सुनी तो वह भी बहुत व्याकुल हो उठी । (२) वह एकान्तमें हाथ जोड़कर पति (रावण)-के पैरों पकड़कर रावणको बहुत नीति (समझदारी)-की बात समझाते हुए कहने लगी—'प्रियतम ! अब भी (मेरा कहना मानकर) रामसे विरोध करना छोड़ दो । मैं जो कुछ भी कहूँगी आपके भलेके लिये ही कहूँगी । यह समझकर जो मैं कह रही हूँ वह आप मान ही लीजिए । (३) जिनके दूतका पराक्रम स्मरण कर-करके ही राक्षसोंकी स्त्रियोंके गर्भ गिर-गिर पड़ रहे हैं, उनकी स्त्री (जानकी)-को, यदि आप अपना भला चाहते हों, तो अपने मन्त्रीके साथ (रामके पास) तत्काल भिजवा दीजिए । (४) (आप समझ लीजिए कि) यह सीता क्या आई है, आपके कुलके कमल-वनको जला डालनेवाली जाड़ेकी रात आ गई है जैसे जाड़ेकी रातमें कमलोंको पाला मार जाता है वैसे ही सीता भी आपका नाश करवाने आ पहुँची है) । देखिए नाथ ! यदि आपने सीताको न लौटाया तो आप शिव और ब्रह्माके बचाए भी नहीं बच पावेंगे । (५) रामके बाण सर्पोंके समान और राक्षस मेढकोंके समान हैं । अत:, जबतक वे (बाण) इन्हें निगलें-निगलें, तब-तक आप हठ छोड़कर इन्हें बचानेका कोई उपाय निकाल धरिए' ।।३६।। मूर्ख और संसारमें प्रसिद्ध अभिमानी रावण उस (मन्दोदरी)-की बातें सुन-सुनकर बहुत देरतक खिल-खिलाकर हँसता रहा (और फिर बोला—) 'सचमुच स्त्रियाँ स्वभावसे ही बहुत डरपोक होती हैं । जहाँ मंगल होना (विजय) निश्चित है वहाँ तुम घबराई क्या पड़ रही हो ? तुम्हारा मन सचमुच बहुत कच्चा है । (१) अरी ! वानरोंकी सेना एक बार यहाँ आ जाय तो बड़ा काम बन जाय । बेचारे राक्षसोंको कुछ दिनोंतक उन्हें खा-खाकर जीनेका सहारा ही मिल जाय । कितनी हँसी की बात है कि जिस (रावण)-के डरसे बड़े-बड़े लोकपाल दिन-रात थर्राए रहते हैं उसकी स्त्री इतनी डरपोक निकल जाय ।' (२) रावणने यह कहकर और हँसकर उसे हृदयसे चिपटा लगाया और उसे चुमकार-पुचकारकर वहाँसे उठकर अपने दरबारमें जा पहुँचा । मन्दोदरी बैठी-बैठी अपने हृदयमें सोचे जा

[1] तासु नारि सभीत ।

४२६ रावणो विधेयमपरमजानन् जानकीमप्यविमोक्तुकामः कामपरतन्त्रो मंत्रिभिः समं सभामाजगाम।।चं०रा.

४३० मंदोदरी हृदय कर चींता¹ । भयउ कंत - पर बिधि बिपरीता । (३)
बैठेउ सभा, खबरि असि पाई । सिंधु - पार सेना सब आई ।
बूझेसि सचिव, उचित मत कहहू । ते सब हँसे, मष्ट करि रहहू । (४)
जितेहु सुरासुर तब स्रम नाहीं । नर - बानर केहि लेखे - माहीं । (४॥)
दो०—सचिव, बैद, गुरु, तीनि जौं , प्रिय बोलहिं भय - आस ।
राज, धर्म, तन, तीनि - कर , होइ बेगिही नास ॥ ३७ ॥
सोइ रावन - कहँ बनी सहाई । अस्तुति करहिं सुनाइ - सुनाई ।
अवसर जानि, बिभीषन आवा । भ्राता - चरन सीस तेहि नावा । (१)
पुनि सिर नाइ बैठ निज आसन । बोला बचन पाइ अनुसासन ।
जौं कृपाल पूछेहु मोहिं बाता । मति - अनुरूप कहौं हित, ताता । (२)
४४० जो आपन चाहइ कल्याना । सुजस, सुमति,सुभ गति,सुख नाना ।
सो परनारि - लिलार गोसाईं । तजौ चौथि - के चंद - कि नाईं । (३)
चौदह भुवन एक पति होई । भूत - द्रोह तिष्ठै नहिं सोई ।
गुन - सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ, भल कहै न कोऊ । (४)

रही थी कि (मेरे किए क्या हो सकता है) 'पतिके दिन ही बुरे आ चले हैं ।' (३) उधर रावण सभामें जाकर बैठा ही था कि उसे समाचार मिला कि (रामकी) सारी सेना समुद्रके उस पार-तक आ पहुँची है । वह बैठकर मंत्रियोंसे परामर्श करने लगा—'आप लोग बताइए न, इस अवस्थामें किया क्या जाय ?' इसपर सब (मंत्री) हँसकर बोल उठे—'आप चुप मारे बैठे रहिए । (४) जब आप देवताओं और राक्षसोंको चुटकी बजाते जीत बैठे (उन्हें जीत लेनेमें आपको कुछ श्रम नहीं करना पड़ा) तब मनुष्य और वानर किस खेतकी मूली हैं (किस गिनतीमें हैं) ।' (४॥) यदि (राजाको) मंत्री, (रोगीको) वैद्य और (शिष्यको) गुरु, ये तीनों भयके मारे (कि कहीं राजा, रोगी या शिष्य रुष्ट न हो जाय) अथवा (किसी लाभकी) आशासे ठकुरसुहाती कहने लगें (हाँमें हाँ मिलाने लग जायँ) तो राज्य, शरीर और धर्म तीनोंके मटियामेट होते देर नहीं लगती ॥ ३७ ॥ रावणके लिये भी यही संयोग आ बैठा था । मंत्री उसे सुना-सुनाकर उस (रावण)-की प्रशंसाके पुल बाँधे चले जा रहे थे । (इसी समय) अवसर देखकर विभीषण भी वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने पहुँचते ही भाईके चरणोंमें सिर आ नवाया । (१) सिर नवाकर वे अपने स्थानपर जा बैठे और आज्ञा पाकर कहने लगे—'कृपालु ! जब आप मुझसे पूछ ही रहे हैं तो भाई ! मैं तो अपनी बुद्धिके अनुसार वही सम्मति दूँगा जिससे आपका कल्याण हो । (२) जो मनुष्य अपना कल्याण, उज्ज्वल यश, सद्बुद्धि, शुभ गति तथा सब प्रकारके सुख चाहता हो, उसे चाहिए कि वह चौथके चन्द्रमाके समान (पराई) स्त्रीका मुख त्याग दे (पराई स्त्रीका मुख न देखे) ।² चौदहों लोकोंका एकच्छत्र स्वामी भी प्राणियोंसे द्रोह करके बच नह सकता । चाहे कोई कितना भी बड़ा गुणी और विद्वान् क्यों न हो, पर यदि उसके मनमें थोड़ा भी लोभ आ समावे तो, कोई उसे भला नहीं बताता । (४)

१. चिंता । २. भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीको चन्द्रदर्शन करनेपर कलंक लगता है । श्रीकृष्णको इसी कारण स्यमन्तक मणि चुरानेका कलंक लगा था ।

४३२-३५ किं कर्तव्यमितोस्माभिर्ब्रूयं मंत्रविशारदाः । देव शंका कुतो रामात्तव लोकजितो रणे ॥ अध्या०
वैद्यो गुरुश्च मंत्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदः । शरीरधर्मकोषेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥ हितो०
४३७ तत्रागतो भागवतप्रधानो विभीषणो बुद्धिमतांवरिष्ठः ।
श्रीरामपादद्वय एकतानः प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः ॥ —अध्यात्मरामायण

दो०—काम, क्रोध, मद, लोभ सब, नाथ नरक-के पंथ।
सब-परिहरि रघुबीरहिं, भजहु, भजहिं जेहि संत ॥ ३८ ॥

तात ! राम नहिं नर-भूपाला। भुवनेस्वर, कालहु-कर काला।
ब्रह्म, अनामय, अज, भगवंता। व्यापक, अजित, अनादि, अनंता। (१)
गो-द्विज-धेनु-देव-हितकारी। कृपासिंधु मानुष-तनु-धारी।
जनरंजन, भंजन-खल-ब्राता। बेद-धर्म-रच्छक, सुनु भ्राता। (२)
४५० ताहि बयर तजि नाइय माथा। प्रनतारति-भंजन रघुनाथा।
देहु नाथ ! प्रभु-कहँ बैदेही। भजहु राम, बिनु-हेतु सनेही। (३)
सरन गए, प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व-द्रोह-कृत-अघ जेहि लागा।
जासु नाम त्रय-ताप-नसावन। सोइ प्रभु प्रगट, समुझि जिय रावन। (४)

दो०—बार-बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान, मोह, मद, भजहु कोसलाधीस ॥ ३९ क ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य-सन, कहि पठई ऐह बात।
तुरत सो मैं प्रभु-सन कही, पाइ सुअवसर तात ॥ ३९ ख ॥

देखिए नाथ ! काम, क्रोध, मद और लोभ, इन सबके फेरमें पड़नेवाला व्यक्ति सीधे नरक ही पहुँचाता है। इसलिये इन सबको छोड़कर उन रामकी सेवा जा कीजिए जिनकी सेवा सदा सन्तजन निरंतर करते रहते हैं ॥ ३८ ॥ देखिए स्वामी ! राम केवल मनुष्योंके ही राजा नहीं है। वे तो समस्त लोकोंके स्वामी और कालके भी काल हैं। उनमें कभी विकार नहीं आता (वे सदा ज्योंके त्यों बने रहते हैं), वे अजन्मा, भगवान्, सर्वव्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं। (१) वे ही परम कृपालु भगवान् पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओंका हित करनेके लिये मनुष्यका रूप धारण करके आ उतरे हैं। देखिए भाई ! वे सदा सेवकोंको आनन्द देते रहते हैं, दुष्टोंका नाश करते रहते हैं और वेद तथा धर्मकी रक्षा करते रहते हैं। (२) आप उनसे वैर छोड़कर उनके आगे मस्तक जा नवाइए। रामकी शरणमें जो भी जा पहुँचता है उसके सारे दुःख वे पल-भरमें दूर कर डालते हैं। इसलिये नाथ ! रामके पास जानकी लौटा भेजिए और उन रामकी सेवा जा करने लगिए जो बिना कारण ही सबसे स्नेह करते रहते हैं। (३) (यहाँतक कि) जिस व्यक्तिको विश्वभरसे द्रोह करनेका भी पाप लगा हो, वह भी उनकी शरणमें जा पहुँचे तो प्रभु उसे भी अपनालेते हैं। यह आप भली भाँति हृदयमें समझ लीजिए कि जिनका नाम तीनों (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापोंका नाश कर डालता है, वे प्रभु ही मनुष्य रूपमें आए दिखाई दे रहे हैं। (४) देखिए दशशीश ! मैं बार-बार आपके पैरों पड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप मान, मोह, और मद छोड़कर कोशलाधीश रामकी सेवा जा कीजिए ॥ ३९ क ॥ भाई ! मुनि पुलस्त्यने भी अपने शिष्यके हाथ मेरे पास यही संदेह कहला भेजा था। आज ठीक अवसरपर मैंने वह

४४१-४५ उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते। चतुर्थीचन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका ॥प्रसन्नराघव
लोभः स्वल्पोऽपि तान्हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्। —भागवत
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारमाहुर्मनीषिणः। कामः क्रोधश्च लोभश्च तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥गीता
४४६-५१ ब्रह्मर्षिभिर्नमयं सदेवैः संतापिते रात्रिचरक्षयाय।
नराकृतिर्वानरसैन्यशाली जगत्यजय्यो विहितोऽभ्युपायः ॥ —भट्टिकाव्य
तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम्। रोचये वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ॥वा०रा०

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि, अति सुख माना।
तात! अनुज तव, नीति-बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन। (१)
४६० रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु, इहाँ हइ कोऊ।
माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ बिभीषन, पुनि कर जोरी। (२)
सुमति-कुमति सबके उर रहहीं। नाथ! पुरान-निगम अस कहहीं।
जहाँ सुमति, तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति, तहँ बिपति निदाना। (३)
तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित, मानहु रिपु प्रीता।
कालराति निसिचर - कुल - केरी। तेहि सीता - पर प्रीति घनेरी। (४)
दो०—तात! चरन गहि माँगौं, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम-कहँ, अहित न होइ तुम्हार॥४०॥
बुध - पुरान - स्रुति - संमत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी।
सुनत, दसानन उठा रिसाई। खल! तोहि निकट मृत्यु अब आई। (१)

तुरन्त प्रभु (आप)-से निवेदित कर दिया है' ॥ ३९ ख ॥ विभीषणकी बात सुनकर रावणका (नाना) बुद्धिमान् मंत्री माल्यवंत बहुत प्रसन्न हुआ (और वह रावणसे बोला—) 'देव ! आपके छोटे भाई (विभीषण) तो नीतिके विभूषण (पंडित) हैं। अतः, उनकी बात अवश्य मान ही लेनी चाहिए।' (१) (सुनते ही रावण गरज उठा—) 'ये दोनों दुष्ट यहाँ बैठे-बैठे मेरे शत्रुकी महिमा गाए चले जा रहे है। अरे कोई हैं ? क्यों नहीं इन्हें यहाँसे निकाल वाहर करते ?' माल्यवंत तो यह सुनते ही उठकर अपने घर चल दिया, पर विभीषण फिर भी हाथ जोड़कर कहने लगे—(२) 'नाथ ! वेद और पुराणमें कहा गया हैं कि सुमति और कुमति सबके हृदयमें बसी पड़ी रहती हैं। जहाँ सुमतिसे काम होता है वहाँ सारी सम्पदाएँ अपने आप आ इकठ्ठी होती हैं और जहाँ कुमतिसे काम होता है, वहाँ अन्तमें विपत्ति ही विपत्ति हाथ लगती है। (आपके हृदयमें केवल कुमति ही कुमति आ बसी है, इसीलिये) आप अपनी भलाईको बुराई और शत्रुको मित्र माने लिए जा रहे हैं। राक्षसोंके कुलके लिये जो काल-रात्रि बनी बैठी है (जिसके कारण राक्षस-कुलका नाश होनेवाला है) उसी सीतासे आप बड़ी प्रीति जोड़नेके फेरमें पड़े हुए हैं। (४) भाई ! मैं आपके चरण पकड़कर आपसे भिक्षा माँगता हूँ कि आप मेरे दुलारकी रक्षा करके (बालक समझकर, मेरा हठ मानकर) रामको सीता लौटा दीजिए। (मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि) इससे आपका कभी अहित नहीं होगा' ॥४०॥ विभीषणने जब बहुत विस्तारसे विद्वान्, वेद, पुराण और नीतिकी बहुत बातें करनी प्रारंभ कीं तो उन्हें सुनकर रावण बौखला उठा (और बोला—) 'अरे दुष्ट ! (जान पड़ता है तेरी मृत्यु तेरे सिरपर आ चढ़ी है। (१) मूर्ख ! तू मेरे ही जिलाए जी रहा है और बैठा शत्रुकी बड़ाई किए जा रहा है। अरे खल !

४५५-५९ विभीषणोक्तं बहुमन्यमानः प्रोन्नम्य देहं परिणामनम्रम्।
स्खलद्वलिर्वार्धककम्पमूर्द्धा मातामहो रावणमित्युवाच॥ —वाल्मीकीयरामायण
कुलस्य शांति बहु मन्यसे चेत्कुरुस्व राजेन्द्र विभीषणोक्तम्। —भट्टिकाव्य
४६०-६१ अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालनोदितः। —वाल्मीकीयरामायण
भोः कोप्यस्माकं पुरतो नास्ति य एतौ गलहस्तयति। —हितोपदेश
४६२-६३ सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती संपदापत्तिहेतू। —भोजप्रबन्ध
४६४-६७ सीताभिधानेन महाग्रहेण ग्रस्तोऽस्मि राजन्न च ते विमोक्षः।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन दत्वाभिरामाय सुखी भव त्वम्॥ —अध्यात्मरामायण

४७० जियसि सदा सठ! मोर जियावा। रिपु-कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।
कहसि न खल! अस को जग-माहीं। भुज-बल जाहि जिता मैं नाहीं। (२)
मम पुर बसि तपसिन्ह-पर प्रीती। सठ! मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती।
अस कहि, कीन्हेसि चरन-प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा। (३)
उमा! संत-के इहइ बड़ाई। मंद करत, जो करै भलाई।
तुम पितु-सरिस भलेहि मोहिं मारा। राम भजे, हित नाथ! तुम्हारा। (४)
सचिव संग लै नभ-पथ गयऊ। सबहिं सुनाइ कहत अस भयऊ। (४॥)
दो०—राम! सत्य-संकल्प प्रभु, सभा काल-बस तोरि।
मैं रघुबीर-सरन अब, जाउँ, देहु जनि खोरि॥४१॥
अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयू-हीन भए सब तबहीं।
४८० साधु-अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल-कै हानि। (१)
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव-बिनु तबहिं अभागा।
चलेउ हरषि रघुनायक-पाहीं। करत मनोरथ बहु मन-माहीं। (२)
देखिहौं जाइ चरन-जलजाता। अरुन, मृदुल, सेवक-सुखदाता।

जिसकी बिल्ली उसीको म्याऊँ! बता, संसारमें ऐसा कौन बचा है जिसे मैंने अपनी भुजाके बलसे जीत न धरा हो। (२) तू बसा हुआ है मेरे नगरमें और प्रीति जोड़े बैठा है उन तपस्वियोंसे? इसलिए शठ! जा, अब तू उन्हींके पास जाकर उन्हीं को अपनी नीति सिखा।' यह कहकर रावणने विभीषणपर धमाकमे लात चला दी, फिर भी विभीषण बार-बार उसके चरण ही पकड़ता रहा। शिव कहते हैं—'देखो उमा! सन्तकी तो विशेषता ही यही है कि जो उनके साथ बुरा व्यवहार भी करें उसके साथ भी वे भलाई ही करते रहते हैं।' (विभीषण कहने लगे—) 'देखिए! आप मेरे पिताके समान हैं। मुझपर आपने लात चलाई तो अच्छा ही किया। परन्तु नाथ! आपका भला मैं इसीमें समझता हूँ कि आप जाकर रामकी सेवा करें।' (४) यह कहकर वे मन्त्री माल्यवन्तके साथ आकाश-मार्गसे उड़ चले और सबको सुनाकर यह कहते गए—(५) 'राम तो सत्य संकल्पवाले हैं (जो ठान लेते हैं वह करके रहते हैं) और सर्वशक्तिमान् प्रभु हैं। मैं देख रहा हूँ कि आपकी सारी सभाके सिरपर काल चढ़ा नाच रहा है। मैं तो अब रामकी शरणमें चला, अब मुझे दोष न दीजिएगा'॥४१॥ यह कहकर वे ज्योंही चले त्योंही सब राक्षस आयुहीन हो गए (ऐसा जान पड़ा कि उनकी मृत्यु निकट आ गई)। (शिव कहते हैं)—'देखो भवानी! जो मनुष्य साधुका अपमान कर बैठता है उसका सारा कल्याण (सुख) तुरन्त नष्ट हो मिटता है।' (१) जिस समय अभागे रावणने विभीषणको घरसे निकाला उसी समय उसका सारा ऐश्वर्य जाता रहा। विभीषण अपने मनमें न जाने कितनी कल्पनाएँ लिए हुए हर्षित होकर रामके पास चले जा रहे थे (२) कि 'मैं जाकर रामके वे लाल और कोमल चरण-कमल भर आँखों देखूँगा जिनकी सेवा

४६८-७० शुभं हितं पवित्रं च विभीषणवचः खलः। प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम्॥
कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाब्रवीत्। मद्दत्तभोगैः पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि॥
प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिणः। —अध्यात्मरामायण
४७१-७८ इति वामचरणेन विभीषणं ताडयामास। —हनुमन्नाटक
धिक्कृतोऽपि तथापि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः। चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्द्धं गगनस्थोऽब्रवीद्वचः॥
कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये। तनैव प्रेरितस्त्वं तु न शृणोपि हितं मम॥ अध्यात्म०
४७९-८० आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च। हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥ भाग०

जे पद परसि तरी रिषि-नारी। दंडक - कानन - पावनकारी। (३)
जे पद जनक-सुता उर लाए। कपट-कुरंग-संग धर धाए।
हर-उर-सर-सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई। (४)
दो०—जिन्ह पायन-के पादुकन्हि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौं, इन नयनन्हि अब जाइ ॥ ४२ ॥
ऐहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिंधु ऐहि पारा।
४९० कपिन बिभीषन आवत देखा। जाना कोउ रिपु-दूत बिसेखा। (१)
ताही रखि[1], कपीस-पहँ आए। समाचार सब ताहि सुनाए।
कह सुग्रीव, सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन-भाई। (२)
कह प्रभु, सखा बूझिये काहा। कहै कपीस, सुनहु नरनाहा।
जानि न जाइ निसाचर-माया। काम-रूप केहिं कारन आया। (३)
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि, मोहिं अस भावा।
सखा! नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत-भयहारी। (४)

करते रहनेवालेका सदा सुख ही सुख मिलता रहता है। जिन चरणोंका स्पर्श पाते ही (गोतम) ऋषिकी पत्नी (अहल्या) तर गई, जिन चरणोंने दण्डक वनको पवित्र कर डाला, (३) जिन चरणोंको जानकी सदा अपने हृदयमें बसाए रखती हैं, जो चरण कपट-मृगके पीछे उसे पकड़नेके लिये धरतीपर पड़ते चल रहे थे, जो चरण-कमल शंकरके हृदय-रूपी सरोवरमें सदा ही खिले रहते हैं, सौभाग्यसे उन्हीं चरण-कमलोंका मैं भी आज जाकर दर्शन कर लूँगा। (४) जिन चरणोंमें पहनी, हुई खड़ाऊँमें भरत अपना मन लगाए बैठे हैं, आज वे चरण मैं अपनी इन आँखोंसे जा देखूँगा ॥ ४२ ॥ इस प्रकार प्रेमपूर्वक (अपने मनमें) कल्पनाएँ सँजोए हुए विभीषण समुद्रके इस पार आ पहुँचे। इधर वानरोंने जब विभीषणको अपनी ओर उड़ते आते देखा तो उन्होंने समझा कि यह शत्रुके दूतोंका कोई मुखिया उड़ा चला आ रहा है। (१) वे उन (विभीषण)-को वहीं बाहर ही रोककर सुग्रीवके पास दौड़े चले आए और उन्हें सारा समाचार कह सुनाया। सुग्रीवने (रामके पास जाकर) कहा—'भगवन्! रावणका भाई आपसे मिलने चला आया है।' (२) प्रभु रामने पूछा—'कहो मित्र! तुम्हारी क्या सम्मति है?' (उससे मिला जाय या न मिला जाय?' इसपर कपीश (सुग्रीव)-ने कहा—'महाराज! इन राक्षसोंकी माया कौन समझ सकता है? न जाने यह छली यहाँ किस लिये आया है? (३) (जान पड़ता है) यह मूर्ख हमारा भेद लेने चला आया है। मुझे तो यही ठीक जँचता है कि इसे यहीं बाँध रक्खा जाय।' (यह सुनकर रामने कहा—) 'मित्र! बात तो तुमने ठीक नीतिकी सोची है,

१. ताहि राखि।

४८१-८७ विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणात् विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम्।
जगाम रामस्य पदारविन्दयोः सेवाभिकांक्षी परिपूर्णमानसः ॥ —अध्यात्मरामायण
तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम्।
रूपं निधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ —भागवत
४८८-९१ आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः। तमात्मपंचमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः ॥
वानरैः सह दुर्द्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान्। रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गत.। —वाल्मीकीयरामायण
४९२-९३ विश्वासार्हो न ते रामः मायावी राक्षसाधमः। —अध्यात्मरामायण
४९४-९५ रावणेन प्रणीतं हि तमवेहि विभीषणम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥ वाल्मी०
४९६ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ अध्यात्म०

सुनि प्रभु - बचन, हरष हनुमाना। सरनागत - बच्छल भगवाना। (४॥)
दो०—सरनागत - कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर, पापमय, तिन्हहिं बिलोकत हानि॥ ४३॥
५०० कोटि बिप्र-बध लागहिं जाहू। आए सरन, तजौं नहिं ताहू।
सनमुख होइ जीव मोहिं जबहीं। जनम - कोटि - अघ नासहिं तबहीं। (१)
पापवंत - कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई। (२)
निर्मल मन जन, सो मोहिं पावा। मोहिं कपट - छल - छिद्र न भावा।
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय - हानि कपीसा। (३)
जग - महँ सखा ! निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष - महँ तेते।
जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि, प्रान - की नाँई। (४)
दो०—उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि, कपि चले, अंगद - हनू - समेत॥४४॥

पर मैं तो प्रण ठाने बैठा हूँ कि जो शरणमें आ जाय उसे आते ही निर्भय कर दूँ।' (४) प्रभु (राम)-के वचन सुनकर हनुमान्‌को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि भगवान् कितने शरणागत-वत्सल (शरणमें आए हुएपर प्रेम करनेवाले) हैं। (४॥) (रामने फिर कहा—) 'जो लोग अपना अनहित करनेवाला (वैरी या हानि पहुँचानेवाला) समझकर शरणागतको त्याग बैठते हैं, वे मनुष्य ऐसे नीच और पापी होते हैं कि उनका मुँहतक देखनेमें पाप लगता है॥ ४३॥ (मेरा तो ऐसा नियम है कि) जिस प्राणीको करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्याका भी पाप आ लगा हो वह भी यदि मेरी शरणमें आ जाय तो मैं उसे भी नहीं भगाता, क्योंकि कोई भी जीव जहाँ मेरे सम्मुख आया कि उसके करोड़ों जन्मोंके पाप तत्काल नष्ट हुए। (१) देखो ! पापियोंका तो यह सहज स्वभाव होता है कि उन्हें मेरी सेवा करना अच्छा ही नहीं लगता। यदि उस (विभीषण)-का हृदय खोटा रहा होता, तो क्या कभी वह मेरे पास फटक पा सकता था ? (२) मेरे पास तो आ ही वह पाता है, जिसका हृदय शुद्ध होता है क्योंकि कपट और छल करनेवाले मुझे कभी अच्छे ही नहीं लगते। देखो कपिराज ! यदि रावणने उसे भेद ही लेनेके भेजा हो तब भी भय या हानिकी कोई बात नहीं है। (३) मित्र ! संसारमें जितने भी राक्षस हैं, उन सबको तो लक्ष्मण ही एक क्षणमें ढेर कर सकते हैं। और यदि वह (विभीषण) डरके मारे भागकर शरणमें आ पहुँचा हो तब तो मैं अपने प्राणोंके समान ही उसकी रक्षा करूँगा।' (४) कृपालु रामने हँसकर कहा—'दोनों ही दशाओंमें (चाहे वह भेद लेने आया हो या रावणके डरसे भागकर मेरी शरणमें आया हो) तुम उसे मेरे पास लेते आओ।' तब कृपालु रामकी जय करते हुए अंगद और हनुमान्‌के साथ सब वानर (विभीषणको लिवा लानेके लिये) चल दिए॥ ४४॥ सभी वानर

४९७ प्रभोर्वचनमाकर्ण्य हर्षितः पवनात्मजः। धन्योऽयं भगवान् रामः शरणागतवत्सलः॥ पुल.सं.
४९८-९९ त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च।
भवति च सदोपहास्यो यः किल शरणागतं त्यजति॥ —मृच्छकटिक
५००-४ हंता यः कोटिविप्राणां प्रपन्नं न त्यजामि तम्। —अगस्त्यसंहिता
यदा भवति मे जीवः सम्मुखः कोटिजन्मनाम्। नश्यन्ति खलु पापानि तदैव मुनिपुङ्गव॥ब्रह्म०
पापिनां सहजं शीलं न रतिः पादयोर्मम। —सनत्कुमारसंहिता
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ भाग०
यो जनः स्वच्छहृदयः स मां प्राप्नोति नापरः। मह्यं कपटदंभानि न रोचन्ते कपीश्वर॥अगस्त्यसं०

५१० सादर तेहि आगे करि बानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ।
दूरिहि - तें देखे दोउ भ्राता । नयनानंद - दान - के दाता । (१)
बहुरि राम छबि - धाम बिलोकी । रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी ।
भुज प्रलंब, कंजारुन लोचन । स्यामल गात, प्रनत - भय - मोचन । (२)
सिंघ कंध, आयत उर सोहा । आनन अमित - मदन - मन मोहा ।
नयन नीर, पुलकित अति गाता । मन धरि धीर, कही मृदु बाता । (३)
नाथ ! दसानन - कर मैं भ्राता । निसिचर-बंस-जनम, सुर-त्राता ।
सहज पाप - प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहिं तम - पर नेहा । (४)
दो०—स्रवन सुजस सुनि आयउँ , प्रभु ! भंजन - भव - भीर ।
त्राहि, त्राहि, आरति - हरन , सरन - सुखद रघुबीर ।।४५।।
५२० अस कहि, करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा ।
दीन बचन सुनि, प्रभु मन भावा । भुज बिसाल गहि, हृदय लगावा । (१)
अनुज - सहित मिलि ढिग बैठारी । बोले बचन भगत - भय - हारी ।

बड़े आदरके साथ विभीषणको आगे-आगे करके उन्हें वहाँ लिवा ले चले जहाँ करुणा-निधान राम बैठे हुए थे। विभीषणको दूरसे ही नेत्रोंको आनन्द देनेवाले दोनों भाई दिखाई दे गए। (१) फिर वे परम सुन्दर रामको पलक रोके, स्तब्ध होकर, एकटक देखते ही रह गए। (उन्होंने देखा कि) भगवान्की भुजाएँ लंबी-लंबी हैं, उनके नेत्र लाल कमलके समान सुन्दर हैं और शरणागतका भय दूर करनेवाला उनका शरीर साँवला-सा है। (२) उनका कंधा सिंहके समान ऊँचा और छाती बहुत चौड़ी है जो जीको लुभाए डाल रही है। उनका मुखड़ा ऐसा सलोना है कि अगणित कामदेवोंका मन मोहित किए डाल रहा है। (भगवान्का यह स्वरूप देखते ही) विभीषणकी आँखें डबडबा चलीं और शरीर पुलकित हो उठा। मनमें बहुत धीरज धारण करके वे बड़ी नम्रतासे कहने लगे-- (३) 'नाथ ! मैं दशानन (रावण)-का (छोटा) भाई हूँ। देवताओंके रक्षक ! मेरा जन्म राक्षसोंके कुलमें हुआ है। जैसे उलूकको अँधेरा ही अच्छा लगता है, वैसे ही मेरे तामसी शरीरको भी स्वभावसे ही पाप करना बहुत प्रिय लगता रहा है। (४) मैं आपका यह सुयश अपने कानोंसे सुनकर चला आया हूँ कि प्रभु (आप) संसारका सारा भय (जन्म-मरणसे उत्पन्न भय) तत्काल नाश कर डालते हैं। दुखियोंके दुःख दूर करनेवाले और शरणागतको सुख देनेवाले राम ! मेरी रक्षा कर लीजिए, रक्षा कर लीजिए'।। ४५।। प्रभुने जब देखा कि ऐसा कहकर विभीषण दण्डवत् करने लगे हैं तो वे अत्यन्त हर्षित होकर तुरन्त उठ खड़े हुए। विभीषणके दीन वचन प्रभुको इतने अच्छे लगे कि रामने झट बढ़कर विभीषणको अपनी विशाल भुजाओंमें समेटकर हृदयसे उठा लगाया। (१) फिर तो छोटे भाई (लक्ष्मण) भी उनसे गले जा मिले और रामने विभीषणको अपने पास खींच बैठाया। भक्तोंका भय दूर करनेवाले राम तब विभीषणसे पूछने लगे—'कहो लंकेश !

५०५-९ स दुष्टो वाऽप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः । सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ।।
पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् । अङ्गुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ।।
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः । अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ।।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया । विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ।। —वाल्मी०
५१०-१२ रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानसः । विभीषणमथानाय्य दर्शयामास राघवम् ।।अध्या०
५१३-१९ रावणस्यानुजोऽहं ते दारहर्तुर्विभीषणः । विभीषणस्तु साष्टांगं प्रणिपत्य रघूत्तमम् ।।
हर्षगद्गदया वाचा भक्त्या च परयान्वितः । भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ।।अध्या०
५२०-२२ इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ।।वा०

कहु लंकेस ! सहित - परिवारा । कुसल, कुठाहर बास तुम्हारा । (२)
खल - मंडली बसहु दिन - राती । सखा ! धरम निबहइ केहि भाँती ।
मैं जानौं तुम्हारि सब रीती । अति नय-निपुन, न भाव अनीती । (३)
बरु भल बास नरक - कर ताता । दुष्ट - संग जनि देइ बिधाता ।
अब पद देखि कुसल रघुराया । जौं तुम कीन्ह जानि जन दाया । (४)

दो०—तब लगि कुसल न जीव-कहँ , सपनेहु मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम-कहँ , सोक - धाम तजि काम ।।४६।।

५३० तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ - मोह - मत्सर[1] - मद - माना ।
जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप - सायक, कटि भाथा । (१)
ममता तरुन - तमी अँधियारी । राग - द्वेष उल्लू[2] सुखकारी ।
तब लगि बसत जीव - मन - माहीं । जब लगि प्रभु-प्रताप - रबि नाहीं । (२)
अब मैं कुसल, मिटे भय भारे । देखि राम ! पद - कमल तुम्हारे ।
तुम कृपाल जापर अनुकूला । ताहि न ब्याप त्रिबिध भव - सूला । (३)
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ । सुभ आचरन कीन्ह नहिं काऊ ।

अपनी और अपने परिवारकी सारी कुशल तो कह डालो। तुम तो बड़ी ही कुढंगी ठौरपर बसे बैठे थे । (२) दिन-रात दुष्टोंसे घिरे रहनेपर भी तुम्हारा धर्म कैसे निभ पाता था ? मैं तो तुम्हारा सारा आचार-व्यवहार भली-भाँति जानता हूँ कि तुम सारा काम नीति (विवेक और न्याय) -के अनुसार ही करते रहते हो और तुम्हें अनीति कभी अच्छी नहीं लगती। (३) देखो भाई ! किसीको नरकमें भले ही जा बसना पड़े पर दुष्टोंका संग भगवान् किसीको न दें।' (विभीषण कहने लगे–) 'स्वामी राम ! अब आपके चरण देखकर सब कुशल ही मानता हूँ कि आपने मुझे अपना सेवक मानकर मुझपर इतनी दया कर दिखाई । (४) जीव जबतक सब प्रकारका शोक उत्पन्न करनेवाली विषय-वासनाको छोड़कर रामको जाकर नहीं भजता, तबतक उसे स्वप्नमें भी न तो उसकी कुशल ही हो पा सकती न मनको शान्ति ही मिल पा सकती ।।४६।। जबतक हृदयमें राम नहीं आ बसते तबतक हृदयमें लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि सब दुष्ट वहाँसे निकलनेका नाम नहीं लेते । (१) ममतासे भरी हुई घनी अँधेरी रातमें तो राग-द्वेष रूपी उल्लुओंको ही सुख मिलता है और वह (रात) तबतक जीवके मनपर छाई रहती है जब-तक प्रभु (राम) -के प्रतापका सूर्य नहीं उदय हो जाता । (ममतासे राग-द्वेष बढ़ता है और वह ममता रामकी कृपासे ही नष्ट होती है) । (२) भगवन् ! आपके चरण-कमलोंके दर्शन पाकर अब मेरी कुशल ही कुशल है। मेरे सारे भय आज दूर हो मिटे । कृपालु ! आपकी कृपा जिसपर हो जाय उसे तीनों प्रकारके (दैहिक, दैविक, भौतिक) सांसारिक दुःख व्याप्त ही नहीं हो पा सकते । (३) मुझे ही देखिए ! मैं कितने खोटे स्वभावका

१. मच्छर । २. उलूक ।

५२३-२४ लंकेश सकुटुम्बस्य कुशलं कथ्यतां तव । दुष्टमध्यस्थितस्यांग कथं धर्मः सुनिर्वहेत् ।।पुलस्त्यसं०
५२५ रीतिं त्वदीयामखिलां लंकाधीश्वर वेद्म्यहम् । अनयो रोचते न त्वां नयेति निपुणो भवान् ।।भर०सं०
५२६ वरेण्यो नरके वासो मा स्यात्संगो विधे खलैः । –वशिष्ठरामायण
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे । नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्तते ।।गरु०पु०
५२७ सांप्रतं कुशलं नाथ विलोक्यांघ्रिसरोरुहम् । राम मां स्वजनं ज्ञात्वा यत्त्वयाऽनुग्रहः कृतः ।।अग०सं०
५२८-३३ तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेंघ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ।। –भागवत

जासु रूप, मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु, हरषि हृदय मोहिं लावा। (४)
दो०—अहो भाग्य मम अमित अति, राम कृपा - सुख - पुंज।
देखेउँ नयन, बिरंचि - सिव, -सेव्य जुगल पद - कंज ॥ ४७ ॥
५४० सुनहु सखा! निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि, संभु, गिरिजाऊ।
जौं नर होइ चराचर - द्रोही। आवइ सभय, सरन तकि मोंही। (१)
तजि मद - मोह - कपट - छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु - समाना।
जननी - जनक - बंधु - सुत - दारा। तन - धन - भवन - सुहृद - परिवारा। (२)
सब - कै ममता - ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष - सोक - भय नहिं मन - माहीं। (३)
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी - हृदय बसै धन जैसे।
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह, नहिं आन निहोरे। (४)
दो०—सगुन - उपासक, पर - हित, -निरत, नीति - दृढ़ - नेम।
ते नर प्रान - समान मम, जिन्हके द्विज - पद - प्रेम ॥ ४८ ॥

राक्षस हूँ; और मैंने आजतक कभी कोई अच्छा काम भी नहीं किया, फिर भी (यह मेरा सौभाग्य है कि) जिनका स्वरूप मुनियों-तकके ध्यानमें भी नहीं आ पाता, उन्हीं प्रभुने आज मुझे हृदयसे उठा लगाया। (४) कृपा और सुखके निधान राम! मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि मैंने (अपनी आँखोंसे) उन युगल चरणों दर्शन कर पा लिए जिनकी सेवा ब्रह्मा और शिवतक करते रहते हैं' ॥ ४७ ॥ (यह सुनकर रामने कहा—) 'मैं तुम्हें अपने उस स्वभावका परिचय दिए देता हूँ, जिसे काक-भुशुण्डि, पार्वती और शिव भली भाँति जानते हैं। यदि कोई मनुष्य जड और चेतनका द्रोही होकर भी भयभीत होकर मेरी शरणमें आ पहुँचे, (१) और अपने मनसे मद, मोह, कपट, छल आदि झटक फेंके, तो मैं तत्काल उसे साधुके समान बना डालता हूँ। जो पुरुष अपने माता, पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, तन, धन, भवन और प्रिय परिवार (२) इन सबकी ममताके डोरे समेटकर और उन सबकी डोरी बँटकर, उस डोरीसे अपना मन लपेटकर उसे मेरे चरणोंमें ला बाँधता है (सबसे वह जो ममता करता है वह सारी ममता उनसे हटाकर वह सारी ममता मेरे चरणोंसे करने लगता है), जो समदर्शी है, जिसके मनकी सारी इच्छाएँ निकल बाहर हुई हैं, जिसके मनमें हर्ष, शोक, भय, आदि कुछ भी नहीं रह गए हैं, (३) वह सज्जन मेरे हृदयमें उसी प्रकार जमकर आ बसता है, जैसे लोभीके हृदयमें सदा धन बसा रहता है। मुझे तो तुम्हारे-जैसे ही संत प्रिय लगते हैं, अन्य किसीका (अहसान लेने)-के लिये मैं शरीर धारण ही नहीं करता (मेरा अवतार तो तुम्हारे जैसे सन्तोंकी रक्षाके लिये ही होता है)। (४) जो मनुष्य सगुणके उपासक (साकार ब्रह्मके उपासक) हैं, जो सदा दूसरोंका हित ही हित करते रहते हैं, जो दृढतासे नीति और नियमका पालन करते रहते हैं और जो ब्राह्मणोंके चरणोंसे प्रेम करते हैं, वे मुझे प्राणोंके

५३४-३९ धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव। त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः ॥अध्या०
५४०-४२ अपि चेत्स दुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति। कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ —गीता
५४३-४४ रामो माता मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥ —आनन्दरामायण
५४५-४६ यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः। हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः। म०भा०
५४७ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः। —पुलस्त्यसंहिता
५४८-४९ साकारोपासका ये च ये चान्यहितकारिणः। ये नीतिशास्त्रे निरता ये च संति दृढप्रणाः।
विप्रांघ्रौ प्रीतिमन्तो ये ते नरा मेऽसुवत्प्रियाः। —ब्रह्मरामायण

५५० सुनु लंकेस! सकल गुन तोरे। तातें तुम अतिसय प्रिय मोरे।
राम - बचन सुनि बानर - जूथा। सकल कहहिं जय कृपा - बरूथा। (१)
सुनत बिभीषन, प्रभु - कै बानी। नहिं अघात स्रवनामृत जानी।
पद - अंबुज गहि बारहिं बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा। (२)
सुनहु देव! सचराचर स्वामी। प्रनतपाल! उर - अंतरजामी।
उर, कछु प्रथम बासना रही। प्रभु - पद - प्रीति - सरित सो बही। (३)
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन - भावनी।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधु - कर नीरा। (४)
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर, अमोघ दरस जग - माहीं[1]।
अस - कहि, राम, तिलक तेहि सारा। सुमन - बृष्टि नभ भई अपारा। (५)

५६० दो०—रावन - क्रोध - अनल निज, स्वाँस - समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ, दीन्हेउ राज अखंड॥ ४९ क॥
जो संपति सिव रावनहिं, दीन्हि दिए दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥ ४९ ख॥

समान प्यारे लगते हैं ॥४८॥ देखो लंकेश! (मैं देख रहा हूँ कि तुममें) ये सभी गुण पूर्ण रूपसे विद्यमान हैं, इसीलिये तुम मुझे अत्यन्त प्रिय लगे हो।' रामके ये वचन सुनते ही सब वानर चिल्ला उठे—'परम कृपालु रामकी जय हो।' (१) प्रभुकी वाणी सुन-सुनकर और उसे कानोंमें अमृतके समान (सुख देनेवाली) समझकर विभीषण तृप्त नहीं हो पा रहे थे (और भी सुनते रहना चाहते थे)। वे बार-बार प्रभुके चरण-कमल पकड़े जा रहे थे। उनके हृदयमें प्रभुका इतना अपार प्रेम आ भरा था कि समाए नहीं समा पा रहा था। (२) (विभीषण कहने लगे–) देव! चर और अचर जगत्के स्वामी! शरणागतके रक्षक! सबके हृदयके प्रेरक! मेरे हृदयमें पहले जो कुछ वासना बची भी रह गई थी, वह सब भी प्रभुके चरणोंके प्रेमकी सरितामें निकल बही। (३) अब तो कृपालु! कृपा करके मुझे अपनी वह पवित्र भक्ति दे डालिए जिसपर शिव सदा लट्टू हुए रहते हैं।' रणधीर प्रभु राम ने 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर तुरन्त समुद्रका जल मँगवा भेजा (४) और कहा—'देखो सखा। यद्यपि तुम्हारे मनमें तो कोई इच्छा नहीं है, पर (तुम जानते हो कि) मेरा दर्शन तो संसारमें व्यर्थ जाता नहीं।' यह कहकर रामने झट विभीषणके माथेपर (लंकाका राजा होनेका) राजतिलक कर दिया। यह देखते ही आकाशसे फूलोंकी अपार वर्षा हो चली। (५) इस प्रकार रामने विभीषणको रावणकी उस क्रोध-रूपी अग्निकी लपटोंसे बचा निकाला जो विभीषणके हितकर वचन-रूपी पवनसे और भी अधिक धधक उठी थी (विभीषणके वचनोंसे भड़की हुई रावणके क्रोधकी अग्निसे विभीषणको बचा लिया) और विभीषणको (लंकाका) अखण्ड राज्य दे डाला॥ ४९ क॥ शिवने दस सिर काटकर चढ़ानेपर रावणको जो सम्पत्ति दी थी, वह सारी सम्पदा रामने बहुत झिझकके साथ

१. मोर दरस अमोघ जग माहीं; मम दरसन अमोघ जग माहीं।

५५०-५५५ उरस्यासीत्पुरा राम या किञ्चिद्वासना मम। तवांघ्रिप्रीतिसरितो वहतिस्म प्रभोऽधुना॥ विभी.रा०
५५५ न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसंभवम्। त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥ अध्यात्म
५५७-५५९ मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्व दर्शनं नाफलं मम। ओमित्युक्त्वा पुन: प्रीतो राम: प्रोवाच लक्ष्मणम्॥अ०
पश्यत्विदानीमेवैष मम संदर्शने फलम्। अध्या०॥ न भवति महतां हि क्वापि मोघ: प्रसाद:॥ हरि०वि०
लंकाराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात्। इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बुह्यानाय्य कलशेन तम्॥
लंकाराज्याधिपत्यार्थमभिषेकं रमापति:। कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषत:॥ अध्या०
५६०-६१ पौलस्त्यक्रोधशुक्रेण ददौ नि:श्वासवायुना। दह्यमानस्य रामस्तु रक्षां कृत्वा नृपेशताम्॥ अ०रा०
५६२-६३ या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेऽपि शंकरात्। दर्शनादेव रामस्य सा विभूतिर्विभीषणे॥ ह०ना०

असं प्रभु छाँड़ि, भजहिं जे आना । ते नर, पसु बिनु - पूँछ - बिषाना ।
निज जन जानि, ताहि अपनावा । प्रभु- सुभाव कपि - कुल - मन भावा । (१)
पुनि सरबग्य सर्ब - उर - बासी । सर्ब - रूप, सब - रहित, उदासी ।
बोले बचन नीति - प्रतिपालक । कारन मनुज, दनुज - कुल - घालक । (२)
सुनु कपीस ! लंकापति ! बीरा । केहि बिधि तरिय जलधि गंभीरा ।
संकुल - मकर - उरग - झष - जाती । अति अगाध दुस्तर सब भाँती । (३)
५७० कह लंकेस, सुनहु रघुनायक । कोटि - सिंधु - सोषक तव सायक ।
जद्यपि, तदपि नीति असि गाई । बिनय करिय सागर - सन जाई । (४)
दो०–प्रभु ! तुम्हार कुल-गुरु जलधि, कहिहि उपाय बिचारि ।
बिनु प्रयास सागर तरिहि, सकल भालु - कपि - धारि ॥ ५० ॥
सखा ! कही तुम नीकि उपाई । करिय, दैव जौं होइ सहाई ।
मंत्र न यह लछिमन - मन भावा । राम-बचन सुनि, अति दुख पावा । (१)

विभीषणको उठाकर दे डाली (कि मैंने तो इसे कुछ भी नहीं दिया और जो दिया वह इसकी भक्तिकी तुलनामें कुछ भी नहीं है)॥ ४९ ख ॥ (तुलसीदास कहते हैं–) 'ऐसे कृपालु प्रभुको छोड़कर भी जो मनुष्य दूसरोंकी सेवामें जुटे हुए हैं, उन्हें बिना सींग-पूँछवाला कोरा पशु समझना चाहिए ।' प्रभुने अपना सेवक (भक्त) मानकर उस (विभीषणको) अपना लिया । प्रभुका यह (भक्तोंको अपना-लेनेवाला) स्वभाव वानरोंको बहुत ही अच्छा लगा । (१) यह कर चुकनेपर सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाले), सबके हृदयमें बसनेवाले, सब रूपोंमें प्रकट होनेवाले, सबसे रहित, उदासीन, विशेष कारणसे मनुष्यका रूप धारण करनेवाले, राक्षसोंके कुलका नाश करनेवाले राम तब नीतिसे भरी बात कहने लगे—(२) 'वीर सुग्रीव और लंकापति विभीषण ! अब यह बताओ कि यह गहरा समुद्र किस प्रकार पार किया जाय ? अनेक प्रकारके मगर, साँप और मछलियोंसे भरा हुआ यह अत्यन्त अथाह समुद्र पार करना बड़ा कठिन जान पड़ रहा है ।' (३) इसपर विभीषण बोल उठा—'भगवन् ! यद्यपि आपका बाण ही ऐसे-ऐसे करोड़ों समुद्र सुखा डाल सकता है तथापि नीतिके अनुसार पहले जाकर समुद्रसे प्रार्थना कर ली जाय । (४) प्रभो ! आपके कुलमें समुद्रका बड़ा सम्मान है ।[1] वह स्वयं विचारकर आपको कोई न कोई उपाय बता देगा और तब वानर और भालुओंकी सारी सेना बिना परिश्रमके समुद्र-पार उतर जायगी' ॥ ५० ॥ (यह सुनकर रामने कहा—) 'हाँ मित्र ! उपाय तो तुमने बहुत अच्छा सुझाया । यदि दैव भी थोड़ी सहायता कर दे तो चलो, यही किया जाय ।' पर यह (समुद्रसे प्रार्थना करनेकी)

१. रामके पूर्व पुरुष सगरके यज्ञका घोड़ा चुराकर जब इन्द्र उसे पातालमें कपिलके आश्रममें बाँध आए तब उन्हें ढूंढ़ते हुए सगरके साठ हजार पुत्रोंने ऐसी धरती खोदी कि उससे समुद्र बन गया । सगरके पुत्रों-द्वारा बनाया जानेके कारण ही समुद्रको सागर कहते हैं ।

५६४-६५ को वा दयालुः स्मृतकामधेनुरन्यो जगत्यां रघुनायकादहो ॥ अध्यात्मरामायण

५६६-६९ अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् । कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम् ॥

५७०-७३ विभीषणः सद्य एव लंकापुरसमास्कन्दनाय सेनासमुत्तरणहेतुं सेतुं विधातुमाराधय वारांनिधिमिति सविनयमेनं विज्ञापितवान् ॥ –चम्पूरामायण

५७४-७५ एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युवाच विभीषणः । समुद्रो राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥
खानितः सगरेणायमप्रमेयो महोदधिः । कर्तुमर्हति रामस्य ज्ञातेः कार्यं महोदधिः ॥
विभीषणस्य मंत्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ॥ —वाल्मीकीयरामायण

नाथ ! दैव - कर कवन भरोसा। सोखिय सिंधु, करिय मन रोसा।
कादर - मन - कहँ एक अधारा। दैव - दैव आलसी पुकारा। (२)
सुनत, बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसइ करब, धरहु मन धीरा।
अस कहि प्रभु, अनुजहिं समुझाई। सिन्धु - समीप गए रघुराई। (३)
५८० प्रथम प्रनाम कीन्ह सिर नाई। बैठे पुनि तट, दरभ डसाई।
जबहिं बिभीपन प्रभु पहँ आए। पाछे रावन दूत पठाए। (४)
दो०—सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि-देह।
प्रभु-गुन हृदय सराहहिं, सरनागत - पर नेह ॥५१॥
प्रगट बखानहिं राम-सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ।
रिपु-के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपि - पति - पहँ[1] आने। (१)
कह सुग्रीव, सुनहु सब बानर। अंग - भंग करि पठवहु निसिचर।
सुनि सुग्रीव - बचन, कपि धाए। बाँधि, कटक - चहुँ - पास फिराए। (२)
बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत, तदपि न त्यागे।

लक्ष्मणको नहीं अच्छी लगी। रामकी बात सुनकर बड़े वे दुखी हो उठे। (१) (और बोले–) नाथ ! आप दैवपर क्या भरोसा किए बैठे हैं ? आप एक बार भौंहें-भर चढ़ा लीजिए तो देखिए समुद्र अभी पल भरमें सूखता दिखाई देने लगेगा। अपनेको दैवके भरोसे छोड़ बैठना तो कायरोंका काम है। केवल आलसी लोग ही 'दैव-दैव'की दुहाई दिया करते हैं।' (२) यह सुनते ही रामने हँसकर कहा—'थोड़ा ठहरे रहो। (आवश्यकता होगी तो) वही किया जायगा।' अपने भाई (लक्ष्मण) -को समझाकर प्रभु राम वहाँसे उठकर समुद्रके तीरपर जा पहुँचे। (३) जाते ही पहले उन्होंने (समुद्रको) सिर नवाकर प्रणाम किया, फिर कुशा बिछाकर वहीं समुद्रके तीरपर जा बैठे। इधर ज्यों ही रामके पास आनेके लिये विभीषण चले त्योंही उनके पीछे-पीछे रावणने (शुक और सारण नामके) दो भेदिए लगा दिए। (४) वे छलसे वानर बन-बनकर चुपचाप वहांका सारा भेद लेने लग गए। शरणागत (विभीषण)-पर प्रभुका इतना स्नेह देखकर वे मन ही मन इतने प्रसन्न हो उठे कि बैठे-बैठे प्रभु रामके गुणोंकी सराहना करने लगे ॥ ५१ ॥ उनके मनमें इतना अधिक प्रेम उमड़ पड़ा कि वे अपना कपट वेष बनाए रखना भी भूल गए और (राक्षसके रूपमें) प्रकट होकर रामके स्वभावकी सराहना करने लगे। अब तो वानरोंको समझते देर न लगी कि ये (वानर नहीं) शत्रु रावणके दूत हैं। (फिर क्या था ! दोनों भेदियोंको) पकड़ बांधकर वे सुग्रीवके पास घसीटे लिए चले आए। (१) (उन्हें देखते ही) सुग्रीवने आदेश दिया— 'देखो वानरो ! इन राक्षसोंके हाथ-पैर तोड़कर और इनकी नाक छीलकर इन्हें लंका भेज दो।' सुग्रीव-का आदेश पाते ही वानरोंने उन राक्षसोंको सेनामें चारों ओर पकड़ घुमाना प्रारंभ किया। (२) वे जिधर निकल जाते थे उधर ही वानर उन्हें दे लात, दे घूँसा उनकी कुटम्मस करते चलते थे। राक्षस बेचारे बहुत रोते-गिड़गिड़ाते और हाथ-पैर जोड़ते थे पर वानर भला कहाँ सुननेवाले थे ! (इतना रोने-गिड़गिड़ानेपर भी उन्होंने राक्षसोंको छोड़कर न दिया)। तब तो राक्षस पुकार उठे–'जो हमारे नाक-

१. कपीस पहिं।

५७६-७७ उद्यमेन विना राजन् न सिद्ध्यन्ति मनोरथाः। कातरा इति जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ पंच०
५७८-८० एवमुक्त्वा कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः। संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥
ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः। अंजलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ वा०
५८१-८८ दशग्रीवेण संदिष्टः शुको नाम महासुरः। तं प्रापयन्त वचनं तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः।
प्रापद्यंत तदा क्षिप्रं निहंतुं दृढमुष्टिभिः। वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत् ॥—अध्यात्म

जो हमार हर नासा - काना । तेहि कोसलाधीस - कै आना । (३)
५९० सुनि, लछिमन सब निकट बोलाए । दया लागि, हँसि तुरत छोड़ाए ।
रावन - कर दीजेहु[1] यह पाती । लछिमन - बचन बाँचु कुल - घाती । (४)
दो०—कहेउ मुखागर मूढ़ - सन , मम संदेस उदार ।
सीता देइ मिलहु न त , आवा काल तुम्हार ।। ५२ ।।
तुरत नाइ लछिमन - पद माथा । चले दूत बरनत गुन - गाथा ।
कहत राम - जस लंका आए । रावन - चरन सीस तिन्ह नाए । (१)
बिहँसि, दसानन पूछी बाता । कहसि न सुक[2] आपनि कुसलाता ।
पुनि कहु खबरि, बिभीषन - केरी । जाहि मृत्यु आई अति नेरी । (२)
करत राज, लंका सठ त्यागी । होइहि, जव - कर कीट अभागी ।
पुनि कहु, भालु - कीस - कटकाई । कठिन काल - प्रेरित चलि आई । (३)
६०० जिन्हके जीवन - कर रखवारा । भयउ मृदुल-चित सिन्धु बिचारा ।
कहु तपसिन - कै बात बहोरी । जिन्हके हृदय त्रास अति मोरी । (४)
दो०—की भइ भेंट, कि फिरि गए , स्रवन - सुजस सुनि मोर ।
कहसि न रिपु-दल-तेज, बल , बहुत चकित चित तोर ।। ५३ ।।
नाथ ! कृपा करि पूछेहु जैसे । मानहु कहा, क्रोध तजि तैसे ।

कान काटे उन्हें कोशलाधीश रामकी सौगंध है' । (३) जब लक्ष्मणने उनकी यह पुकार सुनी तो उन्हें उन राक्षसोंपर बड़ी दया आई और उन्होंने वानरोंको अपने पास बुलाकर हँसकर उन (राक्षसों) -को तुरन्त छुड़वा दिया (और उन्हें एक पत्र देते हुए कहा—) 'लो ! यह पत्र ले जाकर रावणको दे देना और कह देना कि अरे कुलके नाशक ! ले, लक्ष्मणने यह पत्र दिया है, इसे भली प्रकार पढ़ ले । (४) उस मूर्खसे मेरा यह सीधा-सा मौखिक संदेश भी कह सुनाना कि या तो सीधे-सीधे सीताको लौटाकर रामसे आ मिल, नहीं तो समझ ले कि तेरे सिरपर काल आया चढ़ा बैठा है' ।।५२।। तुरन्त लक्ष्मणके चरणोंमें सिर नवाकर और रामके गुणोंका वर्णन करते हुए रावणके भेदिए दूत वहाँसे सटक निकले । रामके यशका वर्णन करते हुए वे लंका जा पहुँचे और पहुँचते ही उन्होंने रावणके चरणोंमें माथा जा टेका । (१) हँसकर रावणने पूछा—'कहो शुक ! कुशलसे तो रहे न ! बताओ, उस विभीषणका क्या समाचार है जिसकी मृत्यु उसके सिरपर आ खड़ी हुई है । (२) वह कितना बड़ा मूर्ख है कि यहाँ इतना राज्य-सुख भोगते हुए भी लंका छोड़ भागा । अब वहाँ जौके साथ घुन बनकर वह भी पिस मरेगा । हाँ ! वहाँके भालुओं और वानरोंकी सेनाका क्या समाचार है जो कठोर कालकी भेजी यहाँतक खिंची चली आई है (३) वह तो कहिए कि उनका जीवन अभी-तक कोमल चित्तवाले बेचारे समुद्रके कारण बचा हुआ है (समुद्र बीचमें न होता तो अबतक हम उस सेनाको मार खाते) । उन तपस्वियोंका भी समाचार कह सुनाओ जो सदा मेरे डरसे डरे बैठे काँपते रहते हैं । (४) उनसे तुम्हारी भेंट हो पाई या मेरा सुयश सुनकर ही वे उलटे पाँवों लौट गए ? (तू चुप हुआ क्यों बैठा है) । शत्रुकी सेनाका तेज और बल क्यों नहीं कह सुनाता ? तेरा चित्त इतना चकराया क्यों पड़ा जा रहा है' ।।६५।। (भेदिया शुक कहने लगा—) 'नाथ ! जैसे कृपा करके आपने मुझसे

१. दीजहु । २. कस ।

५८९ न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान् वारय प्रभो ।
५९० रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम् । मा वधिष्ठेति रामस्तान्वारयामास वानरान् ।।
५९१-९३ हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः । ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि ।।
५९४-९६ विहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक ।। —अध्यात्मरामायण

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं, राम तिलक तेहि सारा। (१)
रावन - दूत हमहिं सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना।
स्रवन - नासिका काटइ लागे। राम - सपथ दीन्हें, हम त्यागे। (२)
पूछेहु नाथ ! राम - कटकाई। बदन कोटि - सत बरनि न जाई।
नाना बरन, भालु - कपि - धारी। बिकटानन, बिसाल, भयकारी। (३)
६१० जेहिं पुर दहेउ, हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन-महँ तेहि बल थोरा।
अमित नाम भट, कठिन, कराला। अमित-नाग-बल, बिपुल, बिसाला। (४)
दो०—द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गज[1], बिकटासि।
दधिमुख, केहरि, निसठ, सठ, जामवंत, बल - रासि॥ ५४॥
ए कपि सब सुग्रीव - समाना। इन्ह-सम कोटिन्ह, गनइ को नाना।
राम - कृपा अतुलित बल तिन्हहीं। तृन - समान त्रैलोकहिं गनहीं। (१)
अस मैं सुना स्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर।

पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर आप मेरी बात भी मान लीजिए। ज्यों ही आपके भाई (विभीषण) वहाँ रामसे जाकर मिले त्यों ही रामने तुरन्त उन्हें (लंकेश कहकर) लंकाका राजा बनाकर राजतिलक कर दिया। (१) ज्यों ही वानरोंने पहचाना कि हम रावणके दूत हैं, त्यों ही वे हमें पकड़कर बाँधकर धुआँधार धुनने लगे। वे तो हमारे नाक-कान-तक काट लेनेपर तुले हुए थे पर वह तो कहिए कि हमने उन्हें रामकी शपथ दिला दी तब कहीं हम लोग बच पाए। (२) नाथ ! आपने जो रामकी सेनाकी बात पूछी है, उसका तो सौ करोड़ मुँहोंसे भी वर्णन नहीं किया जा सकता। वानरों और भालुओंकी सेना क्या है वड़े विचित्र रंग-ढंगकी है। उन सबके बड़े विकट-विकट तो मुँह हैं और ऐसे भारी-भारी भरकम शरीर हैं कि जो देख ले वह भाग खड़ा हो। (३) उनमेंसे जो वानर आपका नगर जला गया था और आपके पुत्रको मार गया था, उसकी तो उन वानरोंमें कोई गिनती ही नहीं है (वह तो बहुत ही कम बलवान् है)। (उस सेनामें) अनेक नामोंवाले ऐसे-ऐसे पराक्रमी और भयंकर योद्धा हैं जिनमेंसे एक-एकमें असंख्य हाथियोंका बल है और वे बड़े लंबे-चौड़े डील-डौलवाले हैं। (४) द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गज (गद), विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जामवंतकी बात तो कुछ पूछिए मत। उनके बलकी तो कोई थाह नहीं है॥ ५४॥ ये सबके सब वानर सुग्रीवके ही समान बलवान् हैं। इनके जैसे-जैसे वहाँ दस-बीस नहीं, करोड़ों वानर हैं जो गिनाए नहीं गिने जा सकते ? रामकी कृपासे उनमें इतना अतुल बल है कि वे अपने आगे तीनों लोकोंको कुछ नहीं समझते। (१) देखिए दशकंधर ! मैंने अपने कानोंसे सुना है

१. अंगदादि, अंगद गद।

५९७-६०७ रक्षोगणपरिक्षिप्तो राजा ह्येष विभीषणः। श्रीमता राजराजेन लंकायामभिषेचितः॥ वा०
६०६-७ तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्ततः। मुष्टिभिर्नखदंतैश्च हन्तुं लोप्तुं प्रचक्रमुः॥
ततो मां राम रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुंगवः। विसृज्यतामिति प्राह विसृष्टोहं कपीश्वरैः॥
६०८-९ वानराणां वर्णने वा संख्याने वा क ईश्वरः। शूराः सर्वे महाकायाः सर्वे युद्धाभिकांक्षिणः॥ अ०
६१०-११ ऋक्षवानरसंघानामनीकानि सहस्रशः। गिरिमेघनिकाशानां छादयन्ति वसुन्धराम्॥ वा०
६१२-१३ गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च। नलो नीलः सुषेणश्च जाम्बवांश्च तथापरे॥
शक्ताः सर्वे चूर्णयितुं लंकां रक्षोगणैः सह॥
६१४ एषां कोटिसहस्राणि नव पंच च सप्त च। तथा शंखसहस्राणि तथार्बुदशतानि च॥
सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत्प्रकीर्तितम्। अन्येषां तु बलं नाहं वक्तुं शक्तोस्मि रावण॥अध्यात्म
६१५-१६ एतेषां गणना नवद्वयमहापद्मावधिर्वर्णिता॥ —अग्निवेशरामायण

नाथ ! कटक - महँ सो कपि नाहीं । जो न तुम्हहिं जीतइ रन-माहीं । (२)
परम क्रोध मींजहिं सब हाथा । आयसु पै, न देहिं रघुनाथा ।
सोखहिं सिंधु - सहित झख - ब्याला । पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला । (३)
६२० मर्दि[१] गर्द मिलवहिं दससीसा । ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा ।
गर्जहिं, तर्जहिं, सहज, असंका । मानहुँ ग्रसन चहतहइँ लंका । (४)
दो०—सहज सूर, कपि-भालु सब , पुनि सिर - पर प्रभु राम ।
रावन ! काल - कोटि - कहँ , जीति सकहिं संग्राम ।। ५५ ।।
राम - तेज - बल - बुधि - बिपुलाई । सेष सहस सत, सकहिं न गाई ।
सक सर एक सोखि सत सागर । तब भ्रातहिं पूछेउ नय - नागर । (१)
तासु बचन सुनि सागर - पाहीं । माँगत पंथ, कृपा मन - माहीं ।
सुनत बचन बिहँसा दससीसा । जौ असि मति, सहाय-कृत कीसा । (२)
सहज भीरु - कर बचन दिढ़ाई[२] । सागर - सन ठानी मचलाई ।
मूढ़ ! मृषा का करसि बड़ाई । रिपु - बल - बुद्धि - थाह मैं पाई । (३)

कि अठारह पद्म (१८,००,००,००,००,००,००,०००) तो केवल वानरोंके सेनापति ही सेनापति हैं । नाथ ! उस सेनामें ऐसा कोई नहीं दिखाई दिया जो आपको संग्राममें न पछाड़ सके । (२) वे सब मारे क्रोधके (युद्ध करनेके लिये) हाथ मल-मल रह जाते हैं, क्योंकि राम उन्हें (लड़नेकी) आज्ञा नहीं दे रहे हैं । वे या तो मछलियों और सर्पोंसे भरा सारा समुद्र ही सुखा डालेंगे या बड़े-बड़े पर्वतोंसे समुद्र पाट डालेंगे । (३) वहाँके जिस वानरको देखो वही यही चिल्लाए जा रहा है कि रावण हमें दिखाई भर दे जाय तो उसे मसलकर धूलमें मिला डालें । वे सबके सब स्वभावसे ही बड़े निडर होकर दिन-रात ऐसे गरजते और ललकारते रहते हैं मानो खड़ी लंका निगल जानेवाले हों ! (४) एक तो वे भालू और वानर यों ही स्वभावसे शूर-वीर हैं, फिर उनके सिरपर प्रभु रामकी छाया बनी हुई है । देखिए रावण ! वे सब तो ऐसे जबरजंग वीर हैं कि संग्राममें करोड़ों काल भी सामने आ डटें तो उन्हें भी पलक मारते पछाड़ धरें (जीत लें) ।। ५५ ।। रही रामकी बात, उनमें तो इतना अधिक तेज, बल और बुद्धि है कि लाखों शेष भी चाहें तो उनका वर्णन नहीं कर पा सकते । उनका तो एक-एक बाण सौ-सौ समुद्र एक साथ सोख ले सकता है फिर भी वे सदा नीतिके अनुसार ही चलते हैं इसीलिये रामने आपके भाईसे जब पूछा (कि क्या करना चाहिए) (१) तब उनकी बात मानकर वे समुद्रसे प्रार्थना करके उससे मार्ग माँगे ले रहे हैं क्योंकि वे सचमुच बड़े कृपालु हैं ।' उस भेदिए दूत (शुक) के वचन सुनकर रावण ठठाकर हँस पड़ा और बोला—'उनकी जब ऐसी ही बुद्धि है तभी तो वानरोंको सहायताके लिये पकड़े लिए चले आए हैं । (२) स्वभावके डरपोक (विभीषण)-की बात ठीक मानकर जो समुद्रसे मचले बैठा है (समुद्रकी प्रार्थना कर रहा है) उसकी, तू मूर्ख, बैठा झूठी प्रशंसा क्या किए डाल रहा है ? उसके बल और उसकी बुद्धिकी थाह तो मैं इतनेसे ही पा गया हूँ । जिसका मंत्री डरपोक

१. गर्दि । २. दृढ़ाई ।

६१७ तस्य यादृग्बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च । वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ।। अध्यात्म०

६१८-२१ सर्वे वैश्वानरसमा ज्वलदाशीविषोपमाः । सुदीर्घांचितलांगूला मत्तमातंगसन्निभाः ।।
महापर्वतसंकाशा महाजीमूतनिःस्वना । मर्दयन्तीव ते सर्वे तस्थुर्लंकां समीक्ष्य ते ।। वाल्मी०

६२२-२४ नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते , मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ।। —भागवत

६३० सचिव, सभीत बिभीषन जाके। बिजय - बिभूति कहाँ जग ताके।
सुनि खल - बचन, दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि, पत्रिका काढ़ी। (४)
रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ! बँचाइ जुड़ावहु छाती।
बिहँसि, बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि, सठ लाग बँचावन। (५)
दो०—बातन्ह मनहिं रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम - विरोध न उबरसि, सरन बिष्नु, अज, ईस॥ ५६ क॥
की तजि मान, अनुज-इव, प्रभु - पद - पंकज - भृंग।
होइ कि राम सरानल, खल! कुल - सहित पतंग॥ ५६ ख॥
सुनत, सभय मन, मुख मुसकाई। कहत दसानन सबहिं सुनाई।
भूमि परा, कर गहत अकासा। लघु तापस - कर बाग-बिलासा। (१)
६४० कह सुक, नाथ! सत्य सब बानी। समुझहु छाँड़ि प्रकृति अभिमानी।
सुनहु बचन मम, परिहरि क्रोधा। नाथ! राम - सन तजहु बिरोधा। (२)
अति कोमल रघुबीर - सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक - कर राऊ।
मिलत, कृपा तुम - पर प्रभु करिहीं। उर, अपराध न एकौ धरिहीं। (३)

विभीषण हो, भला उसे विजय और ऐश्वर्य कहाँ मिल पा सकता है ?' उस दुष्ट (रावण)-के वचन सुनकर भेदिए दूतका क्रोध भी भड़क उठा। ठीक अवसर देखकर उसने रावणको (लक्ष्मणको दी हुई) वह पत्रिका निकाल दिखाई (४) और कहा—'रामके भाई (लक्ष्मण) -ने यह पत्रिका आपके लिये लिख भेजी है। नाथ ! इसे बँचवाकर आप अपनी छाती शीतल कर लीजिए (शान्ति प्राप्त कर लीजिए)।' तब रावणने हँसकर (पत्रिका लिखनेवालेका अपमान करनेके लिये) बाएँ हाथसे पत्रिका ले ली और मंत्रीको बुलाकर उससे वह शठ (पत्रिका) बँचवाने लगा। (५) (लक्ष्मणने उस पत्रिकामें लिखा था—) 'अरे शठ ! केवल दंभभरी बातोंसे अपना मन रिझाकर तू कुलका नाश कर डालने-पर क्यों तुला बैठा है। रामसे बैर ठानकर तू यदि ब्रह्मा, विष्णु और महादेवकी भी शरण लेने चलेगा तब भी तू नहीं बच पावेगा॥ ५६ क॥ या तो अपने भाई विभीषणकी भाँति अभिमान छोड़कर प्रभु रामके चरण-कमलोंका भ्रमर आ बन (रामकी शरणमें आ जा) नहीं तो अरे खल ! रामके बाणोंकी अग्निमें अपने सारे कुलके लिये दीवेका पतंगा बन बैठ (रामके द्वारा नष्ट हो जा)॥ ५६ ख॥ पत्रिका सुनते ही वह मनमें तो भयसे काँप उठा, पर अपने मुँहपर (झूठी) मुसकराहट फैलाकर रावण सबको सुना-सुनाकर कहने लगा—'वह (लक्ष्मण) धरतीपर पड़ा, हाथसे आकाश छूनेकी साध किए बैठा है (तुच्छ होकर भी मुझ जैसे शूरसे लोहा लेना चाहता है)। यह तो छोटे भाईकी दशा है।' (१) (पत्रिका देनेवाले दूत) शुकने कहा—'नाथ ! इसमें जो कुछ लिखा है सब एक-एक अक्षर सत्य है। आप अपना अभिमानी स्वभाव छोड़कर इसपर भली-भाँति बैठकर विचार कर लीजिए और क्रोध छोड़कर थोड़ी-सी मेरी बात भी मान लीजिए। नाथ ! (मैं अब भी कहता हूँ कि) रामसे विरोध मत मोल लीजिए। (२) यद्यपि वे सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं तथापि उन (राम)-का स्वभाव बहुत ही कोमल है। आप ज्यों ही उनसे जाकर मिलेंगे त्यों ही प्रभु आपपर ऐसी कृपा बरसा देंगे कि आपका कोई भी अपराध उनके हृदयमें नहीं बचा रहेगा। (३) प्रभो ! आप बस मेरा

६२५-३५ ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम्॥
६४०-४३ पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत्। अजानता त्वयानीता जगन्मातैव जानकी॥ अध्यात्म

जनक - सुता रघुनाथहिं दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजै।
जब तेहि कहा देन बैदेही। चरन - प्रहार कीन सठ तेही। (४)
नाइ चरन सिर, चला सो तहँवाँ[1]। कृपासिंधु रघुनायक जहँवाँ[1]।
करि प्रनाम, निज कथा सुनाई। राम - कृपा आपनि गति पाई। (५)
रिषि अगस्ति - कै साप भवानी। राछस भयउ, रहा मुनि ज्ञानी।
बंदि राम - पद बारहि बारा। मुनि, निज आस्रम-कहँ पग धारा। (६)

६५० दो०—बिनय न मानत जलधि जड़, गए तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तव, भय बिनु होइ न प्रीत॥ ५७॥

लछिमन ! बान - सरासन आनू। सोखौं बारिधि बिसिख - कृसानू।
सठ - सन बिनय, कुटिल - सन प्रीती। सहज कृपिन[2] - सन सुंदर नीती। (१)
ममता - रत - सन ज्ञान - कहानी। अति लोभी-सन बिरति बखानी।
क्रोधिहिं सम, कामिहिं हरि - कथा। ऊसर बीज बए फल जथा। (२)
अस कहि, रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन-के मन भावा।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि - उर - अंतर ज्वाला। (३)

इतना-भर कहना मान लें कि जानकीको ले जाकर रामको दे डालें।' जब उस(शुक)-ने जानकी दे-देनेका सुझाव दिया तो उस शठ रावणने आव देखा न ताव, झट कसकर उसे एक लात जमा ही तो दी। (४) लात लगनी थी कि वह तत्काल वहाँसे उठा और चुपचाप रावणको सिर नवाकर वहाँके लिये चल दिया जहाँ कृपालु राम (समुद्र-तटपर) बैठे थे। रामको प्रणाम करके उसने अपनी सारी आप-बीती कह सुनाई और रामकी कृपासे वह तत्काल जीवन्मुक्त हो गया। (शंकर कहते हैं-) 'देखो भवानी ! वह शुक तो पहले बड़ा भारी ज्ञानी मुनि था पर अगस्त्य ऋषिके शापसे[3] राक्षस हो गया था।' बार-बार रामके चरणोंकी वन्दना करके वह मुनि पुनः अपने आश्रम लौट गया।' (६) रामको (समुद्रके तीरपर कुशा बिछाकर बैठे-बैठे) जब तीन दिन निकल गए, तब रामको बड़ा क्रोध चढ़ आया और वे बोले—('अब मैं समझ गया कि) 'बिना भय दिखाए प्रीति नहीं हो पाती॥ ५७॥ (प्रभु रामने लक्ष्मणसे कहा-) 'जाओ लक्ष्मण ! मेरा धनुष-बाण तो उठा लाओ। मैं अभी अग्निबाण चलाकर सारा समुद्र सोखे डालता हूँ। शठके आगे विनय करना, कुटिलसे प्रीति करना, परम कंजूसको नीतिकी अच्छी-अच्छी बातें सिखाना, (१) ममतामें पड़े हुएको ज्ञानकी कथा सुनाना, अत्यन्त लोभीको वैराग्यकी बात सुनाना, क्रोधीसे शान्त रहनेकी बात छेड़ना और कामीको भगवान्की कथा सुनाना वैसे ही व्यर्थ है, जैसे ऊसरमें बीज बोना निष्फल होता है।' (२) यह कहकर रामने अपना धनुष उठा चढ़ाया। यह बात लक्ष्मणको बहुत अच्छी लगी (उन्हें विनय करनेकी बात अच्छी नहीं लगी थी।) उस धनुषपर प्रभु अभी अपना भयंकर (अग्नि-)

१.तहाँ;जहाँ। २.कृपन। ३.शुकने भूलसे अगस्त्य मुनिको मनुष्यका मांस खिला दिया इससे वह राक्षस हो गया।

६४४-४६ सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव॥
६५०-५१ स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः॥
६५२-५७ चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान्। समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः॥वा०रा०
६५५ शुभं बीजमिवोषरे। —मनुस्मृति
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः। तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम्॥ अध्यात्मरा०

मकर - उरग - झख - गन अकुलाने । जरत जंतु जल - निधि जब जाने ।
कनक - थार भरि मनि - गन नाना । बिप्र - रूप आयउ, तजि माना । (४)
६६० दो०—काटेहिं पै कदरी[1] फरै, कोटि जतन कोउ सींच ।
बिनय न मान, खगेस ! सुनु, डाटेहिं पै नव[2] नीच ॥ ५८ ॥
सभय सिन्धु, गहि पद प्रभु - केरे । छमहु नाथ ! सब अवगुन मेरे ।
गगन, समीर, अनल, जल, धरनी । इन्ह - कइ नाथ सहज जड़ करनी । (१)
तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि - हेतु सब ग्रंथनि गाए ।
प्रभु - आयसु जेहि - कहँ, जस अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई । (२)
प्रभु ! भल कीन्ह मोहिं सिख दीन्हीं । मरजादा पुनि तुम्हरिय कीन्हीं ।
ढोल, गँवार, सूद्र, पसु नारी । सकल ताड़ना - के अधिकारी । (३)
प्रभु - प्रताप मैं जाब सुखाई । उतरिहि कटक, न मोरि बड़ाई ।

बाण चढ़ा ही रहे थे कि समुद्रमें ऐसी भयंकर ज्वाला उठ खड़ी हुई कि (३) समुद्रके सब मगर, सर्प और मछलियोंके झुंड व्याकुल हो उठे। समुद्रने जब देखा कि मेरे भीतर बसे हुए सारे जीवजन्तु जले जा रहे हैं, तब वह सोनेके थालमें अनेक प्रकारके मणि, मुक्ता, रत्न आदि लिए हुए, सारा अभिमान छोड़कर, ब्राह्मणका रूप धरकर (प्रभुके सामने) आ खड़ा हुआ। (४)

(काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! जैसे करोड़ों उपाय करके सींचते रहनेपर भी केला काटते रहनेपर ही फलता है, वैसे ही नीच व्यक्ति भी विनय करनेसे नहीं मानता, वह डाटने-फटकारनेसे ही नीचे झुकता है (बात मानता है)। ॥ ५८ ॥ समुद्रने भी आते ही भयभीत होकर प्रभुके चरण पकड़ लिए और कहा—'नाथ ! मेरे सब अपराध क्षमा कर दीजिए। आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी तो स्वभावसे ही जड (मूर्ख, अज्ञानी) होते हैं। (१) सब (धर्म-) ग्रन्थोंमें बताया गया है कि आपकी ही प्रेरणासे मायाने इन्हें सृष्टिकी रचना करनेके लिये उत्पन्न किया है। प्रभुकी जिसके लिये जो आज्ञा हो वह उसी प्रकार काम करता रहे तो उसे बड़ा सुख मिलता है। (२) प्रभुने अच्छा ही किया जो मुझे यह शिक्षा दे दी। परन्तु भगवन् ! मेरी मर्यादा भी तो आपकी ही बनाई हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री ये सब ताडना देते रहनेसे ही ठीक रहते हैं। (३) प्रभुके प्रतापसे मैं सूख तो जाऊँगा ही और सेना भी पार उतर जायगी परन्तु जो मेरी मर्यादा (कि मैं कभी सूखता नहीं) जो आपने ही बनाई है, वह तत्काल मिट जायगी। वेदोंमें कहा गया है कि प्रभुकी आज्ञा अडिग है। अतः, आप वही उपाय कर डालिए

१. कदली। २. नवै।

६५८-५९ चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् । तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः ॥
एतस्मिन्नन्तरे साक्षात् सागरो दिव्यरूपधृक् । स्वान्तःस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः ॥
पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु । अध्या० ॥ शाम्येत्प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः॥कुमारसंभव
६६२ दंडवत् प्रणिपत्याह रामं रक्तांतलोचनम् । त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक॥
६६३-६५ स्थूलानि पंचभूतानि जडान्येव स्वभावतः । सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लंघयंति न ॥अध्या०
६६७ दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः । ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम्॥गर्ग०सं०
ज़नो अस्पो पिसरह चहारह .गुलाम । गुनह बेगुनह क़फ्स बायद मुदाम । –शेखसादी
[स्त्री, घोड़े, पुत्र और दासको अपराध-निरपराध कोड़े लगाते ही रहना चाहिए।]

प्रभु आज्ञा अपेल स्रुति गाई । करहु सो बेगि, जो तुम्हहिं सोहाई । (४)
६७० दो०—सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरइ कपि-कटक, तात ! सो कहहु उपाइ ॥ ५९ ॥
नाथ नील-नल कपि दोउ भाई । लरिकाईं रिषि - आसिष पाई ।
तिन्हके परस किए, गिरि भारे । तरिहइँ जलधि, प्रताप तुम्हारे । (१)
मैं पुनि उर धरि, प्रभु - प्रभुताई । करिहौं बल - अनुमान सहाई ।
ऐहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइय । जेहि, ऐहि सुजस लोक तिहुँ गाइय । (२)
ऐहि सर, मम उत्तर तट - बासी । हतहु नाथ ! खल नर, अघरासी ।
सुनि कृपाल, सागर-मन - पीरा । तुरतहिं हरी, राम रनधीरा । (३)
देखि राम-बल-पौरुष भारी । हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ।
सकल चरित कहि प्रभुहिं सुनावा । चरन बंदि, पाथोधि सिधावा । (४)
६८० छंद—निज भवन गवनेउ सिंधु, श्रीरघुपतिहिं यह मत भायऊ ।
यह चरित, कलिमल - हर, जथामति, दास तुलसी गायऊ ।

जो आपको अच्छा लगे । (४) समुद्रके अत्यन्त विनीत वचन सुनकर कृपालु राम मुसकराकर कहने लगे—'देखो भाई ! (हमें तो अपनी सेना पार उतारनी है, इसलिये) तुम्हीं कोई ऐसा उपाय बता डालो कि यह वानरोंकी सेना समुद्र-पार उतर जाय' ॥ ५९ ॥ (समुद्रने सुझाव देते हुए कहा—) 'नाथ ! नील और नल नामके दोनों वानर भाइयोंने बचपनमें किसी ऋषि (ब्रह्मा)-से आशीर्वाद पा रक्खा है कि यदि ये भारीसे भारी पहाड़ भी छू देंगे तो वह आपके प्रतापसे समुद्रमें तैरने लगेगा । (१) मैं भी आपकी प्रभुता हृदयमें धारण करके अपने बलके अनुसार उनकी सहायता करता रहूँगा । इस प्रकार नाथ ! आप समुद्रपर पुल बनवा लीजिए, जिससे तीनों लोकोंमें आपके इस सुयशका भी वर्णन होता रहे । (२) नाथ ! आपने जो बाण चढ़ा लिया है उससे उत्तर तटपर (द्रुमकुल्यमें) रहनेवाले मनुष्योंको भस्म कर डालिए जो बड़े दुष्ट और पापी हैं ।' समुद्रकी व्यथा सुनकर कृपालु रणधीर रामने तुरन्त (बाण छोड़कर) उसका सारा कष्ट दूर कर डाला ।[1] (३) रामका इतना प्रचण्ड बल और पुरुषार्थ देखकर समुद्र हर्षित हो उठा । उसने पहले प्रभु रामके यश वर्णन कर सुनाया और फिर प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके समुद्र चला गया । (४) समुद्र तो इतना कहकर घर चला गया और रामको भी उसकी (समुद्र बाँधनेकी) बात बहुत ठीक जँची ।

अपनी बुद्धिके अनुसार तुलसीदासने यह जो रामका चरित्र कहा है उससे कलिके सारे पाप

१. समुद्रके उत्तर तटपर जहाँ श्रीरामने वह चढ़ाया हुआ बाण छोड़ा था वह 'ढोल-ढमक्का' नामक स्थान भस्म होकर मरुस्थल हो गया है। वहाँ आज भी रामके बाणकी पूजा होती है । विजयाटीकासे) ।

६७२-७३ नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः । सुतो धीमान् समर्थोस्मिन् कार्ये लब्धवरो हरिः ॥
६७५ कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम् । —अध्यात्मरामायण
६७६ रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः । प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥
बाधंते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः ॥ —आनंदरामायण
६७७ रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमंडलम् । हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववत् स्थितः ॥
६७९ इत्युक्त्वा राघवं नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम् ॥ —अध्यात्मरामायण

सुख-भवन, संसय - समन , दवन-बिषाद, रघुपति-गुन-गना ।
तजि सकल आस-भरोस , गावहि, सुनहि, संतत सठ मना ॥ [६]

दो०—सकल सुमंगल-दायक , रघुनायक-गुन-गान ।
सादर सुनहिं, ते तरहिं भव , - सिंधु बिना जल - जान ॥ ६० ॥

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमल-वैराग्यसंपादनो नाम
पंचमः सोपानः समाप्तः ॥

नष्ट हो मिटते हैं। अरे शठ मन ! रामके ये सब चरित्र तो सब सुखोंसे भरे, सब सन्देहोंका नाश करनेवाले और दुःखोंका दमन करनेवाले हैं। तू संसारकी सब आशा और सबका भरोसा छोड़कर निरन्तर उनका गान किया कर और सुना कर। [६] रामके गुणोंका वर्णन करनेसे सब मंगल ही मंगल होता है। जो इसे आदरपूर्वक सुनेंगे वे बिना किसी जहाजके ही भवसागरसे पार उतर पहुँचेंगे ॥ ६० ॥

॥ कलियुगके सारे पाप नष्ट कर डालनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह स्वच्छ वैराग्य उत्पन्न करनेवाला नामका पाँचवाँ सोपान (सुन्दरकाण्ड) समाप्त हुआ ॥

॥ सुन्दर-काण्ड समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

•

षष्ठ सोपान

(लंका-कांड)

[श्लोकाः]

१

रामं कामारि - सेव्यं भव - भय - हरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञान - गम्यं गुण - निधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्
मायातीतं सुरेशं खल - वध - निरतं ब्रह्मवृन्दैक - देवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिज-नयनं देवमुर्वीश - रूपम् ॥ १ ॥
शङ्खेन्द्वाभमतीव - सुन्दर - तनुं शार्दूल - चर्माम्बरं
काल - व्याल - कराल - भूषणधरं गङ्गा - शशाङ्क - प्रियम् ।
काशीशं कलि - कल्मषौघ - शमनं कल्याण - कल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम् ॥ २ ॥

कामदेवको भस्म कर डालनेवाले शंकर भी जिसकी निरन्तर सेवा करते रहते हैं, जो भव (संसार)-का भय (जन्म-जरा-मृत्यु) दूर कर भगाते हैं, जो काल-रूपी मतवाले हाथीके लिये सिंहके समान (उसे पछाड़ डालनेवाले) हैं, जो योगियोंके स्वामी हैं, जिन्हें केवल ज्ञानके द्वारा ही जाना जा सकता है, जिनमें सब गुण ही गुण भरे पड़े हैं, जिन्हें कोई जीत नहीं सकता, जो निर्गुण हैं, विकारोंसे रहित हैं, मायाके फेरमें कभी नहीं पड़ पाते हैं, देवताओंके स्वामी हैं, दुष्टोंका बध करनेमें लगे रहते हैं, समस्त ब्राह्मणोंके एकमात्र देवता हैं, मेघके समान सुन्दर, कमल-जैसे नेत्रोंवाले और पृथ्वीके पति (राजा)-के रूपमें देवता ही हैं, उन रामको मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

शंख और चन्द्रमाकी गोराईके समान अत्यन्त गोरे, तनपर बाघम्बर बाँधे रहनेवाले, कालके समान भयानक सर्पोंको आभूषण बनाकर लपेटे रहनेवाले, गंगा और चन्द्रमाके प्रेमी (दोनोंसे प्रेम किए रखनेवाले), काशीके स्वामी, कलि-कालके सारे पाप नष्ट कर सकनेवाले, कल्याणके कल्पवृक्ष (सदा कल्याण करनेवाले), सब गुणोंके भांडार, कामदेवको भस्म कर डालनेवाले, और पार्वतीके पति पूज्य शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

योो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
१० खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु माम् ॥ ३ ॥

दो०—लव, निमेष, परमानु, जुग , बरष, कलप, सर चंड ।
भजसि न मन ! तेहि राम-कहँ, काल जासु कोदंड ॥ क ॥

सो०—सिन्धु-वचन सुनि राम , सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब विलंब केहि काम , करहु सेतु, उतरइ कटक ॥ ख ॥
सुनहु भानु - कुल - केतु , जामवंत कर जोरि कह ।
नाथ ! नाम तव सेतु , नर चढ़ि भव-सागर तरहिं ॥ ग ॥

यह लघु जलधि तरत कति बारा । अस सुनि, पुनि कह पवनकुमारा ।
प्रभु - प्रताप वड़वानल भारी । सोखेउ प्रथम पयोनिधि-बारी । (१)
तव - रिपु - नारि - रुदन - जल - धारा । भरेउ बहोरि भयउ तेहि खारा ।
२० सुनि अति उक्ति, पवनसुत - केरी । हरषे कपि रघुपति - तन हेरी । (२)
जामवंत बोले दोउ भाई । नल - नीलहिं सब कथा सुनाई ।
राम - प्रताप सुमिरि मन - माहीं । करहु प्रयास, सेतु कछु नाहीं[1] । (३)
बोलि लिये कपि - निकर बहोरी । सकल सुनहु बिनती कछु[2] मोरी ।
राम - चरन - पंकज उर धरहू । कौतुक एक भालु - कपि करहू । (४)

सत्पुरुषोंको भी जो कैवल्य मुक्ति बड़ी कठिनाईसे मिल पाती है वह भी जो दे डालते हैं और जो दुष्टोंको दण्ड देते रहते हैं, वे कल्याणकारी शम्भु मेरा अधिकसे अधिक कल्याण किया करें ॥ ३ ॥

अरे मेरे मन ! लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प ही जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल ही जिनका धनुष है (काल और कालके सब अंग जिनकी मुट्ठीमें हैं), तू उन रामका भजन क्यों नहीं किया करता ॥ क ॥

समुद्रकी बात सुनकर प्रभु रामने मन्त्री (जामवन्त)-को बुलाकर पूछा कि अब विलम्ब क्यों किया जा रहा है ? झट पुल बनवा खड़ा करो जिससे सेना पार उतर चले ॥ ख ॥ जामवन्तने हाथ जोड़कर कहा—'सूर्यकुलके ध्वजा-स्वरूप स्वामी राम ! आपके नामके पुलपर चढ़कर तो मनुष्य संसारका सागर पार कर जाते हैं ॥ ग ॥ तब यह छोटासा समुद्र पार करनेमें कितनी देर लगनेवाली है ?' यह सुनकर हनुमान्ने कहा—'प्रभुका प्रताप तो यों ही प्रचण्ड वडवानलके समान तेजस्वी है जो पहलेसे ही समुद्रका जल सोखे बैठा था । (१) पर आपके शत्रुओंकी स्त्रियोंकी आँखोंसे इतने आँसू बहे, इतने आँसू बहे कि वह खारा होकर फिर भर गया ।' हनुमान्की यह बड़ी बात सुनकर सब वानर रामकी ओर देखकर प्रसन्न हो उठे । (२) जामवन्तने दोनों भाई नल और नीलको बुलाकर उन्हें (ऋषि या ब्रह्माके वरदानकी) सारी कथा कह सुनाई और आदेश दिया कि रामके प्रतापका मनमें स्मरण करके पुल बाँध डालो, तुम्हें तनिक भी श्रम नहीं पड़ेगा ।' (३) फिर उन्होंने सब वानरोंको बुलाकर कहा—'वानरो और भालुओ ! तुम सब हमारी एक प्रार्थना सुन लो । रामके चरण-कमलोंका हृदयमें स्मरण करके तुम सब (हमारे कहनेसे) एक खेल रच डालो । (४) तुम सब विकट

१. करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं । २. एक ।

१३-१४ ततो रामस्तु सुग्रीवजामवन्तौ समाह्वयत् । युवां सेतोर्विरचने विलम्बेथेऽधुना कथम् ॥–अध्या०रा०
१५-१६ जाम्बवानपि तं प्राह प्राञ्जलिः श्रूयतां प्रभो । त्वन्नामसेतुमारुह्य तरन्ति भवसागरम् ॥–आ०रा०
१७-१९ राजन् सहाय्यकूपारास्त्वत्प्रतापाग्निशोषिताः । पुनस्त्वद्वैरिवनिताबाष्पपूरेण पूरिताः ॥–कुव.न.
२१-२२ नलनीलौ समाहूय जाम्बवान् प्राह तौ प्रति । रामप्रतापं संस्मृत्य कुर्यातं सेतुमुत्तमम् ॥–वाल्मी०

धावहु मर्कट - बिकट - बरूथा । आनहु बिटप-गिरिन - के जूथा ।
सुनि कपि - भालु, चले करि हूहा । जय रघुबीर प्रताप-समूहा । (५)
दो०—अति उतंग गिरि-पादप[1] , लीलहि लेहिं उठाइ ।
आनि देहिं नल - नीलहिं , रचहिं ते सेतु बनाइ ।। १ ।।
सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक - इव नल-नील ते लेहीं ।
३० देखि सेतु - अति - सुन्दर - रचना । बिहँसि, कृपानिधि बोले बचना । (१)
परम रम्य, उत्तम, यह धरनी । महिमा अमित, जाइ नहिं बरनी ।
करिहौं इहाँ संभु - थापना । मोरे हृदय परम कलपना । (२)
सुनि, कपीस बहु दूत पठाए । मुनिवर सकल, बोलि लै आए ।
लिंग थापि, बिधिवत करि पूजा । सिव-समान प्रिय, मोहिं न दूजा । (३)
सिव - द्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहु मोहिं न पावा ।
संकर - बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी, मूढ़, मति थोरी । (४)
दो०—संकर - प्रिय, मम द्रोही , सिव - द्रोही, मम दास ।
ते नर, करहिं कलप भरि , घोर नरक - महँ बास ।। २ ।।

वानर दौड़े चले जाओ और जा-जाकर जितने पर्वत और वृक्ष मिलें सब उखाड़े लिए चले आओ ।' इतना सुनना था कि वानर और भालू हा-हू करते और रामके प्रतापकी जय-जयकार करते हुए दौड़ पड़े । (५) वे खेल-खेलमें ही बड़े-बड़े ऊँचे-ऊँचे पहाड़ (चट्टानें) और वृक्ष उखाड़-उखाड़कर उठा लाते थे और ला-लाकर नल और नीलको थमाते जाते थे । वे दोनों वह सब ले-लेकर वेगसे पुल बनाते चले जा रहे थे ।।१।। वानर जो बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर उछाल-उछालकर देते चलते थे, उन्हें नल और नील गेंदके समान गुचते (हाथोंमें पकड़ते) चलते थे और पुल बनाते चलते थे । पुलकी अत्यन्त सुन्दर बनावट देखकर कृपानिधान राम हँसकर बोले—(१) 'यह भूमि तो बहुत ही सुन्दर और उत्तम है । इसकी इतनी वड़ी महिमा है कि वह कही नहीं जा सकती । मेरे मनमें बहुत वड़ा संकल्प उठ खड़ा हुआ है कि यहाँ मैं शिवकी स्थापना कर डालूँ । (२) रामका यह संकल्प सुनना था कि सुग्रीवने बहुतसे दूत भेजकर मुनियोंको वहाँ बुलवा लिया । उनके आ जानेपर रामने वहाँ शिव-लिंगकी स्थापना करके और विधिवत् उसकी पूजा करके कहा—'आप लोग जानते हैं कि मुझे तो शिवके समान दूसरा कोई प्रिय है नहीं । (३) जो मनुष्य शिवका विरोध करके मेरा भक्त कहलाना चाहे वह मुझे स्वप्नमें भी नहीं पा सकता । जो शंकरकी ओरसे मुँह फेरकर मेरी भक्ति करना चाहे, वह थोड़ी बुद्धिवाला मूढ तो नरकमें ही पड़े रहनेके योग्य है । (४) जो शंकरसे प्रेम करके मुझसे द्रोह करते हैं और शिवसे द्रोह करके मेरे भक्त बनना चाहते हैं, वे मनुष्य कल्प-भर घोर नरकमें पड़े सड़ते रहते हैं ।। २ ।।

१ तरु सैल गन ।

२३-२६ ततः श्रीऋक्षराजेन विसृष्टा हरिपुंगवाः । उत्प्लवन्तो महारण्यं जग्मुः शतसहस्रशः ।
ते नगान्नगसंकाशाः शाखामृगगणार्षभाः । बभंजुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ।।—वाल्मी०
२७-२८ ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपैर्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नलः ।
बबंध सेतुं शतयोजनायतं सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम् ।। —अध्यात्मरामायण
२९-३२ सेतुमारभमाणस्तु कामदं जगदीश्वरम् । मनोवृत्तिममेवात्र स्थापयामिति प्राह सः।।—आनन्द०रा०
३३-३४ इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान् मुनिभिः परिवेष्टितः । सैकतं स्थापयामास लिंगं रामो विधानतः ।।
३५-३६ शम्भुद्रोहरतो यश्च स शत्रुर्मे न संशयः । महेश्वरमनाराध्य न मे भक्तः कदाचन ।।
३७-३८ उभयोः प्रकृतिस्त्वेका प्रत्ययभेदेन रूपभिन्नत्वम् । कलयति हरिहरभेदं कश्चिन्मूढो विनाशाय्रम् ।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः ।। —वाराहपुराण

जे रामेस्वर - दरसन करिहइँ। ते तनु तजि, मम लोक सिधरहइँ।
४० जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि। (१)
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि।
मम - कृत सेतु जो दरसन करिही। सो बिनु स्रम भव - सागर तरिही। (२)
राम - बचन सबके जिय भाए। मुनिवर निज - निज आस्रम आए।
गिरिजा! रघुपति - कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत - पर प्रीती। (३)
बाँधा[1] सेतु नील - नल नागर। राम - कृपा, जस भयउ उजागर।
बूड़हिं, आनहिं बोरहिं जेई। भए उपल, बोहित - सम तेई। (४)
महिमा यह न जलधि - कइ बरनी। पाहन-गुन, न कपिन - कइ करनी। (४॥)
दो०—श्रीरघुबीर - प्रताप - तें, सिंधु तरे पाषान।
ते मति - मंद, जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन॥ ३॥
५० बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि, कृपानिधि - के मन भावा।

मैंने यहाँ जो रामेश्वरकी स्थापना की है इनका जो लोग भी दर्शन आ करेंगे वे शरीर छोड़नेपर सीधे मेरे लोक (वैकुण्ठ) जा पहुँचेंगे और जो (इन रामेश्वर)-पर गंगाजल ला चढ़ावेंगे वे तो सायुज्य मुक्ति ही प्राप्त कर लेंगे (भगवान्में लीन हो रहेंगे) । (१) जो लोग छल-कपट छोड़कर निष्काम भावसे इन (शंकर)-की सेवा करेंगे, उन्हें शंकर ही मेरी भक्ति दे डालेंगे। जो लोग मेरे बनाए हुए इस सेतु (पुल)-का दर्शन भी कर लेंगे, वे भी बिना परिश्रम किए भव-सागरसे पार उतर जायँगे (मुक्त हो जायँगे) ।' (२) रामकी ये बातें सबको बहुत अच्छी लगीं। (रामेश्वरकी) स्थापना हो चुकनेपर सब मुनि जहाँ-जहाँसे आए थे वहाँ-वहाँ अपने-अपने आश्रम लौट गए।

शिव कहते हैं—'देखो पार्वती! रामका यही नियम है कि जो भी उनकी शरणमें पहुँचा रहता है उससे वे सदा प्रेम बनाए रहते हैं।' (३) चतुर (करीगर) नील और नलने समुद्रपर पुल बाँध डाला इस बातका यश भी रामकी कृपासे सर्वत्र फैल गया (कि इन्होंने ही समुद्रपर पुल बाँधा है) । (कैसी विचित्र बात है कि) जो पत्थर स्वयं पानीमें डूब जाते हैं और दूसरोंको भी साथ ले डुबोते हैं, वे ही पत्थर वहाँ जहाज (तैरनेवाले) बन बैठे थे। (४) इसमें न तो समुद्रकी कुछ महिमा थी, न पत्थरोंका ही कोई गुण था और न वानरोंकी ही कुछ करामात थी। (४॥) यह तो रामका ही प्रताप था जिसके कारण पत्थर भी समुद्रमें पड़ते ही तैर चले थे। ऐसे प्रभु (शक्ति-सम्पन्न) रामको छोड़कर जो दूसरे प्रभुके पीछे दौड़ते फिरते हैं, उनसे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा॥ ३॥ नल-नीलने पुल बाँधकर उसे ऐसा अच्छा पक्का कर दिया कि कृपानिधान राम उसे देखते ही प्रसन्न हो उठे। फिर क्या था! वानरोंकी वह विशाल सेना उसपर चढ़ चली जिसका वर्णन

१. बाँधेउ।

३९ अस्य रामेश्वरस्यैव दर्शनं यः करिष्यति। तनुंहित्वा हरेर्लोकं स गच्छेद्ब्रह्मवाञ्छितम्॥—आन.रा.
४० प्रणमेत्सेतुबंधं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम्। समुद्रे त्यक्ततद्द्वारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम्॥
४१-४२ निष्कामः पुरुषश्छद्म त्यक्त्वा सेवां विधास्यति। अस्य तस्मै महादेवो मम भक्तिं प्रदास्यति॥
४३-४४ ततस्ते मुनयस्तुष्टा राघवेणापि पूजिताः। ययुः स्वीयाश्रमं श्रुत्वा वचो रामेण भाषितम्॥
४५ एवं बबन्ध सेतुं स नलो वानरसत्तमः। —अध्यात्मरामायण
४६-४९ ये मज्जन्ति निमज्जयन्ति च परास्ते प्रस्तरा दुस्तरे, वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् संतारयन्तेऽपि च॥
नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो वानराणां गुणाः, श्रीमद्दाशरथेः प्रतापमहिमा सोयं समुज्जृम्भते। हनु०ना०
५० तेनेऽद्रिबन्धो ववृधे पयोधिस्तुतोष रामो मुमुदे कपीन्द्रः। —भट्टिकाव्य

चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट - भट - समुदाई। (१)
सेतबंधु - ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु - बहुताई।
देखन - कहँ प्रभु करुना-कन्दा। प्रगट भए सब जल-चर-बृन्दा। (२)
मकर, नक्र, नाना झख, ब्याला। सत-जोजन - तन, परम बिसाला।
अइसेउ एक, तिन्हहिं जे खाहीं। एकन्ह - के डर तेऽपि डेराहीं। (३)
प्रभुहिं बिलोकहिं, टरहिं न टारे। मन हरषित, सब भए सुखारे।
तिन्ह - की ओट न देखिय बारी। मगन भए हरि - रूप निहारी। (४)
चला कटक, प्रभु - आयसु पाई। को कहि सक कपि-दल-बिपुलाई। (४॥)
दो०—सेतुबंध भइ भीर अति, कपि नभ - पंथ उड़ाहिं।
६० अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि - चढ़ि पारहि जाहिं॥ ४॥
अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई। बिहँसि कृपाल चले रघुराई[1]।
सेन - सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि - जूथप-भीरा। (१)
सिंधु - पार प्रभु डेरा कीन्हाँ। सकल कपिन्ह-कहँ आयसु दीन्हाँ।

नहीं किया जा सकता। योद्धा वानरोंके झुण्डके झुण्ड (उस पुलपर) गरजते बढ़े चले जा रहे थे। (१) ज्योंही कृपालु राम समुद्रका विस्तार देखनेके लिये उसपर आकर चढ़े त्योंही समुद्रके सारे जल-जन्तु कृपालु प्रभु रामका दर्शन करनेके लिये बाहर मुंह निकाल-निकालकर आ जुटे। (२) उन सौ-सौ योजन (बहुत लंबे-चौड़े) मगर, घड़ियाल, मछलियों और सर्पोंमें बहुत-से ऐसे भी थे जो एक दूसरेको खड़ाका-खड़ा निगल जाते थे और वे सब छोटे जीव अपनेसे बड़े जीवोंके डरसे डरते भी रहते थे (३) पर वे सबके सब (वैर और डर छोड़कर) प्रभुके दर्शन किए जा रहे थे और लाख हटाए हट नहीं पा रहे थे। वे सबके सब ऐसे जान पड़ते थे जैसे बड़े प्रसन्न और सुखी हो गए हों। वे जलके ऊपर ऐसे आ छाए थे कि समुद्रका जल भी सारा ढक गया था और वे सब भी भगवान्‌का स्वरूप देखनेमें ही मग्न हो गए थे। (४) प्रभुकी आज्ञा पाकर (उस पुलसे) वानरोंकी जो सेना चली उनमें वानरोंके कितने अधिक दल थे उनका वर्णन कौन कर पा सकता है? (४॥) सेतु-बन्धपर इतना धक्कम-धुक्का हो चला कि बहुतसे वानर तो आकाशमें उड़-उड़कर जाने लगे और बहुतसे वानर जलचरोंकी ही पीठपर उछलते-कूदते हुए पार चले जा रहे थे। (४) दोनों कृपालु भाई (राम और लक्ष्मण) भी यह कौतुक (खेल) देखते हुए पुलपर हँसते चले जा रहे थे। सेनाके साथ-साथ राम भी समुद्र-पार जा पहुँचे। उनके साथके वानरों और उनके सेनापतियोंकी इतनी भारी भीड़ इकट्ठी हो गई थी कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (१) प्रभुने समुद्रके पार पहुँचते ही डेरा डाल दिया और सब वानरोंको खली छूट दे दी कि जहां भी मीठे फल-मूल मिलें,

१. बिहँसि चले कृपाल रघुराई।

५१ तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम्। असंख्याताः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च महाभटाः॥
५२-५५ तिमिनक्रझषाः मीनाः शतयोजनविस्तराः। रामस्य दर्शनार्थं तु प्रादुर्भूताश्च ते तदा॥—अध्या.रा.
५६-५७ अस्ति मत्स्यास्तिमिर्नामशतयोजनविस्तराः। तिमिङ्गिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघवः॥—हनु.
५८-६० अन्ये मध्ये न गच्छन्ति पार्श्वतोन्ये प्लवंगमाः। सलिलं प्रपतंत्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे।
केचिद्वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः। वारिचारिणमारुह्य कैश्चित्तीर्णः सरित्पतिः॥
६१- ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः। जगाम रामो धर्मात्मा पारं रत्नाकरस्य च॥
६२- ससैन्यस्तीर्णवान् रामः पारं नदनदीपतेः॥ —वाल्मीकीयरामायण

खाउ जाइ फल - मूल सुहाए। सुनत भालु-कपि जहँ - तहँ धाए। (२)
सब तरु फरे राम - हित - लागी। रितु अरु कुरितु,काल-गति त्यागी[1]।
खाहिं मधुर फल, बिटप हलावहिं। लंका - सनमुख सिखर चलावहिं। (३)
जहँ - कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल, बहु नाच नचावहिं।
दसनन्हि काटि नासिका - काना। कहि प्रभु-सुजस, देहिं तब जाना। (४)
जिन्ह - कर नासा - कान निपाता। तिन्ह रावनहिं कही सब बाता।
७० सुनत स्रवन, बारिधि - बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना। (५)

दो०—बाँध्यो बननिधि! नीरनिधि! जलधि! सिंधु! बारीस!
सत्य तोयनिधि! कंपति! उदधि! पयोधि! नदीस!॥ ५ ॥

निज बिकलता बिचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह, करि भय भोरी।
मंदोदरी सुन्यौ, प्रभु आयो। कौतुक ही पाथोधि बँधायो। (१)

वहीं पहुँचकर जा खाओ। भालू और वानर (कहाँ चूकनेवाले थे)। इतना सुनते ही वे (फलोंकी खोजमें) इधर-उधर दौड़ पड़े। (२) बातकी बातमें वहाँके सभी वृक्ष रामके लिये ऋतु और कुऋतुके समय विचार छोड़कर फल उठे। फिर क्या था! वानर और भालू उनपर चढ़-चढ़कर मीठे-मीठे फल गपकने लगे, वृक्ष पकड़-पकड़कर झकझोरने लगे और पर्वतोंकी चट्टानें उखाड़-उखाड़कर लंकाकी ओर धुआँधार फेंकने लगे। (३) वे जहाँ कहीं किसी राक्षसको घूमते-फिरते पा जाते वहीं उसे घेरकर सब बहुत देरतक उसे नाच नचाते, दाँतोंसे उसके नाक-कान काट नोचते और तभी उसे जाने देते जब वह प्रभु (राम)-की बड़ाई कर लेता। (४) ऐसे जिन राक्षसोंके नाक-कान कट चुके थे उन सबने रावणके पास पहुँचकर यहाँका सारा समाचार रो सुनाया। समुद्रका बाँधा जाना सुनते ही (वह एक बार एक ही मुखसे बोलनेवाला) रावण घबराकर (एक ही साँसमें दसों मुखोंसे समुद्रके दसों नाम लेकर) बोल उठा—(५) 'ऐं क्या सचमुच रामने वननिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि और नदीशपर पुल बाँध डाला'॥ ५ ॥ फिर तत्काल सँभलकर कि सबके आगे कहीं मेरी व्याकुलता प्रकट न हो जाय, वह रावण (ऊपरी मनसे) हँसता हुआ, अत्यन्त भयभीत और व्याकुल होकर अपने भवन चला गया। जब मन्दोदरीने सुना कि प्रभु राम लंका-तक आ पहुँचे हैं और खेल-खेलमें ही उन्होंने समुद्रपर पुल बँधवा खड़ा किया है, (१)

१. रितु अनरितु अकाल गति त्यागी।

६३-६४ निविष्टायां तु सेनायां पारं नदनदीपतेः। कीशानाज्ञापयद्रामः फलान्यत्तु त्वितस्ततः॥
६५-६६ प्रसन्ना सुरसाश्चापो वनानि फलवंति च। प्रवांति नाधिका गंधा यथर्तुकुसुमाद्रुमाः॥
भक्षयंतः सुगंधीनि मधूनि च फलानि च। कम्पयन्तो महावृक्षान्मंजरीपुंजधारिणः॥
क्षिप्यन्ति वानरा। सर्वे लंकायाः सम्मुखे मुदा।
६७-६६ वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः। पुनर्लंकामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः॥
ततो दशग्रीवमुपस्थितास्ते चारा वहिर्नित्यचरा निशाचराः।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनं न्यवेदयन्रामबलं महाबलाः॥ —वाल्मीकीयरामायण
७०-७२ श्रुत्वा सागरबन्धनं दशशिरः सर्वैर्मुखैरेकदा
तूर्णं पृच्छति वार्त्तिकान् स चकितो भीत्या परं सम्भ्रमात्।
बद्धः सत्यमपांनिधिर्जलनिधिः कीलालधिस्तोयधिः पाथोधिर्जलधिः पयोधिरुदधी वारांनिधिर्वारिधिः।।सुभाषित
७३ ययौ दशास्यो भयविह्वलात्मा चारप्रकाशीकृतशत्रुशक्तिः। —भट्टिकाव्य

कर गहि पतिहि, भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी।
चरन नाइ सिर, अंचल रोपा। सुनहु बचन पिय ! परिहरि कोपा। (२)
नाथ ! बयर कीजै ताही - सों। बुधि - बल सकिय जीति जाही-सों।
तुम्हहिँ रघुपतिहिँ अंतर कैसा। खलु खद्योत - दिनकरहिँ जैसा। (३)
अति बल मधु - कैटभ जेहि मारे। महा बीर दिति - सुत संहारे।
८० जेहि बलि बाँधि, सहस - भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि-भारा। (४)
तासु विरोध, न कीजिय नाथा। काल - करम - जिव जाके हाथा। (४।।)
दो०—रामहिं सौंपि[1] जानकी, नाइ कमल - पद माथ।
सुत - कहँ राज समर्पि, बन, जाइ, भजिय रघुनाथ ।। ६ ।।
नाथ ! दयालु - दीन[2] रघुराई। बाघौ सनमुख गए न खाई।
चाहिय करन, सो सब करि बीते। तुम सुर - असुर - चराचर जीते। (१)
संत कहहिँ असि नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन।
तासु भजन कीजिय तहँ, भरता। जो करता, पालक, संहरता। (२)

तब तो वह अपने पति (रावण)-का हाथ पकड़कर उसे अपने भवनमें लिवा ले गई और वहाँ बड़ी कोमलताके साथ उसके चरणोंमें सिर नवाकर आँचल फैलाकर कहने लगी—'देखो प्रियतम ! आप क्रोध त्यागकर मेरी बात ध्यानसे सुन लीजिए। (२) देखिए नाथ ! वैर तो उसीसे ठानना ठीक होता है जिसे बुद्धि और बलसे जीता जा सके। आपमें और राममें निश्चय ही उतना अन्तर है जितना जुगनू और सूर्यमें होता है। (३) जिस पुरुषने (विष्णु रूपसे) मधु और कैटभ नामके दैत्य मार डाले, (वराह रूपसे) हिरण्याक्षको और (नृसिंह रूपसे) हिरण्यकशिपुको पछाड़ डाला, (वामन रूपसे) राजा बलिको बाँध लिया और (परशुराम रूपसे) सहस्रबाहुको मार डाला, वही भगवान् अब (रामके रूपमें) पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये आ उतरे हैं। (४) नाथ ! काल, कर्म और जीव सभी जिनकी मुट्ठीमें कसे धरे हैं उनसे वैर न ठानिए। (४।।) रामको जानकी सौंपकर और उनके चरण-कमलोंमें सिर नवाकर, पुत्रको राज्य देकर, चलिए वनमें चलकर बैठे रामका भजन किया जाय।। ६ ।। देखिए नाथ ! राम तो यों ही सदा दीनोंपर दया करते रहते हैं, फिर सामने आ जानेपर तो बाघ भी किसीको नहीं छेड़ता (नहीं खाता)। आपको जितना यश कमाना था सब कमा चुके। आपने देवता, राक्षस, चर और अचर सबको जीत धरा है। (१) देखिए दशानन ! संत लोगोंने यही नीति बताई है कि चौथेपन (वृद्धावस्था)-में राजाको वन चला जाना चाहिए। स्वामी ! चलिए वहाँ (वनमें) चलकर उनका भजन किया जाय जो यह सृष्टि रचते,

१. सौंपहु। २. नाथ दीन-दयालु रघुराई।

७४-७६ अंजलिं बद्ध्वांचलं प्रसार्य मंदोदरी रामशौर्यं प्रस्तौति।
लंकायां रहसीत्युवाच वचनं मन्दोदरी मन्दिरे ।। —हनुमन्नाटक
७७ बलिना सह सन्धिः स्यादबलेन च विग्रहः। तेनैव सह वैर त्वं बुद्ध्या जेतव्य एव यः ।।—शुक्रनीति
७८ तस्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि। —भागवत
७९ तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता। कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ।।मार्क.पु.
८० येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। अवतीर्णः स भगवानंशेन जगदीश्वरः ।।—अद्भु.खंड
८१ तस्मान्न त्वया कार्यो विरोधो हि रमांपतेः। कर्तृत्वभोक्तृत्वगुणा वश्यास्तत्रेश्वरे सदा।।—अध्या.रा.
८२-८३ अथ स विषयव्यावृत्यात्मा यथाविधि सूनवे। नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम् ।।—रघु०
सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव। —आनन्दरामायण
८७ सर्गस्थितिविनाशानां जगद्वृक्षस्य कारणम्। भजस्व जगतः सारं नाथ त्वं परमेश्वरम् ।।-अध्या०रा०

सोइ रघुबीर प्रनत - अनुरागी । भजहु नाथ ! ममता सब[1] त्यागी ।
मुनिवर जतन करहिं - जेहि लागी । भूप, राज[2] तजि होहिं बिरागी । (३)
९० सोइ कोसलाधीस रघुराया । आयउ करन तोहिं - पर दाया ।
जौं पिय ! मानहु मोर सिखावन । सुजस होइ तिहुँ पुर अति पावन । (४)
दो०—अस कहि, नयन नीर भरि , गहि पद, कंपित गात ।
नाथ ! भजहु रघुनाथहिं[२] , अचल होइ अहिवात ।। ७ ।।
तब रावन, मय-सुता उठाई । कहइ लाग खल निज प्रभुताई ।
सुनु तैं प्रिया ! बृथा भय माना । जग जोधा को मोहिं समाना । (१)
बरुन, कुबेर, पवन, जम, काला । भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला ।
देव, दनुज, नर सब बस मोरे । कवन हेतु उपजा भय तोरे । (२)
नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई । सभा बहोरि, बैठ सो जाई ।
मंदोदरी हृदय अस जाना । काल - बस्य उपजा अभिमाना । (३)

इसे पालते और इसका संहार करते रहते हैं (२) वे राम अपनी शरणमें आए हुएसे तो बहुत ही प्रेम करते हैं । अतः, आप (घर-बार, राजपाटकी) सारी ममता छोड़-छाड़कर उन्हीं प्रभुका भजन जा कीजिए जिन्हें पानेके लिये बड़े-बड़े मुनि बैठे साधना करते रहते हैं और राजा अपने राज्य छोड़-छाड़कर वैरागी हो बैठते हैं । (३) यह तो बड़ा अच्छा संयोग कहिए कि वही कोशलाधीश राम आपपर कृपा करने यहाँ आ पधारे हैं । प्रियतम ! यदि आप मेरी बात मान लें तो आपका पवित्र और उज्ज्वल यश तीनों लोकोंमें जा फैले ।' (४) यह कहकर नेत्रोंमें आँसू भरकर काँपती हुई वह पतिके चरण पकड़कर बोली—'स्वामी ! आप रामकी शरणमें चले जाइए, जिससे मेरा सौभाग्य अचल बना रहे' ।। ७ ।। यह सुनकर रावणने मन्दोदरीको पकड़ उठाया और वह दुष्ट उसके आगे अपने बलकी डींग हाँकने लगा—'देख प्रिये ! तू तो व्यर्थ ही डरी जा रही है । यह बता कि संसारमें मेरे समान योद्धा दूसरा है कौन ? (१) वरुण, कुबेर, पवन, यम, काल और जितने दिग्पाल थे सबको तो मैं अपनी भुजाके बलसे जीते बैठा हूँ । देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरी मुट्ठीमें आए धरे हैं, फिर तू इतनी क्यों डरी जा रही है ?' (२) उसने उसे (मन्दोदरीको) बहुत प्रकारसे ढाढ़स बँधाया और वहाँसे उठकर वह अपनी सभामें जा बैठा । इधर मन्दोदरीने अपने हृदयमें समझ लिया कि (मेरे पतिके) दिन पूरे हो चले हैं इसलिये इसे अभिमानने आ घेरा है । (३) अपनी सभामें पहुँचकर रावण बैठा अपने मंत्रियोंसे सम्मति लेने लगा कि शत्रुसे किस प्रकार

१. ममता मद । २. रघुबीर पद ।

८८-८९ मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयेति ।
तद्धामदुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ।। —भागवत
९० रामेणाद्य समागतेन भवते कारुण्यमाविष्कृतम् ।। —समयादर्श
९१-९३ इत्युक्त्वा वेगमाना सा साश्रुनेत्रं चकार वै । भजस्व रामं परिपूर्णमेकं विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः ।।अ०
मन्दोदर्या मम मण्डनमखमण्डभावं समभ्येतु । —दूतांगद
९४-९७ रावणः निज भुजाडम्बरं नाटयति । किं ते भीरुभिया निशाचरपतेर्नासौ रिपुर्मे महान्,
यस्याग्रे समरोद्य तस्य न सुरास्तिष्ठन्ति शक्रादयः । मद्दोर्दंडकमण्डलोद्धृतधनुः क्षिप्ताः क्षणान्मार्गणः,
प्राणानस्य तपस्विनः सति रणे नेष्यन्ति पश्याऽधुना ।।
९८-९९ मन्दोदरी सभयं रावणोदितपद्यार्थमपश्यंती भाविनं द्वितीयं पद्यार्थमवगम्य—
अहो प्राणनाथ लंकेश्वर किमिति स्वकपोलकल्पितैरमंगलालापैरात्मनो वधं मन्यसे ।।हनुमन्नाटक

१०० सभा आइ, मंत्रिन्ह तेंहि बूझा। करब कवन बिधि रिपु-सैं जूझा।
कहहिं सचिव, सुनु निसिचर-नाहा। बार-बार प्रभु ! पूछहु काहा। (४)
कहहु, कवन भय करिय बिचारा। नर-कपि-भालु अहार हमारा। (४॥)
दो०—सबके बचन स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति-बिरोध न करिय प्रभु, मंत्रि-मतिन्ह अति थोरि॥ ८॥
कहहिं सचिव सब ठकुरसोहाती। नाथ! न पूर आव ऐहि भाँती।
बारिधि नाँघि एक कपि आवा। तासु चरित मन-महँ सब गावा। (१)
छुधा न रही तुम्हहिं तब काहू। जारत नगर, न कस धरि खाहू।
सुनत नीक, आगे दुख पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहिं सुनावा। (२)
जेंहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरे[1] सेन-समेत सुबेला।
११० सो भनु मनुज, खाव हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई। (३)
तात! बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहिं करि कादर।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। अइसे नर-निकाय जग अहहीं। (४)

मोरचा लिया जाय ? मंत्रियोंने (हाँमें हाँ मिलाते हुए, ठकुरसुहाती कहते हुए) कहा—'निशिचर-नाथ प्रभु ! आप इस विषयमें बार-बार क्या पूछे जा रहे हैं। (४) यह तो बताइए कि उनका हमें डर ही क्या पड़ा है जिसके लिये माथा खपाया जाय। मनुष्य, वानर और भालू तो सब हमारे भोजन हैं। (४॥) उन सबकी बात सुनकर (रावणका पुत्र) प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा—'प्रभो ! कोई भी बात ऐसी नहीं करनी चाहिए जो नीतिके विरुद्ध हो। इन सब मंत्रियोंकी तो बुद्धि मारी गई है॥८॥ आपके ये सभी मूर्ख मंत्री ठकुरसुहाती (चापलूसीकी बातें) कहे चले जा रहे हैं। नाथ ! अब इस प्रकारकी बातोंसे काम नहीं चलेगा। जो एक बन्दर समुद्र लाँघकर चला आया था उसकी करतूत आजतक सब लोग मन ही मन कहते-सुनते चले जा रहे हैं (१) उस समय इन लोगोंकी भूख कहाँ चली गई थी जिस समय वह बन्दर सारा नगर फूंके डाल रहा था ? उसी समय ये उसे पकड़कर क्यों नहीं खा गए ? इन मंत्रियोंने स्वामीको ऐसी सम्मति दी है, जो सुननेमें तो बड़ी प्यारी लगती है, पर अन्तमें उससे दुःख ही दुःख हाथ लगेगा। (२) जिसने खेल-खेलमें ही समुद्र बाँध दिखाया, और जो अपनी सेना लेकर सुबेल पर्वतपर आया डटा बैठा है, उसे भी क्या ऐसा-वैसा मनुष्य समझे बैठे हो, जिन्हें ये कहते हैं हम खा जायँगे। यहाँ ये सबके सब बैठे झूठी शान बघारे जा रहे हैं। (३) मेरी बातें कृपा करके ध्यानसे सुन लीजिए। यह मत समझ बैठिएगा कि मैं कायर हूँ (इसलिये ऐसा कह रहा हूँ)। ठकुरसुहाती (चापलूसीकी बातें) कहने और सुननेवाले

१. उतरेउ।

१०० दशास्यस्तु सदो गत्वा मन्त्रं चक्रेऽथ मंत्रिभिः। किं विचारेण युध्येय यत्नं वदत मन्त्रिणः॥हनुमन्ना०
१०१-०२ कथन्ते भयमुत्पन्नं राक्षसा वानराशिनः। इत्यूचुः सचिवाः सर्वे कथ्यमाने दशानने॥नृसिंह पु०
१०३-०४ देव त्वां प्रति संप्रति प्रतिभटप्रोल्लासनं नो मुदे। देवायं प्रतिपद्यते हितमिदं यस्माद्वयं मंत्रिणः॥ह०
१०५ क्रिया सुयुक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वंचनीया प्रभुवोनुजीविभिः।
अतोर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः॥ –किरातार्जुनीय
१०६-०७ एकः सुग्रीवभृत्यः कपिरखिलवनं पत्तनं चापि दग्ध्वा।
यातस्तूष्णीं तदानीं दशमुख भवतः किं कृतं वीरवर्गैः॥
१०८ राजन्मुख सुखा वाचो मधुराः कस्य न प्रियाः। तव क्षोदक्षमाः किंतु नैता व्यसनसंगमे॥
१०९-१० हेलोल्लङ्घितवारिधिः कपिकुलैः सार्धं स रामो नरः। प्रिया वा मधुरा वाक्यहर्म्येष्वेव विराजते॥
१११ आदराच्छृणु मे वाचो गणयस्व न कातरम्। –हनुमन्नाटक

बचन परम हित, सुनत कठोरे। सुनहिं, जे कहहिं, ते नर प्रभु थोरे।
प्रथम बसीठ पठउ, सुनु नीती। सीता देइ, करहु पुनि प्रीती। (५)
दो०—नारि पाइ फिरि जाहिं जौं, तौं न बढ़ाइय रारि।
नाहिंत सनमुख समर-महि, तात! करिय हठि मारि॥ ९॥
यह मत जौं मानहु प्रभु! मोरा। उभय प्रकार सुजस जग तोरा।
सुत-सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ! केहिं तोहिं सिखाई। (१)
अबहीं-तें उर संसय होई। बेनु-मूल सुत! भयहु घमोई।
१२० सुनि पितु-गिरा परुष अति घोरा। चला भवन, कहि बचन कठोरा। (२)
हित मत तोहिं न लागत कैसे। काल-बिबस-कहँ भेषज जैसे।
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा। (३)
लंका-सिखर-उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा।
बैठ जाइ तेहि मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन-गन गावन। (४)
बाजहिं ताल, पखाउज, बीना। नृत्य करहिं अपसरा प्रबीना। (४॥)

मनुष्य संसारमें बहुत मिलेंगे, (४) पर प्रभो! जिनकी बात सुननेमें तो कठोर लगती हो पर (उसका परिणाम) हितकारी होता हो ऐसी बात सुनने और कहनेवाले मनुष्य बहुत कम मिलते हैं। नीतिकी बात तो यह है कि पहले (सन्धिके लिये) दूत भेजिए, फिर रामको सीता सौंपकर उनसे सन्धि कर लीजिए। (५) यदि वे अपनी स्त्री पाकर लौट जाते हैं तब तो झगड़ा बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं। किन्तु यदि तब भी नहीं लौटते तो युद्धभूमिमें उन्हें ललकारकर उनसे निपट लिया जायगा॥ ९॥ प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मान लें तो संसारमें दोनों ही प्रकारसे (सन्धि करनेसे और सन्धि न होनेपर युद्ध करनेसे) आपको यश ही मिलेगा।' यह सुनते ही रावणकी त्योरियाँ चढ़ गईं और वह पुत्रसे बोला—'अरे मूर्ख! ये सब बातें तुझे सिखाई किसने? (१) तेरे मनमें अभीसे मेरी (विजयमें) संदेह उठ खड़ा हुआ है? अरे छोकरे! तू तो बाँसकी जड़में (उसे नष्ट कर डालनेवाला) घमोय बनकर उत्पन्न हो उठा है।' पिताके ये अत्यन्त कठोर वचन सुनकर, वह भी तमककर यह कहता हुआ अपने भवन चला गया—(२) 'आपको भलाईकी बात वैसी (ही बुरी) लग रही है जैसी उस प्राणीको औषधि (अप्रिय) लगने लगती है जिसकी मृत्यु आनेवाली होती है।' सायंकाल होनेपर रावण अपनी बीसों भुजाओंको (अभिमानके साथ) देखता हुआ, अपने भवन चल दिया। (३) लंका (-के त्रिकूट पर्वत)-की चोटीपर एक अत्यन्त विचित्र भवन बना हुआ था जहाँ नाच-गानेका अखाड़ा जमा करता था। वहाँ पहुँचकर रावण उस भवनमें जा डटा। फिर क्या था! किन्नर आ-आकर उसके गुण गाने लगे। (४) करताल खनखना उठे, पखावज गड़गड़ा उठे, वीणा झनझना उठी और नृत्यकलामें कुशल अप्सराएँ

१. उतरेउ।

११२-१६ तन्मह्यं रोचते सन्धिः सह रामेण रावण। यदर्थमभियुक्तोसि सीता तस्मै प्रदीयताम्॥
एवं कृते न मन्येत युद्धारम्भस्तदा भवेत्॥ —वाल्मीकीयरामायण
११७-१९ रावण इदानीमेव सशङ्को धिगत्वामिति तं परुषमवीवचत्॥ —हनुमन्नाटक
१२०-२१ पितुर्वचो निशम्याथ पौरुष्यं प्रोच्य जग्मिवान्। न गृह्णाति वचः पथ्यं कामक्रोधादिपीडितः॥
हितं न रोचते तस्मै मुमूर्षोरिव भेषजम्॥ —पद्मपुराणशिवगीता
१२२ अस्ते भानौ दशशिरो जगाम स्वीयमालयम्॥ —वाल्मीकीयरामायण
१२३-२४ दृष्ट्वा लंकां सुविस्तीर्णां नानाविचित्रध्वजाकुलाम्। हर्म्यस्थले विचित्रे च तस्थौ स दशकन्धरः॥आनं०
१२५ वादयांचक्रिरे ढक्का पणवा दध्वनुर्हताः। मृदंगा धीरमास्वेनुः। —भट्टिकाव्य

दो०—सुनासीर सत सरिस सो, संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस-पर, तदपि न सोच, न त्रास[२] ॥१०॥
इहाँ सुबेल-सैल रघुबीरा। उतरे सेन-सहित अति भीरा।
सिखर उतंग एक अति देखी। परम रम्य, सम, सुभ्र बिसेखी। (१)
१३० तहँ तरु-किसलय-सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए।
ता-पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला। (२)
प्रभु कृत सीस कपीस-उछंगा। बाम-दहिन दिसि चाप-निखंगा।
दुहुँ कर-कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र, लगि काना। (३)
बड़भागी अंगद-हनुमाना। चरन-कमल चाँपत बिधि नाना।
प्रभु-पाछे लछिमन बीरासन। कटि निखंग, कर बान-सरासन। (४)
दो०—एहि बिधि, कृपा-रूप-गुन, -धाम राम आसीन।
धन्य ते नर एहि ध्यान जे, रहत सदा लय-लीन ॥ ११ क॥
पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहिं, देखहु ससिहिं, मृगपति-सरिस असंक ॥ ११ ख॥

छमाछम नाच उठीं। (४॥) सैकड़ों इन्द्रोंके समान वहाँ वह भोगविलासमें रम गया। इतना प्रबल शत्रु सिरपर आ चढ़े रहनेपर भी उसे न तो उसकी चिन्ता ही सता पा रही थी, न डर ही लग रहा था ॥ १० ॥ इधर राम अपनी विशाल सेनाके साथ सुबेल पर्वतपर जा उतरे। पर्वतका बहुत ऊँचा, परम रमणीक, समतल और बहुत चमचमाता शिखर देखकर (१) वहाँ लक्ष्मणने अपने हाथोंसे वृक्षोंके कोमल पत्ते और पुष्पकी साँथरी बना सँवारी और उसपर सुन्दर कोमल मृगचर्म ला बिछाया। आसन ठीक हो जानेपर कृपालु राम उसीपर जा लेटे। (२) कपीश सुग्रीवकी गोदमें रामने अपना सिर टेक लिया। उनकी बाईं ओर धनुष और दाहिनी ओर तूणीर भरा धरा था। वे अपने दोनों कर-कमलोंसे एक-एक बाण उठा-उठाकर उसे सुधारते जा रहे थे और विभीषण उनके कानमें न जाने क्या बार-बार फुसफुसाए जा रहे थे। (३) अंगद और हनुमान् बड़े भाग्यवान् थे कि वे बैठे अनेक प्रकारसे प्रभुके चरण-कमल दबाए जा रहे थे। लक्ष्मण भी कमरमें तूणीर कसे और हाथोंमें धनुष-बाण लिए वीरासन जमाकर प्रभुके पीछे डटे बैठे थे। (४) इस झाँकीके साथ कृपाके रूप, गुणोंके धाम राम वहाँ विराजमान दिखाई दे रहे थे। वे मनुष्य धन्य हैं, जो सदा (रामके) इस (स्वरूपके) ध्यानमें लौ लगाए रहते हैं ॥ ११ क ॥ इतनेमें प्रभु राम देखते क्या हैं कि पूर्वमें चन्द्रमा उदय हो चला है। वे (राम) सबको

२. तदपि न कछु मन त्रास। ३. सिखर एक उतंग अति देखी।

१२६-२७ मंत्रिभिस्सहितो वीरो विजहार दशाननः। महौजसं रिपुं वीक्ष्य न तत्रास तथापि सः ॥मान०
१२८-२९ रामः सुवेलमासाद्य चित्रसानुमुपारुहत्। —वाल्मीकीयरामायण
१६०-६४ अंके कृत्वोत्तमांगं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हंतुः,
कृत्वोत्संगे सलीलं त्वचि कनकमृगस्यांगमाधाय शेषम्।
बाणं रक्षः कुलघ्नं प्रगुणितमनुजे नादरात्तीक्ष्णमक्ष्णः,
कोणे नोद्वीक्षमाणस्त्वदनुजवचने दत्तकर्णोयमास्ते ॥ —दूतांगदनाटक
१३५ पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमन्वराजत् समाहितः। सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः ॥
१३६-३७ स लक्ष्मणो यूथपयूथसंयुतः सुवेलपृष्ठे न्यवसद्यथासुखम्। —वाल्मीकीयरामायण
१२८ मयूखनखत्रुटितिमिरकुंभिकुम्भस्थलोच्छलत्तरलतारकागणविकीर्णमुक्तागणः।
पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थितस्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ॥ —सुभाषित

१४० पूरब दिसि - गिरि - गुहा - निवासी । परम - प्रताप - तेज - बल - रासी ।
मत्त - नाग - तम - कुंभ - विदारी । ससि - केसरी गगन-बन-चारी । (१)
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा । निसि सुंदरी - केर सिंगारा ।
कह प्रभु, ससि - महँ मेचकताई । कहहु काह, निज-निज मति भाई । (२)
कह सुग्रीव, सुनहु रघुराई । ससि-महँ प्रगट भूमि - कै झाँई ।
मारेहु राहु ससिहि कह कोई । उर - महँ परी स्यामता सोई । (३)
कोउ कह जब बिधि रति-मुख कीन्हाँ । सार भाग ससि-कर हरि लीन्हाँ ।
छिद्र सो प्रगट इंदु - उर माहीँ । तेहि मग देखिय नभ - परिछाहीँ । (४)
प्रभु कह, गरल, बंधु ससि - केरा । अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा ।
बिष - संजुत कर - निकर पसारी । जारत बिरहवंत नर - नारी । (५)
१५० दो०—कह हनुमंत, सुनहुं प्रभु , ससि तुम्हार प्रिय[1] दास ।
तव मूरति, बिधु-उर बसति , सोइ स्यामता अभास ।। १२ क ।।

(वह चन्द्रमा दिखाकर) कहने लगे—'देखो, कैसा सिंहके समान निर्भय होकर चन्द्रमा आकाशमें चढ़ चला है ।। ११ ख ।। पूर्वके पर्वतकी गुफामें रहनेवाला, अत्यन्त प्रताप, बल और तेजसे भरा हुआ यह चन्द्रमा-रूपी सिंह अन्धकार-रूपी मतवाले हाथीका मस्तक फाड़कर आकाश-रूपी वनमें निर्भय होकर विचरने लगा है (अँधेरा मिटाकर चन्द्रमा आकाशमें खिल उठा है) । (१) आकाशमें छिटके हुए ये तारे उन मोतियोंके समान लग रहे हैं जिनसे रात्रि-रूपी सुन्दरीने अपना शृङ्गार कर रक्खा है ।' इतनेमें प्रभु (राम) सबसे पूछ बैठे—'भाई ! यह चन्द्रमामें काला-काला क्या दिखाई दे रहा है ?' फिर क्या था ? सब दूरकी कौड़ियाँ खोज लानेमें लग गए (अपनी-अपनी कल्पनाकी उड़ान भरकर बताने लगे) । (२) सुग्रीव बोले—'भगवन् ! (यह कालापन नहीं, यह तो) चन्द्रमापर पड़ी हुई पृथ्वीकी छाया है ।' इतनेमें कोई दूसरा बोल उठा—'राहुने चन्द्रमाको जो दबोच धरा था, उसीकी साँट उसकी छातीपर उभर आई है ।' (३) कोई कहने लगा—'रतिका मुंह सँवारनेके लिये ब्रह्माने जहाँ-जहाँसे चन्द्रमामेंसे सार खोद निकाला था, वहाँ चन्द्रमाके हृदयमें ऐसा आरपार छेद बन गया है कि उसमेंसे उस पारके आकाशकी काली छाया झलकती दिखाई दे रही है ।' (४) यह सब सुनकर प्रभु रामने कहा—'विष भी तो चन्द्रमाका बहुत प्यारा भाई है न ! उसीको उसने बड़े प्रेमसे अपनी गोदमें ले बिठाया है । इसीसे यह चन्द्रमा अपनी विषैली किरणें डाल-डालकर वियोगी नर-नारियोंको दिनरात जलाया करता है ।' (५) यह सुनकर हनुमान्‌ने कहा—'प्रभो ! चन्द्रमा तो आपका बड़ा प्रिय भक्त है । उसके हृदयमें आपकी जो (साँवली) मूर्ति बसी हुई है, यह उसीका साँवलापन तो झलक रहा है' ।। १२ क ।। पवन-पुत्र हनुमानके वचन सुनकर ज्ञानी राम बहुत प्रसन्न होकर हंस दिए

[1] निज ।

१४३-४४ धत्ते धूमं हिमांशुः कथय कथमयं नैव धूमो धरण्याश्छायेयं संगताभूत् ।। —हनुमन्नाटक
१४५ तरुणतमालकोमलमलीमसमेतदयं कलयति चन्द्रमाः किल कलंकमिति ब्रुवते ।
तदनृतमेव निर्दय विधुन्तुददन्तपदव्रणविवरोपदर्शितमिदं हि विभाति नभः । —सुभाषित
१४६-४९ शंके शशांके जगुरंकमेकं पंकं कुरंगप्रतिबिम्बतांगम् ।
धूमं च भूमंडलमुद्धताग्नेर्वियोगजातस्य मम प्रियायाः ।।
१५०-५१ नेदं नभो मंडलमम्बुराशिर्नासौ शशी भावत्कश्च सेवकः ।
एतस्य चान्तःकरणे सुमूर्तिः प्रकाशते सैव च श्यामता ते ।। —हनुमन्नाटक

पवन - तनय-के बचन सुनि , बिहँसे राम सुजान ।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान ।। १२ ख ।।

देखु बिभीषन ! दच्छिन आसा । घन घमंड, दामिनी बिलासा ।
मधुर - मधुर गरजै घन घोरा । होइ बृष्टि जनि[१] उपल कठोरा । (१)
कहत बिभीषन, सुनहु कृपाला । होइ न तड़ित, न बारिद - माला ।
लंका - सिखर - उपर आगारा । तहँ दसकंधर देख अखारा । (२)
छत्र मेघ - डंबर सिर धारी । सोइ जनु जलद-घटा अति कारी ।
मंदोदरी - स्रवन - ताटंका । सोइ प्रभु ! जनु दामिनी दमंका । (३)
बाजहिं ताल - मृदंग अनूपा । सोइ रव मधुर, सुनहु सुरभूपा ।
प्रभु मुसुकान, समुझि अभिमाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना । (४)

दो०—छत्र, मुकुट, ताटंक तब , हते एक ही बान ।
सबके देखत महि परे , मरम न कोऊ[२] जान ।। १३ क ।।
अस कौतुक करि राम-सर , प्रबिसेउ आइ निखंग ।
रावन - सभा ससंक सब , देखि महारस - भंग ।। १३ ख ।।

(कि हनुमान्ने अपने हृदयकी भावना प्रकट कर डाली)। इतनेमें दक्षिणकी ओर जो उनकी दृष्टि घूमी तो कृपानिधान राम कहने लगे—।। १२ ख ।। 'देखो विभीषण ! दक्षिणकी ओर बादल उमड़े आ रहे हैं, बिजली चमक रही है, बादल भी मधुर-मधुर गरजके साथ गड़गड़ा रहे हैं। कहीं तड़-तड़ करके ओले तो नहीं बरसे पड़ रहे हैं।' (१) यह सुनकर विभीषणने कहा—'कृपालु ! न तो यहाँ बिजली है न बादल है। लंकाके शिखरपर रावणका बड़ा सुन्दर (विलास-) भवन बना हुआ है, जिसमें रावण बैठा (नाच-रंगके) अखाड़ेका रस ले रहा है। (२) वह जो मेघके समान काला छत्र अपने ऊपर लगाए हुए है वही काली घटा जान पड़ रही है, मन्दोदरीके कानमें झिलमिलाता हुआ कुण्डल ही बिजली-सा चमकता लग रहा है। (३) (उस अखाड़ेमें) जो तालमें बँधे मृदंग धमक रहे हैं, वही बादलोंकी मधुर गड़गड़ाहट-से सुनाई दे रहे हैं।' प्रभु राम इसे भी रावणके अभिमानका लक्षण समझकर मुसकरा उठे (कि सिरपर शत्रु चढ़ आनेपर भी अभिमानके मारे मुझे तुच्छ समझकर यह रावण नाच-रंगमें डूबा हुआ है) और धनुष लेकर उसपर बाण उठाकर ऐसा (निशाना) साधा (४) कि एक ही बाणसे रामने रावणका छत्र, मुकुट और (मन्दोदरीका) कर्णफूल सब काट गिराए। सबके देखते-देखते वे सब धरतीपर आ गिरे और किसीकी समझमें ही न आया कि यह हो क्या गया ।। १३ क ।। यह सब करके रामका बाण फिर लौटकर उनके तूणीरमें आ पैठा। यह भयंकर रंगमें भंग देखकर रावणकी सभामें बैठे सबके मनमें खलबली

१. जनु=मानो। २. काहू।

१५२-५४ निशम्य वाततातोक्ति जहास रघुनन्दनः। अवाचीं दिशमालोक्य विभीषणमुवाच ह ।।
१५५-५६ किमर्थं मेघमालेयं छत्रच्छायावृतन्नभः। निशम्य रामवचनं विभीषण उवाच तम् ।।नृसिंह पु०
१५७ लंकाया शिखरे रम्ये मल्लस्थानं च राजते। —आनन्दरामायण
१५८-५९ रावणोपरि राजेन्द्र छत्रं यद्रत्नशोभितम्। तदेव दृश्यते मेघघटावत् साम्प्रतं प्रभो ।।
मयात्मजायास्ताटंकं द्योतते दामिनीव तत्। —नृसिंहपुराण
१६० मृदङ्गा धीरमास्वेनुस्तानि मेघरुतानि च। घण्टाः शिशिञ्जिरे दीर्घं जह्लादे पटहैर्भृशम् ।भट्टि०
१६१-६३ रामस्तद्वचनात्तूणमर्धचन्द्रान् शरान्दश। सन्धाय छित्वा छत्रं तत्पातयामास भूतले ।।
निरीक्षमाणा दैतेया मर्मं न वेदिषुस्तदा।
१६४-६५ कृत्वा कुतूहलं बाणः प्रविवेशेषुधिं पुनः। मुकुटे पतिते चित्रः संविग्नः रावणो हृदि ।।नृसिंहपु०

कंप न भूमि, न मरुत बिसेखा। अस्त्र-सस्त्र कछु नयन न देखा।
सोचहिं सब निज हृदय-मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी। (१)
दसमुख देखि, सभा भय पाई। बिहसि बचन कह, जुगुति बनाई।
सिरौ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे[1] कस असगुन ताही। (२)
१७० सयन करहु निज-निज गृह जाई। गवने भवन सकल, सिर नाई।
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब-तें स्रवनपूर महि खसेऊ। (३)
सजल नयन, कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति! बिनती मोरी।
राम-बिरोध, कंत! परिहरहू[2]। जानि मनुज, जनि हठ मन धरहू। (४)
दो०—बिस्व-रूप रघुबंस-मनि, करहु बचन बिस्वास।
लोक कल्पना बेद कर, अंग-अंग प्रति जासु॥ १४॥
पद पाताल, सीस अज-धामा। अपर लोक अँग-अँग बिस्रामा।
भृकुटि-बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर, कच घन-माला। (१)

मच गई॥ १३ ख॥ और सब (बड़े अचंभेमें पड़कर) बैठे अटकल लगाने लगे कि न भूकम्प हुआ, न अंधड़ आया और न कोई अस्त्र-शस्त्र आता दिखाई पड़ा, इसलिये यह (छत्र-मुकुट गिर जाना) बड़ा भयंकर अपशकुन हो गया। (१) दशाननने देखा कि सारी सभा आतंकित हो उठी है. तब वह हँसकर बात बनाकर बोला—'जिसके लिये सिरोंका कट गिरना (सिर काट-काटकर आहुति देना) भी सदा शुभ रहा है उसके लिये यह मुकुटका गिरना कैसे अपशकुन (अशुभ) हो सकता है? जाइए, आप लोग घर जा-जाकर सोइए।' (२) यह सुनकर सब लोग रावणको सिर नवा-नवाकर अपने-अपने घर चल दिए पर जबसे मन्दोदरीका कर्णफूल गिरा तबसे मन्दोदरीका हृदय बड़ा धुकधुक करने लगा था। (३) वह आँखोंमें आँसू भरकर, दोनों हाथ जोड़कर (रावणसे) कहने लगी—'प्राणनाथ! अब भी मेरी प्रार्थना मानकर रामसे विरोध करना छोड़ दीजिए। उन्हें (साधारण) मनुष्य समझकर हठ न पकड़ बैठिए। (४) यह सारा विश्व उन्हीं रघुवंशमणि रामका ही रूप है। मेरी यह बात आप एकदम पक्की समझ लीजिए। उनके लिये वेद कल्पना करते हैं कि उनके एक-एक अंगमें न जाने कितने-कितने लोक भरे पड़े हैं॥ १४॥ वेदोंमें कहा गया है कि पाताल ही उनके चरण हैं, ब्रह्मलोक ही उनका सिर है और अन्य अनेक लोक उनके अंग-अंगमें भरे पड़े हैं। वे जिधर भृकुटी घुमा दें उधर मटियामेट हो चले। सूर्य उनके नेत्र और बादल ही केश हैं, (१) अश्विनीकुमार

१. खसे। २. कंत! राम-बिरोध परिहरहू।

१६५-६७ श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा। चिच्छेद निमिषार्धेन तदद्भुतमिवाभवत्॥
जातोद्वेगानि रक्षांसि शुशुचू रावणं प्रति। —आनन्दरामायण
१६८-६९ सभ्यान्नु सभयान् दृष्ट्वा विहसन् रावणः प्राह।
विद्याधरप्रणयिनीकरपल्लवाग्रैर्लीलाविमुक्तकुसुमप्रकरावकीर्णे।
श्रीचन्द्रचूडचरणे चरणे च कामं छिन्नोऽपि मस्तकगणो मम मंगलाय॥ —प्रसन्नराघव
१७० सान्त्वयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत्तदनन्तरम्। विसर्जयित्वा सचिवान् प्रविवेश स्वमालयम्।वा०
१७१-७२ अञ्जलिं बद्ध्वा स्रस्तताटंका मन्दोदरी प्राणनाथरावणं प्रार्थयते। —हनुमन्नाटक
१७३ रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे। यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम्॥
तरन्ति भक्तिपूतास्ते ह्यतो रामो न मानुषः। —अध्यात्मरामायण
१७४-७५ विशेषस्तस्य देहोयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्। यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्।
१७६-७७ पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णि प्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोथगुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जंघे॥ —भागवत

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।
स्रवन दिसा दस, बेद बखानी। मारुत स्वास, निगम निज बानी। (२)
१८० अधर लोभ, जम दसन कराला। माया हास, बाहु दिगपाला।
आनन अनल, अंबुपति जीहा। उतपति - पालन - प्रलय - समीहा। (३)
रोम - राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल, सरिता नस - जारा।
उदधि उदर, अध - गो जातना। जगमय प्रभु - का बहु कलपना। (४)

दो०—अहंकार सिव, बुद्धि अज, मन ससि, चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, -रूप राम भगवान॥ १५ क॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु - सन बयर बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर - पद, मम अहिवात न जाइ॥ १५ ख॥

उनकी नाक (घ्राणेन्द्रिय) हैं, उनकी पलकोंका गिरना और उठना ही रात और दिन हैं, दशों दिशाएँ उनके कान हैं, वायु उनका श्वास है, वेद ही उनकी अपनी वाणी है, (२) लोभ उनके होठ हैं, यम उनके कराल दाँत हैं, माया उनकी हँसी है, दिक्पाल उनकी भुजाएँ हैं, अग्नि उनका मुख और वरुण उनकी जीभ है, उत्पत्ति, पालन और प्रलय (नाश) उनकी इच्छा है, (३) अठारह प्रकारके धान्य[1] ही उनके रोंगटे हैं, पर्वत ही हड्डियाँ है, नदियाँ ही नसें हैं, समुद्र ही पेट है, नरक ही नीचेकी इन्द्रियाँ (मल-मूत्र-स्थान) हैं, इस प्रकार विश्व-रूपवाले प्रभुकी अनेक कल्पनाएँ की गई हैं। (४) (इतना ही नहीं,) शिव ही अहंकार, ब्रह्मा ही बुद्धि, मन ही चन्द्रमा, महत्त्व ही चित्त है, चर-अचर-रूपी स्वयं भगवान् रामचन्द्र ही मनुष्यके निवास-स्थान हैं॥ १५ क॥ हे प्राणपति! ऐसा विचारकर, वैर छोड़कर प्रभु रामके चरणोंसे प्रीति जा जोड़िए जिससे मेरा सुहाग बना रहे॥ १५ ख॥

१. अठारह प्रकारके धान्योंका समूह:—'यवगोघूमधान्यानि तिला: कंकु कुलत्थका:। माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावा: श्यामसर्षपा:॥ गवेधुकाश्च नीवारा आढक्योऽथ सतीनका:। चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु। [जौ, गेहूँ, धान, तिल, कँगुनी, कुलथी, उड़द, मूँग, मसूर, बाकला, साँवाँ, सरसों, गवेधुका, तिन्नी, ओढक्य, केराव, चना और चीना। ये अठारह प्रकारके धान्य कहे गए हैं।]

द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च।
महीतले तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति॥
उरस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोस्य।
तयोरराटीं विदुरादिपुंस: सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्ण:॥
तद्भ्रूविजृम्भ: परमेष्ठिधिष्ण्यमापोस्य तालू रस एव जिह्वा।
चक्षुरभूत्पतंग ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्॥
१७८-७९ नासत्यदस्रौ परमस्यनासे घ्राणेऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्ध:।
पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च कर्णौ दिश: श्रोत्रममुष्य शब्द:॥
अनन्तवीर्य: श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वय: कर्मगुणप्रवाह:॥
१८०-८१ अधर एव लोभ: दंष्ट्रा यम: हासो जन्मोन्मादकरी च माया। इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्रा:॥
१८२-८३ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र गिरयोस्थिसंघा:। नद्योऽस्य नाड्योथ कुक्षि: समुद्र:॥
इयानसावीश्वरविग्रहस्य य: संनिवेश: कथितो मया ते॥
१८४-८५ अहं शिवो धी: कमलासनश्च मनश्च चन्द्रो मनुजो निवास:। —भागवत
यस्मिन् सर्वमिदं भाति यतश्चैतच्चराचरम्॥ —अध्यात्मरामायण
१८६-८७ अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम्। त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम्॥
अद्यापि न कोपि दोषो रघुप्रभोर्देव देहि वैदेहीम्। —अध्यात्मरामायण
मन्दोदर्या मम मण्डनमखण्डभावं समभ्येतु। —दूतांगद

बिहँसा नारि - बचन सुनि काना। अहो ! मोह - महिमा बलवाना।
नारि - सुभाउ सत्य कबि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं। (१)
१९० साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अबिबेक, असौच, अदाया।
रिपु - कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहिं सुनावा। (२)
सो सब प्रिया ! सहज बस मोरे। समुझि प्रसाद परा अब तोरे।
जानिउँ प्रिया ! तोरि चतुराई। एहि बिधि[२] कहेउ मोरि प्रभुताई। (३)
तव बतकही गूढ़, मृगलोचनि। समुझत सुखद, सुनत भय-सोचनि।
मंदोदरि मन - महँ अस ठयऊ। पियहिं काल-बस मति-भ्रम भयऊ। (४)

दो०—एहि बिधि करत बिनोद बहु , प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक सुलंकपति , सभा गयउ मद - अंध॥ १६ क॥

सो०— फूलइ फरइ न बेत , जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जौं गुरु मिलहिं बिरंचि-सम॥ १६ ख॥

२०० इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत, सब सचिव बोलाई।
कहहु बेगि का करिय उपाई। जामवंत कह, पद सिर नाई। (१)
सुनु सरबज्ञ ! सकल उर - बासी। बुधि - बल - तेज - धरम-गुन - रासी।
मंत्र कहौं, निज मति - अनुसारा। दूत पठाइय बालि - कुमारा। (२)

अपनी पत्नी मन्दोदरीकी ये बातें सुनकर रावण हँसकर कहने लगा—'ओहो ! मोह (अज्ञान) सचमुच बड़ा बलवान् होता है। सब लोग स्त्रीका स्वभाव बताते हुए ठीक ही कहते हैं कि उसके हृदयमें आठ अवगुण सदा बने रहते हैं—(१) साहस, झूठ, चपलता, छल, भय, अविवेक (उचित अनुचितका ज्ञान न होना), अपवित्रता और निर्दयता। तुमने शत्रुका परिचय देकर मुझे यह भी बता दिया कि उससे मुझे कितना बड़ा भय है (वह मुझे कितनी हानि पहुंचानेवाला है)। (२) प्रिये ! यह बात तुम्हारी कृपासे अब मेरी समझमें आ पाई है कि वे सब गुण (जो तुमने रामके बताए हैं) मुझमें स्वभावसे ही विद्यमान हैं। प्रिये ! मैं तुम्हारी चतुराईकी प्रशंसा करता हूँ कि इस प्रकार तुमने मेरी ही प्रभुता बता डाली है। (३) देखो मृगनयनी ! तुम्हारी बातें ऐसी गूढ़ होती हैं कि समझमें आ जाय तो सुख मिलता है पर सुननेमें ऐसा लगता है कि तुम संकट और चिन्ताकी बात कह रही हो।' मन्दोदरीको निश्चय हो गया कि प्रियतम (रावण)-का काल ही आ पहुँचा है इसीलिये इसकी बुद्धि उलटी हो चली है। (४) इस प्रकार बहुत हँसी-विनोद करता हुआ वह स्वभावसे निर्भय और मदान्ध लंकापति रावण पौ फटनेपर तड़के ही सभामें जा धमका॥ १६ क॥ जैसे बादलसे अमृत बरसनेपर भी बेंत नहीं फूलता-फलता, वैसे ही शिव और ब्रह्मा भी गुरु बनकर मूर्खको शिक्षा आ देने लगें तब भी मूर्खके हृदयमें ज्ञान नहीं आ पा सकता॥ १६ ख। इधर प्रातःकाल होते ही राम भी जाग उठे। उन्होंने सब मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे परामर्श किया कि बताओ अब क्या करना ठीक होगा। जामवन्तने उनके चरणोंमें सिर नवाकर कहा (१) 'हे सर्वज्ञ ! सबके हृदयमें निवास करनेवाले ! बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणोंके भांडार राम !

१. समुझि परा प्रसाद अब तोरे। २. मिस।

१८८-९० इत्युक्ते मन्दोदर्या विहसन् प्राह रावणः। अनृतं साहसं मायामूर्खत्वमतिलोलता।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः। —सुभाषित
१९४-९५ रावणोक्ति पर्यालोच्य मन्दोदरी विचारयामास विनाशकाले विपरीतबुद्धिः। —नीति
१९६-९९ न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहः। —सांख्यदर्शन

नीक मंत्र, सबके मन माना। अंगद-सन कह कृपानिधाना।
बालितनय! बुधि-बल-गुन-धामा। लंका जाहु, तात मम कामा। (३)
बहुत बुझाइ तुम्हहिं का कहऊँ। परम चतुर, मैं जानत अहऊँ।
काज हमार, तासु हित होई। रिपु-सन करेहु बतकही सोई। (४)
दो०—प्रभु-अज्ञा धरि सीस, चरन बंदि, अंगद उठेउ।
सोइ गुन-सागर, ईस, राम! कृपा जा-पर करहु॥ १७क॥
२१० स्वयं सिद्ध सब काज, नाथ! मोहिं आदर दयउ।
अस बिचारि जुवराज, तन पुलकित, हरषित भयउ॥ १७ख॥
बंदि चरन, उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहिं सिर नाई।
प्रभु-प्रताप उर, सहज असंका। रन-बाँकुरा बालि-सुत बंका। (१)
पुर पैठत, रावन-कर बेटा। खेलत रहा, सो होइ गइ भेंटा।
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल, पुनि तरुनाई। (२)
तेहि अंगद-कहँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भँवाई।

अपनी बुद्धिके अनुसार तो मैं यही ठीक समझता हूँ कि पहले बालि-कुमार अंगदको अपना दूत बनाकर भेजा जाय।' (२) यह उचित सम्मति सबको बहुत ठीक जँची। तब कृपानिधान रामने अंगदसे कहा—'देखो अंगद! तुममें बुद्धि भी है, बल भी है और गुण भी है। देखो भाई! मेरा यह काम करनेके लिये तुम्हीं लंका चले जाओ। (३) मैं जानता हूँ कि तुम स्वयं बहुत चतुर हो, इसलिये तुम्हें बहुत बताने-समझानेकी आवश्यकता नहीं है। तुम जाकर शत्रुसे इस ढंगसे बातचीत चलाना जिससे मेरा भी कार्य हो जाय और उसका भी भला हो।' (४) प्रभु (राम)-की आज्ञा सिर-माथे चढ़ाकर अङ्गदने झट उठकर प्रभु (राम)-के चरणोंकी वन्दना की और कहा—'स्वामी! जिसपर आप कृपा कर बैठते हैं उसमें तो यों ही सब गुण आ भरते हैं॥ १७ क॥ आपके तो सब कार्य पहलेसे ही पूर्ण हुए धरे हैं। आप तो केवल मेरा आदर बढ़ानेके लिये ही मुझे यह कार्य सौंपे दे रहे हैं।' इस विचार मात्रसे ही युवराज अंगदका शरीर पुलकित और हृदय हर्षित हो उठा॥ १७ ख॥ प्रभु (राम)-के चरणोंकी वन्दना करके और उनकी प्रभुता (शक्ति) हृदयमें समझकर सबको सिर नवाकर अंगद चल दिए। एक तो हृदयमें प्रभु (राम)-का प्रताप भरा ही हुआ था, दूसरे वह स्वभावसे भी बहुत ही निर्भय था। वह बालिका बाँका (वीर) पुत्र अंगद (ऐसा वीर था कि) जो रणमें सामने पड़ जाय उसे तत्काल उठाकर पछाड़ मारे। (१) लंका नगरमें प्रवेश करते ही उसकी पहली मुठभेड़ रावणके बेटेसे ही हो गई जो वहीं खड़ा खेल रहा था। बात-बातमें बात बहु बढ़ गई, क्योंकि दोनों ही बहुत बलवान् भी थे और दोनों-पर जवानी भी चढ़ी हुई थी। (२) उसने अंगदको (मारनेके लिये) लात उठाई ही थी कि अंगदने उसका पैर पकड़कर घुमाकर धरतीपर दे पटका। राक्षसोंने जब समझ लिया कि यह कोई ऐसा-वैसा योद्धा नहीं (भारी योद्धा) है, तो वे सब जान ले-लेकर इधर उधर ऐसे भाग

२००-१ सुवेलशिखरे संस्थो रामो दशरथात्मजः। पप्रच्छ मन्त्रिणो यत्नं तच्छ्रुत्वा प्राह जाम्बवान्॥ वा० रा०
२०२-३ मन्त्रो मे श्रूयतामीश वदामिस्म यथामति। सूचनार्थं रिपोः प्रेष्यो ह्यंगदो दूत उत्तमः॥
२०४-५ अंगदं बालितनयं समाहूयेदमब्रवीत्। गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे॥
२०६-७ शिक्षितस्त्वं स्वयं वीर शिक्षाया किं तवाग्रतः। कार्यं मे तद्धितं येन विधिना स्यात्कुरुष्व तत्॥ अ० रा०
२०८-९ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥ पां० गी०
२१०-१३ इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा। जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट्॥ वा० रा०

निसिचर - निकर देखि भट भारी। जहँ - तहँ चले, न सकहिं पुकारी। (३)
एक - एक - सन मरम न कहहीं। समुझि तासु बध, चुप करि रहहीं।
भयउ कोलाहल नगर - मँझारी। आवा कपि, लंका जेहि जारी। (४)
२२० अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा।
बिनु पूछे मग देहिं देखाई। जेहि बिलोक, सोइ जाइ सुखाई। (५)

दो०—गयउ सभा - दरबार तब , सुमिरि राम - पद - कंज।
सिंह-ठवनि इत-उत चितव , धीर, बीर, बल - पुंज ॥ १८ ॥

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा।
सुनत, बिहँसि बोला दस - सीसा। आनहु बोलि, कहाँ - कर सीसा। (१)
आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपि - कुंजरहिं बोलि लै आए।
अंगद दीख दसानन बैसे[1]। सहित-प्रान कज्जल - गिरि जैसे[1]। (२)
भुजा बिटप, सिर सृङ्ग - समाना। रोमावली, लता जनु नाना।
मुख, नासिका, नयन, अरु काना। गिरि - कंदरा, खोह अनुमाना। (३)

खड़े हुए कि किसीको एक दूसरेको पुकारने-तककी सुध न रही। (३) कोई एक दूसरेको भागनेको भी नहीं कह पा रहा था और सब इस डरसे चुप रह-रह जा रहे थे कि कहीं (जौके साथ घुन भी न पिस जाय), हमें भी यह न मार डाले। नगरमें चारों ओर यह हल्ला मच उठा कि 'जिस बन्दरने लंका जलाई थी वह फिर आ धमका है। (४) हे विधाता! अब यह फिर न जाने क्या कर बीतनेवाला है ?' जिधर देखो उधर सबके मुँहपर हवाइयाँ उड़ रही थीं और सब डरके मारे यही चर्चा किए जा रहे थे। बिना पूछे ही वे सब अंगदको रावणकी सभाका मार्ग बताए डाल रहे थे। जिसकी ओर अंगद घूरकर आँखें तरेर देते थे, उसके तो डरके मारे वहीं प्राण सूख जाते थे। (५) रामके चरण-कमलोंका स्मरण करके अंगद सभाके द्वारपर जा पहुँचा। पहुँचते ही उस धीर, वीर और अत्यन्त बली अंगदने सिंहकी चालसे चलते हुए इधर-उधर दृष्टि डाली (कि कोई संदेश पहुँचानेवाला मिल जाय) ॥ १८ ॥ तुरन्त एक राक्षसके हाथ अंगदने रावणको अपने आनेका समाचार कहला भिजवाया। सुनते ही रावणने हँसकर कहा—'जाओ, जाओ! बुला लाओ। हम भी तो देखें वह कहाँका बन्दर आया हुआ है।' (१) आज्ञा पाते ही बहुतसे दूत दौड़ पड़े और हाथीके समान (झूमते चलनेवाले उस) बन्दर अंगदको भीतर लिवा लेते गए। अंगदने रावणको देखा तो वह ऐसा लगा जैसे कोई जीता-जागता काजलका पहाड़ आया धरा हो। (२) उसकी भुजाएँ मानो (उस पहाड़पर खड़े) पेड़ हों, (दसों) सिर मानो उस पहाड़की चोटियाँ हों, सब रोएँ मानो लता और पेड़ हों तथा मुख, नाक, आँख और कान मानो उस पहाड़की कन्दराएँ हों। अंगद धड़ल्लेसे सभामें जा

१. वैसा; जैसा।

२१९ यो लंकां समददीहत् स च पुनर्ह्येतोधुना वानरः। इत्येवं पुरवासिराक्षसगणाः कोलाहलं चक्रिरे। हनु०
२२० क्रूरकर्मा विधाता तु न जाने किं विधास्यति।
२२१ ततो भयार्ता अमरद्विपस्ते प्रश्नाद्विना तं सुपथं वदन्ति।
२२२-२४ रामप्रभावं संस्मृत्य ह्यंगदो जग्मिवान् सदः। ज्ञापनार्थं दशास्यस्य दूतं प्रायुंक्त सत्वरम्। वा०रा०
२२५-२६ देव रामस्य दूतः शाखामृगो द्वारे स्थितः। रावण आह—प्रवेशय।
अनुशासनमुपलभ्य दूता अंगदमाहूयानीतवन्तः॥ —हनुमन्नाटक
२२७-२९ तं ददर्श बृहत्कायं सास्वञ्जनचयोपमम्। —वाल्मीकीयरामायण

२३० गयउ सभा, मन नेकु न मुरा। बालि - तनय अति बल - बाँकुरा।
उठे सभासद कपि - कहँ देखी। रावन - उर भा क्रोध बिसेखी। (४)
दो०—जथा मत्त-गज-जूथ - महँ, पंचानन चलि जाइ।
राम - प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा, सिर नाइ॥ १९॥
कह दसकंठ, कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर - दूत दसकंधर।
मम जनकहि तोहिं रही मिताई। तव हित - कारन आयउँ भाई। (१)
उत्तम कुल, पुलस्ति - कर नाती। सिव - बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।
बर पाएहु, कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल, सब राजा। (२)
नृप - अभिमान, मोह - बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा।
अब सुभ कहा सुनहु तुम मोरा। सब अपराध छमिहिं प्रभु तोरा। (३)
२४० दसन गहहु तृन, कंठ कुठारी। परिजन - सहित संग निज नारी।
सादर जनक - सुता करि आगे। ऐहि बिधि चलहु, सकल भय त्यागे। (४)

पहुँचा। उसके मनमें तनिक भी धड़क नहीं थी क्योंकि बालीका पुत्र (अंगद) किसीसे कम बलवान् और बाँका तो था नहीं। इस बन्दरको देखते ही सारे सभासद् (आतंक-भरे सम्मानमें हड़बड़ाकर) उठ खड़े हुए। रावणने जब यह देखा (कि ये सब अंगदके सम्मानमें उठ खड़े हुए हैं तो) वह क्रोधसे जल उठा। (४) जैसे मतवाले हाथियोंके झुण्डमें सिंह बेधड़क घुस पहुँचता है, वैसे ही अंगद भी अपने मनमें रामके प्रतापका स्मरण करके सिर नवाकर सभामें जाकर बैठ गया॥ १९॥ पहुँचते ही दस सिरवाला रावण उससे पूछ बैठा—'क्यों रे बन्दर! तू है कौन ?' (अंगदने भी उसी ढंगसे उत्तर दिया) 'अरे दशकंधर! मैं हूँ रामका दूत। मेरे पितासे तुम्हारी बड़ी मित्रता रही है, इसीलिये भाई! मैं तुम्हारी भलाईके लिये, यहाँ चला आया हूँ। (१) तुमने ऋषियोंके कुलमें जन्म लिया है। तुम पुलस्त्य ऋषिके पौत्र (और कैकसीसे विश्रवा ऋषिके पुत्र) हो। तुमने बहुत प्रकारसे शिव और ब्रह्माकी पूजा करके और उनसे वर पाकर जो चाहा कर डाला और सब लोकपालों तथा सब राजाओंको जीत धरा। (२) राजा होनेके अभिमानसे या अज्ञानसे तुम जगत्की माता सीताको वनसे उठा लाए हो। (जो हुआ सो हुआ) अब तुम हमारी एक भली सिखावन मान लो। देखो, प्रभु राम (इतने अच्छे हैं कि यदि तुम उनकी शरणमें चले जाओ तो) तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर देंगे। (३) इसलिये तुम दाँतोंमें तृण दबाकर (गौ बनकर) और कण्ठमें कुठार बाँधकर (कि आप चाहें तो मार डालें) अपने भाई-बन्धु और अपनी पत्नी मन्दोदरीको साथ लेकर आदरके साथ जानकीको आगे करके,

२३०-३१ उत्तस्थुर्वालिपुत्रन्तु वीक्ष्य सभ्यास्तदा हि वै। अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः॥
२३२-३३ गजयूथे यथा याति हरिर्यौवनदर्पितः। दोषाग्निसदृशस्तस्थावंगदः कनकांगदः॥
२३४ कुतस्त्वं हि समायातो वद वृत्तं सुविस्तरात्। दासोहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥
२३५ दृष्ट्वा कीर्तिविनाशनोद्यममहं तातस्य त्वां सन्निधौ।
दातुं ते मतिमागतो विहितवान् यत्कर्म गर्ह्यम्भवान्॥ —समयादर्श
२३६-३७ मूर्ध्नामुद्धृत्य कृत्ता विरलगलगलद्रक्तसंभूतधारा।
धौतेशांघ्रिप्रसादोन्नतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम्॥
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरविशनोत्सर्पिदर्पोद्धराणाम्।
दोष्णां चैषामिदं ते फलमिहि नगरीरक्षणे यत्प्रयासः॥ —हनुमन्नाटक
२३८ वेषं विधाय विजने देवीं वने जानकीं वेगादाहरता त्वयाद्य रचितं वीरव्रतस्योचितम्॥ चम्पूरा०
२३९-४१ तल्लंकेश्वर मुञ्च मानमखिलं श्रुत्वा वधं वालिनः। सीतामर्पय रक्षराक्षस कुलं दासत्वमंगीकुरु॥हनु०

दो०—प्रनतपाल रघुबंस - मनि, त्राहि - त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत[1] प्रभु, अभय करहिंगे[2] तोहि ॥ २० ॥
रे कपि - पोत ! बोलु संभारी। मूढ़ ! न जानेहि मोहिं सुरारी।
कहु निज नाम, जनक - कर, भाई। केहि नाते मानिए मिताई। (१)
अंगद नाम बालि - कर बेटा। ता - सों कबहुँ भई ही[3] भेंटा।
अंगद - बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर, मैं जाना। (२)
अंगद ! तहीं बालि - कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल - घातक।
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम जायहु। निज मुख तापस - दूत कहायहु। (३)
२५० अब कहु कुसल, बालि कहँ अहई। बिहँसि, बचन तब अंगद कहई।
दिन दस गए बालि - पहँ जाई। बूझहु कुसल, सखा उर लाई। (४)
राम - बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहिं सुनाइहि सोई।
सुनु सठ ! भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके। (५)

सब भय छोड़कर चले चलो। (४) (और वहाँ चलकर तुम प्रभुसे जाकर निवेदन करो कि) हे शरणागत-की रक्षा करनेवाले रघुवंश-मणि ! मेरी रक्षा कीजिए ! रक्षा कीजिए ! जहाँ प्रभु रामने तुम्हारी आर्त्त वाणी सुनी कि वे तुम्हें तत्काल निर्भय कर देंगे' ॥ २० ॥ (यह सुनते ही रावणके तन-बदनमें आग लग गई और वह गरजकर बोला—) 'अबे बन्दरके बच्चे ! मुँह सँभालकर बोल। मूर्ख ! क्या तू नहीं जानता कि मैं देवताओंका कट्टर शत्रु हूँ। हाँ, अपना और अपने पिताका नाम तो बता कि तू किस नाते मुझसे मित्रता गाँठे ले रहा है ?' (१) अंगद बोला–'मेरा नाम अंगद है। मैं बालीका बेटा हूँ। उससे एक बार तुम्हारी भेंट हो भी चुकी है।' अंगदकी यह बात सुनते ही रावण पहले तो बहुत झेंपा, फिर बोला—'हाँ हाँ, बाली नामके बन्दरको मैं जानता हूँ। (२) क्यों रे अंगद ! क्या तू उसी बालीका पुत्र है ? अरे मूर्ख ! तू तो बाँसमें (रगड़से उत्पन्न हो उठनेवाली) आगके समान अपने ही कुलका नाशक उत्पन्न हो चला है। तू अपनी माताके गर्भमें ही क्यों नहीं घुट मरा ? तेरा जन्म लेना ही व्यर्थ हो गया कि तू (इतने बलीका पुत्र होकर भी) अपने ही मुँहसे अपनेको तपस्वियोंका दूत बताए डाल रहा है। (३) अच्छा, पहले बालीका कुशल-मंगल सुना। बता, बाली है कहाँ ?' तब अंगदने हँसकर कहा–'दस (बारह) दिन बीतते न बीतते तुम्हीं स्वयं बालीके पास पहुँचकर अपने मित्रको हृदयसे लगाकर स्वयं उनसे कुशल पूछ लेना। (४) रामका विरोध करनेपर जैसी कुशल होती है, वह सब वे ही तुम्हें सुना डालेंगे। अरे शठ ! जिसके हृदयमें राम नहीं बसे रहते, उसीके मनमें ऐसा (ऊँच-नीचका, छोटे-बड़ेका कि मैं तपस्विका दूत हूँ) भेद-भाव उठा करता है। (५) हाँ रावण ! यह तुमने बढ़िया कहा कि हम

१. सुनतहि आरत बचन प्रभु। २. करैगो। ३. होइ।

२४२-४३ त्राहि त्राहि महाबाहो प्रणतानां प्रतिपालक। तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति॥ भाग०
२४४ रे रे शाखामृग त्वं वदसि कथमवाच्यं वेत्सि नो मां विजयिनम्।
२४५-४७ कस्त्वं वन्यपतेः सुतो वनपतिः कः सार्थिकस्त्वेकदा।
जातः सप्तसमुद्रलङ्घनविधावेकोह्निको वेद्मि तम् ॥
२४८-४९ धिग्धिगंगद मानेन येन ते निहतः पिता। निर्लज्जो वीरवृत्तिस्ते तस्य दूतत्वमागतः ॥
२५०-५२ अस्ति स्वस्तिसमन्वितो रघुवरे रुष्टेऽत्र कः स्वस्तिमान्।
को भूयादनरण्यकस्य मरणातीतोर्चिताम्बुप्रदः ॥ —हनुमन्नाटक
२५३ निश्रयं नाधिगच्छन्ति यद्बुद्धिस्थो न केशवः ॥ —अध्यात्मे

दो०—हम कुल-घालक, सत्य तुम , कुल - पालक दससीस ।
अंधौ, बधिर, न अस कहहिं , नयन कान तव बीस ।। २१ ।।

सिव - बिरंचि - सुर - मुनि - समुदाई । चाहत जासु चरन - सेवकाई ।
तासु दूत होइ हम कुल बोरा । अइसिहु मति, उर बिहर न तोरा । (१)
सुनि कठोर बानी कपि - केरी । कहत दसानन नयन तरेरी ।
खल ! तव कठिन वचन सब सहऊँ । नीति - धरम मैं जानत अहऊँ । (२)
२६० कह कपि, धरम - सीलता तोरी । हमहुँ सुनी, कृत पर - त्रिय - चोरी ।
देखी नयन, दूत - रखवारी । बूड़ि न मरहु धरम - व्रत - धारी । (३)
कान - नाक - बिनु भगिनि निहारी । छमा कीन्हि तुम, धरम बिचारी ।
धरम - सीलता तव जग जागी । पावा दरस हमहुँ बड़ - भागी । (४)

दो०—जनि जलपसि जड़ जंतु कपि , सठ ! बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल-बल-बिपुल - ससि , ग्रसन - हेतु सब राहु ।। २२ क ।।

तो कुल-घालक हैं और तुम कुल-पालक हो । (अरे भले आदमी !) ऐसी बात तो अन्धा और बहरा भी नहीं कह सकता, फिर तुम्हें तो भगवान्ने बीस कान और बीस आँखें दे डाली हैं ।। २१ ।। शिव, ब्रह्मा, देवता और मुनि जिनके चरणोंकी सेवाके लिये तरसते रह जाते हैं, उनका दूत होकर मैंने अपना कुल डुबो दिया ? क्यों ? ऐसी (खोटी) वुद्धि लेकर भी तेरी छाती फट नहीं गई ?' (१) अंगदकी ऐसी जली-कटी बातें सुनकर रावण आँखें तरेरकर बोला—'अरे दुष्ट ! मैं तेरी इतनी कड़वी बातें इसीलिये सुने जा रहा हूँ कि मैं (दूतकेप्रति)धर्म-नीतिका व्यवहार करना जानता हूँ ।' (२) (उसकी चुटकी लेते हुए) अंगदने तड़ाकसे उत्तर दिया–('वाह रे धर्मशील !) तुम्हारी धर्मशीलता तो मैं बहुत सुन चुका हूँ कि तुम वनसे पराई स्त्री चुराए लिए चले आए और अपनी आँखके सामने तुमने दूत (हनुमत)-को मार डालने नहीं दिया (दूत वताकर डरके मारे हनुमान्को मार डालनेकी आज्ञा नहीं दी और केवल पूँछमें आग लगा देनेकी व्यवस्था की थी कि कहीं मार डालनेकी आज्ञा दे वैठे तो यह सारी लंकाको मटियामेट न कर डाले । धर्म-नीतिकी आड़ लेकर ज्यों-त्यों अपना जान बचाई थी) । वाह रे धर्मव्रत-धारी ! तुम (चुल्लू-भर पानीमें) डूब नहीं मरे । (३) (इतना ही क्यों ?) अपनी वहन (शूर्पणखा) -को नकटी-बूची देखकर भी तुमने धर्मका ही विचार करके उसके नाक-कान काटनेवाले-को क्षमा कर डाला था ! तुम्हारी धर्मशीलता तो संसार भरमें प्रसिद्ध हो चुकी है । मैं भी अपनेको बड़ा भाग्यवान् समझता हूँ कि ऐसे धर्मशील पुरुषका दर्शन करनेको तो मिला ।' (४) (यह सुनते ही रावण कड़ककर बोला—) 'अरे जड बन्दर ! बहुत-बक-बक न कर । ये देख मेरी भुजाएँ, जो राहु वनकर लोकपालोंके प्रबल बलके चन्द्रमाको ग्रसे बैठी हैं (मैंने अपनी इन्हीं भुजाओं के वलसे लोकपालों-को हरा डाला हे) ।। २२ क ।। इतना ही नहीं !' आकाश-रूपी सरोवरमें मेरी इन भुजाओंके

२५४-५५ सत्योहं कुलनाशको दशमुख त्वं वंशगोप्ता महान् । पश्यन् विंशतिलोचनैरपि भवान्नंधः कथं ज्ञायते।
२५६-५७ यस्यांघ्रिपङ्कजरजः स्नपनम्म हान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोपहन्त्यै ।। —भागवत
२५८-५९ रे रे शाखामृग त्वामहं धर्मशीलतया कटुप्रलापिनमपि न हन्मि ।।
२६०-६१ परदारापहरणे न श्रुता या दशानन । दृष्टा दूतपरित्राणे साध्वी ते धर्मशीलता ।
२६२-६३ रामो नाम स एव येनभ गिनी नासावसा पङ्किलः ।
खड्गस्ते खरदूषणत्रिशिरसां धौतः शिरः शोणितैः ।।
२६४-६५ परिमितमहिमानं क्षुद्रमेनं समुद्रं क्षितिधरघटनाभिः कोयमुत्तीर्य गर्वः ।
अकलितमहिमानः सन्ति दुष्प्रापपारा दशवदनभुजास्ते विंशतिः सिन्धुनाथाः ।। —हनुमन्नाटक

पुनि नभ-सर मम कर-निकर, -कमलन्हि - पर करि वास।
सोभत भयउ मराल इव, संभु - सहित कैलास॥ २२ ख॥
तुम्हरे कटक - माँझ सुनु अंगद। मो-सन भिरिहि कवन जोधा? बद।
तव प्रभु नारि - बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी, मलीना। (१)
२७० तुम - सुग्रीव कूल - द्रुम दोऊ। अनुज हमार, भीरु अति सोऊ।
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा। (२)
सिल्पि - करम जानहिं नल - नीला। है कपि एक महा बल - सीला।
आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा[1]। (३)
सत्य बचन कहु निसिचर - नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुर - दाहा।
रावन - नगर, अलप कपि दहई। सुनि अस वचन, सत्य को कहई। (४)
जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव - केर लघु धावन।
चलै बहुत, सो वीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई। (५)
दो०—सत्य? नगर कपि जारेउ, बिनु - प्रभु - आयसु पाइ।
फिर न गयउ सुग्रीव - पहँ, तेहि भय रहा लुकाइ॥ २३ क॥

कमलोंपर शम्भुके साथ कैलास पर्वत धरा हुआ हंसके समान शोभा दे चुका है (मैं शिवके सहित कैलास पर्वत अपने हाथोंपर उठा चुका हूँ) ॥ २२ ख ॥ देख अंगद! सुन! तुम्हारी सेनामें ऐसा योद्धा है ही कौन जो मुझसे लोहा ले सके? एक है तेरा स्वामी राम, वह तो यों ही अपनी स्त्रीके विरहमें निर्जीव हुआ पड़ा है। दूसरा है उसका छोटा भाई। वह अपने भाईके दुःखमें बहुत दुखी और उदास हुआ पड़ा रहता है। (१) रहे तुम और सुग्रीव! तुम दोनों तो नदीतटके वृक्षके समान हो, (जिन्हें एक लहरेमेंमें उखाड़ फेंक सकता हूँ)। रहा मेरा छोटा भाई (विभीषण), वह तो पहलेसे ही कायर है। तुम्हारा मन्त्री जामवन्त तो यों ही बहुत बूढ़ा हो चला है। युद्ध करना उसके बूतेकी बात कहाँ है? (२) बचे नल और नील, वे राजगीरी (कारीगरी) जानते हैं (लड़ने-भिड़नेसे उन्हें क्या लेना-देना)। हाँ, तुम्हारी सेनामें एक बन्दर अवश्य बहुत वलवान् है, जो पहले आया था और नगर (लंका) जला गया था।' यह सुनते ही अंगद बोल उठा— (३) 'ऐं! क्या सचमुच उस बन्दरने लंका जला डाली? राक्षस-राज रावणका नगर और एक छोटासा बन्दर आकर जला डाले, यह बात सुनकर भला किसे विश्वास हो पावेगा? (४) देखो रावण! जिस बन्दरको तुम बड़ा भारी योद्धा समझे बैठे हो और जिसकी इतनी बड़ाई किए जा रहे हो, वह तो सुग्रीवका छोट-सा हरकारा (दौड़कर चिट्ठी-पत्री पहुँचानेवाला) है। हाँ, वह चलता बहुत वेगसे है, पर योद्धा-वोद्धा नहीं है। हमने तो उसे केवल यहाँका समाचार-भर लेनेको भेजा था। (५) तो क्या सममुच उस बन्दरने विना प्रभुकी आज्ञाके तुम्हारा नगर जला डाला? संभवतः इसी डरसे उसने यहाँसे लौटकर सुग्रीवको मुँह नहीं

१. पुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा।

२६६-६७ हेलोत्क्षिप्तमहीध्रकम्पजनितत्रासांगनालिङ्गनप्राप्तानन्दहरप्रसादमुदितश्चिन्त्यः स मेऽन्यो रिपुः॥
२६८-७३ रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः। सुग्रीवोंगदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः॥
गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपोः कारुण्यरुदैन्यातिथिर्लङ्का तंकविटंक पावकपटुर्वंघ्यो ममैकः कपिः॥
२७४-७५ किं लंकापुरदीपनं स कृतवान् मिथ्यायते भोः कथम्॥
२७६-७७ यो युष्माकमदीदहत्पुरमिदं योऽदीदलत्काननं' योक्षं वीरममीमरद्गिरिदरीर्योऽवीभरद्राक्षसैः॥
सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो वीरेषु संभाव्यते, दूतत्वेन इतस्ततः प्रतिदिनं संप्रेष्यते साम्प्रतम्॥
२७८-७९ बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः। स व्रीडातिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते॥ ह०

२८० सत्य कहहि दसकंठ ! सब , मोहिँ न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमरे कटक अस , तो सन लरत जो सोह ॥ २३ ख ॥
प्रीति-बिरोध समान - सन , करिय, नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेंढुकन्हि , भल कि कहै कोउ ताहि ॥ २३ ग ॥
जद्यपि लघुता राम - कहँ , तोहिँ बधे, बड़ दोष ।
तदपि कठिन, दसकंठ ! सुनु , छत्रि - जाति - कर रोष ॥ २३ घ ॥
वक्र-उक्ति-धनु, बचन-सर , हृदय दहेउ रिपु, कीस ।
प्रति-उत्तर सँड़सिन्ह मनहुँ , काढ़त भट दससीस ॥ २३ ङ ॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब , कपि - कर बड़ गुन एक ।
जो प्रतिपालै, तासु हित , करै उपाय अनेक ॥ २३ च ॥
२९० धन्य कीस, जो निज प्रभु-काजा । जहँ - तहँ नाचै परिहरि लाजा ।
नाचि - कूदि, करि लोग - रिझाई । पति - हित करै धरम - निपुनाई । (१)
अंगद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभु-गुन कस न कहसि ऐहि भाँती ।
मैं गुनगाहक परम सुजाना । तव कटु रटनि करौं नहिं काना । (२)

दिखाया, कहीं जाकर छिप रहा ॥ २३ क ॥ अरे दशकंठ ! यह तुम सत्य कहते हो और मुझे भी यह सुनकर बुरा नहीं लग रहा है कि हमारी सेनामें कोई ऐसा नहीं है जिसे तुम (-जैसे नारी-चोर कायर)-से लड़नेमें यश मिले ॥ २३ ख ॥ नीति भी यही है कि प्रीति या विरोध अपने बराबर-वालेसे ही करना चाहिए । सिंह यदि मेंढकको मार डाले तो उसे कौन बड़ा वीर बतावेगा ? ॥ २३ ग ॥ यद्यपि तुम्हें मार डालनेमें रामकी हेठी ही है और उन्हें बहुत बड़ा दोष भी लगेगा (क्योंकि तुम ब्राह्मण हो) फिर भी दशकंठ ! यह समझ लो कि क्षत्रियोंका क्रोध बड़ा भयंकर होता है (क्षत्रिय जब बिगड़ खड़े होते हैं तो मटियामेट कर डालते हैं)' ॥ २३ घ ॥ इस व्यंग्यके धनुषपर चढ़ाकर चलाए हुए (जले-कटे) वचनोंके अग्निबाण मारकर अंगदने रावणके हृदयमें ऐसे अंगारे धधका जलाए, जिन्हें वीर रावण प्रत्युत्तरकी सँड़सियोंसे ज्यों-त्यों करके निकाले जा रहा था । (चुटकियाँ लेते हुए अंगदने जो तीखी-कड़वी बातें कहकर रावणको बहुत चिढ़ा दिया, उससे वह इतना झेंप गया कि अपनी झेंप मिटानेके लिये वह भी बना-बनाकर वैसे ही उत्तर दिए जा रहा था) ॥२३ङ॥ दस सिरवाले रावणने (अपनी झेंप मिटाते हुए अंगदसे) हँसकर कहा—'सचमुच बन्दरमें एक गुण (अवश्य बहुत बड़ा) होता है कि जो उसे पालता है, उसके लाभके लिये वह बन्दर बहुत नाच-कूद करते रहनेमें नहीं चूकता (रामने तुझे पाल रक्खा है इसलिये तू उनकी-सी कहे चला जा रहा है) । ॥२३च॥ वानर सचमुच बड़े धर्मात्मा होते हैं, जो अपने स्वामीके लिये लाज-हया छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचते फिरते हैं और अपनी नाच-कूदसे लोगोंको रिझाकर अपने स्वामीका पेट पालते चलते हैं । इस प्रकार वे सचमुच अपना धर्म निभाते रहते हैं । (१) देखो अंगद ! जब तुम्हारी जातिकी जाति ही स्वामिभक्त होती है, तब भला तुम अपने प्रभुका गुण इस प्रकार क्यों न बखानोगे ? मैं तो गुणोंका बहुत आदर करता हूँ और बहुत समझदार भी हूँ, इसीलिये तुम्हारी तीखी-कड़वी बातोंका मैंने कोई

२८२-८३ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः । तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ भाग०
अपि जलधरपोतो लेढि किं स्वल्पकुल्यामपि मशककुटुम्बं केसरी किं विनष्टि ॥ हनु०
२८४-८५ न दोषः स्वल्पोपि प्रभवति तवाकृत्यकरणादपि क्रव्यादानां भवति परमं मण्डनमिव ॥
अतः क्रव्यादेश त्वयि न परदारापहारणादनौचित्यं किञ्चित्तदपि विषमाः क्षत्रियरुषः ॥ द्र०
ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्यः आततायी वधार्हणः ॥ —श्रीमद्भागवत
२८८-९३ गुणग्राही परं चाहं वक्रोक्तिं न शृणोमि ते । —आनन्दरामायण

कह कपि, तव गुन-गाहकताई। सत्य, पवनसुत मोहिं सुनाई।
बन बिधंसि, सुत बधि, पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा।(३)
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर! मैं कीन्हि ढिठाई।
देखेउँ आइ, जो कछु कपि भाखा। तुम्हरे लाज, न रोष, न माखा।(४)
जौं असि मति, पितु खाएहु कीसा। कहि अस बचन, हँसा दससीसा।
पितहि खाइ, खातेउँ पुनि तोहीं। अबहीं समुझि परा कछु मोहीं।(५)
३०० बालि-बिमल-जस-भाजन जानी। हतौं न तोहिं, अधम! अभिमानी।
कहु रावन! रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने, सुनु जेते।(६)
बलिहिं जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन, हयसाला।
खेलहिं बालक, मारहिं जाई। दया लागि, बलि दीन्ह छोड़ाई।(७)
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा, जिमि जंतु बिसेखा।
कौतुक लागि भवन लइ आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा।(८)

बुरा नहीं माना।' (२) अंगद बोल उठा—'हाँ हाँ, तुम्हारी सच्ची गुणग्राहकता तो पवन-पुत्र हनुमान् ही मुझे सुना चुके हैं कि जब उन्होंने तुम्हारा अशोक-वन उजाड़ डाला, तुम्हारे पुत्रका वध कर डाला और लंका नगर जला डाला, तब भी तुमने उसे कोई दंड नहीं दिया। (३) देखो रावण! तुम्हारा वही उदार स्वभाव समझकर ही मैंने भी यह सब कहनेकी ढिठाई की है। हनुमान्‌ने जो कुछ कहा था, वह मैंने यहाँ अपनी आँखों आकर देख लिया कि तुममें न लज्जा है, न क्रोध है और न तुम अपने अपमानका ही बुरा मानते हो।' (४) (रावणने ताना मारा—) 'हाँ रे वानर! इसी बुद्धिके कारण ही तो तू अपने पिताको खाए बैठा है।' यह कहकर रावण ठठाकर हँस पड़ा। (अंगद कब चूकनेवाला था। उसने तड़ाकसे उत्तर दिया)—'(क्या बताऊँ?) 'मैं तो पिताको खा जानेके पश्चात् तुम्हें भी डकार जाता पर अभी-अभी मेरी समझमें एक बात कौंध आई है (जिससे मैं तुझे छोड़े दे रहा हूँ)। (५) अरे अधम अभिमानी! मैं इसलिये तुझे नहीं मारे डाल रहा हूँ कि मैं तुझे वालीके निर्मल यशका पात्र समझता हूँ (कि सब लोग यह देखते रहें कि यही वह रावण है जिसे वाली अपनी काँखमें दबाए घूमता फिरा)। अच्छा रावण! यह तो बता दे कि इस संसारमें अभी-तक कितने रावण हो चुके हैं? मैंने अपने कानोंसे जितने रावणोंकी कथा सुन रक्खी है पहले उन्हें मैं गिनाए देता हूँ। (६) एक (रावण) तो वह था जो बलिको जीतने जब पाताल पहुँचा तो वहाँके छोटे-छोटे लड़कोंने पकड़कर उसे घुड़सालमें ले जा बाँधा जहाँ वे उससे खेलते भी चलते थे और उसे चपतियाते भी चलते थे। यह देखकर राजा बलिको बड़ी दया आई और उन्होंने कहकर उसे छुड़वा दिया। (७) दूसरा (रावण) वह था जिसे देखकर सहस्रबाहुने समझा कि यह (दस सिरवाला और बीस भुजाओंवाला) कोई विशेष जन्तु है। उसने उसे झट दौड़कर जा पकड़ा और उसका खेल देखनेके लिये उसे घर उठा ले जा रक्खा। वहाँ उसे पुलस्त्य मुनिने जाकर छुड़ाया (कि यह हमारा

२९४ श्रुतं ग्राहकत्वं गुणानां दशास्य श्रुतं वायुजात्तावकं राक्षसेश। —आनन्दरामायण
२९५ यो लंकां समदीदहत्तव सुतं रक्षांसि चापीपिषत्। यः कौशल्यमवीवचज्जनकजामब्धिं तथाऽतीतरत्।
यश्चाराममभूमुटत्तदपि ते नाकारि तद् विप्रियम्। —हनुमन्नाटक
२९६-९७ त्वदीयां प्रकृतिं त्वां वै विविच्य दशकन्धर। लक्षितस्त्वं मयागत्य निर्मानो ह्यथ निस्त्रपः।
२९८-३०० मम जनकदोर्दण्डविजयस्फुरत्कीर्त्तिस्तम्भोऽस्तस्त्वां नावधिषम्।
३०१-७ रे रे रावण रावणाः कतिबहूने तान् वयं शुश्रुमः प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम्।
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीगणैरन्यं वक्तुमपि त्रपामह इति त्वं तेषु कान्योऽथवा॥—हनु.ना.

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि - की काँख।
इन्ह-महँ रावन! तैं कवन, सत्य वदहि, तजि माँख॥ २४॥
सुनु सठ! सोइ रावन बल - सीला। हर-गिरि जान जासु भुज - लीला।
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर - सुमन चढ़ाई। (१)
३१० सिर - सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी।
भुज - विक्रम जानहिं दिगपाला। सठ! अजहूँ जिन्हके उर साला। (२)
जानहिं दिग्गज उर - कठिनाई। जब - जब भिरेउँ जाइ बरियाई।
जिन्हके दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक - इव टूटे। (३)
जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढ़त मत्त गज, जिमि लघु तरनी।
सोइ रावन जग - बिदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक - प्रलापी। (४)
दो०—तेहि रावन-कहँ लघु कहसि, नर - कर करसि बखान।
रे कपि! बर्बर! खर्ब! खल, अब जाना तव ज्ञान॥ २५॥
सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि, अधम! अभिमानी।
सहसबाहु - भुज गहन अपारा। दहन अनल - सम जासु कुठारा। (१)

नाती है)। (८) एक तीसरे रावणका परिचय देते हुए मुझे बड़ा संकोच हुआ जा रहा है जो बालीकी काँखमें (महीनों) दबा पड़ा रहा। अब तू बिना क्रोध किए सच-सच बता दे कि इनमेंसे तू कौन-सा रावण है'॥ २४॥ (रावण तपाकसे बोल उठा—)'अरे शठ! सुन। (मैं बताता हूँ कि मैं कौन-सा रावण हूँ।) मैं वही बली रावण हूँ जिसकी भुजाओंके बलका प्रभाव कैलास पर्वत जानता है और जिसकी शूरता उसके पति महादेव जानते हैं जिनपर मैंने अपने शिरोंके पुष्प चढ़ाकर उनकी पूजा की है। (१) मैंने अपने हाथोंसे अपने सिर-रूपी कमल उतार-उतारकर (काट-काटकर) न जाने कितनी बार त्रिपुरारि (शंकर)-पर चढ़ा-चढ़ाकर उनकी पूजा की है। अरे मूर्ख! मेरी भुजाओंका पराक्रम सारे दिक्पाल[1] जानते हैं, जिनके हृदयोंमें मेरा पराक्रम अभीतक (काँटेके समान) कसके जा रहा है। (२) मेरी छाती कितनी कठोर है यह दिग्गज जानते हैं, जिनसे जब-जब मैं जाकर हठ करके भिड़ा तब-तब उनके वे भयातक दाँत मेरी छातीसे लगते ही मूलीके समान तड़ाकसे टूट गिरे जिन्होंने कभी टूटनेका नाम-तक न लिया था। (३) मैं वह संसारमें प्रसिद्ध रावण हूँ जिसके चलने मात्रसे ही पृथ्वी इस प्रकार दहल उठती है, जैसे मतवाले हाथीके चढ़नेसे छोटी नाव डगमगा उठती है। अरे बेसिर-पैरकी बकवाद करनेवाले! क्या तूने अपने कानोंसे यह सब नहीं सुना? (४) अरे असभ्य, दुष्ट और छली बन्दर! ऐसे (प्रतापी) रावणको तू ओछा बताए डाल रहा है और उसके आगे मनुष्य (राम)-की बड़ाई किए जा रहा है। तुझे (मेरे विषयमें) कितना ज्ञान है यह मैं तेरी बातोंसे ही समझ गया'॥ २५॥ यह सुनते ही अङ्गद बिगड़ उठा और बोला—'अरे नीच अभिमानी! तनिक मुँह सँभालकर बोल! जिनका कुठार सहस्रबाहुकी भुजाओंके अपार वनको भस्म करनेवाली अग्निके समान दाहक बना हुआ था (जिसने अपने

१. दिक्पाल : इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, सोम, वायु, वरुण, ईशान, ब्रह्मा, शेष।

३०८-१० वीरोसौ किमु वर्ण्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं यः पूजार्थसमुत्सुको घटयितुं देवस्य खट्वांगिनः॥
३११-१३ सर्वैर्यस्य समं समेत्य कठिनां वक्षःस्थलीं संयुगे निर्भग्नं मुखमेव दन्तमुसलैरैरावतस्योन्नतैः॥
३१४-१७ यद्द्रुम्नाः किलबालतालतरवो रामेण सार्द्रत्वचश्छिन्नं यच्च पुरातनं शिवधनुस्तद्वीर्यमुद्दिश्यते।
नासीदेतदनागतं श्रुतिपथं स्वर्लोकधूमध्वजः पौलस्त्यः करकन्दुकीकृतहरक्रीडाचलो रावणः। ह०

३२० जासु परसु - सागर - खर - धारा । बूड़े नृप अगनित बहु बारा ।
तासु गर्ब जेहि देखत भागा । सो नर क्यों ? दससीस अभागा । (२)
रामु मनुज कस ? रे सठ ! बंगा । धन्वी कामु ? नदी पुनि गंगा ।
पसु सुरधेनु ? कलपतरु रूखा । अन्न दान ? अरु रस पीयूषा । (३)
बैनतेय खग ? अहि सहसानन । चिंतामनि पुनि उपल दसानन ।
सुनु मतिमंद ! लोक बैकुंठा । लाभ कि रघुपति-भगति अकुंठा । (४)
दो०—सेन-सहित तव मान मथि , बन उजारि, पुर जारि ।
कस रे सठ ! हनुमान कपि ? गयउ जो तव सुत मारि ।। २६ ।।
सुनु रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपासिंधु रघुराई ।
जौं खल भएसि राम - कर द्रोही । ब्रह्म - रुद्र सक राखि न तोही । (१)
३३० मूढ़ ! बृथा जनि मारसि गाला । राम - बयर अस होइहि हाला ।
तव सिर - निकर कपिन - के आगे । परिहइँ धरनि राम - सर लागे । (२)
ते तव सिर कंदुक - सम नाना । खेलिहइँ भालु-कीस चौगाना ।

कुठारसे सहस्रबाहुकी भुजाएँ काट गिराईं), (१) जिनके कुठारके समुद्रकी प्रचंड लहरोंमें न जाने कितने राजा अनेक बार डूब मरे (जिन्होंने अपने कुठारसे अनेक बार राजाओंका नाश कर डाला था), उन परशुरामका सारा गर्व जिन्हें देखते ही चूर-चूर हो मिटा, अरे अभागे रावण ! भला बता कि वह सामान्य मनुष्य कैसे हो सकता है ? (२) अरे मूर्ख उजड्ड ! क्या राम भी मनुष्य हैं ? कामदेव भी धनुर्धारी हैं ? गंगा भी नदी है ? कामधेनु भी पशु है ? कल्पवृक्ष भी (साधारण) वृक्ष है ? अन्न-दान भी (साधारण) दान है ? अमृत भी क्या केवल रस है ? (३) गरुड भी क्या सामान्य पक्षी है ? क्या सहस्र फणोंवाले शेष भी कोरे सर्प हैं ? क्या चिन्तामणि भी (साधारण) पत्थर है ? वैकुण्ठ भी क्या (अन्य लोकोंकी भाँति) ऐसा-वैसा लोक है ? और रामकी अखण्ड भक्ति भी (अन्य लाभोंके समान साधारण) लाभ है ? (४) अरे शठ ! जो हनुमान् यहाँ आकर तुम्हारी सेनाका और तुम्हारा अभिमान चूर-चूर करके, अशोक-वन उजाड़कर, नगर जलाकर और तुम्हारे पुत्रको मारकर चला गया, उसे भी क्या (सामान्य) बन्दर समझे बैठा है ? ।। २६ ।। अरे रावण ! तू अपनी सारी चतुराई (धूर्तता) छोड़कर कृपाके भाण्डार रामको अब भी क्यों नहीं जा भजता ? अरे दुष्ट ! यदि तूने रामसे वैर ठाना, तो (यह समझ रख कि) ब्रह्मा और रुद्र भी तेरी रक्षा नहीं कर पा सकेंगे । (१) अरे मूढ ! तू व्यर्थकी डींग न हाँक । रामसे वैर करनेपर तेरी वह-वह (बुरी) दशा होगी कि रामके बाण लगते ही तेरे सिर वानरोंके आगे धरतीपर आ लोटते दिखाई देंगे (२) और वे वानर-भालू तेरे उन सिरोंको गेंद बनाकर उनसे चौगान खेलते फिरेंगे । जब राम

३१८-१९ रावणस्य वचश्चेत्थं श्रुत्वा प्राहांगदश्च तम् । जानाम्यहं पौरुषं ते वलिपाशं विचूर्णितम् ।अानं०
३२०-२१ त्वद्दोर्दंडप्रचण्डप्रतिहननविधिप्रौढबाह्वोः सहस्रच्छेदक्रीडाप्रवीणस्थिरपरशुमहागर्वनिर्वापकस्य ।
मानुपत्वं कथं तस्य जडबुद्धे विचार्यताम् ।
३२२-२७ रे रे रावण हीनदीनकुमते रामोपि किं मानुषः ,
किं गंगापि नदी गजः सुरगजोप्युच्चैःश्रवाः किं हयः ।
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं कामोपि धन्वी न किं ,
त्रैलोक्य प्रकटप्रतापविभवः किं रे हनूमान् कपिः ।। —हनुमन्नाटक
३२८-२९ त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुपविग्रहम् ।। —अध्यात्मरामायण
जीवस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं गुप्तः सवित्राप्यथ वा मरुद्भिः ।
न वासवस्यांकगतो न मृत्योर्नभो न पातालमनुप्रविष्टः ।। —वाल्मीकीयरामायण

जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक। छुटिहइँ अति कराल बहु सायक। (३)
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा।
सुनत बचन, रावन परजरा। जरत महानल, जनु घृत परा। (४)
दो०—कुंभकरन - अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि, जितेउँ चराचर - झारि॥ २७॥
सठ! साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई।
नाँघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते, सुनु, सब, कीसा। (१)
३४० मम भुज - सागर बल - जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर - नर सूरा।
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा। (२)
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप - सुजस खल! मोहिं सुनावा।
जौं पै समर - सुभट तव नाथा। पुनि -पुनि कहसि जासु गुन-गाथा। (३)
तब बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु-सन प्रीति करत नहिं लाजा।

युद्ध-भूमिमें क्रोध कर उठेंगे और अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगेंगे (३) तब भी क्या तू ऐसी ही डींग हाँक पावेगा? यह समझकर जाकर उदार रामकी शरणमें पहुँच जा। अंगदके यह वचन सुनकर रावण ऐसे जल उठा मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्निमें घी पड़ गया हो (४) (रावण बमक उठा—) 'देख! कुंभकर्ण-जैसा (प्रचण्ड) तो मेरा भाई है और मेघनाद-जैसा (पराक्रमी) मेरा पुत्र है। मेरा पराक्रम तू नहीं जानता कि संसारमें जितने भी चर और अचर हैं उन सबको मैं जीते बैठा हूँ॥ २७॥ अरे शठ! वानरोंकी सहायता लेकर समुद्र बाँध लेने-भरसे ही क्या उनकी (रामकी) प्रभुता बढ़ गई। न जाने कितने पक्षी दिन-रात समुद्र पार जाते-आते रहते हैं, पर उनमेंसे कोई भी इसके कारण शूर नहीं बन जाता। (१) अरे मूर्ख बन्दर! मेरी एक-एक भुजाके समुद्रमें बलका इतना जल भरा पड़ा है जिसमें न जाने कितने देवता, मनुष्य और शूर डूब मरे हैं। कौन ऐसा शूर है जो मेरी इन बीसों भुजाओंके अथाह और अपार समुद्रको लाँघ पा सके? (२) अरे दुष्ट! (तू नहीं जानता कि) मैं वह हूँ जिसने दिक्पालोंसे पानी ला भरवाया है, फिर तू एक राजा रामका सुयश मुझे क्या सुनाए डाल रहा है। अपने जिस स्वामीके गुणोंकी तू बार-बार दुहाई दिए जा रहा है वह यदि संग्राममें लड़नेवाला योद्धा है तो (३) वह दूत क्यों भेजे जा रहा है। शत्रुकी इस प्रकार लल्लो-चप्पो करते उसे लज्जा नहीं आती। अरे मूर्ख बन्दर! पहले तू कैलास पर्वतको झकझोर

३३०-३४ रे रे राक्षस वंशघात समरे नाराचचक्राहतं रामोत्तुंगपतंगचापयुगलं तेजोभिराडम्बरे।
मन्ये शीर्षमिदं त्वदीयमखिलं भूमण्डले पातितं गृद्धैरालुठितं शिवाकवलितं काकैः क्षतं यास्यति॥हनु०
एवं विविच्य रामस्य भजस्व पादपंकजम्। —आनन्दरामायण
३३५ उवाच क्रोधसंयुक्तो वानरं स दशाननः। जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत्॥आ०रा०
३३६-३७ भ्राता मे कुम्भकर्णः सकलरिपुकुलव्रातसंहारमूर्त्तिः,
पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदनो येन बद्धो मरुत्वान्।
खड्गो मे चन्द्रहासो रणमुखचपलो राक्षसा मे सहायाः
सोहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी रावणो नाम राजा॥ —हनुमन्नाटक
३३८ बद्धः सेतुर्यदि जलनिधौ वानरैस्तावता किं, नो वल्मीकाः क्षितिधरनिभाः किं क्रियन्ते पिपीलैः॥
३३९-४१ पारावतैः किमयमम्बुनिधिर्न तीर्णः कान्ताः कथं न कपिभिः क्व च नाम शैलाः।
तद्बाहुदोर्बलमसौ यदि शौर्यरेखामाविष्करोति करवालकषोपलेद्य॥ —दूतांगद
३४२ इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारप्रतीहारकं चन्द्रं छत्रधरं समीर-वरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान्।
पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे रक्षोभक्ष्यमनुष्यमात्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम्॥
३४३ रामश्चेद्रिपुहा प्रियापहरणे संधिं विधत्ते कथम्। —दूतांगद

हर - गिरि - मथन निरखु मम बाहू । पुनि सठ कपि ! निज प्रभुहिं सराहू । (४)
दो०—सूर कवन रावन - सरिस , स्वकर काटि जेहिं सीस ।
हुने अनल अति हरष बहु , -बार, साखि गौरीस ॥ २८ ॥
जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । बिधि-के लिखे अंक निज भाला ।
नर - के कर आपन बध बाँची । हँसेउँ जानि बिधि-गिरा असाँची । (१)
३५० सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे । लिखा बिरंचि जरठ-मति - भोरे ।
आन बीर - बल सठ ! मम आगे । पुनि-पुनि कहसि लाज - पति त्यागे । (२)
कह अंगद ! सलज्ज जग - माहीं । रावन ! तोहिं समान कोउ नाहीं ।
लाजवंत तव सहज सुभाऊ । निज मुख,निज गुन,कहसि न काऊ । (३)
सिर अरु सैल - कथा चित रही । तातें बार बीस तैं कही ।
सो भुज - बल राखहु उर घाली । जीतेहु सहसबाहु, बलि, बाली । (४)
सुनु मतिमंद ! देहि अब पूरा । काटे सीस कि होइय सूरा ।

डालनेवाली मेरी ये भुजाएँ देख, तब कहीं अपने स्वामीकी सराहनाके लिये मुँह खोलना । (४) बता, रावणके समान दूसरा कौन शूर होगा जिसने अपने हाथों अनेक बार अपने सिर काट-काटकर प्रसन्नता-पूर्वक अग्निमें हवन कर डाले हों । शंकरसे जाकर पूछो, वे मेरी शक्तिका प्रभाव बतावेंगे ॥ २८ ॥ अग्निमें जलते हुए अपने ललाटोंपर लिखे हुए विधाताके अक्षर मैंने जब बाँचे, तब मुझे यह बाँचकर विधाताके लेखपर बड़ी हँसी आई कि मनुष्यके हाथसे मेरी मृत्यु होगी । (१) पर उसे स्मरण करके भी मुझे डर नहीं लगता (क्योंकि मैं समझता हूँ कि) बूढ़े ब्रह्माने बुद्धि उलट जानेके कारण ही ऐसा लिख मारा होगा । अरे मूर्ख ! तू लज्जा और (दूतकी) मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार क्या दूसरे वीर (राम)-का बल बखाने चला जा रहा है ।' (२) यह सुनकर अंगद बोला—'वाह रे रावण ! तेरे समान लज्जावाला व्यक्ति तो संसारमें कोई ढूँढे न मिल पावेगा । तू बेचारा तो स्वभावसे ही लज्जावान् है क्योंकि अपने मुँहसे कोई अपनी बड़ाई नहीं किया करता (पर तुझे देखता हूँ कि बार-बार अपनी बड़ाईके पुल बाँधे चला जा रहा है, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बना जा रहा है) । (३) तेरे मनमें कैलास पर्वत उठाने और सिर काटकर हवन करनेकी बात इतनी जमी बैठी है कि तू बीसों बार उन्हीं बातोंको बार-बार दुहराता चला जा रहा है । तू (कितना लज्जाशील है कि) अपना वह भुजबल तो हृदयमें ही छिपाए बैठा हुआ है (बता नहीं रहा है) जिस बलसे तूने सहस्रबाहु, बलि और बाली-तकको जीत धरा था । (४) अच्छा मतिमन्द ! अब यह सब बहुत सुन लिया । बता, क्या सिर काट-काटकर चढ़ानेसे कोई शूर हो जाता है ?

३४५-४७आस्कन्धादपि कण्ठकाण्डविपिने द्राक् चन्द्रहासासिना छेत्तुं प्रक्रमिते मयैव झटिति त्रुट्याच्छिरः संततौ।
अस्मेरं गलिताश्रुगद्गदवचो भग्नभ्रु वायद्यमूद्र क्रेप्वेवमपि स्वयं स भगवाँस्तन्मे प्रमाणं शिवः॥
३४८-५० स्वैपूत्कृत्य हुतेषु मूर्धसु जवादग्नेः स्फुटित्वा वह्निर्व्याकीर्णेष्वलिकेषु दैवलिखितं दृष्ट्वापि रामार्पणम् ।
चित्तेनास्खलितेन यस्तदधिकं गौरीशमप्रीणयत् तस्मै कः प्रथमाय मानिषु महावीराय वैरायते ॥
३५१ येन सर्वे जिता देवा कैलासाः कम्पिता मया । तस्य मेऽग्रे मर्कट त्वं कत्थसे किं मुधाद्य हि॥अ.रा.
३५२-५३ निजगुणगरिमासुखाकरः स्यात्स्वयमनुवर्णयतां सतां न तावत् ।
निजकरकमलेन कामिनीनां कुचकलशाकलेनन को विनोदः ॥ —सुभाषित
३५४-५५आस्तां मस्तकहोमविक्रमकथा पौलस्त्य विस्तारिणी देहं किं न निपातयन्ति दहने वैधव्यभीताः स्त्रियः।
कैलासोद्धरणेन भारवहनप्रौढिस्त्वयाविष्कृता । तूर्णं वर्णय किं च किंचिदपरं यत्पौरुषस्यास्पदम् ॥—सुभा०

इंद्रजालि - कहँ कहिय न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा। (५)

दो०— जरहिं पतंग मोह[1] - बस, भार बहहिं खर-बृन्द।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमन्द ॥ २९ ॥

३६० अब जनि बत-बढ़ाव खल ! करही। सुनु मम बचन, मान परिहरही।
दसमुख ! मैं न बसीठी आएउँ। अस बिचारि रघुबीर पठाएउँ। (१)
बार - बार अस[2] कहइ कृपाला। नहिं गजारि - जस, बधे सृगाला।
मन - महँ समुझि बचन प्रभु - केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ ! तेरे। (२)
नाहिं त, करि मुख - भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहिं बरजोरा।
जानेउ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि पर - नारी। (३)
तैं निसिचर - पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति - सेवक - कर दूता।
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहिं देखत अस कौतुक करऊँ। (४)

दो०—तोहिं पटकि महि, सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
तव जुवतीन्ह - समेत सठ, जनक - सुतहिं लै जाउँ ॥ ३० ॥

३७० जौं अस करौं न तदपि बड़ाई[3]। मुएहि बधे नहिं कछु मनुसाई।

इन्द्रजाल (जादूका खेल) दिखानेवालोंको आजतक किसीने शूर नहीं कहा, यद्यपि वे अपने ही हाथों अपना सारा शरीर बोटी-बोटी कर डालते हैं। (५) अरे मतिमंद ! तू अपने सिर काटकर अग्निमें झोंकनेकी और कैलास उठानेकी तो बार-बार दुहाई दिए जा रहा है पर कभी यह भी विचारा कि जो लाखों फतिंगे अज्ञानके कारण नित्य (आगमें) जल-जलकर मरते रहते हैं, गदहे न जाने कितने बोझा ढोते फिरते हैं उन्हें कोई शूर बताता है ? ॥ २९ ॥ अच्छा दुष्ट ! बात बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं है। अब भी तू मेरी बात मान जा और अपने मनसे अभिमान निकाल फेंक। देख रावण ! मैं तेरे पास केवल दूत होकर ही नहीं आया हूँ। मुझे रामने कुछ सोच-समझकर तेरे पास भेजा है। (१) कृपालु राम बार-बार यही कहते हैं कि सियारको मार डालनेसे सिंहको कोई यश नहीं मिलता। अरे मूर्ख ! प्रभुके ये वचन स्मरण करके ही, मैं तेरे इतने कठोर वचन सहता चला जा रहा हूँ (२) नहीं तो अभी तेरे दसों मुंह तोड़कर तेरे हाथसे बलपूर्वक सीता छीन ले जाता। अरे अधम ! देवताओंके शत्रु ! तेरा बल तो मैने इसी एक बातसे भाँप लिया है कि तू सूनेमें पराई स्त्री हरे लिए चला आया। (३) देख ! तू तो निशाचरोंका स्वामी और बड़ा अभिमानी है और मैं रामके सेवक (सुग्रीव)-का दूत होकर आया हूँ। यदि मुझे रामके अपमानका डर न होता तो मैं तेरे देखते-देखते ऐसा खेल यहाँ तुझे कर दिखाता कि (४) मूर्ख ! तुझे धरतीपर पटककर, तेरी सारी सेना पछाड़कर, तेरा नगर चौपट करके, तेरी युवती स्त्रियोंके साथ-साथ जानकीको यहाँसे लिवा ले जाता ॥ ३० ॥ यदि मैं इतना सब कर भी डालूं तब भी इसमें मेरी कोई वीरता नहीं है, क्योंकि मरे हुएको मारनेमें कौन बड़ी वीरता है।

१. विमोह। २. इमि। ३. जो अस करौं न तदपि बड़ाई।

३५६-५७ हुतेषूत्तमांगेषु शौर्यं न भाति वचस्त्वं निशामय मदीयं दशास्य।
समग्रेषु गात्रेषु भिन्नेषु वीरो निजेनापि हस्तेन वै इन्द्रजाली ॥ —दूतांगदनाटक

३५८-५९ अज्ञानभूताः शलभा दहन्ति वहन्ति भारं सुतरां च गर्दभाः।
ते सन्ति शूरा न च दुर्मते वै न भारवाही भवतीति शूरः ॥

३६०-६९ एकोहं वालिपुत्रो दशमुख त्वं वै चापि कोटश्वरस्त्वां,
जित्वा युद्धे प्रभोः प्रणयिनीं सीतां च नेतुं क्षमः।
किं तूत्थाय भुजं पुरा भगवता रामेण सुग्रीवतो हत्वा दक्षिणपाणिना वसुमतीं त्वां हन्तुमुक्तं वचः ॥ हनुम०

कौल, कामबस, कृपिन, बिमूढ़ा। अति दरिद्र, अजसी अति बूढ़ा। (१)
सदा रोग-बस, संतत क्रोधी। बिष्नु-बिमुख, स्रुति-संत-बिरोधी।
तनु-पोषक, निंदक, अघ-खानी। जीवत सव-सम चौदह प्रानी। (२)
अस बिचारि, खल ! बधउँ न तोहीं। अब जनि रिस उपजावसि मोहीं।
सुनि, सकोप कह निसिचर-नाथा। अधर दसन दसि, मींजत हाथा। (३)
रे कपि ! अधम, मरन अब चहसी। छोटे बदन, बात बड़ि कहसी।
कटु जल्पसि जड़ कपि ! बल जाके। बल-प्रताप- बुधि-तेज न ताके। (४)

दो०—अगुन, अमान, जानि तेहि, दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख, अरु जुवती-बिरह, पुनि, निसिदिन मम त्रास ॥ ३१ क ॥
३८० जिन्हके बल-कर गर्ब तोहिं, अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस-निसि, मूढ़ ! समुझि तजि टेक ॥ ३१ख ॥

जब तेहिं कीन्ह राम-कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा।
हरि-हर-निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गो-घात-समाना। (१)
कटकटान कपि-कुंजर भारी। दुहुँ भुजदंड तमकि महि मारी।

वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ, अति दरिद्र, अपयशी (बदनाम), अति वृद्ध, सदाका रोगी, सदा क्रोध करनेवाला, भगवान्‌से वैर करनेवाला, वेद और संतोंका विरोधी, केवल अपने ही अपने शरीरका पोषण करनेवाला, दूसरोंकी निन्दा करनेवाला और महान् पापी—ये चौदह प्राणी तो जीते जी मरे हुएके समान हैं। (२) अरे दुष्ट ! यही विचारकर मैं तुझे छोड़े दे रहा हूँ। अब तू मेरा क्रोध और न भड़का।' यह सुनकर राक्षसोंका राजा रावण दाँतोंसे होठ चबाता और हाथ मलता हुआ बोला—(३) 'अरे अधम बन्दर ! जान पड़ता है तेरी मृत्यु आ पहुँची है इसीलिये तू छोटे मुँह बड़ी बातें बकता चला जा रहा है। अरे मूर्ख बन्दर ! जिस (राम)-के बलपर तू इतना बहके जा रहा है (इतनी तीखी-कड़वी बातें बकता जा रहा है), उसमें न बल है, न प्रताप है, न बुद्धि है, न तेज है। (४) उसके पिताने जब देखा कि उसमें न कोई गुण है, न कहीं उसका मान (आदर) है तभी तो पिताने उसे वनमें निकाल भेजा। उसे एक तो इस (वनवास)-का ही बड़ा भारी दुःख है, दूसरे स्त्रीके वियोगका भी उसे कम दुःख नहीं है, और तीसरे, मेरा डर तो दिनरात उसके मनमें बना ही रहता है ॥ ३१ क ॥ अरे मूर्ख ! हठ छोड़कर (यह बात) तू समझ रख कि जिन (तपस्वियों) के बलपर तू नाचता फिर रहा है (अभिमान कर रहा है) ऐसे-ऐसे न जाने कितने मनुष्योंको हमारे राक्षस दिन-रात बैठे-बैठे खाते-चबाते रहते हैं' ॥ ३१ ख ॥ जब वह रामकी निन्दा करनेपर उतर आया, तब तो अंगदकी आँखें लाल हो उठीं, क्योंकि (शास्त्रोंमें बताया गया है कि)—जो अपने कानोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी निन्दा सुनता है, उसे गोवधके समान पाप लगता है। (१) (यह समझकर) हाथीके समान विशाल शरीरवाले अंगदने बहुत दाँत कट-कटाकर और तमककर अपने दोनों भुजदण्ड धरतीपर दे मारे। फिर क्या था ! धरती दहल उठी,

३७०-७३ शूराणां मृतमारणे नहि वरो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः।
३७४ एवं विविच्य रे दुष्ट न हन्मि त्वां च पापकृत्। नोत्पादयस्व मे क्रोधं साम्प्रतं राक्षसेश्वर ॥ आ०
३७५-७६ मानवं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम्। समर्थं मन्यसे केन हीनं पित्रा मुनिप्रियम् ॥ अध्या०
३८०-८१ यदीयबलमालम्ब्य दृप्यते वानर त्वया। अद्यन्ते तादृशा मर्त्या असुरैश्चानिशं खलु ॥ आ०रा०
३८२ यदा विनिन्दतो रामस्तदा चुक्रोध चांगदः ॥
३८३ निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा। ततो नापैति यः सोपि यात्यधः सुकृतात्च्युतः ॥ भागवत

डोलत धरनि, सभासद खसे। चले भाजि भय-मारुत-ग्रसे। (२)
गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर[1]।
कछु तेहि लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद, प्रभु-पास पँवारे। (३)
आवत मुकुट दीख, कपि भागे। दिन ही लूक परन बिधि! लागे।
की रावन, करि कोप चलाए। कुलिस चारि, आवत अति धाए। (४)
३९० कह प्रभु हँसि, जनि हृदय डेराहू। लूक, न असनि, केतु नहिं राहू।
ए किरीट दसकंधर-केरे। आवत बालितनय-के प्रेरे। (५)

दो०—तरकि पवन-सुत कर गहेउ[2], आनि धरेउ प्रभु-पास।
कौतुक देखहिं भालु-कपि, दिनकर-सरिस प्रकास ॥ ३२ क ॥
उहाँ सकोप दसानन, सब-सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहिं, धरि मारहु, सुनि अंगद मुसुकाइ ॥ ३२ ख ॥

एहि बधि, बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु-कपि जहँ-तहँ पावहु।
मर्कट-हीन करहु महि जाई। जियत धरहु तापस दोउ भाई। (१)

वहाँ बैठे हुए सभी सभासद् औंधे मुँह जा पड़े और और भयके अंधड़से घबराकर सब भाग चले। (२) रावण भी गिरते-गिरते बच सँभलकर उठा तो सही पर उसके सुन्दर-सुन्दर मुकुट सब धरतीपर आ बिखरे। उनमेंसे कुछ (छह) तो रावणने उठाकर अपने सिरपर सँभाल लगाए और (चार) अंगदने झपटकर रामके पास उठा फेंके। (३) उधर वानरोंने मुकुट आते देखे तो वे सब डरके मारे यह सोचकर भाग चले कि—'हे विधाता! यह क्या दिनमें ही तारे टूट-टूटकर गिरे पड़ रहे हैं या रावणने ही क्रोधमें आकर चार वज्र चला फेंके हैं जो इतने वेगसे बढ़े चले आ रहे हैं।' (४) रामने तत्काल हँसकर कहा—'तुम लोग डरो मत। ये न उल्का है, न वज्र हैं, न केतु है, न राहु है। ये तो रावणके मुकुट हैं, जो अंगदने वहाँसे उठा फेंके हैं।' (५) पवनपुत्र हनुमान्ने उन्हें लपककर दोनों हाथोंमें लोक (गुच) लिया और प्रभुके पास उन्हें ले जा धरा। अब तो सब भालू-बन्दर झुक-झुककर (उन मुकुटों)-की बनावट देखने आ जुटे जो सूर्यके समान चमाचम चमचमा रहे थे ॥ ३२ क ॥ वहाँ क्रोधमें भरा हुआ रावण सबपर बिगड़ता हुआ चिल्ला उठा—'अरे! (देखते क्या हो?) पकड़ लो इस बन्दरको और मार डालो जानसे।' अंगद यह सब सुने जा रहे थे और मुसकराए जा रहे थे ॥ ३२ ख ॥ (रावण फिर बमकने लगा—) 'इसे यहीं ढेर करके सब योद्धा चारों ओर दौड़ जाओ और जहाँ कहीं वानर-भालू दिखाई पड़ें उन्हें पकड़ खाओ! जाओ, जाकर ऐसा कर दो कि धरतीसे सब वानरोंका नाम मिट जाय और उन दोनों तपस्वी भाइयोंको भी जीते ही

१. गिरत दसानन उठेउ सँभारी। भूतल परे मुकुट षटचारी।
२. कूदि गहे कर पवनसुत; कूदि पवनसुत कर गहे।

३८४-८५ तत्क्षणाविष्कृतक्रोधस्य चांगदस्य पाणितलेन भूतले ताडयित्वा दोःस्तम्भास्फालनात् वसुधा चचाल भयसमीरग्रस्ताः सभ्याः सस्रंसिरे ॥ —हनुमन्नाटक
३८६-८७ किरीटाः पततस्तस्य राक्षसेन्द्रस्य चापतन्। केचिद्धारितास्तेन जिघोरे कपिनापरे ॥ —वाल्मी०
३८८-८९ आयातो मुकुटान्वीक्ष्य प्लायिता वानराश्च ते। उल्कापातो भवत्यन्हि क्वचित् वज्राश्च चित्रिताः ॥ दशास्यप्रेषिताः कच्चिद्धावन्ति पवयो ह्यमी ॥
३९०-९१ मा भैष्ट वानरास्सर्वे नोल्केति प्राह राघवः। वालिजप्रहिताश्चामी किरीटा रावणस्य वै ॥
३९२-९३ वायुपुत्रः समुत्प्लुत्य गृहीत्वा मुकुटानि वै। रामोपकण्ठं सानन्दः समानिन्ये पराक्रमी ॥
३९६ अनन्तरमरुंतुदा भाषणरोषणेन गृह्यतां गृह्यतामयं खाद्यतां खाद्यतामिति सरवमादिष्टम् ॥

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा।
मरु गर काटि, निलज ! कुल - घाती। बल बिलोकि, बिहरति नहिं छाती। (२)
४०० रे त्रिय - चोर ! कुमारग - गामी। खल ! मल-रासि ! मंदमति ! कामी।
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि काल-बस खल ! मनुजादा। (३)
या - को फल पावहि - गो आगे। बानर - भालु चपेटन्हि लागे।
राम मनुज, बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी। (४)
गिरिहइँ रसना संसय नाहीं। सिरन्हि-समेत समर - महि-माहीं। (४।।)

सो०—सो नर क्यों दसकंध, बालि बध्यो जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अंध, धिग तव जन्म कुजाति ! जड़।। ३३ क ।।
तव सोनित - की प्यास, तृषित राम - सायक - निकर।
तजौं तोहि तेहि त्रास, कटु-जल्पक निसिचर अधम।। ३३ ख ।।

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहिं न दीन्ह रघुनायक।
४१० असि रिस होति दसौ मुख तोरौं। लंका गहि, समुद्र - महँ बोरौं। (१)
गूलरि - फल - समान तव लंका। बसहु मध्य तुम जंतु असंका।
मैं बानर, फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा। (२)

मेरे पास पकड़ लाओ।' (१) यह सुनकर युवराज अंगद तमककर बोला—'इस प्रकार डींग मारते तुझे लज्जा नहीं आती। अरे निर्लज्ज ! कुलघाती ! (तनिक भी लज्जा बची हो तो) जा अपना गला काटकर मर जा। मेरा बल देखकर भी तेरी छाती फट नहीं पड़ी रही है ? (२) अरे स्त्रीके चोर ! दुष्कर्मी, दुष्ट, पापी, मन्द-बुद्धि, कामी ! तू सन्निपातमें क्या दुर्वचन बके चला जा रहा है ? अरे दुष्ट राक्षस ! नर-भक्षी ! जान पड़ता है अब तेरा काल ही आ गया है। (३) इसका फल तो तुझे आगे तब मिलेगा जब तेरे सिरपर वानरों और भालुओंके चपेटे बरसने लगेंगे। अरे अभिमानी ! रामको मनुष्य बताते हुए तेरी जीभ गलकर गिर नहीं पड़ रही है। (४) (अभी न सही पर) इसमें संदेह नहीं कि समर-भूमिमें सिरके साथ-साथ तेरी जीभ भी धरतीपर गिरती दिखाई देगी ही। (४।।) अरे दशकंध ! यह तो बता कि जिस (राम)-ने एक ही बाणसे बालिको ढेर कर डाला, वह मनुष्य कैसे हो सकता है ? बीस-बीस आँखें हुए होते भी तू अन्धा ही रह गया। अरे मूर्ख ! कुजाति ! तेरे जन्मको धिक्कार है ।। ३३ क ।। तू भली-भाँति समझ ले कि रामके बाण तेरे लहूके प्यासे बैठे हैं, अत: कड़वी बातें बकनेवाले अधम राक्षस ! मैं इसी डरसे (कि कहीं रामके बाण प्यासे न रह जायँ) तुझे छोड़े दे रहा हूँ ।। ३३ ख ।। मैं तो यहीं तेरे सब दाँत झाड़ डालता, पर रामने मुझे आज्ञा ही नहीं दी है। मुझे क्रोध तो ऐसा आ रहा है कि अभी तेरे दसों मुँह तोड़ गिराऊँ और सारी लंका उठाकर समुद्रमें पटक डुबोऊँ। (१) तेरी लंका तो गूलरके फलके समान है जिसमें तेरे जैसे न जाने कितने निर्भय भुनगे भरे पड़े हैं। यह जानते हो कि मैं तो बन्दर हूँ। मुझे फल गपकते देर क्या लगती है। परन्तु (दु:ख यही है कि) उदार हृदयवाले रामने मुझे इसके लिये आज्ञा ही नहीं दी।' (२)

३९७ निष्कीशां धरणीं कृत्वा जीवन्तौ तापसौ च तौ। गृह्णन्तु राक्षसा: सर्वे शीघ्रं वै शासनान्मम ।।
४०२ नो चेद्वानरवाहिनीपतिमहाचञ्चच्चपेटोत्तरैस्तत्तन्मुष्टिभिरंगसंगरगतस्तत्तत्फलं लप्स्यसे ।।हनुमन्ना०
४०३-४ अवाच्यं वदतो जिह्वा कथं न पतिता तव। समेता शिरसा युद्ध रसज्ञा वै पतिष्यति ।।वाल्मी०रा०
४०५-६ एकेन बाली निहत: शरेण सुहृत्तमस्ते रचितश्च राजा।
यदैव सुग्रीवकपि: परेण तदैव कार्यं भवतो विनष्टम् ।। —भट्टिकाव्य
४०७-८ बाणा यदीया खरदूषणाणां भुक्त्वा तृषार्त्ता इव शोणिताम्भ:। पास्यन्ति ते कण्ठघटै: सुरन्ध्रै:।।—हनु०

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ ! सिखिहि कहँ बहुत झुठाई।
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह, तैं भएसि लबारा। (३)
साँचेहु मैं लबार भुज-बीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा।
समुझि प्रताप-राम[1], कपि कोपा। सभा-माँझ पन करि, पद रोपा। (४)
जौं मम चरन सकसि सठ ! टारी। फिरहिं राम, सीता मैं हारी।
सुनहु सुभट सब, कह दससीसा। पद गहि, धरनि पछारहु कीसा। (५)
इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ-तहँ भट नाना।
४२० झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरै, बैठहिं सिर नाई। (६)
पुनि उठि झपटहिं सुर-आराती। टरै न कीस-चरन ऐहि भाँती।
पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी। मोह-बिटप नहिं सकहिं उपारी। (७)

दो०—कोटिन मेघनाद-सम, सुभट उठे हरपाइ।
झपटहिं, टरै न कपि-चरन, पुनि बैठहिं सिर नाइ ॥ ३४ क ॥
भूमि न छाँड़त कपि-चरन, देखत रिपु-मद भाग।
कोटि बिघ्न-तें संत-कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥ ३४ ख ॥

कपि-बल देखि, सकल हिय हारे। उठा आपु, कपि-के परचारे।

अंगदकी ये बातें सुनकर रावण मुसकराकर बोला—'अरे मूर्ख ! यह तो बता कि इतना झूठ बोलना तूने सीख कहाँसे लिया ? बाली तो कभी ऐसी बेसिर-पैरकी नहीं हाँकता था। जान पड़ता है उन तपस्वियोंके साथ पड़कर ही तू इतना लबार (गप्पी, बकवादी) हो चला है।' (३) (अङ्गदने कहा—) 'अरे बीस भुजावाले रावण ! मुझे तू सचमुच लबार समझना यदि मैं तेरी दसों जीभें खींच न निकालूँ।' रामका प्रताप स्मरण करके अङ्गद बिगड़ खड़ा हुआ और उसने रावणकी भरी सभामें प्रण करके अपना पैर जमा दिया (४) और कहा—'अरे शठ ! ले, यदि तू आकर मेरा यह पैर यहाँसे हटा दे तो राम लौट जायँगे और मैं सीताको हार जाऊँगा।' यह सुनते ही रावणने अपने सब वीरोंको (ललकार) कहा—('देखते क्या हो ?) 'बढ़ो। इस बन्दरका पैर पकड़कर इसे धरतीपर धर पछाड़ो।' (५) फिर क्या था ? मेघनाद आदि बड़े-बड़े बलवान् तथा इधर-उधर बैठे हुए और भी अनेक वीर हर्षित हो-होकर उठ खड़े हुए। बहुत उपाय कर-करके और बड़ा बल लगाकर वे झपटते तो थे पर अंगदका पैर था कि टससे मस नहीं हो पा रहा था। हार झख मारकर वे सब (लाजसे) सिर झुकाए अपनी-अपनी ठौरपर जा बैठते थे। (६) (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देवताओंके शत्रु (राक्षस) बार-बार उठ-उठकर झपटते तो थे, पर सर्पोंके शत्रु गरुड ! अंगदका पैर उनसे वैसे ही नहीं उठ पा रहा था जैसे विषयी पुरुष कभी मोह (अनुरक्ति, ममता) का वृक्ष नहीं उखाड़ पा सकता।' (७) मेघनादके समान करोड़ों (अनेक) वीर योद्धा हर्षित हो-होकर उठे और झपटे, पर अंगदका चरण टसकनेका नाम नहीं ले पा रहा था। शत्रु (रावण)-का सारा मद (घमंड) वैसे ही चूर-चूर हो गया, जैसे करोड़ों बाधाएँ पड़नेपर भी संतोंका मन नीतिके मार्गसे विचलित नहीं होता ॥ ३४ ख ॥ अङ्गदका बल देखकर सभी राक्षस हार बैठे (सबका साहस टूट गया)। जब अङ्गदने फिर ललकारा तो रावण स्वयं उठ खड़ा हुआ। ज्यों ही वह अंगदका चरण पकड़ने चला

१. राम-प्रताप।

४२३-२६ निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा, न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ भर्तृहरिशतक

गहत चरन, कह बालि-कुमारा । मम पद गहे न तोर उबारा । (१)
गहसि न राम-चरन, सठ ! जाई । सुनत फिरा, मन अति सकुचाई ।
४३० भयउ तेज-हत, श्री सब गई । मध्य दिवस जिमि ससि सोहई । (२)
सिंघासन बैठेउ सिर नाई । मानहुँ संपति सकल गँवाई ।
जगदातमा प्रानपति रामा । तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा । (३)
उमा ! राम - की भृकुटि - बिलासा । होइ बिस्व, पुनि पावइ नासा ।
तृन - तें कुलिस, कुलिस तृन करई । तासु दूत-पन, कहु, किमि टरई । (४)
पुनि कपि कही नीति, बिधि नाना । मान न, ताहि काल नियराना ।
रिपु - मद - मथि प्रभु - सुजस सुनायो । यह कहि चल्यौ, बालि-नृप-जायो । (५)
हतौं न खेत खेलाइ - खेलाई । तोहिं, अबहि का करौं बड़ाई ।
प्रथमहिं तासु तनय, कपि मारा । सो सुनि रावन भयउ दुखारा । (६)
जातुधान अंगद - पन देखी । भय-व्याकुल सब भए बिसेखी । (६।।)
४४० दो०—रिपु-बल धरखि, हरखि कपि, बालि - तनय बल-पुंज ।
पुलक सरीर, नयन - जल, गहे राम - पद - कंज ।। ३५ क ।।

त्यों ही अंगदने (पैर हटाकर) कहा—'मेरा चरण पकड़नेसे तेरा कल्याण नहीं हो सकता (१) अरे शठ ! यदि चरण ही पकड़ना है तो जाकर रामके चरण क्यों नहीं पकड़ता ?' यह सुनते ही रावण (-पर घड़ों पानी पड़ गया) लज्जित हो गया । उस समय उसकी सारी कान्ति धुँधली पड़ गई । वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे दोपहरमें चन्द्रमा (फीका) दिखाई देता है । (२) वह (लाजसे) सिर झुकाए अपने सिंहासनपर ऐसे जा बैठा मानो अपनी सारी सम्पदा गँवाए चला आ रहा हो । राम तो जगत्के आत्मा और सबके प्राणोंके स्वामी है, उनसे बैर ठानकर कोई चैनसे कैसे बैठा रह सकता है ? (३) (महादेव कहते हैं—) हे उमा ! जिन रामके भौंह चलाने-भरसे न जाने कितने संसार बनते-बिगड़ते रहते हैं, जो तिनकेको वज्र और वज्रको तिनका बना डाल सकता है उसके दूतका प्रण क्या किसीके टाले टल सकता है ? (४) अङ्गदने (रावणको) बहुत नीतिकी बातें समझाईं, किन्तु एक भी उसके गले न उतरकर दी, क्योंकि उसका तो काल निकट आ गया था । शत्रुका मद चूर करके अङ्गदने उसे प्रभु रामका बहुत सुयश कह सुनाया और अन्तमें बालीका पुत्र अङ्गद यह कहता हुआ चल दिया—(५) 'बच्चू ! तुझे भी रणभूमिमें खेला-खेलाकर न मारा (तो अङ्गद नाम नहीं) । अभी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनकर तेरे आगे मैं अपनी क्या बड़ाई करूँ ?' जब रावणसे यह बताया गया कि सभामें प्रवेश करनेसे पहले ही तेरे पुत्रको अङ्गदने मार डाला तो वह बड़ा दुखी हुआ । (६) अङ्गदका प्रण देखकर तो डरके मारे सब राक्षसोंके प्राण सूख चले । (६।।) शत्रुके बलका मर्दन करके परम बलवान् बालिके पुत्र अङ्गदने जिस समय हर्ष-पूर्वक रामके चरण-कमल आ पकड़े उस समय उसका शरीर पुलकित हुआ जा रहा था और नेत्रोंमें आँसू छलके पड़ रहे

४३१-३४ उन्मीलयन्सृजत्येतन्नेत्रे रामं जगत्त्रयम् । उपसंह्रियते सर्वं तेन चक्षुर्निर्मीलनात् ।।
४३५ एवं नानाविधैः वाक्यैरंगदेनापि बोधितः । सोऽथ नीत्युत्तराण्यस्य नाशृणोद्वानरस्य च ।।आनन्दरा०
४३६ इति लंकाभटमुत्कटवाक्यैरधिक्षिप्य लंकामातंकयन्नंगदो निष्क्रातः ।। —हनुमन्नाटक
४३७-३६ तत्कर्म वालिपुत्रस्य दृष्ट्वा विश्वं विसिस्मिरे । संत्रेसुः राक्षसाः सर्वेः मेनिरे राघवं भृशम् ।।आन.रा.
४४०-४१ व्यथयन्राक्षसान् सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् । स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ।।—वाल्मी०

साँझ जानि दसकंधर[1], भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरी रावनहिं[2], बहुरि कहा समुझाइ ॥ ३५ ख ॥

कंत ! समुझि मन, तजहु कुमति ही। सोह न समर तुम्हहिं रघुपति ही।
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाँघेउ असि मनुसाई। (१)
पिय ! तुम ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत-केर यह[3] कामा।
कौतुक सिंधु नाँघि, तव लंका। आयउ कपि-केहरी असंका। (२)
रखवारे हति, बिपिन उजारा। देखत तोहिं अच्छ तेहि मारा।
जारि सकल पुर, कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल-गर्व तुम्हारा। (३)
४५० अब पति! मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु।
पति ! रघुपतिहिं नृपति जनि[4] मानहु। अग-जग-नाथ, अतुल-बल जानहु। (४)
बान - प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा।
जनक - सभा अगनित भूपाला। रहे तुम्हौ, बल बिपुल[5] बिसाला। (५)
भंजि धनुष जानकी बियाही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।

थे ॥ ३५ क ॥ इधर सायंकाल होनेपर रावण बहुत मुँह लटकाए हुए (उदास होकर) अपने भवन लौट गया। वहाँ मन्दोदरीने रावणको फिर समझाकर कहा—॥ ३५ ख ॥ स्वामी ! सब आगा-पीछा सोचकर आप अपनी यह कुबुद्धि दूर कर डालिए। रामके साथ युद्ध करना आपको शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाईने जो एक छोटी-सी लकीर खींच दी थी वह तक आपसे नहीं लाँघी जा सकी, इसीसे समझ लीजिए कि आपमें कितना पुरुषार्थ है। (१) प्रियतम ! जिनके दूतमें इतना पराक्रम है उसे क्या आप कभी संग्राममें जीत पा सकेंगे ? वानरोंमें सिंहके समान वह वानर (हनुमान्) जिस समय खेल-खेलमें समुद्र लाँघकर निर्भय होकर आपकी लंकामें घुसा चला आया; (२) आकर रखवालोंको मारकर अशोक वन उजाड़ गया, आपके देखते-देखते अक्षकुमारको पछाड़ गया और पूरा नगर जलाकर भस्म कर गया, उस समय आपके बलका यह गर्व कहाँ चला गया था ? देखिए स्वामी ! अब व्यर्थ डींग मारनेसे आपके कुछ हाथ न लगेगा। कुछ मेरी भी तो बात कभी सुन लिया कीजिए। देखिए स्वामी ! आप रामको कोरा राजा ही मत समझ बैठिएगा। वे तो चराचरके स्वामी और अतुलनीय बलवान् हैं। (४) रामके बाणका प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था पर आपने उसकी भी बात न सुनकर दी। राजा जनककी सभामें जो अगणित राजा पहुँचे हुए थे, उनमें विशाल और अतुलनीय बलवाने आप भी तो थे न ! (५) वहाँ जब रामने धनुष तोड़कर जानकीको व्याह लिया था उस समय आप उन्हें संग्राममें क्यों नहीं जीत आए थे। इन्द्रका पुत्र जयन्त भी उनका बल कुछ-कुछ जानता है। रामने उसे पकड़कर केवल उसकी एक आँख ही फोड़कर उसे

१. साँझ जानि दसमौलि तब। २. निसाचरहि। ३. अस। ४. मति। ५. अतुल।

४४२ ४३ उवाच नाथ मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु। शक्यो न राघवो जेतुं त्वया चान्यैः कदाचनः ॥अध्या०
४४४-४५ अज्ञानं त्यज वै कान्त शात्रवं शोभते न ते॥अ.॥रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा रेखाकृतोऽलङ्घितः॥हनु.
४४६-४६ एकः सुग्रीवभृत्यः कपिरखिलवनं पत्तनं चापि दग्ध्वा,
यातस्तूष्णीं तदानीं दशमुख भवतः किं कृतं वीरवर्गैः।
प्राप्तोऽसौ पत्तनान्तं सकलकपिबलैर्वाधिमुल्लङ्घ्य योद्धुं त्वं सीतां मुञ्च मुञ्चेत्यनिशमकथयत्प्रेयसीरावणस्य॥हु०
४५०-५१ अविज्ञाय नृपं रामं जगन्नाथं महौजसम्। पतेऽवेहि त्यज त्वं वै विद्वेषं राघवं खलु ॥
४५२ प्रभावं मार्गणस्याथ मारीचोऽवेद्यथाविधि। तदीयं कथनं दुष्ट त्वया नांगीकृतं प्रियम् ॥
४५३-५४ मैथिलीयसभाजेतुं ह्यासन्भूपा भवानपि। धनुर्विमर्दने काले जितो युद्धे कुतो न सः ॥आनन्दरा०

सुरपति - सुत जानै बल थोरा । राखा जियत, आँखि गहि फोरा । (६)
सूपनखा - कै गति तुम देखी । तदपि हृदय नहिं लाज बिसेखी । (६।।)
दो०—बधि बिराध - खर - दूपनहिं , लीला हत्यौ कबंध ।
बालि एक सर मारेउ , तेहि जानहु दसकंध ।। ३६ ।।
जेहि जल - नाथ बँधायउ हेला । उतरे प्रभु दल - सहित सुबेला ।
४६० कारुनीक दिनकर - कुल - केतू । दूत पठायउ तव हित - हेतू । (१)
सभा - माँझ जेहि तव बल मथा । करि - बरूथ - महँ मृगपति जथा ।
अंगद - हनुमत अनुचर जाके । रन - बाँकुरे बीर अति बाँके । (२)
तेहि - कहँ पिय ! पुनि - पुनि नर कहहू । मुधा मान - ममता - मद बहहू ।
अहह कंत ! कृत राम - बिरोधा । काल - बिबस - मन उपज न बोधा । (३)
काल, दंड गहि काहु न मारा । हरै धरम - बल - बुद्धि - बिचारा ।
निकट काल जेहि आवत साँई । तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाँई । (४)
दो०—दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर , अजहुँ पूर पिय देहु ।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि , नाथ बिमल जस लेहु ।। ३७ ।।

जीता छोड़ दिया । (६) शूर्पणखाकी दशा तो आप अपनी आँखों देख चुके हैं, फिर भी आपको कोई बहुत लाज न आ पाई । (६।।) देखो दशकंध ! जिन्होंने विराध, खर और दूषणको मारकर खेल-खेलमें ही कबंधको ढेर कर डाला और बालिको एक ही बाणसे सुरधाम पहुँचा भेजा उनका महत्त्व आपको उन्हीं सब घटनाओंसे समझ लेना चाहिए ।। ३६ ।। जिसने खेल-खेलमें ही समुद्र बाँध डाला, जो प्रभु (राम) अपनी सेनाके साथ (समुद्र पार करके) सुवेल पर्वतपर आ उतरे हैं उन्हीं करुणाकर और सूर्यकुलकी पताका रामने आपकी भलाईके लिये ही जो दूत भेजा था (१) उसी दूतने भरी सभामें आपका सारा बल ऐसे मथ डाला जैसे हाथियोंके समूहको सिंह मथ डालता है । अंगद और हनुमान्-जैसे रणमें बाँको और अत्यन्त वीर जिनके सेवक हों (२) उन्हें प्रियतम ! आप बार-बार मनुष्य क्या कहे जा रहे हैं । आप व्यर्थ ही मान (झूठी शान), (राज्यकी) ममता और मद (घमंड)-का बोझ ढोए चले जा रहे हैं । हाय प्रियतम ! मैं कहाँतक आपको समझाऊँ ! आप रामसे विरोध ठान बैठे हैं और काल आ जानेके कारण अब भी आपकी समझमें नहीं आ रहा है । (३) काल कभी किसीको डंडा लेकर नहीं मारता चलता, वह तो जब सिरपर आ चढ़ता है तब उसके धर्म, बल, बुद्धि और विचार सब हर लेता है । देखिए स्वामी ! जिसका काल आ जाता है, उसकी बुद्धि आपकी बुद्धिके समान उलटी चलने लगती है । (४) देखिए प्रियतम ! आपके देखते-देखते आपके दो पुत्र मार डाले गए और आपका नगर जला दिया गया (अब और क्या विनाश देखना चाहते हैं) । अब भी तो कहना मान जाइए और कृपालु रामका

४५५ किञ्चिद् बलं च वेत्तीति जयन्तो मघवात्मजः प्राणदण्डं न वै दत्त्वा नेत्रमेकञ्च काणितम् ।।
४५६ घ्राणं दर्पमिव स्वसुर्विलुठितं व्रीडायते नो कथं ।। —हनुमन्नाटक
४५७-५८ चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्द्धानो रणे हताः ।।उ.रा.चरित
४५९ रामः सुवेलाद्रितटेऽवतीर्णः समुद्रमुल्लंघ्यनिकीर्णसैन्यः ।
कृपामुपेत्यारिकुलस्य दूतं सुरेन्द्रनप्तारमथादिदेश ।।
४६० दूतः प्रेषितस्तेन हितार्थं ते दयालुना ।। —हनुमन्नाटक
४६१-६२एकश्चांगद ऊर्ध्वटक् समवलस्तातस्य यो वालिनः प्राकाराग्रमिवारुरुक्षुरघुना चास्तेप्यवज्ञाय नः।।सम०
४६३-६४ सुनीतिं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन । न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ।। वाल्मी०
४६५-६६ न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् । कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम् ।। —सुभाषित
४६७-६८ द्वौ सुतौ निहतौ वीरौ पत्तनं भस्मसात्कृतम् । अद्यापीषद् विचार्याथ रामांघ्रिः सेव्यतां पते ।।वाल्मी०

नारि - बचन सुनि बिसिख - समाना। सभा गयउ उठि, होत बिहाना।
४७० बैठ जाइ सिंहासन फूली। अति अभिमान, त्रास सब भूली। (१)
इहाँ राम अंगदहिं बोलावा। आइ चरन - पंकज सिर नावा।
अति आदर समीप बैठारी। बोले बिहँसि कृपाल खरारी। (२)
बालि - तनय ! कौतुक अति मोहीं। तात ! सत्य कहु, पूछउँ तोहीं।
रावन जातुधान - कुल - टीका। भुज-बल अतुल जासु जग लीका। (३)
तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात ! कवनी बिधि पाए।
सुनु सर्बज्ञ ! प्रनत - सुखकारी। मुकुट न होहिं, भूप-गुन चारी। (४)
साम - दाम अरु दंड - बिभेदा। नृप - उर बसहिं नाथ कहि बेदा।
नीति - धरम - के चरन सुहाए। अस जिय जानि, नाथ-पहँ आए। (५)

दो०—धरम-हीन, प्रभु - पद - बिमुख , काल-बिबस दस - सीस।
४८० तेहि परिहरि, गुन आए , सुनहु कोसलाधीस ॥ ३८ क ॥
परम चतुरता स्रवन सुनि , बिहँसे राम उदार।
समाचार पुनि सब कहे , गढ़ - के, बालिकुमार ॥ ३८ ख ॥

भजन करके निर्मल यश प्राप्त कर लीजिए ॥ ३७ ॥ अपनी पत्नीके ऐसे बाणके समान गँसीले (चुभते) वचन सुनकर भी सवेरा होते ही रावण अपनी सभामें जा पहुँचा और निर्भय होकर अभिमानमें फूला हुआ सिंहासन-पर जा डटा। (१) इधर रामने अंगदको बुलवा भेजा। उसने तत्काल प्रभुके चरण-कमलोंमें सिर आ नवाया और रामने बड़े आदरके साथ उसे अपने पास बुला बैठाया। फिर खरका संहार कर डालनेवाले कृपालु रामने हँसकर उससे पूछा—(२) 'कहो अंगद ! मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, इसीलिये मैं पूछ रहा हूँ। सचमुच बताओ कि जो रावण राक्षसोंका राजा है और संसारमें जिसके अतुलित भुज-बलकी इतनी धाक जमी हुई है (३) उसके जो चार मुकुट तुमने वहाँसे उठा फेंके थे वे तुम्हारे हाथ लगे कैसे ?' अंगद कहने लगा—'देखिए सर्वज्ञ ! शरणागतको सुख देनेवाले ! वे मुकुट नहीं थे, वे तो राजाके चार गुण थे। (४) नाथ ! वेद कहते हैं कि साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों गुण राजाके हृदयमें सदा बसे रहते हैं। ये चारों ही नीति और धर्मके चार सच्चे चरण हैं, (किन्तु) ऐसा (रावणमें नीति और धर्मका अभाव) (आपको नीति-धर्म-पालक) जानकर वहाँसे आपके पास उठे चले आए। (५) कोशलाधीश ! रावणमें न तो धर्म ही रह गया है, न प्रभुके चरणोंसे ही उसे प्रेम है। अब तो उसके सिरपर काल ही नाचे जा रहा है। इसलिये ये गुण उसे छोड़कर यहाँ (आपके पास) दौड़े चले आए हैं' ॥ ३८ क ॥ अङ्गदकी यह अत्यन्त चतुरता-भरी बात सुनकर उदार राम मुसकरा पड़े। इसके पश्चात् अंगदने (रावणके) दुर्गमें जो कुछ देखा-सुना था सब विस्तारसे कह सुनाया ॥ ३८ ख ॥ जब रामने

४६९-७० इति सद्वाक्यशराघाततर्जितः स दशाननः। सिंहासने समस्थाद्धि निस्त्रासोऽभूत्तदा खलु ॥ आनं०
४७१-७२ अथ तत्र सुवेलाद्रिकटके लङ्कापतेः सकाशादधिगतं दूतमंगदं जानकीवल्लभः पप्रच्छ।—हनु०ना०
४७३-७४ वालिपुत्र महावीर परं कौतूहलं हि मे। राक्षसां तिलकीभूतरावणस्तु पराक्रमी ॥
भुजयोस्तरसा येन जितं विश्वं चराचरम् ॥ —आनन्दरामायण
४७५ तदीयं मुकुटं वेदसंख्याकं प्रेषितं त्वया। विधिना केन तत्प्राप्तं वद तात सुविस्तरात्।
४७६-७७ मद्वाक्यं शृणु सर्वज्ञ मुकुटानि न तानि वै। सामं दानञ्च दण्डश्च भेदश्चेति चतुष्टयम् ॥
नृपस्योरःस्थले ह्येतत् वसत्यनिशमेव च ॥ —कामन्दकीयनीति
४७८-८० कालग्रस्तं दशग्रीवं धर्महीनं च पापिनम्। परिहृत्य गुणाः सर्वे ह्यागता भवदन्तिके ॥
४८१-८२ यद्यत्कृतं तु लंकायां सम्वादे रावणस्य च। न्यवेदयच्च तत्सर्वं श्रुत्वा रामोपि सस्वजे ॥ आ०रा०

रिपु - के समाचार जब पाए। राम, सचिव सब निकट बोलाए।
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिय, करहु बिचारा। (१)
तब कपीस, रिच्छेस, बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकर-कुल भूषन।
करि बिचार, तिन मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि-कटक बनावा। (२)
जथा - जोग सेनापति कीन्हें। जूथप सकल बोलि तब लीन्हें।
प्रभु-प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि, कपि सिंहनाद करि धाए। (३)
हरषित राम-चरन सिर नावहिं। गहि गिरि-सिखर बीर सब धावहिं।
४९० गर्जहिं तर्जहिं भालु - कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा। (४)
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु - प्रताप कपि चले असंका।
घटाटोप करि, चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी। (५)

दो०—जयति राम, जय लछिमन , जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि , भालु महाबल - सींव॥ ३९॥

लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी।
देखहु बानर - केरि ढिठाई। बिहँसि, निसाचर-सेन बोलाई। (१)

शत्रुका सारा भेद पा लिया, तब उन्होंने सब मंत्रियोंको अपने पास बुला भेजा (और उनसे कहा—) 'देखो भाई ! लंकाके चार बड़े विकट फाटक हैं। यह बताओ कि उन्हें तोड़ा किस प्रकार जाय ?' (१) तब वानरोंके राजा सुग्रीवने, भालुओंके राजा जामवंतने तथा विभीषणने सूर्य-कुल-भूषण रामका मनमें स्मरण किया और विचार करके यही निश्चय किया कि वानरोंकी सेनाके चार दल बना दिए जायँ और (२) योग्यताके अनुसार प्रत्येक दलका एक-एक सेनापति नियुक्त कर दिया जाय। उन्होंने (सुग्रीव, जामवन्त, विभीषणने) सब सेनापतियोंको बुलवा भेजा और उन्हें प्रभु रामका प्रताप कहकर (आक्रमण करनेके संबन्धमें) सब युक्ति भली-भाँति समझा दी। सुनने भरकी देर थी कि सब वानर सिंहके समान गरजते हुए दौड़ चले। (३) वे सब वीर वानर हर्षित हो-होकर रामके चरणोंमें सिर नवा-नवाकर और पर्वतकी चट्टानें हाथमें ले-लेकर दौड़ पड़े। कोशलाधीश रामकी जय-जयकार करते हुए वे वानर और भालू गरजते और ललकारते हुए (४) लंकाके दुर्गको अत्यन्त दृढ और अजेय समझते हुए भी प्रभुके प्रतापसे निर्भय होकर चल पड़े। उन्होंने पहुँचते ही बादलोंकी घटाओंके समान लंकाको चारों ओरसे जा घेरा और अपने मुँहसे ही डंके और भेरी बजा उठे। (५) 'रामकी जय, लक्ष्मणकी जय और वानरराज सुग्रीवकी जय'—चिल्लाते हुए महान् बली वानर और भालू सिंहनाद करते हुए गरज उठे॥ ३९॥ अब तो सारी लंकामें हलचल मच गई। अत्यन्त अहंकारी रावणने सुना तो मन ही मन कह उठा—'इन वानरोंकी ढिठाई तो देखो।' फिर हँसते हुए उसने राक्षसोंकी सेना बुला भेजी (१) और उनसे कहा—'देखो ! ये बन्दर कालके भेजे यहाँ चले आए हैं और

४८३-८४ सचिवानाहूय रामस्तु प्राह सर्वानिदं वचः। रोक्मालयचतुर्द्वारमस्माभिः क्षीय्यतां कथम्॥
४८५-८६ ततो भेरीमृदंगाद्यैर्वाद्यैस्ते वानरोत्तमाः। लंकां संवेष्टयामासुश्चतुर्द्वारेषु संस्थिताः॥—अ.रा.
४८७-८८ यथाहं संविभज्येमं बलौघं च वनौकसाम्। श्रुतप्रभावास्ते कीशा महानादं प्रचक्रिरे॥—वा०रा०
४८९-९० अंगदं दक्षिणद्वारे वायुपुत्रं च पश्चिमे। नलं सैन्येन प्राग्द्वारे सुषेणं द्वारमुत्तरम्॥
४९१-९२ ययुस्ते राघवं नत्वा लंकां स्वस्वबलैर्युताः। तां लंकां रुरुधुः सर्वे चतुर्द्वारेषु वानराः॥—आ रा.
४९३-९४ जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥—वा.रा.
४९५-९६ चक्रुर्महारवं घोरं श्रुत्वा भ्रान्तो दशाननः। लंकायाः परिरक्षार्थमादिदेश स राक्षसान्॥—नृ०पु०

आए कीस काल - के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे।
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हाँ। बिधि अहार गृह बैठे दीन्हाँ[1]। (२)
सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि-धरि भालु - कीस सब खाहू।
५०० उमा! रावनहिं अस अभिमाना। जिमि टिडिंभ[2] खग सूत उताना। (३)
चले निसाचर आयसु माँगी। गहि कर, भिंडिपाल, बर साँगी।
तोमर, मुद्गर, परसु प्रचंडा। सूल, कृपान, परिघ, गिरि-खंडा। (४)
जिमि अरुनोपल - निकर निहारी। धावहिं सठ खग माँस - अहारी।
चोंच - भंग - दुख तिन्हहिं न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा। (५)

दो० नानायुध - सर - चाप - धर, जातुधान बलबीर।
कोट - कँगूरन्हि चढ़ि गए, कोटि - कोटि रनधीर॥ ४० ॥

कोट - कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु - के सृगन्हि जनु घन बैसे।
बाजहिं ढोल - निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ। (१)

हमारे सब राक्षस भी बड़े भूखे हैं, विधाताने घर बैठे इनके लिये उतना भोजन परोस भेजा है', यह कह-कहकर वह मूर्ख बड़े ऊँचे स्वरसे ठठाकर हँसने लगा (२) और बोला—'देखो वीरो! तुम लोग अभी जाकर चारों ओर फैल जाओ और जहाँ-कहीं वानर-भालू मिलते चलें, पकड़-पकड़कर गपकते जाओ। (शंकर कहते हैं—) 'देखो उमा! रावणको वैसा ही अभिमान हो चला था जैसा टिटिहरेको होता है जो ऊपर पैर करके (इसीलिये) उतान सोता है (कि आकाश टूटकर गिरने लगेगा तो पैरोंपर रोक लूँगा)। (३) रावणसे आज्ञा ले-लेकर सब राक्षस हाथोंमें भिंदिपाल (गोफियाँ, जिसमें पत्थर रखकर फेंककर मारे जाते हैं), साँगी (बरछी), तोमर (लोहेका डंडा), मुद्गर, प्रचण्ड फरसे, शूल (बरछे), कृपाण, परिघ (मूसल) और चट्टानें ले-लेकर चल पड़े। (४) जैसे मांसाहारी पक्षी लाल पत्थर देखकर उन्हें (मांस समझकर) उनपर टूट पड़ते हैं और उन्हें (पत्थरकी चोटसे) चोंच टूटनेकी पीड़ा नहीं जान पड़ती वैसे ही ये मूर्ख राक्षस भी वानर-सेना-पर टूट पड़े। अनेक प्रकारके शस्त्र (हाथसे चलाए जानेवाले हथियार जैसे तलवार), अस्त्र (फेंककर चलाए जानेवाले हथियार जैसे बरछी, भाला) और धनुष-बाण ले-लेकर करोड़ों बलवान् और रणधीर वीर राक्षस दुर्गके कँगूरोंपर जा चढ़े ॥ ४० ॥ (लंकाके दुर्गके) परकोटेके कंगूरोंपर चढ़े हुए वे राक्षस ऐसे लग रहे थे मानो सुमेरुके शिखरोंपर बादल आ छाए हों। जुझाऊ ढोल और डंके क्या बज उठे कि उनकी गड़गड़-घड़घड़ सुन-सुनकर योद्धाओंके मनमें (लड़नेकी) उमंग उमड़ चली। (१) अगणित नफ़ीरियाँ और भेरियाँ बजे

१. गृह बैठे अहार बिधि दीन्हाँ। २. टिट्टिभ।

४९७-९८ मुमूर्षुकीशाश्चायान्ति क्षुधार्त्ताऽसुरसन्निधौ। एवमुक्त्वा च ते सर्वे ह्यट्टहासं विदेधिरे॥—नृसिंहपु०
४९९-५०० अश्नन्तु वानरान् सर्वान् महाकाया महाबलाः। नृ पु.। उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भंगभयाद्दिवः। पञ्च०
५०१-२ खड्गशूलधनुःपाशभिंदिपालपरश्वधान्। निर्ययू राक्षसा वीराः समादाय दिशो दश॥—वा.रा.
५०३-४ लोहिताद्रिं यथा वीक्ष्य मांसबुद्ध्या पतत्त्रिणः। चञ्चुप्रणाशदुःखं च ह्यबुद्ध्वा सद्रवन्ति ते॥
तथा ज्ञानवशीभूता धावन्ति प्रमुदा सुराः।
५०५-६ खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः। लक्षिताः सर्वतो लंकां प्रतिद्वारमुपाययुः॥—अध्या०रा०
५०७ ते बभुः पीतवर्णांगाः सशस्त्राः प्लवगोत्तमाः। विद्युन्मंडलसन्नद्धाः सबलाका इवाम्बुदाः॥
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटि कोटि विराजते॥
५०८ ततो भेरीमृदंगानां पणवानां च निःस्वनान्। आकर्ण्याकर्ण्य सुभटा उपगच्छन्ति संमदम्॥—वा.रा.

बाजहिँ भेरि नफीरि अपारा। सुनि, कादर - उर जाहिँ दरारा।
५१० देखिन्ह[1] जाइ कपिन - के ठट्टा। अति बिसाल-तनु भालु सुभट्टा। (२)
धावहिं, गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा।
कटकटाहिँ कोटिन्ह भट गर्जहिँ। दसन ओठ काटहिँ, अति तर्जहिँ। (३)
उत रावन, इत राम - दोहाई। जयति - जयति - जय परी लराई।
निसिचर सिखर - समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि, फेरि चलावहिं। (४)
छंद—धरि कुधर - खंड, प्रचंड मर्कट - भालु गढ़ - पर डारहीं।
झपटहिं, चरन गहि पटकि महि, भजि चलत, बहुरि पचारहीं।
अति तरल तरुन प्रताप तर्पहिं, तमकि गढ़ चढ़ि - चढ़ि गए।
कपि - भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ - तहँ, राम - जस गावत भए॥ [१]
दो०—एक - एक निसिचर गहि , पुनि कपि चले पराइ।
५२० ऊपर आपु, हेठ भट , गिरहिं धरनि-पर आइ॥ ४१॥
राम - प्रताप प्रबल कपि - जूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट - बरूथा।

चली जा रही थीं, जिन्हें सुन-सुनकर कायरोंके हृदय फटे पड़ रहे थे। उन राक्षसोंने आते ही देखा कि अत्यन्त डील-डौलवाले बड़े-बड़े भालू और वानर योद्धाओंके ठट्टके ठट्ट डटे खड़े हैं (२) और वे (वानर-भालू) जब दौड़ लगाने लगते हैं तो नीची-ऊँची और विकट घाटियोंको कुछ नहीं समझते (झट लाँघकर पार कर जाते हैं)। वे पहाड़ तोड़-तोड़कर मार्ग सीधा और सरल करते चले जा रहे हैं। करोड़ों (असंख्य) वानर-भालू योद्धा दाँत कट-कटाकर गरजे जा रहे हैं, और दाँतोंसे ओठ चबा-चबाकर ललकारे जा रहे हैं। (३) (फिर क्या था !) देखते-देखते उधर रावण-की ओर इधर रामकी दुहाई और जय-जयकारके साथ घमासान लड़ाई छिड़ गई। ऊपर दुर्गपर चढ़े हुए राक्षस जो पहाड़ोंकी चट्टानें नीचे फेंक-फेंककर मारे जा रहे थे उन्हें वानर कूदकर बीचमें ही लपक लेते थे और उलटकर उन्हींपर फेंक मारते थे। (४) वानर और भालू ऐसे प्रचंड थे कि पर्वतोंकी चट्टानें ले-लेकर गढ़पर फेंक मारते थे और झपट-झपटकर राक्षसोंकी टँगड़ियाँ पकड़-पकड़कर उन्हें धरतीपर ला पटकते थे। जब राक्षस (डरके मारे) भाग खड़े होते थे तो वानर उन्हें फिर ललकारते थे। अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए प्रचण्ड प्रतापी वानर उन्हें डाँटते-डपटते ललकारते हुए दुर्गके ऊपर चढ़ जाते थे और वे वानर और भालू, लंकाके भवनोंपर चढ़-चढ़कर इधर-उधर रामका यश गाते घूमने लगते थे। [१] वानर क्या करते कि वे एक-एक राक्षसको पकड़-पकड़कर भाग चलते और उन्हें लिए दिए धम्मसे दुर्गके नीचे धरतीपर ऐसे आ गिरते थे कि वे तगड़े वानर योद्धा तो उनके ऊपर आ पड़ते थे और राक्षस उनके नीचे दबकर पिस मरते थे॥ ४१॥ इस प्रकार रामके प्रतापसे सब वानर उन वीर राक्षसोंको पकड़-पकड़कर धर मसलने लगे। यह सब करके वानर जहाँ-तहाँ दुर्गपर चढ़कर चिल्ला उठे—'सूर्यके समान

१. देखि न : इतने अधिक वानर-भालू थे कि 'देखे नहीं जाते थे।'

५०९ वदतां चापि वाद्यानां डिंडिमानां च कातराः। भयत्रस्ता भवन्तीति रवं श्रुत्वा विशङ्कटम्॥
५१०-१२ ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः। आप्लवन्तश्च तर्जन्ति गर्जन्ति च प्लवंगमाः॥
५१३ राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत्। राजन् जय जयेत्युक्त्वा स्वस्वनाम कथां ततः॥
५१४ राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्थां महीं गतान्। वानरान् भिंदिपालैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन्॥
वानराश्चापि संक्रुद्धाः प्राकारस्था महीं गताः। राक्षसान् पातयामासुः खमाप्लुत्य स्वबाहुभिः॥वा०रा०
५१५-१८ ततो धुतनखायुधस्तरुगिरिग्रुटत्तोमरः, शिलानिहतमुद्गरः शिखरभिन्नमत्तद्विपः।
स्वपक्षविजयैषिभिर्दिवि सुरासुरैर्लक्षिभिरलक्षि हरिरक्षसामतिभयंकरः संगरः॥—चंपूरामायण

चढ़े दुर्ग पुनि जहँ - तहँ बानर। जय रघुबीर - प्रताप - दिवाकर। (१)
चले निसाचर - निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन - समुदाई।
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी। (२)
सब मिलि देहिं रावनहिं गारी। राज करत एहि मृत्यु हँकारी।
निज दल बिचल सुना तेंहि काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना। (३)
जो रन - बिमुख फिरा मैं जाना। सो मैं हतब कराल कृपाना।
सर्बस खाइ भोग करि नाना। समर - भूमि भे बल्लभ प्राना। (४)
उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने।
५३० सनमुख मरन बीर - कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान - कर लोभा। (५)
दो०—बहु आयुध - धर सुभट सब, भिरहिं पचारि - पचारि।
व्याकुल किए भालु - कपि, परिघ - त्रिसूलन्हिं मारि॥ ४२॥
भय - आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा! जीतिहइँ आगे।
कोउ कह, कहँ अंगद - हनुमंता। कहँ नल - नील - दुबिद बलवंता। (१)

प्रतापवान् रामकी जय हो।' (१) (यह सुनकर भयके मारे) राक्षसोंके झुण्डके झुण्ड ऐसे भाग चले जैसे आँधी चलनेपर बादल छितरा जाते हैं। अब तो सारे नगरमें बड़ा हाहाकार मच गया। बालक, रोगी और स्त्रियोंकी रोहट-चिल्लाहटसे सारी लंका गूँज उठी। (२) वहाँके सब राक्षस मिलकर खड़े रावणको गालियाँ दिए जा रहे थे कि इस (दुष्ट)-ने बैठे-बिठाए भले-चंगे राज्य करते हुए अपनी मृत्यु सिरपर बुला भेजी। जब रावणने सुना कि मेरी सेनामें भगदड़ मच गई है तो भागते हुए योद्धाओंको ललकारते हुए बड़े क्रोधमें रावण बोला—(३) 'देखो! जिसे मैं रणसे पीठ दिखाकर भागते सुनूँगा उसे मैं स्वयं कठोर कृपाणसे बोटी-बोटी कर डालूँगा। अबतक तो हमारा खाते और अनेक प्रकारके सुख भोगते रहे, अब जब रणभूमिमें लड़नेकी बारी आई तो सबको प्राण प्यारे हो बैठे।' (४) रावणके ऐसे कठोर वचन सुनते ही सब राक्षस योद्धा थरथरा उठे और लजाते हुए फिर क्रोध करके युद्धके मैदानमें आ डटे। 'रणमें युद्ध करते हुए शत्रुके हाथसे मर जाना ही वीरोंकी शोभा है' (यह सोचकर) उन्होंने प्राणोंका मोह छोड़ दिया (५) और वे सब वीर योद्धा बहुतसे अस्त्र-शस्त्र ले-लेकर शत्रुको ललकारते हुए वानरोंपर टूट पड़े। परिघों (मूसलों) तथा त्रिशूलोंसे मार-मारकर उन्होंने वानर और भालुओंका कचूमर निकाल डाला॥ ४२॥ (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा! यद्यपि अन्तमें जीत तो इन वानरोंकी ही होनेवाली है पर इस समय तो सब वानर भयसे व्याकुल हो-होकर भाग ही चले थे।' सब चिल्लाते हुए भागे जा रहे थे—'कहाँ हैं अंगद?

५२१-२३ रामो जयत्युरुबलश्चेत्यं कीशनिनादितम्। तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः॥
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिनः। पलायांचक्रिरे दैत्या वायोरिव घनावलिः। वाल्मी०
५२४-२५ म्लानाः पौरा विलेपुस्ते जुगुप्सन्ते च रावणम्। —भट्टिकाव्य
५२६ श्रुत्वा युद्धे बलं नष्टमतिकायमुखं महत्। रावणो दुःखसंतप्तः क्रोधेन महता वृतः॥—वाल्मी.रा.
५२७-२८ ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविप्लवात्। तान्हनिष्याम्यहं सर्वान् मच्छासनपराङ्मुखान्॥ अ०
५२९-०० तच्छ्रुत्वा भयसंत्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः।
५३०-०० नैष्ठिकीं बुद्धिमास्थाय सर्वे संग्रामकांक्षिणः। —वाल्मीकीयरामायण
द्विजा अपि न गच्छन्ति यां गतिं चैव योगिनः। स्वाम्यर्थं संत्यजन्प्राणाँस्तां गतिं यान्ति सेवकाः॥मातृ.वि
५३१-३२ भुशुण्डिभिन्दिपालैश्च वानरा व्याकुलीकृताः। अन्यैश्च विविधैरस्त्रैः निजघ्नुर्हरियूथपान्॥
५३३-३४ विह्वला स्युस्तदा कीशा वदन्तीत्थं मुहुर्मुहुः। क्व नलः क्वापि नीलश्च वालिजश्चापि वायुजः॥अध्या०

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार, रहा बलवाना।
मेघनाद तहँ करै लराई। टूट न द्वार, परम कठिनाई। (२)
पवन-तनय-मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रलय-काल-सम जोधा।
कूदि लंक-गढ़-ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद-कहँ धावा। (३)
भंजेउ रथ, सारथी निपाता। ताहि हृदय-महँ मारेसि लाता।
५४० दुसरे सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना। (४)
दो०—अंगद सुना पवनसुत, गढ़-पर गयउ अकेल।
रनबाँकुरा बालि-सुत, तरकि चढ़ेउ कपि खेल ॥ ४३ ॥
जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बंदर। राम-प्रताप सुमिरि उर अंतर।
रावन-भवन चढ़े दोउ धाई। करहिं कोसलाधीस-दोहाई। (१)
कलस-सहित गहि भवन ढहावा। देखि, निसाचर-पति भय पावा।
नारि-बृन्द कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती। (२)
कपि-लीला करि तिन्हहिं डेरावहिं। रामचन्द्र-कर सुजस सुनावहिं।

कहाँ हैं हनुमान् ? कहाँ है बलवान नल, नील और द्विविद ?' (१) जिस समय हनुमान्ने सुना कि हमारा दल व्याकुल होकर भाग चला है उस समय वे पश्चिमके द्वारपर डटे हुए मेघनादसे युद्ध कर रहे थे। वह द्वार उनके तोड़े नहीं टूट पा रहा था और बड़ी उलझन उठ खड़ी हुई थी। (२) (अपने दलकी व्याकुलता सुनकर) पवन-पुत्र हनुमान्के मनमें बड़ा क्रोध चढ़ उठा। वे झट कालके समान गरजकर उछलकर लंकाके दुर्गपर जा चढ़े और उन्होंने एक चट्टान मेघनादपर खींच मारी। (३) उन्होंने मेघनादका रथ चूर-चूर कर डाला, सारथिको मार गिराया और मेघनादकी छातीमें कसकर एक लात उठा जमाई। दूसरे सारथिने जब देखा कि मेघनाद मूर्च्छित हो गिरा है तो वह उसे झट (दूसरे) रथमें डालकर घर उठा ले गया। (४) इधर जब अंगदने सुना कि पवन-पुत्र हनुमान् अकेले दुर्गपर चढ़ पहुँचे हैं, तब रण-बाँकुरे अंगद भी वानरोंके खेलके समान उछलकर दुर्गपर जा चढ़े ॥ ४३ ॥ (फिर क्या था ?) दोनों वानर (हनुमान् और अंगद) युद्धमें शत्रुपर क्रुद्ध होकर टूट पड़े। रामके प्रतापका स्मरण करके दोनों कूदकर रावणके भवनपर जा चढ़े और वहाँ उन्होंने कोशलाधीश रामकी दुहाई मचा दी। (१) उन्होंने भवनके कलशके साथ-साथ सारा भवन झकझोर ढहाया। यह देखकर तो निशाचर-पति रावणके भी होश उड़ गए। उसकी सब स्त्रियाँ छाती पीट-पीटकर चिल्लाने लगीं—'हाय ! हाय !! इस बार (एकके बदले) दो-दो उत्पाती बन्दर आ धमके हैं।' (२) वे दोनों ही बन्दर घुड़की देते हुए उन्हें डराते भी जाते थे और रामका सुयश भी सुनाते जाते थे।

५३५-३६ लंकायाः पश्चिमे द्वारे विद्यमानो महाबलः। आत्मसैन्यं च विच्छिन्नं श्रुतवाँश्चापि मारुतिः ॥
५३७-३८ इति श्रुत्वा गो हनुमान् साधुर्वै हरिभिर्वृतः। अभ्यधावत् सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ वा०रा०
५३९-०० रथं ममन्थ सहयं पादेन निहितारि सः। —भट्टिकाव्य
५४०-४२ स्यन्दनं तं समारोप्य विकलं सारथिर्गतः। अङ्गदस्तु रणे शत्रून्निहन्तुं समुपस्थितः।
५४३-४४ रामो जयत्युरुबलो लक्ष्मणश्च महाबलः। इत्येवं घोषयन्तौ च नदन्तौ मरुतांगदौ ॥
लंकायाश्चाभ्यधावन्तां प्राकारं कामरूपिणौ।
५४५-०० तौ द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवंगमौ। प्राकाराग्राण्यसंख्यानि तोरणा निममंथतुः ॥
५४६-०० प्रासादाः पर्वताकाराः पतन्ति धरणीतले। वक्षस्यथाभिजघ्नुस्ते दारास्तु भयकातराः ॥ वा०रा०

पुनि कर गहिं कंचन-के खंभा। कहेन्हि करिय उतपात अरंभा। (३)
गरजि परे रिपु-कटक-मँझारी। लागे मर्दइ भुज-बल भारी।
५५० काहुहि लात, चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहिं, सो फल लेहू। (४)
दो०—एक-एक-सों मर्दहिं, तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगे परहिं ते, जनु फूटहिं दधि-कुंड ॥४४॥
महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि, प्रभु-पास चलावहिं।
कहइ बिभीषन तिन्हके नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा। (१)
खल, मनुजाद, द्विजामिष-भोगी। पावहिं गति जो जाँचत जोगी।
उमा! राम मृदु-चित करुनाकर। बयर-भाव सुमिरत मोहिं निसिचर। (२)
देहिं परम गति सो जिय जानी। अस कृपालु को, कहहु भवानी।
अस प्रभु सुनि, न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद, ते परम अभागी। (३)
अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग, अस कह अवधेसा।

फिर वे अपने दोनों हाथोंसे सोनेके खंभे उखाड़कर हाथमें लिए आपसमें कहने लगे—'चलो, अब कुछ उत्पात कर दिखाया जाय।' (३) वे गरजते हुए शत्रुकी सेनाके बीच जा कूदे और अपनी भारी-भारी भुजाओंसे लगे उन राक्षसोंको पकड़-पकड़कर मसलने। किसीको लात और किसीको थप्पड़ जमाते हुए वे कहते जाते थे—'लो, रामको न भजनेका भोगो यह फल।' (४) वे एकको दूसरेसे मींज-मींज (रगड़-रगड़)-कर उनके सिर तोड़-तोड़कर उछाल फेंकते थे और वे (सिर) रावणके आगे ऐसे गिर-गिरकर फूटते चलते थे, मानो दहीके कुंडे गिर-गिरकर फूटे पड़ रहे हों ॥ ४४ ॥ जो बड़े-बड़े मुखिया (प्रधान राक्षस सेनापति) उनके हाथ लग जाते थे, उनकी टँगड़ी पकड़-पकड़कर वे प्रभु रामके पास उछाल फेंकते थे। विभीषण उनके नाम बतलाते चलते थे और राम उन्हें भी अपने धाम (परम धाम) भेजते चलते थे। (१) (कैसी विचित्र बात है कि) ब्राह्मणोंको कच्चा चबा जानेवाले ये नरभक्षी नीच राक्षस भी वही गति पाते जा रहे थे जिनके लिये योगीजन याचना करते रह जाते हैं। (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा! राम तो बड़े कोमल चित्तवाले और बड़े दयालु हैं, इसलिये वे यही मनमें विचारकर उन्हें परम गति (मोक्ष) दिए डाल रहे थे कि ये राक्षस, वैर-भावसे ही सही, मेरा स्मरण तो करते रहते थे। (२) बताओ भवानी! ऐसा कृपालु संसारमें और कहाँ मिल पावेगा? ऐसे प्रभुका ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो लोग मनका सब भ्रम छोड़कर बैठकर उनका भजन नहीं करते उन्हें समझना चाहिए कि वे लोग बड़े ही मूर्ख और अभागे हैं।' (३)

उधर राम (उन दोनोंकी प्रशंसा करते हुए सबसे) कहते जा रहे थे—'देखो! अंगद और हनुमान् दोनों दुर्गमें घुसकर लंकामें (विध्वंस मचाते हुए) ऐसे लग रहे हैं मानो दो मंदराचल

५४७-४८ रौक्मस्तम्भं समुत्पाट्य क्षिप्यन्ति धरणीतले।
५४९ तौ राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरियूथपौ। जघ्नतू राक्षसान् भीतान् सर्वतो विजयैषिणौ ॥वा०रा०
५५० पादैश्चपेटाभिघ्नन्तौ मुष्टिभिश्च निशाचरान्। फलं तस्येदमभ्यायात् दुरुक्तस्येति चोचतुः ॥
५५१-५३ घ्नतमन्यं जघानान्यः पातयंतमपातयत्। शरेण प्रेषयामास रामाभ्याशे शिरो महत् ॥
५५४ ततस्तु रामस्य निशम्य वाचं विभीषणः शक्रसमानवीर्यः।
शशंस रामस्य बलप्रवेकं महात्मनां राक्षसपुंगवानाम् ॥ —भट्टिकाव्य
५५५-५६ कथंचिन्नाम संकीर्त्य भक्त्या वा भक्तिवर्जितः। दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥भाग०
५५७-५८ हरिं त्यक्त्वा च ये मर्त्या विषयालीनचेतसः। गिरिजे शृणु मद्वाक्यं मंदभाग्या भ्रमन्ति ते॥अध्या०

५६० लंका दोउ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे। (४)
दो०—भुज-बल रिपु-दल दलमलि, देखि दिवस - कर अंत।
कूदे जुगल बिगत - स्रम, आए जहँ भगवंत ॥ ४५ ॥
प्रभु - पद - कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट, रघुपति मन भाए।
राम, कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगत - स्रम परम सुखारे। (१)
गए जानि अंगद - हनुमाना। फिरे भालु - मर्कट भट नाना।
जातुधान प्रदोष - बल पाई। धाए करि दससीस - दोहाई। (२)
निसिचर - अनी देखि कपि फिरे। जहँ - तहँ कटकटाइ भट भिरे।
दोउ दल प्रबल पचारि - पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी। (३)
महाबीर निसिचर सब[1] कारे। नाना बरन, बलीमुख भारे।
५७० सबल जुगल दल, सम-बल जोधा। कौतुक करत, लरत करि क्रोधा। (४)
प्राबिट - सरद - पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत - के प्रेरे।

मिलकर समुद्र मथे डाल रहे हों।' (४) अपनी भुजाओंके बलसे सारी शत्रु-सेनाको कुचल और मसलकर तथा दिन ढलता देखकर, दोनों (अंगद और हनुमान्) दुर्गसे नीचे कूद आए और अपनी थकावट मिटाकर झट वहाँ आ पहुँचे जहाँ भगवान् राम विराजमान थे ॥ ४५ ॥ उन्होंने पहुँचते ही प्रभुके चरण-कमलोंमें सिर जा नवाया। अपने श्रेष्ठ योद्धाओंको देख-देखकर राम अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए जा रहे थे। रामने ज्यों ही दोनोंपर अपनी कृपादृष्टि फेरी, त्यों ही उनकी सारी थकावट एकदम जाती रही और वे पूर्ण स्वस्थ हो गए। (१) हनुमान् और अंगदको लौटा जानकर अन्य वीर भालू-वानर भी अपने-अपने मोरचोंपरसे लौट पड़े। इधर राक्षसोंने क्या चाल चली कि निशाचर होनेके कारण सायंकालका बल पाकर (अँधेरेमें आक्रमण करनेकी सुविधा देखकर) वे रावणकी दुहाई देते हुए वानरोंपर टूट पड़े। (२) वानरोंने जब देखा कि राक्षसोंकी सेना फिर चढ़ी चली आ रही है तो वानर योद्धा भी उलटकर जहाँ-तहाँ दाँत कटकटा-कटकटाकर राक्षसोंसे जा भिड़े। दोनों ही दल किसीसे कम बलवान् नहीं थे। सब योद्धा ललकार-ललकारकर लड़े जा रहे थे। कोई किसीसे हार माननेका नाम नहीं ले रहा था। (३) उधर सभी राक्षस बड़े वीर और बड़े काले-कलूटे थे और इधर सब वानर बड़े लंबे-चौड़े डील-डौलके और बड़े रंग-बिरंगे थे। दोनों ही दलोंके योद्धा बड़े बलवान् और बराबरीकी जोड़के थे और वे अनेक प्रकारके दाँव-पेंच लड़ाते हुए, क्रोधसे दाँत पीसते हुए लड़े चले जा रहे थे। (४) (ये राक्षस और वानर परस्पर लड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे) मानो वर्षा और शरत्के बहुतसे बादल

१. बीर तमीचर सब अति।

५५९-६० लंकायां शैलसंकाशो हरीणामुत्तमोंगदः। रराजांगदसन्नद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥—अध्यात्मरा०
५६१-६२ ततो वानरमुख्यास्तु लंकाप्राकारमुच्छ्रितम्। उल्लंघ्य अन्तरस्थांश्च राक्षसान्बलदर्पितान् ॥
हत्वा शीघ्रं पुनः प्राप्ता स्वसेनामेव वेगतः। —नृसिंहपुराण
५६३-६४ रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दितिजांशजाः। बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव ॥
५६५- प्रस्थितौ तौ समीक्ष्याशु भल्लूका अपि प्रस्थिताः। —अध्यात्मरामायण
५६६ रविरस्तंगतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी। अन्यान्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम् ॥
संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम्।
५६७-६८ राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिणः। राक्षसान् वानरा जघ्नुर्वानरांश्चैव राक्षसाः ॥
५६९-७० कालाः कांचनसंकाशा वानरा राक्षसा अपि। कौतूहलं प्रकुर्वन्तो युध्यन्ते ते समोजसः ॥
५७१ समीरप्रेरितावार्दाः प्रावृट् सामयिका इव। —वाल्मीकीयरामायण

अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्ह इन्ह माया। (५)
भयउ निमिष-महँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल - छारा। (५।।)
दो०—देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि, कपि-दल भयउ खँभार।
एकहि एक न देखई, जहँ-तहँ करहिं पुकार ।। ४६ ।।
सकल मरम रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद-हनुमाना।
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपि - कुंजर धाए। (१)
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा।
भयउ प्रकास, कतहुँ तम नाहीं। ज्ञान - उदय जिमि संसय जाहीं। (२)
५८० भालु - बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरषि बिगत - स्रम - त्रासा।
हनूमान - अंगद रन गाजे। हाँक सुनत, रजनीचर भाजे। (३)
भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं - भालु कपि अद्भुत करनी।
गहि पद, डारहिं सागर - माहीं। मकर-उरग-झष धरि-धरि खाहीं। (४)
दो०—कछु मारे, कछु घायल, कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु - बलीमुख, रिपु-दल-बल बिचलाइ ।। ४७ ।।

पवनके झोंकेके सहारे आपसमें आ टकराए हों। अकंपन और अतिकाय नामके राक्षस सेनापतियोंने अपनी सेनामें भगदड़ मचते देखकर ऐसी माया रची कि (५) क्षण-भरमें चारों ओर घना अँधेरा आ छाया और चारों ओरसे धुआँधार लहू, पत्थर और राख बरसने लगी। (५।।) चारों ओर अत्यन्त घना अँधेरा छाया देखकर तो वानरोंकी सेनामें खलबली मच उठी। जब एक दूसरेको देख सकना ही दूभर हो गया तो वे सब जहाँ-तहाँ पुकार मचाने लगे ।। ४६ ।। रामको यह सब रहस्य ताड़नेमें कुछ देर न लगी। उन्होंने झट अंगद और हनुमान्को बुलाकर सारा रहस्य बता समझाया। सुनते ही दोनों श्रेष्ठ कपि उधर दौड़ चले। (१) फिर कृपालु रामने हँसकर, अपना धनुष चढ़ाकर जो अग्निबाण छोड़ा तो तुरन्त चारों ओर प्रकाश फैल गया और कहीं भी वैसे ही अंधेरा न रह गया जैसे ज्ञानका उदय होते ही सारे संशय दूर हो मिटते हैं। (२) प्रकाश होते ही भालू और वानरोंकी सारी थकावट और सारा भय जाता रहा और वे प्रसन्नताके साथ फिर राक्षसोंपर टूट पड़े। हनुमान् और अंगद दोनों रणभूमिमें पहुँचते ही गरज उठे। उनकी ललकार सुननी थी कि सब राक्षस सिरपर पैर रखकर इधर-उधर भाग खड़े हुए। (३) योद्धाओंको भागते देखकर वानर और भालू उन्हें पकड़-पकड़कर पहले तो धरती पर दे मारते थे और फिर ऐसा अद्भुत खेल करते थे कि उन राक्षसोंकी टँगड़ी पकड़-पकड़कर उन्हें समुद्रमें ऐसे उठा फेंकते कि उन्हें मगर और मच्छ चट्ट कर डालते थे। (४) इस प्रकार उन राक्षसोंमें कुछ तो मारे गए, कुछ घायल हो-होकर (पड़े कराहते) रह गए और कुछ भागकर गढ़पर जा चढ़े। इस प्रकार अपने बलसे शत्रु-दलमें हड़कम्प मचाकर वीर भालू और वानर गरज उठे ।। ४७ ।। रात चढ़ आनेपर भालू और वानरोंकी चारों

५७२-७३ अतिकायोऽनिपाकंपौ तदा मायां विनिर्ममुः। शैलशोणितवर्षाभिश्चक्रुर्ध्वान्तमयं रणम्।
५७४-७५ राक्षसोसीति हरयो वानरोसीति राक्षसाः। हाहाकारस्तदा जातस्तस्मिन् तमसि दारुणे।।
५७६-७७ स तस्यागतिमन्विच्छन्राजपुत्रः प्रतापवान्। अंगदं हनुमन्तं वा आदिदेश परंतपः।।
५७८-७९ निमेषांतरमात्रेण बाणैरग्निशिखोपमैः। दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महारथः।।
५८०-८१ वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः। अभ्यधावन्त संहृष्टा वीतायासाश्च राक्षसान्।।वा०रा०
५८२-८३ वानरैः पातयन्तस्ते राक्षसा वेगवत्तरैः। मुष्टिभिश्चरणैर्दंन्तैः पादपैश्चावपोथिताः।।
तेषां कायमकूपारे चिक्षिपुर्वानरोत्तमाः।। —अध्यात्मरामायण
५८४-८५ केचिद् विनिहता दैत्या आहताश्च परे रणे। अभग्नशिरसः केचिल्लंकां भीत्या प्रदुद्रुवुः।।अध्या रा.

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसला-धनी।
राम, कृपा करि चितवा सबहीं। भए बिगत - स्रम बानर तबहीं। (१)
उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब - सन कहेसि सुभट जे मारे।
आधा कटक कपिन संघारा। कहहु बेगि, का करिय बिचारा। (२)
५९० माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन - मातु - पिता मंत्रीवर।
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात ! कछु मोर सिखावन। (३)
जब - तें तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं, न जाहिं बखानी।
बेद-पुरान जासु जस गायो। राम-बिमुख काहु न सुख पायो। (४)

दो०—हिरन्याच्छ भ्राता - सहित , मधु - कैटभ बलवान।
जेहि मारे, सोइ अवतरेउ , कृपासिंधु भगवान ॥ ४८ क ॥
काल-रूप, खल - बन - दहन , गुनागार, घन - बोध।
सिव - बिरंचि जेहि सेवहिं , तासों कवन बिरोध ॥ ४८ ख ॥

सेनाएँ (जो चारों फाटकोंपर भेजी गई थीं) वहाँ लौट आईं जहाँ कोशलाधीश राम बैठे थे। रामने ज्योंही उन सबपर कृपा-दृष्टि फेरी कि उसी समय सब वानरोंकी सारी थकावट दूर हो मिटी। (१) उधर रावण अपने मंत्रियोंको बुलाकर उन योद्धाओंका विवरण देने लगा जो उस दिन लड़ाईमें काम आए थे। (वह कहने लगा—) 'वानरोंने हमारी आधी सेना मौतके घाट उतार दी है। अब झटपट बताओ कि आगे किया क्या जाय।' (२) (मंत्रियोंमें) माल्यवंत नामका बूढ़ा राक्षस बहुत ही समझदार मंत्री था और वह रावणका नाना भी लगता था। वह बड़ी नीतिसे भरी अत्यन्त समझदारीकी बात कहने लगा—'देखो रावण ! अब तुम कुछ मेरी भी बात मान लो। (३) जबसे तुम सीताको हर ले आए हो, तभीसे इतने अपशकुन हुए जा रहे हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वेद और पुराणोंने जिनके यशका इतना विस्तृत वर्णन किया है उन रामसे विरोध करके आजतक किसीको भी सुख नहीं मिल पाया है। (४) (तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि) जिन कृपालु भगवान्‌ने भाई हिरण्यकशिपुके साथ हिरण्याक्ष तथा बलवान् मधु और कैटभको ढेर कर डाला था, उन्होंने ही तो (रामके रूपमें) अवतार आ लिया है ॥ ४८ क ॥ जो स्वयं काल ही हैं, जो दुष्टोंका वन भस्म कर डाल सकनेवाले (दावानल) हैं, जो गुणोंके भांडार और ज्ञानके निधान हैं, जिनकी सेवा सदा शिव और ब्रह्मा भी किया करते हैं, उनसे वैर मोल लेनेमें कौन सा तुक है ? ॥ ४८ ख ॥ (मेरे कहनेसे) तुम उनसे वैर छोड़कर उन्हें जानकी दे डालो और परम

५८६-८७ बलं शात्रवमाक्रम्य ह्याजग्मुर्वानरर्षभाः। रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दितिजांशजाः ॥
बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव ॥ —अध्यात्मरामायण
५८८-८९ किञ्चिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदाहरत्। —वाल्मीकीयरामायण
चतुर्थांशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥ —अध्यात्मरामायण
५९०-९१ माल्यवानिति नाम्ना यो बुद्धिमान् स्नेहसंयुतः। रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत्।
शृणु राजन् वचो मेद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम् ॥ —आनन्दरामायण
५९२ यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा। तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानि दशानन ॥
घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु।
५९३ विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ। तस्मात्पराङ्‌मुखः को हि चाप्नुयाच्छर्म वै नरः।
५९४-९५ हिरण्याक्षोऽति दुर्वृत्तो हतो येन महात्मना। त्रिलोककंटकं दैत्यं हिरण्यकशिपुं पुरा ॥
हतवान्नारसिंहेन वपुषा रघुनन्दनः। —अध्यात्मरामायण
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघान शिरसी तयोः। जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुतः ॥ मार्क.पु.
५९६-९७ रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे। सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः ॥
भजस्व भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम् ॥ —अध्यात्मरामायण

परिहरि बयर देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही।
ताके बचन बान-सम लागे। करिया मुँह करि जाहि अभागे। (१)
६०० बूढ़ भयसि न त मरतेउँ तोहीं। अब जनि नयन देखावसि मोहीं।
तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना। (२)
सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा।
कौतुक प्रात देखियहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा। (३)
सुनि सुत-बचन भरोसा आवा। प्रीति-समेत अंक बैठावा।
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा। (४)
कोपि कपिन दुर्घट गढ़ घेरा। नगर कोलाहल भयउ घनेरा।
बिबिधायुध-धर निसिचर धाए। गढ़-तें पर्बत-सिखर ढहाए। (५)
छंद—ढाहे महीधर-सिखर कोटिन, बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात, जिमि पबि-पात, गर्जत जनु प्रलय-के बादले।
६१० मर्कट बिकट भट जुटत, कटत, न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़-पर चलावहिं, जहँ सो तहँ निसिचर हए॥ १॥

स्नेही, कृपाके निधान रामकी सेवा जा करो। माल्यवंतके ये वचन रावणको ऐसे लगे जैसे किसीने उसे बाण खींच मारे हों। (उसने कहा—)'अरे अभागे! तू तत्काल अपना मुंह काला करके यहांसे चलता बन। (१) तू सठिया (बूढ़ा हो) गया है नहीं तो तुझे बिना मारे न छोड़ता। अब मुझे अपनी आँखें (मुँह) न दिखाना।' माल्यवान्‌ने अपने मनमें समझ लिया कि कृपानिधान राम अब इसे बिना मारे न छोड़ेंगे। (२) रावणको बहुत बुरा-भला कहता हुआ वह (माल्यवंत) तत्काल वहांसे उठ चला। उसके चले जानेपर मेघनाद त्योरियाँ चढ़ाकर बोला—'अच्छा! सवेरा होने दीजिए, तब देखिए मैं क्या जादू कर दिखाता हूँ? मैं ऐसा-ऐसा खेल कर दिखाऊँगा कि थोड़ेमें उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।' (३) पुत्रकी बातें सुनकर रावणको बड़ा भरोसा हुआ। उसने बड़े प्रेमसे उसे गोदमें पकड़ बैठाया। योंही विचार करते-करते (रात बीत गई,) सवेरा हो आया। (सवेरा होते ही राक्षस देखते क्या हैं कि) चारों फाटकोंपर वानर ही वानर आए डटे हैं (४) और वानरोंने क्रोधसे ललकार-ललकार वह दुर्गम दुर्ग चारों ओरसे घेर लिया है। यह देखते ही सारे लंका नगरमें बड़ी खलबली मच गई। राक्षस भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र ले-लेकर निकल पड़े और वे ऊपर दुर्गके कंगूरोंपरसे पहाड़ोंकी चट्टानें ला-लाकर वानरोंपर बरसाने लगे। (५) उन्होंने पर्वतोंकी करोड़ों (असंख्य) चट्टानें वहाँ ला बरसाईं। अनेक प्रकारके ऐसे-ऐसे गोले छूट चले कि जो जहाँ पड़ जाते थे वहाँ उनके फट पड़नेसे ऐसा धड़ाका हो उठता था जैसे बिजलियाँ टूट-टूटकर गिर रही हों। सब योद्धा ऐसे गरजे जा रहे थे मानो प्रलय कालके बादल गड़गड़ाए जा रहे हों। विकट-विकट वानर योद्धा भिड़ते, कटते और घायल होते चले जा रहे थे, पर शरीर लहूलुहान हो चलनेपर भी साहस नहीं खो

५९९-६०० तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः। न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः। गच्छ वृद्धोस्ति वंधुस्त्वं सोढुं सर्वं त्वयोदितम्।
६०१-२ इत्युक्तः स रावणेन जगाम स्वनिवेशनम्। तमिन्द्रजिद्वाक्यमिमं बभाषे। —आनन्दरामायण
६०३ द्रष्टा कुतूहलं मे श्वः पुरस्ते कथनेन किम्। —अध्यात्मरामायण।
६०४ मेघनादवचः श्रुत्वा तुतोष च पुनः पुनः। पुनः स मुदितोत्यन्तः रावणः परिषस्वजे॥
६०५-६ लंकाद्वाराण्युपाजग्मुः कीशा योद्धुं समंततः। शब्देन महता लंका पूरिता वानरोत्तमैः॥
६०७ राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः। अभ्यधावन्त समरे कपिसैन्यजिघांसवः॥—वा०रा०
६०८ इन्द्रजित्सत्वरं समरचत्वरेऽवतीर्णः। —हनुमन्नाटक।

दो०—मेघनाद, सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतर्यो बीर दुर्ग-तें, सनमुख चल्यौ बजाइ ॥ ४९ ॥
कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता।
कहँ नल-नील-दुबिद-सुग्रीवा। अंगद-हनूमंत बलसींवा। (१)
कहाँ बिभीषन भ्राता-द्रोही। आज सबहिं, हठि मारौं ओही।
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध स्रवन-लगि ताने। (२)
सर-समूह सो छाँड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा।
जहँ-तहँ परत देखियहि बानर। सनमुख होइ न सके तेहि अवसर। (३)
६२० जहँ-तहँ भागि चले कपि-रीछा। बिसरी सबहिं जुद्ध-कै ईछा।
सो कपि-भालु न रन-महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान-अवसेखा[1]। (४)
दो०—दस-दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बलधीर ॥ ५० ॥
देखि पवनसुत कटक बेहाला। क्रोधवंत धायउ जनु काला।
महा-सैल एक तुरत उपारा[2]। अति रिस मेघनाद-पर डारा। (१)

रहे थे। वे भी पहाड़ोंकी चट्टानें ला-लाकर उठा-उठाकर दुर्गपर ताक-ताककर ऐसे फेंकते जा रहे थे कि जो राक्षस जहाँ होता वहींका-वहीं ढेर हो जाता था। जब मेघनादने सुना कि वानरोंने फिर दुर्ग आ घेरा है तब वह वीर उस दुर्गसे उतरकर डंका बजाकर आमने-सामने लड़ने आ पहुँचा ॥ ४९ ॥ (मेघनादने आते ही ललकारा—) 'कहाँ हैं दोनों कोशलाधीश भाई जो समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध धनुर्धर कहलानेकी डींग मारते फिरते हैं? कहाँ हैं नल, नील, द्विविद और सुग्रीव? कहाँ हैं बड़े बलवान् अंगद और हनुमान्? (१) कहाँ है अपने भाईका शत्रु विभीषण? यों तो आज मैं सभीको मारे बिना न छोड़ूँगा पर उस दुष्ट (विभीषण)-को तो अद-बदके (जैसे होगा वैसे) मारूँगा।' यह कहकर बड़े प्रचण्ड बाण चढ़ाकर और बड़े क्रोधके साथ धनुषकी प्रत्यञ्चा कान-तक तान-तानकर (२) वह धुँआँधार बाण बरसाने लगा। (उसके बाण ऐसे छूटते थे—) मानो बहुतसे पंखवाले सर्प उड़े चले आ रहे हों। उस समय जिस वानरको देखो वही इधर-उधर गिरता-पड़ता दिखाई दे रहा था। कोई सामने आनेका नाम ही नहीं ले रहा था। (३) फिर क्या था? सब वानर और भालू तितर-बितर होकर इधर-उधर चले भाग। उनका युद्ध करनेका सारा उत्साह ही ठंढा हो चला। उस रणमें ऐसा एक भी वानर-भालू न बच रहा जिसे मेघनादने अधमरा न कर डाला हो। (४) उसने सबको ऐसे तान-तानकर दस-दस बाण मारे कि सारे वीर वानर धरतीपर जा लोटे। अपना यह पराक्रम देखकर बलवान् और धीर मेघनाद सिंहके समान दहाड़ उठा ॥५०॥ पवन-पुत्र हनुमान्ने जब देखा कि हमारी सारी सेनाके पाँव उखड़ चले हैं तो वे बड़े क्रोधमें भरे ऐसे उठ दौड़े जैसे काल दौड़ा चला आ रहा हो। उन्होंने तुरन्त एक विशाल पर्वतकी शिला उखाड़ उठाई और अत्यन्त क्रुद्ध होकर मेघनादपर दे मारी।

१. अवसेखा=अवशेष। २. महा महीधर तमकि उपारा।

६१४-१५ नलो नीलांगदो वीरो हनूमांश्च विभीषणः। सन्त्येते कुत्र वै वीरा हनिष्याम्यद्य तान् रिपून् ॥
६१६-१८ सन्धायाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं निष्ठुरं दृढम्। प्रायुंक्त मेघनादस्तु कपीनां पुरतोऽनिशम् ॥
६१९-२० नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन्। वानरा दुद्रुवुः सर्वे यत्रकुत्रा युयुत्सवः ॥
६२१-२३ आजौ नैतादृशा दृष्टा येन वै जर्जरीकृताः। ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः ॥
विभेद समरे कीशान् ततो निपतिता भुवि। सिंहनादं विशालं च ह्यकार्षीद् गर्जनामपि ॥हनुमन्नाटक
६२४-२५ निहन्यमानं स्वं सैन्यमालोक्य मारुतात्मजः। द्रुमानुत्पाट्य विविधांश्चिक्षेप रावणिं प्रति॥वा.रा.

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ - सारथी - तुरग सब खोई।
बार - बार पचरेउ[1] हनुमाना। निकट न आव, मरम सो जाना। (२)
रघुपति - निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा।
अस्त्र - सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुक - हीं प्रभु काटि निवारे। (३)
६३० देखि प्रताप, मूढ़ खिसियाना। करै लाग माया - बिधि नाना।
जिमि कोउ करै गरुड़ - सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सँपेला। (४)
दो०—जासु प्रबल माया - बस[2], सिव - बिरंचि बड़ - छोट।
ताहि देखावै निसिचर, निज माया - मति खोट॥ ५१॥
नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि - तें प्रगट होहिं जल - धारा।
नाना भाँति पिसाच - पिसाची। मारु - काटु - धुनि बोलहिं नाची। (१)
बिष्टा - पूय - रुधिर - कच - हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा।
बरषि धूरि कीन्हेंसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा। (२)
कपि अकुलाने माया देखे। सब-कर मरन बना ऐहि लेखे।

(१) पहाड़की चट्टान अपनी ओर आती देखकर मेघनाद तो उचककर आकाशमें उड़ गया पर उसके रथ, सारथि और घोड़े सब उस चट्टानसे पिसकर चटनी जा बने। हनुमान् उसे बार-बार ललकारे जा रहे थे पर वह था कि पास आनेका नाम नहीं ले रहा था क्योंकि वह हनुमान्का बल भली-भाँति देख चुका था। (२) तब मेघनाद वहाँसे हटकर रामके पास जा पहुँचा और वहाँ जाकर उन्हें बहुत ऊँच-नीच बकने लगा। फिर उससे जितने अस्त्र-शस्त्र चलाते बन सकते थे सब उनपर चलाए, पर प्रभु रामने खेल ही खेलमें वे सबके सब काट गिराए। (३) जब उसने प्रभु रामका प्रताप यह देखा तो वह मूर्ख कुछ देर झेंपकर मुँह छिपाए बैठा रहा और फिर माया (छल) करनेपर ऐसे उतर आया जैसे कोई गरुडसे छेड़छाड़ करनेके लिये उन्हें छोटा-सा सँपोला (नन्हाँसा साँप) दिखा-दिखाकर डराने चला हो। (४) जिनकी प्रबल मायाके चक्करसे शिव, ब्रह्मा और अन्य सभी बड़े-छोटे कोई नहीं बच पाते, उन्हींको वह नीच बुद्धिवाला राक्षस (मेघनाद) अपनी (क्षुद्र) मायासे भरमाने चल रहा था॥ ५१॥ (उसने ऐसी माया) चलाई कि ऊपर आकाशसे धुआँधार अंगारे बरसने लगे और नीचे पृथ्वीसे जलकी धारा फूट निकली, सैकड़ों पिशाच और पिशाचिनियाँ न जाने कहाँसे चिल्ला-चिल्लाकर 'मारो-काटो' कहती हुई निकल-निकलकर थिरकने लगीं। (१) वह (मेघनाद) कभी तो विष्ठा, पीब, लहू, बाल और हड्डी ला बरसाता, कभी धुआँधार पत्थर ला बरसाता, कभी धुआँधार धूल बरसाकर इतना अँधेरा कर डालता कि अपना फैलाया हाथ न सूझता। (२) वानरोंने यह माया देखी तो व्याकुल हो उठे। वे समझने लगे कि अब हम सब इसी प्रकार जलकर मर मिटेंगे। यह

१. पचार। २. बिबस।

६२६-२७ इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः। नभः पलायितः सो हि विलोक्य पवनात्मजम्॥आ०रा०
६२८-२९ आजगाम गवाक्षस्त्वरितं यत्र राघवः। स रामं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः॥
६३०-३१ लीलयैव प्रचिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः। लज्जितो रावणिः शीघ्रं निर्ममे मायकां स्वकाम्।वा.रा०
६३२-३३ यन्मायामोहिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः। तं दर्शयति मायां वै दुर्मतिः रावणिः स्वकाम्॥अध्या०
६३४-३७ सुग्रीवमारुतिनलांगदनीलमुख्या बाष्पान्धकारजलदान्तरितं प्रचंडम्॥
तं रावणिं जलदमण्डलमास्थितं नो पश्यन्ति तान् प्रहरतिस्म स घोरबाणैः॥—हनुमन्नाटक।

कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि, जाने। (३)
६४० एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर-निकाया।
कृपा - दृष्टि कपि - भालु बिलोके। भए प्रबल रन, रहहिं न रोके। (४)
दो०—आयसु माँगि राम - पहँ, अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ[1], बान - सरासन हाथ ॥ ५२ ॥
छतज नयन, उर - बाहु बिसाला। हिम-गिरि-निभ तनु, कछु ऐक लाला।
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र - सस्त्र गहि धाए। (१)
भूधर - नख - बिटपायुध - धारी। धाए कपि जय राम पुकारी।
भिरे सकल जोरिहि - सन जोरी। इत, उत, जय - इच्छा नहिं थोरी। (२)
मुठिकन्ह, लातन्ह, दाँतन्ह काटहिं। कपि जयसील, मारि पुनि डाँटहिं।
मारु - मारु धरु - धरु - धरु मारू। सीस तोरि, गहि भुजा उपारू। (३)
६५० असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ - तहँ रुंड प्रचंडा।
देखहिं कौतुक नभ सुर - बृंदा। कबहुँक बिसमय, कबहुँ अनंदा। (४)

(मायाका खेल) देखकर राम मुसकरा उठे और जब उन्होंने देखा कि सब वानर डरके मारे मरे जा रहे हैं तो (३) उन्होंने एक ही बाणसे मेघनादकी सारी माया वैसे ही काट फेंकी जैसे सूर्य, (अपनी किरणोंसे) घना अँधेरा दूर कर डालते हैं। फिर प्रभुने ज्यों ही वानर-भालुओंको कृपाकी दृष्टिसे देखा, त्यों ही वे इतने प्रबल हो उठे कि लाख रोकनेपर भी रणमें जानेसे किसीके रोके नहीं रुक पा रहे थे। (४) रामसे आज्ञा माँगकर अङ्गद आदि वानरोंके साथ हाथमें धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण भी क्रुद्ध होकर चल पड़े ॥ ५२ ॥ उनके नेत्र लाल हो चले थे, उनकी छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल थीं। उनका शरीर कुछ लाली लिए हुए हिमालयके समान (गोरा उजला) था। उधर रावणने भी अपने बड़े-बड़े योद्धा चढ़ा भेजे जो सैकड़ों प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर उनपर टूट पड़े। (१) इधर वानर भी पहाड़ोंकी चट्टानें लेकर, अपने नखोंसे और वृक्ष उखाड़-उखाड़कर 'रामकी जय' चिल्लाते हुए अपनी-अपनी जोड़वाले राक्षसोंसे जा भिड़े। दोनों दलोंमें अपनी-अपनी विजयकी होड़ लगी हुई थी। (२) विजयशील वानर उन राक्षसोंको घूँसे और लातें जमाते हुए, उन्हें दाँतोंसे काटते हुए उन्हें मार तो रहे ही थे, साथ ही डपटते भी जा रहे थे। नवों खंडों[2]में (चारों ओर) मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो, पकड़कर मार डालो, सिर तोड़ दो, पकड़कर भुजा उखाड़ लो' (३) बस यही कोलाहल सुनाई पड़ रहा था। प्रचण्ड रुण्ड (धड़) इधर-उधर दौड़ते फिर रहे थे। देवता आकाशमें चढ़े यह सब दृश्य देखते चले जा रहे थे। वे कभी तो (राक्षसोंकी माया देखकर) आश्चर्यसे

१. सकोप तत्र। २. नवखण्ड : पृथ्वीके नौ विभाग=भारत, इलावर्त्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश।

६३८-४० बभूवुर्व्यथिता कीशास्तदा मायान्निरीक्ष्यते। निमेषांतरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः ॥
एकेषुभिः प्रचिच्छेद मायां रामो महारथः। —हनुमन्नाटक
६४१- रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दितिजांशजाः। बभूवुर्बलिनो हृष्टा तदा पीतामृता इव ॥
६४२-४४ रामादाज्ञां समादाय ह्यात्तशस्त्रः स लक्ष्मणः। वालिपुत्रादिभिः सार्धं ययौ युद्धाजिरं द्रुतम् ॥
६४५- विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः। राक्षसाः प्रेषिता घोरा रावणेन महौजसा ॥
६४६-४७ ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः। अभ्यवर्षंत सहसा रावणिं शैलपादपैः ॥
६४८-४९ तदा वृक्षैः पर्वताग्रैर्वानराजितकाशिनः। निहत्य तानि रक्षांसि नखैर्दंतैश्च वेगिनः ॥
हन्यतां हन्यतामेव ध्रियतां ध्रियतामिमे। परस्परं भाषमाणा भुजोच्छिन्नाहिता रणे ॥
६५०-५१ एवं तुमुलशब्देन पूरितन्तु चतुर्दिशम्। प्रसन्नाश्च क्वचिद्देवाः क्वचिद्यान्ति च विस्मयम् ॥अ०रा०

दो०—रुधिर गाड़ भरि-भरि जम्यो, ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार-रासीन-पर, मृतक-धूम रह्यो छाइ॥ ५३॥
घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक-के तरु जैसे।
लछिमन-मेघनाद दोउ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा। (१)
एकहिं एक सकै नहिं जीती। निसिचर छल-बल करै अनीती।
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ-सारथी तुरंता। (२)
नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान-अवसेषा।
रावन-सुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ, हरिहि मम प्राना। (३)
६६० बीर-घातिनी छाँड़िसि साँगी। तेज-पुंज लछिमन-उर लागी।
मुरछा भई सक्ति-के लागे। तब चलि गयउ निकट, भय त्यागे। (४)
दो०—मेघनाद-सम कोटि सत, योधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठइ, चले खिसिआइ॥ ५४॥

चकित हो उठते और कभी (रामकी विजय होनेपर) प्रसन्न हो उठते (४) (इतने योद्धा वहाँ मारे गए कि) गढ़ोंमें लहू भर-भरकर जम गया। उनपर उड़ती हुई धूल ऐसी लगती थी मानो अङ्गारोंके ढेरोंपर मुरदोंका धुआँ आ छाया हो॥ ५३॥ लहूलुहान वीर योद्धा रणक्षेत्रमें खड़े ऐसे लग रहे थे जैसे पलाशके पेड़ फूले खड़े हों। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रुद्ध हो-होकर परस्पर भिड़े पड़ रहे थे। (१) (दोनों ऐसे जोड़के बलवान् थे कि) इनमें कोई एक दूसरेको जीत नहीं पा सक रहा था। पर राक्षस (मेघनाद) अपनी माया खेल-खेलकर कुछ न कुछ अटपट किए ही जा रहा था। यह देखकर तो लक्ष्मण क्रोधसे लाल हो उठे और उन्होंने तुरन्त उसका रथ चूर-चूर करके उसके सारथिको वहीं ढेर करके उस राक्षस मेघनादको मारते-मारते अधमरा कर डाला। रावणके पुत्र मेघनादने जब समझ लिया कि अब प्राण नहीं बच पावेंगे और ये मेरे प्राण लिए बिना न छोड़ेंगे (३) तब उसने आव देखा न ताव, झट वीर-घातिनी (बड़े वीरको भी मार सकनेवाली साँगी) शक्ति लक्ष्मणपर खींच मारी। वह आगकी लपट-जैसी शक्ति तड़ाकसे लक्ष्मणकी छातीमें आ लगी। शक्ति लगनी थी कि लक्ष्मण मूर्च्छित होकर जा पड़े। तब क्या था! मेघनाद निर्भय होकर वहाँ बढ़ पहुँचा जहाँ वे गिरे पड़े थे। (४) मेघनादके समान न जाने कितने योद्धा उन्हें उठाते-उठाते हार गए पर वे किसीके उठाए उठ न पाए। जगत्के आधार लक्ष्मण भला उनके उठाए क्या उठ पाते? जब वे किसी प्रकार उठाए न उठ पा सके तो वे सबके सब झेंपकर लजाकर वहाँसे चलते बने॥ ५४॥

६५२-५४ मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणितोक्षिता। शोभन्ते चाहता वीराः पुष्पिता इव किंशुकाः।
६५५-५६ स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज दैत्यात्मजः सप्तशरान्सुपुंखान्॥
तांल्लक्ष्मणः कांचनचित्रपुंखैश्चिच्छेद वाणैर्निशिताग्रधारैः॥
६५७-५८ स लक्ष्मणश्चापि शितान् शिताग्रान् महेन्द्रतुल्योऽशनिभीमवेगान्।
संधाय चापे ज्वलनप्रकाशान् ससर्ज हन्तुं खलमेघनादम्॥
६५९-६० चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलंतीं सौमित्रये राक्षसराजपुत्रः।
तामापतन्तीं भरतानुजोऽन्तर्जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः॥
तथापि सा तस्य विवेश शक्तिर्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम्।
६६१ सशक्तिमाञ्छक्तिसमाहतः सञ्जज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः।
तं विह्वलं तं सहसाभ्युपेत जग्राह राजात्मज आत्मदोर्भ्याम्॥
६६२-६३ हिमवान्मंदरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः। शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न शक्यो भरतानुजः॥
यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः संभवन्ति च। तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः॥
मायाशक्त्या भवेत्किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः। —अध्यात्मरामायण

सुनु गिरिजा ! क्रोधानल जासू । जारै भुवन चारि - दस आसू ।
सक संग्राम जीति को ताही । सेवहिँ सुर - नर अग - जग जाही । (१)
यह कौतूहल जानै सोई । जा - पर कृपा राम - कै होई ।
संध्या भइ फिरि दोउ वाहिनी । लगे सँभारन निज - निज अनी । (२)
व्यापक, ब्रह्म, अजित, भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ, बूझ करुनाकर ।
तब लगि लै आयउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना । (३)
६७० जामवंत कह बैद सुखेना । लंका रहै, को पठइय लेना ।
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता । आनेउ भवन - समेत तुरंता । (४)
दो०—राम - पदारविंद सिर , नायेउ आइ सुखेन ।
कहा नाम गिरि-औषधी , जाहु पवनसुत ! लेन ।। ५५ ।।
राम - चरन - सरसिज उर राखी । चला प्रभंजन-सुत बल भाखी ।
उहाँ दूत एँह मरम सुनावा । रावन कालनेमि - गृह आवा । (१)

(शिव कहते हैं—)'देखो पार्वती ! जिन शेषनागके क्रोधकी अग्नि चौदहों भुवनोंको क्षण-भरमें जलाकर राख कर डाल सकती है और देवता, मनुष्य तथा सभी चर और अचर जिनकी सेवा करते रहते हैं उन्हें भला संग्राममें कौन जीत पा सकता है ? (१) यह लीला तो वही जान पा सकता है जिसपर रामकी कृपा हो जाय ।' संध्या हो चुकनेपर दोनों ओरकी सेनाएँ अपने-अपने डेरोंपर लौट आईं । सब सेनापति घूम-घूमकर अपनी-अपनी सेना सँभालने लगे । (२) व्यापक, ब्रह्म, अजेय, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके ईश्वर और करुणाके भांडार राम अभी पूछ ही रहे थे कि 'लक्ष्मण कहाँ हैं ?' तबतक देखते क्या हैं कि हनुमान् उन्हें हाथोंमें उठाए लिए चले आ रहे हैं । छोटे भाईको इस दशामें देखकर तो राम रुआँसे हो चले । (३) जामवन्तने तत्काल सुझाया—'लंकामें सुषेण नामका बड़ा अच्छा वैद्य रहता है । उसे लिवा लानेको किसीको तुरन्त भेज देना चाहिए ।' (कहने भरकी देर थी) हनुमान् छोटा-सा रूप बनाकर झपटे वहाँ पहुँच गए और तुरन्त उसे घरके साथ उठाए लिए चले आए । (४) सुषेणने आते ही रामके चरण-कमलोंमें सिर नवाया और फिर उसने (लक्ष्मणको देखकर) उस पर्वतका नाम और औषधिकी पहचान समझा बताई जहाँ वह मिल सकती थी । पवन-पुत्र हनुमान्को आज्ञा हुई—'जाओ, जाकर तुरन्त औषधि उखाड़े लिए चले आओ' ।। ५५ ।।

रामके चरण-कमलका हृदयमें ध्यान करके पवनके पुत्र हनुमान् अपना बल बताकर झपटे उड़ चले । उधर एक भेदिएने तत्काल रावणको यह भेद जा बताया । सुनते ही रावण अपने मित्र कालनेमि (राक्षस)-के घर जा पहुँचा । (१) रावणने जब उसे सारा समाचार कह सुनाया तो

६६४-६५ हस्तैस्तोलयितुं शक्तो न बभूवातिविस्मितः । सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम् ।।
कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः । —अध्यात्मरामायण
६६६-६९ आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् । —वाल्मीकीयरामायण
रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि । मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह ।।
६७० ततः प्राह हनूमन्तं वत्स जीवय लक्ष्मणम् । —अध्यात्मरामायण
६७१ हनुमान् पर्यङ्कसुप्तमचिरेण तमानिनाय । —हनुमन्नाटक
६७२-७३ समेत्य राघवं नत्वा सगोत्रौपधिमादिशत् ।
६७४ तथेति राघवेणोक्तो जगामाशु महाकपिः ।
६७५ हनूमान् वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोदधिम् । एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन् ।।
रामेण प्रेषिता देव हनूमान् क्षीरसागरम् । गतो नेतुं लक्ष्मणस्य जीवनार्थं महौषधीः ।।अध्यात्म०

दसमुख कहा मरम तेहि सुना। पुनि-पुनि कालनेमि सिर धुना।
देखत तुम्हहिं नगर जेहि जारा। तासु पंथ को रोकन पारा[1]। (२)
भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ! मृषा जल्पना।
नीलकंज - तनु सुन्दर स्यामा। हृदय राखु लोचनाभिरामा। (३)
६८० मैं - तैं - मोर मूढ़ता[2] त्यागू। महा - मोह - निसि सूतत, जागू।
काल - व्याल - कर भच्छक जोई। सपनेहु समर कि जीतिय सोई। (४)
दो०—सुनि दसकंठ रिसान अति, तेहि मन कीन्ह विचार।
रामदूत - कर मरौं बरु, यह खल रत - मल-भार ॥ ५६ ॥
अस कहि चला रचिसि मग माया। सर, मंदिर, बर बाग बनाया।
मारुत - सुत देखा सुभ आस्रम। मुनिहिं बूझि जल पियउँ, जाइ स्रम। (१)
राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति - दूतहिं चह मोहा।

सुनते ही उसने अपना सिर पीट लिया। (उसने रावणसे कहा—) 'बताओ, जिसने तुम्हारे देखते-देखते तुम्हारा सारा नगर फूँक डाला, भला उसका मार्ग क्या किसीके रोके रुक सकता है? (२) इसलिये आप अपना भला चाहते हों तो रामकी शरणमें जा पहुँचिए और यह व्यर्थकी बकवाद अब छोड़िए। आप बैठकर नीले कमलके समान सुन्दर श्याम शरीरवाले, नयनाभिराम रामका हृदयमें ध्यान करनेमें मन जा लगाइए। (३) मैं, तू, मेरा-तेरा आदिका अज्ञान छोड़कर महा मोह (परम अज्ञानता)-रूपी रात्रिमें सोए पड़े रहनेके बदले आँखें खोलकर अब जाग उठिए। काल-रूपी सर्पको भी जो चबा जा सकता है (काल भी जिसकी मुट्ठीमें हैं) उसे क्या स्वप्नमें भी रणमें जीता जा सकता है?' (४) यह सुनना था कि रावणकी त्योरियाँ चढ़ गईं। यह देखकर उस (कालनेमि)-ने मनमें विचार किया कि यह दुष्ट तो बड़ा भारी पापी है। जब मरना ही है तो रामके दूतके हाथसे मरकर ही क्यों न सुगति पा ली जाय ॥ ५६ ॥ यह सोचकर वह वहाँसे चल दिया और जिधरसे हनुमान् चले जा रहे थे वहीं मार्गमें ही उसने माया रचकर एक सरोवर, सुन्दर मन्दिर और उद्यान बना खड़ा किया। हनुमान्ने सोचा—'यह आश्रम तो बड़ा बढ़िया है। चलें, मुनिसे आज्ञा लेकर जल पीकर थोड़ी थकावट ही मिटा लें। (१) वह राक्षस (कालनेमि) तो वहाँ मुनिका-सा कपट वेष बनाए जमा बैठा ही था। (उसकी ढिठाई तो देखिए कि) वह मायापति (राम) के दूतको ही चकमा देनेके फेरमें

१. रोकनहारा। २. अहंकार ममता मद।

६७६ श्रुत्वा तच्चारवचनं राजा चिन्तापरोऽभवत्। जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात् ॥
गृहागतं समालोक्य रावणं विस्मयान्वितः। ममापि कालवशतः कष्टमेतदुपस्थितम् ॥
शक्त्या हतो महावीरो लक्ष्मणः पतितो भुवि। तज्जीवयतुमानेतुमौषधीर्हनुमान् गतः ॥
मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम्। स्नात्वा प्रातः शुभजले कृत्वा संध्यादिका क्रिया ॥
तत् एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रहः। विसृज्य सर्वतः संगमितरान्विषयान्बहिः ॥
कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे।
६७७ भस्मसात्कृतवान्नगरं पश्यतो भवतः पुरः। तदीयां पदवीं रोद्धुं क्षमः को जगतीतले ॥
६७८-८१ भजस्व रामं परिपूर्णमेकं विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः। हृदा सदा भावितभावरूपमनामरूपं पुरुषं पुराणम्
६८२-८३ कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम्। जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत्।
६८३ कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रुधा। इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं कालनेमि महासुरः ॥
नोदितो रावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात्। स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ॥
तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः।
६८५ ततो गत्वा ददर्शाथहनूमानाश्रमं शुभम्। चिंतयामास मनसा श्रीमान् पवननन्दनः ॥
पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम्। —अध्यात्मरामायण

जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहइ राम-गुन-गाथा। (२)
होत महारन रावन - रामहिं। जितिहइँ राम न संसय या-महिं।
इहाँ भए मैं देखौं भाई। ज्ञान - दृष्टि - बल मोहिं अधिकाई। (३)
६९० माँगा जल, तेहि दीन्ह कमंडल। कह कपि, नहिं अघाउँ थोरे जल।
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ, ज्ञान जेहिं पावहु। (४)

दो०—सर पैठत कपि - पद गहा, मकरी अति अकुलान।
मारी, सो धरि दिव्य तनु, चली गगन, चढ़ि जान ॥ ५७ ॥

कपि ! तव दरस भइउँ निःपापा। मिटा तात ! मुनिवर - कर सापा।
मुनि न होइ ऍह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि ! मोरा। (१)
अस कहि गई अपछरा जवहीं। निसिचर-निकट गयउ कपि तबहीं।
कह कपि, मुनि ! गुर - दछिना लेहू। पाछे हमहिं मंत्र तुम देहू। (२)

था। पवन-पुत्र हनुमान्‌ने उसके पास पहुँचकर माथा जा नवाया। उस (राक्षस)-ने भी (झूठमूठ) वैठे-वैठे रामके गुणोंकी कथा छेड़ दी (२) (और कहने लगा—) 'देखो, रावण और राममें बड़ी घमासान लड़ाई छिड़ी हुई है। उस लड़ाईमें जीतेंगे तो राम ही, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देखो भाई ! मैं तो सब यहाँ वैठे-वैठे देखे जा रहा हूँ क्योंकि मुझे तो बड़ी भारी ज्ञान-दृष्टि मिली हुई है।' (३) हनुमान्‌ने उससे पीनेको जल माँगा तो उसने झट अपना कमण्डलु उठा बढ़ाया। पर हनुमान्‌ने कहा—'इतने थोड़े जलसे मेरी प्यास कहाँ बुझ पावेगी।' (तब उस कपट मुनिने कहा—) 'तो जाओ, उस सरोवरमें नहा-धोकर झटपट चले आओ तो मैं तुम्हें ऐसा मन्त्र दे दूँ कि तुम्हें भी (मेरे जैसा ही) ज्ञान हो जाय।' (४) वहाँसे चलकर ज्यों ही हनुमान् तालाबमें घुसे कि मगरीने हनुमान्‌का पैर धर पकड़ा (पर हनुमान्‌ने पैरसे उसे ऐसा दबाया कि उनके पैरोंकी चाँपसे) उसके जोड़-जोड़ टूट चले। हनुमान्‌ने उसे पैरोंसे ऐसा दबाया कि उसने पिसकर वहीं दम तोड़ दिया पर झट दिव्य शरीर धारण करके आकाशसे उतरे हुए विमानपर जा चढ़ी ॥ ५७ ॥ (मगरी कहने लगी—) 'देखो हनुमान् ! आपके दर्शनसे मेरे सारे पाप भी कट गए और मुनिका शाप भी मिट गया। (जिसने आपको यहाँ भेजा है) यह मुनि नहीं है। यह तो बड़ा भयंकर राक्षस है। यह सच्ची बात मेरी मान लो।' (१) यह कहकर ज्योंही वह अप्सरा (धान्यमाली) उड़कर चली त्योंही इधर हनुमान् उस राक्षसके पास जा धमके (और जाते ही बोले—) 'देखो मुनि ! अब आप पहले मुझसे गुरु-दक्षिणा ले लीजिए, फिर मुझे मंत्र देनेकी बात कीजिएगा।' (२) (यह कहकर)

६८६-८७ हनूमानभिवाद्याहं गौरवेण महासुरम्। तृषा मां बाधते विप्र उदकं कुत्र विद्यते ॥
६८८-८९ भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम्। उत्थितो लक्ष्मणः सर्वे वानरा रामवीक्षिताः ॥
६९० कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि। तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे ॥
न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम्।
६९१ निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वा गच्छ ममान्तिकम्। उपदेक्ष्यामि ते मंत्रः येन द्रक्ष्यसि चौषधीः ॥
६९२-९३ प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः। ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् ॥
अग्रसत्तं महावेगान् मारुतिं घोररूपिणी। ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा ॥
दारयामास हस्ताभ्यां वदनं च ममार ह।
६९४ ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपधरांगना। धान्यमालीति विख्याता हनूमंतमथाब्रवीत् ॥
त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्तास्मि कपीश्वर। शप्ताहं मुनिना पूर्वमप्सराः कारणान्तरे: ॥
६९५ आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः। मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः ॥
६९६ इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्यथाश्रमम्। —अध्यात्मरामायण

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा।
राम - राम कहि छाँड़ेसि प्राना। सुनि, मन हरषि चलेउ हनुमाना। (३)
७०० देखा सैल न औषध चीन्हाँ। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हाँ।
गहि गिरि, निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ। (४)

दो०—देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप स्रवन लगि - तानि ।। ५८ ।।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक।
सुनि प्रिय बचन, भरत तब धाए। कपि - समीप अति आतुर आए। (१)
बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिँ, बहु भाँति जगावा।
मुख मलीन, मन भए दुखारी। कहत बचन, भरि लोचन[1] बारी। (२)
जेहि बिधि, राम-बिमुख मोहिँ कीन्हाँ। तेहि पुनि यह दारुन दुख दीन्हाँ।
जौं मोरे मन, बच अरु काया। प्रीति राम - पद - कमल अमाया। (३)
७१० तौ कपि होउ बिगत स्रम - सूला। जौं मो-पर रघुपति अनुकूला।
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय - जयति कोसलाधीसा। (४)

हनुमान्‌ने अपनी पूँछमें उसका गला लपेटकर उसे धरतीपर दे पटका। मरते समय उसने अपना रूप खोल धरा और 'राम-राम' कहते हुए उसने प्राण छोड़ दिए। उसके मुँहसे 'रामनाम' सुनकर हनुमान् हर्षित होकर आगे बढ़ चले। (३) (निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचकर) हनुमान् उस पर्वतको तो पहचान गए, पर औषधि (बूटी) नहीं पहचान पा रहे थे। इसलिये हनुमान्‌ने वह पहाड़का पहाड़ ही उखाड़ लिया और पहाड़ उठाए उस रात्रिमें ही आकाश-मार्गसे अयोध्याके ऊपरसे होकर उड़ चले। (४) भरतने देखा कि कोई अत्यन्त विशाल वस्तु (समूची पहाड़ी) ऊपर उड़ती चली रही है तो उनका माथा ठनका—'हो न हो, यह अवश्य कोई राक्षस है।' फिर क्या था, उन्होंने कान-तक धनुष तानकर बिना फलका एक बाण खींच ही तो मारा ।। ५८ ।। बाण लगना था कि हनुमान् 'राम-राम ! हे रघुनाथ !' कहते हुए मूर्च्छित होकर धड़ामसे आ गिरे (और पर्वत दूर छिटककर जा गिरा)। 'राम-राम'का प्रिय शब्द सुनते ही भरत तुरन्त हनुमान्‌के पास दौड़े चले आए। (१) भरतने हनुमान्‌को मूर्च्छित देखकर उन्हें हृदयसे उठा लगाया। उन्होंने हनुमान्‌को चेतमें लानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वे चेतमें न आ पाए। (यह देखकर) भरत उदास भी हो चले और बहुत व्याकुल भी हो उठे। उनकी आँखोंमें आँसू छलक आए। वे बोले—(२) 'जिस विधाताने मुझे रामसे अलग किया उसीने आज यह बड़ा भारी संकट भी मुझपर ला बरसाया। यदि रामके चरण-कमलोंमें मेरी मनसा-वाचा-कर्मणा निश्छल प्रीति हो (३) और रामकी मुझपर कृपा बनी हुई हो तो इस वानर (हनुमान्)-की सारी थकावट और पीडा तत्काल दूर हो जाय।'

१. लोचन भरि।

६९७-९८ गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम्। विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमि महासुरः ।।
युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानतः। महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिनां रिपुः ।।
जघान मुष्टिना शीर्ष्णे भग्नमूर्धा ममार सः।
६९९-७०१ ततः क्षीरनिधिं गत्वा दृष्ट्वा द्रोणं महागिरिम्। अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः ।।अ०रा०
७०२-३ स ज्वलदनलनिभं शैलमादाय वीरः प्राप्तस्तत्राञ्जनेयः। सकिमिति भरतस्तं शरेण जघान।।
७०४ पुंखावशेषभरतेषुललाटपट्टो हा राम लक्ष्मण कुतोहमिति ब्रुवाणः ।।
संमूर्च्छितो भुवि पपात गिरिं दधानो लांगूलशेखररुहेण सकेसरेण ।। —हनुमन्नाटक

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तनु, लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघुकुल-तिलक ॥ ५९ ॥

तात ! कुसल कहु सुख - निधान - की । सहित अनुज अरु मातु जानकी ।
कपि सब चरित समास बखाने । भए दुखी, मन - महँ पछिताने । (१)
अहह दैव ! मैं कत जग जायउँ । प्रभु-के एकहु काज न आयउँ ।
जानि कुअवसर मन धरि धीरा । पुनि, कपि - सन बोले बलबीरा । (२)
तात ! गहरु होइहि तोहिं जाता । काज नसाइहि होत प्रभाता ।
चढ़ु मम सायक सैल - समेता । पठवउँ तोहिं जहँ कृपानिकेता । (३)
७२० सुनि, कपि-मन उपजा अभिमाना । मोरे भार चलिहि किमि बाना ।
राम-प्रभाव बिचारि बहोरी । बंदि चरन, कह कपि कर जोरी । (४)

दो०—तव प्रताप उर राखि प्रभु, जइहौं नाथ ! तुरंत ।
अस कहि आयसु पाइ पद, बंदि चलेउ हनुमंत ॥ ६० क ॥
भरत-बाहुबल, सील, गुन, प्रभु - पद - प्रीति अपार ।
मन - महँ जात सराहत, पुनि - पुनि, पवनकुमार ॥ ६० ख ॥

ये शब्द सुनते ही हनुमान् 'कोशलाधीशकी जय-जय' कहते हुए उठ बैठे। (४) भरतका शरीर पुलकित हो उठा । उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर हनुमान्को हृदयसे उठा लगाया । रघुकुलके तिलक रामका स्मरण करते हुए उनके हृदयमें रामकी प्रीति समाई नहीं पड़ रही थी ॥ ५९ ॥ (भरत कहने लगे—) 'बताओ भाई ! भाई लक्ष्मण, माता जानकी और सुख-निधान राम कुशलसे तो हैं ।' यह सुनकर हनुमान्ने सारी कथा संक्षेपमें उन्हें कह सुनाई । यह सारा समाचार जानकर भरत बड़े व्याकुल हो उठे और मनमें पछताने लगे—। (१) 'हा दैव ! संसारमें मेरा जन्म ही क्यों हुआ कि मैं प्रभु रामके किसी भी काम न आ सका ।' पर संकटका अवसर समझकर मनमें धैर्य धारण करके बलवीर भरतने हनुमान्से कहा (२)—'देखो भाई ! वहाँ पहुँचनेमें तो अब बहुत विलम्ब हो जायगा और सवेरा होते ही सारा काम बिगड़ जायगा । इसलिये तुम यह पर्वत लिए-दिए मेरे बाणपर चढ़ जाओ । मैं तुम्हें सीधे वहीं कृपाके धाम रामके पास पहुँचाए देता हूँ ।' (३) यह सुनकर हनुमान्के मनमें अभिमान जाग उठा कि भला मेरा भार लेकर यह बाण कैसे चल पावेगा । पर फिर रामके प्रभावका विचार करके (कि रामके प्रभावसे भरतका बाण भी मुझे ले जा सकता है और मैं स्वयं भी चला जा सकता हूँ) वे (हनुमान्) भरतके चरणोंकी वंदना करके हाथ जोड़कर उनसे बोले—(४) 'प्रभो ! आपका प्रताप हृदयमें बसाकर मैं अभी बातकी बातमें वहाँ पहुँचा जाता हूँ।' यह कहकर, भरतसे आज्ञा लेकर और भरतके चरणोंमें प्रणाम करके हनुमान् वहाँसे चल पड़े ॥ ६० क ॥ भरतके बाहु-बल, शील, स्वभाव, गुण और प्रभु रामके चरणोंमें उनकी अपार प्रीति देखकर हनुमान् मन ही मन उनकी बार-बार सराहना करते हुए उड़ चले ॥ ६० ख ॥ उधर लक्ष्मणको देख-देखकर राम (बहुत दुखी

७०५-१३ सर्वे निशम्य सह लक्ष्मणरामनाम तत्रोपगत्य हनुमत्पदयोर्निपेतुः ।
वृत्तं च तस्य वचनादपनीय शल्यं मूर्च्छां जहार स मुनिर्गिरिजौषधीभिः ॥ —हनुमन्नाटक

७१४-१५ ततस्तं मारुतिर्वृत्तं श्रावयामास राघवम् । —आनन्दरामायण

७१६-१९ श्रुत्वेति तस्य वचनं भरतः शराग्रे साद्रिं कपिं समधिरोप्य गुणे नियोज्य ॥
मोक्तुं दधे झटिति कुण्डलिनं चकार तुष्टाव तं परमविस्मयमागतं सः ॥

७२०-२४ उत्तीर्य बाणात्कुशलं गृहीत्वा संपूज्य बाहू भरतस्य वाग्भिः ।
मनो दरिद्रस्य यथा दिगन्तं तथा हनूमाञ्छिबिरं जगाम ॥ —हनुमन्नाटक

उहाँ राम, लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज-अनुसारी।
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ। (१)
सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ। बंधु ! सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि, तजेउ पितु-माता। सहेहु बिपिन हिम-आतप-बाता। (२)
७३० सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न, सुनि मम बच-बिकलाई।
जौं जनतेउँ वन बंधु-बिछोहू। पिता-बचन मनतेउँ नहिं ओहू। (३)
सुत-बित-नारि-भवन-परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता। (४)
जथा पंख-बिनु खग अति दीना। मनि-बिनु फनि, करिबर कर-हीना।
अस मम जिवन बंधु बिनु-तोहीं। जौं जड़ दैव जियावै मोहीं। (५)
जइहौं अवध कवन मुँह लाई। नारि-हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
बरु अपजस सहतेउँ जग-माहीं। नारि बिसेष हानि-छति नाहीं[1]। (६)
अब अपलोक सोक सुत! तोरा। सहिहि कठोर निठुर उर मोरा[2]।
निज जननी-के एक कुमारा। तात ! तासु तुम प्रान-अधारा। (७)

होकर) साधारण मनुष्योंकी भाँति बिलखे पड़ रहे थे—'आधी रात बीत चली पर हनुमान् अभी तक नहीं आ पाए।' यह कहकर रामने अपने भाई (लक्ष्मण)-को हृदयसे उठा लगाया। (१) (और फिर बिलख-बिलखकर कहने लगे—) 'भाई ! तुमने मुझे कभी किसी भी प्रकार दुखी नहीं होने दिया। तुम्हारा स्वभाव सदा बड़ा प्रेमसे भरा रहा है। मेरे लिये तुम अपने माता-पिताको भी छोड़ आए। मेरे साथ तुम वनमें जाड़ा, गर्मी, आँधी-पानी सब हँस-हँसकर झेलते रहे। (२) बताओ भाई लक्ष्मण ! तुम्हारा वह प्रेम अब कहाँ चला गया ? मेरे व्याकुल वचन सुनकर भी तुम उठ क्यों नहीं खड़े हो रहे हो ? आह ! यदि मैं जानता कि वनमें पहुँचकर भाईसे इस प्रकार बिछोह हो जायगा तो पिताका वह वचन भी (जिसका पालन करके मैं वन आया था) कभी न मानता। (व्याकुल मनुष्यके समान आचरण करते हुए रामने यह बात कह डाली क्योंकि वह नर-लीला कर रहे थे) (३) पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार तो जगत्में बार-बार होते रहते हैं, पर सगा भाई जगत्में बार-बार नहीं मिल पाता। (४) जैसे पंखके बिना पक्षी, मणिके बिना सर्प और सूँड़के बिना हाथीका जीवन दुःखमय हो जाता है वैसे ही यदि मूर्ख दैवने मुझे इतनेपर भी जिलाए रक्खा तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी नरक हो रहेगा, (५) स्त्रीके पीछे प्यारा भाई खोकर मैं कौन-सा मुँह लेकर अयोध्या लौटूँगा। मैं संसारमें यह अपयश भले ही सह लेता (कि वनमें स्त्री खो आए हैं) क्योंकि स्त्रीकी हानि कोई बहुत बड़ी हानि नहीं होती। (६) पर अब तो मेरे निष्ठुर और कठोर हृदयको यह (स्त्री खोनेका) अपयश और तुम्हारा शोक दोनों साथ-साथ सहने पड़ेंगे। देखो भाई ! अपनी माताके तुम्हीं अकेले ऐसी (अद्वितीय) पुत्र थे जो उसके प्राणोंके आधार थे (माता सुमित्रा तुम्हें मेरा भक्त समझकर तुम्हें ही अपना वास्तविक

१. नारि हानि बिसेष छति नाहीं। २ सहिहि निठुर कठोर उर मोरा।

७२६-२७ रामोपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि। मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह ॥
भुक्ते मयि प्रथममस्ति फलानि वत्स सुप्ते करोषि शयनं मयि जीवतित्वम् ॥
प्राणाञ्जहासि सुरलोकसुखाय किं वा सापत्नभावमहह प्रकटीकरोषि ॥ —अध्या०

७३२-३३ शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता। न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः सांपरायिकः ॥
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः। तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥—वा०रा०

७४० सौंपेसि मोहिं तुम्हहिं गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी।
उतर काह देहौं तेहिं जाई। उठि, किन मोहिं सिखावहु भाई। (८)
बहु बिधि सोचत सोच-बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव-दल-लोचन।
उमा! अखंड एक - रघुराई[1]। नर-गति भगत - कृपाल देखाई। (९)
सो०—प्रभु-प्रलाप सुनि कान, बिकल भए बानर-निकर।
आइ गएउ हनुमान, जिमि करुना-महँ बीर रस।। ६१।।
हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना।
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई। (१)
हृदय लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु-कपि-व्राता।
कपि, पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लै आवा। (२)

पुत्र और प्राणका आधार समझती थी)।[2] (७) यही समझकर उन्होंने मेरे हाथ तुम्हें सौंप दिया था कि तुम्हारे साथ रहनेसे मुझे कोई असुविधा न होगी और तुम रहोगे तो मुझे सुख ही सुख मिलेगा। वे जब पूछेंगी कि (जिस लक्ष्मणको मैंने तुम्हारे हाथ यहकर सौंपा था कि रामको ही अब पिता मानना उस) लक्ष्मणको कहाँ छोड़ आए, तब भाई बताओ! मैं वहाँ उन्हें क्या उत्तर दूँगा? तुम उठकर बतलाते क्यों नहीं!' (८) सब चिन्ताओंको दूर करनेवाले रामके मनमें इसी प्रकारकी न जाने कितनी चिन्ताएँ उठती चली जा रही थीं और उनके कमलके समान नेत्रोंसे झरझर आँसू बहे चले जा रहे थे। (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा! राम तो अपने समान अकेले (अद्वितीय) और अखण्ड (पूर्ण) हैं फिर भी भक्तोंपर कृपा करनेवाले राम इस समय सामान्य मनुष्यके समान व्यवहार किए जा रहे थे।' (९)

प्रभु रामकी ऐसी करुण बातें सुन-सुनकर सब वानर भी व्याकुल हो चले थे कि इतनेमें ही हनुमान् झट वहाँ वैसे ही आ पहुँचे जैसे करुण रस (शोक)-के प्रसंगमें वीर रसकी (उत्साहसे भरी) कथा आ जाय।। ६१।। हनुमान्को देखते ही राम हर्षसे उछलकर उठ खड़े हुए और उन्होंने बढ़कर हनुमान्को गले चिपका लिया। परम सुजान प्रभु राम उस समय हनुमान्के बहुत कृतज्ञ हो चले थे। वैद्य सुषेणने तुरन्त ऐसी औषधि बनाकर पिलाई कि लक्ष्मण तत्काल हँसते हुए उठ बैठे। (१) उनका उठकर बैठना था कि प्रभु रामने भाई लक्ष्मणको उठाकर हृदयसे लगा लिया। फिर क्या था! वहाँ जितने भालू और वानर थे वे भी सब हर्षसे नाच उठे। हनुमान् जैसे वैद्यको

१. उमा एक अखंड रघुराई। २. मैं अपनी माताका इकलौता पुत्र हूँ और उस इकलौते पुत्रके प्राणोंके आधार (दुख-सुखमें साथ देनेवाले) तुम थे। तुम्हीं मेरे प्राणोंके आधार थे, तुम न रहोगे तो मेरा जीवित रहना संभव नहीं है। ऐसी अवस्थामें मेरी माता भी निपूती हो जायगी।

७३९-४१ कथमंत्रां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम्। विवित्सां वेपमानां च वेपंतीं कुररीमिव।।
कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना। कथं वक्ष्याम्यहं त्वंबां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम्।। वा०रा०
७४२-४३ सर्वेश्वरः सर्वमयो विधाता मायामनुष्यत्वविडंबनेन।
सदा चिदानन्दमयोपि रामो युद्धादिलीलां वितनोति मायाम्।। —अध्यात्मरामायण
७४४-४५ शुश्रुवुस्तस्य वै सर्वे वानराः परिदेवितुम्। वर्तयांचक्रिरेऽश्रूणि नेत्रैः कृष्णेतरेक्षणाः।।
जित्वा गंधर्वकोटिं झटिति ततमणिज्वालमादाय शैलम्।
प्राप्तः श्रीमान् हनूमान् पुनरपि तरसानन्दितस्तत्पुरस्तात्।। —वाल्मीकीयरामायण
एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे। प्रत्यक्षे क्रियमाणस्य शेषस्य ऋणिनो वयम्।। ह०ना०
७४७-४८ ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः। लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः।।
विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात्। सस्वजे गाढमालिंग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः।।
तमुत्थितं तु हरयो भूतलात् प्रेक्ष्य लक्ष्मणम्। साधु साध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन्।—वा.रा.
७४९ नीत्वा लंकां सुषेणं पुनरनिलसुतः प्रार्थयामास रामम्। —हनुमन्नाटक

७५० ऐह वृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति विषाद पुनि-पुनि सिर धुनेऊ।
ब्याकुल कुंभकरन - पहँ आवा। विविध जतन करि ताहि जगावा। (३)
जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा।
कुंभकरन बूझा, कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई। (४)
कथा कही सब तेंहि अभिमानी। जेंहि प्रकार सीता हरि आनी।
तात! कपिन सब निसिचर मारे। महा - महा जोधा संहारे। (५)
दुर्मुख, सुर - रिपु, मनुज - अहारी। भट अतिकाय, अकंपन भारी।
अपर महोदर - आदिक वीरा। परे समर - महि सब रनधीरा। (६)

दो०—सुनि दसकंधर - बचन तब, कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब, सठ! चाहत कल्यान॥ ६२॥

७६० भल न कीन्ह तैं निसिचर-नाहा। अब मोहिं आइ जगाऐहि काहा।
अजहूँ तात! त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। (१)
हैं दससीस! मनुज रघुनायक। जाके हनूमान - से पायक।
अहह बंधु! तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहिं न सुनाऐहि आई। (२)

(भवन-सहित) लाए थे वैसे ही उन्होंने उसे वहाँ ले जा पहुँचाया। (२) जब यह समाचार रावणके कानोंमें पड़ा तो उसने बड़े दुःखके साथ चटाचट अपना सिर पीट लिया। वह घबराया हुआ तत्काल पहुँच गया कुम्भकर्णके पास और बड़ी कठिनाईसे उसे जगा पाया। (३) उठकर बैठा हुआ कुम्भकर्ण ऐसा दिखाई दे रहा था मानो साक्षात् काल ही शरीर धारण किए आ बैठा हो। कुम्भकर्णने (रावणसे) पूछा—'क्यों भाई! तुम्हारे मुँह इतने उतरे हुए क्यों हैं?' (४) (उत्तरमें) उस अभिमानी (रावण)-ने पहले तो वह सारी कथा कह सुनाई कि किस प्रकार मैं सीताको हर लाया, (फिर बताया) कि किस प्रकार वानरोंने सब राक्षसोंको भी मार डाला और बड़े-बड़े योद्धाओंका भी संहार कर डाला, (५) दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय आदि जितने बड़े-बड़े योद्धा तथा अकम्पन और महोदर आदि जितने अन्य रणधीर वीर थे सबके सब लड़ाईमें खेत आए। (६) रावणकी बात सुनकर कुम्भकर्ण बड़ा दुखी हुआ (और बोला)—'अरे शठ! जगत्की माता जानकीको हर लाकर भी तू अपने कल्याणकी आशा लगाए बैठा है? ॥ ६२ ॥ अरे राक्षसोंके राजा! जब यह तुमने पहले ही अच्छा काम नहीं किया तब आकर मुझे क्या उठा जगाया? देखो भाई! अब भी (कुछ बिगड़ा नहीं है) तुम अभिमान छोड़कर रामकी सेवामें पहुँच जाओ तो अब भी तुम्हारा कल्याण हो सकता है। (१) देखो रावण! हनुमान्के समान बलवान् जिनके सेवक हों, उन रामको भी क्या तुम सामान्य मनुष्य समझे बैठे हो? ओहो भाई! यह तुमने बहुत बुरा किया कि यह सब समाचार तुम मुझे पहले ही आकर नहीं सुना

७५० एतच्चाकर्ण्य शिरसि ताडनमकार्षीद्रावणः। —हनुमन्नाटक
७५१ तमाह रावणो राजा भ्रातरं दीनया गिरा। कुंभकर्ण निबोध त्वं महत्कष्टमुपस्थितम्॥ अध्या०
७५२ किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन् प्रबोधितः। —वाल्मीकीयरामायण
७५३-५४ आदितो यद्यथावृत्तं जानकीहरणादिकम्। रावणेन तथा सर्वं तत्पुरस्तान्निवेदितम्॥
७५५-५७ ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि। वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथंचन॥
७५८-५९ पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो रायणः परः। सीता च योगमायेति बोधितोपि न बुध्यसे॥
७६०-६२ त्यज वैरं भजस्वाद्य मायायानुषविग्रहम्। रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः॥ अध्या०

कीन्हेउ प्रभु - बिरोध तेहि देव-क । सिव - बिरंचि सुर जाके - सेवक ।
७६५ नारद मुनि मोहिं ग्यान जो कहा । कहतेउँ तोहिं, समय निबहा । (३)
अब भरि अंक भेंटु मोहिं भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ।
स्याम गात, सरसीरुह - लोचन । देखौं जाइ ताप - त्रय - मोचन । (४)
दो०—राम - रूप - गुन सुमिरत , मगन भयउ छन एक ।
रावन माँगेउ कोटि घट , मद, अरु महिष अनेक ।। ६३ ।।
७७० महिष खाइ, करि मदिरा पाना । गर्जा बज्राघात - समाना ।
कुंभकरन दुर्मद, रन - रंगा । चला दुर्ग तजि, सेन न संगा । (१)
देखि, बिभीषन आगे आयउ । परेउ चरन निज नाम सुनायउ ।
अनुज उठाइ, हृदय तेहि लायो । रघुपति-भगत[1] जानि मन भायो । (२)
तात ! लात रावन मोहिं मारा । कहत परम हित मंत्र बिचारा ।

गए । (२) तुम तो उस परम शक्तिशाली देवतासे वैर ठान बैठे हो जिसकी सेवामें शिव, ब्रह्मा आदि सब देवता निरन्तर लगे रहते हैं । नारद मुनिने जो मुझे बताया था वह मैं तुम्हें सब कह सुनाता, पर अब तो वह समय ही हाथसे निकल गया (बहुत देर हो गई) । (३) इसलिये आ भाई ! आ । मेरे गलेसे लिपटकर भेंट कर ले, जिससे मैं जाकर (रामके दर्शनसे) अपने नेत्र सफल कर सकूँ और उन श्याम शरीरवाले, कमलके समान नेत्रोंवाले और तीनों ताप दूर कर डालनेवाले रामका दर्शन कर पा सकूँ ।' (४) (यह कहकर) क्षण-भरके लिये रामके रूप और गुणोंका स्मरण करके वह (कुम्भकर्ण) प्रेम-मग्न हो उठा । (इसी बीच) रावणने उसके लिये मदिरा-भरे बहुतसे घड़े और अनेक भैंसे भेज मँगवाए । ।। ६३ ।। (सब कुछ आ जानेपर) वह भैंसे खाकर और मदिरा पीकर ऐसे गरजा जैसे कहीं बिजली तड़पकर टूट गिरी हो । मदिराके मदमें चूर, रणकी उमंगमें मस्ताया हुआ वह कुम्भकर्ण अकेला दुर्गसे बाहर निकल चला और उसने साथमें सेना-तक न ली । (१) उसे आते देखकर विभीषणने आगे बढ़कर उस (कुंभकर्ण)-के चरणोंमें प्रणाम करके अपना नाम कह बताया । कुंभकर्णने अपने छोटे भाईको झट हृदयसे उठा लगाया । उसे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि विभीषण अब रामकी शरणमें जा पहुँचा है । (२) (विभीषण बताने लगा) 'भाई ! मैंने जब रावणको बहुत समझाया और बड़ी नीतिकी बातें बताई तो रावणने उलटे मुझे लात उठा मारी । इससे मेरा जी ऐसा खट्टा हुआ (मुझे ऐसी ग्लानि हुई) कि मैं वहाँसे उठा सीधा

१. भक्त ।

७६३-६४ सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका । पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत् ।
७६५ इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मंत्रणे स्थितः । तत्रोत्पन्नं श्रुतं तं ते वक्ष्यामि शृणु प्रेमतः ।।
युवाभ्यां पीडितो देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः । ऊचुस्तदेव देवेशं स्तुत्वा भक्त्या समाहिताः ।।
जहि रावणमक्षोभ्यं देव त्रैलोक्यकंटकम् ।
तथेत्याह महाविष्णुः सत्यसंकल्प ईश्वरः । स हनिष्यति वः सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनिः ।।
७६६-६७ प्रहृष्टस्त्वभवच्चित्ते द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् । दर्शनान्नयने मे वै सुफले च भविष्यतः ।। अध्यात्म०
७६८-६९ मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च संचयान् । पुरस्तात् कुंभकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः ।। वा०रा०
७७०-७२ मेदः कुम्भांश्च मद्यांश्च पपौ शक्ररिपुस्तदा । ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् ।।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुंभकर्णो महाबलः । कुंभकर्णं तत्र दृष्ट्वा प्रणनाम विभीषणः ।।—आन०रा०
७७३ तं दृष्ट्वा कुंभकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम् । समालिंग्य च वत्स त्वं जोव रामपदाश्रयः ।। अध्यात्म०

तेहि गलानि रघुपति-पहँ आयउँ । देखि दीन प्रभु-के मन भायउँ । (३)
सुनु सुत ! भएउ कालबस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ।
धन्य-धन्य तैं ! धन्य बिभीषन । भएउ तात ! निसिचर-कुल-भूषन । (४)
बंधु ! बंस तैं[1] कीन्ह उजागर । भजेहु राम, सोभा-सुख-सागर । (४।)
दो०—बचन-कर्म-मन कपट तजि, भजेहु राम रनधीर ।
७८० जाहु, न निज-पर सूझ मोहिं, भयउँ काल-बस बीर ॥ ६४ ॥
बंधु-बचन सुनि, चला[2] बिभीषन । आयउ जहँ त्रैलोक-बिभूषन ।
नाथ ! भूधराकार - सरीरा । कुंभकरन आवत रनधीरा । (१)
एतना कपिन सुना जब काना । किलकिलाइ धाए बलवाना ।
लिए उठाइ[3] बिटप अरु भूधर । कटकटाइ डारहिं ता ऊपर । (२)
कोटि-कोटि गिरि-सिखर प्रहारा । करहिं भालु कपि एक-एक बारा ।
मुर्‌यौ न मन, तन टर्‌यौ न टार्‌यो । जिमि गज अर्क-फलनि-को मार्‌यो । (३)
तब मारुत-सुत मुठिका हन्यौ । पर्‌यौ धरनि, ब्याकुल सिर धुन्यौ ।

रामके पास चला आया । और रामको भी देखिए कि ज्योंही उन्होंने देखा कि मैं बड़ा दुखी (दीन) हूँ तो रामने मुझे झट अपनालिया ।' (३) (यह सुनकर कुंभकर्ण कहने लगा—) 'देखो भाई ! रावण तो अब कालके हाथ (-की कठपुतली बना) नाच रहा है, तब भला वह अच्छी सिखावन कैसे मान सकता था ? देखो विभीषण ! तुम धन्य हो, बहुत धन्य हो, बहुत ही धन्य हो ! तुम तो राक्षसके कुलके भूषण होकर जनमे हो । (४) सचमुच भाई ! तुमने हमारा वंश उज्ज्वल कर डाला कि तुम शोभा और सुखके निधान रामकी सेवामें जा पहुँचे । (४।) अब तुम निश्छल होकर मन, वचन और कर्मसे निरन्तर रणधीर रामकी सेवा करते रहना । अब जाओ वीर ! मेरा भी काल आ पहुँचा है । इसलिये इस समय मुझे अपना-पराया कुछ नहीं सूझ रहा है' ॥ ६४ ॥ भाईके वचन सुनकर विभीषण तीनों लोकोंके विभूषण रामके पास लौट आए । (उसने आते ही कहा—) 'नाथ ! पर्वतके समान विशाल शरीरवाला, रणधीर कुंभकर्ण सामने बढ़ा चला आ रहा है ।' (१) जब बलवान् वानरोंने यह सुना तो वे झट किलकिलाकर उसपर टूट पड़े । उन्होंने पहाड़ोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें उखाड़-उखाड़कर और वृक्ष उपाड़-उपाड़कर कटकटाते हुए उसपर धुआँधार ला बरसाए । (२) एक-एक बार अनेक रीछ और वानर उसे पहाड़ोंकी चट्टानें खींच-खींचकर मारते जा रहे थे, परन्तु इससे न तो उसका साहस ही टूटता और न शरीरपर खरोंच-तक आती थी जैसे मदारके फल खींच मारनेसे हाथीको कुछ नहीं लगता जान पड़ता । (३) पवन-पुत्र हनुमान्ने बढ़कर उसे ऐसा कसकर घूँसा जा जमाया कि वह घुमटी खाकर सिर धुनता हुआ धम्मसे धरतीपर आ भहराया । फिर उठकर उसने

१. तुम्ह । २ फिरा । ३. उपारि ।

७७४-७५ विभीषणोहं भ्रातर्मे दयां कुरु महामते । रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः ॥ धिक्त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः ॥
७७६-७८ कुलं संरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च । महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम् ॥
७७९-८१ तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वाऽऽत्मानं सदा स्मर । गच्छ तात ममेदानीं दृश्यते न च किंचन ॥ मदीयो वा परो वापि मदमत्तविलोचनः । रामपार्श्वमुपागत्य चिंतापर उपस्थितः ॥ अध्यात्म०
७८२ सैष विश्रवसः पुत्रः कुंभकर्णः प्रतापवान् । आयाति पर्वताकारो योद्धुकामो महाबलः ॥
७८३ एतच्छ्रुत्वा च ते सर्वे विद्रुता वानरास्तदा ।
७८४-८६ वृक्षान्गृहीत्वा हरयः संप्रतस्थू रणाजिरे । निर्जघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुंजराः ॥ प्रांशुर्भिगिरिशृंगैश्च शिलाभिश्च महाबलः । पादपैः पुष्पिताग्रैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥वा०रा०

पुनि उठि तेहिँ मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता। (४)
पुनि नल-नीलहिँ अवनि पछारेसि। जहँ-तहँ पटकि-पटकि भट डारेसि।
७९० चली बलीमुख-सेन पराई। अति-भय त्रसित न कोउ समुहाई। (५)
दो०—अंगदादि कपि मुरछित, करि, समेत-सुग्रीव।
काँख दाबि कपि-राज-कहँ, चला अमित बलसींव ॥ ६५ ॥
उमा! करत रघुपति नर-लीला। खेल गरुड़ जिमि अहिगन-मीला।
भृकुटि-भंग जो कालहिँ खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई। (१)
जग-पावनि कीरति बिस्तरिहइँ। गाइ-गाइ भव-निधि नर तरिहइ।
मुरछा गइ मारुत-सुत जागा। सुग्रीवहिँ तब खोजन लागा। (२)
सुग्रीवहुँ-कै मुरछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक-प्रतीती।
काटेसि दसन नासिका-काना। गरजि अकास चलेउ, तेहि जाना। (३)
गहेउ चरन, गहि भूमि पछारा। अति लाघव उठि, पुनि तेहि मारा।

हनुमान्‌को जो उलटकर तानकर घूँसा लगाया तो वे भी तुरन्त घुमटी खाकर धरतीपर जा गिरे। (४) फिर वहाँसे आगे बढ़कर उसने नल और नीलको धरतीपर पछाड़ गिराया और अन्य जो भी योद्धा जहाँ-जहाँ मिलते गए वहाँ-वहाँ उन्हें पटकता-पछाड़ता बढ़ता चला गया। यह देखकर तो वानरोंकी सेनामें भगदड़ मच गई। सब ऐसे थर्रा उठे कि डरके मारे कोई उसके सामने-तक आनेका नाम नहीं ले रहा था। (५) सुग्रीवके साथ-साथ अंगद आदि (वानरों)-को मूर्च्छित करके वह अत्यन्त बलवान् कुंभकर्ण कपिराज सुग्रीवको अपनी काँखमें दबाए आगे बढ़ चला ॥ ६५ ॥

(शिव कहते हैं—) 'देखो पार्वती! राम भी उस समय बैठे वैसे ही मनुष्योंके समान आचरण किए जा रहे थे जैसे सर्पोंके बीच बैठा गरुड़ उनसे खेल कर रहा हो। भौंह चलाने भरसे जो कालको भी निगल डाल सकता हो, उसके लिये ऐसी लड़ाईकी बिसात ही क्या थी? (१) (भगवान् तो इसलिये लड़ रहे थे कि इसके द्वारा) वे जगत्‌को पवित्र कर डालनेवाली वह कीर्ति स्थापित करना चाहते थे जिसका वर्णन कर-करके मनुष्य भवसागरसे पार होते चले जायँ।'

इधर जब पवनपुत्र हनुमान्‌की मूर्च्छा हटी और वे चेतमें आए तब वे सुग्रीवको इधर-उधर खोजने लगे। (२) उधर (कुंभकर्णकी काँखमें दबे हुए) सुग्रीवकी भी मूर्च्छा टूटो तो वे धीरेसे मृतकके समान नीचे खिसक गिरे। (कुंभकर्णने समझा कि यह स्वर्ग सिधार गया)। पर जब सुग्रीवने झट (बड़ी फुर्तीसे उचककर अपने दाँतोंसे) उसके नाक-कान कुतर लिए और गरजकर वे ऊपर आकाशमें उछल गए तब कुंभकर्णकी समझमें आ पाया (कि सुग्रीव मरा नहीं, अभी जीता है)। (३) फिर क्या था! उसने भी झट सुग्रीवकी टँगड़ी पकड़कर उसे भी धरतीपर धर पछाड़ा। (पर सुग्रीव भी कम नहीं थे)। वे बड़ी फुर्तीसे उठे और उठकर कुंभकर्णको कसकर एक घूँसा जा जड़ा और फिर प्रभु रामके

७८८ आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना। तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि ॥
समुत्थाय ततस्तेन हनूमानपि हिंसितः। सोऽप्याघूर्णितो वीरः स्रस्तः क्षोणितले द्रुतम् ॥अध्यात्म०
७८९ नलनीलावुपागत्यमर्दयामास तौ पुनः।
७९० प्लवंगमास्तु व्यथितो भयार्त्ताः प्रदुद्रुवुः संयति कुंभकर्णात्। —वाल्मीकीरामायण
७९१-९२ त्रिशूलेनाथ तं भित्वाऽऽनयामास पुरीं मुदा। —आनन्दरामायण
७९३-९४ इदं चरित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम्। भवाब्धेस्तारणार्थं तु ज्ञानिभिर्मुनिभिः स्मृतम्॥
७९५-९६ हनूमांश्चिंतयामास मतिमान्मारुतात्मजः। एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥वा०रा०
७९७-९८ मार्गे स्वस्थः स सुग्रीवः कर्णौ घ्राणं रिपोर्नखैः। छित्वा ययौ राघवेन्द्रं सोऽपि पौरैर्विलज्जितः॥आ.रा.

८०० पुनि आयउ प्रभु - पहँ बलवाना। जयति-जयति-जय कृपानिधाना। (४)
नाक - कान काटे जिय जानी। फिरा क्रोध करि, भइ मन ग्लानी।
सहज भीम, पुनि बिनु - स्रुति - नासा। देखत, कपिदल उपजी त्रासा। (५)
दो०—जय-जय-जय रघुबंस - मनि, धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु - पर, छाँड़ेन्हि गिरि-तरु - जूह॥ ६६॥
कुंभकरन रन - रंग - बिरुद्धा। सनमुख चला, काल जनु क्रुद्धा।
कोटि - कोटि कपि धरि - धरि खाई। जनु टिड्डी गिरि-गुहा समाई। (१)
गहि, सरीर - सन कोटिन्ह मर्दा[1]। कोटिन्ह मीँजि मिलव महि गर्दा।
मुख - नासा - स्रवनन्हि - की बाटा। निसरि पराहिँ भालु-कपि-ठाटा। (२)
रन - मदमत्त निसाचर दर्पा। बिस्व-ग्रसिहि जनु ऐहि बिधि अर्पा।
८१० मुरे सुभट सब[2] फिरहिँ न फेरे। सूझ न नयन, सुनहि नहिँ टेरे। (३)
कुंभकरन कपि - फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर - धारी।
देखी राम, बिकल - कटकाई। रिपु - अनीक नाना बिधि आई। (४)

पास आकर वह बलवान् सुग्रीव 'कृपानिधानकी जय हो, जय हो' चिल्ला उठे। (४) अपने नाक-कान कटे देखकर कुंभकर्ण बहुत खीझ उठा और वह क्रोधसे लाल होकर लौट पड़ा। एक तो वह यों ही बड़ा भयंकर था, उसपर उसके नाक-कान भी कट गए (तो वह और भी अधिक भयानक लगने लगा)। उसका यह (डरावना) रूप देखकर वानरोंकी सेनामें खलबली मच गई। (५) 'रघुवंशमणि रामकी जय हो, जय हो, जय हो' चिल्लाते और हू-हा करते हुए सब वानर उसपर टूट पड़े और कुंभकर्णपर सबने एक ही साथ बड़ी-बड़ी चट्टानें और पेड़ दे मारे॥ ६६॥ रणकी उमंगमें भरा कुंभकर्ण ऐसे सामने बढ़ा चला आ रहा था मानो क्रुद्ध होकर काल ही आ रहा हो। फिर क्या था! वह पकड़-पकड़कर अगणित वानरोंको ऐसे उठा-उठाकर गपकने लगा मानो पहाड़की गुफामें टिड्डियों-का दल समाया चला जा रहा हो। (१) करोड़ों (असंख्य) वानरोंको पकड़-पकड़कर उसने अपने शरीरसे रगड़ मसला और करोड़ोंको रौंदकर धूलमें मिला फेंका। (जो वानर वह उठा-उठाकर गपगता जा रहा था वे) झुण्डके झुण्ड भालू और वन्दर उसके मुंह, नाक और कानोंसे हो-होकर निकल निकल भाग रहे थे। (२) रणके मदमें चूर वह राक्षस कुंभकर्ण इस प्रकार गर्वमें भर चला था मानो विधाताने सारा विश्व ही खा डालनेके लिये उसे भेज दिया हो। (यह देखकर) सारे योद्धा ऐसे भाग खड़े हुए कि किसीके लौटाए नहीं लौट पा रहे थे। (वे ऐसे व्याकुल हो चले कि) उन्हें न नेत्रोंसे दिखाई दे पावे, न पुकारनेपर सुनाई ही पड़ पावे। (३) इस प्रकार कुंभकर्णने वानरोंकी वह सारी सेना क्षण-भरमें तितर-बितर कर डाली। यह देखकर तो राक्षसोंकी सेना भी उनपर टूट पड़ी। रामने जब देखा कि हमारी सेना व्याकुल हुई जा रही है और शत्रुकी सेनाएँ आ चढ़ी हैं (४) तब कमलके समान

१. कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। २. रन।

७९९-८०० स भूतले भीमबलाभिपिष्टः सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः।
जगाम खं कंदुकवज्जवेन पुनश्च रामेण समाजगाम॥
८०१-२ कर्णनासाविहीनस्तु कुंभकर्णो महाबलः। युद्धायाभिमुखो भीमो नभश्चके निशाचरः॥ वा०रा०
८०३-४ रामो जयत्यतिबलो लक्ष्मणश्च महाबलः। इत्येवं घोषयन्तश्च प्राक्षिपन् पर्वता नरो॥ अध्यात्म०
८०५-१० क्रोधाग्नेर्जाठराग्नेः कपिशिविरगतो मुद्गरं व्याददानो।
वक्त्रे निःक्षिप्य कोटिं कवलयति भटानुत्कटान्कुंभकर्णः।
काँश्चित्पद्भ्यां पिनष्टि श्वसनसहचरा वानराः कर्णरन्ध्रान्।
निर्गच्छन्त्येक एतान् पुनरपिदशनैश्चर्वितानत्ति घोरम्॥ —हनुमन्नाटक

दो०—सुनु सुग्रीव ! बिभीषन, अनुज ! सँभारेहु सैन।
मैं देखौं खल-बल-दलहिं, बोले राजिव-नैन ॥ ६७ ॥

कर सारंग साजि कटि-भाथा। अरि-दल दलन[१] चले रघुनाथा।
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष-टँकोरा। रिपु-दल बधिर भयउ सुनि सोरा। (१)
सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। काल-सर्प जनु चले सपच्छा।
जहँ-तहँ चले बिपुल[२] नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा। (२)
कटहिं चरन-उर-सिर-भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा।
८२० घूमि-घूमि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं। (३)
लागत बान, जलद[३]-जिमि गाजहिं। बहुतक, देखि कठिन सर, भाजहिं।
रुंड प्रचंड, मुंड-बिनु धावहिं। धरु-धरु मारु-मारु धुनि गावहिं। (४)

दो०—छन-महँ प्रभु-के सायकनि, काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर-निखंग-महँ, प्रविसे सब नाराच ॥ ६८ ॥

कुंभकरन मन देखि बिचारी। हति छन-माँझ निसाचर-धारी।
भा अति क्रुद्ध महा बलबीरा। किय मृगनायक-नाद गँभीरा। (१)

नयनोंवाले राम बोले—'देखो भाई सुग्रीव ! विभीषण ! और लक्ष्मण ! तुम लोग अपनी-अपनी सेनाएँ सँभाले रखना। मैं इस दुष्ट राक्षसका सारा बल और इसकी सेना अभी जाकर समझे लेता हूँ।' ॥ ६७ ॥ हाथमें शार्ङ्ग धनुष लेकर और कमरमें तूणीर कसकर राम उस शत्रुकी सेनाको कुचलने चल पड़े। प्रभु रामने जाते ही धनुषकी ऐसी टंकार की कि उसकी भयंकर गूँज सुनकर ही शत्रुकी सारी सेना बहरी हो चली। (१) सत्यप्रतिज्ञ रामने ऐसे लाखों बाण चढ़ा चलाए (जो ऐसे लगते थे) मानो पंखवाले काल-सर्प उड़े चले जा रहे हों। उन्होंने बहुतसे बाण इधर-उधर ऐसे चलाए कि लगते ही भयंकर राक्षस वीर योद्धा कट-कटकर ढेर होने लगे। (२) बाण लगते ही किसी राक्षसके पैर, किसीका धड़, किसीका सिर और किसीके हाथ कट-कटकर गिरने लगे। बहुतसे वीरोंके तो धुर्रे उड़ गए। बाण लगते ही वे चक्कर खा-खाकर लहूलुहान हो-होकर धरतीपर जा लोटते थे। पर वे ऐसे वीर योद्धा थे कि सँभलकर उठ-उठकर फिर लड़ने लगते थे। (३) (बहुतसे योद्धा) बाण लगनेपर बादलके समान गरज उठते थे और बहुतसे तो कठोर बाण आते देखते ही भाग खड़े होते थे। (उस रणभूमिमें) बहुतसे बिना सिरवाले प्रचण्ड धड़ ही धड़ इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे और 'पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो' की रट लगाए हुए थे। (४) क्षण-भरमें ही प्रभुके बाण उन भयंकर पिशाचों (राक्षसों)-को मार-काटकर फिर प्रभुके तूणीरमें आ प्रविष्ट हुए ॥ ६८ ॥ जब कुंभकर्णने देखा कि रामने क्षण मात्रमें सारी राक्षसी सेना तहस-नहस कर डाली तब वह

१. मृगपति-ठवनि। २. अति जव चले निसित। ३. बनद।

८११-१५ पतितं वानरानीकं दृष्ट्वा रामस्त्वब्रवीवचत्। सौमित्रिकीशराजौ च रावणावरजं तथा ॥ स्वसैन्यं परिरक्षन्तु ह्यहं द्रक्ष्यामि तद्बलम्। शार्ङ्गंधनुः समादाय रिपून् दलितुमक्रमीत् ॥ अध्यात्मरामायण

८१६ क्रोधारुणः प्रोत्फुल्लखदिरांगारनेत्रो रामो धनुर्गुणटणत्कार-शब्दं चकार तन्नादेन शत्रुसैन्यं बधिरतामियाय ॥ —हनुमन्नाटक

८१७-८१८ तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम्। कार्मुकाणां सहस्राणि मुमोच पुरुषर्षभः ॥

८१९-२० केचिन्निपतिता भूमौ केचित्सुप्ता मृता इव।

८२१-२२ कबन्धानि समुत्पेतुर्भीमरूपाणि भीषणानि च। ध्रियतां ध्रियतामेवं घोषयन्ति पुनः पुनः ॥ वा०रा०

८२३-२४ रामेण मुक्तास्ते बाणाश्छित्त्वा राक्षसान् भृशम्। आविशन् रामतूणीरं मेने स तु कृतार्थताम् ॥ आ.रा

८२५-२६ कुपितः कुंभकर्णो वै सिंहनादं चकार। —वाल्मीकीयरामायण

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारै जहँ मर्कट भट भारी।
आवत देखि सैल, प्रभु, भारे। सरन्हि काटि रज-सम करि डारे। (२)
पुनि धनु तानि, कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक।
८३० तन-महँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन-माँझ समाहीं। (३)
सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल-गिरि गेरु-पनारे।
बिकल बिलोकि, भालु-कपि धाए। बिहँसा, जबहिं निकट कपि आए। (४)
दो०—महा नाद करि गर्जा, कोटि-कोटि गहि कीस।
महि पटकै गजराज-इव, सपथ करै दससीस ॥ ६९ ॥
भागे भालु - बलीमुख - जूथा। बृक बिलोकि जिमि मेष-बरूथा।
चले भागि कपि-भालु, भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी। (१)
यह दुकाल-सम निसिचर अहई[1]। कपि-कुल-देस परन अब चहई।
कृपा - बारिधर राम खरारी। पाहि-पाहि प्रनतारति-हारी। (२)
सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन-बाना।
८४० राम, सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा-बलसाली। (३)

महाबली वीर अत्यन्त क्रुद्ध होकर भयंकर गर्जन कर उठा। (१) वह क्या करता कि क्रुद्ध होकर पर्वत उखाड़ लेता और जहाँ वानर योद्धाओंका भारी झुंड देखता वहीं फेंक मारता। उधर प्रभु रामने ज्योंही पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें आती देखीं त्योंही अपने बाणोंसे चूर-चूर करके उनके धुर्रे उड़ा दिए। (२) फिर क्रोध करके धनुष तानकर उस कुंभकर्णपर जो अत्यन्त भयानक बाण चढ़ाकर राम छोड़ते जा रहे थे वे उसके शरीरमें घुसकर ऐसे पार हो-हो जाते थे जैसे बादलमें कौंधकर बिजली फिर उसीमें जा समाती है। (३) उसके काले-कलूटे शरीरसे निकलकर बहती हुई लहूकी धारा ऐसी लग रही थी मानो कज्जलके पहाड़से गेरूके झरने बहे चले जा रहे हों। उसे घायल और लहूलुहान देखते ही भालू और वानर फिर उसपर टूट पड़े। जब वे उसके पास पहुँचे तब वह ठठाकर हँस पड़ा। (४) वह दहाड़ता हुआ गरज उठा और अनेक वानरोंको पकड़-पकड़कर गजराजके समान धरतीपर पटक-पटककर रावणकी दुहाई देने लगा ॥ ६९ ॥ यह देखकर वानर-भालुओंके झुण्डके झुण्ड ऐसे भाग खड़े हुए जैसे भेड़िएको देखकर भेड़ोंका झुण्ड भाग खड़ा होता है। (शिव कहते हैं—) 'देखो भवानी! वहाँके सब वानर और भालू घबरा-घबराकर रोते-पुकारते हुए जिधर-तिधर तितर-बितर होकर भागने लगे (१) (और कहने लगे—) 'यह निशाचर अब दुर्भिक्ष (अकाल)-के समान वानरोंके देशमें आ पड़ा चाहता है (जैसे दुर्भिक्ष या अकाल पड़नेपर देशका सर्वनाश हो जाता है, वैसे ही यह राक्षस वानरोंका सर्वनाश करनेपर उतारू हो चला है)। हे कृपाका जल बरसानेवाले राम! हे खरारि! हे शरणागत दुःख दूर करनेवाले राम रक्षा कीजिए! रक्षा कीजिए!' (२) उनकी यह करुणा-भरी पुकार सुनते ही भगवान् राम अपना धनुष-बाण सँभालकर उठ चले। महान् बली रामने अपनी सेना पीछे छोड़ी और अकेले ही क्रुद्ध होकर

१. यह निसिचर दुकाल-सम अहई।

८२७ अथ शैलान्समुत्पाट्य तुंगान् भीमपराक्रमः। चिक्षेप कोशानुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥
८२८ आप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तमजिह्मगैः। शरैः कांचनचित्रांगैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥
८२९-३१ ससर्ज निशितान् बाणान् पुनश्च रघुनन्दनः। रराज शोणितोत्सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥
८३२-३४ सिंहनादं ततः कृत्वा वानरान् परिगृह्य ज। धरण्यां पातयामास कुंभकर्णो महाबलः ॥
८३५-३६ तस्य नानद्यमानस्य कुंभकर्णस्य रक्षसः। श्रुत्वा निनादं ते सर्वे विद्रुता वानरास्तदा ॥—वा०रा०

खैंचि धनुष, सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने।
लागत सर, धावा रिस - भरा। कुधर डगमगत, डोलति धरा। (४)
लीन्ह एक तेहिँ सैल उपाटी। रघुकुल-तिलक भुजा सोइ काटी।
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी। (५)
काटे भुजा सोह खल कैसा। पच्छ - हीन मंदर गिरि जैसा।
उग्र बिलोकनि प्रभुहिँ बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका। (६)
दो०—करि चिक्कार घोर अति[1], धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध - सुर त्रासित, हा - हा - हेति पुकारि ॥ ७० ॥
सभय देव करुनानिधि जान्यौ। स्रवन - प्रजंत सरासन तान्यौ।
८५० बिसिख - निकर निसिचर - मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ। (१)
सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। काल - सजीव - त्रोन जनु आवा[2]।
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हाँ। धर-तें भिन्न तासु सिर कीन्हाँ। (२)
सो सिर परेउ दसानन - आगे। बिकल भएउ जिमि फनि, मनि-त्यागे।

बढ़ चले। (३) उन्होंने धनुष तान-तानकर लगातार ऐसे सौ बाण खींच मारे जो लगते ही कुंभकर्णके शरीरमें जा समाए। बाण लगने थे कि वह क्रोधसे तमतमाकर रामकी ओर झपट पड़ा। उसके चलनेके साथ ही पहाड़ डगमगा उठे और धरती दहल उठी। (४) (रामपर फेंक मारनेके लिये) उस (राक्षस)-ने बड़ा सा पहाड़ उखाड़ उठाया, पर इसी बीच रघुकुल-तिलक रामने बाण मारकर उसकी वह दाहिनी भुजा ही काट डाली। तब वह बाएँ हाथसे ही पहाड़ उठाकर झपट पड़ा, पर प्रभुने देखते-देखते उसकी वह (बाईं) भुजा भी धरतीपर काट गिराई। (५) दोनों भुजाएँ कट जानेपर वह दुष्ट ऐसा लगने लगा जैसे पंखकटा मंदराचल सामने आ खड़ा हुआ हो। उसने ऐसी भयानक दृष्टिसे रामकी ओर घूरकर देखा, मानो अभी तीनों लोकोंको निगल जानेवाला हो। (६) वह भयानक स्वरसे चिग्घाड़ता हुआ जब अपना मुँह ही फैलाकर झपट बढ़ा तब आकाशमें खड़े सिद्ध और देवता सब डरके मारे हाय-हाय कर उठे ॥ ७० ॥ जब करुणानिधान रामने देखा कि सब देवता डरे चले जा रहे हैं, तब उन्होंने कानतक धनुष खींचकर अनेक बाण चलाकर उस राक्षसका मुँह ही बाणोंसे भर दिया। पर इतना होनेपर भी वह महाबली कुम्भकर्ण धरतीपर न गिर पाया। (१) वह बाणोंसे भरा मुँह लिए हुए इस प्रकार सामने बढ़ता चला आया, मानो (बाणोंसे भरा हुआ) जीता-जागता कालका तूणीर ही चला आ रहा हो। तब प्रभु रामने क्रोधित होकर बड़ा पैना बाण चलाकर उसका सिर धड़से उतार डाला। (२)(कटते ही) सिर उछलकर रावणके आगे जा गिरा, जिसे देखते ही वह (रावण) ऐसे व्याकुल हो उठा जैसे मणि लुट जानेपर सर्प व्याकुल हो उठता है। (सिर कट जानेपर भी) उस (कुंभकर्ण)-का प्रचण्ड धड़ ही ऐसे दौड़ा चला जा रहा था कि जहाँ-जहाँ उसके

१. करि चिकार अति घोरतर। २. काल त्रोन सजीव जनु आवा।

८३७-४२ करुणामयं वचस्तेषां श्रुत्वा रामः परंतपः। शरान् धनुषि संधाय ससर्ज निशितान् भृशम् ॥
तस्य बाणैः सुसंविद्धकुंभकर्णबलीयसः। रामाभियायिनस्तस्य गत्या भूमिश्चचाल वै ॥अध्यात्म०
८४३-४५ वायव्यास्त्रेण चिच्छेद तद्धस्तौ सायुधौ क्षणात्।शुशुभे छिन्नबाहुः स निष्पक्षा हीव मन्दरः॥आ०रा०
८४६-४८ मुखं व्यादाय दुद्राव कुंभकर्णः प्रतापवान्। देवा यक्षा तथा सिद्धा हाहाकारं विदध्वनुः।
८४९-५० अपूरयच्छिताग्रैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः। शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयंकरः ॥
८५१-५२ अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्रं शरमनुत्तमम्। मुमोच तेन चिच्छेद कुंभकर्णशिरो महत् ॥अध्यात्म०

धरनि धँसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु, काटि कीन्ह दुइ खंडा। (३)
परेउ भूमि जिमि नभ-तें भूधर। हेठ दाबि कपि-भालु-निसाचर।
तासु तेज प्रभु-बदन समाना। सुर-मुनि सबहिं अचंभव माना। (४)
सुर[1] दुंदुभी बजावहिं, हरषहिं। अस्तुति करहिं, सुमन[2] बहु बरषहिं।
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देव-रिषि आए। (५)
गगनोपरि हरि-गुन-गन गाए। रुचिर बीर-रस प्रभु-मन भाए।
८६० बेगि हतहु खल, कहि, मुनि गए। राम समर-महि सोभत भए। (६)

छंद—संग्राम-भूमि बिराज रघुपति अतुल-बल कोसल-धनी।
स्रम-बिंदु मुख, राजीव-लोचन, अरुन तन सोनित-कनी।
भुज जुगल फेरत सर-सरासन, भालु-कपि चहुँ दिसि बने।
कह दास-तुलसी, कहि न सक छबि सेष, जेहि आनन घने ॥ [३]

दो०—निसिचर अधम मलाकर[3], ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ! ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम ॥ ७१ ॥

पैर पड़ते चलते वहाँ-वहाँकी धरती नीचेको धँसती चलती। तब प्रभु रामने (उस धड़को भी) काटकर उसके दो टुकड़े कर डाले। (३) उसके धड़के दोनों टुकड़े धरतीपर ऐसे धड़ामसे गिरे जैसे आकाशसे कोई पर्वत दो टूक हो गिरा हो। उसके (धड़के) नीचे जो भी वानर, भालू और राक्षस आए सबके सब वहीं के वहीं पिस मरे। मरते ही उस कुंभकर्णका तेज प्रभु रामके मुखमें आ समाया। यह देखकर तो देवता और मुनि सब बड़े आश्चर्यमें पड़ गए। (४) अब तो देवता लोग आकाशमें नगाड़े बजाने लगे और प्रसन्न हो-होकर रामकी स्तुति करने और ढेरों फूल बरसाने लगे। जब सब देवता लोग स्तुति करके चले गए तब वहाँ देवर्षि नारद आ पहुँचे। (५) उन्होंने आकाशमें चढ़े-चढ़े ही भगवान्‌के गुण गा सुनाए। यह (गुणगान) सुन्दर वीर रसमें होनेके कारण प्रभु रामको बहुत अच्छा लगा। 'अब दुष्ट (रावण)-को भी झटपट ठिकाने लगा दीजिए', यह कहकर नारद भी चले गए। उस समय राम रणभूमिमें खड़े बड़े भले लग रहे थे। (६) अतुलित बलवाले राम रणभूमिमें खड़े बड़े सलोने लग रहे थे। उनके मुखपर पसीनेकी बूँदे झलकी पड़ रही थीं, उनके नेत्र कमलके समान खिले पड़ रहे थे और लहूके छींटोंसे बुँदका हुआ उनका शरीर बड़ा सजीला लग रहा था। उनके चारों ओर वानर और भालू उन्हें घेरे खड़े थे और प्रभु राम अपने दोनों हाथोंसे धनुष और बाण घुमाए जा रहे थे। तुलसीदास कहते हैं कि रामकी इस झाँकीका वर्णन तो सैकड़ों मुखवाले शेष भी नहीं कर पा सकते। [३]

(शिव कहते हैं—) 'देखो गिरिजे ! जिस प्रभु रामने (कुंभकर्ण-जैसे) अधम और पापी राक्षसको भी अपना (परम) धाम दे डाला ऐसे रामका भी जो भजन नहीं करते (उनकी सेवा नहीं करते) उन मनुष्यसे बढ़कर और कौन अधिक मूर्ख हो सकता है' ॥ ७१ ॥

१. नभ। २. जय जय करि प्रसून। ३. मलायतन।

८५३-५६ तच्छिरः पतितं लंकाद्वारि कायो महोदधौ। शिरोऽस्य रोधयद् द्वारं कायो नक्राद्यचूर्णयत् ॥
८५७ सिद्धा यक्षा गुह्यकाश्च साप्सराभिश्च राघवम्। ईडिरे कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाभिनन्दिताः ॥
८५८ स्तुतिं कृत्वा च ते देवा ययुः स्वं स्वं पदं मुदा। आजगाम तदा रामं द्रष्टुं देवमुनीश्वरः ॥
८५९-६० नारदो गगनात्तूर्णं स्वभासा भासयन् दिशः। दृष्ट्वा गद्गदया वाचा भक्त्या स्तोतुं प्रचक्रमे ॥
श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे। हनिष्यसेऽथ राम त्वं परश्वो दशकन्धरः ॥
इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य नारदो भगवानृषिः। ययौ देवैः पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम्॥ अध्यात्म
८६५-६६ दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः। खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥ भाग०

दिन-के अंत फिरी दोउ अनी। समर भई सुभटन स्रम घनी।
राम-कृपा कपिदल-बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा। (१)
छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।
८७० बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु-सीस पुनि-पुनि उर धरई। (२)
रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज-बल बिपुल बखानी।
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा, पितहिं[1] समुझायउ। (३)
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई।
इष्टदेव-सैं बल-रथ पायउँ। सो बल तात! न तोहिं देखायउँ। (४)
ऐहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना।
इत कपि-भालु काल-सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा। (५)
लरहिं सुभट निज-निज जय-हेतू। बरनि न जाइ समर खग-केतू। (५॥)

दो०—मेघनाद मायामय, रथ चढ़ि गयउ अकास।
गरजेउ अट्टहास करि[2], भइ कपि-कटकहिं त्रास ॥७२॥

साँझ हो चुकनेपर दोनों दलोंकी सेनाएँ (अपने-अपने डेरोंको) लौट पड़ीं। इस युद्धमें सभी योद्धा बहुत थक चले थे (पर) रामकी कृपा-दृष्टि पड़ते ही वानरी सेनाका बल (पहलेसे भी अधिक) बढ़ गया जैसे घास-फूस मिल जानेसे आगकी लपटें धू-धू करके जल उठती हैं। (१) दिन-रात मारे जाते-जाते राक्षस ऐसे घटने लगे जैसे अपने मुँहसे अपने गुण वर्णन करनेसे क्रमशः अपना पुण्य घटता चला जाता है। उधर रावण अपने भाई कुंभकर्णका सिर बार-बार अपनी छातीसे लगाए रोए-बिलखे चला जा रहा था। (२) उसकी स्त्रियाँ भी उसके तेज और बलका बखान करती हुईं, हाथोंसे छाती पीट-पीटकर रोए चली जा रही थीं। उसी समय मेघनाद वहाँ आ पहुँचा और उसने बहुत समझा-बुझाकर पिताको बड़ा ढाढ़स बँधाया (३) (और बोला—'आप घबराए क्या जा रहे हैं?) 'कल रणक्षेत्रमें आप मेरा पुरुषार्थ तो देखिएगा (कि मैं क्या कर दिखाता हूँ)। मैं अभीसे उसका क्या बखान करूँ ? देखिए पिता ! मैंने अपने इष्टदेवसे जो बल और रथ प्राप्त किया है, वह बल अभीतक मैंने आपको दिखाया कहाँ।' (४) इस प्रकार डींग मारते-मारते उसने सवेरा कर दिया। (सवेरा होते ही) चारों फाटकोंपर वानरोंके झुंडके झुंड फिर पहुँचकर आ डटे। इधर कालके समान वीर वानर-भालू और उधर अत्यन्त रणधीर राक्षस दोनों आमने-सामने मोरचा लिए चले जा रहे थे। (५) दोनों ओरके योद्धा अपने-अपने दलकी विजयके लिये प्राण-पनसे लड़े चले जा रहे थे। (काकभुशुंडि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! उस समय ऐसा घमासान युद्ध छिड़ा हुआ था कि मैं आपसे बता नहीं सकता।' (५॥) मेघनाद अपने उसी मायामय रथपर (जो उसने तपस्या करके अपने इष्टदेवसे पाया था) आकाशमें चढ़ा चला गया और वहींसे वह ऐसा अट्टहास

१. पिता २. गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि।

८६७-७० मम शल्यमनुद्धृत्य बांधवानां महाबलः। शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां संत्यज्य गच्छसि॥
रावणः शोकसंतप्तो रामेणाक्लिष्टकर्मणा। मूर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह॥वा०रा०
८७१ राक्षस्यः प्रारुदन्नुच्चैः प्राजुगुप्सन्त रावणम्। —भट्टिकाव्य
८७२-७४ पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चाति विह्वलम्। रावणिः सांत्वयामास त्वं मे पश्याद्य वै बलम्॥
इन्द्रजित्प्राह शोकार्तं त्यज शोकं महामते। मयि जीवति राजेन्द्र मेघनादे महाबले।
दुःखस्यावसरः कुत्र देवांतक महामते॥ —आनन्दरामायण
८७५-७६ खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः। लक्षिताः सर्वतो लंकां प्रतिद्वारमुपाययुः॥
तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः॥ —अध्यात्मरामायण

८८० सक्ति - सूल - तरवारि - कृपाना । अस्त्र-सस्त्र - कुलिसायुध नाना ।
डारै परसु - परिघ - पाखाना । लागेउ बृष्टि करै बहु बाना । (१)
दस दिसि रहे बान नभ छाई । मानहुँ मघा मेघ - झरि लाई ।
धरु - धरु - मारु सुनिय धुनि काना । जो मारै तेहिं कोउ न जाना । (२)
गहि गिरि - तरु अकास कपि धावहिं । देखहिं तेहि न,दुखित फिरि आवहिं ।
अवघट - घाट, बाट, गिरि - कंदर । माया - बल कीन्हेसि सर-पंजर । (३)
जाहिं कहाँ, ब्याकुल भे बंदर । सुरपति - बंदि परेउ जनु मंदर ।
मारुत - सुत, अंगद, नल, नीला । कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला । (४)
पुनि लछिमन, सुग्रीव, बिभीषन । सरन्हि मारि, कीन्हेसि जर्जर तन ।
पुनि रघुपति - सैं जूझै लागा । सर छाँड़ै, होइ लागहिं नागा । (५)
८९० ब्याल-पास बस भए खरारी । स्वबस, अनंत, एक, अबिकारी ।
नट - इव कपट - चरित - कृत नाना । सदा स्वतंत्र, एक, भगवाना । (६)
रन-सोभा - लगि प्रभुहिं बँधायो । नाग - पास, देवन भय पायो । (६॥)

करके गरजा कि सारी वानरी सेना डरके मारे थर्रा उठी ॥ ७२ ॥ (वह अपने रथपर चढ़ा हुआ) शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण और वज्र आदि बहुतसे अस्त्र-शस्त्र चलाने लगा, फरसे, परिघ (मूसल) और पत्थर आदि फेंक-फेंककर मारने लगा और घुआंधार बाण बरसाने लगा। (१) आकाशमें चारों ओर बाण ही बाण जा छाए, मानो मघा नक्षत्रमें बूंदोंकी झड़ी लग चली हो। 'पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो'-का हल्ला तो सुनाई पड़ रहा था, पर कौन किसे मार रहा था यह किसीकी समझमें नहीं आ पा रहा था। (२) वानर भी पहाड़की चट्टानें और वृक्ष उठा-उठाकर आकाशमें उछल तो पहुँचते थे, पर वहाँ जब उन्हें कोई मारनेवाला ही न दिखाई देता तो दुखी हो-होकर लौट आते थे। मेघनादने ऐसी माया चलाई कि ऊबड़-खाबड़ घाटियाँ, मार्ग और पर्वत-कन्दराएँ सब बाणोंके पिंजड़ेके समान बन गए। (३) अब किधर निकलकर जायँ यही सोच-सोचकर वानर बड़े व्याकुल हो उठे मानो इन्द्रने पर्वतोंकी बन्दी बना छोड़ा हो। (उन्होंको नहीं) मेघनादने हनुमान्, अंगद, नल, नील आदिके समान बलवानोंको भी त्रस्त कर डाला (४) और लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषणकी देह भी बाणोंसे बींध-बींधकर चलनी कर डाली। यह सब कर चुकनेपर वह रामसे युद्ध करने जा डटा। वह जो भी बाण छोड़ता था, वह सर्प बनकर (रामको) जा लिपटते थे। (५) उनका यह कौतुक देखिए कि जो (राम) स्वतंत्र, अनन्त, एक (अद्वितीय) और निर्विकार थे, वे ही खरके शत्रु राम वहाँ मेघनादके नाग-पाशमें जा बंधे। राम तो सदा स्वतंत्र और अद्वितीय भगवान् हैं पर वे ही नटके समान अनेक प्रकारके दिखावटी खेल किए चले जा रहे थे। (६) रणकी शोभाके लिये (कि रणमें यह सब भी खेल दिखाना चाहिए) नाग-पाशने प्रभुको बाँध लिया, जिसे देखकर सब देवता घबरा उठे। (६॥)

८७७-८२ नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन्। ववर्ष शरजालानि तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥–अध्यात्म
८८३-८४ तं संप्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान्। आकाशं विविशुः सर्वे मार्गमाणा दिशो दश।
अंधकारे न ददृशुर्मेघैः सूर्यमिवावृतम् ॥
८८५-८६ शस्त्रपुष्पोपहारा च शोणितास्रावकर्दमा। दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च तत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥
८८७ विव्याध हरिशार्दूलान् सर्वांस्तान् राक्षसोत्तमः ॥
८८८-९० क्रुद्धेनेन्द्रजितावीरौ पन्नगैः शरतां गतैः। बद्धौ तु शरबंधेन तावुभौ रणमूर्धनि ॥–वाल्मीकीय
यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबंधाः।
स्वैरं चरन्ति मुनयोपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ –भागवत

दो०—गिरिजा ! जासु नाम जपि , मुनि काटहिँ भव-पास ।
सो कि बंधतर आवै , व्यापक, बिस्व-निवास ।। ७३ ।।
चरित राम - के सगुन भवानी । तरकि न जाहिँ बुद्धि - बल - बानी ।
अस बिचारि, जे तज्ञ बिरागी । रामहिँ भजहिँ, तर्क सब त्यागी । (१)
व्याकुल कटक कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रगट, कहे दुर्बादा ।
जामवंत कह, खल ! रहु ठाढ़ा । सुनि करि, ताहि क्रोध अति बाढ़ा । (२)
बूढ़ जानि सठ ! छाँड़ेउँ तोहीँ । लागेसि अधम ! पचारै मोहीँ ।
९०० अस कहि, तरल त्रिसूल चलायो । जामवंत कर गहि, सोइ धायो । (३)
मारिसि मेघनाद - कइ छाती । परा भूमि घुर्मित सुर - घाती[1] ।
पुनि रिसान, गहि चरन फिरायो । महि पछारि, निज बल देखरायो । (४)
बर - प्रसाद सो मरइ न मारा । तब गहि पद लंका - पर डारा ।
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो । राम - समीप सपदि सो आयो । (५)
दो०—खगपति सब धरि खाए , माया - नाग - बरूथ ।
माया - बिगत भए सब , हरषे बानर - जूथ ।। ७४ क ।।

(शिव कहते हैं—) 'देखो गिरिजा ! जिनका नाम जपकर मुनि लोग संसारके बन्धन काटकर मुक्त हो जाते हैं वे सर्वव्यापक और विश्व-रूप भगवान् क्या कभी किसीके बन्धनमें फँस पा सकते हैं ? ।। ७३ ।। देखो भवानी ! रामकी इन सगुण लीलाओंके सम्बन्धमें बुद्धि और वाणीके बलपर तर्क नहीं किया जा सकता (कि ये संभव हैं या नहीं । वह तो मान ही लेना पड़ता है) । ऐसा समझकर तत्व-ज्ञानी और त्यागी पुरुष सब तर्क छोड़कर चुपचाप बैठे रामका भजन किया करते हैं (रामकी शरणमें पड़े रहते हैं) ।' (१)

सारी सेना बेहाल करके मेघनाद सामने पहुँचकर गालियोंपर उतर आया । यह सुनकर जामवंतने ललकारा—'खड़ा रह दुष्ट ! (मैं अभी तेरी मरम्मत किए डालता हूँ) ।' यह सुनकर वह (मेघनाद) क्रोधसे तड़प उठा (२) (और बोला—) 'अरे दुष्ट ! नीच ! मैं तो तुझे बूढ़ा जानकर छोड़े दे रहा था और तू उलटा मुझे ललकारे जा रहा है ?' यह कहकर उसने अपना चमचमाता हुआ त्रिशूल उठाकर (जामवन्तपर) फेंक चलाया । जामवन्त भी वही त्रिशूल हाथसे लपककर लिए हुए उसीपर झपट पड़ा । (३) उसने (वह त्रिशूल) मेघनादकी छातीमें ऐसा खींचकर मारा कि वह देवताओंका शत्रु घुमटी खाकर वहीं धरतीपर धड़ामसे जा गिरा । फिर जामवंतने क्रोधमें आकर अपना बल दिखाते हुए उसकी टँगड़ी पकड़कर उसे घुमाकर धरतीपर दे मारा । (४) वह (मेघनाद) वरदानके कारण किसीके मारे मर नहीं पा रहा था । तब (जामवंतने) उसकी टँगड़ी पकड़कर उसे लंकापर उछाल फेंका । इधर देवर्षि नारदने गरुडको रामके पास प्रेरित कर भेजा और वे पलक मारते रामके पास आ पहुँचे । (५) आते ही गरुडने क्या किया कि मायासे रचे हुए सब नाग पकड़-पकड़कर कचाकच चबा डाले । उस मायाके बंधनसे छूटते ही सब वानर हर्षसे नाच उठे ।। ७४ क ।। वे सब

१. परा भूमि घुमित सुरघाती ।

८९५-९६ रामस्य सगुणं रूपमचिन्त्यं बलबुद्धिभिः । भजन्ति बुद्धिसंपन्नास्तर्कमित्यं विहाय च ।। अध्यात्म०
९०४ ततो मुहूर्त्ताद्‌गरुडं वैनतेयं महाबलम् । बानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ।
९०५-६ तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः । नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।।
सिंहनादं तदा नेदुर्लांगूलं दुधुवुश्च ते ।। —वाल्मीकीयरामायण

गहि गिरि-पादप-उपल-नख , धाए कीस रिसाइ ।
चले तमीचर बिकलतर , गढ़ - पर चढ़े पराइ ।। ७४ ख ।।
मेघनाद - कै मुरछा जागी । पितहिँ बिलोकि लाज अति लागी ।
६१० तुरत गयउ गिरिबर - कंदरा । करौं अजय-मख, अस मन धरा । (१)
इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा । सुनहु नाथ ! बल-अतुल ! उदारा ।
मेघनाद मख करै अपावन । खल, मायावी, देव - सतावन । (२)
जौं प्रभु ! सिद्ध होइ सो पाइहि । नाथ ! बेगि पुनि[1] जीति न जाइहि ।
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना । बोले अंगदादि कपि नाना । (३)
लछिमन - संग जाहु सब भाई । करहु बिधंस जज्ञ - कर जाई ।
तुम लछिमन ! मारेहु रन ओही । देखि सभय सुर, दुख अति मोही । (४)
मारेहु तेहिँ बल - बुद्धि - उपाई । जेहि छीजै निसिचर, सुनु भाई ।
जामवंत ! सुग्रीव ! बिभीषन । सेन - समेत रहेहु तीनिउ जन । (५)
जब रघुबर दीन्हीँ अनुसासन । कटि निखंग कसि, साजि सरासन ।
६२० प्रभु - प्रताप उर धरि रन - धीरा । बोले घन - इव गिरा गँभीरा । (६)

वानर पर्वतकी चट्टानें और पत्थर ले-लेकर तथा अपने नख फैला-फैलाकर क्रोधित हो-होकर राक्षसोंपर टूट पड़े। यह देखते ही राक्षस व्याकुल हो-होकर भाग खड़े हुए और भाग-भागकर दुर्गपर जा चढ़े ।। ७४ ख ।। मेघनादकी मूर्च्छा छूटी तो (सामने) पिताको देखकर वह लज्जासे पानी-पानी हो चला। अजेय होनेका यज्ञ करनेका निश्चय करके वह तुरन्त एक बड़े पर्वतकी कंदरामें जा बैठा। (१) इधर विभीषणने आकर रामको परामर्श देते हुए कहा—'अतुलनीय बलवान् उदार प्रभो ! वह देवताओंको सतानेवाला, दुष्ट, मायावी मेघनाद बड़ा अपवित्र यज्ञ ठान बैठा है। (२) प्रभो ! यदि कहीं उसका यह यज्ञ पूरा हो गया तो मेघनाद शीघ्र किसीके मारे न मर पावेगा।' यह विचार रामको भी बहुत ठीक जँचा। उन्होंने तुरन्त अंगद आदि अनेक वानरोंका बुला भेजा (३) (और कहा—) 'देखो भाई ! तुम सब लक्ष्मणके साथ चले जाओ और जैसे भी हो जाकर उसका यज्ञ तहस-नहस कर डालो। और लक्ष्मण ! आज तुम उसे रणमें छोड़ना मत, जहाँ मिले वहीं ढेर कर डालना। देवताओंको भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। (४) तुम जैसे भी हो अपने बल और अपनी बुद्धिसे उसे बिना मारे न छोड़ना जिससे राक्षसोंका मटियामेट हो जाय। जामवंत ! सुग्रीव ! और विभीषण ! तुम तीनों अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर इनके साथ-साथ लगे रहना।' (५) रामकी यह आज्ञा सुनकर, कमरमें तूणीर कसकर, धनुष-बाण लेकर और प्रभुके प्रतापका हृदयमें ध्यान करके रणधीर लक्ष्मण बादलके समान गम्भीर वाणीमें बोले—(६) 'आज यदि मैं उसे बिना मारे लौटकर आऊँ तो

१. रिपु = शत्रु मेघनाद ।

६०७-८ द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः । लंकाद्वारमुपाजग्मुर्युद्धकामाः प्लवंगमाः ।। वा०रा०
६०९-१० रक्तमाल्यांबरधरो रक्तगंधानुलेपनः । गत्वा निकुम्भिलास्थाने हवनायोपचक्रमे ।।
६११-१३ विभीषणोथ तच्छ्रुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम् । समाप्यते चेद्धोमोयं मेघनादस्य दुर्मतेः ।।
तदाऽजेयो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः ।।
६१४-१७ तच्छ्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः । हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ।।
गच्छ लक्ष्मण सैन्येन महता जहि रावणिम् ।।
६१८-१९ जाम्बवानृक्षराजोयं सहसैन्येन संवृतः । विभीषणश्च सचिवः सह त्वामभियास्यति ।:
अभिज्ञस्तस्य देशस्य जानाति विवराणि सः । रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ।।—अध्यात्म०

जौ तेहिं आज बधे - बिनु आवउँ। तौ रघुपति - सेवक न कहावउँ।
जौ सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर - दोहाई। (७)
दो०—रघुपति - चरन नाइ सिर, चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद, नील, मयंद, नल, संग सुभट हनुमंत।। ७५।।
जाइ कपिन, सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।
कीन्ह कपिन सब जज्ञ बिधंसा। जब न उठै, तब करहिं प्रसंसा। (१)
तदपि न उठै, धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति - हति चले पराई।
लै त्रिसूल धावा, कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे। (२)
आवा परम क्रोध - कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा।
९३० कोपि मरुत - सुत, अंगद धाए। हति त्रिसूल उर, धरनि गिराए। (३)
प्रभु - कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा।
उठि बहोरि मारुति - जुबराजा। हतहिं कोपि, तेहि घाउ न बाजा। (४)

रामका सेवक नहीं कहलाऊँगा। यदि सो शंकर भी उसकी सहायता करने आवें, तो भी मैं रामकी शपथ लेकर कहता हूँ कि उसे बिना मारे न छोड़ूँगा।' (७) रामके चरणोंमें सिर नवाकर, शेषके अवतार लक्ष्मण तुरन्त चल पड़े। उनके पीछे-पीछे अंगद, मयंद, नल आदि अनेक बड़े-बड़े योद्धा तथा हनुमान् भी चल दिए।। ७५।। (जहाँ मेघनाद यज्ञ कर रहा था) वहाँ पहुँचकर वानर देखते क्या हैं कि वह बैठा हुआ भैंसे और रुधिरकी आहुतिपर आहुति दिए चला जा रहा है। (फिर क्या था!) देखते-देखते सब वानरोंने किलकिलाकर सारी यज्ञकी सामग्री फेंक-फाँक तोड़-ताड़कर सब यज्ञ तहस-नहस कर डाला। फिर भी जब वह उठकर न दिया (अचल बैठा रहा) तब वे (वानर) उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगे। (१) इतनेपर भी वह उठनेका नाम नहीं ले रहा था। जब वानरोंने देखा कि वह कैसे भी उठाए नहीं उठ रहा है तो वे उसकी चोटी खींच-खींचकर लात जमा-जमाकर उसे मारने लगे। (तब तो मेघनाद बौखला उठा)। वह (मेघनाद) त्रिशूल लेकर ज्यों ही (वानरोंपर) झपटा कि वानर वहाँसे भाग चले और भागकर वहाँ जा पहुँचे जहाँ लक्ष्मण खड़े हुए थे। (२) अत्यन्त क्रोधमें मतवाला मेघनाद दौड़ा हुआ वहीं आ धमका और बार-बार तमक-तमककर गरजने लगा। यह देखकर हनुमान् और अंगद भी किलकिलाकर उसपर टूट पड़े। उसने भी आव देखा न ताव, उनकी छातीमें ऐसे खींच-खींचकर त्रिशूल चलाए कि दोनों चोटकर खाकर धरतीपर जा गिरे। (३) फिर उसने प्रभु लक्ष्मणपर भी अपना प्रचण्ड शूल चला दिया, पर लक्ष्मण कब चूकनेवाले थे। उन्होंने बीचमें ही अपने बाणसे वह दो टूक कर डाला। हनुमान् और युवराज अंगद दोनों सँभलकर उठ बैठे और उठकर दाँत पीस-पीसकर वे मेघनादको लगे धमाधम मारने। पर (उसकी देह ऐसी वज्रकी थी कि) इतने घूँसे-थपेड़े पड़नेपर भी उसे कहीं चोट ही नहीं लग पा

९२०-२२ यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान्वा स्वयंभुवैश्वानरशंकरान् वा।
गमिष्यसि त्वं दशधा दिशा वा तथापि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे।।
९२३-२४ विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान्। कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ।।वा०रा०
९२५ तत्रेन्द्राजितमैक्षेतां कृतधिष्ण्यं समाहितम्। सोऽनुहोत् कृष्णवर्त्मानं मनन् मंत्रं समुत्तमम्।।भट्टि०
९२६ शत्रुञ्जये रथवरेऽर्धसमुद्गतेऽग्नेर्यज्ञं बभञ्ज तरसा हनुमानुपेत्य। —हनुमन्नाटक
९२७ विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम्। अध्यायच्छक्रजिद् ब्रह्मसमाधेरचलन्न च।।
९२८ ते वध्यमाना हरयो नाराचैर्भीमविक्रमैः। सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः।।
९२९-३० रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान्। पातयामास बाणौघैः शतशोथ सहस्रशः।।
९३१ स लक्ष्मणं समुद्दिश्य शूलं प्रावर्तयद्रिपुम्। आवारयदसंभ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम्।।वा०रा०

फिरे बीर, रिपु मरै न मारा। तब धावा, करि घोर चिकारा।
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाँड़े बिसिख कराला। (५)
देखिसि आवत पबि-सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना।
बिबिध बेष धरि करै लराई। कबहुँक प्रगट, कबहुँ दुरि जाई। (६)
देखि अजय रिपु, डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा।
लछिमन-मन अस मंत्र दृढ़ावा। ऐहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा। (७)
सुमिरि कोसलाधीस-प्रतापा। सर-संधान कीन्ह करि दापा।
६४० छाँड़ा[1] बान, माँझ-उर लागा। मरती बार कपट सब त्यागा। (८)
दो०—रामानुज कहँ, राम कहँ, अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य-धन्य तव जननी, कह अंगद, हनुमान ॥ ७६ ॥
बिनु प्रयास हनुमान उठायो[2]। लंका-द्वार राखि पुनि आयो[3]।
तासु मरन सुनि, सुर-गंधर्बा। चढ़ि बिमान, आए नभ सर्बा। (१)
बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्रीरघुनाथ[4]-बिमल-जस गावहिं।
जय अनंत, जय जगदाधारा। तुम प्रभु! सब देवन्हि निस्तारा। (२)

रही थी। (४) जब वानर वीरोंने देखा कि वह शत्रु (मेघनाद) लाख जतन करनेपर भी किसीके मारे नहीं मर पा रहा है तब सब वीर हार झख मारकर लौट चले। तब तो मेघनाद कड़कता हुआ गरजकर उन सबपर टूट पड़ा। उसे क्रुद्ध कालके समान आते देखकर लक्ष्मणने ताक-ताककर बड़े प्रचण्ड बाण उसे खींच मारे। (५) मेघनादने देखा कि वज्रके समान बाण मेरी ओर चले आ रहे हैं तब वह अन्तर्धान हो गया और अनेक प्रकारके वेष बना-बनाकर छल-भरा युद्ध करनेपर उतारू हो गया। वह कभी तो सामने आकर लड़ता, कभी छिप रहता। (६) शत्रुको किसी भी प्रकार पराजित होते न देखकर वानरोंकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो चली। तब सर्पराज शेषके अवतार लक्ष्मणको बड़ा क्रोध चढ़ आया। लक्ष्मणने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि इस पापीको मैं बहुत खेल खेला चुका (अब इसे नहीं छोड़ना चाहिए)। (७) यह सोचकर कोशलाधीश रामके प्रतापका स्मरण करके उन्होंने बड़े गर्वके साथ अपना बाण निकाल चढ़ाया। बाण छूटना था कि वह उसकी छातीमें ऐसा जा धँसा कि वह वहीं ढेर होकर गिर गया। पर मरते समय वह अपना सारा कपट छोड़ बैठा (८) और चिल्ला उठा—'कहाँ हैं लक्ष्मण? कहाँ हैं राम?' यह कहते हुए उसने प्राण छोड़ दिए। यह देखकर अंगद और हनुमान् भी कह उठे—'वाह रे मेघनाद! तेरी माता धन्य है (कि मरते समय तेरे मुँहसे रामका नाम आ निकला)' ॥ ७६ ॥ हनुमान्ने मेघनादको बिना प्रयास ही (धीरेसे) उठा लिया और वे उसे ले जाकर लंकाके फाटकपर सुला आए। उसका मरना सुनते ही देवता, गन्धर्व आदि सब अपने-अपने विमानोंपर चढ़-चढ़कर आकाशमें आ छाए। (१) पुष्प बरसा-बरसाकर वे नगाड़े बजा उठे और लक्ष्मणके विमल यशका वर्णन करते हुए कहने लगे—'हे अनन्त! आपकी जय हो! हे जगदाधार! आपकी जय हो!

१. छांड़ेउ। २. हनुमंत उठावा। ३. तेहि आवा। ४. श्रीरघुबीर।

६३२-३४ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः। मुक्तवांश्च तदा बाणं क्षणुतं शक्रजितं प्रति ॥
६३५-३७ दुर्जयं दुर्विषह्यं च दृष्ट्वा रुष्टो बभूव सः ॥
६३८-४२ लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः। धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ॥
पौरुषं चाप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम्। इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम्॥ वा०रा०
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति। साक्षाच्छेषशराघातैर्हतोहं मुक्तिमागतः ॥
६४३ ततस्तन्मेघनादस्य शिरः संगृह्य मारुतिः। पातयामास लंकायां तदद्भुतमिवाऽभवत्॥ आनंदरा०

अस्तुति करि सुर-सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु-पहँ आए।
सुत-बध सुना दसानन जबहीं। मुरछित भयउ, परेउ महि तबहीं। (३)
मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़त बहु भाँति पुकारी।
९५० नगर-लोग व्याकुल, सब सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा। (४)
दो०—तब दसकंठ बिबिध[1] बिधि, समुझाई सब नारि।
नस्वर रूप जगत[2] सब, देखहु हृदय बिचारि॥७७॥
तिन्हहिं ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद, कथा सुभ-पावन।
पर-उपदेस-कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं, ते नर न घनेरे। (१)
निसा सिरानि, भयउ भिनुसारा। लगे भालु-कपि चारिहुँ द्वारा।
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन-सनमुख जाकर मन डोला। (२)
सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग-बिमुख भए न भलाई।
निज भुज-बल मैं बयरु बढ़ावा। देहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा। (३)

हे प्रभो! आपने (इस राक्षसको मारकर) सब देवताओंका उद्धार कर डाला।' (२) इस प्रकार सब देवता और सिद्ध लोग स्तुति कर-करके गए ही थे कि लक्ष्मण भी कृपालु रामके पास आ पहुँचे। इधर ज्योंही रावणने सुना कि मेरा पुत्र मेघनाद मारा गया त्यों ही वह मूर्च्छित होकर धड़ामसे धरतीपर जा गिरा। (३) मन्दोदरी भी अपनी छाती पीट-पीटकर उसके लिये अनेक प्रकारसे पुकारती हुई डाढ़ मार-मारकर रो उठी। (लंका) नगरके सब राक्षस शोकसे व्याकुल हो उठे और सभी कहने लगे कि 'रावण बड़ा नीच है (कि इसने अपने अभिमानसे अपने कुलका नाश करा डाला)'। (४) तब (कुछ चेतमें आनेपर) रावण उन सब स्त्रियोंको समझाकर कहने लगा—'तुम भली भाँति समझ लो कि यह सारा जगत् ही नश्वर (नाश हो जानेवाला) है। (तब तुम सब किसके लिये रोए-पीटे जा रही हो?)' ॥७७॥ रावणने उन्हें बहुत ज्ञानका उपदेश देकर ढाढ़स बँधाया। वह स्वयं तो बहुत ही नीच प्रकृतिका था, पर उसकी बातें बहुत अच्छी और सच्ची थीं। (संसारमें) ऐसे बहुत लोग मिल जाते हैं जो दूसरोंको तो उपदेश देते चलते हों, पर ऐसे लोग कहीं इने-गिने ही मिल पाते हैं जिनकी कथनी-करनी एक हो (जो जैसा कहते हों वैसा ही करते भी हों)। (१) (किसी-प्रकार रोते-धोते) रात निकल गई, सबेरा हो आया। (सबेरा होते ही) वानर और भालू फिर लंकाके चारों फाटकोंपर आ डटे। अपने बड़े-बड़े योद्धाओंको बुलाकर रावणने डाँटकर कहा—'तुम लोगोंमेंसे जो भी युद्ध-क्षेत्रमें पहुँचकर पीठ दिखाकर भाग खड़ा होनेवाला हो (२) उसके लिये अच्छा है कि अभीसे घर जा बैठे, क्योंकि रणमें शत्रुके सामने पहुँचकर जो पीठ दिखाकर भागेगा वह मेरे हाथसे बच नहीं पावेगा। मैंने (तुम लोगोंके बलपर नहीं) अपनी भुजाके बलपर वैर मोल लिया है। यदि शत्रु चढ़ आया

१. लंकेस अनेक। २. प्रपंच।

९४४-४७ ततः प्रमुदिता देवाः सौमित्रिं परितुष्टुवुः। पुष्पाणि विकिरन्तो वै चक्रुर्नीराजनं मुहुः॥
नानावाद्यनिनादैश्च सौमित्री राघवं ययौ।
९४८ रावणोऽपि भुजं दृष्ट्वा श्रुत्वा पुत्रवधं तथा। पपात पुत्रदुःखेन सभयो मूर्च्छितो भुवि॥आन०रा०
९४९-५० मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम्।
९५१-५२ दैवाधीनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते। त्यज शोकं विशालाक्षं ज्ञानमालंब्य निश्चितम्॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। —अध्यात्मरामायण
९५३-५४ परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्। धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः॥—सुभाषित
९५५ क्षणायान्तु व्यतीतायां लंकाद्वारं समारुधन्।
९५६-५८ अब्रवीच्च स तान् सर्वान् बलमुख्यान्महाबलः। —वाल्मीकीयरामायण

अस कहि मरुत - बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा।
९६० चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल - कै आँधी चली। (४)
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनै न भुज-बल - गर्ब बिसाला। (४॥)
छंद—अति गर्ब गनइ न सगुन - असगुन, स्रवहिं आयुध हाथ - तें।
भट गिरत रथ - तें, बाजि - गज चिक्करत, भाजहिं साथ - तें।
गोमाउ - गीध - करार - खर - रव, स्वान बोलहिं अति घने।
जनु काल - दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥ [४]
दो०—ताहि कि संपति, सगुन सुभ, सपनेहु मन - बिस्राम।
भूत-द्रोह - रत, मोह-बस, राम - बिमुख, रति - काम॥ ७८॥
चलेउ निसाचर - कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा।
बिबिध भाँति बाहन, रथ, जाना। बिपुल पताक बरन ध्वज नाना[1]। (१)
९७० चले मत्त - गज - जूथ घनेरे। प्राबिट-जलद मरुत जनु प्रेरे।
बरन - बरन बिरदैत - निकाया। समर - सूर जानहिं बहु माया। (२)

है तो मैं अकेले ही उनसे निपट भी लूँगा।' (३) यह कहकर उसने पवनके वेगसे चलनेवाला अपना रथ जुतवा मँगाया। युद्धके सब बाजे बज उठे। बड़े-बड़े अतुलनीय बलवाले वीर राक्षस ऐसे बढ़ चले मानो काजलकी आँधी बढ़ी चली आ रही हो। (४) उस समय अनेक अपशकुन हुए चले जा रहे थे पर उस (रावण)-को अपनी विशाल भुजाओंके बलका इतना गर्व था कि उन अपशकुनोंकी उसने कोई चिन्ता ही नहीं की। (४॥) उसे अपने (बाहु-बलपर) इतना अधिक गर्व था कि उसे कोई चिन्ता ही नहीं हो रही थी। उसके हाथोंसे उसके अस्त्र-शस्त्र सरके पड़ रहे थे। रथपर चढ़े हुए योद्धा भी रथसे खिसक-खिसक पड़ रहे थे। साथके हाथी और घोड़े चिग्घाड़ते और हिनहिनाते (इधर-उधर) बहके जा रहे थे। सियार, गिद्ध, कौवे, गदहे और कुत्ते हुआँ-हुआँ, कूँ-कूँ, काँव-काँव, चीपों-चीपों और भौं-भौं किए चले जा रहे थे। उल्लू ऐसे भयानक स्वरमें क्रीच-क्रीच करते उड़ रहे थे मानो वे कालके दूत बनकर आ पहुँचे हों (मृत्युकी सूचना दे रहे हों)। [४] जो लोग दिनरात सब प्राणियोंको कष्ट पहुँचाते रहते हैं, जिनके सिर अज्ञान चढ़ा बैठा रहता है, जो रामसे बैर ठाने रहते हैं और जो कामासक्त होते हैं उन्हें क्या स्वप्नमें भी कभी सम्पत्ति, शुभ शकुन और मनकी शान्ति प्राप्त हो सकती है ? (कभी नहीं)॥ ७८॥ देखते-देखते राक्षसोंकी अपार सेनाएँ चढ़ चलीं। वह चतुरंगिणी (हाथी, घोड़े, रथ और पैदलकी) सेना अनेक टुकड़ियोंमें बँटी हुई चल रही थी जिनमें ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारके वाहन, रथ और सवारियाँ थीं जिनपर अनेक रंगकी अनगिनत ध्वजाएँ और पताकाएँ फरफर फरफरा रही थीं। (१) मतवाले हाथियोंके झुंडके झुंड ऐसे झपटे चले जा रहे थे मानो आँधी-बवंडरके साथ वर्षाके बादल उमड़े-घुमड़े चले आ रहे हों। उस सेनामें भाँति-भाँतिके ऐसे प्रशंसनीय वीरोंकी टोलियाँ भी थीं जो युद्धमें भी डटकर लड़ सकते थे और जो

१. बिपुल बरन पताक ध्वज नाना।

९५९-६० दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः। चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूबरम्॥अध्या०रा०
ततश्चासीन्महानादस्तूर्याणां च समंततः। मृदंगैः पटहैः शंखैः काहलैः सह रक्षसाम्॥
निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रं नानानीकैश्च संयुताः॥ —वाल्मीकीयरामायण
९६१-६५ प्रतोदा जगलुर्त्रामिमानञ्चुर्यज्ञिया मृगाः। सस्यन्दे शोणितं व्योम रणांगानि प्रजज्वलुः॥
रथाः प्रचस्खलुः साश्वा नररंहाश्च कुंजरम्। तं यान्तं दुद्रुवुर्गृध्राः क्रव्यादश्च सिषेविरे॥
९६६-७१ रथानां नियुतं साग्रं नगानां नियुतं त्रयम्। अश्वानां षष्टिकोट्यस्तु खरोष्ट्राणां तथैव च॥भट्टिकाव्य
पदातयस्त्वसंख्याता जग्मुस्ते राज्यशासनात्॥

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी।
चलत कटक दिग-सिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं। (३)
उठी रेनु, रबि गयउ छपाई। मरुत थकित, बसुधा अकुलाई।
पनव - निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय[1]-के घन जनु गाजहिं। (४)
भेरि - नफीरि बाजि सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई।
केहरि - नाद बीर सब करहीं। निज-निज बल - पौरुष उच्चरहीं। (५)
कहै दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु - कपिन - के ठट्टा।
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेँगाई। (६)
९८० यह सुधि सकल कपिन जब पाई। धाए करि रघुबीर - दोहाई। (६॥)

छंद—धाए बिसाल कराल मर्कट - भालु, काल - समान ते।
मानहु सपच्छ उड़ाहिं भूधर - बृन्द, नाना बान ते।
नख - दसन - सैल - महाद्रुमायुध सबल, संक न मानहीं।
जय राम - रावन, मत्तगज मृगराज, सुजस बखानहीं॥ [५]

दो०—दुहुँ दिसि जय-जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत राम-हित[2], उत रावनहिं बखानि॥ ७९॥

बहुत प्रकारकी माया करनेमें भी गुरुघंटाल थे। (२) इस प्रकार वह सेना ऐसे विचित्र ढंगसे सजी चली जा रही थी मानो वीर (ऋतुराज) वसन्त ही सेना सजाए चला आ रहा हो। सेना क्या चली कि दिग्गज डगमगा चले, समुद्रमें ज्वार उठ चला और पर्वत दहल उठे। (३) सेनाके चलनेसे इतनी धूल उड़ी कि सूर्य-तक ढक गए, वायु चलना बन्द हो गया, सारी धरती अकुला उठी। ढोल और नगाड़े ऐसे गड़गड़ाकर बज उठे मानो प्रलय कालके बादल गरज उठे हों। (४) भेरी, तुरही और शहनाईमें वीरोंको हर्षित करने और उकसानेवाले मारू राग बजे जा रहे थे। सिंहनाद करते हुए वीर गरज रहे थे और सब अपने-अपने बल और पुरुषार्थका बखान किए जा रहे थे। (५) रावणने उनसे कहा—'देखो वीर योद्धाओ ! तुम सब तो जाकर भालू और वानरोंके झुण्डको जा मसलो और मैं उन दोनों राजकुमार भाइयोंको ठिकाने लगाए देता हूँ।' यह कहकर उसने सेना आगे बढ़ा दी। (६) जब वानरोंने यह समाचार सुना तो वे भी रामकी दुहाई दे-देकर झपट चले। (६॥) विशाल देहवाले कालके समान भयंकर भालू और वानर ऐसे झपट चले मानो पंखवाले अनेक रंगोंके पहाड़ उड़े चले जा रहे हों। नख, दाँत, पहाड़ोंकी चट्टानें और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे। वे इतने बलवान् थे कि वे किसीसे डरनेका नाम नहीं ले रहे थे। रावण-जैसे मतवाले हाथीके लिये सिंह-जैसे रामकी जयकार करते और उनका सुयश वर्णन करते हुए वे दौड़े चले जा रहे थे। [५] दोनों ओरके योद्धा (अपने-अपने स्वामियोंकी) जय-जयकार करते हुए अपनी-अपनी जोड़ी चुन-चुनकर इधर रामका, उधर रावणका बखान करते हुए परस्पर जा

१ महा प्रलय। २. रामहि।

९७२-७४ दिग्दन्तिनस्तदा चेलुर्दुधुवुश्च महीधराः। संछन्नस्तरणिर्जातश्चोद्धूतेनैव रेणुना॥
तेन नादेना महता पृथिवी समकम्पयत्।
९७५-७७ कम्बूनथ समादध्मुः कोणैर्भेर्यो निजघ्निरे। वेणून् पुपूरिरे गुञ्जाः सुगुञ्जाः करघुट्टिताः॥
वादयांचक्रिरे ढक्काः पणवा दध्वनुर्हताः। आत्मौजश्चोच्चरन्तः के सिंहनादं विदेधिरे॥
९७८-८० अहं रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः। यूयं यूथप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम्॥
मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भिन्नहर्षं शतं शतम्। वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तते॥
९८१-८६ आस्यन् प्लवंगमा वृक्षान् धून्वन् भूधरैर्भृशम्। अहिंसन् मुष्टिभिः क्रोधाददशन् दशनैररीन्॥भट्टि०
ततः समभवद्युद्धं प्रहरद् कपिरक्षसाम्। अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम्॥ वा०रा०

रावन रथी, बिरथ रघुबीरा। देखि, बिभीषन भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन, भा संदेहा। बंदि चरन, कह सहित-सनेहा। (१)
नाथ! न रथ, नहिँ तनु-पद-त्राना[1]। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।
९९० सुनहु सखा! कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ, सो स्यंदन आना। (२)
सौरज-धीरज तेहि रथ चाका। सत्य-सील दृढ़ ध्वजा-पताका।
बल-बिवेक-दम-परहित घोरे। छमा-कृपा-समता रजु जोरे। (३)
ईस-भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म, संतोष कृपाना।
दान परसु, बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा। (४)
अमल अचल मन त्रोन-समाना। सम-जम-नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र-गुरु-पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा। (५)
सखा! धरममय अस रथ जाके। जीतन-कहँ न कतहुँ रिपु ताके। (५॥)
दो०—महा अजय संसार-रिपु, जीति सकै सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा! मति-धीर॥८० क॥
१००० सुनि प्रभु-बचन बिभीषन, हरषि गहे पद-कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम! कृपा-सुख-पुंज॥८० ख॥

भिड़े॥ ७९॥ रावणको रथपर सवार देखकर और रामको बिना रथके देखकर विभीषण अधीर हो उठा। रामसे उसका बहुत अधिक प्रेम था इसलिये उसके मनमें संदेह उठ खड़ा हुआ (कि बिना रथके ये कैसे लड़ पावेंगे)। वह (रामके) चरणोंकी वन्दना करके बड़े स्नेहके साथ कहने लगा—(१) 'नाथ! आपके पास न तो रथ है, न शरीरकी रक्षा करनेवाला कवच है, न पैरोंमें जूते ही हैं तब आप उस वीर बलवान्‌को जीत कैसे पावेंगे?' यह सुनकर कृपानिधान रामने कहा'—देखो मित्र! जिस रथपर चढ़कर लड़नेसे जीत हुआ करती है वह रथ कुछ दूसरे ही प्रकारका हुआ करता है। (२) शौर्य (वीरता) और धैर्य ही उस रथके पहिये होते हैं, सत्य और शील ही उस रथ-की ध्वजा और पताका होती है। बल, विवेक, इन्द्रियोंका दमन और परोपकार ही उसके घोड़े होते हैं जो क्षमा, कृपा और समताकी रस्सीसे उस रथमें जुते रहते हैं। (३) ईश्वरका भजन ही उस रथका चतुर सारथि होता है, वैराग्य ही उसपर चढ़कर लड़नेवालेकी ढाल होती है, सन्तोष ही कृपाण होता है, दान ही फरसा होता है, बुद्धि ही प्रचण्ड शक्ति (बरछी) होती है, शुद्ध विज्ञान (तत्त्वज्ञान) ही उसका प्रचंड धनुष होता है। (४) निर्मल (पाप-रहित) और स्थिर मन ही उसका तूणीर होता है, शम, यम और नियम ही उसके बाण होते हैं। ब्राह्मण और गुरुकी पूजा ही उसका अभेद्य कवच होता है। इस (रथपर चढ़कर युद्ध करने)-के समान विजय प्राप्त करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। (५) देखो सखे! जिसके पास ऐसा धर्मवाला रथ हो, उसके लिये तो कहीं ऐसे शत्रु ही नहीं रह जाते जिन्हें जीतनेकी आवश्यकता पड़ पाती हो। (५॥) देखो धीर बुद्धिवाले सखा! जिसके पास ऐसा दृढ रथ हो, वह वीर इस संसार (-के मोह)-रूपी महान् दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है (फिर रावण तो है किस गिनतीमें?)'॥ ८० क॥ प्रभुके वचन सुनकर विभीषणने हर्ष-पूर्वक रामके चरण-कमल पकड़ लिए और कहा—'हे कृपा और सुखके पुंज राम! (आप कितने कृपालु हैं कि) आपने इसी बहाने मुझे यह (महत्त्वपूर्ण) ज्ञान दे डाला'॥ ८० ख॥ उधर रावण ललकारे जा

---

१. पदु त्राना।

उत पचार दसकंधर[1], इत अंगद, हनुमान।
लरत निसाचर भालु, कपि, करि निज-निज प्रभु आन॥ ८० ग॥

सुर ब्रह्मादि, सिद्ध, मुनि नाना। देखत रन, नभ चढ़े बिमाना।
हमहूँ उमा! रहे तेहि संगा। देखत राम-चरित रन-रंगा। (१)
सुभट समर-रस दुहुँ दिसि माते। कपि जयसील राम-बल ताते।
एक एक-सन भिरहिं, पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि, महि पारहिं। (२)
मारहिं, काटहिं, धरहिं, पछारहिं। सीस तोरि सीसन-सन मारहिं।
उदर बिदारहिं, भुजा उपारहिं। गहि पद, अवनि पटकि भट डारहिं। (३)
१०१० निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि[2] देहिं बहु बालू।
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखियत बिपुल काल जनु क्रुद्धे। (४)

छंद—क्रुद्धे कृतांत-समान कपि, तनु स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक, भट बलवंत घन-जिमि गाजहीं।
मारहिं चपेटन्हि, डाँटि, दाँतन्ह काटि, लातन्ह मीँजहीं।
चिक्करहिं मर्कट-भालु, छल-बल करहिं, जेहि खल छीजहीं॥ [६]
धरि गाल फारहिं, उर बिदारहिं, गल अँतावरि मेलहीं।
प्रहलाद-पति जनु बिबिध तनु धरि, समर-अंगन खेलहीं।

रहा था और इधर अंगद और हनुमान् ललकारे जा रहे थे। राक्षस और भालू-बन्दर दोनों अपने-अपने स्वामियोंकी दुहाई देते हुए लड़े चले जा रहे थे॥ ८० ग॥ ब्रह्मा आदि सब देवता अनेक सिद्ध और मुनि भी विमानोंपर चढ़-चढ़कर आकाशसे वह युद्ध देखे जा रहे थे। (शिव कहते हैं–) 'देखो उमा! मैं भी देवताओंके उस समाजमें बैठा रामके रण-रंगका कौशल देखता जा रहा था। (१) दोनों ओरके बड़े-बड़े श्रेष्ठ योद्धा सब रणकी उमंगमें मतवाले हुए जा रहे थे। रामका बल पाकर वानर सब जीतते चले जा रहे थे। वे राक्षसोंसे भिड़ते, ललकारते और उन्हें मसल-मसलकर धरतीपर पटकते चले जा रहे थे। (२) वे राक्षसोंको मारते, काटते और पकड़-पकड़कर पछाड़ते जा रहे थे। वे एकका सिर तोड़कर वही सिर दूसरेको खींच मारते थे। वे किसीका पेट फाड़ डालते, किसीकी भुजा उखाड़ लेते और किसीकी टँगड़ी पकड़कर उसे धरतीपर पछाड़कर उठा फेंकते थे। (३) राक्षस यथा काम करते थे कि योद्धा भालुओंको मार-मारकर धरतीमें खोद गाड़ते थे और उसपर ढेर-सा बालू उठा डालते थे। उस युद्धमें शत्रुओंसे लोहा लेनेवाले वानर ऐसे दिखाई पड़ रहे थे, मानो काल ही क्रोधित होकर लड़ने आ पहुँचा हो। (४) कालके समान क्रुद्ध वानरोंके शरीरसे बहता हुआ रक्त बहुत शोभा दे रहा था। वे बलवान् वीर योद्धा राक्षसोंकी सेनाका मर्दन करते हुए बादलके समान गरजते चले जा रहे थे। वे राक्षसोंको मारते, चपेटते, डांटते, दाँतोंसे काटते और पैरोंसे रौंदते चले जा रहे थे। वानर-भालू चिग्घाड़ते हुए ऐसे छल-बल करके लड़ते चले जा रहे थे जिससे राक्षसोंका नाम-लेवा पानी-देवा-तक न बचा रह जाय। [६] वे राक्षसोंको पकड़-पकड़कर उनके कल्ले चीर डालते, छाती फाड़ डालते और उनकी अँतड़ियाँ निकाल-निकालकर गलेमें पहन-पहनकर घूमते हुए ऐसे लगते थे मानो

१. दसकंठ भट। २. डारि।

१००२-५ अन्योन्यं संहरन्ते च परस्परजयैषिणः। विमानस्थाः सुरगणा सिद्धगंधर्वकिन्नराः॥
ददृशुः सुमहायुद्धं लोकसंवर्तकोपमम्। अहं चापि तदाऽभूवं योद्धं नर्म विलोकयन्॥
१००६-७ प्रविश्य राक्षसं सैन्यं ममन्युर्बलदर्पिताः। वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः॥
प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते सर्वराक्षसान्। –अध्यात्मरामायण

धरु - मारु - काटु - पछारु, घोर गिरा गगन - महि भरि रही।
जय राम, जो तृन - तें कुलिस कर, कुलिस - तें कर तृन सही ॥ [७]

१०२० दो०—निज दल बिचलत देखेसि, बीस भुजा, दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन, फिरहु - फिरहु करि दाप ॥ ८१ ॥

धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सनमुख चले, हूह दै बंदर।
गहि कर पादप - उपल - पहारा। डारेन्हि ता - पर एकहि बारा। (१)
लागहिँ सैल बज्र - तन तासू। खंड - खंड होइ फूटहिं आसू।
चले पराइ, भालु - कपि नाना। त्राहि - त्राहि अंगद - हनुमाना। (३)
इत - उत झपटि दपटि कपि - जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा।
चला न, अचल रहा[1] रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी। (२)
पाहि - पाहि रघुबीर गुसाईं। यह खल खाइ काल - की नाईं।
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहु चाप सायक संधाने। (४)

१०३० छन्द—संधानि, धनु सर - निकर छाँड़ेसि उरग - जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी - गगन - दिसि - बिदिसि - कहँ, कपि भागहीं।

प्रह्लादके स्वामी नृसिंह भगवान् ही अनेक शरीर बनाकर युद्ध-क्षेत्रमें खेल किए जा रहे हों। 'पकड़ो-मारो, काटो, पछाड़ डालो' की भयानक पुकारें धरतीसे आकाशतक गूँजी पड़ रही थीं। वानर निरन्तर तृणको वज्र और वज्रको तृण बना डाल सकनेवाले रामकी जय-जयकार किए जा रहे थे। [७] जब अपनी बीसों भुजाओंमें दस-दस धनुष लिए रहनेवाले रावणने देखा कि मेरी सेना विचलित हुई जा रही है तो वह रथपर चढ़कर बड़े अभिमानके साथ सबको 'लौटो-लौटो' ललकारता हुआ आगे बढ़ चला ॥ ८१ ॥ क्रोधसे लाल होकर रावणने वानरोंकी सेनापर धावा बोल दिया। फिर क्या था ! वानर भी हुंकार करते हुए उसके सामने आ डटे। उन्होंने वृक्ष, पत्थर और पहाड़की चट्टानें उठा-उठाकर एक साथ उसपर दे मारीं। (१) पर उसका शरीर ऐसा वज्रके समान था कि पर्वतकी चट्टानें भी लगते ही चूर-चूर हो गिरती थीं। अत्यन्त क्रोधी रणोन्मत्त रावण अपना रथ रोककर वहीं अचल होकर डटा खड़ा रहा। (२) उसे इतना क्रोध हुआ कि उसे इधर-उधर जो भी योद्धा वानर मिलते उन्हें झपटकर और डाँटकर पकड़ मसलता। यह देखकर तो बहुतसे वानर और भालू यह चिल्लाते हुए भाग चले—'हे अंगद ! हे हनुमान् ! रक्षा करो, रक्षा करो। (३) हे रघुवीर ! हे गोसाईं ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। यह दुष्ट कालके समान हमें खाए डाल रहा है।' जब उस (रावण)-ने देखा कि सब वानर मैदान छोड़-छोड़कर भाग खड़े हुए हैं, तब उसने अपने दसों धनुषोंपर बाण चढ़ा लिए। (४) वह अपने धनुषोंपर बाण चढ़ा-चढ़ाकर धुआँधार बाण बरसाने लगा। वे बाण सबको सर्पके समान उड़-उड़कर आ-आ लगने लगे। धरतीसे आकाश-तक, सब ओर बाण ही बाण आ छाए। अब वानर जायँ भी तो कहाँ भागकर जायँ ! चारों ओर हाहाकार मच

१. महारथ।

१०२०-२१ प्रक्षीणं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं बलीमुखैः। रथमारुह्य गतवान् रावणो राक्षसेश्वरः ॥
१०२२-२३ अभिदुद्राव संक्रुद्धः रावणस्तु महामृधे। शैलान्समुत्पाट्य विवृद्धकायाः प्रदुद्रुवुस्तं प्रतिराक्षसेन्द्रम्॥
१०२४-२५ तन्महीध्राभिपातेन दशवक्त्रो न विव्यथे। तत्स्पर्शेन ता एव खंडं खंडं ययुः शिलाः ॥
१०२६ ममर्दाशेषकीशान् वै रावणो राक्षसेश्वरः।
१०२७ ततस्तु वानराः सर्वे भिन्नदेहा विचेतसः। व्यथिता विद्रवंतिस्म रुधिरेण समुक्षिताः ॥
१०२८-२९ शाखामृगा रावणसायकार्त्ता जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥ —अध्यात्मरामायण

भयो अति कोलाहल, बिकल कपि - दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर ! करुनासिंधु ! आरत - बंधु ! जन - रच्छक ! हरे ॥ [८]

दो०—निज दल बिकल देखि, कटि , कसि निखंग, धनु हाथ ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ , नाइ राम - पद माथ ॥ ८२ ॥

रे खल ! का मारसि कपि - भालू । मोहिं बिलोकु, तोर मैं कालू।
खोजत रहेउँ तोहिं सुत-घाती । आजु निपाति जुड़ावउँ छाती। (१)
अस कहि छाँड़ेसि बान प्रचंडा । लछिमन किए सकल सत खंडा।
कोटिन्ह आयुध रावन डारे । तिल - प्रवान करि काटि निवारे। (२)
१०४० पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा । स्यंदन भंजि, सारथी मारा।
सत - सत सर मारे दस - भाला । गिरि-सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला। (३)
पुनि सत सर मारा उर - माहीं । परेउ धरनि - तल सुधि कछु नाहीं।
उठा प्रबल, पुनि मुरछा जागी । छाँड़िसि ब्रह्म दीन्ह जो साँगी। (४)

गया। वानर और भालुओंकी सेना व्याकुल हो-होकर रो-रोकर पुकारे चली जा रही थी—'हे रघुवीर ! हे करुणा-सागर ! हे पीडितोंके बंधु ! हे भक्तोंके रक्षक हरि !' [८] अपनी सेनाको व्याकुल देखकर कमरमें तूणीर कसकर, हाथमें धनुष लेकर और रामके चरणोंमें सिर नवाकर, (रावणपर) क्रुद्ध होकर लक्ष्मण चल दिए ॥ ८२ ॥ (पहुँचते ही लक्ष्मणने रावणको जा ललकारा—) 'अरे दुष्ट ! तू वानर और भालुओंको क्या मारे डाल रहा है ? इधर मेरी ओर देख, मैं तेरा काल (तेरे सिरपर) आया खड़ा हूँ ।' (रावणने कहा—) 'अरे मेरे पुत्रके हत्यारे ! (अच्छा हुआ तू आ गया !) मैं तुझे ही तो अबतक ढूंढ़ रहा था । आज तुझे तलवारके घाट उतारकर अपनी छाती ठंढी कर लूंगा ।' (१) यह कहकर वह धुआँधार प्रचण्ड बाण छोड़ने लगा । (लक्ष्मण भी किससे कम थे।) वे भी उसके बाण टूक-टूक किए डाल रहे थे। फिर रावणने और भी करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाए, पर लक्ष्मणने सबकी चिन्दी-चिन्दी उड़ा फेंकी । (२) यह करके लक्ष्मणने अपने प्रचण्ड बाण चलाकर रावणका रथ चूर-चूर करके सारथिको मार गिराया । उन्होंने रावणके एक-एक सिरपर जो सौ-सौ बाण मारे वे (उसके सिरोंमें ऐसे जा-जाकर धँस गए) मानो पर्वतकी चोटियोंमें साँप जा घुसे हों । (३) फिर उन्होंने सौ बाण उसकी छातीमें ऐसे तानकर मारे कि वह अचेत होकर धरतीपर आ गिरा । मूर्च्छा टूटते ही वह पराक्रमी रावण फिर उठा और उसने (लक्ष्मणपर) वह शक्ति उठा चलाई जो उसे ब्रह्माने दी थी (४) ब्रह्मा की दी हुई वह प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणकी ठीक छातीमें

१०३०-३३ तामसं सुमहाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् । निर्ददाह कपीन् सर्वांस्ते प्रपेतुः समंततः ॥
पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना । संचचाल मही सर्वा त्रस्तसिंहमृगद्विजाः ॥
१०३४-३६ वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम् । समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥
जगाम परमक्रुद्धः रामपादावनुस्मरम् । त्यज तद्वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यति ।
अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि ॥
१०३७-३८ रावणः कोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदीरयत् । लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रास्त्रं चिच्छेद निशितैः शरैः ॥
१०३९-४० आयुधानि च चित्राणि ससर्ज रावणो रणे । लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा ॥
तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः । ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥
सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् । जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैऋतस्य महाबलः ॥
१०४१-४२ निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः ।
स सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनरासमाद ॥
१०४३ चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥ —अध्यात्मरामायण

छंद—सो ब्रह्म - दत्त प्रचंड सक्ति अनंत - उर लागी सही।
पर्‍यो बीर बिकल, उठाव दसमुख, अतुल बल महिमा रही।
ब्रह्मांड - भुवन बिराज जाके एक सिर, जिमि रज - कनी।
तेहिं चह उठावन मूढ़ रावन, जान नहिं त्रिभुवन - धनी॥ [९]
दो०—देखि पवनसुत, धायउ[२], बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहिं हन्यो तेहि[३], मुष्टि - प्रहार प्रघोर॥ ८३॥

१०५० जानु टेकि कपि, भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस - भरा।
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र - प्रहारा। (१)
मुरछा गइ बहोरि सो जागा। कपि - बल बिपुल सराहन लागा।
धिग-धिग मम पौरुष, धिग मोहीं। जौं तैं जियत उठेसि सुर - द्रोही। (२)
अस कहि लछिमन-कहँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो।
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम कृतांत - भच्छक, सुर - त्राता। (३)
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला।

जा लगी। लगते ही वे वीर (लक्ष्मण) अचेत होकर वहीं गिर पड़े। रावणने उन्हें उठा ले जानेका बहुत प्रयत्न किया पर उसका सारा अतुलित बल धराका धरा गया (वह लक्ष्मणको उठा नहीं पाया)। (रावणकी मूर्खता तो देखिए कि) जिन (शेष)-के (सैकड़ों फणोंमें से) एक-एक फणपर ब्रह्माण्डके समस्त लोक धूलके कणके समान चिपकेसे (तुच्छ) लगे पड़े रहते हैं, उन्हें वह मूढ रावण उठा ले जानेका प्रयत्न कर रहा था। वह त्रिलोकीनाथ लक्ष्मणको जान ही नहीं पाया (कि ये हैं कौन)। [९] यह देखते ही पवनपुत्र हनुमान् उसे डाँटते-फटकारते हुए उसपर टूट पड़े। (हनुमान्)-को आते देखते ही रावणने उन्हें बड़ा कसकर एक घूँसा दे जमाया॥ ८३॥ घूँसेकी चोटसे हनुमान् धरतीपर नहीं गिर पाए, घुटने टेके बैठे रह गए। फिर वे क्रोधसे भरे हुए सँभलकर उठे और उठकर उन्होंने रावणको एक घूँसा जो तानकर जमाया तो उससे तिलमिलाकर वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्रके प्रहारसे पर्वत ढह पड़ा हो। (१) जब उसकी मूर्च्छा टूटी और वह चेतमें आया तो उठकर वह हनुमान्के प्रचण्ड बलकी बहुत प्रशंसा करने लगा। (यह सुनकर हनुमान्ने कहा—) 'मेरे बल और पुरुषार्थको तथा मुझे भी धिक्कार है कि तू देवताओंका द्रोही मेरा घूँसा खाकर भी जीता-जागता उठ बैठा।' (२) यह कहकर हनुमान् वहाँसे लक्ष्मणको रामके पास उठाए लिए चले आए। यह देखकर तो रावणने दाँतों तले उँगली दबा ली (कि मेरे लाख उठानेपर भी जो लक्ष्मण नहीं उठ पाए थे उन्हें हनुमान् धीरेसे उठाए लिए चले गए)। (लक्ष्मणको देखते ही) रामने कहा—'अरे लक्ष्मण! तुम तो कालके भक्षक और देवताओंके रक्षक हो, (उठो!)।' (३) इतना सुनना था कि कृपालु लक्ष्मण उठ बैठे और जो कराल शक्ति उन्हें लगी थी वह भी निकलकर

१. अवनि। २. देखत धाए पवनसुत। ३ तेहि उर महँ हतेउ।

१०४४-४७ स शक्तिमाञ्छक्तिसमाहतः सञ्ज्वाल भूमौ स रघुप्रवीरः।
तं विह्वलं तं सहसाभ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्॥
१०४८-४९ ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत्। आजघानापतन्तं तं दशग्रीवः सुमुष्टिना॥
१०५०-५१ तेन मुष्टिप्रहारेण न पपातानिलात्मजः। आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना॥
१०५२-५३ अथाश्वास्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत्। साधु वानरवीर्येण श्लाघनीयोसि मे रिपुः॥
रावणेनैव मुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत्। धिगस्तु मम वीर्यस्य यस्त्वं जीवसि रावण॥
१०५४ हनुमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम्। आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्॥
१०५५-५६ तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि निर्जितम्। रावणस्य रथे तस्मिन् स्थानं पुनरुपागमत्॥अध्या.

पुनि कोदंड - बान गहि धाए। रिपु - सनमुख अति आतुर आए। (४)
छंद—आतुर बहोरि, बिभंजि स्यंदन, सूत हति व्याकुल कियो।
गिर्‍यो धरनि दसकंधर बिकलतर, बान सत बेध्यो हियो।
१०६० सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर - बंधु प्रताप - पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ॥ [१०]
दो०—उहाँ दसानन जागि करि, करै लाग कछु जग्य।
राम - बिरोध बिजय चह, सठ हठबस अति अग्य ॥ ८४ ॥
इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई।
नाथ ! करै रावन एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरिहि अभागा। (१)
पठवहु नाथ ! बेगि भट बन्दर। करहिं बिधंस आव दसकंधर।
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए। (२)
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन - भवन असंका।
जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा। (३)
१०७० रन - तें निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक - ध्यान लगावा।

आकाशमें उड़ गई। फिर क्या था ! धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण फिर दौड़ पड़े और झट शत्रुके सामने जा डटे। (४) बड़ी फुर्तीसे लक्ष्मणने उस (रावण)-का रथ चूर-चूर करके, उसके सारथिको मारकर रावणको भी लहूलुहान कर डाला। यह देखते ही तुरन्त एक दूसरा सारथि उसे रथपर डालकर लंका ले भागा। इतना पराक्रम कर चुकनेपर रामके भाई (लक्ष्मण)-ने प्रभु रामके चरणोंमें आ प्रणाम किया। [१०] उधर रावणकी जब मूर्च्छा टूटी तो वह झट यज्ञ करने जा बैठा। उस दुष्टकी मूर्खता तो देखिए कि रामसे हठ करके बैर मोल लेकर भी वह चाहता जा रहा था कि मैं जीत जाऊँ ॥ ८४ ॥ विभीषणको जब यह सब समाचार मिला (कि रावण बैठा यज्ञ कर रहा है) तो उसने तुरन्त आकर रामको सारा समाचार बताते हुए कहा—'नाथ ! रावणने एक यज्ञ ठान दिया है। यदि वह यज्ञ सिद्ध हो गया तो वह अभागा किसीके भी मारे न मर पावेगा। (१) इसलिये नाथ ! झटपट योद्धा वानरोंको समझा भेजिए कि वे उसका यज्ञ तहस-नहस कर डालें जिससे रावण फिर युद्ध-भूमिमें आ पहुँचे।' प्रभु रामने सुनते ही सवेरा होते ही सब बड़े-बड़े योद्धा वहाँ भेज दिए। हनुमान्, अङ्गद आदि सब योद्धा आज्ञा पाते ही दौड़ पड़े। (२) खेल-खेलमें ही वे वानर कूदकर लंकापर जा चढ़े और निःशंक होकर उसके भवनमें जा घुसे। वहाँ सब देखते क्या हैं कि रावण वहाँ बैठा यज्ञ कर रहा है। यह देखकर तो सब वानर तमतमा उठे। (३) (वे कहने लगे—) 'अरे निर्लज्ज ! तू संग्रामसे भागकर यहाँ घरमें घुसा बगला-भगत बना बैठा है।' यह कहकर

१०५७ पुनश्चापं समादाय रावणं समभिद्रवत्।
१०५८-६१ स निकृत्तो पतद्भूमौ रावणस्यन्दनध्वजः।सुकृत्तचापः शरताडितश्च मेदार्द्रगात्रो भुवि चापतद्द्रुतम्।
सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम्। शनैर्युद्धादसंभ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥
ततो रामं परिक्रम्य सौमित्रिरभ्यवादयत्। —अध्यात्मरामायण
१०६२-६३ गुहां प्रविश्य चैकान्ते मौनी होमं प्रचक्रमे। —आनन्दरामायण
१०६४-६५ उत्थितं धूममालोक्य रामं प्राह विभीषणः। यदि होमसमाप्तिः स्यात् तदाजेयो भवेदयम् ॥
१०६६ अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाशु हरीश्वरान्।
१०६७ तथेति रामः सुग्रीवसंमतेनांगदं कपिम्। हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेश महाबलान्।
१०६८-६९ प्राकारं लंघयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम्। ददृशू रावणं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम् ॥अध्या०

अस कहि अंगद मारेउ लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता। (४)
छंद--नहिँ चितव जब, करि कोप कपि गहि दसन, लातन मारहीं।
धरि केस, नारि निकारि बाहेर, तेऽति दीन पुकारहीं।
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत - सम, गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन विधंस - कृत मख देखि, मन - महँ हारई॥ [११]
दो०--जज्ञ बिधंसि कुसल कपि, आए रघुपति - पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन - कै आस॥ ८५॥
चलत होहिँ अति असुभ भयंकर। बैठहिँ गीध उड़ाइ सिरन - पर।
भयउ काल - बस काहु न माना। कहेसि, बजावहु जुद्ध - निसाना। (१)
१०८० चली तमीचर - अनी अपारा। बहु गज - रथ - पदाति - असवारा।
प्रभु - सनमुख धाए खल कैसे। सलभ - समूह अनल - कहँ जैसे। (२)
इहाँ देवतन अस्तुति कीन्हीँ। दारुन बिपति हमहिँ ऐहि दीन्हीँ।

अंगदने उसे कसकर एक लात जमा ही तो दी। पर वह अपना स्वार्थ साधनेमें ऐसा लगा हुआ था कि उस दुष्टने उनकी ओर ताका - तक नहीं। (४) जब उसने (उनकी ओर) ताका नहीं तब सब बन्दर कचकचा - कचकचाकर उसे दाँतोंसे काटने और लातोंसे मारने लगे। (इतना ही नहीं,) वे (उसके रनिवासकी) स्त्रियोंकी चोटियाँ पकड़-पकड़कर उन्हें भी बाहर घसीट लाए। तब तो वे सब (स्त्रियाँ) अत्यन्त दीन होकर चिल्ला उठीं। यह देखकर तो रावण कालके समान तमक उठा और वानरोंकी टँगड़ी पकड़-पकड़कर इधर-उधर उठा-उठाकर पटकने लगा। इसी बीच उधर वानरोंने उसका यज्ञ ऐसा तहस-नहस कर डाला कि वह देखकर रावण भी मनमें हार मान बैठा। [११] सारा यज्ञ तहस-नहस करके सब वानर कुशल-पूर्वक रामके पास लौट आए। उधर वह राक्षस (रावण) भी अपने जीवनकी आशा छोड़कर क्रोधसे लाल होकर (रणभूमिकी ओर) लपक चला॥ ८५॥ ज्यों ही वह चला त्योंही बड़े भयानक-भयानक अपशकुन हो चले। गिद्ध उड़-उड़कर उसके सिरोंपर आ-आकर बैठने लगे। पर उसके सिर तो काल चढ़ा हुआ था। वह किसी शुभ या अशुभ शकुनपर ध्यान ही नहीं दे रहा था। उसने युद्धके डंके (जुझाऊ बाजे) बजानेकी आज्ञा दे दी। (१) सुनते ही राक्षसोंकी वह अपार सेना चल पड़ी जिसमें (अनगिनत) हाथी, रथके सवार और पैदल सैनिक भरे पड़े थे। वे सब प्रभु रामकी ओर ऐसे झपटकर बढ़े जैसे आगपर (जल मरनेके लिये) पतिंगे झपटते हैं। (२) यहाँ सब देवता मिलकर रामकी स्तुति करने लगे—'यह रावण हमें बहुत दु:ख दे चुका है। इसलिये राम! अब इसे (और अधिक) न खेलाइए। वैदेही भी

१०७०-७१ घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः। न जहौ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया।
१०७२-७५ प्रविश्यांतःपुरे वेश्मन्यंगदो वेगवत्तरः। समानयत्केशबंधे धृत्वा मंदोदरीं शुभाम्॥
मंदोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम्। क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकंधरम्॥
निर्लज्जासि परैरेवं केशपाशे विकृष्यतो। भार्य्यां तवैव पुरतः किं जुहोसि न लज्जसे॥
श्रुत्वा तद्देवितं राजा मंदोदर्या दशाननः। उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन्।
जघानांगदमव्यग्रः कटिदेशे दशाननः। ततस्त्यक्त्वा ययुः सर्वे विध्वंस्य हवनं महत्॥
१०७६-७७ रामपार्श्वमुपागम्य तस्थुः सर्वे प्रहर्षिताः। रावणः प्रययौ योद्धुं रामेण सह संयुगे।—अध्यात्म
१०७८-७९ समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः। महद्गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभस्थले।
येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति। न चिन्तयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः॥
१०८० जगाम राक्षसानीकं नानावाहनसंयुतम्।
१०८१-८२ ततः प्रमुदिता देवा राघवं परितुष्टुवुः। दुरात्मा रावणो नाथ क्लेशं प्रादाच्च नो बहु॥ वा०रा

अब जनि ! राम खेलावहु एही । अतिसय दुखित होति बैदेही । (३)
देव - बचन सुनि - प्रभु मुसुकाना । उठि, रघुबीर सुधारे बाना ।
जटा - जूटा दृढ़ बाँधे माथे । सोहहिं सुमन बीच - बिच गाथे । (४)
अरुन नयन, बारिद - तनु - स्यामा । अखिल लोक - लोचनाभिरामा ।
कटि - तट परिकर कस्यौ निखंगा । कर कोदंड कठिन सारंगा । (५)

छंद—सारंग कर, सुन्दर निखंग सिलीमुखाकर कटि कस्यौ ।
भुज - दंड पीन, मनोहरायत उर धरा - सुर - पद लस्यौ ।
१०९० कह दास - तुलसी जबहिं प्रभु सर - चाप कर फेरन लगे ।
ब्रह्मांड, दिग्गज, कमठ, अहि, महि, सिन्धु भूधर डगमगे ॥ [१२]

दो०—सोभा देखि हरपि सुर , बरषहिं सुमन अपार ।
जय-जय-जय करुनानिधि , छबि - बल - गुन-आगार ॥ ८६ ॥

एही बीच निसाचर - अनी । कसमसात आई अति घनी ।
देखि चले सनमुख कपि - भट्टा । प्रलय - काल - के जनु घन - घट्टा । (१)
बहु कृपान - तरवार चमक्कहिं । जनु दहुँ दिसि दामिनी दमक्कहिं ।

दुःखमें पड़ी घुली जा रही हैं ।' (३) देवताओंके वचन सुनकर प्रभु राम मुसकरा दिए । उन्होंने झट अपने बाण उठा सँभाले और फिर सिरपर वह जटा-जूट कस बाँधा जिसके बीच-बीचमें गुँथे हुए फूल बड़े भले लग रहे थे । (४) उनके लाल नेत्र और बादलके समान उनका श्याम शरीर देखकर सम्पूर्ण लोकके नेत्रोंको बड़ा सुख मिल रहा था । उनकी कमरमें फेंटा और तूणीर कसा हुआ था और वे अपने हाथमें कठोर शार्ङ्ग-धनुष लिए हुए थे । (५) उनके हाथमें शार्ङ्ग धनुष और कमरमें कभी कम न होनेवाले बाणोंसे भरा तूणीर कसा हुआ था, उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और उनकी चौड़ी छातीपर ब्राह्मणके चरण (भृगुकी लात)-का चिह्न (भृगुलता) शोभा दे रहा था । (तुलसीदास कहते हैं कि) ज्यों ही प्रभु (राम) धनुष और बाणपर अपने हाथ फेरने लगे, त्यों ही सारा ब्रह्माण्ड, दिशाओंके हाथी, कच्छप, शेष, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सब दहल उठे । [१२] प्रभु रामकी यह शोभा देखकर सब देवता हर्षित होकर अपार पुष्प-वर्षा करते हुए कहने लगे—'करुणाके निधि ! शोभा, बल और गुणोंके भांडार (राम) ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो' ॥ ८६ ॥ इसी बीच राक्षसोंकी अपार सेना कसमसाती (एक दूसरेसे रगड़ खाती) हुई आ धमकी । उसे देखकर प्रलय-कालके बादलोंकी घटाके समान वानर योद्धा भी सामने आ डटे । (१) (उधर राक्षसोंके) बहुतसे कृपाण और तलवारें चमक उठीं मानो दसों दिशाओंमें (पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य,

१०८३ अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥
१०८४-८७ घनप्रभः पल्लवरागनेत्रः प्रलम्बबाहुर्जगतां मनोहरः । ततो रामोपि संक्रुद्ध श्चापमाकृष्य वीर्यवान् ॥
कृतप्रति कृतं कर्त्तुं मनसा संप्रचक्रमे ॥
१०८८-९१ गदानां मुसलानां च परिघाणाञ्च निःस्वनैः । शराणां पुंखवातैश्च क्षुभिताः सप्तसागराः ॥
क्षुब्धानां सागराणां च पातालतलवासिनः । व्यथिता दानवाः सर्वे पन्नगाश्च सहस्रशः ॥
चकंपे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना ।
१०९२-९३ पपात पुष्पवृष्टिश्च समंताद्राघवोपरि । जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥
१०९४ तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते कोलाहले राक्षसराजयोधाः ।
प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि युगांतवाता इव संविचेरुः ॥
१०९५ तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा वानराजितकाशिनः । दुद्रुवुस्ते रणे धीरा घना वातेरिता इव ।।वा०रा०

गज - रथ - तुरग - चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा। (२)
कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए।
उठै धूरि मानहुँ जल - धारा। बान - बूँद भइ बृष्टि अपारा। (३)
११०० दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा।
रघुपति कोपि बान - भरि लाई। घायल भे निसिचर - समुदाई। (४)
लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि - घुर्मि जहँ - तहँ महि परहीं।
स्रवहिं सैल जनु निर्भर भारी[1]। सोनित - सरि कादर - भयकारी। (५)
छंद—कादर भयंकर रुधिर - सरिता चली[2] परम अपावनी।
दोउ कूल दल, रथ रेत, चक्र अवर्त, बहति भयावनी।
जल - जंतु गज - पदचर - तुरग - खर, बिबिध बाहन को गने।
सर - सक्ति - तोमर सर्प, चाप तरंग, चर्म कमठ घने ॥ [१३]
दो०—बीर परहिं जनु तीर - तरु, मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ, सुभटन - के मन चेन ॥ ८७ ॥
१११० मज्जहिं भूत - पिसाच - बेताला। प्रमथ, महा झोटिंग कराला।

पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ऐशान्य, ऊपर, नीचे अर्थात् चारों ओर) बिजलियाँ चमक उठी हों। हाथी और रथके घोड़े ऐसे भयानक रूपसे चिग्घाड़े जा रहे थे मानो बादल गड़गड़ा रहे हों। (२) वानरोंकी उठी हुई अनगिनत पूँछें आकाशमें ऐसी जा छाई थीं मानो सुन्दर-सुन्दर इन्द्रधनुष आ निकले हों। पृथ्वीकी धूल उठकर ऐसी ऊपरको उड़ी जा रही थी मानो फुहारे छूटे पड़ रहे हों और बाण ऐसे बरस रहे थे जैसे धुआँधार पानी बरस रहा हो। (३) दोनों ओरसे पर्वतोंकी चट्टानें ऐसी फेंक-फेंककर मारी जा रही थीं मानो बार-बार बिजली टूट-टूट पड़ रही हो। रामने लाल-लाल आँखें करके बाणोंकी ऐसी झड़ी लगा दी कि सारे राक्षस लहूलुहान हो चले। (४) बाण लगते ही वीर योद्धा चिल्लाने लगते थे और घुमटी खा-खाकर जहाँ-तहाँ धरतीपर जा लोटते थे। कायरोंका कलेजा कँपा देनेवाली लहूकी नदी ऐसी बही चली जा रही थी मानो पहाड़ोंसे बड़े-बड़े झरने बह चले हों। (५) कायरोंके कलेजे कँपा देनेवाली बड़ी घिनौनी जो लहूकी भयानक नदी बह चली उसमें दोनों ओरकी सेनाएँ ही उस नदीके दोनों तट थे, रथ ही बालू थे, रथोंके पहिये ही (उस नदीकी) भँवरें थीं, हाथी, घोड़े, गदहे तथा अन्य अनेक प्रकारकी अनगिनत सवारियाँ ही उस नदीके जलचर जीव थे, बाण, बरछे और तोमर ही सर्प थे, धनुष ही जलकी तरंगें थीं और कछुए ही ढाल थे। [१३] वीर सैनिक ही तीरके वृक्षोंके समान उखड़-उखड़कर गिरते चले जा रहे थे और उनकी चरबी ही फेन बनकर बही जा रही थी, जिसे देख-देखकर कायरोंके कलेजे काँपे जा रहे थे पर वीरोंके मन उमङ्गसे नाच-नाच उठते थे ॥ ८७ ॥ (उस नदीमें) भूत, पिशाच, वैताल, भैरव और बड़े-बड़े भयङ्कर जटाधारी रुद्रगण

१. बारी। २. बढ़ी।

१०९६-९७ द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निःस्वनः। रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि घोरवत् ॥
१०९८ सविद्युदुल्कः सज्वालः सेन्द्रचाप इवाम्बरे।
११०० ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम्।
११०१ ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान्। प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष च ॥ वा०रा०
करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगायुधगुल्मसंकुलाः।
अच्छुरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥
प्रवर्तिताभीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ॥ —भागवत
११०८-१० मज्जन्ति भूतवेताला नन्दन्तो भैरवं स्वनम्। —गर्गसंहिता।

काक - कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक - तें छीनि, एक लै खाहीं। (१)
एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु! तुम्हार दरिद्र न जाई।
कहरत भट घायल तट गिरे। जहँ - तहँ मनहुँ अर्द्धजल परे। (२)
खैंचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए।
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि - माहीं। (३)
जोगिनि भरि - भरि खप्पर संचहिं। भूत - पिसाच - बधू नभ नंचहिं।
भट - कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना विधि गावहिं। (४)
जंबुक - निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं, हुआहिं, अघाहिं, दपट्टहिं।
कोटिन रुंड, मुंड - बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय-जय बोल्लहिं। (५)
११२० छंद—बोल्लहिं जो जय-जय मुंड - रुंड प्रचंड सिर - बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं।
बानर निसाचर - निकर मर्दहिं राम - बल दर्पित भए।
संग्राम - अंगन सुभट सोवहिं, राम - सर - निकरन्हिं हए।। [१४]

उतर-उतरकर स्नान किए जा रहे थे, कौवे और चिलोर कटी हुई भुजाएँ चोंचोंमें उठाए लिए उड़े चले जा रहे थे और आपसमें छीना-झपटी कर-करके चबाए चले जा रहे थे। (१) यह देखकर एक पक्षी कह उठा—'अरे मरभुखो ! इतना अधिक (मांस) मिलते चलनेपर भी तुम्हारा भुक्खड़पन नहीं छूट पा रहा है।' घायल वीर कराहते हुए तटपर ऐसे लोटे पड़े थे, मानो जहाँ-तहाँ अधजले शव इधर-उधर छितराए पड़े हों। (२) तीर-परके गिद्ध उनकी अँतड़ियाँ ऐसे खींचे ले जा रहे थे, मानो मछुए बहुत मन लगाकर बनसीमें मछली फँसाए जा रहे हों। (उस लहूकी नदीमें बहे जाते हुए) बहुतसे मृत योद्धाओंपर बैठे हुए पक्षी ऐसे लगते थे मानो वे नदीमें नावकी दौड़ लगाए जा रहे हों। (३) कहीं योगिनियाँ खप्पर भर-भरकर लहू काछे (समेटे) चली जा रही थीं, कहीं भूतनियाँ और पिशाचिनियाँ आकाशमें चढ़ी नाचे चली जा रही थीं, कहीं चामुण्डाएँ योद्धाओंकी खोपड़ियोंसे करताल बजाती हुई अनेक प्रकारके गीत गाए चली जा रही थीं, (४) कहीं सियारोंके झुण्ड कड़कड़-कड़कड़ (मुर्दोंको) चबाए चले जा रहे थे, फाड़े खाए चले जा रहे थे, हुआँ-हुआँ करते जा रहे थे और छक जानेपर भी (जो दूसरा सियार पास चला आता था) उसपर गुर्राए जा रहे थे, कहीं बहुतसे धड़ बिना सिरके ही दौड़े फिर रहे थे और कटे पड़े हुए सिर भी 'जय-जय' पुकारते चले जा रहे थे[1], (५) कहीं कटे हुए सिर पड़े-पड़े 'जय-जय' चिल्लाए जा रहे थे, कहीं प्रचण्ड धड़ बिना सिरके ही दौड़ते फिरते हुए मुरदोंकी खोपड़ियों और खड्गोंसे उलझ-उलझकर जूझे पड़े जा रहे थे और बड़े-बड़े योद्धाओंको ढेर किए डाल रहे थे और कहीं रामके बलपर घमण्ड करनेवाले वानर सामने आते हुए राक्षसोंको मसले डाल रहे थे। इस प्रकार रामके बाणोंसे मारे हुए वीर योद्धा उस संग्राम-भूमिमें

१. कट जानेपर सिर नहीं बोल सकता। कवि-समय (परंपरा)-के नाते लिख दिया गया है।

१११-१२ उपान्तयोर्निष्कुषितं विहंगैराक्षिप्य तेभ्यः पिशितप्रियापि।
केयूरकोटिक्षततालुदेशा शिवा भुजच्छेदमपाचकार। —रघुवंश
१११३-१७ प्रमथा भैरवा भूता वेताला योगिनीगणाः। अट्टहासं प्रकुर्वन्तो नृत्यन्ति रणमंडपे।।गर्गसं०
१११८-२३ शिवा कुष्णन्ति मांसानि भूमिः पिबति शोणितम्। दशग्रीवसनाभीनां समदन्त्यामिषं खगाः।।भट्टि.
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसेवितम्। कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै।।
भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले। रामबाणनिकृत्ताश्च शेरते संयुगाजिरे।।—वाल्मी०रा०

दो०—रावन हृदय बिचारा, भा निसिचर - संघार।
मैं अकेल, कपि-भालु बहु, माया करउँ अपार ॥ ८८ ॥
देवन प्रभुहिं पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा।
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष - सहित मातलि लै आवा। (१)
तेज - पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर - भूपा।
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर-अमर, मन-सम-गति-कारी। (२)
११३० रथारूढ़ रघुनाथहिं देखी। धाए कपि, बल पाइ बिसेखी।
सही न जाइ कपिन - कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी। (३)
सो माया रघुबीरहिं बाँची। लछिमन-कपिन सो मानी[1] साँची।
देखी कपिन निसाचर - अनी। अनुज - सहित बहु कोसल-धनी[2]। (४)
छंद—बहु राम - लछिमन देखि मर्कट - भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र-लिखित समेत - लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे।

लोटे पड़े थे। [१४] उधर रावणने अपने मनमें निश्चय किया कि अब राक्षसोंका विनाश तो हो ही चुका है, मैं भी अकेला पड़ गया हूँ और उधर वानर और भालू भी कम नहीं हैं इसलिये कोई बहुत बड़ी माया रच खड़ी कर दी जाय ॥ ८८ ॥ इधर जब देवताओंने देखा कि प्रभु राम पैदल ही लड़े जा रहे हैं, तो उनके हृदय व्याकुल हो उठे। बस तुरन्त सुरपति इन्द्रने अपना रथ (रामके पास) जोत भिजवाया और मातलि (इन्द्रका सारथि) हर्षके साथ रथ लेकर आ भी पहुँचा। (१) वह तेज-भरा रथ बड़ा दिव्य और बेजोड़ था। आते ही कोशलाधीश राम उसपर हर्षपूर्वक चढ़ गए। उस रथमें चार ऐसे चुलबुले और सुन्दर घोड़े जुते हुए थे जो न बूढ़े होते थे, न किसीके मारे मर सकते थे और जो सदा मनकी गतिके समान वेगसे चौकड़ी भरे चलते थे। (२) रामको रथपर बैठे देखकर तो वानरोंको और भी अधिक बल मिल गया और वे सब मिलकर देखते-देखते रावणपर टूट पड़े। जब रावण उन वानरोंकी मार न सह पाया तब उसने अपनी मायाका जाल बिछा फैलाया। (३) उस मायाको राम तो तुरन्त ताड़ गए पर लक्ष्मण और वानर उसे सच्चा ही समझ बैठे। बन्दर क्या देखते हैं कि राक्षसोंकी सेनामें लाखों लक्ष्मण ही लक्ष्मण और राम ही राम भरे पड़े हैं। (४) इतने बहुतसे राम और लक्ष्मण देखकर तो भालू और बन्दरोंके रोंगटे खड़े हो चले। लक्ष्मण और वानर जहाँके तहाँ खड़े-खड़े यह (मायासे रची हुई) लीला ऐसे हक्के-बक्के हुए देखने लगे जैसे वे सब (वानर और लक्ष्मण) चित्रमें बने हुए हों। अपनी सेनाको इस प्रकार आश्चर्य-चकित देखकर कोशलाधीश

१. सब काहू मानी करि। २. बहु अंगद लछिमन कपि धनी।

११२४-२५ प्रक्षीणं स्वं बलं दृष्ट्वा वध्यमानं बलीमुखैः। बभूवास्य व्यथा युद्धे दृष्ट्वा दैवविपर्ययम् ॥
एकोहं कपिवैपुल्यं कथं जेष्यामि वै रिपून् ॥
११२६ भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः। न समं युद्धमित्याहुर्देवा गंधर्वकिन्नराः ॥
११२७ ततो देववरः श्रीमान् श्रुत्वा तेषां वचोऽमृतम्। आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥
रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम्। देवराजेन संदिष्टो रथमारुह्य मातलिः ॥
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टिपात्।
११२८ आरुरोह तदा रामो लोकांल्लक्ष्म्या विराजयन्।
११२९ हरिभिः सूर्यसंकाशैर्हेमजालविभूषितः। रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान् देवराजरथो वरः ॥
११३०-३१ हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात्। हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥ बा०रा०

निज सेन चकित बिलोकि, हँसि, सर-चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष - महँ, हरषी सकल मर्कट - अनी॥ [१५]
दो०—बहुरि राम, सब-तन चितइ , बोले बचन गँभीर।
द्वंद्व - जुद्ध देखहु सकल , स्रमित भए अति बीर॥ ८९॥

११४० अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र - चरन - पंकज सिर नावा।
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत - तर्जत सनमुख धावा[1]। (१)
जीतेहु जे भट संजुग - माहीं। सुनु तापस ! मैं तिन्ह - सम नाहीं।
रावन नाम, जगत जस जाना। लोकप जाके बंदीखाना। (२)
खर - दूषन - बिराध[2] तुम मारा। बधेहु ब्याध - इव बालि बिचारा।
निसिचर - निकर - सुभट संघारेहु। कुम्भकरन - घननादहि मारेहु। (३)
आज बयर सब लेउँ निबाही। जौं रन - भूमि भाजि नहिं जाही।
आज करौं खल ! काल - हवाले। परेहु कठिन रावन - के पाले। (४)
सुनि दुर्बचन, कालबस जाना। बिहँसि, बचन कह कृपानिधाना।

रामने हँसते हुए धनुषपर बाण चढ़ा लिया और क्षण-भरमें वह सारी माया छाँट मिटाई। फिर क्या था ! वानरोंकी सारी सेना हर्षसे नाच उठी। [१५] उसी समय रामने सबकी ओर देखकर गम्भीर वाणीसे कहा—'देखो ! तुम सब वीर बहुत थक गए हो, इसलिये तुम सब अब (रावणके साथ मेरी) आमने-सामनेकी जोड़की लड़ाई देखते चलो' ॥८९॥ यह कहकर और ब्राह्मणोंके चरणकमलोंमें सिर नवाकर रामने अपना रथ आगे हँकवा बढ़ाया। (यह देखकर तो) लंकाधिपति रावणकी आँखोंसे चिनगारियाँ बरस चलीं। वह गरजता और ललकारता हुआ झपटकर रामके सामने आ डटा। (१) (उसने रामसे कहा—) 'अरे तपस्वी ! तूने युद्धमें अभीतक जिन योद्धाओंको जीत धरा है उन्हींके जैसा (मरियल, निकम्मा) मुझे समझनेकी भूल न कर बैठना। मेरा नाम रावण है रावण ! सारा संसार मेरा यश जानता है कि सारेके सारे लोकपाल मेरे यहाँ बन्दी बने पड़े हैं। (२) तूने खर, दूषण और विराधको ढेर कर डाला, व्याधके समान छिपकर उस बेचारे वालिकी हत्या कर डाली, बड़े-बड़े योद्धा राक्षसोंको तूने तलवारके घाट उतार डाला, कुम्भकर्ण और मेघनादको कालके गालमें मार भेजा। (३) अरे दुष्ट राजाके छोकरे ! यदि तू आज रणसे पीठ दिखाकर ही न भाग खड़ा हुआ तो आज सबका बदला तुझसे एक साथ निकाले लेता हूँ और तुझे ही आज कालके हाथ सौंपे डालता हूँ। आज तेरा पाला किसी ऐसे-वैसेसे नहीं, शक्तिशाली रावणसे आ पड़ा है।' (४) रावणकी ये जली-कटी बातें सुनकर और उसका काल समीप आया जानकर

१. मावा। २. कवंध।

११३३-३७ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा। आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद्धनुः॥
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम्। निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः॥
दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महारथः।
११३८-३९ तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा। हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः॥
सुखं पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुंगवाः॥
११४०-४१ इत्युक्तः संपरिक्रम्य विप्रान् समभिवाद्य च। उत्थाय रावणः क्रुद्धः सिंहनादं ननाद च॥
११४२-४४ स्त्रीमात्रं ननु ताटका मुनिसुतो रामः स विप्रः शुचिर्मारीचो मृग एव भीतिभवनं बाली पुनर्वानरः॥
भो काकुत्स्थ विकत्थसे वद रणे वीरस्त्वया को जितो दोर्गर्वस्तु तथापि ते यदि पुनः कोदंडमारोपय॥वा०रा०
सोहं वै देवशत्रुस्त्रिभुवनविजयी रावणो नाम राजा। —हनुमन्नाटक
११४४-४६ खरस्य कुंभकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितस्तथा। करिष्यामि प्रतीकारमद्यशत्रुवधादहम्॥—वाल्मी०रा०

सत्य - सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि, देखाउ मनुसाई। (५)
११५० छंद—जनि जल्पना करि सुजस नासहि, नीति सुनहि सु करि[1] छमा।
संसार - महँ पूरुष त्रिबिध, पाटल - रसाल - पनस - समा।
ऐक सुमन - प्रद, ऐक सुमन - फल, ऐक फलइ केवल लागहीं।
ऐक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, ऐक करहिं, कहत न बागहीं॥ [१६]
दो०—राम - बचन सुनि बिहँसा, मोहिं सिखावत ज्ञान।
बयर करत नहिं तब डरे, अब लागे प्रिय प्रान॥ ९० ॥
कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस - समान लाग छाँड़ै सर।
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन-महि छाए। (१)
पावक - सर[2] छाँड़ेउ रघुबीरा। छन-महँ जरे निसाचर - तीरा।
छाँड़ेसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान - संग प्रभु फेरि चलाई[3]। (२)
११६० कोटिन चक्र - त्रिसूल पँवारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ।

कृपानिधान रामने उससे हँसकर कहा—'तू जो अपनी इतनी डींगें हाँके चला जा रहा है वह सब मैं सत्य माने लेता हूँ पर इस प्रकार वकबक करनेसे लाभ क्या ? साहस हो तो आ जा सामने दो-दो हाथ हो जायें। आ दिखा अपना पुरुषार्थ। (५) डींगें हाँककर अपनी कीर्ति मिटा डालनेपर क्यों तुला बैठा है ? देख, मैं जो नीतिकी बात कहता हूँ उसे ठण्डे हृदयसे सुन ले ! गुलाब, आम और कटहलके समान पुरुष तीन प्रकारके होते हैं। एक केवल फूल देते हैं, एक फूल और फल दोनों देते हैं और एक केवल फल ही देते हैं। उसी प्रकार (पुरुषोंमें भी) एक तो ऐसे होते हैं जो केवल बैठे गाल बजाया करते हैं, एक ऐसे होते हैं जो कहते भी हैं करते भी हैं और एक ऐसे होते हैं जो केवल करते ही करते हैं, मुँहसे नहीं कहते।' [१६] रामके वचन सुनकर रावण हँसकर बोला—'अच्छा ! तो अब तू मुझे ज्ञान सिखाने चला है ? जब मुझसे बैर ठानने चला था तब तुझे मुझसे डर नहीं लगा। अब सामने आनेपर प्राण बड़े प्यारे लग चले हैं (कि अब नीतिकी बातें छाँटने लगा है)॥ ९० ॥ ऐसी खोटी-खरी सुनाकर वह रावण तमक-तमककर वज्रके समान धुआँधार बाण बरसाने लगा। अनेक आकारवाले वे बाण बड़े वेगसे चलते हुए चारों ओर आकाश और धरतीपर जा छाए। (१) तब रामने ऐसा आग्नेयास्त्र उठा छोड़ा कि उस निशाचर (रावण)-के सब बाण क्षण-भरमें जलकर भस्म हो गए। रावणने भी खीझकर अपनी प्रचंड शक्ति खींच मारी जिसे रामने अपने बाणसे मारकर उलटा उसीकी ओर ठेल लौटाया। (२) उसने सैकड़ों चक्र और त्रिशूल रामपर उठा चलाए, पर प्रभु रामने बिना प्रयासके ही उन सबको काट-काटकर टूक-टूक कर डाला। रामके आगे रावणके सब अस्त्र ऐसे बेकार हुए जा रहे थे जैसे दुष्टोंके मनमें

१. करहि। २. अनल-बान। ३. पठाई।

११४७-४९ अस्मिन् क्षणे यास्यसि मृत्युलोकं संसाद्यमानो मम बाणजालैः।
जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च पराक्रमं च॥
अवस्थितोहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन। —वाल्मीकीयरामायण
११५०-५३ परैः प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोपि गुणी भवेत्। इन्द्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥
नहि शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम्। —सुभाषित
११५४-५७ विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत्। बाणधारा सहस्रैस्तु स तोयद इवाम्बरात्॥
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन्॥
११५८ ततः पावकसंकाशैः शरैः कांचनभूषणैः। अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः॥ वा०रा०
११५९ ततो घोरां महाशक्तिं चिक्षेप दशकन्धरः॥ —अध्यात्मरामायण

निफल होहिं रावन-सर कैसे। खल-के सकल मनोरथ जैसे। (३)
तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि, जय राम पुकारेसि।
राम, कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु, परम क्रोध-कहँ पावा। (४)

छंद—भए क्रुद्ध, जुद्ध बिरुद्ध रघुपति-त्रोन-सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि, मनुजाद भय-मारुत त्रसे।
मंदोदरी-उर कंप, कंपति-कमठ-भू-भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज, दसन गहि महि, देखि कौतुक सुर हँसे।। [१७]

दो०—तानेउ चाप[1] स्रवन लगि, छाँड़े बिसिख कराल।
राम-मार्गन-गन चले, लहलहात जनु ब्याल।। ९१।।

११७० चले सपच्छ बान जनु उरगा[2]। प्रथमहिं हत्यो[3] सारथी-तुरगा।
रथ बिभंजि, हति केतु-पताका। गर्जा अति, अंतर बल थाका। (१)
तुरत आन रथ चढ़ि खिसियाना। अस्त्र-सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना।
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह-निरत मनसा-के। (२)
तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा।

उठे हुए सारे मनोरथ व्यर्थ हो मिटते हैं। (३) तब रावणने सौ बाण रामके सारथि (मातलि)-पर ऐसे ताककर मारे कि वह 'श्रीरामकी जय' कहता हुआ धरतीपर जा पड़ा। पर रामने झट कृपा करके सारथिको सहारा देकर पकड़ उठाया। रामकी त्योरियाँ चढ़ गईं। (४) युद्धमें शत्रुपर रामकी त्योरियाँ चढ़ चलीं। उनके तूणीरके बाण (बाहर निकलनेके लिये) कसमसा उठे। उनके धनुषकी प्रचण्ड टंकार सुनकर सब राक्षस भयसे थर्रा उठे। मन्दोदरीका हृदय काँप गया। सागर कच्छप, पृथ्वी और पर्वत सब भयसे काँप उठे, दिग्गज चिग्घाड़ उठे, उन्होंने कसकर दाँतोंसे धरती जकड़ थामी और देवता यह लीला देखकर प्रसन्न हो उठे। [१७] राम कानतक धनुष खींच-खींचकर धुआँधार भयंकर बाण बरसाने लगे। रामके वे बाण सर्पोंके समान लहराते हुए उड़ चले।। ९१।। उनके बाण पंखवाले सर्पोंके समान उड़ चले। पहले रामने (रावणके) सारथिको और रथके घोड़ोंको मार गिराया और फिर उसका रथ चूर-चूर करके उसकी ध्वजा और पताका काट गिराई। यह देखकर तो रावणका सारा साहस ही ढीला पड़ चला और वह कड़ककर गरज उठा। (१) वह खीझकर दूसरे रथपर जा चढ़ा और धुआँधार अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलाने लगा। उसके सारे प्रयत्न ऐसे विफल हुए जा रहे थे जैसे दूसरेका द्रोह करनेवाले प्राणीके सारे मनोरथ व्यर्थ हो मिटते हैं। (२) तब रावणने दस शूल (बरछे) एक साथ चलाकर (रामके) रथके चारों घोड़े धरतीपर मार बिछाए।

१. तानि सरासन। २. हते। ३. चले बान सपच्छ जनु उरगा।

११६०-६१ चिच्छेद राघवो बाणैस्तत्प्रयुक्तानि धैर्यवान्। भवन्ति निष्फला बाणाः खलानामुद्यमा इव।।
११६२ ततः पुनः शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम्। अर्दयित्वा तु घोरेण मातलिं प्रत्यविध्यत।।
११६३-६७ रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसंरक्तलोचनः। कोपं चकार स भृशं निर्दहन्निव राक्षसम्।।
पृथ्वी याति विनम्रतां फणपतेर्नम्रं फणामंडलं। विभ्रश्युभ्यति कूर्मराजसहिता दिक्कुंजराः कातराः।।अध्या०
आतन्वन्ति च बृंहितं दिशिभटैः सार्धं धराधारिणो। वेपन्ते रघुपुंगवे च विदुषि सज्यं धनुः कुर्वति।।हनु०
११६८-६९ ससर्जाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं निष्ठुरं दृढम्। जगाम सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम्।।
११७०-७१ ततः शतसहस्रेण रामः प्रौर्णोन्निशाचरम्। बाणानामक्षिणोद् धुर्यान् सारथिं चाऽदुनोद् द्रुतम्।।
स निकृत्तोऽपतद्भूमौ रावणस्यन्दनध्वजः।। —अध्यात्मरामायण
११७२-७३ अकृच्छ्रायत च प्राप्तो रथेनान्येन रावणः। पुनश्च क्रोधितो राजा नानाशस्त्राणि वृष्टवान्।। भट्टि.
११७४ एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः। ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः क्रोधमूर्च्छितः।।वा०रा०

तुरग उठाइ, कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक। (३)
रावन सिर - सरोज - बन - चारी। चलि रघुबीर - सिलीमुख - धारी।
दस - दस बान भाल दस मारे। निसरि गए, चले रुधिर - पनारे। (४)
स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु - सर - संधाना।
तीस तीर रघुबीर पँवारे। भुजन्हि - समेत सीस महि पारे। (५)
११८० राम बहोरि भुजा सिर - छीने। काटत ही पुनि भए नवीने।
प्रभु बहु बार बाहु - सिर हए। कटत झटित पुनि नूतन भए। (६)
पुनि - पुनि प्रभु काटत भुज - सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा।
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू। (७)
छंद—जनु राहु - केतु अनेक नभ - पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं।
एक - एक सर सिर - निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर - कर - निकर जहँ - तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥ [१८]
दो०—जिमि-जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि-तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय, बिबर्द्ध जिमि, नित - नित नूतन मार॥ ९२॥

पर रामने (हाथ फेरकर) झट घोड़ोंको उठा खड़ा किया और लाल हो-होकर धनुष तान-तानकर बाण छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। (३) रावणके सिरोंके कमलोंपर मँडरानेके लिये रामके बाण भौंरे बन-बनकर उड़ चले। रामने ताक-ताककर रावणके दसों सिरोंपर ऐसे कस-कसकर दस-दस बाण मारे कि वे उसके सिर छेदकर पार निकल गए और उनके घावोंसे रक्तके पतनाले बह चले। (४) अपने सिरोंसे लहू बहता देखते ही वह बलवान् रावण झट रामपर टूट पड़ा। प्रभुने फिर अपने धनुषपर बाण चढ़ा लिए। रामने तीस बाण ऐसे कसकर मारे कि रावणके दसों सिर और दसों भुजाएँ कटकर धरतीपर आ लोटीं। (५) पर ज्यों ही (सिर और भुजाएँ) कटीं कि फिर नये-नये सिर और नई-नई भुजाएँ निकल आईं। राम जितनी बार उसकी भुजाएँ और उसके सिर काटते, उतनी ही बार तुरन्त नई-नई भुजाएँ और नये-नये सिर आ निकलते। (६) (पर प्रभु राम भी कहाँ माननेवाले थे) कोशलाधीश राम भी बड़ा खेल जमाए हुए थे। वे बार-बार उसकी भुजाएँ और सिर काटते ही चले जा रहे थे। (रावणके इतने सिर और हाथ कटे कि) आकाश - भरमें (रावणके) सिर और भुजाएँ इस प्रकार जा छाईं मानो अनगिनत केतु (भुजा) और राहु (सिर) ही उदित हो उठे हों। (७) (ऐसा जान पड़ने लगा) मानो अनेक राहु और केतु आकाशमें रक्त चुआते उड़े चले जा रहे हों। रामके प्रचण्ड बाण लगनेपर वे भूमिपर तो गिर नहीं पाते थे। एक-एक बाणसे बिंधे हुए सिर आकाशमें उड़ते हुए ऐसे लग रहे थे मानो सूर्यकी किरणें क्रोध कर-करके जहाँ-तहाँ राहुओंको गूंथे चली जा रही हों। [१८] प्रभु राम ज्यों-ज्यों उस (रावण)-के सिर काटते जा रहे थे, त्यों-त्यों अनगिनत सिर वैसे ही निकलते चले जा रहे थे जैसे सांसारिक भोग भोगते-भोगते कामकी नई-नई वासना नित्य

११७५-७६ शरान् भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः। मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान्॥
तान् शरान् राक्षसेन्द्राय चिक्षेपाच्छिन्नसायकः।
११७७-७८ पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम्। ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलो भिनत्॥
११७९ रावणस्य शिरो च्छैत्सीत् श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम्॥
११८०-८२ तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः। तत् क्षिप्रं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा॥
द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः। तदाप्यत्र निसंकाशैश्छिन्नं रामस्य सायकैः॥वा०रा०
११८३-८६ विच्छिन्ना बाहवोप्यस्य वर्धन्ते मस्तकानि च। उद्यमः कलहः कण्डू द्यूतं मद्यं परस्त्रियः॥अध्यात्म०
आहारो मैथुनं निद्रा सेवनाच्च विवर्धते॥ —चाणक्यनीति

११९० दसमुख देखि सिरनि-कै बाढ़ी। बिसरा मरन, भई रिस गाढ़ी।
गरजेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसौ सरासन तानी। (१)
समर-भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो।
दंड एक, रथ देखि न परेऊ। जनु निहार-महँ दिनकर दुरेऊ। (२)
हाहाकार सुरन जब कीन्हाँ। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हाँ।
सर निवारि, रिपु-के सिर काटे। ते दिसि-बिदिसि गगन-महि पाटे। (३)
काटे सिर नभ-मारग धावहिं। जय-जय धुनि करि भय उपजावहिं।
कहँ लछिमन-सुग्रीव-कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा। (४)
छंद—कहँ राम, कहि सिर-निकर धाए, देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु, रघुबंस-मनि हँसि, सरन्हि सिर बेधे भले।
१२०० सिर-मालिका, कर कालिका गहि, बृन्द-बृन्दन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर-सरि मज्जन मनहुँ संग्राम-बट पूजन चलीं॥ [१९]
दो०—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ, छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन-सनमुख, मनहुँ काल-कर दंड॥ ९३॥
आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति-भंजन पन मोरा।

बढ़ती चली जाती है ॥ ९२ ॥ अपने सिर बढ़ते देखकर रावण मरना तो भूल गया, उसके तन-बदनमें आग लग गई। महा अभिमानी मूढ रावण गरजता हुआ दसों धनुष तानकर रामपर टूट पड़ा। (१) समर-भूमिमें रावणको ऐसा रोष चढ़ आया कि उसने धुआँधार बाण बरसा-बरसाकर रामका रथ बाणोंसे ढक डाला। एक घड़ीके लिये उनका रथ दिखाई ही न पड़ पाया मानो कुहरेमें सूर्य जा छिपा हो। (२) यह देखकर जब देवता हाहाकार कर उठे तब प्रभुने लाल-लाल आँखें तरेरकर धनुष उठाकर (रावणके छोड़े हुए) बाण काटकर शत्रु (रावण)-के इतने सिर काट गिराए कि उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सब पट चले। (३) रावणके कटे हुए सिर आकाशमें उड़ते हुए 'जय-जय' पुकारते हुए सबको डराए चले जा रहे थे। (वे सिर चिल्ला रहे थे—) 'कहाँ है लक्ष्मण! कहाँ है वानरोंके राजा सुग्रीव! और कहाँ है कोशलाधीश राम!' (४) 'राम कहाँ है!'—यह चिल्लाते हुए वे सिर ऐसे वेगसे उड़े चले आ रहे थे कि उन्हें देखकर ही सब वानरोंमें भगदड़ मच गई। यह देखकर रघुवंशके मणि रामने धनुप चढ़ाकर हँसते हुए अपने बाणोंसे उन सभी सिरोंको भली प्रकार बेध डाला। उस समय झुण्डका झुण्ड कालिकाएँ निकल-निकलकर हाथोंमें (रावणके) सिरोंकी मालाएँ ले-लेकर एक दूसरेसे इस प्रकार गले मिल रही थीं, मानो रक्तकी नदीमें स्नान करके वे संग्राम-रूपी वटकी पूजा करने चली जा रही हों। [१९] इतनेमें ही रावणने तमककर अपनी जो प्रचण्ड शक्ति छोड़ी वह विभीषणकी ओर ऐसे चली जैसे कालदण्ड ही बढ़ा चला आ रहा हो ॥ ९३ ॥ पैनी धारवाली शक्ति (विभीषणकी ओर) आती देखकर रामने अपने 'प्रणतार्ति-हर' (भक्तका दुःख दूर करनेवाले) नामकी लाज रखते

११९०-९१ शिरसां वृद्धिमालोक्य चुकोप च ननाद च॥ —चम्पूरामायण
११९२-९३ स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः। व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसाधिपः॥
११९४-९५ विषेदुर्देवगंधर्वा चारणा दानवैः सह। आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः॥
ऐन्द्रमस्त्रं समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत्। —वाल्मीकीयरामायण
११९६-१२०१ रामः शिरांसि दृष्ट्वाथ विदीर्णास्यानि खात्पुनः।
मां हन्तुं प्रद्रवन्तीति मत्वा भीत्या व्यताडयत्॥ —आनन्दरामायण
१२०२-३ कोपमाहरयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः। ततः शक्तिं महाशक्तिं प्रदीप्तामशनीमिव॥
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान्। —वाल्मीकीयरामायण

तुरत बिभीषन पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला। (१)
लगी सक्ति मुरछा कछु भई। प्रभु - कृत खेल, सुरन्ह बिकलई।
देखि बिभीषन, प्रभु स्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो। (२)
रे कुभाग्य ! सठ ! मंद ! कुबुद्धे। तैं सुर - नर - मुनि - नाग बिरुद्धे।
सादर सिव - कहँ सीस चढ़ाए। एक - एक - के कोटिन पाए। (३)
१२१० तेहि कारन खल ! अब - लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस-पर नाच्यो।
राम - बिमुख सठ ! चहसि संपदा। अस कहि, हनेसि माँझ-उर गदा। (४)

छंद—उर - माँझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‍यो।
दस - बदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस - भर्‍यो।
दोउ भिरे अति बल, मल्ल जुद्ध - बिरुद्ध एक एकहिं हनै।
रघुबीर - बल - दर्पित बिभीषन, घालि नहिं ता - कहँ गनै॥ २०॥

दो०—उमा ! बिभीषन रावनहिं, सनमुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौं, श्रीरघुबीर - प्रभाउ॥ ९४॥

देखा स्रमित बिभीषन भारी। धायउ हनूमान गिरि - धारी।

हुए तुरन्त विभीषणको अपने पीछे ठेलकर स्वयं वह शक्ति अपनी छातीपर झेल ली। (१) शक्ति लगते ही प्रभु रामको कुछ मूर्च्छा हो आई, जो प्रभुका केवल खेल भर था। पर यह देखकर भी देवता तो व्याकुल हो उठे। जब विभीषणने देखा कि प्रभुको कुछ मूर्च्छा हो आई है, तब वे हाथमें गदा लेकर तमककर रावणपर टूट पड़े (२) (और बोले—) 'अरे अभागे ! शठ ! नीच ! खोटी बुद्धिवाले ! तूने देवता, मनुष्य, मुनि और नाग सबको कष्ट तो दिया पर आदर-पूर्वक शिवको अपने सिर चढ़ा-चढ़ाकर एक-एक सिरके बदले करोड़ों सिर पा लिए। (३) इसी कारण दुष्ट ! तू अबतक बचता चला आ रहा है। पर अब तेरा काल तेरे सिर-पर चढ़कर नाच उठा है। अरे शठ ! तू रामसे वैर करके भी सम्पदा (विजय) पानेकी बात सोचे बैठा है ?' यह कहकर विभीषणने ताककर (रावणकी) छातीमें गदा दे मारी। (४) छातीमें गदाकी वह घोर और प्रचण्ड चोट लगते ही रावण धरतीपर आ गिरा, पर तुरन्त दसों मुखोंसे लहू उगलता हुआ, लाल-लाल आँखें तरेरे, वह सँभलकर उठा और विभीषणपर टूट पड़ा ! (फिर क्या था !) दोनों अत्यन्त बलवान् योद्धा परस्पर भिड़कर गुत्थम-गुत्था लड़ते हुए वैरीके समान लगे एक दूसरेको धमाधम मारने। रामके बलका विभीषणको इतना गर्व था कि वह अपने सामने रावणको घलुवा-भर[1] (कुछ) भी नहीं समझ रहा था। (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा ! जो विभीषण कभी रावणके सामने आँख-तक नहीं उठा पाता था वही विभीषण आज काल बना हुआ उससे भिड़ा पड़ रहा है। यह सब रामका ही प्रभाव समझो।' ॥ ९४ ॥ हनुमान्‌ने जब देखा कि विभीषण बहुत थक चले हैं, तब उन्होंने पहाड़की बड़ी-सी चट्टान उठाकर ऐसी देकर मारी कि रावणके

१. घालि = घलुवा: सौदा दे देने पर जो थोड़ा नाम-मात्रको अधिक दे दिया जाता है।

१२०४-५ तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः। विभीषणाय स्वस्त्यस्तु मोघा भव हतोद्यमा॥
१२०६ न्यपतत्स महावेगा राघवस्य महोरसि। पपात मूर्च्छितं वीक्ष्य विषण्णो देवतास्तथा॥
१२०७-८ सम्भ्रमं तं समालोक्य गदामादाय विद्रुतः। महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः॥
१२०९-११ जघानाप्लुत्य गदया रावणं स विभीषणः।
१२१२-१५ गदा प्रहारैश्च तलप्रहारैः स पातयामास क्षितौ च रावणम्।
परस्परं स्वेदविदग्धगात्रौ परस्परं शोणितरक्तदेहौ॥ —वाल्मीकीयरामायण

रथ - तुरंग - सारथी निपाता। हृदय - माँझ तेहि मारेसि लाता। (१)
१२२० ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभीषन जहँ जन-त्राता।
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी। (२)
गहेसि पूँछ कपि - सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना।
लरत अकास जुगल - सम जोधा। एकहि एक हनत करि क्रोधा। (३)
सोहहिं नभ छल - बल बहु करहीं। कज्जल-गिरि - सुमेरु जनु लरहीं।
बुधि - बल निसिचर परै न पार्‌यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो। (४)
छंद—संभारि श्रीरघुबीर, धीर पचारि कपि रावन हन्यो।
महि परत, पुनि उठि लरत, देवन जुगल-कहँ जय - जय भन्यो।
हनुमंत - संकट देखि, मर्कट - भालु क्रोधातुर चले।
रनमत्त रावन सकल सुभट, प्रचंड भुज - बल दलमले ॥ [२१]
१२३० दो०—तब रघुबीर पचारे, धाए कीस प्रचंड।
कपिदल प्रबल देखि तेहि, कीन्ह प्रगट पाखंड ॥ ९५ ॥
अंतर्धान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका।
रघुपति कटक भालु - कपि जेते। जहँ - तहँ प्रगट दसानन तेते। (१)

रथ, घोड़े और सारथि सब चकना-चूर हो गिरे। इतना ही नहीं, हनुमान्‌ने बढ़कर (रावण की छातीमें कसकर एक लात भी उठा जमाई। (१) (लात लगनेपर) रावण गिरा तो नहीं, पर उसका सारा शरीर झनझना उठा। उधर विभीषण भी इतनी देरमें भक्तोंके रक्षक रामके पास जा पहुँचे। सँभल चुकनेपर रावणने फिर हनुमान्‌को ललकारकर उनपर वार किया। हनुमान् झट अपनी पूँछ फैलाकर आकाशमें उछल चढ़े। (२) रावण भी उनकी पूँछ पकड़कर आकाशमें उड़ा चला गया और वहीं (आकाशमें ही) वह बलवान् हनुमान्‌से जा भिड़ा। वे दोनों बराबर बलवाले योद्धा आकाशमें ही देरतक लड़ते रहे और तमतमा - तमतमाकर एक दूसरेपर प्रहार करते रहे। (३) वे दोनोंके दोनों बड़े दाँव-पेंचके साथ लड़ते हुए ऐसे लग रहे थे मानो सुमेरु पर्वत (हनुमान्)-के साथ काजलका पहाड़ (रावण) लड़े जा रहा हो। जब बुद्धि और बलसे किसी भी प्रकार वह राक्षस हराए न हार पाया तब हनुमान् झट मनमें प्रभु रामका स्मरण करने लगे। (४) धैर्यशाली हनुमान् मनमें रामका स्मरण करके ललकार-ललकारकर रावणपर वारपर वार किए जा रहे थे। उधर वह भी ऐसा कड़ेर था कि एक बार धरतीपर गिर भी जाता तो फिर उठकर लड़ने लगता। उधर देवता बारी-बारीसे दोनोंकी जय-जयकार किए जा रहे थे। हनुमान्‌को संकटमें पड़ा देखकर सब वानर और भालू तमतमाकर रावणपर टूट पड़े। पर रणमें मत्त रावणने उन सभी योद्धाओंको अपनी प्रचण्ड भुजाओंके बलसे रगेद फेंका। [२१] तब रामके ललकारनेपर सभी प्रचण्ड वानर फिर दौड़े चले आए। इधर वानरोंकी सेनाको प्रबल होते देखकर रावणने नई माया रच खड़ी की ॥ ९५ ॥ वह दुष्ट क्षण भरके लिये अन्तर्धान होकर फिर अपने अनेक रूप बनाकर आ प्रकट हुआ। रामकी सेनामें

१२१९ तमालोक्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः। रथं निपात्य सहयं तलेनैवाजघान तम् ॥
१२२० वेपमाने दशास्ये तु ह्याजगाम विभीषणः ॥
१२२१-२३ उत्पपात तदाकाशं जितकाशी च मारुतिः। सोप्यादाय च तत्पुच्छं खमुड्डिड्ये महाबलः ॥
बाहूत्तमैर्वारणवारणाभैर्निवारयंतौ परवारणाभौ।
चिरेण कालेन भृशं प्रयुद्धौ संचेरतुर्मण्डलमार्गमाशु ॥
१२३०-३१ क्षिप्रमाज्ञापयद्रामो वानरान् द्विषतां वधे। ततस्तूर्णं दशग्रीवो रणक्ष्मां पर्यशेपयत् ॥ वा०रा०

देखे कपिन अमित दससीसा। जहँ - तहँ भजे भालु अरु कीसा।
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि - त्राहि ! लछिमन ! रघुबीरा। (२)
दह दिसि धावहिं कोटिन रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन।
डरे सकल सुर, चले पराई। जय - कै आस तजहु अब भाई। (३)
सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए, तकहु गिरि-कंदर।
रहे बिरंचि - संभु - मुनि - ज्ञानी। जिन्ह-जिन्ह प्रभु-महिमा कछु जानी। (४)

१२४० छंद—जाना प्रताप, ते रहे निर्भय, कपिन रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट - भालु सकल, कृपाल ! पाहि, भयातुरे।
हनुमंत, अंगद, नील, नल, अतिबल लरत रन-बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि - कोटिन कपट - भू भट - अँकुरे ॥ [२२]

दो०—सुर - बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर, हते सकल दससीस ॥ ९६ ॥

प्रभु छन - महँ माया सब काटी। जिमि रबि उए, जाहिं तम फाटी।
रावन एक देखि सुर हरषे। फिरे, सुमन बहु प्रभु - पर बरषे। (१)

जितने भालू-बन्दर थे, उतने ही रावण सबके सामने आ खड़े हुए। (१) इतने रावण देखते ही तो भालू और बन्दर जिधर-तिधर भाग खड़े हुए। वे वानर-भालू धीरज छोड़कर भागे चले जा रहे थे और पुकारते जा रहे थे—'हे राम ! हे लक्ष्मण ! रक्षा कीजिए।' (२) करोड़ों रावण चारों ओर वेगसे दौड़ पड़े और बहुत कड़क-कड़ककर गरजने लगे। अब तो सब देवताओंके भी देवता कूच कर गए और वे यह कहते हुए भाग चले कि 'अब तो भाई ! विजयकी आशा छोड़ देनी चाहिए। (३) पहले तो एक ही रावण सब देवताओंको जीते बैठा था, अब तो इतने रावण निकल-निकलकर आ धमके हैं, इसलिये चलकर अब तो पहाड़ोंकी कन्दराओंमें जा-जाकर छिप बैठा जाय।' ब्रह्मा, शिव और कुछ ऐसे ही इने-गिने ज्ञानी मुनि वहाँ ठहरे रह गए जो रामकी महिमा भली भाँति जानते थे। (४) जो-जो प्रभुका प्रताप जानते थे वे तो निर्भय होकर वहीं डटे रह गए पर वानर तो यही सत्य माने बैठे थे कि शत्रु (रावण) ही इतने अधिक हो गए हैं। भयसे घबराए हुए वानर और भालू—'हे कृपालु ! रक्षा कीजिए'—की पुकार मचाते हुए इधर-उधर भाग चले। अत्यन्त बलवान् रणबाँकुरे हनुमान्, अंगद, नल और नील (उन मायासे बने हुए रावणोंसे) लड़ते भी थे और करोड़ों रावणोंको पकड़-पकड़कर रगड़-रगड़कर फेंकते भी चले जा रहे थे पर मायासे बने हुए रावणोंके फिर नए-नए अँखुए आ निकलते थे (नये-नये रावण उत्पन्न होते चले जा रहे थे)। [२२] देवताओंको भयभीत और वानरोंको व्याकुल देखकर कोशलाधीश राम मुसकरा दिए और अपना शार्ङ्ग धनुष उठाकर एक ही बाणसे उन्होंने सब रावण मार बिछाए ॥ ९६ ॥ रामने क्षण भरमें रावणकी सारी माया ऐसे तहस-नहस कर डाली, जैसे सूर्य उदय होते ही सारा अँधेरा मिट भागता है। जब देवताओंने देखा कि अब केवल एक ही रावण बचा रह गया है तब कहीं उनके जीमें जी आया और (जो भाग चले थे) वे फिर

१२३२-३४ कोपादसौ परिघतोमरकुन्तयष्टिचापाशुगद्रुघणशक्तिकृपाणपाणिः।
एकोप्यनेकमुखबाहुतया सबन्धुर्लोके यथा समितिलोचनगोचरोऽभूत् ॥ —चम्पूरामायण
१२३५ शाखामृगा रावणसायकार्त्ता जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥ —वाल्मीकीयरामायण
१२३६-४३ विषण्णवदनाः सर्वे विद्रवन्ति दिवौकसः। साम्प्रतं बहवः सन्ति जयाशा त्यज्यतां सुराः ॥
एकेनैव दशास्येन जितं विश्वं चराचरम्। निजघ्नुः सहसा बीरान् यातुधानान् प्लवंगमाः॥ वा०रा०
१२४४-४५ रामेणैकशतन्तेषां प्रावृश्च्यत शिलीमुखैः।
१२४६ निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः। चिच्छेद राघवो मायां भास्करस्तिमिरं यथा ॥ भट्टि०

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक-एकन्ह तब टेरे।
प्रभु-बल पाइ भालु-कपि धाए। तरल तमकि संजुग-महि आए। (२)
१२५० अस्तुति करत देवतन्हि देखे। भयउँ एक मैं इन्हके लेखे।
सठहु! सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन-पर धायल। (३)
हाहाकार करत सुर भागे। खलहु! जाहु कहँ मोरे आगे।
देखि बिकल सुर, अंगद धायो। कूदि, चरन गहि भूमि गिरायो। (४)
छंद—गहि भूमि पार्‍यो, लात मार्‍यो, बालिसुत प्रभु-पहँ गयो।
संभारि उठि, दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो।
करि दाप, चाप चढ़ाइ दस, संधानि सर, बहु बरषई।
किय सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई ॥ [२३]
दो०—तब रघुपति रावन-के, सीस-भुजा सर-चाप।
काटे बहुत, बढ़े पुनि, जिमि तीरथ-कर पाप ॥ ९७ ॥
१२६० सिर-भुज बाढ़ि देखि रिपु-केरी। भालु-कपिन्ह रिस भई घनेरी।
मरत न मूढ़ कटेहु भुज-सीसा। धाए कोपि भालु-भट-कीसा। (१)

लौट पड़े और आ-आकर रामपर ढेरों फूल बरसाने लगे। (१) रामने हाथ उठा-उठाकर सब वानरोंको लौटा बुलाया और वे भी एक दूसरेको हाँक लगाते हुए लौट पड़े। प्रभुका सहारा पाकर वानर-भालू फिर चढ़ चले और बड़े वेगसे तमतमाते हुए रणभूमिमें आ धमके। (२) जब रावणने देखा कि देवता आकाशमें खड़े रामकी स्तुति किए जा रहे हैं तो सोचने लगा कि क्या ये भी मुझे अकेला ही समझे बैठे हैं। (यह सोचकर वह उन्हें ललकारता हुआ बोला—) 'अरे दुष्टो! तुम्हारा तो सदासे अभ्यास पड़ा हुआ है मेरी मार खाते रहनेका।' यह कहकर वह आवेशमें भरा हुआ आकाशमें जा चढ़ा। (३) अब तो सब देवता, हाय-हाय करते हुए जान ले-लेकर भाग चले। रावण ललकार उठा—'अरे दुष्टो! मेरे सामनेसे भागकर जा कहाँ पाओगे?' देवताओंको व्याकुल देखकर अंगदने उछलकर उसकी टँगड़ी पकड़कर उसे धरतीपर ला पटका। (४) अंगदने उसे पकड़कर धरतीपर ला पटका और उसे कसकर लातें जमाकर वे रामके पास लौट आए। रावण ज्यों-त्यों करके सँभलकर उठ बैठा और बहुत कड़ककर गरज उठा। बड़े तावके साथ अपने दसों धनुषोंपर बाण चढ़ा-चढ़ाकर वह लगा धुआँधार बाण बरसाने। उसने जब देखा कि सभी योद्धा घायल और भयभीत हो चले हैं तो वह अपने बलपर फूल उठा। [२३] तब रामने अपने धनुष-बाणसे रावणके दसों सिर और बीसों भुजाएँ फिर काट गिराईं। पर कट जानेपर भी वे फिर वैसे ही निकल आईं जैसे तीर्थमें किया हुआ पाप बढ़ता ही चला जाता है ॥ ९७ ॥ शत्रुके सिर और भुजाएँ बढ़ती देखकर वानर-भालू क्रोधसे लाल हो उठे। अब उन्हें यही चिन्ता सताने लगी कि यह दुष्ट अपने सिर और भुजा कटनेपर भी मर क्यों नहीं पा रहा है। वानर-भालू फिर उसपर टूट पड़े। (१) बलवान् अंगद, हनुमान्, नल, नील, सुग्रीव

१२४७-४९ राघवोरुबलं प्राप्य सानन्दं वानरास्तदा। उच्छलन्तः प्लवन्तश्च समरं दद्रुवुर्द्रुतम् ॥ —भट्टि०
१२५०-५२ मनोवीर्यवरोरसिक्तमसृण्यमकुतोभयम्। भीता निलिल्यिरे देवा तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः॥
१२५३ अथांगदो मृत्युसमानवेगं निपातयामास रणक्षितौ तम् ॥
१२५४-५६ संधाय धनुषा रामः शरमाशीविषोपमम्। रावणस्य शिरोच्छिंदच्छ्रीमज्ज्वलितकुंडलम् ॥
तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः। तीर्थमध्ये कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ —भागवत
१२६०-६१ ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानसः। शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम् ॥
न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात्। —अध्यात्मरामायण

वालि - तनय, मारुति, नल, नीला। वानरराज, दुबिद बलसीला।
बिटप - महीधर करहिँ प्रहारा। सोइ गिरि-तरु गहि कपिन्ह सो मारा। (२)
एक नखन्हि रिपु - बपुष बिदारी। भागि चलहिँ ऐक लातन्ह मारी।
तब नल - नील सिरन्ह चढ़ि गएउ। नखन्हि लिलार बिदारत भएऊ। (३)
देखि बिषाद रुधिर, उर भारी[१]। तिन्हहिँ धरन-कहँ भुजा पसारी।
गहे न जाहिँ, करन्हि - पर फिरहीँ। जनु जुग मधुप कमल-बन चरहीँ। (४)
कोपि, कूदि, दोउ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी।
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हेँ। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हेँ। (५)
१२७० हनुमदादि मुरछित करि बंदर। पाइ प्रदोष, हरष दसकंधर।
मुरछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा। (६)
संग भालु - भूधर - तरु - धारी। मारन लगे पचारि - पचारी।
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद, महि पटकै भट नाना। (७)
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि, माँझ - उर मारेसि लाता। (८॥)

और द्विविद—सबने मिलकर उसपर वृक्ष और पर्वतोंकी चट्टानें उठा मारीं और उसने भी वे ही वृक्ष और पर्वतकी चट्टानें उलटकर बन्दरोंपर फेंक मारीं। (२) कोई रावणको नखोंसे नोचे डाल रहा था तो कोई उसे लात ही मार-मारकर भाग चलता था। नल और नील तो उसके सिरोंपर ही जा चढ़े और नखोंसे लगे (उसके सिर ही) फाड़ने। (३) (सिरोंसे) लहू बहता देखकर रावण कचकचा उठा। उसने नल और नीलको पकड़ उतारनेके लिये बहुत अपनी भुजाएँ फैलाईं पर वे उसकी पकड़में आ ही नहीं पा रहे थे और उसके हाथोंपर ऐसी उछल-कूद मचाए जा रहे थे जैसे दो भौंरे कमलोंपर मँडराते फिर रहे हों। (४) उसने आँखें तरेरकर उछलकर दोनोंको जा पकड़ा और ज्योंही वह उन्हें उठाकर धरतीपर पटकने चला कि दोनों (नल और नील) उसकी भुजाएँ मरोड़-मरोड़कर भाग निकले। तब रावणने तिलमिलाकर दसों धनुष हाथमें लेकर बाण बरसा-बरसाकर वहाँ जितने वानर थे सबको घायल कर डाला। (५) हनुमान् आदि वानरोंको मूर्च्छित कर चुकनेपर और साँझ हुई जानकर रावणकी जानमें जान आई (कि आजका दिन तो किसी-किसी प्रकार बीता)। इधर जब रणधीर जामवन्तने देखा कि सभी वीर वानर मूर्च्छित हुए पड़े हैं तो जामवन्त ही झपटकर उसपर टूट पड़े। (६) पहाड़की चट्टानें और वृक्ष हाथमें उठाए हुए भालुओंको साथ लेकर वे रावणको ललकार-ललकारकर लगे मारने। तब बलवान् रावण भी तमतमा-तमतमाकर अनेक योद्धाओंको पकड़-पकड़कर लगा धरतीपर पटकने। (७) जब भालुओंके सरदार जामवन्तने अपने दलका इस प्रकार नाश होते देखा तो बहुत तमककर उसने कसकर एक लात रावणकी छातीमें खींच मारी। (८) छातीमें

१. रुधिर देखि बिषाद उर भारी।

१२६३-६४ द्विविदश्चैव मैन्दश्च अंगदो गंधमादनः। हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः॥
पाषाणैः पादपैश्चैव निर्जघ्नू रावणं भृशम्। केचिन्नखैः पादतलैश्छिन्दन्ति वैरिविग्रहम्॥—वा०रा०
१२६५-६७ पवनात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समवस्थितम्। जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद च॥
ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम्। संभ्रमाविष्टहृदयो न किंचित्प्रत्यपद्यत॥
१२६८ ह्रस्वं कृत्वा ततो रूपं भुवि तं विन्यपातयत्।
१२६९-७० हरीनभ्यहनत्क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः। मूर्च्छां प्रापिताः सर्वे प्रदोषं प्राप्य हृष्टवान्॥
१२७१-७२ जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम्। पातयामास तेजस्वी रावणस्य च वक्षसि॥वा०रा०

छंद—उर लात-घात प्रचंड लागत, बिकल रथ-तें महि परा।
गहे भालु बीसहुँ कर, मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा।
मुरछित बिलोकि, बहोरि पद हति, भालुपति प्रभु-पहँ गयो।
निसि जानि, स्यंदन घालि तेहि, तब सूत जतन करत भयो॥ [२४]
दो०—मुरछा-बिगत भालु-कपि, सब आए प्रभु-पास।
१२८० निसिचर सकल रावनहिं, घेरि रहे अति त्रास॥ ८९॥
तेही निसि सीता-पहँ जाई। त्रिजटा, कहि सब कथा सुनाई।
सिर-भुज बाढ़ि सुनत रिपु-केरी। सीता-उर भइ त्रास घनेरी। (१)
मुख मलीन, उपजी मन चींता। त्रिजटा-सन बोली तब सीता।
होइहि कहा, कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व-दुखदाता। (२)
रघुपति-सर सिर कटेहु न मरई। बिधि, बिपरीत चरित सब करई।
मोर अभाग्य जियावत ओही। जेहि हौं हरिपद-कमल बिछोही। (३)
जेहि कृत कपट-कनक-मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहिं-पर रूठा।
जेहि बिधि मोहिं दुख दुसह सहाए। लछिमन-कहँ कटु बचन कहाए। (४)
रघुपति-बिरह सविष सर भारी। तकि-तकि मार बार बहु मारी।
१२९० ऐसेहु दुख मम राख जो प्राना। सोइ बिधि ताहि जियाव, न आना। (५)

लातकी प्रचंड चोट लगते ही रावण व्याकुल होकर रथसे नीचे आ गिरा। उसके बीसों हाथोंमें फँसे हुए भालू ऐसे लगते थे मानो रात हो जानेपर कमलोंमें भौंरे आ मुँदे हों। रावणको मूर्च्छित देखकर जामवन्तने फिर एक लात उसे आ जमाई और वहाँसे वे रामके पास लौट आए। इधर रात आई जानकर रावणका सारथि उसे रथमें डालकर भीतर लंकामें ले जानेका जतन करने लगा। [२४] मूर्च्छा दूर हो चुकनेपर सब बन्दर और भालू तो रामके पास जा पहुँचे और सब राक्षस अत्यन्त त्रासके मारे (मूर्च्छित) रावणको घेरकर जा खड़े हुए॥ ८९॥ उसी रात त्रिजटाने युद्धकी सारी कथा सीताको जा सुनाई। रावणके सिर और भुजाएँ (कटकर भी) बार-बार बढ़ते रहनेकी बात सुनकर सीता बहुत घबरा चलीं। (१) उनका मुँह कुम्हला चला और मनमें बड़ी चिन्ता आ समाई। तब त्रिजटासे सीता पूछने लगीं—'कहो माता! यह क्यों नहीं बतला देती कि अब होगा क्या? और यह विश्वको दुःख देनेवाला (रावण) किस प्रकार खेत आवेगा? (२) (कैसी विचित्र बात है कि) रामके बाण लगनेपर भी यह मर नहीं पा रहा है। विधाता सारा काम उलटा ही किए डालनेपर तुला बैठा है। सचमुच मेरा वह दुर्भाग्य ही उसे जिलाए चला जा रहा है जिसने मुझे भगवान्‌के चरण-कमलोंसे इतनी दूर ला पटका। (३) जिस बिधाताने झूठा मायाका मृग बना खड़ा किया था वह विधाता अभीतक मुझसे रूठा बैठा है। जिस विधाताके कारण मुझे इतना कठोर दुःख सहना पड़ रहा है और जिस विधाताने मेरे मुँहसे लक्ष्मणको बहुत उलटी-सीधी बातें कहलवा डालीं (४) वह न जाने अभीतक कितनी बार रामके विरहके विषैले बाण मुझपर ताक-ताककर चला चुका है (रामके विरहका दुःख दे चुका है), पर इतने दुःख देनेपर भी जो विधाता मेरे प्राण नहीं निकलने दे रहा है, वही विधाता उसे (रावणको) भी अभीतक जिलाए चला जा रहा है। (बस यही कारण है,) और कोई दूसरा कारण हो नहीं सकता।' (५)

१२७८ सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्य तम्। शनैर्युद्धादसंभ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत्॥
१२७९-८० अतिमूर्च्छा वानरास्ते रामपार्श्वं समागमन्। —वाल्मीकीयरामायण

बहु बिधि करति बिलाप जानकी । करि-करि सुरति कृपा-निधान की ।
कह त्रिजटा, सुनु राजकुमारी । उर सर लागत मरै सुरारी । (६)
प्रभु, तातें उर हतें न तेही । ऐहि - के हृदय बसहि बैदेही । (६॥)
छंद—ऐहि - के हृदय बस जानकी, उर - जानकी मम बास है ।
मम उदर भुवन अनेक, लागत बान, सब - कर नास है ।
सुनि बचन, हरष-बिषाद मन अति, देखि पुनि त्रिजटा कहा ।
अब मरिहि रिपु, ऐहि बिधि सुनहि सुंदरि ! तजहि संसय महा ॥ [२५]
दो०—काटत सिर होइहि बिकल , छुटि जाइहि तव ध्यान ।
तव रावनहिं हृदय - महँ , मरिहहिं राम सुजान ॥ ९९ ॥
१३०० अस कहि बहुत भाँति समुझाई । पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई ।
राम - सुभाउ सुमिरि बैदेही । उपजी बिरह - बिथा अति तेही । (१)
निसिहि, ससिहि, निंदति बहु भाँती । जुग - सम भई, सिराति न राती ।
करति बिलाप मनहिं मन भारी । राम - बिरह जानकी दुखारी । (२)
जब अति भयउ बिरह उर दाहू । फरकेउ बाम नयन अरु बाहू ।

इस प्रकार कृपानिधान रामका बार-बार स्मरण करती हुई जानकी बहुत बिलख उठीं । यह सुनकर त्रिजटा उन्हें समझाने लगी—'देखो राजकुमारी ! वह देवताओंका शत्रु रावण तभी मर पावेगा जब रामका बाण उसके हृदयमें जाकर लगेगा । (६) और राम उसे इसीलिये नहीं मार रहे हैं कि उसके हृदयमें जानकी बसी हुई हैं । (७) (वे सोचते हैं कि—) 'उस (रावण)-के हृदयमें तो जानकी बसी हुई हैं, जानकीके हृदयमें मैं बसा हुआ हूँ और मेरे हृदयमें न जाने कितने लोक बसे हुए हैं । अतः, (रावणके हृदयमें) जहाँ बाण लगा कि सबके सब एक साथ स्वाहा हो जायँगे ।' यह वचन सुनकर सीताके मनमें हर्ष भी हुआ और दुःख भी (हर्ष यह जानकर हुआ कि राम मुझसे इतना स्नेह करते हैं और दुःख इसलिये कि मेरे कारण ही रावण मर नहीं पा रहा है) । यह देखकर त्रिजटाने फिर कहा—'सुन्दरी ! अब आप अपने मनसे सारा सन्देह झाड़ फेंकिए । वह शत्रु (रावण) इस प्रकार मरेगा कि सिर कट जानेपर जब वह बहुत व्याकुल हो उठेगा और उसके मनसे तुम्हारा ध्यान छूट जायगा तभी सुजान राम झट ताककर उसके हृदयमें बाण मार देंगे' ॥ ९९ ॥ यह कहकर त्रिजटा उन्हें बहुत ढाढ़स बँधाकर अपने घर लौट गई । रामके (स्नेहशील) स्वभावका स्मरण कर-करके जानकीके हृदयमें विरहकी पीडा और भी अधिक बढ़ चली । (१) वहाँ बैठी-बैठी वे रात्रि और चन्द्रमाको बहुत कोसे जा रहीं थीं कि यह (निगोड़ी) रात ऐसी युगके समान इतनी बड़ी हुई चली जा रही है कि बिताए नहीं बीत पा रही है ।' रामके विरहमें जानकी बहुत व्याकुल हुई पड़ रही थीं । वे मन ही मन बहुत बिलखे जा रही थीं । (२) जिस समय उनके हृदयमें यह विरहकी प्रबल आग भड़की पड़ रही थी उसी समय जानकीकी बाईं भुजा भी फड़क उठी । इसे शुभ शकुन जानकर

१२९१ परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाऽब्रवीत् । विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥
१२९३-९७ यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैः
स श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः ।
हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो
मय्यास्ते भुवनावली बिलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः ॥ —हनुमन्नाटक
१२९८-१३०० त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे । असकृच्च शिरश्छेदे शमयिष्यति से स्मृतिः ॥
दशवक्त्रं तदा रामो हृदयं निहनिष्यति । त्रिजटैव सुसंबोध्य भवनं स्वमगाद् वरा ॥ वा०रा०

सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहइँ कृपाल रघुबीरा। (३)
इहाँ अर्द्ध निसि रावन जागा। निज सारथि-सन खीभन लागा।
सठ! रनभूमि छुँड़ाइसि मोहीं। धिग-धिग अधम! मंदमति! तोहीं। (४)
तेहि, पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोर भए रथ चढ़ि पुनि धावा।
सुनि आगवन दसानन-केरा। कपि-दल खरभर भयउ घनेरा। (५)
१३१० जहँ-तहँ भूधर-बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥ (५॥)

छंद—धाए जो मर्कट बिकट, भालु कराल, कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार, मारत, भजि चले रजनीचरा।
बिचलाइ दल, बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि, नखन्हि बिदारि, तन व्याकुल कियो॥ [२६]

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल, रावन कीन्ह बिचार।
अंतर्हित होइ निमिष-महँ, कृत माया-बिस्तार॥१००॥

छंद—जब कीन्ह तेहि पाखंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड।
बेताल-भूत-पिसाच। कर धरे धनु-नाराच॥ (१)
जोगिनि गहे करवाल। ऐक हाथ मनुज-कपाल।

उनके मनमें विश्वास हो चला कि अब कृपालु राम बिना मिले न रहेंगे। (३) उधर आधी रात बीतनेपर जब रावणकी मूर्च्छा टूटी तो वह अपने सारथिपर खिझला उठा—'अरे शठ! तू रणभूमिसे मुझे हटा क्यों लाया? अरे मंदबुद्धि! नीच! तुझे धिक्कार है।' (४) उधर वह सारथि था कि उसके पैरों पड़ा जा रहा था। किसी-किसी प्रकार वह (बड़ी देरमें) उसे (रावणको) मना पाया। सवेरा होते ही रावण फिर रथपर चढ़कर (रणभूमिमें) आ डटा। रावणका आना सुनते ही वानरोंकी सेनामें हल-चल मच गई। (५) जहाँ-तहाँ वृक्ष और पहाड़ोंकी चट्टानें उखाड़-उखाड़कर सब बड़े-बड़े वानर योद्धा किट-किटाकर दौड़ पड़े। (६) हाथोंमें पर्वतकी चट्टानें ले-लेकर बड़े-बड़े भयंकर वानर और भालू दौड़ पड़े और उन्होंने तमतमा-तमतमाकर चट्टानें चला-चलाकर रक्षसोंको ढेर कर डाला। उनकी मार खा-खाकर राक्षसोंके पैर उखड़ चले और वे सब चले भाग। बलवान् वानरोंने राक्षसोंको तितर-बितर करके रावणको जा घेरा। चारों ओरसे उसे चपेटे लगा-लगाकर और नखोंसे उसका शरीर नोच-नोचकर उन्होंने उसे लहू-लुहान कर डाला। (जब रावणने देखा कि) वानर बहुत प्रबल हुए जा रहे हैं (मान नहीं रहे हैं) तो रावणने मनमें न जाने क्या सोचा और क्षण भरके लिये अन्तर्धान होकर उसने अपनी माया विद्या फैलाई॥ १००॥ उसकी मायाके कारण वहाँ चारों ओर बड़े भयंकर-भयंकर जीव दिखाई पड़ने लगे। हाथोंमें धनुष बाण लिए हुए न जाने कितने बेताल, भूत, और पिशाच वहाँ सामने आ खड़े हुए। (१) सैकड़ों योगिनियाँ एक हाथमें कृपाण और दूसरे हाथमें खप्पर (मनुष्यकी खोपड़ी) लिए हुए टटका (ताज) लहू गटर-गटर पीए चली जा रही थीं और छमाछम नाचे-गाए

१३०६ स तु मोहात् सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः। क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत्॥
१३०७ त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः। अतो विक्ष्वामिति॥
१३०८ अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः। भर्तुः स्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं प्रभो॥
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत्।
१३०९ व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः।
१३१०-१४ तमभ्यधावन् शतशो नन्दतः काननौकसः। ते द्रुमांश्च महाकाया गिरिशृंगाणि चोद्यताः॥ वा०रा०

१३२० करि सद्य सोनित - पान । नाचहिँ करहिँ, बहु गान ।। (२)
धरु - मारु बोलहिँ घोर । रहि पूरि धुनि चहुँ ओर ।
मुख बाइ धावहिँ खान । तब लगे कीस परान ।। (३)
जहँ जाहिँ मर्कट भागि । तहँ बरत देखहिँ आगि ।
भए बिकल बानर - भालु । पुनि लाग बरषै बालु ।। (४)
जहँ-तहँ थकित करि कीस । गर्जेउ बहुरि दससीस ।
लछिमन कपीस - समेत । भए सकल बीर अचेत ।। (५)
हा राम ! हा रघुनाथ । कहि सुभट मीँजहिँ हाथ ।
ऐहि बिधि सकल बल तोरि । तेहिँ कीन्ह कपट बहोरि ।। (६)
प्रगटेसि बिपुल हनुमान । धाए गहे पाषान ।
१३३० तिन्ह राम घेरे जाइ । चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ।। (७)
मारहु, धरहु, जनि जाइ । कटकटहिँ पूँछ उठाई ।
दह दिसि लँगूर बिराज । तेहिँ मध्य कोसलराज ।। (८)
छंद—तेहि मध्य कोसलराज, सुन्दर स्याम तन सोभा लही ।
जनु इन्द्रधनुष अनेक - की बर बारि, तुङ्ग तमाल ही ।
प्रभु देखि हरष - बिसाद - उर, सुर बदत जय-जय-जय करी ।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष - महँ माया हरी ।। [२७]
माया - बिगत कपि - भालु हरषे बिटप-गिरि गहि सब फिरे ।
सर - निकर छाँड़े राम, रावन - बाहु - सिर पुनि महि गिरे ।

चली जा रही थीं । (२) इतना ही नहीं, थोड़ी ही देरमें उन्होंने 'पकड़ो-मारो, पकड़ो-मारो' की ऐसी चिल्ल-पों मचाई कि थोड़ी ही देरमें उसकी गूँज चारों ओर जा फैली । जहाँ वे अपने मुँह फाड़-फाड़कर (बानरोंको) खाने बढ़तीं कि बानर उनके सामनेसे भाग खड़े होते । (३) पर वहाँसे हटकर जहाँ-जहाँ वानर भागकर जाते वहाँ-वहाँ देखते क्या थे कि धू-धू करके आगकी लपटें उठती जा रही हैं । (यह देखकर तो) सब बन्दर-भालू बहुत व्याकुल हो उठे । (इतनेसे ही संतुष्ट न होकर) वह (रावण) उनपर गरम बालू बरसाने लगा । (४) इस प्रकार वानरोंको त्रस्त करके रावण फिर गरज उठा । उसकी मारसे लक्ष्मण, कपिराज सुग्रीव तथा अन्य सब वीर अचेत हो-होकर जा पड़े । (५) (छोटोंकी बात तो जाने दीजिए) बड़े-बड़े वीर भी 'हा राम ! हा रघुनाथ !' कहते हुए हाथ मले जा रहे थे । इस प्रकार रावणने वानरोंकी सारी सेनाका साहस तोड़कर फिर दूसरी माया रच खड़ी की । (६) उसने बहुतसे हनुमान् रच खड़े किए जो पत्थर ले-लेकर दौड़ पड़े और चारों ओरसे सेना बना-बनाकर जाकर रामको घेर खड़े हुए । (७) वे कटकटा-कटकटाकर पूँछ उठा-उठाकर कहने लगे—'पकड़ो, मारो, जाने न पावे ।' उनकी पूँछें चारों ओर उठ फैली थीं और उन सबके बीचमें कोशलराज राम फँसे खड़े थे । (८) उनसे घिरा हुआ कोशलराज रामका सुन्दर श्याम शरीर ऐसा लग रहा था, मानो चारों ओरसे बहुतसे इन्द्र-धनुषोंकी बाड़से घिरा हुए कोई ऊँचा-सा तमालका वृक्ष हो । प्रभुको (इस दशामें) देखकर देवताओंके हृदयमें हर्ष और विषाद (दोनों) हुए जा रहे थे (उनकी उस समयकी शोभा देखकर हर्ष और उन्हें घिरा देखकर दुःख हो रहा था) और वे जय-जयकार किए चले जा रहे थे । रामने भौंहे तरेरकर एक ही बाणसे क्षण भरमें वह सारी माया ऐसे छाँट मिटाई (कि उसका नाम-तक न रह पाया) । [२७] माया छँट

श्रीराम - रावन - समर - चरित अनेक कल्प जो गावहीं ।
१३४० सत सेष, सारद, निगम, कबि, तेउ तदपि पार न पावहीं ।। [२८]
दो०—ताके गुन-गन कछु कहे, जड़मति तुलसीदास ।
जिमि निज बल अनुरूप-तें, माछी उड़इ अकास[1] ।। १०१ क ।।
काटे सिर - भुज बार बहु, मरत न भट लंकेस ।
प्रभु क्रीड़त,सुर-सिद्ध-मुनि, व्याकुल, देखि कलेस ।। १०१ ख ।।
काटत, बढ़हिं सीस - समुदाई । जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ।
मरइ न रिपु, स्रम भयउ बिसेखा । राम, बिभीषन - तन तब देखा । (१)
उमा ! काल मरु जाकी ईछा । सो प्रभु जन - कर प्रीति-परीछा ।
सुनु सर्बग्य ! चराचर - नायक । प्रनतपाल ! सुरमुनि - सुखदायक । (२)
नाभि पियूष - कुंड बस या - के[2] । नाथ ! जियत रावनु बल ता - के ।
१३५० सुनत बिभीषन - बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला । (३)

जानेपर वन्दरों और भालुओंके जीमें जी आया और वे सब पहाड़की चट्टानें और वृक्ष उखाड़े लिए हुए लौट पड़े । तब रामने ऐसे धुआँधार बाण बरसाए कि रावणके सिर और बाहु फिर कट-कटकर धरती पर आ-आ गिरने लगे । राम और रावणके युद्धकी कथा इतनी अपार है कि यदि सौ-सौ शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पोंतक भी उसका वर्णन करते रह जायँ, तो भी पार नहीं पा सकते । [२८] उसी कथाका कुछ थोड़ा-सा वर्णन इस मन्दबुद्धि तुलसीदासने वैसे ही कर दिया है, जैसे मक्खी अपने बलके अनुसार आकाशमें थोड़ा-बहुत उड़ लेती है ।। १०१ क ।। अनेक बार सिर और भुजाएँ कट-कट जानेपर भी रावण किसीके मारे नहीं मर पा रहा था । प्रभु राम तो केवल खेल रचाए हुए थे पर देवता, सिद्ध और मुनि यही समझे बैठे थे कि राम बड़े संकटमें पड़े हुए हैं (कि बहुत प्रयत्न करनेपर भी रावण मर नहीं पा रहा है) ।। १०१ ख ।। रावणके जितने-जितने सिर कटते जाते थे उतने-उतने नये-नये निकलते चलते थे, जैसे जितना-जितना लाभ होता चलता है उतना ही उतना लोभ भी बढ़ता चलता है । जब बहुत परिश्रम करनेपर भी शत्रु रावण उनके मारे नहीं मर पाया तब रामने विभीषणकी ओर (यह जाननेके लिये जिज्ञासा-भरी दृष्टिसे) देखा (कि इसमें रहस्य क्या है) । (१) (शिव कहते हैं—)'देखो उमा ! जिस प्रभुकी इच्छासे काल भी नष्ट हो जा सकता है, वही प्रभु अपने भक्तके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये उसकी ओर देखने लगे थे (कि यह मुझसे अधिक प्रेम करता है या भाई रावणसे) ।' (विभीषणने कहा—) 'हे सर्वज्ञ ! चर और अचरके स्वामी ! शरणागतके रक्षक ! देवता और मुनियोंको सुख देनेवाले राम ! (२) इसकी नाभिमें अमृत-कुण्ड भरा धरा है । उसीके बलपर यह रावण अभीतक जीए चला जा रहा है ।' इतना सुनना था कि कृपालु रामने हर्षित होकर अपना भयंकर बाण उठा निकाला । (३) उसी समय रावणके

१. निज पौरुष अनुसार जिमि, मसक उड़ाहिं अकास । २. नाभि कुण्ड पियूष बस याके ।

१३४३-४४ पुनः पुनः प्ररूढानि सिंहनादकराणि च । छित्वा छित्वा शिरांस्येव पृथग्वै रावणस्य च ।।
१३४६ यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः । एते ते निष्फलं यातो रावणस्य निपातने ।।
इति चिंताकुले रामे समीपस्थो विभीषणः । उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ ।।
१३४९ नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुंडलाकारसंस्थितम् । तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत् ।।
१३५० विभीषणवचाः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः । जग्राह सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ।।—नृ०पु०
१३५१ विनेदुरशिवा गृद्धा वायसैरभिमिश्रिताः । —वाल्मीकीयरामायण

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर, सृगाल, बहु स्वाना।
बोलहिं खग, जग-आरति-हेतू। प्रगट भए नभ जहँ-तहँ केतू। (४)
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब-बिनु रबि-उपरागा।
मंदोदरि-उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन-मग बारी। (५)
छंद—प्रतिमा रुदहिं, पबि-पात नभ, अति बात बह, डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर-कच-रज, असुभ अति सक को कही।
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय-जए।
सुर सभय जानि, कृपाल रघुपति चाप-सर जोरत भए॥ [२९]
दो०—खैंचि सरासन स्रवन-लगि, छाँड़े सर ऐकतीस।
१३६० रघुनायक-सायक चले, मानहुँ काल-फनीस॥ १०२॥
सायक एक नाभि-सर सोषा। अपर लगे भुज-सिर करि रोषा।
लै सिर-बाहु चले नाराचा। सिर-भुज-हीन रुंड महि नाचा। (१)
धरनि धँसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति, प्रभु कृत दुइ खंडा।
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ राम? रन हतौं पचारी। (२)

चारों ओर अनेक प्रकारके अपशकुन हो उठे। बहुतसे गदहे, सियार और कुत्ते रो उठे। संसारकी विपत्तियाँ आ पड़नेकी सूचना देनेवाले (गिद्ध, उल्लू आदि) पक्षी भी बोल उठे। आकाशमें जहाँ-तहाँ न जाने कितने केतु उदित हो आए। (४) चारों ओर भयंकर आगकी ऊँची-ऊँची लपटें उठ चलीं। बिना पर्वके ही सूर्य-ग्रहण आ लगा। यह सब उपद्रव देखकर मन्दोदरीका हृदय वेगसे धड़कने लगा। नगरमें बनी हुई मूर्तियोंके नेत्रोंसे आँसू बह चले। (५) मूर्तियाँ रो उठीं, आकाशसे बिजलियाँ टूट-टूटकर कड़ा-कड़ गिरने लगीं, भयंकर अन्धड़ उठ खड़ा हुआ, धरती हिल उठी और बादलोंसे लहू, बालू और धूलकी वर्षा होने लगी। उस समय ऐसे-ऐसे भयंकर असगुन होने लगे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इतना प्रचण्ड उत्पात होते देखकर आकाशमें देवता (भयसे त्रस्त होकर रक्षाके लिये) रामकी जय-जयकार कर उठे। देवताओंको भयभीन जानकर कृपालु रामने धनुषपर अपना प्रचंड बाण चढ़ा धरा। कान-तक धनुष खींचकर रामने एक साथ ऐसे प्रचण्ड इकतीस बाण खींच चलाए जो काल-सर्पके समान वेगसे छूट चले॥ १०२॥ एक बाणसे तो उन्होंने रावणका नाभि-कुण्ड सोख डाला और तमतमाकर तीस बाणोंसे उसके (दसों) सिर और (बीसों) भुजाएँ काट गिराईं। (रावणके) सिर और भुजाएँ लेकर तो वे बाण उड़ चले पर सिर और भुजाएँ न रहनेपर भी उसका धड़ धरती-पर बहुत देरतक खड़ा नाचता रहा। (१) जब धड़की प्रचण्ड धमकसे धरती भी धँसने लगी, तब प्रभुने बाण मारकर धड़के भी दो टुकड़े कर डाले। मरते समय भी रावण बहुत कड़ककर गरजा—'कहाँ हैं राम? उसे मैं रणमें ललकारकर

१३५२ अनिमित्तान्यथा पश्यन्नस्फुटद् रविमण्डलम्। ओक्षन् शोणितमम्भोदा वायवोऽवान् सुदुःसहाः॥भट्टि०
१३५३-५८ दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः। पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत्॥ वा०रा०
उल्का निर्घातनादेन पपात धरणीतले। चलत्यपर्वणि मही गिरीणां शिखराणि च॥
ग्रस्तः स्वर्भानुना सूर्यो दिवा नक्तमजायत। प्रतिमायाश्च नेत्रेभ्यो वहन्त्यश्रूणि संततम्॥
निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समंततः। प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून् समुत्किरन्॥
ववर्षू रुधिरं देवा रावणस्य रथोपरि। एवं प्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः॥
ततो देवा सगंधर्वा सिद्धाश्च परमर्षयः। चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः॥
१३५९-६० ततः क्रोधान्महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः। सन्धाय धनुषा रामः शरमाशीविषोपमम्॥ हरिवंशपु०
१३६१ पावकास्त्रेण संयोज्य नाभि विव्याध रक्षसः। अनन्तरं च चिच्छेद शिरांसि स महाबलः॥
बाहूनपि च संरब्धो रावणस्य रघूत्तमैः। —अध्यात्मरामायण

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिन्धु-सरि-दिग्गज-भूधर।
धरनि परेउ दोउ खंड बढ़ाई। चाँपि भालु - मर्कट - समुदाई। (३)
मंदोदरि - आगे भुज - सीसा। धरि, सर चले जहाँ जगदीसा।
प्रविसे सब निषंग - महँ जाई। देखि सुरन दुन्दुभी बजाई। (४)
तेज समान तासु प्रभु - आनन[1]। हरषे देखि संभु - चतुरानन।
१३७० जय - जय धुनि पूरी ब्रह्मण्डा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा। (५)
बरषहिं सुमन देव - मुनि - बृन्दा। जय कृपाल ! जय-जयति मुकुन्दा। (५॥)

छंद—जय कृपाकंद, मुकुन्द, द्वंद्व-हरन, सरन - सुखप्रद प्रभो।
खल - दल - विदारन, परम कारन, कारुनीक सदा बिभो।
सुर सुमन बरषहिं हरष - संकुल, बाज दुन्दुभि गहगही।
संग्राम - अंगन, राम - अंग अनंग - बहु - सोभा लही॥ [३०]
सिर जटा-मुकुट, प्रसून बिच - बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि - पर तड़ित - पटल - समेत उडुगन भ्राजहीं।
भुजदंड सर - कोदंड फेरत, रुधिर - कन तन अति बने।
जनु रायमुनियँ[2] तमाल - पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥ [३१]

पछाड़ूँगा' (२) यह कहकर रावण जो गिरा तो गिरते ही धरती दहल उठी, समुद्र, नदियाँ, दिग्गज और पहाड़ सभी खलबला उठे। धरतीपर गिरते ही धड़के दोनों टुकड़े ऐसे फैल गिरे कि बहुतसे बन्दर और भालू उनके नीचे चँप पिसे। (३) रामके बाण मन्दोदरीके आगे रावणके सिर और भुजाएँ रखकर रामके पास लौट आए और तूणीरमें जा पैठे। यह देखते ही देवता नगाड़े बजा उठे। (४) रावणका तेज रामके मुखमें आ समाया देखकर ब्रह्मा और शिव प्रसन्न हो उठे (कि हमारे भक्तको भगवान्ने सायुज्य मुक्ति दे दी) और सारे ब्रह्माण्डमें 'जय-जय'की यह ध्वनि गूँज उठी—'प्रबल भुजदण्डवाले रामकी जय हो, (५) हे कृपालु ! आपकी जय हो, हे मुकुन्द ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो।' यह कह-कहकर देवता और मुनि सभी रामपर पुष्प बरसाने लगे। (५॥) (देवता कहते जा रहे थे—) 'हे कृपालु ! मोक्षके दाता मुकुन्द ! चिन्ताएँ हरनेवाले ! कारणोंके भी परम कारण ! सदा करुणा करनेवाले ! सर्वव्यापक विभो ! आपकी जय हो,' और पुष्प बरसाए चले जा रहे थे। ढमाढम नगाड़े गड़गड़ा उठे। उस समय रणभूमिमें खड़े हुए रामके अंग-अंग अनेक कामदेवोंके समान सुन्दर लगे जा रहे थे। [३०] उनके सिरपर (चमचमाती) जटाएँ बटकर बनाए हुए मुकुटके बीच-बीच गुँथे हुए फूल ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो नीलगिरिपर बिजलीके साथ तारे चमके पड़ रहे हों। वे अपने भुजदण्डोंसे बाण और धनुष घुमाए चले जा रहे थे। उनके शरीरपर पड़े हुए रक्तके छींटे ऐसे सुहावने लग रहे थे मानो तमालके वृक्षपर बैठी हुई लालमुनिएँ (लाल नामकी चिड़िएँ)

१. तासु तेज समान प्रभु आनन। २. रायमुनि।

१३६२-६४ रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः। रावणस्य हरन् प्राणान् विवेश धरणीतलम्॥
गतासुर्भीमवेगस्तु नैऋतेन्द्रो महाद्युतिः। पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा॥
१३६५ चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना। भास्करो निष्प्रभो ह्यासीन्न ववौ चापि मारुतः॥
१३६६-६८ स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः। कृतकर्मा निभृतवत्स रामतूणीरमाविशत्॥
१३६९ रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत्। प्रविवेश रघुश्रेष्ठे देवानां पश्यतां सताम्। अध्या०
१३७०-७१ देवा ऊचुरहो भाग्यं रावणस्य दुरात्मनः। राघवः स्तवसंयुक्ता गगने च विशुश्रुवे॥
साधु साध्विति वागग्र्या देवतानां महात्मनाम्। निपपातांतरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि॥वा.रा.

१३८० दो०—कृपा - दृष्टि करि बृष्टि प्रभु , अभय किए सुर - बृन्द ।
भालु - कीस सब हरषे , जय सुखधाम मुकुन्द ॥ १०३ ॥
पति - सिर देखत मंदोदरी । मुरछित, बिकल, धरनि खसि परी ।
जुवति - बृन्द रोवत उठि धाईं । तेहि उठाइ रावन - पहँ आईं । (१)
पति-गति देखत[1] करहिं पुकारा । छूटे कच, नहिं बपुष सँभारा ।
उर - ताड़ना करहिं बिधि नाना । रोवत, करहिं प्रताप बखाना । (२)
तव बल नाथ ! डोल नित धरनी । तेज-हीन पावक, ससि, तरनी ।
सेष, कमठ सहि सकहिं न भारा । सो तनु भूमि परेउ भरि छारा । (३)
बरुन - कुबेर - सुरेस - समीरा । रन - सनमुख धर काहु न धीरा ।
भुज-बल जितेहु काल - सम साईं । परेहू आज अनाथ - कि नाईं[2] । (४)
१३९० जगत तुम्हारि बिदित प्रभुताई[3] । सुत - परिजन - बल बरनि न जाई ।
राम - बिमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कोउ कुल रोवनिहारा । (५)
तव बस बिधि - प्रपंच सब नाथा । सभय दिसिप, नित नावहिं माथा ।

बड़े सुखसे जमी बैठी हों। [३१] प्रभु रामने अपनी कृपादृष्टि बरसाकर सब देवताओंको निर्भय कर डाला। सब वानर-भालू भी मगन हो-होकर 'सुखोंके धाम मुकुन्द (राम)-की जय हो, जय हो'—चिल्लाए जा रहे थे ॥१०३॥ अपने पतिके सिर देखते ही मन्दोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरतीपर पछाड़ें खाकर गिर गई। रावणकी अन्य स्त्रियाँ भी रोती-पीटती हुई उठी दौड़ी चली आईं और मन्दोदरीको सँभालकर वहाँ लिए चली आईं जहाँ रावण मरा पड़ा था। (१) अपने पतिकी यह दशा देखकर तो वे धाड़ मार-मारकर रो उठीं। उनके केश बिखर चले और उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रह गई। वे बार-बार छाती पीट-पीटकर रोती हुई उसके प्रतापका वर्णन किए जा रही थीं—(२) 'हे नाथ ! आपके जिस बलसे पृथ्वी नित्य दहल-दहल उठती थी, (आपके जिस प्रतापके सामने) अग्नि, चन्द्र और सूर्यका तेज भी मन्द पड़ चला था, आपका जो भार न शेष सह पाते थे न कच्छप, वही आपका (तेजस्वी) शरीर आज धरतीपर धूलमें पड़ा लोट रहा है। (३) आपके सामने वरुण, कुबेर, इन्द्र और पवन भी रणमें नहीं टिक पा सकते थे। हे स्वामी ! आपने अपनी भुजाओंके बलसे काल और यमराज-तकको भी जीत धरा था। वही आप आज अनाथके समान (धरतीपर) लोटे पड़े हैं। (४) आपकी शक्ति सारे जगत्में विख्यात थी। आपके बेटों और कुटुम्बियों-तकमें इतना अपार बल था कि उसके वर्णन नहीं किया जा सकता। केवल रामसे वैर ठान बैठनेके कारण ही आज आपकी यहाँ-तक दुर्दशा हो गई है कि आपके कुलमें कोई रोनेवालातक नहीं रह गया। (५) हे नाथ ! विधाताकी सारी सृष्टि आप अपनी मुट्ठीमें किए बैठे थे। सब लोकपाल डरके मारे नित्य आपके आगे मस्तक

---

१. देखि ते। २. आज परेहु अनाथ की नाइं। ३. जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई।

१३७९-८१ ततः सखायं सुग्रीवमंगदं च विभीषणम् । चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥
१३८२-८५ तच्छिरो दृष्ट्वा मन्दोदरी सकलसुन्दरीभिः परिवृता गलदविरलनेत्रजलप्रवाहैः सीतापतेर्विरहानलेन सह लंकापतेः प्रतापानलं निर्वापयन्ती हाहाकारं घोरस्फूत्कारैः कुर्वन्ती झटिति त्रिकूटाचलादुपेत्य समरभूमौ महानिद्रां गतस्य निज प्राणनाथस्य लंकापतेश्चरणकमलयोर्निपत्य भृशं विललाप । —हनुमन्नाटक
दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा । पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥
१३८६-८९ येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः । येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥
गंधर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् । भयं येन रणे दत्तं सोयं शेते रणे हतः ॥—वा०रा०

अब तव सिर - भुज जम्बुक खाहीं। राम - बिमुख यह अनुचित नाहीं। (६)
काल - बिबस पति ! कहा न माना। अग-जग-नाथ मनुज करि जाना। (६॥)
छंद—जानेउ मनुज करि, दनुज - कानन - दहन - पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव - ब्रह्मादि सुर पिय ! भजेहु नहिं करुनामयं।
आजन्म - तें परद्रोह-रत, पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहूँ दियो निज धाम राम, नमामि ब्रह्म निरामयं॥ [३२]
दो०—अहह नाथ ! रघुनाथ - सम, कृपासिंधु नहिं आन।
१४०० जोगि - बृन्द दुर्लभ गति, तोहिं दीन्हि भगवान ॥१०४॥
मंदोदरी - बचन सुनि काना। सुर-मुनि-सिद्ध सबनि सुख माना।
अज - महेस - नारद - सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी। (१)
भरि लोचन रघुपतिहिं निहारी। प्रेम - मगन सब भए सुखारी।
रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषन मन दुख भारी। (२)
बंधु बिलोकि दसा, दुख कीन्हीं[1]। तब प्रभु अनुजहिं आयसु दीन्हीं।
लछिमन तेहिं बहु बिधि समझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु-पहँ आयो। (३)

आ नवाते थे, उसी आपके सिर और आपकी भुजाएँ ले जा ले जाकर सियार चबाए डाल रहे हैं। रामसे वैर करनेवालेकी ऐसी दशा हो तो क्या बुरा समझा जाय ! (६) नाथ ! आपका काल ही आ गया था इसीलिये आपने किसीकी एक न सुनी और चराचरके नाथ रामको आप साधारण मनुष्य ही समझे बैठे रहे। (६॥) राक्षसोंके वनको जलानेवाली अग्निके समान तेजस्वी रामको भी आप सदा मनुष्य ही समझते रहे। प्रियतम ! शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिन्हें आ-आकर नमस्कार किया करते हैं, ऐसे करुणामय भगवान्‌की भी आपने कभी सेवा नहीं की। आपका यह शरीर जीवन-भर दूसरोंसे वैर ठाननेमें ही लगा रहा और आप (जीवन-भर) सदा पाप ही पाप बटोरते रहे। इतने-पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म रामने आप-जैसे (पापी)-को भी अपना परम धाम दे डाला, उन्हें मैं नमस्कार करती हूँ। [३२] हाय नाथ ! भगवान् रामके समान और दूसरा कोई भी इतना बड़ा कृपालु नहीं होगा, जिन्होंने आपको वह पदवी दे डाली जिसके लिये योगी भी तरसते रह जाते हैं' ॥१०४॥ मन्दोदरीके ये वचन सुन-सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभीको (इस बातका) बड़ा सुख हुआ (कि कमसे कम मन्दोदरी तो इतनी विवेकशील निकली)। ब्रह्मा, महेश, नारद और सनकादि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) और परमार्थवादी (तत्त्वज्ञानी) बड़े-बड़े मुनि, (१) सब रामको भर-आँखों देखकर और प्रेममें मग्न हो-होकर प्रसन्न हो उठे। रावणकी सब स्त्रियोंको विलाप करते देखकर विभीषण भी बहुत दुखी होकर उनके पास जा खड़े हुए। (२) अपने भाई (रावण)-की यह दशा देखकर उनकी भी आखें बरस पड़ीं। तभी रामने लक्ष्मणको समझा भेजा कि जाओ, जाकर सबको चुप कराओ। लक्ष्मणने विभीषणको बहुत समझा-बुझाकर चुप कराया और विभीषण भी वहाँसे रामके पास लौट आए। (३)

१. बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हीं।

१३९४ कालस्य वशमापन्नस्त्वमंस्थाः राममानवम्। —वाल्मीकीयरामायण
१४०४ रामेण निहतश्रान्ते निर्धूताशेषकल्मषः। रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धनः॥
१४०४ विभीषणः शुशोचार्तः शोकेन महता वृतः। पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत्॥
१४०५-६ रामस्तु लक्ष्मणं प्राह बोधयस्वं विभीषणम्। शोकेन महताविष्टं सौमित्रिरिदमब्रवीत्॥
यं शोचसि दुःखेन कोयं तव विभीषण। त्यक्त्वा शोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपागमत्॥ अध्यात्म०

कृपा-दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया, परिहरि सब सोका।
कीन्हि क्रिया, प्रभु-आयसु मानी। बिधिवत देस-काल जिय जानी। (४)
दो०—मंदोदरी आदि सब, देइ तिलांजलि ताहि।
१४१० भवन गईं रघुपति-गुन, -गन बरनत मन-माहिं॥१०५॥
आइ बिभीषन पुनि सिर नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो।
तुम, कपीस, अंगद, नल, नीला। जामवंत, मारुति नयसीला। (१)
सब मिलि जाहु बिभीषन-साथा। सारहु तिलक, कहेउ रघुनाथा।
पिता-बचन मैं नगर न आवौं। आपु-सरिस कपि, अनुज पठावौं। (२)
तुरत चले कपि सुनि प्रभु-बचना। कीन्हीं जाइ तिलक-की रचना।
सादर सिंघासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी। (३)
जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित-बिभीषन प्रभु-पहँ आए।
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हें। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हें। (४)
छंद—किय सुखी, कहि बानी सुधा-सम, बल तुम्हारे रिपु हयो।
१४२० पायो बिभीषन राज, तिहुँ पुर जस तुम्हारो नित नयो।

प्रभुने उनपर कृपा-भरी दृष्टि डालकर कहा—'अपना सब शोक भूलकर तुम इनका सारा क्रिया-कर्म कर डालो।' प्रभुकी आज्ञा लेकर (विभीषणने) देश और कालकी स्थितिके अनुसार रावणका सारा क्रिया-कर्म विधिपूर्वक पूरा कर डाला। (४) मन्दोदरी आदि सब स्त्रियोंने भी आ-आकर रावणको तिलाञ्जलियाँ दीं और अपने-अपने मनमें रामके गुणोंका वर्णन करती हुईं वे सब अपने भवन लौट गइं॥ १०५॥ वहाँके काम-काजसे निवृत्त होकर विभीषणने रामको सिर आ नवाया। कृपालु रामने लक्ष्मणको बुलाकर कहा—'तुम (लक्ष्मण), कपिराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जामवन्त और हनुमान्, सब नीति-जाननेवाले लोग (१) मिलकर विभीषणके साथ चले जाओ और इन्हें राज-तिलक कर आओ।' रामने (विभीषणसे) कहा—'अपने पिताकी आज्ञाके कारण मैं तो नगरमें न जा सकूँगा, इसलिये मैं अपने ही समान वानरोंको और छोटे भाई लक्ष्मणको तुम्हारे साथ भेजे दे रहा हूँ।' (२) रामके वचन सुनकर सब वानर तुरन्त चल दिए और उन्होंने जाकर राजतिलककी सारी व्यवस्था ठीक करके बड़े आदरके साथ विभीषणको सिंहासनपर ले जा बैठाया और उनका राजतिलक करके सबने (राजतिलकके नियमके अनुसार) उनकी बड़ी स्तुति भी की (३) और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम भी किया। उसके पश्चात् विभीषणको साथ लिए-दिए सबके-सब रामके पास आ पहुँचे। तब रामने सब वानरोंको बुला-बुलाकर और उनकी बहुत बड़ाई कर-करके सबका जी प्रसन्न कर दिया। (४) अमृतके समान मीठी-मीठी बातें करके रामने सबको सुखी कर दिया और कहा—'तुम्हारे ही बलपर हम (ऐसे प्रबल) रावणको जीत पा सके हैं और विभीषण अपना राज्य पा सके हैं। इस सहायताके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकोंमें सदा नया ही नया

१४०७ क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।
१४०८-१० स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दर्भाभिमिश्रितान्। उदकेन च संमिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम्॥
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सांत्वमुक्त्वा पुनः पुनः। गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः॥
१४११ रामपार्श्वमुपागत्य तदातिष्ठद्विनीतवत्। —अध्यात्मरामायण
१४१२-१५ अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम्। सौमित्रिं मित्रसम्पन्नं लक्ष्मणं शुभलक्षणम्॥
विभीषणमिमं सौम्य लंकायामभिषेचय। इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः॥
१४१६ लंकासुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः। अभिषेकं शुभं चक्रे राक्षसेन्द्रस्य धीमतः॥
१४१७ विभीषणः स सौमित्रिरुणायनपुरस्कृतः। दंडप्रणाममकरोद्रामस्याऽक्लिष्टकर्मणः॥ वाल्मी०

मोहिं सहित सुभ कीरति तुम्हारी, परम प्रीति जे गाइहैं ।
संसार - सिंधु - अपार - पार प्रयास - बिनु नर पाइहैं ॥ [३३]

दो०—प्रभु-के बचन श्रवन सुनि[1] , नहिं अघाहिं कपि-पुंज ।
बार - बार सिर नावहिं[2] , गहहिं सकल पद-कंज ॥१०६॥

पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना । लंका जाहु, कहेउ भगवाना ।
समाचार जानकिहिं सुनावहु । तासु कुसल लै तुम चलि आवहु । (१)
तब हनुमंत नगर - महँ आए । सुनि निसिचरी - निसाचर धाए ।
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्हीं । जनक - सुता देखाइ पुनि दीन्हीं । (२)
दूरहि - तें प्रनाम कपि कीन्हाँ । रघुपति - दूत जानकी चीन्हाँ ।
१४३० कहहु तात ! प्रभु कृपा - निकेता । कुसल अनुज-कपि - सेन - समेता । (३)
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा । मातु ! समर जीतेउ दससीसा ।
अबिचल राज बिभीषन पायो । सुनि कपि - बचन हरष उर छायो । (४)

छंद—अति हरष मन, तन पुलक, लोचन सजल, कह पुनि-पुनि रमा ।
का देउँ तोहिं त्रैलोक - महँ कपि किमपि नहिं बानी-समा ।

बना रहेगा (सदा ऐसा लोकरंजक बना रहेगा मानो यह घटना उसी समय हुई हो) । जो लोग मेरे साथ-साथ तुम्हारी इस शुभ कीर्तिका प्रेमके साथ वर्णन करेंगे वे बिना परिश्रमके ही इस अपार संसारके सागरसे पार उतर जायँगे (जन्म-मरणकी झंझटसे मुक्त हो जायँगे) ।' [३३] प्रभुकी बातें ऐसी मीठी-मीठी थीं कि वानर-समूह सुन-सुनकर भी तृप्त नहीं हो पा रहे थे (और भी अधिक सुनना चाहते थे) । वे बार-बार उनके आगे सिर नवाए उनके चरण-कमल पकड़े चले जा रहे थे ॥ १०६ ॥ फिर रामने हनुमान्को बुलवाकर कहा—'तुम लंका चले जाओ और सारा समाचार जानकीको सुनाकर उनका कुशल-समाचार लिए चले आओ ।' (१) यह सुनकर हनुमान् वहाँसे उठकर लंका जा पहुँचे । उनका आगमन सुनते ही सब राक्षस और राक्षसिनियाँ (उनके स्वागतके लिये) दौड़ी चलीं आईं । उन्होंने हनुमान्की बहुत पूजा करके उन्हें ले जा दिखलाया कि जानकी वहाँ बैठी हुई हैं । (२) हनुमान्ने दूरसे ही जानकीको जा प्रणाम किया । जानकीने रामके दूतको तत्काल पहचान लिया और पूछा—'कहो तात ! कृपाके धाम (राम), उनके छोटे भाई लक्ष्मण और सब वानर कुशलसे तो हैं न ?' (३) (हनुमान्ने कहा—) 'हाँ माता ! कोशलाधीश राम बहुत कुशलसे हैं । उन्होंने समरमें दशानन रावणको मार डाला । अब विभीषणको लंकाका अचल राज्य मिल गया है ।' कपिके ये वचन सुनकर जानकी हर्षसे फूली न समाईं (समाचार सुनकर जानकी बहुत प्रसन्न हो उठीं) । (४) उनका शरीर पुलकित हो उठा, उनकी आँखें डबडबा चलीं । वे बार-बार कहने लगीं—'बोलो हनुमान् ! मैं तुम्हें क्या दे डालूं । तुमने जो समाचार दिया है इससे बढ़कर त्रैलोक्यमें

१. सुनत रामके बचन मृदु । २. बारहिं बार बिलोकि मुख ।

१४१८-२२ परितुष्टेन मनसा सर्वानिवाब्रवीद्वचः । भवतां बाहुवीर्येण निहता रावणो मया ॥
विभीषणोपि लंकायामभिषिक्तो मयाऽनघ । कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम् । ययोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम् ॥
१४२३-२८ एवमाज्ञापितो धीमान् रामेण पवनात्मजः । प्रविवेश पुरीं लंकां पूज्यमानो निशाचरैः ॥
प्रविश्य रावणगृहं शिंशपामूलमाश्रिताम् । ददर्श जानकीं तत्र कृशां दीनामनिन्दिताम् ॥
१४२९ विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मजः । तद्दृष्ट्वा जानकी तूष्णीं स्थिता पूर्वस्मृतिं ययौ ॥
१४३० देवि रामः ससुग्रीवो विभीषणसहायवान् । कुशली वानराणां च सैन्यैश्च सह लक्ष्मणः ॥
१४३१-३२ रावणं ससुतं हत्वा सुबलं सहमंत्रिभिः । त्वामाह कुशलं रामो राज्ये कृत्वा विभीषणम् ॥ वा.रा

सुनु मातु ! मैं पायो अखिल - जग - राज आज न संसयं।
रन जीति, रिपु - दल बंधु - जुत पस्यामि राममनामयं ।। [३४]

दो०—सुनु सुत ! सद्गुन सकल तव , हृदय बसहु हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति , रहहु समेत - अनंत ।।१०७।।

अब सोइ जतन करहु तुम ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता।
१४४० तब हनुमान राम - पहँ जाई। जनकसुता - कै कुसल सुनाई। (१)
सुनि संदेस भानुकुल-भूषन। बोलि लिए जुवराज बिभीषन।
मारुतसुत - के संग सिधावहु। सादर जनकसुतइ लै आवहु। (२)
तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरी बिनीता।
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो। (३)
बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए।
ता - पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुख - धाम सनेही। (४)
बेत - पानि रच्छक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा।

कोई दूसरी हर्षकी बात हो नहीं सकती।' हनुमान्‌ने कहा—'माता ! मुझे तो यही देखकर आज सम्पूर्ण जगत्‌का राज्य मिल गया कि रणमें शत्रुको और उसकी सेनाको मिटाकर अपने भाईके साथ निर्विकार प्रभु राम वहाँ कुशलसे बैठे हुए हैं।' [३४] जानकीने कहा—'बेटा हनुमान् ! मेरा यही आशीर्वाद है कि जितने सद्गुण हैं वे सब तुम्हारे हृदयमें आ बसें और अनन्त (लक्ष्मण)-के साथ कोशलपति राम सदा तुमपर कृपा बनाए रक्खें ।। १०७ ।। देखो बेटा ! अब तुम ऐसा उपाय करो कि मैं अपने नेत्रोंसे प्रभुके कोमल श्याम शरीरके दर्शन कर पा सकूँ।' सुनते ही हनुमान्‌ने वहाँसे चलकर जानकीका सारा कुशल समाचार रामको आ सुनाया। (१) जानकीका संदेशा सुनते ही सूर्यकुलके भूषण रामने युवराज अंगद और विभीषणको बुलाकर कहा—'तुम लोग पवनपुत्र हनुमान्‌के साथ चले जाओ और जाकर आदरके साथ जानकीको लिवा लाओ।' (२) (आज्ञा मिलनेकी देर थी,) सब लोग तुरन्त सीताके पास वहाँ जा पहुँचे जहाँ सब राक्षसियाँ बड़े विनम्र भावसे उनकी सेवामें लगी हुई थीं। तत्काल विभीषणने उन सबको समझा दिया (कि तुम लोग किस प्रकार सीताका शृंगार करो)। उन्होंने बड़े अच्छे ढंगसे पहले तो सीताको स्नान जा कराया (३) और फिर अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण पहना-उढ़ाकर उन्हें भलीभाँति सँवार सजाया। तब वे बड़ी सुन्दर पालकी सजा ले आए जिसपर अपने स्नेही सुखके धाम रामका स्मरण करके जानकी हर्षसे चढ़ चलीं। (४) (पालकीके) चारों ओर हाथोंमें छड़ी लिए हुए सब रक्षक बड़ी प्रसन्नता से चले जा रहे थे। जब

१४३३-३६ श्रुत्वा भर्तुः प्रियं वाक्यं हर्षगद्गदया गिरा। किं ते प्रियं करोम्यद्य न पश्यामि जगत्त्रये ।।
रामं ते प्रियवाक्यस्य रत्नान्याभरणानि च। एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः ।।
रत्नौघाद्विविधाद्वापि देवराज्याद्विशिष्यते। हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम् ।।
१४३७-३८ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जानकी प्राह मारुतिम्। सर्वे सौम्यगुणाः सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिताः ।।
१४३९-४० साब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम्। आजगाम महातेजा हनूमान् यत्र राघवः ।।
सपदि हरिवरस्ततो हनूमान् प्रतिवचनं जनकेश्वरात्मजायाः।
कथितमकथयद्यथाक्रमेण त्रिदशवरप्रतिमाय राघवाय ।। —वाल्मीकीयरामायण
१४४१-४२ आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह विभीषणम्। गच्छ राजन् जनकजामानयाशु ममान्तिकम्।
१४४३-४४ विभीषणोपि तच्छ्रुत्वा जगाम सह मारुतिः। राक्षसीभिः सुवृद्धाभिः स्नापयामास मैथिलीम्।अध्या.
१४४५-४६ सर्वाभरणसम्पन्नामारोप्य शिविकोत्तमैः। प्रकृतयश्च तत्सर्वा लंकावासिजनस्तथा ।।
आजगाम राघवं द्रष्टुं कौतूहलसमन्वितः। —पद्मपुराण

देखन भालु - कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए। (५)
कह रघुबीर, कहा मम मानहु। सीतहिँ सखा पयादेहि आनहु।
१४५० देखहु कपि जननी - की नाईँ। बिहँसि कहा रघुनाथ गोसाईँ। (६)
सुनि प्रभु - बचन भालु-कपि हरषे। नभ-तेँ सुरन सुमन बहु बरषे।
सीता प्रथम अनल - महँ राखी। प्रगट कीन्ह चह अंतर साखी। (७)
दो०—तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब, लागीँ करै बिपाद ॥१०८॥
प्रभु - के वचन सीस धरि सीता। बोली मन - क्रम - बचन पुनीता।
लछिमन ! होहु धरम - के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी। (१)
सुनि लछिमन सीता - कै बानी। बिरह-बिवेक-धरम-निति-सानी।
लोचन सजल, जोरि कर दोऊ। प्रभु-सन, कछु कहि सकत न ओऊ। (२)
देखि राम - रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि, काठ बहु लाए।
१४६० पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष, नहिं भय कछु तेही। (३)
जौ - मन - बच - क्रम मम उर-माहीँ। तजि रघुबीर आन गति नाहीँ।

जानकीका दर्शन करनेके लिये सब वन्दर-भालू टूट पड़े तब रक्षक उन्हें डाँटते हुए उन्हें रोकनेके लिये झपट पड़े। (५) पर रामने विभीषणसे हँसकर कहा—'देखो सखा ! हमारी बात मान लो और सीताको पैदल ही आने दो जिससे सब वानर माताके समान उनके दर्शन कर सकें।' (६) रामके ये वचन सुनकर तो सब भालू-बन्दरोंकी बाछें खिल उठीं। देवता भी आकाशसे ढेरों फूल बरसाने लगे। रामने सीताको जो पहले अग्निमें बसाए रक्खा था,[1] उन्हें राम अब (पवित्रताके) प्रमाणके बहाने उसमेंसे प्रकट कर लेना चाहते थे। (७) इसलिये रामने (दिखानेके लिये) कुछ ऊँच-नीच भी कह डाला (कि तुम रावणके यहाँ रहकर अपवित्र हो गई हो। यहाँ जितने लोग हैं इनमें से जिसके साथ चाहो विवाह कर लो)। यह सुनते ही सब राक्षसिनियाँ बहुत दुखी हो चलीं (क्योंकि वे सब जानती ही थीं कि सीता परम पवित्र हैं) ॥१०८॥ प्रभुके वचन सिर-माथे चढ़ाकर मन, वचन, और कर्मसे पवित्र सीता बोलीं—'देखो लक्ष्मण ! मेरे धर्ममें सहायक बनकर तुम तुरन्त अग्नि जगा दो।' (१) विरह, विवेक, धर्म और नीतिसे भरी सीताकी वाणी सुनकर लक्ष्मणकी आँखें डबडबा चलीं। वे दोनों हाथ जोड़े थोड़ी देर खड़े रह गए। रामसे भी वे कुछ कह नहीं पा सक रहे थे। (२) रामका संकेत पाकर लक्ष्मणने झटपट अग्नि जगा दी और ढेरों लकड़ियाँ लाकर ला लगाईं। अग्निकी ऊँची-ऊँची लपटें उठती देखकर सीता बहुत प्रसन्न हो उठीं। उनके मनमें तो कुछ भय था नहीं (क्योंकि उन्हें तो अपना वास्तविक रूप प्रकट करना था)। (३) (सीताने भी दिखानेके लिये कहना आरंभ किया—) 'यदि मन, वचन और कर्मसे अपने हृदयमें

१. देखो अरण्यकाण्ड—'प्रभु पद हिय धरि अनल समानी।'

१४४७-४८ तां द्रष्टुमागताः सर्वे वानरा जनकात्मजाम्। तान्वारयन्तो बहवः सर्वतो वेत्रपाणयः ॥
१४४९-५१ पादचारेण साऽऽयातु जानकी ममसन्निधिम्। पश्यन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा ॥
विभीषण किमर्थं ते वानरान वारयन्ति च। निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि॥अध्या०
१४५२ रामोपि दृष्ट्वा तां सीतां शुद्धां ज्ञात्वापि तां पुनः। सर्वेषां प्रत्ययार्थं हि तदा वचनमब्रवीत् ॥
१४५३-५४ यथेच्छं गच्छ वैदेही रिपुगेहनिवासिनि। न त्वामंगीकरोम्यद्य ब्रह्मणा प्रार्थिताप्यहम् ॥
श्रुत्वा विषेदुस्ताः सर्वा राक्षस्यो भयविह्वलाः ॥ —आनन्दरामायण
१४५५-५६ अमृष्यमाणा सा सीता वचनं राघवोदितम्। लक्ष्मणं प्राह मे शीघ्रं प्रज्वालय हुताशनम् ॥अध्या०
१४५७-५८ एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा। अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥
१४५९ स विज्ञाय मनश्छन्दं समस्याकारसूचितम्। चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥—वा०रा०

तौ कृसानु, सबकै गति जाना। मो - कहँ होउ श्रीखंड - समाना। (४)

छंद—श्रीखंड - सम पावक प्रबेस कियो, सुमिरि प्रभु, मैथिली।
जय कोसलेस ! महेस - बंदित - चरन - रति अति निर्मली।
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक, प्रचंड पावक - महँ जरे।
प्रभु - चरित काहु न लखे, नभ सुर - सिद्ध - मुनि देखहिं खरे ॥ [३५]
धरि रूप पावक, पानि गहि श्री सत्य, श्रुति, जग - बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा, रामहिं समर्पी आनि सो।
सो राम - बाम - बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
१४७० नव नील नीरज - निकट मानहुँ कनक - पंकज - की कली ॥ [३६]

दो०—बरषहिं सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर, सुर - बधू, नाचहिं चढ़ी बिमान ॥ १०९ क ॥
जनकसुता समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखि भालु - कपि हरषे, जय रघुपति सुख-सार ॥ १०९ ख ॥

तब रघुपति - अनुसासन पाई। मातलि चले चरन सिर नाई।

रामको छोड़कर मैं किसी दूसरेका भरोसा न करती रही हूँ तो सबके मनकी गति जाननेवाले अग्निदेव, मेरे लिये चन्दनके समान (शीतल) बन जायँ।' (४) रामका स्मरण करके तथा जिन रामके चरणोंकी वन्दना महादेव करते हैं और जिनमें सीताका अत्यन्त विशुद्ध प्रेम था, उन कोशलपति रामकी जय बोलकर, जानकी उस चन्दनके समान शीतल अग्निमें जा पैठीं। उस हरहराती अग्निकी लपटोंमें सीताकी प्रतिमूर्ति (छायामूर्ति)-के साथ-साथ उनके सारे लौकिक कलंक भी जल मिटे। आकाशमें देवता, सिद्ध और मुनि खड़े-खड़े यह सब देखते तो रहे, पर रामकी यह लीला कोई भी ताड़ न पाया। [३५] उसी समय अग्निदेवने शरीर धारण करके वेद तथा जगत्में प्रसिद्ध वास्तविक लक्ष्मी (सच्ची जानकी)-को रामके हाथों वैसे ही ला समर्पित किया जैसे क्षीरसागरने भगवान् विष्णुको लक्ष्मी समर्पित की थी। तब सीता आकर रामकी बाईं ओर जा बैठीं। (रामके पास बैठी हुई) वे ऐसी सुन्दर लग रही थीं मानो तत्काल खिले हुए नीले कमलके पास सुनहरे कमलकी कली सुशोभित हो रही हो। [३६] देवता लोग प्रसन्न होकर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा कर उठे और डंके बजा उठे, सब किन्नर मिलकर गा उठे और विमानोंपर चढ़ी सब अप्सराएँ हर्षसे थिरक उठीं ॥ १०९ क ॥ सीताके साथ बैठे प्रभु रामकी वह शोभा मनको इतना अधिक मोहे ले रही थी कि उसे देख-देखकर वानर और भालू हर्षसे फूले नहीं समा रहे थे और सब सुख देनेवाले रामकी जय बोले चले जा रहे थे ॥ १०९ ख ॥ यह सब हो चुकनेपर रामकी आज्ञा पाकर मातलि (इन्द्रका सारथि) तो रामके चरणोंमें सिर नवाकर (रथ लेकर इन्द्रलोक) लौट गया। तत्पश्चात् सदाके स्वार्थी देवता भी वहाँ आ धमके। वे

१४६२-६६ यदिदं मेऽस्ति सत्यं हि तर्हि त्वं शीतलो भव। इति सा शपथं कृत्वा विवेशानलमुत्तमम् ॥ आन.रा.
तिरोहिता सा प्रतिबिंबरूपिणी कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता।

१४६७-७० श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः स्वांके समादाय विदेहपुत्रिकाम्
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं रक्तांबरां दिव्यविभूषणान्विताम्।
प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः
गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने।

१४७१-७२ अथान्तरिक्षे ननृतुः सर्वतोऽप्सरसा मुदा। पपात पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि ॥

१४७३-७४ ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः।

१४७५ मातलिश्च तदा रामं परिक्रम्याभिवन्द्य च। अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा ॥—अ०रा०

आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी। (१)
दीनबंधु ! दयाल ! रघुराया। देव ! कीन्ह देवन-पर दाया।
बिस्व-द्रोह-रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारग-गामी। (२)
तुम सम-रूप, ब्रह्म, अबिनासी। सदा एक-रस, सहज उदासी।
१४८० अकल, अगुन, अज, अनघ, अनामय। अजित, अमोघ-सक्ति, करुनामय। (३)
मीन, कमठ, सूकर, नरहरी। बामन, परसुराम-बपु धरी।
जब-जब नाथ सुरन दुख पायो। नाना तन धरि तुमइँ नसायो। (४)
यह खल मलिन सदा सुर-द्रोही। काम-लोभ-मद-रत अति कोही।
अधम-सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा। (५)
हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ-रत प्रभु-भगति बिसारी।
भव-प्रवाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि, सरन अनुसरे। (६)

दो०—करि बिनती सुर-सिद्ध सब, रहे जहँ-तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि, बिधि, अस्तुति करत बहोरि॥ ११०॥

जय राम ! सदा सुखधाम हरे। रघुनायक ! सायक-चाप धरे।
१४९० भव-बारन-दारन-सिंह प्रभो। गुनसागर, नागर, नाथ, बिभो। (१)

आ-आकर इस प्रकार बन-बनकर बोलने लगे मानो सब बड़े परमार्थी (परोपकारी) हों—(१) 'दीनबन्धु ! दयालु राम ! देव ! आपने हम देवताओंपर बड़ी दया की। विश्वसे द्रोह करनेवाले इस दुष्ट, कामी और कुमार्ग-गामी रावणको उसका पाप ही ले डूबा। (२) आप सदा एक-जैसे बने रहनेवाले, ब्रह्म, अविनाशी, सदा एक ही भावमें बने रहनेवाले; स्वभावसे ही उदासीन (न किसीके लेनेमें न देनेमें), अखण्ड (पूर्ण); निर्गुण, अजन्मा, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघ-शक्ति (अचूक बलवाले) और दयामय हैं। (३) आपने ही मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन और परशुरामके अवतार धारण किए हैं। हे नाथ ! जब-जब देवताओंपर विपत्ति आ-आ पड़ी तब-तब अनेक रूप धारण कर-करके आपने ही आ-आकर उनका दुःख दूर किया। (४) यह रावण बहुत दुष्ट, हृदयका खोटा, सदा देवताओंका शत्रु, काम, लोभ और मदमें चूर तथा अत्यन्त क्रोधी था। ऐसे अधमोंके सरदारने भी आपका परम पद पा लिया, इसीका बड़ा आश्चर्य हुआ जा रहा है। (५) हम सब देवता (आपके परम पदके) बहुत बड़े अधिकारी होकर भी स्वार्थमें पड़े रहनेके कारण आपकी भक्ति भुलाकर निरन्तर भव-प्रवाहमें पड़े बहे चले जा रहे हैं। प्रभो ! अब हम आपकी शरणमें आ गए हैं, हमारी रक्षा कीजिए।' (६) इस प्रकार प्रार्थना करके सब देवता और सिद्ध जहाँके तहाँ हाथ जोड़े खड़े रह गए। तब प्रेमसे अत्यन्त पुलकित होकर ब्रह्माने रामकी स्तुति करनी प्रारंभ की ॥ ११० ॥ 'सदा सुखके धाम और (दुःख हरनेवाले) हरि ! धनुष-बाण धारण किए हुए राम ! आपकी जय हो। प्रभो ! आप भव (जन्म-मरण)-रूपी हाथीको भी फाड़ डाल सकनेवाले सिंह हैं। नाथ ! सर्वव्यापक ! आप सब गुणोंसे भरे हुए और परम बुद्धिमान् हैं। आपके शरीरकी

१४७६ ततः शक्रः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा। एते चान्ये विमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्र राघवः॥
१४७७-७८ तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर। अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः॥
१४८१-८२ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथा धनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥ —भागवत
१४८३-८४ अयं तु राक्षसः क्रूरो ब्रह्मघात्यव्रतामसः। पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान्॥
१४८५-८६ वयं तु सात्विका देवा विष्णोः कारुण्यभाजनाः। भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारे परिवर्तिनः॥
१४८७-८८ एवं ब्रुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात् पितामहः। अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथस्थितम्॥अध्या०

तन काम - अनेक - अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध - मुनींद्र - कबी।
जस पावन रावन - नाग - महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा। (२)
जन - रंजन, भंजन - सोक भयं। गत - क्रोध, सदा प्रभु बोधमयं।
अवतार उदार अपार गुनं। महिभार - बिभंजन, ज्ञानघनं। (३)
अज, ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम ! नमादि मुदा।
रघुबंस - बिभूषन, दूषनहा। कृत भूप बिभीषन, दीन रहा। (४)
गुन - ज्ञान - निधान, अमान, अजं। नित राम ! नमामि बिभुं, बिरजं।
भुज - दंड - प्रचंड - प्रताप - बलं। खलबृंद - निकंद - महा - कुसलं। (५)
बिनु कारन दीनदयाल हितं। छबिधाम ! नमामि रमा - सहितं।
१५०० भव - तारन, कारन - काज - परं। मन - संभव - दारुन - दोप - हरं। (६)
सर - चाप मनोहर त्रोनधरं। जलजारुन - लोचन, भूप - बरं।
सुख - मंदिर, सुंदर, श्री - रमनं। मद - मार - मुधा - ममता - समनं। (७)
अनवद्य, अखंड, न गोचर गो। सब रूप सदा, सब होइ न सो।
इति वेद बदंति, न दंत - कथा। रबि-आतप भिन्न, न भिन्न जथा। (८)

शोभा अनेक कामदेवोंके समान अनुपम है। सिद्ध, मुनीन्द्र और कवि निरन्तर आपका ही तो गुण-गान किया करते हैं। आपका यश बड़ा पवित्र है। आपने रावणको क्रोध करके वैसे ही दबोच मारा जैसे महासर्पको गरुड क्रोधसे दबोच बैठता है। (२) प्रभो ! आप अपने भक्तोंको आनन्द देते हैं, उनका शोक और भय दूर कर डालते हैं, आप कभी किसीपर क्रोध नहीं करते और आप सदा ज्ञान ही ज्ञान बने रहते हैं। आपका अवतार सभी दिव्य गुणोंसे भरा हुआ, पृथ्वीका भार उतार डालनेवाला और ज्ञानसे भरा हुआ होता है (३) आप नित्य (सदा बने रहनेवाले), अजन्मा, व्यापक, अद्वितीय और अनादि हैं। करुणासे भरे हुए राम ! मैं आपको बड़े हर्षके साथ नमस्कार करता हूँ। रघुकुलके आभूषण ! दूषण नामवाले राक्षसको मारनेवाले तथा सब दोष दूर कर डालनेवाले एक आप ही थे जो उस दीन विभीषणको लंकाका राजा बना सके। (४) गुण और ज्ञानके भाण्डार ! कभी अभिमान न करनेवाले, अजन्मा, व्यापक और मायाके विकारोंसे प्रभावित न होनेवाले राम ! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदण्डोंका भी बड़ा प्रताप है और आपका बल भी बड़ा प्रचण्ड है। दुष्टोंका नाश कर डालनेमें आप बड़े कुशल हैं। (५) अकारण दीनोंपर दया करनेवाले और उनका हित करनेवाले सुन्दर राम ! मैं आपको और जानकीको नमस्कार करता हूँ। आप सबको भवसागरसे पार उतार पहुंचाते हैं। सारी सृष्टिका कारण बनी हुई (सृष्टिको जन्म देनेवाली) प्रकृति और उसका कार्य (उससे उत्पन्न) यह जगत् दोनों (प्रकृति और जगत्)-से आप अलग हैं और मनमें उत्पन्न होनेवाले जितने भयंकर दोष हो सकते हैं उन सबको आप मिटा डालते हैं। (६) आप मनोहर धनुष-बाण और तूणीर धारण किए रहते हैं। लाल कमलके समान आपके नेत्र लाल-लाल हैं। आप सब राजाओंमें सबसे अच्छे, सुख ही सुखसे भरे हुए, सुन्दर और लक्ष्मीके पति हैं। आप (अपने भक्तके मनमें) मद, काम और झूठी ममता रहने ही नहीं देते। (७) (आपमें कोई दोष ही नहीं है कि) आपकी कोई निन्दा कर सके। आप अखण्ड (पूर्ण) हैं। किसी भी इन्द्रिय (आँख, नाक, मुँह, कान, त्वचा, मन)-के द्वारा आपको जाना नहीं जा सकता। आप सब प्रकारके रूप धारण कर सकनेमें समर्थ होते हुए भी किसी रूपमें बँधे नहीं रहते—यह बात वेदोंमें कही गई है, कोई दन्त-कथा (गप्प) नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्यका प्रकाश अलग-अलग होते हुए भी अलग नहीं हैं

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए।
धिग जीवन देव - सरीर हरे। तव भक्ति - बिना भव भूलि परे। (९)
अब दीनदयाल ! दया करिए। मति मोरि बिभेद - करी हरिए।
जेंहि - तें बिपरीत क्रिया करिए। दुख सो सुख मानि, सुखी चरिए। (१०)
खल - खंडन, मंडन रम्य छमा। पद - पंकज - सेवित-संभु - उमा।
१५१० नृपनायक ! दे बरदानमिदं। चरनांबुज - प्रेम सदा सुभदं। (११)
दो०—बिनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम - पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत, लोचन नहीं अघात ॥ १११ ॥
तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि, नयन जल छाए।
अनुज - सहित प्रभु बंदन कीन्हाँ। आसिरबाद पिता तब दीन्हाँ। (१)
तात ! सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीतेउँ अजय निसाचर - राऊ।
सुनि सुत - बचन, प्रीति अति बाढ़ी। नयन - सलिल, रोमावलि ठाढ़ी। (२)
रघुपति, प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहिं, दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।
तातें उमा ! मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद - भगति मन लायो। (३)
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह - कहँ राम, भगति निज देहीं।
१५२० बार - बार करि प्रभुहिं प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुर - धामा। (४)

(वैसे ही आप भी संसारसे भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं)। (८) व्यापक प्रभो ! ये वानर कृतार्थ होकर बड़े आदरसे आपका मुख देख रहे हैं। हरे ! हमारे इस जीवन और इस दिव्य (देवताओंवाले) शरीरको धिक्कार है कि हम आपकी भक्ति न करके संसारके चक्करमें पड़े भटकते फिर रहे हैं। (९) दीनदयालु ! अब आप दया करके मेरी वह हेरा-फेरी करनेवाली बुद्धि हर लीजिए जिससे मैं सारा काम उलटा-पलटा किया करता हूँ और दुःखको ही सुख मानकर उसीमें मगन हुआ रहता हूँ। (१०) आप दुष्टोंका नाश करनेवाले और पृथ्वीके सुन्दर आभूषण हैं। शिव तथा पार्वती सदा आपके चरण-कमलकी सेवा करते रहते हैं। राजाओंके महाराज ! अब मुझे यही वरदान दीजिए कि आपके चरण-कमलोंमें वह प्रेम बना रहे जो सदा मेरा कल्याण करता रहे।' (११) इस प्रकार ब्रह्माने अत्यन्त प्रेम-पुलकित होकर रामकी बहुत स्तुति की। परम सुन्दर रामके दर्शनसे उनके नेत्र तृप्त नहीं हो पा रहे थे ॥ १११ ॥ उसी समय वहाँ महाराज दशरथ भी आ पधारे। अपने पुत्र (राम)-को देखकर उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू आ छलके। लक्ष्मण और रामने बढ़कर उनकी वन्दना की और पिता (महाराज दशरथ)- ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया। (१) रामने कहा—'पिता ! यह आपके ही पुण्योंका प्रभाव था कि उस अजेय निशाचर-पति रावणको मैं जीत पाया।' पुत्रके ये वचन सुनकर महाराज दशरथ और भी अधिक प्रेम-मग्न हो उठे। उनकी आँखें डबडबा आईं और शरीर रोमांचित हो उठा। (२) रामने उनके इस प्रेमसे समझ लिया कि अभी इनके मनमें (जीवित कालका) प्रेम बना हुआ है, इसलिये उन्होंने पिताकी ओर देखकर ही (अपने स्वरूपका) सच्चा ज्ञान करा दिया। (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा ! महाराज दशरथ तो भेद-भक्तिके माननेवाले थे (वे रामको उपास्य और अपनेको उपासक मानते थे) इसीसे उन्हें मोक्ष नहीं मिल पाया था। (३) (वास्तवमें) सगुणोपासक भक्त तो मोक्ष चाहते भी नहीं, उन्हें तो राम ही अपनी भक्ति दे दिया करते हैं।' बार-बार प्रभुको प्रणाम करके दशरथ

१५११-१३ हर्षेण महताऽविष्टो विमानस्थो महीपतिः। प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा पुत्रं दशरथस्तथा॥
१५१४ विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत्तितुः। भ्रातृभिः सहराज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि॥-वा०रा०

दो०—अनुज-जानकी-सहित प्रभु, कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि, हरषि मन, अस्तुति कर सुर-ईस ॥ ११२ ॥

छंद—जय राम ! सोभाधाम। दायक प्रनत-बिस्राम।
धृत त्रोन-बर-सर-चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप। (१)
जय दूषनारि, खरारि। मर्दन निसाचर-धारि।
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भे देव सबल सनाथ। (२)
जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार।
जय रावनारि ! कृपाल। किय जातुधान बिहाल। (३)
लंकेस अति बल गर्व। किय बस्य सुर गंधर्व।
१५३० मुनि-सिद्ध-नर-खग-नाग। हठि पंथ सबके लाग। (४)
पर-द्रोह-रत अति दुष्ट। पायो सो फल पापिष्ट।
अब सुनहु दीनदयाल। राजीव-नयन बिसाल ॥ (५)
मोहिं रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहिं समान।
अब देखि प्रभु-पद-कंज। गत-मान-मद-दुखपुंज ॥ (६)
कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि स्रुति गाव।
मोहिं भाव कोसल-भूप। श्रीराम सगुन सरूप ॥ (७)
बैदेहि - अनुज-समेत। मम हृदय करहु निकेत।

हर्षपूर्वक स्वर्गलोक लौट गए। (४) रामके छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीके साथ कुशल कोशलाधीश रामकी शोभा देख-देखकर प्रसन्न होते हुए देवताओंके स्वामी इन्द्र उनकी स्तुति करने लगे ॥११२॥ 'शोभाके धाम, शरणमें आए हुए को अभय कर डालनेवाले, तूणीर और बढ़िया धनुष-बाण धारण करनेवाले, प्रबल भुजदण्डोंवाले राम ! आपकी जय हो। (१) खर और दूषणके शत्रु, निशाचरोंकी सेनाका मर्दन करनेवाले राम ! आपकी जय हो। नाथ ! आपने दुष्ट (रावण)-को मारकर सब देवताओंको सनाथ कर दिया। (२) भूमिका भार दूर कर डालनेवाले ! अपार और श्रेष्ठ महिमावाले राम ! आपकी जय हो। रावणके शत्रु ! कृपालु ! आपकी जय हो। आपने (अच्छा किया कि) राक्षसोंको मटियामेट कर डाला। (३) लंकाके राजा रावणको (अपने बलका) बड़ा गर्व हो चला था। उसने सब देवताओं और गन्धर्वोंको अपनी मुट्ठीमें कस डाला था। वह हठ करके मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग सबके पीछे पड़ गया था। (४) वह पापी इतना दुष्ट था कि सदा दूसरोंका अहित ही करनेमें लगा रहता था जिसका उचित फल उसे मिल भी गया। दीन-दयालु ! कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले राम ! अब कृपा करके मेरी (प्रार्थना) आप सुन लीजिए। (५) मुझे भी इस बातका बड़ा अभिमान हो चला था कि मेरे समान संसारमें कोई नहीं है। अब आपके चरण-कमलोंका दर्शन करके वह दुःख देनेवाला मेरा सारा अभिमान जाता रहा। (६) बहुतसे लोग तो उस निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते रह जाते हैं जिन्हें वेद अव्यक्त (निराकार) कहते हैं, पर मुझे तो कोशलेश रामका यह सगुण रूप ही बड़ा प्यारा लगता है। (७) रमानिवास (लक्ष्मीके पास रहने-वाले) ! अब जानकी तथा छोटे भाई लक्ष्मणके साथ आप मेरे हृदयमें ही आ बसिए और मुझे अपना

१५१६-२० इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां च राघवः। इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो नृपः ॥
१५२१-२२ प्रतिप्रयाते काकुत्स्थे महेन्द्रः पाकशासनः। अब्रवीत्परमप्रीतः प्राञ्जलिः राघवं स्थितम् ॥ वा०रा०
१५३१-३४ अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः।
इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात् त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥ —अध्यात्मरामायण

मोहिं जानिए निज दास। दे भक्ति रमा-निवास ।। (८)

छंद—दे भक्ति रमानिवास ! त्रास-हरन, सरन-सुख-दायकं।

१५४० सुखधाम राम ! नमामि काम-अनेक-छबि रघुनायकं।

सुरबृन्द-रंजन, द्वंद-भंजन, मनुज-तन अतुलित बलं।

ब्रह्मादि-संकर-सेव्य राम ! नमामि करुना-कोमलं ।। [३७]

दो०—अब करि कृपा बिलोकि मोहिं, आयसु देहु कृपाल।

काह करौं, सुनि प्रिय बचन, बोले दीनदयाल ।। ११३ ।।

सुनु सुरपति ! कपि-भालु हमारे। परे भूमि निसिचरनि जे मारे।

मम हित-लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जियाउ सुरेस ! सुजाना। (१)

सुनु खगेस ! प्रभु-कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ज्ञानी।

प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई। केवल सक्रहिं दीन्हि बड़ाई। (२)

सुधा बरषि कपि-भालु जियाए। हरषि उठे सब, प्रभु-पहँ आए।

१५५० सुधा-बृष्टि भइ दुहुँ दल-ऊपर। जिए भालु-कपि, नहिं रजनीचर। (३)

रामाकार भए तिन्ह-के मन। मुक्त भए छूटे भव-बंधन।

दास मानकर मुझे अपनी भक्ति दे डालिए। (८) रमानिवास ! शरणागतको अभय देनेवाले। सारे भय दूर कर डालनेवाले ! अब आप मुझे अपनी भक्ति दे ही डालिए। सब सुखोंसे भरे हुए राम ! अनेक कामदेवोंकी सुन्दरतासे भरे हुए राम ! मैं आपको (श्रद्धापूर्वक) नमस्कार करता हूँ। देवताओंको आनन्द देनेवाले ! सांसारिक द्वन्द्वों (जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि)-का नाश कर डालनेवाले ! अतुलनीय बलवाले, मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले, ब्रह्मा और शिव आदि जिसकी सेवा किया करते हैं ऐसे करुणासे भरे हुए राम ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। कृपालु ! अब आप मुझपर कृपा-दृष्टि फेर दीजिए और मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?' इन्द्रके इस प्रकार प्रिय वचन सुनकर दीनोंपर दया करनेवाले राम बोले—।। ११३ ।। 'देखो देवराज ! सुनो। राक्षसोंके हाथसे मारे हुए हमारे वानर और भालू धरतीपर मरे पड़े हैं। इन्होंने हमारे लिये अपने प्राण दे डाले। इसलिये सुजान देवराज ! तुम इन सबको जिला उठाओ।' (१) (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! प्रभुके ये वचन इतने गूढ थे कि केवल ज्ञानी मुनि ही इसका भेद जान पा सकते हैं। प्रभु तो स्वयं त्रिलोकको मारकर जिला सकते हैं। पर यहाँ केवल इन्द्रको बड़ाई देनेके लिये ही उन्होंने यह बात कही।' (२) (फिर क्या था !) इन्द्रने झट अमृत बरसाकर भालुओं तथा वानरोंको जिला उठाया। उठते ही वे सब हर्षपूर्वक प्रभु रामके पास दौड़े चले आए। यद्यपि (वानरों और राक्षसोंके) दोनों दलोंपर अमृतकी वर्षा की गई थी पर केवल वानर-भालू ही जी पाए, निशाचर नहीं (३) क्योंकि (मृत्युके समय) इन (राक्षसों)-के मन तो रामके रूपमें जा लगे थे (वे शत्रु-भावसे रामकी ही खोजमें तन्मय हो रहे थे) अतः, उन्हें तो मुक्ति मिल गई, और वे भव-बन्धनसे छूट गए। पर वानर-भालू तो सब देवताओंके ही अंश[1] थे (जो वानर

१. देखो बालकाण्ड दोहा सं० १८७—'निज लोकहि बिरंचि गे, देवन इहइ सिखाइ।
वानर-तनु धरि-धरि महि, हरिपद सेवहु जाइ ।।'

१५४३-४४ प्रीतियुक्तास्म तेन त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम्। सुप्रसन्नमना हृष्टो वचनं प्राह राघवः ।।—वा०रा०
१५४५-४६ मत्कृते निहतान् संख्ये वानरान् पतितान् भुवि। जीवयाशु सुधावृष्ट्या सहस्राक्ष ममाज्ञया ।।
१५४९-५० तयेत्यमृतवृष्ट्या ताञ्जीवयामास वानरान्। ये ये मृता मृधे पूर्वं ते वै सुप्तोत्थिता इव ।।
पूर्ववद्बलिनो हृष्टा रामपार्श्वमुपाययुः। नोत्थिता राक्षसास्तत्र पीयूषस्पर्शनादपि ।। अध्या०

सुर - अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति - की ईछा। (४)
को प्रभु - सरिस दीन हितकारी[1]। कीन्हें मुकुत निसाचर - झारी।
खल, मल - धाम, काम - रत रावन। गति पाई जो मुनिवर पाव न। (५)
दो०—सुमन बरषि सब सुर चले, चढ़ि-चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु - पहँ, आए संभु सुजान ॥ ११४ क ॥
परम प्रीति, कर जोरि जुग, नलिन-नयन भरि बारि।
पुलकित तन, गद्गद गिरा, बिनय करत त्रिपुरारि ॥ ११४ ख ॥
मामभिरच्छय रघुकुल - नायक। धृत-बर-चाप, रुचिर कर सायक।
१५६० महा[2] - मोह - घन - पटल प्रभंजन। संसय-बिपिन-अनल, सुर - रंजन। (१)
अगुन, सगुन, गुन - मंदिर, सुंदर। भ्रम-तम प्रबल - प्रताप दिवाकर।
काम - क्रोध - मद - गज पंचानन। बसहु निरंतर जन - मन - कानन। (२)
बिषय - मनोरथ - पुंज कंज - बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।
भव - बारिधि मंदर परमं दर। बारय, तारय, संसृति दुस्तर। (३)
स्याम गात, राजीव - बिलोचन। दीनबंधु, प्रनतारति - मोचन।

वन-बनकर रामकी सहायताके लिये उतर आए थे) इसलिये वे ही रामकी इच्छासे जीवित हो पाए। (४) रामके समान दीनोंका हितकारी और कौन है जिन्होंने उन सब राक्षसोंको भी मुक्ति दे डाली। दुष्ट, पापी और अत्यन्त कामी रावण भी वह पद पा बैठा जो बड़े-बड़े मुनियोंको भी नहीं नसीब हो पाता। (५) जब सब देवता ठाटदार विमानोंपर चढ़े हुए पुष्प बरसा-बरसाकर चलते बने तब ठीक अवसर (एकान्त) देखकर सुजान शंकर वहाँ आ पहुँचे ॥ ११४ क ॥ अत्यन्त प्रेमसे दोनों हाथ जोड़कर अपने कमलके समान नेत्रोंमें आँसू भरकर, पुलकित शरीर और गद्गद वाणीसे त्रिपुरारि शंकर स्तुति करने लगे—॥ ११४ ख ॥ 'हे रघुकुलके स्वामी! अपने सुन्दर हाथोंमें बढ़िया धनुष और तीखे बाण धारण किए हुए आप मेरी रक्षा कीजिए। आप महा मोह-रूपी मेघोंको छितरा उड़ानेवाले प्रचण्ड पवन हैं, संशयके वनको जला डालनेवाले अग्निदेव हैं (सारे सन्देह दूर कर डालते हैं) और देवताओंको आनन्द देनेवाले हैं। (१) आप निर्गुण और सगुण दोनोंके दिव्य गुणोंसे पूर्ण और परम सुन्दर हैं। भ्रमका अंधकार दूर करनेके लिये आप प्रबल प्रतापी सूर्य हैं। काम, क्रोध और मद-रूपी हाथीके (मर्दनके) लिये आप सिंह हैं। इसलिये आप इस सेवकके मनरूपी वनमें आकर निरन्तर निवास करते रहा कीजिए। (२) विषय-वासनाओंके कमलों (-का नाश करने)-के लिये आप प्रबल पालेके समान हैं। आप उदार हैं। (आप इतने अगम्य हैं कि) आपतक मन भी नहीं पहुँच पा सकता। संसार-रूपी सागर (-की विपत्तियों)-को भली भाँति मथ डालनेके लिये आप मंदराचल पर्वत हैं। आप हमारा सारा भय दूर कर डालिए और इस अपार संसार (-की झंझटों)-से हमें पार कर निकालिए। (३) श्याम शरीरवाले! कमलके समान लोचनोंवाले! दीनोंके बन्धु! शरणागतके दुःख दूर कर डालनेवाले राजा राम! आप अपने छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीके साथ अब मेरे

१. राम - सरिस को दीन हितकारी। २. मोह महा।

१५५२ देवांशा वानराः सर्वे जीविता राघवेच्छया। —आनन्दरामायण
१५५३-५४ किं दुर्लभं जगन्नाथे श्रीरामे भक्तवत्सले। प्रसन्नेऽधमजन्मापि गतिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥
१५५५ काकुत्स्थं परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः। विमानैः सूर्यसंकाशैर्ययुर्हृष्टाः सुरैः सह ॥
ततः प्रोवाच भगवान् भवान्या सहितो भवः। रामं कमलपत्राक्षं विमानस्थो नभःस्थले ॥ अध्या०

अनुज - जानकी - सहित निरंतर। बसहु राम नृप ! मम उर - अंतर। (४)
मुनि - रंजन, महि - मंडल - मंडन। तुलसिदास - प्रभु, त्रास-बिखंडन। (४।।)
दो०—नाथ जबहिं कोसलपुरी, होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार।। ११५ ।।
१५७० करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु - निकट बिभीषन आए।
नाइ चरन सिर, कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु ! सारँग - पानी। (१)
सकुल, सदल प्रभु रावन मार्‍यौ। पावन जस त्रिभुवन बिस्तार्‍यौ।
दीन, मलीन, हीन - मति - जाती। मो - पर कृपा कीन्हि बहु भाँती। (२)
अब पुनीत जन - गृह प्रभु ! कीजै[१]। मज्जन करिय, समर - स्रम छीजै।
देखि कोस - मंदिर - संपदा। देहु कृपाल कपिन - कह मुदा। (३)
सब बिधि नाथ ! मोहिं अपनाइय। पुनि मोहिं-सहित अवधपुर जाइय।
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए दोउ नयन बिसाला। (४)
दो०—तोर कोस - गृह मोर सब, सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत - दसा, सुमिरत मोहिं, निमिष कल्प - सम जात।। ११६ क ।।
१५८० तापस - बेष, गात कृस, जपत निरंतर मोहिं।
देखउँ बेगि सो जतन करु, सखा ! निहोरौं तोहिं।। ११६ ख ।।

हृदयमें आ बसिए। (४) आप मुनियोंको आनन्द देते रहते हैं, इस भूमण्डलके आप भूषण हैं, तुलसीदासके प्रभु हैं और आप (सब प्रकारका) भय दूर कर डाल सकते हैं। (५) नाथ ! कोशल-पुरीमें जब आपका राजतिलक होने लगेगा, उस समय कृपासिंधु ! मैं आपकी उदार लीला देखने वहाँ पहुँच जाऊँगा' ।। ११५ ।। ज्यों ही विनति (स्तुति) करके शंकर वहाँसे गए, त्यों ही विभीषण वहाँ आ पहुँचे जहाँ राम बैठे थे। उन्होंने रामके चरणोंमें सिर नवाकर कोमल वाणीसे कहा—'शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले प्रभो ! मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। (१) प्रभो ! आपने रावणके सारे कुल और उसकी सेनाके साथ-साथ रावणको भी ठिकाने लगाकर, अपना पवित्र यश तीनों लोकोंमें फैला बिछाया और मुझ-जैसे अत्यन्त दीन, मलिन, बुद्धिहीन और जाति-हीनपर इतनी अधिक कृपा कर दिखाई। (२) प्रभो ! अब प्रार्थना यह है कि चलकर इस दासका घर भी पवित्र कर डालिए और (वहाँ चलकर) स्नान (और विश्राम) करके युद्धकी सारी थकावट मिटा डालिए। कृपालु ! (लंकाका सारा) धन, भवन और सम्पत्ति देखकर आनंदपूर्वक जो चाहिए सब बन्दरोंको बाँट डालिए (३) और मुझे पूर्णतः अपनाकर अपने साथ अयोध्या लिए चलिए।' जब रामने विभीषणकी ये प्रेम-भरी बातें सुनी तो रामकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा चलीं (४) (और वे बोले—) 'देखो भाई ! मैं मानता हूँ कि तुम्हारा धन और भवन सब मेरा ही है पर भरतकी दशाका स्मरण कर-करके मेरा एक-एक पल एक-एक कल्पके समान बीता जा रहा है ।। ११६क ।। वे (भरत) तपस्यासे घुलकर सूखकर काँटा हो चले होंगे क्योंकि वे निरन्तर बैठे मेरा ही नाम जपे जा रहे हैं। देखो

१. अब जन-गृह पुनीत प्रभु कीजै।

१५६७-६९ आगमिष्याम्ययोध्यायां द्रष्टुं त्वां राज्यसत्कृतम्।
१५७०-७१ इत्युक्त्वा स शिवः शंभुः गुणान् गायन्गतः पुनः। विभीषणस्तु साष्टांगं प्रणिपत्यात्रवीद्वचः ।।
१५७५-७६ इयं पुरी इमे दारा अमी पुत्रा तथा ह्यहम्। सर्वमेतन्मया दत्तं प्रतिगृह्य नमोऽस्तु ते ।।
१५७७-७९ विभीषणवचः श्रुत्वा प्रत्युवाच रघूत्तमः। दलं कोशो भृत्यवर्ग एते ते मामकाः शृणु ।।
सुकुमारोतिभक्तो मे भरतो मामपेक्षते।
१५८०-८१ जटावल्कलधारी स शब्दब्रह्मसमाहितः। एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।।अध्या०

बीते अवधि जाउँ जौं, जियत न पावौं बीर।
सुमिरत अनुज - प्रीति प्रभु, पुनि - पुनि पुलक सरीर ॥ ११६ ग ॥
करेहु कलप-भरि राज तुम, मोहिं सुमिरेहु मन-माहिं।
पुनि मम धाम पाइहउ, जहाँ संत सब जाहिं ॥ ११६ घ ॥

सुनत बिभीषन बचन राम - के। हरषि, गहे पद कृपा - धाम - के।
बानर - भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु-पद, गुन बिमल बखाने। (१)
बहुरि बिभीषन भवन सिधायो। मनिगन - बसन बिमान भरायो।
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाखा। (२)
१५९० चढ़ि बिमान, सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट - भूषन।
नभ - पर जाइ बिभीषन तबहीं। बरषि दिए मनि - अंबर सबहीं। (३)
जोइ - जोइ मन भावै सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि, डारि कपि देहीं।
हँसे राम श्री - अनुज - समेता। परम कौतुकी कृपानिकेता। (४)

दो०—मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति - नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन-सन, करत अनेक बिनोद ॥ ११७ क ॥
उमा! जोग, जप, दान, तप, नाना मख, ब्रत, नेम।
राम, कृपा नहिं करहिं तसि, जसि निष्केवल प्रेम ॥ ११७ ख ॥

सखा! तुमसे मेरा यही अनुरोध है कि अब तुम कोई ऐसा उपाय करो कि मैं शीघ्रसे शीघ्र उनसे जाकर मिल सकूँ। ॥ ११६ ख ॥ यदि कहीं मैं अवधि बीत जानेपर वहाँ पहुँचा तो भाई (भरत)-को जीता न देख पाऊँगा।' छोटे भाई (भरत)-के प्रेमका स्मरण कर-करके प्रभु बार-बार पुलकित हो-हो जा रहे थे ॥ ११६ ग ॥ (राम फिर कहने लगे—) 'तुम कल्प-भर राज्य करते हुए सदा मेरा स्मरण करते रहना। अन्तमें तुम मेरा वह धाम पा जाओगे जहाँ सब संतजन अन्तमें पहुँच जाते हैं' ॥ ११६ घ ॥ यह सुनते ही हर्षित होकर विभीषणने झुककर कृपालु रामके चरण जा पकड़े। सब वानर और भालू भी हर्षित हो उठे और रामके चरण पकड़-पकड़कर उनके निर्मल यशका वर्णन करने लगे। (१) फिर विभीषणने अपने भवन जाकर रत्नों और वस्त्रोंसे पुष्पक विमान भर लिया और वह विमान प्रभुके आगे ला खड़ा किया। (२) कृपालु रामने हँसकर (विभीषणसे) कहा—'मित्र विभीषण! अब तुम विमानपर चढ़कर आकाशसे ये सब वस्त्र और आभूषण बरसा गिराओ।' सुनते ही विभीषणने झट विमानपर चढ़कर आकाशसे सब वस्त्र और रत्न नीचे बरसा गिराए। (३) फिर क्या था! जिस-जिस वानरको जो-जो कुछ (वस्त्र-आभूषण) अच्छा लगा, वही जा-जाकर उठाने लगा। रत्न उठा-उठाकर वानर मुँहमें डाल तो लेते किन्तु (उसमें स्वाद न मिलनेपर) फिर उन्हें थूक फेंकते। यह देख-देखकर कृपालु विनोदी राम, उनके भाई लक्ष्मण और जानकी सब हँस-हँसकर लोट-पोट हुए जा रहे थे। (४) जिन्हें मुनि भी ध्यानमें नहीं देख पाते और वेदोंने भी जिन्हें नेति-नेति कहा है, वे ही कृपालु राम उन वानरोंके साथ बैठे अनेक प्रकारका मन-बहलाव किए जा रहे थे ॥ ११७ क ॥ (शिव कहते हैं—)'देखो उमा! जप, दान, तप,

---

१५८४-८५ अथ भ्रातो हृदा मां वै भावयन्भक्तिभावितम्। अनुवर्तस्व राज्यादि भुंजन्प्रारब्धमन्वहम् ॥ अध्या०
१५८६ काकुत्स्थेनैवमुक्तस्तु प्रससाद विभीषणः। —वाल्मीकीयरामायण
१५८७ ततः प्रहृष्टाः प्लवगर्षभास्ते यशः शशंसू रघुपुंगवस्य।
१५८८-८९ उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम्। निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥
१५९०-९१ इत्युक्तो राघवेणाशु स्वर्णरत्नांबराणि च। ववर्ष राक्षसश्रेष्ठो यथाकामं यथारुचि ॥ वा० रा०

भालु - कपिन पट - भूषन पाए। पहिरि - पहिरि रघुपति - पहँ आए।
नाना जिनिस देखि सब कीसा। पुनि - पुनि हँसत कोसलाधीसा। (१)
१६०० चितइ सबन्हि - पर कीन्हीँ दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया।
तुम्हरे बल मैं रावन मार्‍यौ। तिलक बिभीषन-कहँ पुनि सार्‍यौ। (२)
निज - निज गृह अब तुम सब जाहू। सुमिरेहु मोहिं, डरपेहु जनि काहू।
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर। (३)
प्रभु जोइ कहहु, तुम्हहिं सब सोहा। हमरे होत, बचन सुनि, मोहा।
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम त्रैलोक - ईस रघुनाथा। (४)
सुनि प्रभु - बचन, लाज हम मरहीँ। मसक कहूँ खगपति - हित करहीँ।
देखि राम - रुख, बानर - रीछा। प्रेम - मगन नहिं गृह - कै ईछा। (५)

दो०—प्रभु - प्रेरित कपि - भालु सब, राम - रूप उर राखि।
हरष - बिषाद सहित चले, बिनय बिबिध बिधि भाखि॥ ११८ क॥
१६१० कपिपति, नील, रीछपति, अंगद, नल, हनुमान।
सहित - बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान॥ ११८ ख॥

अनेक प्रकारके यज्ञ, व्रत और नियम कर लेनेपर भी राम वैसी कृपा नहीँ करते जैसी कृपा अनन्य प्रेम होनेपर कर बैठते हैं'॥ ११७ ख॥ भालू और वानरोंने जो-जो वस्त्र और आभूषण उठाए उन्हें पहन-पहन, ओढ़-ओढ़कर वे प्रभुके पास आ खड़े हुए। रंग-बिरंगे कपड़ोंमें सजे हुए वानरोंको देख-देखकर कोशलाधीश राम हँसते-हँसते लोट-पोट हुए जा रहे थे। (१) रामने उनकी ओर कृपा-दृष्टिसे देखा (तो सब निहाल हो गए)। राम उनसे बड़े प्रेमसे बोले—'देखो! तुम्हारे ही बल-पर तो मैं रावणको मार पाया और तुम्हारे ही बलपर मैं विभीषणको राजतिलक दे पाया। (२) अब तुम लोग सब (आनन्दके साथ) अपने-अपने घर लौट जा सकते हो। तुम लोग सदा मेरा स्मरण करते रहना और कभी किसीसे डरना मत।' प्रभुके ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेमसे विह्वल हो उठे। वे सब हाथ जोड़कर आदरके साथ बोले—(३) 'प्रभो! आप जो भी कुछ कह दें सब आपको शोभा देता है। पर आपके वचन सुनकर हम तो बड़े मोह (असमंजस)-में पड़े जा रहे हैं (कि हमने तो कुछ किया-धरा नहीं फिर भी आप हमें बड़ाई दिए चले जा रहे हैं)। राम! आपने तो तीनों लोकोंके स्वामी होते हुए भी हम सब वानरोंको दीन जानकर ही सनाथ किया है। (४) हम तो प्रभुके वचन सुन-सुनकर लाजसे गड़े जा रहे हैं (कि रावणको मारने और विभीषणका राजतिलक करनेका श्रेय आप हमें दिए डाल रहे हैं)। भला कहीं मच्छरके किए भी गरुड (पक्षिराज)-की सहायता हो पा सकती है?' रामका सौजन्य देख-देखकर वानर और भालू तो इतने प्रेममें मग्न हो चले थे कि उन्हें अपने घर लौटने-तककी साध नहीँ रह गई थी। (५) पर रामके बहुत कहने-सुनने-समझानेपर सब वानर-भालू वहाँसे रामका स्वरूप हृदयमें बसाकर बहुत कृतज्ञता और आदर दिखाते हुए हर्ष और विषादके साथ अपने-अपने घर लौट चले (उन्हें हर्ष था घर लौटनेका और विषाद था रामका साथ छूट जानेका)॥ ११८॥ वानर-राज सुग्रीव, नील, जामवन्त, अंगद, नल, हनुमान्, विभीषण तथा और सब जितने बलवान् वानर सेनापति थे॥ ११८ ख॥ वे सब आँखोंमें आँसू भरे

१५९८-१६०१ अब्रवीत् स विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान्। मित्रकार्यं कृतमित्थं भवद्भिर्वानरर्षभाः॥
१६०६ अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत। एवमुक्तास्तु रामेण हरीन्द्राः हरयस्तथा॥
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नोपकर्तुं वयं क्षमाः॥ —वाल्मीकीयरामायण

कहि न सकहिं कछु प्रेम-बस, भरि - भरि लोचन बारि ।
सनमुख चितवहिं राम - तन, नयन - निमेष निवारि ॥ ११८ ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हें सकल बिमान चढ़ाई।
मन - महँ बिप्र - चरन सिर नायो। उत्तर दिसिहिं बिमान चलायो। (१)
चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सब कोई।
सिंघासन अति उच्च मनोहर। श्री - समेत बैठे प्रभु ता - पर। (२)
राम - सहित राजत भामिनी[1]। मेरु - सृंग जनु घन - दामिनी।
रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर। कीन्हीं सुमन - बृष्टि, हरषे सुर। (३)
१६२० परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर - सर - सरि निर्मल बारी।
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न, निर्मल नभ - आसा। (४)
कह रघुबीर, देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता।
हनूमान - अंगद - के मारे। रन - महि परे निसाचर भारे। (५)
कुंभकरन - रावन दोउ भाई। इहाँ हते सुर - मुनि - दुखदाई। (५॥)
दो०—इहाँ सेतु बाँध्यो अरु, थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता - सहित कृपानिधि, संभुहिं कीन्ह प्रनाम ॥ ११९ क ॥

खड़ेके खड़े रह गए । प्रेमके मारे उनसे कुछ कहते नहीं बन पा रहा था । वे खड़े-खड़े एकटक रामका मुख निहारे जा रहे थे ॥ ११८ ग ॥ रामने उनका जब यह गहरा प्रेम देखा तो उन्होंने सबको पुष्पक विमानपर चढ़ा बैठाया और मन ही मन ब्राह्मणोंके चरणोंमें सिर नवाकर उन्होंने उत्तरकी ओर विमान चला दिया । (१) विमान चलते ही बड़ा कोलाहल मच उठा । जितने लोग (वानर और लंका-वासी वहाँ थे) सब एक साथ 'रामकी जय' चिल्ला उठे । विमानमें बने हुए बहुत ऊँचे और मनोहर सिंहासनपर जानकीके साथ बैठे हुए राम ऐसे सुहावने लग रहे थे मानो सुमेरु पर्वत-की चोटीपर बिजलीके साथ काला बादल आ छाया हो । देखते-देखते वह सुन्दर विमान बड़े वेगसे आकाशमें उड़ चला । देवता लोग हर्षित हो-होकर फूल बरसाने लगे । (३) बड़ी सुहावनी तीनों प्रकारकी (शीतल, मंद, सुगंध) बयार बह चली । समुद्र, नदी और सरोवरोंका जल निर्मल हो चला । चारों ओर अच्छे ही अच्छे शकुन हो चले । सबके मन प्रसन्न हो उठे । आकाश और दिशाएँ सब निर्मल हो चलीं । (४) रामने नीचे झाँकते हुए सीताको दिखाकर कहा—'देखो सीता ! यहाँ लक्ष्मणने इन्द्रजित् मेघनादको रणमें मार बिछाया था । हनुमान् और अंगदके मारे हुए ये बड़े-बड़े राक्षस यहाँ रणभूमिमें लोटे पड़े हैं । (५) देवता और मुनियोंको कष्ट देनेवाले दोनों भाई कुंभकर्ण और रावण देखो, यहाँ मारे गए थे । (६) यहाँ (समुद्र-पर) देखो ! मैंने पुल बँधवाया था और यहाँ सबको सुख देनेवाले शिव (रामेश्वर)-की स्थापना की थी । यह कहकर सीताके साथ कृपालु रामने

---

१. राजत राम सहित भामिनी ।

१६०७-१४ रामस्तथेति सुग्रीव वानरैः सविभीषणः । पुष्पकं सहनूमांश्च शीघ्रमारोह साम्प्रतम् ॥
ततस्तु पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सहसेनया । विभीषणश्च सामात्यः सर्वे चारुरुहुर्द्रुतम् ॥अध्या०
१६१५-१६ तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौवेरं परमासनम् । राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥
१६१९ हंसयुक्तमहानादमुत्पपात विहायसम् । पुष्पवृष्टि तदा चक्रुर्गगने च दिवौकसः ॥
१६२२ एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् । लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥
१६२३ अत्र मे निहतः शेते रावणो राक्षसेश्वरः । कुंभकर्णेन्द्रिजिन्मुख्याः सर्वे चात्र निपातिताः ॥
१६२५-२९ एष सेतुर्मया बद्धः सागरे सलिलाशये । अत्र रामेश्वरो देवो मया शंभुः प्रतिष्ठितः ॥वा०रा०

जहँ - जहँ कृपासिंधु बन, कीन्ह बास, बिस्राम।
सकल देखाए जानकिहिं, कहे सबनि - के नाम ॥ ११९ ख ॥

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा।
१६३० कुंभजादि मुनि - नायक नाना। गए राम सबके असथाना। (१)
सकल रिषिन - सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा।
तहँ करि मुनिन - केर संतोखा। चला बिमान तहाँ ते चोखा। (२)
बहुरि राम, जानकिहिं देखाई। जमुना कलिमल - हरनि सोहाई।
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम, प्रनाम, कहा, करु सीता[1]। (३)
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत, जनम-कोटि-अघ भागा।
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक, हरि-लोक - निसेनी। (४)
देखु अवधपुरि पुनि[2] अति पावनि। त्रिबिध - ताप, भवरोग - नसावनि। (४॥)

दो०—सीता - सहित अवध - कहँ, कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन, तन पुलकित, पुनि - पुनि हरषित राम ॥ १२० क ॥
१६४० पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी, हरषित मज्जन कीन्ह।
कपिन - सहित बिप्रन - कहँ, दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥ १२० ख ॥

रामेश्वर महादेवको (भक्तिपूर्वक) प्रणाम करनेके लिये सिर झुका लिया ॥ ११९ क ॥ (सीतासे वियोग होनेके पश्चात्) जहाँ-जहाँ कृपालु रामने निवास और विश्राम किया था वे सब स्थान जानकीको दिखा समझाए और उन सब स्थानोंके नाम भी बता सुनाए ॥ ११९ ख ॥ इतनी देरमें तो विमान परम सुन्दर दण्डक वनके ऊपर उड़ पहुँचा। वहाँ उतरकर रामने कुम्भज (अगस्त्य) आदि अनेक बड़े-बड़े मुनियोंके स्थानोंपर जा-जाकर सबसे भेंट कर ली (१) और सब ऋषियोंसे आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर राम उड़कर चित्रकूट जा पहुँचे। वहाँ उतरकर उन्होंने सब मुनियोंसे मिलकर सबको परम सन्तुष्ट कर दिया। वहाँसे वह विमान बड़े वेगसे आगे उड़ चला। (२) रामने (जानकीको) कलिके सब पाप हर लेनेवाली सुहावनी यमुनाके दर्शन दिखा कराए। फिर पवित्र गंगाको प्रणाम करके रामने सीतासे भी कहा—'सीते! इन्हें (गंगाजीको) प्रणाम कर लो।' (३) फिर आगे दिखाकर रामने कहा—'देखो, यही तीर्थराज प्रयाग है, जिसका दर्शन करते ही करोड़ों जन्मोंके सब पाप अपने आप दूर हो मिटते हैं। यह परम पवित्र त्रिवेणी देखो, जिसमें स्नान करनेसे सब शोक दूर हो मिटते हैं और जो हरिके परम धामतक पहुँचा देनेवाली पक्की सीढ़ी है। (४) (विमानपर चढ़े-चढ़े) दूरसे ही अयोध्या नगरी दिखाते हुए रामने सीतासे कहा—'वह देखो, वह परम पावनी अयोध्यापुरी दिखाई दे रही है जिसके दर्शनसे ही तीनों (दैहिक, दैविक और भौतिक) तापोंका तथा समस्त सांसारिक रोगोंका तत्काल नाश हो जाता है।' (५) यह कहकर कृपालु रामने लक्ष्मण और सीताके साथ अयोध्याको हाथ जोड़कर प्रणाम कर लिया। (अयोध्याको देखते ही) रामकी आँखें डबडबा चलीं और वे बार-बार पुलकित हो-हो उठने लगे ॥ १२० क ॥ फिर त्रिवेणीपर उतरकर रामने हर्षपूर्वक स्नान किया और वानरोंको

१. राम कहा, प्रनाम करु सीता। २. पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि।

१६२७-२८ यत्र यत्र कृतो वासा पूर्वं रामेण धीमता। तान्सर्वान्दर्शयामास सीतायै करुणानिधिः॥ पद्म०पु०
१६३३ सद्यः पापहरां पश्य कालिन्दीं वरवर्णिनि।
१६३४-३५ एषा भागीरथी गंगा दृश्यते लोकपावनी। प्रणामं कुरु वैदेहि गंगा त्वं पुनरागता॥
१६३६ सीते पश्य त्रिवेणीं च प्रयागं तीर्थनायकम्। यस्य दर्शनमात्रेण नरो याति कृतार्थताम्॥
१६३८-४१ एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि। पुनः त्रिवेणीं संप्राप्य ददौ दानं सवानरैः॥ अध्या०

प्रभु हनुमंतहिँ कथा बुझाई। धरि बटु-रूप अवधपुर जाई।
भरतहिँ कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम चलि आएहु। (१)
तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज-पहँ गयऊ।
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्हीँ। अस्तुति करि, पुनि आसिष दीन्हीँ। (२)
मुनि-पद बंदि, जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान, प्रभु चले बहोरी।
इहाँ निषाद सुना, प्रभु आए। नाव-नाव कहँ, लोग बुलाए। (३)
सुरसरि नाँघि, जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु-आयसु पायो।
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरननि्ह परी। (४)
१६५० दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि! तब अहिवात अभंगा।
सुनत गुहउ धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख-संकुल। (५)
प्रभुहिँ बिलोकि सहित-बैदेही[१]। परेउ अवनि, तन-सुधि नहिँ तेही।
प्रीति बिलोकि परम रघुराई[२]। हरषि, उठाइ लियो उर लाई। (६)
छंद—लियो हृदय लाइ, कृपानिधान, सुजान, राय रमापती।
बैठारि परम समीप, बूझी कुसल, सो कर बीनती।

तथा ब्राह्मणोंको बहुत-सा दान भी दिया ।। १२० ख ।। (वहीं रुककर) रामने हनुमान्‌को समझाकर कहा कि तुम ब्राह्मण बनकर अयोध्या चले जाओ और भरतको हमारे कुशलसे लौट आनेका समाचार सुनाकर वहाँका सारा समाचार लेकर (जहाँ हम हों वहाँ) तुरन्त लौट आओ। (१) यह सुनते ही पवन-पुत्र हनुमान् तुरन्त अयोध्याके लिये चल दिए और इधर राम वहाँसे भरद्वाज मुनिके पास जा पहुँचे। मुनिने रामकी बहुत पूजा की और उनकी स्तुति करके उन्हें बहुत आशीर्वाद दिया। (२) फिर मुनिको प्रणाम करके और उनके चरणोंकी वन्दना करके विमानपर चढ़कर राम आगे बढ़ चले। जब निषादराज (गुह)-ने सुना कि प्रभु राम आ पहुँचे हैं तब तो वह 'नाव-लाओ नाव-लाओ' चिल्लाता हुआ सब मल्लाहोंको पुकार उठा। तबतक तो विमान गंगापरसे उड़ता हुआ इस पार उड़ आया और रामकी आज्ञासे तीरपर जा उतरा। तब सीताने गंगाकी बहुत पूजा की और उनके चरणोंमें झुककर प्रणाम किया। (४) गंगाने भी मनमें बहुत हर्षित होकर आशीर्वाद दिया—'हे सुन्दरी! तुम्हारा सोहाग अचल रहे'। रामका आगमन सुनते ही केवटोंका सरदार प्रेममें विह्वल होकर अत्यन्त आनन्दमें मग्न होकर प्रभुके पास दौड़ा चला आया। (५) प्रभु रामके साथ सीताको देखते ही वह धरतीपर ऐसा आ लोटा कि उसे अपने तन-बदन-तककी भी सुध न रह गई। रामने उसकी इतनी अधिक प्रीति देखकर हर्ष-पूर्वक उसे हृदयसे उठा लगाया। (६) कृपालु, व्यवहार-कुशल, लक्ष्मीके पति रामने उसे हृदयसे उठा लगाया और उसे अपने पास बैठाकर वे उससे सब कुशल-मंगल पूछने लगे। वह बड़ी नम्रताके साथ बोला—'ब्रह्मा और शंकर-तक जिन चरण-कमलोंकी सेवा करते

१. प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। २. प्रीति परम बिलोकि रघुराई।

१६४१ ततो राममश्चिन्तयित्वा मुहूर्तं प्राह मारुतिम्। इतो गच्छ हनूमंस्त्वमयोध्यांप्रति सत्वरः ।।
१६४३ नन्दिग्रामं ततो गत्वा भ्रातरं भरतं मम। दृष्ट्वा ब्रूहि सभार्यस्य सभ्रातुः कुशलं मम ।।
सर्वं ज्ञात्वा पुनः शीघ्रमागच्छ मम सन्निधिम्।
१६४४ तथेति हनुमांस्तत्र मानुषं वपुरास्थितः। नन्दिग्रामं ययौ तूर्णं वायुवेगेन मारुतिः ।।
१६४५ भरद्वाजं मुनिं दृष्ट्वा ववंदे सानुजः प्रभुः। प्रयुज्य स्वाशिषा धीरः स्तोतुमारब्धवानृषिः ।।
१६४७-४८ गंगामुल्लङ्घ्य तद्यानमुत्ततार तटे तदा।
१६४९-५० तां समभ्यर्च्य वैदेहि ववंदे प्राञ्जलिर्मुदा। अविच्छिन्नं च सौभाग्यं भवतादाशिषा मम ।।
१६५१-५३ रामागमनमाकर्ण्य निषादो विद्रुतो द्रुतम्। निषादं स्वांकमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे ।। अध्या०

अब कुसल पद - पंकज बिलोकि, बिरंचि - संकर - सेब्य जे।
सुखधाम, पूरन - काम, राम ! नमामि राम ! नमामि ते ॥ [३८]
सब भाँति अधम निषाद, सो हरि भरत - ज्यों उर लाइयो।
मति - मंद तुलसीदास सो प्रभु, मोह - बस बिसराइयो।
१६६० यह रावनारि - चरित्र पावन, राम - पद - रति - प्रद सदा।
कामादि - हर, बिग्यान - कर, सुर - सिद्ध - मुनि गावहिं मुदा ॥ [३९]

दो०—समर - बिजय रघुबीर - के , चरित, जे सुनहिं सुजान।
बिजय, बिबेक, भूति नित , तिन्हहिं देहिं भगवान ॥ १२१ क ॥
यह कलि - काल मलायतन , मन ! करि देखु बिचार।
श्रीरघुनाथ - नाम तजि , नाहिंन आन अधार ॥ १२१ ख॥

॥ इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने विमलविज्ञानसंपादनो नाम
षष्ठः सोपानः संपूर्णः ॥

रहते हैं उनके दर्शन पाकर मेरा अब कुशल ही कुशल है। हे सुखधाम ! पूर्णकाम ! राम ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।' [३८] (तुलसीदास कहते हैं—) 'अत्यन्त नीच जातिके निषादको भी जिस भगवान्ने भरतके समान मानकर हृदयसे उठा लगाया उसी प्रभुको यह मन्द बुद्धि (तुलसीदास) अज्ञानमें पड़ा भुलाए बैठा है। रावणके शत्रु (राम)-का यह पवित्र चरित्र जो पढ़ेगा या सुनेगा उसके हृदयमें सदा रामके चरणोंमें प्रीति बनीरहेगी। यह कथा कहने-सुननेसे काम आदि सब विकार दूर भाग खड़े होते हैं और सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इतना ही नहीं, देवता, सिद्ध और मुनि भी इस चरित्रका आनन्द ले-लेकर वर्णन करते रहते हैं। [३९] जो बुद्धिमान् लोग रामकी समर-विजय-सम्बन्धी लीला सुनते हैं, उन्हें भगवान् नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) प्रदान करते रहते हैं' ॥ १२१ क ॥ (तुलसीदास अपने मनसे कहते हैं—) 'अरे मन ! तू विचार करके समझ ले कि यह कलिकाल पापोंका भांडार है। इस कलिकालमें रामका नाम जपनेके अतिरिक्त (उद्धारका) और कोई दूसरा आधार नहीं हैं ॥ १२१ ख ॥

१६६२-६३ कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमञ्च।
श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं महार्थं प्राप्नोति सर्वान् भुवि चार्थसिद्धिम् ॥ —वाल्मीकीयरामायण
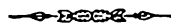
॥ कलियुगके सारे पाप नष्ट कर डालनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह 'स्वच्छ वैराग्य उत्पन्न करनेवाला' नामका छठा सोपान (लंकाकाण्ड) समाप्त हुआ ॥

॥ लंका-काण्ड समाप्त ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामचरितमानस

•

सप्तम सोपान

(उत्तर-कांड)

•

[श्लोकाः]

१ केकी - कण्ठाभ - नीलं उरवर[1] - विलसद्विप्र - पादाब्ज - चिह्नम्
शोभाढ्यं पीत - वस्त्रं सरसिज - नयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पाणौ नाराच - चापं कपि - निकर - युतं बंधुना सेव्यमानं ।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ॥ १ ॥
कोशलेन्द्र - पद - कञ्ज - मञ्जुलौ कोमलावज - महेश - वन्दितौ ।
जानकी - कर - सरोज - लालितौ चिन्तकस्य मन - भृङ्ग - सङ्गिनौ ॥ २ ॥
कुन्द - इन्दु - दर - गौर - सुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्ट - सिद्धिदम् ।
कारुणीक - कल - कञ्ज - लोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनं ॥ ३ ॥

मोरके गलेकी चमकके समान नीला (साँवला) जिनका रंग है, जिनके वक्षपर ब्राह्मण (भृगु)-के चरण-कमलका चिह्न बना हुआ शोभा दे रहा है, जिनमें कूट-कूटकर शोभा भरी पड़ी है, जो पीताम्बर पहने हुए हैं , जिनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं, जो सदा परम प्रसन्न रहते हैं, जो हाथोंमें धनुष-बाण धारण किए हुए हैं, जिनके साथ बहुतसे वानर हैं, जिनकी सेवा लक्ष्मण कर रहे हैं, जो स्तुति करनेके योग्य हैं, जो जानकीके प्रिय हैं, जो रघुकुलमें श्रेष्ठ हैं और पुष्पक विमानपर चढ़े हुए हैं, ऐसे रामको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ। (१)

कोशलपुरके स्वामी रामके जिन दोनों सुन्दर और कोमल चरण-कमलोंकी वन्दना ब्रह्मा और शिव किया करते हैं और जानकी अपने कर-कमलोंसे जिन्हें पलोटा करती हैं, वे चरण-कमल सदा उन चरणोंका चिन्तन करनेवाले भक्तोंके मनरूपी भौंरेके साथी बने रहें (उन चरणोंका ध्यान किए रहनेवालोंके मनमें सदा बसे रहें) । (२)

कुन्दके फूल, चन्द्रमा और शंखके समान सुन्दर और उजले, मनचाही सिद्धि देनेवाले, पार्वतीके पति, सबपर सदा करुणा करनेवाले, सुन्दर कमलके समान नेत्रोंवाले तथा भक्तोंको कामदेवके चक्करसे मुक्त किए रखनेवाले शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। (३)

---

[1] उरवर ।

दो०—रहा एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर-लोग।
१० जहँ-तहँ सोचहिं नारि-नर, कृस तन राम-बियोग ॥ क ॥
सगुन होहि सुंदर सकल, मन प्रसन्न सब-केर।
प्रभु-आगवन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर ॥ ख ॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु[1] सिय अनुज-जुत, कहन चहत अब कोइ ॥ ग ॥
भरत-नयन-भुज दच्छिन[2], फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन, मन हरष अति, लागे करन विचार ॥ घ ॥
रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत, मन दुख भयउ अपारा।
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहिं बिसरायउ। (१)
अहह! धन्य लछिमन बड़-भागी। राम-पदारबिंद-अनुरागी।
२० कपटी, कुटिल, मोहिं प्रभु चीन्हाँ। तातें नाथ, संग नहिं लीन्हाँ। (२)
जौं करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी।
जन-अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ। (३)

(रामके वनवासके चौदह वर्ष समाप्त होनेकी) अवधि (समय) बीतनेमें जब केवल एक ही दिन बचा रह गया (और तबतक भी राम लौटे नहीं तो) अयोध्याके सभी लोग बहुत अधीर हो उठे। रामके वियोगमें दुर्बल हुए रहनेवाले वहाँके स्त्री-पुरुष जहाँ-तहाँ बैठे बड़ी चिन्ता किए जा रहे थे (कि कल चौदह बरस पूरे हो रहे हैं और रामका कोई समाचार नहीं मिल पा रहा है)। (क) इतनेमें ही बहुत अच्छे-अच्छे शकुन होने लगे। यह देखकर सबका जी खिल उठा। नगर भी चारों ओरसे रमणीक हो उठा मानो वह सूचना दिए डाल रहा हो कि राम चले आ रहे हैं। (ख) कौशल्या आदि सब माताओंका मन ऐसा हुलसा पड़ रहा था जैसे अभी कोई आकर कहने ही वाला है कि सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मणके साथ राम आ पहुँचे हैं। (ग) भरतकी दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार-बार फड़की पड़ रही थी। इसे शुभ शकुन समझकर वे मनही मन बैठे विचार करने लगे—(घ) 'मेरे प्राणोंको सहारा दिए रखनेवाली अवधि (१४ वर्ष) बीतनेमें कुल एक ही दिन तो बच रहा है।' यह जानकर भरतके मनमें बड़ी चिन्ता हुई जा रही थी कि (राम) अभी-तक आए क्यों नहीं ? कहीं प्रभुने मुझे कुटिल जानकर भुला तो नहीं दिया ? (१) ओ हो ! लक्ष्मण सचमुच धन्य और बड़े भाग्यशाली हैं कि वे रामके चरण-कमलोंकी सेवामें निरन्तर लगे रहे। मुझे प्रभु इसीलिये साथ नहीं ले गए कि वे मुझे बड़ा कपटी और कुटिल समझे हुए थे। (२) यदि प्रभु कहीं मेरी (खोटी) करतूतोंपर विचार करने लग जायँ तब तो सौ करोड़ कल्पों-तक भी मेरा निस्तार नहीं हो पा सकता। पर प्रभु तो इतने अच्छे हैं कि अपने सेवकके अवगुणपर कभी ध्यान ही नहीं देते क्योंकि वे तो दीनबन्धु हैं और उनका स्वभाव बड़ा कोमल (क्षमाशील) है। (३) मेरे हृदयमें तो पक्का भरोसा है कि राम आकर रहेंगे और अवश्य आवेंगे

१. श्री। २. दक्षिन।

९-१० अवधेर्वासरशेषे वै पौरा जानपदास्तथा। रामविश्लेषदीनाङ्ग्यश्शोचन्त्यम्बा इतस्ततः ॥
११-१२ निमित्तानि च दृश्यन्ते रम्याणि शकुनानि हि। रामागमनहेतुत्वं व्याहरन्ति मिथो जनाः ॥
१३-१४ मातृवर्गमनस्येवम्प्रमोदो जायते खग। कथयन्निव वनादत्रागतो रामो महात्मनाः ॥भुशुण्डिरा०
१५-१६ भरतस्य भुजो नेत्रमवामं प्रास्फुरद्द्रुतम्। हृदयाच्च गतश्शोको हर्षास्रैः पूरिताननः ॥
१७-१८ प्राणाधारावधेश्चैकदिनशेषे मनस्यहो। भरतस्य महद्दुःखं स्वाम्यनागतिहेतुकम् ॥
१९-२० धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूः स्वपतिप्रिया। यस्यास्तनुजो रामस्य चरणौ सेवतेऽन्वहम् ॥ पद्मपुराण

मोरे जिय भरोस दृढ़ सोई। मिलिहइँ राम, सगुन सुभ होई।
बीते अवधि रहइँ जौं प्राना। अधम कवन जग मोहिं समाना। (४)
दो०—राम - बिरह - सागर - महँ, मगन भरत - मन होत[1]।
बिप्र - रूप धरि पवनसुत, आइ गयउ जनु पोत॥ १ क॥
बैठे देखि कुसासन, जटा - मुकुट, कृस गात।
राम - राम - रघुपति जपत, स्रवत नयन - जलजात॥ १ ख॥
देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात, लोचन जल बरषेउ।
३० मन - महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ स्रवन सुधा - सम बानी। (१)
जासु बिरह सोचहु दिन - राती। रटहु निरन्तर गुन - गन - पाँती।
रघु - कुल - तिलक सुजन - सुख - दाता। आयउ कुसल, देव - मुनि - त्राता। (२)
रिपु रन जीति, सुजस सुर गावत। सीता-अनुज-सहित प्रभु आवत[2]।
सुनत बचन, बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा। (३)
को तुम तात! कहाँ - तें आए। मोहिं परम प्रिय बचन सुनाए।
मारुत - सुत मैं कपि, हनुमाना। नाम मोर, सुनु कृपानिधाना। (४)

क्योंकि मुझे बड़े अच्छे-अच्छे शकुन होते चले जा रहे हैं। यदि अवधि (१४ वर्ष) बीत जानेपर भी मेरे प्राण बचे रह गए, तो मैं यही समझूँगा कि संसारमें मेरे समान अधम दूसरा कोई है नहीं।' (४) रामके विरहके सागरमें भरतका मन डूबने ही वाला था कि ब्राह्मणका रूप बनाकर पवनपुत्र हनुमान् इस प्रकार सामने आ खड़े हुए मानो (उन्हें डूबनेसे बचानेके लिये) कोई जहाज़ सामने आ लगा हो॥ १ क॥ आते ही हनुमान् देखते क्या हैं कि भरत सूखकर काँटा हो चले हैं। उनके सिरपर जटाओंका मुकुट बँधा है, वे बैठे 'राम-राम! रघुपति रघुपति!' जपे जा रहे हैं और कुशाके आसनपर बैठे अपने कमलके समान नेत्रोंसे झरझर आँसू बहाए चले जा रहे हैं॥ १ ख॥ उन्हें देखकर हनुमान्का जी खिल उठा। उनका शरीर रोमांचित हो उठा, उनकी आँखें बरस पड़ीं। बहुत प्रसन्न मनसे वे कानोंमें अमृतके समान (आनन्द देनेवाले) वचन बोल उठे—(१) 'जिसके विरहमें आप दिन-रात इतने घुले चले जा रहे हैं (चिन्तित रहा करते हैं) और दिन-रात आप जिनके गुणोंकी रट लगाए रहते हैं, वे ही रघुकुलके तिलक, सज्जनोंको सुख देनेवाले तथा देवता और मुनियोंके रक्षक (राम) कुशलसे लौटे चले आए हैं। (२) देवता जिनके यशका वर्णन किए जा रहे हैं, वे ही प्रभु रणमें शत्रुको जीतकर सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मणके साथ यहीं चले आ रहे हैं।' यह सुनते ही भरत अपने सब दुःख ऐसे भूल गए जैसे कोई प्यासा मनुष्य अमृत पा लेनेपर प्यासकी सारी तड़फड़ाहट भूल जाता है। (३) (हनुमान्से भरत पूछने लगे—) 'कहिए! आप कौन सज्जन हैं? और कहाँसे पधार रहे हैं जो आपने मुझे यह प्यारा संदेश आ सुनाया?' (हनुमान्ने कहा—) 'कृपानिधान! मैं पवनका पुत्र वानर हूँ। मेरा नाम हनुमान् है (४)

१. भरत मगन मन होत। २. सीता सहित अनुज प्रभु आवत।

२३-२४ झटित्येव ध्रुवं सीतानाथसंदर्शनं भवेत्। व्यतीते सीमनि क्षिप्रं नूनं मे मरणं भवेत्॥—पद्मपु०
२५-३० यत्र ग्रामे स्थितो नूनं भरतो भ्रातृवत्सलः। फलमूलकृताहारं रामचिन्तापरायणम्॥
मलपंकविदिग्धांगं जटिलं वल्कलाम्बरम्। वृत्तदेहं मूर्तिमन्तं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम्॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः। —अध्यात्मरामायण
३१-३२ यं त्वं चिन्तयसे रामं तापसं दण्डके स्थितम्। अनुशोचसि काकुत्स्थ स त्वां कुशलमब्रवीत्॥
३३ समरे रावणं हत्वा रामः सीतामवाप्य च। उपायाति समृद्धार्थः ससीतः सहलक्ष्मणः॥
३४ एवं तद्वाक्यपीयूषासेचितो भरतो मुदम्। निर्व्यलीकश्चाप इव तृषितश्चाप्तजीवनः॥
३५ देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः। —अध्यात्मरामायण

दीनबंधु रघुपति - कर किंकर। सुनत, भरत भेंटे उठि सादर।
मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल, पुलकित गाता। (५)
कपि ! तव दरस सकल दुख बीते। मिले आज मोह राम - पिरीते।
४० बार - बार बूझी कुसलाता। तो - कहँ देउँ काह, सुनु भ्राता। (६)
यह संदेस - सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ, कछु नाहीं।
नाहिँन तात ! उरिन मैं तोहीं। अब प्रभु - चरित सुनावहु मोहीं। (७)
तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति - गुन - गाथा।
कहु कपि ! कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहिं मोहिं दास - की नाईं। (८)
छंद—निज दास - ज्यों रघुबंस - भूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‍यौ।
सुनि भरत-बचन बिनीत अति, कपि पुलकि तन, चरनन्हि पर्‍यौ।
रघुबीर, निज मुख जासु गुन - गन कहत, अग-जग-नाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन - सिंधु सो॥ [१]
दो०—राम - प्रान-प्रिय नाथ ! तुम , सत्य बचन मम तात।
पुनि-पुनि मिलत भरत, सुनि , हरष न हृदय समात॥२क॥

और मैं दीनबन्धु रामका सेवक हूँ।' यह सुनना था कि भरतने उठकर बड़े आदरसे (हनुमान्‌को) गलेसे लिपटा लगाया। हनुमान्‌को गले लगाते समय उनका प्रेम हृदयमें समाए नहीं समा पा रहा था। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग चली और शरीर पुलकित हो उठा। (५) (भरतने कहा—) 'देखो हनुमान् ! तुम्हें तो देखकर ही मेरे सारे दुःख ऐसे मिट गए मानो तुम क्या मिले, मुझे प्यारे राम ही आन मिले हों।' भरत बार-बार (हनुमान्‌से) प्रभुका कुशल पूछते हुए बोले—'अब यह बताओ भाई ! कि मैं इस समय तुम्हें क्या (पुरस्कार) उठाकर दे डालूँ ? (६) मेरे लिये तो इस शुभ संदेशसे बढ़कर संसारमें कोई भी सन्देश अधिक सुन्दर नहीं रह जाता। सच पूछो भाई ! तो मैं तुम्हारे ऋणसे कभी (किसी जन्ममें) उऋण नहीं हो पाऊँगा। अच्छा, अब तुम बैठकर प्रभुकी सारी कथा मुझे आदिसे अन्ततक सुना जाओ' (७) (कहने भरकी देर थी,) हनुमान्‌ने उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर झट रामकी सारी गुण-गाथा आदिसे अन्ततक भरतको कह सुनाई। (बीचमें टोककर भरत पूछ बैठे)—'कहो हनुमान् ! इस बीच कभी कृपालु स्वामी राम मुझे भी अपने दासके समान स्मरण करते रहे हैं ? (८) रघुकुलके भूषण राम कभी अपने दासके समान मुझे भी स्मरण करते रहे हैं ?' भरतकी यह आदर और प्रेमसे भरी बात सुनकर हनुमान् तो बहुत पुलकित होकर उनके चरणोंमें जा पड़े। समस्त चराचर जगत्‌के स्वामी राम स्वयं अपने मुखसे जिनके गुणोंका वर्णन करते नहीं अघाते, भला वे (भरत) इतने विनम्र, परम पवित्र और सद्गुणोंवाले क्यों न हों ? [१] (हनुमान् बोले—) 'नाथ ! मैं आपसे सच-सच बताए दे रहा हूँ कि रामको यदि कोई भी प्राणोंके समान प्यारा है तो बस आप ही हैं।' यह सुनकर तो भरत उठकर बार-बार हनुमान्‌को गलेसे लिपटाए लिए लेने लगे। उन्हें इतना हर्ष हुआ जा रहा था कि वे फूले नहीं समा रहे थे॥ २ क॥

३६-३८ दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य हनूमान् नाम मारुतिः। इत्याकर्ण्यैव भरतश्चाश्लिष्यत् प्रियवादिनम्॥
नेत्रे प्रेमाश्रुसम्पूर्णे शरीरं पुलकाञ्चितम्।
३९-४० व्यपेतानि च दुःखानि दर्शनात्तव मारुते। प्रियाख्यानं विधात्रे ते किं ददेऽहं वदाशु भो॥—अध्या.रा०
४१-४२ जगाद मम तन्नास्ति यत्तुभ्यं दीयते मया। दासोऽस्मि जन्मपर्यन्तं रामसन्देशहारिणः॥
४३ एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना। आचचक्षे प्रियस्य श्रीरामस्य चरितं क्रमात्॥—पद्मपु०
४४ कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान् मयि राघवः। —वाल्मीकीयरामायण
४९-५० शृणु तात दिवारात्रौ यदा ते स्मरणं भवेत्। प्रेमाश्रुभिरसम्भृते च नयनाम्बुरुहे प्रभोः॥—पद्मपु०

सो०—भरत - चरन सिर नाइ , तुरित गयउ कपि राम - पहँ ।
कही कुसल सब जाइ , हरषि चलेउ प्रभु, यान चढ़ि ।। २ ख ।।

हरषि, भरत कोसल - पुर आए । समाचार सब गुरुहिं सुनाए ।
पुनि मंदिर - महँ बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई । (१)
सुनत सकल जननी उठि धाईं । कहि प्रभु-कुसल, भरत समुझाईं ।
समाचार पुरबासिन पाए । नर अरु नारि हरषि सब धाए । (२)
दधि - दुर्बा - रोचन - फल - फूला । नव तुलसी - दल, मंगल - मूला ।
भरि - भरि हेम - थार भामिनी । गावत चलीं सिंधुर - गामिनी । (३)
जे जैसेहि, तैसेहि उठि धावहिं । बाल - बृद्ध - कहँ संग न लावहिं ।
६० ऐक - एकन्ह - कहँ बूझहिं, भाई । तुम देखे दयाल रघुराई । (४)
अवधपुरी, प्रभु आवत जानी । भई सकल सोभा - कै खानी ।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा । भइ सरजू अति निर्मल नीरा । (५)

सब बातचीत हो चुकनेपर भरतके चरणोंमें सिर नवाकर हनुमान् झट रामके पास लौट आए और आकर सारा कुशल समाचार रामको कह सुनाया । सुनते ही राम प्रसन्न होकर अयोध्याके लिये विमानपर चढ़ चले ।। २ ख ।।

उधर (रामके आगमनका समाचार सुनते ही) भरत इतने मगन हो उठे कि (झट सारा काम-धाम छोड़-छाड़कर) वे (नन्दिग्रामसे) अयोध्या लपक पहुँचे और उन्होंने सारा समाचार गुरु वशिष्ठको जा सुनाया । फिर वहाँसे चलकर राजभवन जाकर सब समाचार कह सुनाया कि राम कुशलपूर्वक अयोध्या चले आ रहे हैं । (१) समाचार सुनना था कि सभी माताएँ भरतके पास उठी दौड़ी चली आईं । भरतने सबको प्रभुका सारा कुशल-समाचार बता सुनाया । जब नगरवासियोंके कानोंमें यह समाचार पड़ा तो स्त्री-पुरुष जिसे देखो वही हर्षित हो-होकर दौड़ पड़ा । (२) सोनेके थालोंमें दही, दूध, गोरोचन, फल, फूल और मंगलकारी नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सजा-सजाकर हाथोंमें लिए गजगामिनी स्त्रियाँ गाती-बजाती रामके (स्वागतके लिये) लपक चलीं । (३) (उस समय लोगोंकी दशा कुछ पूछिए मत,) जो जैसा (जिस स्थितिमें) था वैसा ही उठ दौड़ा । कोई भी अपने साथ बालकों और वृद्धोंको नहीं ले जा रहा था (क्योंकि उनके कारण गतिमें बाधा पड़ती) । वे एक दूसरेसे पूछे चले जा रहे थे—'क्यों भाई ! क्या दयालु रामको तुमने अपनी आँखों देखा है ?' (४) प्रभु रामको आया जानकर सारी शोभाएँ अयोध्यामें आ समाईं (अयोध्या सज-धजकर निखर उठी) । तीनों प्रकारकी सुहावनी (शीतल, मन्द, सुगन्ध) बयार बह चली और सरयूका जल भी अत्यन्त प्रसन्न (निर्मल) हो उठा । (५) गुरु वशिष्ठ, कुटुम्बके लोग, छोटे भाई शत्रुघ्न और ब्राह्मण-

५१-५२ भरतं प्रणिपत्याथ त्वरितञ्चैत्य भावुकम् । वानरो वेदयामास निशम्य प्रस्थितोऽवधम् ।।अध्या.रा.
५३-५४ श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतस्सत्यविक्रमः । अयोध्यामेत्य सर्वेभ्यः समाचारं न्यवेदयत् ।।—वा.रा.
५५-५६ अयोध्यावासिनः सर्वे समाचारं निशम्य च । निर्जग्मुः सहसा नार्यो युववृद्धकुमारकाः ।।आन.रा०
५७-५८ पाटीरं चारुतुलसी दधिक्षौद्रं सहाक्षतैः । दूर्वा सिद्धार्थसम्पन्नं महामंगल्यकं च यत् ।।
स्वर्णपात्रे महादिव्ये नानारत्नप्रपूरिते । संगृह्य दीपं प्रज्वाल्य ययुर्गायद्वरांगनाः ।।—पद्मपु०
५९-६० निर्यान्ति वृन्दशस्सर्वे रामदर्शनलालसाः । —अध्यात्मरामायण
६१ अयोध्यानगरं रम्यं नानारत्नैश्च शोभितम् । रामागमनमाज्ञाय बभूवच्छविधाम ह ।।—सत्योपा०
६२ सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता ।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरंगहस्तैरुपगूहतीव ।। —रघुवंश

दो०—हरषित गुरु, परिजन, अनुज, भूसुर - बृन्द - समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सनमुख कृपानिकेत ॥ ३ क॥
बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि, मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥ ३ ख॥
राका ससि रघुपति, पुर, सिंधु, देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु, नारि तरंग - समान ॥ ३ ग॥

इहाँ भानुकुल - कमल - दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगर मनोहर।
७० सुनु कपीस! अंगद! लंकेसा। पावन पुरी, रुचिर यह देसा। (१)
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद - पुरान - बिदित, जग जाना।
अवधपुरी - सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ - कोऊ। (२)
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि।
जा मज्जन - तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा। (३)
अति प्रिय मोहिं इहाँ - के बासी। पुरी धामदा मम सुखरासी।
हरषे सब कपि सुनि प्रभु - बानी। धन्य अवध जो राम बखानी। (४)

मण्डलीको साथ लिए-दिए बहुत उल्लासके अत्यन्त प्रेम-भरे मनसे कृपालु रामके स्वागतके लिये भरत चल पड़े ॥ ३ क ॥ बहुत-सी स्त्रियाँ तो आकाशमें उड़ा चला आता हुआ विमान देखनेके लिये अटारियोंपर जा चढ़ीं। उस विमानको देख-देखकर, मगन हो-होकर वे मधुर स्वरसे सुन्दर मंगल गीत गा उठीं ॥ ३ ख ॥ जैसे पूर्ण चन्द्रको देखकर समुद्र हर्षसे उछलने लगता है वैसे ही रामको देखकर सारी अयोध्या हर्षसे नाच उठी। (अटारियोंपर चढ़ी हुई) स्त्रियाँ और उनके गानेका कोलाहल ऐसा लगता था मानो (अयोध्या-रूपी) समुद्रमें तरंगें उठ-उठकर हरहराए जा रही हों ॥ ३ ख ॥

इधर सूर्यवंशके कमलको खिलाए रखनेवाले सूर्य राम (विमानपर बैठे-बैठे) सब वानरोंको अपनी मनोहर अयोध्या दिखाते हुए कहने लगे—'देखो कपीश सुग्रीव! अंगद! लंकापति विभीषण! हमारी यह पुरी बड़ी ही पवित्र है और हमारा यह देश भी बड़ा ही सुन्दर है। (१) यद्यपि सब लोग वैकुण्ठकी बड़ाईके बहुत पुल बाँधा करते हैं और यह बात वेद और पुराणोंमें भी विख्यात है तथा सारा जगत् भी यही जानता है पर मुझे तो अयोध्याके सामने वह (वैकुण्ठ) तनिक भी अच्छा नहीं लगता। (पर क्यों नहीं लगता,) इसका भेद कोई विरला ही जान पाता है। (२) (भेद यही है कि) यह सुहावनी पुरी मेरी जन्म-भूमि है। इसके उत्तरमें वह पवित्र सरयू नदी बहती है जिसमें कोई एक बार स्नान कर ले तो बिना प्रयासके ही वह मेरे पास आ बसे (सामीप्य मुक्ति पा ले)। (३) यहांके निवासी मुझे बड़े ही प्यारे लगते हैं। जो भी कोई इस पुरीमें आ बसता है, उसे और सारे सुख तो मिल ही जाते हैं, साथ ही मेरा धाम भी उसे मिल जाता है।' प्रभुकी यह बात सुनकर

१. मम धामदा पुरी सुखरासी।

६३-६४ भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः। प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैः सह ॥ —वा०रा०
६५-६६ श्रुत्वा स्त्रियो राममुपागतं मुदा प्रहर्षवेगात्कलिताननश्रियः।
अपास्य सर्वं गृहकार्यमाहितं हर्म्याणि चैवारुरुहुः स्वलंकृता ॥ —अध्यात्मरामायण
६७-६८ राकाशशिनमिव रघुपतिमालोक्य नगरसिन्धुर्वनितावीचिभिः परिरभ्यमाणो निर्भरामोदमविन्दत। चम्पू०
६९-७० स्थानं नः पूर्वजानामिदमधिकमसौ प्रेयसी पूरयोध्या।
दूरे आलोक्यते या हुतविविधहविः प्रीणिताऽशेषदेवा ॥
७१-७२ वैकुण्ठाख्यमिदं क्षेत्रं कोटिपुण्यैरवाप्यते। अयोध्याया समं किञ्चिन् न स्वर्गे भूतले तथा ॥
सरयूमहिमानञ्च कश्चिज्जानाति तत्त्वतः। —पद्मपुराण

दो०—आवत देखि लोग सब, कृपासिंधु भगवान।
नगर-निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान॥ ४क॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहिं, तुम कुबेर-पहँ जाहु।
८० प्रेरित राम चलेउ सो, हरष-बिरह अति ताहु॥ ४ख॥

आए भरत-संग सब लोगा। कृस-तनु श्रीरघुबीर-बियोगा।
बामदेव, बसिष्ठ मुनि-नायक। देखे, प्रभु महि धरि धनु-सायक। (१)
धाइ धरे गुरु-चरन-सरोरुह। अनुज-सहित अति पुलक तनो-रुह।
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया। (२)
सकल द्विजन्ह मिलि नायेउ माथा। धरम-धुरंधर रघुकुल-नाथा।
गहे भरत पुनि प्रभुपद-पंकज। नमत जिन्हहिं सुर-मुनि-संकर-अज।
परे भूमि, नहिं उठत उठाए। बर करि, कृपासिंधु उर लाए।
स्यामल गात रोम भे ठाढ़े। नव-राजीव-नयन जल बाढ़े। (४)

छंद—राजीव-लोचन स्रवत जल, तन ललित पुलकावलि बनी।
९० अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन-धनी।

सब वानर प्रसन्न हो उठे और सब आपसमें कहने लगे– 'सचमुच यह अयोध्या अत्यन्त धन्य है जिसके गुणोंका इतना वर्णन स्वयं राम अपने श्रीमुखसे किए जा रहे हैं'॥ ४ क॥ कृपासिंधु भगवान् रामने ज्यों ही देखा कि अयोध्याके सब लोग बढ़े चले आ रहे हैं त्यों ही उन्होंने नगरके पास ही विमान उतार खड़ा किया। विमानसे उतरते ही प्रभु रामने पुष्पक विमानसे कहा–'अब तुम सीधे कुबेरके पास उड़े चले जाओ।' प्रभुकी आज्ञा पाते ही वह विमान तत्काल उड़ चला। उस समय उस विमानको (फिर अपने स्वामी कुबेरके पास पहुँचनेका) हर्ष भी हो रहा था और रामसे अलग होनेका दु:ख भी॥ ४ ख॥ भरतके साथ जितने लोग वहाँ आए दिखाई दिए उनका शरीर रामके वियोगमें सूखकर काँटा हो चला था। प्रभुने ज्यों ही वामदेव, वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियोंको आते देखा त्यों ही उन्होंने अपने धनुष-बाण पृथ्वीपर पटके और (१) अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ गुरुके चरण-कमल जा पकड़े। दोनों भाइयोंका शरीर अत्यन्त पुलकित हुआ जा रहा था। रामको गलेसे लगाकर मुनिराज वशिष्ठ उनका सब कुशल-मंगल पूछने लगे। (रामने कहा—) 'जब आपकी दया हमपर बनी हुई है तब सब कुशल ही कुशल है।' (२) फिर धर्म-धुरीण, रघुकुलके स्वामी रामने सब ब्राह्मणोंसे मिलकर उन सबको प्रणाम किया। फिर भरत बढ़कर रामके उन चरण-कमलोंपर जा गिरे जिन्हें देवता, मुनि, शंकर और ब्रह्मा भी आ-आकर नमस्कार किया करते हैं। (३) भरत धरतीपर ऐसे जा पड़े कि रामके उठाए भी नहीं उठ पा रहे थे। पर कृपालु रामने बलपूर्वक उठाकर उन्हें हृदयसे लगा ही चिपकाया। उनके साँवले शरीरपर रोंगटे खड़े हो उठे और तत्काल खिले हुए कमलके समान उनकी बड़ी-बड़ी आँखें डबडबा आईं। (४) रामके कमल-जैसे नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उनका सुहावना शरीर पुलकित हो उठा। त्रिभुवनके स्वामी राम अपने छोटे भाई भरतको बड़े प्रेमसे हृदयसे चिपटाए

७५-७८ ततो रामाभ्यनुज्ञातं विमानमपतद् भुवि। अवरुह्य तदा रामो विमानग्र्यान्महीतलम्॥
७९-८० अब्रवीत् पुष्पकं देवो गच्छ वैश्रवणं वह। अनुगच्छानुजानामि कुवेरं धनपालकम्॥–अध्या.रा.
८१ मन्त्रिभिः पौरमुख्यैश्च सानुजः कैकयीसुतः। सबलैरवनीपालैराययौ पूर्वजं तदा॥
८२-८५ वामदेवं वसिष्ठं च मातृवृद्धांश्च बान्धवान्। प्रणनाम महातेजा सीतया लक्ष्मणेन च॥
पर्यपृच्छद् गुरुः क्षेमं काकुत्स्थं परिरभ्य च। तवानुक्रोशतो देव शाश्वतं कुशलं मम॥–पद्मपु०
८६-८७ सम्प्राप्य रघुशार्दूलं ववन्दे सानुगैर्वृतः।
समुत्थाप्य चिराद् दृष्टं भरतं रघुनन्दनः। भ्रातरं स्वांकमारोप्य मुदा तं परिषस्वजे॥–अध्यात्म

प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो - पहँ जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले, बर सुखमा लही॥ [२]
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि, बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा! सो सुख बचन - मन - तें भिन्न, जान जो पावई।
अब कुसल कोसल - नाथ! आरत जानि, जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह - बारीस कृपानिधान! मोहिं कर गहि लियो॥ [३]

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन, भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन - भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ॥ ५॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह - संभव दुख मेटे।
१०० सीता - चरन भरत सिर नावा। अनुज - समेत परम सुख पावा। (१)
प्रभु बिलोकि हरषे पुर - बासी। जनित-बियोग बिपति सब नासी।
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह, कृपाल खरारी। (२)
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा - जोग मिले सबहिं कृपाला।

लिए जा रहे थे। भाईको गलेसे लिपटाए हुए राम ऐसे शोभा दे रहे थे कि उसकी उपमा मुझसे देते नहीं बन पा रही है फिर भी (यह समझो) मानो प्रेम और शृङ्गार ही दोनों शरीर धारण करके गले आ मिल रहे हों। भरतसे कृपालु राम कुशल पूछे जा रहे थे, पर भरत थे कि उनके मुखसे बोल नहीं निकल पा रहा था। (शिव कहते हैं—) 'देखो पार्वती! सुनो। (भाईको गले लगाते समयका वह सुख न तो कहा ही जा सकता है और न मनमें ही उसे ठीक-ठीक समझा जा सकता है। उस सुखको तो केवल वही जान सकता है जिसे वह सुख पानेका सौभाग्य मिला हो।' (इसलिये भरतसे बिना कहे रहा नहीं गया। वे बोले—) 'कोशलनाथ! आपने मेरा दुःख समझकर यहाँ आकर मुझे जो दर्शन दे दिया तो अब सब कुशल ही कुशल है। कृपानिधान! आपने विरह-सागरमें डूबते हुए मुझ (अभागे)-को आज हाथ पकड़कर उबार लिया (आपके विरहके कारण मेरे हृदयमें जो व्यथा थी वह सारी व्यथा आपने दर्शन देकर दूर कर डाली)।' फिर प्रभु रामने प्रसन्न होकर शत्रुघ्नको हृदयसे उठा लगाया। इसके पश्चात् लक्ष्मण और भरत दोनों भाई बड़े प्रेमसे गले मिले। (५) फिर शत्रुघ्न और लक्ष्मण गले लगकर मिले और परस्पर विरहसे उत्पन्न जितना दुःख था वह उनका सारा दुःख दूर हो मिटा। भाई शत्रुघ्नके साथ भरतने जब सीताके चरणोंमें सिर जा नवाया तब उन्हें बहुत ही सुख मिला। (१) प्रभु रामको भर-आँख निहारते ही सब पुरवासी निहाल हो उठे। रामके वियोगसे उनके मनमें जो दुःख भरा पड़ा था वह सबका सब दूर हो मिटा। सब लोगोंको प्रेममें इतना विह्वल देखकर खरका वध कर डालनेवाले कृपालु रामने बड़ा अनोखा चमत्कार कर दिखाया। (२) कृपालु राम तत्काल अपने अनेक रूपोंमें सब अयोध्यावालोंसे जो जिस योग्य था उससे उसी भावसे

८८-९२ उदीक्ष्य च ततः कृशं वपुरमुष्य वात्सल्यतः करेण स मुहुः स्पृशन्न विरराम रामश्चिरम्।
स भ्रातरं भरतमभ्यर्यपरिग्रहान्ते पर्यश्रुरस्वजत मूर्धनि चोपजघ्रौ॥ —रघुवंश
९३ कुशलं वदेति संपृष्टो भरतो वक्तुमक्षमः। अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः॥
९६ यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्। —सत्योपाख्यान
९७ शत्रुघ्नं स्वाङ्कमारोप्य रामस्तं परिपस्वजे। —अध्यात्म
९८ पश्यन्ननन्द भरतः परिरभ्य दोर्भ्यां सौमित्रिमार्यसमदुःखकृशीकृतांगम्।
९९ लक्ष्मणञ्च तथा शत्रुसूदनश्चाभ्यवादयत्। —चम्पूरामायण
१००-१ सानुजो भरतः सीता-चरणौ प्रणनाम ह। प्रजा विलोक्य तं दृष्ट्वा जहुर्दुःखं वियोगजम्॥-आन०रा०

कृपा - दृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नर - नारि बिसोकी । (३)
छन - महँ सबहिँ मिले भगवाना । उमा ! मरम यह काहु न जाना ।
ऐहि बिधि सबहिँ सुखी करि रामा । आगे चले सील - गुन - धामा । (४)
कौसल्यादि मातु सब धाईं । निरखि बच्छ, जनु धेनु लवाईं । (४।।)
छंद—जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह, चरन वन परबस गईं ।
दिन - अंत, पुर - रुख, स्रवत थन, हुंकार करि धावत भईं ।
११० अति प्रेम, प्रभु सब मातु भेंटी, बचन मृदु बहु बिधि कहे ।
गइ बिषम बिपति बियोग-भव, तिन्ह हरष - सुख अगनित लहे ।। ४ ।।
दो०—भेंटेउ तनय सुमित्रा , राम - चरन - रति जानि ।
रामहिँ मिलत कैकई , हृदय बहुत सकुचानि ।। ६ क ।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि , हरषे आसिष पाइ ।
कैकइ - कहँ पुनि - पुनि मिले , मन - कर छोभ न जाइ ।। ६ ख ।।
सासुन्ह सबनि मिली बैदेही । चरनन्हि लागि हरष अति तेही ।
देहिँ असीस बूझि कुसलाता । अचल तुम्हार होइ अहिवाता । (१)

एक साथ जा मिले । रामने सबपर अपनी कृपाकी दृष्टि फेरकर सब स्त्री-पुरुषोंका सारा शोक मिटा डाला । (३) इस प्रकार भगवान् क्षण भरमें सब अयोध्यावासियोंसे एक साथ मिल लिए । (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा ! यह भेद वहाँ कोई भी जान नहीं पाया कि राम यहाँ अनेक रूपोंमें सबसे मिल रहे हैं ।' इस प्रकार शील और गुणवाले राम सबको संतुष्ट करते हुए (सबके साथ) आगे बढ़ चले । (४) तब कौशल्या आदि सब माताएँ रामसे मिलनेके लिये ऐसी दौड़ पड़ीं मानो हालकी ब्याई हुई गौएँ अपने बछड़ोंको देखकर दौड़ी चली आ रही हों, (५) मानो अपने बछड़े घर छोड़कर, जो गौएँ हाँककर वनमें चरने भेज दी गई थीं वे दिन बीतनेपर थनोंसे दूध टपकाती और रँभाती हुई नगरकी ओर दौड़ी चली आ रही हों । सभी माताओंसे राम बड़े प्रेमसे आकर मिले और बड़े प्रेमसे उनसे घुल-घुलकर बातें जा कीं । इससे क्या हुआ कि राम-लक्ष्मणके वियोगसे उन सबके मनमें जो व्यथा और कसक भरी हुई थी वह सब जाती रही और उससे सब प्रसन्न भी हुईं और सन्तुष्ट भी । रामके चरणोंमें अपने पुत्र लक्ष्मणकी बहुत प्रीति जानकर सुमित्रा भी रामसे आ मिलीं । कैकेयी भी रामसे मिलने तो आई पर (इतनी अधिक ग्लानिसे भरी हुई थी कि) वह संकोचके मारे धरतीमें गड़ी जा रही थी ।। ६ क ।। लक्ष्मण भी जा-जाकर सब माताओंसे मिले और उनसे आशीर्वाद पा-पाकर बड़े प्रसन्न हुए । यद्यपि वे कैकेयीसे भी कई बार जाकर मिले तो सही, पर (कैकेयीके व्यवहार कारण) उनके मनमें जो खीझ भरी हुई थी वह नहीं मिट पा रही थी ।। ६ क ।। सीताने भी जाकर सब सासोंसे भेंट की और उनके पाँव पड़-पड़कर वे बहुत ही प्रसन्न हुईं । सब (माताएँ) उनका कुशल भी पूछती जाती थीं और उन्हें आशीर्वाद भी दिए जाती थीं कि तुम्हारा

१०२-५ रूपाण्यनेकानि विधाय श्रीहरिर्यथार्हमम्भोरुहलोचनेऽमिलत् ।
प्रेमातुरः पौरचयैस्समं शिवे नाज्ञासिषुर्भेदमिमं जनाः क्षणम् ।। —पद्मपुराण
अन्वग्रहीत् प्रणमतः शुभदृष्टिपातैर्वार्तानुयोगमधुराक्षरया च वाचा । —रघुवंश
१०६ सर्वानेवं समाश्वास्य राघवोऽग्रे ससार ह । —आनन्दरामायण
१०७ कौशल्याद्या मातरस्ता रामदर्शनकांक्षया । प्रेमातुरा यथाऽधावन् वत्सं वीक्ष्य स्म धेनवः ।।
११२-१५ कैकेयीं च सुमित्रां च ववन्दाते पुनश्च तौ । —सत्योपाख्यान
११६ क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ।। —रघुवंश

सब रघुपति मुख-कमल बिलोकहिं । मंगल जानि, नयन-जल रोकहिं ।
कनक-थार आरती उतारहिं । बार-बार प्रभु-गात निहारहिं । (२)
१२० नाना भाँति निछावरि करहीं । परमानंद हरष उर भरहीं ।
कौसल्या पुनि-पुनि रघुबीरहिं । चितवति कृपासिंधु रनधीरहिं । (३)
हृदय बिचारति बारहिं बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ।
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे । निसिचर सुभट महाबल भारे । (४)
दो०—लछिमन अरु सीता-सहित, प्रभुहिं बिलोकति मात ।
परमानंद-मगन मन, पुनि-पुनि पुलकित गात ॥ ७ ॥
लंकापति, कपीस, नल-नीला । जामवंत, अंगद सुभ-सीला ।
हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज सरीरा । (१)
भरत-सनेह-सील-व्रत-नेमा । सादर सब बरनहि अति प्रेमा ।
देखि नगरबासिन-कै रीती । सकल सराहहिं प्रभु-पद-प्रीती । (२)
१३० पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि-पद लागहु सकल सिखाए ।
गुरु बसिष्ठ कुल-पूज्य हमारे । इन्ह-की कृपा दनुज रन मारे । (३)
ए सब सखा, सुनहु मुनि! मेरे । भए समर-सागर-कहँ बेरे ।

सोहाग अचल रहे । (१) सब माताएँ टकटकी लगाए रामका मुख-कमल देखे चली जा रही थीं और मंगलका अवसर समझकर नेत्रोंमें उमड़ते हुए अपने प्रेमाश्रुओंको बड़ी कठिनाईसे रोक पा रही थीं । वे सोनेके थाल ले-लेकर रामकी आरती भी उतारे जा रही थीं और बार-बार प्रभुके अंग-अंग भी निहारे जा रही थीं । (२) वे रामपर अनेक प्रकारकी वस्तुएँ न्योछावर करती हुई अपने हृदयमें फूली नहीं समा रही थीं । माता कौशल्या बार-बार कृपालु और रणधीर रामको निहारे जा रही थीं (३) और अपने हृदयमें बार-बार यही (आश्चर्यसे) सोचे जा रही थीं कि '(इतने कोमल) राम-लक्ष्मणने लंकापति रावणको मारा होगा तो कैसे मारा होगा, क्योंकि मेरे ये दोनों बच्चे ठहरे इतने सुकुमार (कोमल) और उधर सब राक्षस ठहरे बड़े-बड़े वीर योद्धा और महान् बलवान् ।' (४) लक्ष्मण और सीताके साथ-साथ रामको माता बार-बार निहारे जा रही थीं । वे मन ही मन बड़ी मगन हुई पड़ रही थीं और उनका शरीर बार-बार पुलकित हो-हो उठ रहा था । (७) लंकापति विभीषण, वानरराज सुग्रीव, नल, नील, जामवन्त, अंगद तथा हनुमान् आदि सभी श्रेष्ठ शील-स्वभाव-वाले वीर वानरोंने सुन्दर मनुष्यों-जैसे शरीर सजा बनाए । (१) वे सब अत्यन्त प्रेम और आदरके साथ भरतके प्रेम, सरल स्वभाव, व्रत और नियम आदिकी जी भरकर प्रशंसा किए जा रहे थे और नगर-वासियोंके व्यवहार तथा रामके चरणोंमें उनकी प्रीति देखकर सब उनकी बहुत-बहुत सराहना किए जा रहे थे । (२) तभी रामने अपने सब मित्रों (विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् आदि)-को बुलाकर कहा—'आओ, तुम सब आकर मुनि वशिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करो । ये हमारे कुलके पूज्य गुरु वशिष्ट हैं । यह इन्हींकी कृपा थी कि हम युद्धमें उन सब राक्षसोंको मार पाए हैं ।' (३) (यह कहकर वे मुनि वशिष्ठसे बोले—)'मुनिराज ! ये सबके सब मेरे बड़े मित्र हैं । समुद्रमें जैसे जहाज काम आता है वैसे ही संग्राममें ये मेरे काम आए हैं (ये न होते तो मैं कभी युद्धमें

११९ दीपं स्वर्णमये पात्रे गोघृतेन समन्वितम् । सीतया सहितं रामं नीराजयन्ति सम्मुखे ॥
१२१-२२ पश्यन्त्योपि पुनश्चाम्बाः पश्यन्ति रघुनन्दनौ । परामृशन्ति मृदुलौ जघ्नतू रावणं कथम् ॥—सत्यो०
१२६-२८ सुग्रीवो युवराजश्च हनूमांश्च विभीषणः । मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषितः ॥
भरतस्य गुणौदार्यसौजन्यानि स्तुवन्ति च । —अध्यात्मरामायण

मम हित-लागि जनम इन्ह हारे। भरतहु-तें मोहिं अधिक पियारे। (४)
सुनि प्रभु-बचन मगन सब भए। निमिष-निमिष उपजत सुख नए। (४॥)
दो०—कौसल्या-के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नाएउ माथ।
आसिष दीन्हें हरषि, तुम, प्रिय मम, जिमि रघुनाथ॥ ८ क॥
सुमन-बृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़े[1] अटारिन्हि देखहिं, नगर-नारि-नर[2]-बृन्द॥ ८ ख॥
कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबन्हि धरे सजि निज-निज द्वारे।
१४० बंदनवार, पताका, केतू। सबन्हि बनाए मंगल-हेतू। (१)
बीथीं सकल सुगंध सिंचाई। गज-मनि-रचि बहु चौक पुराई।
नाना भाँति सुमंगल साजे। नगर निसान हरषि बहु बाजे[3]। (२)
जहँ-तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस, हरष उर भरहीं।
कंचन थार आरती नाना। जुवती सजे करहिं सुभ गाना। (३)
करहिं आरती आरति-हर-के। रघुकुल-कमल-बिपिन-दिनकर-के।
पुर-सोभा-संपति-कल्याना। निगम-सेष-सारदा बखाना। (४)

न जीत पाता)। इन सबने मेरे लिये अपना जीवन (दाँवपर) लगा दिया था। ये सब मुझे भरतसे भी अधिक प्यारे हैं।' (४) प्रभुके ये वचन सुनकर तो सब (वानर और विभीषण) फूलकर ऐसे कुप्पा हो उठे कि उन्हें क्षण-क्षणपर कुछ नया ही नया आनन्द मिलता जाने लगा। (५) फिर उन्होंने (रामके उन मित्रोंने) कौशल्या माताके चरणोंमें सिर जा नवाया। कौशल्याने सबको आशीर्वाद देते हुए कहा—'मैं तुम सबको वैसा ही अपना प्यारा बेटा समझती हूँ जैसा रामको'॥ ८ क॥ आकाशसे इतने फूल बरसे कि आकाश फूलोंसे भर उठा और आनन्द-कन्द भगवान् जब अपने भवनकी ओर चलने लगे तो ठट्ठके ठट्ठ नगरके नर-नारी उनकी झाँकी पानेके लिये अपनी-अपनी अटारियोंपर जा चढ़े॥ ८ ख॥ सब लोगोंने बड़े सुन्दर ढंगसे सजा-सँवारकर सोनेके कलश अपने-अपने द्वारपर ला सजा धरे। (रामके स्वागतके) मंगल (शुभ) कार्यके लिये सब लोगोंने अपने-अपने घरोंपर बन्दनवारें ला टाँगीं और ध्वजा, पताका आदि खड़ी कर फहराईं। (१) सभी मार्ग सुगंधित पदार्थोंसे सींच दिए गए। गजमुक्ताओंसे रच-रचकर स्थान-स्थानपर बहुतसे चौक पूर डाले गए, अनेक प्रकारके मंगल साज सजा दिए गए और हर्षपूर्वक नगर भरमें स्थान-स्थानपर बहुतसे नगाड़े बज उठे। (२) जहाँ-तहाँ स्त्रियाँ (रामपर) न्योछावर करती और आशीषें देती हुई हृदयमें फूली नहीं समा रही थीं। बनी-ठनी नवेलियाँ सोनेके थालोंमें आरती सजा-सजाकर अनेक प्रकारके मंगल गीत गाए चली जा रही थीं (३) और सब दुःख हर डालनेवाले, रघुकुलके कमल खिलानेवाले सूर्य रामकी आरती उतारे जा रही थीं। (शिव कहते हैं—)'देखो पार्वती! नगरकी शोभा, सम्पत्ति और आनन्दका वर्णन वेद,

१. चढ़ी। २. वर। ३. हरषि नगर निसान बहु बाजे।

१३२-३३ अथाहूयद्राजपुत्रः सुग्रीवप्रमुखान् सखीन्। वशिष्ठस्य गुरोरस्य पादयोः प्रणमन्तु च॥
१३४ एते च मत्कृते प्राणोत्सर्जने सुतरां क्षमाः। सखायो मे मुनेऽभूवन् प्लवास्समरसागरे॥
१३५-३६ कौशल्यांघ्रियुगं तैश्च प्रणतं सखिभिर्मुदा। आशिषा योजयामास राममातर्यशस्विनी॥—पद्मपुराण
१३७-३८ पुष्पवृष्ट्या नभो व्याप्तं प्रतस्थे रघुनन्दनः। हर्म्यस्था ललना रामं पश्यन्ति श्रीधरं प्रभुम्॥ पद्मपु०
१४० ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे। सेचिता पृथिवी कृत्स्ना हिमशीतेन वारिणा॥वा.रा.
१४५ चक्रुर्नीराजनं तस्य नानाबलिपुरस्सरम्। —आनन्दरामायण

तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं। उमा ! तासु गुन नर किमि कहहीं। (४॥)

दो०—नारि कुमुदिनी, अवध सर, रघुपति - बिरह दिनेस।
अस्त भए बिगसित भईं, निरखि राम - राकेस॥ ९ क॥

१५० होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि, बाजहिं गगन[1] निसान।
पुर - नर - नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान॥ ९ ख॥

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए, भवानी।
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हाँ। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हाँ। (१)
कृपासिंधु तब मंदिर गए। पुर - नर - नारि सुखी सब भए।
गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आज सुदिन - सुघरी - समुदाई[2]। (२)
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन।
मुनि बसिष्ठ - के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए। (३)
कहहिं बचन मृदु, बिप्र अनेका। जग - अभिराम राम - अभिषेका।
अब बिलंब मुनिवर ! नहिं कीजै[3]। महाराज - कहँ तिलक करीजै। (४)

शेष और सरस्वती सब करते तो सही (४) पर वे भी इतना वैभव देखकर (ऐसे) ठगेसे (मुग्ध) रह जाते हैं (कि उनसे भी उसका वर्णन करते नहीं बनता) तब भला (तुलसीदास-जैसे) मनुष्य उनका वर्णन कैसे कर पा सकते हैं ?' (४॥) अयोध्या ऐसा सरोवर था जिसमें स्त्रियाँ ही कुमुदिनी थीं, जो रामके विरहके सूर्यसे मुरझा गई थीं (जैसे सूर्यके उदय रहते हुए कुमुदिनी या कोईं मुँदी पड़ी रहती है वैसे ही रामके विरहसे सब स्त्रियाँ मुरझाई पड़ी थीं)। अब उस विरहके सूर्यका अस्त होते ही पूर्ण चन्द्रके रूपमें रामको देखकर वे पुनः (वैसे ही) खिल उठीं (जैसे रातको चन्द्रमाके उदय होनेपर कुमुदिनी या कोईं खिल उठती हैं) ॥ ९ क ॥ चारों ओर जिधर देखो उधर अनेक प्रकारके शुभ शकुन हुए चले जा रहे थे। आकाशमें नगाड़े बजे चले जा रहे थे। इस प्रकार नगरके सभी नर-नारियोंको आनन्द देते हुए भगवान् राम अपने भवनकी ओर बढ़ चले ॥ ९ ख ॥ (पार्वतीसे शिव कहते हैं—) 'देखो भवानी ! जब रामको ज्ञात हुआ कि माता कैकेयी बड़ी सकुचाई बैठी हैं (कि मैं रामके पास क्या मुँह लेकर जाऊँ) तो सबसे पहले वे उन्हींके भवनमें गए और उनको बहुत समझा-बुझाकर संतुष्ट कर चुकनेपर (उनकी सारी झिझक दूर कर चुकनेपर) ही राम अपने भवन गए।' (१) नगरके नर-नारी भी तभी चैनकी साँस ले पाए जब उन्हें ज्ञात (पूर्ण विश्वास) हो गया कि कृपालु राम अब अपने भवनमें जा पहुँचे हैं। गुरु वशिष्ठने तत्काल ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि आज दिन भी अच्छा है और मुहूर्त भी उत्तम है। (२) आप सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर आज्ञा दे दें तो आज ही रामको सिंहासनपर ला बिठाया जाय। वशिष्ठ मुनिकी मनभावनी बात सुनकर सब ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हो उठे। (३) बहुतसे ब्राह्मण तो बड़े प्रेमसे यहाँतक कह बैठे कि 'रामके राज्याभिषेकसे तो जगत्को आनन्द ही आनन्द मिलेगा इसलिये मुनिवर ! अब आप देर क्यों किए डाल रहे हैं। झटपट महाराज रामका राज-तिलक कर ही डालिए।' (४) (फिर क्या था !)

१. नाक। २. आजु सुघरी सुदिन समुदाई। ३. अब मुनिवर बिलंब नहिं कीजै।

१४६-४७ अयोध्यायाश्च माहात्म्यं वक्तुं शक्तो न चाब्जजः। इतरेषां च का शक्तिर्विश्वासाद्रहितात्मनाम्।
१५०-५१ सर्वानेवं प्रतोप्याशु ययौ स्वसदनं हरिः। —सत्योपाख्यान
१५४ मन्दिरे प्रतियाते तु नैजं श्रीरघुनन्दने। पौरा नार्य्यस्तथा चान्ये शं प्रापुः समबुद्धयः॥
१५६ भद्रासनोपवेशार्थमनुजानीत भूसुराः। रामस्य सुमुहूर्त्तेऽद्य यूयमित्याह देशिकः॥
१५९ श्रुत्वा मौनीं गिरं सर्वे विलम्बस्वेति मावदन्। —सत्योपाख्यान

१६० दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र-सन , सुनत चलेउ हरषाइ ।
रथ अनेक, बहु बाजि-गज , तुरत सँवारे जाइ ।। १० क ।।
जहँ-तहँ धावन पठइ पुनि , मंगल द्रब्य मँगाइ ।
हरष-समेत बसिष्ठ-पद , पुनि सिर नायउ आइ ।। १० ख ।।

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन सुमन-बृष्टि झर लाई ।
राम कहा सेवकन्ह बुलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई । (१)
सुनत बचन जहँ-तहँ जन धाए । सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए ।
पुनि करुनानिधि, भरत हँकारे । निज कर राम, जटा निरुआरे । (२)
अन्हवाए प्रभु तीनिउँ भाई । भगत - कृपाल - बछल रघुराई[1] ।
भरत - भाग्य, प्रभु - कोमलताई । सेष कोटि-सत सकहिं न गाई । (३)
१७० पुनि, निज जटा राम बिबराए । गुरु - अनुसासन माँगि, नहाए ।
करि मज्जन, प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग देखि सत लाजे । (४)

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहिं , मज्जन तुरत कराइ ।
दिव्य बसन, बर भूषन , अँग-अँग सजे बनाइ ।। ११ क ।।
राम-बाम-दिसि सोभति , रमा रूप - गुन - खानि ।
देखि मातु सब हरषीं , जनम सुफल निज जानि ।। ११ ख ।।

मुनि वशिष्ठने सुमंत्रको (राजतिलकका सारा प्रबन्ध) समझा बताया । वे भी सुनते ही प्रसन्न होकर चल दिए और उन्होंने तुरन्त अनेक रथ, घोड़े और हाथी सजवा खड़े किए ।। १० क ।। और जहाँ-तहाँ दूत भेज-भेजकर और मांगलिक वस्तुएँ मँगवा-मँगवाकर, हर्षपूर्वक वशिष्ठके चरणोंमें सिर आ नवाया ।। १० ख ।। अयोध्यापुरी तो यों ही बहुत सुन्दर ढंगसे सजी-सजाई थी उसपर पुष्पोंकी झड़ी लगाकर देवताओंने उसे और भी सुन्दर बना डाला । रामने अपने सेवकोंको बुलाकर कहा— 'जाओ भाई ! हमसे पहले हमारे इन मित्रोंको ले जाकर स्नान कराओ ।' (१) रामके वचन सुनते ही सेवक लोग जहाँ-तहाँ दौड़ चले और ले जा ले जाकर उन्होंने सुग्रीव आदि सब वानरोंको भली भाँति मल-मलकर जा नहलाया । फिर करुणानिधान रामने भरतको बुला लिया और अपने हाथोंसे उनकी जटा खोल सुलझाई । (२) फिर भक्तोंपर कृपा करनेवाले और भक्त-वत्सल रामने अपने तीनों भाइयोंको भी स्नान करवाया । भरतके सौभाग्य और प्रभु रामके प्रेमका वर्णन अरबों शेष भी मिलकर करना चाहें तो भी नहीं कर पा सकते । (३) यह सब कर चुकनेपर रामने अपनी भी जटाएँ खोल सुलझाईं और गुरुसे आज्ञा माँगकर स्नान करने चले गए । स्नान करके जब रामने आभूषण पहन लिए तब तो उनके अंग-अंगकी शोभा देख-देखकर सैकड़ों कामदेव भी लजा-लजाकर सिर झुका बैठे । (४) सासोंने भी तुरन्त जानकीको बड़े आदरसे नहला-धुलाकर अनेक दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषणोंसे उनके अंग-अंग भली भाँति सँवार सजाए ।। ११ क ।। रामकी बाईं ओर सुन्दरता और गुणोंसे भरी जानकी बैठी ऐसी शोभा दे रही थीं कि उन्हें देख-देखकर सब माताएँ

१. भगत बछल कृपाल रघुराई ।

१६०-६१ ततो वशिष्ठवचनात् सुमन्त्रो नाम सारथिः । रथानश्वान् गजाञ्छ्रेष्ठान् त्वरितं समसज्जत ।।
१६२-६३ भृत्यद्वारा समानाय्य द्रव्यं मङ्गल्यमुत्तमः । देशिकाग्रे सुमन्त्रश्चाब्रवीन् नम्रो मुहुर्मुहुः ।।
१६४ अयोध्यानगरं रम्यैर्नानारत्नैश्च शोभितम् । तदा खेचरवाद्यानि नेदुः कुसुमवृष्टिभिः ।।–सत्योपा०
१६६-७१ विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः । महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ।:–अध्या०
१७२-७३ प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः । आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ।।
१७४-७५ वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम् । रामस्य जनयित्र्यस्ता मुदीक्ष्यानन्दसम्प्लुताः ।।वा.रा.

सुनु खगेस ! तेहि अवसर , ब्रह्मा - सिव - मुनि - बृन्द ।
चढ़ि बिमान आए सब , सुर, देखन सुख-कंद ॥ ११ ग ॥
प्रभु बिलोकि, मुनि-मन अनुरागा । तुरत दिब्य सिंघासन माँगा ।
रबि-सम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई । (१)
१८० जनक - सुताहि - सहित रघुराई[1] । पेखि, प्रहरषे मुनि-समुदाई ।
बेद-मंत्र तब द्विजन उचारे । नभ सुर-मुनि जय - जयति पुकारे । (२)
प्रथम बसिष्ठ तिलक प्रभु कीन्हाँ[2] । पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हाँ ।
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार-बार आरती उतारी । (३)
बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हें । जाचक सकल अजाचक कीन्हें ।
सिंघासन - पर त्रिभुवन - साँई । देखि, सुरन दुन्दुभी बजाई । (४)
छंद—नभ दुन्दभी बाजहिं बिपुल , गंधर्ब-किन्नर गावहीं ।
नाचहिं अपछरा-बृन्द , परमानंद सुर-मुनि पावहीं ।
भरतादि अनुज , बिभीषनांगद , हनुमदादि-समेत ते ।
गहे छत्र,चामर,व्यजन, धनु,असि, चर्म, सक्ति, बिराजते ॥ [५]

यही समझ-समझकर बहुत प्रसन्न हुई जा रही थीं कि हमारा जन्म सफल हो गया ॥ ११ ख ॥ (काक-भुशुंडि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! उस समय ब्रह्मा शिव, बहुतसे मुनि तथा सब देवता जिन्हें भी देखो वे सब विमानोंपर चढ़े आनन्दकन्द रामका दर्शन करने वहाँ आ पहुँचे ॥ ११ ग ॥ प्रभु रामको देखकर मुनि वशिष्ठका मन भी प्रेमसे उमड़ पड़ा । उन्होंने तुरन्त वह दिव्य सिंहासन भेज मँगवाया जो सूर्यके समान ऐसा दमका पड़ रहा था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । ब्राह्मणोंको सिर नवाकर राम उसपर आ विराजमान हुए । (१) जानकीके साथ रामको (सिंहासन-पर विराजमान) देखकर तो सब मुनि हर्षित हो उठे । सब ब्राह्मण वेद-मंत्रोंका पाठ करने लगे और आकाशमें देवता और मुनि जय-जयकार कर उठे । (२) सबसे पहले वशिष्ठ मुनिने ही उन्हें तिलक किया, फिर उन्होंने सब ब्राह्मणोंको आज्ञा दी कि आप लोग भी उठ-उठकर रामको तिलक लगाते चलिए । पुत्रको राज-सिंहासनपर बैठे देखकर सब माताएँ इतनी मगन हो उठीं कि वे बार-बार जा-जाकर प्रभुकी आरती ही उतारे जा रही थीं । (३) उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत-बहुत दान दे डाला । जितने याचक (मंगन) वहाँ आ पहुँचे थे (उन सबको इतना अधिक दान दिया गया कि) वे सबके सब सेठ बन चले । ज्योंही देवताओंने देखा कि त्रिलोकीनाथ सिंहासनपर आ बिराजे हैं त्योंही देवता नगाड़े बजा उठे । (४) आकाशमें ढमाढम नगाड़े गड़गड़ा उठे, गन्धर्व और किन्नर तानें अलापने लगे और बहुत सी अप्सराएँ आकाशमें ही खड़ी थिरक उठीं । (यह मनोहर दृश्य देख-देखकर) वहाँ जितने देवता और मुनि थे सब आनन्दमग्न हो उठे । सभी छोटे भाई (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) तथा विभीषण, अंगद और हनुमान् आदि सब सखा हाथोंमें छत्र, चँवर, पंखा, धनुष, तलवार, ढाल और शक्ति ले-लेकर उनके पीछे जा खड़े हुए । [५] जानकीके साथ बैठे हुए सूर्यवंशके भूषण रामके अंग-अंगमें अनेक कामदेवोंकी छबि झलक मारे जा रही थी । पनियल बादलोंके समान सुन्दर रामके श्याम शरीरपर

१. जनकसुता समेत रघुराई । २. प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा ।

१७६-७७ उमया सहितो देवश्शङ्करो रघुनन्दनम् । सर्वदेवगणैर्युक्तो दृष्ट्वा हर्षमुपागतः ॥
१७८-८२ रामं रत्नमये पीठे ससीतं सन्यवेशयत् । अभ्यषिञ्चन् रघुश्रेष्ठं वासवं वसवो यथा ॥
१८३-८४ कौसल्या च सुमित्रा च कैकयी राजयोषितः । परमानन्दसम्पन्ना याचकेभ्यो ददुर्धनम् ॥
१८५-८६ प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात खात् ॥
छत्रञ्च तस्य जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् । सुग्रीवराक्षसेन्द्रौ च दधतुः श्वेतचामरे ॥—वा.रा.

१९० श्री-सहित दिनकर-बंस-भूषन काम-बहु-छबि सोहई ।
नव अंबुधर - बर - गात, अंबर पीत, सुर-मन मोहई ।
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन, अंग - अंगन्हि प्रति सजे ।
अंभोज-नयन, बिसाल उर-भुज, धन्य नर निरखंति जे ॥ [६]
दो०—वह सोभा समाज-सुख, कहत न बनै खगेस ।
बरनै सारद-सेष - स्रुति, सो रस जान महेस ॥ १२ क ॥
भिन्न-भिन्न अस्तुति करि, गे सुर निज - निज धाम ।
वंदी-बेष बेद तब, आए जहँ श्रीराम ॥ १२ ख ॥
प्रभु सरबज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपानिधान ।
लखेउ न काहू मरम कछु, लगे करन गुन-गान ॥ १२ ग ॥
२०० छंद—जय सगुन-निरगुन-रूप, रूप अनूप, भूप-सिरोमने ।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज-बल हने ।
अवतार नर, संसार-भार बिभंजि, दारुन दुख दहे ।
जय प्रनतपाल, दयाल प्रभु ! संयुक्त-सक्ति ! नमामहे ॥ [७]
तव बिषम मायाबस सुरासुर-नाग-नर-अग-जग हरे ।
भव-पथ भ्रमत अति दिवस-निसि बहु काल कर्म-गुननि-भरे ।
जे नाथ करि करुना बिलोके, त्रिबिध दुख ते निर्बहे ।
भव-खेद-छेदन-दच्छ ! हम-कहँ रच्छ राम ! नमामहे ॥ [८]

पड़ा हुआ पीताम्बर देवताओंका मन भी मोहित किए डाल रहा था । उनके सिरपर मुकुट और अंगद (भुजबन्द) आदि अनेक रंग-ढंगके आभूषण अंग-अंगपर सजे खिले पड़ रहे थे । उनके नेत्र कमलके समान थे । उनका वक्षस्थल चौड़ा और उनकी भुजाएँ लम्बी-लम्बी और भरी हुई थीं, ऐसे रामकी झाँकी जो मनुष्य पा ले वह धन्य है । [६] (काकभुशुंडि कहते हैं–) 'देखो गरुड ! वह शोभा, वह समाज (राग-रंग) और वह आनन्द मुझसे तो कहते नहीं बन पा रहा है । हाँ, सरस्वती, शेष और वेद वर्णन करना चाहें तो संभवतः शोभा और समाजका वर्णन कर पा सकें पर जहाँतक आनन्दकी बात है, वह (आनन्द) यदि कोई जानता भी है तो अकेले शंकर ही जानते हैं ।। १२ क ॥ सब देवता अलग-अलग स्तुति कर-करके अपने-अपने लोक लौट गए । तब चारणका वेष बनाए हुए चारों वेद रामके सामने आ खड़े हुए ॥ १२ ख ॥ कृपालु सर्वज्ञ प्रभु रामने आते ही उनका बहुत आदर-सत्कार किया । यह भेद भी कोई वहाँ ताड़ न पाया (कोई पहचान न सका कि इन चारणोंके रूपमें ये वेद ही हैं) और तब वे (चारों वेद) रामके गुणोंका वर्णन करने लगे—॥ १२ ग ॥ 'हे सगुण और निर्गुण रूपवाले ! हे अनुपम रूपवाले ! हे राजाओंके शिरोमणि ! आपकी जय हो । आपने अपनी प्रचण्ड भुजाओंके बलसे रावण आदि प्रचण्ड, प्रबल और दुष्ट राक्षसोंको पछाड़ मारा । आपने मनुष्यका अवतार लेकर संसारका भार मिटाकर सबके दुःख भस्म कर डाले । हे शरणागतके रक्षक ! हे दयालु प्रभो ! मैं आपकी शक्ति (जानकी)-के साथ आपको नमस्कार करता हूँ । [७] हे हरे ! सुर, असुर, नाग, नर तथा समस्त चराचर आपकी प्रचण्ड मायाके फेरमें फँसे रहनेके कारण काल, कर्म और गुणोंके चक्करमें पड़े हुए दिन-रात अनन्त भव (आवागमन)-के मार्गमें भटकते फिर रहे हैं । नाथ ! जिन्हें आपने एक बार भी अपनी करुणाकी दृष्टिसे देख लिया, वे तीनों (दैहिक, दैविक, और भौतिक) तापोंसे तत्काल मुक्त हो गए । जन्म-मरणके सब दुःख काट

जे ज्ञान - मान - बिमत्त, तव भव - हरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुर - दुर्लभ पदादपि, परत हम देखत हरी ।
२१० बिस्वास करि, सब आस परिहरि, दास तव जे होइ रहे ।
जपि नाम तव, बिनु स्रम तरहिं भव, नाथ सोइ स्मरामहे ।। [९]
जे चरन सिव - अज-पूज्य, रज सुभ परसि मुनि - पतनी तरी ।
नख - निर्गता, मुनि - बंदिता, त्रैलोक - पावनि सुरसरी ।
ध्वज - कुलिस - अंकुस - कंज - जुत, बन फिरत कंटक जिन लहे ।
पद - कंज - द्वंद्व ! मुकुंद ! राम ! रमेस, नित्य भजामहे ।। [१०]
अव्यक्त, मूलमनादि - तरु, त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध, साखा पंच - बीस, अनेक पर्न - सुमन घने ।
फल जुगल बिधि कटु - मधुर, बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे ।
पल्लवत, फूलत, नवल नित संसार - बिटप ! नमामहे ।। [११]
२२० जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य - मन - पर ध्यावहीं ।
ते कहहु, जानहु, नाथ ! हम तव सगुन - जस नित गावहीं ।

सकनेमें कुशल राम ! आप हमारी रक्षा कीजिए । हम आपको नमस्कार करते हैं । [८] हे हरि ! जो लोग मिथ्या ज्ञानके अभिमानमें मतवाले होकर भव-बन्धन (जन्म-मृत्यु)-को काट डाल सकनेवाली आपकी भक्तिका आदर नहीं करते उन्हें हम देखते हैं कि वे उन पदोंको पा लेनेपर भी नीचे गिर-गिर पड़ते हैं जो पद देवताओंको भी नहीं प्राप्त हो पाते । परन्तु जो लोग सब आशाएँ छोड़कर केवल आपपर भरोसा किए आपके दास हुए बैठे रहते हैं, वे केवल आपका नाम जपकर ही बिना परिश्रमके भवसागर पार हो उतरते हैं । नाथ ! ऐसे शक्तिशाली आपका हम स्मरण करते हैं । [९] शिव और ब्रह्मा आदि भी जिन चरणोंकी पूजा करते हैं, जिन चरणोंकी कल्याणमयी धूलका स्पर्श करके गौतमकी पत्नी अहल्या तर गई, जिन चरणोंके नखसे वह देवनदी गंगा आ निकलीं जिनकी वन्दना मुनि लोग निरन्तर करते रहते हैं और जिन्होंने तीनों लोकोंको पवित्र कर डाला, जिन चरणोंमें ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमलके चिह्नोंकी रेखाएँ पड़ी हुई हैं, जिन चरणोंमें वनमें भ्रमण करते समय काँटे चुभ जानेसे घट्टे पड़ गए हैं, हे मुकुन्द ! हे राम ! हे रमेश ! हम आपके उन्हीं दोनों चरण-कमलोंका नित्य भजन करते रहते हैं । [१०] वेद-शास्त्रोंने कहा है कि जिसकी उत्पत्ति अव्यक्त (प्रकृति)-से होती है, जो अनादि है, जिसकी[1] चार त्वचाएँ (छाल), छह तने, पचीस शाखाएँ (डालें, टहनियाँ), अनेक पत्ते और बहुतसे फूल हैं, जिसमें कड़वे और मीठे दो प्रकारके फल लगा करते हैं, जिसपर एक ही लता उसीपर आश्रित होकर चढ़ी रहती है, जिसमें सदा नये-नये पत्ते और फूल निकलते-खिलते रहते हैं, ऐसे संसाररूपी वृक्ष बने हुए आपको हम नमस्कार करते हैं । (११) जो लोग ब्रह्मको अजन्मा, अद्वैत, अनुभवसे ही जाने जा सकनेवाले और मनकी पहुँचसे परे कहकर उसका ध्यान किया करते हैं, वे वैसा कहते और समझते रहें, पर नाथ ! हम तो

१. संसार-वृक्ष-रूपी भगवान् :—४ त्वचाएँ = चार अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) । छह तने = छह ऊर्मियाँ (अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते और विनश्यति) । २५ शाखाएँ = मूल प्रकृति, महत्, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, पावक, आकाश, पवन), दस इन्द्रियाँ, मन एवं पुरुष । पत्ते और फूल = विविध वासनाएँ । दो प्रकारके फल = सुख (मीठा) और दुःख (कडुआ) । बेल = अनादि शक्ति, जो सदा उस वृक्षपर आश्रित रहती है ।

करुनायतन प्रभु ! सद्गुनाकर ! देव ! यह बर माँगहीं।
मन - बचन - कर्म बिकार तजि, तव चरन हम अनुरागहीं॥ [१२]

दो०—सबके देखत बेदन, बिनती कीन्हि उदार।
अंतरधान भए पुनि, गए ब्रह्म - आगार॥ १३ क॥
बैनतेय ! सुनु, संभु तव, आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर॥ १३ ख॥

छंद—जय राम, रमा - रमनं, समनं। भवताप - भयाकुल, पाहि जनं।
अवधेस ! सुरेस ! रमेस ! बिभो। सरनागत माँगत, पाहि प्रभो। (१)
२३० दससीस - बिनासन - बीस - भुजा। कृत - दूरि महा-महि - भूरि - रुजा।
रजनीचर - बृंद पतंग रहे। सर - पावक - तेज प्रचंड दहे। (२)
महि - मंडल - मंडन चारुतरं। धृत - सायक - चाप - निखंग - बरं।
मद - मोह - महा - ममता - रजनी। -तम - पुंज, दिवाकर - तेज - अनी। (३)
मनजात - किरात निपात किये। मृग - लोग - कुभोग सरे न हिये।
हति, नाथ ! अनाथनि पाहि हरे। बिषया - बन पाँवर भूलि परे। (४)
बहु रोग - बियोगन्हि लोग हये। भवदंघ्रि - निरादर - के फल ये।
भवसिंधु अगाध परे नर ते। पद - पंकज - प्रेम न जे करते। (५)
अति दीन, मलीन, दुखी नितहीं। जिन्हके पद - पंकज प्रीत नहीं।
अवलंब भवंत कथा जिन्ह-के। प्रिय संत-अनंत सदा तिन्ह-के। (६)

नित्य आपके सगुण (साकार) रूपका ही वर्णन करते रहते हैं। करुणाके धाम ! प्रभो ! सद्गुणोंके भांडार ! देव ! हम आपसे यही वर माँगते हैं कि विकार-रहित होकर हम मन, वचन और कर्मसे आपके चरणोंसे प्रेम करते रहें।' (६) सब लोगोंके देखते-देखते यह उदार प्रार्थना करके वेद तत्काल अन्तर्धान होकर ब्रह्मलोक चले गए ॥ १३ क ॥ (काकभुशुंडि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! वेदोंके चले जानेपर रामके पास शंकर आ पहुँचे। जिस समय वे गद्गद होकर रामकी स्तुति करने लगे उस समय उनका शरीर पुलकित हो-हो जा रहा था'॥ १३ ख ॥ (वे कहने लगे–) 'हे रमा-रमण ! भवका ताप (जन्म-मृत्यु) शमन करनेवाले राम ! आपकी जय हो। भवके तापके भयसे व्याकुल इस सेवककी रक्षा कीजिए। हे अवधेश ! सुरेश ! रमेश ! विभो ! प्रभो ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिए। (१) आपने दस सिरों और बीस भुजाओंवाले रावणको मारकर पृथ्वीका बड़ा भारी रोग मिटा डाला। राक्षसोंके जो समूहके समूह फतिंगे बनकर आपके वाणोंकी लपटोंमें आ पड़े, वे सब वहीं जलकर भस्म हो गए। (२) आप इस पृथ्वी-मण्डलके मनभावने शृंगार हैं। आप बढ़िया धनुष-बाण और और तूणीर लिए रहते हैं। मद, महामोह और ममताकी रात्रिका अँधेरा (मिटा डालने)-के लिये आप चमचमाते सूर्य हैं। (३) जैसे कोई किरात हरिणोंके हृदयमें बाण मार-मारकर उनके धुर्रे उड़ा डालता है वैसे ही कामदेवने मनुष्योंके हृदयमें विषयोंकी वासना उभाड़कर उन्हें जर्जर कर डाला है। उस कामको मारकर आप अनाथोंको रक्षा कीजिए। ये नीच (मनुष्य) अभीतक विषय-रूपी वनमें भटकते डोले जा रहे हैं। (४) आपके चरणोंका निरादर करनेसे ही ये लोग बहुतसे रोग और वियोगके आखेट बने पड़े हैं। जो लोग आपके चरण-कमलोंसे प्रेम नहीं करते, वे सभी मनुष्य अथाह संसार-सागरमें पड़े छटपटाए जा रहे हैं। (५) जिन्हें आपके चरण-कमलोंसे प्रीति नहीं हैं वे सदा दीन, मलिन और दुखी हुए पड़े रहते हैं। पर जो आपकी कथा सुनते रहते हैं उन्हें संतोंका संग और भगवानका भजन सदा अच्छा लगता ही है। (६) उन्हें न किसीसे राग होता, न लोभ होता, न मान होता और

२४० नहिं राग, न लोभ, न मान - मदा । तिन्ह-के, सम बैभव वा बिपदा ।
ऐहि-तें तव सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत जोग - भरोस सदा । (७)
करि प्रेम निरंतर नेम लिए । पद - पंकज सेवत सुद्ध हिए ।
सम मानि निरादर - आदरहीं । सब संत सुखी बिचरंति मही । (८)
मुनि मानस - पंकज - भृंग भजे । रघुबीर महा रनधीर अजे ।
तव नाम जपामि, नमामि हरी । भव-रोग-महा-मद - मान - अरी । (९)
गुन - सील - कृपा - परमायतनं । प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ।
रघुनंद ! निकंदय द्वंद्वघनं । महिपाल ! बिलोकय दीन - जनं । (१०)
दो०—बार - बार बर माँगौं , हरषि देहु श्रीरंग ।
पद - सरोज अनपायनी , भगति, सदा सतसंग ।। १४ क ।।
२५० बरनि, उमापति, राम - गुन , हरषि गए कैलास ।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए , सब बिधि सुखप्रद बास ।। १४ ख ।।
सुनु खगपति ! यह कथा पावनी । त्रिबिध ताप भव - भय - दावनी ।
महाराज - कर सुभ अभिषेका । सुनत लहहिं नर बिरति - बिबेका । (१)
जे सकाम नर सुनहिं, जे गावहिं । सुख - संपति नाना बिधि पावहिं ।
सुर - दुरलभ, सुख - करि जग - माहीं । अंतकाल रघुपति - पुर जाहीं । (२)

न मद ही हो पाता है । उन्हें सम्पत्ति मिल जाय तो भी ठीक, विपत्ति मिले तो भी ठीक । इसीसे आपके भक्त बहुत प्रसन्न हुए रहते हैं और मुनि लोग भी योगके फेरमें नहीं पड़ते । वे तो आपके चरणोंसे प्रेम करते हुए शुद्ध हृदयसे निरन्तर आपके चरण-कमलोंकी सेवामें जुटे रहते हैं । आदर और निरादरको समान मानते हुए वे सब संतजन सुखपूर्वक धरतीपर विचरते रहते हैं । (८) मुनियोंके मनरूपी कमलके भ्रमर ! (मुनियोंके मनमें वसे रहनेवाले !) महान् रणधीर और अजेय रघुवीर । मैं तो वैठा केवल आपका ही भजन किया करता हूँ । हरि ! मैं केवल आपका ही नाम जपता रहता हूँ और आपको ही नमस्कार करता रहता हूँ । आप जन्म और मृत्यु-रूपी रोगके सबसे बड़े औषध और अभिमानके शत्रु हैं (९) आप गुण, शील और कृपाके भांडार हैं । श्री-रमण (लक्ष्मीके पति) ! मैं आपको ही सदा नमस्कार किया करता हूँ । रघुनन्दन ! अब आप मेरे मनकी सारी उलझनें सुलझा डालिए । महिपाल ! अब इस दीन भक्तपर कृपा-दृष्टि फेर दीजिए । (१०) श्रीपति ! मैं बार-बार जो आपसे वर माँगे जा रहा हूँ वह आप प्रसन्न होकर दे ही दीजिए कि मुझे आपके चरण-कमलोंमें बाधा-रहित भक्ति हो और सदा आपका सत्संग मुझे मिलता चले' ।। १४ क ।। रामके गुणोंका वर्णन करके पार्वतीके पति शंकर प्रसन्न होते हुए कैलास लौट गए । उनके चले जानेपर रामने अपने सव वानर मित्रोंको अच्छे-अच्छे सुविधाजनक भवनोंमें पहुँचवा टिकाया ।। १४ ख ।। (काकभुशुंडि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! जो भी यह पवित्र कथा कहता या सुनता चले उसके तीनों प्रकारके ताप तथा जन्म-मृत्युका सारा भय दूर हो मिटता है । महाराज रामके शुभ अभिषेककी कथा जो सुनता है उस मनुष्यको तत्काल वैराग्य और विवेक प्राप्त हो जाता है । (१) जो मनुष्य किसी कामनासे यह कथा सुनते और कहते हैं वे अनेक प्रकारके सुख और सम्पत्ति तो पाते ही हैं, साथ ही इस जगत्में भी उन्हें ऐसे सुख भोगनेको मिल जाते हैं जो देवताओंको भी नहीं मिल पाते और अन्तमें वे रामके परम धाम जा पहुँचते हैं । (२) जो जीवन्मुक्त यह कथा

२४८-५१ इति स्तुत्वा रामचन्द्रं सभायां संस्थितं शिवः । लब्धाऽनपायिनीं भक्तिं स्वपदं प्रस्थितस्तदा ।।
सर्वेभ्यः सुखवासार्थं मन्दिराणि प्रकल्पय । —आनन्दरामायण
२५४ रामाभिषेकं प्रयतः शृणोति यो धनाभिलाषी लभते महद्धनम् । —अध्यात्मरामायण

सुनहिँ बिमुक्त, बिरत अरु बिषई। लहहिँ भगति - गति संपति नई।
खगपति ! राम - कथा मैं बरनी। स्वमति-बिलास त्रास - दुख-हरनी। (३)
बिरति - बिबेक - भगति - दृढ़ - करनी। मोह - नदी - कहँ सुंदर तरनी।
नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिँ लोग सब कुरी। (४)
२६० नित नइ प्रीति राम - पद - पंकज। सबके, जिन्हहिँ नमत सिव-मुनि अज।
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन दान नाना बिधि पाए। (५)
दो०—ब्रह्मानंद - मगन कपि, सबके प्रभु - पद - प्रीति।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गए मास षट बीति॥ १५॥
बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाहीँ। जिमि परद्रोह संत - मन - माहीँ।
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबहिँ सादर सिर नाए। (१)
परम समीप प्रीति बैठारे[1]। भगत - सुखद मृदु बचन उचारे।
तुम अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख-पर केहि बिधि करौं बड़ाई। (२)
तातैं मोहिँ तुम अति प्रिय लागे। मम हित-लागि भवन-सुख त्यागे।

सुन ले उसके मनमें भक्ति उत्पन्न हो जाय। जो विरक्त सुन ले वह मुक्त हो जाय और जो संसारी व्यक्ति सुन ले वह एकसे एक नई सम्पत्ति पा जाय। देखो पक्षिराज (गरुड) ! मुझमें जितनी बुद्धि थी उसके अनुसार मैंने आपको वह राम-कथा कह सुनाई जिसे सुननेसे संसारके सारे भय और दुःख दूर हो मिटते हैं। (३) यह कथा जो सुन ले उसके मनमें वैराग्य, विवेक और भक्ति पक्की होकर जम बैठती है। यह कथा मोहकी नदी (पार करने)-के लिये बड़ी अच्छी नाव है (यह कथा सुन लेनेपर सारा मोह या अज्ञान जाता रहता है)।' रामका राज्य होते ही अयोध्यामें नित्य नये-नये मंगल उत्सव होने लगे। सब वर्गोंके लोग प्रसन्न रहने लगे। (४) शिव, मुनि और ब्रह्मा भी रामके जिन चरण-कमलोंको आ-आकर नमस्कार किया करते हैं, उन चरण-कमलोंमें सब (अयोध्या-वासियों)-की नित्य नई-नई प्रीति बढ़ती चली जा रही थी। रामके राजा होनेके समय सब भिक्षुकोंको बहुत रंग-ढंगके वस्त्र और आभूषण ला-लाकर पहनाए जा रहे थे। सब ब्राह्मणोंको भी वहाँ अनेक प्रकारके दान दिए जा रहे थे। (५) (वानरोंकी तो कुछ पूछिए मत) वे सब वानर तो ब्रह्मानन्दमें मग्न हुए पड़ रहे थे। (उनकी इतनी सेवा हुई जा रही थी कि) उन्हें यही नहीं जान पड़ रहा था कि कबमेंको दिन निकले चले जा रहे हैं। योंही करते-करते छह महीने निकल गए॥ १५॥ (वे सब इतने मगन थे कि) उन्हें स्वप्नमें भी अपने घरकी सुध वैसे ही नहीं आ पा रही थी जैसे संतके मनमें कभी दूसरे वैर करनेकी बात ही नहीं आ पाती। (छह महीने बीत चुकनेपर) रामने एक दिन सब मित्रोंको पास बुलवा भेजा। सुनते ही सबने आदरके साथ सिर आ नवाया। (१) भक्तोंको सुख देनेवाले रामने उन्हें बड़े प्रेमके साथ अपने पास बुला बैठाया और कहा—'देखो भाई। तुम सबने जी-जानसे मेरी इतनी सेवा की है कि तुम्हारे मुँहपर मैं तुम्हारी क्या बड़ाई करूँ ? (२) तुम मुझे इसीलिये बहुत ही प्यारे लगते हो कि तुम मेरे ही लिये अपने घरका सारा सुख छोड़े बैठे हो। मेरे भाई, राज्य,

१. परम प्रीति समीप बैठारे।

२५५-५७ मुक्ता मुमुक्षवः कामाः संसारे त्रिविधा जनाः। भक्तिं मुक्तिञ्च सम्पत्तिं लभन्तेऽस्य विकत्थनात्॥
२५९ रामेभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे। नित्यं नूतनमांगल्यं सुखिनः सर्वमानवाः॥—अध्या०
२६०-६१ ददौ दानं द्विजातिभ्यो याचेकभ्यः पुनर्बहु।
२६२-६३ सुखादविज्ञातगताधंमासा रक्षः कपीन्द्राः प्रभुप्रेमयुक्ताः। —सत्योपाख्यान
२६७-६८ पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च। —आनन्दरामायण

अनुज, राज, संपति, बैदेही। देह, गेह, परिवार, सनेही। (३)
२७० सब मम प्रिय नहिं तुम्हहिं समाना। मृषा न कहउँ, मोर यह बाना।
सबके प्रिय सेवक, यह नीती। मोरे अधिक दास - पर प्रीती। (४)
दो०—अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहिं दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत, सर्बहित, जानि करेहु अति प्रेम॥ १६॥
सुनि प्रभु - बचन मगन सब भए। को हम, कहाँ, बिसरि तन गए।
ऐकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि, अति अनुरागे। (१)
परम प्रेम तिन्ह - कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेखा।
प्रभु सनमुख कछु कहन न पारहिं। पुनि-पुनि चरन-सरोज निहारहिं। (२)
तब प्रभु भूषन - बसन मँगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए। (३)
२८० प्रभु - प्रेरित लछिमन पहिराए। लंकापति रघुपति - मन भाए।
अंगद बैठ रहा, नहिं डोला। प्रीति देखि, प्रभु ताहि न बोला। (४)

सम्पत्ति, वैदेही, मेरा शरीर, घर, परिवार और अपने मित्र—(३) ये सब भी मुझे उतने प्यारे नहीं लगते, जितने प्यारे तुम लगते हो। यह मैं स्वभावसे कह रहा हूँ, कुछ बनाकर नहीं कह रहा हूँ। यों तो सेवक सभीको प्यारे होते हैं और नीति भी यही कहती है पर मुझे तो अपने सेवक बहुत ही प्यारे लगते हैं। (४) देखो मित्रो। (घरसे बिछुड़े तुम्हें बहुत दिन हो चले हैं इसलिये) अब तुम सब अपने-अपने घर लौट जाओ। घर जा-जाकर सच्चे नियमसे तुम सब मेरा भजन करते रहना। सदा, जहाँ भी रहो वहीं यह समझकर मुझपर प्रेम बनाए रखना कि मैं सदा सबका हित करनेमें लगा रहता हूँ' ॥ १६ ॥ रामकी यह बात सुनकर सब ऐसे मगन हो चले कि उन्हें यह-तक सुध नहीं रह गई कि हम हैं कौन और कहाँ हैं ? वे अपनी देह-तककी सुध-बुध भूल गए। वे रामके सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए बस उनकी ओर टकटकी बाँधे देखे चले जा रहे थे। उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा पड़ रहा था कि वे कुछ कह ही नहीं पा रहे थे। (१) प्रभुने जब उनका इतना अधिक प्रेम देखा तो उन्हें पास बैठाकर बहुत ज्ञानका उपदेश देकर देरतक उन्हें समझाया-बुझाया। रामके सम्मुख वे कहें भी तो क्या कहें (कुछ कह नहीं पा रहे थे)। वे बार-बार रामके चरण-कमलोंकी ओर देखे चले जा रहे थे। (२) यह देखकर रामने अनेक प्रकारके रंग-बिरंगे अनुपम और सुन्दर गहने-कपड़े भेज मँगवाए। सबसे पहले भरतने अपने हाथसे सँवारकर सुग्रीवको वस्त्र और आभूषण सजा पहनाए। (३) फिर रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने विभीषणको गहने और कपड़े उठा पहनाए। वे दोनों सज-धजकर रामको बहुत अच्छे जँचे। अंगद बैठेके बैठे ही रह गए, वे अपने स्थानसे टससे मस न हुए। उनका इतना प्रेम देखकर रामने भी उन्हें उठ आनेको नहीं कहा। (४)

२६९-७० न मे क्षीरोदतनया प्रिया नापि हलायुधः। यादृशा मे प्रिया भक्तास्तादृशो नहि कश्चन ॥ना०पु०
२७१ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विजः। —भागवत
२७२-७३ अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ। एकाग्रमानसेनैव ध्येयोहं भजता सदा ॥
२७४-७५ प्रभुणैवं निगदिता वानरास्ते महौजसः। तस्थुरुन्मील्य नेत्राणि वक्तुं शक्ता न चाभवन् ॥ आन.रा.
२७६-७७ सान्त्वयामास दयया तत्त्वज्ञानोपदेशतः। —अध्यात्मरामायण
२७८-७९ सुग्रीवाय ददौ प्रीत्या राघवो भक्तवत्सलः। भूषणं वसनं भूरि भरतेन परिधापितम् ॥
२८० विभीषणोपि धर्मात्मा सह तैर्नैऋतर्षभैः। लब्ध्वा वसनरत्नमञ्च लंकां प्रायान् महायशाः ॥
२८१-८३ यथार्हं सत्कृताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः। प्रसन्नमनसो जग्मुः प्रणम्य रघुनन्दनम् ॥ अध्या०

दो०—जामवंत - नीलादि सब , पहिराए रघुनाथ ।
हिय धरि राम - रूप, सब , चले नाइ पद माथ ॥ १७ क ॥
तब अंगद उठि नाइ सिर , सजल नयन कर जोरि ।
अति बिनीत बोलेउ बचन , मनहुँ प्रेम - रस बोरि ॥ १७ ख ॥

सुनु सर्वज्ञ ! कृपासुख - सिंधो । दीन - दयाकर ! आरत - बंधो ।
मरती बेर नाथ ! मोहिं बाली । गयउ तुम्हारेहि कोछे घाली । (१)
असरन - सरन ! बिरद संभारी । मोहिं जनि तजहु भगत-हितकारी ।
मोरे तुम प्रभु - गुरु - पितु - माता । जाउँ कहाँ तजि पद - जलजाता । (२)
२९० तुम्हइ बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि, भवन काज मम काहा ।
बालक ज्ञान - बुद्धि - बल - हीना । राखहु सरन, नाथ ! जन दीना । (३)
नीचि टहल गृह - कै सब करिहौं । पद-पंकज बिलोकि, भव तरिहौं ।
अस कहि, चरन परेउ, प्रभु पाही । अब जनि नाथ ! कहहु गृह जाही । (४)

दो०—अंगद - बचन बिनीत सुनि , रघुपति करुनासींव ।
प्रभु उठाइ उर लायउ , सजल - नयन - राजीव ॥ १८ क ॥

फिर रामने जामवन्त, नील आदि (प्रमुख वानरों)-को स्वयं अपने हाथसे वस्त्र और आभूषण उठा पहनाए । पहन-ओढ़कर वे सब अपने-अपने हृदयमें रामका स्वरूप बसाकर उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर वहाँसे चल पड़े ॥ १७ क ॥ उन सबके चले जानेपर अंगदने उठकर सिर नवाकर डबडबाई आँखोंसे, हाथ जोड़कर अत्यन्त आदर तथा प्रेमसे भरी वाणीमें रामसे कहा—॥ १७ ख ॥ 'सर्वज्ञ ! सुख और कृपाके भांडार ! दीनोंपर दया करनेवाले ! दुखियोंको सहारा देनेवाले ! नाथ ! मरते समय मेरे पिता बाली मुझे आपकी ही गोदमें डाल गए थे । (१) अत:, भक्तोंका हित करनेवाले ! आप वह प्रण स्मरण करके मुझे यों निराधार न छोड़िए क्योंकि जिसे कहीं ठौर नहीं मिलती उसे आप ही बाँह पकड़कर उबारा करते हैं । मेरे तो स्वामी, गुरु, पिता और माता जो कुछ हैं सब आप ही हैं । आपके चरण-कमल छोड़कर मैं जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ ? (२) महाराज ! आप ही विचारकर बताइए कि आपको छोड़कर मैं घर जाकर करूँगा भी क्या ! इसलिये नाथ ! अपने इस बालक और दीन सेवकको आप अपनी शरणमें ही रहने दीजिए जिसमें न ज्ञान है, न बुद्धि है और न कुछ भी बल है । (३) मैं आपके यहाँ सब छोटेसे छोटा काम करता हुआ यहीं पड़ा रहूँगा और आपके चरण-कमल निरख-निरखकर सेवा करते हुए भवसागरसे पार हो जाऊँगा ।' यह कहकर रामके चरणोंमें अंगद लोट गए (और बोले—) 'प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिए । नाथ ! मुझे घर जानेको मत कहिए ।' (४) अंगदके ऐसे विनय-भरे वचन सुनकर दयालु रामने उनसे हृदयसे उठा लगाया । रामके कमल-जैसे नेत्रोंमें आंसू छलछला आए ॥ १८ क ॥ अपने गलेकी माला, वस्त्र और आभूषण

२८४-८५ आनन्दाश्रुपरीताक्षो भूयो भूय: प्रणम्य तम् । विनयावनयो भूत्वा कथयामास प्रेमत: ॥अध्या०
२८६-८७ यतस्त्रिलोक्यनाथोऽसि न च त्याज्यं गुरोर्वच: । अधुना प्रार्थयामि त्वामङ्गदं परिपालय ॥
इत्युक्त्वा स तदा बाली जहौ प्राणान् रणांगणे । —हनुमन्नाटक
२८८ उपेक्षसे किमर्थं मां शरणागतवत्सल ।
२८९-९० त्वमेव मे माता पिता प्रभो ब्रूहि विचार्य च । चरणान्तिकमुत्सृज्य भवने किं प्रयोजनम् ॥ आन.रा.
२९१ उदारहृदया बालानबुधान् पान्ति साधव: । —भारतसार
२९२-९३ त्वद्भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्यभृत्यो भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ॥ —पांडवगीता
न दूरं कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामि पुन: पुन: । —आनन्दरामायण

निज उर-माल-बसन-मनि , बालि - तनय पहिराइ ।
बिदा कीन्हि भगवान तब , बहु प्रकार समुझाइ ।।१८ख।।
भरत, अनुज - सौमित्रि - समेता । पठवन चले भगत - कृत चेता ।
अंगद - हृदय प्रेम नहिं थोरा । फिरि-फिरि चितव राम-की ओरा । (१)
३०० बार - बार कर दंड - प्रनामा । मन अस, रहन कहहिं मोहिं रामा ।
राम - बिलोकनि, बोलनि, चलनी । सुमिरि-सुमिरि सोचत, हँसि मिलनी । (२)
प्रभु - रुख देखि बिनय बहु भाखी । चलेउ हृदय पद - पंकज राखी ।
अति आदर सब कपि पहुँचाए । भाइन्ह - सहित भरत पुनि आए । (३)
तब सुग्रीव - चरन गहि, नाना । भाँति, बिनय कीन्हिउ हनुमाना ।
दिन दस, करि रघुपति - पद सेवा । पुनि तव चरन देखिहौं देवा । (४)
पुन्य - पुंज तुम पवन - कुमारा । सेवहु जाइ कृपा - अगारा ।
अस कहि, कपि सब चले तुरंता । अंगद कहइ, सुनहु हनुमंता । (५)
दो०—कहेहु दंडवत प्रभु - सैं , तुम्हहिं कहौं कर जोरि ।
बार - बार रघुनायकहिं , सुरति कराएउ मोरि ।। १९ क ।।
३१० अस कहि चलेउ बालिसुत , फिरि आयउ हनुमंत ।
तासु प्रीति प्रभु - सन कही , मगन भए भगवंत ।। १९ ख ।।

उसे पहनाकर और भली प्रकार समझा-बुझाकर किसी-किसी प्रकार बालिके पुत्र अंगदको राम बिदा कर पाए ।। १८ ख ।। भक्त (अंगद)-की सेवाका स्मरण करके भरत अपने छोटे भाई शत्रुघ्न और लक्ष्मणको साथ लेकर उसे कुछ दूरतक पहुँचाने साथ चल दिए । पर अंगदके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा पड़ रहा था कि वे बार-बार घूम-घूमकर प्रभु रामकी ओर देखे चले जा रहे थे । (१) वे बार-बार (रामकी ओर देख-देखकर) दण्ड-प्रणाम करते जाते थे । और मनमें यही अटकल लगाए जा रहे थे कि संभवत: अब भी राम मुझे रुक जानेके लिये कह दें । रामका देखना, बोलना, चलना और हँस-हँसकर मिलना स्मरण कर-करके वे यही समझे जा रहे थे (२) पर फिर रामकी यही इच्छा समझकर वे (कृपा बनाए रहनेके लिये) प्रार्थना करके और अपने हृदयमें प्रभुके चरण-कमल बसाकर वे (भारी मनसे) चल दिए । बड़े आदरके साथ सब वानरोंको कुछ दूर पहुँचाकर भरत अपने भाइयोंके साथ लौट आए । (३) चलते समय हनुमान्ने सुग्रीवके चरण पकड़कर अनेक प्रकारसे विनय करके (सुग्रीवसे) कहा—'देव ! दस दिन (कुछ दिनों) और प्रभुके चरणोंकी सेवा कर लूँ तब मैं आपके चरणोंका दर्शन आ करूँगा ।' (४) (सुग्रीवने कहा—) 'ठीक है पवनकुमार हनुमान् ! तुम सचमुच बड़े पुण्यात्मा हो । तुम यहाँ रहकर कृपानिधान रामकी सेवा करते रहो ।' यह कहकर सब वानर तुरन्त अपने-अपने घरके लिये चल पड़े । फिर अंगदने (रुककर हनुमान्से) कहा—'हनुमान् ! आपसे एक बात कहनी है ।। ५ ।। आपसे हाथ जोड़कर निवेदन है कि प्रभुसे जाकर मेरा दण्डवत् कहिएगा और जब-जब अवसर मिले तब-तब रामको मेरा स्मरण कराते रहिएगा' ।। १९ क ।। यह कहकर बालिके पुत्र अंगद चल दिए और हनुमान् लौट आए ।

२९४-९७ रामोपि वाक्यं तच्छ्रुत्वा स्मित्वा च परिषस्वजे । दत्वा दिव्ये माल्यवस्त्रे विससर्ज रघूद्वहः।।आन.रा.
३०४-५ तदानुनीय सुग्रीवं हनूमान् अभ्यभाषत । स्वामिन् समीहे पादाब्जसेवनं श्रीहरेरहम् ।।
३०६-७ धन्यस्त्वं हनुमद् वीर गत्वा सेवस्व राघवम् । एवमुक्त्वा सुकण्ठस्तु प्रययौ सदनं निजम् ।।
३०८-९ नमन्नाहांगदो वीरो विज्ञापय नतिं मम । रघुवंशप्रदीपं त्वं आञ्जनेयासकृत् प्रभुम् ।।
३१०-११ कथयित्वेदमागारमगात् प्रत्यागते हरिः । आंगदं हार्दमाकर्ण्य ननन्द रघुनन्दनः ।।हनुमद्रा०

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम-कर, समुझि परै कहु काहि ॥ १९ ग ॥

पुनि कृपाल लिय बोलि निषादा। दीन्हें भूषन-बसन-प्रसादा।
जाहु भवन, मम सुमिरन करेहु। मन-क्रम-बचन धरम अनुसरेहु। (१)
तुम मम सखा भरत-सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत-जाता।
बचन सुनत, उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी। (२)
चरन-नलिन उर धरि, गृह आवा। प्रभु-सुभाउ परिजनन्हि सुनावा।
रघुपति-चरन देखि पुर-बासी। पुनि-पुनि कहहिं धन्य सुख-रासी। (३)
३२० राम-राज बैठे, त्रैलोका। हरषित भए, गए सब सोका।
बयर न कर काहू-सन कोई। राम-प्रताप बिषमता खोई। (४)

दो०—बरनास्रम निज-निज धरम, -निरत, बेद-पथ लोग।
चलहिं, सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय-सोक, न रोग ॥ २० ॥

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा।

उन्होंने आकर अंगदका प्रेम रामको कह सुनाया और राम भी वह सुनकर प्रसन्न हो उठे ॥ १९ ख ॥ (काकभुशुंडि कहते हैं—) 'देखो पक्षिराज गरुड ! रामका चित्त वज्रसे भी इतना अधिक कठोर और फूलसे भी इतना अधिक कोमल है कि बताओ वह किसीकी समझमें आ कैसे सकता है ?' ॥ १९ ग ॥ फिर कृपालु रामने निषाद-राज (गुह)-को बुलाकर उसे पुरस्कारके रूपमें बहुतसे वस्त्र और गहने उठा भेंट किए और कहा—'अच्छा भाई ! अब तुम भी घर लौट जाओ। वहाँ मेरा स्मरण करते रहना तथा मन, वचन और कर्मसे धर्मके अनुसार काम करते रहना। (१) तुम्हें मैं अपना सच्चा मित्र और भरतके समान भाई समझता हूँ। तुम्हें जब भी अवसर मिला करे बराबर अयोध्या आते-जाते रहना।' यह सुनकर तो वह प्रसन्न हो उठा। डबडबाई आँखोंसे वह प्रभुके चरणोंमें जा गिरा। (२) फिर वह भी रामके चरण-कमल अपने हृदयमें बसाकर अपने घर लौट गया और उसने रामका शील-स्वभाव अपने सब कुटुम्बियोंको आ सुनाया। रामका व्यवहार देख-देखकर अयोध्यावासी यही कहते जाते थे कि सुखके भांडार राम धन्य हैं। रामका राज्य-सिंहासनपर बैठना था कि तीनों लोकोंमें सुख ही सुख छा चला। सबके सारे दुःख दूर हो चले। न तो कोई किसीसे बैर ही करता था न रामके प्रतापसे छोटे-बड़े और धनी-रंकका ही कहीं भेद रह गया था। (४) सब लोग अपने-अपने वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास)-के कर्त्तव्यका पालन करते हुए सदा वेद (धर्म-शास्त्र)-के बताए हुए कर्म करनेमें सुख मानते थे। उन्हें न किसी बातका भय था, न शोक था और न कोई रोग ही उन्हें सता पाता था ॥ २० ॥ रामका राज्य इतना अच्छा था कि उसमें किसीको किसी प्रकारका दैहिक, दैविक और भौतिक कोई कष्ट होने ही नहीं पाता

३१२-१३ वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति॥उ०रा०च०
३१४-१५ ततो गुहं समासाद्य रामः प्राञ्जलिमब्रवीत्। सखे गच्छ पुरं रम्यं शृंगवेरमनुत्तमम् ॥
मामेव चिन्तयन्नित्यं भुंक्ष्व भोगान् निजार्जितान्। इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यान्याभरणानि च॥अध्या.
३१६ यातायातं सदा मित्र पञ्चमे सप्तमेहनि। करणीयं प्रयत्नेन स्वगेहाद् भवने मम ॥
३१७-१८ निषादस्तद् वचः श्रुत्वा पर्यश्रुरपतत् पदे। उरस्याधाय पादाब्जमव्रजत् पुरमीशितुः ॥आन०रा०
३१९ विलोक्य श्रीहरेर्वृत्तिं श्लाघन्ते पुरवासिनः।
३२०-२१ रामेऽभिषिक्ते राजेन्द्रे सर्वलोकसुखावहे। वसन्ति तत्र सत्त्वानि निर्वैराणि निसर्गतः ॥—सत्यो०
३२२-२३ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः। न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति॥अध्या०
३२४ नृणां तापत्रयन्नासीद् रामे राज्यं प्रशासति। —आनन्दरामायण

सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म-निरत श्रुति-नीती[1]। (१)
चारिउ चरन धर्म जग-माहीं। पूरि रहा, सपनेहु अघ नाहीं।
राम-भगति-रत नर अरु नारी। सकल परम गति-के अधिकारी। (२)
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर, सब बिरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र, कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध, न लच्छन-हीना। (३)
३३० सब निर्दंभ धरम-रत पुनी[2]। नर अरु नारि चतुर, सब गुनी।
सब गुनज्ञ, पंडित, सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ, नहिं कपट-सयानी। (४)

दो०—राम-राज नभगेस ! सुनु, सचराचर जग-माहिं।
काल-कर्म-सुभाव-गुन,-कृत दुख काहुहि नाहिं ॥ २१ ॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।
भुवन अनेक रोम-प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू। (१)
सो महिमा समुझत प्रभु-केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।
सोउ खगेस ! महिमा जिन्ह जानी[3]। फिरि ऐहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी। (२)

था। सभी लोग मिल-जुलकर बड़े प्रेमसे रहते चलते थे और वेदमें बताए हुए कर्म करते हुए अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते चलते थे। (१) धर्मके चारों चरण (सत्य, शौच, दया और दान) उस समय सारे जगत्में आ जमे थे (सब लोग सत्य-निष्ठ, पवित्र, दयालु और दानी बन चले थे)। स्वप्नमें भी कहीं पापका नाम-तक नहीं रह गया था। वहाँके सब स्त्री-पुरुष सदा रामकी ही भक्तिमें मग्न रहते थे इसलिये सभी परम गति (मोक्ष)-के अधिकारी हो गए थे। (२) (रामके राज्यमें) न तो किसीकी छोटी अवस्थामें मृत्यु हो पाती थी न किसीको कोई पीडा ही होती थी। सब लोग बड़े सुन्दर और स्वस्थ थे। वहाँ न कोई दरिद्र रह गया था, न दुखी, न दीन, न मूर्ख और न शुभ-लक्षणोंसे हीन। (३) किसीके मनमें दम्भका नामतक नहीं रह गया था। सभी लोग बड़े धर्मपरायण (धर्मके अनुसार काम करनेवाले) और पुण्यात्मा थे। सभी नर और नारी बड़े बुद्धिमान्, गुणी, गुणका आदर करनेवाले, पण्डित (विद्वान्), ज्ञानी और कृतज्ञ (दूसरोंका उपकार मानने-वाले) थे। किसीके मनमें न कोई कपट था न धूर्तता थी। (काकभुशुण्डि कहते हैं—) 'देखो गरुड ! उस समय संसारमें जितने भी चर और अचर (जड और चेतन जीवन) थे, उन्हें काल, कर्म, स्वभाव और गुणोंसे उत्पन्न होनेवाला कोई भी दुःख कभी सता नहीं पाता था ॥ २१ ॥ अयोध्यामें तो राम केवल सात समुद्रोंसे घिरी हुई एक पृथ्वी मात्रके ही राजा थे पर जिनके एक-एक रोममें अनेक ब्रह्माण्ड लिपटे पड़े रहते हों उनके लिये (यह सात द्वीपोंके राज्यकी) प्रभुता थी ही किस गिनतीमें। (१) प्रभुकी वह (ब्रह्म-रूपवाली) महिमा समझ लेनेपर यह कहना (कि वे सप्त-द्वीप-पर्यन्त पृथ्वीके सम्राट् हैं) उनको बहुत छोटा बनाना होगा। परन्तु गरुड ! जिन्होंने वह महिमा जान भी ली है (कि वे साक्षात् ब्रह्म है) उन्हें भी प्रभुकी इसी (सगुण) लीलामें बड़ा रस मिला करता है (२) क्योंकि उस

१. रीती। २. धुनी। ३. सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी।

३२५ रेखामात्रमपि क्षुण्णादात्मनो वर्त्मनः परम्। न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमवृत्तयः ॥
३२६ चतुर्भिर्वर्तते धर्मः पादैर्लोकसुखावहैः।
३२७-२८ वृद्धेषु सत्सु बालानां नासीन्मृत्युभयं तथा। निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥
३२९-३० न शठा नैव वाचाटा वञ्चका नो न हिंसकाः। न च पाखण्डिनो भांडा न रण्डा नैव शौंडिकाः ॥रघुवंश
३३२-३३ रामराज्ये प्रजानां तु कालकर्मस्वभावजम्। दुःखमात्रा न कुत्रापि चौर्यनिन्दाभयं तथा ॥
३३४ जुगोप मेदिनीं कृत्स्नां सप्तसागरमेखलाम्। —आनन्दरामायण
३३५ युगांतकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां स विकाशमासत। —शिशुपालवध

सोउ जाने - कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिवर दम - सीला ।
राम - राज - कर सुख - संपदा । बरनि न सकै फनीस सारदा । (३)
३४० सब उदार, सब पर - उपकारी । बिप्र - चरन - सेवक नर - नारी ।
एक नारिव्रत - रत सब झारी । ते मन-बच-क्रम पति - हितकारी । (४)
दो०—दंड जतिन्ह कर, भेद - जहँ , नर्त्तक - नृत्य - समाज ।
जीतहु मनहि, सुनिय अस , रामचंद्र - के राज ।। २२ ।।
फूलहिं - फरहिं सदा तरु - कानन , रहहिं एक सँग गज - पंचानन ।
खग - मृग सहज बयर बिसराई । सबन्हि परसपर प्रीति बढ़ाई । (१)
कूजहिं खग - मृग नाना बृन्दा । अभय चरहिं बन, करहिं अनंदा ।
सीतल - सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि, लै चलि मकरंदा । (२)
लता - बिटप माँगे मधु चवहीं । मन - भावतो धेनु पय स्रवहीं ।
ससि - संपन्न सदा रह धरनी । त्रेता भइ कृतजुग - कै करनी । (३)
३५० प्रगटी गिरिन्ह बिबिध मनि-खानी । जगदातमा भूप जग जानी ।
सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल, अमल, स्वादु, सुखकारी । (४)

उस महिमाको जाननेका फल भी इस सगुण लीलाका रस पाना ही है । इन्द्रियोंका दमन कर लेनेवाले श्रेष्ठ महामुनि कहते हैं कि रामके राज्यमें कितना सुख और ऐश्वर्य था इसका वर्णन करना तो शेष और सरस्वतीके भी बूते (सामर्थ्य)-के बाहरकी बात है ।' (३) रामके राज्यमें जिसे देखो वही उदार, परोपकारी और ब्राह्मणोंके चरणोंका सेवक था । वहाँके सब पुरुष एक-पत्नी-व्रत (अपनी एक पत्नीके अतिरिक्त दूसरी पत्नी न करनेका संकल्प) लिए हुए थे और सभी स्त्रियाँ मन, वचन और कर्मसे सदा अपने ही अपने पतियोंकी सेवा करती रहती थीं । (४) रामके राज्यमें केवल संन्यासियोंके हाथमें दंड था (किसीको दंड नहीं दिया जाता था), और भेद (टुकड़े)-का प्रयोग केवल नाचनेवालोंके नृत्य-समाजमें होता था (नाचमें जिस एक-एक बोलपर नाचा जाता है उसे 'टुकड़ा' कहते हैं । लोगोंमें भेद नहीं था)[१] और 'जीतो' शब्द केवल मनको जीतनेके लिये ही सुनाई पड़ता था (किसी मनुष्य या देशको जीतनेके लिये नहीं) ।। २२ ।। रामके राज्यमें वनके वृक्ष सदा फूलते-फलते रहते थे, हाथी और सिंह एक धाट पानी पीते थे (साथ रहते थे) । सब पशु और पक्षी अपना स्वाभाविक वैर छोड़कर आपसमें प्रेमसे रहते थे, (१) पक्षी मस्त होकर चहचहाते थे और अनेक प्रकारके पशु निर्भय होकर वनमें आनन्दसे विचरते थे । सदा शीतल, मंद और सुगन्धित बयार बहती रहती थी । भौंरे दिनरात पुष्पोंका रस ले-लेकर मँडराते और गुनगुनाते रहते थे । (२) लताएँ और वृक्ष ऐसे थे कि माँगते ही तुरन्त मधु टपका गिराते थे और गौएँ भी ऐसी थीं कि जितना चाहो उतना दूध उनसे दूह लो । धरतीपर चारों ओर हरी-भरी खेती लहलहाई रहती थी । इस प्रकार (रामके राज्यमें) त्रेतामें भी सतयुग आया दिखाई देने लगा । (३) जगत्के आत्मा रामको ही जगत्का राजा समझकर पर्वतोंने मणियोंकी अनेक खानें खोल दिखाईं । सभी नदियोंमें शीतल, निर्मल, स्वादिष्ट और सुखप्रद जल बहने लगा । (४) समुद्र अपनी मर्य्यादामें

३३६-३८ तं महत्त्वं प्रभोर्ज्ञात्वा वर्णने हीयते मतिः ।
३३९ नाहं समर्थो व्याख्यातुं राज्यैश्वर्यं सुखं तथा । यत्र शेषः सहस्रास्यो वर्णने कुण्ठितस्त्वभूत् ।।
३४० सुशीलाश्शान्तरूपाश्च परकार्यंरतास्सदा । अनन्यवृत्तयः शूद्रा द्विजशुश्रूषणम्प्रति ।।
३४१ एकपत्नीव्रतास्सर्वे पुमांसस्तस्य मण्डले । नारीषु काचिन्नैवासीदपतिव्रतधारिणी ।। सत्योपा०
३४२-४३ दण्डवार्ता सदा यत्र कृतसंन्यासकर्म्मणाम् । भरतानां समाजे तु भेदस्तत्रोपलक्ष्यते ।। आनन्दरा०
३४४ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ।। भागवत
३४९-५० सस्योपपन्ना वसुधा फलवन्तोऽभवन् नगाः । —आनन्दरामायण

सागर निज मरजादा रहहिं । डारहिं रत्न तटन्हि, नर लहहीं ।
सरसिज-संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा-बिभागा । (५)
दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप, जेतनेहि काज ।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र - के राज ।। २३ ।।
कोटिन्ह बाजि-मेध प्रभु कीन्हें । दान अनेक द्विजन्ह-कहँ दीन्हें ।
स्रुति-पथ-पालक धरम-धुरंधर । गुनातीत, अरु भोग-पुरंदर । (१)
पति-अनुकूल सदा रह सीता । सोभा-खानि, सुसील, बिनीता ।
जानति कृपासिंधु - प्रभुताई । सेवति चरन-कमल मन लाई । (२)
३६० जद्यपि गृह सेवक-सेवकनी । बिपुल सकल सेवा-बिधि गुनी ।
निज कर गृह-परिचरजा करई । राचन्द्र - आयसु अनुसरई । (३)
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवा-बिधि जानइ ।
कौसल्यादि सासु गृह - माहीं । सेवइ सबन्हि मान - मद नाहीं । (४)
उमा - रमा - ब्रह्मानि - बंदिता । जगदंबा संततमनिंदिता । (४।।)
दो०—जासु कृपा-कटाच्छ, सुर, चाहत चितवन, सोइ ।
राम - पदारबिंद - रति, करति सुभावहि खोइ ।। २४ ।।

बँधा रहता हुआ भी (अपनी लहरोंसे) रत्न (मोती आदि) उछाल-उछालकर तटपर बिखेर फेंकता रहता था जिन्हें मनुष्य जा-जाकर वहाँसे उठाते लाते रहते थे । सभी सरोवरोंमें कमल ही कमल छाए पड़े थे । इस प्रकार जिधर देखो उधर मस्ती ही मस्ती छाई हुई थी । (५) रामके राज्यमें चन्द्रमा अपनी (अमृतमयी) किरणें पृथ्वीपर बिखेरता रहता था । सूर्य उतना ही तपता था जितना आवश्यक होता था और मेघ भी जब जितना जल माँगो उतना ही बरसाते थे ।। २३ ।। प्रभु रामने अनेक अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणोंको बहुत-बहुत दान दे डाला क्योंकि राम तो वेदोंके बताए हुए धर्मका पालन करनेवाले बड़े भारी धर्मात्मा पुरुष थे । वे प्रकृतिके तीनों (सत्त्व, रजस् और तमस्) गुणोंसे अछूते थे और उनका ऐश्वर्य भी वैसा ही था जैसा इन्द्रका वैभव सुना जाता है । (१) परम सुन्दरी सुशील और विनम्र सीता सदा अपने पतिके मनके अनुसार ही काम करती चलती थीं । वे कृपालु रामकी सारी प्रभुता भली भाँति जानती थीं और बड़े मनसे उनके चरण-कमलोंकी सेवा करती रहती थीं । (२) यद्यपि उनके भवनमें सैकड़ों दास-दासियाँ भरी पड़ी थीं जो सेवा करनेमें एकसे एक बढ़कर थीं, फिर भी अपने घरका काम-काज सीता स्वयं अपने हाथों करती थीं और वैसे ही करती चलती थीं जैसे राम कहते थे । (३) सीता वही काम करती थीं जिससे रामको सुख मिले । वे (वनमें साथ रहकर) सब जान गई थीं कि सेवा कैसे की जाती है । घर रहकर वे कौशल्या आदि सभी सासोंकी भी मन लगाकर सेवा करती रहती थीं । इसमें उन्हें न किसी प्रकारका अभिमान था न मद (कि मैं इतने बड़े राज्यकी रानी हूँ, मैं क्यों सेवा करूँ) । (४) उमा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि सभी देवियाँ जिन जगत्‌की माता और अनिन्दित (परम पवित्र) सीताकी वन्दना करती रहती हैं (४।।) उन सीताकी कृपादृष्टि पा लेनेके लिये सब देवता तरसते रह जाते हैं (कि हमारी ओर भी तनिक कृपाकी दृष्टिसे देख भर दें और वे उनकी ओर ताकती तक नहीं,) वे ही सीता

३५२-५३ सागरेष्वेव सा दृष्टा मर्यादा सर्वदा नरैः । सुपद्मानीककासाराः प्रसन्नाश्च दिशो दश ।।
३५५ कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही । —आनन्दरामायण
३५६ पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजिमेधेन चासकृत् । अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरजयत् पार्थिवात्मजः ।।वा०रा०
३६३ सर्वश्वश्रूजनं सीता सेवते समभावतः ।
३६४-६६ इन्द्रोपेन्द्रविरिञ्च्याद्यैः सेव्यते सिद्धिकांक्षिभिः । सा सीता रामपादाब्जे रमते परया मुदा ।।आन.रा.

सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम-चरन-रति अति अधिकाई।
प्रभु-मुख-कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं। (१)
राम करहिं भ्रातन-पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।
३७० हरषित रहहिं नगर-के लोगा। करहिं सकल सुर-दुर्लभ-भोगा। (२)
अह-निसि बिधिहिं मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर-चरन-रति चहहीं।
दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव-कुस बेद-पुरानन गाए। (३)
दोउ बिजई, बिनई, गुन-मंदिर। हरि-प्रतिबिंब मनहुँ, अति सुंदर।
दुइ-दुइ सुत सब भ्रातन-केरे। भए रूप-गुन-सील घनेरे। (४)
दो०—ज्ञान-गिरा-गोतीत अज, माया-मन-गुन-पार।
सोइ सच्चिदानंद-घन, कर नर-चरित उदार ॥ २५ ॥
प्रातकाल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभा, संग द्विज-सज्जन।
बेद-पुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम, जद्यपि सब जानहिं। (१)
अनुजन्ह-संजुत भोजन करहीं। देखि, सकल जननी सुख भरहीं।

अपना रानीपन भुलाकर रामके चरण-कमलोंकी बैठी टहल किया करती थीं ॥ २४ ॥ सब भाई रामके कहनेमें रहते हुए सदा उनकी सेवा करते रहते थे क्योंकि रामके चरणोंमें उन सबका ही बहुत अधिक प्रेम था। वे दिन-रात प्रभु रामका कमलके समान मुख जोहते रहते थे कि कृपालु राम हमें कुछ सेवाका काम बताते चलें। (१) राम अपने सब भाइयोंसे बड़ा प्रेम करते थे और सदा उन्हें नीतिकी शिक्षा देते रहते थे। नगरके सभी लोग प्रसन्न हुए रहते थे क्योंकि उन्हें वे सुख मिलते जा रहे थे जो देवताओंको भी प्राप्त नहीं हो पाते थे। (२) वे दिन-रात विधातासे यही प्रार्थना करते रहते थे कि रामके चरणोंमें हमारी प्रीति सदा ऐसी ही बनी रहे। सीताके लव और कुश नामके दो सुन्दर पुत्र हुए जिनका वर्णन वेद और पुराणोंमें विस्तारसे मिलता है। (३) दोनों पुत्र बड़े वीर, विनयशील और सब गुणोंसे भरे हुए थे। वे ऐसे सुन्दर थे मानो ठीक रामके ही प्रतिबिम्ब हों। सभी भाइयों (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न)-के दो ही दो पुत्र (भरतके तक्ष और पुष्कल; लक्ष्मणके अंगद और चन्द्रकेतु; शत्रुघ्नके सुबाहु और शत्रुघाती) हुए जो बड़े सुन्दर, गुणवान् और सुशील थे। (४) जिन भगवान्-तक न ज्ञान पहुँच पाता है, न वाणी और इन्द्रियाँ पहुँच पाती हैं, जो अजन्मा हैं, जिसे न माया छू पाती, न जिसतक मन पहुँच पाता, न जिसे तीनों (सत्त्व, रज, तम) गुण ही छू पाते, वही सच्चिदानन्दघन भगवान् अयोध्यामें बैठे यह सुन्दर नर-लीला किए जा रहे थे ॥ २५ ॥ (प्रभु राम) नित्य प्रातःकाल उठते ही सरयूमें स्नान करके ब्राह्मणों और सज्जनोंके साथ सभामें आ बैठते थे जहाँ वशिष्ठ उन्हें वेद और पुराणोंकी कथाएँ सुनाते चलते थे और राम सब जानते हुए भी चुपचाप बैठे सुना करते थे। (१) राम जब अपने छोटे भाइयोंके साथ-साथ भोजन करने

३६७-६८ भरतो लक्ष्मणशत्रुघ्नावथामात्यास्सुहृद गणाः। आसासते कृपासिन्धू रातु नः क्वापि भृत्यताम् ॥
३६९ प्रेम्णा परेण बन्धूश्च रामः कमललोचनः। धर्मनीतिं राजनीतिं शास्ति स्म विविधागमान् ॥
३७०-७१ रामे शासति साकेतपुर्यां सर्वा प्रजास्तदा। विदधुर्भोगपूर्गास्ता दुर्लभांस्त्रिदशैरपि ॥—आन०रा०
३७४ इतरेपि रघोवंश्यास्त्रयस्त्रेताग्नितेजसः। तद्योगात् पतिवत्नीषु पत्नीष्वासन् द्विसूनवः ॥
३७५-७६ स ब्रह्म परमं रामः पुरुषः प्रकृतेः परः। अमानुषाणि कर्माणि चकार बहुशो भुवि ॥
३७७-७८ प्रातः स्नात्वा सरय्वाञ्च स्थित्वा भातृद्विजर्षभैः। शृणोति गुरुवक्त्राच्च कथां पौराणिकीं महान् ॥
३७९ भातृभिर्भुञ्जमानं तं वीक्ष्यापुर्मातरः सुखम्। —रघुवंश

३८० भरत-सत्रुहन दूनौ[1] भाई । सहित - पवनसुत उपबन जाई । (२)
बूझहिं बैठि राम-गुन-गाहा । कह हनुमान, सुमति अवगाहा ।
सुनत बिमल गुन, अति सुख पावहिं । बहुरि-बहुरि करि बिनय, कहावहिं । (३)
सबके गृह-गृह होहिं पुराना । राम - चरित पावन बिधि नाना ।
नर अरु नारि राम-गुन-गानहिं । करहिं, दिवस-निसि जात न जानहिं । (४)

दो०—अवधपुरी - बासीन्ह - कर , सुख - संपदा - समाज ।
सहस सेष नहि कहिं सकहिं , जहँ नृप राम बिराज ॥ २६ ॥

नारदादि, सनकादि, मुनीसा । दरसन - लागि कोसलाधीसा ।
प्रति दिन[2] सकल अयोध्या आवहिं । देखि नगर बिरतिहिं बिसरावहिं[3] । (१)
जातरूप-मनि-रचित अटारी । नाना रंग रुचिर गच ढारी ।
३९० पुर चहुँ-पास कोट अति सुन्दर । रचे कँगूरा रंग - रंग - बर । (२)
नवग्रह-निकर अनीक बनाई । जनु घेरी अमरावति आई ।
मनि बहु-रंग-रचित गच-काँचा । जो बिलोकि मुनिबर-मन नाँचा । (३)
धवल धाम ऊपर नभ चुम्बत । कलस मनहुँ रबि-ससि-दुति निंदत ।

आ बैठते थे तो माताएँ देख-देखकर मगन हो-हो उठती थीं । भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न जब उपवनमें पवन-पुत्र हनुमान्‌के साथ जाकर (२) बैठकर उनसे रामकी कथा पूछते चलते थे तो हनुमान् भी अपनी सुलझी हुई बुद्धिके अनुसार रस ले-लेकर उसका वर्णन करते चलते थे । रामका निर्मल चरित्र सुन-सुनकर उन तीनों भाइयोंको बड़ा रस मिलता था और वे हनुमान्‌से बार-बार कथा कह सुनानेके लिये विनय करते जाते थे । (३) सबके घर-घर पुराणोंकी और रामके पवित्र चरित्रकी निरन्तर कथाएँ चलती रहती थीं । जिसे देखो वही पुरुष और स्त्री रामके गुणोंका वर्णन किए जाता था । इस आनन्दमें उन्हें यही नहीं जान पड़ता था कि कब दिन डूबा, कब रात ढली । (४) जहाँके राजा स्वयं राम हों, उस अयोध्यापुरीके निवासियोंके सुख, उनकी सम्पदा और उनके समाज (पारस्परिक व्यवहार)-का वर्णन तो सहस्रों शेषोंके किए भी नहीं हो पा सकता ।। २६ ।। नारद और सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) सभी मुनीश्वर, कोशलाधीश रामके दर्शनके लिये प्रतिदिन ही अयोध्या आते रहते थे पर जहाँ वे अयोध्या नगर (-की शोभा)-की झलक पाते कि अपना सारा वैराग्य वहीं भूल बैठते । (१) अयोध्यामें एकसे एक बढ़कर दिव्य, सोने और रत्नोंसे जड़ी अटारियाँ बनी खड़ी थीं, जिनपर रंग-बिरंगी सुन्दर गचें (ऊपरकी छत) ढली हुई थीं । नगरके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर परकोटा घिरा हुआ था, जिसपर (बीच-बीचमें बने हुए) सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंग कँगूरे ऐसे लगते थे (२) मानो नवग्रहोंने बड़ी भारी सेना चढ़ाकर अमरावतीको आ घेरा हो । धरतीपर रंग-बिरंगी काँचकी सड़कें बनी हुई थीं, जिन्हें देखकर बड़े-बड़े मुनियोंका मन भी (प्रसन्नतासे) नाच-नाच उठता था । (३) वहाँके ऊँचे-ऊँचे उज्ज्वल भवन आकाश छूए जा रहे थे, जिनपर बने हुए कलश (ऐसे लकालक दमकते थे) कि अपनी चमकसे सूर्य और चन्द्रमाकी चमक भी

१. दोनौ । २. दिन प्रति । ३. देखि नगर बिराग बिसरावहिं ।

३८३-८४ श्रुतिघोषो हि सर्वत्र शास्त्रवादः पदे पदे । सर्वत्र सुभगालापा मुदा मंगलगीतयः ॥
३८५-८६ एवं तद्रामराज्यं हि महामङ्गलसंयुतम् । आसीदनुपमेयं च श्रवणान्मंगलप्रदम् ॥
यस्य शेषः सहस्रास्यो वर्णने मन्दवाक् भवेत् ॥ —रघुवंश
३८७-८८ इन्द्रादयो लोकपाला ऋषयो नारदादयः । समागच्छन्त्ययोध्यान्ते द्रष्टुं श्रीरघुनन्दनम् ॥
३८९-९० स्फाटिकानि च सौधानि चन्द्ररश्मियुतानि च । स्वर्णरौप्यमयैः शृङ्गैः संकुले सर्वतो गृहे ॥सत्यो०

बहु मनि - रचित झरोखा भ्राजहिँ । गृह-गृह-प्रति मनि-दीप बिराजहिँ । (४)

छंद—मनि - दीप राजहिं, भवन भ्राजहिँ, देहरी बिद्रुम रची ।
मनि खम्भ, भीति, बिरंचि बिरची, कनक-मनि-मरकत खची ।
सुंदर मनोहर मंदिरायत, अजिर रुचिर फटिक रचे ।
प्रति द्वार - द्वार, कपाट - पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ॥ [१३]

दो०—चारु चित्रसाला गृह ,-गृह - प्रति लिखे बनाइ ।
४०० राम - चरित जे निरख मुनि , ते मन लेहिँ चोराई ॥ २७ ॥

सुमन - बाटिका सबहि लगाई । बिबिध भाँति करि जतन बनाई ।
लता ललित बहु जाति सुहाई । फूलहिँ नित बसंत - की नाँईं । (१)
गुंजत मधुकर मुखर मनोहर । मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर ।
नाना खग बालकन्हि जियाए । बोलत मधुर, उड़ात सुहाए । (२)
मोर, हंस, सारस, पारावत । भवननि - पर सोभा अति पावत ।
जहँ - तहँ देखहिं निज परिछाहीँ । बहु बिधि कूजहिं, नृत्य कराहीँ । (३)
सुक - सारिका पढ़ावहिँ बालक । कहहु राम, रघुपति जन-पालक ।
राज - दुआर सकल बिधि चारू । बीथी, चौहट, रुचिर बजारू । (४)

धुँधली किए डाल रहे थे । घर-घरमें रत्नोंसे जड़े झरोखे बने हुए थे और उनमें रत्नोंके दीप जगमग-जगमग जगमगाए पड़ते थे । (४) घर-घरमें मणियोंके दीपक जगमगाए पड़ रहे थे, मूँगेकी बनी हुई (लाल-लाल) देहलियाँ चमकी पड़ रही थीं, खंभोंमें रत्न जड़े पड़े थे, मरकत मणियों (नीलम)-से जड़ी हुई सोनेकी दीवालें (ऐसी लग रही थीं) मानो ब्रह्माने स्वयं अपने हाथोंसे उन्हें गढ़ बनाया हो । वहाँके सुन्दर-सुन्दर ऊँचे-ऊँचे विशाल भवन सबका मन मोहे ले रहे थे । उन भवनोंके सुन्दर आँगनोंमें स्फटिक मणि जड़े पड़े थे । द्वार-द्वारपर खरादे हुए हीरोंसे जड़े सोनेके किवाड़ लगे हुए थे । घर-घरमें सुन्दर-सुन्दर चित्रशालाएँ सजी हुई थीं जिनमें ऐसी कलाके साथ रामके जीवनकी सारी झाँकियाँ अंकित की गई थीं कि उन्हें देख-देखकर मुनियोंके मन भी ठगेसे रह जाते थे ॥२७॥ सब लोगोंने बड़े करीनेसे (अच्छे ढंगसे) अनेक प्रकारकी (फुलवारियाँ) सजा लगाई थीं जिनमें अनेक जातिकी सुन्दर-सुन्दर लताएँ सदा फूलोंसे ऐसे लदी रहती थीं जैसे उनपर सदा वसन्त छाया रहता हो । (१) (उन फूलोंपर) भौंरे बड़े मनोहर स्वरसे गुनगुनाते रहते थे । सदा तीनों प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्ध) बयार बहती रहती थी । घर-घरमें बालकोंने बहुतसे रंग-बिरंगे पक्षी पाल रक्खे थे, जो दिनरात मीठी बोली बोलते रहते थे और इधरसे उधर उड़ते-फुदकते हुए बड़े प्यारे लगते थे । (२) घर-घरपर बैठे हुए मोर, हंस, सारस और कबूतर बड़े प्यारे लगते थे । ये सभी पक्षी जहाँ अपनी छाया देखते कि चहकने और नाचने लगते । (३) बालक अपने सुग्गों और मैनाओंको पढ़ाते जाते थे—'कहो बेटा राम-राम, रघुपति, जनपालक राम ।' राजद्वारकी सुन्दरताका तो कहना ही क्या था ! गलियाँ, चौराहे और हाट भी बहुत सुहावने ढंगसे सजे-सँवरे हुए थे। (४) हाट तो इतने अधिक

३९५-४०० रुचिराश्चित्रशाला वै गेहे गेहे विभान्ति च । दर्शयन्त्यो रामचरितं मुनीनां चित्तहारिकाः ॥
४०१-२ तथा चोपवनान्येव पुष्पाणां क्रमशः पुरा । वसन्तेन विना सम्यक् वनं सूनान्वितं सदा ॥
४०३ प्रफुल्लैश्शतपत्रैश्च राजितं भ्रमरान्वितैः । त्रिविधा अनिलास्तत्र वान्ति स्म सततं वने ॥
४०७-८ लोकवार्ता यथा लोका प्रवदन्ति गृहे स्वके । प्रपठन्ति तथा रामं पञ्जरस्थाश्च सारिकाः ॥ सत्यो०

छंद—बाजार रुचिर, न बनै बरनत, बस्तु बिनु-गथ पाइए।
४१० जहँ भूप रमा-निवास, तहँ-की संपदा, किमि गाइए।
बैठे बजाज, सराफ, बनिक, अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी, सब सच्चरित, सुंदर, नारि-नर-सिसु-जरठ जे ॥ [१४]
दो०—उत्तर दिसि सरजू बह, निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर ॥ २८ ॥
दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पियहिं बाजि-गज ठाटा।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं असनाना। (१)
राज-घाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।
तीर-तीर देवन-के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्हके उपबन सुंदर। (२)
कहुँ-कहुँ सरिता-तीर उदासी। बसहिं ज्ञान-रत मुनि-संन्यासी।
४२० तीर-तीर तुलसिका सुहाई। बृन्द-बृन्द बहु मुनिन लगाई। (३)
पुर-सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर, परम रुचिराई।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन, उपबन, बापिका, तड़ागा। (४)

सुन्दर थे कि उनका वर्णन नहीं करते बनता। वहाँ जो भी आप चाहिए, बिना मूल्य दिए उठाए लिए चले जाइए। जहाँके राजा स्वयं लक्ष्मीके पति भगवान् हों वहाँकी सम्पत्ति (ऐश्वर्य)-का तो फिर कहना ही क्या है ? वहाँ बजाज, सर्राफ़ आदि व्यापारी ऐसे जान पड़ते थे मानो बहुतसे कुबेर वहाँ आ-आकर अपनी दुकान जमाए बस बैठे हों। वहाँ जितने भी स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े थे सबके सब एकसे एक बढ़कर सुखी, सच्चरित्र और सुन्दर थे। अयोध्या नगरके उत्तरमें सरयू नदी बहती थी, जिसका जल अत्यन्त निर्मल भी था और गहरा भी। उसपर स्थान-स्थानपर ऐसे मनोहर घाट बँधे हुए थे कि घाटके आस-पास कहीं कीचड़का नाम-तक नहीं था ॥ २८ ॥ थोड़ी ही दूरपर ऐसा दूसरा सुन्दर घाट बना हुआ था, जहाँ घोड़े और हाथी झुण्डके झुण्ड आकर जल पिया करते थे। स्थान-स्थानपर बहुतसे सुन्दर पनघट बने थे, जहाँ कोई भी पुरुष जाकर स्नान नहीं कर सकता था (क्योंकि वहीं स्त्रियाँ जल भरने जाया करती थीं)। (१) राजघाट तो बहुत ही सुन्दर और सजीला था, जहाँ चारों ही वर्णोंके लोग जाकर स्नान कर सकते थे। सरयूके तीरपर यहाँसे वहाँतक देवताओंके मंदिर ही मंदिर बने हुए थे, जिनके चारों ओर सुन्दर-सुन्दर फुलवारियाँ लगी हुई थीं। (२) कहीं-कहीं नदीके तीरपर बहुतसे विरक्त, ज्ञानी, मुनि और संन्यासी बसे हुए तप कर रहे थे। नदीके तीरपर यहाँसे वहाँतक मुनियोंने तुलसी ही तुलसीके बिरवे ला लगाए थे। (३) नगरकी शोभाका तो वर्णन किया ही नहीं जा सकता पर नगरके बाहरका भाग भी कम सुन्दर नहीं था। अयोध्या ऐसी नगरी है कि उसे देखते ही सारे पाप अपने आप भाग खड़े होते हैं। (नगरके बाहर अनेक सुन्दर-सुन्दर वन, उद्यान, बावड़ियाँ और सरोवर सजे फैले थे। (४) नगरके बाहर

४०९-१२ कः पण्यशोभाकथने समर्थो यत्राप्यते वस्तु विनार्घतोपि।
जज्ञे यतो राजशिखामणिर्नृपो मायामनुष्याकृतिरच्युतो विभुः ॥
४१३-१४ सोपानैर्विविधाकारैर्नानारत्नविचित्रितैः। वहते तूत्तरस्यां वै सरयूः स्वच्छघट्टका ॥
४१५-१७ ईषद्दूरेऽस्य घट्टश्च वर्तते शोभनो महान्। वाजिनो वारणा यत्र सलिलं प्रपिबन्ति च ॥
पृथग्घट्टश्च नारीणां यन्नरो न विशन्ति हि। राजघट्टे महादिव्ये चातुर्वर्ण्यं च मज्जति ॥
४१८ कूले कूले च देवानामासीन्मन्दिरमद्भुतम्। परितस्तस्य चारामश्शोभमानो बहु प्रिये ॥
४१९-२० नद्या रोधसि सिद्धाश्च क्वचित् संन्यासिनस्तथा। वृन्दावृन्दानि कुत्रापि मुनिभी रोपितानि च ॥
४२१-२१ यस्या दर्शनमात्रेण पापहानिः प्रजायते। कः स्तोतुमीष्टे नगरीमीदृशीञ्जातराघवाम् ॥ सत्यो०

छंद—बापी, तड़ाग, अनूप कूप, मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर, नीर निर्मल, देखि, सुर-मुनि मोहहीं।
बहु रंग कंज, अनेक खग कूजहिं, मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य, पिकादि खग-रव, जनु पथिक हंकारहीं॥ १५॥

दो०—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख-संपदा, रही अवध सब छाइ॥ २९॥

जहँ-तहँ नर रघुपति-गुन गावहिं। बैठि परसर इहै सिखावहिं।
४३० भजहु प्रनत-प्रतिपालक रामहिं। सोभा-सील-रूप-गुन-धामहिं। (१)
जलज-बिलोचन स्यामल गातहिं। पलक नयन-इव सेवक-त्रातहिं।
धृत-सर रुचिर-चाप-तूनीरहिं। संत-कंज-बन-रबि रनधीरहिं। (२)
काल कराल व्याल खगराजहिं। नमत अकाम राम, ममता-जहिं।
लोभ-मोह मृग-जूथ-किरातहिं। मनसिज-करि-हरि-जनु सुखदातहिं। (३)

एकसे एक सुन्दर बावड़ियाँ, सरोवर और बड़े-बड़े मनोहर कुएँ बने हुए थे जिनमें उतरनेके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। उनका जल इतना निर्मल रहता था कि उसे देख-देखकर देवता और मुनि-तक मोहित हो-हो पड़ते थे (कि इन्हीं में चल-चलकर नहाया जाय)। उन जलाशयों में बहुतसे रंग-बिरंगे कमल खिले रहते थे। वहाँ पक्षी चहचहाते रहते थे और भौंरे गूँजते रहते थे। उन रमणीक उद्यानों में कोयल आदि अनेक पक्षी कूजते हुए ऐसे लगते थे मानो वे राह-चलते पथिकोंको पुकार-पुकारकर बुलाए जा रहे हों। [१५] जहाँके राजा स्वयं लक्ष्मीके पति भगवान् हों उस नगरका क्या कहीं वर्णन किया जा सकता है? अणिमादिक सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य) और सभी प्रकारके सुख और सम्पत्ति अयोध्यापुरीमें स्वयं आ छाई था॥ २९॥ जहाँ देखो वहीं लोग बैठे, रामके ही गुणोंका वर्णन किए जाते थे और एक दूसरेको यही सिखाते चलते थे कि भजन करना हो तो शरणागतके रक्षक और शोभा, शील तथा गुणोंके भांडार रामका ही भजन करते रहो। (१) जैसे नेत्रोंकी रक्षा पलकें किया करती हैं वैसे ही सेवककी जो रक्षा करते हैं उन (राम) को भजते रहो। सुन्दर धनुष-बाण लिए रहनेवाले और जैसे कमलोंको सूर्य आनन्द देते हैं वैसे ही सन्तोंको आनन्द देनेवाले रणधीर (राम)-को भजते रहो (जैसे सूर्य निकलनेपर कमल खिल उठते हैं वैसे ही रामको देखकर सन्तोंको सुख मिलता रहता है)। (२) कठोर कालरूपी सर्पके लिये गरुड बने हुए रामका भजन करते रहो (जैसे सर्पको गरुड खा जाता है वैसे ही कालको भी राम समाप्त कर डालते हैं)। निष्काम भावसे रामको प्रणाम करनेवालेके मनसे ममता दूर कर डालनेवाले रामका भजन किया करो। लोभ और मोह-रूपी मृगोंको नष्ट कर डालनेवाले किरात-रूपी रामका भजन किया करो (जैसे किरात या व्याध जंगलके हरिणोंको मार डालता है वैसे ही राम भी लोभ और मोह नष्ट कर डालते हैं)। काम-रूपी हाथीको मारनेके लिये सिंहके समान शक्तिशाली तथा भक्तोंको सुख देनेवाले रामका भजन किया

४२३-२७ वापीकूपतडागानामुत्तमानां पदे पदे। सोपानं स्वच्छवारीणि वीक्ष्य मुह्यन्ति देवताः॥
प्रोत्फुल्लशतपत्रस्था गुञ्जन्ति मधुपाः पिकाः।
४२७-२८ यत्र सीता स्वयं लक्ष्मी रामो नारायणः स्वयम्। सिद्धयो विपुलास्तत्र निवयश्चापि भूरिशः॥सत्योपा०

संसय - सोक - निबिड़ - तम - भानुहिं। दनुज - गहन-घन-दहन-कृसानुहिं।
जनकसुता - समेत रघुबीरहिं। कस न भजहु भंजन-भव-भीरहिं। (४)
बहु बासना - मसक - हिम - रासिहिं। सदा एकरस, अज, अबिनासिहिं।
मुनि - रंजन, भंजन - महि - भारहिं। तुलसिदास - के प्रभुहिं उदारहिं। (५)
दो०—ऐहि बिधि नगर-नारि - नर, करहिं राम - गुन - गान।
४४० सानुकूल सब - पर रहहिं, संतत कृपा - निधान॥ ३०॥
जब - तें राम - प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा।
पूरि प्रकास रहे तिहुँ लोका। बहुतन्ह सुख, बहुतन्ह मन सोका। (१)
जिन्हहिं सोक, ते कहौं बखानी। प्रथम अबिद्या - निसा नसानी।
अघ - उलूक जहँ - तहाँ लुकाने। काम - क्रोध - कैरव सकुचाने। (२)
बिबिध कर्म - गुन - काल - सुभाऊ। ये चकोर सुख लहहिं न काऊ।
मत्सर - मान - मोह - मद - चोरा। इन्ह - कर हुनर, न कवनिहुँ ओरा। (३)
धरम - तड़ाग ज्ञान - बिज्ञाना। ये पंकज बिकसे बिधि नाना।
सुख - संतोष - बिराग - बिबेका। बिगत - सोक ये कोक अनेका। (४)

करो। (३) संशय और शोकके घने अन्धकारको दूर कर डालनेवाले सूर्य-रूपी रामका भजन किया करो। राक्षस-रूपी घने वनको जलानेवाले अग्निरूपी रामको भजते रहा करो। भव-भीर (जन्म-मृत्युके भय)-को नाश करनेवाले जानकी और रामको क्यों नहीं भजते रहते? (४) अनेक वासना-रूपी मच्छड़ोंका नाश कर डालनेवाले हिम (जाड़े)-रूपी रामका बैठे भजन किया करो। जो सदा एक रस रहते हैं, जो अजन्मा और अविनाशी हैं उन रामका भजन किया करो। मुनियोंको आनन्द देनेवाले, भूमिपर छाए हुए पापका भार नष्ट कर डालनेवाले और तुलसीदासके उदार प्रभु रामका भजन करते रहो।' (५) इस प्रकार अयोध्याके नर और नारी सदा रामके ही गुणोंका वर्णन करते रहते थे और कृपानिधान प्रभु राम भी उन सबपर सदा प्रसन्न हुए रहते थे ॥ ३० ॥ (काकभुशुंडि कहते हैं—)'देखो गरुड। जबसे रामके प्रतापका अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य उदित हुआ, तभीसे तीनों लोकोंमें पूर्ण प्रकाश आ छाया। इससे जहाँ बहुतोंको सुख मिला वहीं बहुतोंके मनमें दु:ख भी हुआ। (१) जिन-जिनको शोक हुआ पहले मैं उन्हींका वर्णन किए डालता हूँ। (सर्वत्र रामके प्रतापका प्रकाश छा जानेसे) पहले तो अविद्या - रूपी रात्रिका नाश हो चला, पाप-रूपी उल्लू जहाँ तहाँ जा छिपे और काम-क्रोध-रूपी सारे कुमुद सकुचा बैठे। (२) अनेक प्रकारके कर्म, गुण, काल और स्वभाव-रूपी चकोरोंको (रामके प्रतापका प्रकाश) नहीं सुहा रहा था तथा मत्सर (डाह), मान, मोह और मद आदि चोरोंके हथकंडे भी कहीं नहीं चल पाते थे। (३) धर्मके सरोवरमें ज्ञान-विज्ञान-रूपी रंग-बिरंगे कमल खिल उठे तथा सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक-रूपी चकवोंका सारा शोक जाता रहा। (४) रामके प्रतापके सूर्यका यह प्रकाश जब

४३९-४० एवंविधा जनास्सर्वे रामसद्गुणगायकाः। औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः॥ अध्या० रा०
४४१-४४ श्रीरामचन्द्रस्य प्रतापसूर्येऽविद्यातमी लुप्ततमा बभूव।
धर्मप्रदेऽशर्मदद च दीप्त उलूकपाप्मा न च कामकैरवम्॥
४४५-४६ गुणप्रभावप्रकृत्युत्थकर्मचकोरसौख्यं क्वनास्ति नो स्मरा।
मात्सर्यमोहस्मयतस्कराणां कर्तव्यमासीज्जगतीतलेन॥
४४७-४८ ज्ञानं सविज्ञानमथोदियाय पंकेरुहं धर्मतडागमुख्ये।
वैराग्यसंतोषविचारसौख्यकोका विशोका बहवो विभान्ति॥ —भुशुंडिरामायण

दो०—यह प्रताप - रबि जाके, उर जब करै प्रकास।
४५० पछिले बाढ़हिं, प्रथम जे, कहे, ते पावहिं नास ॥ ३१ ॥
भ्रातन्ह - सहित राम ऐक बारा। संग परम प्रिय पवन - कुमारा।
सुंदर उपवन देखन गए। सब तरु कुसुमित, पल्लव नए। (१)
जानि समय सनकादिक आए। तेज - पुंज गुन - सील सुहाए।
ब्रह्मानंद सदा लय - लीना। देखत बालक, बहु - कालीना। (२)
रूप धरे जनु चारिउ वेदा। समदरसी, मुनि, बिगत-बिभेदा।
आसा - बसन, व्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति - चरित होइ, तहँ सुनहीं। (३)
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट - संभव मुनिबर ज्ञानी।
राम - कथा मुनिवर बहु बरनी। ज्ञान-जोनि, पावक जिमि अरनी। (४)
दो०—देखि राम मुनि आवत, हरखि दंडवत कीन्ह।
४६० स्वागत पूछि, पीत पट, प्रभु बैठन - कहँ दीन्ह ॥ ३२ ॥
कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई। सहित - पवनसुत सुख अधिकाई।

जिसके हृदयमें चमक जाता है, तब जिनका वर्णन पीछे किया गया है वे (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, सन्तोष, वैराग्य और विवेक) चढ़ चलते हैं तथा जिनका वर्णन पहले किया गया है वे (अविद्या, पाप, काम, क्रोध, कर्म, काल, गुण और स्वभाव आदि) नष्ट हो चलते हैं ॥ ३१ ॥ एक बार अपने भाइयोंके साथ राम अपने प्यारे हनुमान्‌को साथ लेकर अपना सुन्दर उपवन देखने चले गए। वहाँ देखा कि सब वृक्ष फूले हुए और नये पत्तोंसे लदे पड़े हैं। (१) अच्छा अवसर (एकान्त) देखकर वहाँ सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार मुनि चले आए, जो परम तेजस्वी, श्रेष्ठ, तथा गुण और शीलसे भरे थे। वे ऐसे थे कि दिनरात ब्रह्मानन्दमें ही मग्न रहा करते थे। वे यद्यपि देखनेमें बालक-जैसे लगते थे, परन्तु थे वे बहुत वयो-वृद्ध। (२) वे देखनेमें ऐसे तेजस्वी लगते थे मानो चारों वेद ही शरीर धारण किए चले आए हों। वे मुनि लोग संसारमें सबको समान समझते थे और किसीमें कोई भेद नहीं करते थे। दिशाएँ ही उनके वस्त्र थे (वे नंगे रहते थे)। उन्हें कोई व्यसन (चाव) था तो एक यही था कि जहाँ कहीं रामके चरित्रकी कथा होती सुनते वहीं वे सुनने पहुँच जाते। (३) (शिव कहते हैं—) 'देखो भवानी ! वे सनक आदि मुनि लोग बहुत बड़े ज्ञानी मुनि अगस्त्यके यहाँसे ही अभी आए थे जहाँ मुनिवर अगस्त्य नित्य रामकी ऐसी बहुत सी कथाएँ बैठे सुनाया करते थे, जिन्हें सुनते रहनेसे ज्ञान उसी प्रकार जाग उठता है जैसे अरणि (यज्ञमें लकड़ीसे रगड़कर अग्नि उत्पन्न करनेवाली मथानी)-की रगड़से अग्नि उत्पन्न हो उठती है।' (४) सनक आदि मुनियोंको आते देखकर रामने बड़े हर्षसे उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। फिर कुशल पूछकर उनका स्वागत किया और उनके बैठनेके लिये अपना पीताम्बर उतार बिछाया ॥ ३२ ॥ फिर पवन-पुत्र हनुमान्‌के साथ-साथ तीनों भाइयों (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न)-ने मुनिवरोंको बढ़कर दण्डवत् प्रणाम किया जिससे सबको बहुत सुख मिला। मुनियोंने रामकी जो वह

४४९-५० एतत्प्रतापांशुमतिप्रदीप्ते हृदन्तरालेऽच्युतसाधुवीक्षणात्।
सम्रोपचिन्वन्ति वृषादिकाश्च समापचिन्वन्त्युदिताश्च पूर्वम् ॥ —भुशुण्डिरामायण
४५१-५२ एकदा भ्रातृभिः सार्धं सीताजानिः सवायुजः। द्रष्टुं जगामोपवनं तत्र वृक्षाः सपल्लवाः ॥ आन० रा०
४५३-५४ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारस्सूर्यवर्चसः।
४५५-५६ अभेददर्शिनो धीराश्शान्ता दिग्वाससोऽमलाः। नारायणकथाप्रेमपरायणमहर्षयः ॥—देवीभागवत
४५७-६० तांस्तु सिद्धेश्वरान् वीक्ष्य प्रीत्युत्फुल्लविलोचनः। आनम्य स्वासनं रामो मुनीनभ्युपवेशयत् ॥
सम्पृष्टकुशलास्सर्वे तस्थू रामेण पूजिताः। —आनन्दरामायण

मुनि, रघुपति - छबि अतुल बिलोकी। भए मगन, मन सके न रोकी। (१)
स्यामल गात, सरोरुह - लोचन। सुंदरता - मंदिर, भव - मोचन।
ऐकटक रहे, निमेष न लावहिँ। प्रभु कर जोरे सीस नवावहिँ। (२)
तिन्ह - कै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल, पुलक सरीरा।
कर गहि प्रभु, मुनिवर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे। (३)
आज धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहिँ अघ - खीसा।
बड़े भाग पाइव सतसंगा। बिनहिँ प्रयास होहि भव - भंगा। (४)
दो०—संत - संग अपबर्ग - कर, कामी भव - कर पंथ।
४७० कहहिँ संत कबि - कोबिद, स्रुति, पुरान, सदग्रंथ ॥ ३३ ॥
सुनि प्रभु - बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी।
जय भगवंत अनंत अनामय। अनघ, अनेक, एक, करुनामय। (१)
जय निर्गुन, जय - जय गुन - सागर। सुख - मंदिर, सुंदर, अति नागर।
जय इंदिरा - रमन, जय भू - धर। अनुपम, अज, अनादि, सोभाकर। (२)
ज्ञान - निधान, अमान, मानप्रद। पावन सुजस, पुरान - बेद बद।

अतुलनीय शोभा देखी तो वे उनकी छविपर ही ऐसे लट्टू हो उठे कि वे अपनेको सँभाल न सके। (१) वे एकटक होकर बिना पलक गिराए रामके साँवले शरीर और उनके कमलके समान सुन्दर तथा भव-बाधाओंसे मुक्त करनेवाले नेत्रोंको देखते ही रह गए। उधर राम भी हाथ जोड़े और सिर झुकाए उनके सम्मुख खड़े रह गए। (२) उनकी यह (प्रेम-विह्वल) दशा देखकर रामके नेत्रोंमें भी प्रेमाश्रु छलक आए और उनका शरीर पुलकित हो उठा। रामने हाथ पकड़कर मुनियोंको अपने पीताम्बरपर सँभाल बैठाया और फिर बड़े आदर और प्रेमसे बोले—(३) 'श्रेष्ठ मुनिवरो! आपने आज मुझे धन्य कर दिया। आपके दर्शन जिस किसीको भी मिल जायँ उसीके सारे पाप नष्ट हो मिटते हैं। आप-जैसे सन्तोंकी सत्संगति तो बड़े भाग्यसे प्राप्त हो पाती है और प्राप्त होते ही बिना प्रयास ही संसारकी सारी बाधाएँ अपने आप भाग खड़ी होती हैं। (४) संत, कवि, विद्वान्, वेद, पुराण और सभी सद्ग्रंथ यही कहते हैं कि संतोंके संगसे मुक्ति और कामियोंके संगसे जन्म-मृत्युका बन्धन मिलता है' ॥ ३३ ॥ रामके ये वचन सुनकर सनक आदि चारों मुनि हर्षित हो उठे और पुलकित हो-होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे— 'भगवन्! आपकी जय हो। आपका कोई अन्त नहीं है, आपमें कोई विकार नहीं होता और पाप कभी आपके पास आकर फटक नहीं पा सकता। यद्यपि आप जितने रूप चाहें उतने रूप ग्रहण करनेकी शक्ति आपमें विद्यमान है फिर भी आप एक (अद्वितीय) ही हैं और बड़े दयालु हैं। (१) हे निर्गुण! आपकी जय हो। हे गुणोंके भांडार! आपकी जय हो, जय हो। आप सब सुखोंके भांडार, अत्यन्त सुन्दर और बड़े बुद्धिमान् हैं। हे लक्ष्मीके पति! आपकी जय हो। हे पृथ्वीको धारण करनेवाले! आपकी जय हो। वेद और पुराण यही कहते चले आए हैं कि आपकी उपमा किसीसे दी नहीं जा सकती। आप अजन्मा हैं, अनादि हैं, शोभाके (२) और ज्ञानके भांडार हैं। स्वयं तो आपमें मान (आदर कराने-)की इच्छा नहीं है पर दूसरोंको आप निरन्तर मान देते रहते हैं। आपका यश (चरित्र) बड़ा पवित्र है। आप ज्ञानका सारा तत्त्व

४६१-६२ नव दूर्वादलश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम्। कंदर्पकोटिलावण्यं पीताम्बरसमावृतम् ॥
निर्निमषैर्नेत्रपुटैः पपुस्ते मुखपंकजम् ॥ —अध्यात्मरामायण

४६३-६८ अद्य मे सफलजन्म मुनयो वो विलोकनात्। युष्माकं दर्शनं मन्ये नृणां भवति भाग्यतः ॥
अहो सत्संगमः पुंसामशेषाघप्रशोधनः। —सत्योपाख्यान

४६९-७० संगो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया। स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते ॥—भागवत

तज्ञ, कृतज्ञ, अज्ञता - भंजन । नाम अनेक, अनाम, निरंजन । (३)
सर्ब, सर्बगत, सर्ब - उरालय । बससि सदा, हम-कहँ परिपालय ।
द्वंद्व - बिपति - भव - फंद - बिभंजय । हृदि बसि राम, काम-मद गंजय । (४)

दो०—परमानंद, कृपायतन , मन परिपूरन - काम ।
४८० प्रेम - भगति अनपायनी , देहु हमहिं श्रीराम ।। ३४ ।।

देहु भगति रघुपति ! अति पावनि । त्रिविध-ताप-भव-दाप - नसावनि ।
प्रनत - काम ! सुरधेनु ! कलप-तरु । होइ प्रसन्न दीजै प्रभु ऐहि बरु । (१)
भव - बारिधि - कुंभज रघुनायक । सेवत सुलभ, सकल सुखदायक ।
मन - संभव - दारुन - दुख दारय । दीनबंधु ! समता बिस्तारय । (२)
आस - त्रास - इरिषादि - निवारक । बिनय - बिबेक - बिरति - बिस्तारक ।
भूप - मौलि - मनि ! मंडन - धरनी । देहि भगति, संसृति-सरि - तरनी । (३)
मुनि - मन - मानस - हंस निरंतर । चरन-कमल, बंदित अज - संकर ।
रघुकुल - केतु, सेतु - स्रुति - रच्छक । काल-सुभाउ-करम-गुन - भच्छक[1] । (४)

जानते हैं। आपकी जो सेवा करे आप उसकी सेवा मानते हैं और उसका सारा अज्ञान मिटा डालते हैं। हे निरंजन ! आपके अनेकों नाम भी हैं और आप नाम-रहित भी हैं। (३) संसारमें जितने रूप दिखाई देते हैं सब आपके ही रूप हैं, सबमें आप व्याप्त हैं और सबके हृदय-रूपी घरमें आप सदा बसेरा डाले बसे रहते हैं। (आपसे निवेदन है कि) आप हमारा परिपालन करते रहिए। आप हमारे सारे द्वन्द्व (सुख-दुःख, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु, मान-अपमान आदि), विपत्तियाँ और भवके सारे बन्धन काट फेंकिए। हे राम ! आप हमारे हृदयमें बसकर हमारा काम और मद सब नष्ट कर डालिए। (४) आप साक्षात् परमानन्द स्वरूपवाले हैं, कृपालु हैं और (भक्तोंके) मनकी सारी कामनाएँ परिपूर्ण कर डालते हैं। तो राम ! (आपसे यही निवेदन है कि) आप हमें अपनी अविचल भक्ति और प्रेम दे डालिए ।। ३४ ।। राम ! आप हमें वह अत्यन्त पवित्र भक्ति दे डालिए जिससे तीनों प्रकारके ताप और जन्म-मृत्युके सारे क्लेश दूर हो भागते हैं। शरणागतकी सारी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली कामधेनुके समान और कल्पवृक्षके समान प्रभो ! प्रसन्न होकर हमें आप बस केवल यही वर वे डालिए। (१) देखिए भगवन् ! जैसे अगस्त्य मुनिने समुद्र सोख लिया था वैसे ही आप भी जन्म-मृत्युकी झंझट मिटा सुखाते हैं। आपकी सेवा करना सबके लिये सुलभ है और सेवा करनेवालेको आप सब सुख भी दे डाल सकते हैं। (आपसे निवेदन है कि) मनसे उत्पन्न होनेवाले जितने भी प्रचंड दुःख हो सकते हैं उन सबको आप नष्ट कर डालिए। हे दीनबन्धो ! ऐसा कीजिए कि हमारे हृदयमें समताका भाव समा जाय (हम सुख-दुःख, मान-अपमान, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, सबको समान समझें)। (२) आप अपने भक्तोंके हृदयसे आशा, त्रास, ईर्ष्या आदि दोष दूर करके विनय, विवेक (ज्ञान) और वैराग्यका विस्तार करते हैं। हे राजाओंके शिरोमणि और पृथ्वीके भूषण राम ! आप अपनी भक्तिकी वह नौका हमें दे डालिए (३) जिसपर चढ़कर हम संसृति (संसार)-रूपी नदी पार कर जायँ। मुनियोंके मनके मानसरोवरमें निरंतर तैरते रहनेवाले हंस ! ब्रह्मा और शिव भी आपके चरण-कमलकी वन्दना करते रहते हैं। आप रघुकुलकी ध्वजा हैं, वेदकी मर्यादाके रक्षक हैं और काल, कर्म, स्वभाव और गुणके सारे बन्धन झट काट डाल सकते हैं। (४)

१. काल करम सुभाउ गुन भच्छक ।

४७१-८२ तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश ।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रि द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ।। —भागवत

तारन - तरन, हरन सब दूषन । तुलसिदास-प्रभु, त्रिभुवन - भूषन । (४।।)

४९० दो०—बार - बार अस्तुति करि , प्रेम - सहित सिर नाइ ।
ब्रह्म - भवन सनकादि गे , अति अभीष्ट बर पाइ ।। ३५ ।।

सनकादिक बिधि - लोक सिधाए । भ्रातन राम - चरन सिर नाए ।
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीँ । चितवहिँ सब मारुतसुत-पाहीँ । (१)
सुनी चहहिँ प्रभु-मुख-कै बानी । जो सुनि होइ सकल भ्रम-हानी ।
अंतरजामी प्रभु सब जाना । बूझत, कहहु काह हनुमाना । (२)
जोरि पानि, कह तब हनुमंता । दीन-दयाल[२] ! सुनहु भगवंता ।
नाथ ! भरत कछु पूछन चहहीँ । प्रस्न करत मन सकुचत अहहीँ । (३)
तुम जानहु कपि ! मोर सुभाऊ । भरतहि मोहिँ कछु अंतर काऊ ।
सुनि प्रभु-बचन, भरत गहे चरना । सुनहु नाथ ! प्रनतारति-हरना । (४)

५०० दो०—नाथ मोहिँ संदेह कछु , सपनेहु सोक न मोह ।
केवल कृपा तुम्हारिहि, कृपानंद - संदोह ।। ३६ ।।

करौँ कृपानिधि एक ढिठाई । मैँ सेवक, तुम जन - सुखदाई ।
संतन - कै महिमा रघुराई । बहु बिधि बेद - पुरानन गाई । (१)
श्रीमुख तुम पुनि कीन्हि बड़ाई । तिन्ह-पर प्रभुहिँ प्रीति अधिकाई ।

आप तो तरन-तारन (तरे हुएको भी तार सकनेकी शक्तिवाले) हैँ । आपके पास जो आवे उसके सब दोष दूर कर डालते हैं । आप तीनोँ लोकोँके विभूषण हैँ और आप ही तुलसीदासके एक मात्र स्वामी हैँ ।'(४।।) इस प्रकार बार-बार प्रभुकी स्तुति करके, प्रेमपूर्वक उन्हेँ सिर नवाकर तथा उनसे मनचाहा वर पाकर सनक आदि मुनि ब्रह्मलोक लौट गए ।। ३५ ।। जब सनक आदि मुनि ब्रह्मलोक चले गए तब तीनोँ भाई रामके चरणोँमेँ सिर नवाकर बैठ गए । सब भाई, रामसे कुछ पूछना तो चाहते थे पर पूछनेमेँ बहुत सकुचाए जा रहे थे, इसलिये उन्होँने हनुमान्‌की ओर संकेत किया (कि हमारी ओरसे आप ही पूछ लीजिए) । (१) (हनुमान् भी) रामके श्रीमुखसे वह सब सुनना चाहनेको उतावले हो रहे थे जिसे सुनकर मनके सारे भ्रम दूर हो मिटेँ । योँ तो अन्तर्यामी प्रभु उनके मनकी बात सुनते ही ताड़ गए, फिर भी पूछ बैठे—'कहो हनुमान् ! क्या पूछना चाहते हो ?' (१) तब हनुमान्‌ने हाथ जोड़कर कहा—'दीनदयालु ! भगवन् ! नाथ ! भरत कुछ आपसे सुनना चाहते हैँ, पर आपसे कहनेमेँ सकुचा रहे हैँ ।' (३) (रामने कहा—) 'देखो हनुमान् ! तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो । भरतके और मेरे बीच क्या कभी कोई अन्तर रह पाया है ?' प्रभुके ये वचन सुनकर भरतने रामके चरण पकड़ लिए और कहा—'हे शरणागतके दुःखोँका नाश करनेवाले नाथ ! (४) कृपालु ! आनन्दमूर्ति ! आपकी कृपासे न तो मेरे मनमेँ कभी कोई सन्देह ही रहा, न कभी स्वप्नमेँ भी शोक या मोह ही हो पाया ।। २६ ।। फिर भी कृपानिधान ! आपसे (कुछ पूछनेकी) धृष्टता तो कर ही रहा हूँ क्योँकि मैँ तो आपका सेवक (भक्त) हूँ और आप सदा सेवकोँका मन रखते ही आए हैँ । देव राम ! वेद और पुराणोँमेँ सन्तोँकी बहुत महिमा बताई गई है । (१) आप भी अपने श्रीमुखसे उनकी बहुत बड़ाई किया करते हैँ । इतना ही नहीँ, आप तो उनसे बहुत प्रेम भी करते हैँ । तो प्रभो ! मैँ भी जान लेना चाहता हूँ कि उन (सन्तोँ)-के लक्षण क्या होते हैँ (उनकी क्या पहचान

२. सुनहु दीन-दयाल भगवंता ।

४८३-९२ त आत्मयोगमतयो राघवेणार्चितपंयः । शीलौदार्ये प्रशंसन्तो ब्रह्मलोकमयासिषुः ।।–सत्यो०

सुना चहौं प्रभु ! तिन्ह-कर लच्छन । कृपासिंधु गुन-ज्ञान-बिचच्छन । (२)
संत - असंत - भेद बिलगाई । प्रनतपाल ! मोहिं कहहु बुझाई ।
संतन-के लच्छन सुनु भ्राता । अगनित श्रुति - पुरान - बिख्याता । (३)
संत - असंतन - कै असि करनी । जिमि कुठार - चंदन - आचरनी ।
काटै परसु मलय, सुनु भाई । निज गुन, देइ सुगंध बसाई । (४)
५१० दो०—तातें सुर-सीसन्ह चढ़त , जग - बल्लभ श्रीखंड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु-बदन, यह दंड ।। ३७ ।।
बिषय-अलंपट, सील- गुनाकर । पर-दुख-दुख, सुख-सुख देखे पर ।
सम, अभूत - रिपु, बिमद, बिरागी । लोभामरष - हरष - भय त्यागी । (१)
कोमल चित, दीनन - पर दाया । मन-बच-क्रम मम भगति अमाया ।
सबहिं मान - प्रद, आपु अमानी । भरत ! प्रान - सम मम तेइ प्रानी । (२)
बिगत - काम, मम नाम - परायन । सांति, बिरति, बिनती, मुदितायन ।
सीतलता, सरलता, मइत्री । द्विजपद-प्रीति धरम - जनइत्री । (३)
ये सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात ! संत संतत फुर ।

है) । आप बड़े कृपालु, बड़े गुणी और परम ज्ञानी हैं । (२) शरणागतके रक्षक ! आप मुझे समझाकर बता दीजिए कि संत कौन होते हैं और असंत कौन होते हैं ।' (यह सुनकर रामने कहना प्रारंभ किया—) 'देखो भाई ! वेद और पुराणोंमें संतोंके अगणित लक्षण बताए गए हैं । (३) सन्त और असन्तका आचरण वैसा ही होता है जैसा चन्दन और कुल्हाड़ीका होता है । देखो भाई ! कुल्हाड़ी तो चन्दनको काट डालती है, पर चन्दनको देखो कि उस काटनेवाली कुल्हाड़ीमें भी अपना गुण भरकर उसे सुगन्धित कर देता है (जो बुराई करता है उसकी भी भलाई करता है) । (४) इसी गुणके कारण चन्दन तो देवताओंके सिरपर चढ़ाया जाता है और सारा जगत् उसे अपनाए रहता है । उधर कुल्हाड़ीकी दशा देखो तो (काटते-काटते जब वह भोथड़ी हो जाती है) तब उसे यह दंड दिया जाता है कि उसका मुँह आगमें तपाकर उसे घनसे धमाधम पीटा जाता है ।। ३७ ।। देखो भरत ! सांसारिक विषयोंमें जिन लोगोंकी कोई आसक्ति नहीं है, जो शीलवान् और गुणवान् हैं, जो पराए दुःखसे दुखी हुए रहते हैं, जो सबको समान समझते हैं. जिनकी किसीसे शत्रुता नहीं है, जिनमें मदका नाम-तक नहीं है, जो सब कुछ छोड़े बैठे हैं तथा जिनके मनमें न लोभ है, न क्रोध, न हर्ष और न किसीका भय, (१) उनका चित्त बड़ा कोमल होता है । वे सदा दीनोंपर दया करते हैं । वे मन, वचन और कर्मसे मुझमें निष्कपट भक्ति करते हैं । वे सबका सम्मान करते, पर स्वयं अपना सम्मान करानेसे दूर भागते हैं । ऐसे प्राणियोंको मैं प्राणके समान (प्यारा) समझता हूँ । (२) जो लोग सब कामनाएँ छोड़कर बैठे केवल मेरा नाम जपते रहते हैं, जिनके मनमें सदा शान्ति, वैराग्य, नम्रता, और प्रसन्नता भरी रहती है, जो सदा शीतल, सरल और सबके मित्र होते हैं, जो धर्मका मार्ग दिखानेवाले ब्राह्मणोंके चरणोंसे प्रेम करते रहते हैं (वे ही सच्चे संत हैं) । (३) ये सब लक्षण जिसमें विद्यमान हों, वही सच्चा संत है । जो सदा शान्त रहते, इंद्रियोंका दमन

५०३-७ साधुस्त्वयोत्तमश्लोकमतः कीदृग्विधः प्रभो । एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो ।।
प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ।। —आनन्दरामायण

५०८-९ सुजनो न याति वैरं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि ।
छेदेऽपि चन्दनतरुस्सुरभयति मुखं कुठारस्य ।। —सुभाषित

५१२ त्यक्तात्मसुखभोगेच्छाः सर्वसत्वसुखैषिणः । भवन्ति परदुःखेन साधवो नित्यदुःखिताः ।।-वह्निपु.

सम-दम-नियम-नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं। (४)

५२० दो०—निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद - कंज।
ते सज्जन मम प्रान-प्रिय, गुन - मंदिर, सुख - पुंज ॥ ३८॥

सुनहु असंतन - केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिय न काऊ।
तिन्ह - कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालइ हरहाई। (१)
खलन्ह हृदय अति ताप बिसेखी। जरहिं सदा पर - संपति देखी।
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं, मनहुँ परी निधि पाई। (२)
काम-क्रोध - मद - लोभ - परायन। निर्दय, कपटी, कुटिल, मलायन।
बयर अकारन सब काहू - सों। जो कर हित, अनहित ताहू सों। (३)
झूठइ लेना, झूठइ देना। झूठइ भोजन, झूठ चबेना।
बोलहिं मधुर बचन, जिमि मोरा। खाहिं महा अहि, हृदय कठोरा। (४)

५३० दो०—पर-द्रोही, परदार - रत, पर-धन, पर-अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥ ३९॥

करते, नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-भक्ति)-का पालन करते, नीतिका (न्यायके अनुसार) व्यवहार करते, कभी किसीसे कठोर वचन नहीँ वोलते, (४) जो निन्दा और प्रशंसा दोनोँको वरावर समझते हैँ और जो मेरे चरण-कमलोँसे ममता बनाए रहते हैँ—ऐसे गुणी और सुशील सज्जनोँ (सन्तोँ)-को मैँ अपने प्राणोँके समान प्यारा समझता हूँ ॥३८॥ (देखो भरत!) अब मैँ बताता हूँ कि असन्तोँ (दुष्टोँ)-का आचरण कैसा होता है। देखो! कभी भूलकर भी दुष्टोँके साथ नहीँ बैठना-उठना चाहिए, क्योँकि इनका संग करनेसे सदा वैसे ही दु:ख ही दु:ख हाथ लगता है जैसे हरियाई (हरियाली देखकर उधर दौड़ पहुँचनेवाली) गाय अपने साथ कपिला (सीधी) गौको भी पिटवा डालती है। (१) दुष्टोँका हृदय सदा (ईर्ष्यासे) जलता रहता है। वे सदा दूसरोँकी सम्पत्ति देख-देखकर जले जाते हैँ। दूसरेकी बुराई सुनकर वे ऐसे प्रसन्न हो उठते हैँ, मानो कहीँ धनका भांडार पड़ा मिल गया हो। (२) उनके मनमेँ सदा काम, क्रोध, मद और लोभ भरा रहता है। वे वड़े निर्दयी, कपटी, खोटे और पापी होते हैँ। वे विना कारण ही सवसे वैर मोल लेते फिरते हैँ। उनके साथ जो भलाई भी करता है, उसके साथ भी वे बुराई ही करते हैँ। (३) उनका सारा लेन-देन (व्यवहार) झूठा (कपट-भरा) ही होता है। उनका भोजन करना या चबैना चबाकर ही रह जाना भी झूठा ही होता है (चबैना चबाकर रह जानेपर भी डींग मारते रहते हैँ कि आज तो हलवा-पूरी उड़ाई है)। वे मोरकी वोलीके समान बोलते तो बहुत मीठे हैँ, किन्तु उनका हृदय मोरके समान इतना कठोर होता है कि बड़े-बड़े सर्पोँको भी पकड़कर खा डालते हैँ (मीठी बोली बोलकर भी वड़ी हानि पहुँचा डालते हैँ—'मुँहमेँ राम-राम बगलमेँ छुरी)।' (४) वे सदा सबसे

५१९ साधवः प्रतिपन्नार्थाः प्रचलन्ति न सत्पथात्। —कामन्दकीयनीति

५२०-२१ तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्। अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥ —गीता

५२२-२३ परापकारनिरतैर्दुर्जनैः सहसंगतिः। वदामि भवतस्तत्त्वं न विधेया कदाचन॥

५२४ ऊर्जितं सज्जनं दृष्ट्वा द्वेष्टि नीचः पुनः पुनः। कवलीकुरुते स्वस्थं विधुं दिवि विधुन्तुदः॥
अहो सहन्ते वत नो परोदयं निसर्गतोऽन्तर्मलिना ह्यसाधवः। —सुभाषित

५२६-२७ अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥ —भर्तृहरिशतक

लोभइ ओढ़न, लोभइ डासन। सिस्नोदर-पर, जमपुर त्रास न।
काहू-की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं, जनु जूड़ी आई। (१)
जब काहू-कै देखहिं बिपती। सुखी भए, मानहुँ जग-नृपती।
स्वारथ-रत, परिवार-बिरोधी। लंपट-काम-लोभ, अति क्रोधी। (२)
मातु-पिता-गुरु-बिप्र न मानहिं। आपु गए, अरु घालहिं आनहिं।
करहिं मोह-बस द्रोह परावा। संत-संग, हरि-कथा न भावा। (३)
अवगुन-सिंधु, मंद-मति, कामी। बेद-बिदूषक पर-धन-स्वामी।
बिप्र-द्रोह, पर-द्रोह बिसेषा। दंभ-कपट जिय धरे सुबेषा। (४)

५४० दो०—ऐसे अधम मनुज खल, कृतजुग-त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक, वृन्द बहु, होइहइँ कलिजुग-माहिं। (४०)

परहित-सरिस धरम नहिं भाई। पर-पीड़ा-सम नहिं अधमाई।
निर्नय सकल पुरान बेद-कर। कहेउँ तात! जानहिं कोबिद नर। (१)
नर-सरीर धरि, जे पर-पीरा। करहिं, ते सहहिं महा भव-भीरा।

झगड़ा ठाने रहते हैं। दिन-रात पराई स्त्री फाँसने, पराया धन हड़पने और दूसरोंकी निन्दा करनेमें लगे रहते हैं। ऐसे नीच और पापी मनुष्योंको तो देह धारण किए हुए राक्षसके समान ही समझना चाहिए ॥ ३९ ॥ लोभ ही जिनका ओढ़ना हो और लोभ ही बिछौना हो (जो सदा लोभ करते रहते हैं) वे पशुओंके समान कामवासना पूर्ण करने और पेट भरनेमें ही ऐसे लगे रहते हैं कि उन्हें कभी नरकका भी भय नहीं हो पाता। किसीकी उन्नति होते सुनकर वे (दुःखसे) ऐसी लम्बी साँस खींचने लगते हैं मानो उन्हें जूड़ी आ चढ़ी हो। (१) किसीको विपत्तिमें पड़े देखकर वे ऐसे प्रसन्न हो उठते हैं मानो उन्हें जगत्का राज्य मिल गया हो। वे दिन-रात केवल अपना स्वार्थ साधनेमें ही लगे रहते हैं, और अपने परिवारवालोंको देखकर चिढ़ते और कुढ़ते रहते हैं। वे बड़े ही लंपट, कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं। (२) वे न माताको मानते, न पिताको, न गुरुको और न ब्राह्मणोंको। वे आप तो बिगड़े ही रहते हैं, (अपने साथ-साथ) दूसरोंको भी ले डूबते हैं। वे मोह (अज्ञान)-के कारण सदा दूसरोंसे झगड़ा ठाने रहते हैं। उन्हें न सन्तोंका संग भाता, न भगवान्की कथा ही भाती। (३) उनमें अवगुण ही अवगुण भरे रहते हैं। उनकी बुद्धि बड़ी मन्द होती है। वे बड़े कामी होते हैं, वेदकी निन्दा करते हैं और पराया धन हड़पनेके फेरमें पड़े रहते हैं। यों तो वे सभीसे द्रोह करते हैं पर ब्राह्मणोंको तो वे फूटी-आँखों नहीं देख सकते (ब्राह्मणोंके विशेष द्रोही होते हैं)। उनके हृदयमें कूट-कूटकर दम्भ और कपट भरा रहता है, पर बाहर अपना ठाट-बाट बहुत सुन्दर बनाए रहते हैं। (४) ऐसे अधम और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेतामें तो होते ही नहीं, द्वापरमें भी गिने-चुने ही होते हैं पर कलियुगमें तो ऐसे ही दुष्टोंकी भरमार रहती है ॥ ४० ॥ देखो भाई! दूसरोंकी भलाई करनेसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। यही सब वेदों और पुराणोंका मत है जो मैंने तुम्हें कह सुनाया है, पर यह बात केवल विद्वान् लोग ही जानते हैं। (१) जो लोग मनुष्यका चोला पाकर भी दूसरोंको सताते रहते हैं उन्हें ही बार-बार जन्म लेने और मरनेका महान्

५३२ यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः। आस्थिते रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत्॥ हितोपदेश
५३३ दह्यमानास्सुतीव्रेण नीचाः परयशोग्निना। —सुभाषित
५३५ यस्मिन् वंशे समुत्पन्नस्तमेव निजचेष्टितैः। दूषयत्यचिरेणैव घुणकीट इवाधमः॥
५३६-३७ मातापित्रोश्च हन्तारो वेदब्राह्मणनिन्दकाः। द्विषन्तः परकार्याणि स्वात्मानं हरिमीश्वरम्। गरुडपु०
५४२-४३ अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥
५४४ मानुषं देहमाश्रित्य परान् यो हि व्यतिक्रमेत्। सोप्याप्नोति महत् कष्टं नात्र कार्या विचारणा॥ सुभा.

करहिँ मोह-बस नर अघ नाना। स्वारथ - रत परलोक - नसाना। (२)
कालरूप तिन्ह - कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ करम-फल-दाता।
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहिँ मोहिँ, संसृति - दुख जाने। (३)
त्यागहिँ कर्म सुभासुभ - दायक। भजहिँ मोहिँ सुर-नर-मुनि-नायक।
संत - असंतन - के गुन भाखे। ते न परहिँ भव, जिन्ह लखि राखे। (४)

५५० दो०—सुनहु तात! माया - कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह, उभय न देखियहि, देखिय सो अबिबेक॥ ४१॥

श्रीमुख - वचन सुनत सब भाई। हरषे, प्रेम न हृदय समाई।
करहिँ विनय अति बारहिँ बारा। हनूमान - हिय हरष अपारा। (१)
पुनि रघुपति, निज मंदिर गए। ऐहि बिधि चरित करत नित नए।
बार - बार नारद मुनि आवहिँ। चरित पुनीत राम - के गावहिँ। (२)
नित नव चरित देखि मुनि जाहीँ। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीँ।
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिँ। पुनि-पुनि, तात! करहु गुन-गानहिँ। (३)
सनकादिक नारदहि सराहइँ। जद्यपि ब्रह्म-निरत मुनि आहइँ।
सुनि गुन - गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिँ परम अधिकारी। (४)

संकट भोगना पड़ता है। केवल अज्ञानके कारण ही मनुष्य अनेक प्रकारके पाप करता रहता है, (२) और भाई! ऐसे ही लोगोंका मैं काल हूँ और उन्हें भले और बुरे कर्मोंका फल देता ही रहता हूँ। ऐसा विचारकर परम बुद्धिमान् लोग इस संसारको दुःखसे भरा जानकर केवल मेरा ही भजन करते रहते हैं। (३) इसीसे वे अच्छे और बुरे कर्म छोड़कर मुझे देवता, मनुष्य और मुनियोंका नायक मानकर मेरा ही भजन किया करते हैं। संत और असंतके जो लक्षण मैंने बताए हैं उन्हें जो हृदयमें समझ रखते हैं, वे जन्म और मृत्युके चक्करमें कभी नहीं पड़ पाते। (४) देखो भाई! सब गुण और दोष मायाने ही रच रक्खे हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है)। इसलिये विवेक इसीमें है कि न तो गुणके फेरमें पड़े, न अवगुणके। इन दोनोंके ही फेरमें पड़ना अविवेक है' ॥४१॥ भगवान्‌के श्रीमुखसे यह प्रवचन सुनकर सब भाई प्रसन्न हो उठे। उनके हृदयमें जो प्रेम था वह और भी अधिक उमड़ उठा। बार-बार वे विनयके साथ अपनी कृतज्ञता प्रकट किए जा रहे थे। हनुमान्‌के हृदयमें तो इतना हर्ष हो रहा था जिसका ठिकाना नहीं। (१) वहाँसे उठकर राम अपने भवन लौट आए। इस प्रकार वे नित्य ही कुछ न कुछ नया-नया आचरण करते रहते थे। नारद मुनि तो (अयोध्यामें) आते ही रहते थे और आकर रामके पवित्र चरित्र गा-गाकर सुनाते रहते थे। (२) नारद मुनिका नित्यका यही काम था कि यहाँका जो नया-नया कार्य-व्यवहार देख-देखकर जाते वह ब्रह्मलोक जाकर सबको सुना आते। उसे सुन-सुनकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हो उठते (और नारदसे कहते)—'देखो तात! तुम बस ऐसे ही आ-आकर रामके सदाचरणकी सारी कथा नित्य सुना जाया करो।' (३) सनक आदि मुनि यद्यपि बड़े ब्रह्मनिष्ठ हैं फिर भी वे नारदकी सराहना करते नहीं अघाते। वे जब रामके गुणोंकी कथा सुनने लगते हैं तो अपनी-अपनी सारी समाधि भूल बैठते हैं। (वे रामकी कथा) सुननेके बहुत बड़े अधिकारी हैं इसलिये वे बड़े आदरसे रामकी कथा सुना

५४७-४८ असारं खलु संसारं ज्ञात्वा मां पण्डिताः सदा। भजन्ते सर्वभावेन संगं त्यक्त्वा वरानने॥ —शिवस०
५५०-५१ किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः। गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः॥ —भागवत
५५२-५४ एवं बहूपदेशञ्च दत्त्वा भ्रातृभ्य उत्तमम्। चरितं सततं नूत्नं करोतिस्म महेश्वरि॥ आन०रा०
५५५-५७ तेन स्तोत्रं समारब्धं ब्रह्मादीनाञ्च सन्निधौ। ब्रह्मादयस्तु ते देवाः शशंसुर्मनसा मुनिम्॥—सत्योपा०

५६० दो०—जीवन - मुक्त ब्रह्म - पर , चरित सुनहिँ तजि ध्यान ।
जे हरि-कथा न करहिँ रति , तिन्हके हिय पाखान ।। ४२ ।।
एक बार रघुनाथ बोलाए। गुरु - द्विज - पुरबासी सब आए ।
बैठे गुरु, मुनि, अरु द्विज, सज्जन । बोले बचन भगत - भव - भंजन । (१)
सुनहु सकल पुरजन ! मम बानी । कहौं न कछु ममता उर आनी ।
नहिँ अनीति नहिँ कछु प्रभुताई । सुनहु, करहु जौ तुमहि सुहाई । (२)
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानै जोई ।
जौ अनीति कछु भाखौं भाई । तौ मोहिँ बरजहु भय बिसराई । (३)
बड़े भाग मानुष - तनु पावा । सुर - दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ।
साधन - धाम, मोच्छ - कर द्वारा । पाइ, न जेहि परलोक सँवारा । (४)
५७० दो०—सो परत्र दुख पावै , सिर धुनि - धुनि पछिताइ ।
कालहिँ, कर्महिँ, ईस्वरहिँ , मिथ्या दोस लगाइ ।। ४३ ।।

करते हैं । (४) (सनक आदि के समान) जीवन्मुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी जब रामका चरित्र सुनने बैठ जाते हैं तो (ब्रह्मका) ध्यान छोड़कर चरित्र ही सुनते रह जाते हैं । (इतना जानकर भी) जो रामकी कथा सुननेको लालायित नहीं होते उनके हृदयको पत्थर ही समझना चाहिए ।।४२।।

एक बार ऐसा हुआ कि रामने अपने गुरु (वशिष्ठ), ब्राह्मण और पुरवासी सबको एक साथ बुलवा भेजा । जब गुरु वशिष्ठ, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सज्जन (यथास्थान) आ बैठे, तब भक्तोंका भव-बन्धन काट डालनेवाले राम उनसे बोले—(१) 'देखो नागरिको ! आप लोग मेरी बातपर थोड़ा ध्यान दीजिएगा ! मैं कोई ममता, अनीति या प्रभुताके कारण कुछ नहीं कह रहा हूं । मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे आप ध्यानसे सुन लीजिए । यदि वह आपको अच्छा लगे तो उसके अनुसार व्यवहार कीजिएगा (नहीं तो जैसी आप लोगोंकी इच्छा) । (२) देखिए ! मैं उसीको अपना सेवक (भक्त) और अत्यन्त प्यारा समझता हूँ, जो मेरी आज्ञा मानता हो । देखो भाई ! यदि मेरे मुँहसे कहीं कोई भी अनीतिकी बात निकल जाय तो आप निर्भय होकर मुझे तुरन्त टोक दीजिए । (३) देखिए ! बड़े भाग्यसे आप सबको यह मनुष्यका शरीर मिला है । सब धर्म-ग्रन्थ भी यही कहते हैं कि इस मनुष्य-शरीरके लिये देवता भी तरसते रह जाते हैं (उन्हें नहीं मिल पाता) । इस (मनुष्य-शरीर)से मनुष्य जो भी साधना करना चाहे सब कर सकता है, यहांतक कि इससे मोक्ष भी मिल सकता है । यह मनुष्य-शरीर पाकर भी जिसने अपना परलोक न बना लिया (४) वह परलोकमें जाकर दुःख भोगता हुआ सिर धुन-धुनकर पछताए जाता है और उसे (अपना दोष न मानकर) झूठे ही काल, कर्म (भाग्य) और ईश्वरके सिर सारा दोष मँढ़ता जाता है ।। ४३ ।।

अहो मुने त्वं धन्योऽसि युनर्वद हरेर्गुणान् । —सत्योपाख्यान
५५८-६१ आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ।।
तदश्मसारं हृदयं वतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः । —भागवत
५६२-६३ एकदा राघवः श्रीमानाजुहाव गुरून् द्विजान् । भरतं लक्ष्मणं शत्रुसूदनं पुरवासिनः।।आन.रा.
५६४-६५ शृण्वन्तु मुनयस्सर्वे सर्वे शृण्वन्तु बन्धवः । पुत्रो द्विजा मन्त्रिणश्च सर्वाः शृण्वन्तु मातरः ।।
५६६-६७ मदादेशकरो लोको वत्सलो मम एव सः । यथाहं यत्र भाषेय दूषयन्तु तदेव तत् ।।
५६८-६९ येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिम्प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य सम्मोहिता विततया वत मायया ते ।।

ऐहि तन - कर फल बिषय न भाई । स्वर्गौ स्वल्प, अंत दुखदाई ।
नर - तनु पाइ बिषय मन देहीं । पलटि सुधा, ते सठ बिष लेहीं । (१)
ताहि कबहुँ भल कहै न कोई । गुंजा ग्रहै, परस - मनि खोई ।
आकर चारि, लच्छ चौरासी । जोनि, भ्रमत यह जिव अबिनासी । (२)
फिरत सदा माया - कर प्रेरा । काल - सुभाव - कर्म गुन घेरा[1] ।
कबहुँक करि करुना नर - देही । देत ईस, बिनु - हेतु सनेही । (३)
नर - तनु भव - बारिधि कहँ बेरो । सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ।
करनधार सद्गुरु, दृढ़ नावा । दुर्लभ साज, सुलभ करि पावा । (४)

५८० दो०—जो न तरै भव - सागर, नर, समाज अस पाइ ।
सो कृत - निंदक मंद - मति, आत्मा - हन - गति जाइ ।। ४४ ।।

जौ परलोक - इहाँ सुख चहहू । सुनि मम बचन, हृदय दृढ़ गहहू ।
सुलभ, सुखद, मारग यह भाई । भगति पुरान मोरि स्रुति गाई[2] । (१)

देखो भाई ! यह समझ लो कि यह (मनुष्य-) शरीर विषय-भोगके लिये नहीं मिला है । रही स्वर्गके सुखकी बात, वह तो थोड़े दिनोंका होता है । अन्तमें तो फिर वह वही दुःख भोगना पड़ जाता है । इसलिये मनुष्य-शरीर पाकर भी जो लोग अपना मन विषय-भोगमें लिपटाए रहते हैं, वे ऐसे मूर्ख हैं कि अमृत छोड़कर विष पीनेके पीछे पड़े रहते हैं । (१) पारस मणिको दूर फेंककर जो उसके बदले घुँघुची (गुंजा) लेने दौड़े, उसे कोई बुद्धिमान् नहीं कह सकता । यह अविनाशी जीव चार खानों (अण्डज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज) और चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर लगाता फिरता है । (२) मायाके फेरमें पड़ा हुआ यह जीव काल, कर्म, स्वभाव और गुणोंमें लिपटा हुआ सदा मारा-मारा भटकता फिरता है । (यह समझ लो कि) बिना कारण सबसे स्नेह करनेवाले ईश्वर ही जब दया कर बैठते हैं तभी जीवको वे यह मनुष्यका शरीर देते हैं । (३) आप लोग इस मनुष्यके शरीरको संसार-सागर पार करनेका बहुत बड़ा बेड़ा (जहाज) समझिए जिसे ठीक चलाए रखनेके लिये मेरी कृपा ही सामनेका वायु है और सद्गुरु ही इस जहाजके कर्णधार (पतवार घुमानेवाले) हैं (जो पतवार घुमाकर ठीक दिशामें लिए चलते हैं) । इस प्रकार (संसार सागरसे पार उतरनेके) दुर्लभ साधन भी उनके लिये सुलभ हो जाते हैं । (४) अतः, जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागरसे पार नहीं उतर पाता, वह बड़ा कृतघ्न और मन्द-बुद्धि है । वह उसी (अन्धतामिस्र) लोकमें जाकर पड़ा सड़ा करता है, जिसमें आत्महत्या करनेवाले लोग जा-जाकर सड़ते रहते हैं ।। ४४ ।। यदि आप लोक और परलोक दोनोंमें सुख पाना चाहते हों तो मेरी यह बात गाँठ बाँध लीजिए । देखो भाई ! मेरी भक्ति पानेका यही सुलभ और सुख देनेवाला मार्ग है, जिसका वेद और पुराणोंने भी वर्णन किया है । (१) जहाँतक ज्ञान (मार्ग)-की बात है, वह बहुत अगम (कठिन) है और उसे

१. काल कर्म सुभाव गुन घेरा । २. भगति मोरि पुरान स्रुति गाई ।

५७२-७३ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् । विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ।।–भा०
५७६-७७ मायाधीनोऽयमशिवं शिवो भुङ्क्ते गुणत्रयम् । दयया ददाति भगवान् नृदेहञ्जीववत्सल।।।विष्णुपु०
५७८-८१ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मायानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा । –भागवत
५८२-८३ एतदात्यन्तिकं क्षेमं वदामि भवतोऽनघाः । मदीयो भक्तियोगो उभयत्र प्रशर्मकृत् ।।–सत्योपा०

ज्ञान अगम, प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन, न मन कहुँ टेका।
करत कष्ट बहु, पावै कोऊ। भक्तिहीन मोहिं प्रिय नहिं सोऊ। (२)
भगति सुतंत्र, सकल सुख-खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।
पुन्यपुंज-बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति-कर अंता। (३)
पुन्य एक जग-महँ, नहिं दूजा। मन-क्रम-बचन बिप्र-पद-पूजा।
सानुकूल तेहि-पर मुनि-देवा। जो तजि कपट, करै द्विज-सेवा। (४)
५९० दो०—औरौ एक गुपुत मत, सबहिं कहौं कर जोरि।
संकर-भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि ॥ ४५ ॥
कहहु भगति-पथ कवन प्रयासा। जोग न मख-जप-तप-उपवासा।
सरल सुभाव, न मन कुटिलाई। जथा-लाभ संतोष सदाई। (१)
मोर कहाइ दास, नर-आसा[1]। करइ, त कहहु कहा बिस्वासा।
बहुत कहौं का कथा बढ़ाई। ऐहिं आचरन-बस्य मैं भाई। (२)

प्राप्त कर पानेमें बाधाएँ भी बहुत हैं। उसका साधन भी सरल नहीं है और (सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि) उसमें मनके लिये कोई आधार नहीं है (यही ठिकाना नहीं है कि मन कहाँ लगाया जाय)। यदि बहुत तपस्या करनेपर कोई ज्ञान पा भी ले तो भी उसके हृदयमें भक्ति न होनेके कारण वह मुझे तनिक भी नहीं भाता। (२) भक्ति करनेवालेको तो सब सुख यों ही हाथ लग जाते हैं। जहाँतक भक्तिकी बात है, वह तो परम स्वतंत्र है (किसीसे प्रभावित नहीं होती), किन्तु जबतक सत्संग न किया जाय तब-तक उसे भी कोई पा नहीं सकता। जब-तक बहुत पुण्य ही न हों तबतक सत्संगके लिये संत (सज्जन) नहीं मिल पाते। संसृति (जन्म-मृत्यु)-की झंझटें भी यदि दूर हो पा सकती हैं तो केवल सत्संगतिसे ही हो पा सकती हैं। मैं तो इस संसारमें सब कुछ छोड़कर केवल एक ही पुण्य कार्य समझता हूँ कि मन, वचन और कर्मसे ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा की जाय। जो लोग सब कपट छोड़कर ब्राह्मणोंकी सेवा करते रहते हैं, उनसे देवता और मुनि सब प्रसन्न रहते हैं। (४) मैं सबसे हाथ जोड़कर एक और बड़ी रहस्यकी बात बताए देता हूँ कि जब-तक कोई शंकरका भजन नहीं करता तबतक मेरी भक्ति उसे मिल नहीं पा सकती ॥ ४५ ॥ इतना स्पष्ट कर चुकनेपर अब यह बताइए कि भक्तिकी साधना करनेमें कौन बड़ा परिश्रम करना रह जाता है? उसमें न योग साधना होता, न जप-तप करना होता न उपवास ही करना होता। (इसके लिये तो इतना ही बहुत है कि) स्वभाव सरल हो, मनमें कुटिलता (खोट) न हो और जितना मिले उसीमें सदा सन्तोष किए रहे। (१) जो मनुष्य मेरा दास कहलाकर भी किसी दूसरे मनुष्यकी आशा लगाए बैठा रहे, उसपर क्या विश्वास किया जा सकता है? भाइयो! बहुत विस्तारसे कहनेसे क्या लाभ? बस जो ऐसा आचरण करता है मैं तो

१. मोर दास कहाइ नर आसा।

५८४-८५ ज्ञानमार्गो नराणां च दुर्गमस्तस्य साधनम्। कठिनं तीव्रकष्टेन गम्यते क्वापि कैरपि ॥ विष्णुपु०
५८६-८७ यदि भाग्याद्धि साधूनां संगतिर्जायते क्षितौ। तदा रामस्य भक्तिस्त्वे नराणाञ्जायते मनः ॥
विना भक्त्या न मुक्तिश्च नराणामंडगोलके। —सत्योपाख्यान
५८८-८९ यद् ब्राह्मणास्तुष्टतमा वदन्ति तद्देवताः प्रत्यभिनन्दयन्ति।
तुष्टेषु तुष्टास्सततम्भवन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः ॥
५९०-९१ न कथं मयि सद्भक्तिं लभते पापपूरुषः। यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्नहि ॥ विष्णुसंहिता
५९२-९३ न योगो न जपो न तपो न व्रतानि च। यदृच्छा लाभसंतुष्टया सुलभ्योऽहं न संशयः ॥ विद्धे०सं०
५९६ अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः। मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥—भागवत

बैर न बिग्रह, आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।
अनारंभ, अनिकेत, अमानी। अनघ, अरोष, दच्छ, बिज्ञानी। (३)
प्रीति सदा सज्जन - संसर्गा। तृन - सम बिषय-स्वर्ग-अपबर्गा।
भगति - पच्छ हठ, नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई। (४)

६०० दो०—मम गुन - ग्राम - नाम रत, गत - ममता - मद - मोह।
ता - कर सुख सोइ जानै, परानंद - संदोह॥ ४६॥

सुनत सुधा - सम बचन राम - के। गहे सबनि पद कृपाधाम - के।
जननि, जनक, गुरु, बंधु हमारे। कृपा - निधान, प्रान - तें प्यारे। (१)
तन, धन, धाम राम! हितकारी। सब बिधि तुम प्रनतारति-हारी।
असि सिख तुम - बिनु देइ न कोऊ। मातु - पिता स्वारथ - रत ओऊ। (२)
हेतु - रहित जग जुग उपकारी। तुम, तुम्हार सेवक असुरारी।
स्वारथ - मीत सकल जग - माहीं। सपनेहुँ प्रभु! परमारथ नाहीं। (३)
सबके बचन प्रेमरस - साने। सुनि रघुनाथ, हृदय हरषाने।
निज - निज गृह गे आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई। (४)

उसीका सेवक बना बैठा रहता हूँ। (२) जो किसीसे वैर, झगड़ा, आशा और भय नहीं करता, उसके लिये चारों ओर सुख ही सुख है। जो किसी कामनासे कोई कार्य आरम्भ नहीं करता, जिसका कोई सहारा नहीं है, जो मान-सम्मान नहीं चाहता, जिसमें न पाप है, न क्रोध है और जो परमार्थ तत्त्वको भली-भाँति जानता है, (३) जो सदा सज्जनोंकी संगति करता रहता है, जो सांसारिक विषयोंको तथा स्वर्ग और मोक्षको तृणके समान (तुच्छ) समझता है, जो केवल भक्तिके लिये ही हठ करता है, जो शठता (दुष्टता) नहीं करता और सभी कुतर्कों (निरर्थक मीन-मेख निकालने)-से दूर रहता है, (४) जो सदा मेरे गुण और नाम जपता रहता है, जिसे न मद ही होता न मोह ही, उसे वैसा ही सुख मिलता है जैसा उस पुरुषको होता है जिसे परमानन्द मिल चुका रहता है' ॥ ४६ ॥ रामके ये अमृतके समान प्यारे वचन सुनकर सबने कृपालु रामके चरण जा पकड़े। (और सब कहने लगे—) 'कृपानिधान! आप हमारे माता, पिता, गुरु और बन्धु—सब कुछ हैं, आप हमें प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। (१) शरणागतके दुःख दूर करनेवाले राम! आप ही हमारे शरीर, धन, धाम और सबका हित करनेवाले (रक्षक) हैं। आपको छोड़कर दूसरा कौन है जो ऐसा अच्छा उपदेश दे सके (क्योंकि) माता और पिता यदि उपकार करते भी हैं तो स्वार्थके कारण ही करते हैं। (२) असुरोंके शत्रु! जगत्में अकारण उपकार करनेवाले केवल दो ही तो हैं— एक तो स्वयं आप और दूसरे आपके सेवक। प्रभो! सारे संसारमें जितने भी लोग हैं सब स्वार्थके मित्र हैं, उनमेंसे किसीमें स्वप्नमें भी परमार्थ (दूसरेका हित करने)-की भावना है ही नहीं।' (३) इस प्रकार प्रेम-रससे भरी हुई सबकी बातें सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए। सब लोग रामके सुन्दर उपदेशोंका वर्णन करते हुए, उनसे आज्ञा पाकर अपने-अपने घर चले गए। (४) (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा! जहाँ

५९७ अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः। सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ गीता
५९८ वाञ्छा सज्जनसंगतौ। —भर्तृहरिशतक
६००-१ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव। अमानित्वं मदभित्वं कृतस्य परिकीर्तनम्॥ भागवत
६०२-४ त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥ —पाण्डवगीता
६०७ क्षुद्राः सन्ति सहस्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः।
स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणी॥ —वृहच्छार्ङ्गधरपद्धति

६१० दो०—उमा अवध-बासी नर, - नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म, सच्चिदानन्द - घन, रघुनायक जहँ भूप ॥ ४७ ॥
बार वसिष्ठ एक मुनि आए[1]। जहाँ राम सुखधाम सुहाए।
अति आदर रघुनायक कीन्हाँ। पद पखारि, पादोदक[2] लीन्हाँ। (१)
राम ! सुनहु, मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी।
देखि - देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह, मम हृदय अपारा। (२)
महिमा अमिति बेद नहिँ जाना। मैं केहि भाँति कहहुँ भगवाना।
उपरोहित्य[3] कर्म अति मंदा। बेद - पुरान - सुमृति कर निंदा। (३)
जब न लेउँ मैं, तब बिधि मोहीँ। कहा, लाभ आगे सुत तोहीँ।
परमातमा ब्रह्म नर - रूपा। होइहि रघुकुल - भूषन भूपा। (४)
६२० दो०—तब मैं हृदय बिचारा, जोग, जज्ञ, ब्रत, दान।
जा - कहँ करिय, सो पैहौं, धर्म न ऐहि सम आन ॥ ४८ ॥
जप - तप - नियम - जोग निज धर्मा। स्रुति - संभव नाना सुभ कर्मा।
ज्ञान - दया - दम - तीरथ - मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत स्रुति-सज्जन। (१)

सच्चिदानंदघन ब्रह्म-स्वरूप राम ही राजा हैं, उस अयोध्याके सभी पुरुष और स्त्री कृतार्थ (जिनकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों) ही समझो ॥ ४७ ॥ एक वार मुनि वशिष्ठ (घूमते-घामते) वहाँ चले आए, जहाँ सुन्दर और सबको सुख देनेवाले राम विराजमान थे। रामने उठकर उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और उनके चरण धोकर उनका चरणामृत ले पीया। (१) मुनिने हाथ जोड़कर कहा—'कृपालु राम ! अब कुछ मेरी विनति भी सुन लीजिए। आपका व्यवहार देख-देखकर मेरे हृदयमें बड़ा मोह (भ्रम) हुआ जा रहा है। (२) भगवन् ! आपकी महिमा इतनी असीम है कि उसे जब वेद-तक नहीं जान पाए तब भला मैं उसका वर्णन किस प्रकार कर पा सकता हूँ ? (आप जानते ही हैं कि) पुरोहितीका काम कुछ अच्छा काम नहीं है। वेद, पुराण और शास्त्र सबने इसे जी भरकर कोसा है। (३) इसलिये जब मैं यह (सूर्यवंशका पुरोहित बननेका कर्म) लेनेको तैयार नहीं हो रहा था, तब ब्रह्माने मुझसे कहा कि बेटा ! (यह कर्म भले ही बुरा हो पर) आगे चलकर इससे तुम्हें बहुत बड़ा लाभ यह मिल जायगा कि स्वयं ब्रह्म परमात्मा ही मनुष्यके रूपमें अवतार लेकर आकर रघुकुलके सर्वश्रेष्ठ राजा होंगे। (४) यह सुनकर मैंने भी हृदयमें विचार किया कि जिसे प्राप्त करनेके लिये लोग बहुतसे योग, यज्ञ, व्रत और दान करते फिरते हैं, उसे जब मैं इसी कर्मसे प्राप्त किए ले सकता हूँ तब इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा अच्छा धर्म हो सकता है ॥ ४८ ॥ क्योंकि जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने (वर्णाश्रमके अनुसार) धर्म, वेदमें बताए हुए अनेक शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इन्द्रियोंका दमन), तीर्थ-स्नान आदि जितने धर्म वेदों और सज्जनोंने बतलाए हैं उन सबका (१) और अनेक वेद, शास्त्र और पुराण पढ़ने, सुनने और

१. एक बार बसिष्ठ मुनि आए। २. चरनोदक। ३. उपरोहिती।

६१२-१३ एकदा ब्रह्मपुत्रस्तु वसिष्ठो मुनिसत्तमः। प्रतस्थे यत्र रामश्च शर्मधाम्नि विराजते ॥
प्रत्युद्गम्य गुरुं रामो ददावासनमुत्तमम्।
६१४-१५ शृणु राम महाबाहो वचनं मम सादरम्। चरितं तव संदृश्य संशयो जायते बहु ॥सत्योपा०
६१६-२१ पौरोहित्यमहञ्जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम्। इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते ॥
इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा। ततोऽहमाशया राम तव सम्बन्धकांक्षया ॥
अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये। ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन ॥अध्या.रा.

आगम - निगम - पुरान अनेका । पढ़े - सुने - कर फल प्रभु एका ।
तव पद - पंकज - प्रीति निरंतर । सब - साधन - कर यह फल सुंदर । (२)
छूटै मल कि मलहि - के धोये । घृत कि पाव कोउ बारि बिलोए ।
प्रेम - भगति - जल - बिनु रघुराई । अभिअंतर - मल कबहुँ न जाई । (३)
सोइ सर्बज्ञ, तज्ञ, सोइ पंडित । सोइ गुन-गृह, बिज्ञान-अखंडित ।
दच्छ, सकल लच्छन - जुत सोई । जाके पद - सरोज - रति होई । (४)

६३० दो०—नाथ ! एक बर माँगौं, राम ! कृपा करि देहु ।
जन्म जन्म प्रभु-पद-कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥ ४९ ॥

अस कहि, मुनि बसिष्ठ गृह आए । कृपासिंधु - के मन अति भाए ।
हनूमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक - सुख - दाता । (१)
पुनि कृपाल पुर बाहेर गएऊ । गज - रथ - तुरग मँगावत भएऊ ।
देखि, कृपा करि, सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह-जिन्ह तेइँ चाहे । (२)
हरन - सकल - स्रम प्रभु, स्रम पाई । गए जहाँ सीतल अँबराई ।
भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु, सेवहिं सब भाई । (३)
मारुत - सुत तब मारुत करई । पुलक बपुष, लोचन जल भरई ।

सब साधनोंका यही तो सबसे बड़ा फल है कि आपके चरण-कमलोंमें निरन्तर प्रेम बढ़ता रहे । (२) आप ही बताइए कि कहीं कीचसे धोनेपर मैल छूटा करती है ? कहीं जल मथनेसे घी निकला करता है ? (कभी नहीं) । देखिए राम ! क्या अन्तःकरण (मन)-का मैल कभी प्रेम और भक्तिके जलके बिना कट पाता है ? (३) वही मनुष्य सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला), तत्त्व जाननेवाला, विद्वान्, गुणी, पूर्ण विज्ञान (परम तत्त्व) जाननेवाला, बुद्धिमान् और सब अच्छे लक्षणोंवाला होता है, जो आपके चरण-कमलोंसे प्रेम करने लगता हो । (४) नाथ राम ! आप मुझे कृपा करके यही वर माँगा हुआ दे दीजिए कि किसी जन्ममें भी कभी आपके चरण-कमलोंसे मेरी प्रीति घट न पावे' ॥ ४९ ॥ यह कहकर मुनि वशिष्ठ अपने आश्रमपर लौट आए। कृपालु रामके मनको भी वे (वशिष्ठ और उनके वचन) बहुत ही अच्छे लगे । तभी सेवकोंको सुख देनेवाले कृपालु राम अपने साथ हनुमान् और भरत आदि सब भाइयोंको लेकर (१) नगरके बाहर घूमने निकल गए। वहाँ उन्होंने बहुतसे हाथी, रथ और घोड़े मँगवा खड़े किए और उन्हें मार्गमें जो-जो मिलता रहा उस-उसकी ओर देख-देखकर राम उसकी प्रशंसा भी करते रहे और जिसने जो माँगा उसे वही उचित समझकर उठा-उठाकर देते भी जाते रहे । (२) सबका श्रम हरनेवाले प्रभु जब कुछ थक चले तब सुस्तानेके लिये शीतल (छायादार) अमराई (आमकी वाटिका)-में जा पहुँचे । भरतने झट अपना दुपट्टा उतार बिछाया, जिसपर राम बढ़कर जा बैठे और सब भाई झट उनकी सेवामें जा लगे । (३) पवनपुत्र हनुमान् (रामको) पंखा झले जा रहे थे । उन (हनुमान्)-का शरीर पुलकित हो-हो उठ रहा था और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलके पड़ रहे थे । (शिव कहते हैं—) 'देखो

६२८-३१ राम त्वत्तो वरं वव्रे देहि मे कृपया रतिम् । अंघ्रपञ्जयुगले नित्यामनन्यां प्रणतार्तिहन् ॥
६३२ एवमुक्त्वा वशिष्ठस्तु प्रतस्थे च निजाश्रमम् । —सत्योपाख्यान
६३३-३५ बन्धुभिस्सचिवैरिष्टैर्दूतैः सर्वत्रवेष्टितः । रामः पुराद्बहिर्गत्वा सर्वभूतानुकम्पकः ॥
वारणेन्द्रांश्च तुरगान् शिबिकाश्च रथांस्तथा । नानालंकारसंयुक्तान् वरवस्त्रैः समन्वितान् ॥
ददौ यथेप्सितं द्रव्यं येन यत् संवृतं तदा । —आनन्दरामायण
६३६ कृत्स्नश्रमापनेता च रामो ज्ञानवतांवरः । श्रान्तो भूत्वा गतस्तत्र यत्राम्रवनमुत्तमम् ॥
६३७ प्रसारिते च वसने भरतेन महात्मना । तत्रासीनस्य रामस्य सेवाञ्चक्रुश्च बन्धवः ॥ आन.रा.

हनूमान - सम नहिँ बड़ - भागी । नहिँ कोउ राम - चरन अनुरागी । (४)
६४० गिरिजा ! जासु प्रीति - सेवकाई । बार - बार प्रभु निज मुख गाई । (४॥)
दो०—तेहि अवसर मुनि नारद , आए करतल बीन ।
गावन लागे[1] राम - कल , - कीरति सदा नवीन ॥ ५० ॥
मामवलोकय पंकज - लोचन । कृपा - बिलोकनि सोच-बिमोचन ।
नील - तामरस - स्याम काम - अरि । हृदय - कंज - मकरंद - मधुप हरि । (१)
जातुधान - बारुथ[2] - बल - भंजन । मुनि - सज्जन - रंजन अघ - गंजन ।
भूसुर - ससि नव - बृन्द - बलाहक । असरन-सरन, दीनजन - गाहक । (२)
भुजबल बिपुल - भार - महि - खंडित । खर-दूषन - बिराध - बध - पंडित ।
रावनारि, सुखरूप, भूप - बर । जय दसरथ-कुल-कुमुद-सुधाकर । (३)
सुजस पुरान - बिदित - निगमागम । गावत सुरमुनि - संत - समागम ।
६५० कारुनीक मद - व्यलीक - खंडन[3] । सब बिधि कुसल कोसला - मंडन । (४)
कलिमल - मथन नाम, ममता - हन । तुलसिदास -प्रभु ! पाहि प्रनत जन । (४॥)

गिरिजा ! हनुमान्‌के समान न तो कोई ऐसा भाग्यशाली ही है, न रामके चरणोंका ऐसा प्रेमी ही है (४) जिसके प्रेम और जिसकी सेवाकी प्रशंसा राम स्वयं बार-बार अपने श्रीमुखसे करते रहते हैं ।' (५) उसी समय राम देखते क्या हैं कि नारद मुनि भी हाथमें वीणा लिए हुए चले आ रहे हैं और आकर रामकी सदा नवीन और उज्ज्वल कीर्तिका गान करते जा रहे हैं ॥ ५० ॥ (नारद यह स्तुति गा रहे थे—) 'चिन्ताएँ दूर करनेवाले, कमलके समान नेत्रोंवाले ! तनिक मेरी ओर भी अपनी कृपाकी दृष्टि फेर घुमाइए। नीले कमलके समान श्याम (शरीरवाले) राम ! आप तो कामके कट्टर शत्रु हैं और हरि ! आप मेरे हृदय-कमलके मकरंदके लिये भौंरे हैं (मेरे हृदयमें सदा बसे हुए मेरे हृदयके प्रेमका रस लेते रहते हैं) । (१) आप ही हैं जिसने निशाचरोंकी सारी (इतनी बड़ी) सेना रौंद डाली । आप ही हैं जो मुनियों और सज्जनोंको आनन्द देते रहते और सबके पाप मिटाते रहते हैं । आप ब्राह्मण-रूपी नवीन धानके खेतके लिये बादलोंके समान हैं (जैसे वर्षासे धान गदराता चलता है वैसे ही आप ही ब्राह्मणोंका पोषण करते हैं) । जिसे कहीं ठौर ठिकाना नहीं मिल पाता उसे आप ही तो अपनी शरणमें लिए लेते हैं । आप ही तो हैं जो दीन जनोंके ग्राहक बने हुए हैं (दीनोंको ढूंढ़ते फिरते हैं) । (२) आप ही ऐसे समर्थ हैं जिसने अपनी भुजाओंके बलसे पृथ्वीका बहुत बड़ा भार उतार डाला (रावणको मार डाला) और खर, दूषण तथा विराधका वध कर डाला । हे रावणके शत्रु ! सुखके स्वरूप ! श्रेष्ठ राजा (प्रजा-पालक) ! दशरथके कुल-रूपी कुमुदोंको खिलाए रखनेवाले चन्द्रमा ! (राम !) आपकी जय हो । (३) वेद, पुराण और शास्त्रोंमें आपका वह सुयश प्रसिद्ध है जिसका वर्णन देवता, मुनि और सन्त लोग सब एक स्वरसे करते ही रहते हैं । कौन-सा ऐसा काम है जिसमें आप कुशल नहीं है (जो आप कर नहीं पा सकते) । (४) आपका केवल नाम (राम) ही कलियुगके सारे पाप मथकर फेंक डाल सकता है और सारी ममता नष्ट कर डाल सकता है । हे तुलसीदासके प्रभु ! मैं आपकी शरणमें आया बैठा हूँ, मेरी रक्षा कीजिए ।' (५)

१. लगे । २. बरूथ । ३. कारुनीक-व्यलीक मद खंडन ।

६३८-४० मारुतिर्व्यजनं चक्रे प्रभोः पार्श्वे व्यवस्थितः । गिरिजे शृणु सुप्रेम प्रशशंस रघूत्तमः ॥
यस्य प्रसन्नो भगवान् तत्समः कोस्ति पुण्यवान् । —अध्यात्मरामायण
६४१-४२आगतो नारदो वीणां रणयन् पाणिभिर्जवात् ।स्तुवञ्छ्रीरामचन्द्रस्य यशांसि विमलानि सः।मान.रा.

दो०—प्रेम - सहित मुनि नारद, बरनि राम - गुन - ग्राम।
सोभासिंधु हृदय धरि, गए जहाँ बिधि - धाम॥ ५१॥
गिरिजा! सुनहु बिसद यह कथा। मैं सब कही, मोरि मति जथा।
राम - चरित सत कोटि अपारा। स्रुति - सारदा न बरनै पारा। (१)
राम अनंत, अनंत गुनानी। जनम अनंत करम नामानी[1]।
जल - सीकर, महि - रज गनि जाहीं। रघुपति-चरित न बरनि सिराहीं। (२)
बिमल कथा हरि - पद - दायीनी[2]। भगति होइ सुनि अनपायीनी[2]।
उमा! कहेउँ सब कथा सुनाई। जो भुसुंडि खगपतिहिं सुनाई। (३)
६६० कछुक राम - गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं, सो कहहु भवानी।
सुनि सुभ कथा, उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी। (४)
धन्य, धन्य, मैं धन्य पुरारी। सुनेउँ राम - गुन भव-भय-हारी। (४।।)
दो०—तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य, न मोह।
जानेउँ राम -प्रताप, प्रभु, चिदानंद - संदोह॥ ५२ क॥

इस प्रकार नारद मुनि प्रेमपूर्वक रामके गुणोंका वर्णन करके शोभा-शील (राम)-को हृदयमें बसाए हुए ब्रह्मलोक लौट गए ॥ ५१ ॥ (शिव कहते हैं—) 'देखो, गिरिजा ! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार यह सारी निर्मल कथा तुम्हें सुना डाली। (सच पूछो तो) रामका चरित्र इतना अपार है कि इसका वर्णन वेद और सरस्वतीके किए भी नहीं किया जा पा सकता। (१) देखो ! पहले तो राम ही अनन्त हैं, फिर उनके गुण अनन्त हैं, और फिर उनके जन्म, कर्म और नाम भी अनन्त हैं। कोई जलकी बूँदें और पृथ्वीकी धूलके कण भले ही बैठकर गिन डाल सके, पर रामके चरित्र इतने अधिक हैं कि किसीके गिने नहीं गिने जा सकते। (२) (रामकी) यह निर्मल कथा जो भी कहे-सुने उसे ही भगवान्का परम पद मिल जाता है। जो इसे सुन ले उसे अविचल भक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है। देखो उमा ! मैंने वह सारी सुन्दर कथा तुम्हें कह सुनाई जो काकभुशुंडिने गरुडको सुनाई थी। (३) पर (इसमें भी) मैं रामके थोड़ेसे ही गुणोंका वर्णन कर पाया हूँ। अब बताओ भवानी ! मैं तुम्हें और कौन-सी कथा सुनाऊँ ?' (रामकी) यह पवित्र कथा सुनकर तो पार्वती बहुत ही प्रसन्न हो उठीं। वे अत्यन्त प्रेम-भरी वाणीसे बोलीं—(४) 'पुरारि ! मैं धन्य हूँ, बहुत धन्य हूँ, बहुत ही धन्य हूँ कि मैंने संसारका सारा भय दूर कर डाल सकनेवाले रामके इतने गुण आपके मुँहसे सुन डाले। (५) कृपालु ! आपकी कृपासे मेरी सारी मनचाही कामना पूरी हो गई। अब मेरे मनमें कोई किसी प्रकारका मोह (अज्ञान, भ्रम) नहीं बचा रह गया। अब मैं सच्चिदानन्दघन प्रभु रामका सारा प्रताप भली प्रकार समझ गई हूँ ॥ ५२(क) ॥ मतिधीर ! नाथ ! अपने दोनों

१. जन्म करम अनंत नामानी। २. दायनी; पायनी।

६५२-५३ एवं स्तुत्वा रमानाथं राघवं भक्तवत्सलम्। प्रणम्याज्ञां प्रभोः प्राप्य प्रययौ विधिधाम सः॥
६५४-५५ सम्यक् पृष्टं त्वया कान्ते रामचन्द्रकथानकम्। उक्तं मया सविस्तारं यथामति गिरीन्द्रजे॥
मानं रामचरित्रस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। विस्तरेण प्रवक्तुं च क्षमः कोपि न भूतले॥आन०रा०
६५६-५७ यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥ —भागवत
६५८-६० कथेयं कथिता तुभ्यं हरिभक्तिप्रदायिनी। नाम्ना भुशुण्डिकाकश्च यदवोचत्खगेश्वरम्॥
चरितं रघुनाथस्य व्याहृत्य कथयामि किम्।
६६१-६२ धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि कृतार्थास्मि महेश्वर। —सत्योपाख्यान

नाथ ! तवानन-ससि स्रवत , कथा - सुधा रघुबीर ।
स्रवन-पुटन्हि मन पान करि, नहिं अघात, मति-धीर ।। ५२ ख ।।
राम - चरित जे सुनत अघाहीं । रस - बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ।
जीवन - मुक्त महा मुनि जेऊ । हरि - गुन सुनहिं निरंतर तेऊ । (१)
भव - सागर चह पार जो पावा । राम - कथा ता - कहँ दृढ़ नावा ।
६७० बिषयिन्ह - कहँ पुनि हरि - गुन ग्रामा । स्रवन-सुखद अरु मन-अभिरामा । (२)
स्रवनवंत अस को जग - माहीं । जाहि न रघुपति-चरित सोहाहीं ।
ते जड़ जीव निजातम - घाती । जिन्हहिं न रघुपति - कथा सुहाती । (३)
हरि - चरित्र - मानस तुम गावा । सुनि मैं नाथ ! अमित सुख पावा ।
तुम जो कही यह कथा सुहाई । कागभुसुंडि गरुड़ - प्रति गाई । (४)
दो०—बिरति - ज्ञान - बिज्ञान - दृढ़ , राम - चरित अति नेह ।
बायस - तन रघुपति-भगति , मोहिं परम संदेह ।। ५३ ।।
नर सहस्र - महँ सुनहु पुरारी । कोउ एक होइ धरम-व्रत-धारी ।
धरम - सील कोटिक - महँ कोई । विषय - बिमुख बिराग-रत होई । (१)
कोटि बिरक्त - मध्य स्रुति कहई । सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई ।
६८० ज्ञानवंत कोटिक - मह कोऊ । जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ । (२)
तिन्ह सहस्र - महँ सब सुख - खानी । दुर्लभ ब्रह्म - लीन बिज्ञानी ।
धर्म - सील, बिरक्त अरु ज्ञानी । जीवन - मुक्त, ब्रह्म - पर प्रानी । (३)

कानोंको दोना बनाकर आपके मुखचन्द्रसे रामकी कथाके अमृतकी धारा पी लेनेपर भी, मेरा मन भर नहीं पा रहा है (मैं अभी और सुननेके लिये लालायित हूँ) ।। ५२ (ख) ।। रामका चरित्र सुनकर भी जिनका मन भर उठे तो समझना चाहिए कि वे उसका वास्तविक रस ही नहीं जान पाए, क्योंकि जीवन्मुक्त महामुनि भी निरन्तर भगवान्का गुण सुनते नहीं अघाते (सुनते ही रहते हैं) । (१) जो लोग संसार-सागर (संसारके क्लेशों)-से पार होना चाहते हों, उनके लिये रामकी कथा ही बड़ी पक्की नाव है । क्योंकि भगवान्के गुण तो ऐसे हैं कि उन्हें सुनकर विषयी लोगों-तकको सुख और उनके मनको आनन्द मिलता है । (२) बताओ, संसारमें ऐसा कौन कान-वाला है जिसे रामकी कथा अच्छी न लगती हो ? (३) जिन लोगोंको रामकी कथा अच्छी नहीं लगती वे मूर्ख प्राणी जी क्या रहे हैं, आत्महत्या कर रहे हैं । नाथ ! आपने जो यह 'रामचरितमानस'-का वर्णन कर सुनाया उसे सुनकर मुझे इतना सुख मिला है, इतना सुख मिला है कि कह नहीं सकती । हाँ, आपने जो अभी-अभी कहा है कि यह सुन्दर कथा काकभुशुंडिने गरुडको सुनाई थी (४) तो मेरे मनमें यही बड़ी उलझन उठ खड़ी हुई है कि कौएकी देह पाकर भी काकभुशुंडिको इतना वैराग्य, ज्ञान और विज्ञान कैसे प्राप्त हो गया; रामके चरणोंमें उसका इतना अधिक प्रेम कैसे हो चला और उन्हें रामकी भक्ति भी कैसे प्राप्त हो गई ? ।। ५३ ।। पुरारि ! हजारमें कोई बिरला ही ऐसा निकलता है जो धर्मके काम करता हो । करोड़ों धर्मात्माओंमें कोई एक बिरला ऐसा निकलता है जो सब विषयोंसे नाता तोड़कर वैराग्य ले डाले । (१) वेद कहते हैं कि करोड़ों विरक्तोंमें भी ऐसा कोई बिरला ही निकलता है जिसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाय । करोड़ों ज्ञानियोंमें ऐसा कोई बिरला ही निकलता है जो जीवन्मुक्त हो जाय (२) और सहस्रों जीवन्मुक्तोंमें भी ऐसा पुरुष निकलना बड़ा कठिन है जो सदा सुखी रहता हो, ब्रह्मलीन हुआ रहता हो और विज्ञानी हो ।

सब - तें सो दुर्लभ सुरराया। राम-भगति-रत, गत-मद - माया।
सो हरि - भगति, काग किमि पाई। बिस्वनाथ! मोहिँ कहहु बुझाई (४)

दो०—राम - परायन, ज्ञान - रत, गुनागार, मतिधीर।
नाथ! कहहु केहि कारन, पाएउ काक - सरीर॥ ५४॥

यह प्रभु - चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपाल! काग कहँ पावा।
तुम केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु, मोहिँ अति कौतुक भारी। (१)
गरुड़ महा - ज्ञानी, गुन - रासी। हरि-सेवक, अति निकट निवासी।
६९० तेहि, केहि हेतु काग - सन जाई। सुनी कथा, मुनि - निकर बिहाई।
कहहु, कवन बिधि भा संबादा। दोउ हरि - भगत, काग-उरगादा।
गौरि - गिरा सुनि सरल, सुहाई। बोले सिव सादर, सुख पाई। (३)
धन्य सती! पावनि मति तोरी। रघुपति - चरन प्रीति नहिँ थोरी।
परम पुनीत सुनहु इतिहासा[1]। जो सुनि सकल सोक - भ्रम नासा। (४)
उपजै राम - चरन बिस्वासा। भवनिधि तर नर, बिनहि प्रयासा। (४॥)

इन धर्मात्मा, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन (३) पुरुषोंमें भी देवाधिदेव महादेव! ऐसा प्राणी मिलना तो और भी दुर्लभ है जिसमें न तो मद हो और जो न मायाके चक्करमें पड़ा हुआ हो और रामका परम भक्त हो। विश्वनाथ! मुझे आप यह समझा बताइए कि ऐसी दुर्लभ हरि-भक्ति उस कौएको मिल कैसे गई? (४) और नाथ! ऐसे रामके भक्त, ज्ञानी, गुणी, धीर काकभुशुंडि भी कौए कैसे हो गए?॥५४॥ कृपालु! कामदेवके शत्रु! यह भी बताइएगा कि यह सुन्दर और पवित्र (रामका चरित्र) कौएने जाना कैसे और आपने सुना कैसे? यह सब आप मुझे बता ही डालिए क्योंकि यह जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कुतूहल उठ खड़ा हुआ है। (१) गरुड तो स्वयं बड़े ज्ञानी, सद्गुणी, भगवान्‌के सेवक और उनके अत्यन्त निकट रहनेवाले हैं, भला इतने मुनियोंको छोड़कर वे उस कौएसे वह कथा सुनने कैसे जा पहुँचे? (२) कौआ (काक-भुशुंडि) और गरुड तो दोनों ही भगवान्‌के भक्त हैं, तब बताइए उनमें यह बातचीत छिड़ी कैसे?' पार्वतीकी यह सरल और प्रेम-भरी वाणी सुनकर शिव तो बहुत ही प्रसन्न हुए और बड़े आदरके साथ बोले—(३) 'देखो सती! तुम सचमुच धन्य हो। तुम्हारी बुद्धि बड़ी ही पवित्र है और रामके चरणोंमें भी तुम्हारा प्रेम कम नहीं है। अब मैं तुम्हें वह परम पवित्र इतिहास सुनाए देता हूँ जिसे सुनकर जितने भी सांसारिक भ्रम हैं सब दूर हो मिटते हैं और रामके चरणोंमें ऐसा विश्वास जम चलता है कि मनुष्य बिना श्रमके ही भवसागर पार हो जाते हैं। (५) देखो उमा! ऐसे ही जो प्रश्न पक्षिराज गरुडने काक-भुशुंडिसे जा किए थे, वे सब मैं आदरके साथ तुम्हें कह सुनाता हूँ। तुम ध्यानसे सुनती चलो॥ ५॥ देखो सुमुखी!

१. सुनहु परम पुनीत इतिहासा।

६७३-८३ मुग्धे श्रृणुष्व मनुजोपि सहस्रमध्ये धर्मव्रती भवति सर्वसमानशील:।
तेष्वेव कोटिषु भवद्विषये विरक्त: सज्ज्ञानको भवति कोटिविरक्तमध्ये॥
ज्ञानीषु कोटिषु नृजीवनकोऽपि मुक्त: कश्चित् सहस्रनरजीवनमुक्तमध्ये।
विज्ञानरूपविमलोप्यथ ब्रह्मलीनस्तेष्वेव कोटिषु सकृत्खलु रामभक्त:॥ —महारामायण

६८४-८८ तां दुर्लभां भक्तिमसौ हरे: प्रभो लेभे कथं वायसविग्रहं पुन:।
हरेश्चरित्रं च तत: कथं श्रुतं त्वयाद्भुतं कारणमत्र कथ्यताम्॥

६८९-९१ ज्ञानी गुणाकरो दासो हरिसन्निधिवासकृत्। गरुड: श्रुतवान् काकात् कथं रामकथां शुभाम्। सत्यो०

दो०—ऐसिय प्रस्न बिहंगपति, कीन्हि काग-सन जाइ।
सो सब सादर कहिहौं, सुनहु उमा! मन लाइ॥ ५५॥

मैं जिमि कथा सुनी भवमोचनि। सो प्रसंग सुनु सुमुखि! सुलोचनि।
प्रथम दच्छ-गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा। (१)
७०० दच्छ-जज्ञ तव भा अपमाना। तुम अति क्रोध, तजे तब प्राना।
मम अनुचरन कीन्ह मख-भंगा। जानहु तुम सो सकल प्रसंगा। (२)
तब अति सोच भयउ मन मोरे। दुखी वियोग भयउँ प्रिय! तोरे[1]।
सुंदर बन, गिरि, सरित, तड़ागा। कौतुक देखत फिरेउँ बिरागा। (३)
गिरि सुमेरु-उत्तर दिसि दूरी। नील सैल ऐक सुंदर भूरी।
तासु कनकमय सिखर सोहाए। चारि चारु मोरे मन भाए। (४)
तिन्ह-पर ऐक-ऐक बिटप बिसाला। बट-पीपर-पाकरी-रसाला।
सैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि-सोपान देखि मन मोहा। (५)

दो०—सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहु रंग।
कूजत कलरव हंसगन, गुंजत मंजुल भृंग॥ ५६॥

७१० तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। तासु नास कलपांत न होई।
माया-कृत गुन-दोष अनेका। मोह-मनोज आदि अबिबेका। (१)

सुलोचनी! मैंने जिस प्रकार यह भव-बन्धनसे छुड़ानेवाली कथा सुनी थी, वह सब प्रसंग मैं तुम्हें भी अभी सुनाए डालता हूँ। देखो! पहले जब तुम्हारा अवतार दक्षके घरमें हुआ था, तब तुम्हारा नाम सती था। (१) दक्षके यज्ञमें जब तुम्हारा अपमान हुआ और तुमने क्रोधमें आकर वहीं अपने प्राण दे डाले तब मेरे सेवकोंने दक्षका वह सारा यज्ञ विध्वंस कर डाला था। वह सारी कथा तो तुम जानती ही हो। (२) उस समय मेरे मनमें इतना अधिक शोक हो चला था कि मैं तुम्हारे वियोगमें दुखी होकर सब कुछ छोड़-छाड़कर सुन्दर-सुन्दर वन, पर्वत, नदी और सरोवरोंके दृश्योंसे ही अपना मन बहलाता फिरने लगा। (३) यों ही घूमते-घामते एक दिन मैं देखता क्या हूँ कि सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशाकी ओर कुछ दूरपर बड़ा सुन्दर-सा नीला पर्वत है जिसके चमकदार सुनहरे शिखरोंमें-से चार सुहावने शिखर मुझे बहुत ही प्यारे लगे। (४) उन चार शिखरोंपर एक-एक बरगद, पीपल, पाकड़ और आमके बड़ेसे वृक्ष लगे थे। उसी पर्वतपर उन चारों शिखरोंके बीच ऐसा सुन्दर सरोवर था कि उसकी मणिजटित सीढ़ियाँ देखकर ही मेरा मन प्रसन्न हो उठा। (५) उसका जल बहुत ही ठंढा, स्वच्छ और बड़ा मीठा है। उसमें बहुतसे रंग-बिरंगे कमल खिले रहते हैं। वहाँ सदा हंस कूजते रहते हैं और सुहावने भौंरे गूँजते रहते हैं॥ ५६॥ उसी सुन्दर पर्वतपर काकभुशुंडि बसेरा डाले रहते हैं और कल्पका अंत हो जानेपर भी वे अकेले ही जीवित रह जाते हैं। मायाके गढ़े हुए सब गुण, दोष, मोह, काम और अविवेक आदि (१) यद्यपि सारे जगत्में छाए हुए हैं तथापि वही एक पर्वत

१. दुखी भयउँ वियोग प्रिय तोरे।

६९२-९७ श्रुत्वा नम्रां शिवावाणीं शिवः प्राहातिहर्षितः। धन्या त्वमसि शर्वाणि रामपादानुरागिणी॥
यच्छ्रुत्वा शोकमोहादिनाशो भवति तत्क्षणम्। तच्छृणु त्वं रघुश्रेष्ठचरित्रं परमं शुभम्॥ सत्योपा०

६९८-३ दाक्षायणी यदा त्वञ्च सती नाम्ना वरानने। अनाहूता पितुर्गेहं गता यज्ञमहोत्सवे॥
तत्रापवादमाश्रुत्यासूनहासीः क्रुधा तव। वियोगे निर्विषण्णोद्रिगुहागहननिम्नगाः॥
पर्य्यटन् कौतुकं विश्वग् दृष्टवान् गिरिनन्दिनि।

७०४-९ मेरोरुत्तरदिग्भागे नीलो नाम सुपर्वतः। तस्य हेममये कूटे चतुः संख्ये मनोहराः॥
प्लक्षाम्राश्वत्थन्यग्रोधाः सन्ति तत्र च सुन्दरम्। सरोऽस्ति बहुराजीवं गुञ्जद्भ्रमरसंयुतम्॥ —भुशुण्डिरा०

व्यापि समस्त रहे जग-माहीं[1]। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं।
तहँ बसि, हरिहिं भजै जिमि कागा। सो सुनु उमा ! सहित-अनुरागा। (२)
पीपर तरु-तर ध्यान सो धरई। जाप-जज्ञ पाकरि-तर करई।
आँब-छाँह कर मानस-पूजा। तजि हरि-भजन काज नहिं दूजा। (३)
बर-तर कह हरि-कथा-प्रसंगा। आवहिं, सुनहि अनेक बिहंगा।
राम-बिचित्र-चरित बिधि नाना[2]। प्रेम-सहित कर सादर गाना। (४)
सुनहिं सकल मति-बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहि काला।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेखा। (५)
७२० दो०—तब कछु काल मराल-तनु, धरि, तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति-गुन, पुनि आयउँ कैलास ॥ ५७ ॥
गिरिजा ! कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गएउँ खग-पासा।
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू। गयउ काग-पहँ खगकुल-केतू। (१)
जब रघुनाथ कीन्ह रन-क्रीड़ा। समुझत चरित, होत मोहिं ब्रीड़ा।
इंद्रजीत कर आपु बँधायो। तब नारद मुनि गरुड़ पठायो। (२)

ऐसा है जिसके पास इनमेंसे कोई भी फटक नहीं पा सकता। वहाँ बसा हुआ वह कौवा (काकभुशुंडि) जिस प्रकार हरिका भजन करता रहता है, वह तुम प्रेमसे सुनती चलो। (२) वह कौवा पीपलके पेड़के नीचे बैठकर ध्यान लगाया करता है, पाकड़के नीचे बैठकर जप और यज्ञ किया करता है, आमकी छायामें बैठकर मानसिक पूजा किया करता है क्योंकि हरिका भजन करनेके अतिरिक्त उसे कोई दूसरा काम तो है नहीं (३) और वट वृक्षके नीचे बैठकर वह हरिकी कथा सुनाया करता है, जहाँ न जाने कितने पक्षी दूर-दूरसे आ-आकार कथा सुनते रहते हैं। वह कौवा भी रामके अनेक विचित्र-विचित्र चरित्र बड़े प्रेम और आदरके साथ सबको सुनाता ही रहता है। (४) इतना नहीं, बड़े-बड़े निर्मल बुद्धिवाले हंस भी वहाँ जाकर कथा सुना करते हैं जो उस समय सदा वहाँ आए बैठे रहते हैं। वहाँ पहुँचकर जब मैंने यह दृश्य देखा तो मेरा हृदय इतना आनन्दसे भर उठा (५) कि मैं भी हंस बनकर कुछ समयतक वहीं जा बसा और बड़े आदरके साथ रामके सब गुण सुन चुकनेपर ही वहाँसे कैलास लौट पाया ॥ ५७ ॥ देखो गिरिजा ! काकभुशुंडिके पास मैं जैसे पहुँच पाया था वह सब इतिहास तो मैंने तुम्हें कह सुनाया। अब मैं तुम्हें वह कथा सुनाता हूँ कि सर्वश्रेष्ठ पक्षी गरुडको वहाँ जानेकी आवश्यकता क्यों पड़ गई। (१) जब रामने (रावणसे) युद्ध किया था उस समयका (रामका) यह चरित्र देख और समझकर मुझे भी बड़ी लज्जा आती है कि स्वयं भगवान् होते हुए भी रामने अपने आपको मेघनादके हाथों क्यों जा बँधवाया। तब नारद मुनिने गरुडको कह भेजा था (कि जाकर नाग-पाश काट आओ)। (२) गरुड भी वह (नाग-पाशका) बन्धन काटकर वहाँसे उड़ तो गए पर तभीसे उनके

१. रहे व्यापि समस्त जग-माहीं। २. राम चरित बिचित्र बिधि नाना।

७१०-१२ प्रलयेऽपि न यस्यान्तो निवसत्यनिशं खगः। कामक्रोधादिषड्वर्गास्तत्र यान्ति न कर्हिचित् ॥
७१३-१६ तत्र स्थितश्शकुन्तश्च हरिभक्तिं दधाति सः। अश्वत्थे ध्यायति ब्रह्म प्लक्षे जपति तन्मनन् ॥
रसाले मानसीं पूजां भगवद्ध्यानतत्परः। न्यग्रोधे श्रावयत्यब्जनाभस्य चरितं शुभम् ॥
७१७-२१ तत्रत्यतेजो विपुलं समीक्ष्य जातः प्रमोदो निरगाच्च दुःखम्।
त्वद् विप्रलब्धोऽत्यमतीव तत्र धृत्वा वपुर्हंसमहं न्यवात्सम् ॥
श्रीराघवेन्द्रस्य चरित्रं मनोहरं निशम्याथ गिरिं समागम् ॥
७२२-२३ इतिहासं प्रिये तुभ्यमाचक्षे काकसन्निधिम्। अत्राजीद्धेतुना येन खगराजो महामतिः ॥ भुशुण्डिरा०

बंधन काटि गयो उरगादा। उपजा हृदय प्रचंड बिषादा।
प्रभु-बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग-आराती। (३)
व्यापक, ब्रह्म, बिरज, बागीसा। माया-मोह-पार परमीसा।
सो अवतरा सुनेउँ जग-माहीँ। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीँ[१]। (४)

७३० दो०—भव-बंधन-तेँ छूटहिँ, नर, जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नाग-पास सोइ राम॥ ५८॥

नाना भाँति मनहिँ समुझावा। प्रगट न ज्ञान, हृदय भ्रम छावा।
खेद-खिन्न मन, तर्क बढ़ाई। भयउ मोह-बस तुम्हरिहि नाँई। (१)
व्याकुल गयउ देवरिषि-पाहीँ। कहेसि जो संसय निज मन-माहीँ।
सुनि, नारदहिँ लागि अति दाया। सुनु खग! प्रबल राम-कै माया। (२)
जो ज्ञानिन्ह-कर चित अपहरई। मन-बिमोह बरिआईं करई[२]।
जेहि बहु बार नचावा मोहीँ। सोइ बिहंग-पति! ब्यापी तोहीँ[३]। (३)
महा-मोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग-मोरे।
चतुरानन-पहँ जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा। (४)

हृदयमेँ बड़ा भारी विषाद (बड़ा संदेह) उठ खड़ा हुआ। गरुड ज्योँ-ज्योँ यह सोचे जायँ कि प्रभु राम भी बन्धनमेँ जा फँसे त्योँ-त्योँ उनके मनमेँ यह उलझन भी बढ़ती चली जाय कि 'मैँने तो यह सुन रक्खा था कि (३) सर्वव्यापक, विकार-रहित, वाणीके स्वामी और माया-मोहसे अछूते ब्रह्म परमेश्वर ही जगत्‌मेँ (रामके रूपमेँ) अवतार लेकर उतरे चले आए हैँ, पर मुझे तो उनकी शक्तिका रत्तीभर भी कोई प्रभाव नहीँ दिखाई दिया। (४) जिसका नाम (राम) भर जप लेनेसे प्राणी भव-बन्धन (जन्म-मृत्युके चक्कर)-से छूट निकलता है उसी रामको एक तुच्छ राक्षस अपने नागपाशमेँ बाँध बैठे, ऐँ !' ॥५८॥ गरुडने बहुत माथा-पच्ची की, बहुत मनको समझाया, पर उनके मनकी गुत्थी सुलझकर न दी। उलटे, और भी अधिक भ्रम हृदयपर छाता चला गया। इसी दुःखसे दुखी और इसी उधेड़बुनमेँ पड़े हुए उन्हेँ भी वैसा ही मोह (अज्ञान) हो चला जैसा तुम्हेँ हो गया था। (१) तब वे घबराए हुए उड़े नारदके पास जा पहुँचे और उनके मनमें जितना कुछ संशय था, सब उन्होँने नारदसे जा कहा। सुनकर नारदको उनपर बड़ी दया आई और वे बोले—'देखो पक्षिराज (गरुड) ! रामकी माया ऐसी अधिक प्रबल है (२) कि वह बड़े-बड़े ज्ञानियोँका चित्त भी ऐसे चक्करमेँ उलझा डालती है कि उनके मनमेँ भी भ्रम हुए बिना नहीँ रहता। देखो पक्षिराज ! जो माया मुझे भी अनेक बार नचाए बैठी है, वही माया आज आपको भी घेर बैठी है। (३) देखो गरुड ! तुम्हारे हृदयमेँ जो बड़ा भारी मोह (भ्रम,) सन्देह उठ खड़ा हुआ है, वह मेरे समझाए समझमेँ नहीँ आ पावेगा। इसलिये तुम सीधे ब्रह्माके पास उड़े चले जाओ और जैसा वे कहेँ वैसा ही कर देखना।' (४) यह

१. सो प्रभाव देखेउँ कछु नाहीँ। २. बरिआईं बिमोह मन करई। ३. सोइ ब्यापी बिहंगपति तोहीँ।

७२४-३१ यदा युद्धलीला कृता राघवेण स्थितो मेघनादेन रामोऽहि पाशैः।
तदा प्रेरितो ब्रह्मपुत्रेण वीशो विवृश्च्यावरोधं भ्रमच्चित्तकोऽभूत्॥
नरो यस्य नाम स्मरन् याति मुक्तिं भवाद्धस्त्ररात्रिश्चरस्तं बबन्ध।
यथा सत्प्रभावः श्रुतो व्यापकत्वं न दृष्टं मया मायिनस्तस्य किञ्चित्॥
७३२-३५ नानाप्रकारेण मनः प्रबोधयन् कुतर्कनिष्ठं बुबुधे न सत्वरम्।
सविक्लवाक्रान्तमनास्सुरर्षये निवेदयामास कुतर्कमात्मजम्॥ —भुशुण्डिरामायण
७३६ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥मार्क.पु.

७४० दो०—अस कहि चले देवरिषि, करत राम - गुन - गान।
हरि-माया - बल बरनत, पुनि - पुनि परम सुजान ॥ ५९ ॥
तब खगपति बिरंचि - पहँ गयऊ। निज संदेह सुनावत भयऊ।
सुनि बिरंचि, रामहिं सिर नावा। समुझि प्रताप, प्रेम उर छावा। (१)
मन - महँ करइ बिचार बिधाता। माया - बस कबि, कोबिद, ज्ञाता।
हरि - माया - कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहि मोहिं नचावा। (२)
अग - जग - मय जग मम उपराजा। नहिं आचरज, मोह खगराजा।
तब बोले बिधि गिरा सुहाई। जान महेस राम - प्रभुताई। (३)
वैनतेय ! संकर - पहँ जाहू। तात ! अनत पूछहु जनि काहू।
तहँ होइहि सब संसय - हानी। चलेउ बिहंग सुनत बिधि - बानी। (४)
७५० दो०—परमातुर बिहंगपति, आयउ तब मो पास।
जात रहेउँ कुबेर - गृह, रहिहु उमा ! कैलास ॥ ६० ॥
तेहि मम पद सादर सिर नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा।
सुनि ता - करि बिनती मृदु बानी। प्रेम - सहित मैं कहेउँ भवानी। (१)
मिलेहु गरुड़ ! मारग - महँ मोहीं। कवन भाँति समुझावौं तोहीं।

कहकर परम सुजान देवर्षि नारद तो रामके गुणोंका भजन करते हुए और बार-बार हरिकी प्रबल मायाका वर्णन करते हुए ब्रह्मलोक चल दिए ॥ ५९ ॥ उनके कहनेके अनुसार पक्षिराज गरुड वहाँसे उड़े ब्रह्माके पास जा पहुँचे और गरुडने उन्हें भी अपना सारा सन्देह जा सुनाया। यह सुनते ही ब्रह्माने रामको सिर नवा लिया और उनका प्रताप समझकर उनके मनमें बहु प्रेम उमड़ चला। (१) ब्रह्मा अपने मनमें विचार करने लगे कि 'कवि, विद्वान् और ज्ञानी, जिसे भी देखो वही मायाके फेरमें फँसा पड़ा है। भगवान्की माया इतनी प्रबल है कि वह मुझ-जैसेको भी कई बार ऐसे ही नचा चुकी है (२) जो यह सारा चराचर जगत् ही रचाए बैठा है (जब मैं ही मायाके चक्करसे नहीं बच पाया तब यदि पक्षिराज गरुडके मनमें मोह हो उठा तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है)।' तब ब्रह्माने बड़े प्रेम-भरे शब्दोंमें गरुडसे कहा—'देखो गरुड ! रामकी प्रभुता यदि कोई भली प्रकार जान पाया है तो बस अकेले महादेव ही जान पाए हैं। (३) इसलिये तुम सीधे शंकरके पास उड़े चले जाओ। उन्हें छोड़कर और किसीसे भी तुम कोई बात न करना। वहाँ पहुँचनेपर तुम्हारे सारे संदेह दूर हो मिटेंगे। ब्रह्माकी बात सुनकर पक्षिराज गरुड तत्काल शंकरकी खोजमें उड़ चले। (४) (शंकर कहते जा रहे थे—) 'उस समय उमा ! तुम तो कैलासपर ही थी पर मैं वहाँसे कुबेरसे मिलने चला जा रहा था। इतनेमें मैं देखता क्या हूँ कि पक्षिराज गरुड बहुत व्याकुल और घबराए हुए-से मेरी ओर उड़े चले आ रहे हैं ॥ ६० ॥ मुझे देखते ही गरुडने बड़े आदरसे मेरे चरणोंमें आ प्रणाम किया और मुझे अपने मनका सारा संदेह खोल सुनाया। तो भवानी ! उनकी प्रार्थना और प्रेम-भरी बात सुनकर मैंने उनसे बड़े प्रेमसे कहा—(१) 'देखो, गरुड ! तुम मुझे मिले भी तो मार्गमें मिले। यहाँ (मार्गमें) मैं तुम्हें (इतना गूढ रहस्य) भला किस प्रकार समझा सकता हूँ ? तुम्हारे सब संदेह तो तभी दूर हो पावेंगे, जब तुम

७३७-४१ हृदयान्तरालेऽजनि गाढसम्भ्रमो न नङ्क्ष्यति क्षिप्रमुदाहरान् मम।
गत्वा सकाशं भवता प्रजासृजो वृत्तं निवेद्याथ तदुक्तमादरात् ॥
मान्यं खगेन्द्रेत्यमुदीर्य नारदो जगाम मायाबलमुच्चरन् स्मरन्।
७४२-४९ उपेत्य सर्वं निजगाद वेधसं सोऽचिन्तयद्राममहित्वमद्भुतम्।
उपेहि गङ्गाधरमाशुगत्वर प्रजापतिस्त्वं श्वसयन्नुवाच तम् ॥
७५०-५१ विह्वलो वैनतेयस्त्वाजगाम मम सन्निधिम्। व्रजतो यक्षराड् गेहं कैलासे च त्वमावसः ॥ भुशुण्डिरा०

तबहिँ होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिय सतसंगा। (२)
सुनिय तहाँ हरि - कथा सुहाई। नाना भाँति मुनिन जो गाई।
जेहि - महँ आदि - मध्य - अवसाना। प्रभु, प्रतिपाद्य, राम भगवाना। (३)
नित हरि - कथा होति जहँ भाई। पठवौं तहाँ, सुनहु तुम जाई।
जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम - चरन होइहि अति नेहा। (४)

७६० दो०—बिनु सतसंग न हरि - कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए - बिनु, राम - पद, होइ न दृढ़ अनुराग॥ ६१॥

मिलहिँ न रघुपति बिनु - अनुरागा। किए जोग - जप[1] - ज्ञान - बिरागा।
उत्तर दिसि सुंदर गिरि नीला। तहँ रह काकभुसुंडि सुसीला। (१)
राम - भगति - पथ परम प्रबीना। ज्ञानी, गुन - गृह, बहु - कालीना।
राम - कथा सो कहइ निरंतर। सुनहिँ बिबिध सादर बिहंगबर[2]। (२)
जाइ सुनहु तहँ हरिगुन भूरी। होइहि मोह - जनित दुख दूरी।
मैं जब तेहि सब कहा बुझाई। चलेउ हरषि मम पद सिर नाई। (३)

बहुत दिनोंतक बैठकर सत्संग करो (२) और वहाँ (सत्संगमें भी) वह सुहावनी हरि-कथा सुनो जिसका वर्णन अनेक मुनियोंने अनेक प्रकारसे किया है और जिस (कथा)-के आदि, मध्य और अन्तमें भगवान् रामका ही वर्णन हो। (३) इसलिये भाई ! मैं तुम्हें वहाँ भेजे देता हूँ जहाँ नित्य ही भगवान्की कथा होती रहती है। वहाँ जाकर जब तुम (कथा) सुन लोगे तो कथा सुनते हो तुम्हारे सारे संदेह तो दूर हो ही जायँगे, साथ ही रामके चरणोंमें भी तुम्हारा प्रेम बहुत बढ़ चलेगा। (४) देखो ! (यह स्मरण रक्खो) कि सत्संगके विना हरिकी कथा (सुननेको) नहीं मिलती, (हरि की) कथा सुने बिना मोह नहीं दूर हो पाता और जब-तक मोह नहीं मिट पाता तबतक रामके चरणोंमें पक्की प्रीति नहीं हो पाती॥ ६१॥ देखो गरुड ! कोई लाख योग, जप, ज्ञान और वैराग्य आदि क्यों न कर ले पर जबतक मनमें रामसे प्रेम न उत्पन्न हो जाय तबतक रामका मिल पाना संभव नहीं है। (इसलिये तुम) उत्तरकी ओर 'नीलगिरि' नामके सुहावने पर्वतपर उड़े चले जाओ जहाँ बड़े सुशील स्वभाववाले काकभुशुण्डि बसेरा डाले बैठे रहते हैं। (१) रामकी भक्तिके जितने भी मार्ग हैं उन सबको वे भली भाँति जानते हैं। वे ज्ञानी हैं, गुणी हैं और बहुत वृद्ध (पुराने) हैं। उनक काम ही है निरन्तर रामकी वह कथा सुनाते रहना जिसे (कथाको) अनेक अच्छे-अच्छे पक्षी वहाँ दूर-दूरसे आ-आकर आदर-पूर्वक सुनते ही रहते हैं। (२) बस तुम भी वहीं हरिके गुणोंकी कथा जा सुनो। तुम्हारे मनमें मोहके कारण जो उलझन उठ खड़ी हुई है वह भी उसी (कथाके सुनने)-से दूर हो मिटेगी।' जब मैंने उन्हें सब समझाकर बता दिया तब वे मेरे चरणोंमें प्रणाम करके बहुत प्रसन्न होकर उड़

१. तप। २. सादर सुनहिँ बिबिध बिहंगवर।

७५२-५५ प्रणम्य तेनाभिहितः स्वसंशयो गिरां मनोज्ञार्थमहन्निशम्य सत्।
मध्ये पथम्प्राप्तमिमं प्रशासितुं न शक्नुयामुत्तरमाशु दत्तवान्॥
७५६-५७ वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदौ मध्येऽवसाने च हरिः सर्वत्र गीयते॥
७५८-५९ नित्यं रामकथा यत्र प्रेषयामि प्रवर्तते। श्रुतिमान्या च श्रुत्वैव निश्शङ्कस्त्वं भविष्यसि॥
७६०-६१ दृढानुरागो बुधवन्दनीये हरौ च सर्वात्मनि वैनतेय।
न जायते जातु विना सुसंगमान्मोहश्च शोको भवतो ह्यजस्रम्॥ —भुशुण्डिरामायण
७६३-६६ उत्तराशासु शैले च नीले वायस उत्तमः। नाम्ना भुशुण्डिराख्यातो रामभक्तो वसत्यहो॥
कथां रामस्य दिव्यां च कीर्तयत्यनिशं सखे। श्रोतारोऽनेकविहगास्तत्रेत्वा शृणु सद्गुणान्॥ भु.रा.

ता - तें उमा ! न मैं समुझावा। रघुपति - कृपा, मरम मैं पावा।
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना। (४)
७७० कछु तेहि - तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग, खग ही - कै भाखा।
प्रभु - माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह, कवन अस ज्ञानी। (५)
दो०—ज्ञानी, भगत - सिरोमनि, त्रिभुवन - पति - कर जान।
ताहि मोह माया, नर, पाँवर करहिं गुमान ॥ ६२ क॥
सिव - बिरंचि - कहँ मोहै, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान ॥ ६२ ख॥
गयउ गरुड़, जहँ बसै भुसुंडी। मति अकुंठ, हरि - भगति अखंडी।
देखि प्रसन्न, सैल, मन भयऊ[1]। माया, मोह, सोच सब गयऊ। (१)
करि तड़ाग - मज्जन, जल-पाना। बट तर गयउ, हृदय हरषाना।
बृद्ध बिहंग - बृद्ध तहँ आए[2]। सुनै राम - के चरित सुहाए। (२)
७८० कथा अरंभ करइ सोइ चाहा। तेही समय गयउ खग - नाहा।
आवत देखि सकल खग - राजा। हरषेउ बायस सहित - समाजा। (३)

चले। (३) देखो उमा! मैंने तो गरुडको इसलिये नहीं समझाया कि मैं रामकी कृपासे उसका (गरुडके मनमें सन्देह उठ खड़े होनेका) भेद ताड़ गया कि हो न हो गरुडके मनमें कोई अभिमान अवश्य उठ खड़ा हुआ होगा (कि मैंने भगवान्‌के बन्धन काटे हैं) जिसे (अभिमानको) कृपानिधान राम दूर कर डालना चाहते होंगे। (४) और फिर कुछ इसलिये भी मैंने उन्हें उसे अपने पास नहीं रोके रक्खा कि पक्षीकी बोली पक्षी ही ठीक-ठीक समझ-समझा पा सकता है (इसलिये काकभुशुण्डि ही ठीक-ठीक समझा पावेंगे)। देखो भवानी ! प्रभुकी माया बड़ी बलवती है। संसारमें ऐसा कोई ज्ञानी नहीं बच पाया जिसे इस (माया)-ने चक्करमें न डाल दिया हो। (५) (यही समझ लो कि) जो (गरुड) ज्ञानियों और भक्तोंमें सबसे बड़े हैं, जो त्रिभुवन-पति (विष्णु)-की सवारी हैं उन-तकको (मायाने) नहीं छोड़ा (उन्हें भी मोहमें डाल दिया), तब भी नीच पुरुषोंको तो देखो कि इतनेपर भी वे मूर्खताके कारण सदा अभिमानमें ही ऐंठे पड़े रहते हैं ॥ ६२ क॥ अपने जीमें यही जानकर मुनि लोग उस मायाके स्वामी भगवान्‌का ही भजन करते रहते हैं कि जब यह माया शिव और ब्रह्मा-तकको नहीं छोड़ती (उन्हें भी मोहमें डाल बैठती है) तब और बेचारे जीवोंकी तो बिसात ही क्या है ? ॥ ६२ ख॥ मेरे पाससे उड़कर गरुड सीधे वहाँ जा पहुँचे जहाँ प्रखर बुद्धिवाले सच्चे भक्त काकभुशुण्डि बसेरा डाले रहा करते थे। गरुडका मन तो पर्वत (नीलगिरि) देखते ही खिल उठा। देखते ही उनके मनसे माया, मोह और शोक सब नौ दो ग्यारह हो भागे। (१) उन्होंने नीचे उतरकर पहले स्नान करके जल पीया। फिर प्रसन्न होकर सीधे वट-वृक्षके तले जा पहुँचे जहाँ रामके सुन्दर चरित्र सुननेके लिये और भी न जाने कितने बूढ़े-बूढ़े बड़े-से पक्षी पहलेसे आए बैठे थे। (२) अभी काक-भुशुण्डि कथा आरंभ ही करनेवाले थे कि इतनेमें पक्षिराज गरुड भी वहाँ आ पहुँचे। पक्षिराज गरुडको वहाँ आया देखकर काक-भुशुण्डि तथा अन्य सभी पक्षी बहुत प्रसन्न हुए। (३)

१. देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। २ वृद्ध वृद्ध विहंग तहँ आए।

७६७-६९ महादेशं समादाय गिरिजे गतवान् हि सः।
७७२-७३ वैकुण्ठाधिपतेः पत्रं भक्तप्रवरमुत्तमे। मोहयामास सा माया किमन्यकथया प्रिये ॥
७७६-८० काकाश्रमं वीक्ष्य भृशं प्रसन्नस्वान्तो गरुत्मान् वटमाजगाम।
यत्रोपविष्टश्च कृतावगाहः कथामुपाख्यातुमनस्क आसीत् ॥ —भुशुण्डिरामायण

अति आदर खगपति - कर कीन्हाँ। स्वागत पूछि, सुआसन दीन्हाँ।
करि पूजा समेत - अनुरागा। मधुर बचन तव बोलेउ कागा। (४)
दो०—नाथ कृतारथ भयउँ मैं, तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करउँ अब, प्रभु ! आयहु केहि काज ॥ ६३ क॥
सदा कृतारथ - रूप तुम, कह मृदु बचन खगेस।
जेहि - कै अस्तुति सादर, निज मुख कीन्हि महेस ॥ ६३ ख॥
सुनहु तात ! जेहि कारज आयउँ। सो सब भयउ, दरस तव पायउँ।
देखि परम पावन तव आस्रम। गयउ मोह, संसय, नाना भ्रम। (१)
७९० अब श्रीराम - कथा अति पावनि। सदा सुखद, दुख - पुंज - नसावनि।
सादर तात ! सुनावहु मोहीं। बार - बार बिनवौं प्रभु तोहीं। (२)
सुनत गरुड़ - कै गिरा बिनीता। सरल, सुप्रेम, सुखद, सुपुनीता।
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहइ रघुपति - गुन - गाहा। (३)
प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। राम - चरित - सर कहेसि बखानी।
पुनि नारद - कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन - अवतारा। (४)

काक-भुशुण्डिने पक्षिराज (गरुड)-का बड़ा आदर-सत्कार किया और कुशल पूछकर उनके बैठनेके लिये बढ़िया आसन बढ़ा लगाया। बड़े प्रेमसे उनकी पूजा करके काक-भुशुण्डिने कोमल वाणीमें कहा—(४) 'नाथ ! पक्षिराज ! मैं तो आकर आपके दर्शनसे ही कृतार्थ हो गया। अब आप जो आज्ञा दें मैं वही करूँ। प्रभो ! पहले आप यह बताइए कि आपने यहाँ पधारनेका कष्ट कैसे किया ?' ॥ ६३ क ॥ पक्षिराज गरुड बड़ी प्रेमभरी वाणीमें बोले—'आप तो सदासे ही कृतार्थ हुए बैठे हैं (आपकी तो सारी कामनाएँ पहलेसे ही पूर्ण हुई धरी हैं) जिसकी प्रशंसा महादेवने बड़े आदरसे अपने श्रीमुखसे कह सुनाई है ॥ ६३ ख ॥ तात ! मैं जिस कामसे यहाँ आया था वह सब कार्य तो आपके दर्शनसे ही पूरा हो गया और फिर, आपका यह परम पवित्र आश्रम देखकर तो मेरे सारे मोह, सन्देह और भ्रम अपने आप न जाने कहाँ मिट भागे। (१) प्रभो ! आपसे मेरी यही बारबार प्रार्थना है कि अब मुझे आप रामकी वह अत्यन्त पवित्र कथा सुना डालिए जिसे सुननेसे सदा सुख ही सुख मिलता रहता है और सारे दुःख अपने आप नष्ट हो मिटते हैं।' (२) गरुडकी विनम्र, सरल, सुन्दर, प्रेमभरी, सुख देनेवाली और अत्यन्त पवित्र वाणी सुनते ही काक-भुशुण्डिके मनमें उत्साह भर चला और उन्होंने तत्काल रामके गुणोंकी कथा सुनानी आरंभ कर दी। (३) (शिव कहते हैं—) 'देखो भवानी। पहले तो उन्होंने बड़े प्रेमसे 'रामचरितमानस'का रूपक समझा सुनाया। फिर नारदको जो अपार मोह हो गया था वह कथा सुनाई। फिर उन्होंने रावणके अवतारका

७८१-८५ आयन्तमालोक्य खगेन्द्रमारात्समं सदस्यैः स तु काकराजः।
आभ्युत्थ्यमस्याकुरुतानुपूज्य स्वागत्यमुत्सृज्य शुभासनं च ॥
उवाच नाथ त्वयि वीक्षितेहं दिष्टं स्वकीयं सफलं खगेश।
मन्ये समाज्ञा क्रियतान्त्वयाशु प्रख्यायतामागतिहेतुरत्र ॥
७८६-८७ सदा कृतार्थरूपस्त्वं यः स्तुतः शंकरेण ह।
७८८-९१ मेध्याश्रमे दृष्टिपथं गते ते पूर्णो मदीया गतिहेतुराख्य।
आख्याहि रामायणमादितस्त्वं श्रुत्वा यदाप्नोति चतुष्पदार्थम् ॥
७९२-९३ प्रेमान्वितां व्याहृतिञ्च श्रुत्वा तार्क्ष्यस्य वायसः। वर्णयामास सुभगे श्रीरामचरितं क्रमात्। भुशुंडिरा.
७९४-९५ महाऋषिर्देवजोदेवजूतो अस्तभ्नात् सिंधुमर्णवं नृचक्षाः विश्वामित्रो यदवहत् सुदास मयि प्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः। —ऋग्वेद
ब्राह्मणो यज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः स सोमं प्रथमः पपौ स चकार रसं विषम्। —अथर्ववेद

प्रभु - अवतार - कथा पुनि गाई । तब सिसु - चरित कहेसि मन लाई । (४॥)
दो०—बाल-चरित कहि बिबिधि बिधि , मन - महँ परम उछाह ।
रिषि - आगमन कहेसि, पुनि , श्रीरघुबीर - बिवाह ॥ ६४ ॥
बहुरि राम - अभिषेक - प्रसंगा । पुनि नृप - बचन, राज - रस - भंगा ।
८०० पुरबासिन - कर बिरह - बिषादा । कहेसि राम - लछिमन - संबादा । (१)
बिपिन - गवन, केवट - अनुरागा । सुरसरि उतरि निवास प्रयागा ।
बालमीक - प्रभु - मिलन बखाना । चित्रकूट जिमि बस भगवाना । (२)
सचिवागमन नगर, नृप - मरना । भरतागवन, प्रेम, बहु बरना ।
करि नृप - क्रिया, संग पुर-बासी । भरत गये जहँ प्रभु सुख-रासी । (३)
पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए । लै पादुका अवधपुर आए ।
भरत - रहनि, सुरपति - सुत - करनी । प्रभु अरु अत्रि - भेंट पुनि बरनी । (४)
दो०—कहि बिराध-बध, जेहि बिधि , देह तजी सरभंग ।
बरनि सुतीछन - प्रीति पुनि , प्रभु - अगस्ति - सतसंग ॥ ६५ ॥

वर्णन किया । (४) फिर उन्होंने प्रभु रामके अवतारकी कथा विस्तारसे कह सुनाई और बाल-चरित्रकी कथा तो उन्होंने बहुत ही विस्तारसे कही । (ऐसा जान पड़ता था कि) उनके मनमें (रामके बाल-चरित्रका वर्णन करनेकी) बड़ी उमंग थी । फिर उन्होंने ऋषि विश्वामित्रके आगमन-की कथा कह सुनाई और उसके पश्चात् रामके विवाहका वर्णन कर सुनाया ॥६४॥ उसके अनन्तर उन्होंने रामके राज्याभिषेकका प्रसंग, महाराज दशरथके (कैकेयीको दिए हुए) वचनके कारण राजगद्दीमें बाधा, पुरवासियोंका विरह-दुःख, राम और लक्ष्मणका संवाद, (१) रामका वन चले जाना, केवटका प्रेम, गंगासे पार होकर प्रयागमें निवास, वाल्मीकि ऋषिसे रामकी भेंट तथा चित्रकूटमें जैसे भगवान् जाकर रहे, वह सब कथा कह सुनाई । (२) फिर मंत्री सुमंत्रके अयोध्या लौट आने, राजा दशरथके मरण, भरतके अयोध्या आने और उनके प्रेमका उन्होंने बहुत विस्तारसे वर्णन किया । (फिर उन्होंने कथा सुनाई कि) राजा (दशरथ)-की अन्त्येष्टि क्रिया करके पुरवासियोंके साथ भरत वहाँ (चित्रकूट) जा पहुँचे, जहाँ सुखके निधान राम जा बसे थे (३) और वहाँ रामने भरतको जब बहुत समझाया-बुझाया तब वे रामकी चरण-पादुका लेकर अयोध्या लौट आए । फिर उन्होंने भरत (नन्दिग्राममें मुनि-वेषमें) रहनेका रंग-ढंग, इन्द्रके पुत्र जयन्तकी नीच करनी तथा अत्रि मुनिसे रामकी भेंटका वर्णन कर सुनाया । (४) फिर जिस प्रकारसे विराधका बध और शरभंगका शरीर-त्याग हुआ था वह सब प्रसंग कहकर, सुतीक्ष्णके प्रेमका वर्णन तथा राम और अगस्त्यके सत्संगका उन्होंने वर्णन किया ॥ ६५ ॥ तब उन्होंने यह वर्णन किया कि रामने किस प्रकार दण्डक-

---

७९६-९८ जन्म रामस्य सुमहद् वीर्यं सर्वानुकूलताम् । लोकस्य प्रियतां क्षान्तिं सौम्यतां सत्यशीलताम् ॥
नानाचित्राः कथाश्चान्या विश्वामित्रसहायने । जनक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम् ॥
७९९-८० तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावनाम् । विघातञ्चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम् ॥
प्रकृतानां विषादं च रामलक्ष्मणयोर्वचः ।
८०१-४ निषादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा । गंगायाश्चापि सन्तारं भरद्वाजस्य दर्शनम् ॥
भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम् । वास्तुकर्मनिवेशं च भरतागमनं तथा ॥
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम् ॥
८०५-८ पादुकाग्र्याभिषेकं च नन्दिग्रामनिवासनम् । दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधं तथा ॥
दर्शनं शरभंगस्य सुतीक्ष्णेनाभिसमागमम् । अगस्त्यस्य मुनिर्योगः परस्परमघान्तकृत् ॥—वा.रा.

कहि दंडक-बन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई।
८१० पुनि प्रभु पंचबटी कृत-बासा। भंजी सकल मुनिन-की त्रासा। (१)
पुनि लछिमन-उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा।
खर-दूषन-बध बहुरि बखाना। जिमि सब मरम दसानन जाना। (२)
दसकंधर-मारीच-बतकही। जेहि बिधि भई, सो सब तेहि कही।
पुनि माया-सीता-कर हरना। श्रीरघुबीर-बिरह कछु बरना। (३)
पुनि प्रभु गीध-क्रिया जिमि कीन्हीं। बधि कबंध, सबरिहिं गति दीन्हीं।
बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गए सरोबर-तीरा। (४)

दो०—प्रभु-नारद-संबाद कहि, मारुति-मिलन-प्रसंग।
पुनि सुग्रीव-मिताई, बालि-प्रान-कर भंग॥६६क॥
कपिहिं तिलक करि, प्रभु-कृत, सैल प्रबरषन-बास।
८२० बरनत बरषा-सरद अरु, राम-रोष, कपि-त्रास॥६६ख॥

जेहि बिधि कपि-पति कीस पठाए। सीता-खोज सकल दिसि धाए।
बिबर-प्रबेस कीन्ह जेहि भाँती। कपिन्ह बहोरि मिला संपाती। (१)
सुनि सब कथा समीर-कुमारा। नाँघत भयउ पयोधि अपारा।

वन पवित्र किया और फिर काकभुशुण्डिने गृध्रराज (जटायु)-के साथ रामकी मित्रताका वर्णन किया। फिर जिस प्रकार रामने पंचवटीमें निवास करके सब मुनियोंका त्रास दूर किया, (१) लक्ष्मणको अनुपम उपदेश दिया और शूर्पणखाको कुरूप किया वह सब उन्होंने वर्णन कर सुनाया। फिर खर और दूणका वध तथा वह सब वृत्तान्त कह सुनाया कि रावणको उनके (रामके) आनेका ज्ञान कैसे हो पाया। (२) फिर किस प्रकार रावण और मारीचकी बातचीत हुई वह सब कथा काकभुशुण्डिने कह सुनाई। फिर मायासे रची हुई सीताके हरणकी कथा सुनाकर उन्होंने रामके विरहका भी थोड़ा-सा वर्णन कर दिया। (३) फिर प्रभुने जिस प्रकार गिद्धकी क्रिया की, कबंधको मारा, शबरीको परम गति दी तथा जिस प्रकार राम अपने विरहका दुःख प्रकट करते हुए पम्पासरके तीरपर पहुँचे वह सब कथा उन्होंने कह सुनाई। (४) फिर (काकभुशुण्डिने) नारद-संवाद कहकर हनुमान्के मिलनेका प्रसंग कह सुनाया॥ ६६ क॥ फिर सुग्रीवको तिलक करके प्रवर्षण पर्वतपर प्रभुके निवास करने, वर्षा और शरत् ऋतुओंका वर्णन करने, प्रभुका सुग्रीवपर क्रोध करने और सुग्रीवके भयभीत होने आदिके सब प्रसंग उन्होंने कह डाले॥६६ ख॥ फिर जिस प्रकार सुग्रीवने वानरोंको बुलवा भेजा और वे सीताकी खोज करनेके लिये चारों ओर गए, जिस प्रकार उन्होंने गुफामें प्रवेश किया और जैसे वानरोंको सम्पाति मिला, वह सब कथा उन्होंने कह सुनाई। (१) सम्पातिसे सब समाचार पाकर पवनपुत्र हनुमान्ने जिस प्रकार अपार समुद्र लाँघा, जिस प्रकार उन्होंने लंकामें प्रवेश किया,

---

८०९-१० दंडकारण्यपावित्र्यं मैत्र्यं गृध्रेण वर्णितम्। आवासः पञ्चवट्याञ्च मुनीनां त्रासभंजनम्॥
८११-१२ शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा। वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च॥
८१३-१५ मारीचस्य वधं चैव वैदेह्याहरणं तथा। राघवस्य विलापं च गृध्रराजनिवर्हणम्॥
हत्वा कबन्धं शबरीशुभाश्रमगतिन्तथा। फलमूलाशनं कृत्वा तस्यै दत्ता गतिश्शुभा॥
८१६-१८ प्रलापं चैव पंपाया हनुमद्दर्शनन्तथा। ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम्॥
प्रत्ययोत्पादनं सख्यं वालिसुग्रीवविग्रहम्। वालिप्रमथनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम्॥
८१९-२० ताराविलापं समयं वर्षरात्रनिवासनम्। कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसंग्रहम्॥
८२१-२२ दिशः प्रस्थापनञ्चैव पृथिव्याश्च निवेदनम्। अंगुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम्॥
प्रायोपवेशनं चैव सम्पातेश्चापि मेलनम्॥ —भुशुंडिरामायण

लंका कपि प्रबेस जिमि कीन्हाँ। पुनि सीतहिं धीरज जिमि दीन्हाँ। (२)
बन उजारि, रावनहिं प्रबोधी। पुर दहि, नाँघेउ बहुरि पयोधी।
आए कपि सब, जहँ रघुराई। बैदेही - की कुसल सुनाई। (३)
सेन - समेत जथा रघुबीरा। उतरे जाइ बारिनिधि - तीरा।
मिला बिभीषन जेहि बिधि आई। सागर - निग्रह - कथा सुनाई। (४)

दो०—सेतु बाँधि, कपि-सेन जिमि, उतरी सागर - पार।
८३० गयउ बसीठी बीरबर, जेहि बिधि बालि-कुमार ॥ ६७ क ॥
निसिचर - कीस - लराई, बरनिसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन - घननाद - कर, बल - पौरुष - संघार ॥ ६७ ख ॥

निसिचर - निकर - मरन बिधि नाना। रघुपति - रावन - समर बखाना।
रावन - बध, मंदोदरि - सोका। राज बिभीषन, देव असोका। (१)
सीता - रघुपति - मिलन बहोरी। सुरन कीन्हि अस्तुति कर जोरी।
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन - समेता। अवध चले प्रभु कृपा - निकेता। (२)
जेहि बिधि राम, नगर निज आए[1]। बायस बिसद चरित सब गाए।
कहेसि बहोरि राम - अभिषेका। पुर - बरनन, नृप - नीति अनेका। (३)

वहाँ जाकर जिस प्रकार सीताको धीरज बँधाया, (२) अशोक-वन उजाड़कर, रावणको समझाकर, लंका जलाकर, पुन: समुद्र लाँघकर, वानरोंसे मिलकर और रामके पास आकर जिस प्रकार जानकीका कुशल सुनाया वह सब कथा उन्होंने कह डाली। (३) फिर जिस प्रकार सेना लेकर समुद्रके तीरपर राम उतरे और जिस प्रकार रामसे विभीषणकी भेंट हुई, वह सब तथा समुद्र बाँधनेकी कथा काकभुशुण्डिने कह सुनाई। (४) फिर जिस प्रकार समुद्र बाँधकर वानरोंकी सेना समुद्रके पार जा उतरी और श्रेष्ठ वीर अंगद दूत बनकर (रावणके पास) गए, ॥ ६७ क ॥ उसका तथा वानरों और राक्षसोंकी लड़ाईका उन्होंने अनेक प्रकारसे वर्णन कर सुनाया। फिर कुम्भकर्ण और मेघनादके बल, पुरुषार्थ और उनके संहार (नाश)-की कथा उन्होंने कह सुनाई ॥ ६७ ख ॥ फिर काक-भुशुण्डिने राक्षसोंके मरण और राम-रावणके अनेक प्रकारके युद्धका वर्णन कर सुनाया। फिर रावणके वध और मन्दोदरीके शोकका तथा विभीषणके राजतिलक और देवताओंका शोक दूर करनेका सारा वृत्तान्त सुना डाला। (१) फिर जानकीसे रामके मिलन और देवताओं-द्वारा हाथ जोड़कर प्रभुकी स्तुति करनेकी कथा कही। फिर जिस प्रकार कृपानिधान राम सब वानरोंके साथ पुष्पक विमानपर चढ़कर अयोध्या चले (२) और जिस प्रकार राम अपनी अयोध्यामें आए वह सब कथा काकभुशुंडिने विस्तारसे कह सुनाई। फिर उन्होंने रामके राज्याभिषेककी कथा, नगरका वर्णन और अनेक प्रकारकी राजनीतिका वर्णन

१. निअराए।

८२३-२५ पर्वतारोहणं चैव सागरस्यापि लंघनम्। रात्रौ लंकाप्रवेशं च एकस्यापि विचिन्तनम् ॥
अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम्। अभिज्ञानप्रदानञ्च सीतायाश्चापि भाषणम् ॥
८२६ ग्रहणं वायुसूनोश्च लंकादाहाभिगर्जनम्। प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा ॥
राघवाश्वासनं चैव मणिनिर्यातनञ्च वै ॥
८२७-३० संगमं च समुद्रेण नलसेतोश्च बन्धनम्। प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम् ॥
विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदनम्।
८३१-३२ वानराणां कर्बुराणां युद्धमद्भुतमीरितम्। कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिबर्हणम् ॥
८३३-३६ रावणस्य विनाशं च सीतावाप्तिमरे: पुरे। विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्यावलोकनम्॥ मुशुंडिरा०
८३७-३८ अयोध्यायाश्च गमनम्भरतेन समागमम्। रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम् ॥ सत्योपा०
पुर्य्या वर्णनं चैव राजनीतिरनेकधा ॥ —पद्मपुराण

कथा समस्त भुसुंडि बखानी। जो मैं तुम-सन कही भवानी।
८४० सुनि सब राम-कथा, खग-नाहा। कहत बचन, मन परम उछाहा। (४)

सो०—गयउ मोर संदेह, सुनेउँ सकल रघुपति-चरित।
भयउ राम-पद-नेह, तव प्रसाद बायस-तिलक।। ६८ क।।
मोहिं भयउ अति मोह, प्रभु-बंधन रन-महँ निरखि।
चिदानंद-संदोह, राम बिकल कारन कवन।। ६८ ख।।

देखि चरित अति नर-अनुसारी। भयउ हृदय मम संसय भारी।
सोइ भ्रम अब हित करि मैं माना[1]। कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना। (१)
जो अति आतप व्याकुल होई। तरु-छाया-सुख जानै सोई।
जौं नहिं होत मोह अति मोहीं। मिलतेउँ तात! कवन बिधि तोहीं। (२)
सुनतेउँ किमि हरि-कथा सुहाई। अति बिचित्र बहु बिधि तुम गाई।
८५० निगमागम-पुरान-मत एहा। कहहिं सिद्ध-मुनि नहिं संदेहा। (३)
संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही।
राम-कृपा तव दरसन भयऊ। तव प्रसाद सब संसय गयऊ। (४)

कर सुनाया। (३) (शिव कहते हैं—) 'देखो भवानी! वह सारी कथा जो मैंने तुम्हें सुनाई थी, वही सब कथा काकभुशुंडिने भी (गरुडको) कह सुनाई।' रामकी पूरी कथा सुन चुकनेपर पक्षिराज गरुड मनमें बहुत प्रसन्न हुए और बोल उठे—(४) 'काक-शिरोमणि भुशुंडि! यह आपकी कृपा है कि मैंने यह सारा चरित्र सुन लिया। इससे मेरा सारा सन्देह मिट गया और रामके चरणोंमें मेरी अपार प्रीति उत्पन्न हो उठी।। ६८ क।। युद्धमें प्रभु (राम)-को नागपाशमें बँधा देखकर मुझे बहुत मोह (भ्रम) हो चला था कि राम तो सच्चिदानन्दघन हैं, फिर वे कैसे उस संकटमें जा फँसे?।। ६८ ख।। साधारण लौकिक मनुष्योंके समान उनका व्यवहार देखकर ही मेरे हृदयमें बड़ा सन्देह उठ खड़ा हुआ था। पर अब मैं समझता हूँ कि उस भ्रमने मेरी बड़ी भलाई ही की कि कृपानिधान (राम)-ने (यह भ्रम उपजाकर मुझपर बड़ी कृपा कर दी। (१) वृक्षकी छायाका सुख वही मनुष्य समझ पाता है जो धूपसे बहुत तपा हुआ रहता है। बताइए तात! यदि यह भीषण भ्रम मुझे न हुआ होता तो मैं आपसे मिलता कैसे (२) और मैं आपसे यह विचित्र सुन्दर हरि-कथा कैसे सुन पाता जो आपने इतने अधिक विस्तारसे वर्णन कर सुनाई है? वेद, शास्त्र और पुराणोंका भी यही मत है, सिद्ध मुनि भी यही कहते हैं और इसमें तनिक सन्देह भी नहीं है कि (३) सच्चे सन्त उसीको मिल पाते हैं जिसपर रामकी कृपा-दृष्टि घूम जाती है। रामकी कृपासे ही मुझे आपके दर्शन हो पाए और आपकी ही कृपासे मेरे सारे सन्देह दूर हो मिटे।' (४) पक्षिराज गरुडकी यह विनय और प्रेमसे भरी वाणी सुनकर काकभुशुंडि अत्यन्त

१. जाना।

८४१-४२ श्रुत्वा श्रीरामचन्द्रस्य बालचारित्रमद्भुतम्। अस्मिन्क्षणे मया देव ज्ञानं प्राप्तं च सुंदरम्।। सत्योपा० रामस्य चरणाम्भोजे जाता मम दृढा मतिः। सर्वसंशयनिवृत्तिः······।। —पद्मपुराण

८४३-४४ रणे श्रीरामचन्द्रस्य चिदानन्दस्य धीमतः। बन्धनम्पश्यतो जातस्संदेहो हृदि मे ततः।।महारामा०

८४५-४६ प्रपञ्चं निष्प्रपंचोपि विडंबयसि भूतले।। —भागवत
नरानुकारिणीं लीलां दृष्ट्वा मोहोभिजायते। तदप्यनुग्रहं मन्ये यज्जातं तव दर्शनम्।।

८४७-४८ धर्मार्ताः पुरुषाः सुशीतलतरुच्छायोद्भवं वै सुखम्। जानन्त्येव।।

८५२ संशयो मे विलीनोऽभूत् दर्शनात्तव धीमते। —पद्मपुराण

दो०—सुनि बिहंगपति बानी, सहित-बिनय-अनुराग।
पुलकि गात, लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग॥६९ क॥
स्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा-रसिक हरि-दास।
पाइ उमा! अति गोप्यमपि, सज्जन करहिँ प्रकास॥६९ ख॥

बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी। नभग-नाथ-पर प्रीति न थोरी।
सब बिधि नाथ! पूज्य तुम मेरे। कृपा-पात्र रघुनायक-केरे। (१)
तुम्हहिँ न संसय, मोह, न माया। मो-पर नाथ कीन्हि तुम दाया।
८६० पठै मोह-मिस खगपति तोहीँ। रघुपति दीन्हि बड़ाई मोहीँ। (२)
तुम निज मोह कही खग-साईँ। सो नहिँ कछु आचरज गोसाईँ।
नारद-भव-बिरंचि-सनकादी। जे मुनि-नायक, आतमबादी। (३)
मोह, न अंध कीन्ह केहि केही। को जग, काम नचाव न जेही।
त्रिस्ना, केहि न कीन्ह बौराहा। केहि-कर हृदय क्रोध नहिँ दाहा। (४)

दो०—ज्ञानी, तापस, सूर, कबि, कोबिद गुन-आगार।
केहि-कै लोभ, बिडंबना, कीन्हि न ऐहि संसार॥७० क॥
श्री-मद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि-के नैन-सर, को अस, लाग न जाहि॥७० ख॥

पुलकित हो उठे और उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आए॥ ६९ क॥ (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा! सज्जन लोग जब अपने सामने कभी विवेक-भरी बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र, कथाके प्रेमी और हरिके सेवक श्रोता पा जाते हैं तब वे गोपनीयसे गोपनीय रहस्य भी छिपा नहीँ रखते, तत्काल प्रकट कर डालते हैं'॥ ६९ ख॥ पक्षिराज (गरुड)-से काकभुशुंडिको बहुत अधिक प्रेम हो गया इसलिये उन्होंने गरुडसे कहा—'नाथ! आप सब प्रकारसे मेरे पूज्य हैं और रामके कृपापात्र हैं (रामकी आपपर बड़ी कृपा है)। (१) आपके मनमें न कोई सन्देह है, न मोह (भ्रम) और न माया। नाथ! आप तो मुझपर ही दया करके यहाँ चले आए हैं। पक्षिराज! इसी मोह (भ्रम)-के बहाने रामने आपको यहाँ भेजकर मुझे यह बड़ाई दे डाली है। (२) देखिए पक्षिराज! आपने जो मोह (भ्रम)-की बात कही है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। नारद, शंकर, ब्रह्मा और सनकादि जितने भी आत्मवादी श्रेष्ठ मुनि हैं, (३) (इनमेंसे) कौन है जिसे मोहने अंधा न कर डाला हो? कौन है जिसे कामदेवने नचा न डाला हो? कौन है जिसे तृष्णाने मतवाला न कर डाला हो? कौन है जिसका हृदय क्रोधने जला न डाला हो? (४) कौन ऐसा ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान् और गुणी है जिसे लोभने चौपट न कर डाला हो?॥ ७० क॥ कौन है जिसे लक्ष्मी (धन)-के मदने कुटिल (स्वार्थी) न बना डाला हो? कौन है जिसे प्रभुताने बहरा न कर डाला हो? और संसारमें कौन है जिसे मृगनयनी नवेलीकी बाँकी चितवनके बाणने घायल न कर डाला हो?॥ ७० ख॥ बताओ, गुणों (सत्त्व, रजस्,

८५३-५४ श्रुत्वा वचः श्रीपतिवाहनस्य विनम्रमौदार्य्यगुणप्रयुक्तम्।
जहर्ष सोत्फुल्लविलोचनो वै काकस्समन्तात्पुलकायमानः॥
८५७-५८ जनयन् परमां प्रीतिं प्रत्युवाचाथ तं खगः। पूज्योऽसि मम पक्षीन्द्र दयापात्रं यतः प्रभोः॥
८५९-६० न संशयस्ते हृदि नैव माया मोहो न लोभो न खगेन्द्र कामः। —भुशुण्डिरामायण
८६२ को मोहेन न मुह्यते भुवि न वा कामेन मत्तीकृतो भस्मीसाद् भवतिस्म को नहि रुषा को वा न तृष्णार्दितः।
लोभाकृष्टमना न कः कुटिलतां संप्राप्य राज्यश्रियं को वा नैति मृगीदृशाम्भ्रमरतान्नो वा गतश्रक्षुषाम्॥भु.

गुन - कृत सन्यपात नहिँ केही । कोउ न मान - मद तजेउ निबेही ।
८७० जोबन - ज्वर, केहि नहिँ बलकावा । ममता केहि - कर जस न नसावा । (१)
मच्छर काहि कलंक न लावा । काहि न सोक - समीर डोलावा ।
चिंता - साँपिनि को नहिँ खाया । को जग, जाहि न ब्यापी माया । (२)
कीट - मनोरथ, दारु - सरीरा । जेहि न लाग घुन, को अस धीरा ।
सुत - बित - लोक - ईषना तीनी । केहि-कै मति इन्ह कृत न मलीनी । (३)
यह सब माया - कर परिवारा । प्रबल, अमित, को बरनै पारा ।
सिव - चतुरानन जाहि डेराहीँ । अपर जीव केहि लेखे - माहीँ । (४)
दो०—ब्यापि रहेउ संसार - महँ, माया - कटक प्रचंड ।
सेनापति कामादि, भट , दंभ - कपट - पाखंड ॥ ७१ क ॥
सो दासी रघुबीर - कै , समुझे मिथ्या सोऽपि ।
८८० छूट न राम कृपा - बिनु , नाथ ! कहौं पद रोपि ॥ ७१ ख ॥
जो माया सब जगहिँ नचावा । जासु चरित, लखि काहु न पावा ।
सोइ प्रभु भ्रू - बिलास खगराजा । नाच नटी-इव सहित - समाजा । (१)
सोइ सच्चिदानंद - घन रामा । अज, बिज्ञान - रूप, बल-धामा ।
ब्यापक, ब्याप्य, अखंड, अनंता । अखिल अमोघ - सक्ति, भगवंता । (२)
अगुन, अदभ्र, गिरा - गोतीता । सबदरसी, अनवद्य, अजीता ।

तमस्)-से उत्पन्न सन्निपात (पागलपन) किसे नहीँ हुआ ? मान और मदने किसे अछूता छोड़ा ? जवानीके ज्वरने किसे उद्दंड नहीं बना डाला ? ममताने किसका यश नहीं मिटा डाला ? (१) डाह (ईर्ष्या)-ने किसे कलंकित नहीं किया ? शोक-रूपी पवनने किसका मन डावाँडोल नहीं कर डाला (शोकसे किसका चित्त विचलित नहीं हुआ) ? चिन्ता-रूपी सर्पिणीने किसे नहीं डसा ? संसारमें ऐसा कौन है, जो मायाके फन्देसे वचा रह गया हो ? (२) मनोरथ (कामना, इच्छा) ही घुन और शरीर ही काठ है—ऐसा कौन धैर्यवान् है, जिसके शरीरमें यह मनोरथ (आकांक्षा)-का घुन न आ लगा हो ? पुत्र, धन और लोक-प्रतिष्ठा (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा)—इन तीन प्रबल कामनाओंने किसका मन नहीं बिगाड़ डाला ? (३) ये सबके सब मायाके ही तो चोचले हैं, जो इतने बलवान् और अपार हैं कि इनका कोई वर्णन नहीं कर पा सकता ? जब शिव और ब्रह्मा-तक इनसे डरे बैठे रहते हैं, तब अन्य प्राणियोंकी तो गिनती ही क्या है ? (४) मायाकी यह प्रचंड सेना सारे संसारमें छाई हुई है। काम आदि (काम, क्रोध, मत्सर, मोह, मद और लोभ) ही इसके प्रबल सेनापति हैं और दम्भ, कपट तथा पाखण्ड ही इसके योद्धा हैं ॥७१क॥ किन्तु वह माया भी रामकी दासी है। उस मायाको ठीक समझ लिया जाय तो जान पड़ेगा कि यह (माया) पूर्णतः मिथ्या ही है। किन्तु नाथ ! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहे देता हूँ कि रामकी कृपाके बिना उसके फन्देसे कोई छुटकारा पा नहीं सकता ॥ ७१ ख ॥ देखो गरुड ! जो माया सारे जगत्को नचाए डालती है और जिसका भेद आज-तक कोई ताड़ नहीं पाया, वही माया प्रभु रामकी भौंहके संकेतपर अपना सारा समाज लिए-दिए नटी बनकर नाचती चलती है (राम जैसा चाहेँ वैसा ही मायासे काम कराते चलते हैं) । (१) राम तो वही सच्चिदानन्द-घन है जो अजन्मा, विज्ञानके रूप, रूपवान्, बलशाली, सर्वव्यापक (सब रूपोंवाले), अखण्ड(पूर्ण) और अनंत हैं और ऐसे भगवान् हैं जिनमेँ अचूक शक्ति है। (२) वे निर्गुण हैं, भरेपूरे हैं, वाणी और इन्द्रियाँ कोई उनतक पहुँच नहीं पा सकतीं। वे सब कुछ देखनेवाले, निर्दोष और अजेय हैं (जिन्हें कोई जीत नहीं सकता)। उनमें न ममता है, न उनका

८७५-७६ कामलोभादयो दोषास्सर्वे प्रकृतिसंभवाः यतो बिभेति ब्रह्मापि शिवोऽपि कस्तथाऽपरः ॥ सनत्०सं०

निरमम[1], निराकार, निरमोहा । नित्य निरंजन सुख - संदोहा । (३)
प्रकृति - पार प्रभु सब उर - बासी । ब्रह्म, निरीह, बिरज, अबिनासी ।
इहाँ मोह - कर कारन नाहीं । रबि-सनमुख तम कबहु कि जाहीं । (४)
दो०—भगत - हेतु भगवान प्रभु , राम, धरेउ तनु - भूप ।
८९० किए चरित पावन परम , प्राकृत - नर - अनुरूप ॥ ७२ क ॥
जथा अनेक बेष धरि , नृत्य करै नट कोइ ।
सोइ - सोइ भाव देखावै , आपुन होइ न सोइ ॥ ७२ ख ॥
असि रघुपति - लीला उरगारी । दनुज - बिमोहनि, जन-सुखकारी ।
जे मति - मलिन, बिषय - बस, कामी । प्रभु - पर मोह धरहिं इमि स्वामी । (१)
नयन - दोष जा - कहँ जब होई । पीत बरन ससि - कहँ, कह सोई ।
जब जेहि दिसि - भ्रम होइ खगेसा । सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा । (२)
नौकारूढ़ चलत जग देखा । अचल मोह - बस आपुहि लेखा ।
बालक भ्रमहिं, न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परसपर मिथ्याबादी । (३)

कोई आकार (रूप) है और न उनमें मोह है । वे नित्य, मायारहित और सब सुखोंके भांडार हैं । (३) उन प्रभु रामपर प्रकृतिका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे सबके हृदयमें बसे रहते हैं । वे ऐसे ब्रह्म हैं कि उनमें न कोई इच्छा होती, न विकार होता, न उनका नाश होता । इसलिये उनके मनमें तो मोह (भ्रम, अज्ञान) होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता । सूर्यके सामने क्या कभी अंधकार ठहर पा सकता है ? (४) भगवान् प्रभु रामने तो भक्तोंके लिये ही यह राजाका शरीर धारण कर रक्खा है (राजाके घरमें अवतार लिया है) और लौकिक मनुष्योंकी भाँति वैसे ही परम पावन लीलाएँ करते चल रहे हैं ॥ ७२ क ॥ जैसे कोई नट अनेक वेष धारण करके नाट्य (अभिनय) किया करता है, और (भूमिकाके अनुसार) वैसा-वैसा व्यवहार भी करता चलता है, पर स्वयं वह उनमेंसे कोई (पात्र) नहीं बन जाता (जिस पात्रका अभिनय करता है, उस पात्रके समान नहीं बन जाता) ॥ ७२ ख ॥ देखो गरुड ! रामकी लीला ही कुछ ऐसी है कि वह राक्षसोंको विशेष रूपसे भ्रममें डाले रखती और भक्तोंको सुख देती रहती है । स्वामी ! जिन लोगोंकी बुद्धि मलिन है, जो दिनरात विषयोंमें लिपटे पड़े रहते हैं और कामी हैं, वे ही प्रभुके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी अज्ञानकी बातें किया करते हैं । (१) जिसके नेत्रोंमें पीलिया रोग हो जाता है, उसीको चन्द्रमा पीले रंगका दिखाई दिया करता है । जिसे दिशाका भ्रम हो जाया करता है (दिशाका ठीक ज्ञान नहीं होता) वही कहा करता है कि सूर्य आज पश्चिममें उदय हुए हैं । (२) नावपर बैठा हुआ व्यक्ति भ्रमके कारण ही तटकी वस्तुओंको चलता हुआ और अपनेको अचल (स्थिर) समझ बैठता है । बालक जब घुमनी (चक्कर) खाते हैं (तब समझते हैं कि सारा घर घूम रहा है) फिर भी वे चक्कर खाते हुए (घुमनी घूमते) आपसमें

१. निर्मल ।

८७७-८८ स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः । स्वप्रकाशस्सदापूर्णः सच्चिदानंदविग्रहः ॥
निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः । गुणातीतः सर्वसाक्षी सर्वात्मा सर्वदा प्रभुः ॥
गूढः सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी सनातनः । सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः ॥
लोकातीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः । स वेत्ति विश्वं सर्वज्ञः तन्न जानाति कश्चन॥महानि०तं०
८८९-९२ राजन् परस्य तनु भृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहिम्नो परतः स आस्ते ॥ —भागवत
८९३-९४ लीलेयं रामचन्द्रस्य जगदानन्दकारिणी । महामोहनिशासुप्तराक्षसानां विमोहिनी ॥ महारामा०
विचित्रं रामचरितं जानन्त्येव विपश्चितः । ये सन्ति मूढमतयः किमप्यन्यद्वदन्ति ते । शिवपु०

हरि - बिषइक अस मोह बिहंगा। सपनेहुँ नहिं अज्ञान - प्रसंगा।
९०० माया - बस, मतिमंद, अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी। (४)
ते सठ, हठ - बस संसय करहीं। निज अज्ञान राम - पर धरहीं। (४॥)
दो०—काम - क्रोध-मद-लोभ - रत , गृहासक्त, दुख - रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं , मूढ़, परे तम - कूप ॥७३ क॥
निर्गुन - रूप सुलभ अति , सगुन, जान नहिं कोइ।
सुगम - अगम नाना चरित , सुनि, मुनि-मन भ्रम होइ॥ ७३ ख॥
सुनु खगेस ! रघुपति - प्रभुताई। कहौं जथामति कथा सुहाई।
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोहीं। सोउ सब कथा सुनावौं तोहीं। (१)
राम - कृपा - भाजन तुम ताता। हरि - गुन - प्रीति मोहिं सुखदाता।
ता - तें नहिं कछु तुम्हहिं दुरावौं। परम रहस्य मनोहर गावौं। (२)
९१० सुनहु राम - कर सहज सुभाऊ। जन - अभिमान न राखहिं काऊ।
संसृति - मूल, सूल - प्रद नाना। सकल सोक-दायक अभिमाना। (३)
ता - तें करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक - पर ममता अति भूरी।
जिमि सिसु - तन व्रन होइ गुसाईं। मातु चिराव कठिन - की नाईं। (४)

एक दूसरेको झूठा बताए चले जाते हैं। (३) देखो पक्षिराज ! हरि (राम)-के विषयमें भी कुछ लोग ऐसी ही कल्पना करते हैं, परन्तु उन (हरि)-के संबंधमें ऐसे अज्ञानका प्रश्न तो स्वप्नमें भी नहीं उठता। परन्तु जिन दुर्बुद्धिवाले अभागे लोगोंके हृदयपर परदेपर परदे पड़े रहते हैं–(४) वे ही मूर्ख हठ करके ऐसा सन्देह किया करते हैं और स्वयं अज्ञानी होते हुए अपना अज्ञान रामपर थोपकर उन्हें सामान्य मनुष्य बताने लगते हैं। (५) बताइए, जो लोग काम, क्रोध, मद और लोभमें सने पड़े हैं और जो दुःखके कठघरेमें बन्द पड़े हैं वे भला रामको कैसे जान पा सकते हैं ? क्योंकि वे तो स्वयं अंधकारके कुएँमें पड़े डुबकों-डुबकों किए जा रहे हैं ॥७३ क॥ देखो ! भगवान्का निर्गुण रूप तो अत्यन्त सुलभ है, पर उनका दिव्य सगुण रूप कोई भी नहीं जानता। इसीलिये उन सगुण भगवान्की अनेक सुगम और अगम (समझमें न आ सकनेवाली) लीलाएँ जब सुननेको मिलती हैं तो उन्हें सुन-सुनकर मुनियों-तकके मन भी चकरा-चकरा उठते हैं॥ ७३ ख ॥ देखो पक्षिराज गरुड ! रामकी प्रभुताकी एक सुन्दर कथा मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपको सुनाए देता हूँ। प्रभो ! इस कथाके द्वारा मैं आपको बताऊँगा कि मुझे भी किस प्रकार ऐसा ही मोह (भ्रम) हो गया था। (१) तात ! आपपर तो रामकी बड़ी कृपा है और हरिके गुणोंसे आपको प्रेम भी है, इसलिये आपको देखकर मुझे बड़ा सुख मिला है। इसीलिये मैं आपसे कुछ छिपा नहीं रहा हूँ और रामका वह परम मनोहर रहस्य आपको विस्तारसे सुनाए देता हूँ। (२) रामका यह सहज स्वभाव बताता हूँ कि वे अपने भक्तोंके हृदयमें कभी किसी प्रकारका अभिमान आने ही नहीं देते। क्योंकि इस अभिमानके कारण ही तो इस जन्म-मरणके चक्करसे भरे संसारमें बार-बार आ फंसना पड़ता है और अनेक प्रकारके क्लेश तथा दुःख भोगने पड़ते हैं। (३) इसीलिये कृपालु राम उस (अभिमान)-को झट दूर कर डालते हैं क्योंकि अपने सेवक (भक्त)-को वे बहुत ही अधिक प्यार किया करते हैं। गोसाईं ! जैसे बच्चेके शरीरमें फोड़ा हो जानेपर माता अपना हृदय कठोर करके उसे जब चिरवाने लगती है (४)

८९७-९९ तीरस्था जगदीक्षन्ते भ्रमन्तभ्रमिपीडिताः॥ —महारामायण
यथाहि चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टे भ्रमतीव दृश्यते।
तथैव देहेन्द्रियकर्त्तुरात्मा कृतं परेध्यस्य जनो विमुह्यति।
ज्ञानं तथा ज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामे कथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने। —अध्यात्मरामायण

दो०—जदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
व्याधि - नास - हित जननी, गनत न सो सिसु-पीर॥७४ क॥
तिमि रघुपति निज दास-कर, हरहिँ मान, हित लागि।
तुलसिदास, ऐसे प्रभुहिँ, कस न भजहु, भ्रम त्यागि॥७४ ख॥
राम - कृपा, आपनि जड़ताई। कहौँ खगेस! सुनहु मन लाई।
जब - जब राम मनुज - तनु धरहीँ। भगत - हेतु लीला बहु करहीँ। (१)
९२० तब - तब अवधपुरी मैँ जाऊँ। चरित बिलोकि बाल हरषाऊँ[1]।
जन्म - महोत्सव देखौँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लुभाई। (२)
इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा - बपुष कोटि - सत कामा।
निज प्रभु - बदन निहारि - निहारी। लोचन सुफल करौँ उरगारी। (३)
लघु बायस - बपु धरि हरि - संगा। देखौँ बाल - चरित बहु रंगा। (३॥)
दो०—लरिकाईं जहँ - जहँ फिरहिँ, तहँ - तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परै अजिर - महँ, सो उठाइ करि खाउँ॥७५ क॥
एक बार अतिसय सब, चरित किए रघुबीर।
सुमिरत प्रभु - लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर॥७५ ख॥
कहै भुसुंडि, सुनहु खगनायक। राम - चरित सेवक - सुखदायक।

उस (फोड़ा चीरनेके) समय यद्यपि वह बालक पीडाके कारण अधीर होकर बहुत रोने-चिल्लाने लगता है तथापि जैसे माता उसका रोग जडसे नाश कर डालनेकी भावनाके कारण उसके उस रोने-चिल्लानेपर तनिक भी ध्यान नहीँ देती ।।७४ क।। उसी प्रकार राम भी जब अपने भक्तके हृदयमैँ अभिमान आया देखते हैँ तो उसका हित करनेके लिये वे उसका अभिमान मिटाए बिना नहीँ छोड़ते।' तुलसीदास कहते हैँ—'भाई ! सारा भ्रम छोड़कर ऐसे प्रभुको तुम भजते क्यौँ नहीँ' ।। ७४ ख ।। 'तो पक्षिराज गरुड ! मैँ अपनी मूर्खता और रामकी कृपाकी कथा आपको सुनाए डालता हूँ। आप ध्यानसे सुनते चलिएगा। जब-जब राम मनुष्यका रूप धारण करके भक्तोँको सुख देनेके लिये अनेक प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैँ (१) तब-तब मैँ भी अयोध्यापुरी जा-जाकर उनकी बाललीलाका आनन्द लिया करता हूँ। मैँ वहाँ जाकर प्रभुका जन्म-महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्ष-तक उनकी शिशु-लीलामैँ लुभाया पड़ा रहता हूँ। (२) मेरे इष्टदेव वही बालक रूपवाले राम हैँ। सौ करोड़ कामदेवोँके समान उनका सुन्दर शरीर होता है। देखो गरुड ! मैँ वहाँ बस अपने प्रभुका मुख देख-देखकर ही अपने नेत्र सफल करता रहता हूँ (३) छोटा-सा कौआ बनकर मैँ भगवान हरि (राम)-के साथ-साथ घूमता-फिरता हुआ उनकी अनेक बाल-लीलाएँ देखा करता हूँ। (४) बचपनमैँ वे जहाँ-जहाँ घूमते - फिरते हैँ, वहाँ-वहाँ मैँ भी उनके आस-पास फुदकता जा पहुँचता हूँ और आँगनमैँ उनका जो जूठन गिरा पड़ा रहता है वही चुग-चुगकर खाया करता हूँ ।। ७५ क ।। एक बार बहुत बचपनमैँ रामने जो लीला कर दिखाई, प्रभुकी उस लीलाका स्मरण करके मेरा शरीर आज भी पुलकित हुआ पड़ रहा है' ।। ७५ ख ।। काक-भुशुंडि कहने लगे—'देखो पक्षिराज गरुड ! रामका वह चरित्र सुनकर सेवकोँ (भक्तोँ)-को बड़ा रस मिला

१. बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ।

९०७-९ रघुनाथकृपापात्रं यतस्त्वं खगनायक। अगस्त्यसं०। अथ ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम्॥ अध्या.
९१६-१७ भक्तानां रामचन्द्रोऽपि मानं हरति सर्वथा।
९१८-१९ रामानुकूलतां वच्मि जाड्यं स्वं खगनायक। यदा यदा हि लोकेऽस्मिन् भक्तानां हितकाम्यया॥
नरानुकारिणीं लीलां करोति भगवान् हरिः। ममाभीष्टप्रदो रामः कोटिमन्मथसुन्दरः॥
९२२-२४ पश्यन्तस्य मुखं चक्षुः करोमि सफलं खग। निरीक्षे विहरन्तेन तद्बालचरितानि च॥ भरद्वाजरा०

९३० नृप-मंदिर सुंदर सब भाँती। खचित कनक-मनि नाना जाती। (१)
बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिँ नित चारिउ भाई।
बाल-बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि-सुखदाई। (२)
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग-अंग प्रति छबि बहु कामा।
नव राजीव-अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख,ससि-दुति-हरना। (३)
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रव-कारी।
चारु पुरट मनि-रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सोहाई। (४)
दो०—रेखा त्रय सुंदर उदर, नाभी रुचिर गँभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बाल-बिभूषन-चीर॥ ७६॥
अरुन पानि, नख, करज मनोहर। बाहु बिसाल, बिभूषन सुंदर।
९४० कंध बाल-केहरि, दर ग्रीवा। चारु चिबुक, आनन छबि-सींवा। (१)
कलबल बचन, अधर अरुनारे। दुइ-दुइ दसन बिसद-बर बारे।
ललित कपोल, मनोहर नासा। सकल सुखद ससिकर-सम हासा। (२)
नीलकंज लोचन भव-मोचन। भ्राजत भाल, तिलक गोरोचन।

करता है। महाराज दशरथका राजभवन इतना अधिक सुन्दर था कि सोनेके उस राजभवनमें चारों ओर रत्न ही रत्न जड़े पड़े थे। (१) उस राजभवनके जिस आँगनमें प्रतिदिन चारों भाई मिलकर खेलते थे वह ऐसा चमाचम चमकता था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। माताको सुख देते हुए राम उस आँगनमें बाल-विनोद करते हुए इधरसे उधर घूम रहे थे। (२) नीलमके समान उनका शरीर साँवला और बड़ा कोमल था। उनके अंग-अंगमें सैकड़ों कामदेवोंकी छबि दमकी पड़ रही थी। नये कमलके समान लाल-लाल और कोमल उनके चरण थे। उनकी बड़ी (पतली-पतली) मनोहर उंगलियोंके नखोंकी चमकके आगे चन्द्रमाकी चाँदनी भी फीकी पड़ी जाती थी। (३) (उनके तलवेमें) वज्र,अंकुश, ध्वजा और कमलके चार चिह्न बने हुए थे। छम-छम करती चलनेवाली घुँघरूदार सुहावनी पैंजनी पैरोंमें पड़ी बड़ी भली लग रही थी। कमरमें पड़ी हुई मणि जड़ी हुई सुन्दर सोनेकी करधनीकी रुनझुन बड़ी सुहावनी लग रही थी। (४) उनके उदरपर तीन सुन्दर रेखाएँ पड़ी हुई थीं। उनकी नाभि बड़ी सुन्दर और गहरी थी। उनकी चौड़ी छातीपर बच्चोंके योग्य अनेक वस्त्र और आभूषण उनकी शोभा बढ़ाए जा रहे थे॥ ७६॥ उनकी लाल-लाल हथेलियाँ, हाथके नख और उँगलियाँ सबका मन हरे ले रही थीं। उनकी विशाल भुजाओंपर सुन्दर आभूषण सजे हुए थे। सिंहके बच्चेके कंधे-जैसे उनके कंधे थे, शंखके समान उनका कंठ था, उनकी ठोड़ी भी बहुत ही सुन्दर थी और मुख तो इतना सुन्दर था कि उससे सुन्दर कुछ हो ही नहीं सकता। (१) उनके तोतले वचन, लाल ओठ, उजली, सुहावनी और छोटी-छोटी नीचे-ऊपरकी दो-दो दँतुलियाँ, सुन्दर गाल, मनोहर नाक और चन्द्रमाकी किरणोंके समान सबको भली लगनेवाली उनकी मुसकान सबका जी लुभाए डाल रही थी। (२) नीले कमलके समान उनके नेत्र ऐसे सुन्दर थे कि उन्हें देखते ही भव (संसार)-के सारे बन्धन तत्काल छूट गिरते हैं। उनके माथे-

९२९-३१ शृणुष्व रामस्य कथां च दिव्यां संजीवनी भक्तजनस्य नूनम्।
९३३-३४ इन्द्रनीलमणिश्यामं कोमलाकृतिमव्ययम्। कोटिमन्मथलावण्यं सुन्दरं रघुनन्दनम्॥
शशिद्युतिहरेणापि पादपद्मेन शोभितम्।
९३५-३६ शंखं च चक्रं कुलिशं च पद्मं चिह्नानि सर्वाणि पदारविन्दे।
नितम्बबिम्बं रघुनायकस्य सूत्रेण नद्धं मणिचित्रितेन॥ —सत्योपाख्यान
९४१-४२ स्मितवक्त्राल्पदशनमिन्द्रनीलमणिप्रभम्। अनुग्रहास्यहृत्स्थेन्दुसूचितस्मितचन्द्रिकः॥ अध्या०

बिकट भृकुटि, सम स्रवन सुहाए। कुंचित कच, मेचक छबि छाए। (३)
पीत झीनि झिँगुली तन सोही। किलकनि,चितवनि,भावति मोँही।
रूप - रासि नृप - अजिर - बिहारी। नाचहिँ निज प्रतिबिंब निहारी। (४)
मो - सन करहिँ बिबिध बिधि क्रीड़ा। बरनत, मोहिँ होति अति ब्रीड़ा।
किलकत मोहिँ धरन जब धावहिँ। चलौँ भागि, तब पूप देखावहिँ। (५)

दो०—आवत निकट हँसहिँ प्रभु, भाजत, रुदन कराहिँ।
९५० जाउँ समीप गहन पद, फिरि-फिरि चितइ पराहिँ॥७७क॥
प्राकृत सिसु - इव लीला, देखि भयउ मोहिँ मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद - संदोह॥७७ख॥

ऐतना मन आनत खगराया। रघुपति - प्रेरित ब्यापी माया।
सो माया न दुखद मोहिँ - काहीँ। आन जीव - इव संसृति नाहीँ। (१)
नाथ! इहाँ कछु कारन आना। सुनहु, सो सावधान हरि - जाना।
ज्ञान अखंड एक सीताबर। माया - बस्य जीव सचराचर। (२)
जौं सबके रह ज्ञान एकरस। ईस्वर - जीवहिँ भेद कहहु कस।
माया - बस्य जीव अभिमानी। ईस - बस्य माया गुन - खानी। (३)
पर - बस जीव, स्व - बस भगवंता। जीव अनेक, एक श्रीकंता।

पर गोरोचनका तिलक चमक रहा था। उनकी वाँकी भौंहें और उनके कान एक जैसे और सुन्दर थे। उनकी घुँघराली काली लटें बड़ी मनोहर लग रही थीं। (३) उनके शरीरपर पीली और झीनी (बारीक) झिँगुली (कुर्त्ती) बड़ी फब रही थी। उनकी किलकारी और चितवन तो मुझे बहुत ही प्यारी लगती थी। ऐसे रूपवाले राम वहाँ राजा दशरथके आँगन-भरमें घूम-घूमकर नाचते फिर रहे थे (४) और मेरे साथ ऐसे-ऐसे खेल किए जा रहे थे कि उन लीलाओंका वर्णन करनेमें मुझे बड़ी लज्जा आती है कि चिदानन्द भगवान् होते हुए ये कैसी सामान्य बच्चोंकी-सी खेलवाड़ किए जा रहे हैं। जब किलकारी मारते हुए वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भी भाग चलता तब वे मुझे पुआ दिखा-दिखाकर ललचाने लगते थे। (५) जब मैं उनका चरण छूनेके लिये उनके पास पहुँचनेके लिये बढ़ता तो वे भाग चलते और घूम-घूमकर मेरी ओर देखते चले जाते॥ ७७ क॥ उनकी साधारण बच्चोंकी-सी लीला देख-देखकर मेरे मनमें मोह (भ्रम) हो उठा कि यदि ये ही सच्चिदानन्दघन प्रभु हैं तो यह कैसी लीलाएँ किए जा रहे हैं? (यह लीला सचिदानन्दघन परब्रह्मकी नहीं हो सकती)॥ ७७ ख॥ बस पक्षिराज! (मैं आपको क्या बताऊँ कि) मेरे मनमें यह शंका अभी उठ ही पाई थी कि रामकी मायाने मुझे झट आ लपेटा। पर उस मायाने न तो मुझे दुःख ही दिया और न उसने दूसरे जीवोंके समान मुझे संसारके चक्करमें ही फँसाया। (१) नाथ! हरिवाहन गरुड! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण था (जो मैं बताए देता हूँ), आप सावधान होकर सुनते चलिए। एक सीतापति राम ही हैं जो अखण्ड ज्ञान-रूप (पूर्ण ज्ञान ही ज्ञान) हैं। उनके अतिरिक्त जितने भी जड-चेतन जीव हैं सब मायाके फेरमें पड़े चक्कर काटे जा रहे हैं। (२) यदि अन्य सभी जीवोंमें भी एक-रस (अखण्ड) ज्ञान आ समावे तो फिर ईश्वर और जीवमें भेद ही क्या रह जाय? यह अभिमानी जीव जिस मायाके हाथमें पड़ा नाचा करता है वह (सत्त्व, रजस् और तमस्) गुणोंसे भरी माया बस ईश्वर (राम)-के ही हाथमें है। (३) इस प्रकार जीव तो दूसरे (माया)-के अधीन है पर भगवान् स्वतन्त्र हैं। जीव अनेक हैं और लक्ष्मीपति भगवान् केवल एक ही हैं। यद्यपि यह

९४५-४६ क्वचिच्च वदनं रम्यं स्तम्भेपु प्रतिबिम्बितम्। सुभगै रत्नयुक्तेषु चालकैः संवृतं मुखम्॥—अध्यात्म०
९५१-५२ तं दृष्ट्वा बालकं काक इति संदिग्धमानसः। कथमेप परब्रह्म वेदेन परिगीयते॥-सत्योपा०

९६० मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि, जाइ न कोटि उपाया। (४)

दो०—रामचंद्र - के भजन बिनु, जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सो नर, पशु बिनु-पूँछ-बिषान॥ ७८ क॥
राकापति षोडस उअहिं, तारागन - समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइए, बिनु-रबि राति न जाइ॥ ७८ ख॥

ऐसेहि, बिनु-हरि-भजन खगेसा। मिटइ न जीवन-केर कलेसा।
हरि-सेवकहिं न व्याप अबिद्या। प्रभु-प्रेरित व्यापै तेहि बिद्या। (१)
ता-तें नास न होइ दास-कर। भेद-भगति बाढ़ै बिहंगबर।
भ्रम-तें चकित राम मोहिं देखा। बिहँसे, सो सुनु चरित बिसेखा। (२)
तेहि कौतुक-कर मरम न काहू। जाना अनुज, न मातु-पिताहू।
९७० जानु-पानि धाए मोहिं धरना। स्यामल गात, अरुन कर-चरना। (३)
तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम, गहन-कहँ भुजा पसारी।
जिमि-जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ हरि-भुज देखौं निज पासा। (४)

दो०—ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितएउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल-कर बीच सब, राम-भुजहिं मोहिं तात॥ ७९ क॥
सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगे गति मोरि।
गयउँ, तहाँ प्रभु-भुज निरखि, व्याकुल भयउँ बहोरि॥ ७९ ख॥

ईश्वर और जीवका भेद भी मायाने ही गढ़ धरा है इसलिये असत्य है, फिर भी हरिके बिना यह भेद दूर नहीं किया जा सकता चाहे करोड़ों उपाय क्यों न कर लिए जायँ। (४) यदि कोई चाहे कि मैं रामका भजन किए बिना ही मोक्ष पा लूं तो चाहे वह जितना भी बड़ा ज्ञानी क्यों न हो, उसे बिना सींग-पूंछवाला कोरा पशु ही समझो॥ ७८ क॥ सभी तारोंके साथ-साथ सोलहों कलासे पूर्ण चन्द्रमा भी उदय हो उठे और सभी पर्वतोंमें आग लगाकर प्रचंड प्रकाश भी कर दिया जाय तब भी जैसे सूर्य निकले बिना रात्रि नहीं दूर हो पाती॥ ७८ख॥ उसी प्रकार पक्षिराज गरुड! हरिका भजन किए बिना, जीवका क्लेश भी नहीं मिट पाता। देखिए, हरिके सेवक (भक्त)-के मनमें कभी अविद्या आती ही नहीं। प्रभुकी ऐसी प्रेरणा बनी रहती है कि उसे विद्या ही विद्या आती है। (१) इसीलिये भगवान्‌के सेवकका (भक्त) कभी नाश नहीं होता और उसमें भेद-भक्ति (अपने इष्टदेवको सामने देखकर भक्ति करनेकी भावना) बढ़ती ही चली जाती है। तो, जब रामने देखा कि मैं भ्रमके मारे चकित हो बैठा हूँ तो वे हँस पड़े। अब सुनिए क्या खेल (चमत्कार) हो उठा। (२) उस खेलका भेद वहाँ कोई भी न जान पाया, न तो छोटे भाई ही, न माता-पिता ही। अपने श्याम शरीर तथा लाल-लाल हथेली और चरणोंसे घुटनों चलते हुए बालक राम मुझे पकड़ने झपट चले। (३) सर्पोंके शत्रु गरुड! यह देखते ही मैं भी भाग चला। तब क्या हुआ कि रामने मुझे पकड़नेके लिये अपनी भुजा फैला बढ़ाई। मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर-दूर उड़ता जाता, वैसे-वैसे क्या देखता हूँ कि हरिकी भुजा मेरे पास ही पास बढ़ी चली आ रही है। (४) मैं उड़ता-उड़ता ब्रह्मलोक-तक जा पहुँचा पर वहाँ भी पीछे मुड़कर देखता क्या हूँ कि रामकी भुजामें और मुझमें कुल दो ही अंगुलका अन्तर बचा रह जाता है॥ ७९ क॥ सातों आवरण भेदकर मैं वहाँ-तक उड़ा चला गया जहाँतक मैं जा सकता था, पर जब वहाँ भी

९६७-७० सर्वात्मा रामचन्द्रोऽपि तस्य विज्ञाय मानसम्। जहासैवैकरूपेण तं द्वितीयेन दुद्रुवे॥
९७१-७४ यत्र यत्र भुशुंडोऽपि तत्र तत्र रघूद्वहः। सत्यलोकं मनश्चक्रे गंतुं पक्षिविशेषतः॥
तत्र गत्वा शिशुं राममजस्य निजसद्मनि। अजाद्यैश्चैव मुनिभिः पादयोः परिशीलितम्॥
९७५-७६ सप्तभूविवरान्काकः गतो रामभयाद्द्रुतम्। पृष्ठभागे निरीक्षन्स धावमानो रघूत्तमम्॥सत्यो...

मूँदेउ नयन त्रसित जब भएउँ। पुनि चितवन कोसलपुर गएउँ।
मोहिं बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख - माहीं। (१)
उदर - माँझ, सुनु अंडज - राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड - निकाया।
९८० अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक - तें एका। (२)
कोटिन चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन - रबि - रजनीसा।
अगनित लोकपाल - जम - काला। अगनित भूधर - भूमि बिसाला। (३)
सागर - सरि - सर - बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि - बिस्तारा।
सुर - मुनि - सिद्ध - नाग - नर - किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर। (४)
दो०—जो नहिं देखा, नहिं सुना, जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ, बरनि कवनि बिधि जाइ॥ ८० क॥
एक - एक ब्रह्मांड - महँ, रहौं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरेउँ मैं, अंड - कटाह अनेक॥ ८०॥
लोक - लोक - प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु - सिव - मनु - दिसित्राता।
९९० नर, गंधर्ब, भूत, बेताला। किन्नर, निसिचर, पसु, खग, ब्याला। (१)
देव - दनुज - गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती।

मैंने प्रभुकी भुजा बढ़ी चली आती देखी तब तो मैं व्याकुल हो उठा॥ ७९ ख॥ मैंने डरके मारे आँखें मूँद लीं। फिर आखें खोलते ही देखता क्या हूँ कि मैं वहीं अयोध्यामें पहुँचा बैठा हूँ। मुझे देखते ही राम जो मुसकराए तो मैं सड़ाकसे खिचकर उनके हँसते हुए मुँहमें जा पड़ा। (१) पक्षिराज! (मैं आपसे क्या बताऊँ?) वहाँ प्रभुके पेटमें पहुँचकर मैं देखता क्या हूँ कि उसमें न जाने कितने ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं, वहाँके लोक अनोखे-अनोखे ढंगके हैं जो एकसे एक बढ़कर सुन्दर हैं। (२) वहाँ मैंने देखा कि करोड़ों ब्रह्मा और शंकर भरे पड़े हैं, करोड़ों तारे, सूर्य और चन्द्रमा चमचमा रहे हैं, सैकड़ों लोकपाल, यम और काल घूमते फिर रहे हैं, जहाँ-तहाँ, सैकड़ों बड़े-बड़े पहाड़ और भूमियाँ फैली पड़ी हैं, (३) अपार समुद्र, नदी, और सरोवर लहराए जा रहे हैं, न जाने कितने घने जंगल दूर-दूरतक फैले पड़े हैं, न जाने कितने प्रकारकी सृष्टि वहाँ फैली पड़ी है, न जाने कितने देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकारके (अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज) जड और चेतन जीव भरे पड़े हैं। (४) मैंने वहाँ ऐसे-ऐसे अद्भुत दृश्य देखे जो आजतक न मैंने देखे न सुने और न उनकी कभी मनमें किसी प्रकार कल्पना ही की। उनका वर्णन करने भी लगूँ तो बताइए, मैं कहाँतक कर पा सकता हूँ?॥ ८० क॥ यह समझिए कि ऐसे एक-एक ब्रह्माण्डमें मैं सौ-सौ वर्षोंतक चक्कर लगाता रहा और इस प्रकार मैंने न जाने कितने ब्रह्माण्ड छान मारे॥ ८० ख॥ जिस लोकमें मैं पहुँचता हूँ वहीं देखता हूँ कि नये-नये ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प (१) तथा अनेक जातिके देवता और दानव भरे पड़े हैं। वहाँ सभी जीव एकसे एक नए ही नए दिखाई दे रहे थे। वहाँ अनेक पृथ्वी, नदी, समुद्र, सरोवर, पर्वत

९७७ एवं निरीक्ष्य रामं तु न कुतश्चिद्गतिः खगः। भूलोकं पुनराविश्य चात्मानं ददृशे खगः॥ सत्योपा०
९७८ तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत्॥
९७९-८६ तत्राप्यदोऽयस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुरा मुह्यदतीव विस्मितः। खं रोदसीभगणानद्रिसागरान् द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान्॥
वनानि देशान्सरितः पुराकरान् खेटान् व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः।
महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम्॥
यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम्। —भागवत

महि, सरि, सागर, सर, गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना। (२)
अंडकोस - प्रति - प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनिस अनेक अनूपा।
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न, भिन्न नर - नारी। (३)
दसरथ - कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता।
प्रति ब्रह्मांड, राम - अवतारा। देखेउँ बाल - बिनोद अपारा। (४)
दो०—भिन्न - भिन्न मैं दीख सब, अति बिचित्र हरि - जान।
अगनित भुवन फिरेउँ, प्रभु, राम न देखेउँ आन ॥८१ क॥
सोइ सिसुपन, सोइ सोभा, सोइ कृपालु रघुबीर।
१००० भुवन - भुवन देखत फिरौं, प्रेरित मोह - समीर ॥८१ ख॥
भ्रमत मोहिं ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कलप सत एका।
फिरत - फिरत निज आस्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गँवायउँ। (१)
निज प्रभु जनम अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ।
देखौं[1] जनम - महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई। (२)
राम - उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ, न जाइ बखाना।
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया - पति कृपाल भगवाना। (३)
करौं बिचार बहोरि - बहोरी। मोह - कलिल ब्यापित मति मोरी।
उभय घरी - महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित, मन मोह - बिसेखा। (४)

आदि सारी सृष्टि नये ही नये ढंगकी विद्यमान थी। (२) प्रत्येक ब्रह्माण्डमें मुझे अपना भी रूप दिखाई दिया और अनेक नई-नई अनोखी-अनोखी वस्तुएँ भी दिखाई दीं। प्रत्येक लोकमें निराली ही अयोध्या, निराली ही सरयू और निराले ही ढंगके नर-नारी विद्यमान थे, (३) यहाँतक कि दशरथ, कौशल्या और भरत आदि भाइयोंका भी कुछ निराला ही रूप-रंग था। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्डमें मैं रामके अवतार और उनकी (एकसे एक विचित्र और) अपार बाल-लीलाएँ देखता फिरता रहा। (४) देखो गरुड ! मैंने अनेक ब्रह्माण्डोंमें घूम-घूमकर देखा कि और सब तो एकसे एक निराले और अत्यन्त विचित्र थे पर राम ज्योंके त्यों दिखाई दिए, उनमें कोई अन्तर नहीं मिला ॥ ८१ क ॥ जहाँ देखता हूँ वहाँ वही बचपन, वही शोभा और वही कृपालु राम। इस प्रकार मोह (भ्रम)-के पवनके झोंकेमें उड़ता हुआ मैं एक-एक भुवन देख फिरा ॥ ८१ ख ॥ उन अनेक ब्रह्माण्डोंमें भ्रमण करते-करते मुझे ऐसा लगा मानो सैकड़ों कल्प निकल गए। इसी प्रकार घूमता-फिरता मैं अपने आश्रममें भी लौट आया और कुछ दिन वहाँ भी आ बिताए। (१) फिर जब मैंने सुना कि प्रभु रामने अयोध्यामें अवतार आ लिया है, तब प्रेमसे भरा हुआ मैं हर्षपूर्वक फिर दौड़ पड़ा। (अयोध्यामें जाकर) मैंने वह जन्म-महोत्सव देखा जिसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। (२) रामके उदरमें मैंने अनेक ऐसे संसार देखे, जो देखते ही बनते थे, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ मैंने फिर मायाके चतुर स्वामी कृपालु भगवान् रामको जा देखा। (३) मैं बार-बार विचार करता रहा पर मेरी बुद्धि तो भ्रमके कीचड़में सनी पड़ी थी। मैंने दो घड़ी जो यह सब लीला देखी तो मेरे मनमें और भी भ्रम बढ़ चला और मैं थककर (घबराकर) बैठ रहा। (४) जब उन्होंने देखा कि मैं बहुत व्याकुल हो उठा हूँ

१. देखेउँ।

९८९-९२ वसन्ति यस्यां देवाश्च किन्नराः सिद्धचारणाः। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मतत्पराः ॥
सर्वे विलोकिता देशा नरनारीप्रपूरिताः ॥ —सत्योपाख्यान
१००१-२ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ॥ —भागवत

दो०—देखि कृपाल बिकल मोहिं, बिहँसे तब रघुबीर।
१०१० बिहँसत ही मुख बाहेर, आयउँ सुनु मति - धीर ॥ ८२ क ॥
सोइ लरिकाई मो - सन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावौं, मन न लहइ बिस्राम ॥ ८२ ख ॥
देखि चरित यह, सो प्रभुताई। समुझत देह - दसा बिसराई।
धरनि परेउँ, मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत - जन - त्राता। (१)
प्रेमाकुल प्रभु मोहिं बिलोकी। निज माया - प्रभुता तब रोकी।
कर - सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ। (२)
कीन्ह राम मोहि बिगत - बिमोहा। सेवक - सुखद, कृपा - संदोहा।
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन - महँ होइ हरष अति भारी। (३)
भगत - बछलता प्रभु - कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेखी।
१०२० सजल नयन, पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु बिधि बिनय बहोरी। (४)
दो०—सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद, गंभीर मृदु, बोले रमा - निवास ॥ ८३ क ॥
कागभुसुंडि ! माँगु बर, अति प्रसन्न मोहिं जानि।
अनिमादिक सिधि, अपर रिधि, मोच्छ, सकल सुख-खानि ॥ ८३ ख ॥
ज्ञान - बिबेक - बिरति - बिज्ञाना। मुनि[1] - दुर्लभ गुन जे जग जाना।

ता राम हँस पड़े। उनका हँसना था कि मैं टप्पसे मुँहसे बाहर आ गिरा ॥ ८२ क ॥ बाहर आते ही देखता क्या हूँ कि राम मेरे साथ फिर वैसा ही बच्चोंका-सा खेलवाड़ किए जा रहे हैं। मैंने अपने मनको बहुत प्रकारसे समझानेकी चेष्टा की, पर मनको कहीं शान्ति नहीं मिल पाई ॥ ८२ ख ॥ प्रभुकी यह बाल-लीला देखकर और (पेटके भीतर देखी हुई) उनकी प्रभुताका स्मरण कर-करके मैं अपनी देहकी सारी सुध-बुध भूल चला और—'हे दुखियोंके रक्षक ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए'—कहता हुआ मैं धरतीपर जा लोटा। मेरे मुँहसे बोल नहीं निकल पा रहा था। (१) प्रभुने जब देखा कि मैं बहुत प्रेम-विह्वल हो उठा हूँ तो उन्होंने अपनी सारी माया समेट धरी और मेरे सिरपर अपना कमल-जैसा कोमल हाथ ला फेरा। इस प्रकार दीनोंपर दया करनेवाले प्रभु रामने हाथ फेरकर मेरा सारा दुःख दूर कर डाला। (२) सेवकों (भक्तों)-को सुख देनेवाले कृपालु रामने मेरा सारा मोह (अज्ञान) दूर कर डाला। प्रभु रामकी (पहलेवाली) प्रभुता (उदरमें जो दृश्य देखे थे उन)-का स्मरण कर-करके मेरे मनमें अपार हर्ष हुआ जा रहा था। (३) प्रभुकी भक्त-वत्सलता देखकर मेरे मनमें और भी अधिक प्रेम उमड़ चला। फिर नेत्रोंमें आँसू भरे, पुलकित होकर, हाथ-जोड़कर मैंने प्रभुकी बहुत विनति की। (४) मेरी प्रेम-भरी वाणी सुनकर अपने सेवक (भक्त)-को दीन जानकर, लक्ष्मीके पति, सबको सुखदेनेवाले राम बड़े गंभीर और कोमल स्वरमें बोले—॥ ८३ क ॥ 'देखो काक-भुशुण्डि ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो। अणिमा आदि सिद्धियाँ, अन्य ऋद्धियाँ, सब सुखों ही सुखोंसे भरा हुआ मोक्षपद, ॥ ८३ ख ॥ ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान और वे अनेक गुण जो जगत्में मुनियोंको भी प्राप्त नहीं हो पाते वे मैं निश्चयपूर्वक सब आज तुम्हें दे

१. सुर।

१००७-१० विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तोन्यपतल्लयाब्धौ। —भागवत
१०१३-१४ दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा मोहितोऽहं बभूव ह। विसस्मार तदा देहं गेहं च पतितो भुवि ॥—पद्मपु.
त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक। —अध्यात्मरामायण
१०१५-१६ मस्तके तु करं तस्य रामो दध्रे दयान्वितः। जहार दुस्सहं दुःखं दीनानां परिपालकः ॥ सत्योपा०

आज देउँ सब[1], संसय नाहीं। माँगु, जो तोहिं भाव मन - माहीं। (१)
सुनि प्रभु - बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ।
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही। (२)
भगति - हीन गुन सब सुख ऐसे[2]। लवन - बिना बहु ब्यंजन जैसे।
१०३० भजन - हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ, खगराजा। (३)
जौं प्रभु ! होइ प्रसन्न बर देहू। मो - पर करहु कृपा अरु नेहू।
मन - भावत बर माँगउँ स्वामी। तुम उदार उर अंतरजामी। (४)

दो०—अबिरल भगति बिसुद्ध तव , स्रुति - पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि , प्रभु - प्रसाद कोउ पाव ॥८४क॥
भगत-कलपतरु ! प्रनत-हित , कृपासिंधु ! सुख - धाम।
सोइ निज भगति मोहिं प्रभु , देहु दया करि, राम ॥८४ख॥

एवमस्तु कहि, रघुकुल - नायक। बोले बचन परम सुख - दायक।
सुनु बायस ! तैं सहज सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना। (१)
सब सुख - खानि भगति तैं माँगी। नहिं जग कोउ तोहि-सम बड़-भागी।
१०४० जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप - जोग - अनल तन दहहीं। (२)
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहिं अति भाई।

डालूँगा। इसलिये तुम जो चाहो मुझसे माँग लो।' (१) प्रभुके ये वचन सुनकर मेरे मनमें भी प्रेम उमड़ आया और मैं मनमें सोचने लगा कि प्रभु रामने मुझे और सब सुख तो देनेको कहे पर अपनी भक्ति देनेको नहीं कही। (२) भक्तिके बिना तो ये सब गुण और सुख वैसे ही हैं, जैसे बिना नमकके बहुत प्रकारके व्यंजन (भोजन-पदार्थ)। भक्तिके बिना ये सब सुख किस कामके ? यह विचारकर, गरुड ! मैंने उनसे निवेदन किया—(३) 'प्रभो ! यदि आप सचमुच प्रसन्न होकर मुझे वर देना ही चाहते हैं और मुझपर कृपा तथा स्नेह करते ही हैं, तो स्वामी ! मैं अपना मनचाहा वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और मेरे हृदयकी बात भी जानते हैं। (४) आपकी जिस प्रगाढ एवं विशुद्ध भक्तिका वर्णन वेद और पुराणोंमें किया गया है, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते फिरते रह जाते हैं और जिसे प्रभुकी कृपासे ही कोई बिरला प्राप्त कर पाता है ॥ ८४ क ॥ वही अपनी भक्ति, हे भक्तोंके कल्पतरु ! शरणागतके हितकारी ! कृपालु ! सुखोंके भांडार राम ! दया करके मुझे दे डालिए' ॥ ८४ ख ॥ यह सुनकर राम भी 'एवमस्तु' (यही देता हूँ) कहकर, परम सुख देनेवाले वचन कहने लगे—'देखो काक ! सुनो ! तुम तो स्वभावसे ही बड़े बुद्धिमान् हो। इसलिये भला तुम ऐसा वरदान क्यों न माँगते ? (१) तुम तो सब सुख ही सुखसे भरी (मेरी) भक्ति माँग बैठे हो। सचमुच तुम्हारे समान संसारमें कोई बड़भागी नहीं है। मुझे यह बात बड़ी अच्छी लगी और मैं तुम्हारी चतुराईसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ कि तुमने वही भक्ति मुझसे माँग ली है जिसे जप और योगकी अग्निमें अपना शरीर तपा डालनेवाले मुनि लोग भी अनेकों यत्न करनेपर नहीं प्राप्त कर पाते। (२) देखो काकभुशुंडि ! अब मेरी कृपासे तुम्हारे हृदयमें जितने शुभ गुण हैं सब आ बसेंगे। मेरी कृपासे

१. तव। २. कैसे।

१०२१-२६ काकेन प्रार्थितो रामस्तमूचे मंदया गिरा।भक्तस्य मोहनो भक्त्या तथा दीनं विलोक्य च ॥सत्योपा०
वरान् वृणीष्व [राजर्षे] सर्वान्कामान् ददामि ते। मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम्॥भागवत
१०२९-३० शाकं तु यद्वल्लवणेन हीनं न शोभते सर्वगुणोपपन्नम् ॥ –आनन्दरामायण
१०३३-३६ भो श्रीराम महाभाग भक्तिं मे देहि निश्चलाम्। अनेन वान्यरूपेण सदा मे हृदये वस ॥ सत्योपा०
वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात्। भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ भागवत

सुनहु प्रसाद बिहँग ! अब मोरे[1]। सब सुभ गुन बसिहइँ उर तोरे। (३)
भगति - ज्ञान - बिज्ञान - बिरागा। जोग, चरित्र, रहस्य, बिभागा।
जानब तैं सबही - कर भेदा। मम प्रसाद, नहिं साधन - खेदा। (४)

दो०—माया - संभव भ्रम सब[2], अब न ब्यापिहइँ तोहिं।
जानेसु ब्रह्म, अनादि, अज, अगुन, गुनाकर मोहिं॥ ८५ क॥
मोहिं भगत प्रिय संतत, अस बिचारि सुनु काग।
काय - बचन - मन मम पद, करेसु अचल अनुराग॥ ८५ ख॥

अब सुनु, परम बिमल मम बानी। सत्य, सुगम, निगमादि बखानी।
१०५० निज सिद्धांत सुनावौं तोहीं। सुनि मन धरु, सब तजि भजु मोहीं। (१)
मम माया - संभव संसारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा।
सब मम प्रिय, सब मम उपजाए। सब-तें अधिक मनुज मोहिं भाए। (२)
तिन्ह - महँ द्विज, द्विज - महँ स्रुतिधारी। तिन्ह-महँ निगम-धर्म-अनुसारी।
तिन्ह - महँ प्रिय बिरक्त, पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहु - तें अति प्रिय बिज्ञानी। (३)
तिन्ह - तें पुनि मोहिं प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि, न दूसरि आसा।
पुनि - पुनि सत्य कहौं तोहिं - पाहीं। मोहिं सेवक - सम प्रिय कोउ नाहीं। (४)

अब तुम ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ, (३) उनके रहस्य और विभाग, सबका भेद जान लोगे। इनके लिये तुम्हें कोई साधन करनेका कष्ट भी नहीं करना पड़ेगा। (४) मायासे उत्पन्न होनेवाला कोई भ्रम अब तुम्हें नहीं सता पावेगा। तुम सदा यह समझते रहना कि मैं अनादि, अजन्मा, गुणोंसे अलग और गुणोंसे भरा हुआ ब्रह्म ही हूँ ॥ ८५क ॥ देखो काकभुशुंडि ! मुझे भक्त सदा बड़े प्रिय लगते हैं, ऐसा समझकर तुम तन, मन और वचनसे मेरे चरणोंमें अचल प्रेम करते रहना ॥ ८५ख ॥ अब तुम मेरी वह बात सुनो जो सत्य, सुगम तथा अत्यन्त निर्मल है और वेद आदिने भी जिसका वर्णन किया है। मैं तुम्हें अपना सारा सिद्धान्त समझाए दे रहा हूँ। तुम मेरी यह बात ध्यानसे सुनकर सब कुछ घरबार आदि छोड़-छाड़कर बैठे मेरा भजन किया करो। (१) देखो ! यह सारा संसार मेरी ही मायाने गढ़ बनाया है। इसमें जितने भी अगणित चर और अचर जीव हैं, वे सब मुझे प्रिय हैं, क्योंकि उन सबकी सृष्टि भी मैंने ही की है। इन (चर और अचर जीवों)-में भी मनुष्य मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं। (२) उन (मनुष्यों)-में भी ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें भी वेदके जाननेवाले, उनमें भी वेदोंमें बताए हुए धर्मके अनुसार आचरण करनेवाले, उनमें भी विरागी और ज्ञानी और ज्ञानियोंमें भी सबसे भी अधिक मुझे विज्ञानी (परम तत्त्व या ब्रह्मको जाननेवाले) बहुत प्रिय लगते हैं। (३) उनसे भी अधिक मुझे अपने दास (भक्त) प्रिय लगते हैं जो मुझे छोड़कर और किसीपर आश्रित नहीं रहते। मैं तुमसे यह सच्ची बात बताए देता हूँ कि मुझे अपने सेवकके समान दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है। (४) बिना भक्तिवाला ब्रह्मा भी हो तो वह मुझे

१. सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। २. सकल।

१०३७-४४ यथा वदसि भो काक तत्तथैव भविष्यति ॥ —सत्योपाख्यान
कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे। आकल्पान्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥
ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मविज्ञानं च विरक्तिमत्। ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात् पुराणाचार्यतास्तु ते ॥—भाग०
१०४५-४६ मायया तव बन्धो न भविष्यति कदाचन। आश्रमे तव माया न प्रभावं स्वं करिष्यति ॥सत्योपा०
१०५१-५२ एकद्वित्रिचतुष्पादः बहुपादस्तथाऽपदः। बह्व्यः संति पुरःसृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥भागवत
१०५३-५६ पुरुषेभ्यो द्विजानाहुर्द्विजेभ्यो मन्त्रदर्शिनः। —महाभारत
ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ विभर्ति माम्। तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ भागवत

भगति - बिहीन बिरंच कि होई[१] । सब जीवहु[२]-सम प्रिय मोहिं सोई ।
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहिं प्रान - प्रिय असि मम बानी । (५)
दो०—सुचि, सुसील, सेवक, सुमति , प्रिय कहु काहि न लाग ।
१०६० स्रुति-पुरान कह नीति असि , सावधान सुनु काग ॥ ८६ ॥
एक पिता - के बिपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन - सील - अचारा ।
कोउ पंडित, कोउ तापस, ज्ञाता । कोउ धनवंत, सूर, कोउ दाता ! (१)
कोउ सर्बज्ञ, धर्मरत कोई । सब - पर पितहिं प्रीति सम होई ।
कोउ पितु - भगत बचन - मन - कर्मा । सपनेहु जान न दूसर धर्मा । (२)
सो सुत प्रिय पितु प्रान - समाना । जद्यपि सो सब भाँति अयाना ।
ऐहि बिधि जीव चराचर जेते । त्रिजग - देव - नर - असुर - समेते । (३)
अखिल बिस्व यह मोर उपाया[३] । सब - पर मोहिं बराबरि दाया ।
तिन्ह - महँ जो परिहरि मद - माया । भजहिं मोहिं मन - बच अरु काया । (४)
दो०—पुरुष - नपुंसक - नारि वा[४] , जीव चराचर कोइ ।
१०७० सर्व भाव भज, कपट तजि , मोहिं परम प्रिय सोइ ॥ ८७ क ॥
सो०—सत्य कहौं खग तोहिं, सुचि सेवक मम प्रान - प्रिय ।
अस बिचारि भजु मोहिं, परिहरि आस-भरोस सब ॥ ८७ ख ॥

वैसा ही सामान्यत: प्रिय है जैसे अन्य जीव । परन्तु यदि कोई नीच प्राणी भी मेरी भक्ति करता हो तो वह मुझे प्राणोंके समान प्यारा है, यही मेरी प्रतिज्ञा है । (५) तुम्हीं बताओ कि पवित्र, सुशील और शुद्ध बुद्धिवाला सेवक किसे प्यारा नहीं लगता ? वेद, पुराण और नीति सबने जो कुछ कहा है वह मैं तुम्हें बताए डालता हूँ, सावधान होकर सुनते चलो ।। ८६ ।। एक पिताके बहुतसे पुत्र होते हैं पर उनके गुण, स्वभाव और आचरण सब अलग-अलग होते हैं । उनमें कोई पण्डित, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूर वीर, कोई दानी, (१) कोई सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) और कोई धर्मके कामोंमें लगा होता है पर पिता तो सभी पुत्रोंको समान रूपसे प्यार करता है । इनमेंसे भी जो पुत्र वचन, मन और कर्मसे पिताका अनन्य भक्त (सेवक) हो और पिताकी सेवा छोड़कर स्वप्नमें भी अपना कोई दूसरा धर्म न जानता हो (२) वही पुत्र उस पिताको प्राणोंके समान प्रिय होता है, चाहे वह परम मूर्ख ही क्यों न हो । इसी प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देवता, मनुष्य और असुर आदि जितने भी जड और चेतन जीव हैं, (३) (इनसे भरा हुआ) यह सारा जगत् मैंने ही उत्पन्न किया है और सबपर मेरी समान कृपा भी है, परन्तु इनमें भी जो प्राणी मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीरसे मेरा ही सहारा पकड़ बैठता है, (४) वह चाहे पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो या और भी कोई चर और अचर जीव हो, पर यदि सब कपट छोड़कर (निश्छल होकर) वह सच्चे मनसे मेरा ही भजन करता है, तो मैं उसीसे सबसे अधिक प्रेम करता हूँ ।। ८७ क ।। देखो काकभुशुंडि ! मैं तुमसे सोकी सीधी एक बात (सत्य) कहे देता हूँ कि, निश्छल सेवकको मैं प्राणोंके समान प्रिय मानता हूँ । यह विचारकर सबकी आशा और सबका भरोसा छोड़कर तुम जाकर मेरा ही भजन करते रहो (मेरी ही भक्ति करते रहो) ।। ८७ ख ।। तुम निरन्तर मेरा

१. भगति हीन बिरंच किन होई । २. जीवन ३. मम उपजाया । ४. नर ।

१०५७-५८ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकर: ।। —भागवत
१०६१-६४ जायन्ते पितरेकस्य पुत्रा: प्राणप्रिया यथा । भवन्त्यनेकधर्माण: सौशील्यादिगुणैश्च ते ।।भरद्वा.रा.
१०६७-६८ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय: । ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।गीता

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु, भजेसु निरंतर मोही।
प्रभु - बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तन पुलकित, मन अति हरषाऊँ। (१)
सो सुख जानै मन अरु काना। नहिं रसना - पहँ जाइ बखाना।
प्रभु - सोभा - सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं, तिनहिं नहिं बयना। (२)
बहु बिधि मोहिं प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु - कौतुक तेई।
सजल नयन, कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु, लागी अति भूखा।
देखि मातु, आतुर उठि धाई। कहि मृदु बचन, लिए उर लाई।
१०८० राखि कराव गोद पय - पाना[१]। रघुपति-चरित ललित कर गाना। (४)

सो०—जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ बेष - कृत, सिव, सुखद।
अवधपुरी - नर - नारि, तेहि सुख - महँ संतत मगन ॥ ८८ क ॥
सोई सुख - लव - लेस, जिन्ह बारक सपनेहु लहेउ।
ते नहिं गनहिं, खगेस, ब्रह्म-सुखहिं सज्जन, सुमति ॥ ८८ ख ॥

मै पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बाल - बिनोद रसाला।
राम-प्रसाद भगति - बर पाएउँ। प्रभु - पद बंदि निजास्रम आएउँ। (१)
तब-तें मोहिं न ब्यापी माया। जब - तें रघुनायक अपनाया।

भजन और स्मरण करते रहोगे तो तुम्हें काल भी कभी नहीं छू पावेगा।' (काक-भुशुंडिने गरुडसे कहा—) 'प्रभुके ये वचन ऐसे अमृतके समान रसीले थे कि उन्हें सुन-सुनकर भी मेरा मन भर नहीं पा रहा था। मेरा शरीर पुलकित हुआ जा रहा था और मैं मनमें फूला नहीं समा रहा था। (१) उससे मुझे जो सुख मिला उसे या तो मेरा मन जानता है या मेरे कान। वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती (क्योंकि उसने उन्हें देखा नहीं)। उस समय प्रभुकी जो शोभा थी उसका सुख तो केवल मेरे नेत्र ही ले पाए हैं पर वे उसका वर्णन नहीं कर पा सकते क्योंकि उनमें बोलनेकी शक्ति नहीं है। (२) इस प्रकार मुझे अनेक उपदेश देकर और सुख देकर भगवान् (राम) फिर वही अपनी शिशु-लीलामें जा उलझे। फिर आँखोंमें आँसू भरकर और कुछ मुँह लटकाकर (उदास होकर) माताकी ओर ऐसी मुद्रामें घूम गए मानो बड़ी भूख लग आई हो। (३) माताने यह देखा तो उठी दौड़ी चली आई और बहुत दुलराते हुए उन्हें छातीसे उठा लगाया। वे गोदमें लिटाकर उन्हें पिलाने लगीं और लोरियोंमें उनकी मनोहर लीलाएँ गाने लगीं। (४) जो सुख लूटनेके लिये सबको सुख देनेवाले कल्याणकी मूर्ति त्रिपुरारि शिवने अशुभ (वृद्ध ज्योतिषीका) वेष[२]-तक बना डाला वह सुख अवधपुरीके नर-नारियोंको घर-बैठे मिलता चला जा रहा था ॥ ८८ क ॥ देखो गरुड ! उस सुखका तनिक-सा भी अंश किसीको कभी स्वप्नमें भी एक बार मिल जाय तो वह बुद्धिमान् सज्जन उस सुखके सामने ब्रह्मानन्दको भी कुछ नहीं समझता ॥ ८८ख ॥ हाँ, तो मैं कुछ समय-तक और भी अवधपुरीमें रहकर रामकी रसीली बाल-लीलाओंका रस लेता रहा। रामकी कृपासे मुझे भक्तिका वरदान तो मिल ही गया था। इसलिये प्रभुके श्रीचरणोंकी वन्दना करके मैं फिर अपने आश्रम उड़ आया। (१) जबसे रामने मुझे अपनाया तबसे आजतक मुझे किसी प्रकारकी माया नहीं सता पाई।

१. गोद राखि कराव पय-पाना। २. देखो गीतावली : अवधु आजु आगम एकु आयो। बूढ़ो बड़ो प्रमाणिक बाँभन संकर नाम सुहायो। (१७)

१०७५-७६ या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः॥महाभा.
१०७९-८० प्रेम्णाक्षियुग्मं च पुनर्वदनं हि विलोक्य च। कण्ठे स्वकीये सा माता बालकं मिलतिस्म ह॥
रामः स्वाङ्के निधायाथ लालयामास प्रेमतः॥ —सत्योपाख्यान

यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि-माया जिमि मोहिं नचावा। (२)
निज अनुभव अब कहौं खगेसा। बिनु हरि-भजन न जाहिं कलेसा।
१०९० राम-कृपा - बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम-प्रभुताई। (३)
जाने बिनु, न होइ परतीती। बिनु-परतीति, होइ नहिं प्रीती।
प्रीति - बिना, नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगपति जल-कै चिकनाई। (४)
सो०—बिनु-गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग-बिनु।
गावहिं बेद-पुरान, सुख कि लहिय हरि - भगति - बिनु ॥ ८९ क ॥
कोउ बिस्राम कि पाव, तात! सहज संतोष-बिनु।
चलै कि जल-बिनु नाव, कोटि जतन पचि-पचि मरिय ॥ ८९ ख ॥
बिनु-संतोष न काम नसाहीं। काम अछत, सुख सपनेहु नाहीं।
राम-भजन-बिनु मिटहिं कि कामा। थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जामा। (१)
बिनु-बिज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ-बिनु पावै।
११०० श्रद्धा - बिना धर्म नहिं होई। बिनु-महि, गंध कि पावै कोई। (२)
बिनु-तप, तेज कि कर बिस्तारा। जल-बिनु, रस कि होइ संसारा।
सील कि मिल, बिनु-बुध-सेवकाई। जिमि बिनु-तेज, न रूप गोसाँई। (३)
निज सुख-बिनु, मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन-समीरा।

श्रीहरिकी मायाने मुझे जैसा नाच नचाया वह रहस्य-भरी कथा मैंने आपको कह सुनाई। (२) देखो गरुड ! अब मैं आपको अपना अनुभव बताए देता हूँ कि हरिका भजन किए बिना कोई भी क्लेश कभी मिट ही नहीं पा सकता। रामकी कृपाके बिना उनकी (रामकी) प्रभुता (महत्ता)-का ज्ञान कभी हो ही नहीं पा सकता। (३) उसे जाने बिना विश्वास नहीं हो पाता (कि वे इतने महान् हैं)। बिना विश्वासके प्रेम नहीं हो पाता। बिना प्रेमके भक्ति भी उसी प्रकार दृढ नहीं हो पाती जैसे जलके ऊपर पड़ी हुई चिकनाई (तेल) स्थिर नहीं होती (सूखी वस्तुपर लगी हुई तेलकी चिकनाई ही पक्की और स्थायी होती है।) (४) सब वेद और पुराण यही कहते हैं कि गुरुके बिना कहीं ज्ञान हो पाता है ? ज्ञानके बिना भी क्या कहीं वैराग्य हो पाता है ? (ज्ञान प्राप्त करनेके लिये गुरु और वैराग्य दोनोंकी आवश्यकता है)। क्या बिना भगवान्की भक्तिके कभी सुख प्राप्त हो पा सकता है ? ॥ ८९ क ॥ क्या बिना सन्तोषके किसीको शान्ति मिल पा सकती है ? क्योंकि चाहे जितने उपाय करके कोई क्यों न हार जाय पर जैसे जलके बिना नाव नहीं चल पा सकती ॥ ८९ख ॥ वैसे ही बिना सन्तोषके कामनाएँ नहीं मिट पा सकतीं और जब-तक कामनाएँ नहीं मिट पातीं तबतक स्वप्नमें भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता। रामके भजनके बिना क्या कहीं कामनाएँ मिट पा सकती हैं ? बिना धरतीके क्या कहीं पेड़ उग पा सकता है ? (१) विज्ञान (तत्त्वज्ञान)-के बिना क्या कहीं सम-भाव (सबको समान समझनेकी भावना) आ सकती है ? बिना आकाशके क्या किसीको खुला स्थान मिल पा सकता है ? श्रद्धाके बिना क्या कोई धर्मका आचरण किया जा सकता है ? क्या पृथ्वी-तत्त्वके बिना किसीको गंध मिल पा सकती है ? (२) क्या बिना तपस्याके कहीं तेज मिल पा सकता है ? क्या जल-तत्त्वके बिना संसारमें कहीं रस हो पा सकता है ? क्या पण्डितोंकी सेवाके बिना कहीं सदाचारका ज्ञान हो पा सकता है ? और गोसाईं ! क्या तेज (अग्नि-तत्त्व)-के बिना कहीं रूप मिल पा सकता है ? (३) आत्मानन्दके बिना क्या मन स्थिर हो पा सकता है ? वायु-तत्त्वके बिना क्या स्पर्शका ज्ञान हो पा सकता है ? क्या विश्वासके

१०९३-९४ गुरोर्ऋते न ज्ञानन्न पृथक् ज्ञानाद्विरक्तता। नहि स्यात्परमानन्दं रामभक्तिं विना क्वचित्॥ सनकसं०

कवनिउ सिद्धि कि, बिनु - बिस्वासा। बिनु-हरि-भजन न भव-भय-नासा। (४)
दो०—बिनु - बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम-कृपा - बिनु सपनेहु, जीव न लह बिश्राम॥९० क॥
सो०—अस बिचारि मति - धीर, तजि कुतर्क, संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर[1], करुनाकर, सुंदर, सुखद॥९० ख॥
निज मति - सरिस! नाथ मैं गाई। प्रभु - प्रताप - महिमा खगराई।
१११० कहेउँ न कछु, करि जुगुति बिसेखी। यह सब मैं निज नैनन्हि देखी। (१)
महिमा - नाम - रूप - गुन - गाथा। सकल, अनंत, अमित रघुनाथा[2]।
निज-निज मति मुनि हरि-गुन गावहिं। निगम-सेष-सिव पार न पावहिं। (२)
तुम्हहि आदि, खग - मसक - प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता।
तिमि रघुपति - महिमा अवगाहा। तात! कबहुँ कोउ पाव कि थाहा।
राम काम - सत-कोटि - सुभग - तन। दुर्गा कोटि - अमित अरि - मर्दन।
सक्र कोटि - सत - सरिस बिसाला। नभ सत-कोटि अमित अवकासा। (४)
दो०—मरुत कोटि-सत-सरिस[3] बल, रबि सत-कोटि प्रकास।
ससि सत-कोटि सुसीतल, समन सकल भव-त्रास॥९१ क॥
काल कोटि-सत-सरिस अति, दुस्तर, दुर्ग, दुरंत।
११२० धूमकेतु सत - कोटि - सम, दुराधर्ष भगवंत॥९१॥

बिना कोई भी सिद्धि मिल पा सकती है? (बताइए,) हरिका भजन किए बिना क्या कहीं भव (जन्म-मरण)-का नाश हो पा सकता है? (४) देखो! बिना विश्वासके भक्ति नहीं हो पा सकती, भक्तिके बिना रामकी कृपा नहीं मिल पा सकती (राम कृपा नहीं करते) और रामकी कृपाके बिना जीवको शान्ति नहीं मिल पा सकती॥ ९० क॥ देखो स्थिर बुद्धिवाले गरुड! ऐसा विचारकर मनके सब संशय और उलझनें दूर करके जाकर दयालु, सुन्दर और सदा सुख देनेवाले रामका भजन करते रहो॥ ९० ख॥ देखो गरुड! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार प्रभु रामके प्रतापकी सारी महिमा विस्तारसे आपको कह सुनाई। मैंने उसमें (अपनी ओरसे) कुछ भी जोड़-तोड़कर नहीं कहा। मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे जो लीला देखी है वही आपको कह सुनाई है। (१) रामकी महिमा, नाम, रूप, गुण और उनकी कथाएँ, सब अपार और अनन्त हैं और राम स्वयं अनन्त है। (इसलिये सब) मुनि लोग श्रीहरिके उन गुणोंका वर्णन अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार करते रहते हैं क्योंकि वेद, शेष और शिव भी उनका पूरा वर्णन नहीं कर पा सकते। (२) पक्षियोंमें आप (गरुड)-से लेकर पक्षी-मच्छड़तक सभी आकाशमें उड़ते फिरते रहते हैं, पर उसका (आकाशका) अन्त कोई भी आजतक नहीं जान पाया। इसी प्रकार श्रीरामकी महिमा भी इतनी अथाह है कि क्या कभी कोई उसकी थाह ले पा सकता है? (३) रामका शरीर अरबों कामदेवोंके समान सुन्दर है। वे अनन्त कोटि दुर्गाओंके समान शत्रुका नाश कर डाल सकते हैं। उनका ऐश्वर्य अरबों इन्द्रोंके समान है और उनमें अरबों आकाश समा सकते हैं। (४) अरबों पवनोंके समान उनमें महान बल है, अरबों सूर्योंके समान उनमें प्रकाश है, अरबों चन्द्रमाओंके समान वे शीतल हैं और वे संसारके सारे क्लेश दूर कर डाल सकते हैं॥ ९१ क॥ वे अरबों कालोंके समान अत्यन्त कठोर, दुर्गम और भयंकर हैं। वे अरबों धूमकेतुओं (पुच्छल तारों)-के समान

१. रनधीर। २. सकल अमित अनंत रघुनाथा। ३. बिपुल।

१११५-१६ कोटिकंदर्पलावण्यश्चण्डिकानन्तविक्रमः। कोटीन्द्रवद्विलासी च कोटिब्रह्माण्डनायकः॥ भरद्वा० रा०
१११७-२० कोटिसूर्यप्रतीकाशं विष्वक्तेजो निराकुलम्। चन्द्रावयवलक्ष्म्याढ्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥
ज्वालावलिसहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्। दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं जटामंडलमण्डितम्॥ अद्भुतो. खं०

प्रभु अगाध सत - कोटि पताला । समन-कोटि-सत - सरिस कराला ।
तीरथ - अमित - कोटि - सम पावन । नाम अखिल अघ - पूग - नसावन । (१)
हिमगिरि - कोटि अचल रघुबीरा । सिंधु - कोटि - सत - सम गंभीरा ।
कामधेनु - सत - कोटि - समाना । सकल काम - दायक भगवाना । (२)
सारद - कोटि - अमित - चतुराई । बिधि - सत-कोटि सृष्टि-निपुनाई ।
बिस्नु - कोटि - सम पालन - कर्त्ता । रुद्र - कोटि - सत - सम संघर्त्ता । (३)
धनद - कोटि - सत - सम धनवाना । माया - कोटि प्रपंच - निधाना ।
भार - धरन सत - कोटि - अहीसा । निरवधि, निरुपम, प्रभु, जगदीसा । (४)
छंद—निरुपम, न उपमा आन राम - समान निगमागम[1] कहै ।
११३० जिमि कोटि-सत-खद्योत - सम रबि, कहत अति लघुता लहै ।
ऐहि भाँति, निज - निज मति - बिलास, मुनीस हरिहिं बखानहीं ।
प्रभु भाव - गाहक, अति कृपाल, सप्रेम सुनि[2] सुख मानहीं ॥ [१६]
दो० – राम अमित - गुन - सागर , थाह कि पावै कोइ ।
संतन-सन जस किछु सुनेउँ , तुम्हहिं सुनायउँ सोइ ॥ ९२ क ॥
सो०—भाव - बस्य भगवान , सुख-निधान करुना-भवन ।
तजि ममता - मद - मान , भजिय सदा सीता-रवन[3] ॥ ९२ ख ॥

बलशाली हैं ॥ ९१ ख ॥ वे अरबों पातालोंके समान अथाह हैं, अरबों यमराजोंके समान भयानक हैं, अनेक तीर्थोंके समान ऐसे पवित्र हैं कि केवल प्रभुका नाम-भर लेनेसे ही बड़े-बड़े पाप नष्ट हो मिटते हैं । (१) वे (राम) करोड़ों हिमालयोंके समान अचल हैं, अरबों समुद्रोंके समान गहरे हैं, अरबों कामधेनुओंके समान सारी कामनाएँ पूरी कर डाल सकते हैं, (२) करोड़ों सरस्वतियोंके समान उनमें अपार बुद्धि है, अरबों विधाताओंके समान उन्हें सृष्टि रचनेकी कला आती है, अनेक विष्णुओंके समान वे पालन कर सकते तथा अनेक रुद्रोंके समान संहार कर सकते हैं । (३) अरबों कुबेरोंके समान वे धनवान् हैं, अनेकों मायाओंके समान सृष्टि रच सकते हैं और अनेक शेषोंके समान भार धारण कर सकते हैं । जगदीश्वर प्रभु रामकी सभी बातोंकी न कोई सीमा है और न किसीसे उनकी उपमा ही दी जा सकती है । (४) प्रभुकी उपमा किसीसे दी नहीं जा सकती । वेद भी यही कहते हैं कि रामके लिये कोई उपमा है ही नहीं । (अतः, रामके समान कोई हैं तो राम ही हैं ।) जैसे सूर्यको अरबों जुगनुओंके समान बताकर सूर्यको बहुत छोटा बना देना होगा वैसे ही अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार मुनीश्वरोंने श्रीहरिका कुछ-कुछ वर्णन तो कर डाला है पर प्रभु राम इतने कृपालु हैं कि वे भक्तका भाव ही देखते हैं । वे बड़े प्रेमसे वही थोड़ा-सा वर्णन सुनकर रीझ उठते हैं । [१६] राममें कितने गुण हैं, उनकी क्या कोई थाह पा सकता है ? मैंने तो आपको वही सब बताया है जैसा कुछ मैं सन्त-महात्माओंसे सुन पाया हूँ ॥ ९२ क ॥ सुख ही सुखसे भरे हुए कृपालु भगवान् राम तो भावके भूखे हैं, इसलिये ममता, मद और मान (आदर करानेकी इच्छा या अभिमान) छोड़कर सदा सीताके पति रामका ही भजन करते रहिए' ॥ ९२ ख ॥ काक-भुशुण्डिके ये मनोहर वचन सुनकर गरुड़का जी

१. राम निगम । २. ते । ३. सीतापतिहिं ।

११२३-२८ समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव । विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ॥
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः । धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ॥—आनन्दरामायण
११३३-३४ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुराणे परमर्षिवक्त्रात् ।
एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः ॥ —भागवत

सुनि भुसुंडि-के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए।
नयन नीर, मन अति हरषाना। श्रीरघुपति[1]-प्रताप उर आना। (१)
पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि, मनुज करि माना।
११४० पुनि पुनि काग-चरन सिर नावा। जानि राम-सम, प्रेम बढ़ावा। (२)
गुरु-बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौं बिरंचि-संकर-सम होई।
संसय-सर्प ग्रसेउँ मोहिँ ताता। दुखद लहरि, कुतरक बहु ब्राता। (३)
तव सरूप गारुड़ि रघुनायक। मोहिँ जियाएउ जन-सुखदायक।
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम-रहस्य अनूपम जाना। (४)

दो०—ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि, सीस नाइ, कर जोरि।
बचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि॥९३ क॥
प्रभु! अपने अबिबेक-तेँ, बूझौं[2] स्वामी! तोहिँ।
कृपासिंधु! सादर कहहु, जानि दास निज मोहिँ॥९३ ख॥

तुम सरबज्ञ, तज्ञ, तम-पारा। सुमति, सुसील, सरल आचारा।
११५० ज्ञान-बिरति-बिज्ञान-निवासा। रघुनायक-के तुम प्रिय दासा। (१)
कारन कवन देह यह पाई। तात! सकल मोहिँ कहहु बुझाई।
राम-चरित-सर सुंदर स्वामी। पाएहु कहाँ, कहहु नभ-गामी। (२)
नाथ! सुना मैं अस सिव-पाहीँ। नास महा-प्रलयहुँ तव नाहीँ।

खिल उठा और पुलकित होकर उन्होंने अपने पंख फुला लिए। उनकी आँखोंसे आँसू छलक आए और उनका मन अत्यन्त प्रसन्न हो उठा। रामका प्रताप उनके हृदयमें घर कर गया। (१) गरुड अपने पहलेवाले मोह (अज्ञान)-पर पछताए जा रहे थे कि '(मैं कैसा मूर्ख हूँ कि) अनादि ब्रह्मको मैं साधारण मनुष्य समझ बैठा था।' वे बार-बार काक-भुशुण्डिके चरणोंमें सिर नवाने लगे और उन्हें रामके ही समान जानकर उन्होंने उनसे बहुत प्रेम बढ़ा लिया। (२) (वे कहने लगे—) 'बिना गुरुके सचमुच कोई भवसागरसे पार नहीं जा सकता चाहे वह ब्रह्मा या शंकरके ही समान ज्ञानी क्यों न हो। देखिए! मुझे तो सन्देहके सर्पने ऐसा डस लिया था कि न जाने कितनी दुःख देनेवाली इधर-उधरकी बातें मनमें लहरें मारती रहीं। (३) इसी बीच भक्तोंको सुख देनेवाले रामने आपके रूपमें गारुड़ी (साँपका विष झाड़नेवाले) बनकर (मुझे आपके पास भेजकर) जिला उठाया। आपकी कृपासे मेरा सारा मोह (भ्रम) जाता रहा और मैंने रामका सारा अनुपम रहस्य भी भली-भाँति समझ लिया।' (४) अनेक प्रकारसे काक-भुशुण्डिकी प्रशंसा करके, हाथ जोड़कर, सिर नवाकर, बड़े विनय और प्रेमसे गरुड कोमल वचन कहने लगे—॥ ९३ क॥ 'प्रभो! स्वामी! मैं जानता नहीं हूँ इसलिये एक बात और आपसे पूछे ले रहा हूँ। मुझे अपना दास समझकर आप बता देनेकी अवश्य कृपा कीजिएगा ॥९३ख॥ आप तो सब कुछ जानते हैं। आप तत्त्वज्ञाता और मायासे अछूते हैं। आपमें सद्बुद्धि भी है, आप सुशील भी हैं और आपका आचरण भी सरल है। आप ज्ञान, वैराग्य, और विज्ञान सबके भांडार हैं और (सबसे बड़ी बात यह है कि आप) रामके बड़े प्रिय दास (भक्त) हैं। (१) आप कृपया मुझे यह बताइए कि आपको यह काक (कौआ) कैसे बन जाना पड़ा? और पक्षी! यह 'रामचरितमानस' आपको हाथ कहाँसे लगा? (२) नाथ! शिवने मेरे मनमें और एक भी सन्देह ला खड़ा किया कि महाप्रलयमें भी आपका नाश नहीं होता

१. श्रीरघुबर। २. पूछौं।

११४१-४२ किं च आचार्यवान् पुरुषो वेद इति श्रुतेः भगवत्स्वरूपज्ञानमपि गुरुप्रासादादेव भवति।मातृ.वि.
११४९-५० सर्वज्ञस्सुमतिश्शीलस्सत्यवानसि मानद। रामचन्द्रस्य दासस्त्वं ज्ञानविज्ञानसंयुतः॥-भरद्वाजरा०

मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरे मन संसय अहई। (३)
अग - जग - जीव नाग - नर - देवा। नाथ ! सकल जग काल-कलेवा।
अंड - कटाह - अमित लय - कारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। (४)
सो०—तुम्हहिं न ब्यापत काल , अति कराल, कारन कवन।
मोहिं सो कहहु कृपाल , ज्ञान-प्रभाव कि जोग-बल॥ ९४ क॥
दो०—प्रभु तव आश्रम आए[1] , मोर मोह - भ्रम भाग।
११६० कारन कवन सो नाथ सब , कहहु, सहित - अनुराग॥ ९४ ख॥
गरुड़ - गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा ! परम अनुरागा।
धन्य - धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हार मोहिं अति प्यारी। (१)
सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम-कै सुधि मोहिं आई।
अब[2] निज कथा कहौं मैं गाई। तात ! सुनहु सादर मन लाई। (२)
जप - तप - मख- सम - दम - ब्रत - दाना। बिरति - बिबेक - जोग - बिग्याना।
सब - कर फल रघुपति - पद - प्रेमा। तेहि बिनु, कोउ न पावै छेमा। (३)
ऐहि तन राम - भगति मैं पाई। ता - तें मोहिं ममता अधिकाई।
जेहि - तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि - पर ममता कर सब कोई। (४)
सो०—पन्नगारि - असि नीति , स्त्रुति-संमत, सज्जन कहहिं।
११७० अति नीचहु - सन प्रीति , करिय, जानि निज परम हित॥ ९५ क॥

और (यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि) ईश्वर (शिव) कभी मिथ्या कह नहीं सकते। (३) नाथ ! नाग, मनुष्य, देवता आदि तथा जितने चर और अचर जीव हैं उन सबको और संसारको काल निरन्तर खाता चला जाता है। यह असंख्य ब्रह्माण्डोंको नष्ट कर डाल सकनेवाला काल किसीको भी कभी छोड़ता नहीं। (४) पर ऐसा प्रलयंकर काल भी आपको क्यों नहीं छेड़ पाता, इसका रहस्य आप मुझे अवश्य बता डालिए। यह काल आपके पासतक आपके ज्ञानके प्रभावके कारण नहीं पहुँच पाता या आपके योगके बलसे घबराकर ?॥ ९४ क॥ प्रभो ! यह भी आप प्रेमसे बतानेका कष्ट कीजिए कि आपके आश्रममें आते ही मेरा सारा मोह और भ्रम दूर कैसे हो मिटा'॥ ९४ ख॥

(शिव कहते हैं–) 'देखो उमा ! गरुडका यह अनुरोध सुनकर काकभुशुंडि बहुत प्रसन्न हुए।' वे बड़े प्रेमसे बोले—'देखो गरुड ! आपकी बुद्धि धन्य है, परम धन्य है। आपके ये प्रश्न मुझे बड़े ही प्रिय लगे हैं। (१) आपके ये प्रेमसे भरे प्रश्न सुनकर मुझे अनेक (पिछले) जन्मोंका स्मरण हो आया। अपनी वह सारी आप-बीती मैं विस्तारसे आपको सुनाए डालता हूँ। आप आदरके साथ ध्यान लगाकर सुनते चलिए। (२) देखो ! जप, तप, यज्ञ, शम (मनको रोकना), दम (इन्द्रियोंकी रोकना), व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग और विज्ञान इन सबका लक्ष्य यही है कि रामके चरणोंमें प्रीति हो, क्योंकि उस (प्रीति)-के बिना किसीका कभी कोई कल्याण नहीं हो सकता। (३) मैंने इसी शरीरसे रामकी भक्ति पाई है, इसीलिये इस शरीरपर मुझे बड़ी ममता है क्योंकि जिससे अपना कुछ भी स्वार्थ सधे, उससे सब लोग प्रेम करते ही हैं। (४) देखो गरुड ! वेदोंने जो व्यवहार ठीक बताया है और सज्जनोंने भी जिसका समर्थन किया है वह यह है कि अपना परम हित करनेवाले अत्यन्त नीचसे भी प्रेम करते रहना चाहिए॥ ९५ क॥ देखिए, कीड़ेसे जो रेशम उत्पन्न होता है उसीसे

१. आएउँ। २. सब।

११५५-५६ कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशी॥ अद्भुतो.ख.

पाट कीट - तें होइ , तेहि - तें पाटंबर रुचिर ।
कृमि पालै सब कोइ , परम अपावन प्रान - सम ।। ९५ ।।
स्वारथ साँच जीव - कहँ एहा । मन - क्रम - बचन राम-पद नेहा ।
सोइ पावन, सोइ सुभग सरीरा । जो तनु पाइ भजिय रघुबीरा । (१)
राम-बिमुख, लहि बिधि - सम देही । कबि - कोबिद न प्रसंसहिं तेही ।
राम - भगति ऐहि तन उर जामी । ता - तें मोहिं परम प्रिय स्वामी । (२)
तजौं न तन, निज इच्छा मरना । तन - बिनु, बेद भजन नहिं बरना ।
प्रथम मोह मोहिं बहुत बिगोवा । राम-बिमुख सुख कबहुँ न सोवा । (३)
नाना जनम, करम पुनि नाना । किए जोग - जप-तप - मख - दाना ।
११८० कवन जोनि, जनमेउँ जहँ नाहीं । मैं खगेस ! भ्रमि - भ्रमि जग माहीं । (४)
देखेउँ करि सब करम गोसाईं । भएउँ न सुखी अबहिं-की नाईं [1] ।
सुधि मोहिं नाथ ! जनम बहु - केरी । सिव - प्रसाद मति मोह न घेरी । (५)
दो०—प्रथम जनम - के चरित अब , कहउँ , सुनहु बिहगेस ।
सुनि प्रभु-पद - रति - उपजै , जा - तें मिटहिं कलेस ।। ९६ क ।।
पूरब कलप एक प्रभु , जुग कलिजुग मल-मूल ।
नर अरु नारि अधर्म - रत , सकल निगम - प्रतिकूल ।। ९६ ख ।।

रेशमी वस्त्र बनते हैं, इसीलिये उस परम अपवित्र कीड़ेको भी लोग प्राणोंके समान पालते हैं ।। ९५ ख ।। जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्मसे रामके चरणोंमें स्नेह हो । इसलिये उसी शरीरको पवित्र और सुन्दर समझना चाहिए जिसे पाकर रामका भजन किया जा सके । (१) जो रामसे प्रेम नहीं करता, वह यदि ब्रह्माके समान भी शरीर पा जाय तो भी कवि और विद्वान् उसे किसी कामका नहीं समझते । मेरे हृदयमें इसी शरीरसे रामकी भक्ति उत्पन्न हुई है, इसलिये मुझे तो यही (कौएका शरीर ही) बड़ा प्यारा लगता है । (२) यद्यपि मैं तभी मर सकता हूँ जब मेरी इच्छा हो पर मैं यह (कौएका) शरीर ही छोड़नेको तैयार नहीं हूँ क्योंकि वेदोंमें कहा गया है कि बिना शरीरके भजन हो ही नहीं पा सकता । पहलेवाले मोह (भ्रम)-ने मेरी बड़ी दुर्गति कर डाली थी । जबतक मैं रामसे प्रेम नहीं कर पाया तबतक मैं कभी सुखसे सो नहीं पाया । (३) न जाने कितने जन्मोंमें मैं योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म करता रहा और संसारमें कोई ऐसी योनि नहीं बची जिसमें घूम-फिरकर मैंने जन्म न ले डाला हो, (४) पर सब कर्म करके मैंने देख लिया है कि जैसा इस बार (इस जन्ममें) मुझे सुख मिला वैसा कभी नहीं मिल पाया । नाथ ! (मुझे एकका ही नहीं) अनेक जन्मोंका स्मरण है क्योंकि शिवकी कृपासे मेरी बुद्धिपर कभी मोह छा ही नहीं पाया । (४) देखो गरुड ! अब मैं आपको अपने प्रथम जन्मका वह चरित्र कह सुनाता हूँ जिसे सुननेसे प्रभु (राम)-के चरणोंमें प्रेम उत्पन्न हो जाता है और सारे क्लेश दूर हो मिटते हैं ।। ९६ क ।। प्रभो ! पहलेके एक कल्पमें ऐसा पाप उत्पन्न करनेवाला कलियुग आ गया था जिसमें सभी पुरुष और स्त्री पाप ही पाप करते रहते थे और सदा वेदोंके विरुद्ध ही काम किया करते थे ।। ९६ ख ।। उसी कलियुगमें अयोध्यामें

१. सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं ।

११७३-७४ तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ।
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।। —भागवत
११८३-८४ कथयिष्याम्यहं स्वामिन् चरितं पूर्वजन्मनः । यस्य श्रवणमात्रेण नश्यन्ते सर्वसंशयाः ।। भरद्वारा०
११८५-८६ उच्छृंखला मदोन्मत्ता पापकर्मरताः सदा । कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखा शठाः ।।म.नि.तं.

तेहि कलिजुग कोसल - पुर जाई। जनमत भयउँ सूद्र - तनु पाई।
सिव - सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव - निंदक अभिमानी। (१)
धन - मद - मत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि, उर - दंभ - बिसाला।
११९० जदपि रहेउँ रघुपति - रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी। (२)
अब जाना मैं अवध - प्रभावा। निगमागम - पुरान अस गावा।
कवनेहुँ जनम अवध बस जोई। राम - परायन सो परि होई। (३)
अवध - प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं राम धनु - पानी।
सो - कलि काल कठिन उरगारी। पाप - परायन सब नर - नारी। (४)
दो०—कलि - मल ग्रसे धरम सब, लुप्त[१] भए सद - ग्रंथ।
दंभिन निज मति कलपि करि, प्रगट किए बहु पंथ ॥ ९७ क ॥
भए लोग सब मोह - बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरि-जान! ज्ञान-निधि, कहौं कछुक कलि - धर्म ॥ ९७ ख ॥
बरन - धरम नहिं आस्रम चारी। स्रुति-बिरोध-रत सब नर-नारी।
१२०० द्विज स्रुति - बेचक, भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम-अनुसासन। (१)
मारग सोइ जा - कहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।

शूद्रके घरमें मेरा जन्म हुआ। मैं मन, वचन और कर्मसे शिवका सेवक तो था, पर अन्य देवताओंकी भरपेट निन्दा किया करता था और बड़ा अभिमानी था। (१) मैं धनके मदमें मतवाला हुआ रहता था और दिनरात बहुत बकबक करता रहता था। मेरी बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी और मैं बड़ा भारी दम्भी (पाखण्डी) भी था। यद्यपि मैं रामकी राजधानीमें ही रहता था, फिर भी उसकी महिमा जाननेका मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया। (२) अयोध्याका प्रभाव तो मैं अब कहीं समझ पाया हूँ। वेद, शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा कहा गया है कि जो कोई किसी भी जन्ममें अयोध्यामें जा बसता है, वह अवश्य ही रामका भक्त हो जाता है। (३) पर अयोध्याका यह प्रभाव भी जीव तभी जान पाता है जब हाथमें धनुष लिए हुए रामका उसके हृदयमें वास हो। पर गरुड! वह कलिकाल बड़ा भयंकर था, क्योंकि उस समय जितने पुरुष और स्त्री थे सब दिन-रात पाप ही पाप करते रहते थे। (४) कलियुगके पापोंने सभी धर्मोंको दबा डाला था और अच्छे (धर्म)-ग्रन्थोंका तो कहीं ढूंढे नाम न मिल पाता था। पाखण्डियोंने अपनी बुद्धिसे गढ़-गढ़कर अनेक नये-नये पन्थ (सम्प्रदाय) बना खड़े किए थे ॥ ९७ क ॥ जितने लोग थे सब अज्ञानमें डूबे पड़े थे। (पैसा बचानेके) लोभसे उस समय कोई शुभ कर्म ही नहीं करता था। देखो ज्ञानी गरुड! कलियुगमें क्या हुआ करता है वह मैं सब आपको बताए देता हूँ ॥ ९७ ख ॥ कलियुगमें चारों वर्णों और आश्रमोंके किसी धर्म (कर्त्तव्य)-का कोई पालन नहीं करता। सभी पुरुष और स्त्री वेदके विरुद्ध आचरण करते रहते हैं। ब्राह्मण भी वेद बेचते रहते हैं (जहाँ पैसा मिलता है वहाँ जाकर वेद-पाठ कर आते हैं, वेदका स्वाध्याय नहीं करते) और राजा भी ऐसे होते हैं कि प्रजाको खाए डालते हैं। वेदोंकी आज्ञा कोई मानता-तक नहीं। (१) जिसे जो अच्छा लग जाय उसे ही वह ठीक मान बैठता है। जो बहुत बढ़-बढ़कर बोलना जाने वही पण्डित समझा जाता

१. गुप्त।

११८७-८८ अयोध्यायामभवज्जन्म कलौ शूद्रगृहे मम। —सनकसंहिता
११९३-९४ अस्नानभोजिनो नाग्निर्देवतातिथिपूजनम्। करिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पिण्डोदकक्रियाम् ॥
११९५-९६ बहुलानां पुराणानां विनाशो भविता विभो। तदा लोका भविष्यन्ति धर्मकर्मबहिर्मुखा ॥विष्णुपु.
११९९-१२०० लोकप्रतापणार्थाय जपपूजापरायणाः। पाखंडाः पंडितम्मन्याः श्रद्धाभक्तिविवर्जिताः॥म.नि.तं.

मिथ्यारंभ दंभ - रत जोई। ता - कहँ संत कहै सब कोई। (२)
सोइ सयान जो पर - धन - हारी। जो कर दंभ, सो बड़ आचारी।
जो कह झूठ - मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना। (३)
निराचार जो श्रुति - पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी, सो बिरागी।
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ प्रसिद्ध तापस कलिकाला[1]। (४)
दो०—असुभ वेष - भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिँ।
तेइ जोगी, तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग-माहिँ॥ ९८ क॥
सो०—जे अपकारी - चार, तिन्ह - कर गौरव, मान्य तेइ।
१२१० मन - क्रम - बचन लबार, तेइ बकता कलिकाल - महँ॥ ९८ ख॥
नारि - बिबस नर सकल गोसाइँ। नाचहिँ नट - मरकट - की नाइँ।
सूद्र, द्विजन्ह उपदेसहिँ ज्ञाना। मेलि जनेऊ, लेहिँ कु - दाना। (१)
सब नर काम - लोभ - रत, क्रोधी। देव - बिप्र स्रुति - संत - बिरोधी।
गुन - मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिँ नारि पर - पुरुष अभागी। (२)
सौभागिनी बिभूषन - हीना। बिधवनि - के सृंगार नवीना।
गुरु - सिष बधिर - अंध - कर लेखा। एक न सुनहि, एक नहिँ देखा। (३)

है। जो बहुत ढोंग और पाखण्ड रचता रहे उसे ही सब लोग सन्त मानते हैं। (२) जो पराया धन हड़प बैठे उसे ही लोग चतुर कहते हैं। जो जितना पाखण्ड रचता रहे वह उतना ही बड़ा आचारी समझा जाता है। जो झूठ बोलता रहे और हँसी-ठिठोली करता रहे वही कलियुगमें गुणी कहलाता है। (३) जो वेदका मार्ग छोड़कर आचार-हीन हो बैठे, वही कलियुगमें ज्ञानी और वैरागी माना जाता है। जो नख और जटाएँ बढ़ाए घूमता रहे वही कलियुगमें प्रसिद्ध तपस्वी समझा जाता है। (४) जो बेढंगा अटपट वेष बनाए, अमंगल आभूषण पहने और अभक्ष्य (मांस, मदिरा, मत्स्य) खाता-पीता रहे वही योगी और सिद्ध कहलाता और कलियुगमें पूजा जाता है॥ ९८ क॥ जो सदा दूसरोंकी हानि पहुँचाता रहे, उसीका बड़ा आदर होता है और उसीको सम्मानके योग्य समझा जाता है। जो बहुत बड़े लबार (झूठे, गप्पी, बकवादी) हों वे ही कलियुगमें वक्ता माने जाते हैं॥ ९८ ख॥ देखो गोसाइँ! कलियुगमें आपको जितने पुरुष मिलेंगे सब स्त्रीके कहनेमें चलते हैं और मदारीके बन्दरकी भाँति (जैसे वह नचावे) वैसे नाचते रहते हैं। शूद्र लोग जाकर ब्राह्मणोंको ज्ञानका उपदेश देते हैं और स्वयं गलेमें जनेऊ डालकर कुत्सित (प्रायश्चित्त, मृतक आदिका) दान जा लेते हैं। (१) सभी पुरुष बड़े कामी, लोभी और क्रोधी होते हैं। वे देवता, ब्राह्मण, वेद और सन्तजनोंका सदा विरोध करते रहते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ अपना गुणी और सुन्दर पति छोड़-छोड़कर दूसरे पुरुषोंके साथ गुलछर्रे उड़ाती फिराती हैं। (२) सोहागिन स्त्रियोंको तो आभूषण नहीं जुड़ पाते पर विधवाओंको देखो तो नये-नये शृङ्गार किए बनी-ठनी छबीली बनी घूमती हैं। गुरु और शिष्य अन्धे और बहरे-जैसे हैं। एक (गुरु) देखता नहीं (उसमें ज्ञानकी दृष्टि नहीं है) और दूसरा

१. सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।

१२०१-२ पाण्डित्ये चापलं वचः। —भागवत
१२०३-४ वागुच्चारी भवेत्सर्वं तत्क्रियां कर्तुमक्षमाः। कलौ वेदान्तिनो भान्ति फाल्गुने बालका इव॥
१२०५-८ कदाहाराः कदाचाराधृतकाः शूद्रसेवकाः। शूद्रान्नभोजिनः क्रूरा वृषलीरतिकामुकाः॥
१२०९-१० परापकारनिरताः सदैवानृतभाषिणः। वक्तारस्ते भविष्यन्ति कलौ ये वाऽशुचिव्रताः।
१२१३- कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखा शठाः। स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः॥ म.नि.तं.
१२१४- गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पतिं रतिज्ञं सधनं युवानम्।
विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरान्तरं शीलगुणादिहीनम्॥ —हितोपदेश

हरै सिष्य - धन, सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक-महँ परई।
मातु - पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै, सोइ धरम सिखावहिं। (४)
दो०—ब्रह्म - ज्ञान - बिनु नारि - नर, कहहिं न दूसरि बात।
१२२० कौड़ी लागि लोभ - बस, करहिं बिप्र - गुरु - घात॥ ९९ क॥
बादहिं सूद्र द्विजन - सन, हम तुम - तें कछु घाटि।
जानै ब्रह्म, सो बिप्रबर, आँखि देखावहिं डाँटि॥ ९९ ख॥
पर - त्रिय - लंपट, कपट - सयाने। मोह - द्रोह - ममता लपटाने।
तेइ अभेद - बादी, ज्ञानी नर। मैं चरित्र देखा कलिजुग - कर[1]। (१)
आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं। जे कहुँ सतमारग प्रतिपालहिं।
कलप - कलप भरि ऐक - ऐक नरका। परहिं, जे दूषहिं स्रुति, करि तरका। (२)
जे बरनाधम तेलि, कुम्हारा। स्वपच, किरात, कोल, कलवारा।
नारि मुई, गृह - संपति नासी। मूड़ मुँड़ाइ होहिं संन्यासी। (३)
ते बिप्रन - सन पाँवँ[2] पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।
१२३० बिप्र निरच्छर, लोलुप, कामी। निराचार, सठ, बृषली - स्वामी। (४)
सूद्र करहिं जप - तप - ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।

(शिष्य) बहरा है (जो गुरुका उपदेश सुनता ही नहीं)। (३) (आप जानते ही हैं कि) जो जो गुरु अपने शिष्यका धन तो हड़प लेता है पर उसका अज्ञान-रूपी शोक नहीं दूर कर पाता, वह गुरु घोर नरकमें जा पड़ता है। सब माता-पिता अपने-अपने बालकोंको बुलाकर वही धर्म (कार्य) सीखनेका उपदेश देते हैं जिससे पेट भरे। (४) स्त्री और पुरुष ब्रह्म-ज्ञान छोड़कर दूसरी कोई बात ही नहीं छेड़ते (जिसे देखो वही ब्रह्मज्ञान छाँटे चला जाता है)। वे ऐसे लोभी होते हैं कि कौड़ियों (थोड़े)-के लिये ब्राह्मण और गुरु-तककी हत्या कर डालनेसे नहीं चूकते॥ ९९ क॥ शूद्र भी ब्राह्मणोंसे जा-जाकर उलझे पड़ते हैं कि हम तुमसे किस बातमें कम है? जो ब्रह्मको जानता है, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है (हम ब्रह्मको जानते हैं इसलिये हम भी ब्राह्मण हैं) यह कह-कहकर वे उन ब्राह्मणोंको डाँट-डपटकर आँखें दिखाते रहते हैं॥ ९९ ख॥ उस कलियुगमें मैंने देखा कि जो पराई स्त्रीको फँसाए रखते हैं, कपटका जाल बिछानेमें चतुर हैं तथा मोह, द्रोह और ममतामें लिपटे पड़े रहते हैं, वे ही मनुष्य अभेद-वादी (ब्रह्म और जीवको एक माननेवाले) और ज्ञानी बने बैठे हैं। (१) वे स्वयं तो गए बीते होते ही हैं, साथ ही उन्हें कोई भला काम करनेवाला यदि मिल जाय तो उसे भी साथ ले डूबते हैं। (आप जानते ही हैं कि) जो लोग तर्क कर-करके वेदकी निन्दा किया करते हैं, वे कल्प-कल्प-भर एक-एक नरकमें पड़े सड़ते रहते हैं (ऐसे लोग भी उस कलियुगमें भरे हुए थे)। (२) तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल और कलवार (मदिरा बेचनेवाले) आदि नीच वर्णके लोग भी जहाँ स्त्री मरी या घरबार और सम्पत्ति नष्ट हुई कि मूँड़-मुँड़ाकर संन्यासी बन बैठते हैं। (३) वे ब्राह्मणोंसे पैर पुजवाते हैं और इस प्रकार अपने ही हाथों (यह लोक और परलोक) दोनों लोक नष्ट कर डालते हैं। कलियुगमें ब्राह्मण तो निरक्षर (अपढ़), लोभी, कामी, दुराचारी और मूर्ख होनेके साथ-साथ व्यभिचारिणी स्त्रियोंमें फँसे रहते हैं (४) और शूद्र, अनेक प्रकारके जप, तप और व्रत करते तथा व्यास-गद्दीपर

१ देखा मैं चरित्र कलिजुग-कर। २. आप।

१२१९-२० कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः।
त्यक्ष्यन्ति च प्रियप्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि॥ —भागवत
१२२१-२२ शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपो वेषोपजीविनः। धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम्॥ भाग०

सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा। (५)

दो०—भए बरन-संकर कलिहिं, भिन्न-सेतु सब लोग।
करहिं पाप, पावहिं दुख, -भय-रुज-सोक-बियोग॥ १०० क॥
श्रुति-संमत हरि-भगति-पथ, संजुत - बिरति - बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोह-बस, कल्पहिं पंथ अनेक॥ १०० ख॥

बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि रही बिरती[१]।
तपसी धनवंत, दरिद्र गृही। कलि-कौतुक, तात! न जात कही। (१)
कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि, निबेरि गती।
१२४० सुत मानहिं मातु-पिता तब-लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं। (२)
ससुरारि पियारि लगी जब-तें। रिपु-रूप कुटुंब भए तब-तें।
नृप पाप-परायन, धर्म नहीं। करि दंड, बिडंब प्रजा नितहीं। (३)
धनवंत-कुलीन, मलीन अपी। द्विज-चिह्न जनेउ, उघार तपी।
नहिं मान पुरान, न बेदहिं जो। हरि-सेवक संत सही कलि सो। (४)
कबि-बृन्द, उदार दुनी न सुनी। गुन-दूषक-व्रात, न कोऽपि गुनी।
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु-अन्न दुखी सब लोग मरै। (५)

बैठ-बैठकर पुराणोंकी कथा सुनाया करते हैं। सभी मनुष्य ऐसा मनमाना आचरण करते हैं कि उनके दुराचारका वर्णन नहीं किया जा सकता। (५) कलियुगमें सब लोग वर्ण-संकर हो चलते हैं और किसी भी मर्य्यादाका पालन नहीं करते। वे ऐसे भयङ्कर पाप करते रहते हैं कि उन्हें निरन्तर दुःख, भय, रोग, शोक, तथा (अपने प्रिय जनोंका) वियोग भोगना ही पड़ता रहता है॥ १०० क॥ वेदोंमें जैसा आचरण करना बताया गया है तथा जिस आचरणसे वैराग्य और ज्ञान उत्पन्न होता है, वैसा आचरण तो अज्ञानके कारण मनुष्य करते ही नहीं, उलटे अनेक नये-नये पंथ गढ़-गढ़कर रच खड़े करते हैं॥ १०० ख॥ संन्यासियोंको देखिए तो बहुत पैसा लगाकर बड़े-बड़े भवन बना-बनाकर खड़े करते रहते हैं। उनका रहा-सहा वैराग्य भी विषयोंके फेरमें नष्ट हो मिटता है। जो तपस्वी कहलाते हैं वे धनी हुए बैठे हैं और जितने गृहस्थ हैं वे दरिद्र हुए पड़े हैं। कलियुगकी यह लीला कुछ कही नहीं जाती। (१) कुलवंती और सती स्त्रियोंको तो लोग घरसे निकाल बाहर करते हैं और अपनी सद्गतिका ध्यान न करके घरमें दासी (रखेली बनाकर) ला डाल रखते हैं। पुत्र तभी-तक अपने माता-पिताको मानते हैं, जब-तक वे स्त्रीका मुख नहीं देख पाते। (२) जबसे उन्हें ससुराल प्यारी लगने लगती है तबसे कुटुम्बके लोग उन्हें शत्रुके समान लगने लगते हैं। जितने राजा होते हैं सब पाप ही पाप करते रहते हैं, धर्म-कर्म नहीं। वे निरन्तर प्रजाको दुःख दे-देकर उसकी दुर्दशा किए रखते हैं! नीच जातिके लोग भी धनी होते ही कुलीन माने जाने लगते हैं। कलियुगमें जनेऊ-मात्र द्विजका चिह्न रह जाता है और नंगे बदन रहना तपस्वीका चिह्न। कलियुगमें वे ही सच्चे हरि-भक्त और सन्त माने जाते हैं जो वेद और पुराण नहीं मानते। (४) कवि तो ढेरों उत्पन्न हो जाते हैं पर संसारमें उदार (कवियोंके आश्रय-दाता)-का कहीं नाम नहीं सुनाई पड़ता। गुणमें दोष निकालनेवाले तो बहुत निकल आते हैं पर गुणी कहीं ढूँढे नहीं मिल पाता। कलियुगमें बार-बार अकाल पड़ते रहते हैं और अन्नके बिना

१. बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती।

१२४१-४२ कस्य माता पिता कस्य यथा कर्मानुगः पुमान्। इति चोदाहरिष्यन्ति श्वशुरानुगता नराः॥ वि.पु.
मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा। घ्नन्तु ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि॥ भा०
१२४३-४४ ब्रह्मसूत्रमेव विप्रत्वहेतुः।
१२४५-४६ दुर्भिक्षमेव सततं तथा क्लेशमनीश्वराः। आत्मानं घातयिष्यन्ति ह्यनावृष्ट्यादिदुःखिताः॥ विष्णु०

दो०—सुनु खगेस ! कलि कपट, हठ, दंभ, द्वेष, पाखंड ।
मान, मोह, मारादि सब , व्यापि रहे ब्रह्मंड ।। १०१ क।।
तामस धरम करहिं नर , जप - तप - व्रत-मख-दान ।
१२५० देव न बरषहिं धरनि - पर , बए न जामहिं धान ।। १०१ ख।।

अबला कच - भूषन, भूरि छुधा । धन - हीन दुखी, ममता बहुधा ।
सुख चाहहिं मूढ़, न धर्म - रता । मति थोरि, कठोरि, न कोमलता । (१)
नर पीड़ित - रोग, न भोग कहीं । अभिमान, बिरोध अकारन हीं ।
लघु जीवन संबत पंच - दसा । कलपांत न नास, गुमान असा । (२)
कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत कोउ अनुजा - तनुजा ।
नहिं तोष, बिचार, न सीतलता । सब जाति - कुजाति भए मँगता । (३)
इरिषा, परुषाच्छर, लोलुपता । भरि पूरि रही, समता - बिगता ।
सब लोग बियोग - बिसोक हए । बरनास्रम - धर्म - अचार गए । (४)
दम - दान - दया नहिं जानपनी । जड़ता, पर-बंचनताति घनी ।
१२६० तनु - पोषक नारि - नरा सगरे । पर - निंदक जे, जग - मों बगरे । (५)

सब लोग भूखे मरते रहते हैं । (५) देखो गरुड ! जब कलियुग आता है तो सारे ब्रह्माण्डमें कपट, हठ, दंभ, द्वेष, पाखंड, मान, मोह, काम आदि (काम क्रोध लोभ, मोह मद, मत्सर) सब आ छाते हैं ।। १०१ क।। मनुष्य केवल तामसी भावसे (दिखावेके लिये) जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान आदि किया करते हैं । इन्द्रदेव पृथ्वीपर जल नहीं बरसाते, इसलिये बोया हुआ धान भी जम नहीं पाता ।। १०१ ख ।। जूड़े बनाना ही स्त्रियोंका शृङ्गार रह जाता है (सिरके बाल सजानेके अतिरिक्त और कोई शृङ्गार नहीं करतीं) । उन्हें भूख बहुत लगती है । वे धनहीन बनी रहती हैं और अनेक प्रकारकी ममतामें फँसे रहनेके कारण सदा दुःख भोगती रहती हैं । वे मूर्खाएँ सुख तो चाहती हैं पर धर्ममें उनकी तनिक रुचि नहीं होती । उनमें बुद्धि भी कम होती है और वे स्वभावकी इतनी कठोर होती हैं कि कोमलताका उनमें नाम नहीं होता । (१) सब मनुष्य रोगोंसे पीडित हुए रहते हैं, भोग (सुख) का कहीं नाम नहीं होता । सब बिना कारण ही ऐंठमें भरे झगड़ा करते रहते हैं । उनका जीवन तो दस-पाँच वर्षका होता है, पर गुमान इतना रहता है कि कल्पका अन्त हो जानेपर भी हम बने रहेंगे । (२) यह कलिकाल मनुष्योंको ऐसा बेहाल कर डालता है कि कोई किसीकी बहिन-बेटी-तकका भी विचार नहीं करता । लोगोंमें न सन्तोष होता, न विवेक, न (स्वभावमें) शील (क्षमा) । सुजाति-कुजाति जिसे देखो सब जा-जाकर भीख माँगते फिरते हैं । (३) ईर्ष्या (डाह), गाली-गलौज और लोभका ही चारों ओर बोलबाला रहता है । समता (सबको समान समझने)-का भाव किसीमें रह ही नहीं जाता । सब लोग वियोग और शोकसे दुखी हुए रहते हैं । वर्ण और आश्रम-धर्मके आचरण कहीं दिखाई नहीं देते । (४) दम (इन्द्रियोंका दमन), दान, दया और बुद्धिमानीका कहीं नाम नहीं मिलता । धूर्तता और दूसरोंको ठगनेका भावना बहुत बढ़ी रहती है । सभी स्त्री-पुरुष दिनरात अपने ही शरीरके पोषणमें लगे रहते हैं । जगत्में ऐसे ही लोग भरे पड़े रहते हैं जो दिनरात पराई निन्दा करते रहते हैं । (५) देखो गरुड ! यद्यपि इस कलिकालमें पाप ही पाप और

१२५१-५२ सुवर्णमणिरत्नादौ वस्त्रे चोपक्षयं गते । कलौ स्त्रियो भविष्यन्ति तदा केशैरलंकृताः ।। विष्णु पु.
१२५३-५४ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तापेन च चिंतया । त्रिंशद्विंशत्ववर्षाणि परमायु कलौ नृणाम्।।भाग०
१२६१-५४ कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ।। भाग०

दो०—सुनु ब्यालारि ! काल कलि, मल - अवगुन - आगार।
गुनौ बहुत कलिजुग - कर, बिनु - प्रयास निस्तार ॥ १०२ क ॥
कृत - जुग, त्रेता, द्वापर, पूजा, मख, अरु जोग।
जो गति होइ, सो कलि, हरि, -नाम - तें पावहिं लोग ॥ १०२ ख ॥

कृत - जुग सब जोगी, बिज्ञानी। करि हरि ध्यान, तरहिं भव प्रानी।
त्रेता, बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म, भव तरहीं। (१)
द्वापर, करि रघुपति - पद - पूजा। नर, भव तरहिं, उपाय न दूजा।
कलिजुग, केवल हरि - गुन - गाहा। गावत नर, पावहिं भव - थाहा। (२)
कलिजुग, जोग, न जग्य न ज्ञाना। एक अधार राम - गुन - गाना।
१२७० सब भरोस तजि जो भज रामहिं। प्रेम - समेत गाव गुन - ग्रामहिं। (३)
सोइ भव तर, कछु संसय नाहीं। नाम - प्रताप प्रगट कलि - माहीं।
कलि - कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं, नहिं पापा। (४)

दो०—कलिजुग-सम जुग आन नहिं, जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम - गुन - गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥ १०३ क ॥
प्रगट चारि पद धरम - के, कलि - महँ एक प्रधान।
जेन - केन बिधि दीन्हें, दान, करै कल्यान ॥ १०३ ख ॥

अवगुण ही अवगुण भरे रहते हैं पर कलियुगमें एक भारी गुण यह भी है कि उसमें कोई चाहे तो बिना परिश्रमके ही भव-बन्धनसे छुटकारा पा ले सकता है ॥ १०२ क ॥ सत्ययुगमें योगसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें पूजा करनेसे जो सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त होती है, वह सिद्धि कलियुगमें केवल भगवान्‌का नाम स्मरण करने-भरसे मिल जाती है ॥ १०२ ख ॥ सत्ययुगमें सब लोग योगी और विज्ञानी होते हैं और वे सब प्राणी भगवान्‌का ध्यान करके भवसागरसे पार हो उतरते हैं। त्रेतामें मनुष्य अनेक प्रकारके यज्ञ करके और सब कर्म प्रभुको समर्पण करके भवसागरसे पार हो उतरते हैं। (१) द्वापरमें मनुष्य रामके चरणोंकी पूजा करके भवसागरसे तर जाते हैं, (इसके अतिरिक्त) दूसरे किसी उपायसे उद्धार नहीं हो पाता। किन्तु कलियुगमें तो केवल भगवान्‌के गुणोंकी गाथाओंका कीर्तन करके ही मनुष्य भवसागरकी थाह पा जाते हैं। (२) कलियुगमें न योगसे काम बनता, न यज्ञ से और न ज्ञानसे ही। उसमें तो केवल रामके गुणोंका कीर्तन ही उद्धार एक मात्र सहारा रह जाता है। जो लोग सबका भरोसा छोड़कर केवल रामका बैठे भजन करते रहते हैं और प्रेमसे उन्हींके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं (३) वे ही संसार-सागरसे पार हो पाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह न समझो। रामके नामका प्रताप तो कलियुगमें प्रत्यक्ष है। कलियुगका सबसे बड़ा पवित्र प्रताप तो यही है कि मनमें पुण्यका जो काम सोचा जाय उसका फल तो अवश्य मिल जाता है, पर मनमें कोई पापकी बात सोचे तो उसका दण्ड नहीं मिलता। (४) यदि मनुष्य विश्वास करे तो कलियुगके समान दूसरा कोई युग है ही नहीं क्योंकि इस युगमें केवल रामके निर्मल गुणोंका कीर्तन करके बिना परिश्रमके ही मनुष्य संसारसे पार हो जाता है ॥ १०३ क ॥ धर्मके चार प्रसिद्ध चरणों (सत्य, दया, तप और दान)-मेंसे कलियुगमें

१२६५-६८ ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ वि०
१२६९-७१ कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे। निस्तारबीजमेतावद् ब्रह्ममंत्रस्य साधनम्॥ महानिर्वाणतन्त्र
रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ॥ —भागवत
१२७२ अपरे तु युगे देवि पुण्यं पापं च मानसम्। नृणामासीत्कलौ पुण्यं केवलं न तु दुष्कृतम् ॥
१२७३-७४ कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति संभवम्। कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥ भागवत
१२७५-७६ ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमध्वरः। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥—विष्णुपुराण

नित जुग - धर्म[1] होहिँ सब - केरे। हृदय राम माया - के प्रेरे।
सुद्ध सत्त्व समता, बिज्ञाना। कृत - प्रभाव परसन[2] मन जाना। (१)
सत्त्व बहुत, रज कछु रति-करमा। सब बिधि सुख, त्रेता - कर धरमा।
१२८० बहु रज, स्वल्प सत्त्व, कछु तामस। द्वापर धरम, हरष - भय मानस। (२)
तामस बहुत, रजोगुन थोरा। कलि-प्रभाव, बिरुधा[3] चहुँ ओरा।
बुध, जुग - धरम जानि मन - माहीँ। तजि अधर्म, रति धरम कराहीँ।
काल - धरम नहिँ ब्यापहिँ ताही। रघुपति-चरन प्रीति अति जाही।
नट - कृत बिकट कपट खग - राया। नट - सेवकहिँ न ब्यापै माया। (४)

दो०—हरि - माया - कृत दोष - गुन, बिनु हरि-भजन न जाहिँ।
भजिय राम, तजि काम सब, अस बिचारि मन माहिँ॥ १०४ क॥
तेहि कलि - काल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपत्ति - बस, तब मैं गयउँ बिदेस॥ १०४ ख॥

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन, मलीन, दरिद्र, दुखारी।

केवल एक ही चरण प्रधान माना गया है कि जैसे भी बन पड़े, दान देते रहनेमें ही कल्याण होता है ॥ १०३ ख ॥ रामकी मायाके कारण सबके हृदयोंमें सभी युगोंके गुण नित्य प्रकट होते रहते हैं। यदि मनमें शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और प्रसन्नता हो तो समझना चाहिए कि यह सत्ययुगके प्रभावके कारण है। (१) जब मनमें सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण भी हो, अपने कर्मोंमें प्रीति होती हो तथा सब प्रकारसे सुख ही सुख प्रतीत होता हो तो समझना चाहिए कि यह त्रेता युगके प्रभावसे हो रहा है। जब मनमें रजोगुण अधिक हो, सत्त्वगुण बहुत थोड़ा हो, कुछ-कुछ तमोगुण भी हो तथा हर्षके साथ-साथ कुछ भय भी हो तो समझना चाहिए कि यह द्वापर युगका प्रभाव है। (२) जब मनमें तमोगुण बहुत अधिक हो, रजोगुण बहुत थोड़ा-सा हो तथा चारों ओर सबसे वैर और विरोध बढ़ता चला जा रहा हो तो समझना चाहिए कि यह कलियुगका प्रभाव है। जो बुद्धिमान् लोग होते हैं वे अपने मनमें युगका प्रभाव समझकर भी, अधर्म छोड़कर धर्मके ही अनुसार ही आचरण करते चलते हैं। (३) जिसके हृदयमें रामके चरणोंसे अत्यन्त प्रेम होता है, उसे ये सब कालधर्म (युगके प्रभाव) छू नहीं पाते। देखो पक्षिराज ! यद्यपि नट (बाजीगर)-का सारा कपट चरित्र (बाजीगरीका भयंकर खेल) देखनेवालोंको तो विकट लगता है, पर नटके सेवक उससे तनिक भी न तो घबराते न डरते। (राम भी बहुत बड़े नटराज हैं, जो सारे ब्रह्माण्डको बैठे नचाया करते हैं, पर उनके भक्तों, सेवकोंको उनकी माया नहीं छू पाती)। (४) भगवान् जो माया रचते हैं उनके दोष और गुण बिना भगवान्के भजनके दूर नहीं हो पा सकते, इसलिये सब कामनाएँ छोड़कर बैठे रामका भजन ही करते रहना चाहिए ॥ १०४ क ॥ हाँ, तो गरुड ! उसी कलिकालमें मैं बहुत वर्षोंतक अयोध्यामें ही रहता रहा। एक बार वहाँ ऐसा भयंकर अकाल पड़ा कि विपत्तिका मारा मैं भी (अयोध्या छोड़कर) विदेश जानेके निकल चला ॥ १०४ ख ॥ मैं अत्यन्त व्याकुल, उदास, फटे हाल और दुखी होकर (घूमता-भटकता) उज्जैन जा

१. ग्रनजुग होहिँ धर्म। २. प्रसन्न। ३. बिरोध।

१२७७-७८ प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनो बुद्धीन्द्रियाणि च। तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः॥भागवत
१२७९ यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम्। तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन्॥
१२८० यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः। कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः॥
१२८१-८२ यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम्। शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः॥भाग०

१२९० गए काल, कछु संपति पाई। तहँ पुनि करौं संभु-सेवकाई। (१)
बिप्र एक बैदिक सिव-पूजा। करै सदा, तेहि काज न दूजा।
परम साधु, परमारथ-बिंदक। संभु-उपासक, नहिं हरि-निंदक। (२)
तेहिं सेवौं मैं कपट-समेता। द्विज दयाल, अति नीति-निकेता।
बाहिज नम्र देखि मोहिं साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्रकी नाईं। (३)
संभु-मंत्र मोहिं द्विजबर दीन्हाँ। सुभ उपदेस बिबिध बिधि कीन्हाँ।
जपौं मंत्र सिव-मंदिर जाई। हृदय दंभ, अहमिति अधिकाई। (४)

दो०—मैं खल, मल-संकुल-मति, नीच, जाति, बस-मोह।
हरिजन-द्विज देखे जरौं, करौं बिस्नु-कर द्रोह ॥ १०५ क॥

सो०—गुरु नित मोहिं प्रबोध, दुखित, देखि आचरन मम।
१३०० मोहिं उपजै अति क्रोध, दंभिहिं नीति कि भावई ॥१०५ ख॥

एक बार गुरु लीन्ह बोलाई। मोहिं नीति बहु भाँति सिखाई।
सिव-सेवा-कै फल सुत! सोई। अबिरल भगति राम-पद होई। (१)
रामहिं भजहिं तात! सिव-धाता। नर पाँवर-कै केतिक बाता।
जासु चरन अज-सिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी। (२)
हर-कहँ हरि-सेवक गुरु कहेऊ। सुनि खगनाथ! हृदय मम दहेऊ।
अधम जाति मैं बिद्या पाए। भयउँ जथा अहि दूध पिआए। (३)

पहुँचा और कुछ दिनोंमें कुछ धन कमाकर मैं वहीं भगवान् शंकर (महाकाल)-की आराधना करने लगा। (१) वहीं एक ब्राह्मण भी दिनभर बैठे वैदिक विधिसे शिवकी पूजा करते रहते थे क्योंकि उन्हें उसे छोड़कर दूसरा कोई काम भी नहीं था। वे बड़े सज्जन और परमार्थके ज्ञाता (ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मका रहस्य जाननेवाले) थे। यों तो वे केवल शिवकी ही उपासना किया करते थे, पर कभी भूलकर भी श्रीहरिकी निन्दा नहीं करते थे। (२) मैं भी बगुलाभगत बना बैठा उन्हींकी सेवा करने लगा। ब्राह्मण बड़े ही दयालु थे और नीतिके अनुसार काम करते थे। मेरी बनावटी नम्रता देखकर (मुझे भला समझकर) वे मुझे पुत्रके समान पढ़ाते-लिखाते रहते थे। (३) वे संस्कारशील ब्राह्मण मुझे शिवका मंत्र देनेके साथ ही और भी अनेक प्रकारके अच्छे-अच्छे उपदेश समय-समयपर देते रहते थे। मैं भी शिवके मंदिरमें जाकर बैठा वही (उनका दिया हुआ) शिव-मंत्र जपा तो करता किन्तु मेरे हृदयमें दंभ और अहंकार बहुत भरा हुआ था। (४) मैं इतना दुष्ट, नीच और पापी था कि अपने अज्ञानके कारण जहाँ कोई हरि-भक्त या ब्राह्मण-दिखाई पड़ जाता कि मैं जल उठता था और विष्णु भगवान्‌को भी बड़ा बुरा-भला कहने लगता था ॥ १०५ क ॥ मेरे इस व्यवहारसे गुरु बहुत दुखी हुए रहते थे और मुझे नित्य ही बहुत समझाते-बुझाते रहते थे, किन्तु मैं था कि कुछ समझकर न देता था। इतना ही नहीं, उनका समझाना-बुझाना भी मुझे अच्छा नहीं लगता था। (आप जानते ही हैं कि) दंभी पुरुषको क्या कभी नीतिकी शिक्षा अच्छी लग पाती है ? ॥ १०५ ख ॥ एक बार गुरुने मुझे बुलाकर बहुत नीतिका उपदेश देते हुए कहा—'देख बेटा ! शिवकी सेवा करनेका लक्ष्य ही यही है कि रामके चरणोंमें अटल भक्ति उत्पन्न हो। (१) रामका भजन तो शिव और ब्रह्मा-तक भी करते रहते हैं, फिर नीच मनुष्यकी तो गिनती ही क्या है ? अरे अभागे ! जिनके चरणोंसे ब्रह्मा और शिव भी प्रेम करते रहते हैं, उन्हींसे द्रोह करके तू सुख पानेकी आस किए बैठा है ?' (२) गुरुने जब शिवको भी विष्णुका सेवक बता डाला तब तो मेरा जी जल उठा। मैं नीच जातिका तो था ही। विद्या पाकर मैं वैसा ही (मदान्ध) हो गया था जैसे दूध पिलानेसे सर्प (मोटा और विषैला) हो उठता है। (३) मैं तो बड़ा अभिमानी, कुटिल

मानी, कुटिल, कुभाग्य, कुजाती। गुरु-कर द्रोह करौं दिन-राती।
अति दयाल गुरु, स्वल्प न क्रोधा। पुनि-पुनि मोहिं सिखाव सुबोधा। (४)
जेहि-तें नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहिं हठि, ताहि नसावा।
१३१० धूम अनल-संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन-पदवी पाई। (५)
रज, मग-परी निरादर रहई। सब-कर पद-प्रहार नित सहई।
मरुत उड़ाव, प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप-नयन-किरीटन्हि परई। (६)
सुनु खगपति! अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम-कर संगा।
कबि-कबिद गावहिं अस नीती। खल-सन भल न कलह, नहिं प्रीती[१]। (७)
उदासीन नित रहिय गोसाईं। खल परिहरिय स्वान-की नाईं।
मैं खल, हृदय कपट-कुटिलाई। गुरु, हित कहैं, न मोहिं सोहाई। (८)

दो०—एक बार हर-मंदिर, जपत रहेउँ सिव-नाम।
गुरु आएउ, अभिमान-तें, उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥ १०६ ख॥
सो दयाल, नहिं कहेउ कछु, उर न रोष-लव-लेस।
१३२० अति अघ गुरु-अपमानता[२], सहि नहिं सके महेस॥ १०६ ख॥

मंदिर-माँझ भई नभ-बानी। रे हतभाग्य! अज्ञ! अभिमानी।
जद्यपि तव गुरु-के नहिं क्रोधा। अति कृपाल-चित, सम्यक-बोधा। (१)
तदपि साप सठ! दइहउँ तोहीं। नीति-बिरोध सुहाइ न मोहीं।

और नीच जातिका था, इसलिये दिन-रात गुरुसे कहा-सुनी करता रहता था। किन्तु वे इतने अधिक दयालु थे कि उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था। वे जब होता तब मुझे बार-बार समझाया ही करते रहते थे। (पर आप जानते हैं कि) नीच मनुष्यका कुछ स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो उसका भला करता है, उसे ही वह पहले ठिकाने लगानेपर तुल जाता है जैसे आगसे उत्पन्न हुआ धुआँ बादल बनकर उसी (आग)-को बुझा डालता है। (५) मार्गमें पड़ी हुई धूल इतना निरादर पाती रहती है कि दिन रात सबकी लात सहती रहती है। पर जब पवन उसे ऊँचे उड़ा ले चलता है तो सबसे पहले वह (धूल) उसी पवनमें भरकर उसे धुँधला कर डालती है और फिर उड़कर राजाकी आँखोंमें पड़ती और उसके मुकुटपर जा जमती है। (६) ऐसी-ऐसी बातें सुन और गुनकर ही बुद्धिमान् लोग नीचोंके साथ कभी नहीं उठते-बैठते। कवि और विद्वान् यह नीतिकी बात बतलाते हैं कि दुष्टसे न तो झगड़ा ही मोल लेना अच्छा है न प्रेम करना ही। (७) इनसे तो सदा दो पग दूर ही रहना चाहिए। दुष्टोंसे तो कुत्तेके समान बचकर ही रहना चाहिए।' एक तो मैं यों ही दुष्ट था, दूसरे मेरा हृदय भी बड़ा कपटी और कुटिल था। गुरु जो कुछ भी मेरे हितकी बात कहते, वह मुझे कभी एक न भाती। (८) एक बारकी बात है। मैं शिवके मंदिरमें बैठा शिवका नाम जपे जा रहा था। इसी बीच वहाँ गुरु भी आ पहुँचे। मैं अपने अभिमानमें ऐंठा बैठा ही गया रहा। मैंने उठकर उन्हें प्रणामतक न किया॥१०६क॥ गुरु तो बड़े दयालु थे। वे न तो कुछ बोले ही और न उनके हृदयमें क्रोध ही हुआ। पर गुरुका यह अपमान इतना बड़ा पाप था कि शिव इसे सहन न कर सके॥ १०६ ख॥ उसी समय शिवके मन्दिरमें यह आकाशवाणी हुई—'अरे अभागे मूर्ख! अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरुके मनमें क्रोध नहीं है और वे अत्यन्त कृपालु और पूर्ण ज्ञानी हैं—(१) तो भी दुष्ट! मैं तुझे शाप दिए डालता हूँ, क्योंकि मुझे नीतिके विरुद्ध काम कभी अच्छा नहीं लगता। दुष्ट! यदि मैं तुझे दण्ड नहीं

१. खल सन कलह न भल नहिं प्रीती। २. अपमान तें।

जौ नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुति-मारग मोरा। (२)
जे सठ गुरु-सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।
त्रिजक-जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जनम भरि पावहिं पीरा। (३)
बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल! मल मति ब्यापी।
महा-बिटप-कोटर-महँ जाई। रहु अधमाधम! अध-गति पाई। (४)
दो०—हाहाकार कीन्ह गुरु, दारुन सुनि सिव-स्राप।
१३३० कंपित मोहिं बिलोकि अति, उर उपजा परिताप॥ १०७ क॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज, सिव-सनमुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद गिरा[1], समुझि घोर गति मोरि॥ १०७ ख॥
छंद—नमामीशमीशान-निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं। (१)
निराकारमोंकार-मूलं तुरीयं। गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकालकालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं। (२)
तुषाराद्रि-संकाश-गौरं गभीरं। मनोभूत-कोटि-प्रभा-श्री-शरीरं।
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी-चारु गंगा। लसद्भाल-बालेंदु कंठे भुजंगा। (३)
चलत्कुंडलं भ्रू-सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।

दूँगा, तो मेरा वेद-मार्ग ही भ्रष्ट हो जायगा। (२) जो मूर्ख गुरुसे ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगोंतक रौरव नरकमें पड़े सड़ते रहते हैं। फिर (वहाँसे निकलते भी हैं तो) वे तिर्यक् (पशु-पक्षी आदिकी) योनियोंमें जन्म लेकर दस हजार जन्मों-तक दुःख ही दुःख भोगते रहते हैं। (३) अरे पापी! तेरी बुद्धि इतनी पापसे ढकी हुई है कि तू (अपने गुरुके सामने) अजगरके समान अकड़ा बैठा रहा। इसलिये दुष्ट! जा, तत्काल जाकर तू सर्प हो जा। अरे महानीच! यह अधोगति (नीच योनि) पाकर तू किसी बड़ेसे वृक्षके खोखलेमें जा पड़।' (४) शिवका यह भयंकर शाप सुनते ही गुरु हाहाकार कर उठे और मुझे (भयसे) काँपते देखकर उनका हृदय पसीज उठा॥ १०७ क॥ ब्राह्मण (गुरु)-ने बड़े प्रेमसे शिवके आगे दण्डवत् करके और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर, मेरी भयंकर विपत्तिका विचार करके अत्यन्त गद्गद वाणी (भर्राए गलेसे)-से इस प्रकार स्तुति प्रारंभ कर दी॥ १०७ ख॥ 'हे ईशान दिशाके ईश्वर! हे मोक्षके साक्षी स्वरूप! विभु! व्यापक! ब्रह्म! और वेद-मूर्ति शिव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे आत्मस्वरूप! मायाके सब गुणोंसे अछूते, भेदरहित, इच्छा-रहित चेतन आकाश रूपवाले, आकाश-वास (आकाश ही जिनका वस्त्र है ऐसे) शिव! मैं आपके शरणमें हूँ। हे निराकार, ओंकारके आधार, तुरीय (तीनों गुणोंसे प्रभावित न होनेवाले), वाणी, ज्ञान और इन्द्रियोंकी पहुँचसे दूर, कैलासपति, विकराल, महाकालके भी काल, कृपालु, गुणोंके भंडार, संसारसे दूर रहनेवाले शिव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। (२) हिमालय पर्वतके समान गौर वर्णवाले, गम्भीर, करोड़ों कामदेवोंके समान सौन्दर्य और शोभासे भरे शरीरवाले वे शिव जिनके सिरपर सुन्दर गंगाजी कलकल करती हुई लहरा रही हैं, जिनके ललाटपर बाल चन्द्रमा तथा कंठमें सर्प शोभा दे रहा है, (३) जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, जिनकी भौंहें बड़ी सुन्दर और नेत्र विशाल हैं, जिनका मुख प्रसन्न रहता है, जो नीलकंठ और दयालु हैं, जो सिंहकी खाल

१. स्वर।

१३२५-२६ गुरोरवज्ञां यः कश्चित् कुरुते ज्ञानदुर्बलः। न तस्य नरकान्मुक्तिः कल्पान्तेऽपि भविष्यति॥रामाश्व.

१३४० मृगाधीश - चर्मांबरं मुंडमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि। (४)
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।
त्रयःशूलनिर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानी-पतिं भाव-गम्यं। (५)
कलातीत - कल्याण - कल्पांतकारी। सदा सज्जनानंद-दाता पुरारी।
चिदानंद - संदोह, मोहापहारी। प्रसीद, प्रसीद, प्रभो! मन्मथारी। (६)
न यावद् उमानाथ-पादारविंदं। भजंतीह लोके परे वा नराणां।
न तावत्सुखं शांति संतापनाशं। प्रसीद प्रभो! सर्वभूताधिवासं। (७)
न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा, सर्वदा, शंभु तुभ्यं।
जरा - जन्म - दुःखौघ - तातप्यमानं। प्रभो! पाहि, आपन्न मामीश! शंभो। (८)

श्लोक—रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
१३५० ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥ अ॥

दो०—सुनि बिनती सर्बज्ञ सिव, देखि बिप्र-अनुरागु।
पुनि मंदिर नभ-बानी, भइ, द्विजबर! बर माँगु[1]॥ १०८ क॥
जौं प्रसन्न प्रभु मो-पर, नाथ! दीन - पर नेहु।
निज-पद-भगति देइ प्रभु, पुनि दूसर बर देहु॥ १०८ ख॥

ओढ़े रहते और मुंडोंकी माला पहने रहते हैं और जो सबके स्वामी हैं उन प्रिय शंकरका मैं भजन करता हूँ। (४) जो प्रचण्ड (रुद्र-रूप), श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखण्ड और अजन्मा हैं, जिनका प्रकाश करोड़ों सूर्योंके समान है, जो तीनों तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक)-को जड़से नष्ट कर डालते हैं, जो हाथमें त्रिशूल लिए रहते हैं, जो सच्चे भावसे ही प्राप्त हो पाते हैं, ऐसे भवानीके पति शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ। (५) सब कलाओंसे अछूते, कल्याण रूपवाले, कल्पका अन्त (प्रलय) कर सकनेवाले, सज्जनोंको सदा आनन्द देनेवाले, त्रिपुरके शत्रु, सच्चिदानन्दघन, सारा मोह दूर करनेवाले, कामदेवके शत्रु, हे प्रभो! प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए। (६) हे पार्वतीके पति! जब-तक मनुष्य आपके चरण-कमलोंका भजन नहीं करते, तबतक उन्हें न तो इस लोकमें सुख-शान्ति मिल पाती है, न परलोकमें और न उनके ताप ही दूर हो पाते हैं। अतः, समस्त जीवोंके हृदयोंमें निवास करनेवाले प्रभो! आप प्रसन्न हो जाइए। (७) मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और और न पूजा ही। शम्भो! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता रहता हूँ। प्रभो! बुढ़ापे तथा बार-बार जन्म लेनेके दुःखोंसे जलते हुए मुझ दुखीको इस दुःखसे बचा लीजिए। हे ईश्वर! शम्भो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।' (८) शंकर भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेके लिये जो यह रुद्राष्टक (रुद्रकी स्तुतिके आठ श्लोक) ब्राह्मणने पढ़े, इनका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पाठ करता रहे उनपर भगवान् शंभु सदा प्रसन्न हुए रहते हैं। (अ) सर्वज्ञ शिवने जब ब्राह्मणकी विनति सुनी और उनका प्रेम देखा तो मंदिरमेंसे आकाश-वाणी हुई—'दयालु ब्राह्मण! वर माँगो'॥ १०८ (क)॥ (ब्राह्मणने कहा—) 'प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और इस दीन (शिष्य)-पर आपका स्नेह है, तो प्रभो! मुझे बस अपने चरणोंकी भक्ति दे दीजिए। और दूसरा एक वर और दीजिए॥ १०८ ख॥

१. मंदिर नभ-बानी भई, द्विजबर अब बर माँगु।

१३५३-५४ यदि देव वरो देयो मम दीनस्य वै त्वया। प्रयच्छ त्वं निजे पादपद्मे भक्तिमनुत्तमाम्॥ पद्मपु०
तुष्टः कस्यचिदेवेहि मिथ्या वाङ्न भवेन्मम॥ —महाभारत

तव माया-बस जीव जड़, संतत फिरै भुलान।
तेहि-पर क्रोध न करिय प्रभु, कृपासिंधु ! भगवान ॥ १०८ ग ॥
संकर ! दीनदयाल ! अब, यहि-पर होहु कृपाल।
साप-अनुग्रह होइ जेहि, नाथ ! थोर ही काल ॥ १०८घ ॥

यहि-कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।
१३६० बिप्र-गिरा सुनि पर-हित-सानी। एवमस्तु इति भइ नभ-बानी। (१)
जदपि कीन्ह ऐहि दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि स्रापा।
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहौं ऐहि-पर कृपा बिसेखी। (२)
छमासील जे पर-उपकारी। ते द्विज मोहिं प्रिय जथा खरारी।
मोर साप द्विज व्यर्थ न जाइहि। जनम सहस्र अवसि[1] यह पाइहि। (३)
जनमत-मरत दुसह दुख होई। ऐहि स्वल्पौ नहिं व्यापिहि सोई।
कवनेउ जनम मिटिहि नहिं ज्ञाना। सुनहि सूद्र ! मम बचन प्रमाना। (४)
रघुपति-पुरी जनम तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दयऊ।
पुरी-प्रभाव, अनुग्रह मोरे। राम-भगति उपजिहि उर तोरे। (५)
सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि-तोषन-व्रत, द्विज-सेवकाई।
१३७० अब जनि करहि बिप्र-अपमाना। जानेसु संत अनंत-समाना। (६)
इंद्र-कुलिस, मम सूल बिसाला। कालदंड, हरि-चक्र कराला।

इस मूर्ख जीव (शिष्य)-को आपकी मायाने ऐसे चक्करमें डाल दिया है कि यह सदा आपको भूला रहता है (ठीक-ठीक समझ नहीं पाता)। प्रभो ! कृपालु भगवान् ! आप इस मेरे शिष्य-पर क्रोध न कीजिए ॥ १०८ ग ॥ दीनोंपर दया करनेवाले शंकर भगवान् ! अब इसपर ऐसी कृपा कीजिए कि थोड़े ही दिनोंमें यह शापसे मुक्त हो जाय ॥ १०८ घ ॥ कृपानिधान ! अब आप ऐसी कृपा कीजिए जिससे इसका परम कल्याण हो।' दूसरेका हित करनेकी भावनासे भरी हुई ब्राह्मणकी वाणी सुन चुकनेपर आकाशवाणी सुनाई दी—(१) 'एवमस्तु। (अच्छा ! ऐसा ही हो)। यद्यपि इसने पाप तो बड़ा भयंकर किया है और मैंने भी इसे क्रोधमें ही आकर शाप दे डाला है, फिर भी तुम्हारी सज्जनता देखकर मैं इसपर विशेष कृपा अवश्य किए देता हूँ। (२) क्षमाशील और परोपकारी ब्राह्मण तो मुझे रामके ही समान प्रिय हैं। देखो ब्राह्मण ! मेरा शाप तो व्यर्थ जायगा नहीं। इसे एक हज़ार जन्म तो लेने ही पड़ेंगे, (३) पर जन्म और मरणके समय जो विशेष कष्ट हुआ करता है, वह (कष्ट) इसे तनिक भी न होगा और किसी भी जन्ममें इसका ज्ञान नहीं मिटेगा।' फिर वाणीने मुझसे कहा—'अरे शूद्र ! तू मेरा यह (सत्य) वचन सुन ले। (४) एक तो तेरा जन्म रामकी पुरी (अयोध्या)-में हुआ है और फिर, तू मनसे मेरी सेवा करता रहा है; अतः, पुरीके प्रभाव और मेरी कृपासे तेरे हृदयमें रामकी भक्ति उत्पन्न हो ही जायगी। (५) देख ! अब मेरा यह सत्य वचन तू ध्यानसे सुन ले। भगवान्को प्रसन्न करना चाहता हो तो अबसे भी द्विजोंकी सेवाका व्रत ले-ले। अब कभी आजसे (भूलकर भी) ब्राह्मणोंका अपमान न करना। सब सन्तोंको भगवान्के ही समान समझना। (६) (यह समझ ले कि) जो प्राणी इन्द्रके व्रज, मेरे विशाल त्रिशूल, कालके दण्ड और भगवान्के चक्रसे

१ सहस अवस्य।

१३६७-६८ लब्ध्वा जन्म हरेःपुर्यां त्वयाहमर्चितोऽभवम्। मदीयानुग्रहेणैव लब्धभक्तिर्भविष्यति॥ —पद्मपु०

जो इन्ह - कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह - पावक सो जरई। (७)
अस बिबेक राखेहु मन - माहीं। तुम्ह-कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।
औरौ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। (८)

दो०—सुनि सिव-बचन हरषि गुरु, एवमस्तु इति भाखि।
मोहिं प्रबोधि गयउ गृह, संभु - चरन उर राखि ॥ १०९ क ॥
प्रेरित काल बिंधि-गिरि[1], जाइ भयउँ मैं ब्याल।
पुनि प्रयास-बिनु सो तनु, तजेउँ, गए कछु काल ॥ १०९ ख ॥
जोइ तनु धरौं, तजौं पुनि, अनायास, हरि - जान।
१३८० जिमि नूतन पट पहिरे, नर परिहरै पुरान ॥ १०९ ग ॥
सिव राखी श्रुति-नीति, अरु, मैं नहिं पाव कलेस।
ऐहि बिधि धरेउँ त्रिबिध तनु, ज्ञान न गयउ खगेस ॥ १०९ घ ॥

त्रिजग - देव - नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ-तहँ राम-भजन अनुसरऊँ।
एक सूल मोहिं बिसर न काऊ। गुरु-कर कोमल सील - सुभाऊ। (१)
चरम देह द्विज - कै मैं पाई। सुर-दुरलभ पुरान - स्रुति गाई।
खेलौं तहूँ बालकन्ह मीला। करौं सकल रघुनायक - लीला। (२)
प्रौढ़ भए मोहिं पिता पढ़ावा। समुझौं, सुनौं, गुनौं, नहिं भावा।

भी नहीं मर पाता वह ब्राह्मणके द्रोहकी अग्निमें भस्म हो मिटता है (ब्राह्मणका विरोध करनेसे नष्ट हो जाता है)। (७) तूने यदि यह विवेक अपने हृदयमें बनाए रक्खा तो संसारमें तुझे कुछ भी दुर्लभ न रहेगा। मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि तू जहाँ कहीं भी जाना चाहेगा, वहाँ बिना रोक-टोकके पहुँच जा सकेगा।' (८) शिवका वचन (आकाश-वाणी) सुनकर गुरु बहुत प्रसन्न होकर बोले—'इतना ही सही' (इतनेसे ही यह मुक्त हो जाय तो बहुत है)। फिर वे मुझे बहुत समझा-बुझाकर और शिवके चरणोंमें ध्यान लगाए हुए अपने घर चले गए ॥ १०९ क ॥ कुछ दिनोंपर मैं विन्ध्य पर्वतपर सर्प होकर जा जनमा जहाँ बिना प्रयासके ही कुछ समय बीतनेपर मैंने वह (सर्पका) शरीर भी छोड़ दिया ॥ १०९ ख ॥ देखो गरुड ! मैं जो-जो शरीर पाता गया उसे बिना परिश्रमके ही वैसे ही छोड़ता गया जैसे कोई मनुष्य पुराना वस्त्र उतारकर नया वस्त्र पहन ले ॥ १०९ ग ॥ उधर शिवने भी (मुझे शाप देकर) वेदकी मर्यादाकी रक्षा कर ली और इधर मुझे भी (उनके आशीर्वादसे जन्म लेने और शरीर छोड़नेमें) कोई क्लेश नहीं हुआ। इस प्रकार मैंने अनेक शरीर धारण तो किए पर मुझे प्रत्येक शरीरका ज्ञान ज्योंका त्यों बना रहा ॥ १०९ घ ॥ इस प्रकार मैं पशु-पक्षी, देवता और मनुष्य आदिके जो-जो शरीर धारण करता रहा, उस-उस शरीरसे मैं निरन्तर रामका भजन करता रहा। पर मेरे हृदयमें एक बात बराबर कचोटती रहती थी और मैं यह कभी नहीं भूल पाया कि (१) जिस कोमल स्वभाववाले और शीलवान् मेरे गुरुने शिवके भयंकर शापसे मुझे बचाया था उनकी मैं कोई सेवा न कर पाया, उनका कोई हित न कर सका। अन्तमें मैंने ब्राह्मणका शरीर भी पा लिया जिसे पुराण और वेद सभी देव-दुर्लभ (देवताओंको भी कठिनाईसे मिलनेवाला) शरीर बतलाते हैं। वहाँ भी मैं बालकोंको साथ लेकर रामकी ही लीलाओंका खेल खेलता रहा। (२) जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो पिताजी मुझे स्वयं विद्या पढ़ाने लगे। मैं सब कुछ सुनता, समझता और विचारता तो रहता था पर पढ़नेमें मेरा मन ही नहीं

1. सुबिंधि गिरि।

मन - तें सकल बासना भागी । केवल राम-चरन लय लागी । (३)
कहु खगेस ! अस कवन अभागी । खरी सेव, सुरधेनुहिं त्यागी ।
१३९० प्रेम - मगन मोहिं कछु न सोहाई । हारेउ पिता पढ़ाइ - पढ़ाई । (४)
भए काल - बस जब पितु - माता । मैं बन गयउँ भजन जन - त्राता ।
जहँ-जहँ बिपिन मुनीस्वर पावौं । आश्रम जाइ-जाइ सिर नावौं । (५)
बझौं तिन्हहिं राम-गुनगाहा । कहहिं, सुनउँ हरषित खग - नाहा ।
सुनत फिरौं हरिगुन - अनुबादा । अव्याहत गति संभु - प्रसादा । (६)
छूटी त्रिबिध ईषना गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ।
रामचरन - बारिज जब देखौं । तब निज जनम सफल करि लेखौं । (७)
जेहि पूछौं, सोइ मुनि अस कहई । ईस्वर सर्ब - भूतमय अहई ।
निर्गुन मत नहिं मोहिं सुहाई । सगुन ब्रह्म - रति उर अधिकाई । (८)
दो०—गुरु - के बचन सुरति करि, राम - चरन मन लाग ।
१४०० रघुपति - जस गावत फिरौं, छन-छन नव अनुराग ।। ११० क ।।
मेरु - सिखर बट-छाया, मुनि लोमस आसीन ।
देखि चरन सिर नायउँ, बचन कहेउँ अति दीन ।। ११० ख ।।

लग पाता था । रामके चरणोंमें मन लगानेके अतिरिक्त मेरे मनकी सारी इच्छाएँ जाती रहीं । (३) आप ही बताइए गरुड ! ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनुको छोड़कर गदहीकी सेवा-टहल करेगा ? पिता मुझे पढ़ा-पढ़ाकर थक गए पर मैं रामके प्रेममें ऐसा मगन रहने लगा था कि मुझे (रामका भजन छोड़कर) कुछ अच्छा ही न लगे । (४) जब मेरे माता-पिता चल बसे तब मैं भी सब छोड़-छाड़कर भक्तोंकी रक्षा करनेवाले रामका भजन करनेके लिये वन चला गया । वहाँ पहुँचनेपर जहाँ-जहाँ मुझे मुनीश्वरोंके आश्रम मिलते वहाँ-वहाँ पहुँचकर मैं जा प्रणाम करता, (५) उनसे रामके गुणोंकी कथाएँ पूछता, वे सुनाते और मैं प्रसन्न हो-होकर सुना करता । इस प्रकार मैं निरन्तर रामके गुणोंकी कथा सुनता रहा । शिवकी कृपासे मेरी गति तो सर्वत्र अबाध हो ही गई थी (मैं जहाँ चाहता वहाँ बे-रोक-टोक चला जा सकता था), (६) मेरी तीनों प्रकारकी प्रगाढ कामनाएँ (पुत्र, धन और यश पानेकी) भी जाती रहीं और केवल एक ही लालसा मेरे मनमें बढ़ती चली गई कि मैं किसी प्रकार रामके चरण-कमल देख पाऊँ तभी अपना जन्म सफल समझूँ । (७) मैं जिस मुनिसे भी पूछता वही यही कहता कि ईश्वर तो सभी प्राणियोंमें व्याप्त है । उनका यह निर्गुण मत (ईश्वरको केवल निर्गुण मानना) मुझे अच्छा ही नहीं लगता था । मेरे हृदयमें तो सगुण ब्रह्मके प्रति ही प्रेम बढ़ता चला जा रहा था । (८) अपने गुरुके वचन स्मरण कर-करके मेरा मन रामके ही चरणोंमें जा लगा । मेरे हृदयमें प्रतिक्षण (रामके चरणोंमें) नया ही नया प्रेम उमड़ता चला जा रहा था और मैं दिन-रात रामके यशका ही स्मरण करता हुआ इधर-उधर घूमता रहता था ।। ११० क ।। एक बार सुमेरु पर्वतकी चोटीपर पहुँचकर मैं देखता क्या हूँ कि बरगदकी छायामें लोमश ऋषि आसन मारे बैठे हुए हैं । उन्हें देखकर मैंने उनके चरणोंमें जा प्रणाम किया और अत्यन्त दीनताके साथ अपना

१३८९-९० को वा एवंविधो मन्दस्त्यक्त्वा धेनुं पयस्विनीम् । रासभीं क्षीरसंपन्नां सेवतेस्म फलाशया ।।
१३९१-९२ पितर्य्युपरिते पश्चात्तपस्तप्तुं वनं गतः । तत्राश्रमाण्यनेकानि पश्यतिस्म तपस्विनाम् ।।भरद्वा.रा
१४०१-२ तत्र वीक्ष्य मुनिश्रेष्ठमूचे हुतहुताशनम् । प्रणम्य दण्डवत् तस्य चरणौ पापहारिणौ ।। रामाश्व०

सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपाल, खगराज।
मोहिँ सादर पूछत भए, द्विज! आयहु केहि काज॥ ११० ग॥
तब मैं कहा, कृपानिधि, तुम सर्बज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्म - अवराधन[1], मोहिँ कहहु भगवान॥ ११० घ॥

तब मुनीस रघुपति-गुन - गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा।
ब्रह्म - ज्ञान - रत मुनि बिज्ञानी। मोहिँ परम अधिकारी जानी। (१)
लागे करन ब्रह्म - उपदेसा। अज, अद्वैत, अगुन हृदयेसा।
१३१० अकल, अनीह, अनाम, अरूपा। अनुभव - गम्य, अखंड, अनूपा। (२)
मन - गो - तीत, अमल, अबिनासी। निर्बिकार, निरवधि, सुख - रासी।
सो तैं, ताहि तोहिँ नहिँ भेदा। बारि - बीचि - इव गावहिँ बेदा। (३)
बिबिध भाँति मोहिँ मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा।
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन - उपासन कहहु मुनीसा। (४)
राम - भगति - जल, मम मन मीना। किमि बिलगाइ, मुनीस प्रबीना।
सोइ उपदेस कहहु[2] करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया। (५)
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन - उपदेसा।
मुनि पुनि कहि हरि - कथा अनूपा। खंडि सगुन मत, अगुन निरूपा। (६)

परिचय भी दे डाला॥ ११० ख॥ मेरे अत्यन्त विनय और प्रेम-भरे वचन सुनकर कृपालु मुनिने बड़े आदरसे मुझसे पूछा—'कहो ब्राह्मण! आप यहाँ मेरे पास पधारे किस लिये हैं?॥ ११० ग॥ तब मैंने अत्यन्त विनय-पूर्वक उनसे निवेदन किया—'कृपालु! आप सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हैं। मुझे यह बतानेकी कृपा कीजिए कि सगुण ब्रह्मकी आराधना किस प्रकार की जाती है'॥ ११० घ॥ देखो गरुड! यह सुनते ही मुनिने बड़े आदरसे रामके गुणोंकी कुछ थोड़ी-सी कथाएँ कह सुनाईं। ब्रह्म-ज्ञानी और विज्ञानी मुनिने मुझे अधिकारी (ज्ञान प्राप्त करने योग्य) समझकर (१) ब्रह्मका परिचय देते हुए मुझसे कहा कि 'वह (ब्रह्म) अजन्मा, अद्वैत (केवल एक), निर्गुण और सबके हृदयोंपर शासन करता है। उसमें न कला है, न इच्छा है, न उसका नाम है, न रूप है। उसे केवल अनुभवसे ही जाना जा सकता है। वह अखण्ड (पूर्ण) है और उसके समान कोई दूसरा है ही नहीं। (२) मन और इन्द्रियसे भी उसका ज्ञान नहीं हो पा सकता। वह निर्मल है, उसका कभी नाश नहीं होता, उसमें कोई विकार नहीं आता, उसकी कोई सीमा नहीं है और वह सब पूराका पूरा सुख ही सुख है। वेद कहते हैं कि 'वही तू है' (तत्त्वमसि)। जैसे जल और जलकी लहर दो वस्तुएँ नहीं है वैसे ही उसमें और तुझमें कोई अन्तर नहीं है।' (३) यद्यपि मुनिने मुझे बहुत प्रकारसे समझाया फिर भी उनका निर्गुण-मत मेरे हृदयमें जमकर न दिया। इसलिये मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'मुनीश्वर! मुझे आप (निर्गुणके के बदले) सगुण ब्रह्मकी उपासना (-का रहस्य) समझाइए (४) प्रवीण मुनीश्वर! मेरा मन तो रामकी भक्तिके जलमें मछली बना ऊभचूभ करता रहता है, इसलिये वह उससे अलग कैसे हो सकता है? आप मुझपर कृपा करके ऐसा ही उपदेश दीजिए जिससे मैं इन्हीं आँखोंसे रामके दर्शन कर पा सकं। (५) मैं एक बार भर-आँखों (रामको देख लूं) तब आपका यह निर्गुण उपदेश (अवश्य जी भरकर) सुनूंगा।' पर मुनि तो श्रीहरिकी अनुपम कथा कहकर भी सगुण मतका खण्डन करके निर्गुणका ही समर्थन करते जा रहे थे। (६) तब मैं भी हठ पकड़कर निर्गुण मतका

१. आराधना। २. करहु।

तब मैं निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपौं करि हठ भूरी।
१४२० उत्तर-प्रतिउत्तर मैं कीन्हाँ। मुनि-तन भए क्रोध-के चीन्हाँ। (७)
सुनु प्रभु! बहुत अवज्ञा किए। उपज क्रोध ज्ञानिन[1] के हिए।
अति संघरषन जो कर कोई। अनल प्रगट चंदन-तें होई। (८)
दो०—बारंबार सकोप मुनि, करै निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं बिबिध अनुमान॥ १११ क॥
क्रोध कि द्वैत बुद्धि-बिनु, द्वैत कि बिनु-अज्ञान।
माया-बस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान॥ १११ ख॥
कबहुँ कि दुख, सब-कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र, परसमनि जाके।
परद्रोही की होइ निसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका। (१)
बंस कि रह द्विज-अनहित कीन्हें। करम कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हें[2]।
१४३० काहू सुमति कि खल-सँग जामी। सुभ गति पाव कि पर-त्रियगामी। (२)
भव कि परहि परमातम-बिंदक[3]। सुखी होइ कबहुँ कि हरि-निंदक[4]।
राज कि रहै नीति बिनु जाने। अघ कि रहै हरि-चरित बखाने। (३)

विरोध करता हुआ सगुणके पक्षपर डट गया। जब मैं उनसे बहुत मुँहा-मुँही (उत्तर-प्रत्युत्तर) करने लगा तब तो मुनि बिगड़ खड़े हुए। (७) आप जानते ही हैं कि बहुत अपमान करनेपर तो ज्ञानीके हृदयमें भी क्रोध वैसे ही भड़क उठता है जैसे चन्दनको भी बहुत रगड़नेसे आग जाग उठती है। (८) जब मुनि बड़े क्रोधमें भरे हुए बार-बार ज्ञान (निर्गुण ब्रह्म)-का ही विवेचन किए चले जाने लगे तब मैं बैठा-बैठा इसी उधेड़-बुनमें पड़ा सोचने लगा—॥ १११ क॥ 'जबतक द्वैतबुद्धि (ईश्वर और जीवको अलग-अलग माननेकी भावना) न हो तबतक क्या कभी क्रोध हो सकता है? (द्वैत बुद्धिसे ही क्रोध होता है)। अज्ञान बना रहनेपर क्या कभी द्वैतबुद्धि दूर हो सकती है? जो जड जीव सदा मायाके हाथकी कठपुतली बना नाचा करता है वह क्या कभी ईश्वरके समान हो पा सकता है?॥ १११ ख॥ जो सबका हित चाहे उसे क्या कभी दुःख हो सकता है? जिसके पास पारस मणि हो वह क्या कभी दरिद्र हो सकता है? जो दूसरोंसे द्रोह करता हो वह क्या कभी निर्भय हो सकता है? कामी पुरुष क्या कभी निष्कलंक रह सकता है? (१) ब्राह्मणको हानि पहुँचानेसे क्या किसीका वंश बचा रह सकता है? आत्म-स्वरूपका ज्ञान हो जानेपर भी क्या कोई कर्म करनेकी आवश्यकता रह जाती है? दुष्टोंके साथ रहकर भी क्या किसीकी बुद्धि ठिकाने रह पाती है? दूसरेकी स्त्रीको फँसानेवालेको क्या कभी उत्तम गति मिल पाती है? (२) जो परमात्माको जानता है वह क्या कभी सांसारिक जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ सकता है? क्या भगवान्‌की निन्दा करनेवालेको कभी सुख मिल सकता है? क्या राजनीति जाने बिना कभी किसीका राज्य टिका रह सकता है? क्या भगवान्‌का चरित्र कहनेवालेके पास कभी पाप ठहर सकता है? (३) क्या बिना पुण्य-कर्मके किसीको उज्ज्वल यश प्राप्त हो सकता है? बिना

१. ज्ञानिहु। २. रूप बिनु चीन्हे। ३. परमातम निंदक ४. पर-निंदक। सुखी कि होहि कबहुँ हरि-निंदक।

१४२३-२४ पुनः पुनः सरोषेण निर्गुणब्रह्मनिर्णयः। कृतस्तेन मुनीन्द्रेण नाबोधि विष्णुवाहन॥—स्कन्दपु०
१४२७-२८ संसारसंरक्षणतत्पराणां दुःखं कथं स्यात्खलु सज्जनानाम्।
चिन्तामणिस्पर्शनतो दरिद्रता कुतोनुकीर्तिर्भुवि कामुकानाम्॥
१४२९-३० पराभवास्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः॥ —भागवत

पावन जस कि पुन्य - बिनु होई । बिनु - अघ अजस कि पावै कोई ।
लाभ कि किछु हरि - भगति समाना । जेहि गावहिं स्रुति - संत - पुराना (४)
हानि कि जग ऐहि सम कछु भाई । भजिय न रामहिं नर - तनु पाई ।
अघ कि पिसुनता-सम कछु आना[1] । धर्म कि दया - सरिस हरि-जाना । (५)
ऐहि बिधि अमिति जुगुति मन गुनेऊँ । मुनि - उपदेस न सादर सुनेऊँ ।
पुनि - पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा । तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा । (६)
मूढ़ ! परम सिख देउँ, न मानसि । उत्तर - प्रतिउत्तर बहु आनसि ।
१४४० सत्य बचन बिस्वास न करही । बायस - इव सबही - तें डरही । (७)
सठ ! स्वपच्छ तव हृदय बिसाला । सपदि होहि पच्छी चंडाला ।
लीन्हिं साप मैं सीस चढ़ाई । नहिं कछु भय, न दीनता आई । (८)

दो०—तुरत भयउँ मैं काग तब , पुनि मुनि-पद सिर नाइ ।
सुमिरि राम रघुबंस - मनि , हरषित चलेउँ उड़ाइ ।। ११२ क ।।

दो०—उमा ! जे राम-चरन-रत , बिगत - काम-मद-क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत , केहि-सन करहिं बिरोध ।। ११२ ख ।।

सुनु खगेस ! नहिं कछु रिपि-दूषन । उर - प्रेरक रघुबंस - बिभूषन ।
कृपासिंधु मुनि - मति करि भोरी । लीन्हीं प्रेम - परीच्छा मोरी । (१)
मन - बच - क्रम मोहिं निज जन जाना । मुनि - मति पुनि फेरी भगवाना ।

पाप किए क्या किसीको अपयश मिल पा सकता है ? वेद, पुराण और सन्तजन भगवान्‌की जिस भक्तिकी महिमा कहते रहते हैं उसके समान क्या और भी कोई दूसरा लाभ है ? (४) देखो भाई ! मनुष्यका शरीर पाकर भी जो रामका भजन न करे, इससे बढ़कर संसारमें उसकी और क्या हानि हो सकती है ? चुगलखोरीके समान क्या कोई दूसरा पाप है ? बताओ गरुड ! क्या दयाके समान कोई दूसरा धर्म है ?' (५) इस प्रकार बैठा-बैठा मैं अपने मनमें न जाने कितनी बातें सोचा करता और मुनिके उपदेशपर कोई ध्यान ही न देता । जब होता तब मैं सगुण पक्षका ही समर्थन करता जाता । तब लोमश मुनिने क्रोधमें आकर कहा—(६) 'अरे मूर्ख ! मैं जो तुझे शिक्षा देता हूँ वह तू मानता नहीं और मुझसे जीभ लड़ाए चला जाता है । तू सत्य वचनपर विश्वास नहीं करता और कौवेके समान सबपर सन्देह किए जाता है । (७) अरे मूर्ख ! तुझे अपने पक्ष (सगुण-पक्ष)-का इतना बड़ा अभिमान है तो तू जाकर चाण्डाल पक्षी (कौवा) हो जा ।' मैंने बड़े हर्षसे मुनिका शाप सिर-माथे ले चढ़ाया । उससे मुझे न कुछ भय ही हुआ न दुःख ही । (८) मैं तुरन्त कौआ हो गया और मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर तथा रामका स्मरण करके हर्षके साथ वहाँसे उड़ चला ।। ११२ क ।। (शिव कहते हैं—) 'देखो उमा ! काम, क्रोध और मदसे दूर रहकर जो रामके चरणोंसे प्रेम करते हैं, वे सारे जगत्‌में चारों ओर राम ही राम देखते हैं, फिर वे बैर करें भी तो तो किससे करें ?' ।। ११२ ख ।। देखो गरुड ! इसमें उन मुनिका कोई दोष नहीं था । उनके हृदयमें भी रघुवंशके विभूषण रामने ही यह प्रेरणा दी थी । वास्तवमें कृपालु प्रभुने मुनिकी बुद्धि भरमाकर मेरे ही प्रेमकी परीक्षा लेनी चाही थी । (१) भगवान्‌ने जब समझ लिया कि मैं मन, वचन और कर्मसे उनका दास हूँ, तब उन्होंने झट मुनिकी बुद्धि पलट दी । मुनिने जब देखा कि मैं कितना

१. अघ कि बिना तामस कछु आना ।

१४४३-४४ काकयोनिं समागत्य मुनेर्पादाभिवन्द्य च । रामचन्द्रं समाधाय हृदये संजगाम ह ।। —पद्मपु०

१४५० रिषि मम सहन - सीलता[1] देखी । राम - चरन बिस्वास बिसेखी । (२)
अति बिसमै पुनि - पुनि पछिताई । सादर मुनि मोहिं लीन्ह बोलाई ।
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हाँ । हरषित राम - मंत्र तब[2] दीन्हाँ । (३)
बालक - रूप राम - कर ध्याना । कहेउ मोहिं मुनि कृपानिधाना ।
सुन्दर, सुखद मोहिं अति भावा । सो प्रथमहिं मैं तुम्हहिं सुनावा । (४)
मुनि मोहिं कछुक काल तहँ राखा । रामचरित - मानस तब भाखा ।
सादर मोहिं यह कथा सुनाई । पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई । (५)
रामचरित - सर गुप्त सुहावा । संभु - प्रसाद तात ! मैं पावा ।
तोहिं निज भगत राम - कर जानी । ता - तें मैं सब कहेउँ बखानी । (६)
राम-भगति जिन्हके उर नाहीं । कबहुँ न तात ! कहिय तिन्ह - पाहीं ।
१४६० मुनि मोहिं बिबिधि भाँति समुझावा । मैं सप्रेम मुनि - पद सिर नावा । (७)
निज कर - कमल परसि मम सीसा । हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा ।
राम - भगति अबिरल उर तोरे । बसिहि प्रसाद सदा अब मोरे[3] । (८)

दो०—सदा राम - प्रिय होहु तुम , सुभ - गुन-भवन, अमान ।
काम - रूप, इच्छा - मरन , ज्ञान - बिराग - निधान ॥ ११३ क ॥
जेहि आस्रम तुम बसब पुनि , सुमिरत श्री - भगवंत ।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या , जोजन एक प्रजंत ॥ ११३ ख ॥

सहनशील हूँ और रामके चरणोंमें मेरा कितना अधिक विश्वास है (२) तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे बार-बार पछताने लगे (कि मैंने इसे क्यों शाप दे डाला) । फिर मुनिने बड़े आदरसे मुझे पुकार बुलाया, बहुत सान्त्वना दी और प्रसन्न होकर मुझे राम-मन्त्र दे डाला । (३) कृपालु मुनिने मुझसे कहा—'जाओ, जाकर बाल-रूप भगवान् रामका ध्यान करते रहो ।' मुझे भी भगवान्का वही सुन्दर और आनन्द देनेवाला स्वरूप बहुत प्रिय लगा जिस स्वरूपका वर्णन मैंने पहले ही आपको कर सुनाया है । (४) मुनिने कुछ दिनों-तक मुझे वहाँ (अपने आश्रमपर) रखकर पूरे 'रामचरितमानस'का परिचय देकर बड़े आदरसे उसकी सारी कथा कह सुनाई और बताया कि—(५) 'यह सुन्दर और गुप्त 'रामचरितमानस' मुझे शिवकी कृपासे मिला था । तुम्हें रामका 'निज भक्त' (पक्का आत्मीय भक्त) जानकर ही मैंने यह सब कथा विस्तारसे तुम्हें कह सुनाई । (६) देखो ! जिनके हृदयमें रामकी भक्ति न हो, उन्हें यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिए ।' मुनिने जब यह कथा मुझे भली प्रकार समझा सुनाई, तब मैंने बड़े प्रेमसे उनके चरणोंमें जा प्रणाम किया । (७) मुनीश्वरने मेरे सिरपर अपना कमलके समान हाथ फेरकर और प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए कहा—'मेरी कृपासे तुम्हारे हृदयमें सदा प्रगाढ राम-भक्ति बनी रहे, (८) राम सदा तुमसे प्रेम करते रहें, तुममें सभी कल्याणकारी गुण आ जायँ, तुम्हारा अभिमान दूर हो जाय, तुम जैसा चाहो वैसा रूप बना सको, जब तुम्हारी इच्छा हो तभी तुम्हारी मृत्यु हो और तुममें ज्ञान और वैराग्य सदा भरे रहें ॥ ११३ क ॥ तुम रामका भजन करते हुए जिस भी आश्रममें जा बसोगे उसके चारों

१. महत सीलता । २. मोहिं ३. बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे ।

१४५१-५२ विस्मयाविष्टहृदयः सादरं मुनिसत्तमः । समाहूय च मां प्रीत्या राममंत्रं प्रदत्तवान् ॥—पद्मपु०
१४६१-६६ काकरूपेऽपि सुज्ञानं ते भविष्यति निश्चितम् । परं त्रैकालिकं ज्ञानं संयुतं योगसिद्धिभिः ॥ गर्गसं०
यथा वदसि भो काक तत्तथैव भविष्यति । मायया तव बन्धो न भविष्यति कदाचन ॥
आश्रमे तव माया न प्रभावं स्वं करिष्यति । हृदये रामरूपं च निवसिष्यति ते सदा ॥ सत्यो०

काल - करम - गुन - दोष - सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ।
राम - रहस्य ललित बिधि नाना। गुप्त - प्रगट इतिहास पुराना। (१)
बिनु स्रम तुम जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम-पद होऊ।
१४७० जो इच्छा करिहहु मन - माहीं। हरि - प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं। (२)
सुनि मुनि - आसिष, सुनु मति-धीरा। ब्रह्म-गिरा भइ, गगन गँभीरा।
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत करम-मन - बानी। (३)
सुनि नभ-गिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम - मगन सब संसय गयऊ।
करि बिनती मुनि - आयसु पाई। पद - सरोज पुनि - पुनि सिर नाई। (४)
हरष - सहित एहि आश्रम आयउँ। प्रभु - प्रसाद दुरलभ बर पायउँ।
इहाँ बसत मोहि सुनु खग-ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा। (५)
करौं सदा रघुपति - गुन - गाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना।
जब - जब अवधपुरी रघुबीरा। धरहिं भगत - हित मनुज सरीरा। (६)
तब - तब जाइ रामपुर रहऊँ। सिसु- लीला बिलोकि सुख लहऊँ।
१४८० पुनि उर राखि राम - सिसु रूपा। निज आश्रम आवौं खग-भूपा। (७)
कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग - देह जेहि कारन पाई।
कहेउँ तात ! सब प्रस्न तुम्हारी। राम - भगति - महिमा अति भारी। (८)

दो०—ता - तें यह तन मोहि प्रिय , भयउ राम - पद - नेह।
निज प्रभु दरसन पाएउँ , गए सकल संदेह ॥ ११४क ॥

और एक योजन (चार कोस) तक अविद्या आ नहीं पावेगी ॥ ११३ ख ॥ काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभावसे उत्पन्न होनेवाला कोई भी दुःख तुम्हें कभी नहीं सता पावेगा। अनेक प्रकारके सुन्दर इतिहास और पुराणोंमें गुप्त (अलक्ष्य) और प्रकट (प्रत्यक्ष) रामके जितने रहस्य (उनके चरित्र और गुण) हैं (१) वे सब तुम बिना परिश्रमके ही जान जाओगे। रामके चरणोंमें तुम्हारा नित्य नया-नया प्रेम होता रहेगा। तुम अपने मनमें जो भी इच्छा करोगे, श्रीहरिकी कृपासे वह बड़ी सरलतासे पूरी हो जायगी।' (२) हे धीरबुद्धि गरुड ! मुनिका यह आशीर्वाद सुनकर आकाशमें बड़ी गम्भीर ब्रह्मवाणी हुई—'हे ज्ञानी मुनि ! तुम्हारा वचन सत्य हो। यह (कौवा) कर्म, मन और वाणीसे मेरा भक्त है।' (३) यह आकाशवाणी सुनकर तो मैं हर्षसे फूल उठा। मैं भगवान्‌के प्रेममें मग्न हो उठा और मेरा सारा सन्देह जाता रहा। फिर मुनिकी विनति करके, उनकी आज्ञा पाकर और उनके चरण-कमलोंमें बार-बार प्रणाम करके (४) मैं हर्षके साथ उड़कर अपने इस आश्रममें लौट आया। यह प्रभु (राम)-की ही कृपा थी कि मैं ऐसा दुर्लभ वर प्राप्त कर पा सका। देखो गरुड ! मुझे यहाँ रहते हुए सत्ताईस कल्प बीत गए। (५) तबसे मैं यहीं बैठा बराबर रामके गुणोंका कीर्तन करता चला आ रहा हूँ और अनेक चतुर पक्षी यहाँ आ-आकर आदरपूर्वक सुनते चले आ रहे हैं। जब-जब भक्तोंका हित करनेके लिये अयोध्यामें राम मनुष्यका शरीर धारण किया करते हैं, (६) तब-तब मैं रामकी पुरी (अयोध्या)-में जा-जाकर और वहाँ पहुँचकर प्रभुकी बाल-लीलाका आनन्द लेता रहता हूँ और वहाँसे रामका वह बाल-स्वरूप अपने हृदयमें धारण करके अपने आश्रम लौट आता हूँ। (७) जिस कारण मुझे कौएकी देह मिली, वह सारी कथा भी मैंने आपको सुना डाली और आपके सभी प्रश्नोंके उत्तर भी दे डाले। (सबका सार यही है कि) रामकी भक्तिकी महिमा (इतनी) बड़ी है (कि वह मिल जाय तो क्या नहीं मिल जाता)। (८) मुझे अपना यह काक-शरीर इसीलिये प्रिय है कि इसीसे मैं रामके चरणोंमें प्रेम तथा अपने

भगति-पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महारिषि साप।
मुनि - दुरलभ बर पाएउँ, देखहु भजन - प्रताप ॥ ११४ ख ॥
जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ज्ञान - हेतु श्रम करहीं।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय-लागी। (१)
सुनु खगेस ! हरि - भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई।
१४९० ते सठ, महासिंधु बिनु - तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ - करनी। (२)
सुनि भुसुंडि - के बचन भवानी। बोलेउ गरुड, हरषि मृदु बानी।
तव प्रसाद प्रभु ! मम उर-माहीं। संसय, सोक, मोह, भ्रम नाहीं। (३)
सुनेउँ पुनीत राम - गुन-ग्रामा। तुम्हरी कृपा लहेउँ बिश्रामा।
एक बात प्रभु ! पूछौं तोहीं। कहहु बुझाइ कृपानिधि ! मोहीं। (४)
कहहिं संत - मुनि - बेद - पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान-समाना।
सोइ मुनि ! तुम - सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति-की नाईं। (५)
ज्ञानहिं - भगतिहिं अंतर केता। सकल कहहु प्रभु ! कृपानिकेता।
सुनि उरगारि - बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना। (६)
भगतिहिं - ज्ञानहिं नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव - संभव खेदा।
१५०० नाथ ! मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर। (७)

प्रभुके दर्शन प्राप्त कर पाया और मेरे सारे सन्देह समाप्त हो मिटे ॥ ११४ क ॥ भक्ति-पक्ष-पर हठ करके जमे रहनेके कारण ही महर्षि (लोमश ऋषि)-ने मुझे शाप दिया था पर भगवान्के भजनका प्रताप तो देखिए कि वही (शाप मेरे लिये) ऐसा वरदान सिद्ध हो गया जो मुनियोंको भी कठिनाईसे मिल पाता है ॥ ११४ ख ॥ जो प्राणी जानकर भी यह भक्तिका मार्ग छोड़कर केवल ज्ञान प्राप्त करनेकी साँसत सहते रहते हैं, वे ऐसे मूर्ख हैं कि घरमें आई खड़ी कामधेनु छोड़कर दूधके लिये मदार (आकका वृक्ष) ढूंढते फिरते हैं। (१) देखो गरुड ! जो लोग भगवान्की भक्ति छोड़कर किसी दूसरे उपायसे सुख पानेके फेरमें पड़े रहते हैं वे ऐसे मूर्ख और जड हैं कि विना जहाजके ही तैरकर महासागर पार कर जाना चाहते हैं। (२) (शिव कहते हैं) 'देखो भवानी ! काक-भुशुंडिके ये वचन सुनकर गरुड प्रसन्न होकर प्रेमसे बोले—'प्रभो ! आपके प्रसादसे मेरे हृदयके संशय, शोक, मोह और भ्रम सब जाते रहे। (३) आपकी कृपासे रामके पवित्र गुण सुनकर मुझे बड़ी ही शान्ति मिली। प्रभो ! अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ, कृपा करके मुझे समझा सुनाइए। (४) सन्त, मुनि, वेद और पुराण सब यही कहते हैं कि ज्ञानके समान दुर्लभ और कुछ भी नहीं है। तो गोस्वामी ! वही ज्ञान तो मुनि भी आपको बताए डाल रहे थे, पर आपने भक्तिके सामने उसका कोई आदर नहीं किया। (५) तो प्रभो ! मुझे समझाकर बताइए कि ज्ञान और भक्तिमें अन्तर क्या है ?' गरुडके ये वचन सुनकर ज्ञानी काक-भुशुंडिको बड़ा आनन्द हुआ और वे बड़े आदरसे कहने लगे—(६) 'देखो गरुड ! सच पूछो तो भक्ति और ज्ञानमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही संसारसे उत्पन्न होनेवाले क्लेश दूर कर डालते हैं। फिर भी नाथ ! मुनीश्वर लोग कहते हैं कि इन दोनोंमें थोड़ा-सा अन्तर तो है ही। वह अन्तर आप ध्यानसे सुन लीजिए। (७)

१४८७-८८ मद्वक्त्रादुदितं धर्मं हित्वान्यद्धर्ममिच्छति। अमृतं स्वगृहे त्यक्त्वा क्षीरमार्कं स वाञ्छति ॥ —महानिर्वाणतन्त्र
१४९१-९२ काकस्य वचनं श्रुत्वा प्रोवाच गरुडस्तदा।
विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ॥ —भागवत

ज्ञान , बिराग , जोग , बिज्ञाना । ए सब पुरुष, सुनहु हरि-जाना ।
पुरुष - प्रताप प्रबल सब भाँती । अबला अबल सहज जड़ जाती । (८)
दो०—पुरुष त्यागि सक नारिहिं , जो बिरक्त, मति - धीर ।
न - तु कामी बिषया-बस , बिमुख जो पद - रघुबीर ।। ११५ क ।।
सो०—सोउ मुनि ज्ञान-निधान , मृग-नयनी बिधु-मुख निरखि ।
बिबस होहिं हरि-जान , नारि बिस्नु - माया प्रगट ।। ११५ ख ।।
इहाँ न पच्छपात कछु राखौं । बेद - पुरान - संत - मत भाखौं ।
मोह न नारि नारि - के रूपा । पन्नगारि ! यह रीति अनूपा । (१)
माया - भगति सुनहु तुम, दोऊ । नारि - बर्ग, जानै सब कोऊ ।
१५१० पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी । माया खलु नर्तकी बिचारी । (२)
भगतिहिं सानुकूल रघुराया । ता - तें, तेहि डरपति अति माया ।
राम - भगति निरुपम, निरुपाधी । बसै जासु उर सदा अबाधी । (३)
तेहि बिलोकि माया सकुचाई । करि न सकै कछु निज प्रभुताई ।
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी । जाँचहिं भगति सकल सुख-खानी । (४)
दो०—यह रहस्य रघुनाथ-कर , बेगि न जानै कोइ ।
जो जानै रघुपति-कृपा , सपनेहु मोह न होइ ।। ११६ क ।।
औरौ ज्ञान - भगति-कर , भेद सुनहु सुप्रबीन ।
जो सुनि होइ राम-पद , प्रीति सदा अबिछीन ।। ११६ ख ।।

देखो गरुड ! ज्ञान, वैराग्य, योग और विज्ञान, ये सब पुरुष श्रेणीके हैं और पुरुषका प्रताप तो सब प्रकारसे प्रबल होता ही है। अबला माया तो स्वभावसे ही निर्बल और जड (मूर्ख) जातिकी होती है। (८) फिर भी स्त्रीको वे ही पुरुष त्याग कर पा सकते हैं, जिनके मनमें वैराग्य और धैर्य हो। विषय-वासनामें डूबे हुए और रामके चरणोंसे प्रेम न करनेवाले कामी लोग (स्त्रीका त्याग) नहीं कर पा सकते ।। ११५ क ।। बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि भी मृग-नयनी (नवेली)-का चन्द्रमुख देखते ही सारी सुध-बुध खो बैठते हैं। देखो गरुड ! स्त्री तो साक्षात् भगवान् विष्णुकी माया ही है ।। ११५ ख ।। यह न समझो कि मैं कुछ पक्षपातकी बात कह रहा हूँ। मैं तो वही बात कह रहा हूँ जो वेद, पुराण और सन्तोंने कही है। देखो गरुड ! यह बड़ी विचित्र बात है कि कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्रीके रूप-पर मोहित नहीं होती। सब लोग जानते हैं कि माया और भक्ति ये दोनों ही स्त्री (श्रेणीकी) हैं। फिर भक्ति तो रामकी प्यारी है और माया केवल उनके हाथमें नाचनेवाली (नटी)-भर है। भक्ति तो रामकी इतनी अधिक मुँह-लगी है कि माया सदा उससे बहुत डरी बैठी रहती है। जिसके हृदयमें उन रामकी भक्ति (बिना बाधाके) आ बसी है (३) जिनके समान कोई है नहीं और जिनकी कोई उपाधि नहीं है, उसे देखकर तो माया भीगी बिल्ली बनी बैठी रहती है, उसपर उसका कोई बस नहीं चल पाता। यह जानकर ही विज्ञानी मुनि लोग सब सुखोंसे भरी हुई भक्ति ही पानेके फेरमें पड़े रहते हैं। (४) रामका यह रहस्य शीघ्र कोई जान नहीं पा सकता। पर रामकी कृपासे जो इसे जान जाता है, उसे फिर स्वप्नमें भी कभी मोह (अज्ञान) नहीं हो पाता ।। ११६ क ।। देखो चतुर गरुड ! ज्ञान और भक्तिका मैं और भी एक भेद बताए देता हूँ जिसे सुननेसे रामके चरणोंमें

१. जाने तें रघुपति कृपा ।

१५०५-६ तेपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गता । —नीति

सुनहु नाथ ! यह अकथ कहानी । समुझत बनै न जाइ बखानी ।
१५२० ईस्वर - अंस जीव अबिनासी । चेतन, अमल, सहज सुख - रासी । (१)
सो माया - बस भयउ गोसाईं । बँध्यौ कीर - मरकट - की नाईं ।
जड़ - चेतनहिं ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा, छूटत कठिनई । (२)
तब - तें जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रंथि, न होय सुखारी ।
स्रुति - पुरान बहु कहेउ उपाई । छूट न, अधिक-अधिक अरुझाई । (३)
जीव - हृदय तम - मोह बिसेखी । ग्रंथि छूटि किमि, परै न देखी ।
अस संयोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित सो निरुअरई । (४)
सात्विक स्रद्धा, धेनु सुहाई । जो हरि - कृपा हृदय बस आई ।
जप - तप - व्रत - जम - नियम अपारा । जे स्रुति कह सुभ धरम - अचारा । (५)
तेइ तृन हरित चरै जब गाई । भाव - बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ।
१६४० नोइ निबृत्ति, पात्र बिस्वासा । निर्मल मन अहीर, निज दासा । (६)
परम धरम - मय पय दुहि भाई । अवटै अनल अकाम बनाई ।
तोष मरुत, तब छमा जुड़ावै । धृति - सम - जावन देइ जमावै । (७)
मुदिता मथै बिचार - मथानी । दम अधार, रजु सत्य सुबानी ।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता । बिमल बिराग, सुभग सुपुनीता । (८)

सदा अटल भक्ति बनी रह जाती है ।। ११६ ख ।। अब मैं आपको वह कथा सुनाए देता हूँ जो समझी ही जा सकती है, कही नहीं जा सकती । देखो ! जीव भी ईश्वरका ही अंश है । इसलिये यह भी अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखोंसे भरा है । (१) देखो गोसाईं ! वह (जीव) भी मायाके फेरमें पड़कर वैसे ही स्वयं बँध बैठा है जैसे सुग्गे और बन्दर फँस जाते हैं । इस प्रकार जड (जीव) और चेतन (ईश्वर)-में (भेदकी) गाँठ पड़ जाती है । यद्यपि यह (भेद) भी मिथ्या ही है तथापि वह बड़ी कठिनाईसे छूट पाता है । (२) जबसे यह गाँठ पड़ी तभीसे जीव भी संसारी (जन्म और मृत्युके चक्करमें पड़ा रहनेवाला) बन बैठा । अब तो न उस जीवकी गाँठ ही छूट पाती है न वह सुखी ही हो पाता है । यद्यपि वेदों और पुराणोंने (उससे छूटनेके) बहुतसे उपाय बतलाए हैं, फिर भी उसकी वह गाँठ छूटनेके बदले उलटी और भी अधिक उलझती ही चली जाती है । (३) जीवके हृदयमें अज्ञानका ऐसा विशेष अन्धकार आ छाता है कि वह उस गाँठको देख ही नहीं पाता । तब बताइए वह गाँठ छूटे भी तो कैसे छूटे ? यदि कभी ईश्वर ऐसा संयोग भी उपस्थित कर दे तब भी वह गाँठ बड़ी कठिनाईसे छूट पाती है (४) कि हरिकी कृपासे सात्त्विकी श्रद्धा रूपी गौ किसीके हृदय-रूपी घरमें आकर बँध जाय; श्रुतियोंने जो अनेक जप, तप, व्रत, यम और नियम आदि शुभ धर्म और आचार बताए हैं (५) उन्हीं (धर्माचरणों)-की हरी घास वह गौ चरती रहे, आस्तिक भाव-रूपी छोटा बछड़ा आकर उसे पेन्हा दे, निवृत्ति (सांसारिक विषयोंसे विरक्ति) ही नोई (गायके पैर बाँधनेकी रस्सी) हो, विश्वास ही (दूध दुहनेका) पात्र हो, स्वयं अपना दास (अपने कहनेमें चलनेवाला) निर्मल मन ही दुहनेवाला ग्वाला हो, (६) इस प्रकार धर्माचारमें लगी हुई सात्त्विकी श्रद्धा रूपी गौसे परम धर्मसे भरा हुआ दूध दुहकर उसे निष्काम भावकी अग्निपर भली-भाँति औटाया जाय, सन्तोषके पवनसे क्षमा ही उसे सिरावे (ठंडा करे), धैर्य तथा शमका जावन (जोरन, जमानेका दही) देकर वह दूध जमाया जाय, (७) मुदिता (प्रसन्नता)-की (हाँड़ी)-में तत्त्व-विचारकी मथानीसे दम (इन्द्रिय दमन)-के बोठे (आधार)-पर रखकर मधुर वाणीकी नेती (रस्सी)-से उसे मथकर उसमेंसे निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्य-रूपी मक्खन निकाला जाय, (८)

दो०—जोग-अगिनि करि प्रगट तब, कर्म - सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ज्ञान - घृत , ममता-मल जरि जाइ ।। ११ क ।।
तब बिज्ञान - निरूपिनी , बुद्धि, बिसद घृत पाइ।
चित्त - दिया भरि धरै दृढ़ , समता दिअटि बनाइ ।। ११७ ख ।।
तीनि अवस्था, तीनि गुन , तेहि कपास - तें काढ़ि।
१५४० तूल - तुरीय सँवारि पुनि , बाती करै सुगाढ़ि ।। ११७ ग ।।
सो०—ऐहि बिधि लेसै दीप , तेज - रासि, बिज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप , जरहिं मदादिक सलभ सब ।। ११७घ ।।
सोऽहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप - सिखा सोइ परम प्रचंडा।
आतम - अनुभव - सुख सुप्रकासा। तब भव - मूल भेद - भ्रम नासा। (१)
प्रबल अबिद्या - कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा।
तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा। उर - गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा। (२)
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई।
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया। (३)
रिद्धि - सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहिं लोभ दिखावहि आई।
१५५० कल - बल - छल करि जाहिं समीपा। अंचल - बात बुझावहिं दीपा। (४)
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह-तन चितव न अनहित जानी।
जौं तेहि बिघन, बुद्धि नाहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी। (५)

अग्निमें अपने सारे शुभ और अशुभ कर्मोंका ईंधन लगाकर योगकी अग्नि जलाकर उसपर उस (मक्खनको पिघलाकर उस)-मेंसे ममता-रूपी मल (मट्ठा) जल जानेपर बुद्धिके पंखेसे उस ज्ञानके घीको ठंडा किया जाय; ।। ११७ क ।। वह ज्ञानका निर्मल घी लेकर विज्ञानसे भरी हुई बुद्धि उसे चित्तके दीवेमें भरकर समताके दीवटपर जमाकर ला रक्खे; ।। ११७ ख ।। तीनों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) और तीनों गुणों (सत्त्व, रज, और तम)-की कपाससे तुरीयावस्थाकी रूई ओट निकालकर, उसकी सँवारकर सुन्दर कड़ी बत्ती बनाई जाय; ।। ११७ ग ।। और इस प्रकार जब तेजसे भरा हुआ विज्ञानमय दीपक बाला जाय तब कहीं सब मद आदि फतिंगे उसके समीप जाते ही जलकर भस्म हो पाते हैं ।। ११७ घ ।। 'सोऽहमस्मि' (वह ब्रह्म मैं ही हूँ इस ज्ञान)-की अखण्ड चित्त-वृत्ति ही उस दीपककी प्रचण्ड शिखा (लौ) है । (इस प्रकार) जब आत्मानुभवके सुखका चमचमाता प्रकाश फैल जाता है, तब संसारके चक्करमें डालनेवाला सारा (नाम-रूपके) भेदका भ्रम मिट रहता है (१) और प्रबल अविद्याके परिवारवालेवाले मोह (अज्ञान) आदिका सारा घना अन्धकार मिट जाता है । तब वही (विज्ञान-रूपवाली बुद्धि), आत्मानुभवका प्रकाश पाकर, हृदय-रूपी घरमें बैठकर, उस (जड-चेतनके भेद)-की गाँठ खोलने लगती है । (२) यदि वह (बुद्धि) उस गाँठको खोल पा ले तब तो इस जीवका काम बन जाय (यह मुक्त हो जाय, जड न रहे) । पर गरुड ! जब माया देखती है कि गाँठ खोली जा रही है तब वह बहुतसे अड़ंगे ला खड़े करती है । (३) वह (माया) बहुत प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ भेज-भेजकर बुद्धिको ललचाने लगती हैं और वे (ऋद्धि-सिद्धियाँ) बहुत कला बल और छल लगाकर उसके पास पहुँचकर आँचलके झटकेसे उस (ज्ञानके) दीपकको बुझा देती हैं । यदि बुद्धि बहुत चतुर हुई तो वह उन (ऋद्धि-सिद्धियों)-को अहित करनेवाली जानकर उनकी ओर ताकती-तक नहीं । किन्तु जब मायाके प्रलोभनोंमें बुद्धि नहीं फँस पाती तब देवता आकर अनेक प्रकरके विघ्न ला खड़े करते हैं । (५) इन्द्रियोंके द्वार

इंद्री - द्वार झरोखा नाना। तहँ - तहँ सुर बैठे करि थाना।
आवत देखहिं बिषय - बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी। (६)
जब सो प्रभंजन उर - गृह जाई। तबहिं दीप - बिज्ञान बुझाई।
ग्रंथि न छूटि, मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भई बिषय - बतासा। (७)
इंद्रिन्ह - सुरन्ह न ज्ञान सोहाई। बिषय भोग - पर प्रीति सदाई।
बिषय - समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी। (८)
दो०—तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति - क्लेस।
१५६० हरि - माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस।। ११८ क।।
कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक।। ११८ ख।।
ज्ञान पंथ कृपान - कै धारा। परत खगेस ! होइ नहिं बारा।

(इन्द्रियाँ) ही हृदय-रूपी घरके बहुतसे झरोखे हैं, जहाँ देवता अपना अड्डा जमाए बैठे रहते हैं। ज्यों ही वे विषय-रूपी पवन आता देखते हैं, त्यों ही वे हठ करके किवाड़ खोल देते हैं। (६) ज्यों ही वह (विषयके पवनका) झोंका हृदय-रूपी घरमें पहुँचा कि वह विज्ञान-रूपी दीपक झक्से बुझ जाता है। उस विषय-रूपी पवनके झोंकेसे बुद्धि भी चकरा उठती है क्योंकि न तो वह गाँठ खुल पाती है और न वह आत्मानुभवका प्रकाश ही रह जाता है। (७) इन्द्रियों और देवताओंको (स्वभावसे ही) ज्ञान कभी अच्छा ही नहीं लगता, क्योंकि उन्हें तो सदा विषय-भोग ही अच्छे लगते हैं। विषय-रूपी पवन उस बुद्धिको जब ऐसा बावला बना डालता है तब फिरसे (उतनी ही व्यवस्था करके) ज्ञानका दीपक जला लेना भला किसके बसका रह पाता है। (८) (इस प्रकार ज्ञानका दीपक बुझ जानेपर) जीव फिर अनेक प्रकारसे संसृति (जन्म और मरण आदि)-का क्लेश भोगने लगता है। देखो गरुड ! भगवान्की मायाका पार पाना इतना कठिन है कि कोई सहजमें चाहे तो पार नहीं पा सकता ।। ११८ क ।। ज्ञानका विषय समझना भी कठिन, साधना भी कठिन और विवेक (ठीक-ठीक परखना) भी कठिन है। यदि घुणाक्षर न्यायसे (संयोग-वश) यह ज्ञान मिल भी जाय, तो (उसे बचाए रखनेमें) अनेक विघ्न आ खड़े होते हैं [जब हृदयमें सात्त्विक श्रद्धा उत्पन्न हो जाय ; वह जप, तप, व्रत, यम, नियम आदि शुभ धर्म और आचरणका पालन करने लगे, आस्तिक बना रहे, सांसारिक विषयोंसे विरक्त हो रहे, हृदयमें इष्टदेवपर विश्वास रक्खे, मन निर्मल रक्खे, परम धर्मका निष्काम भावसे पालन करे, मनमें संतोष और क्षमा बनाए रहे, हृदयमें धैर्य और मानसिक शक्ति बनाए रक्खे, प्रसन्न होकर ऐसा तत्त्व-चिन्तन करता रहे कि पवित्र वैराग्य उत्पन्न हो सके, योगके द्वारा सारे कर्म समाप्त कर डाले, ममता दूर करके बुद्धिसे ज्ञान संचित करे, ज्ञानसे चित्तमें समता उत्पन्न करे, तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) तथा तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम)-से दूर रहकर केवल तुरीय अवस्थामें पहुँचकर विज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान) साधे तो मनके सारे विकार (मद आदि) नष्ट हो जाते हैं, सोऽहमस्मिकी भावना उद्दीप्त हो उठती है, सारे भेद नष्ट हो जाते हैं और ऐसा आत्मानुभव होने लगता है जिससे अविद्या, अज्ञान और मोह दूर हो जाता है। उसके द्वारा जड-चेतनका भ्रम दूर करके वह चेतन या परम भक्त होनेका प्रयास करने लगता है। उस समय मनको अनेक ऋद्धि-सिद्धि पानेके प्रलोभन होने लगते हैं तथा इन्द्रियोंको अनेक विषय लुभाने लगते हैं, उनमें यदि कहीं बुद्धि जा फँसी तो सारा ज्ञान और आत्मानुभव समाप्त हो जाता है और जीव फिर संसारके चक्करमें आ फँसता है।] ।। ११८ ख ।। ज्ञानके मार्गको तो तुम कृपाणकी पैनी धार ही समझो। इसलिये इस मार्गसे पथ-भ्रष्ट (ज्ञान-भ्रष्ट) होते देर नहीं लगती। जो इस मार्गपर बिना रोक-टोक बढ़ता चला

जो निर्विघ्न पन्थ निरबहई। सो कैवल्य परम-पद लहई। (१)
अति दुर्लभ, कैवल्य परम-पद। संत-पुरान-निगम-आगम बद।
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अन-इच्छित आवै बरिआईं। (२)
जिमि थल-बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करइ उपाई।
तथा मोच्छ-सुख, सुनु खगराई। रहि न सकै हरि-भगति बिहाई। (३)
अस बिचारि हरि-भगत सयाने। मुकुति निरादरि, भगति लुभाने।
१५७० भगति करत बिनु जतन-प्रयासा। संसृति-मूल अबिद्या नासा। (४)
भोजन करिय तृपिति-हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी।
असि हरि-भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़, न जाहि सोहाई। (५)

दो०—सेवक-सेव्य-भाव-बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम-पद-पंकज, अस सिद्धांत बिचारि॥ ११९ क॥
जो चेतन-कहँ जड़ करै, जड़हिं करै चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव, ते धन्य॥ ११९ ख॥

कहेउँ ज्ञान-सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भगति-मनि-कै प्रभुताई।
राम-भगति चिन्तामनि सुन्दर। बसै गरुड़ जाके उर अन्तर। (१)
परम प्रकास-रूप दिन-राती। नहिं कछु चहिय दिया-घृत-बाती।
१५८० मोह-दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ-बात नहिं ताहि बुझावा। (२)

जाय वही मोक्ष (परम-पद) प्राप्त कर पाता है। (१) सन्त, पुराण, वेद और शास्त्र सब यही कहते हैं कि कैवल्य (केवल ब्रह्म-स्वरूप हो जाना) परम पद अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु वही कैवल्य मुक्ति रामको भजनेसे बिना चाहे हठपूर्वक आ मिलती है। (२) जिस प्रकार करोड़ों उपाय करनेपर भी स्थलके बिना जल नहीं टिका रह पा सकता, वैसे ही मोक्षका सुख भी हरि-भक्तिके बिना टिका नहीं रह पा सकता। (३) यही विचारकर हरिके जितने भी समझदार भक्त हैं वे मोक्ष पानेके फेरमें पड़ते ही नहीं और भक्तिपर ही लुभाए रहते हैं, क्योंकि भक्ति करनेसे संसृति (जन्म-मरण)-का मूर्खतापूर्ण अज्ञान किसी यत्न और परिश्रमके बिना ही अपने आप नष्ट हो मिटता है। जैसे अपनी तृप्तिके लिये किए हुए भोजनको जठराग्नि अपने आप सुगमतासे पचा डालती है, वैसे ही सुगमतासे सुख देनेवाली हरिकी भक्ति भी जिसे अच्छी न लगे ऐसा मूढ संसारमें भला कौन होगा! (५) देखो गरुड! सेबक-सेव्य भाव (मैं सेवक हूँ और भगवान् ही ऐसे हैं जिनकी सेवा करनी है, इस भाव)-के बिना संसारके समुद्रसे पार हो सकना संभव ही नहीं है। इस सिद्धान्तपर विचार करके भगवान्के चरण-कमलोंका ही बैठकर भजन करना चाहिए॥ ११९ क॥ जो चैतन्यको जड और जडको चैतन्य कर सकता है, ऐसे समर्थ रामका भजन जो प्राणी करते रहते हैं, वे धन्य हैं॥ ११९ ख॥ मैंने तो ज्ञानका सिद्धान्त जैसा समझा है वैसा आपको कह सुनाया। अब मैं भक्ति-रूपी मणिकी महिमा भी बताए देता हूँ। देखो गरुड! रामकी भक्ति ही ऐसा सुन्दर चिन्तामणि है कि यह जिसके हृदयमें आ बसता है (१) वह दिन-रात (स्वयं) परम प्रकाश-रूप बना रहता है। उसे दीवा, घी और वत्ती किसीकी कुछ आवश्यकता नहीं रह जाती। मोह-रूपी दरिद्रता उसके पास-तक फटकनेका साहस नहीं कर पाती। लोभ-रूपी

१५६३-६४ क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति हि॥ —वेद
१५६९-७० सा मे सालोक्य-सामीप्य-सार्ष्टि-सायुज्यमेव वा। ददात्यपि न गृह्णन्ति भक्ता मत्सेवनं विना॥
न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम। वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥शि.गी.
१५७७-७९ ज्ञानप्रदीपसिद्धान्तो मया प्रोक्तो खगाधिप। रामभक्तिप्रभावञ्च सावधानमनाः शृणु॥भरद्वा.रा.

प्रबल अबिद्या-तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ - समुदाई।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसै भगति जाके उर - माहीं। (३)
गरल सुधा - सम, अरि हित होई। तेहि मनि - बिनु, सुख पाव न कोई।
ब्यापहिं मानस - रोग न भारी। जिन्हके बस सब जीव दुखारी। (४)
राम - भगति - मनि उर - बस जाके। दुख - लव-लेस न सपनेहु ताके।
चतुर - सिरोमनि तेइ जग - माहीं। जे सुजतन मनि - लागि कराहीं[1]। (५)
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम - कृपा - बिनु नहिं कोउ लहई।
सुगम उपाय पाइबे - केरे। नर हत - भाग्य देहिं भटभेरे। (६)
पावन पर्बत बेद - पुराना। राम - कथा रुचिराकर नाना।
१५९० मर्मी सज्जन, सुमति - कुदारी। ज्ञान - बिराग - नयन उरगारी। (७)
भाव - सहित खोजै जो प्रानी। पाव भगति - मनि सब सुख-खानी।
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम - तें अधिक राम - कर दासा। (८)
राम सिन्धु, घन सज्जन धीरा। चन्दन - तरु हरि, सन्त समीरा।
सब - कर फल हरि - भगति सुहाई। सो बिनु सन्त न काहू पाई। (९)
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम - भगति तेहि सुलभ बिहंगा। (९॥)

पवन उस मणिमय दीपको बुझा नहीं पा सकता (२) (उसके प्रकाशसे) अविद्याका प्रबल अन्धकार उससे दूर हो भागता है। मद आदि पतंगोंका सारा झुण्ड हार मान बैठता है। जिसके हृदयमें भक्ति आ बसती है, उसके पास काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट आ नहीं पा सकते। (३) उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है और शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। जबतक वह मणि नहीं मिल जाता तबतक किसीको सुख नहीं मिल पाता। वे सब बड़े-बड़े मानस रोग भी उसे नहीं सता पाते जिनके कारण सब जीव दुखी हुए पड़े रहते हैं। (४) रामभक्ति-रूपी मणि जिसके हृदयमें आ बसता है, उसे स्वप्नमें भी कोई दुःख नहीं सता पाता। जगत्‌में वे ही मनुष्य सबसे अधिक चतुर हैं जो भक्ति-रूपी मणि पानेके लिये ही अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। वह मणि यद्यपि जगत्‌में खुला धरा रहता है पर जबतक रामकी कृपा नहीं हो जाती तबतक उसे कोई प्राप्त नहीं कर पा सकता। उसे पानेका उपाय भी बहुत सुगम ही है पर अभागे मनुष्य उसे भी ठुकरा धकेलते हैं। (६) वेद और पुराण ही ऐसे पवित्र पर्वत हैं, जिनमें रामकी अनेक कथाओंकी ही सुन्दर खानें भरी पड़ी हैं। सन्त पुरुष ही (इन खानोंका रहस्य जाननेवाले) ऐसे मर्मी हैं जो अच्छी बुद्धिकी कुदालसे ज्ञान और वैराग्यके दो नेत्रोंसे देख-परखकर चिन्तामणि खोद निकालते हैं। (७) जो प्राणी प्रेमके साथ उस मर्मी सन्तको खोज लेता है, वह सब सुखोंसे भरा भक्ति-रूपी मणि पा लेता है। (वेदों और पुराणोंमें जो रामकी कथाएँ हैं उनमेंसे विवेकपूर्वक ज्ञान और वैराग्यका साधन करनेवाले सन्त लोग भक्ति-तत्त्व निकालकर प्रेमके साथ सत्संगति करनेवालेको रामकी भक्ति दे डालते हैं)। मैं तो यह विश्वास करता हूँ कि ये रामके दास सन्त लोग रामसे भी बढ़कर हैं (८) यदि राम समुद्र हैं तो धीर सन्त पुरुष मेघ (बनकर रामकी भक्तिका जल बरसाते) हैं। यदि हरि (राम) चन्दनके वृक्ष हैं तो सन्तजन मलय-पवन हैं (जैसे चन्दनकी सुगन्धको पवन फैलाता है वैसे ही भगवानका यश सन्त लोग चारों ओर फैलाते हैं)। चाहे जो भी साधनाएँ क्यों न कर ली जायँ, सबका लक्ष्य केवल शुद्ध हरि-भक्ति पाना ही होता है। सन्तके अतिरिक्त वह हरिभक्ति और कोई प्राप्त नहीं करा पा सकता। (९) ऐसा विचार करके जो लोग सन्तोंका सत्संग करते हैं उन्हें रामकी भक्ति सरलतासे मिल ही जाती है। (९॥) ब्रह्म (वेद) ही

१. जे मनि लागि सुजतन कराहीं।

१५८५-८६ रामभक्तिर्भवेद्यस्य हृदये मुनिसत्तम। कामक्रोधादयो दोषा न भवन्ति कदाचन ॥ भरद्वा०रा०

दो०—ब्रह्म पयोनिधि, मन्दर, ज्ञान, संत सुर आहिं।
कथा - सुधा मथि काढ़हिं, भगति - मधुरता जाहिं ॥ १२० क॥
बिरति चर्म, असि ज्ञान, मद, लोभ - मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि-भगति, देखु खगेस! बिचारि ॥ १२० ख॥

१६०० पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल! मोहिं - ऊपर भाऊ।
नाथ! मोहिं निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी। (१)
प्रथमहिं कहहु नाथ मति - धीरा। सब - तें दुर्लभ कवन सरीरा।
बड़ दुख कवन, कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी। (२)
संत - असंत - मरम तुम जानहु। तिन्ह - कर सहज सुभाव बखानहु।
कवन पुन्य श्रुति - बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला। (३)
मानस - रोग कहहु समुझाई। तुम सर्बज्ञ, कृपा अधिकाई।
तात! सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहौं यह नीती। (४)
नर - तन - सम नहिं कवनिउँ देही। जीव चराचर जाँचत जेही।
नरक - स्वर्ग - अपबर्ग - निसेनी। ज्ञान - बिराग - भगति - सुभ[1] देनी। (५)

समुद्र है, ज्ञान ही मन्दराचल है और सन्तजन ही देवता हैं, जो उस (वेद-समुद्र)-को मथकर राम-कथा-रूपी वह अमृत निकाल लेते हैं जिसमें भक्तिरूपी मधुरता भरी रहती है ॥ १२० क ॥ देखो गरुड ! यह समझ लो कि वैराग्यकी ढालसे अपने भक्तको (सब सांसारिक प्रलोभनोंके आक्रमणसे) बचाते हुए और ज्ञान-रूपी तलवारसे मद, लोभ और मोह-रूपी वैरियोंको मारती हुई हरि-भक्ति ही विजय प्राप्त कराती चलती है' (जिस भक्तके मनमें हरिभक्ति आ समाती है उसके मनमें आया हुआ वैराग्य ही उसकी रक्षा करता है और ज्ञान ही मद, लोभ, मोहको उसके पास नहीं आने देता) । ॥ १२० ख ॥ यह सुनकर बड़े प्रेममें भरकर गरुडने पूछा—'कृपालु ! यदि मुझसे आप इतना प्रेम करते हैं तो मुझे अपना सेवक जानकर विस्तारसे मेरी सात समस्याओंका और समाधान कर समझाइए । (१) धीर बुद्धिवाले काकभुशुण्डि ! आप यह बताइए कि १. सबसे दुर्लभ शरीर कौन-सा होता है ? २. सबसे बड़ा दुःख क्या है ? ३. सबसे बड़ा सुख क्या है ? यह भी संक्षेपमें बता डालिए (२) कि ४. सन्त और असन्तमें क्या भेद है और उनके सहज स्वभावके क्या लक्षण हैं ? ५. वेदोंके अनुसार सबसे बड़ा पुण्य क्या है ? ६. सबसे भयंकर पाप क्या है ? (३) और ७. मानस-रोग कितने प्रकारके होते हैं ? आप सर्वज्ञ हैं और मुझपर आपकी कृपा भी बहुत है । इसलिये यह सब भली-भाँति समझाकर बता दीजिए ।' (काकभुशुण्डि बोले–) 'देखो गरुड ! आप आदर और प्रेमके साथ ध्यान लगाकर सुनते चलिए । मैं यह सारी नीति संक्षेपमें बताए डालता हूँ । (४) मनुष्य-शरीरके समान कोई दूसरा शरीर नहीं है । चर और अचर सभी जीव उसके लिये तरसते रहते हैं । इसी मनुष्य-शरीरसे ही नरक, स्वर्ग और मोक्ष सभी प्राप्त हो सकते हैं तथा इसीसे कल्याण करनेवाले ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी भी प्राप्ति हो सकती है । (५) ऐसा शरीर पाकर भी जो मनुष्य

१. सुख ।

१५९८-९९ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचः प्राणशरीरकर्म ।
ज्ञानासिनोपासनया शितेन च्छित्त्वा पुनर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ —भागवत

१६००-६ कः सन्तः कोप्यसन्तश्च किं पुण्यं पापमेव च । जन्मातिदुर्लभं किं स्यात्किं दुःखं च सुखञ्च वद ॥
एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि रोगं किं मानसं प्रभो ॥ —प्रकीर्ण

१६१० सो तनु धरि, हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय-रत मन्द मन्दतर।
काच - किरिच बदले ते लेहीं। कर - तें डारि परस-मनि देहीं। (६)
नहिं दरिद्र - सम दुख जग - माहीं। सन्त-मिलन - सम सुख जग नाहीं।
पर - उपकार बचन - मन - काया। सन्त - सुभाव सहज खगराया। (७)
सन्त सहहिं दुख पर - हित लागी। पर दुख - हेत असन्त अभागी।
भूर्ज-तरू - सम सन्त कृपाला। पर-हित नित सह बिपति बिसाला। (८)
सन - इव खल पर-बन्धन करई। खाल कढ़ाइ, बिपति सहि मरई।
खल बिनु - स्वारथ पर - अपकारी। अहि - मूषक - इव सुनु उरगारी। (९)
पर संपदा बिनासि नसाहीं। जिमि ससि हति, हिम-उपल बिलाहीं।
दुष्ट - उदय जग आरति - हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू। (१०)
१६२० सन्त - उदय सन्तत सुखकारी। बिस्व - सुखद, जिमि इन्दु - तमारी।
परम धरम श्रुति बिदित अहींसा। पर - निन्दा-सम अघ न गिरीसा। (११)
हर - गुरु - निन्दक दादुर होई। जनम सहस्र पाव तन सोई।
द्विज - निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमै बायस - सरीर धरि। (१२)

भगवान्‌का भजन न करके नीचसे भी नीच विषयोंमें लिपटे पड़े रहते हैं, वे अपने हाथका पारस-मणि फेंककर उसके बदले काँचके टुकड़े चुनते फिरते हैं। (६) दरिद्रताके समान संसारमें कोई दूसरा दुःख नहीं है। सन्तोंके मिलनके समान संसारमें दूसरा कोई सुख नहीं है। देखो गरुड ! वचन, मन और कर्मसे दूसरोंका उपकार करना ही सन्तोंका सहज स्वभाव होता है। (७) सन्त लोग स्वयं दुःख सहकर भी दूसरोंका हित करते रहते हैं। अभागे असन्त (दुष्ट लोग) सदा दूसरोंको दुःख ही देनेका प्रयत्न करते रहते हैं। जैसे भोज वृक्ष साधुओंके वस्त्रके लिये अपनी छाल उतरवा डालता है वैसे ही कृपालु सन्त भी दूसरोंकी भलाईके लिये बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ सहते रहते हैं। किन्तु जैसे सन-की छाल उतारकर रस्सी बँट ली जानेपर उससे किसीको भी बाँधा जा सकता है वैसे ही असन्त (दुष्ट) लोग भी ऐसे होते हैं कि वे स्वयं विपत्ति सहकर भी दूसरोंको कष्ट देनेसे नहीं चूकते। देखो गरुड ! असन्त (दुष्ट) लोग बिना किसी स्वार्थके ही साँप और चूहेके समान अकारण दूसरोंको हानि पहुँचाया करते हैं (और इसीलिये मारे भी जाते हैं)। (९) वे दूसरोंकी सम्पत्तिका नाश करके स्वयं भी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे खेतीका नाश करके ओले स्वयं भी गल मिटते हैं। जैसे प्रसिद्ध नीच ग्रह (धूम्र) केतुके उदय होनेपर संसारमें दुःख ही दुःख फैल जाता है वैसे ही दुष्टोंके बढ़ जानेपर भी दुःख ही दुःख बढ़ चलता है। (१०) किन्तु सन्तोंके उदयसे तो सदा सबको वैसे ही सुख ही सुख मिलता है जैसे चन्द्रमा और सूर्यका उदय विश्व-भरके लिये सुखदायक होता है[१]। वेदोंमें अहिंसाको परम धर्म (पुण्य) माना गया है और दूसरेकी निन्दा करनेको हिमालयके समान बड़ा पाप बताया गया है। (११) जो मनुष्य शंकर और गुरुकी निन्दा करता रहता है वह मेंढक होकर जन्म लेता है और एक सहस्र जन्मोंतक मेंढक ही बना रहता है। जो व्यक्ति ब्राह्मणोंकी निन्दा किया करता है वह अनगिनत नरक भोगकर अन्तमें कौआ बनकर जगत्‌में जन्म लेता है। (१२) जो अभिमानी

१. जैसे रातका अन्धकार दूर करनेवाले चन्द्रमाका उदय सबको सुख देता है। [यह अर्थ भी अच्छा है।]

१६१२ कष्टं निर्धनिकस्य जीवितमहो दारैरपि त्यज्यते। कालेन फलितं तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥क.स.सा.
१६१३-१५ मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति संतः कियन्तः ॥ —सुभाषित
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥—अभि०शा०

सुर - श्रुति - निन्दक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।
होहिं उलूक संत - निंदा - रत। मोह - निसा - प्रिय, ज्ञान-भानु-गत। (१३)
सब-कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं।
सुनहु तात! अब मानस रोगा। जिन्ह - तें दुख पावहिं सब लोगा। (१४)
मोह, सकल ब्याधिन - कर मूला। तिन्ह - तें[1] पुनि उपजैं बहु सूला।
काम बात, कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त, नित छाती जारा। (१५)
१६३० प्रीति करहिं जौं तीनिउँ भाई। उपजै सन्यपात दुखदाई।
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल, नाम को जाना। (१६)
ममता दाद, कंडु इरषाई। हरष - बिषाद गरह बहुताई।
पर - सुख देखि, जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता, मन - कुटिलई। (१७)
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ - कपट - मद - मान नहरुआ।
तृस्ना उदर - बृद्धि अति भारी। त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी। (१८)
जुग - बिधि ज्वर मत्सर - अबिबेका। कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका। (१८॥)

दो०—एक ब्याधि-बस नर मरहिं, ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव - कहँ, सो किमि लहइ समाधि॥ १२१ क॥
नेम, धरम, आचार, तप, ज्ञान, जज्ञ, जप दान।
१६४० भेषज पुनि कोटिन्ह, नहिं, रोग जाहिं, हरि-जान॥ १२१ ख॥

लोग बैठे देवता और वेदोंकी निन्दा किया करते हैं वे सब जाकर रौरव नरकमें पड़े सड़ा करते हैं। जो लोग सदा सन्तोंकी निन्दा करते रहते हैं वे जाकर ऐसे उल्लू होते हैं, जिन्हें सदा मोह (अज्ञान)-की रात्रि ही अच्छी लगा करती है और जिनके लिये ज्ञान-रूपी सूर्य सदा ढल गया रहता है। (१३) जो मूर्ख लोग सदा सबकी निन्दा ही निन्दा किया करते हैं वे सब चमगादड़ होकर जन्म लेते हैं। अब मैं उन मानस रोगोंका परिचय दिए देता हूँ, जिनके कारण संसारमें सभी लोग दुखी हुए रहते हैं। (१४) मोह (अज्ञान) ही उन सब रोगोंकी जड़ है जिनसे संसारमें सबको कष्ट ही कष्ट मिलते रहते हैं। आप कामको ही वात (वायु), लोभको ही कफ और क्रोधको ही पित्त समझिए जो सदा सबकी छाती जलाता रहता है (१५) यदि ये तीनों भाई (वात, कफ और पित्त) एक साथ मिल बैठें (तीनों दोष कुपित हो बैठें) तो भयंकर सन्निपात रोग उत्पन्न हो जाता है। विषयों (सांसारिक भोगों)-के लिये किए हुए जो मनोरथ बड़ी कठिनाईसे पूरे हो पाते हैं, वे सभी ऐसे अगणित शूल (दर्द) हैं, कि उनके नाम-तक नहीं गिनाए जा सकते। (१६) ममता ही दाद है। ईर्ष्या ही खुजली है। हर्ष और विषाद ही अनेक प्रकारके (कण्ठमाला, घेंघा आदि) गलेके रोग हैं। दूसरेका सुख देखकर जलना ही क्षय रोग है। दुष्टता और मनका खोटापन ही कुष्ठ रोग (कोढ़) है। (१७) अहंकार ही अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरुआ (गठिया) रोग है। दम्भ, कपट, मद और अभिमान ही नसोंके रोग(नहरुआ) हैं। तृष्णा ही असाध्य जलोदर रोग है। तीनों प्रकारकी प्रबल इच्छाएँ (पुत्र, धन और यशकी कामनाएँ) ही प्रबल तिजारी ज्वर है। (१८) मत्सर (द्वेष) और अविवेक ही दो प्रकारके ज्वर हैं। इस प्रकारके न जाने कितने ऐसे बुरे-बुरे रोग भरे पड़े हैं कि उनका वर्णन कहाँतक कर सुनाया जाय। (१८॥) यों तो किसीको कोई एक भी रोग हो जाय तो उसके प्राण ले बैठता है, फिर ये तो ऐसे असाध्य रोग हैं जो जीवको निरन्तर कष्ट ही कष्ट देते रहते हैं। बताइए, ऐसी दशामें वह (जीव) कैसे शान्ति पा सकता है॥ १२१ क॥ इन रोगोंकी यों तो नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि अनेक प्रकारकी औषधियाँ विद्यमान हैं, परन्तु गरुड़! इन

१. तेहि तें।

ऐहि बिधि, सकल जीव जग रोगी। सोक - हरष - भय - प्रीति - बियोगी।
मानस - रोग कछुक मैं गाए। हहिं सबके, लखि बिरलेनि पाए। (१)
जाने - तें छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन - परितापी।
बिषय - कुपथ्य पाइ, अंकुरे। मुनिहिं हृदय, का नर बापुरे। (२)
राम - कृपा नासहिं सब रोगा। जौं इहि भाँति बनै संजोगा।
सदगुरु बैद[1], बचन बिस्वासा। संजम यह, न बिषय - कै आसा। (३)
रघुपति - भगति सजीवन - मूरी। अनूपान, श्रद्धा मति पूरी[2]।
ऐहि बिधि भलेहि सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं। (४)
जानिय तब मन बिरुज गोसाईं। जब उर बल बिराग अधिकाईं।
१६५० सुमति - छुधा बाढ़ै नित नई। बिषय - आस दुर्बलता गई। (५)
बिमल - ज्ञान - जल जब सो नहाई। तब रह राम - भगति उर छाई।
सिव - अज - सुक - सनकादिक - नारद। जे मुनि ब्रह्म - बिचार - बिसारद। (६)
सब - कर मत खगनायक ! एहा। करिय राम - पद - पंकज - नेहा।
श्रुति - पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति - भगति - बिना सुख नाहीं। (७)
कमठ - पीठि जामहिं बरु बारा। बंध्या - सुत बरु काहुहिं मारा।
फूलहिं नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि - प्रतिकूला। (८)

सब ओषधियोंसे भी ये रोग भली-भाँति जा नहीं पाते ॥ १२१ ख ॥ इस प्रकार देखिए तो संसारमें कोई प्राणी ऐसा नहीं है जो रोगी न हो और जो शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोगके दुःखसे और भी दुखी हुआ न पड़ा हो। मैंने तो यहां बहुत संक्षेपमें ही मानस रोगोंका परिचय दिया है। ये रोग होते तो सबको हैं, पर इन्हें समझ कोई बिरला ही पाता है। (१) प्राणियोंको दुःख देनेवाले ये पापी (रोग) यदि समझमें आ जायँ तब कुछ कम अवश्य हो जाते हैं, परन्तु पूर्णतः नहीं मिट पाते। जब इन रोगोंके विषयोंका कुपथ्य पाकर ये रोग मुनियों-तकके हृदयोंमें भी अंकुरित हो उठते हैं, तब बेचारे साधारण मनुष्य तो हैं किस गिनतीमें ? (२) ये सब रोग रामकी कृपासे ही तभी नष्ट हो पा सकते हैं जब कुछ इस प्रकारका संयोग बन जाय। संयोग यह है कि सद्गुरु ही ऐसा वैद्य बन आवे कि उसके वचनोंमें रोगी (मनुष्य)-को विश्वास हो और उस रोगीको यही संयम (परहेज़) करना पड़े कि वह विषयोंके फेरमें न पड़े। (३) रामकी भक्ति ही संजीवनी जड़ी हो, श्रद्धासे पूर्ण बुद्धि ही अनुपान हो (औषधिके साथ खाई या पीने जानेवाली वस्तु हो)। इस प्रकारका संयोग बैठ जानेपर ही ये रोग नष्ट हो जायँ तो हो जायँ नहीं तो करोड़ों यत्न करनेपर भी ये कभी दूर नहीं किए जा सकते। (४) अपने मनको तभी नीरोग समझना चाहिए जब हृदयमें प्रबल वैराग्य बढ़ चला हो, उत्तम बुद्धि-रूपी क्षुधा नित्य बढ़ती चली जा रही हो और विषयोंकी आशाकी सारी दुर्बलता पूर्णत: मिट गई हो। (५) इतना हो चुकनेपर यदि वह रोगी मन निर्मल ज्ञान-रूपी जलसे स्नान कर ले, तब कहीं रामकी भक्ति सरलतासे हृदयमें आ पा सकती है। शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, सनक आदि (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) मुनि और ब्रह्मज्ञानी देवर्षि नारद (६) सबका यही मत है कि रामके चरण-कमलोंसे प्रेम करना नितान्त आवश्यक है। वेद, पुराण आदि सब ग्रंथ यही कहते हैं कि जबतक रामकी भक्ति न की जाय तबतक कहीं ढूंढ़े भी सुख नहीं मिल पा सकता। (७) कछुवेकी पीठपर भले ही बाल जम जायँ, वन्ध्याका पुत्र भले ही किसीको मार डाले, आकाशमें भले ही अनेक प्रकारके फूल खिल उठें (अर्थात् यदि सभी असंभव बातें भी हो

१. बेद (आयुर्वेद)। २. अति रूरी।

तृषा जाइ बरु मृग-जल - पाना । बरु जामहिँ सस - सीस बिषाना ।
अंधकार बरु रबिहिँ नसावै । राम - बिमुख, सुख जीव न पावै[1] । (८)
हिम - तेँ अनल प्रगट बरु होई । राम - बिमुख, सुख पाव न कोई[2] । (८॥)
१६६० दो॰—बारि मथे घृत होइ बरु , सिकता - तेँ बरु तेल ।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥ १२२ क ॥
मसकहिँ करै बिरंचि प्रभु , अजहिँ मसक-तेँ हीन ।
अस बिचारि तजि संसय , रामहिँ भजहिँ प्रबीन ॥ १२२ ख ॥
श्लोक—विनिश्चितं वदामि ते , न अन्यथा वचांसि मे ।
हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरंति ते ॥ घ ॥
कहेउँ नाथ हरि - चरित अनूपा । ब्यास - समास स्वमति - अनुरूपा ।
श्रुति - सिद्धांत इहै उरगारी । राम भजिय, सब काज[3] बिसारी । (१)
प्रभु रघुपति तजि, सेइय काही । मोहिँ-से सठ-पर ममता जाही ।
तुम बिज्ञान - रूप नहिँ मोहा । नाथ कीन्हि मो - पर अति छोहा । (२)
१६७० पूछिहु राम - कथा अति पावनि । सुक - सनकादि - संभु - मन-भावनि ।
सत - संगति दुर्लभ संसारा । निमिष - दंड - भरि एकौ बारा । (३)
देखु गरुड ! निज हृदय बिचारी । मैँ रघुबीर - भजन - अधिकारी ।

जायँ) परन्तु हरिसे मुँह फेर रखनेपर जीव कभी सुख नहीँ पा सकता । (८) मृगजलसे भले ही प्यास बुझ जाय, खरहेके सिरपर भले ही सींग निकल आवें, अन्धकार भले ही सूर्यको मिटा डाले, परन्तु रामसे मुँह फेरे रहनेवाला कभी सुखी नहीँ रह सकता । (८) हिमसे भले ही आग जल उठे, परन्तु रामसे मुँह फेरे रहनेवाला कभी कोई सुख नहीँ पा सकता । (८॥) पानी मथनेसे भले हो घी निकल आवे और बालूसे भले ही तेल निकल आवे, परन्तु हरिके भजनके बिना संसार-रूपी समुद्रसे पार नहीँ उतरा जा सकता, यह अटल सिद्धान्त है ॥ १२२ क ॥ प्रभु (राम) ऐसे शक्तिशाली हैँ कि वे मच्छड़को ब्रह्मा और ब्रह्माको मच्छड़से भी तुच्छ बना सकते हैँ । यह समझकर ही चतुर पुरुष अपने मनके सारे सन्देह मिटाकर रामका ही बैठे भजन किया करते हैँ ॥ १२२ ख ॥ मैँ आपसे यह अत्यन्त निश्चित सिद्धान्त बताए दे रहा हूँ । मेरी यह बात कभी झूठी नहीँ हो सकती कि जो मनुष्य रामका भजन करते हैँ, वे इस दुस्तर संसार-सागरको अवश्य सरलतासे पार कर जाते हैँ ॥ घ ॥ देखो गरुड ! मैँने अपनी बुद्धिके अनुसार कहीँ विस्तारसे और कहीँ संक्षेपमेँ भगवान्का सारा अनुपम चरित्र आपको कह सुनाया है । देखो गरुड ! वेदोँका यही सिद्धान्त है कि सब काम-धाम छोड़कर केवल रामका ही बैठे भजन करना चाहिए । (१) आप ही सोचिए कि ऐसे प्रभु रामको छोड़कर और किसका सेवन किया जाय जो मुझ-जैसे मूर्खसे भी स्नेह करते रहते हैँ । देखो गरुड ! आप तो स्वयं विज्ञान-रूप हैँ । आपके मनमेँ तो कोई मोह-वोह है नहीँ । आपने तो मुझपर ही बड़ी कृपा की है (२) कि आपने वह अत्यन्त पवित्र रामकी कथा मुझसे आ पूछी जो शुकदेव, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार और शंकरको बड़ी प्रिय है । इस संसारमेँ तो घड़ी भर या क्षण - भरको एक बार भी सत्संगति प्राप्त हो जाना बड़ा दुर्लभ होता है । (३) देखो गरुड ! आप ही अपने हृदयमेँ सोच देखिए कि मैँ (कौआ) भी कहीँ रामका भजन करनेका अधिकारी हो पा सकता हूँ ? मैँ सब पक्षियोँमेँ सबसे

१. राम बिमुख न जीव सुख पावै । २. बिमुख राम सुख पाव न कोई । ३. काम ।

१६६०-६१ लोके भवतु चाश्चर्यं जलाज्जन्म घृतस्य च । सिकतायाश्च तैलं तु यत्नाद्यातु कथञ्चन ॥
विनाभक्ति न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते ॥ —सत्योपाख्यान

सकुनाधम, सब भाँति अपावन । प्रभु मोहिं कीन्ह बिदित जग-पावन । (४)
दो०—आज धन्य, मैं धन्य अति , जद्यपि सब बिधि हीन ।
निज जन जानि, राम मोहिं , संत - समागम दीन ।। १२३ क ।।
नाथ जथा-मति भाखेउँ , राखेउँ नहिं कछु गोइ ।
चरित - सिंधु रघुनायक , थाह कि पावै कोइ ।। १२३ ख ।।
सुमिरि राम - के गुन - गन नाना । पुनि - पुनि हरष भुसुंडि सुजाना ।
महिमा निगम नेति करि गाई । अतुलित बल - प्रताप प्रभुताई । (१)
१६८० सिव - अज - पूज्य चरन रघुराई । मो - पर कृपा परम मृदुलाई ।
अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं । केहि खगेस ! रघुपति-सम लेखौं । (२)
साधक, सिद्ध, बिमुक्त, उदासी । कबि, कोबिद, कृत-ज्ञ, संन्यासी ।
जोगी, सूर, सु-तापस, ज्ञानी । धर्म - निरत, पंडित, बिज्ञानी । (३)
तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी । राम नमामि, नमामि, नमामी ।
सरन गए मो - से अघ - रासी । होहिं नमामि सुद्ध अबिनासी[1] । (४)
दो०—जासु नाम भव-भेषज , हरन घोर[2] त्रय - सूल ।
सो कृपाल मोहिं - तोहिं-पर , रहहु राम अनुकूल[3] ।। १२४ क ।।
सुनि भुसुंडि-के बचन सुभ , देखि राम - पद - नेह ।
प्रेम - सहित बोलेउ गिरा[4] , गरुड़ बिगत - संदेह ।। १२४ ख ।।

अधिक नीच और सब प्रकारसे अपवित्र ठहरा, फिर भी प्रभु (राम)-का बड़प्पन देखिए कि उन्होंने यह प्रसिद्ध कर दिया है कि मैं सारे जगत्को पवित्र कर सकता हूँ । (४) यद्यपि मैं सब प्रकारसे नीच हूँ तो भी आज मैं धन्य हूँ, अत्यन्त धन्य हूँ कि रामने मुझे 'निज जन' (अपना भक्त) जानकर आप-जैसे सन्त-से मेरी भेंट करा दी ।। १२३ क ।। मैं ने तो अपनी बुद्धिके अनुसार आपको सब कुछ बता दिया, कुछ भी छिपाकर नहीं रक्खा फिर भी रामके चरित्र तो समुद्रके समान ऐसे अथाह हैं कि कोई क्या उनकी थाह पा सकता है ! ।। १२३ ख ।। रामके अनेक गुणोंका स्मरण कर-करके ज्ञानी काकभुशुण्डि बार-बार मगन हुए चले जा रहे थे कि—'जिन रामकी महिमा वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर गाई है, जिनका, बल, प्रताप और प्रभुत्व अतुलनीय है, (१) जिन रामके चरणोंकी पूजा शिव और ब्रह्मा भी निरन्तर करते रहते हैं, वे मुझ-जैसे दीनपर कृपा किए हुए हैं यही क्या उनकी कम दयालुता है ? ऐसा कृपालु स्वभाव तो मैंने न कहीं किसीका सुना न देखा ही । तब बताइए मैं रामके समान किसीको बताने भी चलूं तो किसे बताऊँ ? (२) चाहे कोई कितना भी बड़ा साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उदासीन, कवि, विद्वान्, कर्मकांडका ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूर, बड़ा तपस्वी, ज्ञानी, धर्मात्मा, पण्डित और विज्ञानी क्यों न हो, (३) पर जब-तक वह मेरे स्वामी रामकी सेवा (भजन) नहीं कर लेता तबतक वह मुक्त नहीं हो सकता । मैं उन्हीं रामको बार-बार नमस्कार करता हूँ जिनकी शरणमें जाने-पर मेरे-जैसे अत्यन्त पापी भी शुद्ध (पापसे रहित) हो जाते हैं । उन अविनाशी रामको मैं (श्रद्धापूर्वक) नमस्कार करता हूँ (४) जिनका नाम ही संसारके रोग (जन्म और मृत्यु)-के लिये अचूक औषधि है और जिनमें तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख) नाश कर सकनेकी पूरी शक्ति है । वे ही कृपालु राम, मुझपर और आपपर सदा प्रसन्न रहें' ।। १२४ क ।। काक-भुशुंडिके ऐसे प्यारे वचन सुनकर और रामके चरणोंमें उनका इतना अधिक प्रेम देखकर वे

१. होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी । २. तात । ३. सो कृपाल मोपर सदा, रहहु राम अनुकूल ।
४. बोलेउ प्रेमसहित गिरा ।

१६९० मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि, रघुबीर-भगति-रस-सानी।
राम-चरन नूतन रति भई। माया-जनित बिपति सब गई। (१)
मोह-जलधि बोहित तुम भए। मो-कहँ नाथ! बिबिध सुख दए।
मो-पहँ होइ न प्रति-उपकारा। बंदौं तव पद, बारहिं बारा। (२)
पूरन-काम, राम-अनुरागी। तुम-सम तात! न कोउ बड़-भागी।
संत, बिटप, सरिता, गिरि, धरनी। पर-हित-हेतु सबन-कै करनी। (३)
संत-हृदय नवनीत-समाना। कहा कबिन, पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर-दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। (४)
जीवन जनम सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद, सब संसय गयऊ।
जानेहु सदा मोहिं निज किंकर। उमा! कहइ पुनि पुनि बिहंगबर[1]। (५)
१७०० दो०—तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम-सहित मति-धीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब, हृदय राखि रघुबीर॥ १२५ क॥
गिरिजा! संत-समागम,-सम, न लाभ कछु आन।
बिनु हरि-कृपा न होइ सो, गावहिं बेद-पुरान॥ १२५ ख॥
परम पुनीत कहेउँ इतिहासा[2]। सुनत स्रवन, छूटहि भव-पासा।

(गरुड) बड़े प्रेमसे कहने लगे, जिनके सारे सन्देह पूर्णत: मिट चुके थे—॥ १२४ ख॥ 'रामकी भक्तिसे भरी हुई आपकी वाणी सुनकर तो मैं कृतकृत्य हो गया (मुझे सब कुछ मिल गया)। रामके चरणोंमें मेरी कुछ नई ही प्रीति जाग खड़ी हुई है। मायाके कारण जो मेरे मनमें भ्रम उठ खड़ा हुआ था वह सबका सब अब जाता रहा। (१) मैं जो मोहके समुद्रमें डूबा चला जा रहा था उससे उबारनेके लिये आप जहाज बनकर चले आए। नाथ! आपने मुझे (कथा सुनाकर) इतना अधिक सुख दे डाला है कि आपके इन उपकारोंका बदला मैं चुकाना भी चाहूँ तो नहीं चुका सकता। मैं तो बार-बार आपके चरणोंकी वन्दना ही करता हूँ। (२) आप तो पूर्णकाम (जिसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हों) और रामके प्रेमी हैं। आपके समान कोई भाग्यशाली है नहीं। सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी—ये सब सदा दूसरोंका हित ही करते रहते हैं। (३) कवियोंने कहा तो है कि सन्तोंका हृदय मक्खनके समान (कोमल) होता है, परन्तु उन्हें कहनेका ढंग नहीं आया। मक्खन तो तभी पिघलता है जब उसे स्वयं ताप लगता है, पर सन्त जनका स्वभाव तो ऐसा होता है कि ताप (दु:ख) दूसरोंको होता है पर पिघलते वे हैं (दूसरोंको दुखी देखकर द्रवित हो उठते हैं)। (४) आज मेरा जीवन और जन्म सफल हो गया। आपकी कृपासे मेरे सारे सन्देह भी जाते रहे। अब आप सदा मुझे अपना सेवक ही समझते रहिएगा।' (शिव कहते हैं–) 'देखो उमा! (उन्हें धन्यवाद देते हुए गरुड (-का जी नहीं भर रहा था इसलिये वे) बार-बार यही सब कहे चले जा रहे थे।' (५) धीर बुद्धिवाले गरुड उनके (काक-भुशुंडिके) चरणोंमें बड़े प्रेमसे प्रणाम करके और हृदयमें रामका ध्यान करते हुए वैकुण्ठ उड़ चले॥ १२५ क॥ (शिव कहते हैं–) 'देखो गिरिजा! वेद और पुराण कहते हैं कि संत-समागमके समान दूसरा कोई लाभ नहीं है। वह (सन्त-समागम) भी हरिकी कृपाके बिना नहीं मिल पाता॥ १२५ ख॥ मैंने तुम्हें यह परम पवित्र इतिहास कह सुनाया जिसे सुननेसे ही संसारके

१. पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगवर। २. कहेउँ परम पुनीत इतिहासा।

१६९४-९५ पिबन्ति नद्य: स्वयमेवनाम्भ: स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षा:।
नादन्ति सस्यं किल वारिवाहा: परोपकाराय सतां विभूतय:॥ —सुभाषित
१६९६-९७ क्षीरसारस्य संतानां हृदश्च महदन्तरम्। द्रवते निज सन्तापादेकोऽन्य: परदु:खत:॥—सुभाषित

प्रनत - कल्पतरु, करुना - पुंजा। उपजै प्रीति राम - पद - कंजा। (१)
मन - क्रम - बचन - जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा स्रवन-मन लाई।
तीर्थाटन - साधन - समुदाई। जोग - बिराग - ज्ञान - निपुनाई। (२)
नाना कर्म, धर्म, ब्रत, दाना। संजम, दम, जप, तप, मख नाना।
भूत - दया, द्विज - गुरु - सेवकाई। बिद्या, बिनय, बिबेक, बड़ाई। (३)
१७१० जहँ - लगि साधन बेद बखानी। सब-कर फल हरि-भगति, भवानी।
सो रघुनाथ - भगति श्रुति गाई। राम - कृपा काहू एक पाई। (४)

दो०—मुनि-दुरलभ हरि-भगति, नर, पावहिं बिनहि प्रयास।
जे यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि बिस्वास॥ १२६॥

सोइ सर्बज्ञ, गुनी, सोइ ज्ञाता। सोइ महि - मंडित, पंडित, दाता।
धर्म - परायन सोइ कुल - त्राता। राम - चरन जा - कर मन राता। (१)
नीति - निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति - सिद्धान्त नीक तेहि जाना।
सोइ कबि, कोबिद, सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा। (२)
धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी।
धन्य सो भूप, नीति जो करई। धन्य सो द्विज, निज धर्म न टरई। (३)
१७२० सो धन धन्य, प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य - रत, मति सोइ पाकी।
धन्य घरी सोइ, जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज - भगति अभंगा। (४)

दो०—सो कुल धन्य उमा ! सुनु, जगत - पूज्य, सुपुनीत।
श्रीरघुबीर - परायन, जेहि नर उपज बिनीत॥ १२७॥

सारे बन्धन कट गिरते हैं और शरणागतोंको कल्पवृक्षके समान इच्छानुसार फल देनेवाले करुणानिधान रामके चरणकमलोंमें प्रेम उत्पन्न हो जाता है। (१) जो लोग मन लगाकर (ध्यानसे) यह कथा सुनते हैं, उनके मन, कर्म और वचनसे जो भी पाप उत्पन्न होते हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं। वेदोंने तीर्थयात्रा आदि सब साधन, योग, वैराग्य, परम ज्ञान, (२) अनेक प्रकारके कर्म, धर्म, व्रत, दान, संयम, सेवा, विद्या, विनय और परम विवेक आदि (३) जितने भी साधन बतलाए हैं उन सबका लक्ष्य यही है कि हरिकी भक्ति मिले। किन्तु वेदोंमें बताई हुई वह रामकी भक्ति रामकी कृपासे कोई बिरला ही प्राप्त कर पाता है। (४) यह विश्वास मानकर जो लोग निरन्तर यह कथा सुनते रहते हैं, वे मनुष्य बिना परिश्रमके ही वह हरिभक्ति प्राप्त कर लेते हैं जो मुनियोंको भी बड़ी कठिनाईसे मिल पाती है॥ १२६॥ सच पूछिए तो जिसका मन रामके चरणोंमें लगा रहता है, वही सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञानी, पृथ्वीका भूषण, पण्डित, दानी, धर्म-परायण और कुलका रक्षक है। (१) जो छल छोड़कर रामका भजन करता है, वही नीति जाननेवाला और परम बुद्धिमान् है, वही वेदोंका सिद्धान्त भली भाँति जान पाया है, वही कवि, विद्वान् और रणधीर है। (२) वह देश धन्य है जहाँ गंगा बहती हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत धर्मका पालन करती है, वह राजा धन्य है जो नीति (न्याय)-का पालन करता है, वह ब्राह्मण धन्य है जो निरन्तर अपने धर्म (कर्त्तव्य)-में लगा रहता है, (३) वह धन धन्य है जो प्रथम गति[1] (दान)-में लगता है, वही बुद्धि धन्य और सच्ची है जो सदा पुण्यमें लगी रहती है, वही घड़ी धन्य है जो सत्संगमें बीतती है और उसीका जन्म धन्य है जो ब्राह्मणोंका अखण्ड भक्त हो। (४) देखो उमा ! वही कुल धन्य, संसार भरके लिए पूज्य और परम पवित्र है, जिसमें रामके भक्त विनम्र

१. धनकी क्रमश: तीन गतियाँ : दान, भोग, नाश।

१७०४-६ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः। मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते॥–भाग०

मति - अनुरूप कथा मैं भाखी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ।
तव मन प्रीति देखि अधिकाई । तौ[1] मैं रघुपति - कथा सुनाई । (१)
यह न कहिय सठहीं, हठ - सीलहिं । जो मन लाइ न सुन हरि - लीलहिं ।
कहिय न लोभिहिं, क्रोधिहिं, कामिहिं । जो न भजइ सचराचर - स्वामिहिं । (२)
द्विज - द्रोहिहिं न सुनाइय कबहूँ । सुरपति - सरिस होइ नृप जबहूँ ।
राम - कथा - के तेइ अधिकारी । जिन्हके सत - संगति अति प्यारी । (३)
१७३० गुरु - पद - प्रीति, नीति - रत जेई । द्विज - सेवक अधिकारी तेई ।
ता - कहँ यह बिसेषि सुखदाई । जाहि प्रान - प्रिय श्रीरघुराई । (४)
दो० —राम - चरन - रति जो चहै , अथवा पद - निर्बान ।
भाव-सहित सो यहि कथा , करौ स्रवन - पुट पान ॥ १२८ ॥
राम - कथा गिरिजा ! मैं बरनी । कलि-मल-समनि, मनोमल - हरनी ।
संसृति - रोग सजीवनि मूरी । राम कथा गावहिं श्रुति, सूरी । (१)
ऐहि - महँ रुचिर सप्त सोपाना । रघुपति - भगति - केर पंथाना ।
अति हरि - कृपा जाहि - पर होई । पाउँ देइ ऐहि मारग सोई । (२)

पुरुष उत्पन्न हों ॥ १२७ ॥ मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार यह कथा तुम्हें कह सुनाई है । यद्यपि मैं इसे बहुत छिपाकर रक्खे हुए था पर जब मैंने देख लिया कि तुम्हारे मनमें इतना अधिक प्रेम है तभी मैंने रामकी यह कथा तुम्हें कह सुनाई है । (१) देखो ! यह कथा उन लोगोंको कभी नहीं सुनानी चाहिए जो धूर्त हों, हठी हों और मन लगाकर हरिकी लीला न सुनते हों । जो लोग लोभी, क्रोधी और कामी हों तथा चराचरके स्वामी रामको न भजते हों उन्हें यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिए । जो मनुष्य ब्राह्मणोंका वैरी हो, वह चाहे इन्द्रके ही समान राजा क्यों न हो, उसे यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिए । रामकी कथा सुननेका अधिकार केवल उन्हें ही है, जिन्हें सत्संगतिमें आनन्द मिलता हो । (३) जो लोग अपने गुरुके चरणोंकी सेवा करते हों, नीति-परायण हों और ब्राह्मणोंके सेवक हों केवल उन्हें ही यह कथा सुननेका अधिकार है । जो लोग रामको प्राणोंके समान प्रिय समझते हैं उन्हें तो यह कथा सुननेसे और भी अधिक रस मिलता है । (४) जो चाहता हो कि रामके चरणोंमें मेरा प्रेम हो या जो मोक्ष चाहता हो उसे चाहिए कि अपने कानोंको दोना बनाकर राम-कथाका अमृत प्रेमसे पीता रहे (बड़े प्रेमसे यह कथा सुनता रहे) ॥१२८॥ देखो गिरिजा ! मैंने तुम्हें यह ऐसी रामकथा कह सुनाई है जिसे सुननेसे कलियुगके सारे पाप नष्ट हो मिटते हैं तथा मनके सारे मैल कट बहते हैं । वेद और विद्वान् पुरुष बताते हैं कि यह कथा तो संसृति (जन्म-मरण)-का रोग दूर कर डालनेवाली संजीवनी बूटी है । (१) इस (रामचरितमानस)-में (सात कांड ही) सात सुन्दर सोपान (पैड़ियाँ) हैं जिनसे उतरनेपर (मानस पढ़कर) रामकी भक्ति-सिद्धि प्राप्त हो पाती है । इन पैड़ियाँपर पैर जमाकर वही उतर पाता है जिसपर श्रीहरिकी अत्यन्त कृपा होती है । (२) जो लोग कपट छोड़कर यह कथा कहते हैं, उनके मनकी सारी कामनाएँ अवश्य

१. तब ।

१७२६-३१ नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् । न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥
न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे । नाभक्ताय च मे यातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥
श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे । भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरताय च ॥
बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् । निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥—भाग०

मन - कामना - सिद्धि नर पावा । जो यह कथा कपट तजि गावा ।
कहहिं, सुनहिं, अनुमोदन करहीं । ते गोपद - इव भवनिधि तरहीं । (३)
१७४० सुनि सब कथा, हृदय अति भाई । गिरिजा बोली गिरा सोहाई ।
नाथ - कृपा, मम गत संदेहा । राम - चरन उपजेउ नव नेहा । (४)
दो०—मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम - भगति दृढ़, बीते सकल कलेस ॥ १२९ ॥
यह सुभ संभु - उमा - संवादा । सुख - संपादन, समन - बिषादा ।
भव - भंजन, गंजन - संदेहा । जन - रंजन, सज्जन - प्रिय एहा । (१)
राम - उपासक जे जग - माहीं । ऐहि सम प्रिय तिन्हके कछु-नाहीं ।
रघुपति - कृपा जथा - मति गावा । मैं यह पावन चरित सोहावा । (२)
ऐहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग - जग्य - जप - तप - ब्रत - पूजा ।
रामहिं सुमिरिय, गाइय रामहिं । संतत सुनिय राम - गुन - ग्रामहिं । (३)
१७५० जासु पतित - पावन बड़ बाना । गावहिं कबि - श्रुति - संत - पुराना ।
ताहि भजिय, मन ! तजि कुटिलाई । राम भजे, गति केहि नहिं पाई । (४)
छंद—पाई न केहि गति, पतित - पावन राम भजि, सुनु सठ मना ।
गनिका, अजामिल, ब्याध, गीध, गजादि खल तारे घना ।

पूरी हो जाती हैं। जो लोग यह कथा कहते, सुनते और इसे सत्य समझते हैं वे संसार (-के दुःख,-के समुद्रको ऐसी सरलतासे लाँघ जाते हैं जैसे गौके खुरके गड्ढे के बराबर नन्हाँसा गड्ढा लाँघ गए हों।' (३) (याज्ञवल्क्य कहते हैं—) यह सब कथा पार्वतीको बहुत ही अच्छी लगी और तब वे बड़ी प्रेमभरी वाणीसे बोलीं—'स्वामीकी कृपासे मेरा सारा सन्देह जाता रहा और रामके चरणोंसे अब मेरे मनमें कुछ नवीन ही प्रेम उत्पन्न हो उठा है। (४) देखिए विश्वनाथ ! आपकी कृपासे अब मैं कृतकृत्य हो गई (मेरी सब इच्छाएँ पूरी हो गईं)। मेरे सभी क्लेश मिट गए, और मेरे मनमें रामकी पक्की भक्ति जाग उठी' ॥ १२९ ॥

शंभु और उमाका यह कल्याणकारी संवाद जो भी सुन ले उसे सुख तो मिलता ही है साथ ही उसके सारे शोक भी नष्ट हो जाते हैं। यह संवाद भव (जन्म-मरण)-के सारे बन्धन काट डालता है और सारे सन्देह दूर कर डालता है। यह संवाद सुननेसे भक्तोंको आनन्द मिलता है और यह सन्तोंको बड़ा प्रिय लगता है। (१) संसारमें जितने भी रामके उपासक हैं, उन्हें तो इस राम-कथाके समान कुछ भी प्रिय है ही नहीं। मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार यह पवित्र और सुन्दर चरित्र रामकी कृपासे ही कह सुनाया है।' (२) तुलसीदास कहते हैं)—'इस कलियुगमें केवल रामका ही स्मरण करने, रामका ही गुणगान करते (कहते-सुनते) रहनेके अतिरिक्त योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजा आदि किसी भी अन्य साधनसे मुक्ति नहीं मिल सकती। (३) अरे मन ! वेद, कवि, सन्त और पुराण कहते हैं कि जो राम पतितों-तकको पवित्र कर डालनेके लिये प्रसिद्ध हैं बस तू अपनी सारी खोट छोड़कर उन्हीं रामका भजन करने लग। भला बता तो सही कि संसारमें ऐसा कौन है जिसने रामका भजन करके परम गति न पा ली हो। (४) अरे दुष्ट मन ! बता तो सही कि पतितोंको भी पवित्र कर डालनेवाले रामका भजन करके किसे परम गति नहीं मिली ? गणिका, अजामील, व्याध, गीध, गज आदि न जाने कितने दुष्टोंको उन्होंने तार डाला।

१७३८-३९ य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः । शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥
१७४८-४९ तस्मात्सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवन्नृणाम्॥ भागवत

आभीर, जवन, किरात, खस, स्वपचादि, अति अघ - रूप जे।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं, राम ! नमामि ते ॥ [१७]
रघुबंस - भूषन - चरित यह नर कहहिं, सुनहिं, जे गावहीं।
कलिमल, मनोमल धोइ, बिनु श्रम, राम - धाम सिधावहीं।
सतपंच चौपाई मनोहर, जानि, जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या - पंच - जनित बिकार श्रीरघुबर हरै ॥ [१८]
१७६० सुंदर, सुजान, कृपानिधान, अनाथ - पर कर प्रीति जो।
सो एक राम, अकाम - हित, निर्बान - प्रद - सम आन को।
जा - की कृपा लवलेस - तें मति - मंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्राम, राम - समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥ [१९]

दो०—मो - सम दीन, न दीन-हित, तुम - समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस-मनि, हरहु बिषम भव-भीर ॥ १३० क ॥
कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥ १३० ख ॥

आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच आदि न जाने कितने पापी केवल एक बार जिनका नाम लेकर पवित्र हो गए उन्हीं रामको मैं (सादर) नमस्कार करता हूँ। [१७] जो मनुष्य रघुवंशके भूषण रामका यह चरित्र कहते, सुनते और वर्णन करते रहते हैं, वे कलियुगके सब पाप और मनके सारे मल (विकार) धो-बहाकर, बिना परिश्रम ही रामके परम धाम जा पहुँचते हैं। जो मनुष्य मन प्रसन्न कर देनेवाली एक सौ पाँच चौपाइयों[1] को भली प्रकार समझकर अपने हृदयमें जमा लेते हैं, उनके मनमें अविद्यासे उत्पन्न होनेवाले पाँचों प्रकारके विकार (विद्या, अस्मिता = अभिमान, राग, द्वेष, अभिनिवेश = तीव्र आसक्ति) स्वयं राम ही मिटा डालते हैं। [१८] केवल राम ही ऐसे हैं जो सुन्दर, ज्ञानी और कृपालु भी हैं तथा अनाथोंसे प्रेम भी करते हैं। बिना कारण ही दूसरोंका हित करनेवाला और मोक्ष देनेवाला बताओ इनके समान दूसरा है कौन ? जिन रामकी तनिकसे कृपासे मन्दबुद्धि तुलसीदासको भी परम शान्ति प्राप्त हो गई, उन रामके समान प्रभु कहीं देखनेको नहीं मिलता। [१९] हे राम ! न तो मेरे समान कोई दुखी है, न आपके समान कोई दीनोंका दुःख दूर करनेवाला ही है, यह जानकर, हे रघुवंशमणि ! मेरी यह भव-पीडा (जन्म-मरणका दुःख) सदाके लिये मिटा डालिए (परम-पद दे दीजिए) ॥ १३० क ॥ हे राम ! जैसे कामी पुरुषको स्त्रियाँ प्रिय लगती हैं और जैसे लोभीको धन ही प्यारा लगता है, उसी प्रकार आप भी मुझे निरन्तर अत्यन्त प्रिय लगते रहिए ॥ १३० ख ॥

१. सतपंच चौपाई :—उत्तरकाण्डके दोहा सं० ११४ (ख) के आगे की छठी चौपाई—
'ज्ञानहिं-भगतिहिं अंतर केता। सकल कहहु प्रभु ! कृपा-निकेता।'—से
दोहा सं० १२९ के आगेकी चौथी चौपाई—
'ताहि भजहि मन ! तजि कुटिलाई। राम भजे, गति केहि नहिं पाई ॥—तक १०५ चौपाइयाँ।

१७५२-५५ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक् पथः। व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथाऽपरे॥
किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥ —भागवत
१७५६-५९ यः पठेच्छृणुयाद्वापि मायाचित्वं हरेर्विभोः। मायां विसृज्य पुण्यात्मा विष्णुलोकं स गच्छति। अ०दु.रा.
१७६४-६५ पापिनामहमेवाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः। दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये॥—अथ.र.
१७६६-६७ यूनां चित्तं यथा स्त्रीषु लुब्धानां च यथा धने। क्षुधितानां यथा चान्ने तथा त्वयि ममास्तु वै॥ पद्मपु०

श्लोक–यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम् ।
१७७० मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।। ङ ।।
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभं ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
१७८० ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ।। च ।।

।। इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने अविरलभक्तिसम्पादनो नाम सप्तमः सोपानः सम्पूर्णः ।।

सबसे श्रेष्ठ कवि भगवान् शंकरने रामके चरण-कमलोंमें नित्य निरन्तर भक्ति उत्पन्न होती रहनेके लिये जिस अलभ्य मानस (रामायण)-की रचना की थी, उस मानस (रामायण)-में केवल राम ही रामका नाम देखकर तुलसीदासने अपने अन्तःकरणका अन्धकार (अज्ञान) मिटाकर शान्ति प्राप्त करनेके लिये इस मानसको लोक-भाषामें लिख डाला है । ।। ङ ।।

यह श्रीरामचरितमानस अत्यन्त पवित्र है , इसे पढ़नेसे पुण्य प्राप्त होता है, पाप दूर होते हैं, सदा सबका कल्याण होता है, विज्ञान (ब्रह्मज्ञान) और भक्ति प्राप्त होती है तथा माया, मोह और मल (पापों)-का नाश हो जाता है क्योंकि इसमें प्रेम ही प्रेमका परम निर्मल जल तथा मंगल ही मंगल भरा हुआ है । जो मनुष्य भक्ति-भावसे इस मानसरोवरमें स्नान आ करते हैं (रामचरितमानसको पढ़ते और सुनते हैं), वे संसारके दुःखके सूर्यकी अत्यन्त प्रचण्ड किरणोंसे कभी नहीं झुलस पाते ।। च ।।

।। कलियुगके समस्त पाप नष्ट कर सकनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह 'अविरल भक्ति सम्पादन करानेवाला' नामका सातवाँ सोपान (उत्तर कांड) समाप्त हुआ ।।

।। उत्तर-काण्ड समाप्त ।।

आरती

आरति श्रीरामायनजी - की । कीरति कलित ललित सिय-पी की ।।
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । बालमीक बिज्ञान - बिसारद ।
सुक - सनकादि सेष अरु सारद , बरनि पवनसुत कीरति नीकी ।।१।।आर०।।
गावत बेद - पुरान अष्टदस , छवों सास्त्र सब ग्रंथन-को रस ।
मुनि-जन-धन, संतन-को सर्बस , सार - अंस संमत सबही - की ।।२।।आर०।।
गावत संतत संभु - भवानी , अरु घट - संभव मुनि बिज्ञानी ।
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी , काग-भुसुंडि - गरुड़ - के हिय - की ।।३।।आर०।।
कलिमल-हरनि, बिषय-रस-फीकी , सुभग सिंगार मुक्ति-युवती-की ।
दलन रोग - भव, मूरि अमी-की , तात-मात सब बिधि-तुलसी-की ।।४।।आर०।।
।। आरति श्रीरामायनजी - की ।।

।। इति आरती संपूर्णम् ।। शुभम् ।।

ग्रन्थ-सूची

जिनसे सहायता लेकर गोस्वामीजीने रामचरितमानसकी रचना की ।

ग्रन्थ-नाम

१ अगस्त्यरामायण
२ अगस्त्यसंहिता
३ अग्निपुराण
४ अग्निवेशरामायण
५ अत्रिरामायण
६ अथर्ववेद
७ अथर्वणरहस्य
८ अद्भुतरामायण
९ अद्भुतोत्तरखंड
१० अध्यात्मरामायण
११ अनर्घराघव
१२ अभिज्ञानशाकुन्तल
१३ अमरकोश
१४ अलंकारमंजूषा
१५ आत्मबोध
१६ आदिपुराण
१७ आदिशक्तिसंहिता
१८ आनन्दरामायण
१९ आनन्दवर्धनचरित्र
२० आनन्दवृन्दावन
२१ इन्द्रपुराण
२२ उत्तररामचरित
२३ उतथ्यसंहिता
२४ उमासंहिता
२५ ऋग्वेद
२६ ऋष्यशृङ्गसंहिता
२७ कठवल्ल्युपनिषद्
२८ कण्वसंहिता
२९ कथासरित्सागर
३० कपिलदेवसंहिता
३१ कपिलरामायण
३२ कश्यपसंहिता
३३ कात्यायनसंहिता
३४ कामन्दकीयनीतिसार
३५ काव्यप्रकाश
३६ काव्यप्रभाकर
३७ किरातार्जुनीय
३८ कुमारसम्भव
३९ कुमारसंहिता
४० कूर्मसंहिता
४१ केनोपनिषद्
४२ केशवसंहिता
४३ कैवल्योपनिषद्

ग्रन्थ-नाम

४४ कौशिकसंहिता
४५ कौण्डिन्यसंहिता
४६ क्रौञ्चरामायण
४७ क्षेमेन्द्रसंहिता
४८ गणेशपुराण
४९ गणेशसंहिता
५० गणेश्वरसंहिता
५१ गर्गसंहिता
५२ गरुडपुराण
५३ गरुडरामायण
५४ गरुडसंहिता
५५ गालवसंहिता
५६ गीतगोविन्द
५७ गुरुगीता
५८ गौतमरामायण
५९ गौतमसंहिता
६० घंटापथ (टीका)
६१ चम्पूरामायण
६२ चाणक्यनीतिर्दर्पण
६३ छन्दःप्रभाकर
६४ जटायुरामायण
६५ जमदग्निरामायण
६६ जमदग्निसंहिता
६७ जानकीस्तवराज
६८ जाबालिसंहिता
६९ जैमिनिपुराण
७० जैमिनिरामायण
७१ जैमिनिसंहिता
७२ दुर्गार्थप्रदीप
७३ देवलसंहिता
७४ देवीभागवत
७५ देहरामायण
७६ दूतांगद
७७ धनंजयसंहिता
७८ धनेश्वरसंहिता
७९ धन्वन्तरिसंहिता
८० धर्मरामायण
८१ धर्मशास्त्र
८२ धर्मसंहिता
८३ धर्मात्मदर्शनसंहिता
८४ नन्दिकेश्वरसंहिता
८५ नन्दिपुराण
८६ नलचम्पू

ग्रन्थ-नाम

८७ नवरत्नपंचाशिका
८८ नारदपंचरात्र
८९ नारदपुराण
९० नारदसंहिता
९१ नारदीयपुराण
९२ नारदीयरामायण
९३ नारदोक्तरामायण
९४ नारायणसंहिता
९५ नीलकंठसंहिता
९७ नैषधीयचरित
९८ पञ्चतंत्र
९९ पद्मपुराण
१०० पद्मपंचाशिका
१०१ पराशरसंहिता
१०२ पराशर-स्मृति
१०३ पांडवगीता
१०४ पाणिनिशिक्षा
१०५ पाणिनिसूत्र
१०६ पारमहंस्यसंहिता
१०७ पार्थिवपूजा-पद्धति
१०८ पुरुष-सूक्त
१०९ पुरुषोत्तमसंहिता
११० पुलस्त्य-रामायण
१११ पुलस्त्यसंहिता
११२ पौलस्त्यसंहिता
११३ प्रजेशसंहिता
११४ प्रसन्नराघव
११५ प्रस्ताव-रत्नाकर
११६ बालरामायण
११७ बृहच्छार्ङ्गधरपद्धति
११८ बृहत्संहिता
११९ बृहद्विष्णुपुराण
१२० बृहदारण्यकोपनिषद्
१२१ बृहज्ज्योतिःसार
१२२ बृहन्नारदीयपुराण
१२३ बृहस्पतिसंहिता
१२४ बृहस्पतिस्मृति
१२५ ब्रह्मपुराण
१२६ ब्रह्मवैवर्तपुराण
१२७ ब्रह्मरामायण
१२८ ब्रह्माण्डपुराण
१२९ भगवत्संहिता
१३० भगवद्गीता

ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थ-नाम	ग्रन्थ-नाम
१३१ भरतरामायण	१७७ रामरक्षास्तोत्र	२२२ शुक्रनीति
१३२ भरतसंहिता	१७८ रामाश्रमी	२२३ शुक्रपुराण
१३३ भरद्वाजरामायण	१७९ रामाश्वमेध	२२४ शौनकसंहिता
१३४ भरद्वाजसंहिता	१८० रुद्रयामल	२२५ श्रीकंठसंहिता
१३५ भट्टिकाव्य	१८१ रुद्रसंहिता	२२६ श्रीमद्भगवद्गीता
१३६ भर्तृहरिशतक	१८२ ललितरामचरित	२२७ श्रीमद्भागवत
१३७ भविष्योत्तरपुराण	१८३ ललितरामायण	२२८ श्रुतवोघ
१३८ भागुरिसंहिता	१८४ लाट्टायनसंहिता	२२९ श्वेतकेतुरामायण
१३९ भारतसार	१८५ लोमशरामायण	२३० सत्यार्थविवेक
१४० भार्गवपुराण	१८६ लोमशसंहिता	२३१ श्वेताश्वतरोपनिषद्
१४१ भुशंडिरामायण	१८७ वशिष्ठपुराण	२३२ संवर्तसंहिता
१४२ भोजप्रबंध	१८८ वशिष्ठरामायण	२३३ सत्योपाख्यान
१४३ मंगलरामायण	१८९ वशिष्ठसंहिता	२३४ सनकसंहिता
१४४ मत्स्यपुराण	१८९ वसंतराज	२३५ सनत्कुमारसंहिता
१४५ मदन-पारिजात	१९० वामदेवपुराण	२३६ सनन्दनसंहिता
१४६ मनुरामायण	१९१ वामदेवसंहिता	२३७ सनातनसंहिता
१४७ मनुसंहिता	१९२ वाराहपुराण	२३८ समयादर्श
१४८ मनुस्मृति	१९३ वाल्मीकीयरामायण	२३९ सुदर्शनसंहिता
१४९ महानिर्वाणतंत्र	१९४ वासवदत्ता	२४० सांख्यदर्शन
१५० महावीरचरित	१९५ वासुदेवरहस्य	२४१ सांखल्यस्मृति
१५१ महाभारत	१९६ विदग्धमुखमंडन	२४२ साहित्यदर्पण
१५२ महारामायण	१९७ विद्धेश्वरसंहिता	२४३ सुग्रीवरामायण
१५३ महिम्नस्तोत्र	१९८ विभीषणरामायण	२४४ सुचन्द्रसंहिता
१५४ महीधरसंहिता	१९९ विरंचिरामायण	२४५ सुतीक्ष्णरामायण
१५५ महेश्वररामायण	२०० विवाहपद्यावलि	२४६ सुतीक्ष्णसंहिता
१५६ महेश्वरसंहिता	२०१ विश्वामित्ररामायण	२४७ सुनन्दरामायण
१५७ मार्कण्डेयपुराण	२०२ विश्वामित्रसंहिता	२४८ सुमंत्ररामायण
१५८ मार्कण्डेयसंहिता	२०३ विष्णुपुराण	२४९ सुमंत्रसंहिता
१५९ मार्तण्डसंहिता	२०४ विष्णुसंहिता	२५० सुभाषितत्रिशती
१६० मातृकाविलास	२०५ वृत्तरामायण	२५१ सुभाषितरत्नभांडागार
१६१ मीमांसाशास्त्र	२०६ वेद	२५२ सूतसंहिता
१६२ मुण्डकोपनिषद्	२०७ वैनतेयसंहिता	२५३ सूर्यरामायण
१६३ मृच्छकटिक	२०८ वैवस्वतसंहिता	२५४ सौभरिरामायण
१६४ मुहूर्तदीपक	२०९ वैशम्पायनसंहिता	२५५ स्कन्दपुराण
१६५ मुहूर्तवृन्दावन	२१० वैष्णवधर्मरत्नाकर	२५६ स्कन्दरामायण
१६६ याज्ञवल्क्यरामायण	२११ व्याससंहिता	२४७ स्कन्दसंहिता
१६७ याज्ञवल्क्यसंहिता	२१२ शंकरसंहिता	२५८ हठदीप
१६८ याज्ञवल्क्यस्मृति	२१३ शक्तिसंहिता	२५९ हनुमत्संहिता
१६९ यादवकोष	२१४ शांडिल्यसंहिता	२६० हनुमद्रामायण
१७० योगवासिष्ठ	२१५ शांडिल्यसूत्र	२६१ हनुमन्नाटक
१६१ रघुवंश	२१६ शिवसंहिता	२६२ हरिवंशपुराण
१७२ रमेश्वरसंहिता	२१७ शिवगीता	२६३ हरिविलास
१७३ रामचरितचिंतामणि	२१८ शिवपुराण	२६४ हस्तामलक
१७४ रामसंहिता	२१९ शिवरामायण	२६५ हारीतस्मृति
१७५ रामतापनीयोपनिषद्	२२० शिवसंहिता	२६६ हितोपदेश
१७६ रामनाममाहात्म्य	२२१ शिशुपालवध	

६३/४२ उत्तर बेनिया बाग, छोटी पियरी, वाराणसी।